

महामहोपाध्याय श्रीगोविन्ददास विरचित

# भैषज्यरत्नावली

भाषाटीका सहित

JAMNADAS THAKKAR

15, NAROTANVAN,

269, SION-WEST,

BOMBAY-400022.

PHONE: 481814

टीकाकार

परिडित सरयूप्रसाद त्रिपाठी

व्याकरणायुर्वेदाचार्य

अनुवादक और संपादक

कविराज पं० गोपालप्रसाद शर्मा कौशिक

साहित्यरत्न, वैद्यभूषण, आयुर्वेदाचार्य,

साहित्याचार्य, विद्यालंकार



सूत्र

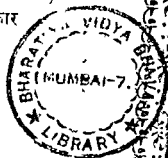
मुरलीधर मिश्र द्वारा

नेत्रकुमार-प्रेस, लग्ननऊ में मुद्रित और प्रकाशित

तृतीयवृत्ति ]

सन १९५७ ई०

[ मूल्य ]



अर्थ गणाः 12

अर्थ भेषजग्राहणसंकेत 17

अर्थ ज्वराधिकार 18

पित्तज्वर - 28

कफज्वर - 30

वातपित्तज्वर 32

पित्तश्लेष्मज्वर 33

ज्वरज्वर 42

अर्थ ज्वरात्तिसार 126

" प्लीहकृदाधिकार 132

" पांडु-कामला-रुक्मिण 150

" शोथ 163

" कलाम रोग 194

" मेद रोग 196

" आमाशयरोग 202

" हृदि रोग 203

" दाह रोग 206

" पृष्णा रोग 208

" रक्तपित्त 212

" अग्निमांद्य 224

" अरोचक 247

" अतीसार 252

" ग्राहणी 270

" कृमि 316

" अफ्लपित्त 325

" झूल 339

" गुल्म 367

" उदावत 378

" आनाह 380

" अग्नावरोध अत्रवधि 389

श्व अन्नरोग 386

थक्ष्मा 389

कास 411

द्विकान्धार 427

श्वरभेद 437

हृदय रोग 441

140

## निवेदन

जीवन को सुख और शान्तिपूर्वक व्यतीत करने में सफल होना ही मानवजीवन का लक्ष्य है। इसी के लिये सभी बुद्धिमान व्यक्ति प्रयत्नशील हैं। इसकी सफलता के जितने भी साधन हैं वे सब स्वस्थ शरीर से ही संभव हैं। कहा भी है—'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलसाधनम्'। शरीर को स्वस्थ रखने के दो मार्ग हैं। पहिला--रोगप्रतिबन्धक उपाय अर्थात् 'स्वास्थ्य-रक्षक नियमों का पालन करना। दूसरा--रोगनाशक उपाय अर्थात् चिकित्सा। पहिले मार्ग को समुचित रूप से ग्रहण करने से मनुष्य कभी बीमार नहीं होता है अतः यही श्रेयस्कर भी है "Prevention is better than cure" किन्तु मनुष्य असावधानी और प्रमाद के कारण स्वास्थ्यरक्षक नियमों के विपरीत आचरण करता ही है, इससे वह अस्वस्थ हो जाता है, अतएव चिकित्सा की आवश्यकता अनिवार्य रूप से होती है।

संसार में जितनी भी चिकित्सा-प्रणालियाँ हैं, उन सबकी उत्पत्ति आयुर्वेद से ही हुई है, आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त ही विकसित रूप से सभी चिकित्सा-प्रणालियों में पाए जाते हैं। यद्यपि चिकित्सा विज्ञान अनुभव और प्रयोगजन्य शास्त्र है अतः इसमें समयानुस परिवर्तन और परिवर्द्धन होना स्वाभाविक ही है। किन्तु त्रिकालदर्शी ऋषियों ने, जो चिकित्सा विज्ञान के आचार्य थे, आयुर्वेद का आधार ऐसे दृढ़ और स्थिर सिद्धान्तों को बनाया है अथवा तब अबाधित रूप से चल रहे हैं। यह चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेद भारतवर्ष में पूर्णक से सफल हुआ है, इसमें किसी को मतभेद नहीं है।

चिकित्सा के दो अंग हैं, निदान और उपचार। उपचार में अनुभवों का महत्त्व ही अधिक है। चिकित्सा में प्रयोग दो प्रकार के हैं—एक काष्ठौषधों से निर्मित, दूसरे खनिज औषधों से निर्मित जो रस कहलाते हैं। काष्ठौषधों से निर्मित प्रयोगों का प्रचार अधिक प्राचीन है, किन्तु उपयोगिता में रसौषधों का मूल्य अधिक है।

आयुर्वेद में अनेक चिकित्सा ग्रन्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों के प्रणीत हैं जिनमें उनके अनुभूत औषध प्रयोगों का वर्णन है। काष्ठौषध और रसौषध दोनों प्रकार के प्रयोगों के पृथक्-पृथक् ग्रन्थ मिलते हैं। अनेक ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनमें भिन्न भिन्न विद्वानों के परीक्षित प्रयोगों का संग्रह है, ऐसे ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं। १ केवल काष्ठौषध प्रयोगों का संग्रह, २ रस प्रयोगों का संग्रह, ३ दोनों प्रकार के प्रयोगों का संग्रह।

इस प्रकार के संग्रहग्रन्थों में प्रस्तुत ग्रन्थ भैषज्यरत्नावली प्रमुख ग्रन्थ है। इसके प्रणेता महामहोपाध्याय श्रीगोविन्ददासजी सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बंगाल में प्रसिद्ध हुए हैं। उनसे अपने सफलतादायक अनुभूत प्रयोगों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया है। उनके मौलिक संग्रह के बाद भी विद्वान् वैद्यों ने अपने अनुभूत और विशेष प्रचलित प्रयोगों को और बढ़ा दिया है, इस प्रकार नए संस्करणों में प्रयोगों की वृद्धि होती ही

गई। प्रस्तुत संस्करण में प्राचीन प्रयोगों के अतिरिक्त उन प्रयोगों का भी समावेश कर दिया गया है जिनको भान्तवर्ष के सभी वैद्य अधिकता से व्यवहार में लाते हैं। इससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। साथ ही उन नवीन गों का, जिनका प्राचीन साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता है, निदान भी ग्रन्थ से उद्धृत कर दिया है। इस ग्रन्थ के काष्ठौषध और रसौषध दोनों प्रकार के प्रयोग सबके सब बहुत ही उपादेय और चमत्कृत हैं। आशा है, वैद्य और सद्गृहस्थ सभी के लिये यह समान रूप से लाभदायक होगा।

अन्त में द्वितीय परिशिष्ट (केवल भाषा में) लगा देने से इस ग्रन्थ में वर्णित सभी प्रयोगों का बनाना बहुत सरल हो गया है। वैद्य ही नहीं, कोई भी विचारवान् व्यक्ति इसमें यथाये हुए प्रकार से प्रयोग बनाकर लाभ उठा सकता है।

द्वितीय संस्करण का सम्पादन विद्वान् और सफलचिकित्सक श्री कौशिकजी ने करके इसे अधिक उपयोगी बनाया। अब तृतीय संस्करण में उन्होंने ही अन्य आवश्यक विषय पथ्यापथ्य आदि तथा भिन्न २ प्रान्तों के वैद्यों के अनुभूत सफल प्रयोगों का और अधिक मात्रा में समावेश करके इसको और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। आशा है प्रस्तुत ग्रन्थ अब तक के सभी उपलब्ध संस्करणों से अधिक पूर्ण और लाभदायक सिद्ध होगा।

प्रकाशक

# भैषज्यरत्नावली सटीक

की

## विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
<u>मिथयगं</u>					
मद्गलाचरण	१	शाण्य और कोल	८	भावनाथं कायविधि	१७
द्याधुर्वेदोपत्तिक्रम	१	कर्म का परिमाण	८	अथ ज्वराधिकार	
आरोग्यप्रशस्ता	२	अर्धपल और पल	९	ज्वर के पूर्वरूप में विधि	१८
व्याधिभेद	२	प्रस्थ और आठक	९	नवीन ज्वर में त्याज्य	१८
आरोग्य और रोग के लक्षण	२	द्रोण, कुम्भ और द्रोण	९	तरणज्वर में कायपान का	
व्याधि के साध्य आदि भेद	२	पारी	९	निषेध	१८
रोग की उपेक्षा का फल	३	भार और गुला	९	तरणज्वर में कपड़े काय का	
गुरु के भेद	३	परिमाणों का सन्निवृत्तविवरण	१०	निषेध	१९
कालसृष्ट्यु की प्रयत्नता	३	घस्याऽपवाद	११	पायट आदि का निषेधा-	
वैद्य का कर्तव्य	४	<u>अथ नशा ।</u>		भाव	१९
अधिक्रिय रोगी	४	त्रिकला	१२	तरणज्वरवाले रोगी के नियम	१९
चिकित्साकाल	४	त्रिमद	१२	त्याज्य के सेवन से हानि	१९
प्रहरान्तिपूर्वक चिकित्सा	४	भ्यूपणादि	१२	ज्वरविशेष में लघननिषेध	१९
चिकित्सा के भेद	४	चतुर्जात और त्रिजात	१२	लघनलक्षणम्	१९
चिकित्सा का लक्षण	५	सर्वगन्ध	१२	लघन कराने का हेतु	१९
चिकित्सा की सफलता	५	चातुर्भद्रक	१२	लघन का फल	२०
रोगशान्ति के माधन	५	पञ्चकोल	१२	बलानुकूल लघनविधि	२०
वैद्य के गुण	५	पञ्चकोल और उसकी निरुक्ति	१२	लघन के अयोग्य	२०
प्रशस्त औषध	६	औरिगुह	१३	उत्तम लघन के लक्षण	२०
परिचारक के गुण	६	चतुरमल और पञ्चामल	१३	अतिलघन के लक्षण	२०
रोगी के गुण	६	पञ्चगव्य	१३	हीनलघन के लक्षण	२०
चिकित्सक की प्रधानता	६	लवणवर्ग	१३	धमनप्राशस्य	२१
वैद्यों के भेद	६	गृहपञ्चमूल	१३	धमन से हानि	२१
चिकित्सा का फल	७	स्वल्पपञ्चमूल	१३	अतिशीतजलपानविधि	२१
चिकित्सित देहनिष्क्रम	७	गुणपञ्चमूल	१३	पड्डापानीय	२१
रोगपरीक्षा के उपाय	७	बीवनीगण्य ( मधुरगण्य )	१३	नवज्वर में पेयादि-सेवनविधि	२१
चिकित्सा का प्रकार	८	अष्टवर्ग	१४	पड्डादिसाधन	२२
अपरीक्षित औषध से हानि	८	अथद्रव्यप्रतिनिधि परिभाषा	१४	लाजपेया सेवनकाल	२२
परिभाषाप्रकरण	८	<u>अथ भैषजप्रहरणस्कंठ ।</u>		रश्मालिपेया सेवनकाल	२२
मानपरिभाषा	८	आवरणक संकेत	१७	पेयानिर्माणविधि	२२
यव से मासा पर्यन्त	८	भावनाविधि	१७	यवागू का लक्षण	२२
		भावनाथं द्रवपरिमाण	१७	मयडादि के लक्षण	२२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अन्नादिसाधन	२०	तिन्नादिद्विधा	२१	अथ घातश्लेष्मज्वरत्रिकिरत्सा	
ज्वरभिरोग में पर्य	२१	श्लोभादिद्विधा	२१	वातश्लेष्मज्वर में श्वेद विधि	२४
ज्वररोगी का भोजनकाल	२१	पुरालभादिद्विधा	२१	बालुकाश्वेद	२५
उपरित और ज्वरमुद्र	२१	धिरवादिद्विधा	२१	उत्तम श्वेद का लक्षण	३२
भोजनकाल	२३	द्राक्षादिद्विधा	२१	ग्रामज्वरादि में श्वेद	३५
ज्वररोगी के लिए निषिद्ध	२४	प्रायमाणादि द्विधा	२१	पद्मकोल	३५
ग्रामदोष के पाचन	२४	तिन्नादि द्विधा	३०	रास्नादिद्विधा	३५
ज्वर के तरणादि लक्षण	२४	धीपय्यादि द्विधा	३०	आरग्यधादि	३५
जीर्णज्वर का लक्षण	२४	शीतोपचारीविधि	३०	पुत्रादि	३६
ज्वर में कषायप्रयोग	२४	दाहनाशक योग	३०	दशमूलीद्विधा	३६
ग्रामज्वर का लक्षण	२५	पलाशपत्रादिप्रलेप	३०	मुस्तादिद्विधा	३६
दोषपरिपाक का लक्षण	२६	विशयादि प्रदेश	३०	अथ सन्निपातज्वरत्रिकिरत्सा	
कषायसेवनकाल	२६	<u>कृष्णज्वरत्रिकिरत्सा</u>		सन्निपातज्वर में प्रथम कर्तव्य	३६
अभुज्रावस्था में औषधसेवन	२६	निम्बादिद्विधा	३०	सन्निपातज्वर में विधि	३६
के गुण	२६	पिप्पल्यादिगणकाथ	३१	लघन	३६
जीर्ण औषध के लक्षण	२६	त्रिफलादिद्विधा	३१	श्वेद	३७
अजीर्ण में औषधसेवन मे	२६	कुष्ठादिद्विधा	३१	श्वेदनिषिद्ध काल	३७
हानि	२६	ग्रामलवणादिद्विधा	३१	अथ नम्यम्	
औषध के अल्पपरिपाक के	२६	मत्तच्छदादिद्विधा	३१	मैन्धवादिनस्य	३७
लक्षण	२६	भिन्धुवारद्विधा	३१	मधुकमारादिनस्य	३७
अभ्रावृत औषध के लक्षण	२७	चातुर्भद्रावलेहिका	३१	पद्मश्लेष्मादिनस्य	३७
ज्वरे समासेन कर्मानिर्देश	२७	अवलेह के सेवन का काल	३२	लघुनादिनस्य	३८
माप्राप्तिरूपण	२७	मधुपिप्पली	३२	काली मुर्गी के अण्डे के जक	३८
सर्वज्वर में साधारण धान्य-	२७	<u>वातपित्तज्वरत्रिकिरत्सा</u>		मे नस्य आदि	३८
पटोल काथ	२७	नवाङ्गकाथ	३२	अथनिष्ठीवनं	
वातिक ज्वर पर किरातादि	२७	गुडूपादिद्विधा	३२	आङ्गकादि निष्ठीवन	३८
काथ	२७	सृष्टगुडूच्यादिद्विधा	३२	अथावलेह	३८
पिप्पल्यादिद्विधा	२७	घनचन्दनादि	३२	अष्टाङ्गावलेहिका	
गुडूच्यादिद्विधा	२८	पद्मभद्रद्विधा	३३	<u>अथअञ्जनम्</u>	
द्राक्षादिद्विधा	२८	त्रिफलादिद्विधा	३३	शिरीषादिअञ्जन	३८
पद्ममूलीकाथ	२८	भान्यादिद्विधा	३३	विडञ्जन	३८
रास्नादिद्विधा	२८	मधुकादिगीतद्विधा	३३	दशमूलकाथ	३८
विलवादिद्विधा	२८	अथपित्तश्लेष्मज्वरत्रिकिरत्सा		चतुर्दशाङ्गकाथ	३८
विरवादिद्विधा	२८	अमृताष्टक	३३	भूमिम्बाघटादशाङ्गकाथ	३८
गुडूच्यादिस्वरस	२८	कण्टकायादिद्विधा	३४	सृष्टयादि गण	४०
<u>पित्तज्वरत्रिकिरत्सा</u>		पटोलादिद्विधा	३४	शक्यादि वर्ग	४०
यवपटोलद्विधा	२८	पद्मतिन्त्रकाथ	३४	मुस्ताघटादशाङ्ग काथ	४०
पर्पटकाथ	२९	कटुरोहिणीचूर्ण	३४	वातरश्लेष्महरअष्टादशाङ्ग काथ	४०
आन्मशर्करा	२९	वासवास्वरस	३४	सन्निपात में पर्य	४०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पद्ममुष्टिक घृण	४०	ऐकाहिक ज्वर में तिलक	४०	जल आदि का प्रमाण	२४
घातुभद्रक पद्ममूल	४०	त्र्याहिक ज्वर में अश्वग	४०	स्नेहपाक में कालनिर्णय	२४
घभिन्वाम का लक्षण	४१	तपण	४०	पाकपरीक्षा	२४
भारव्यादि बाध	४१	यन्त्रधारण	४०	घीरपटपलकघृत	२५
घातपित्ताधिक्य में पुरातन		मन्त्रदर्शन	४०	दशमूलपटपलकघृत	२५
घृताभ्यंग	४१	घातुधिक ज्वरमें तन्त्रोद्		स्नेहसाधन में काथादिकों	
वैशोद्धम में विधि	४१	शौकथ	४०	का परिमाण	२५
सत्रिपात में कर्णमूलशोध	४१	घातुधिक में हरिताल	४०	अथ तेलप्रकरणम्	
कर्णमूलशोध की साध्यता		घातुधिक में धूप	४०	मदाश्वहारकतैल	२६
आदि	४२	घातुधिक में नख	४०	महालाशादितैल	२६
कर्णमूलशोधचिकित्सा	४२	घातुधिक में नख	४०	बृहत्कद्रुतैल	२६
कुसुमादिप्रलेप	४२	घातुधिक में पेवा	४०	कृष्णादिगणोषधा	२७
गैरिकादिप्रलेप	४२	आगन्तुक ज्वरचिकित्सा	४०	बृहत्पिप्पल्यादितैल	२७
दशमूलप्रलेप	४२	सर्वज्वरनाशक योग	४१	महद्भूतिभयाद्य तैल	२८
बीजपुरादिप्रलेप	४२	सर्वज्वरनाशकद्वितीय योग	४१	महाज्वरभैरवतैल	२८
<u>अथजीर्णज्वरचिकित्सा</u>		रात्रिज्वरनाशक योग	४१	ज्वर में शिरोवेदानाशक	
निद्रिभिषकादिबाध	४२	सर्वज्वरहर मन्त्रधारण	४१	योग	२९
मुष्टियोग	४२	सर्वज्वरहर समन्त्रतामूल	४१	आगन्तु ज्वरचिकित्सा	२९
नद्य प्लोहज्वर में निद्रिभिषकादि		सर्व प्रकार क ज्वर में पूजा	४१	ज्वरमुष्टि में निषिद्ध	६०
क्रंथि	४३	सर्व ज्वरों में चिप्युसहस्रनाम	४१	विगतज्वर के लक्षण	६०
घिरज्वरादिकों में योग	४३	सर्वज्वरों में दृघता और गुर		जीर्णज्वर में पेवा आदि	६०
विषमज्वरचिकित्सा	४३	आदि की पूजा	२०	ज्वर में सशोधन	६०
काथपद्मम्	४४	सर्व ज्वरों में निषम	२०	ज्वर में घमन	६०
महौषधादिबाध	४४	अष्टाङ्गधूप	२०	ज्वर में विरेचन	६०
उशीरादिबन्धाध	४४	अपराजितधूप	२०	ज्वरक्षीय के लिए विधि	६१
ऐकाहिक ज्वर में पटोलादि-		माहेरवरधूप	२०	ज्वर में शिरोविरेचन	६१
बन्धाध	४४	ज्वर में घृतपानव्यवस्था	२१	<u>अथ दुग्धप्रकरणम्</u>	
घातुधिक ज्वर में वासादि-		घृतपान के लिये निषिद्धकाल	२१	जीर्णज्वर में दुग्धप्रयोग	६१
बन्धाध	४५	ज्वर में पत्य मास	२१	मेघजसिद्ध दुग्ध के गुण	६१
महाबलादिबन्धाध	४५	<u>अथस्नेहपाकस्यसाधारणविधिः</u>		पञ्चमूलीशृत दुग्ध	६१
रात्रिज्वर में सुहृद्यादिबन्धाध	४५	स्नेहपाकाविधि	२१	घीरपाकविधि	६१
मुस्तादिकाथ	४५	काथादि द्रव्यों का परिमाण	२२	गोशुराधिदुग्ध	६२
बृहन्नाग्यादिबाध	४५	स्नेहादिपाक का काल	२२	पुनर्नवादिदुग्ध	६२
दास्यादिकाथ	४५	पाक की सिद्धि का लक्षण	२२	शीत या उष्ण दुग्ध पीने	
मधुकादिकाथ	४५	तिलतैलमूच्छा	२२	की व्यवस्था	६२
धान्यकादिबन्धाध	४५	कद्रुतैलमूच्छा	२२	परपद्मलीसिद्धदुग्ध	६२
मूलधारणादिप्रयोग	४५	ऐरकतैलमूच्छा	२२	<u>अथचूर्णप्रकरणम्</u>	
अपामार्गजटाधारण	४५	अथ घृतमूच्छा	२२	२-आमलक्यादि	६३
उज्ज्वलपञ्चाधारण	४७	पिप्पल्यासूत	२३	सुदर्शनचूर्ण-१	६३

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ज्वरभैरवचूर्ण	६२	सन्निपातभैरवरस	७६	त्रिदोषदायानलकालमेघरस	६२
ज्वरनागमयूरचूर्ण	६४	( १ ) सूचिकाभरणरस	७६	श्रीप्रतापलक्ष्मणदेवरस	६३
अथ नवज्वरादौ रस-प्रयोगः ।		( २ ) गृहसूचिकाभरणरस	७६	द्वितीय कफकेतुरस	६४
रसचिकित्सा में सौकर्य	६२	पाणीय वटिका	७७	महामृत्युञ्जय	६२
रसानभिज्ञ वैद्य की निन्दा	६५	सिद्धफला पानीय वटिका की विधि	७८	रत्नेष्मकालानलरस	६५
धातु आदि का शोधनविधान	६५	सूचिकाभरणरस	७६	गृहस्त्रीभैरवरस	६५
हिङ्गुलेखररस	६५	चिन्तामणिरस	८०	श्रीकालानलरस	६६
रस का अनुपान	६५	रसरज्जेन्द्र	८०	मृतसञ्जीवनी सुरा	६६
शीतभञ्जीरस	६६	समीर पन्नग रस	८१	मृगमदासव	६७
तरुणज्वरादिरस	६६	सुवर्ण भूपति रस	८१	अथ मध्यज्वरादौ	
नवज्वरेभसिहरस	६६	पित्तयुक्त रस के उपचार	८२	ज्वरमातङ्गकेसरीरस	६७
त्रिपुरभैरवरस	६६	रसजनित दाह के उपचार	८२	रसमङ्गलोक्त ज्वरमुरारिरस	६८
ज्वरधूमकेतुरस	६७	स्वेदशोषारिरस	८२	पञ्चाननरस	६८
दुर्गलजेतारस	६७	पञ्चवक्त्ररस	८२	चन्द्रशेखररस	६८
श्रीमृत्युञ्जयरस	६७	काल कूट रस	८३	अर्बुनारीखररस	६९
श्रीरामरस	६८	सन्निपातसूर्यरस	८३	श्रीरसराज	६९
नवज्वराङ्गश	६८	अघोरनृसिहरस	८३	मुद्राघोटकरस	१०५
प्रचण्डरस	६८	प्रतापतपनरस	८४	शीतारिरस	१००
वैद्यनाथ षटी	६९	प्राणेश्वररस	८४	पर्याल्लच्छेश्वररस	१००
रामधाणरस	६९	उन्मत्तरस	८५	शीतभञ्जीरस	१००
अग्निकुमाररस	६९	द्वितीय सन्निपातभैरवरस	८५	थलपज्वराङ्गशरस	१०१
रत्नगिरिरस	७०	तृतीय सन्निपातभैरवरस	८५	ज्वराङ्गश	१०१
चण्डेश्वररस	७०	गदमुरारि रस	८६	सर्वज्वराङ्गशवटी	१०१
उदकमञ्जीररस	७१	घाटवरस	८६	गृहज्वराङ्गशरस	१०२
अचिन्त्यशक्तिरस	७१	आर्द्रकवटी	८७	ज्वराङ्गशरस	१०२
नवज्वरेभाङ्गशरस	७२	दाहिनपत्रौषधि	८७	चिन्तामणिरस	१०२
विरवताप हरण रस	७२	मृत्युञ्जयरस	८७	त्रिलोचनवटी	१०३
महाज्वराङ्गशरस	७२	सञ्जीवनीगुटिका	८८	घातश्लेष्मान्तकरस	१०३
ज्वरकेशरिका	७२	सन्निपातमृत्युञ्जयरस	८८	श्याहिकारिरस	१०३
सान्निप्रभित्तक-ज्वर-आदि पर		मृतप्राणदायी रस	८९	चातुर्भुजारिरस	१०३
मोहाघसूर्यरस	७३	कालाग्निभैरवरस	८९	विश्वेश्वररस	१०४
कुलवधूरस	७३	त्रैलोक्याचिन्तामणिरस	९०	विक्रमकेसरीरस	१०४
सौभाग्यवटी	७३	मल्ल सिद्धर रस	९०	ज्वरकालकेतुरस	१०४
श्रीधेतालरस	७४	त्रिभुवन कीर्तिरस	९१	त्रिपुरारिरस	१०४
( २ ) चकीरस	७४	रसेरवर	९१	मेघनादरस	१०५
प्रह्वरन्धरस	७४	यद्वानलरस	९१	शीतारिरस	१०५
श्वानन्दभैरववटी	७४	अर्कमूर्तिरस और त्रिदोष-		स्वच्छन्दभैरवरस	१०५
मृतोष्धापनरस	७५	दायानलरस	९२	ज्वरारिरस	१०६
मृतसञ्जीवनरस	७५			दूसरा ज्वरारिरस	१०६



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ज्वरान्तरस	१०६	ज्वरमुत्र को त्याग्य	१०४	चित्रकादिलौह	१३४
ज्वरान्तकरस	१०७	आरोग्यरानविधि	१२४	अभयालयण	१३५
धीज्यमद्गलरस	१०७	तरणज्वरमें पर्य	१२२	गुडपिप्पली	१३६
ज्वरकुंजरपारिन्द्रस	१०८	मध्यज्वर में पर्य	१२३	लवणत्रितयादिचूर्ण	१३६
विद्यावह्नभरस	१०८	पुराने ज्वर में पर्य	१२२	गुदुच्यादिचूर्ण	१३७
ज्वरशूलहररस	१०९	ज्वर में अपर्य	१२२	प्लीहारि घटिका	१३७
पद्माननरस	१०९	<b>ज्वरान्तरसाग्धिकाः</b>		यकृतशूलविनाशिनी घटिका	१३६
कठपतररस	१०९	हीवरादि	१२६	महाघृत	१३७
तालाङ्गरस	११०	उशीरादि	१२७	यक्ष्मानपिप्पली	१३८
ज्वरार्प्यभरस	११०	गुदुच्यादि	१२७	महारोहीतघृत	१३६
ज्वरविप्रायणरस	११०	पद्ममूल्यादि	१२७	प्लीहारिरस	१३६
विषमज्वरान्तकलौह	१११	पद्ममूल्यादि की दोषभेद मे		वासुकिभूषणरस	१४०
पुटपाकाविषमज्वरान्तकलौह	१११	प्रहणविधि	१२७	वसुसंश्रवविद्याधररस	१४०
शोवनानंदाभ्ररस	११२	गृह्यपद्ममूल्यादि	१२७	रसराज	१४०
रघुप्रभायटी	११२	शुयटीद्रुमूल	१२८	प्लीहान्तकरस	१४०
घण्डनादिलौह	११२	धान्यशुयटी	१२८	प्रसिद्ध लोकनाथरस	१४१
पन्तमालतीरस	११३	विष्वक्पद्मकाश	१२८	बृहत्लोकनाथरस	१४१
मधुमालिनीयसंत	११३	ज्वरतिसार में सिद्धयोग	१२८	रोहीतकलौह	१४१
रत्नेश्वरीलेन्द्ररस	११३	पाठादिबाध	१२८	यकृतप्लीहारिलौह	१४२
महाराजवटी	११४	कलिङ्गादिगुटिका	१२८	यकृतदरिलौह	१४२
जन्मीविलासरस	११५	प्योपादिचूर्ण	१२८	बृहत्कुरुदरिलौह	१४२
बृहत्सर्वज्वरहरलौह	११६	गृह्यद्रुदजायलेह	१२९	महासुशुम्भयलौह	१४३
बृहत्सर्वज्वरहरलौह	११६	तन्प्राग्तरोरुबृहत्कुटजायलेह	१२९	सर्वेश्वरलौह	१४३
गन्धकजलीविधि	११७	<b>ज्वररसप्रयोगः</b>		यकृतप्लीहारिलौह	१४४
नामाज्वरआहकारिरस	११८	सिद्धप्राग्धररस	१३०	प्लीहारिरस	१४५
मकरध्वजरस	११८	कनकसुन्दररस	१३०	प्लीहार्यवरस	१४५
लौहासव	११९	गगनसुन्दररस	१३१	लौहसुशुम्भयरस	१४५
अमृतारिष्ट	११९	कनकप्रभायटी	१३१	प्लीहाशादुलरस	१४६
पृष्टीकरासादिलौह	११९	मृतसजीवनरस	१३१	यकृतप्लीहोदरारिलौह	१४६
अथ ज्वरघ्न	१२०	<b>अथप्लीहयकृतधिकारः</b>		रोहीतकाद्यचूर्ण	१४६
नक्षत्रविशेष में रोगोपशान्ति का फल	१२१	यमानिकादिचूर्ण	१३२	शङ्खद्रावकरस	१४७
नक्षत्रविशेष में रोगोपशान्ति का फलबोधक चक्र	१२१	प्लीहनाशक मुष्टियोग	१३२	महाद्रावकरस	१४७
		मुष्टियोग	१३३	महानक्षत्रावकरस	१४६
		अकलवण	१३३	रोहीतकारिष्ट	१५०
		विद्वङ्गादियोग	१३३	<b>अथपाण्डुकामलाहलीमका- धिकारः</b>	
<b>इतिगौरी कञ्चुलिकायाम</b>		भ्रूततकादिमोदक	१३३	पाण्डुरोगनाशक योग	१५०
अथसूर्यार्पणदानविधि	१२२	यकृतनाशकयोग	१३३	कामलानाशक अञ्जन	१५२
माहेश्वरकवच	१२२	माणकादिगुटिका	१३४	पाण्डुनाशक नख	१५२
ज्वरमुक्ता लक्षण	१२४	बृहन्माणकादिगुटिका	१३४		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
फलत्रिकादिबबाध	१२२	पुनर्नवाष्टकबाध	१६४	ग्रहणायुक्त शोथे ।	
विशालादिचूर्ण	१२२	पुनर्नवादि	१६४	कल्पलतावटी	१७५
धार्मीलीह	१२२	शोथरोग पर मुष्टियोग	१६४	चेत्रपालरस	१७५
अयस्त्रिलादि मोदक	१२२	माणमयष्ट	१६४	वैद्यनाथवटी	
दाम्यादिदलेह	१२२	पुनर्नवादिपुट स्वेद	१६५	( दधिबटी )	१७५
मृद्धिरेचनम्	१२३	अपामागदिपुट स्वेद	१६५	अथमुधानाधि	१७६
निशालौह	१२३	पुनर्नवादिचूर्ण	१६५	पाण्डुशोथ में तक्रमयदूर	१७६
विडम्बाघलौह	१२३	शोधारिचूर्ण	१६५	तक्रवटी	१७७
अष्टादशाङ्गलौह	१२४	शोधोदर में पुनर्नवादि		कटुकाघलौह	१७७
कामलान्तकलौह	१२४	गुग्गुल	१६५	कसहरीतकी	१७७
हलीमकाचिकरसा	१२४	पुनर्नवादिदलेह	१६६	घोरवटिका	१७८
नवायसलौह	१२४	शोधारिमयदूर	१६६	शोधशार्दूलचूर्ण	१७८
त्रिकत्रयाघलौह	१२४	अग्निमुखमयदूर	१६६	दशमूलहरीतकी	१७८
योगराजलौह	१२५	रसाभ्रमयदूर	१६६	पुनर्नवाघरिष्ट	१७९
बज्रवटकमयदूर	१२५	पुनर्नवादिलेप	१६७	पुनर्नवासव	१७९
पुनर्नवादिमयदूर	१२६	कृष्णादिप्रलेप	१६७	शोथ में पथ्य	१८०
पञ्चामृतलौहमयदूर	१२६	आगन्तुज शोधचिकरसा	१६७	अन्यच्च	१८०
श्वूपणादिमयदूर	१२७	पर्यादिकाध	१६८	शोथ में अपथ्य	१८०
चन्द्रसूर्यारमकरस	१२७	त्रिकलादिकाध	१६८	अन्यच्च	१८०
प्राणवल्लभरस	१२८	बृहत्शुष्कमूलाघतैल	१६८	अथ उदराधिकारः ।	
पञ्चाननवटी	१२८	बृहत्शुष्कमूलाघतैल	१६९	उदरचिकरसा	१८१
पाण्डुसूदनरस	१२९	शोधशार्दूलतैल	१६९	उदररोग में पथ्य-व्यवस्था	१८१
पाण्डुपञ्चाननरस	१२९	पुनर्नवादि तैल	१७०	उदर में विरेचनविधि	१८१
आनन्दोदयरम	१२९	पुनर्नवाघघृत	१७०	उदरनाशक योग	१८१
पुनर्नवातैल	१६०	माणकघृत	१७०	वातोदरचिकरसा	१८१
मूर्धाघघृत	१६०	समुद्रशोषणतैल	१७०	उदर में पेयाविधि	१८२
व्योपाघघृत	१६०	त्रिनेत्रारुचरस	१७१	उदररोग में तक्रपान-	
योगराज	१६१	त्रिकलादिलौह	१७१	व्यवस्था	१८२
आमलक्यावलेह	१६१	शोधारिलौह	१७१	वातोदर में दुग्धादिश्ववस्था	१८२
धाथरिष्ट	१६१	शोधनस्मलौह	१७१	सामुद्राघचूर्ण	१८२
पर्यटाघरिष्ट	१६२	कटुकाघलौह	१७२	कुष्ठादिचूर्ण	१८२
पाण्डुरोग में पथ्य	१६२	सुवलाघलौह	१७२	पित्तोदर में क्रिया	१८३
अपथ्य	१६३	शोधकालानलरस	१७२	कफोदरचिकरसा	१८३
		शो. गङ्गशरस	१७३	त्रिदोषजोदरचिकरसा	१८३
<u>अथशोथ्याधिकारः ।</u>		पञ्चामृतरस	१७३	प्लीहोदरचिकरसा	१८३
शोथचिकरसा	१६३	शो. गिरिरस	१७३	बद्धोदरचिकरसा	१८३
शोथ में लघन आदि	१६३	एकदशायसमुटिका	१७४	द्विदोदर में क्रिया का	
शोथरोग में मुष्टियोग	१६४	दुग्धघटी	१७४	निर्देश	१८३
सिंहारस्यादिबाध	१६४	अपरदुग्धवटी	१७४	जलोदर में शस्त्रकर्म	१८३

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उदरद्वर धूप	१८३	सुरेन्द्राश्रयनी	१९५	<u>छर्दिरोगाधिकार</u> ।	
उदरद्वर मूत्र	१८४	कलोमरोग की चिकित्साविधि	१९५	बमन की सामान्य	
पेन्यादिवूर्ण	१८४	कलोमरोग में पथ्यापथ्य	१९५	चिकित्सा	२०३
उदर में प्रदेह	१८४	<u>मन्द्रोगाधिकारः</u> ( स्थौल्य )		छर्दिनाशक मुष्टियोग	२०४
देवदुर्मादियोग	१८४	स्थौल्यहर विहराहार	१९६	छर्दिहर कषाय	२०४
दशमूलादिक्वाथ	१८४	स्थौल्यनाशक उपाय	१९६	जातीधात्री	२०४
शरीतक्यादिक्वाथ	१८४	स्थौल्यनाशक योग	१९६	अबलेहत्रय	२०४
जुननंवादिक्वाथ	१८४	चर्यादिद्रुप्रयोग	१९६	पलादिवूर्ण	२०४
नारायणचूर्ण	१८५	विद्वह्नादि चूर्ण	१९६	घान्तिहृदरस	२०५
पत्रेलाचचूर्ण	१८५	द्वयोपादिशङ्खप्रयोग	१९६	रसेन्द्र	२०५
महाभिन्दुघृत	१८६	स्थौल्यपानोदिनी पेया	१९७	वृषध्वजरस	२०५
शृङ्गारचघृत	१८६	शिलाजतुप्रयोग	१९७	छर्दिरोग में पथ्य	२०५
रसोनतैल	१८६	अमृताद्यगुग्गुलु	१९७	अपथ्य	२०६
श्रीवैद्यनाथादेशवटिका	१८७	नक्षकगुग्गुलु	१९७	<u>दाहरोगाधिकारः</u> ।	
इच्छामेदीरस	१८७	सौहरसायन	१९८	दाह की सामान्य चिकित्सा	२०६
अभयावटी	१८८	त्रिकलाद्यतैल	१९८	दाहरोग में उपचार	२०६
नाराचरस	१८८	दौर्गन्ध्यहरप्रदेह	१९९	शिशिरजल	२०७
सूलिकावटी	१८८	दौर्गन्ध्यहर लेप	१९९	फलिन्यादि प्रलेप	२०७
मेढनीवर्गी	१८८	जघाकषाय	१९९	नान्दीस्नान	२०७
प्रवालपचामृत	१८९	हरितालयोग	१९९	चन्दनादिक्वाथ	२०७
शोथोदरारि लौर	१८९	दुग्धहरिद्रा	१९९	दाहान्तकरस	२०७
त्रैलोक्यसुन्दररस	१९०	दुर्गन्धहर लेप और चूर्ण	२००	सुधाकर रस	२०८
जलोदरारिरस	१९०	स्थौल्य में उद्धर्तन	२००	गह में पथ्य	२०८
वह्निरस	१९०	श्यूषणाद्यलौह	२००	अपथ्य	२०८
पिप्पल्याद्यलौह	१९१	विद्वह्नाद्यलौह	२००	<u>तृष्णागोगाधिकारः</u> ।	
उदरारिरस	१९१	बड़वाग्निनीह	२००	घातक तृष्णा की	
घारिशोषण रस	१९१	बड़वाग्नि रस	२०१	चिकित्सा	२०८
उदररोग में पथ्य	१९२	महासुगन्धित तैल	२०१	पिचज तृष्णा की चिकित्सा	२०८
उदररोग में अपथ्य	१९३	स्थौल्य में पथ्य	२०१	कफज तृष्णा की चिकित्सा	२०९
जलोदरारिरस	१९३	अग्निघ्न	२०१	क्षतजन्य और क्षतजन्य	२०९
<u>कलोमरोगाधिकारः</u> ।		अपथ्याग्नि	२०२	सुर्वज्रजा तृष्णा की	
कलोमरोग का कार्य और		<u>आमाशयरोगाधिकारः</u> ।		चिकित्सा	२०९
स्थान	१९४	आमाशयिकरोगोंके लक्षण	२०२	रौप्यदीर्बल्यनाशिका तृष्णा-	
कलोमरोगनिदान	१९४	उनकी चिकित्सा	२०३	चिकित्सा	२०९
कलोमरोगके चिह्न	१९४	पिप्पल्यादिक्वाथ	२०३	नासिकापेय तृष्णाहरयोग	२०९
कलोमरोग की चिकित्सा	१९४	अमृतार्णव	२०३	तालुशोषहर गण्डूषधारण	२०९
अभयादिक्वाथ	१९४	त्रिपुरसुन्दररस	२०३	आम्नादिकषाय	२१०
सुरेन्द्रमोटक	१९५	आमाशयिक रोग में पथ्या-		बटशुद्धादिप्रयोग	२१०
शशिशेखररस	१९५	पथ्य	२०३		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तृष्णात्रिनाशक ग्राम और		कूप्मायट्टरयट	२१६	लवङ्गाद्य मोदक	२३०
गण्डूष	२१०	वासाकूप्मायट्टरयट	२१७	घाताजीर्ण में सुकुमारमोदक	२३०
कवल और गण्डूष की मात्रा	२१०	वासाखण्ड	२१७	घाताजीर्ण में हरीतकी प्रयोग	२३१
घनशुक्लादि	२१०	घासाघृत	२१८	विष्टम्भ में त्रिघृतादि मोदक	२३१
तृष्णादि रोग में पथ्य	२१०	दूर्वाघघृत	२१८	अग्निमुख लवण	२३१
मधुवारिप्रयोग	२१०	सप्तप्रस्थघृत	२१९	विष्टम्भ में शाटूलकाञ्चिक	२३२
शीतल जल पीने की व्यवस्था	२१०	समशर्करलौह	२१९	मुस्तकारिष्ट	२३२
तृष्णादित को जल न देने से अनिष्ट	२११	शतमूत्र्यादिलौह	२१९	<b>अथ रसप्रयोग ।</b>	
जल पानविषयक विशेष विधि	२११	खण्डकाधलौह	२१९	श्रीरामबाणरस	२३२
तृष्णाहर रसमिन्दुरादि प्रयोग	२११	सुधानिधिरस	२२०	अग्निनुष्यदीघटी	२३३
महोदधिपरम	२११	हीवेराद्यतैल	२२०	अग्निरस	२३३
कुमुदेवररस	२११	अर्द्धेवररस	२२१	अमृतघटी	२३३
तृष्णारोग में पथ्य	२१२	रत्नपित्तान्तकरस	२२१	सुधासागररस	२३३
तृष्णारोग में अपथ्य	२१२	रत्नपित्तकुलकुठाररस	२२१	टङ्गनादिवटी	२३४
आवश्यक सूचना	२१२	रत्नपित्तान्तकरस	२२२	अजीर्णकण्टकरस	२३४
<b>रत्नपित्ताधिकार ।</b>		त्रिघृतादिमोदक	२२३	महोदधिपरस	२३४
रत्नपित्त का असप्राकृतता	२१२	तीक्ष्णादिवटिका	२२२	अग्निकुमाररस	२३४
रत्नपित्त में अपतर्पण	२१३	उशीरासख	२२२	अग्निमुखरस	२३५
रत्नपित्त में तर्पण विरेचनादि	२१३	रत्नपित्त में पथ्य	२२३	हुताशनरस	२३५
रत्नपित्त में पथ्य	२१३	रत्नपित्त में अपथ्य	२२४	भास्कररस	२३५
सूपयूषार्थ पथ्य	२१३	<b>अग्निमान्द्याधिकार ।</b>		अग्निसन्दीपनरस	२३५
पथ्यशाक और मांस	२१३	पाचकीर्ण की सर्वथा रक्षणीयता	२२४	अजीर्णबलकालानलरस	२३६
रत्नपित्तनाशक योग	२१३	अग्निमान्द्य	२२४	( १-२ ) शखवटी और महाशखवटी	२३७
हरीतकी प्रयोग	२१४	सैधवादिचूर्ण	२२५	अग्नीसूनरस	२३७
हरीतक्यादि प्रयोग	२१४	हिंण्वष्टकचूर्ण	२२५	अग्लवर्ग	२३७
पकोदुम्बरादि प्रयोग	२१४	बृहद्दग्निमुखचूर्ण	२२६	( ६ ) महाशखवती	२३८
कुसुमचूर्ण	२१४	बडवानलचूर्ण	२२६	ऋष्यादरस	२३८
लाक्षाचूर्ण	२१४	बडवामुलचूर्ण	२२६	अजीर्णारिरस	२३९
धान्यकादि हिम	२१४	भास्करलवण	२२६	आदित्यरस	२३९
हीवेरादिक्वाथ	२१४	अग्निमान्द्यहरयोग	२२७	बडवानलरस	२४०
आटरूपकादिक्वाथ	२१५	ग्रामाजीर्णचिकिरसा	२२७	बृहद्हुताशनरस	२४०
दाहतृष्णादिमें उशीरात्रिचूर्ण	२१५	चिदग्धाजीर्ण की चिकिरसा	२२७	बृहद्दग्निकुमाररस	२४०
पुञ्जादि गुटिका	२१५	चिष्टव्याजीर्णचिकिरसा	२२८	अमृतकल्पवटी	२४०
प्राणप्रयुक्त रत्न की चिकिरसा	२१५	सर्वाजीर्णनाशक विधि	२२८	पाशुपतरस	२४१
मेघप्रयुक्त रत्न की चिकिरसा	२१६	अजीर्णहर योग	२२८	विद्वोदीपकाञ्च	२४१
		विसूचिकाचिकिरसा	२२८	वीरभद्राञ्च	२४१
		अलसकीचिकिरसा	२२८	रसराष्टल	२४२
		उदरवेदनाचिकिरसा	२२९	बृहत्तव्हादिवटी	२४३

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ज्वालानलरस	२४३	कुटजादिववाथ	२२२	जीर्णातिसार में द्वागी के	
भक्रविपाकवटी	२४३	कुटजादिववाथ	२२२	दुग्ध का प्रयोग	२६१
पद्माभृतवटी	२४४	किराततिक्रादिववाथ	२२२	अथ प्रवाहिकाचिकित्सा ।	
विसूचीविध्वंसरस	२४४	पथ्यादि ववाथ	२२२	विल्वाधवल्लेह	२६१
सारसंग्रह में साराभृतमोदक	२४४	अथ नाभिप्रलेपाः		पिप्पलीकक और मरिच-	
कपूरसव	२४२	अमलकालवाल	२२२	कक	२६१
मुस्ताद्यवटी	२४२	जातीफलप्रलेप	२२२	बालविल्वादि	२६२
मन्दाग्नि में अपथ्य	२४६	आम्रककप्रलेप	२२६	निरचारक प्रवाहिका	२६२
मन्दाग्नि में पथ्य	२४६	अथसामान्यातीसारचिकित्सा		लघुगंगाधर चूर्ण	२६२
अरोचकाधिकारः ।		बिल्वादिववाथ	२२६	वृद्धगंगाधर चुण	२६२
अरोचक में शोधन	२४७	पटोलादिववाथ	२२६	अजमोदा चुण	२६२
कवल-धारण	२४७	अतीसार में शाखोटकप्रयोग	२२६	लवङ्गाप्रयोग	२६३
मुखशोधनयोग	२४७	लवङ्गचतुःसम	२२६	लवङ्गावक	२६३
अभक्रच्छन्दनाशककवल-		अहिकेनप्रयोग	२२६	षडङ्गपूत	२६३
धारण	२४७	अथ रक्तातीसारचिकित्सा ।		अथरसप्रयोगः	
कारव्यादि कवलधारण	२४८	कुटजादाङ्गिमकपाय	२२७	भुवनेश्वररस	२६४
घिटचूर्णादि कवल	२४८	गुडबिल्व	२२७	अहिकेनवाटिका	२६४
महाखाण्डवचूर्ण	२४८	शल्वक्यादि प्रयोग	२२७	कारुण्यसागररस	२६४
महौषधादि चूर्ण और गुटिका	२४९	जम्बवादिस्वरस प्रयोग	२२७	अतीसारवारणरस	२६४
यमानीलाएदव	२४९	बिल्वसिद्धदुग्ध प्रयोग	२२७	पूर्णचन्द्रोदयरस	२६४
कलहंस	२४९	तण्डुलीयादि प्रयोग	२२७	वृहत्कनकसुन्दररस	२६५
तिग्निदीपानक	२५०	रक्तातिसार पर सर्वोत्तम		कणाधलौह	२६५
रसाला	२५०	प्रयोग	२२७	सूहदगगनसुन्दर	२६५
रसकेसरी	२५१	तिलकक	२२८	लोकनाथरस	२६५
अरोचक में पथ्य	२५१	विल्वादिकक	२२८	चिन्तामणिारस	२६६
अरोचक में अपथ्य	२५१	रसाङ्गनादिचूर्ण	२२८	सिद्धगान्धाररस	२६६
अथातीसारधिकारः ।		कुटजादीर	२२८	सिद्धयोग	२६६
आमपक्वज्ञान का प्रयोजन	२५२	चन्दनकक	२२८	अमृताण्वरस	२६७
आम और पक के लक्षण	२५२	नयनीताधलेह	२२८	जातीफलरस	२६७
आम और पक केलक्षणांतर	२५२	दाहपाकगतीकार	२२९	अभयनृसिहरस	२६८
अतीसारचिकित्सा	२५२	फलवर्ति	२२९	धानन्दभैरवरस	२६८
नागरादिकाथ	२५२	नारायणचूर्ण	२२९	तन्त्रान्तरोक्त आनन्दभैरव-	
ह्रीवैरादिववाथ	२५३	पुटपाकचिकित्सा	२२९	रस	२६८
धान्यपत्रक और धान्यघृतुक	२५४	कुटजपुटपाक	२२९	कपूररस	२६८
कञ्चटादिकपाय	२५४	रयोनाकपुटपाक	२६०	कुटजारिष्ट	२६९
कुटजाधिकपाय	२५४	दाङ्गिमपुटपाक	२६०	अहिकेनासय	२६९
घरसकादिकपाय	२५४	कुटजलेह	२६०	बन्धुह्याघरिष्ट	२६९
पथ्यादिववाथ	२५५	कुटजाष्टक	२६१	अतिथार में व्याञ्ज	२७०
भ्यूपण्यादिचूर्ण	२५५				

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अतिसार में पथ्यअपथ्य	२७०	जातीफलादिचूर्ण	२७६	रसपर्णवटी	२६६
अथग्रहण्यधिकारः ।		जीरकाद्यचूर्ण	२७६	अभ्रवटिका	३००
ग्रहणीरोग की सामान्य		कस्तुरीबलेह	२८०	महाभ्रवटी	३००
चिकिरसा	२७०	दशमूलगुड़	२८०	पीयूषवल्लीरस	३०१
तक्रपानविधि	२७०	कल्याणगुड़	२८१	श्रीनृपतिवल्गुभ	३०२
चित्रकमुटिका	२७०	कूप्मायटकल्याणगुड़	२८१	बृहन्नृपवल्गुभ	३०३
यमानिकादिकाथ	२७१	श्रीकामेस्वरमोदक	२८२	अजाज्यादिचूर्ण	३०४
धान्यकादिक्वाथ	२७१	कामेस्वरमोदक	२८३	रसपर्पटी	३०४
पुनर्नवादिक्वाथ	२७१	मदनमोदक	२८४	ताम्रपर्पटी	३०८
शालिपर्ण्यादिकाथ	२७१	बृहन्मेथीमोदक	२८५	लौहपर्पटी	३०६
शुक्लादिक्वाथ	२७१	बृहज्जीरकादिमोदक	२८५	स्वर्णपर्पटी	३१०
नागरादिक्वाथ	२७१	अग्निकुमारमोदक	२८६	पद्माभृतपर्पटी	३१०
तिन्नादिक्वाथ	२७१	बृहच्चक्रसन्धान	२८७	विजयपर्पटी	३११
चातुर्भद्रकपाय	२७१	कठिन्यादि पेया	२८७	तन्त्रान्तरोक्त विजयपर्पटी	३१३
रसाक्षनादिचूर्ण	२७२	आयामकाञ्जक	२८८	हिरण्यगर्भपोटलीरस	३१४
शुक्लादिचूर्ण	२७२	बिल्वतेल	२८८	तक्रारिष्ट	३१४
कपर्णादिचूर्ण	२७२	ग्रहणीमिहिरितैल	२८६	पिप्पलादि आसव	३१४
मुपलयादियोग	२७२	बृहद्ग्रहणीमिहिरितैल	२६०	ग्रहणीरोग में पथ्य	३१५
पञ्चपल्लव	२७२	दाहिमादितैल	२६०	ग्रहणीरोग में अपथ्य	३१५
नागराद्यचूर्ण	२७२	बिल्वगर्भघृत	२६१	अथ कृम्यधिकारः	
तय्युलोदकविधि	२७३	बिल्वादिघृत	२६१	फलत्रिक	३१६
श्रीफलशलाटुकक	२७३	मरिचादिघृत	२६१	पारासीयादिचूर्ण	३१७
पाठाद्यचूर्ण	२७३	महापट्टपलघृत	२६२	विडङ्गतैल	३१८
भूनिम्बादिचूर्ण	२७३	चाङ्गेरीघृत	२६२	विडङ्गाद्यतैल	३१८
कपिरथाष्टकचूर्ण	२७३	कल्काद्यद्रव्य	२६३	धुस्तरतैल	३१८
दाडिमाष्टकचूर्ण	२७४	रसप्रयोग ।		त्रिफलाघृत	३१८
तालीशादि वटी	२७४	अग्निकुमाररस	२६३	त्रिफलाद्यघृत	३१६
मुक्लादिगुटिका	२७४	ग्रहणीकपाटरस	२६२	कृमिरोग में हरिद्राखंड	३०६
वातकुगुटिका	२७४	बृहद्ग्रहणीकपाटरस	२६४	पारिभद्राबलेह	३१६
स्वल्पगन्नाधरचूर्ण	२७५	बृहद्ग्रहणीकपाट	२६४	पारिभद्राबलेह	३२०
मध्यमगन्नाधरचूर्ण	२७५	समग्रग्रहणीकपाट	२६४	कृमिघातिनीवटिका	३२०
बृहद्गन्नाधरचूर्ण	२७५	ग्रहणीकपाटरस	२६५	कृमिशादूलचूर्ण	३२०
स्वल्पलवङ्गादिचूर्ण	२७६	दूसरा ग्रहणीकपाटरस	२६५	कृमिकुठाररस	३२१
बृहत्तवङ्गादिचूर्ण	२७६	जातीफलादिवटी	२६६	कृमिभृद्गुररस	३२१
तन्त्रान्तरोक्त बृहत्तवङ्गाद्य		बृहज्जातीफलादिवटी	२६६	कीटारिरस	३२१
चूर्ण	२७७	ग्रहणीशादूलवटिका	२६७	कीटमर्दरस	३२१
स्वल्पनाथिकाचूर्ण	२७८	ग्रहणीगजेन्द्रवटिका	२६७	द्वितीया कृमिघातिनी	
बृहत्नाथिकाचूर्ण	२७८	महागन्धक	२६८	गुटिका	३२१
ग्रहणीशादूलचूर्ण	२७९	श्रीवैद्यनाथ वटिका	२६९	कृमिघनरस	३२७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
कृमिकालानलरस	३२२	अम्लपित्तरोग में पथ्य-विधि	३२८	शम्बूकादि गुटिका	३४७
कृमिविनाशनरस	३२२	अम्लपित्त में अपथ्य	३३८	शंखरसगुटिका	३४७
कृमिधूलिजलप्लीवरस	३२२	अथ शूलाधिकारः ।		परिणामजशूल में कृपयोग	३४८
कृमिरोगारि रस	३२३	शूलचिकित्सा	३३३	दधिकघृत	३४८
विदङ्गलौह	३२३	वातिक शूलचिकित्सा	३३३	हिंवादिचूर्ण	३४६
कृमिरोग में पथ्य	३२४	बलादिक्वाथ	३३६	विदङ्गादिमोदक	३४६
कृमिरोग में अपथ्य	३२४	हिंवादिचूर्ण	३३६	लौहगुटिका	३४६
अथ अम्लपित्ताधिकारः ।		तुम्बुर्वादिचूर्ण	३३६	भीमवटकमण्डूर	३४६
अम्लपित्त में पथ्य	३२५	यमान्यादिचूर्ण	३४०	लौहामृत	३४६
अम्लपित्तविनाशन योग	३२५	विरवादिक्वाथ	३४०	अन्नद्रवशूलचिकित्सा	३५०
दशाह्नक्वाथ	३२५	सौवर्चलादिगुटिका	३४०	गुडमण्डूर	३५०
पञ्जनिम्बादिचूर्ण	३२६	हिंवादिगुटिका	३४०	सामुद्राद्यचूर्ण	३५०
अधिपित्तकरचूर्ण	३२७	मृत्तिकास्वेद	३४०	नारिकेललवण	३५१
वृहत्पिप्पलीखण्ड	३२७	हिंवादिचूर्ण	३४१	सप्तामृतलौह	३५१
खण्डकम्पाखण्डक अवलेह	३२८	श्यामादिचूर्ण	३४१	गुडपिप्पलीघृत	३५१
शयठी खण्ड	३२८	अधिपित्तशूलचिकित्सा	३४१	पिप्पलीघृत	३५१
शतावरीघृत	३२८	वृहत्स्यादिक्वाथ	३४२	बीजपूराघघृत	३५१
जीरकाघघृत	३२९	त्रिफलादिक्वाथ	३४२	कोलादिमण्डूर	३५२
पटोलशुयठीघृत	३२९	त्रिफलादिक्वाथ	३४२	शिरमण्डूर	३५२
पिप्पलीघृत	३२९	अधरलैपिमिक शूलचिकित्सा	३४३	तारामण्डूरगुड	३५२
नारायणघृत	३२९	दशमूलक्वाथ	३४३	शतावरीमण्डूर	३५३
सितामण्डूर	३३०	कठ्यादिशूलचिकित्सा	३४३	बृहच्छतावरीमण्डूर	३५३
सौभाग्यशुयठीमोदक	३३०	घुरखटससक	३४३	चतुःसममण्डूर	३५४
अम्लपित्तान्तकमोदक	३३१	हिंवादिचूर्ण	३४३	रसमण्डूर	३५४
सर्वतोभद्रलौह	३३१	हिंवादिगुटिका	३४४	धात्रीलौह	३५४
सूतशेखर	३३२	अथमशूलचिकित्सा	३४४	धात्रीलौह	३५५
पानीयभङ्गवटिका	३३३	मुस्तादि चूर्ण	३४४	शर्करालौह	३५६
बृहज्जुषावतीगुटिका	३३३	चतुःसम चूर्ण	३४४	खण्डामलकी	३५६
त्रिफलामण्डूर	३३४	पित्तानिलशूलचिकित्सा	३४४	नारिकेलखण्ड	३५७
जुषावती गुटिका	३३४	कफपित्तशूलचिकित्सा	३४४	बृहन्नारिकेलखण्ड	३५७
लीलाधिलास	३३५	पटोलादि क्वाथ	३४४	नारिकेळामृत	३५७
योगरत्नसमुच्चय का सर्वतो- भद्रलौह	३३५	वातरलेपमशूलचिकित्सा	३४५	हरीतकीखण्ड	३५८
अम्लपित्तान्तकरस	३३६	रचकादिचूर्ण	३४५	हरीतकीखण्ड	३५६
पञ्चाननगुटिका	३३६	त्रिदोषशूलचिकित्सा	३४५	पूगखण्ड	३५६
भास्करामृताभ्र	३३७	घुरखट्टादराकम्	३४५	अपर पूगखण्ड	३६०
अम्लपित्तान्तकलौह	३३७	शूलरोग में पथ्य	३४६	शंखचूर्ण	३६०
श्रीबिल्व तैल	३३७	शूल में अपथ्य	३४६	त्रिपुरभैरव	३६०
कलकार्य औषध	३३८	अथपरिणतिशूलचिकित्सा	३४६	शूलहरणयोग	३६१
		परिणामशूल में शम्बूकभस्म	३४७	त्रिगुणारक रस	३६१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शूलराजलौह	३६१	वटभाननरस	३७६	कफ की वृद्धि में विरेचन का योग	३८५
बृहद्विद्याधराभ्र	३६२	अथरक्तगुल्म		बृद्धिवाधिकावटी	३८६
सूक्ष्मैलाघरिष्ट	३६२	पद्माननरस	३७७	सर्वान्त्ररोगेषु भेषजनि	
परिणामशूल में वर्जित	३६५	गुल्मरोग में पथ्य	३७७	महोदधिरस	३८६
वैश्वानरलौह	३६२	गुल्मरोग में अपथ्य	३७७	शशिशेखररस	३८६
शूलगजकेशरी	३६३	अथउदावर्ताधिकारः ।		रसरजोग्द्र	३८६
शूलवर्जिनी घटी	३६३	तत्रउदावर्त	३७८	वृद्धिहररस	३८७
शंखोदररस	३६४	वातादिजनित उदावर्तों में क्रिया	३७८	अर्थमाभृताभ्रक	३८७
गूलान्तक रस	३६४	व्योपादिववाथ	३७८	त्रिवृत्तादिवृत	३८७
श्रीविद्याधराभ्रक	३६४	नाराचूर्ण	३७८	बृहदन्तीघृत	३८७
चतु समलौह	३६५	हिन्वादिर्वति	३७८	बृहन्मंदारतैल	३८८
शूलगजेश्वरतैल	३६६	फलवर्ति	३७९	पथ्य	३८८
अथगुल्माधिकार		गुटाष्टक	३७९	अपथ्य	३८९
स्वेद के गुण	३६७	मूत्राघरोधजउदावर्त में प्वार		यद्माधिकारः	
श्रावस्थिक क्रियासूत्र	३६८	बीजादियोग	३७९	पथ्य	३८९
हेतुविशेषजन्य वैतिक गुल्म में क्रिया की विशेषता	३६८	यक्षरारादियोग	३७९	दोषाधिक्य में विधान	३८९
कफगुल्माचिकित्सा	३६९	नाराचरस	३७९	सितोपलादिचूर्णसितोपलादि	
वमनाई गुल्मरोगी के लक्षण	३६९	उदावर्त में पथ्य	३८०	लेह	३९०
तिलादिस्वेद	३६९	उदावर्त में अपथ्य	३८०	लवङ्गादिचूर्ण	३९०
द्वन्द्वजगलमचिकित्सा	३६९	अथश्रानाहाधिकारः ।		तालीशाद्यभोदक	३९१
हिन्वादिचूर्ण	३७०	त्रिकट्वादिर्वति	३८०	शृङ्गयजुं नाचचूर्ण	३९१
बचादिचूर्ण	३७०	स्थिराघृत	३८१	कपूर राचचूर्ण	३९१
हिन्वादिचूर्ण	३७१	शुष्कमूलाद्यघृत	३८१	पलादिचूर्ण	३९१
चित्रकादिचूर्ण	३७१	उद्यमातंडरस	३८१	अजापञ्चकघृत	३९२
लवङ्गादिचूर्ण	३७१	बृहद्विद्याधरी रस	३८१	जीवन्त्याद्यघृत	३९२
फाङ्गायनगुटिका	३७१	पथ्य और अपथ्य	३८२	क्षुण्णलाद्यघृत	३९२
नाराचघृत	३७२	अथश्रानाघरोधश्रन्त्रवृद्धि-रोगाधिकारः		पाराशरघृत	३९३
हनुपाद्यघृत	३७२	रुद्धान्त्रगद का लक्षण	३८२	कुङ्कुमाद्यघृत	३९३
पञ्चपलघृत	३७३	रुद्धान्त्रगद की चिकित्सा	३८२	स्वल्पचन्दनादि तैल	३९४
श्रायमाणाघृत	३७३	अन्त्रवृद्धि	३८३	चन्दनादि तैल	३९४
शीरषटपलकघृत	३७३	अन्त्रवृद्धि की चिकित्सा	३८३	वासावलेह	३९४
धात्रीषटपलकघृत	३७३	पैतिक मुष्कवृद्धिचिकित्सा	३८३	बृहद्वासायलेह	३९५
दन्तीहरितकी	३७४	मूत्रजवृद्धिचिकित्सा	३८४	रक्तवान्तिहर योग	३९५
रसायनामृतलौह	३७४	हरितक्यादिववाथ	३८४	बृहद्वासावलेह(रसायनयोग)	३९५
गुल्मकाष्ठाननरस	३७४	सौरेश्वरघृत	३८५	राजयक्ष्मा के निदान, लक्षण	
बृहद्गुल्मकालननरस	३७५	घातवृद्धिनाशकयोग	३८५	आदि	३९६
शिशुवाद्यवरस	३७५			राजयक्ष्मा में योग	३९६
नागेश्वररस	३७५				



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
च्यवनप्राश	३६७	मरिचाद्यचूर्ण	४१३	वासाचन्दनादितैल	४२५
विष्यवासियोग	३६८	समशर्कराचूर्ण	४१३	कास रोग में पथ्य	४२६
यक्ष्मांतकलौह	३६८	धूमपानविधि	४१३	कास रोग में अथ्य	४२६
शिलाजम्बूदिलौह	३६८	मनःशिलालिप्त यद्रीपत्र-		<b>हिक्राश्वसाधिकारः</b>	
चयकेसरी	३६८	धूम	४१४	हिका में लेह	४२७
रसेन्द्रगुटिका	३६६	अर्कादिधूम	४१४	हरिद्रादिचूर्ण	४२८
बृहद्रसेन्द्रगुटिका	३६६	कण्टकारीघृत	४१४	शुण्ठ्यादिचूर्ण	४२८
कल्याणसुन्दराभ्र	४००	व्याघ्री हरीतकी	४१४	हिकारवासाचिकित्सा	४२६
शुङ्गाराभ्र	४००	अगस्त्य हरीतकी	४१५	कूष्माण्डचूर्ण	४२६
स्वल्पमृगाङ्ग	४०१	वासावलेह	४१५	श्वास में गन्धक का प्रयोग	४२६
मृगाङ्गचूर्ण	४०१	बृहत्तालीशायचूर्ण	४१५	भागौगुह	४२६
सर्वाङ्गसुन्दररस	४०१	तालीशचूर्ण तथा मोदक	४१६	भृङ्गीगुहघृत	४३०
हेमार्भपोटलीरस	४०२	सितोपलादि चूर्ण	४१६	भागौशिकरा	४३१
बृहत्चयकेसरी	४०२	पञ्चामृतरस	४१६	टामरेश्वर अम्रक	४३१
बृहच्चन्द्रामृतरस	४०३	अमृतायर्वरस	४१७	महारवासाशिलौह	४३२
मृगाङ्गवटिका	४०३	चन्द्रामृतायटी ( चन्द्रामृत्-		पिप्पल्यादिलौह	४३२
अस्रहरारिष्ट	४०४	रस )	४१७	श्वासकुठाररस	४३२
मृगाङ्गरस	४०४	श्रीहामरानन्द अम्रक	४१७	तन्त्रान्तरोक्त श्वासकुठाररस	४३२
राजमृगाङ्गरस	४०५	महाकालेश्वररस	४१८	श्वासभैरवरस	४३३
महामृगाङ्गरस	४०५	विजयभैरवरस	४१८	सूर्यावर्तरस	४३३
रत्नगर्भपोटलीरस	४०६	काससहारकभैरवरस	४१९	श्वासाचिन्तामणि	४३३
काञ्चनाभ्ररस	४०६	स्वच्छन्दभैरवरस	४१९	बृहन्मृगाङ्गवटी	४३४
बृहत्काञ्चनाभ्ररस	४०७	बृहद्रसेन्द्रगुटिका	४१९	नागाजुनाभ्र	४३४
चूबामणिरस	४०७	गुणमहोदधि	४२०	हिस्राद्यघृत	४३४
महाचन्दनादितैल	४०७	समशर्करालौह	४२१	तेजोवत्याद्यघृत	४३४
द्राक्षारिष्ट	४०८	भागोत्तरगुटिका	४२१	कनकासव	४३५
यक्ष्मारोग में पथ्य	४०८	लक्ष्मीविलासरस	४२१	हिकारोग में पथ्य	४३५
यक्ष्मा रोग के अथ्य	४१०	कासकुठाररस	४२२	हिकारोग में अथ्य	४३६
<b>श्रौथकासाधिकारः-</b>		कास केसरी	४२२	श्वास रोग में पथ्य	४३६
अपराजितादिलेह	४११	कासान्तकरस	४२२	श्वासरोग में अथ्य	४३६
पेत्तिक काम्बुचिकित्सा	४११	बृहच्छुङ्गाराभ्ररस	४२२	<b>स्वरभेदाधिकारः</b>	
द्राक्षादिलेह	४११	सिंहस्यादिवटी	४२३	चन्यादिचूर्ण	४३७
दशमूलकाथ	४१२	मरिचादिगुटिका	४२३	अजमोदादिचूर्ण	४३७
कटुफलादिव्याध	४१२	शशिमोदावटी	४२३	यद्रीपत्रकक्कलेह	४३७
शुण्ठवेरस्वरस	४१२	सर्वभैरसरस	४२४	पिप्पल्यादिचूर्ण	४३७
कण्टकारीकवाध	४१२	पित्तकासात्तकरस	४२४	व्याघ्रीघृत	४३७
कास में विभीतक प्रयोग	४१२	वासारिष्ट	४२४	सारस्वतघृत और प्राङ्गी-	
वासकस्वरस	४१२	वसन्ततिलकरस	४२४	घृत	४३८
चयकास में मुस्तकाद्यलेह	४१३	चन्दनादितैल	४२५	कल्याणवलेह	४३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भैरवरस	४३६	चायुरोगाधिकारः		मध्यमनारायणतैल	४२६
रसेन्द्रगुटिका	४३६	सामान्यवायुरोगाधिकारः	४४६	महानारायणतैल	४२७
किन्नरकण्ठरस	४३६	कोष्ठस्थवायुचिकित्सा	४४६	चन्द्रनाथतैल	४२८
किङ्करीटाद्य कवत	४४०	आमाशयस्थवायुचिकित्सा	४४६	सिद्धार्थकतैल	४२९
व्ययं क अन्नक	४४०	पकाशयस्थवायुचिकित्सा	४४६	हिमसारतैल	४२९
स्वरभेद में पथ्य	४४१	रसादिगतवायुचिकित्सा	४४६	वायुच्छायासूत्रतैल	४६०
अपथ्य	४४१	त्वग्गतवायुचिकित्सा	४४६	लघुविपगर्भतैल	४६१
		रत्न, मांस, मेद और अस्थि- गतवायुचिकित्सा	४४६	महाविपगर्भतैल	४६१
<b>हृद्रोगाधिकारः</b>		शुष्कगतवायुचिकित्सा	४४६	शतावरीतैल	४६२
वातज हृद्रोगाधिकारः	४४१	गर्भशोषाधिकारः	४५०	महाथलातैल	४६२
पिप्पल्यादिचूर्ण	७४२	शिरोगतवायुचिकित्सा	४५०	पुष्पराजप्रसारणीतैल	४६३
पित्तज हृद्रोगाधिकारः	४४२	व्यादितास्यचिकित्सा	४५०	महाकुक्कुटमांसतैल	४६३
अजुं नत्वक्चूर्ण	४४२	अर्द्धितरोगाधिकारः	४५०	नकुलतैल	४६४
त्रिदोषहृद्रोगाधिकारः	४४३	मन्यास्तम्भाधिकारः	४५०	मापतैल	४६५
पुष्करमूलचूर्ण	४४३	म्रीवास्तम्भाधिकारः	४५०	स्वल्पमापतैल	४६५
नागबलाचूर्ण	४४३	वातधमनीदोषचिकित्सा	४५०	बृहन्मापतैल	४६५
हिंवादिचूर्ण	४४३	कुञ्जताचिकित्सा	४५०	महामापतैल	४६६
पाठाद्यचूर्ण	४४३	आप्मानचिकित्सा	४५१	निरामिपमहामापतैल	४६६
पुष्करमूलादिचूर्ण	४४४	प्रत्यष्टीलाष्टीलिकचिकित्सा	४५१	कुञ्जप्रसारणीतैल	४६७
हरीतक्यादिचूर्ण	४४४	गृध्रसीचिकित्सा	४५१	सप्तशतिकाप्रसारणीतैल	४६७
त्रिवृतादिचूर्ण	४४४	वातकण्ठकचिकित्सा	४५१	एकादशशतिकमहाप्रसारणी- तैल	४६८
सूक्ष्मैलादि चूर्ण	४४४	रत्नीचिकित्सा	४५१	अष्टादशशतिकप्रसारणी- तैल	४६९
वज्रभकवृत्	४४५	त्रोष्टुशीर्षचिकित्सा	४५१	त्रिभतीप्रसारणीतैल	४७१
श्वेदप्लुदिघृत	४४५	वायुनाशक लेप	४५१	महाराजप्रसारणीतैल	४७२
बलाद्यघृत	४४५	तैलकाञ्जिकद्रोणी	४५२	गन्धोदकविधि	४७३
अजुं नघृत	४४६	मापबलादिपाचन	४५२	शुक्रसाधनविधि	४७३
ककुमादिचूर्ण	४४६	शास्त्रवण्य श्वेद	४५२	चन्द्रनाभ्युसाधनविधि	४७४
कल्याणसुन्दररस	४४६	स्वल्परास्तादिषवाथ	४५२	<b>शृगमदादिकों के उत्कर्ष और अपकर्ष के लक्षण</b>	
चिन्तामणिरस	४४६	कठवादिवातनाशक योग	४५३	शृगमद	४७४
प्रभाकरवटी	४४६	श्रयोदशाङ्गगुग्गुल	४५३	कपूर	४७४
धिरवेश्वररस	४४७	तैलमूर्च्छाविधि	४५४	कुष्ठ	४७४
हृदयार्णवरस	४४७	वातहरतैलों की विशेषमूर्च्छा विधि	४५४	चन्दन	४७५
शंकरवटी	४४७	गन्धद्रव्यों का कथन	४५४	अगुरु	४७५
त्रिनेत्ररस	४४७	तन्त्रान्तर में	४५४	कुङ्कुम	४७५
नागाजुं नाभ	४४७	स्वल्पविष्णुतैल	४५५	रत्नाम्	४७५
पञ्चाननरस	४४८	मध्यमविष्णुतैल	४५५	मुरामासी और रेणुक	४७५
पार्थाधरिष्ट	४४८	बृहद्विष्णुतैल	४५६		
हृद्रोग में पथ्य अपथ्य	४४८				

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मुस्तक	४७२	रेणुकाशोधन	४८३	रासनादिबाथ	४६२
जातीफल	४७२	चौरपुष्पीशोधन	४८३	महारासनादिपाचन	४६२
प्ला	४७२	नवनीतखोदिशोधन	४८३	रमोनादि काथ	४६६
प्रियंगु	४७६	सामान्यशोधन	४८३	चित्रकादिचूर्ण और देव- दावादिचूर्ण	४६६
मखी	४७६	नकुलाद्यघृत	४८४	अमृतादिचूर्ण	४६७
ग्रन्थिक	४७६	छागलाद्यघृत	४८४	शतपुष्पादिचूर्ण	४६७
उशीर	४७६	घृतारम्भ में मन्त्र	४८४	हिक्वादिचूर्ण	४६७
नलिका	४७६	छागमारणमन्त्र	४८४	वैश्वानरचूर्ण	४६७
शिलारस	४७६	बृहच्चण्डागलाद्यघृत	४८५	पुनर्नवादिचूर्ण	४६७
श्रीवास और लाक्षा	४७६	अश्वगन्धाद्यघृत	४८७	पथ्याद्यचूर्ण	४६८
पद्मक और त्वकपत्र	४७६	दशमूलाद्यघृत	४८७	आभाद्यचूर्ण	४६८
पालक	४७७	महा वात विध्वंसन रस	४८७	अलम्बुपाद्यचूर्ण	४६८
ककौल	४७७	चतुर्मुखरस	४८७	अपरअलम्बुपाद्यचूर्ण	४६८
वच	४७७	चिन्तामणिचतुर्मुख	४८८	अजमोदादिचूटक	४६६
द्विमुस्त और चौरपुष्पी	४७७	अमरसुन्दरीवटी या विजय		आमगजसिंहमोदक	४६६
चम्पककलिका और नाग- केसर	४७७	शैरव रस	४८८	रमोनपिण्ड	४७०
मांसी और देवदारु	४७७	गुकांग वात	४८६	महारसोनपिण्ड	४७०
रद्रचन्दन	४७७	तालकेरवररस	४८६	घातारिगुग्गुलु	४७१
हरिद्रा	४७७	चिन्तामणिरस	४८६	योगराजगुग्गुलु	४७२
अधिवासनपुष्प	४७७	घातगर्जाकुश	४८६	बृहद्योगराजगुग्गुलु	४७२
कालाममक, सैन्धवनमक, मैन्दिशाल और स्वर्ण- माषिक	४७८	बृहद्घातगर्जाकुश	४८७	सिंहनादगुग्गुलु	४७३
शिलाजतु	४७८	महाघातगर्जाकुश	४८७	अपरसिंहनादगुग्गुलु	४७४
महासुगन्धितैल और लक्ष्मी- विलासनैल	४७८	लक्ष्मीविलासरस	४८७	शिवागुग्गुलु	४७४
पद्मपल्लव	४७८	पोगेन्द्ररस	४८१	गुग्गुलीपत	४७४
नखीशुद्धि	४७८	रसराजरस	४८१	शुद्धवेराद्यघृत	४७५
हरिद्रावचाशुद्धि	४८०	बृहद्घातचिन्तामणि	४८१	काञ्जिकपट्टपलघृत	४७५
मुस्तकशुद्धि	४८०	बलादिष्ट	४८२	प्रसारणीतैल	४७५
शैलजशुद्धि	४८१	वातव्याधि में पथ्य	४८२	द्विपद्ममूलाद्यतैल	४७५
खट्वाशीशुद्धि	४८१	वातव्याधि में अपथ्य	४८३	बृहत् सैन्धवाद्यतैल	४७५
शिलारस, कुङ्कुम, अगार, ग्रन्थिपर्ण और मधुरी की शुद्धि	४८२	आमघाताधिकारः		द्वितीय सैन्धवाद्यतैल	४७६
कुशुशुद्धि	४८२	आमघातारोग में क्रियाक्रम	४८३	आमघातारिवटिका	४७६
गन्धवृष्यशोधन	४८३	आमघात में पथ्य	४८३	आमघातारिरस	४७७
कुन्दुशुद्धि	४८३	शङ्करस्वेद	४८३	आमघातेरबररस	४७७
		हिसादिल्लेप	४८४	त्रिफलादिलौह	४७८
		शतपुष्पादिल्लेप	४८४	विडम्बादिखीह	४७८
		रासनादिदशमूल	४८४	पञ्चाननरसलौह	४७९
		रासनासप्तक	४८४	वातगजेन्द्रसिंह	४७९
		रासनापद्मक	४८५	हिगुजेरवररस	४७९
		शटादीकाथ	४८५		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अमृतमञ्जरी	२१०	अरमरीजन्य मूत्रकृच्छ्र में		घातारमरी में पापाणभेदाद्य-	
आमप्रमाथिनी घटिका	२११	प्लादिकाथ	२१६	घृत	२२७
आमवाताद्रिवज्ररस	२११	दुरालभादि कपाय	२१६	पित्तारमरी में कुशाद्यघृत	२२८
आमवात में पथ्य	२११	पापाणभेदादिकाथ	२१६	कफारमरी में वरुणाद्यघृत	२२८
आमवातरोग में अपथ्य	२११	प्लादिघूर्ण	२१६	वरुणाद्यतैल	२२८
विजयभैरवतैल	२१२	तारकेस्वर	२१६	वरुणघृत	२२९
महाविजयभैरवतैल	२१२	मूत्रकृच्छ्रान्तक	२१७	पापाणभिन्न	२२९
महासैन्धवाद्यतैल	२१२	त्रिकण्टकाद्यघृत	२१७	त्रिविक्रमरस	२२९
		मूत्रकृच्छ्रहर	२१७	पापाणवज्ररस	२३०
अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः		श्वदंष्ट्रादिलेप	२१७	आनन्दयोग	२३०
घातिक मूत्रकृच्छ्र की		बृहद्गोचुराद्यबलेह	२१७	अरमरी में पथ्य	२३०
चिकित्सा	२१३	सुकुमारकुमारकघृत	२१८	अपथ्य	२३०
पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र की		शतावरीदि सर्पि	२१९	अथ उपदंशाधिकारः ।	
चिकित्सा	२१३	त्रिनेत्राक्षरस	२१९	उपदंश की सामान्य	
रसैषिक मूत्रकृच्छ्र की		वरुणाद्यलौह	२१९	चिकित्सा	२३१
चिकित्सा	२१३	चन्द्रकलारस	२१९	वातकोपदंश पर लेप	२३१
सांनिपातिक मूत्रकृच्छ्र की		मूत्रकृच्छ्र में पथ्य	२२०	पैत्तिकोपदंश पर प्रलेप	२३१
चिकित्सा	२१३	मूत्रकृच्छ्र में अपथ्य	२२०	पश्चादिलेप	२३१
अभिघातज मूत्रकृच्छ्र की		अथ मूत्रघाताधिकारः		प्रचालन	२३१
चिकित्सा	२१३	ककंटीबीजादिघूर्ण	२२२	लेप	२३१
पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र की		दशमूलकाथ	२२२	लेप	२३२
चिकित्सा	२१३	शिलाजतुप्रयोग	२२२	लेप और पथ्य	२३२
अरमरीजात मूत्रकृच्छ्र की		धान्यगोचुरघृत	२२२	प्रचालनार्थ क्वाथ	२३२
चिकित्सा	२१३	चित्रकाद्यघृत	२२२	धूप	२३२
शुक्रविबन्धज मूत्रकृच्छ्र की		भद्रावहघृत	२२३	पारदादिधूप	२३२
चिकित्सा	२१३	विदारीघृत	२२३	उपदंश में निषिद्धकर्म	२३२
शोणित मूत्रकृच्छ्र की		शिलोद्भिदादितैल	२२४	पञ्चारथिन्दघृत	२३३
चिकित्सा	२१४	उशीराद्यतैल	२२४	अनन्ताद्यघृत	२३३
वृणपञ्चमूल	२१४	मूत्रघात में पथ्य	२२५	भूनिग्वाद्यघृत	२३३
पञ्चवृणपीर	२१४	अपथ्य	२२५	करजाद्यघृत	२३३
त्रिकण्टकादि	२१४	अथ अद्रमर्याधिकारः ।		गोजीतैल	२३३
गोचुरकाथ	२१४	वरुणादिकाथ	२२६	कोशात्कीतैल	२३३
धान्यादि	२१४	शुशुब्बादिकपाय	२२६	जम्बवाद्य तैल	२३३
बृहद्धान्यादि	२१४	प्लादिकाथ	२२६	आगारधूमाद्य तैल	२३४
घातिक कृच्छ्र में अमृतादि	२१४	ऊपकादिगण	२२६	द्वन्द्वसिन्दूर रस	२३४
शतावरीदि	२१४	श्वदंष्ट्रादिकाथ	२२६	भैरव रस	२३४
हरीतक्यादि	२१५	अरमरीभेदन योग	२२६	रसगुग्गुलु	२३६
कफमूत्रकृच्छ्र में प्लायोग	२१५	बृहद्दरणादि काथ	२२७	धूम	२३६
पर्यहमूलादिकपाय	२१५	कुलवाद्यघृत	२२७	लेप	२३७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रसशेखर	२३७	हस्तिमेह में पाठादि	२४२	सर्वेश्वर रस	२४७
उपदंशसूर्य	२३८	शूद्रमेह में कदरादि कषाय	२४२	वेदविद्यावटी	२४७
बरादि गुग्गुलु	२३८	वासमेह में अग्निमन्थ	२४२	वह्नेश्वर	२४८
सारिवाद्यबलेह	२३८	कषाय	२४२	बृहद्भैरवर रस	२४८
फिरगरोग में चोपचीनी का		न्यग्रोधादि चूर्ण	२४२	चङ्गाष्टक	२४८
प्रयोग	२३९	कुशाबलेह	२४२	वसन्तकुसुमाकर	२४९
कज्जल्यादि मोदक	२३९	शिलाजतु योग	२४२	चन्द्रप्रभादि घटिका	२४९
उपदंशरोग में पथ्य	२३९	शालसारादिलेह	२४२	मेहमिहिर तैल	२५०
उपदंशरोग में अपथ्य	२३९	धान्वन्तर घृत	२४७	प्रमेहमिहिर तैल	२५०
अथ शूकदोषाधिकारः ।		दाडिमाद्य घृत	२४७	इन्द्रवटी	२५१
सर्पपीचिकित्सा	२४०	बृहदाडिमाद्य घृत	२४८	मेहमुद्गर घटिका	२५१
कुम्भिकाचिकित्सा	२४०	महादाडिमाद्य घृत	२४८	शृङ्गसोमनाथ रस	२५१
अलजीचिकित्सा	२४०	रसप्रयोग		देवदारु अरिष्ट	२५२
उत्तमाचिकित्सा	२४०	शुक्रमानुका वटी	२४९	प्रमेह रोग में पथ्य	२५३
पुष्कर्यादिचिकित्सा	२४०	अपर बृहद्भैरवर	२४९	प्रमेहमेंअपथ्य	२५३
शतपीनकाचिकित्सा	२४१	मेहागतक रस	२५०	अथसोमरोगाधिकारः ।	
शोणितानुद की चिकित्सा	२४१	योगेश्वर रस	२५०	त्रिफलादि योग	२५२
अत्रुंदिचिकित्सा	२४१	बृहत्कामचूडामणि रस	२५०	शृङ्गात्री घृत	२५२
दार्वी तैल	२४१	अपूर्वमालिनी वसन्त	२५१	स्वल्पधारी घृत	२५२
शूकदोष में पथ्य	२४१	वसन्ततिलक रस	२५१	कदम्बादि घृत	२५२
शूकरोग में अपथ्य	२४१	चन्द्रकान्ति रस	२५१	सिद्धफल न्यग्रोधादिगण	२५३
अथप्रमेहाधिकारः ।		मेहकेशरी	२५२	हेमनाथ रस	२५३
सामान्यचिकित्सा	२४२	मेहघ्न	२५२	वसन्तकुसुमाकर रस	२५३
प्रमेह रोगी के लिए पथ्य	२४२	प्रमेहसैतु	२५२	तारकेश्वर रस	२५७
फलत्रिकादि	२४३	मंघनाद रस	२५३	तालकेश्वर रस	२५७
मुस्तादि क्वाथ	२४३	शृङ्ग हरिशङ्कर रस	२५३	सोमनाथ रस	२५७
दर्शविधरलेपनाज प्रमेह में		चन्द्रोदयरस	२५३	गगनादि लौह	२५८
योग	२४३	आमन्दभैरव रस	२५३	यहुमूत्रान्तक रस	२५८
विट्हादि क्वाथ	२४४	मालतीकुसुमाकर रस	२५३	अन्ययहुमूत्रान्तक रस	२५८
पित्तप्रमेह में लू क्वाथ	२४४	प्रमेहकुञ्जरकेशरी	२५४	हिमानु रस	२५९
उदकप्रमेह में धवानुं नादि		स्वर्णवङ्ग	२५४	परय	२५९
काथ	२४४	मेहमुद्गर रस	२५५	अपरय	२५९
उदकप्रमेह आदि रोगों में		विट्हादि लौह	२५५	अथौषसर्गिकमेहाधिकारः ।	
घाट क्वाथ	२४४	पञ्चानन रस	२५५	निदान	२६३
भीलादिपैतिक प्रमेह में		मेहकुलान्तक रस	२५५	औषसर्गिकमेह चिकित्सा	२६०
पञ्चक्वाथ	२४५	मेहा नल रस	२५६	उत्तरवास्ति	२६१
रङ्ग प्रमेह में क्वाथ	२४५	चन्द्रकला	२५६	प्रथमेदहर चूर्ण	२६१
सर्पिप्रमेह में फलात्रिकादि		तारकेश्वर रस	२५६	महाअघटिका	२६१
क्वाथ	२४५	सोमेश्वर रस	२५६	कदम्प रस	२६१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अथशुक्रमेहाधिकारः ।		कामिनीदर्पण	२८२	कफवातज्वृद्धि में हरीतकी का प्रयोग	२२७
शुक्रमेहकानिदान	२७२	स्वल्पचन्द्रोदयमकरध्वज	२८२	वातज्वृद्धिनाशक तैल	२२७
शुक्रमेह के लक्षण	२७२	बृहच्चन्द्रोदयमकरध्वज	२८२	ज्वृद्धिरोगनाशक प्रलेप	२२७
शुक्रमेह के उपद्रव	२७३	सिद्धसूत	२८६	कुरयटनाशक योग	२२७
चन्दनादि श्वाथ	२७३	कामदीपक	२८६	अपरकुरयटनाशक योग	२२७
कामधेनु रस	२७४	मिद्धशाहमली करप	२८७	कुरयद पर लेप	२२८
शिलाजवादि घटी	२७४	पञ्चशार	२८७	भङ्गोत्तरीय	२२८
चन्दनादि चूर्ण	२७५	त्रिकण्टकाद्य मोदक	२८७	वातारि रस	२२८
माचिकादि चूर्ण	२७५	रसाला	२८७	ज्वृद्धिमन्त्ररोग में पथ्य	२२६
शाहमली घृत	२७५	चन्दनादितैल	२८८	ज्वृद्धिमन्त्र में अपथ्य	२२६
चन्दनासव	२७५	रावस रस	२८६	अथश्लीपदाधिकारः।	
शुक्रमेह में अपथ्य	२७६	विलासिनीवल्गुलभ रस	२८६	श्लीपद में क्रियाकर्म	६००
शुक्रमेह में पथ्य	२७६	मदनकामदेव रस	२८०	कणादि चूर्ण	६००
अथ लसीकामेहाधिकारः ।		कन्दर्पसुन्दर रस	२८०	मदनादिलेप	६००
लसीकामेह का निदान और लक्षण	२७६	स्वभनकर्ता पारा	२८१	शुद्धदारकसम चूर्ण	६०२
घातिक लसीकामेह के लक्षण	२७७	स्तरभन	२८१	पिप्पल्याद्य चूर्ण	६०२
पैक्तिक के लक्षण	२७७	सौगति गुटिका	२८२	कृष्णाद्य मोदक	६०२
श्लैष्मिक के लक्षण	२७७	कामदेव रस	२८२	सौरश्वर घृत	६०२
दो-तीन दोषों के लक्षण	२७७	महानीलकण्ठ रस	२८२	विदङ्गादि तैल	६०३
साध्यासाध्यविचार	२७७	पुष्पधन्वा रस	२८३	निरयानन्द रस	६०३
लसीकामेह की चिकित्सा		पूर्णचन्द्र रस	२८३	श्लीपद्राजकेशरी	६०४
तिन्दुकादि चन्दनादि चूर्ण	२७७	कामाग्निस्वर्दीपन रस	२८३	श्लीपदारि	६०४
पप्पा	२७८	ध्वज भंग में पथ्य	२८४	श्लीपदारि सौह	६०४
अथ प्रमेहपिडिकाधिकारः ।		अथमुष्कज्वृद्धिमन्त्राधिकारः ।		पद्मानन घृत	६०४
मकरध्वज रस	२७६	घातिकज्वृद्धि चिकित्सा	२८४	पद्मानन तैल	६०५
सारिवादि सौह	४०६	पैक्तिक और रज्ज्वृद्धि चिकित्सा	२८४	श्लीपद्रोग में पथ्य	६०५
बृहन्नरयामा घृत	२०३	रज्जवायुज्वृद्धिचिकित्सा	२८४	अपथ्य	६०५
मारिवाद्यासव	२०३	श्लैष्मिकज्वृद्धिचिकित्सा	२८४	अथगलगण्डाद्यापचोऽग्रन्ध्य- सुंदाधिकारः ।	
प्रमेहपिडिका में अपथ्य	२८०	मेदज्वृद्धिचिकित्सा	२८५	गलगण्डचिकित्सा	६०५
अथध्वजमङ्गाधिकारः ।		अन्त्रज्वृद्धिचिकित्सा	२८५	गलगण्ड में श्लेष	६०६
मनुंसक के लक्षण, संरुपा और निदान	२८०	ज्वृद्धिहरलेप	२८५	सर्पपादि प्रलेप	६०६
बद्धेर्वाचिकित्सा	२८१	मन्त्र के लक्षण	२८५	गलगण्ड में मस्य	६०७
अरुणगण्डा घृत	२८१	चिल्गादि चूर्ण	२८५	गुग्गुली तैल	६०७
अरुणगण्डा घृत	२८२	प्रमन्त्रसूत्रहर लेप	२८५	अमृताद्य तैल	६०७
धोमदनामग्दमोदक	२८३	अजग्यादि श्लेष	२८६	गण्डमाखा की चिकित्सा	६०७
		बृहतीश्लेषाद्य तैल	२८६	काञ्चनगुटिका	६०८
		गन्धर्बह्वन तैल	२८६	गण्डमाखा चर्चनरस	६०८
		शतपुष्पाद्य घृत	२८६		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सिन्दुरादि तैल	६०८	अथमसूरिकाधिकारः ।		रुद्र तैल	६३०
छुच्छुन्दरी तैल	६०६	निम्बादि काथ	६१८	महारुद्र तैल	६३१
साखोटक तैल	६०६	काञ्चनारादि काथ	६१६	कैशोरगुग्गुलु	६३१
बिम्बादि तैल	६०६	खदिराष्टक	६१६	रसाभगुग्गुलु	६३२
निगुंरडी तैल	६०६	पटोलादि काथ	६२०	वातरङ्गान्तक रस	६३३
अपचीचिकित्सा	६०६	अमृतादि	६२०	पुनर्नवागुग्गुलु	६३३
शोभाञ्जनादि ज्ञेय	६०६	अमृतादि यथा	६२०	विश्वेश्वर रस	६३३
सर्पपादि ज्ञेय	६१०	दुर्लभ रस	६२२	लाहल्याद्य लौह	६३५
अपचीहर ज्ञेय	६१०	मसूरिका में पथ्य	६२२	रुद्ररोग में शोणितमोक्षण	६३४
ध्योपाद्यतैल	६१०	मसूरिका में अपथ्य	६२३	सारकौमुद्युद्धृत गुडूची लौह	६३४
चन्द्रनाथ तैल	६१०	अथरोमान्तिकाधिकारः ।		पित्तान्तक लौह	६३४
गुञ्जाद्य तैल	६१०	इन्दुकलावाटिका	६२४	द्वादशायस	६३५
प्रग्निचिकित्सा	६१०	ऊष्णादि चूर्ण	६२४	वातरङ्गान्तक रस	६३६
घातप्रग्नि में हिंसादि ज्ञेय	६१०	सर्वतोभद्र रस	६२४	गुडूच्यादि लौह	६३६
पित्तप्रग्निचिकित्सा	६११	एलाघरिष्ट	६२४	शताह्वादि तैल	६३६
रत्नैभिर्मकप्रिग्निचिकित्सा	६११	अथवातरङ्गाधिकारः ।		पियड तैल	६३६
अभुंदाचिकित्सा	६११	वातरङ्ग की सम्प्राप्ति	६२५	महापियड तैल	६३७
वाताभुंदाचिकित्सा	६११	वातरङ्ग के दो भेद	६२५	दशपाकबला तैल	६३७
पित्ताभुंदाचिकित्सा	६१२	वातरङ्गशमन विधि	६२५	महारुद्रगुडूची तैल	६३७
कफाभुंदाशक ज्ञेय	६१२	तिलप्रलेप	६२६	वातरङ्ग में पथ्य	६३८
स्नुह्यादि श्वेद	६१३	मज्जिष्ठादि काथ	६२६	अपथ्य	६३८
मेदोऽभुंदा तथा शर्कराभुंदा- चिकित्सा	६१३	पुरणदादि काथ	६२६		
काञ्चनारगुग्गुलु	६१३	पुरणदबीजादि प्रलेप	६२६	अथकुष्ठाधिकारः ।	
गलगण्डकाथ में पथ्य	६१३	रासनादि प्रलेप	६२६	कुष्ठरोगमेंकुपथ्य	६३६
अपथ्य	६१४	गुहधूमादि प्रलेप	६२६	तन्त्रान्तर में	६३६
अथशीतपित्तोर्दकोठाधिकार ।		शतावरी घृत	६२६	दृष्टिचिकित्सा	६३६
उर्दकोचिकित्सा	६१४	गुडूची घृत	६२६	विडङ्गादि ज्ञेय	६४०
शीतपित्तचिकित्सा	६१४	अमृताद्य घृत	६२७	पृङ्गजादि ज्ञेय	६४०
आर्द्रकखण्ड	६१५	वातरङ्ग में पथ्य	६२७	अन्यतन्त्रान्तर में	६४०
रत्नैभिर्मपित्तान्तक रस	६१५	हृद का प्रयोग	६२७	किट्टिमकुष्ठ चिकित्सा	६४०
वीरेश्वर रस	६१६	पटोलादि क्वाथ	६२७	लघुमज्जिष्ठादि काथ	६४१
स्पर्शावात के लक्षण	६१६	शम्पाकादि क्वाथ	६२८	बृहन्मज्जिष्ठादि काथ	६४१
रसादि गुठी	६१६	वातरङ्ग में प्रलेप और सैंक	६२८	मज्जिष्ठादि काथ	६४१
हरिद्राखण्ड	६१६	वातरङ्ग में गुडूचीप्रयोग	६२८	अमृतादि काथ	७४२
वृहद् हरिद्राखण्ड	६१७	निम्बादि चूर्ण	६२८	पन्नकपाय	६४२
शीतपित्तादि रोगों में पथ्य	६१७	स्वल्पगुडूची तैल	६२६	विभीतकादि काथ	६४२
अपथ्य	६१७	मध्यगुडूची तैल	६२६	नवकपाय	६४२
		वृहद्गुडूची तैल	६२६	सप्तसम योग	६४२
		विषतिन्दुक तैल	६३०	सिन्धुमकुष्ठचिकित्सा	६४२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
कुरण्टकादि लेप	६४३	कृष्णासर्प तैल	६५५	गन्धक रसायन	६७१
विचक्षिकाचिकित्सा	६४३	कुष्ठराजस तैल	६५५	पञ्चातित्र घृत	६७२
पामा में प्रलेप	६४३	कुष्ठकालानल तैल	६५६	पृथ्वीसार तैल	६७२
पारदादि प्रलेप	६४३	पद्मिन्दु तैल	६६६	खदिरारिष्ट	६७३
कुष्ठहर लेप	६४३	विपतैल	६५७	कुष्ठरोग में अग्रथय	६७३
विपादिका में लेप	६४४	सोमराज तैल	६५७	कुष्ठरोग में परथ	६७४
उन्मत्त तैल	६४४	शुद्धसोमराजी तैल	६५७	अथर्शाधिकार	
कण्डूचिकित्सा	६४५	मरिचादि तैल	६५८	अर्श के चार उपाय	६७४
शिवत्रिचिकित्सा	६४५	शुद्धमरिचादि तैल	६५८	अर्शाचिकित्सा	६७४
शिवग्रपञ्चानन तैल	६४६	कन्दर्पसार तैल	६५९	शुष्क और आर्द्र अर्श की	
आरग्वधादि तैल	६४६	अमृतभस्मातक	६६०	क्रिया	६७४
श्वेतारि रस	६४६	महाभस्मातक गुड	६६१	कठिन अर्श की चिकित्सा	६७५
गन्धक प्रयोग	६४७	सर्वेश्वर रस	६६२	रलेष्मार्श की चिकित्सा	६७५
सोमराजीप्रयोग	६४७	प्रह्व रस	६६२	ज्योतिस्नकामूल लेप	६७५
पञ्चानन	६४७	चन्द्रानन रस	६६२	पिप्पल्यादि लेप	६७५
तन्त्रान्तरोक्त पञ्चानन	६४८	महातालेश्वर रस	६६३	चन्दनादि क्वाथ	६७६
अमृता गुग्गुलु	६४८	माणिक्य रस	६६३	यथ्यादि क्वाथ	६७६
एकविंशतिक गुग्गुलु	६४८	कुष्ठनाशक रस	६६४	विडङ्गादि क्वाथ	६७६
तिङ्गक घृत	६५०	पारिभद्र रस	६६४	अर्शनाशक लेप	६७६
महातिङ्गक घृत	६५०	कुष्ठारि रस	६६४	अर्कशीरादि प्रलेप	६७६
महाखीदरक घृत	६५०	कुष्ठकालानल रस	६६४	धोषाफलवर्ति	६७६
सोमराजी घृत	६५१	गलकुष्ठारि रस	६६४	नागराज मोदक	६७८
वज्रक घृत	६५१	वज्रवटी	६६५	लवणोत्तमादि चूर्ण	६७८
करवीरादि तैल	६५१	कुष्ठकुठार रस	६६५	दशमूल गुड	६७८
श्वेतकरवीरादि तैल	६५१	कुष्ठहरितालेश्वर	६६५	अगस्ति मोदक	६७८
अर्कमन्-शिला तैल	६५२	राजराजेश्वर	६६५	भवलातकादि मोदक	६७८
गच्छीरिकादि तैल	६५२	लङ्गेश्वर रस	६६६	फाङ्गायन मोदक	६७८
आदिरवपाक तैल	६५२	अर्केश्वर	६६६	माणिक्यमोदक	६७८
दूर्वादि तैल	६५२	ज्योतिष्मत् रस	६६६	विजयचूर्ण	६७८
जीरकादि तैल	६५२	महापिण्ड तैल	६६६	समशर्कर चूर्ण	६८०
सिन्दूरादि तैल	६५२	शोष्ठशिवजनाशन लेप	६६६	कपूरराज चूर्ण	६८०
महासिन्दूरादि तैल	६५२	अमृताकुर लीह	६६७	करआदि चूर्ण	६८१
वज्रतैल	६५३	पाकलक्षण यथा	६६८	धुस्तूरादि चूर्ण	६८१
वृषक तैल	६५३	आरोग्यवर्धनीगुटिका	६६८	भवलातकामृत योग	६८१
महावृषक तैल	६५३	उदयभास्कर	६६८	देवदाली योग	६८१
कण्डूराजस तैल	६५४	रसमाणिक्य	६६९	मरिचादि चूर्ण	६८१
वासाहृद्र तैल	६५४	तालकेश्वर	६७०	दम्प्यारिष्ट	६८१
पञ्चातित्र घृत गुग्गुलु	६५५	अपरतालकेश्वर	६७०	शुद्धकासीसाद्य तैल	६८२
करवीर तैल	६५५	महातालकेश्वर	६७१	कासीसाद्य तैल	६८२



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पित्तपित्ताद्य तैल	६८३	उपयोग	६९६	पद्मधरण चूर्ण	७०५
पट्पलक घृत	६८३	खदिरादि क्वाथ	६९६	गुल्जाभद्र रस	७०५
व्योपाद्य घृत	६८३	स्तुत्यादि घृति	६९६	ऊरुस्तम्भ में पथ्य	७०५
चन्द्यादि घृत	६८३	तिलादि और निलादि लेप	६९६	अपथ्य	७०६
कुटजाद्य घृत	६८३	नवकार्षिक गुग्गुलु	६९७	अथभग्नाधिकारः ।	
सुनिषण्णकचाङ्गेरी घृत	६८३	सप्तविंशति गुग्गुलु	६९७	भग्न में पथ्य	७०६
अरवगन्धादि धूप	६८४	भगन्दरहर रस	६९७	रसोनादि योग	७०७
अर्कमूलादि धूप	६८४	विष्यन्दन तैल	६९७	लाक्षागुग्गुलु	७०७
कुटजसक्रिया	६८४	करवीराद्य तैल	६९८	आभागुग्गुलु	७०७
तीक्ष्णमुखरस	६८४	निशाद्य तैल	६९८	गन्ध तैल	७०८
अशंकुठार रस	६८५	सैन्धवाद्य तैल	६९८	भग्नरोग में निषिद्ध	७०९
द्वितीय अशंकुठार रस	६८५	नारायण रस	६९८	अथद्रव्यशोध्याधिकारः ।	
चक्राख्य रस	६८५	चित्रविभाण्डक रस	६९९	द्रव्यशोध में क्रियाक्रम	७०९
चञ्चलकुठार रस	६८५	ताम्रप्रयोग	६९९	मातुलुङ्गादि लेप	७०९
जातीकलादि घटी	६८६	मगन्दर में पथ्य	६९९	रलेष्मशोध में अजगन्धादि	
अष्टाङ्ग रस	६८६	मगन्दर में अपथ्य	७००	लेप	७०९
पञ्चानन घटी	६८६	अथविद्रधिअधिकारः ।		कफवातज में पुनर्नवादि लेप	७१०
शिलागन्ध घटिका	६८६	विद्रधि पर सामान्य	Abscess	दारुद्रव्य	७१०
स्वल्पशूरण मोदक	६८६	चिकित्सा	७००	पाचनार्थ उपनाह द्रव्य	७१०
वृहच्चूरण मोदक	६८७	कज्जीयोग	७००	मणरोपण	७११
श्रीबाहुशाल गुड	६८७	वरणादि घृत	७००	दूर्वाद्य तैल और घृत	७११
प्राणदा गुटिका	६८८	प्रियंवदाद्य तैल	७००	करजाद्य घृत	७११
रत्नार्शु की चिकित्सा	६८९	वातविद्रधि की चिकित्सा	७०१	तिन्नाद्य घृत	७१२
फलद्वारस	६९०	पित्तविद्रधि की चिकित्सा	७०१	प्रपीण्डरीकाद्य घृत	७१२
कुटजलेह	६९०	रलेष्मविद्रधि की चिकित्सा	७०१	द्रव्यशोधहर लेप	७१२
अग्निमुख लौह	६९१	रत्नज और आगन्तुक की		वातजद्रव्यशोध में लेप	७१२
माणशूरणाद्य लौह	६९१	चिकित्सा	७०१	द्रव्यशोधन केसरी लेप	७१२
बोलप घटी रस	६९१	सामान्यविद्रधि की		सप्ताङ्ग गुग्गुलु	७१३
नित्योदित रस	६९२	चिकित्सा	७०२	जात्याद्य घृत और तैल	७१३
रसगुटिका	६९२	अन्तविद्रधि की चिकित्सा	७०२	गौराद्य घृत और तैल	७१३
चन्द्रप्रभा गुटिका	६९२	अपक्वविद्रधि की चिकित्सा	७०२	वृहज्जातीकाद्य तैल	७१५
अभयारिष्ट	६९३	विद्रधि में पथ्य	७०३	विपरीतमहल तैल	७१५
अशरोग में वर्जनीय पदार्थ	६९३	विद्रधि में अपथ्य	७०३	वृहत् मणराक्षस तैल	७१६
अश में पथ्य	६९३	अथऊरुस्तम्भाधिकारः ।		तन्त्रान्तरोत्र मणराक्षस तैल	७१६
खूनी श्यासीर में विशेप		ऊरुस्तम्भ में क्रियाक्रम	७०३	विडङ्गारिष्ट	७१६
विधि	६९५	रास्नादि क्वाथ	७०४	द्रव्य में निषिद्ध पदार्थ	७१७
अथभगन्दराधिकारः ।		अष्टकट्टर तैल	७०४	अथसद्योगाधिकारः ।	
रसाञ्जनादि योग	६९५	कुण्ठादि तैल	७०४	प्रसङ्गवशयर्हा अग्निद्रव्यमणकी	
भगन्दर में जम्बूकमांस वा		सैन्धवादि तैल	७०५	चिकित्सा लिखने हैं ।	७१७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
जीरक घृत	७१८	बृहद्दशमूल तैल	७२६	मूर्च्छारोग में पथ्य	७४१
पाटली तैल	७१८	महादशमूल तैल	७२६	मूर्च्छारोग में अपथ्य	७४२
मक्षिष्ठाघ तैल	७१९	तन्त्रान्तरोक्त्र बृहद्दशमूल तैल	७३०	अथ उन्माद्यधिकारः ।	
सवर्णकर लेप	७१९	तान्त्रान्तरोक्त्र दशमूल तैल	७३०	पानीय कल्याणकघृत	७४३
अथ नाडीघ्राणाधिकारः ।		विशेष दशमूल तैल	७३०	शिरकल्याणक घृत	७४४
विडङ्गादि चूर्ण	७१९	अपर दशमूल तैल	७३०	स्वल्पचैतस घृत	७४४
सैन्धवादि तैल	७१९	अपर स्वल्प दशमूल तैल	७३१	हिवाद्य घृत	७४४
हिंसाघ तैल	७२०	धुम्तूर तैल	७३१	महापैशाचिक घृत	७४४
कचूर तैल	७२०	मध्यम दशमूल तैल	७३१	शिवाघृत	७४५
वातनाडी की चिकित्सा	७२०	कनक तैल	७३१	सारस्वतचूर्ण	७४६
पित्त और कफनाडी की चिकित्सा	७२०	महाकनक तैल	७३२	उन्माद्यजकेशरी	७४६
शल्यज नाडी की चिकित्सा	७२०	रत्न तैल	७३२	उन्मादभजन रस	७४७
घोएटाफलादिवर्जित	७२०	तप्तराज तैल	७३३	चतुर्भुज रस	७४७
जात्यादि वर्ति	७२०	तन्त्रान्तरोक्त्र तप्तराज तैल	७३३	उन्माद्यजांकुश	७४७
चारसत्र प्रयोग	७२१	बृहत्किंकरी तैल	७३४	कामदुधा	७४८
सप्ताङ्गगुग्गुलु	७२१	रत्नैष्मशैलेन्द्र रस	७३५	भूताङ्कुररस	७४९
स्वर्जिकाघ तैल	७२१	रसचन्द्रिका वटी	७३५	उन्माद में पथ्य	७४८
कुम्भीकाघ तैल	७२२	चन्द्रकान्त रस	७३५	अपथ्य	७४८
मल्लालकाघ तैल	७२२	महालक्ष्मीविलास	७३५	अपस्माराधिकारः	
निगुण्टी तैल	७२२	शिरोरोगहर रस	७३५	स्वल्पपञ्चगव्य घृत	७५०
हंसपादी तैल	७२२	अर्द्धनाडी नाटकेश्वर	७३६	बृहत्पञ्चगव्य घृत	७५०
सर्वद्रव्यों में पथ्य	७२२	शिरःशुलाद्रिवज्र रस	७३६	महाचैतसघृत	७५१
सर्वद्रव्यों में अपथ्य	७२२	शिरो रोग में भोजन	७३६	कूष्माण्ड घृत	७५१
अथ शिरोरोगाधिकारः ।		शिरोरोग में पथ्य	७३६	पलङ्कपाद्य तैल	७५१
वातिक शिरोरोग की चिकित्सा	७२३	शिरोरोग में अपथ्य	७३७	कल्याण चूर्ण	७५२
शिरोवस्ति	७२३	शीर्षाम्बु रोगाधिकारः ।		स्मृतिसागररस	७५२
पैत्तिकशिरोरोगकी चिकित्सा	७२३	शीर्षाम्बुरोग का निदान		चरह भैरव	७५२
कफजशिरोरोगकी चिकित्सा	७२४	और सम्प्राप्ति	७३७	सूतभस्मप्रयोग	७५२
सारिवादि लेप	७२४	शीर्षाम्बुरोग का पूर्वरूप	७३७	वातकुलान्तक	७५२
अथ योग कहते हैं	७२५	लक्षण	७३७	अपस्मार में पथ्य	७५३
शिरःशूलहर नस्य	७२५	शीर्षाम्बुरोग की चिकित्सा	७३८	अपथ्य	७५३
अनन्तवात की चिकित्सा	७२६	सखिलशोषण चूर्ण	७३८	तत्त्वोन्मादाधिकारः ।	
शंखरोग की चिकित्सा	७२६	कुङ्कुमाद्य घृत	७३८	तत्त्वोन्माद का स्वरूप	७५३
पट्टिभन्दु तैल	७२७	रस तैल	७३८	तत्त्वोन्माद का निदान	७५५
मयूराघ घृत	७२७	वह्निभास्कर रस	७३९	तत्त्वोन्माद के लक्षण	७५५
बृहन्मयूराघ घृत	७२८	अथ मूर्च्छाधिकारः ।		योपापस्माराधिकाः ।	
गुग्गु तैल	७२८	अरयगन्धारिष्ट	७४०	योपापस्मार का निदान	७५५
		सुधानिधि रस	७४१	योपापस्मार का पूर्वरूप	७५५
		मूर्च्छान्तक रस	७४१	योपापस्मार के लक्षण	७५६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
योपापस्मार की चिकित्सा	७२६	अजकाचिकित्सा	७७४	नधुकाच सौह	७८८
वृहद् भूतभैरव रस	७२६	शशकादि घृत	७७५	नयनचन्द्र सौह	७८८
अथमदात्ययाधिकारः ।		शशकादि घृत	७७५	त्रिफला चूर्ण	७८८
पुलाघमोदक	७२८	सुखावती वरि	७७६	नेत्ररोग में पथ्य	७८८
फलत्रिकाद्य चूर्ण	७२८	चन्द्रोदयावर्ति	७७६	अपथ्य	७८९
महाकल्याणवटी	७२८	वृहच्चन्द्रोदयावर्ति	७७६	अथ नासारोगाधिकारः ।	
वृहद्धात्री तैल	७२८	हरीतक्यादिवर्ति	७७६	व्योपाद्य चूर्ण	७९०
श्रीसखड्यासव	७२९	कुमारिकावर्ति	७७७	पाठादि तैल	७९०
मदात्यय में पथ्य	७२९	दृष्टिप्रदावर्ति	७७७	व्याघ्री तैल	७९०
मदात्यय में अपथ्य	७२९	चन्दनाद्यावर्ति	७७७	त्रिकटादि तैल	७९०
अथनेत्ररोगाधिकारः ।		न्यूपणाद्यावर्ति	७७७	कलिहाचवपीड	७९०
लेप	७६०	नयनसुखावर्ति	७७७	नासापाक की चिकित्सा	७९१
आरच्योतन	७६१	चन्द्रप्रभावर्ति	७७७	सवधुनाशकयोग	७९१
अञ्जन	७६१	पञ्चशतिकावर्ति	७७८	प्रतिरयाय चिकित्सा	७९१
कज्जल	७६२	नागानु नाञ्जन	७७८	करवीराद्य तैल	७९२
पूर्ववद्धति	७६२	सौगतअञ्जन	७७८	शिखरि तैल	७९२
बिल्वनाञ्जन	७६२	पिप्पल्यातिवर्ति	७७८	चित्रक तैल	७९२
चूर्णाञ्जन	७६७	कोकिलावर्ति	७७८	चित्रक हरीतकी	७९२
सतशुक्लहर गुग्गुलु	७६८	जनरञ्जन अञ्जन	७७९	नासारोग में पथ्य	७९२
तारकाद्यवर्ति	७६८	शंखादि अञ्जन	७७९	अपथ्य	७९२
नयनशरणाञ्जन	७६८	हरिद्राद्यवर्ति	७७९	अथ कर्ण रोगाधिकारः ।	
मुक्तादि महाञ्जन	७६८	कज्जल	७८०	कर्ण शूलचिकित्सा	७९४
नययामृत	७६९	त्रिकलाद्य घृत	७८२	दीपिका तैल	७९५
पद्मभृत्तगुग्गुलु	७६९	महात्रिकलाद्य घृत	७८३	जीवनीयाद्य तैल	७९६
वासकादि	७६९	त्रिकलाद्य घृत	७८३	घार तैल	७९७
वृहद्धासादि	७६९	त्रिकलाद्य घृत	७८४	मधुसूत्र	७९७
आगन्तु नेत्ररोग की चिकित्सा	७७०	भुगराजतैल	७८४	कर्ण नाद और कर्ण श्लेष्म की चिकित्सा	७९७
शुक्रादिघापाकीचिकित्सा	७७१	गोमय तैल	७८४	अपामार्गघार तैल	७९७
अन्यतोवात और मास्त-पर्यय की चिकित्सा	७७१	नूपयल्लभ तैल और घृत	७८४	स्वर्जिकाद्य तैल	७९७
शिशोत्पातीचिकित्सा	७७१	अजित तैल	७८५	दशमूली तैल	७९८
शिराहर्षीचिकित्सा	७७१	अम चिकित्सा	७८५	धिल्वतैल	७९८
सम्रणशुक्राचिकित्सा	७७१	शुभ्रिका चिकित्सा	७८५	तन्प्रातरोत्र बिल्व तैल	७९८
प्रणशुक्रहरीवर्ति	७७२	अनुनीचिकित्सा	७८६	लघुनाद्य तैल	७९८
दन्तवर्ति	७७३	पिष्टकचिकित्सा	७८६	कर्ण स्नाय चिकित्सा	७९८
शंखादि अञ्जन	७७३	उपनाहचिकित्सा	७८६	जम्ब्यादि तैल	७९९
पटोलादि घृत	७७४	सप्तामृतसौह	७८६	शम्बूक तैल	७९९
कृष्णादि तैल	७७४	नेत्राशनि रस	७८७	निशाद्य तैल	७९९
		तिमिरहर सौह	७८७	कुशाद्य तैल	७९९
		माषिकादि घटी	७८७		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
कण्य प्रतिनाहचिकित्सा	८००	पीतकचूर्ण	८१०	चिप्प की चिकित्सा	८२०
भैरव रस	८००	यवसारादिगुटी	८१०	कुनख की चिकित्सा	८२०
इन्दुवटी	८०१	सारगुटिका	८१०	अगुलीवेष्टक की चिकित्सा	८२१
सारिवादि वटी	८०१	योगों का विधान	८११	पद्मनीकण्टक क	
दाव्यादि तैल	८०१	सर्वसरचिकित्सा	८११	चिकित्सा	८२१
कण्य रोग में पथ्य	८०२	मुखपाकचिकित्सा	८११	जालगर्दभ की चिकित्सा	८२१
अपथ्य	८०२	सप्तच्छदादिक्वाथ	८१२	अहिपूतन की चिकित्सा	८२१
अथमुखरोगाधिकार ।		पटोलादिक्वाथ	८१२	गुदभ्रश की चिकित्सा	८२१
ओष्ठरोगाचिकित्सा	८०२	पुन योगों का विधान	८१२	चात्रेरी घृत	८२२
शीतादन्तरोग की चिकित्सा	८०३	विदार्यादि तैल	८१२	मूषिकाघ तैल	८२२
चलदन्त की चिकित्सा		सहाचर तैल	८१३	धर्मकील आदि की	
भद्रमुस्तादिगुटिका	८०३	अरिमेदाघ तैल	८१३	चिकित्सा	८२२
दन्तपुष्पुट की चिकित्सा	८०४	लाघाघ तैल	८१३	युवानोषडिकाघ चिकित्सा	८२२
दन्तशूल की चिकित्सा	८०४	दशानसस्कारचूर्ण	८१४	हरिद्राघ तैल	८२४
दन्तवेष्टचिकित्सा	८०४	यकुलाघ तैल	८१४	कनक तैल	८२४
शोषिर चिकित्सा	८०४	स्वल्पपादिरादिघटिका	८१५	मज्जिष्ठाघ तैल	८२४
परिदर और उपरुश की		गृह्यपादिर घटिका	८१५	कुंकुमाघ तैल	८२५
चिकित्सा	८०४	मुखरोगहर रस	८१५	संग्रातरोगकुंकुमाघ तैल	८२५
पैदर्मचिकित्सा	८०५	पथ्यावटी	८१५	पर्यंक घृत	८२५
अधिमास चिकित्सा	८०५	सप्तामृतसरस	८१५	अरुपिषा की चिकित्सा	८२६
दन्तमाषी की चिकित्सा	८०५	धनुमुख रस	८१६	द्विहरिद्राघ तैल	८२६
दन्तहर्षचिकित्सा	८०६	पार्येती रस	८१६	दारक की चिकित्सा	८२६
दन्तशकंठाचिकित्सा	८०६	रसेन्द्रयटी	८१६	त्रिकलाघ तैल	८२७
कृमिदन्तचिकित्सा	८०६	सहकारपटी	८१६	पट्टि तैल	८२७
विदार्यादि तैल	८०६	मालायाघ घृत	८१७	गुग्गु तैल	८२७
धनुमोषचिकित्सा	८०७	जात्याघ तैल	८१७	स्वल्पभृशराज तैल	८२७
दन्तरोग में योजित पदार्थ	८०७	मुखरोग में पथ्य	८१८	महाभृशराज तैल	८२७
जिह्वारोग चिकित्सा		मुखरोग में व्यर्थ पदार्थ	८१८	प्रपीप्लविकाघ तैल	८२८
जिह्वाकण्टकचिकित्सा	८०७	सूत्ररोगाधिकार		मालायाघ तैल	८२८
जिह्वाजाट्यचिकित्सा	८०७	पञ्चगव्यिका की चिकित्सा	८१८	हृन्मृत्पा चिकित्सा	८२८
दन्तशब्दचिकित्सा	८०७	धनुशयी आदि की		रुन्नाघ तैल	८२८
उपजिह्वकचिकित्सा	८०८	चिकित्सा	८१८	आदिस्वल्पगुग्गु तैल	८२८
तानुरोग तथा गलगुपटी		विदारिकादि की चिकित्सा	८१९	धनुमाघ तैल	८२८
की चिकित्सा	८०८	धनुमासत्री आदि की		परीमन्वाघ तैल	८२९
पञ्चदशरोगचिकित्सा		चिकित्सा	८१९	केसरजम योग	८२९
रोहिणीचिकित्सा	८०८	कर्मोक्ष की चिकित्सा	८१९	महाश्रील तैल	८३१
कन्दशाकूचचिकित्सा	८०९	पाददारी की चिकित्सा	८२१	भृशराज घृत	८३१
दन्तरोगात्मिष्य	८१०	अधम की चिकित्सा	८२०	स्वल्पस्वप्पीत चिकित्सा	८३१
कान्तचूर्ण	८१०	कर की चिकित्सा	८२०	की चिकित्सा	८३१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शुकरदंष्ट्र की चिकित्सा	८३२	प्रदरान्तक रस	८३६	गर्भविलास तैल	८६६
अमृतांकुर वटी	८३३	शिलाजतु वटिका	८३६	इन्दुशेखर रस	८६६
चन्द्रप्रभा रस	८३३	अशोकारिष्ट	८३७	सूतिकारोग चिकित्सा	८६६
कुंकुमादि घृत	८३३	पत्राङ्गासव	८३७	प्रसवमन्त्र	८६७
सप्तचन्द्रादि तैल	८३३	प्रियंगवादि तैल	८३७	मङ्गल का स्वरूप और चिकित्सा	८६८
सहाचर घृत	८३४	स्त्रीरोगाधिकार में योनिव्याप- चिकित्सा	८३७	प्रसव समय में पथ्य	८६८
क्षार घृत	८३४	यो-याज्ञोप का निदान और लक्षण	८४०	प्रसव समय में अपथ्य	८६८
शय्यामूत्र चिकित्सा	८३४	योनिवाज्ञोप की चिकित्सा	८४०	अमृतादि	८६९
लोमशासन विधि	८३५	योनिवाज्ञोप रोग में पथ्य और अपथ्य	८४१	सहचरादि	८६९
चार तैल	८३६	फलकल्याण घृत	८४२	सूतिकादशमूल	८६९
पटोलाच घृत	८३६	विद्ववल्गुम घृत	८४३	सहचरादि त्राथ	८७०
चन्द्ररोगों में पथ्यापथ्य	८३६	हयमारादि तैल	८४४	घ्नक्राजिक	८७०
अथ स्त्रीरोगाधिकारः		द्विग्रादि तैल	८४४	भद्रोक्तटाथवलेह	८७०
अथ पहले प्रदर की चिकित्सा कहते हैं	८३६	मुधाकर तैल	८४४	भद्रवटाच घृत	८७१
दार्यादि त्राथ	८३७	नष्टपुष्पान्तक रस	८४५	सौभाग्यशुण्ठी मोदक	८७१
बृहद्वात्री घृत	८३८	कुमारिका वटी	८४५	सौभाग्यशुण्ठी मोदक	८७१
अशोक घृत	८३८	विजयावाटिका	८४५	बृहत्सौभाग्यशुण्ठी	८७२
जीवनीयगण	८३८	रजःप्रवर्तिनी वटी	८४६	प्रतापलंकेरवर	८७३
न्यप्रोधाच घृत	८३९	शिखर्यादिवाटिका	८४६	सूतिकारि रस	८७३
पैत्तिक प्रदर में चन्द्रनादि चूर्ण	८३९	संविदासार	८४६	सूतिकाध्न रस	८७४
पुष्कर लोह	८४०	सोम. घृत	८४६	सूतिकान्तक रस	८७४
प्रदरारि लौह	८४०	कुमारकल्पद्रुम घृत	८४७	रसशादूल	८७४
पुष्यानुग चूर्ण	८४१	गर्भिणी चिकित्सा	८४८	महारसशादूल	८७४
सितकल्याण घृत	८४१	मासानुमासिक योग	८६१	महाभवटी	८७५
मधुकाषवलेह	८४२	कशेवादि पथ्य	८६२	सूतिकाभरण रस	८७५
उरपलादि	८४२	गर्भिणीज्वर चिकित्सा में चन्द्रनादि त्राथ	८६३	लक्ष्मीनारायण रस	८७५
शरपुद्ग चूर्ण	८४३	आरग्नधाच तैल	८६३	जीरकाद्य मोदक	८७६
धात्री घृत	८४३	गर्भविनोद रस	८६३	सूतिकारि रस	८७६
प्रदरान्तक लौह	८४४	द्वेषदायादि त्राथ	८६३	बृहत्सूतिकाविनोद रस	८७६
लक्ष्मणा लौह	८४४	दुर्वादि त्राथ	८६४	स्तन्यदुष्टिचिकित्सा	८७७
चन्द्रांशु रस	८४४	ह्रीविरादि	८६४	श्रीपर्णी तैल	८७८
रसभस्मयोग	८४४	लवणादि चूर्ण	८६४	सूतिकाहर रस	८७८
सर्वाङ्गसुन्दर	८४४	गर्भचिन्तामणि रस	८६५	शुद्धसूतिकावल्लभ रस	८७९
रत्नप्रभावटिका	८४५	गर्भविलास रस	८६५	धातव्यादि तैल	८७९
प्रदरारि	८४५	गर्भपीयूषवल्ली रस	८६५	जीरकाद्यारिष्ट	८७९
प्रदरारि रस	८४५			गर्भिय्याः पथ्यानि	८८०
लक्ष्मणारिष्ट	८४६			गर्भिय्याः अपथ्यानि	८८०
				सूतिकारोगे पथ्यानि	८८१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अथ वृक्कामयाधिकारे ।		मस्तिष्कवेपनाधिकारे ।		पारदजन्यपक्षाघात की	
वृक्कामय का पूर्वरूप	१७१	मस्तिष्कवेपन का निदान		चिकित्सा	१८३
वृक्कामय का लक्षण	१७१	और लक्षण	१७१	नागजन्यपक्षाघात का	
सर्धतोभद्र वटी	१७६	शिरकाँपने की चिकित्सा	१७१	निदान	१८३
माहेश्वर वटी	१७६	पथ्यादि व्यवस्था	१७१	नागजन्यपक्षाघात के	
		वेपथुवाताधिकारे		लक्षण	१८३
<b>प्रथम परिशिष्ट</b>		वेपथुवात का निदान	१८०	नागजन्यपक्षाघात की	
अयडाधारगद का निदान	१७७	वेपथुवात के लक्षण	१८०	चिकित्सा	१८४
अयडाधारगद के लक्षण	१७७	वेपथुवात की चिकित्सा	१८०	अंशुघाताधिकारे ।	
अयडाधारगद की		अोजोमेहाधिकारे ।		अशुघात के निदान और	
चिकित्सा	१७७	अोजमेहरोग का निदान		लक्षण	१८४
पटोलादि काथ	१७७	और लक्षण	१८०	अशुघात के अरिष्ट और	
योषिद्वल्लभ रस	१७७	अोजमेह की चिकित्सा	१८१	लक्षण	१८४
चन्दनाद्य चूर्ण	१७७	चन्दनादि काथ	१८१	अंशुघात की चिकित्सा	१८४
पथ्यापथ्य	१७८	अजमोदादि चूर्ण	१८१	रत्नेश्वर रस	१८५
		चन्दनासव	१८२	महाशिशिर पानक	१८५
मस्तिष्कचयापचया- धिकारे ।		पथ्यापथ्य की व्यवस्था	१८२	अशुघातरोग में पथ्य और	
मस्तिष्कचयापचय का		अगन्तुजपक्षाघाता- धिकारे ।		अपथ्य-व्यवस्था	१८६
निदान और लक्षण	१७८	अगन्तुजपक्षाघात का भेद	१८२	अथ मुमुर्ध्वधिकारे ।	
मस्तिष्कवृद्धि की		पारदजन्यपक्षाघात का		जलमज्जन की चिकित्सा	१८६
चिकि मा	१७८	निदान	१८३	लुप्तस्वास की पुनरानयन	
मस्तिष्कहास की चिकित्सा	१७८	पारदजन्यपक्षाघात के		विधि	१८६
चन्दनादिकाथ	१७८	लक्षण	१८३	द्वितीय परिशिष्ट	
				द्रव्यों को शुद्ध एवं भस्म	
				करने की विधि	१८८



# भैषज्यरत्नावली रत्नप्रभाव्याख्यासहिता ।



मङ्गलाचरणम्

भक्त्या नमस्त्रिदशराजकिरीटकोटिरत्नावलीकिरणराजिविराजमानम् ।  
श्रीमत्करीन्द्रवदनस्यपदारविन्दद्वन्द्वंसदाजयतिसिद्धिकरंक्रियाणाम् ॥ १ ॥

ध्यात्वा गुरुणां चरणारविन्दं नत्वा स्वकीयं पितरं च भक्त्या ।

भैषज्यरत्नावलि-संग्रहस्य<sup>१</sup> रत्नप्रभाष्यां रचयामि टीकाम् ॥

भक्तिपूर्वकं कुकते हुए देवताओं के राजा इन्द्र के मुकुट में शोभित स्वों में निकली हुई किरणों द्वारा शोभायमान श्रीगणेशजी महाराज के चरण जो संसार के समस्त काठ्यों को सिद्ध करनेवाले हैं ऐसे उन सुगलचरणों की सदा जय हो ॥ १ ॥

आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाऽभवद्भूमौ ।  
प्रथमं लिखाभि तमहं नानान्त्राणि  
संहरय ॥ २ ॥

वैद्यक शास्त्र का पृथ्वी पर जिस प्रकार आगमन हुआ, मैं पहिले अनेक शास्त्रों का अवलोकन कर उसको लिखता हूँ ॥ २ ॥

आयुर्वेदोत्पत्तिक्रमः ।

ब्रह्मा स्मृत्वायुपो वेदं प्रजापतिमजि-  
ग्रहत् । स दस्रौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिजं

<sup>१</sup> कृत्तिकाराद्रिनि इति वैकल्पिकद्वीपो विधानात्  
हस्तान्तोऽप्याथलिशब्दः ॥

समुपादिशत् ॥ ३ ॥ सोऽग्निवेशं च भेडश्च  
जातुकर्णं पराशम् । क्षारपाणिश्च दारीत-  
मायुर्वेदमपाठयत् ॥ ४ ॥ ब्रह्माप्रजापतिर्द-  
स्रौ देवराडत्रिजस्तथा । स्तनाम्ना संहितां  
चक्रे पृथक् कल्याणहेतवे ॥ ५ ॥ तन्त्रस्य  
कर्ता मथममग्निवेशोऽभवत् पुरा । ततो  
भेडादयः सर्वे पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ ६ ॥

पहिले ब्रह्माजी ने स्मरण कर दक्षप्रजापति को आयुर्वेद का उपदेश किया । इसके बाद दक्षप्रजा-पति ने अश्विनीकुमारों को, कुमारों ने इन्द्र को और इन्द्र ने चाप्रेय मुनि को पढ़ाया । परवात् नगवान् चाप्रेयजी ने अग्निवेश, भेड, जातुकर्ण,

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	अथ विषयसंज्ञाधिकार ९२३	पृष्ठ
- चालरोगाधिकार		जात्रादि तैल	८११	अर्जकादिवटिका	११४
नाभिपाक की चिकित्सा	८८२	बालरोगान्तक रस	८१२	नागवल्क्याद्य चूर्ण	११४
आह्रियटका की चिकित्सा	८८२	कुमारकल्याण रस	८१२	शक्रवल्कलभ रस	११४
बालरजर चिकित्सा	८८२	रतोद्भेदगदान्तक	८१२	कामिनीविद्रावण रस	११४
ज्वर में रक्षामन्त्रयथा	८८३	लवङ्गचतु सम	८१३	अथ रसायनाधिकार	
बालक के लिए मात्रा का प्रमाण	८८३	दाडिमचतु सम	८१३	भृङ्गराज रसायन	११५
हरिद्रादि कषाय	८८३	पिप्पल्याद्य घृत	८१३	शश्वगन्धा रसायन	११६
ककटादि चूर्ण	८८३	शिवामोदक	८१३	वृद्धदारक रसायन	११६
बालचतुर्भङ्गिका	८८४	सर्वोपधिस्नान	८१४	धात्री रसायन	११६
धातक्यादि चूर्ण	८८४	कष्टकारि घृत	८१४	श्रुतहरीतकी	११७
रजन्यादि चूर्ण	८८४	व्याघ्री तैल	८१४	मधुहरीतकी	११७
छर्द्यादि की चिकित्सा	८८४	शरपुष्पी तैल	८१५	निगुण्टी कल्प	११७
शृङ्गादि चूर्ण	८८४	अरविन्दास्य	८१५	भृङ्गराज्यादि चूर्ण	११८
शतिसार चिकित्सा	८८५	बालकुन्जावलेह	८१६	श्रीसृष्टुञ्जय तन्त्रोक्त अमृत- वर्तिका	११८
त्रामातिसारीचिकित्सा	८८५	रामेश्वर रस	८१६	श्रीसिद्धमोदक	११६
यमानी पञ्चक	८८५	भूतप्रह चिकित्सा	८१६	श्रीचुपतिवल्कलभ रस	१२०
मुस्तकादि कषाय	८८६	भूतवार घृत	८१७	सिद्ध लक्ष्मी विलास रस	१२१
प्रवाहिकाचिकित्सा	८८७	महाभूतवार घृत	८१७	मकरध्वज रसायन	१२२
ग्रहणीचिकित्सा	८८७	महागन्धक	८१८	अमृतार्णव रस	१२२
शुद्धपाकीचिकित्सा	८८७	घाल रस	८१८	श्रीनीलकण्ठ रस	१२२
पत्रचाद्रुज के लक्षण	८८७	रावणकृतकुमार तन्त्र		शिवगुटिका	१२३
मूत्रग्रह में कणादि क्षेत्र	८८८	प्रथमदिनादि में बारह मातृ काशों से युक्त बालक के लक्षण	८१९	वसतकुतुमादर रस	१२५
आनाहशूलचिकित्सा	८८८	अथ विषयाधिकार		नागासिद्धर	१२५
तालुपातीचिकित्सा	८८८	धिपहरी वर्ति	१०६	प्रष्टायक रस	१२५
मुखपाकीचिकित्सा	८८८	दशाङ्गअगद	१०६	श्लेष्मिकचिन्तामणि	१२६
पूतिकण चिकित्सा	८८९	अजितागद	१०६	पूर्णचन्द्र रस	१२७
द्विक्काचिकित्सा	८८९	ताष्यागद	१०६	श्रीमहालक्ष्मीविलास रस	१२७
कामश्यासिचिकित्सा	८८९	कुलिकादि वटिका	१०६	मारस्वतारिष्ट	१२८
पुष्करादि चूर्ण	८८९	भीममन्त्र रस	११०	अथ वाजीकरणाधिकार ।	
रूष्णा में दाडिमोदि चूर्ण	८८९	द्वितीय भीमरद्र रस	११०	शृष्याधिकार	१३०
नगरोगचिकित्सा	८९०	विषयत्रपात रस	११०	पेसा न काने में द्रोप	१३०
गुह्याशयो में आशयो रस	८९०	गण्डुनीयक घृत	११०	यानिराम में चपर्य	१३१
तिष्णामादिचिकित्सा	८९०	शृष्याशयघृत घृत	११०	नरसिंह चूर्ण	१३२
अरवगन्धा घृत	८९०	शिरसि घृत	१११	अरवगन्धादि चूर्ण	१३३
बालपात्रेरी घृत	८९०	शिरसिघृत	१११	शृङ्गप्रतापरी घृत	१३४
कुमारकल्याण घृत	८९१	शिरसिघृत	१११	कामदेय घृत	१३४
अष्टमङ्गल घृत	८९१	धिपरोगे पर्यायि	११२	कामेश्वरमोदक चौर धी-	
		धिपरोगे में चपर्य	११२	वामेश्वर मोदक	१३५



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
चानरीवटिका	६३२	कफज विसर्प पर लेप	६२४	चैतन्योदय रस	६६२
गोधूमाचपृत	६३२	दशाङ्ग लेप	६२६	अथ अचलवाताधिकारः ।	
गुडकूमाण्ड	६३६	अमृतादि क्वाथ	६२६	अचलवातरोग का स्वरूप	६६६
वृष्यतमा स्त्री	६३७	कालाग्निरत्र रस	६२६	अचलवात का निदान	६६६
वाजीकरण के योग्य पुरुष	६३७	विसर्प में पथ्य	६२६	अचलवात के लक्षण	६६६
बृहच्छतावरी मोदक	६३७	अथ पारदविकाराधिकार ।		हिंवाद्य चूर्ण	६६७
रतिवह्मभ मोदक	६३८	पारदविकार	६२६	अथ खज्जनिकाधिकार ।	
तन्त्रान्तर में कथित कामे-		त्रिफलादि क्वाथ	६२७	खज्जनिका का निदान	६६७
श्वर मोदक	६३६	सारिवादि क्वाथ	६२७	हसका का अनुपशय	६६७
कामाग्निसन्दीपन मोदक	६४०	सारिवाद्यवलेह	६२७	खज्जनिका के लक्षण	६६७
खगडाभ्रक	६४१	पारदविकारनाशक अन्य		खज्जनिकारि रस	६६८
पुण्यचन्द्ररस	६४२	औषधि	६२८	अथ ताण्डवव्रोगाधिकार ।	
निद्रोदय रस	६४२	पथ्यापथ्य	६२८	ताण्डव रोग का निदान	६६८
श्रीकामदेव रस	६४२	अथ विस्फोटकाधिकार ।		नाण्डव रोग का लक्षण	६६६
गन्मथाञ्ज	६४३	विस्फोटक की सामान्य		अथ स्नायुशूलकाधिकार ।	
मकरण्यज रस	६४४	चिकि सा	६२८	स्नायुशूल का स्वरूप	६७०
कामिनीमदभञ्जन	६४६	वातजविस्फोटककीचिकिसा	६२८	रोग के स्थान	६७०
हरशशाङ्ग	६४६	पित्तजविस्फोटककीचिकिसा	६२८	ऊर्ध्वभेद का निदान	६७०
कामधेनु	६४६	कफजविस्फोटक की		ऊर्ध्वभेद के लक्षण	६७०
लक्ष्मणा लौह	६४६	चिकित्सा	६२६	ऊर्ध्वभेद की संप्राप्ति	६७०
गन्धामृत रस	६४६	सर्वविस्फोटकनाशक		अर्धभेद का निदान	६७०
स्वर्णसिन्दूर	६४६	द्वादशाङ्ग क्वाथ	६२६	अर्धभेद के लक्षण	६७१
सुरसुन्दरी गुटिका	६४६	विस्फोटकरोग में पथ्य	६६०	अधोभेद का निदान	६७१
मोकरवा नाम से प्रसिद्ध		विस्फोटकरोग में अपथ्य	६६०	अधोभेद के लक्षण	६७१
यवनकृत औषधि	६४६	अथ स्मरोन्मादाधिकार ।		स्नायुशूलहर चूर्ण	६७१
पह्लयसार तैल	६४७	स्मरोन्माद का निदान	६६०	मिहिरोदय रस	६७१
श्रीगोपाल तैल	६४८	स्मरोन्माद के लक्षण	६६०	स्नायुरोग में पथ्यापथ्य	६७२
मृतसञ्जीवनी सरा	६४६	अभयादि चूर्ण	६६१	कुमारी वटी	६७२
दशमूलारिष्ट	६४०	स्मरोन्माद में पथ्य	६६१	महारत्न वणी	६७२
मदनमोदक	६४१	अथ गदोद्वेगाधिकार ।		स्वर्णसिन्दूर रस	६७३
अथ उरस्तोयाधिकार ।		गदोद्वेग की परिभाषा	६६१	शतावरी घृत	६७३
उरस्तोय की संप्राप्ति	६४२	अपथ्य गन्धानिग्नान	६६२	सुरवह्मभ तैल	६७३
उरस्तोय के लक्षण	६४२	गदोद्वेग क लक्षण	६६२	अथ स्नायुशूलकाधिकार ।	
सुधानिधि रस	६४२	गदोद्वेग की संप्राप्ति	६६३	स्नायुशूल का निदान	६७४
गन्धायचारण विधि	६४३	यमायादि चूर्ण	६६४	स्नायुशूल के लक्षण	६७४
उरस्तोय में वर्तनीय	६४४	शीरोदधि रस	६६४	आद्रियपक्व तैल	६७४
अथ विसर्पाधिकार ।		गन्धराज तैल	६६४	स्नायुशूलारि रस	६७६
वातजविसर्प पर लेप	६२४	अथ तत्त्वोन्मादाधिकारः ।		स्नायुशूल में पथ्य	६७६
पित्तजविसर्प पर लेप	६२४	श्रीसखटादि चूर्ण	६६६		

पराशर, चारपाणि और हारीत मुनि को वैद्यक-शास्त्र का उपदेश किया। इसके बाद ब्रह्मा, प्रजापति, दोनों भरिचनीकुमार, इन्द्र और आत्रेय इन लोगों ने सब के हित के लिए अपने-अपने नाम से अलग-अलग संहिता बनाई। जैसे ब्रह्मसंहिता, प्रजापतिसंहिता और भरिचनी-कुमारसंहिता आदि। प्रथम तन्त्रकर्ता<sup>१</sup> अग्नि-वेशजी हुए। तदनन्तर भेद आदि सब ऋषियों ने (अपने २ नाम से) अलग-अलग तन्त्रों का निर्माण किया ॥ ३—६ ॥

आरोग्यप्रशंसा ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्त-  
मम् । रोगास्तस्याऽपहर्तारः श्रेयसोजीवि-  
तस्य च ॥ ७ ॥

शरीर की आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पदार्थों का प्रधान साधन है। व्याधियाँ आरोग्यता, सुख और दीर्घजीवन को नष्ट कर देती हैं ॥ ७ ॥

व्याधिभेद ।

व्याधयो द्विविधाः प्रोक्ताः शारीरा  
मानसास्तथा । शारीरा ज्वरकुष्ठाद्या उन्मा-  
दाद्या मनोभवाः ॥ ८ ॥

शारीरिक और मानसिक भेद से व्याधियाँ दो प्रकार की हैं। ज्वर और कुष्ठ आदि शारी-रिक, तथा उन्माद आदि मानसिक व्याधि कहे जाते हैं ॥ ८ ॥

आरोग्य और रोग के लक्षण ।

दोषाणां साम्यमारोग्यं वैषम्यं व्याधि-  
रुच्यते । सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःख-  
मेव च ॥ ९ ॥

<sup>१</sup> अग्निवेश आदि ऋषियों ने वैद्यकशास्त्र में तिन-  
तिन ग्रन्थों का निर्माण किया है उनको 'तन्त्र'  
कहते हैं

दोषों की समान<sup>१</sup> अवस्था को आरोग्य और असमान अवस्था को रोग कहते हैं। आरोग्य ही को दूसरे शब्द में सुख और व्याधि को दुःख कहते हैं ॥ ९ ॥

व्याधि के साध्य आदि भेद ।

साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधाऽतोऽपि  
पुनर्द्विधा । सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो याप्यो  
यश्चाऽपतिक्रियः ॥ १० ॥

साध्य और असाध्य इन भेदों से रोग दो प्रकार के हैं। ये साध्य और असाध्य भी दो-दो प्रकार के हैं। सुखसाध्य और कृच्छ्रसाध्य; ये दोनों प्रकार के रोग साध्य, और जो रोग याप्य<sup>२</sup> तथा श्रौषधादि द्वारा अर्पड़े नहीं हो सकते हैं वे दोनों प्रकार के रोग असाध्य कहे जाते हैं ॥ १० ॥

तत्रैकः पापजो व्याधिरपरः कर्मजो  
मतः । पापजः प्रशमं याति भैषज्यसेव-  
नादिना ॥ ११ ॥ यथाशास्त्रविनिर्णोतो यथा  
व्याधिचिकित्सितः । न शमं याति यो  
व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥ १२ ॥

व्याधियाँ दो प्रकार की होती हैं, पापज और कर्मज। पापज अर्थात् इसी जन्म में मिथ्याहार-विहार से पैदा होनेवाली, और इन्हीं को दोषज ( वात, पित्त, कफजन्म ) व्याधियाँ, पापज व्याधियाँ कहते हैं। दूसरी व्याधियाँ कर्मज होती

<sup>१</sup> यह समानता इस प्रकार की नहीं है कि वे पर-  
स्पर समान हों अर्थात् जितना पित्त का परिमाण हो,  
उतना ही कफ का; किन्तु पृथक् पृथक् दोषों का यह  
परिमाण ( तोल ) जिससे शरीर स्वस्थ रहे। दोषों  
का परिमाण इस प्रकार से भी नियत नहीं किया गया  
है कि इतना वायु, इतना पित्त और इतना कफ शरीर  
में होने चाहिये। किन्तु दोषादिकों के जितने परिमाण  
से शारीरिक क्रियाएँ अर्थात् भोजन, सम्पन्न होयें यही  
उनका समान परिमाण है। देगिदे—गृध्रतर्मदिना  
सूत्रप्रधान अ० १६ श्लोक ४३, ४४ और ४५ ॥

<sup>२</sup> जो रोग श्रौषधों का सेवन करने से दूरा रहता  
है और श्रौषधों का सेवन करना छोड़ देने पर फिर  
प्रकट हो जाता है उसको याप्य कहते हैं।

हैं । इनमें से पापज व्याधियाँ ओपधियों के सेवन आदि से शान्त हो जाती हैं और यदि शास्त्र के निदानानुसार व्याधिसाम्य चिकित्सा करने पर भी जो व्याधि शान्त नहीं होती, उसको कर्मज व्याधि जानना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यामेव जायते । अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किन्तु रोगो निवार्यते ॥ १३ ॥

चूँकि इस लोक में कोई व्यक्ति अमर नहीं है अतः मृत्यु अविवार्य है, किन्तु रोग हटाया जा सकता है ॥ १३ ॥

रोग की उपेक्षा का फल ।

याप्यत्वं याति साध्यस्तु याप्यो गच्छत्वसाध्यताम् । जीवितं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ॥ १४ ॥

जो मनुष्य रोग की उपेक्षा करता है उसका साध्य रोग भी याप्य और याप्य रोग असाध्य हो जाता है । यदि असाध्य रोग की उपेक्षा की जाय तो वह रोगी को मार डालता है ॥ १४ ॥

याप्यत्वमसाध्यत्वञ्च द्विधा ज्ञेयं प्रकृतिरुपेक्षणाच्च ॥

तथा च सारचन्द्रिकायाम्—

याप्याः केचित् प्रकृत्यैव केचिद् याप्या उपेक्षया । प्रकृत्या व्याधयोऽसाध्याः केचित् केचिदुपेक्षया ॥ १५ ॥

पूर्वोक्त याप्य और असाध्य रोग दो ही प्रकार से उत्पन्न होते हैं । जैसे—कुछ रोग स्वभाव ही से याप्य और असाध्य होते हैं और कुछ रोग उपेक्षित होने (सावधानीपूर्वक चिकित्सा न करने) से याप्य अथवा असाध्य हो जाते हैं । यह यात सारचन्द्रिका में लिखी है ॥ १५ ॥

मृत्यु के भेद

एकोत्तरं मृत्युगतमस्मिन् देहे प्रतिष्ठितम् । तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥ १६ ॥

इस शरीर में एक अधिक भी ( एक सौ एक १०१ ) प्रकार की मृत्यु स्थित है । उनमें

एक मृत्यु कालसंयुक्त<sup>१</sup> है, और शेष सौ मृत्यु आगन्तुक अर्थात् तात्कालिक कारणवश उत्पन्न होनेवाली हैं ॥ १६ ॥

कालमृत्यु की प्रचलता ।

ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः । जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥१७॥ पीडितं रोगसर्पाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् । सुस्थीकर्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं हि देहिनम् ॥ १८ ॥

आगन्तुक मृत्यु औषध, जप, होम और दानादि द्वारा शान्त हो जाती है, किन्तु काल मृत्यु किसी प्रकार निवारित नहीं हो सकती । कोई प्राप्तकाल व्यक्ति ( जिसका मृत्यु समय ही है ) रोगाक्रान्त अथवा सर्प आदि से दूध हुआ ( डँसा गया ) हो तो स्वयं धन्वन्तरिजी भी उसको स्वस्थ करने में समर्थ नहीं हो सकते ॥ १७ १८ ॥

तथा च ज्योतिस्तत्त्वे—

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं दूयते मया । नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपा ॥ त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम् ॥ १९ ॥

तत्रैव—

वर्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः । विक्रियाऽपि च दृष्टैवमकाले प्राणसंज्ञयः ॥ २० ॥

ज्योतिस्तत्त्वं में लिखा है कि आयु के बढ़ानेवाले कर्मों का क्षय होने पर मैं ( यम ) कुल प्राणियों को पीडित करता हूँ, उस समय औषध, मन्त्र, होम और जप ये कोई भी

<sup>१</sup> काले आयुषोऽन्ते शरीरिणाभवश्यंसंहर्ता, यदा कालेन यमेन संयुक्तं संहाराय नियुक्तं इति तदर्थं इति भावार्थमर्थः । अर्थात्—आयु के अन्त में प्राणियों का अवश्य संहार करनेवाली, अथवा प्राणियों का संहार करने के लिये यमराज से नियुक्त 'कालसंयुक्त' शब्द के ये दो अर्थ भावार्थ न किये हैं ।

बुढ़ापा और मृत्यु से प्रसिक्त मनुष्य को नहीं बचा सकते । जैसे दीपक में बाती और तेल के रहते हुये भी कदाचित् दीपक बुझ जाता है । वैसे ही आयु के रहते हुये भी गंगादि कारणों से अस्मय में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है ॥ १६-२० ॥

वैद्य का कर्तव्य ।

व्याधेस्तस्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ २१ ॥

व्याधि के तत्र अर्थात् स्वरूप और निदान को यथार्थ रीति से जानना और रोगी की पीड़ा का निवारण करना यही वैद्य का कर्तव्य है । वैद्य आयु का प्रभु अर्थात् परमायुःप्रदाता नहीं है ॥ २१ ॥

अचिकित्स्य रोगी ।

यादृच्छिको मुमुक्षुश्च विहीनः करणैश्च यः । वैरी च वैद्यविद्वेषी श्रद्धाहीनः सशङ्कितः ॥ २२ ॥ भिषजामनियम्यश्च नोपक्रम्यो भिषग्विदा । एतानुपाचरन्वैद्यो बहून् दोषानवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

स्वेच्छाचारी ( मनमाना आचरण करने वाला ), आत्मग्रस्यु ( जिसकी मृत्यु निकट हो ), इन्द्रियशत्रुविहीन ( जिसकी इन्द्रियाँ पूरी तरह से काम न करती हों ), वैरी, वैद्यद्वेषी ( वैद्यों से वैर रखता हो ), श्रद्धाहीन, औषधों से सशङ्क रहनेवाले ( औषध कहीं रोग न घटा दे ) वैरी शंका करनेवाले ) और वैद्यों की आशा न माननेवाले रोगियों की चिकित्सा गर्ह्य को न करनी चाहिये । इनकी चिकित्सा करने से वैद्य बहुत दोषों ( अपवादों ) का प्राप्त होता है ॥ २२-२३ ॥

कोई ० द्रव्यकी द्रव्य प्रकार व्याख्या करने में, चिकित्सा के स्वरूप को यथार्थ रीति से जानना और रोगी की पीड़ा का निवारण करना यही वैद्य का कर्तव्य नहीं है किन्तु वैद्य, रोगियों के आयु का भी प्रभु है । कारण यह कि यह १०० गी प्रकार मृत्युओं का निवारण करता है ।

चिकित्साकाल

यावत्कण्ठगताः प्राणायान्वास्ति-  
निरिन्द्रियः।तावच्चिकित्साकर्तव्याकालस्य  
कुटिला गतिः ॥ २४ ॥

जब तक कण्ठ में प्राण हों और जयतक इन्द्रियों की गति नष्ट न हो, तब तक रोगी की चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि काल की गति कुटिल है ( अर्थात् कभी विलकुल मरणाश्रमरोगी भी बच जाता है ) ॥ २४ ॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्प-  
तया गदः । वह्निशस्त्रविपैस्तुल्यः स्वल्पो-  
ऽपि विकरोत्यसौ ॥ २५ ॥ यथा स्वल्पेन  
यत्नेन द्विद्यते तरुणस्तरुः । स एवाऽतिप्रद-  
द्धस्तु द्विद्यतेऽपि प्रयत्नतः ॥ २६ ॥

रोग के उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनी चाहिये । रोग को सामान्य कहकर उपेक्षा करना उचित नहीं । कारण यह कि सामान्य रोग भी अग्नि, शूल और विष के समान रघुवर परिमाण में होने पर भी महान् विकार उत्पन्न करता है । जिन प्रकार छोटा पौधा थोड़े ही यत्न से काटा जाता है किन्तु जब यही बहुत बढ़ा हो जाता है तब उसके काटने के लिये बहुत यत्न करने पड़ते हैं । यही रीति व्याधियों की भी है ॥ २५-२६ ॥

प्रदशाग्निपूर्वक चिकित्सा ।

ग्रहेषु प्रतिक्रमेषु नानुकूलं हि भेषजम् ।  
ते भेषजानां वीर्याग्नि हरन्ति पलवन्त्यपि ॥  
प्रतिकृत्य ग्रहानादौ पचान्पुर्यागिकित्सा-  
तम् ॥ २७ ॥

ग्रहों प्रदों के प्रतिक्रम होने पर औषध नानुकूल नहीं होती, क्योंकि ये प्रद औषधियों की दायर्य बचावकी शक्ति को हट लेते हैं । अतः प्रदों की शक्ति बचाके पीछे चिकित्सा करने की चाहिये ॥ २७ ॥

निक्रम का भेद ।

आग्नी मानुषी देवी चिकित्सा त्रिभिधा

मता । शस्त्रैः कपायैर्होमाद्यैः क्रमेणान्त्याः  
सुपूजिताः ॥ २८ ॥

आसुरी, मानुषी और दैवी इन भेदों से चिकित्सा तीन प्रकार की है । जो चिकित्सा शस्त्र से की जाती है उसे आसुरी, जो काढ़ा आदि से की जाती है उसे मानुषी और जो होम आदि से की जाती है उसे दैवी कहने हैं, इनमें दैवी चिकित्सा सबसे श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

टिप्पणी—दैवी चिकित्सा में यन्त्र, मन्त्र तन्त्र, जप, होम, अनुष्ठान आदि सम्मिलित हैं । मानुषी चिकित्सा औषधोपचार मात्र को बनलानी है ।

चिकित्सा का लक्षण ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः  
समाः । सा चिकित्सा विकाराणां कर्म  
तद्भिर्भजां मतम् ॥ २९ ॥

जिन क्रियाओं के द्वारा शरीर के धातु अर्थात् रस, रक्त, मास, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र साम्यभाव को प्राप्त हों, उन्हीं क्रियाओं को रोगों की चिकित्सा कहते हैं और चिकित्सा ही वैद्यों का कार्य है ॥ २९ ॥

चिकित्सा की सफलता ।

कचिद्धर्मः कचिन्मैत्री कचिदर्थः कचि-  
द्यशः । कर्माऽभ्यासः कचिच्चापि चिकित्सा  
नास्ति निष्फला ॥ ३० ॥

चिकित्सा द्वारा कहीं धर्म, कहीं मित्रता, कहीं धनप्राप्ति, कहीं यशोलाभ और कहीं चिकित्सा कर्म का अभ्यास होता है । अतः चिकित्सा कहीं भी निष्फल नहीं होती ॥ ३० ॥

अन्यजातिकृतः पाको ह्यस्पृश्यः सर्व-  
जातिभिः । इति विद्वाय मतिमान् वैद्यं  
पाके नियोजयेत् ॥ ३१ ॥

वैद्य के अतिरिक्त किसी और की बनाई हुई औषध किसी को भी सेवन नहीं करनी चाहिए क्योंकि दूसरे मनुष्यों के इस विषय में अनुभव होने के कारण वह औषध हानिप्रद होती है इस-

लिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि औषध आदि के निर्माण के लिए किसी अच्छे वैद्य की सहायता ले ॥ ३१ ॥

विद्यासमाप्तो भिषजां द्वितीया जाति-  
रुच्यते । न वैद्यो वैद्यशब्दं हि लभते पूर्व-  
जन्मना ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य इस विद्या में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं वे ही चिकित्सक कहलाते हैं, वैद्य की संतान होने पर उन्हें वैद्य नहीं कहा जा सकता ॥ ३२ ॥

विद्यासमाप्तावार्प वा ब्राह्मं वा भिषजं  
ध्रुवम् । सत्यमाविशति ज्ञानात्तेन वैद्यो  
द्विजः स्मृतः ॥ ३३ ॥

विद्या की समाप्ति पर और ज्ञान में पूर्ण होने पर वैद्य के अन्दर आर्ष अथवा ब्राह्मण या बुद्धि प्रवेश करते हैं इसलिए भी वैद्य को द्विज कहा जा सकता है ॥ ३३ ॥

रोगशान्ति के साधन ।

भिषग्द्रव्यमुपस्थाता रोगी पाटचतुष्ट-  
यम् । गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशा-  
न्तये ॥ ३४ ॥

वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी ये चिकित्सा के चार पाद ( अङ्ग ) हैं । यदि ये चारों अङ्ग आगे कहे जानेवाले गुणों से युक्त हों तो उन्हें रोग के शान्ति का कारण जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

वैद्य के गुण ।

श्रुते पर्यपदात्तयं बहुशो दृष्टकर्मता ।  
दांस्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतु-  
ष्टयम् ॥ ३५ ॥

आयुर्वेद में प्रवीणता, चिकित्सा आदि कर्मों में बहुदक्षिणता ( अनुभव और ज्ञान यदा हो ), श्रियानैपुण्य और शौच अर्थात् शरीर, मन और वाणी की पवित्रता ये चार गुण वैद्य में होने चाहिए ॥ ३५ ॥

प्रशस्त औषध ।

प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृत-  
तम् । अल्पमात्रं महावीर्यं गन्धार्णवसा-  
न्वितम् ॥ ३६ ॥ उद्भिज्जमपरिचुरणं शुद्धं  
धात्वाटिकं तथा । समीक्ष्य काले दत्तं च  
प्राहुः परममौषधम् ॥ ३७ ॥

श्रेष्ठ देशों में उत्पन्न, शुभ दिन में उद्धृत  
( उखाड़ी ), थोड़ी मात्रा में भी अधिक शक्ति-  
युक्त, गन्ध, अर्णव और रस से युक्त तथा कीटादि  
से अलुप्य ( अविहृत ) उद्भिज्ज<sup>१</sup> तथा शोधित  
धातु आदि विचार पर यथासमय प्रयुक्त होने पर  
उत्तम औषध बढी जाती है ॥ ३६-३७ ॥

परिचारक के गुण ।

उपचारज्ञता टाक्ष्यमनुरागरच भर्तरि ।  
शौचश्चेति चतुर्थोऽयं गुणःपरिचरेजने ३८ ॥  
शुभ्रूपाविषयक ज्ञान, कार्यकौशल, स्वामी में  
अनुराग और शौच अर्थात् पवित्रता ये चार गुण  
परिचारक के हैं ॥ ३८ ॥

रोगी के गुण ।

स्मृतिनिर्देशाहारित्यमभीहृत्यमथाऽपि  
च । ज्ञापकत्वं च रोगाणामातुरस्य गुणाः  
मताः ॥ ३९ ॥

<sup>१</sup> उद्भिज्ज चार प्रकार के होते हैं । जैसे—वन-  
स्पति, पानस्पत्य, योष्ण और औषधि ।

( क ) जितमें विना पुष्प के ही पत्र लगते  
हैं । उनको वनस्पति कहते हैं । जैसे यद, पीपल  
और मूलर आदि ।

( ख ) जिसमें पुष्प और फल दोनों लगते हैं,  
उसको पानस्पत्य कहते हैं । जैसे आम, जामुन  
और नीम आदि ।

( ग ) पृष्प आदि पर फलनेवाली जला (दिन)  
को योष्ण कहते हैं ।

( घ ) जो अपने फल परने पर गूण जाने हैं,  
उन्हें औषधि कहते हैं । जैसे जी, नेहूँ और  
आदि आदि ।

जो रोगी ( वैद्य को ) अपनी पीड़ा का  
यथार्थ वृत्तान्त स्मरण करा सकता है, तथा वर्त-  
मान अवस्था की विशेष परिस्थिति को बतला  
सकता है और भयरहित है उसको चिकित्सा  
करने से लाभ होता है ॥ ३९ ॥

चिकित्सक की प्रधानता ।

मृद्दण्डचक्रसूत्राद्या कुम्भकारादते  
यथा । न वहन्ति गुणं वैद्यादते पादत्रयं  
तथा ॥ ४० ॥

जैसे मिट्टी, दण्ड, चक्र और सूत्र आदि कुल  
उपादान कारण कुम्भकार के बिना घटा आदि के  
निर्माण में उपयोगी नहीं हो सकते, वैसे ही  
चिकित्सक के बिना पूर्वोक्त पादत्रय ( औषध,  
परिचारक और रोगी ) के होते हुये ही प्रकृत चिकि-  
त्साकार्य का कोई उपयोग नहीं हो सकता ।  
( अर्थात् रोग छट्ठा नहीं हो सकता है । ) अतएव  
चिकित्साकार्य में चिकित्सक का प्राधान्य है ॥ ४० ॥

यैद्यो के भेद ।

यस्तु रोगमभिज्ञाय कर्माण्यारभते  
भिषक् । अर्थापथविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्य-  
दृच्छया ॥ ४१ ॥ यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्व-  
भैषज्यकोविदः । साध्याऽसाध्यविधानज्ञस्त-  
स्य सिद्धिं करे स्थिता ॥ ४२ ॥ दृष्टकर्मा  
च शास्त्रज्ञो वैद्य स्यात् सिद्धिभागर्ता ।  
एकाद्रहीनो न श्लाघ्य एक पक्ष इव  
द्विजः ॥ ४३ ॥ ज्ञासुं गुणमुयोदीर्घं  
मादायोपास्य चाऽमृतम् । यः नर्म कुम्भे  
वैद्यः स वैद्योऽप्ये तु तदकराः ॥ ४४ ॥  
नाऽभिज्ञाय तु शास्त्राणि भेषजं कुम्भो  
भिषक् । यम एव म विज्ञेयो मर्त्यानां  
मर्त्यरूपयुक्तः ॥ ४५ ॥ कुम्भलः नरोगः  
स्तन्धः कुम्भानी रायमागतः । पशु यथा  
न पूज्यन्ते धम्भन्तग्निमा यदि ॥ ४६ ॥  
नादी जिहाऽऽमृश्याणां रोश्रादीनाश्च

सर्वथा । परीक्षां यो न जानाति स वैद्यो  
यम एव हि ॥ ४७ ॥

जो वैद्य औषधों का प्रयोग करना जानता है और रोगों का नलीभाँति निर्णय करके चिकित्सा करना प्रारम्भ करता है, उसको अनायास ही सिद्धि प्राप्त होती है । जो चिकित्सक रोगतत्त्व औषध-तत्त्व और रोगों के साध्य असाध्य लक्षण यथार्थ रूप से जानता है उसको अनायास ही सिद्धि लब्ध होती है । जो वैद्य, शास्त्रज्ञ और दृष्टकर्मा ( अनुभवी ) है उसी को सिद्धि प्राप्त होती है । इन में से एकाग्ररहित वैद्य, एक पङ्कवाले पत्नी के समान अहर्मण्य होने में प्रशंसनीय नहीं होता । जो वैद्य गुरु के समीप आयुर्वेद का अध्ययन और बार बार अभ्यास करके चिकित्सा कर्म में प्रवृत्त होता है, वही यथार्थ वैद्य है । इससे अतिरिक्त वैद्य वास्तव वैद्य नहीं तस्कर है । जो वैद्य, बिना शास्त्राध्ययन किये ही चिकित्सा कर्म में प्रवृत्त हो जाता है, उसको मनुष्यों के मध्य में मानव-रूपधारी यमराज ही समझना चाहिये । कुत्सित ( मैले या अशिष्ट ) वस्त्रधारी, अप्रियभाषी, अभिमानी, कुग्रामनिवासी, ऐसे स्थान पर रहनेवाला जहाँ आने जाने की सुविधा न हो और बिना मुलायमे रोगी के गृह में स्वयं आया हुआ ये पाँच प्रकार के वैद्य, चिकित्सा कर्म में धन्वन्तरि के समान होने पर भी कहीं प्रशंसा और सम्मान के पात्र नहीं हैं । जो वैद्य नाडी, जीभ मुख, मूत्र और कोष्ठ आदि की परीक्षा करना विशेषरूप से नहीं जानता वह यम के समान ही भयङ्कर है ॥४१—४७ ॥

चिकित्सा का फल ।

अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तं यादृशता-  
दृशम् । आयुर्वेदप्रसादेन किं न दत्तं भवेद्-  
भुवि ॥ ४८ ॥ कपिला कोटिदानाद्धि  
यत्फलं परिकीर्तितम् । फलं तत्कोटिगु-  
णितमेकानुरचिकित्सया ॥ ४९ ॥

तथा च नन्दिपुराणे—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं कारणं

यत् । तस्मादारोग्यदानेन नरो भवति  
सर्व्यद ॥ ५० ॥ अप्येकं नीरुजीकृत्य  
व्याधितं भेषजैर्नरः । प्रयातिब्रह्मसदनं  
कुलसप्तकसंयुत ॥ ५१ ॥

जिस वैद्य ने आयुर्वेद की कृपा से जिस किसी प्रकार के एक रोगी को भी नीरोग करके प्राण-दान दिया है उसको पृथ्वी में कौन सा दान करना शेष रहा है ? ( अर्थात् सय कर चुका है । ) कोटि ( करोड ) कपिला के दान से जो फल कहा गया है, उससे करोड गुना अधिक फल एक रोगी को रोगमुक्त करने से प्राप्त होता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग का कारण शरीर की आरोग्यता है, अतएव आरोग्यदान से समस्त दानों का फल प्राप्त हो जाता है । वैद्य, औषध द्वारा केवल एक रोगी को रोग मुक्त करने से सात कुल के साथ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥५०-५१ ॥

अपि मूलेन केनापि मर्दनाद्यैरथापि वा ।  
सुस्थीकृते लभेन्मर्त्यं पूर्वोक्तं लोक-  
मुत्तमम् ॥ ५२ ॥

एक साधारण मनुष्य भी किसी अनिरिक्त औषध अथवा बाह्य औषधि द्वारा रोगी को आराम करने पर मोक्ष का प्राप्त कर सकता है ॥५२॥

चिकित्सित देहनिष्कृत्य ।

चिकित्सितशरीरं यो न निष्क्रीणाति  
दुर्मनि । स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं  
भिपगन्तुते ॥ ५३ ॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य, अपने चिकित्सित शरीर का निष्कृत्य ( पारितोषिक आदि ) वैद्य को नहीं देता है, वह मनुष्य जो कुछ धर्म करता है उसका सम्पूर्ण फल वैद्य को प्राप्त होता है ॥५३॥  
रोगपरोक्षा के उपाय ।

दर्शनस्पर्शनमश्वैर्व्याधेर्ज्ञानं त्रिधामतम् ।  
दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शनान्नादिका-  
दिभिः ॥ प्रश्नैर्दृतादिवचनादिति प्रेषा  
समुच्यते ॥ ५४ ॥

दर्शन, स्पर्श और प्रक्ष; इन तीन उपायों से व्याधि का परिज्ञान होता है । अर्थात् मूत्र और जिह्वा आदि के दर्शन, नाडी और त्वक् आदि के स्पर्श और दूत आदि से रोग के विषय में प्रक्ष, रोग विज्ञान के लिये तीन ही प्रकार के उपाय हैं ॥ १३ ॥

टिप्पणी—आधुनिक रोगविज्ञानसम्मत जितने परीक्षा के साधन हैं वह सभी इन्हीं तीन उपायों के अन्तर्गत हैं ।

चिकित्सा का प्रकार ।

रोगमाद्यौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।  
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्व समा-  
चरेत् ॥ ५५ ॥

वैद्य पहले रोगपरीक्षा करे तदनन्तर औषध-परीक्षा करे अर्थात् औषध-व्यवस्था करे । पश्चात् ज्ञानपूर्वक चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ५५ ॥

अपरीक्षित औषध से हानि ।

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनि-  
र्यथा । तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं  
यथा ॥ ५६ ॥

जिस औषध का गुण ज्ञात नहीं है वह विष, शस्त्र, अग्नि और वज्र के समान हानिकारक होता है; किन्तु जिस औषधि का गुण ज्ञात है वह अमृत के समान लाभदायक होता है ॥ ५६ ॥  
इति सरयूप्रसादत्रिपाठिारचिताया भैषज्यरत्ना-  
वह्यां रत्नप्रभास्याया च्याग्याया मिश्रणं समाप्त ।

अथ परिभाषाप्रकरणम् ।

मानपरिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते  
कचित् । अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रो-  
च्यतेऽधुना ॥ १ ॥

परिमाण ( तोल ) का यथार्थ ज्ञान न होने से औषधों का बताना और उनका प्रयोग करना नहीं हो सकता । हम वारण प्रयोग के कार्य-

निर्वाह के लिये यहाँ पारिभाषिक परिमाण ( तोल ) कहे जाते हैं ॥ १ ॥

यव से मासापर्यन्त ।

पृत्सर्पैर्यवस्त्वेको गुञ्जैकानु यवैस्त्रिभिः ।  
मापस्तु पञ्चभिः पडभिस्तथा सप्तभिरष्टभिः ॥  
दशभिर्द्वादशभिश्च रक्त्रिभिः पड्विधो  
मतः ॥ २ ॥

६ सरसों का एक यव, ३ यवों की एक गुञ्जा ( रत्ती ), किमी<sup>१</sup> के मत में ५, किसी के मत में ६, किसी के मत में ७, किसी के मत में ८, किसी के मत<sup>२</sup> में १० और किपी के मत में १२ रत्तियों का एक मासा होता है । अतः मतभेद से मासे ६ प्रकार के माने गये हैं ॥ २ ॥

मासा के विषय में चरक और सुश्रुत ।

चरकस्य तु मापस्तु दश गुञ्जाभिरेव  
च । चरकस्य तु चार्द्धेन सुश्रुतस्य तु  
मापकः ॥ ३ ॥

चरक के मत में १० रत्तियों का और सुश्रुत के मत में ५ रत्तियों का एक मासा होता है ॥ ३ ॥

शाण और कोल ।

मापैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरगः स  
निगद्यते । टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं  
कोल उच्यते । चुद्रको वटकरचैव ट्टञ्जण  
स निगद्यते ॥ ४ ॥

४ मासे का एक शाण होता है, शाण ही को धरण और टङ्क कहते हैं । २ शाणों का एक कोल होता है । चुद्रक, वटक और ट्टञ्जण, ये कोल के ही पर्याय हैं ॥ ४ ॥

कर्प का परिमाण ।

कोलद्वयं च कर्पः स्यात् स प्रोक्तः  
पाणिमानिरः । अक्षं पिचुः पाणितलं  
त्रिभिव् पाणिश्च तिनद्वयम् ॥ ५ ॥ पिटा  
लपट्टकं चैव तथा पीटशिश मत्वा । क-

<sup>१</sup> सुश्रुत के मत में । <sup>२</sup> चरक के मत में ।



मध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः । उदुम्बरश्च पर्याये कर्प एव निगद्यते ॥ ६ ॥

० कौल का एक कर्प ( १ तोला ) होता है । पाणिमानिक, अरु, पिपु, पाणिमल, किञ्चित् पाणि, तिन्दुक, विडालपदक, पोडशिका, कर-मप, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुम्बर के सब कर्प के ही पर्याय हैं ॥ ६-६ ॥

अर्धपल और पल ।

स्यात्कर्पाभ्यामर्धपलं शुक्रिरष्टमिका तथा । शुक्रिभ्याश्च पलं ज्ञेयं पुष्टिराम्रं चतुर्धिका । प्रकुञ्च. पोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ७ ॥

२ कर्पों का एक अर्धपल ( २ तोले ) होता है । शुक्र और अष्टमिका ये अर्धपल ही के पर्याय हैं । २ शुक्रियों का एक पल ( १ घटाक ) होता है । मुष्टि, आम्र, चतुर्धिका, प्रकुञ्च, पोडशी और बिल्व ये पल के ही नामान्तर हैं ॥ ७ ॥

प्रसृति सं माणिका पर्यन्त की परिभाषा ।

पलाभ्यां प्रसृतिज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्धशरावकः ॥ ८ ॥ अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्याश्च माणिका । शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ ९ ॥

२ पलों की एक प्रसृति हाती है, प्रसृते भी उसी का पर्याय है । २ प्रसृतियों की एक अञ्जलि ( १ पौञ्जा ) होनी है । कुडव, अर्ध शराव और अष्टमान ये भी अञ्जलि के ही पर्याय हैं । २ कुडवों की एक माणिका होती है । शराव और अष्टपल ये भी माणिका के ही नामान्तर हैं । ऐसा विद्वानों को जानना चाहिये ॥ ८-९ ॥

प्रस्थ और आढक ।

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुः प्रस्थैस्तथाढकम् । भाजनं कंसपात्रे च चतुःपष्टिपलं च तत् ॥ १० ॥

० शरावों का एक प्रस्थ ( १ सेर ) और ४ प्रस्थों का एक आढक होता है । भाजन, कंस, पात्र और चतुःपष्टिपल<sup>१</sup> ये आढक के ही नाम हैं ॥ १० ॥

द्रोण कुम्भ और द्रोणी

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्लणो ऽर्भागः । उन्मानं च यतो राशिद्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ ११ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भां च चतुःपष्टिशरावकः । शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १२ ॥

४ आढकों का एक द्रोण होता है । कलश, नल्लण, अर्मण, उन्मान, षट और राशि ये द्रोण के पर्यायवाचक शब्द हैं । ० द्रोणों का एक शूर्प होता है, उसी को कुम्भ और चतुःपष्ट शरावक भी कहते हैं । २ शूर्पों की एक द्रोणी होती है, याह और गोणी ये उसी के पर्याय हैं ॥ ११-१२ ॥

रारी

द्रोणीचतुष्टयं रारी कथिता सूक्ष्मयुद्धिभिः । चतुःसहस्रपलिका पणवत्यधिका च सा ॥ १३ ॥

४ द्रोणी की एक रारी होती है, और उस एक रारी में ४०६६ पल होते हैं ॥ १३ ॥

भार और तुला ।

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः । तुलापलगतं ज्ञेयं सर्वत्रैव विनिरचय ॥ १४ ॥

२००० पल का एक भार कहा गया है । १०० पल की एक तुला जाननी चाहिये । परिमाणों के विषय में सर्वत्र यही निर्णय है ॥ १४ ॥

मान परिभाषा में यद्यपि किसी के मत में २, किसी के मत में ६, किसी के मत में ७, किसी

<sup>१</sup> आढक को चतुःपष्टिपल इस कारण कहते हैं कि वह चौंसठ पल का होता है । २ चतुःपष्टि शरावक शूर्प का पर्याय इस कारण है कि ६४ शराव ( सकीरे ) का एक शूर्प होता है ।

के मत में ८, किसी के मत में १० और किसी के मत में १२ रत्तियों का मासा माना गया है । किन्तु मैंने अपने इस ग्रन्थ के अनुवाद में सर्वत्र ६ रत्तियों के एक मासावाले पत्र का अनुसरण किया है । अतएव परिमाणों के संचित्तविवरण में मैंने उम्मी का उल्लेख भी किया है ।

इस पत्र में १६ रत्तियों का १ कर्प अर्थात् १ तोला होना है, क्योंकि ६ रत्तियों का एक मासा और १६ मासे का एक कर्प ( १ तोला ) माना गया है । आजकल व्यवहार में भी १६ रत्तियों का तोला प्रचलित है ।

पाँच, सात अथवा आठ रत्तियों का १ मासा और १६ मासे का कर्प ( १ तोला ) माना जाय तो १ तोला में रत्तियाँ १६ से न्यून अथवा अधिक होती हैं, अतः आजकल के व्यावहारिक तोला से बहुत अन्तर पड़ जाता है ।

### परिमाणों का संचित्त विवरण ।

६ सरसोका । १ थन ।	+	+	+
३ यव	१ गुञ्जा	१ रत्ती	
६ रत्ती	१ मासा	एक आना भर	
४ मासा	१ शाण	२४ रत्तियाँ ( ४ आने भर )	
२ शाण	१ कोल	आधा तोला ( ४८ रत्ती )	
२ कोल	१ कर्प	एक ताला ( १६ रत्तियाँ )	
२ कर्प	१ शुक्ति	२ तोले	
२ शुक्ति	१ पल	४ तोले ( १ छटाँक )	
२ पल	१ प्रसूति	८ तोले ( आधपाय )	
२ प्रसूति	१ कुडव	१६ तोले ( १ पाव )	
२ कुडव	१ शराव	३२ तोले ( आधसेर )	
२ शराव	१ प्रस्थ	१ सेर ( ६४ तोले )	
४ प्रस्थ	१ आदक	३ सेर ( १६ तोला )	
४ आदक	१ द्राण	१२ सेर ( ६४ तोला )	
२ द्राण	१ शूर्प या कुम्भ ।	२५ सेर ( ४८ तोला )	
२ शूर्प	१ द्रोणी या गोष्ठी	१११ तो० १६	
४ गोष्ठी	१ सारी	२५४ तोला ६४	
१०० पल	१ गुला	५ सेर	
२००० पल	१ भार	२१५ मग	

यदि १० रत्तियों का एक मासा और कोल का अर्थ १ तोला मानें तो ८० रत्तियों का १ तोला होता है, अतः इस पत्र में भी व्यावहारिक तोला से १६ रत्तियों का अन्तर पड़ता है ।

यदि १२ रत्तियों का एक मासा और कोल का अर्थ १ तोला मानें तो कोई हानि नहीं, क्योंकि इस प्रकार से भी १६ रत्तियों का १ तोला होता है । परंतु इस पत्र में कर्प आदि शब्दों को तोलकद्रव्याद्यर्थक मानना पड़ेगा । चन्द्रदेशीय वैद्य महोदयों ने तो परिमाणवाची कोल शब्द को तोलार्थक ही माना है । अतएव कविराज उमेशचन्द्र गुप्त कविरत्नकृत वैद्यकशब्दसिंधु में "कोल ( क ) म् । क्ली० । तोलक माने १ तोला" ऐसा ही उल्लेख है ।

किन्तु अन्य प्रांतीय वैद्यसमाज में कोल शब्द अर्धतोलाधिक, कर्पशब्द एक तोलार्थक और पल शब्द तोलाचतुष्टयार्थक ही प्रायः माने गये हैं । चारभट, चरक भावप्रकाश, शार्ङ्गधर और अमरकोप आदि के हिन्दी अनुवाद में भी कोलादि शब्द के अर्थ तोलादिरूप ही अर्थ दले गये हैं । लीलावती में भी ८० रत्तियों के ही कर्प का उल्लेख है, इससे भी सिद्ध होता है कि कर्प का दो तोलारूप अर्थ नहीं है ।

अतः ६ रत्तियों का १ मासा और १६ मासे का १ कर्प ( १ तोला ) आदि जोकि पीछे परिमाणों के संचित्तविवरण में लिखा जा चुका है, वही पत्र उचित प्रतीत होता है ।

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात् कुडव-स्थितिः । द्रवाद्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ १५ ॥ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवाद्रयोः । मानं तथा तुला-यास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥ १६ ॥ अन्यच्च

कुडवे मानिकायाञ्च तुलामाने तथैव च । पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्य-मिहेष्यते ॥ १७ ॥

अन्यच्च

कुडवेऽपि कचिद्द्वित्वं यथा दन्ती घृते स्मृतम् । सर्पिः खण्डजलक्षौद्रतैलनीरा-  
सवादिषु ॥ अष्टौ पत्तानि कुडवो नारि-  
केले च शस्यते ॥ १८ ॥

अर्थ—गुग्गुला में आरम्भ कर कुडव पर्यंत जिनने परिमाणवाचक शब्द है, उनमें द्रव्यभेद से अर्थभेद नहीं होता किन्तु द्रव्य, आद्रं और शुष्क इन सकल द्रव्यों में वे समानार्थक ही रहते हैं । जैसे—एक मापपरिमित नैल और एक माप-परिमित देवदारु यहाँ दोनों द्रव्यों में 'माप' शब्द समानार्थक है अर्थात् द्रव्य और शुष्क होने पर भी दोनों ही द्रुः द्रुः रत्नी तोल में लिये जाते हैं । प्रथम आदि सकल परिमाणवाचक शब्द द्रव्य और आद्रं द्रव्यों के विषय में कही हुई तोल से दूने के बोधक होते हैं जैसे—एक प्रथम देवदारु कहने पर १ सेर देवदारु समझा जायगा किन्तु एक प्रथम घृत कहने पर २ सेर घृत समझा जायगा, कारण यह कि घृत द्रव्य पदार्थ है । परन्तु यह ध्यान रखें कि तुला शब्द कहीं भी द्विगुण परिमाण बोधक नहीं होता है । शास्त्रान्तर में लिखा है कि कुडव, माणिका, तुला और पलशब्द का प्रयोग करके द्रव्यों के परिमाण का उल्लेख रहने पर द्विगुण ग्रहण करना इष्ट नहीं है । जैसे—'१ मणिका तैल' कहने पर आध सेर तैल समझा जाता है वैसे ही 'एक मणिका देवदारु' कहने पर भी आध सेर देवदारु समझा जाता है । 'एक तुला मिरिच' कहने पर २ सेर मिरिच समझी जाती है, वैसे ही १ तुला घृत कहने पर भी २ सेर घृत समझा जाता है । इसी प्रकार १ पलशुखटी-चूर्ण और १ पल घृत कहने पर दोनों ही समान अर्थात् ४ तोला ही लिये जाते हैं । लेकिन कुडव शब्द कहीं-कहीं द्रव्य और आद्रं द्रव्यों के विषय में द्विगुण ( ८ पल ) का बोधक होता है जैसे—दन्ती घृत में १ कुडव घृत कहने पर ८ पल घृत लिया जाता है । घृत, खॉँड, जल, मधु, तैल, दुग्ध, आंसव और नारिकेल आदि

में भी १ कुडव कहने पर आठ पल समझा जाता है ॥ १५-१८ ॥

शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा आद्रस्य द्विगुणा हि सा । शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात् तस्मादर्द्धं प्रयोजयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—शुष्क द्रव्य के अभाव में यदि आद्रं द्रव्य का व्यवहार करना हो तो वहाँ शुष्क द्रव्य की जितनी मात्रा कही हो उससे दूना आद्रं द्रव्य लेना चाहिये । मान लो—४ द्रव्यों से कोई एक चौपध प्रस्तुत होती है, वहाँ चार में एक द्रव्य शुष्क हूँदा गया न मिला तो आद्रं ही ग्रहण किया जाता है, ऐसे स्थल में उस द्रव्य का जितना परिमाण ग्रन्थ में लिखित हो उससे दूना ग्रहण करना चाहिये । अतएव शुष्क द्रव्य को आद्रं द्रव्य की शेषला आधी तोल में प्रयुक्त करना चाहिये । कारण यह कि शुष्क द्रव्य जनीय चरस का अभाव होने से गुरु और तीक्ष्ण होते हैं ॥ १९ ॥

अस्याऽपवादः ।

वासानिभ्यपटोलक्रेतकियला कूप्माण्ड-  
केन्दीवरी वर्षामूकुटजाऽश्वगन्धसहिता-  
स्ताः पृत्तिगन्धाऽमृताः । मांसीनागवला-  
सहाचरपुरो हिंवाद्रिके नित्यशो ग्राह्या-  
स्तत्तण्णमेव न द्विगुणिता ये चेत्तुजाता  
घनाः ॥ २० ॥

अरुसा, नीम, परवल, केतकी ( केवडा ), खरौटी, पेठा, शतावरी, पुनर्नवा ( गदहपुरीना ), कुडा, असगन्ध, गन्धप्रसारणी, गिलोय, जटा-मांसी, गुलशकरी, नील और पीत पुष्पवाला पियावासा ( भिखटी ), गूगुल, होंग, अदरक और ईल के रस से बने हुये घनपदार्थ अर्थात् गुड आदि ये सब भ्रौषध नवीन ( ताजे ) ही ग्राह्य होते हैं किन्तु इनकी तोल दूनी नहीं की जाती है ॥ २० ॥

## अथ गणाः ।

त्रिफला ।

पथ्या विभीतकं धात्री त्रिफला महती  
स्मृता । स्वल्पाकारमर्थखजूरपरूपकफलै-  
र्भवेत् ॥ २१ ॥

हरं, बहेडा और आँवला मिले हुये इन तीनों  
द्रव्यों को महात्रिफला<sup>१</sup> कहते हैं । खम्भारी,  
खजूर और फालसा इन तीन द्रव्यों के समुदाय  
को स्वल्प त्रिफला कहते हैं ॥ २१ ॥

त्रिमद् ।

विदङ्गमुस्तचित्रञ्च त्रिमदः संप्र-  
कीर्तितः ॥ २२ ॥

बायबिडङ्ग, नागरमोथा और चीता ये तीनों  
द्रव्य समान परिमाण में मिश्रित होने पर त्रिमद्  
कहे जाते हैं ॥ २२ ॥

त्र्यूपणादि ।

पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रयमेतद्विमि-  
श्रितम् । त्रिदण्डुत्र्यूपणं व्योषं कटुत्रिकम-  
थोच्यते ॥ २३ ॥

ग्रन्थिकाऽनलचव्यैस्तु चतुः पञ्च पट्टप-  
णम् । चविका चित्रको नागपिप्पली  
त्र्यूपणं मतम् ॥ २४ ॥

पीपरि, मिरिच और सोंठ ये तीनों द्रव्य  
समान परिमाण में एकत्र मिश्रित होने पर  
त्रिकटु, त्र्यूपण, व्योष और कटुत्रिक कहे जाते हैं ॥

त्रिकटु विपरामूल मे संयुक्त होने पर चतुस्त्र्यूपण  
कहा जाता है ।

चीनायुक्त चतुरूपण को पञ्चोपण कहते हैं ।

<sup>१</sup> यद्यपि त्रिफला दो प्रकार की है तथापि इस  
ग्रन्थ के अनुवाद में जहाँ त्रिफला शब्द आये वहाँ  
समान भाग हरं, बहेडा और आँवला इन तीन  
द्रव्यों का समुदाय समझना चाहिये । ग्रन्थान्तरे—  
“एका दरीतकी योग्या द्वौतु योऽप्यौ विभीतकी ।  
बायापोमलकान्धेय त्रिपरिवैषा प्रकीर्तिता ॥”

इसी प्रकार पञ्चोपण के साथ चव्य को शामिल  
करने से पट्टपण कहा जाता है ।

चव्य, चीता और गजपीपरि इन तीनों द्रव्यों  
के समुदाय को भी त्र्यूपण कहते हैं ॥ २३-२४ ॥  
टिप्पणी—सामान्यतया त्र्यूपण से त्रिकटु का ही  
ग्रहण किया जाता है ।

चतुर्जात और त्रिजात

चतुर्जातं समाख्यातं त्वगेलापत्रकेशरैः।  
तदेव त्रिसुगन्धिस्यात् त्रिजातकमके-  
शरम् ॥ २५ ॥

दालचीनी, ह्लाद्यची, तेजपात और नागके-  
सर इन चार द्रव्यों को चतुर्जात कहते हैं । नाग-  
केसर रहित चतुर्जात ही को त्रिजातक और  
त्रिसुगन्धि कहते हैं ॥ २५ ॥

सर्वगन्ध ।

चतुर्जातककर्पूरककोलाऽगुरुसिंहकम् ।  
लवंगसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् २६ ॥

चतुर्जात, कपूर, ककोल, अमर, शिलारस और  
लवंग इनको सर्वगन्ध कहते हैं ॥ २६ ॥

चातुर्भद्रक ।

नागरातिविषा मुस्ता त्रयमेतद्विमिश्रि-  
तम् । गुडूची संयुतं तच्च चातुर्भद्रक-  
मुच्यते ॥ २७ ॥

सोंठ, धतौंस, नागरमोथा, गिलोय मिले हुये  
इन चारों द्रव्यों को चातुर्भद्रक कहते हैं ॥ २७ ॥

पञ्चकोल ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रक-  
नागरम् । पञ्चकोलमिदं प्राहुः पञ्चोपणम-  
थापरे ॥ २८ ॥

पीपरि, विपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ  
इनको पञ्चकोल कहते हैं । पीपरि चव्य विद्वान्  
इनको पञ्चोपण कहते हैं ॥ २८ ॥

पञ्चकोन और उमदी निगन्धि ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्राना-

गरम् । पञ्चभिः कोलमात्रं यत् पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ २६ ॥

पीपर, पिपरा मूल, चट्य, चीता और खंड इन पाँचों को मिलाकर केवल एक कोल ( और मासे ) की इस की मात्रा होती है अतः इस को पञ्चकोल कहते हैं ॥ २६ ॥

टिप्पणी ।

आजकल ६ मा० के बजाय ३ मा० की मात्रा देनी चाहिए ।

क्षीरिवृत्त ।

उदुम्बरो वटोऽश्वत्थो वेतसः प्लक्ष एव च । पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षाः संज्ञया समुदाहृताः ॥ ३० ॥

गूलर, बड़, नीपल, वेतस ( वेत ) और पाकड़ इन पाँचों को क्षीरिवृत्त कहते हैं ॥ ३० ॥

चतुरम्ल और पञ्चाम्ल ।

कोलदाडिमवृक्षाभ्रैरम्लवेतससंयुतैः । चतुरम्लं तु पञ्चाम्लं मातुलुद्गसमन्वितम् ॥ ३१ ॥

धर, अनार, इमली और अमलवेत इन चार अम्ल ( सट्टे ) पदार्थों को चतुरम्ल और इनके साथ जम्बीरी नीपू मिलाने से पञ्चाम्ल करते हैं ॥ ३१ ॥

पञ्चगव्य ।

पञ्चगव्यं षड्विधं क्षीरघृतगोमूत्रगोमयैः ३२

दही, दूध, घी, गोमूत्र और गोमय ( गाय का गोबर ) इन पाँच विकारों को पञ्चगव्य कहते हैं ॥ ३२ ॥

लवणवर्ग ।

सिन्धु मौञ्चलं चैव विडं सामुद्रमौञ्चिद्रम् । एकद्वित्रिचतुःपञ्च लवणानि क्रमादिह ॥ ३३ ॥

एक लवण का उल्लेख हो तो सैधव, द्विलवण शब्द जहाँ हो वहाँ सैधव और सौवर्चल, त्रिलवण में सैधव, सौवर्चल और त्रिरियासचरनोन ।

चतुर्लवण, में सैधव, सौवर्चल, त्रिरियासचर और समुद्रनोन । पञ्चलवण में सैधव, सौवर्चल, त्रिरियासचर, समुद्रनोन और शीतल ये पाँच प्रकार के लवण लिये जाते हैं । जहाँ लवणवर्ग का उल्लेख हो वहाँ इन पाँचों नामों को लेना चाहिए ॥ ३३ ॥

शुद्धपञ्चमूल ।

विलम्बोनाकगाम्भारी पाटला गण्डिकारिकाः । एतन्महत्पञ्चमूलं संज्ञया समुदाहृतम् ॥ ३४ ॥

बेल, श्योनाक, गंभारी, पाटल और अरनी इन पाँचों को शुद्धपञ्चमूल कहते हैं ॥ ३४ ॥

स्वल्पपञ्चमूल ।

शालपर्णी पृष्ठपर्णी वृहती द्वयगोक्षरम् । कनीयः पञ्चमूलं स्यादुभयं दशमूलकम् ॥ ३५ ॥

सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी और गोखरु इन पाँचों को स्वल्प पञ्चमूल कहते हैं । दोनों पञ्चमूलों को मिलाने से दशमूल होता है ॥ ३५ ॥

तृणपञ्चमूल ।

कुशः काशः शरो दर्भ इत्युश्चैव तृणोद्भवम् । पञ्चतृणमिदं ख्यातं तृणजं पञ्चमूलकम् ॥ ३६ ॥

कुश, काश, शरपत, डाभ और ईख इन पाँचों के मूल को तृणपञ्चमूल कहते हैं ॥ ३६ ॥

जीवनीयगण ( मधुरगण ) ।

जीवकपर्भकौ मेढ्रे काकोल्यौ मधुकं तथा । मापपर्णी मुद्गपर्णी जीवन्ती मधुरो गणः ॥ ३७ ॥

जीवक, ऋपभक, मेदा, महामेदा, काकोली, शीकाकोली, मुलेठी, वनउद ( मपवन ), वनमूंग ( मुगवन ) और जीवन्ती इन दश औषधों को जीवनीय अर्थात् आयुवर्द्धक कहते हैं । इसका दूसरा नाम मधुरगण है ॥ ३७ ॥

अष्टवर्ग ।

द्वे मेदे चापि काकोल्यौ जीवकर्प-  
भकौ तथा । ऋद्धिदृद्धियुतैः सर्वैरष्टवर्ग  
उदाहृतः ॥ ३८ ॥

मदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली,  
जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और दृद्धि इन आठ  
श्लोषधियों के मिलने से अष्टवर्ग होता है ॥ ३८ ॥

अथ द्रव्यप्रतिनिधि परिभाषा ।

कदाचिद्द्रव्यमेकं वा योगे यत्र न  
लभ्यते । तत्तद्गुणायुतं द्रव्यं परिवर्त्तेन  
शुद्ध्यते ॥ १ ॥

जिस योग में कदाचित् कोई एक द्रव्य नहीं  
मिलता तो उस योग में उस द्रव्य के यत्रले में  
उसी द्रव्य के समान गुणधाला अन्य द्रव्य ग्रहण  
किया जाता है ॥ १ ॥

मध्वभावे गडो जीर्णः शाल्यभावे च  
पट्टिका । नतं तगरमूलं स्यादभावे शिह-  
लीजत्रा ॥ २ ॥

शहद के अभाव में पुराना गुड़, शालीधान  
के अभाव में साठी चावल और तगर के मूल  
को नत कहते हैं । इसके अभाव में शिहली का  
मूल लेना चाहिये ॥ २ ॥

वृक्षामूलं टाडिमामात्रे सिताया खण्ड-  
मिष्यते । चविकागजपिप्पल्यां पिप्पली-  
मूलप्रत्सृते ॥ ३ ॥

धानार के अभाव में इमली, मिर्ची के अभाव  
में चाँद, चण्ड और गणपरीपर के अभाव में  
पिपरामूल लेना चाहिये ॥ ३ ॥

“तगरस्याप्यभावे गु कृष्ट द्वात्रिंशत्परः”  
करीं करीं वेत्ता पाठ है । अर्थ—थेयवर, तगर के  
अभाव में कृष्ट द्रव्य ॥

सौराष्ट्रमृदाभावे<sup>१</sup> च ग्राह्या पङ्कस्थ  
पर्पटी । रसाञ्जनापरिभाषां<sup>२</sup> टार्वीकाथः  
प्रशस्यते ॥ ४ ॥

सौराष्ट्रमृत्तिका के अभाव में पङ्कपर्पटी ( कीचड  
के सूख जाने पर जो पपही पट जाती है ),  
रसांत के अभाव में दारहलदी का काड़ा लेना  
चाहिये ॥ ४ ॥

लौहाऽभावे तु मण्डूरं दाव्यभावे मता  
निशा । सुवर्णरूप्ययोगस्याभावे लौहं  
प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

लोहभस्म के अभाव में मण्डूर, दारहलदी  
के अभाव में हलादी, सोना और चाँदी के भस्म  
के अभाव में लोह भस्म का प्रयोग करना  
चाहिये ॥ ५ ॥

नित्यं युञ्जातकाभावे तालमस्त-  
कमिष्यते । वाराहीगामभावे तु चर्मकारा-  
लुकं मतम् ॥ ६ ॥

युञ्जातक<sup>३</sup> के अभाव में तालमस्तक ( कटु-  
मूत्रण ) और वाराहीकन्द के अभाव में चर्म-  
कारालुक अर्थात् अन्य प्रकार का वाराहीकन्द ही  
लेना चाहिये ॥ ६ ॥

अभावात् पाँकरं मूले कुष्ठं सर्वत्र  
शुद्ध्यते । सामुद्रं सैन्धवाऽभावे विटं वा  
शुद्ध्यते युधैः ॥ ७ ॥

पुटकरमूल के अभाव में पुट और सेंधा गोन  
( साहीरी गोन ) के अभाव में समुद्रगोन शय्या  
पिपरिसंघरगोन लेना चाहिये ॥ ७ ॥

कुस्तुम्बुरुर्नैव विद्येत यत्र च धान्य-

<sup>१</sup> अथयत्र लिखा है कि “सौराष्ट्रभागतो देवा  
शुद्धिका तद्गुणा ज्ञैः” अर्थात् सौराष्ट्र मृत्तिका  
( मोरठी मिट्टी ) के अभाव में मिट्टिकी  
लेनी चाहिये ।

<sup>२</sup> युञ्जातक—अध्यात्मयान शृङ्गिणोप । इगदा  
गुप्त ( पृ० मू० २० पृ० ) में लिखा है कि “वसव-  
दीप्तो मुनः विनयपानसेनो दृहत्यामक । कान-  
पितररः भवानु कृषो युञ्जातक परम् ॥”

कम् । पुष्पाभावे फलं चामं विद्भेदे  
विवृतः फलम् ॥ ८ ॥

जहाँ कुस्तुगुरु न मिले वहाँ धनियाँ अर्थात्  
जहाँ हरी धनियाँ न मिले वहाँ सूती धनियाँ  
लेनी चाहिये । फूल के अभाव में नरम कच्चा फल,  
मलभेद में बेल का फल लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भल्लातकाऽसहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते ।  
सिद्धार्थकस्य चाऽभावे सामान्यः सर्पपो  
मतः ॥ ९ ॥

यदि भिलावाँ असह्य हो तो उसके बदले  
लाल चंदन लेना । सफेद सरसों के अभाव में  
सामान्य सरसों लेना चाहिये ॥ ९ ॥

मेदाऽभावेऽश्वगन्धा स्यात् महामेदे तु  
सारिवा । जीवकर्पभकाभावे गुडूचीवंश-  
लोचना ॥ १० ॥

मेदा के अभाव में अश्वगन्ध, महामेदा के  
अभाव में अनन्तमूल, जीवन के अभाव में  
गुरुच, ऋषभक के अभाव में वंशलोचन लेना  
चाहिये ॥ १० ॥

ऋद्ध्यभावे वला ग्राह्या वृद्ध्यभावे  
महावला । काकोली युगलाभावे निक्षिपेच्च  
शतावरीम् ॥ ११ ॥

ऋद्धि के अभाव में खरैटी, वृद्धि के अभाव में  
सहदेई, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनों  
के अभाव में शत वरि लेनी चाहिये ॥ ११ ॥

यत्र यद्द्रव्यममाप्तं भेषजे परपूर्वतः ।  
ग्राह्यं तद्गुणसाम्यात्तु न तत्र काऽपि  
दूषणम् ॥ १२ ॥

जिस योग में जो द्रव्य प्राप्त न हो, उस योग  
में उस द्रव्य के समान गुणवाले पूर्ववर्ती अथवा  
परवर्ती किसी एक द्रव्य के ग्रहण कर लेने में  
कोई हानि नहीं है ॥ १२ ॥

<sup>१</sup> एक मत से मेदा के अभाव में गिलोय ग्राह्य है ।

<sup>२</sup> महामेदा का प्रतिनिधि विदारीकन्द भी होता है ।

<sup>३</sup> ऋषभक का प्रतिनिधि मतान्तर में विदारी-  
कन्द है ।

रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचि-  
न्त्य च । युञ्ज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्याणां च  
रसादिकम् ॥ १३ ॥ अभावे रसभूत्याश्च  
सिन्दूरं रसपूर्वकम् । कान्ताभावे तीक्ष्ण-  
लोहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ १४ ॥ वैदूर्या-  
दीनि रत्नानि न लभ्यन्तेऽत्र धीमता । तत्र  
मुक्तादिभूतिं च योजयेत्तु भिषग्वरः ॥ १५ ॥  
कुठेरिकायाश्चाभावे तुलसीं तत्र योजयेत् ।  
पुनर्नवायाश्चाभावे रक्ता सा च प्रकीर्तिता ।  
रसाञ्जनस्य चाप्राप्तौ दार्वाकाथं प्रयो-  
जयेत् ॥ १६ ॥ नीलोत्पलस्याभावे तु  
कुमुदं तत्र दीयते । सिद्धार्थकस्य भावे तु  
सामान्यः सर्पपो मतः ॥ १७ ॥ गोक्षीरा-  
भावतश्छागं पयः सर्वत्र दीयते । गोघृत-  
स्याप्यभावे तु चार्जं सर्वत्र दीयते ॥ १८ ॥  
अलाभे यच्च तद् द्रव्यं प्रत्याम्नायेन योज-  
येत् । योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रति-  
निधिर्मतः ॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं  
नैव गृह्यते ॥ १९ ॥

रस-वीर्य-विपाक के अनुसार एक द्रव्य के  
अभाव में दूसरा द्रव्य जो रस-वीर्य-विपाक में  
उसी के समान हो प्रयुक्त करना चाहिये । दधा  
पारदभस्म के अभाव में रससिन्दूर, कान्तलोह  
के अभाव में तीक्ष्णलोह ( फौलाद ), वैदूर्य आदि  
रत्नों के अभाव में मुक्ता को लेना चाहिये ।  
कुठेरिका के अभाव में तुलसी, श्वेतपुनर्नवा के  
अभाव में रत्नपुनर्नवा, रसौत के अभाव में दारु-  
हलदी का काथ, नीलकमल के अभाव में कुमुद,  
सफेद सरसों के अभाव में साधारण सरसों,  
गो-दूध के अभाव में बकरी का दूध, गो-घृत के  
अभाव में बकरी का घृत प्रयुक्त करना चाहिये ।

इनमें जो द्रव्य अभाव में दिये गये हैं उनके  
अभाव में मूल द्रव्य ही लेने चाहिये । अभाव  
में उसके समान दूसरे द्रव्य को ग्रहण करने का

नियम योग में कहे हुए गोण द्रव्यों के प्रिय  
में ही समझना चाहिये । प्रधान द्रव्यों का प्रति-  
निधि नहीं लिया जाता है । वहाँ वही द्रव्य  
डालना चाहिये ॥ १३-१६ ॥

### अथ भेषजग्रहणसंकेतः ।

उक्ते चन्दनशब्दे तु शब्दते रक्त-  
चन्दनम् । लवण्ये सैन्धवं विद्यात् मूत्रे  
गोमूत्रमच्यते ॥ १ ॥

जहाँ विशेष उल्लेख न हो केवल चन्दन शब्द  
लिखा हो वहाँ लाल चन्दन, लवण कहने में  
सैंधा ( लाहौरी ) नमक और मूत्र कहने से  
गोमूत्र जानना चाहिये ॥ १ ॥

टिप्पणी— आजकल मिलनेवाला लाल चन्दन  
सुगन्धरहित होने से असली नहीं है इसलिये  
सुगन्धित सफेद चन्दन ही डालना चाहिये ।

शकृद्रसपय सर्पिः प्रयोगे गव्यमिष्यते ।  
विशेषो यत्र नोक्तः स्यादेव एव विधि  
स्मृतः ॥ २ ॥

जहाँ किसी पशुविशेष का नाम न लेकर विष्टा  
का रस लिखा हो वहाँ गाय के गोबर का रस,  
दूध अथवा घी लिखा हो तो गाय का दूध और  
गाय का घी लेना चाहिए ॥ २ ॥

सारः स्यात् खटिरादीनां निम्पादीनां  
त्वचस्तथा । फलं तु दाडिमादीनां पटो-  
लादेश्चदस्तथा ॥ ३ ॥

खदिर ( तैर ) आदि घृण के सार, नीम  
आदि की छाल, अनार आदि घृण के फल और  
परपल आदि के पत्र ( पत्ते ) प्राण्य है ॥ ३ ॥

फलमधानवृक्षाणां फलं सर्वत्र शब्दते ।  
रक्तचित्रकमूलं तु सर्वत्रैव प्रयोज्येत् ॥  
मांसलत्वान् सुतीक्ष्णत्वाद्भावादन्य-  
चित्रकम् ॥ ४ ॥

जो वृक्ष फल के लिये प्रसिद्ध हैं उनका फल  
ही प्राण्य है । चित्रक शब्द का उल्लेख रहने पर  
लाल रंग के चीते का मूल लेना चाहिये क्योंकि  
वह मांसल और तीक्ष्ण होता है । उस चित्रक के  
अभाव में अन्य चित्रक के मूल का भी उपयोग  
कर सकते हैं ॥ ४ ॥

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि  
यानि च । तेषां तु वल्कलं प्राह्यं ह्रस्वमू-  
लानि कृत्स्नशः ॥ ५ ॥

वृक्षों के मूल लेने के समय जो मूल बहुत  
मोटे हो और जिनके मध्य में काष्ठ हो उनका  
काष्ठभाग छोड़कर छाल लेना और जो मूल  
छोटे तथा पतले हों उनको काष्ठभाग समेत ग्रहण  
करना चाहिये ॥ ५ ॥

अद्भ्यःसुक्ते जटा प्राह्या भागेऽसुक्तेऽविलं  
समम् । पात्रेऽसुक्ते मृदः पात्रं कालेऽसुक्ते  
त्वर्मुसम् ॥ ६ ॥ द्रवेऽसुक्ते जलं देयमेव  
सर्वत्र निश्चयः ॥ ७ ॥

अपविष्यों का अद्भ्यःशेष न कहा हो तो मृत्  
ग्रहण करना चाहिये । यदि द्रव्यों का भाग अर्थात्  
तौल न कही हो तो कुल द्रव्य को समान भाग  
अर्थात् समान परिमाण लेना चाहिये । पात्र न  
बताया गया हो तो मिट्टी का पात्र समझना  
चाहिये । अपविष्य सेवन का समय न कहा हो तो  
प्रातः काल अपविष्य सेवन करना चाहिये । द्रवपदार्थ  
न कहा हो तो जल लेना चाहिये—यही सर्वत्र  
निर्णय है ॥ ६-७ ॥

द्रव्याण्यभिनयान्येव प्रशस्तानि त्रिया-  
विधा । अतः गुडयूतर्जाद्रधान्यकृष्णा-  
त्रिदंशतः ॥ ८ ॥

गुड, घृत, मधु, श्यावन, पीपर और पायविडग  
ये सब द्रव्य पुराने होने पर लाभदायक होते हैं ।  
अन्यान्य द्रव्य चिकित्साकर्म में मर्दान ही प्रयोज्य  
होते हैं ॥ ८ ॥

टिप्पणी—यहाँ द्रव्यों के पुराने होने का समय  
निश्चित है । उम्मी समय के पुराने द्रव्य प्रयोज्य



करने चाहिये। इतने पुराने ग्रहण नहीं करने चाहिये जिनके गुण धीरे नष्ट हो गये हों।

द्रवेऽनुक्रे जलं ग्राह्यं भागेऽनुक्रेऽखिलं  
समम् । उक्रे च कालसामान्ये ज्ञेयं तत्र  
त्वहर्मुखम् ॥ ६ ॥

जब किसी विशिष्ट पदार्थ का उल्लेख न हो तो वहाँ जल का ग्रहण करना चाहिये किसी योग में यदि उपादानों के भाग न बतलाये गये हों वहाँ सय समान भाग लेना चाहिये। साधारण समय के लिये प्रातःकाल ( बिना दुग्ध खाये पिये) समझना चाहिये ॥ ६ ॥

मूलानि शिशिरे ग्रीष्मे पत्रं वर्षाव  
सन्तयोः। कन्दानि शरदि चीरं यथर्तुकुसुमं  
फलम् ॥ हेमन्ते सारमापभ्या गृहीयात्  
कुशलो भिषक् ॥ १० ॥

जिस औषध की जब ग्रहण करनी हो वह शिशिर ऋतु में ग्रहण करे। पत्ते ग्रहण करने हों तो ग्रीष्म ऋतु में ग्रहण करे। कन्द को वर्षा तथा वसन्त ऋतु में ग्रहण करना चाहिये। दूध को शरद् ऋतु में ग्रहण करना चाहिये। फूल और फल उसी ऋतु में ग्रहण करना चाहिये जिस ऋतु में कि फूल और फल प्राते हैं। सार भाग ( मध्यकाष्ठ ) हेमन्त ऋतु में ग्रहण करना चाहिये ॥ १० ॥

आवश्यक संकेत ।

इस ग्रन्थ की 'रत्नप्रभा' व्याख्या में जहाँ-जहाँ सामान्यतः 'विष' यह शब्द लिखा गया हो, वहाँ शुद्ध किया हुआ मीठा विष अर्थात् घृतसनाभ का ग्रहण करना चाहिये।

जिन जिन योगों में पारा और गन्धक का खलना लिखा गया हो वहाँ पारा और गन्धक दोनों शोधित होने चाहिये। तथा पहिले पारा और गन्धक इन दोनों को एकत्र कर यत्पूर्वक खल करके उच्चम कजली बनावे। पश्चात् उस कली को अन्य औषधों में मिलावे। बिना

कजली बनाये पृथक्-पृथक् पारा और गन्धक को किसी भी योग में न खलना चाहिये।

सोना, चाँदी, ताँबा, नाग, धंग, जस्ता, लोह और अन्नक ये समस्त द्रव्य शोधित और मारित होने चाहिये।

गुग्गु, शहू, कौड़ी और सीपी आदि के भस्म हा का प्रयोग करना चाहिये।

भावनाविधि ।

दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत् । श्लक्ष्णं चूर्णकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥ १ ॥

भावना की विधि यह है कि शुष्क चूर्ण द्रव्य को किसी द्रवपदार्थ<sup>१</sup> में भिगो कर दिन को घाम में और रात को ओस में रखना चाहिये, विशेष उल्लेख न होने पर इस प्रकार एक सप्ताह करना चाहिये ॥ १ ॥

भावनार्थ द्रवपरिमाण ।

द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत् । तावत्प्रमाणं कर्तव्यं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ २ ॥

जितने द्रवपदार्थ में चूर्ण आदि द्रव्य मिलाने पर गीले हो जायें, भावना देने के लिये उतनेही द्रवपदार्थ लेने के लिये वैद्यों ने कहा है ॥ २ ॥

भावनार्थ काथविधि ।

भाव्यद्रव्यसमं काथ्यं काथ्यादष्टगुणं जलम् । अष्टांशशोषितः काथो भाव्यानां तेन भावना ॥ ३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां परिभाषामकरणम् ॥

यदि किसी औषध के काथ की भावना देनी

<sup>१</sup> द्रवपदार्थ=गीली वस्तु, जैसे—जल, अन्न और काथ आदि।

हो तो चूर्ण आदि भाव्य <sup>१</sup> पदार्थ के धरावर मवाध्य<sup>२</sup> द्रव्य लेकर उसको (काश्य द्रव्य से) अष्टगुण जल में पकावे । अष्टमांश जल शेष रहने पर छानकर उसी काथ की भावना देवे ॥ ३ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्ना-  
वल्यां रत्नप्रभाभिधायान्याहयायां  
परिभाषाप्रकरणं समाप्तम् ॥

### अथ ज्वराधिकारः ।

यतः समस्तरोगाणां ज्वरो राजेति  
विश्रुतः । अतो ज्वराधिकारोऽत्र प्रथमं  
लिख्यते मया ॥ १ ॥

ज्वर संपूर्ण रोगों का राजा कहा गया है, इस कारण मैं सबसे पहिले यहाँ ज्वराधिकार लिखता हूँ ॥ १ ॥

ज्वर के पूर्वरूप में विधि ।

पूर्वरूपे प्रभुञ्जीत ज्वरस्य लघुभो-  
जनम् । लङ्घनं च यथादोषं विरेकं घातिके  
पुनः ॥ २ ॥ पत्ययेत् सर्पिरेवाच्छं पैत्तिके  
तु विरेचनम् । मृदु प्रच्छर्दनं तद्रत् कफजे  
तु विधीयते ॥ ३ ॥ द्रुन्द्रजेषु द्वयंकुर्या-  
द्वुद्वधा सर्वन्तु सर्वजे ॥ ४ ॥

ज्वर के पूर्वरूप में दोषों की स्वरूपता अधवा प्रबलता के अनुसार स्वल्प भोजन किया उपवास अधवा विरेचन करा जाना चाहिये । घातज्वर के पूर्वरूप में साफ घी पिलाना, पित्तज्वर के पूर्वरूप में विरेचन (दस्त) कराना और कफज्वर के पूर्वरूप में हलका वमन कराना चाहिये । द्रुन्द्रज ज्वर के पूर्वरूप में पीछे बताई गई चिकित्साओं

<sup>१</sup> भाव्य=भावना देने योग्य ।

<sup>२</sup> काश्य=जिस औषध का काथ बनाना हो उसे धारण करते हैं ।

में से दो प्रकार की चिकित्सा और त्रिदोषजन्य ज्वर के पूर्वरूप में विचारकर त्रिविध चिकित्साओं को करना चाहिये ॥ २-४ ॥

नवीन ज्वर में त्याज्य ।

नवज्वरे दिवास्वप्नस्तानामभ्यङ्गात्तमैथु-  
नम् । क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्च विव-  
र्जयेत् ॥ ५ ॥

नये ज्वर में दिन का सोना, स्नान करना, अभ्यङ्ग <sup>१</sup> अर्थात् देह में तेल की मालिश कराना, गुरु अन्न भोजन, मैथुन, क्रोध, प्रचण्ड शीतल वायु का सेवन, व्यायाम और कपाय<sup>२</sup> (कादा) सेवन इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ५ ॥

तरुणज्वर में काथपान का निषेध ।

कपायं यः प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे ।  
ससुप्तं कृष्णसर्पन्तु कराग्रेण परामृशेत् ॥ ६ ॥

<sup>१</sup> यहाँ नवीन ज्वर में अभ्यङ्ग का निषेध बताया गया है, वह वातज्वर के लिये नहीं है, क्योंकि चरक में वातज्वर के लिये अभ्यङ्ग लाभदायक कहा गया है—'ज्वरे मारतजे त्यादावनपेयाऽपि हि क्रमम् । कुर्यान्नरनुपन्थानामभ्यङ्गादीनुपक्रमात्' अर्थात्—वातज्वर में यदि कफ अधवा पित्त का संयन्ध न हो तो पहिले ही से संघन आदि क्रम की उपेक्षा करके अभ्यङ्ग आदि (मालिश आदि) चिकित्सा का अवलम्बन करें ।

<sup>२</sup> नवीन ज्वर में जो कपाय (कादा) का निषेध है उसका केवल कपाय रसवाले काथ के निषेध में तात्पर्य है ।

'न तु कृष्णसुप्तिरय कपायः प्रतिविष्यते । यः कपायः कपायः स्यात् स पश्येत्तरुणज्वरे ॥' अर्थात् तरुणज्वर में कपायनात्र (काथनात्र) का निषेध नहीं है, किन्तु जो कपाय (कादा) कर्मज रस का है उसी का निषेध है । इस चरक की उक्ति में भी सिद्ध हुआ कि तरुणज्वर में आरम्भधात् पाथन काथों का निषेध नहीं है ।

न कपायं प्रयुञ्जीत नराणां तरुण्ये ज्वरे ।  
कपायेणाकुलीभता दोषा जेतुं सुदुष्कराः ७

जो पैच रोगियों को तरणज्वर में काथ देता है, वह ज्वर को इस प्रकार कुपित कर देता है जैसे कोई सोते हुये काले साँप को हाथ से स्पर्श करे। इसलिये रोगियों को तरणज्वर में काथ न देना चाहिये, क्योंकि काथ से कुपित हुये दोषों का जीतना बहुत कठिन होता है ॥ ६-७ ॥

तरुण्यज्वर में कर्पले काथ या निषेध ।

चतुर्भागावशिष्टस्तु यः पोडशगुणाम्भसा । स कपायं कपायः स्यात् स वर्ज्यस्तरुण्यज्वरे ॥ ८ ॥

एक भाग ओषधि लेकर उसमें सोलहगुना जल डालकर पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहे तो काथ को तैयार जानना, किन्तु यह काथ कपाय रसवाला ( कसैला ) होता है, इसलिये इसका तरुणज्वर में निषेध है ॥ ८ ॥

फाएट आदि का निषेधाभाव ।

फाएटादीनां प्रयोगस्तु न निषिद्धः

कटाचन ॥ ९ ॥

तरुणज्वर में फाएट आदि देने का निषेध नहीं है ॥ ९ ॥

तरुण्यज्वरवाले रोगी के नियम ।

न द्विरथान्नपूर्णाह्ने नाभिष्यन्दि कदाचन । न नक्तं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुण्यज्वरी ॥ १० ॥ परिपेकान् प्रदेहांश्चरुनेहान् संशोधनानि च । दिवास्वप्नं व्यवायं च व्यायामं शिशिरं जलम् ॥ ११ ॥ क्रोधप्रवातभोज्यानि वर्जयेत् तरुण्यज्वरी ॥ १२ ॥

तरुण्यज्वरवाला रोगी सायंकाल और प्रातःकाल दोनों थार और पूर्वाह्न में भोजन न करे। कफकारी पदार्थ न खाये, रात्रि में भोजन न करे और भारी और गरिष्ठ भोजन न करे। चन्दन आदि का लेप और तैल आदि का मर्दन, सशोधन अथवा वमन, विरेचन, वरित और शिरो-विरेचनरूप सम्यक शोधन, दिन में सोना, मैथुन,

धमजनक कार्य, ठंडा जल, क्रोध, अधिक वायु का सेवन और भोजन इन सबको नवीन ज्वरवाला रोगी त्याग देवे ॥ १०-१२ ॥

त्याज्य के सेवन से हानि ।

शोषच्छर्दिमदं मूर्च्छाभ्रमत्प्लाथरोचकान् । प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिपेकादिसेवनात् ॥ १३ ॥

नवीन ज्वर में पूर्वोक्त स्नान आदि निषिद्ध क्रियाओं का त्याग न करने से मुपशोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृषा और अरुचि इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

ज्वरविशेष में लह्वननिषेध ।

ज्वरे लह्वनमेनाटावुपदिष्टमृते ज्वरात् ।

क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोच्चवात् १४

ज्वर, वातज्वर तथा भय, क्रोध, काम, शोक और परिश्रम से उत्पन्न ज्वर से अतिरिक्त समस्त ज्वरों में पहिले लंचन ही लाभदायक होता है ॥ १४ ॥

लह्वनलक्षणम् ।

शरीरलाघनकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः ।

तल्लह्वनमितिज्ञेयं वृंहणन्तु पृथग्विधम् १५

जिन द्रव्यों से अथवा कर्मों से शरीर कृश हो जाता है ऐसे द्रव्यों को लह्वन द्रव्य और कर्मों को लह्वन कर्म कहते हैं एव शरीर को पोषण करनेवाले द्रव्य और कर्म को वृंहण द्रव्य या वृंहण कर्म कहते हैं, इसलिए यहाँ लह्वन शब्द से उपवास कर्म तथा लघु भोजन न ग्रहण करने चाहिए ॥ १५ ॥

लह्वन कराने का हेतु ।

आमाशयस्थो हत्वार्गिन सामो मार्गान् पिधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लह्वनमाचरेत् ॥ १६ ॥

आमाशयस्थ दोष, अपने प्रकोप कारणों से कुपित होकर आमदोष से युक्त हो अग्नि को नष्ट करके ( अर्थात् मन्द करके ) रसमार्ग को

अवयव करता हुआ ज्वर उत्पन्न करता है, अतः ज्वर में लहन करना चाहिये ॥ १६ ॥

लहन का फल ।

अनस्थित्तपोपाग्नेर्लङ्घनं दोषपाच-  
नम् । ज्वरन्तं दीपनं कांक्षा रुचिलांघव  
कारकम् ॥ १७ ॥

जिसके वातादि दोष और अग्नि अपने स्थान और परिमाण में स्थित न हों ऐसे ज्वर के रोगी को लहन कराना चाहिये । क्योंकि लहन से दोषों का पाचन, ज्वर की शान्ति, अग्नि की दीप्ति, अन्न की अभिलाषा और रुचि तथा शरीर की लघुता ये सब कार्य प्रकट होते हैं ॥ १७ ॥

गलानुकूल लंघनविधि ।

प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपाद-  
येत् । चलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं  
क्रियाक्रमः ॥ १८ ॥

रोगी का बल विचार कर लहन कराना चाहिये, कारण यह कि जिस आरोग्यता के लिए चिकित्सा की जाती है वह आरोग्यता बलाधीन है । बलप्राप्ति के बिना आरोग्य जान होना सम्भव नहीं ॥ १८ ॥

लहन के अयोग्य ।

तत्तु मारुतत्तुत्तुष्णामुखशोषभ्रमान्विते ।  
कार्यं न बाले नो वृद्धे न गर्भिण्यां न  
दुर्बले ॥ १९ ॥

वातप्रधान रोगी, सुषा, नृष्या, मुखशोष और बलान्तिमुत्र रोगी, बालक, वृद्ध, गर्भिणी तथा दुर्बल व्यक्ति को लहन न कराना चाहिये ॥ १९ ॥

उत्तम लहन के लक्षण ।

नातम्पुरीषाणां विमर्षे गात्रलाघ्ये ।  
हृदयोद्धारकण्ठस्यशुद्धौ तन्द्राभेगेने२०  
स्तेडे जाते रुचां चापि क्षुत्पिपासासट्टो-  
दये । कृतं लङ्घनमादेदयं निर्व्यये चान्त-  
रात्मनि ॥ २१ ॥

अधोवायु, मल और मज का शुद्ध रीति से निकलना, शरीर में हलकापन, हृदय की शुद्धि, शुद्ध डकार का आना, कण्ठ और मुख को चिरसता का दूर होना, तन्द्रा और म्लानि नष्ट होना, पसीना निकलना, रुचि का उत्पन्न होना, भूख और प्यास का एक साथ प्रगट होना और चित्त का बसन्न होना ये सब लक्षण हों तो उत्तम लहन हुआ जानकर रोगी के आहारादि की व्यवस्था करनी चाहिये ॥ २०—२१ ॥

अतिलंघन के लक्षण ।

पर्वभेदोऽद्भुमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य  
च । क्षुत्प्राशाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं  
श्रोत्रनेत्रयोः ॥ २२ ॥ मनसः सम्भ्रमो-  
ऽभीक्ष्णमूर्द्धातस्तमो हृदि । देहाग्निर्नल-  
हानिश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥ २३ ॥

सन्धिर्षी में टूटने के समान पीटा का होना, शरीर में पीटा, कास, मुखशोष, छुषा का नाश, अरुचि, नृष्या, कर्ण और नेत्र की दुर्बलता अर्थात् कम सुनना और कम देखना, चित्त की अस्थिरता ( बेवैनी मन न लगना ), निरन्तर वायु का उर्ध्वगमन करना अर्थात् अधिक डकार का आना, मोह होना ( अन्धकार में प्रविष्ट होने के समान ज्ञान होना ), देहाग्नि ( जठराग्नि ) और बल की हानि का होना यह सब लक्षण अत्यन्त लहन में होते हैं ॥ २२—२३ ॥

दीनलहन के लक्षण ।

कफोत्प्लेशः<sup>१</sup> सहस्रासः<sup>२</sup> प्रीयनं<sup>३</sup> च-  
मुद्गुर्मुहुः । कण्ठास्यहृदाशुद्धिस्तन्द्रा स्याद्धी-  
नलंघने ॥ २४ ॥

<sup>१</sup> देहाग्निफलहानिरप—का काई-कोई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि देह, अग्नि और बलकी हानि होती है ।

<sup>२</sup> कफोत्प्लेश = वपन्ययमनायोपरिपति ( वप का घमन के समान निकलने को तत्पर होना )

<sup>३</sup> सहस्रास = सहस्रासो हृदयादीपद्वयव पदार्थ-निर्गम ( नमकानि पाणी आना ) उबकाई

<sup>४</sup> प्रीयनम् = हृदयादि वपनिर्गम ( हृदयसे वप निकलना ) । पृच्छा

वमनार्थं कफ की उपस्थिति, नमकीन पानी घाना, बार-बार धूकना, कण्ठ, मुँह और हृदय की अशुद्धि, तन्द्रा का होना ये सब लक्षण हीनलंघन में होते हैं ॥ २४ ॥

वमनप्राशस्त्य ।

सद्यो भुङ्क्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणो-  
त्थिते । वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह  
वाग्भटः ॥ २५ ॥ कफप्रधानानुत्क्लिष्टान्  
दोषानामाशयान्स्थितान् । युद्ध्वा ज्वर-  
करान् काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ २६ ॥

तत्काल भोजन किये हुये मनुष्य को अथवा अत्यन्त तृप्ति<sup>१</sup> के कारण उत्पन्न हुये ज्वर में यदि वह वमन कराने के योग्य<sup>२</sup> हो तो वमन कराना चाहिये यह वाग्भट का मत है । वमन<sup>३</sup> के योग्य रोगियों के आमाशय में स्थित, कफ-प्रधान और निकलने के उन्मुख (तैयार) दोषों को ज्वर उत्पन्न करनेवाले जानकर यथासमय वमन द्वारा निकालना चाहिये ॥ २५—२६ ॥

वमन से हानि ।

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरं ।  
हृद्रोगं श्वासमानार्हं मोहश्च कुरुते  
भृशम् ॥ २७ ॥

यदि आमाशय में कफ संचित न हो तो तरुणज्वर में वमन न कराना चाहिये, क्योंकि ऐसी दशा में वमन कराने से हृदय-रोग,

<sup>१</sup> सन्तर्पणम् = शारीरिकव्यापाररहितस्य दि-  
वास्वमा सनादिप्रतिमात्रं प्रवृत्तस्य गुरस्निग्धम-  
धुरनवमघाति सेवनम् ।

<sup>२</sup> 'वमनकराने के योग्य हो' ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि गर्भिणी स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल और भयभीत आदि को वमन न कराना चाहिये ।

<sup>३</sup> नवामयेत्तैमिरिकोच्चैवतागुलमोदरप्रीहकृमि-  
भ्रमातान् । स्थूलक्षतशीघ्राकृशातिवृद्धमूत्रागुरान् केव-  
ल वातरोगान् ॥ इतरोपघाताभ्ययनप्रसङ्गदुरसृष्टिदुः-  
कोष्ठा-नृद्धार्तबालान् । ऊर्ध्वाल्पपित्तपुथितातिरू-  
क्षाग्निशुद्धाश्वत्तिनिरुहितारच ॥ सुश्रुत् ॥

श्वास, मलमूत्रादि रोध (पेट फूलना) और मोह (बेहोशी) ये सब रोग उपस्थित होते हैं ॥ २७ ॥

शृतशीतजलपानविधि ।

तृप्यते सलिलं चोष्णं दद्यात् वातकफ-  
ज्वरे । मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः  
शृतम् ॥ २८ ॥ टीपनं पाचनञ्चैव ज्वर-  
घ्नमुभयञ्च तत् । स्रोतसां शोधनं चर्यं  
रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ २९ ॥

वातज्वर, कफज्वर और वातकफज्वर में तृपानिवारण के लिये रोगी को उष्ण<sup>१</sup> ( गरम ) जल ढंढा करके पिलाना चाहिये । तत्काल आये हुए ज्वर में और पित्तज्वर में तिक्तद्रव्य<sup>२</sup> के साथ जल को छौटाकर ढंढा करके रोगी को देना चाहिये ॥ २८ ॥ ये दोनों प्रकार के जल अर्थात् उष्ण जल और तिक्तद्रव्य के साथ पकाकर शीतल किया हुआ जल अग्निदीपक, पाचक, ज्वरनाशक, शरीर के सम्पूर्ण स्रोतों को शुद्ध करनेवाले बलवर्धक, अन्न में रुचि उत्पन्न करनेवाले और स्वेदप्रद ( पसीना देनेवाले ) होने से अत्यन्त लाभदायक हैं ॥ २९ ॥

पटङ्कपानीय ।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।  
शृतशीतं जलं देयं पिपासाज्वरशांतये ॥ ३० ॥

नागरमोथा, पित्तपापटा, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ ये सब मिलाकर २ तोला हों इनको ८ सेर जल में पकावे । जब २ सेर जल अवशिष्ट रह जाय तब कण्डा से छानकर ढंढा होने पर रोगी को पीने के लिये देना चाहिये । इससे तृषा और ज्वर दोनों नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

नवज्वर में पेयादि-सेवनविधि ।

मुख्य<sup>३</sup> भेषजसम्बन्धो निपिद्धस्तरुणे ।

<sup>१</sup> काथ्यमानं तु यत्तोर्यं निष्फेनं निर्मलीकृतम् ।  
भवत्यर्धावाशष्टं च तदुष्णोदकमुच्यते ।

<sup>२</sup> तिक्तद्रव्य आगे बताये जायेंगे ।

<sup>३</sup> तरुणज्वरे, मुख्य ( प्रधान ) भेषजसम्बन्धः  
निपिद्धः । मुस्तादिसंस्कारैः सिद्धं तोयपेयादि-  
भेषजम् अग्रधानं, तेन निर्दोषभित्तवर्धः ।

ज्वरे । तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तेन भेषजम् ॥ ३१ ॥

पीछे कहा गया है कि ज्वर में एक सप्ताह व्यतीत होने पर औषध सेवन करना चाहिये, किन्तु 'पडङ्गादिपानीय' सप्ताह के मध्य में भी व्यवहार किया जाता है । इसका कारण पिछले श्लोक में प्रदर्शित हो चुका है । इसका तात्पर्य यह है कि तरुणज्वर में मुख्य औषध अर्थात् दशमूलादि के साथ आदि औषध न देने चाहिये किन्तु नागरमोथा इत्यादि से सिद्ध किया हुआ पडङ्गादि अप्रधान पेया आदि देने का निषेध नहीं है ॥३१॥

पडङ्गादिसाधन ।

यदप्सु शृतशीतासु पडङ्गादि प्रयुज्यते ।  
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिके-  
ऽम्भसि ॥ अर्द्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेया-  
दिसंविधौ ॥ ३२ ॥

पकाकर ठंडा करके सेवन करने के लिये 'पडङ्गादिपानीय' बनाने का नियम यह है कि नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लाल चन्दन, मुगन्धबाला और सौंठ ये कुल द्रव्य मिलाकर १ तोला हों, इनको १ सेर जल में पकावे, जब आधा रह जाय तो घानकर ठंडा होने पर सेवन करावे । तथा यही विधि पेया बनाकर खाने की है ॥ ३२ ॥

लाजपेया-सेवनकाल ।

लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः  
शृताम् । पित्रेत् ज्वरी ज्वरहरां नुद्धानल्पा-  
ग्निरादितः ॥ ३३ ॥

ज्वररोगी की पाचनशक्ति बहुत न्यून हो जाती है । अतः जब कुछ भूख लगे तो पहिले उसको छोटी पीपरी और सौंठ के साथ पकाई हुई लाजपेया अर्थात् धान के तिल की पेया पान करने को दिया जाय । कारण यह कि 'लाजपेया' बनानेवा मही पच जाती है ॥ ३३ ॥

रक्तशालिपेया-सेवनकाल ।

पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्ववस्तिशितो-

रुजि । श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वर-  
हरिं पिबेत् ॥ ३४ ॥

दोनों पसलियों में बस्ति ( मूयाशय ) में और शिर में यदि पीड़ा हो तो गौतुरु और कटेरी ( भटकटैया ) इनके साथ सिद्ध की गई रक्तशालिपेया अर्थात् लाल शालीधान की पेया पीने को देनी चाहिये । यह ज्वरनाशक भी होती है ॥ ३४ ॥

पेयानिर्माणविधि ।

पडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादि सम्मता ३५  
पडङ्गपानीय बनाने का जो नियम पीछे लिखा जा चुका है, पेया बनाने की भी वही रीति है ॥ ३५ ॥

यवागू का लक्षण ।

यवागूमुचिताद्भक्ताचतुर्भागकृतां व-  
देत् ॥ ३६ ॥

रोगी जितने चावल का भात खा सकता है, उसके चतुर्थांश चावल को यवागू बनाकर उसको देना चाहिये ॥ ३६ ॥

मण्डादि के लक्षण ।

सिक्थकं रहितो मण्डः पेया सिक्थ-  
समन्विता । यवागूर्धुसिक्थया स्याद्विलेपी  
विरलद्रवा ॥ ३७ ॥

जो सिट्टी से रहित हो उसको मण्ड ( मर्द ) कहते हैं, तात्पर्य यह कि जब घन बिलकुल गलकर तरल ( पतला ) हो जाता है तो उसको मण्ड कहते हैं ।

जिसमें सिक्थक ( सिट्टी कन ) घल्प परिमाण में हो और द्रव ( जल ) भाग अधिक हो उसको पेया कहते हैं । जिसमें द्रव भाग घल्प और सिक्थक अधिक परिमाण में हो उसको यवागू कहते हैं । इसी प्रकार जिसमें घतिसवल्प द्रव भाग और अधिक सिक्थक हो उसको पित्रेयी कहते हैं ॥ ३७ ॥

अप्रादिग्नाधन ।

अन्नं पशुगुणे माध्यं विलेपी च ननु-

गुणैः । मण्डश्चतुर्दशगुणै यवागूः षड्गुणै-  
ऽम्भसि ॥ अष्टादशगुणै तोये यूपः शार्ङ्ग-  
धरेरिति ॥ ३८ ॥

जितना चावल हो उससे पञ्चगुण जल में अन्न  
( भात ) पकाना चाहिये । इसी प्रकार चावल से  
चतुर्गुण जल में विलेपी, चावल से चौदहगुना  
अधिक जल में मण्ड, छः गुना अधिक जल में  
यवागू और अठारह गुना पानी में यूप पकाना  
चाहिये, ऐसा शार्ङ्गधरजी ने कहा है ॥ ३८ ॥

ज्वरविशेष में पथ्य ।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसा-  
दनः । मुद्गयूपोदनश्चापि देयः कफसम-  
न्विते ॥ ३९ ॥ स एव सितया युक्तः  
शीतः पित्तज्वरे हितः । रक्तशाल्यादयः  
शस्ताः पुराणाः पर्पटकैः सह ॥ ४० ॥  
यवाग्वोटनलाजार्थं ज्वरितानां ज्वरापहाः ।  
मद्गान्मसूरांश्चणकान् कुलत्थान् सम-  
कुष्टकान् ॥ ४१ ॥ आहारकाले यूपार्थं  
ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ पटोलपत्रं वार्त्तिकुं  
कुलकं कारवेल्लकम् ॥ ४२ ॥ कर्कोटकं  
पर्पटकं गोजिह्वावालमूलकम् । पत्रं गुडूच्याः  
शाकार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ४३ ॥

परिध्रम, उपवास और वातजन्य ज्वर में  
मांसरस के साथ भात खाना लाभदायक होता है ।  
कफजन्य ज्वर में मूँग के यूप ( जूस ) के साथ  
भात देना चाहिये । पित्तज्वर में उसी यूप ( जूस )  
को ठंडा करके उसमें शकर मिलाकर पान करने  
को देने । पुराने लाल शाली और साठी आदि  
धान की यवागू, भात और खील ( लावा )  
बनाकर ज्वररोगी को भोजन के लिये देने,  
क्योंकि ये कुल धान ज्वरनाशक हैं । यूप के लिये  
मूँग, मसूर, चना, कुलथी और मोठ और  
पनमूँग इनका उपयोग ज्वरी के लिये आहार  
के समय में करना चाहिये । शाकों में परवल  
के पत्ते, बेंगन, परवल, बरेला, खेतसा, ककोड़ा,

पित्तपापड़ा, गोजिया, फोमलमूली और गिलोय  
के पत्ते ये सब शाक ज्वररोगी के लिये लाभ-  
दायक हैं ॥ ३९-४३ ॥

ज्वररोगी का भोजनकाल ।

ज्वरितो हितमरनीयाद् यद्यप्यस्या-  
रुचिर्भवत् । अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते  
प्रियतेऽपि वा ॥ ४४ ॥ सातत्यात् स्वाह्न-  
भावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् । कल्पना  
विधिभिस्रैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः ॥ ४५ ॥

ज्वर का रोगी, रुचि न रहने पर भी पथ्य  
पदार्थ का भोजन करे, क्योंकि आहार काल में  
भोजन न करने से रोगी क्षीण ( कमजोर ) हो  
जाता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है ।  
निरन्तर एक ही प्रकार के पदार्थ का भोजन  
करने से अथवा स्वादु ( बिय ) रस के अभाव  
होने से यदि पथ्य पदार्थ में अरुचि उत्पन्न हो  
गई हो तो पाकशास्त्रोक्त प्रणाली के अनुसार  
अनेक प्रकार के पाक बनाकर उसी पर्य द्रव्य  
में फिर रोगी की रुचि उत्पन्न करानी चाहिये ॥  
४४-४५ ॥

टिप्पणी—यहाँ भोजन की आज्ञा ज्वर उतर  
जाने पर है ज्वर चढ़े हुए भोजन नहीं करना  
चाहिए ।

ज्वरित और ज्वरमुक्त का भोजनकाल ।

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजये-  
ल्लुत्तु । श्लेश्मन्तये विष्टदोष्मा बलानान-  
लस्तदा ॥ ४६ ॥

ज्वररोगी अथवा ज्वरमुक्त रोगी को अपराह्न  
( तीन बजे बादशाम को ) में लघु भोजन कराना  
चाहिये, कारण यह कि उस समय कफ क्षीण हो  
जाने से जठराग्नि की ऊष्मा ( गरमी ) और बल  
बढ़ जाता है ॥ ४६ ॥

टिप्पणी—शाम को भोजन करने की आज्ञा  
इसलिए दी है कि यदि दिन में ज्वर नहीं आता है  
तो इस समय भोजन करना आवश्यक ही है और  
यदि दिन में ज्वर आता है तो उसके रोकने की  
श्रिया संघन हो ही गयी ।

ज्वररोगी के लिये निषिद्ध ।

गुर्वभिव्यन्धकाले च ज्वरी नाद्यात्  
कथञ्चन । न हि तस्याहितं भुक्त्वायुषे वा  
सुरवाय वा ॥ ४७ ॥

ज्वररोगी, कदापि मालपूछा आदि गुरु पदार्थ  
और दधि आदि कफकारक द्रव्य का भोजन एवं  
असमय में भोजन न करे । कारण यह कि अहित  
भोजन से परमायु का नाश और रोगों की वृद्धि  
होती है ॥ ४७ ॥

आमदोष के पाचन ।

लघनं स्वेदनं कालो यवागृस्तिक्कको  
रसः । पाचनान्यविषकानां दोषाणां तरुणे  
ज्वरे ॥ ४८ ॥

लघन, स्वेदन, काल अर्थात् आठ दिन तक  
यवागू और तिलरस ये सब तरण ज्वर में आम-  
दोषों के पाचन हैं । तात्पर्य यह कि उपवासादि  
द्वारा सात दिन व्यतीत होने पर दोषों का पाचन  
होता है ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—नवीन ज्वर लघन, स्वेदन, कार्य  
तथा यवागू और तिलरस ( कड़वं पदार्थों का )  
सेवन से सात दिन में पच जाता है ।

ज्वर के तरुणादि लक्षण ।

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।  
मध्यं द्वादशरात्रन्तु पुराणमत उत्तरम् ४९

ज्वर के उत्पत्ति के दिन से सातदिनपर्यंत तरुण-  
ज्वर, बारह दिन तक मध्यज्वर, इसके बाद पुराण  
अर्थात् पुराना ज्वर कहा जाता है ॥ ४९ ॥

जांघज्वर का लक्षण ।

त्रिसप्ताहव्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां  
गतः । प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर  
उच्यते ॥ ५० ॥

तीन सप्ताह व्यतीत होने पर जो ज्वर मध्य-  
वेग हो जाता है एवं प्लीहा और अग्नि की  
मन्दता उत्पन्न करता है उसको जीर्णज्वर कहते  
हैं ॥ ५० ॥

ज्वर में कषाय प्रयोग ।

ज्वरितं पटहेऽतीते लघ्नप्रतिभोजि-

तम् । पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु  
तम् ॥ ५१ ॥ सप्ताहात् परतोऽस्तब्ध  
सामे स्यात् पाचनं ज्वरे । निरामे शमनं  
स्तब्धे सामे नौपधमाचरेत् ॥ ५२ ॥

पटहेऽतीते इति ज्वरोत्पाददिनमारभ्य  
पटहेऽतिक्रान्ते सप्तमेऽहनि लघ्नप्रति-  
भोजितम् अर्थाद्दृष्टमेऽहनि । पाचनं शम-  
नीयं वा इति विकल्पद्वयं योग्यतया यथा-  
क्रमं आमदोषकषयदोषविषयं ज्ञेयम् । पाचनं  
शमनीयं वा कषायं पाययेदिति योजना,  
यत उपवासपरदिने भेषजनिषेधः । यदुक्तं  
“पीताम्बुर्लघित इत्यादिना” । अन्ये  
पुनरमुमेवार्थं प्रकारान्तरेणेच्छन्ति पटहेऽतीते  
इति ज्वरोत्पाददिनं परित्यज्य गणना  
कार्येति । आरम्भदिनपरिहारेण परिहार-  
कालगणनावत् । तेन पटहेऽतीते इत्यस्य  
सप्तमेऽतीते इत्यर्थो भवति ।

इदानीं सप्ताहानन्तरमपि यस्यामन-  
म्यायां पाचनं शमनञ्च देयं यस्याञ्च न  
देयं तद्वाह—सप्ताहात् परत इत्यादिना ।  
सामे ज्वरे सप्ताहोपरि पाचनं किम्भूते  
अस्तब्धे प्रवर्त्तमानमत्रपुरीषे, निरामे  
शमनं शमनयोग्यं, स्तब्धे सामे नौपधमा-  
चरेदिति न सर्वथैव औपधं पिबेदित्यर्थः ।

ननु सप्ताहानन्तरं ज्वरस्य निरामत्वात्  
किमर्थं पाचनं ? यदुक्तं “अष्टाहो निराम-  
ज्वरलक्षणमिति” । उच्यते द्विधा हि  
नामता एका दोषमामता, प्रथमा दोषदृष्टि-  
रूपा “प्रथमां दोषदृष्टिश्च केचिदामं प्रच-  
क्षते” । सा सप्ताहेनार्पति । सप्ताहेनैव  
पर्यन्ते सप्तधातुगता मलाः । निरामधा-



प्यतः प्रोक्तौ ज्वरः प्रायौष्टमेऽहनि ॥  
इति चरकः ॥ तस्यां दोषसामतायां पाचन  
निषेधः । अपरा रससामतासप्ताहात्परतो  
ऽप्यनुपचर्ते, तस्यामप्रवलायां पाचनं देयं  
सुश्रुतसंज्ञादात् । तेन सप्ताहादर्वाक् तस्यो,  
सप्ताहानन्तरमपि स्तब्धे सामे प्रवलरस-  
सामतायां मुख्यभोजनं न देयमिति पट्टर्व-  
सितोऽर्थः । पाचनमामपाचनं, शमनं दोष  
शमनमिति ।

ज्वर के उत्पत्ति के दिन से आरम्भ करके छ  
दिवस बीतने पर सातवें दिन लघु ( हल्का )  
भोजन कराना चाहिये और उस रोगी को पाचन  
अथवा शमनीय काढ़ा पिलाना चाहिये । २१ ।

यहाँ यथायोग्य आमन्त्रोप के लिये पाचन  
कषाय और पक्वदोष के लिये शमनीय कषाय  
पिलाया जाता है ऐसा जानना चाहिये । सातवें  
दिन पाचन कषाय का प्रयोग इसलिये कहते हैं  
कि 'पीताम्बुर्लक्षित' इत्यादि श्लोक से उपवास  
के प्रगले दिन शोधन आदि औषध देने का  
निषेध किया गया है । और कुछ वैध 'पक्वहेऽतीते'  
इसका अर्थ करने में ज्वर के उत्पत्ति के दिन को  
छोड़कर छ दिन की गणना करनी चाहिये,  
ऐसा कहते हैं । उनके मत से छ दिन  
व्यतीत होने पर सातवें दिन अर्थात् ज्वर के  
उत्पत्ति के दिन से आठवें दिन लघु भोजन  
कराना चाहिये यह सिद्ध हुआ ।

अब एक सप्ताह के अनन्तर भी किस अवस्था  
में पाचन और किस अवस्था में शमन औषधों  
का प्रयोग करना चाहिये, यह 'सप्ताहात्परतः'  
इत्यादि श्लोक से यताते हैं—एक सप्ताह के  
पीछे यदि दोषों का परिपाक न हुआ हो किन्तु  
मल मूत्रादि उचित रीति से निकलते हों तो ऐसी  
अवस्था में पाचन औषध की व्यवस्था करनी  
चाहिये । यदि दोषों का परिपाक हो गया हो  
और मल मूत्रादि की प्रवृत्ति भी उचित रीति से  
होती हो तो शमन औषध का प्रयोग करना  
चाहिये । यदि मल-मूत्रादि की प्रवृत्ति और दोषों

का परिपाक न हुआ हो तो ज्वरनाशक औषध  
का प्रयोग कदापि न करना चाहिये ॥ २२ ॥

अब यहाँ शका होती है कि जब एक सप्ताह  
के अनन्तर दोष निराम हो ही जाते हैं तब एक  
सप्ताह व्यतीत होने पर पाचन औषध का प्रयोग  
क्यों बतलाया गया ? लिखा भी है कि 'आठवें  
दिन ज्वर निराम हो जाता है' ।

अब इसका समाधान बतलाता हूँ—सामता  
दो प्रकार की होती है एक दोष सामता, दूसरी  
रस सामता । उनमें दोष सामता तो एक ही  
सप्ताह में नष्ट हो जाती है । चरक में लिखा भी  
है कि—'सप्तधातुगत दोष एक ही सप्ताह में  
परिपक हो जाते हैं इसलिये प्राय आठवें दिन  
ज्वर निराम हो जाता है' उस दोष सामता में  
पाचन औषध देने का निषेध है ।

दूसरी रस सामता सप्ताह के अनन्तर भी  
रहती है । यह यदि अप्रवृत्त हो तो उसमें पाचन  
औषध देना चाहिये ऐसा सुश्रुतजी ने कहा है ।

तात्पर्य यह है कि सप्ताह से पूर्व तरणज्वर में  
और सप्ताह के अनन्तर भी यदि भलोभाँति मल-  
मूत्रादि की प्रवृत्ति होती हो और रसों का  
परिपाक न हुआ हो तो प्रवलरस सामता में मुख्य  
औषध न देना चाहिये किन्तु ऐसी अवस्था में  
पाचन औषध का ही प्रयोग करना लाभदायक  
है । यहाँ पाचन का अर्थ है आम को पचानेवाला  
और शमन का अर्थ है दोषों को शान्त करने-  
वाला । २२ ।

टिप्पणी—जो ज्वर सतत बढ़े रहते हैं उनके  
लिए ही यह विचार है चढ़ने उतरने वाले ज्वरों  
के लिए यहाँ औषध योना ज्वर का रूप निरचय  
करके कर देनी चाहिये ।

सच्यं = तो० की मात्रा लिखी है किन्तु रोगी  
के बल को दृष्टते हुए आठवले ४ तो० की मात्रा  
ही काफी रहनी है ।

आमज्वर का लक्षण ।

लालाममेको हन्लासहृदयाशुद्धघरो-  
चकाः । तन्शालस्याधिपाकास्यैरम्यं गुरु-  
मानता ॥ ५३ ॥ नुशागो घट्टुमृतत्वं स्त-

बधता वलवान्ज्वरः । आमज्वरस्य लिङ्गानि  
न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य  
भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ५४ ॥

मुख से लार टपकना, चमन का वेग, हृदय की  
अशुद्धि, अरिचि, तन्द्रा, आलस्य, खाये हुये अन्न  
का अपरिपाक, मुख की विरसता ( फीकापन ),  
शरीर का भारीपन, भूख का न लगना, अधिक  
लघुशंका का होना, शरीर में पीड़ा का होना  
और प्रबल ज्वर ये ही सब आमज्वर के लक्षण  
हैं । इस अवस्था में औषध देने का निषेध है ।  
कारण यह कि आमज्वर में औषध प्रयोग करने  
से ज्वर अत्यन्त प्रबल हो उठता है ॥ ५३-५४ ॥

दोषपरिपाक का लक्षण ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु  
च । पक्वं दोषं विज्ञानीयाज्ज्वरे देयं तदौ-  
षधम् ॥ ५५ ॥

ज्वर का वेग मन्द और शरीर हलका हो जाय,  
मायु आदि समस्त दोष अपने-अपने स्थान में संच-  
रित होने लगें और पहिले के समान मलमूत्र आदि  
निर्गमन होने ( निकलने ) लगें तब समझना  
चाहिये कि दोष परिपाक हो गये । ऐसी अवस्था  
में तत्काल औषध प्रयोग करना चाहिये ॥ ५५ ॥

कपाय सेचनकाल ।

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णो भुक्तः  
पिपासितः । न पित्रेदौषधं जन्तुः संशोधन-  
मथेतरत् ॥ ५६ ॥

जलपान के अन्त में उपवास के अगले दिन,  
क्षीणवस्था में अथवा स्यरोगी को अजीर्ण होने  
पर, भोजन करने के पीछे और प्यास लगने पर  
संशोधन अथवा शमन कपाय ( काढ़ा ) का सेवन  
न करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अभुक्तावस्था में औषध सेवन के गुण ।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्या-  
त्तदामयमसंशयमाशु चैव । तद्वालवृद्ध-  
युवती मृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां नयति  
चाशु चलत्तयञ्च ॥ ५७ ॥

अन्नहीन अर्थात् बिना भोजन किये सेवित  
औषध अधिक वीर्यवाला होता है और उसके  
द्वारा निस्संदेह शीघ्र रोग नष्ट हो जाते हैं । किन्तु  
बालक, वृद्ध, युवती और मृदु प्रकृति व्यक्तियों  
को अभुक्तावस्था ( खाली पेट ) में औषध सेवन  
न कराना चाहिये । कारण यह कि बिना अन्न  
खाये औषध खाने से उनको अत्यन्त ग्लानि और  
चलत्तय उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

जीर्ण औषध के लक्षण ।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं नृत्पणा  
सुमनस्कता । लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धि-  
जीर्णौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥

- वायु का अनुलोम होना अर्थात् अपान वायु  
का भलीभाँति निकलना, सुस्थता ( विकाररहित  
शरीर का सामान्य दशा में स्थिर होना ), भूख  
और प्यास का लगना, चित्त की प्रसन्नता शरीर का  
भारबोध दूर होना, इन्द्रियशुद्धि और शुद्ध वकार  
का आना ये ही सब औषध के जीर्ण ( परिपाक )  
होने के लक्षण हैं ॥ ५८ ॥

अजीर्ण में औषध सेवन से हानि ।

औषधशेषे भुक्तं पीतं तदौषधसंशेषे-  
ऽन्ने । न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्य-  
न्यरोगांश्च ॥ ५९ ॥

औषध का भलीभाँति परिपाक न होने पर  
भोजन करने से अथवा भोजन किये हुये पदार्थ  
के अच्छी तरह परिपाक होने से पूर्व औषध सेवन  
करने से रोग का नाश तो नहीं ही होता है किन्तु  
अन्यान्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

औषध के अल्प परिपाक के लक्षण ।

क्रमो दाहोऽद्गसदनं भ्रमो मूर्च्छा शिरो-  
रुजा । अतिर्वलहानिश्च माशेषौषधा-  
कृतिः ॥ ६० ॥

पाया हुआ औषध जब भलीभाँति परिपाक  
नहीं होता किन्तु परिपाक होने से कुछ अवशिष्ट  
रह जाता है तब शरीर में रोड़ा, दाढ़, देह में  
पीड़ा, भ्रम, मूर्च्छा, तिर में पीड़ा, घबेनी और

बल का नाश ये सब लक्षण प्रकाशित होते हैं ॥ ६० ॥

अन्नावृत औषध के लक्षण ।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हि स्याद-  
न्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरिति । प्राग्भुक्त-  
सेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभी-  
स्वराङ्गनाभ्यः ॥ ६१ ॥

औषध सेवन करके शीघ्र ही भोजन करने से औषध अन्न में लिपट जाता है। अतः वह शीघ्र पच जाता है और द्रुमसे बल की हानि नहीं होती तथा औषध अन्नावृत होने से बार-बार मुख द्वारा नहीं निकल सकता। इसलिये घृद्ध, बालक, दरपोक ( जिन्हें औषध सेवन में भय लगता है ) और सुकुमारी रमणियों को इसी रीति से औषध सेवन कराना चाहिये ॥ ६१ ॥

ज्वरे समासेन कर्मनिर्देशः ।

ज्वरादौ लंघनं सामे ज्वरमध्ये तु पाच-  
नम् । निरामे शमनं कुर्याज्ज्वरान्ते च  
विरेचनम् ॥ ६२ ॥

ज्वर के आदि में ज्वरक समावस्था अधिक बनी हो तो ऐसी अवस्था में बलानुसार उपवास या लघु भोजन करावे और ज्वर की मध्यावस्था में पाचन औषध दे। यदि दोष ( वात, पित्त, कफादि ) तथा रस पक हों तो शमन करनेवाली औषध दे। ज्वर के अन्त में कोष्ठ ( आम्लाशय, पकाशय ) की शुद्धि के लिए विरेचन औषध दे ॥ ६२ ॥

मात्रानिरूपण ।

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं  
वयः । व्याधिद्रव्यञ्च कोष्ठञ्च दीद्य मात्रां  
मयोजयेत् ॥ ६३ ॥

मात्रा का कोई निरिचन ( कड़ा हुआ ) नियम नहीं है। दोष, अग्नि, बल, आयु की मर्यादा, व्याधि, औषध, द्रव्य और कोष्ठ का विचार करके मात्रा स्थिर करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

सर्वज्वर में साधारण धान्यपटोल काथ ।

दीपनं कफविच्छेदि वातपित्तानुलोम-  
नम् । ज्वरघ्नं पाचनं भेदि शृतं धान्यपटो-  
लयोः ॥ ६४ ॥

धनिया १ तोला, परवल के पत्ते १ तोला इनको कूटकर १६ तोले जल में सिद्ध करे : ४ तोले जल अवशिष्ट रहने पर सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से अग्नि दोषन होती है। कफ का नाश होता है। वायु और पित्त का अनुलोमन होता है एवं ग्राम दोषों का परिपाक मलभेद और सब प्रकार के ज्वरों का नाश होता है ॥ ६४ ॥

टिप्पणी—आजकल ४ तोला ही पीना काफी होगा ।

वातिक ज्वर पर किरातादि काथ ।

किराताब्दामृतोदीच्यवृहतीद्वयगोक्षुरैः ।  
सस्थिराकलशोविश्वैः काथो वातज्वरा-  
पहः ॥ ६५ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गुर्घ, सुगन्धवाला, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोपुरु, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और सोंठ ये कुल द्रव्य मिलकर दो तोले हों। इनको ६२ तोले जल में सिद्ध करे। ८ तोले जल शेष रहने पर छानकर सेवन करना चाहिये। इस काथ का सेवन करने से वातिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

पिप्पल्यादि काथ ।

पिप्पली सारिवाद्राक्षा शतपुष्पाहरे-  
गुभिः । कृतः कपायः सगुडो हन्याच्छु-  
सनजं ज्वरम् ॥ ६६ ॥

पीपल, अनन्तमूल, मुनका, दास, सोवे, रेणुका सब द्रव्य बराबर बराबर लेकर जिस प्रकार से काथ निर्माण रिधि है उसी प्रकार काथ तैयार कर ( अर्थात् ४ तोला शेष रहने पर १ तोला

गुडूच्यादि काथ ।

गुडूची सारिवाद्राक्षा शतपुष्पा पुन-  
र्नवा । समुडोऽयं कपायः स्याद्वातज्वर-  
विनाशन ॥ ६७ ॥

गिलोय, अनन्तमूल, मुनक्का, दाख, सोये, पुन-  
र्नवा इनको लेकर वाथ निर्माणविधि से काथ  
सिद्ध करके ( अर्थात् ४ तोला काथ में ३ तोला  
गुड मिलाकर ) सेवन करने से वातज्वर शान्त  
होता है ॥ ६७ ॥

द्राक्षादि काथ ।

द्राक्षा गुडूची काशमर्यात्रायमाष्ठाससारि-  
वाः । निष्काथ्य समुडं काथं पिवेद्वातज्वरा-  
पहम् ॥ ६८ ॥

मुनक्का, दाख, गिलोय, गम्भारी के जड़ की  
छाल, त्रायमाष्ठा, अनन्तमूल इनके काथ में गुड  
मिलाकर पीने से वातज्वर दूर होता है ॥ ६८ ॥

पञ्चमूली काथ ।

पञ्चमूली कपायन्तु पाचनं वातिके  
ज्वरे ॥ ६९ ॥

बिल्व, अरणी, श्योनाक ( सोनपाठा ),  
गम्भारी, पादल इनकी जड़ की छालों को  
चूड़तपश्चमूल पड़ते हैं । इन सबके जड़ की  
छालों का काथ प्रयोग करने से वातज्वर दूर  
हो जाता है ॥ ६९ ॥

रास्नादि काथ ।

रास्नावृक्षादनी दारु सरलं सैलवाल-  
कम् । सोप्यं समुडसपिष्कं पिवेद्वातज्वरा-  
पहम् ॥ ७० ॥

रास्ना, बन्दाक, देवदारु, सरल ( चीड़ ),  
एलवालुक इनका काथ बनाकर एक मूलाक में  
३ तोला गुड और ३ तोला गाव का घी मिश्रित  
कर पान करने से वातज्वर शान्त हो जाता है ॥ ७० ॥

विल्वादि काथ ।

विल्वादि पञ्चमूली च गुडूच्यामलने

तथा । कुस्तुम्युरुसमो ह्येष कपायो वातिके  
ज्वरे ॥ ७१ ॥

बिल्व, अरणी, गम्भारी, श्योनाक ( सोन-  
पाठा ) और पादल इनके जड़ की छाल, धनियाँ,  
गिलोय, शौंठला उपयुक्त सब औषध दरावर-  
बराबर लेकर इनके काथ को सेवन कराने से  
वातज्वर शान्त होता है ॥ ७१ ॥

विश्वादि काथ ।

विश्वामृता ग्रन्थिकसिद्धतोयं मरु-  
ज्वरः स्यात् पिवत् कुतोऽयम् । काथोऽथ  
कुस्तुम्युरुदेदारुक्षुद्रौषधैः पाचनमत्र  
चारु ॥ ७२ ॥

सोंठ, गिलोय, पीपलीमूल अथवा धनिया,  
देवदारु, छोटी कटेरी, सोंठ उपयुक्त दोनों में  
से किसी एक का काथ सेवन करने से वातज्वर  
नष्ट हो जाता है ॥ ७२ ॥

गुडूच्यादि स्वरस ।

गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावपरिच  
तत्समः । गुडमगाड शमयेत्सद्योऽनिल-  
कृतं ज्वरम् ॥ शृतशीतं कपायं वागुडूच्याः  
पेयमेव तु ॥ ७३ ॥

गिलोय का स्वरस ३१ तोला, शतावर का  
स्वरस ३१ तोला । दोनों के स्वरसों को मिलाकर  
और गुड मालकर पीने से या गिलोय का काथ  
बनाकर और उसे टण्डा का पीने से वातज्वर  
शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥ ७३ ॥

पित्तज्वरचिकित्सा ।

यषण्डोल काथ ।

पटोलपरनिःकायो मधुना मधुरीमृत् ।  
तीक्ष्णपित्तज्वरामर्दोपानात्तृदाहनाग्नः ७४  
( यायता तत्र माधुर्यं मधुतावत् प्रदीयते )  
परपल के पत्ते १ तोला, पप का काथ १

१ जी को चूटकर उमड़ी भूमि निकाल कर  
आव तो उमी हो पप का काथ बनाने से ।

१ तोला, इनकी ३० तोले जल में सिद्ध करे । जब ८ तोले जल अवशिष्ट रहे तो छानकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से शीघ्र ही तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

जितने प्रमाण में मधु ढालने से इस काथ में माधुर्य ( मिठास ) था जाये उतना ही मधु छोड़ना चाहिये ॥

पर्पटक्याथ ।

एक पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।  
किं पुनर्यदि युज्येतचन्दनोदीच्यनागरैः ॥ ७५ ॥

पित्तपापदा २ तोले, पाकार्थं जल ३२ तोले, शेष ८ तोले यह काथ पित्तज्वर का अत्युत्तम पाचन है । यदि रत्नचंदन, सुगंधबाला और सौंठसहित पित्तपापदा का काथ बनाकर सेवन किया जाय तो बहुत अधिक लाभ होता है ॥ ७५ ॥  
टिप्पणी—मात्रा ४ तो० ही काफी है ।

धान्यशर्करा ।

व्युपितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् । अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्दूरमरूढमपि ॥ ७६ ॥

रात में २ तोले कुटी हुई धनिया, १२ तोले जल में भिगो रखने, प्रातःकाल वस्त्र से उस जल को ध्यापकर उसमें चीनी मिलाकर सेवन करने से अत्यन्त अन्तर्दाह ( भीतरी जलन ) युक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७६ ॥

तिक्तादि काथ ।

सत्तौद्रंपाचनं पैत्ते तिक्ताब्देन्द्रयंत्रैः कृतम् ॥ ७७ ॥

कुटुकी, मोथा, इन्द्रजी, इनके काथ में शहद मिलाकर सेवन करने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७७ ॥

लोघादि काथ ।

लोघ्रोत्पलामृतापघसारिवाणां सश-

र्करः । काथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः ॥ ७८ ॥

लोघ, नीलकमल, गिलोय, कमल, अनन्त-मूल इनके काथ में खोंड मिश्रित कर पीने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७८ ॥

दुरालभादि काथ ।

दुरालभापर्पटकप्रियङ्गु भूनिम्बनासाकु-  
दुरोहिणीनाम् । जलं पिवेच्छर्करयावगाढं  
तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ७९ ॥

दुरालभा ( धमासा ), पित्तपापदा, प्रियंगू, चिरायता, वासा, कटुकी इनके काथ में खोंड मिश्रण कर पीने से रत्नपित्त, दाह तथा अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७९ ॥

विश्ववादि काथ ।

विश्वाम्बुपर्पटोशीरचन्दनसाधि-  
तम् । दद्यात् सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वर-  
दाहनुत् ॥ ८० ॥

सोंठ, गन्धबाला, पित्तपापदा, खस, मोथा, लाल चन्दन इनके ठण्डे काथ को प्रयोग करने से तृषा, चमन, दाहयुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ८० ॥

द्राक्षादि काथ ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताकाथं मश-  
म्याकफल विदध्यात् । प्रलापमूर्च्छाभ्रमटाह-  
शोषतृष्णान्निने पित्तभये ऊरुं च ॥ ८१ ॥

मुनबा, टावर, यही हर, पित्तपापदा, मोथा, कुटुकी इनका काथ तैयार करके उसमें धमल-तास का गुंथ मसलकर धान के, इस काथ को प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मुख सूखना और अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर में देना हित-कर है ॥ ८१ ॥

प्रायमाण्णादि काथ ।

प्रायमाण्णा च मधुरं पिप्पलीमूलमेव  
च । किराततिक्तरं मृत्तं मधुरं सविभीत-

गुडूच्यादि काथ ।

गुडूची सारिवाद्राक्षा शतपुष्पा पुन-  
र्नवा । सगुडोऽयं कपायः स्याद्वातज्वर-  
विनाशन ॥ ६७ ॥

गिलोय, अनन्तमूल, मुनक्का, दाख, सोये, पुन-  
र्नवा इनको लेकर काथ निर्माणविधि से काथ  
सिद्ध करके ( अर्थात् ४ तोला काथ में ३ तोला  
गुडू मिलाकर ) सेवन करने से वातज्वर शान्त  
होता है ॥ ६७ ॥

द्राक्षादि काथ ।

द्राक्षा गुडूची काश्मर्यत्रायमाषाससारि-  
वाः। निष्काथ्य सगुडं काथं पिवेद्वातज्वरा-  
पहम् ॥ ६८ ॥

मुनक्का, दाख, गिलोय, गम्भारी के जड़ की  
छाल, श्रायमाषा, अनन्तमूल इनके काथ में गुडू  
मिलाकर पीने से वातज्वर दूर होता है ॥ ६८ ॥

पञ्चमूली काथ ।

पञ्चमूली कपायन्तु पाचनं वातिके  
ज्वरे ॥ ६९ ॥

पिप्पल, अरणी, श्योनाक ( सोनपाठा ),  
गाम्भारी, पादल इनकी जड़ की छालों को  
शुद्धपञ्चमूल कहते हैं । इन सबके जड़ की  
छालों का काथ पयोग करने से वातज्वर दूर  
हो जाता है ॥ ६९ ॥

रास्नादि काथ ।

रास्नावृक्षादनी दाक सरलं सैलवाल-  
कम् । मोष्यं सगुडसपिप्पकं पिवेद्वातज्वरा-  
पहम् ॥ ७० ॥

शरना, चन्द्राक, देवदार, सरल ( चाँद ),  
सैलवालक इनका काथ बनाकर एक ग्राहक में  
३ तोला गुडू और ३ तोला माष का भी मिश्रण  
कर पान करने से वातज्वर शान्त हो जाता है ॥ ७० ॥

पित्पादि काथ ।

पित्पादि पञ्चमूली च गुडूच्यामलने

तथा । कुस्तुम्बुरुसमो ह्येप कपायो वातिके  
ज्वरे ॥ ७१ ॥

बिल्व, अरणी, गाम्भारी, श्योनाक ( सोन-  
पाठा ) और पादल इनके जड़ की छाल, धनियाँ,  
गिलोय, चाँवला उपयुक्त सब औषध बराबर-  
बराबर लेकर इनके काथ को सेवन करने से  
वातज्वर शान्त होता है ॥ ७१ ॥

विश्वादि काथ ।

विश्वामृता ग्रन्थिकसिद्धतोयं मरु-  
ज्ज्वरः स्यात् पित्त कुतोऽयम् । काथोऽथ  
कुस्तुम्बुरुदेवदारुचूद्रौपथैः पाचनमत्र  
चारु ॥ ७२ ॥

सोंठ, गिलोय, पीपलीमूल अथवा धनियाँ,  
देवदारु, छोटी कटेरी, सोंठ उपयुक्त दोनों में  
से किसी एक का काथ सेवन करने से वातज्वर  
नष्ट हो जाता है ॥ ७२ ॥

गुडूच्यादि स्वरस ।

गुडूच्याः स्वरसो श्राव्यः शतावरीश्च  
तत्समः । गुडमगाड शमयेत्सद्योऽनिल-  
कृतं ज्वरम् ॥ श्वतशीतं कपायं वागुडूच्या  
पेयमेव तु ॥ ७३ ॥

गिलोय का स्वरस ३/१ तोला, शतावरी का  
स्वरस ३/१ तोला । दोनों के स्वरसों को मिलाकर  
और गुडू मिलाकर पीने से या गिलोय का काथ  
बनाकर और उसे ठण्डा कर पीने से वातज्वर  
शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥ ७३ ॥

पित्तज्वरचिकित्सा ।

ययपटोल काथ ।

पटोलयनिःकाथो मधुना मधुरीकृतः ।  
तीव्रपित्तज्वरामर्दीपानाचूद्राहनागर्नः ७४  
( यावता तत्र माधुर्यं मधुतापत् प्रदीयते )  
परपल के पत्ते १ तोला, यय का काथ १

१ जी को फूटकर उमकी भूमी निकाल कर  
जाय तो उसी को यय का काथ करने है ।

१ तोला, इनकी ३२ तोले जल में सिद्ध करे । जब ८ तोले जल अवशिष्ट रहे तो छानकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से शीघ्र ही तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

जितने प्रमाण में मधु छालने से इस काथ में माधुर्य ( मिठास ) आ जावे उतना ही मधु छोड़ना चाहिये ॥

पर्पटकाथ ।

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।  
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ७५

पित्तपापदा २ तोले, पाकार्थं जल ३२ तोले, शेष ८ तोले यह काथ पित्तज्वर का अत्युत्तम पाचन है । यदि रत्नचन्दन, सुगन्धबाला और सौंठसहित पित्तपापदा का काथ बनाकर सेवन किया जाय तो बहुत अधिक लाभ होता है ॥७५॥  
टिप्पणी—मात्रा ४ तो० ही काफी है ।

धान्यशर्करा ।

व्युपितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् । अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्दूरप्ररुद्धमपि ॥ ७६ ॥

रात में २ तोले कुटी हुई धनिया, १२ तोले जल में भिगो रवरे, प्रातःकाल वस्त्र से उस जल को छानकर उसमें चीनी मिलाकर सेवन करने से अत्यन्त अन्तर्दाह ( भीतरी जलन ) युक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७६ ॥

तिक्तादि काथ ।

सत्तौद्रंपाचनं पैत्ते तिक्ताब्देन्द्रयैः कृतम् ॥ ७७ ॥

कटुकी, मोथा, इन्द्रजी, इनके काथ में शहद मिलाकर सेवन करने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७७ ॥

लोधादि काथ ।

लोध्रोत्पलामृतापन्नसारिवाणां सर-

करः । काथः पित्तज्वरं हन्यादथवा । पर्पटोद्भवः ॥ ७८ ॥

लोधु, नीलकमल, गिलोय, कमल, अनन्त-मूल इनके काथ में लौंड मिश्रित कर पीने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७८ ॥

दुरालभादि काथ ।

दुरालभापर्पटकप्रियङ्गुभुनिम्बवासाक-  
दुरोहिणीनाम् । जलं पिवेच्छर्करयावगाढं  
तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ७९ ॥

दुरालभा ( धमासा ), पित्तपापदा, प्रियंगु, चिरायता, वासा, कटुकी इनके काथ में लौंड मिश्रण कर पीने से रक्तपित्त, दाह तथा अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७९ ॥

विश्यादि काथ ।

विश्याम्युपर्पटोशीरयनचन्दनसाधि-  
तम् । दद्यात् सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वर-  
दाहनुत् ॥ ८० ॥

मौंड, गन्धबाला, पित्तपापदा, खस, मोथा, लाल चन्दन इनके ठण्डे काथ को प्रयोग करने से तृषा, घमन, दाहयुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ८० ॥

द्राक्षादि काथ ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताकार्थं मग-  
म्याकफल विदध्यात् । प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाह-  
शोषतृष्णान्विते पित्तभवे प्नरे च ॥ ८१ ॥

मुनवा, टाल, बर्फी हर्, पित्तपापदा, मोथा, कटुकी इनका काथ तैयार करके उसमें थमल-तास का गूदा मसलकर छान ले, इस काथ को प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मुख सूखना और अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर में देना हित-कर है ॥ ८१ ॥

प्रायमाणादि काथ ।

प्रायमाणा च मधुकं पिप्पलीमूलमेव  
च । किराततिक्ताकं मुस्तं मधुकं सपिभीन-

कम् ॥ सशर्करं पीतमेतत् पित्तज्वरविना-  
शनम् ॥ ८२ ॥

त्रायमाण, मुलहठी, पिप्पलीमूल, चिरायता,  
मोधा, महुए के फूल, बहेड़ा इनके काथ में  
खाँड मिश्रित कर सेवन करना चाहिए ॥ ८२ ॥

तिक्तादि काथ ।

तिक्तामुस्तायवैः पाठाकटफलाभ्यां सहो  
दकम् । पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके  
ज्वरे ॥ ८३ ॥

कटुकी, मोधा, इन्द्रजी, पाठा, कायफल,  
गन्धबाला इनका खाँड मिश्रित काथ पीने से  
पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ८३ ॥

श्रीपण्यादि काथ ।

श्रीपर्णा चन्दनोशीरपरूपकमधूकजः ।  
शर्करामधुरो हन्ति कपायः पैत्तिकं ज्व-  
रम् ॥ ८४ ॥

गम्भारी, लाल चन्दन, रस, फालसा, मधूक-  
पुष्प (महुए के फूल) इनका काथ तैयार कर  
उसमें खाँड या मिश्री इतनी डालनी चाहिये  
कि काथ मीठा हो जाये । फिर इस काथ के सेवन  
करने से पित्तज्वर गीघ्र ही नष्ट हो जाता  
है ॥ ८४ ॥

श्रीतोषचारवाधि ।

पित्तज्वरेण तप्तस्य क्रियां शीतां समा-  
चरेत् ॥ ८५ ॥

पित्तज्वर से मंत्रस मनुष्य के लिये शीत उप-  
चार विशेष लाभदायक होता है ॥ ८५ ॥

टिप्पणियाँ—ताप अधिक बढ़ जाने पर ये  
प्रयोग लाभदायक होते हैं तापमान (टेम्परेचर)  
गुरन्त कम हो जाता है तब बन्द कर दे ।

दाहनाशक योग ।

उत्तानमुप्तस्य गभीरताम्रकांस्याटिपात्रं  
विनिधाय नामां । तत्राम्बुघागं पहुला  
पनन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं मुनीता ॥ ८६ ॥

पित्तज्वरवाले रोगी को उत्तान (चिन्त)  
मुलाकर उसकी नाभि के उपर ताँबा या कांस्य  
आदि का गहिरा पात्र रखकर उसमें ऊपर से  
धीरे-धीरे शीतल जल की धारा कुछ देर गिरावे,  
इस प्रकार करने से शीघ्र ही पित्तज्वरजन्य  
दाह निवृत्त हो जाता है । परन्तु जल की धारा  
गिराने में यह ध्यान रखना चाहिये कि कहीं  
रोगी के शरीर पर जल की कणों न पड़ जायें;  
क्योंकि वे रोगी के लिये बहुत हानिकर हैं ॥ ८६ ॥

पलाशपत्रादि प्रलेप ।

अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पलाशतरुजै-  
दिहेत् । बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्ट-  
कस्यवा ॥ ८७ ॥

पलाश (डाक) के हरे पत्ते काँजी में  
पीस कर रोगी के शरीर में लेप करे ।  
अथवा वेर के या नीम के हरे हरे पत्ते  
काँजी में पीसकर मयानी से मंथन करे; उससे  
उत्पन्न हुए फेन को लेकर रोगी के शरीर में  
मर्दन करने से गीघ्र पित्तज्वरजन्य दाह शान्त  
होता है ॥ ८७ ॥

विदार्यादि प्रदेह ।

विदारी दाडिमं लोभ्रं दधित्थं बीजपूर-  
कम् । एभिः प्रदिह्यान्मूर्धानं वृद्धाहार्तस्य  
देहिनः ॥ ८८ ॥

विदारीकद, अनारदाना, लोभ तथा चित्रीरा,  
इन सबकी एक साथ पीसकर माथ पर लेप करे,  
इससे दाह तथा प्यास शान्त होते हैं ॥ ८८ ॥

कफज्वरचिकित्सा ।

निम्बादिफाथ ।

निम्बविरवामृतादारुशुश्रीमूनिम्बपौष्क-  
रम् । पिप्पल्यां वृहती चैति फाथो हन्ति  
कफज्वरम् ॥ ८९ ॥

नीम की गन्धरुदाय, मोँड, गिलोय, देवदार,  
बभ्रू, कचरी, चिरायता, पुडकरमूस, घोड़ी पीपर,



गजपीपर, बड़ी कटेरी की जड़ ये सब द्रव्य मिलाकर, २ तोला काथ पकाने के लिये जल ३२ तोला, शेष ८ तोले रहने पर सेवनकर । इस काथ के पीने से कफजन्य ज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८६ ॥

टिप्पणी—११ तो० जल का ४ तो० रखकर दे ।  
पिप्पल्यादिगणकाथ ।

पिप्पल्यादि कपायं तु पाचने कफजे ज्वरे ॥ ८० ॥

मुश्रुत में जो पिप्पल्यादि द्रव्यों का वर्णन है इन्हीं का काथ प्रयोग करने से कफज्वर का नाश होता है । इस काथ में एक या दो रत्ती होंग का प्रत्येप देना चाहिये । यह ध्यान रहे कि काथ-द्रव्यों में होंग का मिश्रण न करना चाहिए ॥ ८० ॥

त्रिफलादि काथ ।

त्रिफला पटोलवासिद्धिनुरुहा तिङ्ग-रोहिणी च पङ्गुन्था । मधुना श्लेष्मसप्तु-त्ये ढगमूलीवासकस्य वा काथः ॥ ८१ ॥

त्रिफला ( हरड, बहेडा, आँवला ), पटोल-पत्र, बाँसा, गिलोय, कटुकी, पिप्पलीमूल ये सब वस्तुएँ मिलाकर दो तोले होनी चाहिए, फिर इनका यथाविधि काथ बनाकर और याथा तोला शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए अथवा बिल्व, अरणी, गाग्भारी, सोनापाठा, पादल, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोलुर, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी तथा बाँसा, इनके काथ में शहद मिलाकर प्रयोग करना कफज्वर में, हितकर है ॥ ८१ ॥

बुष्टादि काथ ।

कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्त्ता पटोलं चापि साधि-तम् । पित्रेन्मरिचसंयुक्तं सत्तौद्रं श्लेष्मके ज्वरे ॥ ८२ ॥

कूट, इन्द्रजी, मूर्त्तामूल ( चूर्णहार की जड़ ), पटोलपत्र ये सब द्रव्य तोल में जो तोले होनी चाहिए फिर इनका यथाविधि काथ बनाकर छान ले, उसमें छः रत्ती काली मिर्च का चूर्ण

और दो मासे शहद मिलाकर प्रयोग करे । ये कफज्वर में लाभकारी है ॥ ८२ ॥

आमलक्यादि काथ ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चे-त्यथं गण । सर्वज्वरकफातङ्गभेदी टीपन-पाचनः ॥ ८३ ॥

आँवला, हरड, पिप्पली, चित्रक ( नीता ) इन चारों द्रव्यों का काथ प्रयोग करने से समस्त ज्वर तथा कफरोग नाश होते हैं । यह काथ जठराग्नि को प्रदीप्त करता है तथा पाचन है ॥ ८३ ॥

सप्तच्छदादि काथ ।

सप्तच्छदं गुडीचीश्च निम्बस्फूर्जकमेत-च । काथयित्वा पित्रेत्काथं सत्तौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ८४ ॥

इतिथन या सतौना की छाल, गिलोय, नीम की छाल, तेंदू की छाल इनका विधि पूर्वक काथ मधुयुक्त सेवन करने से कफज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८४ ॥

सिन्धुवार काथ ।

सिन्धुवारदलकाथं शोषणं कफजे ज्वरे । जङ्घायाश्च बले स्त्रीणे कर्णे वा पिहिते पिवेत् ॥ ८५ ॥

सम्हालू के पत्ता के काथ में काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से प्रबल कफज्वर शीघ्र नष्ट होना है ।

विशेष करके कफज्वर में जघा दुर्बल होने पर अथवा भ्रवणशक्ति के अल्प होने पर इस काथ का सेवन करना चाहिये ॥ ८५ ॥

चातुर्भद्राजलद्विका ।

कटफलं पौष्करं शृङ्गी ऋग्मा च मधुना सह । ग्यासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ८६ ॥

काकफल, पुष्करमूल, काकदाभिणी और छोटी पीपर प्रायेक द्रव्य के समभाग चूर्ण को

एकत्रित करके, कुल चूर्ण का दूना मधु मिलाकर श्वलेह ( चटनी ) तैयार करना चाहिये । इसकी मात्रा २ माशा की है । इस श्वलेह का सेवन करने से खांसी, श्वास, ज्वर और कफ नष्ट होता है ॥ ६६ ॥

श्वलेह के सेवन का काल ।

ऊर्ध्वजन्तुरोग्नी सायं स्याद्वलेहिका । अधोरोगहरी या तु सा पूर्व भोजनात् मता ॥ ६७ ॥

जिस श्वलेह का ऊर्ध्वजन्तुगत रोगों के नाश के लिये प्रयोग किया जाता है उसका सायंकाल में सेवन करना चाहिये और जिस श्वलेह का जन्तु के अधोगत रोगनाशार्थं प्रयोग किया जाता है उसका भोजन से पूर्व सेवन करना चाहिये ॥६७॥

मधुपिप्पली ।

सौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः । प्लीहानं हन्ति हिकाश्च बालानाश्चापि शस्यते ॥ ६८ ॥

छोटी पीपर का चूर्ण ३ मासे और मधु १ तोला इनको मिश्रित करके श्वलेह बना लेना चाहिये । इसका सेवन करने से श्वास, कास, ज्वर, प्लीहा और हिचकी ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह श्वलेह बालकों के लिये भी विशेष लाभदायक है ॥ ६८ ॥

वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

नवाह्न काथ ।

विश्वामृताब्दभूमिर्भैः पञ्चमूलीसमन्वितैः । कृतः कपायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ ६९ ॥

सोड, गिलोप, नागरमोषा, चित्तायता, गरिपन, पिठयन, छोटी कटेरी, बनभाटा ( बर्फी कटेरी ) गोमुद्ग ये १ द्रव्य एकत्रित कर दो तोले हों, १९ तोले जल में पकाकर ४ तोले शेष रहने पर सेवन करना चाहिये । इस काथ

का सेवन करने से वात-पित्त से उत्पन्न हुआ ज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६९ ॥

गुडुच्यादि रस ।

गुडुची पर्पटं भेकपर्णी च हिलमोचिका<sup>१</sup> । पटोलं पुटपाकेन रसमेपां मधुप्लुतम् ॥ वातपित्तज्वरं<sup>२</sup> हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १०० ॥

गुरुच, पित्तपापदा, ब्राह्मी, हुरहुर और परवल के पत्ते इनका रस पुटपाक की रीति से निकाल कर मधुसहित २ तोले परिमित सेवन करने से दीर्घकाश से उत्पन्न हुआ दारुण वात-पित्तज्वर समूल नष्ट होता है ॥ १०० ॥

चूदद्गुडुच्यादि काथ ।

गुडुची चन्दनं पञ्चनागरेन्द्र्यवासकम् । अभयारग्नधोदीच्यपाठा धान्याब्द्रोहिणी ॥ १०१ ॥ कपायं पाययेदेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । कामश्यासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनः । विरामूत्रानिलविष्टम्भे त्रिदोषप्रभवेऽपि च ॥ १०२ ॥

गिलीय, लताचन्दन, पद्माश्व, मोड, इन्द्रजी, जवासा, हरितकी, अमलतास, सुगन्धबाला, पादा, धनिया, नागरमोषा और कुटकी इन नव द्रव्यों के साथ में ३ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान कराना चाहिये । इस काथ का सेवन करने से काम, श्वास, ज्वर, मूत्रा और दाह नष्ट होता है ।

यदि मल, मूत्र और वायु न निकलते हों तो इस काथ का सेवन अवश्य करे । इस काथ से वात-पित्तज्वर तो नष्ट होता ही है; किन्तु

१ हिलमोचिका=हिलमा, हताइंशी, हुरहुर यह एक प्रकार का शाक है, यमुना का भी नाम है ।

२ इसकी वातपित्तज्वराधिकार में लिखना चाहिये था ।

यह त्रिदोषजन्य ज्वर में भी विशेष लाभदायक होता है ॥ १००-१०१ ॥

घनचन्दनादि ।

घनचन्दनपर्पटकं कटुकं समृणाल-  
पटोलदलं सजलम् । शृतशीतसितायुत-  
पित्तहरं ज्वरच्छर्दिन्तृपारुचिदाहहरम् १०२

नागरमोथा, लालचन्दन, पित्तपापडा, कुटकी, खस, परवल के पत्ते और सुगन्धधाला इनके काथ को टंडा कर चीनी मिलाकर पान करने से पित्तज्वर, उमन, तृषा, अरुचि और दाह नष्ट होता है ॥ १०२ ॥

पञ्चभद्र काथ ।

गुडूची पर्पटो मुस्तं किरातो विश्वभेष-  
जम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं  
शमम् ॥ १०३ ॥

गिलोय, पित्तपापडा, मोथा, चिरायना, भोट वे पाँचों द्रव्य मिलकर पञ्चभद्र भी कहलाते हैं, इनका यथाविधि बनाया हुआ काढ़ा वातपित्त-ज्वर में हितकर है ॥ १०३ ॥

त्रिफलादि काथ ।

त्रिफला शास्मली रास्ना राजतृक्ष्ण-  
रूपकैः । शृतमम्यु हरत्याशु वातपित्तोद्भवं  
ज्वरम् ॥ १०४ ॥

हरठ, बहेडा, आवला, शास्मली (मेमल की जड़), रास्ना, घामा इनका काढ़ा करके उसमें अमलतास का गुदा मसलकर मिला दे । मिलाने के पश्चात् सेवन करावे, यह वात-पित्त-ज्वर को शीघ्र शान्त करता है ॥ १०४ ॥

भार्गादि काथ ।

भार्गा गुडूची घनदारु सिंही शुण्ठी  
कणा पुष्करजः कपायः । ज्वरं निहन्ति  
श्वसनं क्षिणोति क्षुधां करोतीति रुचि  
तनोति ॥ १०५ ॥

भारंगी के जड़ की छाल, गिलोय, मोथा,

देवदारु, बडी कटेरी, सोंठ, पिपली, पुष्करमूल इनका काढ़ा श्वास (दमा) तथा ज्वर में लाभदा-यक है । भूख तथा रुचि को बढ़ानेवाला है ॥ १०५ ॥

मधुकादिशोतकाथ ।

मधुकं सारिवे द्राक्षा मधुकं चन्दनोत्प-  
लम् । कारमीरी पत्रकं लोध्रं त्रिफला पञ्च-  
केशरम् ॥ १०६ ॥ परूपकं मृणालं च  
न्यसेदुत्तमवारिणी । मधुलाजसितायुक्तं  
तत्पीतमुपितं निशि ॥ १०७ ॥ वातपित्त-  
ज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छाविमभ्रमान् । संहरे-  
द्रक्लपित्तश्च जीमूतानिव मारुतः ॥ १०८ ॥

मुलहर्डी, अनन्तमूल (गौरीशर), श्यामालता (कालीसर), दाख, महुए के फूल, लालचन्दन, नीलोत्पल (नीलोफर), गन्नारी, पद्माल, लोध, हरठ, बहेडा, आवला, पद्मकेशर, परूपक फल (फानसे), खस ये सब द्रव्य मिलाकर चजन में दो तोला लेना चाहिए । सबसे पहले इन सबको अच्छी तरह से बीनकर साफ कर ले, फिर जौमुट करके बारह तोले तंडुलोदक (घावल का धोवन) में रात्रि भर भीगा रहने दे, सुबह छानकर मधु तथा खॉड मिलाकर प्रयोग करे । इसके सेवन करने से वात-पित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, कं, भ्रम और रक्त-पित्त बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १०६-१०८ ॥

तण्डुलोदक बनाने की विधि—बारह तोले साफ धानी में तीन तोले चावल कूटकर आठ पहर तक भीगे रहने दे या उपर्युक्त दोनों चीजों को कड़े हुए तोले से लेकर धावलों को हाथ से मलकर छान ले । और मतों के अनुसार ऐसा भी है कि चौंसठ तोले धानी में आठ तोले कुट्टित चावलों को भीगीकर छान लेवे ।

अथ पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

अमृताष्टक ।

अमृतेन्द्रमवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ।

नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयु-

तम् ॥ १०६ ॥ अमृताष्टक इत्येष पित्त-  
श्लेष्मज्वरापहः । हृल्लासारोचकच्छर्दि-  
पिपासादाहनाशनः ॥ ११० ॥

गिलोय, इन्द्रिय, नीम की छाल, परवल के पत्ते, कुटकी, सोंठ, लालचन्दन और नागरमोथा इनके काथ मे ३ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने से सबकाई आना, अरुचि, घमन, तृषा, दाह और पित्तकफज्वर नष्ट होते हैं ॥ १०६-११० ॥

कण्टकार्यादि काथ ।

कण्टकार्यमृता भार्गी नागरेन्द्रयवा-  
सकम् । मूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटु-  
रोहिणी । कपायं पाययेदतं पित्तश्लेष्म-  
ज्वरापहम् । दाहतृष्णारुचिच्छर्दिदासहृत्  
पार्श्वशूलञ्जुत् ॥ १११ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, नागरमोथा, परवल के पत्ते और कुटकी ये सब मिलित २ तोले, पकाने के लिये जल १६ तोले, शेष ४ तोले । इस काथ के सेवन करने से पित्त-श्लेष्मज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, घमन, कास (खाँसी) और पसलियों की पीडा ये सब नष्ट होते हैं ॥ १११ ॥

पटोलादि क्वाथ ।

पटोलं चन्दनं मूर्वा पाठा तिक्रामृता-  
गणः । पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्ट-  
विपापहः ॥ ११२ ॥

पटोलपत्र, लाल चन्दन, मूर्वामूल, पाठा (पाइ), कुटकी, गिलोय इनका क्वाथविधि बनाया हुआ कादा सेवन करने से पित्तकफज्वर, घमन, दाह, गुत्रली और विपशोप दूर होते हैं ॥ ११२ ॥

पञ्चतिक्रम क्वाथ ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सर्पांकरञ्चन

किराततिक्रम । पिवेत् कपायन्विह पञ्च-  
तिक्रतं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं सभागम् ११३

छोटी कटेरी, गिलोय, सोंठ, पुष्करमूल, चिरायता इन पाँचों से जो कादा तैयार होता है उसे पञ्चतिक्रम काथ कहते हैं । इस कादे का प्रयोग करने से, एक दोप के, दो दोप के और तीनों दोपयुक्त (सन्निपात) ज्वर शीघ्र दूर हो जाते हैं ॥ ११३ ॥

कटुरोहिणी चूर्ण ।

सशर्करान्तु कर्पाद्धां कटुकामुष्णवा-  
रिणा । पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्त-  
समुद्भवम् ॥ ११४ ॥

कटुकी ३ तोला, खोंड ३ तोला दोनों को मिलाकर १ तोला चूर्ण पानी के साथ ले, इस प्रकार लेने से कफपित्तज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ११४ ॥

वासा स्वरस ।

सपत्रपुष्पवासायाः रसः क्षौद्रसिता-  
युतः । कफपित्तज्वरं हन्ति सासृक्पित्तं  
सकामलम् ॥ ११५ ॥

प्रथम वासा को फूल और पत्रोंसहित कूटकर उसमें से दो नोले स्वरस निचोड़ ले, फिर उसमें शहद या खोंड मिलाकर प्रयोग में लावे । ये कफपित्तज्वर, रक्तपित्त तथा कामला आदि रोगों को नाश करता है ॥ ११५ ॥

अथ वातश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

वातश्लेष्मज्वर में स्वेदविधि ।

कफवातज्वरे स्वेदान् कारयेद् रुक्त-  
निर्मितान् । स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा  
पावकमाशयम् ॥ इत्था वातकफस्तम्भं  
स्वेदो ज्वरमपोटति ॥ ११६ ॥

वातश्लेष्मज्वर में घालू, कंठा आदि रुक्त पदार्थ की पीरली बनाकर गरम करके उसकी

भाप से रोगी को बारबार पसीना निकाले । यह स्वेद, शरीर के समस्त छोटों ( नाडियों ) को मृदु ( बामल ) बनाकर अग्नि को उसके स्थान में गमन कराता है , तथा वात और कफ की स्तम्भता दूर करके ज्वर को नष्ट करता है ॥ ११६ ॥

चालुका स्वेद ।

खर्परभृष्टस्थितकाञ्जिकसिक्रो हि मालु-  
कास्त्रेदः । शमयति वातरूफामयमस्तक-  
शूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ ११७ ॥ वीक्ष्य  
स्त्रेदविधिं कुर्यात् स्त्रेदनं बालुकादिभिः ।  
सर्वाङ्गे यदि वा यत्र वेदना सम्प्रजा-  
यते ॥ ११८ ॥

बालू को खपड़े में गरम करके कपड़े में बांधकर उसकी पोटली बनाकर कान्नी में उसको मिलाकर बारबार सेंके । इससे वात रूफ के रोग, शिर की पीडा और शरीर की स्तम्भता ( जकड़ना ) आदि शान्त होते हैं । सर्वाङ्ग में पीडा हो तो सर्वाङ्ग में स्वेदन करना , यदि किसी विशेष स्थान में पीडा हो तो उसी पीडा के स्थान में बालुकास्त्रेद स्वेदविधि को देखकर करना चाहिये ॥ ११७-११८ ॥

उत्तम स्वेद का लक्षण ।

शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।  
सञ्जातमार्दवे स्त्रेदे स्त्रेदनाद् विरति-  
र्मता ॥ ११९ ॥

शीत, शूल, शरीर का जकड़ना और शरीर का भारीपन सब दूर हो जाने पर और मृदुता होने पर स्त्रेदन करना समाप्त कर ॥ ११९ ॥

ग्रामज्वरादि में स्वेद ।

ग्रामज्वरे वातप्लासजे वा कफोत्थिते  
मारुतसम्भवे वा । त्रिटोपजे स्त्रेदमुटा  
हरन्ति स्तम्भप्रमोहाङ्गरुजाप्रशान्त्यै ॥ १२० ॥

ग्रामज्वर, वात-कफज्वर, कफज्वर, वातज्वर और त्रिटोपज्वर ज्वर में स्तम्भता, मूर्च्छा और देह की पीडा को दूर करने के लिये स्वेदन करना चाहिये ॥ १२० ॥

पञ्चकोल ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः  
टीपनीयः शृतो वर्गः कफानिलगटा-  
पहः ॥ १२१ ॥

छोगे पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ ये सब मिलाकर २ तोले, पाकार्थ जल १६ तोले, शेष ४ तोले । अथ क्वाथ वातरलेष्मज्वर को नष्ट और अग्नि को दीप्त करता है ॥ १२१ ॥

राम्नादि क्वाथ ।

रास्ना द्राक्षा वचा पथ्या यमानी मधु  
यष्टिका । मधुरिकेन्द्ररीजश्च तिक्का विष्णं  
गुडूचिका ॥ १२२ ॥ द्विमापमेपा प्रत्येकं  
ग्राहयेत् कुशलो भिषक् । पचेदष्टपले तोये  
ग्राह्यं पादाशेषितम् ॥ १२३ ॥ शीते च  
मधुनाश्चात्र पलाद् प्रक्षिपेत् सुधीः ।  
मुहुर्दण्डान्तरैः पानात् ज्वरो याति न  
सशयः ॥ १२४ ॥

रास्ना, मुनका, पथ, वच, हरक, धायावन, मुलठी, सौंफ अथवा मूर्चामूल, इन्द्रजी, कटुकी, सोंठ, विलोय इरण दो-दो मास लेकर आधे प्रथ ( ३२ तोला ) पानी में क्वाथ विधि से काढ़ा तैयार करे यानी जब चौथाई शेष रहे तो उसे उतारकर ठण्डा कर ले फिर उसे धानकर उसमें पार तोले शर्द मिला ले यह दो ग्राहक है । इसका साठ पत्र ( एक गुण अथवा उष्णता के समय को एक पल कहते हैं ) रग्ये रहने के बाद दो बार में पी ले । इसके सेवा करने से ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ १२०-१२४ ॥

ग्रामज्वरादि ।

ग्रामज्वरान्धिकमुस्ततिप्रदरीतर्षभिः  
कथितः कपायः । सामे सशूले कफाना-  
युक्ते ज्वरे हितो टीपनपाचनदच ॥ १२५ ॥

अमिलनास का गूदा, पिपरामूल, नागरमोधा कुटकी और हरक ये सब मिलकर २ तोले, पाकार्थ जल १६ तोले शेष ४ तोले । यदा इमं पात का

ध्यान रखना चाहिये कि अमिलतास का गूदा पहिले न डाले, किन्तु अन्य औषधों को जल में डालकर क्वाथ तैयार करे, पश्चात् उसमें अमिलतास के गूदा का चूर्ण डालकर पान करे । यह क्वाथ अग्निदीपक और आमदोषा का पाचन है अतः आमदोष और शूलयुक्त वातरलेप्स ज्वर में लाभदायक होता है ॥ १२५ ॥

क्षुद्रादि ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः कपायः  
कफमारुतोत्तरे । सश्वासकासारुचिपार्श्व-  
रुग्ज्वरे ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ॥ १२६ ॥

छोटी कटेरी, गिलोय, सोंठ और पुहकरमूल ये सब मिलकर २ तोले हों । १६ तोले जल में पकाकर ४ तोले शोष रहने पर पान करना चाहिये । वातरलेप्सज्वर में, श्वास, कास, अरुचि, पमलियों में पीड़ा रहने पर और सान्निपातिक ज्वर में यह क्वाथ लाभदायक है ॥ १२६ ॥

दशमूली क्वाथ ।

दशमूलोरसः पेयः कणायुक्तः कफा-  
निले । अविपाकेऽतितन्द्रायां पार्श्वरुक्-  
श्वासकासके ॥ १२७ ॥

खेल की छाल, श्योनाक की छाल, खंभारी की छाल, पाइरि की छाल, अरनी की छाल, सरिपन, पिठपन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी और मोथुर ये कुल मिलकर २ तोले हों, ३२ तोले जल में पकाकर ८ तोले जल शोष रहने पर उममें ३ मासे छोटी पीपर का चूर्ण डालकर पान करना चाहिये ।

इसमें वातरलेप्सज्वर, चक्षुष्य, अतितन्द्रा, पारश्वरुक्, श्वास और कास ये सब रोग नष्ट होने हैं ॥ १२७ ॥

मुस्तादि क्वाथ ।

मुस्तपर्पटदुःस्पर्शगृह्णीवित्रमेपजम् ॥ कफ-  
वातारुचिर्द्धिदाहशोषज्वरापहम् ॥ १२८ ॥

१ दशमूल में सब चीजों की पिसेपनवा बड़े धूपों के रस की छान सेनी चाहिये ।

मोथा, पित्तपापडा, दुरालभा, गिलोय, सोंठ इनका काटा चात-कफज्वर, अरुचि, कै, दाह तथा शोष को शीघ्र नाश करता है ॥ १२८ ॥

अथ सन्निपातज्वरचिकित्सा ।

सन्निपातज्वर में प्रथम कर्तव्य ।

लंघनं बालुकाश्वेदो नस्यं निष्ठीवनं  
तथा । अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं  
त्रिदोषजे ॥ १२९ ॥

त्रिदोषज अर्थात् सान्निपातिक ज्वर में पहले लंघन, बालुकाश्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह और अञ्जन का प्रयोग करना चाहिये । ये सब विषय आगे विस्तृतरूप में यतलाये जायेंगे ॥ १२९ ॥

सन्निपातज्वर में विधि ।

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादापकपापहम् ।  
पश्चात् श्लेष्मणि संज्ञीणे शमयेत् पित्त-  
मारुतो ॥ १३० ॥

सन्निपातज्वर में पहले अपरिपक्व अन्नरस और कफ को दूर करके पश्चात् पित्त और घात की शान्ति करनी चाहिये ॥ १३० ॥

लंघन ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि  
वा । लंघनं सन्निपातेषु कुट्याद्धारोग्यदर्श-  
नान् ॥ १३१ ॥ दोषाग्नामेव सा शक्तिर्लंघने  
या महिष्णुता । न हि दोषक्षये कश्चिन्  
सहते लंघनादिकम् ॥ १३२ ॥

सन्निपातज्वर में तीन दिन, पांच दिन चक्षुष्य दश दिन पर्यन्त उपवास करना चाहिये । तात्पर्य यह कि जब तक धारोग्य न हो जब तक उपवास आवश्यक है । जब तक उपवास गहन हो तभी तक दोषों की शक्ति जाननी चाहिये । दोषों के नष्ट होने पर कोई उपवास चादि गहन नहीं कर सकता ॥ १३१-१३२ ॥

स्वेद ।

न स्वेदव्यतिरेकेण सन्निपातः प्रशाम्यति । तस्मान्मुहुर्महुः कार्यं स्वेदनं सन्निपातिनाम् ॥ १३३ ॥ सन्निपाते जलमयो नराणां विग्रहो भवेत् । विना वह्न्युपचारेण कस्तं शोषयितुं क्षमः ॥ १३४ ॥ प्रयोगा वह्नः सन्ति सविपा निर्विपा अपि । वह्न्युपमाणं विना प्रायो न वीर्यं दर्शयन्ति ते ॥ १३५ ॥ प्रतिक्रियाविधावेवं यस्य संज्ञा न जायते । पादतले ललाटे वा दहेल्लोहशलाकया ॥ १३६ ॥

स्वेदिक्रिया के बिना सन्निपात शान्त नहीं होता, अतः सन्निपातरोगी को ज्वर में बारंबार स्वेदन कराना चाहियं । सन्निपात में मनुष्यों का शरीर जलमय हो जाता है; अतः अग्निक्रिया के अतिरिक्त कौन उसका शोषण कर सकता है? विषयुक्त तथा विपरहित बहुत प्रकार के प्रयोग ( नुसखे ) हैं, किन्तु, अग्निताप के बिना उनकी शक्ति प्रायः सफल नहीं होती । नाना प्रकार के उपाय करने पर भी जो चैतन्य न हो ( होश में न आवे ) उसके पैर के तलभाग ( तरवा ) में अथवा ललाट में आग में सुखे लोह की शलाका से जला देना चाहिये ॥ १३३-१३६ ॥

स्वेदनिषिद्ध काल ।

लौहित्ये नेत्रयोर्धान्तौ प्रलापे मूर्द्ध चालने । न स्वेद शुभटो ज्ञेयस्तत्र शीतक्रिया हिता ॥ १३७ ॥

नेत्रों में लालिमा, धमन, प्रलाप और शिर का संचालन ( डधर डधर पटकना ) ये सब लक्षण उपास्थित होने पर स्वेदिक्रिया करना उचित नहीं । ऐसी अवस्था में शीतल उपचार करना लाभदायक है ॥ १३७ ॥

टिप्पणी—स्वेदन का विधान बलवान रोगी के लिए है । जिसे ज्वर अधिक न घात कफ प्रयत्न और पिपासीण हो अन्य रोगी को आजकल स्वेदन वर्ज्य मानकर रहता है ।

अथ नस्यम् ।

सैधवादि नस्य ।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्पपं कुष्ठमेव च । वस्तमूत्रेण सम्पिप्य नस्यं तन्द्राविनाशनम् ॥ १३८ ॥

सैधानोन ( लाहारी नोन ), सफेद मिरच, पीली सरसों और कूट इन सब औषधों को समभाग लेकर बररा के मूत्र में पीस कर नस्य देने से सन्निपातरोगी की तन्द्रा नष्ट होती है ॥ १३८ ॥

टिप्पणी—नस्य कर्म भी बलवान कफ प्रधान रोगी को करना चाहिए । बेहोशी तन्द्रा की स्थिति में नस्य करना लाभदायक हो सकता है सदैव नहीं करना चाहिए ।

मधूकसारादि नस्य ।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोपणकणाः समाः । श्लक्ष्णं पिष्ट्वाभसा नस्यं कुर्यात् संज्ञाप्रबोधनम् ॥ १३९ ॥

मधुआ के फूल की केसर, सैधवलवण, घुङ्गच, मरिच और छोटी पीपर इनको समभाग लेकर पानी के साथ महीन पीसकर नस्य देने से रोगी को चैतन्यलाभ होता है ॥ १३९ ॥

पङ्गन्थ्यादि नस्य ।

पङ्गन्थिसैन्धवकणाः समधूकसाराः । पिष्ट्वाः समेन मरिचेन जलैः कटुप्यैः । नस्यं निवारयति शीघ्रमचेतनत्वं तन्द्रामलापसहितं शिरसो गुरुत्वम् ॥ १४० ॥

पिपरामूल, सैधवलवण, छोटी पीपर और मधुआ के फूल की केसर ये सब समभाग हों तथा इन सबके समान बाली मिरिच लेकर सबको एकत्र करके जल के साथ पीसकर किंचित उष्ण करके नस्य देने से रोगी को शीघ्र चैतन्यता प्राप्त होती है ; तथा तन्द्रा, प्रलाप और मस्तक का भारीपन ये सब दूर हो जाते हैं ॥ १४० ॥

लशुनादि नस्य ।

लशुनं मरिचं पिष्टं नस्यं स्यात्  
श्लेष्मनाशनम् ॥ १४१ ॥

समभाग लहसुन और कालीमिरिच को पीस-  
कर नस्य देने से कफ का नाश होता है ॥ १४१ ॥  
काली मुर्गी के अण्डे के जल से नस्य आदि।

शितिकुक्कुटिकाण्डजजलं पानात्  
नस्यादप्यञ्जनाच्च । दुःसाधनसन्निपातः  
प्रबलोऽप्याश्वेव शममेति ॥ १४२ ॥

काली मुर्गी के अण्डे के जल का अर्थात्  
अण्डा के भीतर के गोले अंश का पान नस्य  
और अञ्जन करने से प्रबल, दुःसाध्य  
सन्निपात भी शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ १४२ ॥

अथ निष्ठीवनम् ।

आर्द्रकादि निष्ठीवन ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकुटत्रयम् ।  
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः  
पुनः ॥ १४३ ॥ तेनास्य हृदया-  
च्छ्लेष्मामन्यापार्श्वशिरोगलात् । लीनो  
व्याकृष्यते शुष्को लाघवञ्चास्य जा-  
यते ॥ १४४ ॥ पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा  
निद्राकासगलामयः । मुखान्तिगौरवं  
जाड्यप्लुक्लेदश्चोपशाम्यति ॥ १४५ ॥  
सकृद्द्वित्रिचतुः कुर्याद् दृष्ट्वा दोषबला-  
बलम् । एतद्दि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपाति-  
नाम् ॥ १४६ ॥

सैनाोन, सोंठ, पीपर और याली मिरिच  
इनका समभाग चूर्ण लेकर अदरक के रस में  
मिलाकर गले तक करके मुल में धारण करे  
और कुछ देर पर्याप्त धूँक देवे ; इसी प्रकार  
बारंबार धारण करे और धूँके । इस क्रिया से  
दृश्य, मन्या, पसली, मातृक और गला इनमें  
घटा हुआ अत्यन्त गाढ़ा और शुष्क कफ निकल

आता है, इससे रोगी का शरीर हलका हो जाता  
है, और पसलियों की पीड़ा, उतर, मूर्च्छा,  
निद्रा, काम, गले के रोग, मुख और नेत्रों का  
भारीपन, जड़ता, उबकाई, आना ये समस्त  
विकार अच्छे हो जाते हैं । द्रोणों का बलाबल  
देखकर एक बार, दो बार, तीन बार अथवा  
चार बार इस निष्ठीवन ( धूँकने की ) क्रिया को  
करना चाहिये । यह सन्निपात रोगियों के लिये  
महोपध है ॥ १४२-१४६ ॥

टिप्पणी—बलवान को दे मूर्च्छित रोगी को  
न दें ।

अथावलेह

अष्टाङ्गावलेहिका ।

कटफलं पौष्करं भृङ्गी व्योषं यासश्च  
कारवी । श्लक्ष्णचूर्णकृतं चैतत् मधुना  
सह लेहयेत् ॥ १४७ ॥ एषावलेहिका  
हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । हिकां श्वासं  
च कासं च कण्ठरोधं नियन्वति ॥ १४८ ॥  
ऊर्ध्वगश्लेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकर्मणि ।  
विरोधुष्णे मधु त्यक्त्वां कार्यैर्पार्द्रकजै  
रसैः ॥ १४९ ॥

कायफल, पुहकारमूल, काकदासिगी, सोंठ,  
पीपर, मिरिच, जरासा और काला जीरा इनका  
महीन चूर्ण बनाकर मधु के साथ घाटने से  
घोर सन्निपात, हिचकी, श्वास, काम और कण्ठ-  
रोग अच्छा होता है । ऊर्ध्व स्थान में अर्थात्  
छाती और गले आदि में प्राप्त हुये कफ को  
निकालने के लिये उष्ण स्वेदनादि क्रिया करनी  
हो तो मधु न डालकर उसके स्थान में अद-  
रक का रस डालकर इस अवलेह को बनाना  
चाहिये । कारण यह कि मधु उष्ण क्रिया का  
विरोधी है ॥ १४७-१४९ ॥

अथ अञ्जनम् ।

शिरिषादि अञ्जन ।

शिरिषोपौनगोमूत्रकृष्णामरिच सैन्धव्यः



अञ्जन स्यात् प्रबोधाय सरसोनशिला-  
वचैः ॥ १५० ॥

सिरस के बीज, छोटी पीपर, कालीमिरिच, सेंधानोन, लहसुन, मैनासिल और बच इनको गोमूत्र में महीन पीसकर आँखों में अञ्जन (आजन) करने से सन्निपात का रोगी होश में आ जाता है ॥ १५० ॥

विडञ्जन ।

असुराहपतङ्गस्य विट्चूर्णं मधुसयुतम् ।  
अञ्जनाद् बोधयेन्मुग्ध तन्द्रितं सन्निपाति-  
नम् ॥ १५१ ॥

तेलनी कीड़ा के विष्टा का चूर्ण मधु में मिलाकर मोह और तन्द्रा से युक्त सन्निपात के रोगी को अञ्जन करना चाहिये ॥ १५१ ॥

दशमूल काथ ।

विल्वशयोणाकगाम्भारी पाटलागणि-  
कारिका । दीपनं कफवातध्नं पञ्चमूलमिदं  
महत् ॥ १५२ ॥ शालपर्णी पृश्निपर्णी  
वृहतीद्वयगोक्षुरम् । वातपित्तापहं वृष्यं  
कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ १५३ ॥ उभय  
दशमूल हि सन्निपातज्वरापहम् । कासे  
श्वासे च तन्द्रायां पाण्डुशूले च शस्यते ।  
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्भ्रूजश-  
नम् ॥ १५४ ॥

विल्व, भ्रूरलू, खभारी, पादल और धरनी मूल को छाल को एकत्रित करने से बृहत्पञ्चमूल कहा जाता है । यह कफ और वात का नाशक तथा अग्नि का दीपक है । सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोलुरु ये स्वल्प पञ्चमूल हैं । ये वातपित्तनाशक और वीर्यवर्धक होते हैं । दोनों प्रकार के पञ्चमूल एकत्रित होने पर दशमूल कहे जाते हैं ।

२ तोले दशमूल को १६ तोले जल में पकाकर ४ तोले शोष रहने पर उसमें १२ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने से सन्निपातज्वर, कास, श्वास, तन्द्रा, पतलियों की पीड़ा तथा

कण्ठ और हृदय की वेदना ये सब कष्ट दूर हो जाते हैं ॥ १५२-१५४ ॥

चतुर्दशान्कवाथ ।

चिरज्वरे वातकफोत्पत्ते वा त्रिदोषजे वा  
दशमूलमिश्रः । किराततिक्कादिगणः प्रयो-  
ज्यः शुद्धचर्चिने वा त्रिवृतादिमिश्रः १५५

दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ ये १४ द्रव्य एकत्रित कर २ तोले वजन में लेकर ३२ तोले जल में पकाकर २ तोले जल शोष रहने पर पान करें । इससे पुराना ज्वर, वातरलेपप्रधान ज्वर और सान्निपातिक ज्वर शान्त होते हैं ।

यदि मल के शोषण करने की इच्छा हो तो इसी वाथ में ३ या ४ मासे निसोथ का चूर्ण मिलाकर पान करना चाहिये ॥ १५५ ॥

भूनिम्बाद्यष्टादशान्कवाथ ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधान्दतिक्तेन्द्र-  
वीजधनिकेभक्काकपाय । तन्द्रामलाप-  
कसनासुचिदाहमोहरनासाटियुक्तमखिलं  
ज्वरमाशु हन्ति ॥ १५६ ॥

चिरायता, देवदार, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया और गजपीपर ये सब मिलकर २ तोले, जल ३२ तोले, शोष २ तोले । इस कवाथ का पान करने से तन्द्रा, प्रलाप, कास, अग्नि, ट्राह, मोह और श्वास आदि समस्त उपद्रवों सहित प्रत्येक प्रकार का ज्वर शीघ्र अच्छा हो जाता है ॥ १५६ ॥

बृहत्यादि गण ।

बृहत्याँ पौष्करं भार्गी गर्गी शृङ्गी  
दुरालभा । कनकस्य च बीजानि पटोलं  
कजुरोहिणी ॥ १५७ ॥ बृहत्यादिगणः  
प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः । कासादिषु च  
सर्वेषु हितः सोपद्रवेषु च ॥ १५८ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, पुष्करमूल, भार्गी, शृङ्गी, कान्कासिनी, दुरालभा, निर्मली के बीज,

इन्द्रजौ, पटोलपत्र, कटुकी, इनका काढा खासी, श्वास लक्ष्णों के महित सन्निपातज्वर पर परम हितकर है ॥ ११७-१२८ ॥

शब्द्यादि वर्ग ।

शटी पुष्करमूलञ्च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा । गृद्धुची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ १५६ ॥ एष शब्द्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपाश्वर्ति-श्वासे तन्द्रयां च शस्यते ॥ १६० ॥

शटी, पुष्करमूल, छोटी कटेरी, काकडासिगी, दुरालभा, गिलोय, सोंठ, पादा, चिरायता, कुटकी यह काढा सन्निपातज्वर, खाँसी, पाँवों में दर्द, श्वास, तन्द्रा ( बेहोशी ), हृद्ग्रह आदि रोगों में लाभकारी है ॥ १५६-१६० ॥

मुस्ताद्यष्टादशाङ्ग क्वाथ ।

मुस्तापिप्टिकोशीरदेवदारुमहौषधम् । त्रिफला धन्वयासश्च नीली कम्पिल्लकं त्रिवृत् ॥ १६१ ॥ किराततिक्कं पाठा दला कटुरोहिणी । मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ १६२ ॥ अष्टादशाङ्गमदितमेतद्वा सन्निपातजुत् । पित्तोत्तरे सन्निपातेहितं चोषतं मनीषिभिः । मन्यास्तम्भ उरोघात उरःपार्श्वशिरो-ग्रहे ॥ १६३ ॥

मोधा, पित्तपापदा, म्वस, देवदार, सोंठ, हरद, बहेदा, चाँवला, दुरालभा, नीली, कमीना, निशोध, चिरायता, पाठा, यलामूल, कुटकी, मुलहठी, पिप्पलीमूल । इस काढ़े का नाम मुस्ता-दिगण क्याथ है, यह पित्तप्रधान सन्निपातज्वर को शीघ्र नष्ट करता है और शिरोग्रह ( सिरदर्द ) पार्श्वग्रह ( पसलियों में शूल ), उरोग्रह ( हृदय-शूल ), उरोघात, मन्यास्तम्भ आदि में भी सेवन किया जा सकता है ॥ १६१-१६३ ॥

घातश्लेष्मद्वरोऽष्टादशाङ्ग क्वाथ ।

दशमूनी शटी शृङ्गी पाँवरं सदुराल-

भम् । भार्गी कुटजवीजञ्च पटोलं कटुरो-हिणी ॥ १६४ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपाश्वर्ति-श्वासहिक्कावमीहरः ॥ १६५ ॥

दशमूल, शटी, काकडासिगी, पुष्करमूल, दुरालभा, भार्गी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, कटुकी, इनका यथाविधि बनाया हुआ काढा सन्निपात-ज्वर, खाँसी, पार्श्वशूल ( पसलियों में दर्द ), हृद्ग्रह, श्वास, हिक्का, वमन आदि को दूर करता है ॥ १६४-१६५ ॥

सन्निपात में पथ्य ।

पञ्चमुष्टिकयूपेण त्रिकण्टककृतेन वा । आटोपशमनात्पथ्यं त्रिकण्टकेनैव साधयेत् ॥ १६६ ॥

पञ्चमुष्टिक का यूप अथवा छोटी कटेरी, दुरालभा तथा गोखरु इन तीनों से बनाया हुआ यूप या इन तीनों से पृथक् पृथक् सन्निपातज्वर में दोनों को कम करने के लिए पथ्य का आयोजन करे ॥ १६६ ॥

पञ्चमुष्टिक यूप ।

यवकोलकुलत्थानां मद्गमूलक-शुण्ठयोः । एकैकमुष्टमाहत्य पचेदष्टगुणे जले ॥ १६७ ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वात-पित्तकफापह शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे च शस्यते ॥ १६८ ॥

जौ, भेर ( बदर ) कुलाधी, मूँग, चाँवला, इन सबको अलग-अलग एक-एक पल लेकर अठगुने पानी में पाक के लिये चढ़ा दे । जब आधा पानी जल जाये तो उतार ले । यह यूप त्रिदोष-नाशक है और शूल, श्वास, खाँसी तथा गुल्म में भी हितकारी है । अग्न्य मत्तों के आघार पर मुष्टिशब्द का अर्थ मुठी भर है ॥ १६७-१६८ ॥

घातुर्भद्रक पञ्चमूल ।

पञ्चमूनी किरातादिर्गणे योज्यादिदो-

पजे । पिचोत्कटे च मधुना कणया च कफोत्कटे ॥ १६६ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, शालपर्णी पृष्ठपर्णी और गोखरू इसे स्वल्प पञ्चमूल कहते हैं । इसे पिचप्रधान सन्निपातज्वर में ठ और यदि कफप्रधान हो तो बृहत्पञ्चमूल अर्थात् चिला अरणी, मोनापाठा, पाडल, गम्भारी के साथ मोथा, सोंठ, चिरायता तथा गिलोय मिश्रणकर इनका काटा थिराड़े हुए पैत्तिक सन्निपात में शब्द के साथ और भयकर श्लेष्मिक सन्निपात में पीपल के साथ प्रयोग करे ॥ १६६ ॥

अभिन्यास का लक्षण ।

निद्रोपेतमभिन्यासक्षीणं विद्याद्व्रतौजसम् । सन्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्तं न बृंहयेत् ॥ तृष्णादाहाभिभूनेषु न दद्याच्छीतलजलम् ॥ १७० ॥

सन्निपातज्वर में कम्प, प्रलाप, अधिक नींद का आना और अजीर्नाश होने पर रोगी को अभिन्यासज्वर प्राप्त हुआ है ऐसा ज नना । ऐसी अवस्था में दुग्ध आदि बृंहण पदार्थ आहार के लिये न देना चाहिये । तृष्णा और दाह आदि से पीडित अभिन्यास रोगी को शीतल जल देना हानिकारक है ॥ १७० ॥

१ यद्यपि अभिन्यासघोर हतौजसये दो रोग हैं अतएव अधिक नींद आने पर अभिन्यास और अजीर्नाश होने पर हतौजस जानना इस प्रकार अर्थ करना चाहिये । तथापि जितनी पुम्बके उपलब्ध होती है उनमें 'अभिन्यासक्षीण' इस समस्त पाठका होना और हतौजस की चिकित्सा न लिखकर केवल अभिन्यास ही की चिकित्सा लिखना इन दोनों बातों से प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने हतौजस को भी अभिन्यास ही में गतार्थ मानकर 'हतौजसम्' को अभिन्यासक्षीण का विशेषण माना है । नहीं तो केवल इस चिकित्साप्रधान ग्रन्थ में किसी रोग का विशेषरूप से लक्षण लिखकर उसकी विशेषतया चिकित्सा न लिखना असंगत होता, अतएव मैंने यही ही व्याख्या की है । कपिराज विनोदलाल सेन ने भी ऐसी ही व्याख्या की है ।

कारव्यादि क्वाथ ।

कारवीपुष्करैरएडत्रायन्तीनागरामृताः । दशमूली शयी भृङ्गी यासभार्गी पुनर्नवा ॥ १७१ ॥ तुल्या मूत्रेण निःकाथ्यपीताः स्रोतोविणोधनाः । अभिन्यासज्वरं योग्माशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ १७२ ॥

कलौंजी, कूट, परबट का मूल, त्रयमाण, सोंठ, गुरच, दशमूल, कचूर, काकड़ासिगी, जवासा, भारसी और गदहपुरीना, ये सब मिल कर २ तोले हों इनको ३२ तोले गोमूत्र में पकाकर ८ तोले शेष रहने पर पान करना चाहिये । इस क्वाथ के पान करने से कुल नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं और अत्यन्त घोर अभिन्यास ज्वर नष्ट होता है ॥ १७१-१७२ ॥

वातपित्ताधिभ्य मं पुरातन घृताभ्यङ्ग ।

वातपित्तोत्पण्णे चैव घृतं योज्यं पुरातनम् । अभ्यङ्गात् शमयत्याशु सन्निपातं मुटारुणम् ॥ १७३ ॥

वातपित्तप्रधान सन्निपातज्वर में पुराने घृत से अभ्यङ्ग ( मालिश ) कराना चाहिये । इससे अत्यन्त तीव्र सन्निपातज्वर शीघ्र शान्त होता है ॥ १७३ ॥

स्वेदोद्गम मं विधि ।

स्वेदोद्गमे जग्ने देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थजः ॥ १७४ ॥

सन्निपातज्वर में यदि बहुत अधिक पसीना आये तो मुनी हुई कुलथी के चूर्ण का सर्वाङ्ग में मर्दन करे ॥ १७४ ॥

सन्निपात में कर्णमूलशोध ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूलेमुटारुणः । शोधः सञ्जायते तेन कटिचदेव प्रमुच्यते ॥ १७५ ॥

सन्निपातज्वर के अन्त में कर्ण ( कान ) की त्रई में अल्पभूत भयङ्कर मूत्रन शीघ्र उपाय

होती है, उससे कदाचित् कोई ही मनुष्य बचता है ॥ १७५ ॥

कर्णमूल शोथ की साध्यता आदि ।

ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः । क्रमेण साध्यः खलु कृञ्चसाध्यस्ततस्त्वसाध्यः कथितो भिषग्भिः ॥ १७६ ॥

ज्वर के प्रारम्भ काल ही से यदि कर्णमूलशोथ होती साध्य, ज्वर के मध्यकाल में उत्पन्न हुआ हो तो कृञ्चसाध्य और ज्वर के अन्त में उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य जानना ॥ १७६ ॥

कर्णमूलशोथ-चिकित्सा ।

रक्तावसेचनैः पूर्वं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत् । प्रदेहैः कफवातघ्नैर्वमनैः कवल-ग्रहैः ॥ १७७ ॥

कर्णमूलशोथ होने पर पहिले जोंक लगाकर वहाँ का रक्त निकलवाना चाहिये । परचात् पञ्चतित्र घृत अथवा त्रिफलाघृत आदि पान कराने चाहिये । तथा वातकफनाशक लेप, वमन और कवलग्रह का प्रयोग करना चाहिये ॥ १७७ ॥

कुलत्थादि प्रलेप ।

कुलत्थकट्फले शुण्ठी कारवी च समांशिकैः । सुखोष्णलेपनं दद्यात् कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ १७८ ॥

कुलथी, कायफल, सोंठ, कर्लीजी इनको पानी में पीसकर धोड़ा उष्ण करके कर्णमूल के शोथ पर बारबार लेप करे ॥ १७८ ॥

नेत्रिकादि प्रलेप ।

नेत्रिकं पांशुजं शुण्ठी वचा कट्फल काञ्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपात-ज्वरे नृणाम् ॥ १७९ ॥

गेहू, सज्जी ( सोरा ), माठ, वष और कायफल इनको कर्लीजी में पीसकर लेप करने से सन्निपात-ज्वर का कर्णमूलशोथ शान्त होता है ॥ १७९ ॥

दशमूल प्रलेप ।

सुखोष्णदशमूलेन प्रलेपोऽपि महाफलः ॥ १८० ॥

दशमूल को पानी में पीसकर सुखोष्ण अर्थात् सहन करने के योग्य उष्ण करके लेप करना कर्णमूलशोथ में अत्यन्त लाभदायक होता है ॥ १८० ॥

बीजपूरादि प्रलेप

बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थं तथैव च । सनागरं देवदारुचव्यचित्रकपेपितम् ॥ प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं गले श्वयथु-नाशनम् ॥ १८१ ॥

बिजौरि नाँवू का मूल, अरनी, सोंठ, देवदारु, चव्य और चीता इनको पानी में पीसकर किंचित् उष्ण करके लेप करने से गले का शोथ ( सूजन ) नष्ट होता है ॥ १८१ ॥

अथ जीर्णज्वरचिकित्सा ।

निदिग्धिकादि काथ ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां काथं पिवे-न्मिश्रितपिप्पलीकम् । जीर्णज्वरारोचकक्वा-सशूलश्यासाग्निमान्धादितपीनसेपु १८२ हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयु-ज्यते ॥ १८३ ॥ एतद्रात्रिज्वरे सायमन्यत्र प्रातरिष्यते । पित्तानुबन्धे सन्त्यज्य पिप्पलीं प्रक्षिपेन्मधु ॥ १८४ ॥

छोटी कटेरी, सोंठ और गिलोय कुल मिल-कर २ तोले, पाकाथं जल ३२ तोले, शेष ८ तोले रहने पर उसमें २ मासे पीपर का शूर्ण मिलाकर पान करने से जीर्णज्वर, अरुणि, काग, शूल, रवास, अग्निमान्ध, अर्दित और योगत रोग शान्त होते हैं । इस काथ को उत्पगत रोग निवारण के लिये राधकाल में सेवन करना चाहिये ।

रात्रिज्वर में इस ऋथ का सायंकाल में सेवन और दिन के ज्वर में प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । पित्तसम्बन्धी ज्वर में पीपर के चूर्ण के स्थान में मधु मिलाकर पान करना चाहिये ॥ १८२-१८४ ॥

मुष्टियोग ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः काथश्छन्नरुहो-  
द्भवः । जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलीकृतो-  
ऽथवा ॥ १८५ ॥ पिप्पलीमधुसंमिश्रं  
गुडुचीम्वरसपिवेत् । जीर्णज्वरकफप्लीह-  
कासारोचकनाशनम् ॥ १८६ ॥

गिलोय २ तोले, पाकार्थ जल ३२ तोले  
शेष ८ तोले, इसमें २ मासे छोटी पीपर का  
चूर्ण डालकर पीना चाहिये । इससे जीर्णज्वर  
नष्ट होता है ।

बेल, अरलू, खंभारी, गड़रि और अरनी  
इनकी सब छाल मिलाकर २ तोले, जल ३२  
तोले, शेष ८ तोले, उसमें २ मासे छोटी पीपर  
का चूर्ण मिलाकर पान करने से जीर्णज्वर और  
कफ नष्ट होता है ।

गिलोय का स्वरस, पीपर का चूर्ण और मधु  
इन तीनों को एकत्रित कर सेवन करने से जीर्ण-  
ज्वर, कफ, प्लीहा, कास और अरुचि ये कुल  
उपद्रव दूर होते हैं ॥ १८२ १८६ ॥

अथ स्नीहज्वर में निद्रिग्धिकादि ऋथ ।

निद्रिग्धिकागणः पथ्यः तथा रोहित-  
कत्यचः । काथं कृत्वा क्षिपेत्तत्र यवक्षारे  
कणायुतम् ॥ एतस्य पानमात्रेण प्लीहज्वर-  
विनाशनम् । निद्रिग्धिकागणः स्रवपञ्च-  
मूलं निगद्यते ॥ १८७ ॥

गालपर्णी, वृष्टपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी  
गोमुख, हरं, रेहटा की छाल ये सब  
मिलकर २ तोले, जल १६ तोले, शेष ४ तोले  
उसमें २ मासे यवक्षार ( जवाखार ) और २ मासे  
छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करना

चाहिये । इस ऋथ के पीने में ज़ीहा और ज्वर  
नष्ट होते हैं । स्वल्प पञ्चमूल को हा निद्रिग्धि-  
कागण कहते हैं ॥ १८८ ॥

चिरज्वरादिकों में योग ।

अस्थिकर्कटपञ्चाङ्गं शुण्ठ्या चिरज्वर-  
मणुत् ॥ १८९ ॥

अस्थिकर्कटस्य हाडकांकडा इति ख्यातस्य  
मूलपत्रकलपत्रपुपफल मनुद्य पोटीनी बद्ध्वा  
दग्ध्वा तालकद्वयमित रस गृहीत्वा स्वरुपया  
शुण्ठ्या पेयम् ॥

ताडकांकडा का पञ्चाङ्ग अर्थात् मूल, छाल,  
पत्र, पुप और फल को कूटकर पोटीनी बांध कर  
जला लेंवे, उसमें निकला हुआ रस २ तोले  
उसमें १॥ मासे सोंठ मिलाकर पान करने से  
बहुत काल का पुराना ज्वर शांत हो जाता  
है ॥ १८९ ॥

विपमज्वरचिकित्सा ।

मधुना सर्वज्वरणुत् शेफालीदलजो  
रसः ॥ १९० ॥

निर्गुण्ठी की पत्तियों के २ तोले रस में ३ मासे  
मधु मिलाकर पीने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट  
होते हैं ॥ १९० ॥

अजाजी गुडसंयुक्ता विपमज्वर-  
नाशिनी । अग्निसादं जयेत्सम्यक्वात-  
रोगांश्च नाशयेत् ॥ १९१ ॥

म्याह जीरा का चूर्ण ३ मासे उसमें १ मासे  
पुराना गुड मिलाकर सेवन करने से विपमज्वर  
अग्निमान्य और वातरोग शान्त होते हैं ॥ १९१ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं

योऽश्नाति नित्यं विपमज्वरार्चः ।

विमुच्यते सोऽप्यचिरात् उत्तरेण

वातामयैश्चापि मुघोररूपः ॥ १९२ ॥

सहस्रानु की पीपरर मूल के मूल में भूनकर  
१ तोला परिमित प्रतिदिन सेवन करने से शीघ्र

विषमज्वर और अतिघोर वातरोग शान्त होते हैं ॥ १६२ ॥

गुडमगाढां त्रिफलां पिवेद्वा विषमा-  
र्दितः ॥ १६३ ॥

आँबला, हरं और बहेडा इनका छिलका कुल मिलाकर २ तोले छेवे, १६ तोले जल में पकावे, ४ तोला जल शेष रहने पर ६ मासे पुराना गुड छोड़कर पान करे । इससे विषमज्वर शान्त होता है ॥ १६३ ॥

कषायपञ्चकम् ।

कलिङ्गका पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ।  
पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरो-  
हिणी ॥ १६४ ॥ निम्बं पटोलं मृद्वीका  
त्रिफलां मुस्तवत्सकौ । किराततिक्रममृता  
चन्दनं विश्वभेषजम् १६५ गुडूच्यामलकं  
मुस्तमर्द्धश्लोकसमापनः । कषायाः  
शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधं ज्वरम् १६६

( १ ) इन्द्रजी, पटोलपत्र, कटुर्वा इनको दो-  
तोले लेकर सोलह तोले जल में पकावे, शेष  
चार तोले रहे ।

( २ ) पटोलपत्र, अमन्तमूल, मोथा, पाठा,  
कटुर्वा, वजन दो तोला, यत्तीम तोले जल में  
पकावे, शेष आठ तोले रहे ।

( ३ ) नीम की छाल, पटोलपत्र, मुनका,  
दाग्य, हरद, बहेडा, आँबला, मोथा, इन्द्रजी  
वजन दो तोला, १६ तोले जल में पकावे, शेष  
४ तोले रहे ।

( ४ ) किरायणा, गिलोय, सालचन्दन, सोंठ  
वजन दो तोला, १६ तोले जल में पकावे, शेष-  
४ तोले रहे ।

( ५ ) गिलोय, आँबला, मोथा, वजन दो  
तोला, १६ तोले जल में पकावे, शेष ४ तोले रहे ।  
उपयुक्त पाँचों काढ़े, मगन, मन्तन, अग्ने-  
शुष्क मृतीयक और अनुषुङ्क इन पाँचों तरह के  
विषमज्वरों को नष्ट करने हैं ॥ १६४-१६६ ॥

दीर्घपयःकर्मण्यं नेत्रं गटिरिमंयुतम् ।

ताम्बूलैस्तद्दिने भुक्तं प्रातर्विषमनाश-  
नम् ॥ १६७ ॥

कर्मण्यं वृत्त जो शुष्क स्थान पर पैदा होता है  
और जिसके पत्ते बड़े-बड़े होते हैं उसकी जड़  
के दूर्य को कथे के साथ पान में सुबह के समय-  
खाने से विषमज्वर को हरण करता है ॥ १६७ ॥

महौषधादि कषाय ।

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः । का-  
थस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः १६८

तृतीयके अत्यन्तसिद्धफलः ।

सोंठ, गुरुच, नागरमोथा, लाल चन्दन,  
खस और धनियाँ, सब मिलित २ तोले, पाकार्थ  
जल १६ तोले, शेष ४ तोले, उसमें १ मासे  
चीनी और दो मासे मधु मिलाकर पान करे ।  
इससे तृतीयकज्वर नष्ट होता है । यह काथ  
तृतीयकज्वर के लिये अत्यन्त अनुभूत है ॥ १६८ ॥

उशीरादि कषाय ।

उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्य-  
नागरम् । अम्भसा कथितं पेयं शर्करामधु-  
योजितम् ॥ ज्वरे तृतीयके देयं तृष्णादाह-  
समन्विते ॥ १६९ ॥

मधु, लाल चन्दन, नागरमोथा, गुरुच,  
धनियाँ और सोंठ, सब मिलाकर २ तोले,  
पाकार्थ जल १६ तोले, शेष ४ तोले रहने पर  
२ मासे ज्वर और २ मासे मधु मिलाकर  
पान करे । इससे तृष्णा और दाहसमेत तृतीयक-  
ज्वर शान्त होता है ॥ १६९ ॥

पेकाटिक ज्वर में पटोलादि कषाय ।

पटोलारिष्टमृद्वीका श्यामाकं त्रिफला  
वृषम् । काथ पेकाटिकं हन्ति शर्करामधु-  
योजितः ॥ २०० ॥

परबल के पत्ते, नीम की छाल, मुनका,  
श्यामायता, हरं, आँबला, बहेडा और अरुणो  
के मूष की छाल दो सब मिलकर २ तोले,  
पाकार्थ जल १६ तोले, शेष ४ तोले इसमें ज्वर ४

मासे, मधु २ मासे मिलाकर पान करे । इस काथ का सेवन करने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २०० ॥

चानुर्थिकज्वर में वासादि काथ ।

वासा धात्री स्थिरादारुपथ्यानागरसा-  
धितः । सितामधुयुतः काथश्चतुर्थकविना-  
शनः ॥ २०१ ॥

शरूमा का मूल, आमला, शालपर्णा, देन-  
दार, हरं, सोंठ, कुल मिलाकर २ तोले, जल  
१६ तोले, शेष ४ तोले, उसमें २ मासे शकर  
और २ मासे मधु मिलाकर पीने से चानुर्थिक  
ज्वर नष्ट होता है ॥ २०१ ॥

महायलादि काथ ।

महबलामूलमहौषधीभ्यां काथो निह-  
न्याद्विपमज्वरश्च । शीतं सकम्पं परिदाह-  
युक्तं विनाशयेद् द्वित्रिदिनप्रयुक्तः ॥ २०२ ॥

रुहेई का मूल १ तोला और सोंठ १ तोला  
इनको १६ तोले जल में पकाकर ४ तोले शेष  
रहने पर पान करे । इसका दो या तीन दिन-  
सेवन करने से शीत, कम्प और दाहयुक्त विपमज्वर  
नष्ट होता है ॥ २०२ ॥

रात्रिज्वर में गुहन्यादि श्रवाथ ।

गुडूची मुस्तभूनिम्बं धात्री चुट्टा च  
नागरम् । विल्यादिपञ्चमूलश्च कटुकैन्द्रय-  
वासकम् ॥ २०३ ॥ निशाभवं ज्वरं वात-  
कफपित्तसमुद्भवम् । चिगेत्थं द्रन्द्रजं दन्ति  
सकरणं मधुसंयुतम् ॥ २०४ ॥

गुरच, नागरमोथा, चिरायता, चांबला,  
कटेरी, सोंठ, बेल की छाल, अरलू की छाल,  
खंभारी की छाल, पादरि की छाल, अरनी  
की छाल, कुटकी, इन्द्रजौं और जवासा ये मिलाकर  
२ तोले, जल १६ तोले, शेष ४ तोले, इसमें  
१ मासे छोटी पीपर का चूर्ण और २ मासे  
मधु मिलाकर पान करे । इस काथ का सेवन  
करने से वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर इन्द्रज

ज्वर और बहुत पुराना रात्रिज्वर ( रात में  
आनेवाला ज्वर ) नष्ट होता है । २०३-२०४ ॥

मुस्तादि काथ ।

मुस्तामलकगुडूची विश्वौषधकण्टका-  
रिकाकाथः । पीतः सकणाचूर्णः समधुर्वि-  
पमज्वरं हन्ति ॥ २०५ ॥

नागरमोथा, चांबला, गुरच, मांड और  
कटेरी कुल मिलाकर २ तोले, पाकार्थ जल  
३२ तोले शेष ८ तोले, इसमें २ मासे छोटी  
पीपर का चूर्ण और २ मासे मधु मिलाकर  
सेवन करने से विपमज्वर नष्ट होता है ॥ २०५ ॥

बृहन्नार्यादि काथ ।

भार्गी पथ्या कडुः कुष्ठं पर्पटं मुस्तकं  
कणा । अमृता दशमूल च नागरं काथ-  
येद्विपक् ॥ २०६ ॥ दन्ति धातुगतं सर्वं  
वटिःस्थं शीतसंयुतम् । सतताद्यं ज्वरं घोरं  
मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ २०७ ॥ प्लीहान  
यकृतं गुल्मं शययुश्च विनाशयेत् । एष  
भाग्यादिको नाम सर्वज्वरहरःपरः ॥ २०८ ॥

भारंगी, हरं, कुटकी, कूट, पित्तपापका, नागर  
मोथा, पीपर, गिलोय, मोनापाठा, बेल, खंभारी,  
पादरि, अरनी, सारिवन, पिटवन, छोटी कटेरी,  
गोमुरु, सोंठ ये सब मिलाकर २ तोले, पकाने के  
लिये जल ३२ तोले, शेष ८ तोले । इस भाग्यादि  
काथ के पान करने से धातुगत मनतादि दाह्य-  
ज्वर, बहिर्वेग और शीतयुक्त ज्वर और चानुप-  
गिक ज्वर के उपद्रव, मन्दाग्नि, अग्नि, प्रीहा,  
यकृत, गुल्म और मोथ नष्ट होने हैं ॥ २०६-२०८ ॥

दास्यादि काथ ।

टासीदारुकलिद्रलोहित लताश्यामाक-  
पाठाशठी शुंठ्यांगीरकिरात कुञ्जरकणात्रा-  
यन्तिरूपवर्कः । वज्रीधान्यकनागरान्द्र-  
सरलै शिग्रम्बुसिंहीशिशाव्याधीर्पर्पटदर्भ-  
मूलकटुकानन्तामृतापुष्करैः ॥ २०९ ॥

धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं  
द्वैचाहिकं कामैः शोकसमुद्भवं च विविधं यं  
द्विदियुक्तं नृणाम् । पीतो हन्ति क्षयोद्भवं  
सततकं चातुर्यकं भूतजं योगोऽयं मुनिभिः  
पुरा निगदितो जीर्णज्वरं दुस्तरं ॥२१०॥

करमैला, पियावासा, टवदारु, इन्द्रजौ, रज्जीठ, काली मिर्चोष, पाड़ी, कचूर, मोंठ, खस, चिरायता, गजपीपर, त्रायमास्ता, पदमाख, सेंहुड, धनिया, सोंठ, नागरमोथा, धूपसरल, सेंजना की छाल, सुगन्धवाला, बडी कटेरी, हर, छोटी कटेरी पित्तपापडा, कुश की जड़, कुटकी, जनाला, गिलोय और कूट, कुन मिलकर २ तोले, पकाने के लिये जल १६ तोले, शेष ४ तोले । इस द्वाध का सेवन करने से धातुस्थ विषमज्वर, त्रिदोषज्वर, ऐकाहिकज्वर ( प्रतिदिनवाला ) द्वैचाहिक, कामज और गौज्वर, वमनसहितज्वर अथवा ज्वर, सततज्वर, चातुर्यक, भूतजन्यज्वर तथा दुस्तर जीर्णज्वर ये सब नष्ट होते हैं ॥२०६-२१०

मधुकादि काथ ।

मधुकं गुडूची तिल्ला एलापर्पटकं  
तथा । प्रत्येकं शाखमानेन तिल्लाया-  
अर्धशाणकम् ॥ २११ ॥ सार्धतोलकमेवञ्च  
स्वर्णपत्र्याश्च ग्राहयेत् । मत्स्यण्डिकाया-  
स्तोलश्च प्रक्षिप्य पाययेद्भिषक् ॥ २१२ ॥  
वातपित्तज्वरं घोरं नाशयेन्नात्र संशयः ।  
रसायनकृते चापि ज्वरो यश्च न ही-  
यते ॥ २१३ ॥ तं ज्वरं नाशयेत्तद्वृत्त-  
मिन्द्राणनिर्यथा ॥ २१४ ॥

मुज्रहटी, गिलोय, छोटी इलायची, पिन पापडा, हर एक द्रव्य चार मासे, कटुकी २ मासे, सनाय डेढ़ तोले, इनका काढा बनाकर एक तोला खाई टाबलर प्रयोग करने से अतयन्त प्रबल वातपित्तज्वर नाश होता है । जो ज्वर रसायनादि सेवन करने पर नहीं हटना यह इस काढ़े के प्रयोग करने से शीघ्र शान्त हो जाता

है जैसे कि इन्द्र के वज्र से वृक्ष नाश हो जाते हैं ॥ २११-२१४ ॥

धान्यकादि काथ ।

धान्यकं मधुकं रास्ना पथ्या द्राक्षा मधु-  
रिका । गुडूची पर्पटञ्चैव समभागाश्चकार-  
येत् ॥ २१५ ॥ स्वर्णपत्री सर्वतुल्या  
ग्राह्या वैद्येन धीमता । पचेदष्टपले तोये  
पलशेषेऽवतारयेत् ॥ २१६ ॥ मत्स्यण्डि-  
कायास्तोलश्च प्रक्षिप्य पाययेत्सुधीः । वात-  
पित्तज्वरं घोरं नाशयेन्नात्र संशयः ॥२१७॥

धनिया, मुलहठी, रास्ना, हरड, द्राक्षा, सौंफ, गिलोय, पित्तपापडा सबको मिलाकर वजन एक तोला ले, इनका काढा करके धाधा तोला खांड ऊपर से मिलाना चाहिए, इसको सेवन करने से भयंकर वातपित्तज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ २१५-२१७ ॥

मूलधारणादि प्रयोग ।

काकजट्टा चला श्यामा ब्रह्मदण्डी  
कृताञ्जलिः । पृश्निपर्यैष्यपामार्गस्तथा-  
भृङ्गरजोऽष्टमः ॥ २१८ ॥ एषामन्यतमं  
मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्रतः । रक्तसूत्रेण  
संवेष्ट्य वद्धमैकाहिकं जयेत् ॥ २१९ ॥

काकजंघा, खरैटी, श्यामलता ( सारिवा ), भारंगी, लजावती ( छुईमुई ), पिठवन, लटजीरा ( चिचिदा ) और भृंगराज अर्थात् अँगूरिया इनमें से किसी एक वृक्ष का मूल पुष्य नक्षत्र में लाकर लाल सूत में घेष्ट ( जपेट ) करके हाथ में बांधने से एकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २१८-२१९ ॥

अपामार्गजटाघाग्न्य ।

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्तत-  
न्तुभिः । बद्ध्वा वारं रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति  
तृतीयकम् ॥ २२० ॥

अपामार्ग अर्थात् लटजीरा ( चिचिदा ) के



मूल को सात रश्मि सूत्र में लपेटकर रविवार को कटि में बाँधने से तृतीयकज्वर भीघ्न नष्ट हो जाता है ॥ २२० ॥

उलूकपत्रधारण ।

उलूकदक्षिणं पत्रं सितसूत्रेण वेष्टयेत् ।  
वधनीयाद्दामकर्णे तु हरत्यैकाहिकं ज्व-  
रम् ॥ २२१ ॥

उलूक ( उल्लूक, उद् ) चिडिया का दाहिना पंख श्वेत सूत्र से लपेट कर बायें कान में बाँधने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २२१ ॥

ऐकाहिक ज्वर में तिलक ।

कर्कटस्य विलोद्भूतमृदा तत्तिलकं  
कृतम् । ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति नात्र कार्थ्या  
विचारणा ॥ २२२ ॥

केकडा के घिल की मिट्टी का शिर में तिलक करने से ऐकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २२२ ॥

ज्याहिक ज्वर में अञ्जन ।

कर्णस्य मलजालेन वर्ति कृत्वा  
मयन्नतः । ज्वालयेत्तिलतैलेन कज्जलं  
ग्राहयेच्छनैः ॥ अञ्जयेन्नेत्रयुगलं ज्याहिक-  
ज्वरशान्तये ॥ २२३ ॥

कान के मलसमूह की बर्ती बनाकर तिल के तेल में जलाये और उससे काजल पार के नेत्रों में लगाये तो तृतीयकज्वर की शान्ति होती है ॥ २२३ ॥

तर्पण ।

गङ्गाया उत्तरे तीरे अपुत्रस्तापसो मृतः ।  
तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्यैकाहिको  
ज्वरः ॥ २२४ ॥

एतन्मन्त्रेण अरवत्यपत्रहस्तः प्रतर्पयेत् ।

पीपर का पत्र हाथ में लेकर ( गङ्गायाः यहाँ से ज्वरः पर्यन्त ) ऊपर लिखे मन्त्र को पढ़कर तिलाञ्जलि देने से ऐकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २२४ ॥

यन्त्र धारण ।

ॐ वाणयुद्धे महाधोरे द्वादशार्कसम-  
प्रभे । जातोऽसौ सुमहावीर्यो मुञ्चत्यैका-  
हिको ज्वरः । लिखित्वाश्वत्थपत्रे तु वाह्यौ  
मन्त्रं प्रधापयेत् ॥ २२५ ॥

पीपर के पत्र पर ( ॐ वाणयुद्धे से ज्वरः पर्यन्त ) इस मन्त्र को लिखकर हाथ में बाँधने से ऐकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २२५ ॥

मन्त्रदर्शन ।

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नामवानरः ।  
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु  
पश्यति ॥ २२६ ॥

पीपर के पत्र पर इस मन्त्र को लिखकर दिव्याने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २२६ ॥

चातुर्थिकज्वर में तन्त्रोक्त औषध ।

श्वेतार्ककरवीरस्याश्विन्यां मूलमुद्ध-  
रेत् । तण्डुलोदकपानेन पृथक् चातुर्थ-  
नाशनम् ॥ २२७ ॥

सफेद आक या सफ़ेद कनेर के मूल को अश्विनी नक्षत्र में उखाड़कर ६ रत्ती की मात्रा में लेकर चावल के धोवन में पीसकर पिलाने से चातुर्थिकज्वर शान्त होता है ॥ २२७ ॥

चातुर्थिक में हरिताल ।

शैलूपमण्डलरजः पुरुषानुरूपं शुक्लाद्ग-  
वत्समुर्भीपयसा निपीतम् । आदित्य-  
वारभवापलिदिने नराणां चातुर्थिकं हरति  
कष्टमपि क्षणेन ॥ २२८ ॥

रविवार को पुरुष की शक्ति के अनुसार एक रत्ती से २ रत्ती पर्यन्त शुद्ध हरिताल का चूर्ण श्वेत बड़वावाली गाय के दूध के साथ पिलाने से चातुर्थिकज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ २२८ ॥

चातुर्थिक में धूप ।

कृष्णाम्वरे दृढवदो गुग्गुलुक-

पुच्छजः । धूपश्चातुर्थकं हन्ति तमः सूर्य्य  
इवोदितः ॥ २२६ ॥ कृष्णाम्बरं भृङ्ग-  
राजादिकृष्णीकृतवस्त्रम् ।

भांगरा के रस से रंगे हुए चम्र में गूगुल  
और उबलू चिड़िया के पक्ष को बांधकर रवि-  
वार के दिन उसका धूप रोगी को देने से चातु-  
र्थिकज्वर इस प्रकार नष्ट होता है जैसे सूर्योदय-  
होने से अन्धकार नष्ट हो ॥ २२६ ॥

चातुर्थिक में नस्य ।

शिरीषपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसयुतः ।  
नस्यं सर्पिः समायोगाज्वरं चातुर्थिकं  
जयेत् ॥ २३० ॥

सिरिस के फूल के रस में हलदी का चूर्ण,  
दारहलदी का चूर्ण और घृत मिलाकर नस्य  
देने से चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ २३० ॥

चातुर्थिक में नस्य ।

नस्यं चातुर्थिकं हन्ति रसो वागस्त्यप-  
त्रजः ॥ २३१ ॥

अगस्य के पत्तों के रस का नस्य देने से भी  
चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ २३१ ॥

चातुर्थिक में पेया

अम्लोदजसहस्रेण दलेन सुकृतां  
पिबेत् । पेयां घृतप्लुतां जन्तुश्चातुर्थ-  
कहरी त्र्यहम् ॥ २३२ ॥

चौराई की हजार पत्तियों का दूने चावल  
के साथ सिद्ध की हुई पेया में घृत मिलाकर तीन  
दिन पीने से चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ २३२ ॥

आगन्तुक ज्वरचिकित्सा ।

कर्म साधारणं जयात्तृतीयकचतुर्थकौ ।  
आगन्तुरनुवन्धो हि प्रायशो विपम-  
ज्वरे ॥ २३४ ॥

भूतानुबन्धिनोस्त्वृतीयकचतुर्थकयो-  
श्चिकित्सायाः कर्मत्वादि दैवव्यपाश्रयं  
पल्लिमद्गलोमादि । युक्त्रिव्यपाश्रय कपा-

यादि । एतदुभयमपि चिकित्सितं साधार-  
णशब्देनोच्यते । जह्यादिति अन्तर्भूतार्थ-  
मिदम् तेन साधारणं कर्म चिकित्सितं कर्तुं ।  
तृतीयकचतुर्थकौ कर्मरूपौ जह्यात् क्षपयेत्  
निराकुर्यादित्यर्थः । कथमित्याह आगन्तु-  
र्भूतादिः । अत्र विपमज्वरशब्देन तृतीयक-  
चतुर्थकावेव अभिमतां तृतीयकचतुर्थक-  
शब्देनात्र तद्विपर्ययस्यापि ग्रहणम् ।  
अन्ये तु आगन्तुरनुबन्धोहीत्यादि वच-  
नाद् विपमज्वरमात्र एव दैवव्यपाश्रयं कर्म  
कर्तव्यमित्याहुस्तथापि तृतीयकचतुर्थका-  
विति यदुक्तं तद्विशेषार्थं तेन तृतीयक-  
चतुर्थकयोः प्रायेण भूतानुबन्धजन्यत्वात्  
तयोरेव विशेषेण दैवव्यपाश्रयं कर्तव्यमिति  
शिवदासः । तृतीयकचतुर्थकौ प्रायोभूना-  
भिपन्नौ भवतस्तस्मात् साधारणं दैवयु-  
क्त्रिव्यपाश्रयं कर्म कर्तव्यं द्वौ ज्वरौ  
जह्यात् हन्यादित्यर्थः । दैवं पल्लिमद्गल-  
होमादि । युक्तिः कपायादिः । इति गोपा-  
लदासः ।

भूतों के आवेश होने से जो तृतीयक और  
चतुर्थकज्वर आते हैं उनकी चिकित्सा लिखते हैं—  
साधारण कर्म अर्थात् पाल, मन्त्रल,  
होमादिरूप दैवी चिकित्सा और कपायादि  
( व्रथादि ) पानरूप यौक्तिक चिकित्सा द्वारा  
तृतीयक और चतुर्थकज्वर नष्ट होते हैं ।  
क्योंकि प्रायः विपमज्वर की उत्पत्ति में भूत-  
प्रेतों का सम्बन्ध ही कारण होता है ।

इस श्लोक में विपमज्वर शब्द केवल  
तृतीयक, चतुर्थक और उनके विपर्ययों का ही  
बोधक है ।

शिवदासजी ने इस श्लोक की व्याख्या करने  
में कहा है कि 'आगन्तुरनुबन्धो हि' इत्यादि  
उत्तरार्ध में सामान्यतया उल्लेख होने से विपम-

ज्वर मात्र में बलि, मद्गल, होम आदि दैवी चिकित्सा करनी चाहिये । पूर्वार्ध में जो 'तृतीयकचतुर्थका' लिखा है उसका तात्पर्य यह है कि तृतीयक और चतुर्थक प्राय भूतादि के मग्घन्ध ही से उत्पन्न होते हैं अतः उनमें बलि, मद्गल, होम आदि दैवी चिकित्साये विशेषरूप से करनी चाहिये । ऐसा अन्य पेद्यो का मत है । गोपालदासजी कहते हैं कि तृतीयक और चतुर्थक ये दोनों ज्वर प्राय भूत आदि के सवध से ही उत्पन्न होते हैं अतः बलि, मद्गल, होम आदि दैवी चिकित्सा और कपायादि पानरूप यौगिक चिकित्सा, इन दोनों ज्वरों को नष्ट करती है ॥ २३४ ॥

टिप्पणी—विषमज्वर के तृतीयकचतुर्थक ज्वरों का कारण भूत ( प्रेतादि नहीं ) रोगोत्पादकीटाणु हैं इमलिये इनके उपचार के लिये उनकीटाणुओं का नाशक तिन्न रसप्रधान औषध ही उत्तम है कहीं २ टोटके भी लाभदायक हो जाते हैं ।

सर्वज्वरनाशक योग ।

मूलं जयन्त्याः शिरसि धृतं सर्वज्वरापहम् ॥ २३५ ॥

जयन्ती के मूल को शिर में धारण करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३५ ॥

सर्वज्वरनाशक द्वितीय योग ।

मूलकङ्केशराजस्य कृत्वा तत्सप्तग्वण्डकम् । आर्द्रकैस्मह भुञ्जीत सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २३६ ॥

भांगरे के एक मूल के सात टुकड़ करके उनमें से एक टुकड़ा अदरक के रस में पीसकर पान करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं ॥ २३६ ॥

रात्रिज्वरनाशक योग ।

काकमाचीभ्रं मूलं कर्णे यद्धं निशाज्वरम् । निहन्ति नात्र सन्देहो यथासूर्योदये तमः ॥ २३७ ॥

मकोय के मूल को कान में बाँधने से रात्रिज्वर निःसदह नष्ट हो जाता है । जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अंधकार नष्ट होता है ॥ २३७ ॥

सर्वज्वरहर मन्त्र धारण ।

ॐ नमो भगवते छिन्धि छिन्धि अमुकस्य ज्वरस्य शिरः प्रज्वलितपरशुपाणये पुरुपाय फट् । एतन्मन्त्रस्य धारणाज्ज्वरस्तर्षो विनश्यति ॥ २३८ ॥

इस मन्त्र को ( ॐ नमो भगवते से पुरुपायफट् पर्यन्त ) भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३८ ॥

सर्वज्वरहर समन्त्र ताम्बूल ।

ॐ विद्युदानन हं फट् स्वाहा । एतन्मन्त्रं ताम्बूलीपत्रे चूर्णलिप्ते लिखित्वा तत्पत्रं सञ्चर्य भक्षयित्वा दिनत्रयाभ्यन्तरे ज्वरशान्तिर्भवति ॥ २३९ ॥

पान के पत्र पर चूना पीनकर उस पर "ॐ विद्युदानन हु फट् स्वाहा" इस मन्त्र को लिखकर उय पान को खावे । ऐसा तीन दिन करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं ॥ २३९ ॥

सब प्रकार के ज्वर में पूजा ।

मोमं मानुचरन्देवं समावृगगमीज्वरम् । पूजयन् प्रयत्नशीत्र मुच्यते विषमज्वरात् ॥ २४० ॥

अनुचरों के सहित सोमदेव और मानुगणसाहब शिव की पूजा करने से सब प्रकार के ज्वर शीघ्र विनष्ट होते हैं ॥ २४० ॥

सब ज्वरों में विष्णुसहस्रनाम ।

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं त्रिभुम् । स्तुत्रनामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान् व्यपोहति ॥ २४१ ॥

सहस्र शिरवाले, चराचर के स्वामी, सर्व-  
व्यापक विष्णु भगवान् की सहस्र नाम से  
स्तुति करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते  
हैं ॥ २४१ ॥

सर्वज्वरों में देवता और गुरु आदिकी पूजा ।

ब्रह्माण्डमश्विनाविन्द्रं हुतभक्ष्यं हि-  
माचलम् । गङ्गां मरुद्गणारचेष्टान् पूज-  
यञ्जयति ज्वरम् ॥ २४२ ॥ भक्त्या मातुः  
पितुश्चैव गुरुणां पूजनेन च ॥ २४३ ॥

ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमाचल,  
गंगा, देवगण, इष्टदेव, माता, पिता और गुरु-  
जन की भक्तिपूर्वक पूजा करने से सब प्रकार के  
ज्वर शान्त होते हैं ॥ २४२-२४३ ॥

सब ज्वरों में नियम ।

ब्रह्मचर्येण तपसा पुराण श्रवणेन च ।  
जपहोमप्रदानेन सत्येन नियमेन च ॥  
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनान्दर्शनेन  
च ॥ २४४ ॥

ब्रह्मचर्य का पालन करने से, तपस्या करने  
से, पुराण सुनने से, जप, होम और दान करने  
से, सत्य बोलने से, नियमपूर्वक रहने से और  
साधुओं का दर्शन करने से मनुष्य शीघ्र ज्वर-  
मुक्त हो जाता है ॥ २४४ ॥

अष्टांग धूप ।

पलङ्कपा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरी-  
तकी । सयवाः सर्पपाः सर्पिधूपनं ज्वर-  
नाशनम् ॥ २४५ ॥

गूगुल, नीम के पत्ते, बच, कूट, हर, जी,  
सरसों और घृत इनका धूप देने से ज्वर नष्ट  
होता है ॥ २४५ ॥

अपराजित धूप ।

पुरध्यामवचासर्जनिस्रार्कागुरुदारुभिः ।  
सर्वज्वरहरो धूपः कार्प्योऽयमपरा-  
जितः ॥ २४६ ॥

गूगुल, गन्धतृण, बच, राल, नीम के पत्ते,  
आक के पत्ते, अगर और देवदारु इनका धूप  
देने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २४६ ॥

माहेश्वर धूप ।

हिंगुलं देवकाष्ठं च श्रीवेष्टं घृतगेव च ।  
गव्यास्थीनि तथाध्यामं निम्बाल्यं कटु-  
रोहिणी ॥ २४७ ॥ सर्पपं निम्बपत्राणि  
पिच्छाहिकञ्चुकं तथा । मार्जारविष्टा  
गोशृङ्गं मदनस्य फलानि च ॥ २४८ ॥  
द्वे बृहत्यौ वचा चैव कार्पासास्थितुपा-  
स्तथा । छागगोमायुविट् चैव हस्तिदन्त-  
स्तथैव च ॥ २४९ ॥ एतत् सर्वं समाहृत्य  
छागमूत्रेण भावयेत् । उलूखले तु संकुट्य  
स्थापयेन्मृगमये शुभे ॥ २५० ॥ घ्राणमा-  
त्रेण धूपोऽयं दीयते यत्र वेरमनि । न तत्र  
सर्पास्तिष्ठन्ति न पिशाचान् राक्षसाः २५१  
एष माहेश्वरो धूपः सर्वज्वरविनाशनः ।  
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थ-  
कम् ॥ एवमादीञ्ज्वरान् सर्वान् नाशये-  
न्नात्र संशयः ॥ २५२ ॥

ॐ नमो भगवते रुद्राय उमापतये  
सम्पन्नाय । नन्दिकेश्वराय इति मन्त्रेणा-  
भिमन्त्रयेत् ॥

हिंगुल, देवदारु, सरल का गोंद, घृत, गाय  
की हड्डी, गन्धतृण, विल्वपत्र, कुटकी, सरसों,  
नीम के पत्ते, मयूर का पंख, माँव की काँचली,  
बिल्ली की बिछा, गाय की सींग, मैनफल, छोटी  
फटेरी, बड़ी फटेरी, बच, यिनौले, धान की  
भूसी, बकरी और सियार का बिछा और हाथी  
का दाँत इन सब यस्तुओं को एकत्र करके चोखरी  
में कूटकर बकरी के मूत्र की भावना देकर मिट्टी  
के पात्र में रख लेवे । यह धूप जिस घर में दिया  
जाता है उस घर से धूप का गन्ध पाते ही सर्प  
पिशाच, और राक्षस भाग जाते हैं । यह माहेश्वर

धूप ऐकाहिक, द्वयाहिक, त्रयाहिक और चातुर्थिक आदि सब प्रकार के ज्वरों को निःसंदेह नष्ट करता है। 'ॐ नमो भगवते रुद्राय उमापतये सम्पन्नाय नन्दिवेश्वराय' इस मन्त्र को पढ़कर इस धूप को देना चाहिये ॥ २४७-२५२ ॥

टिप्पणी—यह धूप रोगोत्पादक कीटाणुनाशक वायु शोधक है।

ज्वर में घृतपान व्यवस्था ।

ज्वरः कृपायैर्मनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः ।  
रूक्षस्य येन शाम्बन्ति सर्पिस्तेषां भिप-  
गिजतम् ॥ २५३ ॥

काथ, वमन, उपवास और लघुभोजन इनसे यदि ज्वर शान्त न हो और शरीर में रूक्षता हो तो रोगी क लिये घृतपान की व्यवस्था करे ॥२५३॥

टिप्पणी—घृतपान बलवान रोगी के लिए है सबको नहीं और घृतशुद्ध विश्वास करा लेना चाहिए आजकल शुद्ध घी मिलना कठिन हो रहा है।

घृतपान के लिये निषिद्धकाल ।

निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलङ्घि-  
तम् । न सर्पिः पाययेत्प्राज्ञः शमनैस्त-  
मपाचरेत् ॥ २५४ ॥ यात्रल्लघुत्वमशन  
दधान्मांसरसेन तु । बल ह्यल निग्रहाय  
दोषाणां बलकृच तत् ॥ २५५ ॥

चरक में यद्यपि दश दिन के परचात् ज्वर में घृतपान की व्यवस्था की है तथापि यदि दस दिन के परचात् भी कफ की प्रयत्नता हो और यथांशित लङ्घन भी न हुआ हो तो चतुर वैद्य उस रोगी को घृत न पिलावे, किन्तु शमन-ओषधियों से उसकी चिकित्सा करे। ज्वर की लघुतापर्यन्त ( ज्वर के हलके होने पर ) मास्तरम क साथ भोजन देते। कारण यह कि मास रसयुक्त बलवर्धक होता है। बलवृद्धि से ही दुष्ट घानादि दोषों का निग्रह होता है ॥२५४-२५५॥

ज्वर में पथ्य मांस ।

मांसार्थमेणलावादीन् युक्त्या दधा-

द्विचक्षणः । कुक्कुटांश्च मयूरांश्च  
तिचिरिक्रौञ्चवर्त्तकान् ॥ २५६ ॥ गुरु-  
प्लातानशशन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ।  
लङ्घनेनानिलजल ज्वरे यद्यधिकम्भवेत् ॥  
भिपद्मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि काल-  
वित् ॥ २५७ ॥

एण अर्थात् मृगविशेष और लावा आदि पक्षियों का मांस विचार कर ज्वर में देवे। मुर्गा, मयूर, तिचिर, बक और बटेर का मांस गुरुपाक और उष्ण होता है अतः कोई कोई वैद्य ज्वर में इनके मांस की अनुमति नहीं देते परन्तु यदि लङ्घन द्वारा ज्वर में वायु का बल अधिक हो गया हो तो मात्रा की कल्पना में चतुर चिकित्सक को समय का विचार करके इन सबके मांस की भी व्यवस्था करनी चाहिये ॥ २५६-२५७ ॥

अथ स्नेहपाकस्य साधारणोविधिः।

स्नेहपाक विधि ।

प्रथमे मूर्धनं स्नेहे काथो देयो द्वितीयके ।  
कल्कद्रव्यं तृतीये च गन्धद्रव्य तथा-  
परे ॥ २५८ ॥ क्रमेण विधिना पाच्यं  
मन्दमन्दाग्निना भिपक् । निर्मलं निर्जलं  
तैलं तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २५९ ॥

स्नेह ( घी, तेल आदि ) के पाक करने में सबसे पहले इनको मूर्धन ( औटाकर शुद्ध ) करना चाहिए। ऐसा करने से इनका आमशोष दूर हो जाता है और स्वच्छ तथा सुगन्ध युक्त हो जाता है। इसके परचात् काथ आदि द्रव्यों से पकाना चाहिए। इसके बाद बल्क द्रव्यों को ठममें डाल देना चाहिए। अन्त में गन्धपाक करना चाहिए। मन्द-मन्द अग्नि से स्नेहपाक करना चाहिए। पकाते-पकाते जल में से पानी जल जाये और वह निर्मल हो जाय उस समय पाकविधि पूरी हुई जानिये ॥ २५८-२५९ ॥

वाय्यादि द्रव्यों का परिमाण ।

अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते । अलुक्ते काथ्यमाने तु पात्रमेकं प्रशस्यते ॥ २६० ॥ काय्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् । स्नेहात् स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः । चतुर्गुणं त्र्यष्टगुणं द्रव्यद्वैगुण्यतो भवेत् ॥ २६१ ॥ पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ । तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥ २६२ ॥

जहाँ स्नेह अर्थात् घृत या तेल का परिमाण निर्दिष्ट न हो वहाँ स्नेह एक प्रस्थ (१२८ तोला) लेना चाहिए । कायद्रव्यों का परिमाण निर्दिष्ट न हो तो एकपात्र ( ३ सेर १६ तोला ) लेवे । कायद्रव्यों को चतुर्गुण जल में पकावे । चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । यह वाथ जितना हो उसका चतुर्थांश स्नेह ( घृत या तैल ) होना चाहिये । दुग्ध स्नेह के बराबर और कल्क स्नेह का चतुर्थांश होना चाहिए । कोमल और कठिन भेद से द्रव्य दो प्रकार के होते हैं । अतएव कोमल द्रव्यों को चतुर्गुण जल में, कठिन द्रव्यों को अष्टगुण जल में और अत्यन्त कठिन द्रव्यों को षोडश गुण जल में पकाकर चतुर्थांश अवशिष्ट रखे । जिम स्नेह पाक में द्रव्य पदार्थ पांच या पाँच से अधिक हों वहाँ कुल द्रव्यपदार्थों के परिमाण स्नेह के समान होते हैं । और जिम स्नेहपाक में द्रव्यपदार्थ पाँच से न्यून हों उसमें प्रत्येक द्रव्यपदार्थ को स्नेह से चौगुना लेना चाहिये ॥ २६०-२६२ ॥

स्नेहादिपाक का काल ।

वृत्ततैलगुडादिषु नैसाहादवतारयेत् ।

वाथ और दुग्ध आदि प्रत्येक द्रव्य के साथ स्नेह का अलग अलग पाक करना चाहिए । परचाक कण के साथ पाक करे । कण के साथ पाक करने के समय स्नेह में चतुर्गुण जल दाने । अन्त में गन्धपाक करे । गन्धपाक के समय भी स्नेह से चतुर्गुण जल दालना चाहिये ।

व्युपितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥ २६३ ॥

घृत, तैल और गुड़ आदि का पाक एक ही दिन में समाप्त करे । कारण यह कि अधिक दिनों में सिद्ध किये हुये घृत तैलादि विशेष गुण करते हैं ॥ २६३ ॥

पाक की सिद्धि का लक्षण ।

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्तितो वर्तिवद्भवेत् । बह्वौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २६४ ॥ शब्दव्युपरमे जाते फेनस्योपरमे तथा । गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ २६५ ॥

स्नेहपाक कल्क यदि अँगुली से बटने पर बत्ती के समान हो जावे और आग में डालने पर शब्द न करे तो जान लेना कि पाक सिद्ध हो गया । शब्द का होना और फेन का निकलना बन्द हो जावे । तथा गन्ध, वर्ण और रस उत्तम हो जाव तो जानना चाहिये कि पाक सिद्ध हो गया ॥ २६४ २६५ ॥

निलतैल मूर्च्छा ।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरधिमले मन्दमन्दानलैस्तत् तैलं निष्फेनभावं गतमिहहि यदा शैत्यभावं समेत्य । मंजिष्ठात्रिलोभ्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः सूचीपुष्पाङ्गनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥ २६६ ॥ तैलस्येन्दुकलांशिकेन त्रिरसा श्राया तु मूर्च्छाविधौ ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीतीरेरलोध्रान्त्रिता । सूचीपुष्पाम्रागोहनलिकाम्नस्याथ पादांशिका दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥ २६७ ॥

तैल के तेल को दृढ़ कराह में मन्द-मन्द पाँच से पकाये । जब तैल फेनरहित हो जाय, तब उतारे । दूध उँहा हो जाने पर पिमी हुई

हल्दी को जल में घोलकर तैल में मिलावे । फिर पिसी मजीठ को भी जल में घोलकर तैल में मिलावे । परचात् लोध, नागरमोथा, नाडीशाक ( करेम ), आँवला, बहेडा, हरद, केवडा का फूल, बरोह और सुगन्धवाला के चूर्ण को पानी में घोलकर तैल में मिलावे । तैल से चतुर्गुण जल मिलाकर फिर पकावे, कुछ जल शेष रहते ही उतार ले और कुछ दिनों तक बैसे रक्खा रहने दे । मूर्च्छा के लिये जो मजीठ, त्रिफला, नागरमोथा, हल्दी, सुगन्धवाला, लोध, केवडा का फूल, बराह और नाडीशाक आदि कहे गये हैं, इनका परिमाण यह है कि तैल का षोडशंश मजीठ और मजीठ का चतुर्थांश शेष द्रव्यों को डाले । इस प्रकार मूर्च्छा करने से तैल की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है । सुगन्ध तथा सुन्दरता आ जाती है और तैल रघ्वर्ण हो जाता है<sup>१</sup> ॥ २६६-२६७ ॥

**कटुतैल मूर्च्छा ।**

वयःस्था रजनी मुस्ता विल्वदाडिम-  
केशरैः । कृष्णजीरकहीवेरनलिकै सवि-  
भीतकैः ॥ २६८ ॥ एतैस्समांशैः प्रस्थे च  
कर्षमात्रं प्रयोजयेत् । अरुणाद्विपलं तत्र  
तोयं चाढकसम्मितम् । कटुतैलं पचेचेन  
आमटोपहरं परम् ॥ २६९ ॥

आँवला, हल्दी, नागरमोथा, बेलगिरी, अमार  
नागकेसर, काताजीरा, सुगन्धवाला, नाडीशाक  
और बहेडा ये मूर्च्छा के द्रव्य हैं । १२८ तोला  
कटु तैल में पहिले दो पल ( ८ तोले ) मजीठ  
देना । परचात् पूर्वोक्त मूर्च्छाद्रव्य एक एक तोला  
डालना । आठ सेर जल डालकर पकावे । यह तैल  
ग्रामदापों को नष्ट करता है ॥ २६८-२६९ ॥

**परएडतल मूर्च्छा ।**

विकसामुस्तकं धान्यं त्रिफला वैज-

<sup>१</sup> मूर्च्छा के परचात् जय ज्ञायादि के साथ तैल पाक करना हो तो मूर्च्छा के द्रव्यों को धुन कर भजग कर दे ।

यन्तिका । हीवेरनखजूरवटशुंगा निशा-  
युगम् ॥ २७० ॥ नलिकामेपजं देयं  
केतकी च समं समम् । प्रस्थे देयं शाण-  
मित मूर्च्छने दधिकाञ्जिकम् ॥ २७१ ॥

मजीठ नागरमोथा, धनिया, हर, बहेडा,  
आँवला, जयन्तीपत्र, सुगन्धवाला, बनखजूर,  
बरोह, हल्दी, दारुहल्दी नाडीशाक सोंठ, केवडा  
का फूल, दही और काजी ये मूर्च्छाद्रव्य हैं ।  
१२८ तोले परएड के तैल में चार चार माने  
प्रत्येक मूर्च्छाद्रव्य डालकर पूर्ववत् मूर्च्छित  
करे ॥ २७०-२७१ ॥

**अथ घृत मूर्च्छा ।**

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलु-  
ङ्गद्रवैश्च द्रव्यैरैतैः समस्तैः पलकपरिमि-  
तैर्मन्दमन्दानलेन । प्राज्यप्रस्थ विफेन  
परिचपलगतं मुखैर्द्वैधराजस्तस्माटामो-  
पदोप हरति च सकल वीर्यवत्सौख्य-  
दायि ॥ २७२ ॥

हरद, आँवला, बहेडा, नागरमोथा, हल्दी  
और बडे नीचू का रस ये घृत के मूर्च्छाद्रव्य हैं ।  
पहिले घृत को धाग पर गरम करे, जब वह  
फेनरहित हो जाय तब आँच से उतारकर शीतल  
करे । तदनन्तर पहिले हल्दी फिर नीचू का रस  
तत्परचात् अन्य सब मूर्च्छाद्रव्यों को डाले । १२८  
तोला घृत में प्रत्येक मूर्च्छाद्रव्य ४ तोले डाले ।  
आठ सेर जल डालकर मन्द २ आँच से फिर  
पकावे । इस प्रकार मूर्च्छित किया हुआ घृत सब  
प्रकार के ग्राम दोषों का नाशक, बलवर्धक और  
सुखदायक होता है ॥ २७२ ॥

**पिप्पल्याद्यघृत ।**

पिप्पल्यश्चन्दन मुस्तमुशीर रुद्रो-  
हिणी । कलिङ्कास्तामलकीशारिवाति  
विषा स्थिरा ॥ २७३ ॥ शक्तामलकरि-  
त्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका सिद्धमेत-  
द्घृतं सद्यो जर जीर्णमपोहति ॥ २७४ ॥

त्तयं श्वास च हिकां च शिरःशूलमरो-  
चकम् । अद्वाभितापमग्निं च विपमं सनि-  
यच्छति ॥ २७५ ॥ पिप्पल्याद्यमिद्  
कापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते । यत्राधिकरणे  
नोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ ॥ २७६ ॥  
तत्रैव कल्कानिर्युहविष्येते स्नेहवेदिना ।  
एतद्वाक्यवलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम् २७७

पीपरि, रङ्गचन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी,  
इन्द्रजी, भूई आंबला, अनन्तमूल, शतीम, शाल-  
पर्णी, मुनका, आंबला, बेल की छाल, त्रायमाद्य  
और कटेरी दो दो तोले, गौ का घृत १२० तोले,  
पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला, दूध ६  
सेर ३० तोला इन सबको एकत्र कर यथाविधि  
पाक करे । पीपरि आदि ऊपर लिये द्रव्यों का  
कल्क बनाकर ढालना चाहिये । इस प्रकार  
सिद्ध हुआ घृत जीर्ण्यार को तत्काल नष्ट  
करता है । श्वस, श्वास, हिचकी, शिरःशूल,  
अरोचक, अद्वाभिताप और अग्निर्बन्धपन्थ को  
भी नष्ट करता है । किसी तन्त्र में पिप्पल्याद्य  
घृत सिद्ध करने में दुग्ध देने का भी विधान  
है । जहाँ स्नेहपाक में विशेषतया उल्लेख न हो  
वहाँ कहे हुए द्रव्यों का कल्क या हाथ ढालना  
हूट्ट है । घृतः इस घृत में निर्दिष्ट द्रव्यों का  
कल्क ढोहना चाहिये ॥ २७३-२७७ ॥

जल आदि का प्रमाण ।

जलस्नेहौपधानां च प्रमाणं यत्र ने-  
रितम् । तत्र स्वादौपधान् स्नेहः स्नेहा-  
चोयं चतुर्गुणम् ॥ २७८ ॥

जत्र, स्नेहौ क्षीर क्षीपथियों का जहाँ प्रमाण  
उपेक्षांश न हो वहाँ क्षीपथियों की समष्टि  
( सब क्षीपथ मित्राकर ) से स्नेह चतुर्गुण क्षीर  
स्नेह से जत्र चतुर्गुण भवे ॥ २७८ ॥

स्वरसक्षीरमाद्ध्यैः पाको यत्रेति-  
कचिन् । जलं चतुर्गुणं तत्र क्षीपथानार्थ-

मावपेत् ॥ २७९ ॥ न मुञ्चति रसं द्रव्यं  
क्षीरादिभिरुपस्कृतम् । सम्यक् पाको न  
जायेत तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ २८० ॥

स्वरस, दूध अथवा दही आदि से स्नेह (घी तेल  
आदि) पाकाना हो तो उसमें चौगुना पानी ढाल  
देना चाहिये, क्योंकि दूध दही आदि के गाढ़ा  
होने से पाक अच्छा नहीं होता है ॥ २७९-२८० ॥

द्रवकार्येऽप्यनुक्ते च सर्वत्र सलिलं  
मतम् ॥ २८१ ॥

जहाँ द्रव द्रव्यों का उल्लेख न हो वहाँ सर्वत्र  
जल लेना चाहिये ॥ २८१ ॥

स्नेहपाक में कालनिर्णय ।

क्षीरे द्वित्रात्रं स्वरसे त्रित्रात्रं तक्रारना-  
लादिपु पञ्चरात्रम् । स्नेहंपचेद्वैधवरः प्रय-  
त्नादित्याहुरेके भिपजः प्रवीणाः ॥ २८३ ॥  
द्वादशाहन्तु मूलानां वल्लीनां क्रममेव  
च । एकाहं व्रीहिमांसानां पाकं कुर्याद्वि-  
चक्षणः ॥ २८४ ॥

घी, तेल तथा गुड़ आदिकों को बहुत दिन तक  
पाक करने में अधिक गुण सम्यय होते हैं । एक  
दिन में ये सिद्ध नहीं होते, दूध में दो दिन,  
स्वरस में तीन दिन, मठा तथा कांजी आदि से  
पांच दिन, जड़, फल तथा लता आदि के काढ़े  
से बारह दिन, मोहि आदि धान्य तथा मांस के  
काढ़े में उसी दिन पाक करना चाहिये ॥ २८३-२८४ ॥

गाफपरीक्षा ।

स्नेहकल्को यदाह्न न्या वर्तितो वर्तिर-  
द्रेत् । यदाह्नित्पे च नो गच्छन्तदामिदि  
त्रिनिर्दिशेत् ॥ २८५ ॥ गच्छन्त्योपरमे  
प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा । गन्धर्गर्गमा-  
दीनां निष्पर्णा मिद्धिमादिशेत् ॥ फेनोर्गति-  
मात्रं तैलस्य शेषं गृह्णतदिति ॥ २८६ ॥  
स्नेहसिद्धिपत कश्च जल चतुर्गुणयो से करने से  
वर्ना के समान हो जाय, धान्य में जहाँ से भी कोई



शब्द न हो तथा पकते हुए घृत में भी शब्द न हो, म्हाग न उठे तथा विशिष्ट प्रकार गन्धवर्ण पक्व रससे युक्त प्रतीत हो तब समझना चाहिये कि घृत सिद्ध हो गया है किन्तु तैल में सिद्ध होते समय अत्यन्त फेन उठता है, शेष चिह्न घृत के समान हैं ॥ २८२-२८६ ॥

क्षीरपट्टपन्नक घृत ।

पञ्चकोलैः ससिन्धूरैः पलिकैः पयसा समम् । सर्पिःप्रस्थंशृतल्पीहविपमज्वरगुल्मनुत् ॥ २८७ ॥ अत्र द्रवान्तरेऽनुक्ते क्षीरमेव चतुर्गुणम् । द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ २८८ ॥

मूर्च्छित गोघृत १२८ तोले, दूध ६ सेर ३२ तोला, जल २५ सेर ४८ तोला, कल्क के लिये द्रव्य-पीपरि, पीपरामूल, चण्ड, चीता का मूल, सोंठ और सेंधा नमक प्रत्येक ४ तोले, पाकार्य जल ६ सेर ३२ तोला यथाविधि पाक करे । मात्रा आधा तोला से १ तोला पर्यन्त । इस घृत का सेवन करने से प्लीहा, विपमज्वर और गुल्म रोग नष्ट होते हैं ॥ २८७-२८८ ॥

दशमूलपट्टपन्नक घृत ।

दशमूलोरसे सर्पिःसक्षीरे पञ्चकोलकैः । सक्षारैर्हन्ति तत् सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताः । वातपित्तकफग्याधीन् प्लीहानश्वापि पाण्डुताम् ॥ २८९ ॥

दशमूल ३ सेर १६ तोला लेकर २५ सेर जल में पकाना, ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर उतारकर छान लेना और परचाव उस काथ के साथ १२८ तोले मूर्च्छित घृत का पाक करना चाहिये, तत्परचाव १२८ तोला दूध के साथ घृत का पाक करना, तदनन्तर नीचे लिखे औषधों के कल्क के साथ पाक करे, कल्क के सम्यक् परिपाक होने के लिये ६ सेर ३२ तोला जल छोड़ना चाहिये । कल्कद्रव्य जैसे—पीपरि, पिपरामूल, चण्ड, चीता, सोंठ और ववदार इनमें प्रत्येक द्रव्य चार-चार तोले लेकर कल्क बनाना चाहिये । इम

घृत की मात्रा आधा तोला से १ तोला तक है । इसका सेवन करने से ज्वर, कास, अग्निमान्द्य, वात, पित्त और कफ के रोग, प्लीहा और पाण्डु रोग नष्ट होते हैं ॥ २८९ ॥

स्नेहसाधन में क्याथादिकों का परिमाण ।

काथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् । स्नेहात्स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥ चतुर्गुणं त्रष्टगुणं द्रवचैगुण्यतो भवेत् ॥ २९० ॥

स्नेह सिद्ध करने के लिये काथ करने के द्रव्य में ठनसे अठगुना जल डालकर चौगुना रह जाय तब तक उथाले । यह काथ से चौगुना स्नेह के बराबर दूध तथा स्नेह का चौथाई भाग कल्क द्रव्य डालना चाहिये ॥ २९० ॥

पञ्चमभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ । तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥ २९१ ॥

स्नेहपाक में जब पाँच या पाँच से अधिक पतले पदार्थ हों तो वह प्रत्येक पतला पदार्थ स्नेह के बराबर लेना चाहिये । और यदि पतले पदार्थ पाँच से कम हों तो मिजे हुए पतले पदार्थ स्नेह में चौगुने लेने चाहिये । अर्थात् तब पतली चीजें मिलकर स्नेह से चौगुनी हों ॥ २९१ ॥

अथ तैलप्रकरणम् ।

अभ्यङ्गारच मदेङ्गारच सस्नेहान् सावगाहनान् । विभज्य शीतोष्णकृतान् दयाज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥ २९२ ॥ तैराशु प्रथमं याति बहिर्मागगतो ज्वरः । लभन्ते सुखमद्धानि वलं वर्णश्च जायते ॥ २९३ ॥

जीर्णज्वर में तैलादि मदन, प्रलय, स्नेहपान और स्नानादि के लिये श्वसथाधिशेष का विनाश करके उष्ण शय्या शीतल जलादि की व्यवस्था करनी चाहिये । श्वसथादि करने से बाहरी मार्ग में स्थित हुआ ज्वर शीघ्र नष्ट होता है । शरीर

में सुप्त माल और कान्ति की प्राप्ति होती है ॥ २६२-२६३ ॥

महा अङ्गारक तैल ।

शुष्कमूलक वर्षा भद्रारु रास्नामहौषधैः  
मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवा-  
रुणी । वृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी  
शतावरी ॥ २६४ ॥ आरनालाढकेनैव  
तैलप्रस्थं विपाचयेत् । तैलमंगारकं नाम  
सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २६५ ॥

सूखी मूल, सोंठी, देवदारु, रास्ना, सोंठ, मूर्वा  
( मरौरफली ), लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ,  
इन्द्रायण का मूल, कटेरी, सेंधानोन, कूट,  
रास्ना, जटामांसी, शतावरी इन कुल द्रव्यों का  
कलक ३२ तोला, कांजी ६ सेर ३२ तोला,  
मूर्च्छित काले तिल का तैल १२८ तोला, कलक-  
परिपाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला इन सबको  
एकत्रित करके पाक करना चाहिये । पाक सिद्ध  
हो जाने पर तैल छानकर उसमें १ तोला कपूर,  
१ तोला शिंजारस, १ तोला नखी मिलाकर  
रखना । इस तैल के मर्दन से मय प्रकार के  
ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २६४-२६५ ॥

महालाक्षादि तैल ।

लाक्षासाठके प्रस्थं तैलस्य विपचे-  
द्भिषकः । मस्त्याढकसमायुक्तं पिष्ट्वा चात्र  
समावपेत् ॥ २६६ ॥ शतपुष्पां हरिद्राश्च  
मूर्वा कुष्ठं हरिगुक्कम् । कटुकां मधुकां  
रास्नामश्वगन्धाश्च टारु च ॥ २६७ ॥  
मुस्तकं चन्दनञ्चैव पृथगक्षतमानकैः ।  
द्रव्यैरेतैस्तु नत्सिद्धमभ्यङ्गान्मास्ताप-  
हम् ॥ २६८ ॥ विपमाख्यान ज्वरान्  
सर्वान् आश्वेय प्रथमं नयेत् । कास श्वासं  
प्रतिश्यायं कण्टकैर्गन्धर्गारिणम् ॥ २६९ ॥  
त्रिकपृष्टकटीन्नां गात्राणां मुट्टनं तथा ।  
पापालक्ष्मीमशमनं गर्भग्रहविनाश-

नम् ॥ ३०० ॥ अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं  
तैलं लाक्षादिकं महत् । लाक्षायाः पद्मगुणं  
तोयं दत्त्वैकविंशवारकम् ॥ परिस्त्राव्य जलं  
ग्राह्यं किंवा काथं यथोदितम् ॥ ३०१ ॥

“शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानाम-  
सम्भवे । वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं  
पादावशेषितम्” ॥ इति वचनात् ॥

मूर्च्छित काले तिल का तैल १२८ तोला,  
पीप की लाख का काथ ६ सेर ३२ तोला, दही  
का पानी ६ सेर ३२ तोला, कलक के लिये सोवा,  
हल्दी, मूर्वा का मूल, कूट, रेणुका ( सग्हालू के  
बीज ), कुटकी, मुलेठी, रास्ना, अश्वगन्ध, देवदारु,  
नागरमोथा और लाखचंदन प्रत्येक १ तोला  
लेना । सबको एकत्रित करके यथाविधि पाक  
करना । पाक सिद्ध होने पर छानकर उसमें  
कपूर २ तोला, छड़ीला २ तोले और नखी २  
तोले मिलाकर बोटल आदि किसी पात्र में  
रखकर पात्र का मुख बंद रखने । इस तैल का  
मर्दन करने से घात रोग, सब प्रकार के विषमज्वर,  
कास, श्वास, प्रतिश्याय ( जुखाम ), गुजली,  
श्वेद ( पनीना ) की दुर्गन्धि, शरीर का भार  
घोष, त्रिक, पृष्ठ और कटि की वेदना, शरीर का  
टूटना, पाप, कान्तिहीनता आदि नाना प्रकार  
के रोग नष्ट होते हैं । इस महालाक्षादि तैल  
का अश्विनीकुमारों ने आविष्कार किया था ।  
लाय को कूटकर छगुने पानी में दहीस धार  
दोलायन्त्र से गिराये तदनन्तर उसी जल को  
लाय के स्थान में तैल पाक के लिये प्रदण करना  
चाहिये और बचे हुए लाय को रसाग दे प्रथम  
लाय को छटगुने पानी में पकाकर चतुर्धांश शेष  
काथ का तैलपाक के लिये उपयोग करना  
चाहिये ॥ २६६-२७१ ॥

शुष्कद्रव्य तैल ।

शुक्रारनालैर्दधिमस्तुतकैः  
फलाभ्युभागेन समं हि तैलम् ।

कृष्णादिकल्केर्मूर्धुर्वाहिसिद्ध-

मभ्यञ्जनं वातकफज्वराणाम् ३०२

ऐकाहिकद्वित्रिचतुर्थकानां

मासार्द्धमासद्वयमासिकानाम् ।

निवारणं तद्विषमज्वराणां

तैलन्तु पङ्कद्वरकमहत् स्यात् ॥ ३०३ ॥

कृष्णादिगणो यथा ।

कृष्णा चित्रकपटग्रन्था वासकं वि-  
कसा धनम् । ग्रन्थिकैले चातिविपारेणुकञ्च  
कटुत्रयम् ॥ ३०४ ॥ यमानी गोस्तनी  
व्याघ्री भूनिम्बविल्वचन्दनम् । भार्गी  
रयामा शिवा धात्री स्थिरा मूर्वा सजी-  
रका ॥ ३०५ ॥ सर्पपं हिंगु कटुकी  
विडङ्गञ्च समांशकम् । एष कृष्णादिको  
नाम गणो ज्वरविनाशनः ॥ ३०६ ॥

मूर्च्छित तिल तैल २ सेर, शुद्ध २ सेर, काँजी  
२ सेर दही का पानी २ सेर, तक्र २ सेर,  
बिजोरे नीबू का रस २ सेर, कल्क के लिये  
कृष्णादिगण । जैसे—छोटी पीपर, चीता की  
जड़, बच, अरुसे का मूल, मजोठ, नागरमोथा,  
पिपरा मूल, छोटी हलायची, अतीस, सगहलू के  
बीज, सोंठ, पीपर, कालीमिरच, अजवाइन,  
मुनका, कटेरी, चिरायता, बेल की छाल, लाल  
चन्दन, भारंगी, अनन्तमूल, हर्रा, आमला,  
शालपर्णी ( सरिषन ), मुवांमूल, जीरा, सरसों,  
हॉग, कुटकी और थायबिदंग ये कुल मिलकर  
आध सेर । सबको एकत्रित करके मन्द-मन्द  
आँच पर यथाविधि पाक करना । पाक सिद्ध  
हो जाने पर छानकर तैल में छड़ीला, कपूर और  
नखी एक-एक तोला मिलाकर रखना ।

इस तैल के मर्दन करने से ऐकाहिक, द्वयाहिक,  
एतीथक, चातुर्थिक, अर्धमासिक, मासिक,  
द्विमासिक आदि सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट  
होते हैं ॥ ३०४-३०६ ॥

बृहत्पिप्पल्याद्य तैल ।

पिप्पलीमुस्तकं धान्यं सैन्धवं त्रिफला  
वचा । यमानी चाजमोदा च चन्दनं  
पुष्कराह्वयम् ॥ ३०७ ॥ शशी द्राक्षा  
गवाक्षी च शालपर्णी त्रिकण्टकम् ।  
भूनिम्बारिष्टपत्राणि महानिम्बं निदि-  
ग्धिका ॥ ३०८ ॥ गुडूची पृश्निपर्णी च  
बृहतीदन्तिचित्रकौ । दावी हरिद्रा वृत्ताम्लं  
पर्पटं गजपिप्पली ॥ ३०९ ॥ एतेषां  
कार्षिकैः कल्कैस्तैलमस्थं विपाचयेत् । दधि-  
काञ्जिकतक्रैश्च मातुलुङ्गरसैस्तथा ॥ ३१० ॥  
स्नेहमात्रासमैरेभिः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।  
सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपो-  
हति ॥ ३११ ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव दोष-  
त्रयसमुद्भवम् । सन्ततं सततान्येषुस्तुती-  
यकचतुर्थकान् ॥ ३१२ ॥ मासजं पक्षजं चैव  
चिरकालानुबन्धनम् । सर्वास्तान् नाश-  
यत्याशु पिप्पल्याद्यमिदं शुभम् ॥ ३१३ ॥

मूर्च्छित काले तिल का तैल १२८ तोला, दही  
का पानी १२८ तोला, काँजी १२८ तोला, तक्र  
१२८ तोला, बिजोरे नीबू का रस १२८ तोला ।  
कण्टक के लिये छोटी पीपर, नागरमोथा, धनिया,  
सैधानोन, हर्रा, आँवला, बहेड़ा, बच, अजवाइन,  
अजमोद, लाल चन्दन, कूट, कचूर, मुनका,  
इन्द्रायण, सरिषन, गोपुर, चिरायता, नीम के  
पत्ते, यकायन की छाल, कटेरी, गिलोय, पिठवन,  
यड़ी कटेरी, दन्ती का मूल, चीता का मूल,  
दारदहदी, हल्दी, वृषाम्ल ( कोकम ), पित्तपापड़ा  
और गजपीपर यह प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला ।  
इन सबको एकत्रित कर पाक करना, पाक सिद्ध  
होने पर छानकर तैल में कपूर, छड़ीला और  
नखी एक-एक तोला मिलाकर रख देना । इस  
तैल का मर्दन करने से सब प्रकार के जीर्णज्वर  
और विषमज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३०७-३१३ ॥

१ मलाईपुत्र दही में चतुर्थांश जल डालकर  
तैयार किया हुआ तक्र लेना चाहिये ।

महद्भूनिम्बाद्य तैल ।

जलद्रोणे तु भूनिम्बं तुलामानं पचेद्भि-  
पक् । पादार्थं कटुतैलं स्याद्युक्त्या तेनैव  
पाचयेत् ॥ ३१४ ॥ लाक्षा मोरटयोः  
काथौ काञ्जिकं दधिमस्तु च । आदाय  
तैलतुल्यानि कल्कैरेतैर्विपाचयेत् ॥ ३१५ ॥  
किरातं गुवहाकुष्ठं लाक्षैन्द्रीवशिरास्तथा ।  
विकसा द्वे निशे मूर्वा मधुयष्ट्याब्दके  
तथा ॥ ३१६ ॥ पुनर्नवा विडं मांसी बृहती  
सैन्धवं तथा । बालकं चन्दनं कट्वी तथा  
भोक्ता शतावरी ॥ ३१७ ॥ शतपुष्पा  
चाश्वगन्धा हरेणुर्देवदारु च । पद्मकोशीर-  
धान्यानि पद्मग्रन्था च कणा शटी ॥ ३१८ ॥  
यमानीयुक्तं त्रिफला गोक्षुरं शृङ्ग एव च ।  
पर्णायुग्मं दन्तिमूलं जन्तुघ्नं जीरकद्व-  
यम् ॥ ३१९ ॥ महानिम्बं च हवुषा शुण्ठी चारो  
यवोद्भवः । दत्त्वा कर्षद्वयं चैषां साधयेन्मृदु-  
नाग्निना ॥ ३२० ॥ सिद्धतैलमिदं हन्या-  
त्समस्तान् विषमाज्ज्वरान् । प्लीहोत्थान्  
श्वयथुयुक्ताज्ज्वरं मेहोद्भवं तथा ॥ ३२१ ॥  
अग्निदीप्तिकरं चैव बलवर्णकरं तथा ।  
पाण्डुवादीन् हन्ति रोगान् वै अभ्यङ्गान्नात्र  
संशयः ॥ ३२२ ॥

कटुवा सैल १ आठक ( ३ सेर १६ तोला ),  
चिरायते का काथ आधा द्रोण ( ६ सेर ३२  
तोला, १० सेर चिरायता २५ सेर ४८ तोला  
जल में औटाकर ६ सेर ३२ तोला रहने पर छान,  
लिया जाय, मूर्वा की जड़ का षाय १ आठक  
( ३ सेर १६ तोला ), लापा काथ १ आठक  
( ३ सेर १६ तोला ), कांजी १ आठक ( ३ सेर  
१६ तोला ), दही का पानी १ आठक ( ३ सेर  
१६ तोला ) करके प्रथम—चिरायता, रास्ता,  
बूट, लाप, इन्द्रायण की जड़, गजपीपल, मंजीठ,  
हृषी, दारहृषी, मूर्वा की जड़, मुलाढठी, मोघा,

पुनर्नवा, विडनमक, जटामांसी, बड़ी कटेरी,  
सैधानमक, गन्धवाला, लालचन्दन, कटुकी,  
शताधर, सोया, असगन्ध, रेणुका, देवदारु,  
पद्मास, लस, धनिया, बच, पिप्पली, कचूर,  
अजवायन, अजमोद, त्रिफला, गोक्षर, काकड़ा-  
सिंगी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, दन्तीमूल, बायविडंग,  
सफेद जीरा, काला जीरा, बकायन की छाल,  
हाऊवर, सोंड, यवहार प्रत्येक २ कर्ष ( २ तोले ) ।  
विधिपूर्वक तैल मिद्ध करके बाह्यप्रयोग ( अभ्यंग  
वस्तिर्कर्म आदि ) करावे । इसकी मालिश से  
सन्तत मतत आदि सन्पूर्ण विषमज्वर एवम्  
प्लीहाश्रित अथवा सूजनयुक्त विषमज्वर, प्रमेहोत्थ-  
ज्वर तथा पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं । दूसरे  
ग्रन्थों में इसका नाम बृहत्किरातादि तैल कहा  
है ॥ ३१४-३२२ ॥

महाज्वरभैरव तैल ।

अमृतारिष्टको वासा मौर्वी श्रीखण्ड-  
मेव च । भूनिम्बश्च महातिक्ता निर्गुण्ड्याश्च  
दलानि च ॥ ३२३ ॥ शतं पलानि  
सर्वेषां द्रोणे नीरे विपाचयेत् । पादावशिष्टकैः  
काथस्तैलं प्रस्थयुगं पचेत् ॥ ३२४ ॥  
अमृतातिविषा देवदारुत्रयो सुपर्षिका ।  
कणा च ग्रन्थिकं लाक्षा शिग्रु वीजं शिला-  
जतु ॥ ३२५ ॥ पट्टोलधान्यकुष्ठानि भूनिम्बं  
स्वर्ष्यपुष्पकः । मूर्वा जटाश्वगन्धा च पीतद्रु-  
कण्टकारिका ॥ ३२६ ॥ एतैः सार्धं पलैः  
कल्कैः युधस्तैलं विपाचयेत् । पाकार्थश्च  
पयस्तत्र देयं प्रस्थचतुर्मितम् ॥ ३२७ ॥  
सिद्धं तैलं ज्वरहरं पाण्डुं शोधं च काम-  
लाम् । ज्वरभैरवनामिदमभ्यङ्गाद्धन्ति  
निश्चयम् ॥ ३२८ ॥

तिल का तैल २ प्रस्थ ( १२८ तोला ), पाय-  
व्य-गिलोय ५ सेर ( जल २५ सेर ४८ तोला,  
उद्यालने से यथा षाय ६ सेर ३२ तोला ) ।  
नीम की छाल ५ सेर ( जल २५ सेर ४८ तोला,

बचा हुआ काथ ६ सेर ३२ तोला ) । अदुसा-  
की जड़ २ सेर ( जल २५ सेर ४८ तोला, बचा-  
हुआ काथ ६ सेर ३२ तोला ) । मूर्वा की जड़ ५  
सेर ( जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ  
काथ ६ सेर ३२ तोला ) । सफेद चन्दन २  
सेर ( जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ  
काथ ६ सेर ३२ तोला ) । कालमेघ २ सेर ( जल  
२५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ कालमेघ का  
काथ ६ सेर ३२ तोला ) । मंभालू के पत्ते २ सेर ( जल  
२५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ मंभालू का काथ ६  
सेर ३२ तोला ) । दूध ४ प्रस्थ ( ३ सेर १६ तोला )  
कक के त्रय—गिलोय, अतीस, देवदारु, हल्दी  
शरहल्दी, कालीजीरी, पिप्पली, पीपलामूल,  
लास, सहजने के बीज, शालपर्णी, शिलाजीत,  
पटोलपत्र, धनियाँ, कूट, चिरायता, स्वर्णपुष्पक  
( अमलतास की छाल या नागकेसर ), मूर्वा की  
जड़, असगन्ध, चीड़ की लकड़ी और छोटी  
कटेरी प्रत्येक १॥ पल ( ६ तोला ) । इन सबको  
विधिपूर्वक पकावे, छानकर तैल को ग्रहण करे ।  
इस तैल की मालिश से ज्वर, पांडु, शोथ, कामला  
इत्यादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३२३-३२८ ॥

ज्वर में शिरोवेदनानाशक योग ।

रक्तकरवीरपुष्पं धात्रीफलं सधान्याम्लम् ।  
कल्कः सुगोष्णलोपाज्ज्वरेषु शिरसो  
रुजं जयति ॥ ३२९ ॥

लाल कनेर का फूल और आंवला को  
काँजी के साथ पीसकर थोड़ा उष्ण करके लेप  
करने से सद्य प्रकार के ज्वर में शिर की पीड़ा  
शान्त होती है ॥ ३२९ ॥

आगन्तु ज्वरचिकित्सा ।

अभिघातज्वरो नश्येत् पानाभ्यङ्गेन  
सर्पिषः । क्षतानां व्रगितानां च क्षतव्रग-  
चिकित्सया ॥ ३३० ॥ औषधीगन्ध-  
विपजौ त्रिपित्तप्रनाधनैः । जयेत् कपायै-  
र्मतिमान् सर्वगन्धकृतैस्तथा ॥ ३३१ ॥

अभिघातज्वर घृतपान और घृत की मालिश

से अच्छा हो जाता है । इन और व्रण से  
उत्पन्न होनेवाले ज्वर को क्षत और व्रण की  
चिकित्सा करके अच्छा करना चाहिये । तीव्र  
औषध की गन्ध से अथवा विप से पैदा होने-  
वाले ज्वर में विषघ्न तथा पित्तघ्न सर्वगन्ध  
आदि के काथों द्वारा चिकित्सा करनी  
चाहिये ॥ ३३०-३३१ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना  
जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पात-  
ग्रहपीडजौ ॥ ३३२ ॥

श्येनयागादि क्रियाओं द्वारा तथा शाप से  
उत्पन्न होने वाले ज्वर को होम, प्रायश्चित्त तथा  
मङ्गलक्रिया द्वारा अच्छा करे । एवम् उत्पात  
तथा ग्रहपीडाओं से उत्पन्न होनेवाले ज्वर को  
दान, आशीर्वाद तथा अतिथिपूजा आदि कर्मों  
द्वारा अच्छा करना चाहिये ॥ ३३२ ॥

क्रोधजे पित्तजित्काम्या अर्थाः सद्वाक्य-  
मेन च । आर्यासेनेष्टलाभेन वायोः प्रश-  
मनेन च ॥ ३३३ ॥ हर्षणैश्च शमं यान्ति  
कामगोकभयज्वराः । कामात् क्रोधज्वरो  
नाशं क्रोधात् कामसमुद्भवः । यातिताभ्या-  
मुभाभ्यांतु भयगोकसमुद्भवः ॥ ३३४ ॥

क्रोधजन्य ज्वर में पित्तनाशक क्रिया, इच्छित  
वस्तु की प्राप्ति तथा साधु बचनों द्वारा चिकित्सा  
करनी चाहिये । कामजन्य, शोकजन्य, भयजन्य  
ज्वर सान्त्वना, इष्ट वस्तु की प्राप्ति, प्रसन्नता  
तथा धायुसंशमन औषधों द्वारा शान्त हो  
जाते हैं । एवम् इनके प्रतिद्वन्द्वी कर्म से अर्थात्  
काम से क्रोधजन्य ज्वर, क्रोध से कामजन्य

१. सर्वगन्ध—सुधुतोत्र पलादिनाय ही ग्रहण  
करना चाहिये ।

पलातगर कुटमासीप्यामकवक्त्रप्रनागपुष्पत्रियन्नु-  
हरेणुकाव्याघ्रनरशुक्तिचवडास्यौषधौषकधीवेष्टकचो-  
चचंर कबालुकगुमगुलुमजैरस्तुत्पुत्पुन्द्वकामकर-  
कोशीरभद्र दारकुडमानि पुत्रागकेशरं चति ।

—एतादिनाय

ज्वर तथा क्रोध से और काम से भयजन्य एवम् शोकजन्य ज्वर शान्त होते हैं ॥ ३३३-३३४ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धा वेशनताडनैः ।  
जयेद् भूताभिपङ्कोत्थं मनःसान्त्वैश्च  
मानसम् ॥ ३३५ ॥

भूताभिपङ्गजन्य ज्वर में भूतविद्या के कहे हुये बन्धन आनेश तथा ताडन आदि क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिये । मानसज्वर में मन को सांत्वना देनी चाहिये ॥ ३३५ ॥

ज्वरमुक्ति में निषिद्ध ।

व्यायामश्च व्यवायश्च स्नानं चङ्क्रम-  
णानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न  
बलवान् भवेत् ॥ ३३६ ॥

ज्वर अच्छा हो जाने पर भी जब तक रोगी बलवान् न हो जाय व्यायाम, मैथुन, स्नान ( अधिक ) भ्रमण आदि कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ३३६ ॥

विगत ज्वर के लक्षण ।

देहो लघुव्यर्थपगतक्लममोहतापः पाको  
मुखे करणसौष्टवमव्यथलम् । स्वेदः क्षुब्धः  
प्रकृतिगामिमनोऽञ्जलिष्ठा कण्डूश्च मूर्च्छि  
विगतज्वरलक्षणानि ॥ ३३७ ॥

ज्वर शान्त हो जाने पर नीचे लिखे लक्षण होते हैं—

शरीर में हलकापन, क्लान्ति ( थकावट भी ), मोह और सन्ताप का न होना, मुखपाक, हृन्दिष्ठों को छपने-छपने विषय का ठीक-ठीक ज्ञान होना, पीड़ा का अभाव, पसीना और छूँक का आना, मन का स्वाभाविक अवस्था में आ जाना, आहार को इच्छा तथा शिर पर खुनली होना ॥ ३३७ ॥

जीर्णज्वर में पेया आदि ।

ज्वरे पेयाः कपायाश्च सर्पिः क्षीरं  
चिरेचनम् । पट्टे पट्टे देयं कालं पीक्ष्या-  
मयस्य च ॥ ३३८ ॥

जीर्णज्वर में पेया, कपाय ( काढ़ा ), घृत, दुग्ध सेवन और विरेचन करना चाहिये । यह रोग की अवस्था विचार कर छ-छः दिन का अन्तर देकर कराना चाहिये ॥ ३३८ ॥

ज्वर में संशोधन ।

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वञ्चाधश्च  
बुद्धिमान् । दद्यात् संशोधनं काले कल्पे  
यदुपदेद्यते ॥ ३३९ ॥

बहुत दोषों से उत्पन्न हुये ज्वर में ऊर्ध्व और अधः संशोधन अर्थात् वमन और विरेचन कराना चाहिये । इस संशोधन के विषय में सुश्रुत के कल्प स्थान में लिखे के अनुसार समय पर कार्य करना चाहिये ॥ ३३९ ॥

ज्वर में वमन ।

मदनं पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन  
वा । युक्तमुष्णाम्बुना पेयं वमनं ज्वरशा-  
न्तये ॥ ३४० ॥

ज्वर की शान्ति के लिये पीपरी, इन्द्रजी, अथवा मुलेठी सहित मैंगफल को उष्ण जल के साथ पीसकर पिलाये । कफ की अधिकता में पीपरी के साथ, पित्त और कफ की अधिकता में इन्द्रजी के साथ, यदि दाह हो तो मुलेठी के साथ मैंगफल का प्रयोग करे । इससे वमन होकर ज्वर शान्त हो जाता है ॥ ३४० ॥

ज्वर में विरेचन ।

आरग्वथं वा पयसा मृष्टीकानां रसेन  
वा । त्रिघृतां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः  
पिबेत् ॥ ३४१ ॥

ज्वर में विरेचन के लिये जम् में अभिल-  
तास का चूर्ण मिलाकर पीना, अथवा मुनके को पानी में पीसकर बस से छान लेना । उर्गी मुनका के रस में अभिलतास का चूर्ण मिला-  
कर पीना । अथवा निशोध या प्रापमास्य को जल में पीसकर पीना चाहिये ॥ ३४१ ॥

ज्वरक्षीण के लिये विधि ।

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् । क्रामन्तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ ३४२ ॥ प्रयोजयेत् ज्वरहरान् निरूहान् सानुवासनान् । पकाशयगते टोपे वक्ष्यन्ते ये चसिद्धिषु ॥ ३४३ ॥

ज्वर से निबल हुये मनुष्य के लिये वमन या विरेचन लाभदायक नहीं है । किन्तु क्षीणावस्था में निरूहण अथवा अनुवासन क्रिया द्वारा मल निकालना चाहिये । निरूहण अथवा अनुवासन से पकाशयगत मल निवृत्त हो जाते हैं ॥ ३४२-३४३ ॥

ज्वर में शिरोविरेचन ।

गौरवे शिरसः शूले विषद्धेप्विन्द्रियेषु च । जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ ३४४ ॥

मस्तक में भारबोध और पीडा तथा इन्द्रियों में जडता होने पर जीर्णज्वर में शिरोविरेचन (विरेचन नस्य) देना लाभदायक होता है ॥ ३४४ ॥

अथ दुग्धप्रकरण ।

जीर्णज्वर में दुग्धप्रयोग ।

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् । तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ ३४५ ॥ चतुर्गुणेनाम्भसा च शृतं ज्वरहरं पयः । धारोष्णं वा पयः शीतं पीतं सद्यो ज्वरं जयेत् ॥ ३४६ ॥

जीर्णज्वर में जिसका कफ क्षीण हो गया हो उसके लिये दुग्ध अमृत के समान हितकर होता है । लेकिन तरुणज्वर में पान किया गया दुग्ध विष के समान प्राणघातक होता है । चतुर्गुण जल में दुग्ध पकावे, जब दुग्धमात्र शेष रह जाय तब पान करने से शीघ्र ज्वर नष्ट होता है । धारोष्ण या शीतल दुग्ध पान करने से शीघ्र ज्वरशान्त होता है ॥ ३४५-३४६ ॥

भेषजसिद्ध दुग्ध के गुण ।

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम् । पेयं तदुष्णं शीतं वा यथास्वमौषधैः शृतम् ॥ ३४७ ॥

दोष के अनुसार औषधों के साथ पकाये हुये दुग्ध का पान करने से सब प्रकार के जीर्णज्वर शान्त होते हैं । औषधपक्व दुग्ध को पित्तक और घात-पित्तक ज्वर में शीतल करके, वातिक और वातरत्नैभिक ज्वर में कुछ उष्ण रहते ही पान करना चाहिये ॥ ३४७ ॥

पञ्चमूलीशृत दुग्ध ।

कासात् श्वासात् शिरःशूलात् पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात् । मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ ३४८ ॥

सोलह तोले दुग्ध में २ तोले लघुपंचमूल की डीली पीटली बनाकर डालना, उसमें ६४ तोले पानी डालकर धीमी आंच में पकाना दुग्धमात्र शेष रहने पर उतार लेना । इस दुग्ध का सेवन करने से कास, श्वास, शिर की पीडा, पार्श्वियों की पीडा और पुराना ज्वर ये सब उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ३४८ ॥

क्षीरपाकविधि ।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीराचोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ३४९ ॥

क्षीरपाक करने की विधि यह है कि जिस द्रव्य के साथ दुग्ध पाक करना हो उस द्रव्य का आठगुना दुग्ध और दुग्ध का चौगुना पानी डालकर धीमी आंच में पकाने । दुग्धमात्र शेष रहने पर पाक सिद्धि दुग्धा ममकना चाहिये ॥ ३४९ ॥

१ क्षीरपाक करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस द्रव्य के साथ क्षीरपाक करना हो उसको थोड़ा कूटकर कोमल बना लिये क्षीरउसकी रसध ( डीली ) पीटली बांधकर दुग्ध में डाले ॥

गोक्षुरादि दुग्ध ।

त्रिकण्टकवला ध्याघ्नी गुडनागरसा-  
धितम् । वर्धमानत्रविघ्नधन्नं शोधज्वरहरं  
पयः ॥ ३५० ॥

गोक्षुरु, खरेटी, छोटी कटेरी और सोंठ ये  
कुल मिलाकर २ तोले, दुग्ध १६ तोले, जल  
६४ तोले मद्य एकत्रित कर पाक करना, पाक  
मिद्ध होने पर ६ मासे पुराना गुड डालकर पान  
करना चाहिये । इसका सेवन करने से कोष्ठबद्धता  
मूत्रावरोध, ( लघुशक्ता का न होना ), शोध  
और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३५० ॥

पुनर्नवादि दुग्ध ।

पृथ्वीरत्रिलयवर्षामूपयश्चोदकमेव च ।  
पचेत् क्षीरावशिष्टं तु तद्धि सर्वज्वरा-  
पहम् ॥ ३५१ ॥

श्वेत पुनर्नवा, बेलगिरी और रत्नपुनर्नवा  
कुल मिलित २ तोले, दुग्ध १६ तोले, जल  
६४ तोले । पूर्वोक्त विधि से पाक कर सेवन  
करना चाहिये । इससे सब प्रकार के ज्वर नष्ट  
होते हैं ॥ ३५१ ॥

शीत या उष्ण दुग्ध पीने की व्यवस्था ।

शीतं वोष्णं ज्वरे क्षीरं यथास्वर्मापधैः  
शृतम् ॥ ३५२ ॥

युक्ति युक्त औषधों के साथ सिद्ध किये हुये  
दुग्ध को पीतक और वातपित्तव ज्वर में शीतल  
परके, वातिक और वातश्लेष्मिक ज्वर में कुछ उष्ण  
रहते ही पान करना चाहिये ॥ ३५२ ॥

परएडमूलसिद्ध दुग्ध ।

परएडमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिक्र-  
त्तिके ॥ ३५३ ॥

ज्वर में परिकर्तिका अर्थात् गुदा में केंची  
से वाटन के समान पीदा होती हो तो परएड  
के मूल के साथ सिद्ध किया हुआ दुग्ध अत्यन्त  
लाभदायक होता है ॥ ३५३ ॥

अथ चूर्णप्रकरणम् ।

सुदर्शनचूर्ण ।

कालीयकन्तु रजनी देवदारु वचा  
धनम् । ग्रभया धन्वयासरच शृङ्गी  
जुद्धा महौषधम् ॥ ३५४ ॥ त्रायन्ती  
पर्यटं निम्बं ग्रन्थिकं चालकं शठी । पौप्परं  
मागधी भूर्वा कुटजं मधुयष्टिका ॥ ३५५ ॥  
शिग्रूत्पलं सेन्द्रयत्रं वरी दावी कुच-  
न्दनम् । पन्नकं सरलोशीरं त्वचं सौराष्ट्रका  
स्थिरा ॥ ३५६ ॥ यमान्यतिविषा विल्व  
मरिचं गन्धपत्रकम् । घात्री गुडूची कटुकं  
सचित्रकपटोलकम् ॥ ३५७ ॥ कलसी  
चैत्र सर्वाणि समभागानि कारयेत् ।  
सर्वद्रव्यस्य चार्द्धं तु कैरातं सम्प्रकल्प-  
येत् ॥ ३५८ ॥ पृथग्दोषांश्च विविधान्  
समस्तान् निपमज्वरान् । प्राकृतं वैकृतं  
चापि सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ॥ ३५९ ॥  
अन्तर्गतं वहिःस्थञ्च निरामं साममेव च ।  
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यामाध्यमथापि  
वा ॥ ३६० ॥ नानादेशोद्भवं चैत्र वारि-  
टोपभवं तथा । विरुद्धभेषजभवं ज्वरमायु  
व्यपोहति । प्लीहानं यकृतं गुल्मं हन्त्यवश्यं  
न संशयः ॥ ३६१ ॥ यथा सुदर्शनं चन्द्रं  
दानानां निपटनम् । तथा ज्वराणां  
सर्वेषामिदमेव निगद्यते ॥ ३६२ ॥

काली अमर<sup>१</sup> हरी, दशहर, वच, मागर  
मोषा, हरं, भ्रामा, काकजाभिगी, छोटी कटेरी  
सोंठ, त्रायमाया, पिच्छपापदा, नीम की छाल,  
पिपरामूल, मुग्धधात्वा, बभूर, कूट, पीपरी  
मूर्चामूल कुट्टे की छाल, मुष्टेरी, मोजन वा रंज  
बमल इन्द्रणी, शतावरी, दाहदहरी, खालचन्दन,



पदमास, धूपसरल, खम, दालचीनी, मौस्राष्ट्र-<sup>१</sup> मृत्तिका, शालपर्णी, राजवाइन, अतीस, बेल की छाल, कालीमिर्च, गन्धपत्र, आँवला, गिलोय, कुटकी, चीते की जड़, परबल के पत्ते और पृष्ठपर्णी इन कुछ औषधों का समभाग चूर्ण एकत्रित करके उसमें कुल चूर्ण का आधा चिरा-  
 १ यते का चूर्ण मिलावे । इसका नाम सुदर्शन चूर्ण है । इसकी मात्रा १ मास से ४ मासे तक होती है । यह सब प्रकार के ज्वरों की सर्वोत्तम महौषध है । इसका सेवन करने से प्रकृत विकृत सौम्य, तीक्ष्ण, अंतर्वेग, बहिर्वेग, आमरहित, आमसहित साध्य, असाध्य आठ प्रकार के ज्वर एवम् अनेक दोषों में जल के दोष से उत्पन्न ज्वर, विपरीत औषध के सेवन से उत्पन्न ज्वर नष्ट होते हैं तथा ज्वरजन्य प्रीहा, यकृत और गुहम रोग अवश्य नष्ट होते हैं । जैसे सुदर्शनचक्र दानवों को नष्ट करने में विलम्ब नहीं करता, इसी प्रकार यह 'सुदर्शन चूर्ण' हर प्रकार के ज्वरों को तत्काल नष्ट करता है ॥ ३५४-३६२ ॥

आमलक्यादि चूर्ण

आमलं त्रिवकं पथ्या पिप्पली सैन्य-  
 वस्तथाचूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्व ज्वरो  
 विनाशनः ॥ भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता  
 दीपन पाचनः ॥ ३६३ ॥

आँवला, चीते की जड़, हरड़, पीपल और मँधा नामक इन औषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण बना लेवे । यह आमलकादि गण सब प्रकार के ज्वरों का नाशक दस्त साफ लाने वाला, रुचि बढ़ाने वाला, कफ नाशक दीपन, और पाचन होना है, चूर्ण खाकर ऊपर से ताजा जल पीना चाहिये । ॥ ३६३ ॥

ज्वरभैरव चूर्ण ।

नागरं त्रायमाणा च पिञ्जुमहो दुरा-  
 लभा । पथ्या मुस्तं वचा दारु व्याघ्रीमृद्धी  
 शतावरी ॥ ३६४ ॥ पर्पटं पिप्पलीमूलं

विशाला पुष्करं शटी । मूर्वा कृष्णाहरिद्रे  
 हे लोधं चन्दनमुत्पलम् ॥ ३६५ ॥  
 कुटजरय फलं बल्कं यष्टीमधुकचित्रकम् ।  
 शोभाञ्जनं बला चातिविषा च कटुरो-  
 द्विणी ॥ ३६६ ॥ मुसली पद्मकाष्ठं च  
 यमानी शालपर्णिका । मरिचं चामृता  
 विल्वं बालं सौराष्ट्रमृत्तिका ॥ ३६७ ॥  
 तेजपत्रं त्वचं धातु पृश्निपर्णी पटोलकम् ।  
 गन्धकं पारदं लोहमभ्रकश्च मनः-  
 शिला ॥ ३६८ ॥ एतेषां समभागेन  
 चूर्णमेव विनिर्दिशेत् । तदद्दं प्रक्षिपेत्त्र  
 चूर्णं भूनिम्बसम्भवम् ॥ ३६९ ॥ मात्रा-  
 मस्य प्रयुञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलावलम् । चूर्णं  
 भैरवसंज्ञन्तु ज्वरान् हन्ति न संशयः ॥ ३७० ॥  
 पृथग्दोषारच विविधान् समस्तान् विषम-  
 ज्वरान् । द्वन्द्वान् सन्निपातोत्थान् मान-  
 सानपि नाशयेत् ॥ ३७१ ॥ प्राकृतं  
 वैकृतञ्चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापिवा । अन्त-  
 र्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव च ॥ ३७२ ॥  
 ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न  
 संशयः । नानादेशोद्भवञ्चैव वारिदोषभवं  
 तथा ॥ ३७३ ॥ विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु  
 व्यपोहति । अग्निमान्द्यं यकृतप्लीह-  
 पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ३७४ ॥ उदराण्य-  
 न्त्रवृद्धिश्च रक्तपित्तं त्वगामयम् । श्वयथुं  
 च शिरःशूलं वातामयरुजापहम् । ज्वर-  
 भैरवसंज्ञन्तु भैरवेण कृतं शुभम् ॥ ३७५ ॥  
 सोंठ, त्रायमाणा, नीम की छाल, धमासा,  
 हरीतकी, नागरमोषा, वच, देवदारु, छोटी कटेरी,  
 काकणासिणी, शतावरी, पित्तपापदा, पिपरामूल,  
 इन्द्रायण की जड़, बूट, कपूर, मूर्वामूल, पीपरी,  
 हल्दी, दारहल्दी, लोध, जालचन्दन, कमल,  
 इन्द्रजी, कुँरे की छाल, मुञ्जेटी, चीते की जड़,

१ अभाव में भूनी फिटकरी ।

संजन का बीज, खरंटी की जड़, अतीस, कुटकी, मूसली सफेद पद्मकाठ, अजवाइन, शरिवन, कालीमिरच, गिलोय, बेल की छाल, सुगन्धबाला, पङ्कपर्पटी, तेजपात, टालचीनी, आँबला, पृष्ठपर्णी, परवल व पत्ते, शुद्धगन्धक, पारा, लोहभस्म, अश्रुभस्म और शुद्ध मेनसिल, इन सब द्रव्यों का चूर्ण सम भाग लेते और इन कुल द्रव्यों का चूर्ण मिलकर जितना हो उसका प्राधा उसमें चिरायते का चूर्ण मिलावे। रोगी का बलाबल विचार कर मात्रा की व्यवस्था करनी चाहिये। यह चूर्ण भी सुदर्शनचूर्ण के समान सब प्रकार के विषमज्वर तथा अन्यान्य ज्वरों का अति उत्कृष्ट औषध है। इससे अग्निमान्द्य, यकृत, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरचि, उदररोग, अन्तर्बुद्धि, रक्तापित्त, चर्मरोग, शोथ, शिर की पीडा और वातरोग दूर होते हैं। इस चूर्ण का आविष्कार भैरवजी ने किया था, यत इसका नाम 'ज्वरभैरव-चूर्ण' है ॥ ३६४-३७४ ॥

ज्वरनागमयूर चूर्ण ।

लौहाश्रुत्कन ताभ्रं तालकं वङ्गमेरु  
च । शुद्धमूलं गन्धकं च शिशु बीजं फल-  
त्रिकम् ॥ ३७६ ॥ चन्दनातित्रिपा पाटा  
वचा च रजनीद्वयम् । उजीरं चित्रकं  
देवकाष्ठञ्च सपटोलकम् ॥ ३७७ ॥  
जीवरुर्षभराजाज्यस्तालीशं वंशलोचना ।  
कण्टकाय्याः फलं मूलं शठीपत्रं कटुत्र-  
यम् ॥ ३७८ ॥ गुडूचीमत्तं धन्याकं  
कटुहीनेत्रपर्पटी । मुस्तकं तालकं बिल्वं  
यष्टीमधु समं समम् ॥ ३७९ ॥ भागा-  
चतुर्गुणं देयं कृष्णजीरस्य चूर्णकम् ।  
तत्समं तालपुष्पं च चूर्णं दण्डोत्पलाभ-  
वम् ॥ ३८० ॥ कैरातं तत्समं देयं तत्समं  
चपलाभवम् । पत्रचूर्णं समाख्यातं

१ पारा और गन्धक की मात्राएँ बनाकर घोड़ना चाहिये ।

ज्वरनागमयूरकम् ॥ ३८१ ॥ प्रतिमाप-  
मितं ग्वाघं युक्त्या वा शुद्धिर्द्धनम् ।  
सन्ततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यं न  
संशयः ॥ ३८२ ॥ क्षयोद्धवं च धातुस्थं  
कामशोकोद्धवं ज्वरम् । भूतापेशज्वरं-  
चैत्रमभिचारसमुद्भवम् ॥ ३८३ ॥ दाहशी-  
तज्वरं घोरं चातुर्याद्विषपर्य्ययम् । जीर्णञ्च  
विषमं सर्वं प्लीहानमुदरं तथा ॥ ३८४ ॥  
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं हन्ति न संशयः ।  
भ्रमं तृष्णां च कासं च शूलानाहौ क्षयं  
तथा ॥ यकृतं गुल्मशूलं च आमघातं  
निहन्ति च ॥ ३८५ ॥ त्रिकपृष्ठकटीजा-  
नुपार्शानां शूलनाशनम् । अनुपानं  
शीतजलं न देयमुष्णवारिणा ॥ ३८६ ॥

लोहभस्म, अश्रुभस्म, सोहागा भुना हुआ, ताभ्रभस्म, इरतालभस्म, वङ्गभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, संजन के बीज, आँबला, हरि, पहेड़ा, लालचन्दन, अतीस, पादी, वचा, हल्दी, दारु-हल्दी, मस, चीते की जड़, उपदारु, परवल के पत्ते, नीचक, शपभट्ट, बालाजीरा, तालीश-पत्र, वशलोचना, छोटी क्येरी या फल और मूल, कचूर, तेजपात, सोंठ, मिर्च, पीपरि, गिलोय का मूल, धनिया, गुटकी, त्रिपपापरा, नागामोथा, सुगन्धबाला, बेत की छाल, और मुलेठी ये सब प्रत्येक औषध एक एक भाग, काला जीरा का चूर्ण चार भाग, ताड़ के पत्र या चूर्ण १/४ भाग, कमल-नाल का चूर्ण १/४ भाग, चिरायते का चूर्ण १/४ भाग और छोटी पीपरि का चूर्ण १/४ भाग । इन सब चूर्णों को एकत्र मिलाकर रख लेवे । इसको 'ज्वर-नाग-मयूरचूर्ण' कहते हैं । इसकी मात्रा पुत्रि मे १ मात्रा मे २ मात्रे पर्यन्त और इसका अनुपान

१ कोई कोई पत्र तालपुष्पचार रूपया ताभ्र-जराचार डालते हैं । मेरे विचार में ताभ्रपुष्प की शपेरा उसके चार का प्रसेप करना अधिक धरता है ।

शीतल जल है । इस चूर्ण को उष्ण जल के साथ न देना चाहिये । यह सब प्रकार के साध्या-साध्य विषमज्वर, क्षयज्वर, धातुगत, कामज, शोकज, भूतावेशज, अभिचारज तथा जीर्ण-ज्वर की अति उत्तम महौषधि है । इससे प्रीहा, उदर, कामला, पाचदुरोग, शोथ, भ्रम, तृष्णा, कास, शूल, आनाह, क्षय, यकृत, गुल्मजशूल, आमवात, त्रिकण्ड, कटी, जानु और पसलियों की पीडा आदि उपद्रव भी निस्सदेह निवृत्त होते हैं । निम्ब्यादिचूर्ण भावप्रकाशोद्भू है ॥३७६-३८६॥

### अथ नवज्वरादौ रसप्रयोगः ।

रस चिकित्सा में सौकर्य ।

न दोषाणां न रोगाणां न पुंसाञ्च परीक्षणम् । न देशस्य न कालस्य कार्यं रसचिकित्साते ॥ ३८७ ॥

रसचिकित्सा में वान, पित्त और कफ तीन प्रकार के दोष, उर आदि रोग स्थूल या कृश व्याधि तथा देश और काल आदि की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं । तात्पर्य यह कि रसचिकित्सा हर एक व्याधि को हर एक अवस्था में लाभदायक होती है । कारण यह कि रस पारे की कइते हैं, उसीके संयोग से अन्य योग भी रस कहे जाते हैं । रसचिकित्सा के आदि आविष्कर्ता व्याधि, वशिष्ठादिकों ने अपने ग्रन्थों में कहा है कि— पारदमेव सर्वरोगपारदम्' अर्थात् एक पारद ( पारा ) ही मनुष्य को सब रोगों से पार ( मुक्ति ) देनेवाला है । जब ऐसा है तो रसचिकित्सा में दोष और रोग आदि के परीक्षा की आवश्यकता ही क्या है, कोई भी दोष या रोग हो यथाविधि सेवित पारद उसे अवश्य ही शान्त करेगा ॥३८७॥

टिप्पणी—रसों की बहुत प्रशंसा की है वे चमत्कृत सब गुणदायक और लघु मात्रा के कारण सेवन में सुविधाजनक भी हैं किन्तु काल, बल, प्रवृत्ति और रोग के बलायत के निरचय की धिलकुल आवश्यकता नहीं है ऐसा नहीं समझना चाहिए प्रत्येक स्थिति में एक ही रस उपयोगी

हो ऐसा नहीं इसलिए रोग के लक्षण दोष प्रधानता के साथ औषध ( रस ) के उपादान और उनकी शक्ति तथा गुणों का विचार करके फिर प्रयोग करना चाहिए ।

रसानभिन्न वैद्य की निन्दा ।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो न जानाति रसं यदा । सर्वं नस्योपहासाय धर्महीनो यथा बुधः ॥ ३८८ ॥

जो वैद्य सकल आयुर्वेद का ज्ञाता होकर भी रसत्रिया में निपुण नहीं है वह धर्महीन पंडित के समान उपहान्नास्पद होता है ॥ ३८८ ॥

धातु आदि का शोधन विधान ।

संशोध्य विधिना धातूनुपधातून् विपा-एयपि । योजयेत् कर्मणि प्राज्ञो दोषः सञ्जायतेऽन्यथा ॥ ३८९ ॥

( शोधनोक्त्या यथायथं धात्वादीनां मारणस्यापि प्रतीतिः । रसोपरसानां धातू-पधातुषु अन्तर्भावः । अपि शब्देन जय-पालादीनां प्राप्तिः । )

धातु, उपधातु, रस, उपरस और विष इन सबका तथा जमालगोटा आदि का यथाविधि शोधनादि करके कार्य में उपयोग करना चाहिये, नहीं तो नाना प्रकार के अनिष्ट उपन्न होते हैं ॥ ३९० ॥

हिड गुलेश्वर रस ।

तुल्यांशं मर्दयेत् खल्ले पिप्पली हिंगुलं विपम् । गुज्जार्द्धं मधुना देयं वातज्वर-निवृत्तये ॥ ३९१ ॥

समभाग पीपरी, हिंगुल और विष इन तीन द्रव्यों को लेकर जल के साथ खरल में घोटकर आधी-आधी रत्ती की घटी बनाये । इसको नूनन वातज्वर में मधु के साथ देना चाहिये ॥ ३९१ ॥

रस का अनुपान ।

अनुपानै रसा योज्या देशकालानुसा-

रिभिः । दोषधनैर्मधुना वापि केवलेन  
जलेन वा ॥ ३६२ ॥

अनुपानैरित्यत्र रसा इत्युपलक्ष-  
णम् । अन्यान्यपि भेषजानि योग्या-  
नुपानैर्द्वयानि ।

हिगुलेस्वर, शीतभञ्जी आदि रसयुक्त समस्त  
औषधों का तथा रसरहित अन्यान्य औषधों का  
भी देशकालानुकूल ( जैसे जलवायुवाले प्रान्त में  
रहता हो और जैसी ऋतु हो उसके अनुसार )  
दोषनाशक अनुपान के साथ अथवा मधु या केवल  
जल के साथ प्रयोग करना चाहिये ॥ ३६२ ॥

शीतभञ्जी रस ।

रसहिङ्गुलगन्धश्च जैपालश्च समंसमम् ।  
दन्तीकाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः परः ३६३ ॥  
आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ।  
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्याममात्रतः ३६४  
शीततोषं पिवेच्चानु इन्नुर्मुद्गरसो हितः ।  
शीतभञ्जिरसो नाम्ना सर्वज्वरकुलान्त-  
कृत् ॥ ३६५ ॥

पारा १ भाग, हिगुल १ भाग, गन्धक १ भाग  
और जयपाल के बीज ( जमालगोटा ) १  
भाग एकत्र कर दन्ती ( जमालगोटा की जड़ )  
के काथ के साथ मर्दन करके दो रत्नी की बटी  
बनाये । इसका अदरक के रस के साथ प्रयोग  
करने से महाभयङ्कर नवीन ज्वर ३ घण्टे में नष्ट  
होता है । इस रस का प्रयोग करने के पश्चात्  
यदि आवश्यक्ता हो तो शीतल जल, ईला का  
रस, मूँग का जूस सेवन करना चाहिये । यह  
शीतभञ्जी रस सब ज्वरसमूह का नाशक  
है ॥ ३६३-३६५ ॥

तरुणज्वरादि रस ।

जैपालगन्धं विपपारदन्तु तुल्यं कुमा-  
रीस्वरसेन मर्द्यम् । अस्य द्विगुञ्जा हि  
सितोदकेन ख्यातो रसोऽयं तरुणज्व-  
रारिः ॥ ३६६ ॥ दातव्य एषोऽहनिपञ्चमे

वा षष्ठेऽथवा सप्तमे एव वापि । जाते  
विरेके विगतज्वरः स्यात् पटोलमुग्दान्न-  
निषेवणेन ॥ ३६७ ॥

जमालगोटा, गन्धक, विप और पारद प्रत्येक  
समभाग एकत्रित कर धीकुआर के रस में मर्दन  
करके दो रत्नी की बटी बनाये । चीनी के शबंत  
के साथ इस औषध को उबराकर से पाँचवें,  
छठे या सातवें दिन देना चाहिये । इसके सेवन  
से विरेचन हो जाने पर ज्वर नष्ट हो जाता है ।  
रोगी को भोजन के लिये, परवल की तरकारी  
मूँग की दाल और भात देना चाहिये ॥ ३६६-३६७ ॥

नवज्वरेभिसिंह ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं लौहं ताम्रं च  
सीसकम् । मरिचं पिप्पली विश्वं सम-  
भागानि कारयेत् ॥ ३६८ ॥ अर्द्धभागं  
विषं दत्त्वा मर्दयेद् वासरद्वयम् । मृगवे-  
राम्बुपानेन दद्यात् गुञ्जाद्वयं भिषक ॥ ३६९ ॥  
नवज्वरे महाघोरे धातुस्थे ग्रहणीगदे ।  
नवज्वरेभिसिंहोऽयं सर्वज्वरकुलान्त-  
कृत् ॥ ४०० ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म,  
सीसे का भस्म, मरिच, पीपर और सोंठ प्रत्येक  
समभाग और विष अर्धभाग १ एकत्र कर जल के  
साथ मर्दन करके दो-दो रत्नी की गोलियाँ बनाये ।  
इस नवज्वरेभिसिंह रस का अदरक के छर्क के  
साथ सेवन करने के साथ धातुगत अतिघोर नव-  
ज्वर आदि सब प्रकार के ज्वर और ग्रहणी रोग  
नष्ट होते हैं ॥ ३६८-४०० ॥

त्रिपुरसैन्य रस ।

विपटङ्गयलिम्लोच्छदन्तिषीजं क्रमात्  
बहु । दन्त्यम्बुमर्दितं यामं रसरिपुर-

१ कोई-कोई वैद्य कुल औषधों का अर्धभाग विष  
तोड़ते हैं, किन्तु अदरकवास्त्र और बहुभाग एक  
ही औषध का अर्धभाग विष खेने के पक्ष में है ।

भैरवः ॥ ४०१ ॥ गुञ्जाव्योपेण चार्द्रस्य  
रसेन सितयाऽथवा । दत्तो नवज्वरं हन्ति  
मान्द्यमानिलशोधहा ॥ ४०२ ॥ हन्ति  
शूलं सविष्टम्भमर्शांसि कृमिजान् गदान् ।  
पथ्यं तक्रेण भोक्तव्यं रसेऽस्मिन् रोगहा-  
रिणि ॥ ४०३ ॥

विप २ भाग, सोहागा की खील २ भाग,  
गधक ३ भाग ताभ्रमस ४ भाग, जमालगोटा २  
भाग । इन सब औषधों को दन्ती ( जमाल-  
गोटा की जड़ ) के ढाथ में एक प्रहर तक मर्दन  
करके दो-दो रत्ती की बटी बनावे । इस त्रिपुरभैरव  
रस को अदरकके रस के साथ अथवा सोंठ, मिर्च,  
पीपर के ढाथ के साथ या मिथी के साथ देना  
चाहिये ।

इसका सेवन करने से नज्ज्वर, अग्निमान्द्य,  
ग्रामवात, शोथ, शूल, मलबद्धता, बवासीर और  
कृमिरोग नष्ट होते हैं । रोगी को तक्र के साथ  
भोजन कराना चाहिये ॥ ४०१-४०३ ॥

ज्वरधूमकेतु रस ।

भवेत् समं सूतसमुद्रफेनद्विगूलगन्धं  
परिमर्द्य यत्रात् । नज्ज्वरे वल्लमिंतं  
त्रिपलमादांस्त्रिभुनाऽयं ज्वरधूमकेतुः ॥ ४०४ ॥

पारा, समुद्रफेन, द्विगूल और गधक इन सब  
द्रव्यों को सम भाग लेकर अदरक के रस के साथ  
तीन दिन तक घोटकर दो दो रत्ती की बटिका  
बनावे । इस ज्वर धूमकेतु रस से नज्ज्वर में बहुत  
लाभ होता है ॥ ४०५ ॥

दुर्जलजेता रस ।

विषं भागद्वयं दग्धकपर्दः पञ्चभागिकः  
मरिचं नभभागञ्च चूर्णं वस्त्रेणशोधयेत्  
४०६ आर्द्रकस्य रसेनास्य कुर्यान्मुग्दनियां-  
वटीम । वारिणा वटिका युग्मं प्रातः सायं  
च भक्षयेत् ॥ ४०७ ॥ अयं रसो ज्वरे  
योज्यस्तारमिन्दुर्जलेऽपि च । अजीर्णा-  
ध्मान विष्टम्भशूलेषु श्वास कासयोः

॥ ४०८ ॥ भोजनादौ नरैर्भुक्तं शुण्ठीराज्य  
भयोत्थितम् । कल्कं तुसहते नित्यं नाना  
देशोद्भवं जलम् ॥ ४०९ ॥ महार्द्रक यव-  
क्षारौ पीत्वा चोष्णेन वारिणा । नाना  
देशसमुद्भूतं वारि टोपमपोहति ॥ ४१० ॥

शुद्ध बच्छनाग ( मीठा तेलिया ) २ भाग,  
कौड़ी भस्म ४ भाग और कालीमिर्च वा चूर्ण  
६ भाग लेकर सबको अत्यन्त महीन घोटकर कपड़े  
में छान अदरक के रस में घोट सूँग के समान  
गोलियाँ बनावे । इनमें से दो-दो गोली सुबह  
शाम पानी के साथ सेवन करने से श्वास पानी से  
पैदा हुआ ज्वर अफारा, कब्ज, दर्द, श्वास, खाँसी  
आदि रोग मिट जाते हैं ।

खाना खाने से पहिले सोंठ, राई, हर की चटनी  
खाने से अथवा बनअद्रक और यथापार का चूर्ण  
गर्म पानी के साथ खाने से भिन्न देशों के पानी  
का असर नहीं होता अर्थात् परदेश वा पानी  
नहीं लगता ॥ ४०६-४१० ॥

श्रीमृत्युञ्जय रस ।

विपस्यैकस्तथा भागो मरिचं विष्पली-  
कणः । गन्धकस्य तथा भागो भागः  
स्यात् टङ्गनस्य वै ॥ ४११ ॥ सर्वत्र  
समभागः स्यात् द्विभागं द्विगुलं भवेत् ।  
जम्बीरस्य रसेनात्र भाग्यं द्विगुलशोधित-  
तम् ॥ ४१२ ॥ रसश्चेत् समभागः  
स्यात् द्विगुलं नेप्यते तदा । गोमूत्रशोधित-  
श्चात्र विषं सौरविशोपितम् ॥ ४१३ ॥  
चूर्णयेत् खल्लमध्ये तु मुग्दमात्रां वटीं  
चरेत् । मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरनिवृ-  
त्तये ॥ ४१४ ॥ दध्युदकानुपानेन वात-  
ज्वरनिर्हृष । आर्द्रकस्य रसे पानं  
दारुणे सन्निपातिके ॥ ४१५ ॥ जम्बीर-  
रसयोगेन अजीर्णज्वरनाशनः । अजाजी-  
गुडस्यैको विषमज्वरनाशनः ॥ ४१६ ॥

जीर्णज्वरे महाघोरे पुरुषे यौवनान्विते ।  
पूर्णा मात्रा प्रदातव्या पूर्णं वटिचतुष्ट-  
यम् ॥ ४१७ ॥ अतिक्षीणेऽतिवृद्धे च  
शिशौ चाल्पवयस्यपि। तुर्यमात्रा प्रदातव्या  
व्यवस्थासारनिश्चिता ॥ ४१८ ॥ नव-  
ज्वरे प्रदाने च यामैकान्नाशयेत् ज्वरम् ।  
अक्षीणे च कफाभावे दाहे च वातपै-  
क्तिके ॥ ४१९ ॥ सिता दद्यात् प्रयत्नेन  
नारिकेलाम्बु निर्भयम् । अयं मृत्युञ्जयो  
नाम रसः सर्वज्वरापहः । अनुपानप्रभेदेन  
निहन्ति सकलान् गदान् ॥ ४२० ॥

पिप ( शुद्ध यच्छुनाग ) १ भाग, मरिच  
१ भाग, छोटी पीपर १ भाग, गन्धक १ भाग  
सोहागा फूला हुआ १ भाग, हिगुल २ भाग  
( जंभीरी नीचू के रस की भावना देकर शुद्ध किया  
हुआ हिगुल लेना चाहिये, यदि इस औषध में  
१ भाग पारा मिलाया जाय तो हिगुल डालने की  
कोई आवश्यकता नहीं ) एकत्र कर अद्रख के  
रस में घोटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बनावे ।  
इसका साधारण तौर से सब प्रकार के ज्वर में  
मधु के साथ सेवन कर सकते हैं । विशेषतः वात-  
ज्वर में दही के पानी के साथ, सन्निपातज्वर में  
अद्रख के रस के साथ, जीर्णज्वर में जंभीरी नीचू  
के रस के साथ, जीरा और पुराने गुह के साथ,  
पिपमज्वर में इस रस का सेवन करना चाहिए ।  
इसकी मात्रा युवा पुरुष के लिये ४ घटी, अतिक्षीण,  
अतिवृद्ध, और बहुत धोड़ी अवस्था के बालक के  
लिये १ घटी देनी चाहिये । नपथर में इसका  
सेवन करने में पहर भर में ज्वर शान्त होता है ।  
रोगी यदि क्षीण न हो और कफ की अधिकता भी  
न हो तो मिर्ची और नारियल के पानी के साथ इस  
ज्वर में दाढ़ शान्त हो जाता है । यह मृत्युञ्जय  
रस को देने में यातर्विषिक रस अनुपान भेद से  
एक रोगी को नष्ट करता है ॥ ४११-४२० ॥

श्रीराम रस ।

गन्धकं पारदं तुल्यं मरिचञ्च त्रिभिः

समम् । बीजं नैकुम्भकं मर्द्यं दन्तिकाथेन  
यामकम् । द्विगुञ्जः शूलविष्टम्भानिलमामं  
ज्वरे जयेत् ॥ ४२१ ॥

गन्धक १ भाग, पारा १ भाग, मरिच १ भाग,  
जमालगोटा ३ भाग एकत्र कर दन्ती के घाय में  
एक प्रहर मर्दन करके दो दो रत्ती की गोलियाँ  
बनावे । इस श्रीरामरस से शूल, मलयद्धता, वात  
और आमज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ४२१ ॥

नवज्वरांकुश ।

क्रमेण वृद्धान् रसगन्धिगुलान्  
नैकुम्भवीजान्यथ दन्तिवारिणा। पिपद्वास्य  
गुञ्जा हि नवज्वरापहा जलेन चाहा सितया  
प्रयोजिता ॥ ४२२ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, हिगुल ३ भाग  
जमालगोटा ४ भाग एकत्र कर दन्ती के घाय में  
मर्दन करके एक-एक रत्ती की घटी बनावे । इस  
नवज्वरांकुश रस का चीनी के शर्बत के साथ  
सेवन करने से नवीन ज्वर एक दिन में शान्त हो  
जाता है ॥ ४२२ ॥

प्रचण्ड रस ।

अमृतं पारदं गन्धं मर्दयेत् प्रहरद्वयम् ।  
सिन्धुवाररसैः पश्चात् भावयेदेकविंश-  
तिम् ॥ ४२३ ॥ तिलप्रमाणं दातव्यं  
नवज्वरविनाशनम् । उद्वेगे मस्तके तैलं  
तक्रञ्चापि प्रदापयेत् । अनुपानमाद्र्ररसः  
प्रचण्डरससंज्ञकः ॥ ४२४ ॥

पिप ( शुद्ध यच्छुनाग ), पारा, गन्धक इन तीन  
औषधों को समभाग लेकर दो प्रहर घोटकर  
परमाणु संमाण के रस को इतना भावना देकर  
तिथ के समान लोटी-लोटी घटी बनावे । इस  
प्रचण्ड रस का अनुपान अद्रख का रस है ।  
यदि औषध का सेवन करने के लिये उद्वेग  
( पचराइट ) उत्पन्न हो तो मग्नक में तैल डाले  
और तद्रूपान करे ॥ ४२३-४२४ ॥

वैद्यनाथवटी ।

शाणं गन्धमथो रसस्य च तथा कृत्वा  
द्वयोः कज्जलीं तिकाचूर्णमथान्नमेव  
सकलं रौद्रे त्रिधा भावयेत् । पश्चात् तत्  
सुपवीरसेन न तु वा काथेऽमले त्रैफले  
संशोप्या गुटिका कलायसदृशी कार्या  
युधैर्यत्नतः ॥ ४२५ ॥ ज्ञात्वा दोषबलं  
रसेन सुपवीपत्रस्य पर्णस्य वा एकद्वित्रिचतुः  
क्रमेण वटिकां दद्यात् कटुप्लाम्बुना ॥ ४२६ ॥  
हन्ति शूलनिचयं नवज्वरं पाण्डुतामरुचि-  
शोथसञ्चयम् । रेचने च दधिभक्तभोजनं  
वैद्यनाथसुकुमाररेचनम् ॥ ४२७ ॥

गन्धक ३ माशा, पारा ३ माशा इनको एकत्र  
घोटकर उत्तम कज्जली बनाकर उसमें १ तोला  
कुटकी का चूर्ण मिलाकर बाद में करेला की  
पत्तियों के रस की अथवा त्रिफला के काथ की  
तीन भावनायें देकर धूप में सुखाकर मटर के  
समान गोलियाँ बनावे । अनुपान करेला की  
पत्तियों का रस अथवा पान का रस या किञ्चित्  
उष्ण जल । दोषों का बलावल विचारकर एक  
गोली से चार गोली पर्यन्त इसकी मात्रा हो  
सकती है । इस वैद्यनाथवटी का सेवन करने से  
शूल नवीन ज्वर, पाण्डु, अरुचि शोथ ये सब  
रोग नष्ट हो जाते हैं । यह औषध मृदुविरचन  
है । पथ्य दही-भात ॥ ४२२-४२७ ॥

रामवाण रस

पारदाऽमृतलवङ्ग गन्धकं भाग युग्म-  
मरिचेनमिश्रितम् । जातिकाफलमथाऽर्द्ध  
भागिकं, तिन्तिडी फल रसेनमर्दि-  
तम् ॥ ४२८ ॥ मर्दयेत्सकले मातले खरे  
वीजपूर भवनांगरङ्गजैः । टाडिमोद्भवसदा  
कुसुमजैः, शृङ्गवेरकरसैश्च मर्दितम् ॥ ४२९ ॥  
नूतनञ्चयदि वा पुरातनं, सन्निपातमपि-  
पातकोद्भवम् । सेव्यतां सकलरोग नाशनं,

रामवाणममृतं रसायनम् ॥ ४३० ॥ श्लेष्मा-  
चाऽऽर्द्रकवारिणाऽथ, पवनो निर्गुण्डि  
कायाद्रवैः । पित्तं धान्यजलैस्तथा, त्रिकुट-  
कैर्वासोद्भवैः श्वासजाः ॥ ४३१ ॥ शुण्ठी-  
सिन्धुहरीतकी भिरुदरं काथैश्च पौनर्नवैः ।  
शोथा पाण्डुगदाः प्रयान्ति सकला मूत्रेण  
मापोन्मितः ॥ ४३२ ॥ कोपोत्थैश्च फलत्रि-  
के क्षयमथोत्तौद्रेण संसेवितः । वातार्तिः  
सकलास्तथैव विपमा वातार्तिरित्तै-  
र्युतः ॥ ४३३ ॥

शुद्ध पारा, विष, लौंग, गन्धक १-१ भाग  
मिर्च २ भाग, जायफल ३ भाग लेकर महीन  
पीस कज्जली में मिलाकर इमली के पके फल,  
बिजोरा नारङ्गी, अनार, आक के फूल, अदरक  
इन सबके रसों में १-१ रोज घोट कर १-१ माशे  
की गोलियाँ बना लेवे । इनमें से १-१ गोली  
रोगानुसार अनुपान के साथ देने से नवीन ज्वर  
जीर्ण ज्वर, सन्निपात और पापज्वर, दूर होते  
हैं । अदरक के रस से कफ, निर्गुण्डी के रस से  
वायु, धनिये के पानी से पित्त, त्रिकुट और वासा  
के रस से श्वास, सोंठ सैन्धव और हर्से से पेट के  
रोग, पुनर्नवा के काठे से शोथ, गोमूत्र अथवा  
त्रिकुट और त्रिफला के क्वाथ से पाण्डुरोग,  
मधु से क्षय, परण्ड तैल के साथ देने से विपम  
अथवा सब प्रकार की वात व्याधियाँ मिट जाती  
हैं । मात्रा २ रत्ती ॥ ४२८-४३३ ॥

अग्निकुमार रस ।

मरिचोग्राकुष्ठमुस्तैः सर्वैरेव समं विपम् ।  
पिष्ट्वा चार्द्ररसेनैव रक्तिकार्द्धा मित्ता  
वटी ॥ ४३४ ॥ आमज्वरे प्रथमतः  
शुण्ड्याच मधुपिष्टया । आर्द्रकस्य रसेनापि  
निर्गुण्ड्याश्च कफज्वरे ॥ ४३५ ॥ पीनसे  
च प्रतिश्याय आर्द्रकस्य च वारिणा ।  
अग्निमांघे लवङ्गेन शोथे सदशमू-  
लकः ॥ ४३६ ॥ ग्रहण्यां सह शुट्टग

च मुस्तकेनातिसारके । सामे च धान्यशु-  
 एठीभ्यां पक्के च कुटजं मधु ॥ ४३७ ॥  
 सन्निपातज्वरारम्भे पिप्पल्यार्द्रकवारिणा ।  
 कण्टकार्या रसैः कासे श्वासे तैलगुडा-  
 न्वितम् ॥ ४३८ ॥ पीत्वा वटीद्वयं रोगी  
 स्वास्थ्यं समुपगच्छति । सर्वेषामेव रोगा-  
 णामामदोषप्रशान्तये । अग्निवृद्धिकरो  
 नाम्ना विख्यातोऽग्निकुमारकः ॥ ४३९ ॥

मरिच, वच, कूट, नागरमोथा समभाग हों ।  
 ये चार औषध मिलकर जितने हों उतना ही  
 बरसनाभ विप मिलाकर अदरक के रस में भली-  
 भाँति घोट कर एक एक रत्ती की वटी बनावे ।  
 अनुपान आमज्वर की प्रथमावस्था में सोंठ का  
 चूर्ण और मधु, कफज्वर में अदरक का रस और  
 सँभालू की पत्तियों का रस, पीनम और प्रति-  
 श्याय में अदरक का रस, मंदाग्नि में लवंग का  
 काथ, शीथ में दशमूल का काढ़ा, अतिसार में  
 नागरमोथे का काथ, आमतिसार में धनिया  
 और सोंठ का काथ, पकातिसार में बुडा की  
 छाल का काथ और मधु, सन्निपातज्वर की  
 प्रथमावस्था में छोटी पीपर का चूर्ण और  
 अदरक का रस, कास में कटेरी का रस तथा  
 श्वास में सरसों का तेल और पुराने गुड के  
 साथ देना चाहिये । इसकी मात्रा २ वटी की  
 है । हर एक रोग में आम दोष की शान्ति और  
 अग्नि के दीपन के लिये इम रस का प्रयोग  
 करना चाहिये । यह औषध अग्नि का दीपक है  
 इसलिये इसको अग्निकुमार कहते हैं ॥ ४३७-४३९ ॥

रत्नगिरि रस

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रहाटकम् ।  
 प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात् सूतार्द्धं मृदलोह-  
 कम् ॥ ४४० ॥ लोहार्द्धं मृतवक्रान्तं  
 मर्दयेद् भृङ्गजद्रवैः । पर्पटीरसपत् पाच्यं  
 चूर्णितं भावयेत् पृथक् ॥ ४४१ ॥ शिशु-  
 चूर्णानिर्गन्धीवचाग्निमद्गुण्डिकैः ।

सुद्रा मृताजयन्तीभिर्मुनिब्राह्मीसुतिकैः  
 ॥ ४४२ ॥ कन्यायाश्च द्रवैर्भाव्यं प्रतिवारं  
 त्रिधा त्रिधा । रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं  
 बालुकायन्त्रमध्यगम् ॥ ४४३ ॥ यन्त्रं  
 निरुध्य यत्रने स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । चूर्णं  
 नवज्वरे देयं रक्त्रिमात्रं रसस्य वै ॥ ४४४ ॥  
 कृष्णाधान्यसमायुक्तं मुहूर्त्तात् नाशये-  
 ज्वरम् । अयं रत्नगिरिर्नाम रसो योगस्य  
 वाहकः ॥ ४४५ ॥

पारा एक भाग, गन्धक १ भाग, ताम्रभस्म  
 १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, स्वर्ण १ भाग,  
 लोहभस्म आधाभाग, लोहभस्म का आधा  
 विक्रान्त भस्म ( चौथाई भाग ) इन सब द्रव्यों  
 को भृङ्गराज ( भँगरीया ) के रस में घोटकर  
 पर्पटी के समान पाक करे, तत्परचात् चूर्ण  
 करके क्रम से सैजना, अरुसा, सँभालू, वच, चीते  
 का मूल, भाँगरा, गोरखमुँडी, कटेरी, गिलोय,  
 अरणी, अगथैया के फूल, ब्राह्मी, चिरायता  
 और धीकुच्चार इन औषधों में प्रत्येक के रस  
 की तीन भावनायें देवे । तदनन्तर मूषा में बन्द  
 करके बालुकायन्त्र में स्थापित कर लघुपुट में  
 पाक करना चाहिये । स्वांग शीतल होने पर  
 मूषा से औषध निकालना चाहिये । इसके  
 सेवन करने से नवज्वर शीघ्र शान्त होता है ।  
 अनुपान छोटी पीपर और धनिया का काथ ।  
 इसकी मात्रा १ रत्ती की है । यह रत्नगिरिरस  
 योगवाही है ॥ ४४०-४४५ ॥

चयपेरवर रस ।

रसं गन्धं विषं ताम्रं मर्दयेत्कयाम-  
 कम् । आर्द्रकरसेनैव मर्दयेत् सप्तार-  
 कम् ॥ ४४६ ॥ निर्गुण्ड्याः स्वर्से  
 पदचात् मर्दयेत् सप्ताराराम् । गुञ्जकार्द्र-  
 सेनैव दत्तो हन्ति ज्वरं क्षणान् ॥ ४४७ ॥  
 वातजं पित्तजं श्लेष्माद्विदोषजमपि क्षणान् ।  
 सुगीतलजले स्नानं द्वापथं चौरभोज-



नम् ॥ ४४८ ॥ आम्रञ्च पनसञ्चैव चन्द-  
नागुरुलेपनम् । एतत्समो रसो नास्ति  
वैद्यानां हृदयङ्गमः । एष चण्डेश्वरो नाम  
सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ४४९ ॥

पारा, गन्धक, विष और ताम्रभस्म इन सब  
द्रव्यों को समभाग लेकर एक ग्रहण तक घोटना  
चाहिये । इसके बाद अदरस के रस की सात  
घार और सात घार संभालू के रस की भावना  
दे देकर घोटना चाहिये । भलीभाँति घोटने के  
पश्चात् एक एक रत्ती की बटी बनाये । अदरस  
के रस के साथ इस रस का सेवन करने से सब  
प्रकार के ज्वर शान्त हो जाते हैं । इस रस का  
सेवन करके शीतल जल से स्नान और वृषा की  
अधिकता हो तो दुग्ध के साथ भोजन करना  
चाहिये । आम की छाल, कटहल की छाल,  
चन्दन और अमर इनको जल में पीस कर लेप  
करना चाहिये । सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट  
करने के लिये इस चण्डेश्वर रस के समान  
अन्य कोई रस वैद्यों के ध्यान में नहीं  
है ॥ ४४६-४४९ ॥

उदकमञ्जरी रस ।

सूतो गन्धष्टङ्गनः सोपणः स्यादेतै-  
स्तुल्या शर्करा मत्स्यपित्तैः । भूयो भूयो  
भावयेच्च त्रिरात्रं वल्लो देयः शृङ्गवेरस्य  
वारा ॥ ४५० ॥ सम्यक् तापे वारिभङ्गं  
सतक्रं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रदिष्टम् ।  
अहायोग्रं हन्ति सामं प्रभावात् पित्ताधिक्ये  
सूर्ध्नि वारिप्रयोगः ॥ ४५१ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागा  
फूला हुआ १ तोला, मिर्चि १ तोला, मिथी  
४ तोले इन सब द्रव्यों को एकत्र कर तीन दिन  
तक रोहित मछली के पित्त की भावना दे  
देकर घोटना चाहिये । तदनंतर दो-दो रत्ती की  
बटी बनानी चाहिये । अनुपान—अदरस का रस,  
यदि इसके सेवन से अधिक उष्णता प्रतीत हो  
तो शीतल जल, भात, ताम्र और बैंगन की

तरकारी पथ्य में देवे । पित्त की अधिकता  
हो तो शिर पर शीतल जल डालना चाहिये ।  
इस औषध से आमदोषयुक्त ज्वर शीघ्र नष्ट  
होता है ॥ ४५०-४५१ ॥

अचिन्त्यशक्तिरस ।

रसगन्धकयोर्ग्राहिं प्रत्येकं मापकद्वयम् ।

भृङ्गकेशाख्यनिर्गुण्डी मण्डूकीपत्रसु-  
न्दरः ॥ ४५२ ॥ श्वेतापराजितामूलं

शालिञ्चकाणमारिपम् ३ । सूर्यावर्चः सित-  
श्चैपां चतुर्मापकसंभितैः ॥ ४५३ ॥ प्रत्येकं

स्वरसैः खल्लशिलायामवधानतः । स्वर्ण  
मात्तिकमापञ्च दत्त्वा मरिचमापकम् ॥ ४५४ ॥

नैपालताम्रदण्डेन दृष्ट्वा तत् कज्जलयुतिः ।  
वटी मुद्गोपमा कार्या छायाशुष्का तु

रक्षिता ॥ ४५५ ॥ प्रथमे वटिकास्तिस्रः  
कृत्वा नवशरावके । ततः खसपणं सूर्य

पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ ४५६ ॥ वारिणा  
गोलयित्वा तु पातुं देयश्च रोगिणे । स्वेदो-

पवासरचिते क्लान्ते चात्यथले तथा ॥ ४५७ ॥  
द्वितीयेऽद्धि वटीयुग्मं वटीमेकां तृतीयके ।

यावन्तो वटिका देयास्तावज्जलशराव-  
कम् ॥ ४५८ ॥ तृष्णायाञ्च रसं दद्याज्जा-

ङ्गलानां जलं वृषि । लुलायदधिसंयुक्तं  
भङ्गं भोज्यं यथेप्सितम् ॥ ४५९ ॥ लाव-

पत्त्रिसो देयः संस्कृतः सैन्धवादिभिः । पथ्य-  
मग्निबलं वीच्य वारि भङ्गरसं तथा ।

शिरश्चलनशूलादौ तैलं नारायणादि  
च ॥ ४६० ॥

१ पत्रसुन्दर=हि० ग्रीष्मसुन्दर, व० गीमाशाक  
यह एक प्रकार का शाक है, इसकी पत्तियाँ सूख  
होती हैं, यह ग्रीष्म ऋतु में अधिक होता है ।

२ शालिञ्च=स्वनामहयातशाकविशेषे । तरपयावः  
पत्रः, पत्रक, शाकविभिः, शालाविभिः, पत्रकेटः, खोह  
भारकः, सिततारः ।

पारा २ मासे, गन्धक २ मासे एकत्र कर कजली बनावे तदनंतर भँगरेया, सँभालू, ग्रीष्म-सुन्दर, श्वेत कोयल का मूल, शाखिञ्ज शाक, मरसा, श्वेत हुलहुल इनमें प्रत्येक का चार-चार मासे स्वरस लेकर कजली में मिलावे, पश्चात् उसमें स्वर्णमासिक १ मासा, काकी मिरिच १ मासा मिलाकर नैपाली तौँबा के पात्र में नैपाली तौँबा के ही दण्ड से घोटें, जब घोटते-घोटते काजल के समान हो जावे तो मूँग के बराबर की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा-कर रख लेवे । तदनंतर आकाशचारी सूर्य की पूजा और प्रणाम करके श्वेद तथा लंघन से थके हुए अत्यन्त निर्बल रोगी को पहिले दिन ३ गोलियाँ, दूसरे दिन २ गोलियाँ, तीसरे दिन १ गोली शीतल जल के साथ सेवन करावे । त्रितानी गोलियाँ खाने को देवे उतने ही शराव (३२ तोला) जल भी उसके साथ देना चाहिये । पीछे प्यास लगने पर पीने के लिये शीतल जल, जंगली पशुर्षी के मांस का रस देना चाहिये । पथ्य—अग्नि का बल देखकर भैंस के दही के साथ भात, सँधानोन आदि से युक्त खावा पही के मांस का रस आदि देना चाहिये । यदि शिर में कम्पन या शूल हो तो शिर में नारायण आदि तैल की मालिश करानी चाहिये ॥ ४६२-४६० ॥

नवज्वरेभाङ्गुश ।

सगन्धदंगं रसतालकञ्च विमर्दयेद्भाव-  
येन्मीनपित्तैः । दिनद्वयं गुञ्जमितं प्रदद्यात्  
वृन्ताकतक्रोदनमेव पथ्यम् ॥ नवज्वरेभाङ्-  
कुशनामधेयः क्षणेन घर्मोद्गममात-  
नोति ॥ ४६१ ॥

गन्धक, सुहागा, पारद, हरिताल इन सबकी बराबर-बराबर लेना चाहिये और रोहित मस्य-पित्त की दो भायना देकर काम में लाना चाहिये—मात्रा १ रत्नी । बैंगन, मटा तथा भात पथ्य है । इससे रोगी को पक्षीना आकर ज्वर शीघ्र दूर हो जाता है ॥ ४६१ ॥

विश्वतापहरण ।

पथ्या कणाज्क विपतिन्दु कदन्ति  
बीज । तिक्तात्रिष्टुद्रसवलीन सदृशान्वि-  
मर्ध ॥ ४६२ ॥ धूर्ताम्बुना सकल वासर-  
मेप सूतः स्याद्विश्वताप हरणोऽभिनव-  
ज्वरघ्नः ॥ ४६३ ॥

हरें, पीपल, ताश्रमरम शुद्ध कुचिला और जमालगोटा, कुटकी, निसोत, शुद्ध पारा और गन्धक सब समान भाग लेकर महीन पीसकर कजली में मिलाय धतूरे के रस से १ दिन-रात घोटकर १-१ रत्नी की गोलियाँ बनाकर रख लेवे । इनमें से १ से ४ गोली तक रोग और रोगी के बलानुसार समय और रोगानुसार अनुपान के साथ देने से नये ज्वर को फौरन मिटा देता है ॥ ४६२-४६३ ॥

महाज्वराङ्गुश ।

सूतं गंधं विपं तुल्यं धूर्तबीजं त्रिभिः  
समम् । चतुर्णां द्विगुणं व्योपचूर्णं गुञ्जा-  
द्वयं हितम् ॥ ४६४ ॥ जम्बीरस्य च  
मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् । महाज्वरा-  
ङ्कुशो नाम ज्वराष्टकनिपूदनः ॥ ४६५ ॥  
एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकञ्च चतुर्थ-  
कम् । विपमञ्च त्रिदोषोत्थं हन्ति सर्वं न  
संशयः ॥ ४६६ ॥

पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, विप १ तोला, काले धतूरे के बीज ३ तोले, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च पीपल) मिलिन १२ तोला । इन कुल द्रव्यों को जम्बीरी के रस से या अदरक के रस में पीसकर दो रत्नी प्रमाण की गोलियाँ बना ले । इन गोलियों के सेवन करने से घाट प्रकार का ज्वर नष्ट होता है ॥ ४६४-४६६ ॥

ज्वरकेशरिका ।

शुद्धसूतं विपं व्योषं गन्धं त्रिफलमेव  
च । जयपालं समं कुर्याद्भृङ्गतोषेण मर्द-

येत् ॥ ४६७ ॥ वटिकां गुञ्जमात्रान्तु कृत्वा  
 वैद्यः प्रपन्नतः । प्रमाणं सर्पपाकारं वाला-  
 नाञ्च प्रशस्यते ॥ ४६८ ॥ नारकेलाम्बुना  
 वापि सर्वज्वरविनाशिनी । मरिचेन च  
 पीता स सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ ४६९ ॥  
 पिप्पलीजीरकाभ्यान्तुदाहज्वरविनाशिनी  
 विपमज्वरं च भूतोत्थं ज्वरं प्लीहानमेव  
 च ॥ ४७० ॥ अग्निमांद्यमजीर्णञ्च श्वय-  
 थुञ्च सुदारुणम् । शूलाजीर्णं तथा गुल्मं  
 कुष्ठं द्वादश पित्तजान् ॥ ज्वरकेशरिका  
 ख्याता तरुणज्वरनाशिनी ॥ ४७१ ॥

पारद, मीठा विष, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली  
 गन्धक, हरद, बहेदा, चाँवला, जयपाल, हरक  
 द्रव्य बराबर-बराबर लेकर भाँगरा ( भृ गराज )  
 के रस में घोटकर १ रत्ती प्रमाण की गोली बना  
 लेनी चाहिए । अनुपान तारियल का पानी, ये  
 गोलियाँ हरक ज्वर को दूर करती हैं । सन्निपात-  
 ज्वर में इसका अनुपान मरिचचूर्ण है । दाहज्वर  
 में पिप्पली तथा सफेद जीरे के चूर्ण के साथ देना  
 चाहिए । यह रस मलावरोधयुक्त पुराने बुखार,  
 भूतज्वर, ज़ीहा, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, सूजन,  
 शूल, गुल्म, कुष्ठ एव पित्त से होनेवाले रोगों को  
 नाश करता है । बच्चों के लिये एक सरसों भर की  
 मात्रा है ॥ ४६७-४७१ ॥

### सान्निपातिक ज्वर आदि पर ।

मोहान्धसूर्य रस ।

गन्धेशौ लशुनाम्भोभिर्मर्दयेद् याममा-  
 त्रकम् । तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत्प्रति-  
 बोधयेत् ॥ मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्रा-  
 प्रलापकम् ॥ ४७२ ॥

पारा और गन्धक सम भाग लेकर लहसुन के  
 धर्क के साथ एक प्रहर तक मर्दन करके उसी रस  
 के द्वारा नस्य देने से रोगी को चेतना प्राप्त होती

है । इसी औषध में मरिच मिला कर नस्य देने  
 से तन्द्रा और प्रलाप नष्ट होते हैं ॥ ४७२ ॥

कुलबधू रस ।

शुद्धसूतं मृतं नागं मृतं ताम्रं मनः-  
 शिला । तुत्थकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं  
 विमर्दयेत् ॥ ४७३ ॥ रसैश्चोत्तरवारुणया-  
 रचणमात्रा वटीकृता । सन्निपातं निहा-  
 न्त्याशु नस्यमात्रेण दारुणम् । एषा कुलव-  
 धूर्नाम जलैर्घृष्ट्वा प्रदापयेत् ॥ ४७४ ॥

शुद्ध पारा, शीशा की भस्म, ताम्रभस्म, मैन-  
 शिल और तूतिया इनमें प्रत्येक द्रव्य को समभाग  
 लेकर इ-द्रायण के रस में घोटकर चना के  
 बराबर की बटी बनावे । इस बटी को जल में  
 घिसकर केवल नस्य देने से दारुण सन्निपातज्वर  
 निवृत्त होता है । इस रस का 'कुलबधू' नाम  
 है ॥ ४७३-४७४ ॥

सौभाग्यवटी ।

सौभाग्यामृतजीरपञ्चलवणव्योषाभया-  
 क्षामला निश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसाने-  
 कीकृतान् भावयेत् । निर्गुण्डीयुगभृद्  
 राजकटपाऽपामार्गपत्रोल्लसत् प्रत्येकस्वर  
 सेनसिद्धवटिका हन्ति त्रिटोपोदयम् ४७५  
 येषां शीतमतीर दाहमखिलं स्पेट्टाग्नी-  
 कृतं निद्रां वीरतरां समस्तकरगव्यामोह-  
 मूढं मनः । शूलशशावलासकाससहितं  
 मूर्च्छारूचि तृड्ज्वरनेषां वै परिहृत्य  
 जीवितमसौ शृङ्गाति मृत्योर्मुखात् ॥ ४७६ ॥

सोहागा की खील, विष, जीरा, पौंछों नमन,  
 सोंठ, मिरिच, हरं, बहेदा, चाँवला, अभ्रकभस्म,  
 शुद्ध गन्धक और पारा इन कुल द्रव्यों को सम-  
 भाग लेकर मर्दन करे, तदनन्तर श्वेन पुष्पवाली  
 और नीलगुप्पवाली दोनों प्रकार की मेंढरी  
 (सभालू) भँगरीया, अरुसा और चिरविटा इनमें  
 से प्रत्येक के स्वरस में घोटकर दो-दो रत्ती की

गोलियाँ बनावे । इस सौभाग्यवटी का संवन करने से अत्यन्त शीत का लगना, दाह होना, सर्वाङ्ग में अधिक पसीना आना, घोरतर निद्रा का आना, समस्त इन्द्रियों का व्यामोह, शूल, र्वास, कफ, कास, मूर्च्छा, अरुचि और तृषा आदि उपद्रवों से युक्त सान्निपातिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ४७५-४७६ ॥

श्रीवेताल रस ।

रसं गन्धं विपञ्चैव मरिचालं समां-  
शिकम् । मर्दयेच्छिलया तावद् यावज्जा-  
येत कज्जलम् ॥ ४७७ ॥ गुञ्जामात्रप्रमा-  
णेन हरेद्द्विदशशंङ्गकम् । साध्यासाध्यं  
निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ४७८ ॥  
म्लानेषु लिप्तदेहेषु मोहग्रस्तेषु देहिषु ।  
दानुमर्हति वेतालीयमदूतनिवारकः ॥ ४७९ ॥

पारा, गन्धक, विप, मिरिच और हरताल इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर जल ढालकर पथर की लोडिया से उत्तम रीति से घोटकर कज्जल के समान बनावे । तदनन्तर एक-एक रत्ती की घटी बनाकर मेवन करने से यह वेतालरस मूर्च्छा और घूर्म आदि उपद्रवों से युक्तसाध्य, असाध्य बारह प्रकार के सन्निपातज्वर को नष्ट करता है ॥ ४७७-४७९ ॥

( २ ) चक्री रस ।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं तालं  
तथा पारदं, देवीवीजयुतं सुशोधितमितं  
जैपालवीजोत्तमम् । दन्तीमूलयुतं समाग-  
धिफलं सर्वं समांशं नयेत्, तत् सर्वं परि-  
मर्चार्चार्द्रकरसैर्गुञ्जाममाणं रसम् ॥ दद्याद्-  
घोरतरे त्रयोदशविधे दोषे च चक्राह्वयं,  
तन्द्रादाहसमविन्ते च तृपया सम्पीडिते  
मानवे ॥ ४८० ॥

विप, चक्री मिरिच, शुद्ध हरताल, पारा, शुद्ध गन्धक, जयपालवीज, दन्तीमूल और घोंटी बीपर

इन कुल द्रव्यों को समभाग लाकर अदरल के थर्क में घोटकर एक-एक रत्ती की घटी बनावे । इस चक्री रस का सेवन करने से तन्द्रा, दाह और तृषा आदि उपद्रवों से युक्त अति घोर तेरह प्रकार के सन्निपातज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ४८० ॥

ब्रह्मरन्ध्र रस ।

रसाभ्रगन्धकं तालं हिंगुलं मरिचं  
तथा । टङ्गनं सैन्धवोपेतं सर्वांशममृतं  
तथा ॥ ४८१ ॥ सर्वापादसमोपेतं महिपी-  
पित्तमर्दितम् । ब्रह्मरन्ध्रे प्रयोक्तव्यं संन्या-  
सज्ञानसङ्गमे ॥ ४८२ ॥ सहस्रकलशैः स्नानं  
लेपनं चन्दनादिभिः । इक्षुमुद्गरसं भोज्यं  
तक्रमङ्गं यथेप्सितम् ॥ ४८३ ॥

पारा, अभ्रकमस, गन्धक, शुद्ध हरताल, हिंगुल, मरिच, सोहागा की खील और संधानोन ये सब समभाग हों और ये कुल द्रव्य मिलकर जितने हों उतना ही विप, तथा कुल योग (मुसुखा) का चतुर्थांश भँस का पिस मिलाकर उत्तम रीति से घोटकर रस लेवे ।

छूरा ( उस्तुरा से ब्रह्मरन्ध्र ) से घोड़ा-सा घत ( घाव ) करके इस ब्रह्मरन्ध्ररस को लगाने से सन्निपातजन्य अज्ञान ( बेहोशी ) दूर होता है ।

इस श्रीपथ को लगाने के पश्चात् शिर पर सहस्र घट से शीतल जल देना, चन्दन का लेप करना आदि शीतक्रिया लाभदायक हैं । पथ्य ईर का रस, मूँग का जूस, माटा-भात आदि हृष्कानुसार भोजन करना चाहिये ॥ ४८१-४८३ ॥

आनन्दमैरवी घटी ।

विपं त्रिकटुकं गन्धं टङ्गनं मृतशुल्बकम् ।  
धुस्तूरस्य च पीजानि हिंगुलं नवमं स्मृतम्  
॥ ४८४ ॥ एतानि समभागानि दिनैकं  
विजयारसैः । मर्दयेद्यणकाभा तु वटिका-  
नन्दमैरवी ॥ ४८५ ॥ भक्तयित्ता पिबेशानु-

रविमूलकपायकम् । सव्योषं हन्ति नो  
चित्रं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ४८६ ॥

विष सोंठ, मिरिच, पीपरि, गन्धक, सोहागा की खील, ताम्रभस्म, शुद्ध धतूरेखीज और हिंगुल समभाग इन सब द्रव्यों को ग्रहण कर एक दिन भाँग के अर्क में घोटकर चना के बर बर बटी बनावे । इसको आनन्दमैरवी कहते हैं । इस बटी को खाकर मदार के मूल के काथ में सोंठ, मिरिच, पीपरि का चूर्ण मिलाकर पान करने से नि सवेदह दारुण सन्निपात नष्ट होता है ॥ ४८४-४८६ ॥

मृतोत्थापन रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिला च विप-  
हिंगुलम् । मृतकान्ताभ्रताम्रायस्तालकं  
मात्तिकंसमम् ॥ ४८७ ॥ अम्लवेतसजम्बीर-  
चाङ्गेरीणां रसेन च । निर्गुण्डीहस्तिशु-  
ज्वोरच द्वैर्मर्द्यं दिनत्रयम् ॥ ४८८ ॥  
रुद्ध्वा तु भूधरे पाच्यं दिनान्ते तत् समुद्-  
रेत् । चित्रकस्य कपायेण मर्दयेत् प्रहरद्व-  
यम् ॥ ४८९ ॥ मापमात्रं प्रदातव्यं  
हिगुण्योपार्द्रकद्रवैः । सकर्पूरानुपानं स्या-  
न्मृतस्योत्थापने रसे ॥ ४९० ॥ पीडितं  
सन्निपातेन गतं वापि यमालयम् । तत्  
क्षणाज्जीवत्येष पथ्यं क्षीरै प्रयोज-  
येत् ॥ ४९१ ॥

कान्तमिति अम्रस्य विशेषणम् ।

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग,  
मैनीशिल १ भाग, विष १ भाग, हिंगुल १ भाग,  
अम्रकभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, लोह-  
भस्म १ भाग, हरताल १ भाग और स्वर्णमाषिक  
१ भाग इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर भामलयेन,  
जंभीरी नीबू, अमलोनिचा, निर्गुण्डी और हाथीशु-  
दा इनके बर्क में तीन दिन पर्यन्त मर्दन करके  
भूधरयन्त्र में एक दिन पकाये । तदनन्तर निवालकर  
पीता के काथ में दो बहर पर्यन्त मर्दन कर मात्रा

पमाण इस मृतोत्थापन रस को भुनी रींग, मोंठ,  
मिरिच, पीपल और कर्पूर समुद्र अदरक के अर्क  
के साथ सेवन करने से मृतपाय सन्निपातरोगी  
जी उठता है । इसको पथ्य दूध के साथ देना  
चाहिये ॥ ४८७-४९१ ॥

मृतसञ्जीवन रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खस्ले तत् कज्ज-  
लीकृतम् । अभ्रलोहकयोर्भस्म ताम्रभस्म  
समं समम् ॥ ४९२ ॥ विपतालपराठी च  
शिला हिंगुलचित्रकम् । हस्तिशुण्डी  
चातिविषा ज्यूपणं हेममात्तिकम् ॥ ४९३ ॥  
चूर्णं विमर्दयेद्द्रावैरार्द्रकस्य दिनत्रयम् ।  
निर्गुण्डीविजयाद्रावैस्त्रिदिनं मर्दयेत् पुनः  
॥ ४९४ ॥ काचकूप्यां निवेशयाथ बालु-  
कायन्त्रके पचेत् । द्वियामान्ते समुद्धृत्य  
मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥ ४९५ ॥ मृतसञ्जीवनो  
नाम रसोऽयं गङ्गरोदितः । मृतोऽपि  
सन्निपातात्तौ जीवत्येव न संशयः । नातः  
परतरः कश्चित् सन्निपातहरो रसः ॥ ४९६ ॥

अघोरमन्त्रेण रसरत्नां पूजां च कृत्वा  
प्रहरद्वय ज्वाला देया अपरदिने शीतली-  
भूतमाकृष्य पुनरार्द्रकद्रवेण संमर्द्य शोष-  
यित्वा गुञ्जाद्वयं गुञ्जात्रयंवा आर्द्रकरसेन  
देयं रसंलग्नं ज्ञात्वाग्रन्यरसनत् शीतोपचारं  
कुर्यात् । अघोरमन्त्रो यथा 'श्रौं अघोरे-  
भ्यो धोरेभ्यो घोरघोरेभ्यश्च सर्गतः  
सर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः' इति मन्त्रेण  
रक्षणं पूजनं कर्तव्यम् अघोर मन्त्रेण अन्व-  
त्रापि रसकार्यं कर्तव्यमन्यथा टोपोऽस्ति ।

शुद्ध पारा १ मोला, गन्धक २ तोला इन  
की कज्जली बनाकर, अम्रकभस्म, लोहभस्म,  
ताम्रभस्म, विष, हरताल, कीड़ीभस्म, मैनीशिल,  
हिंगुल, पीपल, हाथीशुंदा, अनीस, मोंठ, मिरिच

पीपर और सर्वाण्माचिकभस्म इनमें से प्रत्येक औषध को एक एक तोला लेकर चूर्णित कर पूर्वोक्त ऋजली में मिलावे तदनन्तर तीन दिन अदरख के अर्क में, तीन दिन अनर्गुण्टी के अर्क में और तीन दिन भांग की पत्तियों की अर्क में घोटकर आतसीशीगी में रखकर बालुका मन्त्र में दो प्रहर पर्यन्त पाक करे । इसका पाक करने के समय 'ओश्च अघोरेभ्यो धोरेभ्यो घोरघोर-तरेभ्यश्च सर्वतः सर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः' इस मन्त्र से रस की रक्षा और पूजा करके दो प्रहर पर्यन्त क्रम से मन्द, मध्य, तीव्र ज्वाला देकर पाक करना चाहिये । दूसरे दिन स्वाह शीतल होने पर शीशी से औषध को निकालकर फिर अदरख के अर्क में घोट कर शुष्क करके रख लेवे । यह शकरीण 'मृतसंजीवन' रस है । इसका सेवन करने से मृतप्राय भी सन्निपातरोगी जीवित हो उठता है । इससे उत्तम सन्निपातनाशक अन्य कोई रस नहीं है । इस रस के सेवन से यदि कुछ उष्णता प्रतीत हो तो अन्य रस के समान इसमें भी शीतल उपचार करना चाहिये । इस रस की मात्रा २ रत्नी से ३ रत्नी पर्यन्त है ॥४६२-४६६॥

सन्निपातभैरव रस ।

हिङ्गुलस्य विशुद्धस्य सार्द्धतोलचतुष्टयम् । गन्धवस्य विपस्यापि प्रत्येकं तोलकद्वयम् ॥ ४६७ ॥ समासकद्वयं चैव कनकाचोलरुद्रयम् । मापैकाधिकतोलैकं दहनस्य तथैव च ॥ ४६८ ॥ संमर्द्य जम्बीररमैर्वटी-द्वयाविशोपिताः । गुञ्जैकपरिमाणास्तु कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ ४६९ ॥ एकां तु भक्तयेचम्य गोलयित्वाद्रवद्रव्यैः । योरे त्रिदोषेदातव्यः सन्निपातनरापहः ॥ ४७० ॥

शुद्ध हिङ्गुल ४॥ तोले, गन्धक ० तोले और २ मासे, विप २ तोले और २ मासे, धतूरे के बीज ३ तोले, एद्र तोला और एक मासा मोहाणा की गीम । इन हल द्रव्यों को जमीरी धीमे के घरे में घोटकर, एक एक रत्नी की घटी

बनाकर छाया में सुखावे । घोर त्रिदोष में सन्निपातभैरव रस की एक घटी अदरख के अर्क के साथ देना चाहिये ॥ ४६७-४७० ॥

( १ ) सूचिकाभरण रस ।

अमृतं गरलं दारु सर्वतुल्यं च हिङ्गुलम् । पञ्चपित्तेन संमर्द्य सर्पपाभां घटीं चरेत् ॥ ४७१ ॥ वटिका सूचिकाग्रेण सन्निपातकुलान्तकृत् । तिलश्च तिलतैलश्च भोजनं दधिभक्तम् ॥ ४७२ ॥

सहस्रशो दृष्टफलेयं वटिका ।

शुद्ध वच्छुनाग, काले साँप का विप और दामुज विप ( संपिया ) प्रत्येक १ तोला, हिङ्गुल ३ तोला । इन सब द्रव्यों को पञ्चपित्त के साथ मर्दन करके सरसों समान छोटी-छोटी गोलियाँ बनावे । सुई की नोक के बराबर मात्रा में अदरख के रस के साथ द्रमका सेवन करने से हर प्रकार का सन्निपात नष्ट होता है । औषध का सेवन कराने के पश्चात् रोगी के देह में तिल के तैल का मर्दन कराना चाहिये । राने के लिये तिल, दही-भात देना तथा अन्यान्य शीत उपचार करना आवश्यक है । यह वटिका हजारों बार अनुभूत हो चुकी है ॥ ४७१-४७२ ॥

( २ ) वृहत्सूचिकाभरण रस ।

रसगन्धकनागाभ्रं विपं स्थावरजङ्गमम् । मात्स्यमाट्टिपमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ ४७३ ॥ सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्तितः । दातव्यः सूचिकाग्रेण पयःपेठीजलेन च ॥ ४७४ ॥ त्रयोदशसन्निपाते विमूच्यामनिसारके । त्रिदोषजे तथाकासे द्रापयेत् कुशलो भिषक् ॥ ४७५ ॥ पयःपेठीगतं दद्यात् भोजनं दधिभक्तम् । तथा मुर्जितं मामं लेपनं तिलचन्दनैः ॥ रोगिणो यत् प्रियं द्रव्यं तर्गं तत्र प्रदापयेत् ॥ ४७६ ॥

पारा, गन्धक, नागभस्म, अश्रकभस्म, बच्च-  
नाग और काले साँप का विष इन सब द्रव्यों को  
समभाग लेकर रोडित मधुली, महिष, मयूर और  
यकरा इनके पित्त की भावना देकर रख लेवे।  
नारियल के जल के साथ सुई की नोक के समान  
स्वल्पमात्रा में इस रस का सेवन करने से १३  
प्रकार के सन्निपात, तिसूचिका, थतिसार और  
कास नष्ट होते हैं। रोगी को पीने के लिये नारि-  
यल का यथेच्छ जल, खाने के लिये दही भात  
और उत्तम रीति से भुना हुआ मास देना  
चाहिये। रोगी के देह में तिल चन्दन का लेप  
आदि विविध प्रकार की शीतल क्रिया करनी  
चाहिये। रोगी को जो पदार्थ प्रिय हो वह देना  
चाहिये ॥ २०३-२०४ ॥

पानीयवटिका ।

रसमापकचत्वारि इष्टकागुण्डके ग्रहम् ।  
शोपयित्वा तत शोध्य तीक्ष्णपर्यो तथा  
द्रुके ॥ ५०७ ॥ स्पर्णधुस्तूरसत्वे च वृद्ध-  
दारद्रवे तथा । कन्यकानिजसत्वे च रस-  
शोधनशुत्तमम् ॥ ५०८ ॥ गन्धकं रस-  
तुल्यन्तु पञ्चाल्य तएतुलाम्बुना । कृत्वा  
तैलसमंदर्व्या निर्वाप्य चित्रकद्रवे ॥ ५०९ ॥  
द्राभ्यां कज्जलिकां कृत्वा लौहचूर्णस्य  
मापकम् । सुपर्णमाक्षिकमपि तत्र लौहसमं  
ददेत् ॥ ५१० ॥ कृत्वा कण्टकवेध्यन्तु  
ताम्रं कज्जललेपितम् । मुहूर्त्तमध्यतस्ताम्रं  
द्रुतं चूर्णत्वमाप्नुयात् ॥ ५११ ॥ एकी-  
कृत्य तु सत्सर्वं तत प्रस्तरभाजने । मर्द-  
येत्तान्मदयेन दत्त्वा चैषां निजद्रवम् ५१२  
प्रथमे केशराजश्च द्वितीये श्रीष्ममुन्दर ।  
तृतीये मृद्गराजश्च चतुर्थे भेकपर्षिका ५१३  
पञ्चमे च सिन्धुवारः षष्ठे च रसपूतिका ।  
सप्तमे पारिभद्रश्च अष्टमे रत्नचित्रक ५१४  
शक्राशनश्च नवमे दशमे काकमाचिका ।

एकादशे तथा नीला द्वादशे हस्ति-  
शुण्डिका ॥ ५१५ ॥ अमीषामोषधीनाञ्च  
प्रत्येकन्तु पलद्रवम् । मर्दयेत्तु प्रयत्नेन  
द्वादशाहेन साधक ॥ ५१६ ॥ तत पारद-  
मानन्तु दत्त्वा त्रिकटुगुण्डकम् । वटिकां  
राजिकान्तुल्यां व्याशाशुष्कां समाचरेत् ५१७  
ततः शम्बुकजे पात्रे कर्त्तव्या वटिका त्वि-  
यम् । शरावे शङ्खपात्रे वा कृत्वा सलिल-  
गोलितम् ॥ ५१८ ॥ अत्यन्तदोषदुष्टाय  
ज्ञानशून्याय रोगिणे । ऊर्ध्वयोनिं सम-  
भ्यर्च्य प्रदद्याद्वटिकाद्रवम् ॥ ५१९ ॥ दृक्पयेत्  
तं ततः पश्चान्नरं स्थूलपटादिभिः । मल-  
मूत्रागमात् सद्यः स साध्यो भवति द्रुतम् ॥  
५२० ॥ दध्यन्नन्तु ततो दद्यात् पिप्पेद्वारि  
यथेच्छयः । दद्याद् वातहरं तैलमभ्यङ्गाय  
सदैव हि ॥ ५२१ ॥ चिरञ्जरे पिप्पेद्वारि  
पञ्चमूलीप्रसाधितम् । ग्रहण्यां रत्नपाते च  
पिप्पेद्वारि विषां गदी ॥ ५२२ ॥ पिप्पेत्  
पर्यट्जं वारि घोरे कम्पज्वरे तथा । तथा  
ज्वरातिसारे च जीरकस्य जलं पिप्पेत् ॥  
५२३ ॥ मन्दाग्नौ कामलायाञ्च संग्रह-  
ग्रहणीगदे । कासे श्वासे सदा कार्या  
पानीयवटिका त्वियम् ॥ ५२४ ॥

४ मासे पारा लेकर उसमें जाल इंट का चूर्ण  
डालकर उत्तम रीति से घोंटे, तरपश्चात् धोकर  
इंट के कुल चूर्ण को निकालकर स्वच्छ करके  
कमरख अदरख, कनक ( धतूर ), विधारा और  
पूतकुमारी ( धीकुयार ) इनमें प्रत्येक के रस  
में पृथक् पृथक् घोंकर पारा को शुद्ध कर लेवे ।  
तदनन्तर ४ मासे गन्धक लेकर चायलों के जल में  
घोंकर, तैलयुक्त छोड़े के चमचा चयवा कड़ाही  
में डालकर घोंच देवे । जब गन्धक द्रव हो ( गल )  
जाय तो उसको पीते के साथ में चुका द्ये ।

१ इस रीति से गन्धक का शोषण होता है ।

तदनन्तर क्वाथ से गन्धक को निकालकर पूर्वोक्त शुद्ध पारा में मिलाकर कजली बनावे । इस कजली का शुद्ध, सूक्ष्म, ताम्रपत्र पर लेप करके उस ताम्रपत्र को ताम्र की कड़ाही में रखकर आँच देवे, इस रीति से वह तौबा मुहुत्तंताम्र ही में भस्म हो जाता है । इस प्रकार ताम्रभस्म करने के पश्चात् लोहचूर्ण १ मासा, स्वर्णमासिक १ मासा, पूर्वोक्त ताम्रभस्म ४ मासे इन सबको एकत्र घोटकर पश्चात् केशराज, प्रोष्ममुन्दर शाक के पत्ते, भूंगराज, मण्डूकपर्णी, सँभालू, माल-काँयुनी, नीम, लालचीता, भौंग, मकाय, नील-वृक्ष और हाथीशुंडा क्रम से प्रत्येक औषध के चार-चार तोले रस में एक-एक दिन ताँबे के दबड़ से पत्थर के खरल में मर्दन करे । तात्पर्य यह कि एक औषध के रस में एक दिन घोटकर शुष्क करके दूसरे औषध के रस में दूसरे दिन घोटें, इस प्रकार १२ औषधों के रस में १२ दिन घोटकर शुष्क करके उसमें ४ मासे त्रिकटु (सौंठ मिर्च, पीपर) का चूर्ण मिलाकर जल में घोटें । पश्चात् बनारसी राई के समान छोटी छोटी गोलीयाँ बनाकर छाया में शुष्क कर लेवे ।

सात्रिपातिक ज्वर में अज्ञानावस्थाप्राप्त रोगी को २ गोलीयाँ सुगन्धि, शङ्ख अथवा मिट्टी के सकोरा में रखकर जल में घोलकर परमेस्वर का पूजन कर पिलावे । तदनन्तर उसको मोटा वस्त्र ओढ़ा देवे । इस प्रकार औषध का सेवन कराने से शीघ्र ही मल-मूत्र की उत्पत्ति होने से रोगी शीघ्र ही साध्य हो जाता है । रोगी को भोजन के लिये दही-भात, पीने के लिये शीतल जल और शरीर में अश्वत्थ के लिये यातनाटक तैत देना चाहिये ।

पुराने ज्वर में रक्त्व पद्ममूल के क्वाथ के साथ प्रह्वी में और रत्नातिसार में घृतीस के क्वाथ के साथ, घोर कम्पज्वर में विलपपद्म के क्वाथ के साथ, ज्वरातिसार में जीरा के क्वाथ के साथ, तथा मन्दाग्नि, बामला, संग्रहणी, कास, रपास आदि रोगों में बोध चतुपान के साथ इस पानीपटिका का सेवन करना चाहिये ॥ २००-२२४ ॥

टिप्पणी—ताम्रभस्म निकाला हो गई है पर निश्चय क्वाथ के रूप में ले चम्पया फिर पुट है ।

सिद्धफला पानीयवटिका की विधि ।

अनाथनाथो जगदेकनाथः श्रीलोक-  
नाथः प्रथमः प्रसन्नः । जगाद् पानीयवर्ती  
सुपर्द्धी तामेव वक्ष्यामि गुरुप्रसादात् ५२५  
जयार्कस्वरसञ्चैव निर्गुण्डी वासकं तथा ।  
वाय्यालकं करञ्जश्च सूर्यार्वाचकचित्रकौ  
॥ ५२६ ॥ ब्राह्मी वनसर्पपञ्च भृङ्गराजं  
विनिक्षिपेत् । दन्ती च त्रिवृता चैव तथा-  
रग्वधपत्रकम् ॥ ५२७ ॥ सहदेवामरं भण्डी  
तथा त्रिपुरभण्डिका । मण्डूकपर्णीपिप्पल्यौ  
द्रोणपुष्पकवायसी ॥ ५२८ ॥ गुज्जाकिनी  
केशराजस्तथा योजनमल्लिका । आसारणेति  
विख्यातो धुस्तूरः कनकस्तथा ॥ ५२९ ॥  
त्रैलोक्यविजया चैव तथा श्वेतापराजिता ।  
प्रत्येकं कार्पिकं चैव रसमाकृष्य भाजने  
॥ ५३० ॥ एकैकं च रसं दत्त्वा मर्दयेत्सौ-  
हृदएततः । चण्डातपे च संशोष्य क्षीरं  
तत्र पुनः क्षिपेत् ॥ ५३१ ॥ स्नुहीक्षीर-  
श्चार्कदग्धं वटदग्धं तथैव च । प्रत्येकं  
कार्पिकं दत्त्वा मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥ ५३२ ॥  
सुमर्दितञ्चतंज्ञात्वा यदा पिएडत्वमागतम् ।  
द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वस्त्रे पृतानि  
कारयेत् ॥ ५३३ ॥ दग्धहीरश्चातिविषां  
कोचिलामभ्रकं तथा । पारदं शोधितं  
चैव गन्धकं त्रिपमाधुरम् ॥ ५३४ ॥ हरि-  
तालं विपश्चैव मासिकञ्च मनःशिला ।  
प्रत्येकञ्च चतुर्मासं सर्वं चूर्णकृतं च तत्  
॥ ५३५ ॥ भक्षिष्य मर्दयेत् सर्वं शोषयित्वा  
पुनः पुनः । सुमर्दितञ्च नं दृष्ट्वा चाग्नेरी-  
म्बरसेन तु ॥ ५३६ ॥ उत्थाप्य भेषजं  
दृष्ट्वा यदा पिएडत्वमागतम् । तिलप्रमाणा



गुटिकाः कारयेन्मतिमान् भिषक् ॥५३७॥  
 त्रिदोषजनितो वैद्यमुक्रोऽपि बहुसम्मतः ।  
 लङ्घनैर्वालुकास्वेदैः प्रक्रान्तोदीनदर्शनः  
 ॥ ५३८ ॥ सम्पूज्य करुणाधारं प्रणम्य  
 च खसर्पणम् । पलेन वारिणा घृष्टा  
 चतस्रो वटिकाः पिबेत् ॥ ५३९ ॥ पीतं  
 तद्भेषजं पश्चाद् वस्त्रैराच्छादयेन्नरम् ।  
 रसलग्नं वपुर्ज्ञात्वा दद्याद्दारिसुशीतलम् ॥  
 ५४० ॥ शरावप्रमितं वारि पातव्यञ्च  
 पुनः पुनः । सन्निपातज्वरञ्चैव दाहञ्चैव  
 सुदारुणम् ॥ ५४१ ॥ कासं श्वासं च  
 हिक्कां च विद्ग्रहञ्चाश्मरीं जयेत् । मूत्र-  
 रोगविबन्धे तु दातव्यं क्षीरसंयुतम् ॥५४२॥  
 पञ्चतृणकृतकाथं दातव्यञ्च पुनः पुनः ।  
 पानीयवटिका ह्येषा लोकनाथेन निर्मिता ।  
 लोकानामुपकाराय सर्वसिद्धिप्रदायिनी  
 ॥ ५४३ ॥

जयन्त्यादीनां श्वेतापराजितापर्य-  
 न्तानां श्वरसः प्रत्येकं कर्षमितः । प्रस्तर  
 भाजने लौहदण्डेन एकैकां विमर्ष्य तदनु-  
 शोपयेत् । तदनु स्नुहीक्षीरमर्कक्षीरं प्रत्येकं  
 कर्षं दत्त्वा पुनर्मर्दयेत् । पिएडत्वे सति  
 दग्धहीरकादीनां प्रत्येकम्भाषचतुष्टयम् ।

कज्जलीपूर्वकं सर्वमेकीकृत्य चाद्वेरी-  
 रसेन मर्दयित्वा उत्थाप्य पिएडीकृत्य  
 तिलप्रमाणा वटिकाः कार्याः । अस्य  
 वटिकाचतस्रो वृद्धवैद्योपदेशात् आर्द्रकज-  
 लेन वारिणा वा गोलयित्वा शराविकया  
 पाययेत् । मूत्रकृच्छ्रे सति पञ्चतृणसाधितं  
 क्षीरं पाययेत् ।

जयन्ती, आक, निर्गुण्डी, अरुसा, सहदेई,

कंजा ( करंज ), सूर्यमुखी, चीता, घाही, जंगली,  
 सरसो, भंगरिया, दन्ती, निशांथ, अमिलतास की  
 पत्तियाँ, सहदेवा ( दण्डोत्पल ), अमरकन्द,  
 मजीठ, रुद्रजटा, मण्डूकपर्णी, पीपरि, गजपीपरि,  
 गूमा, मकोय, घुँघुची, भृङ्गराज, योजनमल्लिका  
 ( हाफरभावी ), आसारणवृष्ट, कनक ( धतूरा ),  
 भांग और श्वेत कोयल इनमें प्रत्येक औषध का  
 एक एक तोला स्वरस लेकर पत्थर के खरल में  
 क्रमशः एक एक स्वरस डालकर मर्दन करे और  
 उसको तीस घाम में शुष्क कर लेवे । तदनन्तर  
 उसमें थूहर का दूध १ तोला, मदार का दूध १  
 तोला, और बट का दूध १ तोला क्रमशः डालकर  
 मर्दन करके पिएड ( गोला ) के समान बनावे ।  
 पश्चात् पारा चार मासे, गन्धक चार मासे की  
 कजली बनाकर, इस कजली को पूर्वोक्त पिएड के  
 साथ मर्दन करे । तदनन्तर वैक्रान्तमण्डि, अतीस,  
 कुचिला, अन्नकभस्म, श्लथीविष ( शींगिया ),  
 हरिताल, गरल ( सर्पविष ), स्वर्णमाहिक भस्म  
 और मैनशिल, इनमें प्रत्येक द्रव्य चार चार मासे  
 लेकर, पूर्वोक्त औषधों में मिलाकर, चौपतिया  
 शाक के रस के साथ घोटकर तिल के समान  
 छोटी छोटी गोलियाँ बनावे ।

सन्निपात की ऐसी अवस्था में जब कि वैद्यगण  
 ने रोगी को त्याग किया हो—लङ्घन बालुका स्वेद  
 कराने के पश्चात्—परमेश्वर का पूजन कर इनमें  
 से ४ गोलियाँ चार तोला जल में या अद्रक्ष के  
 रस में अथवा जल में घोल कर पिलावे । औषध  
 पिलाने पश्चात् रोगी को घस से ढक रखे ।  
 इसका सेवन कराने से दारुण सन्निपात, दाह,  
 कास, श्वास, हिचकी, मलबद्धता और पथरी  
 आदि रोग निवृत्त होते हैं ।

मूत्रकृच्छ्र होने पर पञ्चतृण मूल के बाध में  
 सिद्ध किये हुये दुग्ध का सेवन करना चाहिये ।  
 लोकनाथजी ने लोक के उपकार के लिये  
 इस पानीयवटिका का आविष्कार किया  
 था ॥ २०२-२४३ ॥

सूचिकाभरण रस ।

विषं पलमितं सूतः शाणकरचूर्णयेद्-  
 द्वयम् । तच्चूर्णं सम्पुटे कृत्वा काचलिप्त-

शरावयोः ॥ ५४४ ॥ मुद्रां कृत्वाथ  
संशोष्य ततश्चुल्लयां निवेशयेत् । वह्नि-  
शनैःशनैः कुर्यात् प्रहरद्वयसंख्यया ॥५४५॥  
तत उद्घाट्य तन्मुद्रामुपरिस्थशरावकात् ।  
संलग्नो यो भवेद्घूमः तं गृहीयाच्छनैः  
शनैः ॥ ५४६ ॥ वायुस्पर्शां यथा न  
स्यात्ततः कूप्यां निवेशयेत् । यावत् सूच्या  
मुखे लग्न कूप्या निर्याति भेषजम् ॥५४७॥  
तावन्मात्रोरसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि ।  
क्षुरेण प्रच्छिते मूर्च्छि तत्राङ्गुल्याच घर्ष-  
येत् ॥ ५४८ ॥ रक्तभेषजसम्पर्कान्मूर्च्छि-  
तोऽपि हि जीवति । तथैव सर्पदंष्ट्रोऽपि मृता-  
वस्थोपि जीवति । यदा तापो भवेत्तस्य  
मधुरं तत्र दीयते ॥ ५४९ ॥

मीठा विष घाठ तोले, पारद ४ मासे इन  
दोनों को मिलाकर गूथ घोटना चाहिये । यहाँ  
तक घोटें कि पारा निश्चन्द्र हो जाय । इसके  
परचात् कोंचिलिप्त शरावमम्पुट में रखकर कपर-  
मिट्टी करके मुखा से, फिर भीषे घाग जलाकर  
छः घटे तक नीचे से धीरे-धीरे आँच दे, इसके  
पश्चात् यन्त्र को खोलकर ऊपर के पात्र में जो  
धुआँ सा लगा मिले उसे क्षुरच से, प्राप्त औषधि  
को एक घाटदार शीशी में रख देताकि उसमें हवा  
प्रवेशन करसके । मुई के नोक पर जिननी औषधी  
लगे उतनी ही इसकी मात्रा है । इतनीही मात्रा  
रोगी को देनी चाहिये । उतरते आदि से रोगी के  
मस्तक पर छत ( घाव ) करके उस स्थान पर  
धौगुञ्जी से घिसे, ऐसा करने से औषधि अपने  
प्रभाव को शीघ्र दिग्वायेगी और अचेतन अथवा  
में आधा सन्निपात में पीड़ित या मॉपि से दगा  
हुआ रोगी शीघ्र हो पीतन्य हो जायगा । यदि इसके  
सेवन करने से शरीर में गर्मी बढ़ती है तो देनी  
अथवा में रोगी को मधुर मधुओं का सेवन  
कराना चाहिये ॥ २४४-२४९ ॥

चिन्तामणि रस ।

मृतं गन्धकमध्रकं समनयं मृताद्भागं

विषं तत् त्र्यंशं जयपालमम्लमृदितं तद्गो-  
लकं वेष्टितम् ॥ पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिजन-  
तैर्निक्षिप्य खाते पुटं दत्त्वा कुक्कुटसंज्ञकं  
सह दलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥ ५५० ॥  
भागार्द्धं जयपालवीजममृतं तत्तुल्यमेकी-  
कृतं गुञ्जात्र्युपणसिन्धुचित्रकयुतः सर्वान्  
ज्वरान् नाशयेत् । शूलं संग्रहणीगदं सज-  
ठरं दध्यन्नसंसेविनां तापे सेचनकारिणां  
गदवतां सूतस्य चिन्तामणेः ॥ ५५१ ॥  
अयमेव रसो देयो मृतकल्पे गदातुरे ॥ ५५२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, अम्रक-  
भस्म १ तोला, विष ८ मासे, १॥ तोला  
जमालगोटा इन सब द्रव्यों को एकत्र कर  
जंभीरीनीचू के रस में घोटकर गोला बना लेवे ।  
उस गोले के ऊपर कोमल पान के पत्ते लपेट-  
कर सूत से बाँध देवे । उसके ऊपर रई मिला-  
कर कुटी हुई मिट्टी का दो अंगुल ऊँचा लेप  
कर, गुष्क कर लेने के परचात् कुक्कुटुट में  
पकावे । स्वाह शीतल होने पर निकालकर गोला  
की मिट्टी और पत्तियों को अलग करके औषधों  
के गोला को पान की पत्तियों के साथ घोटकर  
सूक्ष्म चूर्ण बनाना चाहिये । तदनन्तर फिर उसमें  
जमालगोटा आधा तोला और विष आधा तोला  
मिलाकर भद्ररस के रस के साथ घोटकर एक-  
एक रती की गोळियाँ बना लेवे । अनुपान—  
त्रिकुटु चूर्ण, सेंधा नमक, भीता की पत्तियों का  
स्गरस । इसका सेवन करने से सय प्रकार के  
ज्वर, शूल, संशयि और उद्धर रोग अक्षे  
होते हैं । पर्य—दही-भात । रसमेवन से यदि  
उष्णता प्रतीत हो तो रोगी के सिर पर जल  
का सेचन करना चाहिये । पिधिपूर्वक इस चिन्ता-  
मणि रस का सेवन करने से मृतप्राय रोगी भी  
जी उठता है ॥ २५०-५५२ ॥

रत्नराजेश्वर ।

मृतस्य शुद्धस्य पलं पलं ताम्रमया रजः ।

अध्रं नागं पलं वदं पलं गन्धरुनाल-

कम् ॥ ५५७ ॥ पलं शुद्धविषं चूर्णं सर्व-  
मेकत्र कारयेत् । मर्दयेत् काकमाच्याश्च  
तत्र साररसेन च ॥ ५५८ ॥ मात्स्यवारा-  
हमायूरच्छागमाहिपपित्तकैः । मर्दयेद्भिन्न-  
भिन्नं च त्रिकटोरम्बुभिस्तथा ॥ ५५९ ॥  
आर्द्रकस्वरसैः पश्चात् शतवारान् महु-  
र्मुहुः । सिद्धोऽयं रसरानेन्द्रो धन्वन्तरिप्रका-  
शितः ॥ ५६० ॥ गुञ्जामात्रं रसं दद्यात्  
सुरसारससंयुतम् । मेघधाराप्रवाहेण  
धारितं वारि मस्तके ॥ ५६१ ॥ अग्नि-  
वारो यदा दाहस्तदा देया च शर्करा ।  
भोजनं दधिसयुक्तं वारमेकन्तु दापयेत् ॥  
॥ ५६२ ॥ ईश्वरेण हतः कामः केशवेन  
च दानयाः । पानकेन हतं शीतं सन्निपाते  
रसरसाथा ॥ ५६३ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, ताम्रभस्म ४ तोले,  
लोहभस्म ४ तोले, अन्नकभस्म ४ तोले, नाग-  
भस्म ४ तोले, वज्रभस्म ४ तोले, गन्धक ४  
तोले, हरताल ४ तोले और शुद्ध विष ४ तोले,  
इन सब द्रव्यों को एकत्र चूर्णित कर मकोय के  
रस के साथ घोंटे । पश्चात् रोहित मङ्गली,  
शूकर, मयूर, बकरा और भैंसा इनमें से प्रत्येक  
के पित्त के साथ क्रमशः मर्दन करके त्रिकटु के  
काथ में मर्दन करे । तदनन्तर १०० सौ बार  
अदरक के रस के साथ मर्दन करके एक एक  
रत्नी की बटी बनावे । अनुपान—तुलसी की  
पत्तियों का रस । औषध सेवन कराने क पश्चात्  
शिर पर जल की धारा देवे । यदि बहुत अधिक  
दाह प्रतीत हो तो बीच बीच में मिर्ची का शर्यत  
पिलावे और एक बार दही के साथ भात  
खिलावे । जैसे शिव ने काम को, कृष्ण ने  
दानवों को और अग्नि ने शीत को नष्ट किया  
है ; उसी प्रकार इस रसरानेन्द्र के सेवन करने  
से सान्निपातिक ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ५६३ ॥

समीर पद्मग रस ।

पारद गन्धकं मल्लं हरितालं तथैव च ।

एतच्चतुष्टयं सर्वं तुलसीरस मर्दितम् ॥ ५६४ ॥  
बटी कृत्वाऽभ्रकेणैव वेष्टयेद्रोलकन्तु  
तत् । शराव युगले क्षिप्त्वा बालुका यन्त्रगं  
पचेत् ॥ ५६५ ॥ दीपिकाप्रमितं वह्नि  
दत्त्वा यामचतुष्टयम् । स्वाङ्गं शीतं समु-  
द्धृत्य नाम्नाऽसौ वातपन्नगः ॥ ५६६ ॥  
सन्निपाते तथोन्मादे सन्धि बन्धे कफा-  
मये । नागवल्गुया दलेनैव भक्तयेद्भञ्जि-  
का द्वयम् ॥ ५६७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, सोमल और हरिताल  
समान भाग लेकर कजली कर तुलसी के रस से  
१-२ दिन तक घोटकर गोला बनाकर सफेद  
अन्नक के पत्रों से लपेट कर शराव सम्पुट में  
बन्द कर २-३ कपड मिट्टी देकर बालुका यन्त्र  
में रखकर मन्दाग्नि से ४ पहर की अग्नि दे ।  
ठंडा होने पर निकाल कर रख दे, इनमें से  
२२ रत्नी पान के साथ देने से सन्निपात, उन्माद,  
सन्धिक सन्निपात और कफरोग नष्ट हो जाते  
हैं, विशेष अनुमूत है ॥ ५६४-५६७ ॥

सुवर्ण भूपति रस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मृतं शुल्यतयोः  
समम्, अश्रक लोहकयोर्भस्म कान्त-  
भस्म सुवर्णजम् ॥ ५६८ ॥ रजतञ्च विषं  
सम्यक् पृथक् सूतसमं भवेत् । हसपादी  
रसैर्मर्द्ये दिनमेकं बटीकृतम् ॥ ५६९ ॥  
काचकूप्यां विनिक्षिप्य मृदा संलेपये-  
द्बहि । शुष्कां तां बालुका यन्त्रे शनै-  
र्मुद्गग्निना पचेत् । चतुर्गुञ्जामितं देयं पिप्प-  
ल्यार्द्रद्रेणे तु ॥ ५७० ॥ क्षयं त्रिदोषजं  
हन्ति सन्निपातास्त्रयोदश ॥ ५७१ ॥  
श्रामनातं धनुर्नातं शृङ्गलानातमेव च ।  
आढ्यनातं पद्मनातं कफनाताग्नि मान्द्य-  
नुत ॥ ५७२ ॥ बटीवातं सर्वशूलं नाशये-

त्रात्रसंशयः । गुल्मशूल मुदावर्तं ग्रहणी-  
मति दुस्तराम् ॥ ५७३ ॥ प्रमेहशुद्धं  
सर्वामशमरी मूत्रविद्धं ग्रहम् । भगन्दरं सर्व  
कुष्ठं विद्रधि महती तथा ॥ ५७४ ॥ श्वासं  
कासमजीर्णञ्च ज्वरमष्टविधन्तथा । कामलां  
पाण्डुरोगञ्चशिरोरोगञ्चनाशयेत् ॥ ५७५ ॥  
अनुपान विशेषेण सर्वरोगान्विनाशयेत् ।  
तथा सूर्योदये नश्येत्तमः सर्वगत-  
न्तथा ॥ ५७६ ॥ सर्वरोग विनाशाय  
सर्वेषां स्वर्ण भूपतिः ॥

शुद्धपारा और गन्धक १-१ भाग, ताम्र भस्म  
३ भाग, अत्रक, लोह, कान्त लोह, सुवर्ण, रजत  
इनकी भस्में और शुद्ध विष १-१ भाग लेकर  
कजली कर सब चीजें मिला हंसराज के रस से  
१ दिन घोटकर कजली बना ६-७ रूपइ मिट्टी दी  
हुई आतशी शीशी में बन्दकर बालुका यन्त्र में रस  
१ दिन की मन्दाग्नि से पकावे शीतल होने पर  
निकाल कर रख देवे । इसमें से ४-४ रत्नी पीपल  
और अदरक के साथ देने से त्रिदोषजल्य और  
१३ सन्निपातों को मिटाता है । रोगानुसार अनुपान  
के साथ देने से आमवात, धनुर्वात, शृङ्खलावात  
उल्तमभ, पद्मवात, कम्पवात, मन्दाग्नि, कटिवात  
सब प्रकार के शूल गुल्म उदावर्त भयङ्कर ग्रहणी,  
प्रमेह, उदर रोग सब प्रकार की पथरी, मलमूत्र  
विबन्ध, भगन्दर सब प्रकारके कुष्ठ चढ़ा हुआ  
जहर नाद श्वासकास अजीर्ण ८ प्रकार का ज्वर  
कामलापाण्डुशिरोरोग इन सबको नाश करता  
है ॥ २६८-२७६ ॥

पित्तयुक्त रस के उपचार ।

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र  
शम्भुना । जलसेकावगाहाद्यैर्वलिनस्ते तु  
नान्यथा ॥ ५७७ ॥

पित्त की भाषना देकर प्रस्तुत किये जाने-  
वाले जितने रस शिवजी ने कहे हैं वे सब जल  
का सेवन और स्नान आदि शीतल उपचार से  
अधिक लाभप्रद होने हैं, अन्यथा नहीं ॥२७७॥

रसजनित दाह के उपचार ।

रसजनितविदाहे शीततोयाभिपेको  
मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः । तरुण-  
दधिसिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भो मधुर-  
शिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ ५७८ ॥

रससेवन से दाह होने पर शीतल जल का  
सेवन, चन्दन और कपूर का लेप, मन्दवायु का  
सेवन, शर्करासुक्र दधि का भोजन, नारियल का  
जल पीना, मधुर और शीतल जल आदि द्रव  
पदार्थ का पान करना तथा अन्यान्य शीतल  
उपचार लाभदायक होते हैं ॥ २७८ ॥

स्वेदशैत्यारिरस ।

ताम्रशुण्ठ्यर्कमूलानि द्विनिष्काणि  
पृथक् पृथक् । ऐक्यतः पञ्चलवणात् पलं  
पिष्ट्वा पुटं ददेत् ॥ ५७९ ॥ गन्धेशशङ्ख-  
भस्मानि वेदनिष्कमितानि च । देवदाली-  
रसैः पिष्ट्वा त्रिदिनं केकिपित्ततः ॥ ५८० ॥  
स्वेदशैत्यापनुत्यर्थं बल्वमात्रं प्रयोजयेत् ।  
दध्ना सम्मर्दयेत् पात्रे जलयोगं समाचरेत् ॥  
पथ्यं घृतं सिन्धुमुद्ग इन्तुखर्जूरगोस्तनी ५८१

तँबे की भस्म एक तोला, शुण्ठी एक तोला,  
शर्कामूल एक तोला, पाँचों नमक ( सेंधा, बिड,  
रोमक, सीवर्चल, सामुद्र ) ८ तोला, इन सबको  
इकट्ठा कर पीस डाले और लघु पुट दे । इसका बाद  
में गन्धक २ तोला, पारा २ तोला, शंखभस्म  
२ तोला मिश्रण कर देवदाली के रस से पीसना  
चाहिए, फिर मोर के पित्ते के साथ तीन भावना  
( घोटकर ) देकर दो रत्नी प्रमाण गीली तैयार  
कर ले । इनको शीतस्वेद ( ठण्डे पानी ) के  
समय प्रयोग में लाना चाहिए । इनके सेवन से  
शीतस्वेद नहीं होता है । अनुपान—मठा ( तक्र )  
पाच—घी, मैन्धव, मूँग की दाल, गन्ना, खजूर,  
मुनका और थंगूर ॥ २७९-२८१ ॥

पञ्चपत्र रस ।

गन्धेगटङ्गमरिचं विषं धुस्त्रजैर्द्रवैः ।

दिनं विमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्त्रो भवे-  
द्रसः । द्विगुञ्जं आर्द्रनीरेणे त्रिदोषज्वरहत  
परः ॥ ५८२ ॥

गन्धक, पारा, सोहागा मुना हुआ, मिरिच  
और विष समभाग इन कुल द्रव्यों को एकत्र  
कर घतूर की पत्तियों के रस में एक दिन घोटकर  
दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । अदरख के रस  
के साथ इस पञ्चवक्त्र रस का सेवन करने से  
सन्निपातिकज्वर नष्ट होता है ॥ ५८२ ॥

कालकूट रस ।

रुद्र शङ्ख विषं चैव त्रिभागः सूत  
एवं च । गन्धक पञ्चभाग स्याच्छिला  
स्याहतु भागिका ५८३ ताम्रभस्म चतुर्भागमृ-  
तुभागश्च टङ्गणम् । तालकं रवसंख्याकं वह्नि-  
मूलं तथैव च ॥ ५८४ ॥ त्रिकटो द्वादश ज्ञेयस्त्रि-  
फला दश भागिका । हिङ्गुलश्चन्द्रभागः स्याद्द  
चायाश्च तथैव च ५८५ एवं खले च संस्था-  
प्यमार्दिकं वह्निमूलकम् । जम्बीरं लशुनञ्चैव  
शाङ्गैः स्टार्कस्य मूलकम् ५८६ लाङ्गली सर्ण  
मूलञ्च सिन्धुनागदलं तथा अङ्गोलशिग्रमू-  
लानिप्रत्येकं याममात्रकम् ५८७ पञ्चिकोल  
कपायेण पञ्चिमूलेन मर्दयेत् । गुञ्जामात्रप्रमा-  
णेन वटिकान् कारयेत्ततः ५८८ वटीमेकांप्रयु-  
ञ्जीत शृङ्गेराम्भसायुताम् । सर्वज्वरहरोयोगः  
सन्निपातकुलान्तकः ५८९ स्नानं कुर्यात्प्रय-  
त्नेन श्री खण्डालेपमाचरेत् । दध्यन्नं टाप-  
येत्पथ्यं खर्जूरौटिफलान्यपि ५९० ताम्बूल  
चर्षणं कुर्यात्क्रमादेव समाचरेत् कालकूट रसो  
नाम महेशेन प्रकाशितः ॥ ५९१ ॥

शुद्ध विष १ भाग, शुद्ध पारा ३ भाग, शुद्ध  
गन्धक २ भाग, शुद्ध मैनशिल ६ भाग, ताम्रभस्म  
५ भाग, सुहागा ६ भाग, हरिताल ६ भाग, चित्रक  
४ भाग, त्रिकूट १२ भाग, त्रिफला १० भाग, हींग

और बच १-१ भाग इन सब को कपड़ छान  
चूर्ण बना खरल में डाल, अदरख चित्रकमूल  
जम्बीरी, लशुन, काक जङ्गा, आकडे की जड़,  
कटिहारी, धतूरे की जड़ मद्गासी पान, अकोल  
की जड़सहिजन की जड़ पञ्चिकोल और पञ्चमूल  
इन प्रत्येक के अङ्गुल स्वरस अथवा वचाय से १ पहर  
घोटकर १ १ रत्ती की गोली बना ले, इसकी १  
गोली अदरख के साथ देने से सब तरह के ज्वर  
सन्निपात को समूल नष्ट कर देता है । इस गोली  
के देने के बाद रोगी को स्नान करावे और अङ्गुल  
चन्दन का लेप करे—रथ्य में दही चावल खजूर  
आदि देवे विशेष अनुभूत ॥ ५८३-५९१ ॥

सन्निपातसूर्य रस ।

हिङ्गुलं गन्धकं ताम्रं मरिचं पिप्पली  
विषम् । शुण्ठीकनकवीजश्च श्लक्ष्णचूर्णानि  
कारयेत् ॥ ५९२ ॥ विजयापत्रतोयेन  
त्रिदिनं भावयेत्सुधीः । द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन  
चार्ककाथं पिबेदनु ॥ ५९३ ॥ निहन्ति  
सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान्  
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकञ्च विशेष-  
पत ॥ ५९४ ॥

हिङ्गुल, गन्धक, ताम्रभस्म, मिरिच, पीपरी,  
विष, सोंठ और घतूरे के बीज समभाग इन  
द्रव्यों को एकत्र चूर्णित कर भाँग की पत्तियों  
के रस की तीन दिन पर्यन्त भावना देकर दो-दो  
रत्ती की गोलियाँ बनावे । पान के पत्ते में रखकर  
सेवन करना चाहिये । औषध सेवन करने के पीछे  
आक के मूल का छाथ पान करे । इस सन्निपात-  
सूर्यरस का सेवन करनेसे वातप्रधान, पित्तप्रधान  
और कफप्रधान हर प्रकार के सन्निपातिक ज्वर  
निवृत्त होते हैं ॥ ५९२-५९४ ॥

अघोरचूर्णसिद्ध रस ।

भागैकं मृतताम्रस्य द्विभाग मृतलोह-  
कम् । त्रिभागं मृतयद्गञ्जचतुर्भागं मृताम्र  
कम् ॥ ५९६ ॥ मात्तिकं रसगन्धौ च  
तथा शुद्धा मनःशिला । चतस्राय्येतानि

ताम्रस्य प्रत्येकं तुल्यमेव च ॥ ५६६ ॥  
 गरलं चाभ्रतुल्यं स्यात् त्रिकटुश्चाभ्रतुल्यकः।  
 एतत् सर्वसमं देयं विषमाख्यं तथैव  
 च ॥ ५६७ ॥ एतत् सर्वस्य द्रव्यस्य द्विगुणं  
 कालकूटकम् । मात्स्यमाडिपमायूर घृष्टिपि-  
 चैर्विभावयेत् ॥ ५६८ ॥ चित्रकस्य द्रे-  
 षैव प्रत्येकं याममात्रकम् । सर्पपाभा वटी  
 कार्या शोपयेदातपे ततः ॥ ५६९ ॥  
 दापयेद् वटिकामेकां पयःपेटीरसेन च ।  
 त्रयोदशसन्निपाते विमूच्यामतिसारके ६००  
 त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत् कुशलो भि-  
 पक् । पयःपेटीशतं दद्यात् भोजनं दधिभ-  
 क्तकम् । अघोरवृत्तिसिंहनामा रसानामुत्तमो  
 रसः ॥ ६०१ ॥

ताम्रभस्म १ भाग, लोहभस्म २ भाग, बद्ध-  
 भस्म ३ भाग, अश्रकभस्म ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक  
 भस्म १ भाग, पारा १ भाग, गन्धक १ भाग,  
 शुद्ध मैन्थिल १ भाग, गरल ( काले साँप का  
 विष ) ४ भाग, त्रिकटु ४ भाग, कुचिला २२  
 भाग और ४४ भाग कालकूट विष ( कन्दविष ),  
 इन कुल द्रव्यों को एकत्र चूर्णित कर, रोहित  
 मछली, मैसा, मयूर और सुधर इनके पित्त की  
 और चीता के हाथ की क्रमशः भावना देकर  
 एक-एक प्रहर मर्दन करे । अर्थात् एक के पित्त  
 की भावना देकर एक प्रहर मर्दन करे परचात्  
 दूसरे की भावना देवे, इस प्रकार प्रत्येक की  
 भावना देकर मर्दन करे । परचात् सरसों के  
 समान छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर धूप में शुष्क  
 कर लेवे । नारियल के जल के साथ इसकी गोलो  
 सेवन करानी चाहिये । इस अघोरवृत्तिसिंह रस का  
 सेवन करने से १३ प्रकार के सन्निपात, विसृ-  
 चिका, अतिसार और त्रिदोषजन्य कास के रोग  
 नष्ट होते हैं । रोगी को पीने के लिये नारियल  
 का जल और भोजन के लिये दही-भात देना  
 चाहिये ॥ ५६१-६०१ ॥

प्रतापतपन रस ।

गन्धक द्विगुलं नाला सूतकं लोहद्व-

याम् । खर्पटं साचिकाचारं माङ्गिष्ठं द्विगुलं  
 समम् ॥ ६०२ ॥ रसेन मर्दितं पिण्डं  
 निर्गुण्डीहस्तिशुण्डयोः । प्रष्टयामं पचेत्  
 कृप्यां निरुध्य सिकताह्वये ॥ ६०३ ॥ ततः  
 सिद्धं समादाय रत्निकामार्द्रकेण च । सन्नि-  
 पातविनाशाय प्रतापतपनो रसः । दधिभक्तं  
 तथा दुग्धं द्वागमांसञ्च भोजयेत् ॥ ६०४ ॥

गन्धक, द्विगुल, हरिताल, पारा, लोह,  
 सोहागा भुना हुआ, खपरिया, सजीखार, मजीठ,  
 का चूर्ण और द्विगुल समभाग इन सब द्रव्यों  
 को सँभालू और हाथीशुडा के रस में मर्दन कर  
 गोला बना लेवे । परचात् काँच की कृपी ( धातशी  
 शीशी ) में रखकर, बालुकायन्त्र में धाठ प्रहर  
 पर्यन्त पाक करे । सिद्ध होने पर अदरक के रस  
 के साथ १ रत्नी प्रमाण प्रयोग करे । इस प्रताप-  
 तपन रस से सन्निपातिक ज्वर नष्ट होता है ।  
 रोगी को भोजन के लिये दही भात, दूध, चकरी  
 का मांस देने चाहिये ॥ ६०२-६०४ ॥

प्राणेश्वर रस ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृताभ्रं विषसंयु-  
 तम् । रसं संमर्दितं तालमूलीनीरैस्त्रयहं  
 युधः ॥ ६०५ ॥ पूरयेत् कृपिकान्ते च  
 मुद्रयित्वा च शोपयेत् । सप्तभिर्मुत्तिकाव-  
 स्रैर्वेष्टयित्वा चशोपयेत् ॥ ६०७ ॥ पुटेत्  
 कुण्डप्रमाणेन स्नाद्गशीतं समुद्धरेत् । शहीत्या  
 कृपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः ॥ ६०८ ॥  
 अजाजी जीरकं द्विगुसर्जिका टङ्गनं जगत् ।  
 गुग्गुलुः पञ्चलगणं यमत्तारो यमानिका ॥  
 ६०९ ॥ मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येक  
 रसमानतः । ऐषां कषायेण पुनर्भाजयेत्  
 सप्तघातपे ॥ ६१० ॥ नागरल्लीद्वलयुतं  
 द्विगुञ्जं च रसेश्वरम् । दद्यान्नन्तरं तीव्रे  
 सोष्णं वारिपिण्डेन ॥ ६११ ॥ प्राणेश्वरो

रसो नाम सन्निपातप्रकोपणुत् । शीतज्वरे  
दाहपूर्वे गुल्मशूले त्रिदोषजे ॥ ६१२ ॥  
वाञ्छितं भोजनं दद्यात् कुट्याच्चन्दन-  
लेपनम् । तापोद्रेकस्य शमनं बलाधिष्ठान-  
कारकम् ॥ भवेच्च नात्र सन्देहः स्वास्थ्यञ्च  
लभते नरः ॥ ६१३ ॥

पारा, गन्धक, अन्नकभरम और विष सम-  
भाग इन चारों द्रव्यों को तालमूली के रस  
में तीन दिन मर्दन करके कूपी में रखकर  
कूपी का मुँह मुद्रित कर शुष्क फर लेवे ।  
परचात् शीशी के ऊपर सात कपड़मिट्टी करके  
शुष्क कर लेवे । परचात् इस कूपिका को कुण्ड  
में रखकर पुट देवे । स्वाद्म शीत होने पर कूपी  
से औषध को निकालकर एक दिन मर्दन करे ।  
तदनन्तर कालाजीरा, श्वेतजीरा, होंग, सजी-  
न्दार, सोहागा भुना हुआ, सौराष्ट्रमृत्तिका, गुगुन,  
पाँचों नमक, यवहार, अजवाइन, मिरिच और  
पीपरि इन कुल द्रव्यों को पारा के समान परि-  
माण में लेकर, इनके साथ की सात भावनायें  
देकर, धूप में शुष्क कर लेवे । तीव्र नवज्वर में  
२ रत्नी इस रस को पान के साथ खिलाकर  
पीछे उष्ण जल पितावे । यह प्राणेश्वर रस  
सन्निपातनाशक है । जिस उ्वर में पहिले दाह  
होकर परचात् शीत होवे ऐसे उ्वर में इस रस  
का प्रयोग करना चाहिये । यह रस गुल्मजन्य  
शूल और ताप को निवृत्त कर बल को बढ़ाता  
है । अतः इससे रोगी को स्वास्थ्य लाभ होने  
में किसी प्रकार का सन्देह न करना चाहिये ।  
इस औषध का सेवन कराकर रोगी को वाञ्छित  
भोजन देवे और उसके शरीर में चन्दन का  
लेप करे ॥ ६०६-६१३ ॥

उन्मत्त रस ।

रसं गन्धश्च तुल्यांशं धुस्तरफलजैर्द्रवैः ।  
मर्दयेद्दिनमेकन्तुतुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत् ६१४ ॥  
उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्सन्नि-  
पातजित । भुक्तो नानाविधान्हन्यात्सन्नि-  
पातसमुद्भवान् ॥ ६१५ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक बराबर भाग लेकर  
धतूरे के फल के रस में १ दिन घोटकर उसके  
समान ही त्रिकुटा का चूर्ण मिलाकर बना लेवे ।  
इसका नस्य देने से सन्निपात में लाभ होता है ।  
इसकी तीन २ रत्नी की मात्रा पान के रस के  
साथ या अद्रख के रस के साथ या अष्टादशग्न  
काथ के साथ पी जाय तो सन्निपात को बहुत  
शीघ्र फायदा पहुँचाती है । सन्धि वात में  
रान्सादि काथ के साथ देने से अच्छा लाभ होता  
है । विशेष अनुभूत ॥ ६१४-६१५ ॥

द्वितीय सन्निपातभैरव ।

पारदं गन्धकं तालं वत्सनाभं त्रिभिः  
समम् । दारुमपश्च गरलं सर्वस्य समहिगु-  
लम् ॥ ६१६ ॥ मुद्गप्रमाणां वटिकां  
कारयेत् कुशलो भिषक् । सन्निपाते वटी-  
मेकामार्द्रद्रवैः प्रदापयेत् ॥ रसो महाम-  
भावोऽयं सन्निपातस्य भैरवः ॥ ६१७ ॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, हरिताल  
१ भाग, विष ३ भाग, दार्मज विष १ भाग,  
काले साँप का विष १ भाग और दिगुल ८ भाग  
इन कुल द्रव्यों को एकत्र पीसकर मूँग के समान  
गोलियाँ बनावे । सन्निपात में अद्रख के साथ  
इस सन्निपातभैरव रस की १ वटी सेवन करनी  
चाहिये ॥ ६१६-६१७ ॥

तृतीय सन्निपातभैरव ।

रसं विषं गन्धकश्च हरितालं फलत्र-  
यम् । जयपालं त्रिटृत् स्वर्यं ताम्रसीसा-  
भ्रलौहकम् ॥ ६१८ ॥ अर्कत्तीरं लाङ्गलीं  
च स्वर्यमाक्षिकमेव च । समं कृत्वा रसे-  
नैपां त्रिशदारश्च मर्दयेत् ॥ ६१९ ॥ अर्क-  
श्वेतालम्बुपा च सूर्यार्चश्च कारवी ।  
काकजङ्घा शौणकरश्च कुपुं व्योषं विकङ्क-  
तम् ॥ ६२० ॥ सूर्यमणिरश्चन्द्रकान्तौ  
निर्गुण्डीशजटाऽपि च । धुस्तरदन्तीपि-  
त्पल्यौ दशाष्टाग्नमिदं शुभम् ॥ ६२१ ॥  
रसतुल्यं प्रदातव्यं दत्त्वा तोयं चतुर्गुणम् ।

शिष्टैकगुणतोयेन भावना निधिरिष्यते ॥  
 ६२२ ॥ भावनायां भावनायां शोषणं  
 मुहुरिष्यते । ततश्च वटिकां कृत्वा भैर-  
 वाय वलिं ददेत् ॥ ६२३ ॥ रसोऽयं  
 श्रीसन्निपातभैरवो ज्वरनाशनः । सर्वोपद्र-  
 वसंयुक्तं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ ६२४ ॥  
 सन्निपातज्वरं हन्ति जीर्णञ्च विषमं तथा ।  
 ऐकाहिकं द्वयाहिकञ्च चातुर्यकमपि ध्रुवम् ।  
 ६२५ ॥ ज्वरञ्च जलदोषोत्थं सर्पदोषस-  
 माकुलम् । भैरवस्य प्रसादेन जगादानन्द-  
 कन्धजी ॥ ६२६ ॥

सर्वं चूर्णं समं कृत्वा अर्कमूलादिपि-  
 प्पलीमूलान्तानामष्टानां मिलित्पारसादि-  
 सामग्रीतुल्यानां चतुर्गुणजलैकगुणशिष्ट-  
 कायेन त्रिशद्वारानातपे भावनीयम् । प्रति-  
 वारं यत्नेन शोषयित्वा गुंजाप्रमाणा वटिकाः  
 कृत्वा व्याध्यनुरूपमार्द्रकरसेन ज्वरिणे  
 दद्यात् । विरेकादनन्तरं शुण्ठीजीरकतोय-  
 प्रक्षालितान्नं दद्यात् । अजाते विरेचने पुन-  
 रपि रसं दद्यात् । व्याधिनिवृत्तौ कदाचित्  
 वातपीडायां वातचिकित्सा कार्या । अत्र  
 भैरवं रुधिरवर्णं ध्यायेत् ।

पारा, विष, गन्धक, हरिताल, त्रिकला,  
 जमालगोटा, तिसोप, धतूरे वा बीज, ताँबा,  
 शीमा, अन्नक, लोह, मदार वा दूध, कलिहारी  
 ( विष ) और मोनामासी नरम समान भाग इन  
 कुल द्रव्यों को लेकर नीचे लिखे द्रव्यों के साथ  
 की ३० भावनायें देवे और प्रतिभावना में उत्तम  
 रीति से मर्दन करके धूप में शुष्य कर लेवे ।  
 भावना के द्रव्य जैसे—घाक की मूल, रवेत  
 कोयल, मुंही, सूर्यमुनी, कर्लीजी, बाबजडा,  
 मोनापाटा, वृत्, त्रिकटु, पेंदूषी, सूर्यधामामणि,  
 अद्रकामणि, मंमाम्, रत्नजटा, धूर, जनात-

गोटा का मूल और पिपरामूल इन १८ अट्टारह द्रव्यों  
 के समुदाय को पूर्वोक्त पारा आदि द्रव्यों के  
 समुदाय के समान परिमाण में लेकर चतुर्गुण  
 जल में पकावे, जब एक भाग जल शेष रह जावे,  
 तो उतारकर वस्त्र से छान लेवे । इसी काथ की  
 पूर्वोक्त रीति से ३० भावना देवे । अर्थात् प्रति-  
 भावना में उत्तम रीति से मर्दन करके धूप में  
 शुष्क करे । तदनन्तर मटर के समान गोलियाँ  
 बनाकर अद्रक के अर्क के साथ सन्निपातज्वर  
 में प्रयोग करे । इस रस से उपद्रवयुक्त सन्नि-  
 पातिक, ऐकाहिक, द्वायाहिक, चातुर्थिक, जीर्ण  
 और विषम आदि अनेक प्रकार के ज्वर निवृत्त  
 होते हैं । इस सन्निपात भैरव रस के सेवन से  
 विरेचन हो जाने पर साँठ और जीरायुक्त जल से  
 धोया हुआ भात भोजन के लिये देवे । विरेचन  
 न होने पर इस रस की फिर एक मात्रा देवे ।  
 इस औषध के सेवन से ज्वर निवृत्त होने पर  
 कभी कभी वातरोग उत्पन्न हो जाता है, यदि  
 ऐसा हो तो वातरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये ।  
 इस औषध का सेवन करने के समय रक्षवर्ण  
 भैरवजी का ध्यान करना चाहिये ॥ ६१८-६२६ ॥

गदमुरारि रस ।

रस वलि शिललोह व्योम ताम्रैश्च तुल्या-  
 न्यथ रस दल भागो वत्सनाभः प्रदिष्टः ।  
 भजति गदमुरारिन्नास्य गुञ्जाद्र्वारा क्षपयति  
 दिवसेन प्रौढमाम् ज्वराख्यम् ॥ ६२७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैन्सिल, लोह  
 भस्म, अन्नक भस्म, ताम्रभस्म प्रत्येक एक २  
 तोला शुद्ध यक्षुनाग चौथाई तोला सवकी  
 अदरक के रस के साथ घोडवर गोली बना ले ।  
 मात्रा ३ से १ रती तक दिनमें २ बार । घनुपान—  
 अदरक वा रस, गुलमी वा रस, जल रोगानुसार ।  
 गुण—घामरधान पुताने सभी प्रकार के ज्वरों को  
 क्षाम करता है, शोषपाचक भी है ॥ ६२७ ॥

पाण्ड्य रस ।

पटुना पूर्येत् स्थालीं तन्मध्ये पटुमृपिना ।  
 तन्मध्ये रामटीमया तन्मध्ये पाण्ड्यं क्षिपेत् ॥



६२८ ॥ विषं विघृष्य सूतांशं वारिण्या-  
लोज्य सप्तभिः । कृते त्रिभिः सङ्गुणिते तेन  
चैवं दुहेच्छनैः ॥ ६२९ ॥ वह्निं प्रज्वाल-  
येच्छुल्यां हठात् यामचतुष्टयम् । तद्भस्म  
तिलमात्रन्तु दद्यात् सर्वेषु पाप्मसु ॥ ६३० ॥  
ग्रहण्यां जठरे शूलं मन्त्रेऽग्नौ परिणामजे ।  
युक्तमेतान्निहन्त्याशु कुर्याद्बहुतरां जुधाम ।  
तापे शीतक्रियां कुर्यात् वाड्याख्यो महा-  
रसः ॥ ६३१ ॥

एक मूस लवण ( नोन की बनावे और एक  
हिगु की फिर पारद १ भाग, मीठा विष १ भाग,  
इन दोनों को २१ गुने जल में अच्छी तरह आलो-  
दन करके सुखा ले, सूग जाने पर हिगु मूसा में  
रख दे, लवणमूस ढक दे, फिर इनको एक लवण  
से भरी हुई हाँडी में रखकर बारह घंटे धीमी-  
धीमी अग्नि से पाक करे । इस प्रकार पारद की  
भस्म तैयार मिलेगी । यह तिलमात्र सर्वरोगों  
में प्रयोग की जाती है । ग्रहणी, पेट के विकार,  
शूल, मन्दाग्नि, परिणामशूल में लाभदायक है  
और जुधावर्धक है । यदि इससे दाह हो तो  
शीतल वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए ।  
॥ ६२८-६३१ ॥

आर्द्रकचट्टी ।

मनःशिला रसो गन्धः साम्लक्षार-  
मृतञ्च वै । आर्द्रकस्वरसेनैर् मर्दयेद्यत्नतो  
भिषक ॥ ६३२ ॥ भावयेत् सप्तवारश्च  
सप्तमाने दिने सुधीः । वटिका सर्पपमिता  
कार्या वैद्येन धीमता ॥ ६३३ ॥ आर्द्रक-  
स्वरसेनापि भक्तयेज्वरशान्तये । स्त्रेदार्ष  
शाययेद्द्रौद्रे गात्रेऽन्वा सुचैलरुम् ॥ ६३४ ॥  
घर्मं दृष्ट्वा च तं वस्त्र त्यजेत्स्त्रेदश्च मत्स्यम् ।  
स्त्रिन्नपुट्रांस्तथा चेत्तुरसं दधि च शीतलम् ।  
तत्परं जहनि च स्नानं कुर्यान्निर्भय एव  
च ॥ ६३५ ॥

मैतसिल, पारद, गन्धक, सखिया, मीठा  
विष, इन सबको बराबर लेकर अदरक के रस से  
सात भावना देकर सात दिन घोंटे और फिर  
छोटी सरसों के बराबर गोली बना ले । अनुपान  
अदरक का रस । ज्वर में पसीना लाने के लिए  
इस रस का प्रयोग कराना चाहिए । रोगी को  
कमल आदि मोटे वस्त्र उटाकर धूप में लिटा  
दे । पसीना आने पर उसको पोंछकर, उन वस्त्रों  
को हटा ले, ज्वर उतरने पर फिर रोगी को  
भोजन के लिए मछली, मूँग, गन्ने का रस, दही  
तथा अन्य ठण्डी वस्तुओं का आयोजन करे और  
वैद्य रोगी को अगले दिन उसकी अवस्था को  
देखकर स्नान की भी आज्ञा दे सकता है ६३२-६३५

दाडिमपत्रौपधि ।

साम्लक्षारं गृहीत्वा च दाडिमच्छदशो-  
धितम् । रस गन्धं मर्दयेच्च अर्द्रकस्वरसेन  
च ॥ ६३६ ॥ भावयेत् सप्तवारन्तु एक-  
स्मिन् दिवसे सुधीः । अनुपानं मृदात्त्वं  
दाडिमच्छदजं रसम् ॥ तथा मधु च दातव्यं  
ज्वराणां कुलशान्तये ॥ ६३७ ॥

अनार के पत्तों के स्वरस से सुधा हुआ  
सखिया १ भाग लेकर पारद १ भाग, गन्धक  
१ भाग, दोनों को काजल के समान करके  
उसमें मिश्रण कर दे, इसके बाद अदरक के रस  
से सात भावनाएँ दे और रत्ती के चालीसवें  
हिस्से से बीसवें हिस्से तक गोली बना ले,  
अनुपान, अनार के पत्तों का स्वरस और  
शहद ॥ ६३६-६३७ ॥

मृत्युञ्जय रस ।

सूतं गन्धकटङ्गनं शुभविषं धुस्त्रवीजं  
कटु नीत्वा भागमथोत्तरद्विगुणितं चोन्म-  
त्तमूलाभ्युना ॥ कुट्यान्मापयतीं सुखाति-  
सुपदां सर्वाञ्ज्वरान्नाशयेदेष श्रीशिर-  
शासनात् प्रजनिनः सूत्रच मृत्युञ्जयः ॥  
६३८ ॥ नारिकेलसितायुक्तं वातपित्तज्वरं  
जयेत् । मधुना श्लेष्मपित्तोत्थं ज्वरं

संनाशयेद्भ्रुवम् ॥ सन्निपातज्वरं घोरं  
नाशयेदाद्रेनीरतः ॥ ६३६ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सोहागा की खील ४ भाग, विष ८ भाग, धतूरे के बीज १६ भाग, और त्रिकटु ३२ भाग । इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर धतूरे के मूल के रस में अथवा काथ में पीसकर उर्द के समान छोटी-छोटी गोलियाँ बना लेवे । इस मृत्युञ्जय रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं । अनुपान—वातपित्त-ज्वर में मिथी मिला नारियल का जल, कफपित्त-ज्वर में मधु और सन्निपातिक ज्वर में अदरक का अर्क ॥ ६३८-६३६ ॥

संजीवनी गुटिका ।

विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलविभी-  
तकौ । वचा गुडूची मल्लातं सद्विषं चात्र  
योजयेत् ॥ ६४० ॥ एतानि समभागानि  
गौमूत्रेणैव वेपयेत् । गुञ्जाभा गुटिका कार्या  
दद्यादादकजैरसैः ॥ ६४१ ॥ एकामजीर्ण-  
गुल्मेपु द्वे विपूच्यां प्रदापयेत् । तिस्रश्च  
सर्पदष्टे चतस्रः सन्निपातके । घटी  
संजीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मान-  
वम् ॥ ६४३ ॥

वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वच, गिलोय, शुद्ध भिलावाँ और शुद्ध भीमियाँ विष इन सब औषधियों को समान भाग लेकर गोमूत्र की भावना देकर रत्ती के समान गोलियाँ बना लेवे अदरक के रस के संग इसका सेवन करने से अजीर्ण १ गोली में मिट जाती है । हैजा २ गोली में शान्त हो जाता है साँप काटने पर ३ गोली देने से सारा विष उतर जाता है । यह घटी मनुष्य को पुनर्जीवन देने वाली है । विशेष अनुभूत है ॥ ६४०-६४३ ॥

सन्निपातमृत्युञ्जय रस ।

विषं मृतकगन्धौ च पित्तं मत्स्यवरा-  
ह्योः । आजमायूरपित्ते च महिष्याश्चापि

योजयेत् ॥ ६४४ ॥ हरितालश्च सव्योषं  
वानरीवीजसंयुतम् । अपामार्गं चित्रमूलं  
जयपालश्च कल्कयेत् ॥ ६४५ ॥ एतत्  
सर्वं समांशेन अजामूत्रेण मर्दयेत् । मापेण  
सदृशी कार्या वटिका सद्भिपगवरैः ॥ ६४६ ॥  
महाज्वरे महाशीते महाशीतज्वरेऽपि च ।  
मज्जागते सन्निपाते विमूच्यां विषमज्वरे ॥  
६४७ ॥ असाध्येमानवे युञ्ज्यादेकाहाज्ज्व-  
रनाशिनी । जलोदरे शिथिलाङ्गे नासा-  
स्तावे च पीनसे ॥ ६४८ ॥ अजीर्णं मूर्च्छ-  
नाभावे श्लेष्मभावेऽतिदुर्जये । शोथकामल-  
पाण्ड्यादिसर्वरोगापहारकः ॥ ६४९ ॥  
मृत्युञ्जयो सन्निपातज्ञानज्योतिः प्रका-  
शितः । भृङ्गराजरसेनायं रसराजः प्रदीयते  
॥ ६५० ॥ निर्वाते निर्जनस्थाने बहुवस्त्र-  
समावृते । प्रस्वेदः क्षणमात्रेण जायते  
चिह्नमीदृशम् ॥ ६५१ ॥ मूर्च्छितः पतितो  
भूमौ दह्यमानः पुनः पुनः । एवं चिह्नं  
समालोक्य वदेन्नैरुज्यमातुरे ॥ ६५२ ॥  
पथ्यं यद् याचते रोगी तद्वातव्यं प्रयत्नतः ।  
दद्द्योदनं शीतजलं दातव्यं तद् विचक्षणैः ॥  
६५३ ॥ एष महारसः श्रेष्ठः शम्भुना  
प्रेरितो भुवि । कृपया सर्वभूतानां ज्ञान-  
ज्योतिः प्रकाशितः ॥ ६५४ ॥

विष, पारा, गन्धक, रोहितमरस्य का पित्त, शूकर का पित्त, चकरा का पित्त, मोर का पित्त, मर्दपि ( भैम ) का पित्त, हरिताल, त्रिकटु, कौंच का बीज, चिरचिरा का मूल, चीते का मूल और जमालगोटा का बीज सत्रभाग, इन सब द्रव्यों को लेकर बकरी के मूत्र में पीसकर उर्द के समान गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से अत्यन्त शीतपुत्र गार्निप्रपातिकज्वर,

मजागतज्वर, विसूचिका, विषम ज्वर आदि नाना प्रकार के रोग नष्ट होते हैं ।

अनुपान—भाँगे का रस । औषध सेवन कराने के पश्चात् रोगी को मोटा वस्त्र ओढ़ा देवे । ऐसा करने से क्षणमात्र में पसीना आने लगता है । जब रोगी मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े और दाह से पीड़ित हो तो समझना चाहिये कि यह रोगी रोग से छुटकारा पा गया । इस अवस्था में रोगी भोजन के लिये जो कुछ माँगे, उसको वही वस्तु तक ल देवे । विशेषकर भोजन के लिये दही-भात और पीने के लिये शीतल जल देना चाहिये । कुल प्राणियों पर कृपा करके शिवजी ने अपने ज्ञानज्योति से प्रकाशित कर इस महारस सन्निपातस्त्युज्य का पृथिवी में प्रचार किया था ॥ ६४४-६२४ ॥

मृतप्राणदायी रस ।

रसं गन्धकं टङ्गणं वत्स नामं  
समंमर्दयेद्धूर्तं त्रीजेन यामम् ॥  
ततो वत्सनाभेन हेमैश्वरीजै ।  
रसै भावयेच्च त्रिवारं त्रिवारम् ॥६५५॥  
कटुड्यादिजैः पञ्चवारं तत स्या-  
दयं सूतराजो मृतप्राणदायी ।  
ज्वरेसन्निपाते ज्वरे नूतने वा ।  
महाश्लेष्मरोगे च गुञ्जा प्रमाणम् ॥६५६॥  
पयः पायसं टाधिकं तक्र भक्रं ।  
सिता वानवे हिज्वरे चाऽऽर्द्रनीरैः ॥  
ज्वरे चाऽतिसारे घनद्राव युक्ते ।  
गृहण्यर्शसां चौर्युक्कंसिताऽऽढ्यम् ६५७॥  
चले स्नायुगे त्रिकटाग्नि पीतं ।  
प्रकम्पेऽपवाहुक एकाङ्गवाते ।  
अपस्मारमुन्माद वातं निहन्ति ।  
प्रयुक्तः सितापञ्चभिर्धूर्तं वीजै ॥६५८॥

शुद्ध पारा, गन्धक, सुहागा और यक्षुनाग समान भाग धतूरे के बीज, सबको बराबर सबकी कजली कर यक्षुनाग और धतूरे के रसों

से ३-३ दिन घोटकर त्रिकुट के रस में पाँच रोज और घोटे, फिर इसे १-१ रत्ती की मात्रा में रोगानुसार अनुपान के साथ लेने से ज्वर, सन्निपात, नवीन ज्वर, महाश्लेष्मरोग नष्ट होते हैं । दूध, खीर, दही के पदार्थ, छाछ, चावल ये सब वस्तुएँ पथ्य में देवे । नवीन ज्वर में अद्रख के रस के साथ देवे, ज्वर और अतिसार में नागर-मोथे के काढ़े से, ग्रहणी और बवासीर में मधु व शकर के साथ दे । घातज्वर में त्रिकुट और चित्रक के साथ देवे । प्रकम्प, अपवाहुक, एकाङ्गवात, अपस्मार, उन्माद इनमें शकर और २ नग धतूरे के बीज के साथ देने से सबका विनाश करता है ॥ २२२-२२८ ॥

टिप्पणी—धतूरे के बीज दो हीले ३ अधिक है ।

कालाग्निभैरव रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्दयेद् गोतुर-  
द्रवैः । भावितश्च विशोध्याथ चूर्णयेदति-  
चिकणम् ॥ ६५९ ॥ चूर्णतुल्यं मृतं ताम्रं  
ताम्राट्टाशिकं विषम् । हिंगुलं रसभागं च  
द्वौ भागौ कनकस्य च ॥ ६६० ॥ वाण-  
भागोऽत्र गोदन्त काणभागा मनः शिला ।  
टङ्गनं नेत्रभागं च ऋतुभागं च खपरम् ॥  
॥ ६६१ ॥ ब्रह्मभागं च लैपालं नेत्रभागं  
हलाहलम् । माक्षिकं चाग्निभागं च लौहं  
वङ्गं च भागकम् ॥ ६६२ ॥ सर्पाम् खलो-  
दरे क्षिप्त्वा क्षीरेणार्कस्य मर्दयेत् । दशमूल-  
कपायेण मर्दयेद् याममात्रकम् ॥ ६६३ ॥  
पञ्जमूलरूपायेण तथैव च विमर्दयेत् ।  
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा बलं ज्ञात्वा प्रयोज-  
येत् ॥ ६६४ ॥ ज्वरं त्रिदोषजं हन्ति  
सन्निपातं सुदारुणम् । पूर्ववद्वापयेत् पथ्यं  
जलयोगं च कारयेत् ॥ ६६५ ॥ पथ्यं  
शाल्यौदनं श्रेयं दधिभक्षसमन्वितम् ।

कालाग्निभैरवो नाम रसोज्यं भूरि-  
पूजितः ॥ ६६६ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग इनकी कजली बनाकर गोखरु के स्वरस की भावना देवे। सूख जाने पर चूर्ण करके, उस चूर्ण में चूर्ण के समान ताम्रभस्म, ताम्रभस्म का अष्टमांश विष, हिंगुल १ भाग, धतूरे के बीज २ भाग, गोदन्ती हरिताल २ भाग, मैनशिल ३ भाग, सोहागा की खील ३ भाग, लपरिया ६ भाग, जमाल-गोटे के बीज १ भाग, काले साँप का विष ३ भाग, स्वर्णमाषक ३ भाग, लोह भस्म १ भाग और वज्रभस्म १ भाग इन सब औषधों को एकत्र कर खरल में आक के दूध के साथ मर्दन करके दशमूल के काथ की भावना देकर एक प्रहर पर्यन्त मर्दन करे। तदनन्तर स्वल्प पञ्चमूल के काथ के साथ साथ मर्दन करके घना के समान घटी बनावे। रोगी का बलाबल देखकर इस कालभैरव औषध का प्रयोग करना चाहिये। इस रस के सेवन करने से दाहण सन्निपात नष्ट होते हैं। औषध सेवन कराने के पश्चात् रोगी को पूर्ववत् भोजन के लिये दही-भात देवे, और शिर पर जल सेचन आदि शीत उपचार करना चाहिये ॥ ६२६-६६६ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः ।

रसभस्मत्रयो भागा द्विभागं च भुजङ्ग-  
मम् । कालकूटं च पद्भागं भागैकं तालकं  
तथा ॥ ६६७ ॥ गोदन्तं गगनं तुत्थं  
शिलागन्धकटङ्गणम् । जयपालोन्मत्त-  
दन्ती करवीरं च लाङ्गली ॥ ६६८ ॥  
पलाशीमूलजैनीरैः सप्तधा भावितं दृढम् ।  
चित्रमूलकपायेण चार्द्रकस्य च वारिणा ॥  
॥ ६६९ ॥ मात्स्यमहिषमायूरच्छागवाराह-  
डुण्डुभम् । मत्स्यकं दशधा मर्षं शिलाखल्ले  
च संक्षयात् ॥ ६७० ॥ वटीं च सर्पप-  
मितां शुद्धवस्त्रेण धारयेत् । दातव्यं चानु-  
पानेन नारिकेलोदकेन च ॥ ६७१ ॥

ताम्रमूलं च ततो दद्याद् भक्ष्यं शीतोपचार-  
कम् । तिलतैले सदा स्नानं घृतमत्स्यादि-  
भोजनम् । शीताम्लं दधिसंयुक्तं पुराणान्नं  
च भक्षयेत् ॥ ६७२ ॥

रससिन्दूर ३ भाग, सर्पविष २ भाग, काल-  
कूट विष ६ भाग, हरिताल २ भाग, गोदन्ती  
हरिताल १ भाग, अन्नकभस्म १ भाग, तूतिया  
१ भाग, मैनशिल १ भाग, गन्धक १ भाग,  
सोहागा फुलाया हुआ १ भाग, जयपाल (जमाल-  
गोटा) १ भाग, धतूरे के बीज १ भाग,  
जमालगोटा की जड़ १ भाग, कनैल का मूल  
१ भाग, कलिहारी एक भाग, इन कुल द्रव्यों  
को पलाश मूल के काथ की ७ भावनायें देवे  
और प्रति भावना में उत्तम रीति से मर्दन कर  
घाम में शुष्क कर लेवे। पश्चात् चीते के मूल  
का काथ, अदरक का रस रोहितमत्स्य का  
पित्त, महिष का पित्त, मयूर का पित्त, छाग का  
पित्त, शूकर का पित्त और ढोढ़हा साँप का विष  
इनमें प्रत्येक की दश-दश भावना देकर मर्दन करे।  
तदनन्तर सरसों के बराबर-बराबर मोटी गोलियाँ  
बनावे। अनुपान—नारियल का जल। औषध  
सेवन कराकर पान खिलावे और शीतल उप-  
चार करे। शरीर में तिल के तेल का मर्दन  
कराकर स्नानकराना चाहिये। भोजन के लिये घी,  
मछली, पुराने चावल का भात, दही और शीतल  
और अन्न पदार्थ देना चाहिये ॥ ६६७-६७२ ॥

मल्ल सिन्दूर रसः ।

नवकर्पमितः सूतो रस चन्द्रश्च तत्समः ।  
चतुःकर्पमितो मल्लः सार्द्धपञ्चाक्षं सम्मितः ॥  
गन्धकञ्चेति तत्सर्वं काच कूप्यां निधा-  
पयेत् । क्रमदृग्दाग्निना सम्यग्वालुका  
यन्त्रगं पचेत् ॥ वह्निं षोडशायामश्च दत्त्वा  
शीतं समुद्धेत् । रसोज्यं मल्लसिन्दूरः सर्व  
वात विकारनुत् ॥ युक्तानुपानतो हन्यात्स-  
न्निपातादिकान्गदान् ।

शुद्धपारा, रस कूपर ६-६ तोला, मर्दन सोमल

४ तोला, शुद्ध गन्धक २० तोला धेकर सबकी कच्ची बना ६-० कपड़ा मिट्टी की हुई आतगी सीसी में भरकर कामुकायग्र में मन्द भस्म और रस द्रव प्रकार से ६ घहरागिन देने। ठंडी होने पर धर नमी में मर्दोद्वेप मन्त्रगिन्दूर को निकाल कर रस घोड़े, इसमें से १,१ रत्नी रोगानुसार अनुपात के साथ देने से मन्त्रिपातरपाय काय और तमाम बात स्थिर्था मन्त्र होती है ॥

त्रिभुवन कीर्तिरन्व ।

द्विदुलं चविषं व्योपंटद्रुगं मागधी जिफाम् । सञ्चूर्य भाययेत्त्रेधा मुरसाऽऽर्द्र-  
कदेमभिः ॥ ६७३ ॥ रसत्रिभुवने कीर्ति-  
गुर्ज्जनाऽऽर्द्रसेन वै । विनाशयेज्ज्वरान्  
मर्वान् मन्त्रिपाताग्रपोदशः ॥ ६७४ ॥

शुद्ध विगरक पित्त, गुनामुहाता, पीपल, पीपलामूल, गण घरापर २ धेकर बूट पीग कपड़े में पान कर अदरग तुलसी धूरे के रस में ३-३ दफे घोट कर १-१ रत्नी की गोखिया बनाये । १-१ गोली समपानुसार अनुपात क साथ देने से या अदरग के रस के साथ देने से १३ मन्त्रिपात और मन्त्र ज्यों का नाश हो जाता है । निपादी पुषार में विशेष अनुमत् है ॥ ६७३-१७४ ॥

रसेन्द्रर ।

रसेन गन्धं द्विगुणं गृहीत्वा तत्पाद-  
गन्धं रविनालाहेम । भस्मीकृतं योजय  
मर्दयेत्तु दिनत्रयं वह्निरसेन घर्मे ॥ ६७५ ॥  
विषं च दत्तरात्र कलाप्रमाणमजादिपित्तैः  
परिभावयेत् । रक्त्रिद्वयं चास्य ददीत वह्नि-  
कद्रुत्रयेगार्द्ररसमयुक्तम् ॥ ६७६ ॥ तैलेन  
चाभ्यक्रवपुश्च कुच्यार्त् स्नानं जलेनैव  
सुशीतलेन । यावद्भवेद् दुःसहमस्य शीतं  
मूत्रं पुरीषं च शरीरकम्पः ॥ ६७७ ॥ पच्ये  
यदीच्छा परिजायतेऽस्य मरीचखण्डं दधि  
भक्तकं च । अल्पं ददीतार्द्रकमत्र शाकं  
दिनाष्टकं स्नानमिदं च पच्यम् ॥ ६७८ ॥

पाता ४ तोले, गन्धक पारे का दूना ( ८ तोले ), ताग्रमस १ तोले, हरिताल १ तोले, त्यपंभरम १ तोले इन कुछ द्रव्यों को तीन दिन पर्यन्त नीता के रस की भावना देकर और मर्दन करके घाम में शुष्क कर लेवे । इसमें पोदशांश विष मिलाकर घाग आदि के पित्त में भावना देकर दो-दो रत्नी की गोखिया बनावे । अनुपात अदरग का रस, नीता और त्रिकटु का पूर्ण । औषध सेवन कराकर रोगी के शरीर में तैल मर्दन कराकर शीतल जल से तब तक स्नान कराता रहे जब तक उसको शीम अरस्य, शरीर में कष और मल-मूत्र की प्रवृत्ति न हो जावे । इस प्रकार ८ दिन पर्यन्त स्नान कराना लाभदायक होता है । रोगी की भोजन की इच्छा होने पर मरिच, खाँड़, दही-भात, पोड़ी अदरग और शाक देने चाहिये ॥ ६७३-६७८ ॥

यद्दधानल रस ।

कान्तं च सूतं हरितालगन्धं  
समुद्रफेनं लवणानि पञ्च ।  
नीलाञ्जनं तुत्यकमेव रूप्यं  
भस्मप्रवालानि वराटकाश्च ॥ ६७९ ॥  
वैक्रान्तशाम्बुकसमुद्रशुक्रि  
सर्वाणि चैतानि समानि कुच्यार्त् ।  
सूतं भवेद् द्वादशभागकं च  
स्तुयर्कदुग्धेन विमर्दयेत् ॥ ६८० ॥  
दिनत्रयं वह्निरसैस्ततरच  
निवेशयेत्ताम्रजसमुपुटे तत् ।  
मृदा च संलिप्य रसं पुटेत्तद्  
रसस्ततः स्याद्द्वडवानलाख्यः ॥ ६८१ ॥  
तत्पादभागेन विषं नियोज्य  
कृशानुतोयेन पचेत् क्षणं तत् ।  
घातप्रधाने च कफप्रधाने  
नियोजयेत्त्र्यूपणचित्रयुक्तम् ॥ ६८२ ॥  
दोषत्रयोत्थेऽपि च सन्निपाते  
वाताधिकत्वादिह सूतकोक्तः ॥ ६८३ ॥

कान्तलोह की भस्म, पारा, हरिताल, गन्धक, समुद्रफेन, पाँचों नमक, काला सुरमा, तृप्तिया, रूपे की भस्म, प्रवालभस्म, कौडी-भस्म, वैक्रान्तभस्म, शखभस्म और समुद्र की सीपी की भस्म, समान भाग इन सब द्रव्यों को लेवे । परन्तु पारा १२ भाग लेकर इन सबको थूहर और आक के दूध में मर्दन करे । पश्चात् तीन दिन पर्यन्त चीता के ढाथ में मर्दन करके, ताँबा के सपुटे में रखकर, ऊपर मिट्टी का लेप करके पुटपाक करे । शीतल होने पर कुल योग का चतुर्थांश विष मिलाकर चीता के ढाथ में मर्दन करके षण्मात्र पुनः पाक करके आधी आधी रत्ती की गोली बना लेवे । अनुपान-चीना का स्वरस अथवा काथ और त्रिकटु का चूर्ण । इस बहवानल रस का सेवन करने से वातोत्थण, कफोत्थण और सान्निपातिक ज्वर निवृत्त होता है ॥ ६७६-६८३ ॥

अर्कमूर्ति रस और त्रिदोषदावानल रस ।

लौहाष्टकं मारितमर्कभागं

सूतं द्विभागं द्विगुणं च गन्धम् ।

विमर्दयेद् वह्निरसेन तापे

दिनत्रयं चात्र विषं कलांशम् ॥६८४॥

वित्तिप्य पित्तैः परिभावितोऽयं

रसोऽर्कमूर्तिर्भवति त्रिदोषे ।

ताम्रस्य पात्रे तु दिनैकमात्रं

निम्नूरसेनापि च पित्तवर्गः ॥६८५॥

क्षुद्रार्द्रकोत्थेन रसेन सूत-

स्त्रिदोषदावानल एष सिद्धः ।

गुञ्जाद्वयं व्यूपणयुक्मस्य

टदीत चित्रार्द्रसेन वापि ॥ ६८६ ॥

नासापुटे चापि नियोजनीया

गुञ्जास्य शुण्ठीभरिचेन युक्ता ॥६८७॥

यदि ताम्रपात्रजम्बीरादिरसैः पुनरपि

भावयेत् तदा त्रिदोषदावानलो भवति ।

लोहभस्म १ भाग, ताम्रभस्म ८ भाग,

पारा २ भाग, द्विगुण गन्धक और पोढशांश विष, इन कुल द्रव्यों को चीता के ढाथ में तीन दिन मर्दन करके पञ्चपित्त की भावना देवे । इसका नाम “अर्कमूर्ति रस” है । इसका सेवन करने से त्रिदोष निवृत्त होता है ।

यदि इस अर्कमूर्ति रस को ताम्रपात्र में रख कर फिर नीबू का रस, पञ्चपित्त, कटेरी का रस और अदरक का रस इन कुल द्रव्यों की भावना दी जाय तो त्रिदोषदावानल रस बन जाता है ।

इसकी मात्रा २ रत्ती । अनुपान त्रिकटु चूर्ण, चीता का ढाथ और अदरक का अर्क । इस रस में सोंठ, मिरिच मिलाकर नस्य भी देना चाहिये ॥ ६८४ -६८७ ॥

त्रिदोषदावालनकालमेघ रस ।

तालोन वङ्गं शिलया च नागं

रसैः सुवर्णं रवितारपत्रम् ।

गन्धेन लौहं दरदेन सर्वं

पुटे मृतं योजय तुल्यभागम् ॥६८८॥

तत्तुल्यमृतं द्विगुणं च गन्धं

तुल्यं च गन्धेन समानभागम् ।

निम्बूत्थतोयेन विमर्द्य सर्पं

गोलं प्रकृत्याथ मृदा विलिप्य ॥६८९॥

पुटं च दत्त्वाथ विमर्दयेनं

गन्धेन तुल्येन कृशानुनीरैः ।

विषं च दत्त्वाथ कलाप्रमाण-

मीपल्लुशानुत्थरसैः पचेत्तत् ॥६९०॥

पित्तैस्तथा भावित एष सूत-

स्त्रिदोषदावानलकालमेघः ।

वल्लं ददीतास्य च पूर्वयुक्त्या

दाहोत्तरे तं मधुपिप्पलीभिः ॥६९१॥

मुद्गश्च शाल्यन्नमिह मशस्तं

पथ्यं भवेत्कोष्णमिदं दिवान्ते ॥६९२॥

रसेश्वरादिकालमेघान्ता रसा वातो-

लग्ने सन्निपाते प्रयोज्या इति सारकौ-  
मुधां माधवः ।

हरिताल के साथ घट्ट, मैन्शिल के साथ शीशा, पारा के साथ स्वर्ण, ताग्र, चाँदी का पत्र और गन्धक के साथ लोह का जारण करके, परचात् इन कुल द्रव्यों को द्विगुण के साथ फिर गजपुट में पकाये । तदनन्तर ये कुल पूर्वोक्त घोषण समभाग, जितने घन्य द्रव्य हों उतना ही पारा, पारा से दूना गन्धक और गन्धक के समान नूतिया इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर नीबू के रस के साथ गोला बनाये । उस गोला के ऊपर मिट्टी का लेप कर पुटपाक की रीति से पकाये । परचात् उसमें समान भाग गन्धक डालकर चीता के स्वरस अथवा वाय से मर्दन करके पुटपाक की रीति से पाक करे । तदनन्तर उसमें पौडशाश धिप मिलाकर चीता के स्वरस अथवा वाय में मर्दन कर पूर्वोक्त रीति से किञ्चित् पाक करे । पीछे मत्स्य आदि के पित्त में मर्दन करके दो रत्नी प्रमाण बटी बनाये । इसको "त्रिदोषदावानलकालमेघ रस" कहते हैं ।

दाहप्रधान जर में मधु और पीररि के साथ सेवन करना चाहिये । सायकाल में रोगी को मूँग की दाल, शाली के चावल का कुछ उष्णभात भोजन के लिये देना चाहिये ॥ ६८८ ६९२ ॥

रसेश्वर से आरम्भ कर कालमेघ रस पर्यन्त जितने रस पीछे लिखे गये हैं उनका वातोलक्षण सन्निपात में प्रयोग करना चाहिये ऐसा रसकौमुदी में माधवकर ने लिखा है ।

श्रोत्रतापलनेश्वर रस ।

अपामार्गस्य मूलानां चूर्णं चित्रक-  
मूलजैः । बल्कलैर्मर्दयित्वाथ रसं त्र्येण  
गालयेत् ॥ ६९३ ॥ तेन सूतसमं गन्ध-  
मध्रकं पारदं विपम् । टन्नं तालकञ्चैव  
मर्दयेद्विनसत्तकम् ॥ ६९४ ॥ त्रिदिनं मूष-  
लीकन्दैर्भावयेद् घर्म्मरक्षितम् । मूषां च  
गोस्तनाकारामापूर्योपरि ढकयेत् ॥ ६९५ ॥

सप्तभिर्भृत्तिकावस्त्रैर्वैष्टयित्वा पुटेल्लुट । रस-  
तुल्यं लौहभस्म मृतवद्गर्माहस्तथा ॥ ६९६ ॥  
मधूकसारं जलदं रेणुकं गुग्गुलं शिलाम् ।  
चाम्पेयं च समांशं स्याद्भागाद् शोधितं  
विपम् ॥ ६९७ ॥ तत्सर्प मर्दयेत् खल्ले  
भावयेद् विपनीरतः । आतपे सप्तधा तीव्रे  
मर्दयेद् घट्टिकाद्वयम् ॥ ६९८ ॥ कटुत्रयकपा-  
येण कनकस्य रसेन च । फलत्रयकपायेण  
मुनिपुष्परसेन च ॥ ६९९ ॥ समुद्रफेन-  
नीरेण विजयापत्रवारिणा । चित्रकस्य  
कपायेण ज्वालामुख्या रसेन च ॥ ७०० ॥  
प्रत्येकं सप्तधा भाव्य तद्वत्पित्तैश्च पञ्चभिः ।  
सर्पस्य समभागेन विपेण परिधूपयत् ७०१  
विमर्द्य भ्रक्षयित्वा च रक्षयेत् कृपिकोदरे ।  
गुञ्जैकं वह्निनीरेण शृङ्गेररसेन वा ॥ ७०२ ॥  
दद्याच्च रोगिणे तीव्रमौढ्यविस्मृतिशान्तये ।  
सुरेण तालुमाहृत्य धर्षयेदाद्रनीरत ॥ ७०३ ॥  
नोद्धवन्ते यदा दन्तास्तटा कुर्व्यादिमुं वि-  
धिम् । सेचयेन्मन्त्रविद्वैद्यो वारां कुम्भ-  
शतैर्नरम् ॥ ७०४ ॥ भोजनेच्छा यदा  
तस्य जायते रोगिणः परा । दद्धद्योदनं  
सितायुक्तं दद्यात्तक्तं सजीरकम् ॥ ७०५ ॥  
पाने पानंसिताजातं यदिच्छेदाददीत् तत् ।  
एवं कृतेन शान्तिः स्यात् तापस्य च  
रुजस्य च ॥ ७०६ ॥ सचन्द्र चन्दनर-  
सालेपनं कुरु शीतलम् । यूथिकामल्लिका-  
जातीपुन्नागवकुलाष्टताम् ॥ ७०७ ॥  
विधाय शय्यां तत्रस्थलेपनैश्चन्दनैर्मुहुः ।  
हावभावपिलासोकैः कटाक्षचञ्चलेक्षणैः ॥  
७०८ ॥ पीनोत्तुङ्गकुचापीडैः कामिनी-  
परिस्मभणैः । रम्यरीणानिनादोकैर्गायनैः  
श्रवणामृतैः ॥ ७०९ ॥ पुण्यश्लोक-

कथाघैश्च सन्तापहरणं कुरु । दद्याद्  
वातेषु सर्वेषु सिन्धुजैः सह वांक्षभिः ॥ ७१० ॥  
दद्यात् कणामाक्षिकाभ्यां कामलाह्वयपा-  
ण्डुषु । तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योज-  
येत् । अयं प्रतापलङ्केशः सन्निपातहरः  
परः ॥ ७११ ॥

चिरचिरा के मूल और चीते के मूल को एकत्र जल में पीसकर कलक बनाये, उस कलक को वस्त्र में रपकर हाथ से दबाकर रस निकाल लेवे । तदनन्तर इस रस के समान परिणाम में पारा, गन्धक, अश्रक, विष, सोहागा फूला हुआ, हरिताल लेकर, रस में सात दिन पर्यन्त मर्दन करे । परचात् तीन दिन पर्यन्त काली मुसली के रस में मर्दन करके घाम में शुष्क कर लेवे । तदनन्तर गी के स्तन के समान आकृतिवाले मूषा में भरकर, एक सकोश से मूषा का मुख ढँककर मिट्टी से संधिस्थान बन्द करके ऊपर से सात परत कपड़मिट्टी करके लघुपुट में पाक करे । परचात् लोहभस्म, चक्रभस्म, अहिफेन ( अक्षु-यूज् ), महुआ का सार, नागरमोया, सँभालू के बीज, गुग्गुल, मैन्थिल और नागकेसर इनमें से प्रत्येक द्रव्य पारे के समान, तथा शुद्ध विष पारे का आधा भाग लेकर एकत्र परल में मर्दन करे । तदनन्तर सींगिया विष के द्राघ की तीस घाम में सात भाषना देकर प्रतिभाषना में दो-दो घड़ी ( ४८ मिनट ) मर्दन करे । परचात् त्रिकटु का द्राघ, धतूरे का स्वरस, त्रिपला का द्राघ, अगस्तिक के फूल का रस, समुद्रफेन मिला जल, भाँग की पत्तियों का रस, चीता के मूल का द्राघ और ज्वाला-मुगी ( कलहारी ) का स्वरस और पञ्चपिप इनमें से प्रत्येक की मात मात भाषना देकर मर्दन करे ।

तदनन्तर मूल द्रव्य मिलाकर जिनने हैं उतना ही उममें विष मिलाकर मर्दन करके मुषा लेवे । इस रस को सीसी में रबकर टाट लगा देवे ।

चीते के द्राघ चपवा अरुण के रस के साथ एक रती प्रमाण दम औषध का सेवन करने से

सन्निपातजन्य तीव्र मोह और विस्मृति आदि उपद्रव शान्त होते हैं ।

रोगी के मस्तक में तारु के बालों को छुरा ( उस्तुरा ) से साफ करके वहाँ का चमड़ा धोखा झीलकर उस स्थान पर इस औषध को अदरक के रस में मिश्रित कर मर्दन करे । इस क्रिया के करने से रोगी की अज्ञानता और दाँतों का जग जाना आदि उपद्रव दूर होते हैं । रोगी के मस्तक पर सैकड़ों घडे जल डालना चाहिये ।

रोगी का भोजन के लिये मिथीयुक्त दही के साथ भात और जीरा मिश्रित तक देवे । पीने को मिथी का शर्वत यथेच्छ देना चाहिये । ऐसा करने से ताप तथा रोग की शान्ति होती है । रोगी के शरीर में घिसे चन्दन में कपूर मिलाकर लेप आदि शीतल उपचार तथा रोगी के लिये प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली जुही, मालती, चमेली, नागकेसर, मौलश्री आदि के फूलों से युक्त शय्या, हावभावविलासयुक्त छियों की बातें और शीतल कटाच, पुष्ट ऊँचे कुच की स्त्री से आलिंगन, रमणीय वीणा क गीत, मधुर रलीक एवं कथा आदि श्रवण द्वारा दाहनाशक क्रियाएँ करनी चाहिये ।

इस रस को सब प्रकार के वातरोग में सैन्धव और चीता के द्राघ के साथ, कामला और पायट्टरोगों में पीपर का चूर्ण और मधु के साथ सेवन करे । तत्तद्रोगनाशक अनुपानों के साथ सब रोगों में इस रस का प्रयोग करना चाहिये । यह प्रतापलङ्केश रस सन्निपात नाशन में धेष्ट है ॥ ६१३-७११ ॥

द्वितीय कफघेतु ।

दग्धशङ्खं त्रिकुटं टङ्गनं समभागि-  
कम् । विषं च पञ्चमिस्तुल्यमार्द्रतोयेण  
मर्दयेत् ॥ ७१२ ॥ वारत्रयं रत्निपादां  
वर्षां कुट्यार्द्रिचक्षुगः । प्रातः सायं च  
घटिका द्वयमार्द्ररारिणा ॥ ७१३ ॥ कफ-  
घेतुः कण्टरोगं शिरोरोगं च नाशयेत् ।



पीनसं कफसङ्घातं सन्निपातं सुदारु-  
णम् ॥ ७१४ ॥

शंखभस्म १ तोला, सोंठ १ तोला, मरिच  
१ तोला, पीपरि १ तोला, सोहागा की खील  
१ तोला, विष २ तोले इन सब द्रव्यों को एकत्र  
अदरख के रस में ३ भावना देकर मर्दन करे ।  
तदनन्तर एक-एक रत्ती की गोली बनाकर सायं  
प्रातः अदरख के अर्क के साथ दो गोली प्रयोग  
करनी चाहिये । इस कफकेतु रस के सेवन करने  
से क्रयटरोग, सिर के रोग, पीनस और कफोत्थण  
दारुण सन्निपातज्वर निवृत्त होते हैं ॥७१२-७१४॥

महामृत्युञ्जय ।

त्रिकटु त्रिफला सूत गन्धकौ टङ्गण-  
विषम् । यष्टी निशा कुबेराक्षो दन्ति बीज  
मथाऽपिच ॥७१५॥ एतानि समभागानि  
खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् । भृङ्गराज रसेनैव  
मर्दयेत्त्रिदिनं भिषक् ॥ ७१६ ॥ गुटिका  
माप मात्रास्तु ह्याया शुष्काश्चंकारयेत् । अलु-  
पान विशेषेण सर्वरोगेषु योजयेत् ॥७१७॥  
मृत्युञ्जयो रसोनाम सर्वरोग विदारणः ७१८

त्रिकटु, त्रिफला शुद्धपारा, गन्धक, टंकण,  
और बच्छनाग, मुलहठी, हल्दी, करंज के बीज,  
शुद्ध जमालगोटा ये सब समान भाग लेकर महीन  
चूर्ण कर पारे गन्धक की कजली मिलाकर अंगरे के  
रस में ३ रोज घोटकर उबड़के बराबर गोखियाँ  
बनाकर छाया में सुखाकर रख दे । इनमें से १-१  
गोली रोगानुसार अल्पान के साथ देने से सब  
रोगों को नष्ट करता है ॥७१५-७१८॥

श्लेष्मकालानल रस ।

हिङ्गूलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्र-  
कम् । तुत्थं मनोहा तालं च कटफलं धूर्त्त-  
बीजकम् ॥ ७१९ ॥ हिङ्गुं समाक्षिप्तं कुष्ठं  
त्रिवृद्दन्ती कटुत्रिकम् । व्याधिघातफलं वङ्गं  
टङ्गनं समभागिकम् ॥७२०॥ स्नुहीक्षीरेण  
वटिकाः कारयेत्कुशलो भिषक् । विघ्नाय

कोष्ठं कालं च योजयेद्रक्तिकाक्रमात् ॥७२१॥  
वातरश्लेष्मणि मन्देऽनौ ! पिचरश्लेष्माधि-  
केऽपि च । जीर्णज्वरे च श्वयथौ सन्निपाते  
कफोत्थणे ॥ ७२२ ॥ वलासप्रवलं  
त्यक्त्वा धातुं वातात्मकं नयेत् । सेवनात्  
सर्वरोगघ्नः श्लेष्मकालानलो रसः ॥७२३॥

हिङ्गुलोत्थपारद, गन्धक, ताम्रभस्म, तूतिया  
मैनशिल, हरिताल, कायफल, घृत्ने के बीज,  
हींग, सोनामाखी, कूट, निसीथ, जमालगोटा  
का मूल, सोंठ, मरिच, पीपरि, अमलतास,  
वङ्गभस्म, सोहागा की खील सम भाग; इन सब  
द्रव्यों को एकत्र कर धूर के दुग्ध में मर्दन  
करके एक-एक रत्ती प्रमाण बटी बनावे । इस  
श्लेष्मकालानल रस का सेवन करने से वात-  
कफोत्थण, पित्तकफोत्थण तथा कफोत्थण सान्नि-  
पातिक ज्वर निवृत्त होता है और मन्दाग्नि,  
जीर्णज्वर तथा शोथ का नाश होता है । यह  
सर्वरोगनाशक है ॥ ७१९-७२३ ॥

यूहत्कस्तूरीभैरव रस ।

मृगामदशशिसूर्वा धातकी शूकशिम्बी  
रजतकनकमुक्ताविद्रुमं लौहपाठाः। कृमिरिपु-  
घनविश्वा वारितालाभ्रधात्रीरविदलरस-  
पिष्टं कस्तूरीभैरवोऽयम् ॥७२४॥ कस्तूरी-  
भैरवः ख्यातः सर्वज्वरविनाशनः । आर्द्र-  
कस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः ॥७२५॥  
द्वन्द्वजान् भौतिकान् वापि ज्वरान् कामा-  
दिसम्भवान् । अभिचारकृतांश्चैव तथा  
शत्रुकृतान् पुनः ॥ ७२६ ॥ निहन्याद्  
भक्षणादेव ढाकिन्यादियुतास्तथा । चि-  
व्वचूर्णजीरकाभ्यां मधुना सह पानतः  
॥ ७२७ ॥ आमातीसारं ग्रहणीं ज्वराती-  
सारमेव च । अग्निदीप्तिकरः शान्तः  
कासरोगनिःकृन्तनः ॥ ७२८ ॥ क्षपयेद्

भक्षणादेव मेहरोगं हलीमकम् । जीर्णज्वरं  
नूतनं वा द्विकालीनं च सन्ततम् ॥७२६॥  
प्रक्षिप्तं भौतिकं वापि हन्ति सर्वान् विशेष-  
पतः । ऐकाहिकं द्वयाहिकं वा त्रयाहिकं  
चातुराहिकम् ॥ ७३० ॥ पाञ्चाहिकं षष्ठ-  
संस्थं पाक्षिकं मासिकं तथा । सर्वान्  
ज्वरान्निहन्त्याशु भक्षणादार्यकद्रवैः ७३१

कस्तूरी, कपूर, ताम्रभस्म, धातु के फूल,  
कौंच के बीज, चाँदी की भस्म, स्वर्णभस्म,  
मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, लोहभस्म, पादी, बाय-  
बिडङ्ग, नागरमोथा, मोंठ, सुगन्धबाला, हरिताल,  
अन्नकभस्म और आँवला समभाग, इन सब  
द्रव्यों को चूर्णकर आक की पत्तियों के रस में  
घोटकर एक-एक रत्नीप्रमाण गोलियाँ बना  
लेवे । अनुपान—अदरक का रस । इसका सेवन  
करने से सब प्रकार के ज्वर तथा थिल्वचूर्ण,  
जीरा और शहद के साथ लेने से आमातीसार,  
ज्वरातीसार और ग्रहणीरोगातीसार नष्ट होते  
हैं । मन्दाग्नि, कास, प्रमेह, हलीमक आदि का  
भी यह कस्तूरी भैरवनाशक है ॥७२४-७३१॥

श्रीकालानलरस ।

रसं गन्धं मृताभ्रं च टङ्गनं च मनः-  
शिलां । हिंगुलं गरलं दारु विपं ताम्रं च  
तत्समम् ॥ ७३२ ॥ विडालपदमात्रन्तु  
सर्वं शुद्धं विचूर्णयेत् । भावनाय च दातव्यं  
लाङ्गलीमलकं तथा ॥ ७३३ ॥ घोषामूलं  
तथा देयं मूलं लोहितचित्रकम् । अणुप्प-  
फलं मूधात्रीमूलं भ्रमररुद्रकम् ॥ ७३४ ॥  
छागवराहमयूरी महिषो मत्स्य एव च ।  
ऐनेपां च ददेत् पित्तमाद्रकस्य रसेन च ।  
मत्स्येकं मर्दितं शुष्कं कणामात्राप्रमा-  
णतः ॥ ७३७ ॥

पात, गन्धक, अन्नकभस्म, मोहागा पुलाया  
दुष्पा, मैनशिल, हिंगुल, बाबले साँप का दिव,  
दारु ( दाम्बक ) विष और ताम्रभस्म यह प्रत्येक

द्रव्य २ तोले, एकत्र चूर्ण करके, कलिहारी का  
मूल, कडुई तरौई की जड़, लाल चीते की जड़,  
गुनर की जड़, भुई आँवला का मूल, भारंगी  
और आक का मूल इनके रस की भावना देकर  
मर्दन करे । परचात् छाग, शूकर, मयूर, महिष  
और रोहितमत्स्य के पित्त की क्रमशः भावना  
देवे और मर्दन करे । तदनन्तर अदरक के रस में  
मर्दन करके अत्यन्त छोटी-छोटी गोलियाँ बना-  
कर शुष्क कर लेवे । इसका सत्रिपात ज्वर में  
प्रयोग करना चाहिये ॥ ७३१-७३५ ॥

मृतसञ्जीवनी सुरा । ।

गुडं द्रोणसमं ग्राह्यं वर्षापूर्ध्वं पुरातनम् ।  
वावरीत्वचमादाय दापयेत् पलविंश-  
तिम् ॥ ७३६ ॥ दाडिमी वृषभोचं च  
वराक्रान्ताऽरुणा तथा । अरवगन्धादेव-  
दारुधिल्लशयोनाकपाऽल्लाः ॥ ७३७ ॥  
शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।  
यदरीन्द्रवारुणी चित्रं स्वयंमुक्ता पुनर्नवा  
॥ ७३८ ॥ एषां दशपलान् भागान् कुट्ट-  
यित्वा उदरखले । सुगभीरे च मृद्भाण्डे  
तोयमष्टगुणं क्षिपेत् ॥ ७३९ ॥ गुडसङ्को-  
लनं कृत्वा एतैःसंपूरयेद्बुधः । मुखे शरा-  
वकं दत्त्वा रक्षयेद्दिनविंशतिम् ॥ ७४० ॥  
षोडशादिवसापूर्ध्वं द्रव्याणीमानि दाप-  
येत् । पूगमस्थद्वयं चात्रकुट्टयित्वा विनि-  
क्षिपेत् । धुस्तरं देवपुष्पं च पद्मकोशीर-  
चन्दनम् ॥ ७४१ ॥ शतपुष्पा यमानी च  
मरीचं जीरकद्रवम् । शटी मांशी त्वगेला  
च सजातीफलमुस्तकम् ॥ ७४२ ॥ ग्रन्थि-  
पर्णी तथा शुण्ठी मेथी मेपी च चन्दनम् ।  
एषां द्विपलिकान् भागान् कुट्टयित्वा विनि-  
क्षिपेत् ॥ ७४३ ॥ मृगमये मोचिकायन्त्रे  
मयूराख्येऽपि यन्त्रके । यथाविधिप्रकारेण

चालनं दापयेद् बुधः ॥ ७४४ ॥ युद्धिमान्  
सौजलं कृत्वा उद्धरेद् विधिवत् सुराम ।  
एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं यथा धातुवयः क्र-  
मम् ॥ ७४५ ॥ देहदाढ्यं करं पुष्टिवलवर्णा-  
ग्निवर्द्धनम् । सन्निपातज्वरे घोरे विस्मृच्यां  
च मुहुर्मुहुः । शीनेदेहे प्रयोज्येयं मृतसञ्जी-  
वनी सुरा ॥ ७४६ ॥

एक घण्टे से भी अधिक पुराना गुड़ १२ सेर  
१४ तोला, कुटी हुई बबूल की छाल ८० तोले,  
अनार की छाल, अरुसा की छाल, मोचरस,  
लज्जना, अतीस, असगन्ध, देवदारु, बेल की  
छाल; श्योनाक की छाल, पाइर की छाल,  
सरिवन, पिठघग, यषी घटेरी, छोटी कटेरी,  
गोगुरु, धेर, इन्द्रायण की जड़, चोता, कौंच  
और गदहपुरना ( सांठी ) कुटे हुये ये कुल  
औपध ४० तोले, इन सबको घटगुने जल में  
बालकर मिट्टी के बड़े पात्र में रखकर सकोरा  
से मुख बन्द कर देवे । १६ दिन के परचात्  
इसमें कुटी हुई मुपारी २ सेर, धतूरे का मूल,  
पद्मास, एस, लाल चन्दन, सोया, अजवाइन,  
कालीमिरिच, जीरा, कालाजीरा, कचूर, जटा-  
मांसी, दालचीनी, छोटी हलायची, जायफल,  
नागरमोथा, गदिवन, सोंठ, मेथी, मेपश्री और  
चन्दन इनमें से प्रत्येक औपध को दो-दो पल  
( ८ तोला ) लेकर कूटकर मिलावे तथा मुख पर  
सकोरा रखकर फिर मुख बन्द कर देवे । चार  
दिन के परचात् मिट्टी के पात्र के बने हुये मोचिका  
यन्त्र अथवा मयूराप्य यन्त्र में चुप्राकर सुरा  
बनावे । बल, अग्नि और अवस्था के अनुसार  
इसकी मात्रा स्थिर करे ।

इसका सेवन करने से देहकी दृढ़ता तथा बल,  
घर्ष और अग्नि की वृद्धि होती है । घोर सन्निपात-  
ज्वर में विस्मृचिका में जब अन्न शीतल हो जावे  
उस समय चार-चार इस “मृतसञ्जीवनी सुरा”  
का प्रयोग करना चाहिये ॥ ७३६-७४६ ॥

मृगमदासव ।

मृतसञ्जीवनी ग्राह्या पञ्चशतपलसं-

मिता । तदूर्ध्वं मधु संग्राह्यं तोयं मधुममं  
तथा ॥ ७४७ ॥ कस्तूरीकुडवं तत्र मरिचं  
देवपुष्पकम् । जातीफलं पिप्पलीत्वग्  
भागान् द्विपलिकान् क्षिपेत् ॥ ७४८ ॥  
भाण्डे संस्थाप्य रुध्या च निदध्यात् मास-  
मात्रकम् । विस्मृचिकायां हिक्यायां त्रिदोष-  
प्रभवे ज्वरे । वीक्ष्य कोष्ठं बलं चैव भिषङ्-  
मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ७४९ ॥

पूर्वोक्त मृतसञ्जीवनी सुरा ५० पल ( २५ सेर )  
मधु २५ पल ( १२ सेर ), जल २५ पल ( १२ सेर ),  
कस्तूरी १६ तोले, मरिच, लवङ्ग, जायफल,  
पीपरी और दालचीनी प्रत्येक २ पल ( ८ तोला ),  
इन सब द्रव्यों को एकत्र कर मिट्टी के पात्र में  
रखकर पात्र के मुख को भलीभाँति बन्द करके  
एक मासपर्यन्त रख छोड़े, परचात् छानकर रख  
लेवे, रोगी का कोष्ठ और बलाबल देखकर इसकी  
मात्रा स्थिर करे । इसका सेवन करने से विस्मृचिका,  
हिकी और सान्निपातिक ज्वर निवृत्त होते  
हैं ॥ ७४७-७४९ ॥

## अथ मध्यज्वरादौ ।

ज्वरमातङ्गकेसरी रस ।

पारदं गन्धञ्कचैव हरितालं समाक्षि-  
कम् । कडुत्रयं तथा पथ्या चारौ द्वौ  
सैन्धवं तथा ॥ ७५० ॥ निम्बस्य विषमु-  
ष्टेश्च वीजं चित्रकमेघ च । एषां मापमितं  
भागं ग्राह्यं प्रतिमुसंस्कृतम् ॥ ७५१ ॥  
द्विमापह्वानकफलं विषं चापि द्विमापि-  
कम् । निर्गुण्डीस्वरसेनैव शोषयेत्तत् प्रय-  
त्नतः ॥ ७५२ ॥ सार्द्धं त्रिप्रमाणेन वटी  
कार्या सुशोभना । सर्वज्वरहरी चैषा भे-  
दिनी दीपनाशिनी ॥ ७५३ ॥ अामा  
जीर्णशमनी कामलापाण्डुरोगहा । वह्नि-

दीप्तिकरी चैषा जठराभयनाशिनी ॥७५४॥  
उष्णोदकानुपानेन दातव्या हितका-  
रिणी । भापितो लोकनाथेन ज्वरमातङ्गके-  
सरी ॥ ७५५ ॥

पारा, गन्धक, हरिताल, सोनामाखी, सोंठ, मरिच, पीपरि, हर्, यवचार, सजीखार, लाहौरी नोन, नीम के बीज, कुचिला और चीता इनमें से प्रत्येक द्रव्य १ माशा, जमालगोटे के बीज २ माशे और विप २ माशे, इन सब द्रव्यों को निगुंघडी के पत्ते के रस में घोटकर डेढ़-डेढ़ रत्ती की घटी बनावे । अनुपान उष्ण जल । इसका सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, आमाजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग और उदररोग नष्ट होते हैं, तथा अग्नि का दीपन और मल का भेदन होता है ॥ ७५०-७५५ ॥

रसमङ्गलोक ज्वरमुरारि रस ।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धं विपं च दरदं पृथक् ।  
कर्पममाणं कर्पाद्धं लवङ्गं मरिचं पलम् ॥  
७५६ ॥ शुद्धं कनकबीजं च पलद्वयमितं  
तथा । त्रिवृताकर्पमेकं तु भावयेदन्तिका-  
द्रवैः ॥ ७५७ ॥ सप्तधा च ततः कार्य्या  
गुटी गुञ्जामिता शुभा । ज्वरमुरारिनामायं  
रसो ज्वरकुलान्तकः ॥ ७५८ ॥ अत्यन्ता-  
जीर्णपूर्णे च ज्वरे विष्टम्भसंयुते । सर्वाङ्ग-  
ग्रहणीगुल्मे चामवातेऽम्लपित्तके ॥ ७५९ ॥  
कासश्वासे यक्ष्मरोगेऽप्युदरे सर्वसम्भवे ।  
शृश्रस्यां सन्धिमज्जस्थे वाते शोथे च  
दुस्तरे ॥ ७६० ॥ यकृतिप्लीहरोगे च  
वातरोगे चिरोत्थिते । अष्टादशकुष्ठरोगे  
सिद्धो गहननिर्मितः ॥ ७६१ ॥

पारा, गन्धक, विप और द्विगुल प्रायक  
१ तोला, मरिच १ माशे, कालीमरिच ५ तोले,  
यव के बीज = तोले, निवोप १ तोला, इन

सब द्रव्यों को चूर्ण कर दन्ती के ढाँध की  
सात भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ  
बनावे । इस ज्वरमुरारि-नामक रस का सेवन  
करने से सब प्रकार के ज्वर, अजीर्ण, आमवात,  
अम्लपित्त, कास, खास, राजयक्ष्मा, उदर-  
रोग, गृध्सी, वातरोग, शोथ, यकृत, प्लीहा  
और १८ प्रकार के बुष्टरोग निवृत्त होते  
हैं ॥ ७५६-७६१ ॥

पञ्चानन रस ।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं दैत्ये-  
न्द्ररक्तं रविः पक्षौ सागर लोचनं शशियुगं  
भागोर्ज्जसंख्यान्वितः । खल्लो तत्परिमर्दितं  
रविजलैर्गुञ्जैकमात्रं ददेत् सिंहोऽयं ज्वरद-  
न्तिदर्पदलनः पञ्चननाख्यो रसः ॥७६२॥  
पृथक् देयं दधिभक्तकञ्च सिन्धूत्थपथ्या  
मधुना समेतम् । गन्धानुलेपो हिमतोयपानं  
दुग्धञ्च देयं शुभदाडिमञ्च ॥ ७६३ ॥

विप २ तोले, मरिच ४ तोले, गन्धक ३  
तोले, द्विगुल १ तोला और ताम्रभस्म २ तोले,  
इन कुल द्रव्यों का समुदाय १२ तोला परिमित  
हो, इनकी मक्षर (आक) के मूल के ढाँध में  
मर्दन करके एक रत्ती प्रमाण घटी बनावे । इस  
पञ्चानन रस का सेवन करने से प्रयत्न ज्वर निवृत्त  
होता है । इस रस का सेवन कराकर शीतप्रिया  
करनी चाहिये । अनुपान—सँधा नोन, हर् का  
चूर्ण और मधु ।

पथ्य—दही-भात, सुगन्धित द्रव्य वा शरीर  
में लेप, शीतल जल का पान, दूध और अनार  
के दाने ॥ ७६२-७६३ ॥

चन्द्रशेखर रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मरिचं टङ्गनं  
तथा । चतुस्तुल्या सित्ता योज्या मत्स्यपि-  
त्तेन भावयेत् ॥ ७६४ ॥ त्रिदिनं मर्दये-  
त्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः । द्विगुञ्जामार्ज्जक-  
शार्पदेयं नीतोदकं यजु ॥ ७६५ ॥ तत्र-

भक्तञ्च घृन्ताकं पथ्यं तत्र प्रदापयेत् ।  
त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युग्रं नाशये-  
ज्वरम् ॥ ७६६ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, मरिच २ भाग, मुहागा फूला हुआ २ भाग, मिथी ७ भाग, इन कुल द्रव्यों को रोहित मस्य के पित्त की तीन दिन भाषना देकर, उत्तम रीति से मर्दन करके, दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे ।  
अनुपाग—अदरस का रस । चन्द्रशेखर रस का सेवन कराकर शीतल जल पान करावे ।  
पथ्य—तक्र, भात, बैंगन की तरकारी । इस औषध का सेवन करने से ३ दिन में अत्यन्त घोर ज्वर शान्त हो जाता है ॥ ७६४-७६६ ॥

अर्द्धनारीश्वर रस ।

रसगन्धामृतं चैव समं शुद्धञ्च टङ्गनम् ।  
मर्दयेत् खल्लमध्ये तु यावत् स्यात् कज्जल-  
प्रभम् ॥ ७६७ ॥ नकुलारिमुखे क्षिप्त्वा  
मृदा संवेष्टयेद्बहिः । स्थापयेत् मृगमये  
पात्रे उर्ध्वाधो लवणं क्षिपेत् ॥ ७६८ ॥  
भाण्डवक्त्रं निरुध्याथ चतुर्यामं हठाग्निना ।  
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्ले कृत्वा तु कज्ज-  
लीम् ॥ ७६९ ॥ गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं  
नस्यकर्मणि योजयेत् । वामभागेज्वरंहन्ति  
तत्क्षणाग्नौककौतुकम् ॥ ७७० ॥ कुर्या-  
दक्षिणभागेन चारोग्यं निश्चितं भवेत् ।  
गोप्याद्दोष्यतमं प्रोक्तं गोपनीयं प्रयत्नतः ।  
अर्द्धनारीश्वरो नाम रसोऽयं कथितो  
भुवि ॥ ७७१ ॥

पारा, गन्धक, विष, सोहागा फूला हुआ इनको खरल में मर्दन करके कज्जल करके समान बना लेवे । पश्चात् इस कज्जली को काले साँप के मुख में रखकर ऊपर एक अंगुल मोटा मिट्टी का लेप करके मिट्टी के पात्र में रख देवे । पात्र में रखे हुये गोला के नीचे और ऊपर नमक

रखकर पात्र का मुख सकोरा से बन्द करके सन्धिस्थान में मिट्टी लगा देवे । तदनन्तर चूल्हा पर रख ४ प्रहरपर्यन्त तीव्र आँच देकर पाक करे, स्वाङ्गशीतल होने पर पात्र से गोला निकालकर मिट्टी अलग करके औषध को खरल में घोटकर कज्जली के समान बनाकर रख लेवे । एक रत्ती इस औषध को नस्य के लिये देना चाहिये । इस औषध के प्रयोग से तत्काल वाग अङ्ग में ज्वर निवृत्त हो जाता है, इसमें लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है, तदनन्तर दक्षिण अङ्ग का भी ज्वर नष्ट हो जाता है । यह अर्धनारीश्वर नामक रस अत्यन्त गोपनीय है ॥ ७६७-७७१ ॥

श्रीरसराज ।

भागैकं रसराजस्य भागश्च हेममात्ति-  
कात् । भागद्वयं शिलायारच गन्धकस्य  
त्रयो मताः ॥ ७७२ ॥ तालकाष्टादश-  
भागाः शुल्वं स्याद्भागपञ्चकम् भल्लात-  
कात् त्रयो भागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत्  
॥ ७७३ ॥ वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृगमय-  
भाजने । विधाय सुदृढां मुद्रां पचेद् याम-  
चतुष्टयम् ॥ ७७४ ॥ स्वाङ्गशीतं समु-  
द्धृत्य खल्लयेत् सुदृढं पुनः । गुञ्जामयमिति  
चास्यं पर्णखण्डेन दापयेत् ॥ रसराजः  
प्रसिद्धोऽयं ज्वरमष्टाविधं जयेत् ॥ ७७५ ॥

पारा १ भाग, स्वर्णमात्तिक १ भाग, जैन-  
शिल २ भाग, गन्धक ३ भाग, हरिताल १८ भाग, ताम्रभस्म २ भाग और भिल्लावाँ ३ भाग इन सब द्रव्यों को चूर्ण करके मिट्टी के पात्र में रखकर, उसमें मूँह का दूध इतना डाले जिससे चूर्ण ढूँस जावे । तदनन्तर पात्र के मुख पर दृढ मुद्रा देकर, चार प्रहर पर्यन्त पाक करे । शीतल होने पर मर्दन करके रख लेवे । दो रत्ती इस श्रीरसराज रस को पान के साथ खाने को देवे । इसका सेवन करने से आठ प्रकार के ज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ७७२-७७५ ॥

मुद्राघोटक रस ।

पारदो गन्धकरचैत्र त्रिचारं लवणत्र-  
यम् । गुग्गुलुर्वत्सनाभञ्च प्रत्येकन्तु द्विमा-  
षिकम् ॥७७६॥ कृष्णोन्मत्तजटानीरै-  
र्भावेत् सप्तवारकम् । गोक्षुरेन्द्रकमारीष-  
करञ्जचित्रनेजिका ॥ ७७७ ॥ भृकुरुव-  
कलताभिश्च त्रिफलावृहतीरसै । मर्दिता  
वटिका कार्या कृष्णलाफलसन्निभा  
॥७७८॥ तत एकां वटीं दत्त्वा यत्रैः पाठ्यादि-  
भिर्वृतः । रसः सर्वज्वरं हन्ति क्षणमात्रान्न  
संशयः ॥ ७७९ ॥

पारा, गन्धक, यवहार, सजीषार, सोहागा,  
संधानोन, कालानोन, विरियासंघरनोन, गुग्गुलु  
और विष प्रत्येक २ मासे लेकर एकत्र मर्दन  
करे । परचाट्ट काळे धतूरे के मूल के रस की  
सात भावना देवे । तदनन्तर गोखरू, इन्द्रजौ,  
मरसा, कंजा, चीता, तेजबल, लाल फूलवाला  
पीयायांसा, त्रिफला और यदी बटेरी इनके काथ  
में मर्दन करके गुञ्जाफल के समान धर्पात् एक  
एक रत्ती की गोलियाँ बनावे । १ वटी सेवन  
करावे । औषध सेवन कराकर, रोगी का शरीर  
धस्र आदि से ढँक देवे । इसका सेवन करने  
से सब प्रकार के ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाते  
हैं ॥ ७७६-७७९ ॥

शीतारि रस ।

पारदं गन्धकं द्रुं शुल्वं चूर्णं समं  
समम् । पारदाद् द्विगुणं देयं जैपालं तुषव-  
जितम् ॥ ७८० ॥ सैन्धवं मरिचं चिञ्चा-  
त्सगुभस्म शर्कराऽपि च । प्रत्येकं सूततुन्यं  
म्याज्जम्भीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ७८१ ॥ गुञ्जातं  
तप्ततोयेन वातरलेपमज्वरापट्टः । रसः  
शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥७८२॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, सोहागा की  
धीय १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, जगत्सोडा

के बीज २ भाग, संधानोन १ भाग, मरिच १  
भाग, इमली की छाल की भस्म १ भाग और  
मिथ्री १ भाग, इन कुल द्रव्योंको पकत्र कर जैभीरी  
नींबू के रस में १ दिन मर्दन करके एक रत्ती  
प्रमाण बटी बनावे । अनुपान उष्ण जल । इस  
शीतारि रस का सेवन करने से वातरलेपमज्वर  
और शीतज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ७८०-७८२ ॥

पर्णखण्डेश्वर ।

समांशं मर्दयेत् खल्ले रसं गन्धं शिलां  
धिपम् । निर्गुण्डीस्वरसैर्भावेयं त्रिवारं  
चार्द्रकद्रवैः ॥ गुञ्जापादस्थितं पर्णं ज्वरं  
हन्ति महाद्भुतम् ॥ ७८३ ॥

पारा, गन्धक, जैनशिल और धिप प्रत्येक  
सम भाग लेकर एकत्र मर्दन करके सँभालू की  
पत्तियों के रस की ३ भावना देवे, तदनन्तर  
अदरक के रस की ३ भावना देकर गौली बनावे,  
१ रत्ती पान के पत्ता में रखकर सेवन करने से  
बड़ी अद्भुत रीति से सब प्रकार के ज्वर नष्ट  
होते हैं ॥ ७८३ ॥

शीतभञ्जो रस ।

पारदं रसकं तालं तुत्यं द्रुनगन्धकम् ।  
सर्वमेतत् समं शुद्धं कारवेल्या रसैर्दिनम्  
॥७८४॥ मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रो-  
दरं लिपेत् । अद्गुल्यार्द्धार्द्धमानेन तं पचेत्  
सिकताहये ॥ ७८५ ॥ यन्त्रे यावत्  
स्फुटन्त्येव घ्रीह्यस्तस्य पृष्ठतः । ताम्रपात्रं  
समुद्धृत्य चूर्णयेन्मरिचैः समम् ॥७८६॥  
शीतभञ्जोरसो नाम द्विगुञ्जो वातिके ज्वरे ।  
दातव्यः पर्णखण्डेन मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्व-  
रम् ॥ ७८७ ॥

अत्र रसकं तर्पणम् । शुद्धताम्रं पट्ट-  
तोलकं तेन निर्मितं ताम्रगन्धं प्रत्येकं  
तोलकमितेन पारदादिपट्टद्रव्येण लिप्तम्  
अधोमुख्यं कृत्वा म्यान्त्यां संस्थाप्य पात्रा-

न्तरेणाच्छाद्य उपरि बालुकाभिः स्थालीं परिपूर्य्य तदुपरि व्रीहीन् दत्त्वा चुल्ल्यां निवेश्य तावद्ग्नज्वाला दातव्या यावद् व्रीहयो न स्फुटन्ति स्फुटितेषु तेषु व्रीहिषु रसः सिद्धो भवति पश्चान्मरिचचूर्णं पट्टोलकम् अन्यत् सर्वमेकीकृत्य चूर्णयित्वा अस्य द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन सह भक्षयेदित्युपदेशः ।

६ तोला परिमित शुद्ध ताम्र का एक खल बननावे । पश्चात् पारा, खपरिया, हरिताल, तूतिया, सोहागा की खील और गन्धक इन ६ द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य को एक एक तोला लेकर करेले की पत्तियों के रस में घोटकर, इस घुटी हुई औषध से पूर्वोक्त खरल के भीतरी भाग में लेप करे । तदनन्तर इस खरल को एक हॉडी में अधोमुख रखकर, उस खरल को किसी अन्य पात्र से ढाँककर हॉडी के शेष भाग को बालू से पूर्ण करके ऊपर कुछ धान्य रख देवे । पश्चात् उसको चूल्हे पर चढ़ाकर, तब तक आँच देता रहे जब तक बालू के ऊपर रक्खे हुए धान्य फूटने न लगें । धान्यों के फूटने पर चूल्हे से उतारकर, शीतल होने पर हॉडी से ताम्र के पात्र को निकालकर, उसमें ६ तोले मरिच का चूर्ण मिलाकर, उत्तम रीति से घोटकर रख लेवे । २ रत्ती प्रमाण इस रस को पान के पत्ता में रखकर सेवन करने से मुहूर्तमात्र में वातज्वर नष्ट होता है ॥ ७८४-७८७ ॥

टिप्पणी—ताम्रमस निराल हो गई हो तो ले अन्यथा नहीं ले ।

अल्पज्वराद्दश रस ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूर्त्तवीजं त्रिभिः समम् । चतुर्णां द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥ ७८८ ॥ जम्बीरस्य च मज्जाभिरःशुद्धस्य रसैर्युतम् । ज्वराकुशो रसो नाम्ना ज्वरान् सर्वान् विनाशयेत् ॥ ७८९ ॥ व्योषं मिलित्वा द्विगुणम् ।

पारा १ तोला, विष १ तोला, गन्धक १ तोला, धतूरे के बीज ३ तोले, त्रिवट्ट के तीनों द्रव्य मिलकर १२ तोले, इन कुल द्रव्यों को एकत्र घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । अदरक के रस तथा जैभीरी नीचू के बीज के साथ इस स्वल्पज्वराद्दश रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं । मात्रा १ रत्ती ॥ ७८८-७८९ ॥

ज्वराद्दश ।

मरिचं टङ्गणं शङ्खं चूर्णं पारदगन्धकम् । शोधितं ब्रह्मपुत्रञ्च भागमेकं विनिक्षिपेत् ॥ ७९० ॥ गुञ्जार्द्धञ्च प्रदातव्यं नागवल्लीदलैः सह । ज्वराद्दशो रसो ह्येष ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥ ७९१ ॥

कार्लामिचं, सुहागा, शंखभसम, पारद, गन्धक, ब्रह्मपुत्र विष ( इसके न मिलने पर भीठा विष काम में लाना चाहिए ) इनको बराबर बराबर लेकर यथाविधि आधी रत्ती की गोलियाँ बना ले । इन गोलियों को पान के साथ प्रयोग में लाना चाहिए । ये आठ प्रकार के ज्वरों को परण करती हैं ॥ ७९०-७९१ ॥

सर्वज्वराद्दशवटी ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मरिचं नागरं कणा । त्यच जैपालकं कुष्ठं भूनिग्धं मुक्तकं पृथक् ॥ ७९२ ॥ चूर्णयित्वा समाशान्तु कज्जल्या सह मेलयेत् । निर्गुण्ड्याः स्वरसे चापि आर्द्रकस्य रसे तथा ॥ ७९३ ॥ भावनां कारयित्वा तु वटिकां कारयेत्पिपक् । वटिकां भक्षयित्वा तु वस्त्रनेटञ्च कारयेत् ॥ ७९४ ॥ एषा ज्वराद्दशवटी सर्वज्वरविनाशिनी । पृथग्दोषाश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ७९५ ॥ प्राकृतं वैकृतं वापि वातश्लेष्महनञ्च यत् । अन्तर्गतं वहिःस्थञ्च निरामं सामनेज वा

ज्वरमष्टविधं हन्ति वृत्तमिन्द्राश-  
निर्यथा ॥ ७६६ ॥

पारा और गन्धक समभाग लेकर कजली बना लेवे । पश्चात् मिरिच, सोंठ, पीपरि, डाल-चीनी, जमालगोटा के बीज, कूठ, चिरायता और नागरमोथा इनमें से एक द्रव्य को पारा के समान परिमाण में लेकर कजली में मिलाकर सँभालू की पत्तियों के रस की भावना देकर मर्दन करे । तदनन्तर अद्रख के रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । इस औषध का सेवन कराकर रोगी का शरीर बद्ध से ढाँक देवे । इस सर्वज्वराकुशवटी रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ७६७-७६६ ॥

चूहज्वराद्भृश ।

पारदं गन्धकं ताम्रं हिंगुलं तालमेव च । लौहं वङ्गं मान्तिकञ्च स्वर्पणञ्च मनः-  
शिला ॥ ७६७ । स्वर्णमभ्रं गैरिकञ्च  
टङ्गन रूप्यमेव च । सर्वाण्येतानि तु  
ल्यानि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ७६८ ॥  
जम्बीरतुलसीचित्रविजयातिन्तिडीरसैः ।  
एभिर्दिनत्रयं रात्रौ निज्जने रत्नलगदरे ॥  
७६९ ॥ चण्णमात्रां वटीं कृत्वा ज्ञायाशु-  
फ्कान्तु कारयेत् । महाग्निजननी चैषा  
सर्वज्वरत्रिनाशिनी ॥ ८०० ॥ एकजं  
द्वन्द्वजं चैव चिरकालसमुद्रवम् । ऐकाहिकं  
द्वयाहिकञ्च त्रिदोषमभ्रं ज्वरम् ॥ ८०१ ॥  
चतुर्थं तथात्युगं जलदोषसमुद्रवम् । सर्वांश्च  
ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा  
॥ ८०२ ॥ नातः पत्रं किञ्चिज्वरनाशाय  
भेषजम् । महाज्वराकुशो नाम रसोज्यं  
धुनिभापितः ॥ ८०३ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, हिंगुल, हरिताल,  
घोटभस्म, पद्मभस्म, स्वर्णमादिक, पीपरि,

मैनशिल, स्वर्णभस्म, अश्रकभस्म, गेरू, सोहागा  
मुना हुआ और चाँदीभस्म, समभाग, इन कुल  
द्रव्यों को एकत्र कर मर्दन करे । पश्चात् जँभीरी  
नींबू का रस, तुलसी की पत्तियों का रस, चीता  
की पत्तियों का रस, भाँगी की पत्तियों का रस,  
इमली की पत्तियों का रस, इन समस्त रसों की  
सात दिन पर्यन्त भावना देकरा छाया में शुष्क  
कर लेवे । तदनन्तर चना के समान गोलियाँ  
बना लेवे । इस महाज्वराकुश रस का सेवन करने  
से सब प्रकार के ज्वरों का नाश और अग्नि की  
वृद्धि होती है ॥ ७६७-८०३ ॥

ज्वराद्भृश ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं बीजं कनकसम्भ-  
वम् । महौषधं टङ्गनञ्च हरितालं तथा  
विषम् ॥ ८०४ ॥ भृङ्गराजाम्भसा सर्वं  
मर्दयित्वा वटीञ्चरेत् । गुञ्जाप्रमाणां खा-  
देत् तां तथा दोषानुपानतः ॥ ८०५ ॥  
एष ज्वराकुशो नाम्ना विषमज्वरनाशनः ।  
ज्वरात्तिसारं मन्दाग्निं नाशयेच्चावि-  
कल्पतः ॥ ८०६ ॥

पारा, गन्धक, धतूरे के बीज, सोंठ, सोहागा  
की खील, हरिताल और विष इन कुल द्रव्यों  
को समभाग लेकर भाँगा के रस में घोटकर  
एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । दोषानुकूल  
अनुपान के साथ इस ज्वराकुश रस का सेवन  
करने से सब प्रकार के विषमज्वर, ज्वरातिमार  
अग्निमान्द्य नष्ट होते हैं ॥ ८०४-८०६ ॥

चिन्तामणि रस ।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं मृतमभ्रं फलत्रि-  
कम् । ज्यूपणं दन्तिबीजञ्च समं खल्ले  
विमर्दयेत् ॥ ८०७ ॥ द्रोणपुष्पीरसंभाष्यं  
शुष्कं तद्रूपपालितम् । चिन्तामणिरसो दोष  
त्वजीर्णं शस्यते मदा ॥ ८०८ ॥ ज्वरमष्ट-  
विधं हन्ति सर्वं शूलनिमूदनः । गृञ्जकं वा  
द्विगुणं पाट्यमादिकं पारिगा ॥ ८०९ ॥



पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, चाँवला हरं, बहेडा, सोंठ, मिरिच, पीपरि और जमाल-गोटा के बीज इन सब द्रव्यों को समान भाग, लेकर खरल कर लेवे । तदनन्तर गूमा के रस में भावना देकर ; एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में शुष्क कर लेवे । इसका सेवन करने से अजीर्ण, शूल और आठ प्रकार के ज्वर विशेषतः वातज्वर नष्ट होते हैं । अनुपान अदरक के रस के साथ एक या दो गोली देनी चाहिये ८०७-८०६

त्रिलोचनवटी ।

वारिणा मर्दयेत्तालं सीसकं मरिचं विपम् । मुद्गमाना वटीकार्या जलेन सि-  
तया सह ॥ ८१० ॥ द्विमुहूर्तान्तरं दद्यात्  
क्रमेण वटिकात्रयम् । त्रिलोचनवटी ह्येषा  
पर्यायज्वरनाशिनी ॥ ८११ ॥ वातिकं पैत्तिक-  
श्चापि श्लेष्मिकं सान्निपातिकम् । सर्वान्  
ज्वरान् निहन्त्याशु प्रयुक्ता ज्वरमादये ८१२

इहताल शुद्ध की हुई, सीसकभस्म, काली मिरिच, मीठा विप उपर्युक्त सब द्रव्यों को बरा-बर ले और मिश्रित कर जल से घोंटे और मूँग के बराबर गोली बना ले । इन गोलियों को उस अवस्था में प्रयोग में लाना चाहिए जब कि ज्वर न हो या बहुत कम हो । ये वातिक, पैत्तिक, कफ से आनेवाले तथा सान्निपातिक सपूर्ण ज्वरों को नष्ट करती हैं—इन गोलियों को दो मुहूर्त ( लगभग १ ॥ घंटा ) के अन्तर से देना चाहिए । ज्वर चढ़ने के समय तक दो मुहूर्त के अन्तर से तीन गोलियाँ दे देने से ज्वर रुक जाता है । अनुपान—गोली को पीसकर उसमें उतनी ही खाँड़ मिलाकर पानी के साथ प्रयोग करे ॥ ८१०-८१२ ॥

चातश्लेष्मान्तक रस ।

पञ्चकोल मरालश्च पारदश्चाभ्रकं तथा ।  
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेदतियत्रतः ॥ ८१३ ॥  
गुञ्जाद्वयं प्रदातव्यं नागवल्लीरसैर्युतम् ।  
वातश्लेष्मज्वरहरो वातश्लेष्मान्तको

रसः ॥ ८१४ ॥ वातजं पित्तजं श्लेष्म-  
द्विदोषजमपि क्षणात् । सर्वान् ज्वरान्  
निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ८१५ ॥

पीपरि, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, प्रवालभस्म, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर-बराबर एकत्र करके अदरक के रस से अच्छी तरह घोटकर दो रत्ती प्रमाण की गोली बना ले । अनुपान पान का रस । इससे वातश्ले-ष्मज्वर, वातज, पित्तज, कफज, दो दोषों से उत्पन्न होनेवाला ज्वर तथा सम्पूर्ण ज्वर गीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८१३-८१५ ॥

श्याहिकारि रस ।

रसगन्धशिला तालं सर्वैरतिविपासमा ।  
रसस्य द्विगुणं लौहं रौप्यं लौहाद्द्विस-  
म्मितम् ॥ ८१६ ॥ पिचुमर्दरसेनापि  
विष्णुक्रान्तारसेन च । सर्वं संमर्द्य वटिकाः  
कुर्याद् गुञ्जात्रयोन्मिताः ॥ ८१७ ॥  
हन्यादतिविपाकाथसंयुतोऽयं रसोत्तमः ।  
श्रचाहिकादीन् ज्वरान् सर्वान् रक्षांसीव  
र्यूद्धहः ॥ ८१८ ॥

पारा, गन्धक, मैनशिल, हरिताल प्रत्येक १ भाग, अतीस ४ भाग, लोहभस्म २ भाग, और चाँदी आधा भाग इन बुल द्रव्यों को नीम की छाल के रस में और विष्णुक्रान्ता ( कोयल ) के रस में घोटकर तीन तीन रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । अतीस के काड़ा के साथ इस श्याहिकारि रस का सेवन करने से नृतीयक आदि सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ८१६-८१८ ॥

चातुर्थकारि रस ।

रसगन्धफलोद्वाभ्रद्विगुणं समांशितम् ।  
रसार्द्रप्रमितं हेम सर्वं खल्लोदरे क्षिपेत् ॥  
८१९ ॥ कृष्णधुस्तूरपयसा मुनिपुष्पर-  
सेन च । भाग्यित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जा-  
फलमानत ॥ ८२० ॥ चम्पकद्रव्ययोगेन

सेवितोऽयं रसेश्वरः । चातुर्थकादीन्  
निखिलान् निहन्त्याद्विपमज्वरान् ॥ ८२१ ॥

त्र्याहिकारिश्चातुर्थकारिश्च रसो ज्वर-  
विरतौ प्रयोऽय इति वृद्धवैद्याः ।

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अन्नकभस्म और  
हरिताल प्रत्येक १ भाग, सोना पारे का आधा  
भाग; इनको खरल करके, काले धतूरे की पत्तियों  
के रस में और आगस्थ के फूल के रस में भावना  
देकर दो-दो रत्ती की गोतियाँ बना लेवे । चम्पा  
की छाल के अर्क के साथ इस रस का सेवन करने  
से चातुर्थिक आदि सब प्रकार के विपमज्वर नष्ट  
होते हैं । मात्रा १ रत्ती ।

त्र्याहिकारि और चातुर्थकारि इन दोनों रसों  
को ज्वर उतरने पर देना चाहिये ऐसा वृद्ध वैद्यों  
का उपदेश है ॥ ८१६-८२१ ॥

विश्वेश्वर रस ।

पारदं रमकं गन्धं तुल्यांशं मद्येद्रे से ।  
अश्वत्थजे त्र्यहं परचाद्रे से कोलकमूलजे  
॥ ८२२ ॥ निदिग्धिकारसे काकमाचि-  
काया रसे तथा । द्विगुञ्जां वा त्रिगुञ्जां वा  
गोक्षीरेण प्रदापयेत् । रात्रिज्वरं निहन्त्याशु  
नाम्ना विश्वेश्वरो रसः ॥ ८२३ ॥

( रात्रिज्वरं प्रशस्तोऽयं रसः । )

पारा, लपरिया और गन्धक सम भाग इन  
द्रव्यों को लेकर पीपल के मूल की छाल के रस  
में, बेर की मूल की छाल के रस में छोटी  
फटेरी के रस में और अर्कोय के रस में तीन-  
तीन दिन भावना देकर, दो दो रत्ती की अथवा  
तीन-तीन रत्ती की गोतियाँ बना लेवे । गाय के  
दूध के साथ इस रस का सेवन करने से रात्रि-  
ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८२२-८२३ ॥

विक्रमकेसरी रस ।

शुल्भमेकं द्विधातारं मद्येद्विधिवद्भि-  
पक् । पद्चाद् विपं रसं गन्धं मेलयित्वा  
तु भापयेत् ॥ ८२४ ॥ एकविंशतिपारांश्च

लिम्पाकवलकलद्रवैः । रसः सिद्धः प्रदा-  
तव्यो गुञ्जामात्रो ज्वरान्तकृत् । सर्वज्वर-  
हरः ख्यातो रसो विक्रमकेसरी ॥ ८२५ ॥

ताम्रभस्म १ तोला, चाँदी २ तोले इनको  
विधिपूर्वक खरल करे । परचात् उसमें विप,  
पारा और गन्धक प्रत्येक एक तोला मिलाकर  
फिर खरल करे । तदनन्तर नींबू के मूल की  
छाल के रस में २१ बार भावना देकर एक-  
एक रत्ती की गोतियाँ बना लेवे । इस रस का  
सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते  
हैं ॥ ८२४-८२५ ॥

ज्वरकालकेतु रस ।

रसं विपं गन्धकताम्रकश्चमनः शिला-  
रुप्तरतालकश्च । विमर्द्य वक्षीपयसा स-  
मांशं गजाह्वयं तत्र पुटं विदध्यात् ॥ ८२६ ॥  
गुञ्जार्द्धमस्यैव मधुमयुक्तं ज्वरं निहन्त्याष्ट-  
विधं महोग्रम् । पुरा भवान्यै कथितो भवेन  
नृणां हिताय ज्वरकालकेतुः ॥ ८२७ ॥

पारा, विप, गन्धक, ताम्र, मैन्शिल, निलावाँ  
और हरिताल इन कुल द्रव्यों को सम भाग  
लेकर धूर के दूध में घोटकर गजपुट में फूँक  
देवे । मधु के साथ १ रत्ती की मात्रा में इस  
रस का सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने  
से आठ प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ८२६-८२७ ॥

त्रिपुरारि रस ।

हुताशमुखसंशुद्धं रसं ताम्रश्च गन्ध-  
कम् । लौहमध्रं विपञ्चैव सर्वं कुट्यात्  
समांशकम् ॥ ८२८ ॥ रसाद्धं मृतरूप्यश्च  
शृङ्गवेराम्बुमर्दितन् । गुञ्जैकं मधुना देयं  
सितयार्द्ररसेन वा ॥ ८२९ ॥ ज्वरमष्टविधं  
हन्ति वारिदोषभवं तथा । प्लीहानशुद्धं  
शोथमतीसारं विनाशयेत् । रोगानेतात्रि-  
हन्त्याशु शङ्करस्त्रिपुरं यथा ॥ ८३० ॥

हिमालय से निकाला हुआ पारा, ताम्रभस्म,

गन्धक, लोहभस्म, चाग्रभस्म और विष के कुछ द्रव्य ममभाग, पात्रों का आधा भाग चाँदी की भस्म; इन कुछ द्रव्यों को एकत्र कर चादर के रस में घोटकर १ रत्ती प्रमाण पटी बनाये। घनूपान मनु, मिथी अथवा चादर के रस। इसका सेवन करने में आठ प्रकार के ज्वर, पारि-दोषजन्य (जन की ग्राह्यी से उत्पन्न) ज्वर, प्लीहा, उदररोग, शोथ और अतिगार के रोग शीघ्र नष्ट होने हैं ॥ ८२८-८३० ॥

मेघनाद रस ।

तारं कांस्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यञ्च गन्धकम् । क्षायेन मेघनादस्य पिप्प्ला रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ ८३१ ॥ पट्टभिः पुटेभवेत् सिद्धो मेघनादो ज्वरापह । भक्षयेत् पर्ण-सण्डेन विषमज्वरनाशनम् ॥ ८३२ ॥ अम्यु मात्रा द्विगुञ्जा स्यात् पथ्यं दुग्धादनं हितम् । नागरातिविषामुस्तभूनिम्भामृत-वत्सकैः ॥ ८३३ ॥ सर्पज्वरातिसाररुनं फा-धमस्यानुपाययेत् । तरुणं वा ज्वरं जीर्णं तृप्णा दाहं च नाशयेत् ॥ ८३४ ॥

चाँदी, कासा और ताम्रभस्म प्रत्येक १ तोला, गन्धक ३ तोले। इन सबको चौराई के पाथ के साथ पीतकर ६ बार गन्धुड में पाक करे। ४ रत्ती इस रस को पाण के पत्ते में रखकर सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने में विषमज्वर नष्ट होता है। पथ्य दूध-भात।

सौंठ, अनीस, नागरमोथा, चिरायता, गुरुच और कुड़ा की छाल प्रत्येक चार-चार मासे। इनको आध सेर जल में पकावे। एक छटाँक जल शीप रहने पर छानकर इसी काथ के साथ मेघनाद-रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वरातिसार तरुणज्वर, जीर्णज्वर, तृप्णा और दाह निवृत्त होते हैं ॥ ८३१-८३४ ॥

श्रीतारिर रस ।

॥ तालकं दरदोद्भूतः पारदो गन्धकः

जिला । क्रमाञ्जागार्द्धरहितं कारवेल्लाम्बु-मर्दितम् ॥ ८३५ ॥ इदमस्य प्रमाणेन ताम्रपार्थी प्रलेपयेत् । अधोमुखीं दृष्टे भाण्डे तां निरुध्वाथ पूरयेत् ॥ ८३६ ॥ चुल्ल्यां बालुक्या घसमेकं प्रज्वलयेद् दृढम् । शीते संचूर्य गुञ्जास्य नागवल्लीदले स्थिता ॥ ८३७ ॥ भक्षिता मरिचैः सार्द्धं समस्तान् विषमज्वरान् । दाहशीतादिकं हन्यात् पथ्यं शाल्योदनं पयः ॥ ८३८ ॥

हरताल ४ तोले, द्विगुल से निकाला पारा २ तोले, गन्धर १ तोला, मैनशिल ६ मासे; इन सब द्रव्यों को करेला की पत्तियों के रस में घोट लेवे। परपाए ७। तोले शुद्ध ताँबे की बटोरी बनपाकर उस बटोरी के भीतरी भाग में पूर्वांश घोटें हुये श्रीपथ या लेप करके उस बटोरी को किसी हाँडी में अधोमुख रखकर, उस बटोरी को किसी अन्य पात्र से ढँककर हाँडी के शेष भाग को घालू से भर देवे। तदनन्तर उस हाँडी को चूल्हे पर चढ़ाकर एक दिन तीव्र आँच देवे। स्वादा शीतल होने पर ताम्रपार्थी को निकालकर उत्तम रीति से धुँग करके रस लेवे। १ रत्ती इस रस को ६ रत्ती मिर्चि के धुँग में भिजाकर पाण के पत्ता में रखकर खिला देवे। इस श्रीतारि या सेवन करने से दाहपूर्वक अथवा शीतपूर्वक सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं। पथ्य—शालीघान के चावलों का भात और दुग्ध ॥ ८३५-८३८ ॥

टिप्पणी—ताम्रभस्म निरस्य हो गई हो तो ही काम में ले अन्यथा और पुट देकर निरस्य कर ले।

स्वच्छन्दभैरव रस ।

समभागांश्च संगृह्य पारदामृतगन्धकान् । जातीफलस्य भागार्द्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ८३९ ॥ सर्वाद्धं पिप्पली-चूर्णं खल्लयित्वा निधापयेत् । गुञ्जाद्धं

प्रमितं चैव नागवल्लीदलैः सह ॥ ८४० ॥  
 आर्द्रकस्य रसेनापि द्रोणपुष्पीरसेन वा ।  
 शीतज्वरे सन्निपाते विमूच्यां विपमज्वरे ॥  
 ८४१ ॥ पीनसे च प्रतिर्याये ज्वरेऽजीर्णे  
 तथैव च । मन्देऽग्नौ वमने चैव शिरोरोगे  
 च दारुणे ॥ ८४२ ॥ प्रयोज्यो भिपजा  
 सम्यग् रसः स्वच्छन्दभैरवः । पथ्यं दद्ध्यो-  
 दनं दद्याद्वीच्य दोषवलावलम् ॥ ८४३ ॥

पारा ४ तोले, विप ४ तोले, गन्धक ४ तोले,  
 जायफल २ तोले ; इन सबको घोटकर कजली  
 के समान करके, पश्चात् उसमें ७ तोले छोटी  
 पीपरि का चूर्ण मिलाकर खरल करके रस लेवे ।  
 इसकी मात्रा आधी रत्ती । अनुपान पान  
 का रस, अदरक का रस अथवा गूमा का रस ।  
 इस 'स्वच्छन्दभैरव रस' का सेवन करने से  
 शीतज्वर, सन्निपातज्वर, विमूचिका, विपमज्वर,  
 पीनस, प्रतिर्याय, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, वमन  
 और दारुण शिरोरोग निवृत्त होते हैं । दोषों  
 का बलावल देखकर दही-भात आदि पथ्य देने  
 चाहिए ॥ ८३३-४३ ॥

ज्वरारिरस ।

दरदत्रलिरसानां शुक्लनागाभ्रकाणां  
 शुभगविटशिलानां सर्वमेकत्र योज्यम् ।  
 विपिनृपदलोत्थैर्भावितं शोपयेत्तं दिवसु-  
 शसमाप्तौ रक्तिकार्द्धाञ्च कुट्यात् ॥ ८४४ ॥  
 एकैकां भक्तयेदस्य चार्द्रकस्य रसैर्युताम् ।  
 दत्तमात्रं ज्वरं हन्ति ज्वरारिः स निगद्यते ।  
 सर्वशूलविनाशी च कफपित्तविना-  
 शनः ॥ ८४५ ॥

सर्वमारग्वधपत्रसेन दशदिनं भाव-  
 यित्वा गुञ्जार्धप्रमाणमार्द्रकरसेन देयम् ।

हिगुल, गन्धक, पारा, ताम्रभस्म, सीसक-  
 भस्म, अश्रकभस्म, मोहागा, विटनमक, जैनशिल

सममाग इन सब औषधों को अभिलतास की  
 पत्तियों के रस में १० दिन पर्यन्त घोटकर  
 आधी २ रत्ती की गोलीयाँ बनाये, अनुपान  
 अदरक का रस । इस ज्वरारि रस का सेवन  
 करने से सब प्रकार के ज्वर, शूल और कफ,  
 वातरोग नष्ट होते हैं ॥ ८४४-८४५ ॥

दूसरा ज्वरारि रस ।

रसगन्धककाशीशज्यपणातिविपा-  
 भयाः । चम्पकत्वक् च सर्वाणि यवतिक्ता  
 रसैर्दिनम् ॥ ८४६ ॥ मर्दयित्वा वटी  
 कार्या रक्तिकाद्वयसम्भिता । आर्द्रकस्वर-  
 सेनाथ दापयेज्ज्वरशान्तये ॥ ८४७ ॥  
 रसैर्वा बहुमञ्जर्याः केवलेन जलेन वा ।  
 नवज्वरं महाघोरं वातपित्तकफोद्भवम् ॥  
 ८४८ ॥ सोपद्रवं त्रिदोषोत्थं जीर्णञ्च  
 विपमज्वरम् । ज्वरारिरसनामासौ नाशये-  
 चात्र संशयः ॥ ८४९ ॥

पारद, गन्धक, कसीस, त्रिकटु, अतीस,  
 हरण, चम्पा की छाल, इनको बराबर-बराबर  
 लेकर और मिलाकर कालमेघ ( यवतिक्ता ) के  
 रस में अच्छी तरह घोटकर २ रत्ती प्रमाण  
 की गोली बना ले । अनुपान अदरक का रस ।  
 यह रस ज्वर को शीघ्र हरण करता है, इसलिए  
 इसका नाम ज्वरारि रस है । यह वर्द्ध ( शूल )  
 तथा बड़े हुए कफ व पित्त दोषों को शीघ्र शान्त  
 करता है ॥ ८४६-८४९ ॥

ज्वरांशनिरस ।

रसं गन्धं सैन्धवं च विपं ताम्रं समं  
 भवेत् । सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं चूर्ण-  
 मभ्रकम् ॥ ८५० ॥ लौहे च लौहदण्डे  
 च निर्गुड्याः स्वरसेन च । मर्दयेद्यत्रतः  
 पञ्चान्मरिचं सूततुल्यकम् ॥ ८५१ ॥ पण्येन सह  
 दातव्यो रसो रक्तिकसम्भितः । कासश्वास  
 महाघोरं विपमाख्यं ज्वरं वमिम् ॥ ८५२ ॥

धातुस्थं प्ररलं दाहं ज्वरदोषं चिरोद्भयम् ।  
यकृद्गुल्मोदरस्त्रीदृग्मयधुं च विनाश-  
येत् ॥ ८५३ ॥

पारा, गन्धक, सैधानोन, विष और तादन्नरस  
प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म २ तोले, अन्नरसभस्म  
२ तोले इन सब द्रव्यों को लोह के सरल में  
लोह के द्रव से सैभालू के स्वरस के साथ  
उत्तम रीति से सरल कर लेये । परचात् उसमें  
१ तोला कालीमिरिच मिलाकर भलीभाँति  
पसल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना  
लेये । पान के पत्ते में शय्यर टमबा सेवन  
करना चाहिये । इस रस का सेवन करने से  
काम, रवाम, घतिघोर धातुस्थ विषमज्वर,  
प्रथल दाह, यकृद् गुल्म, उन्म, प्रीहा और शोथ  
नष्ट होते हैं ॥ ८२०-८२३ ॥

ज्वरान्तक रस ।

भास्करो गन्धकः सर्षो देवीविहङ्गती-  
क्ष्णकम् । शोणितं गगनं चैत्र पुष्पकञ्च  
महेदरम् ॥ ८५४ ॥ भूनिम्बादिगणै-  
र्भाव्य मधुना गुडिका दृढा । चातुर्थकं  
तृतीयञ्च ज्वरं सन्ततकं तथा । ग्रामज्वरं  
भूतकृतं सर्षज्वरमपोहति ॥ ८५५ ॥

अत्र सर्षो रसः । देवी सौराष्ट्रमृत्तिका ।  
विहङ्गं स्वर्णमाक्षिकम् । शोणितं हिङ्गुलम् ।  
पुष्पकरसाञ्जनम् । महेद्वरं सुपर्णम् । अन्यत्  
सुगमम् । ताम्रादीनां समभागचूर्णं भूनि-  
म्बादिकाथेन भाजयेत् । भूनिम्बाद्यष्टादश  
द्रव्याणि सर्षद्रव्यतुल्यानि अष्टावशिष्टं  
कार्यं कृत्वा दिनत्रय त्रिभाव्य विशोष्य  
मधुना विमर्द्य अनुरूपं लिहेत् ।

ताम्रभस्म, गन्धक पारा, सौराष्ट्रमृत्तिका,  
स्वर्णमाक्षिक, लोहभस्म, हिङ्गुल, अन्नरसभस्म,  
रसैत और सोना, इन सब द्रव्यों को समभाग  
क्षेकर एकत्र कर सरल करे । परचात् भूनिम्बादि

द्रव्यों के साथ में तीन दिन पर्यन्त भावना देकर  
घाम में गुलाकर एक एक रत्ती की गोलियाँ  
पनावे । भूनिम्बादि १८ द्रव्यों को ताम्र चादि  
पूर्वांश ३० द्रव्यों के समुदाय के समान परि-  
माण में लेकर, अटगुने जल में पकावे, जब  
केवल आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तो  
उतारकर वस्त्र से छानकर इसी साथ में भावना  
देवे । अनुपान मधु । इसका सेवन करने से  
आतुषंज्वर, तृतीयज्वर, ग्रामज्वर, भूत-  
कृतज्वर तथा अन्यान्य विविध प्रकार के विषम-  
ज्वर निवृत्त होत हैं ॥ ८२४-८२६ ॥

श्रीजयमङ्गल रस ।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं टङ्गनं  
तथा । ताम्रं वङ्गं माक्षिकञ्च सैन्धवं मरिचं  
तथा ॥ ८५६ ॥ समं सर्षं समाहृत्य  
द्विगुणं सर्षभस्मकम् । तदूर्ध्वं कान्तलौहञ्च  
रूपभस्माजपि तत्समम् ॥ ८५७ ॥ एत-  
त्सर्षं त्रिचूर्णार्थं भावयेत् कनकद्रव्यैः ।  
शेफालीदलत्रैश्चापि दशमूलरसेन च ॥  
८५८ ॥ किराततिक्ककार्थैस्त्रिसारं भाजयेत्  
सुधीः । भावयित्वा ततः कार्श्या गुञ्जाद्वय-  
मिता वरी ॥ ८५९ ॥ अनुपानं मयोक्त्वयं  
जीरकं मधुमंयुतम् । जीर्णज्वरं महाघोरं  
चिरकालसमुद्भयम् ॥ ८६० ॥ ज्वरमष्ट-  
विधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा । पृथ-  
ग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्व-  
रान् ॥ ८६१ ॥ मेटोगतं मांसगतमस्थि-  
मज्जगतं तथा । अन्तर्गतं महाघोरं वहिः-  
स्थञ्च विशेषतः ॥ ८६२ ॥ नानादोषो-  
द्भवञ्चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा । निखिलं ज्वर-

१ चिरायता, दवदार, दशमूल, सोंठ,  
नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, घनिघा और  
गजपीपरि इन १८ द्रव्यों को 'भूनिम्बादि' गण्य  
कहते हैं ।

नामानं हन्ति श्रीशिवशासनात् ॥ ८६३ ॥  
जयमङ्गलनामायं रसः श्रीशिवनिर्मितः ।  
घलपुष्टिकरञ्चैव सर्वरोगनिवर्हणः ॥ ८६४ ॥

द्विगुल से निवाता पारा, गन्धक, सोहागा की लील, ताग्रभस्म, बंगभस्म, स्वर्णमाषिक, मेषानमक और मिरच प्रत्येक एक तोला, स्वर्णभस्म २ तोले, घान्तलोहभस्म १ तोला, चाँदी की भस्म १ तोला ; इनको एकत्र रखल करके, धतूरे की पत्तियों के रस में, सँभालू की पत्तियों के रस में, दशमूल के षाथ में और चिरायता के षाथ में क्रम से क्रम तीन-तीन बार भावना देकर दो रत्नी प्रमाण गोक्षिर्यो बनावे । अनुपान जीरा का चूर्ण और मधु । इस जयमंगल रस का सेवन करने से बहुत दिन से उत्पन्न अति कठिन जीर्ण-ज्वर, साध्य-असाध्य आठ प्रकार के ज्वर, पृथक्-पृथक् दोषों से उत्पन्न ज्वर, विषमज्वर, मेदोगत, मांसगत, अस्थिगत, मज्जागत ज्वर अन्तर्वेगज्वर, बहिर्वेगज्वर, अनेक प्रकार के दोषों से उत्पन्न ज्वर, शुक्रगत ज्वर सभी श्रीशिवजी के प्रताप से नष्ट होते हैं । श्रीशिवजी द्वारा बनाया हुआ यह जयमङ्गल नामक रस घल और पुष्टिकारक एवं सब रोगनाशक है ॥ ८६४-८६४ ॥

उपरकुञ्जरपारीन्द्ररस ।

मूर्च्छितं रसरूपैकं तदूर्द्धं जारिताभ्र-  
कम् । तारं ताप्यञ्च रसजं रसकं ताम्रकं  
तथा ॥ ८६५ ॥ भौतिकं त्रिद्रुमं लौहं  
गिरिजं गैरिकं शिला । गन्धकं हेमसारञ्च  
पलाद्धं च पृथक् पृथक् ॥ ८६६ ॥ क्षीरावी  
सुरबल्लीच शोधघ्नी गणिकारिका । भाया  
मला ज्योतिस्नका च सतिक्ता तु सुदर्शना  
॥ ८६७ ॥ अग्निजिह्वा पूतितैला शूर्प-  
पर्णी प्रसारिणी । भत्येकस्वरस द्रवा  
भर्दयेत् त्रिदिनायाधि ॥ ८६८ ॥ भक्षयेत्  
पर्यखण्डेन चतुर्गुञ्जाप्रमाणत । महाग्नि-  
कारको रोगसङ्करनः प्रयोगराट् ॥ ८६९ ॥

सन्ततं सततान्येशुमृत्तीयरुचतुर्थकान् ।  
उपरान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं  
यथा ॥ ८७० ॥ कासं श्वासं प्रमेहञ्च  
सशोथां पाण्डुकामलाम् । ग्रहर्गी क्षय-  
रोगञ्चसर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ उपरकुञ्जरपारीन्द्रः  
प्रथितः पृथिवीतले ॥ ८७१ ॥

मूर्च्छित पारा १ तोला, अभ्रकभस्म ६ भासे, स्वर्णमाषिक भस्म, रसात, उपरिधा, ताग्रभस्म, मुत्राभस्म, प्रवातभस्म, कोहभस्म, शिलाजीत, मोनागेरू, मैनशिल, गन्धक और स्वर्णभस्म इनमें से प्रत्येक २ तोले ; इनको एकत्र रखल करे । पश्चात् दुर्दी, तुनबी, गदहपुरैना, शरबी, भुईयामला, बहुरै तरौई, चिरायता, मुद्रशाना, फलिहारी, मालकाँगनी, चनमूँग और गन्ध प्रसारणी ; इनमें से प्रत्येक के रारभ में तीन-तीन दिन घोटकर चार बार रत्नी की गोखियों बनावे । अनुपान पान का अर्ध ।

यह उपरकुञ्जरपारीन्द्ररस अत्यन्त अग्नि-  
वर्द्धक, उपरसङ्करनाशक और हर प्रकार के विषम-  
ज्वर की महौषध है । इससे कास, श्वास, प्रमेह,  
शोधयुक्त पाण्डुरोग, कामला, प्रह्वणी और उप-  
द्रवयुक्त क्षयरोग भी नष्ट होता है ॥ ८६९-८७१ ॥

विद्यावल्लभ रस ।

रसम्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रद्वयग्न्यर्क-  
भागिकाः । पिष्ट्वा तान् सुपनीतोयैस्ताम्रपा-  
त्रोदरे क्षिपेत् ॥ ८७२ ॥ न्यस्तं शरावे  
संरुध्य बालुकायन्त्रगं पचेत् । स्फुटन्ति  
व्रीहयो यावत्क्षिन्नस्था शनैः शनैः ८७३  
संचूर्ण्य शर्करायुक्तं गुञ्जार्द्धं भक्षयेत्ततः ।  
विषमाख्यान् ज्वरान् हन्ति तैलाम्लादि  
विवर्जयेत् ॥ ८७४ ॥

पारा १ भाग, ताग्रभस्म २ भाग, मैनशिल  
३ भाग, हरताल १२ भाग ; इनको छोटी  
करेली की पत्तियों के अर्क में पीसकर ताग्रपत्र  
के मध्य भाग में लेप करके बालुकायन्त्र में

पाक करे । जय बालुकायन्य के ऊपर रखने हुये घान्य घूटने लगे तब औषध को सिद्ध हुआ जानकर उतार लेने । स्वादा शीतल होने पर औषध निकालकर रग लेवे । इसकी मात्रा आधी रसी । अनुपान मिथी । इसका सेवन करने से तब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं । औषध का सेवन करनेवाले रोगी को तेल और पटाई आदि का खाना मन्त्रित है ॥ ८१०-८१४ ॥

ज्वरशूलहर रस ।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं भाण्ड-  
मध्यगाम् । तत्राधोऽदनां ताम्रपात्रीं सरुध्य  
शोषयेत् ॥ ८१५ ॥ पाटाङ्गुष्ठप्रमाणेन  
चुल्यां ज्वालेन तां दहेत् । यामद्वयं तत-  
स्तत्स्थं रसपात्रं समाहरेत् ॥ ८१६ ॥  
चूर्णयेद्गुञ्जपादं वा गुञ्जाद् वा विचक्षणः ।  
ताम्युलीद्वलयोगेन दद्यात् सर्वज्वरेऽप्यमुम्  
॥ ८१७ ॥ जीरसैन्ध्रसंलिप्तवक्त्राय ज्व-  
रिणे हितम् । स्फोटोद्गमो भवत्येन देवि  
सर्पेषु पाप्मसु ॥ ८१८ ॥ चातुर्थकादीन्  
विपमान् नममागामिनं ज्वरम् । साधारणं  
सन्निपातं जयत्येव न संशयः ॥ ८१९ ॥

समान भाग पारा और गन्धक लेकर कज्जली बनावे । उस कज्जली को एक पात्र में रखकर, उसके ऊपर एक तंबी की कटोरी औंधी रखकर ढँक देवे । सन्धिस्थान में मिट्टी का लेप करके चूहा पर चढाकर दो पहर पाक करे । स्वादाशीतल होने पर खरल करके शीशी में रख लेवे । इसकी मात्रा चौथाई रसी से आधी रसी तक है । पहिले संधानोन मिलाकर जीरे का-चूर्ण खाकर पश्चात् पान के रस में इसका सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से पसीना-ध्रा जाता है, और चतुर्थक आदि सब प्रकार के विषमज्वर, नवज्वर, आगन्तुकज्वर और साधारण सन्निपातज्वर नि सदेह निवृत्त होते हैं ॥ ८१५-८१९ ॥

पडानन रस ।

आरंकांस्यं मृतं ताम्रं दरदं पिप्पली-  
विपम् । तुल्यांशं मर्दयेत् गल्ले यामञ्च गुडु-  
चीरसैः ॥ ८२० ॥ गुञ्जामात्रं रसं देयं  
गुञ्जामात्रं लिहेत् सदा । ज्वरे मन्दानले  
चैव वातपित्तज्वरेषु च ॥ ८२१ ॥ ज्वरे  
वैषम्यतरुणे ज्वरे जीर्णे विशेषतः । मुद्गान्नं  
मुद्गयूपं वा तक्रभक्रञ्च केवलम् ॥ ८२२ ॥  
नारिकेलोदकं देयं मुद्गपथ्यं विशेषतः ।  
पडाननो रसो नाम सर्वज्वरकुलान्त-  
कृत् ॥ ८२३ ॥

पीतलभस्म, कौसाभस्म, ताम्रभस्म, द्विगुल, पीपरि और विप, समान भाग इन सब द्रव्यों को लेकर गिलोय के रस में एक पहर पर्यन्त घोटकर एक-एक रसी की मोलियाँ बना लेवे । अनुपान मधु । इस पडाननरस का सेवन करने से वातपित्तज्वर विषमज्वर, तरणज्वर, जीर्ण-ज्वर और अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते हैं । पथ्य मूँग का जूस, तक्र, भात, नारियल का पानी ॥ ८२०-८२३ ॥

कल्पतरु रस

रसं गन्धं विपं ताम्रं समभागं प्रचूर्ण-  
येत् । भावयेत् पञ्चभिः पित्तैः क्रमशः पञ्च-  
वासरान् ॥ ८२४ ॥ निर्गुण्डीस्वरसेनैः  
मर्दयेत् सप्तयामरान् । आर्द्रकस्थ रसेनैः  
भावयेच्च त्रिधा पुनः ॥ ८२५ ॥ सर्पपाभा  
वटी कार्या ह्यायया परिशोपिता । ततः  
सप्तद्वीयोज्यायावन्नत्रिगुणाभवेत् ॥ ८२६ ॥  
त्रयोऽग्निदोषकं बुद्ध्या प्रयोज्या भिपजां  
वरैः । अनुपानं चोष्णजलं कज्जली पिप्प-  
लीयुतम् ॥ ८२७ ॥ पानानशेषे मस्त्राप्य  
वस्त्रैराच्छादयेन्नरम् । धर्माभ्यागमनं याव-  
त्ततो रोगात् प्रमुच्यते ॥ ८२८ ॥ रोगिण्यं

स्नापयित्वा तु भोजयेत् ससितं दधि ॥ पप  
कल्पतरुर्नाम रसः परमदुर्लभः ॥ ८८ ॥  
असाध्यं चिरकालोत्थं जीर्णञ्च विषमं  
ज्वरम् । हन्ति ज्वरातिसारं च ग्रहणीं  
पाण्डुकामलाम् ॥ ८९ ॥ न देयः श्वास-  
कासे च शूलयुक्ते नरे तथा । गोपनीयः  
प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्यचित् ॥ ९० ॥

पारा, गन्धक, विष और ताम्रभस्म; इन  
चार द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर खरल  
करे । परचान् क्रमशः पत्र पित्त में ५ पांच दिन,  
सैभालू की पत्तियों के रस में ७ सात दिन और  
अदरक के रस में ३ तीन दिन पर्यन्त भायना  
देकर तथा मर्दन करके सरसों के समान छोटी-  
छोटी गोलियाँ बनाकर छाया में सुख कर लेवे ।  
प्रतिदिन एक एक गोली सेवन धरे । इस प्रकार  
२१ दिन पर्यन्त इस औषध का सेवन करना-  
चाहिये । अनुपान पीपल का चूर्ण तथा कज्जली  
दोनों मिलाकर २ रत्नी और उष्ण जल । औषध  
सेवन कराने के अनन्तर रोगी को शयन कराकर  
बल छोड़ा देवे । पसीना आ जाने पर रोगी  
स्वस्थ हो जाता है । रोगी को स्नान कराकर  
मिश्रीयुक्त दही और भात भोजन करने के लिये  
देवे । इसका सेवन करने से असाध्य और पुराना  
जीर्णज्वर, विषमज्वर, ज्वरातिसार, ग्रहणी,  
पाण्डुरोग और कामलारोग नष्ट होते हैं । यदि  
रोगी को श्वास, कास और शूल हो तो इस  
औषध का प्रयोग न करना चाहिये । यह 'कल्प-  
तरुस' अत्यन्त गोपनीय है ॥ ८८-९० ॥

तालाङ्क रस ।

तालकस्य च भागौ द्वौ भागं तुत्थस्य  
शुक्रिका । चूर्णकानां चतुर्भागं मर्दयेत्  
कन्यकाद्रवैः ॥ ८९ ॥ यामैकेन ततः  
पश्चात् रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् । अस्य गुञ्जा-  
द्धकं हन्ति वातिकं पैत्तिकं तथा । शीतज्वरं  
विशेषेण तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ९० ॥

हरिताल २ तोले, नूतिया १ तोला और  
मीप का चूर्ण ४ तोले; इन सबको एकत्र कर  
धीकुभार के रस में एक प्रहर पर्यन्त खरल  
करके, शरावसंयुक्त में रखकर गजपुट में पाक  
करे । इसकी मात्रा १॥ रत्नी की है । इस तालाङ्क  
रस का सेवन करने से वातिकज्वर, पैत्तिकज्वर,  
शीतज्वर, विशेष करके तृतीयक और चतुर्थक  
ज्वर शीघ्र निवृत्त होते हैं ॥ ८९-९० ॥

ज्वराध्यञ्ज्र ।

अभ्रं ताम्रं रसं गन्धं विषञ्चेति समं  
समम् । द्विगुणं धूर्त्तशीजञ्च व्योपं पञ्चगुणं  
मतम् आर्द्रकस्य रसेनैव वटी कार्याद्वि-  
गुंजिका ॥ ९१ ॥ जलेन वटिकां कुर्याद्  
यथा टोपानुपानतः । अभ्रं ज्वरारिनामेदं  
सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ९२ ॥ वातिकान्  
पैत्तिकान्श्चैव श्लैष्मिकान् सान्निपातिकान् ।  
विषमारुयान् द्वन्द्वजांश्च धातुस्थान् विष-  
मज्वरान् ॥ ९३ ॥ नाशयेन्नात्र सन्देहो  
वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा । स्नीहानञ्च यकृत्  
गुल्ममग्निमाद्यं सशोधकम् ॥ कासंरवासं  
टृपां कम्पं दाहं शीतं वमि भ्रमिम् ॥ ९४ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, पारा, गन्धक और  
विष प्रत्येक १ एक तोला, धतूरे के बीज २  
तोले, सोंठ, मिरिच और पीपरी यह तीनों  
मिलकर ५ तोले; इन सबको अदरक के जल में  
पीसकर दो-दो रत्नी की गोलियाँ बना लेवे । टोपा-  
नुसार अनुपान के साथ इस ज्वराध्यञ्ज्र औषध  
का सेवन करने से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक,  
द्वन्द्वज और सान्निपातिकज्वर, विषमज्वर, धातु  
गत विषमज्वर, स्नीहा, यकृत्, गुल्म, अभि-  
मान्ध, शोथ, कास, श्वास, टृपा, कम्प, दाह,  
शीत, वमन और भ्रम, यह सब रोग इस प्रकार  
नष्ट होते हैं जैसे विद्युत्पात से वृक्ष नष्ट  
होवे ॥ ९१-९४ ॥

ज्वरविद्राघण रस ।

कणा अतिविषा तित्कारिष्टपत्रैः सुच-



णितैः । सिन्दूररससंपुङ्क्तं रसः सर्वज्वरान्त-  
कृत ॥ ८६ ॥

पीपल, धतौर, कटुबी, नीम के पत्ते, रम-  
सिन्दूर सयका चूर्ण अलग-अलग लेकर मिला  
ले । मात्रा २ रत्नी यह रस सय ज्वरों को शीघ्र  
हरण करता है ॥ ८६ ६-८६ ॥

विपमज्वरान्तक लौह ।

पारदं गन्धकं तुल्यं सूताद्धं जीर्णताम्र-  
कम् । ताम्रतुल्यं मात्तिकञ्च लौहं सर्वसमं  
नयेत् ॥ ८६ ॥ जयन्त्याः स्वरसेनैव  
कोकिलाक्षरसेन च । वासकार्द्रपर्णरसैः  
पञ्चधा च विमर्दयेत् ॥ ६०० ॥ पृथक्  
कलायमानान्तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।  
विपमज्वरान्तनामायं विपमज्वरनाशनः ॥  
६०१ ॥ वह्निदीप्तकरो हृद्यः स्निह-  
गुल्मविनाशनः । चक्षुष्यो वृंहणो वृष्यः  
श्रेष्ठः सर्वरुजापहः ॥ ६०२ ॥

पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, ताँबा की  
भस्म १ तोला, स्वर्णमात्तिक भस्म १ तोला,  
लोहभस्म ६ तोले, इनको अद्भुते के पत्ते के  
रस ( वासकपत्रस्वरस ), जयन्तीपत्र रस,  
कोकिलाक्षर रस से पाँच बार मर्दग करके  
अथवा इन रसों में घोटकर मटर के समान २  
रत्नी की गोली बनाकर प्रयोग में लाना  
चाहिये । यह गोलीयों विपमज्वर को शीघ्र  
नष्ट करती है । अग्निवर्धक, वृंहण, ( रम-  
रत्रादि धातुवर्द्धक ) नेत्रों को हितकारी, वृष्य  
( बीर्यवर्द्धक ) तथा तिल्ली, गुल्म आदि रोगों  
को दूर करती है ॥ ८६ ६-६०२ ॥

पुटपाक विपमज्वरान्तक लौह ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलीम्  
पर्पटीरसवत्पाच्यं सूताद्धिहेमभस्म-  
कम् ॥ ६०३ ॥ लौहं ताम्रमभ्रकञ्च रसस्य  
द्विगुणं तथा । वङ्गकं गैरिकञ्चैव

प्रवालञ्च रसाद्धकम् ॥ ६०४ ॥ मुक्ताशङ्कं  
शुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम् । मुक्ता  
गृहेच संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ६०५ ॥  
भक्तयेत्प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः ।  
अनुपानं प्रयोक्त्वञ्च कणा हिङ्गुससैन्धवम्  
॥ ६०६ ॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफो-  
द्भवम् । स्नीदानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्य-  
मथापिवा ॥ ६०७ ॥ सन्ततं सतताख्यञ्च  
विपमज्वरनाशनम् । कामलां पाण्डुरोगञ्च  
शोथं मेहमरोचकम् ॥ ६०८ ॥ ग्रहणी-  
मामदोषञ्च कासं श्वासं च तत्र तत् ।  
मूत्रकृच्छ्रातिसारञ्च नाशयेदविकल्पतः  
॥ ६०९ ॥ अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्ण-  
प्रसादनम् । विपमज्वरान्तकं नाम्ना धन्व-  
न्तरिमकाशितम् ॥ ६१० ॥

हिंगुलोथ ( हिंगुल से निकाला ) पारद १

तोला, गन्धक १ तोला इन दोनों को काजल  
के समान करके पर्पटी के समान पाक कर ले ।  
इसके परचात् सोने की भस्म ३ भासे, लोह-  
भस्म २ तोला, ताम्रभस्म २ तोला, अम्रक-  
भस्म २ तोला, वज्रभस्म ६ भासे, स्वर्णगैरिक ६  
भासे, मूंगाभस्म ( प्रवालभस्म ) ६ भासे,  
मोतीभस्म ३ भासे, शङ्खभस्म ३ भासे, शुक्तिभस्म  
३ भासे, इन सब द्रव्यों को मिश्रित कर एक  
साथ पीसकर उपयुक्त कज्जली पाक के साथ  
जल के सहारे एक गोल पिण्डाकार बना ले,  
फिर इसे सीप में रखकर दूसरी सीप से ढँक दे  
और लेपन द्वारा सन्धि को भी बन्द कर दे ।  
इसके बाद कपोत पुट दे जब गन्धक की गन्ध  
आने लगे तो निकाल ले । मात्रा  
१ रत्नी से दो रत्नी तक ।  
अनुपान-पीपल का चूर्ण, हींग तथा सेंधा नमक ।  
यह रस आठ प्रकार के ज्वरों को, ग्रीहा ( तिल्ली )  
यकृत ( जिगर ), गुल्म सन्तत व सततज्वर,  
विपमज्वर, कामला, पाण्डु ( पीरिया ), शोथ  
( सूजन ) मेह, अरुचि, ग्रहणी, आमदोष, कास

( खांसी ) श्वास, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार ( दस्त )  
आदि रोगों को शीघ्र हरण करता है । यह  
अग्निदीपन रस है तथा शारीरिक शक्ति और  
धर्म ( रंग ) को बढ़ाता है । विपमज्वर के लिये  
तो यह रस अनुभूत प्रयोग है ॥ ६०३-६१० ॥

जीवनानन्दाभ्र ।

‘यज्जाभ्रं मारितं कृत्वा कर्पयुग्मं विचू-  
रिणितम् । जीरं कनकधीजश्च कर्प वासार-  
सेन च ॥ ६११ ॥ कण्टकारीरसेनैव  
ध्रात्रीमुस्तरसेन च । गुडूच्याः स्वरसेनैव  
पलांशेन पृथक् पृथक् ॥ ६१२ ॥ मर्द-  
यित्वा वटी कार्थ्या गुञ्जामात्रा प्रयोजिता ।  
विपमाख्यान् ज्वरान् सर्वान् स्त्रीहानश्च  
यकृद् वमिम् ॥ ६१३ ॥ रक्तपित्तं वात-  
रक्तं, ग्रहणी श्वासकासकौ । अरुचि शूल-  
हृत्वासावर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ६१४ ॥  
जीवनानन्दनामदमभ्रं वृष्यं बलप्रदम् ।  
रसायनमिदं श्रेष्ठ मग्निसन्दीपनं  
परम् ॥ ६१५ ॥

अभ्रकभस्म २ तोले, जीरा १ तोला, धतूरे  
के बीज १ तोला; इनको एकत्र खरल करके  
रूसा, कटेरी, आंवला, नागरमोथा और गिलोय  
इनमें से प्रत्येक के एक-एक पल रस में अलग-  
अलग खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियां  
बना लेवे । इस औषध का सेवन करने से सब  
प्रकार के विपमज्वर, प्लीहा, बहूत, वमन, रक्तपित्त,  
वातरक्त, ग्रहणी, श्वास, पास, अरुचि, शूल,  
उबकाई और दवासीर; यह सब रोग नष्ट  
होते हैं । यह ‘जीवनानन्द’ नामक अभ्रक वाजीकर,  
बलवर्धक, अग्निसदीपन और श्रेष्ठ  
रसायन है ॥ ६११-६१५ ॥

रत्नप्रभावटी ।

( हेमायस्कान्तवैक्रान्तखर्परयांसि विद्व-  
मम् । मुक्ताश्च कत्रसम्भर्ष्य दार्वाकाथेन  
सप्तधा ॥ ६१६ ॥ भावयित्वा वटी कुर्या-

द्रक्त्रिकाप्रमितां भिषक्तु । एषा रत्नप्रभानाम  
वटी सततकं हरेत् ॥ ६१७ ॥ प्लीहानं  
वद्विमान्द्यश्च कामलां यकृदामयम् । स्नायु-  
शूलं महाघोरं केसरी करिण्यथा ॥ ६१८ ॥

सोने की भस्म, अयस्कान्त ( चुम्बक लोह-  
भस्म ), वैक्रान्तभस्म, खर्परभस्म, लोहभस्म,  
प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, इन सब द्रव्यों को  
घरायर घरायर इकट्ठा करके दानहृत्दी के कादे  
से सात बार घोट घोटकर गोली बना ले । मात्रा  
१॥ रत्ती में १ रत्ती तक । यह गोलियां सतत-  
ज्वर, प्लीहा ( तिल्ली ), मन्दाग्नि, कामला,  
जिगर तथा भयंकर स्नायुशूल को हरण करती  
हैं ॥ ६१६-६१८ ॥

चन्दनादिलौह ।

रक्तचन्दनश्रीवेरपाठोशीरकणाशिवा ।  
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितः ।  
लौहो निहन्ति विविधान् समस्तान्  
विपमज्वरान् ॥ ६१९ ॥

त्रिमदं मुस्तकचित्रकविडङ्गम् । सर्व-  
समं लौहम् । औं अमृतोद्भवाय स्वाहा  
इति मन्त्रेण मर्दनम् । औं अमृते हुम् इति  
मन्त्रेण भक्षणम् ॥ द्वादशद्रव्यसमं लौहम् ।  
रक्त्रिद्वयं मधुना लिहेत् । परचात् मुस्तका-  
नुचर्वणं कर्त्तव्यं वृद्धोपदेशात् ।

लालचन्दन, सुगन्धवाला, पाड़, लस, पीपरि,  
हरं, सोंठ, नीलकमल, आंवला, बायविडङ्ग,  
नागरमोथा और चीता ; इनमें से प्रत्येक १  
तोला, लोहभस्म १२ तोले ; इनको एकत्र जल  
में खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावे ।  
अनुपान मधु । इस चन्दनादि लौह का सेवन  
करने से सब प्रकार के विपमज्वर नष्ट होते हैं ।  
इस औषध का सेवन करने के पश्चात् घोड़ा-  
सा नागरमोथा चया लेवे, ऐसा वृद्ध वृद्धों का  
उपदेश है ॥ “ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा” इस  
मन्त्र से इस औषध को खरल करे । “ॐ अमृते

हुम्" इम मन्त्र को पढ़कर इस औषध का सेवन करगा चाहिये ॥ ६१३ ॥

धनन्तमालती रस ।

स्वर्गं मुक्तादरदमरिचं भागवृद्ध्वा प्र-  
दिष्टं स्वर्पराष्टौ प्रथममग्विलं मर्दयेत् मृद्भृत्त-  
णेन । यावत् स्नेहो व्रजति विलयं निम्बु-  
नीरेण तावद् गुञ्जाद्वन्द्वं मधुचपलया  
मालतीभाग्यसन्तः ॥ ६२० ॥ सेवितोऽयं  
हरेत्पूर्णे जीर्णश्च विषमज्वरम् । व्याधीन-  
न्यांश्च कामादीन् मदीप्तं कुरुतेऽन-  
लम् ॥ ६२१ ॥

गोला १ भाग, मोती २ भाग, हिंगुल ३  
भाग, मरिच ४ भाग, खपरिया ८ भाग ; इन  
सब द्रव्यों को एकत्र कर पहिले थोड़े से मक्खन के  
साथ सरल कर परचात् भीष् के रस के साथ  
तक घोटता रहे, जब तक मक्खन का  
स्नेहंश ( चिहनाइट ) निवृत्त न हो जाय । इसकी  
मात्रा १२ रत्ती की है । अनुपान-मधु और  
पीपरि का चूर्ण । इसका सेवन करने से जीर्ण-  
ज्वर, विषमज्वर, अग्निमान्द्य और कास आदि  
अनेक रोग शीघ्र निवृत्त होते हैं ॥ ६२०-६२१ ॥

मधु मालिनी वसन्त

दरदखावं भावयेत्सप्तवारं । लकुचफल  
भवाद्भिश्छायया शोपयेद्द्वै ॥ तदनु  
मृदुकृतानां धारयेत्लोह पात्रे । दरदपिचुक  
तुल्येस्ताम्र चूडोत्थगोलैः ॥ ६२२ ॥  
जनित सकल तीयं ढालयेत्तस्य चोर्ध्वं ॥  
असकृदयेद्व्यां घर्षयेत्सावकाशम् ॥  
गुलिकगमनमात्रं शुष्कताश्च प्रयातम् ।  
भवति तु यत्प्रमाणं कर्चुरं स्यात्तदर्धम्-  
॥ ६२३ ॥ मरिचनिभमथैव गौरवल्लीज  
चूर्ण । लकुचजनिततीयैर्भावयेत्सप्त वारम् ॥  
कृतमरिच समानं दापयेदाज्यखण्डै

हंरति शिशिरतापं जीर्णजूति समीरम्  
॥ ६२४ ॥ मधुमालिनिनामाऽयं वसन्तो  
वैद्यपुजितः । अनुपान विशेषेण बलं पुष्टि  
प्रदायकः ॥ गर्भं वृद्धि करश्चाऽसौ गर्भिणीनां  
सुखावहः ॥ रोग नाशात्परं दद्याद्बलं  
कृद्ब्रह्मवर्धनम् ॥ ६२५ ॥

शिंगरफ और खपरिया को बड़हर के रस की ७-७  
भावना देकर छाया में सुखा लेवे, घेर की लकड़ी के  
कोयलों पर लोहे की कड़ाही में रख जितने तोले  
शिंगरफ उतने ही मुर्गी के थगड़े लेकर उनकी  
सफेदी और जर्दी घीरे-घीरे ढाल कर सुरावे  
और लोहे की कलड़ी से बार-बार चलाता जाय  
जय गोलियाँ फूट जायें और सूख जायें तब सब  
से साथे कपूर के मिर्च बराबर टुकड़े करके ढाले  
और उतना ही सफेद मिर्च का चूर्ण ढाल कर  
सबको बड़हर के रस में ७ बार घोट कर १-१  
रत्ती की गोलियाँ बना कर रख देवे । इनमें से  
१-१ गोली घी और शकर के साथ देने से शीत  
तथा जीर्ण ज्वर और वायु की मष्ट करता है ।  
रोगानुसार अनुपान के साथ बलपुष्टि गर्भवृद्धि  
अग्नि इन सबको बढ़ाता है ॥ ६२२-६२५ ॥

श्लेष्मशैलेन्द्र रस ।

गन्धकं पारदं चाभ्रं त्र्यूपणं जीरकद्व-  
यम् । शटी मृद्धी यमानी च पुष्करं रामदं  
तथा ॥ ६२६ ॥ मैन्धवं यावशूकश्च दहनं  
गजपिप्पली । जातीकोपाजमोदा च लौहं  
यासलवङ्गकम् ॥ ६२७ ॥ धुस्तूरवीजं  
जैपालं कट्फलंचित्रकं तथा । मत्स्येकं का-  
पिकं चैषां श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ६२८ ॥  
पापाणे विमले पात्रे घृष्टं पापाणमुग्रदरैः ।  
बिल्वमूलरसं दत्त्वा चार्कचित्रकदन्तिकाः  
॥ ६२९ ॥ शिखरी काञ्जिका वासा  
निर्गुण्डीगणिकारिका । धुस्तूरं कृष्णजी-  
रश्च पारिमद्रकपिप्पली ॥ ६३० ॥ कण्ट-

कार्यार्द्रशोश्चैव मूलान्येतानि दापयेत् ।  
 एषां मूलरसं दत्त्वा घृष्टमातपशोपितम् ॥  
 ॥ ६३१ ॥ गुञ्जाममाणा वटिकां कारयेत्  
 कुशलो भिषक् । चतुर्विधवटीं खादेन्नित्य-  
 मार्द्रकवारिणा ॥ ६३२ ॥ उष्णतोयानु-  
 पानेन श्लेष्मव्याधिं व्यपोहति । विंशति  
 श्लैष्मिकारश्चैव शिरोरोगांश्च दारुणान् ॥  
 ६३३ ॥ प्रमेहान् विंशतिञ्चैव पञ्चगुल्म-  
 निमूदनम् । उदराण्यन्वृद्धिं चाप्याम-  
 वातविनाशनम् ॥ ६३४ ॥ पञ्चपाण्ड्वा-  
 मयान् हन्ति कृमिस्थौल्यामयापहम् । सो-  
 दावर्त्तज्वरं कुष्ठगात्रकण्ड्वामयापहम् ६३५  
 यथा शुष्केन्धने वह्निस्तथा वह्निविवर्द्धनः ।  
 श्लेष्मामयि कृपाहेतोरसेन्द्रो मुनिभाषितः ॥  
 श्लेष्मशैलेन्द्रको नाम रसेन्द्रगुडिका  
 स्मृता ॥ ६३६ ॥

गन्धक, पारा, अन्नकभस्म, त्रिकटु, जीरा, कालाजीरा, कचूर, काकडाश्टही, अजवाइन, कूट, भूनी हींग, सेंधानमक, यवघार, सोहागा सुता हुआ, गजपीपरि, जाधिरी, अजमोद, लोह-भस्म, जवासा, लवङ्ग, धतूरे के बीज, जमाल-गोटा के बीज, कायफल और चीता इनमें से प्रत्येक औषध को एक-एक तोला लेकर अति-सूक्ष्म (महीन) चूर्ण बनावे । पश्चात् पत्थर के खरल में पत्थर की लोड़ी से बेल के मूल के काथ में, मँदार के मूल के काथ में, चीता के काथ में, दन्ती के काथ में, लटजीरा के काथ में, जीवन्ती के रस में, सँवालू, रुसा के मूल के रस या काथ में, निर्गुण्डी के मूल के रस में, अरनी की छाल के काथ में, धतूरे के मूल के रस में, काला जीरा के काथ में, नीम के मूल के काथ में, पीपरि के काथ में, कटेरी के मूल के काथ में और अद्ररस के रस में भाषना देकर धीरे धीरे कर, धूप में सुखाकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । अनुपान—अद्ररस का रस अथवा उष्ण

जल । इस श्लेष्मशैलेन्द्र रस का सेवन करने से २० प्रकार के कफरोग, दाग्ण शिरोरोग, २० प्रकार के प्रमेह, ५ प्रकार के गुल्मरोग, उदर-रोग, अन्वृद्धि, शामवात, ५ प्रकार के पाण्डु-रोग, कृमिरोग, स्थौल्यरोग, उदावर्तरोग, सब प्रकार के ज्वर, कुष्ठरोग और कण्डु (खुजली) यह सब रोग निःसंदेह निवृत्त होते हैं ॥ ६२६-६३६ ॥

महाराज वटी ।

रसगन्धकमध्रश्च प्रत्येकं कर्पसम्भि-  
 तम् । वृद्धदारकवङ्गश्च लौहं कर्पाद्रकं  
 क्षिपेत् ॥ ६३७ ॥ स्वर्णकपूर्ताम्रश्च  
 प्रत्येकं कर्पपादिकम् ॥ शक्राशनं वरी चैव  
 श्वेतसर्जलवङ्गकम् ॥ ६३८ ॥ कोकि-  
 लाक्षं विदारी च मूपली शूकशिम्बिकम् ।  
 जातीफलं तथा कोषं बला नागबला तथा  
 ॥ ६३९ ॥ मापद्वयं मितं भागं तालमूल्या  
 रसेन च । पिष्ट्वाचवटिका कार्या चतुर्गुञ्जा-  
 प्रमाणतः ॥ ६४० ॥ मधुना भक्षयेत्प्रात-  
 र्विषमज्वरशान्तये । धातुस्थारच ज्वरान्  
 सर्वान् हन्यादेव न संशयः ॥ ६४१ ॥  
 वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपाति-  
 कम् । ज्वरं नानाविधं हन्ति कासं श्वासं  
 क्षयन्तथा ॥ ६४२ ॥ बलपुष्टिकरं नित्यं  
 कामिनीरमयेत्सदा । न च शुक्रं क्षयं याति  
 न बलं हासतां व्रजेत् ॥ ६४३ ॥ ऊर्ध्वगं  
 श्लेष्मजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । का-  
 मलां पाण्डुरोगश्च प्रमेहं रक्तपित्तकम् ॥  
 महाराजवटी ख्याता राजयोग्या च  
 सर्वदा ॥ ६४४ ॥

पारद २ तोले, गन्धक २ तोले, अन्नक-भस्म २ तोले, विधारा के बीज १ तोला, यद्रभस्म १ तोला, लोहभस्म १ तोला स्वर्ण-भस्म, छाद्रभस्म, कूर्पूर, हरपक भाषा-भाषा

तोला—भाँग के बीज, शताधरी, सफेद राल (श्वेतमर्ज), लींग, तालमगाना, (फोडिलाप बीज), विदारीकन्द, मुसली, कोंछ के बीज, जायफल, जावित्री, यला, नागयला, हरएक द्रव्य २ मासे (  $\frac{1}{2}$  तोला ) इनको मूसली के रस से घोटकर चार-चार रत्ती प्रमाण की गोली बना ले । अनुपान-शहद । इन गोलीयों के सेवन से अनेक प्रकार का ज्वर, खाँसी, श्वास, राज-यक्ष्मा, कामला, पायडुरोग ( पीरिया ), प्रमेह, रक्तपित्त आदि रोग नाश होते हैं । यह बल को बढ़ानेवाला, पौष्टिक तथा धीर्यधर्क रस है ॥ ६३७-६४४ ॥

लक्ष्मीविलास रस ।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदद्दौ रसगन्धकौ । तदद्दं चन्द्रसंज्ञस्य जातीकोपफले तथा ॥ ६४५ ॥ वृद्धदारकबीजश्च बीजं धुस्तरकस्य च । त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीमूलमेव च ॥ ६४६ ॥ नारायणी तथा नागयला चातिवला तथा । बीजं गोक्षुरकस्यापि नैजुलं बीजमेव च ॥ ६४७ ॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं पर्णपत्ररसैः पुनः । निष्पिप्य वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमो- नतः ॥ ६४८ ॥ निहन्ति सन्निपातोत्थान- गदान् घोरंश्चतुर्विधान् । वातोत्थान- पैत्तिकंश्चैव नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ ६४९ ॥ कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा । नाडीत्रयं त्रयं घोरं गुदामयभग- न्दरम् ॥ ६५० ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितश्च यत् । मेदोगतं धातुगतं चिरजं कुलसम्भवम् ॥ ६५१ ॥ गलशो- थमन्वृद्धिमतीसारं सुदारुणम् । आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥ ६५२ ॥ उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैकृतमेव च । कास- पीनसयक्ष्माशः स्थौल्यदौर्गन्ध्यनाशनः ॥

६५३ ॥ सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीणां गद- निपूटनम् । वटिकां प्रातरंकेकां खादेन्नित्यं यथावलम् ॥ ६५४ ॥ अनुपानमिह प्रोक्तं मांसपिष्टं पयो दधि । वारिमङ्गसुरासीधुसे- वनात् कामरूपधृक् ॥ ६५५ ॥ वृद्धोऽपि तरुणस्पृष्टौ न च शुक्रस्य संचयः । न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पकताम् ६५६ ॥ नित्यं स्त्रीणां शतं गच्छन्मत्तवा- रणधिक्रमः । द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः ॥ ६५७ ॥ प्रोक्तः प्रयोग- राजोऽयं नारदेन महात्मना । रसो लक्ष्मी- विलासस्तु वासुदेवे जगत्पतौ । अभ्यासाद् यस्य भगवान् लक्ष्मनारीषु वल्लभः ॥ ६५८ ॥

रसगन्धककर्पूरजातीकोपजातीफलानां पञ्चानाम्प्रत्येकं पलाद्धं वृद्धदारकबीजादीनां नवद्रव्याणां प्रत्येकं कर्ष इति भट्टादिव्यव- हारः । राठीयास्तु रसगन्धकयोर्मिलित्वा पलाद्धं कर्पूरस्य रसगन्धकाद्धं कर्षः जाती- कोपफलयोर्मिलित्वा कर्षः वृद्धदारकबी- जादिनवद्रव्याणां मिलित्वा कर्ष इत्याहुः ।

अन्नकभस्म ४ तोले, पारा, गन्धक, कपूर, जावित्री और जायफल प्रत्येक २ तोले, विद्यारा के बीज, धतूर के बीज, भाँग के बीज, विदारी- कन्द, शताधरी, गंगेरन, कंधी, गोलुरू के बीज और समुद्रफल के बीज प्रत्येक १ तोला; इनको पान के रस में घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोलीयों बना लेने । अनुपान-दूध, दही, मांस, काँजी आदि । प्रातःकाल इस लक्ष्मीविलास रस की एक-एक गोली सेवन करने से अनेक प्रकार के रोग, सन्निपातजन्य चार प्रकार के महान् रोग नष्ट होते हैं, इममें वातपित्त, कफ का कोई नियम नहीं है (सबको लाभदायक है) । अठारह प्रकार के कुष्ठ, बीस प्रकार के प्रमेह, नासूर, कठिन घाव, गुदा के रोग ( श्वासीर ), भगन्दर, श्ली-

पद, कफ, वातजन्य, रक्तमांस के आश्रित मेदो-  
गत, धीर्यगत, पुराने वंशज, गलशोथ, अन्त्रवृद्धि,  
घोर अतिसार, सब प्रकार की आमघात, जिह्वा-  
स्तंभ, गलग्रह, उदर, कान और नाक और मुख  
के धिक्कार, खाँसी, पीनस, छय, यवासीर, मोटा-  
पन, बद्बू, सब प्रकार के शूल, शिरशूल, स्त्री-  
रोग को नष्ट करता है। प्रातः एक बटी नित्य  
खानी चाहिये। इसके अनुपान में मांस, पिष्टी  
( पिष्टी के पदार्थ ), दूध, दही है। शराब के  
साथ सेवन करने से कामदेव के समान रूप हो  
जाता है। वृद्ध भी जवान के समान हो जाता  
है, शिशुनेन्द्रिय शिथिल नहीं होती, बाल नहीं  
पकते, सौ खियों को रमण करने की शक्ति और  
हाथी के समान पराक्रम हो जाता है, दो लाख  
योजन की दृष्टि ( दृष्टि तीव्र ) हो जाती है।  
इससे अधिक कोई पौष्टिक नहीं है। यह प्रयोग  
नारद ऋषि ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा है।  
जिसके प्रयोग से भगवान् लाख खियों के प्रिय  
हुए थे।

इस रस में पारा, गन्धक, कपूर, जावित्री  
और जायफल; इन ५ द्रव्यों में से प्रत्येक  
२ तोले और विधारा के बीज आदि १ द्रव्यों में  
से प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला ग्रहण करना  
चाहिये ऐसा मष्ट आदि कहते हैं। राईव तो  
“पारा और गन्धक दोनों मिलकर अर्द्धपल  
अर्थात् २ तोले हों, पारा और गन्धक का अर्द्ध  
भाग अर्थात् १ तोला कपूर लेवे, जावित्री और  
जायफल; यह दोनों मिलकर १ तोला हों और  
विधारा के बीज आदि १ द्रव्य मिलकर केवल  
१ तोला परिमित हों” ऐसा कहते हैं १ १४४-१४८  
वृद्धसर्वज्वरहरलौह ।

द्विपलं जारितं लौहं रसं गन्धं द्वितो-  
लकम् । तोलकं त्रिफला व्योप विडङ्गं  
मुस्तक तथा ॥ १५९ ॥ श्रेयसी पिप्पली-  
मूलं हरिद्रे द्वे च चित्रकम् । आर्द्रकस्य

१ इस योग में वृद्ध वैद्यगण, भट्टादिमत ही का  
अनुसरण करते हैं अतः मैंने भी इस योग को  
लिखते हुए भट्टादिव्यवहार ही का ग्रहण किया है।

रसेनैव वटिकां कारयेद्विपकम् ॥ १६० ॥  
गुञ्जाद्वयं वर्ती कृत्वा भक्षयेद्दर्द्रकद्रव्यैः ।  
सर्वज्वरहरं लौहं सर्वज्वरविनाशनम् ॥  
१६१ ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं  
सान्निपातिकम् । विषमज्वरभूतोत्थज्वरं  
प्लीहानमेव च ॥ १६२ ॥ मासजं  
पक्षजञ्चैव तथा संवत्सरोत्थितम् ।  
सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं  
यथा ॥ १६३ ॥

लोहभस्म २ पल, पारा २ तोले, गन्धक  
२ तोले, त्रिफला, त्रिकटु, थायविडङ्ग, नागर-  
मोथा, गजपीपरि, पिपरामूल, हरदी, दाहहरदी  
और चीता प्रत्येक १ तोला; इन कुल द्रव्यों को  
एकत्र अदरख के रस में घोटकर दो दो रत्ती की  
गोलियाँ बना लेवे। अनुपान-अदरख का रस।  
इस सर्वज्वरहरलौह का सेवन करने से सब प्रकार  
के विषम ज्वर और प्लीहा आदि रोग नष्ट  
होते हैं ॥ १५९-१६३ ॥

वृद्धसर्वज्वरहरलौह ।

पारदं गन्धकं शुद्धं ताम्रमध्रञ्च मात्तिका-  
कम् । हिरण्यं तारतालञ्च कर्षमेकं पृथक्  
पृथक् ॥ १६४ ॥ मृतं कान्तं पलं देयं  
सर्वमेकीकृतं शुभम् । वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं  
प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥ १६५ ॥ कारवे-  
ल्लरसेनापि दशमूलरसेन च । पर्पटस्य  
कपायेण काथेन त्रैफलेन च ॥ १६६ ॥  
गुडुच्याः स्वरसेनापि नागवल्लीरसेन च ।  
काकमाचीरसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥  
१६७ ॥ पुनर्नवार्द्रकाम्भोभिर्भावनां  
परिकल्प्य च । रक्तिकाद्रिक्रमेणैव वटिकां  
कारयेद्विपकम् ॥ १६८ ॥ पिप्पलीगुडसं-  
युक्ता वटिका वीर्यवर्द्धिनी । ज्वरमष्टविधं  
हन्ति चिरकालसमुद्भवम् ॥ १६९ ॥

विविधं चारिद्रोपोत्थं नानादोषोद्भवं तथा ।  
सततादिज्वरं हन्ति माध्यासाध्यमधाऽपि  
वा ॥ ६७० ॥ क्षयोद्भवश्च धातुस्थं काम-  
शोकभवं तथा । भूतावेशज्वरञ्चैव ऋत्त-  
दोषभवं तथा ॥ ६७१ ॥ अभिघातज्वर-  
ञ्चैवमभिचारसमुद्भवम् । अभिन्यासं महा-  
घोरं विषमञ्च त्रिदोषजम् ॥ ६७२ ॥  
शीतपूर्वं दाहपूर्वं विषमं शीतलं ज्वरम् ।  
प्रलेपकज्वरं घोरमर्द्धनारीश्वरं तथा ६७३  
प्लीहज्वरं तथा कासं चातुर्थकविपर्ययम् ।  
पाण्डुरोगगणान् सर्वानग्निमान्द्यं महा-  
गदम् ॥ ६७४ ॥ एतान् सर्वाग्निहन्त्याशु-  
पक्षाद्धेनात्र संशयः । शाल्यन्नं नक्रसहितं  
भोजयेद्द्विजसंयुतम् ॥ ६७५ ॥ ककार-  
पूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः । मैथुनं वर्ज-  
येत्चावद्यावन्न बलवान् भवेत् ॥ सर्वज्वरहरं  
श्रेष्ठमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ ६७६ ॥

पारा, गन्धक, ताग्र, अश्रक, स्वर्णमाक्षिक,  
सोना, चाँदी भस्म और शुद्धहरिताल प्रत्येक १  
गोला, कान्तलोहभस्म ४ तोले ; इन सब औषधों  
को एकत्र कर करेला की पत्तियों का रस, दशमूल  
का हाथ, पित्तपापड़ा का हाथ, त्रिफला का  
हाथ, गुरच का स्वरस, पान का रस, मकोय का  
रस, मंभालू की पत्तियों का रस, गदहपुरैना का  
रस और अदरक का रस; इन सब स्वरस और  
काढ़ों की सात सात बार भावना देकर २ रत्ती  
प्रमाण गोली बनावे । पीपरी का चूर्ण और  
पुराने गुड़ के साथ इस महीषघ का सेवन करने  
से ज्वर चाहे कैसा ही क्यों न हो सात दिन में  
अवश्य नष्ट होता है । रोगी को भोजन के लिये  
भात, तक्र और पत्तियों के मांस का रस देना  
चाहिये । इसके सेवन में काँजी, करेला आदिक  
ककरादि वस्तु वर्जित है । जब तक बलवान् न हो  
जाय तबतक मैथुन करना वर्जित है और वैद्य को  
अपनी बुद्धि से श्रेष्ठ अनुपान की कल्पना करनी  
चाहिये ॥ ६६४-६७६ ॥

गन्धककज्जली विधि ।

कण्टकारीसिन्धुवारस्तथा पृत्तिकरञ्ज-  
कम् । एतेषां रसमादाय कृत्वा स्वर्परख-  
एडके ॥ ६७७ ॥ प्रक्षेप्यं गन्धकं तत्र  
ज्वाला मृद्गनिना ददेत् । गन्धके स्नेहता-  
पन्ने तत्समं पारदं क्षिपेत् ॥ ६७८ ॥  
मिश्रीकृत्य ततो द्वाभ्यां द्रुतं तमवतारयेत् ।  
आमर्दयेत्तथा तच्च यथा स्यात् कज्जलप्र-  
भम् ॥ ६७९ ॥ ततस्तु रत्निकामस्य  
मापकं जीरकस्य च । मापकं लवणस्यापि  
पर्ये कृत्वा निधापयेत् ॥ ६८० ॥ ज्वरे  
त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिबेदनु । हर्षी  
शर्करया दद्यात्सामे दद्यात्तथा गु-  
डम् ॥ ६८१ ॥ क्षये द्वागभवं क्षीरं  
प्रदद्यादनुपानकम् । रक्तातिसारे कुटजमू-  
लवल्कलजं रसम् ॥ ६८२ ॥ रक्त्वान्तौ  
तथा दद्यादुडुम्बरभवं जलम् । सर्वव्याधि-  
हरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः ॥ आयुर्वृ-  
द्धिकरश्चैव मृतञ्चापि प्रबोधयेत् ॥ ६८३ ॥

कण्टकारीरसं सिन्धुवाररसं नाटाकर-  
ञ्जरसं स्वर्परे कृत्वा गन्धकं तत्र निक्षिप्य  
मृदुज्वालां दद्यात् गन्धके द्रवीभूते तत्तुल्यं  
शोधितरसं दत्त्वा द्वयं मिश्रीभूतमालोक्य  
शीघ्रमवतारयेत् । ततो लौहदण्डेन मर्द-  
यित्वा कज्जलप्रभं कृत्वा ऊर्ध्वयोनिं सं-  
पूज्य बलिं दत्त्वा पर्येखएडैः रत्निकां जीर-  
कचूर्णमापकं सैन्धवमापकमेकीकृत्य भक्ष-  
यित्वा ज्वरे उष्णजलम्, हर्षी शर्कराज-  
लम्, सामे पुरातनगुडकर्पं जलपलम्,  
क्षये द्वागदुग्धं, रक्तातिसारे कुटजकाथप-  
लम् । रक्त्वान्तौ पकोडुम्बररसपलम्, अनु-  
पिबेत् ।

कटेरी, सँभालू और नाटाकरज ( काँटेदार कँजा ); इन सबका रस किमी मिट्टी के पात्र में रखकर, उममें गन्धक डाले। तदनन्तर उस पात्र को चूहे पर चढ़ाकर धीमी-धीमी आँच देवे। गन्धक के गल जाने पर, उममें गन्धक के बराबर शुद्ध पारा डाल देवे। दोनों के मिश्रित हो जाने पर चलाकर उतार लेवे। पश्चात् लोहे के दण्ड से भली भाँति मर्दन करके कजली के समान बना लेवे। ऊर्ध्वयोगिनी को पूजनपूर्वक यनिप्रदान करके यह कजली १ रत्नी, जीरे का चूर्ण १ मासा, लाईरी नमक १ मासा, इन सबको एकत्र कर पान के पत्ते में रखकर सेवन करना चाहिये। इस प्रकार औषध सेवन करने के पश्चात् ज्वर में उष्ण जल, यमन में मिथी का शरबत, ग्राम में १ तोले पुराने गुड का ४ तोले जल में बनाया हुआ शरबत, चय रोग में बकरी का दूध, रक्त-तिसार में कूडे की छाल का ४ तोले काढ़ा और रक्तयमन में पकी हुई गुलर का रस ४ तोले पिलावे। यह कजली सब प्रकार के रोगों को नष्ट करनेवाली, आयुवर्धक और मृत-प्राय रोगों को जिलानेवाली है ॥ ६७७-६८३ ॥

नासाज्वरआहकारि रस ।

श्रुतिः हरीतकी कृष्णा व्योमायारस-  
कानि च । तुल्यांशानि समादाय द्विभागं  
सूतकंक्षिपेत् ॥ ६८४ ॥ कुरम्बिकारसैस्तत्र  
सर्वं सम्मर्दयेद्भिषक् । गुञ्जाद्द्वं प्रदातव्यं  
वर्षाभरससंयुतम् ॥ ६८५ ॥ स्त्रीहानं  
यकृतं शोथं वह्निसादमरोचकम् । विप-  
माख्यं ज्वरं हन्ति विशेषान्नासिकाज्वरम् ।  
आहकारिरसो ह्ये न चैवात्र विक-  
ल्पना ॥ ६८६ ॥

छोटी इन्नाइची, हरद, पिप्पली, अश्रक-  
भस्म, लोडभस्म, खररभस्म, अलग अलग  
एक भाग, रससिन्दूर २ भाग, इन सबको  
एकत्र करके त्रौण्युष्पी के रस से घोटकर  
१ रत्नी से २ रत्नी प्रमाण तक की गोली

बना ले। अनुपान पुनर्वा का रस। इसके सेवन  
करने से प्लीहारोग ( तिल्ली ), जिगर, शोथ  
( सूजन ), मन्दाग्नि, अरचि, विषमज्वर आदि  
रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा नासिका ज्वर की  
विशेष औषधि है ॥ ६८४-६८६ ॥

मकरध्वज ।

स्वर्णदलं पलश्रैव रसेन्द्रश्च पलाएकम् ।  
रसस्य द्विगुणं गन्धं तेनैव कज्जलीकृ-  
तम् ॥ ६८७ ॥ कुमारिकारसैर्भाव्यं  
काचपात्रे निधापयेत् । वालुयन्त्रे च सं-  
स्थाप्य क्रमादिनत्रयं पचेत् ॥ ६८८ ॥  
स्वाङ्गशीतं समादाय पुष्पाख्यरजः समम् ।  
यवमात्रं प्रदातव्यमहिवल्लीदलेन च ॥  
॥ ६८९ ॥ एतद्भ्यासतश्चैव जरामरणनाश-  
नम् । अनुपानविशेषेण करोतिविविधान्  
गुणान् ॥ ६९० ॥ ज्वरं त्रिदोषजं घोरं  
मन्दाग्नित्रमरोचकम् । अन्यांश्च विवि-  
धान् रोगान्नाशयेन्नात्र संशय ॥ ६९१ ॥

अतिसूक्ष्म कण्टकवेधी स्वर्णपत्र ४ तोले,  
पारा ३२ तोले, शुद्धगन्धक ६४ तोले; इनमें  
से पहिले पारा और स्वर्णपत्र को एकत्र कर  
छरल करे। पश्चात् उसमें गन्धक मिलाकर  
उत्तम रीति से खरल करके कजली बनावे।  
तदनन्तर उस कजली में धोकुआर का रस  
मिलाकर छरल कर लेवे पश्चात् काच की  
शीशी ( आतशी शीशी ) लेकर उस पर तीन  
बार कपडमिट्टी करके सुखा लेवे। बोटल या  
आतशी शीशी दोनों ही इस कार्य में उपयुक्त  
होते हैं। पश्चात् उस बोटल में कजली रखकर  
बोटल को एक पेसी हाँकी में रखले जिसकी  
पेंदी में कभी अंगुली जाने के लायक छिद्र हो,  
उस छिद्र के ऊपर एक अश्रक का टुकड़ा रखना

१ नासाज्वर (आहकारि) के लक्षण-तनुना रज-  
शोथेन मुत्रो नासा पुटान्तरे । गाग्रशूलज्वरकरः  
श्लेष्मणा आहकज्वरः ॥



गया हो। तदनन्तर उम हाँडी में योतल के गले तक यालू भर देये। पीछे उस यालूभरी योतलवाली हाँडी को चूल्हे पर चढ़ाकर तीन दिन पर्यन्त धूम से मन्द, मध्य और तीक्ष्ण आँध देकर पाक करे। तदनन्तर स्वाद्गशीतल होने पर योतल को तोड़कर योतल के ऊर्ध्व भाग में लगे हुये लालरङ्ग के पदार्थ को निकाल लेये इसी को मन्त्रपत्र कहते हैं। मन्त्रपत्र को पूरी मात्रा १ यव की है। अनुपान पान या रस आदि। यह जरा मृद्युनाशक और कामोद्दीपक है। अनुपानविशेष के साथ इसका सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, घोर सन्नपात, अग्निमान्द्य, अरुचि तथा अन्वाम्य विविध प्रकार के रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं ॥ ६८७-६९१ ॥

लौहासव ।

लौहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलञ्चयमानिका ।  
विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुसंख्यपलं क्षि-  
पेत् ॥ ६६२ ॥ चूर्णाकृत्य ततः क्षौद्रं  
चतुःषष्टिपलं पृथक् । दद्याद् गुडतुलां तत्र  
जलद्रोणद्वयं तथा ॥ ६६३ ॥ घृत-  
भाण्डे विनिःक्षिप्य निदध्यान्मासमात्र-  
कम् । लौहासमवमुं मर्त्यः पिपेद्विकरं  
परम् ॥ ६६४ ॥ पाण्डुरवयथुगुल्मानि  
जठराण्यर्शासां रुजम् । स्नीहामयं ज्वरं  
जीर्णं कासं श्वासं भगन्दरम् । अरोचकञ्च  
ग्रहणीं हृद्रोगञ्च विनाशयेत् ॥ ६६५ ॥

लोहचूर्ण, भस्म को त्रिफला के जल में हल करके त्रिकटु, त्रिफला, अजयाइन, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीता; इन में से प्रत्येक के चूर्ण १६ तोले, मधु ३ सेर, गुड ५ सेर और जल २५ सेर; इन सबको एकत्र मिश्रित करके घी के घड़ा में रखकर घड़ा का मुख बन्द करके एक मास पर्यन्त रखना रहने देवे। ऐसा करने से एक मास में आसव प्रस्तुत हो जाता है। इसको वस्त्र से छानकर रख लेवे। इसका सेवन करने से अग्नि की वृद्धि होती है। तथा

पाण्डुरोग, शोथ, गुल्म, उदररोग, बन्धासीर, प्लीहा, जीर्णज्वर, कास, श्वास, भगन्दर, अरुचि, ग्रहणी और हृद्रोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ ६६२-६६५ ॥

मात्रा—२१-२॥ तोला सम गरम जल के साथ ।

अमृतारिष्ट ।

अमृतायाः पलशतं दशमूलीशतं यथा ।  
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा कुर्यात्पादावशे-  
पितम् ॥ ६६६ ॥ शीते तस्मिन् रसे  
पूने गुडस्य त्रितुलाः क्षिपेत् । अजाजीपो-  
दशपलं पर्पटस्य पलद्वयम् ॥ ६६७ ॥  
सप्तपर्णं त्रिकटुकं मुस्तकं नागकेशरम् ।  
कटुकातिविपे चेन्द्रयवञ्च पलसम्मितम् ॥  
६६८ ॥ एकीकृत्य क्षिपेद्भाण्डे निद-  
ध्यान्मासमात्रकम् । अमृतारिष्ट इत्येप  
सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ६६९ ॥

गुच्छ २ पाँच सेर, दशमूल ५ पाँच सेर, इस १० दश सेर द्रव्य को एक मन ११ सेर १६ नो० जल में पकावे। चौथाई जल शेष रहने पर उतार कर शीतल होने पर छान लेवे। पश्चात् इस द्वाध में १५ सेर गुड मिलावे तदनन्तर उसमें जीरा ६४ तोले, पिचपापडा ८ तोले, सतौना की छाल ४ तोले, त्रिकटु ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, नागकेशर ४ तोले, कुटकी ४ तोले, अतीस ४ तोले और इन्द्रजी ४ तोले; इन सब द्रव्यों को चूर्ण कर मिश्रित करके पात्र का मुख मुद्रित कर रख देवे। एक मास में यह अरिष्ट प्रस्तुत (तैयार) हो जाता है। इस अरिष्ट का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। मात्रा—२१-२॥ तोला सम गरम जल के साथ ॥ ६६६-६६९ ॥

मृहत्किरातादि तैल ।

कैरातस्य तुलामानं जलद्रोणे विपाच-  
येत् । कटुतैलस्य पात्रार्द्धं तेनैव साधयेद्भि-  
पक् ॥ १००० ॥ मूर्वा लाक्षा द्वयोः

काथौ काञ्जिकं दधि मस्तु च । एतानि  
 तैलतुल्यानि कल्कानेतांश्च संपचेत् ॥  
 १००१ ॥ भूनिम्बः श्रेयसी रास्ना कुष्ठं  
 लाक्षेन्द्रवारुणी । मंजिष्ठा च हरिद्रे द्वे  
 मूर्वा मधुकमुस्तकम् ॥ १००२ ॥ वर्षाभू-  
 सैन्धवं मांसी बृहती च तथा विडम् । ह्रीवेरं  
 शतमूली च चन्दनं कटुरोहिणी ॥ १००३ ॥  
 हयगन्धा शताहा च रेणुका सुरदारु च ।  
 उशीरं पन्नकं धान्यं पिप्पली च वचा शठी ॥  
 १००४ ॥ फलत्रिकं यमान्यौ द्वे मृङ्गी  
 गोजुर एव च । पर्यौ द्वे तरुणीमूलं वि-  
 डङ्गं जीरकद्वयम् ॥ १००५ ॥ महानि-  
 म्वश्च हनुषा यव क्षारो महौषधम् । एषां  
 कर्षद्वयं क्षिप्त्वा साधयेन्मृदुवह्निना १००६  
 यथाहिवर्गं विनिहन्ति ताक्ष्यौ यथा च  
 भास्वांस्तिमिरस्य संघम् । तथैव सर्वं ज्वर-  
 वर्गमेतदभ्यङ्गमात्रेण निहान्त तैलम् ॥  
 १००७ सन्ततं सततादींश्च निखि-  
 लान् विपमज्वरान् । स्नीहाश्रितान् सशो-  
 थान् वा प्रमेहज्वरमेव च ॥ १००८ ॥  
 अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णकरं परम् ।  
 पाण्ड्यादीन् हन्ति रोगांश्च किराताद्यभिदं  
 बृहत् ॥ १००९ ॥

कडुआ तेल ३ सेर १६ तोला, काथ के  
 लिये चिरायता २ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला,  
 मूर्वा का क्वाथ ३ सेर १६ तोला, लाख का  
 क्वाथ ३ सेर १६ तोला, काँजी ३ सेर १६  
 तोला, दही का पानी ३ सेर १६ तोला, कल्क  
 के लिये चिरायता, गजपीपरि, रास्ना, कूठ,  
 लार, इन्द्रायण की जड़, मजिठ, हरदी, दान-  
 डरदी, मूर्वा, मुलेठी, नागरमोषा, सोंठ की जड़,  
 छाहरीनमक, जटामासी, यही कदेरी, विडनोन,  
 सुगन्धबाला, शतशरि, लालचन्दन, कुटकी,

असगन्ध, सोया, रेणुकाबीज, देवदारु, रतम,  
 पद्माम्ब, धनियाँ, पीपरि, थच, कचूर, त्रिफला,  
 अजवाइन, अजमोद, काकड़ाशुद्धी, गोमुर,  
 शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दन्ती (जमालगोटा)  
 की जड़, वायविदंग, जीरा, कालाजीरा, यकायन  
 की छाल, हाजियर, यवक्षार और सोंठ प्रत्येक  
 २ तोले । इन सब द्रव्यों को एकत्र करे । तैलपाक-  
 विधि के अनुसार धीमी आँच से पकाकर तैल  
 प्रस्तुत कर लेवे । इस तैल का मर्दन करने से  
 विविध प्रकार के ज्वर शांत होते हैं । यह तैल  
 विपमज्वर की महौषध है और बल तथा वर्ण को  
 करता है और पाण्डु आदि रोगों को नष्ट करता  
 है ॥ १०००-१००९ ॥

अथ ज्वरवलि ।

ज्वरामयशृहीतस्य मुष्टिभिर्नवभिः कृतम् ।  
 तण्डुलैरोदनं तेन कुच्यार्त् पुत्तलकं शु-  
 भम् ॥ १०१० ॥ तं हरिद्रावलिस्ताङ्गं  
 चतुः पीतध्वजान्वितम् । हरिद्रासपूर्णाभिः  
 पुटिकाभिश्चतस्रभिः ॥ १०११ ॥ मण्डितं  
 गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य विसर्जयेत् ॥ एवं  
 दिनत्रयं कुच्यज्ज्वररोगोपशान्तये १०१२  
 श्रोदनेनपुत्तलं निर्माय वीरणचाचि-  
 कायां संस्थाप्य हरिद्राभिरवलिप्य चतु-  
 पीतपताकाभिरलङ्कृत्य गन्धपुष्पाद्यैरव-  
 कीर्य हरिद्रासपूर्णाश्चतस्रः पुटिकाश्चतुः  
 कोणे संस्थाप्य पुटिकाश्वत्थपत्ररचिता  
 ठोङ्गा । विष्णुर्नमोऽथेत्यादिना सङ्कल्प्य  
 ज्वरं ध्यात्वा समावाह्य नवकर्पदकाक्रीड-  
 गन्धपुष्पधूपदीपादिभिः सम्पूज्य सन्ध्या-  
 समये ज्वरितं निर्मञ्च्य मन्त्रमिमं पठित्वा  
 दिनत्रयं वलि दद्यात् । मन्त्रो यथा—ओं  
 नमो भगवते गरुडासनाय त्र्यम्बकाय  
 स्वस्त्यस्तु वस्तुतः स्वाहा ओं कं टं पं शं  
 वैनतेयाय नमः, ओं ह्रीं क्षः क्षेत्रपालाय

नमः, ओं ह्रीं ठठ भोभो ज्वर मृगु मृगु  
हल हल गर्ज गर्ज ऐकाहिकं द्वयाहिकं  
त्रयाहिकं चातुर्थिकं साप्ताहिकं अर्द्धमासिकं  
मासिकं नैमेपिकं माहूर्तिकं फट् फट् हूँ  
फट् फट् हल हल हलं मुञ्च मुञ्च भूम्यां  
गच्छ स्वाहा इति पठित्वा एकवृत्ते रम-  
शाने चतुष्पथे वा विसर्जयेत् । एतत् कर्म  
वास्तुदेवस्य शुचि दक्षिणप्रदेशे कुर्यात् ।

ज्वररोगी की मुट्टी से १ मुट्टी चावल  
लेकर उसका भात बनावे । उस भात का पुतल  
बनाकर, उस की आसनी पर स्थापित करे ।  
तदनन्तर पुतला के दक्ष में हरदी का लेप करे ।  
उसके चारों कोण में पीत पताका स्थापित करे ।  
चारों कोणों में गन्धपुष्प आदि रखकर हरदी  
के जल से परिपूर्ण एक-एक दोना रख देवे ।  
दोना पीपर की पत्तियों के बने होने चाहिये ।  
पश्चात् संकल्प करके पुतला में ज्वर का आवाहन  
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि द्वारा  
पूजन करके संधाकाल में "ॐ नमो भगवते"  
आदि मूलोक्त मन्त्र पढ़कर बलि दे पश्चात्  
उपयुक्त मन्त्र (ॐ ह्रीं ठठ) पढ़कर वृत्त पर रमशान  
अथवा चार्राहे पर पुतला को रख आवे । इस  
कृत्य को रोगी के गृह से दक्षिण दिशा में करना  
चाहिये ॥ १०१०-१०१२ ॥

नक्षत्रविशेष में रोगोत्पत्ति का फल  
कृत्तिकायां यदा व्याधिरुत्पन्नो भवति  
स्वयम् । नरानं भवेत् पीडा त्रिरात्रं रोहि-

णीषु च ॥ १०१३ । मृगशीर्षे सप्तरात्र-  
मार्द्रायां मुच्यतेऽमुभिः । पुनर्वसौ तथा  
पुष्ये सप्तरात्रेण मोक्षणम् ॥ १०१४ ॥  
नवरात्रं तथा श्लेषे रमशानान्तं मघासु च ।  
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम्  
॥ १०१५ ॥ हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्राया-  
मर्द्धमासकम् । मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे  
दिनविंशतिः ॥ १०१६ ॥ मंत्रे चैव दशा-  
हानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् । मूले न जायते  
मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकम् ॥ १०१७ ॥  
उत्तरे दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणे तथा ।  
घनिष्ठायामर्द्धमासो वारुणे च दशाहकम् ।  
॥ १०१८ ॥ पूर्वभाद्रपदे देवि ऊनविंश-  
तिवासरम् । त्रिपक्षञ्चाहिर्बुधे च रेवत्यां  
दशरात्रकम् ॥ १०१९ ॥ अहोरात्रं तथा-  
श्रिन्यां भरण्यान्तु गतायुषः । एवं क्रमेण  
जानीयान्नक्षत्रेषु यथोचितम् ॥ १०२० ॥

### इति गौरीकञ्चुलिकायाम् ।

नक्षत्रविशेष में उत्पन्न हुये रोगों का भोग-  
काल तथा उनसे होनेवाली मृत्यु का निर्देश  
ऊपर ८ श्लोकों में किया गया है । उस विषय  
को आगे लिखे चक्र में स्पष्टरूप से समझ  
लीजिये ॥ १०१३ १०२० ॥

नक्षत्रविशेष में रोगोत्पत्ति का फलबोधक चक्र ।

कृत्तिका	१ दिन	मघा	मृत्यु	अनुराधा	१० दिन	शतभिष	१० दिन
रोहिणी	३ दिन	पूर्वाफाल्गुनी	२ मास	ज्येष्ठा	१५ दिन	पूर्वभाद्रपद	१६ दिन
मृगशिरा	७ दिन	उत्तरा फाल्गुनी	१५ दिन	मूल	मृत्यु	उत्तरभाद्रपद	३ पक्ष
आर्द्रा	मृत्यु	हस्त	७ दिन	पूर्वाषाढ	१५ दिन	रेवती	१० रात्रि
पुनर्वसु	७ दिन	चित्रा	१५ दिन	उत्तराषाढ	२० दिन	अश्विनी	१ अहोरात्रि
पुष्य	७ दिन	स्वाती	२ मास	श्रवण	२ मास	भरणी	मृत्यु
आरक्षेखा	१ दिन	विशाखा	२० दिन	घनिष्ठा	१५ दिन	—	—

अथ सूर्यार्घ्यदानविधि ।

हंसो भानुः सहस्रांशुस्तपनस्तापनोरविः  
विकर्त्तनो विवस्वांश्च विश्वकर्मा विभावसुः  
॥ १०२१ ॥ विश्वरूपो विश्वकर्मा मार्त्त-  
ण्डो मिहिरोंऽशुमान् । आदित्यश्चोपगुः  
सूर्योऽर्घ्यमा ब्रध्नो दिवाकरः ॥ १०२२ ॥  
द्वादशात्मा सप्तहयो भास्करोऽहस्करः खगः ।  
सूरः प्रभाकरः श्रीमान् लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥  
॥ १०२३ ॥ लोकेशो लोकसाक्षी च तमोऽरिः  
शाश्वतः शुचिः । गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्त-  
रणिः सुमहोरणिः ॥ १०२४ ॥ द्युमणिर्ह-  
रिदश्वोऽर्को भानुमान् भयनाशनः ।  
छन्दाऽश्वो वेदवेद्यश्च भास्वान् पुषा  
वृषाकपिः ॥ १०२५ ॥ एकचक्ररथो मित्रो  
मन्देहारिस्तमिस्रहा । दैत्यहा पापहर्त्ता च  
धर्मोऽधर्मप्रकाशकः ॥ १०२६ ॥ हेलि-  
करिचत्र भानुश्च कलिघ्नस्तार्त्तवाहनः ।  
दिक्पतिः पद्मिनीनाथः कुशेशयकरो हरिः  
॥ १०२७ ॥ धर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुः  
कश्यपात्मजः । एभिः सप्ततिसहस्राकैः  
पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥ १०२८ ॥  
प्रणवादिचतुर्ध्वन्तैर्नमस्कारसमायुतैः । प्र-  
त्येकमुधरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥  
१०२९ ॥ विष्ट्वा पाण्डियुग्मेन ताम्रपात्रं  
मुनिर्मलम् । जानुभ्यामवनीं गत्वा परि-  
पर्यं जलेन च ॥ १०३० ॥ करवीरादि-  
कुमुभै रक्त्तचन्दनमिश्रितैः । दूर्वाङ्कुरैरक्ष-  
तैश्च निक्षिप्तैः पात्रमध्यता ॥ १०३१ ॥  
दद्यादर्घ्यमनर्घाय सवित्रे ध्यानपूर्वकम् ।  
उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्पादिद-  
मनाः १०३२ प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्त्यादुदया-  
स्तमिनेरवा । अनया नामसप्तत्या महामन्त्र-

रहस्यया ॥ १०३३ ॥ एवं कुर्वन् नरो  
याति न दाद्विच्यं न शोकभाक् । व्याधिभि-  
र्मुच्यते घोरैरपि जन्मान्तराजितैः १०३४  
विनौपधैर्विना वैधैर्विना पथ्यपरिग्रहैः ।  
कालेन निधनं प्राप्य सूर्यलोके मही-  
यते ॥ १०३५ ॥

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादिवाक्यान्ते  
अमुकस्य भट्टिति ज्वरादिरोगप्रशमनकाम-  
नया हंसादिसप्ततिर्नामभिः श्रीसूर्याय-  
सप्तत्यर्घ्यदानमहं करिष्यामि इति सकल्प्य  
भूतशुद्धिमङ्गल्यासादिकं कृत्वा सामान्यार्घ्यं  
कल्पयित्वा ध्यात्वा समावाह्य पाद्यादिभिः  
सम्पूज्य प्रणमेत् । ततो यथोक्तविधिना  
प्रत्येकनाम्ना अर्घ्यं दद्यात् शालग्रामे घटे  
जले वा । इति सूर्यार्घ्यदानविधिः ।

ऊपर ८ रत्नों में से हंस आदि ७० नाम  
सूर्य के यथाये गये हैं । प्रत्येक नाम को चतुर्ध्वन्त  
बनाकर नाम के आदि में “ॐ” और अन्त में  
“नमः” यह शब्द लगाने से १० नाममन्त्र  
यन जाते हैं । इन्हीं नाममन्त्रों से सूर्य को  
अर्घ्य दिया जाता है । अर्घ्य देने की विधि यह  
है कि ऊपर लिखी रीति से सकल्प और अङ्ग-  
न्यास आदि करने के पश्चात् सूर्य को सामान्य  
अर्घ्य देकर ध्यान तथा पाषादि से पूजन करके,  
पृथिवी में दोनों जानुओं को मुकाबर हाथों में  
जलपूर्णं निर्मल ताम्रपात्र लेकर उसमें कनेर  
आदि के पुष्प, रत्नचन्दन, दूध और घृत  
हालकर सूर्य या ध्यान करते हुये प्रत्येक नाम-  
मन्त्र से सूर्य को देणता हुआ अर्घ्य देवे । एष  
प्रत्येक नाममन्त्र से सायंकाल और प्रातःकाल  
सूर्य को नमस्कार करे । देता करने से मनुष्य  
पिना चाँपध सेवन किये ही विविध प्रकार के  
घोर रोगों से मुक्त होता है ॥ १०२१-१०३५ ॥

मादेद्वर कवच ।

श्रीं नमो भगवते रुद्राय ॥ रातोवाच ॥

अङ्गन्यासं यदुक्तं भो ! महेशाक्षरसंयुतम् ।  
विधानं कीदृशं तस्य कर्त्तव्यं केन हेतुना ॥  
१०३६ ॥ तद्वदस्य महाभाग ! विस्तरेण  
ममाग्रतः । तपोधन इति पाठान्तरम् ॥  
भृगुरुवाच ॥ कत्रचं माहेश्वरं राजन् ! देवै-  
रपि सुदुर्लभम् ॥ १०३७ ॥ य करोति  
स्वगात्रेषु पूतात्मा स भजेन्नरः । कृत्वा  
न्यासमिमं यस्तु संग्रामं प्रविशेन्नरः ॥  
१०३८ ॥ न शरास्तोमरास्तस्य खड्गश-  
क्तिपरशयाः । प्रभवन्ति रिपोः कापि भवे  
च्छत्रपराक्रमः ॥ १०३९ ॥ व्याधिग्रस्तस्तु  
यः कश्चित् कारयेच्चैत्रमार्जनम् । एकादश-  
कुशैः साग्रैर्मुक्तो भवति नान्यथा ॥ १०४० ॥  
न भूता न पिशाचाश्च कृष्णाण्डा न विना  
यकाः । शिखस्मरणमात्रेण न विशन्ति  
क्लेपरैः ॥ १०४१ ॥

ॐ नमः पञ्चत्रयत्रयशशिसोमार्कनेत्राय  
भयार्त्तानामभयाय मम सर्गाग्ररक्षार्थं  
विनियोगः । ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं । मन्त्रेणानेन  
वृषगोमयभस्मना मन्त्रय ललाटे तिलक-  
मादाय पठेत् । ॐ त्राहि मा देवदुष्पेक्ष  
शत्रूणां भयवर्द्धन । ॐ स्पृच्छन्तभैरव  
प्राच्यामाग्नेय्यां शिखिलोचन ॥ १०४२ ॥  
भूतेशो दक्षिणे भागे नैऋत्यां भीम-  
दर्शन । वारुणे वृषकेतुश्च त्रयौ रक्षतु  
शङ्करः १०४३ दिग्मासा सौम्यतो नित्य-  
मैशान्यां मदनान्तकः । त्रामदेव ऊर्ध्वतो  
रक्षेदधोरक्षेत् त्रिलोचन ॥ १०४४ ॥  
पुरारिः पुरतः पातु कपर्दी पातु पृष्ठतः ।  
विश्वेशो दक्षिणे भागे वामे कालीपति  
सदा ॥ १०४५ ॥ महेश्वरः शिरोभागे  
भगो भाले सदैवतु । भ्रूयोर्मध्ये महातेजा-

स्त्रिनेत्रो नेत्रयोर्द्वयोः ॥ १०४५ ॥ पिनाकी  
नासिकादेशे कर्णयोर्गिरिजापतिः । उग्रः  
कपोलतो रक्षेन्मुखदेशे महाभुजः १०४७  
जिह्वायामन्धकध्वंसी दन्तान् रक्षतु मृत्यु-  
जित् । नीलकण्ठः सदा कण्ठे पृष्ठे  
कामाङ्गनाशनः ॥ १०४८ ॥ त्रिपुरारिः  
स्कन्धदेशे गार्होरच चन्द्रशेखरः । हस्ति-  
चर्मधरो हस्ते नखांगुलिषु शूलधृत् ॥  
१०४९ ॥ भगानीश पातु हृदयं पातुदर-  
वन्दीर्घदः । गुटे लिङ्गे च मेढ्रे च नाभौ च  
प्रमयाधिपः ॥ १०५० ॥ जङ्घोरुचरणे  
भीमः सर्गाङ्गे केशवप्रियः । रोमरूपे विरू-  
पाक्षः शब्दस्पर्शं च योगवित् ॥ १०५१ ॥  
रक्षमज्जावसामांसशुक्रं वसुगणार्चितं ।  
प्राणपानसमानेपूदानव्यानेषु धूर्जटिः ॥  
१०५२ ॥ रक्षाहीनन्तु यत् स्थानं वर्जितं  
कवचेन यत् । तत् सर्वं रक्ष मे देव !  
व्याधिदुर्गज्वरादितः ॥ १०५३ ॥ कार्यं  
कर्म त्रिदं प्राज्ञैर्दीपं प्रज्वाल्य सर्पिणा ।  
निवेद्य शिखिनेत्राय कारयेच्चोत्तरं मुखम् ॥  
१०५४ ॥ ज्वरदाहपरिक्रान्तं तथान्यव्या-  
धिसंयुतम् । कुशैः संमार्ज्यं संमार्ज्यं क्षिपेद्दी-  
पशिखे ज्वरम् ॥ १०५५ ॥ ऐकाहिकं  
द्व्याहिकं वा तृतीयकचतुर्थकम् । वातपित्त  
कफोद्भूतं सन्निपातोग्रतेजसम् ॥ १०५६ ॥  
अन्यं दुःखदुरार्धर्षं कर्मजञ्चाभिचारिकम् ।  
धातुस्थं कफसंमिश्रं त्रिपमं कामसम्भयम् ॥  
१०५७ ॥ भूताभिपद्गसंसर्गं भूतचेष्टादि-  
संस्थितम् । शिवाज्ञां धोरमन्त्रेण पूर्ववृत्तं  
स्वयं स्मर ॥ १०५८ ॥ जहि देहं मनुष्यस्य  
द्वीपद्गच्छ महाज्वर । कृत्वा तु कवचं दिव्यं  
सर्वव्याधिभयार्दनम् ॥ १०५९ ॥ नत्राघन्ते

व्याधयस्तं बालग्रहभयाश्च ये । लूता-  
विस्फोटकं घोरं शिरोऽर्त्तिच्छर्दिविग्रहम् ॥  
१०६० ॥ कामलां क्षयकासश्च गुल्मारमरि-  
भगन्दरान् । शूलोन्मादश्च हृद्रोगं यकृच्च  
पाण्डुविट्प्रधिम् ॥ १०६१ ॥ अती-  
सारादिरोगांश्च डाकिनीग्रहपीडितान् ।  
पामात्रिचर्चिकादद्रुकृष्णव्याधिविपार्दनम् ॥  
१०६२ ॥ स्मरणात्राशयत्याशु कवचं  
शूलपाणिनः । यस्तु स्मरति नित्यं वै यस्तु  
धारयते नरः ॥ १०६३ ॥ स मुक्तः सर्व-  
पापेभ्यो वसेच्छिवपुरे चिरम् । सह्या  
व्रतस्य दानस्य यज्ञस्यास्तीह शास्त्रतः ॥  
१०६४ ॥ न सह्या विद्यते शम्भोः  
कवचस्मरणाद्यतः । तस्मात् सम्यगिदं सर्वः  
सर्वकामफलप्रदम् ॥ १०६५ ॥ श्रोतव्यं  
सततं भक्त्याकवचं सर्वकामिकम् । लिखितं  
तिष्ठते यस्य गृहे सम्यगनुत्तमम् ॥ १०५५ ॥  
न तत्र कलहोद्भेगो नाकालमरणं भवेत् ।  
नाल्पमनाः स्त्रियस्तत्र न दौर्भाग्यसमा-  
श्रिताः ॥ १०६७ ॥ तस्मान्माहेश्वरं नाम  
कवचं सुरगणांचितम् । श्रोतव्यं पठितव्यञ्च  
मन्तव्यं भावुकप्रदम् ॥ १०६८ ॥ इति  
श्रीमाहेश्वरकवचं सर्वव्याधिनिपटनम् ।  
यः पठेत्, प्रयतो नित्यं स व्रजेच्छाङ्करं  
पुरम् ॥ १०६९ ॥ इति श्रीमाहेश्वरकवचं  
समाप्तम् ॥ ॐ तत्सत् ॥

रोगी सब प्रकार के रोगों से निःसंदेह मुक्त होता  
है ॥ १०३६-१०६९ ॥

ज्वरमुक्त का लक्षण ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको  
मुखस्य च । क्षयथुश्चान्नलिप्सा च ज्वर-  
मुक्तस्य लक्षणम् ॥ १०७० ॥ देहो लघु-  
र्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करण-  
सौष्टवमव्यथत्वम् । स्वेदःक्षयः प्रकृतिगामि-  
मनोऽन्नलिप्सा कण्डुश्च मूर्ध्नि विगतज्वर-  
लक्षणानि ॥ १०७१ ॥

पसीना निकलना, शरीर की लघुता  
( हलकापन ), शिर में कण्डू ( चुनचुनाहट ),  
मुख का पकना, छींक आना, भोजन की इच्छा  
होना, शरीर में हलकापन, क्लान्ति ( खेद ) का  
दूर होना, मोह और ताप की निवृत्ति, इन्द्रियों  
का सौष्टव, व्यथा का न होना और चित्त की  
प्रसन्नता ये सब ज्वर निवृत्त होने के लक्षण  
हैं ॥ १०७०-१०७१ ॥

ज्वरमुक्त को त्याज्य ।

व्यायामञ्च व्यायञ्च स्नानञ्च कर्म-  
खानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत व्यायञ्च  
बलवान् भवेत् ॥ १०७२ ॥

ज्वर छूटने के अनन्तर जय तक पूर्ण बल  
न आ जाये, तब तक पारश्रम, स्त्रीप्रसङ्ग,  
स्नान और अधिक भ्रमण न करने चाहिये ॥  
१०७२ ॥

आरोग्यस्नानविधि ।

धनिष्ठा श्रवणा स्वाती ज्येष्ठा शतभिषा  
तथा । रविमन्दर्भौमवाराश्चन्द्रोऽथ शुभ-  
वर्जितः ॥ १०७३ ॥ केन्द्रस्थाश्चाशुभाः  
शस्ता व्यतीपातादिवासराः । तियिर्न शस्ता  
प्रतिपत्तृतीया नवमी तथा ॥ १०७४ ॥  
स्नानाय रोगमुक्तानां दशमी च प्रयोदशी ।  
सुषेन्दुगुरुशुक्राणां वाराः स्नाने न शोभनाः ॥

ॐ नमः पञ्चरव्याय आदि धिनिषांग कर  
"ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं" इम मन्त्र से रोगी के ललाट में  
मरम लगाकर शिवजी का पूजन करके धप्र-  
पुत्र ११ वृत्तों से माहेश्वर कवच पढ़ते हुये  
स्वयं मोजन करे यथथा माहेश्वर द्वारा मोजन  
कराये । कवच प्रतिदिन शिवपूजन करके माहेश्वर  
कवच का पाठ या धरणा करे । देगा करने से

रोगान्मुक्तस्य नाश्लेपा रोहिणी भद्रा-  
यिनी ॥ १०७५ ॥

धनिष्ठा, श्रवण, स्वाती, ज्येष्ठा और शत-  
भिषा, इनमें से कोई नक्षत्र हो, रवि, शनि और  
शुक्र इनमें से कोई चार हो। चन्द्रमा पापग्रह  
से रहित हो, और पापग्रह केन्द्र में स्थित हों और  
व्यतीपातादि योग हो ऐसे समय में रोगविनिमुक्त  
पुरुष का स्नान करना शुभ है। प्रतिपत्, तृतीया,  
नवमी, दशमी और त्रयोदशी ये तिथियाँ; बुध,  
चन्द्र, वृहस्पति और शुक्र ये वार; तथा आश्लेपा  
और रोहिणी ये नक्षत्र रोगविनिमुक्त व्यक्ति के  
स्नान के लिये अशुभ हैं ॥ १०७३-१०७५ ॥

तरुण ज्वर में पथ्य ।

स्नानं विरेकं सुरतं कपायं व्यायाम  
मभ्यङ्गनञ्च निद्राम् । दुग्धं घृतं वैदल-  
मामिषं च तक्रं सुरास्वादु गुरुद्रव्यं च  
अन्नं प्रवातं भ्रमणं कपायं चत्यजेत्प्रयत्ना-  
त्तरुणं ज्वरार्त्तः ॥ १०७६ ॥

तरुण ज्वर से पीड़ित रोगी को स्नान, विरेचन  
मैथुन, काथ, व्यायाम, तेल की मालिस, दिन में  
सोना, दूध, दाव मांस द्राघ, मदिरा मीठे  
पतले खाद्य अन्न, हवाखाना, धूमना, क्रोध को  
त्याग देना चाहिये ॥ १०७६ ॥

मध्यज्वर में पथ्य ।

पुरातनाः पट्टिक शालयश्च वार्त्तिकु-  
शोभाजनकारवेल्लम् । वेत्राभ्रमापाठफलं  
पटोलं कर्कोटकं मूलकद्रुतिके च ॥ १०७७ ॥  
मुद्गैर्मसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्ठकैर्वा  
विहितश्चयूपः पाठाऽमृता वास्तक  
तण्डुलीय जीवन्तिशाकानि च काकमाची  
॥ १०७७ ॥ द्राक्षा कपित्थानि च दण्डिमानि  
वैकङ्क तान्येवपचेलिमानि । लघूनि  
सात्स्यानि च भेषजानि पथ्यानि मध्य-  
ज्वरिणाममूनि ॥ १०७८ ॥

पुरानेसाठी के चावल, पुराने शालि चावल, बैंगन,  
सहजना, कोला, बेंतकी कोंपल, अषाढ़ फल, परवल,  
ककोडा, मूली, पोईसाग, मसूर, चना, कुलथ की मोंठ  
इनमें से किसी वस्तु का जूस, पादर, गिलोय,  
बधुआ, चीलाई, जीवती के साग मकोय, दाख, कैथा,  
अनार, कण्ठार्ई के पके फल, हलकी दितकारी  
और पधियाँ मध्य ज्वर में पथ्य हैं ॥ १०७७-  
१०७८ ॥

पुराने ज्वर में पथ्य ।

विरेचनं हर्दनमञ्जनं च नस्यं च  
धूमोऽप्यनुवासनं च । शिरोव्यधः संशमनं  
प्रदेहोऽभ्यङ्गो वगाहः शिशिरोपचारः  
॥ १०८० ॥ एणः कुलिङ्गो हरिणो मयूरो  
लावः शशस्तैत्तिरकुक्कुटौ च । क्रौञ्चः कुरङ्ग  
पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्तककालपुच्छौ  
॥ १०८१ ॥ गवामजायाश्च पयोघृतं  
च हरीतकी पर्वत निर्भराम् । एरण्ड  
तैलं सितचन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि  
प्रेरितानि ॥ १०८२ ॥ ज्योत्स्नामिया-  
लिङ्गनमव्ययं स्याद्गणः पुराण ज्वरिणो-  
द्विताय ॥ १०८३ ॥

विरेचन, वमन, अंजन, नस्य धूम्रपान अनुवासन  
फालबुलवाना संशमन औषधों का प्रयोग प्रलेप  
मालिश, स्नान, शीतलपदार्थों का सेवन, एण  
हरिनभेद चिरौटा, हिरन, मोर, लावा, खरगोश  
तीतर, मुर्ग, क्रीच पक्षी, कुरंग, पृषत (हरिनभेद)  
घतक कालपुच्छ का मांस गौ बकरी का दूध घी, हरद,  
पहाड़ी भरवों का जल, अंडी का तेल, सफेद  
चन्दन, चन्द्रमा की किरणें, अपनी प्रिया का  
आलिंगन ये सब वस्तुएँ पुराने ज्वर के रोगियों  
के लिए लाभदायक हैं ॥ १०८०-१०८३ ॥

ज्वर में अपथ्य ।

अधिवासन कर्माणि रक्तस्रग्वत्त धार-  
णम् । वमिवेगं दन्तकाष्ठं असात्म्यमति  
भोजनम् ॥ १०८४ ॥ विरुद्धान्यत्रपानानि

विदाहीनि गुरुणि च । दुष्टाम्बु सारम-  
म्लानि पत्रशाकं विरूढकम् ॥ १००५ ॥  
नलदाम्बु च ताम्बूलं कालिन्तं वैकुचं  
फलम् । ओडीमत्स्यं च दिव्याकं छत्रकं  
पिष्टवैकृतम् ॥ १००६ ॥ अभिष्यन्दीनि  
चैतानि ज्वरितः परिवर्जयेत् ॥ १००७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरचिकित्सा  
समाप्ता ॥

अधिवासन ( यस्ति कर्म ) लाल फूलों की  
माला, लाल कपड़े पहनना, धमन वेग  
रोकना, आरमा के विपरीत भोजन करना  
परस्पर विरुद्ध अन्नों को मिलाकर खाना, जल  
पैदा करनेवाले पत्रम् भारी पदार्थों का सेवन,  
विगड़े जल, चारपदार्थ, सटाई, पसाके शाक,  
शंकर उगे अन्नों का भोजन, खस का जल, पान,  
तरपून, बड़हल, आंभी, मछली, तिलकी पिट्टी,  
छतीना, पिट्टी के बने पदार्थ, घी, कचौरी आदि  
अभिष्यन्दी पदार्थ दही आदि का सेवन ज्वर  
रोगी को त्याग देना चाहिए ॥ १००४-१००७ ॥

इति सरयूवसादप्रिपाठिकृतायां भैषज्यरत्ना-  
वल्यां रत्नप्रभाष्यायां ध्याएपायां  
ज्वराधिकारः समाप्तः ॥

### ज्वरातीसाराधिकारः ।

पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसारस्तथातिसारे  
यदि वा ज्वरः स्यात् । दोषस्य दूप्यस्य  
समानभावज्वरातिसारः कथितो भिप-  
ग्निः ॥ १ ॥ ज्वरानिमारयोरुक्तमन्योन्यं  
भेपजं पृथक् । न तन्मिलितयोः कुट्या-  
दन्योन्यं वद्धेयेद्यतः ॥ २ ॥ प्रायो ज्वरहरं  
भेदिस्तम्भनन्त्वनिमारनुत् । अतोऽन्योन्य-  
विरुद्धत्वाद्भेदनं तत्परस्परम् ॥ ३ ॥ ज्वरा-  
तीमारिणामादौ कट्यास्रहृन्पाचने । प्राय-

स्तावामसम्बन्धं विना न भवतो यतः ॥ ४ ॥  
ज्वरातिसारे पेयादिक्रमः स्याल्लङ्घनेहितः ।  
ज्वरातिसारी पेयां वा पिवेत्साम्नां शृतानं  
नरः ॥ ५ ॥

यदि पित्तज्वर में पित्तजन्य अतिसार अथवा  
अतिमाररोग में ज्वर उत्पन्न होवे, तो वहाँ  
दोष और दूप्य की सम्मानता होने पर इस मिलित  
रोग को ज्वरातिसार कहते हैं । केवल ज्वर अथवा  
केवल अतिसार में जो-जो औषध निर्दिष्ट हैं  
ज्वरातिसार में उन्हीं औषधों को प्रयोग करना  
उचित नहीं । कारण यह कि ज्वरनाशक औषध  
प्रायः भेदी तथा अतिसारनाशक औषध धारक  
होते हैं । अतः ज्वरनाशक औषध सेवन से  
अतिमार की वृद्धि और अतिसारनाशक औषध  
सेवन से ज्वर की वृद्धि होती है । ज्वरातिसार  
रोगी को पहिले लंघन कराकर पाचक औषध  
देना चाहिये । कारण यह कि आम रस का घिना  
मग्गन्ध हुये ज्वर अथवा अतिसाररोग प्रायः  
उत्पन्न नहीं होते । लंघन और पाचन द्वारा  
रस का परिपाक होने से रोग का यत्न क्षीण  
हो जाता है । ज्वर में पहिले लंघन कराना  
आवश्यक है । लंघन के अनन्तर सट्टे पदार्थ  
मिलाकर बनाई हुई पेया मयङ्ग और ववागू  
आदि पथ्य देने चाहिये ॥ १-५ ॥

होवेरादि ।

होवेरातिविषामुस्तधिल्वनागरधान्यकैः ।  
पियेत् पिन्ध्राविबन्धघ्नं शूलद्रोषामपाच-  
नम् ॥ सरकं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाय  
विज्वरम् ॥ ६ ॥

मुग्गन्धाला, अमीम, नागरमोषा, धंलगिरी,  
गोंट और धनिया ये कुछ मिलकर २ तोले हों,  
३२ तोले जल में पकाकर ४ तोले जल शेष  
रहने पर पानकर पित्राना आदिवे । इम काप  
का पान करने में मयङ्ग का पिठनाइट, आगदोष,  
६४ कर थोड़ा-थोड़ा मयङ्ग का निकम्मा और मुग्ग  
पथ्य होने है । इम काप में सरक सपका



ज्वररहित तथा रज्युक्त अतिसाररोग शीघ्र शान्त होता है ॥ ६ ॥

उशीरादि ।

उशीरं बालकं मुस्तं धन्याकं विज्यभेष-  
जम् । समङ्गा धातकी लोध्रं विल्वं दीपन-  
पाचनम् ॥ ७ ॥ हन्त्यरोचकपिच्छामवि-  
बन्धं सात्तिपेदनम् । सशोणितमतीसारं  
सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ८ ॥

खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनिया, सोंठ, लज्जालू, धाय के फूल, लोध्र और बेलगिरी ये कुल द्रव्य मिलकर २ तोले हों। इनको ३२ तोले जल में सिद्ध करे, चार तोले शेष रहने पर छानकर पान करे। इस काथ का सेवन करने से ज्वरयुक्त अथवा ज्वररहित रज्जातिसार, और उदर की पीड़ा, मल की चिकनाहट, आम और विबन्ध नष्ट होते हैं। यह दीपन और पाचन है ॥ ७ ८ ॥

गुह्यच्यादि ।

गुह्यच्यतिविपा धान्यशुण्ठीनिलान्द-  
वालकैः । पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीर-  
पद्मकैः ॥ ९ ॥ कपायः शीतलः पेयो ज्व  
रातीसारशान्तये । हल्लासारोचकच्छर्दि  
पिपासादाहशान्तिकृत् ॥ १० ॥

गिलोय, अतीस, धनियरों, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पादल, चिरायता, कुड़े की छाल, लाल चन्दन, खस और पदमाल ये कुल मिलकर २ तोले जल ३२ तोले, शेष ४ तोले। इस काथ का सेवन करने से ज्वरा तिसार, उबकाई आना, अर्हाच, वमन, प्यास लगना और दाह ये सब नष्ट होते हैं ॥ ९-१० ॥

पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूली बलाविल्वगुह्यचीमुस्तनागरैः ।  
पाठाभूनिम्बहीवेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥  
॥ ११ ॥ हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोषं  
वर्मि तथा । सशूलोपद्रवं कासं रवासं  
हन्यात् सुदारुणम् ॥ १२ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोपुरु, सरेंटी, बेल की छाल, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाई, चिरायता, सुगन्धवाला, कुड़े की छाल और इन्द्रजीं ये कुल मिलकर २ तोले, जल ३२ तोले, शेष ४ तोले। इस काथ का सेवन करने से सब प्रकार के अतिसार और ज्वर निवृत्त होते हैं। तथा वमन, शूल, कास, दारुण रवास आदि उपद्रव दूर होते हैं ॥ ११ १२ ॥

पञ्चमूलद्वय की दोषभेद से ग्रहणविधि

पञ्चमूली तु सामान्याद् योज्या पैते-  
कनीयसी । महती पञ्चमूली तु वातरश्ले-  
ष्मातुरे हिता ॥ १३ ॥

जय सामान्य 'पञ्चमूल' शब्द पदा हो, तब पित्तविकार में स्वल्प पञ्चमूल और वातरश्लेष्म-  
विकार में बृहत्पञ्चमूल का ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥

बृहत्पञ्चमूर्यादि ।

पञ्चमूली शृङ्गवेरशृङ्गाटकञ्च\* टङ्ग-  
नम् । जम्बूदाडिमपत्रञ्च बला बालं गुह्य-  
चिका ॥ १४ ॥ पाठा निल्वं समङ्गा च  
कुटजत्वक् फलं तथा । धान्यकं धातकी-  
काथ विपाजीरकसंयुतम् ॥ १५ ॥ पिबेत्  
ज्वरातिसारे च सरक्त्रे वाप्यरक्तके । अपि  
योगशतैस्त्यक्त्रे चासाव्ये सर्परूपके ॥ १६ ॥

बेलगिरी, सोनापाठा, खम्भारी, अरनी, पादल, सोंठ, सिघाड़ा, जलपीपल, नागरमोथा, जामुन के पत्ते, अनार के पत्ते, सरेंटी, सुगन्ध-  
वाला, गिलोय, पाई, बेलगिरी, लज्जालू, कुड़े की छाल, इन्द्रजीं और धनियरों, धाई के फूल ये कुल मिलकर २ तोले हों, ३२ तोले जल में पकाकर ४ तोले जल शेष रहने पर छानकर उसमें २ माशे अतीस का चूर्ण और २ माशे जीरा का चूर्ण मिलाकर पान करने से सब प्रकार के रज्जसहित और ज्वररहित असाध्य अतिसाररोग नष्ट होते हैं ॥ १४-१६ ॥

शुण्ठीदशमूल ।

दशमूलीकपायेण मापैकं नागरंपिवेत् ।  
ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ १७ ॥

जिस ग्रहणीरोग में शोथ ( सूजन ) हो  
तथा ज्वरातिसार हो उसमें दशमूल के काढ़े में  
एक माशे सोंठ पीसकर ऊपर से मिलाकर  
( प्रचेप देकर ) सेवन कराना चाहिए ॥ १७ ॥

धान्यशुण्ठी ।

धन्याकं विश्वसयुक्तमामघ्नं वह्निदीप-  
नम् । वातश्लेष्मज्वरहरं शूलातीसारना-  
शनम् ॥ १८ ॥

ज्वरातीसारे प्रथमतो धान्यशुण्ठीदेया ।

एक-एक तोला धनियाँ और सोंठ लेकर  
आध सेर जल में पकावे, एक छटाक जलशेष  
रहने पर छानकर रोगी को पिलाना चाहिये ।  
इसका सेवन करने से वातकफज्वर और शूल-  
युक्त अतिसार नष्ट होता है ॥ १८ ॥

विल्वपञ्चक वाथ ।

शालपर्णी पृष्ठपर्णी वला विल्वं सदा-  
डिमम् । विल्वपञ्चकमित्येतत् क्वाथं कृत्वा  
मदापयेत् ॥ अतीसारे ज्वरे छर्द्या शस्यते  
विल्वपञ्चकम् ॥ १९ ॥

ररिवन, पिठवन, खरंटी, बेलगिरी,  
अनार के फल का छिलका इन सब औषधों का  
वाथ पीने से अतिसार, ज्वर और घमन की  
शान्ति होती है ॥ १९ ॥

ज्वरातिसार में सिद्धयोगद्वय ।

वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गज-  
पिप्पली । श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं चिल्वं  
पाठा यमानिका ॥ २० ॥ द्वावप्येतौ सिद्ध-  
योगौ श्लोकार्धेनाभिभाषितौ । ज्वरा-  
तिसारशमनो विशेषादाहनाशनौ ॥ २१ ॥

हृदयनी, देपदार, कटुकी, गजपीपल और

गोखरू, पिप्पली, धनियाँ, बिल्व, पाठा,  
अजवायन, ये दोनों ही योग ज्वरातिसार तथा  
दाह को नष्ट करनेवाले हैं ॥ २०-२१ ॥

पाठादिकाथ ।

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तापपटिका-  
मृताः । जघन्त्याममतीसारं ज्वरं च  
समहौषधाः ॥ २२ ॥

पाठा, इन्द्रजौ, चिरायता, मोथा, पित्त-  
पापड़ा, गिलोय उपर्युक्त द्रव्यों के काढ़े में सोंठ  
के चूर्ण को ऊपर से मिलाकर देने से आम-  
ज्वरातिसार दूर होता है ॥ २२ ॥

कलिङ्गादिशुटिका ।

कलिङ्गविल्वनिम्बात्रकपिप्थं सरसाञ्ज-  
नम् । लाक्षां हरिद्रे हीवेरं कदफलं शुक्-  
नासिकाम् ॥ २३ ॥ लोध्रं मोचरसं शङ्खं  
धातकीं वटशुङ्गकम् पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन  
वटिका मापसम्मिताः ॥ २४ ॥ छाया-  
शुष्कान् पिवेत् क्षिप्रं ज्वरातीसारशान्तये ।  
रक्तप्रसाधना ह्येतेशूलातीसारनाशनाः ॥ २५ ॥

इन्द्रजौ, बेलगिरी, नीम की छाल, आम  
की छाल, कैप की छाल, रसौत, लाज, हरदी,  
दारहरदी, सुगन्धबाला, कायफल, सोनापाठा  
की छाल, लोध्र, मोचरस, शङ्खभस्म, घाय के  
फूल और बड़ के अंकुर ; इन सब द्रव्यों को  
समभाग लेकर चावल के धोवन के साथ पीस-  
कर, एक-एक तोला की घटी बनाकर छाया में  
शुष्क कर लेवे । इसका सेवन करने से ज्वरा-  
तिसार, रक्तप्रसाधन और शूलयुक्त अतिसार  
निवृत्त होते हैं । मात्रा २ माशा ॥ २३-२५ ॥

व्योपादिचूर्ण ।

व्योपं वत्सकवीजाञ्च निम्बभनिम्ब-  
मार्कवम् । चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वामिति  
विपां समाम् ॥ २६ ॥ श्लक्ष्णचूर्णोक्तं  
सर्वं तत्तुल्या वत्सकत्वचः । सर्वभेद

संयोज्य पिपेत्तएडुलवारिणा ॥ २७ ॥  
सत्तौद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेपजम् ।  
तृष्णारुचिमशमनं ज्वरातीसारनाश-  
नम् २८ प्रमेहं ग्रहणीदोषं गुल्मं स्त्रीदानमेव  
च । कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्च  
विनाशयेत् ॥ २९ ॥

सर्वचूर्णसमं कुटजमूलपलकलचूर्णं  
मिलितचूर्णमनुरूपं चतुर्गुणेन तएडुल-  
जलेन पिबेत् । अथवा द्विगुणेन मधुना  
लिहेत् ।

सोंद, मिरिच, पीपर, इन्द्रजौ, नीम की  
छाल, चिरायता, भोंगरा, चीता कुकी, पाद,  
दाण्डरदी और अनीम प्रत्येक एक तोला, कुड़े  
की छाल १३ तोले ; इन सब औषधों को  
एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनाये । इसकी मात्रा  
१ मास से ६ मासे तक चौगुने च वल के  
धोवन के साथ अथवा दूने शरद के साथ सेवन  
करना चाहिये । यह पाचक और प्राही है ।  
इसका सेवन करने से ज्वरातिसार, प्रमेह, ग्रहणी,  
गुल्म, प्रीहा, कामला, पाण्डुरोग और शोथ  
ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ २६-२९ ॥

बृहत्कुटजावलेह

कुटजत्वकपलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
तेन पादावशेषेण शर्करापलत्रिशक्तिम् ॥ ३० ॥  
दद्यात्पाकत्वा लेहपाके चूर्णानीमानि निक्षि-  
पेत् । पाठा समद्गा विल्वञ्च धातकी-  
मुस्तकं तथा ॥ ३१ ॥ दाडिमातित्रिपां  
लोभ्रं शाल्मलीवेष्टसर्जकम् । रसाञ्जनं धान्य-  
कञ्च उशीरं बालकं तथा ॥ ३२ ॥ प्रत्येक-  
मेपां कर्पाशं निक्षिपेत् पाकविद्रिपक् । शीते  
च मधुनस्तत्र कुडवार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ ३३ ॥  
सर्वरूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ।  
रक्षति ज्वरं शोथं वमिमशोगदं तृषाम् ।

अम्लपित्तं तथा शूलमग्निमान्द्यं निय-  
च्छति ॥ ३४ ॥

अतीसारे ग्रहण्याञ्च दृष्टफलोऽयम् ।

कुड़े की छाल ५ सेर लेकर २५ सेर ४८  
तोला जल में पकाये । ६ सेर ३२ तोला, जल  
शेष रहने पर छानकर, उसमें १ सेर कच्ची खाँड़  
मिलाकर पकाये । एककर धबलेह के समान  
गाढ़ा होने पर उसमें नीचे लिखी औषधों का चूर्ण  
मिलाकर उतार लेवे । प्रचेप के द्रव्य-पाद,  
लजालू, बेलगिरी, धाय के फूल, नागरमोथा,  
अनार के फल का छिलका, अतीस, लोध,  
मोचरस, राल, रसौत, धनियाँ, लस और  
सुगन्धबाला प्रत्येक एक तोला । पाक के शीतल  
होने पर ८ तोले मधु मिलाकर घी के चिकने  
पात्र में रख देवे । इसका सेवन करने से सब  
प्रकार के अतिसार, ग्रहणी, रक्तवाय, ज्वर,  
शोथ, वमन, बवासीर, तृषा, अम्लपित्त, शूल  
और अग्निमान्द्य ये सब रोग नष्ट होते हैं ।  
मात्रा—६ मासे से १ तोला । अनुपान—चावल  
का धोवन अथवा बकरी का दुग्ध ॥ ३०-३४ ॥

अतिसार और ग्रहणी रोग के लिये यह अनु-  
भूत औषध है ।

तंत्रान्तरोरु बृहत्कुटजावलेह ।

कुटजत्वक पलशतं जलद्रोणे विपा-  
चयेत् । तेन पाटावशेषेण शर्करामस्थकं-  
पचेत् ॥ ३५ ॥ ततो लेहे घनीभूते चूर्णा  
नीमानि दापयेत् । लज्जं जीरकं मुस्तं  
धातकी विल्वपालकम् ॥ ३६ ॥ एला  
पाठा त्वचं शृङ्गी जातीफलमधूरका ।  
शक्रकातिविपाचारं काकोली च रसाञ्जनम् ।  
३८ ॥ शाल्मलीवेष्टकं यष्टी समद्गा रक्त-  
चन्दनम् । वटशुङ्गं खादिरञ्च जम्बुवाघ्र-  
पल्लवं तथा ॥ ३८ ॥ एषामन्नसमं चूर्णं  
प्रक्षिपेत् पाकविद्रिपक । सिद्धेऽवतारिते  
शीते मधुनः कुडवं न्यसेत् ॥ ३९ ॥ तोल-

कार्दं लिहेत्तु चानुपानविधिं शृणु ।  
 अनुपानं प्रदातव्यं दधिमस्तु त्वजापयः ४०  
 चम्पककदलीमूलस्वरसं कर्पमानतः । भक्त-  
 येत् प्रातरुत्थाय संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥४१॥  
 रोगं रक्तातिसारञ्च चिरकालसमुद्भवम् ।  
 पक्वापकमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥  
 शोथातीसारसहितं ज्वरमाशु व्यपोहति ४२  
 अन्यत्रायं ग्रहणीगजेन्द्रावलेहः ।  
 आमरक्तातिसारे केवले वातिसारे ग्रहण्या-  
 ष्चदृष्टफलोऽयम् ।

कुचे की छाल २ सेर लेकर २२ सेर ४८  
 तोला जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोला जल  
 शेष रहने पर छानकर उसमें ६४ तोला शकर  
 ढालकर पकावे । तदनन्तर घबलेह के समान्  
 गाढ़ा होने पर नीचे लिखी औषधों का चूर्ण  
 मिलाकर उतार लेवे । शीतल होने पर १६  
 तोले मधु मिलाकर रस देना चाहिये । प्रक्षेप  
 के द्रव्य जैसे लवङ्ग, जीरा, नागरमोथा, घाय के  
 फूल, बेलगिरी, सुगन्धबाला, छोटी इलायची के  
 दाने, पाद, दालचीनी, काकड़ाशुद्धी, जायफल,  
 सोआ, इन्द्रजी, अतीम, यवचार, काकीली,  
 रसौत, मोचरस, मुलेठी, लजालू, लालचन्दन,  
 बड़ के अंकुर, खैर, जामुन की पत्तियाँ और आम  
 की पत्तियाँ प्रत्येक एक तोला । इसकी मात्रा ६  
 मासा । अनुपान दही का पानी, बकरी का दूध,  
 चम्पा के मूल का स्वरस तथा केला के मूल का  
 जल । इसका प्रातःकाल सेवन करना चाहिए ।  
 इसका सेवन करने से संग्रहणी, चिरकाल का रक्ता-  
 तिसार, पक्व अथवा अपक्व, शूलपुत्र अनेक वर्ष के  
 अतिसार, शोथ और अतिसार से मुक्त ज्वर ये सब  
 रोग शीघ्र भट्ट होते हैं । मात्रा ६ मासा से १  
 तोला तक ॥ ३२-४२ ॥

अथ ग्रन्थ में इस ( शहरकुटजावलेह ) को  
 ग्रहणीगजेन्द्रावलेह करते हैं ॥ आम रक्ता-  
 तिसार में, ग्रहणी में और केवल अतिसार में भी  
 अनुभूत किया हुआ है ॥

## अथ रसप्रयोगः ।

सिद्धप्राणेश्वर रस ।

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेदभागमन्यच्च भाग्नि-  
 कम् । सर्जितङ्गयश्चत्ताराः पञ्चैव लवणानि  
 च ॥ ४३ ॥ वराव्योपेन्द्रवीजानि द्विजी-  
 राग्निनयमानिकः । सहिङ्गवीजसारश्च शत-  
 पुष्पा सुचूर्णिता ॥ ४४ ॥ सिद्धप्राणेश्वरः  
 सूतः प्राणिनां प्राणदायकः । वल्लकं भक्त-  
 येदस्य नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ ४५ ॥ उष्णो-  
 दकानुपानञ्च दद्यात्तत्र पलत्रयम् । ज्वरा-  
 तिसारेऽतिसृतौ केवले वा ज्वरेऽपि च ॥ ४६ ॥  
 घोरे त्रिदोषजे रोगे ग्रहण्यामसृगामये ।  
 वातरोगे च शूले च शूले च परि-  
 णामजे ॥ ४७ ॥

गन्धक, पारा और अभ्रक ४ मासे, सर्जीखार,  
 सोहागा की खील, यवचार, पाँचों नमक, त्रिफला,  
 त्रिकटु, इन्द्रजी, सफेद जीरा, काला जीरा, चीता,  
 अजवाइन, हाँग, वायविडंग और सोआ प्रत्येक  
 एक मासा; इनको एकत्र जल के साथ खरल करके  
 २ रत्नी की गोलियाँ बना लेवे । अनुपान पान  
 का रस । इम औषध का सेवन करके १२ तोला  
 उष्ण जल पीना चाहिये । इम औषध के सेवन  
 करने से ज्वरानिसार, अतीसार, ज्वर, रक्तचिकार,  
 वातप्याधि, शूल, परिणामशूल और ग्रहणीरोग  
 शान्त होते हैं ॥ ४३-४७ ॥

कनकसुन्दर रस

हिंगुलं मरिचं गन्धं पिप्पली टङ्गनं  
 विषम् । कनकस्य च वीजानि समांशं  
 विजयाद्रवैः ॥ ४८ ॥ मर्दयेत् याममात्रन्तु  
 गुञ्जामात्रा वटीकृता । भक्त्याद ग्रहणीं  
 हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥ ४९ ॥ अग्नि-  
 मान्यं ज्वरं तीव्रमतीसारञ्च नाशयेत् । पथ्यं  
 दध्योदनं दद्याद्यत्रा तक्रादनं चरेत् ॥ ५० ॥

दिग्ज, मरिच, गन्धक, दोही चीनी, मोहागा दूया हुआ । विष चीर घनूर के बीज समभाग इन सब चीपों का पदत्र कर भाग को चीनियों के रस में एक पदर पर्यन्त गरम करके एक पदरती की गोखिया बना भेजे । इनका सेवन करने में प्रहणी, अग्निमान्द्य चीर घोर अतिमार रोग नष्ट होते हैं । पाच दही भाग कपया तक्र चीर भाग देना चाहिये ॥ ४८-५१ ॥

गगनमुन्दर रस ।

टङ्गनं टरुदं गन्धमध्ररञ्च गमं गमम् ।  
दृग्घिकाया रमेनैव भावयेण दिनप्रथम् ॥  
५१ ॥ द्विगुञ्जं मधुना देयं श्रोतमर्जस्य  
पक्षकम् । विविधनागपेद् रक्षंज्वरातीमार-  
मुन्धगम् ॥ ५२ ॥ पथ्यां तक्रं पयददाग-  
मामशूलं विनाशयेत् । अग्निटदिकरोषेप  
रसो गगनमुन्दरः ॥ ५३ ॥

मोहागा की सीस, दिग्ज, गन्धक चीर अन्नकभ्रमः इन सब द्रव्यों को गगान परिमाण में लेकर दूधिया के रस में ३ दिन पर्यन्त माल करके दो दो रती की गोखिया बनावे । २ रती मकेदू राल का पूर्ण चीर मधु के साथ इस रस का सेवन करने में विविध प्रकार के ज्वरातीमार चीर रक्षातीमार नष्ट होते हैं । यह अग्निवर्धक तथा आमशूलनाशक है । रोगी को भोजन के लिये तक्र कपया पदती का दूध देना चाहिये ॥ ५१-५३ ॥

कनकप्रभा घटी ।

सुवर्णबीजं मरिचं मरालपादं कणा-  
टङ्गनकं विपञ्च । गन्धं जयाद्विदिवसं  
विमर्द्यगुञ्जामाणां वटिकां विदध्यात् ॥ ५४ ॥  
घोरातिसारं ग्रहणीं ज्वराग्निमान्द्यनिहन्त्यात्  
कनकप्रभेषम् । दध्योदनं पथ्यमनुप्यगदारि  
मांसं भजेत्तिरिलावकानाम् ॥ ५५ ॥

काफे घनूर के बीज, मरिच, हंसपत्री ( हंसराज ), पीपरि, मोहागा कृला हुआ, विष

चीर गन्धक समभाग इन सब चीपों के लेकर भाग की पत्तियों के कर्प में गरम करके एक एक रती की गोखिया बना भेजे । इन कनकप्रभा घटी का सेवन करने में घोर अतिमार, प्रहणी, उष्ण चीर अग्निमान्द्य नष्ट होता है । पाच दही-भाग, मीठस जय चीर तीतर तथा मया का मांस ॥ ५४-५५ ॥

गृत्तमन्त्रीयन रस ।

रमगन्धौ मर्मां ग्राह्यां मृतपादं विपं  
त्तिपेन् । मर्मतुन्यं मृतश्चाभ्रं मर्द्य  
धुन्तरजैर्द्रवैः ॥ ५६ ॥ सर्पाच्याश्च द्रवैर्यामं  
रुपायेणाथ भावयेन् । धातक्यातिविषा  
मुन्तं शुण्ठीतीरकरवालकम् ॥ ५७ ॥  
यमानी धान्यकं चिल्वं पाठा पथ्या कणा-  
न्वितम् । कुटजस्य त्वचं बीजं कपित्थं  
पालदाटिमम् ॥ ५८ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्रं  
म्यात् कुट्टितं काथयेज्जलैः । चतुर्गुणं जलं  
दद्या यावत्पादावशेषितम् ॥ ५९ ॥ अनेन  
त्रिदिनं भाव्यं पूर्वोक्तं मर्दितां रसम् । रुद्ध्वा  
तटालुकायन्त्रे क्षणं मृद्गग्निना पचेत् ॥  
६० ॥ मृत्तसडीरनो नाम द्विगुञ्जाममितो  
रसः ॥ दातव्यस्त्वनुपानेन चासाध्यमपि  
साधयेत् ॥ ६१ ॥ षट्प्रकारमतीसारं  
साध्यासाध्यं जयेद्घ्रुवम् । नागरातिविषा  
मुन्तं देवदारुकणा वचा ॥ ६२ ॥ यमानी  
पालकं धान्यं कुटजत्वक् हरीतकी । धात-  
कीन्द्रयवा चिल्वं पाठा मोचरसं समम् ।  
चूर्णितं मधुना लोहमनुपानं सुखा-  
वहम् ॥ ६३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरा-  
तीसाराधिकारः ।

पारद ४ तोले, गन्धक ४ तोले, मीठा विष १ तोला, अन्नक भ्रम १ तोला, प्रथम उपयुक्त

द्रव्यों को धतूरे के रस से खूब घोंटे तत्पश्चात् रास्नाकाथ की सात भावना दे। धाय के फूल, अतीस, मोथा, सोंठ, जीरा, गन्धवाला, अजवायन, धनियाँ, बिल्वफल की गिरी, पाठा, हरड़, पीपल, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, कैथ, कच्चा धनार, प्रत्येक द्रव्य दो तोले, चौगुने पानी के साथ पकावे। जब चौथाई शेष रह जावे तब पूर्वोक्त रस की तीन दिन तक भावना दे, इसके बाद बालुका-यन्त्र में कुछ देर पकावे। मात्रा २ रत्ती, ज्वार-तिमार का नाश करनेवाला यह रस है। सोंठ, अतीस, मोथा, देवदारु, पिपली, घच, अजवाइन गन्धवाला, धनियाँ, कुटज की छाल, हरड़, धाय के फूल, इन्द्रजौ, बिल्व, पाठा, मोचरस इनको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बना ले और शहद के साथ १ मासा भर यतौर अनुपान के सेवन करे ॥ ५६-६३ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिवरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां रत्नप्रभाष्यायां व्याख्यायां  
ज्वरतीसाराधिकारः ।

### अथ स्त्रीहयकृदधिकारः ।

यमानिकादि चूर्णम् ।

यमानिकाचित्रकयावशूकपंडग्रन्थिदन्ती-  
मगधोद्भवानाम् । स्त्रीहानमेतद्विनिहन्ति  
चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥

अजवाइन, चीता, यवचार, पिपरामूल, दन्ती की जड़ और छोटी पीपरि इन औषधों को समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इसकी मात्रा १ मासे से ३ मासे तक। अनुपान—उष्णजल, शही का पानी, सुरा अथवा आसव। इस चूर्ण का सेवन करने से स्त्रीहारो ग नष्ट होता है ॥ १ ॥

स्त्रीहनायक मुष्टियोग ।

तालपुष्पोद्भवः क्षारः सगुडः स्त्रीह-  
नाशनः ॥ २ ॥ चित्रस्य मूलकं पिष्ट्वा  
कृत्वा तु वटिकात्रयम् । कदलीपकमध्येन

भक्षणात् स्त्रीहनाशनम् ॥ ३ ॥ गुडैश्चिं-  
त्रकमूलं वा रजन्यर्कदलं तथा ॥ धातकी-  
पुष्पचूर्णं वा प्रत्येकं स्त्रीहनाशनम् ॥ ४ ॥  
रसेन जम्बीरफलस्य शहनाभीरजः पीत-  
मशेषमेव । गुञ्जाद्वयं संशमयेत्सशूलं  
स्त्रीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ ५ ॥

ताल के पुष्प का अन्तर्धूम भस्म करके इसके चार को गुड़ के साथ सेवन करे। इससे प्लीहा नष्ट होती है।

चीता के मूल को जल में पीसकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे : इनमें से ३ गोलियाँ पके हुये केला के फल के मध्य में रसकर सेवन करने से प्लीहा नष्ट होती है।

चीते का मूल, हल्दी, आक की पत्ती और धाय के फूल; इनमें से प्रत्येक औषध का चूर्ण पुराने गुड़ के साथ सेवन करने से स्त्रीहा को नष्ट करता है।

शहदी नाभि का भस्म २ रत्ती, जभीरी नीम् के रस के साथ पीने से कूर्म ( कछुआ ) के समान कठोर स्त्रीहा शीघ्र शान्त होती है ॥ २-५ ॥

पिप्पली किशुकक्षारभावितान् सम्प्रयो-  
जयेत् । गुल्मसहोद्भवान् रक्तिदीपनीश्च रसा-  
यनीम् ॥ ६ ॥

पीपल को पलाशचार से भावना देकर यथायोग्य मात्रा में प्रयोग में लाने से गुल्म, स्त्रीहा ( तिल्ली ) प्रभृति रोग दूर होते हैं। यह रसायन है और अग्नि को दीपन करता है। मात्रा ४-६ रत्ती ॥ ६ ॥

पातव्यो युक्तिः क्षारः क्षीरेणोदधि-  
शुक्तिजः । पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः  
स्त्रीहशान्तये ॥ ७ ॥

दूध के साथ गुञ्जाशुद्धि भस्म २ रत्ती प्रमाण सेवन करने से या पीपल दूध के साथ सेवन करने से स्त्रीहा रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

मुष्टियोग ।

रोहीतकागयकाथः कणाक्षारसम-  
न्वितः ॥ ८ ॥

रोहिडा की छाल या हरद के काढ़े में पीपल  
का चूर्ण या जवारार ऊपर से मिलाकर पीने  
से प्रीहारोग शान्त होता है ॥ ८ ॥

शोभाञ्जनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निक्णा-  
न्वितम् । पलाशक्षारयुक्तं वा यक्षारं  
प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

सहजने की छाल के काढ़े में सेंधा नमक,  
चित्रक तथा पीपलका प्रसेप ( ऊपर से मिलाना )  
देकर सेवन करने से प्रीहा ( तिहरी ) रोग शान्त  
होता है । इसी तरह पलाशक्षार और यक्षार को  
परापर-परापर मिलाकर ४-६ रत्नी प्रमाण से प्रयोग  
में लाने से यदी हुई तिहरी भी शान्त होती है ॥ ९ ॥

अर्कलवण ।

अर्कपत्रं सलप्रगमन्तर्धूमं दहेन्नरः ।  
मस्तुना तत् पिबेत् क्षारं स्नीहगुल्मोदरा-  
पटम् ॥ १० ॥

आक की पत्तियाँ और सेंधानमक एकत्र कर,  
अन्तर्धूम भस्म करके ४-६ रत्नी दही के पानी के  
साथ सेवन करने से प्लीहा, गुल्म और उदररोग  
शीघ्र नष्ट होते हैं । मात्रा १ मासा ॥ १० ॥

विडङ्गादि योग ।

विडङ्गाज्याग्निसिन्धुतथशक्तून् टग्ध्वा  
वचान्नितान् । पिबेत् क्षीरेण संचूर्ण्य  
गुल्मस्नीहोदरापटान् ॥ ११ ॥

वायविडङ्ग, घी, चित्रक, सेंधानमक, जी का  
सत्तू, वच इन कुल द्रव्यों को इकट्ठा कर और  
मिलाकर अन्तर्धूम भस्म करके दूध के साथ  
२ मासा प्रमाण सेवन करने से गुल्म, प्लीहा  
( तिहरी ) उदर रोग आदि शान्त होते हैं ॥ ११ ॥

भल्लातकादि मोदक ।

भल्लातकामयाजाजी गुडेन सह मो-

दकः । सप्तरात्रान्निदन्त्याशु स्नीहानमति-  
दारुणम् ॥ १२ ॥

गुद किया हुआ भिलावा, हरद, जीरा,  
इनमें घिघि के अनुमार गुद मिलाकर लट्टू बनावे ।  
रोगी को लगातार एक सप्ताह तक सेवन कराने से  
अत्यन्त कष्टदायक प्लीहा ( तिहरी ) भी  
शान्त होती है और इसे दूध के साथ भी सेवन  
कराना चाहिए । मात्रा १ मासा ॥ १२ ॥

यकृतनाशक योग ।

स्नीहोद्विष्टां क्रियां सर्वां यकृन्नाशाय  
योजयेत् । टध्ना भुक्त्वतो वामवाह्रुमभ्ये  
शिरां भिषक् ॥ १३ ॥ विध्येत् स्नीहविना-  
शाय यकृन्नाशाय टक्षिणे । स्नीहानंमर्दये-  
द्राढं दुष्टरक्तं भवर्चयेत् ॥ १४ ॥

टध्ना भुक्त्वतो वामवाहोः कूर्परसन्धौ  
अभ्यन्तरतः शिरां विध्येत् ।

लशुनं पिप्पलीमूलमभयाञ्चैव भक्ष-  
येत् । पिबेद्गोमूत्रगण्डूपं स्नीहोरोगनिवृत्तये  
॥ १५ ॥ स्नीहानं यकृतं वृद्धं मूत्रस्वेदैरुपाच-  
रेत् । स्नीहजित् शरपुङ्खायाः कल्कस्तक्रेण  
सेवितः ॥ १६ ॥

यकृत्रोग की प्रीहा में कही हुई चिकित्सा  
करनी चाहिये । प्रीहारोग में रोगी को दही के  
साथ भोजन कराकर बायें हाथ की कफोणि-  
रान्धि ( केहुनी ) की भीतरी शिरा को विद्ध  
कर रश्मोचण ( फसद खोलकर ) करना  
चाहिये । यकृत्रोग में दाहिने हाथ की केहुनी  
की भीतरी शिरा को विद्ध कर रश्मोचण करावे  
( राधिर निकाल दे ) । प्रीहा को भली भाँति  
मलकर वहाँ से दूषित रश्म निकाल देने से प्रीहा  
नष्ट होती है ।

लहसुन, पिपरामूल और हरं इनका चूर्ण  
बनाकर चुल्लू भर गोमूत्र के साथ सेवन  
करने से प्रीहारोग नष्ट होता है । यदी हुई प्रीहा  
और यकृत में गोमूत्र का स्वेद देने से अत्यन्त

लाभ होता है । शरफोंका को पीसकर तक्र १ के साथ पीने से प्रीहारोग नष्ट होता है । चूर्ण की मात्रा ३ मासा ॥ १३-१६ ॥

माणकादि गुटिका ।

माणमार्गामृता वासा स्थिरासैन्धवचित्रकम् । नागरं तालपुष्पञ्च प्रत्येकञ्च त्रिकार्पिकम् ॥ १७ ॥ ॥ विटसौवर्चलक्षारपिप्पल्यश्चापि कार्पिकः । एतच्चूर्णकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढकेपचेत् ॥ १८ ॥ सान्द्रीभूते गुटी कुट्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् । यकृतस्त्रीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः । योग परिकरो नाम्ना ह्यग्निसन्दीपनः परः ॥ १९ ॥

एतत्सर्वचूर्णं प्रक्षिप्य गोमूत्राढके पचेत् । ततो गुडवत् पाके शीते च मधु प्रक्षिप्य गुटिका काय्या । परिकरो विरेकस्तत्कारकत्वात् परिकरः विरेककारीत्यर्थः । उक्तं हि “भजेत् परिकरः सह समारम्भविरेकयो” इति ।

पुराना मानकन्द, अपामार्ग ( चिरचिरा क मूल की भस्मजन्य चार ), गुरुच, अरुसा की जड़, शालपर्णी, सेंधानमक, चीता, सोंठ ताल का फूल प्रत्येक ३ तोले, विटनोन, सौवर्चलनमक, यवक्षार और पीपरि प्रत्येक एक तोला, इन सब औषधों का एकत्र चूर्ण बनाकर ६ सेर ३२ तोला गोमूत्र में घोलकर पाक करे । जब पककर गाढ़ा हो जावे तब १२ तोले मधु मिलाकर तीन २ मासे की गोखियां बनावे । इसका सेवन करने से विरेचन होकर यकृत, प्रीहा, उदर, गुल्म, चवासीर और ग्रहणारोग नष्ट होते हैं यह परिकर नामक योग अग्निपदक है ॥ १७ १६ ॥

१ मलाईवहित दही को मधुकर तत्र बनाना चाहिये ।

वृहन्माणकादि गुटिका ।

माणमार्गस्थिरावद्विस्तुहीनागरसैन्धवम् । तालरण्डं कृमिघ्नञ्च हनुपञ्चविकावचा ॥ २० ॥ विटसौवर्चलक्षारपिप्पलीशरपुड्गकम् । जीरकं पारिभद्रञ्च प्रत्येकं कर्पकद्वयम् ॥ २१ ॥ सार्द्धाढके गवां मूत्रे पचेत् सर्वं सुचूर्णितम् । सान्द्रीभूते क्षिपेद्रेपां चूर्णकं कर्पसम्मितम् ॥ २२ ॥ अजाजीत्र्यूपणं हिङ्गु यमानी पुष्करं शटी । त्रिवृद्धन्ती विशाला च दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ॥ २३ ॥ खादेदग्निबलापेक्षी युद्धना चानुपिवेन्नरः । यकृतस्त्रीहोदरानाहं गुल्मं पाण्डुं सकामलम् ॥ २४ ॥ कुक्षिशूलञ्च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् । शोधञ्च श्लीपदं हन्ति जीर्णञ्च विपमज्वरम् ॥ २५ ॥

पुराना मानकन्द, चिरचिरा, सालपर्णी, चीता, घृहर, सोंठ, सेंधानमक, ताल के फूल का अश्वत्थुमभस्मजन्य चार, वायविद्ध, हाज्वेर, चम्प, यव, विटनोन, सौवर्चलनमक, यवक्षार, पीपरि, शरफोंका, जीरा और फरहद की जड़ की छाल प्रत्येक २ तोले, गोमूत्र ६ सेर ४८ तोला इन सब द्रव्यों को एकत्र कर पाक करे । पाक के गाढ़ होने पर उभमें नीचे लिये औषधों का चूर्ण मिलाकर उतार लेने । ये यह हैं--जीरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, हिंग, अजवायन, पुष्करमूल, नरकधूर, निसोय, जमालगोटे की जड़ और इन्द्रायन प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला । शीतल होने पर १० तोले मधु मिश्रित कर गोखियां बना लेवे । रोगी के दोष और बलाबल का विचार कर मात्रा तथा अनुपान स्थिर करे । इसका सेवन करने से पट्ट, प्रीहा, उदर, चानाह, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, कुक्षिशूल, हृदयशूल पसलियों की पीडा, अग्नि, मोय, श्लीपद,



जीर्णज्वर और विषमअर नष्ट होते हैं । मात्रा  
३ मासा ॥२०-२५॥

चित्रकादि लौह ।

चित्रकं नागरं वासा गुडूची शालप-  
गिका । तालपुष्पमपामर्गोमाणकं कार्पि-  
कत्रयम् ॥ २६ ॥ लौहमध्रं कण्ठाताम्रं  
क्षारको लवणानि च पृथक्प्रीशमेनेपां  
चूर्णमेकत्र चिकणम् ॥ २७ ॥ चतुः प्रस्थे  
ग्रां मूत्रे पचेन्मन्देन वद्विना । सिद्धशीतं  
समुद्धृत्य मात्तिकं द्विपलं क्षिपेत् ॥२८॥  
चित्रकादिरयं लौहो गुल्मस्त्रीहोदरामयान्  
यकृतं ग्रहणीं हन्ति शोधं मन्दानलं ज्वरम् ।  
कामलां पाण्डुरोगञ्च गुदभ्रंशं प्रवाहि-  
काम् ॥ २९ ॥

चीता, सोंठ, धरुसा की जड़, गिलोय,  
सरिबन, ताल के फूल का अन्तर्धूम्रभस्म-  
जन्य क्षार, चिरचिरा और मानकन्द प्रत्येक  
३ तोले, लोहभस्म, अध्रकभस्म, ताग्रभस्म,  
पीपरि, यवक्षार और पौधों नमक प्रत्येक एक-एक  
तोला । इन सब द्रव्यों का एकत्र चूर्ण बनाकर,  
६ सेर ३२ तोले गोमूत्र में मिश्रित कर धीमी  
आँच से पकावे । गोमूत्र जल जाने पर उतार  
लेवे । शीतल होने पर उसमें ८ तोले मधु मिला  
कर रख ले । इसको 'चित्रकादिलौह' कहते  
हैं । इस लौह का सेवन करने से गुल्म, स्त्रीहा,  
उदररोग, यकृत, ग्रहणी, शोध, अग्निमान्द्य,  
ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, गुदभ्रंश और प्रवा-  
हिका ये सब रोग नष्ट होते हैं । मात्रा १-१ ॥  
मासा ॥ २६-२८ ॥

अभया लवण ।

पारिभद्रपलाशाकं स्नुह्यपामार्गचित्र-  
कान् । वरुणाग्निमन्थवसुकश्वदं ट्वाबृहती-  
द्वयम् ॥ ३० ॥ पूतिकारस्फोटकुटजको-  
पातक्यः पुनर्नवा । समूलपत्रशाखारच

खोदयित्वा उलूखले ॥ ३१ ॥ तिलनाल-  
प्रदीप्ताग्निमुदग्धं भस्मशीतलम् । क्षारप्रस्थं  
शुद्धीत्वा तु न्यसेत् पात्रे दृढे नवे ॥ ३२ ॥  
जलद्रोणे विपक्वव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ।  
पूर्ववत् क्षारकल्केन स्रावयित् विचक्षणः  
॥ ३३ ॥ प्रस्थमेकञ्च लवणं तदर्द्धाञ्च  
हरीत्कीम् । तुल्यांशुभागं गोमूत्रं साधये-  
न्मृदुनाग्निना ॥ ३४ ॥ किञ्चित् सवा-  
प्पसान्द्रं च सम्यक्सिद्धेऽवतारिते ।  
अजाजी व्यूपणं हिङ्गु यमानी पौष्करं  
शठी ॥ ३५ ॥ एतैरर्द्धपलैर्भागैश्चूर्णं  
कृत्वा प्रदापयेत् । अभयालवणं नाम  
भक्तयेच्च यथावलम् ॥ ३६ ॥ व्याधिञ्च  
वीक्ष्य मतिमान् अनुपानं यथाहितम् । ये  
च कोष्ठगता रोगास्तान्निहन्ति न संशयः ॥  
॥ ३७ ॥ यकृतस्त्रीहोदरानाहगुल्माष्ट्रीलाग्नि-  
सादजित् । हन्याञ्छिरोर्ज्जिह्वद्रोगं शर्करा-  
श्मरिनाशनम् ॥ ३८ ॥

फरहद, डाक की छाल, आक का मूल, यूहर,  
चिरचिरा, चीता, बरना, थरनी, अगस्ति वृक्ष  
की छाल, गोखरू, छोटी कटेरी, यही कटेरी,  
बकुची, अनन्तमूल, कुडं की छाल, कडुई तरौई,  
पुनर्नवा का पत्राङ्ग, इन सबको एकत्र उलूखल  
(ओखरी) में कूटकर, एक हाँडी में रखले ।  
हाँडी का मुख बन्द करके, चूल्हे पर चढ़ाकर  
नीचे तिल की लकड़ी की आँच देवे । हाँडी की  
आँपधों के भस्म हो जाने पर उतारकर शीतल  
कर लेवे । तदनन्तर १ सेर इस भस्म को २२ सेर  
४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोले जल  
अवशिष्ट रहने पर उतार कर छान लेवे । परचाव  
उस जल में ६४ तोले संधानमक, ३२ तोला हरी-  
तकी ६ सेर ३६ तोला गोमूत्र मिलाकर फिर  
चूल्हे पर चढ़ाकर धीमी आँच से पकावे । कुछ भाग  
निकलते हुए गाढ़ा हो जाने पर उतार कर, उसमें

जीरा, सोंठ, मिरिच, पीपरि, भूनी होंग, अज-  
वाइन, कूठ, कचूर प्रत्येक का दो दो तोला चूर्ण  
मिला देवे । इसका नाम अभयालवण है ।  
इसकी मात्रा २ भासे । अनुपान उष्ण जल ।  
इसके अतिरिक्त रोगी का बलाबल तथा दोष  
आदिदेखकर मात्रा और अनुपान स्थिर करना  
चाहिये । यह लवण कोष्ठगत हर प्रकार के रोग  
की नष्ट करता है । इसका सेवन करने से यकृत,  
प्लीहा, उदर, आनाह, गुल्म, अर्धीला, अग्नि-  
मान्द्य, मस्तकपीडा, हृदयरोग, शर्करा और  
अशमरी ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३०-३८ ॥

### गुड पिप्पली ।

विडङ्गं त्र्यूपणं कुष्ठं हिङ्गुर्लवणपञ्च  
कम् । त्रिचतारं फेनकं वह्निः श्रेयसी चोप-  
कुञ्चिका ॥ ३६ ॥ तालपुष्पोद्भवं चारं  
नाड्याः कृष्माण्डकस्य च । अपामार्गस्य  
चिञ्चायाश्चूर्णानि चिकणानि च ॥ ४० ॥  
सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम् ।  
एतस्माद् द्विगुणाच्चूर्णात् पुराणो द्विगुणो  
गुडः ॥ ४१ ॥ मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोद-  
कानुपकल्पयेत् । भक्तयेदुष्णतोयेन स्त्रीहानं  
हन्ति दुस्तरम् ॥ ४२ ॥ यकृतं पञ्चगुलमञ्च  
उदरं सर्वरूपकम् । जीर्णज्वरं तथा शोथं  
कासं पञ्चविधं तथा । अश्विभ्यां निर्मिता  
श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली ॥ ४३ ॥

यापयिद्ध, त्रिकटु, कूठ, भूनी होंग, पाँचों  
नमक, यवचार, सजीरार, सोहागा फूला डुआ,  
समुद्रफेन, चीता, गजपीपरि, कर्लीजी, ताल के  
फूल की धन्तधूम्रमस्मजन्य चार, पेठा की  
हंडी की भरम, चिराचरा की भरम और  
हमली की छाल की भरम प्रत्येक समभाग,  
उममें कुल चूर्ण का समान भाग छोटी पीपर  
का चूर्ण मिलावे । तदनन्तर इस कुल योग  
( गुण्डा ) का दूना पुराना गुड मिलाकर  
एकल में भली भाँति मर्दन करके तीन-तीन मासों

के लड्डू बना लेवे । उष्ण जल के साथ इसका  
सेवन करने से घोर प्लीहा, यकृत, पाँच प्रकार  
के गुल्म, हर प्रकार के उदररोग, जीर्णज्वर,  
शोथ और पाँच प्रकार के कास ये सब रोग  
नष्ट होते हैं । यह औषध बालकों के लिये  
विशेष उपयोगी है ॥ ३६-४३ ॥

### लवणत्रितयादिचूर्ण ।

लवणत्रितयं चारो शत पुष्पा द्वयं  
वचा अजमोदाऽजगन्धा च हवुषा जीरकद्वयम्  
॥ ४४ ॥ मरिचं पिप्पली मूलं पिप्पली-  
गजपिप्पली ॥ ४५ ॥ हिङ्गुश्च  
हिङ्गुपत्री च शठा पाठोपकुञ्चिका  
शुण्ठी चित्रक चव्यानि विडङ्गं चाम्लवे-  
तसम् दाडिमं तिन्तिडीकंचा त्रिवृन्दन्ति  
शतावरी ॥ ४६ ॥ इन्द्रवारुणिका भार्गवी देव  
दारु यवानिका कुस्तुम्बुरु स्तुम्बुरुणि  
पौष्करं वदराणि च ॥ ४७ ॥ शिवा  
चेति समांशानि चूर्णमेकत्र कारयेत्  
भावयेदार्रकरसैवीर्जपूर रसैस्तथा  
॥ ४८ ॥ तत्पिपेत्सर्पिपा जीर्णमद्येनो-  
प्योदकेन वा कोलाम्भसा वा तक्रोग  
दुग्धेनौष्ट्रेणमस्तुना ॥ ४९ ॥ यकृतपृष्ठ  
कटी शूलगुद कुत्ति हृदामयम्  
अशोर्विष्टम्भ मन्दाग्नि गुल्माष्ठीलोद-  
राणि च ॥ ५० ॥ हिक्राध्मानश्वास का-  
सञ्जयेदेतान्न संशयः एतैरिषोपधैः सम्यग्भृतं  
वासाधयेद्भिपक् ॥ ५१ ॥

संधानमक काला विटनमक, जवाएर, सजीरार,  
सीक मोयाके बीज, वच, अजमोद, यन्तुलरी  
( वेपई ) हाऊधर, जीरा, कालाजीरा, काली-  
मिर्च पिपलामूल पीपरि, गज पीपरि, भुनी  
होंग हिगुपत्री, कचूर, पाद, कर्लीजी, सोंठ,  
चीनी की जड़, शतावरी, इन्द्रवारुण की जड़

घष्य घाय विहंग, धमलवेत, अनार दाना, तिन्तिडीक, निसोध, दन्तीकी जड़, भारंगी देवदारु, धजवायन, धनियाँ, तुन्दुरफल, नेपाली धनियाँ, पोहकरमूल घेर और छोटी हरडइन सब औषधियों को समान भाग ले चूर्ण बनाये । चूर्ण को अदरक और बिजौरे के रस से ७-७ पार घोट सुखाये । रोगानुसार घृत, पुरानी शराय, गरम पानी, घेर का काढ़ा, छाछ, ऊँटनी के दूध, और दही के जल ( तोड़ ) के साथ इस चूर्ण को खाने से यकृत ( जिगर ) रोग पीठ का दर्द, कमर का दर्द, गुद पीड़ा, कोख के रोग, हृदय की पीड़ा, बयासीर, मल की रकावट, मन्दाग्नि गोला, अग्नीला, पेट के रोग हिचकी अफरा, श्वास, और खाँसी ये रोग अवश्य नष्ट होते हैं । ऊपर कही हुई औषधियों के कश्क से अच्छी तरह धी सिद्ध कर सेवन करने से भी ये रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४४-२१ ॥

गुडूच्यदि चूर्ण ।

गुडूच्यतिविपाशुण्ठी भूनिम्बोयवति-  
क्कम् । मुस्तं कणा यवत्तारः कासीसं  
भ्रमरातिथिः ॥ ५१ ॥ एतेषां समभागेन  
चूर्णमेव विनिर्दिशेत् । यकृतप्लीहापाण्डु-  
रोगमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ ५२ ॥ ज्वर-  
मष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।  
नानादेशोद्भवश्चैव वारिदोपभवं तथा । विरु-  
द्धमेपजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ ५३ ॥

गिलोय, असीस, सोंठ चिरायता, यवतित्रा ( कालमेघ ), नागरमोथा, पीपरि, यवदार, हीरा-कसीस और चंपा की छाल, इन सब वस्तुओं को समभाग लेकर चूर्ण बना लेये । इसका सेवन करने से यकृत, प्लीहा, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, अरुचि और श्वात प्रकार के साध्य-असाध्य ज्वर तथा अनेक देशों में रहने से उत्पन्न जलदोपजन्य ज्वर तथा विरुद्ध औषधजन्य ज्वर शीघ्र नष्ट करता है ॥ २१-२३ ॥

प्लीहारिचटिका ।

सहासाराभ्रकासीसलशुनानि समानि

च । द्रोणीपुष्पीरसेनैव मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ॥  
५४ ॥ बलद्वयं प्रदातव्यं प्रदोषे सलिलं  
ह्यनु । मीहानं यकृतं गुल्ममग्निमान्द्यं  
सशोथकम् ॥ ५५ ॥ कासंश्वासं तृपां  
कम्पं दाहं शीतं वमिभ्रमिम् । मीहारि-  
चटिका ह्येषा नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ५६ ॥

अभ्रकभरम, कसीस, लहसुन, मुसव्वर इन कुल द्रव्यों को बराबर लेकर और मिलाकर गोमा के रस से ३ पहर घोटकर गोलियाँ बना ले । मात्रा २ रत्नी से ४ रत्नी तक । इसे सायंकाल पानी के साथ सेवन कराने से प्लीहारोग ( तिप्पी ), यकृत ( जिगर ), गुल्म, मन्दाग्नि, शोथ ( सूजन ), कास, श्वास, प्यास, कम्प ( कापना ), दाह, शीत, वमि ( कै ), भ्रम ( चकर आना ) आदि रोग निःसन्देह दूर होते हैं ॥ २४-२६ ॥

यकृतशूलघिनाशिनी चटिका ।

नरसारं कर्पं मात्रं सैन्धवञ्च द्विकर्पं  
कम् । कोकिलाक्षौद्रवं बीजं त्वचं रोहीत-  
कस्य च ॥ ५७ ॥ यमानी चित्रकञ्चापि  
दशकर्पममाणकम् । सम्मर्द्यं वदरास्थ्याभां  
चटिकां पूतिकाम्बुना ॥ ५८ ॥ कृत्वा तां  
योजयेद्दीमान् कारवेल्लाम्भसा समम् ।  
हन्त्येषा यकृतो व्याधीन् गुल्मप्लीहोद-  
राणि च ॥ ५९ ॥

नीसदर २ तोले, सेंधानमक २ तोले, तालमलाने के बीज, रोहेडा की छाल, अजवायन, चित्रकी, हरएक १० तोले । इन्हें इक्का करके करंजा के पत्तों के रस से घोंटे और जब अच्छी तरह घुट जावे तो छोटे घेर की गुठली के बराबर गोली बना ले । अनुपान-करेले का रस । यह घटी यकृतोग ( जिगर ), गुल्म, प्लीहा, उदर रोग प्रभृति रोगों को नष्ट करती है ॥ २७-२९ ॥

ग्रहाघृत ।

शुण्ठी व्याघ्री कणाहिङ्गु काल-

शाकं शिलाजतु । गुञ्जा सपञ्चलवणा पचे-  
देतैश्च कार्पिकैः ॥ ६० ॥ गन्धस्य सर्पिपः  
प्रस्थं गन्धमूत्रे चतुर्गुणे । क्षीरे च द्विगुणे  
वैद्यो ब्रह्मजुष्टमिदं घृतम् । पीतं स्त्रीहोदरं  
हन्ति दूप्योदरमपि ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

गाय का घी १२८ तोला, गोमूत्र ६ सेर  
३२ तोला, दूध ३ सेर १६ तोला, कल्क के  
लिए सोंठ २ तोला, छोटी कटेरी २ तोला,  
पीपल १ तोला, हींग १ तोला, शरपुंखा १ तोला,  
शिलाजतु १ तोला, घुँघुची की जड़ १ तोला,  
पांचों नमक १ तोला, । विधि के अनुसार घृत  
सिद्ध करके प्रयोग में लाना चाहिये । इसके सेवन  
करने से ज़ीहा, बदर रोग आदि दूर होते हैं ।  
मात्रा ३ मासे से ६ मासे तक ॥६०-६१॥

वर्द्धमानपिप्पली ।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपिप्पलिकं  
दिनम् । वर्द्धयेत् पयसा सार्द्धं तथैवापन-  
येत् पुनः ॥ ६२ ॥ जीर्णैः क्षीणैश्च भुञ्जीत  
पष्टिकं क्षीरसर्पिषा । पिप्पलीनां सहस्रस्य  
प्रयोगोऽयं रसायनः ॥ ६३ ॥ दशपिप्प-  
लिकः श्रेष्ठो मध्यमः पटु प्रकीर्तितः ।  
यद्विप्रपिप्पलिपर्यन्तः प्रयोगः सौज्वरः  
स्मृतः ॥ ६४ ॥ वृंहणं वृष्यमायुष्यं  
प्लीहोदरविनाशनम् । वयसः स्थापनं मेध्यं  
पिप्पलीनां रसायनम् ॥ ६५ ॥ पञ्चपि-  
प्लिकद्वचापि दृश्यते वर्द्धमानकः ।  
पिष्ट्वा च बलिभिः पेया भृता मध्यबलै-  
र्नरैः । शीतीकृत्य ह्रस्वबलैर्दृढोपामयान्  
प्रति ॥ ६६ ॥

पहिले दिन दश पीपरि, दूसरे दिन बीस,  
तीसरे दिन तीस, चौथे दिन चासीस, पांचवें  
दिन पचास, छठे दिन साठ, सातवें दिन सत्तर,  
आठवें दिन अस्सी, नवें दिन नब्बे और दशवें  
दिन सौ पीपरि दूध के साथ सेवन करे ।

तदनन्तर दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन दशा पीपरि  
घटावे । दश दिन के अनन्तर फिर प्रतिदिन दश  
पीपरि की वृद्धि करे । दश दिन पूर्ण होने पर  
फिर पूर्ववत् हास और फिर पूर्ववत् वृद्धि इस  
क्रम से दूध के साथ सहस्र पिप्पली सेवन करे ।  
पथ्य साठी के चावल का भात, घी और दूध ।  
दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन १० पीपरि की वृद्धि  
और दश दिन के पश्चात् प्रतिदिन १० पीपरि  
का हास करना यह उत्तम प्रयोग है । दश दिन  
पर्यन्त प्रतिदिन ६ पीपरि की वृद्धि और दश  
दिन के अनन्तर प्रतिदिन ६ पीपरि का हास  
करना यह मध्यम प्रयोग है । पहिले दिन ३  
पीपरि का सेवन करना और तदनन्तर दश दिन  
पर्यन्त प्रतिदिन ३ पीपरि की वृद्धि और दश  
दिन के अनन्तर प्रतिदिन ३ पीपरि का हास  
करना यह अधम प्रयोग है ।

दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन ५ पीपरि की वृद्धि  
और दश दिन के अनन्तर प्रतिदिन ५ पीपरि  
के हास का नियम भी दृष्ट है ।

इस प्रकार पिप्पली का सेवन करने से ज़ीहा,  
उदररोग का नाश, बल, वीर्य और आयु  
की वृद्धि होती है ।

यलवान् मनुष्य इन् पिप्पलियों को जल में  
पीसकर पान करे । मध्यम ( शीतल दर्जा के )  
यलवाले मनुष्य काय बनाकर बुद्धि उत्पन्न रहते  
हो खानकर पीने । अल्प यलवाले मनुष्य काय  
को शीतल कर पान करें यह धातुयर्धक, पुत्रपार्थ-  
यर्धक, आयु के लिये हित, ज़ीहनाशक, घय को  
स्थिर रखनेवाला और धारणाशत्रिको बढ़ानेवाला  
योग है ॥ ६२-६६ ॥

इस समय प्रतिदिन एक एक पिप्पली की वृद्धि  
और हास करना यही अष्टा है । कारण यह कि  
आयुष्मन् के मनुष्यों में बाधोक्त काल के मनुष्यों के  
सामान बल न होने से एक साथ अधिक मात्रा में  
पिप्पली का प्रयोग करने से अष्टर विचार होने की  
संभावना है । क्योंकि पिप्पली में भी कुछ विष का  
अंश है ।

महारोहीतक घृत ।

रोहीतकात् पलशतं क्षोदयेद्बदराढकम् ।  
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषि-  
तम् ॥ ६७ ॥ घृतप्रस्थं समावाप्य द्वाग-  
क्षीरं चतुर्गुणम् । तस्मिन् दद्यादिमान्  
कल्कान् सर्वास्तानक्षसम्मितान् ॥ ६८ ॥  
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गुर्गुमान्नी तुम्बुरुं  
विडम् । अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं  
देवदारु च ॥ ६९ ॥ पुनर्नवा विशाला  
च यवक्षारं सर्पांकरम् । विडङ्गं चित्रकञ्चैव  
हनुषा चविका वचा ॥ ७० ॥ एभिर्घृतं  
विपक्वन्तु स्थापयेद्भाजने शुभे । द्वितोलक-  
मितां मात्रां व्याधिं बलमवेक्ष्य च ॥ ७१ ॥  
रसकेनाथ यूपेण पयसा वापि भोजयेत् ।  
उपयुक्तघृतं तस्मिन् व्याधीन्हन्यादिमान्  
बहून् ॥ ७२ ॥ यकृतस्त्रीहोदरञ्चैव  
स्त्रीहशूलं यकृतथा । कुक्षिशूलञ्च हृच्छूलं  
पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ७३ ॥ विषद्विशूलं  
शमयेत् पाण्डुरोगं सकामलम् । व्यर्षती-  
सारशूलघ्नं तन्द्राज्वरविनाशनम् । महारो-  
हीतकं नाम स्त्रीहानं हन्तिदारुणम् ॥ ७४ ॥

अत्र बदराढकं त्यक्त्वा जलद्रोणे इति  
ज्ञेयं तेन जलद्रोणद्वयेन रोहीतकपल-  
शतस्य बदरचूर्णाढकस्य च क्वाथो युक्तः ।  
अन्यथा जलस्य अल्पत्वात्तथाविधः पाको  
न स्यात् । केचिदिह गृह्णन्ति तत्रांतर-  
संवादात् क्षारद्वयं पञ्चलवणञ्च । रोही-  
तवदराभ्यां मिलित्वा क्वाथः कर्त्तव्य इति  
शुद्धाः ।

रोहिटा की कुटी हुई छाल ५ सेर, बैर का  
चूर्ण ३ सेर १६ तोला, इन दोनों द्रव्यों को  
एकत्र २५ सेर ४८ तोला जल में धीमी आँच

से पकावे । १ सेर ३२ तोला जल शेष रहने  
पर धान बाध को रख लेवे । उस बाध में घृत  
१२८ तोला, और बकरी का दूध ६ सेर ३२  
तोला मिलावे । तदनन्तर त्रिकटु, त्रिफला, भूमी  
हॉग, अजवाहन, धनिया, बिबनमक, जीरा,  
कालानमक, अनार के बीज, देवदाग, गदापुरीना  
( साँडी ), इन्द्रायण की जड़, यवक्षार, कूठ, वाय-  
विडङ्ग, चीता, हाऊवेर. चव्य और वच प्रत्येक  
एक तोला, इन सब औषधों का ककक बनाकर  
पूर्वाङ्कवबाध आदि मिश्रित करके धीमी आँच में  
घृत लिद्ध करे । रोगी के बल और रोग का विचार  
करके २ तोले की मात्रा में इस घृत का सेवन  
करना चाहिये । अनुपान मांसरस, दान का जूस  
और दुग्ध आदि । इस घृत का सेवन करने से  
यकृत, ग्रीहा, उदररोग, ग्रीहाजन्य शूल, यकृत-  
जन्य शूल, हृदय का शूल, पसलियों की पीड़ा,  
अरिचि, विषद्विशूल, पाण्डुरोग, कामला, छर्दि,  
अतिमार, तन्द्रा और उवर ये सब रोग नष्ट होते  
हैं ॥ ६७-७४ ॥

ग्रीहारि रस ।

पारदं गन्धकं टङ्गं विषं व्योषं फल-  
त्रिकम् । तोलकस्य समोपेतं जैपालञ्च  
तदर्द्धकम् ॥ ७५ ॥ किंशुकस्य रसेनैव  
याममात्रन्तु मर्दयेत् । गुज्जामात्रां वर्ती  
कृत्वा छायायां शोषयेत्ततः ॥ ७६ ॥  
वटिकैका प्रदातव्या शृङ्गवेररसेन च ।  
गुदाङ्कुरे गुल्मशूले स्त्रीहशोथे कफात्मके  
॥ ७७ ॥ उदावर्ते वातशूले श्वासकास-  
ज्वरेषु च । रसः स्त्रीहारिनामायं कोष्ठाभय-  
विनाशनः । आमवातगदच्छेदी श्लेष्मा-  
भयविनाशनः ॥ ७८ ॥ अत्र सर्वेषामर्द्ध  
जयपालम् ।

पारा, गन्धक, सोहागा फूला हुआ, विष,  
मॉठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हर, बहेडा,  
प्रत्येक १ तोला, जमालगोटा के बीज ५ तोले  
इन सब द्रव्यों को धूमित करके पलाश ( टेस )

के फूलों के रस में एक प्रहर पर्यन्त खरल करके एक रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लेवे । अनुपान अद्रक्ष का रस । इस औषध का सेवन करने से घवासीर, गुल्मजन्य शूल, प्रीहा, शोथ, उदावर्त, वानशूल, श्वास, कास, ज्वर, हर प्रकार के कोष्ठगत रोग, आमवात और कफरोग नष्ट होते हैं ॥ ७५-७६ ॥

वासुकिभूषण रस ।

मृतेन वङ्गन्तु समं नियोज्य तत्तुल्य-  
शुल्केन च गन्धकेन । विमर्दयेदकरसेन  
यामं मृदा च संलिप्य पुटं ददीत ॥ ७७ ॥  
वासारसैस्तं परिभावयेच्च रसो भवेद्वासु-  
कि भूषणोऽयम् । स्त्रीहस्य गुल्मस्य च  
शान्तयेऽस्य गुञ्जाश्च दद्याद्वासुचूर्ण-  
युक्तम् ॥ ७८ ॥

पारा, गन्धक, वङ्गभस्म, और ताम्रभस्म समभाग, इन सब द्रव्यों को छेकर मदार की पत्तियों के रस में एक प्रहर पर्यन्त खरल करके गोला बनावे । उस गोले को चाक की पत्तियों से ढक कर ऊपर से मिट्टी का लेप करके पुट-पाक करे । तदनन्तर मिट्टी आदि अलग कर उस गोले को चरुसा की पत्तियों के रस में खरल करके एक रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनावे । सेंधानमक के साथ इस वासुकिभूषण रस का सेवन करने से प्रीहा और गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥ ७७-७८ ॥

वसुसैन्धव । विद्याधर रस ।

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्र मनः-  
शिला । शुद्धमृतञ्च तुल्यांशं मर्दयेद्वापये-  
दिनम् ॥ ७९ ॥ पिप्पल्यांश्च कपायेण  
वजीनीरेण भावयेत् । गुञ्जादं सेवितं  
सौर्गुल्मस्रीहादिकं जयेत् । रसो विद्या-  
धरो नाम गोदुग्धश्च पिचेद्गु ॥ ८० ॥

गन्धक, हरिताम, स्वर्णमाषिक, ताम्रधम, मैनीस और पारा समभाग; इन सब द्रव्यों

को छोटी पीपरि के काढ़े में और थूहर के दूध में एक एक दिन खरल करके १ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनावे । अनुपान गाय का दूध और शहद । इस रस का सेवन करने से प्रीहा और गुल्म आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ७९-८० ॥

रसरराज ।

गन्धकेन मृतं ताम्रं शुद्धगन्धकतुल्य-  
कम् । द्वयो पादं शुद्धरसं मर्दयेच्छ्वरण-  
द्रवैः ॥ ८१ ॥ पुटेद्गजपुटे विद्वान् साङ्ग-  
शीतं समुद्धरेत् । गुञ्जादं विलिहेत् सौर्गु-  
लीहगुल्मविनाशनम् ॥ ८२ ॥ यकृच्छूलं  
ज्वरं हन्ति कान्तिपुष्टिविवर्द्धनः । रसरराज  
इति ख्यातो रोगवारणेशरी ॥ ८३ ॥

गन्धक के संयोग से बनाया हुआ ताम्रभस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध पारा ६ मासे; इन सब द्रव्यों को एकत्र सूरन ( जिमी-कन्द ) के रस में खरल करके गजपुट में पाक करे । स्वाङ्गीतल होने पर औषध को निकाल लेवे । मात्रा १ रत्ती । अनुपान मधु । इस रस-राज का सेवन करने से यकृत, प्रीहा और गुल्म-रोग नष्ट होने हैं और कान्ति तथा पुष्टि की वृद्धि होती है ॥ ८१-८३ ॥

सौहान्तक रस ।

मृतशुल्कश्च तारञ्च गगनायसमौक्त्रिकाः ।  
दरदं पुष्पकं मृतं गन्धकं नवमं तथा ॥  
८४ ॥ गुग्गुलुः त्रिष्टु रासना तथा  
लैपालबीजम् । त्रिफला वटुका दन्ती  
देवदाली तु सैन्धवम् ॥ ८५ ॥ त्रिष्टुता तु  
यन्तारं वानारित्तलमर्दितम् । अष्टोदराणि  
पाण्डुत्वमानाहं विपमज्वरम् ॥ ८६ ॥  
अजीर्णमामश्च कफं तप्यश्च सर्पशूलकम् ।  
कासं श्वासश्च शोथश्च सर्पमागुच्यपोऽति ।  
सौहान्तको रसो नाम सौहोदरविना-  
शनः ॥ ८७ ॥

ताम्रभस्म' चाँदी की भस्म, अन्नकभस्म, लोहभस्म, मुत्राभस्म, द्विगुल, रसौत, पारा, गन्धक, गूगुल, त्रिकटु, रासना, जमालगोटा, त्रिफला, पुटुकी, जमालगोटा का मूल, घघरबेल का मूल, संपानमक, निशोध और यवधार; इन सब द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर परबट के तेल में खरल करके १ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से छाठ प्रकार के उदररोग, पायदुरोग, घानाह, विषमज्वर, अजीर्ण, आमदोष, कफ, चय, मय प्रकार के शूल, कास, रपास, शोथ, प्लीहा और प्लीहोदर ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८४-८७ ॥

प्रसिद्ध लोकनाथ रस ।

पारदं गन्धकश्चैव समभागं विमर्दयेत्  
मृताभ्रं रसतुल्यञ्च पुनस्तत्रैव मर्दयेत् ॥  
८८ ॥ रसद्विगुणलौहञ्च लौहतुल्यञ्च  
ताम्रकम् । वराटिकाया भस्माथ पारदत्रि-  
गुणं कुरु ॥ ८९ ॥ नागवल्लीरसेनैव  
मर्दयेत् यन्नतो भिषक् । पुटेन्नघुपुटे विद्वान्  
स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ९० ॥ मधुना पि-  
प्पलीचूर्णं समुदां वा हरीतकीम् । अजार्जी  
वा गुडेनैव भक्तयेदनुपानतः । यकृद्गुल्मो-  
दरहरः प्लीहश्वयधुनाशनः ॥ ९१ ॥ जीर्ण-  
ज्वरं तथा पाण्डुं कामलाञ्च विनाशयेत् ।  
अग्निमान्द्यञ्च शमयेत्लोकनाथो रसो-  
त्तमः ॥ ९२ ॥

पारा, गन्धक, और अन्नकभस्म प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म, ताम्रभस्म, प्रत्येक दो-दो तोला और कौडी की भस्म ३ तोले, इन सब द्रव्यों को पान के रस में खरल करके लघुपुट में पाक करे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाल लेवे। अनुपान मधु और पीपरि का चूर्ण, पुराना गुड़ और हरीतकी अथवा जीरा और पुराना गुड़। इनका सेवन करने से यकृत्, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, शोथ, जीर्णज्वर, पाण्डु-

रोग, कामला और अग्निमान्द्य ये सब रोग शान्त होते हैं। मात्रा चाँदी रत्ती से दो रत्ती ॥ ८८-९२ ॥

बृहन्नोकनाथ रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले कुर्याच्च  
कज्जलम् । सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दये-  
त्कन्यकाम्बुना ॥ ९३ ॥ ततो द्विगुणितं  
दद्यात्ताम्रं लौहं प्रयत्नतः । सूतान्नवगुणं  
देयं वराटी सम्भवं रजः ॥ ९४ ॥ काक-  
माचीरसेनैव सर्वं तद्गोलकीकृतम् । ततो  
पचेद् गजपुटे स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ९५ ॥  
शिवं सम्पूज्य यत्रेन द्विजातीन् परितोष्य  
च । भक्तयेदस्य चूर्णस्य द्विगुञ्जं मधुना  
सह ॥ ९६ ॥ प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतं  
सर्वरूपिणम् । जीर्णज्वरं तथा गुल्मं  
कामलां हन्ति दारुणाम् ॥ ९७ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोला; इन दोनों को खरल करके कज्जली बना लेवे। परचाट उसमें अन्नकभस्म १ तोला मिलाकर ग्वारपाठे के रस में खरल करे। तदनन्तर ताम्रभस्म २ तोले, लोहभस्म २ तोले और कौडी की भस्म ३ तोले मिश्रित कर मकोय की पत्तियों के रस में खरल करके एक गोला बना लेवे। उस गोला को मिट्टी के सकोरा में रखकर ऊपर दूमेर सकोरा से ढककर कपडमिट्टी करके गज-पुट में पाक करे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाले। मात्रा २ रत्ती। अनुपान मधु इसका सेवन करने से प्लीहा, यकृत्, अग्रमांस, जीर्णज्वर, गुल्म और कामला ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ९३-९७ ॥

रोहीतक लौह ।

रोहीतकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः ।  
प्लीहानमग्रमांसञ्च शोथं हन्ति न सं-  
शयः ॥ ९८ ॥

रोहिडा की छाल, सोंठ, मिरिच, पीपरि, छाँवला, हरं वहेडा, बायचिङ्ग, नागरमोथा और चीता का मूल प्रत्येक श्रौषध को समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करे। उसमें कुल चूर्ण के समान लोहभस्म मिलाकर खरल करे। इसका सेवन करने से प्रीडा, अप्रमांस और शोथ नष्ट होते हैं। मात्रा २ रत्ती ॥ ६८ ॥

यकृतप्लीहाहारी लौह ।

हिंगुलसम्भवं मृतं गन्धकं लौहमभ्र-  
कम् । तुल्यं द्विगुणताम्रन्तु शिला च  
रजनी तथा ॥ ६९ ॥ जयपालं टङ्गनञ्च  
शिलाजतु समं रसात् । एतत्सर्वं समाहृत्य  
चूर्णाकृत्य विमिश्रयेत् ॥ १०० ॥ दन्ती  
त्रिवृच्चित्रकञ्च निर्गुण्डीत्र्यूपणं तथा ।  
आर्द्रकं भृङ्गराजश्च रसैरेषां पृथक् पृथक् ॥  
१०१ ॥ भावयित्वावर्ती कुट्याद्द्वदरास्थि-  
मितां भिषक् । प्लीहानं यकृतञ्चैव चिर-  
कालानुबन्धनम् ॥ १०२ ॥ एकजं द्वन्द्व-  
जञ्चैव सर्वदोषभवं तथा । हन्यादष्टोदरा-  
णीह ज्वरं पाण्डुञ्च कामलाम् ॥ १०३ ॥  
शोथं हलीमकं हन्ति मन्दाग्नित्वमरो-  
चकम् । यकृत् प्लीहाहारिनामेदं लौहं जगति  
दुर्लभम् ॥ १०४ ॥

हिंगुल से निकाला पारा, गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक १ तोला, ताम्रभस्म २ तोले, मैमिशिल, हरदी, जमालगोटा, सोढागा फूला हुआ और शिलाजीत प्रत्येक १ तोला, इन सब द्रव्यों को एकत्र खरल करके परचात् जमालगोटा की मूल, निशोथ, चीता, सेंभालू प्रिचु, चदरग और भृङ्गराज; इनमें से प्रत्येक के रस ऋषपा क्राथ में एक-एक थार भागना देकर धेर की गुटली के ममान गोलियाँ बनाये इसका सेवन करने से यकृत, प्रीहा, छाट प्रकार के उदर, कामला, हलीमक, शोथ, मन्दाग्नि,

अरुचि और सब प्रकार के ज्वार शान्त होते हैं। इसको यकृतप्लीहाहारीलौह कहने हैं। यह जगत् में दुर्लभ है, मात्रा २ रत्ती ॥ ६९-१०४ ॥

यकृदरि लौह ।

द्विकर्पं लोहचूर्णस्य गगनस्य पलाङ्क-  
कम् । कर्पं शुद्धं मृतं ताम्रं लिम्पाकांघ्रि-  
त्वचः पलम् ॥ १०५ ॥ मृगाजिनभस्म-  
पलं सर्वमेकत्र कारयेत् । चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन  
वटिकां कारयेद्विषक् ॥ १०६ ॥ यकृत्-  
प्लीहोदरञ्चैव कामलाञ्च हलीमकम् । कासं  
शवासं ज्वरं हन्ति बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।  
यकृदरिनाम लौहं सर्वव्याधिनिपूद-  
नम् ॥ १०७ ॥

लोहभस्म २ तोले, अभ्रकभस्म २ तोले, ताम्र-  
भस्म १ तोला, लिम्पाका नीबू जैभीरी नीबू के  
जड़ की छाल ४ तोले और कृष्णसार मृग के चर्म  
का अन्तर्धूम भस्म ४ तोले; इन सब द्रव्यों को  
एकत्र जल में खरल करके ४ रत्ती प्रमाण घटी  
बनावे। इस यकृदरि लौहके सेवन करने से यकृत,  
प्रीहा, उदर, कामला, हलीमक, कास, शवास  
और ज्वर नष्ट होते हैं और बल, वर्ण तथा  
अग्नि की वृद्धि होती है। मात्रा २ से ४  
रत्ती ॥ १०५-१०७ ॥

घृह्यकृदरि लौह ।

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं त्र्यूपणं कटुकी  
तथा । त्रायमाणं विपापाठां पिचुमर्द्धहरीत-  
कीम् ॥ १०८ ॥ चित्रकं पर्पटं मुस्तं  
समभागं प्रकल्पयेत् । सर्वाद्दं जारितं लौहं  
गुडूचीस्वरमैदिनम् ॥ १०९ ॥ निष्पिप्य  
वटिकां कार्या त्रिगुञ्जाफलमानतः ।  
प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् सर्वोपद्रवसंयु-  
तान् ॥ ११० ॥ एकादिकं द्वादशकं वा  
त्र्यादिकं चातुरादिकम् । सर्वान् ज्वारत्रि-  
हन्त्यागु भक्षणगादाद्रकद्रव्यः ॥ १११ ॥



पारा, गन्धक, अभ्रक, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पोंपेरि ), कटुकी, त्रायमाण्डा, अतीस, पाद, नीम की छाल, दरद, चित्रक, पित्तपापड़ा, मोथा, इन्हें बराबर २ लेकर मिला ले और घूर्ण कर ले । इस जूर्ण से आधा लोहभस्म मिश्रित कर गिलोय के रस के साथ घोंटे और तीन रत्ती प्रमाण की गोली बना ले । इसके प्रयोग से सर्व उपद्रवसहित प्रीहोदर ( तिहली ), यकृद्दोग, गुल्म, एकाहिक ( इबतरा ) द्वयाहिक, त्रयाहिक ( तिजारी ) चातुराहिक ( चौधवा ) अरारिद दूर होते हैं । अनुपान—अदरक का रस ॥ १०८-१११ ॥

महामृत्युञ्जय लौह ।

शुद्धमूतं समं गन्धं जारिताभ्रं समं तथा । गन्धस्य द्विगुणं लौहं मृतताम्रं चतुर्गुणम् ॥ ११२ ॥ द्विचारं सैन्धवं पीठं वराटीभस्मशङ्कम् । चित्रकं कुन्तीतालं रामठं कटुका तथा ॥ ११३ ॥ रोहितं त्रिवृता चिञ्चा विशाला धवलङ्कठः । अपामार्गं तालरण्डम्लिका च निशाद्वयम् ॥ ११४ ॥ प्रियङ्ग्विन्द्रयवं पथ्या अजमोदा यमानिका । तुत्यंके शरपुङ्खा च यकृन्मर्दो रसाञ्जनम् ॥ ११५ ॥ प्रत्येकं शाणमानेन भावयेद्दार्द्रकद्रवैः । गुडूच्याः स्वरसेनापि मधुना कुडवार्द्रकम् ॥ ११६ ॥ वटिकां कारयेद्द्रव्यो गुञ्जाद्वयममितां पुनः । अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्यादोषानुसारतः ११७ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम् । प्लीहानं ज्वरमुग्रश्च कासश्च विपमज्वरम् ॥ ११८ ॥ आमवातं यकृच्छूलं श्वासमर्शः शिरोरुजम् । गुल्मशोथोदरानाहमग्रमांसं यकृत् क्षयम् ॥ ११९ ॥ सकामलं पाण्डुरोगमुदरश्च सुदारुणम् । रोगानीकविनाशाय केसरी करिणं यथा ॥ १२० ॥

महामृत्युञ्जयोलौहः प्लीहगुल्मविनाशनः । प्राणिनान्तु हितार्थाय शम्भुना परिकीर्तितः ॥ १२१ ॥

पारा, गन्धक और अभ्रकभस्म प्रत्येक ६ मासो, लोहभस्म १ तोला, ताम्रभस्म २ तोले, यषपार, सजीमार, संधानमक, पिदनमक, कौडीभस्म, शङ्खभस्म, चीते की मूल, मैनिशिल, दरताल, भूनी डोंग, कटुकी, रोहिडा की छाल, निराय, इमली की छाल की भस्म, इन्द्रायण की मूल, सफ़ेद आक की मूल, चिदीचिड़ा ( लटजारा ) की भस्म, ताल के फूल का अन्तर्भूम भस्म, अमलवेत, हल्दी, दारहल्दी, फूलप्रियङ्गु, इन्द्रजी, हरीनकी, अजमोद, अजयाइन, नूतिया, शरफोंका, रोहिडा की छाल और रसीत प्रत्येक एक शाय अर्थात् ३ मासो ( २४ रत्ती ), इन सब द्रव्यों को एकत्र अदरक के रस में और गिलोय के रस में खरल करे । तदनन्तर ८ तोले मधु में खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावे । दोषानुसार अनुपान के साथ प्रातःकाल सेवन करना चाहिए । इसका सेवन करने से प्रीहा, यकृत्, उग्रज्वर, कास विपमज्वर, आमवात, यकृत्जन्य शूल, श्वास, यवासीर, मस्तकपीडा, गुल्म, शोथ, उदररोग, आनाह, अग्रमांस, यकृत्क्षय, लयरोग ( Cirrhosis of the Liver ), कामला और पाण्डुरोग आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं, यह महामृत्युञ्जय लौह हाथी को मारने के लिये सिंह के समान रोगसमूह नष्ट करने के लिये शिवजी से कहा गया है ॥ ११२-१२१ ॥

सर्वेश्वर लौह ।

शुद्धमूतं पलं गन्धं द्विगुणन्तु मृताभ्रकम् । त्रिपलं कृतताम्रश्च पलाद्दं स्वर्णमात्तिकम् ॥ १२२ ॥ जैपालं चित्रकं माणं शूरणं घण्टकर्णकम् । ग्रन्थिकं त्रिफला व्योषं त्रिवृता खरमञ्जरी ॥ १२३ ॥ दण्डोत्पला वृश्चिकाली कुलिशं नागद-

न्तिका । सूर्यावर्तञ्च संचूर्ण्य कर्पमात्रं  
विमर्दयेत् ॥ १२४ ॥ आर्द्रकस्य रसेनैव  
चूर्णयित्वा पुनःक्षिपेत् । त्रिपलं लौहचूर्ण-  
स्य ततः खादेत् शुभेऽहनि ॥ १२५ ॥  
सम्पूज्य भास्करं विष्णु गणनाथं द्विजो-  
त्तमम् । गुञ्जाद्वयं च मधुना भुक्त्वा शीत-  
जलं पिबेत् ॥ १२६ ॥ चूर्णं सर्वेश्वरं  
नाम सर्वरोगहरं भवेत् । कठोरप्लीहनाशाय  
गुल्मोदरहरं तथा ॥ १२७ ॥ कामलां  
पाण्डुमानाहं यकृत्कृमिकृतामयान् ।  
विचर्चीमम्लपित्तञ्च कण्डू कुष्ठं चिनाश-  
येत् ॥ १२८ ॥ प्लीहानमस्रपित्तञ्चाप्यग्नि-  
मान्द्यं सुदुस्तरम् । श्रीकरं कान्तिजननं  
शुक्रायुर्वलवर्द्धनम् ॥ १२९ ॥

पारा १ पल ( ४ तोला ), गन्धक १ पल  
( ४ तोला ), अभ्रकभस्म २ पल ( ८ तोला ),  
ताम्रभस्म ३ पल ( १२ तोला ), स्वर्ण-  
माषिक २ तोले, जमालगोटा, चीता का मूल,  
पुराना मानकन्द, जिमीकन्द, मोरवा, पिपरा-  
मूल, त्रिफला, त्रिकटु, निराध, चिरचिरा, दण्डो-  
रपला, विदारी की मूल, हड़जोड़, हाथीशुण्ठक और  
सूर्यावर्त ( हुलहुल ) प्रत्येक का चूर्ण १ तोला;  
इन कुल औषधों का अदरप के रस में खरल  
करे । पश्चात् इसमें १२ तोले लौहभस्म मिला-  
कर खरल करके रस लेवे । इस 'सर्वेश्वरलौह'  
की २ रत्ती की मात्रा मधु के माध सेवन करके  
शीतल जल पीना चाहिये । इसका सेवन करने  
से कठोर ग्रीहा, गुल्म, यकृत, उदर, कामला,  
पांडु, आनाह, कृमिरोग, विषाधिक, अम्ल-  
पित्त, कण्डू, कुष्ठ, रक्षपित्त तथा मन्दाग्नि का  
नाश होता है और कान्ति, दीर्घ, आयु तथा  
पल की वृद्धि होती है ॥ १२२-१२९ ॥

यकृतप्लीहादि लौह ।

लौहार्द्रमभ्रकं शुद्धं सूतमप्यर्द्रमागि-  
कम् । त्रिगुणामयसरचूर्णात् त्रिफलां

सामुद्रकात्तथा ॥ १३० ॥ द्विरष्टौ वारिणो  
भागमष्टशिष्टन्तु कारयेत् । तेन चाष्टा-  
वशिष्टेन समेनाज्येन यन्नतः ॥ १३१ ॥  
रसेन बहुपुत्राया द्विगुणक्षीरसंयुतम् । लौह-  
पात्रे पचेद्दर्व्या लौहमथ्या विधानतः १३२ ॥  
अभ्रकं निहतं शुद्धं पारदञ्च समुच्छिन्नम् ।  
अयसोऽर्द्रमितं चूर्णमादौ पाके विनि-  
क्षिपेत् ॥ १३३ ॥ कंदं कापालिका चव्यं  
विडङ्ग सवृहदलम् । शरपुहा च पाठा च  
चित्रकं समहौषधम् ॥ १३४ ॥ लवणानि  
च सर्वाणि सत्तारं वृद्धदारकम् । दीप्यकञ्च  
तथा सीधुं लौहाभ्रकसमं क्षिपेत् ॥ १३५ ॥  
प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् हन्ति शस्त्राग्नि-  
भिर्विना । प्रयोज्योऽयं महावीर्यो लौहो  
लौहविदांवरैः ॥ १३६ ॥ प्लीहोदरविना-  
शाय दद्याद् द्वे द्वे पुटे पृथक् । माणेन  
घण्टकरणेन शूरणेन पृथक् पृथक् ॥ १३७ ॥

लौहभस्म ४ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला ।  
रससिन्दूर ४ तोला । त्रिफला प्रत्येक १६-१६  
तोला, समुद्र नमक ८ तोले इन सबका  
१६ गुने जल में किया हुआ अष्टमांश बचा  
काथ के समान भाग घृत तथा गतावरी  
का रस, उसमें दूना दूध मिलाकर एक  
कढ़ाई में परिपाक करे, जब यथावत् पाक हो  
जाय ( गाढ़ा होने पर आवे ) तब लौहभस्म  
४ तोला, शूरणकन्द, कापालिका ( गुडकामाई,  
पंग भाषा में, किसी के मत से रास्ता ), चव्य,  
वायडिंग, पठानीलोथ, शरपुंसा, पाठा, चित्रक,  
सौंठ पर्षों नमक, जवारार, विधारावीज,  
अजवाहन, सेंहुड की जड़ प्रत्येक १२ तोले  
चूर्ण कर ढाल दे और छोड़े की कत्रफ़ी से  
पखाता रहे । यह ग्रीहोदर, यकृतोग तथा गुल्म  
को पिनाशक और अग्निप्रयोग के नष्ट करता है ।  
इस प्रयोग में जो लौहभस्म प्रयुक्त किया जाय उसमें  
ग्रीहोदर नष्ट करने के लिये मानकन्द, घण्टा-

कण ( मोरवा ) और शूण्यकन्द के पृथक्-  
पृथक् दो दो पुट और दे देने चाहिये । मात्रा  
१ मात्रा से २ मात्रा तक ॥ १३०-१३१ ॥

सीढारि रस ।

कर्पूरं तालचूर्णस्य तत्पादांशं सुवर्ण-  
कम् । पलाद्धमृतताम्रञ्च तत्समं शुद्धमध्र-  
कम् ॥ १३० ॥ मृगाजिनस्य भस्मापि  
कर्पूमात्रं प्रदापयेत् । त्रिगुणस्य त्रिगुण-  
द्वत्सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ १३१ ॥ गुञ्जास्य-  
प्रमाणेन वटिकां कारयेत्ततः । मधुना  
वह्निचूर्णेन स्वादेभित्यं यथानलम् ॥ १४० ॥  
असाध्यमपि प्लीहानं हन्त्यवश्यं न सं-  
शयः । यकृतं पाण्डुरोगञ्च गुल्मादिक-  
भगन्दरान् ॥ १४१ ॥

शुद्ध हरिताल १ तोले, स्वर्णभस्म १ तोला,  
ताम्रभस्म २ तोला, अध्रकभस्म २ तोला,  
मृगचर्मभस्म १ तोला, नीम् की जड़ की छाल  
१ तोला, इन सब द्रव्यों को इकट्ठा कर मिखा  
ले । मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक । अनुपान—  
मधु या चिचक्र चूर्ण । इस रस के सेवन से  
यकृद्दोग ( जिगर ), पाण्डुरोग ( पीरिया ),  
गुल्म, अगदर प्रभृति रोग दूर होते हैं ॥ १३०-  
१३१ ॥

प्लोहाण्वरस ।

हिगुलं गन्धकं टङ्कमध्रकं विपमेव च ।  
प्रत्येकं पलिकं भागं चूर्णयेदतिचिकणम् ॥  
॥ १४२ ॥ पिप्पली मरिचञ्चैव प्रत्येकञ्च  
पलाद्धकम् । मर्दयित्वा वटीं कुर्याद्विल-  
मात्रां प्रयत्नतः ॥ १४३ ॥ सेव्या शेफालि-  
दलजैवटी मात्तिकसंयुता । प्लीहानं  
पट्प्रकारञ्च हन्ति शीघ्रं न संशयः ॥ १४४ ॥  
ज्वरं मन्दानलञ्चैव कासं श्वासवमिध्र-  
मिम् । प्लीहार्षव इतिख्यातो गहनानन्द-  
भापितः ॥ १४५ ॥

( अत्र जम्बीरस्वरसपरिशोधितं हिगुलं,  
गोमूत्रविशोधितञ्च विपं ग्राह्यम् )

जम्बीर रस से शुधा हुआ हिगुल, गन्धक,  
मुहागा, अध्रकभस्म, गोमूत्र से शुधा हुआ विप,  
प्रत्येक ४ तोले । पीपल, कालीमिर्च हरएक  
२ तोले, इन सबको इकट्ठा कर और अच्छी  
प्रकार मिजाकर पानी के साथ १ रत्ती से २  
रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे । अनुपान-  
हारिसिंघार के पत्तों का रस तथा मधु । इसके  
प्रयोग से हर प्रकार का प्लीहा ( तिल्ली ),  
मन्दाग्नि, कास ( खांसी ), श्वास, घमि ( कै ),  
पक्कर घाना, आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १४०-  
१४५ ॥

लौहमृत्युञ्जय रस ।

रसगन्धकलौहाभ्रं कुन्टीमृतताम्र-  
कम् । विपमुष्टिवराटञ्च तुत्थं शंखरसा-  
ञ्जनम् ॥ १४६ ॥ जातीफलञ्च कडुकी  
द्विचारं कानकं तथा । व्योषं हिगु सैन्धवञ्च  
प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥ १४७ ॥ श्लक्ष्ण  
चूर्णकृतं सर्वमेकत्र भावयेत्ततः । सूर्यावर्त्त-  
रसेनैव विल्वपत्ररसेन च ॥ १४८ ॥  
सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत्ततः ।  
प्लीहानं यकृतं गुल्ममष्टीलाञ्च विनाश-  
येत् ॥ १४९ ॥ अग्रमांसं तथा शोथं तथा  
सर्गोदराणि च । वातरक्तं च जठरं चान्त-  
विद्रिधिमेव च ॥ १५० ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अध्रकभस्म, मैन्-  
सिल, ताम्रभस्म, शुद्ध कुचला, कौडीभस्म,  
तृप्तिया, शंखभस्म, रसौत, जायफल, कडुकी,  
यमचार, सजिचार, शुद्ध जैपाल, त्रिकटु ( सोंठ  
मिर्च पीपर ) हींग, सेंधा नमक, उपर्युक्त कुच  
द्रव्यों को बराबर-बराबर लेकर यथाविधि चूर्ण  
बना ले । फिर चूर्ण को सुरजमुष्ठी तथा विल्व  
के पत्तों के रस से भावना दे । फिर सुरजमुष्ठी  
के पत्तों के रस से घोटकर १ रत्ती से २ रत्ती

प्रमाण की गोली बना ले । इस गोली के व्यवहार से प्लीहा ( तिल्ली ), उदररोग, यकृत ( जिगर ), गुल्म, अछीला, अग्रमांस, शोथ ( सूजन ), वातरक्त तथा अन्तर्विद्रधि प्रभृति आदि रोग नाश को प्रप्त होते हैं ॥ १४६-१५० ॥

प्लीहाशार्दूल रस ।

सूतकं गन्धकं व्योषं समभागं पृथक् पृथक् । एभिः समं ताम्रभस्म योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ १५१ ॥ मनःशिला वराटश्च तुत्थं रामटलौहकम् । जयन्ती रोहितश्चैव चारटङ्गसैन्धवम् ॥ १५२ ॥ विडं चित्रं कानकश्च रसतुल्यं पृथक् पृथक् । भावयेच्चित्रं दिनं यावत् त्रिटच्चित्रकयार्द्रकैः ॥ १५३ ॥ गुञ्जामात्रां वटीं खादेत्सद्यः प्लीहाविनाशिनीम् । मधुपिप्पलिसंयुक्तां द्विगुञ्जां वा प्रयोजयेत् ॥ १५४ ॥ प्लीहानमग्रमांसश्च यकृद्गुल्मं सुदुस्तरम् । आमाशयेषु सर्वेषु चोदरे शोथविद्रधौ ॥ १५५ ॥ अग्निमान्द्ये ज्वरे चैव प्लीहि सर्वज्वरेषु च । श्रीमद्गहननाथेन भाषितः प्लीहशार्दूलः ॥ १५६ ॥

पारद, गन्धक, त्रिकुटा प्रत्येक एक तोला, तौषे की भस्म २ तोला, मैनासिल, कौडीभस्म, शुद्ध तृतिपा, हाँग, लोहभस्म, जयन्ती, कसर, यथकार, सोहागा, सेंधा नमक, यिह नमक, चित्रक, शुद्ध जैपाल, प्रत्येक इष्य श्यक्-पृथक् एक-एक तोला, इनको तिसोत, चित्रक तथा अदरक के रस में अलग अलग तीन तीन दिन भागना देकर १ रत्ती से ० रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे । इसक व्यवहार से तुरन्त ही प्लीहा ( तिल्ली ) रोग नष्ट होता है और दूसरे रोग जैसे प्लीहा, अग्रमांस, यक्ष्मरोग, गुल्मरोग, आमाशय के रोग, उदररोग, शोथ ( सूजन ), विद्रधि, मन्दाग्नि, उदर प्रभृति आदि रोग दूर होते हैं । अनुपान—पीपल का चूर्ण आधी रत्ती और शहद ॥ १५१-१५६ ॥

यकृतप्लीहोदरारि लौह ।

स्वर्णरौप्यं तथा ताम्रं वद्भ्रञ्चाभ्रं समाक्षिकम् । सर्वाद्भ्रं जरितं लौहं कल्पयेत्कुशलो भिषक् ॥ १५७ ॥ मृद्वेवरसेनापि शेफालीदलजै रसैः । स्वरसैर्विल्वपत्राणां काथैश्च कटुतिक्तजैः ॥ १५८ ॥ रसेन बहुमञ्जर्या भावयेच्च त्रिधा त्रिधा । वल्लमात्रं प्रदातव्यं पर्पटकाथसंयुतम् ॥ १५९ ॥ प्लीहान यकृतं श्वासं कासश्च विषमज्वरम् । गुल्मगोथोदरानाहमग्रमांसमरोचकम् ॥ १६० ॥ कामलां पाण्डुरोगश्च चिरकालानुवन्धनम् । सर्वान् रोगान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवान् ॥ १६१ ॥

स्वर्णभस्म, चाँदीभस्म, ताम्रभस्म, वद्भ्रभस्म, अक्षकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, अलग अलग १ तोला, लोहभस्म ३ तोला, इनको इकट्ठा करके अदरक के रस से, हारशुद्धार के रस तथा विल्वपत्र इनके रस से या चिरायता के काढ़े से या तुलसी के रस से अलग अलग तीन-तीन भावना देकर गोली बना लेवे । मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक । अनुपान—चिरायता का काढ़ा । इन गोलीयों के व्यवहार से प्लीहा ( तिल्ली ), यकृत ( जिगर ) श्वास, कास, विषमज्वर, गुल्म, शोथ, उदररोग, आनाह, अग्रमांस, अरचि कामला, तथा पुराना पोरिया प्रभृति और वात, पित्त, कफ से उत्पन्न होनेवाले रोग शान्त होते हैं ॥ १५७-१६१ ॥

रोहीतकाद्य चूर्ण ।

रोहीतकं यज्ज्वरं भूनिम्नः कटुरोहिणी । मुस्तकं नरसारञ्च वीरा विश्वं मुचुखितम् ॥ १६२ ॥ मापमन्नं ततः ग्वादेच्छीततोयानुपानतः । यकृतोर्गं निहन्त्याशु भास्वरम्भित्तिरं यथा ॥ १६३ ॥

रोहिता की दाढ़ व्यवहार, चिरायता, कुडुकी,

नागरमोषा, नीसादर, घृतीस और सांड, इन कुल घीपधों को समभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर घूर्ण बना लेवे । मात्रा—१ मास । घनुपान—शीतल जल । इसका सेवन करने से यकृत और प्लीहा रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूषोदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥१६०-१६३॥

शंखद्रावक रस ।

योगिनीभैरवाभ्याश्च बलिमादौ प्रदापयेत् । पश्चात् यन्त्रञ्च कर्त्तव्यमेवमाह महेस्वरी ॥१६४॥ रसः शंखद्रवो नाम शम्भुदेवेन भाषितः । गुद्याद् गुह्यतमं गुणमिदानीं कथ्यते मया ॥१६५॥ शंखचूर्णं यवत्तारं सर्जित्तारं सट्ठनम् । समं च पंचलवणं स्फटिकारिवृसादरः ॥ १६६ ॥ काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् । यामार्द्धं द्रावयत्येव शंखशुक्तिवराटकान् ॥ १६७ ॥ अशीसि नाशयेत् पट च मूत्रकृच्छ्राश्मरीस्तथा । उदराष्टविधं हन्ति गुल्मप्लीहोदराणि च ॥ १६८ ॥ अजीर्णं नाशयेच्छीघ्रं ग्रहणीश्च विसूचिकाम् । भुक्तशेषे च भोक्तव्यो विन्दुमात्रो रसोत्तमः ॥ १६९ ॥ क्षणमात्राद्भवेद्भस्म पुंनर्भोजनमिच्छति प्रत्यहं भोजनान्ते च संसेव्योऽयं रसोत्तमः ॥ १७० ॥ न रुजायां भयं कापि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । न देयं यस्य कस्यापिसदा गोप्यश्च कारयेत् । रसः शंखद्रवो नाम वैद्यानामुपकारकः ॥ १७१ ॥

< पहिले योगिनी और भैरव के लिये बलिप्रदान कारक पश्चात् शंखद्राव नामक रस के निर्माण के लिये वारुणी यन्त्र की रचना करनी चाहिये । शिवजी के कहे हुये अत्यन्त गोपनीय इस शंखद्राव नामक रस को यव में बटाता हैं । शंख का चूर्ण, जवाखार, सजीखार, सोहागा, पाँचो नमक,

फिटकरी और नीसादर समभाग । प्रत्येक द्रव्य को लेकर बोलत में स्थापित कर वारुणी यन्त्र द्वारा चुषा लेने से शंखद्रावक रस तैयार होता है । यह अर्धप्रहर में ही शंख, शुक्र और बीड़ी आदि को गला देता है । एक घूँद इस शंखद्राव को आठ गुने जल में मिलाकर भोजन के अन्त में सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से ६ प्रकार के पयासीर, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, ८ प्रकार के उदर रोग, गुल्म, प्लीहा, अजीर्ण, ग्रहणी और विसूचिका आदि अनेक रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा क्षणमात्र में ही भोजन का परिपाक हो जाने से पुनः भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है । मैं सच कहता हूँ, इसका सेवन करने से किसी प्रकार के रोग का भय नहीं रहता । हरएक को इसका उपदेश न करना चाहिये, यह सर्वदा गोपनीय और वैधों का उपकारक है ॥ १६४-१७१ ॥

महाद्रावक रस ।

शुद्धं काश्चनमाक्षिकं मृदुतरं कांस्थामिधं तत्तथा । सिन्धूर्यं विमलं रसाञ्जनवरं फेनः स्रवन्तीपतेः ॥ चारौ सर्जिकसाम्भलौ सुविमलौ भागास्त्वमीपां समाः । सप्तानां सदृशान्तु दट्टनमिहास्याद्धौ वृसारः सितः ॥ १७२ ॥ तत्तुल्या स्फटिकारिका त्रिसदृशः शुक्लो यवस्याग्रजः । कासीसं त्रितयं यवाग्रजसमं संचूर्ण्य सर्वं न्यसेत् ॥ पात्रे काचमये मृदम्बरवृते यन्त्रे वकाख्ये भिषक् । ज्वालनेन क्रमवर्द्धिनात्यवहितोऽमीपां रसं पातयेत् ॥ १७३ ॥ यो द्राम्भस्मवराटिकां प्रकुरुते सोऽयं महाद्रावकः । को वक्तुं प्रभवेदमुप्य नितरां सम्यग्गुणान् भूतले ॥ एतद्बलचतुष्टयं सह गिलेत् शुण्ठ्या लवङ्गेन वा । तत्पश्चात् परिवासित बहुगुणं ताम्बूलकं भक्षयेत् ॥ १७४ ॥ प्रासङ्गात् कथयामि तान् शृणु गुणान् अस्यैव कां-

श्चित् परान् । नि शेषं विनिहन्त्यसौ चिर-  
भवान्यष्टोदराणि ध्रुवम् ॥ गुल्मं पाण्डुह-  
लीमकं सुकठिनामष्टीलिकां कामलां ।  
मन्दार्गिण विपमाग्नितां बहुविधान् शो-  
थांश्च शूलानपि ॥ १७५ ॥ सर्वांशसि  
भगन्दरान् कृमिगदान् पञ्चैव कासांस्तथा ।  
हिकारश्लीपदकोपवृद्धिमर्त्तुचि व्याधिं महा-  
दारुणम् ॥ नव्यं वा चिरजं ज्वरं बहु-  
विधं बर्दिकृमीन् विशति । यद्यमाणं चिरजा-  
मवातपिडिकां वीसर्पविस्फोटकम् ॥ १७६ ॥  
उन्मादं स्वरभेदमर्बुदमपिस्वेदञ्चहृत्पाणिजं ।  
जिह्वास्तम्भगलग्रहं चिरभवं ग्रीवारुजामु-  
ल्वणाम् ॥ नासाकर्णशिरोऽक्षिवक्त्रजग-  
दान् क्षुद्रामयांश्चापरान् । हन्यादेव चिरो-  
त्थितान् बहुविधानन्यांश्च रोगा-  
नपि ॥ १७७ ॥ एकः स्यादपरो हि  
दङ्गणमुखैर्द्रव्यैः परैः सप्तकैः । अन्यस्तु  
स्फटिकारिदङ्गनयवत्तारप्रकासीसकैः ॥  
जानीयाद् गुरुतो विभागमनयोर्धन्नादिकं  
चापरं । निर्दिष्टास्त्रय एव भेषजवराः स्वल्पो  
महान्मध्यमः ॥ १७८ ॥

दङ्गनादिकासीसान्तैः सप्तद्रव्यैर्मध्यमः ।  
स्फटिकारिकासीसान्तचतुर्द्रव्यैः स्वल्पः ।  
स्वर्णमात्तिकादिकासीसत्रितयान्तैर्महान् ।

शुद्ध स्वर्णमाषिक, शुद्ध कार्पमाषिक, सेंघल  
क्षयण, रसौत, समुद्रकेन, सजीव्यार और सांभर-  
नोन प्रत्येक १ तोला, सोहागा ७ तोले, रवेत  
नौसाद्र ३॥ तोले, फिटवरी ३ ॥ तोले, पारपात्र  
१४ तोले, धातुकासीस, पुष्पकासीस और कासीस  
( हीराकसीस ) तीनों मिलकर १४ तोले ( यदि  
तीनों प्रकार के कासीस न मिलें तो केवल हीरा  
कासीस ही को १४ तोले लेये ) ; इन सब द्रव्यों  
को एकत्र बूट पीस कर नूण बना लेये । तदनन्तर

उत्तम रीति से कपडमिष्टी किये हुए काँच के पात्र  
में रख कर वकयन्त्र द्वारा, क्रमशः मृदु, मध्य  
और तीव्र आँच देकर अत्यन्त सावधानी से इनका  
रस चुआवे । इसी रस को महाद्रावक कहते हैं ।  
यह वही महाद्रावक है जो कौडी को तरकाल भस्म  
कर देता है, फिर पृथिवी में इसके निःशेष गुणों  
का वर्णन कौन कर सकता है । सौंठ अथवा लौंग  
के दूण के साथ ३ रत्ती ( ७ या ८ बूँद )  
परिमित महाद्रावक रस का सेवन करना  
चाहिये । तदनन्तर लौंग इलायची आदि सुग-  
न्धित और गुणद पदार्थों से युक्त पान का बीजा  
खावे ।

इसका सेवन करने से ८ प्रकार के उदररोग,  
गुल्म, पाण्डुरोग, हलीमक, अतिकठिन अष्टीला,  
कामला, अग्निमान्द्य, विपमाग्निता, हर प्रकार  
के शोथरोग, शूल, सब प्रकार के बवासीर,  
भगन्दर, कृमिरोग, ५ प्रकार के कास, हिचकी,  
श्लीपद, कोपवृद्धि, अर्त्तुचि, नया अथवा पुराना  
महादारुण ज्वर, हर प्रकार के यमन, २० प्रकार  
के कृमि, राजयक्ष्मा पुरानी आमवातजन्य  
पिडिका, वीसर्प नामक फोटा, उन्माद, स्वरभेद,  
अर्बुद, हृदय और हाथ में होनेवाला स्वेद  
( पसीना ), जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, पुरानी और  
उप्र प्रीवा की पीडा, नासिकरोग, कर्णरोग,  
मस्तरोग, नेत्ररोग और मुखरोग आदि अनेक  
प्रकार के रोग नष्ट होते हैं ॥

द्रावक रस अल्प, मध्य और महत् इन भेदों  
से ३ प्रकार का है । फिटवरी, सोहागा, यवपार  
और हीराकासीस इन चारों द्रव्यों के समान दूण  
पकप्रित कर जो चुआया जाता है, उसको अल्प  
द्रावक कहते हैं । इसी प्रकार सोहागा, नौसाद्र,  
फिटवरी, यवपार धातुकासीस, पुष्पकासीस और  
हीराकासीस इन सात द्रव्यों के समान भाग दूण  
मिश्रित कर जो अर्क निकाला जाता है उसको  
मध्यम द्रावक कहते हैं । तथा मूलोत्र बुल द्रव्यों  
को यथाभाग एत्रिण कर जो रस चुआया जाता है  
उसको महाद्रावक कहते हैं ।

इनके ( अल्प और मध्यमद्रावक के ) बनाने  
के नियम और यन्त्र आदि का ज्ञान गुण से ब्राह्म

करना चाहिये । इस रस की श्वावहारिक मात्रा  
१ रूँद है ॥ १७२-१७८ ॥

महाशंखद्रावक ।

चिञ्चार्श्वत्थः स्नुही हर्कोऽपामार्गश्च  
हि पञ्चम । पृथग्भस्मजलं कृत्वा तूद्धृत्य  
लवणानि च ॥ १७९ ॥ टङ्गनञ्च यव-  
चारं स्वर्जं लवणपञ्चकम् । रामठं ताल-  
कञ्चैव लवङ्गं नरसादरम् ॥ १८० ॥  
जातीफलञ्च गोदन्तं ताप्यं गन्धरसंतथा ।  
विपं समुद्रफेनञ्च सोरकास्फटिकारिका ॥  
१८१ ॥ शंखचूर्णं शंखनाभिचूर्णं पापा-  
णसम्भवम् । मनःशिला च कासीसं सम-  
भागञ्च कारयेत् ॥ १८२ ॥ भाव्यास्ते  
वेतसरसैः काचकूप्यां क्षिपेत्ततः । अत्र  
द्रव्यञ्च तद्वत्त्वा उष्णस्थाने च धारयेत् ॥  
१८३ ॥ वस्त्रेणाच्छादितस्तावद्यावत्  
स्यात् सप्तवासरम् । पश्चान्मन्दाग्निना  
देयं वारुणीयन्मृद्धरेत् ॥ १८४ ॥ काच-  
कूप्यां जलं धार्यं रक्षयेद्यत्ततः सुधीः ।  
गुञ्जैकं पर्णखण्डेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥  
१८५ ॥ कासं श्वासं क्षयं म्लीहामजीर्णं  
ग्रहणीगदम् । रक्षपित्तं क्षतं गुल्ममर्शांसि  
च विनाशयेत् ॥ १८६ ॥ अस्मरीं मूत्र-  
कृच्छ्रञ्च शूलमष्टविधं तथा । ग्रामवातं वात-  
रक्तं खड्गवातं धनुस्तथा ॥ १८७ ॥ उदराम-  
यमामञ्च स्थूलतां कृमिकोष्ठताम् । वात-  
पित्तकफान् सर्वांश्चाशयेन्नात्र संशयः ॥  
१८८ ॥ भुक्त्वा च कण्ठपर्यन्तं गुञ्जै-  
कञ्च रसं लिहेत् । तत्क्षणात् कारयेद्भस्म  
तृणराशिमिवानलः ॥ १८९ ॥ यामार्द-  
द्रावयेत्सर्वं शङ्खशुक्तिवराटकम् । पूर्वोक्त-  
विधिना तत्र दद्यान्निशिचतुष्पथे ॥ १९० ॥

योगिनीभैरवाभ्याञ्च वलि मापातिला-  
नथ । महाशंखद्रवो नाम्ना शम्भुदेवेन  
भापितः ॥ १९१ ॥ गुह्याद्गुह्यतमं  
गोप्यं पुत्रस्यापि न कथ्यते । लोकानां  
कौतुकान् कर्त्रा प्रकारयो राजस-  
न्निधौ ॥ १९२ ॥

इमली की छाल, पीपल की छाल, यूहर,  
आक के जड़ की छाल और लटजीरा, इनमें  
से प्रत्येक के भस्म अलग अलग जल में धोल  
देवे । जब भस्म नीचे बैठ जाने से पानी साफ़  
निर्मल हो जाय तब युक्तिपूर्वक उस निर्मल जल  
को दूसरे पात्र में निकाल लेवे । तदनन्तर उस  
पानी को साफ़ कड़ाही में रखकर धीमी आँच  
से जलाकर लवण बनावे । इसी प्रकार पाँचों  
के भस्म के चार जल का अलग-अलग लवण  
तैयार कर लेवे ; तदनन्तर सोहागा, यवचार,  
सजीखार, पाँचों नमक, हींग, हरिताल, लींग,  
नीसादार, जायफल, गोदन्ती हरिताल, स्वर्ण-  
माक्षिक, बोल विप, समुद्रफेन, कलमीशोरा,  
फिटिकरी शङ्खचूर्ण, शङ्खनाभिचूर्ण, पत्थर का  
चूर्ण, मैनशिल और हीराकसीस सम भाग ; इन  
सब द्रव्यों को एकत्र चूषित करके बेंत के रस  
में घोटकर बोतल में रखे । तदनन्तर उस  
बोतल को कपड़े से ढक करके उष्ण स्थान में  
७ दिन पर्यन्त रख छोड़े । पश्चात् मन्द मन्द  
आँच से वारुणीयन्त्र में पकाकर थोड़े जल से  
युक्त धिसी काँच के पात्र में थक चुम्पा लेवे ।  
प्रतिदिन १ रत्नी इस महाशङ्खद्राव को पान  
की पत्ती पर चुपड़े कर खाना चाहिये । इसका  
सेवन करने से कास, रवास, सय, ब्रीहा, अजीर्ण,  
ग्रहणी, रक्षपित्त क्षत, गुल्म, बवाभीर, पथरी,  
मूत्रकृच्छ्र, आठ प्रकार के शूल, ग्रामवात,  
वातरक्ष, खड्गवात, धनुर्वात, उदररोग, स्थूलता,  
कृमिकोष्ठता, वातरोग, पित्तरोग और कफरोग  
ये सब निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं । कण्ठपर्यन्त  
भोजन करके एक रत्नी इस महाशङ्खद्राव रस को  
यादि ( पान की पत्ती पर रखकर ) खा लेवे तो  
उन कुल भुङ्गपदार्थों को उष्णमात्र में इन्म प्रकार

भस्म कर देता है जैसे अग्नि तृणों की राशि को भस्म करे। पहिले रात्रि के समय किसी चौराहे पर पूर्वाङ्ग विधि से योगिनी और भैरव के लिये तिल और उरद की बलि देकर, पश्चात् इस महाशङ्खद्राव को बनाना चाहिये। शिवजी के कहे हुये अत्यन्त गोपनीय इस महाशङ्खद्राव को अपने पुत्र से भी न बहे, किन्तु लोगों को आश्चर्यान्वित करने के लिये राजभसा में इस को प्रकाशित करना चाहिये। वह आधे पहर में शख, सीपी और कौडी को गला देता है ॥१७६-१६२॥

रोहीतकारिष्ट ।

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले-  
पचेत् । पादशेषे रसे पूने शीते पलशत-  
द्वयम् ॥ २१८ ॥ दद्याद्गुडस्य धातक्याः  
पलषोडशिका मता । पञ्चक्रोलं त्रिजातञ्च  
त्रिफलाञ्च विनिसिपेत् ॥ २१९ ॥ चूर्ण-  
यित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्  
मासादूर्ध्वञ्च पिबतां सर्वोदररुजां जयेत् ॥  
२२० ॥ स्त्रीहगुल्मोदराष्ट्रीलाग्रहण्यशीति  
कामलाम् । कुष्ठशोफारुचिहरो रोहीतारिष्ट  
संज्ञितः ॥ २२१ ॥

रोहिदा की छाल ५ सेर लेकर एक मन ग्यारह सेर सोलह तोला जल में पकाये, १२ सेर ६५ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान छेये । छाय को शीतल होने पर उसमें १० सेर गुड मिलाये । तदनन्तर ६५ तोला धाय के पूल, पीपर, पिपरा मूल, चष्य, चीता, सोंठ, दालचीनी, इलाइची, तेजपात, चायला, हर् और बहेदा इनमें से प्रत्येक का चूर्ण ५ तोले मिलाकर किसी मिट्टी के पात्र में रखकर पात्र का मुख मुद्रित करके रख छोड़ । एक मास के अनन्तर छान कर काम में लाये । इसका नाम रोहितकारिष्ट है । इसकी मात्रा आधी घण्टाक ही मम भाग जल मिला । दिन में ३ बार इसका सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से सब

प्रकार के उदररोग, प्लीहा, गुल्म, अण्ठीला, प्रहृषी, बवासीर, कामला, कुष्ठ, शोथ और अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ २१८-२२१ ॥

यकृत स्निहारोग में पथ्यापथ्य ।

यत्पथ्यं यदपथ्यं चोदरे प्रोक्तेमिषग्वरैः  
तदेवयकृत्तिस्रीही गटे ज्ञेयं विनिरिचतम् ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्निहयकृद-  
धिकारः समाप्तः ॥

वैद्यों ने उदररोग में जो पथ्य और अपथ्य कहा है वही निरिचत रूप से प्लीहा यकृतरोग में भी पथ्य अपथ्य समझना चाहिए । -

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिकृताया भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाट्याया व्याख्यायां  
स्निहयकृदधिकार समाप्तः ॥

अथ पाण्डुकामलाहलीम-  
काधिकारः ।

साध्यन्तु पाण्डुमयिनं समीक्ष्य  
स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् । सम्पा  
दयेत् चोदृघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैः  
प्रयोगैः ॥ १ ॥

साध्य पाण्डुरोग में पहिले रोगी को घत ( पञ्चतित्रादिक घृत ) का सेवन कराकर स्निग्ध करना चाहिये । ततनन्तर वमन और विरेचन द्वारा शुद्ध करके पश्चात् घृत और मधु से मुत्र हरीतकीचूर्ण आदि प्रयोगों का सेवन कराये ॥१॥

पाण्डुरोगनाशक योग ।

पिपेद्घृतं वा रजनीविपकं यत्रैफलं  
तैन्दुकमेव वापि । विरेचनद्रव्यकृतं पिपेद्घा  
योगांश्च विरेचनिकान् घृतेन ॥ २ ॥

पाण्डुरोग में इन्दी के छाय और कक के साथ सिद्ध घृत, पिपला के छाय और कक



के साथ सिद्ध घृत, वाताधिकारोक्त तैन्दुकघृत अथवा विरेचन द्रव्यों के वाथ और कल्क के साथ सिद्ध घृत का पान करे । अथवा विरेचक ( दस्तावर ) औषधों का घृत के साथ सेवन करे ॥ २ ॥

विधिः स्निग्धस्तु वातोत्थे तिक्रशी तस्तु पैत्तिके । श्लैष्मिके कटुरुक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ३ ॥

वातजन्य पाण्डुरोग में स्निग्ध प्रयोग, पित्तजन्य पाण्डुरोग में तिक्त और शीत प्रयोग, कफजन्य पाण्डुरोग में कटु, रुच्य और उष्ण प्रयोग और द्रव्यज आदि में मिश्रप्रयोगों का सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

पाण्डुरोगे सदा सेव्या सगुडा च हरीतकी ॥ ४ ॥

पाण्डुरोग में सदा गुड और हरं का सेवन करना चाहिए ॥ ४ ॥

सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं वाप्य-योरजः । पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसाथ पिबेन्नरः ॥ ५ ॥

पाण्डुरोग की शान्ति के लिये सात दिवस पर्यन्त गोमूत्र की भावना देकर दूध के साथ लोहचूर्ण का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

अयोमलन्तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रशो-धितम् । मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सहभक्त्रेण योजयेत् । दीपनं चाग्निजननं शोथ-पाण्ड्वामयापहम् ॥ ६ ॥

मण्डूर को अग्निपर तपाकर सातवार गोमूत्र में बुकाकर शुद्ध कर लेंगे । तदनन्तर उसका महीन चूर्ण करके धी और शहद में मिश्रितकर भात के साथ खिलावे । इससे अग्नि की वृद्धि, तथा शोथ और पाण्डुरोग का नाश होता है ॥ ६ ॥

•-रेचनं कामलार्तस्य स्निग्धस्यादौ

प्रयोजयेत् । ततः प्रशमनी कार्या क्रिया-वैद्येन जानता ॥७ ॥

कामला रोगी को पहिले स्नेहपान कराकर पश्चात् रेचन ( दस्तावर ) औषध देना चाहिये । तदनन्तर प्रशमन औषध का प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा टाव्यानिम्बस्य वा रसः । प्रातर्मात्तिकसंयुक्तः शीलित-कामलापहः ॥ ८ ॥

त्रिफला, गिलोय, दारहलदी और नीम की छाल इनमें से किसी एक के रस को मधु-संयुक्त प्रातःकाल सेवन करने से कामला रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी हिता गवाक्षी सगुडा च शुण्ठी ॥ ९ ॥

चीनी के साथ निसोय और इन्द्रायण का चूर्ण अथवा गुड के साथ सोंठ का चूर्ण सेवन करने से कामला रोग में लाभ होता है ॥ ९ ॥

दग्भ्राज्जकाष्ठैर्मलमायसन्तु गोमूत्र-निर्वापितमष्टवारान् । विचूर्ण्यलीढं मधुना-चिरेण कुम्भादयं पाण्डुगदं निहन्ति १०

बहेड़ा को लकड़ी की आग पर मण्डूर तथा-तपाकर आठ बार गोमूत्र में बुकावे । तदनन्तर उस मण्डूर का महीन चूर्ण बनाकर मधु के साथ सेवन करने से कुम्भकामला रोग अति शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

लौहपात्रे शृतं क्षीरं सप्ताहं पथ्य-भोजनः । पिबेत् पाण्ड्वामयी शोषी प्रहृणी-टोपपीडितः ॥ ११ ॥

पाण्डुरोगी, शोषरोगी और प्रहृणीरोगपीडित मनुष्य एक सप्ताह पर्यन्त पथ्य भोजन करे और लोह के पात्र में पकाये हुये दुग्ध का पान करे तो उनके पाण्डु आदि रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥

१ गवाक्षी=इन्द्रायण ।

कामलानाशक अञ्जन ।

अञ्जनं कामलार्चस्य द्रोणपुष्पीरसः  
स्मृतः । निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा  
संप्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥

गूमा के रस को अखि में छोड़ने से अथवा  
हलदी, गेरू और अखिला के चूर्ण को शहद में  
मिलाकर अखि में अञ्जन करने से कामलाजन्य  
अखि का पीलापन नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

पाण्डुनाशक नस्य ।

नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं वा जालिनी-  
फलम् ॥ १३ ॥

ककोड़े की जड़ के रस का अथवा घोपा-  
लता के फल के रस ( अभाव में चूर्ण ) का नस्य  
कामला और पाण्डुरोग में लाभदायक होता  
है ॥ १३ ॥

फलत्रिकादि क्याथ ।

फलत्रिकामृता वासा तिल्ला भूनिम्ब-  
निम्बज । काथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डु-  
रोगं सकामलम् ॥ १४ ॥

त्रिकला ( हर, बहेदा, आमला ), गिलोय,  
वासा, कटुकी, चिरायता नीम की छाल, उपर्युक्त  
कुल द्रव्य मिलाकर २ तोले जो और इनको  
३२ तोले पानी में डालकर पकावे, जब आठ  
तोले कादा शेष रहे तो तैयार समके । इस  
कादे में ऊपर से शहद मिलाकर प्रयोग में लाने  
से पाण्डु रोग नाश को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

विशालादि चूर्ण ।

विशाला कटुका मुस्तकुष्ठदारुकलि-  
ङ्गकाः । कर्पाशा द्विपिचुं मूर्त्वा कर्पाद्धी च  
गुणभिया ॥ १५ ॥ पीत्वा तच्चूर्ण-  
मम्भोभिः सुखं लिङ्गात्ततो मधु । पाण्डु-  
रोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम् ॥  
गुल्मानाहामवातांश्च रक्त्रपिक्त्रञ्च तज्ज-  
येत् ॥ १६ ॥

इन्द्रायण, कटुकी, मोथा, कुष्ठ, देवदारु,  
इन्द्रजौ, हरएक द्रव्य दो तोले, मूर्त्वामूल ४ तोले,  
अतीस १ तोला, इनका पृथक्-पृथक् चूर्ण कर  
मिला ले । मात्रा-२ मासे । अनुपान जल । विधि-  
२ मामा चूर्ण जल के साथ फाँकने के परचाए  
ऊपर से शहद चाटे । इस चूर्ण के प्रयोग से  
पाण्डुरोग ( पीरिया ) ज्वर, दाह, कास, श्वास,  
अरचि, गुल्म, आनाह, आमवात एवं रक्त्रपिक्त्र  
नष्ट होता है ॥ १५-१६ ॥

धात्रीलौह ।

धात्रीलोहरजोव्योपनिशाक्षौद्राज्य-  
शर्करा । लेहोनिवारयत्याशु कामलामुद्द-  
तामपि ॥ १७ ॥

अखिला, लोहभस्म, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च,  
पीपरि ), हलदी, मधु, धी तथा खोंड को मिलाकर  
चाटने से कामला रोग नष्ट होता है । मात्रा-  
२ रत्ती ॥ १७ ॥

अयस्तिलादि मोदक

अयस्तिलत्र्यूपणकोलभागैः सर्वैः समं  
माक्षिकधातुचूर्णम् । तैर्मोदकः क्षौद्रयुतो-  
ऽनुतक्रः पाण्ड्वामये दूरगतेऽपिशस्तः १८

लोहभस्म, तिल, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च,  
पीपरि ), बेर हरएक १ भाग, मोनामक्खली की  
भस्म ६ भाग इन्हें इकट्ठे मिलाकर शहद के  
साथ लड्डू बना ले । मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती  
तक । अनुपान मठा । ये मोदक पाण्डु रोग में  
अत्यन्त लाभदायक हैं ॥ १८ ॥

दाव्यादि लेहि ।

टावी सत्रिफला व्योपविट्ठान्ययसो  
रजः । मधुसर्पिर्युतं लिङ्गात् कामलापाण्डु-  
रोगवान् ॥ १९ ॥

दाहहृदी, त्रिकला ( हर, बहेदा, आमला ),  
त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरि ), वायुषिद्ध,  
लोहभस्म, इन द्रव्यों को बराबर-बराबर मिला-

कर ४ रत्ती मधु या घी के साथ पाण्डु रोगी को सेवन करना चाहिए ॥ १६ ॥

तुल्या चायोरजः पथ्या हरिद्राक्षौद्रस-  
र्पिषा । चूर्णिता कामली लिङ्गात् गुडक्षौ-  
द्रेण त्रामयाम् ॥ २० ॥

लोहभस्म, हरद, हलदी, इनको, इकट्ठा कर  
मिलाकर घी या शहद के साथ या इकले हरद  
को ही गुड और शहद के साथ कामलारोगी को  
घाटना चाहिए ॥ २० ॥

मृद्विरेचनम् ।

इन्द्रलोचन नेत्राणि शिखि भागीञ्च  
योजयेत् । त्रुटि गन्धक मृद्वारशतपुष्पा  
विचूर्णितम् ॥ २१ ॥

मापद्वय गणं दुग्धैः सेवयेद्दिनपञ्च-  
कम् । रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हित-  
मोपधम् ॥ २२ ॥

इलायची १ भाग, गन्धक ३ भाग, मुदीसष्ट  
३ भाग, लौक ३ भाग लेकर महीन चूर्ण कर  
रख ले । इसमें से २२ मासो गो दूध के साथ  
देने से २ दिन में बच्चों की रसई हुई मिट्टी  
दस्त द्वारा निकल जाती है । विशेष अनुभूत  
है ॥ २१-२२ ॥

निशालौह ।

लोहचूर्णं निशायुग्मत्रिफलारोहिणी-  
युतम् । प्रलिङ्गान्मधुसर्पिर्भ्यां कामला-  
पाण्डुशान्तये ॥ २३ ॥

हलदी, दारहलदी, त्रिफला ( हरं, बहेदा,  
शर्बिला ), कडुकी हरएक एक एक तोला,  
लोहभस्म ६ तोला, इन्हें मिलाकर सेवन करने से  
कामला तथा पाण्डुरोग शान्त होता है । मात्रा-  
२-३ रत्ती, अनुपान-शहद तथा घृत ॥ २३ ॥

विडङ्गाद्य लौह ।

विडङ्गमुस्तत्रिफलादेवदारुपृष्णैः ।  
तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥

२४ । गुञ्जाद्वयमितां कृत्वा वर्तौ स्वादेत्  
दिनेदिने । कामलापाण्डुरोगार्तः सुख-  
मापद्यतेऽचिरात् ॥ २५ ॥

वायविडङ्ग, मोया, त्रिफला, ( हरं, बहेदा,  
शर्बिला ), देवदारु, पीपरि, पिप्पलीमूल, चव्य,  
चित्रक, सोंठ, काली मिर्च, प्रत्येक द्रव्य १ भाग,  
लोहभस्म सबके बराबर, इस मिले हुए चूर्ण से  
आठगुना गोमूत्र मिट्टी के बर्तन में चूर्णसहित  
ढाँककर पका ले । जब गोली बनाने योग्य गाढ़ा  
हो जावे तब उतार ले और २३ रत्ती प्रमाण की  
गोली बना ले । इनका लगातार सेवन करने से  
कामला तथा पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं और  
मनुष्य आरोग्य हो जाता है ॥ २४-२५ ॥

। अष्टादशाङ्ग लौह ।

किराततिका च सुदारु दार्वायुस्तागुहूची  
कडुकापटोलम् । दुरालभा पर्यटकं सनिम्बं  
कटुत्रिकं वह्निफलत्रिकञ्च ॥ २६ ॥ फलं  
विडङ्गस्य समांशिकान्ते सर्वैः समंचूर्णमथा-  
यसञ्च । सर्पिर्मधुभ्यां वटिका विधेया  
तक्रानुपाना भिषजप्रयोज्या ॥ २७ ॥  
निहन्ति पाण्डुञ्च हलीमकञ्च शोथं प्रमेहं  
ग्रहणीरुजञ्च । रसासञ्च कासञ्च सरङ्ग-  
पित्तमर्शास्यथो वाग्ग्रहमामरातम् । व्रणांश्च  
गुल्मान् कफविद्रर्घाश्च शिशुञ्च कुष्ठञ्च  
ततः प्रयोगात् ॥ २८ ॥

चिरायता, देवदारु, दारहलदी, मोया, गिलोय  
कडुकी, पटोलपत्र, दुरालभा, पित्तपावदा, नीम,  
त्रिकुटु, ( सोंठ, मिर्च, पीपरि, ), चित्रक,  
त्रिफला, ( हरं, बहेदा, शर्बिला ), वायविडङ्ग,  
हर एक द्रव्य १ तोला, लोहभस्म १८ तोले,  
इन्हें मिलाकर घी या शहद के साथ गोली बना,  
ले । मात्रा २३ रत्ती । अनुपान मठा । इसके  
व्यवहार से पाण्डु, हलीमक, शोथ ( मूत्रन )  
प्रमेह, मन्थी, रसास, कास, रङ्गपित्त, चर्म,  
वाग्ग्रह, आमवात, मद्य, ( जोड़ा ), गुस्म,

विद्रधि, शिवप्र तथा कुछ मात्रा को प्राप्त होते हैं ॥ २६-२८ ॥

कामलान्तक लौह ।

द्विपलं जारितं लौहं लौहाद्धं जारि-  
ताभ्रकम् । मण्डूरश्च तदर्थश्च तदर्थं मूत-  
वद्भ्रकम् ॥ २६ ॥ वद्भ्रार्थं मागधं शुण्ठी  
पिप्पलीगजपिप्पली । ग्रन्थिकं गन्धपत्रश्च  
दारुं चव्यं यमानिका ॥ ३० ॥ चित्रकं  
कटफलं रास्ना देवदारु फलत्रिकम् ।  
रसाञ्जनं चातिविषा समभागान् विचूर्ण-  
येत् ॥ ३१ ॥ केशराजस्य भृङ्गस्य सोम-  
राजरसस्य च । मण्डूकपर्ण्यः स्वरसेर्भाव-  
येष्व दिनत्रयम् ॥ ३२ ॥ भक्तयेन्मधुना  
युक्तं सर्वमेहकुलान्तकः । कामला पाण्डु-  
रोगञ्च हलीमकमथारुचिम् ॥ ३३ ॥  
कासं श्वासं शिरःशूलं स्त्रीहानमग्रमांस-  
कम् । जीर्णज्वरं तथा शोथमद्ग्रहनिपीडि-  
तम् ॥ ३४ ॥ गुल्मं शूलञ्च कुरुते दीप्तं  
ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ कामलान्तकना-  
मायं लौहः कामलरोगनुत् ॥ ३५ ॥

लोहभस्म १६ तोले, अभ्रकभस्म ८ तोले,  
मण्डूर २ ताले, वद्भ्रभस्म २ तोले, मागध  
( जीरा ), सोंठ, पीपल, गजपीपल, पिप्पली-  
मूल, तेजपत्र, दारुहलदी, चव्य, अजयाइन,  
चित्रक, कटफल, रास्ना, देवदारु, त्रिकला,  
( हरं, बहेड़ा, आँवला ), रसाँत, अतीस, हरएक  
द्रव्य १ तोला; इन्हें केशराज, भृङ्गराज ( सफेद  
फाले दोनों भाँगरे), सोमराज ( कालीजीरी )  
तथा मण्डूकपर्णी के रस से अलग-अलग तीन  
दिन भाचना दे, मात्रा-२ रत्नी से ४ रत्नी,  
अनुपान-शहद । इसके सेवन करने से प्रमेह,  
कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, कास, श्वास,  
शिरावेदना, ( सिरदर्द ), प्लीहा, अग्रमांस, जीर्ण-  
ज्वर, शोथ ( सूजन ), अंगमह, गुल्म, शूल,

हृद्रोग तथा मंत्रहणी आदि रोग दूर होते हैं और  
यह अग्निदीपन है ॥ २६-३५ ॥

हलीमकचिकित्सा ।

पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हली-  
मके । कामलायाञ्चया दिष्टा सापि कार्या  
मिपग्वरः ॥ ३६ ॥

पाण्डुरोग और कामला में जो-जो चिकित्साएँ  
बही गई हैं, पाँचवर हलीमक में भी उन्हीं सब  
चिकित्साओं का प्रयोग करें ॥ ३६ ॥

नवायसलौह

त्र्युपणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं  
समम् । नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधु-  
सर्पिषा । भक्तयेत् पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शः-  
कामलापहम् ॥ ३७ ॥

सोंठ, मिरिच, पीपल, आँवला, हरं बहेड़ा,  
नागरमोथा, थापविडङ्ग और चीता प्रत्येक एक-  
एक तोला, लोहभस्म १ तोले; इन सब द्रव्यों  
को जल में घोटकर घटी बना लेवे । मात्रा-१  
रत्नी से क्रमशः बढ़ाकर ४ रत्नी पर्यन्त । अनु-  
पान-घृत और मधु । इसका सेवन करने से  
पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, बवासीर और कामला  
रोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

त्रिकत्रयाद्यलौह ।

पलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य  
सर्पिषः । शितायारच पलञ्चैकं मधुनरचं  
पलं तथा ॥ ३८ ॥ तोलैकं कान्तलौहस्यं  
त्रिकत्रयसमन्वितम् । ततः पात्रे विधीतव्यं  
लौहे वा मृगमये तथा ॥ ३९ ॥ भावितं  
मधुसर्पिर्भ्यां रौद्रे शिशिर एव च । भोज-  
नादौ तथा मध्ये चान्ते चैव प्रयोजयेत् ।  
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्या दोषगतिं  
भिषक् ॥ ४० ॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च  
हलीमकमथापि च । अम्लपित्तं तथा शूलं

शूलञ्च परिणामजम् ॥ ४१ ॥ कासं पञ्च-  
विधञ्चैव स्त्रीहश्वासञ्चरानपि । अपस्मारं  
तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च ॥ ४२ ॥  
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्चश्वयथुञ्चमुदारुणम् ।  
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं  
यथा ॥४३॥ त्रिकत्रयादिरित्येष वाग्भटेन  
प्रकाशितः ।

मट्टर ४ तोले, गोघृत = तोले, चीनी ४  
तोले, मधु ४ तोले कान्तलोह १ तोला, सोंठ  
भिरिच, पीपरि, आँवला, हरं, बहेड़ा, वाय-  
थिङ्ग, नागरमोथा और चीता प्रत्येक १ तोला ।  
इन सब औषधों को एकत्रकर लोह के पात्र में  
लोहदण्ड से घोटकर दिन भर घाम में और  
रात को ओस में रख छोड़े । यह औषध मिट्टी  
के पात्र में भी बन सकती है । इसकी मात्रा  
४ रत्ती । भोजन के आदि में पहिले प्रास के  
साथ, भोजन के मध्य में प्रास के साथ और  
भोजन के अन्त में अग्निम प्रास के साथ इस  
त्रिकत्रयाद्यलोह का सेवन करना चाहिए ।  
इसका सेवन करने से कामला, पाण्डुरोग, हली-  
मक, अम्लपित्त, शूल, परिणामजन्य शूल, ५  
प्रकार के कास, प्लीहा, श्वास, ज्वर, अपस्मार,  
उन्माद, उदररोग, गुल्म, अग्निमान्द्य, अजीर्ण,  
दारुणशोथ ये सब रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं  
जैसे सूर्योदय होने से अन्वकार नष्ट हो । इसमें  
किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं ॥ ३७-४२ ॥

योगराजलोह ।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकदुकस्य च ।  
भागाश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानांतथैव च  
॥ ४६ ॥ पञ्चांश्रम जतुनोभागास्तथारूप्य  
मलस्य च । मत्तिकास्य च शुद्धस्य लौहस्य  
रजस्तथा ॥ ४४ ॥ अष्टौभागा सित्ता-  
याश्च तत्सर्वं सूक्ष्मचूर्णितम् । मात्तिकेणा-  
ऽऽप्लुतं स्थाप्य मायसेभाजने शुभे ॥४५॥  
उदुम्बरसमां मात्रां ततः स्वादेयथाऽग्निना ।

दिनेदिने प्रयुञ्जीत जीर्णभोज्यं यदीप्सि-  
तम् ॥ ४६ ॥ वर्जयित्वा कुलत्थानि  
काकमाची कपोतकम् । योगराज  
इतिख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ४७ ॥  
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोग हरं शिवम् ।  
पाण्डुरोगं विषं कासं शोषं श्वासमरो  
चकम् ॥ ४८ ॥ विशेषाद्दन्त्यपस्मारं  
कामलां गुदजानि च ॥ ४९ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, विडङ्ग ३-३ भाग  
शुद्ध शिलाजीत रूपामाखी, सोनामाखी, लोह-  
भस्म २-२ भाग शक्कर = भाग लेकर सबका  
महीन चूर्ण कर शहद में मिलाकर लोहे के पात्र  
में रख ६-७ रोज चावल के ढेर में रखा रहने देवे,  
फिर निकाल कर रख लेवे । ३ मासे से १ तोले  
तक बलानुसार नित्यप्रति सेवन करने से, पाण्डु  
विषय का राज्यपमा विषम ज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण,  
प्रमेह, शोष, श्वास, अरुचि, कामला बवासीर  
इनको यह दूर करता है, विशेष कर अपस्मार को  
नष्ट करता है । जीर्ण ज्वर में कुलधी मकोय कबूतर  
को त्याग इच्छानुसार भोजन करे । मात्रा ३-४  
रत्ती ॥ ४३-४९ ॥

वज्रघटकमण्डर ।

पंचकोलं समरिचं देवदारुफलत्रिकम् ।  
विडङ्गमुस्त युक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्भितः ॥  
५० ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डरं  
द्विगुणं ततः । पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनी-  
भूते तद्गुदरेत् ॥ ५१ ॥ ततो मापार्द्धममितं  
पिबेत्तक्रणं तक्रमुक् । पाण्डुरोगं जयत्येष  
मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ५२ ॥ अर्शांसि  
ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमघापि च । कृमिं  
प्लीहानमुदरं गलरोगञ्च नाशयेत् ॥५३॥  
मण्डरो वज्रनामायं रोगानीकविनाशनः  
निर्नाप्य बहुशो मूत्रे मण्डरं प्राणमिप्यने ॥

५४ ॥ ग्राह्यन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूर-  
चूर्णतः ॥ ५५ ॥

गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ मण्डूर का चूर्ण २४ तोले लेकर २ सेर ३२ तोले गोमूत्र में पकावे, गाढ़ा हो जाने पर उसमें पीपरि, पिपरा-मूल, चष्य, चीतामूल, सोंठ, मिरिच, देवदार, आंवला, हर, बहेडा, वायविडङ्ग और नागर-मोथा इन सबका चूर्ण १२ तोले मिलाकर चार-चार रत्ती की बटी बना लेवे। अनुपान—तक्र। भोजन भी तक्र के साथ करना चाहिये। इस यज्ञवटकमण्डूर का सेवन करने से पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, अरुचि, यवासीर, ग्रहणी, उदरस्तम्भ, कृमिरोग, प्लीहा, उदररोग और गलरोग आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ॥ ५०-५२ ॥

पुनर्नवादिमण्डूर ।

पुनर्नवा त्रिष्टुब्धुएठी पिप्पली मरि-  
चानि च । विडङ्गं देवकाष्ठञ्च चित्रकं  
पुष्कराह्वयम् ॥ ५६ ॥ त्रिफला द्वे हरिद्रे  
च दन्ती च चविका तथा । कुटजस्य फलं  
तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ५७ ॥  
एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।  
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत् स्निग्ध-  
भाजने । पाण्डुशोथोदरानाहशूलार्शः  
कृमिगुल्मनुत् ॥ ५८ ॥

शुद्ध मण्डूर का चूर्ण ४० तोले लेकर आठ गुने ( ४ सेर ) गोमूत्र में पकावे। जब गाढ़ा हो जावे, तब उसमें सोंठी की जड़, निसोथ, सोंठ, पीपरि, मिरिच, वायविडङ्ग, देवदार, चीता, कूठ, आंवला, हर, बहेडा, हरदी, दारहरदी, दन्ती की जड़, चष्य, इन्द्रजौ, कुंदुकी, पिपरा-मूल और नागरमोथा इनमें से प्रत्येक का चूर्ण १ तोला मिलाकर उतार लेवे। तदनन्तर शीतल होने पर धी के चिकने पात्र में रख देवे। इसकी मात्रा ३ रत्ती से १ मासे पर्यन्त। इसका सेवन करने से पाण्डुरोग,

शोथ, उदररोग, आनाह, शूल, यवासीर, कृमिरोग और गुल्मरोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ ५६-५८ ॥

पञ्चामृतलौहमण्डूर ।

लौहं ताम्रं गन्धमभ्रं पारदञ्च समां-  
शिकम् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं  
तथा ॥ ५९ ॥ किरातं देवकाष्ठञ्च हरिद्रा-  
द्वयपुष्करम् । यमानी जीर्युग्मञ्च शटी  
धान्यकचव्यकम् ॥ ६० ॥ प्रत्येकं लौह-  
भागञ्च श्लक्ष्णं चूर्णन्तु कारयेत् । सर्व-  
चूर्णस्य चाद्दशं सुशुद्धं लौहकिट्टकम् ॥ ६१ ॥  
गोमूत्रे पाचयेद्वैद्यो लौहकिट्टं चतुर्गुणे ।  
पुनर्नवाष्टगुणितं काथं तत्र मदापयेत् ॥ ६२ ॥  
सिद्धेऽवतारिते चूर्णे मधुनः पलमात्रकम् ।  
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षानुपा-  
नतः ॥ ६३ ॥ ग्रहणीं चिरजां हन्ति  
सशोथां पाण्डुकामलाम् । अग्निञ्च  
कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ ६४ ॥  
प्लीहानं यकृतं गुल्ममुदरञ्च विशेषतः ।  
कासं श्वासं प्रतिश्यायं कान्तिपुष्टिचि-  
वर्द्धनम् ॥ ६५ ॥

अत्र सर्वचूर्णसमांशं मण्डूरचूर्णमिति  
वृद्धा । गोमूत्रपुनर्नवाकाथमण्डूरानां  
पाकः चूर्णानां प्रक्षेपः शीते च मधुनः ।

लोहभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक, अन्नकभस्म, पारद, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आंवला, हर, बहेडा, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चीता, चिरा-यता देवदार, हरदी, दारुहरदी, कूठ, अजवाइन, स्वाह जीरा, सफेद जीरा, कचूर, धनिया और चष्य, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला और कुल मिलाकर जितने हों उसका आधा शुद्ध मण्डूर, किन्तु वृद्ध वैद्यों के मतानुसार कुल चूर्ण का समान भाग मण्डूर भस्म होनी चाहिये। मण्डूर

की अपेक्षा चौगुना गोमूत्र और छटगुना पुनर्नवा का काथ होना चाहिये । गोमूत्र, पुनर्नवा का काथ और मण्डूर इन तीनों को एकत्र पकावे जब गाढ़ा हो जाये तब उसमें पूर्वोक्त लोहमस्र आदि औषधों को डाले और उत्तम रूप से मिलाकर उतार लेवे । शीतल होने पर उसमें १ पल ( ४ तोला ) मधु मिलाकर रख देवे । नालमरदाना के पञ्चाङ्ग के काथ अथवा स्वरस के साथ उपयुक्त मात्रा में प्रातः काल सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से पुरानी प्रहृणी, शोथयुक्त पाण्डुरोग और कामला, प्लीहा, यकृत, गुल्म, उदररोग, कास श्वास और प्रतिश्याय ये सब रोग नष्ट होते हैं । तथा अग्नि की दीप्ति, कान्ति और पुष्टि की वृद्धि होती है । मात्रा—३ ५ रत्ती ॥ ६६-६६ ॥

\*यूपणादिमण्डूर ।

त्र्ययुषं निफला मुस्तं विडङ्गं चव्य-  
चित्रकौ । टावीं त्वङ्मात्तिको धातुर्ग्रन्थिकं  
देवदारु च ॥ ६६ ॥ एषां द्विपलिकान्  
भागाञ्चूर्णं कृत्वा पृथक्पृथक् । मण्डूरं  
द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ६= ॥  
मूत्रं चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिन्नु प्रक्षि-  
पेत्ततः । रक्त्रियमितान् कृत्वा वटकां-  
स्तान् यथाग्नि तु ॥ ६८ ॥ उपयुञ्जीत  
तक्रेण सात्स्यं जीर्णं च भोजनम् । मण्डूर-  
वटकाहोते प्राणटाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ६९ ॥  
कुष्ठान्यरोचकं शोथमुरुस्तम्भं कफाम-  
यान् । अर्शासि कामलां मेहान् प्लीहानं  
शमयन्ति च ॥ ७० ॥ निर्वाप्य बहुशो  
मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते । ग्राह्यन्त्यष्ट  
गुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णत ॥ ७१ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, मोया, वायविडङ्ग, चव्य,  
शीता, दारुहल्दी, दारुचीनी, सोनामाखी की  
भस्म, पिप्पलीमूल, देवदारु, हर एक द्रव्य १६ तोले,  
शुद्ध मण्डूर भस्म ४२ पल, गाय का मूत्र ३३६

पल इनको धिधि धनुसार पकाकर ३ रत्ती  
प्रमाण की गोली बनावे । अनुपान—मठा (तक्र) ।  
ये गोलियाँ पाण्डुरोगी को प्राणदायिनी हैं ।  
इनके व्यवहार से कुष्ठ, अरुचि, शोथ ( सूजन),  
उरस्तम्भ, कफरोग, अर्श, कामला, प्रमेह, प्लीहा  
आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं । इस क्रिया  
में पहले मण्डूर को कई बार गोमूत्र में बुझा  
लेना चाहिए ॥ ६६ ७१ ॥

चन्द्रसूर्यात्मक रस ।

सूतकं गन्धकं लोहमभ्रकञ्च पलं  
पलम् । शंखटङ्गवराटञ्च मृत्येकार्द्वपलं  
हरेत् ॥ ७२ ॥ गोक्षुरबीजचूर्णञ्च पलैकं  
तत्र दीयते । सर्वमेकीकृतं चूर्णं वाप्यन्त्रे  
विभावयेत् ॥ ७३ ॥ पटोलं पर्पटं भार्गी  
विदारो शतपुष्पिका । कुण्डली दरिडनी  
वासा काकमाचीन्द्रवारुणी ॥ ७४ ॥ वर्षा-  
भूः केशराजश्च शालिश्वो द्रोणपुष्पिका ।  
प्रत्येकार्द्वपलैर्द्रवैर्भावयित्वा वर्ती कुरु ॥  
७५ ॥ चतुर्गुञ्जामितां खादेच्छामीदुग्धा-  
नुपानतः । गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्या-  
त्मको रसः ॥ ७६ ॥ हलीमकं निहन्त्याशु  
पाण्डुरोगञ्च कामलाम् । जीर्णज्वरं  
सविषमं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ७७ ॥ शूलं  
प्लीहोदरानाहमप्लीलागुल्मविद्रधीन ।  
शोथं मन्दानलं कासं श्वासं हिकां वाम  
भ्रमिम् ॥ ७८ ॥ भगन्दरोपदंशौ च ट्ट-  
कण्डू व्रणापचीः । दाहं वृष्णामुरुस्तम्भ-  
मामवातं कटीग्रहम् ॥ ७९ ॥ युक्त्या  
मद्येन मण्डेन मुद्गगुप्तेण वारिणा । गुहूची-  
त्रिफलारासनाकाथनीरेण वा कचित् ८० ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म और चात्रकभस्म  
प्रत्येक ४ तोले, शूलभस्म, सोहागा की खील,  
कौडीभस्म, प्रत्येक २ तोले, गोमूत्र के बीजों का

चूर्ण ४ तोले इन कुल औषधों को एकत्रित कर परवल के पत्ते, पिप्पलापत्रा, भारंगी, विदारीकन्द, सौंफ, गिलोय, दूधडोपल, - अरूसा, मकोय, इन्द्रायण की जड़, साँडी, भोंगरा, शालिशशाक और गुमा इनमें से प्रत्येक औषध के दो दो तोले रसों से वाष्पयन्त्र में भावना देकर एक २ रत्ती की घटी बनावे । १४ दिन पर्यन्त प्रतिदिन एक-एक घटी बकरी के दूध के साथ खाना चाहिये । इसका आविष्कार गहनानन्दजी ने किया था । इस चन्द्रसूर्यात्मक रस के सेवन करने से हलीमक, पाण्डुरोग, कामला, जीर्णज्वर, विषमज्वर, रफ्रिक्न, अरोचक, शूल, प्लीहा, - उदररोग, आनाह, अधीला, गुल्म, विद्रधि, शोथ, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रमरोग, भगन्दर, उपदश, दद्रु, कण्डू, व्रण, अपची, दाह, कृष्णा, उरस्तम्भ, शामवात और कटीशूल आदि नाना रोग नष्ट होते हैं । पथ्येक रोग में दूध आदि विचारकर मद्य, मण्ड (माह), मूँग का जूस, जल, गिलोय का काथ, त्रिफला का काथ और रासना का वाथ इनमें से किसी एक के साथ सेवन कराना चाहिये ॥ ७२-८० ॥

प्राणवल्लभ रस ।

हिंगुलसम्भवं सूतं गन्धं कार्शमीर-  
सम्भवम् । लौहं ताम्रं वराटीञ्च तुत्थं  
हिंगुफलत्रयम् ॥ ८१ ॥ स्नुहीमूलं यव-  
त्तारं जैपालं द्रुनं त्रिष्टत् । प्रत्येकन्तु  
समं भागं क्षागीदुग्धेन भावयेत् ॥ ८२ ॥  
गुञ्जैकां च वटीं स्वादेद्वारिणा मधुना सह ।  
प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः ॥  
८३ ॥ श्लेष्मदोषञ्च संवीच्य युक्त्या वा  
त्रुटिर्द्धनम् । निहन्ति कामलां पाण्डुमा-  
नाहं श्लीपदं तथा ॥ ८४ ॥ गलगण्डं  
गण्डमालां कृच्छ्राणि च हलीमकम् ।  
शोथं शूलमुरस्तम्भं संग्रहग्रहणीं तथा ॥  
८५ ॥ हन्ति मूर्च्छां वमिं हिकां कासे  
श्वासं गलग्रहम् । असाध्यं सन्निपातञ्च

जीर्णज्वरमोचकम् ॥ ८६ ॥ जलदोष-  
भवं शोथं महोग्रञ्च जलोदरम् । नातः  
परतरः श्रेष्ठः कामलाचिरुजापहः ॥ ८७ ॥

हिंगुल का निकाला पारा, आँवलामार गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, कौडीभस्म, तूतिया, हींग, आँवला, हर, बहेडा, थूहर की जड़, यववार, जमालगोटा, सोहागा की खील और निसोथ इन सब औषधों को एकत्र कर बकरी के दूध की भावना देकर घोटना चाहिये । तदनन्तर एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे अनुपान-मधु और जल । यह गहनानन्दजी का कहा हुआ प्राणवल्लभ नामक रस है । यदि रोगी को कफ अधिक हो तो विचार कर क्रमशः मात्रा बढ़ा देवे । इसका सेवन करने से कामलापाण्डुरोग, आनाह, श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमाला, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, शोथ, शूल, उरस्तम्भ, समग्रग्रहणी, मूर्च्छा, वमन, हिचकी, कास, श्वास, गलगण्ड, असाध्य सन्निपात, जीर्ण-ज्वर, अरुचि, जलदोषजन्य शोथ, महान् उग्र जलोदर आदि रोग नष्ट होते हैं । कामला नष्ट करने के लिये इससे उत्तम और कोई औषध ही नहीं है ॥ ८१-८७ ॥

पञ्चानना घटी ।

शुद्धसूतं समंगन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलु ।  
जैपालवीजतुल्यञ्च घृतेन गुटिकीकृतम् ॥  
८८ ॥ भक्तयेदर्धगुञ्जामं शोथपाण्डु-  
प्रशान्तये । पञ्चाननवटी ख्याता पाण्डु-  
रोगकुलान्तिका ॥ ८९ ॥

अत्र सर्वसमं जैपालम् । घृतेन प्रहरं  
संमर्द्य स्निग्धभाण्डे संस्थाप्य बदराण्ड-  
प्रमाणं भक्तयेत् । द्रोणपुष्पीरसमनुपिपेत् ।

शुद्ध पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, अक्षकभस्म और गुग्गुलु इन कुल औषधों को सम भाग लेवे और कुल औषधों के समुदाय के बराबर जमाल-गोटा लेकर घृत के साथ एक प्रहर पर्यन्त घोटकर आधी रत्ती के बराबर गोलियाँ बनाकर घृत के



चिकने बासन में रख छोड़े । गुमा के रस के साथ इस प्रसिद्ध पञ्चानना घटी का सेवन करने से पाण्डुरोग और शोथ रोग नष्ट होते हैं ॥ ८१-८२ ॥

पाण्डुसूदन रस ।

रसगन्धं मृतं ताम्रंजयपालञ्चगुगुलु ।  
समांशमाज्यसंयुक्तां गुडिकां कारयेद्-  
भिपक् ॥ ६० ॥ एकैकां खादयेद्वैधः  
पाण्डुशोथापनुत्तये । शीतलञ्च जलञ्चाम्लं  
वर्जयेत्पाण्डुसूदने ॥ ६१ ॥

पारा, गन्धक; ताम्रभस्म, जमालगोटा और गुगुलु समभाग इन कुल औषधों को लेकर घृत के साथ घोटकर दो-दो रत्नी की गोलियाँ बना लेवे । इसका सेवन करने से पाण्डु और शोथ रोग नष्ट होते हैं । इस रस का सेवन करनेवाले रोगी को शीतल जल और खट्टे पदार्थ सेवन न करने चाहिये ॥ ६०-६१ ॥

पाण्डुपञ्चानन रस ।

लोहभ्रश्च ताम्रश्च प्रत्येकं पलसम्मि-  
तम् । त्रिकटु त्रिफला दन्ती चविकं कृष्ण-  
जीरकम् ॥ ६२ ॥ चित्रकश्च निशे ॥ ६३ ॥  
त्रिवृता माणमूलकम् । कुटजस्य फलं  
तिक्ता देवदारु वचा घनम् ॥ ६४ ॥  
प्रत्येकमेपां कर्षन्तु नित्तिपेत्पाकविद्धिपक् ।  
सर्पस्य द्विगुणं देयं शुद्धमण्डूरचूर्णकम् ॥  
६५ ॥ गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा सिद्धे शीत-  
लतां गते । भक्तयेत् प्रातरुत्थाय उष्ण-  
तोयानुपानतः ॥ ६६ ॥ हलीमकं शोथ-  
पाण्डुमूरुस्तम्भश्च नाशयेत् । रसायन-  
परश्चैव बलवर्णाग्निकारकः । यकृतं स्नीह-  
गुल्मश्च सर्वरोगहरः परः ॥ ६७ ॥

लोहभस्म, ताम्रभस्म और ताम्रभस्म प्रत्येक ४ तोले, त्रिकटु (सोंठ, मिरिच और पीपर) त्रिफला, जमालगोटा की जड़, चण्ड, कालाजीरा,

चीता का मूल, हलदी, दाम्बहलदी, निशोथ, मानकन्द का मूल, इन्द्रजौ, कुटकी, देवदारु, वच और नागरमोथा प्रत्येक १ तोला, कुल औषधों से दूना शुद्ध मण्डूर, भस्म मण्डूर से आठ गुना गोमूत्र लेवे । पहिले मण्डूर को गोमूत्र में पकावे, पाक सिद्ध होने पर उसमें पूर्वोक्त लोहभस्म और अभ्रक आदि औषधों को मिला देवे । इसको पाण्डुपञ्चानन रस कहते हैं । प्रातः काल उष्ण जल के साथ इसका सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से हलीमक, शोथ, पाण्डु, उरस्तम्भ, यकृत, स्नीहा और गुल्म आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं । तथा बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है, यह श्रेष्ठ रसायन है । मात्रा—१ रत्नी ॥ ६२-६६ ॥

आनन्दोदय रस ।

पारदं गन्धकं लोहभ्रकं विपमेन च ।  
समांशं मरिचं चाष्टगुणं टङ्गं चतुर्गुणम् ॥  
६७ ॥ भृङ्गराजरसैः सप्त भावनारचा-  
म्लदाडिमैः । गुड्वाद्भयं पर्णखण्डे खादेत्  
सायं निहन्ति च ॥ ६८ ॥ वातरलेप्स-  
भवान् रोगान् मन्दाग्निं ग्रहणो ज्वरान् ।  
अरुचिं पाण्डुताञ्चैव जयेदचिरसेवनात् ॥  
६९ ॥ नष्टमग्निं करोत्येष कालभास्कर-  
तेजसम् । पार्वतोऽपि हि जीर्येत प्राशना-  
दस्य देहिनः । गुर्भ्रमम्लमापश्च भक्तणा-  
देव जीर्यति ॥ १०० ॥

पारा, गन्धक, लोह अभ्रक और विप प्रत्येक एक तोला, कालीमिरिच ८ तोले और मोहागा पूला-हुषा ४ तोले, इनको एकत्र घोटकर भंगरिया के रस में और खट्टे अनाज के रस में सात-सात भावना देकर दो-दो रत्नी की

“पार्वतोऽपि हि जीर्येत” यह उल्लेख केमु-  
तिकन्याय को सूचित करने के लिये किया गया है  
इससे यह तात्पर्य नहीं है कि इस रस का सेवन  
करने से पाथर पथ जाता है ।

गोलियाँ बनावे । पान के पत्ता में रखकर २ रत्ती की मात्रा में इस रस को सायंकाल सेवन करना चाहिये । यह रस सेवन करने से सब प्रकार के वात-कफजन्य रोग, अग्निमान्द्य, ग्रहणी, ज्वर, श्लेष्मि और पाण्डुरोग शीघ्र नष्ट करता है तथा नष्ट अग्नि को प्रलयकाल के सूर्य के समान दीप्त करता है । इस रस का सेवन करने से पर्वत का पत्थर भी पच सकता है, फिर गुरुपाक अन्न, खट्टे पदार्थ और उर्द आदि तो भोजन करते ही पच जाते हैं, इसमें सदेह ही क्या है ॥ १९०-१०० ॥

पुनर्नवा तैल ।

पुनर्नवापलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
तेन पादावशेषेण तैलमस्थं विपाचयेत् ॥  
१०१ ॥ त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी धन्याकं  
कट्फलं तथा । शशी दारु म्रियङ्गुश्च  
देवदारुहरेणुभिः ॥ १०२ ॥ कुप्यं पुनर्नवा-  
मूलं यमानी कारवी तथा । एलात्वचं  
पद्मकश्च पत्रं नागरकेशरम् ॥ १०३ ॥  
एपाञ्च कार्ष्णिकं कल्कं पेपयित्वा विनि-  
क्षिपेत् । कामलां पाण्डुरोगश्च हलीम-  
कमथापि वा ॥ १०४ ॥ रक्तपित्तं  
प्रमेहारच कासं श्वासं भगन्दरम् । प्लीहा-  
नमुदरञ्चैव ज्वरं जीर्णं व्योपहति ॥ १०५ ॥  
कुरुते च परां कान्तिं भदीपयति चानलम् ।  
तैलं पौनर्नवं नाम मलव्याधीन् निय-  
च्छति ॥ १०६ ॥

४ सेर पुनर्नवा को २२ सेर ४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर उसमें १२८ तोला तिल का तेल मिलावे, तदनन्तर त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ासिंगी, घनिया, कायफल, कचूर, दारुहरी, शूलमिर्गु, देवदारु, सैमालू के बीज, कूट, पुनर्नवा की जड़, अजवा-हन, कर्बोजी, इलाहरी, दालचीनी, पटुमकाट, तेजपात और नागकेसर इनमें से प्रत्येक द्रव्य

को एक एक तोले लेकर कलक बनावे, इस कलक को भी काथ में मिलाकर यथाविधि पाक करे, तैलमात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवे । इस पौनर्नवतैल का मर्दन करने से पाण्डुरोग, हलीमक, रक्तपित्त, प्रमेह, कास, रवास, भगन्दर, प्लीहा, उदररोग, जीर्णज्वर और हर प्रकार के मलजन्य रोग नष्ट होते हैं, तथा कान्ति की वृद्धि और अग्नि का दीपन होता है ॥ १०१-१०६ ॥

मूर्वाद्य घृत ।

मूर्वातिक्कानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः ।  
त्रायन्तीरत्सभूमिन्पटोलाम्बुददारुभिः ॥  
१०७ ॥ अक्षमात्रेष्टं तप्रस्थं सिद्धं क्षीरचतु-  
र्गुणम् । पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथार्शो  
रक्तपित्तनुत् ॥ १०८ ॥

घी दो सेर, दूध ६ सेर ३२ तोला, जल २२ सेर ४८ तोला, मूर्वा, कटुकी, हरदी, जवासा, पीपरी, लालचन्दन, पित्तपाषाण, प्रायमाणा, कुड़ा की छाल, चिरायता, परवल के पत्ते नागरमोथा और देवदारु ; इनमें से प्रत्येक औषध को एक एक तोला लेकर कलक बनावे । तदनन्तर घी, दूध, जल और कलक इनको एकत्रित कर यथाविधि पाक करे । मात्रा ६ भाग्ये से १ तोला तक । इस घृत का सेवन करने से पाण्डु रोग, ज्वर, विस्फोट, शोथ, यवासीर, और रक्तपित्त ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १०७-१०८ ॥

व्योपाद्य घृत ।

व्योपं विल्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपु-  
नर्नवम् । मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं  
देवदारु च ॥ १०९ ॥ वृश्चिकाली च  
भार्गी च सक्षीरैस्तै मृतं घृतम् ।  
सर्वान् प्रशमयत्येतद्विकारान् मृत्तिका-  
कृतान् ॥ ११० ॥

घृत २ सेर, दूध ८ सेर, कलक के लिये साँठ,

भिर्चं, पीपरि, बेल की छाल, हरदी, दारुहलदी, त्रिफला, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, नागरमोषा, लोहभस्म, पाद्री, वायविडङ्ग, देवदारु, विडुआ घास और भारङ्गी ये कुल द्रव्य मिलकर १ सेर तथा पाकाथं जल ३२ सेर, घृत, दूध, कल्क और जल इनको एकत्रित कर यथाविधि पाक करे । मात्रा ३/१ तोला । इसका सेवन करने से मृत्तिकाभक्षणजन्य सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं ॥ १०६-११० ॥

योगराज ।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुस्य च । भागाश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ १११ ॥ पञ्चारमजनुनोभागास्तथा रूप्यमलस्य च । मात्तिकस्य विशुद्धस्य लौहस्य रजस्तथा ॥ ११२ ॥ अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं श्लक्ष्णचूर्णितम् । मात्तिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥ ११३ ॥ चतुर्गुञ्जामितां मात्रां ततः खादेद् यथाग्निना । दिने दिने प्रयोगेण जीर्णं भोज्यं यथेप्सितम् ॥ ११४ ॥ वर्जयित्वा कुलत्थारश्च काकमाचीकपोतकान् । योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ११५ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् । पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ॥ ११६ ॥ कुष्ठान्यज्वरकं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम् । विशोपाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ११७

त्रिफला ( हरं, बहेडा, आंवला, ) मिला हुआ ३ भाग, त्रिकटु ( सोंठ, भिर्चं, पीपरि ) मिला हुआ ३ भाग, चित्रकमूल १ भाग, वायविडङ्ग १ भाग, शिलाजीत २ भाग, रूपा मक्खली की भस्म २ भाग खर्द ८ भाग, इन्हें अतिसूक्ष्म चूर्ण कर शहद मिलाकर लोहे के वासन में रक्खे । मात्रा-४ रत्ती । औषधि के सेवनकाल में कुलाथ, मकोय तथा कपूर का

मांस इत्यादि ध्याज्य है । यह रसायन अमृत के समान गुण करनेवाला है । इसको प्रयोग में लाने से पाण्डु, विष, कास, राजयक्ष्मा, पुराना बुखार, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, रवास, हिक्का ( हिचकी ), अरुचि, अपस्मार, कामला तथा अर्श ( बवासीर ) आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १११-११७ ॥

श्यामलक्ष्यचलेह ।

रसामलकानान्तु संशुद्धं यन्त्रपीडितम् । द्रोणं पचेच्च मृद्ग्नौ तत्र चेमानि दापयेत् ॥ ११८ ॥ चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा । प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायः किल पेपितम् ॥ ११९ ॥ शृङ्गेरपले द्वे तु तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् । तुलार्द्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत् ॥ १२० ॥ मधु प्रस्थसमायुक्तं लेहयेत् पलसम्मितम् । हलीमकं कामलाञ्च पाण्डुत्वञ्चापकर्षति ॥ १२१ ॥

आंवले के २५ सेर ४८ तोले का रस मंद अग्नि से पकाकर, उसमें पीपल का चूर्ण ६४ तोला, मुलहठी का चूर्ण ८ तोला, दाख ६४ तोला, सोंठ ८ तोला, बंशलोचन ८ तोला, खर्द २॥ सेर, इनके चूर्ण को उपर्युक्त पाक में ऊपर से मिलावे अर्थात् प्रचेप दे । गाढ़ा होने पर उतार ले और ठण्डा होने पर ६४ तोला शहद मिलाकर रोगी को सेवन करावे । मात्रा ३ तोले से १ तोले तक । इसके सेवन करने से हलीमक, कामला तथा पाण्डु आदि रोग शान्त होते हैं ॥ ११८-१२१ ॥

घाड्यरिष्ट

घात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक् । क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चचूर्णार्द्धिकुडवान्वितम् ॥ १२२ ॥ शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रं पक्वं स्निग्धघटे स्थितम् । प्रापयेत् पाण्डुरोगार्त्तो जीर्णहितमिताशनः ॥

१२३ ॥ कामलापांडुहृद्रोगवातासृगविपम-  
ज्वरान् । कासहिकारुचिश्वासानेपोरिष्टः  
भ्रूणाशयेत् ॥ १२४ ॥

२००० आँवले का रस निचोड़कर निकाले ।  
इस रस में पीपल १६ तोले, और खॉड़ २॥ सेर  
मिलाकर पकावे । खॉड़ के घुल जाने पर उसे नीचे  
उतार ले और टण्डा होने पर चिकने मिट्टी के  
वर्तन में मुख बंद करके रख दे । जब अरिष्ट  
तैयार हो जावे तब निकालकर काम में लावे ।  
इस अरिष्ट के व्यवहार करने से पाण्डु, हृद्रोग,  
वातरङ्ग, विपमज्वर, खॉंसी, हिष्ठा, हिचकी,  
अरुचि, श्वास आदि रोग नाश को प्राप्त होते  
हैं । मात्रा १६ तोले से २६ तोले तक ॥ १२२-१२४ ॥

पर्यट्टाद्यरिष्ट ।

रक्तपुष्पतुलामेकां चतुर्द्रोणाम्भसा  
पचेत् । चतुर्भागावशिष्टेऽस्मिन् क्वाथे  
शीते तुलाद्वयम् ॥ १२५ ॥ दद्याद्  
गुडस्य घातक्याः पलान् षोडशसम्भितान् ।  
अब्दामृतादारुनिशाः दारुव्याघ्रीय-  
वासकाः ॥ १२६ ॥ चविका वह्निमूलञ्च  
विडङ्गव्योपमेव च । सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य  
पलभागैस्तु निक्षिपेत् ॥ १२७ ॥ विश्राम्य  
च ततो भाण्डे मासादूर्ध्वं पिबेदमुम् ।  
कामलामुदराष्टीलाः गुल्मं पाण्डुहलीम  
कम् ॥ १२८ ॥ स्नीह्यकृच्छ्रोथरङ्गाविका-  
रान् विपमज्वरान् । एपोऽरिष्टो निहन्त्याशु  
वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १२९ ॥

पित्तपापका २ सेर, पानी ८ द्रोण ( २ मन  
२२ सेर ३२ तोला ) । यथाविधि काढ़ा बनावे ।  
जब २ द्रोण ( २५ सेर ४८ तोला ) शेष रहे  
तब उतारकर टण्डा कर ले, फिर छानकर उसमें  
गुड २ तुला १० सेर, धाय के मूल १६ पल  
( ६४ तोला ), मोथा, गिलोय, दारहलदी, देव-  
दार, छोटी कटेरी, दुरालभा, चम्प, चित्रकमूल,

यायविडङ्ग, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरी ),  
इनको चार चार तोला ले और चूर्ण कर उपयुक्त  
काढ़े में मसृषेप देकर एक मिट्टी के वर्तन में मुख  
बंद करके रख दे । एक महीना बाद निकालकर  
काम में लावे । इसके सेवन से कामला, उदररोग,  
अष्टीला, गुल्म, पाण्डु, हलीमक, प्लीहा, यकृत,  
( जिगर ), शोथ ( सूजन ), रङ्गविकार तथा  
विपमज्वर आदि अल्पकाल में दूर होते हैं । मात्रा  
१६ तोले से २६ तोले तक ॥ १२२-१२९ ॥

पाण्डुरोग में पथ्य ।

छर्दिर्विरेचनंजीर्णं यवगोधूमशालय ।  
मुग्दाढकीमसूराणां मूपाजाङ्गलजा रसाः ॥  
१३० ॥ पटोलं वृद्धकूप्माण्डं तरुणं  
कटलीफलम् । जीवन्ती चुरमत्स्याक्षी  
गुडूची तरदुलीयकम् ॥ १३१ ॥ पुनर्नवा  
द्रोणपुष्पी वार्ताकुंलशुनद्वयम् । पकाभ्रम-  
भया विम्बी शृङ्गी मत्स्या गवां जलम् ॥  
१३२ ॥ धात्री तक्रं घृतं तैलं सौवीर-  
कतुषोदके । नवनीतं गन्धसारो हरिद्रा  
नागकेशरम् ॥ १३३ ॥ यवचारो लोह-  
भस्म कपायाणि च कुड्कुमम् । दाहश्चर-  
णयोः सन्धौ नाभेरच द्व्यङ्गुलादधः ॥  
१३४ ॥ मस्तकं हस्तयोर्मूले मध्ये च स्तन-  
कक्षयोः । यथादोषमिदं पथ्यं पाण्डुरोग-  
वतां भजेत् ॥ १३५ ॥

धमन, विरेचन, पुराने जी, गेहूँ, शालि  
चावल, मूँग, अरहर, मसूर का पानी, जङ्गली  
पक्षियों के मांस का रस, परवल, पका पेठा कच्चा  
केला, जीवन्तीशाक, तालमखाना, मसृषी,  
गिलोय, चौलाई, पुनर्नवा, गोमा, बँगन, दोनों  
तरह का लहसन, पका आम, हरद, विम्बी,  
काकडासिंगी, मसृली, गोमूत्र, आँवला, मठा,  
घी, तेल, सौवीर, तुषोदक, मक्खन, चन्दन,  
हरदी, नागकेशर, यवचार, लोहभस्म, काप,  
केशर, पैरों में, जोड़ों पर, नाभि से दो अंगुल

नीचे, माथे पर, हाथों की जड़ में, स्तन और कमर के मध्यप्रदेश में दाह करना उपयुक्त है ये ही पथ्य हैं ॥ १३०-१३५ ॥

अपथ्य ।

रक्तस्रुतिं धूमपानं वमिरेगविधारणम् । स्नेहनं मैथुनं शिम्बी पत्रशाकानि रामठम् ॥ १३६ ॥ मापोऽभ्युपानं पिएयाकस्ताम्बूलं सर्पपाः सुरा । मृद्भक्षणं दिवास्वप्नं तीक्ष्णानि लग्णानि च ॥ १३७ ॥ सद्यविन्ध्याद्रिजातानां नदीनां सलिलानि च । सर्पायम्लानि दुष्टाम्बुविरुद्धान्यशनानि च ॥ १३८ ॥ गुर्वन्नञ्च विटाहीनि पाण्डुरोगवतां विषम् । वह्निमात्पमायासमन्नपानञ्च पित्तलम् । मैथुनं क्रोधमध्वानं पाण्डुरोगी सदा त्यजेत् १३९

इति भैषज्यरत्नावल्यां पाण्डुकामलाहलीमकाधिकार समाप्तः ।

रक्त मोक्षण, धूमपान, के रोकना, पसीना, मैथुन, मटर आदि शिम्बीधान्य, सरसों, आदि पत्तों के शाक, हींग, उबद, बहुत पानी पीना, तिलखल, सरसों, मदिरा, पान, मिट्टी खाना, दिन में सोना, तीक्ष्ण पदार्थ लाल मिर्च आदि अम्ल, दुष्ट पानी, विरुद्ध भोजन, भारी अन्न, दाहयुक्त धस्तुपुं, उपर्युक्त सम्पूर्ण बातें पाण्डुरोगी को विषयुक्त हैं । अग्नि तापना, धूप में अश्वन्त फिरना, क्रोध, मैथुन, वैक्तिक अन्नपान, पाण्डुरोगी को सदैव इनका त्याग रखना चाहिए ॥ १३६-१३९ ॥

इति सरयूवसादग्निपाठिकृताया भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभासिभिधाया व्याख्याया पाण्डुकामलाहलीमकाधिकार समाप्त ॥

अथ शोधाधिकारः ।

शोथचिकित्सा ।

लङ्घनं पाचनं शोथे शिरः कायविरचनम् । वमनञ्च यथासत्त्वं यथादापं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥

शोथरोग में दोष तथा सत्व विचारकर लङ्घन, पाचन, नस्य, विरेचन और वमन करना चाहिये ॥ १ ॥

स्नेहोऽथ वातिके शोथे वद्धविट्के निरूहणम् । पयोघृतं पैत्तिके तु कफजे रुक्तणक्रमः ॥ २ ॥

वातजन्य शोथरोग में स्नेहनक्रिया, मलबद्धता रहने पर निरूहण, अर्थात् पिचकारी देकर कोष्ठ को स्वच्छ करना, पैत्तिक शोथ में दुग्ध और घृत पिलाना तथा कफजन्य शोथरोग में रुचक्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

शोथ में लङ्घन आदि ।

अथामजं लङ्घनपाचनक्रमैवशोधनैरुत्पणदोषमादितः । शिरोगतं शीर्षविरचनैरधोविरचनैरूर्ध्वहरैस्तथोर्ध्वगम् ॥ ३ ॥ उपाचरेत्स्नेहभवं विरुक्तगैः प्रकल्पयेत् स्नेहविधिञ्च रुत्तिने ॥ ४ ॥

आमजन्य शोथरोग में लङ्घन और पाचनक्रिया, शोथरोग में यदि दोष अश्वन्त उरुवण हों तो शोधनक्रिया, मस्तकगत शोथरोग में नस्य, देह के अधोभाग में शोथ हो तो विरेचन और शरीर के ऊर्ध्वभाग में शोथ हो तो वमनकारक औषधों का प्रयोग करना चाहिये । इसी प्रकार घृत और तैल आदि स्निग्ध पदार्थों के सेवन करने से उत्पन्न हुये शोथरोग में रुचक्रिया और सर्षों, कोदो आदि रुच पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुये शोथ में स्नेहनक्रिया लाभदायक होती है ॥ ३-४ ॥

शोथरोग में मुष्टियोग ।

दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेष-  
पतः । वातजे तैलमैरण्डं विड्ग्रहे पयसा  
पिबेत् ॥ ५ ॥

वातजन्य शोथरोग में दशमूल का काथ  
लाभदायक होता है । यदि वातज शोथरोग  
में मलबद्धता हो तो दूध के साथ परण्ड का  
तैल पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथु-  
नाशनः । यवागूर्माणकन्दस्य प्रायशश्चा-  
तिशोथजित् ॥ ६ ॥

गोमूत्र अथवा पुराने मानकन्द की यवागू  
पीने से शीघ्र शोथ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सिंहास्यादि काथ ।

सिंहास्यामृतभण्टाकी काथं कृत्वा  
समाक्षिकम् । पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः  
श्वासं कासं उ्वरं वमिम् ॥ ७ ॥

अरुसा की छात्र, गिलोय और कटेरी  
इनके काथ में मधु मिलाकर पीने से शोथ,  
श्वास, कास, उ्वर और वमन ये सब रोग  
नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

पुनर्नवाष्टक काथ ।

पुनर्नवानिम्नपटोलशुण्ठीतिक्तामृता-  
दाव्यभयाकपायः । सर्वाङ्गशोथोदरपार्श्व-  
शूलरत्रासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥८॥

साँठी, नीम की छाल, परवल के पत्ते, सोंठ,  
कुटुकी, गुह्य, दारुहलदी और हर् ; इन कुल  
द्रव्यों का काथ सेवन करने से सर्वाङ्ग का शोथ,  
उदर और पसलियों की पीडा और श्वास-  
सहित पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

पुनर्नवादि ।

पुनर्नवाविश्व त्रिष्टुद्गुडूचशिम्पाक-  
पथ्यामरदारुकल्कम् । शोथेकफोत्थे महि-  
पाक्षयुक्तंमूत्रं पिबेद्वासलिलं तथैषाम् ॥९॥

पुनर्नवा, सोंठ, निशोत, गिलोय, अमल-  
तास का गूदा, हरद, देवदारु, इन सबको इकट्ठी  
पीसकर गोमूत्र और गुग्गुल के साथ पीना  
चाहिए या उपयुक्त द्रव्यों के काढ़े में गुग्गुल  
और गोमूत्र को ऊपर से मिलाकर ( प्रक्षेप  
देकर ) पीना कफ से उत्पन्न शोथ में लाभ-  
दायक है ॥ ९ ॥

शोथरोग पर मुष्टियोग ।

निम्बपत्ररसं पीतं शोपणं श्वयथौ  
त्रिजे । विट्सङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात्  
कामलासु च ॥ १० ॥

त्रिदोषजन्य शोथरोग में मलबद्धता, बवा-  
सीर और कामलारोग हों तो कालीमिर्च के  
साथ नीम की पत्तियों का रस पीने से विशेष  
लाभ होता है ॥ १० ॥

भूनिम्बदारुकल्कं जग्ध्वा पेयः पुन-  
र्नवाकाथः । अपहरति नियतमाशु शोथं  
सर्वाङ्गिकं नृणाम् ॥ ११ ॥

चिरायता और देवदारु का चूर्ण २ भाग  
फाँककर साँठी का काथ पीने से सर्वाङ्गिक  
शोथ अवश्य नष्ट होता है ॥ ११ ॥

शोथनुत् कोकिलाक्षस्य भस्ममूत्रेण  
वाम्भसा ॥ १२ ॥

तालमखाना के पञ्चाङ्ग के भस्म का कफ  
जन्य शोथ में गोमूत्र के साथ और पैत्तिक  
शोथ में जल के साथ सेवन करने से लाभ  
होता है ॥ १२ ॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाय-  
येत् । स्त्रीहामयहरश्चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथ-  
जित् ॥ १३ ॥

स्थलकमल को दुग्ध में पीसकर पिलाने  
से प्रीहा और सर्वाङ्गिक तथा एकाङ्गिक शोथ  
नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

माणमण्ड ।

पुराणं माणकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृत-

१ 'पिल्व' इति पाठान्तरम् ।

तण्डुलम् । साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत्  
पायसन्तु तत् ॥ १४ ॥ हन्ति वातोदरं  
शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि । सिद्धो  
भिपग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः १५

पुराने मानकन्द का चूर्ण १ भाग, चावल  
२ भाग, गाय का दुग्ध २१ भाग, जल २१  
भाग ; इनको एकत्र पकाकर पायस ( क्षीर )  
तैयार करे । इसका प्रतिदिन पान करने से  
वातजन्य उदररोग, शोथ, ग्रहणी, और पाण्डु-  
रोग नष्ट होते हैं । वैद्यों का कहना है कि  
पूर्वोक्त रोगों को नष्ट करने के लिये यह योग  
सदा अव्यर्थ सिद्ध हुआ है ॥ १४-१५ ॥

पुनर्नवादिपुट स्वेद ।

पुनर्नवानिम्बपत्रनिष्पावपारिभद्रके ।  
एतैश्च पुटसंस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् १६  
गदहपुरैना, नीम के पत्ते, सेम के पत्ते और  
श्वेत मन्दार के पत्ते ; इनको कूटकर, वस्त्र में  
बाँधकर पोटली बना लेवे । तदनन्तर पोटली  
बार-बार गरम करके सूजन की जगह को  
स्वेदन ( सेंक ) करने से दारुण शोथ नष्ट  
होता है ॥ १६ ॥

अपामार्गादिपुट स्वेद ।

अपामार्गः कोकिलान्तो निर्गुण्डी  
विजया तथा । एतैरपि पुटस्वेदः शोथं  
हन्ति सुदारुणम् ॥ १७ ॥

चिरचिरा, तालमखाना निर्गुण्डी और  
जयन्ती ; इनको पोटयद्द करके स्वेद देने से प्रबल  
शोथरोग दूर होता है ॥ १७ ॥

पुनर्नवादिचूर्ण ।

पुनर्नवा दार्व्यभया पाठा चिल्वं श्वदं-  
ष्टिका । बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ  
चित्रकं वृषः ॥ १८ ॥ समभागानि  
सञ्चूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिवेत् । बहु-  
प्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् । हन्ति  
शोथोदराण्यष्टौग्रणाश्चैवोद्धतानपि १९ ॥

( अथ चिल्वं चिल्वस्य मूलम् )

गदहपुरैना, देवदारु, हर, पाड़ी, बेल के मूल  
की छाल, गोलुरु, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी,  
हलदी, दारुहलदी, पीपरि, गजपीपरि, चीता  
और अरुसे की छाल; समभाग इन सब द्रव्यों  
को लेकर कूट पीसकर महीन चूर्ण बना लेवे ।  
मात्रा २ मासे । अनुपान-गोमूत्र । इसका सेवन  
करने से सब प्रकार के सार्वत्रिक शोथ, शोथ-  
युक्त ८ प्रकार के उदररोग और प्रबल ग्रन्थरोग  
शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १८-१९ ॥

शोथारिचूर्ण ।

शुष्कमूलमपामार्गस्त्रिकटु त्रिफला तथा ।  
दन्ती च त्रिमदश्चैव प्रत्येकश्च समं समम् २०  
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय चिल्वपत्ररसेन च ।  
पाण्डुरोगं निहन्त्याशु शोथश्चैव सुदारु-  
णम् ॥ २१ ॥

सूखी मूली, चिरचिरा, मोंठ, भिच, पीपरि,  
आंबला, हर, बहेदा, दन्ती की जड़, चायविहङ्ग,  
चीता और नागरमोथा; इन कुल द्रव्यों को  
समभाग लेकर चूर्ण करे । मात्रा १ मासे से  
१ मासे तक । अनुपान-बेल की पत्तियों का  
रस । इस चूर्ण का प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन  
करने से पाण्डुरोग और दारुणशोथ रोग शीघ्र  
नष्ट होते हैं ॥ २०-२१ ॥

शोथोदर में पुनर्नवादि गुग्गुलु ।

पुनर्नवादार्व्यभयागुद्दूर्वा पिवेत् स-  
मूत्रां महिपात्तयुक्ताम् । त्वग्दीपशोथोदर-  
पाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेपु २२ ॥

सर्व चूर्णसमगुग्गुलुं परएढतैलेनपिष्ट्वा  
एकीकृत्य भाण्डे स्थाप्यम् । यथापथ्यं  
गोमूत्रेण पेयम् ।

साँडी, दारुहलदी, हरीतकी, गिलाय,  
प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, परएढ के तेल में  
पिसा हुआ शुद्ध मैसा गुग्गुलु ४ तोले; इनको  
एकत्र मिश्रित कर किसी पात्र में रख देवे ।  
गोमूत्र के साथ इस चूर्ण का सेवन करने से चर्म-

शोथरोग में मुष्टियोग ।

दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेष-  
पतः । वातजे तैलमैरण्डं विड्ग्रहे पयसा  
पिबेत् ॥ ५ ॥

धातजन्य शोथरोग में दशमूल का काथ  
लाभदायक होता है । यदि वातज शोथरोग  
में मलबद्धता हो तो दूध के साथ एरण्ड का  
तैल पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथु-  
नाशनः । यवागूर्माणकन्दस्य प्रायशश्चा-  
तिशोधजित् ॥ ६ ॥

गोमूत्र अथवा पुराने मानकन्द की यवागू  
पीने से शीघ्र शोथ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सिंहास्यादि काथ ।

सिंहास्यामृतभण्टाकी काथं कृत्वा  
समाक्षिकम् । पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः  
श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥ ७ ॥

अरुसा की छाल, गिलोय और कटेरी  
इनके काथ में मधु मिलाकर पीने से शोथ,  
श्वास, कास, ज्वर और वमन ये सब रोग  
नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

पुनर्नवाष्टक काथ ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिकामृता-  
दान्यभयाकपायः । सर्वाङ्गशोथोदरपार्श्व-  
शूलश्चासात्स्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ८ ॥

साँठी, नीम की छाल, परवल के पत्ते, सोंठ,  
कुडकी, गुह्य, दारुहलदी और हर्ष ; इन कुल  
द्रव्यों का काथ सेवन करने से सर्वाङ्ग का शोथ,  
उदर और पसलियों की पीडा और श्वास-  
सहित पाण्डुगोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

पुनर्नवादि ।

पुनर्नवाविश्व त्रिष्टद्गुडूचशिम्पाक-  
पथ्यामरदारुकल्कम् । शोथेकफोत्थे महि-  
पाक्षयुक्तं मूत्रं पिबेद्वासलिलं तथैषाम् ॥ ९ ॥

पुनर्नवा, सोंठ, निशोत, गिलोय, अमल-  
तास का गुदा, हरद, देवदारु, इन सबको इकट्ठी  
पीसकर गोमूत्र और गुग्गुल के साथ पीना  
चाहिए या उपयुक्त द्रव्यों के फादे में गुग्गुल  
और गोमूत्र को ऊपर से मिलाकर ( प्रक्षेप  
देकर ) पीना कफ से उत्पन्न शोथ में लाभ-  
दायक है ॥ ९ ॥

शोथरोग पर मुष्टियोग ।

निम्बपत्ररसं पीतं शोपणं श्वयथौ  
त्रिजे । विट्स्नेहैव दुर्नाम्नि विदध्यात्  
कामलासु च ॥ १० ॥

त्रिदोषजन्य शोथरोग में मलबद्धता, बवा-  
सीर और कामलारोग हो तो कालीमिर्च के  
साथ नीम की पत्तियों का रस पीने से विशेष  
लाभ होता है ॥ १० ॥

मूनिम्बदारुकल्कं जग्ध्वा पेयः पुन-  
र्नवाकाथः । अपहरति नियतमाशु शोथं  
सार्वाङ्गिकं नृणाम् ॥ ११ ॥

चिरायता और देवदारु का चूर्ण २ माशे  
फाँककर साँठी का काथ पीने से सार्वाङ्गिक  
शोथ अथर्वश नष्ट होता है ॥ ११ ॥

शोथनुत् कोकिलाक्षस्य भस्ममूत्रेण  
वाम्भसा ॥ १२ ॥

तालमखाना के पञ्चाङ्ग के भस्म का कफ  
जन्य शोथ में गोमूत्र के साथ और वैक्तिक  
शोथ में जल के साथ सेवन करने से लाभ  
होता है ॥ १२ ॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोज्य पाय-  
येत् । स्नीहामयहरश्चैव सर्वाङ्गिकाङ्गशोथ-  
जित् ॥ १३ ॥

स्थलकमल को दुग्ध में पीसकर पिलाने  
से प्रीहा और सार्वाङ्गिक तथा पकाङ्गिक शोथ  
नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

माणमण्ड ।

पुराणं माणकं पिप्ट्या द्विगुणीकृत-

१ 'पिप्लव' इति पाठान्तरम् ।



तण्डुलम् । साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत्  
पायसन्तु तत् ॥ १४ ॥ हन्ति वातोदरं  
शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि । सिद्धो  
मिषम्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः १५

पुराने मानकन्द का चूर्ण १ भाग, चावल  
२ भाग, गाय का दुग्ध २१ भाग, जल २१  
भाग ; इनको एकत्र पकाकर पायस ( खीर )  
तैयार करे । इसका प्रतिदिन पान करने से  
वातजन्य उदररोग, शोथ, ग्रहणी, और पाण्डु-  
रोग नष्ट होते हैं । वैद्यों का कहना है कि  
पूर्वोक्त रोगों को नष्ट करने के लिये यह योग  
सदा अव्ययं सिद्ध हुआ है ॥ १४-१५ ॥

पुनर्नवादिपुट स्वेद ।

पुनर्नवानिम्बपत्रनिष्पावपारिभद्रके ।

एतैश्च पुटसंस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् १६

गदहपुरैना, नीम के पत्ते, सेम के पत्ते और  
श्वेत मन्दार के पत्ते ; इनको कूटकर, बज्र में  
बांधकर पोटली बना लेवे । तदनन्तर पोटली  
बार-बार गरम करके सूजन की जगह को  
स्वेदन ( सेंक ) करने से दारुण शोथ नष्ट  
होता है ॥ १६ ॥

अपामार्गान्दिपुट स्वेद ।

अपामार्गः कोकिलान्तो निर्गुण्डी

विजया तथा । एतैरपि पुटस्वेदः शोथं

हन्ति सुदारुणम् ॥ १७ ॥

चिरचिरा, तालमखाना निर्गुण्डी और  
जयन्ती ; इनको पोटयद्द करके स्वेद देने से प्रबल  
शोथरोग दूर होता है ॥ १७ ॥

पुनर्नवादिचूर्ण ।

पुनर्नवा दार्व्यभया पाठा त्रिल्वं श्वदं-

ष्टिका । बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ

चित्रकं वृषः ॥ १८ ॥ समभागानि

सञ्चूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिवेत् । बहु-

प्रकारं श्वयथुं सर्वगोत्रविसारिणम् । हन्ति

शोथोदराण्यष्टौत्रणाश्चैवोद्धतानपि १९ ॥

( अथ त्रिल्वं त्रिल्वस्य मूलम् )

गदहपुरैना, देवदारु, हर, पादी, बेल के मूल  
की छाल, गोखरु, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी,  
हलदी, दारुहलदी, पीपरि, गजपीपरि, चीता  
और अरुसे की छाल; समभाग इन सब द्रव्यों  
को लेकर कूट पीसकर महीन चूर्ण बना लेवे ।  
मात्रा २ मासे । अनुपान-गोमूत्र । इसका सेवन  
करने से सब प्रकार के सार्वार्थिक शोथ, शोथ-  
युक्त ८ प्रकार के उदररोग और प्रबल ज्वररोग  
शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १८-१९ ॥

शोथारिचूर्ण ।

शुष्कमूलमपामार्गस्त्रिकटु त्रिफला तथा ।

दन्ती च त्रिमदश्चैव प्रत्येकश्च समं समम् २०

भक्षयेत् मातरुत्थाय त्रिल्वपत्ररसेन च ।

पाण्डुरोगं निहन्त्याशु शोथश्चैव सुदारु-

णम् ॥ २१ ॥

खली मूली, चिरचिरा, नौठ, मिर्च, पीपरि,  
आंबला, हर, पहेड़ा, दन्ती की जड़, बायविडक,  
चीता और नागरमोथा; इन कुल द्रव्यों को  
समभाग लेकर चूर्ण करे । मात्रा १ मासे से  
१ मासे तक । अनुपान-बेल की पत्तियों का  
रस । इस चूर्ण का प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन  
करने से पाण्डुरोग और दारुणशोथ रोग शीघ्र  
नष्ट होते हैं ॥ २०-२१ ॥

शोथोदरं पुनर्नवादि गुग्गुलु ।

पुनर्नवादार्व्यभयागुडूचीं पिवेत् स-

मूत्रां महिषान्तयुक्ताम् । त्वग्दोषशोथोदर-

पाण्डुरोगस्थौल्यमसेकोर्ध्वकफामयेषु २२ ॥

सर्वं चूर्णसमगुग्गुलुं परण्डतैलेनपिष्ट्वा

एकीकृत्य भाण्डे स्थाप्यम् । यथापथ्यं

गोमूत्रेण पेयम् ।

साँडी, दारुहलदी, हरीतकी, गिलांय,  
प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, परण्ड के तेल में  
पिसा हुआ शुद्ध मैसा गुग्गुलु ४ तोले; इनको  
एकत्र मिश्रित कर किसी पात्र में रख देवे ।  
गोमूत्र के साथ इस चूर्ण का सेवन करने से चर्म-

रोग, शोथ, उदररोग, पाण्डुरोग, स्थूलता, तार  
उपशाना और ऊर्ध्व कफरोग नष्ट होते हैं । मात्रा-  
१ मासा ॥ २२ ॥

पुनर्नवादिहेतुः ।

पुनर्नवामृता टारु दशमूलरसाढके ।  
आर्द्रकश्वरसप्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥  
२३ ॥ तत्सिद्धं व्योपवत्रैलात्वक्चर्चयैः  
कार्पिकैः पृथक् । चूर्णाकृतैः क्षिपेत् शीते  
मधुनः कुडवं लिहेत् ॥ २४ ॥ लेहः  
पौनर्नवो नाम शोथशूलनिपूदनः । कास-  
श्वासारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ २५ ॥

गदहपुरेना, गुरुच, देवदारु और दशमूल  
इनका षाय ६ सेर ३० तोला, अदरक का रस  
१२८ तोला इन दोनों रसों को एकत्रकर उसमें  
पाँच सेर पुराना गुड़ मिलाकर चख से छान लेवे ।  
तदनन्तर धीमी आँचपर रखकर पाक करे ।  
जब पककर गाढ़ा हो जावे तब उसमें त्रिकटु,  
तेजपात, इलायची दालचीनी और चर्च्य प्रत्येक  
का एक एक तोला चूर्ण डालकर उतार लेवे ।  
शीतल होने पर १६ तोला भर मधु मिलाकर किसी  
पात्र में रख लेवे । यह श्वलेह सेवित होने पर  
शोथ, शूल, कास, रवास और अरुचि को नष्ट  
कर बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ाता है । मात्रा  
३ मासा से ६ मासा तक ॥ २३-२५ ॥

शोथारिमण्डूरः ।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं निर्गुण्डीरसभावि-  
तम् । माणकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च  
भावयेत् ॥ २६ ॥ त्रिफलाव्योपचव्यानां  
चूर्णं कर्षद्वयं पृथक् । चूर्णाद्द्विगुणमण्डूरं  
गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ २७ ॥ सिद्धे चूर्णे  
क्षिपेत् शीतेमधुनश्च पलद्वयम् । निहन्ति  
सर्वजं शोथं सर्वाद्भोत्यं न संशयः ॥ २८ ॥

सात बार गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ  
मण्डूर २८ तोला लेकर सैमालू, मानकन्द,  
पदरक और जिमीकन्द, इनमें से प्रत्येक के रस

में सात बार भाषना देकर, २ सेर ६४  
तोला गोमूत्र में पकावे । गाढ़ा हो जाने पर,  
उममें आँबला, हर्, यहैदा, सोंठ, कालीमिरिच,  
पीपरि और चर्च्य इनमें से प्रत्येक के चूर्ण दो  
दो तोले डालकर उतार लेवे । शीतल होने पर  
आठ तोले मधु मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र  
में रख देवे । इस मण्डूर का सेवन करने से  
त्रिदोष से उपशान सब शरीर की सूजन  
अवरय नष्ट होती है । मात्रा ४-८ रत्ती ॥ २६-२८ ॥

अग्निमुपमण्डूरः ।

पलद्वादशमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।  
पञ्चकोलं देवदारु मुस्तं व्योषं फलत्रयम् ॥  
२९ ॥ विडङ्गं पलमात्रन्तु पाकान्ते चूर्णितं  
क्षिपेत् । गुञ्जापञ्चकमात्रं तु तक्रेण सहयो-  
जयेत् ॥ ३० ॥ असाध्यं श्वयथुं हन्ति  
पाण्डुरोगं चिरोद्भवम् । स्वयमग्निमुखं  
नाम सर्पिःक्षौट्रेण मर्दयेत् ॥ ३१ ॥

शुद्ध मण्डूर ४८ तोला लेकर ४ सेर ६४  
तोला गोमूत्र में पकावे । जब कलछीमें लिप्त होने  
लगे, तब उसमें पीपरि, पिपरामूल, चर्च्य,  
चीता, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, काली-  
मिचं, पीपरि आँबला, हर्, यहैदा और बाय-  
विडङ्ग, इनमें से प्रत्येक का एक एक पल चूर्ण  
मिलाकर उतार लेवे । तदनन्तर घृत और  
मधु मिलाकर मर्दन करके रख लेवे । पाँच  
रत्ती मात्रा में अग्निमुख मण्डूर को तक्र के  
साथ पिलाने से असाध्य शोथ रोग और  
बहुत पुराना पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ २९ ३१ ॥

रसाभ्रमण्डूरः ।

गन्धकाम्बरसूतानां प्रत्येकं शुक्लिस-  
म्मितम् । संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरं  
मुष्टिकद्वयम् ॥ ३२ ॥ प्रसृतञ्च हरीत-  
क्याः पापाणजतुनः पिञ्जम् । तोलकं  
कान्तलौहस्य सर्व रौद्रे विभावयेत् ॥ ३३ ॥  
भृङ्गराजरसमस्थे केशराजरसे तथा । निर्गु-

एडीमाणकन्दानामार्द्रकस्य रसेष्वपि ॥ ३४ ॥  
 त्रिकटुत्रिफलाचव्यमुस्तकानां पृथक् पृथक्  
 कर्प कर्प क्षिपेच्छूर्णं मर्दयेन्मधुसर्पिषा ॥  
 ३५ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय मात्रया युञ्जितः  
 पुमान् । निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गैकाङ्ग-  
 संश्रयम् ॥ ३६ ॥ कासश्वासतृपादाह-  
 मोहच्छर्दियुतं तथा । अम्लपित्तं निहन्त्येव  
 शूलमष्टविधं जयेत् ॥ ३७ ॥ अग्निवृद्धि-  
 करं वृष्यं हृद्यं वातानुलोमनम् । कामलां  
 पाण्डुरोगञ्च श्लेष्मकुष्ठारुचिज्वरम् ॥  
 प्लीहगुल्मोदरं हन्ति ग्रहणीं समवाहि-  
 काम् ॥ ३८ ॥

निर्गुण्ड्यादीनां रसैः प्रत्येकमार्द्राकरण-  
 क्षमैर्भावयित्वा किञ्चिदार्द्रतायां त्रिकट्वा-  
 दीनां चूर्णं प्रत्येकमेकतोलकं दत्त्वा पुनः  
 पिप्प्ला कोलप्रमाणा वटिकाः कृत्वा एकैकां  
 घृतमधुभ्यां मर्दयित्वा भक्षयेत् पुनर्नया  
 कार्यं प्रक्षिप्तयवक्षारमनु पिवेत् ।

गन्धक, अश्रकभस्म और पारा प्रत्येक दो  
 दो तोले, शुद्ध किये हुये मसूर का चूर्ण ८ तोले,  
 हरं का चूर्ण ८ तोला, शिलाजीत १ तोला  
 और कान्तलोह का भस्म १ तोला, इन कुल  
 द्रव्यों को एकत्र खरल करे । परचात् भंगरिया  
 का रस १२८ तोला और केशराज का रस  
 १२८ तोला, सँभालू, मानकन्द, सूरज और  
 अदरक इनमें से प्रत्येक का रस इतना हो जिस  
 से पूर्वाङ्ग चूर्ण गीला हो सके, इन सब रसों में  
 भावना देकर घूप में सुखाये । थोड़ा गीलापन  
 रहते ही उसमें सोंठ, मिर्च, पीपरि, आँवला,  
 हरं, बहेड़ा, चड्य और नागरमोथा, इनमें से  
 प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला मिलाकर भली  
 भाँति खरल करके दो दो एक एक मासे की घटिकाएँ  
 बनावे । प्रतिदिन प्रातः काल मधु और घृत के  
 साथ एक एक घटिका खावे । तदनन्तर जवापार  
 मिलाकर सोंठी का साथ पीवे । यह मसूर

सेवित होने पर त्रिदोषजन्य एकाङ्गिक अथवा  
 सर्वाङ्गिक शोथ, कास, खास, तृपा, दाह, मोह,  
 वमन, अम्लपित्त, आठ प्रकार के शूल, कामला,  
 पाण्डुरोग, कफ, कुष्ठ, अरुचि, ज्वर, प्लीहा,  
 गुल्म, उदररोग, ग्रहणी और प्रवाहिका इन लक्ष्य  
 रोगों को नष्ट करके अग्नि और बल की वृद्धि  
 तथा वायु का अनुलोमन करता है । एवं हृदय  
 के लिये भी लाभदायक है ॥ ३२-३८ ॥

• पुनर्नवादिश्लेषः ।

पुनर्नवादारुशुण्ठीशिशु सिद्धार्थकस्तथा ।  
 अम्लपिष्टैः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्व-  
 शोथहृत् ॥ ३९ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहजने की छाल,  
 सफेद सरसों, इन्हें इकट्ठा करके काँजी के साथ  
 पीस डाले और थोड़ा गरम करके लगाने से सर्व-  
 प्रकार के शोथ दूर होते हैं ॥ ३९ ॥

कृष्णादि प्रलेपः ।

कफे तु कृष्णासिकतापुराणपिण्याक-  
 शिशुत्वगुमाप्रलेपः । कुलत्थशुण्ठीजल-  
 मूत्रसेकश्चण्डागुरुभ्यामनुलेपनञ्च ॥४०॥

पीपल, बालू, पुराने तिल की खल, सहजने  
 की छाल, अलसी, इन्हें इकट्ठा करके जल या  
 गोमूत्र से पीसकर लेप करने से कफज शोथ में  
 हिल करता है और सोंठ, कुत्थी का काड़ा या  
 इनसे सिद्ध गोमूत्र क परिपेक से या चोरपुष्पी  
 और अगर के अनुलेपन से कफ से उत्पन्न शोथ  
 दूर होता है ॥ ४० ॥

आगन्तुज शोधचिकित्सा ।

शोथे त्नागन्तुजे कुप्यात् सेकलेपादि  
 शीतलम् । भल्लातकं हरेच्छोथं सतिला  
 कृष्णमृत्तिका ॥ महिपीत्तीरसम्पिष्टा नव-  
 नीतसमन्विता ॥ ४१ ॥

टपड़ा लेप एवं परिपेक आगन्तुज शोथ में  
 हितकर है । भिल्लाते से पैदा हुआ शोथ काली  
 मिट्टी और तिल को मँस के दूध या मक्खन में  
 मिलाकर लगाने से दूर होता है ॥ ४१ ॥

तिलैलितः शमं याति शोथो भस्लात-  
कोत्थितः । यष्टिदुग्धतिलैलोपो नवनीतेन  
संयुतः ॥ शोधमारुष्करं हन्ति चूर्णैः  
शालदलस्य च ॥ ४२ ॥

मुलहठी, दूध, तिलककक और मकरन  
इन्हें एकत्र पीस लेप करने से भस्लातज शोध  
दूर होता है । या तिलककक के लेप से या  
सहजने के पत्तों का चूर्ण रगदना भी भिलांव के  
शोध पर हितकर है ॥ ४२ ॥

पथ्यादिकाथ ।

पथ्यानिशाभार्ग्यमृताग्निदावर्वापुन-  
र्नवादारुमहौपधानाम् । क्वाथः प्रसह्यो-  
दरपाणिपादपुराश्रितं हन्त्यचिरेण  
शोधम् ॥ ४३ ॥

हरद, हल्दी, भारंगी, गिलोय, चित्रक,  
दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ ये सब द्रव्य  
मिलाकर २ तोला । इनको ३२ तोले पानी में  
पकावे जब ४ तोला शेष रह जावे तब उतार  
ले । यह कादा हाथ, पैर, मुँह, पेट पर छाई  
सूजन को शीघ्र ही दूर करता है ॥ ४३ ॥

त्रिफलादि काथ ।

फलत्रिकोद्भवं काथं गोमूत्रेणैव साधि-  
तम् । वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्यात् वृषण-  
सम्भवम् ॥ ४४ ॥

त्रिफला ( हर, बहेडा, आंवला ) का कादा,  
गोमूत्र से सिद्ध किया हुआ सेवन करने से वात-  
कफज शोध दूर होता है ॥ ४४ ॥

शृङ्खलशुष्कमूलाद्य तैल ।

मूलकं दशमलञ्च कणामूलं पुनर्नवा ।  
प्रत्येकं प्रस्थमाहृत्य वारिण्यष्टगुणे पचेत् ॥  
४५ ॥ तेन पादावशेषेण तैलस्यार्द्धाढकं  
पचेत् । दापयेत्तैलतुल्यञ्च गोमूत्रं कुशलो  
भिपक् ॥ ४६ ॥ मूलकं चामृता शुण्ठी  
पटोलं चपला वला । पाठा पुनर्नवा

मूलं वालोशीरञ्च शिग्रुजम् ॥ ४७ ॥  
निर्गुण्डीन्द्रायणं श्यामा करञ्जं वासकं  
तथा । कणा हरीतकीचैव वचा पुष्करमूल-  
कम् ॥ ४८ ॥ रास्ना विडङ्गं चव्यञ्च द्वे  
हरिद्रे च धान्यकम् । द्विचत्वारं सैन्धवञ्चैव  
देवदारु सपत्रकम् ॥ ४९ ॥ शटी करि-  
कणा त्रिवं मञ्जिष्ठां च ततः क्रमात् ।  
प्रत्येकार्द्धपलञ्चैषां पेपयित्वा विनित्तिपेत् ॥  
५० ॥ अर्भ्यङ्गेनास्य तैलस्य ये गुणास्तां-  
स्ततः शृणु । नानाशोथा विनश्यन्ति  
वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ५१ ॥ मलोद्भवाश्च  
ये केचिद्विशेषेण जलाश्रयाः । अवश्यं  
निर्जरा देहा भविष्यन्ति न संशयः ॥ ५२ ॥

सूखी मूली ६४ तोला, दशमूल के कुल  
श्रीपथ मिलाकर ६४ तोला, पिपरामूल ६४  
तोला, गदहपुरेना ६४ तोला, इनको २५ सेर  
४८ तोला जल में पकावे । आठ सेर जल शेष  
रहने पर उतार कर छान लेवे । उसमें ३ सेर  
१६ तोला कडुआ तेल और ३ सेर १६ तोला  
गोमूत्र मिलावे । परचात् सूखी मूली, गिलोय,  
सोंठ परवल की पत्तियाँ, पिपरामूल, खरिटी,  
पादी, सोंठी की जड़, सुगन्धबाला, नवस, सेंजने  
के बीज, निर्गुण्डी, भाँग, अनन्तमूल, कंजा के  
बीज, अरुसे की छाल, पीपरि, हर, वच, पुहकर-  
मूल, रास्ना, वायविडङ्ग, चव्य, हरदी, दारुहरदी,  
धनिया, जवाखार, सजीखार, सेंधानमक, देव-  
दारु, कमलगट्टा, कचूर, गजपीपरि, बेल की  
छाल और मजीठ, इनमें से प्रत्येक द्रव्य को दो  
दो तोले लेकर कलक बनाकर पूर्वोक्त काथ में  
मिला देवे । धीमी आँच से पकावे । तैलमात्र  
शेष रहने पर छान कर रख लेवे । इस तैल का  
मर्दन करने से वातिक, पित्तक, श्लैष्मिक,  
मलजन्य और जलजन्य आदि अनेक प्रकार के  
शोध रोग अवश्य नष्ट होते हैं । तथा शरीर  
जराहित हो जाता है ॥ ४५-५२ ॥

परमेश्वररचितकृत सारसंग्रह से उद्धृत

पृष्ठर शुष्कमूलाद्य तैल ।

शुष्कमूलरसप्रस्थं शिशु धुस्तूरयोस्तथा ।  
सिन्धुवाररसप्रस्थं दशमूलरसं तथा ॥५३॥  
पारिभद्ररसप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च । कर-  
ञ्जस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च ॥५४॥  
तैलप्रस्थं समादाय भिषक् यत्नाद्विपाच-  
येत् । कल्करुर्दपलरतैः शुण्ठीमरिचसै-  
न्धवैः ॥ ५५ ॥ पुनर्नवा काकमाची शेलु-  
त्वकपिप्पलीयुगैः । कदफलं पौष्करं शृङ्गी  
रास्ना यासश्च कार्शनी ॥ ५६ ॥ हरिद्राद्व-  
यपूतीकद्वयानन्तायुगैः पृथक् । तत्साधु-  
सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्  
॥५७॥ वातरलेप्मकृतं दोषं सन्निपातभयं  
तथा । निहन्ति सर्जं शोथमुदररास-  
नाशनम् ॥५८॥ विरुद्धभेषजभवं शोध-  
माशु व्यपोहति । व्रणशोथाक्षिशूलघ्नं  
कामलापाण्डुनाशनम् ॥ ५९ ॥ ये चान्ये  
व्याधयः सन्ति श्लेष्मजा सन्निपातजा ।  
तान् सर्वांश्चाशयत्याशु सूर्यस्तम इवो-  
दित ॥ ६० ॥

कटु तैल १२८ तोला, सूखी मूली का काथ  
१२८ तोला, सेंजन का रस १२८ तोला, धतूर  
की पत्तियों का रस १२८ तोला, निगुंरुडी का  
रस १२८ तोला, दशमूल का काथ १२८ तोला,  
नीम की छाल का रस १२८ तोला, साँठी का  
रस १२८ तोला, कजा का रस १२८ तोला  
और वरुण पृथक् की छाल का रस १२८ तोला ।  
कल्क के लिये साँठ, कालीमरिच, लाहरी नमक,  
साँठी, मकोय, लिंसोडा की छाल, पीपरि, गज  
पीपरि, कायफल, पुहकरमूल, काकड़ासिंगी,  
रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हरदी, दाहहरदी,  
करञ्ज, नाटाकरञ्ज, श्यामालता और अनन्तमूल  
इनमें से प्रत्येक द्रव्य दो दो तोले लेवे । तदन-  
न्तर तैल, काथ, रस और कल्क, इन सब

पदार्थों को एकत्रित कर विधिपूर्वक पकावे ।  
उत्तम तैल सिद्ध होने पर छान कर किसी उत्तम  
पात्र में रस लेवे । इस तैल का मर्दन करने से  
वातिक, रलेष्मिक तथा त्रिदोषजन्य शोथ उदर-  
रोग, खास, विरुद्धघौषध के सेवन से उत्पन्न  
शोथ, व्रणशोथ, नेत्रशूल, कामला और पाण्डु-  
रोग तथा अन्यान्य वातजन्य, कफज-य एव  
सन्निपातजन्य विकार इस प्रकार नष्ट होते हैं  
जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट  
होता है ॥ ५३-६० ॥

शोधशादूल तैल ।

धुस्तूरा दशमूलश्च सिन्धुवारं जय-  
न्तिका । पुनर्नवा करञ्जश्च पट्टपलानि  
प्रशुष्य च ॥ ६१ ॥ जलद्रोणे विपक्वव्यं  
ग्राह्यं पादानशेषितम् । प्रस्थञ्च कटुतैलस्य  
कल्कान्येतानि दापयेत् ॥ ६२ ॥ रास्ना  
पुनर्नवा दाह मूलकं नागरं कणा । सिद्धं  
तैलवरं ह्येतन्नाशयत्यस्य सेवनात् ॥ ६३ ॥  
शोथं मुदारुणं घोरं वातपित्तकफोद्भवम् ।  
असाध्यं सर्वादेहस्थं सन्निपातसमुद्भवम् ॥  
॥ ६४ ॥ श्लीपदश्च ज्वरं पाण्डुं कृमिदोषं  
विनाशयेत् । क्लिन्नव्रणमशमनं नाडीदुष्ट-  
व्रणापहम् ॥ शोधशादूलकं तैलं धलवर्ण-  
प्रसादनम् ॥ ६५ ॥

धतूर, दशमूल, निगुंरुडी, जयन्ती, साँठी,  
और कजा प्रत्येक २४ तोला लेकर २५ सेर  
४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोला  
जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । तदन-  
न्तर उसमें १२८ तोला कटुशा तैल मिलावे ।  
परचात् रास्ना, साँठी, देवदारु, सूखी मूली,  
साँठ और पीपरि ये सब मिलकर ३२ तोला  
हों, इनका कल्क मिलाकर विधिपूर्वक पकावे ।  
यह शोधशादूल तैल मर्दन करने से वातिक,  
वैतिक, रलेष्मिक, असाध्य और त्रिदोषजन्य  
दाहय शोथरोग, श्लीपद, ज्वर, पाण्डुरोग,

कृमिरोग, क्लिन्नव्रण (सदा हुआ घाव) और दुष्ट नाडीव्रण को नष्ट कर बल तथा कान्ति को बढ़ाता है ॥ ६१-६२ ॥

### पुनर्नवादि तैल ।

पुनर्नवा पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् । तेन पादावेशेपेण तैलप्रस्थं पचेद्भ्रियक ॥ ६६ ॥ त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी धान्यकं कट्फलं तथा । शटी दावीं प्रियङ्गुश्च पद्मकाष्ठं हरेणुकम् ॥ ६७ ॥ कुपुं पुनर्नवा चैव यमानी कारवी तथा । एलात्वचं सलोध्रश्च पत्रकं नागकेशरम् ॥ ६८ ॥ वचा ग्रन्थिकमूलश्च चव्यं चित्रकमूलकम् । शतपुष्पाम्बुमज्जिष्ठा रासना यासस्तथैव च ॥ ६९ ॥ एतेषां कार्पिकैर्भागैः पेपयित्वा विनित्तिपेत् । कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथारुचिम् ॥ ७० ॥ रक्तापत्तं महाशोथं कासं श्वासं भगन्दरम् । स्नीहानमुदरञ्चैव जीर्णज्वरमपोहति ॥ ७१ ॥ कुरुते परमां कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् । तैलं पुनर्नवाख्यातं सर्वान् व्याधीन् व्यपोहति ॥ ७२ ॥

मूर्च्छित तैल ११८ तोला, काथ के लिये गदहपुरैना ५ सेर, उसके पकाने के लिये जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला । कलक के लिये सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि, आँवला, हूरं, यहदा, काकड़ासिंगी, धनियाँ, कायफल, कचूर, दाऊहरदी, फूलप्रियंगु, गदमाख, मँनालू के चीज, कूठ, साँठी, अजवाइन, काला औरा, हलायची, दालचीनी, लोध, तेजपात, नागकेशर, बध, पिपरामूल, चव्य, चीता, घोया, सुगन्धवाला, मजीठ, रासना और जवासा इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला लेवे । तदनन्तर तैल, काय और कलक इन तीनों को एकत्रित कर पकावे । सिद्ध होने पर छानकर रख

लेवे । यह पुनर्नवादि तैल मर्दन करने से कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, थरुचि, रक्तापत्त, अति कठिन सूजन, कास, श्वास, भगन्दर, ब्रीहा, उदररोग, जीर्णज्वर तथा अन्यान्य अनेक रोगों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त और कान्ति को वृद्धि करता है ॥ ६६-७२ ॥

### पुनर्नवाद्य घृत ।

पुनर्नवातुलां गृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् । चतुर्भागावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७३ ॥ भूनिम्बं विजया शुण्ठी शोथघ्न्यमरदारु च । कासं श्वासं ज्वरं हन्ति शोथञ्चापि सुदारुणम् ॥ ७४ ॥

गदहपुरैना ५ सेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवे । तदनन्तर उसमें १२८ तोला घृत मिलावे । परचात् चिरायता माँग, सोंठ, पुनर्नवा और देवदारु, ये कुल मिलाकर ३२ तोले हों, इनका कलक बनाकर मिला देवे । तदनन्तर धीमी आँचपर पकाकर घृतसिद्ध करे । इस घृत का सेवन करने से कास, श्वास, ज्वर और दारुण शोथ रोग नष्ट होते हैं । मात्रा-६ माशा ॥ ७३-७४ ॥

### माणकघृत ।

माणककाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषजमपोहति ॥ ७५ ॥

चार सेर मानकन्द को भली भाँति कूटकर ३२ सेर जल में पकावे । आठ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । तदनन्तर उसमें २ सेर तैल मिलावे । परचात् आधसेर मानकन्द का कलक मिलाकर पकावे । सिद्ध होने पर इस घृत का सेवन करने से एक दोषजन्य, द्वन्द्वजन्य और त्रिदोषजन्य दारुण शोथरोग नष्ट होता है । मात्रा ६ माशा ॥ ७५ ॥

### समुद्रशोषण तैल ।

निर्गुण्डी दशमूली च धुस्तरक-

करञ्जकी । शुष्कमूलजयाविश्वरासना-  
दारुपुनर्नवा ॥ ७६ ॥ ऐपाञ्च प्रकृते  
काथे काथे शाखोटजे तथा । कटुतैलं  
पचेत्प्रस्थं सैन्धवं कल्कपादिकम् ॥ ७७ ॥  
सक्षिपादोद्भवा शोथा ये चान्ये श्लेष्म-  
पित्तजा । शिरःकर्णगताये च श्लीपदानि  
तथैव च ॥ ७८ ॥ गलगण्डं ब्रध्नवृद्धिं  
शोथं सर्वाङ्गसम्भवम् । कर्णशोथं दन्त-  
शोथं हनुमूलात्तिसम्भवम् ॥ ४६ ॥  
एतान् सर्वाभिहन्त्याशु वाडवाग्निरिया-  
म्बुदम् । समुद्रशोषणं नाम तैलं परम-  
शोभनम् ॥ ८० ॥

कड़वा तेल २ प्रस्थ ( १२८ तोला ),  
काड़े के लिए द्रव्य—सैंभालू, दशमूल मिला  
हुआ ), धतूरा, करञ्ज, शुष्कमूली, जयन्तीपत्र,  
सोंठ, रासना, देवदार, पुनर्नवा, यह कुल मिश्रित  
द्रव्य ६ सेर १६ तोला, जल २ द्रोण ( २५  
सेर ४८ तोला ), इनका यथाविधि काढ़ा बनावे  
जब ८ प्रस्थ ( ६ सेर ३२ तोला ) जल  
रह जावे तो उतार ले । इसी प्रकार सहोरा का  
काढ़ा ८ प्रस्थ ( ६ सेर ३२ तोला ) तैयार  
कर ले । कल्क सेंधा नमक ६४ तोला । विधि-  
अनुसार तेल पकाकर तैयार कर ले । इस तेल के  
लगाने से द्विद्रोषज जैसे कफ-पित्तज व सत्रि-  
पातज शोथ व शिरारोग, कर्णरोग, श्लीपद,  
गलगण्ड, ब्रध्न, कोषवृद्धि, सम्पूर्ण ग्रह का  
शोथ, कान का शोथ, दाँत तथा हनुमूल शोथ  
एवं आँसों की सूजन आदि शीघ्र दूर होती  
है ॥ ७९-८० ॥

त्रिनेत्राख्य ।

टङ्गनं शोधितं गन्धं मृतशुल्वायसं  
रसम् । दिनैकमाद्रकद्रावैर्मर्द्यं लघुपुटे  
पचेत् ॥ १ ॥ त्रिनेत्राख्यो रसो नाम  
चासाध्यं श्वयथुं जयेत् । गुञ्जामात्रं  
पिवेच्चानु परणदशिवरीरसम् ॥ ८२ ॥

पारा, गन्धक सोहागा फूला हुआ सास-  
भस्म और लोहभस्म इन कुल द्रव्यों को अद्-  
रस के रस में एक दिन घोटकर लघुपुट में  
पकावे । मात्रा-आधी रसी से एक रसी तक ।  
अनुपान-परणद की जड़ और चिरचिरा का  
हाथ । इस रस का सेवन करने से असाध्य  
शोथरोग नष्ट होता है ॥ ८१-८२ ॥

त्रिकट्यादिलौह ।

त्रिकटु त्रिकला दन्ती विडङ्ग कटुका  
तथा । चित्रको देवकाष्ठञ्च त्रिवृद्धारण-  
पिप्पली ॥ ८३ ॥ चूर्णान्येतानितुल्यानि  
द्विगुणं स्यादयोरजः । क्षीरेण पीतं शीतेन  
परं श्वयथुनाशनम् ॥ ८४ ॥

सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि, आँवला, हरं,  
बहेदा, दन्ती ( जमालगोटा की जड़ ), वाय-  
विडङ्ग, कुटकी चीता, देवदारु, निसोध, गज-  
पीपल प्रत्येक औषध को समभाग लेकर चूर्ण  
बनावे । कुल चूर्ण से दूना लोहभस्म मिलाकर  
खरल करके रख लेवे । मात्रा २ रसी से ४  
रसी तक । इस रस को गोदुग्ध के साथ सेवन  
करने से शोथरोग अथर्वय नष्ट होता है ॥ ८३-८४ ॥

शोथारिलौह ।

आयोरजस्त्यूपणयावशूकं चूर्णञ्च पीतं  
त्रिफलारसेन । शोथं निह्न्यात् सहसा  
नरस्य यथाशनिर्दृत्तमुदग्रवेगः ॥ ८५ ॥  
सर्वसमं लौहम् ।

सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि और जवाक्षार  
प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म ४ तोले, इन सब-  
को एकत्र खरल करके रख लेवे । त्रिकला के  
हाथ के साथ इसका सेवन करने से शोथ रोग  
शीघ्र नष्ट होता है । जैसे वज्र से वृक्ष । मात्रा  
२-४ रसी ॥ ८५ ॥

शोधभस्मलौह ।

त्रिकटु त्रिकला द्राक्षा पौष्करं सजलं  
शटी । लौहं वचा लवङ्गञ्च शृङ्गीत्वक्

शतपुष्पिका ॥ ८६ ॥ विभीतकं विडङ्गश्च  
धातकीपुष्पमेव च । एतानि समभागानि  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ८७ ॥ सर्व-  
द्रव्यसमश्चात्र सुमृतं लौहकिट्टकम् । कुट्ट-  
जस्य रसेनापि भक्तयेत् परिरयन्ततः ॥ ८८ ॥  
वेष्टितं जम्बुपत्रेण पङ्केन परिलेपयेत् । ततो  
लघुपुटे पक्त्वा स्वाद्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ८९ ॥  
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा सेवितं गुञ्जकद्वयम् ।  
निहन्ति सर्वजं शोथं ग्रहणीञ्च विशेषतः ॥  
९० ॥ उदरेषु च सर्वेषु शोथेषु च विधा-  
नतः । विविधा व्याधयश्चान्ये सेविता  
यान्ति साध्यताम् ॥ ९१ ॥

सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि, आंवला, हर्द, यहैदा, मुनक्का, पुहकरमूल, सुगन्धबाला, कचूर, लोहभस्म, यच, लौंग, काकड़ासिंगी, दालचीनी, सोया, यहैदा, वायविडङ्ग और धाप के फूल, समभाग इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे । कुल चूर्ण के समान शुद्ध मण्डूर मिलावे । तदनन्तर कुड़ा के छाल के ढाँच में घोटकर एक गोला बना लेवे । उस गोले के ऊपर जामुन की पत्तियाँ लपेट कर उसके ऊपर मिट्टी का लेप करके धूप में सुखा लेवे । परचाव गजपुट में पका लेवे । स्वाद्गशीतल होने पर मिट्टी आदि अलग करके उस गोला को घोटकर रख लेवे । मात्रा दो रत्ती । इसका सेवन करने से सब प्रकार के शोथ, ग्रहणी और उदररोग आदि अनेक व्याधियाँ नष्ट होती हैं ॥ ८६-९१ ॥

कट्टकाद्य लौह ।

कट्टकं ज्यूपणं दन्ती विडङ्गं त्रिफला  
तथा । चित्रको देवदारुश्च त्रिष्टक्षारण-  
पिप्पली ॥ ९२ ॥ चूर्णान्येतानि तुल्यानि  
द्विगुणं स्यादयोरजः । क्षीरेण तुल्यमेतच्च  
श्रेष्ठं द्रव्ययुनाशनम् ॥ ९३ ॥

कटुकी, त्रिबटु ( सोंठ, मिर्च, पीपर ),

दन्तीमूल, वायविडङ्ग, त्रिफला हर्द, यहैदा, आंवला ), चित्रक, देवदारु, त्रिबटु ( निसोत ), गजपीपल, इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर ले और इस चूर्ण से दूनी लोहभस्म लेकर मिला ले । मात्रा २।४ रत्ती । दूध के साथ लेना चाहिए । यह चूर्ण शोथमें हितकर है ॥ ९२-९३ ॥  
सुवर्चलाद्य लौह ।

सुवर्चला व्याघ्रनखं चित्रकः कटु-  
रोहिणी । चव्यञ्च देवकाष्ठञ्च दीप्यकं लौह  
मेव च ॥ शोथं पाण्डु तथा कासपुदराणि  
निहन्ति च ॥ ९४ ॥

हुलहुल ( सुवर्चला ) नखी, चित्रक कटुकी, चव्य, देवदारु, अजवाइन, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर बराबर लेकर चूर्ण बना ले और इस चूर्ण के बराबर लोहभस्म मिश्रित कर ले । मात्रा—२।४ रत्ती । इसचूर्ण को व्यवहार में लाने से शोथ, पाण्डु, कास ( खाँसी ) तथा उदररोग शीघ्र ही दूर होते हैं ॥ ९४ ॥

शोथकालानल रस ।

चित्रं कुट्टजवीजश्च श्रेयसी सैन्धवं  
तथा । पिप्पली देवपुष्पश्च सजातीफलद-  
द्रनम् ॥ ९५ ॥ लौहमध्रं तथा गन्धं  
पारदेनैव मिश्रितम् । एतेषां कर्षमात्रेण  
वर्तं गुञ्जामितां शुभाम् ॥ ९६ ॥ भक्त-  
येत् प्रातरुत्थाय कोकिलात्तरसेन तु ।  
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि  
वा ॥ ९७ ॥ कासं श्वासं तथा शोथं  
सीद्धानं हन्ति दुस्तरम् । मेहं मन्दानलं  
शूलं संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ९८ ॥  
अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो  
यथा । शोथकालानलो नाम रोगानीक-  
विनाशनः ॥ ९९ ॥

चीता, इन्द्रजी, गजपीपरि, साहीरी नमक, पीपरि, रौंग, जायफल, तोहागा की लील,



लोहभस्म, अश्रकभस्म, गन्धक, घौर पारा ; इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला लेकर, जल में घोटकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे तालमराना के साथ के साथ सेवन करना चाहिये । इसके सेवन से घाठ प्रकार के साध्य और असाध्य दोनों ज्वर, खाँसी, र्यास, शोथ, दारुण ग्रीहा, अभिमान्ध, शूल और संमहणी आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं । शोथ का तो यह इस प्रकार शोषण करता है, जैसे भगवान् भास्कर कीचड़ को सुखाते । मात्रा २-३ रत्ती है ॥ १६ १६ ॥

शोथांकुश रस ।

रसेन्द्रगन्धं मृतलौहताम्रं नागं तथाभ्रं समसंख्यकञ्च । निर्गुण्टिकास्फोटकपितृथ-  
चिञ्चा पुनर्नगा श्रीफलकेशराजम् ॥१००॥  
एषां रसेर्भावितमेकशश्च गुञ्जाभमाणा  
वटिका विधेया । शोथज्वरारोचकपाण्डु-  
रोगं सर्वाङ्गशोथं विनिवारयेच्च ॥ १०१॥  
पित्तान्वितान् वातभवान् कफोत्थान्  
शोथांकुशो नाम निहन्ति रोगान् ॥१०२॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, नाग-  
भस्म और अश्रकभस्म प्रत्येक समभाग लेकर खरल पर लेवे । तदनन्तर सैन्धव, अनन्त-  
मूल, कैथ की छाल, इमली की छाल, साँडी,  
बेल की छाल और भेंगरीया ; इनमें से प्रत्येक  
के रस अथवा क्वाथ में भावना देकर एक एक  
रत्ती की बटी बनावे । इस शोथांकुशरस का  
सेवन करने से शोथ, ज्वर, अरोचक, पाण्डुरोग,  
सार्वत्रिक शोथ तथा वातज, पित्तज और कफजन्य  
अनेक रोग नष्ट होते हैं । मात्रा २।३  
रत्ती ॥ १००-१०२ ॥

पञ्चामृतरस ।

शुद्धमूतं समादाय गन्धकं भागतः  
संमम् । त्रिभागं टङ्गनं देयं विषभागत्रयं  
तथा ॥ १०३ ॥ भागत्रयं तथा देयं  
मेरिचस्यं प्रयत्नतः । चूर्णाकृतं जलेनापि

पिष्ट्वा रक्त्रिमितां वटीम् ॥ १०४ ॥ मृद्ग-  
वेरसेनैव भक्षयेद्वटिकाभिमाम् । जल-  
दोषोद्भवे शोथे घोरेऽप्युग्रे जलोदरे ॥१०५॥  
सन्निपातेषु घोरेषु विंशतिश्लैष्मिके गटे ।  
ज्वरातिसारसंयुक्ते शोथे चैव जलोदरे ॥१०६॥  
शिरः शूलगटे घोरे नासारोगे सपीनसे ।  
पञ्चामृतरसो दोष सर्वरोगोपशान्ति-  
कृत् ॥ १०७ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागा  
फूला हुआ ३ तोले, विष ३ तोले, काशीमेरिच  
३ तोले ; इन सबको एकत्र जल में पीसकर  
एक एक रत्ती की गोली बनावे । अनुपान-  
अदरुण का रस । इस पञ्चामृतरस का सेवन  
करने से दूषित जल के धिकार से उत्पन्न भया-  
नक उम्र जलोदररोग, दारुण सन्निपात, २० प्रकार  
के श्लैष्मिकरोग, ज्वरातिसारयुक्त शोथ, गलमह,  
मस्तकपीडा और पीनसयुक्त कठिन नासिकारोग  
आदि अनेक र्याधियाँ नष्ट होती हैं । मात्रा—  
२।३ रत्ती ॥ १०३-१०७ ॥

शोधानि रस ।

श्वेतदूर्णारसैर्भाव्य दिग्गुलोत्थो रसो  
युधैः । तं, रसं, मूषिकायान्तु कृत्वा  
तस्योपरि क्षिपेत् ॥ १०८ ॥ श्वेतदूर्वा-  
यमान्योश्च चूर्णं पूर्णशियं पुनः । पिधा-  
निकां ततो दत्त्वा नीरन्धां मूषिकां कुरु ॥  
१०९ ॥ ततो लघुपुटे पाकं विधानेन  
प्रदापयेत् । पुनस्तन्तुरसं नीत्वा गन्धकेन  
समेन च ॥ ११० ॥ कज्जलीं कारयेद्धीर  
पुनस्तां मिश्रयेत्समाम् । चतुःसमं तथा  
कुर्यादेभिर्द्रव्यैः सुशोधितैः ॥ १११ ॥  
विषताम्रकरञ्जैश्च तच्चूर्णं स्थापयेत्पुनः ।  
खटिकाप्रेष्टहीतं तच्चूर्णं जिह्वोपरि क्षिपेत् ॥  
११२ ॥ गिलनार्थं चतुष्कर्ममाणायाः

प्रपानकम् । शर्कराया पिवेच्चानु सर्व-  
शोथे महौषधम् ॥ ११३ ॥ भूरि प्रसृत्य  
प्रसृत्य महाशोथाद्विमुच्यते ॥ ११४ ॥

सफेद दूध के रस से हिगुलोथ पारद को  
भावना देकर एक मूस में रखे । इसके बाद उस  
मूस को अजत्राइन के चूर्ण और सफेद दूध से  
ऊपर तक भर दे, फिर ढकने से मूस का मुँह  
बंद कर मिट्टी द्वारा इसकी संधियों को बंद  
कर दे और फिर कपरमिट्टी करे, फिर गजपुट  
में यथाविधि पाक करे, फिर पारे को निकाल  
कर उसी के बराबर गन्धक मिलाकर कज्जली  
कर ले । यह कज्जली १ भाग मीठा धिप १ भाग,  
तांबे की भस्म १ भाग, बह्मभस्म १ भाग,  
इन सबको एकत्रित कर ले । मात्रा—३ रत्ती । अनु-  
पान—शरबत । आधी रत्ती औषध सेवन के पश्चात्  
८ तोले खॉट का शर्बत पीना चाहिए । यह रस हर  
प्रकार के शोथ की परमौषधि है । इस रस के  
प्रयोग से शोथरोगी तुरन्त ही रोगमुक्त हो जाता  
है । आरोग्यदर्पण ॥ १०८-११४ ॥

पकादशायस गुटिका ।

मृत्तायः पुरुषः शुल्वं खगो दरदग-  
न्धकौ । गगनं पुष्परागरच शैलेयमीश्वरो-  
रगौ ॥ ११५ ॥ विडङ्गं त्रिफला हिगु  
यमानी जीरकद्वयम् । सर्जरसं वचा शृङ्गी  
मरिचं पिप्पलीद्वयम् ॥ ११६ ॥ चवी  
दुरालभा वक्त्रिः शुएठ्याः काथेन मर्दयेत् ।  
अएदवातान्त्रवृद्धिश्च कृच्छ्रमूरुगदापहम् ॥  
११७ ॥ सर्वदोषमवं शोथं सर्वोपद्रव-  
संयुतम् ॥ ये चैवाएदगता रोगास्तान्  
सर्वानपकर्षति ॥ ११८ ॥

पुरुषो रसः खगः स्पर्णमात्तिकः ईश्वरः  
पिचलः उरगः सीसकम् ।

औहभस्म, पारा, तांबे की भस्म, स्वर्ण-  
माषिकभस्म, हिगुल, गन्धक, अत्रकभस्म,

पुखराजभस्म, शिलाजीत, पिचल भस्म । सीसक-  
भस्म, वायविडङ्ग, त्रिफला (हर, बहेदा, आंवला),  
हॉंग, अजवाइन, सफेद जीरा, राख, वच, काकदा-  
सिगी, कालीमिर्च, पीपल, गजपीपल, चण्ड्य,  
दुरालभा, चित्रक, इन कुल द्रव्यों को बराबर-  
बराबर लेकर मिला ले और सॉठ के कादे से  
घोटकर २ रत्ती से ४ रत्ती प्रमाण की  
गोली बना लेवे । इसके सेवन करने से अएदवात,  
अंत्रवृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, ऊरुस्तम्भ, त्रिदोषज शोथ  
आदि रोग दूर होते हैं ॥ ११५-११८ ॥

दुग्धघटी ।

अमृतं सूर्यगुञ्जं स्यादहिफेनं तथैव  
च । पञ्चरक्तिकलौहश्च पष्टिरक्तिकमभ्रकम् ॥  
११९ ॥ दुग्धे गुञ्जामाणा हि वटी कार्य्या  
मिपग्विदा । दुग्धानुपानं दुग्धैश्च भोजनं  
सर्वथा हितम् ॥ १२० ॥ शोथं नानाविधं  
हन्तिग्रहणीं विषमज्वरम् । मन्दाग्निं पाण्डु-  
रोगं च नाम्ना दुग्धघटी परा । वर्जयेल्ल-  
वणं वारि व्याधिनिःशेषतावधि ॥ १२१ ॥

धिप १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोह-  
भस्म ५ रत्ती और अत्रकभस्म ६० रत्ती;  
इन कुल द्रव्यों को गी के दुग्ध में घोटकर एक-  
एक रत्ती की गोलीयाँ बनावे । इसका सेवन  
दुग्ध के साथ करना चाहिये । भोजन भी दुग्ध  
ही के साथ करना हितकर है । इसका सेवन  
करने से सब प्रकार के शोथ, ग्रहणी, विषम-  
ज्वर, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोग नष्ट होते  
हैं । जब तक रोग निवृत्त न हो सब तक जल और  
नमक का सेवन न करना चाहिये ॥ ११९-१२१ ॥

अपरा दुग्धघटी ।

अमृतं धूर्त्तपीजश्च हिगुलश्च समं समम् ।  
धूर्त्तपत्ररसेनैव मर्दयेद् यममात्रकम् १२२ ॥  
मुहोपमां वटीं कृत्वा दुग्धेन सद् पाययेत् ।  
दुग्धेन भोजयेदन्नं वर्जयेल्लवणं जलम् ॥  
१२३ ॥ शोथं नानाविधं हन्ति पाण्डुरोगं

सकामलम् । सेयं दुग्धवटी नाम्ना गोपनीया  
मयन्नतः ॥ १२४ ॥

विष, धतूरे के बीज, हिगुल; इन तीनों  
द्रव्यों को समभाग छेकर खरल करे, तदनन्तर  
धतूरे की पत्तियों के रस में भरकर पर्यन्त घोट-  
कर मूँग के समान गोलियाँ बनाये । चौपाई  
रत्ती से आधी रत्ती तक दूध के साथ सेवन  
करना चाहिये । भोजन के लिये दूध और भात  
देये । नमक और जल का सेवन वर्जित है । इसका  
सेवन करने से अनेक प्रकार का शोथ, पाण्डुरोग  
और कामला-रोग नष्ट होते हैं ॥ १२३-१२४ ॥

ग्रहणीयुक्तशोथे ।

कल्पलतावटी ।

अमृतं हिगुलं धूर्त्तवीजं द्वादशरक्कि-  
कम् । मत्येकमहिफेनञ्च पट्टिशद्रक्किं  
नयेत् ॥ १२५ ॥ पिप्पला दुग्धेन गुञ्जिकां  
वटीं दुग्धेन पाययेत् । दुग्धं पाने भोजने  
च देयं न लवणं जलम् ॥ १३६ ॥ ग्रहणी  
चिरकालीनां हन्ति शोथं सुदुर्जयम् । चिर-  
ज्वरं पाण्डुरोगं नाम्ना कल्पलतावटी १२७

विष, हिगुल और धतूरे के बीज प्रत्येक  
१२ रत्ती, अफीम ३६ रत्ती; इन सब औषधों  
को दूध के साथ पीसकर एकएकरत्ती की गोलियाँ  
बनावे । अनुपान-दुग्ध । रोगी को प्यास लगने  
पर दूध ही और भूल लगने पर भी दूध ही  
देये । नमक और जल का सेवन करना वर्जित  
है । इसका सेवन करने से बहुत पुरानी ग्रहणी  
से युक्त दाहण शोथरोग, चिरकाल का ज्वर  
और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं । इसका नाम है  
कल्पलतावटी । मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती  
तक ॥ १२५-१२७ ॥

क्षेत्रपालरस ।

हिगुलञ्च विषं ताभ्रं लौहं तालक-  
टन्नम् । जीरमाहेयफेनञ्च समभागं  
विमर्दयेत् ॥ १२८ ॥ यवार्द्धा वटिका

कार्या पथ्यं दुग्धौदनं हितम् । अलवणं  
वारिहीनञ्च दातव्यं भिषजांवरैः ॥ १२९ ॥

गुरुशोथमग्निमान्द्यं ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।  
ज्वरञ्च विषमं जीर्णनाशयेन्नान्न संशयः १३०

दुग्धवटी इति पाके ।

हिगुल, विष, ताग्रमस्र, लोहभस्म शुद्ध  
हरिताल, सोहागा की खील, जीरा और अफीम,  
समभाग इन सब औषधों को एकत्र घोटकर  
आधे जी की बराबर गोलियाँ बनाये । अनुपान-  
दुग्ध । भोजन के लिये दूध और भात देना  
चाहिये । नमक और जल का सेवन करना  
वर्जित है । इस क्षेत्रपालरस का सेवन करने से  
भारी शोथरोग, अग्निमान्द्य, दाहण ग्रहणीरोग,  
जीर्णज्वर और विषमज्वर निःसंदेह नष्ट होते  
हैं ॥ १२८-१३० ॥

वैद्यनाथवटी ।

दधिघटी ।

पकेष्टका हरिद्राभ्यामागारधूमकेन च ।  
शोधितं सूतकं ग्राह्यं तोलकं तुलया घृतम् ॥  
१३१ ॥ भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं  
सूततुल्यकम् । हरितालं विषं तुत्थमेल-  
नालुकताम्रकम् ॥ १३२ ॥ स्वर्परं  
माक्षिकं कान्तं सर्वमेकत्र कारयेत् ।  
सर्वार्द्धा कज्जली ग्राह्या भावयेच्च पुनः  
पुनः ॥ १३३ ॥ सिन्धुनाररसे चैव  
ज्योतिष्मत्या रसे तथा ॥ १३४ ॥  
रक्तचित्रकमूलोत्थे रसे च परिभावयेत् ।  
वटिकां सर्पपाकारां योजयेत् कुशलो  
भिषक ॥ १३५ ॥ ततः सप्तवटीर्दद्यादु-  
ष्येण वारिणा सह । अनुपानञ्च कर्त्तव्यं  
कज्जलया कणया सह ॥ १३६ ॥ सन्नि-  
पातज्वरे चैव सशोथे ग्रहणीगटे । पाण्डु-

रोगोऽग्निमांघ्रे च विविधे विपमज्वरे ॥  
१३७ ॥ शुक्रमज्जगते दद्यान्न तु कासे  
कदाचन । नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं सिता  
नित्यं तथैव च ॥ १३८ ॥ स्नातव्यं  
हृमयान्नित्यं वयोदोषानुसारत । लवणं  
वारिहीनं च दधि पथ्यं सदा भवेत् १३९  
वैद्यनाथटी नाम्ना वैद्यनाथेन नि-  
र्मिता ॥ १४० ॥

इयं ग्रहण्यां शोथे च प्रयुज्यते ।

पकी हूँट का चूर्ण, हरदी और गृहधूम ( धुआँ  
का कजल ) द्वारा शोधित पारा १ तोला,  
भँगरैया के रस में शुद्ध किया हुआ गन्धक  
१ तोला, इन दोनों की उत्तम कजली बनावे ।  
हरिताल ६ माशे, विप ६ माशे, तूतिया ६ माशे,  
पलुष्पा ६ माशे, साध्रमसम ६ माशे, खपरिया  
६ माशे, सोनामाखी ६ माशे और कान्तलोह  
का भस्म ६ माशे, इन सब द्रव्यों को कजली  
में मिलाकर सँभालू, मालकॉगुनी, कोयल  
जयन्ती और लाल चीता की जड़ इनमें से प्रत्येक के  
रस में पृथक् २ भावना लेकर छोटे । तदनन्तर  
सरसों के समान छोटी छोटी गोलियाँ बनावे ।  
सात ७ गोलियाँ, ( १ जाँभर ) कजली और  
( १ जाँभर ) पीपर का चूर्ण मिश्रित कर उष्ण  
जल के साथ सेवन करना चाहिये । इस औषध  
को सन्नपित्तज्वर, ग्रहणीयुत शोथ, पाण्डुरोग,  
अग्निमान्द्य और शुक्र तथा मज्जागत विविध  
प्रकार के ज्वर में देवे । परन्तु यदि कास हो  
तो इस औषध का प्रयोग कदापि न करे ।  
भोजन के लिये दही और मिश्री देवे । रोगी की  
अवस्था और दोषों की अवस्था का विचार  
करके निर्भयता के साथ स्नान की आज्ञा दे ।  
नमक और जल का सेवन वर्जित है ॥ १३१-१४० ॥  
यह औषधपाथ द्वारा बनाई वैद्यनाथयटी ग्रहणी  
और शोथ दोनों के लिये अनुभूत प्रयोग है ।

अथ सुधानिधि ।

धान्यं पालकं मुस्तं विशयं सिन्धुं

समांशकम् । मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा भाव-  
येत् तु चतुर्दश ॥ १४१ ॥ गोमूत्रे केश-  
राजश्च शोथं नी भृङ्गराजकः । निर्गुण्डी  
भेकपर्णी च रसैरेषां विभाव्य च ॥ १४२ ॥  
द्विगुञ्जं च प्रयुञ्जीत तक्रेण सह बुद्धि-  
मान् । केशराजरसैर्वापि भोजनं लवणं  
विना ॥ १४३ ॥ तक्रेण भोजयेदन्नं पाने  
तक्रञ्च दापयेत् । कामलाज्वरशोथान्ोवह्नि-  
सन्दीपनः परः । ग्रहणीपाण्डुरोगान्नः सर्व-  
व्याधिविनाशनः ॥ १४४ ॥

धनिया, सुगन्धबाला, नागरमोधा, सोंठ और  
सँधानमक प्रत्येक एक तोला, शुद्ध मण्डूर भस्म  
१० तोले, इन सब औषधों को एकत्र मर्दनकर  
गोमूत्र, केशराज, पुनर्नवा, भँगरैया, निर्गुण्डी  
और भयद्रकपर्णी, इनमें से प्रत्येक के रस में  
चौदह-चौदह धार भावना देवे । मात्रा २-३ रत्ती ।  
अनुपान—तक्र अथवा भाँगरा का रस । भोजन  
के लिये तक्र के साथ भात देना चाहिये । जय  
तक औषध सेवन करे नमक का सेवन न करना  
चाहिये । प्यास लगने पर जल के थोड़े थोड़े  
पीना चाहिये । इस औषध का सेवन करन से  
कामला, ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, ग्रहणी और  
पाण्डु आदि धनक रोग नष्ट होते हैं ॥ १४१-१४४ ॥

पाण्डुशोथ में तत्रमण्डूर ।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरचूर्णं पलचतुष्टयम् ।  
नित्यपत्र भृङ्गराजद्रव्यञ्च गणिकारिका ॥  
१४५ ॥ शोथं नी कोकिलाक्ष रसैरेषां  
पृथक्पृथक् । गोमूत्राप्लपलैश्चैव भावयेद्  
यत्रतस्त्रिधा ॥ १४६ ॥ दशगुञ्जानिभां  
खादेत्तक्रेण वर्जयेज्जलम् । तक्रेण भोज-  
येदन्नं पाने तक्रञ्च दापयेत् ॥ पाण्डुशोथ  
हरेत्तूर्णं भास्वरस्तिमिरं यथा ॥ १४७ ॥  
सप्तधा गोमूत्रशुद्ध रत्नलग्नमण्डूरचूर्णं

पलं ४ भावनार्थं गोमूत्रपलं = विल्वपत्र-  
रसः गणिकारीपत्ररसः पुनर्नवारसः कोकि-  
लात्तरसः केशराजरसः भृङ्गराजरसश्चैभिः  
प्रत्येकं चारत्रयं भावयेत् । अस्यदशरात्रिकं  
तक्रेण पिवेत् । तक्रेण भोजनं तक्रपानं च  
कर्त्तव्यम् लवणं जलं च वर्जयेत् ।

सात बार गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ महीन  
मयदूर का भस्म ४ पल लेवे । इसको छाठपल  
गोमूत्र में तथा विल्वपत्र, केशराज, भृङ्गरैया,  
अरनी, पुनर्नवा और कोकिलाच इनमें से प्रत्येक  
के रस में क्रमशः तीन-तीन बार भावना देवे ।  
मात्रा—२-१० रत्ती । धनुपान—तक्र । भोजन के  
लिये तक्र के साथ भात देना चाहिये । प्यास  
लगने पर जल के बदले में तक्र पीने के लिये  
देना चाहिये । जब तक इस मयदूर का सेवन  
करे तब तक जल और नमक का सेवन न करे ।  
इस तक्र मयदूर का सेवन करने से पाण्डुरोग  
और शोध इस प्रकार शीघ्रता से नष्ट होता है  
जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार निवृत्त होवे ।  
मात्रा—२ रत्ती की होनी चाहिये ॥ १४२-१४० ॥

तक्रघटी ।

रसस्य मापकं ग्राह्यं गन्धकस्य च  
मापकम् । द्विमापकं विपस्यापि ताभ्रं माप-  
चतुष्टयम् ॥ १४८ ॥ तोलकं पिप्पली-  
चूर्णं मयदूरस्य च तोलकम् । काथेन  
कृष्णजीरस्य भावयेत् सप्तवासरम् ॥ १४९ ॥  
बल्लभमाणां वटिकां तक्रेण सह पाययेत् ।  
तक्रेण भोजनं पानं लवणाम्भोविव-  
जितम् ॥ १५० ॥ निहन्ति शोथं ग्रहणीं  
मन्दाग्निं पाण्डुनामपि ॥ १५१ ॥

पारा १ मासा, गन्धक १ माशा, विप  
२ माशा, ताभ्रभस्म ४ माशे, पीपरि का चूर्ण  
१ तोला, और मयदूर की भस्म १ तोला, इनको  
फाले जीरे के काथ में सात दिन पर्यन्त भापित  
करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे ।

धनुपान—तक्र । पर्य—तक्र और भात । प्यास  
लगने पर जल के बदले तक्र पीवे । जब तक इस  
तक्रघटी का सेवन करे जल और नमक का परहेज  
रखना चाहिये । इसका सेवन करने से शोध,  
ग्रहणी, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोग नष्ट होते  
हैं । मात्रा—१-२ रत्ती ॥ १४८-१४९ ॥

कटुफाद्य लौह ।

कटुकं व्यूपयं दन्ती विडङ्गं त्रिफला  
तथा । चित्रको देवदारुश्च त्रिवृद्धारण-  
पिप्पली ॥ १५२ ॥ चूर्णान्येतानि तुल्यानि  
द्विगुणं स्यादयोरजः । क्षीरेण तुल्यमेतच्च  
श्रेष्ठं श्वयथुनाशनम् ॥ १५३ ॥

( सर्वचूर्णाद् द्विगुणं लोहम् । )

कुटकी, सोठ, मिरिच, पीपरि, दन्ती की  
जड़, चायिधट्टक, आंवला, हरद, बहेवा, चीता  
का मूल, देवदारु, निशोध और गजपीपरि  
प्रत्येक का समभाग चूर्ण लेवे । उसमें कुल  
चूर्ण का दूना लोहभस्म मिलाकर रख लेवे ।  
दुग्ध के साथ इस लौह का सेवन करने से हर  
प्रकार का शोध नष्ट होता है । मात्रा—३  
रत्ती ॥ १५२-१५३ ॥

कंसहरौतकी ।

द्विपञ्चमलस्य पचेत् कपाये कंसेऽभ्या-  
नाश्च शतं गुडाच्च । लेहे सुशीते च विनीय  
चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपारिथिते च १५४  
किञ्चिच्च चूर्णादपि यावगूकात् प्रस्थार्द्ध-  
मानं मधुनश्च दद्यात् । एकाभयां प्राश्य  
ततश्च लेहात् शुक्तिं निहन्ति श्वयथुं  
प्रष्टद्धम् ॥ १५५ ॥ श्वासज्वरारोचक-  
मेहगुल्मप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् । का-  
श्याभवातावसृगम्लपित्तं वैवर्यमूत्रानि-  
लशुक्रदोषान् ॥ १५६ ॥

( कंसे आढकमिते )

मिश्रित दशमूल ३ सेर १६ तोला लेकर

उसमें जल २५ सेर ४८ तोला और डीली पोटली में बंधी हुई हरीतकी १०० सौ टाळकर धीमी आँच पर पकावे । जब ६ सेर ३२ तोला जल शेष रह जावे तब छान लेवे । इसका घाघ में ५ सेर गुड़ मिलाकर फिर छान लेवे । तदनन्तर इसमें पूर्वोक्त उद्याली हुई १०० हरीतकी को मिलाकर पकावे । पाक सिद्ध होने पर साँठ, भिरिच, पीपरि, दालचीनी, तेजपात, इलायची के दान और जवाखार प्रत्येक १ तोला मिलावे । शीतल होने पर मधु ३२ तोला मिलाकर रख लेवे । प्रतिदिन इसमें से १ हरीतकी खाकर २ तोले इस अवलोक को चाट लिया करे । इसका सेवन करने से अत्यन्त बड़ा हुआ शोथ, र्वास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोष, उदररोग, पाण्डुरोग, काश्य, आमवात, रक्तविकार, अम्लपित्त, विवर्णता तथा मूत्र, वायु और शुक के दोष ये सब नष्ट होते हैं ॥ १२४-१२६ ॥

### क्षौरवटिका ।

गृहीत्वा दरदात् कर्प तदद्दं देवपुष्पकम् । फणिकेन विपं जातीफलं धुस्तुर-  
बीजकम् ॥ १७७ ॥ संमर्घं विजयाद्रावे-  
मुद्गमात्रां वर्ती चरेत् । अनुपानं मदातव्यं  
शोथे क्षीरं भिषग्वरैः ॥ १७८ ॥ ग्रहण्यां  
विजयाकाथः पथ्यं दुग्धानमेव हि । जलञ्च  
लवणञ्चापि वर्जनीयं विशेषतः ॥ १७९ ॥  
प्रचलायामुदन्त्यायां सलिलं नारिकेलजम् ।  
पातव्यं वटिका चैवा शोथं हन्ति न संशयः ।  
ग्रहणीमत्तिसारञ्च ज्वरं जीर्णं निहन्ति  
च ॥ १८० ॥

द्विगुण १ तोला, लींग, चफ़ीम, विप, जाय-  
फल और घनूर के बीज प्रत्येक आधा तोला,  
इनको भाँग कर पत्थियों के रस में घोटकर साँ-  
के बराबर गोलियाँ बनावे । शोथरोग में दूध के  
साथ और प्रदर्या रोग में भाँग के घाघ के साथ  
हम चारबशी का सेवन करना चाहिये । इसका  
सेवन करने से शोथ, प्रदर्या, अतिमार और

जीर्णज्वर शान्त होते हैं । भोजन के लिये दूध-  
भात देवे । नमक और जल का सेवन न करना  
चाहिये । तेज प्यास लगने पर नारियल का जल  
पान करना चाहिये ॥ १२७-१६० ॥

### शोथशार्दूल चूर्ण ।

सोरकं पञ्चलवणं सर्जिकान्धारं एव च ।  
सिन्दूरं च यवंचारं सर्वं दद्यात् समं समम् ॥  
१६१ ॥ रक्तित्रयमितान् खादेद्यावद्वै माप-  
कोन्मितम् । चूर्णमेतद्धरेच्छोथं नानोपद्रव-  
संयुतम् ॥ १६२ ॥ तृणपञ्चमूलकार्थै-  
र्मूत्रकृच्छ्रहरं परम् । पुनर्नवाष्टककार्थैर्यो-  
जितं चोदरं हरेत् ॥ १६३ ॥

कलमी शोरा, पाँचों नमक अलग-अलग,  
सर्जकार, रसिसिन्दूर, यवचार, उपयुक्त सगुण  
द्रव्यों को बराबर-बराबर लेकर मिला ले । मात्रा  
३ रत्ती से १ भाशे तक । यह चूर्ण अनेक प्रकार  
के उपद्रवों सहित शोथ को तुरन्त ही दूर करता  
है । पञ्चदण मूल काढ़े के साथ इस चूर्ण को सेवन  
करने से मूत्रकृच्छ्र तथा पुनर्नवाष्टक काय से  
उदररोग दूर होते हैं ॥ १६१-१६३ ॥

### दशमूलहरितकी ।

दशमूलकपायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत् ।  
तुलं चात्र गुडं दद्याद् व्योपत्तारं चतुः-  
पलम् ॥ १६४ ॥ त्रिसुगन्धं सुवर्णेशं  
प्रस्थार्द्धं मधुने हिमे । दशमूलहरितकयः  
शोथान् हन्त्युः सुदुर्जयान् ॥ १६५ ॥  
ज्वरारोचकगुल्माशोमेहपाण्डुरामयान् ।  
प्रत्येकमेपां कपर्पाशं त्रिसुगन्धिमिता भवेत् ॥  
१६६ ॥ कंसहरितकी चैवा चरके पठ्यते-  
ज्यथा । पतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तत्रापि  
वर्णयते ॥ १६७ ॥

मिथित दशमूल ४ प्राय ( १ सेर १६ तोला )  
१०० टरं चोदली में बंधी हुई । काढ़े के लिए  
पानी ३२ प्राय ( ३२ सेर ४८ तोला ) जब

घीटते-घीटते ८ ग्रन्थ ( ६ सेर ३२ तोला ) जल रह जावे तो उतार कर धान ले । इसमें २ सेर गुड़ घोल दे जब गुड़ धुल जावे तो पोटली की घंघी हुई १०० हरी को छलग कर इसमें ढाँक दे, इसने बाद पकये । इसके पश्चात् त्रिकटु (मोट, मिर्च, पीपड़ि, ) यवहार मिला हुआ ४ पल ( १६ तोला ), दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलाइची, हरपक २ तोला, जग उप्युत्र पाक मिद्ध होवे तो इन द्रव्यों का प्रशेष देकर अर्घवी प्रकार मिलाये । ठण्डा होने पर २० तोला मधु मिला दे और एक मिट्टी के बर्तन में रख दे । मात्रा-२ तोला । खेद और १ हरप इनके सेवन करने से प्रति कठिन शोथ, अरचि, गुग्म, यथाभीर, प्रमेह, पीरिया तथा उदररोग नष्ट होते हैं । इसका पर्यायवाची शब्द कंसङ्गीतकी है । चरकसंहिता में इसका पाठ दूसरा है ॥ १६४-१६५ ॥

### पुनर्नवाचरिष्ट ।

पुनर्नवे द्वे च बले सपाठे वासा गुहूची सह चित्रकेण । निदिग्धिका च त्रिपलानि पक्त्वा द्रोणार्द्रशेषे सलिले ततस्तु ॥ १६८ ॥ पूत्वा रसं द्वे च गुडा-त्पुराणात् तुले मधु प्रस्थयुतं सुशीतम् । मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं पर्यं यवानां परतरच मासात् ॥ १६९ ॥ चूर्णां कृते-रर्द्रपलांशिकैस्तं हेमत्वगेलामरिचाम्बु-पत्रैः । गन्धान्प्रितं त्रौद्रघृतप्रदिग्धं जीर्णं पिवेद्द्व्याधिमलं समीक्ष्य ॥ १७० ॥ हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं स्त्रीहभ्रमा-रोचकमेहगुल्मान् । भगन्दरं पडजठराणि कासं श्वासं ग्रहण्यामपकुष्ठकण्डूः ॥ १७१ ॥ शाखानिलं बद्धपुरीपताञ्च हिकान् किला-सञ्च हलीमकञ्च । क्षिप्रं जयेद् वर्णबला-युरोजस्तेजोऽन्वितो मांसरसात्मनोऽजी १७२

सकेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, बला, अतिबला,

पाद, अदूसा की छाल गिलोय, चित्रक, छोटी कटेरी, प्रत्येक द्रव्य ३ पल ( १२ तोला ), पकाने के लिए जल १ मन ११ सेर १६ तोला । जब पकने-पकते जल २२ सेर ४८ तोला रह जावे तो उतार ले फिर इसको कपड़े से छानकर १० सेर गुड़ घोल दे । जब ठण्डा हो जावे तब १२८ तोला शहद मिलाकर घी से चिकने हुए मिट्टी के बर्तन में मुँह बंद कर जी के पत्तों में रख दे । एक महीने बाद यहाँ से निवालकर ४ तोले नागकेसर ४ तोले दालचीनी, ४ तोले छोटी इलाइची, ४ तोले कालीमिर्च, ४ तोले गन्धयाला, ४ तोले तेजपत्र । सम्पूर्ण द्रव्यों को उसमें डाल दे । एक सप्ताह परचात् फिर धान ले । मात्रा-३ १/२ तोले से २ १/२ तोले तक । किन्तु यलाबलानुसार देनी चाहिए । इस अरिष्ट के सेवन करने से हृदय, पीरिया, शोथ ( सूजन), प्रीहा ( तिल्ली ) भ्रम, अरचि, प्रमेह, गुग्म, भगंदर, उदररोग, कास, रवास, महषी, कुष्ठ, कण्डू ( खुजली ) मल-काठिन्य, हिक्का ( धिक्की ), हलीमक, सम्पूर्ण रोग नाश को प्राप्त होते हैं । यह अरिष्ट बल, बर्ण, प्रायु, तेज का बढ़ानेवाला है । पथ्य-घोदन मांस रस ॥ १६८-१७२ ॥

### पुनर्नवासथ ।

त्रिकटु त्रिफला दार्वा श्वदंष्ट्रा बृहती-द्वयम् । वासामेरण्डमूलञ्च कटुर्को गज-पिप्पलीम् ॥ १७३ ॥ शोधनी पिप्पुमर्दञ्च गुहूची शुष्कमूलकम् । दुरालभां पटोलञ्च पलाशेन विचूर्णयेत् ॥ १७४ ॥ घातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम् । तुलामानां सितां दत्त्वा मात्रिकार्द्रतुलां तथा ॥ १७५ ॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा मासं भाण्डे निधापयेत् । पुनर्नवासथो ह्येष शोधोदरविनाशनः ॥ १७६ ॥ स्त्रीहानमम्लपित्तञ्च यक्रदुग्मज्वरादि-कान् । कृच्छ्रसाध्यामयान् सर्वान् नाशये-न्नात्र संशयः ॥ १७७ ॥

१८ त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरि ) त्रिफला ( हर, बहेरा, आंवला ), दादूहल्दी, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अडुसा, पररट्ट की लड, कुटकी, गजपीपल, पुनर्नवा, नीम की छाल, गिलोय, शुष्कमूली, दुरालभा, पटोलपत्र उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों का चूर्ण पृथक्-पृथक् एक-एक पल ( चार-चार तोले ) ले, १६ पल ( ६४ तोला ) धाय के फूल, १ सेर द्राक्षा ( मुनक्का ), ५ सेर खांड, २॥ सेर शहद इन सबको एक मिट्टी के बर्तन में २ द्रोण ( २५ सेर ४८ तोला ) जल के साथ डाल दे और मुँह बन्द करके एक मास तक एकान्त में पडा रहने दे, फिर काम में लावे। इस आसव के सेवन करने से शोथ, उदर-रोग, तिल्ली, अम्लपित्त, यकृतद्वेग ( जिगर ), गुल्म, ज्वर, सम्पूर्ण कष्टसाध्य रोग तुरन्त ही नष्ट होते हैं। मात्रा २ तोला ॥ १७२-१७७ ॥

शोथ में पथ्य ।

पुराणयज्ञशाख्यन्नं दशमूलोपसाधि-  
तम् । अल्पमल्पं कटुस्नेहं भोजने शो-  
थिनां हितम् ॥ १७८ ॥

दशमूल ( काय ) द्वारा सिद्ध किये हुए पुराने जौ एवम् शाली चावल तथा धोड़ी मात्रा में सरसों का तेल शोथरोगियों के भोजन में हितकर है ॥ १७८ ॥

अन्यच्च—

संशोधनं लंघनमस्रमोक्षः स्वेदः प्रलेपः  
परिपेचनं च । पुरातनाः शालियवाः  
कुलत्या मुद्गाश्च गोधा क्षपिशल्लकोऽपि ॥  
१७९ ॥ भुजंगमुक्तिरिताम्रचूडला-  
वादयो जांगलविफिराश्च । कूर्मोपिभृष्टी  
मपुराणसर्पिस्तक्र सुरा मात्तिकमासवं च ।  
१८० ॥ निष्पावकाठिल्लकरकृशिश्रु-  
रसोनरुकोटकरालमलं । सुवर्चलाष्टजनकं  
पटोलं वेत्राग्रधात्रीफलमूलकानि ॥१८१॥  
पुनर्नवाचित्रकारिमद्रथ्रीर्पाणिनिम्बेत्तुर -

पल्लवानि एरंडतैलं कटुका हरिद्रा  
हरीतकी चारनिपेवणं च ॥ १८२ ॥  
मूत्राणि गोजामहिषीनवानि कस्तूरिका  
चापि शिलाजतूनि । यत्पांडुरोगेष्वपि वद्वि-  
कर्म पुरा प्रदिष्टं हि तदेव चापि ॥ १८३ ॥  
यथामलं पथ्यमिदं प्रयुक्तं शोथामयान्स-  
त्वरमुच्छिनत्ति ॥ १८४ ॥

शोधन, लंघन, रुधिर निकालना, पसीना निकालना, लेप, परिपेचन ( तरडे देना ), पुराने चायब, जौ, कुलधी, मूँग, गोह, साही, मोर, तीतर, मुर्गा, लवा आदि जंगली जीवों का मांस, तथा विफिर जीव ( कुरेदकर खानेवाले कबूतर आदि ), कड़वा, शंगी मछली, पुराना घी, छाछ, सुरा, शहद, आसव ( द्राक्षासव आदि ), चौरा करेले, लाल सहजना, लहसन, ककोड़ा, नई पतली मूली, हुलहुल, गाजर, परधल, बेट की कोपल, आमले, जड़वाले पदार्थ, पुनर्नवा, चित्रकी, फरहद, खँभारी, नीम, तालमखाने के पत्ते, खंडी का तेल, कुटकी, हल्दी, हर, जवाखार आदि ( भिलावे, गुग्गुल, लोह, कड़वे, तीक्ष्ण, दीपन पदार्थ ) का सेवन । गौ, बकरी, भैंस का नवीन मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत एवम् पाण्डुरोग में कथित पथ्य, दागना ये सब पथ्य हैं । ॥ १७९-१८४ ॥

शोथ में अपथ्य ।

पिप्यानमुष्णं लवणानि मद्यं भृदं दिवा-  
स्वप्नमजाङ्गलश्च । पयो गुडं तैलमथोगुरुणि  
शोथं जिघ्रांसुः परिवर्जयेच्च ॥ १८५ ॥

पिप्टी के घने स्थाने के पदार्थ, गरम भोजन, नमक, शराब, मिट्टी, दिन में सोना, जाङ्गल मांस के शिवाय चानूष आदि मांस, चत मात्रा में जल, गुड, तेल, भारी पदार्थ ये सब त्याग देने चाहिये ॥ १८५ ॥

अन्यच्च—

१ सुरा औषधविशेष से निर्मित ही पथ्य है । माषारण सुरा नहीं, चौरा बाक प्रयोग में प्रयुक्त है ।



पवनं सलिलं वेगरोधं च विपमाशनम् ।  
विरुद्धपानमशनं मृत्तिकायाश्च भक्त-  
णम् ॥ १=६ ॥ ग्राम्यानुपं पिशितलवणं  
शुष्कशाकं नवान्नं गाँडं पिष्टं दधि  
सकृशरं निर्जलं मद्यमम्लम् ॥ धानावल्जूर-  
मशनमथो गुर्व्यसात्म्यं विदाहि, स्वप्नं दैनं  
स्वययुगदवान् वर्जयेन्मैथुनं च ॥ १=७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शोधा-  
धिकारः समाप्तः ।

हवा खाना, अति जल पीना, मल-मूत्रादि वेगों  
को रोकना, विरुद्ध अन्न जल का सेवन, निंदी खाना,  
ग्राम और जल के किनारे रहनेवाले जीवों का  
मांस, नमक, सूखे शाक, नया अन्न, गुड़ के पदार्थ,  
पिसे पदार्थ, दही, खिचड़ी जलरोहित शराब,  
खटाई, चिरवा आदि भुने अन्न, मूला मांस,  
भारी पदार्थ, असाध्य भोजन, दाहकर्ता पदार्थ,  
दिन में सोना और मैथुन ये सब अपष्य  
है ॥ १=६-१=७ ॥

इति सरयूपसादप्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां ध्याख्यायां  
शोधाधिकारः समाप्तः ।

### अथ उदराधिकारः ।

उदरचिकित्सा ।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसद्वातजं यतः ।  
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वत्रशस्यते ?  
सभी उदररोग प्रायः त्रिदोषजन्य होते हैं ।  
अतः वायु आदि तीनों दोषों को शान्त करने-  
वाली ही चिकित्सा सब प्रकार के उदररोग में  
करनी चाहिये ॥ १ ॥

उदररोग में पथ्य-व्यवस्था ।

उदरे दोषसम्पूर्णं कुत्तौ मन्दो यतो-  
ऽनलः । तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीप-  
नानि लघूनि च ॥ २ ॥ रक्तशालीन्यवा-

न्मुद्गान् जाङ्गलान् मृगपक्षिणः । पयो  
मूत्रासवारिष्टं मधु शीधु च शीलयेत् ॥ ३ ॥

उदर के दोषपूर्ण होने पर अग्नि मन्द पद  
जाती है । अतः इस रोग में दीपन और लघु  
भोजन देना चाहिये । इस रोग में रत्नशाली  
धान का भात, जी की रोटी, मूँग की दाल,  
जङ्गली मृग और पक्षियों का मांसरस, दुग्ध,  
गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और शीधु इनका  
बार-बार सेवन करना चाहिये ॥ २-३ ॥

उदर में विरेचन विधि ।

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरो-  
धनात् । सम्भवत्युदरं तस्मादित्यमेनं  
विरेचयेत् ॥ ४ ॥

दोषों के अत्यन्त सञ्चय और समस्त शारी-  
रिक स्रोतों के रक जाने से उदररोग उत्पन्न  
होता है, अतः उदररोगी को सर्वदा विरेचन  
कराना चाहिये ॥ ४ ॥

उदरनाशक योग ।

पाययेत् तैलमेरण्डं समूत्रं सप-  
योऽपि वा ॥ ५ ॥

गोमूत्र के साथ अथवा उष्ण दुग्ध के साथ  
एरण्ड का तैल पिलाने से उदररोग शान्त  
होता है ॥ ५ ॥

वातोदर-चिकित्सा ।

वातोदरं बलवतः स्नेहस्वेदरूपाचरेत् ।  
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्निग्धं  
विरेचनम् ॥ ६ ॥ हने दोषे परिम्लानं  
वेष्टयेद्वाससोदरम् । यथास्यानवकाशत्वा-  
द्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः ॥ ७ ॥  
( परिम्लानं विरेचनेन नघ्नीकृतम् । )

वातोदर का रोगी यदि बलवान् हो तो  
स्नेहन और स्वेदन द्वारा पहिले शरीर को  
स्निग्ध तथा स्विन्न करे । पश्चात् स्निग्ध विरेचन  
देवे । विरेचन द्वारा दोषों के निकल जाने से उदर

त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरि ) त्रिफला ( हर, बहेडा, आंवला ), दाखहल्दी, गोबुरु, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अदुसा, परबल की जड़, कुटकी, गजपीपल, पुनर्नवा, नीम की छाल, भिजोय, शुष्कमूली, दुरालभा, पटोलपत्र उपयुक्त सम्पूर्ण द्रव्यों का चूर्ण पृथक्-पृथक् एक-एक पल ( चार-चार तोले ) ले, १६ पल ( ६४ तोला ) धाय के फूल, १ सेर द्राक्षा ( मुनक्का ), २ सेर खांड, २॥ सेर शहद इन सबको एक मिट्टी के बर्तन में २ द्रोण ( २५ सेर ४८ तोला ) जल के साथ ढाल दे और सुँह बन्द करके एक मास तक एकान्त में पका रहने दे, फिर काम में लावे। इस आसव के सेवन करने से शोथ, उदर-रोग, तिल्ली, अम्लपित्त, यकृतद्वोग ( जिगर ), गुल्म, उ्वर, सम्पूर्ण कष्टसाध्य रोग तुरन्त ही नष्ट होते हैं। मात्रा २ तोला ॥ १७३-१७७ ॥

शोथ में पथ्य ।

पुराणयत्रशाल्यन्नं दशमूलोपसाधि-  
तम् । अल्पमल्पं कटुस्नेहं भोजने शो-  
थिनां हितम् ॥ १७८ ॥

दशमूल ( काथ ) द्वारा सिद्ध किये हुए पुराने जौ एवम् शाली चावल तथा थोड़ी मात्रा में सरसों का तेल शोथरोगियों के भोजन में हितकर है ॥ १७८ ॥

अन्यच्च—

संशोधनं लंघनमस्रभोजः स्वेदः प्रलेपः  
परिपेचनं च । पुरातनाः शालियवाः  
कुलत्या मुद्गाश्च गोधा अपि शल्लकोऽपि ॥  
१७९ ॥ भुजंगमुक्तिचिरताम्रचूडला-  
वाद्यो जांगलविष्किराश्च । कूर्मोपिभृङ्गी  
मपुराणसर्पिस्तक्र सुरा मात्तिकमासवं च ।  
१८० ॥ निष्पायकाटिल्लकरकशिग्रु-  
रसोनरुफोटकवालमलं । सुवर्चलाष्टजनकं  
पटोलं वेध्राप्रधात्रीफलमलकानि ॥१८१॥  
पुनर्नवाचित्रकपारिभद्रथ्रीपर्णिनिम्बेत्तुर -

पल्लवानि एरंडतैलं कटुका हरिद्रा  
हरीतकी क्षारनिपेयणं च ॥ १८२ ॥  
मूत्राणि गोजामहिषीनवानि कस्तूरिका  
चापि शिलाजतनि । यत्पांडुरोगेष्वपि वह्नि-  
कर्म पुरा प्रदिष्टं हि तदेव चापि ॥ १८३॥  
यथामलं पथ्यमिदं प्रयुक्तं शोथामयान्स्-  
त्वरमुच्छिनत्ति ॥ १८४ ॥

शोधन, लंघन, हथिर निकालना, पसीना निकालना, लेप, परिपेचन ( तरडे देना ), पुराने चावल, जौ, कुलथी, मूँग, गोह, साही, मोर, तीतर, मुर्गा, लवा आदि जंगली जीवों का मांस, तथा विष्किर जीव ( कुरेदकर खानेवाले कभूतर आदि ), कछुवा, खंसी मछली, पुराना घी, छाछ, सुरा, शहद, आसव ( द्रव्यासव आदि ), चौरा करेले, लाल सहजना, लहसन, ककोडा, नई पतली मूली, हुलहुल, गाजर, परबल, येत की कोपल, अमले, जड़वाले पदार्थ, पुनर्नवा, चित्रकी, फरहद, खैभारी, नीम, तालमखाने के पत्ते, अंडी का तेल, कुटकी, हल्दी, हर, जवासार आदि ( भिलावे, गुग्गुल, लोह, कड़वे, तीक्ष्ण, दीपन पदार्थ ) का सेवन । गौ, बकरी, भैंस का नवीन मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत एवम् पाण्डुरोग में कथित पथ्य, दाघना ये सब पथ्य हैं । ॥ १७९-१८४ ॥

शोथ में अपथ्य ।

पिप्टान्नमुष्यं लवणानि मद्यं शृदं दिवा-  
स्वप्नमजाङ्गलञ्च । पयो गुडं तैलमथोगुल्फि  
शोथं जिघांसुः परिवर्जयेच्च ॥ १८५ ॥

पिप्टी के बने खाने के पदार्थ, गरम भोजन, नमक, शराब, मिट्टी, दिन में सोना, जाङ्गल मांस के तिरवाप आनूप आदि मांस, भति मात्रा में जल, गुड़, तेल, भारी पदार्थ ये सब त्याग देने चाहिये ॥ १८५ ॥

अन्यच्च—

१ सुरा शोथपित्तेषु से निर्मित ही पथ्य है । माषारण्य सुरा नहीं, चौरा काहा प्रयोग में प्राण्य है ।

पवनं सलिलं वेगरोधं च विपमाशनम् ।  
विरुद्धपानमशनं मृत्तिकायाश्च भक्त-  
णम् ॥ १८६ ॥ ग्राम्यानुपं पिशितलवणं  
शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं दधि  
सकृशरं निर्जलं मद्यमम्लम् ॥ धानावलजूर-  
मशनमथो गुर्व्यसात्म्यं विदाहि, स्वप्नं दैनं  
श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनं च ॥ १८७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शोधा-

धिकारः समाप्तः ।

हवा खाना, अति जल पीना, मल-मूत्रादि वेगों  
को रोकना, विरुद्ध अन्न जल का सेवन, मिट्टी खाना,  
माम और जल के किनारे रहनेवाले जीवों का  
मांस, नमक, सूखे शाक, नया अन्न, गुड के पदार्थ,  
पिसे पदार्थ, दही, खिचड़ी जलरहित शराब,  
खटाई, चिरवा आदि भुने अन्न, सूखा मांस,  
भारी पदार्थ, असाध्य भोजन, दाहकर्ता पदार्थ,  
दिन में सोना और मैथुन ये सब अपष्य  
है ॥ १८६-१८७ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां रत्नप्रभासयायां व्याख्यायां  
शोधाधिकारः समाप्तः ।

अथ उदराधिकारः ।

उदरचिकित्सा ।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसङ्घातजं यतः ।  
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वत्रशस्यते ?  
सभी उदररोग प्रायः त्रिदोषजन्म होते हैं ।  
अतः वायु आदि तीनों दोषों को शान्त करने-  
वाली ही चिकित्सा सब प्रकार के उदररोग में  
करनी चाहिये ॥ १ ॥

उदररोग में पथ्य-ध्यवस्था ।

उदरे दोषसम्पूर्णं कुक्षौ मन्दो यतो-  
ऽनलः । तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीप-  
नानि लघूनि च ॥ २ ॥ रक्तशालीन्यवा-

न्मुद्गान् जाङ्गलान् मृगपक्षिणः । पयो  
मूत्रासवारिष्टं मधु शीधु च शीलयेत् ॥ ३ ॥

उदर के दोषपूर्ण होने पर अग्नि मन्द पक्  
जाती है । अतः इस रोग में दीपन और लघु  
भोजन देना चाहिये । इस रोग में रक्तशाली  
धान का भात, जौ की रोटी, मूँग की दाल,  
जङ्गली मृग और पक्षियों का मांसरस, दुग्ध,  
गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और शीधु इनका  
बार-बार सेवन करना चाहिये ॥ २-३ ॥

उदर में विरेचन विधि ।

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरो-  
धनात् । सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं  
विरेचयेत् ॥ ४ ॥

दोषों के अत्यन्त सञ्चय और समस्त शारी-  
रिक स्रोतों के रक जाने से उदररोग उत्पन्न  
होता है, अतः उदररोगी को सर्वदा विरेचन  
कराना चाहिये ॥ ४ ॥

उदरनाशक योग ।

पाययेत् तैलमेरुदं समूत्रं सप-  
योऽपि वा ॥ ५ ॥

गोमूत्र के साथ अथवा उष्ण दुग्ध के साथ  
पररुद का तैल पिलाने से उदररोग शान्त  
होता है ॥ ५ ॥

वातोदर-चिकित्सा ।

वातोदरं बलवतः स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् ।  
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्निग्धं  
विरेचनम् ॥ ६ ॥ हने दोषे परिम्लानं  
वेपथ्येद्वाससोदरम् । यथास्यानवकाशत्वा-  
द्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः ॥ ७ ॥

( परिम्लानं विरेचनेन नघ्नीकृतम् । )

वातोदर का रोगी यदि बलवान् हो तो  
स्नेहन और स्वेदन द्वारा पहिले शरीर को  
स्निग्ध तथा स्विन्न करे । पश्चात् स्निग्ध विरेचन  
देवे । विरेचन द्वारा दोषों के निकल जाने से उदर

के कोमल हो जाने पर वृक्ष से कमकर बाँध देवे, जिससे कि अचकाश न मिलने के कारण वायु उदर को फिर न फुला सके ॥ ६-७ ॥

उदर में पेयाविधि ।

विरिक्ते च यथा दोषहरैः पेया भृता  
हिता ॥ ८ ॥

विचन के पश्चात् जो दोष उपस्थित हो उसी दोष नष्ट करनेवाले औषधों द्वारा पेया बनाकर सेवन कराना लाभदायक होता है ॥ ८ ॥

उदररोग में तरूपानव्यवस्था ।

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलज-  
णान्त्रितम् । शर्करामरिचोपेतं स्नादुपि-  
त्तोदरी पिबेत् ॥ ९ ॥ यमानी सैन्धवाजा-  
जी व्योपयुक्तं कफोदरी । व्यूषणत्तारल-  
वणैर्युक्तं त्रैदोषिकोदरी । गोरमारोचका-  
र्त्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ १० ॥

वातोदर में पीपरि और सेंधानोन मिलाकर, पित्तोदर में मिर्ची और काली मिरिच मिलाकर, कफोदर में अजवाहन सेंधा नमक, जीरा, सोंठ, मिरिच और पीपरि मिलाकर तथा त्रिदोषजन्य उदररोग में सोंठ, मिरिच, पीपरि, जवाहार' और सेंधानोन मिलाकर तक्र पान करे । हमसे शरीर की गुस्ता और अग्नि का नाश होता है ॥ ९-१० ॥

मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्यकुप्रसैन्धवैः ।  
मुक्तं शीहोदरीजातं सेव्योपन्तु टकोदरी ॥  
११ ॥ बद्धोदरी तु हवुपादीप्यकाजाजि-  
सेन्धवैःपिपेन्त्रिदोदरीतक्रं पिप्पलीत्तौद्र-  
संयुतम् ॥ १२ ॥ व्यूषणत्तारलवणैर्यु-  
क्तं निचयोदरी । गोरमारोचकार्त्तानां  
समन्टान्ग्यतिसारिणाम् ॥ १३ ॥ तक्रं  
वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

शीहोदर में शहद, नैल, षष, सोंठ, सोवा, कूट तथा सेंधा नमक के साथ, जलोदर में

त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपर ) के साथ, बद्धोदर में हवुपा, अजवायन, जीरा तथा सेंधा नमक के साथ, धिदोदर में पीपल तथा मधु के साथ, त्रिदोषज उदरमें त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपर ), जवाहार तथा सेंधा नमक के साथ मठा का सेवन अत्यन्त हितकर है—वात कफ से उत्पन्न रोग, शरीर भारी रहना, अग्नि, मन्दाग्नि तथा अतिसार में मठा अमृत के समान गुणकारी है ॥ ११—१४ ॥

वातोदर में दुग्धादि व्यवस्था ।

वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दशमू-  
लिकः ॥ १५ ॥

वातोदर में दुग्धपान और दशमूल के काथ की निरूहवस्त अर्थात् पिचकारी देना लाभदायक है ॥ १५ ॥

सामुद्राद्य चूर्ण ।

सामुद्रसौर्चलसैन्धवानि चारं यमा-  
नीमजमोदकञ्च । सपिप्पली चित्रकमृद्भ-  
वेरं हिंशुंविडञ्चेति समानिकुर्यात् ॥ १६ ॥  
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पूर्व-  
कवलं प्रशस्तम् । वातोदरं गुल्ममजीर्ण-  
भक्तं वातास्रकोपं ग्रहणीं प्रदुष्टाम् ॥ १७ ॥  
अर्शासि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरं  
चापि निहन्ति सद्यः ॥ १८ ॥

सामुद्रभोन, मौवर्चलभोन, जवाहार, सेंधा भोन अजवाहन, अजमोद, पीपरि, चीता, सोंठ, होंग और धिदोन समभाग, इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनाये उस चूर्ण को घी में मिलाकर भोजन के प्रथम प्राय के साथ खावे । इसका सेवन करने से वातोदर, गुल्म अर्शासि, वातरत्र, दीपित ग्रहणी, बवाभीर, पाण्डुरोग और भगन्दर ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १६-१८ ॥

दुष्टादि चूर्ण ।

कुष्ठं दन्ती यन्तारो व्योप त्रिलवणं  
वचा । अजानी दीप्यकं टिट्टिगुस्तमिना-

चव्यचित्रकम् ॥ १६ ॥ शुण्ठी चोष्णा-  
म्भसा पीतं चूर्णं वातोदरं जयेत् ॥ २० ॥

कूट, दन्तीमूल, यवहार, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपर ), सेंधा नमक, काला नमक, बिड लवण, बच, जोरा, अजवाइन, हींग, सजिलार, चव्य, चित्रक तथा सोंठ इन्हें बराबर बराबर लेकर चूर्ण कर उष्ण जल के साथ लेना चाहिए । मात्रा- १ माशे से २ माशे तक । इप चूर्ण को सेवन करने से वात से उत्पन्न उदररोग दूर होता है ॥ १६-२० ॥

पित्तोदर में क्रिया ।

पित्तोदरेषु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ।  
अनुवास्यावलं क्षीरं वस्तिशुद्धं विरेच-  
येत् ॥ २१ ॥ पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरु-  
वकभृतेन वा । शातलात्रायमाण्भ्यां  
भृतमारग्नधेन वा ॥ २२ ॥

पित्त से उत्पन्न उदररोग में यदि रोगी बलवान् है तो सबसे पहले उसे विरेचन करवाना चाहिए और यदि निर्बल है तो अनुवासन तथा दूध से बस्ति द्वारा रोगी को प्रथम शुद्ध कर विरेचन कराना चाहिए । विरेचन के लिए निसोतचूर्ण डालकर दूध या अण्डी के बीज, चर्मकपा, त्रायमाण अथवा अमलतास का गुदा इनमें से किसी एक औषधि से दूध को मिद्ध कर रोगी को देना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

कफोदरचिकित्सा ।

कफादुदरिणं शुद्धं कटुक्षारान्नभोजि-  
तम् । मूत्रारिष्टायस्कृतिभिर्योजयेच्च कफा-  
पहैः ॥ २३ ॥

जिस उदररोग में कफ प्रबल हो उसमें प्रथम विरेचन तथा बस्ति द्वारा रोगी को शुद्ध कर कड़वे पदार्थ, क्षारयुक्त अन्न, गोमूत्र अरिष्ट आदि कफ के नाश करनेवाले भोजन तथा औषधि सेवन कराना चाहिए ॥ २३ ॥

त्रिदोषजोदरचिकित्सा ।

साल्पपातोदरे सर्वा यथोक्ताः कारये-  
त्क्रियाः ॥ २४ ॥

त्रिदोषज ( वात, पित्त, कफ ) उदररोग में वात, पित्त, कफ आदि कहीं उदररोग की चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २४ ॥

स्रीहोदरचिकित्सा ।

स्रीहोदरे स्रीहहरं कर्मोदरहरं तथा २५

प्रीहोदर में बड़ी हुई तिलनी को नष्ट करने-  
वाली तथा उदररोग को नष्ट करनेवाली औष-  
धियों का प्रयोग करना चाहिए ॥ २५ ॥

बद्धोदरचिकित्सा ।

स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णै-  
पधान्वितम् । सतैललवणं दद्यान्निरुहं  
सानुवासनम् ॥ परिसंसीनि चाक्षानि  
तीक्ष्णञ्चैव विरेचनम् ॥ २६ ॥

बद्धोदर में पेट पर स्वेदन क्रिया करनी  
चाहिए, तत्परचात् तीक्ष्णवीर्य औषधि, तैल  
तथा सेंधा नमक आदि पदार्थों को मिलाकर  
बाँस्तकर्म तथा अनुवासन करना चाहिए और  
भेदक भोजन तथा तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिए ॥ २६ ॥

छिद्रोदर में क्रिया का निर्देश ।

छिद्रोदरभृते स्वेदात्स्लेप्सोदरवदा-  
चरेत् ॥ २७ ॥

छिद्रोदर में स्वेदन क्रिया के झतिरिक्त कफो-  
दर में वही चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २७ ॥

जलोदर में शस्त्रकर्म ।

जातं जातं जलं स्राव्य शास्त्रोक्तं  
शस्त्रकर्म च । जलोदरे विशेषेण द्रवसेवां  
त्रिवर्जयेत् ॥ २८ ॥

जलोदर में सुथुत आदि प्रथमों में कही हुई  
विधि के अनुसार शब्द ( औजार ) द्वारा पेट में  
इकट्टे हुए जल को निकाल देना चाहिए । इसमें  
पतला भोजन देना निषेध है ॥ २८ ॥

उदरहर पूष ।

स्नुकूपयसा परिभावितताएडुलचूर्णै-  
र्विनिर्मितः पूषः । उदरमुदारं हिस्याघो-  
गोऽयं सप्तरात्रेण ॥ २९ ॥

धूर के दूध में चावल भिगोवे, फूल जाने पर पीसकर उसका पूसा यथावे । उस पूसा को खाने से सात रात में उदररोग अवश्य नष्ट होता है ॥ २६ ॥

उदरहर सूत्र ।

सत्तीरं मादिषं मूत्रं निराहारः पिबे-  
न्नरः । शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति  
निश्चयः ॥ ३० ॥

निराहार मनुष्य गाय का दूध मिलाकर  
मैस का मूत्र पान करे । अन्य कोई वस्तु न  
खावे और न पीवे ऐसा करने से सात दिन  
में उदररोग अवश्य नष्ट होता है ॥ ३० ॥

दन्त्यादि चूर्ण ।

दन्ती वचा गवाक्षी च शङ्खिनी  
तिल्वकं त्रिवृत् । गोमूत्रेण पिबेत्तदेत्कल्कं  
हृदरनाशनम् ॥ ३१ ॥

दन्तीमूल, वच, इन्द्रायण की जड़, शङ्खिनी  
( ससला ), तिल्वक ( शावरलोच ) और  
निसोत इन्हें इकट्ठा करके पीसकर गोमूत्र के  
साथ पीने से उदररोग नष्ट होता है । मात्रा  
४ रत्नी से ८ रत्नी तक ॥ ३१ ॥

उदर में प्रदेह ।

देवदारुपलाशार्कइस्तिपिप्पलिशि-  
शुकः । सार्वगन्धः सगोमूत्रैः प्रदद्यादुदरं  
शनैः ॥ ३२ ॥ मूत्राण्यष्टाबुदरिणां सेके  
पाने च शस्यते ॥ ३३ ॥

देवदारु, टाक की फली, मदार के पत्ते,  
गजपीपल, महिजने की छाल, असगन्ध, इन्हें  
इकट्ठा करके गोमूत्र के साथ पीसकर पेट पर  
छेप करने से उदररोग में लाभ होता है । घाटों  
प्रकार के मूत्रों से उदररोगी को परिपेक तथा  
पान कराने से लाभ होता है ॥ ३२-३३ ॥

देवदुमादियोग ।

देवदुमं शिश्र मयूरकञ्च गोमूत्रपिष्टा-

मथवाश्वगन्धाम् । पीत्वाशु हन्यादुदरं प्रष्टुं  
कृमीन् सशोधानुदरं च दूप्यम् ॥ ३४ ॥

देवदारु, सहिजने की छाल, अपामार्ग, इन्हें  
इकट्ठा कर मिश्रण कर अथवा अकेले असगन्ध  
को गोमूत्र से पीसकर पीने से बड़ा हुआ उदर-  
रोग, कृमि तथा सूजनसहित दूप्योदर नाश  
होता है ॥ ३४ ॥

दशमूलादि क्वाथ ।

दशमूलदारुनागरच्छिन्नरुहापुनर्नवा-  
भयाक्वाथः । जयति जलोदरशोथरलीपद-  
गलगण्डवातरोगांश्च ॥ ३५ ॥

दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, पुनर्नवा,  
हरद ये कुल द्रव्य मिलाकर २ तोला लेना  
चाहिए । तत्परचाय् इनको ३२ तोला जल में  
पकाना चाहिए, जब शेष ८ तोला रह जावे तो  
उतार ले । इस काढ़े को सेवन करने से जलोदर,  
शोथ ( सूजन), रलीपद, गलगण्ड तथा वात-  
रोग आदि सम्पूर्ण दूर होते हैं ॥ ३५ ॥

हरीतक्यादि क्वाथ ।

हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाच्छिन्न-  
रुहाकपायः । सुगुग्गुलुमूत्रयुतन्तु पेयः  
शोथोदराणां प्रवरः प्रयोगः ॥ ३६ ॥

हरद, सोंठ, देवदारु, पुनर्नवा, गिलोय ये  
सम्पूर्ण मिश्रित द्रव्य २ तोला लेना चाहिए ।  
तत्परचाम् इनको ३० तोला जल में पकाना  
चाहिए । जब शेष ८ तोला रह जावे तो उतार  
ले फिर इस काढ़े में किञ्चित् गुग्गुलु और  
गोमूत्र डालकर पीने से उदररोग और शोथ  
शान्त होते हैं ॥ ३६ ॥

पुनर्नवादि क्वाथ ।

पुनर्नवा दारु निशा सतित्रा पटोल-  
पथ्या पिनुमर्दमुस्ता । सनागरदिन्नरुहेति  
सर्वः कृतः कपायो विधिना विधिर्नः  
॥ ३७ ॥ गोमूत्रयुग्गुलुना च युक्तः

पीतः प्रभाते नियतं नराणाम् । सर्वाङ्ग-  
शोधोदरकासशूलरवासान्वितं पाण्डुगदं  
निहन्ति ॥ ३८ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, पटोलपत्र,  
हरद, नीम, मोथा, सोंठ, गिलोय ये सम्पूर्ण  
मिश्रित द्रव्य २ तोला लेकर ३२ तोले जल  
में पकावे । जब शेष ८ तोला रह जावे तो  
उतार ले । इस कादे में गुग्गुलु और गोमूत्र  
ऊपर से मिलाकर ( प्रचेप देकर ) पीने से  
सम्पूर्ण अङ्गों के शोध, उदररोग कास, शूल  
( दर्द ), पीरिया, रवासादि रोग नाश को  
प्राप्त होते हैं ॥ ३७-३८ ॥

नारायण चूर्ण ।

यमानी ह्युपा धान्यं त्रिफला सोपकु-  
ञ्चिका । कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा  
शटी वचा ॥ ३९ ॥ शताह्वा जीरकं व्योषं  
स्वर्णक्षीरी सचित्रका । द्वौ चारौ पौष्करं  
मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ४० ॥ विड-  
ङ्गश्च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा ।  
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतु-  
र्गुणा ॥ ४१ ॥ एष नारायणो नाम चूर्ण  
रोगगणापहः । नैनं प्राप्याभिवर्द्धन्ते रोगा  
विष्णुमिवासुराः ॥ ४२ ॥ तक्रणोदरिभिः  
पेयो गुल्मभिर्वदराभ्युना । आनद्धवाते  
सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ४३ ॥ दधि-  
मण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाभ्युभिरशतैः ।  
परिक्रुतं च वृत्ताम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके  
॥ ४४ ॥ भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे रवासे  
गलप्रहे । हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्दानले  
ज्वरे ॥ ४५ ॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे  
कुत्रिमेविषे । यथाह स्निग्धकोष्ठेन पेयमेत-  
दिरेचनम् ॥ ४६ ॥

अजवायन, हाऊवेर, धनियाँ, त्रिफला (हरद,

बहेदा, आँवला), कालाजीरा, कारवी (सोये)  
पिप्पली मूल, अजमोदा, कचूर, बच, सोये,  
जीरा, त्रिकटु, ( सोंठ, मिर्च, पीपल ), सत्या-  
नासी, चित्रक, यवचार, सजिंजार, पोहकर  
मूल, कूठ, पाँचों नमक, वायविडंग हरएक द्रव्य  
१ भाग, दन्ती ३ भाग, निसोत २ भाग,  
इन्द्रायण की जड़ २ भाग, सातला (चर्मकपा)  
४ भाग । इन सम्पूर्ण औषधियों को एकत्र कर  
यथाविधि चूर्ण कर ले । मात्रा-१ माशा से  
२ माशे तक । इस चूर्ण के सेवन करने से  
अनेक प्रकार के रोग नष्ट होने हैं । अनुपान—  
इस चूर्ण को उदररोग में मठा के साथ, गुल्म  
रोग में बेर के कादे के साथ, बद्धवात में मदिरा  
के साथ, वातरोग में प्रसन्ना के साथ, मल-  
बन्ध में दही के पानी के साथ, अर्श ( बवा-  
सीर ) रोग में अनार के रस के साथ, परि-  
कृत्तिका में वृत्ताम्ल के साथ, अजीर्ण में उष्ण  
जल के साथ, भगन्दर, पीरिया, खाँसी रवास  
गलप्रह, हृद्रोग, संग्रहणी, कुष्ठ, मंदानिन, ज्वर,  
दंष्ट्राविष, कुत्रिम विष, इन रोगों में यह चूर्ण  
विरचन के लिए देना चाहिए । यदि रोगी स्निग्ध  
कोष्ठ हो ॥ ३९-४६ ॥

पटोलाद्य चूर्ण ।

पटोलमूलं रजनी विडङ्गं त्रिफला-  
त्वचम् । कपिल्लकं नीलनीञ्च त्रिवृता-  
ञ्चेति चूर्णयेत् ॥ ४७ ॥ पडाद्यान् कार्पि-  
कानन्त्याञ्जीञ्च द्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वा  
चूर्णं ततो मापं गवां मूत्रेण सम्पिषेत् ॥  
॥ ४८ ॥ विरक्तो जाङ्गलरसैर्भुञ्जीत मृदु  
श्रोदनम् । मण्डं पेयां च पीत्या तु सव्योषं  
पदहं पयः ॥ ४९ ॥ सूतं पिबेत्तु तच्चूर्णं  
पिबेदेवं पुनः पुनः । दन्ति सर्वादिरायेत-  
च्चूर्णं जातोदकान्यपि । कामलां पाण्डुरोग-  
ञ्चरवयथुञ्चापकर्षति ॥ ५० ॥

परवल की जड़, हरदो, वायविडङ्ग, त्रिफला  
( हरद, बहेदा, आँवला ) प्रत्येक द्रव्य दो-दो  
तोला लेना चाहिए । ४ तोला कमीला, १

तोला नीलनी मूल, ८ तोला निसोत, उपर्युद्ध  
सम्पूर्ण द्रव्यों को मिलाकर यथाविधि चूर्ण  
बना ले और उचित मात्रा में प्रयोग में लावे ।  
मात्रा—१ माशे से २ माशे तक । अनुपान—  
गोमूत्र । जिस समय इस चूर्ण के देने से घिरे-  
चन हो जावे तब रोगी को जङ्गली पशुपक्षियों  
के मांस के यूप से चावल देना चाहिए या पेया  
अथवा मण्ड को देना चाहिए । इसके पश्चात्  
६ दिन तक त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरि )  
ढालकर औंटाया दूध पिलाना चाहिए । इस दूध  
का सेवन उस समय तक रखना चाहिए जब  
तक रोग पूरी तरह से अच्छा न हो जावे । इस  
प्रकार औषध सेवन कराने से सब प्रकार के  
उदररोग, जलोदर, कामला, पीरिया तथा शोथ-  
रोग ( सूजन ) नाश को प्राप्त होते हैं ॥४७-२०॥

महाविन्दुघृत ।

सुन्हीक्षीरपले कल्के मस्थार्द्धञ्चैव  
सर्पिषः । कम्पिल्लकं पलञ्चैकं पलार्द्धसैन्ध-  
वस्य च ॥ ५१ ॥ त्रिवृतायाः पलञ्चैकं  
कुडवं धात्रिकारसात् । तोयमस्थेन विप-  
चेत् शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ५२ ॥  
शाणुप्रमाणं दातव्यं जठरे स्त्रीहगुल्मयोः ।  
तथा कच्छपरोगेषु युञ्जीत मतिमान्  
भिषक् ॥ ५३ ॥ एतद्गुल्मान् सनिचयान्  
सशूलान् सपरिश्रहान् । निहन्त्येप प्रयोगो  
हि वायुर्जलधरानिव ॥ ५४ ॥ पञ्जगुल्म-  
वधार्याय वज्रो मुक्तः स्यमभुवा । महा  
विन्दुघृतं नाम सिद्धं सिद्धेश्च पूजि-  
तम् ॥ ५५ ॥

घृत १४ तोला लेकर उसमें भूहर का दूध २ पल  
( ८ तोला ) मिलावे । तदनन्तर कबोला ४ तोला,  
छाहीरी नामक १ तोले और निसोथ ४ तोला  
लेकर इनका कल्क बनावे । चाँदले का रस १६  
तोला और पाकान्न जल १२८ तोला लेवे ।  
इन सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर धीमी भाँच  
पर पकावे । उदर, ग्रीहा और गुल्मरोग में ६

माशा की मात्रा में सेवन करना चाहिये । कच्छप  
रोग में भी बुद्धिमात् वैद्य इसका प्रयोग करें ।  
इसका सेवन करने से शूलयुक्त तथा उपद्रवयुक्त  
पञ्चविध गुल्मरोग इस प्रकार नष्ट होते हैं, जैसे  
प्रचण्ड वायु के चलने से बादलों के समूह विनष्ट  
होवे । पाँच प्रकार के गुल्मरोग को नष्ट करने के  
लिये साक्षात् स्वयम्भूने अनुभूत और सिद्धनिषेवित  
'महाविन्दुघृत' नामक वज्र छोड़ा है ॥५१-२२॥

गृहन्नाराचघृत ।

लोभ्रचित्रकचव्यानि विडङ्गं त्रिफला  
त्रिवृत् । शङ्खिन्यतिविपा व्योषमजमोदा  
निशाद्वयम् ॥ ५६ ॥ दन्ती च कार्षिकं  
सर्वं गोमूत्रस्य पलाएकम् । चतुःपलं  
स्नहीक्षीरं राजवृत्तफलं तथा ॥ ५७ ॥  
एतैश्चतुर्गुणे तोये घृतमस्थं विपाचयेत् ।  
उदरञ्चामवातञ्च गुल्मक्षीहभगन्दरान् ॥  
॥ ५८ ॥ निहन्त्यचिरयोगेन गृध्रसीं स्तम्भ-  
मूरुजम् । गृहन्नाराचकं नाम घृतमेतत्  
यथामृतम् ॥ ५९ ॥

घृत १२८ तोला लेवे, उसमें भूहर का दूध  
१६ तोला मिलावे । तदनन्तर उसमें लोभ,  
चीता की जड़, चव्य, वायविडङ्ग, चाँदला, हरद,  
महेन्द्र, निसोथ, शंखनी, अतीस, सोंठ, मिर्च,  
पीपरि, अजमोद, हरदी, दारहरदी और दन्ती  
जमालगोटा की जड़ प्रत्येक एक-एक तोला,  
अमिलतास के फल का गूदा १६ तोला सबका  
बराबर बनाकर मिलावे । पश्चात् ३२ तोला  
गोमूत्र और ६ सेर ३२ तोला जल मिलाकर  
धीमी भाँच से पकावे । इस घृत का सेवन  
करने से उदररोग, आमलात, गुल्म, ग्रीहा,  
भगन्दर, गृध्रसी और उग्रस्तम्भ ये सब रोग नष्ट  
होते हैं । यह गृहन्नाराच नामक घृत अमृत के  
समान है ॥ ५६-२३ ॥

रसोनर्तल ।

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपा-



चयेत् । त्रिकटु त्रिफला दन्ती हिङ्गुसैन्धव-  
चित्रकम् ॥ ६० ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मधु  
शिग्रपुनर्नवा । सौवर्चलं विडङ्गानि दीप्य-  
कोगजपिप्पली ॥ ६१ ॥ एतेषां पलिकान्  
भागान् त्रिवृतः पट्पलानि च । पिप्पु  
कपायेणानेन तैलमृद्धिगिना पचेत् ॥ ६२ ॥  
तत्पिपेत्प्रातरुत्थाय यथार्धग्नवलमात्रया ।  
निहन्ति सकलान् रोगानुदराणि विशे-  
पतः ॥ ६३ ॥ मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धि  
गुदकृमीन् । पार्श्वकुक्षिभवं शूलमाम-  
शूलमरोचकम् ॥ ६४ ॥ यकृदष्टौलिका-  
नाहान् स्नीहनाश्चाङ्गवेदनाम् । मासमात्रेण  
नश्यन्ति अशीतिर्वातजाः गदाः ॥ ६५ ॥

तिल का तेल २ प्रस्थ ( १२८ तोला ),  
लहसन की मिर्गी ५ सेर, जल २ द्रोण ( २५  
सेर ४८ नोला ), पक चुकने पर कांदा आधा  
द्रोण ८ प्रस्थ ( ६ सेर ३२ तोला ), कक के  
लिए—त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपर ), त्रिफला  
( हर, बहेड़ा, आंवला ), दन्तीमूल, हींग, सहि-  
जन, सेंधा नमक, चित्रक, देवदारु, बच, कुष्ठ, मधु,  
की छाल, पुनर्नवा, काला नमक, वायबिडङ्ग,  
अजवायन, गजपीपल, हरक द्रव्य १ पल  
( ४ तोला ), निसोत ६ पल ( २४ तोला )  
इनको धीमी-धीमी अग्नि से पकावे । रोगी के  
बलानुसार प्रातः समय सेवन करावे । इसके  
प्यवहार से मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि,  
गुदाकृमि, बालों में शूल, कुक्षिशूल, आमशूल  
तथा अरुचि, जिगर, अधीलिका, आनाह, तिल्ली,  
अशूल और सब प्रकार के उदररोग नाश की  
प्राप्त होते हैं और इसके १ महीने तक लगातार  
सेवन करने से वात रोग शान्त होते हैं ॥ ६०-६५ ॥

श्रीवैद्यनाथादेशयटिका ।

त्रिकटुकपारदपथ्यासमभागं कानक-  
फलं द्विगुणम् । वटिकागुजार्द्धमिता  
कार्या स्वरसेनाम्ललोणिकायाः ॥ ६६ ॥

प्रबलजलोदरगुल्मज्वरपाण्डवामयनाशिनी  
प्रोक्ता । तिमिराणि पटलविद्रधिप्रबलोदा-  
वर्त्तशूलहरी ॥ ६७ ॥ कृमिकोटकुष्ठकण्ट-  
पिडकाश्च निहन्ति रोगचयम् । सिद्धगुडो  
प्रथिता भुवने श्रीवैद्यनाथपादाज्ञा ॥ ६८ ॥

अतिसरणे सति हस्तपादप्रक्षालन-  
पूर्वकं दधिभक्तेन भोजयेत् । पथ्यं स्वल्पं  
देयम् ।

त्रिकटु, रससिन्दूर ( केवल पारद लेना ठीक  
नहीं है ) और हरड़ प्रत्येक समभाग, सबसे  
दूने जमालगोटा के बीज ; इन सब द्रव्यों को  
चौपतिया के रस में घोटकर आधी-आधी रत्ती  
की गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से  
प्रबल जलोदर, गुल्म, ज्वर, पाण्डुरोग, तिमिर  
रोग, पटल ( नेत्ररोग ), विद्रधि, प्रबल उदा-  
वर्त, शूल, कृमि, कोठ ( चकत्ता ), कुष्ठ, कण्ट  
और पिडिका आदि अनेक रोगसमूह नष्ट होते  
हैं । वैद्यनाथजी ने इस सिद्धवटी का आविष्कार  
किया था । इस औषध का सेवन करने से यदि  
आवश्यकता से अधिक विरेचन हो जावे तो  
उसका प्रतिकार यह है कि हाथ और पैर धुलाकर  
दही और भात थोड़ी मात्रा में तिलाना चाहिये ।  
मात्रा—१ गोली से ३ गोली तक ॥ ६६-६८ ॥

इच्छामेदीरस ।

शुण्ठी मरिचसंयुक्तं रसगन्धकटुद्रनम् ।  
जैपालास्त्रिगुणाः प्रोक्ताः सर्वमेकत्र पेप-  
येत् ॥ ६९ ॥ इच्छामेदी द्विगुजः स्यात्  
सितया सह पाययेत् । यावन्तरजुल्लुका  
पीता तावद्देगाद्विरेचयेत् ॥ तक्रोदनश्च  
दातव्यमिच्छामेदी यथेच्छया ॥ ७० ॥

जुल्लकं सितोदकगण्डूयम् ।

सोंठ, मिर्च, पारा, गन्धक और सोहागा  
प्रत्येक एक तोला, जमालगोटा ३ तोले ; इन  
सब औषधों को एकत्र जल में पीसकर पीने

रत्नी की गोलियाँ बनावे। अनुपान—मिश्री का शरबत। इस इच्छामेदी रस को खाकर जितने बार चुल्लू-चुल्लू शरबत पीते हैं, उतने ही बार विरेचन (दस्त) होता है। मली भाँति विरेचन होने के पश्चात् नक्र के साथ भात खावे। मात्रा—१ रत्नी से २ रत्नी तक ॥ ६६-७० ॥

### अभयावटी ।

अभया भरिचं कृष्णा टङ्गनञ्च समा-  
शिकम् । सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात् कान-  
कजं फलम् ॥ ७१ ॥ स्नुहीक्षीरेण संकु-  
र्याद्गुञ्जापादमितां वटीम् । वटीद्वयं  
शिवामेकां पिप्प्ला तण्डुलवारिणा ॥ ७२ ॥  
उष्णाद्विरेचयेदेया शीते स्यास्थ्यमुपैति च ।  
जीर्णज्वरं स्नीहरोगं हन्त्यप्यातुदराणि च ॥  
७३ ॥ वातोदरे प्रशस्तोऽयं सर्वाजीर्णं  
व्यपोहति । कामलां पाण्डुरोगश्च तथैव  
कुम्भकामलाम् ॥ ७४ ॥

हरद, मिरिच, पीपरि और सोहागा फुला हुआ प्रत्येक एक तोला, जमालगोटा ४ तोले ; इन सब औषधों को एकत्र थूहर के दूध में घोटकर चौथाई रत्नी की मात्रा में गोलियाँ बना लेवे। इसके सेवन की विधि यह है कि चावलों के पानी में एक हरद पीस लेवे उसी के साथ एक ही बार दो गोलियाँ खावे। इस औषध के सेवन करने के पश्चात् जय तक उष्ण जल पीता रहे नय तक विरेचन होता रहता है, शीतल जल पीने पर विरेचन होना बन्द हो जाता है। इसका सेवन करने से जीर्णज्वर, स्नीहा, घाठ प्रकार के उदर-रोग, सय प्रकार के अजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग और कुम्भकामला ये सब रोग नष्ट होते हैं। वातोदर के लिये यह विशेष लाभदायक है तीक्ष्णरेचक ॥ ७१-७४ ॥

### नाराचरस ।

सूतं टङ्गनतुल्यांशं भरिचं सूततुल्य-  
कम् । गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ  
भागौ विचूर्णयेत् ॥ ७५ ॥ सर्वतुल्यं

क्षिपेदन्तीवीजं निस्तुपमेव च । गुञ्जैको  
रेचने सिद्धो नाराचोऽयं महारसः । गुल्म-  
स्नीहोदरं हन्ति पिवेत्तमुष्णवारिणा ॥ ७६ ॥

पारा, सोहागा फुला हुआ और मिरिच प्रत्येक एक तोला, गन्धक, पीपरि और सोंठ प्रत्येक दो-दो तोले, ढिल्ले हुए जमालगोटा के बीज ६ तोले ; इन सब औषधों को पानी में पीसकर एक-एक रत्नी की गोलियाँ बना लेवे। यह अत्युष्ण विरेचन है। इसका सेवन करने से गुल्म, स्नीहा और उदररोग नष्ट होते हैं। अनु-पान—गर्म जल। तीक्ष्णरेचक है ॥ ७५-७६ ॥

### चूलिकावटी ।

रसो गन्धो विषं तालं त्रिकटु त्रिफला  
तथा ॥ टङ्गनं समभागञ्च जयपालं चतु-  
र्गुणम् ॥ ७७ ॥ भृङ्गराजरसेनाथ केशरा-  
जरसेन वा । मधुना वटिका कार्या गुञ्जा-  
पादमिता शुभा ॥ ७८ ॥ चूलिकाख्या  
वटी ख्याता शोथोदरविनाशिनी । कामलां  
पाण्डुरोगञ्च आमवातं हलीमकम् ॥  
हन्याद्गन्दरं कुष्ठं स्नीहानं गुल्ममेव  
च ॥ ७९ ॥

पारा, गन्धक, विष, शुद्ध हरिताल, सोंठ, मिरिच, पीपरि, चाँवला, हरद, बहेदा, और सोहागा फुला हुआ प्रत्येक सम भाग लेवे। उसमें कुल औषधों का चौगुना जमालगोटा मिलाकर भाँगरा अथवा केशराज के रस की भावना देवे। परचाट मधुसहित घोटकर पाच-पाच रत्नी की गोलियाँ बनावे। इस चूलिकावटी का सेवन करने से शोथ, उदर, कामला, पाण्डुरोग, आम-वात, हलीमक, भगन्दर, कुष्ठ, स्नीहा, ये सब रोग नष्ट होते हैं। तीक्ष्णरेचक है ॥ ७७-७९ ॥

### भेदनीवटी ।

त्रिकण्टकस्तुक् पयसा पिप्पल्या  
वटिका कृता । भेदनीपंसिद्धमता महागद-  
निष्दनी ॥ ८० ॥

गोलुरु, थूहर का दूध और पीपरि इनको घोटकर गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से धिरेचन हो जाता है, अतः अनेक प्रचलरोग शान्त होते हैं ॥ ८० ॥

प्रवालपञ्चामृत ।

प्रवाल मुक्ता फल शङ्ख शुक्ति कपर्दि-  
कानाश्च समांश भागम् ॥ ८१ ॥ प्रवाल-  
भात्रं द्विगुणं प्रयोज्य सर्वैः समांशं रवि  
दुग्धमेव ॥ ८२ ॥ एकीकृतं तत्त्वलु भाण्ड-  
मध्ये । क्षिप्त्वा मुखे बन्धन मत्रयो-  
ज्यम् ॥ ८३ ॥ पुटं विदध्यादति शीतले  
च । उद्धृत्य तद्भस्म भरेत्करण्डे ॥ ८४ ॥  
नित्यं द्विवारं प्रतिरोगयोगैः वल्लप्रमाणेन  
प्रयोज्यमेव ॥ ८५ ॥ गुल्मोदर प्लीहविवद-  
कास श्वासाऽग्नि मान्द्यान्कफमारुचो-  
त्थान ॥ ८४ ॥ अजीर्णमुद्गरहृदामयघ्नं  
वालप्रदातीं परमं प्रशस्तम् ॥ ८७ ॥  
मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाऽरमरीम्  
नाशयेन्नाऽत्र सन्देहः सत्यं गुरुवचो-  
यथा ॥ ८८ ॥ पथ्याश्रितं भोजनमादरेण  
समाचरेन्निर्मल चित्त वृत्त्या ॥ ८९ ॥  
प्रवालपञ्चामृतनामधेयो । योगोत्तमः सर्व  
गदाऽपहारी ॥ ९० ॥

मूंगा २ भाग, मोती शङ्ख, मोती की सीप,  
पीली कौड़ी इनकी भरमें १-१ भाग लेकर सबके  
समान आक का दूध डालकर मिट्टी के बर्तन में  
और मुँह बन्द करके गजपुट की छाँच दे ठण्डा  
होने पर निकाल शीशी में भर दे, इनमें से ३-३  
रत्ती सुबह शाम मधु आदि रोगानुसार अनुपान  
के साथ देने से गुल्म, उदर, प्लीहा, बद्धोदर,  
कास, रवास, मन्दाग्नि, कफ, वातरोग, अजीर्ण  
उद्गर, हृद्दोग, प्रहोपद्रव, प्रमेह, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र  
पपरी इन सब रोगों का विनाश करता है । पथ्य  
रोगानुसार देना चाहिये । इसको रोगानुसार

अनुपान के साथ देने से सब रोगों को नष्ट  
करता है ॥ ८१-९० ॥

शोथोदररितौह ।

पुनर्नवाऽमृतावह्नि गवाक्षीमानशिग्रवः ।  
सूर्यावर्त्तार्कमूलञ्च पृथगाष्टपलं जले ॥ ९१ ॥  
पादशेषे मृतं द्रोणे सुपूते वस्त्रगालिते ।  
लौह भस्माष्टपलकं पचेदाज्यसमं भिपक ॥  
९२ ॥ अर्कस्य द्विपलं क्षीरं स्नुहीक्षीरं  
चतुःपलम् । पलद्वयं कौशिकस्य गन्धकस्य  
पलं तथा ॥ ९३ ॥ पलाद्धं पारदं सिद्धे  
वचयमाणन्तु निक्षिपेत् । जयपालं ताम्र-  
मध्रं शुद्धमत्र प्रदापयेत् ॥ ९४ ॥ कङ्कु-  
ष्ठवह्निकन्दानां शराख्याद् घण्ट कर्णकात् ।  
पलाशस्य च बीजानि कञ्चुकी तालमू-  
लिका ॥ ९५ ॥ त्रिफलायाः कृमिरिपो-  
स्त्रिष्टइन्तीभवं तथा । सूर्यावर्त्तगवाक्ष्यौश्च  
वर्षा भूर्वज्वल्लिका ॥ ९६ ॥ एषां  
लौहसमां मात्रां स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।  
अतोऽस्य भक्तयेन्मात्रामनुपानञ्च युक्तिः ॥  
९७ ॥ हन्ति सर्वोदरं शीघ्रं नात्र कार्या  
विचारणा । ये च शोथाः सुदुर्वाराश्चिर-  
कालानुबन्धिनः ॥ ९८ ॥ ते सर्वे नाश-  
मायान्ति तमः सूर्योदये यथा । नातः परतरं  
किञ्चित् शोथोदरविनाशनम् ॥ ९९ ॥  
उदराणि पाण्डुरोगं कामलाश्च हलीमकम् ।  
अर्शां भगन्दरं कुष्ठं ज्वरं गुल्मञ्च नाश-  
येत् ॥ १०० ॥

सर्पटी, गिलोय, चीता, इन्द्रायण, मानकन्द,  
सहिजन की छाल डुलडुल और आक की जड़  
प्रत्येक ८ पल ३२ तोला हों । इनको पकत्र कर  
२२ सेर ४८ तोला जल में पकावे, जब ९ सेर  
३२ तोला जल शेष रहे तब छानकर, उम हाथ

में लोहभस्म ३२ तोला, घृत ३२ तोला, आक का दूध २ पल ७ तोला, थूहर का दूध ४ पल १६ तोला गुग्गुल २ पल ७ तोला, गन्धक १ पल ४ तोला, पारा २ तोले मिलाकर पकावे । मिलाने के समय पारा और गन्धक की कजली धर लेवे । पाक शेष होने पर जमालगोटा, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कंकुष्ट ( उसारैरेवन् ), चीता की जड़, सूरन, सरफोंडा, घटकर्ण ( मोरवा ), ढाक के बीज, कंचुकशाक, मुमली, आँवला, हरट बहेड़ा, वायधिट्ट, नियोध, दन्ती ( जमातागोटा की जड़ ), हुलहुल, इन्द्रायण की जड़, साँठी और हडगोड ये सब मिलकर ३२ तोला हों, इनको मिलाकर उतार लेवे । शीतल होने पर घी के चिकने पात्र में रख देवे । इसवी मात्रा और अनुपान की व्यवस्था रोगी की अवस्था और बल के अनुसार निश्चित करे । यह शोथो-दरारि लीह सब प्रकार के उदररोग और चिर-कालोत्पन्न, दुर्निवार शोथरोग को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट हो । शोथ और उदररोग की इससे बढ़कर और कोई औषध है ही नहीं । इसका सेवन करने से उदररोग, पाण्डुरोग, कामला हलीमक, बवासीर, भगन्दर, कुष्ठ, ज्वर और गुल्मरोग भी नष्ट होते हैं मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ ६१-१०० ॥

त्रैलोक्य सुन्दर रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं ताम्राभ्रं सैन्धवं  
विषम् । कृष्णजीरं विडङ्गञ्च गुडूचीसत्त्व-  
चित्रकम् ॥ १०१ ॥ उग्रगन्धा यवत्तारं  
प्रत्येकं कर्पमात्रकम् । निर्गुं डिकाद्रवैरग्नि-  
बीजपूरद्रवैर्दिनम् ॥ १०२ ॥ मर्दयेच्छोप-  
येत्सोऽयं रसत्रैलोक्यसुन्दरः । गुञ्जाद्वयं  
घृतैर्लेहं वातोदरकुलान्तकम् ॥ १०३ ॥  
वह्निचूर्णं यवत्तारं प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ।  
घृतप्रस्थं विषकृन्धं गोमूत्रैश्च चतुर्गुणैः ।  
घृतावशेषं कर्त्तव्यं द्विमापञ्च पिवे-  
दनु ॥ १०४ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, ताम्र-  
भस्म, अभ्रकभस्म, सेंधा नमक, शुद्ध मीठा  
विष, काळा जीरा, वायधिट्ट, सतागिलोय,  
चित्रक, यव, यवत्तार प्रत्येक द्रव्य १ तोला  
लेकर इनको एकत्र मिश्रित कर १ दिन सँभालू  
के रस से, दूसरे दिन चित्रक के रस से और  
तीसरे दिन विजौरा के रस से घोंटे और घूप  
में सुखा ले । मात्रा--२ रत्ती । अनुपान घी ।  
इस अनुपान घृत को इस प्रकार तैयार करना  
चाहिए कि गाय का घी १ प्रस्थ ( ६४ तोला ),  
गोमूत्र ४ प्रस्थ ( ३ सेर १६ तोला ), चित्रक  
चूर्ण ८ तोला, यवत्तार ८ तोला, इनसे विधि के  
अनुसार घी पाककर २ माशे तोल में अनुपान में  
प्रयोग करावे । इस रस के सेवन करने से वातोदर  
नाश होता है ॥ १०१-१०४ ॥

जलोदरारि रस ।

पिप्पली मरिचं ताम्रं रजनीचूर्णसंयु-  
तम् । स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्धं तुल्यं जैपाल-  
बीजकम् ॥ १०५ ॥ गुञ्जाद्वेन विरेकः  
स्यात् सद्यो हन्ति जलोदरम् । रचनानाञ्च  
सर्वेषां दध्यम्लं स्तम्भने हितम् ॥ दिनान्ते  
च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूपकम् ॥ १०६ ॥

पीपल, कालीमिर्च ताम्रभस्म, हलदी-  
चूर्ण, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को सेहुरट के दूध से  
घोटकर इसको तोल ले और इसके बराबर शुद्ध  
जैपालबीज मिला ले । मात्रा ३ रत्ती । इस  
रस के व्यवहार से प्रथम रोगी को विरेचन  
होता है और तत्परचात् जलोदर नष्ट होता है ।  
विरेचन रोकने के लिए रोगी को दही और  
सखे पदार्थों का सेवन करना चाहिए । रोगी  
को भोजन के लिए सायंकाल के समय चावल  
और मूँग का घूप देना चाहिये ॥ १०५-१०६ ॥

वह्नि रस ।

सूतस्य गन्धकस्याष्टौ रजनीत्रिफला-  
शिलाः । प्रत्येकञ्च द्विभागं स्यात् त्रिष्टुजै-  
पालचित्रकम् ॥ १०७ ॥ प्रत्येकं स्यात्त्रि-

भागश्च व्योषं दन्तिकजीरकम् । प्रत्येकं  
सप्तभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥१०८॥  
जयन्तीस्तुक्पयोभृङ्गवह्निवातारितैलकैः ।  
प्रत्येकेण क्रमाद् भाव्यं सप्तवारं  
पृथक् पृथक् ॥ १०९ ॥ महावह्निरसो  
नाम्ना गुञ्जामुष्णजलैः पिवेत् । विरेचनं  
भवेत्तेन तक्रभङ्गं ससैन्धवम् ११० ॥  
दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलंजलम् ।  
सर्वोदरहरः प्रोक्तः रलेप्मवातहरः परः १११

पारा ८ भाग, गन्धक ८ भाग, हलदी २  
भाग, त्रिफला (हर, बहेडा, आँवला) २ भाग,  
मैनशिल, २ भाग, निम्बोत ३ भाग, जयपाल ३  
भाग, चित्रक ३ भाग, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर)  
७ भाग, दन्तीमूल ७ भाग, जीरा ७ भाग,  
इन सबको इकट्ठा कर जयन्तीपत्र, सेहुण्ड का  
दूध, भाँगरा, चित्रक तथा एरण्ड तेल से अलग  
अलग सात-सात भाघना दे । मात्रा-३ रत्ती ।  
अनुपान-उष्ण जल । इस रस के सेवन कराने से  
विरेचन होता है । रोगी को पथ्य सायंकाल  
को देना चाहिए । पथ्य-सँधा नमक, चावल,  
मठा । इस औषध के सेवन काल में ठण्डा  
पानी प्रयोग में लाना चाहिए । यह रस हर  
प्रकार के उदररोग तथा कफ वात को दूर  
करता है ॥ १०७-१११ ॥

पिप्पल्याद्यलौह ।

पिप्पलीमूलचित्राभ्रत्रिकत्रितयसैन्ध-  
वम् । सर्वचूर्णसमं लोहं हन्ति सर्वोदरा-  
मयम् ॥ ११२ ॥

पिप्पलीमूल, चित्रक, अभ्रकभस्म, त्रिकटु  
( सोंठ, मिर्च, पीपर ), त्रिफला ( हर, बहेडा-  
आँवला ), त्रिजात, सँधा नमक, सम्पूर्ण द्रव्यों  
को बराबर-बराबर लेकर सबके बराबर लोह-  
भस्म मिश्रण करे । इसके सेवन करने से हर  
प्रकार का उदररोग दूर होता है । मात्रा २-३ रत्ती  
है ॥ ११२ ॥

उदरारि रस ।

पारदं शुक्तितुथश्च जैपालं पिप्पली  
समम् । आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण  
मर्दयेत् ॥ ११३ ॥ गुञ्जामात्रां वर्ती  
खादेत् स्त्रीणां जलोदरं जयेत् । चिञ्चा-  
फलरसञ्चालु पथ्यं दध्योदनं हितम्  
॥ ११४ ॥ दकोदरं हरश्चैव तीव्रेण रेच-  
नेन च ॥ ११५ ॥

रससिन्दूर, शुक्तिभस्म, शुद्ध तृतीयाभस्म, शुद्ध  
जैपाल, पीपल, अमलतास का गुदा, इन सम्पूर्ण  
द्रव्यों को एकत्र कर सेहुण्ड के दूध से घोटकर  
आधी रत्ती से १ रत्ती प्रमाण की गोली बना  
ले । इसके सेवन करने से स्त्रियों का जलोदर  
नाश होता है । अनुपान-इमली का रस । पथ्य-  
दही चावल । इस रस से प्रथम रेचन होता है  
फिर जलोदर नष्ट होता है ॥११३-११५ ॥

वारिशोषण रस ।

चतुर्विंशतिभागाः स्युर्गन्धाद् वङ्गं  
तदर्द्धकम् । वङ्गभागान्द्रवेदर्द्धः पारदः  
कृष्णमभ्रकम् ॥ ११६ ॥ चतुर्दशविभागं  
स्यात् मृतं तदीयते पुनः । मृतलौहमष्ट-  
भागं मृतताम्रं नवात्र तत् ॥ ११७ ॥  
मृतहेमद्वयं तेषां मृतरूप्यश्च सप्तकम् ।  
अतिशुद्धमतिस्थूलं मृतं हीरं त्रयोदश  
॥११८॥ भागा ग्राह्या मात्तिकस्य विशुद्ध-  
स्यात्रपोडश । अष्टादशमितं ग्राह्यं नव-  
काशीशकं पुनः ॥ ११९ ॥ तुथकञ्ज पडे-  
वात्र नवीनं ग्राह्यमेव च । तालकश्च  
चतुर्भागं शिला योज्यास्त्रयो बुधैः ॥१२०॥  
शैलेयं पञ्च दातव्यं सर्वमेकत्र नूतनम् । मृत-  
मौक्तिकभागैकं सौभाग्यं द्वयमेव च ॥१२१॥  
कुट्टयित्वा विचूर्णयेत् जम्बीरस्य रसेनैव ।  
भावयेत्सप्तधा गाढं गदिकां तस्य काशयेत्

॥१२२॥ पानकाहितये कृत्वा मुद्रयेत्पान-  
कद्रयम् । घटमध्ये निवेशयाथ दत्त्वा  
पूर्वञ्च बालुकाम् ॥ १२३ ॥ उर्ध्वञ्च तां  
पुनर्दत्त्वा बालुकां मुद्रयेत् मुखम् । अहो-  
रात्रं दहेद्गन्धौ स्वाद्गन्धीं समुद्रेत् ॥१२४॥  
वकुलस्य च बीजेन कण्टकारीद्वयेन च ।  
गुडूची त्रिफला वारा भावयेत्सप्तसप्तधा  
॥१२५॥ वृद्धदारसेनापि तथा देयास्तु  
भावनाः । गिरिकन्यारसेनापि रोहितः  
मत्स्यपित्ततः ॥ १२६ ॥ एवं सिद्धो  
भवेत्सम्यक् रसोऽसौ वारिशोषणः । देवान्  
गुरून् समभ्यर्च्य पितृन् साधुस्तथा मुनीन्  
॥ १२७ ॥ रक्त्तिकाहितयं देयं सन्निपाते  
समुच्छ्रये । मरिचेन समं देयं तेन जागर्ति  
मानवः ॥ १२८ ॥ श्लैष्मिके च गदे देयं  
ग्रहणामग्निमान्द्यके । स्त्रीहि पाण्डौ  
प्रयोक्तव्यं त्रिकटुत्रिफलाम्भसा ॥ १२९ ॥  
शूलरोगे प्रयोक्तव्यमुदरे च विशेषतः ।  
कुष्ठे सुदुष्टे देयोऽयं काकोटुम्वरिकाम्भसा ॥  
१३० ॥ अति वह्निकरः श्रीदो बलवर्णाग्नि-  
वर्द्धनः । धन्वन्तरिकृतः सद्यो रसः परम  
दुर्लभः । सर्वरोगे प्रयोक्तव्यो निःसन्देहं  
भिषग्वरैः ॥ १३१ ॥

गन्धक २४ भाग, वङ्गभस्म १२ भाग, पारा  
६ भाग, अन्नकभस्म १४ भाग, लौहभस्म ८ भाग,  
साधुभस्म ६ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, रजतभस्म  
७ भाग, हीरकभस्म १३ भाग, स्वर्णमाषिक भस्म  
१६ भाग, काशीश १८ भाग, शुद्ध तृतिवा ६  
भाग, हरताल ४ भाग, मैगशिल ३ भाग,  
शिलाजीत २ भाग, मुक्ताभस्म १ भाग, सुहागा  
२ भाग उपर्युक्त सगुण्य द्रव्यों को एकत्र कर  
जबदीरी के रस से ७ बार भावना देकर गोली  
बनावे । इसके बाद इस गोली को मूस में

रत्नकर बालुकायन्त्र द्वारा २४ घंटे तक पाक  
करे । स्याद्ग शीतल होने पर निकाल ले । फिर  
मौलसरी के बीज, छोटी बड़ी कटेरी, गिलोय,  
त्रिफला, विधारा, यिष्णुकान्त रोहू मछली का  
पित्त हरणुक से सात-सात बार भावना देकर २  
रत्नी प्रमाण की गोली बनावे । अनुपान-मरिच-  
चूर्ण । इस रस के सेवन करने से सत्रिपात का  
रोगी शीघ्र होश में आ जाता है । कफजरोग,  
ग्रहणी, अभिनमान्द्य, प्रीहा, पीरिया शूलरोग,  
उदररोग । देसे रोगों में त्रिकटु तथा त्रिफला  
के काढ़े के अनुपान से देना चाहिए और दुष्ट-  
कुष्ठ रोग में काठगूलरिया के रस के साथ सेवन  
कराना चाहिए । इस रस के व्यवहार से बल  
तथा अग्नि बढ़ती है और रंग निररता है । इस  
रस के प्रारम्भ से पूर्व देवता, गुरु, पितर  
साधु मुनियों का पूजन करना परमावश्यकिय  
है ॥ ११६—१३१ ॥

उदररोग में पथ्य ।

विरेचनं लंपनमब्दसंभवाः कुलत्थ-  
मुद्गारुपशालयो यवाः । मृगद्विजा जांगल-  
संज्ञयान्विताः सितासुरामाक्षिकसीधुमा-  
ध्वकाः ॥ १३२ ॥ तक्रं रसोनोरुवुतैल-  
मार्द्रकंशालिच शाकं कुलकं कठिल्लकम् ।  
पुनर्नवाशिग्रु फलं हरीतकी ताम्बूलमेला-  
यवशूकमायसम् ॥ १३३ ॥ अजगवोष्ठी-  
महिषीपयो जलं लघूनि तीक्ष्णानि च दीप-  
नानि । वस्त्रेण संवेष्टेनमग्निर्कर्मविप्रप्रयो  
गोऽत्रयुतो यथायथम् ॥ १३४ ॥ विशेषतः  
स्त्रीहसमुद्भवे गदे वामेग्रवाहौ धमनीत्यधः  
परम् । बद्धोदरे चोदरेजे क्षतोत्थिते नाभेरधः  
शास्त्रविधिर्यथाविधिः ॥ १३५ ॥ समा-  
रणोत्थं घृतपानमादितः साम्यंजनं चाप्य-  
नुवासनं तथा । यथामलं पथ्यगणोऽय-  
माश्रितो सखा नृणां स्यादुदरामये  
सति ॥ १३६ ॥

विरेचन, लघन, वर्ष दिन के पुराने कुलधी, मूँग, लाल चावल, जो, मूँग, पची, जगली जीवों का मास, जिथी । खॉड, शराव, शहद, सीधु, माध्वीरू, छाड़, लहसन, अड़ी का तेल, अदरक शालिच शाक, परवल, बरेला, साँठी, म्रहजने की फली, हरड़, पान, इलायची, जी, लौह, चकरी, गौ, मँस, ऊँटनी का दूध और मूँग, हलके पदार्थ, चरपरे दीपनकारी पदार्थ, कपड़े से लपेटना, दागना और विष प्रयोग यथानुकूल करना चाहिये । विरोपतः झीहोदर में बाँई भुजा के अग्रभाग में पमनी की फस्त रोलें, यदोदर और चतुदर में नाभि के नीचे यथाधिघ शस्त्रकर्म ( चीरा ) करना चाहिये । वायुजन्य उदररोग में प्रथम घी पिलाना चाहिये । उबटना, अनुवासन बस्ति सय दोषों के अनुसार करना चाहिये । ये सत्र उदररोग में हितकारक हैं ॥ १३२—१३६ ॥

उदररोग में अग्रथ्य ।

सस्नेहं धूमपानं जलपानं शिराव्यधम् ।  
 छर्दिनानं दिवास्वप्नं व्यायामं पिष्टवैकृतम् ॥  
 १३७ ॥ त्रौटकानूपमांसानि पत्रशाक-  
 स्तिलान्यपि । उष्णानि च विटाहीनि-  
 लम्णान्यग्नानि च ॥ १३८ ॥ महेन्द्रगिरि-  
 जातानां सरितासखिलानि च । शिम्भी-  
 धान्यं त्रिरुद्धान्नं दुधनीरं गुरुणि च ॥  
 १३९ ॥ विष्टम्भीनि त्रिशोपात्तु स्वेदं विष्टम्भ  
 संभने । वर्जयेदुदरव्याधौ वैद्यो रक्ते निजं  
 यशः ॥ १४० ॥ अम्बुपानं दिवास्वप्नं गुर्व-  
 भिष्यन्दिभोजनम् । व्यायामं चाध्वयानञ्च  
 जठरी परिवर्जयेत् ॥ १४१ ॥

स्नेहनकर्म, धूमपान, जलपान, फस्त खोलना, पमन, मार्ग चलना, दिन में सोना, व्यायाम, पिसे अन्न के पदार्थ, जल और जल के किनारे रहनेवाले जीवों का मास, पत्ते के शाक, तिल, गरम और दाहकारक नमकीन पदार्थ, महेन्द्र पर्वत से निकली हुई नदियों का जल, फली के धान्य, उड़द, मूँग, चना आदि पित्त पदार्थ, दुष्ट

जल, भारी पदार्थ, विष्टम्भकारी पदार्थ, विष्टम्भ-जन्य उदररोग में पसीना निकालना ये सब कर्म वैद्य को अपने यश की रक्षा के लिये (अर्थात् रोगी को अच्छा करने के लिये) त्याग देने चाहिये । उदर रोगी को चाहिए कि वह निम्नांकित बातों को छोड़ दे—जैसे बहुत पानी पीना, दिन में सोना भारी तथा लसदार वस्तुओं का भोजन, कसरत अधिक चलना तथा सवारी करना ये बातें उदररोगी को त्याग्य हैं ॥ १३७-१४१ ॥

जलोदरारि रस

पिप्पलीमरिचं ताम्रं रजनी चूर्णं  
 संयुतम् । स्नुहीक्षीरैर्दिनमर्घं तुल्यं  
 जैपालजीजकम् ॥ १४२ ॥ वल्लं खादेद्विरेकः  
 स्यात्सद्यो हन्तिजलोदरम् । रेचना नाश्च  
 सर्षपां दध्यन्नं स्तम्भनेहितम् ॥ १४३ ॥  
 दिनांति च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्ग  
 यूपकम् ॥ १४४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदराधि-  
 कारः समाप्तः ।

पीपल, मरिच ताम्रभस्म, हल्दी ये सब समान भाग लेकर सबको महीन चूर्ण कर घूहर के दूध में १ रोज घोट कर इन सब के समान भाग शुद्ध जमालगोटा मिलाकर घर दे (इसमें से १ मासे की मात्रा में ठण्डे पानी के साथ देवे जिस जलो-दर में विष्टम्भ हो उसमें विशेष फायदा करता है) और अन्य स्थान पर ३ रत्नी का प्रयोग करना चाहिये, ह्यसे सारा मल निकल कर जलोदर भिट जाता है । अधिक मात्रा में खेने से अगर अधिक दस्त आने लगें तो दही भात खाने से बन्द हो जाते हैं । साधारणतः चिचड़ी और मूँग का यूप देना चाहिये ॥ १४२-१४४ ॥

इति सरयूपसादत्रिपाठिविरेचिताया भैषज्य-  
 रत्नावल्या रत्नप्रभाषया व्याख्याया-  
 मुदररोगाधिकार समाप्तः ।

## क्लोमरोगाधिकारः

क्लोम का कार्य और स्थान ।

स्त्रीहृत्तुद्रान्त्रयोर्मध्यमन्त्रपाकाटिकर्मणि ।  
सहायभूतमध्यास्ते क्लोम तच्च तिलाभि-  
धम् ॥ १ ॥ अथस्तु दक्षिणे भागे हृदयात्  
क्लोम तिष्ठति । जलमाहि सिरामूलं  
तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥ २ ॥

झींझा और चुद्र छातों के मध्य में क्लोम<sup>१</sup>  
(पिपासा स्थान) है, इसका दूसरा नाम निल  
अथवा तिलक है। यह अन्न के पाचनादि क्रिया  
में सहायक होता है। हृदय के दाहिने भाग में  
क्लोम की स्थिति है यह जल को वहन करने-  
वाली सिराओं का मूल और पिपासा स्थान  
है ॥ १-२ ॥

क्लोमरोगनिदान ।

तद्वातिस्निग्धगुरुभिः भोज्यैरित्यर्थ  
शीलितैः । अभिजातादिभिश्चापि याति  
वृद्धिश्च मार्दवम् ॥ ३ ॥ तथा शोणितसङ्घा-  
तो विद्रधिश्चापि जायते । अन्ये च टारुणा  
रोगा जायन्तेऽस्मिञ्च जायते ॥ ४ ॥

१ 'क्लोम' के विषय में मतभेद हैं किन्तु यहाँ  
पर Pancreas नामक ग्रन्थि का ग्रहण है ।

२ क्लोम शब्द का अर्थ क्या किया जाय इसके  
विषय में मतभेद ही है। कविरान गणनाथसेनमहा-  
महोपाध्याय Trachea (कण्ठ नाड़ी) प० हरि-  
प्रपन्नजी पित्ताशय (Gall Bladder), कुङ्कु विद्वान्  
Pharynx और कुङ्कु विद्वान् Pancreas  
मानते हैं। यहा Pancreas नामक ग्रन्थि  
का ही ग्रहण है। यह ग्रन्थि वामपार्श्व में आमाशय  
के नीचे होती है और एक नली द्वारा अपने रस  
को धन्त्रप्रणाली (पकाशय आदि) में भेजकर  
आहार को पचाती है। इसके विकार से प्यास  
अधिक लगती है एवम् मधुमेह उत्पन्न हो  
जाता है।

अधिक मात्रा में अधिक चिकना एवम् भारी  
आहार सेवन करने से तथा चोट लगना आदि  
कारणों से यह ग्रन्थि बढ़ जाती है और मृदु  
हो जाती है। इसमें रश्मि इकट्ठा होने लगता है  
कभी कभी विद्रधि भी हो जाती है, इस ग्रन्थि  
के विकृत हो जाने पर मधुमेह आदि अन्य कठिन  
रोग भी हो जाते हैं ॥ ३ ४ ॥

क्लोमविकृति के चिह्न ।

उत्क्लेशो वमयुर्वहेः सादः कार्श्यञ्च  
पाण्डुता । भ्रमः सादश्च काठिन्यमौप्ययमू-  
र्धोदरे तथा ॥ ५ ॥ विद्रधोर्विकृतौ तत्र  
शूलाध्मानौ तृपाधिका । अश्रमरीवच्छिला  
घोरा सुरुष्टा तत्र जायते ॥ ६ ॥

जी मिचलाना, वमन, 'ग्रन्थिमान्य, कुशता,  
पाण्डु, थकावट शिथिलता, पेट पर कटापन  
तथा उष्णता आदि लक्षण होते हैं। ग्रन्थि में  
विद्रधि हो जाने पर शूल, आत्मान तथा अति  
प्यास आदि के लक्षण होते हैं। इस ग्रन्थि में  
अश्रमरीरोग के समान घोर एष अत्यन्त कष्टदायक  
पयरी भी उत्पन्न हो जाती है ॥ ५ ६ ॥

क्लोमरोग का चिकित्सा ।

यद्बहेदीपनं यच्च मारुतस्यानुलोमनम् ।  
अन्नपानौपथं तत्तद्धितं क्लोमगदातुरे ॥ ७ ॥

जो-जो अग्नि के दीपन और वायु के अनु-  
लोमन करनेवाले अन्न, पान और औपथ हे वे  
सब क्लोमरोग में लाभदायक होते हैं ॥ ७ ॥

अभयादिकवाय १ ॥

अभयामलकं टारु धन्याकं विशर्व-  
भेपजम् । द्राक्षा च शारिवेत्येषां काथः  
क्लोमगदापहः ॥ ८ ॥

हरद, आँवला, देवदारु, धनिया, सोंठ,  
मुनक्का और अन्नन्तमूल; इन औषधों का काथ  
पिलाने से क्लोमरोग शान्त होता है। विधि-  
मिले हुए सब द्रव्य २ तोले, जल ३२ तोले,  
काथ के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ ८  
तोले ॥ ८ ॥



सुरेन्द्रमोदक ।

देवपुष्पारुणा श्यामा शतपुत्री कुशो-  
शयम् । यमानो मागधी भृङ्गी द्राक्षां  
मधुरिकाभये ॥ ९ ॥ सम्मर्ध मधुना विद्वान्  
मोदकं परिकल्पयेत् । तं यथाग्निबलं  
खादेत् क्लोमरोगनिवृत्तये ॥ १० ॥ मोद-  
कोज्यं सुरेन्द्रारुणः पुष्टिऋद्वलवर्द्धनः ।  
वह्निस्न्दीपनो हृद्यो रसायनवरः स्मृतः ११

लौंग, घसीस, श्यामालता, शतावरि, कमल  
की जड़, अजंटादन, पीपरी, काकड़ासिगी, मुनका,  
सीक धौर हरदू ; इन सब द्रव्यों को समान  
भाग लेकर पूर्ण बनाये, तदनन्तर मधु मिलाकर  
खरल करके लद्दू बनाये । रोगी के बल और  
अग्नि के अनुसार २ मासे से ४ मासेतक की  
मात्रा में सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने  
से क्लोमरोग की निवृत्ति, शरीर की पुष्टि, बल  
की वृद्धि और अग्नि की दीप्ति होती है । यह  
मोदक हृदय के लिये हितकारक और श्रेष्ठ  
रसायन है ॥ ९-११ ॥

शशिशेखर रस ।

रसगन्धाभ्रहेमानि मौक्तिकं विद्रुमं  
तथा । कन्यास्त्रिर्मर्दयेद् घस्रं ततः सिद्धो  
भवेद्रसः ॥ १२ ॥ सर्वान् क्लोमगदान्  
हन्ति ह्यशीतिं मारुतोद्भवान् । पैत्तिकान्नि-  
खिलांश्चापि श्लैष्मिकान्प्ययं ध्रुवम् १३ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म,  
मौक्तिक और प्रवालभस्म ; इन सब द्रव्यों को  
समान भाग लेकर धातुआर के रस में एक  
दिन घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना  
लेवे । इसका सेवन करने से हर प्रकार के क्लोम-  
रोग, ८० प्रकार के क्षतरोग तथा सब प्रकार के  
पैत्तिक और श्लैष्मिक रोग निःसंदेह नष्ट होते  
हैं ॥ १२-१३ ॥

सुरेन्द्राभ्रघटी ।

अभ्रं सहस्रशो दग्धं रसं दरदसम्भवम् ।

केशराजरसैः शुद्धं गन्धकं हीरकं तथा ॥  
१४ ॥ विद्रुमं मौक्तिकं हेम रौप्यं मात्सि-  
कमेव च । कान्तलौहञ्च सम्मर्ध विधिना  
वह्नियारिणा ॥ १५ ॥ वट्यो गुञ्जार्ध-  
प्रमिताः कुर्याच्छायाविशोपिताः । एकैकां  
योजयेत् प्राज्ञो यथादोपानुपानतः ॥ ६ ॥  
क्लोमरोगविनाशाय वह्नेः सन्धुक्तगार्थं च ।  
श्रम्लपित्तं यकृच्छोथं स्त्रीहां पाण्डुजलो-  
दरम् ॥ १७ ॥ गुल्मरोगं प्रमेहञ्च दारुणं  
विषमज्वरम् । कुष्ठं सुदारुणं चैव निहन्ति  
नात्र संशयम् ॥ १८ ॥ न सोऽस्ति रोगो  
लोकेऽस्मिन् यमियं न विनाशयेत् ॥ १९ ॥

सहस्र पुटित अभ्रकभस्म, द्विगुलोरथ पारद,  
केशराज ( भेंगरीया ) के रस में शुद्ध किया हुआ  
गन्धक, हीरा, मूँगा, मुत्रा, स्वर्ण, चाँदी, सोना-  
मायी और कान्तलौह की भरम समभाग इन  
सब द्रव्यों को लेकर पीता के रस में घोटकर  
आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनाकर धाया  
में सुजा लेवे । दोपानुसार उपयुक्त अनुपान के  
माथ एक-एक गोली सेवन करावे । यह सुरेन्द्रा-  
भ्रघटी सेवित होने पर क्लोमरोग और अग्नि-  
मान्द्य को नष्ट करती है तथा अम्लपित्त, यकृत्-  
शोथ, तिल्ली, पाण्डु, जलोदर, गुल्म, प्रमेह,  
भयानक विषमज्वर एवम् कुष्ठरोग निःसंदेह  
अच्छे हो जाते हैं । संसार में प्रायः ऐसा कोई रोग  
है ही नहीं ; जिसको नष्ट न कर सके ॥ १४-१९ ॥

क्लोमरोग की चिकित्साविधि ।

यो यः समाश्रयेद्व्याधिः क्लोमिन् तं  
समवेद्य च । क्रियां संसाधयेद्द्वैदो यथा-  
दोषं यथाबलम् ॥ २० ॥

क्लोम में जो-जो रोग उत्पन्न हो वैद्य का  
उसकी भली भाँति परीक्षा करके दोष और बल के  
अनुसार उचित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २० ॥

क्लोमरोग में पथ्याऽपथ्य ।

अनुप्राण्यन्नपानानि क्लोमामयनिपी-

द्वितः । सेवेतो ग्राणि सर्वाणि यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां क्लोमरोग-  
चिकित्सा समाप्तः ॥

क्लोमरोगी को चाहिये कि सौम्य अन्न पान का सेवन करे और जितने उम्र अन्न और पान हैं उनको सावधानी से त्याग दे ॥ २१ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिप्राणिविरचिताया भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यान्यां  
क्लोमरोगचिकित्सा समाप्तः ।

## मेदरोगाधिकारः (स्थौल्य)

स्थौल्यहर विहारः ।

श्रमचिन्ताव्यवाया-वृत्तौद्रजागरणप्रियः ।  
हन्त्यनश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभो-  
जनैः ॥ १ ॥

परिश्रम, चिन्ता, मैथुन, मार्ग चलना, मधु (शहद) पीना, रात में जागरण करना, जौ और सौंघों का भोजन करना, इन सब उपचारों के सेवन करने से मेदा की वृद्धि के कारण उत्पन्न हुआ शरीर का अधिक मोटापन अवश्य नष्ट होता है ॥ १ ॥

स्थौल्यनाशक उपाय ।

अस्त्रमञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्त-  
नानि च । स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं  
क्रमेणातिमर्दयेत् ॥ २ ॥

स्थूलता के त्याग की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को रात्रि जागरण, मैथुन, व्यायाम और चिन्ता, इन सब कार्यों को क्रम से बढ़ा देना चाहिए ॥ २ ॥

स्थौल्यनाशक योग ।

मातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाश-

नम् । उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिवन् कृश-  
तनुर्भवेत् ॥ ३ ॥

प्रातःकाल मधुमिश्रित जल पीने से स्थूलता नष्ट होती है । उष्ण भात का मण्ड पीने से शरीर कृश हो जाता है ॥ ३ ॥

चव्यादिशक्तुप्रयोग ।

सचव्यजीरकव्योपहिङ्गुसौवर्चला-  
नलः । मस्तुना शक्तवः पीता मेदोऽना-  
वह्निदीपना ॥ ४ ॥

(समभागेन समुदितचूर्णात् पोडशगुणा-  
शक्तवः ।)

चव्य, जीरा, सोंठ, मिरिच, पीपरि, हींग, कालानमक और चीता की जड़ समभाग लिये हुए इन कुल औषधों का चूर्ण १ मासा, सत् (सतुघ्ना) १६ तोले इन सबको एकत्र मिश्रित कर दही के पानी के साथ सेवन करना चाहिये । परन्तु यह ध्यान रहे कि उस दिन अन्य पदार्थ का भोजन न करे । इस सत् को पीने से मेदा का नाश और अग्नि का दीपन होता है ॥ ४ ॥

विडङ्गादि चूर्णं ।

विडङ्गनागरत्तारकान्तलौहरजोमधु ।  
यामालरूचूर्णन्तु प्रयोगः स्थौल्यना-  
शनः ॥ ५ ॥

यावपिडङ्ग, सोंठ, जवात्तार, कान्तलोह का भस्म, मधु, जौ और शौंघले समभाग इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनाय । इस चूर्ण का सेवन करने से स्थूलता नष्ट होती है । मात्रा ६ रस्ती ॥ ५ ॥

व्योषाघशक्तुप्रयोग ।

व्योषं विडङ्गशिग्रुणि त्रिफला कटुरो-  
द्विणीम् । वृहत्पौं द्वै हरिद्रे द्व पाठामति-  
विपां स्थिराम ॥ ६ ॥ दिगुकेतुकमूलानि  
यमानी धान्यचित्रकम् । सौवर्चलमजानाञ्च

ह्रुषांश्चेति चूर्णयेत् ॥ ७ ॥ चूर्णतैलघृत-  
 क्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः । शकृन्नां  
 षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं पिबेत् ॥ ८ ॥  
 मयोगात्तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणो-  
 त्थिताः । प्रमेहामूढवातरच कुष्ठान्यर्शासि  
 कामला ॥ ९ ॥ स्त्रीहापाण्ड्यामयः शोथो  
 मूत्रकृच्छ्रमरोचकः । हृद्रोगो राजयक्ष्मा च  
 कासः श्वासो गलग्रहः ॥ १० ॥ कृमियो  
 ग्रहणीदोषाः शैत्यं स्थौल्यमतीव चं ।  
 नराणां दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्वुद्धिश्च  
 वर्द्धते ॥ ११ ॥

सोंठ, भिरिच, पीपरि, वायविडङ्ग, सेंजन के  
 मूल की छाल, आँवला, हरड, बहेडा, कुटुकी,  
 छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, हलदी, दारुहलदी,  
 पाद, अतीस, शालपर्णी, हाँग, केमुवा ( केंज )  
 की जड़, अंजवाइन, धनिया, चीता का मूल,  
 काला नमक, जीरा और हाऊबेर प्रत्येक औषध  
 को समभाग लेकर एकत्रित कर चूर्ण बनावे ।  
 तदनन्तर तिल का तेल, घृत और मधु -इन तीनों  
 में से प्रत्येक को कुल चूर्ण के समान परिमाण  
 में लेकर मिलावे । सतुवा ( सतुवा ) चूर्ण में  
 सोलह गुना हो ; इसको भी उसी चूर्ण में मिश्रित  
 कर किसी शीतल अनुपान के साथ सेवन करे ।  
 इसका सेवन करने से हर प्रकार के अधिक  
 वृत्ति से उत्पन्न रोग, प्रमेह, मूदवात, कुष्ठ,  
 बवासीर, कामला, प्रीहा, पाण्डुरोग, शोथ,  
 मूत्रकृच्छ्र, अरोचक, हृद्रोग, राजयक्ष्मा, कास,  
 श्वास, गलग्रह, कृमिरोग, ग्रहणी, शीतलता  
 और अति स्थूलता ये सब रोग नष्ट होते हैं  
 तथा अग्नि की वृद्धि, स्मरणशक्ति और धारणा-  
 शक्ति की वृद्धि होती है । चूर्ण की मात्रा ४  
 मासा ॥ ६-११ ॥

स्थौल्याऽपनोदिनी पेया ।

षदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसा-  
 धिता ॥ १२ ॥

वेर की पत्तियाँ लेकर पीस लेवे, उसमें थोड़ा  
 सा चावल मिलाकर, काँजी के माथ पकाकर पेया  
 बना लेवे । इस पेया का सेवन करने से स्थूलता  
 नष्ट होती है ॥ १२ ॥

शिलाजतु प्रयोग ।

स्थौल्यजतु स्यात् साग्निमन्थरसं वापि  
 शिलाजतु ॥ १३ ॥

धरनी के रस अथवा काथ में थोड़ा सा शिला-  
 जीत मिलाकर सेवन करे । इससे स्थूलता नष्ट  
 होती है ॥ १३ ॥

अमृताद्य गुग्गुलु ।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं कलिङ्गपथ्या-  
 मलकानि गुग्गुलुम् । क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं  
 पिडकास्थौल्यभगन्दरं जयेत् ॥ १४ ॥

त्रुटिः सूक्ष्मैला वेल्लो विडंग । अत्र केचि-  
 च्छन्दो भङ्गभिया कलिपाठं कुर्वन्ति तन्मते  
 कलिर्विभीतकः । किन्तु महेश्वरपत्रिकाया-  
 मपि इन्द्रयवः इति व्याख्यातः । तस्माद्-  
 नन्तत्वाच्छन्दोमार्गाणामत्र छन्दोभङ्गदोषो  
 नाशङ्कनीय इति शिवदासः ।

गिलोय १ भाग, छोटी इलाइची २ भाग,  
 वायविडङ्ग ३ भाग, कुड़ा की छाल ४ भाग,  
 इन्द्रजौ ५ भाग, हरड ६ भाग, आँवले ७ भाग  
 और गुग्गुलु ८ भाग ; इन सब औषधों का एकत्र  
 चूर्ण बनाकर मधु के साथ सेवन करने से पिडका  
 ( फुंसी ), स्थूलता और भगन्दर रोग नष्ट होते  
 हैं । मात्रा—१ मासा ॥ १४ ॥

नवक गुग्गुलु ।

व्योपाग्नित्रिफलामुस्तथिडङ्गैर्गुग्गुलुं  
 समम् । खादन् सर्वान् जयेत् व्याधीन्  
 मेदःश्लेप्पामावानजान् ॥ १५ ॥

त्रिकटु, चीता, त्रिकला, नागरमोथा और  
 वायविडङ्ग ; इन ६ द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य को  
 समभाग लेवे । उसमें ६ भाग गुग्गुलु मिलाकर

एकत्र कूट पीसकर सेवन करे । इससे मेदा, कफ  
श्यामवातजन्य कुल रोग शान्त होते हैं । मात्रा--  
४ रत्नी ॥ १५ ॥

लौहरसायन ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खादिरं  
वृषम् । त्रिवृतालम्बुपा चैव निर्गुण्डी  
चित्रकं स्नुही ॥ १६ ॥ एषां दशपलान्  
भागान् तोये पश्चादके पचेत् । पादशेषं  
ततः कृत्वा कपायमवतारयेत् ॥ १७ ॥  
पलद्वादशकं देयं तीक्ष्णलौहस्य चूर्णितम् ।  
पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलानि च ॥  
१८ ॥ पचेत्तन्मध्ये पात्रे सुशीते चावता-  
रिते । प्रस्थार्द्धं मात्तिकं देयं शिलाजतु  
पलद्वयम् ॥ १९ ॥ एलात्वचोः पलार्द्धञ्च  
विडङ्गानि पलद्वयम् । मरिचं चाञ्जनं कृष्णा  
द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ २० ॥ पलद्व-  
यन्तु कासीसं श्लक्ष्णचूर्णकृतं युधैः ।  
चूर्णं दत्त्वाथ मथितं स्निग्धे भाएडे निधाप-  
येत् ॥ २१ ॥ ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षये-  
न्मायमात्रकम् । अनुपानं पिबेत् क्षीरं  
जाङ्गलानां रसस्तथा ॥ २२ ॥ वातरले-  
प्सहरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहज्वरापहम् । कामलां  
पाण्डुरोगञ्च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ २३ ॥  
मूर्च्छामोहविपोन्मादं गराणि विविधानि  
च । स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमोप-  
धम् ॥ २४ ॥ कर्षयेच्चातिमात्रेण कुत्ति  
पातालसन्निभम् । वल्यं रसायनं मेध्यं  
वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २५ ॥ श्रीकरं पुत्र-  
जननं वलीपलितनाशनम् । नाशनीयात्  
कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ॥ करीरं  
कारवेल्लञ्च पट्टकारादि वर्जयेत् ॥ २६ ॥

हालां पोदली में तथा दृष्या गुग्गुलु, तालमूली,

त्रिफला, खैर की लकड़ी, अरुसा की छाल, निसोय,  
भूईकदम्ब, निर्गुण्डी, चीता की जड़ और थूहर,  
प्रत्येक आध सेर लेवे। इनको ३२ सेर जल में  
पकावे, ८ सेर जल शेष रहने पर उतारकर वृक्ष  
से छान लेवे। तदनन्तर उस गुग्गुलुमिश्रित काथ  
में तीक्ष्ण लोह की भस्म १२ पल ( १८ तोला ),  
पुराना घृत १२८ तोला और शर्करा ८ पल ( ३२  
तोला ) मिलावे। परचाट्ट धीमी आँच पर तौला  
के पात्र में पकावे। पाक शेष होने पर उसमें  
शिलाजीत ८ तोला, छोटी इलायची के दाने २  
तोले, दालचीनी २ तोले, वायविद्ध ८ तोला,  
कालीमिरिच, रसौत, पीपरि और त्रिफला प्रत्येक  
८ तोला और हीराकसीस ८ तोला इनका महीन  
चूर्ण मिलाकर उतार लेवे। शीतल हो जाने पर  
उसमें ३२ तोला शर्करा मिलाकर घी के चिकने  
पात्र में रख लेवे। विरेचनादि द्वारा रोगी के  
शरीर को शुद्ध कराकर, प्रतिदिन १ मासा की  
मात्रा में लौहरसायन का सेवन करावे। अनुपान  
दुग्ध अथवा जङ्गली पशुओं का मांस रस देवे।  
इसका सेवन करने से वातरक्षैष्मिक रोग, कुष्ठ,  
प्रमेह, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, भगन्दर,  
मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद, गरदोष और स्थूलता  
आदि अनेक रोग शान्त होते हैं। स्थूलता को  
दूर करने की यह महोपध है। यद्ये हुए पेट को  
पाताल के समान नीचा कर देता है। यह बल-  
वर्धक, रसायन, मेधाजनक, श्रृंष्ट वाजीकरण,  
कान्तिकर्षक, पुत्रोत्पादिनी शक्ति का वर्धक, वली  
( कुर्णियाँ पकना ) और पलित ( बाल पकना )  
नाशक है। इस लौहरसायन का सेवन करनेवाले  
रोगी के लिये केले का कन्द, काँजी, कर्णोदा,  
करिज और करैला ये ६ ककारादि पदार्थों का  
का सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १६-२६ ॥

त्रिफलाद्य तैल ।

त्रिफलातिविषामूर्त्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।  
निम्बारम्वधपट्टग्रन्था सप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥  
२७ ॥ गुडूचीन्त्रेसुरी कृष्णा कुष्ठसर्पि-  
नागरैः । तैलमेभिः समैः पक्ं सुरसादिर-  
साप्लुतम् ॥ २८ ॥ पानाभ्यञ्जनगणदूप-

नस्पवस्तिपु योजितम् । स्थूलतादींश्च  
कण्डादीञ्जयेत् कफकृतान् गदान् ॥ २६ ॥

तिल का तेल १२८ तोला लेवे उसमें तुलसी  
और काली तुलसी का रस ६ सेर ३२ तोला  
मिलावे । तदनन्तर त्रिफला, अतीस, मूर्वा  
निसोथ, चीता का मूल, अरुसा की छाल, नीम  
की छाल, अमिलतास का गूदा, बच, सतीना  
की छाल, हरदी, दारुहरदी, गिलोय, सँभालू,  
पीपरि, कूठ, सरसों और सोंठ सम भाग इन सब  
द्रव्यों को लेकर कुल ३२ तोला कलक बनाकर  
पूर्वोक्त तैल में मिलाकर धीमी आँच पर पकावे ।  
सिद्ध होने पर छान कर रख लवे । इस तैल का  
उपयोग पीने में, भालिस करने में, गण्डूप  
( कुल्ला ) धारण में और बस्तिर्कर्म में होता है ।  
यह तैल स्थूलरोग, कण्डू आदि चर्मरोग तथा  
अन्यान्य अनेक कफजन्य रोगों को नष्ट करता  
है ॥ २७-२६ ॥

दौर्गन्ध्यहर प्रदेह ।

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसस्वे-  
दहरः प्रघर्ष । पत्राम्बुलोहाभयचन्दनानि  
शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ ३० ॥

सिरस की छाल, लामज्जक ( खसभेद ),  
भागेशर और लोध, इनके चूर्ण का देह म घिसन  
( मलने ) से चमड़ा के धिकार और पसीना का  
अधिक्राना दूर होते हैं । इसी प्रकार तेजपात,  
सुगन्धयाला, अमर, खस और चन्दन, इनको  
पानी में पीसकर लेप करने से शरीर की दुर्गन्धि  
दूर होती है ॥ ३० ॥

दौर्गन्ध्यहर लेप ।

वासादलरसो लेपात् शंखचूर्णेन सं-  
युतः । बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्य  
नाशनः ॥ ३१ ॥

अरुसा की पत्तियों के रस में अथवा बिल्व  
पत्र के रस में शंख का चूर्ण मिलाकर लेप करने  
से शरीर की दुर्गन्धता नष्ट होती है ॥ ३१ ॥

जघाकपाय ।

हरीतकी लोधमरिष्टपत्रं चूतत्वचो

दाडिमपल्कलञ्च । एषोऽङ्गरागः कथितो-  
ऽङ्गनानां जंघाकपायश्च नराधिपानाम् ३२  
जंघोद्धर्त्तनार्थकल्कः प्रायेण हि राजा-  
दीनां गज्जाहनात् जंघा विवर्णता भवति  
तत्सवर्णकरणार्थं जंघासवर्णकपाय-  
विधि ।

हरीतकी, लोध, नीम की पत्तियाँ, आम की  
छाल और अनार की छाल, इन सब औषधों  
को एकत्र पानी के साथ पीस लेवे । यह कल्क  
स्त्रियों के लिये अङ्गरागरूप है । हाथी आदि की  
सवारी करने से राजा आदि धनिक पुरुषों की  
जाघों में जो विवर्णता उत्पन्न हो जाती है, उसको  
दूर करने के लिये इस कल्क का मर्दन करना  
चाहिये ॥ ३२ ॥

हरितालयोग ।

गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं पर्णोज्ज्वलं  
गोपयसा च युक्तम् । कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं  
पयोभिः शस्तं वशीकृत् रजनीद्वयेन ३३ ॥

हरिताल को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से  
कुष्ठ रोग नष्ट होता है, दुग्ध में पीसकर लेप  
करने से काल आदि की दुर्गन्ध दूर होती है और  
गोदुग्ध में पीसकर उसमें हलदी तथा दारुहलदी  
मिलाकर सेवन करने से वशीकरण होता है  
॥ ३३ ॥

दुग्धहरिद्रा ।

चिञ्चापत्रस्वरसप्रक्षितं कक्षादियोजितं  
जयति । दुग्धहरिद्रोद्धर्त्तनमरिचादि देहस्य  
दौर्गन्ध्यम् ॥ ३४ ॥

चिञ्चापत्रेस्वरसेनादौ प्रक्षरणं कार्यं  
तदनन्तरं दुग्धहरिद्रां पिष्ट्वा उद्धर्त्तनं  
कार्यम् ।

पहिले हमली की पत्तियों के रस की शरीर  
में मालिस करके परबान् दूध में पीसी गई

हरदी की मालिश करने से देह की दुर्गन्ध दूर हो जाती है ॥ ३४ ॥

दुर्गन्धहर लेप और चूर्ण ।

दलजललघुमलयाभयविलेपो हरति देह-  
दौर्गन्ध्यम् । विमलारनालसहितं पीतमिवा-  
लम्बुपाचूर्णम् ॥ ३५ ॥

तेजपात, सुगन्धबाला, अगर श्वेत चन्दन और घस, इनको पानी के साथ पीस कर लेप करने से शरीर की दुर्गन्ध दूर होती है । गोरखमुण्डी के चूर्ण को फाँक कर निमल कांजी पीने से भी शरीर की दुर्गन्ध दूर होती है ॥ ३५ ॥

स्थौल्य में उद्धर्तन ।

शैलेयकुप्रागुरुदेवदारुकौन्तीसमुस्तान्यथ  
पञ्चपत्रैः । श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेवपुष्पं  
तथा सर्वमिदं प्रपिप्य ॥ धुस्तूरपत्रस्य रसेन  
गाढमुद्धर्तनं स्थौल्यहरम् प्रदिष्टम् ॥ ३६ ॥

छरीला, कूठ, अगर, देवदारु, रेणुका, मोथा, पञ्चपत्र ( धाम, जामुन, कैय, मागुलुन, घियव ) इनके पत्ते, चीड़, पृक्का, तुलसी, लींग, इन्हें इकट्ठा कर घातूरे के रस में पीसकर उबटना करने से मेदरोग दूर होता है ॥ ३६ ॥

द्रूपखाद्य लौह ।

द्रूपणं विजया चव्यचित्रकं विड-  
मौद्धिदेम् । वागुजीसंधवश्चैव सौवर्चलसम-  
न्वितम् ॥ ३७ ॥ अथरचूर्णेन संयुक्तं  
भक्षयेन्मधुसर्पिषा । स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं  
घलवर्णाग्निवर्द्धनम् । मेहघ्नं कुष्ठ शमनं  
सर्वग्याधिहरं परम् ॥ ३८ ॥

प्रिष्ठु ( सोंठ, मिर्च, पीपरी ), भोग, चव्य, पिप्रक, पिटलवण, उज्जिनमक, कालीजीरी, संधानमक, कालानमक, इरएक द्रव्य परापर-  
परापर खेदर धार इन संपूर्ण के परापर लोह  
भस्म मिखाकर चर्पी तरह मिश्रित कर रस से ।  
इसको मधु तथा घृत के साथ सेवन करने से

कुष्ठ, प्रमेह, तथा स्थूलता नाश होकर बल और जठराग्नि बढ़ती है । रंग निखर आता है । मात्रा २।४ रत्ती ॥ ३७-३८ ॥

विडङ्गाद्य लौह ।

विडङ्गत्रिफलास्तैः कणा नागरकेण  
च । विव्वचन्दनह्रीवेरं पाठोशीरं तथा  
बला ॥ ३९ ॥ एषां सर्वसमं लौहं जलेन  
घटिकां कुरु । घृतयोगेन कर्त्तव्या चतु-  
र्गुञ्जा मिता वटी ! ४० ॥ अनुपानं  
प्रयोक्तव्यं लौहादष्टगुणं पयः । सर्वमेह-  
हरं वल्यं कान्त्यायुर्वलवर्द्धनम् ॥ ४० ॥  
अग्निसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम् ।  
सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं  
यथा ॥ ४२ ॥ विडङ्गाद्यमिदं लौहं सर्व-  
रोगनिःसृदनम् ॥ ४३ ॥

घायविडङ्ग, त्रिफला, ( हर, धहेड़ा, आँधला ),  
मोथा, पिप्पली, सोंठ, घेलफल का गूदा, लाल  
चन्दन, गन्धबाला, पाद, घस, बलामूल, ये  
सम्पूर्ण द्रव्य एक-एक हिस्सा, लोहभस्म १३  
हिस्सा इन सबको इकट्ठा कर जल से घोटकर घी  
से गीली बनावे । मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती तक ।  
अनुपान दूध । इस औषध के सेवन करने से प्रमेह  
तथा सोमरोग दूर होता है । यह लौह अग्नि को  
बढ़ानेवाला तथा वाजीकरण है । बल, आयु तथा  
कान्तिवर्धक है ॥ ३९-४३ ॥

घट्टयाग्नि लौह ।

सूतभस्मसतालश्च लौहं ताम्रं समं  
समम् । मर्दयेत्सूर्यपत्रेण चास्य घल्लं  
प्रयोजयेत् ॥ ४४ ॥ मधुना स्थूलरोगे च  
शोधे शूले तथैव च । मध्वाज्यनुपानश्च  
देयं वापि कफोन्पणे ॥ ४५ ॥

रससिन्दूर, इडगाव, लोहभस्म, ताम्रभस्म,  
इन संपूर्ण द्रव्यों को बराबर खेदर मिखा के

और मदार के मत्तों के रस से घोटकर गोली बना ले, मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक, अनुपान शहद मेदरोग में कफज शोथ तथा शूल में शहद व धी के साथ ॥ ४४-४५ ॥

वडवाग्नि रस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं ताम्रं तालं समं समम् । अर्कचौरैर्दिनं मूर्धं चौद्रैर्लेहं द्विशुक्लकम् ॥ ४६ ॥ वडवाग्निरसो तास्ना स्थौल्यमाशु नियच्छति ॥ ४७ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, हरिताल, इन्ह परावर परावर मिलाकर मदार के दूध से गाली बना ले । मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक । अनुपान, शहद । ये गोलीयाँ स्थूलतानाशक है ॥ ४६ ४७ ॥

महासुगन्धित तैल ।

चन्दनं कुडकुमोशीरभियङ्गुतुटि-  
रोचनाः । तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरं जाति-  
पत्रिका ॥ ४८ ॥ जातिककोलपूगानां  
सप्तस्य फलानि च । नलिका नलदं  
कुष्ठं हरेणुतगरं सप्तम् ॥ ४९ ॥ नखं  
व्याघ्रनखंस्पृका मोलं दमनकम्पुरा । स्थौले-  
यकं चोरकश्च शैलेयं शैलमालुकम् ॥ ५० ॥  
सरलं सप्तपर्णश्च लाक्षातामलकौ तथा ।  
लाजमकं पन्नकश्च धातक्याः कुसुमानि  
च ॥ ५१ ॥ प्रपौण्डरीकं कर्चूरं—समांशैः  
शाणमात्रकैः । महासुगन्धमित्येतत् तैल  
मस्थेन साधयेत् ॥ ५२ ॥ मस्त्रेदमल-  
दौर्गन्धकण्डुकुष्ठं हरं परम् । अनेनाभ्यङ्ग-  
गात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥ ५३ ॥  
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्त-  
पुल्लभः । सुभगो दर्शनीयश्च मच्छ्रेच  
ममदाशितम् ॥ ५४ ॥ वन्ध्यापि लभते

गर्भपण्डोऽपि पुरुषायते । अपुत्रः पुत्रमा-  
प्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ५५ ॥

तिल का तेल २ प्रस्थ ( १२८ तोला )

ब्रह्म के लिए लाल चन्दन, केसर, लस, त्रियगु, छोटी इलाइची, मोरोवन, शिलारस, अमर, कस्तूरी, कर्पूर, जाचिरो, जायफल, सुदचीनी, सुपारी, लौंग, नलिका, जगमासी कूठ, रेणुका, तगर, केवर्ग, मोथा, नीती, व्याघ्रनख, स्पृका, बोल, दमनक, मुरमासी, स्थौलेयक, (युनेर), चोरक, शैलवरीला, एलवालुक, चौद्र, कौण्ड, धाय क फूल, पुण्डरीक काष्ठ, कर्चूर, सप्तपर्ण, की छाल, लाक्षा, शौथला, उशीरभेद, पंजाल, उपरोक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को परापर परापर एक-एक, शाण ( ६ मासे ) लेना चाहिए और इनसे विधि के अनुसार तैल सिद्ध करे । इस महाने सुगन्धित तैल के प्रयोग से पसीना, मलिनता, दुर्गन्धि, खुजली एवं कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं । इस तैल के अभ्यग से वृद्ध पुरुष भी तरुणता को प्राप्त करता है । पुरुष वीर्यवान् होकर स्त्रियों का प्रिय बन जाता है तथा भाग्यवान् और सुन्दर रूपवाला बन जाता है । सौ स्त्रियों से भोग करने की शक्ति उत्पन्न होती है । इस तैल के संयन करने से बर्भक स्त्रियाँ गर्भवती होती हैं । मपुसक पुरुषत्व को प्राप्त करता है । पुत्रहीन पुत्र प्राप्ता है और १०० वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ ४८-५५ ॥

स्थौल्यं मे पथ्य ।

पुराणशालयो मुद्रकुलत्थयवकोद्रवोः ।  
लेसना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना  
सिदा ॥ ५६ ॥

स्थौल्यरोगपाले पुरुष को चाहिए कि पुराने शालि पावल, मूँग, कुलधी जौ तथा कोदी आदि का आहार रक्के तथा खेलनवस्तिर्यों का हमेशा उपयोग करता रहे ॥ ५६ ॥

अन्यच्च—

चिन्ताश्रमोजागरणं ध्येवायं मोदस्ति

लंघनमातपञ्च । हस्त्यश्वयानं भ्रमणं  
विरेकः प्रच्छर्दनं चाप्यथ तर्पणं च ॥  
५७ पुरातना वैखणकोरदूपश्यामाकनीवार-  
प्रियंगुजूर्णाः । यवाः कुलत्थाश्चणकामसूरा  
मुद्गास्तुवर्षश्च मधूनि लाजाः ॥ ५८ ॥  
कटूनि तिक्तानि कषायकानि तक्रं सुराचि-  
गलमत्स्य एव । दग्धानि वार्ताकफलानि  
चापि फलत्रयं गुग्गुलुरायसं च ॥ ५९ ॥  
शिरीषलोधुद्रहरीतकीनां चूर्णेन गात्रस्य  
विलेपनं च । कटुत्रयं सर्पपतैलमेल-  
रुक्ताणि सर्वाणि च मुख्यतैले ॥ ६० ॥  
पत्रोत्थशाकागुरुलेपनानि प्रतप्तनीराणि  
शिलाजतुनिपतानि सर्वाणि निपेवितानि  
मेदोगदं सत्त्वरमुत्क्षिपन्ति ॥ ६१ ॥

चिन्ता, परिश्रम, जागना, मैयुन, उघटना,  
लंघन, धूप में घूमना, हाथी घोड़े की सवारी,  
घूमना ( मार्ग चलना ), घमन, विरेचन, अपत-  
र्पण, पुराने चांस के घावल, कोदों, समा, पसाई,  
नीवार, प्रियगु, उवार, जी, कुलथी, चना, मसूर,  
मूँग, अरहर की दाल, शहद, खील, कड़वे,  
घरपरे, कवैले पदार्थ, छाद्य, मद्य, विगल जाति  
की मछली, बैंगन का अुरता, हरद, पहेवा,  
आपला, गुगल, लोहभस्म और सिसं, लोष,  
हरद के चूर्ण की मालिश, सोंठ, मिर्च, पीपल,  
सरसों का तैल ( माक्षिश ), इलायची, सम्पूर्ण  
रूले पदार्थ, तिक्क का तैल ( माक्षिश ), पत्तों  
के साग, अगार का खेप, गरम जल, शिलाजीत  
इन सम्पूर्ण पदार्थों का सेवन स्थूलतानाशक  
है ॥ २०-६१ ॥

अपघ्न्यानि ।

स्नानं रसायनं शालीन् गोधूमान्  
सुखशीलताम् । क्षीरेक्षुषिकनीमोपान्  
सौहित्यं स्नेहनानि च ॥ ६२ ॥ मत्स्यं मांसं  
दिया निद्रां सगन्धान् मधुराणि च ।

समभावत्वमन्विच्छन् मेदस्वी, परिवर्ज-  
येत् ॥ ६३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मेदरोगाधिकारः  
समाप्तः ॥

स्थूल पुरुष को रोग के, निवारणार्थं निम्नां-  
कित वार्ता को त्यागना चाहिए । जैसे, उघड़े  
पानी से स्नान, रसायन, नया घावल, गेहूँ,  
दिन भर पड़े रहना, दूध, मछली, मांस, दिन में  
सोना, भालादि पहरना, इत्रादि वस्तुओं का  
लगाना, मोठा आदि वस्तुओं को छोड़ दे ॥  
६२-६३ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्ना  
वल्या रत्नप्रभाष्यायां व्याख्यायां मेदरोग-  
चिकित्सा समाप्तः ॥

आमाशयरोगाधिकारः ।

आमाशयिक रोगों के लक्षण ।

आमाशये बहुविधा हेतुभिर्बहुभिर्नृ-  
णाम् । बहुलक्षणसम्पन्ना जायन्ते वहवो  
गदाः ॥ १ ॥ सामान्यं लक्षणं तेषां  
वहेर्बलपरिचयः । प्रायश्चोतक्लेशवमने  
दौर्बल्यं सदनं भ्रमः ॥ २ ॥ शूलदाहौ  
विवर्णत्वं कृशत्वञ्च ज्वरोऽरुचिः । इन्द्रि-  
याणाञ्चशैथिल्यं मवेन्मूर्च्छा च दारुणा ॥

आमाशय में अनेक कारणों से भिन्न-भिन्न  
लक्षणवाले बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।  
आमाशय के हर प्रकार के रोगों में अग्नि मन्द  
पद जाती है । इसी प्रकार प्रायः उबकाई का  
घाना, बमन होना, दुर्बलता, देह में पीड़ा, भ्रम,  
शूल, दाह, विवर्णता, इच्छता, उष्ण, अरुचि,  
इन्द्रियों की शिथिलता और दारुण मूर्च्छा  
एक लक्षण उपरिपत होते हैं ॥ १-३ ॥



उनकी चिकित्सा ।

आमाशयिकरोगेषु हेतुदोषानुसारतः ।  
विदग्ध्यादीपनं वद्धेः पाचनं चानुलोमनम् ५

आमाशय के रोगों में निदान और दोषों का विचार करके अग्नि को दीप्त करनेवाले, पाचक और वायु के अनुलोमन करनेवाले औषधों का प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

पिप्पल्यादिकवाथ ।

पिप्पली शारिवा श्यामा अभयामलकं  
शटी । काथमेपां पिबेत् प्रातः सत्तौद्रश्च  
सशर्करम् ॥ ५ ॥ आमाशयभवान् रोगा-  
नग्नेर्मान्द्ये बलक्षयम् । शूलारोचकहृत्सा-  
सान् क्षपयत्येष निश्चितम् ॥ ६ ॥

पीपरि, अनन्तमूल, श्यामालता, हरीतकी, शौवला और कचूर ; इनके काथ में मधु और चीनी मिलाकर पीने से सब प्रकार के आमाशय के रोग, अग्निमान्द्य, दुर्बलता, शूल, अरुचि और वमनवेग आदि निःसदेह नष्ट हो जाते हैं ॥ ५-६ ॥

अमृतार्णव

अमृतं रसगन्धौ च लोहमथ्रं समां-  
शकम् । भावयेद् वह्निरीरेण सप्तकृतः  
पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥ गुञ्जैकप्रमितं खादेद्  
यथा दोषानुपानतः । ( आमाशयिकरोगेषु  
ज्वरेषु विषमेषु च ) ॥ ८ ॥

विष पारा, गन्धक, लोहभस्म, और धम्रकभस्म ; इन सब औषधों को समभाग लेकर चीता के रस में ७ बार भावना देकर खरल करके एक-एक रत्नी की गोलियाँ बना लेवे । दोषानुकूल अनुपान के साथ सेवन करने से आमाशय के रोग और सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं ॥ ७-८ ॥

त्रिपुरसुन्दर रस ।

सिन्दूरमथ्रं त्वथ हेममाक्षिकं मुक्ताफलं

हेम च तुल्यभागिकम् । कन्याम्बुना मर्दय  
सप्तवासरं गुंजाप्रमाणां वटिकां विधेहि  
च ॥ ९ ॥ रसोत्तमस्यास्य निषेवणान्तरं  
आमाशयोत्थामरोगसंगतः । गत्वा  
विमुक्तिं बलवीर्यसंयुतो मेधान्वितः सौम्य-  
वपुश्च जायते ॥ १० ॥

रससिन्दूर, धम्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक, मुक्ता और स्वर्ण प्रत्येक द्रव्य को सम भाग लेकर घृतकुमारी के रस में ७ दिन पर्यन्त घोटकर एक-एक रत्नी की गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से मनुष्य आमाशयोत्पन्न सब प्रकार के रोगों से मुक्त होकर, बल वीर्यसम्पन्न, मेधावी और कान्तिमान् होता है ॥ ९-१० ॥

आमाशयिकरोग में पथ्यापथ्य ।

अन्नपानादिकं सर्वं सुपचं यथ  
पोषणम् । आमाशयगदे सेच्यं दुर्जरश्च  
विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामाशाशयरोगा-

धिकारः समाप्तः ॥

आमाशय के रोगों में उन्हीं सब अन्न पानादिकों का सेवन करना चाहिये, जो सुपाच्य और पुष्टिकारक हों । तथा गुण्याक धम्र-पानादि सर्वदा त्याग देने चाहिये ॥ ११ ॥

इति सरपूपसादत्रिपाठिविरचितार्णव भैषज्यरत्ना-  
वदया रसप्रभाषयायां व्याख्यायामाशाशय-  
रोगाधिकार समाप्तः ॥

छद्दिरोगाधिकारः

यमन की सामान्य चिकित्सा ।

आमाशयोत्प्लेशमवाहि सर्वाश्वधो  
मतालह्वनमेव तस्मात् । प्राक् कारयेत्  
मारतजां विमुच्य संशोधनं वा कफपित्त-  
हारि ॥ १ ॥

१. अत्र लह्वनमल्पदोषविषयं संशोधनं बहुदोषाविषयमिति व्यवस्था । संशोधनमत्र विरेचनम् ।

॥१॥ आमाशय की विकृति चुब्ध से ही सब प्रकार के घमन रोग उत्पन्न होते हैं, अतएव यदि दोषों की प्रचलता न हो तो घमनरोग में पहिले लह्वन कराना चाहिये । दोषों की प्रचलता हो तो पहिले कफपित्तनाशक विरेचन का प्रयोग करे । किन्तु वातजन्य घमनरोग में विरेचन तथा लह्वन कराना निषिद्ध है ॥१॥

॥२॥ छुर्दिनाशकमुष्ययोग ।

॥३॥ चन्द्रेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम् । पिवेत् मात्तिकसयुक्तं छुर्दिस्तेन निवर्त्तते ॥२॥

चन्दनमत्र श्वेतमिति भानुदास । चन्द्रेनकर्पाक्षतुर्गुणामामलकीरसम् ।

श्वेत चन्दन १ तोला और शौबला का रस १ तोला; इनको एकत्र मिलाकर, उसमें थोड़ा शहद मिलाकर सेवन करने से घमनरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

क्वथः पर्यटजः पीतः सत्तौद्रश्छुर्दिनाशनः ॥ ३ ॥

पित्तपापका के क्वाथ में थोड़ा शहद मिलाकर पीने से घमनरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

हरीतकीनां चूर्णं तु लिङ्घान्मात्तिकरसंयुतम् । अधोभागीरुनेदोषेक्षिप्तं वान्तिनिवर्त्तते ॥ ४ ॥

मधु के साथ हरीतकी के चूर्ण का सेवन करने से दोष के अधोगत हो जाने पर घमनरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

१ यह मत भी है कि पित्तहारी संशोधन (विरेचन) कफहारी संशोधन अर्थात् घमन कराना चाहिये । मुषुत में कफ है 'वर्दिषु चट्टदापामु घमन हितमुषयो अर्थात् चट्टदाप प्रपान घमन में क्वापिधरतीतकारी घमन ही हितकारक है ।

। छुर्दिहर कपाय ।

कपायो भृष्टपुद्गस्य सलाजमधुशर्करः छुर्द्यतीसारत्तुद्धाहज्वरन्मः संपकीशित ॥

मुनी हुई मूत्र जल में पकाकर उसमें घान के लावा का चूर्ण मिलावे । तदनन्तर थोड़ा शहद और थोड़ी मिथी मिलाकर पान करे । इससे घमन, अतिसार, प्यास, दाह और ज्वररोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

॥ जातीघर्षा ।

जातीरसः कर्पित्यस्यः पिप्पलीमिरिचान्वितः । चौष्ट्रेण युक्तः शमयेत्तदोष्यं छुर्दिमुल्बणाम् ॥ ६ ॥

॥ अत्र जाती आर्मलकी

१ आँवले का रस १ तोला और कैय का रस १/२ तोला, थोड़ा थोड़ा पीपरी का चूर्ण, मिर्च का चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करने से तीव्र घमनरोग शान्त होता है ॥ ६ ॥

अवलहप्रय ।

लाजाकपित्थमधुमागधिकोपणाना चौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम् । पथ्यामृत्तामरिचमात्तिकपिप्पलीनां, लेहास्त्रयः सफलवम्यकचिमशान्त्यै ॥ ७ ॥

घान की लीज, कैय, मधु, पीपरी और मरिच । मधु हरीतकी, सोंठ मिर्च, पीपरी, धनिया और जीरा । हरीतकी, मिलाव, मरिच मधु और पीपरी इन तीन प्रकार के अयलेहों का सेवन करने से सब प्रकार के घमन और अरोगरोग शान्त होने हैं ॥ ७ ॥

पलादिचूर्णं ।

पलालनङ्गजरेशान्कोल मज्जलान्त्रियदग्गुवनन्दनपिप्पलीनाम् । चूर्णांनिमात्तिकगित्ताराहितानि लोद्वाद्धि निरन्तिकापमारुपिचजाश ॥ ८ ॥

। छोटी इलायची, लींग, नागकेशर, बेर की गुडली, धान की खील, प्रियंगु, नागरमोथा, लालचन्दन और पीपरि, मम भाग इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बना लेवे। इस चूर्ण को मधु और चीनी में मिलाकर चाटन से कफज वातज और पित्तज वमनरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

। अश्वत्थवलकलं शुष्कं दग्ध्या निर्वापितं जले ॥ तज्जलं पानमात्रेण छदिमाशु व्यपीडति ॥ ९ ॥

अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की सूखी छाल को जलाकर किसी पात्र में रखवे हुए जल में डुबाकर बुका देवे। तदनन्तर उस जल को छानकर पीने से शीघ्र ही वमन रोग शान्त हो जाता है ॥ ९ ॥

। वान्तिहृद्रसः ।

। अयः शङ्खवलीसूतं, खल्वेतुल्यं विमर्दितम् । कन्या कनक चाङ्गेरी रसैर्गोलं विधीयताम् ॥ १० ॥ सप्त मृत्कपर्देलिप्ट्वा पुटितौ वान्तिहृद्रसः । द्विवल्लः कृमि रोगेऽपि साजमोदः सवेल्लकः ॥ ११ ॥ प्रांति हारेण मुनिना प्रोक्तोऽयमधुनायुतः पिप्पलक्षार पानीयं पाययेद्वान्ति हृद्रसः ॥ १२ ॥

। छोड़ और शङ्खमर्म, शुद्धगन्धक और पारा समान भाग लेकर कज्जली कर चीकमार, धतूरा और भग्लोनियाँ के रसों से ११ दिन घोटकर गोला बनाकर शराय सगुट में बन्द कर ६७ कपड़ मिट्टी देकर सूतने पर लघुपुट की आँच द ठंडा होने पर निकाल कर रख देवे, इसम से ६६ रत्ती की मात्रा अजमोद और विद्रु के साथ मिलाकर मधु के साथ चाटन से सय तरह की उखटी भिद जाती है। तथा लगने पर पीपल की रास का पानी पिलावे। २३ रत्ती पर्याप्त है ॥ १० १२ ॥

रवेन्द्र ।

। अजाजीधान्यकृष्णाभिः सत्तौद्राभिः कटुत्रिकैः । एभिः सार्द्धं भस्मसूतः सेव्यो वान्तिप्रशान्तये ॥ १३ ॥

जीरा, धनिया, पीपरि मधु त्रिन्दु और रससिन्दूर सम भाग इन सब औषधों को लेकर खरल करके रख लेवे। इसका सेवन करने से वमनरोग शान्त होता है। मात्रा-रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ १३ ॥

वृषध्वज रसः ।

। शुद्ध रसं गन्धकश्च लौहमेव समांशिकम् । मधुकं चन्दनं धात्री मूत्रमैला सलवङ्गकम् ॥ १४ ॥ टङ्गणं पिप्पली मांसी तुल्यं पारदसम्मितम् । विदारी-क्षुरसाभ्याञ्च भावयेद्दिनसप्तकम् ॥ १५ ॥ संशोष्य मर्दयेद्यामं आगीदुग्धेन यत्नतः । द्विगुञ्जं भक्तयेन्नित्यं विदारीरससंयुतम् ॥ १६ ॥ वातात्मिका पिचयुतां छदिं हन्ति सशोणिताम् । वृषध्वजरसो नाम वृषध्वजेन निर्मितः ॥ १७ ॥

। पारा, गन्धक, लौहमर्म, मुलहठी, जाल चन्दन आँवला, छोटी इलायची, लींग, सुहागा, पीपल, जटामासा, प्रत्येक थराथर लेकर इन्हे इकट्ठा कर विदारीकन्द के रस तथा इक्षुरस से थलग थलग सातरोज भासना ठेकर सुखा ले। इसके बाद थकरी के दूध से ३ घण्टे तक घोटें और २ रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। अनुपान विदारीकन्द का रस (विदारीक द का अर्थ यहाँ पर शालिपर्णी लगावे)। इस रस के सेवन करने से घातन, पित्तन तथा मूत्रपाली छदि दूर होती है ॥ १४ १५ ॥

छदिंरोग में पथ्य ।

। निरेचनच्छर्दनलङ्घनानि स्नानं मृगालाजकृतञ्च मण्डः । पुगतना पष्टिक-

शालिमुद्गकलायगोधूमयवा मधूनि ॥  
 १८ ॥ शशाहिभुक्तिचिरिलावकाधा  
 मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञिताश्च । मनोज्ञ-  
 नानारसगन्धरूपा रसाश्च यूषा अपि  
 पाडवाश्च ॥ १९ ॥ हरीतकीदाडिमवीज-  
 पूरं जातीफलं बालकनिम्बवासा । सिता  
 शताहा करिकेशराणि गव्या मनःप्रीत-  
 करा हिताश्च ॥ २० ॥ रागाः खडाः  
 काम्बलिकाः सुरा च वेताग्रकुस्तुम्बुरुना-  
 रिकेलम् । जम्बीरधात्रीसहकारकोलद्राक्षा-  
 कपित्थानि पचेलिमानि ॥ २१ ॥ भुक्तस्य  
 वक्त्रे शिशिराम्बुसेकः कस्तूरिका चन्दन-  
 मिन्दुपादाः । मनोज्ञगन्धान्यनुलेपनानि  
 पुष्पाणि पत्राणि फलानि चापि ॥ २२ ॥  
 रूपाणि शब्दाश्च रसाश्च गन्धाः स्पर्शाश्च  
 ये, यस्य मनोज्ञानुकूलाः । दाहश्च नाभे-  
 त्तियवोपरिष्ठादिदं हि पथ्यं वमनातु-  
 रेणु ॥ २३ ॥

धिरचन, वमन, लहान, स्नान, शरीरशुद्धि,  
 लाजमयङ्ग, पुराने साँठी के चावल, शालि, मूँग,  
 मटर, गोहूँ, जी, गहद, शशक, मोर, तीतर,  
 लाव आदि जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस, मन,  
 के लुभानेवाले अनेक प्रकार के रस, गन्ध एवं  
 रूप, मांसरस, मुद्ग आदि के यूष, पाडव,  
 हरद, धनार, धिजौरा, जायफल, बाला, नीम,  
 अदमा, खांड, सोया, नागकेशर, तथा अन्य  
 स्वादिष्ट तथा हित करनेवाले पदार्थ, राग-खड,  
 काम्बलिक, ( फल तिलवृत्र राहा संपान  
 द्रव्य ) सुरा, वेताग्र, धनिर्वा, नारियल,  
 जम्बीर, चापला, आम, बेर, भंगूर, कैप, माप,  
 भोजन के बाद शीतल जल से मुँह धोना,  
 फली, चन्दन, चाँदनी, सुन्दर मुगन्ध, अनु-  
 क्षेपन, पुष्प, पत्र, पल, प्रियरस, शब्द, रस,  
 गन्ध इत्यों तथा नाभि में नीम जी उपर दाह ।

उपर्युक्त सम्पूर्ण वातें वमनरोगियों के लिए पथ्य  
 हैं ॥ १८-२३ ॥

अपथ्य ।

नस्यं वस्ति स्वेदनं स्नेहपानं रक्तस्रावं  
 दन्तकाष्ठं द्रवानम् । वीभत्सेक्षां भीतमुद्गे-  
 मुष्णं सिग्धासात्स्यहृद्यवैरोधिकानम् ।  
 २४ ॥ शिम्बी चिम्बी कोपवत्यो मधूकं  
 चित्रामेलां सर्पपान् देवदालीम् । व्यायां-  
 मश्च छत्रिकामञ्जनश्च छर्द्या सत्यां वर्जयेद-  
 प्रमत्तः ॥ २५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां छर्दिरोगा-  
 धिकारः समाप्तः ॥

नस्य, वस्ति, स्वेद, स्नेहपान, रक्तस्राव, दातून,  
 करना, पतले भोजन, ब्राधनी चीजों का देखना  
 अपथ्य वा डर, उद्देग, गरम भोजन, गर्मी, अप्रयन्त  
 चिकने, नामाधिक, अप्रिय तथा विरोधी भोजन,  
 छत्राक आदि खाना, सुरमा आदि लगाना इनका  
 वमनरोग में त्याग करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

इति सरयूमसादृशिपाठिविरचित्वायां भैषज्य-  
 रत्नावल्या रत्नप्रभाषयायां व्याख्यायां  
 छर्दिरोगाधिकारः समाप्तः ॥

## दाहरोगाधिकारः ।

दाह की सामान्य चिकित्सा ।

यत् पित्तज्वरदाहोक्तं दाहे तत् सर्व-  
 मित्यते ॥ १ ॥

पित्तज्वरजस्य दाह में जो-जो चिकित्साएँ कही  
 गई हैं, माधारण दाहरोग में उन्हीं सब चिकि-  
 त्साओं का प्रयोग करना चाहिए ॥ १ ॥

दाहरोग में उपचार ।

चंदनाम्बुक्रुणस्यन्दितालवृन्तोपवीजितः ।  
 सुप्याशाहादिसौग्भोजनरुदलीदलसंस्तरे २

चन्दन घिसकर जल में घोल देवे, तदनन्तर उसी जल से ताव की पट्टी को भिगो करके हवा करे । तथा कमल अथवा कैला की पत्तियों पर शयन करावे । इन क्रियाओं से दाहरोग में शान्ति होती है ॥ २ ॥

शिशिरजल ।

परिपेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने ।  
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णदाहोपशा-  
न्तये ॥ ३ ॥

शरीर पर छिड़कने (अथवा मुख और हाथ आदि धोने) के लिये, स्नान करने के लिये और पंखी को गीला करने के लिये शीतल जल का उपयोग करने में तृष्णा और दाह की शान्ति होती है ॥ ३ ॥

फलिन्यादि प्रलेप ।

फलनीलोध्रसेव्याम्युहेमपत्रकुटञ्जम् ।  
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेप-  
नम् ॥ ४ ॥

भ्रियंगु, लोध, खस, सुगन्धबाला, नागकेसर तेजपात और नागरमोथा ; इनको महीन पीसकर कालीयक (चन्दन विशेष) के साथ में मिलाकर लेप करने से दाहरोग शांत होता है ॥ ४ ॥

नान्दीस्नान ।

हीमेरपत्रकोशीरचन्दन चोदवारिणा ।  
सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहादितोनरः ५ ॥

सुगन्धबाला, पद्माल, खस और चन्दन के पूर्ण से मुत्र जल को एक नाँद (टब) में भर देवे । तदनन्तर उसमें स्नान कराने से दाहरोग मट्ट होता है ॥ ५ ॥

छाद्येत्तस्य सर्वाङ्गभारनालार्द्रवाससा ।  
लामज्जकेन शुक्लेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥  
सर्पिषा शतधातेन लेपादाहः प्रशा-  
म्यति ॥ ६ ॥

बाँजी से भीगे हुए धस द्वारा रोगी के शरीर को ढकने से दाहरोग शान्त होता है या सौ

चार के धोये हुए घी का लेप करने से दाह शान्त होता है । अथवा खस तथा चन्दन को मुत्र में मिलाकर लेप करने से दाहरोग शान्त होता है ॥ ६ ॥

चन्दनादि षवाथ ।

पटीरपर्पटोशीरनीरनीरदनीरजैः । मृणा-  
लमिसधन्याकपत्रकामलकैः कृतः ॥ ७ ॥  
अर्धशिष्टः शृतः शीतः पीतः क्षौद्र-  
समन्वित । काथो व्यपोहयेदाहं तृष्णाञ्च-  
परमोल्बणम् ॥ ८ ॥

चन्दन, पित्तपापदा, खस, गन्धबाला, मोथा, कमल की जड़, कमल की दण्डी, सौंफ, धनियाँ, पद्माल, छाँवला सम्पूर्ण मिलाकर २ तोला लेना चाहिए । इसके बाद इनको ३२ तोले जल में पकाना चाहिये । जब १६ तोले शेष रह जावे तो उतार ले । इस काढ़े में शहद मिलाकर पीने से दाहरोग शान्त होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

दाहान्तक रस ।

सूतात् पञ्च कितरचैकं कृत्वा पिएडं  
सुशोभनम् । जम्बीरस्परसैर्मर्द्यं सूततुल्यञ्च  
गन्धकम् ॥ ९ ॥ नागवल्लीदलैः पिप्प्ला  
ताम्रपर्पं प्रलेपयेत् । प्रफुटेद् भूधरे यन्त्रे  
यावद् भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ १० ॥ गुञ्जार्ध-  
मार्द्रकद्रावैरज्यूपणेन च योजयेत् ।  
निहन्ति दाहसन्तापं मूर्च्छां पित्तसमुद्भ-  
वाम् ॥ ११ ॥

पारा २ भाग, ताँथा १ भाग, इन्ह पारा तथा गंधक की कज्जली करके जम्बीरी क रस या पान के रस से घोटकर ताम्रमरम पर प्रलेप करे । तत्परचाए भूधरयन्त्र द्वारा जब तक पाक करे कि सम्पूर्ण भस्म हो जावे । मात्रा ६ रसी से ३ रसी तक । अनुपान-घदरस का रस तथा त्रिकटु का पूर्ण । यह रस पित्त से उत्पन्न मूर्च्छा तथा दाह को शान्त करनेवाला है । ताम्रमरम भी परीक्षा कर ले कि निहाय हो गई है अथवा काम

सुधाकर रस ।

सिन्दूराभ्रहेमानि मौक्तिकं त्रिफला-  
म्भसा । शतपुत्रीरसेनापि मर्दयेत् सप्त-  
सप्तधा ॥ १२ ॥ ततो रक्तिमितां कुर्याद्  
वटीं छायाप्रशोपिताम् । एकैकां योज-  
येत्तान्तु यथादोषानुपानत ॥ १३ ॥ रस-  
सुधाकरः सोऽयं हन्ति दाहं महाबलम् ।  
प्रमेहानपि वातास्रं बलशुक्रकरः परः ॥ १४ ॥

रससिन्दूर, अश्रकभस्म, सुवर्णभस्म, मुक्ता-  
भस्म, इनको त्रिफला ( हर, बहेड़ा, आंवला )  
तथा शतावर के रस से अलग अलग सात बार  
भावना देकर ३ रत्ती से १ रत्ती प्रमाण की गोली  
बना ले । इसमें दोषानुसार अनुपान की व्यवस्था  
करनी चाहिए । इस रस के सेवन करने से दाह,  
प्रमेह, वातरज आदि रोगों को शान्त करता है  
तथा बल वीर्यवर्धक है ॥ १२ १३ ॥

दाह में पथ्य ।

शालयः पट्टिका मुद्गा मसूराश्चणका  
यवाः । धन्वमांसरसा लाजमण्डस्तस-  
क्त्वः सिता ॥ १५ ॥ शतघृतं घृतं दुग्धं  
नवनीतं पयोभनम् । कूप्माण्डं कर्कटीं  
मोचं पनसं स्नादुदाडिमम् ॥ १६ ॥  
धारावेश्म तथा सुशीतलशशीज्योत्सना  
तु पानानि च वातः शीतलचन्दनं  
च कमलं प्रेमानुग्धस्तथा । रामा  
गूहनमर्दनं स्तनयुगे शुक्लाद्रवस्त्याणि च ।  
क्षीरं शर्कराशंखलोहरजतं दाहप्रशान्त्यै-  
हितम् ॥ १७ ॥

शालि, पटिक, मूँग, मसूर, चने, जौ, जगजी  
पणु, पधियों के मास का रस लाजमण्ड, लाजा  
क सप्त, खाइ, शतघृत घृा, दूध, दूध से निकला  
मन्तान, पेठा, कड़वा, बेला, कटहल, मीठा शरकर,  
धारागूह, चाँद की शीतल चांदनी, शरकर  
शीतलवायु, चन्दन का क्षेपन, कमल, प्रेम, प्रिया-

लिङ्गन, प्रियास्तनमर्दन, गीले बख, दूध, खाइ,  
शखभस्म, लोहभस्म, सोदीभस्म । ये सम्पूर्ण  
उपर्युक्त द्रव्य दाह शान्त के लिए लाभकारी  
है ॥ १५-१७ ॥

अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि क्रोधं वेगाभि-  
धारणम् । गजाश्वयानमध्वानं चारं  
पित्तकराणि च ॥ १८ ॥ व्यायाममातपं  
तक्रं ताम्बूलं मधु रामठम् । व्यवयं कटु-  
तीक्ष्णोष्णं दाहवान् परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां दाहरोगा-

धिकारः समाप्त ॥

विरुद्ध भोजन, क्रोध, मल-मूत्रादि वेगों का  
रोकना, हाथी घोड़े की सवारी, अधिक चलना,  
चार पित्त के अग्निवाले आहार, बिहार, व्या-  
याम, धूप में घूमना, मठा पीना, शहद, हींग,  
मैथुन, कटु, तीखे, गरम भोजन, इत सबका  
स्वाग करना दाहरोगी को हितकर है ॥ १८-१९ ॥  
इति मरुप्रसादत्रिपादिविरचिताया भैषज्यरत्ना-  
वल्या रसप्रभाषया व्याख्याया दाहरोगा-  
धिकार समाप्त ।

तृष्णारोगाधिकारः ।

घातिक तृष्णा की चिकित्सा ।

तृष्णायां पनोत्थायां सगुडं दधि  
शस्यते । रसाश्च वृंहणा शीता गुद्द्या  
रस एव वा ॥ १ ॥

घातजय तृष्णारोग में गुग्गुलु दही घृष्टिकारक  
तथा शीतल रस और गिलोय का स्वरस ; इनमें  
से किसी का प्रयोग करना लाभदायक होता  
है ॥ १ ॥

पित्तज तृष्णा की चिकित्सा ।

पित्तजायान्तु तृष्णार्यां पकोदुम्बरजो

रसः । तत् काथो वा हिमस्तद्वच्छारि-  
वादिगणाम्बु वा ॥ २ ॥

पित्तजन्य तृष्णारोग में पकी हुई गूलर के रस  
अथवा काथ का सेवन कराना, अथवा शारिवादि-  
गण का काथ पिलाना चाहिए ॥ २ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविम-  
दितम् । काशमरीशर्करायुक्तं पिबेत् तृष्णा-  
दितो नरः ॥ ३ ॥

आध पाच धान के लावा (खील) को १ सेर  
उष्ण जल में रात को भिगो दवे, प्रातः काल  
छानकर उसमें शहद ८ मासे, गुड़ ८ मासे,  
खंभारी के फल का चूर्ण ८ मासे और मिश्री ८  
मासे इनको भिलाकर पान करे । इससे तृष्णा-  
रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

कफज तृष्णाकी चिकित्सा ।

वित्वाढकीधातकिपञ्चकोलदर्भेषु सिद्धं  
कफजां निहन्ति । हितं भवेच्छर्दभमेन  
चात्र तप्तेन निम्बमसवोदकेन ॥ ४ ॥

बलगिरी, अरहर की जड़ ( अभाव में पत्ते ),  
धाय के फूट, पीपरि, पिपरामूल, चन्प, चीता,  
सोंठ और कुश की जड़, इन औषधों का काथ  
पिलाने से कफजन्य पिपासा दूर होती है । कफ-  
जन्य पिपासारोग में नीम की पत्तियों का उष्ण  
काथ पिलाकर वमन कराना भी लाभदायक  
होता है ॥ ४ ॥

क्षतजन्य और क्षयजन्य तृष्णाकी चिकित्सा ।

क्षतोत्थितां रुग्निनिवारणेन जयेद्रसा-  
नामसृजश्च पानैः । क्षयोत्थितां क्षीर-  
जलं निहन्त्यात् मांमोदकं वाथ मधूदकं  
वा ॥ ५ ॥

क्षत ( अक्षम ) जन्य तृष्णारोग में क्षतनाशक  
औषधों का प्रयोग, मांस रस अथवा क्षीर का  
पान करना लाभदायक होता है । क्षयरोगजन्य  
तृष्णा में दुग्धमिश्रित जल, मांसरस अथवा  
मधुमिश्रित जल पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

गुर्वन्नजा तृष्णा की चिकित्सा ।

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेत् क्षयाद्दते सर्व-  
कृताश्च तृष्णाम् ॥ ६ ॥

गुरुपाक पदार्थों को भोजन करने से उत्पन्न  
तृष्णा में और क्षयजन्य तृष्णा के सिवाय हर  
प्रकार की तृष्णा में वमन कराना लाभदायक  
होता है, अर्थात् क्षयजन्य तृष्णा को छाड़कर  
सब तृष्णा में वमन कराना लाभदायक है ॥ ६ ॥

रौक्ष्यदौर्घ्यतनाशिका तृष्णाचिकित्सा ।

अतिरूक्षदुर्घलानां तर्प शमयेन् तृष्णा-  
मिहाशु पय । द्वागो वा वृतभ्रष्टः शीतो  
मधुरो रसो हृद्यः ॥ ७ ॥

अत्यन्त रूक्ष शरीरवाले और दुर्बल मनुष्यों को  
होनेवाली तृष्णा में दूध पिलाना अथवा घृत में  
भूनकर पकाये हुए चकरा के मांस का मधुर  
शीतल रस पिलाना शरीर की रूक्षता, दुर्बलता  
और तृष्णा को दूर करके हृदय के लिये भी लाभ  
दायक होता है ॥ ७ ॥

नासिकापेय तृष्णाहरणयोग ।

गोस्तनेक्षुरसक्षीरयष्टीमधुममधूत्पलैः ।  
नियतं नस्ततः पीतैस्तृष्णा शाम्यति  
दारुणा ॥ ८ ॥

मुनका दास का रस, ईख का रस, दूध,  
मुलेठी का काथ, शहद अथवा कमल के फूल का  
रस, इनको नासिका ( नाक ) द्वारा पीने से  
भयङ्कर तृष्णारोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

तालुशोषहर गण्डूपाधारण ।

क्षीरेक्षुरसमाध्नी कक्षीद्रशीधुगुडोदकैः ।  
ष्टक्षाम्लास्तैरच गण्डूपास्तालुशोषनि-  
वारणः ॥ ९ ॥

दूध, ईख का रस, बहुधा के फूलों की मधु,  
मधु, शीधु, गुडमिश्रित जल, हमली का रस,  
तथा अन्धान्य अम्बु द्रव्यों के रस का गण्डूपा  
( कुशला ) धारण करने से तालुशोषरोग दूर होता  
है ॥ ९ ॥

आम्रादि कषाय ।

आम्रजम्बूकषायं वा पिवेन्मात्तिक-  
संयुतम् । छर्दि सर्वां प्रणुदति तृष्णाञ्चैवा  
परुषति ॥ १० ॥

आम्र और जामुन की कोमल पत्तियों के काथ  
में शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार के वमन  
और तृष्णारोग दूर होते हैं ॥ १० ॥

वटशुद्धादि प्रयोग ।

वटशुद्धसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।  
पिवेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवार-  
णम् ॥ ११ ॥

बड़ के अकुर, मिश्री, लोध, अनार, मुलेठी,  
और मधु, इनको चावल के धोवन के साथ पीस  
कर पीने से वमन और पिपासा की निवृत्ति  
होती है ॥ ११ ॥

तृष्णादिनाशक प्रास और गरुड़प ।

केशर मोतुलुङ्गस्य सत्तौद्रं दाडि-  
मीयुतम् । क्षणमात्रेण दुर्वासां तृष्णां कव-  
लतो जयेत् । दाहत्ृष्णाप्रशमनं मधुगण्डू  
पधारणम् ॥ १२ ॥

पिजौरा नीबू के फूलों की केशर, अनार, और  
मधु इनको एकत्र पीस कर मुख में धारण करने  
से कठिनाता से शान्त होनेवाली प्यास क्षणमात्र  
में नष्ट होती है । इसी प्रकार मधु का गरुड़प  
( कुखड़ा ) धारण करने से दाह और तृष्णा की  
शान्ति होती है ॥ १२ ॥

कवल और गरुड़प की मात्रा ।

असश्चार्या तु या मात्रा गरुड़पे सा  
मकीर्तिता । सुखं सश्चार्यते या तु सा  
मात्रा कवले हिता ॥ १३ ॥

जिस परिमाण में औषध को मुख में रखने  
पर, मुख का संचालन न किया जा सके उस  
परिमाण में औषध का मुख में रखना गरुड़प  
धारण में उचित है । और जिस परिमाण में

औषधों को मुख में रखने पर मुख का संचालन  
किया जा सकता है, उस परिमाण में औषध  
का मुख में धारण करना कवलधारण में उचित  
है । तात्पर्य यह कि गरुड़पधारण में मुख को  
भलीभाँति परिपूर्ण करना होता है, और कवल  
धारण में मुख कुछ खाली रक्खा जाता है ॥ १३ ॥

वटशुद्धादि घटी ।

वटशुद्धामयत्तौद्रलाजनीलोत्पलैर्दृढा ।  
गुटिका वदनन्यस्ता क्षिप्तं तृष्णाभुद-  
स्यति ॥ १४ ॥

बड़ के अकुर, कूट, मधु, धान की खील और  
नील कमल, इनको एकत्र पीसकर दृढ़ गोलीयों  
बना लेवे । इन गोलीयों को मुख में रखने से  
शीघ्र तृष्णा दूर होती है ॥ १४ ॥

तृष्णादिरोग में पथ्य ।

त्रोदनं रक्तशालीनां शीतमात्तिकसं-  
युतम् । भोजयेत्तत्र शाम्येत छर्दिस्तृष्णा-  
चिरोत्थिता ॥ १५ ॥

रक्त शालीधान के चावलों के भात को  
शीतल करके मधु मिलाकर खिलाने से चिर-  
कालोत्पन्न वमन और तृष्णारोग नष्ट होते  
हैं ॥ १५ ॥

मधुवारिप्रयोग ।

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपा-  
सितम् । पाययेद्दामयेच्चापि तेन तृष्णा  
प्रशाम्यति ॥ १६ ॥

तृष्णारोग में प्यास लगने पर रोगी को  
कण्ठपर्यन्त मधुमिश्रित शीतल जल मिलावे  
और वमन करावे । इससे तृष्णारोग निवृत्त होता  
है ॥ १६ ॥

शीतल जल पीने की व्यवस्था ।

मूत्रार्द्रादितृप्तादाहरणीमधुमृशकपिताः ।  
पिबेयुः शीतलतोपंरुक्पित्तमद्रत्यये ॥ १७ ॥

मूत्रार्द्रा, वमन, तृष्णा, दाह, क्षीणमूत्र और अत-  
पान से अत्यन्त शीतल मनुष्य को शीतल जल



पीना चाहिये । रक्तपित्त और मदात्यय रोग में भी शीतल ही जल पीना चाहिये ॥ १७ ॥

तृष्णार्दित को जल न देने से अनिष्ट ।

पूर्वामयातुरः सन् दीनस्तृष्णार्दितो जल याचन् । लभते न चेत् तदार्यं मरण प्राप्नोति दीर्घवेगं वा ॥ १८ ॥

यदि मूर्च्छारोगजन्य तृष्णा से पीड़ित मनुष्य, दीनता के साथ जल की माँगना करे, किन्तु उसी समय उसको जल न मिले तो उसकी मूर्च्छा का का वेग बहुत विलम्ब तक रहता है अथवा वह मर ही जाता है ॥ १८ ॥

तृपितो मोहमायाति मोहात् प्राणान् विमुञ्चति तस्मात् सर्वास्ववस्थासु न क्वचित् वारि वार्यते ॥ १९ ॥

अधिक प्यास से मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा से मृत्यु तक होती है । अतः किसी भी अवस्था में जल देना वर्जित नहीं है ॥ १९ ॥

अग्नेनापि विना जन्तुः प्राणान् धारयते चिरम् । तोयाभावेऽपिपासार्तः क्षणात् प्राणैर्विमुच्यते ॥ २० ॥

अन्न न भी मिले तो मनुष्य बहुत समय तक प्राण रक्ष सकता है, किन्तु जल के विना तो क्षण भर भी कोई प्राण नहीं रक्ष सकता ॥ २० ॥

जलपानविषयक विशेष विधि ।

अत्यम्बुपानात् प्रभवन्ति रोगा निरम्बुपानाच्च स एव टोपः । तस्माद् बुधः प्राणविवर्द्धनार्थं मुहर्भुहुर्वारि पिबेद्भूरि ॥ २१ ॥

अधिक परिमाण में जल पीने से शनक रोग उत्पन्न होते हैं और जल न पीने से भी बड़ी दशा होती है । अतः बार बार थोड़ा थोड़ा जल पीना रहे ॥ २१ ॥

तृष्णाहर रसस्तिन्दूरादि प्रयोग ।

सत्तौद्राम्राजमृत्यं पिवेत् काथ

रसान्वितम् । सतृष्णो मधुना कुर्यात् गण्डपाञ्छीतले स्थित ॥ २२ ॥

आम और जामुन की छाल के काथ में मधु और पारदभस्म मिलाकर पीने से, शीतल स्थान में बैठकर मधु का गण्डूष धारण करने से तृष्णा रोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

महोदधि रस ।

ताम्रश्च वङ्गकञ्चैव सूतं तालं सतुत्थकम् । वटांकुररसैर्भाव्यं तृष्णाहृद्रक्षिपादप ॥ २३ ॥

ताँवे की भस्म, वङ्गभस्म, पारा, हरताळ, तुत्थ ( नीला धोया ), इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बटाङ्कुर के रस से घोटकर गोलियाँ बनावे । मात्रा १ रत्नी से ३ रत्नी तक । इसके सेवन करने से तृष्णा ( प्यास ) रोग दूर होता है ॥ २३ ॥

कुमुदेश्वर रस ।

मृतताम्रस्य भागौ द्वौ भागैकं वङ्गभस्मकम् । यष्टीमधुरसैर्भाव्यं गुञ्जापादांशकं शुभम् ॥ २४ ॥ सेव्यञ्चैवानुपानेन वच्यमाणेन धीमता । चन्दनं शारिवा मुस्तं क्षुद्रैला नागकेशरम् ॥ २५ ॥ सर्वतुल्यां तथा लाजां पचेच्छोडशिकैर्जलैः । अर्धशेषं हरेत् काथ सिताक्षौद्रयुतन्तु तत् ॥ २६ ॥ हृदि तृष्णां निहन्त्याशु रसोज्यं कुमुदेश्वरः ॥ २७ ॥

ताँवे की भस्म २ भाग, वङ्गभस्म १ भाग इनको मुवाहटी के काढ़े से सात दफे भावना देकर सुखा ले । मात्रा १ रत्नी । अनुपान साख चन्दन, अमन्तमूल, मोषा, छोटी हृक्षाक्षी, नागकेशर इन सम्पूर्ण द्रव्यों को मिलाकर १ तोला खेना चाहिए, फिर इनको ३२ तोला जल में पकाना चाहिए । जब पकते-पकते १६ तोले रह जावे तो उतार लो । इस काढ़े में शारिवा

खोंड मिलाकर अनुपान के रूप में देना चाहिए । इस रस के सेवन करने से वमि ( कैं ), तृष्णा ( प्यास ) दूर होते हैं ॥ २४-२७ ॥

तृष्णारोग में पथ्य ।

शोधनं शमनं निद्रां स्नानं कवलधारणम् । जिह्वाधःशिरसोर्दीहो दीपदग्धहरिद्रया ॥ २८ ॥ कोद्रवाः शालयः पेया विलेपी लाजसक्कवः । अन्नमण्डो धन्वरसाः शर्करारागपाटवौ ॥ २९ ॥ एला जातिफलं पथ्या कुस्तुम्युरु च टङ्गणम् । घनसारो गन्धसारः कौमुदी शिशिरानिलाः ॥ ३० ॥ वालतालाम्बुशीताम्बु पयपेटी प्रपानकम् । मात्तिकं सरसं तोयं शताहा नागकेशरम् ॥ ३१ ॥ चन्दनार्द्र-प्रियाश्लेषो रत्नाभरणधारणम् । हिमालु-लेपनञ्च स्थात् पथ्यमेतत्तृपातुरे ॥ ३२ ॥

शोधन एवं शमनकारी क्रियाएँ, निद्रा, स्नान, कवल धारण, दीये पर जलाई हुई हल्दी से जीभ के नीचे दो शिराओं का दाह, कोदों, शालि, पेया, विलेपी, लाजा का सत्, चावलों की मोँट, जङ्गली पशुपत्तियों के मास का रस, शरपत रागपाटव ( मुट्ठे, चटनी इत्यादि ), हुलाहरी, जायफल, हरद, धनियाँ, सुहागा, कपूर, चन्दन, चाँदनी, शीतल, हया, कपचे ताद का पानी, शीतल जल, नारियल, शर्करा, शहद, सुल्फाडु जल, सोये, नागकेशर, अन्न में चन्दन छगाने के परचात् प्रिया का चालिङ्गन, रत्न एवं आम्रपत्तों का पहरना, एक तथा शीतल लेपन, अटुलेपन, तृष्णा ( प्यास ) रोग में लाभकारी है ॥ २८-३२ ॥

तृष्णा रोग में अपथ्य ।

स्नेहाअनस्त्रेदेनधूमपानव्यायामनस्यात्त-पट्टाकोष्ठम् । गुर्वन्नमम्लं लगणं कपायं वट्टु स्थियं दुष्टजनानि त्रीक्षणम् ॥ ३३ ॥

एतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तृपातुरोर्नैव भजेत्कदाचित् ॥ ३४ ॥

स्नेहन, सुरमा आदि लगाना, पसीना आदि लेना, सिगरेट आदि पीना, कसरत, हुलास आदि सूँघना, धूप में पेट को सेकना, भारी भोजन, खटाई, अत्यन्त नोन की वस्तु खाना, कसैली, कड़वी, मैथुन, खराब पानी, तीक्ष्ण पदार्थ, जिस मनुष्य को प्यास ( तृष्णा ) रोग हो उसको चाहिए कि उपयुक्त अपथ्यों का त्याग कर दे ॥ ३३-३४ ॥

आवश्यक सूचना ।

यत्र केवल एव रसस्तत्र भस्मसूतो बोध्यः ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां, तृष्णाधिकारः समाप्तः ॥

जिस योग में गन्धक न लिखा हो किन्तु रस ( पारा ) का उल्लेख हो तो उस योग में पारद-भस्म डालना चाहिये ।

इति सरयून्साद्विप्रपाठिविरचितायां भैषज्य-रत्नावल्यां रत्नप्रभाक्याया तृष्णारोगा-धिकारं समाप्तं ।

रक्तपित्ताधिकारः ।

रक्तपित्त की असम्राहता ।

नोद्विक्त्रमादौ संग्राह्यं वलिनोऽप्य-श्नतश्च यत् । हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीह-गुल्मज्वरादिकृत् ॥ १ ॥

रोगी अजयात् और भोजन करने में समर्थ हो तो प्रथम रक्तपित्त के रोकने की चेष्टा कदापि न करे, कारण यह कि दूषित रक्तपित्त शरीर में ध्वस्त हो जाने पर हृत्पोग, पाण्डुरोग, प्रहली-

१ पारदभस्म के स्थान पर इममिभूट ।

रोग, प्लीहा, गुल्म और ज्वर आदि अनेक रोग उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

रक्तपित्त में अर्धतर्पण ।

ऊर्ध्वं प्रवृद्धदोषस्य पूर्णं लोहितपित्तिनः । अक्षीणवल्मासाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम् ॥ २ ॥

रोगी के बल और मास क्षीण न हों, अग्नि भी प्रबल हो तो, रक्तपित्त, के ऊर्ध्वमार्गगामी होने पर, पहिले लहनादि क्रिया करानी चाहिये ॥ २ ॥

रक्तपित्त में तर्पण विरेचनादि ।

ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्णं कर्त्तव्यञ्च विरेचनम् । प्राग्धोगमने पेया वमनञ्च यथावलम् ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वग प्रक्षीणवल्मासेन तर्पणं प्रथमतः कार्यम् । अतिप्रवृत्ते-ऊर्ध्वगे, रक्तपित्ते विपुलवल्मासे न विरेचनमित्याशयः ।

ऊपर के मार्गों ( मुख, नाक, कान, आँसू ) से रक्तपित्त निकलता हो, किन्तु रोगी के बल और मास क्षीण हों तो सन्तर्पण ( वृष्टि करने-वाला ), उपचार करना चाहिये । ऊर्ध्वगामी (ऊपर के मार्गों से निकलनेवाला) रक्तपित्त यदि अत्यन्त प्रबल हो, अर्थात् अधिक परिमाण में निकलता हो, किन्तु रोगी के बल और मास क्षीण न-हुये हों तो विरेचन कराना चाहिये । अधोमार्ग ( नीचे के मार्ग गुदा, लिंग, योनि ) से निकलनेवाले रक्तपित्त में पहिले पेया आदि खिलाना चाहिये और रोगी के बल का विचार करके वमन करानी चाहिये ॥ ३ ॥

क्षीणमांसजलं वृद्धं बालं शोषानुबन्धिनम् । अवम्यमविरेच्यञ्च स्तम्भनं समुपाचरेत् ॥ ४ ॥

वृद्धं और अरुण रोगी की वमन नहीं करानी चाहिये ।

क्षीण मास क्षीण बल, वृद्ध, बालक और ज्वररोगयुक्त, रक्तपित्त रोगी की और वमन अथवा विरेचन के अयोग्य रक्तपित्तवाले रोगी की स्तम्भन औषधों से चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

रक्तपित्त में पथ्य ।

शालिपट्टिकनीवारकोरदूपमसातिकाः । श्यामाकरच म्रियङ्गुरच भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ ५ ॥

शालीधान ( जड़हन ), साँठी, तिन्नी, कोहों, रक्तचर्षा की तिन्नी, सावा और म्रियगु ये सब अन्न रक्तपित्तरोगी के लिये पथ्य है ॥ ५ ॥

सूपयूपार्थं पथ्य ।

मसूरमुद्गरचणकाः समकुष्ठाढकीफल । प्रशस्ताः सूपयूपार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ ६ ॥

मसूर, मूँग, चना वनमूँग और भरहर, इन सब अन्नों की दाल और जूस रक्तपित्तरोगी के लिये पथ्य हैं ॥ ६ ॥

पथ्य शाक और मांस

शाकं पटोलवेत्राग्रतण्डुलीयादिकं हितम् । मांसं लावकपोतादिशैणहरिणादिकम् ॥ ७ ॥

रक्तपित्तरोग में परवल की पत्तियों के, बेंत की कोपलों के और खौराई आदि के शाक तथा लावा और कपूर आदि चिड़ियों के और खरगोस, एण हरिन आदि पशुओं के मांस लाभदायक होते हैं ॥ ७ ॥

रक्तपित्तनाशक योग ।

वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् । पिबेत् तेन शमं याति रक्तपित्तं मुदारुणम् ॥ ८ ॥

वृषपत्राणि वासकपत्राणि पुटेन पत्रत्वा रसो ग्राह्य इति वृद्धोपदेशः ।

अरुसा की पत्तियों का पुटपाक करके रस निकाले, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करे । इससे अयानक रक्तपित्तरोग शांत होता है ॥ ८ ॥

समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा पीतो  
रसः शोणितमाशु हन्ति ॥ ९ ॥

कठगूलर के फल के रस में मधु मिलाकर पीने से शीघ्र रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

हरितकीप्रयोग ।

अथवा मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता । श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति शूल-  
तिसारनुत् ॥ १० ॥

हरितकी के चूर्ण में शहद मिलाकर चाटने से दोषों का पाचन और अग्नि की दीप्ति होती है तथा कफ, रक्तपित्त, शूल और अतिसार ये सर्व रोग भी नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

हरितक्यादि प्रयोग ।

वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभा-  
विता । कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं  
दुतं जयेत् ॥ ११ ॥

हरितकी (हर) के चूर्ण को अरुसा की पत्तियों के रस में ७ बार भिगोकर सुखाये, तदनन्तर उसका मधु के साथ सेवन करने से अथवा मधु के साथ पूर्वोद्भूत से भावना दिया हुआ पीपरि के चूर्ण का सेवन करने से रक्तपित्तरोग शीघ्र नष्ट होता है । मात्रा ३।४ माशा ॥ ११ ॥

पकोदुम्यरादि प्रयोग ।

पकोदुम्बरकारमर्द्यपथ्याखजूरगो-  
स्तनाः । मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं  
पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

उदुम्बरादीनां पकानि फलानि यतः  
शुष्काणि ततस्तेषां श्लक्ष्णचूर्णानां मधुना  
लेहः । अत्र पथ्याचूर्णं मधुना लीढमतीव  
फल प्रदमिति भानुः ।

पकीगूलर, कुम्भेर, हरितकी, खजूर और मुनका, इनमें किसी एक के पके हुये फलों को सुखाकर चूर्ण बनाये । उसको मधु के साथ चाटने से रक्तपित्तरोग नष्ट होता है । 'भानु' का कहना है कि इनमें से हरितकी का चूर्ण मधु के साथ चाटने से अत्यन्त लाभ प्रद होता है । मात्रा ३।४ माशा ॥ १२ ॥

कुसुमचूर्ण ।

खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य  
शाल्मलेः । पुष्पचूर्णन्तु मधुना लिहन्ना-  
रोग्यमश्नुते ॥ १३ ॥

खैर, प्रियङ्गु, लाल कचनार और सेमर; इनके फूलों का चूर्ण बनाकर शहद के साथ चाटने से रक्तपित्तरोगी को स्वास्थ्य लाभ होता है ॥ १३ ॥

लाक्षाचूर्ण ।

लाक्षाचूर्णं सुकृतं क्षौद्राज्यसमन्वितं  
सकृल्लीढम् । शमयति सोद्भवमने  
सरक्तपित्तस्य सिद्धमिदम् ॥ १४ ॥

लाख के कपड़यान किये चूर्ण को घी और मधु के साथ चाटने से रक्तपित्त का प्रबल बमन एक ही बार में शांत होता है । रक्तपित्त के लिये यह अनुभूत प्रयोग है । मात्रा १।२ माशा ॥ १४ ॥

धान्यकादि हिम ।

धान्याकधानीवासानां द्राक्षापट्ट-  
योर्हिमः । रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषञ्च  
नाशयेत् ॥ १५ ॥

धनियाँ, चाँबला, अदुसा, द्राक्षा तथा पिण-  
पायका इनका विधि के अनुसार शीत कषाय बना-  
कर रोगी को देने से रक्तपित्त, ज्वर, दाह, प्यास और शोष (सूजन) आदि दूर होते हैं । मात्रा ३।४ माशा ॥ १५ ॥

धीयेरादि पाय ।

धीवेरशुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिका-

मृता । उशीरश्च त्रिवृच्चैषां काथं समधु-  
शर्करम् ॥ १६ ॥ पाययैत्तेन सद्यो हिरक्त-  
पित्तं प्रणश्यति । रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां  
दाहं ज्वरं तथा ॥ १७ ॥

गन्धबाला, नीलोत्पल, धनियाँ, लालचन्दन,  
मुलहठी, गिलोय, खस, निसोत, ये सम्पूर्ण द्रव्य  
मिश्रित कर २ तोला खेना चाहिये । तत्परचात्  
इनको ३२ तोले जल में पकावे जब ८ तोला  
रह जाये तो उतार ले । इस काढ़े में खाँड़ या  
शहद मिलाकर पीने से शीघ्र ही रक्तपित्त शान्त  
होता है । यह काढ़ा प्यास, दाह, ज्वर को भी  
दूर करता है । मात्रा १ तोला ॥ १६ १७ ॥

आटरूपकादि काथ ।

आटरूपकमृद्धीकापथ्याकाथः सश-  
र्कर । क्षौद्राढ्यः कसनश्वासरक्तपित्त-  
निवर्हणः ॥ १८ ॥

अदूसे की जड़ का छिलका, किशमिश,  
हरद इनके काढ़े को खाँड़ या शहद मिलाकर  
पीने से श्वास, खाँसी तथा रक्तपित्त दूर होता  
है । मात्रा ३ तोला ॥ १८ ॥

दाहतृष्णादि में उशीरादि चूर्ण ।

उशीरं तगरं शुण्ठी ककौलं चन्दनद्व-  
यम् । लवङ्गं पिप्पलीमूलं कृष्णैलानागके-  
शरम् ॥ १९ ॥ मुस्तामधुककपर्पं तुगाक्षीरी  
च.पत्रकम् ॥ कृष्णागुहसम चूर्णं सिता  
षाष्टगुणा तथा । रक्तवान्तिश्च तापञ्ज  
नाशयेन्नान् संशयः ॥ पिबेदौदुम्बरं परचा-  
द्रसं कर्पंचतुष्टयम् ॥ २० ॥

तगरंतगरपादिकं, तुगाक्षीवंशलोचना ।

खस, तगर, सोंठ ककौल, रक्तचन्दन श्वेत-  
चन्दन, लौंग, पिपरामूल, पीपरि, छोटी इलायची,  
नागकेशर, नागरमोथा, मुलेठी, कपूर, वशलोचन  
और तेजपात समभाग इन सब चीपों को  
खेकर चूर्ण बनावे । कुल चूर्ण जितना हो उतना

ही काली अगर का चूर्ण मिलावे । तदनन्तर  
मिश्रित कुल चूर्ण जितना हो उससे षाठगुना  
मिथी मिलाकर रख लेवे । प्रतिदिन आधा  
तोला परिमित इस चूर्ण को खाकर ४ तोले  
गूलर के फल का रस पीवे । इससे रक्त के वमन  
और दाह नि सदेह नष्ट होते हैं । मात्रा ३१६  
मासा ॥ १९—२० ॥

एलादि गुटिका ।

एलापत्रं त्वचोर्द्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं  
तथा । सितामधुकखजूरमृद्धीकारच पलो-  
न्मिताः ॥ २१ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता  
गुटिकाः कारयेद् भिपक् । तोलकार्द्धा  
ततश्चैकां भक्तयेच्च दिने दिने ॥ २२ ॥  
श्वासं कासं ज्वरं हिकां छर्दिं मूर्च्छां मदं  
भ्रमम् । रक्तनिष्ठीयनं तृष्णां पार्श्वशूलम-  
रोचकम् ॥ २३ ॥ शोपस्त्रीहामवातांश्च  
स्वरभेदं क्षतक्षयम् । गुटिका तर्पणी वृष्या  
रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ २४ ॥

छोटी इलायची के दाने आधा तोला, तेज-  
पात आधा तोला, पीपरि २ तोला, मिथी,  
मुलेठी, खजूर और मुनका प्रत्येक ४ तोले ।  
इनका चूर्ण बनाकर मधुमिश्रित करके छ छ  
मासे की घटी बनावे । एक घटी प्रतिदिन  
सेवन करने से श्वास, कास, ज्वर, हिका, वमन,  
मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्त का वमन, तृष्णा,  
पार्श्वशूल, अरोचक, शोथ, प्लीहा, ग्रामवात,  
स्वरभेद, क्षतजन्म्य प्यरोग और रक्तपित्तरोग  
नष्ट होते हैं तथा ये गुटिकायें तृप्ति और बल  
की वृद्धि करती हैं । मात्रा ११३ मा० ॥ २१-२४ ॥

प्राणप्रवृत्त रक्त की चिकित्सा ।

प्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं  
नासिकया पयो वा । द्वात्तारसं क्षीरघृतं  
पिबेद् वा सशर्करञ्चेत्तारसं हितं वा ॥ २५ ॥

प्राण ( नाक ) से रक्त निकलता हो तो जल  
का भयवा मिथी मिले हुये दूध का रस खेना

और मुनक्के का रस, घृत और मिथी मिला दूध, अथवा ईख का रस इनमें प्रत्येक का पानी लाभदायक होता है ॥ २५ ॥

नस्यं दाडिमपुप्पोत्थो रसो दूर्वाभवो-  
ऽथवा । आम्रास्थिजः पलाण्डोर्मा नासि-  
कासुतरक्लजित् ॥ २६ ॥

अनार का फूल, दूब, आम की गुठली की मींगी और प्पाज इनमें से किसी एक के रस का नस्य लेने से नासिका द्वारा रक्त का निकलना शीघ्र बन्द होता है ॥ २६ ॥

रसो दाडिमपुप्पस्य दूर्वारससमन्वितः ।  
अलक्करसोपेतः पथ्यया वा समन्वितः ॥  
योजितो नस्यतः क्षिप्रं त्रिदोषमपि देहि-  
नाम् । नासाप्रवृत्त रक्नन्तु हन्यादेव न  
संशयः ॥ २८ ॥

अनार के फूल का रस और दूब का रस इनको एकत्र मिलाकर, उसमें लाख का जल अथवा हरीतकी का जल मिश्रितकर नस्य देने से नासिका द्वारा होनेवाला त्रिदोषजन्य भी रक्तलाव नि सदेह नष्ट होता है ॥ २७-२८ ॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्ण-  
पिष्टमामलकम् । सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि  
मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ २९ ॥

आमलकं घृते भृष्टा काञ्चिकेन पिष्ट्वा  
मूर्ध्नि लेप इति नीलकण्ठ ।

आँधले को घी में भूनकर काँजी के साथ महीन पीसकर शिर में लेप करे । इस प्रयोग से नासिका द्वारा निकलनेवाला रक्त इस प्रकार रुक जाता है जैसे सेतु के बाँधने से जल का वेग रुक जाता है ॥ २९ ॥

मेदप्रवृत्त रक्तं चिकित्सा ।

मेदूरोऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुत्तरसंज्ञितः ।  
शृतं क्षीरं पिवेद्वापि पञ्चमूल्या  
वृणाहया ॥ ३० ॥

यदि लिङ्ग के द्वारा अधिक रक्त निकलता हो तो उत्तरवस्ति क्रिया करनी चाहिये । अथवा दो तोले चूर्णपञ्चमूल, सोलह तोले बकरी का दूध और चौंसठ तोले जल, इनको एकत्र मिलाकर पकावे, जब दुग्धमात्र शेष रह जावे तब छानकर पीना चाहिये ॥ ३० ॥

दृपस्य स्वरसं कृत्वा द्रवैरेभिः प्रयोजयेत् ।  
मिण्डुगुस्फटिकीलोधमज्जनं चेत्ति चूर्णयेत्  
॥ ३१ ॥ एतच्चूर्णं पाययेत्तद्रसैः क्षौद्रसम-  
न्वितः । नासिकामुखपायुभ्यो योनिमे-  
द्राच्च वेगितम् ॥ ३२ ॥ रक्तपित्तं स्रव-  
द्धन्ति सिद्ध एषप्रयोगराट् । यच्च शस्त्रं चते  
नैव रक्तं तिष्ठति वेगितम् ॥ ३३ ॥ तदप्य-  
नेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम् ॥ ३४ ॥

मिण्डु, फिटकरी, लोध तथा रसाजन, इनका पृथक् पृथक् चूर्ण बनाकर मिला ले । मात्रा ४ रत्ती । अनुपान-शहद या छद्से का रस । इसके ४ रत्ती चूर्ण को कहे हुए अनुपान के साथ लेने से नासिका, मुख, गुदा, योनि तथा अन्य सूक्ष्म मार्गों द्वारा निकलता हुआ रक्तपित्त शान्त होता है । यदि किसी शस्त्र द्वारा घाव हो और उसमें से अधिक रक्त निकलता हो तो इस चूर्ण के घुरकरने से रक्त शीघ्र ही रुक जाता है ॥ ३१-३४ ॥

कूप्माण्ड खण्ड । ॥ ३५ ॥

कूप्माण्डकात् पलशतं मुस्विन्नं  
निष्कुलीकृतम् । पचेत् तप्ते घृतप्रस्थे  
शनैस्ताम्रमये दृढे ॥ ३५ ॥ यदा मधु-  
निभः पाकस्तदा पलशतं न्यसेत् ।  
पिप्पलीमृद्भेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य  
च ॥ ३६ ॥ त्वगोलापत्रमरिचधान्यकानां  
पलार्द्धवम् । न्यसेत् चूर्णकृतं तत्तदाग्या

दुस, काठ, शरवत, कामी धीर ईख, ईम पाँचों के मूत्र को 'पञ्चमूल' कहते हैं ।

सङ्घट्टयेत् पुनः ॥ ३७ ॥ तत् पक्वं स्थाप-  
येत् भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्द्रकम् । तद्  
यथाग्निबलं स्वादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥  
३८ ॥ कासश्वासतमश्चर्द्धितृष्णाज्वरनि-  
पीडितः । दृष्यं पुनर्नयकरं बलवर्णप्रसाद-  
नम् ॥ ३९ ॥ उरसन्धानकरणं वृंहणं  
स्वरवर्द्धनम् । अश्विभ्यां निमित्तं श्रेष्ठं  
कूप्माण्डकरसायनम् ॥ ४० ॥ खण्डा-  
मलकमानानुसारात् कूप्माण्डकद्रवात् ।  
पात्रं पाकाय दातव्यं यावानत्र रसो  
भवेत् ॥ ४१ ॥

छिलका और बीज से रहित तथा थोड़ी  
देर तक धूप में सुखाया हुआ पुराना पेठा २  
सेर लेवे, इसको १२८ तोले घी में तामे की  
कबाही ( कलई की हुई ) में धीमी आँच पर  
तब तक भूनता रहे, जब तक उसका मधु के  
समान वर्ण न हो जावे । पश्चात् उसमें ५ सेर  
खाँद और पेटे का जल जितना उसमें से निचोड़-  
कर निकाला हो डालकर पकावे । पाक सिद्ध  
होने पर उसमें छोटी पीपरि, सोंठ और जीरा  
प्रत्येक के चूर्ण ८ तोला, दालचीनी, छोटी  
इलायची के दाने, तेजपात, मिरिच और धनिया  
प्रत्येक के चूर्ण दो दो तोले डालकर करछी से  
भली भाँति मिलाकर उतार लेवे । शीतल होने  
पर ६४ तोला मधु मिलाकर किसी घृत के  
चिकने पात्र में रख देवे । रोगी के बल और  
अग्नि कं अनुसार ( आधा तोला से २ तोले  
पर्यन्त ) मात्रा की कल्पना करे । इसका सेवन  
करने से रक्तपित्त, क्षतज्वर चय, कास, श्वास,  
नेत्र के सामने आँधेरा सा ज्ञात होना, वमन,  
तृष्णा और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं ।  
यह अथलेह वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, बलप्रद,  
कान्तिवर्धक, उर क्षतनाशक, वृंहण और स्वर  
शोधक होने से शरीर को फिर नूतन बना देता  
है । इस कूप्माण्डकरसायन का आधिष्ठातृ  
अश्विनीकुमारों ने किया था । मात्रा-६ मारा २  
तोला ॥ ३५-४१ ॥

वासाकूप्माण्डखण्ड ।

पञ्चाशच्च पलं ग्राह्यं कूप्माण्डात् प्रस्थ-  
माज्यतः । ग्राह्यं पलशतं खण्डं वासा-  
काथाढके पचेत् ॥ ४२ ॥ मुस्ता धात्री  
शुभा भार्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्पिकैः । ऐले-  
यविश्वधन्याकमरिचैश्चपलांशिकैः ॥ ४३ ॥  
पिप्पलीकुडवञ्चैव मधुमार्नी प्रदापयेत् ।  
कासं श्वास क्षयं हिकां रक्तपित्तं हलीम-  
कम् । हृद्रोगमम्लपित्तञ्च पीनसञ्च व्य-  
पोहति ॥ ४४ ॥

२५ सेर पेटे को ( पहिले प्रयोग में लिखी )  
विधि के अनुसार ६४ तोला घी में भूनकर २ सेर  
खाँद, २ सेर ३० तोला अरुसे का काय डालकर  
पाक करे । पाक समाप्त होने से पहिले नागरभोगा,  
आँवला, वंशलोचन, भार्गी, दालचीना,  
इलायची और तेजपात इनमें से प्रत्येक का चूर्ण  
१ तोला, एलुआ ( एलवालुक सुगन्ध द्रव्य ),  
सोंठ, धनिया और मिरिच प्रत्येक का चूर्ण ४  
तोले और पीपरि का चूर्ण १ कुडव ( १६ तोला )  
डालकर उत्तम रीति से चलाकर उतार लेवे ।  
शीतल होने पर ३२ तोला मधुमिश्रित करके रख  
लेवे । इसका सेवन करने से कास, श्वास, चय,  
हिककी, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त  
और पीनस ये सब रोग नष्ट होते हैं । ६ मासा-  
२ तोला ॥ ४२-४४ ॥

वासाण्ड ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे  
जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं  
भिपक् ॥ ४५ ॥ चूर्णानामभयानाञ्च  
खण्डाच्छुद्धशतं न्यसेत् । द्विपलं पिप्पली-  
चूर्णात् सिद्धे शीते च मात्तिकात् ॥ ४६ ॥  
कुडवं पलमानन्तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् ।  
क्षिप्त्वा विलोडितं स्वादेद्रक्तपित्ती क्षत-  
क्षयी । कासश्वासपरीतश्च यक्ष्मणा च  
प्रपीडितः ॥ ४७ ॥

वासकमूलस्य शतपलमाद्रेमेव ग्राहं  
जलं शराव १००, शेषः शराव २५,  
हरीतकीचूर्णं पलं ६४, शर्करा पलं  
१००, पिप्पलीचूर्णं पलं २, मधुनः  
कुडवमष्टपलं द्वैगुण्यादिति भानुदासः,  
चातुर्जातस्य प्रत्येकं पलम् । वासाकाथे  
शर्करा पलशतं गोलयित्वा दान्व्यालोड-  
येत् आसनपाके पिप्पलीचूर्णं चातुर्जात-  
चूर्णञ्च प्रक्षेप्यशीतीभूते मधुक्षेपणीयम् ।

रूसे की गीली जड़ १०० पल ( २ सेर )  
लेकर ३० सेर जल में पकावे, १० सेर जल शेष  
रहने पर उतारकर छान लेवे । तदनन्तर उस  
काथ में ३ सेर १६ तोला हरड़ का चूर्ण और  
१०० पल ( २ सेर ) खोंद मिलाकर पकावे ।  
पाक सिद्ध होने पर पीपरि का चूर्ण ८ तोला,  
दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर  
इनमें से प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला डालकर, भली  
भांति मिलाकर उतार लेवे । शीतल होने पर मधु  
३२ तोला मिलाकर रख लेवे । इसका सेवन  
करने से रक्तपित्त, अतजन्य क्षय, कास, स्वास  
और राज्यक्षमारोग नष्ट होते हैं । मात्रा आधा  
तोला से दो तोला पर्यन्त । अनुपान-बकरी का  
दुग्ध ॥ ४१-४७ ॥

वासाघृत ।

वासां सशखां सपलाशमूलां कृत्वा  
कपायं कुसुमानि चास्याः । प्रदाय कलकं  
विपचेद् घृतञ्च क्षौद्रेण पानाद्विनिह-  
न्ति रत्नम् ॥ ४८ ॥

अरुना की शाखा ( डाली ), पतिया और  
मूल कुल मिले ह्ये ४ सेर लेवे, उसकी ३२ सेर  
जड़ में पकावे, जय ८ सेर जड़ शेष रहे तब  
छानकर रख लेवे । तदनन्तर उस काथ में पाव  
भर अरुना के पूज का कणक और २ सेर घृत  
मिलाकर धीमी आंच से यथाविधि घृत सिद्ध  
करे । इस घृत में थोड़ा शहद मिलाकर पीने से  
रक्तपित्त रोग नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

शणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य  
च । कल्काढ्यत्वात् पुष्पकल्कं प्रस्थे पलच-  
तुष्टयम् ॥ ४९ ॥

सम, कचनार, अरुसा और अर्जुन घृत ये  
कल्कप्रधान हैं अतः एक प्रस्थ घृत में ४ पल इनके  
पुष्पों का कल्क मिलाना चाहिये ॥ ४९ ॥

दूर्वाघृत ।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्का मञ्जिष्ठा शैले-  
वालुका । सितासितमुशीरञ्च मुस्तं चन्दन-  
पद्मके ॥ ५० ॥ विपचेत् कार्पिकैरैतैः  
सर्पिराजं सुखाग्निना । तण्डुलाम्बु त्वजा-  
चीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ ५१ ॥ तत्  
पानं-वमंतो रक्तं नावनं नासिकागते ।  
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णां प्रपूर-  
येत् ॥ ५२ ॥ चक्षुःस्त्राविणि रक्ते च पूर-  
येत्तेन चक्षुषी । मेढपायुमवृत्ते तु अस्ति-  
कर्मसु तद्धितम् । रोमरूपमवृत्ते तु तद-  
भ्यङ्गः प्रशस्यते ॥ ५३ ॥

तण्डुलोदकव्यागदुग्धयोः प्रत्येकं चा-  
तुर्गुण्यं रत्नशालितण्डुलं शरावं ४ जल-  
शरावं १६ संमर्द्य वस्त्रपूतं ग्राह्यम् ।

रत्नशालीधान के २ सेर चावल को आठ सेर  
जल में मलकर छान लेवे । तदनन्तर यह जल ८  
सेर, बकरी का दूध ८ सेर और बकरी का घृत २  
सेर इन तीनों द्रव्यों को एकत्र मिश्रित करे ।  
तत्परपात दूध, कमल, कमल की केसर, मजीठ,  
पलयालुक ( सुगन्ध द्रव्य ), मिथी, श्वेत चन्दन,  
खस, नागरमोथा, रत्नचन्दन और पद्माल इनमें  
से प्रत्येक औषधि का एक-एक तोला कणक  
मिलाकर धीमी आंच से यथाविधि पकावे । रत्न  
का घमन होता हो तो इस घृत का पान करे,  
नाक से रत्न गिरता हो तो इस घृत का नख  
लेवे, कानों से रत्न गिरता हो तो घृत से कानों  
को परिपूर्ण करे, नेत्रों से रत्न गिरना होता हो तो  
इस घृत से नेत्रों में आंगन करे, छिद्र अथवा



गुदा से रक्तस्राव होता हो तो इस घृत की पिचकारी देवे और रोमकूपों द्वारा रक्तस्राव होता तो इस घृत का शरीर में मर्दन करना चाहिये ॥ १०-१३ ॥

सप्तप्रसवघृत ।

शतावरी पयोद्राक्षा विदारीक्षामलै रसैः । सर्पिषा सह संयुक्तैः सप्त प्रस्थं पचेद् घृतम् ॥ ५४ ॥ शर्करापादसयुक्तं रक्तपित्तं हर पिबेत् । उरःक्षते पित्तशूले चोष्णवातेऽप्यसृग्दरे ॥ उल्यमोजस्करं घृप्यं क्षयहृद्रोगनाशनम् ॥ ५५ ॥

शतावरी गन्धकाला द्राक्षा, विदारीकन्द, ईश्व ( गन्ना ), आवला इनमें से हर एक का अलग अलग रस १ प्रस्थ ( ६४ तोला ) लेना चाहिये । घी १ प्रस्थ ( ६४ तोला ), इनका विधि के अनुसार पाक करके रखना चाहिए । इस घृत के प्रयोग के समय घी से चौथाई खाद मिलाकर लेना चाहिए । इसके सेवन से रक्तपित्त, उर क्षत, पित्तशूल उष्णवात, रक्तप्रदर, क्षय तथा हृद्रोग आदि दूर होते हैं । यह घृत बल, वीर्य तथा श्रोन को बढ़ानेवाला है । मात्रा १ तोला से १ तोला तक ॥ १४-१५ ॥

सप्तशर्करालौह ।

लौहाच्चतुर्गुणं क्षीरमाज्यं द्विगुणमुत्तमम् । चूर्णं पादन्तु वैडङ्गं दद्यात् मधुसिते समे ॥ ५६ ॥ ताम्रपात्रेशुभे पक्त्रा स्थापयेद् वृतभाजने । गुञ्जाष्टकप्रमाणेन भक्षयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ अनुपानं मयुञ्जीत नारिकेलजलादिकम् । रक्तपित्तं जयेत् तीव्रभ्रम्लपित्तं क्षतक्षयम् । पुष्टिदं कान्तिजननमायुष्यं घृप्यमुत्तमम् ॥ ५८ ॥

मधुसिते प्रत्येकं लौहसमे पुष्ट्या पाके जाते लौहात् पादिकं विडङ्गचूर्णं प्रक्षेप्यं शीते च मधु देयम् ।

लोहभस्म १ तोला, बकरी का दूध ४ तोला, घृत २ तोला, मिश्री १ तोला ; सब द्रव्यों को एकत्र ताम्र पात्र ( कलई किये हुए ) में पकाकर, उसमें ३ मासे वायविद्वज्ज का चूर्ण मिलावे । शीतल होने पर एक ताला मधु मिलाकर घृत के पात्र में रख लेवे । इसकी मात्रा-६ रत्ती । अनुपान-नारियल का जल आदि । इसका सेवन करने से रक्तपित्त, तीव्र भ्रम्लपित्त क्षत और क्षय रोग नष्ट होते हैं तथा पुष्टि, वीर्य, कान्ति और आयु की वृद्धि होती है ॥ १६-१८ ॥

शतमूल्यादिलौह ।

शतमूली सिता धान्यनागकेशर-चन्दनैः । त्रिकत्रयतिर्लैर्युक्तं लौहं सर्वगदापहम् । तृष्णादाहज्वरच्छर्दिंरक्तपित्तहरं परम् ॥ ५९ ॥

शतावरी, चीनी, धनिया, नागकेशर, रक्तचन्दन, सोंठ, मिर्च, पीपरी, थाँवला, हर्, बहेडा, वायविद्वज्ज, नागरमोधा, चीता और कावे तिल ये सब एक एक भाग, मिले हुये कुल औषधों के सम न लोहभस्म, इन कुल औषधों को एकत्र खरल करके रख लेवे । मात्रा-२ रत्ती । अनुपान-मधु । इसका सेवन करने से तृष्णा, दाह, ज्वर, वमन और रक्तपित्त आदि विविध रोग नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

खण्डकाचलौह ।

शतावरी द्विन्नरुहा घृपमुष्टिदत्तिकाशलाः । तालमूली च गायत्री त्रिफला-यास्त्रचस्तथा ॥ ६० ॥ भार्गी पुष्कर-मूलञ्च पृथक् पञ्च पलानि च । जलद्रोणे विपक्वव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ६१ ॥ पलद्रादशकं देयं कान्तलौहस्य चूर्णितम् । दिव्यौषधिहितस्यापि मात्तिकेण हतस्य वा ॥ ६२ ॥ खण्डतुल्यं घृतं देयं पल-पोडशिकं बुधैः । पचेत् ताम्रमये पात्रे

गुडपाको मत्तो यथा ॥ ६३ ॥ प्रस्थाद्धं  
मधुनो देयं शुभाशमजतुकं त्वचम् । मृद्धी  
विडङ्गं कृष्णा च शुण्ठी जातीफलं पलम् ॥  
६४ ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं द्वयत्तं मरिच-  
केशरम् । चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे  
निधापयेत् ॥ ६५ ॥ यथाकालं प्रयुञ्जीत  
चतुर्गुञ्जामितं ततः । गव्यक्षीरानुपानञ्च  
सेव्यो मांसरसः पयः ॥ ६६ ॥ गुरुदृष्यानु  
पानानि स्निग्धमांसादिवृंहणम् रक्तापित्तं  
क्षयं कासं पक्लिशूलं विशेषतः ॥ ६७ ॥  
वांतरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमि क्लमम्  
श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं स्त्रीहोदरं तथा ॥  
६८ ॥ आनाहं शोणितस्त्रावमम्लपित्तं  
निहन्ति च । चक्षुष्यं वृंहणं दृष्यं माद्ग्ल्यं  
भीतिवर्द्धनम् ॥ ६९ ॥ आरोग्यपुत्रदं श्रेष्ठं  
कायाग्निवलयवर्द्धनम् । श्रीकरं लाघवकरं  
खण्डकाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥

पूर्वाङ्गलौहान्तरवत् पथ्यापथ्यनिरू-  
पणीयम् । केचिदत्र रसगन्धकप्रक्षेपे  
वदन्ति शुण्ठीजातीफलं पलमित्यत्र  
शुण्ठ्याजाती पलं पलमिति केचित् ।

शताघरि, गिलोब, अरुसा की छाल, मोरल  
मुण्डी, खरेटी, काली मुसली, खैर, आवला,  
हरं, बहेड़ा, भारङ्गी और पुहकरमूल प्रत्येक  
२० तोला इनको २२ सेर ४८ तोला  
जल में पकाये । ३ सेर १६ तोला जल  
शेष रहने पर छानकर रख लेवे । तदनन्तर मैन-  
शिल और स्तण्यमाषिक के संयोग से भस्म  
किया हुआ कान्तलोह ४८ तोला घृत ६४  
तोला और राई ४८ तोला, लेकर पूर्वाङ्ग  
काय में मिखाकर साध्रपात्र ( कलई किये हुए )  
में गुडपाक की रीति से पकावे । जब गाढ़  
हो जाये तब चंराखोचन, शिलाजीत, दासकीनी,  
काकरासिगी, बापधिरु, पीपरि, सोंठ और

जायफल प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला, आँवला,  
हरद, बहेड़ा, घनिया, तेजपात, मिरिच और  
नागकेशर प्रत्येक का चूर्ण २ तोले मिला-  
कर डतार लेवे । शीतल होने पर मधु ६४ तोला  
मिलाकर किसी घी के चिकने पात्र में रख देवे ।  
मात्रा ४ रत्ती, अनुपान—गाय का दूध और  
मासरस आदि पौष्टिक द्रव्य । यथासमय इस  
औषध का सेवन करने से रक्तापित्त, क्षय, कास,  
पक्लिशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन,  
क्लाग्नि, शोथ, पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्विहा, उदर,  
आनाह, रक्तघाथ और अम्लपित्त ये सब रोग  
नष्ट हो जाते हैं । यह लौह चतु के लिये लाभ  
दायक, बलवीर्यवर्धक, माद्ग्ल्य, प्रीतिवर्धक,  
आरोग्यतादायक, पुत्रदायक, अग्नि का दीपन  
और कान्तिवर्धक है ॥ ६०-७० ॥

सुधानिधिरस ।

सूतं गन्धं मात्तिकं लौहचूर्णं सर्वं घृष्टं  
त्रैफलेनोदकेन । मृषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा  
दद्याद् गुञ्जां त्रैफलेनोदकेन ॥ ७१ ॥  
लौहे पात्रे गोपयः पाचयित्वा रात्रौ दद्या-  
द्रक्तापित्तप्रशान्त्यै ॥ ७२ ॥

पारा, गन्धक, स्वर्णमाषिक और लौह-  
भस्म समभाग इन सब औषधों को लेकर  
त्रिफला के काथ में घोटकर भूधरयन्त्र में पूँक  
देवे । स्वाह्नशीतल होने पर त्रिफला के काथ में  
घोटकर एक एक रत्ती की गोली बनाये । अनु-  
पान—त्रिफला का काथ और लौहे के पात्र में  
पकाया हुआ दूध । रात में इसका सेवध करना  
चाहिये । यह रक्तापित्तनाशक है ॥ ७१-७२ ॥

हीवेरराय तैल ।

हीवेरं नलदं लोधं पद्मकोशीरपत्रकम् ।  
नागपुष्पञ्च विल्वञ्च भद्रमुस्ता तथा शशी ॥  
७३ ॥ चन्दनञ्चैव पाठा च कुटजस्य फल-  
त्वचम् । त्रिफलाम्हीवेरञ्च भतवास्तव-  
चस्तथा ॥ ७४ ॥ आम्नास्थिजम्बुसारा-  
स्थिमूलं रक्तोत्पलस्य च । एतेषां कार्ष्णिक-

भांगैस्तैलमस्थं विपाचयेत् ॥ ७५ ॥  
लांत्तारसाढकञ्चैव क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥  
रक्तपित्तञ्च त्रिविधं नाशयेदविकल्पतः ॥  
७६ ॥ कासं पञ्चविधं हन्ति तथा श्वास-  
मुरःक्षतम् । हीवेराद्यमिदं तैलं बलवर्णा-  
ग्निवर्द्धनम् ॥ श्रीमद्ब्रह्महन्नाथेन निर्मितं  
विरचमद्ब्रह्मम् ॥ ७७ ॥

तिल का तैल १२८ तोला, पीपल की लाख का काय ६ सेर ३२ तोला, दूध १२८ तोला, इन सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर, नीचे लिखे औषधों के कल्क के साथ पकाकर तैल सिद्ध करे । कल्कार्थ औषध—सुगन्धबाला, खस, लोध, पणाल, खस, तेजपात, नागकेशर, बेलगिरी, नागरमोथा, कचूर, रक्तचन्दन, पाड़ी, इन्द्रजी, कुडा की छाल, आंवला, हरद, बहेदा, सोंठ, बहेदा की छाल, धाम की गुडुली की मींगी, जामुन की गुडुली की मींगी और रक्त कमल की जड़ प्रत्येक एक एक तोला । इस तैल के मर्दन करने से तीन प्रकार के रक्तपित्त, पाँच प्रकार के कास-श्वास तथा उर-क्षत इन रोगों की शान्ति और बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है । इस तैल का आविष्कार गहननाथजी ने किया है ॥ ७५-७७ ॥

अक्षय्वर रस ।

मृताकं मृतवद्भ्रञ्च मृताभ्रञ्च समाक्षि-  
कम् । अमृतास्वरसैर्भाव्यं त्रिसप्तकपुटे  
पचेत् ॥ ७८ ॥ वासाक्षीरविदारीभ्यो  
गुञ्जाद्वयप्रमाणतः । भक्षणाद्दिनिहन्त्याशु  
रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ७९ ॥

तडि की भस्म, चक्रभस्म, अक्षय्वरभस्म, स्वर्णमाषिक भस्म, इन सबको एकत्रकर गिलोय के रस से २१ बार भावना देकर पुट दे । मात्रा- २ रत्नी, अनुपान—वासा तथा विदारीकंद का रस, इस रस के व्यवहार से अक्षय्वर रक्तपित्त दूर होता है ॥ ७८-७९ ॥

रक्तपित्तान्तक रस ।

मृताभ्रं गुण्डतीक्ष्णञ्च माक्षिकं रस-  
तालकम् । गन्धकञ्च भवेत्तुल्यं यष्टिद्राक्षा-  
मृताद्रवैः ॥ ८० ॥ दिनैकं मर्दयेत्तल्ले  
सिताक्षौद्रसमन्वितम् । गुञ्जाद्वयं निह-  
न्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ८१ ॥ ज्वरं  
दाहं क्षतक्षीणं तृष्णां शोषमरोचकम् ८२ ॥

अक्षय्वरभस्म, गुण्डलीहभस्म, तीक्ष्णलीह भस्म, सोनामक्खी की भस्म, पारा, हरिताल, गन्धक, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बरानर लेकर एक एक दिन अलग-अलग घोटकर रखे । यह रस २ रत्नी प्रमाण में खोंड़ या शहद के साथ खेने से दाह, प्यास, मूजन, अरिचि आदि रोगों में सेवन करने से हित करता है । इस रस को पुराने रक्तपित्तवाले रोगी को, जिसे ज्वर आता हो तथा वह क्षीण हो गया हो, देना चाहिए ॥ ८०-८२ ॥

रक्तपित्तकुलकुटार रस ।

शुद्धपारदचलिप्रवालकं हेममाक्षिक-  
भुजङ्गरङ्गकम् । मारितं सकलमेतदुत्तमं  
भावयेत्पृथक् पृथक् द्रवैस्त्रिंशः ॥ ८३ ॥  
चन्दनस्य कमलस्य मालतीकोरकस्य वृष-  
पल्लवस्य च । धान्यवारणकणा शतावरी  
शाल्मली घटजटामृतस्य च ॥ ८४ ॥ रक्त-  
पित्तकुलकण्डनाभिधो जायते रसवरोऽस-  
पित्तिनाम् । प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं सेवतस्तु  
युगकृष्णलैर्मितः ॥ ८५ ॥ नास्त्यनेन  
सममत्र भूतले भेषजं किमपि रक्तपित्ति-  
नाम् ॥ ८६ ॥

पारा, गन्धक, मूंगाभस्म, सोनामक्खी की भस्म, सीसकभस्म, चक्रभस्म इन सम्पूर्ण द्रव्यों को अलग-अलग, चन्दन का काड़ा, कमल, मालती के फूल, बामापत्र, घनिर्वा, गज-पीपल, शतावरी, सेमल की जड़, घटजटा, गिलोय,

इनके रस से तीन—तीन भावना देना चाहिए। मात्रा—२ रत्ती, अनुपान शहद या वासा रस। यह रस रक्तपित्त के रोगियों के लिए अमृत के समान है। इसकी समानता का रक्त पित्त के लिये कोई दूसरा रस नहीं है ॥ ८३ ८४ ॥

रक्तपित्तान्तक रसः ।

जाती कोपफले मांसी कुष्ठं तालीश-  
पत्रकम् । मत्तिकं मृतलौहश्च अश्रं दिव्यं  
समांशकम् ॥ ८७ ॥ सर्वतुल्यं मृतं तारं  
समं निष्पिष्य वारिणा । द्विगुञ्जाभा वटी  
कार्या पित्तरोगविनाशिनी ॥ ८८ ॥  
कोष्ठाश्रितश्च यत्पित्तं शाखाश्रितमथापि  
वा । शूलञ्चैवाभ्लपित्तश्च पाण्डुरोगं  
हलीमकम् ॥ ८९ ॥ दुर्नामं भ्रान्तिवान्तिश्च  
क्षिमेव विनाशयेत् । रक्तपित्तान्तको ह्येः  
काशिराजेन भापितः ॥ ९० ॥

जायत्री, जायफल, जटामांसी, कुष्ठ, तालीश-  
पत्र, सोनामक्ली की भरस, लौहभरस, अश्रक-  
भरस, हरएक द्रव्य घराघर-घराघर एक एक  
भाग, चाँदी की भरस ८ भाग, इन सगुण्य  
द्रव्यों को हकटा कर पानी के साथ घोटकर २ रत्ती  
प्रमाण की गोली बना लेना चाहिए। यह रस  
पित्त से उत्पन्न रोगों को शान्त करता है। काँडे  
में गया हुआ पित्त, शाखाश्रित पित्त, शूल,  
अभ्लपित्त, पीरिया, हलीमक, घयासीर, सिर में  
बहकर घाना, इन सगुण्य रोगों को यह रस तुरन्त  
ही हरण करता है ॥ ८७ ९० ॥

त्रिष्टुतादिमोदकः ।

त्रिष्टुता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा  
मधु । मोदकं सन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरा-  
पहम् ॥ ९१ ॥

त्रिफला, त्रिफला (हरि, बदेर, चाँदनी), श्यामा  
सता, पीपल हर एक द्रव्य घराघर-घराघर खेबर  
और इन सबके तौल से दूभी चाँद खेबर धीरे-धीरे  
अनुपान पाक कर ले। जब नीपार हो जाये तबका

कर थोड़ा शहद मिलाकर ३ मासे के लहदू  
बना लेवे। ये मोदक सेवन कराने से सन्निपात-  
ज्वर, ऊर्ध्व रक्तपित्त, ज्वरादि अनेक रोग  
दूर होते हैं ॥ ९१ ॥

तीक्ष्णादि वटिका ।

खर्पराभ्ररसास्तुल्यास्तीक्ष्णश्च द्विगुणं  
मतम् । तीक्ष्णपाठसमं स्वर्णं जतुकाथेन  
सप्तधा ॥ ९२ ॥ भापयित्वा ततः कार्या  
द्विगुञ्जा प्रमिता वटी । पलङ्कपाकपायेण  
रसेनोदुम्बरस्य वा ॥ ९३ ॥ प्रयोज्या  
वटिका ह्योषा शुभा तीक्ष्णादिनामिका ।  
रक्तपित्तं क्षयं कासयत्प्राणं श्वसनं ज्वरम् ॥  
९४ ॥ निहन्यात् सकलान् रोगान् केशरी  
करिणं यथा ॥ ९५ ॥

खर्परभरस, अश्रकभरस, रससिन्दूर, हर एक  
घराघर घराघर १ भाग, तीक्ष्ण लोहभरस २  
भाग, स्वर्णभरस ३ भाग, इन सबको हकटा  
कर लाजा के काड़े से सात भावनाएँ देकर २ रत्ती  
प्रमाण की गोली बना लेवे। अनुपान—गुग्गुल  
का काढ़ा या शूलर का रस। इन गोलीयों के  
व्यपहार से रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, यक्ष्मा, श्वसनक  
ज्वर आदिका अनेक रोगों को इस प्रकार नष्ट  
करता है जिम प्रकार सिंह हाथियों को ९०-९५ ॥

उशीरासवः ।

उशीरं—बालकं पत्रं कार्मीरं नीलशु-  
त्पलम् । मियद्गुण्यकं लोध्रं मञ्जिष्ठा  
धन्वयामकम् ॥ ९६ ॥ पाठां किराततिरुश्च  
न्यग्रोधोदुम्बरं शटीम् । पर्पटं पुण्डरीकश्च  
पंढोलं काञ्चनारसम् ॥ ९७ ॥ जम्बूशा-  
ल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसम्भितम् । सर्वं  
सुचूर्णितं ऋत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥  
९८ ॥ धातकीं पौष्टशपलां जलद्रोणद्रव्ये  
क्षिपेत् । शर्करायाम्नुनां द्रव्या चाँद्रस्पार्ड-  
नुनान्तथा ॥ ९९ ॥ मासं संस्थापये-

• झाण्डे मांसीमरिचधूपिते । उशीरासज  
इत्येप रक्तपित्तविनाशनः । पाण्डुकुण्ड-  
प्रमेहार्शः कृमिशोथहरस्तथा ॥ १०० ॥

खस, सुगन्धवाला, कमल, रम्भारी, नील  
कमल, फूलप्रियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ,  
जवासा, पाड़ी, चिरायता, बड की छाल, गूलर  
की छाल, कचूर, पित्तपापडा, कूठ, परवल की  
पत्तियाँ, कचनार की छाल, जामुन की छाल  
और सेमर का गोंद प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले,  
मुनका १ सेर, धाय के फूल ६ध तोले, चीनी  
२ सेर, मधु २॥ सेर और जल २५ सेर ४८  
तोला, इन सबको एकत्र मिलाकर किसी मिट्टी के  
बड़े पात्र में रख देवे, उस पात्र के मुख पर बड़ा  
शकोरा रखकर मिट्टी से सन्धिस्थान को मुद्रित  
कर देवे । परन्तु उस पात्र को पहिले ही जटा  
मांसी और मिरिच से धूपित कर देवे । इन  
औषधों को एक मासपर्यन्त बन्द रहने देवे ।  
तदनन्तर निकाल के वस्त्र से छानकर चोतलों में  
अथवा मिट्टी ही के पात्र में भरकर रख लेवे ।  
इसका नाम उशीरासज है । इसका सेवन करने से  
रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, धवासीर, कृमिरोग  
और शोथरोग नष्ट होते हैं ॥ १०० ॥

रक्तपित्त में अपथ्य ।

अधोगतेच्छर्दनं मूर्ध्वनिर्गमे विरेचनं  
स्यादुभयत्र लङ्घनम् । पुरातनाः पष्टिक  
शालिकोद्रप्रियंगु नीवारामव प्रशा-  
तिका ॥ १०१ ॥ मुद्रामसूराश्चणका  
चणकास्तुवयो मुकुष्ट काञ्चिद्रट  
वर्मिमतस्याः शशककपोतो हरिऐयेनलावः  
शरारिपारावत वर्त्तकाञ्च ॥ १०२ ॥  
वकाउरभ्राश्च सकालपुच्छाः कपि-  
ञ्जलाश्चापिकपायवर्गः । गवामजाया-  
ञ्चपयोवृतंचधृतं महिष्याः पनसं पिया-  
लम् ॥ १०३ ॥ रम्भाफलकञ्चटं तुण्डुलीयं  
पटोल वेत्राग्र महार्द्रकाण्डि । पुराण कृष्णाण्ड  
फलं चपक्वं तालानि तद्वीज जलानि

वासा ॥ १०४ ॥ स्यादूनि चिम्बानि च  
दाडिमानि खजूरधात्रीमिशि नारिकेलम् ।  
कशेरु श्रुद्राटमरुत्कराणि कपित्थ शालूक  
परूपकाणि ॥ १०५ ॥ भूमिम्बशाकं पिचुमर्द  
परं तुम्बीकलिङ्गानि चलाजशक्तुः ।  
द्राक्षासितामाक्षिकमैक्ष्यवश्च शीतोदकं  
चौद्रिट वारिचापि ॥ १०६ ॥ सेकोज्व-  
गाहः शतधौतसपिः रम्यङ्ग योगः शिशिरः  
प्रदेहः । हिमानिलश्चंदनमिन्दु पादाः  
कथाविचित्राश्चमनोनुकूलाः ॥ १०७ ॥  
धाराग्रहंभूमिग्रहंसुशीतं वैदूर्य मुक्तामणि  
धारणं च । रक्तोत्पलाम्भोरुहपत्र शय्या  
क्षामाम्बरं चोपनममुशीतम् ॥ १०८ ॥  
मियङ्ग युक्त चन्दन रूपितानामालिङ्गनं  
चापि वराङ्गनानाम् पद्माकराणां सरितां-  
हृदानां चन्द्रोदयानां हिमवद्वरीणाम् १०९  
सुशीतलानां गिरिनिर्भराणां श्रुति-  
प्रशस्तानिच कीर्तितानि । मृकृष्टनीरं  
हिमजालुका च मित्रंनृणां शोणित पित्त-  
रोगं ॥ ११० ॥

अधोगामी रक्तपित्त में वमन ऊर्ध्वगामी रक्त-  
पित्त में विरेचन और उभय गामी में लघन  
करना चाहिये । पुराना साठी चावल, अगहनी  
धान का चावल, कोदों, कॉगनी, नीवार बौ, तीनी  
चावल, मूंग, मसूर, चना, अरहर, मोंड, अन्न, चिगट  
वर्मा दोनों प्रकार की मछली, खरगोश, कपोत  
(एक प्रकारका कूत्तर) हिरन ऐन (मृगभेद) लवा,  
लेह कूत्तर, बत्ख, बगला, मेदा, दुग्धा, सफेद  
तोतार, कसैली औषधियाँ, गौतम बकरी का घी-  
दूध भैंस का घी, कटहल, चिरौनी, केला, केचट  
(चौलाई भेद) चौलाई, परवल, घेत की कोपल  
अदरक पुरानापेठा, पके हुए ताड़ का फल और  
उसके बीजों का रस जल अदुसा, मीठा कदूरी का  
फल, मीठा अनार, खजूर, चावला, लौक, नारियल,

कसेरू, मिघाडा, भिलावा, कैध, कमलकंद, फालसा चिरायता का शाक, नीम की पत्ती, तुम्बी, मतीरा, धान की खील के सत्तू मुनफा, मिश्री, शहद, ईस्र का रस, शीतल जल, श्रीन्द्रिद जल से परिपेक (सींचना) दुबकी लगाकर स्नान, सौ बार धोया भी लगाना, तैल की मालिश, शीतल लेप, शीतल वायु, चन्दन का लेप, चाँदनी सेवन, मनोरंजक कथावाता, विनोद, फुहारैयुक्त घर में रहना, शीतल तहखाने में निवास, सैदूर्य तथा मोती आदि मणि धारण, केले, कमल आदि के पत्तों पर सोना, पतले बारीक कपड़े पहनना, गहरी छाँहदार फूल बगिया में रहना, फूलप्रिय प्रेम सहित चन्दनलेप किए सुन्दरी स्त्रियों का आलिंगन, कमल खिळे नदी तालाब में विहार, चाँदनी में यर्फीले गुफा में रहना, ऊरनों युक्त शीतल पर्वतों पर विहार, शीतल जल और शीतल वायु, रक्तपित्त रोग में मित्र के समान लाभदायक है ॥ १०१-११० ॥

रक्तपित्त में अपथ्य ।

व्यायामाध्वनिपेवणं रविकरस्तीक्ष्णानि कर्माणि च । क्षोभो वेगविधारणं चपलता हस्त्यश्वयानानि च ॥ १११ ॥ स्वेदास्त स्त्रुतिधूमपान सुरत क्रोधाः कुलत्थो गुडा । वार्ताकुस्तिलमाप सर्पपदधित्ती राणि कौपे पयः ॥ ११२ ॥ ताम्बूलं नवदाम्बु मयलशुनं शिम्बी विरूद्धाशनं कद्वाम्लं लवणं विदाहि च गणस्त्याज्योऽत्रपित्ते चृणाम् ॥ ११३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रक्तपित्ता-  
धिकारः समाप्तः ॥

शारीरिक परिश्रम, पैदल मार्ग चलना, धूप, परिश्रम और क्रूरतापूर्ण काम करना, सोम करना, मद्यमय आदि के वेगों को रोकना, बंचकता (घार २ इधर-उधर घूमना उठना-बैठना) इगधी घोड़ा आदि की धक्के चलने वाली सवारी, श्वेदन, रक्त निकलवाना, धूमपान, मैपुन, क्रोध

कुलयी, गुड, बैंगन(ताजा जल)तिल, उरद, सरसों दही, शारीय पदार्थ कुर्णका जल पान, खस, की शराब, लहसुन, सेम; विरुद्ध अन्न चरभरे खट्टे नमकीन, जलन, उपन्न करने वाले पदार्थों का सेवन, रक्तपित्त के रोगी के लिए हानिकारक है ॥ १११-११३ ॥

इति सरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाऽभिधायं व्याख्यायां  
रक्तपित्ताऽधिकारः समाप्तः ॥

## अग्निमान्द्याधिकारः ।

पाचकाग्नि की सर्वथा रक्षणीयता

सारमेतच्चिकित्सायाः परमग्नेश्च पाल-  
नम् । तस्माद् यत्नेन कर्त्तव्यं वहेस्तु गति-  
पालनम् ॥ १ ॥ अस्तु दोषशतं क्रुद्धं सन्तु  
व्याधिशतानि च । कायाग्निमेव मतिमान्  
रक्षन् रक्षति जीवितम् ॥२॥ समस्य रक्ष्यं  
कार्यं विपमे वातनिग्रहः । तीक्ष्णे पित्त-  
प्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम् ॥३॥

पाचकाग्नि की यत्नपूर्वक रक्षा करना यही चिकित्सा का तत्व है, इससे यत्नपूर्वक अग्नि की रक्षा करनी चाहिये । सैकड़ों दोष कुपित हुये हों, सैकड़ों रोग उपन्न हुये हों, तथापि पहिले अग्नि की ही रक्षा करने से रोगी के जीवन की रक्षा हो सकती है । यदि अग्नि सम हो तो उसको उसी रूप में रक्षित रखना, विपमाग्नि हो तो वायु का शमन करना, तीक्ष्णाग्नि हो तो पित्त का शमन करना और यदि मन्दाग्नि हो तो कफ का शोधन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

अग्निमान्द्य ।

हरीतकी तथा शुष्ठी मद्यमाणा गुडेन

१ 'विशोषण्यं' इति पाठान्तरम्-कफ को सुखाना चाहिये यह भी भयं होता है ।

च । सैन्धवेन युता वापि सातत्येनाग्नि-  
दीपनी ॥ ४ ॥

हरद और सोंठ को गुड या सेंधे नमक के साथ खाने से अग्नि बढ़ती है, अर्थात् यह योग अग्निदीपन है ॥ ४ ॥

सैन्धवादिचूर्ण ।

सैन्धवं चित्रकं पथ्या लसङ्ग मरिचं  
कणा । टङ्गनं नागरं चव्यं यमानी मधुरी  
वचा ॥ ५ ॥ द्रव्याणि द्वादशैतानि  
समभागानि चूर्णयेत् । भावयेन्निम्बुक-  
द्रावैस्त्रिसप्ताहं प्रयत्नतः ॥ ६ ॥ ततो  
मापद्वयं चूर्णं वारिणोप्येन पाययेत् ।  
सैन्धवेन सतक्रेण मस्तुना वाञ्जिकेन वा ।  
सैन्धवाद्यमिदं चूर्णं सद्यो वह्निं प्रदीप-  
येत् ॥ ७ ॥

संधानमक, चीता का मूल, हरद, लींग,  
भिरिच, पीपरि, सोहागा फुला हुआ, सोंठ,  
चव्य, अजवाइन, सौंफ और वच, इन १२  
औषधों का समभाग चूर्ण एकत्रित कर २१ दिन  
पर्यन्त नींबू के रस में भावना देकर सुखा लेवे ॥  
इसकी मात्रा २ मासा । उष्ण जल, संधानोन  
मिला तक, दही का पानी अथवा कानी, इनमें  
से किसी एक के साथ सेवन करना चाहिये ।  
सेवन करने में शीघ्र ही अग्नि दीप्ति होती  
है ॥ ५-७ ॥

हिङ्गुवृक्ष चूर्ण

त्रिकटुकमजमोटा सैन्धवं जीरके द्वे  
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः । प्रथम-  
कमलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतत् जनयति  
जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ८ ॥

अजमोटात्र यमानी अग्नेरत्यन्तदीप-  
नत्वादिति भानुदासगोपालदासौ । चूर्णं  
भक्तोपरि दत्त्वा घृतेन सन्धीय ग्रासत्रयं  
भोजनीयमिति भानुदासः ।

सोंठ, भिरिच, पीपरि, अजवाइन, सेंधा  
नमक, स्याह जीरा और सफेद जीरा ये सब  
औषध समभाग हों तथा हींग सब औषध का  
अष्टमाश हो, इनको कूट पीसकर चूर्ण बना  
लेवे । भोजन करने के समय पहले ग्रास के  
साथ घृत में मिलाकर इस चूर्ण का सेवन करने  
से अग्नि की दीप्ति और वातजन्धरोगों का  
नाश होता है ॥ ६ ॥ भानुदास कहते हैं कि  
भात में इस चूर्ण को मिश्रितकर घी में स्नान  
कर पहिले तीन ग्रास भोजन करना चाहिये ।  
मात्रा—१ मासा ॥ ८ ॥

शुद्धदग्निमुख चूर्ण

द्वौ चारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लव-  
णानि च । सूक्ष्मैलापत्रकं भार्गी कृमिन्मं  
हिङ्गुगुपुष्करम् ॥ १६ ॥ शटी दार्वी  
त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयस्तथा । धात्री-  
जीरकटुक्षले श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ १७ ॥  
अम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च ।  
अभयातिविषा श्यामा हनुपारग्वधं समम् ।  
११ ॥ तिलमुष्ककशिशृणां कोकिलाक्ष-  
पलाशयोः । चाराणि लौहकिट्टञ्च तप्तं  
गोमूत्रसेचितम् ॥ १२ ॥ समभागानि  
सर्पाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । मातु-  
लुङ्गरसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ १३ ॥  
दिनत्रयन्तु शुक्लेन आर्द्रकस्य रसेन च ।  
अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ।  
१४ ॥ उपयुक्ताविधानेन नाशयत्यचिराद्द-  
टान् ॥ अजीर्णरुमथो गुल्मान् सीहानं  
गुटजानि च ॥ १५ ॥ उदराण्यग्रवृद्धिञ्च  
अष्टीलांवातशोणितम् । मण्डत्युल्ब-  
गान् रोगान् नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ १६ ॥

१ चूर्ण बनाने से पहिले हींग और दोनों  
जीराओं को भून लेना चाहिये ।

समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं कृत्वा सुभाजने ।  
दापयेदस्य चूर्णस्य मापद्वयमितं शुभम् ।  
गोदोहमात्रात्तत् सर्वं द्रवीभवति सोष्म-  
कम् ॥ १७ ॥

जवाखार, सज्जीखार, चीता, पाद्री कजा के मूल की छाल, पाँचों नमक, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, भारगी, बायबिडग, हींग, पुहकर-मूल, कचूर, दादहलदी, निशोय, नागरमोधा, बच, इन्द्रजौ, आँवला, जीरा, अमलोनिषा ( विपात्रिल या कोकम ), गजपीपरि, कलौजी अमलवेत, इमली, अजवाइन, देवदारु, हरीतकी, अतीस, अन्नन्तमूल, हाऊबेर, अमिलतास की फली का गूदा, तिल की लकड़ी का छार, मोखा का छार, मर्हिजन की छाल का छार, ताल मखाना के पच्चाइ का छार, पलाश का छार, तपाकर गोमूत्र में सुखाया हुआ मण्डूर, इन सब औषधों को समान परिमाण में लेकर महीन चूर्ण बनावे । उस चूर्ण को तीन दिन तक धिजौरा नींबू के रस में, तीन दिन शुक्र में और तीन दिन पर्यन्त अदरक के रस में खरल करके सुखा लेवे । धिधि से सेवन करने पर यह चूर्ण अजीर्ण, गुल्म, ज़ीहा बवासीर, उदर, अन्नप्रवृद्धि, अछीला और वातरज आदि अनेक उल्लेख्य रोगों को शीघ्र नष्ट कर शीघ्र अन्नों का परिपाचन और अग्नि का दीपन करता है । यह प्रज्वलित अग्नि के समान है । घाली में भात, दाल, तरकारी, शाक और धूल आदि भोज्य पदार्थों को परोमकर, उनमें २ मासा बृहदग्निमुख चूर्ण मिलाकर थोड़ी देर रख देवे, इससे यह अन्न गल जायगा और उसमें से धुवाँ सा निकलने लगेगा । मात्रा-१ मासा से २ मासा तक ॥ ११-१७ ॥

वडवानलचूर्ण ।

सैन्धवं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्र-  
कम् । शुण्ठी हरीतकी चेति क्रमवृद्धानि  
चूर्णयेत् ॥ १८ ॥ वडवानलनामैतच्चूर्णं  
स्यादग्निदीपनम् ॥ १९ ॥

तैषा नमक १ भाग, पिप्पलीमूल १ भाग,

पीपल ३ भाग, चव्य ४ भाग, चित्रक ५ भाग, सोंठ ६ भाग, हरद ७ भाग, इन सम्पूर्ण द्रव्यों का पृथक्-पृथक् चूर्ण कर मिला ले । इस चूर्ण से अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ १८-१९ ॥

वडवामुखचूर्ण ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जविल्व्वाग्निभिः  
सितातुल्यै । वडवामुखं विजयते गुरुतर-  
मपि भोजनं चूर्णम् ॥ २० ॥

हरद, सोंठ, पीपल, करञ्ज की छाल, विह्व फलमजा, चित्रक, हर एक द्रव्य बराबर लेकर चूर्ण कर ले । इस सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर खाँद मिश्रण करे मात्रा-२ मासा । इस चूर्ण के सेवन करने से भारी से भारी भोजन पच जाता है ॥ २० ॥

भास्करलवण ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्ण-  
जीरकम् । सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तालीश-  
केशरम् ॥ २१ ॥ एषां द्विपलिकानि भागान्  
पञ्च सौचर्चलस्य च । मरिचाजाजीशुण्ठी-  
नामैकैकस्य पलं पलम् ॥ २२ ॥ त्वगेला  
चार्द्धभागेन सामुद्रात् कुडवद्वयम् । दाडि-  
मात् कुडवञ्चैव द्वे पले चाम्लपेतसात् ।  
॥ २३ ॥ एतच्चूर्णाकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यम-  
मृतोपमम् । लवणं भास्करं नाम भास्करेण  
विनिर्मितम् ॥ २४ ॥ जगतस्तु हितार्थाय  
वातश्लेष्मामयापहम् । वातगुल्मं निहत्याशु  
वातशूलानि यानि च ॥ २५ ॥ तक्रमस्तु  
मुरारीधुशुक्रकाञ्जिकुयोजितम् । जाड  
लानां च मांसेन रसेन विक्रियेन च ॥ २६ ॥  
मन्दाग्नेररततो नित्य भवेदाग्नेय पावरुः ।  
अर्शासि प्रहृष्टीदोषं कृष्टामयमगन्दरान् ।  
२७ ॥ हृष्टोगमामत्रोपञ्च विषद्दानुदरे  
स्थितान् । सीहानमररीञ्चैव द्वास्तवा-



सोदरकृमीन् ॥ २८ ॥ विशेषतः शर्करा-  
दीन् रोगान् नानाविधांस्तथा । पाण्डु-  
रोगांश्च विविधान् नाशयत्यग्नि-  
र्यथा ॥ २९ ॥

पत्रतालीशादियोगादेव गन्धाढ्यं न  
पुनरपरचातुर्जातादिप्रक्षेपात् ।

पीपरि, पिपरामूल, धनिया, कालाजीरा,  
संधानमक, विडनोन, तेजपात, तालीसपत्र और  
नागकेशर प्रत्येक ८ तोला, कालानमक २०  
तोला, निरिच, जीरा और सोंठ प्रत्येक ४ तोला,  
दालचीनी और छोटी इलाइची के दाने प्रत्येक  
२ तोले, सामुद्रनोन ३२ तोला, अनार के दाने  
१६ तोला और अमलबेत ८ तोला; इनको  
भलीभाँति कूट पीस कपड़छान करके रख लेवे ।  
सुगन्धित और अमृत के समान लाभदायक इस  
भास्करलवण का भगवान् भास्करजी ने संसार  
के हित के लिये आविष्कार किया था । मठा  
(छाद्य), दही का पानी, सुरा, सीधु (ईल के  
रस का सिरका), कॉजी, जहली पशुओं का  
मासरस आदि विविध अनुपानों के साथ इसका  
सेवन किया जाता है । उक्त अनुपानों के साथ  
सेवन करने पर यह लवण वातरलैप्मिकरोग,  
वातगुल्म, वातिकशूल, अग्निमान्द्य, बवासीर,  
ग्रहणीविकार, कुष्ठ, भगन्दर, हृद्रोग, आमदोष,  
मलवद्धता, प्लीहा, अरमरी (पथरी), श्वास,  
कास, उदररोग, अनेक प्रकार के शर्करा रोग  
पाण्डुरोग आदि अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट  
करता है । अग्नि के दीपन के लिये यह महोपध  
है । इस लवण को सुगन्धित बनाने के अभिप्राय  
से इसमें किसी चातुर्जातादि सुगन्धित पदार्थों  
का प्रक्षेप नहीं किया गया है, किन्तु तालीसपत्र  
और तेजपात आदि औषध हों ऐसे हैं जिनके,  
योग से यह सुगन्धित हो जाता है ॥ २१-२९ ॥

अग्निमान्द्यहर योग ।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठवि-  
शोधनम् । अग्निमन्दीपनं हृद्यं लवण-  
कम् भक्षणम् ॥ ३० ॥

भोजन से पहिले संधानोन मिलाकर थोडा  
अदरख खाना चाहिये । इससे जिह्वा और  
कण्ठ की शुद्धि तथा अग्नि की दृग्धिता होती है ।  
यह हृदय के लिये लाभप्रद और सर्वदा पथ्य  
है ॥ ३० ॥

आमजीर्णचिकित्सा ।

त्रचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रश-  
स्यते ॥ ३१ ॥

वच को पानी में पीसकर संधानमक के साथ  
सेवन करने से वचमन हो जाता है, इससे आमदोष  
की शान्ति होती है ॥ ३१ ॥

धान्यनागरसिद्धं च तोयं दद्याद्रिच-  
क्षणः । आमामीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्ति-  
शोधनम् ॥ ३२ ॥

धनियाँ तथा सोंठ के काढ़े को आमामीर्ण  
में सेवन कराना चाहिए, इसके प्रयोग से शूल  
का शमन होता है तथा मूत्राशय साफ होता  
है ॥ ३२ ॥

विदग्धाजीर्ण की चिकित्सा ।

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं शीता  
मृनुना वै परिपाकमेति । तत्तस्य शैत्येन  
निहन्ति पित्तमाक्लेदिभावाच्च नयत्य-  
धस्तात् ॥ ३३ ॥

विदग्धाजीर्ण में शीतल जल पीने से अन्न  
का शीघ्र ही परिपाक हो जाता है । तथा  
उस जल की ठण्डक और द्रवत्व से दूषित पित्त-  
नष्ट होकर अन्न अधोमार्ग से निकल जाता  
है ॥ ३३ ॥

हरीतकीधान्यतुपोदसिद्धा सपिप्पली  
सैन्धवसंयुक्ता । सोद्धारधूमं भृशमप्यजीर्णं  
विभज्य सद्यो जनयेत् क्षुधाश्च ॥ ३४ ॥

हरीतकी और पीपरि, इन दोनों को कॉजी  
में पकाकर संधानमक के साथ सेवन करने  
से धूमयुक्त टकास का आना और अजीर्ण,

इनकी निवृत्ति होने से शीघ्र ही भूषण लगती है ॥ ३४ ॥

विष्टब्धाजीर्णाचिकित्सा ।

विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं पेयञ्च लवणोदकम् । रसशोषे दिवास्वप्नं लङ्घनं वातवर्जनम् । ३५ ॥

विष्टब्धाजीर्ण में स्वेदन करना और नमक मिलाकर पानी पीना चाहिये । रसशोषाजीर्ण में दिन में शयन करना, उपवास करना और वायु से बचना लाभदायक होता है ॥ ३५ ॥

व्यायामप्रमदाध्ववाहनवतः क्लान्तानतीसारिणः शूलरवासवतस्तृपापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् । क्षीणान् क्षीणकफान् शिशून् मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान् कामं दिवा स्नापयेत् ॥ ३६ ॥

जो लोग सर्वदा व्यायाम, रतीसङ्ग, रास्ता चलना और घोड़ा आदि की सवारी करके भ्रमण किया करते हैं, इनके लिये तथा क्लान्त ( थके हुए ), अतिसाररोगी, शूलरोगी, स्वास-रोगी, नृष्णारोगी, हिचकी और वायु से पीडित, क्षीणधातु, क्षीणकफ, शिशु, मदाराययादि रोगी, वृद्ध, रसशोषाजीर्ण रोगी, रात में जागे हुये और निराहार मनुष्यों के लिये दिन में यथेष्ट शयन करना लाभदायक होता है ॥ ३६ ॥

सर्वाजीर्णनाशक विधि ।

आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिंमुञ्च्युपण-सैन्धवैः । दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्ण-विनाशनम् ॥ ३७ ॥

हाँग, सोंठ, मिरिच, पीपरि और संधा ममक, इनको पानी में पीसकर पेट पर लेप करके दिन में शयन करने से सब प्रकार के अजीर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

अजीर्णहर योग ।

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् । मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोष-गतिं भिषक् ॥ ३८ ॥ चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दानलमरोचकम् । आध्मानं वातगुल्मञ्च शूलश्चाशु नियच्छति ॥ ३९ ॥

हरद, पीपरि और कालानमक, इन तीनों को सम भाग लेकर चूर्ण बनावे । दोषानुसार दही के पानी अथवा उष्णजल के साथ इस चूर्ण का सेवन करने से चार प्रकार के अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अरोचक, आध्मान, वातगुल्म और शूलरोग नष्ट होते हैं ॥ ३८-३९ ॥

विसूचिकाचिकित्सा ।

विसूचिकायां वमितं विरिक्तं सलङ्घितं वा मनुजं विदित्वा । पेयादिभिर्दीपनपाच-नैश्च सम्यक् क्षुधार्त्तं समुपक्रमेत् ॥ ४० ॥

विसूचिकारोग में वमन, विरेचन और लह्वन कराने के परचात् रोगी को भली भाँति भूख लगने पर दीपन और पाचन पेया आदि आहार के लिये देना चाहिये ॥ ४० ॥

जलपीतमपामार्गमूलं हन्ति विसूचि-काम ॥ ४१ ॥

विरचिचा की जड़ को पानी में पीस कर पीने से विसूचिकारोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

वालमूलस्य तु क्वाथः पिप्पलीचूर्ण-संयुतः । विसूचीनाशनः श्रेष्ठो जठराग्नि-विवर्धनः ॥ ४२ ॥

छोटी मूली के काढ़े में पीपल का चूर्ण ऊपर से मिलाकर 'पिलाने से विसूचिका (हैजा) नाश को प्राप्त होता है तथा यह अग्निप्रदीपक है ॥ ४२ ॥

विल्वनागरनिःक्वाथो हन्याच्छर्दि विसूचिकाम् । सतैलं कारवेल्लाम्यु नाश-येद्धि विसूचिकाम् ॥ ४३ ॥

बिस्व घौर सोंठ के काढ़े से क्रे तथा विसूचिका ( हँजा ) नष्ट होता है और तेलयुक्त करले वा रस भी विसूचिका को नाश करता है ॥ ४३ ॥

कुष्ठसैन्धवयो कल्कं चुक्रतैलसमन्नि-  
तम् । विसूच्यां मर्दनं कोप्यं खल्लीशूल-  
निवारणम् ॥ ४४ ॥

चूक ( अभाव में काँजी ) और तिल क तेल के साथ कूठ और लाहौरी नमक पीसकर गरम करके मर्दन ( मालिश ) करने से हाथ, पैर आदि का खल्लीशूल निवृत्त होता है ॥ ४४ ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रां मूलं  
समावाप्य चमातुलुङ्ग्याः । द्यायाविशुष्का  
गुटिकाः कृतास्ता हन्युर्विसूचीं नयना-  
ञ्जनेन ॥ ४५ ॥

सोंठ, मिरिच, पीपरि, हरद, करञ्ज का फल, हल्दी और बिजौरा का मूल, इनको पानी में पीसकर गोलियाँ बना लेवे । इन गोलियों को छाया में सुखाकर रख लेवे । पानी में घिसकर इसको आँखों में अञ्जन करने से विसूचिका नष्ट होती है ॥ ४५ ॥

गुडपुष्पशिखरीतण्डुलगिरिकर्णिका-  
हरिद्रामिः । अञ्जनगुटिका विलयति  
विसूचिकां त्रिकटुसंयुक्ता ॥ ४६ ॥

महुआ का फूल, चिरचिरा के बीज का भावल, सफेद कोयल की जड़, हल्दी और शिबडु इनको एकत्र पानी में पीसकर गोलियाँ बना लेव । इस अञ्जन गुटिका को पानी में घिसकर आँखों में अञ्जन करने से विसूचिका रोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

त्वक्पत्ररास्नाऽगुरुशिग्र कुष्ठैरम्लमपिष्टैः  
सवचाशताहैः । उद्वर्त्तनं खल्लिविसू-  
चिकाघ्नं तैलं विपकञ्च तदर्थकारि ॥ ४७ ॥

दाखधीनी, तेजपात, रास्ना, अगार, सहिजन

की दाल, कूठ, बच और सोया, इन कुल औषधों को एकत्र काजी में पीसकर मर्दन करने से अथवा इन औषधा के बल्क और काँजी के साथ पकाकर सिद्ध किये हुये तैल का मर्दन करने से विसूचिका और विसूचिकाजन्य हाथ पैर आदि का सिकुडना, एँठना आदि नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

अलसकचिकित्सा ।

यमनं त्वलसे पूर्वं लग्णेनोप्यवा-  
रिणा । स्वेदो वर्त्तिर्लङ्घनञ्च क्रमश्चातोऽग्नि-  
वर्द्धनः ॥ सेवयेदौषधं पश्चात् मूत्रकृद्वायु-  
नाशनम् ॥ ४८ ॥

अलसकरोग में पहिले लवण मिला उष्ण जल पिलाकर यमन करावे । पश्चात् स्वेद, वर्ति, उपवास और अग्निवर्धक क्रियाओं को करे । तदनन्तर मूत्रजनन ( जिससे पेशाब उतरे ) और वायुनाशक औषधों का सेवन कराना चाहिये ॥ ४८ ॥

उदरवेदनाधिकित्सा ।

सरुक् चानद्भुदरमम्लपिष्टैः प्रलेप-  
येत् । दारुहेमन्तीकुष्ठशताह्वार्हिगु-  
सैन्धवैः ॥ ४९ ॥

उदर में पीड़ा होती हो और तना हो तो देवदारु, बच, कूठ, सोया, हींग और लाहौरी नमक, इनको काँजी में पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ४९ ॥

तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्ण सत्तारमर्त्तिं  
जठरे निहन्त्यात् । स्वेदो घट्टैर्वा बहुवाप्य-  
पूर्णेः कोप्येस्तथान्यैरपि पाणितार्पैः ॥ ५० ॥  
तक्रेण सन्धीय यवचूर्णं सयवत्तारं  
चूर्णं खोलके तप्तं कृत्वा उदरे स्वेदो

१—दो तोले मैनफल भी मिला खवे तो और घट्टा है ।

२—बकुल के बीज को पीसकर बत्ती बनाये उस बत्ती को गुदा में रखना चाहिये ।

दातव्यः लेपो वा इति भानुः । अम्ल-  
घोलांश<sup>१</sup> ४ चतुष्पलानि यवचूर्णं पलद्वयं  
यवत्तारमेकपलञ्च सर्वं स्थाल्यां पक्वव्यम् ।  
अतितपन्ते सति अपरघटिकायां किञ्चिद्दत्त्वा  
तां घटीमुदरे भ्रामयेदिति त्रिपुरारिः ।

जौ का आटा और जवाखार का चूर्ण, इनको  
माठा में मिलाकर आग पर उष्ण करके उससे  
उदर पर स्वेद ( सेंक ) देवे अथवा लेप कर देवे,  
यह तो भानुजी का मत है । त्रिपुरारिजी कहते  
हैं कि—'एटा घोल १६ तोला, जौ का चूर्ण ८  
तोला और जवाखार ४ तोला, इन सब द्रव्यों को  
मिश्रित कर बटली में पकावे, जब अत्यन्त तप्त  
हो जावे, तब किसी दूसरे घड़ा में ढालकर उस  
घड़े की पेंदी उदर पर घुमावे ।' बहुत भाप से  
भरे हुए घटों से स्वेदन करना अथवा हाथ गरम  
करके उससे उदर को सेंकना आदि क्रियाओं से  
उदर की पीड़ा दूर होती है ॥ २० ॥

तीव्रात्तिरपि नाजीर्णां पिवेच्छूलघ्न-  
मौषधम् । दोषच्छन्नोऽनलो नालं पक्वुं  
दोषौषधाशनम् ॥ ५१ ॥

उदर में अत्यन्त पीड़ा होने पर भी अजीर्ण  
रोगी शूलनाशक औषध का सेवन न करे । कारण  
यह कि जठराग्नि जब धात आदि दोषों से ढँकी  
रहती है, तब दोष, औषध और किसी भी खाये  
हुए द्रव्य का परिपाक नहीं कर सकती है ॥ २१ ॥

लवङ्गाद्य मोदक ।

लवङ्गं पिप्पली शुण्ठी मरिचं जीरक-  
द्वयम् । केशरं तगरञ्चैव एला जातीफलं  
तुगा ॥ ५२ ॥ कटुफलं तेजपत्रञ्च पद्म-  
वीजं सचन्दनम् । कंकोलमगुरुरचैव उशीर-

१ घोलम्, बली । 'सस्नेहनलमथिते दग्नि' ।  
अर्थात् मलाईयुक्त दही में चौथाई पानी  
ढालकर मधानी से मथकर जो माठा तैयार किया  
जाता है, उसको घोल कहते हैं ।

मभ्रकं तथा ॥ ५३ ॥ कपूरं जातिकोपं च  
मुस्तं मांसी यस्तथा । धान्यकं शतपुष्पा  
च लवङ्गं सर्वातुल्यकम् ॥ ५४ ॥ सर्व-  
चूर्णद्विगुणितं शर्करां विनियोजयेत् ।  
सर्वरोग निहन्त्याशु अम्लपित्तं सुदार-  
णम् ॥ ५५ ॥ अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च काम-  
लापाण्डुरोगनुत् । बलपुष्टिकरञ्चैव विशे-  
पात् शुक्रवर्द्धनम् ॥ ५६ ॥ ग्रहणीं सर्व-  
रूपाञ्च अतीसारं सुदुर्जयम् । अश्विभ्यां  
निर्मितं हन्ति लवङ्गाद्यमिदं शुभम् ॥ ५७ ॥

लौंग, पीपरि, सोंठ, मिरिच, सफेद जीरा,  
स्याह जीरा, नागकेशर, तगर, इलायची, जायफल,  
यशलोचन, कायफल, तेजपात, कमलगट्टा,  
रत्नचन्दन, शितलचीनी, अगर, खस, अभ्रकभस्म,  
कपूर, जावित्री, नागरमोथा, जटामासी, जौ,  
घनिया और सोया प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, लौंग,  
का चूर्ण २६ तोले, इनको एकत्र मिला लेवे ।  
तदनन्तर १०४ तोले मिथ्री लेकर उसकी चाशनी  
बनावे, उस चाशनी को पूर्वोक्त चूर्ण में मिलाकर  
लहडू बना लेवे । इसका सेवन करने से अम्ल-  
पित्त, दाहण, अग्निमा-द्य, अजीर्ण, फामला,  
पाण्डुरोग और सब प्रकार की ग्रहणी, दुर्जय  
अतिसार आदि अनेक रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं  
तथा बल वीर्य की वृद्धि होती है । इस लवङ्गादि,  
मोक्षक का आविष्कार अश्विनीकुमारों ने किया  
था ॥ २२ ५७ ॥

वाताजीर्ण में सुकुमारमोदक ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं मरिचं  
शिवा । धात्री चित्रकमभ्रञ्च गुडूची कटु-  
रोहिणी ॥ ५८ ॥ प्रत्येकमेपां कर्पाशं  
चूर्णं दन्त्यास्त्रिकापिकम् । द्विपलं त्रिटतां  
चूर्णं शर्करायाः पलत्रयम् ॥ ५९ ॥ मधुना  
मोदकं कार्थ्यं सुकुमारकमोदकम् । वाताजी-

एषमशमनं विष्टम्भे परमौषधम् । उदावर्त्त-  
नाहहरं सर्वाजीर्णविनाशनम् ॥ ६० ॥

पीपरि, पिपरामूल, सोंठ, मिरिच, हरद, थांवचा, चीता, अत्रकभस्म गिलोय और कुटकी, प्रत्येक का १ तोला चूर्ण, दन्ती ( जमालगोटे की जड़ ) का चूर्ण ३ तोले, निसोथ का चूर्ण ८ तोले और चीनी १२ तोले, इन सब द्रव्यों को एकत्र कर मधु मिलाकर लड्डू बना लेवे । इसका नाम सुकुमारमोदक । इसका सेवन करने से वाताजीर्ण, विष्टभ, उदावर्त, आनाह और सब प्रकार के अजीर्ण रोग आराम होते हैं ॥ ५८-६० ॥

५९ वाताजीर्ण में हरीतकी प्रयोग ।

हरीतक्याः शतं ग्राह्यं तक्रैः स्निग्धञ्च  
कारयेत् । यत्राद्बीजं समुद्भूय चूर्णानी-  
मानि पूरयेत् ॥ ६१ ॥ पद्मपत्रं पञ्चपट्ट  
यमान्द्वयमेव च । त्रिचारं हिङ्गुदिव्यञ्च  
कर्पूरद्वयमितं पृथक् ॥ ६२ ॥ श्लक्ष्णचूर्णा-  
कृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भावयेत् । लिम्पा-  
कस्वरसेनापि भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ६३ ॥  
खादयेद्भयामेकां सर्वाजीर्णविनाशिनीम् ।  
चतुर्विधमजीर्णञ्च वह्निमान्यं विसूचि-  
काम् । गुल्मशूलादिरोगांश्च नाशयेद्-  
विकल्पतः ॥ ६४ ॥

एक सौ १०० हरद लेकर मठा में उयाल लेवे । तदनन्तर उन हरदों के बीज निकाल डाले, किन्तु बीज निकालने में ऐसी सावधानी रखनी चाहिये कि छिलकों के टुकड़े अलग अलग न हो जावें, नहीं तो उसमें चूर्ण भरने की सुविधा न होगी । पश्चात् पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिरिच, पाँचो नमक, अजवाइन, अजमोद, जवाहार, सजीवार और सोहाया की छील प्रत्येक २ तोले, इनका चूर्ण बनाकर पूर्वोक्त हरीतकी के छिलकों के भीतर भरकर सूत से बाँध देवे । तदनन्तर चूक के रस में और नीबू के रस में तीन तीन दिन भावना

देकर रख लेवे । प्रतिदिन एक-एक हरद खाने से ४ प्रकार के अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विसूचिका, गुल्म और शूल आदि रोग निःसंदेह नष्ट होते हैं ॥ ६१-६४ ॥

विष्टभ में त्रिवृतादिमोदक ।

त्रिवृदन्तीकणामूलं कणा वह्नि पलं  
पलम् । सर्पतुल्यामृता शुण्ठी गुडेन सह  
मोदकम् । कर्पाई भक्षयेन्नित्यं दीप्ताग्निं  
कुरुते क्षणात् ॥ ६५ ॥

निशोथ का मूल, दन्ती ( जमालगोटे की जड़ ) का मूल, पिपरामूल, पीपरि और चीता की जड़ प्रत्येक ४ तोला, गिलोय १० तोला, सोंठ १० तोला इनका चूर्ण बनाकर एकत्र मिला लेवे । तदनन्तर १ सेर गुड़ लेकर चाशनी बनावे, उस चाशनी को चूर्ण में मिलाकर छ-छः भासे के लड्डू बाँध लेवे । एक लड्डू का प्रतिदिन सेवन करने से शीघ्र ही अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ६५ ॥

अग्निमुग्धलवण ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता पुष्करं  
समम् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मा  
त्रन्तु सैन्धवम् ॥ ६६ ॥ भावयित्वा स्नुही-  
क्षीरैस्तत् काण्डे निःक्षिपेत् ततः । मृदु-  
पङ्केनानुलितं मत्तिपेज्जातपेदसि ॥ ६७ ॥  
सुदग्धं तु समुद्भूत्य संचृयैर्योष्याभ्युना  
पिचेत् । एतदग्निमुखं नाम लवणं वह्नि-  
कृतं परम् । यकृत्सीहोदरानाहगुल्मार्शः-  
पार्श्वशूलनुत् ॥ ६८ ॥

( सर्व चूर्णमेकीकृत्य पञ्चरत्रिकमुष्ण-  
जलेन पिचेत् । )

चीता, त्रिफला, दन्ती ( जमालगोटे ) का मूल, निशोथ, पुष्करमूल प्रत्येक समभाग, मिले हुए कुल औषधों के समान संघानोन, इन कुछ औषधों का एकत्र चूर्ण बनावे । तदनन्तर उस

पूर्ण में पहिले धूर के दूध की भावना देकर सुखा लेवे । पश्चात् धूर की मोटी लकड़ी के मध्य में फोखला बनाकर उसमें चूर्ण को भर देवे, लकड़ी के मुप को उसी के ( धूर के ) दूसरे टुकड़े से मुद्रित कर, ऊपर चिकनी मिट्टी का लेप करके सुखा लेवे । तदनन्तर वहाँ की आग में डाल देवे, भलीभाँति जल जाने पर निकाल कर मिट्टी को अलग करके चूर्ण बना कर रख लेवे । इसकी मात्रा ५ रत्ती । अनुपान-उष्ण जल । इसका सेवन करने से अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है, तथा यकृत, प्लीहा, उदर, आनाह, गुल्म, यवासीर और पार्श्वशूल रोग नष्ट होते हैं ॥ ६६-६८ ॥

विष्टम्भ में शार्दूलकाञ्जिक ।

पिप्पली मृद्गरेरञ्च देवदारुसचित्रकम् ।  
चविकां विल्वपेशीञ्च अजमोदां हरीतकीम् ॥ ६९ ॥ महौषधं यमानीञ्च धन्याकं मरिचं तथा ।  
जीरकञ्चापि हिङ्गुञ्च काञ्जिकं साधयेद्भिषक् ॥ ७० ॥ एष शार्दूलको नाम काञ्जिकोऽग्निबलप्रदः ।  
सिद्धार्थं तैलसंभृष्टो दशरोगान् व्यपोहति ७१ ॥  
कासं श्वासमतीसारं पाण्डुरोगं सकामलम् ।  
आमश्च गुल्मरोगञ्च वातशूलं सवेदनम् ॥ ७२ ॥ अर्शांसि श्वयथुञ्चैव भुक्ते पीते च साम्प्रतः ।  
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ ७३ ॥

( सर्वाचूर्णपेक्षया अष्टगुणं काञ्जिकं चतुर्गुणजलेन पकृत्या काञ्जिकशेषमवतारयेत् ।  
वह्निबलानुसारिण्या मात्रया दधात् । )

पीपरि, अदरक, देवदारु, चीता की जड़, चव्य, बेलगिरी, अजमोद, हरीतकी, सोंठ, अजवाइन, धनिया, मिरिच, जीरा और हींग प्रत्येक का चूर्ण समभाग, कुल भिन्नत चूर्ण से आठगुनी काजी और काजी से चौगुना जल ढाल कर ढकावे । जब जल नि शेष हो जावे, तब उतार

लेवे । इसका नाम शार्दूल काञ्जिक है । अग्नि और बल का वर्धक है । इसको मरसों के तेल में छींकर अग्नि और बल के अनुसार योग्य मात्रा में देना चाहिये । इसका सेवन करने से काम, श्वास, अतीसार, पाण्डुरोग, कामला, आमदोष, गुल्मरोग, वेदनायुक्त, वातशूल, यवासीर और शोथरोग नष्ट होते हैं । क्षीरपाक की रीति से ( जिस रीति के अनुसार ऊपर बताने की विधि लिखी है उन्ही रीति से ) इस काञ्जिक को सिद्ध करना चाहिये ॥ ६९-७३ ॥

मुस्तकारिष्ट ।

मुस्तकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्वीणेष्वम्बुनः पचेत् । पादशेषे रसे तस्मिन् क्षिपेद् गुड-  
तुलात्रयम् ॥ ७४ ॥ धातकीं पोटशपलां यमानीविश्वभेषजम् ।  
मरिचं देवपुष्पञ्च मेथीं वह्निञ्च जीरकम् ॥ ७५ ॥ पल्युग्ममितं क्षिप्त्वा रुद्धभाण्डे निधापयेत् ।  
संस्थाप्य मासमात्रन्तु ततः संसावयेद्भिषक् ॥ ६६ ॥ अजीर्णमग्निमान्द्यञ्च विसूचीमपि दारुणम् ।  
ग्रहणीं विविधां हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ७७ ॥

मोथा दस सेर । पाक करने के लिए जल ८ द्रोण ( १ मन २२ सेर ३२ तोला ), जब पकते-पकते २ द्रोण जल ( २५ सेर ४८ तोला ), रह जावे तो उसमें गुड ३५ सेर, धाय के फूल १९ पल ( ६४ तोला ), अजवायन, सोंठ, कालीमिर्च लींग, मेथी के बीज, चित्रक, जीरा, प्रत्येक ८ तोले, चूर्ण मिलाकर एक महीने तक मिट्टी के घड़े में बंद कर रख दे, इसके बाद छान कर काम में लावे । इसके सेवन से अजीर्ण, मन्दाग्नि, विसूचिका ( हैजा ) तथा ग्रहणी आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ७४-७७ ॥

अथ रसप्रयोगः

क्षीरामवाण रस ।

पारदाभृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्मम्-

रिचेन मिश्रितम् । जातिकोपफलमर्द्धभा-  
गिकं तिन्त्रिडीफलरसेन मर्दितम् ॥७८॥  
मापमात्रमनुपानयोगतः सद्य एव जठरा-  
ग्निदीपनः । संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकं  
सामवातखरदूषणं जयेत् ॥ ७९ ॥ अग्नि-  
मान्द्यदशमक्त्रनाशनो रामवाण इव वि-  
श्रुतो रसः ॥ ८० ॥

। पारा, मीठा विष लींग और गन्धक प्रत्येक एक तोला, काली मिरिच २ तोले, जायफल आधा तोला, इन औषधों को एकत्र कर इमिली के फल के रस में घोटकर उर्द के समान गोलियाँ बना लेवे । यह रामवाण रस दोपानुसार अनुपान के साथ प्रयुक्त होने पर संग्रहणीरूपी कुम्भकर्ण को, आमवातरूपी खरदूषण को और अग्निमान्द्यरूपी रावण को नष्ट करके शीघ्र ही अग्नि को दीपन करता है ॥ ७८-८० ॥

अग्निनुएडी घटी ।

शुद्धसूतं विषं गन्धमजमोदाफलत्र-  
यम् । सर्जित्चारं यवत्तारं वह्निसैन्धवजीर-  
कम् ॥ ८१ ॥ सौवर्चलविडङ्गानि सामुद्रं  
द्वन्नं समम् । विषमुष्टिं सर्वतुल्यं जम्बीरा-  
म्लेन मर्दयेत् । मरिचाभां वटीं खादेद-  
ग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८२ ॥

पारा, विष, गन्धक, अजवाइन, अविला, हरद, बहेदा, सजीलार, जवाखार, चीता का मूल, सेंधा नमक, जीरा, कालानमक, चायविडङ्ग, समुद्रनोन और सोहगा फूला हुआ, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुचिला, इन सब औषधों को एकत्र बड़े नीचे के रस में खरल करके कालीमिर्च बराबर गली बनावे । इसका सेवन करने से अग्निमान्द्य रोग दूर होता है ॥ ८१-८२ ॥

टिप्पणी—इसे लगातार १२ दिन तक सेवन न करना चाहिए ।

अग्निरस ।

मरिचाब्जवचा कुष्ठं समांशं विषमेन

च । आर्द्रकस्य रसैः पिष्ट्वा मुद्गमात्रान्तु  
कारयेत् । अयमग्निरसो नाम सर्वाजीर्ण-  
प्रशान्तये ॥ ८३ ॥

(सर्व समं विषम्)

मिरिच, नागरमोथा, बच और कूठ, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर विष, इन कुल औषधों को एकत्र खरल के रस में खरल करके मूँग के बराबर गोलियाँ बनावे । इसका नाम है अग्निरस । इसका सेवन करने से सब प्रकार के अजीर्णरोग शान्त होते हैं ॥ ८३ ॥

अमृतवटी ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनधभागिकैः  
क्रमशः । वटिका मुद्गसमाना कफपित्ता-  
ग्निमान्द्यहारिणी ॥ ८४ ॥

इयमग्निनुएडी नाम्ना च ख्याता ।

विष २ भाग, वराटिका ( कौड़ी ) की भरम १ भाग, और कालीमिरिच १ भाग, इनको जल में पीसकर मूँग के समान गोलियाँ बना लेवे । इसका सेवन करने से कफ, पित्त और अग्निमान्द्यरोग निवृत्त होते हैं । इसका नाम है अमृतवटी, किन्तु 'अग्निनुएडी' नाम से भी प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥

क्षुधासागर रस ।

त्रिकटु त्रिफला चैव तथा लवणपञ्च-  
कम् । चारत्रयं रसं गन्धं भागैकं पूर्ववद्वि-  
पम् ॥ ८५ ॥ गुञ्जामात्रां वटीं कुर्याल्ल-  
वन्नैः पञ्चभिः सह । क्षुधासागरनामायं  
रसः सूर्येण निर्मितः ॥ ८६ ॥

पूर्ववद्विपमित्यमृतवद्युक्तभागवत् तेनात्र  
विषस्य भागद्वयम् ।

त्रिकटु, त्रिफला, पाँचोनमक, जवाखार, सजीलार, सोहगा फूला हुआ, पारा और गन्धक प्रत्येक १ भाग तथा विष २ भाग, इनको एकत्र जल में पीसकर एक-एक रसी की गोलियाँ बना

लेवे। एक गोली को पाँच लौंगों के चूर्ण के साथ शहद मिलाकर चाटे। इसका सेवन करने से मूल लगती है। इस घुषासागर नमक रस का सूर्य ने अविष्कार किया था ॥ ८५-८६ ॥

टङ्गनादि चटी।

टङ्गननागरगन्धकपारदमारुतं मरिचं  
समभागयुतम् । लकुचस्वरसैश्चणकप्र-  
तिमागुटिका जनयत्यचिरादनलम् ॥८७॥

सोहागा फूला हुआ, सोंठ, गन्धक, पारा, विष और मिरिच प्रत्येक सम भाग, इनको एकत्र बड़हल के फल के रस में घोटेकर चना के समान गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से शीघ्र ही अग्नि दीप्त होती है ॥ ८७ ॥

अजीर्णकरटक रस।

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्ण-  
येत् । मरिचं सर्वतुल्यं स्यात् कण्टकाय्याः  
फलद्रवैः ॥ ८८ ॥ मर्दयेत् भावयेत् सर्प-  
मेरुविंशतिवारकम् । गुञ्जामात्रां वटीं  
खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये । अजीर्णक-  
ण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विस्फुचिकाम् ॥ ८९ ॥

पारा, विष और गन्धक प्रत्येक समभाग, नयके बराबर काली मिरिच मिलाकर चूर्ण बनाये। तदनन्तर छोटी कटेरी के फल के रस में २१ बार भावना दकर भलीभाँति खरल करके एक एक रत्ती की गोलियाँ बनाये। इसका नाम अजीर्णकरटक रस है। इसका सेवन करने से सब प्रकार के अजीर्ण और विस्फुचिका रोग नष्ट होते हैं ॥ ८८-८९ ॥ मात्रा— ३४ रत्ती।

महोदधि रस।

एकैकं विषसूतौ च जाती टङ्गं द्विकं  
द्विकम् । कृष्णात्रयं विरगपट्कं तथा टग्धं  
कपर्दकम् ॥ ९० ॥ देवपुष्पं चाणमितं  
सर्वं सम्मर्धं यत्नतः । महोदधिचवटी नाम्ना  
नष्टमग्निं मदीपयेत् ॥ ९१ ॥

विष १ तोला, पारा १ तोला, जायफल २ तोला, सोहागा की खील २ तोला पीपरि ३ तोले, सोंठ ६ तोले, कौडी की भस्म ६ तोले और लौंग ५ तोले, इन सब औषधों को एकत्र जल में घोटेकर २ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से नष्ट अग्नि का फिर दीपन हो जाता है ॥ ९०-९१ ॥

अग्निकुमार रस।

रसेन्द्रगन्धौ सह टङ्गनेन समं विषं  
योज्यमिह त्रिभागम् । कपर्दशङ्खाविह नेत्र-  
भागौ मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥ ९२ ॥  
सुपकजम्बीररसेन घृष्टः सिद्धो भवेद-  
ग्निकुमार एषः त्रिसूचिकाजीर्णसमीर-  
णार्त्तं दद्याच्च गुञ्जां ग्रहणीगदे च ॥ ९३ ॥

अत्र सर्वमेकभागापेक्षया वचना-  
न्तरसंवादात् ।

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागे की खील १ तोला, विष ३ तोले, कौडीभस्म ३ तोले, शङ्खभस्म ३ तोले और मिरिच ८ तोले इन औषधों को एकत्र कर पके जँभीरी नीबू के रस में घोटेकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इस अग्निकुमार रस का सेवन करने से विस्फुचिका (हँजा), अजीर्ण, वानरोग और ग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। मात्रा २।३ रत्ती ॥ ९२-९३ ॥

अग्नि मुख रस।

सूतं गन्धं विषं तुल्यं मर्दयेत्कार्दकद्रवैः ।  
अश्वत्थचिञ्चामार्गं चारः चारो च  
टंकरणम् ॥ ९४ ॥ जातीफलं लवङ्गं च  
त्रिकटु त्रिफला समम् । शङ्ख भस्म पञ्चपटुं  
हिष्णु जीरं द्विमार्गकम् ॥ ९५ ॥ मर्दये-  
दम्लयोगेन गुञ्जामात्रा वटी शुभा । पाचनी  
टीपनी सघोऽजीर्णं शूल विस्फुचिकाः ॥  
९६ ॥ हिफां गुल्मं चोदरं च नागयेन्नात्र



संशयः । रसेन्द्र संहितायां च नाम्नावह्नि-  
मुखो रसः ॥ ६७ ॥

पारा, गन्धक, विष मयको समान भाग लेकर अदरक के रस में छोटे फिर पीपल, इमली, विरचिटा इनके चार यवाचार, सजी और सुहागा, जायफल, लौंग, त्रिकुटा, त्रिफला रामानं भाग ले और शङ्खभस्म पौंचो नमक, हींग, जीरा पारे से दुगने डालकर नीचू आदि खटे रसों में घोटकर २ रत्ती की गोलिया बना ले । यह अग्नि दीपन पाचन है । अजीर्ण, उर्द, हैजा, हिचकी गुल्म आदि पेट के रोगों को नाश करती है । इसको रसेन्द्र संहिता में अग्नि मुख रस कहा है । विशेष अनुभूत है ॥ ६४-६७ ॥

हुताशन रस ।

गन्धेशटङ्गनैकैकं विषमत्र त्रिभागि-  
कम् । अष्टभागन्तु मरिचं जम्भाम्भोमदितं  
दिनम् ॥ ६८ ॥ तद्वर्ती मुद्गमानेन कृत्वा-  
र्द्रेण प्रयोजयेत् । शूलारोचकगुल्मेपु  
विसूच्यामग्निमान्द्यके । अजीर्णसन्निपा-  
तादौ शैत्ये जाड्ये शिरोगदे ॥ ६९ ॥

गन्धक १ भाग, पारा १ भाग, सोहागा फूला हुआ १ भाग, विष ३ भाग और विरिच के भाग; इनको एकत्र नीचू के रस में १ दिन भर छोटे । तदनन्तर मूँग के बराबर गोलियां बना लेवे । अदरक के रस के साथ इसका सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से शूल, अरोचक, गुल्म, विसूचिका, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, सन्निपात, सर्दी, जडता और शिरोरोग दूर होते हैं । मात्रा २३ रत्ती ॥ ६८-६९ ॥

भाम्भक रस ।

विषं मृतं फलं गन्धं त्र्यपणं टङ्गजीर-  
कम् । एकैकं द्विगुणं लौहं शङ्खभ्रवराट्-  
कम् ॥ १०० ॥ सर्पतुल्यं लज्जश्च  
जम्बीरैर्भाजयेद्दिपकम् । सप्तगस्रपर्यन्तं  
ततः स्याद्भास्करो रसः ॥ १०१ ॥ गुञ्जा-

द्वयप्रमाणेन वर्ती कुर्त्याद्विचक्षणः ।  
ताम्बूलीदलयोगेन वर्ती सञ्चर्य भक्षयेत् ॥  
१०२ ॥ शूलरोगेषु सर्वेषु विसूच्यामग्नि-  
मान्द्यके । सद्यो वह्निकरो ह्येप तन्त्रनाथेन  
भाषितः ॥ १०३ ॥

विष, पारा, त्रिफला, गन्धक, त्रिकटु, सोहागा फूला हुआ और जीरा प्रत्येक एक-एक भाग, लौहभस्म, शङ्खभस्म और कौडी-भस्म प्रत्येक दो-दो भाग और सबके बराबर लौंग लेवे । इनको एकत्र जम्बीरी नीचू के रस में ७ दिन पर्यन्त घोटकर २ रत्ती की गोलियां बनावे । पान के पत्ता में रखकर इस वटी को खाना चाहिये । यह वटी सब प्रकार के शूल-रोग, विसूचिका और अग्निमान्द्य को नष्ट कर शीघ्र ही अग्नि को दीप्त करती है । इसके आधिष्ठाता तन्त्रनाथजी हैं । मात्रा ३-४ रत्ती ॥ १००-१०३ ॥

अग्निसन्दीपन रस ।

पट्टपणं पञ्चपटु त्रिचारं जीरकद्वयम् ।  
ब्रह्मदर्भोग्रगन्धे च मधुरी हिङ्गुचित्र-  
कम् ॥ १०४ ॥ जातीफलं तथा कुष्ठ  
जातीकोपं त्रिजातकम् । चिञ्चालोत्तरिक-  
चारममृतं रसगन्धकौ ॥ १०५ ॥ लौहम-  
भ्रश्च पद्मश्च लज्जश्च हरीतकी । सम-  
भागानि सर्वाणि भागौ द्वावम्लानेत्सात् ।  
१०६ ॥ शङ्खस्य भागाश्चत्वारः सर्पमेकत्र  
भावयेत् । काथेन पञ्चकोलस्य चित्रापा-  
मार्गयोस्तथा ॥ १०७ ॥ अम्ललोणीरसे-  
नैव प्रत्येकं भावयेत् त्रिधा । त्रिसप्तहृत्यो  
लिम्पाकरसेः पश्चाद्विभाजयेत् ॥ १०८ ॥  
वदराभा वटी कार्या योत्रक्या सन्ध्य-  
योर्द्वयोः । अनुपानं प्रदातव्यं शुद्ध्वा दोषा-  
नुसारतः ॥ १०९ ॥ अग्निसन्दीपनो नाम  
रसोऽयं भवि दर्लमः । दीपयत्याश मन्त्र-

ग्निमजीर्णञ्च विनाशयेत् । अम्लपित्तं तथा  
शूलं गुल्ममाशु व्यपोहति ॥ ११० ॥

पीपरि, मिरिच, सोंठ, चव्य, चीता, पिपरा-  
मूल, पाँचो नमक, सजीखार, जवाखार, सोहागा  
फूला हुआ, सफेद जीरा, काला जीरा, अजवाइन,  
बच, सौंफ, हींग, चीता का मूल, जायफल,  
कूट, जावित्री, दालचीनी, इलायची, तेजपात,  
इमिली के छाल की भस्म, चिरिचिरा की भस्म,  
मीठा विप. पारा, गन्धक, लोहभस्म, अन्नक-  
भस्म, वरु, लौंग और हरद, इनमें से प्रत्येक  
एक-एक भाग, अमिलबैत २ भाग और शङ्खभस्म  
४ भाग ; इन सब औषधों को एकत्र कर  
पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ के  
काथ में, चीता और चिरिचिरा के काथ में तथा  
चौपतिया के रस में, तीन-तीन बार भावना  
देवे । तदनन्तर नीबू के रस में २१ बार भावना  
देकर पाँच-पाँच रत्ती की गोलियाँ बना लेवे ।  
दोपानुसार अनुपान के साथ सायं प्रातः इस  
घटी का सेवन करना चाहिये । यह अग्निसंदी-  
पन नामक रस शीघ्र अग्नि का दीपन करके  
अजीर्ण, अम्लपित्त, गुल्म और शूल आदि  
रोगों को नाश करता है । मात्रा-३१४ रत्ती  
॥ १०४-११० ॥

अजीर्ण बलकालानल रस ।

द्विपलं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च समं समम् ।  
लौहं ताम्रं हरीतालं विषं तुत्थं सवङ्ग-  
कम् ॥ १११ ॥ पलप्रमाणञ्च पृथक् लवङ्गं  
दङ्गणं तथा । दन्तीमूलं त्रिवृच्चूर्णमेकैकं  
पलसम्मितम् ॥ ११२ ॥ अजमोदां यमानी  
च द्वितारलक्षणानि च । पृथगर्द्धपलं  
ग्राहमेकीकृत्य च भावयेत् ॥ ११३ ॥  
आर्द्रकस्वरसेनैकविंशतिः पञ्च कोलजैः ।  
दशधा भावयेत्तौषैर्गुडुचीनां रसैर्दश ११४ ॥  
सर्वार्द्धमरिचं दत्त्वा काचहृष्याञ्च धारयेत् ।  
गुडामात्रा वर्दी कृत्वा द्वायायां परिशोप-

येत् ॥ ११५ ॥ रसोऽजीर्णबलकालानल  
एष प्रकीर्तितः । अनेककालनष्टाग्नेर्दीपनः  
परमः स्मृतः ॥ ११६ ॥ आमवातकुल-  
ध्वंसी स्त्रीहपाण्डुगदापहः । प्रमेहानाह-  
विष्टम्भसूतिकाग्रहणीहरः ॥ ११७ ॥  
श्वासकासप्रतिश्याययक्ष्मक्षयविनाशनः ।  
अम्लपित्तञ्च शूलञ्च भगन्दरगुदोद्भवौ ॥  
११८ ॥ अष्टोदराणि प्लीहानं यकृतं  
हन्ति दारुणम् । आकण्ठं भोजयित्वा तु  
स्वादयेच्च रसोत्तमम् ॥ ११९ ॥ अर्द्धया-  
मेन तत्सर्वं भस्मीभवति निश्चितम् ।  
चतुर्विधरसोपेतं महाभोजनमिच्छतः ॥ १२० ॥  
भोजस्य नृपतेः काङ्क्षा भोजनात् कृपया  
कृतः । गहनानन्दनाथेन सर्वलोकहितै-  
पिणा ॥ १२१ ॥

पारा ८ तोला, गन्धक ८ तोला, लोहभस्म  
४ तोला, ताम्रभस्म ४ तोला, हरताल ४ तोला,  
मीठा विष ४ तोला, तृतीया (गुड) ४ तोला, वरु-  
भस्म ४ तोला, लौंग ४ तोला, मुहागा ४  
तोला, दन्तीमूल ४ तोला, निसोत ४ तोला,  
अजमोद २ तोला, अजवाइन २ तोला, पयपार  
२ तोला, सजिचार २ तोला, पाँचों नमक २  
तोला, इसमें सम्पूर्ण चूर्ण से आधा भाग काळी-  
मिर्च का चूर्ण मिश्रित करे । इसके बाद अदरक  
के रस से २१ बार भावना देकर य पञ्चकोल  
के काष्ठ से और गिलोय के रस से १० बार  
भावना देकर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना  
ले और छाप्या में गुणा ले । इन गोलियों के  
सेवन करने से मन्द हुई अग्नि दीप्त होती है  
तथा आमवात, तिर्यग्जी, पीरिया, प्रमेह, आनाह,  
विष्टम्भ ( एक उकार का अजीर्ण ), सूतिका-  
रोग, अदण्डि, श्वास, सर्वासी, प्रतिश्याय ( जुकाम ),  
यक्ष्मा, अम्लपित्त, शूल, भगन्दर, ववासीर,  
त्रिगर आदि रोग नाश को गत होने दे । यह रस  
कण्ठ तक किये हुए भोजन को शीघ्र पचाने-  
वाला है ॥ १११-१२१ ॥ मात्रा ३-४ रत्ती ।

(१-२) शंखवटी और महाशंखवटी ।

दग्धशङ्खस्य चूर्णं हि तथा लवण-  
पञ्चकम् । चिञ्चिकात्तारकञ्चैव कटुकत्रय-  
मेव चं ॥ १२२ ॥ तथैव हिङ्गुगुक्तं ग्राह्यं  
विषगन्धकपारदम् । अपामार्गस्य वह्नेश्च  
कार्यैर्लिम्पाकजै रसैः ॥ १२३ ॥ भावयेत्  
सर्वचूर्णं तदम्लवर्गैर्विशेषतः । यावत्तद-  
म्लतां याति गुटिकामृतरूपिणी ॥ १२४ ॥  
सद्यो वह्निकरी चैव भस्मकञ्च नियच्छति ।  
भुक्त्वा कण्ठन्तु तस्यान्ते खादेच्च गुटिका-  
मिमाम् ॥ १२५ ॥ तत्क्षणाज्जारयत्याशु  
सर्वाजीर्णविनाशिनी । ज्वरं गुल्मं पाण्डु-  
रोगं कुष्ठं शूलं प्रमेहकम् ॥ १२६ ॥ वात-  
रक्तं महाशोथं वातपित्तकफानपि । दुर्ना-  
मारिरयश्चाशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ १२७ ॥  
निर्मूलं दह्यते शीघ्रं तूलकं वह्निना यथा ।  
लौहवद्भयुता सेयं महाशङ्खवटी स्मृता ॥  
१२८ ॥ प्रभाते कोष्णतोयानुपानमेव  
प्रशस्यते ॥ १२९ ॥

१ शङ्खभस्म, पौषों नमक, इमली की छाल  
का चार, सोंठ, मिरिच, पीपरि, हाँग, विष,  
गन्धक और पार, इन सब औषधों को समभाग  
लेकर मिश्रित करके खरल कर लेवे । तदनन्तर  
चिरचिरा और चीता के द्वाथ में भावना देने के  
परचात् नींबू के रस में और धम्लवर्ग में इस  
प्रकार भावना देवे, जिससे कि यह कुल चूर्ण  
धम्ल ( खट्टा ) हो जावे । तदनन्तर दो २ रत्नी  
की गोलिएयाँ बना लेवे । इसका नाम शङ्खवटी है ।  
इसी में लोहभस्म और वह्नभस्म मिला देने से  
महाशङ्खवटी कही जाती है । प्रातः काल उष्ण  
जल के साथ सेवन करना चाहिये । ये बटियाँ  
भस्म के समान लाभदायक हैं । इनका सेवन  
करने से अग्निमान्द्य, भस्मक, सब प्रकार के  
अजीर्ण, ज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, कुष्ठ, शूल,  
प्रमेह, वातरज, महाराशय और बवासीर आदि

रोग, वात, पित्त और कफ शीघ्र नष्ट होते हैं ।  
कण्ठपर्यन्त भोजन करके भी यदि इस शङ्खवटी  
धयवा महाशङ्खवटी का सेवन किया जाय तो  
चणमात्र में ही सब खाये हुये पदार्थों को  
हज्म कर देती है । ये हजारों बार अनुभूत हो चुकी  
है ॥ १२२-१२९ ॥ मात्रा ३ध रत्नी ।

अग्नीसूतरस ।

भागो दग्धकपर्दकस्य च तथा, शङ्खस्य  
भागद्वयं । भागो गन्धकसूतयो मिलितयोः  
पिष्ट्वा मरीचादपि ॥ १३० ॥ भागस्य-  
त्रितयं नियोज्य सकलं निम्बूरसैर्मदितं ।  
नाम्ना वह्नि सुतो रसोज्यमाचिरान्मान्द्यं  
जयेदारुणम् ॥ १३१ ॥ घृतेन खण्डैः सह-  
भक्तितोऽसौ क्षीणान् नरान् हस्ति समान  
करोति ॥ समागधी चूर्णं घृतेन लीढ्वा  
युक्तोभनेत्संग्रहणी विकारान् ॥ १३२ ॥  
शोषं ज्वरारोचकशूलं गुल्मान् पाण्डु-  
दराशोः ग्रहणी विकारान् । तक्रानुपानो  
जयति प्रमेहान् युक्त्या प्रयुक्तोऽग्निमुत्तो  
रसेन्द्रः ॥ १३३ ॥

कौड़ी भस्म १भाग, शङ्ख भस्म २ भाग, गन्धक  
३ भाग और कालीमिर्च ३ भाग इन सबको  
मिलाकर नींबू के रस की भावना देकर २ रत्नी  
की गोलिएयाँ बना ले । इसके छाने से कठिन से  
कठिन मन्दाग्नि भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ।  
शोष, ज्वर, अरिच, शूल, गुल्म, पाण्डुरोग, उदर  
शूल, अर्श, संग्रहणी आदि रोगों को दूर करता है,  
प्रमेह में छाछ के साथ देना चाहिये, संग्रहणी में  
पीपल के चूर्ण और घी के साथ देने से लाभ होता  
है ॥ १३०-१३३ ॥

अम्लवर्ग ।

जम्बीरं बीजपूरञ्च मातुलुङ्गकचक्र-  
कम् । चाङ्गेरी तिन्तिडी चैव चदरी करमर्द-

कम् । अष्टाम्लस्य वर्गोऽयं कथितो  
मुनिसत्तमैः ॥ १३४ ॥

जमीरी नीबू, शर्बती नीबू, बिजौरा नीबू,  
खट्टी पालक, चौपतिया, इमली, देग और  
करींदा, इन आठों के सन्तु को मुनियों ने अम्ल  
वर्ग कहा है ॥ १३४ ॥

( ६ ) महाशंखवटी ।

कणामूलं बद्धवन्ती पारदं गन्धकं  
कणा । त्रिचतारं पञ्चलक्षणं मरिचं नागरं  
विषम् ॥ १३५ ॥ अजमोदामृता हिङ्गु  
क्षारं त्रिन्तिडिकाभवम् । सञ्चूर्ण्य सम-  
भागन्तु द्विगुणं शङ्खभस्मकम् ॥ १३६ ॥  
अम्लद्रवेषु सम्भाव्य वटी गुञ्जाद्रयोन्मिता ।  
अम्लदाडिमतोयेन लिम्पाकस्वरसेन च  
॥ १३७ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय नाम्ना  
॥ शङ्खवटी शुभा । तक्रमस्तुसुराणीधुका-  
ञ्जिकोप्योदकेन वा ॥ १३८ ॥ शशैणा-  
दिरसेनैव रसेन विविधेन च । मन्दाग्नि  
दीपयत्याशु वडवाग्निसममभम् ॥ १३९ ॥  
अर्शासि ग्रहणीरोगं कुष्ठमेदोभगन्दरान् ।  
स्त्रीहानमशरिं श्वासं कासं मेहोदरकृमीन्  
॥ १४० ॥ हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च विवन्धानु-  
दरे स्थितान् । तान् सर्गान् नाशयत्याशु  
भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४१ ॥

पिवरामूल, पीतामूल, जमालगोटे की जड़,  
पारा, गन्धक, पीपरी, मञ्जीरार, जवाब्यार,  
सोहागा धुना हुआ, पांचो नमक, मिरिच, सोंठ,  
विष, अजमोद, गिलोय, शंख और इमली का  
क्षार, प्रायेक १ तोला, शंखभस्म २ तोले, इन  
सब चीप्यों को पूर्वोक्त अम्लवर्ग के रस में  
घोटकर भरबेरी के घेर की गुटली के बराबर  
गोलियां बना लेवे । गूदे अगार का रस, नीबू  
का रस, तक्र, तोद, मुरा, सीसु, कांजी और  
केप्यजस इनमें से किसी एक के साथ तथा

खरगोश और एणमृग आदि जङ्गली पशुओं के  
मांसरस के साथ, अथवा दोपानुसार अन्यान्य  
अनेक प्रकार के रसों के साथ सेवन करना  
चाहिये । इससे अग्निमान्द्य, बवासीर, ग्रहणी,  
कुष्ठ, मेद, प्रमेह, भगन्दर, प्लीहा, पथरी, श्वास,  
कास, उदर-कृमि, हृदयरोग, पाण्डुरोग और  
मलयद्धता आदि विविध प्रकार के रोग ऐसे  
नष्ट होते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार  
नष्ट हो जाता है ॥ १३५-१४१ ॥

क्रव्याद रस ।

पलं रसस्य द्विपलं वलेः स्याच्छुल्का-  
यसी चार्द्धपलप्रमाणे । विचूर्ण्य सर्वं  
द्रुतमग्नियोगादेरण्डपत्रेऽथ निवेशनी-  
यम् ॥ १४२ ॥ कृत्वाथ तां पर्पटिकां  
विदध्याल्लोदस्य पात्रेवरपूतमस्मिन् । जम्बी-  
रजं पकरसं पलानि शतं नियोज्याग्नि-  
महाल्पमात्रम् ॥ १४३ ॥ जीर्णरसे भावित-  
मेतदेतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपरैः । सेत  
साम्लैः शतमत्र देयं समं रजष्टन्नजं  
सुभृष्टम् ॥ १४४ ॥ विदं तदर्द्धं मरिचं  
समञ्च तत् सप्तधाद्राचणकाम्लवारा ।  
क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मन्थान-  
कभैरवोक्तः । रक्तद्वयं सैन्धवतक्रपीतमे-  
तस्य धन्यैः खलु भोजनान्ते ॥ १४५ ॥  
गुरुणि मांसानि पयांसि पिष्टिघृतानि से-  
व्यानि फलानि चैव । मात्रातिरिक्त्वापि  
मेतानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः ॥  
१३६ ॥ कार्श्यस्थौल्यनिवर्हणो गरहरः  
सामातिनिर्नागनो, गुल्मस्त्रीहजलोदरा-  
दिशमनः शूलार्तिमूलापहः ॥ वातरसैन्ध-  
निवर्हणोऽग्रहणिकातीसारविध्वंसनो, वात-  
ग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा  
रसः ॥ १४७ ॥

रसः १ पलं, गन्धक २ पलमितं, ताम्रं २ तोलकमितं, लौहं २ तोलकमितं सर्वं चूर्णयित्वा लौहपात्रे मृदुवह्निना पर्य-  
दीवत् कार्यम् ततो जम्बीररसपलशतेन  
शनैः शनैः पक्वव्यम् रसे शुष्के पुनर्भाविना  
दातव्या पञ्चकोलकाथेन ५० पलमितेन,  
अम्लवेतसकाथेन ५० पलमितेन । ततः  
सर्वद्रव्यसमं भृष्टद्वन्द्वचूर्णं ४ पलमितं,  
तस्यार्द्धं विटलवर्णं २ पलमितं, सर्वद्रव्य-  
समं मरिचचूर्णं १० पलमितं, ततरचणक-  
शिशिरेण सप्त भावना दातव्या इति  
कविचन्द्रप्रभृतयः ।

पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले, ताम्रभस्म  
२ तोले, लोहभस्म २ तोले लेवे । इन सबको  
एकत्र कर अग्नि के योग से पिघलाकर एररु  
के पत्र पर ढालकर पर्यंटी बना लेवे । तदनन्तर  
उसका चूर्ण करके लोहे के पात्र में ढालकर  
उसमें जैभीरी नीबू का रस ४०० तोले देकर  
मंद-मंद आंच पर पकावे । जब पकते पकते  
रस शुष्क हो जावे, तब उसको उतारकर चूर्ण  
कर लेवे । पीछे पीपरि पीपरामूल, चव्य,  
चीता और सोंठ इनके क्वाथ की भावना देवे  
तत्परचात् अम्लवेत के क्वाथ की भावना देकर  
उसमें धुना हुआ सुहागा १६ तोले, विडनमक  
८ तोले और कालीमिर्च का चूर्ण ४० तोले  
मिलाकर चनों के चार की मात भावना देवे ।  
यह मन्थानक भैरवजी का कहा हुआ प्रसिद्ध  
ऋष्याद रस है । इस रस को भोजन क बाद दो  
मासे खाये और ऊपर से सेंधा नमक तथा माठा  
पीवे तो मास, पिष्टी आदि के गरिष्ठ भोजन  
तथा सब प्रकार के मात्रा से अधिक खाये हुए  
फल, दो पहर में पच जाते हैं । यह ऋष्याद  
रस कृशता ( दुबलापन ), स्थूलता ( मोटा-  
पन ), धिप के रोग, आमातीसार, गुधम,  
तिक्ली, जलोदर, शुलरोग, घात कफ के रोग  
सप्रदृशी, अतोसार, वातप्रन्थि ( गठियाघाव )

और उदर के रोगों को नाश करता है । मात्रा-  
४८ रत्नी ॥ १४२ १४७ ॥

अजीर्णारि रस ।

शुद्धं सूतं गन्धकं चापलमानं पृथक्  
पृथक् । हरीतकी च द्विपला नागरं त्रिपलं  
स्मृतम् ॥ १४८ ॥ कृप्या च मरिचं  
तद्वत् सिन्धूत्थं त्रिपल पृथक् । चतुष्पला  
च विजया मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ॥ १४९ ॥  
भावनं सप्तधा कार्यं धर्ममध्ये पुनः पुनः ।  
अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो दीपनपाचनः ॥  
१५० ॥ भक्षयेद् द्विगुणं भक्ष्यं पाचयेद्दे-  
चयेदपि ॥ १५१ ॥

४ तोला पारा, ४ तोला गन्धक, ८ तोला  
हरद, १२ तोले सोंठ, १२ तोले पीपल, १२  
तोले कालीमिर्च, १२, तोले सेंधा नमक, १६  
तोले भाँग का चूर्ण, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को  
इकट्ठा कर मिला ले । फिर नीबू के रस से ७  
भावनाएँ देकर रख ले । मात्रा-३ रत्नी से ४ रत्नी  
तक । यह अजीर्णारि रस दीपन तथा पाचन है ।  
इसके सेवन से जुधा द्विगुण हो जाती है । यह  
रस पाचक तथा मलयक्षता को नष्ट करता  
है ॥ १४८ १५१ ॥

आदित्य रस ।

दरदञ्च विपं गंधं त्रिकटुत्रिफलास-  
मम् । जाताफलं लण्डञ्च लण्णानि च  
पञ्च वै ॥ १५२ ॥ सर्वमेतत्कृतं चूर्णमम्ल-  
योगेन सप्तधा । भावयित्वा वटी कार्या  
गुञ्जार्धममिता बुधैः ॥ १५३ ॥ रसो  
ह्यादित्यसंज्ञोऽयमजीर्णक्षयकारक । भुक्त्वा  
मात्रं पाचयतिजठरानलदीपनः ॥ १५४ ॥

द्विगुल, मोठा विप, गन्धक, त्रिपटु ( सोंठ,  
मिर्च, पीपरि ), त्रिफला ( हर, बहेरा, भौंरला ),  
जायफल, खैंग, पाँचो नमक, हर एक को बरा-  
बर लेकर घोर मिलाकर नीबू के रस से सात

वार भावना देकर १ रत्नी प्रमाण की गोलियाँ बना ले । इस रस के सेवन करने से अजीर्ण नष्ट होता है तथा जठराग्नि दीप्त होती है ॥ १२२-१२४ ॥

वडवानल रस ।

शुद्धसूतस्य कर्पकं गन्धकं तत्समं मतम् । पिप्पली पञ्चलवणं मरिचञ्च फलत्रयम् ॥ १५५ ॥ चारत्रयं समं सर्वं चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः । निर्गुण्ड्वारच द्रव्यैव भावयेद्दिनमेकतः ॥ १५६ ॥ वडवानलनामायं मन्दाग्निञ्च विनाशयेत् ॥ १५७ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, पीपल, पाँचों नमक, कालीमिर्च, त्रिफला ( हर, बहेड़ा, आंवला ), यवघार, सर्जिघार, सुहागा हरएक द्रव्य एक-एक तोला । इन सम्पूर्ण द्रव्यों को इकट्ठा कर और मिलाकर समहालू के रस से एक दिन भावना देकर गोली बना ले । मात्रा—४ रत्नी से ६ रत्नी तक । यह रस मन्दाग्नि को नष्ट करता है ॥ १२५-१२७ ॥

शुद्धहुताशन रस ।

एकद्विकद्वादशभागयुक्तं योज्यं विपं टङ्गणमुपगुञ्च । हुताशनो नामहुताशनस्य करोति वृद्धिं कफजिन्नराणाम् ॥ १५७ ॥

मीठा विप १ भाग, सुहागा २ भाग, कालीमिर्च १२ भाग, इन्हें इकट्ठा कर यथाविधि चूर्ण कर ले और पानी के साथ २ रत्नी प्रमाण की गोली बना ले । इन गोलियों के सेवन करने से कफ का नाश होता है तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥ १२७ ॥

शुद्धग्निकुमार रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यञ्च टङ्गणम् । फलत्रयं यवत्तारं व्योषं पञ्च पटूनि च ॥ १५८ ॥ द्वादशतानि सर्वाणि रसतुल्यानि योजयेत् । संमर्षं सप्तधा सर्वं

भावयेदार्षकद्रवैः ॥ १५९ ॥ संशोष्य चूर्णयित्वा तु भक्तयेदार्षकाम्बुना । मापमात्रं वयो वीक्ष्य नानाजीर्णप्रशान्तये ॥ १६० ॥ रसश्चाग्निकुमारोऽयं महेशेनप्रकाशितः । महाग्निकारकश्चैव कालभास्करतेजसाम् ॥ १६१ ॥ अग्निमान्द्यभवान् रोगान् शोथं पाण्ड्याभयं जयेत् । दुर्नामग्रहणीसामरोगान् हन्ति न संशयः ॥ १६२ ॥ यथेष्टाहारचेष्टस्य नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ १६३ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागा २ भाग, त्रिफला ( हर, बहेड़ा, आंवला ), जवाखार, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरी ), पाँचों नमक, हरएक द्रव्य १ भाग, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को मिलाकर अक्षरक के रस से सात भावना देकर सुखा ले । मात्रा—१ माशा, अनुपान—अक्षरक का रस । इसके सेवन करने से सूजन, पीरिया, यवासीर ( अर्श ), प्रहणी आदि रोग दूर होते हैं तथा अग्निमान्द्यनाशक है और अग्नि की वृद्धि करता है ॥ १२८-१६३ ॥

अमृतकल्पवटी ।

शुद्धौ पारदगन्धौ च समानौ कज्जलीकृतौ । तयोरर्द्धं विपं शुद्धं तत्समं टङ्गणं भवेत् ॥ १६४ ॥ भृङ्गराजद्रवैर्भाव्यं त्रिदिनं यत्नतः पुनः । शुद्धप्रमाणा वटिका कर्तव्या मिषजां वरैः ॥ १६५ ॥ वटीद्रव्यं हरेच्छूलमग्निमान्द्यं सुदारुणम् । अजीर्णं जरयत्याशु घातुपुष्टिं करोति च ॥ १६६ ॥ नानाव्याधिहरा चैवं वटी गुरुवचो यथा । अनुपानविशेषेण सम्यग् गुणकरी भवेत् ॥ १६७ ॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, इनको काजक के समान महीनकर १ भाग मीठा विप, १ भाग सुहागा मिलावे और अग्नि के रस से १ दि

घोटकर आधी रत्ती या मूँग के बराबर गोली बना लेवे यह अनुपानभेद से बहुत से रोगों पर प्रयोग की जा सकती है । ये गोलियाँ धातु पुष्ट करती हैं । शूल, मन्दाग्नि, अनीर्णादि रोग दो गोलियों के सेवन से ही-नष्ट हो जाते हैं ॥ १६४-१६७ ॥

पाशुपत रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं त्रिभागं तीक्ष्ण-  
भस्मकम् । त्रिभिः समं विषं देयं चित्रक-  
काथभाषितम् ॥ १६८ ॥ धूर्त्तधीजस्य  
भस्मापि द्वात्रिंशद्भागसंयुतम् । कटुप्रयं  
त्रिभागं स्यात् लवङ्गैला च तत्समम् १६९  
जातीफलं तथा कोपमर्द्धभागं नियोजयेत् ।  
तथा र्द्धलवणं पञ्च स्नुह्यकैरण्डतिन्तिडी ॥  
१७० अपामार्गश्वथजञ्च चारं दद्याद्वि-  
चक्षणः । हरीतकी यवचारं सर्जिकां  
हिङ्गुजीरकम् ॥ १७१ ॥ टङ्गणञ्च सूत-  
तुल्यं चाम्लयोगेन मर्दयेत् । भोजनान्ते  
प्रयोक्तव्यो गुञ्जाफलप्रमाणतः ॥ १७२ ॥  
रसः पाशुपतो नाम सद्यः प्रत्ययकारकः ।  
दीपनः पाचनो हृद्यः सद्यो हन्ति विमूचि-  
काम् ॥ १७३ ॥ तालमलीरसेनैव उद-  
रामयनाशन । मोचरसेनातिसारं ग्रहणीं  
तक्रसेन्धवैः ॥ १७४ ॥ सौवर्चलकणा-  
शुण्ठीयुतः शूलं विनाशयेत् । अर्शो हन्ति  
च तक्रेण पिप्पल्या राजयद्मकम् ॥ १७५ ॥  
वातरोग निहन्त्याशु शुण्ठी सौवर्चला  
न्वितः । शर्कराधान्ययोगेन पित्तरोगं  
निहन्त्ययम् ॥ १७६ ॥ पिप्पलीक्षौद्रयो-  
गेन श्लेष्मरोगञ्च तत्क्षणात् । अतः पर-  
तरोनास्ति धन्वन्तरिमतो रसः ॥ १७७ ॥  
पारा १ भाग, ग-पक २ भाग, लोहभस्म  
३ भाग मोटा विष ६ भाग हनकी चित्रक के

काड़े से भावना दे, इसके परचात् धतूरे के बीज  
की भस्म ३२ भाग, सोंठ ३ भाग, मिर्च २ भाग  
पीपल ३ भाग, लौंग ३ भाग छोटी इलाइची  
३ भाग, जायफल ३ भाग, जावित्री ३ भाग,  
पाचा नमक हर एक ३ भाग, स्नुहीचार १ भाग,  
एरण्डचार १ भाग, इमलीचार १ भाग, अपामार्ग  
चार १ भाग, पीपल का चार १ भाग, हरद १  
भाग, जवाखार १ भाग, सर्जिचार १ भाग, हींग  
१ भाग, जीरा १ भाग, सुहागा १ भाग उपर्युक्त  
सम्पूर्ण द्रव्यों को अन्नवर्ग से घोटकर १ रत्ती  
प्रमाण की गोदिया बनावे, यह रस विमूचिका  
नाशक है और दीपन तथा पाचन है । अनुपान-  
उदररोग में मूसली के रस में, अतिसार में  
मोचरस में, मग्नहणी में नमकीन मठा में, शूल में  
सौचकर गोन, पीपल तथा सोंठ में, अर्श रोग में  
मठा के साथ, राजयक्ष्मा में पीपलचूर्ण के साथ  
पृथक् पृथक् प्रयोग में लाना चाहिए । इस रस  
की वातरोग में सोंठ तथा सौचल नमक के साथ,  
पित्तरोग में खाद तथा धनिया के साथ और  
क्फरोग में पीपलचूर्ण तथा शहद के साथ सेवन  
करना चाहिये ॥ १६८-१७७ ॥

विश्वोद्दीपकाम्न ।

अभ्रं निर्मलमारितं पलमितं चूर्णकृतं  
यत्नतरचव्यं चित्रकमिन्द्रसूरकनक मालूर-  
पत्रार्द्रकम् । मूल पिप्पलिसम्भवं मधुरिका  
नीपोर्कमूलं पृथक् चैषां सत्वपलैर्विमदित-  
मिदं कर्षं क्षिपेदृङ्गणम् ॥ १७८ ॥ गुञ्जा-  
सम्मितमेतदेव वलितं तत्पारिभद्रद्रवर्म-  
न्दाग्निं चिरजातगुल्मनिचयं शूला म्लपित्तं  
ज्वरम् । छादिं दुष्टमसूरिकामलसकं श्वास-  
श्च कासं तेषां स्त्रीहानं यकृतं क्षयं स्वरदति  
कुष्ठं महारोचकम् ॥ १७९ ॥ टाहं मोह  
मशेषदोषजनितं कृच्छ्रश्च दुर्नामकम्, चामं  
वातविमिश्रितं नयनजं रोगं सपुन्यूलयेत् ।  
विश्वोद्दीपकनामरोगहरणे मोक्षं पुरा  
शम्भुना, सर्वेषां हितकारकं गदवतां सर्वा-

मयधंसनम् ॥ १८० ॥ पापाणां यदि  
भक्षितं तदपि तत् कुर्यात् सुजीर्णं पुनर्व-  
ल्यं वृष्यतरं रसायनरं मेधाकरं कान्ति-  
दम् ॥ १८१ ॥

अभ्रकभस्म ४ तोला और चन्द्य का चूर्ण  
४ तोला, इन दोनों को पकत्र कर चीता, निगुं-  
यदी (सँभालू), धतूर और बेज की पत्तियों के  
चार चार तोला रस में और अदरक के ४ तोला  
रस में अच्छी रीति से घोंटे । तदनन्तर  
पिपरामूल, सौंफ, कदम्ब और आक की जड़,  
चार चार तोला काष्ठ में घोटकर एक तोला  
सोहागा फूला हुआ भिलाकर फिर खरल करे ।  
पीछे एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे ।  
फरहद के स्वरस के साथ इसका सेवन करना  
चाहिये । इससे अग्निमान्द्य, पुराना गुल्म, शूल,  
अम्लपित्त, ज्वर, वमन, दुष्ट मस्त्रिका, अलसक,  
रवास, कास, वृषा, प्रीहा, यकृत, क्षय, स्वरभङ्ग,  
कुष्ठ, दाह, मोह, मूत्रकृच्छ्र, बवासीर और आम-  
वात, नेत्रविकार आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ।  
इस विश्वोद्दीपक नामक अभ्रक का उपदेश  
शिवजीने किया था । यह सष प्रकार के रोगों का  
नाशक होने से हर एक रोगी के लिये लाभदायक  
होता है । पाचन के लिये तो यह महौषध है ।  
यहाँ तक कि इसका सेवन करने से पाथर भी  
जीर्ण (हजम) हो जाता है । यह अभ्रक बल,  
वीर्य, मेधा और कान्ति का वर्धक तथा श्रेष्ठ  
रसायन है ॥ १७८-१८१ ॥

घोरभद्रास्रक ।

अभ्रकं पुटसहस्रमारितं कर्षयुग्ममति-  
निर्मलीकृतम् । वापराणि नरति विमर्दितं  
चित्रकसररमषासुसिक्कम् ॥ १८२ ॥  
ऋषेरसमर्दिताग्नी कारिता सकलरोग-  
ागिनी । भक्षिता भुजगस्रिपत्रकैः शृङ्ग-  
रशकलेन वा पुनः ॥ १८३ ॥ वह्नि-  
ान्द्यमभिनाशय सत्वरं कारयेत् प्रखरपा-

वकोत्करम् । श्वाभकासवमिशोथकामला-  
स्त्रीहगुल्मजठराचिभ्रमान् ॥ १८४ ॥  
रक्तपित्तयकृदम्लपित्तकं शूलकोष्ठजगदान्  
विमूचिकाम् । आमवातवहुवातशोणितं  
दाहशीतबलहासकार्श्यकम् ॥ १८५ ॥  
विद्रधि ज्वरगरं शिरोगदं नेत्ररोगमखिलं  
हलीमकम् । हन्तिवृष्यतममेतदभ्रकं वीर-  
भद्रमतिबल्यमुत्तमम् ॥ १८६ ॥ भक्षितं  
विविधभक्ष्यमागलं काष्ठसहस्रमपि भस्मतां  
नयेत् ॥ १८७ ॥

सहस्रपुटित अभ्रकभस्म २ तोला लेकर, ४०  
दिन तक चीता के स्वरस में मर्दन करे । तद-  
नन्तर अदरक के रस में घोटकर आधी आधी,  
रत्ती की गोलियाँ बनावे पान की पत्ती के  
साथ अथवा अदरक के रस के साथ सेवन  
करना चाहिये । इसके सेवन करने से अग्निमान्द्य,  
रवास, कास, वमन, शोथ, कामला, प्रीहा, गुल्म,  
जठर, अक्षि, भ्रम, रक्तपित्त, यकृत, अम्लपित्त,  
शूल, कोष्ठजन्य रोग, विमूचिका, आमवात, घान-  
रङ्ग, दाह, शीत, निर्बलता, कृशता, विद्रधि, ज्वर,  
विषजन्यरोग, शिरोरोग, हर प्रकार के नेत्ररोग और  
हलीमकको नष्ट करता है और बलवीर्य की वृद्धि  
करता है । एवं गले तक भोजन किया हुआ  
काष्ठ के समान बठोर पदार्थ भी पच जाता  
है ॥ १८२-१८७ ॥

रसरत्नसं ।

ताम्रं पारदगन्धकं त्रिकटुकं तीक्ष्णञ्च  
सौवर्चलम् । खल्ले मर्षं दिनं निघाय  
सिकताकुम्भेषु यामन्ततः ॥ १८८ ॥  
स्विन्नं नेत्रपि रक्तगात्रिभिर्भयं क्षारं समं  
भायेत् । एकीकृत्य च मातुलुङ्गकजलै-  
र्नाम्ना रसां रान्तसः ॥ १८९ ॥

तबि की भस्म, पारा, गन्धक, त्रिकटु, (गोंट,  
मिर्च, पीपल), सोहमस, पाथर तमक, इनमें



से प्रत्येक द्रव्य को बराबर-बराबर लेकर मिला ले और घोट डाले - इसके परचात् ..पालुकायन्त्र में ३ घंटे तक पाक करे, इसके बाद लाल पुन-र्वा के चार को भी बराबर लेकर मिला ले और मातुलुङ्ग के रस से भावना देकर रख ले । इस रस को अजीर्ण में सेवन कराना चाहिए । मात्रा- १ रत्ती ॥ १८८-१८९ ॥

बृहल्लवङ्गादि वटी ।

लवङ्गजातीफलधान्यकुष्ठं जीरद्वयं, त्र्यु-  
पणत्रैफलञ्च । एलात्वचं टङ्गवराट्मुस्तं  
वचाजमोदा विडसैन्धवञ्च ॥ १९० ॥  
तदर्द्धकं पारदगन्धकाभ्रं लौहञ्च तुल्यं  
सुविचूर्ण्य सर्वम् । तन्नागवल्लीदलतोय-  
पिष्टं वल्लप्रमाणा वटिकाञ्च कृत्वा ॥  
१९१ ॥ प्रातर्विदध्यादपि चोष्णतोषैरियं  
निहन्त्याद्ग्रहणीविकारम् । आमामुषन्धं  
सरुजं प्रवाहं जरं तथा श्लेष्मभवं सशू-  
लम् ॥ १९२ ॥ कुष्ठाम्लपित्तं प्रवलं समीरं  
मन्दानलं कोष्ठगतं च वातम् । वटीलवङ्गा-  
दिवसुप्रणीता तथा सवातं विनिहन्ति  
शीघ्रम् ॥ १९३ ॥

- लौंग, जायफल, धनिया, कुष्ठ, जीरा, काजा जीरा, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपर ), त्रिफला ( हर, बहेडा, आंवला ), छोटी इलायची, दारु-चीनी, सुहागा, वराटभस्म, मोधा, वच, अजमोदा, बिडलवण, सेंधा नमक, हरएक द्रव्य बराबर-बराबर लेना चाहिए । पारा ३-भाग, गन्धक ३ भाग, अश्रकभस्म ३ भाग, लोहभस्म १ भाग, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को अच्छी तरह चूर्ण कर पान के पत्तों के रस के साथ घोटकर दो रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना ले । अनुपान—गरम जले । इनको सुबह के समय सेवन कराना चाहिए । इसके सेवन करने से ग्रहणी, आमामित्सार, प्रवा-हिका, कफज्वर, शूल, कुष्ठ, अम्लरिक्त, वातव्याधि, मन्दाग्नि, कोठे में गई हुई बायु आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १९०-१९३ ॥

ज्वालानल रस ।

चारद्वयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमितं  
समम् । सर्वतुल्या जया देया तदर्धं शिशु-  
वल्कलम् ॥ १९४ ॥ एतत्सर्वं जयाशिशु-  
वह्निकार्कवज्रै रसैः । भावयेत्त्रिदिनं घर्मे  
ततो लघुपुटे पचेत् ॥ १९५ ॥ भाव-  
येत्सप्ताहा चार्द्रद्रावैर्जालानलो भवेत् ।  
पाचनो दीपनो हृद्यश्चोदरामयना-  
शनः ॥ १९६ ॥

यवचार, सजिचार, पारा, गन्धक, पीपल, पिप्लीमूल, चैत्य, चित्रक, सोंठ हरएक द्रव्य २ तोला लेना चाहिए और भाँग १८ तोला, सहिजने की छाल ६ तोला, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को इकट्ठा कर मिलाकर इसको भाँग के रस से, सहिजने के रस से, चित्रक तथा भाँगरे के रस से अलग-अलग तीन दिन घोटकर लघुपुट से पाक करे । जब स्वादुशीतल हो जावे तो निकालकर अदरस के रस से सात बार भावना दे । मात्रा—४ रत्ती । यह रस पाचन, दीपन तथा उदररोगों को नष्ट करता है ॥ १९४-१९६ ॥

भद्रवि एक वटी । -

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनः-  
शिला । त्रिवृहन्ती वारिवाहं चित्रकञ्च  
महौषधम् ॥ १९७ ॥ पिप्पली मरिच पथ्या  
यमानी कृष्णजीरकम् । रामठं कटुका  
पाणिसैन्धव साजमोदकम् ॥ १९८ ॥  
जातीफलं यत्राचारं समभागं विचूर्णयेत् ।  
आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन  
च ॥ १९९ ॥ सूर्यावर्चरसेनैव तुलस्याः  
स्वरसेन च । आतपे भावयेद्द्वैधः खल्ल-  
पात्रे च निर्मले । पेपयित्वा वटीं खादेत्  
गुञ्जाफल सममभाम् ॥ २०० ॥ भद्रोत्त-  
रीये बहुभोजनान्ते मुहूर्तहर्वाञ्छति भोज-

नानि । आमामुबन्धे च चिराग्निमान्धे  
विड्विग्रहे पित्तकफानुबन्धे ॥ २०१ ॥  
शोथोदरे चार्शगदेऽप्यजीर्णे शूले त्रिदाप-  
प्रभवे ज्वरे च । शस्ता वटी भक्तविपाक-  
संज्ञा सुखं विपाच्याशु नरस्य कोष्ठम् २०२

सोनामक्ली की भरम, पारा, गन्धक, हरि-  
ताल, मन-शिला, निसेत, दन्तीमूल, मोथा,  
चित्रक, सोंठ, पीपल, कालीभिर्च, हरद, अज-  
वाइन, काला जीरा, हिंग, कटुकी, तालमखाना,  
संधानमक, अजमोदा, जायफल, जवाखार, हर एक  
द्रव्य बराबर-बराबर लेकर इसे अदरक के रस,  
सैमाजू के रस, हुलहुल तथा तुलसी के रस से  
पृथक्-पृथक् भावना, देकर १ रत्ती की गोली  
बनावे और धूप में सुखा ले । इन गोलीयों की  
भोजन के बाद खाने से चार-चार भोजन करने  
की इच्छा होती है । ये गोलीयाँ मुश्वाहु तथा  
अग्निवर्धक हैं । आमयुक्त मन्दाग्नि, मल-  
घटता, सूजन, उदररोग, अजीर्ण, शूल, बवा-  
सीर तथा साग्निपातिक ज्वर आदि रोगों में लाभ-  
दायक है । मात्रा ३-४ रत्ती ॥ १६०-२०२ ॥

पञ्चामृत वटी ।

अध्रकं पारदं ताम्रं गन्धकं भरिचानि  
च । समभागमिदं चूर्णं चाद्ग्रेरीरसमर्दि-  
तम् ॥ २०३ ॥ मर्दिने हिरसे भूयो जयन्ती  
सिन्धुनारयोः । भावनापि च दातव्या  
गुञ्जा परिमिता वटी ॥ २०४ ॥ तप्तोद-  
कानुपानेन चतस्रस्तिष्ठ एव वा वह्नि-  
मान्धे प्रदातव्या वट्यः पञ्चामृता-  
स्तथा ॥ २०५ ॥

अध्रकभरम, पारा, ताम्र की भरम, गन्धक,  
कालीभिर्च, इनके पृथक्-पृथक् पूर्ण को बराबर-  
बराबर मिलाकर चाद्ग्रेरी के रस से घोट टाढ़े  
और जयन्ती तथा सैमाजू के पत्तों के रस से  
भावना देकर १ रत्ती प्रमाण की गोलीयाँ बना  
लेवे । ये गोलीयाँ मुश्वाहि नूर करने के लिए

तीन या चार बार प्रयोग करनी चाहिए अनु-  
पान—उष्णोदक ॥ २०२-२०५ ॥

विसूचीविध्वंस रस ।

टङ्गणं मात्तिकं शुण्ठी पारदं गन्धकं  
विपम् । गरलं समभागेन सर्वेषां हिङ्गुलं  
समम् ॥ २०६ ॥ मर्दयेज्जम्बीरद्रावैर्वटी-  
कार्या प्रयत्नतः । श्वेतसेर्षपतुल्या च मृत-  
सञ्जीवनी तथा ॥ २०७ ॥ विसूचीं  
नाशयत्याशु दध्यन्ने पथ्यमाचरेत् । त्रिदो-  
षोत्थमतीसारं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ २०८ ॥

सुहागा सोनामक्ली की भरम, सोंठ, पारा,  
गन्धक, मीठी विप, काले साँप का विप, इनमें  
से हर एक द्रव्य १ भाग ले, और हिङ्गुल ७ भाग  
ले, इनको जम्बीर के रस से घोटकर सरसों के  
बराबर गोलीयाँ बना लेवे । मृतसञ्जीवनी सुरा  
और यह रस दोनों ही विसूचिको नाशक है और  
तीनों दोषों से उत्पन्न अतिसार को नष्ट करते  
हैं । मात्रा—१ रत्ती ॥ २०६-२०८ ॥

सारसंप्रह में सारामृतमोदक ।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं हरीतक्यास्तयैव  
च । लवङ्गं जीरकं व्योषं चातुर्जातञ्च  
मुस्तकम् ॥ २०९ ॥ कर्पूरं जातिकोपञ्च  
जातीफलसमन्वितम् । एषां द्विकार्षिकान्  
भागान् परं तु सार्द्धकार्षिकम् ॥ २१० ॥  
यमानी सैन्धवं कुष्ठं यमिता जारितं त्वयः ।  
कार्षिकं ग्रन्थिकं चण्यं मूर्वा च चित्रकं  
शटी ॥ २११ ॥ अजाजी रेणुकं मांसी  
मेथिका वङ्गमध्रकम् । रसाञ्जनं मोचरमं  
द्राक्षा यष्टी च धान्यकम् ॥ २१२ ॥ सर्वं  
चूर्णोक्तं यत्नाच्छर्करा द्विगुणा मता ।  
तदरच पाकविद्दोषो मोदकं परिकल्पयेत् ॥  
२१३ ॥ मूयस्त्रिजातचूर्णेन कर्पूरैर्याधिवा-  
सयेत् । भक्तयेत् मातरुत्याय शुद्ध्या दोष-

बलाचलम् ॥ २१४ ॥ कौलैकं वार्द्धकोलं  
वा दुग्धानुपानमत्र च । पथ्यापथ्यनिही-  
नश्च भक्षयेद्गोवानपि ॥ २१५ ॥ ग्रह-  
ण्यादि गदं हन्यात् मन्दाग्निञ्च विशे-  
षतः । वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं  
सान्निपातकम् ॥ २१६ ॥ आमशूलं  
यकृच्छूलं हृच्छूलं पार्श्वशूलकम् । कामलां  
पाण्डुरोगञ्च हलीमकभगन्दरम् ॥ २१७ ॥  
ग्रहणां चिरजां सृतिं तमिं कोष्ठगदन्तथा ।  
गदस्योच्छेदको ह्येष तुष्टिपुष्टिकरस्तथा ॥  
२१८ ॥ दीपनः पाचनो ह्येष च्लप्रणाग्नि-  
वर्द्धन । रसायनवररचायं वाजीकरण  
उत्तमः । सर्वाणीर्णप्रशमने ब्रह्मया परिक-  
ल्पितः ॥ २१९ ॥

सोंठ का चूर्ण १६ तोले, हरड़ १६ तोले,  
लौंग २ तोले, जीरा २ तोले, त्रिकटु, ( सोंठ,  
मिचं, पीपल ) २ तोले, दारचीनी २ तोले,  
तेजपत्र २ तोले, छोटी इलाइची २ तोले, नाग-  
केसर २ तोले, मोथा २ तोले, काफूर २ तोले,  
जावित्री २ तोले, जायफल २ तोले, अजवायन  
१॥ तोले, संधव लवण १॥ तोले, कुष्ठ १॥ तोले,  
म्रियगु १॥ तोले, लोहभस्म १॥ तोले, पिप्पली  
मूल १ तोला, चष्य १ तोला, मूर्वामूल १ तोला,  
चित्रक १ तोला, कपूर १ तोला, कालाजीरा  
१ तोला, रेणुका १ तोला, जटामांसी १ तोला,  
मेथीबीज १ तोला, बद्धभस्म १ तोला, अन्नकभस्म  
१ तोला, रसौत १ तोला, मोचरस १ तोला, द्राक्षा १  
तोला, मुलहठी १ तोला, धनियाँ १ तोला, सबसे  
द्विगुणी खर्ई, विधि अनुसार पाक बनाकर योंडा  
त्रिजात चूर्ण तथा कपूर मिलाकर १/२ तोला से १  
तोला प्रमाणा तक लहदू बना ले । अनुपान—  
दूध । दोषों की ताकत देखकर सुबह के समय  
उपयुक्त मात्रा में सेवन करावे । यह मोदक  
ग्रहणी, मन्दाग्नि, आमशूल, यकृच्छूल, हृच्छूल,  
पार्श्वशूल, कामला, पीरिया, हलीमक, भगन्दर,  
सृष्टिका रोग, घमि, कोष्ठरोग तथा शीर घनेक

प्रकार के वात पित्त कफ से उत्पन्न होनेवाले  
तथा त्रिदोषज रोगों को नष्ट करते हैं । ये  
पीष्टिक, दीपन पाचन तथा वाजीकरण हैं । यह  
रसायन बल, वर्ण अग्नि को बढ़ानेवाला है ।  
प्रहाजी द्वारा बनाया हुआ यह रसायन सम्पूर्ण  
अजीर्णनाशक है ॥ २०५ २१९ ॥

कपूर रासव ।

तुलां प्रसन्नां परिगृह्य शुद्धां पलाष्टकं  
चोडुपतेः क्षिपेच्च । एला च सूक्ष्मा घनशुद्ध-  
वेरे यमानिका वेल्लजमत्र सर्वम् ॥ २२० ॥  
पलप्रमाणं पिहिते च भाण्डे मासं निद्ध्याद्  
भिपगत्र यत्रात् । विमूचिकायाः परमौषधं  
तन्निहन्ति चान्यान् विविधान् विकान्  
रान् ॥ २२१ ॥

शुद्ध सुरा ( शराव ) ५ सेर, कपूर ३२ तोले,  
छोटी इलायची ५ तोले, मोथा ५ तोले,  
सोंठ ५ तोले, अजवाइन ५ तोले, कालीमिरच  
५ तोले, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को एक घर्तन में  
मुख बन्द कर १ महीने के लिए रख दे । इसके  
बाद छानकर काम में लाव । यह आसव विमू-  
चिका क लिये अत्यन्त लाभकारी है । इसके  
सेवन से अन्य अनेक प्रकार की व्याधियाँ (रोग)  
दूर होते हैं । मात्रा ४।६ सूद आवरयकतानुसार  
॥ २२०-२२१ ॥

मुस्ताद्य घटी ।

अन्दात् पलद्वयं क्षणं कणाकर्पूर-  
हिङ्गुतः । पलं पलं गृहीत्वा तु सम्यगेकत्र  
मिश्रयेत् ॥ २२२ ॥ हिमांशोरम्बुभिः  
कुर्याद्द्विटिका यत्नसम्मिताः । अतीसारम-  
जीर्णञ्च त्रिपूचीपुग्ररूपिणीम् ॥ २२३ ॥  
अरोचकं बद्धिमान्यं ग्रहणीमपि टारु-  
णम् । कासं पञ्चविधं चैव नाशयेद्विक-  
ल्पतः ॥ २२४ ॥

मोथा ६ तोला, पीपल ५ तोला, कपूर  
५ तोला, लौंग ५ तोला, इनको शुष्क-शुष्क

पूर्ण कर मिला ले । इसके परचाए कपूरोंदक से घोटकर २ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे । इन गोलीयों के सेवन करने से अतिसार, अजीर्ण, भयंकर विसूचिका, अरुचि, अग्निमान्द्य, भयंकर ग्रहणी तथा पाँचों प्रकार की खाँसी दूर होती है ॥ २२२-२२४ ॥

मन्दाग्नि में पथ्य

नानाप्रकारो व्यायामो दीपनानि लघूनि च । बहुकालसमुत्पन्ना सूक्ष्मा लोहितशालयः ॥ २२५ ॥ विलेपी लाजमण्डरचमण्डो मुद्गरसः सुरा । एणो वही शशोलावः क्षुद्रमत्स्याश्च सर्वशः ॥ २२६ ॥ शालिश्वशाकं वेत्राग्रं वास्तूकं बालमूलकम् । लशुनं दृढकूष्माण्डं नवीनकदलीफलम् ॥ २२७ ॥ शोभाञ्जनं पटोलश्च वार्ताकुत्रलदम्बु च । कर्कोटकं कारवेल्ल बहिः तच्च महार्द्रकम् ॥ २२८ ॥ प्रसारिणी मेपशृङ्गचाङ्गेरी सुनिपणकम् । धात्रीफलं नागरद्रं दाडिमं निम्बुकं तथा ॥ २२९ ॥ अम्लवेतसजम्बीरमातुलुद्धानि माक्षिकम् । नवनीतं घृतं तक्रं सौवीरकतुपोदकैः ॥ २३० ॥ धान्याम्लं कटुतैलञ्च रामठं लवणार्द्रकम् । यमानी मरिचं मेथी धान्यकं जीरकं दधि ॥ २३१ ॥ ताम्बूलं तप्तसलिलं कटुतिक्तौ रसावपि । मन्दानलेप्यजीर्णेषु पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ २३२ ॥

अजीर्ण तथा मन्दाग्नि में अनेक प्रकार के व्यायाम (कसरत), अग्नि को दीपन करनेवाले तथा हल्के पदार्थ, पुराने लाल पतले शालिचावल, यवागू, लाजा से प्रस्तुत भण्ड, मूग का पानी, मदिरा, हिरन, मोर, शक, लाभा, छोटी मछलियाँ, हरे साग, घेत की फुनगी, घमुघ्रा, कच्ची मूली, लहसन, पुराना पेठा पका हुआ, कच्चा केला, सहिजन, परधल, बैंगन, नीम के

पत्तों का शाक, ककोदे, करेला, घृहतीफल, महाद्रक, प्रसारणी, मेपशृङ्गी, चाङ्गेरी, चौपतिया, अंबिला, नारंगी, अनार, नींबू, अम्लवेतस, जम्बीर, धिजौरा, मधु, मक्खन, घी, मठा, सौवीर, तुपोदक, काजी, सरसों का तेल हींग, नमक, अदरक, अजवाइन, कालीमिर्च, मेथी, धनियाँ, जीरा, दही, पान, गरम पानी, कच्चे एवं तीखे रसवाले पतले पदार्थ अग्निमान्द्य रोगों को पथ्य हैं ॥ २२५-२३२ ॥

मन्दाग्नि में अपथ्य ।

विरेचनानि विण्मूत्रवायुवेगविधारणम् । अध्यशनं समशनं जागरं विपमानशनम् ॥ २३३ ॥ रक्तस्रुति शमीधान्यं मत्स्यं मांसमुपोदिकाम् । जलपानं पिष्टकञ्च जाम्बवं सर्वमालुकम् ॥ २३४ ॥ कूर्चिकां मोरठं क्षीरं किलाटञ्च प्रपानकम् । तालास्थिसस्यं तद्वालं स्नेहनं दुष्टवारि च ॥ २३५ ॥ विरुद्धासात्स्यपानानां विष्टम्भीनि गुरुणि च । अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्जयेत् ॥ २३६ ॥ इति भैषज्यरत्नावल्यामग्निमान्द्याधिकारः समाप्तः ॥

तेज विरेचन, दस्त, मूत्र, वायु आदि के वेगों को रोकना, जितनी भूख हो उससे अधिक भोजन करना, अनमल भोजन करना, रात को जागना, कभी ज्यादा कभी कम और कभी कुसमय पर भोजन करना, रत्न का निकलवाना, सेम मटर आदि खाना, नये चावल, मछली, मास, पोई का साग, अधिक जल पीना, पिट्टी से बनी चीजें, जामुन, घालू, कूर्चिक, मोरठ (प्रसव के सात दिन के बाद का दूध), फटे हुए दूध के खोया से बने पदार्थ, शरबत, ताड़ के बीच का भाग, कच्चे ताड़ का फल, घी, तेल, हत्यादि से बने हुए पदार्थ, खराब पानी, नासाफिक भोजन, एक दूसरे से विरुद्ध भोजन (दूध, मछली आदि),

भारी पदार्थ, ये सब अजीर्ण व अभिमान्द्य में रोगी को अपने दित के लिए छोड़ देना चाहिए ॥ २३३-२३६ ॥

इति सरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
खावह्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्याया-  
मभिमान्द्याधिकार समाप्त ।

## अरोचकाधिकारः ।

अरोचरु में शोधन ।

वस्ति समीरणे पित्ते विरेकं वमनं  
कफे । कुर्याद् हृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च  
मनोन्नजे ॥ १ ॥

घातजन्य अरोचक में वस्तिक्रिया, पित्तजन्य अरोचक में विरेचन और कफजन्य अरोचक में वमन करे । मनोविघातजन्य अरोचक में हृदय के लिये हितकारी अनुकूल और चित्त को समुष्ट करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

कवल-धारण ।

कुण्ठसौवर्चलाजाजी शर्करा मरिचं  
विडम् । धात्र्येलापन्नकोशीरपिप्पल्यश्चन्द-  
नोत्पलम् ॥ २ ॥ लोध्रं तेजोवती पथ्या  
ज्यूप्यं सयवाग्रजम् । आर्द्रदाडिमनि-  
र्यासश्चाजाजीशर्करायुत ॥ ३ ॥ सतैल-  
मात्तिकास्त्वेते चत्वारः कवलग्रहः ।  
चतुरोऽरोचकान् हन्त्युर्जाद्येकजसर्व-  
जान् ॥ ४ ॥

कूट, कालानोन, जीरा, मिश्री, मिरिच और विदनमक, अँवला, हलायची, पछाल, खस, पीपरि, लाल चन्दन और कमल । लोध्र, चम्य, हरड़, सोंठ, मिरिच, पीपरि और जवा-  
खार । कच्चे अनार के फल के बीजों का रस, जीरा और मिश्री । इन चारों योगों में से किसी एक के चूर्ण को तैल और मधु में मिश्रित कर कवल धारण करना चाहिये । यह

योग क्रमशः घातिक, वैक्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक अरोचक रोग को नष्ट करते हैं ॥ २४ ॥

मुखशोधन योग ।

त्वद्मुस्तमेलाधान्यानि मुस्तमामलकं  
त्वचः । त्वक् च टावीं यमान्यश्च तेजो-  
वत्यपि पिप्पली ॥५॥ यमानी तिन्तिडी-  
कश्च पञ्चैते मुखशोधनः । श्लोकपादैरभि-  
हितः सर्वारोचकनाशनाः ॥ ६ ॥

दालचीनी, नागरमोथा, हलायची और धनियाँ का चूर्ण । नागरमोथा, अँवला और दाल-  
चीनी का चूर्ण । दालचीनी, दादहलदी और  
अजवाइन का चूर्ण । चम्य और पीपरि का  
चूर्ण । अजवाइन और इमिली का चूर्ण ।  
श्लोक के एक-एक पाद से कहे हुये यह पाँच  
योग मुखशोधन और सब प्रकार की अरुचि  
के नाशक हैं ॥ ५-६ ॥

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लग्नाद्र्कभक्ष-  
णम् । रोचनं दीपनं वद्वेजिह्वाकण्ठविशो-  
धनम् ॥ ७ ॥

भोजन से पहले नमक और अदरक खाने से  
भोजन में रुचि होती है, अग्नि बढ़ती है तथा  
जीभ और कण्ठ साफ होते हैं ॥ ७ ॥

अम्लरुच्छन्दनाशककवलधारण ।

अम्लिका गुडतोयश्च त्वगेला मरि-  
चान्त्रितम् । अम्लरुच्छन्दरोगेषु शस्तं  
कवलधारणम् ॥ ८ ॥

इमिली और गुड़ को जल में घोलकर  
उसमें दालचीनी, हलायची और मिरिच का  
चूर्ण मिलाकर मुख में धारण करने से हर  
प्रकार के अम्लरुच्छन्द (अम्ल में रुचि न होना)  
रोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

१ जिनकी तेल रुचिकर नहीं है, वह चकेले ही  
या घृत मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं ।

कारव्यादिकवलधारण ।

कारव्यजाजी मरिचं द्राक्षा वृत्ताम्ल-  
दाडिमम् । सौवर्चल गुडः क्षौद्रं सर्वा-  
रोचकनाशनम् ॥ ६ ॥

कलीजी, जीरा, मरिच, मुनक्का, इमिली,  
अनार, काला नमक और गुड ; इन औषधों  
का कवल धारण करने से मद्य प्रकार की अरुचि  
नष्ट होती है ॥ ६ ॥

विट्चूर्णादिकवल ।

विट्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाडिम-  
सम्भयः । असाध्यामपि संहन्यादरुचि  
वक्त्रधारितः ॥ १० ॥

अनार के रस में शहद और विडनमक  
मिलाकर मुख में रखने से असाध्य भी अरुचि  
नष्ट होती है ॥ १० ॥

त्रीण्यपणानि त्रिफला रजनीद्वयश्च  
चूर्णाकृतानि यत्रशूकमिश्रितानि ।  
क्षौद्रान्धितानि त्रितरेणुख धारणार्थमन्या-  
नि तिककटुकानि च भेषजानि ॥ ११ ॥

सोंठ, मिच, पीपर ( त्रिकटु ), हरं, बहेड़ा,  
अविला ( त्रिफला ), हजरी दारहचरी, यव-  
चार तथा दूसरी कटुनी, सीली औषधियों को  
शहद मिलाकर मुँह में रखने से अरुचि नाश को  
प्राप्त होती है ॥ ११ ॥

रात्रिका नीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिङ्गु सना-  
गरम् । सैन्धवं दधि गोः सर्गं वस्त्रपूतं  
भकल्पयेत् ॥ १२ ॥ तान्मात्रं क्षिपेत्क्रं  
यथा स्याद्विचरुत्तमा । तक्रमेतद्भवेत् सद्यो  
रोचनं वह्निरर्धनम् ॥ १३ ॥

भुनी हुई राई, भुनी हुई होंग, भुना हुआ  
जीरा, सोंठ और संधा नमक हर एक द्रव्य १  
भाग लेकर चूर्ण कर ले और उसके चरावर  
परिमाणयुक्त दूध लेकर उसमें मद्य डालें और  
कपड़े में छानकर उसके चरावर मदा मिला ले ।

इसके पान करने से रुचि बढ़ती है और अग्नि की  
वृद्धि होती है ॥ १२-१३ ॥

द्वे पले दाडिमांम्लस्य खण्डं दद्यात्  
पलत्रयम् । त्रिमुगन्धिपलञ्चैकं चूर्णमि-  
कत्र कारयेत् ॥ १४ ॥ तच्चूर्णं मात्रया  
भुङ्गमरोचकरं परम् । दीपनं पाचनं च  
स्यात् पीनसञ्जरकासजित् ॥ १५ ॥

२ पल ( = तोला ) अनारदाना, ३ पल  
( १२ तोला ) खांड, १ पल ( ४ तोला )  
छोटी इलाहनी ४ तोला दालचीनी, १ पल  
( ४ तोला ) तेजपत्र, इन सबको इकट्ठा कर  
यथाविधि चूर्ण बना ले । इस चूर्ण के सेवन  
करने से अरुचि, पीनस, उजर तथा खाँसी नाश  
को प्राप्त होते हैं । यह चूर्ण दीपन-पाचन  
है ॥ १४-१५ ॥

महाखाण्डवचूर्ण ।

मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि  
च । प्रत्येकमेक भागाः स्युः पिप्पली  
मूल चित्रकैः ॥ १६ ॥ त्वक्कणा तिनित्डीकं  
च जीरकं च द्विभागिकम् धन्याम्लवेतसी  
विश्वं भद्रैला वटराणि च ॥ १७ ॥  
अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युत्ति  
भागिकाः । सर्वापि चतुर्थांशदाडिमस्य  
फलंभवेत् ॥ १८ ॥ द्रव्येभ्यो  
निखिलेभ्यश्च सितादेयाऽर्धमात्रयः ।  
महाखाण्डव संश्लेश्याच्चूर्णं मेतत्सुरोचनम्  
॥ १९ ॥ अग्नि दीपिकरं हृद्यं कासातीसार  
नाशनम् हृद्रोग कण्ठ जठर मुखरोग  
प्रणाशनम् ॥ २० ॥ विपूचिकां तथा  
ध्यानमर्शो गुल्म कृमीनपि । बर्दिपञ्च-  
विधांस्वांसंचूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ २१ ॥

कालीमिचं, नागकेशर, तालीस पत्र, पाँचो  
नमक प्रत्येक औषधियाँ १-१ तोला, पिपलामूल-

चीता की जड़, दालचीनी, पीपरि, तिमितीक (इमलियाचूक) नीरा अथेक औषधियां २-२ तोला । धनियां, अमलबेत, सोंठ, पदी इलायची, बेर, अजवायन और नागरमोथा प्रत्येक औषधियां ३-३ तोले । सब औषधियों का चतुर्थांश (सया दरा तोले) अनार दाना और सब औषधियों की अर्ध भाग २२ ॥ तोले लडि ( या मिथ्री । भिलावे । यह चूर्ण त्रिच यदाने वाला उठराग्नि को बढ़ानेवाला और हृदय को हितकारी है । यह चूर्ण खांसी, हृदय करोग, अतिसार कण्ठरोग, उदररोग, मुँह क रोग, हैजा, अफरा, यवासीर, गुल्म, पेट के कृमि, पोंधो तरह की उरुगी और ख्याम को नष्ट करता है ॥ १६-२१ ॥

महौषधादि चूर्ण और गुटिका ।

महौषध शिवाजीरं शतपुष्पावचाल्व-  
चम् । जुटी मधुरिका हिङ्गु देवपुष्प-  
हविर्भुजाम् ॥ २२ ॥ यमान्याश्च लणयोः  
पयोधरमरीचयोः । पिप्पलीटङ्कयो रलक्षणा-  
चूर्णानि समभागतः ॥ २३ ॥ सम्मिश्रय  
मर्दयेत् खल्ले मापमानन्तु सेयेत् । महौषधा-  
दिकं चूर्णमिदं हन्यादरोचकम् ॥ २४ ॥  
अग्निमान्द्यमतीसारमम्लपित्त विमूचि-  
काम् । ग्रहणीं शूलगुल्मांश्च सूतिकाञ्च  
त्रिलम्बिकाम् ॥ २५ ॥ यकृतस्त्रीहृज्वरं जीर्णं  
रक्तमीजं यथाभिनिका ॥ २६ ॥ चतुर्गुणेन  
लिम्पाकरसेन वारसप्तकम् । तदेव भावितं  
चूर्णं यदिवृद्धैश्चिकित्सकैः ॥ गुणैररा तदा-  
ख्याता तदाख्या गुडिका भयेत् ॥ २७ ॥

सोंठ, हरष, सफेद जीरा, सोया, बच, दार  
चीनी, छोटी इलाइची, सौंफ, हींग, जींग,  
चित्रक अजवाइन, सेंधा नमक, थिट नमक,  
मोथा, कालीमिर्च पीपल सुहागा इनको पृथक्  
पृथक् चूर्ण कर बराबर बराबर मिलाकर घोंटे ।  
मात्रा—१ माशा । इस महौषध आदि चूर्ण के  
सेवन करने से अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार  
( दस्त ), अम्लपित्त, विमूचिका ( हैजा ),

ग्रहणी, शूल ( दद ), गुल्म, सूतिकारोग,  
पित्तगिष्का, तिरुली, त्रिगर स उरुग पुराना ज्वर  
आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं । अगर इस  
चूर्ण में चार गुन नीचू क रस की भावनाएँ  
देकर गोलेियां बना ले तो यह गोलेियां दूसरे  
चूर्णों की अपेक्षा अधिक गुणकारी  
होंगी ॥ २२-२७ ॥

यमानीप्राण्डव ।

यमानी तिमितीकञ्च नागरञ्चाम्ल-  
वेतसम् । दाडिम उदरञ्चाम्लं कार्पिकाण्यु-  
पकल्पयेत् ॥ २८ ॥ धान्यसौत्रचलाजाजी  
वराङ्गश्चादकार्पिकम् । पिप्पलीनां शतञ्चैव  
द्वै शते मरिचस्य च ॥ २९ ॥ शर्करायाश्च  
चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् । जिह्वा  
त्रिशोधनं हृद्यंतच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ ३० ॥  
हृत्पीडापाशर्वशूलघ्नं विन्धनाहनाशनम् ।  
कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यशौविकार-  
नुत् ॥ ३१ ॥

अजवाइन, इमिली, सोंठ अमलबेत, अनार  
क दान और खटा बेर एक एक तोला, धनियां,  
कालानोन, जीरा और दालचीनी आधा आधा  
तोला, पीपरि १००, मरिच दो सौ और चीनी  
१६ तोला, इन औषधों को कूट-पीसकर चूर्ण  
बना लेवे । इस चूर्ण को कुछ दर तक मुल में  
धारण करके पीछे धीरे धीरे निगल जाना  
चाहिये । यह चूर्ण जिह्वाशोधक हृदय को हित  
कारक और रुचिवर्धक है । तथा हृदय की पीडा,  
पसलियों की पीडा, मलबद्धता, आनाह, कास,  
श्वास, ग्रहणी और यवासीर को नष्ट करता  
है एव प्राही है ॥ २८-३० ॥

कलहस्त ।

शिग्र फलान्यष्टादशादिद्मरिचानि  
विंशतिः पिपल्यः । आर्द्रकपल गुडपल  
प्रस्थद्वयमारनालस्य ॥ ३१ ॥ एतद्विडल-  
वणसहितं खजाहतं सुरभिगन्धाढचम् ।

व्यञ्जनसहस्रधाति ज्ञेयं कलहंसकं  
नाम ॥ ३३ ॥

खजाहत्तं मन्थानदण्डमथितम् । सुरभि-  
गन्धाढ्यं चातुर्जातचूर्णं न सुगन्धीकृतं  
चातुर्जातं मिलित्वा पलं, प्रत्येकमिति  
केचित् । कलहंसवत् स्वरकर्तृत्वादस्य  
कलहंससंज्ञा ।

सहिजन के फल १८, मिरिच १० दाने,  
पीपरी २०, अदरक ४ तोले, गुड़ ४ तोले,  
काँजी १२८ तोले, धिड़नमक ४ तोले; इन सब  
वस्तुओं को एकत्रित कर अच्छी तरह चूर्ण  
करके चतुर्जातक (दालचीनी, इलायची, तेजपात  
और नागकेसर) का ४ तोले चूर्ण मिलाकर  
सुगन्धित करे । किसी वैद्य का मत है कि चतु-  
र्जातक के दालचीनी आदि जो चाग औषध है,  
उनमें से रत्येक का चार-चार तोले चूर्ण मिलावे ।  
यह औषध अग्न्यन्त सुस्वादु होने से हजारों प्रकार  
के व्यञ्जनों को तिरस्कृत करता है । इसका सेवन  
करने से कलहंस के समान अत्यन्त सुमधुर स्वर  
होता है, अग्नि की वृद्धि होती है और सब  
प्रकार की अरुचि नष्ट होती है । कलहंस के  
समान स्वर करने ही से इसका नाम कलहंस  
रखा गया है ॥ ३२-३३ ॥

तिन्तिडीपानक ।

भागास्तु पञ्च चिञ्चायाः खण्डस्यापि  
चतुर्गुणाः । धान्यकाद्रकयोर्भागं चातुर्जा-  
ताद्देभागिकम् ॥ ३४ ॥ द्विगुणं जलमेते-  
पामेकपात्रे विलोडितम् । पीहितं तप्तदुग्धेन  
ततो वस्त्रपरिप्लुतम् ॥ ३५ ॥ विधिना  
धूपिते पात्रे कृत्वा कर्पूरवासितम् । नृपयो-  
ग्यमिदं पानं भवेद् युक्त्या सुयोजितम् ॥ ३६ ॥

बीजादि-रहित परिपक इमिली २ तोले,  
सर्दि २० तोले, धनियाँ का चूर्ण आधा तोला,  
अदरक आधा तोला, दालचीनी, इलायची,  
तेजपात और नागकेसर का चूर्ण आधा तोला

और जब २३ तोले, इन सब औषधों को पात्र  
में मलकर मिश्रित कर देवे । पश्चात् थोड़ा-सा  
उष्ण दुरध मिलाकर वस्त्र से ढँक देवे । पीछे  
अगर आदि द्वारा धूपित पात्र में रखकर कर्पूर  
से सुवासित कर देवे । तत्पश्चात् सेवन करने के  
योग्य हो जाता है । यह तिन्तिडीपानक युक्ति-  
पूर्वक प्रयोग करने से राजाओं के योग्य होता  
है ॥ ३४-३६ ॥

रसाला ।

अर्द्धाढिकं सुचिरपर्युपितस्य दध्नः  
खण्डस्य पोडशापलानि शशिमभस्य ।  
सर्पिः पलं मधुपलं मरिचद्विकर्पं शुण्ठ्याः  
पलाद्मपि चाद्दपलं चतुर्णाम् ॥ ३७ ॥  
शुक्लोपले ललनया मृदुपाणिघृष्टा कर्पूर-  
चूर्णसुरभीमयभाण्डसंस्था । एषा वृकोदर-  
कृता सुरसा रसाला याऽऽस्मादिता भग-  
वता मधुसूदनेन ॥ ३८ ॥ रसाला वृंहणी  
वृष्ट्या स्निग्धा वल्ला रुचिप्रदा ॥ ३९ ॥  
अत्र दध्नो न द्वैगुण्यमिति केचित् ।

खट्टा दही ३ सेर १६ तोला, मिश्री ६४  
तोला, घृत ४ तोला, मधु ४ तोला, मरिच का  
चूर्ण २ तोले, साठ का चूर्ण २ तोले, दालचीनी  
इलायची, तेजपात और नागकेसर प्रत्येक का  
चूर्ण आधा तोला । इन औषधों को श्वेत पत्थर  
के पात्र में कोई सुन्दरी रमणी धपने को मल  
हाथों से मजल कर कर्पूर के चूर्ण से सुगन्धित  
किये हुए पात्र में रख देवे । इस सुमधुर रसाला को  
भीमसेनजी ने बनाया था और भगवान् मधु-  
सूदन ने इसका आस्वादन किया था । यह रसाला  
वृंहण, वृष्य, स्निग्ध, मलप्रद और रुचिपूर्वक  
है ॥ ३७-३९ ॥

किसी वैद्य का मत है कि दधि मूत्र पदार्थ  
होने पर भी इस योग में द्विगुण नहीं लिया जाता  
है, अतः उनके मत के अनुसार दही १२८ तोला  
लेना चाहिये ।



रसकेशरी ।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीकाथेन  
मर्दयेत् । देवपुष्पं वाणमितं रसपादं तथा-  
मृतम् ॥ ४० ॥ मापमात्रञ्च तत् सेव्यं  
नागरेण गुडेन वा । सर्वारोचकशूलार्त्ति-  
मामवातं विनाशयेत् ॥ ४१ ॥ विमूची-  
मग्निमान्द्यञ्च भक्तद्वेषं सुदारुणम् । रसो  
निवारयत्येष केशरी करिणं यथा ॥ ४२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, लौग २  
तोले, विष और पारा चतुर्थांश अर्थात् तीन-  
तीन मासे; इन औषधों को दन्ती के काथ में  
घोटकर उर्द के बराबर गोलो बनावे । सोंठ  
अथवा गुड़ के साथ इसका सेवन करना चाहिये ।  
यह रस सब प्रकार के अरोचक, शूल और आम-  
वात को नष्ट करता है । जिस प्रकार सिंह हाथी  
को भगाता है वैसे ही यह रसकेशरी विमूषिका,  
अग्निमान्द्य और घोर अरुचि ( भोजन के नाम  
से भी पृष्ठा हो) को दूर करता है ॥ ४०-४२ ॥

अरोचक में पथ्य ।

गोधूममुद्गारुणशालिपट्टिका मांसं  
वराहाजशशैणसम्भवम् । चेन्नो भूपाण्डं  
मथुरालिकेल्लिशः प्रोष्ठी खलीशः कवरीं  
च रोहितः ॥ ४३ ॥ कर्कारुवैत्राग्रनवीन-  
मूलकं वार्ताकुशोभाञ्जनमोचदाडिमम् ।  
भन्यं पटोलं रुचकं धृतं पयो वालानि ता-  
लानि रसोनशूरणम् ॥ ४४ ॥ द्राक्षा  
रसालं नलदाभ्युकाञ्जिकं मयं रसाला दधि  
तक्रमार्द्रकम् । ककोलखजूरभियालतिन्दुकं  
पक्कं कपित्थं वदरं विकङ्कतम् ॥ ४५ ॥  
तालास्थिमज्जा हिमवालुका सिता पथ्या  
यवानी भरिचानि रामठम् । स्वाद्वम्ल-  
तिक्रानिच देहमार्जना वर्गोऽप्यमुक्रोऽरुचि-  
रोगिणे हितः ॥ ४६ ॥

गेहूँ, मूँग, लाल शाजि, साठी के चावल,  
सूअर, बकरा, हिरन, शशक आदि के मांस,  
चेन्न मछली, मगर के अण्डे, मथुरालिका,  
रुक्लिश, प्रोष्ठी, खलीश, कवरी, रोहित आदि  
मछलियों, ककड़ी, बेत की कुनगी, कच्ची मूली,  
वेंगन, सहिजन, केला, अनार, कमरख, परवल,  
कालानमक, घी, दूध, कच्चे ताल फल, लहसन,  
जिमीकंद, अंगूर, आम, खस का पानी, कॉजी,  
गराब, रसाला, दही, मठा, अदरक, शीतलचीनी,  
खजूर, पियाल, तिन्दुक, पका हुआ कैथ, बेर,  
विकङ्कत, ताल की गुठली की मज्जा, कपूर, मिथ्री,  
हरद, अजवाइन, कालीमिर्च, हॉग, खट्टे तथा  
सोखे सुस्वादु पदार्थ, उबटना, नहाना, शरीर को  
शुद्ध रखना उपयुक्त सब बातें अरोचक रोगी के  
लिए पथ्य हैं ॥ ४३-४६ ॥

अरोचक में अपथ्य ।

कासोद्गारक्षुधानेत्रवारिवेगविधारणम् ।  
अह्यान्नमसृङ्मोक्षं क्रोधं लोभं भयं  
शुचम् ॥ ४७ ॥ दुर्गन्धारूपसेवाञ्च न  
कुर्यादरुचौ नरः ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामरोचका-  
धिकारः समाप्तः ।

खॉमी, डकार, भूल, आँसू, इनके वेगों का  
अवरोध करना, जो अन्न प्रिय न हों उनका प्रदण  
करना, रत्न निकलवाना, क्रोध, लोभ करना,  
भय, शोक आदि, दुर्गन्ध, कुरूप ये संपूर्ण बातें  
अरोचक रोगी के लिये अपथ्य हैं ॥ ४७-४८ ॥

इति सरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाऽभिधायां व्याख्यायां-  
मरोचकाधिकारः समाप्तः ॥

## अथातीसाराधिकारः ।

आमपक्वज्ञान का प्रयोजन ।

आमपक्वक्रमे<sup>१</sup> हित्वा नात्तिसारे क्रिया यतः । अतः सर्गात्तिसारेषु<sup>२</sup> ज्ञेयं पक्वामल-  
क्षणम् ॥ १ ॥

अतीसार रोग में आम और पक्व अवस्था को विना जाने हुए, चिकित्सा नहीं की जा सकती है । प्रयोजन यह कि यदि आमामातीसार में पक्वामातीसार की क्रिया की जाय, अर्थात् प्राहक ओषधियों का प्रयोग किया जाय, अथवा पक्वामातीसार में आमामातीसार की क्रिया, अर्थात् लघन आदि की व्यवस्थाएँ की जायें, तो महान् अनिष्ट हो सकता है । अतः सब प्रकार के अतीसारों में पहले आम और पक्व के लक्षणों को अच्छी तरह समझकर चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये ॥१॥

आम और पक्व के लक्षण ।

मज्जत्यामो गुरुत्वाद्विद् पक्वस्तूत्सवते  
जले । विनातिद्रवसंघातं शैत्यश्लेष्म-  
प्रदूषणात् ॥ २ ॥

आमातीसार में विष्ठा जल में दूब जाती है, और पक्वामातीसार में नहीं दूबती । परन्तु अत्यत द्रव ( पतला ) अत्यन्त सख्त ( कड़ा ), अत्यन्त शीतल अथवा कफदूषित होने पर पक्व मल भी जल में डालने से दूब जाता है ॥ २ ॥

आम और पक्व के लक्षणान्तर ।

शकृद्दुर्गन्धि साटोपविष्टम्भार्त्तिप्रसे-  
किनः । निपरीतं निरामन्तु कफात् पक्वश्च  
सज्जति ॥ ३ ॥

आमातीसार में मल में दुर्गन्ध आना, पेट का गुद्गुडाना, थोड़ा थोड़ा मल निकलना, पीड़ा होना और मुख में लार का अधिक आना ये सब लक्षण होते हैं । पक्व पक्वामातीसार में उक्त लक्षणों की अपेक्षा विपरीत लक्षण उपस्थित होने हैं ।

१—अचिद् आमामवक्तेति पाठान्तरम् ।

रक्षित्मिक अतीसार में कफ की गुरुता के कारण, पक्वामस्था में भी मल जल में दूब जाता है ॥३॥

अतीसारचिकित्सा ।

आमे विलङ्घनं शस्तमादौ पाचनमेव  
वा । कार्य्यञ्चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु  
भोजनम् ॥४॥ लङ्घनमेकं त्यक्त्वा नान्य-  
दस्तीह भेषजं वलिनः । समुदीर्यं दोषचयं  
शमयति तत् पाचयत्यपि च ॥ ५ ॥

प्रद्रवं प्रकृष्टद्रवं तच्च लघु एतेन मण्ड-  
पेयायवाग्वादिकं सूचितम् । वर्जयेद्  
द्विदलं शूली कुष्ठी मांसं क्षयी त्रियम् ।  
द्रवमम्लमतीसारी सर्वश्च तरुणज्वरी  
इत्यत्र द्रवनिषेधोऽविहितदुग्धादिद्रवनिषे-  
धायै इति न विरोधः ।

आमातीसार में पहले लघन और पाचन की व्यवस्था करे । लघन करने के बाद भोजन के लिये अत्यत पतली हल्की वस्तु अर्थात् माँड़, पेया और यवागू आदि की व्यवस्था करनी चाहिये । बलवान् मनुष्य के लिये लघन क समान कोई अन्य औषध नहीं है, क्योंकि लघन द्वारा दोषों की शान्ति और उनका परिपाक हो जाता है ।

प्रश्न—शूल रोग में दाल, कुछ रोग में मांस चय रोग में स्त्री, अतीसार में द्रव पदार्थ और अम्लपदार्थ तथा तरुण ज्वर में ये सब पदार्थ त्याज्य हैं, देमा अन्यत्र लिखा है । फिर यहा अतीसार में द्रव का विधान क्यों किया ?

उत्तर—उक्त निषेध उन्हीं दुग्ध आदि द्रव पदार्थों के विषय में है, जिनका अतीसार में विधान नहीं है किन्तु मण्ड पेया और यवागू आदि का निषेध नहीं है ॥ ४-५ ॥

नागरादि क्वाथ ।

नागरातिनिषामुत्तरैथवा धान्यनागरैः ।  
त्पक्षाशूलात्तिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघु ६॥  
शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टका-

रिका । बलाश्रद्धाविलानि पाठानागर-  
धान्यकम् ॥ ७ ॥ एतदाहारसंयोगे हितं  
सर्वातिसारिणाम् । शालिपर्णीविलाविल्वैः  
पृथक्पर्या च साधिता ॥ ८ ॥ टाडिमाम्ला  
हिता पेयापित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ९ ॥

सोंठ, अतीस, मोथा मिलाकर २ तोला  
अथवा धनियां तथा सोंठ मिलाकर २ तोला,  
इनका विधि से काथ करके तुष्णा, शूल तथा  
अतीसार अच्छा करने के लिये इस पाचन, दीपन  
तथा लघु हाथ को सेवन कराना चाहिये, शालि-  
पर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी,  
गोखरू, बेल के फल की गिरी, पाठा, धनिया  
इनके साथ आहार बनाकर अतीसार से पीड़ित  
रोगियों को भोजन कराना चाहिये । शालिपर्णी,  
खरेटी, बेल, पृश्निपर्णी से सिद्ध तथा अनार का  
रस डालकर जरा खट्टी की हुई पेया, पित्त, कफ-  
जन्य अतिमार में प्रयोग कराना चाहिये ॥ ६-९ ॥

धान्यपञ्चकसिद्धो वा धान्यविश्व-  
कृतोऽथवा । आहारो भिपजा योज्या वात-  
श्लेष्मातिसारिणाम् ॥ १० ॥

वात-कफजन्य अतिसार में धान्यपञ्चक से  
सिद्ध अथवा धनियां और सोंठ से सिद्ध किये  
हुए आहार का प्रयोग करना चाहिये ॥ १० ॥

लघुना पञ्चमूलेन वातपित्ते प्रशस्यते ।  
हीवेरशृङ्गेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ॥  
आभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमा-  
चरेत् ॥ ११ ॥

लघुपञ्चमूल से सिद्ध आहार वातपित्ताति-  
सार में श्रेष्ठ है । सुगन्धबाला तथा सोंठ से अथवा  
मोथे तथा पित्तपापड़े से सिद्ध किया हुआ अथवा  
सुगन्धबाला, सोंठ, मोथा, पित्तपापड़ा तथा पाठा  
से सिद्ध खाद्य को अतीसार में प्रयोग करना  
चाहिये ॥ ११ ॥

हीवेरादि षवाथ ।

हीवेरशृङ्गेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ।  
मुस्तोदीच्यशृतं तीयं देयं वापि पिपासावे १२

सुगन्धबाला और सोंठ अथवा नागरमोथा  
और पित्तपापड़ा अथवा नागरमोथा और सुगन्ध-  
बाला, इन तीन योगों में से किसी एक योग का  
क्वाथ पिलाने से अतीसार के रोगी की पिपासा  
शान्त होती है ॥ १२ ॥

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्तामं लघून्यन्नानि  
भोजयेत् ॥ १३ ॥ औषधसिद्धापेयालाजानां  
शक्रवोऽप्यतिसारहिताः । वस्त्रमस्रुत-  
मण्डः पेया च मसूरयूपश्च ॥ १४ ॥

नियमित रूप से जंघन करने के बाद भूख  
से मुर्भाए हुए रोगी को उचित भोजन के समय  
में लघु अन्न खिलावे । धान्यपञ्चक अथवा  
पञ्चकोल आदि औषधों से सिद्ध की हुई पेया,  
घान की खील के सत्तू, वस्त्र से छाना हुआ माड़,  
पेया और मसूर का यूप, ये सब पदार्थ अतीसार  
में पथ्य हैं ॥ १३-१४ ॥

न तु संग्रहणं दद्यात् पूर्वमामातिसा-  
रिणे । दोषा ह्यादौ रुध्यमाना जनयन्त्या-  
मयान् चहून् ॥ १५ ॥ शोथपाण्ड्वामयस्त्रीह-  
कुष्ठगुल्मोदरज्वरान् दण्डकालसकाध्मान-  
ग्रहण्यशीर्गदांस्तथा ॥ १६ ॥

आमातिसार में पहले संग्राही (घारक)  
औषधियां न देवे । प्रयोजन यह कि संग्राही  
औषधों द्वारा रुके हुए दोष-शोथ, पाण्डु, प्रंहा,  
कुष्ठ, गुल्म, उदर, ज्वर, दण्डक, अलसक,  
घाग्मान, ग्रहणी और षवासीर आदि बहुत रोगों  
को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १५-१६ ॥

क्षीणधातुयलार्त्तस्य बहुदोषोऽति-  
निःसृतः । आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्  
पाचनान्मरणं भवेत् ॥ १७ ॥

जो रोगी धातु और बल के क्षीण हो जाने  
से दुःखित है, उसके अनेक दोष-युक्त एवं घटप-  
थिक मल निकल चुके हों, तो आमोवस्था में  
भी स्तम्भन औषधि का प्रयोग करना चाहिए ।  
कारण यह है कि ऐसी अवस्था में पाचन औषध

द्वारा और भी अधिक मल निकलने में रोगी के मरण की संभावना है ॥ १७ ॥

स्तोकं स्तोकं विषद्धं वा सशूलं योऽति-  
सार्यते । अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं  
विपाचयेत् ॥ १८ ॥

अतीसार में थोड़ा-थोड़ा बंधा मल निकलता  
हो और पेट में पीड़ा भी होती हो, तो हड़ और  
पीपल की पानी में चटनी के समान पीसकर  
थोड़ा गरम करके सेवन कराना चाहिये । इसके  
द्वारा दोषों का परिपाक हो जाता है मात्रा ४-६  
माशा ॥ १८ ॥

धान्यपञ्चक और धान्यचतुष्क ।

धान्यकं नागरं मुस्तं बालकं विल्वमेव  
च । आमशूलातिसारघ्नं पाचनं वह्नि-  
दीपनम् ॥ १९ ॥ इदं धान्यचतुष्कं स्यात् पौत्ते  
शुण्ठीं विना पुनः ॥ २० ॥

धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धबाला  
और बेलगिरी; इन औषधियों का व्वाथ<sup>१</sup> पीने  
से आमशूल और अतिसार का नाश, दोषों का  
पाचन और अग्नि का दीपन होता है । वैशिक  
अतिसार में उक्त धान्यपञ्चक में से सोंठ को  
निकालकर शेष चार औषधों का व्वाथ पिलाना  
चाहिये । इसको धान्यचतुष्क कहते हैं । मात्रा  
४ तोला ॥ १९-२० ॥

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः ।  
तृष्णाशूलातिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघु २ १  
सोंठ, अतीस और नागरमोथा ; इन तीन  
औषधों का अथवा धनियाँ और सोंठ, इन  
दो औषधों का व्वाथ तृष्णा, शूल और अती-  
सार का नाशक, दोषों का पाचक, अग्नि का  
दीपक और हलका है । मात्रा-४ तोला ॥ २१ ॥

पक्वोऽसकृदतीसारो ग्रहणीमार्दवात्  
यदा । प्रवर्त्तते तदा कार्यः क्षिप्रं सांग्रा-  
हिको विधिः ॥ २२ ॥

ग्रहणी की ( अरनयधिष्ठान-नादी-विशेष की )  
सृजता के कारण जब पक्कातीसार में निरंतर मल  
निकलने लगे, तब तत्काल संप्राही ( धारक )  
औषध की व्यवस्था करनी चाहिए ॥ २२ ॥

कञ्चटादि कपाय ।

कञ्चटदाडिमजम्बुशृङ्गाटकपत्रहीवेरम् ।  
जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वेगिनीं  
रन्ध्यात् ॥ २३ ॥

जलचौरई की पत्तियाँ, अनार की पत्तियाँ,  
जामुन की पत्तियाँ, सिंघाड़ा की पत्तियाँ, सुगंध-  
वाला, नागरमोथा और सोंठ, इन औषधों का  
काथ बनाकर पीने से गङ्गा के समान प्रबल  
वेगवाला भी अतीसार बंद हो जाता है ॥ २३ ॥

कुटजादि कपाय ।

कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकी विल्व-  
वालकम् । लोधचन्दनपाठाश्च कपायं  
मधुना पिबेत् ॥ २४ ॥ सामे शूले च रक्ते  
च पिच्छास्रावे च शस्यते । कुटजादिरिति  
ख्यातः सर्वातीसारनाशनः ॥ २५ ॥

अतिसारे दृष्टफलोऽयं योगः ।

कुटे की छाल, अनार का छिलका, नागर-  
मोथा, धात के फूल, बेलगिरी, सुगन्धबाला,  
पठानी लोध, लालचन्दन और पाद, इन औषधों  
का काथ बनाकर, उसमें आधा तोला मधु  
मिलाकर पीना चाहिये । यह काथ आम-शूल,  
रक्तज्वर और मल की पिच्छिलता ( मल में  
चिकने छिड़के आना ) को नष्ट करता है । यह  
कुटजादि काथ नाम से प्रसिद्ध है और सब प्रकार  
के अतीसारों को नष्ट करता है ॥ २४-२५ ॥

ग्रन्थकार ने इस योग को अत्यन्त लाभप्रद  
तथा अनुभूत लिखा है ।

यत्सकादि कपाय ।

सवत्सकः सातिविषः सविल्वः सोदीच्य-  
मुस्तरच कृतः कपायः । सामे सशूले

१—धान्य-पञ्चक और धान्य-चतुष्क के व्वाथ में  
आधा तोला मधु मिलाने से विशेष लाभ होता है ।

सहशोणिते च चिरमवृत्तेऽपि हितोऽति-  
सारं ॥ २६ ॥

कुठे की छाल, अतीस, बेलगिरी, सुगंध-  
बाला और नागरमोथा, इन औषधों का काथ  
आमशूल, रक्तलाव और अधिक दिनों के  
अतीसार में लाभदायक होता है । मात्रा-४-५  
तोला ॥ २६ ॥

पथ्यादि काथ ।

पथ्यादारुवचामुस्तैर्नागरातिविपा-  
न्यितैः । आमातीसारनाशाय क्वाथमेभिः  
पिवेन्नरः ॥ २७ ॥

हरद, देवदार, वच, मोथा, सोंठ, अतीस,  
इनके काथ को आमातीसार की शान्ति के लिये  
प्रयोग करना चाहिए । मात्रा-४।५ तोला  
॥ २७ ॥

त्र्युषणादि चूर्ण ।

त्र्युषणातिविपाहिङ्गुवचासौर्वर्चला-  
भयाः । पीत्वोष्णेनाम्बुना जह्वादामाती-  
सारमुद्धतम् ॥ २८ ॥

मिरच, पीपल, सोंठ, अतीस, हींग, वच,  
सोंचर नमक, हरद, इनका चूर्ण बदे हुए  
अतिसार को नष्ट करता है । मात्रा-२।३ माश ।  
अनुपान-गरम जल ॥ २८ ॥

कुटजादि काथ ।

कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्वाथयित्वा  
पिवेज्जलम् । अतीसारं जयेदाशुशर्करामधु-  
योजितम् ॥ २९ ॥

कुड़ा की छाल, इन्द्रजी, मोथा इनके काथ  
में मिथी तथा शहद डालकर सेवन कराने से  
अतिसार शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । मात्रा-४।५  
तोला ॥ २९ ॥

कुटजादि क्वाथ ।

कुटजातिविपा मुस्तं हरिद्रा पण्णिनी-  
द्वयम् । सत्तौद्रशर्करं शस्तं पित्तश्लेष्माति-  
सारिणाम् ॥ ३० ॥

कुड़ा की छाल, अतीस, मोथा, हहदी,  
मापपर्णी, मुद्गपर्णी, इनके क्वाथ में शहद,  
शकर डालकर पित्त-कफजन्य अतिसार में  
सेवन कराना चाहिये । मात्रा ४।५ तोला ॥३०॥

किराततिक्कादि क्वाथ ।

किराततिक्कं मुस्तं वत्सकं सरसा-  
ञ्जनम् । पित्तातिसाररोगञ्च सत्तौद्रं वेदना-  
पहम् ॥ ३१ ॥

चिरायता, मोथा, इन्द्रजी, रसौत, मिलाकर  
२ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, शेष,  
४ तोले, इस क्वाथ में शहद डालकर पीना कष्ट  
सहित पित्तातिसार में लाभदायक है ॥ ३१ ॥

पथ्यादि क्वाथ ।

पथ्यादारुवचाशुण्ठीमुस्ताचाति-  
विपामृता । क्वाथ एषां हरेत्पीतो वाताती-  
सारमुत्त्वणम् ॥ ३२ ॥

हरद, देवदार, वच, सोंठ, मोथा, अतीस  
तथा गिलोय का क्वाथ बहुत बदे हुए वाताती-  
सार को नष्ट करता है । मात्रा-४ तोला ॥ ३२ ॥

अथ नाभिप्रलेपाः ।

श्यामलकालवाल ।

कृत्वालवालं मुहृढं पिष्टैरामलकै-  
र्भिषक् । आर्द्रकस्वरसेनाथ पूरयेन्नाभि-  
मण्डलम् ॥ नदीवेगोपमं घोरमतीसारं  
निवारयेत् ॥ ३३ ॥

आँवले को जल में पीस कर रोगी की नाभि  
के चारों ओर श्यामला ( घेरा ) सा बना देवे  
फिर उसमें अदरक का रस भर देवे तो नदी के  
वेग के समान घोर अतीसार रक जाता  
है ॥ ३३ ॥

जातोफलप्रलेप ।

तथा जातोफलं पिष्ट्वा नामो दद्यात्

प्रलेपनम् । दुर्निवारमतीसारं धारयत्यनिवारितम् ॥ ३४ ॥

जायफल को पीसकर नाभि पर छेप कर देवे । यह छेप कठिन और अत्यन्त बड़े द्रव्ये अतीसार को दूर करता है ॥ ३४ ॥

आम्रफलकप्रलेप ।

आम्रस्य बल्कलं पिष्टं काञ्जिकेन प्रयत्नत ॥ ३५ ॥ नाभिं संलेपयेत्तेन कल्केन मत्तिमान् भिषक । नदीवेगोपमं धोरमतीसारं निवारयेत् ॥ ३६ ॥

आम्र की छाल को फाँजी में पीसकर नाभि पर प्रलेप करे तो नदी के वेग के समान धोर अतीसार नष्ट होता है ॥ ३५-३६ ॥

अथ सामान्यातीसारचिकित्सा ।

विल्वदि क्वाथ ।

विल्वचूतास्थिनिय्यूहः पीतः सत्तौद्रशर्कर । निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैरवानरश्वाहुतिम् ॥ ३७ ॥

बेलगिरी और आम की गुठली की गिरी, इन दोनों औषधों का क्वाथ बनाकर उसमें शहद और मधु मिलाकर पिलावे । जैसे अग्नि आहुति को नष्ट करता है, वैसे ही यह क्वाथ वमन और अतीसार को तत्काल नष्ट करता है । मात्रा ४ तोला ॥ ३७ ॥

पटोलादि क्वाथ ।

पटोलयवधन्याकक्वाथः पेयः सुशीतलः । शर्करामधुसंयुक्तश्चर्द्यतीसारनाशनः ॥ ३८ ॥

परवल, इन्द्रयव और धनियाँ, इन तीनों औषधों के काथ को शीतल करके शर्कर और मधु के साथ पिलावे । यह काथ वमन और अतीसार को नष्ट करता है मात्रा ४ तोला ॥ ३८ ॥

अतीसार में शाखोटकप्रयोग ।

ऊर्ध्वाधोवदनेन बल्कलयुगं शाखोटकस्यादरादादायाशु यथाक्रमं कटितटे मौलेन बद्धं गले । हन्येत्यधुगपत्प्रभूतवमनोत्वलेशातिसारामयान् योगोऽयं परमेश्वरस्य न कदाप्युल्लङ्घनीयो बुधैः ॥ ३९ ॥

शाखोटक पृष्ठ से दो छाल उतार कर उनका ऊपर नीचे मुख करके कटिप्रदेश पर गले में बाँधने से वमन, जी मचलाना तथा अतीसार एक साथ बन्द हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

लघुचतु सम ।

जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितञ्च जीरञ्च टङ्गनयुतं मुनिभिः प्रणीतम् । एतानि मात्तिकसितासहितानि लीढ्वा आम्रातिसारमखिलं गुरुमाशु हन्ति ॥ ४० ॥

जायफल, लौंग, जीरा और सोहाग फूला हुआ इनका चूर्ण बनाकर उसमें मधु और चीनी मिलाकर चाटने से प्रमल आम्रातीसार तत्काल नष्ट होता है ॥ ४० ॥

अहिफेनप्रयोग ।

गुञ्जामितमहिफेनं छागदुग्धेन योजितम् । बहुवेगमतीसारं धारयत्याशु निश्चितम् ॥ ४१ ॥ अहिफेनातियोगेन नातिसारो निपर्चते । किन्त्वस्य बहुभिर्योगैर्मा मृतोऽमृत एव स ॥ ४२ ॥

एक रत्ती अफीम को थकरी के दूध में घोलकर पिलाने से बहुत बगवाला अतीसार तत्काल दूर हो जाता है । अफीम का एक ही बार, अधिक मात्रा में प्रयोग करने से लाभ नहीं होता, प्रत्युत हानि होती है । किंतु अत्यंत अल्प मात्रा में बार-बार प्रयोग करने से अमृत के समान लाभदायक होती है ॥ ४१-४२ ॥

## अथ रक्तातीसारचिकित्सा ।

कुटज, डादिम कपाय ।

कपायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिम-  
वत्सकात् । सद्यो जयेदतीसारं सरक्कं दुर्नि-  
वारकम् ॥ ४३ ॥

अनार का छिलका और कुड़े की छाल, इन दो औषधों का कांथ बनाकर, उसमें मधु मिलाकर पीने से कठिन रक्तातीसार तरकाल नष्ट होता है । मात्रा—४ तोला ॥ ४३ ॥

गुड़यिल्व ।

गुडेन खादितं विल्वं रक्तातीसार-  
नाशनम् । आमशूलविबन्धनं कुत्तिरोग-  
विनाशनम् ॥ ४४ ॥

भुने हुए बेल के गुदे में गुड़ मिलाकर सेवन करने से रक्तातीसार, आम-शूल, विबन्ध और कुत्तिरोग नष्ट होता है मात्रा—२॥ तोला ॥ ४४ ॥

शल्लम्ब्यादिप्रयोग ।

शल्लकीवदरीजम्बूपियालाम्राजुनत्व-  
चः । पीता. क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक्  
शोणितनाशनाः ॥ ४५ ॥

शल्लई ( साल वृक्ष का भेद ), बेर, जामुन, पियाल ( बिचरीजी का वृक्ष ), आम या अर्जुन, इनमें से किसी एक की छाल को बकरी के दूध में पीस और शहद मिलाकर पीने से रक्तातीसार नष्ट हो जाता है । मात्रा ६ मासा ॥ ४५ ॥

जम्ब्यादिस्वरसप्रयोग ।

जम्ब्याम्रामलकानान्तु पल्लवानथ कुट्ट-  
येत् । संशुष्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योज-  
येत् ॥ ४६ ॥ तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्ता-  
तीसारनाशनम् ॥ ४७ ॥

जामुन, आम और आंवला की पत्तियों को सूटकर स्वरस निकाले और उस स्वरस में बकरी

का दूध तथा मधु मिलाकर पीये, तो रक्तातीसार नष्ट हो जाता है । मात्रा २॥ तोला ॥ ४६-४७ ॥

विल्वसिद्धदुग्धप्रयोग ।

विल्वं द्वागपयः सिद्धं सितामोचर-  
सान्वितम् । कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसा-  
रनाशनम् ॥ ४८ ॥

बेलगिरी २ तोले, बकरी का दूध १६ तोले और जल ६४ तोले इन सबको मिलाकर पकावे । दुग्ध-मात्र शेष रहने पर चीनी तथा मोचरस और इन्द्रजव का चूर्ण मिलाकर पान करे तो रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

“वृद्ध वैद्यों का मत है कि बेलगिरी ६ मासे, सिता १ मासे तथा मोचरस और इन्द्रजव का चूर्ण १ मासा लेना चाहिए” ॥

तण्डुलीयादि प्रयोग ।

ज्येष्ठाभ्युना तण्डुलीयं पीतश्च ससितं  
मधु ॥ ४९ ॥ पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा  
क्षीरमुग् जयेत् । रक्तातिसारं पीत्वा वा  
तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ५० ॥

चावलों के जल के साथ चौराई के मूल को पीसकर, उसमें मधु और चीनी मिलाकर, उसके पीने से रक्तातीसार नष्ट होता है । शतावरी के कल्क को दूध के साथ सेवन करे अथवा शतावरी के कल्क के साथ सिद्ध किये हुए घृत का सेवन करे और भूल लगने पर दुग्ध-पान करे, तो रक्तातीसार निवृत्त हो जाता है ॥ ४९-५० ॥

रक्तातिसार पर सयौत्तमप्रयोग ।

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् ।  
तत्रैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ५१  
यावच्चैव लसीकामं शृतं तदुपकल्पयेत् ।  
तस्यार्द्धकर्म तत्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ।  
अवरयमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोच-  
रम् ॥ ५२ ॥

( काथदाडिमाम्बुभागाः समाः भागे-  
ऽप्यनुक्ते समता विधेया । )

चार तोले कुदे की छाल को ३२ तोला जल में पकावे । आठ तोला शेष रहने पर, इसी काथ में अनार के फल का रस अथवा छाल व पत्तियों का ८ तोला काथ मिश्रित करके धीरे-धीरे रखकर पकावे । 'लमदार' के समान गाढ़ा हो जाने पर उतार कर रख लेवे । आधा तोला इस औषध को तक्र के साथ ग्रावे । इसका सेवन करने से कठिन रक्तातीसार नष्ट हो जाता है । एवं मरणासन्न रोगी भी काल के गाल से बच जाता है मात्रा ४१२ तोला ॥ २१-२२ ॥

तिलकल्क ।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभाग-  
संयुतः । आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं  
नियच्छति ॥ ५३ ॥

काले तिलों को जल में पीसकर, उसमें शर्करा मिलाकर, बकरी के दूध के साथ सेवन करे, तो रक्तातीसार तत्काल नष्ट हो जाता है मात्रा- ११२ तोला ॥ २३ ॥

विल्वादिकल्क ।

विल्वाब्दधातकीपाठाः शुषठीमोचरसाः  
समाः । पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुढतक्रेण  
दुर्जयम् ॥ ५४ ॥

शुधेन मधुरीकृतं तक्रं गुढतक्रम् ।  
कल्केन योग इति गोपालदासः ।

बेजगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल, पाद, सोंठ और मोचरस, इन सब औषधों का कल्क बनाकर गुड़ और तक्र के साथ सेवन करे, तो दुर्जय रक्तातीसार नष्ट हो जाता है । मात्रा-१ माशा १ तोला ॥ २४ ॥

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य ।

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलं  
त्वचम् । घातकी शूद्रवेरं च पिबेत् तण्डुल-  
वारिणा । सौद्रयुक्तं मण्डति रक्तातीमार-  
मुल्यणम् ॥ ५५ ॥

रसोत, धतूँस, इन्द्रजव, कुदे की छाल, धाय के फूल और सोंठ, इनका चूर्ण खाकर शहद मिले हुए चावलों के धोवन के साथ पीने से घोर रक्तातीसार नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

कुटजक्षीर ।

निष्काथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः  
सम्यक् पलद्वितयमम्बुचतुःशरावे । तत्पाद-  
शेषसलिलं खलु शोषणीयं क्षीरे पलद्वय-  
मिते कुशलैरजायाः ॥ ५६ ॥ प्रक्षिप्य  
मापकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले । रक्ता-  
तिसारी तं लीङ्गा नैरुज्यमधिग-  
च्छति ॥ ५७ ॥

आठ तोले कुदे के मूल की छाल को १२८ तोला जल में पकावे, ३२ तोला जल शेष रहने पर इसी काथ में ८ तोला बकरी का दूध मिलाकर फिर पकावे । दुग्ध-मात्र शेष रहने पर उतार लेवे । शीतल होने पर आठ मासे मधु मिलाकर पीने से रक्तातीसार निवृत्त हो जाता है ॥ २६-२७ ॥

चन्दनकल्क ।

पीत्वा सशर्करं सौद्रं चन्दनं तण्डुला-  
म्बुना । दाहं तृष्णां प्रमेहश्च सद्यो रक्तं  
नियच्छति ॥ ५८ ॥

सफेद चन्दन को घिसकर, चीनी और मधु मिलाकर चावलों के धोवन के जल के साथ पीने से दाह, तृष्णा, प्रमेह और रक्तातीसार तत्काल नष्ट हो जाता है । मात्रा-३।४ माशा ॥ २८ ॥

नवनीतावललेह ।

नवनीतं मधुयुतं लिहेद्वा सितया सह ।  
नागकेशरसंयुक्तं रक्तसंग्रहणं परम् । मधु-  
पादं सितादर्शं नवनीतं चतुर्गुणम् ॥ ५९ ॥  
शहद ४ मासे, चीनी ८ मासे, नागकेशर  
का चूर्ण ४ मासे और मक्खन २ तोला



मिलाकर सेवन करने से रङ्गातीसार निवृत्त हो जाता है । यहाँ मक्खन और राहद को नाग-केशर के साथ मिलाकर चाटने से अथवा मक्खन, मिश्री और नागकेशर मिलाकर चाटने से रङ्गातीमार नष्ट होता है ॥ २६ ॥

दाहपाकप्रतीकार ।

गुददाहे प्रपाके वा पट्टोलमधुकाभ्युना ।  
सेकादिकं प्रशांसन्ति छांगन पयसाथवा ॥  
गुदभ्रशे तु कर्त्तव्या चिकित्सा तत्प्रकी-  
र्तिता ॥ ६० ॥

मुलेठी और परवल की पत्तियों के काप से कई पार गुदा के धो डालने से गुदा का दाह एवं उसका पक जाना दोनों ही निवृत्त हो जाते हैं । इसी प्रकार बकरी के दूध<sup>१</sup> से गुदा के सेवन और प्रचालन करने से दाह और पाक की शान्ति हो जाती है । परन्तु गुद-भ्रंश रोग के उपपन्न होने पर गुदभ्रंशाधिकारोत्र चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६० ॥

फलवर्ति ।

पिष्टा कनकमूलश्च शक्रजं फणिकेन-  
कम् । यल्लमाना कृता वर्त्तिर्मधूत्थघृत-  
योगतः ॥ ६१ ॥ हन्याद्गुदगता क्षिप्तं  
दाहपाकावसंशयम् । फलवर्त्तिरियं कृत्स्न-  
गुदरोगनिपूदनी ॥ ६२ ॥

धतूरे की जड़, भाँग के बीज और अफीम प्रत्येक को तीन तीन रत्ती महीन पीसकर और उसमें मोम और घृत डालकर खरल करके बत्ती बनाये । इस फलवर्ती को गुदा में रखने से दाह और पाक आदि समस्त गुदरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६१-६२ ॥

१—अन्य ग्रन्थों में बकरी के दूध में शकर और राहद का मिलावा भी लिखा है—  
— 'दाहे पाके हितं छागीदुग्ध सघीद्रशर्करम् ।  
गुदस्य चालने सेके युत्र पाने च भोजने ॥'

नारायणचूर्ण ।

गुहूची वृद्धदारश्च कुटजस्य फलं तथा ।  
विल्वश्चातिविपा चैव भृङ्गराजश्च नागरम् ॥  
६३ ॥ शकाशनस्य चूर्णश्च सर्वमेकत्र मेल-  
येत् ॥ चूर्णमेतत् समं ग्राह्यं कुटजस्य  
त्वचोऽपि च ॥ ६४ ॥ गुडेन मधुना वापि  
लेहयेद्भिपजां वरः । शोथं रङ्गमतीसार  
चिरजं दुर्जयं तथा ॥ ६५ ॥ ज्वरं तृष्णाञ्च  
कासञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम् । मन्दानलं  
प्रमेहञ्च गुदजञ्च विनाशयेत् ॥ एतन्नारा-  
यणं चूर्णं श्रीनारायणमापितम् ॥ ६६ ॥

गिलोय, विधारा, इन्द्रजय, बेलगिरी, अतीस, भाँगरा, सोंठ और भाँग प्रत्येक का चूर्ण सम-भाग और सबके बराबर कुहे की छाल का चूर्ण एकत्रित करके मधु अथवा गुद के साथ इस चूर्ण का सेवन करना चाहिये । यह श्रीनारायण भगवान का कहा 'नारायणचूर्ण' शोथ, रक्ताती-सार, ज्वर, तृष्णा, कास, पाण्डुरोग, हलीमक, अग्नि-मान्द्य, प्रमेह और पक्षासीर को नष्ट करता है । मात्रा ३१६ मासा ॥ ६३-६६ ॥

पुटपाकचिकित्सा ।

अवेदनं सुसम्पकं टीप्तान्नेः सुचिरो-  
त्थितम् । नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाच-  
रेत् ॥ ६७ ॥

तथा अग्नि दीप्त करनेवाले रोगी के वेदनगरहित, परिपक्व, अति प्राचीन और अनेक वर्षोंवाले अतीसार की, पुटपाक से बनी हुई औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६७ ॥

कुटज पुटपाक ।

स्निग्धं घनं कुटजवल्कमजन्तु दग्ध-  
मादाय तत्क्षणमतीव च पोषयित्वा । जम्बू-  
पलाशपुटतण्डुलतोयसिक्कं यद्दं कुशेन च  
वर्हिर्घनपङ्कलिसम ॥ ६८ ॥ सुस्विन्नमेत-  
दवपीड्य रसं पृहीत्वा क्षौद्रेण युक्तमति-

सारवते प्रदद्यात् । कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित्  
एष योगः सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा  
॥ ६६ ॥ स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाके पलं  
पिवेत् । पुटपाकस्य पाकोऽयं विहारारुण-  
वर्गता ॥ ७० ॥

कीटा ( और कीड़ों के भक्षण ) आदि से  
रहित मोटी और चिकने कुड़े की ताजी छाल  
को कूट और चावलों के धोवन-जल में भिगोकर  
गोल पिएड बना लेवे । उसके ऊपर जामुन की  
पत्तियाँ लपेटे और कुशों से बाँधकर मिट्टी का  
स्थूल लेप करके पुटपाक करे । पुटपाक को  
सुपक तब माने, जब पुट-पाक का गोला  
अभिन में ही बाहर से लाल हो जावे । तदनन्तर  
उसको आग से निकालकर मिट्टी आदि को  
अलग करके औषध के रस को निचोड़ लेवे ।  
अतीसार-रोग में थोड़ा मधु मिलाकर १ तोला  
रस पिलावे । इसकी यह मात्रा—पुटपाक में  
स्वरस के गुरु होने से कही गई है । इसके सेवन  
करने से सब प्रकार के अतीसार-रोग नष्ट हो  
जाते हैं ॥ ६८-७० ॥

श्रयोनाकपुटपाक ।

त्वक्पिएडं दीर्घद्वन्तस्य कारमरीपत्र-  
वेष्टितम् । मृदावलिप्तं सुकृतमद्गारेष्वव-  
कूलयेत् ॥ ७१ ॥ स्त्रिन्नपुद्भृत्य निष्पी-  
ड्य रसमादाय यत्नतः । शीतीकृतं मधु-  
युतं पाययेद्दुरामये ॥ ७२ ॥

श्रयोनाक की गरम छाल को पीसकर पिएडा-  
कार बना लेवे और उस पिएड के ऊपर खम्भारी  
के पत्ते लपेट और कुश से बाँधकर, उसके ऊपर  
मिट्टी का स्थूल लेप करके पुटपाक करे । उत्तम  
रीति से सिद्ध होने पर रस निकालकर शहद के  
साथ पिलावे । इसका सेवन करने से सब प्रकार  
के प्रबल अतीसार और उदररोग शान्त हो जाते  
हैं ॥ ७१-७२ ॥

दाडिमपुटपाक ।

दाडिमस्य फलं पिष्ट्वा पचेत् पुटविधा-

नतः । तद्रसं मधुसम्मिश्रं पिवेत् सर्वाति-  
सारजित् ॥ ७३ ॥

अनार के फल को पीसकर गोलाकार  
बनावे और उसके ऊपर जामुन की पत्तियाँ  
लपेट, और कुश से बाँधकर मिट्टी का मोटा लेप  
करके पुट पाक करे । उत्तम रूप से सिद्ध होने  
पर रस निकाल करके मधु मिलाकर पान करे,  
तो सब प्रकार के अतीसार रोग शान्त होते  
हैं ॥ ७३ ॥

कूटजलेह ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मये  
पचेत् । काथे पादावशेषेऽस्मिन् लेहं पूते  
पुनः पचेत् ॥ ७४ ॥ सौवर्चलयवक्षार-  
विडसैन्धवपिप्पली । धातकीन्द्रयवाजाजी-  
चूर्णं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ ७५ ॥ लिङ्गा-  
च्छाणैकमात्रन्तु शीतं क्षौद्रेण संयुतम् ।  
पकापकमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥  
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहि-  
काम् ॥ ७६ ॥

चूर्णं मिलित्वा पलद्वयं ग्राह्यं काथे  
घनीभूते प्रक्षेपः कार्य्यः ।

कुड़े की १ सेर छाल को कूटकर २१ सेर  
४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर १६ तोला  
जल शेष रहने पर छान करके काथ को फिर  
पकावे । गाढ़ा हो जाने पर काला नमक,  
जवाखार, विडनमक, लाहौरी नमक, पीपल,  
काथ के फूल, इन्द्रजय और जीरा, इन सब  
औषधों का चूर्ण ८ तोले, अर्थात् प्रायः एक  
एक, एक तोला चूर्ण डालकर भलीभाँति मिश्रित  
करके तीन, तीन मासों की मात्रा में प्रतिदिन  
मधु के साथ खाना चाहिये । यह कुटज श्ववेह  
पक्षाऽपक तथा नाना वर्णों के अतीसार, कठिन  
ग्रहणी-रोग और प्रवाहिका-रोग को नष्ट  
करता है ॥ ७४-७६ ॥

कुटजाष्टक ।

तुलामथार्द्रा गिरिमल्लिकायाः संक्षुध  
पकृत्वा रसमाददीत् । तस्मिन् सुप्ते पल-  
संमितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्म-  
लेन ॥ ७७ ॥ पाठां समद्गातिविषां सुगुस्तां  
धिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम् । मक्षिप्य  
भूयो विपचेत्तुतावद् दार्वीमलेपः स्वरसन्तु  
यावत् ॥ ७८ ॥ पीतस्त्वसौ कालविदा  
जलेन मण्डेन वाजापयसाथवापि । निह-  
न्ति सर्वन्त्यतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहि-  
तपीतकं वा ॥ ७९ ॥ दोषं ग्रहण्या विविधं  
च रक्तं पित्तं तथा शार्शांसि सशोणितानि ।  
असृग्दरञ्चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुट-  
जाष्टकोऽयम् ॥ ८० ॥ तुलाद्रव्ये जलद्रोणे  
द्रोणे द्रव्यतुला मता ॥ ८१ ॥

मनाकदार्वीमलेपावस्थायां शाल्मलादि-  
चूर्णं मक्षिप्यं शाल्मलादीनां प्रत्येकं पल-  
मानम् । शाल्मलं शाल्मलिनिर्यासः  
अग्निमान्द्ये कोष्णजलेन शृतशीतेन वा  
इत्यन्ये, वस्तिदुष्टो अन्नमण्डेन, रक्ते द्वाग-  
दुग्धेन इति भानुदासः ॥

२ सेर कुचे की छाल को कूट करके २२ सेर  
४८ तोले जल में पकावे । ६ सेर १६ तोला जल  
शेष रहने पर छान करके काय को फिर पकावे ।  
गाढ़ा हो जाने पर मोचरस, पादी, छुईछुई,  
अतीश, नागरमोधा, बेलगिरी और धाय के फूल  
इनमें से प्रत्येक के चार-चार तोले चूर्ण को  
मिलाकर उत्तार लेवे । इसका सेवन करने से  
सब प्रकार के अतीसार, विविध प्रकार के  
ग्रहणी-रोग, रक्त-पित्त, खूनी बवासीर, रक्त-प्रदर  
और अन्यान्य अनेक रोग नष्ट होते हैं । अग्नि-  
मान्द्य में किञ्चित् उष्ण अथवा गरम करके ठंडे  
किये हुए गुनगुने जल के साथ, वस्ति-दोष में  
भात के मांड़ के साथ, रक्तलाव में चकरी के

दूध के साथ, इस अयलेह का सेवन करना  
चाहिये—यह भानुदामजी का मत है । एक तुला  
अर्थात् २ सेर द्रव्य में २२ सेर ४८ तोला  
जल, इसी प्रकार २२ सेर ४८ तोला जल  
में २ सेर द्रव्य काय के लिये दाखना  
चाहिए ॥ ७७-८१ ॥

जीर्णतिसार में चकरी के दुग्ध का प्रयोग ।

जीर्णोऽमृतोपमं क्षीरमतीसारं विशेषतः ।  
द्वागं तद्वैपजैः सिद्धं पेयं वा वारिसाधि-  
तम् ॥ ८२ ॥

जीर्णरोग में चकरी का दूध अमृत के समान  
है और जीर्ण अतीसार में तो विशेष-रूप से  
ज्ञाभदायक है । अतः उपयुक्त औषध अथवा  
जल के साथ सिद्ध करके इसका सेवन कराना  
चाहिये ॥ ८२ ॥

अथ प्रवाहिका चिकित्सा ।

धिल्वाधयलेह ।

वालं धिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीविश्व-  
भेषजम् । लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलः  
समप्रवाहिकः ॥ ८३ ॥

कच्चे बेल की गिरी, गुड़, तिलों का तैल,  
पीपल और सोंठ का कणक चाटे, तो वायु के  
अवरोध और शूल से युक्त प्रवाहिका रोग नष्ट  
होता है ॥ ८३ ॥

टिप्पणी—जिसको तिल के तैल का अग्यास  
है, वही लें ।

पिप्पलीकल्क और मरिचकल्क ।

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचो-  
द्भवः । त्र्यहात् प्रवाहिकां हन्ति चिरकाला-  
नुबन्धनीम् ॥ ८४ ॥

दो मासे पीपल अथवा दो मासे मिर्च को  
पीसकर, चार तोले, चकरी के दूध के साथ सेवन  
करने से बहुत दिनों का पुराना प्रवाहिका रोग  
नष्ट हो जाता है ॥ ८४ ॥

वालविल्वादि ।

कल्कः स्याद् वालविल्वानां तिलकल्क-  
श्च तत्समः । दधनः सरोऽम्लः स्नेहाढ्यः  
खंडो हन्यात् प्रवाहिकाम् ॥ ८५ ॥  
दधनाससारेण समाप्तिकेण भुञ्जीतनिश्चार-  
कपीडितस्तु । सुतप्तकुप्यकथितेन वापि  
क्षीरेण शीतेन मधुप्लुनेन ॥ ८६ ॥

कच्चे बेल की गिरी का कल्क, तिलों का  
कल्क, पट्टे दही की मलाई और तिलों का तैल,  
इनमें से हरएक को दो-दो माशे लेकर सेवन  
करने से प्रवाहिका-रोग नष्ट होता है, और  
यह योग 'खड' नाम से प्रसिद्ध है ।

मलाई-सहित दही और मधु अथवा कस्तूरी  
क्रिये हुए ताम्रपात्र में अच्छी तरह पकाकर  
शीतल किए हुए दूध और मधु के साथ इस विल्वादि  
अपबेह के सेवन करने से प्रवाहिका रोग नष्ट  
होता है ॥ ८५-८६ ॥

टिप्पणी—जिनको तैल सेवन का अभ्यास है  
वही खेवं ।

निश्चारक प्रवाहिका ।

विल्वपेशीं गुडं लोधं तैलं मरिचयोजि-  
तम् । लीढ्वा प्रवाहिकां हन्ति क्षिप्रं सुख-  
मवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

बेल के फूल की गिरी, गुड़, लोध, तिलतैल,  
कालीमिर्च, इन सबको बराबर मात्रा में लेकर  
चाटने से जल्दी ही प्रवाहिका नष्ट हो जाती  
है ॥ ८७ ॥ तैल आधी रत्ती ही लें ।

धातकी बदरीपत्रकपित्थरसमाप्तिकम् ।  
सरोधमेकतो दधना पिवेन्निर्वाहिका-  
दितः ॥ ८८ ॥

धाय के फूल, बेरी के कोमल पत्ते, कैय का  
रस, शहद तथा लोध को बराबर मात्रा में

मिलाकर प्रवाहिका में वही के साथ सेवन करना  
चाहिये ॥ ८८ ॥ मात्रा ४२ माशा ।

लघु गंगाधर चूर्ण ।

मुस्तमिन्द्रयवं विल्वं लोधं मोचरसं  
तथा । धातकी चूर्णयेत्तत्र गुडाभ्यां  
पाययेत्सुधीः ॥ ८९ ॥ सर्वातीसार शमनं  
निरुणद्धि प्रवाहिकाम् । लघु गङ्गाधरं नाम  
चूर्णं संग्राहकं परम् ॥ ९० ॥

नागरमोधा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पठानीलोध;  
मोचरस और धाय के फूल इनका चूर्ण बनाकर  
मट्टा और गुड़ के साथ पीने से सब प्रकार के  
अतिसार शान्त होते हैं और पेचिश रुक जाती  
है । यह चूर्ण मल को रोकने वाला है । मट्टा चूर्ण  
से बीगुना और गुड़ समान भाग लेना चाहिये ।  
यह विशेष अनुभूत है ॥ ८९-९० ॥

वृद्ध गंगाधर चूर्ण ।

मुस्तारलूक शुण्ठीभिर्घातकी लोध  
वालकैः । विल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयव-  
वत्सकैः ॥ ९१ ॥ आम्रं बीजं अतिविषा  
लज्जालुरित्तिचूर्णितम् । क्षौद्रतण्डुलपांनीयैः  
पीतैर्याति प्रवाहिका ॥ ९२ ॥ सर्वाति-  
सार ग्रहणी प्रशमयाति वेगतः । वृद्धगङ्गाधरं  
चूर्णं सरिद्वेग निवन्धकम् ॥ ९३ ॥

नागरमोधा, धरलू (टेटू), धाय के फूल, सोंठ,  
पठानी लोध, सुगन्धमाला, बेलगिरी, मोचरस,  
पाठी, इन्द्रजौ, कुडा की छाल, आम की गुठली  
की गिरी, अतीस और छुई सुई इनके चूर्ण में  
शहद मिलाकर चावलों के धोवन के साथ पीने से  
प्रवाहिका ( पेचिश ) सब तरह के अतिसार  
संग्रहणी आदि रोगों का शीघ्र ही शमन होता है ।  
अतिसार में यह बहुत अच्छा काम करती है ।  
विशेष अनुभूत है ॥ ९१-९३ ॥

अजमोदा चूर्ण ।

अजमोदा मोचरसं सम्यक्वेरं सधातका

१ 'पद् च हन्यात् प्रवाहिकाः' इति ग्रन्थान्तरे  
पाठः ।

कुसुमम् गोदधिमयितयुतं गंगामपि वाहिनीं  
हन्धीत् ॥ ६४ ॥

अजमोदा मोचरस, मोंट और धाय के चूर्ण  
मधे टुप गाय के दही के साथ पीने से गंगा के  
समान भी प्रवाहिका के वेग को रोक देता  
है ॥ ६४ ॥

लवङ्गाभ्रयोग ।

कुटजं दाडिमञ्चैव कदलीमोचमेव च ।  
कञ्चटं तालमूली च त्वचा जम्बाम्रयोः  
सह ॥ ६५ ॥ शृङ्गाटकं वटशुक्राः सर्ज-  
वल्कलमेव च । एषां दशपलान् भागान्  
संगृह्य च पृथक् पृथक् ॥ ६६ ॥ जलद्रोणे  
विपक्वव्यं यावत्पादावशेषितम् । तद्रसं  
पुनरेवाधः पक्त्वा दर्वाम्लेपनम् ॥ ६७ ॥  
तत्र प्रक्षेपणार्थाय द्रव्यमेतत्सुचूङ्घितम् ।  
लवङ्गं जीरकं जातीफलञ्चातिविषा समम् ॥  
६८ ॥ पला मधुरिका चैव खदिरं भृङ्ग-  
मेव च । शाल्मली मोचकं विष्वं सर्जस्य  
रसमेव च ॥ ६९ ॥ एतेषां पलमानेन  
चाभ्रकं पलमेव च । सर्वश्च तत्र निक्षिप्य  
गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ १०० ॥ लवङ्गाभ्र-  
कयोगोऽयं रक्तातीसारनाशनः । शोथाती-  
सारशमनः सर्वशूलनिपूढनः ॥ १०१ ॥

कुड़ा की छाल, अनार की छाल, कथा केला,  
चौराई के पत्ते, मूसली, जामुन की छाल, भ्राम  
की छाल, सिघादा, बड़ के थंकर, सर्जटुप की  
छाल प्रत्येक ४० तोला, इनको २५ सेर ४८  
तोले पानी में पकाकर जब चौथाई भाग बच  
जाय तब छानकर पुनः काथ को पकाकर कलछी  
से छिपटे ऐसा गाढ़ा कर ले, पन्नाच लौंग, जीरा,  
जायफल, अतीस, हलायची, सौंफ, कथा,  
भांगरा, मोचरस, बेल के फल की गिरी, राल,  
प्रत्येक ४ तोले, भ्रभ्रकमस ४ तोला इनको  
१ लहर ३ मासे से ६ मासे तक की गोली

बना ले । इसके सेवन से रक्तातीसार, सूजन  
अतीसार तथा मग्पूर्ण शूल नष्ट होते हैं ॥ ६५-  
१०१ ॥

लवङ्गद्रावक ।

लवङ्गातिविषा मुस्तं पाठा विष्वं  
सधान्यकम् । धातकी मोचकं जीरं लोध्र-  
मिन्द्रयवं तथा ॥ १०२ ॥ बालकं सर्जकं  
शृङ्गी सैन्धवं नागरं कणा । वाट्यालकं  
यवत्तारमहिफेनरसाञ्जनम् ॥ १०३ ॥ एतेषां  
तुल्यभागानि लवङ्गानि प्रदापयेत् । खास-  
सीस्वरसेनैव भावयेत्सप्तवारकम् ॥ १०४ ॥  
लवङ्गद्रावको नाम सर्वरोगेषु योजितः ।  
ग्रहणां चिरजां हन्ति सशोथां पाण्डु-  
कामलाम् ॥ १०५ ॥ अतीसारं निहन्त्याशु  
सामं नानाविधं तथा । मन्दाग्निं नाशये-  
च्छीघ्रमग्लपित्तं सुदारुणम् ॥ १०६ ॥ नरा-  
णाञ्च हितार्थाय विरवाभिन्नेण निर्मितः  
॥ १०७ ॥

लौंग, अतीस, मोषा, पाठा, बेल, धनियाँ,  
धाय के फूल, मोचरस, जीरा, लोध्र, इन्द्रजी,  
मुगन्धबाला, राल, काकडासिगी, संधानमक,  
सोंठ, पीपल, खरोटी, जवाखार, अफीम, रसात,  
मव समभाग, सब के बराबर लौंग का चूर्ण  
भिलावे इन्हें पोस्त के रस से सात बार भावना  
दे । मात्रा ३ या ४ रशी । यह बहुत पुरानी  
संग्रहणी, शोधयुक्त पाण्डु, कामला, अतीसार,  
मन्दाग्नि, अम्लपित्त आदि रोगों को बहुत जल्दी  
आराम पहुँचाता है ॥ १०२-१०७ ॥

घृत ।

वत्सकस्य च बीजानि दाव्यांश्च त्वच  
उत्तमाः । पिप्पली शृङ्गवेरश्च लाक्षा कटुक-  
रोहिणी ॥ १०८ ॥ पद्भिरैतैर्घृतं सिद्धं  
पेयामण्डावचारितम् । अतीसारं जयेच्छीघ्रं  
त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ १०९ ॥

इन्द्रजी, दाहदहदी की छाल, पीपल, सोंठ, लाख, कुटकी इन ६ वस्तुओं से विधिपूर्वक सिद्ध घृत को योग्य मात्रा में पेया एवं मण्डादि के साथ सेवन करने से त्रिदोषत्र अतीसार बहुत जल्दी दूर होता है । मात्रा आधा तोला ॥ १०८-१०९ ॥

### अथ रसप्रयोगः ।

भुवनेश्वर रस ।

सैन्धवं त्रिफलाञ्चैव यमानीं विल्व-  
पेशिकाम् । गृहभूमं गृहीत्वा च प्रत्येकं  
समभागिकम् ॥ ११० ॥ जलेन मर्द-  
यित्वा तु मापमात्रां वर्टीं चरेत् । खादेत्तो-  
यानुपानेन सर्वातीसारशान्तये ॥ १११ ॥

सैन्धा नमक, हरड, बहेडा, आँबला, अजवाइन, बेल के फल की गिरी, घर का धूँआ ; इन सब को बराबर मात्रा में लेकर जल से घोटकर एक एक भाग्ये की गोली बनावे । अनुपान—जल । इसके सेवन से सब प्रकार का अतीसार अच्छा हो जाता है ॥ ११०-१११ ॥

अहिफेन वटिका ।

अहिफेनं सखजूरं घृष्ट्वा गुञ्जैकमात्र-  
कम् । रक्तस्रावमतीसारमतिवृद्धं विनाश-  
येत् ॥ ११२ ॥

पियडलजूर १ भाग, अफीम १ भाग इन्हें घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे इसके सेवन से बहुत बड़ा हुआ अतिसार तथा रक्तस्राव रुक जाता है । मात्रा—११२ रत्ती ॥ ११२ ॥

कारुण्यसागर रस ।

भस्ममूलाद् द्विधा गन्धं तथा द्वित्वं  
मृताभ्रकम् । दिनं सार्वपतैलेन पिष्ट्वा यामं  
विपाचयेत् ॥ ११३ ॥ रसैर्मार्कवमूलोत्थैः  
पिष्ट्वा यामं विपाचयेत् । त्रिन्नारपञ्चलवर्णै  
विष्वयोपाग्निजीरकैः ॥ ११४ ॥ सविडङ्ग-

स्तुल्यभागैरयं कारुण्यसागरः । गुञ्जाद्वयं  
ददीतास्य भिषक् सर्वातिसारके ॥ ११५ ॥  
सज्वरे विज्वरे वापि सशूले शोणितोद्भवे ।  
निरामे शोथयुक्ते वा ग्रहण्यां सान्नि-  
पातिके ॥ अनुपानं विनाप्येप कार्यसिद्धिं  
करिष्यति ॥ ११६ ॥

रस सिन्दूर १ भाग, गन्धक २ भाग, अन्नकभस्म २ भाग इन्हें इकट्ठा कर सरसों के तेल से घोटकर एक प्रहर बालुकायन्त्र में पकावे, पीछे भांगरे की जड़ के रस से घोटकर पहिले की भाँति एक प्रहर पाक करे तत्परचात् इसमें जवाखार, सज्जी, सुहागा, सामुद्रनमक, साँभर नमक, सैन्धा नमक, बिड़नमक, सौंचलनमक, बछनाग, पीपल, कालीमिर्च, सोंठ, चित्रक, जीरा, बायबिडङ्ग, हर एक को बराबर मात्रा में मिलावे । मात्रा २ रत्ती । ज्वरयुक्त या ज्वररहित शूल, रक्त तथा सूजनसहित, सान्निपातिक, ग्रहण्ये की निरामावस्था में यह रस हितकर है । अनुपान के बिना भी यह रस अत्यन्त लाभदायक है ॥ ११३-११६ ॥

अतीसारचारण रस ।

दरदं कृतकपूरं मुस्तेन्द्रियवसंयुतम् ।  
सर्वातीसारशमनं खाखसीक्षीरभावि-  
तम् ॥ ११७ ॥

हिंगुल, शुद्धकपूर, मोथा, इन्द्रजी हर एक को १ तोला लेकर ३ भाग्ये अफीम को जल से घोटकर दो रत्ती की गोली बनावे । यह रस अतिसार को सब भाँति अच्छा करता है । मात्रा—११२ रत्ती ॥ ११७ ॥

पूर्णचन्द्रोदय रस ।

शुद्धञ्च तालकं लौहं गगनञ्च फलं  
पलम् । कपूरं पारदं गन्धं प्रत्येकं वटको-  
न्मितम् ॥ ११८ ॥ जातीकोपमुरापत्रं  
शठीतालीशकेशरम् । व्योषं चोचं कणा-  
मूलं लवङ्गं पिचुसम्मितम् ॥ ११९ ॥

भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।  
नानारूपभन्नीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥  
१२० ॥ अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च  
परिणामजम् । रसायनररवायं वाजी-  
करण उत्तमः ॥ १२१ ॥

शुद्ध हरिताल, लौहभस्म, अन्नकभस्म,  
हरएक ५ तोले, कचूर, पारा, गन्धक प्रत्येक  
६ भागो, जायफल, मुरामांसी, तेजपात, कचूर,  
तालीसरर, नागकेशर, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च,  
मुलहठी, पीपलामूल, लौह हरएक एक-एक तोला  
इनको घेन्कर प्रातःकाल २ रत्ती से ३ रत्ती की  
मात्रा में सेवन करें । यह रस हर तरह की  
अतीसार, ग्रहणी, अम्लपित्त, सूजन तथा परि-  
णामज में दितकर होता है । यह रस रसायन  
तथा वाजीकरण है ॥ ११८-१२१ ॥

शुद्धकनकसुन्दर रस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टङ्गुलं  
तथा । स्पर्णबीजं समं मर्द्यं भार्गीद्रावैदि-  
नार्द्धकम् ॥ १२२ ॥ सूततुल्यं मृतश्वाभ्रं  
रसः कनकसुन्दरः । अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति  
पित्तातीसारमुग्रकम् ॥ १२३ ॥

पारा, गन्धक, कालीमिर्च, सुहागा, घतूरे  
के बीज, हर एक वस्तु बराबर मात्रा में लेकर  
भारंगी स्वरस दो पहर तक घोटें । परचात् पारे  
में समान अन्नकभस्म मिलाकर इस रस को २  
रत्ती की मात्रा में पित्तातिसार में प्रयुक्त करना  
चाहिये ॥ १२२-१२३ ॥

कणाद्य लौह ।

कणानागरपाटाभिस्त्रिवर्गत्रितयेन च ।  
विल्यचन्दनह्रीवेरैः सर्वानीसरजिद्धवेत् ॥  
१२४ ॥ सर्गोपद्रवसंयुक्तामपि हन्ति  
प्रवाहिकाम् । नानेन सदृशं लौहं विद्यते  
ग्रहणीहरम् ॥ १३५ ॥

पीपल, सोंठ, पाटा, त्रिकटु, त्रिकला, त्रिमद

अर्षात् मोधा, चित्रक, वायविद्ध एवं बेल,  
लासपन्दन, गन्धक ला पृथक् पृथक् एक भाग ।  
सबके बराबर लौहभस्म मिलाकर अतीसार में  
२ रत्ती या ३ रत्ती की मात्रा में प्रयोग करना  
चाहिये । यह रस प्रवाहिका में बहुत ही अमकार-  
पूर्ण गुणकारी है ॥ १२४-१२५ ॥

शुद्धगगनसुन्दर ।

पारदं गन्धकश्चाभ्रं लौहञ्चापि वराट-  
कम् । सौष्यं चातिविषं कर्पं समभागं  
प्रकल्पयेत् ॥ १२६ ॥ धान्यशुण्ठीकृत-  
कार्यैर्भावयेच्च पृथक् पृथक् । गुञ्जामाण  
वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ १२७ ॥  
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।  
दुग्धविल्वं गुडेनैव कुर्यात्तदनुपानकम् ॥  
१२८ ॥ अजादुग्धेन वा पेयं जन्तुत्वकं-  
साधितंरसम् । अतीसारं ज्वरे घोरे ग्रहण्या-  
मरुचो तथा ॥ १३६ ॥ शामे सशूले रक्ते  
च पिच्छास्त्रावे भ्रमे तथा । शोथे रक्ताती-  
सारं संग्रहग्रहणीषु च ॥ १३० ॥

पारा, गन्धक, अन्नकभस्म, लौहभस्म,  
वराटभस्म ( काङ्गीभस्म ), चाँदीभस्म, अतीस  
प्रत्येक एक-एक तोला ले । इन्हें इकट्ठाकर धनियाँ  
और सोंठ के द्वाय से शलग-अलग भावना  
देकर एक एक रत्ती की गोळियाँ बनावे । भुने  
बेलफल के गुदे तथा गुड़ के अनुपात से अथवा  
बकरी के दूध में जामुन की छाल को सिद्ध  
करके उस दूध के साथ अतीसार में प्रयोग  
करना चाहिये । यह रस अतीसार, ज्वर, ग्रहणी,  
अरुचि, आम, रक्त तथा सूजनसहित प्रवाहिका,  
भ्रम, सूजन, रक्तातीसार, संग्रहणी आदि में  
आराम पहुँचानेवाला है ॥ मात्रा १२  
रत्ती ॥ १२६-१३० ॥

लोकनाथ रस ।

भस्मसूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्ध-  
कात् । क्षिप्त्वा वराटिकागर्भे टङ्गणेन

निरुध्य च ॥ १३१ ॥ भारुडे रुद्ध्वा पुटे  
पाच्य स्वाङ्गशीत समुद्धरेत् । लोकनाथ-  
रसो नाम क्षौद्रैर्गुञ्जाद्वयं मितम् ॥ १३२ ॥  
नागरातिविषां मुस्तं देवदारु वचान्वितम् ।  
कपायमनुपानन्तु सर्वातीसारनाशनः १३३

रससिन्दूर १ भाग, गन्धक ४ भाग इन्हें  
कौड़ी में डालकर उसके मुँह को सुहागे से बन्द  
कर दें परचात् इस कौड़ी को दो छोटे-छोटे  
मिट्टी के बर्तन में बन्दकर कपोतपुट दें, जब  
स्वांग शीतल हो जाय तब उसे पीस ले । मात्रा  
२ रत्ती । अनुपान-सोंठ, अतीस, मोथा, देवदारु,  
वच मिलाकर २ तोला, पाक के लिये जल ३२  
तोले, शेष ८ तोले । यह रस सम्पूर्ण अतिसार  
को नष्ट करता है ॥ १३१-१३३ ॥

चिन्तामणि रस ।

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं गन्धकं प्रतिकार्पि-  
कम् । चूर्णयेद्विषकपर्पार्द्धं विषार्द्धं तिन्तिडी-  
फलम् ॥ १३४ ॥ मर्दयेत् खल्लमध्ये तु  
चाम्लेन गोलकीकृतम् । गर्त्तं पडङ्गुलं  
कुर्यात् सर्वतो वर्तुलं शुभम् ॥ १३५ ॥  
नागवल्क्याः क्षिपेत्पत्रमादौ पत्रे च गोल-  
कम् । आन्त्राद्य तत्रपत्रेण रुद्ध्वा गजपुटे  
पचेत् ॥ १३६ ॥ स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य  
सपत्रञ्च विशेषत । कर्पार्द्धं मरिचं दन्वा  
कर्पार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ १३७ ॥ गुञ्जा-  
मितं वटी कुर्याच्चिन्तामणिरसो महान् ।  
अतिसारे त्रिदोषोत्थे संग्रहग्रहणीगदे । अनु-  
पानं विधातव्यं यथादोषानुसारतः ॥ १३८ ॥

पारा १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, गन्धक १  
तोला, यक्षनाग घाधा तोला, तिन्तिडीक ३ भाग  
ले । इनको किसी खटाई से घोटकर पिचकाकर  
बनावे और पान के पत्ते से लपेटकर ६ बंगुल  
गहरे गहड़े में रखकर ऊपर पान के पत्ते रख  
गजपुट दें, परचान् स्वाङ्गशीतल हो जाने पर

पचासहित पीस ले । इसमें ३ तोला कालीभिर्च,  
३ तोला विषांजिल मिलाकर एक-एक रत्ती की  
गोलियाँ बनावे । इसके सेवन से अतीनार, सप्रहणी  
आदि रोग नष्ट होते हैं । दोषों के अनुसार  
अनुपान के साथ देना चाहिये ॥ १३४-१३८ ॥

सिद्धगान्धार रस ।

मुस्तं मोचरसं लोधं कुटजस्य फलानि  
च । विल्वस्थि धातकीपुष्पमहिफेनञ्च  
गन्धकम् ॥ १३९ ॥ शुद्धं हि पारदञ्चैव  
सर्वमेकत्र चूर्णयेत् । रसोऽयं सिद्धगान्धारो  
वल्लमात्रं प्रयोजितः ॥ १४० ॥ सितोदकानु-  
पानेन तक्रेण दध्नाथवा । सर्वातिसारं  
ग्रहणीं प्रशमं नयति क्षणात् । सरिद्वेग-  
प्रवाहघ्नः पथ्यं तक्रोदनं तथा ॥ १४१ ॥

मोथा, मोचरस, लोध, इन्द्रजौ, बेलगिरी,  
धाय के फूल, अफीम, गन्धक, शुद्ध पारा, इन्हें  
विधिपूर्वक मिलाकर जल से घोटकर दो रत्ती  
की गोली बनावे । अनुपान-शरयत, छाछ, अथवा  
दही । इसके सेवन से सम्पूर्ण अतिसार तथा  
प्रहणी शीघ्र ही नष्ट होती है । यह अत्यन्त बहते  
हुए अतिसार को नष्ट करता है । पथ्य—  
छाछ तथा भात ॥ १३९-१४१ ॥

सिद्धयोग ।

भृष्टं पूगीफलं विल्वमज्जा सर्जरस-  
स्तथा । खाखसस्य फलं मोचरसो लोधं  
तथैव च ॥ १४२ ॥ शतपुष्पा रसालास्थि  
धातक्याः कुसुमानि च । सर्वं सञ्चूर्ण्य  
यत्नेन पृथङ्माषत्रयोन्मितम् ॥ १४२ ॥  
माषत्रयमितं दद्यात् तक्रेणाय जलेन वा ।  
प्रवाहिकातिसारेषु रक्तसन्निश्रितेषु च ।  
पथ्यैस्तक्रोदनैर्युक्तेषु श्रेष्ठफलप्रदः १४४ ॥

मुनी हुई सुपारी ( अथवा सुपारी को घाटे  
से लपेटकर बाँगरों में रख दे, जब किंचित् मुन  
जाय तब निकाल ले ), बेलगिरी, सफेद शाल,



पोस्त के टोड़े, मोघरस, लोघ, सौंफ, आम की गुठली, धाय के फूल, हर एक के चूर्ण को ३ माशे लेकर मिला ले। माप्रा—३ माशे से ६ माशे तक। अनुपान—धाद्य अथवा शीतल जल। यह योग रजातिसार या रज्जमिश्रित प्रवाहिका में अत्यन्त लाभदायक है। पत्र—धाद्य और भात ॥ १४२-१४४ ॥

अमृतार्णवरस ।

हिङ्गुलोत्थो रसो लौहं गन्धकं टङ्गनं शटी । धान्यकं नालकं मुस्तं पाठा जीरं तुणप्रिया ॥ १४५ ॥ प्रत्येकं तोलकं चूर्णं व्यागीक्षीरेण पेपितम् । चतुर्गुञ्जामितः कार्यों रसोऽयममृतार्णवः ॥ १४६ ॥ मात्रया भक्तयेत् प्रातर्गहनानन्दभाषितम् । धान्यजीरकचूर्णेन विजयाशालबीजतः १ ॥ १४७ ॥ मधुना व्यागदुग्धेन मण्डेनशीतवारिणा । कटलीमोचकरमैः कण्टकारीद्रणेण वा ॥ १४८ ॥ अतीसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा । टोपत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमन्वितम् ॥ १४९ ॥ शूलन्नो वह्निजननो ग्रहण्यशीपिकारनुत् । अम्लपित्तप्रशमनः कासन्नो गुल्मनाशनः ॥ ५० ॥

हिङ्गुलोथपारद, लोहभस्म, गंधक, सोहागा फूला हुआ, बच्च, धनियाँ, सुगन्धबाला, नागर-मोथा, पाड़ी, जीरा और अतीस, प्रत्येक का एक एक तोला चूर्ण लेकर बकरी के दूध में पीसकर, चार चार रसी की गोलियाँ बनावे। इसको 'अमृतार्णव रस' कहते हैं। धनियाँ, जीरा, भाँग और शालबीज के चूर्ण, मधु, बकरी का दूध, सौंफ, शीतल जल, केला के पुष्प का रस, और मोचक(सहजन) का रस इनमें से किसी एक के साथ अथवा भटकटैया के क्वाथ के साथ सेवन करे, तो गहनानन्दजी की कड़ी हुई यह 'अमृतार्णववटी' वातिक, पित्तक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक तथा

१—'सूयेन' इति ग्रन्थाभेदे पाठः ।

२—'विजयाशालबीजतः' इति पाठान्तरम् ।

उपद्रवयुक्त सब प्रकार के अतीसार को तथा शूल-रोग को नष्ट और अग्नि को तीव्र करती है। तथा ग्रहणी, पचामीर, अम्लपित्त, कास और गुल्म इन रोगों को नष्ट करती है ॥ १४२-१२० ॥

जाताफलगम् ।

पारदाभ्रकसिन्दू गन्धं जातीफलं समम् । कुटजस्य फलञ्चैव भूर्त्तमीजानि टङ्गणम् ॥ १५१ ॥ व्योष मुस्ताभया चैव चूतमीज तथैव च । मिल्कं सज्जमीजञ्च टाडिमीवल्कजीरकम् ॥ १५२ ॥ एतानि समभागानि निःक्षिपेत् खल्लमध्यतः । विजयास्वरसेनैव मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १५३ ॥ गुञ्जाफलप्रमाणान्तु वटिकां कारयेद्विपकम् । एकां कुटजमूलत्वक् कपायेण प्रयोजयेत् ॥ १५४ ॥ आम्रातिसारं हरति कुरुते वह्निदीपनम् । मधुना चित्त्वशुण्डेन रज्जग्रहणिकां जयेत् ॥ १५५ ॥ शुण्ठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ । जातीफलरसोद्येप ग्रहणीगदहारकः ॥ १५६ ॥

पारा, अभ्रक भस्म, रससिन्दूर, गंधक, जाय फल, इन्द्रजव, धतूरे के बीज, सोहागा फूला हुआ, सौंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, हरक, आम के बीज की गिरी, बेल की गिरी, शालबीज अनार के फल का छिलका और जीरा, इन सबको समभाग लेकर भाग की पत्तियों के रस में खरल करके, एक एक रसी की गोलियाँ बनावे, कुड़े के मूल की छाल के क्वाथ के साथ सेवन करने से आम्रातिसार को नष्ट और अग्नि को दीप्त करता है। मधु और बेलगिरी के साथ सेवन करने से रज्जग्रहणी को तथा धनिया और सौंठ के क्वाथ के साथ सेवन करने से अतीसार को नष्ट करता है। यह जातीफलगम् ग्रहणी रोग का नाशक है ॥ १२१-१२६ ॥

१—'वाहिमीफलवल्कल' इति पाठान्तरम् ।

अभयनृसिंह रस ।

दरदञ्चरिपञ्चोपं जीरकं टङ्गनं समम् ।  
गन्धकञ्चाभ्रकञ्चैव भागैकं शुद्धसूतकम् ॥  
१५७ ॥ आफकसर्पतुल्यं स्यान्मर्दयेन्नि-  
म्बुकद्रवैः । एकैकं भक्षयेच्चानु जीरकं मधुना  
सह ॥ १५८ ॥ त्रिदोषोत्थमतीसारं सञ्चरं  
वाथ विञ्चरम् । सर्वरूपमतीसारं संग्रह-  
ग्रहणीं जयेत् । रसोऽभयनृसिंहोऽयमती-  
सारं सुपूजितः ॥ १५९ ॥

हिगुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागा फूला  
हुआ, गंधक, अभ्रक-भस्म और शुद्ध पारा, इनको  
सम भाग ले, और सब औषधों के बराबर अफीम  
मिलाकर नीचू के रस में खरल करके एक-एक  
रत्ती की गोलियाँ बनावे। जीरे के चूर्ण और मधु  
के साथ सेवन करने से ज्वर-सहित अथवा ज्वर-  
रहित त्रिदोष-जन्य अतीसार को तथा अन्यान्य  
सब प्रकार के अतीसार और संग्रहणी-रोग नष्ट  
हो जाते हैं। यह 'अभयनृसिंह-रस' अतीसार-रोग  
के लिये श्रेष्ठ औषधि कही गई है ॥ १५७-१५९ ॥

आनन्दभैरव रस ।

दरदं मरिचं टङ्गमपृतं मागधीसमम् ।  
श्लक्ष्णपिष्टन्तु गुञ्जैकं रसमानन्दभैरवम् ॥  
१६० ॥ लेहयेत् मधुना चानु कुटजस्य  
फलत्वचोः । चूर्णितं मापमात्रन्तु त्रिदोषो-  
त्थात्तिसारजित् ॥ १६१ ॥ दध्यन्नं दाप-  
येत् पथ्यं दध्याजंतकमेव वा । पिपासायां  
जलं देयं विजया च हिता निशि ॥ १६२ ॥

हिगुल, कालीमिर्च, सोहागा फूला हुआ, विष  
और पीपल सम भाग इन सब औषधों को  
एकत्रित करके महीन चूर्ण बनाकर रख लेवे।  
इसको आनन्दभैरव-रस कहते हैं। मात्रा—१  
रत्ती। मधु के साथ घाट लेने के बाद कुड़े की  
दाल और इन्द्रजव का चूर्ण एक माशा सेवन  
करे तो त्रिदोष-जन्य अतीसार नष्ट हो जाता है।  
पथ्य—बहरी के दही अथवा तक्र के साथ भात

देवे। प्यास लगने पर जल देना चाहिये तथा  
रात में भोग का सेवन कराना चाहिये ॥ १६०-  
१६२ ॥

तन्त्रान्तरोरु आनन्दभैरव रस ।

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं टङ्गनं गन्धकं  
समम् । जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेद् याममात्र-  
कम् ॥ १६३ ॥ कासश्वासात्तिसारेषु ग्रहण्यां  
च हलीमके । अपस्मारोऽनिले मेहेऽप्यजीर्णै  
वह्निमान्द्यके ॥ गुञ्जामात्रः प्रदातव्यो रस  
आनन्दभैरवः ॥ १६४ ॥

यथाव्याध्यनुपानं देयम् ।

हिगुल, विष, त्रिकटु, सुहागा और गन्धक  
को समभाग लेकर निम्बू के रस में एक प्रहर तक  
खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे।  
इन तन्त्रान्तरोरु आनन्दभैरव रस की गोलियों  
को कास, श्वास, अतीसार, ग्रहणी, हलीमक,  
अपस्मार, वात-व्याधि, प्रमेह, अजीर्ण और  
अग्निमान्द्य में देना चाहिये। व्याधि के अनुकूल  
अनुपान की व्यवस्था करनी चाहिये ॥ १६३-१६४ ॥

कपूररस ।

हिङ्गुलमहिफेनञ्च मुस्तकेन्द्रयवं तथा ।  
जातीफलञ्च कपूरं सर्वं संमर्द्य यन्नतः ॥  
१६५ ॥ जलेन वटिका कार्या हिगुञ्जा-  
परिमाखतः । ज्वरातीसारिणे चैव तथाती-  
साररोगिणे ॥ ग्रहणीपट्टप्रकारे च रक्ता-  
तीसार उखये ॥ १६६ ॥

अत्र केचित् टङ्गनमप्येकभागमिच्छन्ति ॥

हिगुल, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजव, जाय-  
फल और कपूर को जल के साथ खरल करके  
दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसमें कोई-  
वैद्य एक भाग सोहागा फूला हुआ भी डालते  
हैं। ज्वरातीसार, अतीसार, दुः प्रकार के ग्रहणी-  
रोग और तीव्र रक्तातीसार में कपूररस देना  
चाहिये मात्रा २-३ रत्ती ॥ १६५-१६६ ॥

कुटजाग्निष्ट ।

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्द्धतुलां  
तथा । मधूकपुष्पकाश्मर्योर्भांगान् दश-  
पलोन्मितान् ॥ १६६ ॥ चतुद्रोणोऽम्भसः  
पक्त्वा द्रोणञ्चैवावशेषितम् । धातक्या  
विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥ १६७ ॥  
मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसंज्ञितः ।  
ज्वरान् प्रशमयेत् सर्वान् कुर्यात् तीक्ष्णं  
धनञ्जयम् । दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति रक्ता-  
तीसारमुत्पणम् ॥ १६८ ॥

कुड़े की जड़ ५ सेर, दाल २॥ सेर, महुए के  
फूल और खमसारी की जड़ आधा सेर लेवे । इन  
सब औषधों को कूट करके १ मन ११ सेर १६  
तोला जल में छोटाने । १२ सेर ४८ तोला जल  
शेष रहने पर कपड़े से छान लेवे । उस जल में  
धाय के फूलों का १ सेर चूर्ण देवे । तथा ५ सेर  
गुड़ डाल करके सबको मिलाकर, चिकने पात्र में  
रख करके उसका मुख बंद कर देवे और एक महीने  
तक रक्खा रहने दे । इस प्रकार यह 'कुटजारिष्ट'  
तैयार हो जायगा । यह अरिष्ट सब प्रकार के  
ज्वर, ग्रहणी रोग और रक्तातीसार को दूर करके  
अग्नि को दीप्त करता है । मात्रा—१½ तोला से  
२॥ तोला तक ॥ १६६-१६८ ॥

अद्विफेनासव ।

तुलां मधूकमधस्य शुभे भाण्डे परि-  
क्षिपेत् । फण्डिफेनस्य कुडवं मुस्तकं पल-  
संमितम् ॥ १६९ ॥ जातीफलञ्चेन्द्रयवं  
तथैलां तत्र टापयेत् । रुध्ना भाण्डं मास-  
मात्रं यवतः परिरक्षयेत् ॥ इन्त्यतीसार-  
मत्युग्रं विसूचीमपि दाहयाम् ॥ १७० ॥

महुए के फूलों की मदिरा ५ सेर, अफीम १६  
तोला, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजब और इला-  
यची के बीज चार-चार तोले लेवे । इन सब  
औषधों को एक चिकने पात्र में उसका मुख बंद  
करके एक महीने तक रक्खा रहने दे । गदनतर

द्रवांश को छानकर रख लेवे । इसको 'अद्विफे-  
नासव' कहते हैं । मात्रा—१० रूँद । इसके  
सेवन करने से प्रबल अतीसार और दारण  
विसूचिका-रोग, दोनों नष्ट होते हैं ॥ १६६-१७० ॥

वन्वूल्याद्यरिष्ट ।

तुलाद्वयं तु वन्वूल्याश्चतुर्द्रोणे जले  
पचेत् । द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य  
त्रितुलाः क्षिपेत् ॥ १७१ ॥ धातकीं  
पोडशपलां कृष्णाञ्च द्विपलांशिकाम् ।  
जातीफलानि ककौलं त्र्यगोलापत्रकेशरम् ॥  
१७२ ॥ लवङ्गं मरिचञ्चैव पलिकान्यु-  
पकल्पयेत् । भासं भाण्डे स्थितस्त्वेव  
वन्वूलारिष्टको जयेत् ॥ क्षयं कुष्ठमयीं रं  
प्रमद्दशवासकासकान् ॥ १७३ ॥

यवज की १० सेर दाल को जौकूट करके १  
मन १२ सेर १६ तोला पानी में पकावे । १२ सेर  
६४ तोला जल शेष रहने पर छान लेवे । शीतल  
हो जाने पर उस बचाव में १८ सेर गुड़ मिलावे ।  
धाय के फूल ६४ तोला, पीपल ८ तोला,  
जायफल, बकौल, दालचीनी, इलायची के बीज  
तेजपात, नागकेशर, लौंग और कालीमिर्च,  
प्रत्येक चार चार तोले लेवे । सबका चूर्ण कर  
लेवे और उस काढ़े में डाल करके, उसको घी के  
चिकने पात्र में भरकर, मुख बंद करके एक महीने  
तक रक्खा रहने देवे । उसके बाद छानकर रस  
को रख लेवे । इसको 'वन्वूलारिष्ट' कहते हैं ।  
इसको पीये, तो क्षय, कुष्ठ, अतीमार, प्रमेह, वास  
और श्वास दूर हो । मात्रा—१ तोला से २॥  
तोला तक ॥ १७१-१७३ ॥

ग्रहण्यां ये रसाः प्रोक्तास्तेऽतिसारे  
नियोजिताः । हन्युः सर्वमतीसारं शि-  
स्याम्ना विशेपतः ॥ १७४ ॥

ग्रहणी रोग में जो जो रस कहे गये हैं, वे  
अतीसार-रोग में प्रयुक्त होने पर सब प्रकार के  
अतीसार को नष्ट करते हैं ॥ १७४ ॥

अतिसार में त्याज्य ।

स्नानाभ्यङ्गावगाहारच गुरुस्निग्धा-  
त्तिभोजनम् । व्यायाममग्निसन्तापमती-  
सारी विवर्जयेत् ॥ १७५ ॥

स्नान, तैल-मर्दन, जल में नैरना और स्निग्ध  
पदार्थों का भोजन, अधिक भोजन, व्यायाम और  
आग का तापना, यह सब अतीसार-रोग में  
त्याज्य है ॥ १७५ ॥

अतिसार में पथ्य अपथ्य ।

ग्रहण्याधिकारे वर्णितौ पथ्यापथ्यौ  
अतिसारेऽपिसंग्राह्य ।

ग्रहणी अधिकार में वर्णन किया हुआ पथ्य  
और अपथ्य अतिसार में भी समझना चाहिये ।

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिवरिचतार्या भैषज्य  
रत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधार्या व्याख्यायामतीसार-  
धिकारः समाप्तः ॥

अथ ग्रहणधिकारः ।

ग्रहणीरोग की सामान्य चिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितं द्रोपमजीर्णवदुपाचरेत् ।  
अतीसारोक्त्वविधिना तस्यामञ्च विपाच-  
येत् ॥ १ ॥

ग्रहणी (अग्न्यधिष्ठान) में कुपित हुए द्रोप की  
अजीर्ण के समान चिकित्सा करे । अतिसारोक्त  
नियमानुसार लघन और पाचन आदि के ग्रहणी  
में स्थित आमद्रोप का पाचन करना चाहिये ॥१॥

शरीरानुगते सामे रसे लंघनपाचने ।  
विशुद्धामाशयायास्मै पञ्चकोलादिभिर्यु-  
तम् । दद्यात् पेयादिलघ्वन्नं पुनर्योगांश्च  
दीपनान् ॥ २ ॥

शरीर में यदि आमरस सञ्चित हो तो लंघन  
और पाचन की व्यवस्था करनी चाहिये और  
इनके द्वारा आमरस के शुद्ध होने पर ग्रहणी के

रोगी को पञ्चकोलादियुक्त पेया, लघुपाक अन्न  
और दीपन औषध देनी चाहिये ॥ २ ॥

कपित्थविल्वचांगेरीतक्रदाहिसमाधिता ।  
पाचिनी ग्राहिणी पेया सवातं पाञ्च-  
मूलिकी ॥ ३ ॥

कैथ, वेल, चांगेरी, अनारशाना सब मिलाकर  
८ तोला और मटा इनसे सिद्ध को हुई पेया  
यातकफप्रधान ग्रहणी में सेवन करने योग्य है;  
यह पाचक और ग्राही है ॥ ३ ॥

तक्रपान विधि ।

ग्रहणीद्रोपिणां तक्रं दीपनं ग्राहि  
लाभवात् । पथ्यं मधुरपाकित्वान्नचपित्त-  
प्रकोपणम् ॥ ४ ॥ कपायेण विकाशित्वाद्  
रौद्र्याच्चैव रुफे हितम् । वात स्नाद्गम्ल-  
सान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहि तत् ॥ ५ ॥

जिनकी ग्रहणी दूषित है उनके लिये तो लघु  
होने से दीपन, ग्राही ( धारक ) और पथ्य है ।  
पाक में मधुर होने से पित्त को कुपित नहीं  
कमती । कपाय, उष्ण, विकाशि (द्रोपावृत  
क्षोर्तों को शुद्ध करनेवाला) और रूच होने से कफ  
में लाभदायक है । स्वादु, अम्ल और घन होने  
से वातनाशक है । ताजा तक्र विदाही नहीं होता ।  
तात्पर्य यह कि ताजा तक्र वातिक वैतिक और  
रलैप्सिक ग्रहणीरोग में लाभदायक है । बासी  
तक्र विदाही और पित्तवर्धक होता है ॥ ४-५ ॥

चित्रकगुटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ चारौ  
लवणानि च । व्योषं हिंश्वजमोदाञ्च  
चन्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ६ ॥ गुटिका  
मातुलुङ्गस्य दाहिस्य रसेन वा । कृता  
विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥  
७ ॥ सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौञ्जिदमेव  
च । सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योज-  
येत् ॥ ८ ॥

चीता, पिपरा मूल, जवाखार, सजीखार, पाँचों नमक, सोंठ, मिरिच, पीपरि, हॉंग, अजमोद और चव्य; इन द्रव्यों का चूर्ण बनाकर भिजौरा नींबू के रस में अथवा अनारदाने के रस में घोटकर आधा-आधा माशा की गोलियों बना लेये । यह चित्रकगुटिका आमदोष को पचाती और अग्नि का तत्काल दीप्त करती है । काला नमक, लाहौरी नमक, बिरिया संचर नमक, खारी नमक और समुद्र लवण ; इन पाँच प्रकार के नमकों को इस योग में मिलाना चाहिये ॥६-८ ॥

यमानिकादि क्वाथ ।

यमानीनागरोशीरधनकार्तिविपायनैः ।  
बलाविल्वद्विपर्णीभिर्दाीपनं पाचनं स्मृतम् ६

अजवाहन, सोंठ, खस, धनियॉ, अतीस, मोथा, खरेटी, बेल, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, मिलाकर २ तोले, पाक के लिए जल ३२ तोले बाकी ८ तोले, यह काथ दीपन तथा पाचन है ॥६॥

धान्यकादि क्वाथ ।

धान्यकातिविपोदीच्ययमानीमुस्तना-  
गरम् । बला द्विपर्णी विल्वश्च दद्यादीपन-  
पाचनम् ॥ १० ॥

धनियॉ, अतीस, गन्धबाला, अजवाहन, मोथा, सोंठ, खरेटी, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी मिलाकर २ तोले, इनका विधिवत् काथ करके अग्नि-दीपन तथा पाचन के लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

पुनर्नवादि क्वाथ ।

पुनर्नशमरिचशरपुंखविश्वाग्निपथ्या-  
चिरिविल्वत्रिल्वैः । कृतः कपाय शमयेद-  
शोपानं दुर्नामगुल्मग्रहणीविकारान् ॥११॥

साँठी, कालीमर्ष, सरफोंका, सोंठ, चित्रक, हरद, कंजा की छाल, बेल मिलाकर २ तोले, इनका काथ अर्श, गुल्म तथा संग्रहणी में हित-कर है ॥ ११ ॥

शालिपर्ण्यादि क्वाथ ।

शालिपर्णीबलाविल्वधान्यशुएटीकृतः  
भृतः । आध्मानशूल संयुक्तां वातजां  
ग्रहणीं जयेत् ॥ १२ ॥

शालिपर्णी, खरेटी; बेल, धनियॉ, सोंठ इनका काथ आध्मान तथा शूलसयुक्त वातज ग्रहणी में लाभदायक है ॥ १२ ॥

शुएट्यादि क्वाथ ।

शुएटीं समुस्तातिविपां गुडूर्चीं पिवे-  
ज्जलेन क्वथितां समांशाम् । मन्दानलत्वे  
सततामतोयामामानुबन्धे ग्रहणीगदे च १३

सोंठ, मोथा, अतीस, गिलोय इनका काथ पान करने से मन्दाग्नि और आमसंयुक्त ग्रहणी अच्छी हो जाती है ॥ १३ ॥

नागरादि क्वाथ ।

नागरातिविपासुस्ताकाथः स्यादाम-  
पाचनः । चूर्णं हिङ्गवष्टकं वापि वाति-  
केऽष्टपलं घृतम् ॥ १४ ॥

सोंठ, अतीस, मोथा ; इनका काथ सेवन करने से आम का पाचन करता है । हिङ्गवष्टक चूर्ण और अष्टपल घृत भी वातिक ग्रहणी में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १४ ॥

तिक्रादि क्वाथ ।

तिक्रामहौपथ रसाञ्जनधातकीभिः  
पथ्येन्द्रवीजयनकौटजभङ्गुराभिः ।  
काथो हरेद्रहुविधं ग्रहणीविकारं पित्तोद्भवं  
सगुदशूलमतिप्रष्टम् ॥ १५ ॥

कटुकी, सोंठ, रसात, घाघ क फूल, बड़ी हरद, इन्द्रजी, मोथा, कुवा की छाल मिलाकर २ तोले, इनका काथ गुदशूलसहित अनेक प्रकार की वैतिक संग्रहणी को नष्ट करता है ॥ १५ ॥

चानुमंद क्वाथ ।

गुडूर्च्यतिविपासुएटीमुस्तैः काथः

कृतो जयेत् । आमामुपकां ग्रहणीं ग्राही  
दीपनपाचनः ॥ १६ ॥

। लोय, अतीस, सेंठ, मोथा ; इन चारों का  
काथ आमसहित ग्रहणी को नष्ट करता है । यह  
प्रयोग ग्राही, दीपन तथा पाचन है ॥ १५ ॥

रसाक्षनादि चूर्ण ।

रसाक्षनं चातिविषा वत्सकस्य फलत्वचौ ।  
नागरं धातकी चैतत्सन्नोद्गं तण्डुला-  
म्बुना ॥ पित्तग्रहणीदोषार्शोरकृपित्ताति-  
सारनुत् ॥ १७ ॥

रसांत, अतीस, कुड़े की छाल, इन्द्रजी, सेंठ,  
धात के फूल ; इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में  
मिलाकर शहद तथा तण्डुलोदक से सेवन करना  
चाहिये । मात्रा—१॥ माशा । इस चूर्ण के सेवन  
से वैतिक प्रस्था, अर्श, रक्तपित्त, अतिसार आदि  
रोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

शुंठ्यादि चूर्ण ।

शटी व्योषाभया क्षारौ ग्रन्थिकं वीज-  
पूरकम् । लवणाम्बुना पेयं श्लैष्मिके  
ग्रहणीगदे ॥ १८ ॥

कचूर, सेंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरद, जवा-  
खार, सजीखार, पीपल-मूला, बिजौरा ; इनके  
चूर्ण को नमक तथा खटाई के साथ सेवन करने  
से श्लैष्मिक ग्रहणीरोग नष्ट होता है । मात्रा—  
२ माशे ॥ १८ ॥

कर्पूरादि चूर्ण ।

कर्पूरस्युपखं रास्ना लवणानि हरी-  
तकी । सर्जिहारं यवहारं मातुलुङ्गं समं  
समम् ॥ १९ ॥ चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं  
वलवर्णाग्निवर्द्धनम् । श्लैष्मिकं ग्रहणी-  
दोषं सवातञ्च विनाशयेत् ॥ २० ॥

कपूर, सेंठ, कालीमिर्च, पीपल, रास्ना, पाँचों  
नमक, हरद, लज्जित्कार, जवाखार, बिजौरा इनके

चूर्ण को अलग-अलग बराबर-बराबरे मिलाकर  
गरम जल से सेवन करना चाहिये । यह रस पल  
वर्ण तथा पाचक अग्नि को बढ़ाता और वातश्लै-  
ष्मिक ग्रहणी को शान्त करता है । मात्रा—१  
माशा ॥ १९-२० ॥

मलकाठिन्यविष्टम्भयोः उपचारः—

कृच्छ्रेण कठिनत्वेन यः पुरीषं विमुञ्चति ।  
सघृतं लवणं तस्य पाययेत् क्लेशशान्तये ॥  
विडं यमानीं विष्टम्भे पियेदुष्ण्येन वा-  
रिणा ॥ २१ ॥

यदि मल कठिन होने के कारण दुःख से  
बाहर निकलता हो तो सेंधा नमक के साथ गाय  
का घृत पिलाना चाहिये । यदि कब्ज हो तो विड  
नमक तथा अजवाइन को गरम पानी से सेवन  
कराना चाहिये ॥ २१ ॥

मुपल्यादि योग ।

मुपलीं पेपयेत्तक्रैथवा तण्डुलोदकैः ।  
मापैकं योजयेच्चानु पथ्यं तक्रौदनं हितम् २२

मुपली २ तोले को दूध से अथवा तण्डुलोदक  
से पीसकर ग्रहणीरोग में सेवन कराना चाहिये ।  
छाछ और भात का पथ्य देना चाहिये ॥ २२ ॥

पञ्चपल्लव ।

जम्बूदाडिमम्बूदाटपाठाकञ्चटपल्लवैः ।  
पक्वं पर्युपितं वालविल्वं सगुडनागरम् ॥  
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीमतिदुस्त-  
राम् ॥ २३ ॥

जामुन, अनार, सिंघादा, पाठा, कञ्चट,  
(जल चौलाई) इनके पत्तों में एक कच्चे बेल-  
फल को लपेटकर उपर्युक्त जल से सिद्ध कर एक  
रात भर पड़ा रहने दे । अगले दिन बेलफल के  
साथ थोड़ा सा गुण्ठीचूर्ण और गुड़ मिलाकर  
सेवन करावे । इससे अति कष्टसाध्य ग्रहणी तथा  
संपूर्ण अतिसार नष्ट होते हैं । मात्रा—३ माशे ॥ २३ ॥

नागराद्य चूर्ण ।

नागरातिविषा मुस्तं धातकी च रसा-

ञ्जनम् । वत्सकत्रक फलं पाठा त्रिवं  
कडुकरोहिणी ॥ २४ ॥ पिवेत् समांशं  
तच्चूर्णं सत्तौद्रेण तण्डुलाम्बुना । पित्तिके  
ग्रहणीदोषं रक्तं यश्चोपवेशयते । नागरा-  
द्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रयेण पूजितम् ॥ २५ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धाय के फूल,  
रसौत, कुठे की छाल, इन्द्रजो, पाड़ी, बेलगिरी  
और कुटकी ; इन औषधों के चूर्ण को शहद और  
चावलों के धोवन में मिश्रित कर पीये । इस  
चूर्ण के सेवन करने से पित्तिक ग्रहणीरोग नष्ट  
होता है, और जिपके मल के साथ रक्त गिरता हो  
उसके लिए भी यह चूर्ण लाभदायक है । इस  
नागराय चूर्ण की प्रशंसा कृष्णात्रेयजी ने की है ।  
मात्रा—१—१ ॥ माशा ॥ २४-२५ ॥

तण्डुलोदकविधि ।

शीतकपायमानेन तण्डुलोदककल्पना ।  
केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुलभाव-  
नाम् ॥ २६ ॥

हिमकपाय के प्रमाणांनुसार षड्गुण ( छः  
गुने ) पानी में चावलों को रात में भिगो देने,  
प्रातःकाल छानकर जल का सेवन करे । कोई  
आचार्य कहते हैं, अष्टगुण ( आठगुने ) पानी  
में चावलों को भिगोना चाहिये । इसी जल को  
चावलों का धोवन भी कहते हैं ॥ २६ ॥

श्रीफलशलाटुकफलक ।

श्रीफलशालाटुकले नो नागरचूर्णेन  
मिश्रितः सगुडः । ग्रहणीगदमत्पुग्रंतक्रभुजा  
शीलितो जयति ॥ २७ ॥

बेलफल की गिरि के कदक को थोड़े से  
सोंठ के चूर्ण तथा गुड़ के साथ सेवन करने से  
ग्रहणीरोग जखदी नष्ट हो जाता है । मात्रा-  
३ माशे, पर्य में माठा देना चाहिये ॥ २८ ॥

पाठाद्य चूर्ण ।

पाठाचिल्वानलव्योपजम्बदाडिमधा-

तकी । कडुकातित्रिपामुस्तादावी भूमिम्ब-  
वत्सकैः ॥ २८ ॥ सर्वैरभिः समं चूर्णं  
कौटभं तण्डुलाम्बुना । सत्तौद्रेण पिवे-  
च्छर्दिज्वरातीसारशूलवान् । हृद्रोगग्रहणी-  
दोषारोचकानलसादजित् ॥ २९ ॥

पाड़, बेलगिरी, चीता, त्रिकटु, जामुन की  
छाल, अगार के बीज, धाय के फूल, कुटकी,  
अतीस, नागरमोथा, दारहददी, चिरायता और  
इन्द्रजी, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुड़  
की छाल ; इन औषधों को कूट-पीसकर चूर्ण  
बनाना चाहिये । अनुपान-चावलों का धोवन और  
शहद । इस चूर्ण का सेवन करने से धमन, उवर-  
तिसार, शूल, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, अरोचक और  
अग्निमान्द्यरोग नष्ट होते हैं । मात्रा १५-३  
माशा ॥ २८-२९ ॥

भूमिम्बादि चूर्ण ।

भूमिम्बकडुकाव्योपमुस्तकेन्द्रयवान्  
समान् । द्वौ चित्रकात् वत्सकत्वम्भागान्  
पोडश चूर्णयेत् ॥ ३० ॥ गुडशीताम्बुभिः  
पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् । कामलाज्वर-  
पाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥ गुडयोगा-  
द्गुडाम्बु स्याद्गुडवणोरसान्वितम् ॥ ३१ ॥

चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, मोथा, इन्द्रजी  
हरएक १ भाग, चित्रक २ भाग, कुड़ा की छाल  
१६ भाग, इन्हें मिलाकर गुड़ के टपड़े शरवत  
के साथ सेवन करना चाहिये । इसके सेवन से  
संग्रहणी, गुल्म, कामला, उवर पाण्डु, प्रमेह,  
अरचि, अतीमार आदि रोग नष्ट होते हैं । मात्रा  
१ ॥ माशे से ३ माशे तक ॥ ३०-३१ ॥

कपिरयाष्टक चूर्ण ।

यमानीपिप्प । मलचातुर्जातकना-  
गरेः । मरीचाग्निजलाजाजीधान्यसौरर्चलै  
समैः ॥ ३२ ॥ वृत्ताम्लघातकीकृष्णा-  
विल्वदाडिमतिन्दुकैः । त्रिगुणैः षड्गुण-

सितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ ३३ ॥  
 चूर्णोत्तिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ।  
 कासं श्वासारुचिं हिक्कां कपित्थाष्टमिदं  
 जयेत् ॥ ३४ ॥

अजयाइन, पीपलामूल, दालचीनी, छोटी  
 इलायची, तेजपात, नागाकेशर, सोंठ, कालीभिरच,  
 चित्रक, गन्धबाला, काला जीरा, धनियॉ, सोंचर नमक प्रत्येक १ भाग, अमलबेत, धाय के  
 फूल, पीपल, बेज, अनारदाना, तैन्दुक हरएक  
 ३ भाग, खाँड़ ६ भाग, कैथ ८ भाग इनके मिले  
 चूर्ण को अतिसार, ग्रहणी, क्षय, गुहम, गलरोग,  
 कास, श्वास, अरुचि, हिचकी आदि रोगों में  
 प्रयुक्त कराना चाहिये । मात्रा ३ मासे से ६ मासे  
 तक ॥ ३३-३४ ॥

दाडिमाष्टक चूर्ण ।

कर्पोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं द्विका-  
 पिकम् । यमानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योपं  
 पलांशकम् ॥ ३५ ॥ पलानि दाडिमादष्टौ  
 सितायाश्चैकतः कृतम् । गुणैः कपित्थाष्ट-  
 कवच्चूर्णमेतन्न संशयः ॥ ३६ ॥

वशजोचन १ तोला, दालचीनी, छोटी  
 इलायची, तेजपात, नागाकेशर हरएक २ तोले,  
 अजयाइन, धनियॉ, काल जीरा, पिप्पलीमूल,  
 भिरच काली, पीपल, सोंठ प्रत्येक ४ तोला,  
 अनारदाना २० तोले, खाँड़ ३० तोले यह चूर्ण  
 भी उष्युक्त रोगों में प्रयुक्त होता है । मात्रा-३  
 मासे से ६ मासे तक ॥ ३५-३६ ॥

तालीशादि वट्टी ।

तालीशपत्रचविकामरिचानां पलं  
 पलम् । कृष्णा तन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठी-  
 पलं त्रयम् ॥ ३७ ॥ चातुर्जातमुशीरञ्च  
 कर्पाशं सद्धमर्चणितम् । चूर्णस्य त्रिगुणेनैव  
 गुडेन वटिकां कुरु ॥ ३८ ॥ भक्षयेत्तां तु  
 कोलाद्वा वातश्लेमोत्थिते गदे । उत्कटां

ग्रहणीं छर्दिं कासं श्वासं ज्वरारुची । शोथ-  
 गुल्मोदरं पाण्डुं तालीशाद्येन नाश-  
 येत् ॥ ३९ ॥

तालीशपत्र, चम्प, कालीभिरच हरएक ४  
 तोले, पीपल, पीपलामूल, हरएक ८ तोले, सोंठ  
 १२ तोले, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात,  
 नागाकेशर, खस प्रत्येक १ तोला, सब मिलाकर  
 चूर्ण से त्रिगुना गुड मिलाकर गोली बनावे ।  
 मात्रा-आधा तोला, वात-श्लेष्मजन्य ग्रहणी,  
 उलटी, खाँसी, श्वास, ज्वर, अरुचि, सूजन,  
 गुहम, पेट के रोग, पाण्डु आदि रोगों में इसका  
 प्रयोग करना चाहिये ॥ ३७-३९ ॥

मुखड्यादि गुटिका ।

मुण्डी शतावरी मुस्ता वानरी दुग्धि-  
 कामृता । यष्टिकं सैन्धवं तुल्यं सूदमचूर्णं  
 प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥ चूर्णस्य द्विगुणा  
 योज्या विजया मृदुभर्जिता । घृतस्निग्धे  
 पचेद्भाण्डे दुग्धं दशगुणं गवाम् ॥ ४१ ॥  
 यावत्पिण्डत्वमापन्ना तावन्मृद्भग्निना  
 पचेत् । एतन्मधुयुतं हन्याद्ग्रहणीं वात-  
 पित्तजाम् ॥ ४२ ॥

गोरखमुखडी, शतावरी, मोवा, कौंच के बीज,  
 दूधी, गिलोय, मुलहठी, संधानमक, हरएक के  
 चूर्ण को बराबर-बराबर भाग में मिलाकर चूर्ण से  
 दुगुना घी में भुजा हुई भाँग वी पत्ती के चूर्ण को  
 मिलाकर दमगुने गी के दूध में घी से चिकने पात्र से  
 मन्दी आग से पकावे । जत्र पकते-पकते गोला सा  
 बन जावे तब उतार ले । इसे शहद के साथ वात-  
 पित्तप्रधान संग्रहणी में सेवन कराना चाहिये  
 मात्रा-१३ मासे से ३ मासे तक ॥ ४०-४२ ॥

वात्तार्काकु गुटिका ।

चतुःपलं स्नुहीकाण्डात् त्रिपलं  
 लवणत्रयात् । वात्तार्काकुडवश्चार्कादष्टौ  
 द्वे चित्रकोत् पले ॥ ४३ ॥ दग्धानि



वार्त्ताकुरसे गुटिका भोजनोत्तराः भुक्तं  
भुक्तं पचन्त्याशु कासश्वासाश्रसां हितः ।  
विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगघ्ननाश्च ता  
मताः ॥ ४४ ॥

धूर की छाल १६ तोला, संधानमक, काला  
ममक और बिडलवण प्रत्येक ४ तोला, बैंगन  
१६ तोले, मटर की छाल २० तोले, और  
चीतामूल २ पल; इन सब औषधों का एक हाँडी  
में भरकर, हाँडी का मुख मुद्रित करके गजपुट  
में जला लेवे। स्वाहरीत होने पर जन्ते हुये  
इन औषधों के भस्म को निकालकर बैंगन के  
रस में घोटकर गोलियाँ बना लेवे। भोजनान्त  
में इसका सेवन करे। यह गुटिका खाये हुए अन्न  
का शीघ्र परिपाक करती है। काम, रस और  
ध्वामीर के लिये लाभदायक है। विसूचिका,  
प्रतिश्याय और हृद्रोग को भी नष्ट करती है।  
मात्रा १ माशा ॥ ४२-४४ ॥

स्वल्पगङ्गाधर चूर्ण ।

मुस्तसैन्धवशुण्ठीभिर्घातकीलोध्रवत्सकैः।  
विल्वमोचरसाभ्याश्च पाठेन्द्रयमवालकैः ॥  
४५ ॥ आम्रनीजमतिविपा लज्जा चेति  
सुचूर्णितम् । सौद्रतएडुलतोयाभ्यां जयेत्  
पीत्वा मनाहिकाम् ॥ ४६ ॥ सर्गातिसार-  
शमनं सर्वशूलनिपटनम् । संग्रहग्रहणीं  
हन्ति सूचिकातङ्गमेव च । एतद्गङ्गाधरं  
चूर्णं सरिद्धेगावरोधनम् ॥ ४७ ॥

नागरमोथा, संधानोन, मोठ, धाय के फूल,  
लोध, कुड़े की छाल, बेलगिरी, मोचरम, पाड़ी,  
इन्द्रजी, सुगन्धवाला, आम की गुठली की गिरी,  
अतीस और छुई-मुई. इन औषधों को समभाग  
खेकर चूर्ण बनावे। शहद मिलाकर चाबलों के  
धोवन क साथ सेरन करना चाहिये। यह चूर्ण  
प्रवाहिका (पश्चिम), सब प्रकार के अतिमार, हर  
प्रकार के शूलरोग, सग्रहणी और सूतिकारोग,  
को नष्ट करता है। अधिक क्या यह गङ्गाधर चूर्ण

नदी के वेग को रोक सकता है। मात्रा १-२  
माशा ॥ ४२-४७ ॥

मध्यमगङ्गाधर चूर्ण

विल्वं शृङ्गाटकदलं टाडिम्बदलमेव  
च । ममुस्तातिविपा चैत्र मर्ज श्वेतश्च  
धातकी ॥ ४८ ॥ मरिचं पिप्पली शुण्ठी  
दावीभृनिम्बनिम्बकम् । जम्बूरसाञ्जनश्चैव  
कुटजम्य फलं तथा ॥ ४९ ॥ पाठा समङ्गा  
हीरेरं शाल्मलीवेष्टमेव च । शक्राशनं  
भृङ्गरानचूर्णं देयं समं ममम् ॥ ५० ॥  
कुटजस्य त्वचश्चूर्णं सर्वचूर्णसमं मतम् ।  
एतद्गङ्गाधरं नाम मध्य चूर्णं महागुणम् ५ ?  
नानावर्णमतीसारं चिरजं बहुरूपिणम् ।  
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति तृष्णां कासश्च दुर्ज-  
यम् ॥ ५२ ॥ ज्वरश्च विविधं हन्ति शोथ-  
श्चैव सुदारुणम् । अरुचिं पाण्डुरोगश्च  
हन्यादेव न संशयः । छागीदुग्धेन मण्डेन  
मधुना वाथ लेहयेत् ॥ ५३ ॥

बेलगिरी, सिंघाढा की पत्तियाँ, अनार की  
पत्तियाँ, नागरमोथा, अतीस, सकेद राल, धाय  
के फूल, कालीमिरिच, पीपरि, मोठ, दारहरदी,  
चिरायता, नीम की छाल, जामुन की छाल,  
रसीत, इन्द्रजी, पाड़ी, छुई-मुई, सुगन्धवाला,  
मोचरस, भाँग और भाँगरा, ममभाग इन सब  
औषधों को लेकर कूट-पीसकर चूर्ण बनावे।  
चूर्ण के बराबर कुड़ा की छाल या चूर्ण मिलाकर  
रख लेवे। बकरी के दूध के माथ, माँड़ क  
साथ अथवा मधु के साथ सेवन करे। यह मध्य-  
मगङ्गाधर चूर्ण अत्यन्त गुणप्रद है। अनेक  
वर्णवाले, बहुत पुराने अनेक प्रकार के अती-  
मार, दुःसाध्य ग्रहणीरोग, तृष्णा, कास, अनेक  
प्रकार के ज्वर, दारुण शोथ, अरुचि और  
पाण्डुरोग को निःसंदेह नष्ट करता है। मात्रा-  
१२ माशा ॥ ५८-६३ ॥

बृहद्गङ्गाधर चूर्ण ।

त्रिवलं मोचरसं पाठा धातकी धान्य-  
मेव च । हीवेरं नागरं मुस्तं तथैवातिविषा  
समम् ॥५४॥ अहिफेनं लोभ्रकञ्च दाडिमं  
कुटजं तथा । पारदं गन्धकञ्चैव समभाग  
विचूर्णयेत् ॥ ५५ ॥ तत्रेण स्वादयेत्  
प्रातश्चूर्णं गङ्गाधरं महत् । ज्वरमष्टमिधं  
हन्यादतीसारं सुदुस्तरम् । ग्रहणीं विविधा-  
ञ्चैव कोष्ठव्याधिहरं परम् ॥ ५६ ॥

बेलगिरी, मोचरस, पाड़ी, धाय के फूल,  
घनियॉ, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, अतीस,  
अफीम, लोभ्र, अनार के फल की छाल, कुडा  
की छाल, पारा और गन्धक, समान भाग  
( कज्जी करके ) इन औषधों को लेकर चूर्ण  
बनावे । इस चूर्ण को तक्र के माथ प्रातःकाल  
सेवन करना चाहिये । यह बृहद्गङ्गाधर चूर्ण  
आठ प्रकार के ज्वर, दुःसाध्य अतीसार, विविध  
प्रकार के ग्रन्थीरोग और कोष्ठव्याधि को नष्ट  
करता है । मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती ॥५४-५६॥

स्वल्पलवङ्गाद्य चूर्ण ।

लवङ्गातिमिषा मुस्तं त्रिवलं पाठा च  
शात्मली । जीरकं धातकीपुष्पं लोभेन्द्र-  
यवालकम् ॥ ५७ ॥ धान्यं सर्जरसं श्रुती  
पिप्पली विरभेपजम् । समङ्गा यावशूकञ्च  
सैन्धवं सरसाञ्जनम् ॥ ५८ ॥ एतानि  
समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।  
शमयेदग्निमांशञ्च संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥  
५९ ॥ नानावर्णमतीसारं सशोथां पाण्डु-  
कामजाम् । इदमष्टीलिकां हन्ति कासं  
शशांसं ज्वरं वमिम् ॥ ६० ॥ हृल्लासमम्ल-  
पित्तञ्च सशूलं सान्निपातिकम् । सर्जरोगं  
निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६१ ॥

लौग, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, पाड़ी,

सेमर की छाल, जीरा, धाय के फूल, लोभ,  
इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, घनियॉ, सफेद राल,  
काकडासिनी, पीपरि, सोंठ, छुई-मुई, यवचार,  
संधानमक और रसंत समभाग, इन सब औषधों  
को लेकर महीन चूर्ण बना लेंगे । यह चूर्ण  
अग्निमान्द्य, संग्रहग्रहणी, अनेक वर्ण का अती-  
सार, शोथ, पाण्डुरोग, कामला, अष्टीला, कास,  
स्वास, ज्वर, वमन हृल्लास ( उबकाई आना ),  
अम्लपित्त, शूल और सब प्रकार के सान्नि-  
पातिक रोगों को पेंसी शीघ्रता से नष्ट करता  
है जैसे सूर्य भगवान् अन्धकार को नष्ट करते  
हैं ॥ ५७-६१ ॥

बृहत्तिलवङ्गाद्य चूर्ण ।

लवङ्गातिमिषा मुस्तं पिप्पली मरि-  
चानि च । सैन्धवं ह्युषा धान्यं कटफलं  
पुष्करं तथा ॥ ६२ ॥ जातिकोपफलाजाजी  
सौमर्चलरसाञ्जनम् । धातकी मोचकं पाठा  
पत्रं तालीशकेशरम् ॥ ६३ ॥ चित्रकं च  
मिडञ्चैव तुम्युर्हस्तिमेव च । त्रगेला-  
पिप्पलीमूलमजमोदायमानिका ॥ ६४ ॥  
समङ्गा वत्सलं शुण्ठी दाडिमं यावशूक-  
जम् । त्रिम्बं सर्जरसं क्षारं सगुद्रं ब्रह्मं  
तथा ॥ ६५ ॥ हीवेरं कुटजञ्चैव जम्बाम्बं  
कटुरोहिणी । अभ्रकं पुटितं लौईं शुद्ध-  
गन्धकपारदम् ॥ ६६ ॥ एतानि समभागानि  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । मधुना वा  
लिङ्गेच्चूर्णं पिबेत्तद्युल्लारिणा ॥ ६७ ॥  
सर्वदोषहरञ्चैव ग्रहणीं हन्ति दुस्तराम् ।  
वातिकीं पैत्तिकीं चैव शूलैत्तिकीं सान्नि-  
पातिकीम् ॥ ६८ ॥ परापरकमतीसारं  
नानावर्णं सवेदनम् । कृष्णारुणञ्च पीतञ्च  
मांसधावनसान्निभम् ॥ ६९ ॥ ज्वरारोच-  
कमन्दार्गिणं कासं शशांसं वमिं तथा । अम्ल-  
पित्तं तथा हिक्का प्रमेहञ्च हलीमकम् ॥

७० ॥ पाण्डुरोगश्च विष्टम्भमर्शासि विवि-  
धानि च । श्लीहगुल्मोदरानाहशोथातीसार-  
पीनसान् ॥ ७१ ॥ आम्रातं तथाजीर्ण  
संग्रहग्रहणीं जयेत् । उदरं प्रदरश्चैव लघ-  
द्वाद्यमिदं शुभम् ॥ ७२ ॥

लींग, अतीन, नागरमोथा पीपरि, काली-  
मिरिच, सेंधा नमक, हाऊबेर, धनियाँ, कायफल,  
पुहकरमूत्र, जावित्री, जायफल, जीरा, काला  
नमक, रसौत, धाय के फूल, मोचरस पादी,  
तेजपात, तानीरपत्र, नागकंसर, चीता, विड-  
नोन, तुम्बक ( धनियाँ ) के बीज, बेलगिरी, दाल-  
चीनी, इलायची, पिरामूल, अजमोद, अज-  
वाहन, छुई-मुई, इन्द्रजौ, सोंठ अनार के फल  
की छाल, यरवार, नीम की अतरछाल, रवेत  
राल, यवदार, सामुद्रजरण ( मतान्तर में समुद्र-  
फेन ), सोहागा की छील, मुगन्धवाला, कुड़े की  
छाल, जामुन की छाल, आम की छाल, कुटकी,  
अभ्रकभस्म, लोहभस्म, गन्धक और पारा ; इन  
सब द्रव्यों को समभाग लेकर महीन चूर्ण बनावे ।  
अनुपान—मधु अथवा तण्डुल-जल ( चावलों का  
धोवन ) यह चूर्ण त्रिदोषनाशक है । वातिक,  
रत्नीभ्रमक और सात्रिपातिक दुःसाध्य ग्रहणीरोग  
को नष्ट करता है । काला, लाल, पीला अथवा  
मास के धोवन के समान जिसमें मल गिरता है,  
ऐसे पक अथवा अपक नाना वर्णवाले वेदनायुक्त  
अतीसार रोग को, एवं ज्वर, अरोचक, अग्नि-  
मान्द्य, कास, रवास, वमन, अम्लपित्त, हिषकी,  
प्रमेह, हलीमक, पाण्डुरोग, मलयद्वता, विविध  
प्रकार के बवासीर, प्लीहा, गुल्म, पेट फूलना,  
शोथ, पीनस, आमवात, पुरानी संग्रहणी, उदर  
और प्रदर रोगों को नष्ट करता है ॥ ६२-७३ ॥

तन्त्रान्तरोरुक् वृहल्लवङ्गाद्य चूर्ण ।

— लवङ्गं जीरकं कौन्ती सैन्धवं त्रिसुग  
न्धकम् । अजमोदा यमानी च मुस्तकं  
सकडुत्रयम् ॥ ७३ ॥ त्रिफला शतपुष्पा  
च पाठा भनिम्भगोक्षुरम् । जातीकोपफले  
दार्वा नलद चन्दनं सुरा ॥ ७४ ॥ शटी

मधुरिका मेथी टङ्गनं कृष्णजीरकम् । क्षार-  
द्वयं बालकश्च त्रिव्यं पाँप्परकं तथा ॥ ७५ ॥  
चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं सधनीयकम् ।  
स्ताभ्रगन्धकं लौहं समं सर्वं विचूर्णि-  
तम् ॥ ७६ ॥ उष्णोदकानुपानेन मन्दाग्ने-  
दीपनं परम् । शीततोयानुपानैर्वा वृद्ध्वा  
दोषगतिं भिषक् ॥ ७७ ॥ आम्रातिसारं  
ग्रहणीं चिरकालोत्थितामपि । शूलं विष्ट-  
म्भमानाहं विमूर्च्छीं शोथकामले ॥ ७८ ॥  
हलीमकं पाण्डुरोगं हन्ति कासं विशेषतः ।  
लवङ्गाद्यं महच्चूर्णं शर्करासहितं पिबेत् ॥  
७९ ॥ आध्मानं शमयेच्छीघ्रं लवङ्गस्यानु-  
पानतः । अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतल्लोका-  
नुग्रहहेतवे ॥ ८० ॥

लींग, जीरा, सेंधालू के बीज, सेंधा नमक,  
दालचीनी, इलायची, तेजपात, अजमोद, अज-  
वाहन, नागरमोथा, सोंठ, मिरिच, पीपरि,  
अँबला, हरड, बहेडा, जीर, पादी, चिरायता,  
गोमुख, जावित्री, जायफल, दाहहृदी, लस  
( मतान्तर में जटामासी ), रत्नचन्दन, सुरामांसी,  
कचूर, मेथी, सोहागा फूला हुआ, कालाजीरा,  
जराखार, सर्जीखार, मुगन्धवाला, बेलगिरी,  
कूट, चीता, पिपरामूल, वायविडङ्ग, धनियाँ,  
पारा, अभ्रकभस्म, गन्धक और लोहभस्म, सम  
भाग इन सब औषधों को लेकर चूर्ण के बराबर  
शर्करा मिलाकर रख लेवे । दोषों की गति के  
अनुसार उष्ण जल के साथ अथवा शीतल जल के  
साथ सेवन करे । यह चूर्ण अत्यन्त अग्निदीपन  
है । इसका सेवन करने से आम्रातिसार, चिरका-  
लिक ग्रहणी, शूल, मलयद्वता, आनाह,  
यित्चिका, शोथ, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग  
और कास रोग नष्ट होते हैं । लींग के द्राघ के  
साथ सेवन करने से आध्मानरोग शीघ्र शान्त  
होता है । लोकोपकार के लिये अश्विनीकुम्भारों  
ने इस चूर्ण को बनाया था । मात्रा १६ रक्षी  
॥ ७३-८० ॥

म्वल्पनायिका चूर्ण ।

त्रिशाणं पञ्चलत्रणं प्रत्येकं त्र्यूपणं  
पिबु । गन्धकान् मापकान्पटौ चत्वारो  
मापका रसात् ॥ ८१ ॥ इन्द्राशनात्  
पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते । ग्वादेत्  
मिश्रीकृतान्मापमनुष्येश्च काञ्जिकम् ॥ ८२ ॥  
मापकादिक्रमेणैव मनुयोऽयं रसायनम् ।  
अत्यन्ताग्निकरश्चैतद्भोजनं सर्वकामि-  
कम् ॥ ८४ ॥ प्रसिद्धा योगिनी नारी तथा  
प्रोक्तं रसायनम् । ब्रह्मणीनाशनं ह्येतदग्नि-  
सन्दीपनं परम् ॥ ८६ ॥

पाँचों नमकों में ये प्रत्येक ६ माशे, सोंठ,  
मिरिच, पीपरि प्रत्येक छ-छः माशे, गन्धक ६  
माशे, पारा ३ माशे, भाँग ४ तोले ६ माशे इन  
सब औषधों को एकत्र घोटकर चूर्ण कर लेवे ।  
मात्रा—१ माशा से आरम्भ करके ३ माशे  
पर्यन्त है । अनुपान क जा है । इस औषध का  
सेवन करनेवाला रोगी अपनी इच्छानुसार सब  
पदार्थों को खा सकता है । एक प्रसिद्ध योगिनी  
स्त्री ने इस रसायन को बताया था । यह ब्रह्मणी  
रोगनाशक और अत्यन्त अग्निवर्धक है ॥ ८१-८३ ॥

बृहन्नायिका चूर्ण ।

चित्रक त्रिफला व्योष विडङ्गं रजनी-  
द्वयम् । भल्लातकं यमानी च हिङ्गुर्गुल्फ-  
णपञ्चकम् ॥ ८४ ॥ शृङ्गमो वचा कुष्ठं  
घनमध्रञ्च गन्धकम् । क्षारत्रयं चाजमोदा  
पारदो गजपिप्पली ॥ ८५ ॥ त्रमीपां  
चूर्णकं यात्रत्तावच्छक्राशनस्य च ।  
अभ्यर्च्यं नायिकां प्रातर्योगिनीं कामरूपि-  
णीम् ॥ ८६ ॥ गुड्वाप्टप्रमितं चापि भक्तये-  
दस्य गुण्डकम् । मन्दाग्निकासदुर्नामह्नी-  
हपाण्डुचिरञ्जरान् ॥ ८७ ॥ प्रमेहशोथ  
विष्टम्भं संग्रहग्रहणीं जयेत् । सर्वातीसार-

हरणं सर्वशूलनिपूदनम् ॥ ८८ ॥ आम-  
वातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशनः । न च ते  
व्याधयः सान्त वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ८९ ॥  
यान्न हन्यादसौ सिद्धो गुण्डकं नायिका-  
कृतम् । वार्थ्यन्नमापमभ्यङ्गस्नानं पिशित-  
भोजनम् ॥ ९० ॥ काञ्जिकारलं सदा  
पथ्यं दग्धमीनस्तथा दधि । काष्ठमप्युदरे  
यस्य भक्षणाद् याति जीर्णताम् ॥ ९१ ॥

( 'कलिङ्गातिविषा धान्यं चयं जाती-  
फलं समम् ' इत्याधिकः पाठ कश्चित् ) ।

चीता, आबला, हरद, बहेड़ा, सोंठ, मिरिच,  
पीपरि, वायविडङ्ग, हरदी, दासहरदी, भिलावा,  
अजवाइन, हींग, पञ्च लवण, धर के धुआँ का  
जाला, वच, कूठ, नागरमोधा, अश्रकभस्म,  
गन्धक, जवाखार, सजोखार, सोहागा की बील,  
अजमोद, पारा और गजपीपरि, समभाग इन  
सब औषधों को लेकर चूर्ण बनावे । इन औषधों  
का चूर्ण जितना हो, उतना ही भाँग का चूर्ण  
मिलाकर रख लेवे । प्रातः काल कामरूपधारिणी  
योगिनी नायिका की पूजा करके रोगी का  
बलाबल देखकर १ माशा की मात्रा में इस चूर्ण  
को खिलावे । यह चूर्ण अग्निमान्द्य, कास, बवा-  
सीर, ग्रीहा, पाण्डुरोग चिरकालिक ज्वर, प्रमेह,  
शोथ, विष्टम्भ और समग्रहणी रोगों को जीतता है ।  
सब प्रकार के अतिसार, शूल, आमवात और  
सूतिका रोगों का नाशक है । इस चूर्ण के सेवन  
करनेवाले को वातिक, पित्तिक और श्लैष्मिक  
रोग नहीं होते हैं । अग्निमान्द्य को नष्ट करने  
के लिये यह नायिकाकृत चूर्ण सिद्ध प्रयोग है ।  
उर्द, तैलाभ्यङ्ग, स्नान और मातभोजन इनका  
परहेज न करे । कर्को, धुनी हुई मछली और  
दूदी ये सब सदा पथ्य है । इस औषध के प्रभाव  
से जिन्के उदर में काष्ठ भी हो वह भी तत्काल ही  
पच जाता है तो अन्य भोज्य पदार्थों को पच  
लेवे इसमें आरच्य ही क्या है ॥ ८४-९१ ॥

इस बृहन्नायिका चूर्ण में कुड़े की छाल, घनीस,  
घनीस, चषप और जायफल, इन औषधों के भी

सम भाग चूर्ण का मिलाना कहीं लिखा है ।

ग्रहणीशादूल चूर्ण ।

रसगन्धकलौहाभ्रंहिङ्गुर्लवणपञ्चकम् ।  
हरिद्रे कुष्ठकञ्चैव वचा मुस्तं विडङ्गकम् ॥  
६२ ॥ त्रिकटु त्रिफलाचित्रमजमोदा  
यमानिका । गजोपकुल्या चाराणि तथैव  
गृहधूमकम् ॥ ६३ ॥ एतेषां कार्पिकं चूर्णं  
विजयाचूर्णकं समम् । मापकप्रमितं चूर्णं  
शालितण्डुलवारिणा ॥ ६४ ॥ भक्षयेत्  
प्रातहृत्थाय ग्रहणीगदनाशनम् । अग्निञ्च  
कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ॥ ६५ ॥  
सर्वातीसारशनं तृष्णाज्वरविनाशनम् ।  
पकापकमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥  
६६ ॥ आम्रातिसारमखिलं विशेषाच्छु-  
यथुं जयेत् । असाध्यां ग्रहणीं हन्ति  
पाण्डुप्लीहचिरज्वरान् ॥ ग्रहणीशादूल-  
चूर्णं सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ६७ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, हींग, पाँचों नमक, हरदी, दारहरदी, कटु, वच, नागरमोथा, वायविडङ्ग सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हरड, बहेदा, चीता, अजमोद, अज-वाइन, गजपीपरि, यवदार, सजीखर, सोहागा फूला हुआ और गृहधूम ( धुआँ का जाला ) प्रत्येक का चूर्ण एक तोला; कुल चूर्ण मिलाकर जितना हो, उतना ही भाँग वा चूर्ण मिलाकर रख लेवे । चावलों के धोवन के साथ १ माशा चूर्ण प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । यह ग्रहणीशादूल चूर्ण ग्रहणीरोग का नाशक है । अग्नि को दीप्त कर वडवानल के समान बनाता है । सब प्रकार के साम और निराम अतीसार, तृष्णा, ज्वर, शोथ, असाध्य ग्रहणीरोग, पाण्डु, प्लीहा, और पुराना ज्वर आदि विविध प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ ६२-६७ ॥

जातीफलादि चूर्ण ।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं

तथा । तालीशं चन्दनं शृण्ठी लवङ्गं चोप-  
कुञ्चिका ॥ ६८ ॥ कर्पूरञ्चाभया धात्री  
मरिच पिप्पली तुगा । एषामक्षसमान्  
भागान् चातुर्जातकसंहितान् ॥ ६९ ॥  
पलानि सप्त भङ्गस्य सिता सर्वसमा तथा ।  
एतच्चूर्णं जयेत् कासं क्षयं श्वासमरो-  
चकम् ॥ १०० ॥ ग्रहणीमत्तिसारञ्च अग्नि-  
मांथं सपीनसम् । वातरश्लेष्मभवान् रोगान्  
प्रतिश्यायांश्च दुःसहान् ॥ १०१ ॥

जायफल, वायविडङ्ग, चीता, तगर, तालीश-पत्र, सफेद चन्दन, सोंठ, लींग, काला जीरा, कर्पूर, हरड, आँवला, मिरिच, पीपरि, वंश-लोचन, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, भाँग का चूर्ण २८ तोले; इन सब चूर्णों को एकत्र मिलाकर खरल में घोट लेवे । कुल चूर्ण के बराबर शकर मिलाकर रख लेवे । इसका सेवन करने से कास, दबास, क्षय, अरोचक, ग्रहणी, अतीसार, अग्निमान्द्य, पीनस, वातरश्लेष्मिक रोग और दुःसह प्रतिश्याय; ये सब रोग नष्ट होते हैं ।  
माशा-१ माशा ॥ ६८-१०१ ॥

जीरकाद्य चूर्ण ।

जीरकं टङ्गनं मुस्तं पाठा त्रिल्वं  
सधान्यकम् । बालकं गतपुष्पा च टाडिमं  
कुटजं तथा ॥ १०२ ॥ समङ्गा धातकी-  
पुष्पं व्योषञ्चैव त्रिजातकम् । मोचरसः  
कलिङ्गञ्च व्योमगन्धकपारदौ ॥ १०३ ॥  
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि  
च । एतत् प्राशितमायेण ग्रहणीं दुस्तरां  
जयेत् ॥ १०४ ॥ अतीसारं निहन्त्याशु  
सामं नानाविधं तथा । कामलां पाण्डु-  
रोगञ्च मन्दाग्निञ्च विशेषतः । जीरकाद्य-  
मिदं चूर्णमगम्येन प्रकाशितम् ॥ १०५ ॥

स्वल्पनायिका चूर्ण ।

त्रिशाखं पञ्चलत्रणं प्रत्येकं त्र्यूप्यं  
पिबु । गन्धकान् मापकान्पट्यौ चत्वारो  
मापका रसात् ॥ ८१ ॥ इन्द्राशनात्  
पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते । ग्वादेत्  
मिश्रीकृतान्मापमनुपेयश्च काञ्जिकम् ॥ ८२ ॥  
मापकादिक्रमेणैव मनुयोज्यं रसायनम् ।  
अत्यन्ताग्निकरश्चैतद्भोजनं सर्वकार्मि-  
कम् ॥ ८४ ॥ प्रसिद्धा योगिनी नारी तथा  
प्रोक्तं रसायनम् । ग्रहणीनाशनं ह्येतदग्नि-  
सन्दीपनं परम् ॥ ८३ ॥

पाँचों नमकों में से प्रत्येक ६ माशे, सोंठ,  
मिरिच, पीपरि प्रत्येक छ. - छः माशे, गन्धक ६  
माशे, पारा ३ माशे, भाँग ४ तोजे ६ माशे इन  
सब औषधों को एकत्र घोटकर चूर्ण कर लेवे ।  
मात्रा—१ माशा से आरम्भ करके ३ माशे  
पर्यन्त है । अनुपान कालो है । इस औषध का  
सेवन करनेवाला रोगी अपनी इच्छानुसार सब  
पदार्थों को खा सकता है । एक प्रसिद्ध योगिनी  
स्त्री ने इस रसायन को बताया था । यह ग्रहणी-  
रोगनाशक और अत्यन्त अग्निवर्धक है ॥ ८१-८३ ॥

गृहनायिका चूर्ण ।

चित्रक त्रिफला व्योषं विडङ्गं रजनी-  
द्वयम् । भल्लातकं यमानी च हिङ्गुर्गुल्फ-  
णपञ्चकम् ॥ ८४ ॥ गृहधमो वचा कुष्ठं  
घनमध्रञ्चकं गन्धकम् । क्षारत्रयं चाजमोदा  
पारदो गजपिप्पली ॥ ८५ ॥ अमीषां  
चूर्णकं यावत्तापच्छक्राशनस्य च ।  
अभ्यर्च्य नायिकां प्रातर्योगिनीं कामरूपि-  
णीम् ॥ ८६ ॥ गुञ्जाप्टप्रमितं चापि भक्तये-  
दस्य गुण्डकम् । मन्दाग्निकासदुर्नामस्त्री-  
हपाण्डुचिरञ्ज्वरान् ॥ ८७ ॥ प्रमेहशोथ  
विष्टम्भं संग्रहग्रहणीं जयेत् । सर्वातीसार-

हरणं सर्वशूलनिपूदनम् ॥ ८८ ॥ आम-  
वातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशनः । न च ते  
व्याधयः सान्त वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ८९ ॥  
यान्न हन्यादसौ सिद्धो गुण्डकं नायिका-  
कृतम् । वार्थ्यन्नमापमभ्यङ्गस्नानं पिशित-  
भोजनम् ॥ ९० ॥ काञ्जिकाम्लं सदा  
पथ्यं दग्धमीनस्तथा दधि । काष्ठमप्युदरे  
यस्य भक्त्याद् याति जीर्णताम् ॥ ९१ ॥

( 'कलिङ्गातिविषा धान्यं चव्यं जाती-  
फलं समम् ' इत्याधिकः पाठः कश्चित् ) ।

चीता, आँवला, हरद, बहेडा, सोंठ, मिरिच,  
पीपरि, बायबिडङ्ग, हरदी, दारहरदी, भिलावा,  
अजवाइन, हाँग, पत्र लवण, घर के धुआँ का  
जाला, बघ, कूड, नागरमोथा, अन्नकमरूम,  
गन्धक, जवाखार, सजीखार, सोहागा की खील,  
अजमोद, पारा और गजपीपरि, समभाग इन  
सब औषधों को लेकर चूर्ण बनावे । इन औषधों  
का चूर्ण त्रितना हो, उतना ही भाँग वा चूर्ण  
मिलाकर रख लेवे । प्रातःकाल कामरूपधारिणी  
योगिनी नायिका की पूजा करके रोगी का  
बलाबल देखकर १ माशा की मात्रा में इस चूर्ण  
को खिलावे । यह चूर्ण अग्निमान्द्य, कास, बवा-  
सीर, झीहा, पाण्डुरोग, चिरकालिक ज्वर, प्रमेह,  
शोथ, विष्टम्भ और संग्रहणी रोगों को जीतता है ।  
सब प्रकार के अतिसार, शूल, आमवात और  
सूतिका रोगों का नाशक है । इस चूर्ण के सेवन  
करनेवाले को वातिक, पैतिक और रलेष्मिक  
रोग नहीं होते हैं । अग्निमान्द्य को नष्ट करने  
के लिये यह नायिकाकृत चूर्ण सिद्ध प्रयोग है ।  
उर्द, नैलाभ्यङ्ग, स्नान और मांसभोजन इनका  
परहेज न करे । काँजी, भुनी हुई मछली और  
दही ये सब सदा पर्य है । इस औषध के प्रभाव  
में जिनके उदर में काष्ठ भी हो वह भी तत्काल ही  
पच जाता है, तो अन्य भोज्य पदार्थों को पचा  
लेवे इसमें आरच्य ही क्या है ॥ ८४-९१ ॥

इस गृहनायिका चूर्ण में कुड़े की छाल, घनीस,  
घनीस, चरप और जायफल, इन औषधों के भी

सम भाग चूर्ण का मिलाना कहीं लिखा है ।

ग्रहणीशार्दूल चूर्ण ।

रसगन्धकलौहाभ्रंहिङ्गुर्लवणपञ्चकम् ।  
हरिद्रे कुष्ठकञ्चैव वचा मुस्तं विडङ्गकम् ॥  
६२ ॥ त्रिवट्टु त्रिफलाचित्रमजमोदा  
यमानिका । गजोपकुल्या क्षाराणि तथैव  
गृहधूमकम् ॥ ६३ ॥ एतेषां कार्ष्णिकं चूर्णं  
विजयाचूर्णकं समम् । मापकप्रमितं चूर्णं  
शालितण्डुलवारिणा ॥ ६४ ॥ मन्त्रयेत्  
प्रातरुत्थाय ग्रहणीगदनाशनम् । अग्निञ्च  
कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ॥ ६५ ॥  
सर्वातीसारशमनं तृष्णाज्वरविनाशनम् ।  
पकापकमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥  
६६ ॥ आम्रातिसारमखिलं विशेषाच्छु-  
यथुं जयेत् । असाध्यां ग्रहणीं हन्ति  
पाण्डुप्लीहचिरज्वरान् ॥ ग्रहणीशार्दूल-  
चूर्णं सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ६७ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, हींग, पौषों नमक, हरदी, दारुहरदी, कूट, वच, नागरमोधा, वायविदङ्ग सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हरइ, बहेदा, चीता, अजमोद, अजवाहन, गजपीपरि, यवहार, सजीखार, सोहागा फूला हुआ और गृहधूम (धुआँ का जाला) प्रत्येक का चूर्ण एक तोला, कुल चूर्ण मिलाकर जितना हो, उतना ही भाँग का चूर्ण मिलाकर रच लेवे। चावलों के धोवन के साथ १ माशा चूर्ण प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। यह ग्रहणीशार्दूल चूर्ण ग्रहणीरोग का नाशक है। अग्नि को दीप्त कर वडवानल के समान बनाता है। सब प्रकार के साम और निराम अतीसार, तृष्णा, ज्वर, शोथ, असाध्य ग्रहणीरोग, पाण्डु, प्लीहा, और पुराना ज्वर आदि विविध प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ ६२-६७ ॥

जातीफलानि चूर्ण ।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं

तथा । तालीशं चन्दनं शूएटी लवङ्गं चोप-  
कुञ्चिका ॥ ६८ ॥ कर्पूरञ्चामया धात्री  
मरिचं पिप्पली तुगा । एषामन्तसमान्  
भागान् चातुर्जातकसंहितान् ॥ ६९ ॥  
पलानि सप्त भद्रस्य सिता सर्वसमा तथा ।  
एतच्चूर्णं जयेत् कासं क्षयं श्वासमरो-  
चकम् ॥ १०० ॥ ग्रहणीमत्तिसारञ्च अग्नि-  
मांथं सपीनसम् । वातरश्लेष्मभवान् रोगान्  
प्रतिश्यायांश्च दुःसहान् ॥ १०१ ॥

जायफल, वायविदङ्ग, चीता, तगर, तालीश-  
पत्र, सफेद चन्दन, सोंठ, लौंग, काला जीरा,  
कर्पूर, हरइ, आँवला, मिरिच, पीपरि, वंश-  
लोचन, दालचीनी, इलायची, तेजपात और  
नागकेसर, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, भाँग का  
चूर्ण २८ तोले; इन सब चूर्णों को एकत्र  
मिलाकर खरल में घोट लेवे। कुल चूर्ण के बराबर  
शकर मिलाकर रच लेवे। इसका सेवन करने से  
कास, श्वास, क्षय, अरोचक, ग्रहणी, अतीसार,  
अग्निमान्द्य, पीनस, वातरश्लेष्मिक रोग और  
दुःसह प्रतिश्याय; ये सब रोग नष्ट होते हैं।  
मात्रा-१ माशा ॥ ६८-१०१ ॥

जीरकाद्य चूर्ण ।

जीरकं टङ्गनं मुस्तं पाठा विल्वं  
सधान्यकम् । बालकं शतपुष्पा च दाडिमं  
कुटजं तथा ॥ १०२ ॥ समद्वा धातकी-  
पुष्पं व्योपञ्चैव त्रिजातकम् । मोचरसः  
कलिङ्गञ्च व्योमगन्धकपारदौ ॥ १०३ ॥  
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि  
च । एतत् प्राशितमात्रेण ग्रहणीं दुस्तरां  
जयेत् ॥ १०४ ॥ अतीसारं निहन्त्याशु  
सामं नानाविधं तथा । कामलां पाण्डु-  
रोगञ्च मन्दाग्निञ्च विशेषतः । जीरकाद्य-  
मिदं चूर्णमगस्त्येन प्रकाशितम् ॥ १०५ ॥

जीरा, सोहागा फूला हुआ, नागरमोथा, पादी, बेलगिरी, धनियाँ, सुगन्धवाला, सौंफ, अनार के फल का छिलका, कुड़े की छाल, छुई-मुई, धाय के फूल, सोंठ, मिरिच, पीपरी, दालचीनी, इलायचा, तेजपात, मोचरस, इन्द्रजा, अमक-भस्म, गन्धक और पारा प्रत्येक का चूर्ण समभाग, चूर्ण के बराबर जायफल का चूर्ण ; इन सब चूर्णों को एकत्र मिलाकर रख लेवे । इस चूर्ण के सेवन करते ही दुःसाध्य ग्रहणरोग, अनेक प्रकार का आमामित्मार, कामला, पायदुरोग और अग्निमान्द्य रोग नष्ट होते हैं । इस जीरकादि चूर्ण को भ्रगस्यजी ने प्रकाशित किया था । मात्रा-१ माशा ॥ १६२-१०२ ॥

कञ्चटावल्लेह ।

प्रस्थे पचेत् कञ्चटालमूलयोःसितार्द्ध-  
प्रस्थं शृतपादशेषे । ततोऽक्षमात्राणि  
समानि दद्याच्चूर्णानि धीरो विधिवत्तदे-  
षाम् ॥ १०६ ॥ समद्गा धातकी पाठा  
विल्वं पुस्ताथ पिप्पली । शक्रकातिविपा-  
चारसौर्वर्चलरसाञ्जनम् ॥ १०७ ॥ शाल्म-  
लीवेष्टकञ्चैव सर्वं सिद्धे निधपयेत् । शीते  
च मधुनश्चात्र कुडवार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥  
१०८ ॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत यथाकालं  
प्रमाणतः । सर्वातिसारं शमयेत् संग्रह-  
ग्रहणीं तथा ॥ १०९ ॥ अम्लपित्तकृतं  
दोषमुद्गरं सर्वरूपिणम् । विकारान् कोष्ठ-  
जान् हन्ति शूलारोचकमेव च ॥ ११० ॥

(कञ्चटालमूलयोः प्रत्येकमष्टपलानि,  
जलं षोडशपलं, अवशिष्टं चतुःपलं ।  
सिताष्टपलं दत्त्वा पक्त्वा च समंगादि-  
चूर्णप्रक्षेपः कार्यः । शीते च मधु पल-  
चतुष्टयमिति गोपालदासः, मधुनः पल-  
द्वयमित्यन्ये ।)

कञ्चट (जल की चौराई) ३२ तोला और

तालमूली (स्नाहमुसली) ३२ तोला; इन  
दोनों को ६ सेर ३२ तोला पानी में पकावे ।  
१२८ तोला पानी शेष रहने पर उरुी धाध में  
धाध सेर शकर मिलाकर चाशनी बनावे ।  
तदनन्तर उसमें छुई-मुई, धाय के फूल, पादी,  
बेलगिरी, नागरमोथा, छोटी पीपरी, भाँग,  
अतिस, जवाखार, काला नमक, रसौत और  
मोचरस इनका दो-दो तोले चूर्ण मिलाकर  
उतार लेवे । शीतल होने पर ८ तोले मधु  
मिलाकर रस लेवे । दोष, बलाबल और काल  
का अनुसन्धान करके इमकी मात्रा की व्यवस्था  
करनी चाहिये । यह अवलेह सब प्रकार के  
अतिसार और संग्रहणीरोग को शान्त करता  
है । अम्लपित्त, सब प्रकार के उदररोग, कोष्ठज-  
विकार, शूल और अरोचक; इन रोगों को भी  
नष्ट करता है ॥ १०६-११० ॥

दशमूलगुड ।

दशमूलीपलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
तेन पादावशेषेण पचेद्गुडतुलां भिपक् ॥  
१११ ॥ आर्द्रकस्वरसप्रस्थं दत्त्वा मृद-  
ग्निना ततः । लेही भूते प्रदातव्यं चूर्ण-  
मेषां पलं पलम् ॥ ११२ ॥ पिप्पली  
पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । हिंशु  
भलातकञ्चैव विडंगमजमोदकम् ॥ ११३ ॥  
द्वौ क्षारौ चित्रकं चव्यं पञ्चैव लवणानि  
च । दत्त्वा सुमथितं कृत्वा स्निग्धे भाण्डे  
निधापयेत् ॥ ११४ ॥ मापत्रयं ततः  
खाद्रेत् प्रातः प्रातर्विचक्षणः । हन्ति मन्दा-  
नलं शोथमामजां ग्रहणीमपि ॥ ११५ ॥  
आमं सर्वभवं शूलं प्लीहानमुद्गरं तथा ।  
मन्दानलभवं रोगं विष्टं गुदजानि  
च । ज्वरं चिरन्तनं हन्ति तमिस्रं भातु-  
मानिव ॥ ११६ ॥

दशमूल की दश औषधों को मिलाकर पच



सेर लेवे । उसको २५ सेर ४८ तोला पानी में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उसी काथ में पाँच सेर पुराना गुड़ और १२८ तोला अदरक का रस मिलाकर धीमी आँच पर पकावे । चटनी के समान गाढ़ा होने पर पीपरि, पिपरा-मूल, मिरिच, सोंठ, हींग, भिलावा, वायविडह, अजमोद, जवाखार, सजीखार, चीता की जड़ चस्य और पांचों नमक, इनका चार चार तोले घूर्ण मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र में रख लेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल २ मात्रा २ रची सेवन करे । यह अवलेह अग्निमान्द्य, शोथ आमजन्य ग्रहणी, आम, त्रिदोषजन्य शूल, प्रीहा, उदर, अग्निमान्द्यजन्य रोग, विष्टम्भ, बवासीर और प्राचीन ज्वर, इन रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्यदेव अन्धकार को नष्ट करते हैं ॥ १११-११६ ॥

कल्याणगुड़ ।

मस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वा-  
र्द्धतुलां गुडस्य । चूर्णाकृतैर्ग्रन्थिकजीर-  
चव्यव्योपेभक्तुष्णाहवुपाजमोदैः ॥ ११७ ॥  
विडंगसिन्धुत्रिफलायमानीपाठाग्निधान्यैश्च  
पलप्रमाणैः । दत्त्वात्रिवृच्चूर्णपलानिचाष्टा-  
वष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ११८ ॥  
तं भक्षयेत्कोलफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टं त्रिसु-  
गन्धियुक्तम् । अनेन सर्वं ग्रहणा विकारा-  
सरवासकासस्वरभेदशोधाः ॥ ११९ ॥  
शाभ्यन्ति चायं चिरमन्तराग्नेर्हृतस्य  
पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः । स्त्रीणां च बन्ध्या-  
मयनाशनोज्यं कल्याणको नाम गुडः  
प्रदिष्टः ॥ १२० ॥ त्रिवृतां भर्जयन्त्यत्र  
मनाकर्तले चिकित्सकाः । तत्रोक्तमानसाध-  
म्यात् त्रिसुगन्धिपलं पृथक् ॥ १२१ ॥

यस्य से धान कर गुड़ किया हुआ आंवले का रस ४ सेर १४ तोला, गुड़ २०० तोले, इनको एकत्र पकावे । पाकशेष होने पर पिपरा मूल,

जीरा, चस्य, सोंठ, मिरिच, पीपरि, गजपीपरि, हाऊबेर, अजमोद, वायविडह, संधा नमक, आंवला, हरद, बहेदा, अजवाइन, पाड़ी, चीता और धनियां प्रत्येक का चार-चार तोले घूर्ण मिलावे । ३२ तोले निसीत के घूर्ण को तैल में थोड़ा सा भूनकर मिलावे । तिल का तैल ३२ तोले; दालचीनी, छोटी इलायची के दाने और तेजपात प्रत्येक चार-चार तोले मिलाकर रख लेवे । इस गुड़ को प्रतिदिन एक तोले की मात्रा में गोली बनाकर खाना चाहिये । इसका सेवन करने से सब प्रकार के ग्रहणी-रोग, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ और अग्नि-मान्द्य रोग की शान्ति तथा पुरुषत्व की वृद्धि होती है । यह स्त्रियों के बन्धव्यता रोग का भी नाशक है । इसका कल्याण गुड नाम है ११७-१२१

कृष्णाएडकल्याणगुड़ ।

कृष्णाएडकानां रुढानां सुस्विन्नं  
निष्कुलत्वचाम् । सर्पिःप्रस्थे पलशतं  
ताम्रपात्रे शनैः पचेत् ॥ १२२ ॥ पिप्पली  
पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।  
धान्यकानि विडङ्गानि यमानी मरिचानि  
च ॥ १२३ ॥ त्रिफला चाजमोदा च कलि-  
ङ्गाजजितैन्धवम् । एकैरस्य पलञ्चैव  
त्रिवृदष्टपलं भवेत् ॥ १२४ ॥ तैलस्य च  
पलान्यष्टौ गुडपञ्चाशदेव तु । प्रसृत्येस्त्रिभिः  
समेतन्तु रसस्यामलकस्य च ॥ १२५ ॥  
यदा दार्शमिलेपस्तु तर्दनमवतारयेत् । यथा-  
शक्तिं गुर्तां कुर्यात् कर्पकपर्दिमानतः ॥ १२६ ॥  
अनेन विधिना चै प्रयुक्तस्तु जयेदिमान् ।  
दुर्वारान् ग्रहणीरोगान् कुष्ठान्यगोभगन्द-  
रान् ॥ १२७ ॥ ज्वरमानादृष्टो गगुलमो-  
दरधिमूचिकाः । वामलां पाएदुरोगांश्च  
प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ २२८ ॥ प्लीहानं  
वातरश्च ददु चर्महलीमकान् । कफपि-

चानिलान् सर्गान् प्ररुढांश्च व्यपोहति ॥  
१२६ ॥ व्याधिक्तीणा वयःक्तीणाः स्त्री  
क्तीणाश्च ये नराः । तेषां वृष्यश्च बल्यश्च  
वयः स्थापन एव च । गुडकूप्माण्डको नाम  
वन्ध्यानां गर्भदः परः ॥ १३० ॥

मुपक कुम्हडा (पुराना पेठा) कैकर फिर  
घोलकर टुकड़े करके ५ सेर लेवे । उसको उबाल-  
कर १२८ तोले घी में ताँबे के पात्र में धीमी  
झाँच से पकावे । पश्चात् पीपरि, पिपरामूल,  
चीता, गजपीपरि, धनियाँ, घाघादिदह, अज-  
वाइन, मिरिच, आँवला, हरद, महेडा, अज-  
मोद, इन्द्रजौ, जीरा और सेंधा नमक प्रत्येक  
का चूर्ण चार-चार तोले, निसोत का चूर्ण ३२  
तोले, तिल तैल ३२ तोले, गुड ढाई सेर और  
आँवले का स्वरस ४ सेर ६४ तोला लेवे ।  
सबको मिलाकर यथाविधि पकावे । जब करछी  
में बिपकने लगे, तब उतार लेवे । रोगी का  
बलाबल देखकर आधा तोला से एक तोला  
पर्यन्त मात्रा प्रयुक्त करनी चाहिये । यह कूप्माण्ड-  
कल्याणगुड दुर्गार प्रदण्णीरोग, कुष्ठ, बवासीर,  
भगन्दर, ज्वर, अफरा, हृदोग, गुल्म, उदर,  
विसृचिहा, कामला, पाण्डुरोग, बीस प्रकार  
के प्रमेह, झीहा, घातरत्न, दद्रु, चर्मरोग और  
हलीमक को तथा वात, पित्त और कफ के  
समस्त रोगों को नष्ट करता है । जो मनुष्य  
रोगों से क्षीण हो गये हैं, जो वृद्धावस्था से  
क्षीण हो गये हैं और जो अत्यन्त क्षीप्रसंग  
करने से क्षीण हो गये हैं उनके लिये यह  
गुड क्रम से वीर्यवर्धक, बलवर्धक और वयः-  
स्थापक है एवं वन्ध्या स्त्रियों के लिये गर्भ देने-  
वाला है ॥ १२२-१३० ॥

टिप्पणी—ताम्र के पात्र पर अच्छी कलाई  
होनी चाहिए अन्यथा ताम्र पात्र में पकाना  
बिप समान हानिकारक है ।

श्रीकामेश्वरभोदक

सम्यङ्भारितमभ्रकं कट्फलं कुष्ठा-  
श्वगन्धाभृता, मेथीमोचरसो विदारिमुपली-

गोक्षूरकश्चेक्षुरः । रम्भाकन्दशतावरी त्व-  
जमुद्रा मापस्तिला धान्यकं, हैमी नागबला-  
कचूरमदनं जातीफलं सैन्धवम् ॥ १३१ ॥  
भार्गीकर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं  
चातुर्जातपुनर्नवागजकणा द्राक्षाशटी-  
बालकम् । शाल्मल्यडिग्धफलत्रिकं कपि-  
भवं बीजं समं चूर्णयेत् चूर्णांशा विजया  
सिता द्विगुणिता मध्वाज्ययोः पित्तिड-  
तम् ॥ १३२ ॥ मार्षका गुडिकाद्विमापमथवा  
सेव्या सदा कामिभिः, सेव्यं क्षीरसितं  
सुवीर्यकरणं स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम् । वामा-  
वश्यकरः सुखातिसुखदो बृहन्नानाद्रावणः  
क्षीणे पुष्टिकरः क्षतक्षयहरो हन्याच्च सर्वा-  
मयान् ॥ १३३ ॥ कासरवासमहातिसार-  
शमनः कामाग्निसन्दीपनो, दुर्नामग्रहणी-  
प्रमेहनिवहश्श्लेष्मातिरेकप्रणुत् । नित्या-  
नन्दकरो विशेषकवितां वाचां विलासोद्भवं,  
धत्सेसर्वगुणं महास्थिरमतिर्बालो नितान्तो-  
त्सवः ॥ १३४ ॥ अभ्यासेन निहन्ति  
मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात्, सर्वेषां  
हितकारिणा निगदितः श्रीनिरयनाथेन  
सः । वृद्धानां मदनस्य वर्द्धनकरः प्रौढाङ्ग-  
नासङ्गमे, सिंहोज्यं समदृष्टिप्रत्ययकरो भूपैः  
सदा सेव्यताम् ॥ १३५ ॥

(तन्त्रान्तरेऽस्य महाकामेश्वरः ॥ १३५ ॥)

अभ्रकभरम, कायफल, कूट, अश्वगन्ध,  
गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मुसली,  
गोक्षुर, तालमखाना, केला की जड़, शतावरी,  
अजमोद, जशमांसी, तिल, धनियाँ, बच, गुल्-  
सकरी, कच्ची, मौनफल, जायफल, सेंधा नमक,  
भारंगी, काकड़ासिमी, सोंठ, मिरिच, पीपरि,  
स्याह जीरा, सफेद जीरा, चीता की जड़,

दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, तेजपात, नागकेसर, सांठी, गजपीपरि, मुनक्का, कचूर, सुगन्धवाला, सेगर की जड़, त्रिफला और कौंच के बीच प्रत्येक वा चूर्ण समभाग । चूर्ण के बराबर भाँग वा चूर्ण और भाँग के चूर्ण के मिलाने पर चूर्ण जितना हो उसकी दूनी शक्कर मिलावे । तदनन्तर धी प्रौर मनु मिलाकर लट्टू बाँध लेवे । रोगी का थलायत्न देखकर एक मासा से दो मासा तक की मात्रा में सेवन करना चाहिये । इस मोदक को खाकर शक्कर मिला दुग्ध पीना चाहिये । यह मोदक धीर्य-वर्धक, कामियों के लिये उत्तमक, स्त्री को बश में करनेवाला, अत्यन्त सुखप्रद और अनेक रमणियों को प्रसन्न करने की शक्ति देनेवाला है । क्षीण को पुष्ट करता है । क्षत और क्षय आदि सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है । कास, श्वास और प्रबल अतिसार की शान्ति तथा कामाग्नि की वृद्धि करता है । बवासीर, महणी, प्रमेह और कफातिरेक को नष्ट करता है । कथित्वशक्ति, वाक्चातुर्य और बुद्धि को बढ़ाता है । यह मोदक बालकों के लिये भी अत्यन्त लाभदायक है । एक वर्षपर्यन्त सेवन करने से मृत्यु और पलित को नष्ट करता है । सब प्राणियों के हितचिन्तक श्रीयुत नित्यनाथजी ने इस मोदक का आधिष्कार किया था । इसका सेवन करने से प्राँद स्त्रियों के समागम में वृद्धों को भी कामद्वय की वृद्धि होती है । यह मोदक सिंह के समान बलवर्धक, नेत्रों के लिये लाभदायक और सदा राजाओं के सेवन करने योग्य है ।

तन्त्रान्तर मे इसका नाम महाकामेश्वर-मोदक है ॥ १३१-१३२ ॥

### कामेश्वरमोदक

धात्री सैन्धवकुष्ठरूट्फलकणाशुएठी यमानौद्वयं, यष्टी जीरकयुग्मधान्यकशठी मृहीनचाकेगरम् । तालीशं त्रिसुगन्धिकं समरिचं पथ्याक्षमेभिः समं, चूर्णीकृत्य मनाक्स्वयीजसहितं भृष्टा तुशक्राशनम् ॥

१३६ ॥ सर्वेषां द्विगुणां सितां सुप्रिमलां यत्राद्रिपकृन्तिपेत्, चौद्रश्चापि वृतं प्रशस्तदिवसे कुर्याच्छुभान्मोदकान् । कपूर् रैवचूर्णितानपि हितान् दद्यात्तिलान् भर्जितान्, गोप्योऽयं क्षितिमण्डले मित-धियां पाखण्डनामग्रतः ॥ १३७ ॥ आधि-व्याधिहरत्तत्तयहरः कुष्ठापहो वृंहणः, स्त्रीणां तोपकरो मुखद्युतिकरः शुक्राग्नि-वृद्धिप्रदः । कासरनासबलासरोगनिचय प्र-संसनः प्राणिनां, प्रोक्तो ब्रह्मसुतेन सर्ग-सुखदः कामेश्वरो मोदक ॥ १३८ ॥ ग्रहगणपरिहीनः सर्वशास्त्रप्रवीणः क्लित-धिमलकीर्तिः प्राप्तकन्दर्पमूर्तिः । विगत-सकलभीतिर्गीतनाद्यङ्गनीतिर्भवति भुवि स देवो येन भुक्तः प्रयत्नात् ॥ १३९ ॥ रहसि युगतिखेलासम्पुटाकर्षहर्षाद्गमयति युगतीर्णां केलिकौतूहलेन । यदि कथमपि भुक्तो भोजनादावधान्ते सुरतरभसमुच्चैर्न-ष्टकामं प्रकामम् ॥ १४० ॥ यस्मान्मव्य-वृहस्पतिस्तनुधिया यस्मात्सदा धीर्यवान्, यस्माद्दुन्मददाक्षिणात्ययुगती सम्भोगकौ-तूहली । यस्मात् काव्यकुतूहलं सुप्रविता संजायते लीलया श्रीमद्भिः प्रतिनासरं क्षितितले संसेव्यतां मोदकः ॥ १४१ ॥

एष मोदक ग्रहणायामपि शस्तः ।

धावला, सेंधा नमक, कूट, कायफल, पीपरि, सौंठ, अजमोदन, अजमोद, मुलेठी, स्वाह जोरा, सकेद जोरा, धीनया, कचूर, काकदागिनी, मष नागकेसर, तालीसवत्र, दालचीनी, छोटी इला-यची, तेजपात, मिरिच, हरद, धौर यहका ; प्रत्येक वा चूर्ण समभाग । मषक बराबर धी में छोटी अनी सबीज भाग का चूर्ण नीचे दान की दूनी

कपूर से अधिवासित करके भूने और दिलके उतरे हुए तिलों को मिलाकर, शुभ दिन में लरहू बनाये । अक्षयतृदिवाले पापविष्टों के सामने इसको प्रकाशित न करना चाहिये । यह मोदक मय प्रकार की आधि और ध्याधियों को तथा चय और कुष्ठरोगों को नष्ट करता है । वृंहण और क्षियों को संतोषजनक है । मूत्र की कान्ति, शुक्र और अग्नि को बढ़ाता है । कास, श्वास और सब प्रकार के श्लैष्मिक रोगों को नष्ट करता है । समस्त प्राणियों को सुख देनेवाले इस कामेश्वरमोदक को ब्रह्माजी केपुत्र ने धरया था । श्री मनुष्य यानपूर्वक इस मोदक का सेवन करता है, वह प्रहजनिवृत्त बाधाओं से रहित, समस्त शास्त्रों में प्रवीण, यशस्वी, कामदेव के समान रूपवान्, निर्मय और गीत, वाद्य आदि कलाओं में निपुण होकर पृथिवी में देवता के समान हो जाता है । भोजन के आदि में अथवा अन्त में किसी प्रकार से इस मोदक का सेवन करने से जियका कामदेव नष्ट हो गया हो उसकी भी धारयन्त रति-शक्ति बढ़ती है और वह स्त्रीदा-कौतूहल से युक्तियों को प्रसन्न करता है । जिसका सेवन करने से मनुष्य नवीन वृहस्पति के समान बुद्धिमान् और सर्वथा धीर्यशाली होता है । जिसके सेवन से उन्मत्त दाक्षिणात्य रमणियों के साथ सम्भाग करने को इच्छुक होता है, और जिसके सेवन से काम्यकुतूहल तथा अनायास ही कवित्वशक्ति उत्पन्न होती है । पृथिवीतल में श्रीमान् लोगों को इस कामेश्वरमोदक का प्रतिदिन सेवन करना चाहिये मात्र १ से २ तोला ॥ १३६-१४१ ॥

#### मदनमोदक ।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सवीजं घृतभर्जितम् । सने शिलातले पश्चाच्छूर्णयेदतिचिकणम् ॥ १४२ ॥ त्रिकटु त्रिफला मृदा कुष्ठधान्यकसैन्धवम् । शटी तालीशपत्रं च कट्फलं नागकेशरम् ॥ १४३ ॥ अजमोदा यमानी च यष्टीमधुकमेव च । मेथी जीरकयुग्मञ्च गृहीत्वा श्लक्ष्णचूर्ण-

तम् ॥ १४४ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तर्दापधम् । तावदेव सिता देया यावदायाति बन्धनम् ॥ १४५ ॥ घृतेन मधुना मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत् । त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कपूरैणाधिवासयेत् ॥ १४६ ॥ स्थापयेद्घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम् । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम् ॥ १४७ ॥ कासघ्नं सर्वशूलघ्नमामवातविनाशनम् । सर्वरोगहरो ह्येष संग्रहग्रहणीहरः ॥ १४८ ॥ एतस्य सतताभ्यासाद्दृष्टदोषिण तरुणायते । ब्रह्मणः प्रमुखाच्छ्रुत्वा वासुदेवे जगत्पतौ ॥ १४९ ॥ एष कामविष्टद्वयार्थं नारदैः प्रतिपादितः । तेन लक्षं वरस्त्रीणां रेमे स यदुनन्दनः ॥ १५० ॥

योदे घी में भुनी हुई बीजसमेत भांग २० तोले, सोंठ, मिरिच, पीपरी, आंवला, हड बहेड़ा, काकड़ासिगी, कूट, धनियां, संधानभक, कचूर, तालीशपत्र, कायफल, नागकेशर, अजमोद, अजवाइन, मुलेठी, मेथी, स्याहजीरा और सकेदजीरा, प्रत्येक एक तोला अर्थात् सब मिलकर भांग के बराबर २० तोले हों । इन औषधों का महीन चूर्ण करके चीनी ४० तोले ( की चरानी लहहू योंधने योग्य करके ), दालचीनी, छोटी, इलायची और तेजपात को मिलाकर तथा कपूर के चूर्ण से अधिवासित ( सुगन्धित ) करके मोदक बंधने योग्य घृत और मधु मिलाकर, लडहू योंधकर घी के चिकने पात्र में रख देवे । प्रातःकाल इसका सेवन करना चाहिये । यह वात कफ, कास, सब प्रकार के शूल, आमवात और संग्रहणी तथा अन्यान्य सब रोगों को नष्ट करता है । इस मोदक का निरन्तर सेवन करने से तृड भी तरुण के समान हो जाता है । नारदजी ने ब्रह्मा के मुखारविन्द से इस मोदक की प्रशंसा सुनकर कामदेव की वृद्धि के लिये जगदीश्वर वासुदेवजी से कहा । उन्होंने

(वासुदेव ने) इसका सेवन करने से लाख स्त्रियों के साथ रमण किया। मात्रा १-२ तोला ॥ १५२-१५० ॥

बृहन्मेथीमोदक ।

त्रिफला धान्यकं मुस्तं शुण्ठी मरिच-  
पिप्पली । कट्फलं सैन्धवं शृङ्गी जीरक-  
द्वयपुष्करम् ॥ १५१ ॥ यमांगी केशरं  
पत्रं तालीशं विडमेन च । जातीफलं  
त्र्यंगेला च जयित्रीन्दुलनङ्गकम् ॥ १५२ ॥  
शतपुष्पा मुरा मांसी यष्टीमधुरूपद्मकम् ।  
चव्यं मधुरिका दारु सर्मेतत् समं भवेत् ॥  
१५३ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रा  
तु मेथिका । सितया मोदकं कार्यं घृतमा-  
ध्वीकसंयुतम् ॥ १५४ ॥ भक्षयेत् प्रात-  
रुत्थाय यथा दोषानुपानतः । हन्ति मन्दान-  
लान् सर्वानामदोषं विशेषतः ॥ १५५ ॥  
महाग्निजननं वृष्यमामवातनिषूदनम् ।  
ग्रहण्यशोषिकारध्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ॥  
१५६ ॥ प्रमेहान् त्रिशक्तिं हन्ति कासं  
श्यासश्च दारुणम् । छर्द्यतीसारशमनं सर्वा-  
शोचविनाशनम् । मेथीमोदकनाभास्यं  
पतञ्जलिविनिमित्तः ॥ १५७ ॥

थापला, हरद, बहेदा, धनियां, नागरमोषा,  
मौठ, मिरिच, पीपरि, कायफल संध्यामक  
काकनामिनी, सकेरजीरा, श्याहजीरा, पुष्करमूल,  
अजवाइन, नागकेसर, तेजपात, तालीशपत्र,  
बिहन्मक, जायफल, शान्चीनी, छोटी इलायची,  
आषिथी, कपूर, लौंग, सोपान, (मूषा) पुरन-  
हार, जामाामी, मुलेठी, पर्नाय चन्द, लौक  
और देवदारु प्रायेक का समभाग पूर्ण और पूर्ण  
के बराबर मेथी का पूर्ण इन सबको एकत्र  
मिश्रित करे । मिला हुआ पूर्ण जितना दो,  
उन्नी दुनी शहर लेवे । मोदक बंधने-योग्य घी  
और शहद मिलाकर बन्दू बंध लेवे । दोषानुशूल

अनुपान के साथ प्रातःकाल सेवन करे । यह  
मोदक सब प्रकार के अग्निमान्द्य विशेषतया  
आमदोष को नष्ट करता है । अग्नि का दीपक  
वीर्यघर्षक और आमघातनाशक है । ग्रहणी,  
बवासीर, प्लीहा, पाण्डुरोग, पीत प्रकार के प्रमेह,  
कास, दारुण श्वास, वमन, अतीतार और सय  
प्रकार क अरोचक को नष्ट करता है । इस मेथी  
मोदक को पतञ्जलि मुनि ने बनाया था । मात्रा-  
१।२ तोला ॥ १५१-१५० ॥

बृहज्जीरकादिमोदक ।

जीरकं कृष्णजीरश्च कुष्ठं शुण्ठी च  
पिप्पली । मरिचं त्रिफलात्तकं च पत्रमेला  
च केशरम् ॥ १५८ ॥ शुभा लवंगं  
शैलेयं चन्दनं श्रेतचन्दनम् । काकोली  
जीरकाकोली जातीकोपफले तथा ॥  
१५९ ॥ यष्टी मधुरिका मांसी मुस्तं सच-  
लकं शटी । धान्यकं देवताडश्च मुरा द्राक्षा  
नखी तथा ॥ १६० ॥ शतपुष्पा पद्मकश्च  
मेथी च सुरदार च । सजलं नालुका चैव  
सैन्धवं गजपिप्पली ॥ १६१ ॥ कर्पूरं  
वनिता चैव कुन्दखोटीसमांशयम्<sup>१</sup> । लौह-  
मभ्रकवद्धानां द्विभागं तत्र टापयेत् ॥  
१६२ ॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णचू-  
र्णानि कारयेत् । सर्वचूर्णसमं देयं भृष्ट-  
जीरकचूर्णकम् ॥ १६२ ॥ सिता द्विगुणिता  
देया मोदकं पक्विलपयेत् । घृतेन मधुना  
मिश्रं मोदकञ्च भिषगरः ॥ १६४ ॥  
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय यथादोषं यथावलम् ।  
गव्यं सशर्करञ्चैव अनुपानं प्रयोजयेत् ॥ १६५

१ देवताडम् = मूरकोयपानदेवदाहपल्पतामि  
श्रेते । अस्या गव्यमयम् पञ्चपुण्ड्रानामि, पक्षं च  
कूर्कोटीकम् । दि० घपरवेच, सर्वपा ।

२ कुन्दखोटी = पापिरोत्र ।

अशीति वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् । सर्वास्तान्नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १६६ ॥ नानावर्णमतीसारं विशेषादामसम्भवम् । शूलमष्टविधं हन्ति अशो रोगं चिरोद्भवम् ॥ १६७ ॥ जीर्णज्वरञ्च सततं विषमज्वरमेव च । स्त्रीणाञ्चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् ॥ १६८ ॥ पुष्पकृत् पुत्रकृच्चैव बलवर्णकरं परम् । सूतिकारोगमत्युग्रं नाशयन्नात्र संशयः ॥ १६९ ॥ प्रदरं नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः । दाहं सर्वाङ्गिञ्चैव वातपित्तोत्थितञ्च यत् । अयं सर्वगदोच्छेदी जीरकाद्यो हि मोदकः ॥ १७० ॥

जीरा, कालाजीरा, कूट, सोंठ, पीपरि, मिर्चि, आँवला, हरद, बहेड़ा, दालचीनी, तेजरात, छोटी इलायची के बीज, नागकेसर, वंशलोचना, लौंग, छुरीला, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, काकोली, चीरकाकोली, जावित्री, जायफल, मुलेठी, सौंफ, जटामासी, नागरमोथा, कालानमक, कचूर, धनियाँ, देवताड़, चुरनहार, मुनका, नली, सोया, पदमाख, मेथी, देवदारु, सुगन्धवाला, नालुका, लाधीरीनमक, गजपीपरि, कपूर, प्रियगु और गंधाविरोजा प्रत्येक समभाग, लोहभस्म, धतूकभस्म और बह्मभस्म प्रत्येक दो भाग । इन औषधों को एकत्र कर महीन चूर्ण बनावे । चूर्ण के बराबर भुने हुये जीरे का चूर्ण मिलावे । इस सबसे दूनी खाँड देकर चाशनी करे, तदनंतर मोदक बंधने योग्य मधु और घृत मिलाकर मोदक बनावे । गौदुग्ध के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे । यह मोदक ८० प्रकार के वातरोगों को और ४० प्रकार के पैत्तिकरोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे विजली वृक्ष को नष्ट करे । अनेक वर्षों वाले चिरोपकर आमजन्य अतीसार, आठ प्रकार के शूल, पुराना बवासीर, जीर्णज्वर, सततज्वर और अन्यान्य विषमज्वर को नष्ट करता है । जिन स्थियों के सन्तान नहीं

होती, उनके इस मोदक के सेवन से पुष्पीद्गम ( मासिक धर्म की प्रवृत्ति ) और पुयांस्पति होती है । सेवित होने पर दुर्बल प्राणियों के बल और कान्ति को बढ़ाता है । जैसे सूर्योदय होने से अन्वकार नष्ट होता है वैसे ही उग्र सूतिकारोग और प्रदर को तत्काल नष्ट करता है । यह जीरकाद्य मोदक सर्वाङ्गिक दाह और चातिक, पैत्तिक आदि सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है । मात्रा १२ तोला ॥ १५८-१७० ॥

अग्निकुमारमोदक ।

उशीरं बालकं मुस्तं त्वक्पत्रं नागकेसरम् । जीरद्वयञ्च शृंगी च कटफलं पुष्करं शटी ॥ १७१ ॥ त्रिकटुर्विल्वकं धान्यं जातीफललवंगकम् । कपूरं कान्तलौहञ्च शैलजं वंशलोचना ॥ १७२ ॥ एलाधीजं जटामांसी रास्ना तगरपादुकम् । समद्गातिबला चाभ्रं मुरावङ्गं तथैव च ॥ १७३ ॥ अस्य चूर्णसमा मेथी चूर्णाद् विजयारजः । शर्करामधुसंयुक्तं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ १७४ ॥ मापत्रयप्रमाणन्तु भक्षयेत् प्रातरुत्थितः । शीततोषानुपानेन आजेन पयसाथवा ॥ १७५ ॥ ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति श्वासं कासमतीव च । आमवातमग्निमान्द्यं जीर्णञ्च विषमं ज्वरम् ॥ १७६ ॥ विवन्धानाहशूलञ्च यद्भृत्प्लीहोदराणि च । हन्त्यष्टादश कुष्ठानि ग्रहणीदोषनाशनम् । उटावर्तगुल्मरोगोदरामयविनाशनम् ॥ १७७ ॥

सस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, दालचीनी, तेजरात, नागकेसर, स्याह जीरा, सफेद जीरा, काकड़ासिगी, जायफल, पुडुकरमूल, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपत्र, बेलगिरी, धनियाँ, जायफल, लौंग, कपूर, काम्बोहार, छुरीला, वंशलोचना, छोटी इलायची के बीज, जटामांसी, रास्ना,

तगर, मजीठ, छुई-मुई, कंधी, अन्नकभस्म, चुरनहार और वद्वभस्म प्रत्येक सप्तभाग ; इन द्रव्यों के समान मेथी का चूर्ण, समस्त चूर्ण का अर्ध भाग भाँग की पत्तियों का चूर्ण और भाँगसमेत चूर्ण की दूनी चीनी और उपयुक्त मधु मिलाकर लड्डू बाँध लेवे। शीतल जल अथवा बकरी के दूध के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल २ मासा २ रत्नी खावे। इसका सेवन करने से दुःसाध्य ग्रहणी, श्वास, कास, आमवात, अग्निमान्य, जीर्णज्वर, विषमज्वर, विषध, आनाह, शूल, यकृत, प्लीहा, उदर, अठारह प्रकार के कुष्ठ, ग्रहणीदोष, उदावर्त और गुल्म आदि अनेक रोग दूर होते हैं ॥ १७१-१७७ ॥

बृहच्चुक्रसन्धान ।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुपजलात् प्रस्थत्रयं चाम्लतः, प्रस्थार्द्धं दधितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके। मान्यौशोधितमृद्भवेरशकलात् द्वे सिन्ध्वजाज्योः पले, द्वे कृष्णोपणयोर्निश पलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे ॥१७८॥ स्निग्धे धान्यवादि-राशिनिहितं त्रीन् वासरान् स्थापयेद्, ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे । पट् शीतेऽष्टदिनान्यतः परमिदं विस्त्राव्य संचूर्णयेत्, चातुर्जातपलेन संहितमिदं शुक्रञ्च चुक्रं च तत् ॥ १६६ ॥ हन्याद्वातकफामदोषजनितात्मानाविधानामयान्, दुर्नामानि च शूलगुल्मजठरान् हत्वानलं दीपयेत् ॥ १८० ॥

चावलों का जल ४ सेर ६४ तोले, कांजी १६२ तोले, दही ६४ तोले, कांजी की अक्ष-क्षिप्त सिट्टी ३२ तोले और गुड़ ३२ तोले; इनको मिश्रित कर एक मिट्टी के घड़े में रखे। तदनन्तर छोलकर छोटे-छोटे टुकड़े करके अद-रर (आदी) ६४ तोले, लाहौरी नमक, जीरा, पीपल, मिर्च और हलदी प्रत्येक आठ-

आठ तोले डालकर, पात्र का मुख मुद्रित करके, जौ आदि अन्नों की राशि में, ग्रीष्म और शरद् ऋतु में २ दिन, वर्षाकाल में ४ दिन, वसत ऋतु में ६ दिन और शीतकाल में ८ दिन गड़ा रखे। तदनन्तर उसमें दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात और नागकेसर, इनका एक-एक तोला चूर्ण मिश्रित कर रख लेवे। इसका नाम बृहच्चुक्र या बृहच्चुक्र है। यह चुक्र घात, कफ और आमदोषजन्य अनेक रोग, यवासीर, शूल, गुल्म और जठर रोगों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त करता है। मात्रा ४ तो०-८ तो० ॥१७८-१८०॥

कठिन्यादि पेया ।

कठिनी पलसंख्याता सिता चार्द्धपला मता । बब्रूलस्य च निर्यासो ब्राह्मोऽर्द्ध-पलसंमितः ॥ १८१ ॥ ग्राह्या मधुरिका दारु सिता कर्पमिता शुभा । एकीकृत्य मनाक्क्षुण्णं तोयमष्टपलं तथा ॥ १८२ ॥ मृद्भ्राजने परिस्थाप्य संरक्षेन्निशि यवतः । स्त्रावयित्वा पिपेत्प्रात स्वच्छांशमुपरि स्थितम् ॥ १८३ ॥ प्रवाहिकायां पिप्तास्रे ग्रहण्याश्च प्रशस्यते । लवङ्गधान्यसंयुक्त-मम्लपित्ते महौषधम् । सशोणितेऽतिसारे च शस्तं विद्वसमायुतम् ॥ १८४ ॥

लड्डियामिट्टी ४ तोले, मिट्टी २ तोले, बबूल का गोंद २ तोले, सौंफ १ तोला और दाल-चीनी १ तोला; इन द्रव्यों को एकत्र कर थोड़ा बूट लेवे, पश्चात् किसी मिट्टी के पात्र में रखकर ३२ तोले पानी में भिगो देवे। रात भर पानी में पड़ा रहे। प्रातःकाल छानकर जल को किसी पात्र में रख देवे। थोड़ी देर के बाद जब औषधों का अंश नीचे बैठ जावे, तब ऊपर के स्वच्छ जल को पान करावे। यह पेया प्रवाहिका, रश्मिपित्त और ग्रहणीरोग में लाभदायक होती है। इसी में लौंग और धनिषा मिलाकर अम्लपित्तरोग में और शैलगिरी

मिलाकर रक्षातीक्षार में देना अत्यंत लाभदायक होता है । मात्रा ४-८ तो० ॥ १२१-१८४ ॥

आयामकाञ्जिक ।

वाय्वस्य दद्याद् यवशक्नुकानां पृथक् पृथक् चाटकसंमितन्तु । मध्यप्रमाणानि च मूलकानि दद्याच्चतुःपष्टिमुकल्पितानि ॥ १८५ ॥ द्रोणोऽम्भसः स्नाव्य घटे सुधौते दद्यादिदं भेषजजातयुक्तम् । क्षारद्वयं तुम्युरुवस्तगन्धा धनीयकं स्याद्विद्वसैन्धवश्च ॥ १८६ ॥ सौवर्चलं हिङ्गु शिवाटिकां च चव्यञ्च दद्याद् द्विपलप्रमाणम् । श्मानि चान्धानि पलोन्मितानि विजर्जरीकृत्य घटे क्षिपेच्च ॥ १८७ ॥ कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकां च तथा सुरीं कारविचित्रकञ्च । पक्षस्थितोऽयं वलवर्णदेहवयस्करोऽतीव बलप्रदश्च ॥ १८८ ॥ काञ्जीवयामीति यतः प्रवृत्तस्तत् काञ्जिकेति प्रवदन्ति चैनम् । आयामकालाञ्जरयेच्च भुक्तमायामिकेति प्रवदन्ति चैनम् ॥ १८९ ॥ दकोदरं गुल्ममथ प्लीहानं हृद्रोगमानाहमरोचकञ्च । मन्दाग्नितां कोष्ठगतं च शलमशौं विकारान् समगन्दरांश्च ॥ वातामयानाशु निहन्ति सर्वान् संसेव्यमानो विधिवन्नराणाम् ॥ १९० ॥

( निस्तुपदरदलितयवे चतुर्दशगुणजलदानात् सौधितो मण्डो वाट्यः तस्य पलानि ६४ । तथा यवशक्नुपलानि ६४ ॥ )

निस्तुप ( घिनाभूसी के ) जौ को दलकर चौदह गुने पानी में पकाकर, सिद्ध किया हुआ मण्ड ( माँड़ ) २४६ तोले, जौ का सलू २४६ तोले और मध्य प्रमाण की ( न बहुत मोटी और न बहुत पतली ) मूत्रियों के टुकड़े २४६ तोले; इन चौपधों को स्पष्ट घड़े में रखकर, २४ सेर ४८

तोला जल ढाल देवे, पश्चात् जवाखार, सजी-खार, जेपाली धनियाँ, अजवाइन, धनियाँ, बिड़ नमक, सेंधा नमक, काला नमक, हींग, पुनर्नवा और चव्य प्रत्येक का आठ आठ तोले चूर्ण मिला देवे । पीपरि, जीरा, कालाजीरा, राई कर्लीजी, चीता की जड़, इनमें से प्रत्येक का चार चार तोले चूर्ण मिश्रित कर, पात्रका मुख मुश्रित करके रख देवे । पंद्रह दिन के पश्चात् उपयोग में लावे । यह कान्तिवर्धक, धयःस्थापक और शर्यंत बलप्रद है । इसका आयामकाञ्जिक यौगिक नाम है । किन्को जिलाऊँ इस विचार से प्रवृत्त है, अतः इसको 'काञ्जिक' कहते हैं । 'याम' शब्द का एक प्रहर समय अर्थ है । एक प्रहर में मुक्त ( खाये हुए ) पदार्थ को जीर्ण करने से इसको 'आयामिक' कहते हैं अर्थात् एक ही प्रहर में मुक्त पदार्थ को जीर्ण करके रोगियों को जीवन प्रदान करने से इसका आयामकाञ्जिक नाम पड़ा है । इसका सेवन करने से जलोदर, गुल्म, प्लीहा, हृद्रोग, आनाह, अरोचक, अग्निमांश, कोष्ठगन शूल, वयासीर, भगन्दर और सब प्रकार के वातरोग तत्काल नष्ट होते हैं । मात्रा ४-८ तोला ॥ १८५-१९० ॥

विल्वतैला ।

तुलार्द्धं शुष्कविल्वस्य तुलार्द्धं दशमूलतः । जलद्रोणे विपक्वञ्च चतुर्भागावशेषितम् ॥ १९१ ॥ आर्द्रकस्य रसप्रस्थमारनालं तथैव च । तैलप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ १९२ ॥ धातकी विल्वकुष्ठञ्च शटी रासना पुनर्नवा । त्रिकटुः पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली ॥ १९३ ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मोचकं कटुरोहिणी । तेजपत्राजमोदे च जीवनीयगणस्तथा ॥ १९४ ॥ एषामर्द्धपलान् भागान् पाचयेत् मृदुनाग्निना । एतद्धि विल्वतैलाख्यं मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥



१६५ ॥ ग्रहणीं विविधां हन्ति अतीसार-  
मरोचकम् । संग्रहग्रहणीं हन्ति अर्शसा-  
मपि नाशकम् ॥ १६६ ॥ रलीपदं  
विविधं हन्ति अन्नवृद्धिञ्च नाशयेत् ।  
कफनातोद्भवं शोथं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥  
१६७ ॥ कासं श्वासञ्च गुल्मञ्च पाण्डु-  
रोगविनाशनम् । मक्ल्लशूलशमनं, मूति-  
कातङ्गनाशनम् ॥ १६८ ॥ मूढगर्भे च  
दातव्यं मूढनातानुलोमनम् । शिरोरोगहर-  
ञ्चैव स्त्रीणां गदनिपूदनम् ॥ १६९ ॥  
रजोदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये  
नराः तेऽपि तारुण्यशुक्राढ्या भिष्यन्ति  
महाबलीः ॥ २०० ॥ बन्ध्यापि लभते  
पुत्रं शूरं पण्डितमेव च । विल्वतैलमिति  
ख्यातमात्रेयेण त्रिनिर्मितम् ॥ २०१ ॥

शुष्क बेलगिरी २०० तोले दशमूल श्रीपथ  
२०० तोले को २५ सेर ४८ तोला जल में  
पकावे । ६ मेर ३२ तोला जल शेष रहने पर  
छानकर रस लेवे, तथा अदरक का रस १२८  
तोला, काँजी १२८ तोला, तिलों का तैल १२८  
तोला और दूध १२८ तोला इनको मिलाकर  
घाय के फूल, बत्तीगरी, कूट, कचूर, रास्ना,  
साँडी, सोंठ, मिर्च पीपल, पीपरामूल, चीता,  
गजपीपन, देवदारु, बच, कूट, मोचरस, कुन्बी,  
तेनपात, अजमोद, जीबनीय गण अर्थात्  
जीवक, अष्टभक, मेदा, मडामडा, काकोली,  
खीरकाकोली, अद्वि और वृद्धि, इनमें से प्रत्येक  
श्रीपथ को दो दो तोले लेकर बल्क बनावे और  
इनके बल्क को मिलाकर धीमी आँच पर  
मथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल का मर्दन  
करने से अतिमान्द्य, विविध प्रकार के ग्रहणी  
रोग, अतीमार, अरोचक, समग्रहणी, बवासीर,  
श्लीपद, अन्नवृद्धि, वातरज्जिदिक शोथ, ज्वर,  
कास, श्वास, गुल्म, पाण्डुरोग, मक्ल्लशूल  
और मूतिका रोग गच्छ होने हैं । यह तैल मूढ-  
गर्भ में देना चाहिये, क्योंकि यह मूढवायु का

अनुलोमन करता है । यह शिरोरोग और स्त्री-  
रोगों को मच्छ करता है । जिन स्त्रियों के रज  
और जिन पुरुषों के वीर्य दूषित है, वे भी इस  
तैल का सेवन करने से शुद्ध रज वीर्य-सम्पन्न  
होकर तरुण और महान् बलिष्ठ हो जाते हैं ।  
इस तैल का सेवन करने से बध्या स्त्री भी शूर  
और विद्वान् पुत्र पाती हैं । इसको विल्व  
तैल कहते हैं । आत्रेयजी ने इसे बनाया  
है ॥ १६१-२०१ ॥

ग्रहणीमिहिरतल ।

धन्याकं धातकी लोध्रं समद्गाति-  
विपा शिंशु । उशीरं वारिवाहश्च जलं मोचं  
रसाञ्जनम् ॥ २०२ ॥ विल्वं नीलोत्पलं  
पत्रं केशरं पद्मकेशरम् । गुडूचीन्द्रयवौ  
श्यामा पद्मकं कटुरोहिणी ॥ २०३ ॥  
तगरं नलदं भृङ्गं, केशराजौ पुनर्नवा ।  
आम्रजम्बुकटम्बानां त्वचः कुटजजल्क-  
लम् ॥ २०४ ॥ यमानी जीरकञ्चैपां  
कार्पिकारिणं प्रकल्पयेत् । तैलप्रस्थं पचेत्  
सम्यक् तक्रेणान्यतमेन वा ॥ २०५ ॥  
कुटजजल्कपायेण धन्याककथितेन वा ।  
बुद्ध्यादोषगतिं तत्तु तथान्यौषधवारिणा ॥  
२०६ ॥ एतद्रसायनरं वलीपलितनाश-  
नम् । हन्ति सर्पानतीमारान् ग्रहणीं सर्प-  
रूपिणीम् ॥ २०७ ॥ ज्वरं तृष्णां तथा  
कासं टिकां ग्रामं वमिभ्रमिम् । सोपद्रवं  
कोष्ठरुजं नाशयेत् सत्यमेव हि ॥ २०८ ॥  
अर्शासि कामलां मेहं शयथुं शूलमुल्म-  
णम् । एतद्धि वृंहणं वृष्यं सर्वरोगनिर्ह-  
णम् ॥ २०९ ॥ वशीरुणमेतद्धि पुष्ययोगे  
विपाचयेत् । ग्रहणीमिहिरं नाम तैल  
भुवनमद्गलम् ॥ २१० ॥

धनियां, घाय के फूल, लोध्र, पुईपुई,

अतीस, हृद्, खस, नागरमोषा, सुगंधवाला, मोचरप, रसौत, बेलगिरी, नीलकमल, तेजपात, नागकेसर, कमल की केसर, गिलोय, इन्द्रजौ; निभोत, पद्माप, कुटुकी, तगर, जटामांसी, भूंगराज, केशराज, साँठी, ग्राम की छाल, जामुन की छाल, कदंब की छाल, कुड़े की छाल, भजवा-इन और जीरा प्रायःक एक-एक तोला, इनका कलक बनाकर तिलों के १२८ तोले तेल में मिलाकर ६ सेर ३२ तोला तक्र के साथ अथवा कुड़े की छाल के काय के साथ, अथवा धनियाँ के काय के साथ अथवा दोषानुसार कल्पित ग्रहणीरोगनाशक किसी अन्य औषध के काय के साथ, धीमी आँच पर यथाविधि पाक करके तैल सिद्ध करे । यह श्रेष्ठ रसायन है, बली ( फुरी ) और पलित ( बाल सफेद होना ) का नाशक है । इस तैल का मर्दन करने से सब प्रकार के अतीसार, ग्रहणी-रोग, ज्वर, तृष्णा, कास, हिचकी, श्वास, वमन, भ्रमि ( चकर आना ), उपद्रवयुक्त कोष्ठशूल, बवासीर, कामला, प्रमेह, शोथ और प्रमल शूल ये सब शान्त होते हैं । यह तैल बल-धीर्य-वर्षक और सर्वरोगनाशक है । पुष्य नक्षत्र में इस तैल को सिद्ध करना चाहिये । यह वशीकरण है एवम् यह ग्रहणीमिहिर नामक तैल समस्त संसार के लिये मंगल-दायक है ॥ २०२-२१० ॥

बृहद्ग्रहणीमिहिरतैल ।

तैलं प्रस्थमितं ग्राह्यं तक्रं दद्यात्तुर्गुणम् । कुटजं धान्यकञ्चैव ग्राह्यं पलशतं पृथक् ॥ २११ ॥ तयोःकाथं पचेद् द्रोणे अम्बुपादावशेषितम् । एकीकृत्य पचेद्द्वैधः कलकं कर्षमितं पृथक् ॥ २१२ ॥ धान्यकं धातकी लोभ्रं समद्गातिविषा शिवा । लवङ्गं बालकञ्चैव शृङ्गाटकरसाञ्जनम् ॥ २१३ ॥ नागपुष्पं पद्मकञ्च गुडूचीन्द्रयवं तथा । प्रियङ्गुकडुकीपद्मकेशरं तगरं तथा ॥ २१४ ॥ शरमुलं भृङ्गराजः

केशराजः पुनर्नवा । आम्रजस्युकदम्बानां बल्कलानि च दापयेत् ॥ २१५ ॥ ग्रहणीं हन्ति तच्छ्रीघ्रं बलीपलितनाशनम् । हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ ११६ ॥ ज्वरं तृष्णां तथा श्वासं कासं हिकां वमिं भ्रमिम् । सोपद्रवं कोष्ठरुजं नाशयेत् सद्य एव हि ॥ २१७ ॥ वशीकरणमेतद्धि पुष्ययोगेन पाचयेत् । ग्रहणीमिहिरं नाम तैलं भुवनमङ्गलम् ॥ २१८ ॥

तिलों का तैल १२८ तोले, तक्र ११२ तोले, काय के लिये कुड़े की छाल ५ मेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे, ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर उतारकर बल से छानकर काय को रख लेवे । इसी प्रकार ५ सेर धनियाँ को, २५ मेर ४८ तोला जल में पकावे, ६ सेर ३२ तोला जल अबशिष्ट रहने पर उतारकर छान लेवे । पश्चात् तैल, तक्र और इन दोनों औषधों के कायों को एकत्र मिलावे । तदनन्तर धनियाँ, धाय के फूल, लोध, छुईमुई, अतीस, हृद्, लौंग, सुगंधवाला, सिंघाड़ा, रसौत, नागकेसर, पद्माल, गिलोय, इन्द्रजौ, प्रियंगु, बटुकी, कमल की केसर, तगर, सरपते की जड़, भूंगराज, केशराज, साँठी, ग्राम की छाल, जामुन की छाल और कदंब की छाल, इनमें से प्रत्येक का एक-एक तोला कलक मिलाकर धीमी आँच पर पकाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल का मर्दन करने से बली-पलित, हर प्रकार के अतीसार, नामा प्रकार के ग्रहणीरोग, ज्वर, तृष्णा, श्वास, कास, हिचकी, वमन, भ्रमि और उपद्रवयुक्त कोष्ठशूल यह सब तत्काल नष्ट होते हैं । यह तैल वशीकरण है । इसको पुष्य-नक्षत्र में सिद्ध करना चाहिए । यह ग्रहणीमिहिर नामक तैल समस्त संसार के लिये श्रेयस्कर है ॥ २११-२२० ॥

दाडिमादितैल

दाडिमत्वग्जलं धान्यं वत्सकस्य

त्वचस्तथा । प्रत्येकाढकं ग्राह्यं जलद्रोणे  
पचेत् पृथक् ॥ २२१ ॥ चतुर्भागावशिष्टन्तु  
तक्रमाढकसम्मितम् । पचेत्तैलाढके धीमान्  
गर्भं दत्त्वा भिषग्वरः ॥ २२२ ॥ त्रिकटु  
त्रिफला मुस्तं चव्यजीरकसैन्धवम् । चातु-  
र्जातं मधुरिकामांसी च देवपुष्पकम् ॥ २२३ ॥  
जातीकोपफले धान्यं यमान्यौ बालकं  
तथा । कञ्चयातिविपा भेकी मृद्गाढं वृहती-  
द्वयम् ॥ २२४ ॥ आम्रजम्बू त्रचः पण्यौ-  
समङ्गेन्द्रयवं वरी । धातकी विल्वमोचञ्च  
मुपली वस्सकं बला ॥ २२५ ॥ श्वद्रंष्ट्रा-  
लोध्रपाठाश्च काष्ठं खादिरमेव च । अमृता  
शाल्मलीत्वक् च सर्वमर्द्धपलोन्मितम् ॥  
२२६ ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन साधयेन्मृदु-  
नाग्निना ग्रहणीं हन्ति दुर्बारां प्रमेहानपि  
विंशतिम् । अर्शांसि पङ्क्तिधान्येव नाश-  
येन्नात्र संशयः ॥ २२७ ॥

अनार की छाल, धनियाँ, कुड़ा की छाल,  
प्रत्येक ३ सेर १६ तोला ; इनको पृथक्-पृथक्  
२५ सेर ४८ तोला जल में पका करके  
चतुर्भागावशिष्ट काथ बना लेवे । तथा तक्र ६  
सेर ३२ तोला और तिलों का तैल १ सेर ३२  
तोला ; इन द्रव्यों को मिश्रित करे । पत्रात्  
मोंठ, मिर्च, पीपल, छाविला, हरक, बहेड़ा,  
नागरमोथा, चव्य, जीरा, सेंधा नमक, टाल-  
चीनी, छोटी इलायची के बीज, तेजपात, नाग-  
केसर, मौक, जटामांसी लींग, जायित्री, जाय-  
फल, धनियाँ, अन्नघाहन, अजमोद, सुगंधवाला,  
जल की चौराई, अनीस, मंहुकपर्णी, सिपाहा,  
छोटी बटेरी, बड़ी बटेरी, आम की छाल,  
जामुन की छाल, शालपर्णी, गृहपर्णी, पुईपुई,  
इन्द्रभी, शनापति, आम के दूब, बेलगिरी,  
मोघास, कालीमूसली, कुड़े की छाल, गरंठी,  
गोगुद, गोध, पाडी, नैर की लकड़ी, मिलाय  
और नेमर की छाल इन बीजों को दो-दो

तोले लेकर चावलों के जल के साथ पीसकर  
कलक बनावे । इस कलक को मिलाकर धीमी  
आँच में पकाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे ।  
इस तैल का मर्दन करने से दुःसाध्य ग्रहणीरोग,  
२० प्रकार के प्रमेह और ६ प्रकार के बवासीर  
निःस्सदेह नष्ट होते हैं ॥ २२१-२२७

विल्वगर्भघृत ।

मसूरस्य कपायेण विल्वगर्भं पचेद्  
घृतम् । हन्तिकुच्यामयान् सर्वान् ग्रहणी-  
पाण्डुकामलाः ॥ २२८ ॥ केवलं व्रीहि-  
प्राण्यङ्गकाथो व्युष्टस्तु दोषतः ॥ २२९ ॥

गो घृत ४ सेर, काथार्थं मसूर की दाल  
४ सेर, जल ६४ सेर, अवशिष्ट काथ, १६  
सेर, कलक, बेलफल की गिरी १ सेर इनसे  
यथाविधि घृतपाक करके कुष्ठिरोग, ग्रहणी,  
पाण्डु, कामला आदि में रोगी को सेवन  
कराना चाहिये । घृतपाक में व्रीहि तथा मांस  
आदि का काथ तत्काल बनाना चाहिये । नहीं तो  
यासी होकर दोषों को कुपित करता है । मात्रा  
६ माशा १ तोला ॥ २२१-२२७ ॥

विल्वादि घृत ।

विल्वाग्निचन्यार्द्रकमृद्भवेरकाथेन कल्केन  
च सिद्धमाज्यम् । सच्छ्रागदग्धं  
ग्रहणीगदोत्थशोथाग्निमान्यारुचिनुद्वरि-  
ष्टम् ॥ २३० ॥

गो घृत ४ सेर, काथ के लिये विषय, पिप्रक,  
चव्य, अदरक, सोंठ मिलाकर ८ सेर, जल  
४८ सेर, काथ १२ सेर, बकरी का दूध ४ सेर,  
कलक के लिये बिल्वादि काथ के द्रव्य मिलाकर  
१ सेर, इस घृत के सेवन से ग्रहणी तथा उससे  
उत्पन्न होनेवाली मूत्रन, मन्दाग्नि, अग्नि आदि  
उपद्रव शीघ्र नष्ट होते हैं । मात्रा ६ मशा १  
तोला ॥ २२८ ॥

मरिचिघृत ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली

तथा । भल्लातकं यमानी च विडङ्गं हस्ति-  
पिप्पली ॥ २२६ ॥ हिङ्गु सौवर्चलश्चैव  
विडसैन्धवचव्यकम् । साधुदं सयवचारं  
चित्रको वचया सह ॥ २३० ॥ एतैरर्द्ध-  
पलैर्भागैर्वृतमस्थं विपाचयेत् । दशमली-  
रसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ २३१ ॥  
मन्दाग्नीनां हितं श्रेष्ठं ग्रहणीदोपनाशनम् ।  
विष्टम्भमामदौर्वल्यं स्त्रीहानश्चापकर्षति ॥  
२३२ ॥ कासं श्वासं क्षयश्चापि दुर्नाम  
सभगन्दरम् । कफजान् हन्ति रोगांश्च घात-  
जान् कृमिसम्भवान् । तान् सर्वांश्चाश-  
यस्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा ॥ २३३ ॥

घी १०८ तोले, दशमूल का षाथ २५६  
तोले, दुग्ध २५६ तोले, इन सब द्रव्यों को और  
नीचे लिखे औषधों के कल्क को भी एकत्र  
मिलाकर घीमी आँच पर घृत सिद्ध करे ।

कल्क द्रव्य—मिर्च, पिपरामूल, सोंठ, पीपल,  
भिलावाँ, अजवाइन, बायथिङ्ग, गजपीपल, हॉंग,  
काला नमक, विड नमक, लाहौरी नमक,  
चव्य, समुद्र लवण, जवाखार, चीते की जड़  
और बच प्रत्येक औषध दो-दो तोले लेकर चूर्ण  
करके ढाल दे । इस घृत का पान करने से  
अग्निमान्य, ग्रहणीरोग, विष्टम्भ, आम, दुर्ब-  
लता, प्रीहा, कास, श्वास, क्षय, ववासीर,  
भगंदर, श्लेष्मिक रोग, वातिक रोग और कृमि-  
जन्य रोग नष्ट होते हैं । शाग जैसे शुष्क हृषण  
को दग्ध करती है वैसे ही यह घृत उन सब  
रोगों को नष्टकर नष्ट करता है । मात्रा ६ माशा-  
१ तोला ॥ २२६-२३३ ॥

महापट्पल घृत

सौवर्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं ह्युपं विडम् ।  
अजमोदां यवचारं हिङ्गु जीरकमौद्भि-  
दम् ॥ २३३ ॥ कृष्णाजार्जीं सभूतीकं  
कल्कीकृत्य पलार्द्धकम् । आर्द्रकैरुपरसं

चुकं क्षीरमस्त्वारनालकम् ॥ २३५ ॥ दश  
मूलकपायेण घृतमस्थं विपाचयेत् । भक्तेन  
सह पातव्यं निर्भक्तं वा विचक्षणैः ॥  
२३६ ॥ कृमिस्त्रीदोदराजीर्णज्वरकुष्ठ प्रगा-  
हिकाः । पाण्डुरोगं क्षयं कासं दौर्वल्यं  
ग्रहणीगदम् ॥ महापट्पलकं नाम्ना वृक्ष-  
मिन्द्राशनिर्यथा ॥ २३७ ॥

घृत १२८ तोले, अदरक का स्वरस १२८  
तोले, चुक १२८ तोले, दूध १२८ तोले, दही  
का पानी १२८ तोले, कर्जी १२८ तोले,  
और दशमूल का षाथ १२८ तोले ; इन द्रव्यों  
को और नीचे लिखे औषधों के कल्क को भी  
एकत्र मिलाकर, घीमी आँच से पकाकर यथा-  
विधि घृत सिद्ध करे ।

कल्क द्रव्य—काला नमक २ तोले, पञ्चकोल  
( पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीते की जड़ और  
सोंठ ) की समस्त औषधियों को मिलाकर २  
तोले, लाहौरी नमक, हाऊवेर, विड नमक,  
अजमोद, जवाखार, हॉंग, जीरा, खारी नमक,  
कर्लीजी और अजवाइन, इनमें से प्रत्येक औषध  
को दो-दो तोले लेकर चूर्ण करके ढाल दे । मात  
के साथ इस घृत का सेवन करे अथवा क्वल घृत ही  
का सेवन करे । इस महापट्पलक नामक घृत का  
सेवन करने से वज्राहत वृक्ष के समान कृमि,  
प्लीहा, उदर, अजीर्ण, ज्वर, कुष्ठ और प्रवाहिका  
रोग तत्काल नष्ट होते हैं । मात्रा ६ माशा १  
तोला ॥ २३४-२३७ ॥

चाङ्गेरी घृत ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्ति-  
पिप्पली । रसदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं विट्वां  
पाठा यमानिका ॥ २३८ ॥ चाङ्गेरी-  
स्वरसे सर्पिकल्कैरेतैर्विपाचयेत् । चतुर्गुणेन  
दधना च तद्घृतं कफवातनुत् ॥ २३९ ॥  
अर्शापि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं मवाहि-

काम् । गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपो-  
हति ॥ २४० ॥

( दधिसाहचर्याच्चाङ्गेरीस्वरसश्चतु-  
र्गुणः । )

घृत ६४ तोले, चाङ्गेरी ( चौपतिया ) का  
स्वरस २२६ तोले और दही २२६ तोले, इन  
द्रव्यों को और नीचे लिखे औषधों के ककक को  
एकत्रकर, धीमी आँच में पकाकर यथाविधि  
घृत मिद्ध करे ।

फलकार्यद्रव्य ।

सोंठ, पिपरा मूल, चीता, गजपीपल, गोलुम्,  
पीपल, धनियाँ, बेलगिरी, पाठी और अजवाइन,  
सम भाग इन औषधों को मिलाकर १६ तोले  
लेवे । यह घृत वात और कफनाशक है । इसका  
पान करने से बवासीर, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र,  
प्रवाहिका, गुदभ्रश और आनाह रोग नष्ट होते  
हैं ॥ २३८-२४० ॥

रस-प्रयोग ।

अग्निकुमार रस ।

रसं गन्धं विषं व्योषं टंगनं लौह-  
भस्मकम् । अजमोदाहिफेनञ्च सर्वतुल्यं  
मृताभ्रकम् ॥ २४१ ॥ चित्रकस्य कपायेण  
मर्दयेद् याममात्रकम् । मरिचाभां वर्तौ  
खादेदजीर्णं ग्रहणीं तथा । नाशयेन्नात्र  
सन्देहो गुह्यमेतच्चिकित्सितम् ॥ २४२ ॥

पारा, गन्धक, विष, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च,  
पीपल ), सोहागा फूला हुआ, लौह-भस्म, अज-  
मोद और अफीम प्रत्येक समभाग और सबके  
समान अग्रक-भस्म लेवे । इन औषधों को पीते  
की जड़ के साथ में एक प्रहरपर्यंत घोटकर मिर्च  
के समान घटी बनावे । इसका सेवन करने से  
अजीर्ण और ग्रहणीरोग निःसंदेह नष्ट होते हैं ।  
यह योग गुप्त है । मात्रा १-२ रत्ती ॥ २४१-  
२४२ ॥

स्वल्पग्रहणीकपाट रस ।

दरदं गन्धपापाणं तुगाक्षीर्यहिफेन-  
कम् । तथा वराटिकाभस्म सर्वं क्षीरेण  
मर्दयेत् ॥ २४३ ॥ रत्त्रिकायुग्ममानेन  
छायाशुष्कां वर्तौ चरेत् । ग्रहणीं विविधां  
हन्ति रक्तातीसारमुल्वणम् ॥ २४४ ॥

हिगुल, गंधक, वंशलोचन, अफीम और कौडी  
की भस्म, इन औषधों को समभाग लेकर दुग्ध  
में घोटकर दो-दो रत्ती की घटी बनाकर छाया  
में शुष्क कर लेवे । यह घटी विविध प्रकार के  
ग्रहणी-रोग और तीव्र रक्तातीसार को नष्ट करती  
है ॥ २४३-२४४ ॥

ग्रहणीकपाट रस ।

रसगन्धकयोश्चापि जातीफललव-  
ङ्गयोः । प्रत्येकं शाणमानञ्च श्लक्ष्ण-  
चूर्णीकृतं शुभम् ॥ २४५ ॥ सूर्यावर्त्तरसे-  
नैव विल्वपत्ररसेन च । शृङ्गाटकस्य पत्राणां  
रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ २४६ ॥ चण्डा-  
तपेन संशोष्य वटिकां कारयेद्भिपक ।  
विल्वपत्ररसेनैव दापयेद्रत्त्रिकाद्वयम् २४७  
दधना च भोजनीयञ्च ग्रहणीरोगनाशनः ।  
पाण्डुरोगमतीसारं शोथं हन्ति तथा  
ज्वरम् । ग्रहणीकपाटनामा रसः परमदु-  
र्लभः ॥ २४८ ॥

पारा, गंधक, जायफल और लौह प्रत्येक को  
तीन-तीन माश लेकर महीन घुण्ट करे ।  
तदनंतर सूर्यावर्त ( सूर्यमुर्ति ), विल्वपत्र और  
सिंघाड़ा की पत्तियाँ, इन में से प्रत्येक के चार-  
चार तोले रस में घोटकर, दो-दो रत्ती की  
गोलियाँ बनाकर तेज घुण्ट में शुष्क करे । विल्व-  
पत्र के रस के साथ चयया दही के साथ सेवन  
कराना चाहिये । यह रस ग्रहणी-रोग, पाण्डु  
रोग, अतीसार, शोथ और ज्वर को नष्ट करता  
है । यह ग्रहणीकपाट नामक रस परम दुर्लभ  
है ॥ २४५-२४८ ॥

बृहद्ब्रह्मणीकपाट रस ।

टङ्गनक्षारगन्धाश्मरसं जातीफलं तथा ।  
चिल्वं खदिरसारश्च जीरकं श्वेतधुनकम् ॥  
२४६ ॥ कपिहस्तकवीजश्च तथैव वक-  
पुष्पिका । एषां शाखं समादाय श्लक्ष्ण-  
चूर्णानि कारयेत् ॥ २५० ॥ विव्वपत्र-  
ककार्पासफलं शालिश्चदुग्धिका । शालिश्च  
मूलं कुटजत्वचः कश्चटपत्रकम् ॥ २५१ ॥  
सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।  
रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद्दिवसत्रयम् ॥  
२५२ ॥ दधिमस्तु ततः पेयं पलमात्र-  
प्रमाणतः । अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणी-  
मुदतां जयेत् ॥ २५३ ॥ आमशूलं ज्वरं  
कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम् । रक्तस्राव-  
करं द्रव्यं कार्यं नैवात्र युक्तितः ॥ २५४ ॥  
कृष्णवार्ताकुमत्स्यञ्च दधितक्रञ्च शस्यते ।  
ज्ञात्वा वायोः कृतिं तत्र तैलं वारि च दाप-  
येत् ॥ २५५ ॥

सोहागा की खील, जवाखार, गन्धक, पारा,  
जायफल, खदिर ( खैर ), जीरा, श्वेत राल,  
कीच के बीज और वकपुष्प ( अगस्त्य के फूल ),  
इनको तीन-तीन भासे लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे ।  
तदनंतर विल्वपत्र कपास के फल, शालिञ्जशाक,  
दूधिया, शालिञ्जशाक की जड़, कुड़ा की छाल  
और जलचौराई की पत्तियाँ, इन सबके रस में  
घोटकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे ।  
एक गोली खाकर चार तोले दही का पानी  
पीना चाहिये । जो सैकड़ों योगों से शांत नहीं  
हुआ है, उस प्रयत्न ग्रहणीरोग को यह रस केवल  
तीन दिन में जीतता है । यह रस आमशूल,  
ज्वर, कास, श्वास, शोथ और प्रवाहिका रोग  
को भी नष्ट करता है । इस रस का सेवन करने-  
वाले रोगी को रक्तस्रावजनक द्रव्यों का सेवन न  
करना चाहिये । काला रोगन, मण्जरी, दही और

सक ये लाभदायक हैं । वायु की विकृति प्रतीत  
होने पर तैल और जल का उपयोग करना  
चाहिये ॥ २४६-२५५ ॥

बृहद्ब्रह्मणीकपाट ।

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागि-  
कम् । द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो  
मर्दयेदिमान् ॥ २५६ ॥ कपित्थस्वरसै-  
र्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत् । पुटेन्मध्य-  
पुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ २५७ ॥  
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गसरसैस्त्रिधा ।  
लोध्रप्रतिविपामुस्तधातकीन्द्रयवाऽमृताः ॥  
२५८ ॥ प्रत्येकमेतत् स्वरसैर्भाविना स्यात्  
त्रिधा त्रिधा । द्विगुञ्जाप्रमितो देवो मधुना  
मरिचैस्तथा ॥ २५९ ॥ हन्ति सर्वान-  
तीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि । कपाटो  
ग्रहणीरोगे रसोऽयं बह्विदीपनः ॥ २६० ॥

चाँदी, मोती, सोना और लौह प्रत्येक एक-  
एक भाग, गन्धक २ भाग, पारा ३ भाग इनको  
कपित्थ ( कैथा ) की पत्तियों के रस में भली  
भाँति घोटकर मृग की सींग में भरकर, गजपुट  
में फूंक देवे । तदनन्तर निकालकर खरौटी के  
रस की ७ भावना, चिरचिरा के रस की ३  
भावना, लोध्र, अतीस, नागरमोथा, धाय के  
फूल, इन्द्र जौ और गिलोय इनमें से प्रत्येक के  
रस अथवा घाथ की तीन भावना देकर, दो-  
दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । इन्हें मधु और  
मिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिये ।  
यह बृहद्ब्रह्मणीकपाट-रस सब प्रकार के अतीसार,  
सकल-दोष-जन्य ग्रहणी-रोग को नष्ट करता है  
और अभिन को दीपन करनेवाला है २५६-२६०

संभ्रह्मणीकपाट ।

मुक्तामुवर्णं रसगन्धटङ्गमभ्रं कपर्दी-  
ऽमृततुल्यभागः । सर्वैः समं शङ्ककचूर्ण-  
मत्र खल्ले च भाव्योऽतिविपाद्रवेण ॥

२६१ ॥ गोलञ्च कृत्वा मृदुर्कपर्पटस्थं  
सम्पाच्य भाण्डे दिवसार्द्धकञ्च । सर्वाङ्ग-  
शीतोरस एष भाव्यो धुस्तूरवह्न्योर्मुषलीश्र-  
वैश्च ॥ २६२ ॥ लौहस्य पात्र परिभावि-  
तश्च सिद्धो भवेत् संग्रहणीकपाटः ।  
वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तः पित्तोत्तरायां  
मधुपिप्पलीभिः ॥ २६३ ॥ कफोत्तरायां  
विजयारसेन कटुत्रयेणाज्ययुतो ग्रहणायाम् ।  
क्षयज्वरे चार्शसि पट्प्रकारे मान्धातिसारे-  
ऽरुचिपीनसे च ॥ २६४ ॥ मेहे च कृच्छ्रे  
गतधातुवर्द्धने गुञ्जाद्वयञ्चापि महामय-  
घ्नम् ॥ २६५ ॥

मोती, सुवर्ण, पारा, गन्धक, सोहागा फूला  
हुआ, अभ्रकभस्म, कौड़ी का भस्म और विप  
धर्येक सम भाग और सबके समान शंख-भस्म,  
इन औषधों को मिलाकर, खरल में घतीस के  
काड़ा की भावना देकर, भली भाँति घोटकर,  
एक गोला बना लीये । उस गोला को कपड़ा में  
लपेटकर, पात्र में रखकर, दो ग्रहणपर्यंत पुट-पाक  
करे । सर्वांग शीतल होने पर गोला को निकाल-  
कर, लौह के पात्र में रखकर, धतूर, चीता  
और मुसली के रस की भावना देकर, दो-दो  
रत्ती की गोलियाँ बना लीये । धातु-प्रधान ग्रहणी  
रोग में मिर्च के चूर्ण और घृत के साथ, पित्त-  
प्रधान ग्रहणी रोग में मधु और पीपल के चूर्ण  
के साथ, कफ-प्रधान ग्रहणीरोग में भाँग की  
पत्तियों के रस के साथ, अथवा त्रिकटु ( सोंठ  
मिर्च और पीपल ) के चूर्ण और घृत के साथ  
सेवन करे । अथवा ज्वर, ६ प्रकार के चयात्मीर,  
अग्निमान्द्य, अतीसार, अरुचि, पीनस, प्रमेह,  
मूत्रकृच्छ्र और धातु-क्षीणता में दो-दो रत्ती-  
मात्र प्रयोग करने से धरयन्त लाभ करता है ।  
यह संग्रह-ग्रहणी-कपाट-रस अत्यंत असाध्य रोगों  
को नष्ट करता है ॥ २६१-२६५ ॥

ग्रहणीकपाट रस ।

गिरिजाभवनीजकज्जलीपरिमर्द्याद्रेरसेन

शोपिता । कुटजस्य तु भस्मना पुनर्द्विगुणे-  
नाथ विमर्द्य मिश्रिता ॥ २६६ ॥ मर्दयित्वा  
प्रदातव्यमस्य गुञ्जाचतुष्टयम् । अजात्नी-  
रेण दातव्यं काथेन कुटजस्य वा ॥ २६७ ॥  
यूपं देयं मसूरस्य वारिभक्तञ्च शीतलम् ।  
दध्ना सह पुनर्देयं त्रासादौ रक्त्तिकाद्व-  
यम् ॥ २६८ ॥ वर्द्धयेद्दशपर्यन्तं हासयेत्  
क्रमशस्तथा । निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशे-  
पात् कुत्तिमार्दवम् ॥ २६९ ॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, इनकी  
कज्जली करके अदरल के रस से मर्दन कर धूप  
में सुखा लो । पश्चात् कुट्टे के छाल की राख  
४ भाग को उसमें मिलाकर जल से अच्छी  
प्रकार घोटना चाहिये । साधारण मात्रा-४ रत्ती,  
अनुपान-थकरी का दूध, कुटा की छाल का  
काथ । पथ्य-मसूर का यूप, वारिभक्त, दही ।  
इसके सेवन का धियोप नियम यह है कि प्रथम  
२ रत्ती मात्रा में सेवन कर क्रम से शरीर-शरीरः  
१० रत्ती तक बढ़ाये । पश्चात् क्रम से घटाना  
चाहिये । यह रस सब प्रकार की ग्रहणी को  
नष्ट करता है, विशेषतः कोष्ठ को शुद्ध करता  
है ॥ २६६-२६९ ॥

दूसरा ग्रहणीकपाट रस ।

श्वेतसर्जस्य शुद्धस्य गन्धकस्य रसस्य  
च । शोभेऽङ्गि पृथगादाय चूर्णं मापचतुष्ट-  
यम् ॥ २७० ॥ एकीकृत्य शिलाखल्ले  
दद्यात्तेषां तदा रसम् । सूर्यावर्त्तस्य विल्वस्य  
मृद्गाटस्य च पत्रजम् ॥ २७१ ॥ प्रत्येकं  
पलमेकैकं दापयेद् ग्रहणीगदे । दापयित्वा  
ततोपरनाद् दधिभक्तं समाचरेत् ॥ २७२ ॥  
असंश्रुतगुदद्वारं कपाटामेव ढकयेत् ।  
अतरच ग्रहणीरोगे कपाटोऽयं रसः  
स्मृतः ॥ २७३ ॥

पारा ४ मासे, गन्धक ४ मासे, इनकी कजली करके सफेद राल का चूर्ण ४ मासे मिलाये, उसके बाद क्रमशः सूरजमुत्ती, धेल, सिघाढा इनके पत्तों के ८ तोले रस से मर्दन करे। ४ रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान-वेल के पत्तों का रस। इसके सेवन के कुछ काल बाद दही, चावल का भोजन करना चाहिये। चूंकि यह ग्रहणी रोग में दस्तों में आते हुये मल की किवाड़ की तरह रोक देता है। अतएव इस रस का नाम ग्रहणी-कपाट है ॥ २७०-२७३ ॥

जातीफलादि घटी ।

जातीफलं टङ्गनमभ्रकञ्च धुस्तूरीजं  
समभागचूर्णम् । भागद्वयं स्यात् फणि-  
फेनकस्य गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥  
२७४ ॥ चणप्रमाणा वटिका विधेया  
मधुप्रयुक्तां ग्रहणीगदेषु । रोगेषु दद्यादनु-  
पानभेदैर्युक्त्या विदध्यादतिसारवत्सु ॥  
२७५ ॥ सामेषु रक्तोपे सशूलकेपु पक्के ध्व-  
पकेषु गुदामयेषु । पथ्यं सदध्योदनमत्र  
देयं रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥ २७६ ॥

जायफल, सोहागा फूला हुआ, अभ्रक-भस्म और धतूरे के बीज प्रत्येक एक-एक तोला और अफीम २ तोले, इन द्रव्यों को एकत्र खरल करके फिर गंध प्रसारणी ( गंधपसारन ) की पत्तियों के रस की भावना देकर, खरल करके घना के समान गोलियाँ बनावे। ग्रहणी रोग में मधु के साथ सेवन करे और अन्य रोगों में दोपानुसार अनुपान के साथ प्रयोग करना चाहिये। साम, रक्त और शूल-युक्त पक्के अथवा अपक्के, अतिसार-रोग में तथा बवासीर में यह ग्रहणीकपाट रस अत्यंत लाभदायक है। भोजन के लिए दही और भात देना चाहिये ॥ २७४-२७६ ॥

शूद्रजातीफलादिघटी

विशुद्धसूतस्य च गन्धकस्य प्रत्येकशा

१ ग्रन्थान्तरे च अभ्रस्य सूतस्य चेति पाठः ।

मध्ये सुकज्जलीं वैद्यवरः प्रयत्नात् ॥२७७॥  
जातीफलं शाल्मलिवेष्टमुस्तं सञ्जनं साति-  
मापचतुष्टयं तु । त्रिधाय शुद्धोपलपात्र-  
विषं सजीरम् । प्रत्येकमेपां मरिचस्य शाण-  
प्रमाणमेकं विषमापकञ्च ॥ २७८ ॥ वि-  
चूर्य सर्वाण्यवलोज्य पश्चाद् विभाव-  
येत् पत्रभर्वैरमीषाम् । रसै रसोन्मानमितै  
रसालवंशौ च भद्रोत्कटकञ्चटौ च ॥२७९॥  
इन्द्रालिकेन्द्राशनकं सजम्बु जयन्तिका  
दाडिमकेशराजौ । अविद्धकर्णापि च भृङ्ग-  
राजो विभाव्य सम्यक् वटिका विधेया ॥  
२८० ॥ वल्लप्रमाणा च बहुप्रकारं सामं  
निहन्त्यत्र यथानुपानम् । कुर्याद्विशेषादन-  
लावलम्यं कासञ्च पश्चात्सकमम्लपित्तम् ॥  
२८१ ॥ इयं निहन्ति ग्रहणीं प्रहृदां  
मर्त्यस्य जीर्णग्रहणीमसाध्याम् । चिरो-  
द्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं शोथं समग्रं गुदजा-  
नसाध्यान् ॥ २८२ ॥ आमानुबद्धन्वति-  
सारमुग्रं जयेत् भृशं योगशतैरसाध्यम् ।  
विवर्जनीयास्तिवह भृष्टमत्स्या मत्स्यस्तथा-  
पाण्डुरवर्ण एव ॥ २८३ ॥ रम्भाफलं  
मूलमथोदनं च बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र ।  
जातीफलाद्या वटिका विधेया यशोऽर्थिनो  
वैद्यवरस्य हृद्या ॥ २८४ ॥ अनेकसम्भा-  
वितमर्त्यलोका नानाविधव्याधिपयोधि-  
नौका ॥ २८५ ॥

पारा ४ मासे, गन्धक ४ मासे, इनको भली भाँति घोटकर उत्तम कजली बनावे। पश्चात् जायफल, मोचरस, नागरमोथा, सोहागा फूला हुआ, अतीस, जीरा और मिर्च प्रत्येक ४ मासे और विष १ मास, इन द्रव्यों को एकत्र मिलाकर खरल करे। तदनंतर आम, बाँस, गन्धप्रसा-



रिणी, जलचौराई, सँभालू, भाँग, जामुन, जयन्ती, अन्नार, केसराज, पाद और भृंगराज इनकी पत्तियों की भावना देकर और घोटकर दो-दो रत्ती की मात्रा में गोलियाँ बनावे । अनुपानधियोप के साथ प्रयुक्त होने पर अनेक प्रकार के आम-शोष पुत्र विकार को नष्ट और अभिन्न को दीप्त करती है । पाँच प्रकार के कासरोग, अम्लपित्त, अत्यत यथा हुष्मा जीर्ण और असाध्य ग्रहणी-रोग, भिरंतन संग्रह-कोष्ठ-दुष्टि, मय प्रकार के शोष, सय प्रकार के असाध्य अवासीर और सैकड़ों योगों से शान्त न होने-वाला, आमयुक्त उग्र अतीमार इन सब रोगों को शान्त करती है । इस घटी के सेवन करनेवाले रोगी को भूनी मछली, खेत वर्ण की मछली, केला का फल, मूली और भात कदापि खाने के लिये न देवे । जीवन प्रदान करके, अनेक मनुष्यों को संतुष्ट करनेवाली, विविध प्रकार के रोगरूपी समुद्र से पार करने के लिए नौकारूप और ह्य (हृदय को लाभ करनेवाली) जाती-फलाय वटिका को, यथा चाहनेवाले वैद्य को बनानी चाहिये ॥ २७७-२८२ ॥

ग्रहणीशार्दूलवटिका ।

जातीफलं देवपुष्पमजाजीकुष्ठद्रुनम् ।  
विदं त्वगेलायत्तरं फणिकेनं समं समम् ॥  
२८६ ॥ मसारखीरसेनैव संमर्ध वटिका  
कृता । यथादोपानुपानेन सेविता ग्रहर्णा  
हरेत् ॥ २८७ ॥ नानावर्णमतीसारं  
दारुणां च प्रवाहिकाम् । नाम्ना ग्रहणी-  
शार्दूलवटिका ग्राहिणी परम् ॥ २८८ ॥

जायफल, लौंग, जीरा, कूट, सोहागा फूला हुष्मा, बिड नोन, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, धतूरे के बीज और अफीम ; इन द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर, गंधपसारन के स्वरस की भावना देकर, खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । दोपानुसार अनुपान के साथ इस ग्रहणीशार्दूलवटिका के सेवन करने से ग्रहणी, विविध प्रकार के अतीसार और दारुण

प्रवाहिका नष्टहोती है । यह घटी अत्यंत प्राहिणी है ॥ २८६-२८८ ॥

ग्रहणीगजेन्द्रवटिका ।

रसगन्धकलौहानि शङ्खद्रुनरामठम् ।  
शटीतालीशमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम् ॥  
२८६ ॥ धातपक्वतिविषा शुण्ठी गृह-  
धूमोहरीतकी । भल्लातकं तेजपत्रं जाती-  
फललवङ्गकम् ॥ २८७ ॥ त्वगेलावालकं  
विल्वं मेथी शक्राशनस्य च । रसैः संमर्ध  
वटिका रसवैद्येन कारिता ॥ २८९ ॥  
ग्रहणानन्दनाथेन भापितेयं रसायने ।  
ग्रहणीगजेन्द्रसंज्ञेयं श्रीमता लोकरक्षणे ॥  
२९२ ॥ ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वराती-  
सारनाशिनी । शूलगुल्माम्लपित्तांश्च  
कामलां च हलीमकम् ॥ २९३ ॥ बल-  
वर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषे ।  
कण्डू कुष्ठं विसर्पश्च गुदभ्रंशं कृमिं  
जयेत् ॥ २९४ ॥ गुञ्जाद्वयीं वटीं खादेच्छा-  
गीदुग्धानुपानतः । वयोऽग्निबलमावीक्ष्य  
युक्त्वा वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ २९५ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, शखभस्म, सोहागा फूला हुष्मा, हौंग, कचूर, तालीशपत्र, नागरमोधा, घनियाँ, जीरा, लाहरी नमक, धाय के फूल, अतीस, सोंठ, गृह-धूम ( घर के घूम का जाला ) हरद, भिचावाँ, तेजपात, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, सुगंधवाला, बेलगिरी और मेथी ; समभाग इन सब द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण कर ले । परचात् भाँग की पत्तियों के रस की भावना देकर भली भौंति खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । संसार की रचा के निमित्त रसायनप्रकरण में श्रीमान्

१ त्वगेलावालकं विष्वं मेथी शक्राशनं समम् ।

छागीदुग्धेन वटिका रसवैद्येन कारितेति ॥

पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ वटीगजेन्द्रसंज्ञेयामिति साधुः पाठः ।

महानानन्दजी ने इस ग्रहणीगर्जद्वयिका को कहा है । यह बटी विविध प्रकार के ग्रहणीरोग, पुरातिसार, शूल, गुल्म, अग्निलिप्त, कामला, हलीमक, खुजली कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और कृमिरोग को गृह्य करती है तथा बल, वर्ण, अग्नि और आयु को बढ़ानेवाली है । प्रारम्भ में २ रत्ती की मात्रा देनी चाहिये । बाद में अवस्था, अग्नि और बल के अनुसार क्रमशः न्यून अथवा वृद्धि करके यथोचित मात्रा की व्यवस्था कर सकते हैं । अनुपान—बकरी का दूध है ॥ २६६-२६६ ॥

महागन्धक ।

रसगन्धकयोः कर्पं ग्राहमेकं सुशो-  
धितम् । ततः कज्जालिकां कृत्वा मृदुपा-  
केन साधयेत् ॥ २६६ ॥ जात्याः फलं तथा  
कोपो लवङ्गारिष्टपत्रके । एतेषां कर्पमात्रेण  
तोयेन मह मर्दयेत् ॥ २६७ ॥ मुक्तागृहे  
पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् गुञ्जा-  
पटकप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ २६८ ॥  
एतत् प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम् ।  
ज्वरघ्नं दीपनञ्चैव बलवर्णप्रसादनम्  
॥ २६९ ॥ दुवारं ग्रहणीरोगं जयत्येव  
प्रवाहिकाम् । सूतिकाञ्च जयेदेतदपि वैद्य-  
विवर्जिताम् ॥ ३०० ॥ कासश्वासात्ति-  
सारघ्नं वाजीकरणमुत्तमम् । बालरोगं  
निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ३०१ ॥  
पिशाचा दानवा दैत्या बालानां ये विघ्ना-  
तकाः । यत्रौषधवरस्तिष्ठेत् तत्र सीमां  
त्यजन्ति ते ॥ ३०२ ॥ बालानां गदयु-  
क्तानां स्त्रीणाञ्चापि विशेषतः । महागन्धक-  
मेतद्धि मर्यव्याधिनिपूदनम् ॥ ३०३ ॥

रसगन्धकयोः प्रत्येकं कर्पः जाती-  
फलादीनामपि चतुर्णां प्रत्येकं कर्पः ।  
कज्जली जलेन पङ्कजम् कृत्वा लोहकटाहे

स्वेदयित्वा ततः सर्वमेकीकृत्य जलेन  
पिष्ट्वा एकस्मिन् मुक्तागृहे औषधं संस्थाप्य  
अपरेणाच्छाद्य कदलीपत्रेण वेष्टयित्वा घन-  
पङ्केनालिप्य करीपाग्नेर्मध्ये संस्थाप्य  
ग्रहिरारकता भवति तदैवाकृत्य ग्राह्यः ।  
यथा व्याध्यनुपानं रक्त्रिकाः पट् खाद्याः ।  
बालकानामुदरामयादावतिप्रशस्तम् ।

१ तोला शुद्ध पारा और १ तोला शुद्ध  
गन्धक की कज्जली बनाये । उसमें थोड़ा-सा  
जल डालकर, कीचड़ के समान गीला करके,  
लोह के तया पर रखकर, धीमी आँच से गरम  
करे । पश्चात् उसमें जायफल, जावित्री, लींग  
और निम्बपत्र का एक-एक तोला चूर्ण मिला-  
भर, जल के साथ खरल करके मोतियों की  
सीप में रखे । दूसरी सीप से आच्छादित  
करके केला की पत्ती लपेटकर सूत से बाँध देवे ।  
तदनन्तर ऊपर भली भाँति मिट्टी का लेप  
करके कोंडियों की आग में रखकर पुट-पाक करे ।  
जब बाहर कुछ रङ्गवर्ण प्रतीत होने लगे, तो  
आग से निकाल लेवे । शीतल होने पर औषध  
को परल करके रख लेवे । रोगानुसार अनुपान  
के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिये । मात्रा—  
२ रत्ती से बढ़ाकर ६ रत्ती तक देनी चाहिये ।  
यह बालकों के उदररोग आदि में अत्यन्त लाभ-  
दायक है । ज्वरनाशक, अग्निदीपन, बल और  
काण्ति का वर्धक है । असाध्य ग्रहणीरोग,  
प्रवाहिका, असाध्य सूतिकारोग, काम, श्यास,  
अतीसार और उपद्रवयुक्त बालरोग को तत्काल  
गृह्य करता है, तथा उत्तम वाजीकरण है ।  
पिशाच, दानव और दैत्य आदि जो बालकों  
के विघातक हैं, वे उस स्थान की सीमा की  
जहाँ यह औषध रहती है, छोड़ देते हैं । यह  
महागन्धक सब प्रकार के बालरोग और स्त्री-  
रोगों का महौषध है ॥ २६६—३०३ ॥

१ कुछ लोग इसका पाच बालरोगाधिकार में  
यदि तदुसरी विधिसे भी करते हैं । अथवा वे यह  
विधि अधिक उपयोगी प्रमाणित हुई है ।

श्रीवैद्यनाथवटिका ।

रसस्य शाणं संशुद्ध काञ्चिकेन तु शोधयेत् । चित्रकस्य रसेनापि त्रिफलायाश्च शुद्धिमान् ॥ ३०४ ॥ रसाद्धं गन्धकं शुद्धं भृङ्गराजरसेन वा । द्वाभ्यां संमूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसंमितैः ॥ ३०५ ॥ खल्लयेत्तु शिलाखल्ले क्रमशो वक्ष्यमाणजैः । निर्गुण्डीमण्डुकीरवेताकुचेलाग्रीष्मसुन्दरैः ॥ ३०६ ॥ भृङ्गाहकेशराजैश्च जयेन्द्राशानकोत्कटैः । सर्पपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥ ३०७ ॥ सामवातेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे प्लीहोदरेषु च ॥ वातरलेप्पधिकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ॥ ३०८ ॥ दधिमस्तु विनिक्षिप्य मर्दयित्वा यथाफलम् । दातव्या गुटिकाः सप्त रोगिण्ये ग्रहणीगदे ॥ ३०९ ॥ अम्बुतक्रादि सेवान्तु कुर्वीत स्वेच्छया बहु । श्रीमता वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा । स्वप्नान्ते ब्राह्मणस्येयं भाषिता लिखितापि च ॥ ३१० ॥

तीन माशे पारा को काँजी, चीता का रस और त्रिफला के काथ से शुद्ध करे । तदनंतर भाँगे के रस में शुद्ध किये हुए १॥ माशे गंधक को उक्त पारा में मिलाकर कजली बनावे । पश्चात् सैनालू, ब्राह्मी, सफेद कोयल, पादी, गुमा, भृङ्गराज, केशराज, जयन्ती, भौंग और सरपत के रस की भावना देकर खरल करके सरसों के समान वटी बनावे । ग्रहणीरोग, आमवात, अग्निमान्द्य, ज्वर, प्लीहा, उदर-रोग, वात-श्लेष्मिकरोग और श्लेष्मिक रोगों में इस वटी का प्रयोग करना चाहिये । ग्रहणी-रोग में ७ गोलीयों की एक मात्रा दूरी के तोड़ के अनुपान में देनी चाहिये । पर्य-हृच्छानुसार तरु आदि देवे ।

लोगों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले श्रीमान् वैद्यनाथजी ने स्वप्न के अंत में किसी ब्राह्मण को लेख द्वारा इस वटी का उपदेश किया था ॥ ३०४—३१० ॥

खसर्पणवटी ।

पक्वेष्टका हरिद्राभ्यामागारधूमकेन च । शोधितं पारदञ्चैव कर्पाद्धं तुलया धृतम् ॥ ३११ ॥ भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं रससम्मितम् । द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा भावयेत्तत्तु भेषजैः ॥ ३१२ ॥ सिन्धुवारदलद्रावैर्मण्डुकपर्णिकारसे । केशराजरसे चापि ग्रीष्मसुन्दरजे रसे ॥ ३१३ ॥ रसेऽपराजितायाश्च सोमराजीरसे तथा । रक्तचित्रकपत्रोत्थे रसे च परिभावितम् ॥ ३१४ ॥ रसमानसमानेन ह्यायायां शोषयेद्भिषक् । सर्पपाभाश्च गुटिकाः कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ ३१५ ॥ ततः सप्तवटीदद्याद्दधिमस्तुसमाप्लुताः । नित्यं दध्ना च भोक्तव्या कोष्ठदुष्टिनिवृत्तये ॥ ३१६ ॥ ग्रहणीमत्तिसारश्च ज्वरदोषश्च नाशयेत् । अग्निदाढ्यं करं श्रेष्ठमामर्षटिकाह्वयम् ॥ ३१७ ॥

पकी इंट का चूर्ण, हलदी का चूर्ण और गूह-धूम ( घर के धूम का जाला ) से शुद्ध किया हुआ पारा आधा तोला, भाँगरा के रस से शुद्ध किया हुआ गंधक आधा तोला, इनकी उत्तम कजली बनावे पश्चात् निर्गुण्डी, मडुकपर्णी ( ब्राह्मी ), भँगरैया, गुमा, अपराजिता ( विष्णुक्रान्ता ), बकुची और लालचीता, इनमें से प्रत्येक के आधे-आधे तोले रस की भावना देकर भलीभाँति खरल करे । तदनंतर सरसों के समान गोलीयों बनाकर सुला लेवे । दही के पानी में मिलाकर कोष्ठ के दोष की निवृत्ति के

लिये सात मात गोलियाँ का सेवन करे । प्रति-  
दिन दही के साथ भात खावे । यह आम पर्प-  
टिका बटी ग्रहणी-रोग, अतीसार और ज्वर को  
नष्ट करती है तथा सर्वोत्तम अग्नि-दीपन  
है ॥ ३१२-३१७ ॥

अभ्रवटिका ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्याभ्रकस्य  
च । प्रत्येकं कर्पमानं तु ग्राह्यं रसगुणै-  
पिणा ॥ ६१८ ॥ ततः कज्जलिकां कृत्वा  
व्योमचूर्णं प्रदापयेत् । केशराजस्य भृङ्गस्य  
निगुण्डयाश्चित्रकस्य च ॥ ३१९ ॥  
श्रीष्ममुन्दरकस्याथ जयन्त्याः स्वरसं तथा ।  
मरहूकपर्णयाः स्वरसं तथा शक्राशनस्यं  
च ॥ ६२० ॥ श्वेतापराजिताश्च स्वरसं  
पर्णसम्भवम् । दापयेत् तत्र तुल्यं च विधि-  
वत् कुशलो भिपक् ॥ ३२१ ॥ रसतुल्यं  
प्रदातव्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् । देयं रसा-  
र्द्धभागेन चूर्णं टङ्गनसम्भवम् ॥ ३२२ ॥  
शुभे शिलामये पात्रे घर्षणीयं प्रयत्नतः ।  
शुष्कमातपसंयोगाद्दृष्टिकां कारयेद्विपक् ॥  
३२३ ॥ कलायपरिमाणां तु खादेत्तां तु  
प्रयत्नतः । दृष्ट्वा वयश्चाग्निवर्लं यथाव्या-  
ध्यनुमानतः ॥ ३२४ ॥ हन्ति कासं क्षयं  
श्वासं वातरलेष्मभवं रुजम् । परं वाजी-  
करः श्रेष्ठो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ३२५ ॥  
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एव प्रयोगराट् ।  
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यतेऽभ्ररसायनात् ॥  
३२६ ॥ चातुर्थके ज्वरे श्रेष्ठः सूतिकात-  
ङ्गनाशनः । भोजने शयने पाने नास्त्यत्र  
नियमः क्वचित् । दधि चावश्यकं भक्ष्यं  
प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ३२७ ॥

( शुद्धरसकर्प १ शुद्धगन्धककर्प १  
कज्जलीं कृत्वा जारिताभ्रकर्प १ टङ्गनक्षार-  
मर्धतोलाकं मिश्रीकृत्य केशराजादीनां  
स्वरसकर्पेण भावयित्वा छायाशुष्कां वटीं  
कारयेत् । )

१ तोला पारा और १ तोला गंधक की  
कज्जली बनाकर, उसमें अभ्रक-भस्म १ तोला,  
मिर्च १ तोला, सोहागा फूला हुआ आधा तोला  
मिलाकर केशराज, भृंगराज, सँभालू, चीता,  
श्रीष्ममुन्दरशाक, जयन्ती, ग्राही, भोंग, श्वेत  
अपराजिता ( सफेद तिष्णुकाम्ना ) और पान,  
इनमें से प्रत्येक के एक-एक तोले रस की भावना  
दे, मटर के समान गोलियाँ बनाकर सुखा लेंवे ।  
अवस्था, अग्नि, बल और व्याधि के अनुसार  
अनुपान की व्यवस्था करे । यह 'अभ्रवटिका'  
काम, लय, श्वास और वात-रलेष्मिक रोगों को  
नष्ट करती है । वाजीकरण, बल, वर्ण और अग्नि  
की वृद्धि करती है । ज्वर और अतीसार के लिये  
यह सिद्ध प्रयोग है । इन रोगों के लिये  
इस 'अभ्रकरसायन' से उत्तम और कोई योग  
नहीं है । यह अभ्रकरसायन चातुर्थिक ज्वर और  
सूतिका-रोगों को नष्ट करती है । इस श्रीष्म के  
सेवन करने पर भोजन, शयन और जलपान के  
विषय में कोई नियम नहीं है, किन्तु दही का  
खाना आवश्यक है, ऐसा 'नागार्जुन' मुनि ने  
कहा है ॥ ३१८-३२७ ॥

महाभ्रवटी ।

अभ्रकं पुटितं तात्रं लौहं गन्धकपार-  
दम् । कुन्टी टङ्गनं क्षारं त्रिफला च पलं  
पलम् ॥ ३२८ ॥ गरलस्य तथा मापच-  
तुष्कं चैव चूर्णतम् । तं सर्वं भावयेत्पात्रं  
रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ ३२९ ॥ देवरा-  
जाशनाख्यस्य केशराजाख्यकस्य च ।  
सोमराजस्य भृङ्गाख्यराजस्य श्रीफलस्य  
च ॥ ३३० ॥ पारिभद्राग्निमन्थस्य दृष्ट-

१ क्वचिद्ध्योपचूर्णमिति पाठान्वयम्-तेपात्रये  
तु कर्पं त्रिकट्वापि प्रवेष्टव्यम् ।

दारस्य तुम्युरोः । मण्डूकपर्णी निर्गुण्डी  
 पूतिकोन्मत्तकस्य च ॥ ३३१ ॥ श्वेतापरः  
 जितायाश्च जयन्त्याश्चित्रकस्य च ।  
 ग्रीष्मसुन्दरकस्याटरूपकस्य रसेन तु ॥  
 ३३२ ॥ रसैस्नाम्बूलवल्ल्याश्च पत्रोत्थैर्भा-  
 वयेत् पृथक् । द्रवे किञ्चित् स्थिते चूर्णे  
 मरिचस्य पलं क्षिपेत् ॥ ३३३ ॥ ततश्चैव  
 वर्तं कुर्यात् मात्रां दद्याद् यथोचिताम् ॥  
 ज्वरे चैवातिसारे च कासे श्वासे क्षये  
 तथा ॥ ३३४ ॥ सन्निपातज्वरे चैव  
 विविधे विषमज्वरे । क्षयरोगेषु सर्वेषु क्षीण-  
 शुक्रे च यक्ष्मणि ॥ ३३५ ॥ ग्रहण्यां  
 चिरभूतायां सूतिकायां विशेषतः । शोथे शूले  
 तथासाध्ये स्थावरे चामवातके ॥ ३३६ ॥  
 मन्दानलेऽप्यले चैव सकले श्लेष्मजे गदे ।  
 पीनसेऽपीनसे चैव पक्वेषु पक्वेषु विशेषतः ॥  
 ३३७ ॥ वातरलेष्मणि वाते वा विविधे  
 चेन्द्रियस्थिते । वातवृद्धे वृते पित्ते वला-  
 सेनावृतेऽपि च ॥ ३३८ ॥ अष्टसूदररोगेषु  
 कण्ठरोगे प्रशस्यते । अजीर्णे कर्णरोगे च  
 कृशे स्थूले च यक्ष्मणि ॥ ३३९ ॥ अयं  
 सर्वगदेष्वेव रसो वै परिकीर्तितः । महा-  
 भ्रवटिका सेयं परं श्रेष्ठा रसायने ॥ ३४० ॥

अध्रक-भस्म, ताम्रभरम, लोह-भस्म, गधक,  
 पारा, मैन्शिल, सोहागा फूला हुआ, हरण,  
 चहेडा और अश्विला ; प्रत्येक चार-चार तोले  
 और विष ४ भासे ; इन द्रव्यों को भाँग, केश-  
 राज, सोमराज, भृङ्गराज, विल्वपत्र, फरहद,  
 अरनी, विघारा, नेपाली धनिया, सँभालू, पति-  
 करंज, धतूरे की पत्तियाँ, श्वेत अमराजिता (सफेद  
 विष्णुकान्ता), जयती, अदरक, ग्रीष्मसुन्दरशाक  
 अदूसा और पान ; इनमें से प्रत्येक के चार-चार  
 तोले रस की अलग-अलग भावना देवे । कुछ

गीला रहते ही चार तोले मिर्च का चूर्ण बना-  
 कर गोलियाँ बनावे । रोगी का पलायल देखकर  
 मात्रा की यथोचित व्यवस्था करे । यह 'महा-  
 भ्रवटी' ज्वर, अतीमार, कास, श्वास, क्षय,  
 सन्निपात-ज्वर, विविध प्रकार के विषम-ज्वर,  
 सय प्रकार के क्षय-रोग, शुक्र-क्षीणता, यक्ष्मा,  
 पुराना ग्रहणी-रोग सूतिका रोग, शोथ, शूल,  
 असाध्य और पुराना आमवात, अग्नि-मान्द्य,  
 निचलता, पीनस अथवा पीनसातिरिक्त पक्षाघात,  
 सब प्रकार के श्लेष्मिक रोग, वातरलेष्मिक,  
 इन्द्रियों में कुपित अनेक प्रकार का वायु, कफा-  
 वृत पित्त अथवा अनावृत पित्त, घाठ प्रकार के  
 उदर-रोग, कण्ठ-रोग, अजीर्ण, कर्ण रोग,  
 कर्ण-रोग, स्थीर्य रोग और यक्ष्मा आदि सब  
 रोगों में अत्यन्त लाभदायक है । यह 'महाभ्र-  
 वटिका' श्रेष्ठ रसायन है । मात्रा—२।४ रत्नी ॥  
 ३२८-३४० ॥

पीयूषवल्लीरस ।

सूतकं गन्धकं चाभ्रं तारं लौहं सट-  
 द्जनम् । रसाञ्जनं मात्तिकञ्च शाणमेकं  
 पृथक् पृथक् ॥ ३४१ ॥ लवङ्गं चन्दनं  
 मुस्तं पाठाजीरकधान्यकम् । समद्वाति-  
 विपा लोभ्रं कुटजेन्द्रियवं त्वचम् ॥ ३४२ ॥  
 जातीफलं विश्वविल्वं कनकं दाडिमच्छ-  
 दम् । समद्वा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रसस-  
 म्मितम् ॥ ३४३ ॥ भावयेत् सर्वमेकत्र  
 केशराजरसैः पुनः । चणकाभा वटी कार्या  
 छागीदुग्धेन पेपिता ॥ ३४४ ॥ अनुपानं  
 प्रदातव्यं दग्धविल्वसमं गुडम् । अतीसारं  
 ज्वरं तीव्रं रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ३४५ ॥  
 ग्रहण्यां चिरजां हन्ति शोथं दुर्नामकं  
 तथा । आमशूलविबन्धघ्नं संग्रहग्रहणी-  
 हरम् ॥ ३४६ ॥ पिच्छामदोषं विविधं  
 विपासादाहरोगकम् । ह्लासारोचकच्छर्दि

गुदभ्रंशं सुदारुणम् ॥ ३४७ ॥ पक्वापक्व-  
मनीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ कृष्णारु-  
णञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम् ॥ ३४८ ॥  
स्त्रीहगुल्मोदरानाहं सूतिकारोगसङ्करम् ।  
असूद्वरं निहन्त्येव बन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥ ३४९ ॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहा-  
नपि विंशतिम् । एतान् सर्वाग्नि-  
हन्त्याशु मासाद्धेनात्र संशयः ॥  
३५० ॥ पीयूषवल्लीवटिका अश्विभ्यां  
निर्मिता पुरा । कश्यपाय ददेऽश्विभ्यां ततः  
प्राप प्रजापतिः ॥ ३५१ ॥ धन्वन्तरिस्तत-  
प्राप देवतानां पतिस्ततः । परम्पराभास एष  
रसश्चैलोक्यदुर्लभः ॥ ३५२ ॥

पारा, गन्धक, अन्नक-भस्म, चाँदी-भस्म,  
लोह-भस्म, सोहागा फूला हुआ, रसोत, स्वर्ण-  
मालिक, लौंग, रङ्ग-चन्दन, नागरमोथा, पाद,  
जीरा, धनियाँ, छुईमुई, अतीस, लोथ, कुचे की  
छाल, इन्द्र जी, दालचीनी, जायफल, सोंठ, धेल-  
गिरी, धतूरे के बीज, अनार की पत्तियाँ, धाय  
के पत्त और बूट प्रत्येक तीन-तीन मासे इन  
द्रव्यों को एकत्र चूणित करके भाँगरा के रस की  
भावना देवे । तत्परचात् यकरी के दूध के साथ  
पीसकर घना के समान बटी बनावे । भूने हुए  
बेल के गूदे और गुड़ के साथ सेवन करना  
चाहिए । यह पीयूषवल्ली रस शतीसार,  
तीमगर, घोर रक्षातीसार, पुराना प्रदण्डीरोग-  
शोध, यवासीर, आमशूल, मलयद्वता, सप्रह-  
प्रदण्डी, धिपुत्रेपुत्र आमषिकार, विविध प्रकार  
के पिपास्यारोग, दाह्रोग, मधुली, भरोचक,  
पामन, दाह्य गुदभ्रश ( कौंच निकलना ), पच  
अथवा अपच, नानावर्णपाला, वेदनापुत्र, कृष्ण  
घोर रङ्गवर्णपाला अथवा पीला, मास्यपोषन के  
गहक, अतीसार, प्लीहा, गुणम, उदर, आनाह,  
सूतिकार के रोगों का मिश्रणरोग, रङ्गमदर,  
बीम्पन, कामला, पाण्डुरोग और बीम प्रकार  
के प्रमेह आदि रोगों को पन्द्रह दिन में निःसिद्ध

नष्ट करता है । इस पीयूषवल्ली रस को पहले  
अश्विनीकुमारों में बनाया था । पश्चात् अश्विनी-  
कुमारों ने कश्यपजी को बताया । कश्यपजी से  
प्रजापतिजी ने पाया । उनसे धन्वन्तरिजी ने पाया  
और धन्वन्तरिजी से इन्द्र ने पाया । इस परम्परा  
से इस त्रैलोक्य-दुर्लभ रस की प्राप्ति हुई । मात्रा  
२३ रस्ती ॥ ३४१-३५२ ॥

श्रीशुभपतिवल्लभ ।

जातीफललवङ्गाब्दत्वगोला टङ्गरा-  
मठम् । जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्व-  
सैन्धवाः ॥ ३५३ ॥ लौहमभ्रं रसो गन्ध-  
स्ताम्रं मत्येकशः पलम् । मरिचं द्विपलं  
दत्त्वा छागीक्षीरेण पेपयेत् ॥ ३५४ ॥  
धात्रीरसेन वा पेप्यं वटिकाः कुरु यत्नतः ।  
श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्मितः ॥  
३५५ ॥ सूर्यवत्तेजसा जायं रसो वृषति-  
वल्लभः । अष्टादश बटीः स्वादेत् पवित्रः  
सूर्यदर्शकः ॥ ३५६ ॥ हन्ति मन्दानलं  
सर्वमामदोषं विमूचिकाम् । स्त्रीहगुल्मोदरा-  
ष्ठीलाय कृत्वा पाण्डुत्वकामलाम् ॥ ३५७ ॥  
हृद्बलं पृष्ठशूलं च पार्श्वशूलं हलीमकम् ।  
कटीशूलं कुक्षिशूलमानाहमष्टशूलकम् ॥  
३५८ ॥ कासश्वासासामवाताश्च श्लेष्मदं  
महद्वृद्धम् । गलगण्डं गण्डमाला-  
मम्लपित्तञ्च गर्दभी ॥ ३५९ ॥ कृमि-  
कुष्ठानि टङ्गुणि वातरकं भगन्दरम् ।  
उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शः प्रमेहरम् ॥  
३६० ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्रागतं  
सुदारुणम् । ञ्चरं जीर्णं तथा पाण्डुं तन्द्रा-  
लस्यं भ्रमं क्लमम् ॥ ३६१ ॥ दाहञ्च  
विद्रधिं हिक्कां जटगद्गमूकताम् । मूढञ्च  
स्वरमेदञ्च अधनष्टद्विनिर्षकान् ॥ ३६२ ॥

ऊरुस्तम्भ रक्कपित्तं गुदम्रंशारुचिं तृषाम् ।  
कर्णनासामुखोत्थांश्च दन्तरोगांश्च पीनसान् ॥ ३६३ ॥  
स्थौल्यञ्च शीतपित्तञ्च स्थाव-  
रादिविपाणि च । वातपित्तकफोत्थांश्च  
द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान् ॥ ३६४ ॥  
सर्पानेत्रगदान् हन्ति चण्डांशुरिव पापहा ।  
बलागर्णकरो ह्य आयुष्यो वीर्य्यवर्द्धनः ॥ ३६५ ॥  
परं वाजीकरः श्रेष्ठः पटुदो  
मन्त्रसिद्धिदः । अरोगी दीर्घजीवी स्या-  
द्रोगी रोगाद्विमुच्यते । रसस्यास्य प्रसादेन  
बुद्धिमान् जायते नरः ॥ ३६६ ॥

जायफल, लींग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, सोहागा फूला हुआ, हींग, जीरा, तेजपात, अजगान्, सोंठ, लाहौरी नमक, खोह-भस्म, अन्नक भस्म, पारा, गन्धक और ताम्र भस्म प्रत्येक चार चार तोले और मिर्च ८ तोले, इन द्रव्यों को एकरी के दूध के साथ अथवा आँवले के रस के साथ पीसकर घटी बना लेवे । इस नृपतिचरुभरस को, सूर्य के समान तेजस्वी श्रीमान् गहनताथनी ने विचार कर बनाया है । प्रातः काल सूर्योदय के समय स्नान आदि द्वारा पवित्र होकर, १८ घटियों खाई जावे । इस नृपतिचरुभरस रस के सेवन करने से अग्निमान्द्य, सब प्रकार के आम दोष, विमूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदर, अष्टीला, वृहत्, पाण्डुरोग, कामला हृदय शूल, पृष्ठ शूल, पार्यं शूल, हस्तीमक, कटि शूल, कुक्षि-शूल, आनाह, घात प्रकार के शूल, कास, रवास, धामपात, रलीपद, शोथ, अयुं द, गलगद, गडमाला, अम्लपित्त, गर्दभी, कुम्भि, कुष्ठ, दद्रु, वातरक्त, भगदर, उपदश, अतीसार, ग्रहणी, बवासीर, प्रमेद, पथरी, मूत्रकृष्ण, घोरमूत्रापात, जीर्ण-ज्वर, पाण्डुरोग, तन्द्रा, आलस्य, अम, बलम,

१—यह पुत्ररोग विरोध है । लक्षण यह है—  
मण्डल वृत्रमुत्सना सरत्र पिष्टिकावितम् । रजाकरीं  
गर्दभिका ता पिटाद्वातपित्तताम् ॥

दाह, विद्रधि, हिका, जड़ता, गद्गदता ( गिड़-  
गिड़ाना ), मूकता, मूढ़ता, स्वर भेद, घघ्न-रोग,  
वृद्धि ( अण्डवृद्धि ), विसर्प रोग ऊरुस्तम्भ,  
रक्कपित्त, गुदभ्रंश ( कौंच निकलना ), अरुचि,  
वृषा, कर्पूररोग, नासा रोग, मुखरोग दन्त रोग, पीन  
स, स्थूलता, शीत पित्त और स्थावर आदि विषय तथा  
अन्यान्य वातिक, पैत्तिक, रलेष्मिक, द्वन्ज और  
सान्निपातिक समस्त रोग इस प्रकार नष्ट हो  
जाते हैं, जैसे सूर्य भगवान् द्वारा जगत् का  
समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है । एव यह रस  
बल, कात्ति, आयु और वीर्य को बढ़ानवाला,  
हृदय के लिये लाभदायक, श्रेष्ठ वाजीकरण,  
प्रवीणता और मन्त्र सिद्धि का दाता है । एव  
स्वस्थ पुरुष इस रस के सेवन करने से दीर्घजीवी  
और रोगी पुरुष स्वस्थ तथा इस रस के प्रभाव  
से मनुष्य बुद्धिमान् होता है ॥ ३६३ ३६६ ॥

युहन्नृपचरुभरस ।

रसगन्धकलौहाभ्रं नागं चित्रं च सुस्त-  
कम् । टङ्गं जातीफलं हिड्गु त्वग्नेलाव-  
ह्विवङ्गकम् ॥ ३६७ ॥ तेजपत्रमजाजी  
च यमानी निश्वसैन्धनम् । प्रत्येकं  
तोलकं चूर्णं तथा भरिचताम्रयोः ॥  
३६८ ॥ निरुत्थरुमृतं हेम तथा माप-  
चतुष्टयम् १ । आर्द्रकस्य रसेनेत्र धाज्यारच  
स्वरसैस्तथा ॥ ३६९ ॥ भावयित्वा  
प्रदातव्यं चणमात्रं २ भिपग्ररः । भक्तयेत्  
प्रातरुत्थाय पर्यं भक्तयेथोचितम् ॥  
३७० ॥ अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च दुर्नाम-  
ग्रहणीं जयेत् । आमामीर्णप्रशमनं सर्वं

१ इसकी गोली आधी आधी रसी की बनानी  
चाहिये पर्यं क्रमश बड़ाकर १८ गोली तक सेवन  
कराना लाभदायक है ।

१—'नाग चित्र त्रिहृत्तमाम्' इति पाठान्तरम् ।

२—'दादुगरीत्रकम्' इति पाठान्तरम् ।

३—'मापचतुष्टयमापत' इति ग्रन्थान्तरमतम् ।

रोगनिपूदनम् । नाशयेदौदरान् रोगान्  
विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ ३७१ ॥

(ग्रन्थान्तरेऽस्य राजवल्लभसंज्ञा )

पारा, गन्धक, लौह भस्म, अभ्रज-भस्म, नाग-भस्म, चीना, नागरमोधा, मोहागा फूला हुआ, जायफल, हींग, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, चीता की जड़, चक्रभस्म, तेजपात, जीरा, अजसाइन, सोंठ, लाट्टीरी नमक, मिर्च और ताग्र भस्म प्रत्येक का एक-एक तोला चूर्ण तथा निरस्य स्वर्ण-भस्म ४ भागे, इन द्रव्यों को अद्रव्य के रस और आँसू के स्वरस में भाधित करके चना के समान गोतियाँ बना छेवे । एत प्रातःकाल इस रस का सेवन करे । यथोक्त (द्वितकर) पक्ष भोजन करते इस शुद्धनूपयलभ रस के सेवन करने से अभिन-मान्ध, अजीर्ण, यत्रासीर, ग्रहणी, सामा-जोर्ण आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं । जैसे मुद्रांन-चक्र द्वारा अमुरों का विनाश हो गया है, वैसा ही यह रस ममस्त पेट के रोगों को नष्ट कर देता है मात्रा—२ रत्ती ॥ ३७१-३७१ ॥

(ग्रन्थान्तर में इस रस का राजवल्लभ नाम है )

अनाज्यादिचूर्णम् ।

पलदन्धमजाज्यास्तु पलैकं यशू-  
कजम् । अमुदं द्विपलं श्रेयं फणिकेनपलं  
तथा ॥ ३७२ ॥ अर्कभूतभरं चूर्णं चतुः-  
पलमितं श्मृतम् । अनाज्यादिवमेतद्धि-  
दन्पुत्रं ग्रहणीगतम् ॥ ३७३ ॥ मर-  
हमथ नीग्नमतिगारं मृदारुणम् ।  
जगतिगारं जमयेद्रमूर्च्छीं पाशुपि-  
णीम् ॥ ३७४ ॥

जीरा ८ मोले, पचवार ४ मोले, नागरमोधा ८ मोले, छोटीम ४ मोले जीरा चक्र के मूल का चूर्ण ३१ मोले, इत्रक चूर्ण काटे रस छेवे । यह चक्रभस्म चूर्ण ४३ मरहमी होत, १३ मतिग और १३ रतिग दोर चरीपाश जगतीग ४३

घोर विलूचिका रोग को नष्ट करता है । इसकी मात्रा ३१४ रत्ती है ॥ ३७२-३७४ ॥

रसपर्वटी ।

श्रीविन्ध्यवासिपादान् नत्वा धन्वं-  
न्तरिश्च सुरभिपजम् । रसगन्धरुपर्पटिका-  
परिपाटीपाटवं वक्ष्ये ॥ ३७५ ॥ मग्नं  
रसे जयन्त्याः पश्चादेरण्डसंभूते ।  
आर्द्रकरसे च सूतं पत्रसे कारुमाच्यादच ॥  
३७६ ॥ मग्नमुदितानुपूर्णा मर्दनशुष्कं  
करेण गृह्णीयात् । प्रस्तरभाजनमध्ये  
शुद्धिरियं पारदस्योक्ता ॥ ३७७ ॥ शुरु-  
पुच्छसमच्छायो नयनीतसमद्युतिः । मसृगः  
कठिनः स्निग्धः श्रेष्ठो गन्धक इष्यते ॥  
३७८ ॥ कृत्वा भद्रं गन्धकमतिकुशलः  
चुटतएडुलाकारम् । तद्भृङ्गराजरसरं-  
नन्तरं भावयेत् पात्रे ॥ ३७९ ॥ तदनु  
च शुष्कं कुर्याद् धूलिसमानञ्च सप्तधा  
रौद्रे । तदनु च शुष्कं चूर्णं कृत्वा विन्यम्य  
लौहिकामध्ये ॥ ३८० ॥ निर्धूमपत्रपू-  
काष्टाङ्गारे न्यस्तं विनाप्य तैलममम् ।  
पात्रस्थितभृङ्गराजरसमध्ये टालयेन्निपुणः ।  
३८१ ॥ तस्मिन् प्रविष्टमात्र कठिन-  
तरं यानि गन्धकचूर्णम् । पुनरपि रौद्रे  
शुष्कं नेतस्तरजमा समानतां नीतम् ॥  
३८२ ॥ शुद्धे सूते शोधितगन्धकचूर्णेन  
तुन्यता राध्या । तावन्मर्दनमनयोर्वारं रस  
रगोऽपि दृश्यते सूते ॥ ३८३ ॥ पत्रान्  
वज्रनमर्दनं चूर्णं लौहीशुष्कं यत्नेन ।  
निर्धूमपत्रकाष्टाङ्गारे न्यस्तं विनाप्य  
तैलममम् ॥ ३८४ ॥ मद्यो गोमर्दान्तरि  
वर्णितेने टालयेन्मृत्नि । लौहीशुष्कमर्द-



शिष्टं कठिनं तन्न गृहीतव्यम् ॥ ३०५ ॥  
 पश्चात्पर्पटीरूपा पर्पटिका कीर्त्यते लोकैः ।  
 मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं यत्र तु दृश्यते ॥  
 ३०६ ॥ तत्र सिद्धं विजानीयाद्द्वयो  
 नैवात्रसंशयः । समुदितपात्रे भरणा वदनीया  
 पर्पटी मनुजैः ॥ ३०७ ॥ जीरकगुञ्जे हिङ्गो-  
 र्द्धं खादेच्च वातले जठरे । जीरकहिङ्गवो  
 रसेन त्वनुपानं सलिलधारया कार्यम् ॥  
 ३०८ ॥ रसगन्धकपर्पटिका भक्षण-  
 मात्रे तु नाम्भसः पानम् । प्रथमं गुञ्जायुगलं  
 प्रतिदिनमेकैकवृद्धितो भक्ष्यम् ॥ ३०९ ॥  
 दशगुञ्जापरिमाणान्नाधिकमदनीयमेकविं-  
 शतिदिनानि । वातातपकोपमनिश्चिन्तन-  
 माहारसमयवैषम्यम् ॥ ३१० ॥ व्यायाम-  
 श्चायासः स्नानं व्याख्यानमहितमत्यन्तम् ।  
 पाके स्तोकं सर्पिर्जीरकधन्याकवेशवारै-  
 श्च ॥ ३११ ॥ सिन्धुद्रवेन रन्धनमोदन-  
 धान्यानि शालयो भक्ष्याः । कृष्णं वाति-  
 ङ्गन्फलमविद्धकर्णा<sup>१</sup> च वास्तूकम् ॥ ३१२ ॥  
 अक्षतमुद्गसहितं फलदलसहितो पटो-  
 लश्च । क्रमुकफलमृद्गवैरौ भक्ष्यौ शाकेषु  
 काकमाची च ॥ ३१३ ॥ लावकवर्चक-  
 तित्तिरमयरमांसञ्च हिततरं भवति । मद्गुर-  
 रोहितमीनावदनीयौ<sup>२</sup> कृष्णमत्स्यार्श्च ॥  
 ३१४ ॥ नीरक्षीरं व्यञ्जनमदनीयं पक्क-  
 कदलश्च । रम्भाफलदलवल्कलमूलानां  
 वर्जनं कार्यम् ॥ ३१५ ॥ तिक्रं निम्बा-  
 दिकमपि नाद्यं नोप्यं तथाञ्च । आनूप-

मांसजलचरपत्रिपलश्च सर्वथा त्या-  
 ज्यम् ॥ ३१६ ॥ स्त्रीणां सम्भाषणमपि गड-  
 कश्च कृष्णमत्स्येषु । नाम्लं न दधि शाकं  
 पर्पट्या भक्षण्ये भक्ष्यम् ॥ ३१७ ॥ गुड-  
 खण्डशर्करादिक इक्षुविकारो न भक्ष्य  
 इक्षुश्च । न दलं न फलं न लताप्यदनीया  
 कारवेल्गस्य ॥ ३१८ ॥ स्तोकं घृतमिह  
 भक्ष्यं पथ्ये साकाञ्चमुत्थानम् । क्षुत्पीडायां  
 भोजनमवश्यककार्यं महानिशायाञ्च ॥ ३१९ ॥  
 समजलमिश्रं पक्कं क्षीरं यद्वाधिकजलपक्कञ्च ।  
 कथमपि भोजनसमयातिक्रमजाते ज्वरे  
 विरेके च ॥ ४०० ॥ वमने च नारिकेल-  
 सलिलं दुग्धञ्च पातव्यम् । स्वमे जाते  
 रमिते विरेकतः क्षीरमेव पातव्यम् ॥ ४०१ ॥  
 न ज्ञायते युभुत्तालक्ष्यालक्ष्या प्रतीयते  
 यदि वा । अशक्तिभिन्निभिन्नमस्तक-  
 शूलाद्यैर्नूनमवधार्यार्था ॥ ४०२ ॥ किं बहु  
 वाच्यं रोगी यदा यदा भवति साकाञ्चः ।  
 पाययितव्यं दुग्धं तदा तदा निर्भयी-  
 भूय ॥ ४०३ ॥ विहिताञ्करणे चास्याम-  
 विहितकरणे च रोगस्विन्नानाम् । व्या-  
 पत्तयोऽपि बहुधा दृष्टाः प्रामाणिकैर्वद्दुःशाः ॥  
 ४०४ ॥ तस्मादवधातव्यं भवितव्यं भोजने  
 निपुणैः । एवमियं क्रियमाणा भवति  
 श्रेयस्करी नियतम् ॥ ४०५ ॥ अर्शोरोगं  
 ग्रहणीं सामां शूलातिसारौ च । कामल-  
 पाण्डुव्याधिं स्त्रीहानश्चातिदारुणं हन्ति  
 ॥ ४०६ ॥ गुल्मजलोदर भस्मकरोऽहन्त्या-  
 मवातार्श्च । अष्टादशैव कुष्ठान्यशेषशो-  
 थादिरोगार्श्च ॥ ४०७ ॥ इयमम्लपित्तश-  
 मनी त्रिदोषदमनी क्षुधातिक्रमनीया ।

१ वेशवारः=तेषु पिट्ठांसे च ।

२ वातिङ्गन-वानांकुट्टे ( बँगन का वृष ) ।

३ मत्स्यभेदे.

अग्निं निमग्नमुदरे ज्वालाजटिलं करो-  
त्याशु ॥४०८॥ रसगन्धकपर्पटिका त्वप-  
वार्य्य व्याधिसंघातम् । बलीपलितशून्यं  
पुरुषं दीर्घायुषं कुरुते ॥ ४०९ ॥ व्याधि-  
प्रभावहरणादपहृत्युत्रासनाशकरणाच्च ।  
मर्त्यानाममृतघटी रसगन्धकपर्पटी जयति  
॥४१०॥ शम्भुं प्रणम्य भक्त्या पूजां  
कृत्वा च विष्णुचरणाब्जे । रसगन्धकपर्प-  
टिका भक्ष्या तेनातिसिद्धिदा भवति ॥  
४११ ॥ नृणां ससरुजां ध्रुवमियमारोग्यं  
सततशीलिता कुरुते । श्रीवत्साङ्गविनि-  
र्मितसम्यग्रसपर्पटी श्रेष्ठा ॥४१२॥ उत्र-  
मेव हि कर्तव्यं नानुरागतया तथा । औप-  
धिक्रिययैवात्र कर्तव्या चोत्तरक्रिया ॥  
४१३ ॥ प्रत्यवायविनाशार्थं क्षेत्रपालनलि-  
न्यसेत् । कृतमङ्गलकः प्रातर्योगिनीनामतः  
परम् ॥ ४१४ ॥

भक्त्यपूर्व बलिदानमन्त्रो यथा 'ॐ  
क्षेत्रपालाय नमः' । इति क्षेत्रपाल-  
स्य सामान्यबलिमन्त्रः । 'ॐ ह्रीं  
ह्रीं दिव्याभ्यो योगिनीभ्यो मातृभ्यः  
क्षेत्रीभ्यो भृतेभ्यः शाकिनीभ्यो नमो  
नमो ह्रीं ।' इति सामान्ययोगिनीनां  
बलिमन्त्रः । ॐ गन्धकमहाकालाय  
स्वाहा । ॐ ब्रह्मकोपिणि रक्त रक्त  
स्वाहा । इति विशेषबलिमन्त्रः ।

अत्र पारदस्य नैसर्गिकदोषत्रयोधन-  
ञ्चावश्यकं कार्यम् ।

तदुग्रम्—यदुग्मं मलगिखिविपना-  
मानो रसम्य नैसर्गिका दोषाः । मूर्च्छां  
नलेन कुरुते शिखिना टाहं विप्रेण

हिक्काञ्च ॥ ४१५ ॥ गृहकन्या हरति मलं  
त्रिफला वह्निं चित्रकरच विपम् । तस्मा-  
देभिर्वारान् समूर्च्छयेत् सप्त सप्तैव इति ॥  
४१६ ॥ गृहकन्या घृतकुमारी तस्या दल-  
रसेन खल्लनम् ।

( त्रिफलायाश्चूर्णेन खल्लनम् । चित्र-  
कस्य पत्ररसेन मूर्च्छनम् । तदेव नैसर्गिक-  
दोषापहारानन्तरं जयन्त्यादिद्रव्यचतुष्टयर-  
सेन मूर्च्छनमधिगन्तव्यम् । )

श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी और सुरवेद्य  
धन्वन्तरिजी को नमस्कार करके रस और गन्धक  
की पर्पटी बनाने की रीति कहता हूँ ।

पहले यह बता देना आवश्यक है कि मल,  
वह्नि और विप ये तीन पारा के नैसर्गिक दोष हीं  
पारद मल-दोष से मूर्च्छा, वह्निदोष से दाह  
और विप दोष से हिका उत्पन्न करता है । अतः  
रस पर्पटी सिद्ध करने के पहले, पारद के मल  
दोष, वह्निदोष, और विप दोष को दूर करना  
आवश्यक है ।

उन दोषों को दूर करने की रीति यह है कि—  
४ तोले पारद को लेकर, घृतकुमारी (धीकुघारि)  
के रस में घोटने से पारद का मलदोष दूर हो  
जाता है । इसी प्रकार त्रिफला के चूर्ण के साथ  
घोटने से वह्नि दोष और चिता की पत्तियों के  
रस में घोटने से विप दोष दूर होता है । इस  
रीति से पारद के दोषों के दूर करने के बाद  
पारद को पत्थर के खरल में रखकर, प्रमत्त  
जयन्ती की पत्तियों के रस में, परंठ की पत्तियों  
के रस में, अद्ररखक रस में और मकोय की  
पत्तियों के रस में हुयो हुयोकर इतनी घोटवाई  
करे कि जिससे उक्त औषधों के रस शुष्क हो  
जायें । इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारद रस-  
पर्पटी के बनाने योग्य होता है ।

इस पारद में मिलाने के लिये ऐसा गन्ध  
लेना चाहिए, जो ताँबे की पर्पटी के समान पान्ति  
मान्, मक्खन के समान प्रभावात् चिखना,

कठोर और स्निग्ध हो । क्योंकि ऐसा ही गधक श्रेष्ठ माना गया है ।

ऐसे गधक को ध तोले लेकर, चावलों के समान छोटे छोटे टुकड़े करके ७ चार भाँगरा के रस की भावना देवे, और प्रतिवार घूप में रखकर शुष्क करे । उसके बाद धूल के समान चूर्ण बनाकर घेर की लकड़ी के निर्धूम अंगारों की आँच से टोहे की कड़ाही में गलाकर भाँगरा के रस में ढाले । उसमें ढालते ही गधक कड़ा हो जाता है । उसको घाम में सुखाकर और भलीभाँति खरल करके केतकी के रज के समान चूर्ण बना लेवे ।

उक्त रीति से शुद्ध किये हुए पारद में समभाग शुद्ध गधक का चूर्ण मिलाकर, तब तक मर्दन करे, जब तक पारद के कण अदृश्य न हो जाँय । परचात् उत्तम कजली के सिद्ध होने पर लोहे की कड़ाही में उस कजली को ढालकर घेर की लकड़ी के निर्धूम अंगारों की आँच से गलाकर तेल के समान करे । तदनंतर गौ के ताजा गोबर पर केचा का पत्ता रखकर उस पर कजली की द्रुति को पतली पतली फैला देवे, और ऊपर भी केले के पत्तों से ढक करके उसके ऊपर गोबर रख देवे । दो घण्टे के बाद पापड़ के समान दोनों पत्तों के बीच में जमी हुई रस पर्यंटी को निकाल लेवे । गली हुई कजली का जो अश कठिन होकर कड़ाही में लगा रह जाता है, उसको न लेना चाहिये । जिस पर्यंटी में मयूरपिच्छ की चन्द्रिका के समान चमक हो, उस पर्यंटी को वैद्यराज लोग निःसदेह सिद्ध जानें । एव शास्त्रोक्त शुभ सुहृत् भरणी नक्षत्र में इस पर्यंटी को बनाना और सेवन करना चाहिये ।

वातोद्भ्रंश रोग में २ रत्नी जीरा और १ रत्नी हाग के साथ सेवन करे । जीरा और हाग के साथ पर्यंटी का सेवन करने पर शीतल जल पीना चाहिए । केवल पर्यंटी का सेवन करने पर जल पीना अत्यन्त नही है । पहल दिन दो रत्नी की मात्रा रख्य तदनंतर प्रतिदिन एक एक रत्नी मात्रा बढ़ाकर दस रत्नी तक सेवन करे । दस रत्नी से अधिक मात्रा में सेवन करना उचित नहीं

है । इस प्रकार २१ दिन पर्यन्त इस औषध का सेवन करने का नियम है ।

रसपर्यंटी के सेवन करने के समय वायुसेवन, धूपसेवन, क्रोध, अधिक चिन्ता, भोजन समय पर न करना, व्यायाम, परिश्रम, स्नान और अधिक बोलना, ये सब वर्जित हैं । घी, जीरा, धनिया, और खाड़ीरी मक् से ससृत्त व्यञ्जन आदि शालि धान के चावलों का भात, काला बैंगन, पाठा का शाक, धयुआ का शाक, कीड़ा आदि द्वारा घिना खाई हुई भूँग, परवल के फल तथा पत्र-सहित परवल, सुपारी, अदरक, मकोय का शाक, लावा, बटेर, तिचिर और मयूर के मांस मदगुर ( माँगुर ), रोहू, काले वर्ण की मछली और जलामिश्रित करके सिद्ध किया हुआ तुग्ध ये सब पदार्थ पथ्य हैं ।

पका हुआ केले का फल, केले का पत्ता, केले का बकला, केले का मूल, निग्य आदि कड़वे द्रव्य, उष्ण अन्न, जलप्राय देश में रहनेवाले पशुओं का मांस, जलचर पक्षियों का मांस, काली मछलियों में से गडक मछली का मांस, ये सब सर्वथा त्याज्य हैं । अम्ल ( घट्टे ) द्रव्य, खट्टा दही और पापड़ी का शाक ये सब पदार्थ त्याज्य हैं । एव स्त्री के साथ सम्भाषण भी न करना चाहिए । गुठ, खाँड़ और शकर आदि इच्छुचिकार और ईख, इनका भी सेवन न करना चाहिये । करेले का पत्र, फल और टटल आदि सब त्याज्य हैं । एव घृत घोड़ा थोटा खाना चाहिए । भूत लग्न पर भोजन अग्रय्य करना चाहिए । यदि आधी रात में भूत लगे, तो भी तत्काल भोजन करना चाहिए । यदि भोजन के समय के अतिप्रमण्य हो जाने से किसी प्रकार उबर आ जावे, अथवा दस्त होने लगे, तो दूध में समभाग उत्त अथवा अधिक जल मिला करके पकाकर पीना चाहिए । यदि वमन होता हो, तो नारियल का जल मिलाकर दूध पीये । यदि रपन दीप से धातु चीय होता हो, तो दूध पीना चाहिए । भूत है, पा नहीं, इसका यदि ठीक परिज्ञान न हो, तो शरीर की अशुभता, कुनकुनी और शिर की

पीना आदि से भूख का होना निश्चित करके भोजन कर लेना चाहिए। अधिक क्या रोगी को जब भोजन करने की इच्छा हो, तभी निर्भय होकर दुग्ध पिलाया करे। उन्न आहार-विहार के परिधायग करने से और अनुकूल आहार-विहार के सेवन करने से;—उस मनुष्य को विषम व्याधियाँ उपस्थित हो जाती हैं। इस कारण जो उन्न आहार-विहार आदि का निश्चय करके भोजन के विषय में सावधान रहकर, इसका सेवन करता है, उसको यह पर्पटी अवश्य लाभ-दायक होती है। यह रसपर्पटी बवासीर, आग्ने-दोष-युक्त ग्रहणी, शूल, अतीसार, कामला, पायडु रोग, अति दारण, झीहा, मुहम, जलोदर, भस्मक, आमवात, १८ प्रकार के कुष्ठ और सब प्रकार के शोथ आदि रोगों को गण्ट करती है। यह पर्पटी अम्लपित्त को शान्त, त्रिदोष का दमन, बुभुक्षा की वृद्धि और अग्नि को तत्काल दीप्त करती है।

एवं व्याधि-समूह को दूर करके पुरष को बली (शरीर की त्वचा में झुर्रियाँ पड़ना), पलित (बाल पड़ना) रहित और दीर्घायु करती है। व्याधियों के प्रभाव का हरण और अपमृत्यु के भय को गण्ट करने से यह रसगंधक-पर्पटी अमृत की घटी (अमृत भरी कलशी) के समान है। अतएव यदि शिव और विष्णु का पूजन तथा अभिषादन करके इस रसगंधक पर्पटिका का सेवन करे, तो यह पर्पटी अव्यक्त लागूकारक होती है। यह उत्तम रस-पर्पटी श्रीवत्साङ्क (विष्णु) निर्मित है, अतएव यह निरंतर सेवित होने पर रोगियों को प्रबल्य आरोग्य करती है। विविध प्रकार का विषमरोग होने पर भी यथोन्न आचरण करना चाहिए। ओषध सेवन करने के साथ ही निम्नलिखित चैत्रपाल-बलि आदि क्रियाओं को भी करना आवश्यक है। प्रत्येक की निवृत्ति के लिये प्रातःकाल स्थित पुण्याहवाचन आदि सांगतिक कृत्यों को करके चैत्रपाल और योगिनी के चर्च बलि देवे। ओषध-भक्षण करने के पूर्व, चन्द्रपाल और योगिनी के लिये मल श्लोकों में कहे हुए

सामान्य और विशेष बलि के मन्त्रों से बलि-प्रदान करनी चाहिए ॥ ३७२-४१६ ॥

ताम्र पर्पटी ।

प्रत्येकं दश गद्याखान शुद्धगन्धक  
मृतयोः । मृतताम्रस्य पञ्चैव खल्वेवं पञ्च-  
विंशतिम् ॥ ४१७ ॥ क्षिप्त्वा सम्मर्दये-  
त्तावद्ब्रह्मन्निर्याति सत्त्वम् । निर्धूमाङ्गा-  
रके वह्नौ लौहपात्रे वृत्ताङ्गके ॥ ४१८ ॥  
तावच्च स्थाप्यते यावच्चलायो जायते रसः ।  
प्रथमं कदली, श्रेष्ठा हलाम्बे, पद्मिनी-  
द्रुमम् ॥ ४१९ ॥ तदलाभे नागवल्गा  
ह्लोकस्य च पलद्वयम् । गोमयोपरि निक्षि-  
प्ते पत्रे तं ढालयेद्रसम् ॥ ४२० ॥ पुनर्द-  
श्वाऽपरं पत्रं पत्रस्योपरि गोमयम् । रसं  
तं शीतलीभूतं खल्वे सूक्ष्मं हिपेपयेत् ॥  
४२१ ॥ भृङ्गराज रसेनादौ दातव्याः सप्त-  
भावनाः । आटरूपक पत्राणां स्वरसैः सप्त-  
भावना ॥ ४२२ ॥ कटुत्रयजलैः सप्त  
सप्तैवं त्रिफलाम्भसा । सप्तार्द्रकरसेनैवं  
सप्तपत्रकजैर्द्रवै ॥ ४२३ ॥ व्याघ्रीरसेन  
सप्तैव शिगुमूलरसेन च । वत्सनाभ विपे-  
खैव श्रीखण्डे नैव सप्त च ॥ ४२४ ॥  
संशुष्कं च ततरचूर्णं सूक्ष्मं सम्मर्दयेद्दृढम्  
प्रक्षिपेत्कूप्यके चूर्णं सम्भिन्नाञ्जन सन्नि-  
भाम् ॥ ४२५ ॥ ताम्रपर्पटी संज्ञोऽयं  
रसं च परिकीर्तितः । रोगिणे प्रत्यहं देया  
वलयुग्मौ जलान्वितः ॥ ४२६ ॥ त्रिभि-  
दिर्नैर्ज्वरो याति श्लेष्मवातादि सम्भवः  
वातरक्ते ह्यजीर्णेषु ग्रहण्यां कुष्ठ रोगिणु ॥  
४२७ ॥ मासिकेन निहन्त्याशु गगाने-  
तान्सुदारणान् ॥ ४२८ ॥

शुद्धपारा और गन्धक १-१ तोले, ताम्रभस्म २॥ तोले लेकर घृताश्र लोहे की कड़ाही में गलाकर भैंस के ताजे गोबर पर रखे हुए केले के पत्ते पर उसे डाल दूसरे पत्ते से दबाकर ऊपर ताजा गोबर रख देवे । ठंडा होने पर निकाल महीन पीस भाँगरा, अदूया, त्रिकुटा, त्रिफला, अदरक, पत्रज, भटकटैया, सर्हिजन की जड़, बच्चुनाग, चन्दन इन सबके रसों से सात २ बार घोलकर ६-६ रत्ती की गोलीयाँ बनाकर रखले अथवा चूर्ण ही रखे, इनमें से १-१ गोली जल के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देने से, रनेष्म ज्वर, घातज्वर तीन दिन में भिट जाते हैं । वातरक्त, अजीर्ण, ग्रहणी और कुछ रोग इसके सेवन से १ महीने में बिल्कुल अच्छे हो जाते हैं । विशेष अनुभूत है ॥ ४१७-४२८ ॥

### लौहपर्पटी ।

समौगंधरसौ कृत्वा कज्जलीकृत्य यन्नतः । शुद्धलौहस्य चूर्णान्तु रसतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ४२६ ॥ एकीकृत्य ततो यन्नाल्लौहपात्रे प्रमर्दितम् । घृतप्रलित्तद-  
व्यान्तु स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥ ४३० ॥  
द्रवीभतं समाहृत्य ढालयेत् कदलीदले ।  
चूर्णाकृत्य सुखार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥ ४३१ ॥ शीतोदकानुपानं वा क्वार्थं वा धान्यजीरयोः । लौहेन पर्पटी ह्येषा भक्ष्या लोकस्य सिद्धिदा ॥ ४३५ ॥ रक्तिकैकां समारभ्य वर्द्धयेत् रक्तिकां क्रमात् । सप्ताहं वा द्वयं वापि यावदारोग्यदर्शनम् ॥ ४३६ ॥ सूतिकाश्च ज्वरश्चैव ग्रहणी-  
मतिदुस्तराम् । आमशूलातिसारांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ४३७ ॥ प्लीहा-  
नमग्निमान्यश्च भस्मकश्च तथैव च । आमनातमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैवतु ॥ ४३८ ॥ एवमादींस्तथा रोगान् गरायि

विर्विधानि च । हन्त्यनेन प्रयोगेण च पुष्पान्निर्मलः सुखी ॥ ४३६ ॥ जीवेद्वर्ष-  
गतं पूर्णं बलीपलितवर्जितः । भोजनं रक्तशालीनां त्यक्त्वा शाकं विदाहि च ॥ ४४० ॥ आमवातप्रकोपश्च चिन्तनं मैथुनं तथा । प्रातरुत्थाय संसेव्या विधिनायुः प्रवर्द्धिनी ॥ ४४१ ॥

१ तोला पारा और १ तोला गंधक की कज्जली बनाकर, उसमें १ तोला लौहभस्म मिला करके लौहपात्र में खरल करे । पश्चात् लोहे के कलछे में घी चुपड़कर, उसमें उन्न कज्जली को डालकर, मंद-मंद आँच दे । जब कज्जली द्रुत हो जाय, तब गौ के गोबर पर केला का पत्ता रखकर उस पर कज्जली की द्रुति को पतली-पतली फैला दे और उसके ऊपर भी केले के पत्ता से ढाँककर, उसके ऊपर गोबर रख दे । दो घंटे के बाद दोनों पत्तों के बीच में पापड़ के समान जमी हुई लौह-  
पर्पटी को निकालकर चूर्ण कर लेवे । १ रत्ती से आरम्भ करके प्रतिदिन १ रत्ती परिमित मात्रा बढ़ावे । इस प्रकार एक सप्ताह अथवा दो सप्ताह तक अर्थात् आराम होने तक सेवन करना चाहिए । अनुपान—शीतल जल अथवा जीरा और धनियाँ का हाथ देवे । पथ्य भोजन करना चाहिये । यह “लौहपर्पटी” सूतिकारोग, ज्वर, असाध्य ग्रहणीरोग, आमशूल, अतिसार, पाण्डुरोग, कामला, प्रीहा, अभिमान्य, भस्मक, आमवात, उदावर्त्त और १८ प्रकार के कुछ आदि विविध रोगों और विषदोषों को नष्ट करती है । इस ‘लौहपर्पटी’ का सेवन करनेवाला मनुष्य कान्तिमान्, सुखी, बली और पलित से रहित होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है । श्राप्य सेवन के समय रक्त शालीधान के चावलों का भात, विदाहि शाक आदि द्रव्य, आम-द्रव्य ( कच्ची वस्तु ) का सेवन, वायुसेवन, क्रोध, चिन्ता और मैथुन ; ये सब त्याग्य हैं । इस आयु बढ़ानेवाली पर्पटी का प्रातःकाल विधि-  
पूर्वक सेवन करना चाहिए ॥ ४२९-४३९ ॥

स्वर्णपर्पटी ।

गसोत्तमं पलं शुद्धं हेमतोत्तमसंयुतम् ।  
शिलायां मर्दयेत्तावद्यावदेकत्रमागतम् ॥  
४४२ ॥ गन्धकस्य पलञ्चैकमयः पात्रे  
ततो दृढे । मर्दयेद्दृढपाणिभ्यां यात्रकज्ज-  
लतां व्रजेत् ॥ ४४३ ॥ ततः परं त्रिधा-  
नज्ञः पर्पटी कारयेत्सुधीः । रत्रिकादिक्रसे-  
गौव योजयेदनुपानतः ॥ ४४४ ॥ ग्रहणीं  
वित्रिधां हन्ति यक्षमाणञ्च विशेषतः ।  
शूलमष्टविधं हन्ति वृष्या सर्वरुजापहा ॥  
सर्वज्वरोपहन्त्री च नाम्नेयं स्वर्ण-  
पर्पटी ॥ ४४५ ॥

( अत्र हेमनोऽष्टभागित्प्रमुपलक्षण-  
मिति प्रामाणिकाः )

पारा ४ तोले, गंधक ५ तोले और स्वर्ण  
भस्म आधा तोला, इन तीनों को खरल में  
घोट करके उत्तम कजली बना लेवे । परचाव  
लोह की कड़ाही में कजली को डालकर, मद्  
मद् आँच में पकावे । जब कजली हुत हो  
जाय, गौ के गोबर पर केला का पत्ता रखकर  
उम पर कजली की द्रुति को पतली पतली  
केला देवे और उमर ऊपर भी केला का पत्ता  
ढाकर, ऊपर गोबर रख देवे । दो घटे के  
बाद दोनों पत्तों के बीच में पापड़ के समान  
जमी हुई स्वर्ण-पर्पटी को निकाल लेवे । इस  
'स्वर्ण-पर्पटी' को मात्रा एक रत्नी से प्रारम्भ  
करके, प्रतिदिन एक एक रत्नी बढ़ाकर, पूर  
मासपर्यंत देवे । दोपानुसार अनुपानके साथ सेवन

। तोलकशब्द शब्दमालाया कोलरूपे परि  
माण प्रयुक्त । लीलावतीवैद्यकसमग्रयोस्तु क्व  
प्रयुक्तो दृश्यते । अत्र तु कोलाऽपरपर्याय एव  
गृह्यते, स्वर्णपर्पट्या पारदाऽष्टमाशस्वैव हेमना  
प्राप्यत्वात् । वचिच्चतुर्थाशस्यापि हेमनो ग्रहण  
विद्यते ।

२ 'पाक' इति पाठांतरम् ।

करनेमें यह 'स्वर्ण पर्पटी' विविध प्रकार के ग्रहणी-  
रोग, विशेषतः पय, घाट मजार वें शूल और मत्र  
प्रकार के ज्वरों को नष्ट करती है । एव वीर्यवर्धक है  
॥ ४४२-४४५ ॥

पञ्चामृत पर्पटी ।

अष्टौ गन्धकतोलाका रसदलं लौहं  
तदर्थं शुभं, लौहार्द्धञ्च वराभक्तं सुविमलं  
ताम्रं तथाभ्राद्विकम् । पात्रे लौहमये च  
मर्दनविधौ चूर्णीकृतञ्चैकतो, दर्व्या वादर-  
वह्निनातिमृदुना पाकं त्रिटित्नादले ४४६ ॥  
रम्भाया लघु ढालयेत् पदुरयं पञ्चामृता  
पर्पटी, ख्याता चौर्यवृत्तान्विता प्रतिदिनं  
गुञ्जाद्वयं वृद्धतः । लौहे मर्दनयोगतः  
सुविमलं भक्ष्यक्रिया लौहवद्, गुञ्जाष्टा-  
वथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत् ॥  
४४७ ॥ नानावर्णग्रहणायामरुचिसमुदये  
दुष्टदुर्नामिकादौ, हर्ष्या दीर्घातिसारे ज्वर-  
भवकसिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि । वृष्याणां  
वृष्यराज्ञीवलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री,  
तुन्दं दीर्घस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहं  
करोति ॥ ४४८ ॥

( रसदलं गन्धकार्द्धमित्यर्थः । दीर्घा-  
तिसारे चिरोत्थितातिसारे । )

गंधक ८ तोले और पारा ४ तोले, इनकी  
कजली बनाकर उसमें २ तोले लौहभस्म, १  
तोला अत्रक भस्म और आधा तोला ताम्र भस्म  
मिलाकर, लोहे के खरल में भलीभांति मर्दन  
करे । परचाव इस कजली को लोहे के कलड़े  
या कड़ाही में डालकर बेर की लकड़ी की अत्यंत  
धीमी आंच दे । जब कजली पतली हो जाय, तब  
गौ के गोबर पर केला का पत्ता रखकर, उस  
पर कड़ाही की कीचड़ के समान दवा  
को इस प्रकार से लीप देवे, जिसमें पापड़  
सा बन जाय । उसके ऊपर भी केले के

पत्ते से ढाककर, ऊपर गोपर रख देवे । दो घटे के अनंतर दोनों पत्तों के बीच में पापड के समान जमी हुई 'पञ्च-मृत पर्पटी' को निकाल लेवे । पश्चात् लोह के खरल म घोटकर रख लेवे । इसकी मात्रा—२ रत्ती है । प्रतिदिन घृत और मधु क साथ सेवन करे । प्रतिदिन एक एक रत्ती की मात्रा बढा करके, ८ या ६ रत्ती पर्यन्त सेवन करना चाहिए । एक सप्ताह सेवन करने से विविध प्रकार के ग्रहणीरोग, अरुचि, कुष्ठ, बन्धासीर, वमन, पुराना अलीसार, ज्वर, कास, रक्तपित्त और च्य आदि सब रोग नष्ट होते हैं । यह 'पर्पटी' बल और वीर्य को बढाती है, तथा बली ( शरीर की कुरिया ) । पलित ( याल सफेद हो जाना ) और नत्र के रोगों को दूर करती है । एव अग्नि को प्रदीप्त करके, रोगी के शरीर को फिर स्थूल तथा नूतन बना दती है ॥ ४४६ ४४८ ॥

विजयपर्पटी ।

गन्धकं क्ष द्रितं कृत्वा भाव्यं भृङ्गर-  
सेन तु । सप्तधात्रा त्रिधा वापि पश्चाच्छुष्कं  
विचूर्णयेत् ॥ ४४६ ॥ चूर्णयित्वायसे  
पात्रे कृत्वा वह्निगतं सुधीः । द्रुतं भृङ्गरसे  
क्षिप्तं तत उदघृत्य शोषयेत् ॥ ४४० ॥  
तत्र गन्धं पलञ्चैकं गन्धार्द्धशुद्धपारदम् ।  
सूतार्द्ध भस्मरौप्यञ्च तदर्द्ध स्पर्णभस्म-  
कम् ॥ ४४१ ॥ तदर्द्ध मृतप्रेक्रान्तं मौक्कि-  
कञ्च त्रिनिक्षिपेत् । एकीकृत्य ततः सर्वं  
कुर्यात् पर्पटिकां शुभाम् ॥ ४४२ ॥  
लौहपात्रे समरसं मर्दितं कज्जलीकृतम् ।  
वदराङ्गारवह्निस्ये लौहपात्रे द्रवीकृते ॥  
४४३ ॥ मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं वा यदि  
दृश्यते । आद्यायोर्दृश्यते सूतः खरपाके  
न दृश्यते । मृदौ न सम्यग्भङ्गः स्थानमध्ये

भङ्गश्च रूप्यवत् ॥ ४४४ ॥ खरे लघु  
भवेद्भङ्गो रुक्षः सूक्ष्मोऽरुगच्छयिः । मृदु  
मध्यौ तथा स्वाद्यौ खरस्त्याज्यो विषो  
पमः ॥ ४४५ ॥ जराव्याधिशताकीर्ण  
विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः । चकार पर्पटीमेता  
यथा नोरायणोऽमृतम् ॥ ४४६ ॥ आर्द्रौ  
शङ्करमभ्यर्च्य द्विजातीन् प्रणित्य च ।  
प्रभाते भक्षयेदेनां प्राग् रक्तद्वयसम्भिताम् ॥  
४४७ ॥ रक्तिकादिऋमाद् वृद्धिर्भक्ष्या नैव  
दशोपरि । आरोग्यदर्शनं यावत्तानद् दास-  
स्ततः परम् ॥ ४४८ ॥ अजीर्णं भोजनं  
नैव पथ्यकालव्यतिक्रमः । घृतसैन्धव-  
धन्योक्किहृद्गुजीरकनागरैः ॥ ४४९ ॥  
शस्यते व्यञ्जनं सिद्धं पित्ते स्नाद्भस्ममाक्षि-  
कम् । कृष्णमत्स्येन मुद्गेन मांसेन जाङ्गलेन  
च ॥ ४५० ॥ जाङ्गलेषु शशच्छागौ  
मत्स्ये रोहितमद्गुरौ । पटोलपत्रञ्च तथा  
कृष्णवार्त्ताकुजालिकाः ॥ ४५१ ॥ सुस्त्रिन्नपू-  
गैस्तामूलैर्लाभे कर्पूरसयुतैः । क्षुधाकाले  
व्यतिक्रान्ते यदि वायुः प्रमुप्यति ॥ ४५२ ॥  
भिड्भिन्नीति गिरःशूले विरेके वमथौ  
तथा । तृष्णायाश्चाधिके पित्ते नारिकेलाम्बु-  
निर्भयम् ॥ ४५३ ॥ नारिकेलपयः पयं  
निर्भयक्षीरमत्र च । स्वप्ने शुक्रच्युतौ चैव  
चम्पकं कदलीदलम् ॥ ४५४ ॥ वर्ज्यं निम्बा-  
दिकंशाकशाकाम्लकाञ्जिकं सुराम् । कदली-  
फलपत्राद्भिन्नप्रपुपालानुर्कर्वटी ॥ ४५५ ॥  
कृष्णाम्बुकारेणैव च्यायामजागरं निशि ।  
न पथ्येन्न स्पृशेद् गच्छेन् त्रियं जीवि-

१—आद्ययोर्दृश्यते सूत खरपात्रे न दृश्यते ।  
द्रुतं मृत्पान्तराधिपर पाठ ।

१—नालिका—महाकोपातक्याम्, हि० नेनुधा ।  
२—प्रपुपा प्रपुकर्कटयम्, हि० नीरा ।

तुमिच्छति ॥ ४६६ ॥ यद्यौषधे स्त्रियं  
गन्धेत् कर्त्तव्या तु प्रतिक्रिया । दुर्वारं  
ग्रहणी हन्ति दुःसाध्यां बहुवापिणीम् ॥  
४६७ ॥ प्रामशूलमतीसारं सामश्रैव सुदारु-  
णम् । अतिसारं पदशंसि यद्दमायं सपरि-  
ग्रहम् ॥ ४६८ ॥ शीथञ्च कामलां पाण्डुं  
स्त्रीहानञ्च जलोदरम् । पक्किशूलं चाम्ल-  
पित्तं वातरक्तं वर्मि कृमिम् । अष्टादशविधं  
कुष्ठं प्रमेहान् विषमञ्जरान् ॥ ४६९ ॥  
वातपित्तकफोत्थांश्च ज्वरान् हन्ति सुदारु-  
णान् । जीर्णोऽपि पर्पटी कुर्वन् वपुषा  
निर्मलः सुधीः ॥ जीवेद्वर्षतं श्रीमान्  
वलीपलितवर्जितः ॥४७०॥ प्रातः करोति  
सततं नियतं द्विगुञ्चां यस्तां स विन्दति  
तुलां कुसुमायुधस्य । आयुश्च दीर्घमनघं  
वपुषः स्थिरत्वं हानिं वलीपलितयोरतुलं  
वल्ञ्च ॥ ४७१ ॥

बावलों के समान गधक के छोटे-छोटे टुकड़े करके, ७ बार या ३ बार भँगरा के रस की भावनाएँ देवे। और प्रतिवार धूप में रखकर शुष्क करे। पश्चात् धूल क समान चूर्ण बनाकर लोह क पात्र में रखकर बेर की लकड़ी के निर्धूम अगारों की आँच से गलाकर, भँगरा में के रस में डाल देवे। तदनंतर निकालकर शुष्क कर लेवे। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ गधक ४ तोले, पारद २ तोले, चाँदी की भरम १ तोला, स्वर्ण भरम आधा तोला ( ६ मासे ), बैक्रान्त भरम ६ मासे और मुग्गा ( मोती ) ६ मासे, इन द्रव्यों को मिलाकर, लोह के खरल में यत् पूर्वक मर्दन करके उत्तम कजली बना लेवे। पश्चात् उस कजली को लोह की कटाही म डालकर, बेर की लकड़ी के अगारों की आँच से पिघला कर पतली करे। जब गली हुई कजली में मयूर पिच्छ की चन्द्रिका के समान कान्ति देख पड़ने लगे, तब

पाक को सिद्ध समझे। पश्चात् गौ के गोबर पर पैला वा पत्ता रखकर, उस पर कजली की द्रुति को पतली-पतली पैला दे, और उसके ऊपर भी केले के पत्ते को रख करके, उसके ऊपर गोबर रख देवे। दो घंटे के बाद दोनों पत्तों के बीच में पापट के समान जमी हुई 'विन्ध्यपर्पटी' को निकाल लेना चाहिये।

कजली का पाक मृदु, मध्य और रर, इन भेदों से तीन प्रकार का होता है। मृदु पाक होने पर पर्पटी उत्तम रूप से भग्न नहीं होती। मध्य पाक होने पर चाँदी के समान टुकड़े होते हैं। परंतु रर पाक में लघु, रूच, सूक्ष्म और रत्नवर्ण के टुकड़े होते हैं। मृदु और मध्य पाक की पर्पटी सेवन करने-गोम्य होती है। रर पाक की कजली विष के समान व्याज्य है। श्रीशङ्करजी ने ससार के प्राणियों को जरा और व्याधि से पीडित देप करके इस 'पर्पटी' को बनाकर इस प्रकार प्रशिक्षित किया था, जैसे विष्णु ने अमृत को आविष्कृत करके देवताओं को दिया था। तत्रतएव पहले शिवजी का पूजन करके ब्राह्मणों को प्रणाम करे, तदनंतर प्रतिदिन प्रातः काल इस औषध का सेवन करना चाहिये।

पहले दिन प्रातः काल दो रत्ती की मात्रा रखे। तदनंतर प्रतिदिन एक एक रत्ती की मात्रा घटा करके दस रत्तीपर्यन्त सेवन करनी चाहिये। दस रत्ती से अधिक मात्रा में सेवन करना उचित नहीं है। इस प्रकार जब तक आरोग्यता प्राप्त न हो, तब तक सेवन करना चाहिये। आरोग्यता प्राप्त होने पर क्रमशः मात्रा कम कर देनी उचित है। अजीर्ण में भोजन अथवा भोजनकाल के समय को छोड़कर भोजन न करे। घृन, लौहारी नमक, धनियाँ, हिंग, जीरा और सोंठ मिलाकर सिद्ध किये हुए खट्टे पदार्थ खाने चाहिये और पिप्पली वय में मधुर और खट्टे पदार्थों का तथा मधु का सेवन करना चाहिये। काली मछली, दूध और जगली पशुओं के मांस के साथ भोजन कर। जगली पशुओं में तरगोश और बकरा, मछली में रोहू और माँगुर तथा शाकों म परवल की पत्तियाँ, फल, काला बैंगन और नतुआ सवन



करने योग्य है । यदि मिल सके, तो उबालकर कौमल की हुई सुपारी और कपूर से युक्त पान का बीडा भी खावे । भूख लगने पर भोजन न करने से यदि वायु कुपित हो जाय तथा देह में झुनझुनी, शिर में पीडा, अतिसार, वमन, अधिक तृष्णा और पित्त की वृद्धि हो, तो निर्भय होकर नारियल का पानी पिलाना चाहिये । पेय पदार्थों में नारियल का पानी और प्रतिदिन दूध का सेवन करे । स्वप्न में धातु चीण होने पर भी दुग्ध का पीना लाभदायक है । चम्पक, कदलीदल, निम्ब आदि तिरु द्रव्यों का शाक, इमली, कौंजी, मदिरा, केले के फल, पत्र और मूल, खीरा, घीयां, ककड़ी और पेठा इनका सेवन न करना चाहिये । व्यायाम और रात्रि का जागरण भी वर्जित है । यदि जीवन की इच्छा हो, तो श्रौषध के सेवनकाल में घी को न देखे, और न स्पर्श करे और न उसके पास जावे । यदि कदाचित् दुर्भाग्यश स्त्री-समागम हो ही जाय, तो यथोचितरूप से उसका प्रतीकार करना चाहिये । यह 'पर्वती' कठिन एवं दुःसाध्य और बहुत दिनों के पुराने ग्रहणी-रोग, आमशूल, अतिसार, ३ प्रकार के बवासीर, उपद्रव-युक्त यक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डु, ग्रीहा, जलोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, कृमि, अटारह प्रकार के कुष्ठ, प्रमेह, विषमज्वर, घातिक, पीत्तिक और श्लैष्मिक ज्वर आदि अनेक प्रकार की व्याधियों को नष्ट करके शरीर की पुष्टि, रति-रात्रि की वृद्धि, बली पलित शून्यता ( शरीर की कुर्रियां, बालों की सफेदी रहित ) और परमायु की वृद्धि करती है ॥ ४४६-४७१ ॥

तन्त्रान्तरोग्रहजयपर्वटी ।

रसंजज्ञं हेमतारं मौक्तिकं ताम्रभ्रकम् ।  
सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद्विजयपर्वटीम् ॥  
४७२ ॥ दुर्वासां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां  
बहुवार्पिकीम् । आमशूलमतीसारं चिरो-  
त्यमतिदारुणम् ॥ ४७३ ॥ प्रवाहिकां  
पटशीसि यत्माणं सपरिग्रहम् । शोथं च

कामलांपायडुंस्त्रीहगुल्मजलोदरम् ॥४७४॥  
पंक्तिशूलमम्लपित्तं वातरक्तं वर्मिभ्रमम् ।  
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥  
४७५ ॥ चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दाग्नित्व-  
मरोचकम् । जीर्णोऽपि पर्वटीं कुर्वन् वपुषा  
निर्मलः सुधीः ॥ जीवेद्वर्षशतं श्रीमान्  
बलीपलितवर्जितः ॥ ४७६ ॥ प्रातः  
करोति सततं नियतं द्विगुञ्जां यस्तां स  
विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य । आयुश्च  
दीर्घमनघं वपुषःस्थिरत्वंहानिबलीपलित-  
योरतुलं बलञ्च ॥ ४७७ ॥ जराव्याधि-  
समाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः । चकार  
पर्वटीमेतां यथा नारायणः सुधाम् ४७८ ॥

पारा, हीरा की भस्म, सोना की भस्म, चाँदी की भस्म, मोती की भस्म, ताम्रभस्म और अन्नकभस्म प्रत्येक एक-एक तोला तथा गंधक सात तोले; इनको एकत्र करके विधिपूर्वक घोटना चाहिये और पहिली कही विधिसे 'विजय-पर्वटी' को बना लेवे । यह "विजय पर्वटी" कठिन और बहुत पुराने ग्रहणीरोग, आमशूल, पुराने अतिसार, प्रवाहिका, ६ प्रकार के बवासीर, उपद्रव-युक्त-यक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डु, ग्रीहा, गुणम, जनोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, भ्रम, १८ प्रकार के कुष्ठ, प्रमेह, विषमज्वर, ४ प्रकार के अजीर्ण, अग्निमान्द्य और अरोचक आदि अनेकों प्रकार के रोगों को नष्ट करके शरीर की पुष्टि, काम्ति-वृद्धि, रति-रात्रि की वृद्धि, शरीर की कुर्रियां और बालों की सफेदी का नाश और परमायु की वृद्धि करती है । इसे पहले शिवजी ने संसार को बुझाया और बीमारी से पीड़ित देखकर, इस प्रकार प्रचलित किया था, जैसे विष्णु ने अमृत का आविष्कार करके देवताओं को दिया था । इसकी मात्रा २ रत्ती की है । प्रति-दिन प्रातःकाल सेवन करना चाहिये ॥४७२-४७८॥

१ शृमिभित वाटान्तरम् ।

हिरण्यगर्भपोट्टली रस ।

एकांशो रसराजस्य ग्राह्यो द्वौ हाट-  
कस्य च । मुक्ताफलस्य चत्वारो भागः  
पट्टदीर्घनिःस्वनात् ॥ ४७६ ॥ त्र्यंशं  
वलेर्वराट्वाथ टङ्गनो रसपादिकः । पक्-  
निम्बुकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ४८० ॥  
मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोध-  
येत् । गर्तेऽरत्रिममाणेन पुटेत् त्रिशद्वनो-  
पलैः ॥ ४८१ ॥ स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा  
रसं मूषोदरान्नयेत् । ततः खल्लोदरे मर्द्यं  
सुधारूपं सधुद्धरेत् ॥ ४८२ ॥ एतस्यामृत-  
रूपस्य दद्याद् द्विगुञ्जसम्मितम् । घृत-  
माध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदपणैः ॥ ४८३ ॥  
मन्दाग्नौ रोगसंघे च ग्रहण्यां विषमञ्जरे ।  
गुदाङ्कुरे महामूले पीनसे श्वामकासयोः ॥  
४८४ ॥ अतीसारे ग्रहण्याश्च श्वयथौ  
पाण्डुके गदे । सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत  
स्त्रीहादिकेषु च ॥ ४८५ ॥ वातपित्त-  
कफोत्थेषु द्वन्द्वेषु त्रिजेषु च । दद्यात्  
सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद्रसायनम् ॥ ४८६ ॥

पारा १ तोला, स्वर्ण-भस्म २ तोले, मोती-  
भस्म, ४ तोले, काँसा भस्म ६ तोले, गंधक  
३ तोले, कौडी की भस्म ३ तोले और सोहागा  
फूला हुआ ३ मासे इन सब द्रव्यों को एकत्र  
करके, पके नीच के रस में खरल करे । पश्चात्  
इस कल्क को मूषा यन्त्र में रम्बकर, मूषा-यन्त्र  
का मुख मुद्रित करके चूटपुट में ३० कंठियों  
की आँच देकर यथाविधि पुटपाक करे । स्वाङ्ग-  
शीतल होने पर रस को मूषा-यन्त्र से निकाल-  
कर, खरल में धोटकर रख लेवे । अमृतरूप  
इस रस की मात्रा २ रत्नी की है । घी मधु और  
२६ मिर्च के साथ सेवन करना चाहिए । अग्नि-  
मान्द्य, ग्रहणीरोग, विषम-ञ्जरे, असाध्य  
धवासीर, पीनस, श्वास, कास, अतीसार

शोथ, पाण्डु और सय प्रकार के कोष्ठरोग,  
यकृत और स्त्रीहा आदि रोगों में तथा अन्यान्य  
सय प्रकार के घातिक, पित्तिक, श्लीष्मिक, द्वन्द्वज  
और सात्रिपातिक रोगों में यह 'हिरण्यगर्भ-  
पोट्टलीरस' अत्यन्त लाभदायक और श्रेष्ठ  
रसायन है ॥ ४७८-४८६ ॥

तत्कारिष्ट ।

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिप-  
लांशिकम् । लवणानि पलांशानि पञ्च  
चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ४८७ ॥ तक्रकं संयुतं  
जातं तक्रारिष्टं पिवेन्नरः दीपनं शोथ-  
गुल्मार्शः कृमिमेहोदरापहम् ॥ ४८८ ॥

अजवाइन, आँवला, हड़ और मिर्च प्रत्येक  
बारह-बारह तोला, पाँचों नमक प्रत्येक चार  
चार तोला; इन सब द्रव्यों को एकत्र करके चूर्ण  
बनावे । परचात् इस चूर्ण को १६ सेर तक्र में  
मिलाकर ४ दिन पर्यन्त रख छोड़े । इसका  
नाम 'तक्रारिष्ट' है । यह 'तक्रारिष्ट' अग्नि को  
दीप्त तथा शोथ, गुल्म, धवासीर, कृमिरोग,  
प्रमेह और उदररोगों को नष्ट करता  
है मात्रा ४ तोला ॥ ४८७-४८८ ॥

पिप्पल्यादि आसव ।

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको  
घनः । विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्ये-  
लवालुकम् ॥ ४८९ ॥ उशीरं चन्दनं कुष्ठं  
लवङ्गं तगरं तथा । मांसी त्वगेलापत्रञ्च  
प्रियङ्गु नागकेशरम् ॥ ४९० ॥ एषामर्द्ध-  
पलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान् ।  
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुला-  
त्रयम् ॥ ४९१ ॥ पलानि दश धातक्या  
द्राक्षा पट्टिपला भवेत् । एतान्येकत्र संयोज्य  
मृदो भाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ४९२ ॥ ज्ञात्वा  
रसगतं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया । क्षयं गुल्मो-  
दरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा ॥ ४९३ ॥

अर्शोसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासव-  
स्त्वयम् ॥ ४६४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ग्रहणयधिकारः  
समाप्तः ।

पीपल, मिर्च, चण्ड, हल्दी, चीता, नागर-  
मोथा, बायबिडंग, सुपारी, लोध, पाई, आँवला  
एलवालुक ( सुगन्धद्रव्य ) खस, लालचंदन,  
कूट, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, छोटी  
इलायची के बीज, तेजपात, फूलप्रियंगु और  
नागकेसर, प्रत्येक को दो-दो तोले लेंवे । इनका  
महीन चूर्ण करके २२ सेर ४८ तोला जल  
में मिलाकर पन्द्रह सेर गुड़, ४० तोला  
घाय के फूल और ३ सेर मुनक्का ढालकर,  
मिट्टी के पात्र में रखकर, पात्र का मुख मुद्रित  
करके, एक मासपर्यन्त रख छोड़े । पश्चात्  
छानकर बोटलों में भरकर रख लेवे । अग्नि के  
बल का विचार करके मात्रा स्थिर करनी चाहिए ।  
यह "पिप्पल्याद्यासव" घब, गुल्म, उदर, काश्यं,  
ग्रहणीरोग, पाण्डु और वक्सासीर को तत्काल  
नष्ट करता है ॥ ४८६-४६४ ॥

ग्रहणी रोग में पथ्य ।

निद्राच्छर्दन लंघनं चिरभवा ये  
शालयः पष्टिकः । मण्डोलाजकृती  
ममूर तुरो मुद्रमसूतारसः । निःशेषोद्ध-  
तसारमेव दधि यत्सत्तौर जातेगवांङ्गाभ्या ।  
वानयनीतमेवदधिजं तद्रूपयः संभ-  
वम् ॥ ४६५ ॥ ङ्गात्याज्य पयोदधीनि  
तिलजे तैलं सुरा मासिकं । शालूकं वकुलं  
च दाडिभयुगं मत्थानि मत्थानि च ॥  
रामाभ्यः कुमुमं फलं चतरुणं विलं  
च शृंगाटकं चांगेरी विजया कपित्थ  
कुटजा नागकेसरमेव च ॥ ४६६ ॥ तक्रं  
काञ्चट स्रानिपैदवकं जातीफलं जाम्बवं ।  
धान्याकानि च तिन्दुकानि चमहा-

निम्बोज्ज्वला पेलवम् ॥ ४६७ ॥ कृत्याल्लाव  
शशैण निन्तिडरसः क्षुद्राभयः सर्वतः ।  
खुड्डीशो मधुरालिका च खलिशः सर्व  
कपायो रसः ॥ ४६८ ॥ नाभेद्वचंगुल  
कादयोर्ध्व शशि वा द्वंशास्त्रियुपे तथा,  
दाहः प्रज्वलितायसायकथितं पथ्यं  
ग्रहण्यातुरे ॥ ४६८ ॥

सोना, वमन, उपवास, पुराने शालो चावल,  
पुराने साठी चावल, खीलों का मांह, मसूर,  
अरहर और मूंग का रस, मक्खन निकला हुआ,  
गौ बकरी का दही, बकरी का मक्खन घी,  
बकरी का दही दूध, तिल का तैल, मदिरा,  
शहद, कमलकद, मौलसिरी, दोनों प्रकार के  
अनार, लिसोदे नए, केला के फूल फल नए  
कच्चे बेलफल, सिंघाड़ा, चांगेरी भांग,  
कैथ, कुड़ा की छाल जीरा, कसेरू, छाछ, जव,  
चीलाई की पत्ती, चौपतिया, जायफल, जामुन,  
धनियां, नागकेसर, बकायन, मजीठ, पेलव,  
मांसाहारी पशियों का मांस, खरगोश, पयातीतर  
का मांसरस, सब प्रकार की छोटी २ मछलियां,  
खुड्डीशर खास प्रकार की मछली जो थोड़ी  
देर तक उड़ती रहती है, मधुरालिका ( खास  
तरह की मछली ) सब प्रकार के कसैले द्रव्य  
नाभि के दो अंगुल नीचे तथा दो अंगुल ऊपर  
रीढ़ की हड्डी में लोहे से अर्द्धचिह्न आकार में  
दाग देना गृहणी रोग में पथ्य है ॥ ४६५-४६८ ॥

ग्रहणी रोग में अपथ्य ।

रक्त सृति जागरमम्बुपानं स्नान स्त्रियं  
इंद्रियनिग्रहं च । नस्याज्जन स्वेदन  
धूम्रपानं श्रम विरुद्धाशन मातये च ।  
गोभूम निष्पावकलायमापयवार्द्रकच्छत्रक  
राजभाषाम् । उपांशिका वास्तुक काकमाची  
कूप्माण्ड तुंघी मधु शिशुकन्दान् ॥ ४६९ ॥  
ताम्बूलमिस्तु पदरं रसालभेर्वाकं  
पूगफलं रसोनम् । धान्यास्म सौधीर

तुपोदकानि दुग्धं गुडं मस्तु च नारिकेलम्  
पुनर्नवावाहित वैणवागि च यलवन्ति ॥  
५०० ॥ दुष्टाम्बु गीवरी कुरङ्ग नार्कचारं  
सराणिचापि द्राक्षामथाम्यं लवणं  
सरंच । गुर्वत्र पानं सकले च यूपम् वैद्य-  
श्चिकित्सन्ग्रहणी विकारं विवर्जयत्संत-  
तमप्रमत्तः ॥ ५०१ ॥

फसद खोलना, रात में जगना, अत्यन्त जल पीना, नहाना, खीसंसर्ग, मलमूत्र आदि के वेग को रोकना नश्यकर्म, सुरमा लगाना, स्वेदन, धूम्रपान, परिश्रम करना, विरुद्ध भोजन, धूप पर आग से तापना, गेहूँ, सफेद सेम की फली, मटर, उदद, जौ, अदरक, छतवन, चीलाई, पोई का साग, ययुआ, मकोय, पेठा और काशीफल, तुम्बी, मीठा सहजना, आलू अरई आदि कंद पान, ईल, बेर, आम, ककड़ी, खीरा, सुपारी, लहसुन काँजी सौबीर ( जौमेदू की कली ) तुपोदक कचे जी की बनी काँजी, दूध दही का तोड़, गुड नारियल की गिरी और जल, सोडी कटेरी, बोंस के अंकुर, सब प्रकार के पत्तों के शाक, दूषित जल, गौमूत्र, कस्तूरी जवाखार आदि सार, सब प्रकार की दस्तावर वस्तुएँ, दारु, आमचूर आदि की खटाई, नमक, आदि देर से पचनेवाले आहार पृथा-पूरी आदि पकवान सब ग्रहणी के रोगी को हानिकारक है ॥ ४६६-५०१ ॥

इति सरयूपसादत्रिपरिधिचिन्तायां भैषज्य-

रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायीं ध्याह्वयायां

ग्रहण्यधिकारः समाप्तः ।

### अथ कृम्यधिकारः

पारसीययमानी पीता पर्युषितवारिणा  
प्रातः । गुडपूर्वा कृमिजातं कोष्ठगतं  
पातयत्याशु ॥ १ ॥

गुडपूर्वा प्रथमतो गुडं भक्षयित्वा  
मनाक् विलम्बं कृत्वा पातव्या ।

प्रातःकाल पहले थोड़ा गुड खाकर थोड़ी देर के बाद पुरासानी अजवाइन को घासी पानी के साथ खाने से कोष्ठगत सब प्रकार के कृमि शीघ्र गिर जाते हैं । मात्रा-२ रत्ती से ६ रत्ती तक ॥ १ ॥

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं चौरुद्रयुतं पिबेत् ।  
केयुकस्य रसं वापि पत्तूरस्याथवा<sup>१</sup> पुनः ॥  
लिह्यात् चौरुद्रेण वैडङ्गं चूर्णं कृमिहरं  
परम् ॥ २ ॥

शहद मिलाकर फरहद के पत्ते का रस, केयुआ के पत्ते का रस अथवा पत्तूर के पत्ते का रस पीने से अथवा शहद के साथ वायविडंग के चूर्ण को चाटने से भी उदर के भीतर के कृमि नष्ट हो जाते हैं मात्रा २ तोला ॥ २ ॥

मुस्ताखुपर्णी फलशिग्रु दारुन्वाथः  
सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः । मार्गद्वयेनापि  
चिरप्रवृत्तान् कृमीन्निहन्ति कृमिजांश्चं  
रोगान् ॥ ३ ॥

नागरमीथा, मूयाकानी, त्रिफला, सहजना की छाल और देवदारु के छाय में एक-एक माथे पीपल और वायविडंग का कल्क मिलाकर पान करे, दोनों मार्गों से प्रवृत्त हुए चिरकालिक कृमि और कृमिजन्य अभ्यान्वय रोग नष्ट हो जाते हैं मात्रा ४ तोला ॥ ३ ॥

फलत्रिक ।

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा चौरुद्रसंयुतम् ।  
पिबेत्तद्वीजकल्कं वा तक्रोण कृमिनाश-  
नम् ॥ ४ ॥

शहद मिलाकर पलाश के बीजों के स्वरस

१—यह शाक विशेष है । इसको बंगाल में शालिच कहते हैं ।

२—सन्दारविशेषो निम्बोऽपि गृह्यते तेन ।

को अथवा तक्र<sup>१</sup> में घोलकर ढाक के बीजों के कल्क को पीने से उदर के भीतर के कृमि नष्ट होते हैं मात्रा स्वरस २ तोला कल्क ६ मा १ तोला ॥ ४ ॥

क्वाथं खजूरपत्राणां सत्तौद्रुपितं  
निशि । पीत्वा निवारयत्याशुकृमिसङ्घम-  
शेषतः ॥ ५ ॥

खजूर के पत्तों के बासी हाथ को शहद मिलाकर पान करे, तो समस्त कृमि तत्काल नष्ट हो जाते हैं मात्रा ४ तोला ॥ ५ ॥

अपक्वं क्रमुकं पिष्टं पीतं जम्बीरजै  
रसैः । निहन्ति विड्भवं कीटं रसः खजूर-  
जम्भयोः ॥ ६ ॥

दो मासे कच्ची सुपारी को पीसकर दो तोले नीबू के रस में घोलकर पीने से अथवा चार तोले खजूर की पत्तियों के स्वरस में चार तोले नीबू के स्वरस को मिलाकर पीने से विष्ठा के कृमि नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

पिवेत्तुम्बीरीजचूर्णं तद्रेण कृमिनाश-  
नम् । नारिकेनजलं पीतं सत्तौद्रं कृमि-  
नाशनम् ॥ ७ ॥

कड़वी लीकी के बीजों के चूर्ण को तक्र में घोलकर पीने से अथवा नारियल के जल में शहद मिलाकर पीने से कृमि नष्ट होते हैं मात्रा ६ माशा ॥ ७ ॥

यमानां लगणोपेतां भक्षयेत्कल्प  
उत्थितः । अनीर्णमामनात्तन्नं कृमिजांश्च  
जयेद् गदान् ॥ ८ ॥

प्रातः काल अजवाइन के चूर्ण में लाहीरी नमक मिलाकर खाने से अनीर्ण, आमनात और कृमि-जन्य समस्त रोग नष्ट होते हैं मात्रा ३ माशा ॥ ८ ॥

१—मुथ्रतकार ने इस प्रयोग को चावलों के जल के साथ भी पीने को लिखा है । यथा “पला-  
शबीजस्वरसरसकल्क वा सपदुलाग्युना” इति ।

पलाशरीजेन्द्रभिडङ्गनिम्बमूनिम्बचूर्णं  
सगुडं लिहेत् यः । दिनत्रयेण कृमयः  
पतन्ति पलाशबीजेन यमानिकां वा ॥ ९ ॥

ढाक के बीज, इन्द्रजव, थायविडग, नीम की छाल और चिरायता के चूर्ण को गुड के साथ सेवन करने से अथवा ढाक व बीज के साथ अजवाइन के चूर्ण को सेवन करने से सब प्रकार के कृमि तीन ही दिनों में गिर पड़ते हैं मात्रा ४ ६ माशा ॥ ९ ॥

कम्पिल्लचूर्णं मापार्द्धं गुडेन सह  
भक्षितम् । संपातयेत् कृमीन् सर्वानुदर-  
स्थान्न संशय ॥ १० ॥

चार रत्ती कमली के गुड के साथ सेवन कराने से पेट के अ-दर के सब कीड़ बाहर निकल जाते हैं ॥ १० ॥

पारासीयादिचूर्णं ।

पारासीययमानिका घनकणा शृङ्गी  
विडंशरुणा चूर्णं श्लक्ष्णतरं विलीढमपि  
तत् चौर्रेण संयोजितम् । कासं नाशयति  
ज्वरश्च जयति गौडातिसारं जयेत् छर्दिं  
मर्दयति कृमिन्तु नियतं कोष्ठस्थमुन्मूल-  
येत् ॥ ११ ॥

सुरासानां अजवाइन, नागरमोधा, पीपल, काकदासिगी, थायविडग और अतीस, इन सब औषधों का चूर्ण मधु के साथ चाटन से खासी, ज्वर, अतीसार, वमन और कोष्ठस्थ कृमि नष्ट हो जाते हैं मात्रा १ ॥ ३ माशा ॥ ११ ॥

पेपयेदारनालेन नाडीचस्य फलानि  
च । यूकालिन्नामशान्त्यर्थं दद्याल्लेपन्तु  
मस्तके ॥ १२ ॥

काँजी के साथ नाडी ( पटुष्ठा ) के फलों को पीसकर मस्तक पर छेप करने से जूँ और खीर मर जाते हैं ॥ १२ ॥

रसेन्द्रेण<sup>१</sup> समायुक्तो रसो धुस्तूरपत्रजः ।  
ताम्बूलपत्रजो वापि लेपाद् यूकाविना-  
शनः ॥ १३ ॥

धतूरे की पत्तियों के रस में अथवा पान की पत्तियों के रस में पारा मिलाकर लेप करने से जूँ आदि वाहरी कृमि नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥

विडङ्गतैल ।

सत्रिडङ्गगन्धकशिलासिद्धं सुरभी-  
जलेन कटुतैलम् । आजन्म नयति नाशं  
लिप्तासहितांश्च यूकांश्च ॥ १४ ॥

शिला मनःशिला, गन्धक शिला शब्देन  
गन्धक इति भानुः ।

कटु वा तेल २ सेर, गोमूत्र ८ सेर, वाय-  
विडंग, गन्धक और मैनासिल का कलक १ सेर,  
इनको एकत्र पकाकर तैल सिद्ध करे । इस तैल  
के मर्दन करने से चिर-संचित जूँ और लीख नष्ट  
हो जाते हैं ॥ १४ ॥

इस श्लोक में 'शिला' का अर्थ मैनाशिल है,  
परन्तु भानुजी का मत है कि यहाँ गन्धकशिला  
शब्द गन्धक अर्थ का वाचक है ॥

विडङ्गाद्य तैल ।

तुलामानं विडंगस्य सोमवल्याः पलं  
शतम् । जलद्रोणे विपक्कन्यं चतुर्भागाव-  
शेषितम् ॥ १५ ॥ एतत्काथे पचेत्तैलं  
द्वात्रिंशत्पलमानकम् । विडंगो वारुणी  
वह्निर्लाङ्गली च प्रसारिणी ॥ १६ ॥ दासी-  
कुरण्टकरश्चैव कट्फलस्त्र्यूपणं वरा ।  
रास्ना चैरण्डमूलं च प्रत्येकं शुक्लिसम्भि-  
तम् ॥ १७ ॥ कल्कार्थं दीयते तत्र शनै-  
र्मृद्वग्निना पचेत् । कोटकण्डूज्वरानाह-  
हृत्नासारुचिपीनसान् ॥ १८ ॥ ग्रहणी

पाण्डुता मूर्च्छाः कृमिंश्चान्तर्वाहिरश्च-  
रान् । विडंगायमिदं तैलं नाशयेन्नात्र  
संशयः ॥ १९ ॥

वायविडंग पाँच सेर और सोमवल्ली (अभाव  
में काली जीरी) पाँच सेर इन दोनों को बारह  
सेर ६४ तोला जल में पकावे । जय चौथाई जल  
शेष रहे, तब उस काथ में ६४ तोला तेल ढाले  
और वायविडंग, इन्द्रायण, चीते की जड़, काल-  
यारी, गन्धपसारिणी, नील और पीत पुष्प का-  
पियावासा, कायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला,  
रासना और अरुंडी की जड़ प्रत्येक दो-दो तोला  
ले । इनका कलक तैल और काथ में ढालकर धीरे-  
धीरे मन्दग्नि से पकाना चाहिये ।

यह विडंगाय तैल कोठ, पुजली, ज्वर, पेट  
फूलना, हृत्लास, अग्नि, पीनस, ग्रहणी, पाण्डु-  
रोग, मूर्च्छा और दोनों प्रकार के ( भीतरी और  
बाहरी ) कृमियों को निःसन्देह नाश  
करता है ॥ १९-१९ ॥

धुस्तूरतैल ।

धुस्तूरपत्रकल्केन तद्रसेन च साधि-  
तम् । तैलमभ्यङ्गमात्रेण यूकां नाशयति  
ध्रुवम् ॥ २० ॥

धतूरे की पत्तियों का कलक और धतूरे की  
पत्तियों के रस में तैल को पकाकर शिर में मालिश  
करने से जूँ अथवा नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

त्रिफलाघृत ।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा काम्पि-  
ल्लकं तथा । सिद्धमेभिर्गवां मूत्रै सर्पिः  
कृमिविनाशनम् । सर्वान् कृमिन् प्रणु-  
दति वज्रं मुक्तमिवासुरान् ॥ २१ ॥

त्रिफला, निसोत, दन्ती ( जमालगोटा की  
जड़ ), वचा और कबीले का कलक और गोमूत्र  
के साथ सिद्ध किए हुए घृत के सेवन करने से  
सब प्रकार के कृमि इस प्रकार नष्ट हो जाते  
हैं, जैसे इन्द्र के वज्र द्वारा असुरों का विनाश  
हुआ था ॥ २१ ॥

त्रिफलाघृत ।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडंगप्रस्थ एव च । दीपनं<sup>१</sup> दशमूलञ्च लाभतः समुपाचरेत् ॥ २२ ॥ पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत् । प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं कृमिनाशनम् ॥ त्रिफलाघृतमेतद्धि लेहं शर्करया सह ॥ २३ ॥

दीपनं पञ्चकोलम् ।

त्रिफला २ सेर ३२ तोला, वायविडंग ६४ तोला, पञ्चकोल ६४ तोला और दशमूल ६४ तोला लेकर १ मन ११ सेर १६ तोला जल में पकावे और १२ सेर ६४ तोला जल शेष रहने पर छान करके उस काथ में ३ सेर १६ तोला घृत और ६४ तोला लाहौरी नमक डाल करके धीमी आँच से यथाविधि घृत सिद्ध कर लेवे । इस घृत को शकर के साथ सेवन करने से सब प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते हैं २२-२३ कृमिरोग में हरिद्राखण्ड पारिभद्रावलेह ।

स्वरसं पारिभद्रस्य प्रस्थमादाय यत्नतः । तदूर्द्धा च सितां दत्त्वा घृतं कुडवसम्मि- तम् ॥ २४ ॥

प्रस्था<sup>२</sup> रजनीचूर्णं दत्त्वा पाकं समाचरेत् । यदा दर्वीप्रलेपः स्यात्तदैपां चूर्णमाक्षिपेत् ॥ २५ ॥

चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडंगं कृष्णजीरकम् । यमानीद्वयसिन्धूथं निर्गुण्डी- फलमेव च ॥ २६ ॥ पाठाविडङ्गञ्चैव सारिवाह्वयवासकौ । पलाशबीजं व्योषञ्च त्रिष्टण्डी सरेणुका ॥ २७ ॥ अरिष्टं सोमराजो च प्रत्येकन्तु द्विकापिकम् । ततो

शाणमितं खादेत्तोयञ्चानु पिवेन्नरः ॥ २८ ॥ कूर्मीरच विंशतिविधान्नाशयेन्नात्र संशयः । दुष्टप्रणञ्च कुष्ठञ्च नाडीत्रणभगन्दरम् ॥ २९ ॥ शीतपित्तं विद्रधिञ्च दद्रुं चर्म- दलं तथा । अजीर्णं कामलां गुल्मं श्वय- थुञ्च विनाशयेत् ॥ ३० ॥ बलपुष्टिकरो ह्येव बलीपलितनाशनः । हरिद्राखण्डना- मायं सर्वव्याधिनिपूदनः ॥ त्रिणनां हित- कामो हि प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ३१ ॥ द्रवद्वैगुण्द्यादष्टपलमिति ग्रन्थकर्त्त- र्मतम् । पारिभद्रावलेहोऽयमित्यन्यत्र पाठः ।

फरहद की पत्तियों का स्वरस १२८ तोला, चीनी ६४ तोला, घृत आधा सेर और हलदी का चूर्ण ३२ तोला; इन सब औषधों को पकावे । जब पाक कर्षी में चिपकने लगे, तब घीतरा, त्रिफला, नागरमोधा, वायविडंग, काला जीरा, सुरासानी अजवाइन, अजवाइन, लाहौरी नमक, सँभालू के फल, पाड़ी, वायविडंग, काली सारिवा, अनन्तमूल, अरुसे की जड़, टाक के बीज, त्रिकटु, निसोत, दन्ती ( जमालगोटा की जड़ ), सँभालू के बीज, नीम की छाल और काली जीरी दो-दो तोले चूर्ण को मिलाकर उतार लेवे, इसको हरिद्रा- खण्ड कहते हैं । मात्रा-३ माशे । अनुपाम-जल । यह औषध बीस प्रकार के कृमियोंकी श्वरस नष्ट करती है । तथा दुष्टप्रण, कुष्ठ, नाडी-प्रण, भगन्दर, शीतपित्त, विद्रधि, दद्रु, चर्मदल, अजीर्ण, कामला, गुल्म और शोथ आदि सकल व्याधियों को दूर करके बली और पलित को नष्ट करती है । प्रणरो- गियों की हितकामना से नागार्जुनजी ने इसका उपदेश किया है ।

‘द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः’ के अनुसार द्रवपदार्थं द्विगुण लिए गए हैं, अतः यहाँ पर ‘कुडवम्’ का अर्थ आठ पल समझना चाहिए । यह ग्रन्थकार का मत है । इस हरिद्राखण्ड को अन्यत्र ‘पारि- भद्रावलेह’ कहते हैं ॥ २४-३१ ॥

१—ग्रन्थांतरे पुस्तकांतरे च विडंगघृतनाम्ना लिखितमस्ति ।

२—द्विपलं दशमूलं चेति पाठान्तरम् ।

पारिभद्रावलेह ।

पलाशबीजं द्विपलं च योज्यं तथे-  
न्द्रबीजं कृमिशत्रुचूर्णम् । लवंगमेल-  
गजपिप्पली च त्वक्पत्रशुण्ठीमरिचानि  
टंगम् ॥ ३२ ॥ शुभाकणे चित्रकमुस्तके  
च विडं तथा सैन्धवमूक्ष्मचूर्णम् । रेणुक-  
धात्रीफलशैलजं च हरीतकी चाक्षफलं  
जलं च ॥ ३३ ॥ लौहाभ्रवंगानि सुचू-  
रितानि प्रत्येकमेपां पिचुभागयोज्यम् ।  
मन्दारपत्रस्वरसस्य प्रस्थं शरावमेकं सुर-  
भीजलस्य । एकत्र सर्वं परिपाचयेच्च पल-  
द्वयं मात्तिकमेवदद्यात् ॥ ३४ ॥ ततोऽक्ष-  
मात्रां प्रपिवेन्नरो वै कृमीन् निहन्त्यात्  
कृमिशूलमुग्रम् । मन्दानलं हन्ति तथा  
वमिञ्च कासं तथा स्वासमरोचकं  
च ॥ ३५ ॥

ढाक के बीज ( पलाशपापड़ा ) ८ तोला,  
इन्द्रयव, वायविहंग, लौंग, इलायची, गजपीपर,  
तज, पत्रज, सोंठ, मिर्च, सुहगा फूला हुआ,  
वंशलोचन, पीपर छोटी, चीता, नागरमोथा,  
बिडनमक, सेंधानमक, सेंभालू के बीज, आँवला,  
शिलाजतु, हरड, बहेडा, नेत्रवाला, लौह, अभ्र  
और बंग इन सबको एक-एक तोला लेकर खूब  
महीन चूर्ण करे तथा इसमें ६४ तोला आक  
( देवदूध कोई-कोई नीम को ले लेते हैं ) के पत्रों  
का स्वरस और एक सेर गोमूत्र डालकर पकावे  
और ८ तोला शहद डालकर रख छोड़े । इसको  
एक कर्पे खावे, तो कृमि-रोग कृमि-शूल  
मन्दाग्नि, वमन, कास, स्वास और अरुचि ये  
सब नष्ट होते हैं ॥ ३२-३५ ॥

कृमिघातिनी वटिका ।

शशिलेखा निशा कृष्णा काम्पिलो

१—इसकी मात्रा १ कर्प ( १ तोला ) अधिक  
है । अस्तु, ३-४ माशा की मात्रा देनी चाहिये ।

गिरिमृत्तिका । त्रिवृन्मूलं शिवावीजं  
पलाशस्य समं समम् ॥ ३६ ॥ सम्मर्द्य  
वारिणा कार्या चतुर्गुञ्जामिता वटी ।  
हृल्लासं सदनं शोथं शूलक्षयशुपीनसान् ॥  
३७ ॥ भ्रूणद्वेषं ज्वरं कार्श्यं वमनं विड्वि-  
वद्धताम् । कृमींश्च विंशतिविधान् नाश-  
येत् कृमिघातिनी ॥ ३८ ॥

सोमराजी ( काली जीरी ), हण्डी, पीपर,  
कयीला, गेरू, निशोध, पीपरामूल, हरड, ढाक  
के बीज इन सब औषधियों को समान भाग लेवे,  
और जल के साथ महीन घोटकर चार-चार रत्ती  
की गोलियों बना लेवे । यह कृमिघातिनी  
वटिका हृल्लास ( मुँह में पानी भर आना ),  
देह पीड़ा, शोथ, शूल, छींक, पीनस, अन्त में  
अरुचि, ज्वर, कृशता, घमन, मलबद्ध ( मला-  
वरोध ) और बीस प्रकार के कृमियों का नाश  
करती है ॥ ३६-३८ ॥

कृमिशार्दूल चूर्ण

सोमवल्ली विडङ्गं च भूमिन्धो कटुकी  
तथा । पर्णावीजं त्रिवृन्मूलं पिचुमर्दो  
हरीतकी ॥ ३९ ॥ एतानि समभागानि  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । मापमात्रं प्रदा-  
तव्यं यथानुपानयोगतः ॥ ४० ॥ कृमीन्  
कृमिगदान् सर्वान् मन्दाग्निस्वमरोच-  
कम् । ज्वरं च नाशयेच्चूर्णं कृमिशार्दूल-  
नामकम् ॥ ४१ ॥

'कालीजीरी, वायविडग, चिरायता, कुटकी,  
ढाक के बीज, निशोध, नीम की छाल, हरड का  
थकला, ये सब समान भाग लेकर खूब महीन  
चूर्ण बनावे । यह कृमिशार्दूल चूर्ण कृमि,  
कृमिजरी, मन्दाग्नि, अरुचि और ज्वर को  
दूर करता है ॥ ३९-४१ ॥

१—किसी का मत है कि निशोध की जड़  
का थकला ।

२—'अनुपानस्य योगतः' इति पाठान्तरम् ।



कृमिकुठार रस ।

कपूरश्चाष्ट भागश्च कुटजञ्चैक  
भागिकः । तत्समानं त्रायमाणमजमोदा  
विडङ्गकम् ॥ ४२ ॥ हिंगुलं विपभागश्च  
तत्समानं च केसरम् । सर्वं दृढं च सम्मर्द्य  
भृङ्गराज रसैस्तथा ॥ ४३ ॥ पलाश बीज  
सम्मिश्र मुन्दुरी रस भावितम् । ब्राह्मी  
रसं तथोदच्चा सिध्येत्कृमि कुठारकः ॥ ४४ ॥  
वल्लमात्रां वटी कुर्याद्दद्याद्धेमसमन्वितम् ।  
कुर्यात्कृमि विनाशश्च सर्वशः सप्तभि-  
दिनैः ॥ ४५ ॥

शुद्ध कपूर ८ भाग, कुरैया की छाल, त्रायमाण,  
अजमोद, विडग, हिंगुल, शुद्ध विप, केसर,  
ये सब १-१ भाग लेकर सब को कपड धान  
चूर्ण बनाकर भगरा, के रस में १ रोज घोट-  
कर सुखा ले । इनके समान पलाश बीज  
का चूर्ण मिलाकर मूषा कर्णा, के रस और  
ब्राह्मी के रस में घोटकर ३-३ रत्ती की गोली  
धतूरे, के रस के साथ देने से सात दिन में  
सब तरह के कीड़े मिट जाते हैं विशेष-  
अनुसूत ।

कृमिमुद्गररस ।

क्रमेण दृढं रसगन्धकाजमोदाविडङ्गं  
विपमुष्टिका च । पलाशबीजश्च विचूर्ण-  
मस्य वल्लममाणं मधुनावलीढम् ॥ ४६ ॥  
पिवेत् कपायं घनजं तद्दूर्घ्वं रसोऽयमुक्कः  
कृमिमुद्गराख्य । कृमीन्निहन्ति कृमि-  
जांश्च रोगान् सन्दीपयत्यग्निमयं त्रिरा-  
त्रात् ॥ ४७ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, अजमोद ३  
तोले, वायविडग ४ तोले, कुचिला २ तोले  
और पलाश के बीज का ६ तोले लेकर चूर्ण  
बना लेंगे । मधु के साथ ३ रत्ती चूर्ण को घाट  
कर, नागरमोथा के द्वाथ का पान करें । यह

‘कृमिमुद्गर रस’ कहा जाता है । यह रस तीन  
रात में सब प्रकार के कृमियों और कृमिजय  
रोगों को नष्ट करके अग्नि को दीप्त करता  
है ॥ ४६-४७ ॥

कीटारि रस ।

शुद्धसूतमिन्द्रयवश्चाजमोदा मनः  
शिला । पलाशबीजं गन्धश्च देवदाल्या  
द्रवैर्दिनम् ॥ ४८ ॥ संमर्द्य भक्षयेन्नित्यं  
मुद्गपर्णीरसैः सह । सितायुक्तं पिबेच्चानु  
कृमिपातो भवत्यलम् ॥ ४९ ॥

शुद्ध पारा, इन्द्रजौ, अजमोद, मैन्शिल,  
टाक के बीज और गन्धक को देवदाली के स्वरस  
की भावना दे देकर दिन भर खरल करके एक-  
एक रत्ती की गोलियाँ बना ले । शर्करा युक्त  
मुगवन के स्वरस अथवा काथ के साथ प्रतिदिन  
सेवन करने से कृमि अवरय गिर जाते हैं ।  
मात्रा- $\frac{1}{2}$  रत्ती से  $\frac{1}{2}$  रत्ती तक ॥ ४८-४९ ॥

कीटमर्द रस ।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धमजमोदा विडङ्गकम् ।  
विपमुष्टिर्ब्रह्मदण्डी यथाक्रमगुणोत्तरम् ॥  
५० ॥ चूर्णयेन्मधुना मिश्रं वल्लैकं  
कृमिजिद्धवेत् । कीटमर्दो रसो नाम  
मुस्तकाथं पिबेदनु ॥ ५१ ॥

अत्र ब्रह्मदण्डी भार्गी ।

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, अजमोद  
३ तोले, वायविडग ४ तोले, कुचिला या बकाहन  
२ तोले और भारगी या उसके बीज ६ तोले  
लेकर चूर्ण बना लेंगे । इसको ‘कीटमर्दरस’ कहते  
हैं । इस रस को गहद के साथ ३ रत्ती घाटकर  
नागरमोथा के द्वाथ का पान करें । यह रस छ  
प्रकार के कृमियों को नष्ट करता है ॥ ५०-५१ ॥

द्वितीयाहमिघातिनी शुष्टिका ।

रसगन्धाजमोदानां कृमिन्ब्रह्मदणी-

जयोः । एकाद्वित्रिचतुः पञ्च तिनदोर्धीज-  
स्य पट् क्रमात् ॥ ५२ ॥ संचूर्ण्य मधुना  
सर्वं गुटिकां कृमिघातनीम् । खादन्  
पिपासुस्तोयश्च मुस्तानां कृमिशान्तये ॥  
आखुपर्णीकपायं वा प्रपिबेच्छर्करान्वि-  
तम् ॥ ५३ ॥

पारा १ तोला, गंधक २ तोले, अलमोद ३  
तोले, वायविडंग ४ तोले, भारंगी के बीज ५  
तोले और कुचला ६ तोले इनका घूर्ण बना  
लेवे और उसमें मधु मिलाकर एक-एक रत्ती  
की गोलीयाँ बना लेवे । इस औषध के सेवन  
के बाद यदि प्यास लगे, तो शर्करा मिलाकर  
नागरमोथा का काय अथवा मूसाकानी का काय  
पीना चाहिए । इस औषध के सेवन करने से  
सब प्रकार के कृमि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ५०-५३

कृमिघ्न रस ।

कृमिघ्नं किंशुकारिष्टबीजं सुरसभस्म-  
कम् । वल्लद्वयं चाखुपर्णिरसैः कृमि-  
विनाशनः ॥ ५४ ॥

वायविडंग, ढाक के बीज, नीम के बीज,  
रससिन्दूर इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर  
मूसाकरनी के रस से सेवन कराने पर कीड़े नष्ट  
होते हैं । मात्रा-२ से ४ रत्ती तक ॥ ५४ ॥

कृमिकालानल रस ।

विडङ्गं द्विपलञ्चैव विपचूर्णं तदर्धकम् ।  
लौहचूर्णं तदर्धं च तदर्धं शुद्धपारदम् ॥  
५५ ॥ रसतुल्यं शुद्धगन्धं द्यागीदुग्धेन  
पेपयेत् । द्यायाशुष्कां वटी कृत्वा खादेद्  
गुञ्जैकसम्मिताम् ॥ ५६ ॥ धान्यजीरानु-  
पानेन नाम्ना कालानलो रसः । उदरस्थं  
कृमि हन्याद् ग्रहण्यर्शस्समन्वितम् ॥ ५७ ॥  
अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरान्

जयेत् । गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्व-  
सम्पदे ॥ ५८ ॥

वायविडंग ८ तोला, यच्छनाग ४ तोला,  
लौहभस्म २ तोला, पारा १ तोला, गन्धक  
१ तोला । इन्हें बकरी के दूध से घोटकर आधी  
रत्ती से १ रत्ती तक की गोली बनावे । अनुपान-  
धनियाँ तथा जीरा, यह रस कृमिरोग, ग्रहणी,  
मस्से, सूजन, गुल्म, प्लीहा, उदररोग आदि को  
शान्त करता है तथा अग्निदीपक है ॥ ५५-५८ ॥

कृमिघ्निनाशन रस ।

शुद्धसूतं समं गन्धमध्रं लौहं मनः  
शिला । धातकी त्रिफला लोघं विडङ्ग  
रजनीद्रमम् ॥ ५९ ॥ भावयेत्सप्तधा सर्वं  
भृङ्गवेरभवै रसैः । गुञ्जार्धा च वटी कृत्वा  
त्रिफलारससंयुताम् ॥ ६० ॥ भक्षयेत्प्रात-  
रुत्थाय कृमिरोगोपशान्तयोवातिकपैत्तिकं  
हन्ति श्लैष्मिकश्च त्रिदोषजम् ॥ कृमि-  
विनाशनामायं कृमिरोगकुलान्तकः ॥ ६१ ॥

पारा, गन्धक, अन्नकभस्म, लौहभस्म, मैग-  
शिल, धाय के फूल, त्रिफला, लोघ, वायविडङ्ग,  
हलदी, दारुइलदी, प्रत्येक बराबर मात्रा में इन्हें  
अदरख के रस से सात बार भावना देकर आधी  
रत्ती की गोली बनावे । अनुपान-त्रिफला क्वाथ ।  
इसे प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । यह सप्त  
प्रकार के कृमिरोगों का नाश करनेवाला है  
मात्रा २।३ रत्ती ॥ ५९-६१ ॥

कृमिधूलिजलप्लव रस ।

पारदं गन्धकं शुद्धं वज्रं शंङ्गं समं  
समम् । चतुर्णां योजयेत्तुल्यं पथ्याचूर्णं  
भिषग्वरः ॥ ६२ ॥ दण्डयन्त्रेण निर्मथ्य  
पटोलस्वरसं क्षिपेत् । कार्पासबीजसदृशीं  
वटिकां कुरु यत्नतः ॥ ६३ ॥ त्रिवटीं  
भक्षयेत्प्रातः शीततोयं पिबेदनु । केवलं

पैत्तिके योज्यः कदाचिद्वातपैत्तिके ॥ श्रीम  
गहननाथोक्तः कृमिधूलिजलप्लवः ॥ ६४ ॥

पारा, गन्धक, वगभस्म, शलभस्म हरएक  
१ तोला, हरद्व ४ तोले, इन्हें परस्पर मिलाकर  
पटोल (परवल) के रस से घोटकर विनीले के  
समान गोलियाँ बनावे । मात्रा--३ गोली । अनु-  
पान--शीतल जन । इसे पैत्तिक कृमिरोग में  
अथवा वातपैत्तिक कृमिरोग में प्रयोग करना  
चाहिये ॥ ६२-६४ ॥

कृमिरोगारि रस ।

सूतं गन्धं मृतं लौहं मरिचं विपमेघ ।  
धातकी त्रिफला शुण्ठी मुस्तकं सर-  
साञ्जनम् ॥ ६५ ॥ त्रिकटुमुस्तकं पाठा  
वालकं विल्वमेघ च । भावयेत् सर्पिणकत्र-  
स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः ॥ ६६ ॥ गुञ्जाद्वय-  
प्रमाणेन भक्षणीया विशेषतः । कृमिरोग-  
विनाशाय रसोज्यं क्रमिनाशनः ॥ ६७ ॥

पारा, गन्धक, लौहभस्म, कालीमिर्च  
बच्छुनाग, धाय के फूल, त्रिफला, सोंठ, मोथा,  
रसौत, त्रिकटु, मोथा, पाठा, गन्धयाला, बेल,  
हरएक के समभाग चूर्ण को भाँगरे के रस से  
घोटकर २ रत्ती की गोली बनाकर सेवन करे,  
यद् रस कृमिरोग को नष्ट करता है ॥ ६२-६७ ॥

विडङ्गलौह ।

रसं गन्धञ्च मरिचं जातीफलवलङ्ग-  
कम् । शुण्ठी तालं कणा वद्रं प्रत्येकं  
भागसम्मितम् ॥ ६८ ॥ सर्वचूर्णसमं  
लौहं विडङ्गं सर्पितुल्यकम् । लौहं विड-  
ङ्गकं नाम कोष्ठस्थकृमिनाशनम् ॥ ६९ ॥  
दुर्णाममरुचिञ्चैव मन्दाग्निञ्च विमूचि-  
काम् । शोथं शूलं ज्वरं हिक्कां र्नासं कासं  
विनाशयेत् ॥ ७० ॥

पारा, गन्धक, कालीमिर्च, जायफल, लौह,

पीपल, हरिताल, सोंठ, वगभस्म प्रत्येक १ भाग,  
लौहभस्म १ भाग, धायविडङ्ग १८ भाग, इन्हें  
दकट्टाकर जल से घोटकर गोलियाँ बनावे । यह  
अर्श, अरचि, मन्दाग्नि, विसूचिका, सूजन, शूल,  
ज्वर, हिक्का, र्वास-खाँसी तथा कृमिरोग को नष्ट  
करता है । मात्रा २ रत्ती ॥ ६८-७० ॥

अत्र प्रसङ्गान्मत्तिकाद्युपद्रवशमनो-  
पायः । तक्रपिष्टेन तालेन लेपात्पुत्तलकं  
शुभम् । तमाघ्राय गृहाद्यान्ति मत्तिका  
नात्र संशयः ॥ ७१ ॥

पिष्टकादिपुत्तलकं तक्रपिष्टेन हरिता-  
लेन लिप्त्वा गृहे स्थापयेत्, तमाघ्राय  
मत्तिकास्त्यजन्ति ।

घाटे की एक पुतली बनाकर उसे द्वाड़ से  
पीसी हुई हरिताल से लीप दे और मत्तिकायुक्त  
घर में रख दे । इसकी गन्ध से मत्तिकायों घर को  
छोड़कर बाहर निकल जाती हैं ॥ ७१ ॥

शालानिर्यासधूमेन गृहं त्यजति  
मत्तिका ॥ ७२ ॥

राल का धुआँ देने से घर में मत्तिकायों  
नहीं रहती हैं ॥ ७२ ॥

तालकं छागविलमूत्रपलाण्ड्वा  
सह पेपयेत् । आलिप्य मूषिकं तेन सजी-  
वन्तं विसर्जयेत् ॥ दृष्ट्वैव तं गृहं त्यक्त्वा  
पलायन्ते हि मूषिकाः ॥ ७३ ॥

हरिताल को पीहले बकरी की मैगिनियों,  
मूत्र तथा प्याज के रस से पीसकर उससे एक  
जीवित चूहे को रँग दे और उसे जीता ही घर  
में छोड़ दे । इस चूहे को देखकर घर के तमाम  
चूहे भाग जायेंगे ॥ ७३ ॥

मार्जारस्य पलं तालं पिष्ट्वा मूषिकमा-  
लिपेत् । तमाघ्राय गृहं त्यक्त्वा सद्यो  
निर्यान्ति मूषिकाः ॥ ७४ ॥

पिस्टी के माम तथा हरिताल से जीवित चूहे

को लेपकर घर में छोड़ दे । इसके गन्ध से ही पूरे घर को छोड़ भाग जाते हैं ॥ ७४ ॥

कृमिरोग में पथ्य ।

आस्थापनं कायशिरोविरेचनं धूमः  
कफघ्नानि शरीरमार्जनाः । चिरन्तना  
वैष्णवरत्नशालयः पटोलवेत्राग्ररसो-  
वास्तुकम् ॥ ७५ ॥ हुताशमन्दारदलानि  
सर्पपाः नवीनमोचं वृहतीफलानि ।  
तिक्तानि नाडी च दलानि मौषिकं मांसं  
विडङ्गं पिचुमर्दपल्लवम् ॥ ७६ ॥ पथ्या  
च तैलं तिलसर्पपोद्भवं सौवीरशुक्रञ्च  
तुपोदकं मधु । पचेलिमं तालमरुष्करं गवां  
मूत्रञ्च ताम्बूलमुरामृगाण्डजम् ॥ ७७ ॥  
ओष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि रामठं चाराज-  
मोदाखदिरञ्च वत्सकम् । जम्बीरनीरं  
सुपत्रीयवानिका साराः सुराहागुरुशिशपो-  
द्भवाः ॥ ७८ ॥ तिक्तः कपायः कडुको रसोऽप्ययं  
वर्गो नराणां कृमिरोगिणां सुखः ॥ ७९ ॥

कृमिरोगियों के लिये आस्थापन, विरेचन, शिरोविरेचन, धूम, कफघ्न आहार, शरीर-परि-मार्जन (शुद्धि), पुराने बाँस के चावल, लाल-शालि चावल, परवल, बेंत की कोपल, लहसुन, बथुआ, चित्रक के पत्ते, हरसिंगार के पत्ते, सरसों, कच्चा बेल, बड़ी कटेरी का फल, तिक्त द्रव्य, नाडीसाक, चूहे का मांस, वायविदह, नीम के पत्ते, हरद, तिल तथा सरसों का तेल, सौवीर, शुक्र (सिरका), तुपोदक, शहद, पचेलिम, ताल, भिलावे, गोमूत्र, पान, सुरा, फस्तुरी, ऊँट का मूत्र, दूध, घी, होंग, चार, अज-मोद, खैर, इन्द्रजौ, जम्बीररस, करेली अजवाइन, देवदारु, अमर तथा शीशम की लकड़ी, कदवे, चरपरे, एवं कपाय रस ये वर्ग लाभदायक हैं ॥ ७५-७९ ॥

कृमिरोग में अपथ्य ।

हृदिश्च तद्भोगविधारणं च विरुद्धपाना-

शनमहि निद्राम् । द्रवं च पिष्टान्नमजी-  
र्णताञ्च घृतानि मापान् दधिपत्रशाकम् ॥  
८० ॥ मांसपयोऽम्लं मधुरं रसञ्च कृमिन्  
जियांसुः परिवर्जयेच्च ॥ ८१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कृमिरोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

वमन के वेग को रोकना, विरुद्ध पान एवं विरुद्ध भोजन, दिन में मोना, द्रव, पिष्टी के बने हुये, मोड्य पदार्थ, अजीर्ण, घी, उदद, दही, पत्रशाक, मांस, दूध, खटाई, मधुर रस, कृमियों के नाश करने की इच्छा रखनेवाले पुरुष को इनको त्याग देना चाहिये ॥ ८०-८१ ॥

इति श्री पं० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितयां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाय्या व्याख्यायां  
कृमिचिकित्साधिकारः समाप्तः ।

अथ अम्लपित्ताधिकारः ।

वान्ति कृत्वाम्लपित्ते तु विरेकं मृदु  
कारयेत् । सम्यग्वाप्तविरिक्तस्य मुस्निग्ध-  
स्यानुवासनम् ॥ १ ॥ आस्थापनं चिरोद्-  
भूते देयं दोषापेक्षया । क्रियाशुद्धस्य  
शमनी ह्यनुबन्धव्यपेक्षया ॥ २ ॥ दोषसंसर्गजे  
कार्या भेषजाहारकल्पना । ऊर्ध्वगं वमनै-  
र्धोमान् अधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ ३ ॥

अम्लपित्तरोग में पहले वमन कराकर मृदु विरेचन कराना चाहिये । तदनन्तर स्नेहन और उसके बाद अनुवासन कराना चाहिये । पुराने अम्लपित्तरोग में निरुहवस्ति देवे । इस प्रकार शुद्ध हुए रोगी की व्यवस्था के अनुसार उपयुक्त शमन-क्रिया और दोष-संसर्ग में श्लेष और आहार की उचित व्यवस्था करे । एवं ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त को वमन द्वारा और अधोगामी अम्लपित्त को विरेचन द्वारा दूर करना चाहिये ॥ १-३ ॥

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः ।  
कारयेन्मदनचौद्रसिन्धुयुक्तैः कफोत्थये ।  
विरेचनं त्रिवृत्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥४॥

कफप्रधान अम्लपित्तरोग में परबल के पत्ते, नीम के पत्ते, मैनफल, मधु और लाहौरी नमक, द्वारा वमन करानी चाहिये । यदि विरेचन की आवश्यकता हो, तो मधु और आंवला के स्वरस सहित निसोत के चूर्ण का सेवन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

अम्लपित्त में पथ्य ।

तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानञ्चापिप्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥ यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः । यथास्वं लाजसक्तून् वा सितामधुयुतान् पिवेत् ॥ ६ ॥

इस रोग में आहार और पान दोनों तिक्त-रसप्रधान होने चाहिए । भोजन के लिये जौ और गेहूँ के खाद्य पदार्थ देने चाहिये परन्तु इनमें भी अधिक लवण, कटु और अम्ल आदि तीक्ष्ण द्रव्यों का मेल न करे । वात-प्रधान अम्लपित्त में आहार के लिये—चीनी और मधु मिलाकर धान के खिलों का सत्ू देना चाहिये ॥ ५-६ ॥

अम्लपित्तविनाशनयोग ।

निस्तुपयवष्टपधात्री काथत्रिसुगन्धि-  
मधुयुतः पीतः । अपनयत्यम्लपित्तं यदि  
मुङ्क्ते मुद्गयूपेण ॥ ७ ॥

मूली रहित जौ, अरुसे की पत्तियाँ और आंवले के काथ में दालचीनी, छोटी इलाइची के बीज और तेजगत का चूर्ण तथा मधु मिलाकर पान करे एवम् आहार के लिये मूँग के जूस की व्यवस्था करे, तो अम्लपित्त-रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है मात्रा—४ तोला ॥ ७ ॥

कफपित्तंभीकएहृज्वरविस्फोटदाहदा ।  
पाचनो दीपनः काथः शृङ्गेरपटोलयोः =  
सौंठ और परबल के पत्ते का काथ पीने से

अम्लपित्त, कफ, वमन, खुजली, ज्वर, विस्फोट और दाह ये मध दूर होते हैं । यह काथ अग्नि को दीपन करनेवाला और पाचन है मात्रा—४ तोला ॥ ८ ॥

पटोलं नागरं धान्यं काथयित्वा जलं  
पिवेत् । कण्डूपामार्त्तिशूलघ्नंकफपित्ताग्नि  
मान्द्यजित् ॥ ९ ॥

परबल के पत्ते, सोंठ और धनियाँ के काथ का पान करे तो कण्डू (खुजली) पामा (छाजन) कफ, अम्लपित्त और अग्निमान्द्य रोग शान्त हो जाते हैं मात्रा ४ तोला ॥ ९ ॥

पटोलविश्वामृतरोगिणीकृतं - जलं  
पिवेत् पित्तकफाश्रयेषु । शूलभ्रमारोचक-  
वह्निमान्द्यदाहज्वरच्छर्दिनिवारणं तत् १० ॥

पित्त और कफ-प्रधान रोगों में परबल के पत्ते सोंठ, गिलोय और कुटकी के काथ का पान करना चाहिये । यह काथ शूल, भ्रम, अरोचक, अग्निमान्द्य, दाह, ज्वर और वमन को नष्ट करता है मात्रा ४ तोला ॥ १० ॥

यवकृष्णापटोलानां काथं चोद्भ्रुतं  
पिवेत् । नाशयेदम्लपित्तञ्चारुचिञ्चवमनं  
तथा ॥ ११ ॥

जौ, पीपर और परबल की पत्तियाँ; इनके काथ को मधु मिलाकर पीये, तो अम्लपित्त, अरुचि और वमन रोग शान्त होते हैं मात्रा—४ तोला ॥ ११ ॥

अभया पिप्पली द्राक्षा सिता धान्यं  
यनासकम् । मधुना कण्ठदाहघ्नं पित्त-  
श्लेष्महरं परम् ॥ १२ ॥

हरद, पीपल, दाख, खोंठ, धनियाँ तथा जगसा; इनके चूर्ण को शहद के साथ घटाने से अम्लपित्त नष्ट होता है मात्रा—४१६ माया ॥ १२ ॥

फलत्रिकं पटोलञ्च तिक्ताकाथः सिता-  
युतः । पीतः क्लीतकमध्वात्रो ज्वरच्छर्द्य-  
म्लपित्तजित् ॥ १३ ॥

त्रिफला, परवल, कुटकी इनके काथ में राई, मुलहठी का चूर्ण तथा शहद को डालकर पीने से ज्वर, वमन तथा अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १३ ॥

भुक्तान्ते वारिणा पीतं चूर्णं धात्री-  
फलोद्भवम् । ज्यहान्निहन्त्यम्लपित्तं कण्ठ-  
दाहसमायुतम् ॥ १४ ॥

भोजन के बाद आँवले के चूर्ण को आध तोला मात्रा में सेवन करने से कण्ठदाहयुक्त अम्लपित्त बहुत जल्दी अच्छा हो जाता है ॥ १४ ॥

दशाह्न काथ ।

वासामृतापर्पटीकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः।  
त्रिफला कुलकैः काथः सत्तौद्र रचाम्ल-  
पित्तहा ॥ १५ ॥

अरुसे की पत्तियाँ, गिलोय, पित्तपापडा, नीम की छाल, चिरायता, भँगरैया, त्रिफला, और परवल; इनको समभाग लेकर काथ बनावे। उसमें मधु मिलाकर पीने से अम्लपित्त रोग दूर हो जाता है मात्रा—४ तोला ॥ १५ ॥

द्विधा खदिरयष्ट्याह दार्व्यम्भो वा  
मधुद्रवम् । सद्राक्षामभर्या खादेत् सत्तौद्रां  
समुद्भवताम् ॥ १६ ॥

गिलोय खैर, मुलेठी और दारुहलदी के (४तोला)काथ में मधु मिलाकर पान करे अथवा भुनका, मधु और गुड़ मिलाकर हरीतकी का सेवन करे तो अम्लपित्त रोग शान्त हो जाता है ॥ १६ ॥

द्विश्रोद्भवानिम्बपटोलपत्रं फलशिकं  
सुकथितं सुशीतम् । सौद्रान्निवतं पीतमनेक-  
रूपं सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥ १७ ॥

गिलोय, नीम की छाल, परवल के पत्ते और त्रिफला के काथ को शीतल होने पर मधु मिलाकर पीवे, तो अत्यन्त कठिन और अनेक रूपोंवाला अम्लपित्त-रोग दूर हो जाता है मात्रा—४ तोला ॥ १७ ॥

द्विगु च कतकफलानि च चिञ्चात्वचो  
घृतञ्च पुटदग्धम् । शमयति तदम्लपित्त-  
मम्लभुजो यदि यथोत्तरं द्विगुणम् ॥ १८ ॥

द्विगु इत्यादौ यथोत्तरं द्विगुणमिति ।  
द्विगुणपेक्षया कतकफलं द्विगुणं कतकफला-  
पेक्षया घृतं द्विगुणमिति एतत्सर्वं स्थाली-  
मध्ये निक्षिप्य शरावेण विधायान्तर्धूमैः  
दग्ध्या मापकचतुष्टयमुपयोज्यं तप्तजलञ्चा-  
नुपेयं तन्त्रान्तरे संवादात् ।

होग १ तोला, निर्मली के फल २ तोले, इमली की छाल ४ तोले और घृत ८ तोले लेवे। इन सब औषधों को एक पात्र में रखकर, सकोरा से मुख बंद करके, मुद्रा देकर, अन्तर्धूम भस्म करे। इस भस्म को चार माशे खावे। अनुपान—उष्ण जल। इस भस्म के सेवन करने से खटोई खानेवाले रोगी का अम्लपित्त शान्त हो जाता है ॥ १८ ॥

कान्तपात्र वराकल्को व्युपित्तभ्या-  
सयोगतः । सिताक्षौद्रसमायुक्तः कफपि-  
त्तहरः स्मृतः ॥ १९ ॥

सायकाल, त्रिफला को पानी के साथ पीस करके, कान्तलौह के पात्र में रख देवे। प्रातः-काल उस कणक में चीनी और मधु मिलाकर सेवन करे, तो कफ और पित्त दोनों शान्त होते हैं मात्रा ३६ माशा ॥ १९ ॥

पञ्चनिम्वादि चूर्ण ।

एकंशः पञ्चनिम्वानां द्विगुणो वृद्ध-  
दारकः । सक्कुर्दशगुणो ज्ञेयः शर्करामधुरी-  
कृतः ॥ २० ॥ शीतेन वारिणा पीतं शूलं  
पित्तकफोच्छिन्नम् । निहन्ति चूर्णं सत्तौ-  
द्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ २१ ॥

३२ माशे से शुरू करके ४ माशे तक खाना चाहिये ।

१—'शर्करामधुसयुत' इति ग्रन्थान्तरे पाठः ।

नीम का पंचाङ्ग ( छाल, पत्र, पुष्प, मूल, और फल ) १ भाग, विधारा २ भाग और जव का सत्तू १० भाग, इन औषधों में आवरण-कतानुसार चीनी मिला देवे । मात्रा—२ तोले । मधु और शीतल जल के साथ । इस औषध के सेवन करने से दारुण अम्लपित्त-रोग और पित्त तथा कफल शूल दूर हो जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

वासाघृतं तिक्रघृतं पिप्पलीघृतमेव च ।  
अम्लपित्तं प्रयोक्तव्यं गुडकूष्मांडकं तथा ॥  
पक्लिशूलापहा योगास्तथा खण्डामल-  
क्यपि ॥ २२ ॥

अम्ल पित्त रोग में वासा-घृत, तिक्र-घृत, पिप्पली-घृत या गुडकूष्मांडक का प्रयोग करना चाहिये । एवं पक्लि-शूल माशक जिनने योग हैं, उनका और खण्डामलकी का भी प्रयोग करना चाहिए ॥ २२ ॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविना-  
शिनी । जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्य-  
म्लपित्तकम् ॥ २३ ॥

२३ माशा पीपर के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से अम्लपित्त रोग नष्ट होता है । सायंकाल में २३ तोला नींबू का स्वरस पीने से भी अम्लपित्त रोग शान्त हो जाता है ॥ २३ ॥

अविपत्तिकर चूर्ण ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडं<sup>१</sup> चैव विडं-  
गकम् । एलापत्रं च चूर्णानि समभागानि  
कारयेत् ॥ २४ ॥ सर्वमेकीकृतं यावल्लवद्रं  
तत्समं भवेत् । सर्वचूर्णद्विगुणितं त्रिष्ट-  
चूर्णं प्रदापयेत् ॥ २५ ॥ सर्वमेकीकृतं  
यावत्तावच्चर्करयान्वितम् । भोजनादौ<sup>२</sup>

तथा मध्ये खादेन्मापाष्टकं शुभम् ॥ २६ ॥  
अम्लपित्तं निहन्त्याशु विवन्धं मलमूत्रयोः ।  
अग्निमान्द्यभवान् रोगान् नाशयेदविक-  
ल्पतः ॥ २७ ॥ प्रमेहान् विंशतिं चैव सर्व-  
दुर्नामनाशनम् । अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्य-  
विहितं शुभम् ॥ २८ ॥

त्रिकटु ( सोंठ, कालीमिर्च और पीपर ), त्रिफला, नागरमोथा, विडनमक, वायविडग, छोटी इलायची और तेजरात प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लौंग का चूर्ण ११ तोले, निसोत का चूर्ण ४४ तोले और ६६ तोले चीनी मिलाकर, भोजन के आदि और मध्य में आठ-आठ माशे खाने से अम्लपित्त रोग शीघ्र नष्ट होता है । यह चूर्ण मल और मूत्रों की बढ़ता, अग्निमान्द्य-जन्य रोग, २० प्रकार के प्रमेह और सब प्रकार के बवासीर को भी नष्ट करता है । अगस्त्यजी ने इस विपत्तिविनाशक उत्तम चूर्ण का आविष्कार किया है ॥ २४-२८ ॥

बृहत्पिप्पलीप्लवह ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवं-  
द्वयम् । पलपोडशिकं खण्डाद्रसे वर्त्याः  
पलाष्टके ॥ २९ ॥ पलपोडशिके चैव  
श्रामलक्या रसस्य च । क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं  
लेहीभूते ततः क्षिपेत् ॥ ३० ॥ त्रिजात-  
कामयाजाजी धन्याकं मुस्तकं शुभा । धात्री  
च कार्पिकं चूर्णं कर्पादं चापि<sup>१</sup> जीरकम् ॥  
३१ ॥ कुष्ठं<sup>२</sup> नागरकं नागं सिद्धशीतेज्य-  
चूर्णितम् । जातीफलं समरिचं मधुनश्च  
पलत्रयम् ॥ ३२ ॥ उपयुञ्ज्यात्ततो

१ मात्रा २ माशे से बढ़ाते बढ़ाते आठ माशे कर सकते हैं । एक साथ ४ माशे से अधिक देना ठीक नहीं है ।

१—मीर्च वैवेरपि पाठः ।

२—ग्रन्थान्तरे तु भोजनादौ तथाप्येव च मध्वा-  
प्यमिदं शुभम् । शीततोयानुपानं च नारिकेलो-  
दकं तथेति पाठः ।

१—कूष्मजीरकमिति पाठान्तरम् ।

२—हिममिति योगरत्नाकरे पाठः ।

धीमान् अम्लपित्तनिवृत्तये । हृल्लासारो-  
चकच्छर्दिश्वासकासक्षयापहम् । अग्नि-  
सन्दीपनं हृद्यं पिप्पलीखण्डसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥

पीपरि का चूर्ण १६ तोला, घृत ३२ तोला, खॉद ६४ तोला, शतावरी का रस ३२ तोला, आँवले का रस ६४ तोला और दूध ३ सेर १६ तोला लेवे । इन औषधों को मिलाकर पाक-रीति से पका लेना चाहिये । उसके बाद दाल-चीनी, इलायची, तेजपात, धरद, जीरा, धनियाँ, नागरमोथा, वंशलोचन और आँवला, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला तथा जीरा, कूट, सोंठ और नागकेशर, इनमें से प्रत्येक का चूर्ण आधा तोला मिलाकर उतार लेवे । ठंडा होने पर जायफल का चूर्ण, कालीमिर्च का चूर्ण और मधु प्रत्येक को चारह-चारह तोला मिलावे । यह पिप्पलीखण्ड अम्लपित्त, हृल्लास, अरोचक, वमन, श्वास, कास और क्षय-रोग को नष्ट करके अग्नि को दीप्त करता है और हृदय के लिये अत्यन्त लाभदायक है । मात्रा—४-६ माशा ॥ ३०-३३ ।

#### खण्डकूप्माण्डक अधलेह

कूप्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शत-  
मात्रकम् । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं  
पलायकम् ॥ ३४ ॥ धात्रीतुल्या सिता  
योऽप्या गव्यमाज्यं पलद्वयम् । मन्दाग्निना  
पचेत्सर्वं यावद् भवति पिण्डितम् ॥ ३५ ॥  
कोलाद्धं कोलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम् ।  
खण्डकूप्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं  
परम् ॥ ३६ ॥

पेंडे का रस ५ सेर, गोदुग्ध ५ सेर, आँवले का चूर्ण ३२ तोला, खॉद ३२ तोला, गोघृत ८ तोला इन्हें इकट्ठा करके मन्दी-मन्दी आँच पर पकाये जब पकाते पकाते गोला बंधने लगे तब नीचे उतार ले । मात्रा—छाये तोले से एक तोले तक । इसे प्रतिदिन सेवन कराने से अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ३४-३६ ।

#### शुण्ठीखण्ड ।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समा-  
वपेत् । दत्त्वा द्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थद्वये  
पचेत् ॥ ३७ ॥ लेह्येऽवतारिते दद्याद्धात्री-  
धान्यकमुस्तकम् । अजाजी पिप्पली वांशी  
त्रिजातं कारवी शिवा ॥ ३८ ॥ त्रिशाणं  
मरिचं नागं पण्मापं तु पृथक् पृथक् । पल-  
त्रयश्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् ॥ २९ ॥  
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ।  
शूलहृद्रोगवमनैरामवातैश्च पीडितः ॥ ४० ॥

सोंठ का चूर्ण १६ तोला, खॉद ६४ तोला और घृत ६४ तोला लेकर ३ सेर १६ तोला दूध में पकावे । गाढ़ा होने पर आँवला, धनियाँ, नागरमोथा, जीरा, पीपरि, वंशलोचन, दाल-चीनी, इलायची, तेजपात, कालाजीरा और हरद प्रत्येक के चूर्ण १ माशे तथा कालीमिर्च और नागकेशर के चूर्ण ४॥—४॥ माशे मिलाकर उतार लेवे । उसके बाद ठंडा हो जाने पर १२ तोला मधु मिलावे । रोगी का बलाबल देखकर मात्रा की व्यवस्था करनी चाहिये । यह शुंठी-खंड अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, वमन और आम-पात को दूर करता है । मात्रा—६ माशे से १ तोला ॥ ३७-४० ॥

#### शतावरीघृत ।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम् ।  
पचेन्मृद्वाग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतु-  
र्गुणम् ॥ ४१ ॥ नाशयेत्सम्लपित्तञ्च वात-  
पित्तोद्भयान् गदान् । रक्तपित्तं तृपां मूर्च्छां  
श्यासं सन्तापमेव च ॥ ४२ ॥

शतावरीघृत—पयःसममिति शब्दे-  
नेह पयः, साधर्म्यात् शतावरीरसो ग्राह्यः  
न तु क्षीरं, तस्य पृथगुपादानादिति कैपा-  
श्चिन्मतम् ।



शतावरि का कल्क ६४ तोला, घृत १२८ तोला, जल १२८ तोला लेकर ६ सेर ३२ तोला दूध में धीमी आँच में पका लेवे। यह घृत अम्लपित्त, पातपित्तजन्य रोग, रक्तपित्त, रूपा, मूर्च्छा, श्वास और सन्ताप ( दाह ) को दूर करता है ॥ ४१-४२ ॥

जीरकाद्य घृत ।

पिष्ट्याजाजीं सधन्याकां घृतमस्थं विपाचयेत् । कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवर्गि जयेत् ॥ ४३ ॥

गौ का घृत १२८ तोला, कल्क के लिये धनियाँ और जीरा मिलाकर ३२ तोला, पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला विधिपूर्वक पकावे। इसके सेवन से अम्लपित्त, मन्द्राग्नि यथा वमन अच्छी हो जाती है। मात्रा—आधा तोला ॥ ४३ ॥

पटोलशुण्ठीघृत ।

पटोलशुण्ठ्याः कल्काभ्यां केवलं कूलकेन वा । घृतमस्थं विपक्व्यं कफरोगहरं परम् ॥ ४४ ॥

गौ का घी १२८ तोला, कल्क के लिये परवल, सोंठ मिलाकर ३२ तोला अथवा केवल परवल ३२ तोला, पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला विधिपूर्वक पाक कर प्रयोग करने से कफरोग अच्छा हो जाता है ॥ ४४ ॥

पिप्पलीघृत ।

पिप्पलीकाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम् । पिवेच्च प्रातरुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ ४५ ॥

पीपल के काथ तथा कल्क से विधिपूर्वक घृत पकाकर शहद के साथ मिलाकर उचित मात्रा में प्रयोग कराने से अम्लपित्त नष्ट होता है। मात्रा—१ तोला ॥ ४५ ॥

१—किसी विद्वान् का मत है कि पय शब्द से जल के स्थान पर शतावरी का स्वरस लेना चाहिये ।

द्राक्षाामृताशक्रपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीयनचन्दनैश्च । त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥ ४७ ॥ युञ्जीत मात्रां सह भोजनेन सर्वत्र पानेऽपिभिपग्विदध्यात् । बलासपित्तग्रहणीं प्रवृद्धां कासाग्निसादञ्चरमम्लपित्तम् ॥ ४८ ॥ सर्वं निहन्याद् घृतमेतदाशु सम्यक् प्रयुक्तं ह्यमृतोपमञ्च ॥ ४९ ॥

गोघृत १२८ तोला, कल्क के लिये दाख, गिलोय, इन्द्रजौ, परवल, खस, आवला, मोथा, लालचन्दन, त्रायमाण्य पद्माक्ष, चिरायता, धनियाँ मिलाकर ३२ तोला, पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला विधिपूर्वक पकाकर-प्रयोग कराना चाहिये। मात्रा—आधा तोला, इसे भोजन के साथ प्रयोग कराने से कफपित्त, ग्रहणी, खाँसी, मन्द्राग्नि, ज्वर, अम्लपित्त इत्यादि रोग अच्छे होते हैं ॥ ४७-४९ ॥

नारायणघृत ।

जलैर्दशगुणै काथ्यं पिप्पली पलपोडश । पादशेषं हरेत् काथं काथतुल्यं घृतं पचेत् ॥ ५० ॥ रसमस्थं गुडुच्चारच धाञ्ज्याः पष्टिपलं रसम् । द्राक्षा धात्री पटोलञ्च विश्वञ्च कटुका वचा ॥ ५१ ॥ पलप्रमाणं कल्कञ्च टच्चा सर्पिः समुदरेत् । अम्लपित्तहरं स्वादेत् दाहच्छर्दिनिवारणम् । असाध्यं साधयेत्सद्यो नाम्ना नारायणं घृतम् ॥ ५२ ॥

६४ तोला पीपर को ८ सेर जल में पकावे, २ सेर शेष रहने पर उसे छान लेवे। उस काथ में २ सेर घृत, १२८ तोला गिलोय का स्वरस और ३ सेर आँवले का स्वरस मिलावे। तथा मुनक्का, आवला, परवल की पत्तियाँ, सोंठ, कुटकी और वच; इनमें से प्रत्येक का चार-चार

घृत सिद्ध करे । इस नारायण घृत के खाने से असाध्य अम्लपित्त, दाह और वमनरोग ज्ञान्त हो जाते हैं ॥ २४-२६ ॥

सितामण्डूर ।

धमनविधि विशुद्धं गोजले सप्त वारान् तरणिकरणशुष्कं श्लक्ष्णमण्डूरचूर्णम् । विमलकपलमेकं पञ्च संख्यं सिताया अनवघृतपलाशौ द्व्यष्टकं गव्यदुग्धम् ॥ ५३ ॥ मृदुदहनशिखामिर्मन्दमन्दं कटाहे विगतसलिलशेषं पाचयेत् पाकविज्ञः । विरतिरितगुडपाके किञ्चिदुष्णोऽवतीर्णं हृदि दृढमभीक्षणं चूर्णितं देयमाशु ॥ ५४ ॥ त्रिकटुकमधुकैलायासवैदङ्गसारं त्रिफलगदलपङ्ककर्मकैकशरच्च । तदनु शिशिरकाले द्वे पले मात्तिकस्य प्रतनुपत्रनिघृष्टं गालितं सम्प्रदद्यात् ॥ ५५ ॥ शुभतिथिदिवसादौ भोजनादौ निषेव्यं प्रथमदिवसमेनं सार्द्धमापं तदूर्ध्वम् । अहरहरनुष्टब्द्या शाणमानं प्रयोज्यं हिमकररचिशितं गव्यदुग्धञ्च पेयम् ॥ ५६ ॥ नियतमयमसाध्यानम्लपित्तोत्थशूलान्धमिनिवहसदाहानाहमोहप्रमेहान् । विविधरुधिररोगान् पित्तयुक्तानशेषानपहरति सितारव्यो दिव्यमण्डूरयोगः ॥ ५७ ॥

४ तोला मद्दूर को अग्नि में तपा-तपाकर सात पार गोमूत्र में घुसाकर शुद्ध कर लेंगे । फिर घाम में मुला करके उत्तम चूर्ण बना लेंगे । यह मण्डूर-चूर्ण २४ तोला, चीनी २० तोला, पुराना पी ३२ तोला और गाय का दूध ६४ तोला, इन चारों चीजों को लोह की कपाही में बाळकर धीमे आँच में पकाये । उसके बाद कुछ गरम रहते ही त्रिकटु, मुवेटी, इलायची, जयासा,

वायविवडंग, त्रिफला, कूट और लौंग का एक एक तोला चूर्ण भिला देने । शीतल होने पर महीन कपडे में छानकर ८ तोला मधु भिला देवे । एवं किसी शुभ मुहूर्त में इसका सेवन आरम्भ करना चाहिए । प्रतिदिन भोजन के पूर्व इसका सेवन करे । पहिले दिन ३ माशे खावे । परचात् प्रतिदिन आधा-आधा माशा बढ़ाकर ३ माशे तक सेवन करे । इस औषध को खाकर गाय का दूध अवरय पीना चाहिए । इसके सेवन करने से अम्लपित्तजन्य असाध्य शूल, वमन, दाह, आनाह, मोह और प्रमेह तथा विविध प्रकार के रज्जविकार और समस्त पित्त-विकार निरसदेह दूर हो जाते हैं ॥ २३-२७ ॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदक ।

त्रिकटुत्रिफलाभृङ्गजीरकद्वयधान्यकम् । कुष्ठाजमोदालौहाभ्रं मृद्धीकट्फलमुस्तकम् ॥ ५८ ॥ एला जातीफलं मांसी पत्रं तालीशकेशरम् । गन्धमात्रा शटी यष्टी लवङ्गं रक्तचन्दनम् ॥ ५९ ॥ एतानि समभागानि शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम् । सिता द्विगुणिता तत्रगव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६० ॥ तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन वा । अम्लपित्तं निहन्त्येतदरोचकनिपूदनम् ॥ ६१ ॥ शूलहृद्रोगशमनं कण्ठदाहं नियच्छति । हृदाहं च शिरःशूलं मन्दाग्नित्वं विनाशयेत् ॥ ६२ ॥ हृच्छूलं पार्श्वकुक्षिस्यं वस्तिशूलं गुदे रुजम् । बलपुष्टिकरं चैव पशीकरणपुत्तमम् ॥ ६३ ॥ विशेषादम्लपित्तं च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम् । निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६४ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, भौंगरा, स्याहजीरा, सते, ६ जीरा, धनिर्वा, कूट, अजमोद, लौहभरम, अम्लभरम, काकड़ासिगी, काकपत्र, नागरमोया, इलायची, जायफल, जटामांसी, तेजपात, ताडी-शपत्र, नागदेशर, गन्धमात्रा, कपूर, मुवेटी,

१—द्विपटकपलमेकमित्यपि पाठः ।

२—'गतपति' इति पाठांतरम् ।

लौंग और लालचन्दन; प्रत्येक सम भाग और मिली हुई सब चीजों के समभाग सोंठ का चूर्ण तथा सोंठ के चूर्ण सहित सब चीजों से दूनी चीनी और चीनी सहित सब चीजों का चौगुना गाय का दूध लेकर यथाविधि पाककरके लड्डू बना लेवे । इसकी मात्रा १ तोला की है । दूध या जव के साथ सेवन करना चाहिए । यह सौभाग्यशुंठीमोदक अम्लपित्त, अरोचक, शूल, हृदोग, कण्ठदह, हृदय का दाह, शिर की पीडा, अग्निमान्द्य, हृदय-शूल, पार्श्वशूल, कुक्षि-शूल, वाहि-शूल और गुदा की पीडा को दूर करता है तथा बलवर्धक, पौष्टिक और उत्तम वशीकरण है । विशेष करके यह मोदक अम्लपित्त, मूत्र कृच्छ्र, ज्वर और भ्रम-रोगों को निःसदेह नष्ट करता है । जैसे सूर्य भगवान् अन्धकार को नष्ट करते हैं । ॥ २०-६४ ॥

अम्लपित्तान्तकमोदक ।

नागरस्य कणायारच पलान्यष्टौ प्रदापयेत् । गुवाकस्य पलान्यष्टौ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ६५ ॥ घृतं क्षीरं ततः परचात् प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् । लवङ्गं केशरं कुष्ठं यमानी कारवी वचा ॥ ६६ ॥ चन्दनं मधुकं रास्ना देवदारु फलत्रिकम् । पत्रमेला वरङ्गं च सैन्धवं ह्वेषुं शटी ॥ ६७ ॥ मदनं कटुफलं मांसी गगनं वङ्गरूप्यकम् । तालीशं पद्मकं मूर्वा समद्वा वंशलोचना ॥ ६८ ॥ ग्रन्थिकं शतपुष्पा च शतमूली कुरुएटकम् । जातीफलं जातिकोपं कङ्कोलमम्बुदं कणा ॥ ६९ ॥ कर्पूरश्च विडङ्गश्च अजमोदा बलामृता । मर्कटी क्षुरवीजश्च चन्दनं देवताडकम् ॥ ७० ॥ लौहं कांस्यं प्रदातव्यं कर्पमात्रं भिषग्विदा । अन्यत् सर्वं कर्पमात्रं कर्पाद्धं स्पर्णभस्मकम् ॥ ७१ ॥ चतुर्धा तु विधानेन मारितं ग्राहयेत् सुधीः । अम्लपित्तान्तको ह्येव मोदको

मुनिभापितः ॥ ७२ ॥ वान्ति मूच्छ्रां च दाहं च कासं श्वासं भ्रमं तथा । वातजं पित्तजश्चैव कफजं सान्निपातिकम् ॥ ७३ ॥ सर्वरोगं निहन्त्याशु प्रमेहं सूतिकागदम् । मूलश्च वह्निमान्यश्च मूत्रकृच्छ्रं गलग्रहम् ॥ ७४ ॥

सोंठ, पीपरि और सुपारी के बत्तीस-बत्तीस तोला चूर्ण में घृत १२८ तोला और दूध १२८ तोला डालकर यथाविधि पाक करे । पाक शेष होने पर लौंग, नागकेसर, कूट, अजवाइन, कालाजीरा, बच, चन्दन, मुलेठी, रास्ना, देवदारु, त्रिफला, तेजपात, इलायची, दालचीनी, लाहौरी नमक, हाजधेर, कचूर, मैनफल, कायफल, जटामांसी, अश्रक भस्म, वगभस्म, चाँदी की भस्म, तालीशपत्र, पञ्चाक्ष, मूर्वा, मजीठ, वंशलोचन, पिपरामूल, सौंक्र, शतावरी, पियावासा की जड़, कुड़े की छाल, जायफल, जावित्री, कंकोल, नागरमोथा, पीपरि, कपूर, बायविडंग, अजमोद, खरेटी, गिलोय, कोंच के बीज, तालमखाना, चन्दन, देवताड ( देवदाली ), लौहभस्म और काँसे की भस्म प्रत्येक एक-एक तोला और स्वर्णभस्म आधा तोला मिलाकर मोदक ( लड्डू ) बना लेवे । यह मोदक अम्लपित्त रोग का नाशक है, ऐसा मुनियों ने कहा है । इसका सेवन करने से वमन, मूच्छ्रा, दाह, कास, श्वास, भ्रम तथा अन्यान्य वातिक, पैत्तिक, श्लीष्मक और सान्निपातिक समस्त रोग तत्काल नष्ट होते हैं । प्रमेह सूतिका-रोग, शूल, अग्नि-मान्द्य, मूत्रकृच्छ्र, और गलग्रह को भी नष्ट करता है । मात्रा—६ माशग ॥ ६२-७४ ॥

सचतोमद्रलौह ।

लौहचूर्णं मृतं ताम्रमभ्रकश्च पलं पलम् । शुद्धमूतश्च कर्पकं गन्धकार्दपलं तथा ॥ ७५ ॥ मात्तिकस्य विशुद्धस्य कर्पं शुद्धा शिला परा । सार्द्धकर्पं विशुद्धश्च शिलाजतु तथा परम् ॥ ७६ ॥ गुग्गुलो-

श्चापि कर्पूरं शाणमानं परस्य च । चूर्णं  
 विडङ्गभल्लातवद्विश्वेताकमूलजम् ॥ ७७ ॥  
 करिकर्णपलाशश्च तालमूली पुनर्नवा ।  
 घनामृता नागवला चक्रमर्दकमुण्डरी ॥  
 ७८ ॥ भृङ्गकेशशतावर्यो वृद्धदारं फल-  
 त्रिकम् । त्रिकटुश्चापि सर्वेषां प्रत्येकश्च  
 नयेद्भिषक् ॥ ७९ ॥ सर्वमेकत्र संमर्षं  
 घृतेन मधुना सह । स्निग्धे भाण्डे विनिः-  
 क्षिप्य ततः कुर्याद्विधानवित् ॥ ८० ॥  
 द्विगुंजादिक्रमेणैव लौहं सर्वरसायनम् ।  
 अम्लपित्तं जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥  
 ८१ ॥ तद्वदर्शांसि सर्वाणि सर्वमेव भग-  
 न्दरम् । पक्लिशूलश्च शूलश्च तथां कुक्षि-  
 सम्भवम् ॥ ८२ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं  
 पाण्डुरोगं हलीमकम् । आमवातं तथा  
 शोथमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥ ८३ ॥  
 कामलां वातगुल्मश्च पिडकागरशृङ्खलीः ।  
 कासरवासारुचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥  
 ८४ ॥ सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं यथेष्टाहारसेवि-  
 नः । यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च वातरोगं  
 विनाशयेत् ॥ संज्ञया सर्वतोभद्रलौहो  
 रसवरः स्मृतः ॥ ८५ ॥

करके १ माशा तक । इसके सेवन करने से  
 उपद्रवयुक्त अम्लपित्त, सब प्रकार के बवासीर,  
 सब प्रकार के भगंदर, पक्लिशूल, शूल, आमशूल,  
 कुक्षिशूल, वातरक्त, कुष्ठ, पाण्डुरोग, हलीमक,  
 आमवात, शोथ, अग्निमान्द्य, कामला,  
 वायगोला, पिडका ( फुंसियाँ ) विष-विकार,  
 गृध्रसी, कास, श्वास, अरुचि, यक्ष्मा, रक्तपित्त,  
 वातरोग आदि सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं  
 और बल, वीर्य की वृद्धि होती है । इसके सेवन  
 करनेवाले मनुष्य को यथेष्ट आहार करना  
 चाहिये । इसको सर्वतोभद्रलौह कहते हैं । यह  
 सर्वोत्तम रस है ॥ ७५-८५ ॥

### सूतशेखर

शुद्धं सूतंमृतं स्वर्णं टङ्कणं वत्सनाभ-  
 कम् । व्योपमुन्मत्तं वीजञ्च गन्धकं ताम्र-  
 भस्मकम् ॥ ८६ ॥ चातुर्जातं शङ्खभस्म विल्व  
 मज्जा कचोरकम् । सर्वसमं क्षिपेत्खल्ले मर्ष-  
 भृङ्गरसैर्दिनम् ॥ ८७ ॥ गुञ्जा मात्रावटी  
 कृत्वाभक्षयेन्मधुसर्पिषा । रसोऽयमम्ल-  
 पित्तघ्नो वान्तशूलामयापहः ॥ ८८ ॥ पञ्च  
 गुल्मान् पञ्चकासान्ग्रहणायामयनाशनः ।  
 त्रिदोषोत्थातिसारघ्नः श्वासमन्दाग्नि  
 नाशनः ॥ ८९ ॥ उग्रहिकामुद्रावर्तं दाह-  
 याप्यगदापहः । मण्डलान्नात्र सन्देहः  
 सर्वरोगहरः परः ॥ ९० ॥ राजयक्ष्महरः  
 साक्षाद्रसोऽयं सूतशेखरः ॥ ९१ ॥

शुद्ध पारा सुवर्णभस्म, भुनामुहागा, शुद्धविष,  
 त्रिकुटा, शुद्ध धतूरे के बीज और गन्धक ताम्रभस्म,  
 चातुर्जात, शंख भस्म, बेलगिरी, कचूर साथ समान  
 भाग लेकर महीन चूर्णकर कजली भांगरे के रस  
 से १ दिन घोटकर १-३ रत्ती की मोलियाँ  
 बनावे । इनमें से १-१ मोली शहदू चीर पुन  
 के साथ छेने से अम्लपित्त उखटी दर्द पाँपो  
 गुल्म, कास, प्रदग्नी, त्रिदोष, जातिसार, श्वास,  
 मन्दाग्नि, भयंकर हिजा, उदावर्त, दाह पाप्य

लौह-भस्म, ताम्र-भस्म, अत्रक-भस्म प्रत्येक  
 चार-चार तोला, पारा १ तोला, गंधक २ तोला,  
 शुद्ध सोनामाषी १ तोला, शुद्ध मैनशिल  
 १ तोला, शुद्ध भिलाजीत १॥ तोला, गुग्गुल  
 १ तोला, थापविडंग, भिलार्या, चीता, सफ़ेद  
 चाक के मूल की छाल, हरिस्तकण, डाक के मूल  
 की छाल, स्याहमुसली, साँडी, नागरमोया,  
 गिलोय, गुल्लरकरी, पमार, गोरेखमुंडी, भांगरा,  
 शतापरी, पिपारा, त्रिकला और त्रिकटु प्रत्येक  
 तीन-तीन मासे छे । इन औषधों का चूर्ण  
 बनाकर घृत और मधु भिलाकर घी के चिकने  
 पात्र में रत देवे । मात्रा-२ रत्ती से प्रारम्भ

रोग, राजयक्ष्मा इन सबको धिलकुल नष्ट कर देता है ॥ ८६-६१ ॥

पानीयभङ्गवटिका

कृष्णाभ्रलौहमलकुष्ठविडङ्गचूर्णं प्रत्येक-  
मेकपलिकं विधिवद्विधाय । चव्यं कटुत्रय-  
फलत्रयकेशराजदन्तीपयोदचपलानलघण्ट-  
कर्णाः<sup>१</sup> ॥ ६२ ॥ माणौलिशुक्लवृहती-  
त्रिवृताः समूर्धावर्त्ताः पुनर्नविकया सहिता-  
स्त्वमीषाम् । मूलं प्रति प्रतिविशोधित-  
मक्षमेकं चूर्णं तदद्भ्रसगन्धकमेकसंस्थम् ॥  
६३ ॥ कृत्वाद्रकीयरससंवलितञ्च भूयः  
सम्पिप्य तस्य वटिका विधिवद्विधेया ।  
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां दुर्ना-  
मकामलभगन्दरशोथगुल्मान् ॥ ६४ ॥  
शूलञ्च पाकजनितं सतताग्निमान्द्यं सद्यः  
करोत्युपचयं चिरनष्टवहेः । कुष्ठान्निहन्ति  
पलितञ्च वलिं विट्ट्वां श्वासञ्च कासमपि  
पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ६५ ॥ वार्थ्यन्नमांस-  
दधिकान्नि रूतक्रमस्यवृत्ताम्लतैलपरिपक्-  
भुजो यथेष्टम् । शृङ्गाटविल्वगुडकञ्चटनारि-  
केलदुग्धानिसर्वं विट्टलान्निविषर्जयेत् ॥ ६५ ॥

एषा ग्रहण्यामपि प्रशस्ता ।

अभ्रक-भस्म, मंहु, कूट और वायविडंग  
प्रत्येक चार-चार तोले, चव्य, त्रिकटु, त्रिफला,  
भोंगरा, दन्ती ( जमालगोटा ) की जड़, नागर-  
मोया, पीपरि, चीता, घण्टकर्ण,<sup>१</sup> ( मोटा ),  
मानकन्द, सूरनकन्द, श्वेत लोघ, फटेरी की  
जड़, निसोत, सूर्यमुखी और साँठी की जड़ प्रत्येक  
एक एक तोला, पारा आधा तोला और गन्धक  
आधा तोला लेंगे । इन द्रव्यों को अदरल के  
रस में घोट करके गोलियाँ बना लेंगे । यह  
'पानीयभङ्गवटिका' अम्लपित्त, अरुचि, ग्रहणी,

धवासीर, कामला, भगंदर, शोथ, वायगोला,  
परिणामशूल, अग्निमान्द्य, वलि ( फुरियाँ  
पड़ना ), पलित ( बाल सकेद होना), श्वासकास  
और पाण्डुरोग को तत्काल नष्ट करती है तथा  
अग्नि को बढ़ाती है । इस औषध का सेवन  
करनेवाला रोगी जल, भात, मांस, दही, काँजी,  
तक्र, मछली, इमली और तैलपक पदार्थों का  
यथेष्ट आहार कर सकता है । सिहावा, बेल, गुड,  
चौराई का साग, नारियल, दूध और सर्व प्रकार  
की दालों का त्याग करना चाहिये । यह 'पानीय-  
भङ्गवटिका' ग्रहणी रोग की भी श्रेष्ठ औषध है ॥  
६२-६६ ॥

बृहत्क्षुधावती गुटिका ।

गगनाद् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पल-  
मात्रकम् । लौहकिट्टपलार्द्धं च सर्वमेकत्र  
संस्थितम् ॥ ६७ ॥ मण्डूकपर्णीवशिर-  
तालमूलीरसैस्तथा । भृङ्गराजकेशराज-  
कालमरिपरिजैरथ ॥ ६८ ॥ त्रिफलाभद्र-  
मुस्ताभिः स्थालीपाकाद्विचूर्णितम् । रस-  
गन्धकयोः कर्षं प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः ॥ ६९ ॥  
तन्मसृणशिलाखल्ले यत्नतः कज्जलीकृतम् ।  
वचा चव्यं यमानी च जीरकेशतपुष्पिका ॥  
१०० ॥ व्योषं विडङ्गं मुस्तञ्च ग्रन्थिकं  
खरमञ्जरी । त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्धा-  
वर्त्तः सितस्तया ॥ १०१ ॥ भृङ्गमाण-  
ककन्दश्च घण्टकर्णक एव च । दण्डोत्पला-  
केशराजकोली कर्कटकोऽपि च ॥ १०२ ॥  
एषामर्द्धपलं ब्राह्मं षट्षष्टं सुचूर्णितम् । प्रत्येकं  
त्रिफलायारच पलार्द्धं पलमेव च ॥ १०३ ॥  
एतत् सर्वं समालोच्य लौहपात्रे च भाज-  
येत् । आतपे दण्डसंषष्टमार्द्रकस्य रस-

१—वशिरम्=मृदुलवणे गजपिप्पल्याच्च ।  
परन्तु प्राचीनैः श्वेतसूर्धावर्तस्यापि बोधकमित्य-  
भिहितम् । अथ तस्यैव ग्रहणं धेयत्कारम् ।

१—घण्टकर्णं को धगभापा में घेंदू कहते हैं ।

स्त्रिधा ॥ १०४ ॥ तद्रसेन शिलापिष्टां  
गुटिकां कारयेद्भिषक् । बदरास्थिनिभां  
शुष्कां मुनिगुप्तां निष्पापयेत् ॥ १०५ ॥  
तत्प्रातर्भोजनादौ च सेवितं गुटिकात्रियम् ।  
अम्लोदकानुपानन्तु हितं मधुरवर्जितम् ॥  
१०६ ॥ दुग्धञ्च नारिकेलञ्च वर्जनीयं  
विशेषतः । भोज्यं यथेष्टमिष्टञ्च वारि-  
भक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥ १०७ ॥ हन्त्यम्ल-  
पित्तं विविधं शूलञ्च परिणामजम् । पाण्डु-  
रोगञ्च गुल्मञ्च शोथोदरगुदामयान् १०८  
यक्ष्माणां पञ्चकासांश्च मन्दाग्नित्वमरोच-  
कम् । स्त्रीहानं श्यासमानाहमामवातं स्वरा-  
मयम् । गुटी क्षुधावती सेयं विख्याता रोग-  
नाशिनी ॥ १०९ ॥

अन्नक-भस्म ८ तोला, लौह भस्म ४ तोला  
और भण्डूर २ तोले लेकर एक में मिलावे ।  
तदनन्तर मंडूकपर्णी, सफेद सूर्यावतं (सूरजमुखी)  
और स्याहमुसजी के स्वरस में घोट करके स्थाली  
में पकावे । उसके बाद रवेत और रत्र दोनों  
प्रकार के भाँगेरे और चौराई के रस से द्वितीय  
स्थालीपाक करे । ऐसे ही त्रिफला और नागरभोथा  
के स्वरस से तृतीय स्थालीपाक करके, भली भाँति  
घोट कर चूर्ण बना लेवे और उस चूर्ण में एक  
एक तोले गन्धक और पादे की कजली और बच,  
चम्य, अजवाहन, स्याहजीरा, सफेदजीरा, सौंफ,  
त्रिकटु, वायविडग, नागरभोथा, पिपरा मूल,  
अपामार्ग (औंगा), निसोत, चीता की जड़,  
दन्ती, रवेत सूर्यावतं (सूरजमुखी), भँगेरिया,  
मानकन्द शूरणकन्द, घण्टाकण (मोटा), पीले  
फूलोंवाली सहदेई, भाँगरा, करील की जड़ और  
काकड़ासिगी का दो-दो तोला चूर्ण तथा आवला,  
हरद और बहेदा के छ-छ तोला चूर्ण को  
मिलाकर कपड़ान करके लौहपात्र में रक्ते और  
अदरक के रस की तीन भावना देकर धूप में  
जोड़ के दूध से खरल करके छोटी धेर की गुठली  
के समान गोलिया बना लेवे । भोजन करने के

पहले प्रतिदिन प्रातःकाल कांजी के साथ तीन-  
तीन गोलियों का सेवन करना चाहिए । मधुर  
पदार्थ, दुग्ध और नारियल को त्याग देना  
चाहिये । जल, भात, कांजी आदि के अनुसार  
पदार्थों का आहार करे । यह 'वृहत्क्षुधावती'  
विविध प्रकार के अम्लपित्त, परिणामशूल, पाण्डु  
रोग, गुल्म, शोथ, उदर, घवासीर, यक्ष्मा, पाच  
प्रकार की खासी, अग्निमान्द्य, अरोचक, प्लीहा,  
श्वास, आनाह, आमवात और स्वररोग को  
सकाल नष्ट करती है । यह 'क्षुधावती' गुटिका  
रोगों को दूर करने में अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥ १०  
१०६ ॥

त्रिफलामण्डूर ।

गोमूत्र शुद्धमण्डूरं त्रिफलार्चुणसंयुतम् ।  
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्त्यम्ल-  
पित्तजम् ॥ ११० ॥

त्रिफला मिलाकर १ भाग, सण्डूरभस्म १  
भाग ; इन्हें मिलाकर घी और शहद के साथ  
चाटने से अम्लपित्त से उत्पन्न हुआ शूल अच्छा  
होता है ॥ ११० ॥

क्षुधावती गुटिका ।

रसायोगन्धकाभ्राणि त्र्युपणं त्रिफला  
वचा । यमानी शतपुष्पा च चविका जीर-  
कद्वयम् ॥ १११ ॥ प्रत्येकं पलमेपान्तु  
घण्टकर्णपुनर्नवा । माणकं ग्रन्थिकश्चेन्द्र-  
केशरागसुदर्शना ॥ ११२ ॥ दण्डोत्पला  
त्रिष्टन्ती जामातूरकचन्दनम् । भृङ्गापा-  
मार्गकुलका मण्डूकश्च पलार्द्धकम् ॥  
११६ ॥ आर्द्रकस्वरसेनाथ गुटिकां सम्प-  
कल्पयेत् । बदरास्थिसमाञ्चैकां भक्षयित्वा  
पिबेदन्तु ॥ ११४ ॥ वारिभक्त्वं जलञ्चैव  
प्रातरुत्थाय मानवः । वटी क्षुधावती नाम  
सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥ ११५ ॥ अग्निञ्च  
कुरुते दीप्तं भस्मकञ्च नियच्छति । अम्ल-

पित्तञ्च शूलञ्च परिणामकृतञ्च यत् ॥  
११६ ॥ तत् सर्वं शमयत्याशु भास्कर-  
स्तिमिरं यथा । मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात्  
चीरशर्करे ॥ ११७ ॥

पारा, लौहभस्म, गन्धक, अन्नकभस्म, त्रिकटु,  
त्रिफला, बच, अजवाइन, सोया, चव्व, स्याहजीरा  
और सफेदीजा प्रत्येक एक एक पल, घण्टकणं  
( मोखा ), साँठी, मानकन्द, पिपरामूल, इन्द्रजी,  
भांगरा, सुदर्शना, पीले फूलोंवाली सट्टेई,  
निसोत, दन्ती, सूर्यमुखी, लालचन्दन, केशराज,  
आंगा, पटोलपत्र और मधुनपर्णी को दो-दो  
तोले लेवे । इनको अदरक के रस में घोटकर बर  
की गुठली के समान गोलियाँ बनावे । रात काल  
एक गोली खाकर काँजी या जल का पान करे ।  
यह 'बुधावती' गुटिका सब प्रकार के अजीर्ण को  
नष्ट करके अग्नि को दीप्त करती और भस्मकरोग  
को शान्त करती है । जैसे सूर्य अन्धकार को  
तरकाल दूर करते हैं वैसे ही यह 'बुधावती'  
गुटिका अम्लपित्त और परिणामशूल को तरकाल  
नष्ट करती है । इसके सेवन-काल में मधुर  
वस्तुओं का और विशेष करके दूध और चीनी का  
सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १११-११७ ॥

लीलाविलास ।

रसो बलिर्व्योम रविस्तु लौहं धात्र्यन्त-  
नीरैस्त्रिदिनं त्रिमर्द्यं । तदल्पघृष्टं मृदुमार्क-  
वेण समर्दयेदस्य हि रक्त्रिमात्रम् ॥११८॥  
इत्यम्लपित्तं विविधैर्भकारं लीलाविलासो  
रसराम एषः । इर्दिं सशूलां हृदयस्य  
दाहं निवारयेदेष न संशयोऽत्र ॥११९॥  
दुग्धं सकुम्प्राण्डरसं सधात्रीफलं समेतं  
ससितं भजेद्वा ॥ १२० ॥

पारा, गंधक, अन्नक, तात्र और लौहभस्म  
को समभाग लेकर चाँवला और बहेरा के स्वरस  
की भावना दे देकर, तीन दिन तक खरल करके,

एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसको  
लीलाविलास रस कहते हैं । इसका सेवन करने  
से विविध प्रकार के अम्लपित्त, वमन, शूल और  
हृदय-दाह, ये सब निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं ।  
अनुपान—दूध, पेठा का रस और चाँवले के रस  
के साथ अथवा चीनी के साथ इस रस का सेवन  
करना चाहिए ॥ ११८-१२० ॥

योगरत्नसमुच्चय का सर्वतोभद्रलौह ।

लौहचूर्णं मृतं ताम्रमभ्रकञ्च पलं  
पलम् । शुद्धमृतस्य कर्पैकं गन्धकार्दपलं  
तथा ॥ १२१ ॥ मात्तिकस्य विशुद्धस्य  
कर्पं शुद्धशिलापरा । सार्द्धकर्पं विशुद्धञ्च  
शिलाजतु तथापरम् ॥ १२२ ॥ गुग्गुलो-  
श्चापि कर्पैकं शाणमानं परस्य च । चूर्णं  
विडङ्गभल्लातनद्विश्वेताकर्मूलजम् ॥१२३॥  
करिकर्णपलाशञ्च तालमूली पुनर्नवा ।  
घनामृता नागवला चक्रमर्दकमुण्डिरी ॥  
१२४ ॥ भृङ्गकेशशतावयौ वृद्धदारं फल-  
त्रयम् । त्रिकटुश्चापि सर्वेषां प्रत्येकञ्च  
नयेद्भिषक् ॥ १२५ ॥ सर्वमेकत्र सम्मर्द्यं  
घृतेन मधुना सह । स्निग्धे भाण्डे विनिः-  
क्षिप्य ततः कुर्याद्विधानचित् ॥ १२६ ॥  
द्विगुञ्जादिक्रमेणैव लौहं सर्परसायनम् ।  
अम्लपित्त जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥  
१२७ ॥ तद्वदर्शासि सर्वाणि सर्वमेव  
भगन्दरम् । पक्विशूलञ्च शूलञ्च तथा  
कुत्तिसम्भवम् ॥ १२८ ॥ वातरक्तं तथा  
कुष्ठं पाण्डुरोगं हलीमकम् । आमवातं  
तथा शोधमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥१२९॥  
कामलां वातगुल्मञ्च पिडकागरगृध्रसी ।  
कासरनासाकचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥  
१३० ॥ सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं यथेष्टाहार-

सेविनः । यद्यमाणं रक्तपित्तञ्च वातरोगं  
विनाशयेत् ॥ १३१ ॥ संज्ञया सर्वतोभद्र-  
लौहो रसवरः स्मृतः ॥ १३२ ॥

लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म हरणक  
४ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक २ तोला,  
स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, शुद्ध मैनासिल १  
तोला, शुद्ध शिलाजीत १॥ तोला, शुद्ध गूगल १  
तोला, बायथिडङ्ग, शुद्ध भिलावा, चीता, सफेद  
आक की जड़, हीस्तकण, पलाश की छाल,  
मूसली, पुनर्वा ( विपलपरा ) मोथा, गिलोय,  
गंगेरन, पँवाड़ के बीज, गोरखमुण्डी, भाँगरा,  
दूसरी प्रकार का भाँगरा, शतावर, विधारा के  
बीज, त्रिफला, त्रिकटु हरणक ३ माशे, इन्हें  
इकट्ठा मिलाकर घृत और शहद के साथ घोटकर  
बिंकने वासन में रखे । मात्रा—२ रत्ती से  
प्रारम्भ कर क्रम से ८ रत्ती तक बढ़ावे । यह  
लौह दृष्य एवं रसायन है तथा सब उपद्रव  
सहित अम्लपित्त, बवासीर, भगन्दर, परिणाम-  
शूल, शूल, आमदोष, वातरक्त, कौड़, पाण्डु-  
हलीमक, आमवात, सूजन, मन्दाग्नि, कामला,  
वातगुल्म, पिड़का, गरदोष, गूधूसी, खाँसी,  
श्वास, अरुचि, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त तथा वात-  
रोगों को नाश करता है ॥ १२१-१३२ ॥

अम्लपित्तान्तक रस ।

मृतमूर्तार्कलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्द-  
येत् । मापमात्रं लिहेत् त्रौद्वैरम्लपित्त-  
प्रशान्तये ॥ १३३ ॥

रत्नसिद्ध, ताम्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक  
एक-एक तोला और हरड़ तीन तोले । इनको  
पकत्र सरल करके शहद मिलाकर, प्रतिदिन  
चार रत्ती की मात्रा में इस 'अम्लपित्तान्तक' रस  
के सेवन करने से अम्लपित्त की शान्ति होती  
है ॥ १३३ ॥

पञ्चाननगुटिका ।

शुद्धमूतं पलाङ्गञ्च तद् समं शुद्धगन्ध-  
कम् । तयोस्तुल्यं ताम्रपात्र लिप्त्वा मपान्तरे

त्तिपेत् ॥ १३४ ॥ आच्छाद्य पञ्चलवणै-  
लिप्त्वा गजपुटे पचेत् । सिद्ध ताम्रं समा-  
दाय पलमेकं विचूर्णयेत् ॥ १३५ ॥ पार-  
दस्य पलञ्चैकं गन्धकस्य पलं तथा । पुट  
दग्धस्य लौहस्य गगनस्य पलं पलम् ॥  
१३६ ॥ यमानी शतपुष्पा च त्रिकटु  
त्रिफलापि च । त्रिवृता चविका दन्ती  
शिवरी जीरकद्वयम् ॥ १३७ ॥ एतेषां  
पलिकैर्भागैर्घण्टकर्णकमाणकम् । ग्रन्थिकं  
चित्रकञ्चैव कुलिशानां पलाङ्कम् ॥ १३८ ॥  
आर्द्रकस्वरसैः पिष्ट्वा चतुर्गुञ्जामितांगुटीम् ।  
पञ्चाननवटी ख्याता सर्वरोगविनाशिनी ॥  
१३९ ॥ अम्लपित्तमहाव्याधिनाशिनी च  
रसायनी । महाग्निकारिका चैषा परिणाम-  
व्यथापहा ॥ १४० ॥ शोथपाण्डुमयाना-  
हस्तीहगुल्मोदरापहा । गुरुदृष्यान्नपानानि  
पयोमांसरसा हिताः ॥ १४१ ॥

शुद्ध किया हुआ पारा और शुद्ध गंधक दो-दो  
तोले, लेकर दोनों की कजली बना लेवे ।  
उसके बाद चार तोले ताँबे के पत्र पर इस  
कजली का लेप करके मूषा-यन्त्र में रखकर,  
पंच स्रवण से ढककर गजपुट में पाक करे । ऐसा  
करने से ताम्रभस्म सिद्ध हो जाता है ।

इस प्रकार भस्म करके सरल किया हुआ  
ताम्रभस्म ४ तोला, पारा ४ तोला, गंधक ४  
तोला, लौहभस्म ४ तोला, अभ्रकभस्म ४  
तोला, अजवाइन, सोया, त्रिकटु, त्रिफला,  
निसांत, चम्य, दन्ती, अपामार्ग, स्याह जीरा  
और सफेद जीरा, प्रत्येक चार-चार तोला, घण्ट-  
कण ( मोथा ) मानकन्द, पिपरा मूल, चीता  
और हड़मदारी की जड़ प्रत्येक दो-दो तोले ;  
इन द्रव्यों का चूर्ण करके, अदरक के रस में  
सरल करके, चार-चार रत्ती की गोबिर्वा बना  
लेवे । यह 'पञ्चाननवटी' समस्त रोगों की नष्ट



करती और अम्लपित्त आदि महान् रोगों को नाश, करती हैं और रसायनी है । एवं यह 'पंचाननगुटिका, अग्नि को दीप्त करती है । परिणामशूल, शोथ, पाण्डुरोग, घानाह, प्रीहा, गुल्म और उदररोग को नष्ट करती है । इस औषध के सेवन करनेवाले रोगी के लिये दुग्ध और मांस-रस आदि गुरुपाक और धीर्यवर्धक अन्न, पान पर्य है ॥ १३४-१४१ ॥

भास्करामृताम्न ।

वासामृताकेशराजपर्पटीनिम्बमूत्रकम् ।  
मुस्तं वृश्चीरबृहती वाट्यालकशतावरी ॥  
१४२ ॥ एषां सत्त्वैः पलोन्मानैर्मदितं  
विमलाभ्रकम् । सहस्रपुटितं तत्र शतावर्ष्या  
रसं क्षिपेत् ॥ १४३ ॥ वारद्वादशकं  
दन्वा वटिकां कारयेद्भिषक् । भास्करामृत-  
नामेदमम्लपित्तं नियच्छति ॥ १४४ ॥  
शूलमन्नद्रवं शूलं शूलं च परिणामजम् ।  
वृद्धिं हृत्नासमरुचिं तृष्णां कासश्च दुर्ज-  
यम् ॥ १४५ ॥ हृद्ग्रहं कामलां रक्त्विपत्तं  
यच्चाणमेव च । दाहं शोथं भ्रमं तन्द्रां  
विस्फोटं कुष्ठमेव च । श्वासं मूर्च्छाञ्च  
मन्दाग्निं यकृतस्त्रीहोदरं तथा ॥ १४६ ॥

धरुसा, गिलोय, सफेद भोंगरा, पित्तपापडा, नीम की छाल, भोंगरा, नागरमोथा, श्वेत साँठी, बड़ी कटेरी, खरटी और शतावरी, इनके चार-चार तोले स्वरस में खरल किए हुए, सहस्र-पुटित अन्नक-भस्म में शतावरी के रस की बारह भावना देकर, २ तोले की गोखियाँ बना लें । इसको 'भास्करामृताम्न' कहते हैं ।

यह 'भास्करामृताम्न' अम्लपित्त, अन्नद्रव-शूल, परिणामशूल आदि विविध शूल, वृद्धि, हृत्नास, अरुचि, तृष्णा, कास, हृद्ग्रह, कामला, रक्त-पित्त, यच्चा, दाह, शोथ, भ्रम, तन्द्रा, विस्फोट, कुष्ठ, श्वास, मूर्च्छा, अग्नि-मान्द्य, यकृत और प्रीहा को नष्ट करता है । मात्रा—एक रत्ती से दो रत्ती तक ॥ १४२-१४६ ॥

अम्लपित्तान्तक लौह ।

रसगन्धकमएदूरैरयस्कान्तः सुजा-  
रितः । सम्यङ्मारितमभ्रञ्च सर्वसदृशभा-  
गिकम् ॥ १४७ ॥ धात्रीरसेन सम्मर्ध वटी  
कार्या द्विरक्त्रिका । धन्यांभया मधुरिका  
क्वाथेन यदि सेव्यते ॥ १४८ ॥ अम्ल-  
पित्तादिकान् रोगान् हन्ति शूलान्यशे-  
पतः । अम्लपित्तान्तको नाम्ना लौहोऽयं  
परिकीर्तितः ॥ १४९ ॥

पारा, गंधक, मडूर, कांतलौह-भस्म, अन्नक भस्म ये सब सम भाग लेकर, आँवले के रस में घोटकर दो दो रत्ती की गोखियाँ बनावे और धनियाँ, बड़ी हरड का छिलका, सीफ का काथ करके उसके साथ अम्लपित्तान्तक लौह का सेवन करने से अम्लपित्तादिक रोग और सम्पूर्ण शूल शान्त हो जाते हैं ॥ १४७-१४९ ॥

श्रीविल्वतैल ।

वालविल्वं पलशतं जलद्रोणे विपाच-  
येत् । पादावशेषे तस्मिंस्तु तैलमस्थं विपा-  
चयेत् ॥ १५० ॥ धात्रीरसं तैलसमं द्विगुणं  
द्वागदुग्धकम् । कल्कीकृत्य पचेद्दीमान्  
धात्रीं लाक्षां तथाभयाम् ॥ १५१ ॥  
मुस्तकं चन्दनोदीच्यसरलं देवदारु च ।  
मज्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलानं तगरपादिकम् ॥  
१५२ ॥ मांसां शैलेयकं पत्रं प्रियङ्गुं  
सारिवां वचाम् । शतावरीमशगन्धां  
शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १५३ ॥ तत् सिद्धं  
स्थापयेत् कुम्भे मासमेकं सुरक्षिते । पिल्व-  
तैलमिदं श्रेष्ठमम्लपित्तकुलान्तकम् ॥ १५४ ॥  
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ।  
सूतिकारोगशनं गर्भदं शुक्रवर्द्धनम् ॥  
१५५ ॥ हस्तपादशिरोदाहं दीर्घल्यं कृशतां

तथा । ग्रहणीं गुल्महिकार्त्तिरक्त्तपित्तज्वरं  
जयेत् ॥ १५६ ॥

२ सेर कच्चे बेल की गिरी को २५ सेर ४८  
तोला जल में पकाये, चमुथांश शेष रहने पर  
छान लेंगे । इस काय में १२८ तोला तिलतैल,  
१२८ तोला आँवले का स्वरस ३ सेर १६ तोला  
बकरी का दूध और ६४ तोला नीचे लिखे  
औषधों का कलक मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध  
करना चाहिये ।

### कल्कार्थ औषध ।

आँवला, लाख, हरद, नागरमोथा, चन्दन,  
सुगंधवाला, धूपसरल, देवदारु, मजीठ, रक्तचंदन,  
कूट, छोटी इलायची, तगर, जटामांसी, धरीला,  
तेजपात, फूल प्रियंगु, अनंतमूल, बच, शतावरी,  
असगंध, सोया और साँठी ।

तैल सिद्ध होने पर घटा में एक मास तक  
रख छोड़ें । इस श्रीधिलवतैल के मर्दन करने से  
अम्लपित्त, शूल और सूतिकारोग नष्ट होते हैं ।  
यह धिलवतैल गर्भदायक और शुक्र-वर्धक है ।  
एवं हाथ, पैर और शिर के दाह को दूर करता  
है । तथा दुर्बलता, कृशता, ग्रहणी, गुल्म, हिक्का  
और रक्तपित्त को दूर कर देता है ॥ १५०-१५६ ॥

### अम्लपित्तरोग में पथ्य-विधि ।

ऊर्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम् ।  
सर्वत्र शस्यते पश्चान्निरुहश्चापि शालयः ॥  
१५७ ॥ यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा  
जाङ्गला रसाः । जलानि तप्तशीतानि  
शर्करामधुसक्त्रवः ॥ १५८ ॥ कर्कोटकं  
कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका । वेत्राग्रं  
दृद्धकूप्माण्डं रम्भापुष्पञ्च वास्तुकम् ॥  
१५९ ॥ कपित्थं दाडिमं धात्री तिक्रानि  
सकलानि च । अम्लपित्तामये नित्यं  
सेवितव्यानि मानवैः ॥ १६० ॥

ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त में पहले वमन और  
अधोगामी अम्लपित्त में पहले विरेचन कराना  
चाहिए । तदनंतर दोनो प्रकार के अम्लपित्त  
रोग में निरुहयस्ति ( पिचकारी ) देना चाहिए ।  
इस रोग में साठी का पुराना चावल, मूँग, जौ,  
गोहूँ, जंगली पशुधों के मांस का रस, उबाला  
हुआ शीतल जल, शकर, मधु, सत्तू, ककड़ी,  
करेला, परवल, हुरहुर ( हिचे शाक नाम से बंगदेश  
में प्रसिद्ध है ), बेत की फुनगी, पुराना पेठा,  
केले के फूल, बयुआ, कैथा, अनार, आँवला और  
सम्पूर्ण कच्चे द्रव्य पथ्य हैं ॥ १५७-१६० ॥

### अम्लपित्त में अपथ्य ।

नवान्नानि विरुद्धानि पित्तकोप-  
कराणि च । वमिवेगं तिलान्माषान्  
कुलत्थांस्तैलभक्षणम् ॥ १६१ ॥ अवि-  
दुग्धञ्च धान्याम्लं लवणाम्लकदूनि च ।  
गुर्वन्नं दधि मद्यञ्च वर्जयेदम्लपित्त-  
वान् ॥ १६२ ॥

### इति भैषज्यरत्नावल्यामम्लपित्तरोग- चिकित्सा समाप्ता ॥

विरुद्ध आहार, नवीन अन्न, पित्तकोपक आहार  
द्रव्य, वमन के वेग का रोकना, तिल, उर्द, कुलधी,  
तैल, भेड़े का दूध, काँजी, नमक, खटार, चरपदे  
द्रव्य, देर में पचनेवाले पदार्थ, दही और मद्य,  
अम्ल-पित्त-रोग में रथाज्य है ॥ १६१-१६२ ॥

इति श्रीपं० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचित्तायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायामम्ल-  
पित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथ शूलाधिकारः ।

शूलचिकित्सा ।

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः ।  
क्षारचूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशा-  
न्तये ॥ १ ॥

लङ्घनम् आमपाचनार्थमेव स्वेदः  
पित्तं विना, क्षारचूर्णानि वक्ष्यमाणानि,  
फलैर्निर्मिता वर्तयः फलवर्तयः ।

वमन, आमक्षोप-पाचनार्थं लंघन, यदि  
पित्ताधिक्य न हो तो स्वेद-क्रिया, पाचन-  
फलवर्तयों एवं आगे कहे जानेवाले क्षार-चूर्ण  
और गुटिका ये सब शूलरोग की शांति के  
उपाय हैं ॥ १ ॥

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखा-  
वहः । पायसैः कृशरैः पिष्टैः स्निग्धैर्वा  
पिशितोत्करैः ॥ २ ॥

शूल-रोगी के लिये तिल और चावलों की  
खीर, पिष्ट, स्निग्धपिष्ट (पुलटिस) तथा  
मेपादि मांसों द्वारा स्वेद-क्रिया विशेष लाभ-  
दायक होती है ॥ २ ॥

वातिक शूलचिकित्सा ।

विज्ञाय वातशूलन्तु स्नेहस्वेदैरुपाच-  
रेत् । तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव  
सुखावहः ॥ ३ ॥

वातशूल पीड़ित रोगी को स्नेहन तथा  
स्वेदन (पसीना निकालना) द्वारा चिकित्सा  
करनी चाहिये । वातशूल में स्वेदन ही अत्यन्त  
लाभदायक है ॥ ३ ॥

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन  
युक्तस्तु कुलत्थयूपः । ससैन्धवव्योपयुतः  
सलावः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ४ ॥  
लावमांसं कुलत्थञ्च युक्त्या गृहीत्वा

काथयित्वा दानयित्वा च यूपः कार्यः  
ततो घृतं दत्त्वा सैन्धवं लवणत्वमात्रा-  
पादकं, व्योपञ्च कदुत्रयं कदुत्वमात्रकारकं  
दाडिमफलरसः स्वादुत्वार्थं ततो हिङ्गु-  
सौवर्चलं च मत्तिप्य पिचेत् । अन्ये तु  
कुलत्थयूपः पृथगेव देय इति कथयन्ति ।

कुलथी और लवापथी का मांस दो-दो  
तोले लेकर ६४ तोले जल में पकावे । जब १६  
तोला जल बच रहे तो उतारकर घान ले एवम्  
हींग और घृत से ढींक दे तथा सेंधा नमक,  
काला नमक एवम् त्रिकुटा का चूर्ण बालकर  
अनार का रस मिला देना चाहिये । यह यूप  
वातजन्य शूल को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥४ ॥

यलादि काथ ।

यलापुनर्नवरएडवृहतीद्वयगोक्षुरैः ।  
सहिङ्गुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ५ ॥

खरैटी की जड़, साँठी, एरंड की जड़, दोनों  
कटेरी और गोखरू ; इनके काथ में हींग और  
सेंधा नमक मिलाकर पीने से वातिक शूल नष्ट  
होता है । मात्रा—४ तोला ॥ ५ ॥

हिङ्गवादि चूर्ण ।

शूली निरन्नकोष्ठोऽग्निरुष्णाभिरचू-  
रिताः पिचेत् । हिङ्गुमत्तिविपाव्योपवचा-  
सौवर्चलाभयाः ॥ ६ ॥

शूल-रोगी के कोष्ठ की अजीर्णता को दूर  
करके उष्ण जल के साथ हींग, अतीस, त्रिकुट्ट,  
यच, काला नमक और हरद के चूर्ण का सेवन  
कराना चाहिये । मात्रा—४ रत्नी से ३ माशा ॥ ६ ॥

तुम्बुर्वादि चूर्ण ।

तुम्बुरूरायभयाहिङ्गुपौष्करं लवण-

\* किसी-किसी का मत है कि कुलथी का  
यूप अलग ही देना चाहिये ।

अथम् । पिवेदुष्णांभुना वापि शूलगुल्मा-  
पतन्त्रकी ॥ ७ ॥

शूल, गुल्म और अपतन्त्ररोग में धनियाँ,  
हरड़, हींग, पुहकरमूल और तीनों लवणों के  
चूर्ण का उष्ण जल के साथ सेवन करना लाभ-  
दायक होता है । मात्रा १॥ माशा ॥ ७ ॥

यमान्यादि चूण ।

यमानी हिङ्गुसिन्धूत्थत्तारसौवर्च-  
लाभयाः । सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनि-  
पूदनाः ॥ ८ ॥

अजवाइन, हींग, सेंधा नमक, यववार, काला  
नमक और हरड़ के चूर्ण को ४ माशा की मात्रा में  
सुरामण्ड के साथ पीने से वातिक शूल नष्ट हो  
जाता है ॥ ८ ॥

विश्वादि काथ ।

विश्वमेरुएडजं मूलं काथयित्वा जलं  
पिवेत् । हिङ्गुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूल-  
निवारणम् ॥ ९ ॥

सोंठ और एरंड की जड़ के काथ में हींग  
और काला नमक मिलाकर पान करने से शूल-  
रोग शीघ्र शान्त हो जाता है ।

हिङ्गुगुप्कर मूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन  
वा । विश्वमेरुएडयवकाथः सद्यः शूलनिवा-  
रणः । तद्वदेव यवकाथो हिङ्गुसौवर्च-  
लान्वितः ॥ १० ॥

सोंठ, एरंड-मूल और इन्द्रजौ के काथ में  
हींग और पुहकरमूल का ४ तोला चूर्ण मिलाकर  
अथवा हींग और काला नमक मिलाकर पान  
करे, तो शूल-रोग तत्काल नष्ट हो जाता है ।

१—पिथेयवाग्भुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी  
इत्यपि पाठोऽन्यत्र प्रचरित तत्र यथाग्भुना इति  
यवकाथेनेत्यर्थः ।

२—तद्वद्वयवकाथ इति पाठान्तरम् ।  
अन्यान्तरे तु नागरैरुपेतयोः काथः, काथ  
इन्द्रयवस्य वेति पाठः ।

इसी प्रकार केवल इन्द्रजौ के काथ में हींग और  
काला नमक मिलाकर पान करने से भी शूल-  
रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १० ॥

सौवर्चलादिगुटिका ।

सौवर्चलांम्लिकाजानी मरिचैर्द्विगुणो-  
त्तरैः । मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुटिकावात-  
शूलनुत् ॥ ११ ॥

काला नमक एक तोला, इमली दो तोले,  
जीरा ४ तोले और काली मिर्च ८ तोले ;  
इनके चूर्ण को बिजौरा नींबू के रस में घोटकर  
गोलियाँ बना लेवे । इसका सेवन गर्म जल के  
साथ करने से वातिक शूल नष्ट होता है ॥ ११ ॥

बीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत् ।  
जयेद्वातभवं शूलं मापमेकं प्रमाणतः ॥ १२ ॥

एक माशा बिजौरे नींबू के मूल का काथ बना  
करके, उसमें घृत मिलाकर पान करे तो वातिक  
शूल नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हिंवादिगुटिका ।

हिङ्गुम्लवेतसव्योपयमानीलवण-  
त्रिकैः । बीजपूरसोपेतैर्गुटिका वातशूल-  
नुत् ॥ १३ ॥

हींग, अमलवेत, त्रिकटु, अजवाइन और  
तीनों लवण को बिजौरे नींबू के रस में घोटकर  
गोलियाँ बना लेवे । यह गोली वातशूल को  
नष्ट करती है विशेष अनुभव ॥ १३ ॥

मृत्तिकास्वेद ।

मृत्तिकां सजलां पाकाद् घनीभूतां पटे  
क्षिपेत् । कृत्वा तत्पोटलीं शूली यथास्वेदं  
निधापयेत् ॥ १४ ॥

जल में मिट्टी को घोलकर अग्नि पर पकावे ।  
जब जल लेप के समान गाढ़ा हो जाय तब  
अग्नि पर से उतार ले और एक कपड़े के टुक में  
ढालकर पोटली बना ले और गरम-गरम ही  
जहाँ पर शूल होता हो स्वेदन के लिये  
लगाने ॥ १४ ॥

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा लेपयेज्जठ-  
रोपरि । गुटिका शमयत्येषा शूलञ्चैवात्ति-  
दुस्तरम् ॥ १५ ॥

तिलों को पीसकर उसकी गोली को पेट पर  
लेपन करे । इस प्रकार करने से अतिकठिन शूल  
घरपटा दो जाता है ॥ १५ ॥

विल्वमूलतिलैरेणं पिष्ट्वा चाम्ल-  
तुपाम्भसा । गुटिकां भ्रामयेदुष्णां वातशू-  
लविनाशिनीम् ॥ १६ ॥

वेल के मूल की छाल, तिल और एरंड के  
मूल को रट्टी कांजी में पीसकर पोटली बना  
लेवे । इस पोटली को उष्ण करके पेट को सेंके ।  
जिस स्थान पर शूल हो, वहाँ पर घुमावे । कुछ  
देर तक ऐसा करने से वातिक शूल नष्ट हो  
जाता है ॥ १६ ॥

नाभिलेपात् जयेच्छूलं मदनं काञ्चि-  
कान्वितम् । जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः  
पार्श्वशूलनुत् ॥ १७ ॥

मैनफल को कांजी में पीसकर नाभि पर लेप  
करने से शूल-रोग नष्ट होता है । जीवन्ती के  
मूल के कण्ड में तेल मिलाकर लेप करने से  
पार्श्व का शूल दूर होता है ॥ १७ ॥

द्विदूर्वादि चूर्ण ।

हिंम्वम्लकृष्णामलाकं यवानी क्षारा-  
भयासैन्धवतुल्यभागम् । चूर्णं पिवेद्वारु-  
गिमण्डमिश्रं, शूले प्रवृद्धेऽनिलजे  
शिवाय ॥ १८ ॥

“अम्लोऽम्लवेतसः ॥”

हींग, अमलबेत, पीपल, आंवला, अजवाइन,  
जवाहार, हरड, सेंधा चमक, इन्हें बराबर मात्रा  
में मिलावे । मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती तक ।  
अनुपान—सुरामण्ड ( शराब के ऊपर का स्वच्छ  
भाग ) । यह चूर्ण वातजन्य शूल में लाभदायक  
है ॥ १८ ॥

श्यामादि चूर्ण ।

श्यामा विडं शियुफलानि पथ्या  
विडङ्गकम्पिलकमश्वमूत्री । कल्कं समं  
मद्ययुतञ्च पीत्वा शूलं निह्न्यादनिलात्म-  
कन्तु ॥ १९ ॥

‘श्यामा वृद्धदारकः अश्वमूत्री शूलकी’ ।

विधारा, विड नमक, ताहिजे के बीज, हरड,  
थायविडङ्ग, कमीला, अश्वमूत्री ( शल्लकी ),  
इनके चूर्णों को शराब के साथ पीने से वातजन्य  
शूल घरपटा हो जाता है । मात्रा—२ माशे ॥ १९ ॥

अथ पित्तशूलचिकित्सा ।

गुडशालियवाः क्षीरं मर्पिःपानं विरेच  
नम् । जाद्रलानि च मांसानि भेषजं  
पित्तशूलिनाम् ॥ २० ॥

गुडोऽत्र शर्कराः पुरातनगुड इति  
वृद्धमतम् ।

गुड, शाली, धान, जौ, दूध, घी, त्रिचन-  
प्रीपथ और अंगली पशुओं का मांस पौष्टिक शूल  
के रोगियों के लिये लाभदायक होता है । इस  
श्लोक में गुड शब्द का अर्थ शर्करा है । पुराना  
गुड लिया जावे, ऐसा भी अनुभवी वृद्ध वैद्यों का  
मत है ॥ २० ॥

पैत्ते तु शूले वमनं पयोऽम्बुरसैस्तथेक्षोः  
सपटोलनिम्बैः । शीतावगाहा. पुलिना  
सवाताः कांस्यादिपात्राणि जलप्लु-  
तानि ॥ २१ ॥

पैत्तिक शूल में जल मिश्रित दुग्ध अथवा  
परवल के पत्ते और नीम के पत्ते के अर्धसिद्ध  
काथ से युक्त जल के रस के साथ मैनफल का  
सेवन करा के वमन कराना लाभदायक होता है ।  
शीतल जल से स्नान, नदी के तट पर वायुमेवन  
और जलपूर्ण कांस्य-पात्र का उदर पर स्पर्श  
कराने से पैत्तिक शूल नष्ट होता है ॥ २१ ॥

पय आदि यथालाभं मदनफलयोगेना-

कण्ठं पीत्वा वमनम् । पटोलनिम्बयोर-  
र्द्धशृतं मदनफलयुक्तं मधुहितञ्च पीत्वा  
विरेचनम् ।

विरेचनं पित्तहरञ्च शस्तं रसाश्च  
शस्ताः शशलावकानाम् । सन्तर्पणं  
लाजमधूपपन्नं योगाः सुशीताः मधु-  
सम्प्रयुक्ताः ॥ २२ ॥

लाजसक्कुं नारिकेलोदकेन माधु-  
र्यार्थं मधु दत्त्वा सन्तर्पणम् ।

छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽथ शूले घोरे  
विदाहे त्वत्तितर्पिते च । यवस्य पेयां मधुना  
त्रिमिथां पिवेत् सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥  
२३ ॥ धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्ती  
गोस्तनाम्बुना । पिवेत् सशर्करं सद्यः  
पित्तशूलनिपूदनम् ॥ २४ ॥ शतावरीरसं  
चौद्रयुतं प्रातः पिवेन्नरः । दाहशूलो-  
पशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ २५ ॥  
शतावरी समयप्याहवात्यालकुशगोजुरैः ।  
शृतशीतं पिवेत्तुयं सगुडचौद्रशर्करम् ।  
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ।  
॥ २६ ॥ तैलमेरुदण्डं वापि मधुककाथ-  
संयुतम् । शूलं पित्तोद्भवं हन्ति गुल्मं  
पैत्तिकमेव च ॥ २७ ॥

पैत्तिक शूल में विरेचन, खरगोश और लवा  
आदि पत्थी के मांस का रस, नारियल का जल,  
मधु-मिश्रित धान के खील का चूर्ण और मधु-  
संयुक्त अन््यान्य सुशीतल मुष्टि-योग बुट्कले प्रयोग  
लाभदायक होते हैं । धान के लावा के सतुवा में  
मिठास के लिए मधु मिलाकर नारियल के जल  
के साथ सेवन करना चाहिए । प्रमन, ज्वर,  
पित्त-शूल, प्रबल दाह और अधिक प्यास में  
मधु-मिश्रित जी की शीतल पेया का पान करना

लाभदायक होता है । छाँवले के रस में अथवा  
धिदारीकंद के रस में अथवा त्रायमाण के रस  
में और मुनक्का के रस में शक्कर मिलाकर पान  
करने से पैत्तिक शूल तत्काल नष्ट हो जाता है ।  
प्रातःकाल शतावरी के रस में मधु मिलाकर  
पान करने से दाह, शूल और सब प्रकार के  
पैत्तिक रोग नष्ट हो जाते हैं । शतावरी, मुलेठी,  
खरेटी, कुश और गोशुरू के काथ को शीतल  
करके गुड़, मधु और शक्कर मिलाकर पान करने  
से रक्त-पित्त, दाह, पैत्तिक शूल और दाह-गुर्क  
ज्वर ये सब तत्काल विनष्ट हो जाते हैं । मुलेठी  
के काथ में एरंड का तैल मिलाकर पीने से  
पैत्तिक शूल और पैत्तिक गुल्म-रोग नष्ट होता  
है ॥ २१-२७ ॥

प्रलिहात् पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समा-  
क्षिप्तम् ॥ २८ ॥

मधु के साथ छाँवला के चूर्ण का सेवन करने  
से पैत्तिक शूल नष्ट होता है ॥ २८ ॥

बृहत्यादि काथ ।

बृहत्यो गौक्षुरैरगडकुशकाशेक्षुवा-  
लिकाः । पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो  
हन्त्युः सुदारुणम् ॥ २९ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोशुरू, अंडो की  
जड़, काँस तृष मिलाकर २ तोले, काथ के  
लिये जल ३२ तोले, वचा हुआ काथ ४ तोले ।  
इस काथ के पान करने से कठिन पित्तजन्य  
शूल अच्छा हो जाता है ॥ २९ ॥

त्रिफलादि काथ ।

त्रिफलारम्भकाथं सक्षौद्रं शर्करान्वि-  
तम् । पाययेद्रक्तपित्तघ्नं दाहशूलनिवा-  
रणम् ॥ ३० ॥

त्रिफला तथा अमलतास के ४ तोला काथ में  
शहद और खर्द का लकर पीने से रक्तपित्त, दाह,  
शूल नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

त्रिफलादि काथ ।

त्रिफलानिम्बयप्याहकटुकारम्बुधैः

मृतम् । पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोप-  
शान्तये ॥ ३१ ॥

त्रिकला, नीम की छाल, मुलहठी, कटुकी,  
धमलतास का गूदा, इनके साथ में शहद  
मिलाकर पीने से दाह तथा शूल शान्त होते  
हैं ॥ ३१ ॥

अथ श्लैष्मिक शूलचिकित्सा ।

श्लेष्मात्मके बर्दनलङ्घनानि शिरो-  
विरेकं मधुसीधुपानम् । मधुनि गोधूम-  
यवानरिष्टान् सेवेत रूक्षान् कटुकांश्च  
सर्वान् ॥ ३२ ॥

मधुसीधु इत्येकपदं मद्यविशेषस्य  
संज्ञा ।

श्लैष्मिक शूल-रोग में घमन, लंघन, शिरो-  
विरेचन (नस्य), मधुसीधु (मद्य), मधु (शहद),  
गेहूँ, जौ, थरिष्ट, रूच द्रव्य और चरपरे द्रव्य  
लाभदायक होते हैं ॥ ३२ ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामटम् ।  
सुखोष्णोनाम्बुना पीतं कफशूलनिवार-  
णम् ॥ ३३ ॥ विल्वमूलमथैरएडं<sup>१</sup> चित्रकं  
विश्वभेषजम् । हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः  
शूलनिवारणम् ॥ ३४ ॥

तीनों लवण, पञ्चकोल (पांपरि, पिपरामूल,  
चव्य, चीता और सोंठ) और हींग के चूर्ण का  
गरम जल के साथ सेवन करने से श्लैष्मिक  
शूल निवृत्त हो जाता है । बेल की जड़, एरुद  
की जड़, चीता और सोंठ के साथ में हींग और  
सैंधा नमक मिलाकर पीने से श्लैष्मिक शूल  
सकाल नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ३४ ॥

दशमूलकाय ।

दशमूलकृतः काथः समवत्तारसैन्धवः ।

१—ग्रन्थान्तरे तु वातशूलचिकित्साधिकारे  
लिखितमिदं पद्यम् ।

हृद्रोगगुल्मशूलानि काथः श्वासश्च नाश-  
येत् ॥ ३५ ॥

दशमूल के काय में जवाखार तथा सैंधा नमक  
ढालकर पीने से हृदयरोग, शूल तथा श्वास  
आदि रोग अच्छे हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

फट्वादिशूलचिकित्सा ।

हिङ्गुसौवर्चलं शुण्ठी पथ्या च द्विगु-  
णोत्तरा । एतच्चूर्णं कटीकुक्षिपार्यहृद्ब-  
स्तिशूलनुत् ॥ ३६ ॥

हींग १ भाग, काला नमक २ भाग, सोंठ  
४ भाग और हरद ८ भाग लेकर चूर्ण बनावे ।  
इस चूर्ण के सेवन करने से कति, कुक्षि, पसली,  
हृदय और बस्ति के शूल नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

मातुलुङ्गरसो वापि शिश्रुकाथस्ततः  
परः । सत्तारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्वस्ति-  
शूलनुत् ॥ ३७ ॥

बिजौरे की जड़ या संहिजने की छाल के ४  
तोला काथ में जवाखार तथा शहद ढालकर  
पिलाने से पसवादे का दर्द, हृदय का शूल तथा  
मूत्राशय का शूल अच्छे हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

एरएडसतक ।

एरएडविल्ववृहतीद्वयमातुलुङ्गपापाण-  
भित्त्रिकटमूलकृतः कषायः । सत्तारहिङ्गुल-  
वणो रुतुतैलमिश्रं श्रोण्यं समेदहृदयस्त-  
नरुक्षपेयः ॥ ३८ ॥

अंडी की जड़, बेल की जड़ दोनों मॉत्ति  
की कटेरी, बिजौरे की जड़, पापाण भेद, गोलुह  
मिलाकर २ तोले, काथ के लिये जल ३२  
तोले, बचा हुआ काथ ४ तोले । इसमें जवाखार,  
हींग तथा सैंधा नमक १५ रत्ती ढालकर गरम  
काथ को अंडी के साथ पीना चाहिये । इससे  
कमर का दर्द, कंधे का दर्द, शिरनेन्द्रियशूल,  
हृदयशूल और स्तनों का दर्द अच्छा हो जाता  
है ॥ ३८ ॥

हिङ्ग्यादि न्यून ।

हिङ्गुसौवर्चलं पथ्या विटसैन्धवतुम्बुरु।

पौष्करञ्च पिवेच्चूर्णं दशमूलयवाम्भसा- ॥  
३६ ॥ पार्श्वहृत्कटिपृष्ठांशशूले तन्द्राप  
तानके । शोथे श्लेष्ममसेके च कर्णरोगे  
च शस्यते ॥ ४० ॥

हींग, काला नमक, हरइ, बिठ नमक, सेंधा  
नमक, धनियाँ, पोहकरमूल इनके चूर्ण को  
बराबर मात्रा में मिला ले । मात्रा—४ रत्ती से  
८ रत्ती तक । इस चूर्ण को दशमूल तथा जौ के  
प्राय के साथ सेवन करना चाहिए । इसके  
सेवन से पसवादे का दर्द, हृदय का दर्द, कमर  
का दर्द, पीठ का दर्द, फंघे का दर्द, तन्द्रा,  
अपतानक, सूजन, कफमसेक ( मुँह और नाक  
द्वारा कफ गिरना ) तथा कान के रोग अच्छे हो  
जाते हैं ॥ ३६-४० ॥

हिंन्वादि गुटिका ।

हिंन्वु त्रिकटुकं कुष्ठं यवत्तारोऽथ सैन्ध-  
वम् । मातुलुङ्गरसोपेता प्लीहशूलापहा  
गुटी ॥ ४१ ॥

हींग, त्रिकुटा, कूठ, जवाखार, सेंधा नमक  
इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर भिजोरे के रस  
से गोली बनावे । मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती  
तक । इसके सेवन से तिल्ली, शूल अच्छे हो  
जाते हैं ॥ ४१ ॥

अयामशूलचिकित्सा ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविना-  
शिनी । सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्ध-  
नम् ॥ ४२ ॥

कफस्य तुल्यत्वात् कफशूले यत् पञ्च-  
कोलादियुक्तं तदामशूले कार्यम् ।

आम-शूल में कफ-शूलोक्त चिकित्सा करनी  
चाहिए । एवं अग्नि-वर्धक, बल-वर्धक और आम  
नाशक औषधों का सेवन करना चाहिए ॥ ४२ ॥

मुस्तादि चूर्ण

मुस्तां वचां तिरुकरोहिणीश्च तथा-  
भयां निर्दहनीश्च तुल्याम् । पिवेचु गोमूत्रः

युतां कफोत्थशूले तथामस्य च पाचना-  
र्थम् ॥ ४३ ॥

मोथा, पच, गुटकी, हरइ, मूवां की जड़,  
इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर गोमूत्र के साथ  
शूलरोगी के लिये पिलाने से आमरस पच  
जाता है मात्रा—३ माशे ॥ ४३ ॥

चतुःसम चूर्ण ।

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुः-  
समम् । चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्या-  
ग्नेरच दीपनम् ॥ ४४ ॥

अजवाइन, सेंधा निमक, हरइ और सोंठ  
इनको समभाग लेकर चूर्ण बनावे । इस 'चतुः-  
सम' चूर्ण के सेवन करने से शूल-रोग का  
निवारण और अग्नि का दीपन होता है ॥  
४४ ॥ मात्रा—३ माशा ॥

पित्तनिलशूलचिकित्सा ।

समात्तिकं वृहत्यादि पिवेत् पित्तानि-  
लात्मके । व्यामिश्रं वा विधिं कुर्यात्  
शूले पित्तानिलात्मके ॥ ४५ ॥

वात-वैत्तिक शूल में मधुमिश्रित कटेरी,  
गोखरु और एरंड आदि के काय के पीने से  
तथा मिश्रित क्रिया करने से अर्थात् वातज  
शूल और पित्तज शूल में जो पृथक-पृथक चिकि-  
त्सा कही गई है उनको मिलाकर देने से लाभ  
होता है ॥ ४५ ॥

कफपित्तशूलचिकित्सा ।

पित्तजे कफजे चापि क्रिया या कथिता  
पृथक् । एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां  
कफपित्तजे ॥ ४६ ॥

वैत्तिक और रलैपिक शूल-रोगों में जो  
अलग-अलग चिकित्साएँ लिखी गयी हैं उनको  
मिश्रित करके कफ-पित्तज शूल में प्रयोग करना  
चाहिए ॥ ४६ ॥

पटोलादि फ्राय ।

पटोलत्रिफलारिष्टकायं मधुयुतं



पिवेत् । पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलो-  
पशान्तये ॥ ४७ ॥

परचल के पत्ते त्रिफला तथा नीम की छाल  
के ४ तोला काथ में शहद ढालकर रोगी को  
पिलाया चाहिए । इसके सेवन से कफपित्त-  
प्रधान ज्वर, घमन, दाह तथा शूल अच्छे हो  
जाते हैं ॥ ४७ ॥

वातश्लेष्मशूलचिकित्सा ।

रसोनं मधुसंमिश्रं पिवेत् प्रातः प्रका-  
दिहन्तः । वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्तुं  
वह्निदीपनम् ॥ ४८ ॥

३ माशा लहसुन के रस में मधु मिलाकर  
पीने से वातरौघिक शूल का निवारण और  
अग्नि का दीपन होता है ॥ ४८ ॥

रुच्यफादि चूर्ण ।

चूर्णं समं रुचकहिंशुमहौषधानां शुण्ठ्य-  
म्बुना कफसमीरणसम्भवासु । हृत्पार्वपृष्ठ  
जठरातिविपूचिकासु पेयं तथा यवरसेन  
तु विद्विवन्धे ॥ ४९ ॥

सोंठ के काथ के साथ काला नमक, हींग  
तथा सोंठ मिले हुए चूर्ण को सेवन करने से  
कफ-वातजन्य हृदय का शूल, पीठ का दर्द,  
पमवाडे का दर्द, पेट का दर्द तथा हैजा आदि  
रोग अच्छे हो जाते हैं । यदि कब्ज हो तो  
इस चूर्ण को जी के काथ के साथ पीना चाहिए ।  
चूर्ण की मात्रा—६ रत्ती ॥ ४९ ॥

त्रिदोषशूलचिकित्सा ।

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गुच्योपसंयु-  
तम् । उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति  
त्रिदोषजम् ॥ ५० ॥

सुदग्धस्य शङ्खस्य चूर्णं मापमेकमधिकं  
वा लवणच्योपयोर्मिलित्वा मापकद्वयं  
हिङ्गुनो रक्त्तिकाद्वयं दत्त्वा पिवेत् श्ले-

ष्मोत्तरे योगोऽयम् । अन्ये तु भागानुक्त-  
त्वात् सर्वं समभागम् । इति भानुः ।

शङ्खभस्म १ भाग, सेंधा नमक और त्रिकटु  
ये दोनों मिलाकर २ भाग, हींग चौथाई,  
इनका गरम जल के साथ सेवन करने से कफ-  
प्रधान सांनिपातिक शूलरोग नष्ट होता है ।  
मात्रा—४।६ रत्ती की उपयुक्त है ॥ ५० ॥

गोमूत्रशुद्धं समुतं मण्डूरं वरया सह ।  
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोष-  
जम् ॥ ५१ ॥

मिलितत्रिफलाचूर्णसमं मण्डूरम् ।

गोमूत्र से शुद्ध किया हुआ पृथक् भस्म  
किया हुआ मंडूर एक भाग और त्रिफला चूर्ण  
एक भाग लेकर घृत और मधु मिलाकर अवलोक  
बना लेवे । इसके सेवन करने से त्रिदोषजन्य  
शूलरोग नष्ट होता है । मात्रा १।१-२ माशा ॥५१॥

विदारीदाडिमरसः सव्योपलवणा-  
न्वितः । क्षौद्रयुक्तो जयत्याशु शूलं दोष-  
त्रयोद्भवम् ॥ ५२ ॥

विदारीकन्द का रस २ तोला, अनार का रस  
२ तोला, इनके साथ त्रिकटु, सेंधा नमक तथा  
शहद मिलाकर पीने से त्रिदोषजन्य शूल अच्छा  
होता है ॥ ५२ ॥

परएडद्वादशकम् ।

परएडफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।  
परिण्यः सहदेवा च सिंहपुच्छीक्षुवा-  
लिका ॥ ५३ ॥ तुल्यैरैतैः शृतं तोयं यवः-  
क्षारमुतं पिवेत् । पृथग्दोषभवं शूल  
हन्यात्सर्वभवं तथा ॥ ५४ ॥

अंडी का फल, अंडी की जड़, छोटी कटेरी,  
बड़ी कटेरी, गोखरू, शालपर्णी, पुरिनपर्णी,  
मुद्गपर्णी मापपर्णी, सहदेवा ( दण्डोत्पलविशेष ),  
इक्षुवालिका ( तण्डुविशेष ), पुरिनपर्णीभिद,  
मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२

तोला, घचा हुआ काथ ८ तोले । इस काथ में जवाखार ४ रत्ती डालकर पीने से घातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, त्रिदोषजन्य शूल अच्छे हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥

दग्धमनिर्गतधूमंमृगशृङ्गं गोघृतेन सह लीढम् । हृदयनितम्बजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥ ५५ ॥

हरिणशृङ्गं सङ्कुट्य अन्तधूमेन दग्ध्वा तद्भस्म घृतेन सह लेह्यम् ।

हरिन के सींग को कूटकर, अन्तधूम भस्म-करके घृत के साथ सेवन करने से हृदय और नितम्ब (चूतड़) के शूल को इस प्रकार नष्ट करता है, जैसे अग्नि लकड़ी के डेर को भस्म कर देती है ॥ २२ ॥ मात्रा—३ रत्ती

शूलरोग में पथ्य ।

अर्दिस्वेदोलङ्घनंपायुर्वत्तिवस्तिनिद्रारेचनं पाचनं च । अब्दोत्पन्नाः शालयोवायट्मण्ड-स्तमक्षीरंजाङ्गलानो रसाश्च ॥ ५६ ॥ पटोलशोभाञ्जनकारवेल्लं वार्ताकुमात्राणि-पचोलिमानि । द्राक्षाकपित्थं रुचकं पियाजं शालिश्वपत्राणि च वास्तुकानि ॥ ५७ ॥ सामुद्र सौवर्चलहिङ्गु विश्वं विडंशताहा लशुनंलवङ्गम् । एरण्डतैलं सुरभीजलं च तत्पाम्बु जम्बीररसोऽपिकुष्ठम् ॥ ५८ ॥ लघूनि च चाररजासिकेतिवर्गोहितः शूल-गदार्दितेभ्यः ॥ ५९ ॥

वमन, स्वेदन, लंघन, गुदा में बत्ती (सपोन्टरी) लगाना, वस्तिकर्म, सोना, जुलाब, पाचनद्रव्य साल भर पुराने चावल, गर्म दूध, जंगली जीवों का मांस रस, परवल, सहजना, करेला, बैंगन, पका आम, मुनक्का, कैच, कालानमक चिरीजी शालिच शाकके पत्ते बथुआ समुद्रनमक सौचरनमक हॉग सॉठ विहनमक, जौंग, सौफ लहसन अंही का तेल, ग्रीमूत्र गर्मजल जमीरी नींबू, बूट इनके चारों का चूर्ण शूल रोग में पथ्य है ।

शूल में अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विपमा-शनम् । रूक्षतित्ककपायाणि शीतलानि-गुरुणिच ॥ ६० ॥ व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुवैदलम् । वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्चूलवान्नरः ॥ ६१ ॥

परस्पर विरोधी अन्नपान रात में जागना विषय भोजन रूखा कड़वा कसैला शीतल और गुरुपाकी अन्न, व्यायाम, मैथुन, मद्य, लवण, कटु पदार्थ और वैदल (दाल) का सेवन, मल-मूत्रादि वेगों का रोकना, शोक और क्रोध करना शूल-रोगीके लिए त्याज्य है ॥ ६१ ॥

मापादि शिग्वीधान्यानि मद्यानि-वनितादियम् । आतपं जागरं क्रोधं शुचं सन्धानमम्लकम् वर्जयेत्पक्विशूलार्त्तस्था-ऽजीर्णं तिलानापि ।

परिणामशूल के रोगी को उडह आदि शिग्वीधान्य अनेक प्रकार की शराब, क्रीसंभोग शीतल पदार्थ (बरफ आदि) का सेवन धूप में चलना, जागना, क्रोध, शोक, संधान की हुई खटी चीजें (अचार कौजी आदि) भोजन और तिल का सेवन नहीं करना चाहिए ॥ २६-६० ॥

अथ परिणामशूलचिकित्सा ।

वमनं तित्कमधुरैर्विरेकश्चात्र शस्यते । वस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ६२

परिणाम-शूल में कड़वे और मधुर-द्रव्य के द्वारा, विरेचन और बरित-क्रिया विशेष लाभदायक होती है ॥ ६२ ॥

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यःपुमानघात् । उग्रं परिणतिशूलं तस्यापैति समरात्रेण ॥ ६३ ॥

शुण्ठी चूर्णगुडयोः प्रत्येकं कर्पः तिला ४ पलमिताः एतयोः पायसं कृत्वा भक्षयेत् ।

सोंठ का घूर्ण एक तोला, गुड़ एक तोला, तिल १६ तोला, दूध में पकाकर ( यवागू की तरह ) पेयन करने से थलवान् परिणाम-शूल सात दिन में अच्छा हो जाता है ॥ ६३ ॥

परिणतिशूल में शम्बूकभस्म ।

शम्बूकजं भस्मपीतं जलेनोप्येन तत्-  
क्षणात् । पक्विजं विनिहन्त्येतत् शूलं  
विष्णुरिवासुरान् ॥ ६४ ॥

निर्मासीकृतशम्बूकभस्म मापमेकं द्वयं  
वा घृताक्रमुखकुहररेण उष्णाम्बुना मेल-  
यित्वा पेयम् ।

छोटी शंखी ( घोंघा ) के भीतर का मांस  
थलवा करके शंखी का भस्म बना लेवे । उसको  
गरम जल में भिलाकर सेवन करने से, यह  
परिणाम-शूल को इस प्रकार नष्ट करता है  
जैसे विष्णु भगवान् असुरों को नष्ट करते हैं ।  
इसे ३ माशा की मात्रा में सेवन करे किन्तु  
पहिले मुख को घी से चिकना कर लेना  
चाहिए ॥ ६४ ॥ ( मुख को जला देता है इसलिए  
अधिक मधु या घृत मिलाकर ले । )

दधनाऽन्यूनसरेणाद्यात् सतीनयव-  
सङ्गकान् । अचिरान्मुच्यते शूलान्नरोऽन्न-  
परिवर्जनात् ॥ ६५ ॥

अन्न भोजन का परित्याग करके मलाई-  
सहित दही के साथ मटर और जौ के सत्तू के  
सेवन करने से शूल-रोग शीघ्र शान्त हो जाता  
है ॥ ६५ ॥

तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूक-  
भस्मनाम् । द्विभागगुडसंयुक्तां गुटींशाणैक-  
सम्मिताम् ॥ ६६ ॥ शीताम्बुपानात् पूर्वाह्णे  
भक्षयेत् क्षीरभोजनः । सायाह्ने रसकं  
पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात् ॥ ६७ ॥  
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि ॥ ६८ ॥

तिल, सोंठ, हरद और छोटे शंख ( घोंघा )

की भस्म प्रत्येक एक-एक भाग और गुड़ आठ  
भाग ; सबको मिलाकर तीन-तीन माशे की  
गोलियाँ बना लेवे और शीतल जल के साथ  
सेवन करे । प्रातःकाल दुग्ध और सायंकाल में  
मांस के रस का पान करना पथ्य है । इसके  
द्वारा प्राचीन परिणाम-शूल भी तत्काल नष्ट  
हो जाता है ॥ ६७-६८ ॥

शम्बूकादि गुटिका ।

शम्बूकं त्र्यूपणञ्चैव पञ्चैव लवणानि  
च । समांशा गुटिकाः कार्थ्याः कलम्ब-  
करसेन च ॥ ६९ ॥ प्रातर्भोजनकाले वा  
भक्षयेत्तद्यथावलम् । शूलाद्विमुच्यते जन्तुः  
सहसा परिणामजात् ॥ ७० ॥

सर्व समांशं कलम्बकरसेन मर्दयित्वा  
मापकचतुष्टयमिता वटिकाः कार्थ्याः । तत्  
एकामुष्णजलेन पिबेत् ।

छोटे शंख ( घोंघा ) की भस्म १ तोला,  
त्रिकटु एक तोला और पाँचों नमक मिलाकर  
१ तोला ; इन सबको एकत्र कर केरमुष्ण के  
साग के रस में घोट करके चार-चार माशे की  
गोलियाँ बना लेवे । प्रातःकाल अथवा भोजन  
के पूर्व एक-एक गोली, गरम जल के साथ सेवन  
करने से परिणामशूल अवश्य शान्त हो जाता  
है ॥ ६९-७० ॥

शंकरस गुटिका ।

पलानि चिश्वात्तारस्य पञ्च पञ्च पलानि  
च । लवणानां क्षिपेत् प्रस्थद्वयं जम्बीर-  
वारिणः ॥ ७१ ॥ पलद्वादश शङ्खस्य  
भस्मीभूतं क्षिपेत् पुनः । पूर्वत्रयैण संमर्ध  
हिङ्गुगुण्योपचतुःपलम् ॥ ७२ ॥ रसा-  
मृतसुगन्धानां पलाद्वैश्च पृथक् पृथक् ।  
दद्यात् समस्तं संमर्धं जम्बीराम्बुले दिने-

१ मात्रा १॥ माशे होनी चाहिए ।

त्रयम् ॥ ७३ ॥ बदरास्थिममाणेन गुटिकाः  
कारयेद्भिषक् । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय तोय-  
मुष्णं पिवेदनु ॥ ७४ ॥ शूलञ्च सर्वगुल्मञ्च  
अजीर्णपरिणामजम् अन्त्रशूलं पक्त्रिशूलं  
हृच्छूलञ्च विशेषतः ॥ ७५ ॥ कुक्षिशूलं  
पार्श्वशूलं पृथक्त्रातादिसम्भवम् । आम-  
शूलमुदावर्ष्यं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ७६ ॥  
तिन्तिढीत्वग्भस्म पञ्चपलानि पञ्च-  
लवणं प्रत्येकं पलं शङ्खभस्म १२ पलानि  
जम्बीररसांशं अष्टपलानि शनैः शनैः  
पक्त्वा पश्चात् द्विद्विगुणशुण्ठीपिप्पली-  
मरिचानां चूर्णं प्रत्येकं पलमितं रसगन्धका-  
मृतानां प्रत्येकं ४ तोलकानि सर्वमेकी-  
कृत्य जम्बीररसेन मर्दयित्वा दिनत्रयं रौद्रे  
शोषयेत्ततो बदरास्थिमिता वटस्थः कार्थ्याः  
तत एकामुष्णजलेन भक्षयेत् ।

हमली का चार २० तोला, पाँचों नमक  
प्रत्येक चार चार तोला, शंखभस्म ४८ तोला,  
नीचू का २३ से ३१ तोला ; इनको धीमी  
आँच में पकाकर, हाँग, सोंठ, पीपरी और मिर्च  
चार-चार तोला, और पारा, गणक और विष  
प्रत्येक दो-दो तोला ; इन द्रव्यों को नीचू के रस में  
घोट करके दो दिन धाम में सुखाकर ऋतुवेर की  
गुठली के समान गोलियाँ बनाकर, गरम जल के  
साथ एक-एक गोली खा लेने से परिणामशूल  
आदि अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ७१-७२ ॥

परिणामजशूल में स्फुरप्रयोग ।

यः पिबति सप्तरात्रं सक्त्तूनेकान् कला-  
ययूपेण । स जयति परिणामजं शूलं  
चिरजमपि किमुत नूतनजम् ॥ ७६ ॥

सात रात्रि तक केवल सक्त्तू, मटर के युष के  
साथ पीने से, प्राचीन और नवीन परिणामशूल  
अच्छा हो जाता है ॥ ७६ ॥

लौहचूर्णं वरायुक्रं विलीढं मधुसर्पिषा ।  
परिणामशूलं शमयेत्तन्मलं वा प्रयो-  
जितम् ॥ ७७ ॥

असमान मात्रा में घृत और मधु के साथ  
लोह-भस्म या मंदूर भस्म २१ रत्ती और  
त्रिफलाचूर्ण ३ मा० के सेवन करने से परिणाम-  
शूल नष्ट हो जाता है ॥ ७७ ॥

कृष्णामयालोहचूर्णं लिहात्समधुश-  
र्करम् । परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति  
सुदारुणम् ॥ ७८ ॥ मधुशर्करेति स्थाने  
गुडदानाद्योगान्तरं भवति ।

पीपल, हरद, लोहभस्म इन्हें वरायर मात्रा में  
मिलाकर शहद तथा राँठ के साथ चटाने से  
कठिन परिणामशूल अच्छा होता है । मात्रा  
३१६ रत्ती ॥ ७८ ॥

पथ्या लोहरजः शुण्ठीचूर्णं मात्तिक-  
सर्पिषा । परिणामरुजां हन्ति वातपित्त-  
कफात्मिकाम् ॥ ७९ ॥

हरद, लोहभस्म, सोंठ इन्हें वरायर मात्रा में  
मिलाकर शहद तथा घृत के साथ सेवन करने से  
वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, परिणामशूल  
अच्छा हो जाता है मात्रा ३१६ रत्ती ॥ ७९ ॥

दधिकघृत ।

पिप्पली नागरं चिल्वं कारवीचव्य-  
चित्रकम् । हिंगुदाडिमृत्ताम्लं वचा-  
साराम्लवेतसम् ॥ ८० ॥ वर्षाभूकृष्ण-  
लवणमजाजीवीजपूरकम् । दधि त्रिगुणितं  
सर्पिस्तत्सिद्धं दाधिकं घृतम् ॥ ८१ ॥  
गुल्मार्शः स्त्रीहृत्पार्श्वशूलयोर्निरुजापहम् ।  
दोपसंशमनं श्रेष्ठं दाधिकं परमं स्मृतम् ॥ ८२ ॥

गाय का घी ४ सेर, दही १२ सेर, कल्क के  
लिये—पीपल, सोंठ, बेल की जड़, काला जीरा,  
चड्य, चित्रक, हाँग, अनारदाना, चित्तडीक, बच,

जवाहार, अमलपेत; साँठी, कालानमक, जीरा विजौरे की जड़ मिलाकर १ सेर, विधिपूर्वक घृत घटान करके रोगी को सेवन कराना चाहिए । इस घृत के सेवन से गुल्म, अर्श, ज़ीहा, हृदयशूल तथा पसवाड़े का शूल अच्छा हो जाता है । दोषोंको शमन करने के लिये यह घृत परम उत्तम औषध है । मात्रा—१ माशे से १ तोला तक ॥ ८०-८२ ॥

द्विग्वदि चूर्ण ।

सहिगुतुम्युरुच्योपयमानीचित्रकामयाः ।  
सत्तारलवणाश्चूर्णं पित्रेत्मातः सुखा-  
म्युना ॥ ८३ ॥ विरमूत्रानिलशूलघ्नं पाचनं  
वह्निदीपनम् ॥ ८४ ॥

हींग, धनियाँ, त्रिकटु, अजनाइन, चित्रक, हरद, जवाहार, सेंधानमक इनको बराबर मात्रा में मिलाकर चूर्ण करे, चूर्ण को प्रातः गुनगुने पानी से सेवन करावें । ( मात्रा—१माशा ) यह चूर्ण पाचक, अग्निदीपक तथा शूल को नष्ट करनेवाला है ॥ ८३-८४ ॥

चिडङ्गादिमोदक ।

विडंगतण्डुलव्योषं त्रिवृद्धन्ती सचित्र-  
कम् । सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि  
कारयेत् ॥ ८५ ॥ गुडेन मोदकं कृत्वा  
खादेदुष्णेन वारिणा । जयेत् त्रिदोषजं  
शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ८६ ॥

द्विले हुए चिडङ्ग, त्रिकुटा, निसोत, दन्ती की जड़, चित्रक, इनका गहीन चूर्ण करके चूर्ण से दुग्ने गुड से विधिपूर्वक लड्डू बनावे । मात्रा ३ माशे । अनुपान—गरम जल । इसके सेवन से सान्निपातिक तथा परिणामशूल अच्छा हो जाता है ॥ ८५-८६ ॥

लौहगुटिका ।

लौहस्य रजसो भागस्त्रिफलायास्त्रय-  
स्तथा । गुडस्याष्टौ तथा । भागा गुडान्मूत्रं

चतुर्गुणम् ॥ ८७ ॥ एतत्सर्वंश्च विपचेद्  
गुडपाकविधानवित् । लिहेच्च तद्यथाशक्ति  
क्षये शूले च पाकजे ॥ ८८ ॥

लोहभरम १ भाग, त्रिफला ३ भाग, गुड ८ भाग, गोमूत्र ३२ भाग इसे गुडपाक की विधि से पकाकर रोगी को शक्ति के अनुसार सेवन कराना चाहिए । मात्रा—१॥ माशा । इसके सेवन से क्षय एवं परिणामज शूल अच्छा होता है ॥ ८७-८८ ॥

भीमवटकमण्डूर ।

कोलाग्रन्थिकसहितैर्विर्ष्वौषधमागधी-  
यवत्तारैः । प्रस्थमयोरजसां पलिकांशै-  
श्चूर्णितैर्मिश्रैः ॥ ८९ ॥ अष्टगुणमूत्र-  
युक्तं क्रमपाकात् पिएडतां नयेत्सर्वम् ।  
कोलप्रमाणवटिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्य-  
विरतौ च ॥ ९० ॥ रससर्पिर्भूषणयोमांसै-  
रशनन्नरो निवारयति । अन्नविनर्त्तनशूलं  
स्त्रीहागुल्माग्निसादांश्च ॥ ९१ ॥

मण्डूरभरम ६४ तोला को ६ सेर ३२ तोला गोमूत्र में पाक करे, जब पकने पर आवे तो चव्य, पीपलामूल, साँठ, पीपल, जवाहार हर एक के ४ तोला चूर्ण को डालकर अच्छी तरह मथकर पिएडाकार होने पर गोलो बना ले । मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती, इन्हें भोजन के पहिले, बीच में तथा आखिर में सेवन कराना चाहिए । पध्य—मांसरस, घृत मूँग आदि का सूप, दूध, मास । इस प्रकार इस औषधि-सेवन से परिणामशूल, ज़ीहा तथा मन्दाग्नि रोग अच्छे होते हैं ॥ ८९-९१ ॥

लौहामृत ।

तनूनि लोहपत्राणि तिलोत्सेधसमानि  
च । काशिकामूलकल्केन संलिप्य सर्पपेण  
वा ॥ ९२ ॥ विशोष्य सूर्धकिरणैः पुनरे-  
वावलेपयेत् । त्रिफलायाः जले ध्मातं

वापयेच्च पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ ततः सञ्चू-  
 णितं कृत्वा कर्पटेन तु ध्यानयेत् । भक्त-  
 येन्मधुसर्पिर्भ्यां यथाग्न्येतत्प्रयोजयेत् ६४ ॥  
 गुञ्जादं गुञ्जकं वाथ द्विगुञ्जकमथापि  
 वा । छागस्य पयसः कुर्यादनुपानमभा-  
 वतः ॥ ६५ ॥ गवां धूतेन दुग्धेन चतुःपष्टि-  
 गुणेन च । पत्रिशूलं निहन्त्येतन्मासेनैकेन  
 निश्चितम् ॥ ६६ ॥ लोहामृतमिदं श्रेष्ठं  
 ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । ककारपूर्वकं यच्च  
 यच्चाभ्रं परिकीर्तितम् ॥ ६७ ॥ सेव्यं  
 तन्न भवेदत्र मांसं चानूपसम्भवम् ॥ ६८ ॥

सूचीवेध लोह के पत्र को मदार की जड़ के ककक से अथवा सफेद सरसों के ककक से लपेटकर धूप में सुखावे, पीछे अभिन से तपाकर थ्रिफलाकाय में घुमावे । इसी प्रकार बार-बार करें जब तक कि ठीक भरम न हो जाय । पुनः अच्छी प्रकार पीसकर कपड़े से धान ले, यदि थ्रिफलाकाय से टिकिया बनाकर पुट दे दी जाय और विधिपूर्वक भस्म कर ले तो अत्यन्त उत्तम हो जिससे घिना पुट लगे हुए लोहे से उत्पन्न होनेवाले जो रोग हैं वह उत्पन्न न हों । इस लौहभस्म को शहद तथा शूल के साथ रोगों की अभिन के अनुसार सेवन कराये । मात्रा आधी रत्ती से दो रत्ती तक । अनुपान—यकरी का दूध, अभाव में औषध की मात्रा से ६४ गुण गोघृत अथवा गोदूध के साथ सेवन करावे । इसके सेवन से एक मास में ही परिणाम-शूल अच्छा होता है । अपश्य-पेडा ककड़ी, करेला अदि ( ककारात्मक द्रव्य ), आनूप मास तथा अम्लपदार्थ ॥ ६२-६८ ॥

अथान्नद्रवशूलचिकित्सा ।

अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदी-  
 रितम् । आमपकाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः  
 शमम् ॥ ६९ ॥ धात्रीफलभवं चूर्णमय-  
 र्चूर्णसमन्वितम् । यष्टीचूर्णेन वा युक्तं  
 लिङ्गात् क्षौद्रेण तद्गदे ॥ १०० ॥

अन्नद्रव नामक शूल में यही चिकित्सा करनी चाहिए जो अम्लीय रोग में कही गई है । आमपाशय तथा पवाशयके वमन तथा विरेचन द्वारा शुद्ध होने पर अन्नद्रवशूल बहुत शीघ्र ही अच्छा होता है । चाँवले के चूर्ण में लोहभस्म को अथवा मुलहठी के चूर्ण को मिलाकर शहद के साथ इस रोग में घाटना चाहिए ॥ ६९-१०० ॥

गुडमण्डूर

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः  
 पलम् । त्रिपलं लौहकिट्टस्य तत्सर्वं मधु-  
 सर्पिपा ॥ १०१ ॥ समालोज्य समश्री-  
 याचतुर्गुञ्जाममाणतः । आदिमध्यावसा-  
 नेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥ १०२ ॥  
 अन्नद्रवं जरत्पित्तमसृपित्तं सुदारुणम् ।  
 परिणामसमुत्थञ्च शूलं संवत्सरोत्थि-  
 तम् ॥ १०३ ॥

गुड, चाँवले और हरद का चूर्ण हर एक ४ तोला मण्डूरभस्म १२ तोला, इन्हें इकट्ठाकर शहद तथा घी में मिलाकर सेवन करना चाहिए । मात्रा—४ रत्ती । भोजन के प्रथम, मध्य तथा अन्त में सेवन करने से अन्नद्रवशूल, अम्लीय, रत्रिपित्त तथा १ वर्ष का पुराना परिणामशूल अच्छा हो जाता है ॥ १०१-१०३ ॥

समुद्राद्य चूर्ण ।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रोमकं  
 विडम् । दन्ती लौहरजः किट्टं त्रिवृच्छू-  
 रणकं समम् ॥ १०४ ॥ दधिगोमूत्रपयसा  
 मन्दपाके विपाचितम् । तद्यथाग्निबलं  
 चूर्णं पित्रेदुष्णेन वारिणा ॥ १०५ ॥  
 जीर्णैःजीर्णैःतु भुञ्जीतमांसादिघृतसाधितम्  
 नाभिशूलं सीहशूलं यकृद्गुल्मकृतञ्च यत् ॥  
 १०६ ॥ विद्रध्यष्टीलिकां हन्ति कफवातो-  
 द्रवां तथा । शूलानामपि सर्वेषामौषधं

नास्ति तत्परम् ॥ परिणामसमुत्थस्य विशेषे-  
षेणान्तकृन्मत् ॥ १०७ ॥

सामुद्रादीनां प्रत्येकं समभागचूर्ण-  
मेकीकृत्य दधिदुग्धगोमूत्राणां समभागेन  
यावता आलोडितं भवति तावद्दद्यात्  
मन्दानलेन पचेत् आचूर्णीभावात्ततः  
कदुष्णोदकेन यथायोग्यं प्रयोज्यम् । अन्ये  
तु समुदितचूर्णात् दध्यादीनां मिलितानां  
चातुर्गुण्यमाहुः ।

सामुद्रलवण, सैन्धव, यवहार, सजीसार,  
काला नमक, सांभर नमक, विड नमक, दन्ती  
( जमालगोटा ) की जड़, लोह-चूर्ण, मंड़ूर,  
निसोत और सूरन ( जिमीकंद ) समभाग, इत्येक  
पस्तु को दही, गोमूत्र और दूध के साथ पकावे ।  
अग्नि और घल के अनुसार मात्रा का प्रयोग  
करना चाहिए । उष्ण जल के साथ इसका सेवन  
करना चाहिए । इस औषध का सेवन करनेवाला  
रोगी घृत-पक् मांसादि का भी सेवन कर सकता है ।  
यह 'सामुद्राय चूर्ण' हर प्रकार के शूल-रोग की,  
विशेषकर परिणाम-शूल की महौषध है ।  
सामान्यतया १ माशे की मात्रा उचित  
है ॥ १०४-१०५ ॥

नारिकेल लवण ।

नारिकेलं सतौयश्च लवणेन प्रपूरितम् ।  
विपक्वमग्निना सम्यक् परिणामजशूल-  
नुत् ॥ १०८ ॥ पिप्पल्या भक्षितं हन्ति  
शूलं विविधहेतुजम् । वातिकं पैत्तिकञ्चापि  
श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १०९ ॥

जल-युक्त नारियल के भीतर सैन्धव नमक  
भरकर और नारियल के ऊपर मिट्टी का लेप  
करके धूप में सुखाकर अग्नि में भस्म करे ।  
उसके चपट मृत्तिका को अलग करके सैन्धव-युक्त  
नारिकेल की भस्म में पीपरि मिलाकर उचित  
मात्रा में सेवन करने से वात-पित्त-वफ त्रिदोष

जन्य शूल तथा परिणाम-शूल नष्ट हो जाते हैं ।  
मात्रा १-माशा ॥ १०८-१०९ ॥

सप्तामृतलौह ।

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजः समं  
लिहन् । मधुसर्पिर्प्युतं सम्यक् गव्यं क्षीरं  
पिवेदनु ॥ ११० ॥ छर्दिं सतिमिरं शूल-  
मम्लपित्तं ज्वरं क्लमम् । आनाहं मूत्रसद्मश्च  
शोथश्चैव निहन्ति सः ॥ १११ ॥

घृत और शहद के साथ मुजेठी, त्रिफला  
और लोह-भस्म का सेवन करने के बाद दूध  
पीने से छर्दि, तिमिर, शूल, अम्ल-पित्त, ज्वर,  
क्लम, आनाह, मूत्राघात और शोथरोग, ये सब  
नष्ट हो जाते हैं । मात्रा ३ रत्ती ॥ ११०-१११ ॥

गुडपिप्पली घृत ।

सपिप्पली गुडं सर्पिः पचेत् क्षीरे  
चतुर्गुणे । विनिहन्त्यम्लपित्तश्च शूलश्च  
परिणामजम् ॥ ११२ ॥

बाँगुने दूध में पीपरि, गुड और घृत को  
पकाकर सेवन करने से अम्लपित्त और परिणाम-  
शूल समूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ११२ ॥

पिप्पलीघृत ।

काथेन कल्केन च पिप्पलीनां सिद्धं  
घृतं मात्तिकसंप्रयुक्तम् । क्षीरानुपानस्य  
निहन्त्यवश्यं शूलं प्रवृद्धं परिणामसं-  
ज्ञम् ॥ ११३ ॥

सुशीते मधुपादिकं कल्कवन्मधुशर्करेति  
वचनात् । दुग्धपलमनुपिवेत् ।

पीपरि के कल्क और काथ के साथ सिद्ध  
किये हुए घृत में मधु मिलाकर दूध के साथ  
सेवन करने से प्रथम परिणाम-शूल निःसंदेह नष्ट  
हो जाता है । घृत की मात्रा ६ माशे से १ तोला  
तक । दूध की मात्रा ४ तोला की होनी  
चाहिए ॥ ११३ ॥

बीजपूराचघृत ।

बीजपूरकमेरुशर्करास्नां गोक्षरकं वलाम् ।

पृथक् पञ्चपलान् भागान् यवप्रस्थसमा-  
युतान् ॥ ११२ ॥ वारिद्रोणेन संसाध्यं  
यावत् पादावशेषितम् । घृतप्रस्थं पचेत्तेन  
कल्कं दत्त्वाक्षसंमितम् ॥ ११५ ॥ तुम्बु-  
रूण्यभयान्योषं हिङ्गुसौवर्चलं विडम् ।  
सैन्धवं यावशूकञ्च सर्जिकामम्लवेतसम् ॥  
११६ ॥ पुष्करं दाडिमञ्चैव वृक्षाम्लं जीर-  
कद्वयम् । मस्तु प्रस्थद्वयं दत्त्वा सर्वं मृद-  
ग्निना पचेत् ॥ ११५ ॥ घृतमेतत् प्रशंसन्ति  
शूलं हन्ति त्रिदोषजम् । वातशूलं यकृच्छूलं  
गुल्मं स्त्रीहापहं परम् ॥ ११८ ॥ हृच्छूलं  
पार्श्वशूलञ्च देहशूलञ्च नाशयेत् । बल-  
वर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ११९ ॥

घृत १२८ तोला, विजौरे नींबू की जड़,  
एरड की की जड़, रास्ना, गोबुरु और खरेटी,  
प्रत्येक बीस-बीस तोला, छिले हुए यव १२८  
तोला, इनको २५ सेर ४८ तोला जल में  
पकावे । ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर इस  
काथ में घृत और निम्नलिखित द्रव्यों का एक  
एक तोला कल्क मिलावे ।

कल्कार्थं द्रव्य—धनिया, हरीतकी, त्रिकटु,  
हींग, कालानमक, विड नमक, सैन्धव, यवहार,  
सजीखार, अमलवेत, पुहकरमूल, अनारदाना,  
इम्ली की छाल और दोनों जीरे । तदनन्तर  
तीन सेर १६ तोला दही का पानी डाल कर  
मन्द-मन्द आँच में पकावे । इस 'बीजप्राद्य'  
घृत के सेवन करने से विविध प्रकार के शूल-  
रोग जैसे त्रिदोषजन्य शूल, वातशूल, यकृतशूल,  
गुल्म, प्रीहा, हृदयशूल, पसवाड़े का शूल, शरीर  
का शूल नष्ट होता है । यह बल और बर्ण  
की उज्वलता की वृद्धि करनेवाला, हृदय की  
दितकारी एवम् अग्निदीपक है ॥ ११४-११९ ॥

कोलादिमण्डूर ।

कोलाग्रन्थिकभृद्वेरेचपलात्तारैः समं  
चूर्णितं, मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते

पक्त्वाथ सान्द्रीकृतम् । तत् खादेदश-  
नादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नमुक्त्वा  
जेतुं वातकफामयान् परिणतौ शूलञ्च  
शूलानि च ॥ १२० ॥

शुद्ध मंडूर की मात्रा ५ भाग, चव्य,  
पिपरामूल, सोंठ, पीपरि और यवहार प्रत्येक  
एक-एक भाग, गोमूत्र ५० भाग ।

पहले मंडूर को गोमूत्र में पकावे । पाक-  
शेष में-पूर्वोक्त औषधियों का चूर्ण मिलावे,  
भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में इस औषध  
का सेवन करना चाहिए । जब तक औषध  
सेवन वरे, तब तक दुग्धान्न भोजन करना  
चाहिए । इस 'कोलादिमंडूर' के सेवन करने से  
परिणाम-शूल तथा अन्यान्य शूल-रोग नष्ट  
होते हैं । मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ १२० ॥

क्षीरमण्डूर ।

लौहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रार्द्धाढके  
पचेत् । क्षीरप्रस्थेन तत् सिद्धं पक्लिशूल-  
हरं परम् ॥ १२१ ॥

३ सेर १६ तोला गोमूत्र और १२८ तोला दूध  
में ३२ तोला मण्डूर को पकाकर सिद्ध करे ।  
इस 'क्षीर-मण्डूर' के सेवन करने से परिणामज  
शूल नष्ट हो जाता है ॥ १२१ ॥

तारामण्डूरगुड ।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यप-  
णानि च । नवभागानि चैतानि लौहकि-  
ट्टसमानि च ॥ १२२ ॥ गोमूत्रं द्विगुणं  
दत्त्वा मूत्राद्विकगुहान्वितम् । शनैर्मृद-  
ग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥  
१२३ ॥ स्निग्धे भाण्डे विनिःक्षिप्य गुजा-  
त्रितयमात्रया । प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव  
भोजनस्य प्रयोजितम् ॥ १२४ ॥ योगो-  
ज्यं शमयत्याशु पक्लिशूलं सुदारुणम् ।  
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मन्दाग्निता-



मपि ॥ १२५ ॥ अशोसि ग्रहणीरोगं  
कृमिगुल्मोदराणि च । नाशयेदम्लपित्तञ्च  
स्थौल्यश्चापि नियच्छति ॥ १२६ ॥ वर्ज-  
यैच्छुष्कशकानि विदाहम्लकदूनि च ।  
पक्विशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञितः ॥  
शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तास्या परिकी-  
र्त्तितः ॥ १२७ ॥

६ भाग मडूर, १८ भाग गोमूत्र और  
१ भाग गुड़ में चावरपकतानुसार जड़ ढाल  
कर पकावे । पाक के समय एक एक भाग  
यायविडिग, धीता की जड़, चटप, त्रिपला  
और त्रिकटु के चूर्ण का प्रसेप करे । धीमी  
घाँच में धीरे धीरे पकावे । पिंड बाँधने योग्य  
होने पर चिकने पात्र में रख देवे । मात्रा  
४ रत्ती से ८ रत्ती तक । भोजन के पूर्व, मध्य  
और अन्त में इसका सेवन करना चाहिए ।  
इससे अति दारुण परिणामशूल, कामला,  
ग्रहणी, पाण्डुरोग, मन्द्राग्नि, सूजन, बवासीर,  
कृमिरोग, गुल्म, उदर, अम्लपित्त और  
स्थूलता रोग ये सब नष्ट होते हैं । इस 'तारा-मडूर-  
गुड़' सेवन करनेवाले रोगी को शुष्क शाक व  
विदाही पदार्थ, सट्टे और पड़पे पदार्थों का  
भोजन में परित्याग कर देना चाहिए । इस 'तारा-  
मडूरगुड़' को शूल रोगियों पर कृपा करके  
श्रीतारा-आचार्य ने अकरालित किया है १२३-१२७

शतावरीमण्डूर ।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य  
पलाष्टकम् । शतावरीरसस्याष्टौ दध्नरच  
पयसस्तथा ॥ १२८ ॥ पलान्यादाय चत्वारि  
तथा गव्यस्य सर्पिपः । विपचेत् सर्वमेकत्र  
यावत् पिएडत्वमागतम् ॥ १२९ ॥  
सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि  
वा । वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणा-  
मंजम् ॥ निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य  
न संशयः ॥ १३० ॥

शुद्ध किया हुआ मडूर-मसम ३२ तोला,  
शतावरी का रस ३२ तोला, दधि ३२ तोला,  
दुग्ध ३२ तोला, घृत १६ तोला ; इनको एकत्रित  
कर पाक बनावे । पिएड के समान होने पर  
उतार लेवे । इस 'शतावरीमडूर' के सेवन  
करने से वातिक शूल, पैत्तिक शूल और परि-  
णाम-शूल निरचय आराम होते हैं १२८-१३०  
मात्रा—४-६ रत्ती ।

शुद्धशतावरीमण्डूर ।

मण्डूरस्यातितप्तस्य वराकाथप्लुतस्य  
च चूर्णाकृत्य पलान्यष्टौ शतावरीरसस्य  
च ॥ १३१ ॥ दध्नरच पयसश्चाष्टावा-  
मलक्या रसस्य च । चतुष्पलं घृतस्यापि  
शाणमात्रं विनिःक्षिपेत् ॥ १३२ ॥ सिद्धे  
प्रत्येकमेतेषामजाजीधान्यमुस्तकम् । त्रिजा-  
तकं कणा पथ्या उपयुक्तं निहन्ति च ॥  
१३३ ॥ शूलं दोषत्रयोद्भूतमम्लपित्तञ्च  
दारुणम् । अरुचिञ्च वमिञ्चैव कासं श्वा-  
सञ्च नाशयेत् ॥ १३४ ॥

त्रिफलाकाथनिर्वापितमण्डूरपलानि ८  
पाकार्थं शतमूलीरसपलानि ८ दधि-  
पलानि ८ दुग्धपलानि ८ आमलकी-  
रसपलानि ८ घृतपलानि ४ सिद्धे पाके  
प्रत्नेपार्थं अजाज्यादीनां चूर्णं प्रत्येकं  
मापकाः ४ अत्र अजाजी जीरकम् ।

पहले मडूर को तपा-तपा करके त्रिफला के  
काथ में बुझावे । इस प्रकार शुद्ध किया हुआ  
मडूर ३२ तोला, शतावरी का रस ३२ तोला, दही  
३२ तोला, दूध ३२ तोला, आँवले का रस ३२  
तोला और घृत १६ तोला, इनको पकावे । पाक  
सिद्ध होने पर तीन तीन मासे जीरा, धनियाँ,  
नागरमोया, दालचीनी, तेजपात, हलायची,  
पीपरी और हरीतकी का चूर्ण मिलावे । इस  
'शुद्धशतावरीमडूर' को भोजन के आदि और

मध्य में सेवन करने से सांनिपातिक शूल और अग्निपित्त, अरुचि, वमन, कास और श्वासप्रभृति विविध रोग नष्ट होते हैं। मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ १३१-१३४ ॥

चतुःसममण्डूर ।

सद्यो लौहमलाज्यमाक्षिकसिता भागाः समा मानतः, पात्रे लौहमये दिनान्तमश्रितं संस्थापयेदातपे । पश्चात्तद् घनतां प्रणीय रजनीमेकां वहिः स्थापयेत्, पात्रे ताम्रमये निधेयमथवा पात्रे हविर्भाविते ॥ १३५ ॥ पश्चान्मापकसंमितं प्रतिदिनं जग्ध्या जलं शीतलं, पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्द-भोज्यैर्नरैः । जेतं शूलहुताशमान्द्यकसन-श्वासाभ्रपित्तज्वरोन्मादापस्मृतिमेहसर्वज-ठराज्जीर्णादिसर्वा रुजः ॥ १३६ ॥

सशोधित मडूर भस्म ४ तोला, घृत ४ तोला, मधु ४ तोला और शकर ४ तोला लेवे। इनको तांबे के खरल में लोह दण्ड से घोटकर दिन भर धूप में और रात भर ओस में रखे। तदनंतर किसी तांबे या घृत के पात्र में रख देवे। शीतल जल के साथ प्रति दिन १ माशे सेवन करे। भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में इसका सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से शूल, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, अग्निपित्त, ज्वर, उन्माद, अपस्मार, प्रमेह, सब उदररोग तथा अजीर्ण आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस 'चतुःसम-मडूर' की मात्रा चार माशे लिली है-उसके तीन भाग कर लेवे। उनमें एक भाग भोजन के पूर्व, एक भाग मध्य और एक भाग अन्त में सेवन करे। यह वृद्ध वृषों की सम्मति है ॥ १३५-१३४ ॥

रसमण्डूर ।

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धारम-लौहकिट्टञ्च । शुद्धरसस्याद्द्विपलं भृङ्गस्य रसं सकेशराजस्य ॥ १३७ ॥ प्रस्थोन्मितश्च

दत्त्वा पात्रे लौहेऽथ दण्डसंघृष्टम् । शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यञ्च भाजने स्निग्धे ॥ १३८ ॥ उपयुक्तमेतदचिरान्नि-हन्ति कफपित्तजान् रोगान् । शूलं तथाभ्र-पित्तं ग्रहणीञ्च कामलामुग्राम् ॥ १३९ ॥

१६ तोला हरीतकी का चूर्ण, ८ तोला शुद्ध गंधक, चार तोला पारा, ८ तोला शुद्ध मडूर, ३ सेर १६ तोला भांगरा का रस, ३ सेर १६ तोला केशराज का रस ( कोई-कोई कहते हैं कि १२८ तोला भृंगराज का रस और १२८ तोला केशराज का रस ) लोहे के खरल में लाह-दण्ड द्वारा घोट करके धूप में सुखा कर, चूर्ण के समान कर स्निग्ध-पात्र में रखे। इस 'रस-मडूर' की मात्रा ४ रत्ती से १ माशे तक है। इसका सेवन घृत और मधु मिलाकर करना चाहिए। इसके द्वारा कफज और पित्तज शूल और अग्निपित्त, सग्रहणी और अति उग्र कामला रोग का विनाश हो जाता है ॥ १३७-१३९ ॥

धात्रीलौह ।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य । यष्टीमधुकरजरच द्विपलं दद्यात् पटे घृष्टम् ॥ १४० ॥ अमृता-काथेन तच्चूर्णं भाव्यञ्च सप्तसप्ताहम् । चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥ १३१ ॥ घृतमधुना संयुक्तं भृङ्गादौ मध्यतस्तथान्ते च । त्रीनपि वारान् खदित् पथ्यं दोपानुन्धेन ॥ १४२ ॥ भृङ्गस्यादौ शमयति रोगान् पित्तानिलो-द्भूतान् । मध्येऽन्ने विष्टम्भं जयति वृणां विदहते नान्मम् ॥ १४३ ॥ पानात्कृ-तान् दोपान् भृङ्गान्ते शीलितं जयति । एवं जीर्यति चान्ने शूलं वृणां मुकष्टमपि ॥ १४४ ॥ हरति च सहसा युक्तो योग-

श्चायं जरत्पित्तम् । चक्षुष्यः पलितघ्नः  
कफपित्तसमुद्भवान् जयति ॥ १४५ ॥

अत्र अमृता आमलकीति भानुदोसः ।  
अन्ये तु गुडूचीमाहुः ।

सप्ताहं सप्तभावनाः । औषधस्य माप-  
कत्रयं भोजनादिमध्यान्तेषु घृतमधुभ्यां  
मदितं भक्ष्यमिति त्रिपुरारिः ॥

आंवले का चूर्ण ३२ तोला, लोह की भस्म  
१६ तोला और मुलेठी का चूर्ण = तोला लेवे ।  
इनमें गिलोय के काथ की ७ दिन में, ७ भाव-  
नाएँ देवे । फिर धूप में सुखाकर, खरल करके  
नवीन पात्र में रख देवे । घृत और मधु मिलाकर  
प्रतिदिन भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में  
तीन बार खावे और दोषों के अनुसार पथ्य  
करे । भोजन के आदि में इस 'घात्री-लौह' के  
सेवन करने से वातज और पित्तज रोग, भोजन  
के मध्य में सेवन करने से विष्टम्भ नष्ट होता है  
और खाया हुआ अन्न विदग्ध नहीं होता । और  
भोजन के अन्त में इस औषध के सेवन करने से  
अलपान और भोजन करने से उत्पन्न हुए रोग  
विनष्ट होते हैं । एवं यह औषध खाये हुए अन्न  
को भस्म करता है और कष्ट-साध्य शूल, ज्वर,  
पित्त-शूल, पलित रोग और कफ और पित्तज  
शूल, इन सबको नष्ट कर देता है । एवम्  
आँसों के लिये हितकारक है ॥ १४०-१४२ ॥  
मात्रा ४ रत्नी ।

### घात्रीलौह ।

पट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं  
तथा । पाकाय नीरमस्थार्द्धं दद्यात् पादा-  
वशेषितम् ॥ १४६ ॥ शतमूलीरसस्याष्टा-  
वामलस्या रसस्तथा । तथा दधि पयो-  
भूमिकूपमाण्डस्य चतुःपलम् ॥ १४७ ॥  
चतुष्पलं सर्पिरिचुरसं दद्याद्विचक्षणः ।  
भक्षिषेद् जीरघ्न्याकं त्रिजातं करिपिप्प-

लीम् ॥ १४८ ॥ मुस्तं हरीतकीञ्चैव  
लौहमभ्रं कटुत्रिकम् । रेणुकं त्रिफलाञ्चैव  
तालीशं नागकेशरम् ॥ १४९ ॥ एतेषां  
कार्पिकं भागं चूर्णयित्वा विनिक्षिपेत् ।  
भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः ॥  
१५० ॥ मापैकं भक्षयेच्चानु पेयं नित्यं  
पयस्तथा । शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासा-  
ध्यमथापि वा ॥ १५१ ॥ वातिकं पैत्तिक-  
ञ्चापि रलैष्मिकं सान्निपातिकम् । परिणो-  
मभवं शूलमन्नद्रवभवं तथा ॥ १५२ ॥  
द्वन्द्वजानपि शूलारच अम्लपित्तं सुदो-  
रुणम् सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं  
शुभम् ॥ १५३ ॥

जो १६ तोले ६४ तोला जल में द्राय करे  
जय १६ तोला जल शेष रहे तो छान ले । यह  
काथ तथा शतावरी का रस ३२ तोला, आंवले  
का रस ३२ तोला, दही १६ तोला, दूध १६  
तोला, पेटे का रस १६ तोला, घी १६ तोला,  
ईख का रस १६ तोला (अभाव में खॉट) मिला-  
कर विधिपूर्वक पाक करे, अथपकी दशा में २४  
तोला शुद्ध मण्डूर और एक-एक तोले जीरा,  
धनियाँ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, गज-  
पीपरि, नागरमोथा, हरीतकी, लौह-भस्म,  
अभ्रक-भस्म, त्रिकटु, सँभालू के बीज, त्रिफला,  
तालीशपत्र और नागकेशर का प्रसेप करे ।  
यथाविधि पाक तैयार करके प्रतिदिन भोजन के  
पूर्व, मध्य और अन्त में एक मात्रा की मात्रा में  
इस औषध को दुग्ध के साथ सेवन करना  
चाहिए । इस "घात्री-लौह" के १० साध्य  
और असाध्य वातिक शूल, पैत्तिक शूल, कफज  
शूल, सान्निपातिक शूल, परिणाम शूल, द्वन्द्व  
शूल और अन्नद्रव-जन्म शूल तथा अम्लपित्तरोग ।  
ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं । यह "घात्री-लौह"

१—इतः परं ग्रन्थान्तरे कटुकं मधुकं तास्ता  
चारवगन्था सप्तदशोऽधिक पाठः ।

सब प्रकार के शूलरोग के दूर करने के लिये महान् औषध है ॥ १४६-१५३ ॥

शर्करालौह ।

शतावरीरसमस्थे प्रस्थे च सुरभी-  
जले । अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्री-  
रसस्य च ॥ १५४ ॥ लौहमलपलान्यष्टौ  
शर्करा पलषोडश । दत्त्वाज्यकुडवं तत्र  
शनैर्भृङ्गग्निना पचेत् ॥ १५५ ॥ सिद्ध-  
शीने घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत् ।  
विडङ्गं त्रिफलाव्योपं यमानी गजपिप्पली ॥  
१५६ ॥ द्विजीरकं घनं लौहमभ्रं कर्पूरं  
पृथक् । खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ  
विचक्षणः ॥ १५७ ॥ शूलं सर्वभवं हन्ति  
पित्तशूलं विशेषतः । हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च  
कुक्षिबस्तिगुदे रुजम् ॥ १५८ ॥ कासं  
श्वासं तथा शोथं ग्रहणीदोषमेव च ।  
यकृतं स्त्रीहोदरानाह राजयक्ष्मविनाशनम् ॥  
१५९ ॥ विष्टम्भमामं दौर्बल्यमग्निमान्द्यञ्च  
यद्भवेत् । एतान् रोगान् निहन्त्याशु  
भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १६० ॥

शतावरी का रस या काथ १२८ तोला,  
गोमूत्र १२८ तोला, यकरी का दूध १२८ तोला,  
धौवले का रस १२८ तोला, शुद्ध मंडूर ३२  
तोला, शङ्कर ६४ तोला, घृत ३२ तोला । इन  
सबको धीमी आँच में पकावे । गाढ़ा होने पर  
उतार लेवे । जब शीतल हो जावे तो दो-दो  
तोले पायबिदंग, त्रिफला, त्रिकटु, अजवाइन,  
गजपीपरि, स्याह जीरा, सफेद जीरा, नागर-  
मोया, लौह-भस्म और अश्रक-भस्म मिलाकर  
रख लेवे । रोगी के अग्नि और बल के अनुसार  
मात्रा में प्रयोग करना चाहिए । भोजन के पूर्व  
इस औषध का सेवन करना चाहिए । इसके  
द्वारा सब प्रकार के शूल विशेषतः पित्त शूल शीघ्र  
विनष्ट होता है । यह "शर्करा-लौह" हृच्छूल,

पार्श्व-शूल, कुक्षि-शूल, बस्ति-शूल, गुद-शूल,  
खॉसी, श्वास, सूजन, संग्रहणी, यकृत-रोग,  
तिबली-रोग, उदर-रोग, अफरा, राजयक्ष्म,  
विष्टम्भ-रोग, आम-दोष, दुर्बलता और मन्दाग्नि  
इन सब रोगों को इस प्रकार विनष्ट करता है,  
जैसे सूर्यदेवजी अंधकार को नष्ट कर देते हैं ।  
मात्रा ३ मासे से ६ मासे तक ॥ १५४-१६० ॥

खण्डामलकी ।

स्विन्नपीडितकूप्माएडात् तुलार्द्धं भृष्ट-  
माज्यतः । मस्थार्द्धं खण्डतुल्यन्तु पचे-  
दामलकीरसात् ॥ १६१ ॥ प्रस्थे सुस्वि-  
न्नकूप्माएडरसमस्थे विघट्टयन् । दर्व्या  
पाक गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत् ॥  
१६२ ॥ द्वे द्वे पले कणाजाजीशुएठीनां  
मरिचस्य च । पलं तालीशधन्धाकचातु-  
र्जातकमुस्तकम् ॥ १६३ ॥ कर्पूरमाणं प्रत्येकं  
मस्थार्द्धं मात्तिकस्य च । पक्विशूलं निह-  
न्त्येतदोपत्रयकृतञ्च यत् ॥ १६४ ॥ छर्षम्ल-  
पित्तमूच्छर्षिच श्वासं कासमरोचकम् ।  
हृच्छूलं पृष्ठशूलञ्च रक्तपित्तञ्च नाशयेत् ॥  
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंश्रि-  
तम् ॥ १६५ ॥

छर्षम्लपित्तयोः पित्तोत्तरशूले च दृष्ट-  
फलोऽयं योगः ।

स्वित्र (कुछ पकाया हुआ अर्थात् बफाया  
हुआ) वल्ल निष्पीडित तथा शिलापिष्ट सुपु  
पेठा २॥ सेर लेकर ६४ तोला घृत में भूज-  
कर २॥ सेर, शङ्कर, १२८ तोला धौवले का  
रस और १२८ तोला पेठा रस जो प्रथम  
निषोद्धकर रख लिया गया हो मिलाकर पकावे ।  
उसमें आठ-आठ तोला पीपरि, जीरा और  
सोठ और ४ तोला मिर्च का चूर्ण डाले । तथा  
एक-एक तोला तालीशपत्र, धनियार, दालचीनी,  
तेजपात, इलायची, नागकेसर और नागरमोया

मिलाकर यथाविधि पाक सिद्ध करे । तदनन्तर ३२ तोला मधु मिलाकर रख लेवे । इस 'खण्डामलकी' के सेवन करने से परिणामजशूल, सान्निपातिकशूल, हृदि, अम्लपित्त, मूर्च्छा, रवास, खाँसी, अरुचि, हृद्वृद्ध, पृष्ठ-शूल और रक्तपित्त ; ये सध रोग शान्त हो जाते हैं । यह 'खण्डामलक' संज्ञक प्रयोग रसायन वमन, अम्लपित्त और पित्तप्रधान शूलरोग में अनुभूत है ॥ १६१-१६२ ॥

नारिकेलखण्ड ।

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं,  
पलपरिमितसर्पिः पाचितं खण्डतुल्यम् ।  
निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपक्वं गुड-  
वदथ सुशीते शाणमानान् क्लिपेच्च १६६ ॥  
धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरान्, शाणं  
त्रिजातमिभकेशरवद्विचूर्णम् । हन्त्यम्ल-  
पित्तमरुचिं क्षयमम्लपित्तं, शूलं वमिं सकल-  
पौरुषकारि हरि ॥ १६७ ॥

भली भाँति पिनी हुई नारियल की गिरी १६ तोला लेकर ४ तोलाघृत में भून करके उसमें १२८ तोला नारियल का जल और १६ तोला खाँड़ मिलाकर पका लेवे । पाक सिद्ध होने पर वनियारं, पीपरि, नागरमोथा, वशलोचन, स्याह जीरा और सकेद जीरा तीन-तीन भागों तथा दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर चारों मिलाकर ३ भागों रख लेवे । यह 'नारिकेल-खण्ड' अम्लपित्त, अरुचि, क्षय-रोग, रक्त-पित्त, शूल और वमनरोग शान्त करता है तथा बलवर्धक है ॥ १६६-१६७ ॥

शुद्धत् नारिकेल खण्ड ।

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करा प्रस्थसंमिता ।  
तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिः पञ्चपलानि च ॥  
१६८ ॥ शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं! प्रस्थादं  
क्षीरमेव च । सर्वमेकीकृतं पात्रे शनै-

र्द्धग्निनो पचेत् ॥१६९॥ तुगा त्रिकटु  
मुस्तं चातुर्जातं सधान्यकम् । द्विकणा  
जीरकञ्चैव कर्पयुग्मं पृथक् पृथक् ॥१७०॥  
श्लक्ष्णचूर्णं विनिःक्षिप्य स्थापयेद्भाजनै  
मृदः । खादेत् प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहार-  
वानपि ॥ १७१ ॥ सर्वदोषभवं शूलमेकजं  
द्वन्द्वजं तथा । परिणामभवं शूलमम्ल-  
पित्तञ्च नाशयेत् ॥ १७२ ॥ बलपुष्टिकरं  
हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम् । रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं  
वर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥ धन्वन्तरिकृतञ्चैत-  
न्नारिकेलरसायनम् ॥ १७३ ॥

नारियल की गिरी ३२ तोले, नारियल का जल ६४ तोले, चीनी ६४ तोले, घृत ४० तोले, सोंठ का चूर्ण १६ तोले और दूध ६४ तोले मिलाकर धीमी आँच में पकावे । पाक सिद्ध हो जाने पर वशलोचन-कटु (सोंठ मिचं और पीपरि), नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, धनियारं, पीपरि, गजपीपरि और जीरे का चूर्ण दो दो तोले मिलाकर मिट्टी के पात्र में रख देवे । मात्रा ३ भागों १ तोला तक । इस 'वृहन्नारिकेल खण्ड' के सेवन करने से सर्वदोषज शूल, वात, पित्त, कफ, द्रव्द्वज और परिणाम शूल, अम्ल-पित्त, रक्तपित्त, वमन और हृद्रोग का नाश तथा बल की वृद्धि होती है । इस रसायन का निर्माण श्रीधन्वन्तरिजी ने किया ॥ १६८-१७३ ॥

नारिकेलामृत ।

नारिकेलफलप्रस्थं सुपिष्टं भजितं घृते ।  
प्रस्थे प्रस्थं समादाय शुण्ठीचूर्णन्तु तत्  
समम् ॥ १७४ ॥ द्विपात्रं, नारिकेलामृ-  
तत् समं क्षीरमेव च । धात्र्याश्च स्वरस-  
प्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न्यसेत् ॥ १७५ ॥  
एकीकृत्य पचेत् सर्वं शनैर्द्धग्निना  
भिपक्व । सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णमेषां  
सुशीभनम् ॥ १७६ ॥ कटुत्रयं चतुर्जातं

प्रत्येकञ्च पलोन्मितम् । धात्रीजीरकयुग्मञ्च  
 धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ १७७ ॥ तुगा-  
 पयोदचूर्णानि त्रिकर्पाणि पृथक् पृथक् ।  
 चतुःपलानि मधुनः स्निग्धे भाण्डे निधा-  
 पयेत् ॥ १७८ ॥ शिवं प्रणम्य सगरां  
 धन्वन्तरिमथापरम् । कर्पप्रमाणं कर्त्तव्यं  
 मुद्गयूपं पिबेदनु ॥ १७९ ॥ अम्लपित्तं  
 निहन्त्युग्रं शूलञ्चैव सुदारुणम् । परिणाम-  
 भवं शूलं पृष्ठशूलञ्च नाशयेत् ॥ १८० ॥  
 अन्नद्रवभवं शूलं पार्श्वशूलं सुदुस्तरम् ।  
 अग्निसन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम् ॥  
 १८१ ॥ मूत्राघातानशेषांश्च रक्तपित्तं विशेष-  
 पतः । पीनसञ्च प्रतिश्यायं नाशयेन्नित्य-  
 सेवनात् ॥ १८२ ॥ रोगानीकविनाशाय  
 लोकानुग्रहहेतवे । अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं  
 नारिकेलामृतं शुभम् ॥ १८३ ॥

अत्रनारिकेलफलप्रस्थं द्वात्रिंशत्पलमाद्र-  
 त्नात् । शुण्ठीचूर्णस्य पुनः षोडशपलमेव  
 प्रस्थसाम्यात् । पात्रं चतुःषष्टिपलं  
 द्विपात्रं श्रेष्ठांश्चतस्रधिकशतपलं स्यात्किन्तु  
 द्रवद्रव्येण नारिकेलजलदुग्धधात्री-  
 रसा ग्राह्याः ।

१२८ तोले पिमी हुई नारियल की गिरी  
 को १२८ तोले घृत में भून करके, सोंठ का  
 चूर्ण ६४ तोले, नारियल का जड़ १२ सेर  
 ६४ तोला, गाव का दूध ११ सेर ६४ तोला,  
 चाँदले का रस १२८ तोले और चीनी ४००  
 तोले मिलाकर धीरे-धीरे मन्द-मन्द अग्नि में  
 पकाये । अब पाक सिद्ध हो जाये, तो उतार  
 लेवे । शीतल होने पर त्रिकटु, शालचीनी, मेज-  
 पात, इलायची और मागकेसर प्रत्येक चार-

चार तोले तथा श्रावला, सफेद जीरा, स्वाह  
 बीरा, धनियाँ, गठिवन, वंशलोचन और नागर-  
 मोथा, तीन-तीन तोले लेकर चार पल ( १६  
 तोले ) मधु मिलाकर चिकने पात्र में रख लेवे ।  
 मूँग की दाल के जूस के साथ प्रतिदिन ६ माशे  
 से एक तोला तक की मात्रा में खावे । इस  
 'नारिकेलामृत' नाम औषध को सेवन करने  
 से उग्र अम्लपित्त, दारुण शूल, परिमाण-शूल,  
 पृष्ठ-शूल, अन्नद्रवज शूल, दुस्तर पसली-शूल,  
 सब प्रकार के मूत्राघात रोग, रक्तपित्त, पीनस  
 और शुक्राम; इन अम्लपित्तादि अनेक रोगों का  
 विनाश हो जाता है । श्रीअश्विनीकुमार नेजनाता  
 पर कृपा करके रोगसमूह के नाश के लिये  
 इसको बनाया था ॥ १७४-१८३ ॥

हरितकीचण्ड ।

त्रिकलाब्दं चतुर्जातं यमानी कटु-  
 कत्रयम् । धान्यं मधुरिका चैव शतपुष्पा  
 लवङ्गकम् ॥ १८४ ॥ प्रत्येकं कार्पिकं  
 ग्राह्यं त्रिवृता स्वर्णपत्रिका । पलद्वन्द्व-  
 प्रमाणेन सर्वतुल्या हरितकी ॥ १८५ ॥  
 यावन्त्येतानि चूर्णानि सिता तद् द्विगुणा  
 मता । दर्वृतानि विधानेन चरीरेणोप्येन  
 सम्पिबेत् ॥ १८६ ॥ हन्त्यम्लपित्तं शूलञ्च  
 पडशीस्यनिलामयम् । कोष्ठजातं कटीशूल-  
 मानाहमपि दारुणम् ॥ १८७ ॥

त्रिकला, नागरमोथा, शालचीनी, तेजपात,  
 इलायची, मागकेसर, भजवाहन, त्रिकटु,  
 धनियाँ, सोया, मीक और लींग एक एक तोला  
 निसोध और समाप चाट-चाट तोले, हरितकी  
 का पूर्ण ३९ तोले और चीनी १२८ तोले  
 लेकर घषाविधि पाक करे । मात्रा १' तोला ।  
 अनुपात-३८५ दुग्ध । इस 'हरितकी-चण्ड' के  
 भवन करने से अम्लपित्त, शूल, प प्रकार का  
 व्याधीर, वात-रोग, कोष्ठजात, कटीशूल और  
 अकारारोग शांत हो जाता है ॥ १८४-१८७ ॥

१—धमास्ते च 'कर्पप्रमाणं भोज्यं चौर  
 यूप विवेदन्' इति पाठः ।

हरितकीखण्ड ।

चतुःपलं हरितक्यास्त्रिवृतायाश्चतुः-  
पलम् । चतुर्जातं समुस्तञ्च तालीशं  
जीरकं तथा ॥ १८८ ॥ जातीकोपं  
लवङ्गञ्च लौहमध्रञ्च टङ्गणम् । प्रत्येकं  
कर्पमानेन श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥  
१८९ ॥ प्रस्थेन गव्यदुग्धस्य पचेन्मृ-  
द्वग्निना भिपक् । शर्करायाः दशपलं पाक-  
सिद्धिविधानवित् ॥ १९० ॥ दर्वीप्रले-  
पावस्थायां क्षिपेच्चूर्णं विचक्षणः । पूज-  
येद्भास्करं शम्भुं द्विजातीनभिवादयेत् ॥  
१९१ ॥ शूलमष्टविधं इन्ति अम्लपित्तं  
सुदुर्जयम् । अन्नद्रवभवं शूलं कासं श्वासं  
तथा वमिम् ॥ १९२ ॥ कान्तिपुष्टिकरो  
हृद्यो बलमेधाग्निवर्द्धनः । ख्यातो हरीतकी-  
खण्डः सर्वशूलानिकृन्तनः ॥ १९३ ॥

हरद १६ तोला, निमोत १६ तोला, दाल-  
चीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर,  
मोया, तालीशपत्र, जीरा, जावित्री, लौंग,  
लौहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा हरएक का  
बारीक चूर्ण २ तोले, गोदुग्ध १२८ तोले, खॉड  
४० तोला, इन्हें विधिपूर्वक मन्दी आँच पर  
पकाकर दर्वीप्रलेपावस्था में ( गाढ़ा होने पर )  
ऊपर लिखे हुए चूर्ण को ढाल दे । इसके सेवन  
से आठों प्रकार का शूल, अम्लपित्त, अन्नद्रव-  
शूल, खाँसी, श्वास, वमन आदि रोग अच्छे  
होते हैं, कान्ति, पुष्टि, बल, बुद्धि तथा जठ-  
राग्नि को बढ़ाता है और हृदय को बलकारक  
है । मात्रा—६ मांश १ तोला ॥१८८-१९३॥

पूगखण्ड ।

द्विन्नं पूगफलं दृढं परिणतं पक्त्वा च  
दुग्धाम्बुभिः प्रक्षाल्यातपशोपित्तं वसुपलं  
ग्राह्यं ततश्चूर्णितात् । तत् सपिः कुडवे

विपाच्य हि वरीधात्रीरसौ द्वयञ्जली, द्वे  
प्रस्थे पयसः प्रदाय विपचेन्मन्दं तुलाद्धीं  
सिताम् ॥ १९४ ॥ हेमाम्भोधरचन्दनं  
त्रिकटुकं धात्रीभियालास्थिजौ मज्जानौ  
त्रिसुगन्धिजीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजा ।  
जातीकोपफले लवङ्गमपरं धन्याककङ्को-  
लकं नाकूलीतगराम्बुवीरणशिफाभृङ्गाश्व-  
गन्धे तथा ॥ १९५ ॥ सर्वं द्वयञ्चमितं  
विचूर्ण्य विधिना पाके तु मन्दे ततः,  
मत्तिप्याथ विघट्टयन् मुहुर्दिदंदाव्यावितार्य  
क्षणत् । सिद्धं वीच्य विधारयेद्वहित-  
स्निग्धेऽथ मृद्भाजने, खादेत् प्रातरिदंज्वरा  
मूयहरं दृष्यं बुधः कार्पिकम् ॥ १९६ ॥ शूला-  
जीर्णगुदमवाहरुधिरं दुष्टाम्लपित्तं जयेद्,  
यच्चमत्तीणहितं महाग्निजननं तृट्छर्दि-  
मूर्च्छापहम् । पाण्डुघ्नं बलवर्णदृष्टिकरणं  
गर्भप्रदं योपितामेतत् पूगरसायनं प्रदर-  
नुद्विण्मृत्सद्भापहम् ॥ १९७ ॥

अच्छी पकी दक्षिणी सुपारी के छोटे-छोटे  
टुकड़े करके जलमिश्रित दुग्ध में पकावे ।  
तदनन्तर जब से धोकर, धूप में सुखाकर चूर्ण  
कर लेंगे । इस प्रकार बनाया हुआ सुपारी का  
चूर्ण ३२ तोले लेकर ३२ तोले घृत में पका  
लेवे । उसके बाद आँवले का रस ९४ तोले,  
शताघरि का रस ९४ तोले, दुग्ध ३ सेर १६  
तोले और चीनी २॥ सेर मिलाकर पाक करे ।  
पाक सिद्ध हो जाने पर नागकेशर, नागरमोया,  
चन्दन, त्रिकटु, आँवले की गिरी, चिरींजी,  
दालचीनी, तेजपात, इलायची, सफेद जीरा,  
काला जीरा, सिंघाड़ा, वंशलोचन, जावित्री,  
जापफल, लौंग, धनियाँ, कंकोल, रास्ता, तगर,  
सुगंधयाला, लस, भोंगरा और अशर्मांध का  
चूर्ण दो-दो तोला छोड़कर कलछुल से भली  
भाँति मिलाकर उतार लेवे और शीतल होने  
पर मिट्टी के चिकने पात्र में रस लेवे । प्रतिदिन

प्रातःकाल आधा तोला से एक तोला की मात्रा में सेवन करे । यह 'पूग-खंड' औषध शूल, अजीर्ण, गुदागान्ध से रक्त आना, दुष्ट अग्लपित, राजपथस्य, पयरोग, नृपा-रोग, छर्दि, मूर्च्छा-रोग, पाण्डु-रोग, प्रदर-रोग, विड्वंध ( मला-सरोध ) और मूत्रबंध ( मूत्रावरोध ) ; इन सब रोगों को निःसंदेह आराम करता है । यह औषध अस्यन्त अग्निवद्धक, बल-वर्ण और दृष्टि की वृद्धि करनेवाला एवम् स्त्रियों को गर्भदायक है ॥ १६४—१६७ ॥

अपर पूगखण्ड ।

प्रस्यैकं पूगचूर्णस्य पयसरचाटकं क्षिपेत् ।  
शर्करायाः पलशतं घृतस्थं कुडवद्वयम् ॥  
१६८ ॥ चातुर्जातं त्रिकटुकं देवपुष्पं  
सचन्दनम् । मांसी तालीशपत्रञ्च धीजं  
कमलसम्भवम् ॥ १६९ ॥ नीलोत्पलं तथा  
वांशी शृङ्गाटं जीरकं तथा । विदारीकन्द-  
जञ्चैव रजोगोक्षुरसम्भवम् ॥ २०० ॥  
शतमूलीरजश्चैव मालतीकुमुमं तथा ।  
धात्रीचूर्णं समं कर्प कर्पूरं शुक्तिमानतः ॥  
२०१ ॥ मन्देज्जनी विपचेद्वैद्यः स्निग्धे  
भाण्डे निधापयेत् । खादेच्च प्रातरुत्थाय  
कोलमेकं प्रमाणतः ॥ २०२ ॥ हर्षम्ल-  
पित्तहृदाहभ्रमिमूर्च्छापहं नृणाम् । सर्प-  
शूलहरं श्रेष्ठमाम्नातविनाशनम् ॥ ११३ ॥  
मेहमेदोविकारघ्नं मीहपाण्डुगदापहम् ।  
अदमरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च गुदजं रुधिरं जयेत् ॥  
२०४ ॥ रेतोवृद्धिकरं हृद्यं पुष्टिदं कामदं तथा ।  
वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥  
नातः परतरं श्रेष्ठं विपत्ते वाजिकर्म्मसु २०५  
अप्यी पकी हुई दृष्टिपी मुषारी का पूर्ण  
६४ तोला, दुग्ध ६ सेर ३३ तोला, चीनी  
मसा सेर एकत्रित करके पचावधि पाक करे ।

अधपका होने पर दाल, चीनी, तेजपात, इला-  
यची, नागकेसर, त्रिकटु, लौंग, चन्दन, जटा-  
मांसी, तालीशपत्र, कमलगट्टा, नीलकमल, वंश-  
लोचन, सिंघाढा, जोगा, विदारीकंद, गोखरू-  
शतावरि मालती का पुष्प और आंवले का  
चूर्ण एक-एक तोला तथा कर्पूर २ तोला मिला-  
कर यथाविधि पाक सिद्ध होने पर मृत्तिका के  
चिकने पात्र में रख देवे । प्रतिदिन प्रातःकाल  
आधा तोला इस औषध का सेवन करे तो  
छर्दि, अग्लपित, हृदाह, भ्रम, मूर्च्छा, सब  
प्रकार के शूलरोग, धामवात, प्रमेह, मेद-  
रोग, तिल्ली, पाण्डुरोग, पयरी, मूत्रकृच्छ्र, गुदज  
रोग और रुधिर-दोष ; ये सब रोग शान्त हो  
जाते हैं । यह औषध, वीर्यवर्धक, हृदय को हित-  
कारक, कामवद्धक तथा पुष्टिकारक है । इस  
औषध के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री पुत्रवती  
और वृद्ध पुरुष पुनः युवा हो जाता है । एवं  
वाजीकरण के लिये इस औषध से बढ़कर  
अन्य औषध नहीं है ॥ १६८—२०५ ॥

शंपचूर्ण ।

शङ्खचूर्णं पलञ्चैव पञ्चैव लणानि  
च । चारद्वयकं जाती शतपुष्पा यमा-  
निका ॥ २०६ ॥ द्विगु त्रिकटुकं चैव  
सर्वमेकत्र चूर्णयेत् । आमनातं यकृच्छूलं  
परिणामसमुद्भवम् ॥ अन्नद्रवकृतं शूलं  
शूलञ्चैव त्रिदोषजम् ॥ २०७ ॥

शहभ्रम, संधानमक, सौषलनमक, विद-  
नमक, सामुद्रनमक, श्रीद्विदनमक, जराभार  
मुहागा, आयकत, सोपे, अन्नवाहन, दौंग,  
त्रिकुटा, हरणक ४ तोले, इनके पूर्ण को मित्राकर  
८ रणो की मात्रा में सेवन करना चाहिए ।  
अनुपान-गर्भ जत्र । इसके सेवन से धामवात  
यकृत्प्लव, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, तथा  
त्रिदोषजशूल चरण्ये होते हैं ॥ २०६—२०७ ॥

त्रिपुरभैरव ।

भागो रसस्यादमदेज्जो भागो प्राधो-



ऽतियत्नतः । तयोर्द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ २०८ ॥ पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः । मध्वाज्ययुक्तो गुञ्जार्द्धं देयोऽस्य परिणामजे ॥ अन्ये-  
ष्वेरण्डतैलेन द्विगुरक्तिमितेन च ॥ २०९ ॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, इनकी कजली करके १२ भाग सूचीविषय ताम्रपत्र को लपेटकर बालकापुट में पाक करे जब पाक हो जाय तब औषधि को निकालकर अच्छी प्रकार पीस ले । मात्रा-आधी रत्ती । अनुपात-परिणाम-शूल में शहद तथा घृत । अन्य शूलों में अण्डी का तेल तथा हींग १ रत्ती ताम्रभस्म निरुध हो तभी प्रयोग में ले अन्यथा और पुट दे ॥ २०८-२०९ ॥

### शूलहरणयोग ।

हरीतकी त्रिकटुकं, कुचिला हिङ्गु सैन्धवम् । गन्धकश्च समं सर्वं वर्टी कुर्यात् सुखावहम् ॥ २१० ॥ गुञ्जाद्वयममाणान्तु भोजनान्ते प्रशस्यते । एकैका वटिका ग्राह्या गुल्मशूलविनाशिनी ॥ २११ ॥ ग्रहणयामतिसारे च साजीर्णं मन्दपावके योजयेदुष्णपयसा सुखमाप्नोति निरिच-  
तम् ॥ २१२ ॥ सुधर्षणद् भवेद्देहं सद्यो-  
त्साहयुतं नृणाम् ॥ २१३ ॥

हरक, त्रिकुटा, शुद्ध कुचला, हींग, सेंपानमक, गन्धक, हरक १ तोला, इन्हें इकट्ठा कर जल से घोटकर २ रत्ती की गोलियाँ बनावे । अनुपात-गरम दूध । इसे भोजन के परचाव सेवन करना चाहिए । इसके सेवन से गुल्म, शूल, ग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि रोग अच्छे होते हैं । तथा शरीर सोने के समान चर्ण, कान्ति और हर्षयुक्त हो जाता है ॥ २१०-२१३ ॥

### त्रिशुणारक रस ।

टङ्गुं हरिणं भृगं स्वर्णं गन्धरते रसम्

दिनैकमार्द्रकं द्रावर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुरे पचेत् ॥ २१४ ॥ त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना मापैकं मधुसर्पिपा सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वा-  
ज्याभ्यां लिहेदनु ॥ २१५ ॥ पक्विशूलहरः ख्यातो याम मात्रान्नसंशयः ।

सुहागा फूला हुआ हरिण के सींग की भरम सोने की भरम गन्धक और रससिन्दूर सम भाग लेकर एक दिन तक अदरक के रस से घोटकर समुट में रख कर गजपुट में फूँक दे । स्वांगशीतल होने पर निकाल घोट कर रखे । १ रत्ती की मात्रा में धी शहद ( असमानमात्रा में ) के साथ खाये या जीरा सेंधा नमक हींग सम भाग भिला उसके ( ३ रत्ती ) चूर्ण के साथ मधु शहद के साथ खावे । इसके सेवन से निरचय ही ३ घंटे में परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ २१४-२१५ ॥

### शूलराजलीह ।

कर्पैकं कान्तलौहस्य शुद्धमभ्रं पलं तथा । सितायाश्च पलं चैकं मधुसर्पिस्तथैव च ॥ २१७ ॥ सर्वमेकीकृतं पात्रे लौह-  
दण्डेन मर्दयेत् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ २१८ ॥ मत्पेकं तोलकं मानं चूर्णितं तत्र दापयेत् । भक्त-  
येत्प्रातरुत्थाय शिशिराम्ब्वनुपानतः ॥ २१९ ॥ सर्वदोषभवं शूलं कुत्तिशूलञ्च यद्भवेत् । हृच्छूलं पार्वशूलञ्च अम्लपि-  
चञ्च नाशयेत् ॥ २२० ॥ अर्शांसि ग्रहणी-  
दोषं प्रमेहांश्च विमूचिकाम् । शूलराजमिदं लौहं हरेण परिनिर्मितम् ॥ २२१ ॥

कान्तलीहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, सांड ४ तोला, शहद ४ तोला, घृत ४ तोला, इन्हें इकट्ठा करके लौहदण्ड द्वारा घोटकर त्रिकुटा, त्रिफला, मोषा, चायचिद्रङ्ग, चव्य, चित्रक, हरक का चूर्ण १ तोला ढाले । मात्रा-२ रत्ती । अनुपात-ठण्डा जल । इसे प्रातःकाल सेवन करने से त्रिदोषशूल, कुत्तिशूल, इदप

का दर्द, पसवाडे का दर्द, अम्लपित्त, बवासीर, ग्रहणी, प्रमेह, विसूचिका आदि रोग अच्छे हो जाते हैं ॥ २१७-२२१ ॥

∴ चूहद्विधाधराम्न ।

शुद्धसतं तथा गन्धं फलत्रयकटुत्रयम् ।  
विडङ्गमुस्तकञ्चैव त्रिहृता दन्तिचित्रकम् ॥  
२२२ ॥ आसुपर्णी ग्रन्थिकञ्च प्रत्येकं  
कर्पसम्मितम् । पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य  
मृतायश्च चतुर्गुणम् ॥ २२३ ॥ घृतेन  
मधुना पिष्ट्वा वर्ती गुञ्जात्रयोन्मिताम् । एकैकां  
वटिकां खादेत् प्रातरुत्थाय नित्यशः ॥  
२२४ ॥ अनुपानं गवां क्षीरं नीरं वा  
नारिकेलजम् । सर्वशूलं निहन्त्याशु घात-  
पित्तभवं तथा ॥ २२५ ॥ एकजं द्वन्द्वज-  
ञ्चैव तथैव सान्निपातिकम् । परिणामो-  
द्भवं शूलमामवातोद्भवं तथा ॥ २२६ ॥  
कार्श्यं वैवर्ण्यमालस्यं तन्द्रारुचिविनाश-  
नम् । साध्यासाध्यं निहन्त्याशु भास्कर-  
स्तिमिरं यथा ॥ २२७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, वाय-  
विहङ्ग, मोया, निसोत, दन्ती, चित्रक, आसु-  
पर्णी, पीपलामूल, हर एक १ तोला, अभ्रकभस्म  
४ तोला, लोहभस्म १६ तोला, इसे घी तथा शहद  
से पीसकर ३ रत्ती की गोली बनावे । प्रति दिन  
प्रातःकाल रोगी एक गोली सेवन करे । अनुपान-  
गोधुग्ध अथवा नारियल का जल । यह एक-  
दोपज शूल, द्वन्द्वजन्म शूल, त्रिदोषज शूल, परि-  
णामशूल, आमवातजन्य शूल, हृशता, विष-  
पांता, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि आदि रोगों को  
मष्ट करता है ॥ २२२-२२७ ॥

सूक्ष्मैलाधारिष्ट ।

सूक्ष्मैलाया द्वे पले जातिकोपं स्थूलैला  
च दीपनी देवपुष्पम् । त्वक् कुंकुमं

क्षीरकाकोलिका च प्रत्येकशः कोल-  
मानं प्रकुट्य ॥ २२८ ॥ सञ्जीविन्याः  
कौडवं तोयमर्द्धं स्निग्धे भाण्डे सर्वमेत-  
न्निधाय । सप्ताहैकं स्थापयेत् प्रावृतास्ये  
उद्धृत्यैनं वस्त्रपूतं प्रयुञ्ज्यात् ॥ २२९ ॥  
विन्दुत्रिशतकरचादौ षष्टिविन्दुमितां  
पराम् । अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत शूलरोगाप-  
नुत्तये ॥ २३० ॥

छोटी हलायची ८ तोला, जावत्री, बड़ी  
हलायची, अजवाइन, लौंग, दालचीनी, केशर,  
क्षीरकाकोली, हर एक १ तोला, मृतसञ्जीवनी  
सुग १६ तोला, जल ८ तोला, इन्हें इकट्ठा कर  
चिकने पात्र में ढालकर पूर्वोक्त चूर्ण को  
ढालकर मुख बन्द कर दे इस प्रकार सात दिन  
पड़े रहने के पश्चात् निकाल कपडे से छानकर  
एक शीशी में बन्द करके रख दे । मात्रा-३०  
बूँद से ६० बूँद तक । इसके सेवन से बहुत जवदी  
कठिन शूल अच्छा हो जाता है ॥ २२८-२३० ॥

परिणामशूल में वर्जित ।

मायादिशिग्बिधान्यानि मद्यानि वनिता  
हिमम् । आतपं जागरं क्रोधं शुचं सन्धा-  
नमम्लकम् । वर्जयेत्पक्वि शूलार्तस्तथाजीर्णं  
तिलानपि ॥ २३१ ॥

उदक आदि शिग्वीजाति के धान्य, शराब,  
स्त्रीभोग, शीत अथवा यकं, घृष, रात की  
जगना, क्रोध, शोक, अचार, आदि खटार्द,  
तिल तथा अजीर्ण रोग से परिणामशूलवालों  
को बचना चाहिए ॥ २३१ ॥

धैर्यानुरत्नोद ।

द्विपलं तिन्तिहीत्तारं तथापामार्गसंभ-  
वम् । शम्बूकमस्मसंयुक्तं लरणश्च समं  
तथा ॥ २३२ ॥ चतुर्णां समभागाः स्यु-  
स्तुल्यश्च लौहचूर्णकम् । चूर्णं सम्पिप्य  
खल्वौदौ कारयेदेकतां भिषक् ॥ २३३ ॥

शूलस्यागमवेलायां स्वादेद्रक्तिचतुष्टयम् ।  
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न  
संशयः ॥ २३४ ॥

हमली का चार, चिचिदा का चार, घोंघा की भस्म और सेंधव लवण पाव-पाव भर, लोहभस्म एक सेर, एकत्र मिलाकर, खरल करके रख लेवे । शूल उत्पन्न होने के समय चार रत्ती इस "वैश्वानर-लोह"-नामक औषध का सेवन करना चाहिए । इस औषध के सेवन करने से सब प्रकार के शूल-रोग निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं ॥ २३२-२३४ ॥

शूलगजकेशरी ।

शुद्धमूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद्  
दृढम् । द्रयोस्तुल्यं शुद्धताम्रसम्पुटे तं नि-  
रोधयेत् ॥ २३५ ॥ ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा  
मृद्नाण्डे स्थापयेद्बुधः । रुध्वा गजपुटं  
दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ २३६ ॥  
सम्पुटं चूर्णयेत् रत्नचणं पर्णखण्डे द्विगु-  
ञ्जकम् । भक्तयेत् सर्वशूलार्चो हिङ्गु-  
शुण्ठीसजीरकम् ॥ २३७ ॥ वचामरि-  
चं चूर्णं कर्पमुष्णजलैः पिवेत् । असाध्यं  
साधयेच्चूलं श्रीशूलगजकेशरी ॥ २३८ ॥

शुद्ध पारा २ तोले और गंधक ४ तोला लेकर कजली बना लेवे । उस कजली को नींबू के रस में घोटकर छः तोला के बजनवाले शुद्ध ताम्र के संपुट ( पात्र ) के भीतर लेप कर देवे । तदनंतर उस संपुट को बंद करके एक हाँड़ी में नमक रखकर उसके ऊपर संपुट रखे । संपुट के ऊपर पुनः नमक रखकर हाँड़ी का मुख बट्टन से बंद करके, कपरीटी करके गजपुट में ढूँक देवे । स्वाङ्गशीतल होने पर संपुट का महौन चूर्ण बनाकर रख लेवे । आधी रत्ती की मात्रा में इस औषध को पान के पत्रे में रखकर सेवन करना चाहिए । एवं औषध सेवन करने के बाद हींग, सोंठ, जीरा, वच और मिर्च का

चूर्ण एक तोला खाकर, उष्ण जल पी लेवे । इस 'शूलगजकेशरी'-नामक औषध के सेवन करने से असाध्य शूल भी धाराम हो जाता है । ताम्रभस्म निरुत्थदोष रहित ही लेवे अन्यथा और पुष्ट दे ॥ २३२-२३८ ॥

शूलवर्जिनी<sup>१</sup> वटी ।

रसगन्धकलौहानां पलाङ्गेन समन्वि-  
तम् । द्रुनं रामठंशुल्वं<sup>२</sup> त्रिकटु त्रिफला-  
शटी ॥ २३९ ॥ त्वगेला पत्रतालीशं  
जातीफललवङ्गकम् । यमानी जीरकं  
धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ २४० ॥  
चतुर्गुञ्जामिता वटश्चरुखागीदुग्धेन पेपितः।  
गणेशं योगिनीं शम्भुं हरिं सूर्यं प्रपूज्य  
च ॥ २४१ ॥ शीततोयानुपानेन छागी-  
दुग्धेन वा पुनः । एकैका भक्तिता चैवं  
वटिका शूलवर्जिनी ॥ १४२ ॥ शूलमष्ट-  
विधं हन्ति हीहगुल्मोदरज्वरान् । अष्टोला-  
नाहमेहारच मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥  
२४३ ॥ अम्लपित्तामवातारच कामलां  
पाण्डुरोगकम् । गुरुणा चन्द्रनाथेन वटि-  
कैपा प्रकीर्त्तिता ॥ संसारलोकरक्षार्थं  
विचिन्त्य परिनिर्मिता ॥ २४४ ॥

पारा, गंधक और लौह-भस्म दो-दो तोला, सोहागा, हींग, सोंठ, ताम्रभस्म, त्रिकटु, त्रिफला कचूर, दालचीनी इलायची, तेजपात, तालीशपत्र, जायफल, लींग, ध्रजवाइन, जीरा और धनियाँ एक-एक तोला, एकत्रित करके बकरी के दूध में घोटकर चार-चार रत्ती की गोलीयाँ बना लेवे तदनंतर गणेश, योगिनी, महादेव, विष्णु और सूर्य की पूजा करके बकरी के दूध या शीतल जल के साथ इस औषध की एक-एक गोली खावे । इस शूलवर्जिनी वटी के सेवन करने से सब प्रकार के शूल, तिष्ठली, गुल्म, उदररोग,

१—शूलवर्जिणीत ग्रन्थान्तरे नाम ।

२—शुष्ठी इति पाठान्तरे ।

अष्टीलावात, अफरा, प्रमेह, मन्दाग्नि, अरोचक  
अम्लपित्त, आमवात, कामला और पायडुरोग  
शान्त हो जाता है। संसार के कल्याणार्थ  
धीचन्द्रनाथजी ने इस शूलबीजिनी बटी का  
निर्माण किया है ॥ २३६-२४४ ॥

शंखोदर रस ।

कम्बोभस्म चतुष्कर्ष कर्पूकंमहिफेन-  
कम् । जातीफलं टङ्गणञ्च कर्ष कर्ष नियो-  
जयेत् ॥ २४५ ॥ चूर्णाकृत्य ततश्चाऽस्य  
गुञ्जामात्रां प्रयोजयेत् । नवीन तेन साकं  
हि रक्तातीसार हृत्परम् ॥ २४६ ॥  
गुदाङ्कुरोद्भवं रक्तमामरकं नियच्छति ।  
कृच्छ्र साध्यमतीसारं विविधं शूल  
मुल्घणम् ॥ २४७ ॥ शमथत्यतिवेगेन  
रसः शङ्खोदराहयः । गुड त्रिल्व कपायेण  
शूलं पकाशयोत्थितम् ॥ २४८ ॥  
आमं पाचयते सद्यः सर्वाति सृति  
कृन्तनः ॥ २४९ ॥

शङ्ख भस्म ४ तोला अफीम जायफल, गुना  
सुहागा १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण कर १-१  
रत्नी की मात्रा देने से रक्तात्तिसार रक्तार्श आम  
कृच्छ्रसाध्य अतिरोग नाना तरह की उरकट शूल  
इन सबको यह नष्ट करता है। गुड और बेल के  
काँडे के साथ पकाशय के शूल को नष्ट करता  
है और आम को पचाता है ॥ २४५-२४९ ॥

शूलान्तक रस ।

त्र्युपणं त्रिफला मुस्तं त्रिष्टता चित्रकं  
तथा । एकैकशः समो भागस्तदद् रसग-  
न्धयोः ॥ २५० ॥ लौहाभ्रकविडङ्गानां  
धागस्तु द्विगुणो भवेत् । एतत् सर्वं  
समादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ २५१ ॥  
त्रिफलायाः कपायेण गुटिकाः कारयेद्भि-  
पक् । तदेकां भक्षयेत् मातर्भ्रुवारि पिबे-

दनु ॥ २५२ ॥ निहन्ति परिणामोत्थमम्ल-  
पित्तं वमिं तथा अन्नद्रवभवं शूलं सन्नि-  
पातसमुद्भवम् ॥ सर्वशूलान्निहन्त्याशुशुष्कं  
दार्वानलो यथा ॥ २५३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, निशोत और  
चीते की जड़ एक-एक तोला, कजली एक  
तोला, लौह-भस्म, अश्रक-भस्म और बाय-  
विडंग दो-दो तोले एकत्र करके खरल करे।  
इस चूर्ण को त्रिफला के काय में घोटकर  
चार-चार रत्नी की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान  
काँजी। यह 'शूलान्तक-रस' परिणाम-शूल,  
अम्लपित्त, अन्नद्रवजशूल, सन्निपातजशूल  
एवं सब प्रकार के शूल, इन सब रोगों को इस  
प्रकार नष्ट कर देता है जैसे सूखी लकड़ियों को  
अग्नि भस्म कर देती है ॥ २५०-२५३ ॥

श्रीविद्याधराभ्रक ।

विडङ्गमुस्तत्रिफला गुडूची दन्ती त्रिष्ट-  
द्वद्विकटुत्रिकञ्च । प्रत्येकमेपां पिचुभाग-  
चूर्णपलानि चत्वार्ययसोमलस्य ॥ २५४ ॥  
गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य यद्वायसो वापि  
चिराटिकायाः । कृष्णाभ्रकाच्चूर्णपलं  
विशुद्धं निश्चन्द्रकं श्लक्ष्णमतीव सूतात् ॥  
२५५ ॥ पादोनकर्षं स्वरसेन खल्लशिला-  
तले मन्द्युमनीदलस्य । संमर्द्य यत्रादिति-  
शुद्धान्धपापाणचूर्णेन पिचून्मितेन ॥  
२५६ ॥ युक्त्या ततः पूर्वर्जांसि दत्त्वा  
सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात् । संस्थापयेत्  
स्निग्धविशुद्धभाण्डे ततः प्रयोज्यास्य  
रसायनस्य ॥ २५७ ॥ वल्लप्रमाणन्व-  
थवा द्विवल्लं गन्धं पयो वा शिशिरं जलं  
वा । पिबेदयं योगवरः प्रभूतः कालप्रन-  
ष्टानलदीपकरच ॥ २५८ ॥ रोगेषु  
हन्यात् परिणामशूलं शूलं तथान्नद्रव

संज्ञकश्च । यच्चाम्लपित्तं ग्रहणीं प्रदुष्ट्यां  
जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम् ॥ २५६ ॥  
न सन्ति ते यान्निहन्ति रोगान् योगो-  
त्तमः सम्यगुपास्यमानः ॥ २६० ॥

मन्युमनीदलं थूलकुडीति यस्य प्र-  
सिद्धि चिराटिका लौहचटकेति ख्याता ।  
भोजनादिमध्यान्तेषु भक्ष्यं भोजनात् पूर्णं  
तु व्यवहरन्ति वैद्याः । मण्डूरस्थाने लौहं  
ग्राह्यम् तत्तु परिणामशूलेऽतिप्रशस्तम् ।

वायविहग, नागरमोथा, त्रिफला, गुर्च,  
दन्तीमूल, निशोत, चीते की जड़ और त्रिकटु  
का एक एक तोला चूर्ण तथा गोमूत्र में शुद्ध  
किया हुआ पुराना मधुर थयवा लौह-भस्म  
१६ तोला, श्वेत पुनर्नवा की भस्म १६  
तोला, निश्चन्द्र अन्नक-भस्म ४ तोला,  
थूलकुडी ( मयदुकपर्णी ) के रस में शुद्ध किया  
हुआ द्विगुलौथ पारद ६) म शै और शुद्ध गधक  
एक तोला लेवे ।

पहले पारा और गधक की कजली बनाकर  
उसमें सब आपधियों को मिश्रित करके यत्पूर्वक  
खरल करे तथा घृत और मधु मिलाकर, मिट्टी  
के चिकने पात्र में रख देवे । मात्रा-२ रत्ती से  
४ रत्ती तक देनी चाहिए । अनुपान-गोदुग्ध  
या शीतल जल । यह 'श्रीविद्याधराश्रक'  
मन्दाग्नि, परिणाम शूल, साधारण-शूल, अन्नद-  
वज्र शूल, राजयक्ष्मा, अग्नपित्त, सप्रदण्ठी,  
जीर्ण ज्वर और रक्तपित्त रोग का विनाश करता  
है । विशेष करके यह रसायन परिणाम शूल  
का महौषध है । एष ससार में देसा कोई रोग  
नहीं है, जिसमें यह औषध लाभकारी न  
हो ॥ २५४-२६० ॥

चतुःसमलौह ।

अन्नं गन्धं रसं लौहं प्रत्येकं संस्कृतं  
पलम् । सर्वमेतत् समाहृत्य यन्नतः कुशलो  
भिषक् ॥ २६१ ॥ आज्ये पले द्वादशके  
दुग्धे वत्सरसंख्यके । पक्त्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं

सुपूतं घनवाससा ॥ २६२ ॥ विडङ्ग-  
त्रिफलावह्निकदूनां तथैव च । पिप्पला  
पलोम्भितानेतास्तथा संमिश्रितान्नयेत् ॥  
२६३ ॥ तत्तु पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु  
विचक्षणः । आत्मनः शोभने चाह्नि पूज-  
यित्वा रविं गुरुम् ॥ २५४ ॥ घृतेन  
मधुना मर्द्यं भक्षयेन्मापकावधिं क्रमेण  
वर्द्धयेत् तच्च समाहितमनः सदा ॥ २६५ ॥  
अनुपानश्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा ।  
जीर्णान्ने<sup>१</sup> हितशाल्यन्नमुद्गमांसरसादिभिः ॥  
२६६ ॥ रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि  
च कारयेत् । हृच्छूलं पार्श्वशूलश्चाप्याम-  
वातं कटिग्रदम् ॥ २६७ ॥ गुल्मशूलं  
शिरःशूलं यकृत् स्नीहानमेव च । अग्नि-  
मान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं र्नासं विचर्चि-  
काम् ॥ अरमरीं मूत्रकृच्छ्रश्च योगेनानेन  
साधयेत् ॥ २६८ ॥

अन्नक भस्म, गधक, पारद और लौह भस्म  
चार चार तोला लेकर ४८ तोला घृत और ४८  
तोला दुग्ध में पकाकर मोटे बख से कपड़ान  
किये हुए निम्न लिखित औषधियों के चूर्ण को  
मिला देवे ।

### औषधियाँ

वायविहग, त्रिफला, चीता की जड़ और  
त्रिकटु चार-चार तोला ।

यथाविधि पाक सिद्ध होने पर उत्तम पात्र में  
रख लेवे । एक माशा से प्रारम्भकर क्रमश

१-आलोह्येति पाठान्तरम् ।

२-मापकादिकमिति पाठान्तरम् ।

३-'अष्टौमापान् प्रमथेव वर्षयेच्च समाहित'  
इति ग्रन्थान्तरे पाठ ।

४-'जीर्णं लोहितशाल्यन्नमुद्गमांसरसादिभिः ।  
भक्षयेद्घृतसयुक्तं सद्यः शूलाद्विमुच्यते ॥'  
इति ग्रन्थान्तरे पाठः ।

मात्रा की वृद्धि करे । दुग्ध या नारियल के जल के साथ सेवन करना चाहिए ।

पथ्य—साठी के चावल का भात, मूँग का यूप ( जूस ) और मांस-रस आदि ।

इस 'चतुःसमलौह' नामक रस के सेवन करने से हृदयशूल, पार्श्व-शूल, आमवात, कटिग्रह, गुल्म-शूल, शिरःशूल, यकृत, तिल्ली, मन्दाग्नि, स्य-रोग, कुष्ठ, खाँसी, श्वास, विचर्चिका, पथरी और मूत्रकृच्छ्र ये सब रोग शान्त होते हैं ॥ २६१-२६८ ॥

शूलगजेन्द्रतैल ।

एरण्डं दशमूलञ्च प्रत्येकं पलपञ्चकम् ।  
जले चाष्टगुणे पक्त्वा तैलस्यार्द्धाढकं  
पचेत् ॥ २६९ ॥ विश्वं जीरं यमानीञ्च  
धान्यकं पिप्पलीं वचाम् । सैन्धवं बदरी-  
पत्रं प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ॥ २७० ॥ यव-  
काथः पयञ्चैव तैलाद्देयं गुणद्वयम् । तैल-  
मेतन्महातेजो नाम्ना शूलगजेन्द्रकम् ॥  
२६१ ॥ निहन्त्यष्टविधं शूलमुपद्रवसम-  
न्वितम् । अग्निप्रदं वमिहरं श्वासकासा-  
रुचीर्जपेत् ॥ २७२ ॥ ज्वरघ्नं रक्तपित्तघ्नं  
स्त्रीहगुल्मविनाशनम् । श्रीमद्गहननाथेन  
निमित्तं विश्वसम्पदे ॥ २७३ ॥

परपट्ट-मूल और दशमूल प्रत्येक बीस-बीस तोला लेकर आठगुने जल में पकावे । नतुर्पाश शेष रहने पर इस काथ में तिल-तैल ३ सेर १६ तोला, कल्काय-मोठ, जीरा, अजवाइन, धनियाँ, पीपरी, यव, सेंधा नमक और बेर के पत्ते आठ-आठ तोला, यव का काथ ६ सेर ३२ तोला और दूध ६ सेर ३२ तोला मिलाकर यथाविधि पाक करके तैल सिद्ध करे । इस 'शूलगजेन्द्र' तैल के मर्दन करने से आठ प्रकार

के शूल और शूलजन्य वमन आदि उपद्रव तथा श्वास आदि विविध रोग निवृत्त होते हैं ॥ २६९-२७३ ॥

इति श्री० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां  
शूलाधिकारः समाप्तः ॥

## गुल्माधिकारः

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलो-  
मनम् । बृंहणं यद्भवेत् सर्वं तद्धितं सर्व-  
गुल्मिनाम् ॥ १ ॥

लङ्घनमित्यत्र लघ्वन्नमिति वा पाठः ।  
लङ्घन, अग्निदीप्तकारक औषध, स्निग्ध, उष्ण  
और वायु की अनुलोमन क्रिया एवम् जिनके  
द्वारा शरीर की पुष्टि हो वे समस्त क्रियाएँ  
गुल्म-रोगी के लिये लाभदायक होती हैं ॥ १ ॥

सिद्धमेकादशविधं शृणु मे गुल्मभेष-  
जम् । स्नेहनं स्वेदनञ्चैव निरूहमनुवास-  
नम् ॥ १ ॥ विरेकवमने चोमे लङ्घनं  
बृंहणं तथा । शमनञ्चावसेकञ्च शोथि-  
तस्याग्निकर्म्म च । कारयेदिति गुल्मानां  
यथारम्भं चिकित्सितम् ॥ ३ ॥

गुल्मरोग में निम्न-लिखित एकादश प्रकार  
की क्रियाएँ करनी चाहिए । जैसे-स्नेहन, स्वेदन,  
निरूहन, अनुवासन, विरेचन, वमन, लङ्घन, बृंहण,  
शमन, रश्चावसेचन और अग्निवर्म्म ॥ २-३ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः ' सर्वशो  
विधिवदाचरितव्या । भारते द्यवजितेऽन्य  
शुदीर्णं दीपमल्पमपि कर्म निहन्त्यात् ॥४॥

गुल्म-रोग में सबसे पहिले वायु की शांति  
का ध्य करना चाहिए । क्योंकि वायु के शांत  
होने पर अन्योन्य दीप बहुत थोड़े ध्य से शांत  
हो जते हैं ॥ ४ ॥

१—वेदनानितृपा मूत्सु। ह्यानाही गौरवाहवी ।  
उवरी भ्रमः कृतायस्य यल्लहानिरस्तथैव च ॥ कासः  
श्वासश्च दिक्का च ज्वरस्योपद्रवाः स्मृताः ॥

स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो  
गुल्मशान्तये ॥ ५ ॥

गुल्म-रोग को शान्ति के लिये पहिले स्नेहन  
करके फिर स्वेदन करे ॥ ५ ॥

स्वेद के गुण ।

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुत-  
मुल्वणम् । भित्वा विवन्धं स्निग्धस्य स्वेदो  
गुल्मान् व्यपोहति ॥ ६ ॥

स्निग्ध रोगी के लिये किया हुआ स्वेदन  
स्रोतों को मृदु करके प्रबल वायु को जीत कर  
और वायु की गाँठों को तोड़कर गुल्म रोग को  
नष्ट करता है ॥ ६ ॥

कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदन् कारयेत् कुशलो  
भिषक् । उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोप्याः  
शाल्वणादयः ॥ ७ ॥

कुम्भीस्वेदः वातहरकाथादिभिः, काञ्जि-  
कादिभिर्वा घटस्थितैः स्वेदः । पिण्डस्वेदः  
उत्स्विन्नमांसादिपिण्डेन स्वेदः । तथा  
इष्टकास्वेदः प्रतप्तया काञ्जिकमिक्रया  
कर्त्तव्य इति भानुदासः ।

वायुनाशक घ्राय या काँजी के द्वारा घड़ा भर  
कर उसके वाष्प से जो स्वेदन किया जाता है  
उसे कुम्भीस्वेद कहते हैं ।

मासपिण्ड को पानी में डाल कर पकावे,  
फिर उसके वाष्प से जो स्वेदन किया जाता है  
उसे पिण्डस्वेद कहते हैं ।

इष्ट को आग पर तपा-तपाकर काँजी में  
बुझावे, तो उसके द्वारा जो स्वेदनक्रिया होती  
है, उसे इष्टकास्वेद कहते हैं ।

चतुर वैद्य को चाहिए कि इन त्रिविध स्वेदों  
से, सुखोप्य प्रलेप से और सन्तर्पण आदि के  
द्वारा गुल्मरोगों को शान्त करे ॥ ७ ॥

स्थानावसेको रक्त्रस्य बाहुमध्ये सिरा-  
व्यधः । स्वेदोऽनुलोमनञ्चैव प्रशस्तं सर्-  
गुल्मिनाम् ॥ ८ ॥

स्थानावसेको गुल्मस्थाने रक्ताकृष्टिः  
शृङ्गादिना विधेया ।

बाहुमध्ये सन्धेरधोऽस्य सिराव्यधः  
न तु मध्यसिराव्यधः तस्य मर्मत्वात् ।  
यस्मिन् पार्श्वे गुल्मस्तस्मिन् पार्श्वे बाहौ  
वा सिराव्यध इति । चरकोऽपि, गुल्मे  
सत्यनिलादीनां कृते सम्यग्भिषग्जिते ।  
न प्रशाम्यति रक्त्रस्यावसेकाच्च प्रशाम्यति ।

जिस स्थान में गुल्मरोग उत्पन्न हुआ हो, उस  
स्थान से तथा जिस पार्श्व में उत्पन्न हो उस  
तरफ के बाहु के मध्य से रक्त निकाल लेना,  
स्वेदन करना और वायु की अनुलोमन क्रिया  
करना गुल्मरोग में लाभदायक होता है ॥ ८ ॥

पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था धान्नजा  
रसाः । खट्वाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां  
भोजने हिताः ॥ ९ ॥

वातनाशक औषधादि द्वारा सिद्ध पेया, कुलथी  
की दाल का जूस, धन्वन पत्ती का मांसरस और  
पञ्चमूल के द्वारा सिद्ध किया हुआ जड़ली जानवरों  
के मांस का रस गुल्मरोगी के भोजन में लाभ-  
दायक होता है ॥ ९ ॥

मातुलुङ्गरसो हिद्गु दाडिमं विडसै-  
न्धवम् । सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्म-  
रुजापहम् ॥ १० ॥

नींबू का रस, हींग, अनारदाने, धिहनमक  
और सेंधवनमक को सुरामण्ड में मिलाकर  
पान करने से वातगुल्म की घेंदना शान्त  
होती है ॥ १० ॥

नागरार्द्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य  
च । तिलस्यैकं गुडपलं चीरेणोप्येन  
पाययेत् । वातगुल्ममुदावर्त्त योनिशूलश्च  
नाशयेत् ॥ ११ ॥

सौंठ २ तोला, गुण-रहित तिल ८ तोला  
और गुड ४ तोला इनको एकत्र पीस कर द्रव्य

दुग्ध के साथ सेवन करने से वायुगुल्म, उदावर्त और योनिशूल आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

पिवेदेरएडतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिवेन्नरः ॥ १२ ॥

उष्ण-दुग्ध या वारुणीमण्ड मिश्रित कर एरएड के तैल का पान करने से, पित्तानुबन्धी तथा कफानुबन्धी वायुजन्य गुल्मरोग में विशेष लाभ होता है ॥ १२ ॥

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ॥ १३ ॥ क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषश्च पाययेत् । वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसा विपमज्वरम् ॥ १४ ॥ हृद्रोगं विद्रधि शोथं नाशयत्याशु तत्पयः । एवन्तु साधिते क्षीरे स्तोकमप्यत्र दीयते ॥ १५ ॥

शुद्ध और शुष्क लहसुन १६ तोला, दुग्ध ६४ तोला, जल ६४ सोला इनको एकत्र कर पकावे । दुग्धमात्र शेष रहने पर इस दुग्ध को थोड़ा-थोड़ा पीने से वातगुल्म उदावर्त और गृध्रसी आदि नाना रोग नष्ट होते हैं ॥ १३-१५ ॥

सर्जिकाकुष्ठसहितः चारः केतकजोऽपि वा । तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १६ ॥

एरएड तैल या तिल-तैल में सजी का चार ६ रची और कूट का चूर्ण ६ रची अथवा केतकी के फूल का चार ३ से १२ रची तक मिश्रित कर सेवन करने से वातगुल्म शान्त होता है ॥ १६ ॥

आवस्थिकक्रियासूत्र ।

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिरचूर्णादि चेप्यते ।

वातगुल्म में कफाधिक्य होने पर यमन और चूर्ण आदि औषध सेवन करना चाहिए ।

पित्ते विरेचनं स्निग्धं रक्ते रक्षस्य मोक्षणम् ॥ १७ ॥ स्निग्धोष्णेनोदिते

गुल्मे पैत्तिके संसनं हितम् । रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ॥ १८ ॥

स्निग्धोष्णेन राजिकादिना कारणेन सम्भूते गुल्मे पैत्तिके पित्तोत्तरे संसनं विरेचनं हितम् । एवं रूक्षोष्णेन अग्न्यात्पादिना कारणेन सम्भूते सर्पिःपानं हितं रक्तपित्तोक्तमिति भानुः ।

यदि पित्त की अधिकता हो, तो स्निग्ध विरेचन देना चाहिए । रक्त की विकृति हो, तो रक्त मोक्षण कराना चाहिए । स्निग्ध और उष्ण जो राई आदि द्रव्य हैं उनके सेवन करने से उत्पन्न पैत्तिक गुल्म में पित्त की अधिकता होने पर विरेचन कराना लाभदायक होता है । तथा रूक्ष और उष्ण अर्थात् अग्नि और धूप आदि के द्वारा उत्पन्न गुल्म-रोग में रक्तपित्ताधिकारोक्त घृतपान लाभदायक होता है ॥ १७-१८ ॥

काकोल्यादिमहातिक्रवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् । स्नेहितं संसयेत् पश्चाद्योजयेद्वस्तिकर्मणा ॥ १९ ॥

काकोल्यादि गण के साथ सिद्ध किया हुआ अथवा महातिक्रादि या वासादि के साथ सिद्ध किये हुए तैल का पान कराकर विरेचन कराने के पश्चात् वस्तिक्रिया कराना पित्त-गुल्म में लाभदायक होता है ॥ १९ ॥

हेतु विशेषजन्य पैत्तिक गुल्म में क्रिया फी विशेषता ।

स्निग्धोष्णेन पित्तगुल्मे कम्पिल्लं मधुना लिहेत् । रेचनार्थे रसं वापि द्राक्षायाः सगुडं पिवेत् ॥ २० ॥

राई, सरसों आदि स्निग्धोष्ण द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न गुल्म में रवेत निसोत को मधु के साथ सेवन करे अथवा द्राक्षा के रस में गुड मिलाकर पान करे, तो पित्तोप खान होता है ॥ २० ॥



दाहशूलार्त्तिसङ्क्षोभस्वप्नशारत्ति<sup>१</sup>-  
ज्वरैः । विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तदु-  
पनाहयेत् ॥ २१ ॥ पक्वे तु व्रणवत् कार्यं  
व्यधशोधनरोपणम् । स्वयमूर्ध्वमधोवापि  
स चेद्दोषः प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥ द्वादशाहमु-  
पेक्षेत् रक्तन्नन्यानुपद्रवान् । परंतु शोधनं  
सर्पिः शुद्धे मधु सतिक्कमम् ॥ २३ ॥

गुल्म-रोग में दाह, शूल, वेदना, क्षुब्धता  
( Agitation ), निद्रानाश, अधीरता और  
ज्वर उपस्थित हो, तो समझना चाहिए कि गुल्म  
का पकना प्रारम्भ हुआ है । अतः उसके शीघ्र  
पकाने के लिए व्रणशीथोक्त पाचक प्रलेप ( उप-  
नाह ) तत्काल करना चाहिए । गुल्म के पक  
जाने पर व्रण के समान ऑपरेशन करके पीच  
आदि निकालना और रोपणक्रिया करना उचित  
है । यदि स्वयं ही फूटकर पीच आदि के निकल  
जाने की संभावना हो, तो इस निमित्त बारह  
दिन पर्यंत शोधनादि कोई क्रिया न करे । केवल  
घन्यान्य उपद्रव जो उपस्थित हों, उन्हीं का  
रपाय करना चाहिए ॥ २१-२३ ॥

कफगुल्मचिकित्सा ।

लह्वनोल्लेखने<sup>२</sup> स्वेदे कृतेऽग्नौ सम्बु-  
भुञ्जते । घृतं सत्तारकदुकं पातव्यं कफ-  
गुल्मिनाम् ॥ २४ ॥

कफजन्य गुल्म में लह्वन, लेखन और स्वेदन के  
द्वारा अग्नि दीपन होने पर त्रिकदु और यवपारादि  
कणक के द्वारा यथाविधि घृत सिद्ध करके सेवन  
कराना चाहिये ॥ २४ ॥

घमनाहं गुल्मरोगी के लक्षण ।

मन्दोऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुन्तमित-

कोष्ठता । सोत्क्लेशतारुचिर्यस्य स गुल्मी  
घमनोपगः ॥ २५ ॥

अग्निमान्द्य, वेदना की मन्दता, कोष्ठों में  
भारीपन, स्तैमित्य ( शरीर गीला कपडा फेर-  
सा मालूम हो ), उबकाई आने और अरुचि  
होने पर गुल्म रोगी को घमन कराना  
चाहिए ॥ २५ ॥

मन्देऽग्नावनिले सूढे ज्ञात्वा सस्ने-  
हमाशयम् । गुटिकाश्चूर्णनिर्व्यूहाः प्रयो-  
ज्याः कफगुल्मिनाम् ॥ २६ ॥

कफगुल्म में अग्निमान्द्य और वायु की विकृति  
द्वारा कोष्ठ की स्तिग्धता जानकर गुटिका, चूर्ण  
और क्वाथ औषध सेवन करना चाहिए ॥ २६ ॥

तिलादि स्वेद ।

तिलैरएडातसीवीजसर्पपैः परिलिप्य  
च । श्लेष्मगुल्ममयः पात्रैः सुखोष्णैः स्वेद-  
येद्भिपक् ॥ २७ ॥

कफगुल्म में तिल, एरएडबीज, थलसी और  
सरसों पीसकर गुल्मस्थान में लेप करना चाहिए  
और किञ्चित् उष्ण किए हुए लोहपात्र से स्वेदन  
करना चाहिए ॥ २७ ॥

यमानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणी-  
कृतम् । पिवेत् सन्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनु-  
लोमनम् ॥ २८ ॥

तक्र में अजवाइन और विडलवण को भिला-  
कर सेवन करने से अग्नि का दीपन तथा वायु,  
मूत्र और पुरीष का अनुलोमन होता है ॥ २८ ॥  
मात्रा—१११ ॥ मा० ।

द्वन्द्वजगुल्मचिकित्सा ।

व्यामिश्रदोषे व्यामिश्रः सर्व एव क्रिया-  
क्रमः । सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो  
विधिर्हितः ॥ २९ ॥ वचामयाचिटाशु-  
एठीहिहः गुक्पुष्पाग्निदीप्यकाः । द्वित्रिपट्च-  
तुरेकाष्टपञ्चपञ्चाशिकाः क्रमात् ॥ ३० ॥

१—कषिण सप्त इति पाठान्तरम् ।

१—रुचोति पाठान्तरम् ।

२—स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीक्ष्णस्रसंनवस्तिभिरः ।  
योगैरच घातगुल्मोत्रैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेदित्य-  
धिकः पाठः ।

चूर्णं मद्यदिभिः पीतंगुल्मानाढोदरापहम् ।  
शूलार्शः श्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं  
परम् ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वज गुल्म में उभयविधि क्रिया तथा  
सांनिपातिक गुल्म में त्रिदोषनाशक क्रिया करनी  
चाहिए ।

- वच २ भाग, हरीतकी ३ भाग, विडलवण  
६ भाग, सोंठ ४ भाग, होंग १ भाग, कूट ८  
भाग, चीते की जड़ ५ भाग और अजवाइन  
२ भाग लेकर चूर्ण बनावे । मद्य आदि के साथ  
इस चूर्ण का सेवन करने से गुल्म, आनाह,  
उदररोग, शूल, यवासीर, श्वास, खाँसी और  
ग्रहणीरोग शान्त हो जाते हैं ॥ ३१-३१ ॥ मात्रा  
३ माशा ।

यमानीहिङ्गुसिन्धुत्थत्तारसौवर्चला-  
भयाः । सुरामण्डेन पातव्या गुल्मशूल-  
निपूदनाः ॥ ३२ ॥

अजवाइन, होंग, सेंधा नमक, जवाखार,  
काला नोन और हरीतकी इनके चूर्ण का मदिरा  
के साथ सेवन करने से गुल्मशूल का नाश होता  
है ॥ ३२ ॥ मात्रा-२।३ माशा ।

हिङ्गवादिचूर्णम् ।

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हवुपामभयां  
शटीम् । अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीका-  
म्लवेतसौ ॥ ३३ ॥ दाहिमं पौष्करं धा-  
न्यमजाजीं चित्रकं वचाम् । द्वौ चारौ  
लवणे द्वे च चव्यञ्चकत्र चूर्णयेत् ॥ ३४ ॥  
चूर्णमेतत् मयोक्त्यमनुपानेष्वनल्पयम् ।  
प्रागुक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ३५  
पारयर्हद्वस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।  
आनाहे मूत्रकृच्छ्रेषु गृद्योनिरुजामु च ॥  
३६ ॥ ग्रहण्यशौचिकारेषु स्त्रीहृपाएङ्गाम-  
येऽर्चौ । उरोविषद्वे द्विकायां श्वासे कासे  
गलप्रदे ॥ ३७ ॥ भावितं मातुलुद्रस्य

चूर्णमेतद्रसेन वा । बहुशो गुटिकाः  
कार्ज्या मापिकाः स्युस्ततोऽधिकाः ॥ ३८ ॥

गुटिकापक्षे एषां समभागचूर्णं सप्तदिनं  
खोलङ्गरसेन भावयित्वा गुटिकाः कार्ज्याः ।

होंग, त्रिकुटु, पाठ, हाऊवेर, हरीतकी, कचूर,  
अजमोद, वन अजवाइन, इमली की छाल,  
अमलवेत, अनारदाने, पुहकरमूल, धनियाँ, जीरी,  
चीता की जड़, वच, जवाखार, सजीखार, सेंधा  
नमक, काला नमक और चव्य बराबर-बराबर  
इन औषधों को लेकर चूर्ण बनावे । मात्रा-  
२।३ माशा । मद्य या उष्ण जल के साथ सेवन  
करने से यह चूर्ण पारवंशूल, हृदय शूल, धस्ति-  
शूल, वातरलौभिक गुल्म और आनाह आदि  
अनेक रोगों को नष्ट करता है । यदि इस चूर्ण  
की गोली बनानी हो, तो नींबू के रस में ७  
दिन तक भावना देकर एक-एक माशे की  
बनावे ॥ ३३-३८ ॥

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरुणि हरी-  
तकी । श्यामा विडं सैन्धवश्च यवत्तारं  
महौषधम् ॥ ३९ ॥ यवकाथोदकेनैतद्  
घृतभृष्टन्तु पाययेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः  
सशूलः सपरिग्रहः ४० ॥

होंग, पुहकरमूल, धनियाँ, हरीतकी, काली  
सारिवा, विड नोन, सैन्धव, जवाखार और सोंठ  
इनके चूर्ण को घृत में भूनकर जी के बवाय के  
साथ सेवन करने से गुल्म तथा तज्जन्य शूल और  
उपद्रव शान्त होते हैं ॥ ३९-४० ॥ मात्रा ३ मा० ।

यचादिचूर्णम् ।

वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवं चाम्ल-  
वेतसम् । यवत्तारं यमानीञ्च पिबेदुष्णेन  
वारिणा ॥ ४१ ॥ एतद्दि गुल्मनिचयं  
मशूलं सपरिग्रहम् । भिनत्ति सप्तरात्रेण  
वह्नेर्द्वि करोति च ॥ ४२ ॥

वच, हरीतकी, होंग, सैन्धव लवण, अमलवेत,  
जवाखार और अजवाइन का चूर्ण बनाकर प्रति-

दिन प्रातः काल ११२ माशा तक सेवन करे, तीसरा दिन में गुल्मरोग की शान्ति और अग्नि तथा बल की वृद्धि होती है ॥ ४१-४२ ॥

हिङ्वादिचूर्ण ।

हिङ्गुग्रगन्धानिडशुण्ठ्यजाजीहरी तकीपुष्करमूलकुष्ठम् । भागोत्तरं चूर्णित-  
मेतदिष्टं गुल्मोदराजीर्णविसूचिकामु ॥४३॥

हींग १ भाग, बच २ भाग, विड लवण ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरी तकी ६ भाग, पुहकरमूल ७ भाग और कूट ८ भाग एकत्र कर चूर्ण बनावे । यह हिङ्वादि चूर्ण गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विसूचिका रोग को नष्ट करता है । मात्रा एक माशे से दो माशे तक ॥ ४३ ॥ मात्रा-३ माशा ।

चित्रकादि चूर्ण ।

चित्रकं नागरं हिङ्गुं पिप्पलीं पिप्पली-  
जटा चव्याजमोदा मरिचं प्रत्येकं कर्पसं-  
मितम् ॥ ४४ ॥ स्त्रिजिका च यवक्षारः  
सिन्धु सौमर्चलं विडम् सामुद्रकं रोमकं च  
कोलमात्राणि कारयेत् ॥ ४५ ॥ एकी  
कृत्याऽखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुङ्गजैः  
रसैर्दाडिमजैर्वापि शोषयेदातपेन च ॥४६॥  
एतच्चूर्णं जयेद गुल्मं ग्रहणी मामजां  
रुजम् अग्निं च कुहते दीप्तं रुचिं कृत्-  
कफनाशनम् ॥ ४७ ॥

चीता की जड़, सोंठ भुनी, हींग, पीपल, पीपलीमूल, चव्य अजमोद और काली मरिच, प्रत्येक १-१ तोला, सजीखार जवाखार, सैधानमक, काला नमक, विड नमक सामुद्र नमक ( पाँगा ) साँभर नमक ये सब छह ० माशे इन सबका चूर्ण बनाकर धिजीरा नींबू के रस अथवा अनार दानों के रस में घोट कर सुखा लेवे । यह चूर्ण गुल्म सग्रहणी आमरोग और कफरोग को नष्ट करता है तथा अग्नि को दीप्त कर रुचि को बढ़ाता है । मात्रा ३ से ६ माशा तक ।

लवङ्गादिचूर्ण ।

लवङ्गदन्तीत्रिवृतायमानीशुण्ठीवचा-  
धान्यकचित्रकाणि । फलत्रयं मागधिका  
च कट्वी द्राक्षा चवी गोक्षुरयावशूकम् ॥  
४८ ॥ एलाजमोदाकुटजस्थ वीजं विधाय  
चूर्णानि समान्यमीषाम् । खाटेत्ततः माप-  
मितं हिताशी कोष्णं जलं चानुपिबेत्  
प्रयत्नात् ॥ ४९ ॥ निहन्ति गुल्मं सरुजं  
सदाहमर्शासि शोथांश्च तथामत्रातम् ।  
सर्गोदराण्येव चिरोत्थितानि चूर्णं लवङ्गा-  
दिकमाशु हन्ति ॥ ५० ॥

लौंग, दन्तीमूल, निसोय, अजवाइन, सोंठ, बज, धनियाँ, चीता की जड़, त्रिफला, पीपरी, कुटकी, मुनक्का, चव्य, गोलुरु, जवाखार, इलायची, अजमोद और इन्द्रजी बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनावे । गरम जल के साथ एक माशा ( से तीन माशा तक ) परिमित इस चूर्ण के सेवन करने से दाहसहित गुल्मरोग, बवासीर, शोथ, आमवात तथा सब प्रकार के पुराने उदर-रोग तरकाल नष्ट होते हैं ॥४८-५० ॥

काङ्कायनगुटिका ।

शर्ठी पुष्करमूलश्च दन्तीं चित्रकमाड-  
कीम् । शृङ्गेरं वचाञ्चैव पलिकानि  
समाहरेत् ॥ ५१ ॥ त्रिवृतायाः पलञ्चैहं  
कुर्यात् त्रीणि च हिङ्गुनः । यवक्षार-  
पले द्वे तु द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ५२ ॥  
यामान्यजाजी मरिचं धन्याकञ्चेति कापि-  
कम् । उपकुञ्चजमोदाभ्यां तथा चाष्ट-  
मिकामपि ॥ ५३ ॥ मातुलुङ्गरसे चैता  
गुटिकाः कारयेद्दिपक् । आसां चैकां  
पिबेद् द्वे वा तिस्रोनाथमुखाम्बुना ॥५४॥  
अम्लैर्मर्दैश्च यूपैश्च घृतेन पयसाथना ।  
एषा काङ्कायनोक्ता च गुटिका गुल्मना-

शिनी ॥ ५५ ॥ अर्शोहृद्रोगशमनी  
कृमीणाञ्च विनाशिनी । गोमूत्रयुक्ता  
शमयेत्कफगुल्मं चिर्गोत्थितम् ॥ ५६ ॥  
क्षीरेण पित्तगुल्मञ्च मधैरस्लैश्च वाति-  
कम् । रक्तगुल्मे च नारीणामुष्णीक्षीरेण  
पाययेत् ॥ ५७ ॥

कपूर, पुष्करमूल, दन्ती चीता, अरहर की  
जड़, सोंठ, वच और निलोय प्रत्येक चार-चार  
तोला हींग १२ तोला, जवाहार ८ तोला,  
धमलथैत ८ तोला, अजवाइन, जीरा, मिर्च  
और धनियाँ प्रत्येक एक-एक तोला, कृष्णजीरा  
और अजमोद प्रत्येक दो २ तोला एकत्र कर  
चूर्ण बनावे। परचाव इस चूर्ण में नीम्बू के रस  
की भायना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना  
लेवे। प्रतिदिन एक-एक दो-दो या तीन तीन  
गोलियाँ सुखोष्ण (गुनगुना) जल, काँजी,  
मद्य, मांसयूप, घृत या दुग्ध के साथ सेवन  
करना चाहिए। यह कांकायनगुटिका हर प्रकार  
के गुल्म-रोग को नष्ट करती है। यवासीर,  
हृद्रोग और कृमिरोग को भी नष्ट करती है।  
गोमूत्र के साथ सेवन करने से पुराने श्लैष्मिक  
गुल्म, दुग्ध के साथ सेवन करने से फीफिक  
गुल्म, मद्य तथा काँजी के साथ सेवन से  
वातजन्य गुल्म और जँटिनी के दूध के साथ  
सेवन करने से क्षियों के रक्तगुल्म को नष्ट करती  
है ॥ ५१-५७ ॥

नाराचघृत ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्ट-  
कारिका । स्नुहीक्षीरविडङ्गानि घृतं दशम-  
मुच्यते ॥ ५८ ॥ एकैकस्य च कर्षेण  
घृतस्य कुडवं पचेत् । अस्य मात्रां पिबेत्  
काले शाण्ड्येन च सम्भिताम् ॥ ५९ ॥  
उष्णोदकञ्चानुपिवेद्विरेकार्थं पिबेन्नरः ।  
पिवेद्यवागूं हविषा पेयां वा क्षीरसाधि-  
ताम् ॥ ६० ॥ रसेन जाङ्गलानां वा

भोजयेन्मतिमान् भिषक् । वातगुल्म-  
मुदावत्तं श्लीहाशोऽघ्नकुण्डलम् ॥ ६१ ॥  
ग्रहणीं दीपयेन्मन्दां कुष्ठदोषार्श्च नाशयेत् ।  
नाराचकमिदं सर्पिः ख्यातं नाराचसन्नि-  
भम् ॥ ६२ ॥

घृत ३२ तोला, कदकार्थं चीतामूल, त्रिफला,  
दन्तीमूल, निशोय, कटेरी, धूपर का दुग्ध और  
वायविडङ्ग एक-एक तोला । पाकार्यं जल १२८  
तोला यथाविधि पाक करके रग लेवे। मात्रा—  
१॥ माशा (से ६ माशा तक) । अनुपान—उष्ण-  
जल । घृतसंग्रह यवागूं और दुग्ध से सिद्ध पेया  
अथवा जंगली पानधरों के मांस का यूप (जूस) ।  
इस नाराचघृत का पान करने से वातगुल्म और  
उदासर्त, तिरहलीरोग, यवासीर, यमनरोग,  
संग्रहणी और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ५८ ६२ ॥

हयुपाद्यघृत ।

हयुपाव्योपपृथ्वीकाचव्यचित्रकसै-  
न्धवैः । साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैः  
पाचयेद् घृतम् ॥ ६३ ॥ सकोलमूल करसं  
सक्षीरदधिदाडिमम् । तत्परं वातगुल्मघ्नं  
शूलानाहविवन्धजुत् ॥ ६४ ॥ योन्यशो-  
ग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् । पार्श्व-  
हृद्वस्तिशूलञ्च घृतमेतद् व्यपोहति ६५ ॥

घृत २ सेर, बेर के बीज की गिरी का काथ  
२ सेर, सूखी मूली का काथ २ सेर, दूध २ सेर,  
दधि २ सेर, अनारदाने का काथ २ सेर ।  
कदकार्यं ग्रन्थ—हाजवेर, त्रिकटु, इलायची, चव्य,  
चीते की जड़, सैधव नमक, काला जींग,  
पिपरामूल और अजवाइन सब मिलकर आधसेर  
इन औषधियों द्वारा यथाविधि घृत सिद्ध करे।  
इस हयुपाद्यघृत का पान करने से वातगुल्म,  
शूल, अफरा, विडम्बंघ (मल का कड़ा हो  
जाना), यवासीर, संग्रहणी, श्वास, खाँसी,  
अरुचि, ज्वर, पसलीशूल, हृच्छूल और वस्ति-  
शूल ये रोग शान्त होते हैं। मात्रा—आधा तोला  
से १ तोला तक ॥ ६३-६५ ॥

पंचपलघृत ।

पिप्पल्याः पिचुरध्यर्द्धौ दाडिमाद्  
द्विपलं पलम् । धान्यात् पञ्चघृतात् शुण्ठ्याः  
कर्पः क्षीरं चतुर्गुणम् ॥६६॥ सिद्धमेतद्-  
घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति । योनिशूलं  
शिरःशूलमर्शांसि विपमज्वरम् ॥ ६७ ॥

घृत २० तोला, कल्कार्थं पीपरि १॥ तोला,  
अनारदाने ८ तोला, धनियाँ ४ तोला, सोंठ १  
तोला और दुग्ध १ सेर एकत्र कर यथाविधि  
घृत सिद्ध करे । इस 'पंचपल घृत' के सेवन करने  
से वातगुल्म, योनिशूल, शिर की पीड़ा, घवासीर  
रोग और विपमज्वर नष्ट होते हैं । मात्रा—  
आधा तोला से एक तोला तक ॥ ६६-६७ ॥

त्रायमाणाघृत ।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणा चतुः-  
पलम् । पञ्चभागस्थितं घृतं कल्कैः  
संयोज्य कार्पिकैः ॥ ६८ ॥ रोहिणी  
कुटुका मुस्तं त्रायमाणा दुरालभा । कल्क-  
स्तामलकी वीरा जीवन्ती चन्दनोत्पलम् ॥  
६९ ॥ रसस्यामलकीनाञ्च क्षीरस्य च  
घृतस्य च । पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्  
विपाचयेत् ॥ ७० ॥ पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं  
विसर्प पैत्तिकज्वरम् । हृद्रोगं कामलां कुष्ठं  
हन्यादेव घृतोत्तमम् ॥ ७१ ॥ पलोल्लो-  
खागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते । चत्वारिंशत्  
पलं तेन त्रयो दशगुणं भवेत् ॥७२॥

१६ तोला, त्रायमाणा को २ सेर जल में  
पकावे । ३२ तोला शेष रहने पर छानकर इस  
काथ में रोहिपतुष्य, कुटुकी, नागरमोषा, त्राय-  
माणा, घमासा, आँवला, शीरकाकोली,  
जीवन्ती, रक्तचन्दन और कमल एक-एक तोला,  
कूटकर मिलावे तथा आँवले का रस ३२ तोला,  
दूध ३२ तोला, घृत ३२ तोला मिलाकर यथा-  
विधि घृत सिद्ध करे । इस त्रायमाणाघृत के लाने

करने से पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्परोग, पित्त-  
ज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ।  
पल का प्रमाण होने से दुगुना न चाहिए । इस  
प्रयोग में जल एकसाँ साठ तोना का दश गुणा  
होता है ; मात्रा-६ मासे से १ तोला  
तक ॥ ६८-७२ ॥

क्षीरपट्टपलकघृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकना-  
गरैः । पलिकैः सयवत्तारैः सर्पिः प्रस्थं  
विपाचयेत् ॥७३॥ क्षीरमस्थेन तत् सर्पि-  
र्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । ग्रहणीपाण्डु-  
रोगघ्नं स्नीहकासज्वरापहम् ॥ ७४ ॥

केचित् पुनरत्र जतुकर्णसंवादात्  
त्रिगुणं जलमिच्छन्ति यदुर्क-सत्तारैः  
पञ्चकोलैस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदके । सक्षीरञ्च  
घृतमस्थमित्यादि

पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता की जड़,  
सोंठ और जवाखार चार-चार तोले, घृत  
१२८ तोला, दुग्ध १२८ तोला, पाकार्य जल  
३ सेर १६ तोला ( कोई-कोई कहते हैं कि जल  
११२ तोला लेवे ); इन सब द्रव्यों को एकत्र कर  
यथाविधि घृत सिद्ध करे । इस घृत के द्वारा कफ-  
गुल्म आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ॥ ७३-७४ ॥  
मात्रा-१ तोला ।

धात्रीपट्टपलकघृत ।

धात्रीफलानां स्वरसैः पटङ्गं पाचयेद्  
घृतम् । शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्व-  
गुल्मिनाम् ॥ ७५ ॥

घृत १२८ तोला, आँवले का रस ८ सेर  
कल्कार्थं पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता की जड़  
और जवाखार प्रत्येक दो-दो तोला, पाकार्य  
जल ६ सेर ३२ तोला एकत्र कर यथाविधि  
घृत सिद्ध करे । सेंधव और शर्करापुत्र यह  
घृत सब प्रकार के गुल्मरोग में लाभदायक होता  
है । मात्रा-१ तो० ॥ ७५ ॥

दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणे विपक्वव्या विंशतिः पञ्च  
चाभयाः । दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्र-  
कस्य तथैव च ॥ ७६ ॥ तेनाष्टभागशेषेण  
पचेदन्तीसमं गुडम् । तारचाभयास्त्रिष्टुच्चू-  
र्णात् तैलाच्चापि चतुःपलम् ॥ ७७ ॥  
पलमेकं कणाशुष्योः सिद्धे लेहे च  
शीतले । चौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं  
तथा ॥ ७८ ॥ द्वितोलकमितं लेहं जग्ध्वा  
चैकां हरीतकीम् । सुखं विरिच्यते स्निग्धो  
दोषप्रस्तोऽप्यनामयः ॥ ७९ ॥ स्त्रीहरवयु-  
गुल्माशोहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः । शाम्यन्त्यु-  
त्कलेशविपमज्वरकुष्ठान्धरोचकाः ॥ ८० ॥

बड़ी हरद पोडली में बँधी हुई २५, दन्ती  
की जड़ सवा सेर, चीता की जड़ सवा सेर, जल  
२५ सेर ४८ तोला एकत्र कर क्वाथ करे ।  
३ सेर १६ तोला जल शेष रहने पर इस क्वाथ  
में सवा सेर पुराना गुद, पूर्वोक्त २५ हरीतकी  
और १६ तोला तिल-तैल मिलाकर पाक करे ।  
अधपका होने पर निसोथ का चूर्ण १६ ताला,  
पीपरि का चूर्ण २ तोला और सोंठ का चूर्ण  
२ तोला मिलाकर उत्तम रीति से चलाकर  
उतर लेवे । शीतल होने पर मधु १६ तोला,  
दालचीनी १ तोला, तेजपात १ तोला, इलायची  
१ तोला और नागकेशर १ तोला मिलाकर रख  
लेवे । प्रतिदिन दो ताला लेह और एक हरीतकी  
का सेवन करना चाहिए । इसके द्वारा विरेचन  
होने से गुल्म, प्लीहा और शोथ आदि सब रोग  
शान्त होते हैं ॥ ७६-८० ॥

रसायनामृतलौह ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं जीरक-  
द्वयम् । यमानीद्वयभूमिन्ध्वं त्रिष्टुदन्ती च  
निम्बकम् ॥ ८१ ॥ सर्वेषां कार्पिकं भागं

सैन्धवं कर्पमभ्रकम् । खण्डस्य षोडशपलं  
प्रस्थञ्च त्रिफलाजलम् ॥ ८२ ॥ जम्बी-  
राणां रसं दद्यात् पलषोडशकं तथा ।  
पाच्यं सर्वं प्रयत्नेन लौहं दत्त्वा पलद्व-  
यम् ॥ ८३ ॥ सिद्धे पाके पुनर्देयं घृतं  
पलचतुष्टयम् । सर्वरोगेषु संयोज्यं महामृत-  
रसायनम् ॥ ८४ ॥ गुल्मं पञ्चविधं हन्ति  
यकृतप्लीहोदराणि च । कामलां पाण्डु-  
रोगञ्च, शोथं जीर्णज्वरं तथा ॥ रोगान्  
सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ८५

त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, विडङ्ग, श्वेत  
जीरा, स्याह जीरा, अजवाइन, अजमोद,  
चिरायता, निसोथ, दन्ती की जड़, नीम की  
छाल, सैन्धवनमक और अभ्रकभस्म एक-एक  
तोला, खँड़ १६ पल, त्रिफला का क्वाथ १२८  
तोला, नींबू का रस ६४ तोला, लोहभस्म ८  
तोला एकत्र कर यथाविधि पाक करे । पाक  
सिद्ध होने पर १६ तोला घृत मिलाकर रख लेवे ।  
यह अमृततुल्य रसायन सर्वरोगों में देने योग्य  
है । इस औषध का सेवन करने से गुल्म आदि  
विविध रोग नष्ट होते हैं । मात्रा-१ से ३ मा० ॥  
८१-८५ ॥

गुल्मकालानल रस ।

पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्गनं  
समम् । तोलद्वयमितं भागं यवत्तारं च  
तत्<sup>३</sup> समम् ॥ ८६ ॥ मुस्तकं पिप्पली  
शुण्ठी मरिचं गजपिप्पली । हरीतकी  
वचा कुष्ठं तौलैकं चूर्णयेत् सुधीः ॥ ८७ ॥  
सर्वमेकीकृतं पात्रे भावना क्रियते ततः ।  
पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥  
८८ ॥ तत् पुनश्चूर्णयेत् पश्चात् सर्व-  
गुल्मनिवारणम् । गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरी-

१—शोषप्रस्थमनामयः इति साणु पाठः ।

२—सुखं विरिच्यते प्रथान्तरे पाठः ॥

१—सर्वरोगेषु संयोज्यं महामृत-  
रसायनम् । रसेऽस्मिन्  
टङ्गनमित्यत औहमित्यत रसेन्द्रः ।

तक्यनुपानतः ॥ ८६ ॥ वातिकं पैत्तिकं  
गुल्मं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । द्वन्द्वजं  
विनिहन्त्याशु वातगुल्मं विशेषतः ॥  
श्री मद्रहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ६०

पारा, गन्धक, हरताल, ताम्र, सोहागा और  
जवाखार दो-दो तोला, नागरमोथा, पीपिरि,  
सोंठ, मिर्च, गजपीपिरि, हरीतकी, वच और  
कूट एक-एक तोला एकत्र कर चूर्ण बनावे । पश्चात्  
इस चूर्ण में पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ,  
(अपामार्ग), चिरचिटा और पाढ़ी के क्वाथ की  
भावना देकर सुखावे और फिर चूर्ण कर रख  
लेवे । प्रतिदिन हरीतकी के क्वाथ के साथ अथवा  
चूर्ण के साथ दो से चार रत्ती की मात्रा में इस  
श्रीपथ का सेवन करना चाहिए । इसके द्वारा  
हर प्रकार के कफगुल्म अनुपान गुल्मरोग नष्ट  
होते हैं । यह श्रीमान् महननाथ का बनाया हुआ  
है ॥ ८६-६० ॥

वृहद्गुल्मकालानल रस ।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं टङ्गनं कटुकं  
वचांम् । द्विचारं सैन्धवं कुष्ठं त्र्युषणं सुर-  
दारु च ॥ ६१ ॥ पत्रमेलान् त्वचं नागं  
खादिरं सारमेव च । गृहीत्वा समभागेन  
श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥ जयन्ती  
चित्रकोन्मत्तकेशराजदलं तथा । निष्पीड्य  
स्वरसंनीत्वाभावयेत्कुशलो भिपक् ॥ ६३ ॥  
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकाः कारयेत्ततः ।  
उत्थायभक्तयेत्प्रातरनुपानं जलं पयः ६४ ॥  
गुल्म पञ्चविधं हन्ति यकृतस्त्रीहोदराणि  
च । कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथञ्चैव सुदारु-  
णम् ॥ ६५ ॥ हलीमकं रक्त्रपित्तं मन्दा-  
ग्निमरुचिं तथा । ग्रहणीमार्दवं कारये  
जीर्णं च विपमज्वरम् ॥ ६६ ॥

अभ्रक, लोह, पारा, गन्धक सोहागा,  
कुटकी, वच, जवाखार, सजीखार, सैधव नमक,  
कूट, त्रिकटु, देवदारु, तेजपात, इलायची, दाल-

चीनी, नागकेसर और खदिरसार (कथा) सम-  
भाग एकत्र कर चूर्ण बनावे । इस चूर्ण में जयन्ती,  
चीता, धतूरा और भोंगरा के पत्तों के रस की  
भावना देकर चार-चार रत्ती की गोली बना  
ले । एक गोली जल या दुग्ध के साथ प्रातः-  
काल सेवन करना चाहिए । पाँच प्रकार के  
गुल्म, यकृत, ग्रीहोदर, कामला, पाण्डु, शीथ,  
हलीमक, रक्त्रपित्त, मन्दाग्नि, अरुचि, ग्रहणी,  
कृशता, जीर्णज्वर, विपमज्वर इतने रोग इस  
रस के सेवन से नष्ट होते हैं ॥ ६१-६६ ॥

शिखिवाटव रस ।

मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं मात्तिकं  
समम् । मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवचारयुतं दिनम्  
॥ ६७ ॥ द्विगुञ्जं भक्तयेन्नित्यं नागवल्ली-  
दलेन च । वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं  
शिखिवाटवः ॥ ६८ ॥

ताम्रभस्म, पारद, अभ्रकभस्म, गन्धक,  
सोनामाखी की भस्म और जवाखार बराबर-  
बराबर लेकर चीता के रस में दिन भर घोट-  
कर दो-दो रत्ती की गोली बनावे । अनुपान-  
पान का रस । इसका सेवन करने से धान-  
गुल्म की पीड़ा तत्काल शान्त होती है ॥ ६७-६८ ॥

नागेश्वर रस ।

शुद्धसूतस्तथा गन्धो नागवद्गौ मनः-  
शिला । निशादलञ्च त्रिचारं लौहं शुल्वं  
तथाभ्रकम् ॥ ६९ ॥ एतानि समभागानि  
स्नुहीक्षीरेण मर्दयेत् । चित्रकं वासकं  
दन्तीकाथेनैकेन मर्दयेत् ॥ १०० ॥ दिनै-  
कन्तु प्रयत्नेन रसो नागेश्वरो मतः । गुल्म-  
स्त्रीहपाण्डुशोथानाध्मानञ्च विनाशयेत् ॥  
भक्तयेदस्य गुञ्जैकं पर्णखण्डेन गुल्म-  
वान् ॥ १०१ ॥

पारद, गन्धक, सीमा, यकृत, मैनसिल, नौमा-  
दर, जवाखार, सजीखार, सोहागा, लोह, ताम्र

और अन्नक इन औषधों को बराबर-बराबर लेकर, थूहर के दूध में भली-भाँति घोटकर सुखा लेवे। फिर चीत की जड़, अरूसा और दन्ती के काथ में एक-एक दिन पर्यंत घोटकर एक-एक रसी की गोली बनाकर रख लेवे। इस नागेरघर रस को पान के रस के साथ सेवन करे। इससे गुल्म, प्रीहा, पाण्डु, शोथ, अफारा आदि रोग आराम होते हैं ॥ १६-१०१ ॥

वाडवानल रस ।

शुद्ध सूतं समं गन्धं मृतताम्रा-  
ऽध्रटङ्कणम् । सामुद्रं च यवक्षारं स्वर्जि  
सैन्धवनागरम् ॥ १०२ ॥ अपामार्गस्य  
च क्षारं पालाशं वत्सनाभकम् । प्रत्येकं  
सूततुल्यं स्याच्चणकाम्लेन मर्दयेत् ॥ १०३ ॥  
हस्तिकर्ण्या द्रवैश्चाहो ह्यार्द्रयुक्तं पुटेल्लु ।  
मापेकं भक्षयेन्नित्यं रसोऽयं वडवा-  
नलः ॥ १०४ ॥ सर्वान् गुल्मानिहन्त्याशु  
ग्रहणींश्चविशेषतः ॥ १०५ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक ताम्र और अन्नकभस्म युक्त सुहागासमुद्र नमक यवक्षार सब्जी सैन्धव सोंठ अपामार्ग और पलाश का क्षार शुद्धविष ये सब समान भाग लेकर महीन पीसकर कजली में भिला चणकाम्ल (चने का खारजव) हस्तिकर्ण पलाश अदरक इन के द्रवों से १-१ दिन घोटकर पुटपाक अथवा भूषर थंन से गरम होने तक स्वेदन कर उबड़ बराबर गोलियाँ बना कर रख छोड़े। इनमें से १-१ गोली समय अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देने से सब प्रकार के गुल्म और ग्रहणी-रोग को मिटाता है विशेष अनुभूत है ॥ १०२-१०५ ॥

अथ रक्तगुल्म ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यति-  
क्रमे । स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात् स्नि-  
ग्धविरेचनम् ॥ १०६ ॥

रक्तगुल्म में दश मास ध्यतीत होने पर

रोगिणी को स्नेह और स्वेद प्रदान करके स्निग्ध विरेचक औषध देवे ॥ १०६ ॥

शताह्वा चिरविल्वत्वग्दारुभार्गीकणो-  
द्भवः । कल्कः पीतो हरेद्गुल्मं तिलका-  
थेन रक्तजम् ॥ १०७ ॥

सोया, कंजे की छाल, देवदारु, भारंगी, पीपरि इन औषधों का कल्क बनाकर तिल के काथ के साथ सेवन करे तो रक्तगुल्म आराम होता है मात्रा कल्क ४ माशा काथ ४ तोला ॥ १०७ ॥

तिलकाथो गुडव्योषद्दिगुभार्गीयुतो  
भवेत् । पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च  
योपिताम् ॥ १०८ ॥

पुराना गुड, त्रिकटु, हींग और भारंगी के कल्क का तिल के काथ के साथ सेवन करने से रक्तगुल्म नष्ट होता है और मासिक धर्म की प्रवृत्ति होती है मात्रा-कल्क ४ माशा कल्क ४ तोला ॥ १०८ ॥

सक्षारच्यूपयं मद्यं प्रपिवेदस्रगु-  
ल्मिनी । पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः  
पिवेच्च सा ॥ १०९ ॥

जवाखार और त्रिकटु के चूर्ण के साथ मद्य का सेवन करने से अथवा पलाशक्षार-युक्त जल में सिद्ध किये हुए घृत का पान करने से रक्तगुल्म रोग नष्ट होता है ॥ १०९ ॥

उप्यौर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृद्रो-  
हितः । न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिवि-  
शोधनम् ॥ ११० ॥ क्षारेण युक्तं पल्लं  
सुधाक्षीरेण वा पुनः । रुधिरैऽतिमृत्ते तु  
रक्तपित्तहरी क्रिया ॥ १११ ॥

दन्ती, गुदादि कृष्णविरेचन द्रव्य के द्वारा गुल्म का भेदन करके पश्चात् रक्तप्रदर के समान

१—योगरत्नाकरे—दिगुस्थाने घृतप्रक्षेपो विहितः ।



चिकित्सा करना रज्जुगुल्म में हितकर होता है । यदि इससे गुल्म का भेदन न हो तो तिल के ककक में जवाखार अथवा थूहर का दूध मिलाकर सेवन कराना चाहिये । यदि इससे अधिक रज्जुघ्राव होने लगे तो रज्जुपित्तनाशक चिकित्सा करे ॥ ११०-१११ ॥

भल्लातकात् कल्ककपायपक्वं सर्पिः  
पिवेच्छर्करया विमिश्रम् । तद्रज्जुगुल्मं  
विनिहन्ति पीतं बलासगुल्मं मधुना समे-  
तम् ॥ ११२ ॥

भिलावा के कल्क और हाथ में यथाविधि घृत सिद्ध करके उसमें चीनी मिलाकर सेवन करे तो रज्जुगुल्म और मधु मिश्रित कर सेवन करे तो कफजन्य गुल्म धाराम होता है ॥ ११२ ॥

पञ्चानन रस ।

पादांशकतुत्थश्च<sup>१</sup> गन्धं जैपाल-  
पिप्पली । आरग्वधफलान्मज्जा वज्री-  
क्षीरेण भावयेत् ॥ ११३ ॥ धात्रीरस-  
युतं खादेद्रज्जुगुल्मप्रशान्तये । चिश्वाद-  
लरसञ्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ११४ ॥

पारा, त्रितया, गन्धक जमालगोटा, पीपरि और अमलतास का गूदा इनको थूहर के दूध में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे । छाँवले के रस के साथ या इमली की पत्तियों के रस के साथ सेवन करे । पथ्य में दही और भात खावे । इसके द्वारा रज्जुगुल्म रोग दूर होता है ॥ ११३-११४ ॥

गुल्म रोग में पथ्य ।

स्नेहः स्वेदो विरेकश्च वस्तिर्वाहृ शिरा-  
व्यधः । लङ्घनं वसिराभ्यद्र स्नेहः पक्वे  
तु पाटकम् ॥ ११५ ॥ संवत्सर समुत्पन्नाः  
कणा रज्जु शालयः । खडः कुलत्थ यूपश्च  
धन्वमांसरसः सुरा ॥ ११६ ॥ गुणामना-  
याश्चपयो मूढ्रीका च परूपकम् । खनूरं

दाडिमं धात्री नागरद्गाम्लवेतसम् ॥ ११७ ॥  
तक्रमेरण्ड तैलं च लशुनं बालमूलकम् ।  
पतूरा वास्तुके शिशु यवक्षारो हरीतकी ॥  
११८ ॥ रामठं मानुलुङ्गं च ज्यूपणं सुरभी  
जलम् । यदन्नं स्निग्धमुष्णं च बृंहणं  
लघु दीपनम् ॥ ११९ ॥ वातानुलोमनं  
चैव पथ्यगुल्मेनृणां भवेत् ॥ १२० ॥

स्नेहन स्वेदन धिरेचन वस्तिकर्म बाहुकी नसभेदना लंघन, वत्तीप्रयोग, मालिश स्नेहपान, गुल्म पकने पर चीरफाड़, एक वर्ष पुराने अगहनी चावल खडयूप, कुलथी का यूप, जंगली पशु पत्तियों का मांस, रस, मदिरा, गौदूध बकरी का दूध, मुनका फालसा, खजूर, अनार, छाँवलों नारगी, अमलवेत मटा, अण्डी का तेल, लहसन, छोटी मूली, पत्तूर बधुआ, सहजने की फली जवान्दार, हरद हॉग, बिजौरा नीबू, त्रिकुटा गौमूत्र चिकना, गर्म पीष्टिक हल्का जड़दी पचनेवाला, अग्निदीपक वात अनुलोमक भोजन ये सब गुल्म रोग में पथ्य है ॥ ११५-१२० ॥

गुल्म रोग में अपथ्य ।

वातकारीणि सर्वाणि विरुद्धान्य  
शनानि च । वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् मधु-  
राणि फलानि च ॥ १२१ ॥ शुष्क  
गाकं शमीधान्यं विष्टम्भीनि गुरुणि च ।  
अधोवात शकृन्मूत्रथ्रम श्वासान्मु धार-  
णम् ॥ १२२ ॥ वमनं जलपानं च गुल्म  
रोगी परित्यजेत् ॥ १२३ ॥

सभी घातकारक अन्न परस्पर विरुद्ध अन्न, सुखाया हुआ मांस, मूली, मण्डली, मसुरफळ सूखा शाक शमीधान्य, विष्टम्भकारक तथा गुरुवाक, पदार्थ मलमूत्रादि के वेगों का रोकना वमन तथा जलपान गुल्मरोगी के लिए हानिकारक है इनको छोड़ देना चाहिए ॥ १२१-१२३ ॥

वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शकृन्गाकानि

वैदलम् । न खादेच्चालुकं गुल्मी मधुराणि  
फलानि च ॥ १२४ ॥

इति भैषज्यर० गुल्माधिकारः समाप्तः

शुष्कमांस, मूली, मल्ली, शुष्कशाक, दाल,  
आलू और सुमधुर फल गुल्म रोगी के लिये  
अप्य है ॥ १२५ ॥

इति श्रीपं सरयूमसादित्रिपाठिविरचितार्थो  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायानं व्याख्यायां  
गुल्माधिकारः समाप्तः ।

अथ उदावर्त्ताधिकारः ।

तत्र उदावर्ते ।

त्रिटृप्तसुधापत्रतिलादिशाकग्राभ्यौद-  
कानूपरसैर्यवान्मम् । अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्र-  
विद्भिरद्यात् प्रसन्नागुडशीधुपायी ॥ १ ॥

निसोय, सेंडु का पत्ता, तिल आदि का  
शाक तथा ग्राभ्य, औदक और आनूप मांस कारस,  
जौ एवं मूत्रकारक और विरेचक अन्यान्य सब  
द्रव्य उदावर्त रोग में लाभदायक होते हैं । इस  
रोग में प्रसन्ना और गुड का शीधु विशेष लाभ-  
दायक हैं ॥ १ ॥

वातादिजनित उदावर्तों में क्रिया ।

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नस्य  
शस्यते । पुरीपजे तु कर्त्तव्या विधिराना-  
द्विकस्तु यः ॥ २ ॥

वायुजन्य उदावर्त रोग में स्नेह और स्वेदन  
करने के बाद निरूह क्रिया करनी चाहिए ।  
मलनिरोधजन्य उदावर्त में आनाहोत्र क्रिया  
लाभदायक होती है ॥ २ ॥

विद्विघातसमुत्थे तु विद्भेचन्नं तथौ-  
पधम् । वत्स्यभ्यङ्गावगाहारेच स्वेदो व-  
स्तिर्हितो मतः ॥ ३ ॥

मलवेग के रोकने से पैदा हुए दूसरे उदावर्त में  
भेदक औपध, वर्ति, अभ्यङ्ग, अवगाहन स्वेदन  
तथा वस्तिक्रिया हितकर हैं ॥ ३ ॥

व्योपादि काथ ।

सव्योपं पिप्पलीमूलं त्रिटृदन्ती च  
चित्रकम् । तत्कार्यं गुडसम्मिश्रं पायये-  
त्प्रातरुत्थितः ॥ ४ ॥ उदावर्त्तानाहगुल्म-  
शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ५ ॥

त्रिकुटा, पीपलामूल, निसोतं, दन्तीमूल,  
चित्रक भिलाकर २ तोले । पाक के लिये जड़  
३२ तोले, वचा हुआ काथ ८ तोला । इस काथ  
में गुड डालकर प्रातःकाल पीने से उदावर्त,  
आनाह, गुल्म, सूजन तथा पाण्डु आदि रोग  
अच्छे होते हैं ॥ ४-५ ॥

नाराचचूर्णं ।

खण्डफलं त्रिटृतासममुपकुल्या कर्ष-  
चूर्णितं श्लक्ष्णम् । प्राग् भोजने च समधु  
तोलैकार्द्धं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ६ ॥ एतद्वाढ-  
पुरीपे पित्ते कफे च विनियोज्यम् । स्वादु-  
र्त्पयोग्योऽयं चूर्णो नाराचको नाम्ना ॥ ७ ॥

खण्ड ४ तोला, निसोय ४ तोला और पीपरि  
का चूर्ण एक तोला । इन सब द्रव्यों को एकत्र  
खरल करके रख लेवे । भोजन के पूर्व ६ माशा  
से एक तोला तक की मात्रा में सेवन करना  
चाहिए । मल की कठिनता में तथा कफ और  
पित्त के विकार में इस चूर्ण का प्रयोग करना  
चाहिए । यह नाराचचूर्ण राजाओं के सेवन  
करने योग्य सुस्वादु होता है ॥ ६-७ ॥

द्विग्वादिवर्त्ति ।

द्विगुमात्तिकसिन्धूत्थैः पित्तैर्विनि-  
र्मिताम् । घृताभ्यक्तं गुदे न्यस्येदुदावर्त्त-  
विनाशिनीम् ॥ ८ ॥

हींग, शहद तथा सेंधा नमक, इन्हें एकत्र  
कर घराघर मात्रा में पीसकर बत्ती बनाये और

इस यत्ती के ऊपर घृत पुरइकर गुदा में रख दे  
इससे उदावर्त अच्छा होता है ॥ ८ ॥

फलवर्ति ।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च  
सर्पपाः । गुडक्षीरसमायुक्ताः फलवर्तिरि-  
होच्यते ॥ ९ ॥

मैनफल, पीपल, कूठ, वच, सक्केद सरसों  
इन्हें इक्कठा कर गुड तथा दूध के साथ पीसकर  
यत्ती बनावे । इसे फलवर्ति कहते हैं । गुदा में  
फलवत्ती को रखने से उदावर्तरीग अच्छा  
होता है ॥ ९ ॥

गुडाष्टक ।

सव्योपिप्पलीमूलं त्रिष्टदन्ती च  
चित्रकम् । तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्मात-  
रुत्थितः ॥ १० ॥ एतद् गुडाष्टकं नाम्ना  
पलवर्णाग्निवर्द्धनम् । उदावर्तहीहगुल्म-  
शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ११ ॥

त्रिकुटा, पीपलामूल, निसोत, इत्लीमूल,  
चित्रक, हरएक के चूर्ण को बराबर मात्रा में  
मिलाकर इस सब चूर्ण के बराबर गुड़ मिला  
ले । इसे प्रातःकाल उचित मात्रा में सेवन करने  
से उदावर्त, प्लीहा, गुल्म, मूजन, पायडु आदि  
रोग अच्छे होते हैं । और बल-वर्ण तथा अग्नि  
बढ़ती है । मात्रा—१ मास से २ मासो  
तक ॥ १०-११ ॥

मूत्रावरोधज उदावर्त में एर्वाखीजादियोग ।  
एर्वाखीजं तोयेन पिवेद्वा लवणा-  
न्वितम् । पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसम-  
थापि वा ॥ १२ ॥

जरा-सा नामक मिलाकर ककड़ी के बीजों को  
जल के साथ पीने से अथवा लघुपञ्चमूल से सिद्ध  
दूध अथवा द्राक्षारस के पीने से मूत्ररोध दूर  
होकर उदावर्त अच्छा होता है ॥ १२ ॥

धवक्षारादि योग ।

यवक्षारं सितायुक्तं पिवेद्वा मृद्विकारसैः ।

वरीकूपमाण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पिवे-  
दथ ॥ १३ ॥

जरासार ४ रत्ती को ४ रत्ती खॉड के साथ  
मिलाकर खंगूर के रस के साथ पीने से अथवा  
शतावरी के रस को खॉड के साथ अथवा पेटे के  
रस को खॉड के साथ पीने से मूत्ररोध दूर  
होकर उदावर्त नष्ट होता है ॥ १३ ॥

किंशुककाथसेको वा कवोष्णो मूत्र-  
रोधहा । अत्र सर्वं प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्रारम-  
रीविधम् ॥ १४ ॥

जरा गर्म टेंसू के साथ से मसाना पर सेक  
करने से मूत्ररोध अच्छा होता है । पेशाब रुकने  
से उत्पन्न उदावर्त में मूत्रकृच्छ्र और अरमरी रोग  
में कहे हुए उपचार करने चाहिए ॥ १४ ॥

नाराचरस ।

सूतगन्धकतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ।  
टङ्गनं पिप्पली शूठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्र-  
येत् ॥ १५ ॥ सर्वतुल्यानि वीजानि  
दन्तीनां निस्तुषाणि च । स्नुहीक्षीरेण  
संयुक्तं मर्दयेद्विसत्रयम् ॥ १६ ॥ नारि-  
केलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः ।  
तत्कल्कं पाचयेत् क्षिप्रं खल्लयित्वा निधाप-  
येत् ॥ १७ ॥ तन्मध्ये नाभिलेपेन राज-  
योग्यं विरेचयेत् । घटिका लेपमात्रेण दश-  
वारं विरेचयेत् ॥ तद्गन्धघ्राणमात्रेण  
विरेको जायते ध्रुवम् ॥ १८ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, काला  
मिरिच १ तोला, सोहागा भुना हुश्ना २ तोला,  
पीपरि २ तोला, सोंठ २ तोला और धिलके  
रहित शुद्ध जमालगोटा ६ तोला एकत्र कर थूहर  
के दूध में तीन दिन पर्यन्त खरल करके नारियल  
के मध्य में रखे और ऊपर सृष्टिका का लेप  
करके तीस आँच में पकावे । पश्चात् खरल  
करके रख लेवे । नाभि के मध्य में इसका लेप  
करने से राजाश्रों के योग्य विरेचन होता है ।

एक घटी ( २४ मिनट ) पर्यन्त लेप रखने से दश दस्त होते हैं तथा इसके गन्धमात्र से भी विरेचन हो जाता है ॥ १५-१८ ॥

त्रिवृत्कृष्णाहरीतकयो द्विचतुःपञ्च-  
भागिकाः । गुडिका गुडतुल्या सा विद्-  
विबन्धगदापहा ॥ १६ ॥

निसोत २ तोला, पीपरि ४ तोला, हरीतकी ५ तोला और पुराना गुड़ ११ तोला एकत्र कर गोली बनाये । इससे मलवद्धता आदि विकार दूर होते हैं । मात्रा-६ मासे १ तोला तक ॥ १६ ॥

उदावर्त में पथ्य ।

स्नेह स्वेद विरेकाश्च वस्तयः फल-  
वर्चयः । अभ्यङ्गश्च यवाः सर्व सृष्टविण  
मूत्र भारुतम् ॥ २० ॥ ग्राम्भ्यौदकान्नय  
रसारुचुतैलं च वारुणी । बालमूलक  
सम्पाक त्रिवृत्तिल सुधादलम् ॥ २१ ॥  
शुद्धवेरं मातुलुङ्गं यवचारो हरीतकी ।  
लवङ्गं रामठंड्राक्षा गोमूत्रं लवणानि च ॥  
२२ ॥ इति पथ्यमुदावर्ते नृणामुक्त्वं मह-  
र्षिभिः ॥ २३ ॥

स्नेहन स्वेदन विरेचन, धरित, फलवर्ति तैलादिमर्दन मलमूत्र वायु आदि सब वेगों को लाने वाले पदार्थ, ग्राम्भ्य (पालतू या गाँवों में रहने वाले जानवर) जीव और ग्राम्भ्य अधिक जल वाले प्रान्तों में रहने वाले पशुपक्षियों का मांसरस शंठी का तैल, शराव छोटी मूली अमलतास निशोथ तिल थूहर के पत्ते अद्रक्ष छोटी इलायची बिजौरा नींबू जवाखार, हरद लीग हाँग दाख गोमूत्र सब प्रकार के नमक में सथ पदार्थ उदावर्त में लाभदायक हैं ॥ २०-२३ ॥

उदावर्त में अपथ्य ।

वमन वेगरोधं च शमीधान्यानि कोद्र-  
वम् । नालीतशाकं शालुकं जाम्बवं कर्कटी-  
फलम् ॥ २४ ॥ पिण्याक भावुकं सर्व

करीरं पिष्ट्वेकृतम् । विष्टम्भीनि विरुद्धानि  
कपायाणि गुरुणि च ॥ २५ ॥ उदावर्ते  
प्रयत्नेन वर्जये मतिमान्नरः ॥ २६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदावर्त्ता-  
धिकारः समाप्तः ।

वमन मलमूत्र आदि वेगों को रोकना शमीधान्य (मापकलाय आदि) कोदों, नालिता-शाक, शालूर (कुमुदादिसार फूल) जामुन ककड़ी फल पिण्याक (खली) सब प्रकार के शालू चासक अरु मिट्टी के बने पदार्थ विबंध करने वाले पदार्थ, विरुद्ध खानपान कपाय रसवाले पदार्थ और भारी पचनेवाले पदार्थ उदावर्त में अपथ्य हैं ॥ २४-२६ ॥

इति श्री० सरपुसदात्रिपाठिविरोचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाय्या व्याख्याया-  
मुदावर्त्ताधिकारः समाप्तः ।

अथ आनाहाधिकारः

त्रिवृद्धरीतकीश्यामः स्नुहीनीरेण  
भावयेत् । स्नुहीमूलस्य चूर्णं वा पिबे-  
दुष्णेन वारिणा ॥ १ ॥

निसोथ, हरद और काली निसोथ के चूर्ण में थूहर के दूध की भावना देकर गुटिका बनावे । उसका गरम जन के साथ सेवन करने से अथवा थूहर की जड़ के चूर्ण का उष्ण जल के साथ सेवन करने से आनाह रोग शीघ्र आराम होता है ॥ १ ॥

त्रिकुडादि वर्त्ति ।

वर्त्तिस्त्रिकुडकसैन्धवसर्पपृष्ठधूमकुष्ठ-  
मदनफलैः । मधुनि गुडे वा पक्त्वा पाथ्वी-  
रिताङ्गुष्ठपरिमाणा ॥२॥ वर्त्तिरियं दृष्ट-

१—वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठास्त्वानाहमेदिका  
इति पाठान्तरम् ।

फला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता ।  
श्रानाहोदावर्चमशमनी जठरगुल्मनिवा-  
रिणी च ॥ ३ ॥

सर्पपः श्वेतः मदनफलमेकं त्रिकट्वा-  
दीनां मिलित्वा कर्पः मधुनः पलं पक्त्वा  
वर्त्तिः कर्त्तव्येत्येके । त्रिकट्वादिद्रव्यं संगृह्य  
गुडे दत्त्वा पक्त्वा वर्त्तिः कार्थ्येति केचित् ॥

त्रिकटु, संधा नमक, सफेद सरसों, गृह धूम,  
मैनफल (मैनफल एक लिखा है किन्तु वह तोल  
में नोला भर हो) और कूट १ तोला इन  
द्रव्यों को ४ तोला मधु या गुड के साथ पाक  
करके अंगूठे के बराबर की बत्ती बनावे । इस  
बत्ती को घृताङ्ग करके गुदा के रंध्र में धीरे-धीरे  
प्रवेश करने से अफरा, उदावर्त, जठर और गुल्म  
रोग नष्ट होता है । यह त्रिकटुवादि वर्त्ति कई  
वार प्रयोग द्वारा अनुभूत है ॥ २-३ ॥

स्थिराद्य घृत ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः सम्पाक-  
पृतीककरञ्जयोरच । सिद्धः कपायो द्विप-  
लांशिकानां प्रस्थो घृतात्स्यात्प्रतिरुद्ध-  
वाते ॥ ४ ॥

लघुपञ्चमूल, पुनर्नवा, अमलतास का फल  
कक्षा हर एक ८ तोला । काथ के लिए जब  
२५६ तोला । बचा हुआ काथ ६४ तोला, इस  
काथ के साथ १२८ तोला घृत पकाकर सेवन  
करने से उदावर्त आदि रोग अच्छे होते हैं ।  
मात्रा-आधा तोला ॥ ४ ॥

शुष्कमूलाद्य घृत ।

मूलकं शुष्कमाद्रंश्च वर्षामूलपञ्चकम् ।  
ओरवतफलश्चापि पिष्ट्वा तेन पचेद् घृतम् ।  
तत्पीतमात्रं शमयेदुदावर्चमसंशयम् ॥ ५ ॥

सूली मूली, अदरक, पुनर्नवा, लघुपञ्चमूल,  
अमलतास, इनके कक से विधिपूर्वक घृत पाक  
करना चाहिए । इसके पीने मात्र से ही उदावर्त  
रोग अच्छा होता है । मात्रा-आधा तोला ॥५॥

उदयमार्त्तंड रस ।

हिङ्गुलं जयपालटङ्कणविपाण्यन्त्यार्ध-  
भागोत्तरं, सर्वं खल्वतले विमर्द्य मतिमान्  
गुञ्जामितं वै ददेत् । मार्त्तण्डोदयको  
ज्वरादिसहितान् यः सोदराध्माङ्गके,  
पाण्डुवाजीर्णगदेऽनुपानवशतः पथ्यं च  
तक्रौदनम् ॥ ६ ॥ व्योपेणार्द्रसेन तत्र  
सितया युक्तो ज्वरे दारुणे, मान्ये गुल्म  
कफानले च पवने शूले च शोफोदरे ।  
वातासे स्वरवर्णकुष्ठगुदजान् रोगानशेषा-  
ञ्जयेत् ॥ ७ ॥

सिंगरफ ४ तोला, जमालगोटा २ तोला,  
सुहागा १ तोला, बच्छनाग आधा तोला, इन्हें  
इकट्ठाकर खरल में घोटका एक रत्ती की मात्रा  
में सेवन करना चाहिए । यह मार्त्तण्डोदय रस  
ज्वर आदि उपद्रवसहित उदररोग, अफरा,  
पाण्डु, अजीर्ण आदि रोगों में योग्य अनु-  
पानों के साथ सेवन कराने में नष्ट करता है ।  
अनुपान-त्रिकुटा, अदरक का रस, खाँद ।  
इसके सेवन से कठिन ज्वर, मन्दाग्नि, गुल्म,  
कफरोग, पित्तरोग, वातरोग शूल, सूजन, उदर-  
रोग, वातरङ्ग, स्वरभेद, विवर्णता, कोढ़ तथा  
बवासीर आदि रोग अच्छे होते हैं । पथ्य-खाँद  
तथा भात ६-७ ॥

गृहदिच्छामेदो रस ।

शुद्धं पारदटङ्कणं समरिचं गन्धारम-  
तुल्यं त्रिष्टुद्, विरवा च द्विगुणा' ततो  
नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत् । खल्ले दण्ड-  
गुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः,  
स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छाव-  
शाद्देकः ॥ ८ ॥ गुञ्जकममितो रमो  
हिमजलैः संसेवितो रेचयेत्, यापन्नोप्य-  
जलं पिवेदपि वरं पथ्यश्च दध्योदनम् ।  
आमं सर्वभवं सुजीर्णमुदरं गुल्मं विशालं

हरेत्, वद्वेदीप्तिकरो वलामहरणः सर्वा-  
मयध्वंसनः ॥ ६ ॥

शुद्ध पारा, सुहागा, कालीमिर्च, गन्धक  
हरण्ड १ भाग, निसोत २ भाग, सोंड २ भाग,  
शुद्ध जमालगोटा १ भाग इन्हें पिघिपूर्वक दो  
घण्टे तक रारल में मदार के पत्ते के रस से  
घोटकर गोबर के चूर्ण की अग्नि से गृधुपाक करे,  
याद में १ रत्ती की गोली बनाकर शीतल जल  
से रोगी को सेवन करावे । याद में आचरयकता-  
नुसार दस्त होने पर गरम जल पीवे जिससे  
अधिक दस्त न हों । पथ्य--दही, चावल । यह  
रस आमदोष, पुराना उदररोग, गुल्म तथा कफ  
रोगों को धूर करता तथा अग्नि को दीप्त  
करता है ॥ ८--६ ॥

आनाह में पथ्य ।

उदावर्ते हितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा ।  
आनाहोऽपि यथायोग्यं सेवयेन्मति-  
मान्नरः ॥ १० ॥

उदावर्त में पाचन औषध और उपवास लाभ-  
दायक है । अफरा के लिए उपयुक्त पाचक, वाता-  
नुलोमक द्रव्यों का सेवन करना चाहिए ॥ १० ॥

अपथ्यानि प्रदिष्टानि मान्गुदावर्त्तिनां  
प्रदा । आनाहार्त्तः परिहरेत् तानि सर्वाणि  
यन्नतः ।

विष्टम्भीनि विरुद्धानि कपायाणि  
गुरुणि च । उदावर्त्ते प्रयत्नेन वर्जयेन्मति-  
मान्नरः ॥ ११ ॥

उदावर्त रोग में जो अपथ्य कहा है वह सब  
आनाहरोग में भी अपथ्य है ।

इति भैषज्यरत्नावल्यामानाहाधिकारः  
समाप्तः ।

विष्टंभी, बीर्यविरुद्ध, कपिले तथा भारी द्रव्यों  
को एकदम छोड़ देना चाहिए ॥ ११ ॥

इति श्रीपथिदत्तसरयूपसादीश्रपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायया व्याख्याया-  
मानाहाधिकारः समाप्तः ।

अथ अनावरोध अन्त्रवृद्धि-  
रोगाधिकारः ।

रुद्धान्प्रगद का लक्षण ।

तोदः पुरीपसंरोध आध्मानान्नेपकौ  
तथा । नाभावाकर्षणं वान्तिः समला च  
वलक्ष्यः ॥ १ ॥ हिकोदरे व्यथा घोरा  
वद्विनाशोऽरतिस्तथा । चिह्नानीमानि  
जायन्ते गदे रुद्धान्त्रसंज्ञके ॥ २ ॥

रुद्धान्त्रनामक रोग में अर्थात् अन्त्रावरोध में  
उदर में सूचीवेध के समान पीड़ा, अत्यन्त  
मलरोध, अध्मान (पेट फूलना), उदर की  
सय पेशियों का आच्छेप, नाभिप्रदेश में खिंचाव,  
मलयुक्त धमन, यलक्ष्य, हिचकी आना, पेट में  
अत्यन्त पीड़ा, भूख न लगना और देखेनी आदि  
लक्षण उपस्थित होते हैं ॥ १-२ ॥

रुद्धान्त्रगद की चिकित्सा ।

विरेचनं वस्तिकर्म विविच्य परियो-  
जयेत् । स्वेदक्रियाश्च कुर्वीत गदे रुद्धान्त्र-  
नामनि ॥ ३ ॥

अन्त्रावरोध रोग में भलीभांति विचारकर  
विरेचन और वस्तिक्रिया का प्रयोग करना  
चाहिए । तत्परचात् उदर पर स्वेदन-क्रिया करने  
से विशेष लाभ होता है ॥ ३ ॥

सुरा ससलिला देया फणिकेनश्च  
युक्तिः । ततः शाम्यन्ति सहसा कुञ्चना-  
न्नेपवेदनाः ॥ ४ ॥

जलमिश्रित सुरा और अफीम का सेवन करने  
से आकुञ्चन, आच्छेप और वेदना आदि की शान्ति  
होती है । अफीम छः-छः घंटे के बाद आधी-  
आधी रत्ती देनी चाहिए ॥ ४ ॥

पिष्टा कनकपत्राणि खाखसस्य फलं  
तथा । उष्णीकृत्याम्लयोगेनोदरं तेन प्रले-  
पयेत् ॥ ५ ॥

धतूरे के पत्ते और पोस्ता के फल को कांजी में पीसकर तथा गरम पुरके नाभि पर लेप करने से विशेष लाभ होता है ॥ ५ ॥

एवं बहुविधैर्ध्याधिः कर्मभिश्चेन्न शाम्यति । ततः कुट्याद्भिपग्यन्नात्सलिलेनान्त्रपूरणम् ॥६॥ संवेशितमयोचानमातुरं वलिभिर्धृतम् । उन्नितम्बमवाक्स्कन्धं सान्त्वयित्वा च सान्त्वयनः ॥ ७ ॥ सुदूरमन्त्रमध्येऽस्य नाडी दीर्घा प्रवेशयेत् । तूलेन वस्त्रखण्डैर्वा पायुरन्ध्रं निरुध्य च ॥ ८ ॥ वस्त्रियोगेनान्त्रमध्ये तोयमुष्णं प्रयोजयेत् । संशूनमुदरं दृष्ट्वा निरर्त्तं भिपकृततः ॥ ९ ॥ वस्त्रिदेशाद्धारभ्योत्पीडयेदुदरं क्रमात् । वक्रत्यान्त्रस्य सारल्यं कर्मणानेन जायते ॥ १० ॥ सलिलेनेव सूनेनपलाष्टकमितेन च । वस्त्रियोगप्रयुक्तेन रुद्धान्त्रत्वं विनश्यति ॥ ११ ॥

इस प्रकार की अनेक क्रियाओं के करने पर भी यदि लाभ न हो तो जल के द्वारा अन्त्र को पूर्ण कर देवे। जिसकी विधि यह है—रोगी को चित बिटा देना चाहिए। नितम्ब ऊँचे कर देने चाहिए और बलवान् मनुष्य उसे पकड़े रहे। तथा सन्तोषजनक वचनों से सान्त्वना करके अन्त्र के भीतर दूर तक एक लम्बी नली का प्रवेश करावे। रई या वस्त्र के टुकड़ों से गुदा के छिद्र को बन्द करके अन्त्र में गरम जल की पिचकारी देवे। प्रथिष्ठ हुए जल के द्वारा पेट फूल जाने पर पिचकारी देना बन्द कर देवे और नली को सावधानी से निकाल ले, किन्तु गुदा के छिद्र को और भी अच्छी तरह बन्द करे। तदनन्तर वस्त्रिप्रदेश से प्रारम्भ करके क्रमशः पेट के ऊपरी भाग को दयावे। देसा करने से टेढ़ी आँतें सीधी ही जाती हैं। जल की पिचकारी के समान पारा की पिचकारी देने से अधिक लाभ होता है। ३२ तोला पारा की पिचकारी देनी चाहिए ॥६-१३ ॥

अत्र शस्त्रक्रिया प्राणनाशाय प्रायशो भवेत् । आतुराणां सहस्रेषु कस्यचित्स्याच्छुभाय वा ॥ १२ ॥ द्रवोपयोगो रुद्धान्त्रगदे न स्याद्धिताय हि ॥ युक्त्या तद्दिने दद्यात्ततः सान्द्ररसादिकम् ॥ १३ ॥

इस रोग में शस्त्र-क्रिया करने से प्रायः रोगी मर ही जाते हैं। तथा हजारों रोगियों में कदाचित् कोई अच्छा भी हो जाय। पतली चीज इस रुद्धान्त्र-रोग में लाभदायक नहीं होती, धतः रुद्धान्त्र रोगी को गाढ़ा मांसरस एवं पिचकार-पूर्वक अन्त्याय पथ्य वस्तु भोजनाय देवे ॥ १२-१३ ॥

विन्दुघृतं च यत्प्रोक्तमुदरे सविधानतः । तस्योपयोगो रुद्धान्त्रे गुल्मिस्तान्त्रेऽपि जायते ॥ १४ ॥

उदररोग-प्रधिकार के विन्दुघृत का प्रयोग रुद्धान्त्र एवं गुल्मिस्तान्त्र रोग में भी किया जाता है। इसको नाभि के चारों ओर विकृत जगह पर मालिश करने से (यदि मलावरोध अधिक हो तो पिलाना चाहिये) मलावरोध अच्छा होता है। जैसे ही मल अपने स्थान से चलकर नीचे को जाता है तब रके हुये मूर्च्छित गुल्मिस्त अन्त्र भाग को सीधा कर देता है ॥१४॥

अन्त्रवृद्धि ।

विविधैः कर्मभिः क्रूरैरन्त्रस्यावयवो वृत्तिम् । भिस्त्रादरौ निःसरति सान्त्रवृद्धिनिगद्यते ॥ १५ ॥

जोरों से उछलना, कूटना और दौड़ना आदि विविध रद्दकर्मों से उदरवृत्ति (उदरस्थि छिद्र) (Inguinal Canal) का भेदन करके आँत निकल आती है, इसी को अन्त्रवृद्धि (Hernia) कहते हैं ॥ १५ ॥

अन्त्रवृद्धि की चिकित्सा ।

अन्त्रवृद्धेः प्रशान्त्यर्थं धार्या कुण्डल-बन्धनी । स्वेदभेदादिकर्माणि कर्त्तव्यानि

अन्नवृद्धि की शान्ति के लिए कुण्डल-  
यन्त्रिणी (पेटी Truss) को धारण करे ।  
और स्वेदन, भेदन आदि शक्यक्रम द्वारा चिकित्सा  
करनी चाहिए ॥ १६ ॥ १६ ॥

मुष्ककोपमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विच-  
क्षणः । वातवृद्धिक्रमं कुर्यात्स्वेदस्तत्रा-  
ग्निना हितः ॥ १७ ॥

आन्त्रवृद्धि जय तक अशक्यकोप में प्राप्त न  
हुई हो तब तक वातवृद्धि में कहीं चिकित्सा  
करनी चाहिये, यहाँ पर अग्नि से स्वेदन करना  
हितकर है ॥ १७ ॥

रेचनं मूत्रकृद्यच्च यद्वातल्यानुलोम-  
नम् । तत्सर्वं वृद्धिरोगेषु भेषजं परियोज-  
येत् ॥ १८ ॥

वृद्धि रोगों में रेचन, मूत्रल एव वातानुलोमन  
करनेवाली औषध का सेवन करना चाहिये ॥ १८ ॥

वातवृद्धौ पिवेत्स्निग्धं यथाप्राप्तं विरे-  
चनम् ॥ १९ ॥

वातजन्य अशक्यवृद्धि में समय के अनुसार  
प्राप्त स्निग्ध विरेचन पीना चाहिए ॥ १९ ॥

पैत्तिकमुष्कवृद्धिचिकित्सा ।

पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत् ।  
जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्तसमुद्भवे २० ॥

पित्तग्रन्थि के चिकित्साक्रम के अनुसार ही  
पित्तवृद्धि की चिकित्सा करनी चाहिए । पैत्तिक  
वृद्धि में जोंक द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिए २०

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे  
हरेत् । पिवेद्विरेचनं चापि शर्कराक्षौद्र-  
संयुतम् ॥ २१ ॥

रक्तजन्य वृद्धि में बारबार जोंक द्वारा रक्त  
निकालना चाहिए । इसमें खोंड़ तथा शहद से  
युक्त रेचन औषध पीनी चाहिए ॥ २१ ॥

शीतमालेपनं सर्वं सर्वं पित्तहरं तथा ।  
पित्तवृद्धिक्रमं कुर्यादामे पक्वे चरत्तजे २२

रक्तजन्य वृद्धि में शीत प्रलेप लगाना चाहिए  
और सम्पूर्ण पित्तहर कर्म करना चाहिए ।  
रक्तजन्य आमवृद्धि में एवं पक्ववृद्धि में कहे  
गये चिकित्सा-क्रम द्वारा चिकित्सा करनी  
चाहिए ॥ २२ ॥

लेपनं कटुतीक्ष्णोष्णं स्वेदनं रुक्षमेघ  
च । परिपेकोपनाहौ चसर्वमुष्णमिहेष्यते २३

कफज वृद्धि कटु, तीक्ष्ण एवं गरम लेप करना  
चाहिए । रुक्ष स्वेदन करना चाहिए । परिपेचन  
एवं उपनाह उष्ण होने चाहिए ॥ २३ ॥

मूत्रजवृद्धिचिकित्सा ।

संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ।  
सेविन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद् व्रीहि-  
मुखेन वै ॥ २४ ॥

मूत्रजन्य वृद्धि में स्वेदन कर घब्र से लपेट  
दे, जिससे चमड़ा मुलायम रहे । परचात् अशक्यकोप  
की सीधन को बचाकर उसके पास ही निम्न  
पार्श्व में व्रीहिमुख नामक शक्य से विरुद्ध कर  
द्रव को निकाल लेना चाहिए ॥ २४ ॥

पटोलैः नृपेणापि विधिना विहितं  
मृतम् । रुवुतैलेन संयुक्तमन्त्रवृद्धिं व्यपो-  
हति ॥ २५ ॥

विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए परवल एवं वासक  
काथ में अशकी का लेख मिलाकर पीने से  
अन्नवृद्धि अच्छी होती है ॥ २५ ॥

न्यग्रोधक्षीरलेपेन व्रध्नरोगो विन-  
श्यति ॥ २६ ॥

बड़ के दूध का लेप करने से व्रध्नरोग अच्छा  
होता है ॥ २६ ॥

हरीतक्यादि काथ ।

हरीतकी वचा शुण्ठी त्रिवृता स्पर्ण-  
पत्रिका । एलाद्वयं देवपुष्पं काथयित्वा  
जलं पिवेत् ॥ अनेन प्रशमं यान्ति व्रध्न-  
कासज्वरा ध्रुवम् ॥ २७ ॥



हरद, यश, सोंठ, निसोत, सनाय, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, लींग मिलाकर २ तोला काय के लिए जल ३२ तोला, रोप ८ तोला । इस काय के पीने से मूत्र, खाँसी तथा ज्वररोग अच्छे होते हैं ॥ २७ ॥

सौरेश्वर घृत ।

घृतं सौरेश्वरं योज्यं ब्रध्नवृद्धिनिवृत्तये ॥ २८ ॥

मूत्रवृद्धि के नाश के लिए सौरेश्वर घृत अन्तःप्रयोग कराना चाहिए ॥ २८ ॥

वातवृद्धिनाशयोग ।

गुग्गुलं रुचुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः । वातवृद्धिं निहन्त्यांशुचिरकालानुबन्धिनीम् ॥ २९ ॥

गुग्गुल को अरुटी के तेल से मिला गोमूत्र के साथ पीने से बहुत काल की वातवृद्धि अच्छी होती है ॥ २९ ॥

कफ की वृद्धि में विरेचन का योग ।

त्रिकटुत्रिफलाकाथं सत्तारलवणं पिबेत् । विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाशनम् ॥ ३० ॥

त्रिंशुटा, त्रिफला के काथ में जवाबहार और सेंधा नमक डालकर कफवृद्धि के नाश के लिए विरेचनार्थ देना चाहिए ॥ ३० ॥

त्रिफलाकाथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः । कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोत्थितम् ॥ ३१ ॥

त्रिफला के काथ में गोमूत्र को डाल प्रातः सेवन कराने से कफवातजन्य अस्वस्वियों की सृजन अच्छी होती है ॥ ३१ ॥

सरलागुरुकुष्ठानि देवदारु महौषधम् । मूत्रारनालसंयुक्तं शोथघ्नं कफवातनुत् ३२

सरलकाष्ठ ( चीठ की लकड़ी ), अगर, कुष्ठ, देवदारु, सोंठ इन्हें गोमूत्र और कौंजी के साथ पीसकर लेप करने से कफवातजन्य शोथ अच्छा होता है ॥ ३२ ॥

शिश्रुत्वक्सर्पपैलेपः शोथरलेष्मानिलापहः ॥ ३३ ॥

सहिजन की छाल तथा सरसों इन्हें इकट्ठा कर पीसकर लेप करने से कफवातज शोथ एवं वृद्धिरोग अच्छा होता है ॥ ३३ ॥

तैलमेरएडजं पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम् । आध्मानशूलोपचितामन्नवृद्धिजयेन्नरः ॥ ३४ ॥

सरसों के कक और काय के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किए हुए एरएडतैल का पान करने से आध्मान, शूल और अन्नवृद्धि रोग शान्त होता है ॥ ३४ ॥

रास्नायष्टचमृत्तैरएडवलारग्वधगोक्षुरैः । पटोलेन टपेणपि विधिना विहितं शृतम् ॥

रुचुतैलेन संयुक्तमन्नवृद्धिं व्यपोहति ३५ ॥

रास्ना, मुलेठी, गिलोय, एरएड-मूल, सरसों अभिलतास का गूदा, गोक्षुर, परबल या अरुसा के विधिपूर्वक सिद्ध किए हुए काय में एरएड का तैल मिलाकर पान करने से अन्नवृद्धिरोग धाराम होता है ॥ ३५ ॥

गन्धर्वहस्ततैलेन क्षीरेण विहितं शृतम् । विशालामूलजं चूर्णं वृद्धिं हन्ति न संशयः ॥ ३६ ॥

आमे लिखे गन्धर्वहस्त तैल या एरएड तैल और दुग्ध में इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण पकाकर सेवन करने से निःसदेह अन्नवृद्धि रोग दूर होता है ॥ ३६ ॥

वचासर्पकल्केन प्रलेपः शोथनाशनः । शिश्रुत्वक्सर्पपैलेपः शोथरलेष्मानिलापहः ॥ ३७ ॥

वच और सरसों अथवा सहिजन की छाल और सरसों पीसकर तथा गरम करके शोथ

१ ग्रन्थान्तरे तु वचासर्पकल्केन प्रलेपे वृद्धिनाशनः । लज्जाशुभ्रमलाम्यान्न लेपो वृद्धिहरः परः ॥ इति पाठः ।

की जगह लेप करने से शोथ और कफ-वात दोनों नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

वृद्धिवाधिका घटी ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत् । लौहं वज्रं तथा ताम्रं कांस्यञ्चाथ विशोधितम् ॥ ३८ ॥ तालकं तुत्थकञ्चापि तथा शङ्ख वराटकम् । त्रिकटु त्रिफला चयं विडङ्गं वृद्धदारुकम् ॥ ३९ ॥ कर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहजुषां वचाम् । एलावीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम् ॥ ४० ॥ एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत् । कपायेण हरीतक्या वटिकां टङ्कसंमिताम् ॥ ४१ ॥ एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह । अन्नवृद्धिरसाध्यापि तथ्यं नश्यति सत्वरम् ॥ ४२ ॥

शोधा हुआ पारा, गंधक, लोह, वज्र, ताम्र, कांसा, हरिताल, तृतीया तथा शंखभस्म, कौड़ी की भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, वायत्रिडंग, विघारा, कचुर, पिपरामूल, पादी, हाऊबेर, बच, इलायची के बीज, देवदारु और पाँचों नमक बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनावे । उस चूर्ण में हरीतकी क छाथ की भावना देकर तीन-तीन मासे की गोली बनावे । इस 'वृद्धिवाधिका घटिका' का जल के साथ सेवन करने से अन्नवृद्धिरोग तत्काल शान्त होता है मात्रा ३-रत्नी ॥ ३८-४२ ॥

अन्त्रेऽन्ये बहवो रोगा जायन्ते बहु-दुःखदाः । विविच्य भिषजा तत्र क्रिया कार्या विधानतः ॥ ४३ ॥

अन्त्र-रोग में अत्यन्त कष्टदायक अन्यान्य बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनकी विचार-पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४३ ॥

सर्वान्त्ररोगेषु भेषजानि ।

महोदधिऋस ।

रसं गन्धं तथा हेम वज्रविट्ठममौक्कि-

कम् । शृहीत्वा समभागेन मर्दयेत् त्रिफलाभ्युना ॥ ४४ ॥ ततो रक्किमिताः कुर्याद् घटीरक्ष्याप्रशोपिताः । एकैकां दापयेदासां यथादोषानुपानतः ॥ ४५ ॥ रुद्धान्त्रत्वमन्त्रवृद्धिं तथान्यानन्त्रजान् गदान् । वातपित्तकफोत्थारच सर्वान् हन्ति महोदधिः ॥ ४६ ॥

पारा, गंधक, सोना, हीरा, मूंगा, मोती इन सबको बराबर-बराबर लेकर त्रिफला के छाथ में घोटकर एक-एक रत्नी की गोली बनावे और उसकी छाया में सुखा लेवे । दोषानुसार अनुपान के साथ एक-एक घटी का सेवन करे । यह 'महोदधि रस' रुद्धान्त्र, अन्नवृद्धि तथा अन्न-जन्य अन्यान्य रोगों को नष्ट करता है । एवं वात, पित्त और कफजन्य समस्त रोगों को नष्ट करता है ॥ ४४-४६ ॥

शशिशेखर रस ।

लौहमभ्रञ्च सिन्दूरं मर्दयेत् कन्यकाभ्युना । अस्य रक्किमितं दद्यादन्त्ररोग-निवृत्तये ॥ ४७ ॥

लोह, अभ्रक और रससिन्दूर को घृत-कुमारी के रस में घोटकर एक-एक रत्नी की गोली बनावे । इस 'शशिशेखर-रस' के द्वारा अन्त्ररोग निवृत्त होता है ॥ ४७ ॥

रस राजेन्द्र ।

हिङ्गुलोत्थं रसं गन्धं केशराजाम्बु-शोधितम् । रसाद् हेमतारञ्च नागं हेमा-र्द्धकं तथा ॥ ४८ ॥ क्षिप्त्वा खल्लतले पश्चाद्वासाकाथेन भावयेत् । काकमाच्याश्चित्रकस्य निर्गुण्ड्याः कुटजस्य च ॥ ४९ ॥ स्थलपद्मस्योत्पलस्य सप्तकृत्वो द्वैः पृथक् । ततो रक्किमिताः कुर्याद्घटीरक्ष्यांशुशो-पिताः ॥ ५० ॥ अन्त्रजाश्लिखिलान् रोगान् सर्वदोषोद्भवांस्तथा । हन्त्ययं रसरजेन्द्रो मृगराजो यथा मृगान् ॥ ५१ ॥

हिङ्गुलोथ पारा और भोंगरा के रस में शुद्ध किया गंधक एक-एक तोला, स्वर्णभस्म और चाँदी की भस्म दस-दस मासे तथा नाग-भस्म तीन मासे एकत्र कर भरुसा, फाक-माषी, भीता, संभालू कुड़े की छाल, स्थलपद्म और कमल के छाय में अलग-अलग सात-सात भायना देकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे । उसको पूष में सुजाकर रग लेवे । उपपुत्र अनुपान के साथ सेवन करने से यह 'रसराजेन्द्र' अन्नजन्य तथा वातादि दोषजन्य समस्त रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सिंह मृगों का विनाश करता है । मात्रा २-३ रत्ती ॥४८-५१॥

वृद्धिहर रस ।

रसं गंधं विपं व्योषं तथा लवणपञ्चकम् । त्रिचरं जयपालञ्च मर्दयेद्विद्वि-वारिणा ॥ ५२ ॥ रक्तिमात्रा वर्टी कृत्वा पाययेत्पयसा सह । अनेन प्रशमं यान्ति वृद्धिर्धनादयो गदाः ॥ ५३ ॥

पारा, गन्धक, यक्ष्माग, त्रिकुटा, पाँचोनमक, जमासार, सजीसार, सुहागा और जमालगोटा इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर चित्रक के जल से घोटकर १ रत्ती की गोलियाँ बनावे । अनुपान-दूष । इसके प्रयोग से वृद्धि एवं अघ्न आदि रोग अच्छे होते हैं । मात्रा २-३ रत्ती ॥ ५२-५३ ॥ अर्थ्यमामृतान्नक ।

दशमूली च निगुण्डी सरसा च पुन-नवा स्नुही च चविका वासा चित्रकं वृद्ध-दारकम् ॥ ५४ ॥ बला चातिबला चैव पाठारग्वधचित्रकम् । सहस्रपुटिताभ्रं तु रसैरेपां त्रिमर्दयेत् ॥ ५५ ॥ अर्थ्यमामृतना-मेदं अघ्नवृद्धिं नियच्छति । अन्नवृद्धिं तथाधमानं श्लीपदं कुलसम्भवम् ॥ ५६ ॥ गण्डमालां तथा ग्रन्थिमर्दुदं वातशोणितम् । ज्वरं घोरं तथा शोथमुदरं स्त्रीह-पाण्डुताम् ॥ रसायनवरं वृष्यं वह्निकृद्धातु-वर्द्धनम् ॥ ५७ ॥

दशमूला, सम्भालू, त्रिवृता (निसोत), साँडी, यूदर, अदुसा, चित्रक, विधारा, खरेटी, सहदेवी, पाद, अमलतास, पित्रक इनके रस से अलग-अलग सहस्रपुटी अन्नक को घोटकर उचित मात्रा में सेवन कराने से अन्नवृद्धि, अन्नवृद्धि, धकारा, श्लीपद, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद, वातरू, ज्वर, सूजन, उदररोग, ग्रीहा तथा पाण्डुरोग अच्छे होते हैं । यह अन्नक रसायन, वीर्यवर्द्धक, अग्नि-पर्षक और धातुपर्षक है । मात्रा २-३ रत्ती ॥५४-५७॥

त्रिवृतादि घृत ।

त्रिवृतामधुयष्ट्यम्पयोधरयमानिकाः । श्यामा विदारि मिश्रेया पिप्पली गिरि-मल्लिकाः ॥ ५८ ॥ घृतमस्थं पयःप्रस्थं दध्याढकसमन्वितम् । शतावरीसमस्थं सर्वाण्येकत्र सम्पचेत् ॥ ५९ ॥ त्रिवृतादि-घृतञ्चैतदन्नजान्निखिलान् गदान् । प्रमे-हान् विशन्ति श्वासान् कुष्ठान्यर्शांसि काम-लाम् ॥ ६० ॥ हलीमकं पाण्डुरोगं गल-गण्डं तथाऽर्बुदम् । विद्वधिं व्रणशोथञ्च हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥ ६१ ॥

गोघृत १२८ तोला, दुग्ध १२८ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला और शतावरी का रस १२८ तोला ये सब एकत्रकर उसमें निशोथ, मुलेठी, सुगंधमाला, नागरमोथा, अजवाइन, काली निसोथ, विदारीकन्द, सोया, पीपरि, और कुड़े की छाल का करक १० तोला मिजाका यथाविधि पाक करके घृत सिद्ध करना चाहिए । इस 'त्रिवृतादि' घृत का सेवन करने से अन्नजन्य समस्त रोग एवं शीत प्रकार के प्रमेह और श्वास, कोढ़, बनासीर, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग, गलगण्ड, अर्बुद, विद्वधि और व्रणशोथ ये रोग निवृत्त होते हैं । इसमें संशय नहीं । मात्रा-१ मासे से १ तोला तक ५८-६१

वृहहन्तीघृत ।

जलद्रोणे पचेत् सम्यग्दन्त्याः पल-शतं भिषक् । पादशिष्टं गृहीत्येवं कार्यं

सर्पिः पयस्तथा ॥ ६२ ॥ दन्तीमूलं वलां  
द्रक्षां सहदेवीं शतावरीम् । सरलं शारिवां  
श्यामां प्रत्येकं कुडवोन्मितम् ॥ ६३ ॥  
विदार्यास्तालमूल्याश्च शाल्मल्याः कुट्ट-  
जस्य च । रसाढकं परिक्षिप्य साधयेत्  
मृदुनाग्निना ॥ ६४ ॥ अन्त्रवृद्धिमन्त्र-  
रोधमन्त्रदाहं सुदारुणम् । मुष्कवृद्धिं तथा  
ब्रध्नं ब्रणशोथं भगन्दरम् ॥ ६५ ॥ आम-  
वातं वातरङ्गं मुखनासाशिरोरुजः । रेतः-  
शोणितदोषांश्च हन्ति दन्तीघृतं बृहत् ६६

२५ सेर ४८ तोला जल में ५ सेर जमाल-  
गोटा को जड़ को पकावे । चतुर्थीश अर्थात्  
६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर इस घाथ में  
घृत ६ सेर ३२ तोला और दूध ६ सेर ३२  
तोला । जल १२ सेर ६४ तोला एकत्र कर उसमें  
कल्क बनाकर दन्तीमूल, खरेडी, मुनक्का, सहदेई,  
शतावरी, सरलकाष्ठ अनन्तमूल, काली निशोष  
सोलह-सोलह तोला मिठाये । विदारीकंद, काली  
मुसली, सेमर का मुसरा और कुड़े की छाल का रस  
या घाथ प्रत्येक ६ सेर ३२ तोला मिलाकर पीमी  
अर्ध में यथाविधि घृत सिद्ध करे । इस बृह-  
हन्ती घृत के सेवन करने से अन्त्रवृद्धि, अन्त्र-  
रोध, अन्त्रदाह, अडकोंयों की वृद्धि, मध्न,  
मणशोथ, भगदर आमवात, वातरङ्ग तथा मुस्य,  
नासिका और शिर के रोग, वीर्य और आतंय  
के दोष ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२-६६ ॥

बृहन्मन्दारतैल ।

यन्मध्यनारायणनाभतैलंतस्याङ्गसङ्घ-  
स्तिलजं हि तैलम् । मन्दारपुष्पस्त्रसेन  
सार्द्धं पचेद्विधिः कमलाम्भसा च ॥ ३७ ॥  
मन्दारतैलं बृहदेतदाशु तलश्च शुक्रं परि-  
वर्द्धयेद्धि । अन्त्रोत्थरोगान्निखिलांनिहन्ति  
पित्तोत्थरातोत्थकफोत्थितांश्च ॥ ६८ ॥

जिन जिन यथाविधि के कल्क और घाथ

के द्वारा वाताधिकारोक्त मध्यनारायण तैल सिद्ध  
होता है, उन समस्त औषधियों के कल्क  
और घाथ, धाक के पुष्प के स्वरस और  
कमल के पुष्प के स्वरस के साथ यथाविधि तिल-  
तेल सिद्ध करे, तो इसको 'बृहन्मन्दार तैल' कहते  
हैं । शरीर में इस तैल के मर्दन करने से अन्त्र-  
जन्य समस्त रोग तथा अन्धान्य विविध रोग  
नष्ट होते हैं ॥ ६७-६८ ॥

पथ्य ।

संशोधनं वस्तिरसृग्निमोक्षः स्वेद-  
मलेपोऽरुणशालयश्च । एरण्डतैलं सुरभी-  
जलश्च धन्वामिषं शिश्रु फलं पटोलम् ६९  
पुनर्नवा गोनुरकाग्निमन्थं ताम्बूलपथ्या-  
रसनारसोनम् । वातिङ्गनं शृङ्गनकं मधुनि  
कौम्भं घृतं तप्तजलश्च तक्रम् ॥ ७० ॥  
अर्धेन्दुवाद्बद्ध्वाणयोश्च दाहो व्यत्यासतो  
वाहुशिराव्ययश्च । यथामयं शस्त्रविधिश्च  
वर्गः स्याद्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ७१

संशोधन (वमन, निरेचन आदि), वस्ति,  
रङ्गमोक्षण, स्वेद, प्रलेप, लाल शालि चायल,  
अयसी का तेल, गोमूत्र, जगली जीवों का मास,  
सर्दिजने की फली, परचल, पुनर्नवा, गोपुरु,  
घरणी, पान, हरद रास्ना, लहसुन, धैमन,  
गाजर, सहद, दश घर्ष का पुराना घी, गरम  
जल, छाछ, जर्षों की सन्धि में घ्राधे चन्द्रमा के  
समान चिह्नित दाग, दाहिने अयस्कूप के बंद  
जाने पर बाईं भुजा तथा बाँये अयस्कूप के बंद  
जाने पर दाहिने हाथ की सिरा को येवन आदिप ।  
रोग के अनुसार ऐसे शस्त्रकर्म ये सब आहार-  
विहार, मध्न एवं वृद्धरोगियों के लिए लाभ-  
दायक हैं ॥ ६९-७१ ॥

अनभिष्यान्दिपानान्नं नातिगीता-  
क्रिया तथा । वृद्धिरोगे हिताय स्याद्विपरीतं  
विवर्जयेत् ॥ ७२ ॥

वृद्धिरोग में भोजन तथा पीने के पदार्थ ऐसे

होने चाहिए जो अभिष्यन्दी न हों तथा चिकित्सा भी अधिक शीतल न होनी चाहिए ७२  
अपच्य ।

आनूपमांसानि दधीनि मापः पिष्टानि  
दुष्टान्मुपोदिका च । गुरुणि शुक्रोत्थित-  
वेगरोधाः स्युर्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनाम-  
मित्राः ॥ ७३ ॥

अन्यच्च—

वृद्धावत्यशनं मार्गमुपवासं गुरुणि च ।  
वेगरोधं पृष्टयानं व्यायामं मैथुनं त्यजेत् ७४  
इति भैषज्यरत्नावल्यामन्त्रवृद्धिरोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

आनूपमांस, दही, उदद, पिट्टी के घने खाद्य पदार्थ, दूषित अन्न, गोई का शाक, भारी पदार्थ, वीर्य के वेग को रोकना, ये ब्रध्न एवं वृद्धिरोगियों के शत्रु हैं । वृद्धिरोग में अधिक भोजन, अधिक चलना फिरना, उपवास, भारी पदार्थ, वेगों को रोकना, घोड़े आदि की पीठ पर सवारी करना, व्यायाम एवं मैथुन का त्याग करना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

इति श्रीपरिबद्धसरसूपसादीत्रिपाठिचिरचित्तायं  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाय्यां  
व्याख्यायामन्त्रवृद्धिरोगाधिकारः  
समाप्तः

## यक्ष्माधिकारः ।

पथ्य ।

शाल्लिपट्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभा ।  
मन्थानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता  
विशुष्यताम् ॥ १ ॥

शाल्लिचावल, साठी चावल, गेहूँ जी और मूँग आदि तथा मद्य और जागल देश के पक्षी और मृगों के मांस ये सब यक्ष्मारोगी के लिये लाभदायक होते हैं ॥ १ ॥

शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि  
विधानवित् । दद्यात् क्रव्यादमांसानि  
बृंहणानि विशेषतः ॥ २ ॥

जिन यक्ष्मारोगियों के मांस क्षीण और शुष्क हो गए हैं, उनके लिए कच्चे मांस खानेवाले पशु-पक्षियों के मांस लाभदायक होते हैं ॥ २ ॥

दोषाधिक्य में विधान ।

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेच-  
नम् । स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यच्च कर्ष-  
णम् ३ ॥

ननु सर्वथैव यदिमणां विरेचनं नि-  
पिद्धं यद्वच्यति—'शुक्रायत्तं बालं पुंसां  
मलायत्तं हि जीवनम् । तस्माद् यत्नेन  
संरक्षेद्यदिमणो मलरेतसी ॥' अत्रोच्यते-  
'रोगे शोधनसाध्ये तु यं विद्याद दोषवर्द्ध-  
नम् तं समीक्ष्य भिषक् कुर्यात् दोष-  
प्रच्यावनं मृदु ॥' इति ।

अधिक दोषवाले यक्ष्मारोगी को स्नेहन, स्वेदन करके वमन तथा विरेचन कराना अच्छा है परंतु ऐसा विरेचन न करावे जो दीर्घव्यकारक हो ।

यहाँ यह शंका होती है कि यक्ष्मा के रोगियों के लिये तो विरेचन निषिद्ध है । क्योंकि लिखा है कि मनुष्यों का शुक्राधीन बल और मलाधीन जीवन होता है अतः यक्ष्मारोगी के मल और वीर्य की यत्पूर्वक रक्षा करनी चाहिए । ऐसी दशा में यक्ष्मारोगी के लिए विरेचन का विधान क्यों किया गया ? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यक्ष्मारोग में विरेचन निषिद्ध है, तथापि रोग यदि शोधनसाध्य प्रतीत हो तो जो मल दोषवर्धक जान पड़े, उस मल को मृदु विरेचन के द्वारा दूर कर देवे । तात्पर्य यह है कि अत्यन्त आवश्यक होने पर मृदु विरेचन देना चाहिए ॥ ३ ॥

बलिनो बहुदोषस्य पञ्चकर्माणि कार-

येत् । यद्विमणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं  
स्याद्विपोषणम् ॥ ४ ॥

यक्ष्मारोगी यदि बलवान् हो, तो बहुत दोषों की प्रबलता में पञ्चकर्म अर्थात् वमन, धिरेचन, अनुवासन, निरूह और नस्य कर्म की व्यवस्था करे । परंतु यदि रोगी निर्बल हो, तो ये ही यक्ष्मारोगी के लिए पञ्चकर्म विष के समान हानिकारक होते हैं ॥ ४ ॥

शुक्रायत्तं बलं पुंसा मलायत्तं हि जी-  
वनम् । तस्माद् यत्नेन संरक्षेद्यद्विमणो  
मलरेतसी ॥ ५ ॥

मनुष्यों का शुक्राधीन बल और मलाधीन जीवन होता है । अतः यक्ष्मारोगी के मल और शुक्र की यत्पूर्वक रक्षा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

पारावतकपिच्छागकुरङ्गाणां पृथक्  
पृथक् । मांसचूर्णमजाक्षीरैः पीतं क्षयहरं  
परम् ॥ ६ ॥

कव्तर, घानर, बकरा या हरिन के मांस सुखाकर चूर्ण बनावे । बकरी के दूध के साथ उस चूर्ण को पीने से क्षयरोग निवृत्त होता है ॥ ६ ॥

घृतकुमुमरसलीढं क्षयं नयति गज-  
बलामूलम् । दुग्धेन केवलेन च वायस-  
जङ्घा निपीतैव ॥ ७ ॥

नागबला के चूर्ण को घृत और मधु के साथ चाटने से ग्रथवा काकजंघा के चूर्ण को दुग्ध के साथ पीने से यक्ष्मारोग निवृत्त होता है ॥ ७ ॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन्  
क्षयी । क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्य-  
माक्षिके ॥ ८ ॥

शर्करा और शहद मिलाकर मधुपन चाटने-  
वाले, दूध पीनेवाले और घी, शहद ( जोकि  
समान भाग न हो ) चाटनेवाले क्षयरोगी का  
शरीर पुष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

सितोपलादि चूर्णं सितोपलादिलेह ।

सितोपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुला-

त्वचः । अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत्  
क्षौद्रसर्पिषा ॥ ९ ॥ चूर्णं वा प्राशयेदेतत्  
श्वासकासक्षयापहम् । सुप्तजिह्वारोचकिर्न  
मंदाग्निं पार्श्वशूलिनम् । हस्तपादांसदाहेषु  
ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ १० ॥

मिश्री १६ तोला, घंशलोचन ८ तोला,  
छोटी पीपरि ४ तोला, इलायची २ तोला और  
दाखचीनी १ तोला एकत्र कर, कूट पीस कर  
सूक्ष्म चूर्ण बनावे । शहद और घृत के साथ इस  
चूर्ण का सेवन करे । यह 'सितोपलादि लेह'  
श्वास, कास, क्षय, सुप्तजिह्वता, अरोचक,  
अग्निमान्द्य, पार्श्वशूल, हाथों और पैरों का  
दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त में विशेष  
लाभदायक होता है ॥ ९-१० ॥

लवङ्गादिचूर्णं

लवङ्गककोलमुशीरचन्दनं नतं सनी-  
लोत्पलजीरकं समम् । त्रुटिः सकृष्णागुरु-  
भृङ्गकेशरं कणा सविश्या नलदं सहाम्बु-  
दम् ॥ ११ ॥ अहीन्द्रजातीफलवंशलोचना  
सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् । सुरोचनं  
तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं दृश्यतमं त्रिदोष-  
नुत् ॥ १२ ॥ उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं  
सकासहिकारुचियन्मपीनसम् । ग्रहण्य-  
तीसारभगन्दरार्जुदं प्रमेहगुल्मारच निहन्ति  
सत्त्वरम् ॥ १३ ॥

नतं तगरपादुका पत्रं तेजपत्रं त्रुटि-  
सूक्ष्मैला भृङ्गं गुडत्वचं नलदं जटामांसी  
अहीन्द्रोऽनन्तमूलं सिताष्टभागं शर्कराष्ट-  
भागं मिलितचूर्णाञ्चर्कराया अष्टगुणो-  
भागः इति तु पैत्तिके । प्रथमभागापेक्षया  
इत्यन्यः ॥

लीग, शीतलचीनी, गम, लालचन्दन, तगर,  
वीरल कमल, सकेद और, छोटी इलायची,

अगर, दालचीनी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जटामांसी, मोथा, शारिषा, जायफल, वंशलोचन, हरएक का चूर्ण १ भाग, खोंड ८ भाग । कुछ लोगों के मत से मिले हुए चूर्ण में पैत्तिक रोग में आठगुनी खोंड मिलानी चाहिए । यह चूर्ण रीचकर, वृक्षिकर, अग्निदीपक बलवर्धक, वीर्यवर्धक तथा त्रिदोषनाशक है । इसके सेवन से उर-क्षत, तमक श्वास, गलग्रह, खोंसी, हिक्का ( हिचकी ), अरुचि, उष, पीनस, ग्रहणी, अतीसार, भगन्दर, अर्जुन्द, प्रमेह तथा गुल्म आदि रोग शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं । मात्रा— १ मासे से ३ मासे तक ॥ ११-१३ ॥

तालीशाद्यमोदक ।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा । यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्द्ध-भागिके ॥ १४ ॥ पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा । श्वासकासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ १५ ॥ हृत्पाण्डु-ग्रहणीरोगक्षीदशोपज्वरापहम् । हृद्यती-सारशूलघ्नं मूडवातानुलोमनम् ॥ १६ ॥ कल्पयेद् गुटिकाञ्चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितो-पलाम् । गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णांस्तनु-तरा स्मृता ॥ १७ ॥ पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभया वंशलोचनाम् ॥ १८ ॥

त्वगेले प्रथमभागस्यार्द्धभागिके शुभेति पिप्पल्या विशेषणम् । वंशलोचनापक्षे वंशलोचनाया यथोत्तरभागः ।

तालीशपत्र १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, सोंठ ३ भाग, पीपल ४ भाग, दारचीनी तथा छोटी इलायची अलग-अलग आधा भाग, खोंड ३२ भाग । मात्रा— १ मासे से २ मासे तक । इसके सेवन से श्वास, खोंसी, अरुचि, हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, ज्वीहा, यक्ष्मा, ज्वर, वमन, अतीसार, शूल आदि रोग अच्छे होते हैं । यह चूर्ण अग्नि को तेज करता है तथा मूडवात का

अनुलोमन करता है । इस चूर्ण को खोंड की लट्टू की सी चादानी बनाकर गोली भी बना सकते हैं । अग्नि पर पकाई हुई गोली चूर्ण की अपेक्षा हलकी होती है । पैत्तिक खोंसी आदि में शुभा शब्द से वंशलोचन का ग्रहण किया जाता है । अतः यहाँ वंशलोचन ५ भाग मिलाना चाहिए ॥ १४-१८ ॥

शृङ्गयजुर्नाद्य चूर्ण ।

शृङ्गयजुर्नाद्यवगन्धानागवलापुष्करा-भयाद्विन्नरुहाः । तालीसादिसमेता मधु-सर्पिभ्यां यक्ष्महराः ॥ १९ ॥

काकड़ासिगी, अर्जुन की छाल, असगन्ध, नागबला, पोद्दकरमूल, हरद तथा तालीसादि इन सबके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर घृत तथा शहद के साथ सेवन करने से यक्ष्मारोग अच्छा होता है । मात्रा— १ मासे से ३ मासे तक ॥ १९ ॥

कपूरशद्यचूर्ण ।

कपूरचोचककोलजातीफलदलाः समाः । लवङ्गमांसीमरिचकृष्णाः शुञ्च्या विव-र्धिताः ॥ २० ॥ चूर्णं सित्तासमं हृद्यं सदाहृत्तयकासजित् । वैस्वर्यपीनसश्वास-च्छर्दिकण्ठामयापहम् ॥ प्रयुक्तं चान्न-पानैर्वा भेषजद्रूपिणां हितम् ॥ २१ ॥

कपूर, दालचीनी, शीतलचीनी, जायफल, जावित्री हरएक १ भाग, लौंग २ भाग, जटामांसी ३ भाग, कालीमिर्च ४ भाग, पीपल ५ भाग, सोंठ ६ भाग, कुल चूर्ण के बराबर खोंड । यह चूर्ण हृदय को हितकारी है । तथा दाह, उष, खोंसी स्वरभेद, पीनस, श्वास, वमन, कण्ठरोग आदि को अच्छा करता है । श्रौषध-द्वेषी रोगियों को अन्न के साथ मिलाकर इस चूर्ण का सेवन करना चाहिए । मात्रा— ३ माशा ॥ २०-२१ ॥

पलादिचूर्ण ।

पलापत्रं नागपुष्पं लवङ्गं भागस्त्वेपां

द्वौ च खजूरकस्य । द्राक्षायष्टीशर्करा-  
पिप्पलीनां चत्वारस्तत् चौद्रयुक्तं त्रये  
स्यात् ॥ २२ ॥

छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, लींग  
हरएक १ भाग, पिण्डपजूर २ भाग, दाख,  
मुलहठी, खाँड़, पीपल, हरएक ४ भाग । इसे  
शहद के साथ मिलाकर यक्ष्मा के रोगी को  
सेवन कराना चाहिए । मात्रा-१ ईंमाशे से ३  
माशे तक ॥ २२ ॥

अजापञ्चकघृत ।

छागशकृद्रसमूत्रक्षीरैर्दध्ना च साधितं  
सर्पिः । सत्तारं यक्ष्महरं श्वासकासोपशा-  
न्त्ये परमम् ॥ २३ ॥

बकरी की मींगनी का रस ४ सेर, बकरी  
का मूत्र ४ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, बकरी  
का दही ४ सेर, और बकरी का घृत ४ सेर,  
एकत्र कर पाक करे । उसमें यलानुसार जवाखार  
मिला करके उतार लेवे । एक तोला प्रमाणा इस  
'अजापञ्चकघृत' का प्रतिदिन पान करने से  
यक्ष्मा, श्वास और कासरोग की शान्ति  
होती है ॥ २३ ॥

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः  
सशर्करम् । छागोपसेवा शयनं छागमध्ये  
तु यक्ष्मलुत् ॥ २४ ॥

बकरी के मांस का भक्षण, बकरी के दूध  
का पीना, शकरसहित बकरी के घृत का पान,  
बकरी की सेवा और बकरी के मध्य में शयन  
करना यक्ष्मा को दूर करता है ॥ २४ ॥

जीवन्त्याद्यघृत ।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुट-  
जस्य च । शर्ती पुष्करमूलश्च व्याघ्रीं  
गोक्षुरकं वलाम् ॥ २५ ॥ नीलोत्पलं  
तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् । पिप्प-  
लीञ्च समं पिप्प्रा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥

२६ ॥ एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समु-  
त्थितम् । रूपमेकादशविधं सर्पिरुग्रं व्यपो-  
हति ॥ २७ ॥

जीवन्ती, मुलेठी, मुनक्का, इन्द्रजी, कचूर,  
पुहकरमूल, छोटी कटेरी, गोप्सू, खरेटी, नील-  
कमल, मुहँथाँवला, त्रायमाणा, जवासा और  
छोटी पीपरि बराबर-बराबर इन औषधियों को  
लेकर इनके कलक और काय के साथ यथाविधि  
घृत सिद्ध करे । इस 'जीवन्त्यादिघृत' के सेवन  
करने से ग्यारह लक्षण युक्त भयंकर यक्ष्मारोग  
शमन होता है ॥ २६-२७ ॥ मात्रा १ तो० ॥

छागलाघ घृत ।

छागमांसतुलां गृह्य साधयेन्नल्वणे-  
ऽम्भसि । पादशेषेण तेनैव सर्पिः प्रस्थं  
विपाचयेत् ॥ २८ ॥ ऋद्धिश्चर्द्धी च मेदे  
द्वे जीवकर्पभकौ तथा । काकोलीक्षीर-  
काकोलीकल्कैः पृथक् पलोन्मितैः ॥ २९ ॥  
सम्यक् सिद्धेऽवतार्यं तं शीते तस्मिन्  
प्रदापयेत् । शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः  
कुडवं क्षिपेत् ॥ ३० ॥ शायं शायं पिबे-  
त्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुर्जयम् । क्षतक्षयञ्च  
कासांश्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ३१ ॥ स्वर-  
क्षयपुरोरोगं श्वासं हन्यात् सुदारुणम् ।  
वलयं मांसकरं वृष्यमग्निसन्दीपनं परम् ३२

बकरी का मांस २ सेर, जल २२ सेर ४८  
तोला, यक्षा हुआ काय ६ सेर ३२ तोला, घृत  
१२८ तोला । कलक के लिए ऋद्धि, चर्द्धि, मेदा,  
महामेदा, जीवक, अष्टभक, काकोली, वीर-  
काकोली, हरएक ४ तोला इस घृत को यिधिपूर्वक  
सिद्ध करके, शीतल होने पर खरक ३२ तोला,  
शहद १६ तोला मिलावे । मात्रा-आधा तोला ।  
इस घृत के सेवन से यक्ष्मा, क्षतक्षय, खाँसी,  
पार्श्वशूल, अरचि, स्वरभेद, श्वास एवं क्षय-  
कुक्षुस में पैदा होनेवाले रोग यथादे होते हैं ।



यह घृत बलप्रद, मांसकर, वृष्य तथा अग्नि-  
को बढ़ाता है ॥ २८-३२ ॥

पाराशर घृत ।

यष्टोत्रलागुडूच्याल्पपञ्चमूलीतुलांपचेत् ।  
शूर्पेऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रे पचेद् घृतम् ॥  
३३ ॥ धात्रीविदारीचुरसत्रिपात्रे पय-  
सोऽर्मणे । सुपिष्टैर्जीवनीर्यश्च पाराशरमिदं  
घृतम् ॥ ससैन्यं राजयक्ष्माणमुन्मूलयति  
शीलितम् ॥ ३४ ॥

घृत ६ सेर ३० तोला, मुलहठी, बला,  
गिलोय, श्वल्पपञ्चमूल मिलकर २ सेर । पाक  
के लिए जल १ मन ११ सेर १६ तोला, बचा  
हुआ काथ ६ सेर ३२ तोला, आंवले का रस  
६ सेर ३२ तोला, विदारीकन्द का रस ६ सेर  
३२ तोला, इष्टुरस ६ सेर ३२ तोला, दूध  
२५ सेर ४८ तोला, कर्कराज—जीवनीयाणोरु  
दश औंस ( जीवक, श्रपमक, मेदा, महा-  
मेदा, अद्वि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली,  
जीवन्ती तथा मुलहठी ) बराबर मात्रा में  
मिलाकर १२८ तोला, विधिपूर्वक इस घृत को  
सिद्ध कर सेवन कराने से काम, ज्वरआदि  
उपद्रवयुक्त रोगराज यक्ष्मा अचछा होता है ।  
मात्रा-आधा तोला या १ तोला ॥ ३३ ३४ ॥

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कपाये प्रस्थद्वयं  
मांसरसस्य चैके । कल्कं बलायाः सुनि-  
योज्यगर्भं सिद्धं पयः प्रस्थयुतं घृतं च ३५  
सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूलक्षतक्षय कास-  
हरं प्रदिष्टम् ॥ ३६ ॥

घृत १२८ तोला, दशमूल काथ ३ सेर १६  
तोला- छाग मांस रस १२८ तोला, दूध १२८  
तोला । कल्क के लिए खरैटी कूटी हुई ३२ तोला ।  
विधिपूर्वक पाक करके इस घृत का पान करने से  
अभिघातज, यक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय, तथा खाँसी  
अच्छी होती है । मात्रा-आधा तोला ३५-३६

कुडुकुमाय घृत ।

क्लीतनं क्षीरकाकोली दशमूलं निदि

ग्धिका । तुलामानानि सर्वाणि जलद्रोणे  
पचेत् पृथक् ॥ ३७ ॥ पादांशकं तमापूर्य  
घृतं कुडुकुममूर्च्छितम् । आज्याचतुर्गुणं  
छागं दुग्धं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ३८ ॥  
प्रायशः क्षीरपाकार्थं देयं तोयञ्चतुर्गुणम् ।  
श्रीमसूनाब्दगोलोमीकुडुकुमं जीवनीय-  
कम् ॥ ३९ ॥ वाट्या त्रिकटुकं नीलोत्पलं  
रेणुर्गुहा तथा । वाराही तंत्रिका वंशी  
दुर्वर्णं वनिता तथा ॥ ४० ॥ एलाह्नद्वं  
तिप्यफला मालत्याः कुसुमानि च । मत्स्य-  
गन्धा चवीपत्रं तालीशं नागपुष्पकम् १४  
हयोपकुञ्चिका दीप्या प्रत्येकं कार्पिकं  
क्षिपेत् । कसनं श्वसनं हन्ति क्षयं यक्ष्माण-  
मेव च ॥ ४२ ॥ प्रमेहमस्त्रपित्तञ्च कुडुकुमाद्य-  
घृतं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

केशर से मूर्च्छित गोघृत ३ सेर १६ तोला,  
काथ के लिए मुलहठी २ सेर, जल २५ सेर  
४८ तोला, बचा हुआ काथ ६ सेर ३२ तोला,  
क्षीरकाकोली २ सेर जल २५ सेर ४८ तोला,  
बचा हुआ काथ ६ सेर ३२ तोला दशमूल  
मिलाकर २ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला,  
बचा हुआ काथ ६ सेर ३२ तोला, छोटी कटेरी  
२ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ  
काथ ६ सेर ३२ तोला, बहरी का दूध १० सेर  
६४ तोला, दूध के पाक के लिए जल १ मन  
११ सेर १६ तोला । कल्क के लिए लौंग,  
मोथा, चच, केशर, जीवनीयगण ( जीवक,  
श्रपमक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर-  
काकोली, मुलहठी, मापपर्णी, मुद्गपर्णी जीवन्ती),  
बला, त्रिकटु, नीलकमल, रेणुका, वृक्षपर्णी,  
वाराहीकन्द, गिलोय, बवालीर, पलयालुक,  
त्रियंगु, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, आंवला,  
मालती के फूल, हाऊबेर, चव्य, तेजपात, ताली-  
शपत्र, नागकेशर, अस्तगन्ध, जीरा, अजवाइन,

चाहिए । मात्रा-आधा तोला से १ तोला इसके प्रयोग से खाँसी, श्वास, क्षय, यक्ष्मा, प्रमेह तयारक्र-पित्त अच्छा होता है ॥ ३६-४३ ॥

स्वल्पचन्दनादि तैल ।

चन्दनागुरुतालीशानखमञ्जिष्ठपत्रकाः ।  
मुस्तकञ्च शठी लाक्षा हरिद्रे रक्त्रचन्दनम् ॥  
४४ ॥ एषां प्रतिपलैरचूर्णैस्तैलाद्धपात्रकं  
पचेत् । भार्गीरसः कण्टकारी वोट्यालक-  
गुडूचिका ॥ ३५ ॥ एषां पलशतकाथे  
समभागे जडीकृते । पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं  
राजयक्ष्मविनाशनम् ॥ ४५ ॥ कासघ्नं  
गरदोषघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । पापालक्ष्मी-  
प्रशमनं ग्रहदोषविनाशनम् ॥ ४७ ॥

तिल का तैल ३ सेर १६ तोला, भार्गी का रस, कटेरी का कथ, बलाकथ, गिलोय का रस, हरणक ६ सेर ३२ तोला । ककक के लिए सफेद चन्दन, अमर, तालीशपत्र, नखी, मंजीठ, पद्माक्ष, मोथा, कचूर, लाघा, हल्दी, दारु-हल्दी, लाल चन्दन हल्के का चूर्ण ४ तोला । इसका विधिपूर्वक पाक करना चाहिए । राज-यक्ष्मा, खाँसी, गर (संयोगज क्षय), आदि में इस तैल की मालिश करनी चाहिए । यह बल, रंग तथा अग्नि को बढ़ाता है और ग्रहदोष को दूर करता है ॥ ४५-४७ ॥

चन्दनादि तैल

चन्दनाम्युनसं वाप्ययष्टीशैलेयपत्र-  
कम् । मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्येला पूति-  
केशरम् ॥ ४८ ॥ पत्रं चैलं मुरामांसी  
ककौलं वनिताम्युदम् । हरिद्रे शारिवे  
तिष्ठा लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ ४९ ॥ त्व-  
श्रेणुर्नालुका चैमिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।  
लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं पलमर्णुत् ५०  
अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम्  
आयः ॥ ५१ ॥

तिल का तैल १२८ तोला, ककक के लिए, लालचन्दन, गन्धवाला, नखी, कूट, मुलहठी, शैलज, पद्माक्ष, मंजीठ, चीठ की लकड़ी, देवदार, कचूर छोटी इलायची, पूति (गन्ध-माजारापड़) नागकेशर, तेजसात, शिलारस, मुरामांसी, शीतलचीनी, प्रियंगु, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल (गौरीसर), श्यामलता (कालीसर), लताकस्तूरी, लौंग, अमर, केशर, दालचीनी, रेणुका, नालुका मिलाकर ३२ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला, लाघारस १२८ तोला, इस तैल को विधिपूर्वक पकाकर, प्रयोग करने से अपस्मार, ज्वर, कृत्या तथा प्रहादि दोष दूर होते हैं । यह तैल आयु, बल तथा वर्ण को बढ़ाता है एवं पुष्टिकर तथा वशी-करण है ॥ ४८-५१ ॥

वासावलेह ।

वासकध्वरसप्रस्थे सितामष्टापलोन्मि-  
ताम् । सर्पिषो द्विपलं दत्त्वा पिपप्ली द्विपलं  
तथा ॥ ५२ ॥ पचेत् स्नेहत्वमायाते शीते  
मधु पलाष्टकम् । दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया  
लेह उच्यते ॥ ५३ ॥ निहन्ति राजयक्ष्माणं  
कासं श्वासं मुदारुणम् । पार्श्वशूलञ्च  
हृच्छूलं रक्त्रपित्तज्वरं तथा ॥ ५४ ॥

स्वकीयो रसः स्वरसस्तदभावे शुष्क-  
वासकवल्कलमष्टगुणजले पक्त्वा चतुर्था-  
वशेषं कृत्वा रसो श्रावः ।

घृह्ते के १२८ तोला रस में ३२ तोला खाँसी मिलाकर पाक करे । जब यह गाढ़ा हो जाय तब पीपल ८ तोला दाल दे तथा पाकसिद्ध होने पर घृत १६ तोला देकर अर्द्धी प्रकार मयकर नीचे उतार दे । शीतल होने पर ३२ तोला शहद मिलावे । मात्रा-आधा तोला से १ तोला । यह अथवेह राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, पमसादि का-दर, हृदय का शूल, रक्त्रपित्त तथा ज्वर को अर्द्धा करता है ॥ ५२-५४ ॥

बृहद्वासावलेह ।

शतं संगृह्य वासायास्तोयद्रोणे विपाच-  
येत् । चतुर्भागावशेषेऽस्मिन् शर्करायाः पलं-  
शतम् ॥ ५५ ॥ त्रिकटु त्रिसुगन्धिश्च कटु-  
फलं मुस्तकं गदम् । जीरकं पिपप्लोमूलं  
रोचनी चविका शुभा ॥ ५६ ॥ कटुका  
श्रेयसी चैव तालीशं सधनीयकम् । कार्पिकं  
पृथगेतेषां क्षिपेत् मधुपलाष्टकम् ॥ ५७ ॥  
तद्यथाग्निबलं लिह्याच्छ्रुतंशीतांशुपानतः ।  
निहन्ति राजयक्ष्माणं रक्तपित्तं क्षयम् ॥  
५८ ॥ वातिकं पैत्तिकं कासं श्वासश्चैव  
सुदारुणम् । हृच्छूलं पार्श्वशूलश्च वेमिञ्चै-  
वार्शचिज्वरम् ॥ ५९ ॥ अश्विभ्यां निर्मितो  
क्षेप बृहद्वासावलेहकः ॥ ६० ॥

अरुसा के मूल की छाल २ सेर लेकर  
२२ सेर ४८ तोला जन में पकावे । ६ सेर  
३२ तोला शेष रहने पर इसमें शकर २ सेर  
मिलाकर पाक करे । गाढा होने पर त्रिकटु,  
दालचीनी, तेजपात, इलायची, कायफल, नागर-  
मोथा, कूट, जीरा, पिपरामूल, अश्वला, चव्य,  
वंशलोचन, कुटकी, गजपीपरि, तालीशपत्र और  
धनिया का चूर्ण एक-एक तोला मिलाकर उतार  
लेवे । शीतल होने पर ३२ तोला मधु मिलाकर  
चिकने पात्र में रख लेवे । अग्नि और बल के  
अनुसार मात्रा की कल्पना करे । गरम किये  
हुए शीतल जल के साथ इस बृहद्वासावलेह  
का सेवन करना चाहिए । यह श्वलेह राजयक्ष्मा,  
रक्तपित्त, क्षय, क्षय, वातिक और पैत्तिक दारुण  
श्वास, हृदय-शूल, पार्श्व-शूल, वसन, अश्वि  
और ज्वर को शांत करता है । इस 'बृहद्वासाव-  
लेह' का आविष्कार अश्विनीकुमारों ने किया  
है ॥ २५-६० ॥

रक्तवान्तिहरयोग ।

अलक्तकरसैः सौद्रं रक्तवान्तिहरं परम् ।  
यष्ट्याहश्चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरमपेपितम् ॥

क्षीरेणालोड्य पातव्यं रुधिरच्छर्दिनाश-  
नम् ॥ ६१ ॥

लाक्षा-रस में शहद मिलाकर सेवन करने से  
अथवा मुलेठी और रक्तचंदन को दूध में पीसकर  
और दुग्ध मिलाकर पान करने से रक्त का वसन  
दूर होता है ॥ ६१ ॥

बृहद्वासावलेहं ( रसार्णवोक्त ) ।

पञ्चविंशपलं ग्राह्यं बृहत्पयोर्वासकस्य च ।  
भाग्यारच पञ्चविंशच्च जलद्रोणे विपाच-  
येत् ॥ ६२ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन् खण्ड-  
प्रस्थं समावयेत् । कुडवाल्दश्च हविषोमधुनः  
कुडवं तथा ॥ ६३ ॥ मृताभ्रकं पलञ्चैकं  
कणाचूर्णं चतुःपलम् । कुष्ठं तालीशपत्रश्च  
मरिचं तेजपत्रकम् ॥ ६४ ॥ मुरां मांसी-  
मुशीरश्च लवङ्गं नागकेशरम् । त्वग्भार्गी-  
वालकं मुस्तं प्रत्येकं कर्पसग्मितम् ॥ ६५ ॥  
श्लक्ष्णचूर्णाकृतं सर्वं लेहीभूते विनिः-  
क्षिपेत् हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं कासं पञ्च-  
विधं तथा ॥ ६६ ॥ रक्तपित्तं क्षयं श्वासं  
ज्वरं स्त्रीहानमेव च । बालानामपि बृहदानां  
तरुणानां विशेषतः ॥ ६७ ॥ पार्श्वशूलश्च  
हृच्छूलमम्लपित्तं वमि तथा । बृहद्वासाव-  
लेहोऽयं महादेवेन निर्मितः ॥ ६८ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अरुसा और  
भारंगी प्रत्येक सवा-सवा सेर लेकर २२ सेर  
४८ तोला जन में पकावे । चतुर्भागाव शेष रहने पर  
उसमें ६४ तोला खांड मिलावे १६ तोला मधु,  
२३ तोला अश्रकभस्म, २६ तोला पोपरि का  
चूर्ण तथा एक-एक तोला कूट, तालीशपत्र,  
बालीमिचं, तेजपात, मुरामांसी, जश्रमांसी खम,  
लौंग, नागकेशर, दालचीनी, भारंगी, सुगंधबाजा  
और नागरमोथा का चूर्ण मिलाकर उतार लेवे ।  
मात्रा—६ मा० से १ तोले तक । यह श्विष  
वाहक, बृहद् और ज्वरानों के लिये लाभदायक है  
एवम् प्रबल राजयक्ष्मा, पांच प्रकार के काम,

रूपिप्त, क्षय, श्वास, ज्वर, पार्श्व-शूल, हृदय-  
शूल, अग्नपित्त और वमन को नष्ट करता है ।  
यह बालक, तरुण और वृद्ध सबके लिए  
लाभदायक होता है । इस 'बृहद्वासावलेह' का  
आविष्कार श्रीमहादेवजी ने किया है ॥ ६२-६८ ॥

राजयक्ष्मा के निदान, लक्षण आदि ।

मेहेन चोपदंशेन रसेन देहगेन वा ।  
धातुर्विकृतिमापन्नो यक्ष्माणं जनयेदपि ॥  
६९ ॥ शिरोरुहाणां पतनं निशास्वेदश्च  
जायते । रक्त्निष्ठीवनं श्वासो बलमांस-  
क्षयादयः ॥ ७० ॥

प्रमेह, उपद्रव अथवा देहगत पारद के द्वारा  
रस, रक्षादि धातुविकृत होकर राजयक्ष्मारोग  
उत्पन्न करते हैं । इस रोग में कर्शों का गिरना  
रात्रि में पसीना आना, थूँक के साथ खून  
गिरना, श्वास का आना तथा बल और मांस  
आदि का क्षीण होना ये सब लक्षण उपस्थित  
होते हैं ॥ ६९-७० ॥

राजयक्ष्मा में योग ।

यक्ष्मामयाविनां स्वप्ने रेतसश्च च्युति-  
र्भवेत् । कस्तूरीप्रमुखं तत्र निशास्वेदोप-  
शान्तये ॥ ७१ ॥ प्रलापे च प्रयोक्तव्यं  
भेषजं भिषजां वरैः । यक्ष्मामये त्रिदोषोत्थे  
त्वचिरात् क्षयकारिणि ॥ ७२ ॥ भवेद्बृहत्काल-  
िको वापिज्वरस्तैकालिकोऽपि वा । अनिशं  
जायते स्वेदो बुभुक्षः न प्रवर्त्तते ॥ ७३ ॥  
करणानि त्रिपीडित्युःशय्या चाश्रीयतेतराम् ।  
कश्चिदेव प्रमुच्येत गटाटस्मात्सुदुस्तरात् ॥  
७४ ॥ प्रवालभस्म कस्तूरी मृतसञ्जीवनी  
सुरा । अरिष्टश्चाप्यग्चात्र गटे सात्म्य-  
मनुत्तमम् ॥ ७५ ॥ वीजनं तालटन्तेन  
स्वेदसन्ततिगान्तये । यत्पुष्ट्यर्थकं पथ्यं  
मांसयूपं प्रल्पयेत् ॥ अधिकारगतानन्या-  
नगदान् सान्निपातिके ॥ ७६ ॥

यक्ष्मा के रोगी को रात को स्वप्न में वीर्य-  
पात भी होता है, इस रोग में रात्रि में पसीना  
आना और प्रलाप की शान्ति के निमित्त  
कस्तूरी आदि ओषधियों को विचार कर देना  
चाहिए । शीघ्र क्षयकारी सान्निपातिक यक्ष्मारोग  
में प्रतिदिन दो बार या तीन बार उबर का आना,  
सर्वदा पसीना का आना, भूख न लगना,  
इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास और शीघ्र शय्याशयी  
होना ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं । इस  
दुस्तर रोग से कोई बिरला ही मनुष्य मुक्त  
होता है । इस रोग में प्रवालभस्म, कस्तूरी,  
मृतसञ्जीवनी सुरा, अरिष्ट और आसव आदि  
औषध उपकारक होते हैं । निरंतर होनेवाले  
पसीना के निवारण के निमित्त ताड़ के पत्ते से  
हवा करनी चाहिए और बलपुष्टि के लिये  
मांसरस आदि पथ्य वस्तु भोजन के लिये देनी  
चाहिए । और भी इस अधिकार के योग देने  
चाहिए ॥ ७१-७६ ॥

मेहेजे चोपदंशोत्थे रसोद्भूते च  
यक्ष्मणि । प्रयुञ्जीत समीक्ष्यापि गटागद-  
बलावलम् ॥ ७७ ॥

प्रमेहजन्य, उपद्रवान्य तथा पारदजन्य  
राजयक्ष्मारोग में रोग और औषध के बलावल  
का विचार करके प्रयोग करना चाहिए ॥ ७७ ॥

वासारिष्टमसहरारिष्टं मृगमदासयः ।  
मृतसञ्जीवनी चैव कर्पूरासय एव च ॥  
७८ ॥ उरःक्षतं रक्षपित्तं राजयक्ष्माण-  
मेव च । कासं पञ्चविधं चैव नाशयेद-  
विकल्पतः ॥ ७९ ॥

राजयक्ष्मारोग में वासारिष्ट, अय्यदरारिष्ट,  
मृगमदासय, मृतसञ्जीवनी और कर्पूरासय के  
द्वारा उर क्षत, रक्षपित्त राजयक्ष्मा और कास  
प्रकार की रोगियों को उपकरना चाहिए ॥ ७८-७९ ॥

उपद्रवा ज्वराद्यान्ते माध्याः स्यः  
ध्वंश्चिकित्सितैः । तेषु शान्तेषु रोगेषु  
परचान्द्रोपमुपाचरेत् ॥ ८० ॥

शोष ( यक्ष्मा ) रोग में उर आदि जिने उपद्रव उपस्थित हों, उनकी उन रोगों के लिए कही हुई औषधियों के द्वारा पहिले चिकित्सा करनी चाहिए । जब ये सब रोग शान्त हो जायें, तब शोष ( यक्ष्मा ) की चिकित्सा करे ॥ ८० ॥

च्यवनप्राश ।

विल्याग्निमन्थरयोनाककार्मर्यः पा-  
टला बला । पर्यश्चतस्रः पिप्पल्यः  
श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ८१ ॥ शृङ्गी  
तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरुः ।  
अभया चामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शशी ॥  
८२ ॥ मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मलोत्पल-  
चन्दने । विदारीष्टपमूलानि काकोली  
काकनासिका ॥ ८३ ॥ एषां पलोन्मितान्  
भागान् शतान्यामलकस्य च । पञ्च दद्या-  
त्तद्वैकथ्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८४ ॥  
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम् ।  
तश्चामलकमुद्भृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥  
८५ ॥ पलद्वादशके भृष्टा दत्त्वा चार्द्ध-  
तुलां भिषक् । मत्स्यण्डिकायाः पूताया  
लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ८६ ॥ पट्पलं  
मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् । चतुः-  
पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥  
८७ ॥ पलमेकं विदध्याच्च त्वगेलापत्र-  
केशरात् । इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो  
रसायनः ॥ ८८ ॥ कासरवासहरश्चैव  
विशेषेणोपदिश्यते । क्षीणक्षतानां वृ-  
द्धानां बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनः ॥ ८९ ॥ स्वर-  
क्षयपुरोरोगं हृद्गं वातशोणितम् ।  
पिपासां मूत्रशुक्रस्थां दोषांश्चैवापकर्षति ॥  
९० ॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जात् नोपरुन्ध्याच्च  
भोजनम् । अस्य प्रयोगात् च्यवना सुष्ट-

द्धोऽमृतपुनर्युवा ॥ ९१ ॥ मेधां स्मृतिं  
कान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रि-  
याणाम् । स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं बल-  
प्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ९२ ॥ रसाय-  
नस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि  
कुट्टिप्रवेशात् । जराकृतं पूर्वमपास्य रूपं  
विभक्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ ९३ ॥ सिता  
मत्स्यण्डिकालाभे धात्र्याश्च मृदुभर्जनम् ।  
चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं  
भवेत् ॥ ९४ ॥

बेल, अरनी, योनाक खम्बारी, पादर,  
खरोटी, सरिवन, पिठवन, वनसँग, वनउर्द, पीपरि,  
गोलरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, काकडासिंगी,  
मुईशामला, गुनफा, जीवन्ती, पोहकरमूल,  
अगर, हरद, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक,  
कचूर, नागरमोथा, सौंठी, मेदा, छोटी इलायची,  
नीलकमल. लालचन्दन, विदारिवन्द, अरुसे  
की जड़, काकोली और कडवाटोड़ी का चार  
चार तोले चूर्ण ५०० पाँच सौ या ६ सेर  
आवले की पोटली लेकर २५ सेर ४८ तोला  
जल में पकावे चौथाई पानी रहे, तो उतारकर  
काढ़ा छान लेना । और आवला पोटली से  
निकाल, बीज अलग करके २४ तोला घी और  
२४ तोला तिल तेल में मिले हुए भुनकर तिन  
पर पीस लेना चाहिए । फिर मिश्री २ सेर  
ऊपर कड़ा काढ़ा और पिसा हुआ आवला  
एकत्र पाक करना । गाढ़ा होने पर बंशलोचन  
का चूर्ण १६ तोला, पीपरि का चूर्ण ८ तोला,  
दालचीनी का चूर्ण १ तोला, तेजपात का चूर्ण  
१ तोला, इलायची का चूर्ण १ तोला और  
नागकेशर का चूर्ण १ तोला मिलाकर उतार  
लेना चाहिए । शीतल होने पर उसमें शहद  
२४ तोला मिलाकर घृत के चिकने पात्र में  
रखना चाहिए । इसकी मात्रा आधा तोला से  
दो तोला तक है । अनुपान-बकरी का दूध ।  
यह 'च्यवनप्राशावलेह' कास और श्वास का  
महोषध है । क्षत, क्षीण, वृद्ध और बालकों के

अंगों को परिपुष्ट करता है। स्वरभंग, उरःक्षत, हृद्रोग, वातरक्त, पिपासा, मूत्रगत दोष और शुक्रगत दोषों को दूर करता है। इसकी मात्रा उतनी है जो कि भोजन को न रोके अर्थात् इतनी मात्रा में न खाय कि भूख न लगे। इस अव-लेह के सेवन करने से च्यवन ऋषि को युवापे में युवावस्था प्राप्त हो गई थी। यह अवलेह बुद्धि, स्मृति, कांति, आरोग्य, आयु, इन्द्रियशक्ति को बढ़ाता है। स्त्रीसंसर्ग में प्रसन्नता की प्राप्ति, पृथग् अग्निवृद्धि, बलवृद्धि, और वायु की अनु-लोमता होती है। बुड्ढा मनुष्य भी कुटी प्रावेशिक विधि से, इसके सेवन से-धूप और वायु से घचे रहने से-वृद्धावस्था के रूप को त्यागकर जवानी के रूप को प्राप्त करता है। मिथ्री के अभाव में शङ्कर लेना चाहिए, आंखों को थोड़ा भूँज लेना चाहिए। चौथाई जल रहने पर द्रव्य का रस भा जाता है ॥ ८१-८४ ॥

विन्ध्यवासियोग ।

व्योपं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे वले तथा । सर्वाभयहरो योगः सोऽयं लौह-रजोऽन्वितः ॥ ८५ ॥ एष वृक्षःक्षतं हन्ति कण्ठजाश्च गदाँस्तथा । राजयक्ष्माण-मत्युग्रं वाहुस्तम्भमथादितम् ॥ ८६ ॥

त्रिकटु, शतावरी, त्रिफला, खरैटी और नागयला पुरु-एक तोला और लोहभस्म २ तोला एकत्र घोट कर रख लेये। इस विन्ध्य-वासि-योग के सेवन करने से उरक्षत, फण्डरोग, राजयक्ष्मा, वाहुस्तम्भ तथा अर्द्धित रोग शान्त होते हैं ॥ ८२-८६ ॥

यक्ष्मान्तकलौह ।

रासनातालीशकर्पूरभेकपर्णाशिलादयैः । त्रिकत्रयसमायुक्तेर्लोहोयक्ष्मान्तको मतः ॥ ८७ ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्रमपि वैद्यविव-जितम् ॥ हन्ति कासं स्वरापातं क्षयकासं क्षतक्षयम् । बलवर्णाग्निपुष्टीनां साधनो दोषनाशनः ॥ ८८ ॥

शिला शिलाजतु मनःशिला इति केचित् ।

रासना, तालीसपत्र, कपूर, मंडूकपर्णी, शिलाजतु, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपल ), त्रिफला ( हरड़, घहेड़ा, आंवला ), त्रिमद ( बायविहंग, नागरमोथा और चीत ) एक एक भाग तथा लोहभस्म चौदह भाग एकत्र मर्दन करके रख लेवे। इसका सेवन करने से समस्त उपद्रवों से युक्त असाध्य यक्ष्मारोग नष्ट होता है। तथा कास, स्वरभङ्ग, क्षयकास और क्षतक्षीण रोग नष्ट होते हैं। बल, वर्ण, पुष्टि और अग्नि की वृद्धि होती है। मात्रा—२ रत्ती ॥ ८७-८८ ॥

यहाँ पर शिला से शिलाजतु लेना चाहिए, कोई-कोई मैनसिल लेते हैं।

शिलाजत्वादिलौह ।

शिलाजतुमधुव्योपताप्यलौहर्जांसि च । क्षीरेण लोहितस्याशु क्षयं क्षयमवा-प्नुयुः ॥ ८९ ॥

अवाप्नुयुः गाययेयुः अन्तर्भूतश्चार्थ-त्वात् ।

शिलाजतु, मुलेठी, त्रिकटु और स्वर्णमाक्षिक-भस्म, शहद, लोह-भस्म सम भाग एकत्र घोट कर रख सेये। इसका दुग्ध के साथ सेवन करने से शीघ्र क्षयरोग धाराम होता है मात्रा—३ रत्ती ॥ ८९ ॥

क्षयकेशरी ।

त्रिकटुत्रिफलैर्लाभिर्जातोफललवङ्गकैः । नवभागान्वितं लौहं समं सिन्दूरसन्नि-भम् ॥ १०० ॥ छागीदुग्धेन संपिप्य बल-भस्य प्रयोजयेत् । मधुना यक्ष्मारोगंश्च हन्त्ययं क्षयकेशरी ॥ १०१ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल और छाँगी एक एक भाग तथा सिन्दूर की तरह बाल सोड़े का भस्म नौ भाग एकत्र कर चकरी के दूध में घोटकर दो-दो रत्ती की गोली बनाये।

मधु के साथ इसका सेवन करने से हर प्रकार के पथरोग निवृत्त होते हैं ॥ १००-१०१ ॥

रसेन्द्रगुटिका ।

कर्प शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयाद्रयोः ।

शिलायां खल्लयेत्तावथावत्पिण्डं घनं भवेत् ॥ १०२ ॥ जलकर्णा काकमाची रसाभ्यां भावयेत् पुनः । सौगन्धिकपलं भृङ्गस्वरसेन सुभाषितम् ॥ १०३ ॥ चूर्णितं रससंयुक्तमजात्तीरपलद्वये । खल्लितं घनपिण्डन्तुगुहीः स्विलकलायवत् १०४ ॥ कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन्परितोष्य च । जीर्णान्नो भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ॥ १०५ ॥ सर्वरूपं क्षयं कासं रक्तपित्तमरोचकम् । अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ १०६ ॥

एक तोला शुद्ध पारा को जयन्ती और अदरख के रस में घोटकर पिण्डवत् करे । पश्चात् इसको जलकर्णा ( वदूर ) और काकमाची ( मकोय ) के रस से अलग भावना देवे । तदनन्तर भाँगरा के रस में भाषित गन्धक के चूर्ण को मिलाकर कजली बनावे । पश्चात् ८ तोला बकरी के दूध में घोटकर उवाली हुई भटर के यराबर छोटी-छोटी गोम्लियाँ बना लेवे । शिवपूजन तथा ब्राह्मणों को संतुष्ट करके बकरी के दूध अथवा मधु और अदूसे के रस, अनुपान के साथ भोजन किये हुए अन्न का परिपाक होने पर इसका सेवन करे । इस औषध का सेवन करनेवाले रोगी के लिये पथ्य दुग्ध और मांस रस हैं । इसका सेवन करने से क्षय, कास, रक्तपित्त, अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १०२-१०६ ॥

बृहद्रसेन्द्रगुटिका ।

कुमार्या त्रिफलाचूर्णैश्चित्रकस्य रसैः क्रमात् । शोधयित्वा पुनः राजी गृहधूमहरिद्रया ॥ १०७ ॥ पक्षेष्टकारजोभिरच

धूर्त्तपत्ररसेन च । शृङ्गवेररसेनापि शोधयित्वा पुनः पुनः ॥ १०८ ॥ प्रक्षालयेत् पुनः पश्चाच्छानयेद्वसने घने । कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य भावयेद्विजयारसे ॥ १०९ ॥ शिलायां खल्लयेत्तावथावत्चूर्णत्वमागतम् । जलकर्णाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत् पुनः ॥ ११० ॥ सौगन्धिकपलं शुद्धमर्द्धं मरिचद्वयम् । मात्तिरुश्च शिखिग्रीवं तालकश्चाभ्रकं तथा ॥ १११ ॥ एतांस्तु मिलितान् दत्त्वा भावयेदाद्रकद्रवैः रक्तिकैकप्रमाणेन कारयेद्गुटिकां भिषक् ११२ ॥ जीर्णान्नो भोजयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः । हन्ति कासं क्षयं श्वासं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ११३ ॥ पाण्डुकृमिज्वरहरी कृशानां पुष्टिवर्द्धिनी । ताजीकरणमुद्दिष्टमम्लपित्तहरी परम् ॥ ११४ ॥

पारा लेकर उसको त्रिफला और चीते का रस, राई का चूर्ण, गृहधूम, हलदी, पकी ईंट का चूर्ण, घतूरे की पत्तियों का रस और अदरख के रस के साथ क्रमशः अलग-अलग घोटकर शुद्ध करे । तदनन्तर पानी में धोवे । फिर मोटे बख से धान लेवे । ऐसा शुद्ध दो तोला पारा लेकर भाँग के रस में उस समय तक भावना देना चाहिये जब तक कि वह चूर्ण न हो जावे । पश्चात् वदूर की छाल और मकोय के रस में अलग-अलग भावना देकर मर्दन करे और धूप में शुष्क कर लेवे । पश्चात् शोधित गन्धक ४ तोला, मिच, सोहागा, स्वर्णमाक्षिक, नूतिया, हरताल और अम्रकमस दो-दो तोला मिलाकर अदरख के रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे । अनुपान—अदरख का रस । इस औषध का सेवन कराने के पश्चात् दुग्ध और मांस का भोजन करे तो खॉंसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, अरोचक, पाण्डु, कृमिरोग, ज्वर, अम्लपित्त, इस सबको नाश करेगा है । तथा कृश मनुष्य

को मोटा करता है । यह उत्तम वाजीकरण प्रयोग है ॥ १०७-११४ ॥

कल्याणसुन्दराभ्र ।

वज्राभ्रमेकपलिकं पुटनैः सुजीर्णं धा-  
त्रीपथोदृष्टहतीशतमूलिकेज्जु । विल्वाग्नि-  
मन्थजलवासककण्टकारीशयोनाकपाठलि-  
वला च रसैरमीषाम् ॥ ११५ ॥ सम्म-  
दितं पलमितैः पृथगेकशश्च गुञ्जासमं सुव-  
लितं वटिकाकृतञ्च । यक्ष्मन्तयौ सकल-  
शोषप्रलासपित्तं श्वासं समीरमरुचिं कसना-  
ङ्गसादम् ॥ ११६ ॥ शोथं स्वरन्तयमजी-  
र्णभृद्दंशूलं मेहज्वरं विपमुरोग्रहपाण्डु-  
हिक्काः । कार्श्यकृमिं बलविनाशनमम्लपित्तं  
स्त्रीहामयं सहहलीमकमस्रगुल्मम् ॥ ११७ ॥  
वृष्णामवातनिचयं ग्रहणीं प्रदुष्टां विस्फो-  
टकुष्ठनयनास्यशिरोगदांश्च । मूर्च्छां वमिं  
विरसतां विनिहन्ति सद्य कल्याणसुन्दर-  
मिदं बलदं सुदृष्यम् ॥ ११८ ॥ मेध्यं  
रसायनवरं सकलामयानां नाशाय यक्ष्म-  
निवहे कथितं हरेण ॥ ११९ ॥

अन्नकमस्रम चार तोला, अँबला, नागर-  
मोथा, कटेरी, शतावरी ईख, बिल्व, अरनी,  
नेत्रबाला, अरुसा सोनपाठा की छाल, पादरि  
की छाल और खरेटी के स्वरस पृथक् पृथक्  
चार-चार तोला की मात्रा में लेकर इनमें  
अलग-अलग घोटकर एक एक रत्ती की गोली  
धनाये । इसका सेवन करने से यक्ष्मा, घब,  
सम्पूर्ण शोष, श्लेष्मा, पित्त, श्वास, वायु,  
अरुचि, रसोक्षी शरीर की हृद्बृन्दन, शोथ,  
स्वरभंग, अजीर्ण, दर्द, शूल, प्रमेह, ज्वर,  
उरोग्रह, पाण्डु, हिक्का, कृशता, कृमि, बलघब,  
अश्वपित्त, स्त्रीहा, हलीमक, रत्रगुल्म, वृष्णा,  
आमपात, विस्फोटक, कुष्ठ, नेत्ररोग, मुखरोग,  
शिरोरोग, मूर्च्छां वमन, मूत्र की विरसता ये  
स्य रोग नष्ट होने हैं । यह 'कल्याणसुन्दर' रस

बल देनेवाला है, घृष्य, मेधा को हितकारी और  
रसायनों में श्रेष्ठ है । महादेवजी ने यह योग  
यक्ष्माधिकार में समस्त रोगों के नाश के लिए  
कहा है ॥ ११५-११९ ॥

शङ्कराभ्र ।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं  
शाणमानं यदन्यत्, कर्पूरं जातिकोपं  
सजलमिभकणा तेजपत्रं लवङ्गम् । मांसी  
तालीशचोचं गजकुसुमगदं धातकी चेति  
तुल्यं, पथ्याधात्रीविभीतत्रिकटुरपि  
पृथक् त्वर्द्धशाणं द्विशायम् ॥ १२० ॥  
पलाजातीफेलाख्यं क्षितितलविधिना  
शुद्धगन्धारमकीलं, कोलाद्धं पारदस्य  
प्रतिपदविहितं पिष्टमेकत्र योज्यम् । पानीये-  
नैव कार्याः परिणतमरिचिस्विन्नतुल्याश्च  
वट्यः, प्रातः स्वाद्या द्विवट्यस्तदनु च  
कियच्छुद्धवेरं सपर्णम् ॥ १२१ ॥ पानीयं  
पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विका-  
रान्, कोष्ठेदुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजो  
राजयक्ष्मन्तयश्च । कासं श्वासं सशोथं  
नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान्, हृदि  
शूलाम्लपित्तं वृषमपि महती गुल्मजालं  
विशालम् ॥ १२२ ॥ पाण्डुत्वं रक्तपित्तं  
गरगरलगदान् पीनसं स्त्रीहरोर्गं,  
हृन्धादांमाशयोत्थान् कफपानकृतान्  
पित्तरोगानशेषान् । बल्यो वृष्यश्च भोग्य-  
स्तरुणतरकरः सर्वरोगेषु शस्तः, पथ्यं  
मांसैश्च यूषैर्वृतपरिलुलितैः गन्धदुग्धैश्च  
भूयः ॥ १२३ ॥ भोज्यं मिष्टं यथेष्टं  
ललितललनया दीयमानं मुदा यत्, शृङ्गा-  
राभ्रेण कामी युवतिजनशतो भोगयोगाद-  
तुष्टः । वर्ज्यशाकाम्लमादौ दिनकतिचिदय



स्वेच्छया भोज्यमन्यत्, दीर्घायुः काम-  
मूर्तिर्गतगदपलितो मानवोऽस्य प्रसा-  
दात् ॥ १२४ ॥

चोचं गुडत्वक् । गदं कुण्डम् । कर्पूरादि  
घातकीपर्यन्तानां मापचतुष्टयो भागः,  
त्रिफलात्रिकट्वोर्मापद्वयं एलाजातीफल-  
गन्धकानां तोलकं रसस्याद्दंतोलकं परि-  
णतमरिचस्विन्नतुल्या इति आदौ स्विन्ना  
पश्चात्तुल्या स्नातानुलिप्तवत् स्विन्नाः  
शुष्का इत्यर्थः ।

अन्नरुभस्म = तोला, कर्पूर, जविव्री,  
गन्धवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जग-  
मांसी, तालीशपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कुष्ठ,  
धाय के फूल, हरएक २ माशा, हरद, आंरजा,  
बहेदा, त्रिफला, हरएक १॥ मांशे, छोटी इला-  
यची जायफल, भूधर वन्य द्वारा शुद्ध गन्धक,  
प्रत्येक १ तोला, पारा आधा तोला, इन्हें  
इकट्ठा मिलाकर जत्र से घोटकर गोली बनावे ।  
मात्रा- १ रत्ती से २ रत्ती तक । इसे प्रातः-  
काल सेवन कर अदरग तथा पान को चघाप  
पीछे जलपान करे, हम प्रवार सेवन करने से  
दुष्प्राग्निजन्य, कोष्ठरोग, ज्वर, उदररोग, राज-  
यक्ष्मा, क्षय, खाँसी, श्वास, सूजन, नेत्ररोग,  
प्रमेह, मेदोरोग, चमन, शूल, अग्लपित्त, वृष्णा,  
गुश्म, पाण्डु, रक्तपित्त विषज्ज्वर, पीनस,  
प्रीहा, आमाशयरोग तथा अन्य वात पिच, तथा  
कफजन्य व्याधियों अच्छी होती हैं । यह बल धीर्य-  
वर्धक, तथा भोज्य है । इस औषध के सेवन से  
पुष्टि होती है । पथ्य-घृतपत्र, मांसरस, गऊ  
का दूध तथा अन्य मधुर भोजन । यह औषध  
वृष्य तथा वाजीकरण है । इसको सेवन करते  
समय प्रथम कुछ दिनों तक शक तथा अग्ल  
पदार्थों का वर्जन करना चाहिए पश्चात् ठीक  
भोजन करें । इस औषध के प्रसाद से मनुष्य  
दीर्घायु, कामदेव के समान दिव्य रूपवाला  
तथा रोग एवं युद्धावस्था के बलीपलित आदि  
क्षणों से रहित हो जाता है ॥ १२०-१२४ ॥

स्वल्पमृगाङ्ग ।

सिन्दूरं हेमभस्माथ समं सन्मिश्रयेद्  
बुधः । स्वल्पमृगाङ्गः पिप्पल्या गुञ्जाद्  
उपयोजितः ॥ हन्ति कासं क्षयं श्वासं  
बलवर्गाग्निकृत्परः ॥ १२५ ॥

रसासिन्दूर तथा स्वर्णभस्म इन्हें बराबर  
मात्रा में मिलाकर आधी रत्ती मात्रा में उपयोग  
करावे । अनुपान-पीपल का चूर्ण । यह स्वल्पमृगाङ्ग  
रस खाँसी तथा क्षय, श्वास को अच्छा करता  
है । बल, वर्ण एवं अग्नि को बढ़ाता है ॥ १२५ ॥

मृगाङ्गचूर्ण ।

प्रवालं मौक्तिकं शङ्खं वज्रञ्चैव समांश-  
कम् । निम्बकाथेन सम्मर्द्य ततो गजपुटे  
पुटेत् ॥ १२६ ॥ वांशी ग्राह्या सर्वतुल्या-  
द्विद्गुलं तत्कलांशकम् । एतत्सर्वं विचू-  
र्याथ पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ १२७ ॥  
गुञ्जाद्वयं प्रदातव्यं कृच्छरोगोपशान्तये ।  
क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणां श्वासमेव  
च ॥ १२८ ॥ स्वरभेदं ज्वरं मेहान् दोष-  
त्रयसमुत्थितान् । मृगाङ्गचूर्णमेतद्धि  
कासरोगकुलान्तकृत् ॥ १२९ ॥

प्रवालभस्म, मुद्राभस्म, शंखभस्म, वज-  
भस्म इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर नीम की  
छाल के बाय से घाटे । तदनन्तर शुष्क हो जाने  
पर गजपुट दे पश्चात् इस औषध के बराबर  
वशलोचन तथा वशलोचन का रूई सिन्दूरफ  
मिलावे । मात्रा २ रत्ती । अनुपान-पीपल का  
चूर्ण तथा शहद । यह मूत्रकृच्छ्र, क्षय खाँसी,  
यक्ष्मा, श्वास, स्वरभेद, ज्वर, त्रिदोषज प्रमेह  
को अच्छा करता है । एवम् सर्वं तरह की  
खाँसियों को अच्छा करता है ॥ १२६-१२९ ॥

सर्वाङ्गसुन्दर रस ।

रसं गन्धश्च तुल्यांशं द्वौ भागौ ढङ्ग-  
णस्य च । मौक्तिकं विद्रुमं शङ्खभस्म देयं  
समांशिकम् ॥ १३० ॥ हेमभस्माद्-

भागश्च सर्वं खल्लो विमर्दयेत् । निम्बूद्रवेण  
संपिप्य पिण्डिकां कारयेत्ततः ॥ १३१ ॥  
पश्चाल्लघुपुटं दत्त्वा सुशीतञ्च समुद्धरेत् ।  
हेमभस्म समं तीक्ष्णं तीक्ष्णाद्धं दरदं  
मतम् ॥ १३२ ॥ एकीकृत्य समस्तानि  
सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । ततः पूजा प्रकु-  
र्वीत रसस्य दिवसे शुभे ॥ १३३ ॥ सर्वाङ्ग-  
सुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिःकृन्तनः । वात-  
पित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥  
१३४ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषे मेहे गुल्म-  
भगन्दरे । निहन्ति वातजान् रोगान्  
श्लेष्मिकांश्च विशेषतः ॥ १३५ ॥  
पिप्पलीमधुसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि वा ।  
भक्षयेत् पर्यंखण्डेन सितया चार्द्रकेण  
वा ॥ १३६ ॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, सुहागा २  
भाग, सुहाभस्म १ भाग, मूंगा भस्म १ भाग,  
शंखभस्म १ भाग, स्वर्णभस्म आधा भाग इन्हें  
नींबू के रस से घोटकर गोला बना ले तदनन्तर  
लघुपुट दे । स्वाङ्गशीतल होने पर श्रौषध निकाल-  
कर तीक्ष्ण लोहभस्म आधा भाग तथा  
लोहभस्म से आधा भाग सिद्धरफ मिलाकर  
सूक्ष्म चूर्ण कर ले । मात्रा—२ रत्ती । अनुपान—  
पीपल और शहद, पीपल और घृत, पान का  
रस, खॉड अथवा अदरक का रस । इसके सेवन  
से राजयक्ष्मा, बयासीर, प्रहणी, प्रमेह, गुल्म,  
भगन्दर, वातज्वर तथा विशेषतः श्लेष्मिक  
रोग अच्छे होते हैं ॥ १३०--१३६ ॥

हेमगर्भपोट्टीरस ।

रसभस्मत्रयो भागा भागैकं हेमभस्म-  
कम् । मृतताम्रस्य भागैकं भागैकं गन्धकस्य  
चा ॥ १३७ ॥ मर्दयेच्चित्रकद्रवैर्द्वियामान्ते समु-  
द्धरेत् । पूर्वा वराटिका तेन टङ्गणेन विले-  
पयेत् ॥ १३८ ॥ वराटीं पूरयेद्भाण्डे

रुद्ध्वागजपुटेपचेत् । विचूर्णयेत्स्वाङ्गशीते  
पोट्टीलीहेमगर्भिकाम् ॥ मृगाङ्गवच गु-  
ञ्जैका भक्षणाद् राजयक्ष्मनुत् ॥ १३९ ॥

रससिन्दूर ३ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग,  
ताम्रभस्म १ भाग, गन्धक १ भाग, इन्हें  
चित्रक काष्ठ से दो प्रहर घोटकर एक कौड़ी में  
भरकर सुहागे से मुख बन्द कर दे पश्चात् मिट्टी  
के पात्र में बंदकर गजपुट दे । स्वाङ्गशीतल होने  
पर चूर्ण कर १ रत्ती की मात्रा में सेवन करावे ।  
इसके सेवन से राजयक्ष्मा अच्छा होता  
है ॥ १३७-४७ ॥

वृहत्तक्षकेशरी ।

मृतभस्मं मृतं सूतं मृतं लौहश्च ताम्र-  
कम् । मृतं नागश्च कांस्यश्च मण्डूरं विमलं  
तथा ॥ १४० ॥ वङ्गं स्वर्पकं तालं शङ्ख-  
टङ्गणमात्तिकम् । वैक्रान्तं कान्तलौहश्च  
स्वर्णविद्रुममौक्तिकम् ॥ १४१ ॥ वराटं  
मणिरागश्च राजपट्टश्च गन्धकम् ।  
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनित्ति-  
पेत् ॥ १४२ ॥ मर्दयेत्स्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेत्  
त्रिदिनं लघु । भावयेत्पुटयेदेभिर्वारांस्त्रीश्च  
पृथक्-पृथक् ॥ १४३ ॥ मातुलुङ्गवरा-  
वह्निस्वस्तवेतसमार्कवम् । हयमारार्द्रकरसैः  
पाचितो लघुवह्निना ॥ १४४ ॥ वात-  
पित्तकफोत्क्लेशान् ज्वरान् सम्मर्दितानपि  
सान्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गैकाङ्गमारु-  
तान् ॥ १४५ ॥ सेवितश्च सितायुक्तो  
मागधीरजसा युतः । मधुकार्द्रकसंयुक्तस्त-  
द्व्याधिहरणौषधैः ॥ १४६ ॥ सेवितो  
हन्ति रोगान् हि व्याधिवारणकेशरी ।  
क्षयमेकादशविधं शोषं पाण्डुकुर्मि जयेत् ॥  
१४७ ॥ कासं पञ्चविधं श्वासं मेहमेदो  
महोदरम् । अशरिं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं

हलीमकम् ॥ सर्वव्याधिहरो वलयो वृष्यो  
मेध्यो रसायनः ॥ १४८ ॥

अन्नकमरु, रसकिन्दूर, लोहभस्म, ताग्र-  
भस्म, सीमा की भस्म, कांसी की भस्म,  
नखदूरभस्म, रूपामारीभस्म, यहूभस्म, खप-  
रिया की भस्म, हरतालभस्म, शंखभस्म, सुहागा,  
सोनामारीभस्म, वैश्रान्तभस्म, कान्ततलौहभस्म,  
सोने की भस्म, मूंगाभस्म, मुत्राभस्म, कौकी-  
भस्म, सिंहरफ, कान्तपापाण्य भस्म, गन्धक,  
इन्हें धराकर मात्रा में इकट्ठा कर रत्न में  
चित्रक एवं आक के रस से भायना देकर ३  
दिन मन्द-मन्द अग्नि पर लघुपुट पाक करे  
इस प्रकार भावना देकर उसके बाद ३ बार पुट-  
पाक करना चाहिए। परचान् मानुलूह (पिजीरा),  
त्रिफला, चित्रक, अम्लपेत, भांगरा, कनेर,  
अदरक, इनके रस से मन्द अग्नि पर पकाते  
हुए भावना दे। इसके सेवन से घातरोग, पित्त-  
रोग, कफरोग, ज्वर, सत्रिपात, सर्वाङ्गवात,  
एनाङ्गवात आदि रोग अच्छे होते हैं। मात्रा—  
आधी रत्नी से १ रत्नी तक। अनुपान, पौंड़,  
पीपल चूर्ण, शङ्ख तथा अदरक का रस। यह  
रस चय, शोष, पायडु, कृमि, खांसी, श्वास,  
प्रमेह, मेदोरोग, महोदर पथरी, शर्करा, शूल,  
ग्रीहा, गुल्म एवं हलीमक आदि रोगों को  
अच्छा करता है और यह रस बल-  
कारक, वीर्यवर्धक, बुद्धिवर्धक तथा रसायन  
है ॥ १४०--१४६ ॥

बृहच्चन्द्रामृत रस ।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्पमेकं सुशोधितम् ।  
अन्नं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्द्धञ्च विच-  
क्षणः ॥ १४७ ॥ कर्पूरं शाणकं दद्यात्  
स्वर्णं तोलकसम्भितम् । ताम्रञ्च तोलकं  
दद्याद् विशुद्धं मारितं भिषक् ॥ १४८ ॥  
लौहं कर्पं क्षिपेत्तत्र वृद्धदारकजीरकम् ।  
विदारी शतमूली च क्षुरकञ्च बला तथा ॥  
१४९ ॥ मर्कट्यतिबला चैव जातीकोप-  
फले तथा । लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्ज-

रसं तथा ॥ १५० ॥ शाणुभागं समादोय  
चैकीकृत्य प्रयत्नतः । मधुना मर्दयेत्तावद्  
यावदेकत्वमागतम् ॥ १५१ ॥ गुञ्जाद्वय-  
प्रमाणेन वटिकांकुरयत्नतः । भक्तयेद्वटिका-  
मेकां पिप्पलीमधुना सह ॥ १५२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, अन्नकमरु  
२ तोला, वपूर ३ माश, सोने की भस्म १ तोला,  
ताँबे की भस्म १ तोला, लोहे की भस्म १ तोला,  
विधाराबीज, विदारीकन्द शतावरी, तालमखाना,  
पलामूल, कौण्ड के बीज, अतिथला, जावित्री, जाय-  
फल, लौंग, भाँग के बीज, श्वेतराल इरक ३  
माश, इन्हें इकट्ठाकर शहद से घोटकर २ रत्नी  
की गोलियाँ बनाये। अनुपान—पीपल का चूर्ण  
तथा शहद इसके सेवन से यक्ष्मारोग नष्ट होता  
है ॥ १५१--१५२ ॥

मृगाङ्कवटिका ।

पारदो गन्धकः शुद्धो लौहमध्रश्च टङ्ग-  
णम् । त्रिकुटुत्रिफलाचव्यं तालीशं पिप्पली  
तथा ॥ १५३ ॥ रसोत्पलं तथा लाक्षा  
सर्वमेकीकृतं शुभम् । वासाकाथेन सम्भाव्य  
वल्लमात्रां वर्ति चरेत् ॥ १५४ ॥ एकैकं  
वटिकां खादेद्रकोत्पलरसप्लुताम् । वासा-  
काथेन पिप्पल्या चोडुम्बररसेन वा १५५ ॥  
वातिकं पैत्तिकञ्चापि पित्तश्लेष्मसमुद्भवम् ।  
सर्वकासं निहन्त्याशु ज्वरं श्वाससमन्वि-  
तम् ॥ १५५ ॥ रक्त्निष्ठीवनं तृष्णां दाहं  
मेहं वर्मि भ्रमम् । लौहगुल्मोदरानाहकृमि-  
कण्डूविनाशिनी १५६ ॥ मृगाङ्कवटिका  
क्षेपा बलवर्णाग्निकारिणी ॥ १५७ ॥

पारा, गन्धक, लौहभस्म, अन्नकमरु,  
सुहागा, त्रिकुटा, त्रिफला, चय, तालीशपत्र,  
पीपल, लालकमल, कच्ची लाव, सब औषध धराधर  
भाग में पीसकर अदूसे के काथ की भावना  
देकर दो दो रत्नी की गोली बनानी चाहिए ।

अनुपान—लाल कमल का रस, वासाकाथ, पीपल का चूर्ण अथवा जंगली गुलर का रस । इस रस के सेवन से वातपित्तकफजन्य, त्रिदोषजन्य, वातकफजन्य, पित्तकफजन्य सम्पूर्ण कास को नष्ट करता है । श्वासयुक्त ज्वर, थूक के साथ रुधिर धाना, पिपासा, दाह, मूर्च्छा, प्रमेह, वमन, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, धानाह, कृमि तथा कण्डूरोग नष्ट होते हैं । यह बल, वर्ण एवम् अग्नि को बढ़ाता है ॥ १५३-१५७ ॥

अस्रहरारिष्ट ।

अस्रघ्नीस्वरसञ्चैव मृतसञ्जवनी तथा ।  
पलमेकं समादाय प्रत्येकं यत्नतो भिपक् ॥  
१५८ ॥ मृदारूढमुखे भाण्डे स्थापयेत्सप्त  
वासरान् । ततः स्थूलपटापतः शीतलेन  
जलेन च ॥ १५९ ॥ सेव्यो दशविंश-  
मितो यामे यामे प्रयत्नतः । उरःक्षतं रक्त-  
पित्तं कासं रक्तातिसारकम् ॥ नाशयेद्राज-  
यक्ष्माणं रक्तमदरमेव च ॥ १६० ॥

अस्रघ्नी ( विशह्यकरणी नाम की एक वनस्पति ) का रस ४ तोला, मृतसंजीवनी ४ तोला इन्हें इकट्ठा कर बोटल में या काचलिप्त मृत्पात्र में डालकर मुक्त धन्द् कर दे । सात दिन के बाद खोलकर गाड़े वस्त्र से छान ले । मात्रा— २ यूँद से २० यूँद तक । इस अरिष्ट की १० यूँद १ खीस ठण्डे जल में डालकर तीन या चार घण्टे बाद प्रयोग करना चाहिए । इसके प्रयोग से उरःक्षत, रक्तपिच, रॉसी, रक्तातिसार, राजयक्ष्मा, ण रक्तपदर चरणा होता है ॥ १५८-१६० ॥

मृगाङ्ग रस

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं  
ततः । गन्धकञ्च समं तेन रसपादं तु द्र-  
नम् ॥ १७१ ॥ सर्वं तद्गोलाकं कृत्वा  
काञ्चिकेनावगोपयेत् । भाण्डे लग्णपूर्णं ध-  
पचेयामचतुष्टयम् ॥ १६२ ॥ स्याद्रशीर्षं

समुद्धृत्य देयं गुञ्जाप्रमाणतः । मृगाङ्गसंज्ञः  
स ज्ञेयो रोगराजनिक्वन्तनः ॥ १७३ ॥  
रसस्य भस्मना हेम भस्मीकृत्य प्रयोजयेत् ।  
गुञ्जैकं सम्मितं चास्य द्विरक्लिमितया भिपक्  
१६४ ॥ पिप्पल्या मरिचेनाथ मधुना लेह-  
येद् बुधः । पथ्यं सुलट्ठमांसेन प्रायशोऽस्य  
प्रयोजयेत् ॥ १६५ ॥ दध्याज्यं गव्यतक्रं  
वा मांसमाजं प्रयोजयेत् । व्यञ्जनैर्वृतपक्त्वा  
नातिचारैरिहङ्गुभिः ॥ १६६ ॥ घृन्तार्कं  
तैलविल्वानि कारवेल्लञ्च वर्जयेत् । स्त्रियं  
परिहरेद्दूरे कोपश्चापि परित्यजेत् ॥ १६७ ॥  
सर्वं काञ्चिकेन पिष्ट्वा गोलके कृत्वा  
संशोष्य कटोरिकायां वालुकायंत्र इव  
लवणयंत्रे पचेत् ।

पारद एक तोला, स्वर्णभस्म एक तोला, मुक्ताभस्म दो तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला और सोहागा ३ माशा एवत्र कर कांजी में घोट गोला बनाकर इसको सुगाये । लवणयंत्र (लवण-पूर्णपात्र) में चार पहर की शीघ्र देवे । राजयक्ष्मा को नाश करनेवाला यह 'मृगाङ्ग' नाम का रस है । जब स्वाग शीतल हो जाय तो इस औषध को निकालकर एक दो रसी की मात्रा में सेवन करना चाहिए । अनुपान—छोटी पीपल का चूर्ण दो रसी या पाली मिर्च दो रसी और शहद मिलाकर सेवन करे तथा हलके मांस के रस के साथ रोगी को पथ्य देना चाहिए । गौ वरुही, घी व ताम्र, छागमांस और घृतपत्र, किंचित् चार तथा द्विगुणत व्यञ्जनादि यक्ष्मारोगी के लिए पर्य है । बंगन, तेल, बिण्य और बरेला आदि द्रव्य त्याग्य है । शीतमांस और शीघ्र चपयना त्याग्य है । इस रस में स्वर्णभस्म पारदद्वारा नष्ट की हुई रोगी चाहिए ॥ १६१-१६७ ॥

राजमृगाङ्ग रस ।

रसभस्मत्रयो भागा भागैकं हेमभस्म-  
कम् । मृतताम्रस्य भागैकं शिलातालक-  
गन्धकम् ॥ १६८ ॥ प्रतिभागद्वयं शुद्ध-  
मेहीकृत्य निधापयेत् । वराटीः पूर्येत्तेन  
चाजात्तीरेण टङ्गनम् ॥ १६९ ॥ पिप्प्ला तेन  
मुखं रुद्ध्वा मृदाएडे तां निरोधयेत् ।  
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वाङ्गशीत-  
लम् ॥ १७० ॥ रसो राजमृगाङ्गोऽयं  
गुर्जकश्च क्षयापहम् । गुञ्जाद्वयमितैःकृष्णा-  
मरिचैः चाँडसंयुतैः ॥ १७१ ॥ सघृ-  
तैर्दीपयेद्वातपित्तश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥ १७२ ॥

पाराभस्म (अभाव में रससिन्दूर) ३  
गोला, स्वर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला  
शुद्ध मैनाशित २ तोला, शुद्ध हरिताल २ तोला  
और शुद्ध गन्धक २ तोला एकत्र कर भली  
भाँति परल करके इस चूर्ण को कौड़ी में भरे  
और बकरी के दूध में घोटे हुए सोहागा से कौड़ी  
के मुख को बन्द कर देवे । परचाव इन कौड़ियों  
को सुखाकर मिट्टी के पात्र में रखकर गजपुट में  
पकावे । स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण करके रख  
लेवे । इसे 'राजमृगाङ्ग' रस कहते हैं । यह क्षय  
रोग को नाश करता है । इसकी मात्रा एक रत्नी  
की है । दो रत्नी काली मिर्च और छोटी पीपल  
का चूर्ण लेकर असमान भाग गौधृत और शहद  
के साथ चाटना चाहिए । इसके द्वारा वात, पित्त  
और कफज क्षय रोग दूर होता है ॥ १६७-१७२ ॥

महामृगाङ्ग रस ।

निरुत्थं भस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूत  
कम् । त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुक्पुच्छं  
चतुर्गुणम् ॥ १७३ ॥ मृतताप्यञ्च पञ्चांशं  
दद्यादत्र भिषक् सुधीः । सप्तभागं प्रवालञ्च  
रसतुल्यञ्च टङ्गनम् ॥ १७४ ॥ सर्वमेकत्र  
सम्मर्द्य त्रिदिनं लुङ्गारिणा । तं ततो गोलकं

कृत्वा शोपयित्वा खरातपे ॥ १७५ ॥  
लवणैः पात्रमापूर्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत् ।  
तन्मुखञ्च मृदा रुद्ध्वा पचेद्यामचतुष्टयम् ॥  
१७६ ॥ आकृष्य चूर्णितं शुद्धं प्रदेयं पूर्व-  
भागिकम् । वज्रञ्च तदभावे तु वैक्रान्तं  
तत् समांगकम् ॥ १७७ ॥ मटामृगाङ्गः  
खलु सिद्ध एव श्रीनिन्दिनाथप्रकटीकृतो-  
ऽयम् । गुञ्जास्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः  
सेव्योऽथवा पिप्पलिकासमेतः ॥ १७८ ॥  
अत्रोपचाराः कर्त्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः ।  
वलयं मृतञ्च भोक्तव्यं त्याज्यं सूतविरोधि  
यत् ॥ १७९ ॥ यक्ष्मणं बहुरूपिणं ज्वर-  
गणं गुल्मं तथा विद्रधि, मन्दाग्निं स्वर-  
भेदकासमरुचिं वान्तिञ्च मूर्च्छां भ्रमम् ।  
अष्टाधेव महागदान् गदगणान् पापद्वामयं  
कामलां, पित्तार्त्तिं समलग्रहान् बहुविधा-  
नन्यांस्तथा नाशयेत् ॥ १८० ॥

स्वर्णभस्म १ भाग, पारदभस्म २ भाग  
मुद्गाभस्म ३ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग,  
स्वर्णमाचिक भस्म ५ भाग, प्रवालभस्म  
७ भाग और सोहागा की खील २ भाग एकत्र  
कर थिजौरा नीच के रस में तीन दिन तक खरल  
कर गोला बनावे तथा तीव्र धूप में सुखाकर लवण  
पात्र ( लवणपूर्ण पात्र ) में रख उसके मुख को  
मिट्टी से बन्द करके चार पहर तक अर्ध देव ।  
स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल उसका चूर्ण कर  
ले । उसमें पूर्व के कहे हुए भाग के प्रमाण से  
अर्थात् हीरा का भस्म एक भाग अथवा वैक्रान्त  
का भस्म एक भाग मिश्रित कर खरल करके  
रख ले । इस सिद्ध 'महामृगाङ्ग' रस को  
श्रीनिन्दिनाथ ने प्रकट किया है । मात्रा १ रत्नी ।  
अनुपान मिर्च या पीपरी का चूर्ण और गाय  
का घृत । इस औषध के सेवन करनेवाले रोगी  
को घृत आदि चलवर्षक द्रव्यों का सेवन करना तथा  
पादविरोधी ककाराएक और बतानाशक कार्यों

को त्याग देना चाहिए तथा ज्वररोगोक्त विधि के अनुसार कार्य करना आवश्यक है । इसका सेवन करने से सब प्रकार के यक्ष्मा, सब प्रकार के ज्वर, गुल्म, विद्रधि, मंदाग्नि, स्वरभेद, कास, अरुचि, वमन मूर्च्छा, भ्रम, वातव्याधि आदि आठ महारोग, पाण्डु, कामला पित्तजन्य विकार तथा मलबंध आदि नाना प्रकार के रोग शान्त होते हैं ॥ १७३-१८० ॥

रत्नगर्भपोट्टलीरस ।

रसं वज्रं हेमतारं नागं लौहश्च ताम्र-  
कम् । तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्कामाक्षि-  
कविद्रुमम् ॥ १८१ ॥ शङ्खश्चै तुतर्थं  
तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः । मर्दयित्वा  
विचूर्णयार्थ तेन पूर्या वराटिकाः ॥ १८२ ॥  
टन्नं रविद्रुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुखतोऽर्पयेत् ।  
मृद्गाण्डे तं निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे  
पचेत् ॥ १८३ ॥ आदाय चूर्णयेत् सर्वं  
निर्गुण्ड्याः सप्तभावनाः । आर्द्रकस्य रसैः  
सप्तचित्रकस्यैकविंशतिः ॥ १८४ ॥ द्रवै-  
र्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुञ्जैकसम्मितम् ।  
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न सं-  
शयः ॥ १८५ ॥ योजयेत् पिप्पलीक्षौद्रैः  
सद्यतैर्मरिचैस्तथा । महारोगाष्टके कासे  
ज्वरं श्वासोऽतिसारके ॥ १८६ ॥ पोड्टली-  
रत्नगर्भोऽयं योगवाहेन योजयेत् । वात-  
व्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः । अर्शासि  
ग्रहणीत्वष्टौ महारोगाः मकीर्त्तिताः ॥  
१८७ ॥

रसगिन्दूर, हीरकभरम, स्वर्णभरम, रौप्य-  
भरम, भागभरम, लौहभरम, ताम्रभरम, मुश-  
भरम, स्वर्णमाषिकभरम, प्रवालभरम शंखभरम  
जीलापोषा सबको समान भाग लेकर चीते

१ शंस गुणं च मुख्यांशं सप्ताहं चार्द्रकद्र-  
वैरिचयि पाठः ।

के रस में सात दिन तक घोट चूर्ण करके कौड़ी के भीतर भर देवे । पश्चात् सोहागा को आक के दूध में घोटकर उससे कौड़ी को बन्द कर मिट्टी के पात्र में भर करके पात्र के मुख को बन्दकर कपड़मिट्टी कर गजपुट में पकावे । स्वाङ्गशीहुल होने पर औषध को निकालकर चूर्ण करके सँभालू के रस की ७ भावना, अदरक के रस की सात भावना और चीते के रस की २१ भावना देकर सुखा लेवे । इसकी मात्रा १ रत्नी की है । अनुपान—मधु और पीपरि का चूर्ण थथवा घृत और मिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिए । इसका सेवन करने से कष्टसाध्य यक्ष्मा, अष्टविध महारोग, कास, ज्वर, श्वास और अतिसार रोग शान्त होते हैं । वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदर, भगन्दर, बवासीर और ग्रहणी ये आठ महारोग हैं ॥ १८१-१८७ ॥

काञ्चनाभ्ररस ।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्र-  
कम् । विद्रुमश्चाभयातारं कस्तूरी च  
मनःशिला ॥ १८८ ॥ प्रत्येकं विन्दुमा  
त्रञ्च सर्वं मम्मर्द्य यत्रतः । वारिणा वटिका  
कार्या गृञ्जार्द्रफलमानतः ॥ १८९ ॥  
अनुपानं मयोक्त्वयं यथादोषानुसारतः ।  
नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥  
१९० ॥ क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्म-  
पित्तसमुद्भवम् । प्रमेहान् विंशतिर्श्व  
दोषत्रयसमुत्थितान् ॥ १९१ ॥ अशीति  
वातजान् रोगान् नाशयेत् सद्य एव हि ।  
बलवृद्धिं वीर्यवृद्धिं लिद्रदाढ्यं करोति च ॥  
१९२ ॥ काञ्चनस्य समा कान्तिर्मदन्य  
समं वपुः । अक्षितः मातकृत्याय रमोऽयं  
काञ्चनाभ्रकः ॥ १९३ ॥

स्वर्णभरम, रसगिन्दूर, मुशभरम, लौह-

भस्म, अध्रकभस्म प्रवालभस्म, हरीतकी, रजनभस्म, कस्तूरी और मैग्नेशज प्रत्येक को समभाग लेकर जल में घोटकर धापी-धापी रत्ती की गोली बनावे। दोपानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से उपद्रवयुक्त विविध रोगों को दूर करता है। चयरोग और रलेप्मा तथा पित्तजन्य कास, तीनों दोषों से उत्पन्न घांस प्रकार के प्रमेह और भरती प्रकार की वायु की बीमारियों को तत्काल दूर करता है। यल-वृद्धि, योग्य-वृद्धि तथा लिङ्ग की रक्षा होती है। प्रभाःकाल उदयर ह्वा 'काशनाभ' रस के सेवन से मुखर्ष के समान पान्नि तथा कामदेव के समान शरीर हो जाता है ॥ १८८-१९३ ॥

बृहत्काशनाभरस ।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहम-  
भ्रकम् । विद्रुमं मृत्वकान्तं तारं ताम्रञ्च  
वङ्गकम् ॥ १९४ ॥ कस्तूरिका लवङ्गञ्च  
जातीकोपैलवालुकम् । प्रत्येकं विन्दुमात्रञ्च  
सर्वं मर्द्यं प्रयत्नतः ॥ १९५ ॥ कन्यानीरेण  
संमर्द्यं केशराजरसेन च । अजात्तीरेण  
सम्मान्यं प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥ १९६ ॥  
रक्तिकैकप्रमाणेन वटिकां कारयेद्विपक् ।  
अनुपानं प्रदातव्यं यथादोपानुसारतः ॥  
१९७ ॥ नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयु-  
तम् । क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं  
श्वासमेव च ॥ १९८ ॥ प्रमेहान् विश-  
तिञ्चैव दोषत्रयसमुत्थितान् । सर्वान्  
रोगान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं  
यथा ॥ १९९ ॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, लौहभस्म,  
अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, वैकान्तभस्म, रौप्यभस्म,  
ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, कस्तूरी, लौह, जायत्री और  
एलवालुक ( सुगन्ध द्रव्य ) को एकत्र चूर्णित  
कर घृतकुमारी के रस में, भँगरैया के रस में  
और बकरी के दूध में क्रमशः तीन-तीन दिन

तक मायना देकर एक-एक रत्ती की गोली  
बनानी चाहिए। दोपानुसार अनुपान के साथ  
देने की व्यवस्था करे। इसका सेवन करने से  
श्यास, कास और यक्ष्मा, वात-पित्त कफजन्य  
घांस प्रकार के प्रमेह तथा सय रोग उसी प्रकार  
नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य के उदय होने  
पर घन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ १९४-१९९ ॥

चूड़ामणिरस ।

द्विनिष्कं रससिन्दूरं तदूर्द्ध्वं हेमजारि-  
तम् । निष्कद्वयं गन्धकञ्च मर्दयेच्चित्रक-  
द्रवैः ॥ २०० ॥ कुमारिकाद्रवैर्यामं  
छागदुग्धैस्त्रियामकम् । मुक्ताविद्रुमव-  
द्धानां निष्कं निष्कं विमिश्रयेत् ॥ २११ ॥  
गोलकं पूरयेद्भाण्डे रुद्धधवागजपुटे पचेत् ।  
स्वाङ्गशीतं विचूर्णयथ भक्षयेद्वृक्त्रिकाद्-  
यम् ॥ २०२ ॥ मधुना क्षयरोगघ्नं वात-  
पित्तसमुद्रवम् । अजाघृतञ्चानुपिबेत्  
शर्करामधुसंयुतम् ॥ २०३ ॥

रससिन्दूर १ तोला, स्वर्णभस्म ६ माशे और  
गन्धक १ तोला लेकर चीते के रस और  
घृतकुमारी के रस में एक-एक पहर तथा बकरी  
के दूध में ३ पहर घोटकर उसमें मुक्ताभस्म,  
प्रवालभस्म और वंगभस्म छः-छः माशे मिला,  
कर गोला बनावे। उस गोला को मिट्टी के  
पात्र में रखकर मुख बन्दकर कपड़मिट्टी करके  
गजपुट में पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण  
कर रख लेवे। इसको २ रत्ती की मात्रा में  
क्षयरोगी को मधु के साथ सेवन कराना चाहिए।  
सेवन के परचाय शर्करा तथा मधुयुक्त बकरी के  
घृत का सेवन करना चाहिए ॥ २००-२३ ॥

महाचन्दनादितैल ।

चन्दनं शालपर्णी च पृश्निपर्णीनिदि-  
ग्धिका । बृहती गोजुरञ्चैव मुद्गपर्णी  
विदारिका ॥ २०४ ॥ अश्वगन्धा माप-  
पर्णी तथा मलकमेव च । शिरीषं पत्रको-

शीरं सरलं नागकेशरम् ॥ २०५ ॥ प्रसारणी  
 तथा मूर्वा म्रियङ्गुत्वेलवालुकम् । वाट्या-  
 लकं चातिवला मृणालं विसशालकम् ॥  
 २०६ ॥ पञ्चाशत् पल मेतेषां श्वेतवाट्या-  
 लकं तथा । जलद्रोणे विपक्कव्यं ग्राह्यं  
 पादावशोपितम् ॥ २०७ ॥ अजाक्षीरं  
 तैलसमं शतमूलीरसाढके । लाक्षारसं  
 काञ्जिकञ्च दधि मस्तु तथैव च ॥ २०८ ॥  
 हरिणच्छागशशकमांसानाञ्च पृथक् पृथक् ।  
 चतुःप्रस्थं विनिष्काथ्य तैलाढकं विपाच-  
 येत् ॥ २१६ ॥ श्रीखण्डागुरु कंकोलं  
 नखं शैलेयकेशरम् । पत्रं चोचं मृणालञ्च  
 हरिद्रे शारिवाह्वयम् ॥ २१० ॥ रक्तोत्पल  
 नतं कुष्ठं त्रिफला च परुषकम् । मूर्वा च  
 ग्रन्थिपर्णा च नर्लिका देवदारु च ॥  
 २११ ॥ सरलं पद्मकोशीरं धातकी विल्व-  
 पेपिका । रसज्जनं मुस्तरुञ्च शिहकंवालकं  
 वचा ॥ २१२ ॥ मञ्जिष्ठा लोधमधुरी  
 जीवनीयं म्रियङ्गुरुम् । शट्येला कुङ्कु-  
 मञ्चैव सदाशी पद्मकेशरम् ॥ २१३ ॥  
 रास्ना च जातीकोपञ्च विश्वकं सधनीय-  
 कम् । पतार्द्धमेषां प्रत्येकं पेपयित्वा विनिः-  
 क्षिपेत् ॥ २१४ ॥ महासुगन्धितैलस्य  
 गन्धमत्र प्रदीयते । कारमीरमदचन्द्रांश्च  
 सिद्धे पूने विनिःक्षिपेत् ॥ २१५ ॥ यथा-  
 लामं शुभे पात्रे सद्रोपेन निधापयेत् ।  
 वातपित्तहरं दृष्यं धातुपुष्टिकरं परम् ॥  
 हन्ति यन्माणमत्युग्रं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥  
 २१६ ॥ येषां भूरिपरिश्रमादनुदिनं  
 नश्यन्ति देहा नृणां ये वा कामरुलांशु-  
 दूलतरुणीसिद्धे च निर्धातवः । ये वा व्याधि-

विशीर्णं तामुपगतास्तेषां परं भेषजं वल्यं  
 दृष्यतमं तनूपचयकृत् श्रीचन्दनाद्यं  
 महत् ॥ २१७ ॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, कल्कार्यं लाल-  
 चन्दन, सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बडी  
 कटेरी गोलुरु, वनमूँग, विदारीकन्द, असगन्ध  
 बनउर्द, आँवला, सिरस की छाल, पन्नास,  
 खस, सरल काष्ठ ( विशेष प्रकार की चीड की  
 लकड़ी ), नागकेशर, गंधप्रसारणी, मूर्वा का मूल,  
 फूलप्रियंगु नील कमल, सुगन्धबाला, सहदेह,  
 कंधी, मृणाल ( कमलनाल ) और भसीड़ा इन  
 सबको मिलाकर २ ॥ सेर और श्वेत पुष्पवाली  
 खरेटी २ ॥ सेर लेकर २२ सेर ४८ तोला जल  
 में पकावे । चतुर्धाश अवशिष्ट रहने पर उसमें  
 चकरी का दूध, शतावरि का रस, लाक्षा का  
 काय, काँजी और दही का पानी प्रत्येक ६ सेर  
 ३२ तोला मिलावे । तथा हरिन, चकरी और  
 खरगोश का पृथक्-पृथक् ३ सेर १६ तोला मास  
 लेकर २२ सेर ४८ तोला पानी में अलग अलग  
 पकावे । ६ सेर रोप रहने पर पूर्वोक्त तैलादि यत्र  
 काय में मिला देवे । पश्चात् श्वेत चन्दन, अगर,  
 कंकोल, नख (सुगन्धित द्रव्य ), छुरीला, नाग-  
 केशर, तेजगत, दालचीनी, कमल की नाल, हरदी,  
 दारदरदी, काली शारिषा, अनन्तमूल, लालकमल,  
 तगर, कूट, त्रिफला, फालसा, मूर्वामूल गण्डिवन,  
 नाडीशाक देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्मास, गम,  
 घाय के फूल, बेलगोरी, रसीत, नागरमोया,  
 शिलारस, सुगन्धबाला, वच, मञ्जिष्ठ, पदानी-  
 लोध, सौंफ, जीवनीयगण की औषध, पून-  
 प्रियंगु, कचूर, इलायची, केसर, गंधमाजरी के  
 अष्टकोप दो दो तोले, बमजकेसर रास्ता, जा-  
 वित्री, मोंठ और घनिर्षो दो दो तोला लेकर पक्क  
 बनाकर मिलावे । घातस्पाधिप्रवरगोत्र महा-  
 सुगन्धित 'लक्ष्मीयिलास' तैल के गन्धद्रव्य  
 ढालकर यथाविधि तैलपाक करे । पाक होने  
 पर उतारकर छान खेवे फिर कुङ्कुम, चक्री  
 और चकूर घोड़ा-घोड़ा मिलाकर रंग खेरे । इस  
 का मर्दन करने से घात पिच्छान्प दोष दूर होते



है, पीयं घटता है, धातुपुष्टि होती है, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और उरःपन नष्ट होता है। अत्यन्त परिश्रम करने से जिन पुरुषों का देह क्षीण हो जाता है या जिनका पीयं क्षीण हो गया हो अथवा जो किसी रोग के कारण अत्यन्त निर्बल हो गये हैं उनके लिये यह नील बलकारक, पीयंघर्षक और शरीर को पुष्ट करनेवाला है ॥ २१४-२१७ ॥

द्राक्षाारिष्ट ।

द्राक्षातुलार्द्धं द्विद्रोणे जलस्य विप-  
चेत् सुधीः । पादशेषे कपाये च पूते शीते  
विनिःक्षिपेत् ॥ २१८ ॥ गुडस्य द्वितुलां  
तत्र त्र्यगोलापत्रकेशरम् । प्रियङ्गुर्मरिचं  
कृष्णा त्रिद्वयं विचूर्णयेत् ॥ २१९ ॥  
पृथक्प्लोन्मितैर्मांसैर्वृत्तभाण्डेनिधापयेत् ।  
समन्ततो घट्टयित्वा पिथेज्जातरसं ततः ॥  
२२० ॥ उरःक्षतं क्षयं हन्ति कासरनास-  
गलागयान् । द्राक्षारिष्टाद्वयः प्रोक्तो बल-  
कृन्मलशोधनः २२१ ॥

२१८ सेर मुनवा को १ मन ११ सेर जल में  
पकाये १२ सेर ४८ तोला शेष रहने पर छान  
लेवे । शीतल हो जाने पर इस काथ में सादे  
दस सेर गुड़ और चार-चार तोले दालचीनी,  
इलायची, तेजपात, नागकेशर, पूजप्रियंगु, काली  
मिर्च, पीपरि और थायबिडग का चूर्ण मिला  
कर घृत के पात्र में भरकर पात्र का मुख बन्द  
करके रख देवे । अरिष्ट तैयार होने पर छान  
लेवे । इस द्राक्षारिष्ट का पान करने से उर क्षत,  
क्षयरोग, कास, श्वास और गलरोग नष्ट होते हैं ।  
यह अरिष्ट बलघर्षक और मलशोधक है ।  
मात्रा—१ तोला से २ ॥ तोले तक ॥ २१८-२२१ ॥

१ । यक्ष्मारोग में यथ्य ।

मद्यानि जाङ्गलं पक्षिमृगमांसंविशुध्य-  
ताम् मुद्गपाष्टकं गोधूमं यवशाल्यादयो-  
हिताः ॥ २२२ ॥ दोषाधिकस्य बलिनो-

मृदुशुद्धिरादौ गोधूमं मुद्गं पाकारुण्य  
शालयश्च ॥ २२३ ॥ आगादिमांसं नवनीतं  
पयोघृतानि क्रव्यादि मांसमपिजाङ्गलजा-  
रसाश्च ॥ २२४ ॥ मार्तण्डं चण्डकिरणैः  
परिशोपितानि लेधान्यपक्वफलानि सुचू-  
र्णितानि ॥ २२५ ॥ रागासकाम्बलिरु-  
पाडव वेश वारा भक्ष्याः शशाङ्क किरणा-  
मधुरो रसश्च ॥ २२६ ॥ पकानि मोच  
पनसाम्रफलानि धात्री खजूरं पौष्कर  
परुषकं नारिकेलम् ॥ २२७ ॥ शोभाञ्जनं  
व्यकुलकं नवतालशस्यं द्राक्षा फलानि  
मिशयोऽपि च भागिमन्थम् ॥ २१९ ॥  
सिंहास्यं पत्रमपि गो महिषी घृतं च  
आगाश्चपश्च तद्वम्बकर मूत्रलेपः ॥ २३० ॥  
मत्याण्डिका शिखरिणी मदिरारसाला  
कर्पूरकंमृग मद्ः सित चन्दनं च ॥ २३१ ॥  
आभ्यञ्जनानि सुरभीण्यनुलेपनानि स्ना-  
नानि वेशरचनान्यग्गाहनानि हर्म्यं  
स्रजः स्मरकथा मृदुगन्धवाहो गीतानि-  
नृत्यमपि चन्द्ररुचो विपश्ची ॥ २३२ ॥  
संदर्शनं मृगदशामपि हेमचूर्णं मुक्तामणि  
प्रसुर भूषण धारणं च होमः प्रदानममरद्विज  
पूजनानि ह्यात्र पानमपि पथ्यगण  
क्षयेषु ॥ २३३ ॥

शराव जागल पशु पक्षियों का मांस मूँग साठी  
चावल गेहूँ जी शालिधान्य ये सब यक्ष्मा रोगी को  
लाभदायक है । अधिक दोषों वाला शय रोगी बल-  
वान हो तो उसे हल्का जुलाय देकर शोधन करे ।  
गेहूँ मूँग चना लाव चावल बकरे का मांस,  
बकरी के दूध से निकला मक्खन दूध भी मांस खाने-  
वाले पशु, पक्षियों का मांस जागल जीवों का  
मांस रस, सूर्य की तेज किरणों से सुखाये श्रवलेह  
कचे मांस का सुखाया हुआ धूरा खटपूप ( मठा

मसाले आदि से सिद्ध मूँग का यूप ) रामपादव-  
( अनार दाखरसयुक्त मूँग का यूप ) देशवार ये  
सब यक्ष्मा रोगी को हितकर है । चन्द्रमा की  
किरणें मधुर रस, पके हुए केले कटहल आम आमला  
खजूर कमलकंद, फालसा नारियल, सहिजना,  
कामतिन्दू नया ताड़का फल, दूध, सौंध सेंधा  
नमक अदूमे की पत्ती गाय भैंस का घी बकरी-  
बंधने के स्थान पर रहना बकरी की मेगनी और मूत्र  
का लेप, मिथ्री सिखरना दही चीनी पानी तथा-  
मसाले युक्त घना पदार्थ शराय रसाला ( अवरहित  
गाढ़े दही में मिथ्री डाल तथा मसाले मिला कर  
बनाया पेय ) कपूर कस्तूरी सफेदचन्दन, सुगंधित  
द्रव्यों की शरीर में मालिश, सुगंधित द्रव्यों का  
लेप स्नान करना, अच्छे रकपड़े जेवर आदि पहनना  
जलकेल उत्तम महलों में निवास फूलमाला-  
पहनना, कामोद्दीपन चर्चयें सुनना कहना शीतल  
ष मंद सुगंधित वस्तुओं का सेवन, गाना सुनना,  
स्त्रियों का नृत्य देखना चाँदनी में घूमना घोषा  
आदि बाजे सुनना मृगनयनी सुंदर स्त्रियों का-  
दर्शन, स्वर्णमाल, मोतीमूँगे जड़े आभूषण  
पहनना, हवन, दान देवता ब्राह्मणों का पूजन  
हृदय के लिए हितकारी अन्नपान ये सब यक्ष्मा  
रोगी के लिए लाभदायक है ।

यक्ष्मारोम के अपथ्ये ।

विरेचनं वेगविधारणानि श्रमं स्त्रियं-  
स्वेदनं मञ्जनं च । प्रजागरं साहसकर्मसेवा  
रुक्षान्नपानं विषमाशनं च ॥ २३४ ॥  
ताम्रूलकालिन्द कुलत्थमाप, रसोनवंशाङ्गु-  
ररामठानि श्रम्लानितिक्रानिकपायकाणि,  
कटुनि सर्वाणि च पत्रशाकम् ॥ २३५ ॥  
स्यारान् विरुद्धान्यशनानि शिम्बी, कर्को-  
टकं चापि विदाहि सर्पम् कटिप्लकं  
कृष्णामपि क्षयेषु विवर्जयेत् सततम-  
ममत्तः ॥ २३६ ॥ एन्तार्क कारयेत्सं

तैल विल्वं च राजिकाम् व्यायामं च दिवा-  
निद्रा क्षयो कोपे विवर्जयेत् ॥ २३७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां यक्ष्माधिकारः  
समाप्तः ।

जुलाब मलमूत्र आदि के वेगों को रोकना,  
यकावट पैदा करने वाले काम मैथुन, स्वेदन,  
अंजन रात में जागना अपनी ताकत से अधिक  
कामों को करने की कोशिश करना रूपे अन्नों  
का खाना पीना, विषम भोजन । भौके-वे-भौके कम  
अधिक खान पान तरबूज कुलथी उदक अहमुन-  
बाँस की कोपल हींग खट्टे तीते कसैले कड़वे रस  
पत्तों के शाक चार पदार्थ परस्परविरोधी भोजन-  
( दूध मछली आदि ) सेम कठोडा सब प्रकार  
के विदाही अन्न लावाकठिहलक बँगन करेला  
तेल बेल राई व्यायाम दिन में सोना ये सब क्ष्य-  
रोगी के लिए हानिकारक है ॥ २३४-२३७ ॥

इति श्रीपण्डितरसरूपसाद्भिर्पाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधाययां व्या-  
ख्यायां यक्ष्माधिकारः समाप्तः ।

अथ कासाधिकारः ।

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं मुनि-  
पण्णकम् । स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षु-  
रसगौडिकाः ॥ १ ॥ दध्यारनालाम्लफलं  
प्रसन्नापानमेव च । शस्यते वातकासे तु  
स्वादम्ललवणानि च ॥ २ ॥ ग्राम्यान्-  
पोदकैः शालीयवगोधूमपट्टिकान् । रसै-  
र्मापात्मगुप्तानां यूर्पवा भोजयेद्वितान् ॥ ३ ॥

वायुमय कासागत में क्षुब्ध का साग,  
मकोय, कधी मूली, चौबतिया, तीन और मूत्र  
आदि रसैहपदार्थ तथा दूध, ईला का रस, गुड़  
की बनी बाजुपे, दही, काँजी क्षीर खट्ट कड़,

पुरामंठ, मधुर, अम्ल तथा लवणरसयुक्त पदार्थ  
क्षितकारक होते हैं। प्राग्ग्य अर्थात् दागादि,  
अग्ग्य अर्थात् पाराहादि और औदक अर्थात्  
कण्टप्रादि जम्बुओं के मांस के रस के साथ  
सासि के चापल वा भात, जी वा गेहूँ की रोटी,  
उदं अथवा केपांच के बीज के जूम् के साथ  
लाभदायक है ॥ १-३ ॥

पञ्चमूलीकृतः काथः पिप्पलीचूर्ण-  
संयुतः । रसान्नमश्नतो नित्यं वातकास-  
गुदस्यति ॥ ४ ॥

अत्र पञ्चमूली महती उष्णवीर्यतया  
विशेषेण वातप्रत्यनीकत्वात् ।

शुद्ध पञ्चमूल के ब्याध में पीपल का चूर्ण  
हालकर पातजन्य खाँसी में सेवन कराये तथा  
रोगी को खाने के लिये मांसयूप के साथ  
भात दे ॥ ४ ॥

भाद्रीद्राक्षाशठीशृङ्गी पिप्पली विश्व-  
भेषजैः । गुदतैलयुतो लेहो हितो मारुत-  
कासिनाम् ॥ ५ ॥

भारंगी, दास्य, कचूर, काकडाँसगी, पीपल,  
सोड इनके चूर्ण को पुराना गुड़ तथा कटुसैन्धव  
(सरसों का तैल) के साथ सेवन कराने से  
वातजन्य खाँसी अच्छी हो जाती है ॥ ५ ॥

अपराजितादिलेहः ।

शठी शृङ्गी कणा भार्गी गुडवारिदया-  
सर्कः । सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपरा-  
जितः ॥ ६ ॥

कचूर, काकडाँसगी, पीपरि, भारंगी, गुड,  
नागरमोथा और जवासा को पीसकर कड़ुआ तैल  
मिलाकर चाटने से वातजन्य कासरोग दूर होता  
है । इस अवलेह का नाम 'अपराजित' है ॥ ६ ॥

पैत्तिक कासचिकित्सा ।

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् ।  
दद्याद् घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थयुतां भि-  
षक् ॥ ७ ॥

पित्तजन्य काम में यदि कफ पतला हो तो  
विरेचनार्थं मधुररसयुक्त मिश्रण का ब्याध देवे ।  
यदि कफ गाढ़ा हो दो ठसी ब्याध को कड़वे रस  
के साथ देवे ॥ ७ ॥

मधुरैर्जाड्वलरसैः श्यामाकयन्कोद्रवाः ।  
मुद्गादियूपैः शार्करच तिक्तैर्कर्मात्रया  
हिताः ॥ ८ ॥

पैत्तिक कास में जाड्वल अर्थात् हरिण आदि  
पशुओं के मधुररस युक्त मांसरस के साथ  
अथवा तिक्तकाक के साथ साषाँ, जी और योर्दा  
का भात देना चाहिए ॥ ८ ॥

द्राक्षादिलेहः

द्राक्षामधुकरजूरं पिप्पलीमरिचान्वि-  
तम् । पित्तकासघ्नं श्वेतसिंहान्मात्तिकस-  
पिपा ॥ ९ ॥

मुनकर, मुजेठी, पियडरजूर, पीपल और  
मिर्च के १ माशा चूर्ण को मधु और घृत के  
साथ चाटना चाहिए । यह चूर्ण पैत्तिक कास का  
नाशक है ॥ ९ ॥

खजुरिपिप्पली द्राक्षासितालाजाः समां-  
शकाः । मधुसर्पियुतो लेहः पित्तकासघ्नः  
परः ॥ १० ॥

पियडलजूर, पीपल, दास्य, खाँड़ तथा खील  
इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर ११२ मा० की  
मात्रा में शहद तथा घृत के साथ चाटने से पैत्तिक  
खाँसी अच्छी होती है ॥ १० ॥

पलाद्विबृहतीवासाद्राक्षाभिः कथितं  
जलम् । पित्तकासापहं पेयं शर्करामधुयो-  
जितम् ॥ ११ ॥

खरैटी, छोटी कटेरी, यही कटेरी, अदसा,  
दास्य इनके ब्याध में खाँड़ तथा शहद हालकर  
पीने से पिपाजन्य खाँसी अच्छी होती है ॥ ११ ॥

वलिनं वमनेनादौ शोधितं कफकासि-  
नम् । यवान्नैः कटुरूक्षाप्यैः कफघ्नैश्वा-  
प्युपाचरेत् ॥ १२ ॥

श्लैष्मिक कासघाला रोगी बलघान् हो तो पहिले उसको घमन कराकर फिर कफघ्न, चरपरे, रूच और उष्ण यवान्न भोजन कराना चाहिए ॥ १२ ॥

दशमूल काथ ।

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्म-समुद्भवे । पिप्पली चूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिवेत् ॥ १३ ॥

पार्श्वशूल, ज्वर श्वास और श्लैष्मिक कास में पीपर का चूर्ण मिश्रित कर दशमूल का क्वाथ पान कराना चाहिए ॥ १३ ॥

पौष्करं कट्फलं भार्गीपिप्पली विश्व-साधितम् । पिवेत्काथं कफोद्रेके कासे श्वासे च हृद्ग्रहे ॥ १४ ॥

पोहकरमूल, कायफल, भारंगी, पीपल, सोंठ इनके सिद्ध क्वाथ को कफघ्न खाँसी, श्वास, हृद्ग्रह में सेवन कराना चाहिए ॥ १४ ॥

पञ्चकोलैः शृतं क्षीरं कफघ्नं लघु-शस्यते । श्वासकासं ज्वरहरं बलवर्णाग्नि-वर्द्धनम् ॥ १५ ॥

पञ्चकोल ( पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ ) से सिद्ध किया हुआ दूध कफ को नष्ट करता है तथा हलका है इसके सेवन से, खाँसी, श्वास तथा ज्वर नष्ट होता है और बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥ १५ ॥

कट्फलदादि ।

कट्फलं कतृष्णं भार्गी मुस्तं धान्यव-चाभयाः । शुण्ठी पर्यटकं शृङ्गी सुरादं च जले शृतम् ॥ १६ ॥ मधुहिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके । कण्ठरोगेषु मुख्येषु श्वासहिक्काज्वरेषु च ॥ १७ ॥

कायफल, मधुगुण्ड, भारंगी, मोथा, धानियाँ, वष, हरद, सोंठ, पित्तपापदा, काकदासिनी, देवदारु मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ ताले, पका हुआ क्वाथ ४ तोले, इमं

शहद तथा होंग डालकर वातकफघ्न्य खाँसी, कण्ठरोग, श्वास, हिक्का तथा ज्वर आदि में सेवन कराना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

श्रङ्गवेर स्वरस ।

स्वरसं श्रङ्गवेरस्य मात्तिकेण समन्वि-तम् । पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफा-पहम् ॥

कण्ठकारी काथ ।

कण्ठकारीकृतः काथः सकृत्पणः सर्व-कासहा ॥ १८ ॥

अदरक के रस में शहद मिलाकर पान करने से श्वास, कास, प्रतिश्याय और कफ नष्ट होते हैं । कटेरी ( भटकटैया ) के क्वाथ में पीपर का चूर्ण मिलाकर पीने से सब प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

कास में विभीतक प्रयोग ।

विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत् परिवे-ष्टितम् । स्थिन्नमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्य-विधारितम् ॥ १९ ॥

बहेड़े में घृत चुपड़, गोघर लपेट आग में घोड़ा पका लेवे । उस बहेड़े के टुकड़े को गुप्त में रखने से निःसंदेह सब प्रकार के कासरोग नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

धासकस्वरस ।

धासकस्वरसः पेयः मधुयुक्तो हिता-शिना । पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ २० ॥

अदमे के स्वरस में मधु मिलाकर पान करे और पथ्य पदार्थ का भोजन करे तो पित्तकफ कासरोग तथा पित्तपट्ट रक्तपित्त रोग दूर होता है ॥ २० ॥

पामायाः स्वरसं पूतं । कर्णामात्तिकसं-युतम् । श्वासासान्गुच्यने पीत्वाऽप्यमा-ध्याद् कासरोगतः ॥ २१ ॥

पुटपाकेन चोत्सिद्य वासरस्य रसो  
प्रागः । अत्र काथं व्यनहरन्ति वृद्धाः ।

अपूपसे के स्वरस में पीपरि या चूर्ण और मधु  
मिश्रित कर आधक दिनों तक पीने से असाध्य  
कासरोग श्रद्धा हो जाता है ॥ २१ ॥

अपूपसे की पत्तियों को पुटपाक की रीति में  
पकाकर स्वरस निवातना चाहिए । वृद्ध रोग  
पड़ने हैं, प्राय करके पान करना चाहिए ।

समूलं चित्ररुञ्जैव पिप्पलीचूर्णकं  
हरेत् । कासं श्वासश्च हिवाञ्च मधुगुक्कं न  
संशयः ॥ २२ ॥

सूलीमूली, चीते का मूल और पीपरि के  
चूर्ण को मधु मिश्रित कर चाटे ता कास, श्वास  
और हिचकी ये रोग निस्तदेह दूर होते हैं ॥ २२ ॥

तद्वन् ऋग्यादजं मांसं कौलिङ्गं मांस-  
मेव वा । असाध्यान्मुच्यते भुक्त्वा कासा-  
दभ्यासयोगतः ॥ २३ ॥

माम खानेवाले शयवा चटक पक्षी के मांस का  
प्रतिदिन सेवन करने से असाध्य कासरोग भी  
नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥

क्षयकास में मुस्ताकाद्यलेह ।

मुस्तकं पिप्पली द्राक्षा संपकं बृहती-  
फलम् । घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकास-  
निर्हर्णः ॥ २४ ॥

नागरमोथा, पीपरि, मुनक्का और पके हुए  
कटेरी के फल को पीसकर घृत और मधु के  
साथ सेवन करे तो क्षय-कास नष्ट होता है ॥ २४ ॥

मरिचाद्य चूर्ण ।

कर्प कर्पाद्धमथो पलं पलद्वयं तथाद्ध-  
कर्पश्च । मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगु-  
डयावशूकानाम् ॥ २५ ॥ सर्वौषधैरसाध्या-  
ये कासाः सर्वत्रैद्यविनिर्मुक्ताः । अपि पूयं  
वर्द्धयतां तेषामिदं महौषधं पथ्यम् ॥ २६ ॥

मिचं वा चूर्णं १ तोला, पीपरि का चूर्ण  
६ मासे, अनार का दाना ४ तोला, गुड़ ८  
तोला और जवावार ६ मासे एकत्र कर चूर्ण  
बनावे । जो कास किसी औषध से न श्रद्धा  
होता हो, जिस कास को असाध्य कहकर वैद्यों  
ने चिकित्सा करना छोड़ दिया हो और जिस  
काम में रोगी पूयादि वा वसन बरता हो उन  
कामों के दूर करने के लिए यह महौषध है ।  
मात्रा—१ मासा ॥ २६-२६ ॥

समशर्कराचूर्ण ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान्  
प्रकल्प्यात्तममानमेपाम् । पलाद्धमेकं  
मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य  
॥ २७ ॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगा-  
निमानाशु पलाद्भिह्न्यात् । कासज्वरा-  
रोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्यग्रहणीप्रदो-  
षान् ॥ २८ ॥

लौंग, जायफल और पीपरि एक तोला,  
मिचं २ तोला, सोंठ १६ तोला और सबके  
बराबर शर्कर मिलाकर परल कर चूर्ण बनावे ।  
इसका सेवन करने से कास, ज्वर, अरोचक,  
प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमाद्य और ग्रहणी रोग  
नष्ट होते हैं ॥ मात्रा—२ मासा ॥ २७-२८ ॥

धूमपानविधि ।

मनःशिलालमरिचं मांसीमुस्तेड्गुदैः  
पिवेत् । धूमं त्र्यहश्च तस्यानु सगुडश्च पयः  
पिवेत् ॥ २९ ॥ एष कासान् पृथग्द्वन्द्वसर्व-  
दोषसमुद्भवान् । शतैरपि प्रयोगाणां साधये-  
दप्रसाधितान् ॥ ३० ॥

मैनशिल, हरिताल, मिर्च, जटामासी, नागर-  
मोथा और इन्द्रुशीफल का धूमपान कराके  
परचाव थोड़ा दूध और गुड का सेवन बनावे ।  
तीन दिन इस प्रकार करने से अत्यन्त दुःसाध्य  
कास भी नष्ट होता है ॥ २९-३० ॥

मनःशिलालित वदरीपत्र-धूम ।

मनःशिलालितदलं वदर्या उपशोपि-  
त्तम् । सत्तीरं धूमपानञ्च महाकासनिवर्ह-  
णम् ॥ ३१ ॥

मैनशिल को पानी में धोलकर उसको बेर की पत्तियों में चुपड़ करके सुखा लेवे । उसको अग्नि पर रखकर धूमपान करना चाहिए पश्चात् कुछ दुग्धपान करना चाहिए । इससे महान् कास दूर होता है ॥ ३१ ॥

अर्कादि धूम ।

अर्कच्छल्लशिले तुल्ये तताऽर्द्धेन कटु-  
त्रिकम् । चूर्णितं वह्निनिक्षिप्तं पिवेद्दधूमं तु  
योगवित् ॥ ३२ ॥ भक्षयेदथ ताम्बूलं  
पिवेद्दुग्धमथाम्बु वा । कासाः पञ्चविधा  
यान्ति शान्तिमाशु न संशयः ॥ ३३ ॥

आक की छाल १ भाग, मैनशिल १ भाग  
और त्रिकटु अर्धभाग लेकर चूर्ण बनावे । इस  
चूर्ण का धूमपान करके ताम्बूल भक्षण करना  
चाहिए और दुग्ध अथवा जन का पान करना  
चाहिए तो पांच प्रकार के कास तत्काल शान्त  
होते हैं ॥ ३२ ३३ ॥

मरिचं शिलार्कत्तीरैरार्कत्वचमाशु  
भावितां शुष्काम् । कृत्वा विधिना धूमं  
पित्तः कासाः शमं यान्ति ॥ ३४ ॥

मरिच, मैनशिल और आक का दूध इनकी  
भावना आक की सूखी जड़ में देकर विधिपूर्वक  
धूमपान करने से सब प्रकार का कासरोग नष्ट  
होता है ॥ ३४ ॥

कण्टकारीघृत ।

घृतं रास्नापलाण्योपश्वदंष्ट्राकल्कपा-

चितम् । कण्टकारीरसे - पानात्पञ्चकास-  
निपूदनम् ॥ ३५ ॥

सोलह सेर कण्टकारी का रस या काथ लेकर  
उममें चार सेर घृत मिलावे तथा रास्ना, खरेटी,  
त्रिकटु और गोखरू ये कुल मिलाकर १ सेर  
हों । इनका कल्क बनाकर मिला देवे । परचात्  
धीमी आच पर विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर लेवे ।  
इस घृत का पान करने से पञ्चविध कासरोग दूर  
होते हैं ॥ ३५ ॥

व्याघ्री हरीतकी ।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जल-  
द्रोणपरिप्लुताञ्च । हरीतकीनाञ्च शतं  
निदध्याद् विपच्य सम्यक् चरणावशे-  
पम् ॥ ३६ ॥ गुडस्य दत्त्वा शतमेतमग्नौ  
विपकमुत्तार्य ततः सुशीते । कटुत्रिकञ्च  
द्विपलप्रमाणं पलानि पट् पुष्परसस्य  
चात्र ॥ ३७ ॥ क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्नि-  
प्रयुज्यमानो विधिनापलेहः । वातात्मकं  
पित्तकफोद्भवञ्च द्विदोषकासानपि च त्रिदो-  
षम् ॥ ३८ ॥ क्षयोद्भवञ्च क्षतजञ्च हन्यात्  
तत्पीनसं श्वासस्वरक्षयञ्च । यदमाणमे-  
कादशमुग्ररूपं भृगूपटिष्ठं हि रसायनं  
स्यात् ॥ ३९ ॥

जड़, पूल, पत्र महित कण्टकारी २ सेर  
और १०० हरीतकी लेकर २५ सेर ४८ तोला  
जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोला शेष रहने  
पर इस काथ में पुराना गुड २ सेर मिलावे  
और गुटनी निकाल सिद्ध हरीतकी को भी  
इसी में मिलाकर पकावे । अयत्रेह के समान  
गाना होने पर त्रिकटु ( मोंड, मिर्च, पीपरि )  
आठ तोला, चतुर्जात अर्थात् दालचीनी,  
तेजपान, इलायची और नागकेसर चार तोला  
मिलाकर उतार ले । शीतल होने पर चौबीस  
तोले शहद मिला ले । मात्रा अष्टपेद ४ मास  
हरीतकी का चाथा टुकड़ा मिलाकर रोचन

१ वदर्यातपतीपिनमिति पाठास्तरम् । वदर्या  
मा शिलालितदलम्, भावये शोपिनमिति  
पौत्रना । वदर्यानिवेदि अतिद्विपिधेरनापत्वा-  
त्तमन्विरति चक्र ॥

करना चाहिए । इस अवस्था के सेवन से सब प्रकार के कास ( दोषन कास, चयन कास, घतन कास ), श्वास, स्वरभेद तथा एकादन लक्षणयुक्त उम्र राजयुक्ता और पीनस आदि रोग नष्ट होते हैं ३६-३६ ॥

**तिन्तिडीपत्रजः काथो हिरुगुसैन्धवसं-  
युतः । दुष्टकासं जयत्याशु तृणट्टन्दमिवा-  
नलः ॥ ४० ॥**

इमती की पत्तियों के साथ में हींग और लाहरी नमक मिलाकर पान करे तो जैसे श्विन तृण के समूह को चणमात्र में भस्म कर देता है वैसे ही यह साथ दुष्ट कास को तत्काल जीतता है ॥ ४० ॥

**अगस्त्यहरतीका ।**

दशमूलीं स्वयंगुह्नां शहपुष्पां शटीं  
बलाम् हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूल-  
चित्रकान् ॥ ४१ ॥ भार्गी पुष्करमूलश्च  
द्विपलाशं यवाढकम् । हरीतकी शतं चैव  
जले पञ्चाढके पचेत् ॥ ४२ ॥ यवैः  
स्विन्नैः कपायं तं पूतं तत्राभयाशतम् ।  
पचेद् गुडतुलां दत्त्वा कुडवश्च पृथक्  
घृते ॥ ४३ ॥ तैलात् सपिप्पलीचूर्णात्  
सिद्धे शीते च मात्तिकात् । लिहादिकां  
शिवां नित्यमतः खादेत्सायनात् ॥ ४४ ॥  
तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णयुर्वलवर्धनम् ।  
पञ्चकासान् क्षयं श्वासं हिकाश्च विषमज्वरान्  
॥ ४५ ॥ हन्यात्तथा ग्रहण्यशो हृद्रोगा-  
रुचिपीनसान् । अगस्त्यविहितं धन्यमिदं  
श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ४६ ॥

दशमूल, कीच के बीज, शंखाहली, कचूर, खरैटी, गजपीपल, शौंगा, पीपलामूल, चित्रक, भार्गी, पीपरमूल, हरएक ८ तोले, पोडली में बंधे हुए जो ३ सेर १६ तोला, हरब नग १०० इन्हें ३२ सेर जल में पकावे । जब पकाते पकाते

चौथाई भाग घचे तब इसे छान ले और उबली हुई १०० हरबको घृत १६ तोले तथा तिल का तैल १६ तोले में भूनकर ऊपर कहा हुआ ८ सेर काथ और ८ सेर गुड़ मिलाकर पकावे । गाढ़ा होने पर पीपल का चूर्ण ३२ तोले डालकर पलावे । ठंडा होने पर ३२ तोले गहद डाले । मात्रा १ तोला अथलेह तथा १ हरद । इसके सेवन से थालों का सफेद होना और शरीर में फुरियाँ पड़ना आदि युद्धों के चिह्न नष्ट होकर यंत्र, धायु तथा बल बढ़ता है । यह पाँचों तरह की खाँसी, चय, श्वास, हिका, विषमज्वर, प्रहणी, वयासीर, हृदय का रोग, पीनस आदि रोगों को अच्छा करता है ॥ ४१-४६ ॥

**वासायलेह ।**

वासकस्वरसमस्थे मानिका सितशर्करा ।  
पिप्पलीद्विपलं दत्त्वा सर्पिपश्च पचेच्छनैः  
॥ ४७ ॥ लेहीभूते ततः परचाच्छीते  
क्षौद्रपलाष्टकम् । दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्र-  
या लेह उत्तमः ॥ ४८ ॥ निहन्ति राज-  
यन्माणं कासं श्वासश्च दाहणम् । पार्श्व-  
शूलश्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥ ४९ ॥

अदूसे के १२८ तोला स्वरस में ३२ तोला श्वेन शर्कर, ८ तोले पीपरि का चूर्ण और ८ तोले घृत मिलाकर धीरे-धीरे पाक करे और गाढ़ा होने पर उतार ले । जब शीतल हो जावे तो ३२ तोले शहद मिलाकर रख ले । उचित मात्रा में सेवन करने से यह अथलेह राजयन्मा, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वर को नष्ट करता है ॥ ४७-४९ ॥

**शुद्धतालीशाच चूर्ण ।**

तालीशं ज्यूपणं शृङ्गी क्षुद्रैलाक्षश्च  
वैणवी सर्वाणि समभागानि श्लक्ष्ण-  
चूर्णानि कारयेत् ॥ ५० ॥ खादेदस्मात्प्रति  
दिनं भाषार्द्धं मधुना सह । कासं श्वासं  
रक्तपित्तं हन्ति सर्वम् गलामयान् ॥ ५१ ॥

तालीशपत्र, त्रिकुटा, काकड़ासिगी, छोटी इलायची, बहेड़ा, वंशलोचन इनके चूर्ण को इकट्ठाकर बराबर मात्रा में मिला ले। मात्रा आधा माशा, अनुपान-शहद। इसके नित्य सेवन करने से खाँसी, श्वास, रङ्गपित्त तथा सब कष्टरोग अच्छे हो जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

तालीशचूर्ण तथा मोदक ।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वंगेले चार्द्धभागिके ॥ ५२ ॥ पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा । कासश्वासा-रुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ ५३ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगाह्लीहशोथज्वरापहम् । छर्द्यतीसारशूलघ्नं मृदवातानुलोमनम् ॥ ५४ ॥ कल्पयेद्गुडिकाञ्चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् । गुडिकाद्यग्निसंयोगा-च्चूर्णांल्लयुतरा स्मृता ॥ ५५ ॥ पैत्तिके ग्राह्यन्त्येके शुभायां वंशलोचनम् । विशेषेण हि पिप्पल्या अन्यत्र पैत्तिकाञ्छु-भा ॥ ५६ ॥

तालीशपत्र १ तोला, काली मिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, पीपरि ४ तोला, वंशलोचन ५ तोला, दालचीनी आधा तोला, इलायची आधा तोला और श्वेत शर्कर यतीस तोले लेकर चूर्ण बनावे। यदि मोदक बनाना हो तो खाँद की खाशानी यथाविधि पक करके मोदक तैयार करे। यह मोदक अग्नि-सदोग के कारण चूर्ण की अपेक्षा अल्पतः खनु होगा है। इस चूर्ण ग्रथया मोदक के सेवन से कास, श्वास, अरुचि, हृद्दोग, पांडु, प्रदरपी, प्रोहा, शोथ और ज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। पिप्पली शुभा इस जगह कोई कहे है कि दैतिक कास में शुभा शब्द से वंशलोचन लेना चाहिए। अन्य शोषजन्य कास में यहाँ के शुभा शब्द को पिप्पली का विशेषण जाननः चाहिए। मात्रा चूर्ण १-२ मासे, मोदक ५-६ मासे ॥ २२-२३ ॥

टिप्पणी—कास के लिए वंशलोचन प्रत्येक-दश में लेना उचित है।

सितोपलादि चूर्ण ।

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्दं-शरोचना पिप्पली स्याच्चतुष्कर्या स्यादेला चद्विकार्पिकी ॥ ५७ ॥ एकःकर्पस्त्वचः कार्यश्-चूर्णयेत्सर्वमेकतः सितो पलादिकं चूर्ण-मधु सर्पियुतं लिहेत् ॥ ५८ ॥ श्वास कासक्षयहरं हस्तपादाङ्गदाहजित । मन्दाग्नि सुप्तजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोक्कम् ॥ ५९ ॥ ज्वर मूर्ध्वगतं रक्तं पित्तमाशु व्यपोहति ॥ ६० ॥

मिसरी १६ तोले वंशलोचन घाठ तोले पीपरि ४ तोले छोटी इलायची के बीज २ तोले और दाल चीनी १ तोला इन सब को नहीन पीस चूर्ण कर बलानुसार मात्रा में घी और शहद के साथ मिलाकर घाटना चाहिये। यह श्वास खाँसी ज्वररोग तथा हाथ और पैरों की जलन मन्दाग्नि जीम की शून्यता पसनी की पीड़ा अरुचि ज्वर तथा ऊर्ध्वगत रक्त और पित्तरोग को नाश करता है। विशेष अनुभूत है। २०-६० ॥

पञ्चामृत रस

शुद्धमृतस्य भागैकं भागौ द्वौ गन्ध-कस्य च । भागद्वयं मृतं ताम्रं मरिचं दश-भागिकम् ॥ ६१ ॥ मृताभ्रस्य चतुर्भागं भागमेकं विषं क्षिपेत् । अम्लेन गर्दपेत् सर्वं मापैहं वातकासनुत् । अनुपानं लिहेत् चोर्द्ध्विभीतकफलात्त्वयम् ॥ ६२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, ताम्रजम्ब २ तोला, मिर्च १० तोला, अश्वकनाभ्र ४ तोला और विष ( शुद्ध मींगिया ) १ तोला लेकर भीड़ के रस में घोटकर उर् के बराबर तोली बनावे। बर्दवा के पिखडा के चूर्ण और



मधु के साथ इसका सेवन करने से वातज कास नष्ट होता है ॥ ६१-६२ ॥

अमृतार्णव रस

पारदं गन्धकं शुद्धं मृतं लौहश्च टङ्ग-  
नम् । रास्ना विडङ्गत्रिफलादेवदारु कटु-  
त्रिकम् ॥ ६३ ॥ अमृता पद्मकं\* चौद्रं  
विपश्चापि विचूर्णयेत् । द्विगुञ्जं वातका-  
सारतः सेवयेदमृतार्णवम् ॥ ६४ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, सोहागा, रास्ना, बाषाणद्वन्द्व, त्रिफला, देवदारु, त्रिकटु गिलोय, पद्माक्ष और विप ( शुद्ध सींगिया ) समभाग इन सब ओषधियों को एकत्रित कर मधु में मर्दन कर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर मधु के साथ सेवन करने से वातजन्य कासरोग धाराम होता है ॥ ६३-६४ ॥

## चन्द्रामृता वटी

( चन्द्रामृतरस )

रसगन्धकलोहाभां प्रत्येकं कार्पिकं  
शुभम् । टङ्गनस्य पलं द्रवा मरिचस्य  
पलार्धकम् ॥ ६५ ॥ त्रिकटु त्रिफला चव्यं  
धान्यजीरकसैन्धवम् । प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं  
द्वा गीर्जीरेण गोलयेत् ॥ ६६ ॥ चतुर्गु-  
ञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद् भिषक् ।  
प्रातः काले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वा मृते-  
श्वरीम् ॥ ६७ ॥ एकैकां वटिकां खादेद्  
रक्तोत्पलरसप्लुताम् । नीलोत्पलरसेनापि  
कुलत्थस्य रसेन वा ॥ ६८ ॥ पिप्पल्या  
मधुना वापि मृद्वे रसेन वा । हन्ति पञ्च-  
विधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ॥ ६९ ॥  
वातश्लेष्मोद्भवं दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं  
तथा । वातिकं पैत्तिकञ्चैव नानादोषसमु-

द्भवम् ॥ ७० ॥ रक्तनिष्ठीवनश्चापि ज्वरं  
श्वाससमन्वितम् । तृष्णां दाहं भ्रमं हन्ति  
जठराग्निप्रदीपिनी ॥ ७१ ॥ बलवर्ण-  
करी ह्येषा स्त्रीहगुल्मोदरापहा । आनाहकृ-  
मिहृत्पाण्डुजौर्णज्वरविनाशिनी ॥ ७२ ॥  
इयं चन्द्रामृतानाम् चन्द्रनाथेन निर्मिता ।  
वासा गुडुची भार्गी च मुस्तकं कण्टका-  
रिका । सेवनान्ते प्रयोक्तव्या गुटिका  
वीर्यवर्धिनी ॥ ७३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, धनिया, जीरा, सैन्धवलवण, पारा, गन्धक, लोह प्रत्येक एक-  
एक तोला, सोहागा फुला हुआ ४ तोला, मरिच  
२ तोला एकत्र कर यकरी के दूध में पीस  
चार-चार रत्ती की गोली बनावे । अनुपान  
लाल कमल का रस, नीले कमल का रस अथवा  
कुलथी का काथ या पीपरि का चूर्ण और मधु  
अथवा अदरक का रस निश्चित करना चाहिए ।  
इस औषध का सेवन करने के पश्चात् अडूसा,  
गिलोय, भारंगी, नागरमोथा और कटेरी के  
काथ का सेवन करे तो यह गुटिका विशेष लाभ  
करती है । इस गुटिका का सेवन करने से हर  
प्रकार के कास, रक्तवमन, ज्वर, रसास, तृष्णा,  
दाह, भ्रम, ज्वीहा, गुल्म, उदर, आनाह, कृमि,  
हृद्रोग, पांडु और जौर्णज्वर दूर होते हैं तथा  
जठराग्नि प्रबल होती है ॥ ६५-७३ ॥

श्रीडामरानन्द अन्नक

अन्नस्थामलमारितस्य तु पलं क्षुद्राट-  
रूपस्थिरा त्रिवलश्चारलुपाटलाः कलशिका  
सन्नद्यप्ट्यार्द्रकाः । चित्रग्रन्थिकगोक्षुरं  
सचत्रिकं भार्ग्यात्मगुप्तान्वितं सचर्म-  
दितमेकशश्च पलिकैर्गुञ्जार्द्रकं भक्षितम्  
॥ ७४ ॥ कासं पञ्चविधं स्वराभयपुरोधा-  
तश्च हिकां ज्वरं श्वासं पीनसमेहगुल्म-  
मरुचि यक्ष्माश्लपित्तं क्षयम् । दाहं  
मोहमशेषदोषजनितं शूलं पलासं कृमि

१—\*क्षामीधीरेण मुस्तेन केशराजरसेन च' इत्यपि  
कश्चित् पाठः ।

च ॥ ६८ ॥ मनःशिलायाः चाराणां  
वीजं धुस्तूरकस्य च । मरिचस्यापि सर्वेषां  
समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥ जयन्ती  
चित्रकं माणवण्टकणोल्लमण्डुकी । शक्रा-  
शनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा ॥ १०० ॥  
सिन्धुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैर्विभावयेत् ।  
गुञ्जैकपरिमाणान्तु गुटिकां कारयेद्विपक्व  
॥ १०१ ॥ हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासञ्चैव  
सुदाख्यम् । कफवाताभयानुग्रानानाहं  
विड्विचद्धताम् ॥ १०२ ॥ अग्निमान्द्य-  
रुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम् । रसायनी  
च वृष्या च वलवर्णप्रसादनी ॥ १०३ ॥  
मधुरं वृंहणं वृष्यं मत्स्यं मांसञ्च जाङ्गलम् ।  
घृतपक्वं सदा भक्ष्यं रुक्षं तीक्ष्णं विवर्ज-  
येत् ॥ १०४ ॥

आर्द्रकरसेन भक्ष्यम् । यक्ष्माधिका-  
रोक्ता स्वल्परसेन्द्रगुटिका चात्र कर्षव्या ।

पारा, गन्धक, अश्रकभस्म, लोहभस्म,  
ताम्रभस्म, हरताल, विष ( शुद्ध सींगिया ),  
मैनसिल, जवारार, सजी, सुहागा, धतूरे के  
बीज और मरिच का समभाग चूर्ण एकत्र कर  
जयन्ती, चित्रक, मानकन्द, घंटाकर्ण, जिमीकन्द,  
दाही, इन्द्रजी, भांगरा सफेद, भांगरा काला,  
अदरक और सभालू के एक एक तोला रस में  
भायना देकर एक एक रथी के समान गोली  
बनाये । अदरक के रस के साथ इसका सेवन  
करे । यह शीघ्रिष पशुपिष काग, भयकर  
श्याम, तीव्र कफज तज्ज्व रोग, छानाह, विडम्ब,  
मन्दाग्नि, अरुचि, शोथ, उदर, पांडु तथा कामला  
इस रोगों को दूर करती है । इस शीघ्रिष का  
सेवन करनेवाले रोगी के लिए मधुर, पुंहण  
और वृष्य पदार्थ, मत्स्य और जाङ्गल पशुओं  
के मांस तथा पुष्पक पदार्थ पर्य है । रुष  
और तीक्ष्ण पदार्थ त्याग्य है । यह श्यायन  
बल, शीघ्र तथा वर्ण को बढ़ायेवाला है । यक्ष्मा-

धिकार में कही स्वल्परसेन्द्रगुटिका भी इस  
जगह व्यवहार में लेनी चाहिए ॥ ६८-१०४ ॥

गुणमहोदधि ।

सूतकं गन्धकं लौहं विपश्चापि वराङ्ग-  
कम् । ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समा-  
शकम् ॥ १०५ ॥ पत्रं त्रिकटुकं मुस्तं विडङ्ग  
नागकेशरम् । रेणुकामेलकञ्चैव पिप्पली-  
भूलमेव च ॥ १०६ ॥ एषाञ्च द्विगुणं दत्त्वा  
मर्दयित्वा प्रयत्नतः । भावना तत्र दातव्या  
जलपिप्पलिनिसुभिः ॥ १०७ ॥ मात्रा  
चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता । हन्ति  
कासं तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम्  
॥ १०८ ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं  
कपालिकाम् । हरेत् संग्रहणीरोगानष्टौ च  
जठराणि च । प्रमेहान् विशतिञ्चैवाप्यरम-  
रीञ्च चतुर्विधाम् ॥ १०९ ॥ न चान्नपाने  
परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने  
च । अथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत्  
काञ्चनराशिगौरः ॥ ११० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, विष  
( शुद्ध सींगिया ), दालचीनी, ताम्रभस्म, पत्र-  
भस्म और अश्रकभस्म एक एक तोला, तेज-  
पात, त्रिकटु, नागरमोधा, विडङ्ग, नागकेशर,  
सभालू के बीज, चायला और पिपराभूल दो  
दो तोला एकत्र करके भर मुगधवाला तथा  
पीपरी के ढाघ और नीपू के रस की भायना  
देकर घना के बराबर गोली बनाये । इसमें  
काग, श्याम, पदार्थी, भगन्दर, टण्डूल, पादप-  
दल, कर्णरोग, कपालिका, संग्रहणी, घाट  
प्रकार के उदररोग, शीघ्र प्रकार के प्रमेद और  
चार प्रकार की पथरी यह सब रोग नष्ट होते

है । हम जोषधि को सेवन करनेवाला रोगी, ( शत्रि और अयस्थानुसार ) यथेच्छ आहार-विहार करे । शतके सेवन से मनुष्य शब्दान् वर्णं (गौर शरीर) वाला हो जाता है ॥ १०५-११० ॥

नमशर्करालौह ।

लवङ्गं कटुफलं कुष्ठं यमानी त्र्यूपगं तथा । चित्रकं पिप्पलीमूलं वासकं कण्ट-कारिका ॥ ॥ १११ चव्यं कर्कटमूत्री च चातुर्जातं हरीतकी शटी कङ्कालकं मुस्तं लोहमध्रं यथाग्रजम् ॥ ११२ ॥ सर्वं प्रतिसमञ्चूर्णं तावच्चर्करयान्वितम् । सर्वं मेकीकृतञ्चूर्णं स्थापयेत् स्निग्धभाजने ॥ ११३ ॥ निहन्ति सर्वजं कासं वातरलो-प्पममुद्भवम् । क्षयकासं रत्रपित्तं श्वास-माशु विनाशयेत् । क्षीणस्य पुष्टिजननं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ११४ ॥

लींग, कायफल, पृष्ठ, अजवाहन, त्रिकटु, धीता फी जत्र, पिपरामूल, अड्डमा, कटेरी, चव्य, काकदासिगी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, हरद, कपूर, ककोल, नागरमोधा, लोहभस्म, अश्रकभस्म और जवा-स्वार यह सब सम भाग, सबके धरावर शकर मिलाकर खरल करके घृत के पात्र में रख ले । शत्रि अनुसार इसका सेवन करने से कास, रत्रपित्त, क्षयकास और श्वासरोग नष्ट होते हैं । यह नमशर्करालोह क्षीणरूप को पुष्ट करनेवाला और बल, वर्ण तथा अग्नि का बढ़ानेवाला है । मात्रा-१-१ ॥ माशा ॥ १११-११४ ॥

भागोत्तरगुटिका ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत् । त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागे विभीतकः ॥ ११५ ॥ पञ्चभागस्तथा वासा पद्मगुणा सप्तभागिका । भार्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बबूलजैर्द्रवैः ॥ ११६ ॥

एकविंशतिवारांस्तु मधुना गुटिकाः कृताः । एकमापममाणेन प्रातरेकान्तु, भक्षयेत् ॥ कासं श्वासं हरेत् जुद्राकाथस्तदनु कृपण्या ॥ ११७ ॥

शुद्ध पारा, १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, पीपरि ३ तोला, दरद ४ तोला, बहेदा ५ तोला, अड्डसा ६ तोला और भारंगी ७ तोला एकत्र कर २१ बार चयूत की छाल के स्वरस में भावना देकर मधु मिश्रितकर एक-एक भाग की गोली बनावे । पीपल या दूर्ण और कटेरी के पाथ के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली प्राय तो कास और श्वासरोग नष्ट होते हैं ॥ ११५-११७ ॥

लक्ष्मीविलागरस ।

पलं वङ्गं पलं कान्तं घनं ताम्रश्च कांस्यरुम् । शुद्धसूतं सतालश्च तालाङ्कुरं सखर्परम् ॥ ११८ ॥ केशराजरसेनैव भावना दिवसत्रयम् । कुलत्थंस्वरसे चैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ ११९ ॥ एलाजाती-फलाख्यश्च तेजपत्रं लवङ्गरुम् । यमानी जीरकश्चैव त्रिकटु त्रिफलासमम् ॥ १२० ॥ नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्पमात्रश्च कारयेत् । भावयेच्च रसेनाथ गोलयेत् सर्वमौषधम् ॥ १२१ ॥ छायाशुष्कावटी कार्या गुडैकं-प्रमितातथा । शीताम्बुना पिवेद्दीमान् सर्व-कासनिट्त्तये ॥ १२२ ॥ मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम् । क्षत-कासं तथा रसासं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ १२३ ॥ हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम् । अशोनाशं करोत्येव बलपुष्टिश्च कारयेत् ॥ १२४ ॥ कामदेवसमं वर्णं तृप्यारोचकनाशनम् ।

१ गन्धकक्रेत पाठ साधु ।

छर्दि पाण्डुहलीमकं गलगदं विस्फोटकं  
कामलाम् ॥ ७५ ॥ मन्दाग्नि ग्रहणीं  
क्षयं च यकृतं स्त्रीहानमर्शांसि पट् हन्या-  
दामकफोद्भवान् गुरुगदान् श्रीडाप्ररा-  
मभ्रकम् । वल्यं वृष्यमशेषदोपहरणं  
धातुप्रदं कासिनां मेध्यं हृद्यरसायनं हरमु-  
खाज् ज्ञात्वा मया भाषितम् ॥ ७६ ॥

चार तोला अश्रकभस्म को लेकर छोटी  
कटेरी, अड़ू से की जड़ शालपर्णी बेल के जड़  
की छाल, श्यांनाक, पाटला, शृशिनपर्णी, भारगी,  
अदरक, चीते की जड़, पीपरा मूल, गोखरू,  
चष्य, भारंगी और कौंच ( केवांच ) इनमें से  
प्रत्येक शोषधि के रस में क्रमशः खरल करके  
रख ले । मात्रा आधी रत्ती । इसका सेवन करने  
से पञ्चविध कास, स्वरभेद, उरोमात, हिचकी,  
ज्वर, श्वास, पीनस, प्रमेह, गुल्म, अरुचि,  
यक्ष्मा, अश्लपित्त, क्षय, दाह, मोह, शूल, कृमि,  
यमन, पांडु, हलीमक, कंठरोग, विस्फोटक,  
कामला, मन्दाग्नि, ग्रहणी, यकृत, प्रीडा, छह  
प्रकार की बवासीर, आम तथा कफज रोग सब  
नष्ट होते हैं, यह बलकारक, वीर्यवर्धक, मेधा  
और हृदय को हितकारक, रसायन तथा धातु-  
वर्द्धक है । श्रीमहादेवजी के सुन्दारविन्द से सुन-  
कर मैंने कहा है ॥ ७४-७६ ॥

महाकालेश्वर रस

मृतं लौहं मृतं वङ्गं मृताकं मृतम-  
भ्रकम् । शुद्धं मृतञ्च गन्धञ्च मात्तिकं  
हिङ्गुलं विषम् ॥ ७७ ॥ जातीफलं लव-  
ङ्गञ्च त्वगेला नागकेसरम् । उन्मत्तस्य च  
वीजानि जयपालञ्च शोधितम् ॥ ७८ ॥  
एतानि समभागानि मरिचं हरनेत्रकम् ॥  
सर्वद्रव्यं क्षिपेत् खल्ले लौहदण्डेन मर्द-  
येत् ॥ ७९ ॥ शक्राशनस्य स्वरसैर्भावये-

देकविंशतिम् । गुञ्जामात्रा प्रदातव्या  
आर्द्रकस्य रसैर्युता ॥ ८० ॥ तदुद्धं चाल-  
वृद्धेषु पथ्यं देयं यथोचितम् । पञ्चका-  
सान् क्षयं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च  
॥ ८१ ॥ सन्निपातं कण्ठरोगमभिन्वास-  
मचेतनम् । महाकालेश्वरो हन्ति काल-  
नाथेन भाषितः ॥ ८२ ॥

लोह, वङ्ग, ताम्र, अश्रक, पारद, स्वर्ण-  
मात्तिक इनकी भस्म, गन्धक, हिङ्गुल, विष  
(सीगिया), जायफल, लौंग, दालचीनी, इला-  
यची, नागकेसर, घतूरे के बीज और शुद्ध  
जमालगोटा प्रत्येक १ तोला, मरिच ३ तोला  
एकत्र कर लोहे की मूसली से घोटका भाँग  
की पत्तियों के रस की २१ भावना दे, एक-एक  
रत्ती का गोली बनावे । बालक और बूढ़ों को  
तो आधी ही रत्ती की मात्रा देनी चाहिए ।  
एवम् यथायोग्य पथ्य की व्यवस्था करे । अतु-  
पान अदरक का रस । इसके सेवन से पञ्चविध  
कास, क्षय, श्वास, यक्ष्मा सन्निपात, कण्ठरोग,  
अभिन्वास और अचेतनता, ये रोग शान्त होते  
हैं । कालनाथ का कहा हुआ यह महाकालेश्वर  
रस है ॥ ७७-८२ ॥

विजयभैरव रस ।

सूतकं गन्धकं लौहं विषमभ्रकताल-  
कम् । विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेलान्निथिक  
केशरम् ॥ ८३ ॥ त्रिकडु त्रिफला चि-  
शुद्धं जैपालवीजकम् । एतानि समभा-  
गानि गुडं द्विगुणमुच्यते ॥ ८४ ॥ गुञ्जा  
द्वयममाणेन मातःकाले तु भक्षयेत् ।  
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्व-  
रम् ॥ ८५ ॥ अजीर्णं ग्रहणीदोषं हन्ति  
पाण्डुामयं तथा । अपाने हृदये शूलं वात-  
रोगं गलग्रहम् ॥ ब्रह्मणा निर्मितो क्षेप-  
रसो विजयभैरवः ॥ ८६ ॥

च ॥ ६८ ॥ मनःशिलायाः क्षाराणां  
 वीजं धुस्तूरकस्य च । मरिचस्यापि सर्वेषां  
 समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥ जयन्ती  
 चित्रकं माण्डवण्टकणोल्लमण्डुकी । शक्रा-  
 शनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा ॥ १०० ॥  
 सिन्धुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैर्विभावयेत् ।  
 गुञ्जैकपरिमाणान्तु गुटिकां कारयेद्विपक्व  
 ॥ १०१ ॥ हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासञ्चैव  
 सुदारुणम् । कफवातामयानुग्रानानाहं  
 विड्विविद्धताम् ॥ १०२ ॥ अग्निमान्द्या-  
 र्चि शोथपुद्गरं पाण्डुकामलाम् । रसायनी  
 च वृष्या च वलवर्णप्रसादनी ॥ १०३ ॥  
 मधुरं वृंहणं वृष्यं मत्स्यं मांसश्च जाङ्गलम् ।  
 घृतपक्वं सदा भक्ष्यं रूक्षं तीक्ष्णं विवर्ज-  
 येत् ॥ १०४ ॥

आर्द्रकरसेन भक्ष्यम् । यक्ष्माधिका-  
 रोक्ता स्वल्परसेन्द्रगुटिका चात्र कर्त्तव्या ।

पारा, गन्धक, अश्रकभस्म, लोहभस्म,  
 ताग्रभस्म, हरनाल, विष ( शुद्ध सींगिया ),  
 मैनसिल, जवाखार, सञ्जी, सुहागा, धतूरे के  
 बीज और मरिच का समभाग चूर्ण एकत्र कर  
 जयन्ती, चित्रक, मन्थन्द, घंटाकर्ण, जिमीकन्द,  
 प्राङ्गी, इन्द्रजौ, भांगरा सफेद, भांगरा काला,  
 अदरक और सभालू के एक एक तोला रस में  
 भाषना देकर एक एक रत्ती के समान गोली  
 बनावे । अदरक के रस के साथ इसका सेवन  
 करे । यह श्वीषोष पञ्चविध काग, भयकर  
 श्वास, तीव्र कण्ठ तज्ज्वर रोग, श्वासाह, विषण्ण,  
 मन्दाग्नि, अर्चि, शोथ, उदर, पाण्डु तथा कामला  
 इन रोगों को दूर करती है । इस श्वीषोष का  
 सेवन करनेवाले रोगी के लिए मधुर, पृंहण  
 और कृत्र पदार्थ, माष्य और जाङ्गल पशुओं  
 के मांस तथा घृतपक्व पदार्थ पाव है । रूष  
 और तीक्ष्ण पदार्थ त्याग्य है । यह रसायन  
 बल, शीघ्र तथा वर्ण को बढ़ानेवाला है । यक्ष्मा-

धिकार में कही स्वल्परसेन्द्रगुटिका भी इस  
 जगह व्यवहार में लेनी चाहिए ॥ ६८-१०४ ॥

गुणमहोदधि ।

सूतकं गन्धकं लौहं विपश्चापि वराङ्ग-  
 कम् । ताग्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समा-  
 शकम् ॥ १०५ ॥ पत्रं त्रिकटुकं मुस्तं विडङ्ग  
 नागकेशरम् । रेणुकामेलकञ्चैव पिप्पली-  
 मूलमेव च ॥ १०६ ॥ एषाञ्च द्विगुणं दत्त्वा  
 मर्दयित्वा प्रयत्नतः । भावना तत्र दातव्यां  
 जलपिप्पलिनित्युभिः ॥ १०७ ॥ मात्रा  
 चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता । हन्ति  
 कासं तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम्  
 ॥ १०८ ॥ हृद्बूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं  
 कपालिकाम् । हरेत् संग्रहणीरोगानष्टौ च  
 जठराणि च । प्रमेहान् विशतिञ्चैवाप्यशम-  
 नीञ्च चतुर्विधाम् ॥ १०९ ॥ न चान्नपाने  
 परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने  
 च । अथेष्टेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत्  
 काञ्चनराशिगौरः ॥ ११० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, विष  
 ( शुद्ध सींगिया ), दालचीनी, ताग्रभस्म, यक्ष-  
 भस्म और अश्रकभस्म एक एक तोला, तेज-  
 पात, त्रिवटु, नागरमोथा, विडङ्ग, नागकेशर,  
 सभालू के बीज, चायला और पिवरामूल दो  
 दो तोला एकत्र रख कर गुणघषाला तथा  
 पीपरी के साथ और नीचू के रस की भाषना  
 देकर बना के बराबर गोली बनावे । इसमें  
 कास, श्वास, पचासीर, भगन्दर, हृद्बूल, पार्श्व-  
 शूल, कर्णरोग, कपालिका, संग्रहणी, आठ  
 प्रकार के उदररोग, शीघ्र प्रहार के प्रमेह और  
 चार प्रकार की पथरी यह सब रोग नष्ट होते

है । इस घोषधि को सेवन करनेवाला रोगी, ( शत्रि और श्वस्यानुसार ) यथेच्छ आहार-विहार करे । इसके सेवन से मनुष्य वायन वर्ण ( गौर शरीर ) वाला हो जाता है ॥ १०२-११० ॥

समशर्करालौह ।

लवङ्ग कट्फलं कुष्ठं यमानी व्यूपणं तथा । चित्रकं पिप्पलीमूलं वासकं कण्ट-कारिका ॥ १११ चव्यं कर्कटशृङ्गी च चानुर्जातं हरीतकी शटी कङ्गोलकं मुस्तं लौहमध्रं यथाग्रजम् ॥ ११२ ॥ सर्पप्रतिसमञ्चूर्णं तावच्छर्करयान्नितम् ॥ सर्पमेकीकृतञ्चूर्णं स्थापयेत् स्निग्धभाजने ॥ ११३ ॥ निहन्ति सर्पजं कासं वातरले-प्पसमुद्भवम् । क्षयकासं रक्तपित्तं श्वास-माशु विनाशयेत् । क्षीणस्य पुष्टिजननं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ११४ ॥

लौह, कायफल, घृत, अजवाइन, त्रिकटु, चीता की जड़, पिपरामूल, अदुसा, कटेरी, चव्य, काकदासिणी, दालचीनी, तेजपात, हलायची, नागकेसर, हरद, कपूर, फकोल, नागरमोथा, लोहभस्म, अश्रकभस्म और अजा-पार यह सब गम भाग, सबके बराबर शकर मिलाकर खरल करके घृत के पात्र में रख ले । शत्रि अनुसार इसका सेवन करने से कास, रक्तपित्त, क्षयकास और श्वासरोग नष्ट होते हैं । यह समशर्करालोह क्षीणपुरप को पुष्ट करनेवाला और बल, वर्ण तथा अग्नि का बढ़ानेवाला है । सात्रा-१-१ ॥ माशा ॥ १११-११४ ॥

भागोत्तरगुटिका ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत् । त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागो विभीतकः ॥ ११५ ॥ पञ्चभागस्तथा वासा पट्टगुणा सप्तभागिका । भार्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं वञ्जूलजैर्द्रवैः ॥ ११६ ॥

एकविंशतिवारान्स्तु मधुना गुटिकाः कृताः । एकमापममाणेन प्रातरैकान्तु भक्षयेत् ॥ कासं श्वासं हरेत् चुद्राकाथस्तदनु कृष्याया ॥ ११७ ॥

शुद्ध पारा, १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, पीपरी ३ तोला, हरद ४ तोला, चदेदा ५ तोला, अदुसा ६ तोला और भारगी ७ तोला एकत्र कर २१ बार पट्ट की छाल के स्वरस में भाषना देकर मधुमिश्रितकर एक एक माशे की गोली बनावे । पीपल वा घृा और कटेरी के साथ के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली खाए तो कास और श्वासरोग नष्ट होते हैं ॥ ११२-११७ ॥

लक्ष्मीविलानरस ।

पलं वङ्गं पलं कान्तं घनं ताम्रश्च कांस्यकम् । शुद्धमूतं सतालश्च तालाङ्कुरे सप्तर्षरम् ॥ ११८ ॥ केशराजरसेनैव भावना दिवसत्रयम् । कुलत्थंस्परसे चैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ ११९ ॥ एलाजाती-फलाख्यश्च तेजपत्रं लवङ्गकम् । यमानी जीरकश्चैत्र त्रिकटु त्रिफलासमम् ॥ १२० ॥ नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रश्च कारयेत् । भावयेच्च रसेनाथ गोलयेत् सर्वमौषधम् ॥ १२१ ॥ ह्यायाशुष्काश्री कार्या गुञ्जैकं-प्रमितातथा । शीताम्बुना पिबेद्दीमान् सर्प-कासनिवृत्तये ॥ १२२ ॥ मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम् । क्षत-कास तथा श्वासं जरं हन्ति न संशयः ॥ १२३ ॥ इलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम् । अशौंनाशं करोत्येव बलपुष्टिश्च कारयेत् ॥ १२४ ॥ कामदेवसमं वर्णं तृष्णारोचकनाशनम् ।

वर्ज्यं शाकाम्लमादौ च भृष्टद्रव्यं हुता-  
शनम् ॥ रसो लक्ष्मीविलासोऽयं महादेवेन  
भाषितः ॥ १२५ ॥

वृद्धभस्म, कान्तलोहभस्म, अश्रकभस्म,  
ताम्रभस्म, कांसभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक,  
शुद्ध हरताल, शुद्ध मैन्शिल और खरिया  
प्रत्येक चार तोला एकत्र कर तीन दिन काले  
भँगरा के रस की और तीन दिन कुलथी के  
काढ़े की भावना दे। पश्चात् इलायची, जम्बू-  
फल, तेजपात, लौंग, अजवाइन, जीरा, त्रिकटु,  
त्रिफला, तगर, भँगरा और वंशलोचन का चूर्ण  
एक-एक तोला मिलाकर भँगरा के रस और  
कुलथी के बाथ की फिर भावना देकर एक-एक  
रत्ती की गोली बनावे। शीतल जल के साथ  
सेवन करे। इसका सेवन करने से क्षतकास,  
श्वास, ज्वर, हलीमक, पांडु, शोथ-शूल, प्रमेह,  
तृष्णा, अरिच तथा बवासीर का नाश होता  
है। यह बलकारक तथा पुष्टिकारक है। इसके  
सेवन में मखली, मांस, दूध तथा स्निग्ध पदार्थ  
पश्य है। शाक, अम्ल पदार्थ और भुने हुए  
पदार्थ व्याज्य है। यह महादेवजी का कहा हुआ  
लक्ष्मीविलास रस है ॥ ११८-१२५ ॥

फासकुठार रस ।

हिंगुलं मरिचं गन्धं सव्योषं टङ्गणं  
तथा । द्विगुञ्जमाद्रकद्रावः सन्निपातं सुदा-  
रुणम् ॥ १२६ ॥ कासं नानाविधं हन्ति  
शिरोरोगं सुदुःसहम् ॥

सिद्धरफ, कालीमिर्च, गन्धक, त्रिकुटा, सुहागा,  
इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर अक्षररस के रस  
से घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनावे। इसके  
सेवन से अनेक प्रकार की खांसी, सन्निपात  
तथा कष्टदायक शिरोरोग नष्ट होता है ॥ १२६ ॥

कासकेशरी ।

गन्धं त्रिकटुकं चाभ्रं रोहिणी तालकं  
सामम् पञ्च कोलकपायेण मर्दयेद्वि-  
सत्रयम् ॥ १२७ ॥ मृषायां मूधरे पाच्यं

स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् मधुना चानुपानेन  
ह्रूर्ध्वकासं विनश्याति ॥ १२८ ॥

शुद्ध गन्धक त्रिकुटा अश्रक भस्म कुटकी  
रसमाणिक्य या शुद्ध हरिताल इन सब को बराबर  
लेकर महीन चूर्ण बना पञ्चकोल ( पीपल  
पिपलामूल चट्य चित्रक सोंठ ) के काढ़े से  
उसे घोटकर अन्धमूपा में रस भूधर यन्त्र-  
में रस लघुपुट से पकावे, ठंडा होने पर  
निकालकर उसकी ० रत्ती से ३ रत्ती मात्रा-  
दने से ऊर्ध्व श्वास काम रङ्ग विकार त्वग्विकार  
आदि का नाश होता है ॥ १२७-१२८ ॥

फासान्तक रस ।

सूतं गंधं विपञ्चैव शालिपर्णी च  
धान्यकम् । यावन्त्येतानि चूर्णानि ताव-  
न्मात्रं मरीचकम् ॥ गुञ्जाद्वयमितं स्वादे-  
न्मधुना कासशान्तये ॥ १२९ ॥

पारा, गन्धक, वच्छनाग, शालिपर्णी तथा  
धानिया हरएक १ भाग, कालीमिर्च २ भाग  
इन्हें मिलाकर जल से घोटकर गोलियाँ बनाने।  
मात्रा-१ रत्ती से २ रत्ती तक। इससे खांसी  
अच्छी हो जाती है ॥ १२९ ॥

शुद्धचूडनारारस

पारदं गन्धकं चैव टङ्गणं नागकेशरम् ।  
कर्पूरं जातिरूपञ्च लज्जं तेजपत्रकम् ॥  
१३० ॥ सुवर्णञ्चापि प्रत्येकं कर्पमात्रं  
प्रकल्पयेत् । शुद्धकृष्णाभ्रचूर्णन्तु चतुः-  
कर्पं प्रयोजयेत् ॥ १३१ ॥ तालीशयन-  
कुष्ठानि मांसीत्तक् धात्रिपुष्पिका । प्ला-  
वीजं त्रिकटुकं त्रिफला करिपिप्पली ॥  
१३२ ॥ कर्पद्रव्यञ्च चैतेषां पिप्पलीन्नाथ-  
मर्दितम् । शतुपानं प्रयोक्तव्यं चोचं सौद्र-  
समायुतम् ॥ १३३ ॥ अग्निमान्यादिकान्

रोगानरुचिं पाण्डुकामलाम् । उदराण्यि  
तथा शोधमानाहं ज्वरमेव च ॥ १३४ ॥  
ग्रहणीं श्वासरूपासञ्च हन्याद्यत्तमाणमेव  
च । नानारोगप्रशमनं बलवर्णाग्निकार-  
कम् ॥ १३५ ॥ बृहच्छृङ्गाराभ्रनाम  
विष्णुना परिकीर्तितम् । एतस्याभ्यासमा-  
त्रेण निर्व्याधिर्जायते नरः ॥ १३६ ॥

पार, गन्धक, सुहागा, नागकेशर, कपूर,  
जाबित्री, लौंग, सवर्णाभ्रम, हरएक २ तोला,  
अम्रकभ्रम ८ तोला, तालीशपत्र, मोथा, कूट,  
जटामांसी, दालचीनी, धाय के फूल, छोटी  
इलायची, त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, हरएक  
४ तोले इन्हें पीपल के क्वाथ से घोटकर गोलियाँ  
बनावे । मात्रा—२रत्ती । अनुपान—दालचीनी  
का चूर्ण और शहद । इसके सेवन से मन्दाग्नि,  
अर्हचि, पाण्डु, कामला, उदर, सूजन, आनाह,  
ज्वर, ग्रहणी, श्वास, खाँसी तथा यक्ष्मा आदि दूर  
होते हैं तथा अग्नि को बढ़ाता है ॥ १३०—१३६ ॥

सिंहस्यादि वटी ।

वासादलरसैर्जातो मुद्रालेहः पलो-  
न्मितः । कर्पोऽर्कमूलचूर्णस्य फणिकेनश्च  
तन्मितः ॥ १३७ ॥ तदद्दं घनसारस्य सर्व  
सम्भ्रमश्च मर्दयेत् । द्विगुञ्जां वा त्रिगुञ्जां वा  
वटिकांकारयेत्ततः ॥ १३८ ॥ सिंहस्यादि  
वटी नाम सेव्या च मधुना सह । हन्यादुर-  
क्षतं श्वासं रक्तपित्तं गलामयान् ॥ १३९ ॥  
रक्तातोसारयक्ष्माणौ रक्तप्रदरमेव च ।  
कासं पञ्चविधं शोथं ग्रहणीञ्च तथा  
क्षयम् ॥ १४० ॥

सबसे पहिले अड़ूसे के पत्तों के रस को  
धाप्यन्त्र में सुखावे । जय देखे कि वह गाढ़ा हो  
गया है और हाथ की मुद्रा के चिह्न उस पर  
पढ़ जाते हैं, तो उतार ले । यह मुद्रालेह ४ तोला  
आक की जड़ के छिलके का चूर्ण २ तो० शुद्ध

अफीम १ तोला, कपूर १ तोला, इन्हें इकट्ठा कर  
मिलाकर अच्छी प्रकार घोटें । तत्पश्चात् २ रत्ती  
या ३ रत्ती की गोली बनावे । इसे शहद के साथ  
सेवन कराना चाहिए । इसके सेवन से उरःक्षत,  
श्वास, रक्तापित्त, गलरोग, रक्तातीसार, यक्ष्मा,  
रक्तप्रदर, पाँचों प्रकार की खाँसी, सूजन, ग्रहणी,  
तथा क्षयरोग नष्ट होता है ॥ १३७—१४० ॥

मरिचादि गुटिका

मरिचं कर्षं मात्रं स्यात्पिप्पली कर्षं  
संमितं अर्धं कर्षो यवक्षारः कर्षं युग्मंच  
दाडिमम् ॥ १४१ ॥ एतच्चूर्णाकृतं  
युञ्ज्यादप्यर्कं गुडेन हि । शाण प्रमाणं  
गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधीरयेत् ॥ १४२ ॥  
अस्याः प्रभावात् सर्वेऽपि कासायात्येव  
संक्षयम् ॥ १४३ ॥

काली मिर्च १ तोला पीपल १ तोला  
जवाक्षार ६ भासे और अनारदाना २ तोले ।  
सबका चूर्ण कर आठ तोले गुडमें मिला कर  
हीन २ भासे की गोली बना लेवे । इस गोली  
को मुँह में खा लेने से सब प्रकार की  
खाँसी नष्ट हो जाती है । विशेष अनुभूत है ।  
टिप्पणी ४-४ रत्ती की गोली ही उचित रहेगी  
आवश्यकता अनुसार १ से ४ गोली तक चूसनी  
चाहिए ॥ १४१-१४३ ॥

शशिप्रभा घटी ।

सुजङ्गफेनं मधुकं घनञ्च कोलास्थि-  
शस्य समभागमेव । आदाय तोयेन  
विमर्द्य खल्ले द्विरक्लिमानां वटिकां विरच्य ॥  
१४४ ॥ तमांसिनैशानि शशिप्रभेव  
हन्याद्धि कासादिकनामवातम् । उदग्र-  
मप्युत्तमदाहशूलं गलामयं चामयथात-  
नाञ्च १४५ ॥ तथैव सुस्नापविधायिनीयं  
यतो नाराणां विविधातिभाजाम् । अतो



गुणैरुदिता भिपंग्भिः शशिमभा सार्थक-  
नामिकैव ॥ ४६ ॥

शुद्ध अफीम, मुलहठी, मोथा वर की गुठली की गिरी, हरण्क को बराबर मात्रा में इकट्ठा कर खरल में जल से घोटकर २ रत्ती की गोली बनाये यह गोली खाँसी आदि रोग, आम-वात, अस्थन्त तीव्र दाह एवं शूल तथा गलरोग आदि पीड़ाओं को इस प्रकार नष्ट करती है जैसे चन्द्रमा की चाँदनी अन्धकार को नष्ट करती है। यह वटी अग्निद्रा को दूर कर सुख की नाँद लाती है ॥ १४४-१४६ ॥

सार्वभौम रस ।

शृङ्गराभ्रसे स्वर्ण लौह वा यदि दीयते । तद्रायं सर्वरोगाणां सार्वभौमो न संशयः ॥ १४७ ॥

यदि यक्ष्माधिकार में वर्णित शृङ्गराभ्र रस में स्वर्णभस्म या लौहभस्म मिला दी जाय तो उसका नाम सार्वभौम हो जाता है यह खाँसी आदि सपूर्ण रोगों को नष्ट करता है ॥ १४७ ॥

पित्तकासान्तक रस ।

भस्म तात्राभ्रकान्तानां कासमर्दत्तचो  
वुधैः । मुनिजैर्वैतसाम्लैश्च दिनं मर्षं  
सुपिण्डितम् ॥ १४८ ॥ गुज्राद्धं पित्त-  
कासार्चो भक्तयेच दिनत्रयम् । कास-  
श्वासाग्निमान्द्यं च क्षयञ्जापि निहन्त्य-  
लम् ॥ १४९ ॥

तात्रभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, हरण्क १ तोला, इन्हें कर्सीद्री की छाल, अगस्तिया तथा अम्लवेतस के रस से एक-एक दिन घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोलीवा बनाये। इसके सेवन से खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १४८-१४९ ॥

वासारिष्ट ।

वासास्वरममादाय मृतसञ्जीवनी-  
समम् । सम्मिश्र्य भिपगन्योऽन्यं वासरे  
शुभतारके ॥ १५० ॥ मृद्भाण्डे काच-

भाण्डे वा निरुद्ध्य तन्मुखं दृढम् ।  
सप्ताहं स्थापयेत् तस्मात् पूतीकुर्याच्च  
वाससा ॥ १५१ ॥ वासारिष्टः सुसेव्योऽयं  
मापमात्रो दिने दिने । एतत्सेवी सुपथ्याशी  
देवभूदेवभक्तिमान् ॥ १५२ ॥ कासं  
श्वासं रक्तपित्तं कण्ठरोगमुरःक्षतम् ।  
अन्यांश्च विविधान् रोगान् जयेदाशु न  
संशयः ॥ १५३ ॥

अद्भूसे के पत्तों का रस तथा मृतसञ्जीवनी-सुरा, दोनों को बराबर मात्रा में मिलाकर काँचलिप्त मृत्पात्र में अथवा काँच की बोटल में ढाल दे और मुख बन्द कर दे। सात दिन तक इसी प्रकार पड़ा रहने दे, पश्चात् गाढ़े वस्त्र से धानकर शीशियों में भर दे। मात्रा-१ माश। इस अरिष्ट के सेवन से पथ्य सेवन करनेवाले रोगी की खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, कण्ठरोग उरुक्षत तथा अन्य विविध रोग नष्ट होते हैं ॥ १५०-१५३ ॥

वसन्ततिलक रस ।

हेम्नो भस्मकतोलकं घनं द्विगुणितं  
लौहास्त्रयः पारदश्चत्वारो नियतन्तु वङ्ग-  
युगलं चैकीकृतं मर्दयेत् । मुक्ताविट्टमयो  
रसेन समता गोक्षूरवासेक्षुणा, सर्ववन्त्यकं-  
रीपकेण सुदृढं तप्तं पचेत् सप्तधा ॥ १५४ ॥  
कस्तूरीघनसारमर्दितरसः पश्चात् सुतिद्धो  
भवेत्, कासश्वाससपित्तपातकफजित्  
पाण्डुक्षयादीन् हरेत् । शूलादिग्रहणीं  
विपादिहरणो मेहारमरीचिशक्तिम् १५५ ॥  
हृद्रोगापहरं ज्वरादिगमनं हृष्यं वयोवर्द्ध-  
नम् । श्रेष्ठं पुष्टिकरं वसन्ततिलकं मृत्युञ्जये-  
नोदितम् ॥ १५६ ॥

स्वर्णभस्म १ तोला, अश्रकभस्म २ तोला, लोहभस्म ३ तोला, पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, वज्रभस्म २ तोला, मुद्गाभस्म ४ तोला और प्रवालभस्म ४ तोला एकत्र कर गोसुर, अदुसा और ईप के रस में घोट कर जंगली कंठे की सात बार आंच दे । स्याहशीतल होने पर औषध को निःशालकर उसमें कस्तूरी ४ तोला और कपूर ४ तोला मिलाकर रख ले । यह कास, त्रिदोष, पांडु, क्षय, शूल, ग्रहणी, विष, प्रमेह, पथरी, हृद्रोग तथा ज्वर आदि का नाशक है । धीरे, तरुणता तथा पुष्टता करनेवाला है । यह वसन्ततिलक रस मृशुञ्जय का कहा हुआ है । मात्रा—१ से २ रत्ती ॥ १५४-१५६ ॥

चन्दनादि तैल ।

चन्दनागुरुतालीशमञ्जिष्ठानखपद्मकम् ।  
मुस्तकं च शटी लाक्षा हरिद्रा रक्तचन्द-  
नम् ॥ १५७ ॥ एषां प्रतिपलैश्चूर्णै-  
स्तैलमर्द्धं पचेद् भिषक् । भार्गी वासा  
कण्टकारी वाट्यालकगुडूचिका ॥ १५८ ॥  
एषां शतपले काथ्ये समभागे जडीकृते ।  
पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं राजयक्ष्मविनाश-  
नम् ॥ १५९ ॥ कासघ्नं गरदोषघ्नं बल-  
वर्णाग्निवर्द्धनम् । पापालक्ष्मीप्रशमनं  
ग्रहदोषविनाशनम् ॥ १६० ॥ आदौ  
कल्कं प्रदातव्यं गन्धद्रव्यं अतः परम् ।  
तैलमुत्तार्य दातव्यं शिहकं कुंकुमं नखम् ।  
गन्धचन्दनकपर्मेलावीजं लवङ्गकम् १६१ ॥

तिलतैल ३ सेर १६ तोला, कल्कार्य श्वेतचन्दन, अजर, तालीशपत्र, मँजीठ, नखी, पद्मार, नागरमोथा, कचूर, लाख, हवदी और रक्तचन्दन प्रत्येक चार-चार तोला, काथार्थ भारंगी, अदुसे की जड़, कटेरी, खरेटी और गिलोय मिश्रित पाँच सेर, जल २५ सेर

१-तैलाद्धं पात्रकं पचेदिति पाठान्तरम् ।

४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला । उक्त कल्क और काथ में तैल डालकर धीमी आँच से पाक करे । तैलपाकार्य और जल डालने की आव-  
श्यकता नहीं । इसी काथ में सिद्ध कर ले । तैलपाक के अन्त में उतारने पर शिलारस, केसर, नखी, श्वेत चन्दन, कपूर और इलायची इन गन्धद्रव्यों को तैल में मिलावे । इस तैल के मर्दन करने से यक्ष्मा, कास, गरदोष, पाप, अलक्ष्मी तथा ग्रहदोष शान्त होता है और बल-वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है १५७-१६१

वासाचन्दनादि तैल ।

चन्दनं रेणुका पूतिर्हयगन्धप्रसारणी ।  
त्रिसुगन्धि कणामूलं नागकेशरमेव च  
॥ १६२ ॥ भेदे द्वे च त्रिकटुकं रास्ना मधुक-  
शैलजम् । शटी कुष्ठं देवदारुवनिता च  
विभीतकम् ॥ १६३ ॥ एतेषां पलिकैर्भार्गीः  
पचेत्तैलाढकं भिषक् । वासायाश्च पलशतं  
जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १६४ ॥ लाक्षा-  
रसाढकं चैव तथैव दधि मस्तुकम् ।  
चन्दनश्चामृता भार्गी दशमूलं निदि-  
ग्धिका ॥ १६५ ॥ एतेषां विंशतिपलं  
जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषे स्थिते काथे  
तैलं तेनैव साधयेत् ॥ १६६ ॥ कासा-  
ज्वरान् रक्तपित्तं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।  
कामर्ला च क्षतक्षीणं राजयक्ष्माणमेव  
च ॥ १६७ ॥ श्वासान् पञ्चविधान्  
हन्ति बलवर्णाग्निपुष्टिकृत् । तैलं वासा-  
चन्दनादि कृष्णात्रेयेण भापितम् ॥ १६८ ॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, काथार्थ अद्ध से का मूल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला, रक्तचन्दन, गिलोय, भारंगी, दशमूल और कटेरी आधा-आधा सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला, दही का पानी और लाधारस ६ सेर ३२ तोला,

फलकार्यं रक्तचन्दन, सैमालू के बीज, कंजा, अमसगन्ध, गन्धप्रसारिणी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पिपरामूल, नागकेसर, मेदा, महामेदा, त्रिकटु, राक्षना, मुलेठी, शैलज (भूरिछरीला), कचूर, कूट, देवदारु, प्रियंगु और बहेड़ा चार-चार तोला, तैलकल्क और काथ को एकत्र कर यथाविधि पाक करके तैल सिद्ध करे। इस तैल का मर्दन करने से कासज्वर, रक्तपित्त, पांडुरोग, हलीमक, कामला, घतघ्न्य, राजयक्ष्मा तथा पाँच प्रकार के श्वासरोग शान्त होते हैं और बल, वीर्य तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥१६२-१६८॥

कासरोग में पथ्य ।

स्वेदो विरचेनं इदि धूमपानं समा-  
शिता । शालिपाष्टकं गोधूमश्यामाक यव-  
कोद्रवाः ॥ १६९ ॥ आत्मशुक्तामापमुद्रकुल-  
त्थानां रसाः पृथक् । ग्राम्योदका नूप  
धन्वमांसानि विविधानिच ॥ १७० ॥  
सुरापुरातनं सर्पिश्चागं चापि पयो-  
घृतं । वास्तुकः वायसी शाकं वार्ताकुवाल  
मूलकम् ॥ १७१ ॥ कण्टकारी काममर्देन  
जीवन्ती सुनिपण्णकम् । द्राक्षा विम्बी-  
मातुलुङ्गं पौष्करं वासकस्त्रुटि ॥ १७२ ॥  
गोमूत्रं लशुनं पथ्या कोपमुष्णोदकं मधु  
लाजा दिवस निद्रा च लघून्यन्नानि-  
यानिच ॥ १७३ ॥ पथ्यामेतद् यथादोष-  
मुक्तं कास गदातुरे ॥ १७४ ॥

श्वेदन जुलाब घमन धूपपान, समाधान (निर्दिष्ट समयपर परमिष्ठ भोजन) शाल-  
धान्य (अगहनी चायल) साठी चायल गेहूँ, स्यां जी कीर्दी कौंच के बीज उद्दद् मूंग कुलपी इन सब का भ्रलग २ रत्न, बकरा आदि ग्राम्य-  
पशु, मक्खली आदि जलचर आनूप (भैंसा आदि) धान्यन, मरुभूमिवासी पशुओं का अनेक-  
प्रकार का मांस, शराव, पुराणा घी, बहरी का-  
च घी, यमुष्ठा का साग, मकीय का साग,

बैगन छोटी मूली, कटेरी, कसींदी, जीवन्ती शिरिआरी का शाक, दाखकंदूरी, बिजौरानीधू, कमलकंद, अड़सा, छोटीइलायची, गौमूत्र-  
लहसन, हरद, त्रिकुटा, गर्म जल शहद, धान की-  
खील, दिनमें सोना लघुपाकी अन्न ये सब दोपानुसार कास में पथ्य हैं ॥ १६२-१६४ ॥

कास में अपथ्य ।

वास्ति नस्थमसृङ्मोक्षं व्यायामं दन्तधर्ष-  
णम् । आतपं दुष्टपवनं रजोमार्गं निषेवणम्-  
॥ १७५ ॥ विष्टम्भीनिविदाहीनि रूक्षाणि  
विविधानिच । शकृन्मूत्रोद्धारकास वभि-  
वेगविधारणम् ॥ १७६ ॥ मत्स्य कन्दं  
सर्पपं च तुम्बी फल मुपोदिकाम् ।  
दुष्टाम्बु चान्नपानं च विरुद्धान्यशनानिच  
॥ १७७ ॥ गुरुशीतं चान्न पानं च कास-  
रोगीपरित्यजेत् ॥ १७८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कासा-

धिकारः समाप्तः ।

वस्तिकर्म, नस्य रुधिर भोजन ( सिंगी-  
नोश या नस्तर से रुधिर निकलवाना ) कसरट,  
दान्न मंजन धूपपाना दूषित वायु और धूल-  
का सेवन मार्ग देतीली जगह पर धूमना  
विष्टम्भी विदाही रुते अन्न का सेवन मलमूत्र  
दकार खासी घमन आदि का रोकना मधुकी  
जमीकंद आलू अरई आदि का सेवन सरसों-  
का शाक तुम्बीफल पोई शाक सेवन विगड़े  
अन्नपान विपरीत भोजन, भारी और शीतल-  
अन्न का पानापीना कास रोग में हानिकारक  
है ॥ १७५-१७८ ॥

भैषज्यरत्नावल्यां रत्नमाहवायां व्याहवायां  
पं० सरधूमसादीप्रपाठिपिरीचतायां

कासाधिकारः समाप्तः ॥

## हिकारवासाधिकारः ।

हिकारवासातुरे पूर्णं तैलाङ्गे स्वेद  
इष्यते । स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदुवातालु-  
लोमनम् । ऊर्ध्वाधःशोधनं शक्ते दुर्बले  
शमनं मतम् ॥ १ ॥

पहिले हिकारोगी के उदर पर और र्वास  
रोगी के वक्ष स्थल पर लवणयुक्त तेल मर्दन  
कराकर स्निग्ध द्रव्यों से स्वेद करावे । बलवान्  
रोगी को हलका तथा वायु को अनुलोमन  
करानेवाला वसन-धिरंघन करावे और दुर्बल  
रोगी को शमन औषध का सेवन करावे ॥ १ ॥

हिक्रा में लेह ।

कोलमञ्जाङ्गनं लाक्षा तिक्रा काञ्चन-  
गैरिकम् । कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी  
काशीशं दधि नाम च ॥ २ ॥ पाटल्याः  
सफलं पुष्पं कृष्णाखजू र्मुस्तकम् । पडेते  
पादिकालेहा हिकाघ्ना मधुसंयुताः ॥ ३ ॥

( १ ) बेर के बीज की मीर्गी, सक्रोद  
सुरमा भरम और धान की खील का घूर्ण ।  
मात्रा १-२ माशा

( २ ) कुटकी और सोनागेरू का घूर्ण ।  
मात्रा १ २ माशा

( ३ ) पीपरि, चाँदला, शकर और सोंठि ।  
मात्रा २ माशा

( ४ ) शुद्ध हीरा कसीस<sup>१</sup> और कैषा के गूदा  
का घूर्ण । मात्रा १-२ माशा

( ५ ) पाटल के फल तथा पुष्पों का घूर्ण ।  
मात्रा १-२ माशा

( ६ ) पीपरि, खजूर और नागरमोषा  
का घूर्ण । मात्रा १ २ माशा

इन छ घूर्णों में से किसी एक घूर्ण को  
शहद के साथ सेवन करने से हिकारोग शान्त  
होता है ॥ २-३ ॥

१—अदरक के रस की भावता देने से हीरा-  
कसीस शुद्ध हो जाता है ।

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करा-  
न्विता । नागरं गुडसंयुक्तं हिकाम्नं नावन-  
त्रयम् ॥ ४ ॥

मुलेठी का घूर्ण मधु के साथ, पीपरि का  
घूर्ण चीनी के साथ तथा सोंठि का घूर्ण गुड़  
के साथ मिश्रित कर नस्य ( चास ) देने से  
हिकारी शान्त होती है ॥ ४ ॥

स्तन्येन मत्तिकाविष्टानस्यं वाजलक-  
काम्मुना ॥ ५ ॥

मक्खी की विष्टा को नारी-दुग्ध के साथ  
अथवा लाचारस में मिश्रित कर नस्य करने से  
हिकारोग आराम होता है ॥ ५ ॥

योज्यं हिकाभिभूताय स्तन्यं वा  
चन्दनान्वितम् । मधुसौवर्चलोपेतं मातु-  
लुङ्गरसं पिबेत् ॥ ६ ॥

नारी-दुग्ध में रञ्चन्दन को घिसकर नस्य  
 देने से अथवा दो तोला नींबू के रस में धुः  
 माये मधु और छ माये काला नमक मिश्रित  
 कर पीने से हिकारोग आराम होता है ॥ ६ ॥

हिकार्त्तस्य पयश्चामं हितं नागर-  
साधितम् । अप्यसाध्यां नयत्यस्तं हिकां  
चौद्रविलेहनम् ॥ ७ ॥

सोंठि के साथ पक्की का दुग्ध सिद्ध करके  
 पीने से हिकारोग की निवृत्ति होती है तथा केवल  
 शहद चाटने से भी हिक्रा शान्त होती है ॥ ७ ॥

सद्य एव महारोगं कासमूलभ्रं रजः ।  
मापचूर्णभरो धूमो हिकां हन्ति न  
संशयः ॥ ८ ॥

कास के मूल के घूर्ण का शहद के साथ  
 सेवन करने से असाध्य हिकारोग तत्काल  
 आराम होता है । उर्द के घूर्ण के धूम का पान  
 करने से भी हिकारोग नि संदेह आराम होता  
 है ॥ ८ ॥

असाध्यां साधयेदिकां सिनर्पनाभ्रं

रजः । शर्करा मरिचं चूर्णं लीढं मधुयुतं  
मुहुः ॥ ९ ॥ निहन्ति प्रवलां हिकाम-  
साध्यामपि देहिनाम् । हिकाघ्नः कदली-  
मूलरसः पेयः सशर्करः ॥ १० ॥

१-२ माशा सफेद इलायची के चूर्ण को शर्कर के साथ खाने से असाध्य हिकारोग धाराम होता है । शर्कर मिलाकर १ माशा मिर्च के चूर्ण को मधु के साथ बार बार खाने से प्रबल हिकारोग धाराम होता है । ६ माशा केला के मूल के जल में शर्कर मिलाकर पान करे, तो हिकारोग धाराम होता है ॥९-१०॥

कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसिता  
घृतम् । मुहुमुहुः प्रयोक्तव्यं हिकाश्वास-  
निवर्हणम् ॥ ११ ॥

पीपरी, छाँयला और सोंठ को समभाग एकत्र कर चूर्ण बनावे । इस २-३ माशा चूर्ण को शहद, घी ( असमानमात्रा में ) और शर्कर के साथ बार-बार सेवन करने से हिचकी और श्वासरोग धाराम होता है ॥ ११ ॥

हिकां हरति प्रवलां श्वासमतिप्रवृद्धं  
जयति । शिखिपुच्छभूति पिप्पलीचूर्णं  
मधुमिश्रितं लीढम् ॥ १२ ॥

मयूरपिच्छ की भूम २-३ रत्नी बनाकर उसमें सम भाग पीपरी चूर्ण मिलाकर शहद के साथ चाटने से प्रबल हिचकी और अत्यन्त बढ़ा हुआ श्वासरोग धाराम होता है ॥ १२ ॥

अभया नागरकल्कं पौष्करयोवशूक-  
मरिचकल्कं वा । तोयेनोप्येन पिपेच्छ्वासी  
हिषी च तच्छ्रान्त्ये ॥ १३ ॥

हरद और सोंठ के कण्ठ अभया पुष्करमूल, जवागार और मिर्च के कण्ठ को उष्ण जल में पीलकर पीने से श्वास और हिकारोग शान्त होता है ॥ १३ ॥ मात्रा १-२ माशा ॥

मायं कालिरुफलं चूर्णं लीढं चात्यन्त-  
मिश्रितं मधुना । अचिराद्हरति श्वासं  
प्रवलामूर्धदिमात्रैव ॥ १४ ॥

एक माशा बहेडे के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से श्वास और प्रबल हिकारोग तत्काल नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

कनकस्य फलं शाखां पत्रं संकुट्य  
यन्नतः । शोषयित्वा च तद्भूमपानाच्छ्वासी  
विनश्यति ॥ १५ ॥

धतूरे के फल, शाखा और पत्र को कूटकर सुखा ले और फिर उसके धूम का पान करने से श्वासरोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

हरिद्रादि चूर्ण ।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रासनां कणां  
शटीम् । जह्वाचैलेन विलिहच्छ्वासान्  
प्राणहरानपि ॥ १६ ॥

हलदी, मिर्च, मुनक्का, पुराना गुड़, रासना, पीपरी और कचूर के चूर्ण वा कड़वे तेल के साथ सेवन करने से प्रबल श्वासरोग नष्ट होता है । मात्रा--२ माशा ॥ १६ ॥

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं  
लिहेत् । त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मू-  
लतो जयेत् ॥ १७ ॥

एक तोला पुराना गुड़ और एक तोला सरसों का तेल एकत्र मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से हफ्ता दिन में श्वास रोग समूल नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

शृङ्गादि चूर्ण ।

शृङ्गी कटुत्रयफलत्रयकण्टकारी भार्गी  
सपुष्करजटालरुणानि पश ॥ १८ ॥ चूर्णं  
पिपेट्रशिशिरेण जलेन हिकाश्वासोर्ध्व-  
वातसनारुचिपीनसेपु ॥ १९ ॥

काकड़ासगी, पिपटु, त्रिपाता, कटेरी भार्गी, पुष्करमूल, जगन्नाथी और पञ्जलवण का चूर्ण बनाकर दो माशा उष्ण जल के साथ सेवन करने से हिक्का, ऊर्ध्वश्वास और काग आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १८-१९ ॥

हिकाशवासचिकित्सा ।

माणं कलिकफलचूर्णं लीढं चात्यन्त-  
मिश्रितं मधुना । अचिराद्धरति श्वासं  
प्रवलामुद्ध्वंसिकाञ्चैव ॥ २० ॥

एक माशे बहेड़े के चूर्ण को शहद के साथ  
अच्छी प्रकार मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही  
हिका तथा श्वास शान्त होते हैं ॥ २० ॥

शृङ्गीमहौषधकणाघनपुष्कराणां चूर्णं  
शठीमरिचशर्करया समेतम् । काथेन पीतम-  
मृतावृषपञ्चमूल्याः श्वासं व्यहेण शमये-  
दति दोषमुग्रम् ॥ २१ ॥

काकडाँसिंगी, सोंठ, पीगल, मोथा, पोहकर-  
मूल, कचूर, काली मिर्च तथा खोंड़ इनके एक  
माशे चूर्ण को गिलोय, अड़ूसा तथा बृहत्पञ्ज-  
मूल के काथ के साथ सेवन करने से तीन दिन  
में प्रबल श्वासरोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

विल्वाटरूपदलवारिसमूल शुक्लदण्डो-  
त्पलदलजलं कटुतैलमिश्रम् । भार्गीगुडो  
यदि च यत्र हतप्रभावस्तं श्वासमाशु  
विनिहन्ति महाप्रभावः ॥ २२ ॥

विल्ववासकयोः पत्रस्य शुक्लदण्डो-  
त्पलपत्रस्य च स्वरसः कटुतैलेन पेयः ॥

बेल, अड़ूसा तथा सफ़ेद दण्डोरूपल के पत्तों  
के रस को सरसों के तेल में मिलाकर सेवन  
करने से श्वासरोग नष्ट होता है । जिस श्वास में  
भार्गी, गुड़ आदि से भी लाभ नहीं होता वहाँ पर  
भी यह योग अत्यन्त लाभदायक है ॥ २२ ॥

कूप्माण्डचूर्णं ।

कूप्माण्डकानां चूर्णन्तु पेयं कोष्णेन  
वारिणा । शीघ्रं प्रशमयेच्छ्वासं कासं चैव  
सुदारुणम् ॥ २३ ॥

३ माशा पेठे के चूर्ण को गुनगुने गरम जल के  
साथ पीने से शीघ्र ही कठिन श्वास तथा खाँसी  
अच्छी होती है ॥ २३ ॥

कृष्णासैन्धवचूर्णं स्वरसेन शृङ्गवेरस्य ।  
यो लेढि शयनकाले स जयति सप्ताहतः  
श्वासान् ॥ २४ ॥

जो रोगी पीपल तथा सँधा नमक के १ माशा  
चूर्ण को अदरक के रस के साथ सोने के समय  
सेवन करता है, उस, रोगी का श्वास ७ दिन  
में ही अच्छा हो जाता है ॥ २४ ॥

श्वास में गन्धक का प्रयोग ।

गन्धकं मरिचं साज्यं श्वासकासक्षया-  
पहम् । गन्धकं घृतयोगेन श्वासकासक्षया-  
पहम् ॥ २५ ॥

शुद्ध गन्धक तथा काली मिर्च के चूर्ण को  
घृत से अथवा केवल गन्धक चूर्ण को घृत के  
साथ सेवन करने से श्वास, खाँसी तथा सय  
रोग नष्ट होता है ॥ २५ ॥

दशमूलीकपायस्तु पुष्करेणावचूर्णितः ।  
कासश्वासप्रशमनः पार्श्वहृच्छूलनाशनः ॥

दशमूल के काथ में पोहकरमूल डालकर सेवन  
करने से श्वास, खाँसी, पसवाड़े का दर्द तथा  
हृदय का शूल आदि रोग अच्छे होते हैं ॥ २६ ॥

भार्गी गुड ।

शतं संगृह्य भार्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा  
शतम् । शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतु-  
र्गुणे ॥ २७ ॥ पादावशेषे तस्मिन्स्तुरसे वस्त्र-  
परिस्त्रुते । आलोड्य च तुलां पूर्तां गुडस्य  
त्वभयां ततः ॥ २८ ॥ पुनः पचेत् सृदा-  
वर्गनौ यावल्लेहत्वमागतम् । शीते च मधु-  
नश्चात्र पट् पलानि प्रदापयेत् ॥ २९ ॥

त्रिकटुत्रिमुगन्धश्चपलिकानि पृथक् पृथक् ।  
कर्पद्वयं यवत्तारं संचूर्णयन्तिपेत्ततः ॥ ३० ॥  
भक्षयेदभयामेकां लेहस्य कर्पकं लिहेत् ।  
श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं  
तथा ॥ ३१ ॥ स्वरवर्णप्रदो होष जत्र-

राग्नेश्च दीपनः ॥ ३२ ॥ पलोल्लेखागते  
माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते । हरीतकीशतस्यात्र  
प्रस्थत्वादाढकं जलम् ॥ ३३ ॥

भारंगी ५ सेर, दशमूल कुल मिलकर ५ सेर,  
दीली पोटली में बद्ध हरीतकी ६४ तोला,  
जल १ मन ३ सेर १६ तोला, शेष १० सेर ६४  
तोला रहने पर उतार कर छान ले । पश्चात्  
इस काथ में उक्त हरीतकी और पाँच सेर पुराना  
गुड़ मिलाकर पाक करे । गाढ़ा होने पर उसमें  
त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात और इलायची का  
चूर्ण चार-चार तोला और जवाहार २ तोला  
मिलाकर उतार ले । शीतल होने पर उसमें  
२४ तोले मधु मिलावे । एक हरीतकी और  
एक तोला श्रवलेह प्रतिदिन खाय । इस  
भारंगी गुड़ के सेवन से प्रबल स्वास और पञ्च-  
विध कास नष्ट होते हैं तथा यह स्वर और  
वर्ण का देनेवाला और जठराग्नि का बढ़ाने-  
वाला है । पल का मान होने पर यहाँ दुगना  
लेना योग्य नहीं है । सौ हरीतकी का एक प्रस्थ  
होने से एक आढक जल में पकाना चाहिए २७-३३

टिप्पणी—सबका एकसाथ काथ करने से सुविधा  
रहती है, इसलिये ऊपर का परिमाण लिखा है ।

### शुद्धीगुडप्लव ।

काष्ठकारीद्वयं वासामृता पञ्चपलं  
पृथक् । शतावर्याः पञ्चदश भार्या दश  
पलानि च ॥ ३४ ॥ गोक्षुरं पिप्पलीमूलं  
पृथक् पलसमन्वितम् । पाटला त्रिपलञ्चैव  
चतुर्गुणजले पचेत् ॥ ३५ ॥ चतुर्भागा-  
वशिष्टं तु कषायमवतारयेत् । पुरातनगुड-  
स्यात्र पलानि दश दापयेत् ॥ ३६ ॥  
घृतस्य पञ्च दत्त्वा च दत्त्वा दशपलं पयः ।  
सर्वमेकीकृतं पक्त्वा चूर्णमेपां विनिः-  
क्षिपेत् ॥ ३७ ॥ शूद्रो द्वितोलकं जाती-  
फलं पत्रं त्रितोलकम् । चतुस्तोलं लवणं  
च तुगा क्षीरो पृथक्पृथक् ॥ ३८ ॥ गुदत्व-

गले च तथा तोलकद्वयमानिके । कुष्ठतोल-  
चतुष्कञ्च शुण्ठ्यास्तोलकसप्तकम् ॥ ३९ ॥  
पिप्पल्याः पलमेकं च तालीशं तोलक-  
त्रयम् । जातीकोपं तोलकैकं शीते च  
मधुनः पलम् ॥ ४० ॥ ततः स्वाद्यं च  
कर्पूरकमनुपानविधिं शृणु । काष्ठमार्जारिका  
चूर्णं गरिचं तच्चतुर्गुणम् ॥ ४१ ॥ एकी-  
कृत्य वटीं यत्रात् कुर्यान्मापमितां पृथक्  
॥ ४२ ॥ तासामेकां चर्वयित्वा पिबेदनुजलं  
कियत् ॥ ४३ ॥ शूद्रो गुडघृतं नाम सर्व-  
रोगहरं परम् । अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं स्वासं  
हन्ति सुदारुणम् ॥ ४४ ॥ कासं पञ्चविधं  
हन्ति विविधोपद्रवान्वितम् । रक्तपित्तं  
क्षयञ्चैव स्वरभङ्गमरोचकम् ॥ ४५ ॥  
विशेषाच्चिरकालोत्थं स्वासं हन्ति सुदुस्त-  
रम् ॥ ४६ ॥

कटेरी, बड़ी कटेरी, अरुले के मूल की छाल  
और गिलोय २० तोला, शतावरि ६० तोले,  
भारंगी ४० तोले, गोक्षुर और पिपरामूल चार  
चार तोले, पादर की छाल १२ तोले एकत्र  
कर सय मिले हुए द्रव्यों के चतुर्गुण जल में  
पकावे । चतुर्धांश शेष रहने पर उतारकर छान  
ले । पश्चात् इस काथ में पुराना गुड़ ४० तोले,  
घृत २० तोले और दुग्ध ४० तोले मिलाकर  
पाक करे । गाढ़ा होने पर काफदासिनी २  
तोला जायफल ३ तोला, तेजपात ३ तोला,  
सौंठ ४ तोला, पंशलोचन ४ तोला, दाखचीनी  
२ तोला, इलायची २ तोला, घृत ४ तोला,  
सौंठ ७ तोला, पीपरि ४ तोला, तालीशपत्र  
३ तोला और जावित्री १ तोला चूर्ण कर  
मिला के उतार ले । शीतल होने पर मधु  
चार तोला मिला देना चाहिए । निम्नलिखित  
घृतपान के माथ एक तोला परिमित हम भीषण  
का सेवन करे । काष्ठमार्जारिका ( बिहारीलता )  
का चूर्ण एक भाग और मिर्च का चूर्ण चार

भाग एकत्र घोटकर एक-एक माशे की गोली बनावे । औषध सेवन के पश्चात् यह एक गोली खाकर थोड़ा जल पी ले । इसका सेवन करने से सैकड़ों वेंचों से परित्यक्त चिरकाल का प्रबल रवास तथा उपद्रवयुक्त पाँच प्रकार के कास, छय, स्वरभंग, अरुचि और रङ्गपित्तरोग शान्त होते हैं ॥३४—४६॥

टिप्पणी—अनुपान के अभाव में तित्तिडीकपत्र का काथ कालीमिर्च और होंग के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करना चाहिए ।

भार्गीशर्करा ।

भार्ग्याः शतार्द्धं वासायाः कण्टकार्या-  
रच पाचयेत् । तुलामितंजलं दत्त्वा निशा-  
चरचतुष्टयम् ॥ ४७ ॥ जलाढके पचेत्तेन

चतुर्थमवशेषयेत् । वस्त्रपूतञ्च तत् सर्वं  
सिताप्रस्थं ततः क्षिपेत् ॥ ४८ ॥ उप्लेजव-  
तारिते तत्र चूर्णानीमानि दापयेत् । त्रिकटु-  
त्रिफला मुस्तं तालीशं नागकेशरम् ॥ ४९ ॥

भार्गी वचा श्वदंष्ट्रा च त्वगेलापत्रजीर-  
कम् । यमानी चाजमोदा च वांशी कौ-  
लत्यजं रजः ॥ ५० ॥ कटफलं पौष्करं  
मृद्धी कोलमात्रं क्षिपेत्ततः । शीते चौरुद्रं  
प्रदातव्यं कुडवाद्धं शुभे दिने । लिहेत्कोल-

मितं नित्यं प्रातर्वाच्यानुपानतः ॥ हन्ति  
पञ्चविधं कासंरवासमेव सुदारुणम् ॥ ५१ ॥  
यक्ष्माणं हन्ति हिक्काञ्च ज्वरं जीर्णं व्यपो-

हति । रोगानेतान्निहन्त्याशु बलपुष्ट्यग्नि-  
वर्द्धनम् ॥ ५२ ॥

भारंगी २५ तोले, चट्टूसा के मूल की  
छाल २५ तोले, कटेरी २५ तोले एकत्र कर  
पाँच सेर जल में पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर  
उतार कर छान ले । निशाचर ( प्रन्थियर्ण

विशेष ) २ तोला लेकर ३ सेर १६ तोला जल  
में पकावे । चतुर्थांश शेष रहने पर उतार ले ।  
दोनों काथों को एकत्र कर उसमें ६४ तोला  
शर्करा मिलाकर पाक करे । गाढ़ा होने पर उतार  
ले । पश्चात् उसमें त्रिकटु, त्रिफला, नागर-  
मोथा, तालीशपत्र, नागकेशर, भारंगी का मूल,  
वच, गोलुखू, डालचीनी, इलायची तेजपात,  
जीरा, अजवाइन, अजमोद, बंशलोचन, कुलधी,  
कायफल, पुहकरमूल और काकड़ासिगी का चूर्ण  
छः माशा मिलावे । रोग की विवेचना कर उचित  
अनुपान के साथ आधा तोला से एक तोला  
पर्यन्त मात्रा निश्चित करे । इसका सेवन करने से  
प्रबल रवास, कास, यक्ष्मा, हिक्का और जीर्णज्वर  
शान्त होता है । बल की वृद्धि और शरीर की  
पुष्टि भी होती है ॥ ४७—५२ ॥

टामरेश्वर अन्नक ।

मेचकं पलमितं मृतमभ्रं ब्रह्मयष्टिकन-  
कामृतवासाः । कासमर्दवननिम्बकचव्यं  
ग्रन्थिकं दहनमूलसमेतम् ॥ ५३ ॥ एक-  
शश्च पलिकैरिह सत्त्वैर्मदितं सुबलितं गुरु-  
हिकाम् । रवासकासमुदरं चिरमेहान्  
पाण्डुगुल्मयकृतं गलरोगम् ॥ ५४ ॥ शोथ-  
मोहनयनास्यजरोगं यक्ष्मपीनसगरं बल-  
सादम् । गण्डमण्डलवमिभ्रमिदाहं स्त्रीह-  
शूलविपमज्वरकृच्छ्रम् ॥ ५५ ॥ हन्ति  
वातकफपित्तमशेषं टामरेश्वरमिदं महद्-  
भ्रम् ॥ ५६ ॥

हिकायां रवासे च प्रशस्तम् ।

४ तोले अन्नक मरम को भारंगी, धतूरे के  
पत्र, गिलोय, चट्टूसा, बर्सीरी के पत्र, वननीय  
की छाल, चव्य, पिपरामूल और चीते की जड़  
के स्परस अथवा काथ में प्रत्येक चार तोला  
खरल करके रग ले । मधु के साथ एक से चार  
रुची तक बलानुसार सेवन करे । इस 'टामरेश्वर  
अन्नक' का सेवन करने से प्रबल हिक्का, रवास,  
कास, उदर, प्राचीन प्रमेह, पाण्डु, यक्ष्म, गल

१-बंगाल के वैद्य निशाचर शब्द से चिमगाढ़  
का मांस ग्रहण करते हैं ।



रोग, शोथ, मोह नेत्ररोग, मुखरोग, यक्ष्मा, पीनस, गरदोष, निर्बलता, गंडमाला, वमन, भ्रम, दाह, ग्रीह, शूल, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र और घातपित्तकफजन्य रोग शान्त होते हैं ॥ २३--२६ ॥

महाश्वासारि लौह ।

कर्पद्वयं लौहचूर्णं कर्पाद्मभ्रमेव च ।  
सिता कर्पद्वयञ्चैव मधु कर्पद्वयं तथा ॥ ५७ ॥  
त्रिफला मधुकं द्राक्षा कणा कोलास्थि-  
वंशजा । तालीशपत्रं वैडङ्गमेलापुष्कर-  
केशरम् ॥ ५८ ॥ एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि  
कर्पाद्मं च समांशकम् । लौहे च लौह-  
दण्डेन मर्दयेत् महरद्वयम् ॥ ५९ ॥  
ततो मात्रां लिहेत् चौद्रैर्युद्ध्वा दोषबला-  
बलम् । इदं श्वासारिलौहञ्च महाश्वासं  
विनाशयेत् ॥ ६० ॥ कासं पञ्चविधञ्चैव  
रक्तपित्तं सुदारुणम् । एकजं द्वन्द्वजञ्चैव  
तथैव सान्निपातिकम् ॥ निहन्ति नात्र  
सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६१ ॥

लोहभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म छ. मात्रा  
खांड २ तोला, मधु २ तोला तथा त्रिफला,  
मुलेठी, मुनक्का पीपरि, बेर की गुठली की मींगी,  
वशलोचन, तालीशपत्र, विडङ्ग, इलायची,  
पुष्करमूल और नागकेशर का चूर्ण आधा-आधा  
तोला एकत्र कर लोहपात्र में लोहदण्ड से दो  
प्रहरपर्यन्त खरल करके रख ले । दोषों का  
बलाबल जानकर मधु के साथ सेवन करे । यह  
लोह श्वास, पाँच-प्रकार के कास और रक्तपित्त  
आदि रोगों को धाराम करता है । मात्रा ४ रत्ती  
से ८ रत्ती तक ॥ २७--६१ ॥

पिप्पल्यादिलौह ।

पिप्पल्यामलकी द्राक्षा कोलास्थि मधु-  
शर्करा । विडङ्गं पुष्करैर्युक्तं लौहं हन्ति  
सुदारुणम् । हिकां छर्दिं महाश्वासं त्रिरा-  
त्रेण न संशयः ॥ ६२ ॥

सर्वं चूर्णं समं लौहं हिकायामति  
प्रशस्तम् ।

पीपरि, आँवला, मुनक्का, बेर के बीजों की  
मींगी, मुलेठी, शर्करा, बायविडग और  
पुष्करमूल का चूर्ण एक-एक तोला, आठ तोला  
लोहभस्म एकत्र कर जन के साथ घोटकर गोली  
बनावे । दोपानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन  
करने से यह लौह हिका, वमन और प्रबल श्वास  
को तीन रात में निःसदेह नष्ट कर देता है । मात्रा-  
दो रत्ती ॥ ६२ ॥

श्वासकुठार रस ।

रसं गन्धं विषं द्रुं शिलोपणकद्रुत्रि-  
कम् । सर्वं संमर्द्य दातव्यो रसः श्वास-  
कुठारकः ॥ ६३ ॥ वातरलेपमसमुद्भूतं  
कासं श्वासं स्वरक्षयम् । नाशयेन्नात्र  
सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ६४ ॥

अत्र मरिचस्य भागद्वयं पुनरुक्तत्वात्  
मात्रा रक्तिमिता । वृद्धवैद्योपदेशात् आर्द्र-  
करसानुपानम् ।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक विष ( सींगिया ),  
सोहागा की खील, मैनाशिल, मिर्च और त्रिकटु  
को समान भाग एकत्र कर जल में घोटकर  
एक-एक रत्ती की गोली बनावे । अदरक के  
रस और मधु के साथ सेवन करे । यह रस  
वात-कफजन्य कास, श्वास और स्वरमह्न को  
निःसदेह नष्ट करता है ॥ ६३--६४ ॥

तन्त्रान्तररोक्त श्वासकुठार रस ।

रसं विषं समं गन्धं द्रुनं समनः-  
शिलम् । एतानि समभागानि मरिचञ्चाष्ट-  
द्रुणात् ॥ ६५ ॥ द्रुपट्कं द्विकटुकं  
खल्ले कृत्वा विचूर्णयेत् । रसः श्वास-  
कुठारोऽयं विषमश्वासनासजित् ॥ ६६ ॥  
प्रतिश्यायंक्षतक्षीणमेकादशविधंक्षयम् ।  
हृद्रोगं पार्श्वशूलञ्च स्वरभेदञ्च दारुणम् ६७  
सान्निपातं तथा तन्द्रां प्रमेहांश्च विनाश-

येत् । गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं  
प्रदापयेत् ॥ ६८ ॥ घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे  
संज्ञाकारणमुत्तमम् । सूर्यावर्चाद्धिभेदौ च  
दुःसहाश्च शिरोव्यथाम् । अनुपानं पर्यारस-  
मार्द्रकस्य रसं तथा ॥ ६९ ॥

टङ्गणादष्टगुणं मरिचं षड्गुणा  
पिप्पली शुण्ठी च ।

पारा, विप ( सींगिया ), शुद्ध गन्धक,  
सोहाणा फूला हुआ और मैनशिल एक-एक  
तोला, मिर्च आठ तोला, पीपरि छः तोला  
और सोंठ छः तोला एकत्र कर जल में घोटकर  
एक-एक रत्ती की गोली बनावे । पान के रस  
अथवा अदरक के रस के साथ सेवन करने से  
यह रस श्वास, कास, प्रतिश्याय, यक्ष्मा, च्य,  
हृद्दोग, पार्श्वशूल, स्वरभेद, सन्नपात, तन्द्रा  
और प्रमेह को नष्ट करता है । रोगी को होश  
में लाने के लिए इसकी नस्य देनी चाहिए ।  
इस नस्य से सूर्यावर्त अर्द्धाभेदक (आधासीसी)  
और रिसर की असस्य पीका नष्ट होती है ॥ ६९-७६ ॥

श्वासभैरव रस ।

रसं गन्धं विपं व्योषं मरिचञ्चव्य-  
चित्रकम् । आर्द्रकस्यरसेनैव संमर्घ  
वटिकां ततः ॥ ७० ॥ गुञ्जाद्वयममाणेन  
खादेचोयानुपानतः । स्वरभेदं निहन्त्याशु  
श्वासं कासं मुहुर्जयम् ॥ ७१ ॥

व्योषस्थाने टङ्गनमिति कौमुद्याम् ।  
अत्रापि मरिचस्य भागद्वयम् ।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, विप ( शुद्ध  
सींगिया ), त्रिकटु, मिर्च, चण्य और चीते का  
मूल सम भाग लेकर अदरक के रस में घोटकर  
दो-दो रत्ती की गोली बनावे । जल के साथ

१-रसकीमुदी में त्रिकटु के स्थान पर सुहाणा  
लिखा है । यहाँ मिर्च के दो भाग लेने चाहिये  
एक त्रिकटु के लिये दूसरे मिर्च शतत्र है ही ।

सेवन करे । इसका सेवन करने से श्वास, कास  
और स्वरभेद-रोग निवृत्त होता है ॥ ७०-७१ ॥

सूर्यावर्त रस ।

सूतकं गन्धको मर्घो यामैकं कन्यका-  
द्रवैः । द्वक्षोस्तुल्यं ताम्रपात्रं पूर्वकल्केन लेप-  
येत् ॥ ७२ ॥ दिनैकं बालुकायन्त्रे पाच्य-  
मादाय चूर्णयेत् । सूर्यावर्चरसो ह्येष गुञ्जाद्धि  
श्वासजिद्भवेत् ॥ ७३ ॥ इन्द्रवारुणिका-  
मूलं देवदारुकटुत्रयम् । शर्करासहितं खादे-  
दूर्ध्वश्वासनिवृत्तये ॥ ७४ ॥

एतेषां चूर्णं यथाबलं लेह्यं कस्य  
चिन्मते काथः ।

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक सम भाग  
एकत्र कर घृतकुमारी के रस में एक प्रहर  
पर्यन्त घोटकर उससे दुगने लौह के तथि के पात्र  
में लेप करके एक दिन बालुका-यन्त्र में पाक  
करे, परचाव उस पात्र को निकाल कर चूर्ण कर  
ले । प्रतिदिन आधी रत्ती इस रस का सेवन  
करके इन्द्रायण की जड़ देवदारु और त्रिकटु  
के चूर्ण अथवा काय का सेवन शक्कर मिलाकर  
करना चाहिए । यह रस ऊर्ध्वश्वास को निवृत्त  
करता है ॥ ७२-७४ ॥

श्वासचिन्तामणि ।

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धमभ्र-  
कम् । तदर्द्धं पारदं ताप्यं पारदाद्धेन मौक्कि-  
कम् ॥ ७५ ॥ शाण्णमानं हेमचूर्णं सर्वं  
संमर्घं यन्नतः । कण्टकारीरसैश्चापि भृङ्ग-  
वेररसैस्तथा ॥ ७६ ॥ द्यागीत्तीरेण मधुकैः  
क्रमेण मतिमान् मिपक् । गुञ्जाद्वयमित-  
श्वास्य विभीतकसमन्वितम् । भक्षयेत्  
श्वासकासातो राजयक्ष्मनिपीडितः ॥ ७७ ॥

लोहभ्रम २ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला,  
ध्रुवभ्रम १ तोला, शुद्ध पारा आधा तोला,  
स्वर्णमाषिक आधा तोला, मुत्राभ्रम ३ मापे

श्रीर स्वर्णभस्म ३ माशे एकग्र कर क्रमशः कटेरी के रस में, अदरक के रस में तथा पकरी के दूध में श्रीर मुलेठी के काथ में परल करके दो-दो रत्ती की गोली बनावे । मधु श्रीर यहैटा के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करे तो खास, कास और यक्ष्मारोग नष्ट होता है ॥ ७२--७७ ॥

घृह्नन्मृगाङ्गवटी ।

हमायस्कान्तसूताभ्रप्रवालमौक्तिकानि च । विभीतककषायेण सर्वं सम्भावयेत् त्रिधा ॥ ७८ ॥ एरण्डपत्रमध्यस्थं धान्य-राशौ दिनत्रयम् । स्थापयित्वा तदुद्धृत्य द्विगुञ्जां वटिकां चरेत् ॥ ७९ ॥ विभीत-कास्थिमज्जा च मापाद्धा मधुसंयुतां । अनुपानमिह प्रोक्तः काथो वाक्तसमुद्भवः ॥ ८० ॥ क्षयं हन्ति तथा कासं यदमाणं श्वासमेव च । स्वरभेदं ज्वरं मेहं सर्वाभय-विनाशकृत् ॥ ८१ ॥

स्वर्णभस्म, अयस्कान्त ( लौहविशेष ) भस्म; रसीसन्दूर, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, इन्हें इकट्ठा भिलाकर बहेड़े के काथ से ३ बार भावना दे, परचाक् अरबड़ी के पत्ता में लपेटकर धान्यराशि में ३ दिन तक दबा रक्खे, तदनन्तर २ रत्ती की गोली बनावे । अनुपान-बहेड़े की गुदली की गिरी आधा माशा अथवा बहेड़े का काथ । यह वटी क्षय, खाँसी, यक्ष्मा, खास, स्वरभेद, ज्वर तथा प्रमेह आदि सब रोगों को नष्ट करती है ॥ ७८--८१ ॥

नागाङ्गनाभ्र ।

सहस्रपुटनै शुद्धं वज्राभ्रमजुं नत्वचः । सत्त्वैर्विमदितं सप्तदिनं खल्ले विशोपितम् ॥ ८२ ॥ छायाशुष्का वटी कार्या नाम्ना नागाङ्गनाभ्रकम् । हृद्रोगं सर्वशूलाशौ-हृत्प्रासच्छर्शरोचकान् ॥ ८३ ॥ अतीसार-मग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् । शोथो-

दराम्लपित्तञ्च विषमज्वरमेव च । हन्त्य-न्यानपि रोगांश्च वल्यं दृष्यं रसायनम् ८४

सहस्रपुटी वज्राभ्रकभस्म को अजुन की छाल के काथ से परल में सात दिन घोट करके एक-एक रत्ती की गोली बना धाय में सुला ले । इसके सेवन से हृदय का रोग, सम्पूर्ण शूल, बवासीर, जी मचलाना, वमन, अरुचि, अतीसार, मन्दाग्नि, रक्तपित्त, क्षतक्षय, सूजन, उदर-रोग अम्लपित्त विषमज्वर तथा अनेक भाँति के रोग नष्ट होते हैं । यह बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा रसायन है ॥ ८२--८४ ॥

हिंस्त्राद्य घृत ।

हिंस्त्राविंढङ्गपूतीकात्रिफला व्योप-चित्रकैः । द्विक्षीरं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुण-जलान्वितम् ॥ ८५ ॥ कोलमात्रैः पचे-त्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति । अशीस्य-रोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ ८६ ॥

घी १२८ तोला, दूध ३ सेर १६ तोला, कल्क द्रव्य-हिंस्त्रा ( कण्टकपालीलता या कटेरी छोटी ), बायचिडङ्ग करञ्ज, त्रिकुटा, चित्रक, हरएक १ तोला । इस घृत का विधिपूर्वक पाक करके सेवन करने से खास, खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, मलभेद तथा क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं । मात्रा-आधा तोला ॥ ८५--८६ ॥

तेजोवत्याद्य घृत ।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटु-रोहिणी । मूतीकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकं शटी ॥ ८७ ॥ सौवर्चलं तामलकी सैन्धवं विल्वपेशिका । तालीशपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मितैः ॥ ८८ ॥ हिंगुपादैर्घृत-प्रस्थं पचेत्तोये चतुर्गुणे । एतद्यथावलं पीत्वा हिकारवासौ जयेन्नरः ॥ शोथा-निलाशौग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव च ॥ ८९ ॥

घृत १२८ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये तेजोवती, हरड़, पृष्ठ, पीपज,

कुडकी, गन्धवृण, पौखरमूल, पलाश की जड़ की छाल, चित्रक, कचूर, सौंचल नमक, भुई-आंवला, संधानमक, बेल के फल की गिरी, तालीशपत्र, जीवन्नी, वच हर एक २ तोला, हाँग आधा तोला । मात्रा— $\frac{1}{2}$  तोला । इसके सेवन से हिक्का, श्वास, सूजन, वाताशं, प्रह्वणी, हृद्रोग आदि नष्ट होते हैं ॥८७- ८६ ॥

कनकासव ।

संक्षुब्ध कनकं शाखामूलपत्रफलैः सह ।  
नतरचतुःपलं ग्राह्यं वृषभूलत्पचस्तथा ॥  
६० ॥ मधुकं मागधी व्याघ्री केशरं विश्व  
भेषजम् । भार्गी तालीशपत्रश्च सञ्चूयैषां  
पलद्वयम् ॥ ६१ ॥ संगृह्य धातकीप्रस्थं  
द्राक्षायाः पलत्रिंशतिम् । जलं द्रोणद्वयं  
दत्त्वा शर्करायास्तुलां तथा ॥ ६२ ॥ क्षौद्र-  
स्यार्द्धतुलाञ्चापि सर्प समिश्र्य यत्रतः ।  
भाण्डे निक्षिप्य चावृत्य विदध्यान्मासमा-  
त्रकम् ॥ ६३ ॥ निहन्ति निखिलान्  
श्वासान् कासं यक्ष्माणमेव च । क्षतक्षीणं  
ज्वरं जीर्णं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ ६४ ॥

शाखा, मूल, पत्र और फल सहित कुटा हुआ धत्रा १६ तोले, अरुसा के मूल की छाल १६ तोले, मुलेठी, पीपरि, कटेरी, नागकेसर, सोंठ, भार्गवी और तालीशपत्र का चूर्ण ८८ तोले, धाय के फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, जल २५ सेर ४८ तोला, शक्कर ५ सेर, मधु २ ॥ सेर ले । इन सब वस्तुओं को अच्छी तरह से भिलाकर एक पात्र में बन्द करके रख दे । एक मास के बाद छानकर रख ले । इसका सेवन करने से हर प्रकार का श्वास, कास, यक्ष्मा, क्षतक्षीणता, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उर-क्षत रोग नष्ट होता है । इसकी मात्रा—३ मासा से १ तोला तक की है ॥ ६०-६४ ॥

हिक्कारोग में पथ्य ।

स्वेदनं वमनं नस्यं धूमपानं विरेचनम्

निद्रा स्निग्धानि चानानि मृदूनि लव-  
णानि चः ॥ ६५ ॥ जीर्णाः कुलत्था  
गो धूमाः शालयः पष्टिकाय वाः एणस्ति-  
त्तीरिलावाद्या जाङ्गला मृगपक्षिणः ॥ ६६ ॥  
पक्कपित्तं लशुनं पटोलं नालमूलकम् ।  
पौष्करं कृष्ण तुलसी मदिरा नलदाम्बु-  
च ॥ ६७ ॥ उष्णोदकं मातुलुङ्गं माक्षिकं-  
सुरभी जलं । अन्न पानानि सर्वाणि वात  
श्लेष्महराणि च ॥ ६८ ॥ शीताम्बु-  
सेकः सहसा त्रासो विस्मापनंभयम्  
क्रोधो हर्षः भियोद्वेग प्राणायाम निपे-  
वणम् ॥ ६९ ॥ दग्ध सिकमृदा घ्राणं  
कचैर्धारा जलार्पणम् नाभ्यूर्ध्वं घातनं  
दाहो दीपदग्धहरिद्रया ॥ १०० ॥  
पादयोर्द्वयद्गुलान्नामेरुर्ध्वं चेष्टानि  
हिक्किनाम् ॥ १०१ ॥

पक्षीना देना, उल्टी कराना, नस्यकर्म, धूमपान विरेचन निद्रा स्निग्ध अन्न का भोजन, थोड़ा नमक सेवन करना पुरानी कुलधी पुराने गेहूँ पुरानी शालि धान्य का चावल पुराने सोंठी चावल पुराने जी हिरन तीतर जवा आदि से लेकर सभी जागल पशु पक्षियों का मांस पका-हुआ कैद्य, लहसन परवल छोटी मूली पोहकर-मूल काली तुलसी मदिरा खस का जल गर्म जब विजौरा नीच शहद गोमूत्र सब प्रकार के कफ घात नाशक अन्न और पान ठंडे पानी का परिपेक अचानक डर दिलाना गुस्सा दिलाना खुशी कराना प्रियवस्तु दिखाना उद्वेग करना प्राणायाम करना जली हुई मिट्टी पर पानी-ढाल कर सूँघना कूँची से पानी की धारा ढालना नाभि के ऊपर घोट मारना या दीपक से जली हुई हृदी से दागना पावों में जलाना अथवा नाभि से ऊपर दो अंगुल पर जलाना ये सब हिक्कारोग में लाभदायक हैं ॥ ६५-१०१ ॥

हिकारोग में अपथ्य ।

वातमूत्रोद्गारकासश कृद्देशविधारणम् ।  
रजोऽनिलातपायासान विरुद्धान्य-  
शनानि च ॥ १०२ ॥ विष्टम्भीनि विदा-  
हीनि रुक्षाणि कफदानि च । निष्पावः  
पिष्टकं मापः पिरायकानूपजामिपम् ॥  
१०३ ॥ अवीदुग्धं दन्तकाष्ठं वस्ति-  
मत्स्यांश्च सर्पपातुं अम्लं तुम्बी फलं कन्दं  
तैलमृष्टं मुपोदिकाम् ॥ १०४ ॥ गुरु  
शीतं चान्न पानं हिकारोगी विवर्ज-  
येत् ॥ १०५ ॥

अधोवायु मूत्र डकार खॉसी मल आदि  
के वेगों को रोकना धूल हवा धूप श्रोतोत्पादक  
कर्म परस्पर विरुद्ध भोजन विष्टम्भीविदाही  
रूले और कफ करने वाले पदार्थों का सेवन-  
करना चौल पीठी के पदार्थ उरद, तिल की खली  
अनूप देशके पक्षियों का मांस, भेड का दूध,  
दातुन करना वास्ति कर्म करना मछली खाना  
सरसों का साग खटाई तुम्बी फल तेल में भुने  
हुए आलू अरुई आदि कन्द के साग पुदीना  
और टंडा खान पान ये सब हिचकी में हानि-  
कारक हैं ॥ १०२-१०५ ॥

श्वास रोग में पथ्य ।

विरेचनं स्वेदन धूमपान प्रच्छर्दनानि  
स्वपनं दिवाच पुरातनाः पष्टिक रक्तशालि  
कुलत्थगोधूम यवा प्रशस्ताः ॥ १०६ ॥  
शशहिमुक् तिचिर लावदक्ष शुकादयो  
धन्वमृगद्विजाश्च । पुरातनं सर्पिरजा-  
प्रसूतं पयोधृतं चापि सुरामधूनि ॥ १०७ ॥  
निदिग्धिका वास्तुक तण्डुलीयं जीवन्तिका  
मूलकयोनिक्वाच । पटोल वार्त्ताकु रसो-  
न पथ्या जम्बीर विम्बी फल मातु-  
लुंगम् ॥ १०८ ॥ द्राक्षा त्रुटिः पौष्कर

मुष्णवारि कटुत्रयं गो जनितं च मूत्रम् ।  
अन्नानि पानानि च भेषजानि कफानि-  
लानि च यानि यानि ॥ १०९ ॥ वक्तः-  
प्रदेशादपि पार्श्वयुग्मे करस्थयोर्मध्यमयो  
द्वेयोरच । प्रदीप्त लौहेन च कण्ठरूपे दाहो-  
र्जपि च श्वासिनिपथ्यवर्गः ॥ ११० ॥

जुलाब स्वेदन धूमपान वमन दिन में सोना  
पुराने साठी तथा लाघ चावल, कुलथी गेहूँ  
जौ खरगोश मोर तीतर लवा मुर्ग तोता आदि  
पक्षी मरस्थान के पशु पक्षियों का मांस, पुराना-  
धी बकरी का दूध घी शराब शहद कटेरी वधुआ  
चौलाई, जीवन्ती, छोटीमूली, परवल, वेंगन,  
लहसन, हरद, जभीरीनींबू, कटूरी के फल,  
त्रिजैरा नींबू दाख छोटी इलायची पोहकरमूल,  
गर्मजल त्रिकुटा, गोमूत्र सभी कफघात नाशक  
खानपान का सेवन वक्षस्थल दोनों पसवादे  
दोनों हाथों के बीच की उँगली और कंठ कूप  
में गर्म लोहे से दागना श्वास रोग में  
लाभदायक है ॥ १०६-११० ॥

श्वासरोग में अपथ्य ।

मूत्रोद्गारच्छर्दिं तुल कास रोधो नस्यं  
वस्तिर्दन्त काष्ठं श्रमश्च अध्वाभारो  
रेणवः सूर्यपादा विष्टम्भीनि ग्राम्यधर्मो  
विदाहि ॥ १११ ॥ आनूपनामामिपं  
तैलमृष्टं निष्पावं च श्लेष्म कारीणिमापाः  
रक्तसावः पूर्वघातानुपानं मेपीसर्पि दुग्ध-  
मम्भोजपि दुष्टम् ॥ ११२ ॥ मत्स्याः  
कन्दाः सर्पपारचपानं रुजं शीतं गुर्वपि  
श्वास्यमित्रम् ॥ ११३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हिकारवासा-

धिकारः समाप्तः ।

मूत्र श्कार वमन लूपा खॉसी के वेगों को  
रोकना, नस्य वास्ति दातुन धकापट पैदाकरने  
वाले काम अधिक मार्ग चलना शोभ उदात्ता

गर्दां ( धूल ) जलन करने वाले पदार्थ, ग्रानूप देश के पशु पक्षियों के मांस तेल के बने मँगोड़े आदि चौला, कफकारक वरतुओं का खाना उदक फसद खुलवाना, पूरव की हवा आहार-विहार के बाद तुरंत जलपीना, भेद का घी दूध विगड़ा हुआ जल मछली कन्द शाक, सरसों का साग रूपा शीतल और भारी खानपान र्वासा रोगी को छोड़ देना चाहिए ॥ १११-११३ ॥

इति श्रीप० सरयूप्रसादत्रिपाठिधिरचित्तायां शैषज्य-  
रत्नावाल्या रत्नप्रभाभिधायार्थं व्याख्यायां हिका  
श्वासाधिकारः समाप्तः ।

### स्वरभेदाधिकारः ।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समा  
त्तिकम् । कफे सत्तारकटुकं चौरुं कवल  
इष्यते ॥ १ ॥ गले तालुनि जिह्वायां दन्त-  
मूलेषु चाश्रितः तेन निष्कृत्यते श्लेष्मा  
स्वरश्चास्य प्रसीदति ॥ २ ॥ स्त्रोपघाते  
मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते । क्षयजे सर्वजे  
चापि प्रत्याख्याय चरेत् क्रियाम् ॥ ३ ॥

वायुजन्य स्वरभङ्ग में तैल और लवण,  
पित्तजन्य स्वरभङ्ग में घृत और मधु तथा कफ-  
जन्य स्वरभङ्ग में क्षार और चरपरे द्रव्ययुक्त  
मधु का कवल ग्रहण करना उचित है । इससे  
गल, तालु, जिह्वा और दन्तमूलाश्रित कफ पतला  
होकर निकल जाता है और स्वर ठीक हो जाता  
है । मेदोजन्य स्वरभङ्ग में श्लेष्मिक स्वरभङ्ग के  
समान चिकित्सा करनी चाहिये । क्षयजन्य और  
सांनिपातिक स्वरभङ्ग को असाध्य कहकर  
चिकित्सा न करनी चाहिये ॥ १-३ ॥

चव्यादिचूर्णं ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिडीकता-  
लीशजीरकतुगादहनैः समांशैः । चूर्णं  
गुडैर्विमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं वैस्वर्यपीन-  
सकफारुचिपु प्रशस्तम् ॥ ४ ॥

चव्य, अमलवेत, त्रिकटु, इमनी, तालीश-  
पत्र, जीरा, वशलोचन, चीते की जड़, दाल-  
चीनी, तेजपात और छोटी इलायची समभाग  
लेकर चूर्ण करके पुराने गुड के साथ मिलाकर  
सेवन करे तो स्वरभङ्ग, पीनस, कफ और अरुचि  
रोग दूर होते हैं । मात्रा--२ माशा ॥ ४ ॥

अजमोदादि चूर्णं ।

अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं  
विचूर्णयेत् । मधुसर्पियुतं लीढ्वा स्वर-  
भेदमपोहति ॥ ५ ॥

अजमोद, हल्दी, आंवला, जवाखार और  
चीता की जड़ समभाग एकत्र कर चूर्ण करे ।  
इस चूर्ण का घृत और मधु के साथ सेवन करने  
से स्वरभङ्ग रोग दूर होता है ॥५॥ मात्रा १-२माशा ॥

वदरीपत्रकल्क लेह ।

वदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन-  
वम् । स्वरोपघाते कासे च लेहमेतत् प्रयो-  
जयेत् ॥ ६ ॥

६ माशा बेर की पत्तियों को पीसकर घी में  
भूनकर सेंधा नमक मिलाकर चाटने से स्वरभेद  
तथा खाँसी का नाश होता है ॥ ६ ॥

पिप्पल्यादि चूर्णं ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विरव-  
भेषजम् । पिप्पेन्मूत्रेण मत्तिमान् कफजे  
स्वरसंक्षये ॥ ७ ॥

पीपरि, पिपरामूल, मिर्च तथा सोंठ के चूर्ण  
को गोमूत्र के साथ पीने से कफज स्वरभेद का  
नाश होता है ॥७॥ मात्रा १-२ माशा ॥

शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः  
सह । पिप्पेत्पयांसि यस्योच्चैर्वटतोऽमिहतः  
स्वरः ॥ ८ ॥

मुलहठी आदि मधुर पदार्थों द्वारा सिद्ध दूध  
में सोंठ तथा शर्करा मिलाकर ऊँचा ( जोर ) से  
बोलने से पैदा हुए स्वरभेद में पीना चाहिये ८  
व्याघ्री घृत ।

व्याघ्री स्वरसविपकं रास्नावाद्यालगो-

क्षुरज्योषैः । सर्पिःसारोपघातं हन्यात्का-  
सश्च पञ्चविधम् ॥ ६ ॥ शुष्कद्रव्यमुपादाय  
स्वरसानामसम्भवे । वारिण्यष्टगुणे साध्यं  
घ्रातं पादापशेषितम् ॥ १० ॥

गौ का घी तीन सेर, भटकटीवा ( छोटी  
कटोरी ) पा रम पाण्ड सेर, राहना, परेटी,  
गोगुरु तथा चिन्टु ये सब मिलाकर इनके  
फलक में विधिपूर्वक घी पकावे । इस 'व्याघ्रीघृत'  
से स्वरभेद तथा पांच प्रकार के वास नष्ट होने  
हैं । यदि किसी द्रव्य का स्वरस न मिले, तो  
सूनी लेकर शटगुने पानी में पकाकर चतुर्थांश  
रहने पर स्वरस के बदले में प्रदण्य करना  
चाहिये ॥ ६-१० ॥ मात्रा ६ माशा १ तोला ॥

सागन्धतघृत और ब्राह्मीघृत ।

समूलपत्रमादाय ब्राह्मी भक्षाल्य वा-  
रिणा । उसले चोदयित्वा रसं वस्त्रेण  
गालयेत् ॥ ११ ॥ रसे चतुर्गुणे तस्मिन्  
घृतमस्थं विपाचयेत् । औषधानि तु  
पेप्याणि तानिमानि प्रदापयेत् ॥ १२ ॥  
हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिवृता सहरीतकी ।  
एतेषां पलिकाम् भागान् शेषाणि कार्पि-  
काणि च ॥ १३ ॥ पिप्पल्योऽथ विड-  
ङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा । सर्वमेतत्  
समालोच्य शनैर्षुद्धग्निना पचेत् ॥ १४ ॥  
एतत् प्राशितमात्रेण वाग्बिभृद्धिः प्रजायते ।  
सप्तत्रयप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥  
१५ ॥ अर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपु-  
र्भवेत् । मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रं तु  
धारयेत् ॥ ५३ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि  
अशीति विविधानि च । पञ्चगुल्मान्  
प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं तथा ॥ १७ ॥  
वन्ध्यानांमपिनारीयानराणामल्परेतसाम् ।

घृतं सारभृतं नाम बलवर्णाग्निवर्द्ध-  
नम् ॥ १८ ॥

उदानोन्तर्नरिदं ब्राह्मीघृतमुच्यते ।

मूल तथा पत्रमहित ब्राह्मी को धोकर उरल  
में कूटकर उमके रस को घण्ट से छान ले । यह  
स्वरस चार सेर, घी एक मेर षण्कार्पाय दहदी,  
मालती के दून, कूट, निसोत और हड़ चार-  
चार तोला, पीपरि, पावपिडंग, सेंधानोन, शकर  
और घघ एक-एक तोला, स्वरस, कदक और  
घृत एकत्र कर धीमी आँच से यथाविधि पाक-  
कर घृत मिद्ध करे । इसके घाटने से स्वर शुद्ध  
हो जाता है, सात दिन सेवन करने से किन्नरों  
के समान मानेवाला हो जाता है । पन्द्रह दिन  
के सेवन से चन्द्रमा के मुख्य कान्तियुक्त होता  
है । एक मास सेवन करने से प्रत्येक विषय  
सुगते ही याद हो जाते हैं । इसके सेवन से १८  
कुष्ठ, अनेक यवासीर, पांच प्रकार के गुल्म,  
प्रमेह तथा पद्मविध कास नष्ट होते हैं । यन्ध्या  
घी तथा अल्प वीर्य पुरणों के लिये यह घृत  
बल, बर्ण तथा अग्नि को बढ़ानेवाला है । इनको  
सारस्वत घृत अथवा ब्राह्मी घृत भी कहते हैं ।  
मात्रा—१ माशा से १ तोला तक ॥ ११-१८ ॥

कल्याणवलेह ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्व-  
भेषजम् । अजाजी चाजमोदा च यष्टीम-  
धुरुसैन्धवम् ॥ १६ ॥ एतानि समभा-  
गानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । तच्चूर्णं  
सर्पिपालोच्च्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ २० ॥  
एकविंशतिरात्रेण भवेच्छु तधरो नरः ।  
मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिः-  
स्वनः ॥ जडगद्गदमूक्तवं लेहः  
कल्याणको जयेत् ॥ २१ ॥

दहदी, बच, कूट, पीपल, सोंठ, कालाजीरा,  
अजवायन, मुलहठी, सेंधा नमक हरएक के  
चूर्ण को बराबर मात्रा में लेकर गोघृत में

मिलाकर भधकर प्रतिदिन सेवन करावें । इक्कीस दिन के सेवन से स्मृतिसृष्टि अत्यन्त बढ जाती है, तथा इसको सेवन करनेवाला मेष एवं दुन्दुभि के समान गम्भीर ध्वनियुक्त तथा मस्त कोयल के समान मधुर शब्दवाला हो जाता है । यह लेह वाखी की जडता, गद्गद तथा मूकता दूर करता है ॥ १६-२१ ॥ मात्रा ६माशा से १ तोला ॥

भैरव रस ।

रसं गन्धं विषं द्रुं मरिचं चव्य-  
चित्रकम् । आर्द्रकस्य रसेनैव संमर्द्य  
वटिकां ततः ॥ २२ ॥ रक्तिकैकप्रमाणेन  
खादेत्तोयानुपानतः । स्वरभेदं निहन्त्याशु  
श्वासं कासं सुदुस्तरम् ॥ २३ ॥

पारा, गन्धक, बच्छनाग, सुहागा, कालीमिर्च, चव्य, चित्रक इन्हें अद्रक के रस से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे । अनुपान—जल । इसके सेवन से स्वरभेद, श्वास तथा खाँसी का रोग अच्छा होता है ॥ २२-२३ ॥

रसेन्द्रगुडिका ।

अयोध्रकं पृथक् कोलं बलीशावर्द्ध-  
भागिनौ । विट्टमं खर्परञ्चैव लौहपादां-  
शमाचरेत् ॥ २४ ॥ यथाभागं समीकृत्य  
व्याघ्री ब्राह्मचाटरूपजैः । रसैर्वापि कपायै-  
श्च पृथक् भाव्यं त्रिधा त्रिधा ॥ २५ ॥  
गुञ्जाद्वयमितां धीमान् वटिकां कारये-  
त्ततः । सप्ताहसेनादेव स्वरः शुद्धचत्य-  
संशयम् ॥ २६ ॥ मासालोकिलकण्ठः  
स्यात् किन्नरैः समतां लभेत् । मेघावी  
स्याद्यशस्वी च तुष्टिपुष्टिसमन्वितः ॥  
२७ ॥ कासश्वासप्रमेहाद्यैर्नरः सद्यः  
प्रमुच्यते । रसेन्द्रगुडिका क्षेपा घन्वन्तरि-  
विनिर्मिता ॥ २८ ॥

लोहभस्म, अन्नकभस्म अलग-अलग एक-एक तोला, पारा ६ माशा, गन्धक ६ माशा, प्रवालभस्म ३ माशा, खपरियाभस्म ३ माशा इन्हें इकट्ठा मिलाकर कटेरी छोटी, ब्राह्मी तथा अद्रसे के रस से अलग-अलग तीन-तीन भावना दे और २ रत्ती की गोली बनावे । इसके ७ दिन सेवन करने से स्वर श्रेष्ठ हो जाता है । यदि १ मास सेवन किया जाय तो कोयल के समान स्वर हो जाता है । गाने में किन्नरों की बराबरी करता है । अतएव सेवन करनेवाला व्यक्तियशस्वी हो जाता है । यह मेघा को बढ़ाती है, शरीर का पोषण करती है । खाँसी, श्वास, प्रमेह एवं बहुमूत्र को नष्ट करती है । यह रसेन्द्रगुडिका श्रीघन्वन्तरि ने बनाई थी ॥ २४-२८ ॥

किन्नरकण्ठ रस ।

रसं गन्धकमभ्रश्च मात्तिकं लौहमेव-  
च । कर्पप्रमाणं संगृह्य वैक्रान्तं रस-  
पादिकम् ॥ २९ ॥ वैक्रान्तार्द्धं तथा हेम  
रौप्यं हेमचतुर्गुणम् । वासायाश्च तथा  
भाग्या बृहत्योराद्रकस्य च ॥ ३० ॥  
स्वरसेनं सरस्वत्या भावयित्वा पृथक्  
पृथक् । रक्तद्वयमिताः कुर्याद्विटीशब्दाया  
विशोयिताः ॥ ३१ ॥ स्वरभेदानशेषांश्च  
कासान् श्वासांश्च दाखणान् । निखिलान्  
कफजान् व्याधीन् वातरश्लेष्मसमुद्भ-  
वान् ॥ ३२ ॥ हन्यात् किन्नरकण्ठारूप्यो  
रसोऽसौ रुद्रनिर्मितः । किन्नरस्येव कण्ठ-  
स्य स्वरस्य प्राशनाद्भवेत् ॥ ३३ ॥

पारा, गन्धक, अन्नकभस्म, स्वर्णमाषिक भस्म, लौहभस्म, हल्दक १ तोला, वैक्रान्त भस्म २ माशा, स्वर्ण भस्म १ ॥ माशा, चाँदी की मस १ तोला, इन्हें इकट्ठा कर अद्रस, भारगी छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अद्ररस, ब्राह्मी, इनके रस से अलग-अलग भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावे और दावा में मुगा ले । इसके सेवन से सप्त स्वरभेद. खाँसी.



कठिन श्याम सम्पूर्ण कफज मयं वातकफजन्य रोग नष्ट होते हैं । इसके सेवन से कण्ठ कित्तरों के समान हो जाता है ॥ २६--३३ ॥

रुजा विविधयार्त्तानां वलासार्द्रस-  
सेवनात् । कासात्तानां यच्चिमणाञ्च जायन्ते  
प्रायशो नृणाम् ॥ ३४ ॥ कण्ठेऽनु-  
बन्धभावेन ये च शोथक्षतादयः । ते  
चिकित्स्याः पृथङ् नैव जिगीषेन्मुख्य-  
मामयम् ॥ ३५ ॥ सहैव वा तथाशान्ति-  
रिति वृद्धमतं स्मृतम् । ते चापि कण्ठ-  
शोथाद्या विवृद्धा जनयन्त्यपि ॥ ३६ ॥  
अनन्यहेतुकं तेषां स्वरभेदं सुदारुणम् ।  
अनुबन्ध्यांश्चिकित्सेत तत्र पूर्वं भिषग्वरः ॥  
३७ ॥ शान्तेऽनुबन्धे शाम्यन्ति स्वय-  
मेवानुबन्धकाः । प्रभूतशाखोऽपि तरुश्छि-  
न्ने मूले विशुष्यति ॥ ३८ ॥ अतः पूर्वं  
परीक्षेतनिदानगतिभिः पृथक् । अनुबन्ध्या-  
नुबन्ध्यान्वै ततः कुर्याच्चिकित्सि-  
तम् ॥ ३९ ॥

विविध प्रकार के रोगों से पीड़ित मनुष्यों को कफवृद्धि से, पारा के सेवन से तथा रॉसी एवं यच्मा से पीड़ित रोगी के उपद्रवरूप से कण्ठ में जो सूजन एवं क्षत आदि हो जाते हैं उनकी अलग चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती वहाँ प्रधान (अनुबन्ध) रोग की ही चिकित्सा करनी चाहिये अथवा मुख्य रोग के साथ ही साथ चिकित्सा करें तो इन उपद्रवों की शान्ति स्वयं हो जाती है, यह वृद्ध वैद्यों का मत है । ये कण्ठशोथ आदि बढ़कर उन उन रोगियों में स्वरभेद को पैदा कर देते हैं । ऐसी अवस्था में स्वरभेद का कोई दूसरा कारण नहीं होता । ऐसे रोगियों में पहिले अनुबन्ध (प्रधान) की चिकित्सा करनी चाहिये । अनुबन्ध के शान्त होने पर अनुबन्धक स्वयं शान्त हो जाते हैं, जैसे बहुशाखायुक्त वृक्ष की जड़ को

काटने से सारा वृक्ष ही सूख जाता है । अतः स्वरभेद की चिकित्सा से पहिले निदान आदि द्वारा अनुबन्ध एवं अनुबन्धक की परीक्षा कर लेनी चाहिये । परीक्षा के बाद ही चिकित्सा लाभदायक होती है ॥ ३४--३९ ॥

किङ्किराटाघ कवल

किङ्किराटं स्थूलपत्रं तिन्दुकं जातिकां  
तथा । समभागां समादाय तत्पोडशगुणोऽ-  
म्मसि ॥ ४० ॥ पचेद्दर्द्रावशिष्टः स  
कवलो धार्यते यदि । स्वरभेदं क्षतं हन्याद्  
व्यथाञ्च शोणितस्रुतिम् ॥ ४१ ॥

यूल, जामुन, तेन्दुक तथा चमेली, इनकी छाल को बराबर मात्रा में लेकर १६ गुने पानी में उबाले । जब जल आधा रह जाय तो उतार ले और छानकर गुनगुने क्वाथ का ही कवल धारण करें । इस प्रकार स्वरभेद, मुसलत, कण्ठक्षत, बेदना तथा रक्तस्राव बन्द हो जाता है ॥ ४०--४१ ॥

कार्थं यश्च हरीतक्या धारयेत् सह  
शुभ्रया । रक्तस्रावादिकं सोऽपि जयेदाशु  
विनिश्चितम् ॥ ४२ ॥

तथा हरद के क्वाथ में किञ्चित् फिटकरी को घोलकर कवल धारण करने से शीघ्र ही रक्तस्राव आदि बन्द हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

ऊर्णानिर्मितपट्टेन कण्ठो वर्त्यः  
सदा नरैः ॥ ४३ ॥

स्वरभेद के रोगी को सदा उन के बने गुलूबन्द से कण्ठ को ढके रहना चाहिये ॥ ४३ ॥

व्यम्यक अन्नक ।

अध्रं मेचकमारितं पलमितं व्याघ्री  
वलागोक्षुरं, कन्यापिप्पलिमूलभृङ्गद्वयकाः  
पत्रं तथा वादरम् । धात्रीरात्रिगुडूचिकाः  
पृथगतः सन्वैः पलांशैर्युतं, सम्मर्धाति-  
मनोरमं सुवर्लितं कृत्वा यदा सेवितम् ॥  
४४ ॥ वातोत्थं कफपित्तजं स्वरगदं यच्च

त्रिदोषात्मकम् अत्युच्चैर्वदतो इतं बहुविधं  
पानीयदोषोद्भवम् । कासं श्वासपुरोग्रहं  
सयकृतं हिकां तृपां कामलामर्शांसि  
ग्रहणींज्वरं बहुविधं शोथं क्षयश्चाबुदम् ॥  
४४ ॥ हन्ति ज्यम्बकमभ्रमद्भुततरं  
वृष्यातिवृष्यं परं बहुवृद्धिकरं रसायनवरं  
सर्वामयध्वंसि तत् ॥ ४६ ॥

चार तोला अन्नक भस्म को कटेरी, खरेटी,  
गोलरू, घृतकुमारी, पिपरामूल, भांगरा, अड़सा,  
बेर के पत्ते, आँवला, हल्दी और भिलोय के चार-  
चार तोला रस में क्रमशः भावना देकर एक-  
एक रत्ती की गोली बनावे। इस 'ज्यम्बकाभ्र'  
का सेवन करने से सब प्रकार के स्वरभङ्ग,  
खाँसी, श्वास, उरोग्रह, यकृत, हिचकी, तृपा,  
कामला, अर्श, ग्रहणी, ज्वर, शोथ तथा अबुद  
आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। यह अत्यन्त  
धीर्यवर्धक, अग्निदीपक तथा रसायन  
है। मात्रा १ रत्ती-२ रत्ती ॥४४-४६॥

स्वरभेद में पथ्य

स्वेदो वस्तिधूमपानं विरेकः क्वल-  
ग्रहः नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहि-  
तशालयः ॥ ४७ ॥ हंसाट्वीताम्रचू-  
डकेकिमांसरसाः सुरा । गोकण्टकः  
काकमाची जीवन्ती बालमूलकम् ॥  
४८ ॥ द्राक्षा पथ्या मातुलुङ्गं लशुनं  
लशणाद्रकम् । ताम्बूलं मरिचं सर्पिः  
पथ्यानि स्वरभेदिनः ॥ ४९ ॥

स्वेद, वस्ति, आयुर्वेदोद्भूत स्वरभेदनारक  
धूमपान, विरेचन, क्वलधारण, नस्य, मस्तक  
पर शिरावेध, जौ, लाल शालिचावल; हंस,  
जंगली मुर्गा और मोर के मांस का रस, शराय,  
गोररू, मकोप, जीवन्ती, कधी मूली, भंगूर,  
मुमका, हरद, धिजौरा, लहसन, नमकसाहित  
अदरस, पान, कालीमिर्च, धी ये सब स्वर-  
भेदियों के लिये पथ्य हैं ॥ ४७-४९ ॥

अपथ्य ।

आमं कपित्थं वकुलं शालूकं जाम्ब-  
वानि च । तिन्दुकानि कपायाणि वर्मि  
स्वमं मजल्पनम् । अम्लं दधि च यत्रनेन  
स्वरभेदी विवर्जयेत् ॥ ५० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्वरभेदाधिकारः  
समाप्तः ।

कचे फल, कचे कैथ, वपूल, जलीय कन्द,  
जामुन, तेन्दू, कसैले द्रव्य, घमन, स्वप्न, अधिक  
बोलना, खटाई, दही, इनका यत्नपूर्वक परित्याग  
कर देना चाहिये ॥ ५० ॥

इति श्रीपं०सरयूमसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां  
स्वरभेदाधिकारः समाप्तः ।

## हृद्रोगाधिकारः ।

वातज हृद्रोगचिकित्सा ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमा  
तुरम् । द्विपञ्चमूलीकाथेन सस्नेहलक्षण्येन  
च ॥ १ ॥

मदनादिचूर्णयुक्तेन द्विपञ्चमूलीकाथेन  
घमनं कर्तव्यम् । अत्र विरेचनमपि कर्त्त-  
व्यं लह्वनञ्च । यदुक्तं—हृद्रोगिणं स्नेहयि-  
त्वा वामयेत् क्षसयेत्तथा । लह्वयेदचिरो-  
त्थञ्च हृद्रोगं वातिकं विना इति ।

घातप्रधान हृद्रोग में स्नेहन करने के बाद  
मैतफल आदि के चूर्ण से युक्त दशमूल के क्वाथ  
में स्नेह और लवण मिलाकर पान करके  
घमन कराना चाहिये । इसमें विरेचन और  
लघन भी करना चाहिए, क्योंकि जितना है कि  
हृद्रोगी को स्नेहन कराके घमन और विरेचन  
करावे। यदि हृद्रोग नूतन हो, तो लघन करावे,  
किन्तु प्रातिक हृद्रोग में लघन कराना उचित  
नहीं है ॥ १ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवत्तारोऽथ  
सैन्धवम् । सौवर्चलमथोशुण्ठी अजमोदा  
च चूर्णितम् ॥ २ ॥ फलधान्याम्लंकौ-  
लत्थदधिमद्यासवादिभिः । पाययेच्छुद्धदे-  
हश्च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ३ ॥

पहिले स्नेहन अथवा घमन आदि के द्वारा  
शरीर को शुद्ध करके पीपरि, इलायची, वच,   
हींग, जवापार, संधानमक, कालानमक, सोंठ  
और अजमोद का चूर्ण बनाकर नींबू का  
रस, कोंजी, कुलथी का जूस, दही, मद्य  
अथवा आसय आदि के साथ पान कराना  
चाहिये ॥ २-३ ॥ मात्रा १२ माशा ॥

नागरं वा पिवेदुष्यं कपायश्चाग्नि-  
वर्द्धनम् । कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रो-  
गनाशनम् ॥ ४ ॥

सोंठ का गरम-गरम काढ़ा पीने से अग्नि की  
वृद्धि होती है । कास, खास, पायु, शूल और  
हृद्रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पित्तज हृद्रोगचिकित्सा ।

श्रीपर्णी मधुकं क्षौद्रं सितागुडजलै-  
र्धमेत् । पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेन्मधुरकैः  
मृतम् । घृतं कपायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वर-  
विनाशनान् ॥ ५ ॥

पैत्तिक हृद्रोग में गम्भारी का फल और  
मुलेठी के अधोवशिष्ट (आधा रह गया हो)  
काथ में मधु, शकर, पुराना गुड और मैनफल का  
चूर्ण मिलाकर घमन करना चाहिये । मधुर  
द्रव्यों से सिद्ध किये हुए काथ, घृत तथा  
पित्तज्वराधिकारोक्त नवार्थों का सेवन कराना  
चाहिये ॥ ५ ॥

शीताः प्रदेहाः परिपेचनानि तथा  
विरेको हृदि पित्तदुष्टे । द्राक्षा सिता क्षौद्रप-  
रूपकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥  
६ ॥

पैत्तिक हृद्रोग में शीतल प्रलेप, सेचन और  
विरेचन कराना चाहिये । घमन और विरेचन  
द्वारा देह शुद्ध कराके मुनषा, चीनी, मधु और  
फालसा के साथ पित्तनाशक अन्नपान की व्यवस्था  
करनी चाहिये ॥ ६ ॥

पिप्प्ला पिवेद्वापि सिताजलेन यष्ट्याह्वयं  
तिक्तकरोहिणीश्च ॥ ७ ॥

अथवा चीनी के शर्बत में मुलेठी और कुटकी  
पीसकर पान करना चाहिये ॥ ७ ॥

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं  
हृदामये । सितया पञ्चमूल्या वा चलय्या  
मधुकेन वा ॥ ८ ॥

अर्जुन की छाल से सिद्ध लघुपञ्चमूल और  
शकर के साथ सिद्ध अथवा खरीटी और मुलेठी  
के साथ सिद्ध किये हुए दुग्ध को पीना  
चाहिये ॥ ८ ॥

अर्जुनत्वक्चूर्ण ।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिवन्ति  
चूर्णं ककुभत्वचो ये । हृद्रोगजीर्णज्वररक्त-  
पित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ९ ॥

घृत, दुग्ध अथवा गुड़ के शर्बत के साथ जो  
अर्जुन की छाल का चूर्ण सेवन करते हैं वे हृद्रोग,  
जीर्णज्वर और रक्तपित्त रोग को नष्ट करके दीर्घायु  
होते हैं ॥ ९ ॥

वचानिन्धकपायाभ्यां वान्तं हृदि कफो-  
त्थिते । वातहृद्रोगहृच्छूर्णं पिप्पल्यादिश्च  
पाययेत् ॥ १० ॥

पिप्पल्यादिचूर्णं पिप्पल्येलावचा हिङ्गु  
इत्यादि यदुक्तम् ।

कफजन्य हृद्रोग में वच और नीम की छाल  
का काथ पिलाकर घमन कराना चाहिये । वात-  
हृद्रोगनाशक 'पिप्पल्येलावचाहिङ्गु' इत्यादि श्लोक  
के द्वारा पीड़े कहे हुए पिप्पल्यादि चूर्ण का सेवन  
कराना चाहिये ॥ १० ॥

त्रिदोषहृद्रोगचिकित्सा ।

त्रिदोषजे लघनमादितः स्यादन्नञ्च  
सर्वेषु हितं विधेयम् । हीनातिमध्यत्वम-  
वेक्ष्य चैव कार्यं त्रयाणामपि कर्मशस्तम् ॥  
११ ॥

सात्रिपातिक हृद्रोग में पहिले लघन के द्वारा  
दोषों को क्षीणबल करके परचात् तीनों दोषों  
में हितकर भोजन देना चाहिये तथा दोषविशेष  
की प्रबलता, मध्यता और हीनावस्था का  
विचार कर यथाविहित चिकित्सा करनी  
चाहिये ॥ ११ ॥

पुष्करमूलचूर्ण ।

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समा-  
युतम् । हृच्छूलरसासकाम्नं क्षयद्विका-  
निरारणम् ॥ १२ ॥

११२ माशा पुष्करमूल के चूर्ण का मधु के साथ  
सेवन करने से हृदयशूल, रवास, कास, क्षय और  
द्विकारोग दूर होते हैं ॥ १२ ॥

तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थजं  
वापि । पित्रति पयोऽनु च स भवेज्जित-  
सकलरवासकासहृदामयः पुरुषः ॥ १३ ॥

पार्थोऽर्जुनः पार्थगोधूमाभ्यां समो गुडः  
तैलाज्ये अल्पमात्रया देये किञ्चिज्जलं  
दत्त्वा पिबेत् वा शब्दः पूर्वयोगापेक्षया ।

गोधूमचूर्णं १ भाग, अर्जुन की छाल का  
चूर्ण १ भाग और गुड २ भाग एकत्र कर थोड़े  
से तिलतेल और घृत में पकाकर उसमें थोड़ा  
जल मिलाकर पान करें और ऊपर से थोड़ा दूध  
पिये, तो प्रबल हृद्रोग, रवास और कासरोग दूर  
होते हैं । मात्रा-१११ माशा ॥ १३ ॥

गोधूमकुकुभचूर्णं द्यागपयो गन्धसर्पिपा  
पकम् । मधुसर्करासमेतं शमयति हृद्रोग-  
मुद्धतं पुंसाम् ॥ १४ ॥

गोधूमचूर्णं १ भाग, अर्जुन की छाल का चूर्ण  
१ भाग, ककरी का दूध ४ भाग, इन्हें एकत्र पाक

करके किंचित् गोघृत से भून ले । शीतल होने पर  
थोड़ा शहद या शकर मिलाकर सेवन करने से  
प्रबल हृद्रोग नष्ट होता है । मात्रा ११२  
तोला ॥ १४ ॥

नागबलाचूर्ण ।

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाय  
येत् । हृद्रोगश्वासकासाम्नं ककुभस्य च  
वल्कलम् ॥ १५ ॥ रसायनं परं वल्यं  
वातजिन्मासयोजितम् । संवत्सरप्रयोगेण  
जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

नागबला के मूल के ३ माशा चूर्ण को दूध के  
साथ सेवन करें, तो हृद्रोग, रवास और कासरोग  
थाराम होता है । तथा अर्जुन की छाल के ३ माशा  
चूर्ण को दुग्ध के साथ एक मास पर्यन्त सेवन  
से हृद्रोग नष्ट होता है । यह वातनाशक, बल  
कारक परम रसायन है । एक वर्ष पर्यंत निरन्तर  
सेवन करने से नि सदेह सौ वर्ष तक जीना है ॥  
१५-१६ ॥

हिङ्गवादिचूर्ण ।

हिङ्गुग्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभया  
चित्रकयावशूकम् । पिबेत् ससौवर्चलपुष्क-  
राढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयम् ॥ १७ ॥

हींग, मीठी बच, विड नमक, सोंठ, पीपरी,  
कूट, हड़, चीता की जड़ जवाखार, काला  
नमक और पुष्करमूल के चूर्ण को जी के साथ  
के साथ सेवन करने से शूल और हृद्रोग नष्ट होते  
हैं । मात्रा-११२ माशा ॥ १७ ॥

दशमूलरुपायस्तु लवणक्षारयोजितः ।  
कासं स्वामश्च हृद्रोगं गुल्मं शूलञ्च नाश-  
येत् ॥ १८ ॥

दशमूल के साथ में सेंधा नमक और जवाखार  
मिलाकर पान करें तो कास, रवास, हृद्रोग, गुल्म  
और शूल नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

पात्राचचूर्ण ।

पात्रां वचां यवक्षारमभ्यां चाम्लवेत-  
सम् । दुरालमां चित्रकञ्च द्र्युपणञ्च फल-

त्रयम् ॥ १६ ॥ शटीं पुष्करमूलञ्च तिनित्-  
डीकं सदाडिमम् । मातुलुद्रस्य मूलानि  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ २० ॥ सुखोद-  
केन मधैर्वा प्लुतान्येतानि पाययेत् । अर्शः  
शूलञ्च हृद्रोगं गुल्मञ्चाशु नियच्छति २१

पाड़ी, वच, जवाखार, हरद, भ्रमलयेत,  
जवासा, चीता की जड़, त्रिकुट, त्रिफला, कचूर,  
पुहकरमूल, ह्रमली की छाल, अनार की छाल  
और यिजौरे नीपू के मूल की छाल के ३ माशा  
चूर्ण को गुनगुने जल अथवा मद्य के साथ सेवन  
करे तो बवासीर, शूल, हृद्रोग और गुल्म रोग  
नष्ट होते हैं ॥ १६-२१ ॥

पुष्करमूलादिचूर्ण ।

सपुष्कराख्यं फलपूरमूलं महौषधं  
शट्यभया च कल्कः । क्षीराम्लसर्पिल-  
वणैर्विमिश्रः स्याद् वातहृद्रोगहरो नरा-  
णाम् ॥ २२ ॥

पोहकरमूल, यिजौरे की जड़, सोंठ, कचूर,  
हरद, इनके चूर्ण को दूध, कौंजी, घृत अथवा  
नमक के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण हृद्रोग  
शान्त होते हैं । मात्रा—२ माशा ॥ २२ ॥

हरीतक्यादि चूर्ण ।

हरीतकी वचा रास्ना पिप्पली नागरो-  
द्भवम् । शटीपुष्करमूलोत्थं चूर्णं हृद्रोग-  
नाशनम् ॥ २३ ॥

हरद, वच, रास्ना, पीपल, सोंठ, कचूर,  
पोहकरमूल, इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में  
मिलाकर सेवन करने से सब हृद्रोग शान्त  
होते हैं । मात्रा—२ माशा ॥ २३ ॥

त्रिवृतादि चूर्ण ।

त्रिवृतशटी बला रास्ना शुण्ठी पथ्या  
सपौष्करा । चूर्णिता वा शृत्वा मूत्रे पातव्या  
कफहृद्रदे ॥ २४ ॥

कफज हृद्रोग में निसोत, कचूर, बाला, रास्ना,

सोंठ, हरद, पोहकरमूल, इनके मिश्रें हुए चूर्ण  
को अथवा गोमूत्र से सिद्ध पाय को सेवन कराना  
चाहिये । चूर्ण की मात्रा १ माशे से ४ माशे  
तक ॥ २४ ॥

सूक्ष्मैलादि चूर्ण ।

सूक्ष्मैला मागधीमूलं प्रलीढं सर्पिषा  
सह । नाशयेदाशु हृद्रोगं कफजं सपरि-  
ग्रहम् ॥ २५ ॥

छोटी इलायची तथा पीपलामूल के चूर्ण को  
घृत के साथ मिलाकर चाटने से शीघ्र ही उपद्रव-  
युक्त कफज हृद्रोग नष्ट होता है । मात्रा ४ रत्ती  
से ८ रत्ती तक ॥ २५ ॥

पुटदग्धमरमपिष्टं हरिणविपाणंच सर्पिषा  
पिवेतः । हृत्पृष्ठशूलमुपशममुपयात्यचिरेण  
कष्टमपि ॥ २६ ॥

गजपुटदग्ध ( गजपुट में फूँके हुए ) हरिण-  
पृष्ठ को पीसकर घृत के साथ सेवन करे तो  
हृदय और पृष्ठ का शूल तत्काल नष्ट होता है २६

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत् पिशि-  
तौदनम् । दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं परचा-  
द्विरेचयेत् ॥ २७ ॥ सुगन्धिभिः सलवणै-  
र्योगैः साजाजिशर्करैः । विडङ्गादूर्ध्वान्या-  
म्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥ २८ ॥

अत्र पिशितौदनं कृमीणामुत्क्लेशार्थं  
पिशितमधानमोदनं पिशितौदनं दध्ना  
पललेन च संयुक्तं त्र्यहं भोजयेत् । पललं  
पिष्टकमिति जेजडः तिलचूर्णमिति चक्रः ।  
अन्ये तु शुष्कमांसचूर्णमाहुः । एते कृमि-  
घातकाः । सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैरिति  
विरेचनयोगैः चातुर्जातेन सुगन्धीकरणञ्च  
वान्तिशङ्कानिरासार्थं धान्याम्लमनुपेयम् ।

कृमिजन्य हृद्रोग में पहिले ३ दिन पर्यन्त  
दही और तिलपिष्टक के साथ मांसयुक्त भात  
खिलावे । परचात् दालचीनी, वैजपात, नागकेसर,

हृत्त्राण्यची आदि श्रोत्रपथियों द्वारा सुगन्धित सैंधव, जीरा, शकर और अधिक वायुविदंग सहित विरेचक श्रौषधीं से विरेचन कराना चाहिये । अनुपान—धान्याम्ल (काँजी) । यहाँ मांसप्रधान भात का दही और पल्ल के साथ जो विधान किया गया है वह कृमियों के निकालने के लिये है । यहाँ पल्ल पद से पिष्टक का ग्रहण करना चाहिए, ऐसा जेजटजी कहते हैं । तिलचूर्ण का ग्रहण करे ऐसा चक्रदत्तजी कहते हैं । और लोगों का मत है कि शुष्क मांस के चूर्ण का ग्रहण करना चाहिए । ये सब वस्तु कृमिनाशक हैं । सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः इस विरेचन के योग में चातुर्जात से सुगन्धित जो करना है, वह वमन की शक्ता दूर करने के लिये है । धान्याम्ल का अनुपान रखना चाहिए ॥ २०-२८ ॥

**कृमिजे च पिवेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयु-  
तम् । हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात्  
कृमयो नृणाम् । यवान्नं वितरेच्चास्मै स  
विडङ्गमतः परम् ॥ २६ ॥**

कृमिजन्य हृद्रोग में विदंग और कूट के चूर्ण के साथ गोमूत्र पान करे तो हृदयस्थित कृमि गिर जाते हैं । तदनन्तर रोगी को विडङ्गचूर्ण मिलाकर जो का भात खिलाना चाहिये ॥ २६ ॥

वल्लभक घृत ।

मुख्यं शतार्द्धञ्च हरीतकीनां सौवर्चल-  
स्यापि पलद्वयञ्च । पक्वं घृतं वल्लभकेति  
नाम्ना हृत्लासशूलोदरमारुतघ्नम् ॥ ३० ॥

हरद पचास नग और काला नमक ८ तोला एकत्र कर, इन दोनों को एक साथ घी में पकावे । यह वल्लभक नाम घृत मतली, शूल, उदर-रोग और वातरोग का नाशक है ॥ ३० ॥

श्वदंष्ट्राद्य घृत ।

श्वदंष्ट्रोशीरमज्जिष्ठा वलाकारमर्यक-  
तृणम् । दर्भमूलं पृथक् पर्णीपलाशार्भकौ  
स्थिरा ॥ ३१ ॥ पलिकां साधयेत्तेषां रसे

तीरे चतुर्गुणे । कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदा  
जीवन्तिजीरकैः ॥ ३२ ॥ शतावर्षुषि  
मृद्रीका शर्करा श्रावणीविसैः । प्रस्थ  
सिद्धो घृताद्वापि पित्तहृद्रोगशूलनुत् ३३  
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शः श्वासकासक्षयापहः ।  
धनुः स्त्रीमद्यभाराध्वस्त्रिन्नानां वल्लमां-  
सदः ॥ ३४ ॥

घृत १२८ तोला, वायार्थं गोशुक्र, खास, मजीठ, खरेटी, खम्भारी की छाल, कृष्ण (सुगन्धित तृणविशेष), कुशमूल, पृष्ठपर्णी, पलाश की छाल, ऋषभक और शालपर्णी चार-चार तोला, पाकार्थं जल ६ सेर ३२ तोला, शोप १ सेर ४८ तोला, दुग्ध ६ सेर ३२ तोला, कल्कार्थं कौंच के वज्रि, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, शतावरी, ऋद्धि, मुनक्का, शकर, गोरख-मुण्डी और मृणाल कुल मिलाकर ३२ तोला ले, घृत, काय, दुग्ध और कल्क एकत्र कर धीमी आँच से पकाकर घृत सिद्ध करे । यह घृत पैत्तिक हृद्रोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, श्वास कास और क्षय रोगों को नष्ट करता है । यह घृत धनुष, नारी, मदिरा, बोम्बा, मार्ग में अधिक चलना इत्यादि कारणों से खिन्न पुरुषों के मांस और यल को बढ़ानेवाला है मात्रा ६ माशा से १ तोला ॥ ३१-३४ ॥

वलाघ घृत ।

घृतं वलानागवलाजुं नाम्बु सिद्धं  
सयष्टीमधुकल्कपादम् । हृद्रोगशूलक्षतरत्र-  
पित्तकासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ३५  
घृत २ सेर, वायार्थं परियारा, नागवला (गुलसफरी) और अजुन की छाल कुल मिलाकर ४ सेर, जल ३२ सेर, शोप ८ सेर । कल्कार्थं मुलेठी सब द्रव्यों की चौपाई । यथा-विधि पाककर घृत सिद्ध करे । इस घृत का पान करने से हृद्रोग, शूल, उरःघ्न, रत्रपित्त, सर्सी और वातरत्र आदि रोग शान्त होते हैं ॥ ३५ ॥ मात्रा ६ माशा से १ तोला ।

अजुन घृत ।

पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं  
सर्वहृदामयेषु ॥ ३६ ॥

घृत २ सेर, कायार्थ अजुन की छाल ४ सेर,  
जल ३२ सेर, शेष ८ सेर । कल्कार्थ अजुन-  
छाल आधसेर । यथाविधि पाककर घृत सिद्ध  
करे । यह घृत हर प्रकार के हृद्रोग के लिये  
लाभदायक है ॥ ३६ ॥ मात्रा ६ माया से १ तोला ।

ककुभादि चूर्ण ।

ककुभत्वग्भवा रास्ना बलानागवला-  
भया । शटीपुष्करमूलञ्च पिप्पली विश्व-  
भेपजम् ॥ ३७ ॥ सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य  
सर्पिषा शाणमात्रया । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय  
सर्वहृद्रोगशान्तये ॥ ३८ ॥

अजुन की छाल, यच, रास्ना, धरियारा,  
नागवला, हरद, कचूर, पुद्गकरमूल, पीपरि और  
सोंठ का चूर्ण बनाकर तीन-तीन मासे घृत के  
साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे । यह चूर्ण  
हर प्रकार के हृद्रोग को शान्त करता है ॥ ३७-३८ ॥

फलयाणसुन्दर रस ।

सिन्दूरमभ्रं तारश्चताम्रं हेमंचमाक्षिकम् ।  
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा मर्दयेद् वह्निवा-  
रिणा ॥ ३९ ॥ हस्तिशुण्ड्यम्भसा पश्चा-  
द्भावयित्वा च सप्तधा । गुडामात्रां वर्ति  
कृत्वा कोष्णतोयेन दापयेत् ॥ ४० ॥  
उरस्तोयश्च हृद्रोगं यत्तो वातपुरोऽस्रकम् ।  
पौष्फुसान् हन्ति रोगांश्च रसः कल्याण-  
सुन्दरः ॥ ४१ ॥

रगिमन्दूर, चमरभरम, चाँदी की भरम,  
ताम्रभरम, स्वर्णभरम और दिगुल मगमग  
देकर पीता के रस में एक बार और मग बार  
हाथीगुँदा के रस की भावना दे एक-एक रसी  
की गोली बनाये । थोड़े गरम जल के साथ सेवन  
करे । इस 'कल्याणसुन्दर रस' के सेवन से

उरस्तोय, हृद्रोग उरोवात और उरोरुधिर  
( वचःस्थल के रङ्गसंचय ) तथा फुफ्फुस सम्बन्धी  
रोग नष्ट होते हैं ॥ ३९-४१ ॥ मात्रा १ रसी ।

चिन्तामणि रस ।

पारदं गन्धकश्चाभ्रं लौहं वङ्गं शिला-  
जतु । समं समं गृहीत्वा च स्वर्णं सूताङ्घ्रि-  
सम्मितम् ॥ ४२ ॥ स्वर्णस्य द्विगुणं  
रौप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत् । चित्रकस्य द्रवे-  
णापि भृङ्गराजाम्भसा ततः ॥ ४३ ॥  
पार्थस्याथ कपायेण सप्तकृत्वो विभावयेत् ।  
ततो गुडामिताः कुर्याद्वटीशब्दायामशो-  
पिताः ॥ ४४ ॥ एकैकां दापयेदासां  
गोधूमकाथवारिणा । हृद्रोगान्निखिलान्  
हन्ति व्याधीन् फुफ्फुसजानपि ॥ ४५ ॥  
प्रमेहान् विशन्ति स्वासान् कासानपि  
सुदुस्तरान् । बलपुष्टिकरो हृद्यो रसरिच-  
न्तामणिः स्मृतः ॥ ४६ ॥

पार, गन्धक, चम्रक, लौह, वङ्ग और  
शिलाजीत एक एक तोला, स्वर्णभरम  
३ मासे, चाँदी की भरम धावा तोला एकत्र  
कर क्रमशः पीता के रस में, भाँगे के रस में  
और अजुन की छाल के साथ के में सात-सात  
भावना देकर एक-एक रसी की गोली बनाये ।  
प्रतिदिन एक एक गोली गेहूँ के साथ के साथ  
सेवन करे । इसका सेवन करने से हृद्रोग, फेफड़े  
के रोग, प्रमेह, स्वाम कास आदि शिथिल रोग  
शान्त होते हैं । बल वीर्य की वृद्धि होती है तथा  
हृदय के लिए लाभदायक दिनकारी है ॥ ४२-४६ ॥  
मात्रा १ रसी ।

प्रभाकरवटी ।

माक्षिकं लौहमभ्रश्च तुगाक्षीरीं शिला-  
जतु । क्षिप्त्वा खलोदरे पश्चाद्भावयेत्  
पार्थवारिणा ॥ ४७ ॥ गुडामितां कुर्याद्वटी  
शब्दायामशोपिताम् । प्रभाकरवटी सेयं  
हृद्रोगान्निखिलान् जयेत् ॥ ४८ ॥

स्वर्णमाचिक, लौह, अन्नक, वंशलोचन और शिलाजीत समभाग लेकर अर्जुन के काय की भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बना छाया में शुष्क कर ले। इस प्रभाकरवटी के सेवन से सब प्रकार के हृद्रोग आराम होते हैं ॥ ४७--४८ ॥ मात्रा १ वटी ।

विश्वेश्वर रस ।

स्वर्णाभ्रलौहवद्भानां रसगन्धकयोरपि ।  
चैक्रान्तस्य च संशुद्ध भार्गास्तोलकसम्भि-  
तान् ॥ ४६ ॥ पार्थस्य सलिलेनाथ भाव-  
यित्वा यथाविधि । रक्तिकैकप्रमाणेन  
विदध्याद्वटिकास्ततः ॥ ५० ॥ अयं विश्वे-  
श्वरो नाम रसः फुफ्फुसजान् गदान् ।  
हृद्रोगांश्च जयेत् सर्वान् संशयोऽत्र न  
विद्यते ॥ ५१ ॥

स्वर्णभस्म, अन्नकभस्म, लौहभस्म, वज्र-  
भस्म, पारद, शुद्ध गन्धक और चैक्रान्त एक-  
एक तोला एकत्र कर अर्जुन के काय की भावना  
दे एक-एक रत्ती की गोली बनावे। इसका सेवन  
करने से हृद्रोग और फेफड़े के समस्त रोग  
नष्ट होते हैं ॥ ४६--५१ ॥ मात्रा १-१ रत्ती ।

हृदयार्णवरस ।

सूतार्कगन्धकं काथे वराया मर्दयेद्दि-  
नम् । काकमाच्या वटीं कृत्वा गुज्जामानाञ्च  
भक्षयेत् ॥ हृदयार्णवनामायं हृद्रोगदलनो  
रसः ॥ ५२ ॥

पारा, ताम्र और शुद्ध गन्धक को क्रमशः  
त्रिकला के काय और मकोय के स्वरस में एक-  
एक दिन खरल करके एक-एक रत्ती की गोली  
बनावे। इसका सेवन करने से हृद्रोग शान्त  
होता है ॥ ५२ ॥ मात्रा १ रत्ती ।

शुद्धरवटी ।

रसस्य भागारचत्वारो बलेरष्टौ तथा  
भताः । त्रयो लौहस्य नागस्य द्वावित्येकत्र  
मर्दयेत् ॥ ५३ ॥ भावयेत् काकमाच्याश्च

चित्रकस्यार्द्रकस्य च । स्वरसेन जयन्त्याश्च  
वासाया विष्वपार्थयोः ॥ ५४ ॥ ततो  
गुज्जाद्वयमिता विदध्याद्वटिका भिपक् ।  
एकां दापयेदासामीपदुष्येन वारिणा ॥  
५५ ॥ जयेदियं फुफ्फुसजान् रोगान्  
हृदयसम्भवान् । जीर्णज्वरं तथा घोरं  
प्रमेहानपि विशत्तिम् ॥ ५६ ॥ कासश्वा-  
सामवातांश्च ग्रहणीमपि दुस्तराम् । वटी  
श्रीशङ्करमोक्ता बलपुष्टिविवर्द्धिनी ॥ ५७ ॥

पारा ४ भाग, शुद्ध गन्धक ८ भाग, लौह-  
भस्म ३ भाग और शीशा २ भाग एकत्र कर  
क्रमशः मकोय, चीता, अदरक, जयन्ती, अरुसा,  
विष्व और अर्जुन के स्वरस में भावना देकर  
दो-दो रत्ती की गोली बनावे। यह शिवजी की  
कही हुई शकरवटी गुनगुने जल के साथ सेवन  
करने से फेफड़े के रोग, हृद्रोग, जीर्णज्वर, प्रमेह,  
कास, स्वास, आमघात, ग्रहणी आदि विविध  
रोगों को दूर कर बल और पुष्टि को  
देती है ॥ ५३--५७ ॥ मात्रा १ वटी ।

त्रिनेत्ररस ।

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थष्टत्तत्वगम्बुना ।  
एकविंशतिधा धर्मं भावितानि विधानतः ॥  
५८ ॥ वटीं गुज्जामितां कृत्वा मधुना सह  
लेहयेत् । वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा  
त्रिदोषजम् ॥ कृमिजं चापि हृद्रोगं निह-  
न्त्येव न संशयः ॥ ५९ ॥

पारा, गन्धक, अन्नकभस्म इन्हें इकट्ठा कर  
बराबर मात्रा में मिला अर्जुन की छाल के काय  
से २१ बार भावना दे और १ रत्ती की गोली  
बनावे। बनूपान-शहद। इसके सेवन से यातक,  
पैत्तिक, श्लेष्मिक, त्रिदोषज तथा कृमिज हृद्रोग  
अपदा होता है। मात्रा १-२ रत्ती ॥ ५८--५९ ॥

नागाजुनाभ्र ।

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्गुनत्वचः ।  
सर्वैर्विमर्दितं सप्तदिनं सप्तै विशोपितम् ॥



६० ॥ छायाशुष्का वटी कार्या नाम्नेद-  
मर्जुनाह्वयम् । हृद्रोगं सर्वशूलाशो हृल्लास-  
च्छर्द्यरोचकम् ॥ ६१ ॥ अतीसारमग्नि-  
मान्द्यं रक्तापिचं क्षतक्षयम् । शोथोदराम्ल-  
पित्तञ्च विपमज्वरमेव च ॥ हन्त्यन्यानपि  
रोगांश्च बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥ ६२ ॥

सहस्रपुटी अभ्रकमस को अजुन के वायु से सात दिन भावना देकर १ रत्ती की गोली बनाकर छाया में सुखा ले । इसके सेवन से हृद्रोग, शूल, यवासीर, हृल्लास (जी मतलाना), बमन, अरुचि, अतिसार, मन्दाग्नि रक्तापिच, क्षतक्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त, विपमज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं । यह बलकारक, धीर्यवर्द्धक तथा रसायन है । मात्रा १-२ रत्ती ॥ ६०-६२ ॥

पञ्चाननरस ।

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेत् गोस्तनो-  
द्रवैः । यष्टित्वजूरसलिलैर्दिनञ्च परिमर्द-  
येत् । धात्रीचूर्णं सिताञ्चानुपिवेद् हृद्रोग-  
शान्तये ॥ ६३ ॥

पारा तथा गन्धक की कजली को चाँवला, दाख, मुलहठी, एजूर हरेक के वायु में १ दिन घोटकर गोली बनावे । मात्रा-२ रत्ती । अनुपान-चाँवले का चूर्ण तथा खोंद । इससे हृद्रोग शान्त होता है ॥ ६३ ॥

पार्थाघरिष्ट ।

पार्थत्वचस्तुलामेकां शूद्रीकाद्धतुलां  
तथा । भागं मधुपुष्पस्य पलविंशति-  
सम्मितम् ॥ ६४ ॥ चतुद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा  
द्रोणमेवावशेषयेत् । घातयथा विंशतिपलं  
शुद्धस्य च तुलां क्षिपेत् ॥ ६५ ॥ मासमात्रं  
स्थितो भास्वे भवेत् पार्थाघरिष्टकः । हन्-  
तुस्फुसगदान् सर्वान् हन्त्ययं बलवीर्य-  
कृत् ॥ ६६ ॥

अजुन की छाल २ सेर, मुनका २३ सेर, महुआ के फूल १ सेर एकत्र कर २१ सेर १६ तोला जल में पकावे । १२ सेर ६४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान ले । इस वायु में २ सेर गुड़ और १ सेर घाय के फूल का चूर्ण मिलाकर पात्र में बन्द कर एक मास तक रख छोड़े, पश्चात् छान ले । इसको पार्थाघरिष्ट कहते हैं । इसके सेवन से हृदय और फेफड़े के कुल रोग आराम होते हैं तथा बल वीर्य की वृद्धि होती है मात्रा १-२ रत्ती ॥ ६४-६६ ॥

हृद्रोग में पथ्य ।

शालिमुद्गा यवा मांसं जाङ्गलं  
मरिचान्वितम् । पटोलं कारवेल्लञ्च पथ्यं  
प्रोक्तं हृदामये ॥ ६७ ॥

शालि चायल, मूँग, जौ, मरिचयुक्त जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस, परबल तथा करेला ये हृद्रोग में पथ्य हैं ॥ ६७ ॥

अपथ्य ।

तैलाम्लतक्रुर्बन्धकपायश्रममातपम् ।  
रोषं स्त्रीनर्म चिन्तां वा भाष्यं हृद्रोगवांस्त्य-  
जेत् ॥ ६८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हृद्रोगाद्यधिकारः  
समाप्तः ।

तैल, खटाई, छाड़, भारी अन्न, कपाय द्रव्य, यकायट, धूप, क्रोध, स्त्री भोग, चिन्ता, अधिक योजना ये हृद्रोग में त्याग देने चाहिये ॥ ६८ ॥  
इति श्रीसरपुसगदान्निपाठिधरिचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां रत्नप्रभाभिषाया व्याख्यायां  
हृद्रोगाद्यधिकारः समाप्तः ।

## वायुरोगाधिकारः

सामान्यवायुरोगचिकित्सा ।

स्वाद्वस्त्रलवणैः स्निग्धैराहारैर्वाक-  
रोगिणः । अभ्यङ्गस्नेहवस्त्याद्यैः सर्वाने-  
वोपपादयेत् ॥ १ ॥

वातव्याधियुक्त रोगी की मधुर, खटा, नम-  
कीन और स्निग्ध आहार तथा तैलादि मर्दन,  
स्नेहपान और वस्तिप्रक्रिया आदि से चिकित्सा  
करनी चाहिये ॥ १ ॥

कोष्ठस्थवायुचिकित्सा ।

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षीरं पिबे-  
न्नरः ॥ २ ॥

कोष्ठस्थ वायु में दुग्धपान विशेष लाभदायक  
होता है ॥ २ ॥

आमाशयस्थ वायुचिकित्सा ।

आमाशयस्थे शुद्धस्य यथा रोगहरी  
क्रिया । आमाशयगते वाते ऋदिताय यथा-  
क्रमम् । रुक्षः स्वेदो लङ्घनञ्च कर्त्तव्यं  
वह्निदीपनम् ॥ ३ ॥

आमाशयगत वायु हो तो वमन और विरे-  
चन आदि के द्वारा शुद्ध करके रोगानुसार  
चिकित्सा करनी चाहिये । तथा रुक्ष, स्वेद, लङ्घन  
और अग्निवर्धक क्रिया करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पकाशयस्थवायुचिकित्सा ।

पकाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम् ।  
कार्यो वस्तिगते वापि विधिर्वस्तिविशो-  
धनः ॥ ४ ॥

पकाशयगत वायु हो तो स्नेह विरेचन विशेष  
लाभदायक है । यदि वस्तिगत वायु हो तो वस्ति  
की शुद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥

रसाद्रिगत वायुचिकित्सा ।

त्वङ्मांसासृक्शिराप्राम्ते कुर्यात्सासृग्नि-  
मोक्षणम् ।

त्वक्शान्देनात्र रस इति भातुः ।

स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च ।  
स्नायुसन्ध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विच-  
क्षणः ॥ ५ ॥

रस, मांस, रुधिर और शिरोगत वायु  
हो तो रक्तमोक्षण करना लाभदायक होता  
है । स्नायु, सन्धि और अस्थिगत वायु होने  
पर स्नेह, उपनाह, अग्निकर्म, बन्धन और मर्दन  
क्रिया श्रेष्ठ होती हैं ॥ ५ ॥

त्वग्गतवायुचिकित्सा ।

स्वेदाभ्यङ्गावगाहारंच हृद्यं चाक्षं  
त्वग्गाथिते ॥ ६ ॥

त्वक्गत वायु हो तो स्वेद, तैलादि मर्दन,  
स्नान और हृद्य अन्नभोजन लाभदायक होता  
है ॥ ६ ॥

रक्त, मांस, मेद और अस्थिगत  
वायुचिकित्सा ।

शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्त-  
मोक्षणम् । विरेको मांसमेदःस्थे निरूहाः  
शमनानि च । वाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थि-  
मज्जगतं जयेत् ॥ ७ ॥

रक्तगत वायु में शीतल प्रलेप, विरेचन और  
रक्तमोक्षण करे । मांस तथा मद्दोगत वायु में विरे-  
चन, निरूहवस्ति (पिचकारी देना) और वायुगम-  
नकारक औषधि देना लाभप्रद होता है । अस्थि-  
गत तथा मज्जाश्रित वायु में स्नेहपान और तैलादि  
मर्दन करना चाहिये ॥ ७ ॥

शुक्रगतवायुचिकित्सा ।

हृद्यान्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ।  
विवद्धमार्गं शुक्रं तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेच-  
नम् ॥ ८ ॥

शुक्रगत वायु हो तो हृद्य (गुमपुर), बलवर्द्धक  
और वीर्यवर्द्धक अन्नपान देना हितकर होता है ।  
यदि शुक्र का मार्ग विवद्ध हो गया हो तो विरे-  
चन करना चाहिये ॥ ८ ॥

गर्भशोषचिकित्सा ।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम् । सितामधुकारभयैर्हितपुत्र्यापने पयः ॥ ६ ॥

वायु के द्वारा गर्भ शुष्क हुआ हो अथवा वायु के द्वारा बच्चा कृश हुआ जाता हो तो मुलेठी, खम्भारि और शकर के साथ पकाया हुआ दुग्ध विशेष लाभदायक होता है ॥ ६ ॥

शिरोगतवायुचिकित्सा ।

शिरोगतेऽनिले वाऽथ शिरोरोगहरी क्रिया ॥ १० ॥

वायु शिरोगत हो तो वायुजन्य शिरोरोग की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

व्यादितास्य चिकित्सा ।

व्यादितास्ये हनुं स्विन्नामंगुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च । प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नम्य चिबुकोन्नमनं हितम् ॥ ११ ॥

व्यादितास्परोग ( जिसमें मुख खुला ही रह जाय ) में हनु गण्डादि प्रदेश में स्वेदन करके अंगुठे से दबाकर तर्जनी उँगलियों से चिबुक ( उट्टी ) को ऊपर घटाना लाभदायक होता है ॥ ११ ॥

अर्दितरोगचिकित्सा ।

रसोनकल्कं नवनीतमिश्रं खादेन्नरो योर्दितरोगयुक्तः । तस्यार्दितं नाशयतीह शीघ्रं घृन्दं घनानामिव मातरिश्वा ॥ १२ ॥

अर्दित रोग में जो रोगी भस्मन मिलाकर खट्वायु के कणक का सेवन करता है उसका अर्दितरोग वसी प्रकार नष्ट होता है, जैसे प्रयत्न वायु से मेघों का समूह नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

अर्दिते नवनीतेन खादेन्मापेष्टरी नरः । क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ॥ १३ ॥

अर्दितरोग में उर्द की पीठी के बड़े बनाकर भस्मन के साथ खाय अथवा दुग्ध या मांस रस के साथ भोजन करके दशमूल के काथ का सेवन करे तो अर्दितरोग आराम होता है ॥ १३ ॥

स्वेदाभ्यङ्गशिरोवस्तिपाननस्यपरायणः । अर्दितं स जयेत् सर्पिः पिवेदौत्तरभक्तकम् ॥ १४ ॥

स्वेद, तैलमर्दन, शिरोवस्ति, स्नेहपान, नस्य और भोजन के पश्चात् घृतपान करना अर्दित रोग में विशेष लाभदायक होता है ॥ १४ ॥

मन्यास्तम्भचिकित्सा ।

पञ्चमूलीकृतः काथो दशमूलीकृतोऽथवा । रुक्षः स्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते ॥ १५ ॥

मन्यास्तम्भ रोग में बृहत् पञ्चमूल अथवा दशमूल का काथ तथा रुक्ष, स्वेद और नस्य विशेष लाभप्रद होता है ॥ १५ ॥

ग्रीवास्तम्भचिकित्सा ।

कटुतैलेनाभ्यङ्गे लिप्ते कल्केन वाजिगन्धायाः । शाम्येद् ग्रीवास्तम्भं शूलं महदप्यनायासम् ॥ १६ ॥

कड़वा तेल मलने तथा असगन्ध की जड़ को पीसकर लेप करने से ग्रीवास्तम्भ और शूल नष्ट होता है ।

वातघमनीदोषचिकित्सा ।

वाताद्वाग्धमनीदुष्टौ स्नेहगण्डूपधारणम् ॥ १७ ॥

वायु के द्वारा यदि स्पर्धाहिनी घमनी दूषित हो गई हो तो घृत और तैलादि का गण्डूप धारण करना चाहिए ॥ १७ ॥

कुम्भजतु चिकित्सा ।

वातघ्नैर्दशमूल्या च नवं कुम्भमुपाचरेत् स्नेहैर्मांसरसैर्वापि मष्टदं तं चिबर्जयेत् ॥ १८ ॥

वायु के द्वारा मनुष्य कुबड़ा हो जाय तो वातनाशक औषध, दशमूल काय, स्नेहपान और मांसरस आदि से चिकित्सा करनी चाहिये । यदि कुबड़ापन प्राचीन हो तो उसको त्याग देना चाहिये ॥ १८ ॥

आध्मान चिकित्सा ।

आध्माने लंघनं पाणितापश्च फल-  
वर्चयः दीपनं पाचनञ्चैव वस्तिश्चाप्यत्र  
शोधनः ॥ १९ ॥

अध्मान में लंघन, हाथ गरम करके उसके द्वारा स्वेदन, फलवर्ति<sup>१</sup>, दीपन और पाचन औषध प्रदान तथा शोधनवस्ति क्रिया की व्यवस्था करनी चाहिये ॥ १९ ॥

प्रत्यष्टीलाष्टीलिक चिकित्सा ।

प्रत्यष्टीलाष्टीलिकयोरन्तर्विद्विधिगुल्म-  
घत् ॥ २० ॥

अष्टीला और प्रत्यष्टीला रोग में अन्त-  
र्विद्विध और गुल्म के समान चिकित्सा करनी  
चाहिए ॥ २० ॥

गृध्रसीचिकित्सा ।

तैलमेरुद्वजं वापि गोमूत्रेण पिबे-  
न्नरः । मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहा-  
पहः ॥ २१ ॥

२ तोला गोमूत्र के साथ २ तोला एरुद्व के  
तेल को एक महीना पीने से गृध्रसी और ऊरुद्व  
रोग नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

शेफालिकादलकाथो मृद्वग्निपरिसा-  
धितः । दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्र-  
रेत् ॥ २२ ॥

धीमी आँच से पकाये हुए, ४ तोला सँभालू  
की पत्तियों के साथ को पीने से गृध्रसी रोग  
तत्काल धाराम होता है ॥ २२ ॥

१—वायु अनुलोमन के लिए लवणभिध्रत  
पूत-तैलादि से भिगोई हुई कपड़े की बत्ती गुदा  
में दी जाती है ।

पिष्ट्वैरुदफलं क्षीरे सविश्वं वा ख्वोः  
फलम् प्रायशो भक्षितः सिद्धो गृध्रसी-  
कटिशूलनुत् ॥ २३ ॥

केवल एरुद के फल २ तोला को दूध में  
पीसकर सेवन करने से अथवा समान भाग सोंठ  
और एरुद के फल को दूध के साथ सेवन करने  
से गृध्रसी और कमर की पीड़ा नष्ट होती  
है ॥ २३ ॥

वातकण्टकचिकित्सा ।

रक्तावसेचनं कार्यमभीक्षणं वात-  
कण्टके । पिबेदेरुदतैलं वा दहेत् सूची-  
भिरेव वा ॥ २४ ॥

वातकण्टक रोग में बार-बार पाददेश में  
रुधिर निकालना (क्रन्द खोलना), गरम सलाई  
से दागना अथवा एरुद के तैल का पान करना  
चाहिए ॥ २४ ॥

खल्लीचिकित्सा ।

खल्ल्यां स्निग्धाम्ललवणैः स्वेदोन्म-  
दोपनाहनम् ॥ २५ ॥

खल्ली रोग में स्निग्ध, अम्ल और लवण  
द्रव्य के द्वारा स्वेद, मर्दन तथा बन्धन करना  
चाहिए ॥ २५ ॥

क्रोष्टुशीर्षं चिकित्सा ।

गुग्गुलं क्रोष्टुशीर्षं तु गुडूचीत्रिफला-  
म्भसा । क्षीरेणैरुदतैलं वा पिबेद्वा वृद्ध-  
दारकम् ॥ २६ ॥

क्रोष्टुशीर्ष में गिलोय तथा त्रिफला के ४ तोला  
काय से गुग्गुल १ माशा दूध के साथ अथवा  
के तैल अथवा दूध एवं गरम जल के साथ  
विधारा का सेवन कराना हितकारक है ॥ २६ ॥

वायुनाशक लेप ।

कौलं कुलत्याः सुरदाहरास्नामापा-  
तसीतैलफलानि कुष्ठम् । वचारातादायव-  
चूर्णमम्लमुष्णानि वातामयिनांप्रदेहः २७ ॥  
वेर की मीमी, कुलपी, देवदारु, रातना, उदं,

अलसी का तैल, त्रिफला कूट, बच, सोया और जौ के आटे को काँजी में पीसकर गरम करके लेप करने से वातरोग की शान्ति होती है ॥ २७ ॥

तैलकाञ्जिकद्रोणी ।

पक्षाघातं कटिहनुशिरःकर्णनासात्ति-  
तालुग्रीवाग्रन्थिप्रबलमनिलं सार्दितं साप-  
तानम् । मूत्राघातं ग्रहण्णगलरुक्श्वास-  
सर्वाङ्गकम्पं तैलद्रोणी हरति न चिरात्  
काञ्जिकद्रोणिका च ॥ २८ ॥

किसी टब या नाँद में एक ड्रॉण ( १२ सेर ६४ तोला ) तिलतैल अथवा काँजी भरकर उसमें बैठकर स्नान करने से पक्षाघात, कटि, हनु, मस्तक, कर्ण, नासिका, चक्षु, तालु, ग्रीवा और ग्रन्थिस्थित प्रबल वायु, अर्दित, अपतानक, मूत्राघात, ग्रहणी, गलरोग, श्वास और सर्वाङ्ग-कम्परोग शीघ्र निवृत्त होते हैं ॥ २८ ॥

भापबलादिपाचन ।

मापबलाशुकशिम्वीकतृणरास्नास्व-  
गन्धोखकाणाम् । काथो नस्यनिपीतो  
रोमठलवणान्वितः कोप्यः ॥ २९ ॥  
अपहरति पक्षाघातं मन्यास्तम्भं सर्कणना-  
दरुजम् । दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति  
चावश्यम् ॥ ३० ॥

उदद, परेटी की जड़, कौंच के बीज, गन्धगुण्ड, रास्ना, घसगन्ध, अयसी की जड़; इनके ४ तोला काथ में हींग तथा सेंधा नमक २।२ रत्ती डालकर भासिका द्वारा पीने से पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, कर्णनाद तथा अर्दितरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ( आजकल इसे मुल द्वारा ही देते हैं ) २९-३० ॥

मापात्मगुप्तकैरएटं शृतं घाट्यालकं  
पिपेत् । हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातनिवा-  
रणम् ॥ ३१ ॥

उदद, कौंच के बीज, अयसी की जड़ तथा

बला की जड़; इनके ४ तोला काथ में हींग तथा सेंधानमक २।२ रत्ती डालकर पीने से पक्षाघात नष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥

शाल्वण स्वेद ।

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वांम्लद्रव्य-  
सयुतः सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेह-  
समन्वितः ॥ ३२ ॥ सुखोप्यः स्पष्टलवणः  
शाल्वणः परिकीर्तितः । तेनोपनाहं कुर्वीत  
सर्वदा वातरोगिण्याम् ॥ ३३ ॥ वातघ्नो  
भद्रदावादिः काकोल्यादिस्तु सौश्रुतः ।  
मांसेनात्रौपधंतुल्यं यावताम्लेन चाम्लता ॥  
३४ ॥ पट्टी स्यात् स्वेदनार्थश्च काञ्जि-  
काद्यम्लमिष्यते । तावन्तश्च चतुःस्नेहाः  
स्निग्धत्वं च यथा भवेत् ॥ ३५ ॥

उपनाहः कोप्यो बहुलो लेपः ॥

शुश्रुतसंहिता में वर्णित काकोल्यादिगण तथा वातघ्न भद्रदावादिगण, आनूप मांस, काँजी, सुरा आदि अम्लद्रव्य, चारों स्नेह ( घृत, तैल, यसा, मज्जा ) लवणवर्ग सबको मिलाकर गर्म करके किंचित् गुणगुना उपनाह करना चाहिये । इस स्वेद में चक्रपाणि के अनुसार काकोल्यादिगण तथा भद्रदावादि दोनों गणों की औषधों के घनन के बराबर आनूप मांस लेना चाहिये । अम्लस्नेह, लवण पदार्थ अनुमान से ही डालने चाहिये, जिससे अधिक न हों । घृष्ट के अनुसार काकोल्यादि, भद्रदावादि तथा आनूप मांस, तीनों की आवश्यकता होने से समान भाग में ग्रहण करना चाहिये ॥३२-३५॥

स्वल्परास्नादि फाय ।

रास्नाविश्वविट्द्रानि रूकत्रिफला  
तथा । दशमूलपृथक् रयामा काथो वाता-  
मयापहः ॥ ३६ ॥ अर्दिते च शिरःशूले  
ज्वरेऽपस्मार एव च । मनोभ्रंशे च विविधे  
कथितश्च शुभमदम् ॥ ३७ ॥

रास्ना, सोंठ, वायविडङ्ग, अरडी की जड़, त्रिफला, दशमूल, काली शारिवा; इनका काथ अर्दित आदि वातरोगों को नष्ट करता है। यह शिरःशूल, ज्वर, अपस्मार, उन्माद आदि में भी हितकारक है मात्रा—४ तोला ॥३६-३७ ॥

पलमर्द्धपलञ्चैव रसोनस्य सुकुट्टितम् ।  
हिंगुमीरकसिन्धूत्थसौवर्चलकटुत्रिकैः ३=॥  
चूर्णितैर्मापकोन्भानैरवचूर्ण्य विलोडि-  
तम् । यथाग्निमत्तितं प्रातरुक्ताथानुपान-  
नतः ॥ ३६ ॥ दिने दिने प्रयोक्तव्यं मास-  
मेकं निरन्तरम् । वातरोगं निहन्त्याशु  
अर्दितं सापतन्त्रकम् ॥ ४० ॥ एकाङ्ग-  
रोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे । ऊरु-  
स्तम्भे च गृध्रस्यां कृमिदोषे विशेषतः ॥  
कटिपृष्ठामयं हन्यादुदरञ्च विनाशयेत् ४१ ॥

धुः तोले लहसुन को पीसकर उसमें होंग, जीरा, लाहरी नमक, काला नमक, सोंठ, मिरच और पीपरि का चूर्ण एक-एक माशा मिलाकर रख ले। अग्नि के अनुसार उचित मात्रा में प्रतिदिन प्रातःकाल इस चूर्ण को खाकर अरडी के मूल के काथ का एक मास तक सेवन करे तो अर्दित, अपतन्त्रक, एकांगवात, सर्वांगवात, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, कटिशूल, पृष्ठशूल, कृमिदोष, उदररोग आदि वातरोग नष्ट होते हैं। मात्रा—२ माशे ॥ ३८-४१ ॥

फट्वादिचातनाशकयोग ।

तैलं घृतञ्चार्द्रकमातुलुङ्ग्या रसं सचुक्रं  
सगुडं पिवेद्वा । कट्यूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूल-  
गृध्रस्युदावर्चहरः प्रयोगः ॥ ४२ ॥

तिलतैल, घृत, अदरक के रस और थिजीरा नीचू के रस का घृष्ट या गुड के साथ सेवन करे तो कटि, ऊरु, पीठ और त्रिक की पीड़ा गुल्म, शूल, गृध्रसी और उदायतं रोग नष्ट होते हैं ॥ ४२ ॥

पञ्चमूलीवलासिद्धं क्षीरं वातामये  
हितम् ॥ ४३ ॥

वातरोग में बृहत्पञ्चमूल और खरेंटी के साथ सिद्ध किया दुग्ध लाभदायक होता है ४३ ॥

त्रयोदशाङ्गगुग्गुलु ।

आभाश्रवगन्धा हनुपा गुडूची शता-  
वरी गोक्षुरदृद्धदारकम् । रास्ना शताह्वा  
सशटी यमानी सनागरा चेति समैश्च  
चूर्णम् ॥ ४४ ॥ तुल्यं भवेत् कौशिकमत्र-  
मध्ये देयं तथा सर्पिरथार्द्रभागम् । कोलाद्ध-  
मात्रं तु ततः प्रयोगात् कृत्वानुपानं सुर-  
याथ यूषैः ॥ ४५ ॥ मघेन वा कोष्ण-  
जलेन वाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि ।  
कटिग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुनि  
पादयुग्मे ॥ ४६ ॥ सन्धिस्थिते चास्थिगते  
च वाते मज्जाश्रिते स्नायुगते च कुष्ठे ।  
रोगान् जयेद्वातकफानुविद्वान् वातेरितान्  
हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ ४७ ॥ भग्नास्थि-  
विद्वेषु च खञ्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति  
सन्तः ॥ ४८ ॥

गुग्गुलोरर्द्रभागं घृतम् । दृद्धवैद्यास्तु  
यावता घृतेन गुग्गुलुपिट्टनं भवति ताव-  
देव घृतं गृह्णन्ति ।

यपूल की छाल, अरसगन्ध, हाऊयेर, गिलोय, शतावरी, गोखरू, थिघारा, रास्ना, सीफ, कपूर, अजवाइन और सोंठ का चूर्ण एक-एक तोला गुग्गुलु १२ तोला और घृत १ तोला एकत्र कर घोटकर रख ले। मदिरा, घूप, गरम जल, दूध अथवा मांसरस आदि के यथोचित अनुपान-से फरर की पीड़ा, बाहु, पृष्ठ, जाँघ, पाँव, जोड़, अस्थि, मज्जा और स्नायुगत पापु, हनुग्रह, हृद्ग्रह, कुष्ठ, योनिदोष, अरिचर्मग, खंजवाल, घात-कफरोग आदि शान्त होते हैं। मात्रा ३-४ माशा ।

घी गुग्गुलु से आधा लेना चाहिए । वृद्ध  
वैद्यगण जितने घृत में गुग्गुलु घोटा जाय,  
उतना ही घृत लेते हैं ॥ ४४-४८ ॥

तैलमूर्च्छा विधि ।

आदौ तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्द-  
मन्दानलैस्तत्, पक्वं निष्फेनभावं गतमिह  
हि यदा शैत्यभावं तदैतत् । मञ्जिष्ठा  
रात्रिलोध्रैर्जलधरनलुकैः सामलैः, साक्ष-  
पथ्यैः, सूचीपुष्पांघ्रिनीरैरूपहिनमथितैर्गन्ध-  
योगं जहाति ॥ ४९ ॥ तैलस्येन्दुकलांशि-  
कैस्तु विकपाभागा हि मूर्च्छाविधौ, ये  
चान्ये त्रिफलापयोदरजनीहीवेरलोधा-  
न्विताः । सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्त-  
स्याश्च पादांशिका, दुर्गन्धं विजहात्यतीव  
सुरभिं कुर्वन्ति धर्णारुणम् ॥ ५० ॥

पहले ४ सेर तिब्ली के तैल को एक लोहे  
को कड़ाई में ढालकर मन्दी-मन्दी अग्नि से  
पकावे । पकाते-पकाते जब तैल झाग से रहित हो  
जाय तब ग्राम आदि के पत्तों से उसकी परीचा  
करे, अर्थात् उस तैल में ग्राम के एक नरम  
पत्ते को डाले । यदि वह पत्ता ढालने के साथ  
ही तल जाय और तोड़ने पर सहज में गुर  
जाय तो समझना चाहिये कि यह तैल मूर्च्छा  
पाक के योग्य हो गया है । अब तैल को अग्नि  
पर से उतारकर ठंडा होने दे । किञ्चित् ठंडा  
होने पर २ तोला हल्दी को पीसकर जल के  
साथ घोलकर ढाल दे । तत्पश्चात् मजीठ २० तोला  
एवं लोध, मोथा, नालुका, आंबला, बहेवा,  
हरद, केवडा, यद की डाढ़ी, गन्धयाला, हरएक  
२ तोला, सबको कूटकर १६ सेर जल में मिला-  
कर तैल में ढाल दे और मन्द-मन्द अग्नि पर  
पकाये । थोड़ा सा जल धाकी रहते-रहते उतार  
दे । इस प्रकार मूर्च्छापाक करने से दुर्गन्ध नष्ट  
होकर तैल सुगन्धित और लाल रंग का हो  
जाता है ॥ ४९-५० ॥

वातहर तैलों की विशेषमूर्च्छा विधि ।  
आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकवि-  
ल्वयोः । गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्च-  
पल्लवम् । पञ्चपल्लवतोयेन गन्धानां  
चालनं मतम् ॥ ५१ ॥

ग्राम, जामुन, कैथा, विजौरा नींबू और  
बेल की पत्तियों को पञ्चपल्लव कहते हैं ।  
इस पञ्चपल्लव से गन्धद्रव्यों का शोधन  
करना चाहिए । इसको चौगुने जल में पकावे,  
चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान  
ले । इस काथ के साथ तैल को पकाने से  
उसकी गन्ध दूर हो जाती है ॥ ५१ ॥

गन्धद्रव्यों का कथन

एलाचन्दनकुङ्कुमागुरुमुरा ककोल-  
मांसी शटी, श्रीवासच्छद्ग्रन्थिपर्णशश-  
भृत् क्षौणीधृजोशीरकम् । कस्तूरीनख-  
पूतितैलजलमुङ्गमेथीलवङ्गादिकं गन्धद्र-  
व्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु ५२

इलायची, श्वेत चन्दन, कुङ्कुम, अगर, मुरा,  
कंकोल, जटामांसी, कचूर, सरल काष्ठ, गठिवन,  
कपूर, शिलारस, ( छरीला ), खस, कस्तूरी,  
नखी, पूति ( गंधमाजोरअयड ), नागरमोथा,  
मेथी और लींग आदि गन्धद्रव्य हैं । विष्णुतैल  
आदि सब तैलों में ये ढाले जाते हैं ॥ ५२ ॥

तन्प्रान्तरं में ।

कुपुश्च नलिका पूतिरुशीरं श्वेतचन्द-  
नम् । जटामांसी तेजपत्रं नखी मृगमदः  
फलम् ॥ ५३ ॥ ककोलं कुङ्कुमं चोचं  
लताकस्तूरिका वचा । सूक्ष्मैलागुरुमुस्तश्च  
कपूरं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ ५४ ॥ श्रीवासा  
कुन्दुरुद्वैवकुसुमं गन्धमातृका । सिंलुको  
मिपिका मेथी भद्रमुस्तं तथा शटी ॥ ५५ ॥

१—पूति से बंगाल के कथिरान पट्टामी गन्धमा-  
जोरअयड का ग्रहण करते हैं ।

जातीकोपं शैलजञ्च देवदारु सजीरकम् ।  
एतानि गन्धद्रव्याणि तैलपाकेषु यु-  
क्तितः ॥ ५६ ॥

कूट, नाडीशाक, पूर्ति ( गधमाजार्थयड ),  
खस, श्वेतचन्दन, जटामांघी, तेजपात,  
नखी, कस्तूरी, जायफल, कंकोल, केसर, दाल-  
चीनी, लता कस्तूरी ( वेदमुरक ), दुधवच, छोटी  
हलायची, अगार, नागरमोथा, कपूर गडिवन,  
राल ( सरल वृच ), विरोजा ( कुंदुरु ), लौंग,  
गन्धमातृका, शिलारस, सोया, मेथी, भद्र-  
मोथा, कचूर, जात्रित्री, शैलज, देवदारु और  
जीरा ये गन्धद्रव्य कहे जाते हैं । यथा नियम  
तैलों में इनका प्रयोग होता है ॥ २३-२६ ॥

स्वल्पविष्णुतैल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी वला च बहु-  
पुत्रिका । एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः  
पूतिकस्य च ॥ ५७ ॥ गवेषुकस्य  
मूलानि तथा सहचरस्य च । एतेषां पलि-  
कैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५८ ॥  
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गु-  
णम् । अस्य तैलस्य पकस्य शृणु वीर्यमतः  
परम् ॥ ५९ ॥ अश्वानां वातभग्नानां  
कुञ्जराणां तथैव च । अपुमांश्च नरः  
पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥ ६० ॥  
हृच्छूले पार्श्वशूले च तथैवार्धावभेदके ।  
कामलापाण्डुरोगेषु शर्करास्वमरीषु च  
॥ ६१ ॥ क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जरया  
जर्जरकृतः । येषाञ्चैन क्षयो व्याधिरन्त्र-  
वृद्धिश्च टारुणा ॥ ६२ ॥ अर्दितं गल-  
गण्डश्च वातशोणितमेव च । स्त्रियो या  
न प्रमूयन्ते तासाञ्चैव प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥  
गर्भमखतरी विन्याच च मृत्युपशं व्रजेत् ।

एतत्तैलवरञ्चैव विष्णुना परिकीर्त्ति-  
तम् ॥ ६४ ॥

तिलतैल १२८ तोला, गाय या बकरी का दूध  
६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये सरिवन, पिठ-  
वन, खरेटी, शतावरि, एरण्डमूल, बढी कटेरी  
का मूल, बजे का मूल, नागयला का मूल  
और पियावासा का मूल ये सब चार-चार तोले,  
तैल, दुग्ध और कल्क एकत्र कर यथाविधि तैल  
सिद्ध करना चाहिए । इस तैल के पान से नपुं-  
सक मनुष्य पुरुषत्व प्राप्त करता है । यह  
वातपीडित हाथी, घोड़ों के लिए भी हितकर है ।  
मर्दन से इन्द्रियदौर्बल्य, अर्दित, गलगण्ड, वक्ष-  
स्थल की पीडा, पार्श्वशूल, अन्त्रवृद्धि, रति-  
शक्तिहीनता, अधकपारी, ( आधे माथे में दर्द )  
वातरक्त, कामला, पीलिया, सिकतामेह और पथरी  
आदि अनेक रोग अच्छे होते हैं । शरीर में  
बलवीर्य की वृद्धि होती है । जिस गर्भिणी स्त्री  
को प्रसवकाल में अतिकष्टहोता हो, उसे भी देना  
चाहिए । इस तैल का सेवन करने से रक्षत्री  
भी गर्भ धारण करती है और मरती नहीं,  
तो फिर बन्व्या स्त्री का कहना ही क्या ।  
इस सर्वोत्तम तैल का उपदेश विष्णु ने किया था,  
अतः इसको विष्णुतैल कहते हैं ॥ २७-६४ ॥

मध्यम विष्णुतैल ।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शशी  
वला । एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः  
पूतिकस्य च ॥ ६५ ॥ गवेषुकस्य मूलानि  
तथा सहचरस्य च । एषां द्विपलिकान्  
भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ६६ ॥  
पाटशेषे च सूते च गर्भञ्चैनं समानपेत् ।  
पुनर्नया वचा दारु शताहा चन्दनागुरु  
॥ ६७ ॥ शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी  
स्थिरा वला । अशनादा सन्धनं रास्ना  
पलाद्दानि च पेपयेत् ॥ ६८ ॥ गव्या-  
जपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वापत्र प्रदापयेत् ।



शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ६६  
 अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः  
 परम् । अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां  
 तथा नृणाम् ॥ ७० ॥ तैलमेतत् प्रयो-  
 क्त्वा सर्ववातविकारञ्च अपुमांश्च नरः  
 पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥ ७१ ॥  
 गर्भमश्वतरी विन्धात् किं पुनर्मानुषी  
 तथा । हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च तथैवा-  
 र्द्धावभेदकम् ॥ ७२ ॥ अपचीं गण्ड-  
 मालाञ्च वातरक्तं गलग्रहम् । कामलां  
 पाण्डुरोगञ्च अश्वरीञ्च विनाशयेत् ॥ ७३ ॥  
 तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम् ।  
 विष्णुतैलमिदं ख्यातं वातान्तकरणं शु-  
 भम् ॥ ७४ ॥

तिलतैल १२८ तोला, काथ के लिये शतावरी,  
 शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कचूर, खरेटी, एरंड का  
 मूल, छोटी कटेरी का मूल, बड़ी कटेरी का  
 मूल, कजे का मूल, नागबला का मूल और  
 अद्से की जड़, प्रत्येक आठ-आठ तोले, जल  
 २४ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला, कक  
 के लिये पुनर्वा, वच, देवदारु, सौंफ, रक्तचन्दन,  
 अंगर शैलज (धुरीला), तगर, फूट, इला-  
 यची, जटामांसी, शालपर्णी, खरेटी की जड़,  
 असगन्ध, सेंधा नमक और रास्ना ये दो-दो  
 तोले, गाय का दूध ३ सेर १६ तोला, बकरी वा  
 दूध ३ सेर १६ तोला, शतावरी वा रस १२८  
 तोला, तैल, काथ, कक और दुग्ध इन पूर्वोक्त  
 सब द्रव्यों को एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध  
 करे । इसका गुण पूर्वोक्त स्वरूप विष्णुतैल के  
 समान ही है । इसमें उसकी अपेक्षा अपची,  
 गण्डमाला और गलग्रह को नाश करने की विशेष  
 शक्ति है ॥ ६२-७४ ॥

शृद्धिशृणुतैल ।

अश्वगन्धा जलधरा जीर्णमर्कटौ  
 शटी । काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती ।

मधुयष्टिका ॥ ७५ ॥ देवदारुं मधुरिका  
 पञ्चकाष्ठञ्च शैलजम् । मांसी चैला त्वचं  
 कुष्ठं वचा चन्दनकुङ्कुमम् ॥ ७६ ॥  
 मञ्जिष्ठा मृगनाभिश्च श्वेतचन्दनरेणुकम् ।  
 पर्णिनी कुन्दुखोटिश्च ग्रन्थिकञ्च नखी  
 तथा ॥ ७७ ॥ एतेषां पलिकैर्भागेस्तैल-  
 स्यापि तथाढकम् । शतावरीरससमं दुग्ध-  
 चापि समं पचेत् ॥ ७८ ॥ विष्णुतैलमिदं  
 श्रेष्ठं सर्ववातविकारनुत् । ऊर्ध्ववातं तथा  
 वातमङ्गुलिग्रहमेव च ॥ ७९ ॥ शिरो-  
 मध्यगतं वातं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् ।  
 हन्ति नानाविधं वातं सन्धिमज्जागतं  
 तथा ॥ ८० ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गति-  
 र्यस्य च विह्वला । ये वातप्रभवा रोगा ये  
 च पित्तसमुद्भवाः । सर्वास्तान् नाशयत्याशु  
 सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ८१ ॥

कक के लिये नागरमोथा, असगन्ध, जीवक,  
 अश्वक, कचूर, काकोली, क्षीरकाकोली,  
 जीवन्ती, मुलेठी, सौंफ, देवदारु, पद्मार, शैलज  
 (धुरीला), जटामांसी, इलायची, दालचीनी,  
 कूट, वच, रक्तचन्दन, केसर, मजीठ, कस्तूरी,  
 श्वेतचन्दन, सेंधा के बीज, शालपर्णी, पृष्ठ-  
 पर्णी, गंधपिरोजा, गठियन, ६ सेर ३२ तोला  
 और नखी चार-चार तोले । तिलतैल ६ सेर  
 ३२ तोला, शतावरी का रस ६ सेर ३२ तोला,  
 दुग्ध ६ सेर ३२ तोला, जल २४ सेर ४८ तोला,  
 एकत्र कर यथाविधि पाक का तैल सिद्ध करे । इस  
 तैल का मर्दन करने से ऊर्ध्ववात, अष्टगुलिग्रह,  
 शिरवृद्ध, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, सन्धिगत वायु,  
 मज्जागत वायु तथा एकाङ्गशोथ, बंपपायु और  
 पातपिपज रोग टपती प्रकार नष्ट होने दी  
 जित प्रकार सूयं द्वारा बंधवार नष्ट होता  
 है ॥ ७२-८१ ॥

मध्यम नाशयन्तैल ।

विल्वाग्निमन्थरयोनारुपाटलापारिभ-

द्रकम् । प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्ट-  
कारिका ॥ ८२ ॥ बला चातिबला चैव  
श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा । एषां दशपलान् भागां-  
श्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ८३ ॥ पादशेषं  
परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् । शतपुष्पा  
देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ८४ ॥  
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्णाचतुष्टयम् ।  
रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् ८५  
एषां द्विपलिकान् भागान् पेपयित्वा विनि-  
क्षिपेत् । शतावरीसञ्चैव तैलतुल्यं प्रदा-  
पयेत् ॥ ८६ ॥ आजं वा यदि वा गव्यं  
क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् । पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे  
भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥ ८७ ॥ अश्वो वा  
वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः ।  
पङ्गुश्च पीठसर्पी च तैलेनानेनसिध्यति ८८  
अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च  
ये । मन्थास्तम्भे हनुस्तम्भे दन्तरोगे गल-  
ग्रहे ॥ ८९ ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य  
च विद्वला । क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्रा  
ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ॥ ९० ॥ बधिरा  
लल्लजिह्वाश्च मन्दमेधस एव च । अल्प-  
प्रजा च या नारी या च गर्भेन विन्दति ९१  
वातार्त्तां वृषणीं येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ।  
एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं  
स्मृतम् ॥ ९२ ॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, कायार्थ वेल  
की जड़, अग्निमग्ध (अरणी), श्योनाक,  
पादल, नीम की छाल, गन्धप्रसारणी, अस्तगन्ध,  
पद्मी पटेरी, पटेरी, सरेटी, कंधी, गोखरु और  
राँडी चालीस-चालीस तोले, पादार्थ जल २  
मन २२ सेर ३२ तोला, बरछार्थ तीक, देवदारु,  
जटाभांसी, घरीला, घघ, रत्नचंदन, तगर, कूट,  
पोरी इलायची, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुत्रपर्णी।

मापपर्णी, रास्ना, घसगंध, सेंधा नोन और  
पुनर्नवा ये आठ-आठ तोले, शतावरि का रस  
६ सेर ३२ तोला, बकरी या गाय का दूध  
२५ सेर ४८ तोला, इन सब वस्तुओं को एकत्र  
कर यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल का  
पान करने से यस्तिम्भं और मर्दन करने से  
वातभग्न हाथी, घोड़े एवं मनुष्यों के वातरोग  
नष्ट होते हैं । तथा पङ्गुता पीठ के बल चलना,  
अधोवात, शिरोरोग, मन्थास्तम्भ, हनुस्तम्भ,  
दन्तरोग, गलग्रह, एकाङ्गशोष, कम्पनयुक्त गति,  
इन्द्रियदौर्बल्य, शुक्र की क्षीणता, ज्वर के कारण  
क्षीणता और बधिरापन, तोतलापन आदि चनेक  
रोग नष्ट होते हैं । जिस स्त्री के अल्प सन्तान  
हो, गर्भ गिर जाया करता हो उसके लिये यह  
तैल लाभदायक है । वातजन्य अष्टवृद्धि और  
दारुण अन्त्रवृद्धि के लिये भी हितकर है । इस  
श्रेष्ठ तैल का नाम मध्यम नारायण है ॥ ८२-९२ ॥

महानारायणतैल ।

विल्वाश्वगन्धा बृहती श्वदंष्ट्रा श्यो-  
नाकवाट्यालकपारिभद्रम् । क्षुद्राकटिफ्ला-  
तिबलान्निमन्थं मूलानि चैषां सरणीयुता-  
नाम् ॥ ९३ ॥ मूलं विदध्यादथ पाटलीनां  
प्रस्थं सपादं विधिनोद्धतानाम् । द्रोणैरपा-  
मष्टमिरेव पत्रस्था पादावशेषेण रसेन  
तेन ॥ ९४ ॥ तैलाढकाभ्यां सममेव दुग्ध-  
माजं निदध्यादथवापि गव्यम् । एकत्र  
सम्यग्विपचेत् सुवृद्धिर्दद्याद्रसं चैव शता-  
वरीणाम् ॥ ९५ ॥ तैलेन तुल्यं पुनरेव  
तत्र राशनाश्वगन्धामिपिदारुकुष्ठम् । पर्णा-  
चतुष्कागुरुकेशराणि सिन्धुत्वमांसीरजनी-  
द्रयं च ॥ ९६ ॥ शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि  
एलाग्रयष्टीतगरान्दपत्रम् । मृद्गाष्टमर्गान्गु-  
वचा पलाशं स्थौण्यवृष्टचीरकचौरकास्य-  
म् ॥ ९७ ॥ एतैः समस्तैर्द्विपलमार्ग-  
रालोड्य सर्गं विधिना विपरुम् । कपर्-

काश्मीरमृगाण्डजानां चूर्णाकृतानां त्रिपल-  
प्रमाणम् ॥ ६८ ॥ प्रस्वेददौर्गन्ध्यानिवा-  
रणाय दद्यात् सुगन्धाय वदन्ति केचित् ।  
नारायणं नाम महच्च तैलं सर्वप्रकारैर्विधि-  
वत्प्रयोज्यम् ॥ ६९ ॥ आश्वेव पुंसां पव-  
नादितानामेकाद्गहीनादितवेपनानाम् । ये  
पद्भवः पीठविसर्पिणश्च वाधिर्धशुक्रक्षय-  
पीडितारचा ॥ १०० ॥ मन्याहनुस्तम्भशिरोरु-  
जार्त्ता मुक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः । संसेव्य  
तैलं सहसा भवन्ति बन्ध्या हि नारी लभते  
च पुत्रम् ॥ १०१ ॥ वीरोपमं सर्वगुणो-  
पपन्नं सुमेधसं श्रीविनयान्वितं च । शाखा-  
श्रिते कोष्ठगते च वाते दृष्टौ विधेयं पवना-  
दितानाम् ॥ १०२ ॥ जिह्वानिले दन्तगते  
च शूले उन्मादकौञ्जज्वरकशितानाम् ।  
प्राप्नोति लक्ष्मीं प्रमदाभियत्वं वपुः प्रकर्षं  
विजयं च नित्यम् ॥ १०३ ॥ तैलोपसेवी  
जरयाभिमुक्नोजीवेच्चिरञ्चापिभवेत् युवेव ।  
देवासुर युद्धापरे समीक्ष्य स्नात्यवस्थिभङ्गान-  
सुरैः सुरांश्च ॥ १०४ ॥ नारायणेनापि  
सुबृंहणार्थं स्वनामतैलं विहितं च  
तेषाम् ॥ १०५ ॥

विल्व, अस्तगन्ध, बड़ी कटेरी, गोवरु, रयो-  
नाक, बरिधारा, फरहरी की छाल, कटेरी, पुन-  
नंवा, बघी, घरणी और गन्धप्रसारणी का  
मूल तथा पादल का मूल एक-एक सेर लेकर २  
मन ४ सेर ६४ तोला पानी में पकावे । चतुर्धांश  
शेष रहने पर छानकर रख ले । उस ढाघ  
में १२ सेर ६४ तोला तैल और १२ सेर  
६४ तोला बकरी या गाय का दूध मिलावे ।  
फिर रातना, अस्तगन्ध, गींफ, देवदार, बूट,  
छालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, घगर,  
भाग्येश्वर, तेषा नामक, जटाभांगी, हलदी, दाह-  
इलदी, शैलज, इरिडि, रज चन्दन, पुडुकरमूल

इलायची, मजीठ, मुलेठी, तगर, नागरमोथा,  
तेजपात, भांगरा, जीवक, कृपणक, ञाकोली,  
चौरञाकोली, ऋदि, वृदि, मेदा महामेदा,  
सुगन्धवाला, बच, टाँक की जड़, गठिवन, सफेद  
साँठी और चोरक, (भटेउर), ये घाठ-घाठ  
तौले लेकर कटक बनाकर मिला दे । बाद में  
विधि अनुसार पाक करे । पाक मिद्ध होने  
पर छानकर पश्चात् बारह तोले कपूर, केसर  
और कस्तूरी का, चूर्ण, मिलाकर सुगन्धित करे ।  
किसी के मत में कपूरदि का चूर्ण पत्तीना  
के दुर्गन्ध को दूर करने के लिये और किसी  
के मत में तैल को सुगन्धित करने के लिये  
मिलाया जाता है । यह तैल भी पूर्वोक्त तैल  
के समान विविध रोगों को दूर करता है ।  
पहले देवासुरसग्राम में असुरों द्वारा स्नायु-  
अस्थिभंगवाले देवताओं को देखकर उनकी पुष्टि  
के लिये नारायणजी ने यह अपने नाम का तैल  
बनाया है ॥ ६३-१०५ ॥

। चन्दनाद्य तैल ।

चन्दनाम्यु नखं वाप्ययष्टीशैलेयपत्र-  
कम् । मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्चैला पूति-  
केशरम् ॥ १०६ ॥ परं तैलं मुरामांसी  
ककोलं वनिताम्युदम् । हरिद्रे शारिदे  
तिक्का लवङ्गागुरुकुडुकुमम् ॥ १०७ ॥  
त्वग्रेशु नालुका चैभिस्तैलं मस्तुचतुर्गुणम्  
लात्तारससमं सिद्धं ग्रहन्नं बलवर्णकृत् ॥  
१०८ ॥ आयुःपुष्टिकरञ्जैव वशीकरण-  
मुत्तमम् । अस्माराज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मी-  
विनाशनम् ॥ १०९ ॥

तिल का तेल १२८ तोला, दही या पानी  
६ सेर ३२ तोला, लार का ढाघ १२८ तोला,  
कटक के लिये लालचन्दन, गन्धवाला, मगी,  
पूट, मुलदही, शैलज (भूरिदरीला), पद्माक्ष,  
मजीठ, सरलकाष्ठ, देवदार, कपूर, इलायची,  
गदाशी (गंधमांजर), नागकेसर, सेमसात,  
शिलाराम, मुरामांसी, शीतलधीनी, त्रिभंज,

मोथा, हलदी, दारहलदी, अनन्तमूल, काली सारिवा, कटुकी, लींग, अमर, बेसर, दारचीनी, सेंभालू के बीज, नालुका, सब मिलाकर ३२ तोला । इस तेल को पकाकर मालिश करने से मह अफमार, ज्वार, उन्माद, कृत्वा तथा वातव्याधियाँ अच्छी होती हैं । यह बलकारक, वर्ण को सुन्दर करनेवाला, आयु की वृद्धि करनेवाला, शरीर को पुष्ट करनेवाला एवं वशीकरण है ॥ १०६--१०३ ॥

### सिद्धार्थक तैल ।

शतावरीं तु निष्पीड्य रसं प्रस्थद्वयं हरेत् । तिलतैलं पचेत् प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ११० ॥ शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वला । चन्दनं तगरं कुष्ठ-मेला चांशुमती तथा ॥ १११ ॥ रास्ना तुरगगन्धा च समङ्गा सारिवाद्वयम् । पृष्णिपर्णी वचा चैव तथा गन्धर्वहस्तकम् ॥ ११२ ॥ सिन्धुद्रवं समं दद्याद् विरभोपजमेव च । एभिस्तैलं पचेद्धीमान् दत्त्वाद्र्रकरसं समम् ॥ ११३ ॥ कुञ्जाश्च वामना ये च पङ्गुपादारच ये नरः । महावातेन ये रुग्णा अद्भसङ्कुचिताश्च ये ॥ ११४ ॥ तेषां हितमिदं तैलं सन्धिवाते च शस्यते । येषां शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्येषां च विह्वला ॥ ११५ ॥ क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः । अमधसश्च धिधिरास्तेषामपि परं हितम् ॥ ११६ ॥ मासमेकं पिबेद्यस्तु यौवनस्थः पुनर्भवेत् । सिद्धार्थकगिति ख्यातं नरनारीहिताय वै ॥ ११७ ॥

तिलतैल १२८ तोला, शतावरी का रस, ३ सेर १६ तोला, दुग्ध ६ सेर ३२ तोला, चन्दरस का रस १२८ तोला, कर्काशं सीक, देर-

दार, जयामांसी, घुरीला, खरेटी, रक्तचन्दन, तगर, कुट, इलायची, शालपर्णी, रास्ना, असगन्ध, लज्जावन्ती ( छुईमुई ), काली सारिवा, सकेद सारिवा, पृष्ठपर्णी, वच, एरण्डमूल, सेंधव नमक और सोंठ एक सेर तैलादि कल्कपर्यन्त सब वस्तुओं को एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध करें । इस तैल से कुबडापन, धामता, पंगुता, एकाङ्गशोष, महावातरोग, अंगसिकुहन, कम्प-वात, इन्द्रियक्षीणता, नष्टवीर्यता, वृद्धावस्था की शिथिलता, बुद्धिहीनता, धिधिरता और सन्धि-वात आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं । यदि इस तैल को वृद्ध मनुष्य एक मास तक निरंतर उचित मात्रा से पिये, तो पुनः युवावस्था को प्राप्त हो । यह सिद्धार्थक तैल स्त्री-पुरष दोनों के लिये हितकारी है ११०--११७ ॥

### हिमसार तैल ।

शतावरीरसप्रस्थे विदार्याः स्वरसे तथा । कूप्माण्डकरमप्रस्थे धात्र्याश्च स्वरसे तथा ॥ ११८ ॥ शाल्मल्याः स्वरसप्रस्थे तथा गोनुरकस्य च । नारिकेलरसप्रस्थे तिलतैलस्थ प्रस्थतः ॥ ११९ ॥ कदल्याः स्वरसप्रस्थे क्षीरप्रस्थचतुष्टये । अस्थौपधस्य कल्कस्य प्रत्येकं कर्पसम्मितम् ॥ १२० ॥ चन्दनं तगरं वाप्यं मञ्जिष्ठा सरलागुरु । मांसी मुरा च शैलेयं यष्टी दारु नखी शिवा ॥ १२१ ॥ पूतिका पीतिका पत्रं कुन्दरुर्नलिका तथा । वरी लोधुं तथा मुस्तं त्रमेला पत्रकेशरम् ॥ १२२ ॥ लवङ्गं जातिकोपञ्च तथा मधुरिका गठी । चन्दनं ग्रन्थिपर्णं च कर्पूरं लाभतः क्षिपेत् ॥ १२३ ॥ अस्य तैलस्य सिद्धस्य मृगु वीर्यमतः परम् । उच्चैः प्रपततो वायोर्गजतो वाजिनस्तथा ॥ १२४ ॥ उप्रतो लोष्ठ-पाताश्च पङ्गूनां पोटसपिण्णाम् । एकाङ्ग-

शोषिणां चैव तथा सर्वाङ्गशोषिणाम् ॥

१२५ ॥ क्षतानां क्षीणशुक्राणामत्यन्त-  
क्षयरोगिणाम् । हनुमन्याहतानां च दुर्ब-  
लानां तथैव च ॥ १२६ ॥ शोषिणां  
ललजिह्वानां तथा मिन्मिनभाषिणाम् ।  
अत्यन्तदाहयुक्तानां क्षीणानां वातरोगि-  
णाम् ॥ १२७ एतत्तैलं परं श्रेष्ठं विष्णुना  
परिकीर्तितम् । हिमसागरमाख्यातं सर्व-  
वातविकारनुत् ॥ १२८ ॥ ये वातप्रभवा  
रोगा ये चपित्तसमुद्भवाः । शिरोमध्यगतं  
ये च शाखामाश्रित्य ये स्थिताः । ते सर्वे

प्रशमं यान्ति तैलस्यास्य प्रसादतः १२९  
शतावरि का रस १२८ तोला, विदारीकंद  
का रस १२८ तोला, सेमर के मूल का स्वरस  
१२८ तोला, गोखरू का रस १२८ तोला,  
नारियल का पानी १२८ तोला, तिलतैल १२८  
तोला, केला के मूल का रस १२८ तोला, दूध  
६ सेर ३२ तोला और निम्नलिखित औषधियों  
का कलक एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध करे ।  
कल्कद्रव्य—रक्तचन्दन, तगर, कूट, मजीठ, सरल-  
काष्ठ, अग्रर, जटामांसी, सुरामांसी, छरीला,  
मुजेठी, देवदारु, मखरी, हरीतकी, करज, हलदी,  
तेजपात, कुन्दरू, नाट्टीशाक, शतावरि, लोधा  
नागरमोधा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नाग-  
केंसर, लौंग, जाधत्री, सौंफ, कचूर, लाल  
चन्दन, गटिवन और कपूर ये प्रत्येक एक-एक  
तोला । इस तैल में गन्धद्रव्य जितने मिल सकें  
डाल देने चाहिये । वायुरोग के लिये यह तैल  
उत्तम वस्तु है । इस तैल का मर्दन करने से  
ऊँचे स्थान और हाथी, घोडा आदि ऊँची सवारी  
से गिरने की पीड़ा, पंगुला, पीठ से चलना,  
अद्रशोप, दौर्बल्य, शुक्रक्षय, क्षयरोगी, हनु और  
मन्या (हनुस्तम्भ और मन्धास्तम्भ), तोतलापन,  
मिनमिना कर बोलना, गात्रदाह और अन्धान्य  
अनेक प्रकार के रोग शान्त होते हैं । यह घातज,  
पित्तज, शिरोमध्यगत एवं शाखागत वातरोगों  
को शान्त करता है ॥ ११८-१२९ ॥

वायुच्छायासुरेन्द्र तैल ।

वाय्यालकं पलशतं तत्समं दशमूल-  
कम् । जलपोडशिकेपक्त्वा पादशेषं समुद्भ-  
रेत् ॥ १३० ॥ एतत्काथे पचेत्तैलं द्वात्रिं-  
शत्पलमेव च । कल्कार्थं दीयते तत्र  
मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ १३१ ॥ कुष्ठमेला  
देवदारु शैलजं सैन्धवं वचा । कंकोलं पद्म-  
काष्ठश्च शृङ्गी तगरपादिका ॥ १३२ ॥  
गुडूची मुद्गपर्णी च मापपर्णी शतावरी ।  
नागजिह्वा श्यामलता शतपुष्पा पुनर्नवा ॥  
१३३ ॥ एषां तोलद्वयं भागं दत्त्वा तैलं  
तु पाचयेत् । एत्तैलवरं नाम्ना वायुच्छाया-  
सुरेन्द्रकम् ॥ १३४ ॥ सर्ववातविकारेषु  
हितं पुंसां च योपिताम् । क्षीणशुक्रार्च-  
वानां च नारीणां च विशेषतः ॥ १३५ ॥  
चेतोविकारं हन्त्याशु वायुमाक्षेपसम्भवम् ।  
मर्मवातं श्रमकृतं गात्रकम्पादिकं तथा ॥  
१३६ ॥ हिकां श्वासं च कासं च वात-  
पित्तसमुद्भवम् । अप्समारे महोन्मादे हितं  
लोपे च भक्षणे । श्रीमद्ब्रह्मनाथेन रचितं  
विश्वसम्पदे ॥ १३७ ॥

जलपोडशिके तैलात् पोडशगुणे जले  
इत्यर्थः ।

खरेटी की जड़ और दशमूल पाँच-पाँच  
सेर लेकर दो मन जल में काथ बनाये ।  
चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान ले ।  
इस काथ में ६ सेर १६ तोला तैल और  
निम्नलिखित औषधों का कलक मिलाकर तैल  
सिद्ध करे । कल्कार्थ— मजीठ, लाल चन्दन, कूट,  
इलायची, देवदारु, छरीला, सेंधा नमक, यच,  
कंकोल, पद्मरूल, काकदास्तिनी, तगर गिलोय,  
मुद्गपर्णी, मापपर्णी, शतावरि, अन्नन्तमूल, काली

सारिषा, सौंफ और पुनर्नवा दो-दो तोला ले । चीणशुक्र पुरषों और क्षीणार्तव स्त्रियों के लिये तथा घातविकारों में पान एवं मर्दन से यह तैल विशेष हितकारी है । तथा शुक्रविकार, अपस्मार, उन्माद, आचेप, वायु और भ्रमवात, गात्रकम्प, वात-पित्तज हिचकी, स्वास और कास आदि अनेक प्रकार के रोगों को शान्त करता है । यह संसार के हित के लिए श्रीगहननाथ ने बनाया है ॥ १३०--१३७ ॥

लघु विपगर्भ तैल ।

धत्तूरस्य रसस्य पञ्चकुडवंतैलंतथाकाञ्जिकम् । प्रस्थानां च चतुष्टयं गदवचा त्रिंशत्परं शाणकाः ॥ १३८ ॥ वृद्धात्रीमरिचात्पृथङ्गन्वविपात् पट्स्वर्णवीजात् पटोः । स्युः सप्ताधिकविंशतिः परिमितं तीव्रानिलध्वंसनम् ॥ १३९ ॥ पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम् । पृष्टत्रिकशिरःकम्पं सर्वांगग्रहणं तथा ॥ १४० ॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, धतूरे का रस ७० तोला, काजी ६ सेर ३२ तोला, करक के लिये कूट, बच, हरएक ७ ॥ तोला, भृङ्गश्रीवला, वालीमिर्च, अलग-अलग २७ माशा, यच्छुनाग १ तोला, धतूरे के बीज तथा सेंधा नमक हरएक ६ तोले ६ माशा । यह तैल तीव्र घातरोगों को नष्ट करता है । इसकी मालिश से पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, पृष्टकम्प, त्रिकम्प, शिरःकम्प, सर्वांगग्रह आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १३८--१४० ॥

महाविपगर्भ तैल

कनकस्य च निर्गुण्ठी तुम्बिनी च पुनर्नवा । वातारिश्वगन्धा च प्रपुञ्जादं सचित्रकम् ॥ १४१ ॥ साज्जनं काकमाची कलिकारी च निम्बकम् । महानिम्बेश्वरी चैव दशमूलं शतावरी ॥ १४२ ॥ कारवल्ली सारिषा च श्रावण्णी

च विदारिका । वज्राकौ मेपमृद्धी च करवीरद्वयं वचा ॥ १४३ ॥ काकजङ्घा त्वपामार्गो यला चातिवलाद्वयम् । व्याघ्री महावला वासा सोमवल्ली प्रसारिणी ॥ १४४ ॥ पलोन्मितानि चैतानि द्रोणे-ऽम्भसि विनिक्षिपेत् । पचेत्पादावशेषे-ऽस्मिन् कल्कस्य कुडवं क्षिपेत् ॥ १४५ ॥ त्रिकटुं विपतिन्दुं च रास्ना कुष्ठं विपं घनम् । देवदारुर्वत्सनाभो द्वौ चारौ लवणानि च ॥ १४६ ॥ तुत्थकं कट्फलं पाठा भार्गी च नवसादरम् । त्रायन्ती धन्वयासं च जीरकं चेन्द्रवारुणम् ॥ १४७ ॥ तैलप्रस्थं समादाय पाचयेन्मृदुवह्निना । विपगर्भमिदं नाम्ना सर्वान् वातान् व्यपोहति ॥ १४८ ॥ वत्तोस्कटिजङ्घानां सन्धानं श्रेष्ठमेव च । गृध्रसीं च महावातान् सर्वाङ्गग्रहणं तथा ॥ १४९ ॥ दण्डापतानकं चैव कर्णनादं च शून्यताम् । वनमध्ये यथा सिंहात्पलायन्ते महागृगाः ॥ १५० ॥ तथाश्वगजभग्नानां वराणां च चतुष्पदाम् । नाशयेन्नात्र सन्देहो विपगर्भस्य लेपनात् ॥ १५१ ॥

तिल का तैल १२८ तोला, काय के लिये धतूरा, सेंभालू, कड़वी तुमरी, सांठी वीं जड़, अस्वगन्ध, पेंवाड़ के बीज, चित्रक, सहिजना, भक्रीय, कलिकारी, नीम, महानिम्ब ( यकायन ), ईश्वरी ( रत्नजटा अथवा शिवलिंगी ), दशमूल, शतावरी, बरेली, अन्नन्तमूल, गुण्डी, विदारिका, मूहर वीं जड़, काक की जड़, मेदांगी, दोनों कनेर, काकजङ्घा, अपामार्ग, यला, अतिवला, नागवला, दांटी कटेरी, महावला, अदसा, सोमवल्ली ( गिलोय ), प्रसारिणी हरएक ४ तोला, जड़ २५ सेर ४८ तोला, यथा हुजा काय ६ सेर ३२ तोला, बरक

के लिये त्रिकुटा, कुचता, रास्ना, कूठ, मोथा, देवदार, वल्ङ्गनाग, जगारार, सजीपार, पाँचों नमक, नीला तूतिया, काषफल, पाठा, भारंगी, नौसादर, त्रायमाण, धमासा, जीरा, इन्द्रायण की जड़ मिलाकर १६ तोला, विधिपूर्वक मन्द अग्नि पर पकावे । यह तैल सब वातविकारों को नष्ट करता है । छाती, जकू, कमर, जंघा की सन्धि-भंग में यह सन्धियों को जोड़ने-वाला है । गृध्रनी, महानात, सर्पान्नाग्रह, ट्यङ्गपतानक, कर्णनाद, कर्णशून्यता आदि रोग इस तैल के प्रयोग से नष्ट होते हैं । जिस प्रकार जङ्गल में सिंह को देखकर हिरन आदि पशु भाग जाते हैं उसी प्रकार इस तैल की मालिश से घोड़े, हाथी, मनुष्य तथा चौपायों के वातजन्य रोग, सन्धिभंग आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ १४१-१५१ ॥

### शतावरी तैल ।

रुद्रारुद्रविडीप्रियङ्गुतगरस्त्वक्पत्रकौन्तीनखैः मांसीसर्जरसाभ्युचन्दनवचाशैलेयलामज्जकैः ॥ १५२ ॥ मञ्जिष्ठा सरलागुर्बद्धपत्रला रास्नाश्वगन्धा वरी वर्षाभूमिसिसिन्धुभिश्च सकलैरेभिः पचेत्कल्कितैः ॥ १५३ ॥ तुल्यं गोपयसा वरीरससमं तैलं विपक्वं मृदु स्याद्वातघ्नमिदं नृणामिति वरी तैलं भिपक् पृजितम् ॥ १५४ ॥

तिल का तेल ४ सेर, शतावरी का रस ४ सेर, गौ का दूध ४ सेर, कल्क के लिये कूट, देवदारु, छोटी इलायची, प्रियङ्गु तगर, दारचीनी, तेजपात, सेंभालू के बीज, नखी, जटामांसी, रात, गंधमाला, चन्दन, बच, छार-छबीला, उशीरभेद, मजीठ, चीठ की लकड़ी, थगर, नागवला, रास्ना, श्वसगन्ध, शतावरी, सोंठी, सौंफ, सेंधा नमक मिलाकर १ सेर, इसे विधिपूर्वक मन्दी अग्नि पर पकावे । घीों द्वारा माना हुआ यह तेल वात को नष्ट करता है ॥ १५२-१५४ ॥

### महायला तैल ।

बलामूलकपायस्य दशमूलीकृतस्य च । यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसस्तथा । अष्टावष्टौशुभाभागास्तैलादेकस्तदेकतः । पचेदवाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ १५५ ॥ तथागुरुः सर्जरसं सरलं देवदारु च । मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमैलां कालानुशारिवाम् ॥ १५६ ॥ मांसी शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् । शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १५७ ॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णं राजते गृहमयेऽपि च । प्रक्षिप्य कलशे सम्यगात्मगुप्ते निधापयेत् ॥ १५८ ॥ यलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् । यथावलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ १५९ ॥ या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् । क्षीणनाते मर्महतेऽभिहते मर्दितेऽथवा ॥ १६० ॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत् । सर्वानान्नेपकादींश्च वातव्याधीन् व्यपरोहति ॥ १६१ ॥ हिकां कासमधीमन्थं गुल्मं श्वासं सुदारुणम् । पणमासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ॥ १६२ ॥ प्रत्यगधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः । एतद्धि राज्ञा कर्चन्यं राजमात्राश्च ये नराः ॥ १६३ ॥ सुखिनः सुकुमाराश्च बलिनश्चैव ये नराः ॥ १६४ ॥

तिलतैल २ सेर, परेटी का काष १६ सेर, दशमूल का काष १६ सेर तथा इन्द्रजी, बेर की गींगी और कुलथी का काष १६ सेर, दूध १६ सेर, बल्कार्य—जीवक, अष्टभक्, मेदा, महामेदा, फाकोली, खीरकाकोली, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, जीवन्ती, मुञ्जेटी, सेंधा नमक, थगर,

राल, चीठ की लकड़ी, देवदार, मजीठ, चन्दन, कूट, इलायची, पीला चन्दन, जटामासी, धुरीला, तेजपात, तगर, सारिया, बच, शतावरी, असगन्ध, सौंफ और पुनर्नवा, इन सब द्रव्यों को एक सेर एकत्र कर यथाविधि तैलपाक करके सोने, चाँदी या काँच लिये हुए मिट्टी के पात्र में भरकर सुरक्षित रखे । यह महाबलातैल सब प्रकार के वात-घिकार, हिचकी, खाँसी, अधिमन्थ, गुल्म, श्वास आदि रोगों को नष्ट करता है वल के अनुसार उचित नागा में प्रसूता ( जूधा ) को, गर्भधारण करने की इच्छावाली स्त्री और नष्टवीर्य पुरुष को सेवन करना चाहिए । चीणवात, जिसके मर्म में चोट लगी हो, चोट राखे हुए, हड्डी कुचल गई हो, हड्डी टूट गई हो, थकन अधिक हो गई हो तो भी हितकर है । यदि छ मास निरन्तर सेवन किया जाय तो अन्तर्बुद्धि रफ जाती है । इस तैल के सेवन से शीण धातुवाला पुरुष स्थिर यौवन-पाला हो जाता है यह तैल राजा, राजा के समान ( सगुपत्र ) सुखी और सुसुमार मनुष्यों के सेवन करने योग्य है ॥ १२४ - १६४ ॥

पुष्पराजप्रसारणी तैल ।

प्रसारणीपलशतं मूलश्रैयाश्वगन्ध-जम् । पञ्चाशत्पलमानं तु जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १६५ ॥ पादशेषे हरेत् काथं फाथांशं तिलतैलकम् । तैलाचतुर्गुणं क्षीरं गव्यं वामाहिर्यंतथा ॥ १६६ ॥ पुण्डरीकरसस्तत्रशतावर्या रसस्तथा । तैलसप्तप्रदातव्यः पाचयेन् मृदुवह्निना ॥ १६७ ॥ शतपुष्पा कणा चैला कुष्ठश्च कण्टारिका । शुण्ठी यष्टी देवदारुः शालपर्णी पुनर्नवा ॥ १६८ ॥ मञ्जिष्ठा पत्रकं रास्ना वचा पुष्करमूलकम् । यमानी मूतिकं मांसी निगुण्ठी च तथा चला ॥ १३६ ॥ यद्विर्गोत्रकञ्चन मृणालं पशुपुत्रिका । पतिरर्पमिदं योग्यं सर्वमेत्र पाचयेत् ॥

१७० ॥ तैलशेषं सगुद्धृत्य पुष्पराजप्रसारणीम् । ग्रभ्यङ्गे योजयेत् पाने नस्यकर्मणि सर्वदा ॥ १७१ ॥ भग्नानां खड्गपद्मनां शिरोरोगे हनुग्रहे । समस्तान् वातजान् रोगान् तूर्णनाशयति ध्रुवम् ॥ १६२ ॥

तिलतैल ८ सेर, पाथार्थ गन्धसारणी ३०० तोले असगन्ध २०० तोले, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला, गौ या भैंस का दूध २५ सेर ४८ तोला, कमन और शतावरी का रस ६ सेर ३२ तोला, कर्क के लिये सौंफ, पीपरी, इलायची, कूट, कटेरी, सोंठ, मुजेठा, देवदार, शाकपर्णी, पुनर्नवा, मजीठ, तेजपात, रास्ना, बच, पुष्करमूल अजनाइन, गन्धगुण, जटामांसी, सैभाल, खरैटी, चीता, गोतरु, मृणाल और शतावरी, ये सब एक एक तोला ले यथाविधि तैल सिद्ध करे । यह पुष्प राजप्रसारणी तैल पाग, मर्दन तथा नश्य में उपयुक्त होता है । अरिध-भंग, राज एवं पशुधों के लिए हितकर है । शिरोरोग तथा हनुग्रह आदि सब प्रकार के वायुरोगों को तरुण नष्ट करता है ॥ १६५, १७२ ॥

महापुष्पद्रुमांसतैला ।

मापस्यार्द्धाढकं देयं दशमूल्यास्तुला-र्द्धकम् । चलामूलश्च तस्यार्द्धं वेतकीनां तर्बव च ॥ १७३ ॥ दक्षमांसपलत्रिंशत् भिक्षिटता पश्चमिगतिः । जलद्रोणद्वये पत्रत्या पादशेषेऽन्यतारिने ॥ १७४ ॥ तिलतैलस्य च प्रक्ष्यं पयो दद्यात् चतुर्गुणम् । जीवनीयानि यान्यर्था मञ्जिष्ठा च्यपकटफलम् ॥ १७५ ॥ व्याधिराम्ना कणामूलं मधुकं पुष्करं तथा । मापात्मगुप्ते सैरएदा जतादा लज्जत्रयम् ॥ १७६ ॥ कृष्णादगन्धा यमता यमानीन्द्ररी नदी । नागरं मागधीं पुष्पं कर्पां रजनी-द्रवम् ॥ १७७ ॥ जनाररी मृत्न्यां च



एतैरक्षसमन्वितैः । पक्षाघातेषु सर्वेषु  
 अर्दिते च हनुग्रहे ॥ १७८ ॥ मन्दश्रुतौ  
 चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे । हस्तकम्पे  
 शिरःकम्पे गात्रकम्पे शिरोग्रहे ॥ १७९ ॥  
 शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपवाहुके  
 वाधिर्ये कर्णनादे च सर्वघातविकारानुत् ॥  
 १८० ॥ दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे  
 विशेषतः । हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात्  
 सूतिकातङ्गनाशनम् ॥ १८१ ॥ त्वच्यं  
 मांसप्रदञ्चैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम् । अण्ड-  
 दृढचन्द्रवृद्धिं वा वातरक्तञ्च नाश-  
 येत् ॥ १८२ ॥

तिलतैल १२८ तोला, फाथार्य उर्द १२८  
 तोला, दशमूल अर्धतुला (२०० तांले), खरेटी  
 की जड़ १०० तोले, केतकी की जड़ १००  
 तोले भुगां का भांस १२० तोले, कटसरैया  
 १०० तोले, पाकार्यं जत्र १ मज ११ सेर  
 १६ तोला, शेष १२ सेर ६४ तोला, दूध ६ सेर  
 ३२ तोला, कलक के लिये जीवक दि अष्टवर्ग,  
 मजीठ, चन्द, फायकल, कूट, रास्ना, पिपरामूल,  
 मुलेठी, पुहकरमूल, उर्द, कोंच के बीज, एरण्ड-  
 मूल, सौंफ, बिडनमक, सेंधव, काला नमक,  
 पीपरि, असगन्ध, गिलोय, अजवाइन, इन्द्रजौ,  
 नरकचूर, सौंठ, पीपल नागरमोया, खाठी,  
 हॉनों इष्टी, शतावरि और कटेरी, ये सब एक-  
 एक तोला का कलक डालकर विधिपूर्वक तैल  
 सिद्ध करना चाहिये । इस तैल का मर्दन करने  
 से पक्षाघात, अर्दित, हनुग्रह, श्रवणशक्ति की  
 न्यूनता ( कम सुनना ), कम देण पटना, हाथ  
 का काँपना, शिर का काँपना, बदन का काँपना,  
 शिरोग्रह, कलायखञ्ज, गृध्रसी, अपवाहुक,  
 वाधिरता, कर्णनाद, दण्डापतानक, मन्यास्तम्भ,  
 हनुस्तम्भ तथा सूतिका रोग, अण्डदृष्टि, अन्त्र-  
 वृद्धि और वातरक्त आदि सब रोग नष्ट होते  
 हैं । यह ध्वचा के लिए हितकर, मांसप्रद तथा  
 शुक्र, अग्नि और बल का वर्धक है १७३-१८२

नकुलतैल ।

मधुकं जीरकं रास्ना सैन्धवं शतपु-  
 प्पिका । यमानी मरिचं कुष्ठं विडङ्गं  
 गजपिप्पली ॥ १८३ ॥ सौवर्चलञ्चाज-  
 मोदा बला पङ्गुग्रन्थिका तथा । ग्रन्थिकं  
 शैलजं मांसी कर्पावेपां पृथक् पृथक् ॥  
 १८४ ॥ विनीय पाचयेत् तैलं प्रस्थं  
 रुनुकसम्भवम् । प्रस्थे नकुलमांसस्य काथे  
 च दशमूलजे ॥ १८५ ॥ प्रस्थे च  
 काञ्जिकस्यापि मस्तुप्रस्थे तथैव च । सिद्धं  
 तैलमिदं हन्ति कम्पवातं सुदारुणम् ॥  
 १८६ ॥ हस्तकम्पं शिरःकम्प वाहुकम्पञ्च  
 नाशयेत् । अमवातं सशूलञ्च सर्वोपद्रव-  
 संयुतम् ॥ १८७ ॥ पानोभ्यञ्जनवस्ती-  
 मिर्नाशयेन्नात्र संशयः । आढ्यघातं कटी-  
 पृष्ठजानुजङ्घाश्रितं तथा ॥ १८८ ॥ सन्धि-  
 स्थं वातमारवेव जयेन्नकुलसंज्ञकम् । हारी-  
 तभाषितमिदं तैलं हितचिकीर्षया ॥  
 १८९ ॥ वैद्यानां सारभूतानां शतेनापि  
 समुज्जिभूतम् । वातव्याधिं निहन्त्याशु  
 कम्पवातं विशेषतः ॥ १९० ॥ अशीति  
 वातजान् रोगान् नाशयेदाशु देहि-  
 नाम् ॥ १९१ ॥

नकुलमास १२८ तोला, जल ६ सेर ३२  
 तोला, शेष १२८ तोला, दशमूल १२८ तोला,  
 जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२३  
 तोला कांजी १२८ तोला, दही का  
 तोड़ १२८ तोला, एरण्डतैल १२८ तोला,  
 कलकार्यं मुलेठी, जीरा, रास्ना, सेंधवनमक,  
 सौंफ, अजवाइन, मिर्च, कूट, धायपिङ्ग,  
 गजपीपरि, कालानमक, अजमोद, खरेटी, वच,  
 पिपरामूल, क्षरीला और जटामासी, ये सब दो-  
 द्दी तोले । इन सब वस्तुओं द्वारा तैल सिद्ध

करे । इस तैल का पान, मर्दन और वस्तिक्रिया में उपयोग होता है । यह तैल कम्पवात, हस्त-कम्पन, शिरःकम्प, बाहुकम्प, शूलयुक्त आमवात, सन्धिवात, आह्ववात, कम्प, पीठ और जंघ-स्थित वायु, और सैकड़ों पैरों से असाध्य कहे हुए रोगियों के भी अस्सी प्रकार वातरोगों को यह नकुलतैल नष्ट करता है । यह हारीत ऋषि का कहा हुआ है ॥ १८३-१८१ ॥

मापतैल ।

मापातसीयवकुरुएटककएटकारीगोक-  
एट्टुएटुकजटाकपिकच्छुतोयैः । कार्पा-  
सकास्थिशणवीजकुलत्थकोलकाथेन वस्त-  
पिशितस्य रसेन चापि ॥ १८२ ॥  
शुण्व्या समागधिकया शतपुष्पया च  
सैरएडमूलसपुनर्नवया सरण्या । रास्ना-  
वलागुतलताकटुकैर्विपकं मापाख्यमेत-  
दपवाहुहरश्च तैलम् ॥ १८३ ॥ अर्द्धाद्विशो-  
पमपतानकमाढ्ययातमाक्षेपकं सभुजकम्प-  
शिरः शकम्पम् । नस्येन वस्तिविधिना  
परिपेचनेन हन्यात् कटीजघनजानुरुजः  
समीरात् १८४ ॥

तिल तैल २ सेर, घाथार्थ उर्दं, अलसी, जौ, कुड़ा कटेरी, गोखरू, श्योनाक, जटामांसी, कौंच के बीज १६-१६ तोले, पाकार्थ जल ३२ सेर शेष ८ सेर । कपास के बीज, सन के बीज, कुरथी और जैर की मींगी ३२ तोले, पाकार्थ जल ३२ सेर शेष ८ सेर । छाग के मांस का रस ४ सेर, जन ३२ सेर शेष ८ सेर । कलार्थ सोंठ, पीपरि, सौंफ, परएडमूल, पुनर्नवा, गन्धप्रसारिणी, रास्ना, खरेटी, गिलोय और कुटकी एक सेर । इनसे सिद्ध किया हुआ यह तैल अपवाहु, अर्धाद्रशोप, अपतानक, आह्ववात, आक्षेपक, ऊरुस्तम्भ, बाहुकम्प, शिरःकम्प कम्प, ऊरु और जंघ के वातरोगों को नश्य, वस्ति तथा मर्दन से नष्ट करता है ॥ १८२-१८४ ॥

स्वल्पमापतैल ।

मापप्रस्थं समावाप्य पचेत् सम्यग्  
जलाढके । पादशेषे रसे तस्मिन् क्षीरं  
दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ १८५ ॥ प्रस्थश्च तिल-  
तैलस्य कल्कं दत्त्वाक्षसम्भ्रतम् । जीव-  
नीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् ॥  
१८६ ॥ रास्नात्मगुप्ता मधुकं वलाव्योप-  
त्रिकएटकम् । पक्षाघातेऽर्दिते वाते कर्ण-  
शूले च दारुणे ॥ १८७ ॥ मन्दश्रुतौ  
चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे । हस्तकम्पे  
शिरःकम्पे विश्वाच्यामपवाहुके ॥ १८८ ॥  
शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनवस्ति-  
भिः । मापतैलभिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजन्नुगदाप-  
हम् ॥ १८९ ॥

तिलतैल २ सेर, घाथार्थ उर्दं १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर । दूध ८ सेर, कलकार्थ अष्ट-वर्ग, सौंफ, लाहीरी नमक, रास्ना, केवांच, मुलेटी, खरेटी, त्रिकटु और गोखरू ये दो-दो तोले । इनसे सिद्ध किया हुआ यह स्वल्पमाप तैल पक्षाघात, अर्दित, कर्णशूल, अश्रवणशक्ति की अल्पता, अधिरता, मूर्च्छा, त्रिदोषज तिमिर, हस्तकम्पन, शिरःकम्पन, विश्वाची, अपवाहुक एव कलायखन आदि त्रिविध वातरोगों में पान, मर्दन तथा वस्ति के द्वारा प्रयोग करना चाहिये । यह मापतैल हनुली के ऊपर के रोगों को नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ १८५-१८९ ॥

वृद्धमापतैल ।

मापकाथे वलाकाथे रास्नाया दश-  
मूलजे । यत्रकोलकुल्लथानां द्वागमांस-  
भवे पृथक् ॥ २०० ॥ प्रस्थे तैलस्य च  
प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् । रास्नात्म-  
गुप्तासिन्धूत्थशताहंरएडमुस्तकः ॥ २०१ ॥  
जीवनीयवलाव्योपैः पचेत्तप्तसर्मभिपक्व ।

हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽपवाहुके ॥  
२०२ ॥ वाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे  
च दारुणे । विश्वाच्यां मर्दिते कुञ्जे  
शृङ्गस्यामपतानके ॥ २०३ ॥ वस्त्यभ्यञ्जन-  
पानेषु नावने च प्रयोजयेत् । एतैल-  
मिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् । काथप्रस्थाः  
पडेवात्र विभक्तं तेन दर्शिताः ॥ २०४ ॥

तैलेन सह सप्तप्रस्थमितत्नादस्य  
सप्तप्रस्थमापतैलमिति संज्ञान्तरम् ।

काथार्थं उर्दं ६४ तोला, जल ६ सेर ३०  
तोला, मेप १२८ तोला, खरेटी ६४ तोला, जल  
६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, रास्ना  
६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८  
तोला, दशमूल ६४ तोला, जल ६ सेर ३२  
तोला, शेष १२८ तोला, जी, घेर की मींगी,  
कुलथी ६४ तोला जल ६ सेर ३२ तोला,  
शेष १२८ तोला, छागमांस ६४ तोला, जल  
६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, दूध ६ सेर  
३२ तोला, कक के लिये रास्ना, कौच के  
बीज, सेंधा नमक, सौंफ, एरएडमूल, नागरमोथा,  
जीवनीयवर्ग, खरेटी और त्रिन्टु, ये सब एक-  
एक तोला । इनसे यथाविधि तैल सिद्ध करे ।  
यह तैल हस्तकम्पन, शिरःकम्प, बाहुशोष, अप-  
वाहुक, बधिरता, कर्णशूल, कर्णनाद, विदवाची,  
अर्दित वायु, कुञ्जरोग, शृङ्गसी और अपतानक  
आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है । इस तैल  
का नस्य, मर्दन, पान एवं वस्ति में प्रयोग  
करना चाहिए । यह वृद्धमापतैल ऊर्ध्वजत्रुगों  
को दूर करता है ॥ २००-२०४ ॥

महामापतैल ।

मापस्याद्धाढकं दत्त्वा तुलाद्धादशाम्-  
लतः । पलानि द्वागमांसस्य त्रिशद्  
द्रोणेऽम्मसः पचेत् ॥ २०५ ॥ पूतशीति  
कपाये च चतुर्थांशावशेषिते । प्रस्थं च  
तिलतैलस्य पयोदत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ २०६

आत्मगुप्ता रूक्थ शताद्वा लवणत्रयम् ।  
जीवनीयानि मज्जिष्ठा चव्यचित्रककट-  
फलम् ॥ २०७ ॥ सव्योपं पिप्पलीमूलं  
रास्ना मधुकसैन्धवम् । देवदार्वमृता कुष्ठं  
वाजिगन्धा वचा शटी ॥ २०८ ॥ एतै-  
रत्तसमैर्भागैः साधयेत् मृदुनाग्निना पक्षा-  
घातेऽर्दिते वाते वाधिर्ये हनुसंग्रहे ॥ २०९ ॥  
कर्णमन्याशिरःशूले तिमिरे च त्रिदोपजे ।  
पाणिपादशिरोश्रीवाभ्रमणे मन्दचङ्क्रमे ॥  
२१० ॥ कलायखञ्जे पाङ्गुल्ये शृङ्गस्या-  
मपवाहुके ॥ पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये  
कर्णाक्षिपूरणे । तैलमेतत् प्रशंसन्ति सर्व-  
वातरूजापहम् ॥ २११ ॥

पोटली में बंधे उर्दं १२८ तोला, दशमूल २३-  
सेर, पोटली में बंधा छागमांस १२० तोला, २५ सेर  
४८ तोला जल में पकाकर चतुर्थांशावशिष्ट रहने  
पर छान ले । इस काय में १२८ तोला तिल का  
तैल, ६ सेर ३२ तोला दूध और निम्नलिखित  
ओषधियों का कल्क मिलाकर यथाविधि तैल  
सिद्ध करे । कौच का मूल, एरएडमूल, सौंफ,  
सेंधानोन, विडनमक, कालानमक, जीवनीयवर्ग,  
मंजोठ, चव्य, चीतामूल, कायफल, त्रिकटु,  
पिपरांमूल, रास्ना, मुलेठी, सेंधानमक, देवदार,  
गिलोय, कूट, अस्तगन्ध, वच और कचूर ये  
सब एक-एक तोला । यह तैल पक्षाघात, अर्दित,  
बधिरता, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्दास्तम्भ, शिरो-  
वेदना, त्रिदोपज तिमिर, हाथ-पांव शिर और  
श्रीवा आदि का कौपना, पक्षाघात, पंगुता,  
शृङ्गसी, अपवाहुक आदि सब प्रकार की चात-  
पीडाओं को पान, वस्ति, मर्दन, नस्य, कर्ण-  
पूरण और नेत्रपूरण से नष्ट करता है ॥ २०५-२११ ॥

निरामिपमहामापतैल ।

दशमूलाढकं पक्त्वा जलद्रोणेऽङ्घ्र-  
शेषिते । तद्वन्मापाढककाथे तैलप्रस्थं पयः  
समम् ॥ २१२ ॥ कल्कैरेतैश्च मतिमान्

साधयेन् मृदुनाग्निना । अश्वगन्धा शठी  
दारुखला रास्ना प्रसारणी ॥ २१३ ॥ कुष्ठं  
परूपकं भार्गी द्वे विदार्यौ पुनर्नवा । मातु-  
लुङ्गफलाजाञ्च्यौ रामठंशतपुष्पिका ॥ २१४  
शतावरी गोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।  
जीवनीयगणं सर्वं संहृत्येव ससैन्धवम् ॥  
२१५ ॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय मापतैल-  
मिदं महत् । वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावनेषु  
प्रशस्यते ॥ २१६ ॥ पन्नाघाते हनुस्तम्भे  
अर्दिते सापतन्त्रके । अपवाहकविश्वच्योः  
खाञ्ज्यपाङ्गुल्ययोरपि ॥ २१७ ॥ शिरो-  
मन्याग्रहे चैव अग्निमन्थे च वातिके ।  
शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णचरेडे च दा-  
रुणे । कलायखञ्जशमने भैषज्यमिदमादि-  
शेत् ॥ २१८ ॥

३ सेर १६ तोला दशमूल को २५ सेर ४८ तोला  
जल में पकाये, ६ सेर ३२ तोला शेष रहने  
पर छान ले । इसी प्रकार ३ सेर १६ तोला  
उर्दू का, जल २५ सेर ४८ तोला का ६ सेर  
३२ तोला द्वाध तैयार करे । इन द्वाधों को  
एकत्र कर उसमें ६ सेर ३२ तोला दूध, १२८  
तोला तैल और निम्नलिखित औषधियों का  
बल्क मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे ।  
असगन्ध, कक्षूर, देवदार, खरेंटी, रास्ना,  
गन्धप्रसारणी, कूट, फालसा, भारंगी, विदारी-  
कन्द, वाराहीकन्द, पुनर्नवा, चडा नींबू, जीरा,  
हींग, सौंफ, शतावरी, गोखर, पिपरामूल,  
चीता, जीवनीयगण और संधानमक कुल मिला  
कर ३२ तोला । इम तैल का उपयोग यस्ति-  
त्रिया, नस्य, अभ्यङ्ग और पान में होता है ।  
यह पचाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक,  
अपवाहक, विश्वाची, खाञ्ज्य, पङ्गुता, शिरो-  
ग्रह मन्यास्तम्भ, वातिक अग्निमन्थ, शुक्रक्षय,  
कर्णनाद, कर्णचरेड और कलायखञ्ज आदि  
विषय वातरोगों को नष्ट करता है ॥ २१२-२१८ ॥

कुञ्जप्रसारणीतैल ।

प्रसारणीशतं क्षुरगं पचेत्तोयार्मणे  
शुभे । पादशेषे समं तैलं दधि दद्यात्  
सकाञ्जिकम् ॥ २१९ ॥ द्विगुणश्च पयो  
दत्त्वा कल्कान् द्विपलिकांस्तथा । चित्रकं  
पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वलाम् ॥ २२० ॥  
शतपुष्पां देवदारुं रास्नां वारणपिप्पलीम् ।  
प्रसारण्याश्च मूलानि मांसीभ्र्जातकानि  
च ॥ २२१ ॥ पचेन्मृदुग्निना तैलं वात-  
श्लेष्मामयान् जयेत् । अशीतिं नरनारी  
स्थान् वातरोगान् व्यपोहति ॥ २२२ ॥  
कुञ्जस्तिमितपङ्गुत्वं शृष्टसी खुडका-  
र्दितम् । हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं चाशु  
नियच्छति ॥ २२३ ॥

५ सेर गन्धप्रसारणी को २५ सेर ४८ तोला  
जल में पकाकर चतुर्थांशवशिष्ट द्वाध करे ।  
उसमें तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, दही का पानी  
६ सेर ३२ तोला, कांजी ६ सेर ३२ तोला,  
दूध १२ सेर ६४ तोला और निम्नलिखित  
औषधियों का कल्क मिश्रित कर यथाविधि  
कोमल अग्नि से तैल सिद्ध करे । कल्कार्य  
द्रव्य-चीता, पिपरामूल, मुलेठी, संधानमक,  
खरेंटी, सौंफ, देवदार, रास्ना, गजपीपरि,  
गन्धप्रसारणी का मूल, जटामासी और भिलावां  
ये सब चार-चार तोला । यह तैल शृष्टसी,  
हनुस्तम्भ, कुञ्जता, पंगुता, खुडकाघात, अर्दित-  
वात तथा हनुस्तम्भ, पीडितभ, शिरोग्रह और  
ग्रीवास्तम्भ एवं स्त्री-पुरणों के कस्पी प्रकार के  
वातरोगों और कफरोगों को दूर करता  
है ॥ २१९-२२३ ॥

सप्तशतिकाप्रसारणीतैल ।

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसार-  
णीम् । शतं ग्राह्यं सहचराच्छताऱ्याः शतं  
तथा ॥ २२४ ॥ यत्नात्मगुप्ताङ्गगन्धा-

केतकीनां शतं शतम् । पचेच्चतुर्गुणे तोये  
 द्रव्यैस्तैलाढकं भिषक् ॥ २२५ ॥ मस्तु-  
 मांसरसं चुक्रं पयश्चाढकमादकम् । दध्या-  
 ढकसमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ २२६ ॥  
 द्रव्याणां तु प्रदातव्या मात्रा चाद्धपलां-  
 शिका । तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं  
 त्वचम् ॥ २२७ ॥ रास्नासैन्धवपिप्पल्यौ  
 मांसीमञ्जिष्ठयष्टिकाः । तथा मेदा महामेदा  
 जीवकर्पभकौ पुनः ॥ २२८ ॥ शतपुष्पा  
 व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाहमेव च । काकोली  
 क्षीरकाकोलीवचा भल्लातकं तथा ॥ २२९ ॥  
 पेपरित्वा समानेतान् साधनीया प्रसारणी ।  
 नातिपक्वं न हीनञ्च सिद्धं पूतं निधा-  
 पयेत् ॥ २३० ॥ यत्र यत्र प्रदातव्या  
 तन्मे निगदतः शृणु । कुञ्जानामथ  
 पङ्गूनां वामनानां तथैव च ॥ २३१ ॥  
 यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थि-  
 सन्धयः । वातशोणितदुष्टानां वातोपहत-  
 चेतसाम् ॥ २३२ ॥ स्त्रीमघक्षीणशु-  
 क्राणां वाजीकरणमुत्तमम् । वस्तौ पाने  
 तथाऽभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत् । प्र-  
 युक्तं शमयत्याशु वातजान् विविधान्  
 गदान् ॥ २३३ ॥

मूल-पत्र सहित शरद् ऋतुमें उखाडी हुई  
 गन्धप्रसारणी ५ सेर, सहचर ( विद्यायामा )  
 ५ सेर, शतावरि ५ सेर, खरेटी ५ सेर, केनांच  
 के मूल की छाल ५ सेर, थलगन्ध ५ सेर  
 और केतकी का मूल ५ सेर लेकर चौगुने  
 जल में पृथक् पृथक् चतुर्थांशावशिष्ट वाथ करे ।  
 उसमें तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, दही का पानी  
 ६ सेर ३२ तोला, छागमांस का वाथ ६ सेर  
 ३२ तोला, चुक्र ६ सेर ३२ तोला, दूध ६ सेर  
 ३२ तोला, ३ही ६ सेर ३२ तोला, और

निम्नलिखित श्रोपधियों का कजक मिलाकर तैल  
 सिद्ध करे । तगर, मैनफल, दूट, नागकेसर,  
 नागरमोथः, दालचीनी, रास्ना, संधानमक,  
 पीपरि, जटामांसी, मजीठ, मुलेठी, मेदा,  
 महामेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नसी, सोंठ,  
 देवदार, काकोली, क्षीरकाकोली, वच और  
 भिलावां, ये दो-दो तोले एकत्रकर कोमल अग्नि  
 से तैल पाक करे । पाक में ध्यान रखना चाहिए  
 कि परपाक या मंदपाक न हो जाय । यह तैल  
 पान, वस्ति, मर्दन और नस्य में उपयुक्त होता  
 है और अनेक प्रकार के वातज रोगों को नाश  
 करता है तथा कुब्ज ( कुबड़े ) पङ्गु ( पंगुले ),  
 वामन ( छोटे ) अङ्गवाले, एकाङ्गशोपवाले,  
 अस्थिभंग या सन्धिभङ्गवाले, वातरक और  
 वायु से उपहत चित्तवाले, स्त्री-संग और मदिरा-  
 पान से क्षीण वीर्यवाले रोगियों को हितकर और  
 वाजीकरण है ॥ २२४-२३३ ॥

एकादशतिकमहा प्रसारणीतैल ।

शाखामूलदलैः प्रसारणितुलास्तिः  
 कुरण्टीतुले द्वित्रायाश्च तुले तुले ख्यु-  
 क्तो रास्ना शिरीषाचुलाम् । देवाहाच्च  
 सकेतकात् घटशते निःकाथ्य कुम्भाशिके  
 तोये तैलघटं तुपाभ्युक्लशौ दत्त्वाढकं  
 मस्तुनः ॥ २३४ ॥ शुक्लाच्छागरसादथे-  
 चुरसतः क्षीराच्च दत्त्वाढकं पृक्का कर्कट-  
 जीवकाद्यविकपाकाकोलिकाकच्छुराः ।  
 सूक्ष्मैलायनसारकुन्दुसरला काशमीरमांसी  
 नलैः कालीयोत्पलपद्मकाहयनिशाकको-  
 लकग्रन्थिकैः ॥ २३५ ॥ चाम्पेयामय-  
 चोचपूगवटुका जातीफला भीरुभिः  
 श्रीवातामरदास्चन्दनवचाशैलेयसिन्धुद् -  
 वैः । तैलाम्भोदकटम्भराडिघ्ननलिनाष्टथी-  
 रकचोरकैः कस्तूरी दशमूलकेतकनतध्या-  
 माश्वगन्धाम्बुभिः ॥ २३६ ॥ कौन्ती-  
 तार्द्यजशल्लकीफललजुरयामाशताहामर्य -

भस्मात्त्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालम्बाङ्गान्प्रितैः । सर्वोषोस्त्रिपलैर्महीयसिपचे-  
न्मन्टेन पात्रेऽग्निना पानाभ्यञ्जनव-  
स्तिनस्यविधिनातान्मारुतनाशयेत् २३७ ॥  
सर्वाद्वाङ्गतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिम-  
ज्जागतं श्लेष्मोत्थानथ पैत्तिकांश्च शमयेन्  
नानाविधानामयान् । धातून् बृंहयति  
स्थिरश्च कुरुते पुंसां नवं यौवनं वृद्ध-  
स्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भ-  
प्रदम् ॥ २३८ ॥ पीत्वा तैलमिदं जर-  
त्यपि सुतं सूतेऽमुना भूरुहाः सिक्वाः शोष-  
मुपागताश्च मलिनाः स्निग्धा भवन्ति  
स्थिराः । भग्नाङ्गाः सुदृढा भवन्ति मनुजा  
गात्रो ह्याः कुञ्जराः ॥ २३९ ॥

शाखा, मूल और पत्र सहित गन्धसारणी  
१५ सेर, पिपावासा की जड़ १० सेर, गितोय  
१० सेर, एरुडमूल १० सेर, रास्ना और  
धिरूप दोनों मिलाकर ५ सेर और देवदार,  
केतकी की जड़ मिलाकर ५ सेर लेकर ३२ मन  
जन में पकावे, शतांश (सर्वा हिस्सा) शोष  
रदन पर उतारकर धान ले । इसमें तिल तैल  
२५ सेर ४८ तोला, कांजी १ मन ११ सेर  
१६ तोला, दही का पानी ६ सेर ३० तोला,  
शुभ्र ६ सेर ३२ तोला, छागमाम का पाय  
६ सेर ३२ तोला, हल्दुरा ६ सेर ३२ तोला,  
दुग्ध ६ सेर ३२ तोला मिलावे और  
निम्नलिखित औषधियों का एक मिलाकर  
यथाविधि तैल सिद्ध करे । कल्कद्रव्यटका-  
शाक, पाकड़ासिगी, जीवनीयाग, मोट,  
काबोली, धोरकाकोनी, कौंग के मूत्र की  
छान, छोटी इतामची, कूर, बुन्दुम्, चीड़,  
केसर, जयमांसी नगी, अगार, कमल, परमाग,  
हरदी, फरोल, पिपरामूत्र, नागदेवर, मग,  
दानचीनी, सुपारी, कुटकी, जायफल, शतावरी  
मरकतीयाम, देवदार, रघुचन्दन, बघ, वरीजा,  
मेषाममक, शिलारस, नागरमोषा, कण्ठप्रगा-

रणी, नालुका, पुनर्वा, गठिवन, कस्तूरी, दश-  
मूल, केतकी, तगर गन्धवृण, असगन्ध  
सुगन्धवाला, सँभालू के बीज, रसात, शलजकी  
(सर्जमेद), मैनफल, अगार, कालीनिशोध,  
सौंफ, कूट, भिल्लावाँ, त्रिफला, कमल, नाग-  
केसर, काली सादिया, लौंग, त्रिदु वे सत्र  
द्रव्य १२-१२ तोले एकत्रकर रिसी पात्र में  
रस मन्द मन्द अग्नि से पात्र करे । यह तैल  
पान, मर्दन बस्ति तथा नस्य के प्रयोग से  
सर्वाङ्गवात, अर्द्धाङ्गवात, अंगसन्ध तथा अस्थि-  
भजागत वायु को तथा पित्त एव नाना प्रकार  
के कफज रोगों को नष्ट करता है । धातुओं को  
बढ़ाता, यौवन का स्थिर करता, वृद्ध को बल  
देता, बन्ध्या को गर्भ देता तथा प्रसूमा को प्रसव  
में सुख देता है । इसके सींगने से सूते वृष  
हरे हो जाते हैं । इस तैल से भग्नाग मनुष्य,  
गौ, घोड़े, हाथी आदि रूढ़ अंगवाले होते  
हैं ॥ २३४-२३९ ॥

अष्टादशशतित्प्रसारणोत्तैल ।

समूलद्रव्यशाखायाः प्रसारण्याः शत-  
त्रयम् । शतमेकं शतावरी अश्वगन्धाशतं  
तथा ॥ २४० ॥ केतकीनां शतं चैकं दश-  
मूलाच्छतं शतम् । शतं वाय्वालकस्यापि  
शतं सहचरस्य च ॥ २४१ ॥ जलद्रोण-  
शतं दत्त्वा शतमागाशोपितम् । तन्मनेन  
कपायेण कपायद्रिगुणेन च ॥ २४२ ॥  
सुव्यतेनारनालेन दधिमस्त्राढकेन च ।  
क्षीरशुक्लेऽनुनिर्यासन्नागमांमरमाढकैः ॥  
२४३ ॥ तैलद्रोणं ममायुक्तं दृष्टे पात्रे  
निधापयेन् । श्रव्याणि यानि पेप्याणि तानि  
वक्ष्याम्यतः परम् ॥ २४४ ॥ भस्मात्कं  
नतं शण्टी पिप्पली चित्रकं शठी । यथा  
पृथा प्रसारण्याः पिप्पल्या मूलमेव च ॥  
२४५ ॥ देवदाग्नादा च मूर्धला-  
त्वचालरम् । कुटुम् मदमिष्टा तुग्मं

नलिकागुरु ॥ २४६ ॥ कर्पूरकुन्दुरुनिशा  
 लवङ्गं ध्यामचन्दनम् । कफोलं नलिकामु-  
 स्तं कालीयोत्पलपत्रकम् ॥ २४७ ॥ शटी-  
 हरेणु शैलेयं श्रीवासञ्च भकेतकम् । त्रि-  
 फला कच्छुराभीरु सरलं पद्मकेशरम् २४८  
 भ्रियङ्गुशीरनलदं जीवकाद्यंपुनर्नवा । दश-  
 मूल्यरवगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम् २४९  
 कटुका जातिपूगानां फलानि शल्लकीर-  
 संम् । भागांस्त्रिपलिकान् दत्त्वा शनैर्मृद्भ-  
 ग्निना पचेत् ॥ २५० ॥ विस्तीर्णं सुदृढे  
 पात्रं पाच्यैषा तु प्रसारणी । प्रयोगः पद्-  
 विधश्चात्र रोगार्त्तानां विधीयते ॥ २५१ ॥  
 अभ्यङ्गात् त्वग्गतं हन्ति पानात् कोष्ठगतं  
 तथा । भोजनात् सूक्ष्मनाडीस्थान् नस्या-  
 दुर्ध्वगतं तथा ॥ २५२ ॥ पकाशयगते  
 वस्तिर्निरूहः सर्वगात्रिके । एतद्धि वड-  
 वाश्वानां किशोराणां यथामृतम् ॥ २५३ ॥  
 एतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि ।  
 अन्येनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः ॥  
 २५४ ॥ सिकाः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति  
 फलशालिनः । वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च  
 तरुणायते ॥ २५५ ॥ न प्रसूते च या  
 नारी सापि पीत्वा प्रसूयते । अमजः पुरुषो  
 यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत् सुतम् ॥ २५६ ॥  
 अशीतिं वातजान् रोगान् पैत्तिकान्  
 र्लैप्मिकानपि । सन्निपातसमुत्थांश्च नाश-  
 येत् क्षिप्रमेव हि ॥ २५७ ॥ एतेनान्धक-  
 ट्पणीनां कृतं पुंसवनं महत् । कृत्वा  
 विष्णोर्बलिश्चापि तैलमेतत् प्रयोज-  
 येत् ॥ २५८ ॥

प्रसारणी १२ सेर, शतानरि ५ सेर, शमगन्ध  
 ५ सेर, केवड़ा का मूल ५ सेर, दशमूल की  
 प्रत्येक औषधि पाँच पाँच सेर, खरेटी ५ सेर  
 और पियाषासा ५ सेर खेरर ६४ मन  
 जड़ में पकावे । जब २५ सेर ४८ तोला शेष  
 रहे तो उतारकर दान ले । २५ सेर ४८  
 तोला काथ, १ मन ११ सेर १६ तोला काँजी,  
 ६ सेर ३२ तोला दही के पानी, ६ सेर ३२  
 तोला दूध, ६ सेर ३२ तोला शुभ्र, ६ सेर ३२  
 तोला हंस के रस और ६ सेर ३२ तोला  
 छाग के मांस के रस के साथ २५ सेर ४८  
 तोला तिल तैल एक ढड़ पात्र में रगकर पकावे ।  
 पश्चात् पकाते समय भिलावा, तगर, सोंठ,  
 पीपरि, चीता, कचूर, वच, पृष्ठा (पुरीशाक)  
 गन्धप्रसारणी का मूल, पिपरा, मूल, द्वेवदारु,  
 सीफ, छोटी इलायची, दालचीनी, सुगन्धबाला,  
 केंसर, कस्तूरी, मजीठ, शितारस, नखी, अमर,  
 कपूर, कुन्दुरू (कुन्दुरूछोटी), हल्दी लींग,  
 गन्धगुण, रक्तचन्दन, कंकोल, नाड़ीशाक, नागर-  
 मोथा, काली अमर, कमल, तेजपात, कचूर,  
 सँभालू के बीज चीड़, श्रीवास, केवड़ा,  
 त्रिकला, काँच, शतानरि, सरलकाष्ठ, पट्टमकाठ,  
 नागकेंसर, फूलभ्रियंगु, खस, जटामांसी, जीवनी-  
 यण, साँटी, दशमूल, असगन्ध, नागकेंसर,  
 रसौत, कुटकी, जायफल, सुपारी और  
 शल्लकीरस (राल) प्रत्येक बारह-बारह  
 तोले पीसकर मिलावे और, धीमी आँच  
 से पकाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस  
 तैल के मर्दन करने से चमड़े के रोग, पीने से  
 कोष्ठगत रोग, भोजन से सूक्ष्म नाड़ीगत रोग  
 और नश्य से ऊर्ध्वगत रोग नष्ट होते हैं । वस्ति-  
 क्रिया से पकाशय के और निरूहवस्तिक्रिया से  
 संपूर्ण शरीर के रोगों का नाश करता है । यह  
 तैल छोटे, हाथी, गाय और मनुष्य आदि सब  
 जीवों के लिये अमृत के तुल्य लाभदायक होता  
 है । इस तैल से सूखते हुए बड़े-बड़े वृष सिंचकर  
 हरे भरे और फलसम्पन्न हो जाते हैं । वृद्ध  
 मनुष्य भी इस तैल का मर्दन करने से तरुण के  
 समान हो जाता है । त्रिमश्री या पुराण के  
 मन्त्रान न होती हो उसको इस तैल के पीने

से श्वश्रय सन्तान होती है । यह तैल ८० प्रकार के वात रोग, सब प्रकार के पंचिक, र्लैम्पिक और सान्निपातिक रोगों को तत्काल नष्ट करता है । इस तैल से अन्धक और वृन्धियों ( यादव आदि) को पुंसजन हुआ था । विष्णु को बलि देकर इस तैल का प्रयोग करना चाहिए ॥ २४०-२४८ ॥

टिप्पणी—केशर वस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य तैल बन जाने के बाद फिर डालने चाहिये । यही विधि मध घृतों में भरतनी चाहिए ।

त्रिंशतीप्रसारणीतैल ।

समूलपत्रशाखाञ्च जातसारं प्रसारणीम् । कुट्टयिता पलशतं दशमूलशतं तथा ॥ २५६ ॥ अश्वगन्धापलशतं कटाहेसमधिक्रिपेत् । वारिद्रोणे पृथक्कृत्वा पादशेषेऽप्रतारितम् ॥ २६० ॥ कृपायसमात्रं तु तैलमत्र प्रदापयेत् । दध्नस्तथाढकं दच्वा द्विगुणञ्चाम्लकाञ्जिकात् ॥ २६१ ॥ चतुर्द्रोणेन पयसा जीवनीयैः पलोन्मितैः । शृङ्गवेरपलान् पञ्च त्रिंशद्भ्लातकानि च ॥ २६२ ॥ द्वे पले पिप्पलीमूलात् चित्रकाञ्च पलद्वयम् । यवत्तारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् ॥ २६३ ॥ सौवर्चलपले द्वे च मञ्जिष्ठायाः पलद्वयम् । प्रसारणीपले द्वे च मधुस्य पलद्वयम् ॥ २६४ ॥ सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्धृद्वग्निना पचेत् । एतद्भ्यञ्जने श्रेष्ठं वस्तिर्गन्निरुहणे ॥ २६५ ॥ पाने नस्य च दातव्यं न क्वचित् प्रतिहन्यते । अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पंचिकान् ॥ २६६ ॥ त्रिंशतिं र्लैम्पिकान्श्चैव सर्वानेतान् व्यपोहति । शृङ्गसीमस्थिमद्गञ्च मन्दाग्निमरोचकम् ॥ २६७ ॥ अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं मन्द-

गामिताम् । त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरःसन्धिगताश्च ये ॥ २६८ ॥ जानुसन्धिगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च ये । अश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः ॥ २६९ ॥ प्रसारयति यस्मात्तु तस्मादेवा प्रसारणी । इन्द्रियाणाञ्च जननी वृद्धानाञ्च सूयनी ॥ २७० ॥ एतेनान्धकवृष्णीनां कृत पुंसजनं महत् । प्रसारणीतैलमिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २७१ ॥ अपनयति जरां पलितं शोषयति रुजामुत्पादयति तारुण्यम् ॥ २७२ ॥ पक्षाघातं सर्वाद्ब्रह्मं वातगुल्मञ्च नाशयेत् । एतदुपयुज्यमानः प्रसन्नार्थेन्द्रियो भवेत् ॥ २७३ ॥

५ सेर मूल, पा और शाखासहित गन्ध-प्रसारणी तथा ५ सेर दशमूल की चोपधियाँ और ५ सेर अश्वगन्ध प्रत्येक को कूटकर २५ सेर ४८० तोला जन में पकाकर चतुर्धाश शेष रहने पर छान ले । इन कारों में ६ सेर ३२ तोला तिलतैल, ६ सेर ३२ तोला दही, १२ सेर ६४ तोला कांजी और २ मन २२ सेर ३२ तोला जल डालकर पकावे । परचात् पकाने समय चार-चार तोले जीवनीयगण की प्रत्येक चोपधि, चार तोले अदरक, १४० तोला भिलाव और पिपरामूल, चीता, जवापर, संधानमय, कालानमक, मगोठ, प्रसारणी और मुलेठी ये सब आठ आठ तोले ले । कल्प बनाकर डाल दे और धीमी-धीमी आँच पर यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल को चन्पक, वस्तिप्रिया, निरुहण, पान और नस्य में देना चाहिए । यह कहीं भी विकल नहीं होता । यह तैल ८० प्रकार के वातिक, ४० प्रकार के पंचिक और २० प्रकार के र्लैम्पिक रोगों को नष्ट करता है । शृङ्गसी, अस्थिमद्ग, अग्निमान्द्य, अरोचर, अपस्मार, उन्माद, विभ्रम और मन्दागामिता को तथा चर्मगत, शिरोगत, सन्धिगत, जानुसन्धिगत, पाद और



दृष्टगत वातरोगो को नष्ट करता है । वातरोग से पीडित घोडा, हाथी या मनुष्य हो, सबको यह रोगमुक्त कर देता है, इसलिये इसका नाम प्रसारणी है । यह तैल इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाता और बृद्धों को सन्तान देता है । इसने अन्धक और वृषिण्यों को परम शक्ति दी थी । यह बल, वर्ण और अभिन का उर्वक है, बुढ़ापे को मिटाता है, पलित रोग तथा अनेक पीड़ाओं को दूर करता है । तरुणता उत्पन्न करता है । पक्षाघात, सर्वाङ्गहृत और वातगुल्म को नष्ट कर इन्द्रिय कान्ति को निर्मल करता है ॥ २५६-२७३ ॥

#### महाराजप्रसारणीतैल

शतत्रयं प्रसारण्या द्वे च पीतसहाच-  
रात् । अश्वगन्धैरण्डवला वरी रास्ना  
पुनर्नवा ॥ २७४ ॥ केतकी दशमूलञ्च  
पृथक्त्वक्पारिभद्रतः । प्रत्येकमेपां तु तुलां  
तुलाद्द किलिमात्तथा ॥ २७५ ॥ तुलाद्  
स्यान्ध्रिपाच्च लाक्षायाः पञ्चविंशतिः ।  
पलानि लोधाच्च तथा सर्पमेकत्र साधयेत् ॥  
२७६ ॥ जलपञ्चाढकशते सपादे तत्र शेष-  
येत् । द्रोणद्वयं काञ्जिकस्य पद्मिंशत्याढ-  
कोन्मितम् ॥ २७७ ॥ क्षीरदध्नोः पृथक्-  
प्रस्था दशमस्त्याढकं तथा । इक्षो रसाढको  
चापि व्यागर्मासतुलात्रये ॥ २७८ ॥ जल-  
पञ्चचत्वारिंशत् प्रस्थे पक्वे तु शेषयेत् ।  
सप्तदशरसप्रस्थान् मञ्जिष्ठाषाय एव च ॥  
२७९ ॥ कुडवो नाढकोन्मानो द्रवैरेभिस्तु  
साधयेत् । मुशुद्दं तिलतैलस्य द्रोणप्रस्थेन  
संयुतम् ॥ २८० ॥ आद्य एभिर्द्रवैः पाकः  
कल्को भन्लातकं कणा । नागरं मरिचञ्चैव  
प्रत्येकं पद्मलोन्मितम् ॥ २८१ ॥ भन्ला-  
तकासहत्वे तु रज्ज्चन्दनमिष्यते । पञ्चा-  
क्षपात्रयः सरलं शतादा कर्कटी वचा ॥

२८२ ॥ चौरपुष्पी गटी मुस्तद्वयं पद्मञ्च  
सोत्पलम् । पिप्पलीमूलमञ्जिष्ठा साश्वगन्धा  
पुनर्नवा ॥ २८३ ॥ दशमूलं समुदितं  
चक्रमर्दो रसाञ्जनम् । गन्धतृणं हरिद्रा च  
जीवनीयो गणस्तथा ॥ २८४ ॥ एपां  
द्विपलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते ।  
देवपुष्पीशैलपत्रं शल्लकीरसशैलजे ॥  
२८५ ॥ प्रियङ्गुश्रीरमधुरी मांसी दारु  
बला चला । धीवासो नलिका खोटिः  
सूचमैला कुन्दुरुर्मुरा ॥ २८६ ॥ नखीत्रयञ्च  
त्वक्पत्री पामरापूतिचम्पकम् । मदनं  
रेणुको पृका मरुवञ्च पलत्रयम् ॥ २८७ ॥  
प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ।  
गन्धोदकन्तु त्वक्पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम् ॥  
२८८ ॥ प्रत्येकं सरलामूलं पलानि पञ्च-  
विंशतिः । कुष्ठाद्भागोऽत्र जलप्रस्थास्तु  
पञ्चविंशतिः ॥ २८९ ॥ अर्द्धविंशतिः  
कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुर्कर्मणि । गन्धाम्बु-  
चन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्यते ॥ २९० ॥  
कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक् कालीयकुकु-  
डकुम् । भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं लतकस्तु-  
रिका तथा ॥ २९१ ॥ लज्जागुरुकपोल-  
जातीकोपफलानि च । एला लज्जादल्ली  
च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम् ॥ २९२ ॥  
कस्तूरी पद्मपला चन्द्रात् पलं सार्द्धञ्च  
शुष्यते । वेधनार्थं पुनश्चन्द्रमेदो देयो  
तथोन्मितौ ॥ २९३ ॥ महाप्रसारणी  
सेयं राजभोग्या प्रकीर्तिता । गुणान्  
प्रसारणीनां तु बह्व्येषा बलोत्तमान् ॥  
२९४ ॥ काञ्जिकं मानतो द्रोणः शुभ्रेनात्र  
विधीयते । अत्र शुभ्रविधिर्मण्डः प्रस्थः

पश्चादकोन्मितः ॥ २६५ ॥ काञ्जिकं  
कुडवो दध्नो गुडप्रस्थोऽम्लमूलकात् ।  
पलान्यष्टौ शोधिताद्रात्पलपोडशिकं तथा ॥  
२६६ ॥ कणाजीरकसिन्धूत्थहरिद्रा मरिचं  
तथा । द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनं  
स्थितम् ॥ २६७ ॥ सिद्धं भवति तच्छुक्रं  
यदावतार्यं गृह्यते । तदा देयं चतुर्जातं  
पृथक्कृत्तयोन्मितम् ॥ २६८ ॥

यद्यपि काञ्जिकस्य षड्विंशतिराठका-  
नीत्युक्तं तथापि काञ्जिकद्रोणमात्रेण  
व्यवहारः अन्यथा काञ्जिकस्यैव गन्धः  
स्यादिति अतएव चक्रो वक्ष्यति काञ्जिकं  
मानतो द्रोण इति । चन्दनाभ्युसाधन-  
विधिर्यथा, कुट्टितचन्दनपलम् ५०,  
पाकार्थं जलशरावम् ५०, शेषशरावम्  
२५ । घृष्टचन्दनं गोलयित्वा वा  
दातव्यमिति ।

१५ सेर प्रसारणी, १० सेर फूले फूल का  
पियावासा, पाँच-पाँच सेर ( सौ सौ पल )  
असगन्ध, एरण्ड, खरेटी, शतावरि, रास्ना,  
पुनर्नवा, कंतकी, दशमूल और फाहद २॥ सेर,  
देवदारु २॥ सेर, सिसीस १॥ सेर, लोघ और  
लाख १॥ सेर को ४० मन जल में पफार  
१ मन ११ सेर १६ तोला जन शेष रक्ये ।  
इसमें २५ सेर ४८ तोला बांजी, १६ सेर  
दूध और १६ सेर दही, ६ सेर ३२ तोला दही  
का तोड़, १२ सेर ६४ तोला ईस का रस  
मिलावे । १५ सेर छागमांस को १ मन ३२ सेर  
जल में काढ़ा करके शेष २७ सेर १६  
तोला ६ सेर ३२ तोला मजीठ का साथ  
और २५ सेर ४८ तोला शुद्ध तिलतेल तथा  
निम्नलिखित द्रव्यों के कल्क के साथ प्रारम्भिक  
पाक करे । कल्कार्य द्रव्य—चीचीस-चीचीस तोला  
भिलावा, पीपरि, साँठ और मिर्च, ( यदि  
भिलावा सद्य न हो तो भिलावा के बदले चन्दन

ले ) । चार-चार तोला हड़, बहेडा, आँवला,  
चीड़, सौंफ, कारुङ्गासिगी, बच, चोर-पुष्पी  
( शंखिनी ), कचूर, मोथा, नागरमोथा, पद्माल,  
कमल के पुष्प, पीपरामूज, मजीठ, असगंध, साठी,  
दशमूल ( मिलित ), चकण्ड ( पंचार ) रसौत,  
गन्धवृण, हलदी और जीवनीयण ले । पूर्वोक्त,  
द्रवद्रव्यों और कल्कों के साथ पाक होने पर  
निम्नलिखित द्रव्यों के कल्क और गन्धोदक के साथ  
द्वारा पाक करना चाहिए । कल्कार्य द्रव्य—  
लौंग, बोल ( गन्धरस ), तेजात, घूप,  
धुरीला, प्रियंगु, खस, सौंफ, अटामांसी, देवदारु,  
खरेटी, शिलारस, लोवान, नालिका ( पवारी ),  
नवनीतखोटि, छोटी इलायची, कुन्दुरु मुरामांसी,  
तीनों नखी, दालचीनी, तेजात, बच, सटाशी  
( मुक्कधिलाई के अंडे ), अम्पा के पुष्प, दीना,  
सँभालु के बीज, घृका ( पुरीशक ) और मरुया  
प्रत्येक बारह-बारह तोले ले ।

#### गन्धोदक विधि ।

तेजपात, पत्रक ( तेजपात के सद्य पत्र-  
विशेष ), गन्ध, नागरमोथा और सुगन्ध-  
बाला का मूल १००-१०० तोले, कूट ५० तोला  
लेकर १ मन जल में पकावे, २० सेर शेष रहे  
तो छान ले । यह काथ गन्धोदक कहा जाता  
है । पूर्वोक्त कल्क और गन्धोदक के साथ पाक  
बिद्ध होने पर गन्धोदक चन्दनांशु और  
निम्नलिखित कल्कों के साथ तृतीय पाक करे—  
कल्कार्य द्रव्य— नागकेसर, कूट, दालचीनी,  
फाल्गुणिक ( पीलाचन्दन ), कुंकुम, रत्नचन्दन,  
गठिवन, लतावस्तूरी, लौंग, अमर, कंकाल,  
जायत्री, जायफन, इलायची और लवण की छाल  
बारह-बारह तोले । गन्धोदक, चन्दनांशु और उक्त  
कल्क के साथ पाक बिद्ध होने पर फिर कल्क  
२५ तोले और कूर ६ तोला मिलावे । यह  
महाराजप्रसारणीनेल राजघों के सेवन करने  
योग्य है । इसमें अन्यान्य प्रसारणी नैलों की  
अपेक्षा बहुत शक्तिशाली गुण है ।

#### शुक्रसाधनविधि

यहाँ शुक्र बनाने की विधि लिखने है । जैसे—  
भात का भाँड़ १२८ तोला, बांजी ३२ सेर

दही ६४ तोला, गुड ६४ तोला, अम्लमूलक ( कांजी का अधःस्थित द्रव्य ) ३२ तोला, अदरक ६४ तोला, पीपर, जोरा, लाहौरी नमक, हल्दी और काली मिर्च आठ-आठ तोला ले । इन सब द्रव्यों को घृत से स्निग्ध किये हुए पात्र में ८ दिन तक मूँह ठककर रखते । पश्चात् उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर का तीन-तीन तोला चूर्ण मिला लेना चाहिए । इसको शुक्र कहते हैं ।

यद्यपि इस महाराजमसारखीतैल के साधन में कांजी २६ आड़क लिखी है तथापि एक ही द्रोण ली जाती है । नहीं तो तेल में कांजी की ही गन्ध आने लगती । अतएव चक्रपाणिदत्त ने भी एक ही द्रोण ( १२ सेर ६४ तोला ) कांजी लेने को लिखा है ।

### चन्दनाभ्युसाधनविधि ।

२॥ सेर चन्दन का चूर्ण अथवा घिसे हुए चन्दन की गोलियों को ४० सेर जल में पकावे । २० सेर जल शेष रहने पर छान ले । इस काथ को चन्दनाभ्यु कहते हैं ॥ २७४-२६८ ॥

### मृगमदादिकों के उत्कर्ष और अप्रकर्ष के लक्षण ।

#### मृगमद

या गन्धं केतकीनां वहति परिमलं वर्णतः पिञ्जराभा स्वादे तिक्ता कटुर्वा परिलयतुलना मर्दिता चिकण्णा सा । दग्धा नो याति भस्मं मिपिमिपि कुरुते चर्मगन्धा तु चान्ते सा भद्रा लोभनीया वरमृगतनुजा राजयोग्या भदिष्टा ॥ २६६ ॥

पीतः किञ्चिल्लयुरतिशयं केतकी-तुन्यगन्धः स्निग्धो दग्धो मिपिमिपिकुरो भस्मभारं न याति । ईपत्तिप्रः यदुरपि

मनाक्क्षारगन्धानुविद्धः सम्यक् शुद्धो मद इह महीपालयोग्यो मनोज्ञः ॥ ३०० ॥

जिन कस्तूरी का गन्ध केयडे के पुष्प के समान हो, वर्ण पीला हो स्वाद में तिक्ता या कटु हो, हल्की हो, मलने पर चिकनी हो, आग में डालने पर शीघ्र दग्ध न हो, केवल मिप-मिप करके सटकुचित हो जाय और अन्त में इससे चमड़े की-सी गन्ध आने लगे । वही कस्तूरी श्रेष्ठ और राजाओं के योग्य है । यही तात्पर्य 'पीतः किञ्चिल्लयुरतिशयम्' इत्यादि ग्रन्थान्तरोक्त श्लोक का भी है ॥ २६६-३०० ॥

#### कपूर

पकात्कपूरतः प्राहुरपकं गुणवत्तरम् । तत्रापि स्याद् यदनुगुणं स्फटिकाभं तदुत्तमम् ॥ ३०१ ॥ पकं च सदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तरम् । भङ्गे मनागपि न चेन्नपतन्ति ततः क्रणा ॥ ३०२ ॥ इस्ते निवृप्य कपूरं रेखां हस्तस्य लक्षयेत् । यदि सा दृश्यते विद्धि कपूरमतिभद्रकम् २०३

पक कपूर की अपेक्षा अपक कपूर अधिक गुणवाला होता है । अपक कपूर से भी जो धूलित न किया गया हो तथा स्फटिक की तरह स्वच्छ हो वह उत्तम है । पक कपूर में जो सदल ( पत्र अथवा दानेशर ) स्निग्ध और हरे रंग की प्रभावाला हो तथा सोड़ने-पर यदि कण पृथक्-पृथक् होकर न गिरें तो वह उत्कृष्ट है । कपूर को टपेली पर घिसकर हाथ की रेखाओं को देखे, यदि उन रेखाओं में कपूर धीरे-धीरे लम्बाना चाहे एक यह कपूर प्रायस्त श्रेष्ठ है ॥ ३०१-३०३ ॥

#### कुष्ठ

मृगमृदाकृति कुष्ठं कीटदोषविरति-तम् ॥ ३०४ ॥

कूट की आकृति यदि हरिण के शींग के

समान हो तथा कीट आदि से दूषित न हो तो श्रेष्ठ है ॥ ३०४ ॥

चन्दन

श्रेष्ठचन्दमत्यन्तं स्निग्धं गुरु सुगन्धि च । भ्रष्टेचन्दनं रक्तपीतसारं तदुत्तमम् । यत्पाण्डुरमसारश्च न भद्रं प्रवदन्ति तत् ॥ ३०५ ॥

श्वेत च दन यत्र अरदन स्निग्ध हो, भारी हो तथा सुगन्धयुक्त हो तो श्रेष्ठ है । जिस चन्दन के भीतर की लकड़ी लाल अथवा पीली हो वह च दन उत्तम है । जो पाण्डुवर्ण का हो तथा अमार (कमजोर) हो वह चन्दन श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३०५ ॥

अशुभ

कारतुण्डाकृतिः स्निग्धो गुरुञ्चैरोत्तमोज्जुरः । असारं पाण्डुरं रुक्मं लघुचाधममादिशेत् ॥ ३०६ ॥ नाटेयं नाप्युपादेयं तित्तिरीपक्षकागुरु । शालमलीकाष्ठसङ्काशो नैव ग्राह्यः कदाचन ॥ ३०७ ॥

जो अगर आकृति में कौबे की चोंच क समान, तथा स्निग्ध और भारी हो वह उत्तम है । जो असार, पाण्डुवर्ण तथा हल्का हो उसे निकृष्ट समझो । नदी के किनारे उपज हुआ अथवा तीतर के पक्ष क सदृश वर्णवाला और सेमर की लकड़ी सदृश रूपवाला अगर ग्रहण करन के योग्य नहीं है ॥ ३०६ ३०७ ॥

कुंकुम

पाण्डुरैः देशैरभ्यक्तं रक्तं कुंकुममुत्तमम् । द्विवर्णं काश्मीर खरपाण्डुरकेशरम् ॥ ३०८ ॥

जिब कसर में पाण्डु रंग की केशर न हो तथा जिसका वर्ण लाल हो वह उत्तम है । जिसमें दो रंग हो तथा खुरदरे और पाण्डुवर्ण क केशर हों वह अधम है ॥ ३०८ ॥

खट्वास

खट्वासोऽनूपजः श्रेष्ठो वचुलो मांसलश्च यः । सम्मतो मध्यदेशीयो मध्यमो मरुजोऽधम ॥ ३०९ ॥

जलप्राय देश में उत्पन्न, गोल और मांसल खट्वासी (मुक्कबिलाव के अण्ड) श्रेष्ठ । मध्य देश में उत्पन्न मध्यम और मरुस्थल में उत्पन्न अधम होता है ॥ ३०९ ॥

मुरामांसी और रेणुका

किञ्चित् पीतमुरा गस्ता मांसी पिङ्गजटाकृतिः । रेणुको मुद्गनुन्यो यो भद्रः स सम्मतः सताम् । म्यूलो मरिचसङ्काशो गन्धकर्मणि गहितः ॥ ३१० ॥

मुरामांसी कुछ पीले रंग की, जटामांसी (बालवृद्ध) पिङ्गा वर्ण की जटा के सदृश तथा रेणुका मूँग के समान हो तो श्रेष्ठ है । कालीमिर्च के समान तथा मोटी रेणुका गन्धकर्म (तेलादि सुगन्धित करने क लिये) में निन्दित है ॥ ३१० ॥

मुस्तक

आनूपदेशसम्भूतो मुस्तः स्यादतिशोभनः मिश्रिते मध्यमः प्रोक्तो जाङ्गलस्तृघ्नो मत्तः ॥ ३११ ॥

अनूप दशोत्पन्न मोथा उत्तम, मिश्रित देश (अनूप तथा जांगलमिश्रित) का मध्यम और जाङ्गल दश का अधम होता है ॥ ३११ ॥

जातीफल

जातीफलं सशब्दश्च स्निग्धं गुरु च शस्यते । लघुं शब्दहीनश्च रुक्ताङ्गमतिनिन्दितम् ॥ ३१२ ॥

शब्दयुक्त, स्निग्ध तथा गुरु जायफल श्रेष्ठ है । लघु, शब्दहीन तथा रूच जायफल अति निन्दित है ॥ ३१२ ॥

एला

एला ककोलरीजाभा सा ग्राया

कोद्रवाकृतिः । या ककोलसमाकारा कर्पूर-  
रेणुसंयुता । सरला सा त्रुटिः श्रेष्ठा विप-  
रीता तु नेप्यते ॥ ३१३ ॥

जो इलायची कंकोल के बीज तथा कोदों के  
आकारवाली हो वह श्रेष्ठ है । जो इलायची  
कंकोल के समान दानेवाली, कर्पूर के सदृश  
रेणुयुक्त और सरल हो वह छोटी इलायची  
श्रेष्ठ है । इनसे विपरीत आकारवाली अप्राप्त  
है ॥ ३१३ ॥

### प्रियङ्गु

या किञ्चित्पाण्डुरा श्यामा कीटदोष-  
विवर्जिता । सा प्रियंगुर्मता भद्रा विपरीता  
तु निन्दिता ॥ ३१४ ॥

जो श्यामवर्ण तथा किञ्चित् पाण्डुवर्ण की  
हो, कीटों से न खाई गई हो वह प्रियङ्गु श्रेष्ठ  
है तथा इससे विपरीत लक्षणवाली निन्दित  
है ॥ ३१४ ॥

### नखी

नखी पञ्चविधा ज्ञेया गन्धार्थं गन्ध-  
त्तरैः । काचिदुदुम्बरपत्राभा तथोत्पल-  
दलायता ॥ ३१५ ॥ काचिदश्वत्थुराकारा  
गजकर्णसमा परा । वराहकर्णसङ्काशा  
गन्धकर्मणि गहिता ॥ ३१६ ॥

गन्धर्म के लिये नखी पाँच प्रकार की  
है । गूलर के पत्र के सदृश, कमल के पत्र के  
सदृश, घोड़े के सुम के सदृश और हाथी के  
कान के सदृश होती है तथा शूकर के कान के  
सदृश आकारवाली नखी गन्धकर्म में निन्दित  
है ॥ ३१५-३१६ ॥

### ग्रन्थिक

ग्रन्थिकः पाण्डुरः किञ्चित् कनिष्ठः  
सर्वसम्मतः । उत्तमः कृष्णवर्णो यः स्थूलो-  
ज्जीव च निन्दितः ॥ ३१७ ॥

किञ्चित् पाण्डुवर्ण तथा पतला गहिजन

उत्तम है । काले रंगवाला और मोटा निन्दित  
है ॥ ३१७ ॥

### उशीर

दीर्घमूलं दृढं सूक्ष्ममुत्तमं गन्धसंयु-  
तम् । देशे साधारणे जातं लामज्जं भद्रकं  
भवेत् ॥ ३१८ ॥

लम्बे मूलवाला, दृढ़, पतला, उत्तम गन्ध-  
वाला और साधारण देश ( न जांगल न आनूप )  
में उत्पन्न खस उत्तम है ॥ ३१८ ॥

### नलिका

मध्ये सारविहीना या सरसा कीट-  
वर्जिता । नलिका सा भवेद्भद्रा विपरीता  
तु निन्दिता ॥ ३१९ ॥

मध्य में खोलजी, सरस तथा कीटों से न खाई  
गई नलिका प्रशस्त है । इससे विपरीत लक्षण-  
वाली निन्दित है ॥ ३१९ ॥

### शिलारस

निर्मलः कपिलः स्वच्छः सिद्धकोऽ-  
तितरां नवः । मध्वाभो मलयुक्तश्च वर्जितो  
गन्धकर्मणि ॥ ३२० ॥

मल-रहित, कपिल वर्णवाला और नवीन  
शिलारस उत्तम है । मलयुक्त और शहद के  
सदृश वर्णवाला शिलारस गन्धकर्म में वर्जित  
है ॥ ३२० ॥

### श्रीवास और लाक्षा

श्रीवासो भद्रकः प्रोक्तो मलकाष्ठ-  
विवर्जितः । लाक्षा च नूतना प्राया  
मृत्तिकादिविवर्जिता ॥ ३२१ ॥

मल और काष्ठ से रहित गन्धाविरोजा उत्तम  
है । इसी प्रकार मिट्टी तथा लकड़ी से रहित  
नवीन लाक्षा उत्तम है ॥ ३२१ ॥

### पद्मक श्रीं त्वक्पत्र

पद्मकं सरलं भद्रं कीटदोषविव-  
र्जितम् । जलदोषविहीनश्च त्वक्पत्रश्च  
तथैव च ॥ ३२२ ॥

कीड़े से न खाये हुए पत्राक्ष तथा सरल काष्ठ श्रेष्ठ है । जलदोषरहित दालचीनी और तेजपात श्रेष्ठ है ॥ ३२२ ॥

वालक

सूक्ष्ममूलो वरः केशोऽनूतनः सर-  
सस्तथा । नूतनः स्थूलमूलश्च वर्जनीयः  
प्रयत्नतः ॥ ३२३ ॥

पतली जड़वाली, पुरानी तथा सरल सुगन्ध  
वाला श्रेष्ठ है । नवीन और मोटी जड़वाली  
निन्दित है ॥ ३२३ ॥

ककाल

ककालकं शुभं विद्धि वेष्टितं सूक्ष्मया  
त्वचा । स्निग्धं गुरुकमत्यन्तमन्यथातीव्र  
निन्दितम् ॥ ३२४ ॥

पतली त्वचा से वेष्टित, स्निग्ध तथा गुरु  
( भारी ) शीतलचीनी को उत्तम और  
विपरीत लक्षणवाली को निकृष्ट समझना  
चाहिए ॥ ३२४ ॥

वच

अत्युग्रापि सरागापि ग्रन्थिला वापि  
सम्मिता । अन्तःशुचित्तमात्रेण वचा  
ग्राह्यत्रमुज्ज्वति ॥ ३२५ ॥

उम्र, कुड़ लालवर्ण तथा अत्यन्त गाढवाली  
वच उत्तम है । परन्तु इन लक्षणों के होते हुए  
भी यदि इसका भीतरी भाग शुद्ध वर्ण का हो  
तो वह वच कर्म में निन्दित है ॥ ३२५ ॥

द्विमुस्त और चोरपुष्पी

द्विमुस्तं नूतनं पुष्टं गन्धाढ्यं परमं  
त्रिदुः । चोरपुष्पीं नवां श्यामामामनन्ति  
मनीषिणः ॥ ३२६ ॥

नवीन, पुष्ट तथा उत्तम गन्धवाले मोथा  
और नागरमोथा श्रेष्ठ कहे जाते हैं । चोर-  
हुली नवीन और श्यामवर्ण की उत्तम  
होती है ॥ ३२६ ॥

चम्पककलिका और नागकेसर

ग्राह्या प्रशोष्य सम्यक् चम्पककलिका  
प्रदीपकलिकेव । कीटादिकेन रहितमभि-  
नवमिह केशरं ग्राह्यम् ॥ ३२७ ॥

दीपक की शिरा के समान आकृतिवाली  
चम्पक की कली को सुखाकर ग्रहण करना  
चाहिए । तथा कीटादि से रहित नागकेसर  
ग्रहण करनी चाहिये ॥ ३२७ ॥

मांसी और देवदारु

ससूक्ष्मकेशरा स्निग्धा मांसी पिङ्ग-  
जटाकृतिः । सुगन्धि लघु रूक्षश्च सुरदारु  
प्रकीर्तितम् ॥ ३२८ ॥

पतले केशरवाली, चिकनी, पिङ्गल वर्ण  
की जटा के समान आकारवाली जटामांसी  
ग्रहण करनी चाहिए । इसी प्रकार सुगन्धित,  
लघु और रूक्ष देवदारु ग्रहण करना  
चाहिए ॥ ३२८ ॥

रक्तचन्दन ।

आकृष्णमुत्तमं नूनं रक्तश्लेष्म  
मध्यमम् । आरक्तमधमं विद्धि रक्त-  
चन्दनकं त्रिधा ॥ ३२९ ॥

रक्तचन्दन तीन प्रकार का है—जिसमें कुछ  
कृष्णवर्णवाले को सर्वोत्तम, लालरंगवाले को  
मध्यम और थोड़े रक्तवर्णवाले को अधम जानना  
चाहिए ॥ ३२९ ॥

टिप्पणी—किन्तु इसमें सुगन्ध होना आवश्यक  
है सुगन्धहीन प्राश्न नहीं है ।

हरिद्रा ।

हरिद्रा शस्यते स्थूला छेदे या  
कुट्टकुमच्छविः ।

जो हल्दी स्थूल हो तथा तोड़ने पर भीतर से  
केसर के रंग की हो वह श्रेष्ठ है ।

अधियासनपुष्प ।

केतकी यथिका जाती चम्पकश्वाति-

मुक्ककः । कदम्बो मल्लिका नागपुष्पञ्च  
कुटजं तथा ॥ ३३० ॥ पाटलावरुणौ  
सौरीपुष्पैरेभिः समाचरेत् ॥ वासनं कुमुमै-  
रन्यैस्तथान्यैरतिशोभनैः ॥ ३३१ ॥

केवड़ा, जूही, जाती, चमेली, माधवी,  
कदम्ब, मल्लिका, नागकेसर, कुडा के पुष्प,  
पाटल के फूल, बरना, प्याल तथा अन्यान्य  
श्रुति सुगन्धित पुष्पों से अधिवासन करना  
चाहिए ॥ ३३०-३३१ ॥

कालानमक, सैन्धवनमक, मैन्शिल और  
स्वर्णमाक्षिक ।

सौवर्चलं तु केशाभं सैन्धवं स्फटि-  
कप्रभम् । जवाकुसुमसङ्काशा मनोहा  
चोत्तमा भता । सुवर्णवच्च विज्ञेयं स्वर्ण-  
माक्षिकमुत्तमम् ॥ ३३२ ॥

बालों के समाग काला सौचलनमक,  
स्फटिक के सदृश स्वच्छ सेंधानमक, गुडहल  
के फूल के सदृश लालरंग की मैन्शिल तथा  
सोने के सदृश चमकवाला स्वर्णमाक्षिक उत्तम  
होता है ॥ ३३२ ॥

शिलाजतु ।

श्रेष्ठं शिलाजतु ज्ञेयं यत्तु त्तिप्तं न  
शीर्यते । तोयपूर्णं यदा पात्रे प्रतान्येव  
विरुध्यते ॥ ३३३ ॥ भाद्रक्यं कीर्त्तितं  
येषां विरुद्धत्वं न कीर्त्तितम् । तेषां तद्विप-  
रीतत्वाद् विरुद्धत्वञ्च लक्षयेत् ॥ एते-  
पामपरेषां च नवता प्रवरो गुग्गः ॥ ३३४ ॥

जलपूर्ण पात्र में शिलाजीत को ढालने से  
यदि यह टुट-भिन्न न हो, किन्तु तन्तु छोड़े,  
तो यह शिलाजीत प्रायः है तथा इसमें विपरीत  
लक्षणवाला अघात है ॥ ३३३ ॥

जहाँ-जहाँ प्राणाय यताया गया है और  
अप्राण नहीं यताया गया है, उन्हें उन गुणों  
से विपरीत होने पर अघात समझना चाहिए ।

इन सब द्रव्यों में और अन्य द्रव्यों में नवीनता  
एक प्रधान गुण है ॥ ३३४ ॥

महासुगन्धितैल और लक्ष्मीविलासतैल ।

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरलव्याघ्रीवचाचे-  
लकत्रकूपत्रैः सह गन्धपत्रकशटीपथ्या-  
क्षधात्रीघनैः । एतैः शोधितसंस्कृतैः  
पलयुगेत्याख्यातया संख्यया तैलगस्थ-  
मवस्थितैः स्थिरमतितः कल्कैः पचेद्वा-  
न्धिकैः ॥ ३३५ ॥ मांसीमुरादमनचम्पक-  
सुन्दरीत्वग्रन्थाम्बुरुड्मरुवकैर्द्विपलैःसपृकैः।  
श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकामिपीणां प्रत्ये-  
कतः पलमुपाद्य पुनः पचेत्तु ॥ ३३६ ॥  
एलालवङ्गचलचन्दनजातिपूतिककोलका-  
गुरुलतायुष्टयैः पलाद्धैः । कस्तूरिकान्न-  
सहितामलदीप्तियुक्तैः पक्त्वा च मन्दशि-  
खिनैव महासुगन्धम् ॥ ३३७ ॥ पञ्च-  
द्विकेन चाद्धेन मदात्कपूर्वमिष्यते । प्रागुक्तौ  
शुद्धि संस्कारौ गन्धानामिद्वैतैः पुनः । कपूर्-  
मदयोरद्धं पत्रकल्कादिहेष्यते ॥ ३३८ ॥  
द्विगुणैर्लक्ष्मीविलासः स्यादयं तु तैल-  
सत्तमः । पञ्चपत्राम्बुना चाद्यो द्वितीयो  
गन्धवारिणा ॥ ३३९ ॥ तृतीयोऽपि च  
तेनैव पाको वा धूपिताम्बुना । तैलयुग्ममिदं  
तूर्णं विकारान् वातसम्भवान् । क्षपयेज्ज-  
नयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधां धृतिं धियम् ॥ ३४० ॥  
पञ्चद्विकेनेतिपञ्चधा विभक्तस्य कस्तूरी-

१-पञ्चपत्रैःसुगन्धा एव मन्वन् पंचपत्रावितम् ।

द्विपलैः गन्धपत्राद्यं पत्रकैः तदुच्यते ॥

मैत्र सिद्ध हो जाने पर ढालने के बाद गरम  
गरम में ही मुगग्ध बदाने के लिये चरपी तरह में  
पिमा किंचित् तैल भिन्ना जो कज्जल दाजा जाता  
है उसे पत्रकक कहते हैं ।

कस्यैको भागो रक्त्रिद्वयाधिकत्रिमापको भवति तथा मानेन कपूरस्य द्वौ भागौ किंवा अर्द्धेन कस्तूरीकर्पात्कपूरस्याष्टौ मापकाः ।

मजीठ चोरपुष्पी ( चोरक ), देवदार, चीड़, व्याघ्री ( छोटी कटेरी, गन्धद्रव्य विशेष ) बच, चेलक ( सुपारी के बृह की छाल ) दालचीनी, तेजपात, गन्धतृण, कचूर, हरीतकी, बहेडा, आँवला और नागरमोथा प्रत्येक आठ २ तोला, इन गन्धद्रव्यों के कलक द्वारा प्रथम १२८ तोला तिलतैल को पकाये । तदनन्तर जटामांसी, मुरामांसी, दौना, चम्पक-पुष्प, प्रियङ्गु, दालचीनी, गण्डिवन, सुगन्ध-बाला, कूट, मरुवा के पुष्प और पिण्डीशाक आठ २ तोले । गन्धाविरोजा, कुंदुरू, नग्री, नलिका ( यवारी ) और सौंरु चार २ तोले, इन कुल द्रव्यों के कलक द्वारा द्वितीय पाक करे । इलायची, लौंग, शिलारस, श्वेत चन्दन, जाय-फल या चमेली के फूल, खटाशी ( मुरकविलाई-शरद ) शीतलचीनी, अगर, लताकस्तूरी और केसर दो-दो तोला, कस्तूरी १ तोला, कपूर ६ माशा एकत्र कर, इन कुल द्रव्यों के कलक के साथ मन्द-मन्द अग्नि से तृतीय पाक करना चाहिए । पूर्वोक्त तैल के समान इस तैल में कहे गये गन्धद्रव्यों का शोधन और सस्कार कर लेना चाहिए । नियमानुसार गतिवार कलकपाक के लिये चौगुना जल ढाला जाता है । कस्तूरी और कपूर मिले हुए पत्रकलक से आधे लिये जाते हैं । यह ध्यान रहे कि प्रथम कलकपाक विल्वादि पञ्चपल्लव के साथ द्वारा करना चाहिए । गन्धाम्बु द्वारा द्वितीय कलकपाक करे । अगर से धूपित किये हुए गन्धाम्बु द्वारा तृतीय कलक-पाक करे । इस तैल का नाम महासुगन्धि तैल है । यह तैल सब प्रकार के वातरोगों को नष्ट कर शरीर को पुष्ट करता है । कान्ति, मेधा, धैर्य और बुद्धि को बढ़ाता है ।

पूर्वोक्त समस्त कल्को को द्विगुणित परिमाण में ढालकर जो तैल सिद्ध किया जाता है उस को लक्ष्मीविलास तैल कहते हैं महासुगन्धि

तैल के जो गुण हैं वे ही गुण अधिक रूप में इस तैल के हैं ॥ ३३५-३४० ॥

पञ्चपल्लव ।

शोधनश्चापि संस्कारो विशेषश्चात्र कथ्यते ।  
आम्रजम्बुकपित्थानां बीजपूरकविल्वयोः ॥  
गन्धकर्माणि सर्वत्रपत्राणि पञ्चपल्लवम् ३४१

अब यहाँ पर तैल में कहे हुए गन्धद्रव्यों का शोधन और सस्कार कहा जायगा । आम, जामुन, केय, बिचौरा, जेन, इन पाँचों पत्तों को पञ्चपल्लव कहते हैं । गन्धकर्म में सर्वत्र पञ्चपल्लव शब्द से इन्हीं का ग्रहण करना चाहिए ॥ ३४१ ॥

नखीशुद्धि ।

चण्डीगोमयतोयेन यदि वा तिन्तिडी-  
दलैः । नखं संकाथयेदेभिरलाभे मृगमयेन  
तु ॥ ३४२ ॥ पुनरुद्धृत्य प्रक्षाल्य भर्ज-  
यित्वा निपेचयेत् । गुडाभयाम्बुना ह्वेवं  
शुद्धचे नात्र संशयः ॥ ३४३ ॥

चण्डीगोमयेत्यादि-हयखुरोत्पलपत्र-  
करिकर्णनखीत्रयं ग्राह्यं तत्रोत्तमा सदाना  
मांसला स्निग्धा । महिषीगोमयजले  
तत्स्वेदनीया । महिषीगोमयजलाभावे  
तिन्तिडीजलेन वा । ततो मृगमये पात्रे  
वालुकायां भर्जयित्वा गुडहरीतकीजलेन  
सेचनीयम्, ततो रौद्रे शोषयित्वा सित-  
चन्दनागुरुकल्केन कुंकुमतोलकद्वय-  
मितेन कुष्ठांमलकीदेवदारुणां प्रत्येकं  
द्विपलपरिमितेन कल्केन यत्नेन पुनः  
पुनर्मर्दयेत् । ततो गन्धोदकेन प्रक्षाल्य  
पुनः पुनरातपे शोषयेत् । ततो मल्लिका-  
मालत्यादिकुसुमेरामृगमयपात्रे अधः ऊर्ध्वं  
पुष्पं दत्त्वा संस्थाप्य पुनरुद्धृत्य ग्राह्यं  
तिसृणां प्रत्येकम् । इति नखीशुद्धिः । एवम्  
प्रकारेणैव समुद्रार्कटस्य शुद्धस्य त्रिपलम् ।



नखी पाँच प्रकार की है। उनमें से १-घोड़े के मुम के समान, २-रुमल के पत्ते के समान, ३-हाथी के कान के समान, यह तीनों प्रहण करने के योग्य हैं। इनमें भी जो मोटी तथा चिकनी है वह बहुत श्रेष्ठ है। इन्हें प्रथम भैंस के गोबर के रस में अथवा हमती के जल में स्वेदन करना चाहिए, परचात् एक मिट्टी के पात्र में बालू में भूनकर गुड़ मिलाकर हरड के काथ में सेवन करना चाहिए। इसके बाद धूप में सुखाकर सकेद चन्दन, अमर तथा कंसर २ तोला एव कूट, आँवला, देवदारु, हरएक ८ तोला, इनके कक से नखी को बारबार मले। इसके बाद गन्धोदक से धोकर धूप में सुखा ले और एक मिट्टी के बर्तन में ऊपर नीचे मल्लिका तथा मालती आदि के सुगन्धित फूल रखकर बीच में इसे रख दें, परचात् इसे निकाल तीनों को अलग-अलग ऊपर कहे हुए तैल के लिये प्रहण करे। इसी प्रकार समुद्रकण्ट (सुमद्री केकड़ों) का भी शोधन कर १२ तोला लेना चाहिए ॥ ३४२-३४३ ॥

### हरिद्रावचाशुद्धि ।

गोमूत्रे चालम्बुपके पक्त्वा पञ्चदलोदके ।  
पुनः सुरभितोयेन वाष्पस्वेदेन स्वेदयेत् ॥  
गन्धोग्रा शुद्धयेते हिवं रजनी च विशेषतः ॥

गोमूत्र इत्यादि-पर्वरहिता । ग्रन्थि-  
प्रचुरतरा वरा वचा ग्राह्या । जर्जरीकृत्य  
गोमूत्रे मुण्डरीसहितजले च पक्त्वा  
पुनरुद्धृत्य पञ्चपल्लवजलेन पचेत् ।  
उद्धृत्य संशोष्य गन्धोदकेन प्रक्षाल्य  
शोषयित्वा तदनु गन्धोदकहरिद्रिकायां  
वचां प्रक्षिप्य पिपाय अधो ज्वाला दात-  
व्य । इति वाष्पस्वेदः । ततश्च गोमूत्रे क्षण-  
मेकं प्रक्षिप्य शोभाञ्जनवल्लकाथेन  
प्रक्षाल्य गन्धोदकेन क्षालयेत् । ततो  
मह्यरुमल्लिकादिकुमुमरिधिवामयेत् ततः  
संचूर्ण्य सर्जरमकुन्दरुनखिकादि-

भिर्भूषयित्वा ग्राह्या । इति वचाशुद्धिः ।  
एवं हरिद्राया अपि । अस्या विशेषशुद्धिः ।  
मातुलुङ्गरसकाञ्जिकाभ्यां दङ्गणचारतो-  
लकेन उत्स्वेदनीया यावद्रसम् तदनु-  
शोषणीयं ततो निर्मलतिलतैलचतुः-  
पलानि गन्धोदकेन मृद्गग्निना दिनत्रयं  
उत्स्वेदयेत् । हरिद्रां धूपयित्वा धूपित-  
भाण्डे दिनत्रयं स्थापयेत् एवं कुङ्कुमवर्णा  
भवेत् हरिद्रा ।

जिममें परं न हों और गाँठें बहुत-सी हों  
ऐसी वच का प्रहण करना चाहिए। वच को कूट-  
कर गोमूत्र में तथा गोरखमुंडीयुद्ध जल में  
पकाकर पुनः इसका पञ्चपल्लव के वचाथ से  
पाक करें और सुखाकर गन्धोदक से धोकर  
सुखा लें। इसके बाद एक हाँडी में गन्धोदक  
ढाल दूसरी सड़िद्र हाँडी में वच को ढाल दें  
और हाँडी के मुख पर रख नीचे से अग्नि दें।  
इसके बाद वच गोमूत्र में रख सहजने की  
छाल के वचाथ से धोकर गन्धोदक से धोवें और  
मरुआ तथा मल्लिका आदि फूलों से सुगन्धित  
करें। अन्त में वच का चूर्ण कर शाल, कुन्दरू  
तथा नखी आदि के धूप से धूपित करके प्रहण  
करें। इसी प्रकार हरदी को शुद्ध करें। हरदी की  
विशेष शुद्धि—१ तोले मुहागे को घिजौरि के  
रस तथा काञ्जिक में मिलायें और इसके द्वारा  
हरदी का उत्स्वेदन करें और सुखा लें। इसके  
बाद १६ तोला शुद्ध तिल के तैल को गन्धोदक  
से मिलाकर तीन दिन तक हरदी का स्वेदन  
कर, तदनंतर हरदी को धूपित कर तीन दिन  
तक धूपित पात्र में रखें। इस प्रकार हरदी  
केपरिपा रंग की हो जाती है ॥ ३४४ ॥

### मुशतकशुद्धि ।

मुस्तकान्तुमनाकुञ्जुणगं काञ्जिके त्रिदि-  
नोपितम् । पञ्चपल्लवतोयेन क्षिन्नमातपगो-  
पितम् ॥ ३४५ ॥ गुडाम्बुना तिच्यमानं

भर्जयेच्चूर्णयेत्ततः । आञ्जशोभाञ्जनजलै-  
र्भावयेच्चेति शुद्धयति ॥ ३४६ ॥

मुस्तकमित्यादि-मनाक् खण्डखण्डं  
कृत्वा काञ्जिके दिनत्रयं संस्थाप्य, प्रज्ञा-  
ल्य पञ्चपल्लवतोयेन स्वेदयेत् । अथातते  
संशोष्य खोलकेभृष्टा चूर्णयेत् । ततश्छाग-  
मूत्रशोभाञ्जनजलेन भावयेत् । तदनु  
चम्पकादिकुमुमैरधिवासयेत् । ततः परचाद्  
धूपयित्वा संचूर्णयति त्रिपलं ग्राह्यमिति  
मुस्तकशुद्धिः ।

मोथे के छोटे-छोटे टुकड़े कर काँजी में तीन  
दिन रखकर पानी से धो लें और पञ्चपल्लव  
ववाय से स्वेदन करें । स्वेदन के अनन्तर गुड  
मिले हुए जल से सेचन कर धूप में सुखाकर  
भाड में भूनकर चूर्णित कर लें । तदनन्तर बकरी  
के मूत्र एवं सहिजने के क्वाथ से भावना दें और  
अन्त में चमेली आदि फूलों से इसे सुगन्धित  
कर धूपित करें, इसके बाद चूर्ण कर १२ तोला  
की मात्रा में लें ॥ ३४६-३४६ ॥

शैलजशुद्धि ।

काञ्जिके कथितं शैलं भ्रष्टा पथ्या  
गुडाम्बुना । सिञ्चेदेवं ततः पुष्पैर्विधैरधि-  
वासयेत् ॥ ३४७ ॥

शैलजं काञ्जिके पचेत् । ततः प्रज्ञाल्य  
पञ्चपल्लवदलेन वाप्यस्वेदनमित्युपदेशः ।  
भृष्टहरीतकीजलेनाभिषिच्य सुगन्धि-  
पुष्पैरधिवासयेत् ।

अथमा-काञ्जिके कथितं शैलं छाग-  
मूत्रेण भावितम् । शिशुतोयेन चाँद्रेण  
मर्दितं धूपयेत्ततः । धूपितं लघुसर्जाभ्यां  
वासितं कुमुमैर्नर्गः ॥ ३४८ ॥

शैलजं काञ्जिके निक्षिप्य पचेत् तदनु  
प्रज्ञाल्य छागमूत्रेण भावयेत् । ततः

शोभाञ्जनकाथे । ततो मधुना मर्दयेत् ।  
ततोऽगुरुधूमकाभ्यां धूपयित्वा कुसुमैरधि-  
वासयेत् ॥ इति शैलजशुद्धिः ।

शैलज ( मूरछरीला ) को काँजी में पचाकर  
जल से धोवें और पञ्चपल्लव काथ से वाप्य  
स्वेदन करें । इसके बाद गुड और भुनी हरद के  
जल से सेचन कर सुगन्धित फूलों द्वारा इसे  
सुगन्धित करें । अथवा-पहिले काँजी में शैलज  
को अच्छी प्रकार उबालें, परचात् धोकर बकरी  
के दूध से भावना दें । भावना देने के बाद क्रमशः  
सहिजने के काथ से तथा शहद से घोटें । तद-  
नन्तर अगर तथा राल से धूपन कर इसे फूलों  
द्वारा सुगन्धित करें ॥ ३४७-३४८ ॥

खट्वाशी शुद्धि ।

यथालाभमपामार्गस्तुद्वादित्तरस्लेपितम् ।  
वाप्यस्वेदेन संस्वेद्य पूति निर्लोमतां  
नयेत् ॥ ३४९ ॥ दोलापाकं पचेत्परचात्  
पञ्चपल्लववारिणि । खलः साधु मिवोत्पीड्य  
ततोनिःस्नेहतां नयेत् ॥ ३५० ॥ आञ्ज-  
शोभाञ्जनजलैर्भावयेच्च पुनः पुनः । शिशु-  
मूले च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् । पचेदेवं  
विशुद्धिरच मृगनाभिसमो भवेत् ॥ ३५१ ॥

यथालाभमित्यादि-अपामार्गस्वप्ता-  
स्तुहीत्तारैः खट्वाशी लिप्त्वा सजल-  
स्थाल्यभ्यन्तरे ( काष्ठांशुपरिपिष्टक )  
पक्त्वा निर्लोमतां नयेत् । तदनु वस्त्रेण  
पट्टोलं बद्ध्वा पञ्चपल्लवतोयेन दोला-  
वत्पचेत् । ततो गाढं निष्पीड्य निःस्नेहतां  
नयेत् । ततश्छागमूत्रेण शोभाञ्जनकाथेन  
बहुधा भावयेत् । इति खट्वाशीशुद्धिः ।

अपामार्ग, पाटा तथा मूहर के चार से  
खट्वाशी पर लेप करके एक हँडिया में जल भर  
कर वाप्यस्वेदन कर खट्वाशी के धालों को  
उतार लें । परचात् इसे रूपदे की पोटी में बाँध

कर पञ्चपल्लवकाय से शीलायंत्र में पकावे । पकाकर इसे अच्छी प्रकार निचोड़कर चिकनाई दूर कर ले । अन्त में बकरी के मूत्र तथा संहिजने के काथ से स्नान चार भावना दे । इसके बाद संहिजने की जड़ तथा केचडे के फूलों का पाक करना चाहिए । इस प्रकार यह कस्तूरी के समान हो जाती है ॥ ३४६-३५१ ॥

शिलारस, कुंकुम, अग्रर, ग्रन्थिपर्ण और

मधुरी की शुद्धि ।

तुरुष्कं मधुना भाव्यं कारमीरश्चापि सर्पिषा । रुधिरैणागुरुं प्राङ्गैर्गोमूत्रैर्ग्रन्थिपर्णकम् ॥ मधूदकेन मधुरीं पत्रकं तण्डुलाम्बुना ॥ ३५२ ॥

तुरुष्कमित्यादि-सिलहकं प्रज्ञाल्य मधुना वारत्रयं भावयेत् । ततो गन्धोदकेन प्रज्ञालयेत् । ततः शोधितधूपेन धूपयेत् । चम्पकादिकुसुमैरधिवासयेत्-इति शिलारसशोधनम् ।

कुंकुमं गन्धोदकेन प्रज्ञाल्य संशोष्य दुग्धघृतभाण्डे कृत्वा तत्र कुंकुमं प्रज्ञाल्य वस्त्रेण भाण्डमुखं रुद्ध्वा वाष्पस्वेदेन स्वेदयित्वा गन्धाम्बुना प्रज्ञाल्य पूर्वोक्त-कुसुमैरधिवासयेत् ॥ इतिकुंकुमशुद्धिः ।

अगुरुं गन्धोदकेन प्रज्ञालयातपे शोषणीयम् । ततो विशुद्धकुंकुमजलेनास्नाव्य शोषणीयम् । ततो गन्धोदकेन वारत्रयं प्रज्ञाल्य संशोष्य त्रिपलं ब्राह्मम् । इत्यगुरु-शोधनम् ।

ग्रन्थिवर्णं गामूत्रे विपाच्य प्रज्ञालयेत् । पुनर्गन्धोदकेन प्रज्ञाल्य संगोष्य कुसुमैरधिवासयेत् । इति ग्रन्थिपर्णशुद्धिः ।

मधुरीं मधुमिधिनजलं प्रज्ञाल्य

पुनर्मधूदकेन वारत्रयं भावयेत् । पुनः संशोष्य पुष्पैरधिवासयेत् । तण्डुलाम्बुना मधुरीवत्तेजपत्रशोधनम् ।

शिलारस को धोकर शहद से तीन चार भावना दें । इसके बाद गन्धोदक से धोकर धूपित और चमेली आदि के फूलों से सुगन्धित करें ।

केसर को गन्धोदक से धोकर सुखा लें और दूध तथा घृतयुक्त पात्र में इसे रख वहाँ धोये और बख द्वारा पात्र के मुख को बन्द कर भाप से स्वेदन करें, परचात् गन्धोदक से धोकर चमेली आदि के फूलों से सुगन्धित करें ।

अगर को गन्धोदक से धोकर धूप में सुखावें । तत्पश्चात् शुद्ध केसर के जल में डुबो करके पुनः सुखावें और गन्धोदक से तीन चार धोकर पहले की तरह सुखा लें । यह अगर-शोधन-विधि है ।

गठिवन को गोमूत्र में पकाकर गन्धोदक से धोवें और धूप में सुखावें । चमेली आदि फूलों से इसे सुगन्धित करें । यह गठिवन-शोधनविधि है ।

सौंफ को शहदयुक्त जल से धोकर पुनः शहदयुक्त जल से तीन चार भावना दें और सुखाकर फूलों परा सुगन्धित करें । इसी प्रकार तेजपात को तण्डुलोदक से शुद्ध करना चाहिए ॥ ३५२ ॥

कुष्ठशुद्धिः ।

कुष्ठं पञ्चदलेस्त्रिन्न मूर्धाकुन्दुरु धूपितम् । वासितं कुसुमैरोभिः शुद्धिमाप्नोति निर्मलाम् ॥ ३५३ ॥

पञ्चपल्लवकार्थेन कुष्ठं पक्त्वा परिशोष्य मूर्धाकुन्दुरुभ्यां सन्धूप्य जात्यादिकुसुमैरधिवासयेत् । इति कुष्ठशोधनम् ।

पञ्चपल्लव काथ में कूट का स्वेदन कर गुणा लें और मूर्धा की जड़ तथा कुन्दर के पूव में धूपित कर चमेली आदि के पूवों से सुगन्धित करना चाहिए ॥ ३५३ ॥

गन्धतृणशोधन ।

ध्यामकं चूर्णितं शुद्धिं शर्कराजल-  
संप्लुतम् । घृतगुग्गुलधूपेन याति चन्दन-  
वासितम् ॥ ३५४ ॥

गन्धतृणं चूर्णयित्वा शर्करामिश्रित-  
जलेन प्रक्षाल्य परिशोष्य श्रीखण्डचन्दन-  
पङ्केन मर्दयेत् । इति गन्धतृणशोधनम् ।

गन्धतृण का चूर्ण कर शर्करोदक ( शरबत )  
से धोकर सुखावें और सफेद चन्दन को जल में  
घिस उससे मलना चाहिए ॥ ३५४ ॥

कुन्दुरुच्युद्धि ।

कुन्दुरुचूर्णितोऽत्यर्थं कुंकुमेन च  
मर्दितः । धूपितो गुडसर्जाभ्यां वासितः  
शुद्धचतेतराम् ॥ ३५५ ॥

कुन्दुरुं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य शोपयित्वा  
कुंकुमपङ्केन मिश्रयित्वा गाढं मर्दयेत् ।  
अथ गुडसर्जाभ्यां धूपयित्वा सुगन्धि-  
कुसुमैरधिवासयेत् । इति कुन्दुरुशोधनम् ।

कुन्दुरु को गन्धोदक से धोकर सुखावें,  
पश्चात् केसर को जल में पीसकर उसके  
साथ इसे मिलाकर अच्छी तरह घोटें । तद-  
नन्तर गुड़ तथा राल से धूपित और फूलों से  
सुगन्धित करें ॥ ३५५ ॥

रेणुकाशोधन ।

रेणुको भावितश्चादौ मधुना तक्र-  
भावितः । आतपे शोपयित्वैवं पुष्पैरप्यधि-  
वासयेत् ॥ ३५६ ॥

रेणुकं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य मधूदकेन  
पुनर्भाव्यम् । आतपे संशोष्य गन्धकुसुमै-  
रधिवासयेत् । इति रेणुकशोधनम् ।

सम्माल के बीजों को पहिले गन्धोदक से  
धोकर शहद तथा दाल से क्रमशः भावना देनी

चाहिये । भावना के बाद फूलों से सुगन्धित  
करें इस प्रकार रेणुका शुद्ध हो जाती है ॥ ३५६ ॥

चोरपुष्पीशोधन ।

त्रौद्रेण भावितं चोरपुष्पमातपशो-  
पितम् । धूपितं गुडसर्जाभ्यां वासितं शुध्यते  
ध्रुवम् ॥ ३५७ ॥

चोरपुष्पं मधुना संनीयातपेशोपयित्वा  
गुडधूनकाभ्यां धूपयित्वा सुगन्धिकुसुमै-  
रधिवासयेत् । इति चोरपुष्पीशोधनम् ।

चोरहुली को शहद से भावना देकर धूप में  
सुखा गुड़ तथा राल से धूपित और फूलों से  
सुगन्धित करें । ३५७ ॥

नवनीतखोटि शोधन ।

नवनीतखोटिं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य  
संशोष्य शर्करोदकेन पुनर्भाव्यम् । प्रक्षाल्य  
संशोष्य सञ्चूस्य घृतगुग्गुलधूपेन धूप-  
यित्वा जात्यादिकुसुमचन्दनाभ्यां वासयेत् ।

नवनीतखोटि ( गन्धाचिरोजा ) को गन्धोदक  
से धो सुखाकर शरबत से भावना दें और पुनः  
गन्धोदक से धोकर सुखा लें । पश्चात् इसे  
चूर्णित कर घी तथा गुग्गुलु के धूप से धूपित  
और चमेली आदि के फूल तथा चन्दन से  
सुगन्धित करें ।

सामान्यशोधन ।

सर्वेषामेव सुगन्धिद्रव्याणां गन्धवा-  
रिणा प्रक्षाल्यातपे संशोष्य भर्जनं सेचनं  
गुडोदकेन ।

सामान्यतः सब सुगन्धित द्रव्यों को गन्धो-  
दक से धोकर धूप में सुखाना चाहिए । तत्पश्चात्  
क्रिञ्चित् भूनकर गुडोदक ( गुड के शरबत )  
से द्रव्य को सिञ्चित करें ।

शोधितं शोधितं द्रव्यं न कुर्यादिकपात्रतः ।  
यस्माद्दि काकसंसर्गात् कृष्णो भवति  
कोकिलः ॥ ३५८ ॥

शुद्ध किये हुए अलग-अलग द्रव्यों को इकट्ठा कर एक पात्र में न रखें, क्योंकि कौए के संग में कोयल भी काली हो जाती है, अर्थात् हीन द्रव्यों के संग से उत्तम द्रव्य भी दुर्गुणयुक्त हो जाते हैं ॥ ३५८ ॥

नकुलाद्यघृत ।

नकुलस्य च मांसस्य पचेत् प्रस्थं जलाढके । तत्समं दशमूलञ्च पक्वं मापत्र-  
लान्वितम् ॥ ३५९ ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तत्र  
चतुर्भागावशेषिते । शतावरीरसप्रस्थं  
गव्यदुग्धञ्च तत्समम् ॥ ३६० ॥ अष्टौ  
वर्गाश्च काकार्यौ जीवन्ती मधुयष्टिका ।  
एलात्वचञ्च पत्रञ्च त्रिकटु त्रिफला तथा ॥  
३६१ ॥ मुस्तकं नागजिह्वा च कर्पं कर्पं  
प्रदापयेत् । सर्ववातविकारेषु अपस्मारे  
विशेषतः ॥ ३६२ ॥ पक्षाघाते महो-  
न्मादे चाध्माने कोष्ठनिग्रहे । हस्तकम्पे  
शिरःकम्पे वाधिर्ये मूकमिन्मिने ॥ ३६३ ॥  
ऊर्ध्वजत्रुगते वाते जङ्घापाशर्वादिसंश्रिते ।  
नकुलाद्यमिदं नाम्ना ऊर्ध्वजत्रुगदाप-  
हम् ॥ ३६४ ॥

घृत १२८ तोला । पाथार्थं नेवले का मांस ६४ तोला, पाथार्थं जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १०८ तोला दशमूल ६४ तोला जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला । उरद ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला । शरैटी ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला शेष १२८ तोला । इस प्रकार चारों को दो शतावरी पा रस १२८ तोला, दुग्ध १२८ तोला मिलाकर बरधार्थं अष्टयुग्मं ( जीषक, अष्टपत्रक, काकोली, शीरकाकोली, अदि, वृदि, मेदा, महामेदा ), काकोली, शीरकाकोली, जीषन्ती, मुलेठी, इलायची, दालचीनी, तेजपात, त्रिकटु, त्रिफला, भागमरीचा और अनन्नामूल प्रायेण एक एक तोला लेकर धूप शिख करें । इन घृत का वान

करने से अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, अध्मान, मलबद्धता, हस्तकम्प, शिरःकम्प, वाधिरता, मूकत्व, अस्पष्टभाषण, हँसुली के ऊपर के रोग तथा जॉय, पसुली आदि में स्थित वात रोग और नाना प्रकार की घातज पीड़ाएँ शान्त होती हैं ॥ ३५९-३६४ ॥ मात्रा ६माशा से १ तोला ॥

छागलाद्यघृत ।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तभृङ्गनखा-  
दिकम् । पञ्चमूलीद्वयञ्चैव जलद्रोणे विपा-  
चयेत् ॥ ३६५ ॥ तेन पादावशेषेण घृत-  
प्रस्थं विपाचयेत् । जीवनीयैः सयष्ट्यहैः  
क्षीरञ्चैव शतावरी ॥ ३६६ ॥ छागलाद्य-  
मिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् । अर्दिते  
कर्णशूले च वाधिर्ये मूकमिन्मिने ॥ ३६७ ॥  
जङ्गमद्वयपङ्गुनां खञ्जे घृष्टसिकुञ्जयोः ।  
अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत् प्रशस्यते ॥  
३६८ ॥ पृथगर्द्धतुलां पचमूलद्वन्द्व-  
जमांसयोः । निष्काश्य सलिलद्रोणे  
काथे पादावशेषिते ॥ ३६९ ॥

घृतारम्भ में मन्त्र ।

ॐ कालि ब्रजेश्वरि अमुकस्य फल-  
सिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा । स्नाप-  
यित्वा छागमादौ मधु दत्त्वा ललाटके ।  
उद्दङ्मुखः प्राङ्मुखो वा भिषगेनमुपाल-  
भेत् ॥ ३७० ॥

छागमारणमन्त्र ।

ॐ हां ॐ गां गणपतये स्वाहा ॥ ३७१ ॥  
अत्र यष्टिमधुभागद्वयमिति शिखादासः ।  
गाय का घृत १२८ तोला, मींग क्षीर नल  
आदि से रहित बकरे का मांस २ ॥ सेर, दशमूल  
भिधित २ ॥ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला,  
शेष ६ सेर ३२ तोला । दूध १०८ तोला,  
शतावरी का रस १२८ तोला । कर्षार्थं—जोषक,

ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, चीरका-  
कोली, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, जीवन्ती और  
मुलेठी मिलाकर ६४ तोला लेकर फिर विधि-  
पूर्वक घृत सिद्ध करें। इस छागलाघ घृत  
का पान करने से अर्दित, कर्णशूल, बधिरता,  
गूँगापन, अस्पष्टभाषण, जड़ता, पङ्गुता,  
खजता, गृध्रसी, कुञ्जत्व, अपतानक और  
अपतन्त्रक आदि वातरोग नष्ट हाते हैं। इस  
घृत के कल्कद्रव्यों में मुलेठी दो भाग लेनी  
चाहिए। यह शिवदास का मत है।

इस घृत के पान के समय ३२ कालि' इत्यादि  
मूलोक्त मन्त्र पढ़कर बकरे को स्नान कराकर  
उसके मस्तक पर शहद लगाना चाहिए।  
पश्चात् उत्तरामिमुत्त घैय ३२ हीं इत्यादि मन्त्र  
से बकरे को मारे ॥ ३६२-३७१ ॥

बृहच्छागलाघघृत ।

छागमांसतुलां शृङ्ग दशमूल्याः पलं  
शतम् । अरजगन्धापलशतं वाट्यालकशतं  
तथा ॥ ३७२ ॥ घृताढकं पचेत्तोयैश्चतु-  
र्भागावशेषितैः । क्षीरं स्नेहसमं दद्यात्  
शतावयवा रसं तथा ॥ ३७३ ॥ ताम्रपात्रे  
दृढे चैव शनैश्च द्विगुणना पचेत् । अस्थौप-  
धस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्लिसम्मितम् ॥  
३७४ ॥ जीवन्ती मधुकं द्राक्षाकाकोल्यां  
नीलमुत्पलम् । गुस्तं सचन्दनं रास्ना  
पर्णिनीद्वयशारिवे ॥ ३७५ ॥ मेदे द्वे च  
तथा कुष्ठं जविकर्पभकौ शटी । दावी  
मियङ्गुत्रिफला नतं तालीशपद्मकौ ॥  
३७६ ॥ एलापत्रं वरी नागं जातीकुसुम-  
धान्यकम् । मञ्जिष्ठा दाटिमं दारु रेणुके  
सैलमालुकम् ॥ ३७७ ॥ विडङ्गं जीर-  
कश्चैव पेपयित्वा विनिक्षिपेत् । बस्त्रपूते च  
शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ३७८ ॥  
निधापयेत् स्निग्धभाण्डे आर्द्रे वा भाजने

शुभे । अस्थौपधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्य-  
मतः परम् ॥ ३७९ ॥ देवदेवं नमस्कृत्य  
संपूज्य गणनायकम् । पित्रेत्पाणितलं  
तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ॥ ३८० ॥  
सर्वातनिकारेणु अपस्मारे विणेषतः ।  
पक्षाघाते तथोन्मादे आध्माने कोष्ठ-  
निग्रहे ॥ ३८१ ॥ कर्णरोगे शिरोरोगे  
वाधिर्ये चापतन्त्रके । भूतोन्मादे च गृध्र-  
स्यां सोद्वारे चाक्षिपातजे ॥ ३८२ ॥  
पार्श्वशूले च हृच्छूले नाद्यायामार्दिते  
तथा । वातकण्ठकहृद्रोगमूर्च्छये सप-  
ङ्गुके ॥ ३८३ ॥ क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे  
कुञ्जे चाध्वनि मिन्मिने । अपतानेऽन्त-  
रायामे रक्त्वपित्ते तथोर्ध्वगे ॥ ३८४ ॥  
आनाहेऽर्शोऽनिकारेणु चातुर्थकञ्ज्वरेऽपि च ।  
हनुग्रहे तथा शोषेक्षीणेषु चापनाहुके ॥ ३८५ ॥  
दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा ।  
जीर्णञ्जरे विषे कुष्ठे शोफःस्तम्भे मदा-  
त्यये ॥ ३८६ ॥ आढ्यगतेऽग्निमान्ये च  
वातरक्तगदेषु च । एकाद्रोगिणे चैव  
तथा सर्वाङ्गरोगिणे ॥ ३८७ ॥ हस्तकम्पे  
शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे जटे भ्रमे । क्षीणे-  
न्द्रियेनष्टशुक्रेशुक्रनिःसरणे तथा ॥ ३८८ ॥  
स्त्रीणावातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने ।  
एकाद्रस्पन्दने चैव सर्वाद्रस्पन्दने तथा ३८९  
नगादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके ।  
आभिचारिन्दोषे च धनसन्ताप-  
सम्भवे ॥ ३९० ॥ ये वातप्रभया रोगा  
ये च पित्तसमुद्भवाः । शिरोमध्यगता ये च  
जङ्घापाश्वर्गदिसंस्थिताः ॥ ३९१ ॥ मातृ-  
ग्रहाभिमूर्तश्चिशुर्गश्चनिशुष्यति । प्रक्षी-

एष्वलमांसश्च न वर्त्मगमनक्षमः ॥ ३६२ ॥  
घृतेनानेन सिध्यन्ति वज्रमुक्किरिवासुरान् ।  
निहन्ति सकलान् रोगान् घृतं परमदुर्ल-  
भम् ॥ ३६३ ॥ रसायनं वह्निवल्प्रदञ्च  
वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम् । दत्ता बले-  
न्द्रेण समानतेजा दीर्घायुषं पुत्रशतं  
करोति ॥ ३६४ ॥ स्त्रीणां शतं गच्छति  
वातिरेकं न याति-तृप्तिं सरसः समाद्गः ।  
अपुत्रिणी पुत्रशतं करोति शतायुषं काम-  
समं बलिष्ठम् ॥ ३६५ ॥ महद्घृतं नाम  
तु द्वागलाद्यं विनिर्मितं वातनिपूदनञ्च ।  
शिवं शुभं रोगभयापहञ्च चकार हारीत-  
मुनिर्विशिष्टः ॥ ३६६ ॥ शृगालवर्हिणोः  
पाके पुमांसं तत्र टापयेत् । मयूरी जम्बुकी  
ढागी वीर्यहीनाः स्वभावतः ॥ भापितं  
काशिराजेन द्वाग एव नपुंसकः ॥ ३६७ ॥

गाय का घृत ६ सेर ३० तोला, काथार्यं  
नपुंसक द्वाग-मांस ५ सेर, पाकार्यं जल ५५  
सेर ४८ तोला, शोष १२ सेर ६४ तोला ।  
दशमूत मिलित ५ सेर, पाकार्यं जल २५ सेर  
४८ तोला, शोष ६ सेर ३२ तोला । असगन्ध  
५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शोष ६ सेर  
३२ तोला । खरेटी ५ सेर, पाकार्यं जल २५  
सेर ४८ तोला, शोष ६ सेर ३२ तोला । दुग्ध  
६ सेर ३२ तोला । शतावरि का रस ६ सेर  
३२ तोला, इन सब णाथों को मिलाकर  
षण्णकार्य-जोषणती, मुलेठी, दाप, काकोली,  
धीरकाकोली, नीलोपल, नागरमोषा, रत्न-  
चन्दन, रास्ना, मुद्गपर्णी, भापपर्णी, पृष्टपर्णी,  
शालपर्णी, द्यामालता ( कालीसर ), अनन्त-  
मूल ( सत्रेद सारिवा ), मेदा, महामेदा, कूट,  
जीपक, श्यमक, कपूर, दाखरदी, प्रियंगु,  
त्रिकला, सगर, तालीशपत्र, पदमाप, हलायधी,  
तेजपात, शतावरि, नागकेसर, थमेली के पूज,  
धनिषा, मजीठ, अनार के बीज, देवदारु,

सँभालू के बीज, एलुवालक ( सुगन्ध द्रव्य )  
वायविद्वङ्ग और जीरा प्रत्येक दो-दो तोले  
लेकर टङ्क कणई किये हुए ताम्रपात्र में धीमी आँच  
से इम तैल का यथाविधि पाक करना चाहिए ।  
पाक सिद्ध हो जाने पर घृत को छानकर उसमें  
६४ तोला शकर मिलाकर चिकने पात्र में रख  
ले । इस औषध के गुणों को कहते हैं—श्री-  
गणेश का पूजन करके द्यावि के अनुसार  
अनुपान के साथ एक तोला की मात्रा में इसका  
सेवन करना चाहिए । बृहच्छ्वागलाद्य घृत उचित  
अनुपान से वातव्याधि की सर्वोत्तम महीष्य है ।  
इसके सेवन से अपस्मार, उन्माद, पचाघात,  
आध्मान, कोष्ठरोग, कर्णरोग, शिरोरोग, बधि-  
रता, अपतन्त्रक, भूतोन्माद, गृध्रसी, उदररोग,  
नेत्रपातरोग, पसली का शूल, हृदयशूल, बाह्या-  
याम, अद्रित, वातकटक, मूत्रकृच्छ्र, पगुरोग,  
क्रीडुशीर्ष, खज, कुबडापन, अध्वनि ( बहुत  
मार्ग चलने से कुबडापन ) मिन्मिन भाषण,  
( मिन्मिनिना ), अपतानक, अन्तरायाम, उर्ध्वग  
रत्नपित्त, आनाह, अशौचिकार, चातुधिक ज्वर,  
हनुग्रह, शोष, क्षीण, अपवाहुक, दण्डापतानक,  
अस्थिभग, दाह, आशेषक, लीगुंज्वर, पिप-  
दोष, कुष्ठ, लिगस्तम्भ ( शिरनेन्द्रिय का जकड़  
जाना ), मदारपय, आश्रयवात, मन्दाग्नि,  
वातरत्न, एकांगवात, सर्वांगवात, हस्तरूप,  
शिर करूप, जिह्वास्तम्भ, जड़ता, भ्रम, शीघे-  
न्द्रियता, वीर्यशय, रजमदोष, शिर्वी का वात-  
प्रदर, अर्पि फडकना, एकांग फडकना, सब  
शरीर फडकना, पर्वतादि से गिर पड़ने से उत्पन्न  
वातरोग, इच्छा होने पर स्त्री के प्राप्त न होने  
से उत्पन्न वातरोग, अभिचार दोष से उत्पन्न  
वातरोग, धननाशोत्पन्न वातरोग तथा नाग-  
प्रकार के वातज, पित्तज, शिरोमध्यगत तथा  
पसली जंघा आदि में प्राप्त वातरोग और मातृमद-  
जन्म बच्चों का सूना रोग, बल मांस की शीघ्रता,  
चलने की शक्ति का अभाव आदि बीमारियों  
को दूरे नष्ट करता है जैसे इन्द्र का पद्म देवों  
का नाश करता है । यह घृत अत्यन्त दुर्लभ है ।  
यह घृण रसायन है । अग्नि, बल, शरीर में

कान्तिवर्द्धक है । इसके प्रयोग से मनुष्य सुदृढ, सुदौल, तेजस्वी, दीर्घायु तथा सन्तानयुक्त होता है । इसके प्रयोग से सौ स्त्रियों से भी रमण करने से वृक्षि नहीं होती, अर्थात् रतिशक्ति बढ़ती है । अशुभ्रिणी को इन्द्र के समान दीर्घायु कामदेव के समान रूपमान्, सैकड़ों बलिष्ठ पुत्रों का देनेवाला है । सभी वातरोगों का नाश करनेवाले इस कल्याणकारक बृहच्छ्वागलाघघृत को हारित मुनि ने बनाया था ।

पाक के वर्णन में—स्वार और मोर का मांस ही प्राह्य है । स्वारिन, मोरिन और बकरी का नहीं, क्योंकि ये क्षीणशीर्य होती हैं । काशिराज का मत है कि छागमांस में नपुंसक बकरे का मांस लेना चाहिए ॥ ३७२-३६७ ॥

अश्वगन्धाद्य घृत ।

अश्वगन्धाकपाये च कल्के क्षीरं चतुर्गुणम् । घृतं पक्वन्तु वातघ्नं घृप्यं मांसविवर्द्धनम् ॥ ३६८ ॥

गोघृत ४ सेर, अश्वगन्ध का द्वाध १६ सेर, दूध १६ सेर, अश्वगन्ध का करक १ सेर, यह घृत वातनाशक, शीर्य तथा मांसवर्द्धक है । मात्रा आधा तोला ॥ ३६८ ॥ मात्रा १ तो० ।

दशमूलाद्य घृत

दशमूलस्य नियूहे जीवनीयैः पलो-  
न्मितैः । क्षीरेण च घृतं पक्वं तर्पणं पवनार्ति-  
जित् ॥ काथोऽत्र त्रिगुणः सर्पिः प्रस्थः  
साध्यः पयः समम् ॥ ३६९ ॥

गौ का घी ४ सेर, दशमूल का क्याय १२ सेर, बकर क लिये—जीवक, अष्टपत्रक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मूलहटी, अदि, वृद्धि मलाकर १ सेर । यह घृत घृष्टिकारक तथा वातघ्नना को नष्ट करता है ॥ ३६९ ॥ मात्रा १ तो० ।

महावात विध्वंसन रस ।

रसं गन्धकं नागवद्रे च लोहं तथा  
ताम्रजं व्योम निश्चन्द्रवञ्च कणाटङ्गणे

पोषणं नागरं वै । पृथग्भागमेकं विमर्चैक-  
यामम् ततो वत्सनाभं चतुःसार्धभागं ॥  
४०० ॥ दृढं मर्दयेद्भावना व्योष-  
जात्रिः वराचित्रकैर्मर्कवैः कुष्ठतोयै  
स्तथा कराहाटेः सनिर्गुण्ड तोयै ॥  
४०१ ॥ मनोधात्रिकैरार्द्रके निम्बुनीरै  
स्त्रिभिर्भावयेद्वात विध्वंसनोऽप्यम् । समीरे  
च शूले महाश्लेष्मरोगे । ग्रहण्यां तथा  
सन्निपाते च मौढ्ये ॥ ४०२ ॥ अपस्मार  
मान्ये सशैत्ये सपित्तोदर प्लीहकुष्ठा-  
र्शं स्त्रीगदे च । निपेनेत गुञ्जाद्वयं  
चास्य तत्र तद्दघ्ननाऽनुपानैरथं रोगजि-  
त्स्यात् ॥ ४०३ ॥

शुद्ध पारा गन्धक नाग यह लोह ताम्र अश्रक इनकी भस्म पीपल धुना सुहागा मरिच सोढ ये सब १-१ भाग १ भाग विष लेकर महीन चूर्ण कर कजली में भिनाय, त्रिगुटा, त्रिफला, त्रिफल, भगरा, कूट, अरुलकरा, निर्गुण्डो, अमलोनिया, अदरस, नीबू, इन सबके रसों में तीन बार घोट कर २-२ रत्ती की गोलीयां बना लेवे, बलागुसार इनमें से १ से ३ गोली तक समय तथा रोगानुसार अनुपान के साथ देने से भयकर वात, शूल, उक्त दलेष्मरोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूत्रता, अपस्मार, मन्दाग्नि शीतपित्त उदररोग प्लीहा कुष्ठ बवाभीर स्त्री रोग इन सबको नष्ट करता है । विशेष अनुभूत है ॥ ४००-४०३ ॥

चतुर्मुष्परस ।

रसगन्धकलोटाभ्रं ममं मूतादिघ्नदेम  
च । सर्वं रसतले त्तिप्त्रा गन्यास्वरस-  
मर्दिनम् ॥ ४०४ ॥ एगडपत्रैरापेष्टच  
धान्यराशौ दिनत्रयम् । संस्थाप्य च तद्-  
दघृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४०५ ॥ एत-  
द्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम् । तथया-



ग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥४०६॥  
 क्षयमेकादशविधं पाण्डुरोगं प्रमेहकम् ।  
 कासं शूलञ्च मन्दाग्निं हिक्काञ्चैवाभ्लपित्त-  
 कम् ॥ ४०७ ॥ व्रणान् सर्वानाढ्यवातं  
 विसर्पं विद्रधि तथा । अपस्मारं महो-  
 न्मादं सर्वांशंसि त्वगामयान् ॥ ४०८ ॥  
 क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।  
 पौष्टिकं धन्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारणम् ॥  
 चतुर्षु खेन देवेन कृष्णात्रेयस्यसूचि  
 तम् ॥ ४०९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और  
 अभ्रकभस्म एक-एक तोला, स्वर्ण भस्म  
 ३ मात्रा। इन द्रव्यों को एकत्र कर घृतकुमारी  
 के रस, में मर्दन करे। फिर एरण्ड के पत्तों में  
 लपेटकर तीन दिन तक धान्यराशि में पड़ा  
 रहने दे। तदनन्तर वहाँ से निकालकर इसका  
 सब रोगों में प्रयोग करना चाहिए। अनुपान  
 त्रिफला का रस और मधु। अग्नि और बल  
 का विचार कर मात्रा की यथोचित व्यवस्था  
 करनी चाहिए। इसका सेवन करने से बलीपलित  
 ग्यारह प्रकार का क्षय, पाण्डु, प्रमेह, कास,  
 शूल, अग्निमांघ, हिचकी, अभ्लपित्त, सद्य  
 प्रकार के व्रण, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि,  
 अर्श, त्वचा के रोग एवं अपस्मार और उन्माद  
 आदि नाना प्रकार के रोग शान्त होते हैं। यह  
 रसायन पौष्टिक और आयु का देनेवाला है। यह  
 क्षियों के प्रसव में सुख देनेवाला है। इसे चतु-  
 र्मुखा महाराज ने कृष्णात्रेयजी को बतलाया था।  
 मात्रा-१ रत्नी ॥ ४०७-४०९ ॥

चिन्तामणिचतुर्मुख ।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदूर्ध्वं लौहभ्रकम् ।  
 तदूर्ध्वं कनकं खल्लो कन्दाहरसमर्दितम् ॥  
 ४१० ॥ एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ  
 निधापयेत् । त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य सर्प-  
 रोगेषु योजयेत् ॥४११॥ एतद्रसायनवरं

त्रिफलामधुसंयुतम् । तद्यथाग्निबलं खादे-  
 द्वलीपलितनाशनम् ॥४१२ ॥ अपस्मारं  
 महोन्मादं रोगान् वातसमुद्भवान् । क्रमेण  
 शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥४१३॥

शुद्ध रससिन्दूर ४ तोला, लोहभस्म  
 २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, स्वर्णभस्म १  
 तोला, इन्हें घृतकुमारी के रस में मर्दन कर  
 एरण्ड के पत्रों में लपेट कर तीन दिन धान्य  
 की राशि में रखे। तदनन्तर उसे निकालकर  
 दो रत्नी की मात्रा में प्रयोग करे। अनुपान  
 त्रिफला का स्वरस तथा मधु। यह रसायन है।  
 अग्नि और बल का विचार कर पाने से  
 बली, पलित, अपस्मार, उन्माद तथा अन्य  
 वातज रोगों को यह ऐसे नष्ट करता है  
 जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट कर देता  
 है ॥ ४१०-४१३ ॥

अमरसुन्दरी वटी या विजय भैरवरस ।

सूतकं गन्धकं लोहं चित्रकमभ्रकम्  
 विडङ्गं रेणुका मुस्ता द्राविणीपत्रके-  
 शरम् ॥ ४१४ ॥ फलत्रयं त्रिकटुकं शुल्ब  
 भस्म तथैव च एतानि समभागानि  
 द्विगुणो दीयते गुडः ॥ ४१५ ॥ कासे  
 श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विपमज्वरे ॥४१६॥  
 सूतायां ग्रहणी मान्द्ये शूले पाण्डुमये तथा  
 हस्तपादादि रोगेषु गुटिकेयं प्रश-  
 स्यते ॥ ४१७ ॥

शुद्ध पारा गन्धक और चित्र लोह और अभ्रक  
 भस्म चित्रक मूल विडङ्ग सैनालू के बीज नागर-  
 मोया इलायची पत्रज नागेशर त्रिफला त्रिमुटा  
 ताप्रभस्म ये समान भाग लेकर मर्दन चूर्ण कर  
 १२ महर तक मूया ही घोट कर देने गुड या  
 पांड की खाशनी कर ४ रत्नी घषया १ मासे की  
 गोखिवा बनाकर रस देवे इसमें से १-१ गोखी  
 रोगानुसार अनुपान के साथ देने से श्वास वायु,  
 क्षय, गुदम, प्रमेह विपम ज्वर, मृत्तिका रोग,

ग्रहणी, मन्दाग्नि शूल, पाण्डु और हस्तपादादि रोग इन सबका विनाश करता है ॥ ११४-११७ ॥

एकान्तं वात ।

शुद्धगन्धं मृतं सूतं कान्तं वङ्गश्च नाग-  
कम् ताम्रं चाभ्रं मृतं तीक्ष्णं नागरं मरिचं  
कणाम् ॥ ४१८ ॥ सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य-  
भावयेत्त्रिः पृथक्-पृथक् वराव्योषक निर्गु-  
ण्डीवह्निनाद्रकजैर्द्रवैः ॥ ४१९ ॥ शिग्रु  
द्रवेणापि ततो धात्र्या द्रवेण च । विप-  
मुष्ण्याकं हाटश्च आर्द्रकस्य रसैस्तथा ॥  
४२० ॥ रसश्चैकाङ्ग वीरोऽसौ सुसिद्धो  
रसराट् भवेत् पक्षाघातं चादितश्च धनुर्वा-  
तं तथैव च ॥ ४२१ ॥ अर्धाङ्गं गृध्रसी  
वार्यं विश्वाचीमपवाहुकम् सर्वान्वाता-  
मयान्हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४२२ ॥

शुद्ध गन्धक और पारा कान्तलोह वङ्ग नाग पीपल ये सब बराबर लेकर मक्को मिला घोंटे फिर त्रिफला, त्रिकटु, निर्गुण्डी अदरक सहजन कूठ, आंघला, जहर कुचिला आक की जड़ की छाल अकलरुरा और अदरक इनके रस से कमसे कम तीन २ बार घोट ३-३ रसी की गोलीयाँ बना ले । वात को नाश करने वाले धनुषान के साथ देने से लक्ष्या पक्षाघात धनुर्वात अर्धाङ्गवात ग्रध्रसी विश्वाची अपवाहुक आदि सब वात रोगों का नाश करती है । विशेष अनुभूत ॥ ४१८-४२२ ॥

तालकेश्वर रस ।

एकभागो रसस्य स्याच्छुद्धतालैक-  
भागिकः । अर्धोऽस्युर्विजयायायाश्च गुडिका  
गुडतश्चरेत् ॥ ४२२ ॥ एकैकां भक्षये-  
त्मातश्चायायामुपदेशयेत् । तालकेश्वर-  
नामायं योगोऽस्पर्शविनाशनः ॥ ४२३ ॥

रससिद्धर १ भाग, शुद्ध दरनाल १ भाग,  
भौंग ८ भाग, गुह २० भाग । हर्से एकट्ठाकर  
अप्यी तरह मिलाकर १ मास के परिमाण

में सेवन करावें । प्रातः औषध के सेवन के पश्चात् रोगी को छाया में बैठे रहने का आदेश देना चाहिए । वात के दुष्ट होने से पैदा हुआ स्पर्श ज्ञान का अभाव इसके सेवन से नष्ट होता है ॥ ४२२-४२३ ॥

चिन्तामणि रस ।

कपैकं रससिद्धरं तत्समं मृतमभ्रकम् ।  
तदर्थं मृतलोहश्च स्वर्णं शाणं क्षिपेद्  
बुधः ॥ ४२४ ॥ कन्यारसेन सम्मर्षं  
गुञ्जामानां वर्णं चरेत् । अनुपानादिकं  
दद्याद् बुद्ध्वा दोषं बलाबलम् ॥ ४२५ ॥  
हन्ति श्लेष्मान्वितं वातं केवलं पित्त-  
संयुतम् । हृत्सासमरिचिं दाहं वान्ति भ्रान्ति  
शिरोग्रहम् ॥ ४२६ ॥ प्रमेहं कर्णनादश्च  
ज्वरगद्गदमूकताम् । वाधिर्यं गर्भिणीरो-  
गमरमरीसूतिका मयम् ॥ ४२७ ॥ प्रदरं  
सोमरोगश्च यक्ष्माणं ज्वरमेव च । बल-  
वर्णाग्निदः सम्यक् कान्तिपुष्टिप्रसाध-  
कः ॥ चिन्तामणिरसश्चायं चिन्तामणि-  
रिवापरः ॥ ४२८ ॥

रससिद्धर १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला,  
लोहभस्म ३ तो०, स्वर्णभस्म ३ मासो, हर्से  
योगीकर के रस से घोटकर १ रसी की गोली  
बनाकर दोष और बलाबल को देखकर घेमे ही  
अनुपान के साथ सेवन करावें । इससे कफघात-  
जन्य, वातजन्य और वात-पित्त-जन्य रोग नष्ट  
होते हैं । इसके सेवन से हृत्सास, अरिचि,  
जलन, यमन, भ्रम, शिरोवेदना, प्रमेह, कर्णनाद,  
ज्वर, मूकता, वाधिरता, गर्भिणी रोग, अरमरी,  
सूतिका रोग, प्रदर, सोमरोग तथा यक्ष्मा आदि  
रोग नष्ट होते हैं । यह रस बल, वर्ण तथा  
अग्नि को बढ़ानेवाला है ॥ ४२४-४२८ ॥

घातगजाङ्कुर ।

मृतं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गन्धक-  
तालकम् । पण्या मृत्नी विषं व्योपमग्नि-

मन्थञ्च टङ्गणम् ॥ ४२६ ॥ तुल्यं खल्ले  
दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुणैःकाद्रवैः । द्विगुञ्जां  
वटिकां खादेत् सर्ववातप्रशान्तये ॥ ४३० ॥  
कणाचूर्णयुतं चैव जिङ्गीकाथं पिबेदनु ।  
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो वात-  
गजाङ्कुशः ॥ ४३१ ॥ सप्ताहात्तृध्रसौं  
हन्ति दारुणां सान्निपातिकम् । क्रोष्टुशीर्षक  
वातश्चाप्यपवाहकसंज्ञकम् ॥ ४३२ ॥  
मन्यास्तन्मसुरुस्तम्भं वातरोगं विनाशयेत् ।  
पक्षाघातादिरोगेषु कथितः परमोत्तमः ४३३

पारा, लोहभस्म, सोनामाखीभस्म, गन्धक,  
हरताल, हृद, काकदासिणी, यच्छुनाग, त्रिकुटा,  
अरणी, सुहागा, इन्हें बराबर मात्रा में  
मिलाकर गोरखमुखडी तथा सम्भालू के रस से  
अलग-अलग एक दिन घोटकर २ रत्ती की  
गोली बनावे । अनुपान पीपली का चूर्ण तथा  
मजीठ का वाथ । इसके सेवन से गृध्रसी, मोष्टु-  
शीर्ष, अपवाहक, मन्यास्तम्भ, ऊरस्तम्भ,  
तथा पक्षाघात आदि वातरोग नष्ट होते  
हैं ॥ ४२६-४३३ ॥ मात्रा २ रत्ती ॥

वृहद्वातगजाङ्कुश ।

सूताभ्रतीक्षणांतानि ताम्रतालरु-  
गन्धकम् । स्पर्णं शुण्ठी बला धान्यं  
कटफलश्चाभया विपम् ॥ ४३४ ॥ पथ्या  
मृद्गी पिप्पली च मरिचं टङ्गणं तथा ।  
तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुणैः  
द्रवैः ॥ ४३५ ॥ द्विगुञ्जां वटिकां  
खादेत्सर्ववातप्रशान्तये । साध्यासाध्यं  
निहन्त्याशु वृहद्वातगजाङ्कुशः ॥ ४३६ ॥

पारा, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, कान्तलोह-  
भस्म, तक्षिकी भस्म, हरताल, गन्धक, मोने  
की भस्म, सोंठ, बला धनिया, कटफल, हृद,  
यच्छुनाग, हृद, काकदासिणी, पीपल, काली-  
शिर्ष, सुहागा, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर

गोरखमुखडी तथा सम्भालू के रस से अलग-  
अलग एक दिन घोटकर २ रत्ती की गोली  
बनाकर वात रोग में सेवन कराना  
चाहिए ॥ ४३४-४३६ ॥ मात्रा २ रत्ती ।

महावातगजाङ्कुश ।

मृताभ्रतीक्षणांतान्मञ्च सूतालकगन्ध-  
कम् । भार्गी शुण्ठी बला धान्यं कट-  
फलश्चाभया विपम् ॥ ४३७ ॥ सत्पिप्य  
चपलाद्रावैर्द्विगुञ्जां भक्तयेद्वटीम् । वात-  
श्लेष्महरो ह्येष गुरुवातगजाङ्कुशः ॥ ४३८ ॥

अभ्रक भस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, पारा,  
हरताल, गन्धक, भारगी, सोंठ, बला, धनिया,  
कटफल, हृद, यच्छुनाग, इन्हें बराबर मात्रा में  
मिलाकर पीपल के वाथ से घोटकर २ रत्ती  
की गोली बनावे । यह रस वात तथा कफ को  
नष्ट करता है ॥ ४३७-४३८ ॥ मात्रा २ रत्ती ॥

लक्ष्मीविलास रस ।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्धो रसगन्ध-  
को । बला नागबला भीरु विदारीकन्द-  
मेव च ॥ ४३९ ॥ कृष्णधुस्तूरनिचुलं  
मोक्षुरं वृद्धदारकम् । कीजं शकशाजस्यस्यपि  
जातीकोपफले तथा ॥ ४४० ॥ कर्पूर-  
ञ्ज्वैव कर्पाशं श्लक्ष्णचूर्णं पृथक्-पृथक् ।  
गृहीत्वा चाष्टमांशेन मर्गं पर्गारसेन च ॥  
४४१ ॥ गुञ्जाचतुष्टयमितां वटिकां  
कारयेद्विपम् । रसो लक्ष्मीविलासोऽयं  
पूर्ववद् गुणकारकः ॥ ४४२ ॥

अभ्रकभस्म ४ तो०, पारा २ तो०, गन्धक  
२ तो०, बला, नागबला ( मरुदेई ), शतापी,  
विदारीकन्द, काले चमूरे के बीज, समुद्रफल,  
गोधूम के बीज, विषाखाशीज, भांग के बीज,  
आधिरा, जायफल, कूर, हरएक २ तो०  
स्पर्णभस्म २ मासे इन्हें इकट्ठा मिलाकर पाक  
के रस में भावना दो और ४ रत्ती की गोली

बनावे । चतुर्गुण रस के समान ही इस रस के गुण हैं ॥ ४३६--४४२ ॥ मात्रा २-३ रत्ती ॥

योगेन्द्ररस ।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं शुद्धहाटकम् ।  
तत्समं कान्तलोहञ्च तत् समश्चाभ्रमेव  
च ॥ ४४३ ॥ विशुद्धं मौक्तिकञ्चैव वद्वञ्च  
तत्समं मतम् । कुमारिकारसैर्भाव्यं धान्य-  
राशौ दिनत्रयम् ॥ ४४४ ॥ ततो रक्त्रिद्वय-  
मितां वटीं कुर्याद्विचक्षणः । योगवाही  
रसो क्षेप सर्परोगकुलान्तकः ॥ ४४५ ॥  
वातपित्तभगान् रोगान् प्रमेहान् बहुमूत्र-  
ताम् । मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदा-  
मयम् ॥ ४४६ ॥ उन्मादं मूर्च्छां यच्चमाणं  
पक्षाघातं हतेन्द्रियम् । शूलाम्लपित्तकं  
हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ४४७ ॥  
त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा ।  
भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुद-  
र्शनः ॥ ४४८ ॥ रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं  
कृशानाञ्च विशेषतः । योगेन्द्रारव्यो रसो  
नाम्ना कृष्णात्रेयविनिर्मितः ॥ ४४९ ॥

रससिन्दूर १ तोला, स्वर्ण, लोह तथा अभ्रक  
भस्म, मुक्ता और वद्व प्रत्येक आधा-आधा  
तोला ले । इन सबको घृतकुमारी के रस में  
मर्दन कर धान्य की राशि में तीन दिन रख  
दे । पश्चात् दो-दो रत्ती की गोली बना ले ।  
यह रस योगवाही है, सब रोगों को नष्ट करता है ।  
त्रिफला के स्वरस, वंशलोचन या मिसरी के  
साथ इसका सेवन करे । विशेषतः रात में  
गोदुग्ध पान करना चाहिए । यह योगवाही रस  
है । यह सभी रोगों का नाशक है । विशेष कर  
वात पित्तजन्य रोग, प्रमेह, बहुमूत्रता, मूत्राघात,  
अपस्मार, भगन्दर, बवाक्षीर, उन्माद, मूर्च्छा,  
यक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियों की शक्तिहीनता,  
शूल और अम्लपित्त को ऐसे नष्ट करता है  
जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करते हैं । इसके

सेवन से कामदेव के समान रूप हो जाता है ।  
यह पुण्यों को विशेषकर लाभदायक है । इसका  
नाम योगेन्द्र रस है । इसको कृष्णात्रेयजी ने  
बनाया था ॥ मात्रा-२ रत्ती ॥ ४४३-४४९ ॥

रत्नराजरस

पलैकं मूर्च्छितं सूतं व्योमसत्त्वञ्च  
कार्पिकम् । सुगुणं तत्समं ज्ञेयं कन्यारस-  
विमर्दितम् ॥ ४५० ॥ लौहं रूप्यं मृतं  
वद्वं वाजिगन्धां लवङ्गकम् । जातीकोपं  
तथा क्षीरकाकोलीञ्च तदर्द्धकम् ॥ ४५१ ॥  
काकमाक्षीरसेनैव सर्वं सम्मर्दयेद् दृढम् ।  
गुञ्जाद्वयगमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥  
क्षीरञ्च गर्करातोयमनुपानं प्रकल्पयेत् ४५२  
पक्षाघातेऽर्दिते वाते हनुस्तम्भेऽपतन्त्रके ।  
धनुस्तम्भेऽपताने च वाधिर्ये मस्तक-  
भ्रमे ॥ ४५३ ॥ सर्ववातविकारेषु रसरजः  
प्रकीर्तितः । बल्यो वृष्यश्च भोग्यश्च वाजी-  
करण उत्तमः ॥ ४५४

रससिन्दूर ४ तोले, अभ्रकभस्म १ तोला,  
स्वर्णभस्म १ तोला । इनको घृतकुमारी के  
रस में घोटकर उभयमें लोहभस्म, रौप्यभस्म,  
वद्वभस्म, अमगन्ध, लौह जायित्री तथा क्षीर-  
काकोली प्रत्येक आधा-आधा तोला मिलाकर  
काकमाक्षी ( मकोय ) के रस में घोटकर दो-दो  
रत्ती की गोली बनावे । अनुपान दुग्ध या  
शकर का शर्बत । पक्षाघात, अर्ति, वात,  
हनुस्तम्भ, अपतन्त्रक, धनुस्तम्भ, अपतानक,  
वाधिर्य और मस्तकभ्रम आदि समस्त वातरोगों,  
में इस रसरज का प्रयोग कहा गया है । यह  
श्रेष्ठ बलकारक, वीर्यवर्द्धक, भोग्य और वाजीकरण  
है ॥ मात्रा २ रत्ती ॥ ४५०-४५४ ॥

शुद्धवातचिन्तामणि ।

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं रौप्यम-  
भ्रकम् । लौहात् पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं  
त्रयसंमितम् ॥ ४५५ ॥ भस्मयन्तं यथा

कन्यारसविमर्दितम् । बलमात्रा वटी कार्या  
 भिषग्भिः परियत्रतः ॥ ४५६ ॥ यथा  
 व्याध्यनुपानेन नाशयेद्रोगसंकुलम् ।  
 वातरोगं पित्तकृतं निहन्ति नात्र चिन्त-  
 नम् ॥ ४५७ ॥ वृद्धोऽपि तरुणस्पद्धीं  
 कन्दर्पसमविक्रमः दृष्टः सिद्धफलश्चायं  
 वातचिन्तामण्यस्तिह ॥ ४५८ ॥

स्वर्णभस्म ३ भाग, चाँदी की भस्म २ भाग,  
 थप्रकभस्म २ भाग, लोहभस्म २ भाग, प्रवाल-  
 भस्म ३ भाग, मुक्ता ३ भाग और रससिन्दूर ७  
 भाग । इनको घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-  
 दो रत्नी की गोली बनावे । व्याधिविशेष में  
 अनुपानविशेष के साथ प्रयोग करना चाहिए ।  
 यह रस वातजन्य तथा पित्तजन्य विविध रोगों  
 को निःसन्देह नष्ट करता है । इस रस का सेवन  
 करने से वृद्ध पुरुष भी तरुण पुरुष के समान  
 पराक्रमयुक्त हो जाता है और कामदेव के समान  
 पराक्रमी होता है । यह वातचिन्तामण्य रस  
 अनुभूत है मात्रा—२ रत्नी ॥ ४५६—४५८ ॥

बलारिष्ट ।

गलारगन्धयोर्ग्राथं पृथक् पलशतं  
 शुभम् । चतुर्दशे जले पक्त्वा श्लेष्मेवा-  
 वशोपयेत् ॥ ४५९ ॥ शीते तस्मिन् रसे पूगे  
 त्रिपेद् गुडतुलात्रयम् । धातकीं पौडशपलां  
 पयस्यां द्विपलांशिकाम् ॥ ४६० ॥ पञ्चाहुल-  
 पलद्वन्द्वं रास्नामिलां प्रसारणीम् । देव-  
 पुष्पशुशीरश्च श्वदंष्ट्राञ्च पलांशिकाम् ४६१ ॥  
 मासं भाण्डे स्थितस्त्वेव बलारिष्टो महा-  
 फलः । हन्त्युग्रान् वातजान् रोगान् बल-  
 पुष्ट्यग्निवर्द्धनः ॥ ४६२ ॥

खरैटी २ सेर, असगन्ध २ सेर पाकाधं  
 जत्र १०२ सेर ३२ तोला, शेष २६ सेर ४८  
 तोला । गुड़ १२ सेर, घाव के फूल ६४ तोला,  
 चीरकाकोली ८ तोला, परपटमूल ८ तोला,  
 रातना, हत्तापची, गन्धप्रसारिणी, क्षींग, एत

और गोखरू प्रत्येक चार-चार तोला । इन सब  
 वस्तुओं को एक महीना पात्र में बन्द रखे । यह  
 बलारिष्ट बहुत लाभदायक है : उग्र वात-रोगों  
 का नाशक है तथा बलवर्धक, पौष्टिक और  
 अग्निवर्धक है मात्रा—२ तोला ॥ ४५६-४६२ ॥

वातव्याधि में पथ्य ।

अभ्यङ्गो मर्दनं वस्तिः स्नेहः स्वेदोऽव-  
 गाहनम् । संवाहनं संशमनं प्राक्प्रवात-  
 प्रवर्जनम् ॥ ४६३ ॥ कुलत्थमापगोधूमा  
 रक्ताभाः शालयो हिताः । पटोलं शिशु-  
 वार्ताकं दाडिमञ्च परूपकम् ॥ ४६४ ॥  
 मत्स्यण्डिका घृतं दुग्धं किलाटं दधि-  
 कूर्चिका । वदरं लशुनं द्राक्षा ताम्बूलं  
 लवणं तथा ॥ ४६५ ॥ चक्रकः कुक्कुटो  
 वहिस्तिरिश्चेति जाङ्गलाः । शिलीन्द्रः  
 पर्वतो नक्रो गर्गरः खुडिशोभपः ॥ ४६६ ॥  
 यथाश्रयं यथावस्थं यथाचरणमेव च ।  
 वातव्याधौ समुत्पन्ने पथ्यमेतन्नृणां  
 भवेत् ॥ ४६७ ॥

अभ्यङ्ग ( तेल मलना ), मर्दन ( मीड़ना )  
 वस्ति, स्नेह ( घृत आदि ), स्वेद, वातहर  
 क्षाय में अवगाहन ( स्नान ), संवाहन ( श्व-  
 काना ), संशमन औषध, सीधी आनी हुई घास  
 तथा चाँची का परिष्काण, कुङ्कुमी, उदक, गेहूँ  
 लाल शालि चावल, परवल, मर्दिजना, बैंगन,  
 अनार, कातसा, मत्स्यण्डिका ( दागेदार साँड  
 चयवा राव ), घी, दूध, किलाट ( फटे हुए  
 दूध का घन भाग ), दही, कूर्चिक ( पाप के  
 साथ दूध को पकाने में जो बनाता है ), धर,  
 लहसुन, मूला, पान, नमक, पिपिद्या, गुनी,  
 मीर, तीतर, जङ्गली पशु, पची, शिलीन्द्र  
 ( नक्रभेद ), पर्वत ( नक्रभेद ), मध, गर्गर,  
 खुडिच, म्प ह्वादि म्प, इनका वातव्याधि  
 के प्राण्य के अनुसार ही चयवा रोगों की  
 व्याध्या के अनुसार चयवा रोगों के घृष्ट प्रयोग

कराते हैं, वैसा घातव्याधि के उत्पन्न होने पर ये पश्य होते हैं ॥ ४६३-४६७ ॥

घातव्याधि में अपथ्य ।

चिन्ता मज्जागरणवेगविधारणानि  
 क्षदिः समोऽनशनता चणकाः कलायाः ।  
 श्यामाकचूर्णं कुरुविन्दनिवारकंगु-  
 मुद्गास्तदागतटिनीसलिलं करीरम् ॥४६८॥  
 चाँदं कपायकटुतिक्तरसा व्यवायो  
 हरत्यश्वयानमपि चङ्क्रमणं च खट्वा ।  
 आध्मानिनोऽर्दितवतोऽपि पुनर्विशेषात्  
 स्नानं मद्दुष्टसलिलाद् द्विजघर्षणं च ॥  
 निःशेषतन्त्रपरिकीर्तित एष वर्गो नृणां  
 समीरणगदेषु मुद्रं नधत्ते ॥ ४६९ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नान्वल्यां वायुरोगा-  
 धिकारः समाप्तः ।

चिन्ता, रात में जागना, घेगों को रोकना, धमन, थकावट, उपवास, चने, मटर, समाधान्य का आटा, चाँरा, नीवार, धान्य, फगुनी, मूँग, तालाब एवं नदी का जल, करीर, शहद, कपाय, कटु एवं तिक्तर, रस, मैथुन, हाथी, घोड़े की सवारी, अधिक चलना, मीथे रहना, ये घातव्याधि में अपथ्य हैं । आध्मान तथा अर्दित रोगी के लिये विशेषतः दुष्ट जल से स्नान एवं दातुन यज्ञित हैं । यह सम्पूर्ण तन्त्रों में बताया गया वर्ग वातरोग में हानिकारक है ॥ ४६८-४६९ ॥

इति श्रीपथिदतसरयुप्रसादत्रिपाडिभिरचितायां  
 भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायानां व्याख्यायां  
 वायुरोगाधिकारः समाप्तः ।

आमवाताधिकारः ।

आमवातरोग में क्रियाक्रम ।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि  
 च । विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाम-  
 मास्ते ॥ १ ॥

आमवात रोग में लघन, स्वेदन, वक्त्रे द्रव्य, अग्निप्रदीपन द्रव्य, चरपरे द्रव्य, विरेचन, घृत आदि स्नेहपान तथा यस्तिकर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

आमवात में पथ्य ।

आमवाते पञ्चकोलसिद्धपानानामिप्यते ।  
 पटोलं गोनुरञ्चैव वरुणं कारवेल्लकम् ॥२॥  
 यत्रकोद्रवशाल्यादि प्रपुराणं सतिक्कम् ।  
 लाजादीनां तथा मांसं तक्रेण मस्तुना  
 हितम् ॥ ३ ॥

आमवात में पीपर, पिपरामूल, चम्प, चीता, सेंट से सिद्ध जल तथा एक लक्ष्मणक होता है । पटोलपत्र, गोनूरु, चरना, करेला, कड़वे द्रव्य सहित पुराने जी, कादों तथा शालि एवं तक्र तथा दूरी के तोड़ के साथ लाजा आदि पथियों का मांस आमवात में पश्य है ॥ २-३ ॥

शुद्धस्वेदः ।

कार्ष्णास्थिकुलत्थिका तिलयवैरण्ड-  
 मूलातसी वर्षामूपण्वोजकाञ्जिकयुतैरैकी-  
 कृतैर्वा पृथक् । स्नेदः स्यादिति कूर्परोदर-  
 शिरः स्फिक्पाणिपादाङ्गुलीगुल्फस्कन्ध-  
 कटीरुजा विजयते सामाः समीरानुगः ॥४॥

एतानि समुदितानि एकैकशो वा  
 संकुट्य काञ्जिकेन संसिच्य वस्त्रेण पोडूली-  
 द्वयं गद्धना दीप्ताग्निमुल्युपरिस्थितका  
 ङ्जिकस्थाल्युपरिलिप्तसच्छिद्रशरावस्थं वा-  
 प्तप्तमेकैकमानीय वेदनास्थाने स्वेदयेत् ।

चिनौले, कुलधी, तिल, जी, एरण्डमूल, अलसी, पुनर्नवा और सन के बीज, इन समस्त द्रव्यों को अथवा किसी एक को दोपानुसार काँजी में भिगोकर दो पोडूली बनावे । परचात् एक हाँडी में भरकर आग पर रखे और उसका मुख छिद्रयुक्त ढकने से बन्द कर दे ।

— यथा चिकित्सा आरम्भ हो तब तब तब

पोटलियों को रख दे । जब भाप से पोटलियाँ गरम हो जायँ तब उनसे क्रमशः रुग्ण अंग पर स्वेदन करे । इस प्रकार स्वेदन करने से कूर्पर, उदर शिर, स्फिक, हाथ, पाँव, अँगुली, गुल्फ स्क्रन्ध तथा कमर की आमवातजनित वेदना शान्त होती है ॥ ४ ॥

रूक्षस्वेदो विधातन्धो बालुकापुटकै-  
स्तथा ॥ ५ ॥

आमवात में बालू की पोटली द्वारा रूक्ष स्वेदन करने से भी रोगी को लाभ होता है ॥ ५ ॥

हिंसादिलेप ।

गोजलपिष्टं हिंसाकेमुकशिग्रूद्भवं  
मूत्रम् । माकुयुतं परिलेपात् सामसमीरणः  
कुत्र ॥ ६ ॥

एषां समभागं गोमूत्रेण पिष्ट्वा वेदना-  
स्थाने मलेपः ।

छोटी कटेरी, केठर्या, सहिजने की जड़, यरभीकमृत्तिका ( बामी की मिट्टी ), इन्हें सम-भाग लेकर गोमूत्र से पीसकर वेदना के स्थान में लेप करने से आमवातजनित पीड़ा शान्त होती है ॥ ६ ॥

शतपुष्पादि लेप ।

शतपुष्पा वचा शिशुश्वदंष्ट्रावरुण-  
त्पत्रः । सहदेवी च वर्षाभूः शटी च  
संमसारिणी ॥ ७ ॥ सतर्कारीफलं हिङ्गु-  
शुक्राकाञ्जिरूपेपितम् । आमवातहरं श्रेष्ठं  
मुखोष्णं लेपनं हितम् ॥ ८ ॥

सौंफ, वच, सहिजने की छाल, गोखरु, घरना की छाल, सरेटी पुनर्नवा, कपूर, गन्ध-प्रसारिणी, जयन्तीफल और हींग इनको सम-भाग लेकर सिका या कौजी में पीसकर थोड़ा गरम बरके शोध के स्थान में गुनगुना लेप करना चाहिए । यह लेप आमवातनाशक है ॥ ७-८ ॥

रास्नादिदशमूल ।

दशमूल्यमृतैरएडरासनानागरदारुभिः ।  
काथोरुवृकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम् ६  
दशमूल, गिलोय, एरएडमूल, रास्ना, सोंठ और देवदारु ये सब मिलाकर दो तोले । पाकार्य जल आध सेर, शेष आधपाव । एरएड के तैल के साथ इस काथ का पान करने से आमवात शान्त होता है ॥ ६ ॥

रास्नासप्तक ।

रास्नामृत्तारग्वधदेवदारुत्रिकएटकैरएड-  
पुनर्नवानाम् । काथं पिवेन्नागरचूर्णमिश्रं  
जङ्घोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली ॥ १० ॥

रास्ना, गिलोय अमिलतास का गूदा, देव-दारु, गोखरु, एरएडमूल और पुनर्नवा ये सब मिलाकर दो तोले । जज आधा सेर, शेष आध पाव । इस काथ में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करे तो जंघा ऊर, पसली, त्रिक और पीठ का शूल आराम होता है ॥ १० ॥

रास्नापञ्चक ।

रास्ना गुडूचीमेरएडं देवदारु महौ-  
पधम् । पिवेत्सार्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्य-  
स्थिमज्जगे ॥ ११ ॥

रास्नापञ्चके रास्नासप्तके च उष्णे  
भेदार्थमेरएडतैलं मक्षिपन्ति वृद्धाः ।

रास्ना, गिलोय एरएडमूल देवदारु और सोंठ का ढाघ सन्धिगत, सन्धिगत, मज्जाधित और सार्वाङ्गिक आमवात व्याधि में दित-कर है ॥ ११ ॥

रास्नादिपञ्चक या रास्नादिदशमूल के उष्ण ढाघ में पिरेचनार्थ एरएडतैल मिलाकर चाहिए, देना वृद्ध घैष कहते हैं ।

दशमूलीकपायेण पिबेद् या नाग-  
राम्भसा । कुक्षिपस्तिरुटीशूले तैलमेरएड-  
सम्भवम् ॥ १२ ॥

रश्मूल या सोंठ के उष्ण बाथ के साथ  
एरएडगैर के पीने से कुपिशूल, यस्तिशूल तथा  
कटिशूल शान्त होते हैं ॥ १२ ॥

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ।  
एक एव निहन्तासावेरएडस्नेहकेशरी १३

शरीररूपी घन में विचरते हुए आमवातरूपी  
हाथी को मारनेवाला केवल एरएडतैलरूपी सिंह  
ही है। अर्थात् एरएडतैल आमवात में अत्यन्त  
लाभदायक है। मात्रा ११ तोले से २॥ तोले  
तक है ॥ १३ ॥

एरएडतैलयुक्तां हरीतकीं भक्तयेन्नरो  
विधिवत् । आमानिलात्तियुक्तो गृध्रसि-  
ष्टद्धर्वादितो नित्यम् ॥ १४ ॥

आमवात, गृध्रसी तथा शृद्धिरोग से पीड़ित  
मनुष्य को एरएडतैल के साथ हट्ट का सेवन  
करना चाहिए ॥ १४ ॥

भृष्ट्वाद्यात् कटुर्तलेज्जैः सहारग्वध-  
पल्लवम् । किंवाम्लकाञ्जिके पक्त्वा स्वादे-  
दामानिलापहम् ॥ १५ ॥

अमलतास के पत्तों को सरसों के तेल में  
भूनकर भोजन के साथ खाने से अथवा पत्तों  
को राठी काँजी में पकाकर सेवन करने से  
आमवात नष्ट होता है। मात्रा एक तोला से दो  
तोला तक ॥ १५ ॥

मापं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्  
सदा । आमवातप्रशमनं कफवातहरं  
परम् ॥ १६ ॥

१ माशा सोंठ का चूर्ण काँजी के साथ  
पीने से आमवात और कफवात शान्त होते  
हैं ॥ १६ ॥

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनामारनालेन चूर्णि-  
तम् । पीत्या विरिच्यते जन्तुरामवातहरं  
परम् ॥ १७ ॥

निसोथ, सैधानमक और सोंठ इनके चूर्ण

को काँजी के साथ पीने से विरेचन होकर  
आमवात शान्त हो जाता है ॥ १७ ॥

सप्ताहं त्रिवृत्तश्चूर्णं त्रिवृत्तकाथेन भा-  
वितम् । काञ्जिकेन तु तत्पीतं रंचयेदाम-  
वातिनम् ॥ १८ ॥

आमवात के रोगी को विरेचन देने के लिए  
निसोथ के चूर्ण को सात दिन तक निसोथ के  
काथ से भावित कर काँजी के साथ सेवन  
कराना चाहिए ॥ १८ ॥ मात्रा ४ माशा ॥

शट्यादि काथ ।

शटी शुण्डव्यभया चोग्रा देवाहाति-  
विषामृता । कपायमामनातस्य पाचनं  
रुक्तभोजनम् ॥ १९ ॥

कचूर, सोंठ, हड़, बच देवदार, अतीस,  
गिलोय मिलकर २ तोला, क्वाथ के लिये जल  
३२ तोला शेष ४ तोला। यह क्वाथ आम-  
वात में पाचन है। पथ—रुक्त द्रव्यों का  
भोजन ॥ १९ ॥

रास्नादि काथ ।

रास्नैरएडशतावरीसहचरा दुःस्पर्श-  
वासामृता देवाहातिविषामयाघनशटी-  
शुंठीकपायः कृतः । पीतः सोरुबुतैल एष  
पिहितः सामे सशूलेऽनिले जङ्घोरुत्रि-  
कपार्श्वपृष्ठजठरक्रोडेपु वातार्चिजित् ॥ २० ॥

रास्ना, एरएडमूल, शतावरी, पियावासा,  
धमासा, अड़सा, गिलोय, देवदार, अतीस,  
हड़, मोथा, कचूर, सोंठ मिलाकर २ तोला,  
पाक के लिये जल ३२ तोला, शेष ४ तोला इस  
बाथ को अरएडी के तैल के साथ पीने से शूल-  
युक्त आमवात तथा जघा, ऊर, त्रिकसन्धि,  
पार्श्व पृष्ठ, उदर एव कुक्षिगत वातवेदना शान्त  
होती है ॥ २० ॥

महारास्नादि पाचन ।

रास्ना वातारिमूलश्च वासकश्च दुराल-  
भम् । शटी दारु बला मुस्तं नागराति-



विषामया ॥ २१ ॥ श्वदंष्ट्रा व्याधिघातश्च  
 मिसिधान्यपुनर्नवाः । अश्वगन्धा मृता  
 कृष्णा वृद्धदारः शतावरी ॥ २२ ॥ वचा  
 सहचरश्चैव चविका वृहतीद्वयम् । सम-  
 भागान्वितैरैतैः रास्नाद्विगुणभागिकैः २३  
 कषायं पाययेत्सिद्धमष्टभागवशोपितम् ।  
 शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमाभाघेन युतं तथा २४  
 अलम्बुपादिसंयुक्तमजामोदादिसंयुतम् ।  
 यथाटोपं यथाव्याधिः प्रक्षेपं कारयेद्वि-  
 पक् ॥ २५ ॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जग-  
 तेषु च । आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रानु  
 कम्पिने ॥ २६ ॥ कुब्जके वामने चैव  
 पक्षाघाते तथादिने । जानुजङ्घास्थिपीडासु  
 वृधस्यां च हनुग्रहे ॥ २७ ॥ सर्वेषां पाचना-  
 नान्तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम् । महारास्नादिकं  
 नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ २८ ॥

अण्डी की जड़, अहूमा, धमासा, कचूर, देवदारु, खरेटी, मोथा, सोंठ, अतीस, हई, गोखरु, यमिलतास, सौंफ, धनिया, साँठी, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधारे की जड़, शतावर, वच, पीले फूल का पियायासा, चय्य, छोटी कटेरी, यही कटेरी हरएक १ भाग, रास्ना २ भाग । इसमें १६ गुना जल ढालकर पकावे, जब आठवाँ भाग बाकी रहे तब उतार कर छान लें और रोगी को पितावे तथा व्याधि के अनुसार इस काथ में शुण्ठीचूर्ण, आभाघचूर्ण, अजगन्धपादि चूर्ण एव अजामोदादि चूर्ण ढालकर सेवन कराना चाहिए । इसके सेवन से सन्धिगत एवं मज्जागत वात-व्याधि, आनाह, सर्वाङ्गकम्प, हृत्प्राणरोग, पक्षाघात, सर्दित तथा जानुजङ्घास्थिगत पीडा, वृधसी, हनुस्त्रम्भ आदि रोग नष्ट होते हैं । सब पाचकों में प्रजापतिनिर्मित यह महारास्नादि पाचन सबसे उत्तम है ॥ २१-२८ ॥

शुण्ठीगोक्षुरककाथः प्रातः प्रातर्निपेवितः ।  
 सामे वाते कटीशूले पाचनो रुग्विनाशनः ॥  
 यत्रचारसमायुक्तो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः २९ ॥  
 प्रचारच्छुण्ठीभागमेकं गोक्षुरकभाग-  
 त्रयं गृहीत्वा कर्पाद्धस्य काथः विरेचनार्थं  
 पुनर्यत्रचारप्रक्षेपेणाप्ययं पेयः ।

सोंठ १ भाग, गोखरु ३ भाग, इनका काथ कर प्रातःकाल सेवन करने से आमवात तथा कटिशूल नष्ट होते हैं । यह काथ पाचन तथा वेदना नाशक है । इस काथ में जवाखार ढालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । मलविरेचन तथा मूत्रावरेचन के लिये जवाखार ढालना चाहिए ॥ २९ ॥

शटीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूकाथ-  
 संयुतम् । सप्तरात्रं पिवेज्जन्तुरामवात-  
 विपाचनम् ॥ ३० ॥

पुनर्नवा के काथ के साथ कचूर तथा सोंठ के १ मासे चूर्ण को सात दिन तक आम वात में सेवन करा से आमरस का परिपाक होता है ॥ ३० ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूली जलं पिवेत् ३१  
 आमवात में दशमूल के काथ में पीपल ढाल कर रोगी को पिताना चाहिए ॥ ३१ ॥

रसोनादि काथ ।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीकाथमामादिनः पिवेत् ।  
 नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ३२  
 लहसुन, सोंठ तथा सैमालू मिजाकर आधा तोला, जब ३२ तोला, शेष ८ तोला, यह काथ आमवात में अत्यन्त हितकर है ॥ ३२ ॥

चित्रकादि चूर्ण और देवदारुवादि चूर्ण ।  
 चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषामृताः ।  
 देवदारु वचा मुस्तनागरातिविषामयाः ॥ ३३ ॥  
 पिवेदुष्णाभ्युना नित्यमामवातस्य भेषजम् ॥  
 ( १ ) चित्रक, कटुकी, पाठा, इन्द्रको, अतीस,

गिलोय, या ( २ ) देवदारु, वच, मोथा, सोंठ, असीस, हृद, इन दोनों योगों में से किसी एक चूर्ण को ( रोगी की अवस्था के अनुसार ) गरम जल से प्रतिदिन सेवन करना चाहिए । मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक ॥ ३३ ॥

अमृतादि चूर्ण ।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डितिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् । मस्त्वारनालपीतमामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ३४ ॥

गिलोय, सोंठ, गोखरू, योरखमुण्डी, बरना इनके चूर्ण को दही के पानी अथवा कॉजी के साथ सेवन कराने से श्रामवात अच्छा होता है । मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक ॥ ३४ ॥

शतपुष्पाद्य चूर्ण ।

गतपुष्पाग्निद्वानि सैन्धवं मरिचं समम् । चूर्णमुष्णांशुना पीतमग्निमन्दीपनं परम् ३५

सोया, वागविडङ्ग, सेंधा नमक, कालीमिर्च इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पीने से अग्नि प्रदीप्त होकर श्रामवात नष्ट होता है । मात्रा—३ माशा ॥ ३५ ॥

हिङ्गवाद्य चूर्ण ।

हिंमु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपौफरम् । भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद् भवेत् ॥ ३६ ॥

होंग १ भाग, चव्य २ भाग, विड नमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, पीपल २ भाग, काला जीरा ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग, इम चूर्ण को गरम जल के साथ पीने से श्रामवात अच्छा होता है । मात्रा—३ माशा ॥ ३६ ॥

धैश्वानरचूर्ण ।

माणिमन्धस्य भार्गो द्वौ यमान्यास्तद्वदेव हि । भागास्त्रयोऽजमोदाया नामराद्भागपञ्चरुम् ॥ ३७ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णाकृताः शुभाः । मस्त्वारनक्रोलतण सपिपोष्णोदकेन वा ॥ ३८ ॥

पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्वस्तिजान् गदान् । स्त्रीहानं ग्रन्थिशूलादीनशांस्यानाहमेव च । ॥ ३६ ॥ विवन्धं वातमान् रोगांस्तथैव हस्तपादजान् । वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ४० ॥

अजमोदायमानी एवं सर्वत्रान्तःपरिमार्जके वहिसम्मार्जने पुनरजमोदैव । उक्तं हि—“अन्तः सम्मार्जने प्रायोऽजमोदायमानिका । वहिःसम्मार्जने ज्ञेया चाजमोदाजमोदिका ॥”)

सैन्धवनमक २ भाग, अजमोद २ भाग, अजमोद ३ भाग ( अजमोद के ही पाँच भाग ले ), सोंठ २ भाग और बड़ी हृद १२ भाग, इन सबके चूर्ण को दही के पानी, कॉजी, तक्र, घृत और उष्ण जल इनमें से किसी एक के साथ सेवन करावे । मात्रा चूर्ण का ३ माशा । इस चूर्ण के सेवन से श्रामवात गुश्म, हृदरोग, बस्तिरोग, प्लीहा, प्रीन्थ, शूल, अशं, आनाह, मलयदता, वातजन्वरोग तथा हाथ और पाँव के रोग नष्ट होते हैं । यह वैश्वानर चूर्ण वातानुलोमन है ॥ ३७-४० ॥

पुनर्नवादि चूर्ण ।

पुनर्नामृता शुण्ठी शताहा वृद्धदारकम् । शशी मुण्डितिकाचूर्णमारनालेन पाययेत् ॥ ४१ ॥ आमाराशयोत्थरातन्त्रं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना । श्रामवातं निहन्त्याशु वृध्नीमुद्गतामपि ॥ ४२ ॥

सकेद सांठी, गिलोय, सोंठ, सोया, पिप्पारा, कदूर तथा योरखमुण्डी इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर पयारोप कॉजी अथवा गरम जल के साथ रोगी को सेवन करावे । मात्रा ३ माशे । इसके सेवन से आमाराशय में पैदा हुआ वात, श्रामवात एवं गुश्मदी आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४१-४२ ॥

पथ्याद्य चूर्णम् ।

पथ्याविश्वयमानीभिस्तुल्याभिरचूर्णितं  
पिवेत् । तक्रेणोष्णोदकेनापि काञ्जिके-  
नाथवा पुनः ॥४३॥ आमवातं निहन्त्याशु  
शोथं मन्दाग्नितामपि । पीनसं कासहृद्रोगं  
स्वरभेदमरोचकम् ॥ ४४ ॥

बड़ी हड, सोंठ, अजवाइन, इनके चूर्ण को  
बराबर मात्रा में मिलाकर छाँड़, गरम जल  
अथवा काँजी से सेवन करावें । मात्रा ३ माशे ।  
इस चूर्ण के प्रयोग से आमवात, सूजन, मन्दाग्नि,  
पीनस, खाँसी, हृद्रोग, स्वरभेद तथा अरुचि  
आदि रोग अच्छे होते हैं ॥ ४३-४४ ॥

आभाद्य चूर्णम् ।

आभारास्ना गुडूची च शतमूली महौ-  
पधम् । शतपुष्पाखगन्धा च ह्युपा वृद्ध-  
दारकः ॥ ४५ ॥ यमानी चाजमोदा च  
समभागानि कारयेत् । सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा  
द्विमापकमितं पिवेत् ॥ ४६ ॥ मधुमैस-  
सैर्युषैस्तक्रैरुष्णोदकेन वा । सर्पिषा वापि  
लेखन्तु दधिगण्डेन वा पुनः ॥ ४७ ॥  
अस्थिसन्धिगतं वायु स्नायुमज्जाश्रितञ्च  
यत् । कटिग्रहं गृध्रस्रीश्च मन्यास्तम्भं हनु-  
ग्रहम् ॥४८॥ ये च कोष्ठगता रोगास्तांश्च  
सर्वान् प्रणाशयेत् । आभाद्योनामचूर्णोऽयं  
सर्वव्याधिनिवर्हणः ॥ ४९ ॥

घण्ट की छाल, रास्ना, गिलोय, शनाबर,  
सोंठ, मोथा, अमगन्ध, हाऊबेर, विषारा, अज-  
वाइन तथा अजमोदा, हरणक के चूर्ण को बराबर  
मात्रा में मिलाकर रोगों को घटायोग्य मात्रा  
में सेवन करावें । मात्रा—२ माशे । अनुपात  
शराय, मांमरस का जूस, छाँड़, गरम जल, प्ल  
अथवा दधिमय ( मग्नु ) । इसके सेवन से  
अस्थिगत, मज्जागत, स्नायुगत तथा मज्जा में  
प्राधिन वात, कजर में दर्द, प्रस्रगी, मन्दाग्नि,  
दनुषद तथा अन्य जो भी कोष्ठ में होनेवाले

वातज रोग हैं, वे अच्छे होते हैं । यह आभाद्य  
चूर्ण सम्पूर्ण रोगों का नाश करनेवाला है । इस  
चूर्ण में इसके अंतःपरिमार्जक होने के कारण  
अजमोदा का अर्थ अजवाइन ही करना चाहिए ।  
इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना । इस साधारण  
नियम के अनुसार इस चूर्ण में अजवाइन के दो  
भाग लेने चाहिए ॥ ४२-४९ ॥

अलम्बुपाद्य चूर्णम् ।

अलम्बुपां गोक्षुरकं गुडूचीं वृद्धदार-  
कम् । पिप्पलीं त्रिष्टतां मुस्तं वरुणां  
सुपुनर्नवम् ॥ ५० ॥ विफलां नागरञ्चैव  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । मस्त्वानालत-  
क्रेण पयोमांसरसेन वा ॥५१॥ आमवातं  
निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् । स्नीह-  
गुल्मादरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥५२॥  
अग्निञ्च कुरुनेदीप्तं तेजोवृद्धिं वलं तथा ।  
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगता-  
नपि ॥ ५३ ॥

गोरक्षमुषडी, गोखरू, गिलोय, विषार की  
जड़, पीपल, निमोत, मोथा, बरना की जड़ की  
छाल, सकेद साँठी, हड, बडेडा, श्यायला,  
सोंठ, इनका महीन चूर्ण कर बराबर मात्रा में  
मिलाकर सेवन करावे । मात्रा—३ माशे । अनु-  
पात—दही का पानी, काँजी, छाँड़, दूध,  
अथवा मांमरस । इसके सेवन से आमवात,  
सन्धिस्थित सूजन, स्नीहा, गुग्म, उदर रोग,  
अफरा, श्वासीर तथा सन्धिगत एवं मज्जागत  
वातरोग अच्छे होते हैं । यह चूर्ण धीन को  
तीव्र करता है । तथा तेज धीर यत्र को बढ़ाता  
है ॥ ५०-५३ ॥

अपरअलम्बुपाद्य चूर्णम् ।

अलम्बुपागोक्षुरकत्रिफलानागरामृताः ।  
यथोत्तर भागवृद्धवाद्यामाचूर्णं तु तत्प-  
नम् ॥ ५४ ॥ पिपेन्मस्तुगुरातक्राञ्जि-  
कोष्णोदकेन वा । पीतं नपत्पागतां

सशोफं वातशोणितम् ॥ ५५ ॥ त्रिक-  
जानूरुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनम् ।  
अलम्बुपाचमिदं चूर्णं रोगानीकविनाश-  
नम् ॥ ५६ ॥ हरीतक्यक्षधात्रीभिः  
प्रसिद्धा त्रिफलाक्रमात् । प्रत्येकं तेन  
चामुष्माद्भागवृद्धिर्यथोत्तरम् ॥ ५७ ॥

अत्र श्यामा वृद्धदारक इति चक्रदत्त-  
टीकायां शिवदासः

गोरखमुण्डो १ भाग, गोरख २ भाग, हृद  
३ भाग, बहेटा ४ भाग, शबिला ५ भाग, सोंठ  
६ भाग, गिलोय ७ भाग, विधारे की जड़ २८  
भाग, इनके महीन चूर्ण को मिलाकर दही के  
पानी, शराब, छाँड़, कांजी अथवा गरम जल  
आदि के अनुपान से यथायोग्य मात्रा में सेवन  
करने से श्रामवात, ज्वर, अरुचि और त्रिकसन्धि,  
जानु तथा ऊरु, सन्धिस्थ, शोथयुक्त वातरत्र  
अच्छा होता है । मात्रा-३ माशा ॥ २४-२७ ॥

अजमोदादिवटक ।

अजमोदामरिचपिप्पलीविडङ्गसुरदारु-  
चित्रकशताहाः । सैन्धवपिप्पलीमूलं भागा  
नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ५८ ॥ शुण्ठी  
दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्ध-  
दारस्य । पथ्या पञ्च पलानि च सर्वाण्ये-  
कत्र सञ्चूर्ण्य ॥ ५९ ॥ समगुडवटका-  
नदतश्चूर्णं वाप्युष्णवारिणा पिवतः ।  
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुक-  
प्टारश्च ॥ ६० ॥ विसूचिका प्रतिवृणी  
हृद्रोगा ग्रससी चोग्रा । कटिवस्तिगुद-  
स्फटनञ्चैरास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ॥ ६१ ॥  
श्वययुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवात-  
सम्भूताः । सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव  
सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ६२ ॥

अजमोदादिवटके सर्वचूर्णतमो

किञ्चिदुदकं दत्त्वा वह्नौ गुडं द्रवीकृत्य  
तत्र चूर्णं मत्तिप्य वटका कार्याः चूर्णं  
वेत्ति गुडं विहाय केवलमुष्णोदकादिभिः  
पेयमिति भानुः ।

अजमोद, कालीमिर्च, पीपरि, वायविडङ्ग,  
देवदार, चीता सौंफ, सैन्धवनमक और पिपरा-  
मूल चार-चार तोले, सोंठ आध मेर, विधारे  
के बीज आध सेर, हृद पाव भर, इन सबका  
चूर्ण एकत्र करे । पश्चात् सम्पूर्ण चूर्ण के  
समान गुड़ मिलाकर वटक बनावे । वटक की  
मात्रा ३ से ६ माशे की है । अनुपान उष्ण जल ।  
यदि वटक श्रामवात, श्रामवातजन्य अन्यान्य रोग,  
विसूचिका, प्रतिवृणी, हृद्रोग, उग्रग्रससी, कटिशूल,  
वातिशूल, गुदा, अस्थि एव जङ्घा आदि की  
तीव्र वेदना तथा सन्धिशोथ और श्रामवात से  
उत्पन्न अनेक रोगों को ऐसे नष्ट करता है जैसे  
भगवान् भास्कर की किरणें अन्धकार को नष्ट  
करती हैं । जो लोग वटक न बनाना चाहें वे  
घिना गुड़ के चूर्ण को ही उष्ण जल के साथ सेवन  
कर सकते हैं । चूर्ण की मात्रा ३ माशे । वटक  
बनाने की विधि यह है कि प्रथम गुड में थोड़ा  
जल डालकर आग पर रखे । जब उसकी वटक  
बनाने योग्य चाशनी हो जाय तो उसमें चूर्ण  
मिलाकर करछी से अच्छी प्रकार मिलाकर  
वटक बना ले ॥ २८--६२ ॥

श्रामगर्जसिंहमोदक ।

शुण्ठीचूर्णस्य प्रस्थैकं यमान्याश्च पला-  
ष्टकम् । जीरकस्य पलद्वन्द्वं धन्याकस्य  
पलद्वयम् ॥ ६३ ॥ पलैकं शतपुष्पाया  
लवङ्गस्य पलं तथा । टङ्गणस्य पलं ग्राह्यं  
मरिचस्य पलं भवेत् ॥ ६४ ॥ त्रिवृता-  
त्रिफलात्तारपिप्पलीनां पलं पलम् । एतेषां  
सर्वचूर्णानां खण्डं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥  
घृतेन गुडकीकृत्य मोदको मधुना कृतः ।

मोदकोत्तानेन उष्णमात्रां कर्ष्यं तत्राग्नं मत्त-

त्वचः ॥ ६६ ॥ चतुर्भिरधिवासोऽस्य  
 तोलैकं खादयेद् बुधः । शरीरं वोच्य  
 मात्रास्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ ६७ ॥  
 आमयातप्रशमनः कटीग्रहविनाशनः ।  
 शूलघ्नोरक्तापित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः ६८  
 श्रीमता चन्द्रनाथेन गुरुणा भाषितं मयि ।  
 श्रीमद्गहननाथोऽयं कृतवान् मोदकं  
 शुभम् ॥ ६९ ॥ गर्जत्वामगजेन्द्रोऽयम-  
 जीर्णवनमागतः । यथासिंहो वने हन्ति  
 दन्तिनं वलिनं शुभम् ॥ तथामराजकरिणं  
 निहन्त्येव न संशयः ॥ ७० ॥

शट्चादिनां चतुर्णां प्रत्येकमेककर्म  
 सुगममन्यत् ।

सोह का चूर्ण ६४ तोले, अजवाहन  
 ३२ तोले, जीरा ८ तोले, धनिया ८ तोले,  
 सौंफ ४ तोले, लौंग ४ तोले, सुहागा ४ तोले,  
 कालीमिर्च ४ तोले तथा निसीत, हड, बहेड़ा,  
 आंवला, जवाखार और पीपरि चार-चार तोले  
 और सगुण्य चूर्ण से चौगुनी खाँड़ । घृत और मधु  
 के साथ इनके मोदक ( लड्डू ) बनाकर छोटी  
 इलायची, तेजपात तथा दालचीनी इतना एक-  
 एक तोले चूर्ण लेकर उन मोदकों पर छिड़ककर  
 इनको सुगन्धित कर दे । मात्रा ६ माशे से  
 १ तोला पर्यन्त । रोगी के बलायल के  
 अनुसार मात्रा में न्यूनाधिक्य भी हो सकता  
 है । पहले छोटी मात्रा से आरम्भ कर क्रमशः  
 बढ़ाना अच्छा है । यह मोदक आमवात, कटि-  
 प्रद, शूल, रज्जुपित्त तथा अम्लपित्त को नष्ट  
 करता है । अजीर्णवन में आया हुआ आम-  
 वातरूपी गजराज तब तक गर्जता है जब तक  
 यह बटकाकपी सिंह नहीं आता । जैसे सिंह वन  
 में बलवान् गजराज को मार डालता है वैसे ही  
 यह मोदकरूपी सिंह आमवातरूपी गजराज को  
 निःसंदेह मार डालता है । यह धीगहननाथ का  
 बनाया हुआ मोदक धीमान् चन्द्रनाथ ने कहा  
 है ॥ ६३-७० ॥

रसोनपिण्ड ।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं  
 तथा । हिङ्गु त्रिकटुकं चारो द्वौ पञ्च ल-  
 वणानि च ॥ ७१ ॥ शतपुष्पा तथा कुष्ठं  
 पिप्पलीमूलचित्रकौ । अजमोटा यमानी  
 च धन्याकश्चापि बुद्धिमान् ॥ ७२ ॥  
 प्रत्येकं तु पलञ्चैषां रत्नक्षेत्राणि कार-  
 येत् । घृतभाण्डे दृढे चैतत् स्थापयेद्दिन-  
 पोडशम् ॥ ७३ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानीञ्च  
 प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च । खादेत्कर्पप्रमाणं  
 तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ ७४ ॥ आमयाते  
 तथा वाते सर्वाङ्गैकाद्भ्रसंश्रये । अपस्मारे-  
 ऽनले मन्त्रे कासश्चासगरेषु च । उन्मादे  
 वातभग्ने च शूले जन्तोः प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

झिलाहुआ लहसुन २ सेर, निस्तुप टिलकार-  
 रहित) तिल पावभर, हींग त्रिकटु, यवखार, सजी  
 खार, पञ्चलवण, सौंफ, कूट, पिपरामूल, चीता,  
 अजमोद, अजवाहन और धनिया चार-चार तोले ।  
 इन सब औषधियों के चूर्ण को किसी घृत के  
 पात्र में रखकर उसमें आध सेर तिलतैल और  
 आध सेर काँजी मिलाकर १६ दिन तन धान्य  
 की राशि में रखते, पश्चात् एक एक तोला  
 इसका सेवन करे और ऊपर से जल या मद्य  
 पिये । इसके द्वारा आमवात, सर्वाङ्गवात, पक्षा-  
 गवात, अपस्मार, अभिगन्ध, काम, श्वास,  
 विष, उन्माद, वातभग्न, और शूल आदि रोग  
 नष्ट होते हैं ॥ ७१-७५ ॥

महारसोनपिण्ड ।

रसोनपलशतं चुण्णं तद्वर्द्धं निस्तु-  
 पात्तिलात् । पात्रं गन्धस्य तक्रस्य पिष्ट्वा  
 चैतानि संक्षिपेत् ॥ ७६ ॥ त्रिभु घान्यकं  
 चव्यं चित्रकं गजपिप्पली । अजमोटा  
 त्वमेला च ग्रन्थिकञ्च पलांशिकम् ॥ ७७ ॥  
 शर्करायाः पलान्यष्टौ पलांशं मरिचस्य

च । कुष्ठजाड्योश्च चत्वारि मधुनः  
कुडवं तथा ॥ ७८ ॥ आर्द्रकस्य च  
चत्वारि सर्पिपोष्टौ पलानि च । तिल-  
तैलस्य तावन्ति शुक्लकस्यापि विंशतिः ॥  
७९ ॥ सिद्धार्थकस्य चत्वारि राजिकाया-  
स्तथैव च । कर्पूरमाणं दातव्यं हिङ्गुं  
लवणपञ्चकम् ॥ ८० ॥ एकीकृत्य दृढे  
कुम्भे धान्यराशौ निधापयेत् । द्वादशा-  
हात् समुद्धृत्य भानः न्वाद्यं यथावलम् ॥  
८१ ॥ सुरां सौवीरकं मीधुं चीरश्चानु-  
पिवेन्नरः । जीर्णं यथेप्सितं भोज्यं दधि  
पिष्टान्नवर्जितम् ॥ ८२ ॥ एकमासप्रयोगेण  
सर्वान् व्याधीन् व्यपोहति । अशीति  
वातजान् सेगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्  
॥ ८३ ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव प्रमे-  
हानपि विंशतिम् । अशींसि पद्मकाराणि  
गुल्मं पञ्चविधं तथा ॥ ८४ ॥ अष्टादश-  
विधं कुष्ठमेकादशविधं क्षयम् । श्वयथुं  
योनिशूलञ्च सर्वमाशु विनाशयेत् ॥ ८५ ॥  
क्षतसन्ध्यस्थिभग्नानां सन्धानकरणः परः ।  
दृष्टेर्वलकरो ह्य आयुष्यो बलवर्द्धनः ॥  
महारसोनपिण्डोऽयमाम्नातकुलान्तकः ८६  
सर्वमेकीकृत्य चण्डातपे शोषयित्वा  
स्निग्धमाण्डे संस्थाप्य धान्यराशौ द्वाद-  
शदिनानि स्थाप्यं तत उद्धृत्य आकृष्य  
स्नाद्यं मापं ८ उक्लमनुपानम् ।  
दिना दुग्धा लघुमन २ सेर, धिलकारिपत  
तिल २ ॥ सेर, माय के दर्श का तक्र ६ सेर  
३२ तोले, विषडु, धनिया, चाप, पिप्रक,  
गजपीपरि, गजमोद, दालचीनी, इलायची और  
पिपरामूल चार-चार तोले, चीनी ३२ तोले, मिषं  
४ तोले, घृत १६ तोले, जीरा १६ तोले, मधु  
३२ तोले, अदरक १६ तोले, घृत १६ तोले, तिल-

तैल १६ तोले, कर्जो ८० तोले, श्वेत सरसों १६  
तोले, गई १६ तोले, हींग १ तोला, पाँचों  
नमक एक-एक तोला । इन सब औषधियों में  
जो-जो कूटने-पीसने के योग्य हैं उनको कूट-पीस  
ले । परचात् पूर्वोक्त सब औषधियों को एक  
चिक्ने पात्र ( घड़े ) में रखकर तीव्र धूप में  
कुछ समय तक रखे । परधान् पात्र का मुख  
बन्द कर धान्यराशि में १२ दिन तक रखे ।  
फिर निकालकर प्रातःकाल रोगी का बलावत  
देहकर ८ मास तक की मात्रा दे और ऊपर  
से सुरा, सौवीर, सीसु या सुरा फीरे, 'छोपड़ि  
के जीर्ण होने पर दधि और पीठी के बने पदार्थों'  
के अतिरिक्त अन्यान्य वस्तुओं को यथेष्ट न्वावे ।  
एक मासपर्यन्त सेवन करने से यह सब प्रकार  
के रोगों को नष्ट करता है । ८० प्रकार के वात  
रोग, ४० प्रकार के पैत्तिक रोग, २० प्रकार के  
श्लैष्मिक रोग २० प्रकार के प्रमेह, ६ प्रकार,  
के अर्श ( घवागीर ), ४ प्रकार के गुल्म, १८  
प्रकार के कुष्ठ, ११ प्रकार के क्षय, शोथ तथा  
योनिशूल आदि सब रोगों को शीघ्र नष्ट करता  
है । संधिभंग तथा अस्थिभंग को जोड़नेवाला,  
हृद्य को हितकारी, आयुष्कार तथा बलवर्धक  
और दृष्टिवर्धक है । यह महारसोनपिण्ड आम-  
वात को समूल नाश करता है ॥ ७६-८६ ॥

वातारिगुग्गुलु ।

वातारितैलसंयुक्तं गन्धकं पुरसंयुतम् ।  
फलत्रययुतं कृत्वा पिष्टयित्वा चिरं रुजी ॥  
८७ ॥ भक्षयेत् प्रत्यहं प्रातरुष्णतोयानु-  
पानतः । दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं  
निरन्तरम् ॥ ८८ ॥ सामरातं कटीशूलं  
गृध्रसीं खड्गपद्मगुताम् । वातरक्तं सशोचश्च  
मद्राहं क्रोष्टुशीपकम् ॥ शमयेद्बहुशो दृष्ट-  
मपि वैद्यविर्वर्जितम् ॥ ८९ ॥

एरएरमैल, गन्धक, गुग्गु और चिकड़ा  
पर प्र पीमकर प्रतिदिन प्रातः काछ एक मास तक  
उष्ण जल के साथ सेवन करे । यह 'वातारि  
गुग्गु' आमवात, कटिशूल, गृध्रसी, मज्जा,

पंगुता, शोथयुक्त वातरङ्ग तथा दाहयुक्त क्रोष्टुशीर्ष  
आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ ८७-८९ ॥

### योगराजगुग्गुलु ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंयमानी कारवी तथा ।  
विडङ्गान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥  
६० ॥ चत्र्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ना गोक्षु-  
रधान्यकम् । त्रिफलामुस्तकं व्योषं त्र्यगुशीरं  
यवाग्रजम् ॥ ६१ ॥ तालीशपर्त्रं पत्रञ्च  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि  
चूर्णानि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥ ६२ ॥  
सम्मर्धं सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधा-  
पयेत् । अतो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहार-  
वानपि ॥ ६३ ॥ योगराज इति ख्यातो  
योगोऽयममृतोपमः । आमशाताढ्यशाता-  
दीन् कृमिदुष्टव्रणानि च ॥ ६४ ॥ स्त्रीहा-  
गुल्मोदरानाहदुर्नामानि मिनाशयेत् ।  
अग्निञ्च कुरुते दीप्ते तेजोवृद्धिं बलंतथा ॥  
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगता-  
नपि ॥ ६५ ॥

आदौ सिद्धगुग्गुलुं घृतेन पिष्टयित्वा  
पश्चात् समेन सर्पचूर्णेन सह घृतेन  
पिष्टयित्वा स्निग्धभाण्डे स्थापयेत्ततोऽष्टौ  
मापकानुष्णोदकेन भक्षयेत् ।

बीते की जड़, पिपरामूल, अजनाहन,  
कड़ीनी, वायविहङ्ग, अजमोद, जीरा, देपदार,  
पथ्य, हृत्वायची, सैन्धव, कूट, रास्ना, गोखरु,  
पनिपत्र, त्रिफला, नागरमोधा, त्रिकटु, दालचीनी,  
खम, जशास्वार, तालीशपत्र और तेजपात सम  
भाग इन सब औषधियों को चूर्णित कर ले ।  
पूर्व जितना हो उतना ही गुग्गुलु अथवा पदिसे  
पुन में मर्दिता करे परन्तु उष्ण घृण में मिनाश  
कर पुन के साथ घोटकर स्निग्धपात्र में रख  
दे । मात्रा ८ मात्रो तक उष्ण जल से लये ।

यथेष्ट आहारवाला रोगी उचित मात्रा में इसका  
सेवन करे । यह योग अमृत के समान है ।  
इसके सेवन से आमवात, ऊर्जस्तम्भ, कृमि  
दुष्टव्रण, प्रीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, अर्श  
एवं सन्धि तथा मज्जगत वातरोग नष्ट होते हैं ।  
यह योगराज गुग्गुलु अग्नि का दीपक तथा  
तेज और बल का बढ़ानेवाला है ॥ ६०-६५ ॥

### घृहयोगराजगुग्गुलु ।

त्रिकटु त्रिफला पाठा शताह्वा रजनी-  
द्वयम् । अजमोदा वचा हिङ्गु हवुषा  
हस्तिपिप्पली ॥ ६६ ॥ उपकुञ्चिका शशी  
धान्यं विडं सौवर्चलं तथा । सैन्धवं  
पिप्पलीमूलं त्वगेला पत्रकेशरम् ॥ ६७ ॥  
फगिज्भकश्च लौहश्च सर्जकश्च त्रिकण्ट-  
कम् । रास्ना चातिविषा शुण्ठी यवक्षारा-  
म्लयेतसम् ॥ ६८ ॥ चित्रकं पुष्करं चव्यं  
वृक्षाग्लं टाडिम् स्रु । अश्वगन्धा त्रिवृ-  
हन्ती वदरं देवदारु च ॥ ६९ ॥ हरिद्रा  
कटुका मूर्त्ता त्रायमाणा दुरालभा । विडङ्गं  
मृतमङ्गश्च यमानी वासकाभ्रकम् ॥ १०० ॥  
एतानि समभागानिश्लक्ष्णचूर्णानि कार-  
येत् । शोधितं गुग्गुलुञ्चैत्र सर्पचूर्णसमं  
नयेत् ॥ १०१ ॥ घृतेन पिष्टयित्वा च  
स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् । रमनातेन ये  
भग्नाः कटिभग्नाश्च ये जनाः ॥ १०२ ॥  
एकाङ्गं शुष्यते येषां कुष्ठं वापि क्षतोत्तरम् ।  
पादौ विस्तारितौ येषां येषां व शृङ्गसी-  
ग्रहः ॥ १०३ ॥ सन्धिशातं क्रोष्टुशीर्षं  
वातं सर्पशरीरगम् । अशीति वातजान्  
रोगांश्चत्वारिंशच्च पंचिकान् ॥ १०४ ॥  
त्रिंशतिं श्लेष्मिकांश्चैत्र हन्त्ययस्य न  
संशयः । अयं घृहयोगराजगुग्गुलुः सर्प-  
शातहा ॥ १०५ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, पाद, सौंफ, हल्दी, दारुहल्दी, अजमोद, वच, हींग, हाऊबेर, गजगीपरी, कर्लीजी, कचूर धानया, विडनभक, कालानमक, संधानमक, पिपरा मूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, महारा, लोहभस्म, राल, गोखरू, रास्ता, अतीस, सौंड, जवाब्यार, अमलबेत, चीता, पुहकरमूल, चव्य, विपांघिल (चूक), अनारदाना, एरण्डमूत्र, असपन्ध, निसोथ, दन्ती का मूल, वेर के बीज की सींगी, देवदारु, हल्दी, कुटकी, मूर्वा, त्रायमाखा, जवासा, वाय-विडङ्ग, बह्मभस्म, अजवाइन, अडूसे की छाल और अक्रकभस्म प्रत्येक समभाग लेकर महीन चूर्ण करे । इस सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर त्रिशुद्ध गुग्गुलु ले घृत योग से कूट करके चूर्ण में उत्तम रीति से मिलाकर घृतपात्र में रख ले । मात्रा ४ रत्ती से २ माशे तक । इस बृहद्योगराज-गुग्गुलु के सेवन से रसवाजन्म भग्न, काँट-भग्न, एकाङ्गरोग, छतकुष्ठ, पैरों का फँस जाना, गृध्रसी, सन्धिवात, क्रोष्ट शीर्ष, स्वर्द्धवात तथा सम्पूर्ण वातज, पित्तज एव शनैः शिथिल रोग नष्ट होते हैं ॥ ६६-१०५ ॥

### सिंहनादगुग्गुलु ।

पिट्टितां गुग्गुलोर्माग्नीं कटुतैलपलाष्ट-  
कम् । प्रत्येकं त्रिफलाभस्थौ सार्द्धद्रोणे  
जले पचेत् ॥ १०६ ॥ पादशेषञ्च पूतञ्च  
पुनरेतद्विमिश्रयेत् । त्रिकटुत्रिफलापुस्त-  
विडङ्गामरकानिकम् ॥ १०७ ॥ गृह्य-  
ग्नित्रिवृद्धन्ती चवी शूरणमाणकम् ।  
पारदं गन्धकञ्चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥  
१०८ ॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धे सञ्चू-  
र्यं नित्तिपेत् । ततो मापद्वयं जग्ध्या  
पिपेत्तप्तजलादिकम् ॥ १०९ ॥ अग्निञ्च  
कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् । धातुष्टद्धि-  
पयोष्टद्धिभलं सुविपुलं तथा ॥ ११० ॥  
आमवातं शिरोवातं सन्धिवातं सुदारु-  
णम् । जानुजङ्घाश्रितं वातं सकटिग्रहमेव

च ॥ १११ ॥ अशमरीं मूत्रकृच्छञ्च  
भग्नञ्च तिमिरोदरे । अम्लपित्तं तथा  
कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ ११२ ॥ कासं  
पञ्चविधं श्वासं क्षयञ्च विपमञ्जरम्  
स्त्रीहानं श्लीपदं गुल्मं पाण्डुरोगं सकाम-  
लाम् ॥ ११३ ॥ शोथान्त्रवृद्धिशूलानि  
गुदजानि विनाशयेत् । मेदःकफामस-  
ङ्घातं व्याधिवारणदर्पहा ॥ सिंहनाद इति  
ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ११४ ॥

कटुतैलेन गुग्गुलुं पिष्ट्वित्वा काथ-  
जलेन सह पक्त्वा आसनपात्रे पक्षेपार्थं  
त्रिकट्वादीनां चूर्णतो ४ तो० शोधित  
जयपालवीज गोश १००० रसगन्धकौ  
कज्जलीकृत्य शीतीभूते दातव्यौ इति  
वृद्धाः ।

हृद्य, आँवला और बहेडा प्रत्येक १२८ तोले,  
शिथिल पोटली में बँधा हुआ गुग्गुलु ३२ तोले,  
पाकार्थ जड़ ३८ सेर ३२ तोले, शेष  
६ सेर ४४ तोले । पोटली में बँधे हुए गुग्गुलु को  
घ्रलग कर ३२ तोले कटु तैल के साथ मर्दित  
कर काथ में ढालकर पकावे । जय ठीक पाक  
हो जाय तब त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोषा,  
वायविडङ्ग, देवदारु, गिलोय, चीता, निसोय,  
दन्ती, चव्य, मूरु (जमीकन्द), मानकन्द,  
प्रत्येक दो-दो तोले, पारद और गन्धक की  
कज्जली ४ तोले, गुद जमालगोश के १०००  
दाने, इन औषधियों को भलीभाँति चूर्णित  
कर ढाले और अच्छी तरह मिला  
दे । मात्रा—एक माशे से दो माशे तक ।  
अनुपान—उष्ण जल या उष्ण दुग्ध । यह  
‘सिंहनादगुग्गुलु’ षड्विधानल के समान अग्नि को  
दीप्त करता है तथा धातु, प्रायु और वज्र को  
बढ़ाता है । आमवात, शिरोगतवात, शूलण

१ पारद और गन्धक की कज्जली औषध के ठंडे  
हाने पर मिलावे ।



सन्धवात, जानु एव जानुध्रितवात, कटिग्रह  
(कमर की पीडा), अशमरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न,  
तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, गुद-  
अंश, कास, श्वास, क्षय, विषमज्वर, ग्रीहा,  
श्लीषद, गुल्म, पायडु, कामला, शोथ, अम्र,  
वृद्धि, शूल और अर्श आदि रोगों को नष्ट  
करता है। यह गुग्गुलु व्याधिरूपी हाथी के मद  
को चूर करता है, अतः 'सिंहनाद गुग्गुलु' नाम  
से ख्यात हुआ है। यह योग अमृत-तुर्य  
लाभदायक है ॥ १०६--११४ ॥

### अपर सिंहनाद गुग्गुलु

पलत्रयं कपायस्य त्रिफलायाः सु-  
चूर्णितम् । सौगन्धिकपलञ्चैकं कौशिक-  
स्य पलन्तथा ॥ ११५ ॥ कुडवं चित्र-  
तैलस्य सर्वमादाय यन्नतः । पाचयेत्  
पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे ॥ ११६ ॥  
हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्ज-  
पंगुताम् । श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं  
पञ्चविधन्तथा ॥ ११७ ॥ कुष्ठानि वात  
रक्तानि गुल्मशूलोदराणि च । आमनातं  
जयेदेतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ ११८ ॥  
एतद्भ्यासयोगेन जरापलितनाशनम् ।  
सर्पिस्तैलसोपेतमरनीयाञ्चालिपट्टिकम् ॥  
११९ ॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोग-  
वारणदर्पहा । वह्निद्विद्विक्करः पुंसां भापितो  
दण्डपाणिना ॥ १२० ॥

दूध, बहेड़ा, चायना, इनका काय १२  
तोले, शुद्ध गन्धकपूर्ण ४ तोले, गुग्गुलु ४ तोले,  
अरुंधी का तैल ३२ तोले से। एक लौह के पात्र  
में पहिले अरुंधी का तैल तथा गुग्गुलु ढालकर  
पकावे। जब गुग्गुलु तैल में मिला जाय तब  
त्रिफला का काय ढालकर पुनः पाक करे। जब  
ठीक पक्क जाय तब उन्में नीचे उतारकर घोड़ी  
देर ठहा होने पर गन्धक ढालकर पकावे।  
इस घोषक के सेवन से वातज्वर रोग, कण-

ज्वर रोग, लूलापन, लँगडापन, श्वास, साँसी  
कुष्ठ, वातरक्त, गुदमशूल, उदररोग, शूल  
तथा कठिन आमवात रोग अच्छा होता है।  
इसके निरन्तर उपयोग से जरा एव पलित  
नष्ट होता है। पदक-घृत, तैल-वसायुक्त शालि  
एव साँठी के चावल आदि। यह सिंहनाद  
गुग्गुलु अग्नि को तीव्र करता है। मात्रा  
३ रत्ती से ६ रत्ती तक ॥ ११५--१२० ॥

### शिवागुग्गुलु

शिवाविभीतामलकीफलानां प्रत्येकशो  
मुष्टिचतुष्टयञ्च । तोयाढके तत्कथितं  
विधाय पादावशेषे त्ववतारणीयम् १२१  
एरण्डतैलं द्विपलं निधाय पिबुत्रयं गन्धक-  
नामकस्य । पचेत् पुरस्वात्र पलद्वयञ्च  
पाकावशेषे च त्रिचूर्णं दद्यात् ॥ १२२ ॥  
रास्ना त्रिडङ्गं मरिचं कणा च दन्तीजरा  
नागरदेदारु । प्रत्येकशः कोलमितं तथैषां  
विचूर्ण्य निक्षिप्य नियोजयेच्च ॥ १२३ ॥  
आमवाते कटिशूले शृङ्गसी क्रोष्टु-  
शीर्षके । न चान्यदस्ति भैषज्यं यथायं  
गुग्गुलुः स्मृतः ॥ १२४ ॥

दूध, बहेड़ा, चायना, हरएक १६ तोले,  
काय के लिये जल ६ सेर ३० तोले, यचा दुधा  
काय १२८ तोले। इस काय में अरुंधी का  
तैल ८ तोले तथा गुग्गुलु ८ तोले ढालकर पाक  
करें। जब पक्क ठीक हो जाय तब गन्धक का  
चूर्ण ३ तोले और रास्ना, चायनिडङ्ग, नाती  
मिर्च, पीपल, दन्तीमूल, सोंठ, देवदारु हर एव  
१ तोला ढाल दें और अरुंधी तरह मिलायें।  
मात्रा--४ रत्ती से ८ रत्ती तक। आमवात,  
कटिशूल, शृङ्गसी, क्रोष्टुगीर्ष आदि रोगों में  
इसमें बढकर और कोई औषधि नहीं दे १२१-१२४

### शुण्ठीघृत

नागरकाथान्नाभ्यां घृतमस्यं त्रिपा-  
चयेत् । चतुर्गुणेन तेनाथ तैलेनोदरेन

वा ॥ १२५ ॥ वातरश्लेष्मशमनमग्नि-  
सन्दीपनं परम् । नागरं घृतमित्युक्तं  
कट्यामशूलनाशनम् ॥ १२६ ॥

गौ का घी ४ सेर, सोंठ का काय त्रयवा केवल  
जल १६ सेर, कल्क के लिये कुटी हुई सोंठ १  
सेर । इस घृत का विधिपूर्वक पाककर रोगी को  
सेवन करावें । यह घृत वात और कफ को शान्त  
तथा अग्नि को तीव्र कर कटिशूल एवं आमशूल  
को नष्ट करता है । मात्रा—२ मास से ६ मास  
तक ॥ १०२-१२६ ॥

शृङ्गवेराद्य घृत ।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः ।  
पिष्ट्वा विपाचयेत् सपिरारनालं चतु-  
र्गुणम् ॥ १२७ ॥ शूलं विबन्धमानाह-  
मामवातं कटिग्रहम् । नाशयेद् ग्रहणी-  
दोषमग्निसन्दीपनं परम् ॥ १२८ ॥

गोधृत ४ सेर, काँजी १६ सेर कल्क के लिये  
सोंठ, जवाखार, पीपलामूल, पीपल यह सब  
मिलाकर १ सेर । इस घृत को विधिपूर्वक पाककर  
रोगी को सेवन कराने से शूल, मलबन्ध, अफरा,  
आमवात, कटिशूल तथा ग्रहणीरोग नष्ट होते  
हैं और अग्नि तीव्र होती है । मात्रा—आधा  
तोला ॥ १२७-१२८ ॥

फाञ्जिरूपट्पल घृत ।

हिङ्गुत्रिकटुकं चव्यं माण्डिमन्थं तथैव  
च । कल्कान् कृत्वा तु पलिकान् घृतप्रस्थं  
विपाचयेत् ॥ १२९ ॥ आरनालाढकं  
दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् । शूलं विबन्ध-  
मानाहमामवातं कटिग्रहम् ॥ १३० ॥  
नाशयेद् ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेदीपनं परम् ।  
पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्र-  
संग्रहे ॥ १३१ ॥ दीपनार्थं मतिमता  
मस्तुना च प्रकीर्तितम् ।

गौ का घृत १२८ तोले, काँजी १ सेर ३२

तोले, कल्क के लिये—हींग, त्रिकुटा, चव्य, सेंधा  
नमक, हरएक ४ तोले । विधिपूर्वक घी पकाकर  
सेवन करने से शूल, मलबन्ध, अफरा, आम-  
वात, कटिशूल तथा ग्रहणी आदि रोग नष्ट होते  
हैं । यह मन्द हुई अग्नि को तीव्र करता है ।  
मात्रा—आधा तोला । पुष्टि के लिये काँजी के  
स्थान पर दूध के साथ, मलबन्ध तथा मूत्रग्रह में  
दही के साथ तथा दीपन के लिये दही के पानी  
के साथ इस घृत को सिद्ध करना चाहिए ॥  
१२६-१३१ ॥

प्रसारणी तैल

प्रसारण्या रसैः सिद्धं तैलमेरण्डजं  
पिवेत् । सर्वदोषहरञ्चैव कफरोगहरं  
परम् ॥ १३२ ॥

अडी का तैल ४ सेर, पसरन का रस १६ सेर ।  
तैल को विधिपूर्वक पाककर रोगी को सेवन  
करावें । मात्रा—१ तोले से २ तोले तक । यह सब  
दोषों को नष्ट तथा कफज रोगों को अच्छा करता  
है ॥ १३२ ॥

द्विपञ्चमूलाद्य तैल ।

द्विपञ्चमूलानिर्घृढकल्कदध्यम्लकाञ्चि-  
कैः । तैलं कट्यूरुपास्वार्त्तिकफवाता-  
मयान् ग्रहान् ॥ हन्ति वस्तिप्रदानेन  
करोत्यग्निबलं महत् ॥ १३३ ॥

दशमूल के घाथ और कल्क एवं दही तथा  
काँजी ने विधिपूर्वक तैल पकाकर रोगी को यस्ति  
दने से कटिशूल, पसराड़े का दर्द एवं अन्य कफ-  
वातजन्य शूल नष्ट होते हैं । यह अग्नि को तीव्र  
करता है ॥ १३३ ॥

सृहत् सैन्धवाद्य तैल ।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यमा-  
निका । सर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौर-  
र्चलं विडम् ॥ १३४ ॥ वचाजमोदां  
मधुकं जीरकं पाँकरं कणा । एतान्यर्द्ध-  
पलांशानि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् १३५  
प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थान्मुशतपुष्पजम् ।

काञ्जिकं द्विगुणं दद्यात् तथा मस्तु शनैः  
पचेत् ॥ १३६ ॥ सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्य-  
मामवातहरं परम् ॥ पानाभ्यञ्जनवस्तौ च  
कुरुतेऽग्निवत् भृशम् ॥ १३७ ॥ वाता-  
र्चरक्षणे शस्तं कटिजानूरुसन्धिजे । शूले  
हृत्पार्श्वपट्टेषु कृच्छ्रेऽग्निनिपीडिते १३८  
वाह्यायामार्दितानाह्ने अन्नवृद्धिनिपीडिते ।  
अन्यांश्चानिलजान् रोगान् नाशयत्याशु  
देहिनाम् ॥ १३९ ॥

एरबड तैल १२८ तोले, सीफ का काड़ा  
१२८ तोले, काँजी २५६ तोले, दही का तोड़  
२५६ तोले । कर्कशार्थ—सैधव, गजपीपरि, रास्ना  
सीफ, अजवाइन, राल, मिर्च, कूट, सोंठ, काला  
नमक, विडनमक, बच, अजमोद, मुलेठी,  
जीरा, पुहकरमूल और पीपरि दो-दो तोले ।  
इस तैल को मन्द अग्नि से सिद्ध करके पान,  
अभ्यङ्ग तथा धस्ति द्वारा प्रयोग करे । इसके  
प्रयोग से आमवात, कमर, जानु ( घुटने ),  
ऊरु तथा सन्धिगत वात, हृच्छूल, पार्श्वशूल,  
पृष्ठशूल, मूत्रकृच्छ्र, अश्वरी, वाह्यायाम, अर्दित,  
आनाह, अन्नवृद्धि तथा अन्यान्य वातरोग  
शीघ्र नष्ट होते हैं और अग्नि प्रदीप्त होती  
है ॥ १३४-१३९ ॥

द्वितीय सैन्धवाद्य तैल ।

सैन्धवं देवकाष्टञ्च वचा शुण्ठी च  
कट्फलम् । शताहा मुस्तकं चच्यं मेदे  
मलहरं त्रिवृत् ॥ १४० ॥ हिजलस्य  
त्वचं चालं चित्रकं ब्रह्मयष्टिका । शटी-  
विटङ्गमधुकं रेणुकात्तिविपा रूतु ॥ १४१ ॥  
अम्बष्ठी नीलिनी टन्तीमूलं मरिचमेव  
च । अजमोदा पिप्पली च कुष्ठं रास्ना  
च ग्रन्थिकम् ॥ १४२ ॥ एषां कर्पमितैः  
क्वकैः शनैर्मृदग्निना पचेत् । प्रस्थञ्च  
वदुतैलस्य मूर्च्छितस्य यथाविधि ॥ १४३ ॥

एतत् तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गात् सर्ववातनुत् ।  
विशेषेणामवातेषु कटिजानूरुसन्धिषु १४४  
हृत्पार्श्वसर्वगात्रेषु शूलश्रैव विनाशयेत् ।  
वातश्लेष्मणि वाह्यायामन्नवृद्धौ भगन्दरो ॥  
१४५ ॥ शस्तं नाडीव्रणान् सर्वान्  
नाशयत्यथ देहिनाम् । अन्यांश्च विविधान्  
रोगान् वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा । सैन्धवाद्य-  
मिदं तैलं सर्वाभयनिपूदनम् ॥ १४६ ॥

यथाविधि मूर्च्छित कटु तैल १२८ तोले ।  
कर्कशार्थ—सैधानमक, देवदारु, बच, सोंठ, काय-  
फल, सीफ, नागरमोया, चव्य, मेदा, महामेदा,  
जयपाल, निसोथ, समुद्रफल का छिलका, सुगन्ध-  
बाला, चीते का मूल, भारगी, कचूर, चायविडङ्ग,  
मुलेठी, रेणुका बीज, अतीस, एरबडमूल, पाड़ी,  
नीली का मूल, दन्ती का मूल, कालीमिर्च, अज-  
मोद, पीपरि, कूट, रास्ना और पिपरामूल  
एक एक तोला । इस तैल को यथाविधि मन्द  
अग्नि से सिद्ध कर भालिश करने से सम्पूर्ण  
वातविकार नष्ट होते हैं । विशेषकर आमवात,  
कटिशूल, जानुशूल, ऊरुशूल, सन्धिशूल, हृच्छूल,  
पार्श्वशूल तथा सर्वाङ्गशूल को शान्त करता  
है । यह तैल घात नौर कफ के विकार, वाह्या-  
याम, अन्नवृद्धि, भगन्दर और नाडीव्रण तथा  
अन्यान्य विविध रोगों को इस प्रकार घस  
करता है जैसे इन्द्र का वज्र घुटों को । यह  
'सैधवाद्य तैल' सम्पूर्ण रोगों का नाशक  
है ॥ १४०-१४६ ॥

आमवातातिवटिका ।

रसगन्धकलाहोक्ततुत्थटङ्गनसैन्धवान् ।  
समभागैर्विचूर्णयथ चूर्णद्विगुणगुग्गुलुः ॥  
१४७ ॥ गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृता-  
चूर्णमुत्तमम् । तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन  
वटिकां कुरु ॥ १४८ ॥ स्वादेन्मापद्रयं  
चेमां त्रिफलाजलयोगतः । आमवातारि-  
वटिका पाचिका भेदिका मता ॥ १४९ ॥  
आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि

च । यकृतस्त्रीहोदराष्ट्रीलां कामलां पाण्डु-  
रोगकम् ॥ १५० ॥ हलीमकं चाम्लपित्तं  
श्वयथुं श्लीपदाबुद्धौ । ग्रन्थिशूलशिरः  
शूलं वातरोगं च गृध्रसीम् ॥ १५१ ॥  
गलगण्डं गण्डमालां कृमिं कुष्ठं च नाश-  
येत् । विद्रधिं गर्दभानाहावन्त्रवृद्धिं च  
दारुणाम् ॥ १५२ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म,  
तृतीया, सोहागा और सैन्धव, प्रत्येक समभाग ।  
सबसे दूना शुद्ध गुग्गुलु, उस का चतुर्थांश निशोध  
का चूर्ण, निसोय के चूर्ण के बराबर चीते के मूल  
का चूर्ण, इन सबको एकत्र कर घृत में मर्दन  
कर दो-दो मासों की गोलियाँ बनावे । अनुपान-  
त्रिफला का जल । यह श्रामवातारिवटिका,  
पाचक और भेदक है । इस घटी के सेवन से  
श्रामवात, गुल्म, शूल, उदररोग, यकृत, तिष्ठी,  
अष्टीला, कामला, पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त,  
शोथ, श्लीपद, अयुद्ध, ग्रन्थिशूल, शिरःशूल,  
वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, कृमि-  
रोग, कुष्ठ, विद्रधि, पापाण्यगर्दभ, आनाह तथा  
अन्त्रवृद्धि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १५०-१५२ ॥

श्रामवातारि रसः ।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रम-  
वर्द्धितः । पतदेरण्डतैलेन श्लक्ष्णचूर्णं  
मपेपयेत् ॥ १५३ ॥ कर्पोऽस्यैरण्डतैलेन  
हन्त्युष्णजलपायिनाम् । श्रामवातमती-  
घोषं दुग्धमुद्गादि वर्जयेत् ॥ १५४ ॥

पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिफला  
३ भाग, चित्रक ४ भाग, गुग्गुलु ५ भाग,  
इनको धोई से रेंड़ी के तेल के साथ घोटकर  
रस ले । मात्रा—एक कर्ष । इसे रेंड़ी के तेल  
के साथ सेवन कर परचात् उष्णजल का पान

करे । यह अत्यन्त श्रामवातनाशक है । इस  
श्रीपथ के सेवन-काल में दूध तथा मूँग आदि  
अपच्य हैं ॥ १५३-१५४ ॥

श्रामवातेश्वर रसः ।

शुद्धगन्धपलाहं च मृतताम्रं च तत्स-  
मम् । ताम्रहं पारदं देयं रसतुल्यं मृताय-  
सम् ॥ १५५ ॥ सर्वपञ्चाङ्गुलदले ढाल-  
येन्निपुणो भिषक् । संचूर्ण्य पञ्चकोलस्य  
सर्वं काथे विमर्दयेत् ॥ १५६ ॥ रौद्रे विं-  
शतिगारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश । भृष्टङ्ग-  
नचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ १५७ ॥  
टङ्गनाहं विडं देयं मरिचं विडतुल्यकम् ।  
तिन्तिडीवीजचूर्णं तु मृततुल्यं च दन्तिका ॥  
१५८ ॥ त्रिकटु त्रिफला चैव लवङ्गं  
चाहं भागिकम् । श्रामवातेश्वरो नाम  
विष्णुना परिकीर्तितः ॥ १५९ ॥ महा-  
ग्निकारको ह्ये श्रामवातकुलान्तकः । स्थू-  
लानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकार-  
कम् ॥ १६० ॥ अनुपानशोभेन सर्व-  
रोगकुलान्तकः । साध्यासाध्यं निहन्त्याशु  
चामवातं सुदारुणम् ॥ १६१ ॥ गुरु-  
ष्टप्यान्नपानानि पयोमांसरसा हिताः ।  
भोजयेत् कण्ठपर्यन्तं चतुर्गुञ्जमितरसम् ॥  
१६२ ॥ कद्वम्लतिव्ररहितं पिबेत्तदनु-  
पानकम् । शीघ्रं जीर्यति तत्सर्वं जायते  
दीपनः परः ॥ १६३ ॥ अनेन सदृशो  
नास्ति वह्निसन्दीनो रसः । गुन्मार्शो-  
ग्रहणीरोगशोधपाण्डूदरापहः ॥ १६४ ॥

सर्वतोमद्रश्चायमुच्यते । गन्धकादि-  
लौहान्तानां यथोक्तभागं सर्वमेकीकृत्य  
चूर्णयित्वा लौहपात्रे घृतं किञ्चिद्दद्यात्  
तत्र चूर्णं द्रवीभूतं सद्यो गोमयोपरि-

१ यद्यपि मूल में कर्षप्रमाण मात्रा जितनी है  
तथापि इसकी मात्रा यत्नानुसार देनी चाहिए ।  
आयुर्वेद के अल्पमग्न्य प्राणियों के लिए १ रसी से  
१ मासो तक मात्रा योग्य है ।

निहितैरण्डपत्रोपरि ढालयेत् । अथ पर्पटी-  
भूतं संचूर्ण्य पत्रकोलकाथेन विंशति-  
वारान् भावयेत्ततो गुडूचीरसेन पूर्ववत्  
काथेन वा दशधा भावयेत्, रक्त्रियुगं खा-  
देत्, माषैकमिति पिष्टेन वङ्गेन काञ्जिकं  
कोष्णं पिबेत्, दशरक्त्रिकपर्यन्तं वर्द्धये-  
दित्युपदेशः ।

शुद्ध गन्धक २ तोले ताम्रभस्म २ तोले,  
पारा १ तोला और लोहभस्म १ तोले, इन  
सब औषधियों को एकत्र घोट ले । पश्चात्  
एक लोहे की कड़ाही में थोड़ा घृत डालकर  
आँच पर रखे, उसमें पूर्वोक्त चूर्ण डालकर  
पिघला ले, तदनन्तर गोबर पर रखे हुए रेंदी  
के पत्ते पर ढालकर पर्पटी तैयार कर ले । पश्चात्  
इसको दूषित कर पत्रकोल काथ में २० बार  
और गुर्च के हाथ में १० बार घोटकर घाम  
में सुखा ले । पश्चात् इसमें कुल मिलित  
औषधियों के बराबर भुने हुए सोहागे का चूर्ण  
मिलावे । सोहागे के चूर्ण का आधा बिडनमक ।  
विषु नमक के बराबर कालीमिर्च । पारे के  
बराबर इमली के बीज की मींगी और दन्ती  
के मूल का चूर्ण । त्रिकटु, त्रिफला और लौंग  
प्रत्येक का चूर्ण पारद का अर्धभाग । इन  
सब औषधियों को एकत्र मर्दन कर चार-चार  
रत्ती की गोतियाँ बना ले । यह 'आमवाते-  
स्वरस' विषणु नाम के आचार्य ने कहा है ।  
यह महान् अग्निवर्धक और आमवात-कुल-  
नाशक है । स्थूल पुर्रों को कृश और कृश  
पुर्रों को स्थूल करता है । अनुपानविशेष  
से सब रोगों को नष्ट करता है । साध्य,  
असाध्य तथा दारुण आमवात को तत्काल नष्ट  
करता है । इस रस का सेवन करनेवाला रोगी  
गुण, वृष्य, घन, पान, दुग्ध और हितकारी  
मांसरस शृतिपर्यन्त रस सन्ना है । कटु, अम्ल  
और तिप्त रस अनुपान में वर्जित है । यह रस  
मुत्र पदार्थ को शीघ्र पचाता है । गुग्म, चरों,  
• मृष्टीरोग शोथ, पाण्डु और उदर रोगों को

नष्ट करता है । इसके समान अग्निदीपक और  
कोई रस नहीं । इसको 'सर्वतोभद्ररस' भी  
कहते हैं । शुद्ध वैद्यों की सम्मति है कि दो रत्ती  
से दस रत्तीपर्यन्त मात्रा बढ़ावे ॥ १५५-१६४ ॥

त्रिफलादि लौह ।

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं  
वचा । चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्ण-  
चूर्णितम् ॥ १६५ ॥ अथरचूर्णपला-  
न्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव हि । आलोड्य  
मधुनोपेतं पलद्वादशकेन च ॥ १६६ ॥  
प्रातर्विलिख भुञ्जानो जीर्णं तस्मिन् जये-  
द्भुजः । दुःसाध्यमामवातं च पाण्डुरोगं  
हलीमकम् । जीर्णाक्षसम्भवं शूलं श्वयथुं  
विषमज्वरम् ॥ १६७ ॥

त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकटु, थायविडंग,  
पुष्करमूल, वच, चीते का मूल और मुलेठी  
का चूर्ण चार-चार तोले, लोहभस्म ३२ तोले,  
गुग्गुलु ३२ तोले । इन सब औषधियों को ४८  
तोले मधु के साथ घोटकर रख ले । प्रतिदिन  
प्रातःकाल सेवन करे । इसके पचने पर भोजन  
करनेवाला मनुष्य दुःसाध्य आमवात, पाण्डु-  
रोग, हृत्नीमक, परिणाममूल, शोथ और विष-  
मज्वर आदि अनेक रोगों से मुक्त होता  
है ॥ १६५-१६७ ॥

विडङ्गादि लौह ।

वज्रपाण्ड्यादिलौहानां ग्राह्यं पञ्चपलं  
शुभम् । चूर्णं मृताभ्रकस्यापि लौहाद्  
पारदं तथा ॥ १६८ ॥ त्रिगुणा त्रिफला  
ग्राया लौहाभ्रात् पोडशैर्जलैः । पक्त्वाष्ट-  
भागशेषं तु ग्राह्यं काथजलं ततः ॥ १६९ ॥  
तेन लोहाभ्रचूर्णं च पुनः पाच्यं समं  
घृतम् । शतावरीं रसं चैव क्षीरं च द्विगुणं  
रसात् ॥ १७० ॥ लौहमय्या पचेद् द्युर्वा  
पात्रे चायसि ताम्रके । पचेत् पाकविधि-

इस्तु वह्निना मृदुना शनैः ॥ १७१ ॥  
सिद्धे च प्रक्षिपेदतान् विडङ्गादि यथोदि-  
तान् । विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्व-  
जीरकम् ॥ १७२ ॥ पलाशबीजं मरिचं  
पिप्पली हस्तिपिप्पली । त्रिवृता त्रिफला  
दन्ती एला चैरएडकं तथा ॥ १७३ ॥  
चविका ग्रन्थिकं चित्रं मुस्तकं वृद्धदार-  
कम् । सर्वेषां चूर्णमेतेषां लौहाभ्रकसमं  
भवेत् ॥ १७४ ॥ आमवातगजेन्द्रस्य  
केशरी विधिनिर्मितः । आमवातं च शोथं  
चाप्यग्निमान्द्यं हलीमकम् ॥ १७५ ॥

हन्तीति शेषः । अत्र गन्धकमपि पारद-  
समं दत्त्वा कज्जलीं कुर्वन्ति ।

कौलाद आदि लोह की भस्म २० तोले,  
अभ्रकभस्म १० तोले, शुद्ध पारद १० तोले,  
त्रिफला ६० तोले, काषायं जल ३८ सेर, शेष  
२२ सेर, २० तोले । इस काय में लोहभस्म,  
अभ्रकभस्म, गाय का घृत ३० तोले, शतावरि का  
रस ३० तोले, दूध ६० तोले डालकर लोहपात्र  
या कलई किए ताग्रपात्र में लोहे की कलछी से  
मन्द-मन्द आँच में पकावे । पाक सिद्ध हो  
जाने पर आयुधङ्ग, सोंठ, धनिया, गिलोय का  
सत, जीरा, ढाक के बीज, कालीमिर्च, पीपरि,  
गजपीपरि, निसोध, त्रिफला, दन्तीमूल, छोटी  
इत्तायची, परबडमूल, चव्य, पिपरामूल, चित्रक,  
नागरमोया और विधारा; इनके समभाग मिलित  
चूर्ण ३० तोले का प्रघेप देकर अच्छी प्रकार  
मिला दे । मात्रा—४ रत्ती । इसका सेवन  
करने से आमवात, शोथ, अग्निमान्द्य, हलीमक,  
कामला और पायडु आदि रोग नष्ट होते हैं ।  
इस योग में यद्यपि गन्धक उन्न नहीं है तथापि  
पारद के समान परिमाण में गन्धक मिलाकर  
अञ्जली करके पाक के शीतल होने पर उसमें  
मिला दे ॥ १६८-१७२ ॥

पञ्चाननरस लोह ।

जारितं पुटितं लौहचूर्णं पञ्चपलं शु-

भम् । गुग्गुलोश्च पलं पञ्च लौहार्द्धं मृत-  
मभ्रकम् ॥ १७६ ॥ शुद्धमूतमभ्रसमं ग-  
न्धकं तत्समं भवेत् । त्रिगुणामयसरचूर्णात्  
कृत्वा तां त्रिफलां पचेत् ॥ १७७ ॥  
द्विरष्टभागं पानीयमष्टभागवशेषितम् ।  
तेन चाष्टवशेषेण पचेत् लौहाभ्रगुग्गुलुम्  
॥ १७८ ॥ घृततुल्यं शतावर्या रसं दत्त्वा  
तथा शुभम् । प्रस्थं प्रस्थं च दुग्धस्य शनै-  
र्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १७९ ॥ लौहमय्या  
पचेद्दर्व्या पात्रेचायसि मृगमये । ततः पाक-  
विधिज्ञस्तु पाकसिद्धौ विनिक्षिपेत् ॥ १८० ॥  
विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्वजीरकम् ।  
पञ्चकोलं त्रिवृदन्ती त्रिफलैला च मुस्त-  
कम् ॥ १८१ ॥ सुचूर्णितं च प्रत्येकमेपा-  
मर्द्धपलं क्षिपेत् । रसस्य कज्जलीं कृत्वा  
ईपदुल्लो विमर्दयेत् ॥ १८२ ॥ उच्चार्य स्था-  
पयेद्भाण्डे स्निग्धे चापि सुरक्षितम् । घृतेन  
मधुना परचान्मर्दयित्वानुपानतः ॥ १८३ ॥  
गुडूचीनागरैरएडं काथयित्वा जलं पिबेत् ।  
भक्षयेच्छुद्धदेहस्तु शुभेऽहनि सुरार्चकः ॥  
१८४ ॥ आमवातमहान्याधिधिनाशायेष्ट-  
देवताम् । सन्धिवातं कटीशूलं कुक्षिशूलं  
सुदारुणम् ॥ १८५ ॥ जङ्घापादाङ्गुली-  
शूलं गृध्रसीं हन्ति पङ्गुताम् । गुल्मशोथं  
पाण्डुरोगं सन्धिवातं च दुःसहम् । आम-  
वातगजेन्द्रस्य केशरी विधिनिर्मितः १८६ ॥

लोहभस्म २० तोले, शुद्ध गुग्गुलु २० तोले,  
अभ्रकभस्म १० तोले, पारद १० तोले, शुद्ध  
गन्धक १० तोले । काषायं—त्रिफला मिलित  
६० तोले, जल ३४ सेर, अयगिष्ट काष ३ सेर ।  
इस काय में लोहभस्म, अभ्रकभस्म और  
गुग्गुलु (पूर्वांश), गाय का घृत १३८ तोले,

शतावरि का रस १२८ तोले और दुग्ध १ सेर २½ पाव ढालकर लोह के अथवा मिट्टी के पात्र में लोह की कलछी से मन्द-मन्द आंच पर पकावे । आसन पाक होने पर बावविड़ग, सोंठ, धनिया, गिलोय का सत्त, जीरा, पीपरि, पिपरा-मूल, चव्य, चीता, सोंठ, निसोय, दन्तीमूल, त्रिफला, छोटी इलायची और नागरमोथा प्रत्येक का दो-दो तोला चूर्ण लेकर उसमें मिलावे । पारद गन्धक की कजली कर किञ्चित् उष्ण अवस्था में ही मिला दे । पश्चात् घृत के स्निग्ध पात्र में इसको रखे । इस लौह में घृत और मधु मिलाकर गिलोय, सोंठ और एरण्ड के काय के साथ सेवन करे । शुभ दिन में शुद्धदेह होकर आमवात रोग के नाश के लिये हृष्टदेवता का पूजन कर इमका सेवन करे । मात्रा—२ मागे । यह लौह सन्धिघात, कटिशूल, दारुण कुक्षिशूल, जंघाशूल, पादाङ्गुलीशूल, गृध्रमी, पंगुता, गुल्म, शोथ और पायडुरोग आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है । आमवातरूपी हाथी के लिये यह सिंहरूप है ॥ १७६-१८६ ॥

वातगजेन्द्रसिंह ।

अभ्रं लौहं रसंगन्धं ताम्रं नागं सटङ्ग-  
नम् । विपं सिन्धुं लवङ्गं च हिंगु जाती-  
फलं समम् ॥ १८७ ॥ तदूर्ध्वं त्रिसुगन्धं  
च त्रैफलं जीरकं तथा । कन्यारसेन संपिप्य  
वटी कार्या त्रिरक्तिका ॥ १८८ ॥ सेव्या  
पयोऽनुपानेन सदा प्रातः सुरान्वितैः ।  
अशीतिं वातजान् रोगान् चत्वारिंशच्च  
पैक्तिकान् ॥ १८९ ॥ विंशतिं श्लैष्मि-  
कान् रोगान् सेनादेव नाशयेत् । अभि-  
घातेन ये क्षीणा क्षीणार्द्धामयवाश्च ये ॥  
१९० ॥ व्याधिक्क्षीणा वयःक्षीणाः स्त्री-  
क्षीणाश्चापि ये नराः । क्षीणेन्द्रिया नष्ट-  
शुक्रा वद्विहीनाश्च मानवाः ॥ १९१ ॥  
तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च ।

खञ्जानां पङ्गुकुञ्जानां क्षीणानां मांस-  
वर्धनः ॥ १९२ ॥ अरोगी सुखमाप्नोति  
रोगी रोगाद्विमुच्यते । रसस्यास्य प्रसादेन  
नास्ति रोगाद्भयं क्वचित् । वातगजेन्द्र-  
सिंहोऽयं रसो रोगविनाशकः ॥ १९३ ॥

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, पारद शुद्ध गन्धक,  
ताम्रभस्म, सीसकभस्म, सुहागा, मीठा विप,  
संधानमक, लौह, हींग और जायफल प्रत्येक १  
भाग । दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची,  
त्रिफला और जीरा प्रत्येक आधा भाग । इनको  
एकत्र कर घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-दो  
या तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे । प्रातः-  
काल दुग्ध के साथ इसका सेवन करे । इसके  
सेवन से ८० प्रकार के वातज, ४० प्रकार  
के पित्तज तथा २० प्रकार के कफज रोग नष्ट  
होते हैं । यह रस अभिघातादि कारणों से क्षीण  
हुए पुरुषों की क्षीणता को नष्ट करता और  
वृष्य, बलकारि तथा आयुवर्धक है । यह अश्रिता,  
पंगुता तथा कुञ्जरोग को नष्ट करता है । अग्नि  
को दीप्त करता है । पुरुषों के मांस को बढ़ाता  
है । नीरोग पुरुष इसके सेवन से स्वस्थ रहता  
तथा रोगी रोग से मुक्त हो जाता है । इस रस  
की हृषा से रोगों का डर नहीं रहता । यह  
वातरूपी हाथी के लिये सिंहरूप है ॥ १८७-१९३ ॥

हिंगुलेश्वर रस ।

तुल्यांशं मर्दयेत्सत्त्वे पिप्पलीं हिंगुलं  
विपम् । गुञ्जार्द्धं मधुना देयमामवात-  
निवृत्तये ॥ १९४ ॥

पीपल, शिगरफ तथा बच्छनाग को बराबर  
मात्रा में मिलाकर घरल में घोटकर आधी रत्ती  
की मात्रा में तीस ज्वरयुक्त नवीन आमवात  
के रोगी को सेवन कराने से लाभ होता है । यह  
हजारों रोगियों पर अनुभव किया हुआ प्रयोग  
है ॥ १९४ ॥

अमृतमञ्जरी ।

हिंगुलं च विपञ्चैव कणा मरिचटङ्ग-

एम् । जातीकोपं समं सर्वं जम्बीररस-  
मर्दितम् ॥ १६५ ॥ रक्त्तिमात्रां वर्ती  
कुर्याद्राद्रिकद्रवसंयुताम् । अग्निमान्द्यग-  
जीर्णं च सामवातं सुदारुणम् ॥ १६६ ॥  
उष्णतोयानुपानेन सर्वं व्याधिं नियच्छति ।  
कासं पञ्चविधं श्वासं सर्वाङ्गग्रहमेव  
च ॥ १६७ ॥

शिंगरफ, बरुङ्गनाग, पीपल, कालीभिर्चं,  
सुहागा, जाचित्री इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर  
जम्बीरी नींबू के रस से घोटकर एक-एक रत्ती  
की गोली बनावे । अनुपान—अदरक का रस ।  
इस गोली के सेवन से आमवातयुक्त मन्दाग्नि  
एवं अजीर्ण तथा तरुण आमवात में पैदा होने-  
वाला तीव्र ज्वर नष्ट होता है । गरम जल के  
अनुपान से यह गोली पाँचों प्रकार की खाँसी,  
श्वास तथा सर्वाङ्गशूल आदि सब रोग अच्छे  
करती है ॥ १६५-१६७ ॥

आमप्रमाथिनी वटिका ।

सोरकं रविमूलञ्च गन्धकं लौहभ्र-  
कम् । व्याधिघातरसैः पिप्पला कुर्याद्बल-  
मितां वटीम् ॥ १६८ ॥ निर्गुण्डीसरसैः  
सेव्या कफामयनिपूदिनी । आमवात-  
प्रशमनी वटिकामप्रमाथिनी ॥ १६९ ॥

शोरा, आक की जड़, गन्धक, लौहभ्रम,  
अभ्रकभ्रम, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर  
अमलतास के पत्तों के रस से भावना देकर दो  
रत्ती की गोली बनाने । अनुपान—सँभालू के  
पत्तों का रस । इसके सेवन से आमवात तथा  
कफरोग नष्ट होते हैं ॥ १६८-१६९ ॥

आमवाताद्रि यज्ञरस ।

रसगन्धकलौहाभ्रमहिफेनं समं  
समम् । यवचारं सप्तभागं मर्दयित्वाक-

१ त्रिप्लवक धातुन सा इति पाठान्तरम्  
अर्थात् निशोध काय के साथ सेवन करने का  
भी विधान है ।

पत्रजैः ॥ २०० ॥ रसैर्वल्लद्वयमितां विद-  
ध्याद्वटिकां भिषक् । सिन्दुवारदलद्रावैः  
प्रदद्यादामवात्तिने ॥ २०१ ॥ आमवातं  
महाघोरं वेदनां वातसम्भवाम् । आमवा-  
ताद्रिवज्राख्यरसो हन्ति न संशयः ॥ २०२ ॥

पारा, गन्धक, लौहभ्रम, अभ्रकभ्रम,  
अफीम, हरएक १ भाग, जत्राखार, ७ भाग ।  
इन्हें आक के पत्तों के रस से घोटकर ४ रत्ती  
की गोली बनावे । आमवात से पीड़ित रोगी को  
यह गोली सँभालू के पत्तों के रस के साथ देनी  
चाहिए । इसके सेवन से कठिन आमवात तथा  
अन्य वातजन्य कष्ट नष्ट होते हैं ॥ २००-२०२ ॥

आमवात में पथ्य ।

यवाः कुलत्थाः श्यामाकाः कोद्रवा  
रक्तशालयः । वास्तुकं शिशुवर्षाभूः कारवेल्लं  
पटोलकम् ॥ २०३ ॥ आर्द्रकं तप्तनीरञ्च  
लशुनं तक्रसंस्कृतम् । जाङ्गलानां तथा  
मांसं सामवातगदे हितम् ॥ २०४ ॥  
मन्दारगोकसृष्टकष्टदारं । भल्लातकं गो-  
जलमार्द्रकञ्च । कदूनि तिक्रानि च दीप-  
नानि स्युरामवातामयिने हितानि ॥ २०५ ॥

जौ, कुलथी, सायाँ, कोदों लालशालि  
चावल, वधुआ, सहजने की फली, सफेद साँठी,  
बेला, परवल, अदरक, गरम जत्र, छौंछ से  
सिद्ध लहसन, जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस  
आमवात के रोगी के लिये लाभदायक है ।  
मन्दार गोकरू, विधारा, भिलाधा, गोमूय,  
अदरक, बटु, तिन्न एवं अग्निदीपक द्रव्य  
आमवात के रोगी के लिये हितकारी  
हैं ॥ २०३-२०५ ॥

आमवातरोग में अपथ्य ।

दधिमतस्यगुडक्षीरपीतक्रीमापपिष्टकान् ।  
वर्जयेदामनातात्तौ मांसं चानूपसम्भवम् ॥  
२०६ ॥ अभिव्यन्दकरा ये च ये चान्ये



गुरुपिच्छिलाः । वर्जनीयोः प्रयत्नेन आम-  
वातादितैर्नरैः ॥ २०७ ॥

दही, मड़ली, गुड, खीर, पोई का शाक, उर्द, पिष्टक, अन्नूपमांस, अभिष्यन्दी, गुरु और पिच्छिल भोजन आमवात से पीड़ित पुरुष को यत्नपूर्वक छोड़ देने चाहिए ॥ २०६-२०७ ॥

विजयभैरव तैल ।

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात् समांश-  
कम् । चूर्णयित्वा ततः सूक्ष्ममारनालेन  
पेषयेत् ॥ २०८ ॥ तैलकल्केन संलिप्य  
सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम् । तैलार्धं कारयेद्वृत्ति-  
मूर्ध्वभागे च दीपयेत् ॥ २०९ ॥ वर्त्यधः-  
स्थापिते पात्रे तैलं पतति शोभनम् ।  
लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षणाय च दापयेत् ॥  
२१० ॥ नाशयेत् सूततैलं तद्वातरोगान-  
शेषतः । बाहुकम्पं शिरःकम्पं जङ्घाकम्पं  
ततः परम् । एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति  
लेपान्न संशयः ॥ २११ ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, मैनासिल और हरताल समभाग लेकर चूर्णित करके काँजी में अर्धघी प्रकार घोट ले । इस कलक से एक पतले कपड़े को लिप्त कर यती बनाकर सुजा ले । परचाव इस यती को तिलतैल में भिगाकर सेंदूसी से पकड़ कर सिरे पर आग लगावे और नीचे एक स्वच्छ पात्र रखने जिससे तैल उसमें गिरता रहे । रोगी इस तैल को अपने अग्रयवों पर मर्दन करे तथा इस तैल से लिप्त पान के पत्ते को खावे । मात्रा- २ घूँद से ४ घूँद पर्यन्त । यह तैल लगाने से सम्पूर्ण यातरोगों को तथा विशेषकर बाहुकम्प, शिरःकम्प, जङ्घाकम्प तथा एकाङ्ग वात को नष्ट करता है ॥ २०८-२११ ॥

महाविजयभैरव ।

विजयभैरव तैल में ही यदि अफीम मिला दी जाय तो इसका नाम महाविजय भैरव तैल होता है ॥ २१२ ॥

महासैन्धवाच तैल ।

सिन्धुर्ग्विश्वजा सोप्रा भार्गी यष्टि-  
स्थिरा फलैः । दाह विश्वशटी धान्य-  
कृष्णा कटफलपौष्करैः ॥ २१३ ॥ दीप्य-  
कातिविपैरेडनीली नीलाम्बुजैः पचेत् ।  
तैलं सकाञ्जिकं हन्ति पानाभ्यञ्जननावनैः ॥  
२१४ ॥ आमवातं कृमीन् गुल्मान् स्त्रीहो-  
दरशिरोरुजः । मन्दाग्निं पक्षसन्ध्यएड-  
वातस्तम्भगदानपि ॥ २१५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामामवाताधिकारः  
समाप्तः ।

तैल ४ सेर, काँजी १६ सेर, कलक के लिये—संधानमक, कुष्ठ, सोंठ, वच, भार्गी, मुलहदी, शाळपर्णी, जायफल, देवदार, सोंठ, कचूर, धनिया, पीपली कायफल, पोहवरमूल, अजवाइन, अतीस, अयडी की जड़, नील की जड़, नीलकमल भिलाकर १ सेर । इस तैल को विधिपूर्वक पकाकर पिलाना, मालिश करना और नस्य देना चाहिये । इसके प्रयोग से आमवात, कृमि, गुल्म, डूँगा ( तिल्ली ), उदर-रोग, शिर का दर्द, मन्दाग्नि, पक्षाघात, सन्धि-वात, अयडवात तथा ऊरस्तम्भ आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ २१३-२१५ ॥

इति धीपथिदतमरयुवसाक्षिपाठिवि-  
चितायां भैषज्यरत्नावल्या रवप्रभा-  
भिधायान् व्याग्यायामामवाता-  
धिकारः समाप्तः ।

### अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः

वातिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

अभ्यञ्जन स्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपना-  
होत्तरवस्तिसेकान् । स्थिरादिभिर्वात-  
हरैश्च सिद्धान् दद्याद्रसांश्चानिलमूत्र-  
कृच्छ्रे ॥ १ ॥

तैलाभ्यङ्ग, स्नेहपान, निरूहवस्ति, स्वेद,  
उपनाह, उत्तरवस्ति (पिचकारी), परिपेक  
तथा शालपर्णी प्रभृति वातनाशक औषधों  
से सिद्ध मांसरस वातज मूत्रकृच्छ्र में हित-  
कारी हैं ॥ १ ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैप्मो  
विधिर्वस्तिपयोविकाराः । द्राक्षा विदा-  
रीनुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु  
कार्याः ॥ २ ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में शीतज परिपेक, स्नान  
तथा प्रलेप, ग्रीष्मोषित ऋतुचर्या, वस्तिकर्म,  
दुग्धविकार (दूध से बने पदार्थ), मुनक्का,  
विदारीकन्द, ईस के रस और घृत आदि की  
व्यवस्था करे ॥ २ ॥

श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

चारोष्णतीक्ष्णौषधमन्त्रानं स्वेदो  
यमानं वमनं निरूहाः । तक्रं सति-  
क्रौपधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्र-  
कृच्छ्रे ॥ ३ ॥

श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र में चार, उष्ण और  
तीक्ष्ण औषध, अन्नपान, स्वेद, जौ का  
भोजन, वमन, निरूहवस्ति, घाँड़ तथा तिज-  
रसयुक्त औषधियों से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग एव  
कफनाशक द्रव्यों का पान करना चाहिए ॥ ३ ॥

सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानु-

पूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् । त्रिदोषधिके  
भागवमनं विरेकः पित्ते कफे स्यात् पवने  
च वस्तिः ॥ ४ ॥

त्रिदोषजन्य मूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों की  
मिलित चिकित्सा करनी चाहिए । किन्तु  
वस्ति के वातस्थानीय होने से प्रथम प्रकु-  
पित वात की ही शान्ति करनी चाहिए ।  
वाताधिक्य में वस्ति, पित्ताधिक्य में विरे-  
चन और कफाधिक्य में वमन कराना  
चाहिए ॥ ४ ॥

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

तथाभिघातजे कुर्यात् सद्यो व्रण-  
चिकित्सितम् ।

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में सद्योव्रणाधिकार में  
कही हुई चिकित्सा करनी चाहिए ।

पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गस्तयः स्युः पुरी-  
षजे ॥ ५ ॥

पुरीषजन्य मूत्रकृच्छ्र में स्वेद, चूर्णक्रिया,  
अभ्यङ्ग और वस्तिक्रिया करनी चाहिए ॥ ५ ॥

अश्रमरोगज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

क्रिया हिता त्वश्रमरिगर्कराया या  
मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥ ६ ॥

अश्रमरी तथा शशंराजन्य मूत्रकृच्छ्र में  
कफवातज मूत्रकृच्छ्राङ्ग चिकित्सा करनी  
चाहिए ॥ ६ ॥

शुकविषण्णज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

लेहं शुकविषण्णोत्थे गिलाजतु समा-  
त्तिसम् । वृष्यैर्घृतैश्चित्थात्तु समा-  
प्रमदोत्तमा ॥ ७ ॥

शुकविषण्णजन्य मूत्रकृच्छ्र में मधु के साथ  
शिलाजीत का सेवन कराना चाहिए । वृष्य  
प्रयोगों द्वारा प्ररुद्ध धातु से उत्पन्न शुक-  
विषण्णज मूत्रकृच्छ्र में सुन्दर रीति सामयापक  
होती है ॥ ७ ॥

शोणित मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा ।

यन्मूत्रकृच्छ्रं विहितञ्च पैत्ते तत्कारये-  
च्छोणितमूत्रकृच्छ्रं ॥ ८ ॥

रत्नज मूत्रकृच्छ्र में पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र की  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

कृष्माण्डकरसं पीत्वा सयवत्तारशर्क-  
रम् । मूत्रकृच्छ्रादिमुच्येत शीघ्रं च लभते  
सुखम् ॥ ९ ॥

पेटे के रस में यवचार तथा साँड मिलाकर  
पीने से रोगी मूत्रकृच्छ्र से शीघ्र मुक्त होता  
और सुख पाता है ॥ ९ ॥

तृणपञ्चमूल

कुशः काशः शरो दर्भं इक्षुरचेति  
तृणोद्भवम् । पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्ति-  
विशोधनम् ॥ १० ॥

कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु ( गन्ना )  
का पाथ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र का नाशक तथा  
यौक्त ( मूत्राय ) का शोधक होता है ॥ १० ॥

पञ्चतृण चौर ।

एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रं हन्ति  
शोणितम् ॥ ११ ॥

पञ्चतृणमूल से यथाविधि सिद्ध किया हुआ  
दुग्ध मूत्रमार्ग से प्रयुक्त हुए रस में कामदायक  
होता है ॥ ११ ॥

त्रिकण्टकादि ।

निकण्टकारग्नधर्मकाशदुरालभा-  
मन्मरुदेतपण्या । निहन्ति पीडां मधु-  
नामरीश्व संमाप्तमृत्योरपि मूत्रकृ-  
च्छ्रम् ॥ १२ ॥

गोमरु, अमलताम, दर्भ, काश, दुरालभा  
( धनामा ), पाण्डुरभेद और हरीतकी के  
काथ में मधु मिलाकर पान करने से आग-  
मृत्योर्गामी का भी मूत्रकृच्छ्र और मूत्रकृच्छ्र-  
जन्य पीडा नाश होती है ॥ १२ ॥

गोक्षुरकाथ ।

काथं गोक्षुरवीजस्य यवत्तारयुतं पिबेत् ।  
मूत्रकृच्छ्र तथा रक्तं पीतः शीघ्रं निवार-  
येत् ॥ १३ ॥

गोक्षुर के बीज के काथ में जवाहार  
मिलाकर पान करे तो मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्र-  
मार्ग से प्रवृत्त हुआ रक्त शीघ्र निवृत्त  
होता है ॥ १३ ॥

धात्र्यादि ।

धात्री द्राक्षा विदारी च यष्ट्याहं  
गोक्षुरं तथा । एभिः कपायं विपचेत् पिबे-  
च्छीतं सशर्करम् ॥ अपि योगशतासाध्यं  
मूत्रकृच्छ्रं जयेत् ॥ १४ ॥

आंवला, मुनका, विदारीकन्द, मुलेठी और  
गोक्षुर के काथ को शीतल कर उसमें शर्कर  
मिलाकर पान करे । यह सैकड़ों योगों से असाध्य  
मूत्रकृच्छ्र को भी धाराम करता है ॥ १४ ॥

मृद्वक्षान्यादि ।

धात्री द्राक्षा च यष्ट्याहं विदारी  
सत्रिकण्टका । दर्भेक्षुमूलमभयाः पाथ-  
यित्वा जलं पिबेत् ॥ ससितं मूत्रकृच्छ्रं नं  
रुजोदाहरं परम् ॥ १५ ॥

आंवला, मुनका, मुलेठी, विदारीकन्द, गोमरु,  
दर्भमूल, काबोहणु ( ईप ) का मूल और दूध के  
काथ में साँड मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र की  
वेदना तथा दाह नष्ट होता है ॥ १५ ॥

धातिक कृच्छ्र में अमृतादि ।

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा  
त्रिकण्टकम् । प्रपिबेदातरोमार्चः सशुलो  
मूत्रकृच्छ्रान् ॥ १६ ॥

गिलोय, साँड, चाँकना, अमरुत और गोमरु  
का काथ पीने से वेदनापुत्र मूत्रकृच्छ्र धाराम  
होता है ॥ १६ ॥

शतापयादि ।

शतापरीरागकुर्जाः शरदंपारिज-

रिशालीक्षुकशेरुकाणाम् । काथं सुशीतं  
मधुशर्कराकं पिबन् जयेत् पैत्तिकमूत्रकृ-  
च्छ्रम् ॥ १७ ॥

शतावरि, काश, कुश, गोखरू, विदारीकन्द,  
शालिधान, इक्षु ( ईख ) और, कसेरू के काथ  
में मधु और खॉड मिलाकर शीतल होने पर  
पान करे तो पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आराम होता  
है ॥ १७ ॥

गुडेनामलकं वृष्यं श्रमन् तर्पणं परम् ।  
पित्तासृग्दाहशूलान्नं मूत्रकृच्छ्रनिवार-  
णम् ॥ १८ ॥

अर्वायले का काथ गुड मिलाकर पान करने से  
वृष्य, श्रमनाशक और अत्यन्त तर्पण होता है  
तथा यह रज्जुपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्र को  
नष्ट करता है ॥ १८ ॥

एवार्खीजं मधुकं सदापि पैत्ते पिबे-  
त्तण्डुलधावनेन । दावीं तथैनामलकीर-  
सेन समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ १९ ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में क्वकी के बीज, मुलेठी  
और दारहदी के चूर्ण को चावल के धोवन  
के साथ अथवा केवल दारहदी के चूर्ण को  
अर्वायले के रस में घोलकर मधुमिश्रित कर  
पान करे तो पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आराम होता  
है ॥ १९ ॥

हरीतक्यादि ।

हरीतकीगोक्षुराजवृक्षपापाणभिद्धन्व-  
यवासकानाम् । काथं पिबेन्माक्षिकसम्प्र-  
युक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विन्धे ॥ २० ॥

हह, गोखरू, धमलतास, पापाणमेद, धमासा  
और जमासा के काथ को मधुमिश्रित कर पान  
करे तो दाह, वेदना, मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र  
रोग नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

सितातुष्यो यन्तारः सर्नकृच्छ्र-  
चिनाशकः । सूर्यावर्तभवं बीजं श्लक्ष्णं  
स्पदि पेपितम् ॥ २१ ॥ व्युपितोदकसम्पीतं

कृच्छ्रं हन्ति सुदारुणम् । मधुना च यन्तारं  
मूत्रकृच्छ्राश्मरीहरम् ॥ २२ ॥

जवाखार और मिसरी सम भाग मिश्रित  
कर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग आराम होता  
है । सूर्यावर्त ( सूर्यमुखी ) के बीज को सिल  
पर महीन पीसकर वासी जल के साथ सेवन  
करने या मधु के साथ जवाखार का सेवन  
करने से दारुण मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग नष्ट  
होते हैं ॥ २१-२२ ॥

सगन्धकयवत्तारां शर्करां तक्रतः  
पिबेत् । मूत्रकृच्छ्राद्विपुच्येत साध्यासा-  
ध्यान्न संशयः ॥ २३ ॥

शुद्ध गन्धक, जवाखार और शर्करा समभाग  
मिश्रित कर तक्र के साथ सेवन करे तो साध्य  
और असाध्य सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र निःसंदेह  
आराम होते हैं ॥ २३ ॥

नारिकेलोद्भवं पुष्पं तण्डुलोदकसंयु-  
तम् । रज्जुं मूत्रकृच्छ्रं हि पीतं हन्ति न  
संशयः ॥ २४ ॥

नारियल के फूल को तण्डुलोदक के साथ  
पीस कर पीने से रज्जुमय मूत्रकृच्छ्र निःसंदेह  
नष्ट होता है ॥ २४ ॥

कफमूत्रकृच्छ्र में परायोग ।

मूत्रेण सुरया वापि कटलीस्त्रसेन वा ।  
कफकृच्छ्रविनाशाय श्लक्ष्णा पिष्ट्वा वृद्धिं  
पिबेत् ॥ २५ ॥

दांटी इलायची के बारीक चूर्ण को गोमूत्र,  
शराब अथवा केले की जड़ के रस के साथ कफ-  
जन्म मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करने के लिये सघन  
करना चाहिए ॥ २५ ॥

परपटमूलादि कपाय ।

परपटमूलं मधुकाशमेदवृष्यान्वटं  
वृत्तमालकृष्णाः । प्लान्गिलादित्ययुतः  
कपायः समूत्रकृच्छ्रं हरति प्रमद्य ॥ २६ ॥

अएठी की जड़, मुलहठी, पापाणभेद, अद्भूया, गोलरू, अमलतास, पीपल, इनके काथ में छोटी इलायची, शिलाजीत तथा हुलहुल के बीजों के चूर्ण को ढालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २६ ॥

अशमरीजन्य मूत्रकृच्छ्र में एलादि काथ ।  
एलोपकुल्या मधुकारभेदकौन्ती-  
श्वदंष्ट्रामधुकोरुवृकैः । शृतं पिवेदशमजतु  
मगाढं सशर्करं साशमरिमूत्रकृच्छ्रे ॥२७॥

छोटी इलायची, पीपल, मुलहठी, पापाणभेद, सँगालू, गोलरू, मुलहठी, अएठी की जड़, सय भिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ बवाय ८ तोले । इनके बवाय में शीतल होने पर शिलाजीत और खाँड़ ढालकर पीने से अशमरीयुक्त मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २७ ॥

दुरालभादि कपाय ।

दुरालभाशमभित्पथ्याव्याघ्रीमधुकधान्यकैः । कृतः काथः सितापीतो मूत्र-  
कृच्छ्रविबन्धनुत् ॥ दाहं शूलं निहन्त्याशु  
तमः सूर्योदये यथा ॥ २८ ॥

दुरालभा, पापाणभेद, हब, छोटी बटेरी, मुलहठी, धनिया रूप भिलावर २ तोले । पाक के लिए जल ३२ तोले, बचा हुआ बवाय ८ तोले । इस बवाय में खाँड़ ढालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातरोग नष्ट होता है तथा इसकी दाहण्य वेदना शान्त होती है ॥ २८ ॥

पापाणभेदादि काथ ।

पापाणभेदो मधुयष्टिंशला कृष्णा  
शिफेरण्डमिताटरपाः । स्पृकार्श्वदंष्ट्रा च  
शिरासमेतैः काथो हरेद् दुःसहमूत्रकृ-  
च्छ्रम् ॥ २९ ॥

पापाणभेद, मुलहठी, छोटी इलायची, पापाणभेद, अएठी की जड़, अद्भूया, अरुका (अमरग) गोलरू, हब इनका बवाय पीने से शीतल मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २९ ॥

एलादिचूर्ण ।

एलाशमभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां  
चूर्णानि तएडुलजलैर्लुलितानि पीत्वा ।  
यद्वा गुडेन सहितान्यवलिख्य चैतानासन्न-  
मृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ३० ॥

छोटी इलायची, पापाणभेद, शिलाजीत, पीपल, इनके चूर्ण को इकट्ठा कर बराबर मात्रा में भिलाकर तएडुलोदक के साथ पीने अथवा इस चूर्ण को गुड़ के साथ भिलाकर चाटने से मरणासन्न मूत्रकृच्छ्र का रोगी भी पुनः जीवन प्राप्त करता है । चूर्ण की मात्रा— १२ रत्ती ॥ ३० ॥

तारकेश्वर ।

शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्र-  
कम् । दुरालभां यवक्षारं बीजं गोक्षुरजं  
शिवाम् ॥ ३१ ॥ समांशं भावयेत्सर्वं  
कृष्माण्डफलवारिणा । पञ्चदण्डभवकाथे  
रसे गोक्षुरजे तथा ॥ ३२ ॥ सम्पिप्य  
वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः । मधुना  
मर्षं विलिहेत् मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ३३ ॥  
उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ।  
लेहयेत् मधुना सार्द्धं मनुषानं सुखावहम् ॥  
३४ ॥ अजाक्षीरं भवेत् पथ्यं शर्करेक्षुरसो  
हितः ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहमहम, पद्मभरम, धमकमहम, धमासा, जवापर गोमय के बीज और हब इन सब चीजों को समभाग लेकर पेटे के रस, पञ्चदण्ड के काथ तथा गोलरू के रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोक्षुरी बनावे । शहद में भिलाकर रोगी को भक्षण करावे परन्तु पके हुए गुड़ के चूर्णों का चूर्ण पक सोसा शहद के साथ साथ, तो मूत्र कृच्छ्र रोग नष्ट हो । पाप—बटेरी का दूध, खाँड़ तथा गन्धे का रस प्र ३१—३५ प्र

मूत्रकृच्छ्रान्तक ।

सूतं स्वर्णं च र्धकान्तं गन्धतुल्यं विम-  
र्दयेत् । चाण्डाली राक्तमीद्रावर्द्धियामान्ते  
तु गोलकम् ॥ ३६ ॥ शुष्कं वद्ध्वा  
पुटेचाहः करीषान्नां महापुटे । मापमात्रं  
लिहेत् चौद्रैर्मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ ३७ ॥

पारद, गुणगोबरम, पैकान्तभस्म और शुद्ध  
गन्धक, इन्हे मम परिनाण में एकत्र कर  
चाण्डालीमीकण्ड और गुणगोबरी के रस में दो  
पहर मर्दन करके गोलाकार कर ले । परचाण्ड  
समय में बंद कर महापुटे में और स्वान्न-  
शीतल होने पर चौपध को निकाल लें ।  
मात्रा--घ्राषी रशी, अनुपान--मधु । इमरा  
सेवन करने से मूत्रकृच्छ्ररोग शान्त होता  
है ॥ ३६-३७ ॥

त्रिकण्टकाद्य घृत ।

त्रिकण्टकैरहहकुपाद्यभीरु  
कर्कारुकेतुस्वरसेन सिद्धम् ।  
सर्पिर्गुडाद्धीशमुतं प्रपेगं  
कृच्छ्रादमरीमूत्रविवातहेतोः ॥ ३८ ॥

गाय का घृत २ सेर, कषायार्घ गोबरु १ सेर,  
जल ८ सेर, शोष काय २ सेर, परएड-  
मूल १ मेर, नृणपत्रमूल मिलित १ सेर, जल  
८ सेर, शोष काय २ सेर, शतावरि का रस  
२ सेर, वृषमायदरस २ सेर और ईस का रस  
२ सेर, इन सबको एकत्रकर पाक करे । निद्र  
हो जाने पर उतारकर गरम-गरम ही घृान ले  
और सेर भर गुड़ मिलाकर चालोहित कर ले ।  
इसके सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र तथा धरमरी-  
रोग नष्ट होता है । मात्रा--घ्राधा तोला ॥ ३८ ॥

मूत्रकृच्छ्रहर ।

विदारी गोक्षुरं यष्टी केशरं च समं  
पचेत् । तत्कपायं पिबेत् चौद्रे रस-  
भस्मयुतं पुनः ॥ मूत्रकृच्छ्रं हरेत् सर्वं  
सप्ताहात् पित्तसम्भवम् ॥ ३९ ॥

विदारीकन्द, गोवरु, मुझेठी और नाग-  
केसर इनका पाय मधु मिलाकर पारदभस्म के  
साथ सेवन करे तो एक सप्ताह में पेशिक मूत्र-  
कृच्छ्र रोग नष्ट हो ॥ ३९ ॥

श्वदंष्ट्रादि लेप ।

पिप्पदाश्वदंष्ट्रा फलमूलिकाभिरेर्वाह-  
वीजानि सकाञ्जिकानि । आलिप्यमानानि  
समानि वर्त्ता मूत्रस्य संशुद्धिकराणि  
सयः ॥ ४० ॥

गोवरु के बीज, गोवरु की जड़, ककड़ी के  
बीज इन्हें एकत्र कर कांजी में पीतकर बलि-  
स्थल पर लेप करने से मूत्र मूत्राशय से बाहर  
निकल जाता है ॥ ४० ॥

शुद्धगोक्षुराद्यलेप ।

गोक्षुरं पलशतं दशमूलं तथैव  
च । पापाणभेदोऽष्टपलं गृह्णीपलपञ्च-  
कम् ॥ ४१ ॥ परएडोऽभीरुष्टौ च मूलं  
दशपलं पृथक् । पत्रमूलं चारगन्धा  
प्रत्येकं पलत्रिशतिः ॥ ४२ ॥ सर्पमेकत्र  
संकुट्य जलद्रोणे विपाचयेत् । पाद-  
शोषन्तु संग्रह्य वस्त्रतं समाक्षिपेत् ॥ ४३ ॥  
घनीभूने तु सञ्जाते द्रव्याणीमानि दाप-  
येत् । गव्याज्यं मस्थमेरुन्तु शिलाजञ्च  
तथा स्मृतम् ॥ ४४ ॥ तालमूली शताहा  
च त्रिकुटा त्रिफला तथा । सूक्ष्मैला  
मूलकेशी च ह्रीवेरं नागकेशरम् ॥ ४५ ॥  
पद्मकं जातिपत्रत्रक् मधुपष्टी सरोचना  
जातीफलमुशीरश्च त्रिष्टता रक्कचन्द-  
नम् ॥ ४६ ॥ धान्यकं कटुकात्तारौ  
नागवल्ली च शृङ्गिका । पुष्क-  
राहं शटी दाह सीसलोहं च वङ्ग-  
कम् ॥ ४७ ॥ द्रव्याणीमानि संगृह्य  
प्रत्येकं पलमात्रकम् । स्निग्धभाण्डे नि-

धायाथ नित्यं मापद्मयोनिमतम् ॥ ४८ ॥  
खादेद् बलाग्निं सम्प्रेक्ष्य पथ्यं सेवेत  
मानवः । अश्वरीं मूत्रकृच्छ्रश्च मूत्रघातं  
विबन्धताम् ॥ ४९ ॥ प्रमेहा विंशतिश्चैव  
शुकदोषस्तथैव च । धातुक्षयश्चोष्णवातो  
वातकुण्डलिकादयः ॥ ५० ॥ ते सर्वे प्रशमं  
यान्ति भास्करेण तमो यथा । नातः पर-  
तरं किञ्चित् कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ५१ ॥

गोखरु ५ सेर, पापाणभेद ३२ तोले,  
गिलोय २० तोले, अरबडी की जड़ ३२ तोले,  
शतावरि ४० तोले, कमल की जड़ ८० तोले,  
असगन्ध ८० तोले, इन्हें इकट्ठा कर कूटकर  
२५ सेर ४८ तोले जल में पकावें जब ६ सेर  
३२ तोले बाकी रह जाय तब उतार कर कपड़े  
से छान लें और पुनः अग्नि पर रक्वें । जब  
गाढ़ा हो जाय तब गोखरु १२८ तोले, शिला-  
जीत ६४ तोले, मूसली सोया, त्रिकुटा, त्रिकला,  
छोटी इलायची, भूतकेशी, गन्धबाला, नागकेशर,  
पद्माक्ष, जावित्री, दारचीनी, मुलहठी, गीरोचन,  
जायफल, खस, निसोत, लालबन्दन, धनिया,  
कुटकी, जवाखार, सजीखार, पान की जड़,  
काकडासिंगी, पोहकरमूल, कचूर, देवदारु,  
सीसकभस्म, लोहभस्म, चद्रभस्म, हरएक  
४ तोले डालकर अच्छी तरह चलाकर घी के  
चिकने बर्तन में रक्वें । मात्रा--२ माशे । इसके  
सेवन से अश्वरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रघात, मूत्र-  
विबन्ध, प्रमेह, वीर्यदोष, धातुक्षय, उष्णवात  
और वातकुण्डलिका आदि रोग नष्ट होते  
हैं ॥ ४१-५१ ॥

सुकुमारकुमारक घृत ।

पुनर्नवामूलतुला दशमूलं शता-  
वरी । बला तुरगगन्धा च तृणमूलं  
त्रिकण्टकम् ॥ ५२ ॥ विदारिगन्धा  
नागाहा गुडूच्यतिबला तथा । पृथग्दश-  
पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ५३ ॥  
तेन पादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढिकं पचेत् ।

मधुकं मृद्वेरेश्च द्राक्षासैन्धवपिप्प-  
लीः ॥ ५४ ॥ द्विपलिकाः पृथग् दद्याद्य-  
मान्याः कुडवं तथा । त्रिंशद् गुडपलान्यत्र  
तेलस्यैरएडजस्य च ॥ ५५ ॥ प्रस्थं दत्त्वा  
समालोड्य सम्वद्धमृद्वग्निना पचेत् ॥  
एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दि-  
तम् ॥ ५६ ॥ राज्ञां राजसमानाश्च बहुस्त्री-  
पतयश्च ये । मूत्रकृच्छ्रे कटिस्तम्भे तथा  
गाढपुरीषिणाम् ॥ ५७ ॥ मेढ्वङ्गण-  
शूले च योनिशूले प्रशस्यते । यथोक्ताना-  
श्च गुल्मानां वातशोणितिकारचये ॥ ५८ ॥  
वलयं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ॥  
पुनर्नवाशते द्रोणो देयोऽन्येषु तथा-  
परः ॥ ५९ ॥

सांठी ५ सेर, पाक के लिए जल २५ सेर  
४८ तोले, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२  
तोले । दशमूल, शतावरि, खरैटी की जड़, अस-  
गन्ध, पत्रतृणमूल, गोखरु, शक्तिपर्णी, नाग-  
बला, गिलोय, अतिबला, हरएक ४० तोले ।  
इन्हें इकट्ठा कर २५ सेर ४८ तोले जल में  
पकावें । जब चौथाई भाग बाकी रह जाय तब  
उतारकर कपड़े से छान लें । दोनों क्वाथ,  
नाग का घृत ३ सेर १६ तोले, गुड १२०  
तोले, बडी का तैल १२८ तोले । कल्क के  
लिए मुलहठी, अदरक, दाख, सेधानमक,  
पीपली हरएक ८ तोले, अजवाहन १६ तोले ।  
इसे त्रिधिपूर्वक मन्द आँच पर पकावें । इसे  
भोजन से पहिले ही सेवन करना चाहिए ।  
इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र, कटिस्तम्भ, शिरने-  
न्द्रियशूल, वन्धणशूल ( रान का दर्द ),  
योनिशूल, गुल्म, वातरक्त आदि रोग नष्ट  
होते हैं । जिनको दस्त में कड़ा मल आता  
हो उनके लिए भी लाभदायक है । यह घृत  
बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा रसायन है । सुकुमार  
पुरणं तथा बच्चों के लिए लाभदायक होने से

इस घृत का नाम मुकुन्दारकुमारकघृत है ।  
मात्रा— $\frac{1}{2}$ -१ तोला ॥ २२-२६ ॥

शतावर्यादिसर्पिः ।

शतावरी काशकुरारच दंप्रा विदारि-  
केचनामलकेषु सिद्धम् । सर्पिः पयो वा  
सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु  
योज्यम् ॥ ६० ॥

घृत ४ सेर, ककरू के लिए शतावरि, कांस  
की जड़, बुरा की जड़, गोखरू, विदारीबन्द,  
गन्धे की जड़, आँवला सब मिलाकर १ सेर ।  
पाक के लिए जल १६ सेर । इस घृत को  
मन्द आँच पर पकायें । प्रयोग के समय इस  
घृत में खाँद मिलाकर सेवन करें । मात्रा—  
आधा तोला । अथवा इन्हें द्रव्यों द्वारा  
दूध को सिद्ध कर पीयें अर्थात् शतावरि  
आदि मिलाकर २ तोले, दूध १६ तोले,  
जल ६४ तोले । जय पकाते-पकाते दूध मात्र बाकी  
बच रहे तब उतारकर छान लें और खाँद  
मिलाकर सेवन करावें ॥ ६० ॥

त्रिनेत्रालय रस ।

वद्रं सूतं गन्धकं भावयित्वा लौहे  
पात्रे मर्दयेदकघसम् । दूर्वा यष्टी गोक्षुरैः  
शाल्मलीभिः मूषामध्ये मूधरे पाचयि-  
त्वा ॥ ६१ ॥ तत्तद् द्रावैर्भावयित्वास्य  
वल्गुं दद्याच्छीतं पायसं वक्ष्यमाणम् ।  
दूर्वा यष्टी शाल्मलीतोयदुग्धैस्तुल्यैः  
कुर्यात्पायसं तद्दीत । प्रातःकाले शीत-  
पानीयपानात् मूत्रे जाते स्यात्सुखी च  
क्रमेण ॥ ६२ ॥

वज्रभस्म, पारा, गन्धक इन्हें इकट्ठाकर  
बराबर मात्रा में मिलाकर दूध, मुलदही, गोखरू  
तथा सेमल की जड़ के रस से लोह के खरल  
में घोटें । पश्चात् सूख जाने पर एक मूषा में  
बन्द कर मूधरयन्त्र में पकायें । शीतल होने  
पर फिर ऊपर कही हुई औषधियों के रस से

भावना दें और २ रत्नी की गोली बनायें ।  
रोगी को इस गोली का सेवन बराबर नीचे  
लिखी हुई शीतल चीर खाने को दें । दूध, मुल-  
दही, सेमल की जड़ इनके बवाध से बराबर  
मात्रा में दूध को सिद्ध करें और दूध से  
शीर तैयार करें । प्रातःकाल शीतल जल के  
साथ इसे पीने से मूत्र के प्रवृत्त होने पर रोगी  
प्रमत्तः अच्छा हो जाता है ॥ ६१-६२ ॥

वदणाय लौह ।

द्विपलं वरुणं धात्र्यास्तदर्द्धं धातकी-  
सुमम् । हरीतक्या पलाद्धश्च पृश्निपर्यं  
तदर्धकम् ॥ ६३ ॥ कर्षमानश्च लोहाभ्रं  
चूर्णमेकत्र कारयेत् । भक्षयेत्प्रातरुत्थाय  
नापकौ द्वौ विधानवित् ॥ ६४ ॥ मूत्रा-  
घातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम् ।  
अरमरीं विनिहन्त्याशु प्रमेहं विपमज्व-  
रम् ॥ ६५ ॥ बलपुष्टिकरञ्चैव वृष्यमा-  
युष्यमेव च । वरुणायमिदं लौहं चर-  
केण विनिर्मितम् ॥ ६६ ॥

वरुणा की छाल ८ तोले, आँवले ८ तोले,  
धाय के फूल ४ तोले, हड़ ४ तोले, प्रश्निपर्या  
२ तोले, लोहभस्म २ तोले, अश्रकभस्म २ तोले,  
इन्हें इकट्ठा कर मिलायें । मात्रा—१ माशा से  
२ माशे तक । इसके सेवन से मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र,  
अश्रमरी, प्रमेह, विपमज्वर आदि रोग नष्ट  
होते हैं । यह बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, धीर्यवर्द्धक  
तथा आयुवर्द्धक है ॥ ६३-६६ ॥

चन्द्रकला रस ।

प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्सूतं ताम्रं तथा-  
भ्रकम् । द्विगुणं गन्धकञ्चैव कृत्वा कज्ज-  
लिकां शुभाम् ॥ ६७ ॥ गुस्तादाडिम-  
दूर्वातथैः केतकीस्तवकद्रवैः । सहदेव्याः  
कुमार्याश्च पर्पटस्य च वारिणा ॥ ६८ ॥  
रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च ।



भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे  
 पृथक् ॥ ६६ ॥ तिक्ता गुडूचिकासचवं  
 पर्पटोशीरमाधवी । श्रीगन्धं सारिवा  
 चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ७० ॥  
 द्राक्षाफलकपायैण सप्तधा परिभाव-  
 येत् । ततः पोताश्रयं कृत्वा वय्यः का-  
 र्यश्चणोपमाः ॥ ७१ ॥ अयं चन्द्रकला  
 नाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः । सेव्यः पित्त-  
 गदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ७२ ॥  
 अन्तर्बालमहादाहविध्वंसनमहाघनः ।  
 ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्य-  
 ते ॥ ७३ ॥ कुरुते नाग्निमान्द्यं च महा-  
 तापं ज्वरं हरेत् । भ्रममूर्च्छाहरश्चाशु  
 स्त्रीणां रक्तं महास्रवम् ॥ ७४ ॥ ऊर्ध्वा-  
 धो रक्तपित्तञ्च रक्तवान्ति विशेषतः ।  
 मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र  
 संशयः ॥ ७५ ॥

पारा २ तोला, ताम्रभस्म २ तोले, अभ्रक-  
 भस्म २ तोले, गन्धक ४ तोले । इसमें पहिले  
 पारा तथा गन्धक की कज्जली करके तत्परचात्  
 ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म मिलावें । इसके  
 बाद मोथा, अनार, दूध, केवड़ा, सहदेई, ग्यार-  
 पाठा, पिचपापड़ा, आरामशीतलिका और  
 शतावरि इनके रस से अलग-अलग एक-एक  
 भावना दें । तदनन्तर सूख जाने पर कुटकी,  
 गिलोय का सत, पित्तपापड़ा, खस, माधवी,  
 सफेदचन्दन, शारिवा हरएक दो-दो तोले,  
 शारीक चूर्ण को मिलाकर दास के बराब से  
 सात बार भावना देकर घने के बराबर गोलियाँ  
 बना लें । इसे चन्द्रकला रस कहते हैं । यह  
 पित्तरोग तथा वातपित्तरीणों को नष्ट करता है ।  
 यह पाहिरी तथा भीतरी दाह नष्ट करने के  
 लिए अत्यन्त श्रेष्ठ है । ग्रीष्म तथा शरद्वर्षतु में  
 अर्थात् जय पित्त का संघष अथवा प्रकोप होता  
 है, यह विशेषतया लाभकारक है । इसके सेवन से

भ्रम, मूर्च्छा, रक्तप्रदर, ऊर्ध्वगरक्तपित्त, अभोगत  
 रक्तपित्त, रक्तघमन तथा सय प्रकार के मूत्रकृच्छ्र  
 नष्ट होते हैं । यह रस ज्वर की बढ़ी हुई गरमी  
 को हरता है । यद्यपि यह पित्त को नष्ट करता,  
 परन्तु इसके सेवन से मन्दाग्नि नहीं होती,  
 अर्थात् यह चन्द्रकला रस बढ़े हुए पित्त को ठीक  
 अवस्था में लाता है ॥ ६७-७५ ॥

मूत्रकृच्छ्र में पथ्य ।

पुरातनालोहितशालयश्च धन्वामिपं  
 मुद्गरसः सिता च । तत्रं पयो गोश्च दधि-  
 प्रभूतं पुराणकूष्माण्डफलं पटो-  
 लम् ॥ ७६ ॥ ऊर्वास्खजूरकनारि-  
 केलं तण्डूलियं चामलकञ्च सर्पिः ।  
 मतीरनीरं हिमवालुका च मित्रं नृणां  
 स्यात्सति मूत्रकृच्छ्र ॥ ७७ ॥

पुराना लाल शालि चावल, जाड़ल मांस,  
 मूँग का दूध, खॉड, डॉड, गौ का दूध, दही,  
 पुराना पेठा, परवल, परबूजा अथवा ककडी,  
 खजूर, नारियल, चौलाई, आँवला, घी, नदी  
 का जल और कपूर, ये मूत्रकृच्छ्र रोगियों के  
 लिए पथ्य हैं ॥ ७६-७७ ॥

मूत्रकृच्छ्र में अपथ्य ।

मद्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं सर्वं  
 विरुद्धमशनं विपमाशनञ्च । ताम्बूलमत्स्य-  
 लवणार्द्रकतैलभृष्टं पिएयाकहिं गुतिल-  
 सर्पपमूत्रवेगान् ॥ ७८ ॥ मापान् क-  
 रीरमतितीक्ष्णविदाहिरुक्तमम्लं प्रमुञ्चतु  
 जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ७९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्रकृच्छ्रा-

धिकारः समाप्तः ।

शराय, परिश्रम, मैथुन, हाथी एवं घोड़े  
 आदि की सवारी, विरुद्ध भोजन, विषम  
 भोजन, पान, मटली, नमक, अदरक,  
 तैल से पकाये हुए पदार्थ, तिल कणक, दौंग,

तिल, सरसों, मूत्र का वेग, डड़द, टैंटी, भ्रति-  
तीष्ण ( लाल मिरच आदि ), जलन पैदा  
करनेवाले पदार्थ, रुच पदार्थ, खटाई, इनका  
मूत्रकृच्छ्र के रोगी को त्याग करना  
चाहिए ॥ ७८-७९ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूपसादश्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां  
मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः ।

### अथ मूत्राघाताधिकारः ।

मूत्राघातान् यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्ज-  
येत् । वस्तिमुत्तरवस्तिश्च दद्यात् स्निग्ध-  
विरेचनम् ॥ १ ॥

दोषानुसार मूत्रकृच्छ्रनाशक औषधियों द्वारा  
मूत्राघात रोग को जीते । गुदवस्ति, उत्तरवस्ति  
और स्निग्ध विरेचन दे ॥ १ ॥

कल्कमेवाख्यीजानामक्षमात्रं ससन्ध-  
वम् । धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाता-  
दिमुच्यते ॥ २ ॥

एक तोला ककड़ी के बीज का कल्क बनाकर  
उसमें सेंधा नमक और कांजी मिलाकर पीते  
ही मूत्राघात से मुक्ति होती है ॥ २ ॥

यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिवेत् पुष्पफलो-  
द्भवम् । रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्करारमरि-  
नाशनम् ॥ ३ ॥

यवक्षार और गुड मिलाकर पेटे के रस को  
पीने से मूत्राघात, शर्करा और अशमरी रोग नष्ट  
होने हैं ॥ ३ ॥

नपत्रफलमूलस्य काथं गोक्षुरकस्य  
च । पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्राघातादि-  
रोगनुत् ॥ ४ ॥

गोलरू के पत्राङ्ग का क्वाथ बनाकर उसमें  
मधु और शर्करा मिलाकर पीने से मूत्राघात आदि  
रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

नलकुशाशेनुशिफां कथितां प्रातः  
सुशीतलां ससिताम् । पिवतः प्रयाति  
नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच चरकः ॥ ५ ॥

नरकुल, कुश, काश और ईख के मूल का  
क्वाथ बनाकर शीतल होने पर उसमें भिसरी  
मिलाकर प्रातःकाल पान करे तो अवरय ही  
मूत्राघात रोग नष्ट होता है । ऐसा चरक ने  
कहा है ॥ ५ ॥

विम्बीमूलं च संपिष्टं काञ्जिकेन सम-  
न्वितम् । नाभिलेपनमात्रेण मूत्ररोधं  
निहन्ति च ॥ ६ ॥

विम्बी के मूल को कांजी में पीसकर नाभि  
पर लेप करते ही मूत्राघात रोग नष्ट होता  
है ॥ ६ ॥

मूत्रे विपन्ने कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेश-  
येत् । कृष्णाम्बुकरसो वापि पेयः सक्षार-  
शर्करः ॥ ७ ॥

मूत्राघात रोग में यदि मूत्र न उतरे, तो लिङ्ग  
के छिद्र में कर्पूर का चूर्ण प्रविष्ट करावे अथवा  
पेटे के रस में यवक्षार और शर्करा मिलाकर पान  
करे ॥ ७ ॥

जलेन खदिरिबीजं मूत्राघाताशमरी-  
हरम् । मूलं रुद्रजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थ-  
कृत् ॥ ८ ॥

खदिरि के बीज को जल में पीसकर पीने से  
मूत्राघात और अशमरी रोग नष्ट होता है ।  
रुद्रजटा के मूल का तक्र के साथ सेवन करने से  
भी नष्टी गुण होता है ॥ ८ ॥

सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिवे-  
न्नरः । दाडिमाम्बुयुतं मुख्यमैलावीजं  
सनागरम् ॥ पीत्वा सुरां सलवणां मूत्रा-  
घातादिमुच्यते ॥ ९ ॥

शराब में काला नमक डालकर पीने से  
अथवा छोटी हलायची के चूर्ण और सोंठ  
के चूर्ण को मिलाकर अनार के रस के साथ

पीने से अथवा शराब में संधानमक डालकर पीने से रोगी का मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

कर्कटीबीजादि चूर्ण ।

कर्कटीबीजसिन्धुत्रिफलासमभागिकम् । पीतघृष्णाग्भसा चूर्णं मूत्ररोधं निवारयेत् ॥ १० ॥

ककड़ी के बीज, संधानमक, हड़, बहेड़ा, आंवला, इन सबको बराबर मात्रा में मिलाकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को गरम जल के साथ पीने से मूत्राघात रोग नष्ट होना है। मात्रा—३ मासे ॥ १० ॥

दशमूल काथ ।

दशमूलीशृतं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम् । वातकुण्डलिकाष्ठीला वातवस्तौ प्रयुज्यते ॥ ११ ॥

दशमूल के काथ में शिलाजीत ४ रत्ती तथा खॉड़ डालकर पीने से वातकुण्डलिका, अष्टीला तथा वातवस्ति नामक रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

शिलाजतु प्रयोग ।

सशर्करञ्च समधु लीढं शुद्धं शिलाजतु । निहन्ति मूत्रजठरं मूत्रातीतञ्च देहिनाम् ॥ १२ ॥

शिलाजीत में खॉड़ तथा शहद को मिलाकर चाटने से मूत्रजठर तथा मूत्रातीत रोग नष्ट होता है। शिलाजीत की मात्रा—२ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ १२ ॥

धान्यगोक्षुरघृत ।

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कयुक्तं घृतं हितम् । मूत्राघाते मूत्रदोषे शुक्रदोषे च दारुणे ॥ १३ ॥

गोघृत ४ सेर, धनिया तथा गोखरू का काथ १६ सेर, कणक के लिए धनिया तथा गोखरू मिलाकर १ सेर । विधिपूर्वक घृत

पकाकर रोगी को सेवन करावे। मात्रा—आधा तोला। इस घृत के सेवन से मूत्राघात तथा मूत्र और वीर्य के दोष नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना । पिवेत् सशर्करं श्रेष्ठमुष्णघातविनाशनम् ॥ १४ ॥

तण्डुलोदक में चन्दन और शर्कर मिलाकर पान करे और शृतशीत (आटाकर उठे किये हुए) दुग्ध के साथ भात खावे, तो उष्णघात रोग नष्ट होता है। यह इसकी श्रेष्ठ औषधि है ॥ १४ ॥

सोधापघा मूलं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् । पीतं निरुद्धमचिराद्भिन्नचित्ति मूत्रस्य संरोधम् ॥ १५ ॥

हंसपदी की लता के मूल को पीसकर घृत, तैल और दुग्ध मिलाकर पान करे, तो मूत्राघात रोग में रुके हुए मूत्र को तत्काल निकाल देता है ॥ १५ ॥

वराभल्लवणोपेतं सूतं यश्च पिवेन्नरः । तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ १६ ॥

त्रिकला, कौजी और जमक के साथ पारद-रसम की जो मनुष्य पान करता है उसके तेरह प्रकार के मूत्राघात शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

चित्रकाथ घृत ।

चित्रकं शारिमा चैव बला कालानुसारिवा । द्राक्षा विशाला पिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ॥ १७ ॥ तथैव मधुकं दद्याद्दद्यादामलकानि च । घृताढकं पचेदेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ १८ ॥ क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमनतारयेत् । शीतं परिस्रुतञ्चैव शर्करामस्थसंयुतम् १९ ॥ तुगाक्षीरारच तत्सर्पं मतिमान् मतिमिश्रयेत् । ततो मितं पिबेत् काले यथा-

दोषं यथावलम् ॥ २० ॥ वातरेता पित्त-  
रेता श्लेष्मरेता च यो भवेत् । रक्करेता  
ग्रंथिरेता पिवेदिच्छन्नरोगिताम् ॥ २१ ॥  
जीवनीयश्च वृष्यश्च सर्पिरेतन्महागुणम् ।  
प्रजाहितश्च धन्यश्च सर्वरोगापहं शिवम् ॥  
२२ ॥ सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभते-  
ऽचिरात् । अस्रद्दोषान् जयेच्चापि योनि-  
दोषांश्च संहतान् ॥ मूत्रदोषेषु सर्वेषु कुर्या-  
देतच्चिकित्सितम् ॥ २३ ॥

गोघृत ६ सेर ३२ तोले, दूध २५ सेर  
४८ तोले, जन २५ सेर ४८ तोले, कल्क के  
लिये -चित्रक, अनन्तमूल, बला, तगर, दाख,  
हुन्द्रायण की जड़, पीपल, चिमिट, मुलहठी,  
आँबला हरएक दो-दो तोले । विधिपूर्वक घृत  
सिद्ध कर कपड़े से छान लें । इसमें खॉब  
६४ तोले तथा वंशलोमन ६४ तोले मिलाकर  
पात्र में रखे, तदनन्तर माग्रानुसार इसे सेवन  
करावें । मात्रा-आधा तोला से १ तोला तक ।  
इस घृत के सेवन से वात, पित्त, कफ तथा रक्त  
आदि द्वारा दूषित वीर्य तथा ग्रन्थिवीर्य आदि  
रोग नष्ट होते हैं । यह घृत जीवनीय, वीर्यवर्धक  
तथा गर्भकारक है । यह रक्तदोष एवं योनिदोष  
को हरता है । सम्पूर्ण मूत्ररोगों में इसका प्रयोग  
लामदायक है ॥ १७-२३ ॥

भद्रावह घृत ।

अम्बुष्ठा पाटला चैव वर्षामूद्भयमेव  
च । विदारिकन्दः काशश्च कुशमोस्त-  
गोक्षुराः ॥ २४ ॥ पापाणभेदो वाराही  
शालिमूलं शरस्तथा । भल्लातकं शिरीषस्य  
मूलमेपामथाहरेत् ॥ २५ ॥ समभागानि  
सर्वाणि काथयित्वा विचक्षणः । पादशेष-  
कपायेण घृतमस्थं विपाचयेत् ॥ २६ ॥  
कल्कं दत्त्वाथ मतिमान् गिरिजं मधुकं  
तथा । नीलोत्पलश्च काकोली वीजं त्रापु-

समेव च ॥२८॥ कौष्माण्डश्च तथैर्यारुसं-  
भवश्च समं भवेत् । उष्णवातं निहन्त्येतद्  
घृतं भद्रावहं शुभम् ॥ मूत्राघाताश्रमरीमेहान्  
भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २८ ॥

गोघृत १२८ तोले, कल्क के लिये- पाठा,  
पादल, सफेद साँठी, लालसाँठी, विदारीबन्द,  
काश, कुश, गज्जे की जड़, गोखरू, पापाणभेद,  
वाराहीबन्द, शालिधान्य की जड़, सरकंडे की  
जड़, भिलावाँ, सिरस की जड़, सब मिलाकर  
३ सेर १६ तोले । वाथ के लिये जल २६ सेर  
४८ तोले, बाकी ६ सेर ३२ तोले । कल्क के  
लिये शैलज, मुलहठी, नीलकमल, काकोली,  
खीरे के बीज, पेठे के बीज मिलाकर ३२ तोले ।  
इसे विधिपूर्वक सिद्धकर सेवन करने से उष्णवात,  
मूत्राघात, अश्रमरी तथा प्रमेहरोग नष्ट होता है ।  
मात्रा -आधा तोला से १ तोला तक ॥२४-२८॥

विदारी घृत ।

विदारी वृषको यूथी मातुलुङ्गी च  
भूस्तृणम् । पापाणभेदः कस्तूरी वसुको-  
वशिरोऽनलः ॥ २९ ॥ पुनर्नवा वचा  
रास्ना बला चातिवला तथा । कशेरुविस-  
शृङ्गाटतामलकयः स्थिरादयः ॥ ३० ॥  
शरैन्दुर्भूलञ्ज कुशः काशस्तथैव च ।  
पलद्भयन्तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥  
३१ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन् घृतमस्थं  
विपाचयेत् । शतोर्ग्यास्तथा धान्याःस्तरसो  
घृतसम्मितः ॥ ३२ ॥ पट्पलं शर्करा-  
यारच कार्पिकाण्यपराणि च । यष्ट्या  
पिप्पली द्राक्षा कार्मर्यं सपरूपकम् ॥ ३३ ॥  
पला दुरालभा कौन्ती कुंकुमं नागकेशरम् ।  
जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं  
पयः ॥ ३४ ॥ एतत्सर्पिर्विपक्वन्यं शनै-  
र्मुद्गग्निना बुधैः । मूत्राघातेषु सर्वेषु विशे-  
पात्पिचजेषु च ॥ ३५ ॥ शर्कराश्रमरि-

शूलेषु शोणितमभवेषु च । हृद्रोगे पित्त-  
गुल्मे च वातासृक्पित्तजेषु च ॥ ३६ ॥  
कासश्वासक्षतोरस्के धनुस्त्रीभारकर्षिते ।  
तृष्णाच्छर्दिमनःकम्पशोणितच्छर्दिनेतथा ॥  
३७ ॥ रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरो  
ग्रहे । शोनिदोष रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरा-  
मये ॥ ३८ ॥ एतस्मृत्तिकरं वृष्यं वाजीकरण-  
मुत्तमम् । पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वात-  
नाशनम् ॥ ३९ ॥ पानभोजननस्येषु न  
क्वचित्प्रतिहन्यते । विदारीवृतमित्युक्तं  
रसायनमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

गोधृत १२८ तोले, काय के लिये—विदारी-  
कन्द, अद्सा, जूड़ी, चिजौरे की जड़, गन्धवृष्य,  
पाषाणभेद, कस्तूरी, आक ( मदार ), गज-  
पीपल, चित्रक, साँडी, यच, रास्ना, थला,  
अतियला, केसर कमल की जड़, सिंघाड़ा, भुई-  
आवला, शालपर्णी, सरकरण्डे की जड़, गन्ने  
की जड़, डाम की जड़, कुश की जड़, काश  
की जड़, हरणक ८ तांले । पाक के लिए जल  
२५ सेर ४८ तोले, यचा हुआ हाथ ६ सेर  
३२ तोले, शतावर का रस १२८ तोले,  
आँबले का रस १२८ तोले, दूध ३ सेर  
१६ तोले । कल्क के लिए—खॉड २४ तोले,  
मुलहठी, पीपल, द्राघ, कम्भारी, फालसा, छोटी  
हलारयची, धमासा, सग्भालू के बीज, केशर,  
नागदेशर, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, मद्दामेदा,  
काकोली, चीरकाकोली, जीवक और ऋषभक,  
हरणक दो-दो तोले । इसे विधिपूर्वक मन्दी  
मन्दी आँच पर पकावे, जब पक जाय तब  
उतार ले । इस घृत के सेवन से सय प्रकार के  
मूत्राघात, विशेषतः वैजिक मूत्राघात नष्ट होता  
है । यह शर्करा, भरमरी, शूल, रज्जुरोग,  
हृद्रोग, पित्तगुल्म, वातरज्ज तथा पित्तजम्प रोग,  
खॉसी, श्वेत, उरःघत, तृष्णा, यमन, रज्ज्वमन,  
यक्ष्मा, अपरस्मार, शिरोवेदना, शोनिदोष, वीर्यदोष,  
स्वरभङ्ग आदि रोगों में लाभदायक है ।

अतिध्यायाम तथा मैथुन आदि द्वारा थके हुए  
आदमी को इसे सेवन करना चाहिए । यह घृत  
बुद्धिवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, वाजीकरण, पुत्रदायक  
बल, बुद्धिवर्द्धक और रंग को उज्वल करनेवाला  
है । पान, भोजन तथा नस्य आदि द्वारा इस  
घृत का सेवन करना चाहिए । मात्रा—६ माशा  
से १ तोला तक ॥ २६-१० ॥

शिलोद्भिदादि तैल ।

शिलोद्भिदैर्यडसमस्थिराभिः पुन-  
र्नवाभीरुरसेषु सिद्धम् । तैलं शृतं चीर-  
मथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु सम्प्रयो-  
ज्यम् ॥ ४१ ॥

तैल ४ सेर, साँडी तथा शतावर का रस  
१६ सेर । कल्क के लिए पाषाणभेद, अरंडी की  
जड़, शालपर्णी मिलाकर १ सेर । विधिपूर्वक  
तैल सिद्धकर दूध के साथ सेवन करने से  
मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं । मात्रा—  
आधा तोला ॥ ४१ ॥

क्षतजे शल्यजे चैव मूत्रग्रन्थौ प्रवेश-  
येत् । शलाकां कुशलो वैद्यो मूत्राघात-  
प्रशान्तये ॥ ४२ ॥

क्षत एवं शल्य से पैदा होनेवाली मूत्रग्रन्थि  
में सलाई ( Bougie ) का प्रवेश कराना  
चाहिए । इस प्रकार मार्ग के सुज जाने से  
मूत्राघात शांत हो जाता है । जैसे पूरमेद  
आदि में मूत्रनाली में घण हो जाने के बाद  
एक किय ( Sean ) बंध जाता है और यह  
मूत्रमार्ग को रोक देता है, जैसे ही इस रकावट  
को भी हटाने के लिए शलाका प्रवेश कराई जाती  
है । सबसे पहिले पतली, तदनन्तर क्रमशः मोटी  
सलाई का प्रवेश कराया जाता है ॥ ४२ ॥

उशीराद्य तैल ।

उशीरं तगरं कुष्ठं यष्टीमधुकचन्द-  
नम् । विभीतक्यभया भीरुः पद्ममुत्पल-  
शारिरे ॥ ४३ ॥ चला तुरगगन्धा च  
दशमूलं शतावरी । विदारी चैव काकोली

गुडूच्यतिबला तथा ॥ ४४ ॥ श्वदंष्ट्रा  
शतपुष्पा च वाय्यालकमधूरिके । एतैः  
कर्पामितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४५ ॥  
सपत्रफलमूलस्य गोक्षुरस्य पलं शतम् ।  
जलद्रोणे विपक्वव्यं पादांशेनावतार-  
येत् ॥ ४६ ॥ तक्रं तैलसमं देयं वीरण-  
काथकाढकम् । मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रमश्रमरीं  
हन्ति दारुणाम् ॥ ४७ ॥ चलवर्णकरं  
वृष्यं वातपित्तनिपूदनम् । उशीराद्यमिदं  
तैलं काशिराजेन निर्मितम् ॥ ४८ ॥

खस, तगर, कूट, मुलेठी, चन्दन, वहेडा, हड़,  
कटेरी, पटुमकाठ, कमल, शारिवा, खरेडी,  
असगन्ध, दशमूल, दातावरि, चिदारीकन्द,  
फाकोली, गुर्च, अतिबला, गोखरू, सौंफ, खरेडी  
और सोया एक-एक तोला लेकर, कलक बनावे ।  
पत्र-मूल-फलसहित २ सेर गोखरू को २२  
सेर ४८ तोले पानी में पकावे । ६ सेर ३२  
तोले शेष रहने पर उतारकर छान ले और  
इसी प्रकार चार सेर उशीर ( खस ) का भी  
क्वाथ बना ले । पूर्वोक्त कलक और दोनों  
क्वाथ दो सेर तक्र के साथ दो सेर तैल में  
पकावे । यह तैल मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र तथा  
दाहण श्रमरी को नष्ट करता है । बल और  
कारिण की बढ़ाता है । घात और पित्त को नष्ट  
करता है । इस 'उशीरादि तैल' को काशिराज ने  
बनाया था ॥ १३-४८ ॥

मूत्राघात में पथ्य ।

अभ्यञ्जनस्नेहविकरेकवस्ति श्वेदाग्नाहो-  
त्तरयस्त्यरच । पुरातनालाहितशालयरच  
मांसानिधन्वप्रभवाणिमघम् ॥ तक्रंपयोद-  
ध्यपि मापयूपः पुराणकूप्माण्डफलं पटो-  
लम् । महार्द्रक तालफलास्थिमज्जा हरीतकी  
कोमलनारिकेलम् ॥ ४९ ॥ गुवाकृत्खनूर-  
कनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि ।

यथावलं सर्वमिदञ्च मूत्राघातातुराणां  
हितमामनन्ति ॥ ५० ॥

तेलादि की मालिश स्नेहपान जुनाय वस्तिकर्म  
स्वेदन जल क्रीडा उत्तर वस्ति पुराने लाल  
चावल मरस्थल देश के पशु पक्षियों के मांस  
भदिरा छाँड़, दूध, दही, उडद का यूप, पुराना  
पेडा, परवल, तित्तिन्डीक, तालफल की गुठली की  
गिरी, सुपारी, खजूर, नारियल तथा ताड़  
के बूटों के मस्तक, इन्हें रोग दोष के  
बलानुसार मूत्राघात में हितकारक समझना  
चाहिए ॥ ४९-५० ॥

अपथ्य ।

विरुद्धानि च सर्गाणि व्यायामं मार्ग-  
शीतलम् । रुन्तं विदाहि विष्टम्भि व्यवायं  
वेगधारणम् ॥ करीरं वमनञ्चापि मूत्राघाती  
विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्राघाता-  
धिकारः समाप्तः ।

विरुद्ध भोजन, व्यायाम, धरयन्त चलना,  
शीतल द्रव्य, रुच, विदाही एवं विष्टग्भी द्रव्य,  
मैथुन, वेगों का रोकना, करीर ( टेंदी ) और  
वमन, ये मूत्राघात रोगी के लिए अपथ्य हैं ॥ ५१ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूपसाक्षिप्रपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां  
मूत्राघाताधिकारः समाप्तः ।

### अथ अश्रमर्यधिकारः ।

अश्रमरी दारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो  
मतः । औषधैस्तरुणः साध्यः प्रवृद्धशब्दे-  
ऽर्हति ॥ १ ॥

पथरी अत्यन्त भयानक रोग है । यह  
रोग के समान ही मारनेवाला है । यह तरुणा-  
वस्था में औषधियों द्वारा सिद्ध हो सकती है ।  
परन्तु अश्रमरी ( पथरी ) के अत्यन्त बढ़ जाने  
पर शस्त्रचिकित्सा ही करनी चाहिए ॥ १ ॥

वरुणादि काथ ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुर-  
संयुताम् । यवत्तारं गुडं दत्त्वा काथयित्वा  
जलं पिबेत् । अश्रमरीं वातजां हन्ति चिर-  
कालानुबन्धिनीम् ॥ २ ॥

बरना की छाल, सोंठ और गोखरू का  
काढ़ा बनाकर उसमें जवाहार और गुड़ मिला-  
कर पान करे । यह काढ़ा चिरकालोत्पन्न वातज  
अश्रमरी को नष्ट करता है ॥ २ ॥

शुण्ठ्यादिकपाय ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपापाण शिग्रुवरुणगो-  
क्षुरैः । काशमर्याग्बधफलैः काथं कृत्वा  
विचक्षणः ॥ ३ ॥ रामटत्तारलवणचूर्णं  
दत्त्वा पिबेन्नरः । अश्रमरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं  
दोषनं पाचनं परम् ॥ हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं  
कट्यूरुगुदमेढ्रजम् ॥ ४ ॥

सोंठ घरखी, पापाणभेद, सदिजने की  
जड़ की छाल, बरना की छाल, गोखरू, कम्भारी,  
धमलताम फल, सब मिलाकर २ तोले । काथ  
के लिए जड़ ३२ तोले, रोप ८ तोले । इस काथ  
में हींग, जवाहार तथा सेंधानमक डालकर  
पीने से अश्रमरी तथा मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता  
है । यह काथ अग्नि को तीव्र करनेवाला तथा  
पाचन है । यह कोष्ठ, कटि, ऊपर, गुदा तथा  
शिश्नगत वात को नष्ट करता है ॥ ३-४ ॥

पलादि काथ ।

एलोपकुल्यामधुकारमभेद कौन्तीश्वदं-  
प्लाष्टपकोरुवकैः । शृतं पिवेदश्रमजतुप्रगाढं  
सशर्करे चाश्रमरिमूत्रकृच्छ्र ॥ ५ ॥

छोटी इलायची, पीपल, मूलहठी, पापाण-  
भेद, सम्भालू के बीज, गोखरू, अदूसा, अरबी  
की जड़ सब मिलाकर २ तोले । काथ के लिए  
जल ३२ तोले, याकी ८ तोले । इस काथ में  
शिलाजीत डालकर शर्करा, अश्रमरी तथा मूत्र-  
कृच्छ्र में पीना चाहिए ॥ ५ ॥

ऊपकादि गण ।

ऊपकं सैन्धवं हिगु कासीसद्वयगु-  
ग्गुलः । शिलाजतु तुत्थकञ्च ऊपकादि-  
रुदाहृतः ॥ ६ ॥ ऊपकादिगणो हन्ति कफ-  
मेदोविशोधनः । अश्रमरीशर्करामूत्रशूलघ्नः  
कफगुल्मनुत् ॥ ७ ॥

चारमुत्तिका, सेंधानमक, हींग, कसीस,  
पुष्पकसीस, गुग्गुल, शिलाजीत, तुत्तिया, इसे  
ऊपकादिगण कहते हैं । यह ऊपकादिगण कफघ्न,  
मेदाशोधक और अश्रमरी, शर्करा, मूत्रशूल  
तथा कफगुल्म को नष्ट करता है ॥ ६-७ ॥

श्वदंश्रदि काथ ।

श्वदंश्रैरएहपत्राणि नागरं वरुणत्व-  
चम् । एतत्काथवरं प्रातः पिवेदश्रमरि-  
भेदनम् ॥ ८ ॥

गोगरू, अरबी के पत्ते, सोंठ और बरना की  
छाल, इनका काथ प्रातःकाळ पीने से अश्रमरी  
नष्ट होती है ॥ ८ ॥

अश्रमरिभेदन योग ।

मूलं श्वदंश्रैः क्षुरकोरुवकात् क्षरिणे पिष्टं  
वृत्तीद्वयश्च । आलोड्य दध्ना मधुरेण  
पेयं दिनानि सप्ताश्रमरिभेदनार्थम् ॥ ९ ॥

गोगरू की जड़, मालमगाना की जड़,  
अरबी की जड़ और अरबी, इन्हें पतवार मात्रा  
में इकट्ठा कर दूध से पीगकर भिंदि इरी में

मिला सात दिन तक पीने से अश्वरोग नष्ट होता है । चूर्ण की मात्रा ३ मासे ॥ ६ ॥

बृहद्रुखादि काथ ।

वारुणं वल्कलं शुण्ठी बीजं गोक्षुर-  
सम्भवम् । तालमूलीकुलत्थञ्च कुशादि-  
पञ्चमूलकम् ॥ १० ॥ शर्कराक्षारसंयुक्तं  
काथयित्वा जलं पिबेत् । अश्वरोगमूत्रकृच्छ्रघ्नं  
वस्तिमेहनशूलनुत् ॥ ११ ॥

बरना की छाल, सोंठ, गोखरु के बीज, काली मुसली, दुरधी, तथा "कुश, काश दम शर और ईख" इन पाँचों के मूल का काड़ा बनाकर उसमें शकर और जवाखार, मिलाकर पान करे । यह काड़ा अश्वरोग और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करना है । वस्ति और मूत्रोद्भव के शूल को दूर करता है ॥ ११ ॥ मात्रा ४-६ तोला

सगुडो वरुणकाथस्तत् कल्केनाथ-  
वान्नितः । शिश्रुकाथोऽथनात्युष्णोहन्त्याशु  
सरुगश्वरोगम् ॥ १२ ॥

बरना की छाल के काड़े या कल्क में मिला कर पुराने गुड का अथवा अत्यन्त उष्ण सहिजन क काड़े का सेवन करे । यह काथ पीडासहित अश्वरोगी को तत्काल नष्ट करता है ॥ १२ ॥

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं मात्सि-  
कसंयुतम् । अजात्तीरेण सप्ताहं पेयमश्व-  
रिभेदनम् ॥ १३ ॥

मधुमिश्रित ३ माशा गोखरु के चूर्ण को छाकर थकरी का दूध सप्ताह पर्यन्त पान करना चाहिए । यह योग अश्वरोगनाशक है ॥ १३ ॥

प्रपिवेत्तालमूल्या वा कल्कं व्युपि-  
तवारिणा । तेनैनाथ गन्ध्या वा त्र्यहाद-  
श्वरिपातनम् ॥ १४ ॥

वाली मुसली अथवा इन्द्रायण की जड़ को घासी पानी में पीसकर घासी पानी के साथ सेवन करे तो तीन ही दिन में पथरी गिर जाती है ॥ १४ ॥

यो नारिकेलकुसुमं सत्तारं वारिणा  
पिपेद्वा । पिबति तस्य हि दिनैकान्निपतति  
घोरश्वरोगी नूनम् ॥ १५ ॥

जो नारियल के फूल को जल के साथ पीसकर उसमें जवाखार मिलाकर पीता है उसकी घोर पथरी एक ही दिन में नि सदेह गिर जाती है ॥ १५ ॥

कुलत्थाद्य घृत ।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं सशर्करं  
शीतलियावशूकम् । बीजानि कृष्णाण्डक-  
गोक्षुराभ्यां घृतं पचेत् तद्वरणस्य तोये ॥  
१६ ॥ दुःसाध्यसर्गश्वरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्रा-  
भिघातं च समूत्रवद्धम् । एतानि सर्वाणि  
निहन्ति शीघ्रं प्रखट्टक्षानिव वज्र-  
पातः ॥ १७ ॥

शीतलियावशूकमिति यवक्षारः ।  
स च स्फटिकसैन्धवसङ्काशः । अन्ये तु  
शीतली स्नानामख्याता इति ।

कुरधी, सेंधानमक, बाथविडग, शकर, जवाखार, कृष्णाण्ड और गोखरु के बीज दो-दो तोले लेकर कल्क बनावे । चार सेर बरना की छाल को ३२ सेर जल में पकावे, जब थाठ सेर जल शेष रह जाय, तो उतारकर छान ले । उक्त कल्क और बाथ के साथ दो सेर घृत पकावे । यह घृत दुःसाध्य सब प्रकार की अश्वरोगी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और मूत्रवद्धता को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे प्रौढ़ वृद्ध को वज्रपात नष्ट करे ।

इस योग में 'शीतलियावशूकम्' का अर्थ यव-  
क्षार है । यह स्फटिक अथवा सैन्धव लवण के  
सदृश होता है । कुछ लोगों का मत है कि 'शीत-  
लियावशूकम्' से शीतली इस नाम से प्रसिद्ध  
द्रव्य गृहीत होता है ॥ १६-१७ ॥

घाताश्वरोगी में पापाणभेदाद्य घृत ।

पापाणभेदो वसुको वशिरोऽश्वरोग-  
नन्तः



स्तथा । शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती  
 कण्टकारिका ॥ १८ ॥ कपोतवक्त्रार्त्त-  
 गलाकाञ्चोनोशीरगुल्मकाः । वृक्षादनी  
 भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ १९ ॥  
 यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य  
 फलानि च । ऊपकादिप्रतीवापमेपां काथे  
 शृतं घृतम् ॥ २० ॥ भिनत्ति वात-  
 सम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु । चारान्  
 यवागूः पेयाश्च कपायाणि पर्यासि च । भोजनानि  
 च कुर्वीत वर्गोऽस्मिन्वात-  
 नाशने ॥ २१ ॥

घृत ४ सेर । काथ के लिए पापाणभेद,  
 आक, सफेद सुरजमुखी, सिरहंटा, शतावर,  
 गोखरू, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, कपोतवक्त्र,  
 (कड़ई), नीली कटसरैया, काञ्चन (जलाशय  
 के समीप दलदल में उत्पन्न लुपिशेष), खस,  
 गिलोय, बन्दाक, रयोनाक, घरना की छाल,  
 सागवान का फल, जौ, कुलथी, बेर, निर्मली  
 मिलाकर ८ सेर । जड़ ६४ सेर । बचा हुआ  
 काथ १६ सेर । बक के लिए—ऊपकादिगण  
 मिलाकर १ सेर । विधिपूर्वक घी पकाकर सेवन  
 कराने से वातज अश्मरी नष्ट होती है । मात्रा  
 तीन-चार बूँद । इन वातनाशक औषधों से  
 सिद्ध चार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध तथा  
 भोजन के उपयोग से वातदमरी नष्ट होती  
 है ॥ १८-२१ ॥

पित्ताश्मरी में कुशाद्य घृत ।

कुशः काशः शरो गुल्म उत्करो मोरटो-  
 श्मभित् । दभो विदारी चाराही शालिमूलं  
 त्रिकण्टकः ॥ २२ ॥ भल्लुकः पाटली  
 पाठा पत्तुरोऽथ कुरण्टिका । पुनर्नवेशिरी-  
 पश्च कथितास्तेषु साधितम् ॥ २३ ॥  
 घृतं शिलाहमधुकनीर्जिरेन्दीवरस्य च ।  
 श्रुपूर्वारिकाणां वा शीर्जिश्चानापितं

शृतम् ॥ २४ ॥ भिनत्ति पित्तसम्भूता-  
 मश्मरीं क्षिप्रमेव तु । चारान् यवागूः  
 पेयाश्च कपायाणि पर्यासि च । भोजनानि  
 प्रकुर्वीत वर्गोऽस्मिन् पित्तनाशने ॥ २५ ॥

कुश, काश, सरकण्डे की जड़, गिलोय,  
 लालगन्ना, गन्ने की जड़, पापाणभेद, डाम  
 की जड़, विदारीकन्द, चाराहीकन्द, शालि  
 की जड़, गोखरू, रयोनाक, पाटल, पाद,  
 शालिञ्ज, पीली कटसरैया, जाल खौंटी, सफेद  
 खौंटी तथा सिरस की छाल । इनके क्वाथ से  
 तथा शिलाजीत, मुलहठी, कमलबीज, खीरे  
 के बीज, ककड़ी के बीज, इनके कल्क से विधि  
 पूर्वक घृत पिद्धकर सेवन करने से वैक्तिक अश्मरी  
 नष्ट होती है । उपयुक्त पित्तनाशक औषधों से  
 चार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध तथा अन्य भोज्य  
 द्रव्यों को सिद्ध कर पित्ताश्मरी के नाश के  
 लिए सेवन कराना चाहिए । घृत-मात्रा आधा  
 तोला से १ तोला ॥ २२-२५ ॥

कफाश्मरी में चटणाय घृत ।

गणो वरुणाकादौ च गुग्गुल्वेलाहरे-  
 गुभिः । कुष्ठमुस्ताहमरिचचित्रकैः  
 समुराह्वयैः ॥ २६ ॥ एतैः सिद्धमजासर्पि-  
 रूपकादिगणेन च । भिनत्ति कफसम्भू-  
 तामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ २७ ॥ चारान्  
 यवागूः पेयाश्च कपायाणि पर्यासि च । भोजनानि  
 प्रकुर्वीत वर्गोऽस्मिन् कफ-  
 नाशने ॥ २८ ॥

वरुणादिगण के क्वाथ से तथा गुग्गुल, छोटी  
 हलायघी, सम्भालू के बीज, कूट, मोथा, काली-  
 निर्म, चित्रक, देवदार, तथा ऊपकादिगण के  
 कल्क से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर उपित मात्रा  
 में प्रयोग करने से कफज अश्मरी नष्ट होती है ।  
 मात्रा ६ बूँद से ८ बूँद तक । उपयुक्त कफ-  
 नाशक पत्रों से चार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध,  
 तथा भोज्य द्रव्यों को सिद्ध कर श्लेष्मिक

अश्वरोग के नाश के लिये प्रयोग करना चाहिए ॥२६-२८॥

वरुणाद्य तैल ।

त्वक्प्रपुष्पमूलस्य वरुणात् सत्रि-  
कण्टकात् । कपायेण पचेत्तैलं वस्ति-  
नास्थापनेन च ॥ शर्कराशमरिशूलघ्नं मूत्र-  
कृच्छ्रविनाशनम् ॥ २३ ॥

तिलतैल ४ सेर, यमणा की छाल, पचे, फूल एवं जड़ तथा गोपरु मिलाकर ८ सेर । कपाय के लिए जल १४ सेर, पाकी १६ सेर । इस कपाय से विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर आस्थापनवस्ति द्वारा प्रयोग कराये । इसके प्रयोग से शर्करा, अश्वरोग, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥२६॥

वरुण घृत ।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे  
विपाचयेत् । पादशोषं परिस्राव्यं घृतप्रस्थं  
विपाचयेत् ॥ ३० ॥ वरुणं कदली निम्बं  
वृण्जं पञ्चमूलकम् । अमृता चारमजं  
देयं वीजं च त्रपुपोद्भवम् ॥ ३१ ॥ शत-  
पर्वतिलक्षारं पलाशक्षारमेव च । यूथिका-  
पाश्चमूलानि कार्पिकाणि समावपेत् ॥ ३२ ॥  
अस्य मात्रां पिवेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया ।  
जीर्णं तस्मिन् पिवेत् पूर्वं गुडं जीर्णं तु  
मस्तुना । अश्वरोगं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं-  
विनाशयेत् ॥ ३३ ॥

काथायं कुटी हुई बरना की छाल २ सेर । जल १२ सेर ४८ तोले, शोष ६ सेर ३२ तोले, कलकार्य बरना की छाल, कदलीमूल, नीम की छाल, वृण्ज पञ्चमूल, गुच, शिलाजीत, ककडी, के बीज, दूब, तिलक्षार, पलाशक्षार, और जूही का मूल एक-एक तोला ले । उक्त काथ और कलके के साथ दो सेर घृत यथाविधि सिद्ध करे । इसकी मात्रा ६ माघे से २ तोला पर्यन्त है । देशकालानुसार इसमें न्यूनविषय भी हो-

सकना है । सेवित घृत का परिपाक होने पर दही के तोड़ के साथ पुराने गुड़ का सेवन करे । यह घृत अश्वरोग, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट करता है ॥३०-३३॥

पापाणभिन्न ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतुरसः  
पलम् । श्वेतपुनर्नवावासारसैः श्वेता-  
पराजितैः ॥ ३४ ॥ प्रतिद्रवं त्र्यहं मर्द्यं  
शुष्कं तद्भाण्डसंपुटे । स्वेदयेदोलिकायन्त्रे  
संशुष्कं तं विचूर्णयेत् ॥ ३५ ॥ रसः  
पापाणभिन्नः स्याद् द्विगुञ्जश्चारमरीं  
हरेत् । भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन  
पाययेत् । कुलत्थकाथसंपीतमनुपानं सुखा-  
वहम् ॥ ३६ ॥

शुद्ध पारा ४ सोले, गन्धक ८ तोले और शिलाजीत ४ सोले, इनको क्रम से श्वेत पुनर्नवा, रुसा और श्वेत अपराजिता के रस में तीन-तीन दिन घोटकर शुष्क कर ले । परचात् एक पात्र में बन्द करके दोलायन्त्र में स्वेदन करे । तदनन्तर सुखाकर चूर्णित करके रख ले । इस पापाणभिन्न रस की मात्रा दो रत्ती है । अनुपान भुईआंवला और इन्द्रायण के कलके के साथ मिश्रित दुग्ध अथवा कुरथी का कवाय पीना सुखावह होता है ॥ ३४-३६ ॥

अधिक्रम रस ।

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते  
द्वे । तत्ताम्रं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च समं  
समम् ॥ ३७ ॥ निगुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं  
दिनं तद्गोलकीकृतम् । यामैकं  
शालुकायन्त्रे पक्त्वा दक्षार्धगुञ्जकम् ॥  
३८ ॥ वीजपूरस्य मूलञ्च सजलञ्चानु-  
पाययेत् । रसत्रिविक्रमो नाम शर्करा-  
मश्वरोगं जयेत् ॥ ३९ ॥

ताम्रभस्म में समान मात्रा में बकरी का दूध मिला अग्नि पर पकावे । जय दूध का द्रव भाग उड़ जाय तब उतार ले । तदनन्तर शुद्ध पारा और गन्धक को अलग-अलग ताम्रभस्म के समान लेकर कजली करे । इस कजली को ताम्रभस्म के साथ मिला ले । सम्भालू के पत्तों के रस से १ दिन मर्दन कर धालुकायत्र में एक पहर पाक करे, पश्चात् औषध को निकाल रोगी को सेवन करावे । वि० स० परीक्षा करले ताम्रभस्म निरुत्थ हुई है । अग्न्यां पुनः पाक करे । मात्रा आधी एक रत्ती । अनुपान-विजौरें की जड़ का चूर्ण, जल यह रस शर्करा तथा अशमरी रोग को नष्ट करता है ॥ ३०-३६ ॥

पापाण्वज्र रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं रसैः श्वेतपुनर्वैः । मर्दयित्वा दिनं खल्ले-रुद्ध्वा तद्भूधरे पचेत् ॥४०॥ दिनान्ते तत्समुद्धृत्य मर्दयेद् गुडसंयुतम् । अशमरीं वस्ति-शूलञ्च हन्ति पापाण्वज्रकः ॥ ४१ ॥ गौरक्षककटीमूलकार्थं कौलत्थकं तथा । अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषत्रया-चलम् ॥ ४२ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, इनकी कजली कर सफेद सौंठी के रस से एक दिन घोंटकर भूपर यन्त्र में पाक करे । पश्चात् इनको निकाल मर्दन पीस ले । मात्रा-१ रत्ती । इसे गुट के साथ सेवन करने से अशमरी और वस्ति-शूल नष्ट होता है । अनुपान-द्वन्द्वयण की जड़ का काय तथा पुनर्षी का काय । इसमें दोष के बलात्क के अनुसार अनुपान का प्रयोग करना चाहिए ॥ ४०-४२ ॥

आनन्दयोग ।

तिलापामार्गं रुद्रीपलाशाशमलाण्ड-कान् । दग्ध्वा तद्रस्मनोर्यं तु पक्षपतं च कारयेत् ॥ ४३ ॥ तद् पचेन्नोयशेषान्तं

ततश्चूर्णं द्विगुञ्जकम् । पायवेदविमूत्रेण शर्कराशमरिजिद्रवेत् ॥ ४४ ॥

द्वामूत्रेणेति रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

तिल, अपामार्ग ( लट्जोरा ), केला, पलाश और आंवले की शाख को भस्म कर जड़ में घोल दे, पश्चात् कपड़े से छानकर शुद्ध जल निकाल ले, फिर उस जल को पकाकर चार सिद्ध करे । इस चार की मात्रा २ रत्ती है । बकरी के मूत्र के साथ सेवन करावे । यह शर्करा और अशमरी का नाशक है ॥ ४३-४४ ॥

“रसेन्द्रचिन्तामणि” में लिखा है कि बकरी के मूत्र के साथ इसका सेवन करावे ।

अशमरी रोग पथ्यानि ।

वस्ति विरेको वमनं च लह्वनं श्वेदो ऽवगाहोऽपि च वारि सेवनम् । यवः कुलत्थाः प्रपुराण शालयोमद्यानि धन्वाण्डज संभवा रसाः ॥ ४५ ॥ पुराण कूपमाण्डफलं च तल्लता गोकण्टको वाहणशाकमार्द्रकम् । पापाण भेदो यव शूकरेणवः स्थिराः समाकर्षण भस्मना-मपि ॥ ४६ ॥ एतानि सर्वाणि भवन्ति सर्वदा । मुदेऽशमरी रोगनिपीडिता-नाम् ॥ ४७ ॥

वस्तिकर्म ( पिचकारी देना ) जुलाब, वमन संघन पसीने देना जन्म में खेलना, जटा का सेवन, जी, कुलथी पुराने शालिधान्य का चावल मंदिर, मरुपल्ली पक्षियों के बगडों का रस, पुराना पेड़ा पेड़ा की बेज, गोबर, चरना के पत्तों का शाक चद्रक, पापाण भेद, कवापार, सम्भालू वे पीज शालिपर्णी तथा यन्त्र द्वारा पपरी को बाहर लीचकर निकालना ये सब पपरी रोग पारतों को पच्य है ॥ ४५-४७ ॥

अथपथ ।

मूत्रस्य शुक्रस्य च पेममन्तं विष्ट-मिभ रुजं शुक्र चाभपानम् । विरुद्धमत्रा-

शनमश्मरीमान् विवर्जयेत् सन्ततम-  
प्रमत्तः ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामश्मर्यधिकारः

समाप्तः ।

मूत्र के वेग अथवा शुक्र के वेग को रोकना,  
एटाई, विटग्भी द्रव्य, रूप एवं गुर भोजन,  
इनका अश्मरी के रोगी को त्याग करना  
चाहिए ॥ ४८ ॥

इति श्रीपिपित्तसरयूप्रसादप्रिपाठि-

धिरचित्ताया भैषज्यरत्नावल्या

रत्नप्रभाभिधाय्या व्याख्या-

यामश्मर्यधिकारः

समाप्तः ।

अथ उपदंशाधिकारः ।

उपदंशकी म्नामान्य चिकित्सा ।

स्निग्धस्त्रिन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिरा-  
व्यधः । जलौकापातनं वा स्याद्दर्भाध-  
शोधनं तथा ॥ १ ॥ सद्यो निर्जितदोषस्य  
रूक्षशोधावुपशाम्यतः । पाको रक्त्यः प्रय-  
त्नेन शिरश्नक्त्यकरो हि सः ॥ २ ॥

स्नेहन और स्वेदन के परचात् लिंग के बीच  
में शिरावेधन करना चाहिए । अथवा जौक  
लगवाये तथा यमन और विदेचन करावे । तत्काल  
ही जित्तके दोष निर्जित हो जाते हैं उसकी पीड़ा  
और शोथ शान्त हो जाते हैं । घाव को पकने  
से बचाने का उद्योग पूर्णतया करना चाहिए ;  
वर्षोनि घाव के पक जाने से शिदन नष्ट हो जाता  
जाता है ॥ १-२ ॥

घातकोपदंश पर लेप ।

प्रपौण्डरीकघट्टाहसरलागुरुदारुभिः ।  
सरासना कुष्ठपृथ्वीकैर्नातिके लेप-  
सेचने ॥ ३ ॥

पुण्डरीका, मुलहठी, सरलकाष्ठ, थगर, देव-  
दार, रासना, कूठ, इलायची, इनके लेप से अथवा  
इनके काथ द्वारा संचन करने से यातिक उपदंश  
प्रण नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पैत्तिकोपदंश पर प्रलेप ।

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठा मधुकोशीरपत्रकैः ।  
सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं सम्प्रले-  
पयेत् ॥ ४ ॥

पैत्तिक उपदंश प्रण पर गेरू, रसौत, मजीठ,  
मुलहठी, सस, पद्मार, लाल चन्दन, नील  
कमल, इनके कक में थोड़ा सा सौ बार धोया  
हुआ घी मिलाकर लेप करना चाहिए ॥ ४ ॥

पद्मादि लेप ।

पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जानुनवेतसैः ।  
सर्पिः स्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं सम्प्र-  
लेपयेत् ॥ ५ ॥

कमल, नीलकमल, विप, राल, अजुन की  
घाल, वेत, मुलहठी, इनके कक में किंचित्  
प्रलेप योग्य सौ बार धोया हुआ घृत मिलाकर  
पैत्तिक उपदंश प्रण पर लेप करना चाहिए ॥ ५ ॥

प्रक्षालन ।

त्रिफलायाः कपायेण भृङ्गराज-  
रसेन वा । व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्र-  
शान्तये ॥ ६ ॥

उपदंश की शान्ति के लिए त्रिफला के काथ  
अथवा भृङ्गराज के रस से व्रण को धोना  
चाहिए ॥ ६ ॥

लेप ।

दहेत् कटाहे त्रिफलां समांशां मधु-  
संयुताम् । उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोप-  
यति व्रणम् ॥ ७ ॥

नूतनस्थाल्यां समभागत्रिफला शरा-  
वेण पिधाय दग्धव्यं तद्द्रव्यं मधुना संनी-  
योपदंशे लेपः कर्त्तव्यः ।

समांश त्रिफला को कदाही में भस्म करके उस भस्म में मधु मिश्रित कर खेप करना चाहिए । यह खेप सद्यः प्रण को रोपण करता है ७ ॥

कुछ लोग कहते हैं कि समभाग त्रिफला को नवीन थाली में रखकर सकोरे से ढककर जला देना चाहिए और मधु मिश्रित कर उस भस्म का उपदंश पर खेप करना चाहिए ।

लेप ।

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् । सत्तौद्रं वा प्रलेपोऽयं सर्वलिङ्ग-गदापहः ॥ ८ ॥

शिरीष की छाल अथवा हरीतकी पीसकर उसमें थोड़ी रसौत मिलाकर अथवा रसौत और मधु मिलाकर खेप करने से सम्पूर्ण लिङ्गरोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

लेप और पथ्य ।

वन्धूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा । गुणहनं अस्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम् ॥ ९ ॥ लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा । सेवेन्नित्यं यवान्नं च पानीयं कौपमेव च ॥ १० ॥

सूखी बमूल की पत्ती का चूर्ण, अनार के छिलके का चूर्ण अथवा मनुष्य की हड्डी का चूर्ण लगाने से उपदंश के प्रण अच्छे हो जाते हैं । सुपारी या कनेर की छाल का खेप करने से उपदंश को फायदा होता है । उपदंश के रोगी को यव और कुन्दा के पानी का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

प्रक्षालनार्थं काथ ।

जयाजात्यश्वमारार्कशम्पाकानां दलैः पृथक् । कृतं प्रक्षालने काथं मेढूपाके प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

जयन्ती, जाती, कनेर, मदार और अमलतास इनमें से किसी एक की पत्तियों का काथ

कर प्रक्षालन करने से मेढूपाक शान्त होता है ॥ ११ ॥

धूप ।

वदरार्कमपामार्गस्तथा ब्राह्मणयष्टिका । हिङ्गुलं च समं चैषां भागं कृत्वा च धूपनम् ॥ दोषजं कर्मजं हन्यादुपदंशा-दिक्तं व्रणम् ॥ १२ ॥

बेर के वृक्ष की छाल, मदार, अपामार्ग, भारंगी और हिङ्गुल समभाग मिश्रित कर धूप देने से दोषज और कर्मज आदि सब प्रकार का उपदंश-प्रण नष्ट होता है ॥ १२ ॥

पारदादि धूप ।

रसं तालं शिला मुद्रा शङ्खं सिन्दूर-तुत्थके । स्फटिकारियवत्तारौ विडं टङ्गण-मूपणम् ॥ १३ ॥ श्वेतार्कमूलत्वक् चैव देया मापमितां ततः । हिङ्गुलं तोलकं सार्द्धं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ १४ ॥ घृत-प्लुतं संविधाय धूपनं दद्याद्यथाविधि । एभिः प्रधूपनं हन्याद् व्रणं लिङ्गसमु-त्थितम् ॥ १५ ॥

पारा, हवताल, मैन्शिल, मुदांशर, सिन्दूर, नीलायोधा, फिटकरी, जवान्धार, विड नमक, मुद्रागा, कालीमिर्च, सफेद आक की जड़ की छाल, हरएक १ माश । शिगरफ १॥ तोला । इनकी इकट्ठा कर चूर्ण कर घृत मिला विधिपूर्वक धूप देने से शिरसन्द्भ्रय में हुआ उपदंश वा प्रण अच्छा हो जाता है ॥ १३-१५ ॥

उपदंश में निषिद्ध कर्म ।

दिवानिद्रां मूत्रवेगं गुर्भञ्जं मैथुनं गुडम् । आयासमम्लं तक्रं च वर्ज-येदुपदंशवान् ॥ १६ ॥

दिन में सोना, मूत्र वा वेग रोकना गुडपाक अथवा कायाना, मैथुन, गुड, अपिष्ट परिधन, लहा पदार्थ और तक्र उपदंश रोगी के लिये परित्याग्य है ॥ १६ ॥

पञ्चारविन्द घृत ।

मृणालं पद्मबीजानि नालं पत्रं च  
केशरम् । सर्वं सप्तपलं कुर्यात् त्रिशत्पलञ्च  
गोघृतम् ॥ १७ ॥ घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं  
घृतशेषं विपाचयेत् । पाकान्ते चूर्णमिषाञ्च  
क्षिप्त्वा तदवतारयेत् ॥ भक्तयेल्लिङ्ग-  
रोगघ्नं घृतं पञ्चारविन्दकम् ॥ १८ ॥

गोघृत १½ सेर, दूध ६ सेर । रास, कमलबीज,  
कमल फी डंड़ी, कमल के फूल, कमलकेसर  
मिलाकर २८ तोले हो । इन्हें विधिपूर्वक  
इकट्ठाकर पकावे । जब घृतमात्र धाड़ी रह जाय  
तब उपयुक्त द्रव्यों को डालकर उतार ले । इस  
घृत का भक्षण करने से लिङ्गरोग नष्ट होता है ।  
मात्रा—आधा तोला से १ तोला ॥१०-१८ ॥

अनन्ताद्य घृत ।

अनन्तामलकीद्राक्षाः कालोलीयुगलं  
चरीम् । एलाद्वयं विदारीञ्च मधुकं मधुकं  
सुराम् ॥ १९ ॥ त्रिफलां स्वर्णपर्णाञ्च  
बीजं गोक्षुरसम्भवम् । दशमूलं ताल-  
मूलां त्रिवृताभिन्द्रारुणीम् ॥ २० ॥  
नीलिनीं शूकशिम्ब्याश्च बीजं कर्पममा-  
णतः । कल्कीकृत्य पचेत्स्थे सुसर्पिः सारि-  
वाम्भसा ॥ २१ ॥ घृतमेतदनन्ताद्यमुप-  
दंशविनाशनम् । रसायनं परं वृष्यमस-  
दोपनिमूदनम् ॥ २२ ॥

गोघृत १२८ तोले अनन्तमूल का क्वाथ  
६ सेर ३२ तोले, कल्क के लिए अनन्तमूल,  
आंबला, दाख, काकोली, चीरकाकोली, शता-  
घरे, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, विदारी  
कन्द, महूए के फल, मुलहठी, सुरामांसी, त्रिफला,  
सनाय, गोखरू के बीज, दशमूल, सकेद मूसली,  
निसोत, इन्द्रायण की जड़, नीलीमूल, कौंच के  
बीज, हरएक १० माशे विधिपूर्वक सिद्ध कर  
सेवन करने से उपदंश तथा रूदोप नष्ट होता

है । यह घृत धीर्यघटक और रसायन है ।  
मात्रा—आधा तोला से १ तोला ॥ १९-२२ ॥

भूमिम्वाद्य घृत ।

भूमिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजाती-  
खदिराशनानाम् । सतोयकल्केवृत्तमाशु  
पकं सर्वापदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ २३ ॥

घृत २ सेर, आधार्थ द्रव्य—चिरायता, निम्ब-  
पत्र, त्रिफला, परवन के पत्ते, कंजा के बीज,  
चमेली के पत्ते, खदिर काष्ठ और अतना की  
छाल, प्रत्येक आध सेर अर्थात् कुल मिलित  
४ सेर । जल ३२ सेर, शेष ८ सेर । कल्कार्थ  
ऊपर लिखे कुल द्रव्य पाँच पाँच तोले अर्थात्  
कुल मिलित आध सेर । इस घाथ और कल्क  
के साथ सिद्ध किया हुआ घृत शीघ्र ही सय  
प्रकार के उपदंश रोग को दूर करता है ॥२३ ॥

करञ्जाद्य घृत ।

करञ्जनिम्बाजु नशालजम्बूवटादिभिः  
कल्ककपायसिद्धम् । सर्पिनिहन्यादुपदंश-  
दोषं सदाहपाकं स्रुतिराययुक्तम् ॥ २४ ॥

कंजा की मींगो, नीम, अजुन, शाल, जामुन,  
बरगद, गूलर, पीपर, पाकड़, और बेंत की छाल  
के काथ और कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ  
घृत दाह और स्रावयुक्त सदोप उपदंश को नष्ट  
करता है मात्रा—६ माशा १ तोला ॥२४ ॥

गोजी तैल ।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च  
संयुतम् । एतत्सर्वोपदंशेषु तैलं रोपण-  
मिष्यते ॥ २५ ॥

तिलतैल १२८ तोला, कल्क के लिए गोजी,  
बायविडङ्ग, मुलहठी तथा सर्वगन्ध (दूरचीनी,  
छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, कपूर,  
कंकील, अगूर, केसर, लौंग) मिलाकर ३२  
तोले । यह तैल उपदंशत्रय का रोपण करता  
है ॥२५ ॥

फोशातकी तैल ।

तिक्तफोशातक्यलावर्णबीजं नागर-

साधितम् । तैलं हन्त्यविशेषेण त्रयं दुष्ट-  
मनेकधा ॥ २६ ॥

तिलतैल १२० तोला, कड़वी तोरई के बीज,  
कड़वी तुंडी के बीज, सोंठ मिलाकर ३२ तोला,  
पाक के लिए ६ सेर ३२ तोला, विधिपूर्वक  
पकावे । यह तेल नाना प्रकार के दुष्ट व्रणों को  
नष्ट करता है ॥२६॥

जम्बनाथ तैल ।

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव  
च । नरुमालस्य पत्राणि तद्वत्पत्रोत्प-  
लानि च ॥ २७ ॥ एला चातिनिपात्रास्थि-  
मयुक्ञ्च मियङ्गवः । लाक्षाकालीयकं  
लोमं चन्दनं त्रिवृताहया ॥ २८ ॥ एता-  
न्येकीकृतान्येव वस्तुमूत्रेण पेपयेत् ।  
अक्षमात्रैरिमैर्द्रव्यैस्तैलं प्रस्थं विपाचयेत् ।  
उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्त्ति-  
तम् ॥ २९ ॥

तिलतैल १२० तोले, ककक के लिए—जामुन  
के पत्ते, वेत के पत्ते, आंवले के पत्ते, लताकरञ्ज  
के पत्ते, पद्मपत्र, नील कमल के पत्ते, छोटी हला-  
यची, असीस, आम की गुठली, मुलहठी मियगु,  
लाक्षा, कालीयक काष्ठ (एक प्रकार का चंदन),  
लोध, लाल चंदन, निसोत, हरएक दो-दो तोले।  
इन्हें एकट्ठा कर बकरी के मूत्र से पीसकर तथा  
विधिपूर्वक पकाकर लगाने से उपदंश नष्ट होता  
है ॥२७-२९॥

आगारधूमाद्य तैल ।

आगारधूमो रजनी सुरासिद्धं च  
तैस्त्रिभिः । भागोत्तरैः पनेत्तैलं रूपद्रुशोथ-  
रजापदम् ॥ शोधनं रोपणं चैव सावर्ण्य-  
करणं तथा ॥ ३० ॥

शुद्धमृगधूमोत्तु पुर्ण का जाला ४ तोला ४  
मासे, ६ रत्नी . दूरी १० तोला १० मासा  
६ रत्नी मदिता का सिद्ध १६ तोला ४  
मासा १ रत्नी । इनके बरक के साथ दो नेर

तैल को पकावे । यह तैल उपदंशजन्य कण्डू,  
शोथ और पीडा को नष्ट करता है । उपदंश के  
व्रण मे पूय (पीय) आदि को निकालकर व्रण  
को शुष्क कर स्वाभाविक वर्ण को प्राप्त कराता  
है ॥ ३० ॥

दरदसिन्दूररस

नव कर्षमितः शुद्धः पारदस्तत्प्रमाणतः ।  
रस कर्पूरकञ्चैवरसाद्धौ दरदः स्मृतः ।  
॥ ३१ ॥ सार्धं पञ्चाञ्जमात्रः स्याद्ग-  
न्धकञ्च सुगोधितः । सर्वमेकत्र सम्पि-  
प्य पूरयेत्काचकूपिकाम् ॥ ३२ ॥ बालुका  
यन्त्र मध्यस्थां पचेत्क्रमवद्दिना । अहोरा-  
त्रद्वयादूर्ध्वं स्याद्दशीतं समुद्धरेत् ॥ ३३ ॥  
युक्ताऽनुपानतो हन्याद्रसोऽयं वातजान्ग-  
दान् । सन्निपातादिकांश्चाऽपि ज्वरादीन्ह-  
न्त्यशेषतः ॥ ३४ ॥ नाम्ना दरदसिन्दूरो  
रसोऽयं सर्वरोगहृत् ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा और रस कपूर ६-६ तोले शुद्ध  
सिंगरफ ४॥ तोले शुद्ध गन्धक २॥ तोले लेकर  
सबको मिला पीस कर ६ ७ कपड मिट्टी की हुई  
आतशी शीशी में डालकर शीशी का मुख खादिया  
मिट्टी घीरह से बन्द करके बालुका यन्त्र में रख  
४० घण्टे की क्रमवद् अग्नि देकर शीतल होने  
पर निकाल कर रख लेंगे । १-१ रत्नी की मात्रा में  
रोगानुसार अनुपान के साथ देने से सब प्रकार  
के सन्निपात, वातरोग उपदंश आदि रोगों का  
शीघ्र ही विनाश हो जाता है ॥३१-३५॥

भैरवरस ।

शुद्धसूतं गृहीतभ्यंरश्मिःशशतमात्रम् ।  
त्रिगुणां गर्गरां लोहे निम्बदण्डेन मर्द-  
येत् ॥ ३६ ॥ ग्राममात्रं ततो टपाच्छ्लेत्  
रदिरचूर्णम् । सूततुल्यं ततः कुर्या-  
न्मर्दनात् रज्जलोपमम् ॥ ३७ ॥ निशति-  
र्विद्विः कार्याः स्याप्याः गोधूमचूर्णकं ।

निःशेषनिःसृता ज्ञात्वा पिडिकास्ताः कले-  
चरे ॥ ३८ ॥ भैरवं देवमभ्यर्च्य बलि  
तस्मै प्रदाय च । विधाय योगिनीपूजां  
दुर्गामभ्यर्च्य यन्नतः ॥ ३९ ॥ वटिकास्ताः  
प्रयोक्तव्या भिपजा जानता क्रियाम् ।  
दिवसत्रितयं दद्यात्तिस्रस्तिस्रो विजा-  
नता ॥ ४० ॥ चतुर्थाच्च समारभ्य एको-  
मेकां प्रयोजयेत् । एवं चतुर्दशदिने  
नीरोगो जायते नरः ॥ ४१ ॥ पथ्यं  
शर्करया सार्द्धमुष्णान्नं घृतगन्धि च ।  
कुर्यात्साकाङ्क्षमुत्थानं सकृद्भोजनमिष्यते  
॥ ४२ ॥ जलपानं जलस्पर्शं न कदाचन  
कारयेत् । दुःसहायां तु तृष्णायामिच्छु-  
दाडिमकादिकम् ॥ ४३ ॥ शौचकार्येऽप्यु-  
ष्णवारि वाससा प्रोञ्चनं घृतम् । वातात-  
पाग्निसम्पर्कं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४४ ॥  
मेघागमे वा शीते वा कार्यमेतद्विजानता ।  
मुखरोगे तु संजाते मुखरोगहरी क्रिया ४५  
श्रमाध्वभाराध्ययनस्वप्नालस्थान् विवर्ज-  
येत् । ताम्बूलं भक्षयेन्नित्यं कर्पूरादिसुवा-  
सितम् ॥ ४६ ॥ क्रिया श्लेष्महरी युक्ता  
वातपित्ताविरोधनी । लवणं वर्जयेदम्बलं  
दिवानिद्रां तथैव च ॥ ४७ ॥ रात्रौ  
जागरणं चैव स्त्रीमुखालोकनं तथा ।  
सप्ताहद्वयमुत्क्रम्य स्नानमुष्णाम्बुना च-  
रेत् ॥ ४८ ॥ पथ्यं कुर्याद्धितमिदं जाङ्ग-  
लानां रसादिभिः । व्यायामार्थं वर्जनीयं  
यावन्न प्रकृतिर्भवेत् ॥ ४९ ॥ एवं कृत-  
विधानस्तु यः करोत्येतदौषधम् । स एव  
पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः ॥ ५० ॥  
पिडिका विलयं यान्ति बलं तेजरचवर्द्धते ।

रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थिशोथश्च शा-  
म्यति ॥ ५१ ॥ अस्थनां भवति दाढ्यं च  
श्रामवातश्च शाम्यति । भैरवेण समाख्यातो  
रसोऽयं भैरवः स्वयम् ॥ ५२ ॥

शुद्ध पारा १०० रत्नी, शकर ३०० रत्नी, दोनों  
को एकत्र कर लोहे के खरल में नीम के दण्डे से  
एक पहर तक घोटें । पश्चात् १०० रत्नी श्वेत  
कथे का चूर्ण मिलाकर इतना घोटें कि जिससे  
कज्जल के समान हो जाय । तत्पश्चात् उसकी  
२० गोलियाँ बनाकर गेहूँ के आटे में रख दें ।  
शरीर में पूर्णरूप से उपदंश पिडिकाएँ निकली  
हुई जानकर भैरवनी की पूजा करके उनको बलि  
दे । योगिनी और दुर्गा की भी यत्नपूर्वक पूजा  
करके विधिज्ञ वैद्य को उन घटियों का प्रयोग  
करना चाहिए । पहिले तीन दिन तक तीन-तीन  
गोलियाँ दें, फिर चौथे दिन से एक एक गोली  
दे । इस प्रकार १४ दिन में मनुष्य नीरोग हो  
जाता है । शकर के साथ उष्ण भात थोड़ा घी  
ढाल कर खाये । भोजन इतना खावे कि कुछ  
इच्छा बनी ही रहे तथा एक ही बार भोजन  
न करे । जलपान और जलस्पर्श कदापि न करे ।  
दुःसह प्यास लगने पर ईख और अनार आदि  
का सेवन करे । शौच कार्य में उष्ण जल का प्रयोग  
करे । और तरकाल उसको कपड़ा से पोंछ डाले ।  
वायु, घाम और अग्नि का सम्पर्क दूर से ही रखा  
दे । विज्ञ वैद्य को चाहिए कि वर्षाकाल अथवा  
शीतकाल में इस योग का प्रयोग करे । मुख-  
रोग होने पर मुखरोगनाशक क्रिया करे ।  
अधिक परिश्रम, मार्ग चलना, भारी धोकर  
उठाना, पढ़ना, सोना और आलस्य को त्याग  
दे । प्रतिदिन कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल का  
सेवन करे । इसमें कफनाशक और वातपित्त  
को रोकनेवाली घिकिरसा डीघत है ।  
नमक और खट्टाई का खाना, दिन में सोना,  
रात में जागना और स्त्री का मुखावलोकन  
त्याग दे । इस प्रकार दो सप्ताह ध्यतित  
करके उष्ण जल से स्नान करे । जाङ्गल जीवों  
के मांख-रसादि के साथ हित पदार्थ ( उष्ण



भात आदि) का सेवन करे। जब तक पूर्ण-  
तया स्वस्थ न हो जावे तब तक व्यायाम आदि  
न करे। इस प्रकार विधिपूर्वक जो जितेन्द्रिय  
होकर इस औषध का सेवन करता है वही इस  
पाप रोग के पार जाता है। पीडिकाएँ विनष्ट  
हो जाती हैं, बल और तेज बढ़ता है, पीड़ा  
शान्त हो जाती है। गाँठों की सूजन भी जाती  
रहती है। हड्डियाँ दृढ़ हो जाती हैं और आम-  
यात शान्त हो जाता है। भैरवजी का कहर  
हुआ यह 'भैरव रस' है ॥ ३६-४२ ॥

### रसगुग्गुल ।

ग्राह्यः पातनयन्त्रेण शुद्धश्चन्द्रसमो  
रसः । रक्तिकाशतमेतस्य शर्करा त्रिगुणा  
भवेत् ॥ ५३ ॥ ततश्चतुर्गुणो ग्राह्यो  
गुग्गुलुर्महिषाक्षकः । घृतं रससमं दद्यात्  
मर्दयेच्च प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥ त्रिंशतिर्वटिकाः  
कार्यास्तिस्रस्तिस्रो दिनत्रयम् । एकादश-  
दिनैरन्या देया एकादशैव ताः ॥ ५५ ॥  
सप्ताहद्वयमंत्रं च कारयेद्भिषजां वरः ।  
लक्षणं वर्जयेत् पथ्ये पादाद्धाशनमिष्यते ॥  
५६ ॥ दिनद्वये व्यतीते तु पादोनं पथ्य-  
माचरेत् । मसूरसूपं सगुडं व्यञ्जनं चाथ  
कल्पयेत् ॥ ५७ ॥ पुनर्नवा पटोलानि  
तिक्तपत्री च गोक्षुरम् । पुटपत्री कोकि-  
लान्तं शाकार्यं घृतभर्जितम् ॥ ५८ ॥  
शर्करा लग्णस्थाने वैशारदे धनीयरुम् ।  
लग्णज्ञानोहिद्गुनि धान्यकं जीरकानि  
च ॥ ५९ ॥ पाकार्ये संप्रदातव्यं संस्कार्यं  
भिषगरैः । भैरवस्य रसस्यान्याः  
क्रियारचात्र प्रयोजयेत् ॥ ६० ॥ रसगु-  
ग्गुलुखं हि मरान् जिन्वामयानयम् ।  
फुष्टोपदंनानामानं व्रणं वातादिसंयुतम् ॥  
कामदेवमतीकान्तिश्चरतीरी भवेत्परः ५१ ॥

पातन यन्त्र द्वारा शुद्ध चन्द्र के समान  
शुद्ध पारद १०० रत्ती, शर्करा ३०० रत्ती,  
शुद्ध महिषाक्ष गुग्गुल ४०० रत्ती और घृत  
१०० रत्ती, इन सब औषधियों का एकत्र  
परिश्रम के साथ घोट कर २० गोलियाँ बनावे।  
पहिले तीन दिन तक प्रतिदिन तीन-तीन  
गोलियाँ और चौथे दिन से ११ दिन पर्यन्त  
प्रति दिन एक-एक गोली दे 'इस प्रकार दैद्य-  
वर दो सप्ताहपर्यन्त औषध सेवन करावे।  
इसके सेवन के दिनों में नमक खाना बजिन है।  
पहिले दिन पाद भोजन, द्वितीय दिन अर्ध  
भोजन, और दो दिन व्यतीत होने पर अर्थात्  
तृतीय दिन पादोन भोजन करे। मसूर की दाल  
और गुड़ का व्यञ्जन बनाये। गदहपुरेना,  
परवल, ककोटक (ककोडा), गोखरू, पुटपत्री  
(चंचु-चेवना) और कोकिलाक्ष (ताल-  
मखाने के पत्ते) को घृत में भूनकर शाक  
बनाये। नमक के बदले शर्करा और मसाला के  
बदले धनिया डाले, तथा लौंग, कालाजीरा,  
हींग धनिया और सफेद जीरा पाक के संस्का-  
रार्थ डाले। 'भैरव रस' की अग्यान्त्र क्रियाओं  
का यहाँ भी प्रयोग करे। इस प्रकार सेवन  
करने से यह रसगुग्गुल सब रोगों को तथा  
जातादिपुत्र कुष्ठ उपदंश नाम मण को जीतता  
है। इसका सेवन करनेवाला मनुष्य कामदेव  
के समान कामिमान् होकर चिरजीवी होगा  
है ॥ ५३-६१ ॥

### धूम

रसं वद्धं च सतिरं हरीतक्याश्च  
भस्मरुम् । कोमलं कटलीभस्म गुणक-  
फलभस्म च ॥ ६२ ॥ एतत्तोलकमानं  
स्याद्धिद्गुलं हरितालरुम् । गन्धकं  
तुत्यकं चापि पत्रकं सरलं तथा ॥ ६३ ॥  
द्वे चन्दने देवदारु वरुणं काष्ठमेव च ।  
तथा केशरकाष्ठं च मापमानं प्रकल्पयेत् ॥  
६४ ॥ एकोऽन्य चूर्णयित्वा सर्वश्राद्धे-  
रिकाष्ट्रैः । तुनमीपद्मजरमैः पुगानन-

गुडेन च ॥ ६५ ॥ घृतेन सह पदकार्या  
घटिका मन्त्ररक्षिताः । वेदनायामुत्कट्यायां  
चतस्रः शुक्लवाससा ॥ ६६ ॥ वेष्टयित्वा  
च निर्धूमाङ्गारोपरि च दापयेत् । तं धूपं  
परिगृह्णीयान्नरो वस्त्रादिवेष्टितः ॥ ६७ ॥  
मुखनासाकर्णबहिर्निश्वांसस्य निरोधतः ।  
स्वेदे जातेऽस्य नैरुज्यं सायंप्रातर्दिनत्र-  
यम् ॥ ६८ ॥ मासमात्रं तु पथ्याशी  
शाकाम्लदधिवर्जन्म् । गुर्वन्नपायसादीनि  
चापथ्यानि विवर्जयेत् ॥ ६९ ॥ दिनत्रये  
व्यतीते तु स्नानमुष्णाम्बुनाचरेत् । एवं  
धूमे कृते शान्तिं ब्रह्मणश्च पिठिका  
अपि ॥ ७० ॥ तथा शोधश्चामयातः  
खञ्जता पद्मतापि च । कुष्ठोपदंशशान्त्यर्थं  
भैरवेण प्रकीर्तितः ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारा, वज्रभस्म, श्वेत खदिर, हरीतकी  
भस्म, केला के फूलों की भस्म और सुपारी  
की भस्म एक-एक तोला । हिंगुल, हरिताल,  
शुद्ध गन्धक, तृतिया, पटुमकाष्ठ, सरलकाष्ठ,  
श्वेतचन्दन, रत्नचन्दन, देवदारु, बकमकाष्ठ और  
नागकेसर काष्ठ एक एक भांशा ले । इन सब  
श्रोपधियों को एकत्र कर चूर्णित करे, फिर  
चौराई के स्वरस, तुलसीपत्र के स्वरस, पुराने  
गुड़ और घृत के साथ लोहे के खरल में लोहे  
के दण्ड से घोटकर ६ गोली बना ले और  
उनको मन्त्र द्वारा सुरक्षित करके रख दे । जब  
उपशान्त्य वेदना उत्कट हो तब इनमें से ४  
गोली को सफ़ेद कपड़े में लपेट कर निर्धूम अग्नि  
पर रल दे । रोगी वस्त्रादि से शरीर को ढककर  
उस धूम का ग्रहण करे । धूम का ग्रहण करते  
समय बाहरी निःश्वास को रोक दे, जिससे मुख  
नाक और कान के द्वारा वह धूम भीतर न चला  
जावे । इस प्रकार साय-प्रातः तीन दिन तक  
स्वेद देने से आरोग्य प्राप्त होता है । एक  
मासपर्यन्त पथ्य पदार्थ का सेवन करे । शाक,

खटाई, दही, गुरुपाक अन्न और खीर आदि  
अपथ्य पदार्थों को त्याग दे । तीन दिन व्य-  
तीत होने पर गरम पानी से स्नान करे । इस  
प्रकार धूम का ग्रहण करने से प्रण और पिठि-  
काए शान्त हो जाती हैं । शोध, आमवात, खञ्जता,  
पङ्कता कुष्ठ और उपदंश की शान्ति के लिए  
भैरवजी ने इस धूम का प्रयोग कहा है ॥ ६२-७१ ॥

लेप ।

विपतिन्दुं लौहपात्रे मलाङ्गे निम्बुक-  
द्रवैः । घर्षेत् कृष्णमुधामूलं प्रत्येकं मात्तिकं  
दृढम् ॥ ७२ ॥ तुत्थं तदनु सूतं च लौह-  
दण्डेन तद्दयुतम् । सर्वं तदेकतां यातं तेन  
लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ७३ ॥ लेपे शुष्के पुन-  
र्लेपं दद्यात् शुष्के पुनस्तथा । शुष्कं न सं-  
सयेत्लेपं शुष्कस्योपरि दापयेत् ॥ ७४ ॥

कुचले को मुर्चा लगे हुए लोहपात्र में लोह-  
दण्ड से नीचे के भर्क की भावना दे-देकर घोटें,  
परचात् क्रमशः धूर का मूल, स्वर्णमात्तिक,  
तृतिया और पारा ढालकर भली भाँति घोटते-  
घोटते एकरूप कर डाले । एकीभूत होने पर  
उसका लिङ्ग पर लेप करे । लेप के शुष्क होने  
पर वैसे ही फिर लेप करे । शुष्क हुए लेप  
को छुवावे नहीं, इसी पर बार-बार लेप करता  
रहे ॥ ७२-६४ ॥

रसशेखर ।

पारदं चाहिफेनं च द्विर्द्वादिशरक्कि-  
कम् । अयःपात्रे निम्बकाष्ठे मर्दयेत्तुलसी-  
द्रवैः ॥ ७५ ॥ तस्मिन् संमूर्च्छित्ने दद्याद्-  
रदं रससम्मितम् । मर्दयेच्च तुलस्यैव तत-  
श्चैतानि दापयेत् ॥ ७६ ॥ जातीकोपफले  
चैव पारसीययमानिकाम् । आकारकर-  
मं चैव द्वात्रिंशद्रक्किं प्रति ॥ ७७ ॥  
मर्दयेत्तुलसीतीर्थरेतेषां द्विगुणं शुभम् ।  
दद्यात् खदिरसत्थं च घटिका

चणकप्रभा ॥ ७० ॥ सायं द्वे द्वे प्रयोज्ये  
च लवणाम्लं च वर्जयेत् गलत्कुष्ठं तथा-  
स्फोटान् दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥ ७६ ॥  
ये स्युर्व्रणा नृणामन्ये उपदंशपुरःसरः ।  
तान् सर्वान् नाशयत्याशु सिद्धोऽयं रसशे-  
खरः ॥ ८० ॥

दो रत्ती परा और १२ रत्ती अक्कीम तुलसीपत्र के स्वरस के साथ लोहपात्र में निग्य-दग्ध से घोंटे । इस प्रकार घोटने से पारद के मूर्च्छित हा जाने पर उसमें पारद के समान भाग ( २ रत्ती ) शुद्ध द्विगुल डाले और फिर तुलसी के स्वरस के साथ ही घोंटे । परचाष् जावित्री, जायफल, मुरासानी अजगहन और अकरकरहा यत्तीस-बत्तीस रत्ती डाले तथा सबसे द्विगुण साक्र कथा डालकर तुलसी के स्वरस के साथ मर्दन करके घना के समान गोलियाँ बना लें । प्रति दिन सायंकाल दो-दो गोलियों का सेवन करें । नमक और पटाई का परहेज रखते । गलितकुष्ठ, दुष्ट स्फोट, गर्दभिका और उपदंश आदि अन्याय्य जितने ग्रण हैं उन सबको यह रसशेखर साकाल नष्ट करता है । यह योग अनुभूत है ॥ ७२-८० ॥

उपदंश सूर्य ।

'शङ्कोपलं कोलमितं पलत्रिकं, मुद्गरसं  
निम्बुरसं तथैव ॥ ८१ ॥ लोहे कटाहे-  
विनिधाय सर्वं सङ्घृष्य सत्वक पित्रुमर्द-  
लेन द्रएडेन यावद्धि घनी भवेच्च सिद्धो-  
भरेमुद्गनिभां चमात्रम् ॥ ८२ ॥ देयः  
फिरद्गामयकोभिषाभिः स्पृच्छं विधेये  
क्लिपय्यमस्य ॥ ८३ ॥ तैलाम्लवज्य-  
निखिलव्रणघ्नं द्यतानुपानि रूपदेश्च सूर्यः

आधा तोला सेमल लेकर भटकरीया तथा भीष् के रस में गीम तीन पल छोड़े की कटाही में गीम के कटा ने छोड़े कटा होने पर काली मिर्च के समान मोड़ी बना लें । १-१ मोड़ी रोज की के साथ घेने से चन्दा काम होगा है । मीठ

खटाई स्याज्य है । मधुन पथ्य इच्छानुसार ले । विशेष अनुभूत है ॥ ८१-८३ ॥

चरावि गुग्गुलुः ।

वरानिम्बार्जुनाश्वत्थखदिरासनवा-  
सकैः । चूर्णितैर्गुग्गुलुसमैर्वटिका अक्ष-  
सम्मिताः ॥ ८४ ॥ कर्त्तव्या नाशयन्त्याशु  
सर्वान् लिङ्गसमुत्थितान् । उपदंशानसृग्-  
दोपान् तथा दुष्टव्रणानपि ॥ ८५ ॥  
त्रिफला, नीम की छाल, अजुन की छाल, पीपल की छाल, खैर, असन ( पीतशाल ), अइसा हरणक का चूर्ण समभाग, सय चूर्ण के समान शुद्ध गुग्गुलु, इन्हें इकट्ठा मिलाकर गोलियाँ बनायें । मात्रा—४ रत्ती से २ मासे तक । इनके सेवन से उपदंश, रक्तदोष और दुष्टग्रण नष्ट होते हैं ॥ ८४-८५ ॥

सारिवाद्यवलेह ।

सारिवायाः पलशतं जलद्रोणे विपा-  
चयेत् । तस्मिन् पादावशेषे तु गुह्वची  
शतमूलिका ॥ ८६ ॥ विदारी जीवनी  
त्रिष्टम्भुएही च त्रिफला तथा । जुद्धैला  
चोपचीनी च मत्पेकार्दपलं मतम् ॥ ८७ ॥  
सुपिष्टं नित्तिपेत्तत्र शीते मधु पलाष्टकम् ।  
क्षीरानुपानयोगेन पिवेत्तोलकसम्मि-  
तम् ॥ ८८ ॥ प्रमेहांश्चोपदंशांश्च मूत्र-  
कृच्छ्रश्च पीठिकाः । नश्यन्ति त्वपरे रोगा  
रक्तदुष्टया भवन्ति ये ॥ ८९ ॥ सूतोत्य-  
विहृतिश्चापि सन्देहो नात्र कथन । पुत्रश्च  
सर्वरोगेभ्यो यत्पुण्याग्निसंयुतः ॥ ९० ॥  
मानवः सिद्धकामोऽस्माच्छीघ्रं भवति  
निरिचतम् ॥ ९१ ॥

अनन्तमूल २ रत्ती, जल २२ रत्ती ४८ छोड़े, बाकी ६ रत्ती २९ छोड़े । प्रमेयार्थ गिलोय, शलाबीर, पिदारीकण, जौबक, कप-भक, मेदा, महामेदा, काकोरि, खीर-कोरि,

मुलहरी, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, जीवन्ती, मिसोन, मुण्डी, त्रिफला, इलायची और चोपचीनी, हरएक का चूर्ण चार-चार तोले विधिपूर्वक पकायें । शीतल होने पर ३२ तोला शहद मिलायें । मात्रा-घाघे तोले से १ तोले तक । अनुपान—दूध । प्रमेह, उपदंश, मूत्रकृच्छ्र, पिष्टिका तथा अन्य रोग, जो रक्त के विकार से पैदा होते हैं, इसके सेवन से नष्ट हो जाने हैं । पारे के सेवन से उपपन्न विकार को भी यह अवलेह निरघपपूर्वक नष्ट करता है । सम्पूर्ण रोगों से छूटकर रोगी बल तथा अभिनयुक्त होता है ॥ ८६-६१ ॥

फिरङ्ग रोग में चोपचीनी का प्रयोग ।

चोपचीनी भवं चूर्णं शाण्णमानं समात्ति-  
कम् । फिरङ्गव्याधिनाशाय भक्षयेत्प्रवणं  
त्यजेत् ॥ ६२ ॥ लवणं यदि वा त्यक्तुं  
न शक्नोति यदा जनः । सैन्धवं स हि  
भुञ्जीत मधुरं परमं हितम् ॥ ६३ ॥

चोपचीनी के चूर्ण को चौपाई तोले से घाघे तोले तक की मात्रा में शहद के साथ मिलाकर फिरङ्ग रोग को शांति के लिए सेवन करें । अपप्य—नमक । यदि पुरप नमक का र्याग न कर सके तो केवल सैन्धा नमक का ही प्रयोग करे ॥ ६२-६३ ॥

कज्जल्यादि मोदक ।

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावन्मात्रन्तु  
गन्धकम् । तावन्मात्रस्तु खदिरस्तेपां  
कुर्यात्तु कज्जलीम् ॥ ६४ ॥ रजनी केशर-  
त्रुट्या जीरयुग्मं यमानिका । चन्दन-  
द्वितयं कृष्णा वांशी मांसी च पत्रकम् ॥ ६५ ॥  
अर्द्धं कर्षमितं सर्वं चूर्णयित्वा च निक्षि-  
पेत् । तत्सर्वं मधुसर्पिभ्यां द्विपलाभ्यां  
पृथक्-पृथक् ॥ ६६ ॥ मर्दयेदथ तत्खादे-  
दर्द्धकर्षमितं नरः । व्रणः फिरङ्गरोगोत्थ-  
स्तस्यावश्यं विनश्यति ॥ ६७ ॥ अन्योऽपि

चिरजातोऽपि प्रशाम्यति महाव्रणः । एत-  
द्भक्षयतः शोधो मुखस्यान्तर्न जायने ॥  
वर्जयेदत्रे लवणमेकविंशति वासरान् ॥ ६८ ॥

पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, इनकी कज्जली करके सफेद बत्था २ तोले मिलायें । परचात् हरी, नागकेशर, छोटी इलायची, सफेद जीरा, कालाजीरा, अजवाइन, सफेद-चन्दन, कालचन्दन, पीपल, वंशलोचन, जटामांसी और तेजपात हरएक के एक-एक तोला चूर्ण को मिलावे । तदनन्तर हम सब चूर्ण को शहद तथा घृत चीमठ-चीमठ तोले डालकर लद्दू बना लें । मात्रा—घाघे तोले से १ तोला तक । इसके सेवन से फिरङ्ग, व्रण, चिरकालीन व्रण आदि नष्ट होते हैं । पारा विकृति से उपपन्न होनेवाले लालास्राव तथा मुखान्तर्गत शोध ( मुँह खाना ) आदि उपद्रव रोगी के उपपन्न नहीं होते । इसके सेवन-काल में २१ दिन तक नमक न खाना चाहिए ॥ ६४-६८ ॥

उपदंश रोग में पथ्य ।

हृदिर्विरेको ध्वजमध्यानाडीवेधौ जलौ-  
का परिपातनं च । सेकःभलेपो यवशाल-  
यरच धन्वामिपं मुद्गरसो वृत्तानि ॥ ६९ ॥  
कठिल्लकं शिशुफलं पत्रोलं शालिञ्च शाकं  
नवमूलकं च । तिक्रं कपायं मधु कूपवारि  
तैलं च हन्यादुपदंशरोगम् ॥ १०० ॥

वमन, विरेचन, पुरवेन्द्रिय की मध्यगामिनी गाड़ी का वेधन, जोकें लगाना, सेक करना लेप करना तथा जो, शाकी चावल, जांगल पशु-पक्षियों का मींस, मूँग का रस, घी, करेला, सहिजना, परवल, शालिचशाक, नई मूजी, कड़वे और कसैले रस, शहद, कुएँ का जल, तिल के तेल की मालिश, ये सब उपदंश-रोगी को पथ्य हैं ॥ ६९-१०० ॥

उपदंश रोग में अपप्य ।

दिवानिद्रा मूत्रवेगं गुर्वचं मैथुनं गुडम् ।

आयासमम्लं तक्रं च वज्जयेदुपदंश-  
वान् ॥ १०१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुपदंशाधि-  
कारः समाप्तः ।

दिन में सोना मूत्र के वेग को रोकना,  
भारी अन्न, मैयुन, गुड़, शारीरिक परिश्रम,  
मट्टा और खटाई, ये सब उपदंशरोगी को  
अपश्य हैं ॥ १०१ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूसप्रादत्रिपाठि-  
विरचितायां भैषज्यरत्नावल्या  
रत्नप्रभाभिधायां व्याख्या-  
यामुपदंशाधिकारः  
समाप्तः ।

अथ शूकदोषाधिकारः ।

शूकदोषेषु सर्वेषु पित्तघ्नीं कारयेत्क्रि-  
याम् ॥ १ ॥ हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं  
चापि विरेचनम् ॥ हितः शोणितमोक्षरच-  
यचापि लघु भोजनम् ॥ २ ॥

सब शूकदोषों में पित्तनाशक क्रिया करनी  
चाहिए और कुछ रोगोक्त पञ्चतन्त्रादि से सिद्ध  
वृत्त का पान और हरीतकी प्रभृति विरेचक  
औषध सेवन, रक्तमोक्षण और लघु भोजन हित  
होते हैं ॥ १-२ ॥

सर्पपीचिकित्सा ।

सर्पपीं लिखितां सूक्ष्मैः कपायैरवचूर्ण-  
येत् । तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद् ब्रणरो-  
पणम् ॥ ३ ॥ क्रियेयमवमन्येऽपि रक्तं  
स्नान्यं तथोभयोः । अष्टीलायां हते रक्ते  
श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ ४ ॥

शूक-दोषोपश्रुत सर्पपिका नामक पिका को  
सागू आदि की पत्ती से धिसकर किशुक, मज्जीठ,  
ीपर, घट आदि कषाय द्रव्यों के दूग्ध से अन्न-

कीर्ण करे । उन्हीं कषायद्रव्यों के क्राथ और  
कलक द्वारा सिद्ध तैल का मर्दन करे । इस क्रिया  
से ब्रण भरकर शुष्क हो जाता है । अतमान्ध  
रोग में भी, यही क्रिया करनी चाहिए ।  
सर्पपिका और अतमान्ध इन दोनों में रक्तमोक्षण  
करना चाहिए । अष्टीला रोग में रक्तमोक्षण  
करने के पश्चात् श्लेष्मिक ग्रन्थि के समान  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३-४ ॥

कुम्भिकाचिकित्सा ।

कुम्भिकायां हरद्रक्तपकायां शोधिते  
ब्रणे । तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च  
रोपणम् ॥ ५ ॥

कुम्भिका रोग में रक्तमोक्षण करे तथा ब्रण  
के पक जाने पर पीर्य आदि निकाल कर तेन्दू,  
त्रिफला और लोध का लेप करे और ब्रण-  
रोपण तैल लगावे ॥ ५ ॥

अलजीचिकित्सा ।

अलज्यां क्रूररक्तायामयमेव क्रिया-  
क्रमः । स्वेदयेत् ग्रथितं स्निग्धं नाडीस्वे-  
देन बुद्धिमान् ॥ सुखोष्णैरुपनाहैरच सु-  
स्निग्धैरुपनाहये ॥ ६ ॥

अलजीरोग में रक्त के दूषित हो जाने पर  
कुम्भिका के समान ही चिकित्सा करे ।  
ग्रथित रोग में नाडीस्वेद द्वारा स्निग्धस्वेदन  
और सुस्निग्ध तथा विशुद्ध द्रव्यों का  
प्रलेप करे ॥ ६ ॥

उत्तमाचिकित्सा ।

उत्तमाख्यां तु पिडिकां सन्धिषु वदि-  
शोद्धताम् । कल्कैरचूर्णैः कषायाणां चोद्ग-  
युक्तैरुपाचरेत् ॥ ७ ॥

उत्तमा नाम की पिका को वदिश से  
उठाकर घेदन करके कषायद्रव्यों के कलक और  
चूर्ण में मधु मिलाकर लेप करे ॥ ७ ॥

पुष्पर्यादिचिकित्सा ।

क्रमः पित्तविसर्पणः पुष्करीमूढ-

योर्हितः ॥ ८ ॥ त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च  
सेचयेन्मृदितं पुनः । घृतातैलेन कोप्येन  
मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ६ ॥

पुष्करी और मूडा नाम की पिष्टिका में  
पित्तविमर्षोक्त क्रिया करे । चमड़ा पक गया हो  
और स्पर्शशून्यता हो गई हो तो सेचन करे ।  
मृदित रोग में किञ्चिदुष्ण घृतातैल लगावे  
या मधुर द्रव्यों का छेप करे ॥ ८-६ ॥

शतपोनकचिकित्सा ।

रसक्रिया विधातन्या लिखिते शत-  
पोनके । पृथक्पण्यादिसिद्धं तु तैलं देय-  
मनन्तरम् ॥ १० ॥

शतपोनक में लेखनक्रिया करके रसक्रिया  
करे परचात् पृष्ठपर्णा आदि से सिद्ध तैल  
लगावे ॥ १० ॥

शोणितारुद की चिकित्सा ।

रक्तविद्रधिवच्चापि क्रियाशोगिग्तजेऽ-  
रुदे । कपायकल्कसर्पापि तैलञ्चूर्णं रस-  
क्रियाम् ॥ शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य  
वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ११ ॥

शोणितारुद में रक्तविद्रधि के समान  
चिकित्सा करे । उसके शोधन और रोपण के  
लिये कपाय द्रव्य के कल्क द्वारा सिद्ध घृत,  
तैल, कपाय द्रव्यों के चूर्ण और रस क्रिया  
की यथायोग्य व्यवस्था करे ॥ ११ ॥

अरुदचिकित्सा ।

अरुदं मांसपाकं च विद्रधि तिल-  
कालकम् ॥ १२ ॥ प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत  
भिपक्त्तेषां प्रतिक्रियाम् । सर्वेषां शूक-  
दोषाणां क्रियां ब्रणवदाचरेत् ॥ उपदंशा-  
धिकारोक्तमौषधं शूकदोषतः ॥ १३ ॥

शूकदोषोत्पन्न अरुद, मांसपाक, विद्रधि  
और तिलकालक रोगों में इनका उल्लेखन  
करके चिकित्सा करनी चाहिए । शूक-दोषोत्पन्न  
सभी औषधों में ब्रणवत् चिकित्सा करे । शूक-

दोषों में उपदंशाधिकारोक्त औषधों की व्यवस्था  
करे ॥ १२-१३ ॥

दार्वी तैल ।

दार्वीसुरसयष्ट्याहृद्गृह्मनिशायुतैः ।  
तैलमभ्यञ्जने पाने मेढरोगं निवार-  
येत् ॥ १४ ॥

तिलतैल २ सेर । कण्ठार्थं दारहृद्दी,  
तुलसी, मुलेठी, गृह्मघ्न और हल्दी कुल मिलित  
आधासेर । पाकार्थं जज ८ सेर । यथोचित  
रीति से सिद्ध कर इस तैल का अभ्यङ्ग और  
पान दोनों प्रकार से प्रयोग करे तो मेढू रोग  
दूर होता है ॥ १४ ॥

शूकदोष में पथ्य ।

लेपो विरेकोऽसृङ्मोक्षः सर्पिः पानञ्च  
शालयः । यवा जाद्रलमांसानि मुद्गयूपः  
कठिल्लकम् ॥ १५ ॥ पटोलं शिग्र क-  
कौटं पत्तरं वालमूलकम् । चेत्राग्रमापाढ-  
फलं दाडिमं मैन्धवं वरो ॥ १६ ॥ कृपो-  
दकं गन्धसारः कस्तूरी हिमवालुका । तिक्तं  
कपायं तैलञ्च स्यात्पथ्यं शूकरोगि-  
णाम् ॥ १७ ॥

प्रलेप, विरेचन, रक्तमोक्षण, घृतपान, शालि,  
जौ, जाम्बलमांस, मूँग का जूस, पुनर्नवा, परवल,  
सहिजना, ककोडा, शालिञ्ज, कच्ची मूली, बेत  
की कोंपल, ककंठी, अनार, सेंधानमक, त्रिफला,  
कुपूँ का जल, चन्दन, कस्तूरी, कदूर, कढवे  
कपूँजे द्रव्य और तैल, ये शूक रोगियों के लिए  
पथ्य है ॥ १५-१७ ॥

शूकरोग में अपथ्य ।

मूत्रवेगं दिवानिद्रा व्यायामं मैथुनं  
गुडम् । विदाहि गुरु तक्रञ्च शूकदोषामयी  
त्यजेत् ॥ १८ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां शूकदोषाधिकारः

समाप्तः ।

मूत्र का वेग, दिन में सोना, व्यायाम, मैथुन, गुड़, विदाहि, तथा गुरुभोजन और छाँछ इनका शूक दोष रोगी को त्याग करना चाहिए ॥ १८ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां  
शूकदोषाधिकारः समाप्तः ।

### अथ प्रमेहाधिकारः ।

सामान्य चिकित्सा ।

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कुशस्त-  
थान्यः परिदुर्बलश्च । संवृंहणं तत्र  
कुशस्य कार्यं संशोधनं दोषवलाधि-  
कस्य ॥ १ ॥

कोई प्रमेहरी स्थूल और बलवान् तथा कोई कुश और दुर्बल होते हैं । उनमें कुश व्यक्त के लिये वृंहण ( बलमांसवर्धन ) तथा अधिक दोष और बलसम्पन्न व्यक्त के लिये संशोधन ( विरेचनादि ) की व्यवस्था करनी चाहिए ॥ १ ॥

ऊर्ध्वं तथाधश्च मलेऽपनीते मेहेषु  
सन्तर्पणमेव कार्यम् । संशोधनं नार्हति-  
यः प्रमेही तस्य क्रिया संशमनी विधेया २ ॥

वमन और विरेचन द्वारा मलों के निकल जाने पर सन्तर्पण क्रिया ही करनी चाहिए । जिस प्रमेहरी के लिये संशोधन क्रिया उचित न हो उसके लिये संशमन क्रिया करनी चाहिए ॥ २ ॥

प्रमेह रोगी के लिए पथ्य ।

ये विधिकरा ये मनुदा विहङ्गास्तेपां  
रसैर्जातैर्लजैर्मनोहैः । मन्दाः कपाया रस-  
चूर्णलेहा ममूरमुद्गा लघवश्च भक्ष्याः ॥ ३ ॥

जो विधिकर ( हंस, मयूर और बुकडुआदि ) और मनुद ( कपूर आदि ) पक्षी हैं तथा

जो जंगल में रहनेवाले पशु हैं उनके उत्तम मांसरस के साथ काथ, रस, चूर्ण, अथलेह, मसूर, मूँग, और मधु आहार प्रमेहरी को देना चाहिए ॥ ३ ॥

श्यामाककोद्रवोदालगोधूमचणका-  
ढकी । कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा  
मेहिनां सदा ॥ ४ ॥ जाङ्गलं तिक्रशाकं  
च यवान्नं च श्रमो मधु । रुक्षमुद्वर्त्तनं  
गाढं व्यायामो निशि जागरः ॥ यच्चान्यत्  
श्लेष्मपित्तघ्नं बहिरन्तश्च तद्वि-  
तम् ॥ ५ ॥

पुराने साबों, कोदों, जंगली कोदों, गेहूँ, चना, अरहर और कुलथी प्रमेहरी के लिए सदा भोज्य हैं । जाङ्गलमांस, तिक्रशाक, जौ का भात, परिश्रम और मधु, ये सब प्रमेहरी के लिए हितकर हैं । तथा पर्याप्तरूप से रुख उद्वर्तन व्यायाम, रात में जागना और इसी प्रकार अन्यान्य जिन शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के द्वारा कफ और पित्त नष्ट हों वे सब प्रमेहरी के लिए हितकर हैं ॥ ४-५ ॥

सर्वमेहहरो धान्या रसः सौद्रनिशा-  
युतः ॥ ६ ॥

मधु और हरदी के चूर्ण को मिलाकर आँवले के स्वरस का सेवन करने से सब प्रकार का प्रमेह-रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

कपायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवा कृतः ।  
त्रिफलादारुदार्वाब्जकाथः सौद्रेण मे-  
हहा ॥ ७ ॥ त्रिफलालोहशिलाजतु  
पथ्याचूर्णं च लीढमेकैकम् । मधुनामरा-  
सरस इव सर्गान् मेहान्निशारयति ॥ ८ ॥

प्रत्येकं त्रिफलादिचतुर्णां चूर्णं मधुना  
लेष्यम् ।

त्रिफला, देवदार, और नागरमोषा का काय तथा मधुमत्र प्रिपला, देवदार, दाकहरदी और नागरमोषा का काय प्रमेह नाशक है ॥ ७ ॥

जैसे मधुसुत्र गिनोय का स्वरस सब प्रकार के प्रमेह को दूर करता है वैसे ही त्रिफला, लोहभस्म, शिवाजीत और हरीतकी का चूर्ण वे प्रत्येक मधु के साथ चाटने से सब प्रकार के प्रमेह को दूर करते हैं ॥ ८ ॥

पीतः सारो गुडूच्या वा मधुना मेह-  
नाशनः ॥ ९ ॥

गुर्च का सत्त मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है ॥ ९ ॥

शताघर्या रसं नीत्वा क्षीरेण सह यः  
पिवेत् । प्रमेहा विशतिस्तस्य क्षयं यान्ति  
न संशयः ॥ १० ॥

शताघरि के रस को निकालकर दूध के साथ जो पीता है उसके बीसों प्रकार के प्रमेह निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

आमदुग्धं समजलं यः पिवेत्प्रमात-  
रुत्थितः । निःसंशयं शुक्रमेहा पुराणस्तस्य  
नश्यति ॥ ११ ॥

प्रातःकाल उठते ही कच्चे दूध में समभाग जल मिलाकर जो पीता है उसका पुराना शुक्रमेह अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

पलाशपुष्पतोलैकं सितायारचाड-  
तोलकम् । पिष्टं शीताम्भसा पीतं मेहं  
हन्ति न संशयः ॥ १२ ॥

एक तोले पलाश के पुष्प में ६ भांशे शकर मिलाकर शीतल जल के साथ पीसकर पीने से प्रमेहरोग निःसंदेह नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

स्फाटिकं चूर्णमादाय नारिकेलोदरे  
क्षिपेत् । तत्फलं पङ्कमध्ये तु स्थापयेद-  
कारात्रकम् ॥ १३ ॥ प्रातरानीय सजलं  
चूर्णं पेयं प्रयत्नतः । अनेन चिरकालीनो  
मेहो नश्यति निश्चितम् ॥ १४ ॥

फिटकरी के चूर्ण को नारियल के भीतर भरकर उसको रात भर पङ्क में गाड़ रखले और प्रातःकाल निकालकर उसके सजल चूर्ण का

पान करे । इससे पुराना प्रमेह रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १३-१४ ॥

व्यायामजातमखिलं भजन्मेहान् व्यपो-  
हति । पादतश्छत्ररहितो भिक्षाशी मुनिवत्  
यतः ॥ १५ ॥ योजनानां शतं गच्छेदाधिकं  
वा निरन्तरम् । मेहान् जेतुं वने वापि  
नीवारामलकाशनः ॥ १६ ॥

सब प्रकार के व्यायाम से प्रमेह रोग नष्ट होते हैं । मुनियों के समान छत्ररहित पैदल भिषाटन करता हुआ शतयोजन या इसमें भी अधिक की निरन्तर यात्रा करने से अथवा वन में निवास कर निवार और आँवले का आहार करने से प्रमेह रोग नष्ट होते हैं ॥ १५-१६ ॥

फलत्रिकादि ।

फलत्रिकं दारु निशां विशालां मुस्ता  
च निःश्वथ्य निशांशकल्कम् । पिवेत्क-  
पायं मधुसंयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुच्छ्रि-  
तेषु ॥ १७ ॥

हड़, यहदा, आँवला, दारुहल्दी, हृद्रायन की जड़, मोथा मिलाकर २ तोले । पाक के लिए जन ३२ तोले, चाकी काथ ४ तोले, इस काथ में हल्दी का चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

मुस्तादि क्याथ ।

मुस्ता फलत्रिकनिशा सुरदारुमूर्वा  
ऐन्द्री च लोघ्रसलिलेन कृतः कपायः ।  
पाने हितः सकलमेहभवे गदे च मूत्रग्रहेषु  
सकलेषु नियोजनीयः ॥ १८ ॥

मोथा, त्रिफला, देवदारु, मूर्वा की जड़, हृद्रायण की जड़ और लोघ मिलाकर २ तोले । पाक के लिये जल ३२ तोले, चाकी ८ तोले । यह काथ सम्पूर्ण प्रमेह तथा मूत्ररुच्छ रोग में लाभदायक है ॥ १८ ॥

दशविध श्लेष्मज प्रमेह में योग ।

हरीतकी कट्फलमुस्तलोघ्राः पाठा-



विडङ्गार्जुनधन्वयासाः । उभे हरिद्रे तगरं  
विडङ्गकदम्बशालार्जुनदीप्यकारच ॥१९॥  
दावीं विडङ्गं खदिरो धवश्च सुराहकुष्ठा  
गुरुचन्दनानि । दाढ्याग्निमन्थौ त्रिफला  
वचा च पाठा च सर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा २०  
यवा उशीराण्यभया गुडूची जम्बू शिवा-  
चित्रकसप्तपर्णाः । पादैः कपायाः कफ-  
मेहिनां ते दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः २१

१--हड, कायफल, मोथा, लोध । २--पाद,  
वायविडङ्ग, अर्जुन, दुरालभा ( धमासा ) ।  
३--हरदी, दारुहर्दी, तगर, वायविडङ्ग । ४--कदम्ब  
की छाल, साल की छाल, अर्जुन, अजवाइन ।  
५--दारुहर्दी, वायविडङ्ग, लैर, धव । ६--देव-  
दारु, कूठ, अगर, लालचन्दन । ७--दारुहर्दी,  
अरणी, त्रिफला, वच । ८--पाद, सर्वा की जड़,  
गोखरु, । ९--जौ, खस, हड़, गिलोय । १०--जामुन  
की गुठली, हड़, चित्रक सतौना इनमें से हर-  
एक के विविपूर्वक सिद्ध किये हुए क्वाथ में  
शहद डालकर पीने से दसों प्रकार के रलैम्पिक  
प्रमेह नष्ट होते हैं ॥१९--२१॥ मात्रा--४-५ तोला ॥

विडङ्गादि क्वाथ ।

विडङ्गसर्जार्जुनकट्फलानां कदम्ब-  
लोत्राशनवृत्तकाणाम् । जलेन काथरच  
हितो नराणां कफप्रमेहेन सदातुरा-  
णाम् ॥ २२ ॥

वायविडङ्ग, साल, अर्जुन की छाल, कट्फल,  
कदम्ब की छाल, लोध, अमन, कुड़ा की छाल  
मिलाकर २ तोले । क्वाथ के लिये जल ३२  
तोले, शेष ४ तोले । यह क्वाथ सदा कफ-  
प्रमेह से पीड़ितों के लिये अत्यन्त हितकारक  
है ॥ २२ ॥

पित्तप्रमेह में छुः क्वाथ ।

उगीरलोधान्जुनचन्दनानामुशीरमुस्ता-  
मल्लभायानाम् । पटोलनिम्बामल-  
कामृतानां मुन्नाभया पुष्करवृत्तकाणाम् २३

लोधाम्युक्तालीयकधातकीनां विश्वार्जुनै-  
लाशिरिपोत्पलानाम् । पौत्तेपु मेहेप्विहसम्प-  
दिष्टाः कपाययोगा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥२४॥

१--खस, लोध, अर्जुन की छाल और  
लाल चन्दन मिलाकर २ तोले, क्वाथ के लिये  
जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले ।  
२--खस, मोथा, आँवला, हड़ मिलाकर २  
तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ  
८ तोले, ३--परवल के पत्ते, नीम की छाल,  
आँवला, गिलोय मिलाकर २ तोले, पाक के  
लिये जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले ।  
४--मोथा, हड़, पोहकरमूल, कुड़ा की छाल  
मिलाकर २ तोले, जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ  
८ तोले । ५--लोध, गन्धवाला, दारुहर्दी, घाप  
के फूल मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल  
३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले । ६--सोंठ,  
अर्जुन की छाल, छोटी इलायची, शिरीष की  
छाल, नील कमल मिलाकर २ तोले, पाक के  
लिये जल ३२ तोले, शेष क्वाथ ४ तोले । इन  
क्वाथों में से किसी एक में शहद डालकर  
पैत्तिक मेहों की शान्ति के लिये पीना चाहिए  
अथवा इन क्वाथों को यथाक्रम मजिष्ठमेह,  
हरिद्रामेह, नीलमेह, चारमेह, कालमेह तथा  
रत्नमेह में प्रयुक्त कराना चाहिए ॥ २३--२४ ॥

उदकप्रमेह में धवार्जुनादि क्वाथ ।

धवार्जुनश्चन्दनशालशल्लकी क्वाथो

हितः स्याच्च जलप्रमेहे ॥ २५ ॥

धनदाल, धर्जुनदाल, लाल चन्दन, शाल-  
एक, शल्लकी ( शालमेह, शलई ) मिला-  
कर २ तोले, जल ३२ तोले, तथा दुग्धा क्वाथ  
४ तोले । यह क्वाथ उदकमेह में हितकारक  
है ॥ २५ ॥

उदकप्रमेह आदि रोगों में आठ क्वाथ ।

पारिजातजयानिम्बरक्षिगायत्रिणां  
पृथक् । पाठायाः सागुरोः पीताश्वस्य  
शारदस्य च ॥ २६ ॥ जलेत्तुमपसिक्ता-

शनैर्लवणपिष्टकान् । सान्द्रमेहान्  
क्रमाद् घ्नन्ति क्वाथाश्चाष्टौ समा-  
क्षिकाः ॥ २७ ॥

पारिभद्र के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से उदकमेह, जयन्तीपत्र के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से इष्टुमह, नीमछाल के क्वाथ में शहद डालकर पीने से सुरामेह, मधुयुक्त चित्रक क्वाथ से सिक्तामेह, खैर के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से शनैर्मेह, पाद और अगार के क्वाथ में शहद डालकर सेवन करने से लवण-मेह, इएदी और दारहएदी के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से पिष्टमेह एवं सतीन की छाल के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से सान्द्रमेह नष्ट होता है ॥ मात्रा—४१५ तोला ॥ २६—२७ ॥

नीलादिपैक्तिक प्रमेह में पञ्चक्वाथ ।

अश्वत्थाद्राजवृक्षान्यग्रोधाच्च फल-  
त्रयात् । सचन्दनसमद्वायाः क्वाथाः  
पञ्च समाक्षिकाः ॥ नीलहारिद्रफेनाख्य-  
चारमंजिष्टकाहये ॥ २८ ॥

१-पीपल, २-थमलतास, ३-बड़ की जड़ की छाल, ४-त्रिफला, ५-लालचन्दन, ६-मजीठ इनसे सिद्ध किये क्वाथ में शहद डालकर पीने से यथाक्रम नीलमह, हारिद्रमेह, फेनमेह, चार-मेह तथा मंजिष्टकमेह नष्ट होते हैं ॥ २८ ॥

रक्तप्रमेह में काथ ।

रक्तप्रमेहे क्वथितं पयश्च द्राक्षाण्वितं  
यष्टिकचन्दनेन ॥ २९ ॥

दाल, मुलहठी तथा लालचन्दन से सिद्ध शीतल क्वाथ को दूध के साथ सेवन करने से रक्तप्रमेह शान्त होता है ॥ २९ ॥

सर्पिंप्रमेह में फलत्रिकादि काथ ।

फलत्रिकारम्भधूर्वमूलं शोभाञ्जनारिष्ट-  
त्वचौ च मोचा । द्राक्षायुतो वा क्वथितः  
प्रयोज्यः सर्पिः प्रमेहस्य निवारणाय ॥ ३० ॥

त्रिफला, अमलतास, मूर्वामूल, सहिजना

की छाल, नीम की छाल, सेमल की जड़ और दाल इनके क्वाथ को सर्पिंप्रमेह के निवारण के लिये रोगी को सेवन कराना चाहिए ॥ ३० ॥

हस्तिमेह में पाठादि काथ ।

पाठा शिरीषो दुःस्पर्शा मूर्वा किंशुक-  
तिन्दुकम् । कपित्थानां भिपक् क्वाथं  
हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

पाद, तिरस की छाल, दुरालभा, मूर्वामूल, डाक के फूल, तिन्दुक की छाल, कैथा मिलाकर २ तोले । पाक के लिये जल ३२ तोले । बाकी काथ ५ तोले । इस काथ के पीने से हस्तिमेह नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

क्षौद्रमेह में कदरदि क्वाथ ।

कदरखदिरपूगक्वाथं क्षौद्राहये पिबेत् ।  
कदर (विट खदिर), खैरकाष्ठ और सुपारी इनके काथ को क्षौद्रमेह में पीना चाहिए ।

वसामेह में अग्निमन्थकपाय ।

अग्निमन्थकपायन्तु वसामेहे प्रयोज-  
येत् ॥ ३२ ॥

अरणी की छाल के काथ को वसामेह में प्रयुक्त करने से रोगी को लाभ होता है ॥ ३२ ॥

न्यग्रोधादि चूर्ण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशयोनाकारग्व-  
धासनम् । आम्रजम्बूकपिथञ्च प्रियालं  
ककुभं धवम् ॥ ३३ ॥ मधुको मधुकं लोध्रं  
वरुणः पारिभद्रकम् । पटोलं मेपशुद्धी च  
दन्तीचित्रकमाढकी ॥ ३४ ॥ करञ्ज  
त्रिफलाशकभल्लातकफलानि च ।  
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि  
कारयेत् ॥ ३५ ॥ न्यग्रोधाद्यभिदं चूर्णं  
मधुना सह लेहयेत् । फलत्रयरसञ्चानु-  
पिबेन्मूत्रं विशुद्धयति ॥ ३६ ॥ एतेन  
विशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च । प्रशमं

यान्ति योगेन पिडिका न च जायते ।  
न्यग्रोधाद्यमिदं तत्र चाम्रजम्बुस्थि  
गृह्यते ॥ ३७ ॥ इष्टफलमिदं चूर्णम् ॥

यह, गुजर पीपल, अरज, अमलतास,  
पीतशाल की छाल, आम्रबीज, जामुनबीज,  
कैथा, प्रियाल ( चिरीजी ), अजुन की छाल,  
धव की छाल, मधुरगुण ( महुए के फूल ), मुलहठी,  
लोध, बरना की छाल, पारिभद्र ( फरहद ) की  
छाल, परवल के पत्ते, मेदासिर्गी, दन्तीमूल,  
चित्रक, अरहर की जड़, कर्जूरफल, त्रिफला,  
कुडा की छाल, शुद्ध भिलावाँ, इन्हें बराबर  
मात्रा में इकट्ठाकर मिला ले । मात्रा-१मासे  
से ३ मासे तक । अनुपान—त्रिफला का काथ ।  
इसके सेवन से मूत्र शुद्ध हो जाता है तथा  
सम्पूर्ण प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ।  
इसके प्रयोग से प्रमेह-पिण्डिकाएँ पैदा नहीं  
होती ॥ ३३-३७ ॥

कुशावलेह ।

कुशः काशो वीरणश्च कृष्येक्षुः  
खग्गडस्तथा । एषां दशपलान् भागान्  
जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३८ ॥ अष्टभागा-  
वशेषं तु कपायमवतारयेत् । खण्डप्रस्थं  
समादाय लेहवत् साधु साधयेत् ॥ ३९ ॥  
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दाप-  
येत् । मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारुत्रपुपं तथा ॥  
४० ॥ शुभंमलकपत्राणि रत्नेलानागके-  
शरम् । वरुणामृता प्रियङ्गुश्च प्रत्येकमक्ष-  
सम्मितम् ॥ ४१ ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति  
मृशाघातांस्तथाशरमरीः । वातिकान् पैत्तिकान्-  
श्चापि श्लैष्मिकान् सान्निपातिकान् ।  
हन्त्यरोचकमत्युग्रं बलपुष्टिकरं परम् ॥ ४२ ॥

४०-४० सोला पल कुश, काश, पस, काही  
उत्त और खागड़ा को १२ सेर १४ तोला जल  
में पकाये और अष्टमांश काथ अवशिष्ट रहने पर

उतार ले । उस काथ में सेर भर खण्ड डालकर  
फिर आँच पर चढ़ाकर उत्तम श्रवलेह के समान  
बनाकर उतार ले । पश्चात् उसमें एक एक तोला  
मुलेठी ककड़ी के बीज, कद्दू के बीज, खीरा  
के बीज, वंशलोचन, आँवला, तेजपात, दालचीनी  
इलायची नागकेसर, बरना की छाल, गिलोय  
और प्रियंगु के फूल का चूर्ण मिला दे । यह  
श्रवलेह बीस प्रकार के प्रमेहों, सब प्रकार  
के मृशाघातों तथा वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक  
और सान्निपातिक अशरमरी को और अत्युग्र  
अरोचक रोग को नष्ट करता है तथा अत्यन्त  
बलवर्धक और पुष्टिकारक है ॥ ३८-४४ ॥

शिलाजतुप्रयोग ।

शालसारादितोयेन भावितं याच्छ-  
लाजतु । पिवेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथा-  
बलम् ॥ ४३ ॥ जाङ्गलानां रसैः सार्द्धं  
तस्मिन् जीर्णं च भोजनम् । कुर्यादेवं तुलां  
यावदुपयुञ्जीत मानवः ॥ ४४ ॥ मधुमेहं  
विहायासौ शर्करामरमरीं तथा । वपुर्वर्ण-  
वलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ मात्तिकं  
घातुमप्येवं युञ्ज्यादस्याप्ययं गुणः ॥ ४५ ॥

शिलाजीत को शालसारादि के काथ से  
भावित कर फिर उसी के काथ के साथ पीस-  
कर बल के अनुसार मात्रा में सेवन करे ।  
उसके जीर्ण होने पर जाङ्गल पशुओं के मांस-  
रस के साथ भोजन करे । इस प्रकार मनुष्य  
एक मुक्तापर्यन्त शिलाजीत का सेवन करे तो  
उसके मधुमेह, शर्करा और अशरमरी रोग नष्ट  
हो जाते हैं । यह गुग्गुलु काष्ठ और बलसम्पन्न  
शरीर से १०० वर्ष पर्यन्त निरोग होकर जीता  
है । इसी प्रकार मात्तिक घातु ( स्वर्णमात्तिक )  
का भी प्रयोग करे । उसके भी ये ही गुण  
हैं ॥ ४३-४५ ॥

शालसारादिलेह ।

शालसारादिवर्गस्य काथे तु धनतां  
गते । दन्तीलोभ्रोशिशाकान्तलोहिताघ्नरजः

क्षिपेत् ॥ घनीभूतमदग्धं च प्राश्य मेहान्  
व्यपोहति ॥ ४६ ॥

शालसारादिपर्ण के बाथ को पकाकर गाढ़ा बना ले । परचाए उसमें दन्ती, लोध, हरीतकी, कान्तलोह की भरम और ताग्रभरम ढाले । किन्तु इन चूर्णों का प्रयोग करते समय ध्यान रखते कि चूर्ण दग्ध न होने पाये और पाक घनीभूत ( बहुत गाढ़ा ) हो जाय । यह अवलेह सभ प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है मात्रा २ माशा ॥ ४६ ॥

धान्यन्तर घृत ।

दशमूलं करञ्जां द्वौ देवदारु हरीतकी ।  
वर्षाभूर्भरणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ४७  
मुधानिम्पकदन्नाश्च विल्वमल्लालातकानि  
च । शटी पुष्करमूलश्च पिप्पलीमूलमेव  
च ॥ ४८ ॥ प्रथक् दशपलान् भागान् तत-  
स्तोयार्मणे पचेत् । यवकोलकुलत्थानां  
प्रस्थं प्रस्थश्च दापयेत् ॥ ४९ ॥ तेन पादा-  
वशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । निचुलं  
त्रिफला भार्गी रोहिपंगजपिप्पली ॥५०॥  
शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिल्लकं तथा ।  
गर्भेणानेनतत्सिद्धं पाययेत्तुयथावलम् ५१  
एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ।  
कुष्ठं गुल्मप्रमेहांश्च श्वयथुं वातशोणि-  
तम् ॥ ५२ ॥ स्त्रीहोदरं तथाशांसि विद्रधिं  
पिडिकाश्च याः । अपस्मारं तथोन्मादं सर्पि-  
रंतेन्नियच्छति ॥ ५३ ॥ पृथक् तोयार्मणे  
तत्र पचेद्द्रव्याब्जतं शतम् । शतत्रयाधिके  
तोयमुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥ ५४ ॥

गोघृत १२८ तोले । कक के लिये—दशमूल, दोनों करजा के फल, देवदारु, हृद, लाल साँठी, बरना की छाल, दन्तीमूल, चित्रक, सफेद साँठी, धूर की जड़, नीम की छाल, कदम्ब धेल की

पल भिलाषाँ, कचूर, शटी, पोहकरमूल, हर एक ४० तोले । जी, बर का गूदा, कुलधी, हर एक ६४ तोले । जत्र नीचे लिखे नियमानुसार । रोप चतुर्पांश । कक के लिये—हिजल, त्रिफला, भार्गी रोहिपवृण, गजपीपल, सोंठ, वाय-पिडङ्ग, यच, कधीला मिलाकर ३२ तोले । इस घृत को विधिपूर्वक सिद्ध कर रोगी के बल के अनुसार सेवन कराये । मात्रा—आधा तोला । इसके सेवन से कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, सूजन, पातरङ्ग प्रीहोदर, यवासीर, विद्रधि, पिडिका, अपस्मार और उन्माद आदि रोग नष्ट होते हैं । यहाँ पर बाथ में जल का नियम— २ सेर बाथ के लिये २५ सेर ४८ तोला जल लेना चाहिए; परन्तु १२ सेर से अधिक बाथ द्रव्य के लिए नियमानुसार आठ गुणा जल देना चाहिए ॥ मात्रा—६--माशा से १ तोला ॥ ४७--५४ ॥

दाडिमाद्य घृत ।

दाडिमस्य तु वीजानि कृमिन्स्य च  
तण्डुलाः । रजनी चविकाजाजी त्रिफला  
नागरं कणा ॥५५॥ त्रिकण्टकस्य वीजानि  
यमानी धान्यकं तथा । वृक्षाग्लं चपला  
कोलं सिन्धुद्भवसमायुतम् ॥५६॥ कल्कै-  
रत्तसमैरेभिर्वृतप्रस्थं विपाचयेत् । पाने  
भोज्ये च दातव्यं सर्तुपु च मात्रया ॥  
५७॥ प्रमेहान् विंशतिविधान् सूत्रायातां-  
स्तथादमरीम् । कृच्छ्रं सुदारुणं चैन हन्य-  
देतन्न संशयः ॥५८॥ विवन्धानाहशूलानं  
कामलाज्वरनाशनम् । दाडिमाद्यं घृतं  
नाम्ना अश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ५९ ॥  
अत्र चपला पिप्पलीमूलमिति वृन्दः ।  
गजपिप्पलीति पद्मसेनत्रिपुरकवीन्द्रौ ।

अनार के बीज, वायवियङ्ग के चावल, हरदी, चव्य, जीरा, त्रिफला, सोंठ, पीपरी, गोखरू के बीज, अजवाहन, धनिया, विपाविल (तिग्गिती), पिपरा मूल, बर और सेंधानमक एक एक तोला

लेकर इनका कल्क बनावे । इस कल्क के साथ दो सेर घृत सिद्ध करे । इस घृत को सब ऋतुओं में रोगी का बलाबल देखकर उचित मात्रा में पीने और भोज्य पदार्थों के साथ खाने के लिये देना चाहिए । यह घृत बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात, अरमरी और दारुण मूत्रकृच्छ्र को निःसन्देह नष्ट करता है । विषन्ध, धानाह, शूल, कामला और ज्वर का नाशक है । इसका नाम 'दाडिमाद्यघृत' है । पहले अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया था । इस योग में अपला करके पिपरामूल लिया जाता है, यह घृन्द का मत है । गजपीपरि ली जाती है, यह पद्मसेन और त्रिपुर कवीन्द्र के मत हैं ॥ मात्रा--६--माशा से १ तोला ॥ तक ॥ ५५--५६ ॥

वृहदाडिमाद्य घृत ।

चतुःषष्टिपलं पक्वदाडिमस्य सुकुट्टितम् ।  
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥ ६० ॥  
काथेन वस्त्रपूतेन घृतप्रस्थं वि-  
पाचयेत् । दाडिमं चविकाजाज्यौ कृमिघ्नं  
रजनीद्वयम् ॥ ६१ ॥ द्राक्षा खजूर्युञ्जात-  
मुत्पलं गजपिप्पली । अजमोदा महाद्रेका  
काकोली नागरं वचा ॥ ६२ ॥ देवाहा  
चविका कुष्ठं कारमरी मधुयष्टिका । श्या-  
मेन्द्रवारुणी मूर्वा शुभा शृङ्गी घनीयकम् ॥  
६३ ॥ कुलत्थं च महामेदा निम्बरचवृहती-  
द्वयम् । दण्डोत्पलं वरा वासा सप्तला  
सिन्दुवारकम् ॥ ६४ ॥ कल्कश्चैषां युक्ति-  
योगाद् ग्राह्यो हि परिभाषया । प्रमेहं वा-  
तिकं हन्ति पैत्तिकं श्लैष्मिकं तथा ॥ ६५ ॥  
हृन्मूलं वस्तिजं शूलं मूत्राघातांशुयोदश ।  
दिग्ग रासं च कासं च यक्ष्माणां सर्व-  
रूपिणम् ॥ ६६ ॥ स्वरक्तपपुरोरोगं रक्-  
पिचमरोचकम् । ये च प्रमेहजा रोगास्तान

सर्वान्नाशयत्यपि ॥ ६७ ॥ दाडिमाद्यभिर्द-  
सर्वप्रमेहाणां निपूदनम् । अश्विभ्यां नि-  
मित्तं ह्येतत् प्रमेहकरिकेशरी ॥ ६८ ॥

कुटा हुञ्जा परिपक अनार ३ सेर १६ तोले लेकर चतुर्गुण पानी में पकावे और चतुर्थांश-  
वशिष्ट रहने पर वस्त्र से छान ले । इस काथ के साथ १२८ तोले घृत पकावे । कल्कार्य--  
अनार, चव्य, जोरा, वायबिडंग, हृत्क्षी, दार-  
हृक्षी, मुनक्का, पियउक्षजूर, युञ्जात, कमल,  
गजपीपरि, अजमोद, महानिम्ब, फाकोली, सोंठ,  
यच, देवदार, चव्य, कूट, रम्भारि, मुलेठी,  
अनन्तमूल, इन्द्रायण, भरोरफली, वंशलीचन,  
काकडासिगी, धनिया, कुक्षी, महामेदा, निम्ब,  
कटेरी, वनभाँटा, सहदेई, त्रिफला, रूसा, शातला,  
(यूहर का भेद) और त्रिगुण्डी कुलिमिलित  
३२ तोले लेकर कल्क करे । इसके साथ यथा-  
विधि घृत सिद्ध करे । यह घृत वातिक, पैत्तिक  
और श्लैष्मिक प्रमेहों को नष्ट करता है । हृदय  
के शूल, वस्तिशूल और तेरह प्रकार के मूत्रा-  
घात, हिक्का, कास, श्वास, सर्वरूप यक्ष्मा,  
स्वरभङ्ग, उरःपित्त, रक्पित्त और अरोचकरोग  
को तथा प्रमेहजन्य अन्यान्य सब रोगों को नष्ट  
करता है । यह 'दाडिमाद्य घृत' सप्त प्रकार के  
प्रमेहों का नाशक है । अश्विनीकुमारों से बनाया  
गया यह घृत प्रमेहरूपी गज को मारने के लिये  
केसरीरूप है ॥ मात्रा--६--मासे से १ तोला ॥ ६०-६८ ॥

महादाडिमाद्य घृत ।

दाडिमस्य फलप्रस्थं प्रस्थं च यत्ताण्डु-  
लम् । कुलत्थमस्थमादाय घृतप्रस्थं विपा-  
चयेत् ॥ ६९ ॥ शतावरीरसप्रस्थं गन्ध-  
दुग्धं च तत्समम् । कन्कःसार्द्धपिचुर्द्राक्षा  
खजूरं त्रिफला तथा ॥ ७० ॥ रेणुका  
चाष्ट्यर्गश्च देवदारु निशाड्यम् । त्रिङ्गी  
कुष्ठकमेला च विदार्यतिपला तथा ॥ ७१ ॥  
गिलात्वचमुगीरं च शुद्धं कृष्णाञ्चूर्ण-  
कम् । प्रमेहान् विशानि हन्ति श्लैष्मजान्

सन्निपातजान् ॥ ७२ ॥ बृंहणं च विशेषेण सर्वमेहहरं परम् । अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं दाडिमाद्यभिर्दं महत् ॥ ७३ ॥

काथार्थी परिपक्व अनार ६४ तोले, जल ६ सेर ३२ तोले, शेष १२८ तोले, जौ का तण्डुल ६४ तोले जल ६ सेर ३२ तोले, शेष १२८ तोले, कुलधी ६४ तोले, जज ६ सेर ३२ तोले, शेष १२८ तोले, शतावरि का स्वरस १२८ तोले, गाय का दूध १२८ तोले । कल्कायं—वेद-वेद तोले मुनक्का, पिटखजूर, त्रिफला, रेणुकायीज, अष्टधागं, देवदारु, हल्दी, दाहहल्दी, मजीठ, कूट, इलायची, विदारीबन्द, घतिबला ( कंधी ), शिलाजतु, दालचीनी, खस और शुद्ध कृष्णाम्र का चूर्ण ले । इन काथ, स्वरस, दुग्ध और कल्क के साथ यथाविधि १२८ तोले घृत सिद्ध करे । यह घृत बीस प्रकार के प्रमेहों तथा विशेषकर हलीन्मिक और सान्निपातिक प्रमेहों को नष्ट करता है । विशेषरूप से बृंहण और सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करने के लिये उत्कृष्ट औषध है । अश्विनीकुमारों से निर्मित यह 'महादाडिमाद्य घृत' प्रमेह के लिये सिद्ध औषध है ॥ ६६-७३ ॥ मात्रा-६ माशा से एक तोला तक ॥

### अथ रसप्रयोग

शुक्रमातृका घटी ।

गोक्षुरबीजं त्रिफला पत्रमेला रसाञ्जनम् । धान्यं चविका जीरं तालीशं टङ्गदाडिमौ ॥ ७४ ॥ प्रत्येकार्द्धपलं दत्त्वा गुग्गुलोः कर्षमेव च । रसाभ्रगन्धलौहानां प्रत्येकं च पलं क्षिपेत् ॥ ७५ ॥ सर्वमेकीकृतं वैद्योदण्डयोगेन मर्दयेत् । घृतभाण्डे तु संस्थाप्य भापमेकं च भक्षयेत् ॥ ७६ ॥ अनुपानं प्रदातव्यं जातिभेदात् पृथक् पृथक् । दाडिमस्य रसेनैव ह्यागदुग्धेन वाम्भसा ॥ ७७ ॥ चन्द्रनाथेन गदिता

वटिका शुक्रमातृका । प्रमेहान् विंशति हन्ति वातपित्तकफोद्भवान् ॥ ७८ ॥ द्वन्द्वजान सन्निपातोत्थान् सूत्रकृच्छ्राश्रमरीगदान् । बलवर्णाग्निजननी ज्वरदोषनिमूदनी ॥ ७९ ॥

दाडिमरसेनैव घटी कार्या ।

गोक्षुर के बीज, त्रिफला, तेजपात, इलायची, रसीत, धनिया, चण्य, जोरा, तालीशपत्र, सुहागा और अनार प्रत्येक दो-दो तोले तथा गुग्गुल एक तोला और पारा, गन्धक और लोहभस्म चार-चार तोले ले । सबको एकत्र मिश्रित कर अनार के रस की भावना देकर छण्डे से मर्दन करके एक-एक मासे की गोली बनाकर घी के पात्र में रख दे । यह रोग की सम्प्राप्तिभेद से अनार का रस, बकरी का दूध या जल आदि भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ देना चाहिए । चन्द्रनाथजी से कही गई इस घटी का नाम 'शुक्रमातृका' है । यह घटी वातिक, पैत्तिक, हलीन्मिक और सान्निपातिक बीस प्रकार के प्रमेहों, सूत्रकृच्छ्र और अश्रमरी रोगों को नष्ट करती है । बल, वर्ण और अग्नि की वधक तथा ज्वरदोष की नाशक है ॥ ७४-७९ ॥ मात्रा-३-४ रसी ॥

अपर बृहद्ब्रह्मेश्वर ।

सूतंगन्धं मृतं लोहं मृतमभ्रं समांशिकम् । हेम वज्रञ्च मुक्ता च ताप्यमेवं समं समम् ॥ ८० ॥ कृत्वा चूर्णञ्च सर्वेषां कन्यारसविमर्दितम् । गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यन्नतः ॥ ८१ ॥ बृहद्ब्रह्मेश्वरो ह्येपरकृष्णमूत्रे प्रशस्यते । श्वेतमूत्रं बृहन्मूत्रं कृष्णमूत्रं तथैव च ॥ ८२ ॥ सर्वप्रकारमेहांस्तु नाशयेदविकल्पतः । अग्निवृद्धि वयोवृद्धि कान्तिवृद्धि करोति च ॥ ८३ ॥ क्षयरोगं निहन्त्याशु कासं पञ्चविधं तथा । कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगं हलीमकम्

॥ ८४ ॥ शूलं श्वासं ज्वरं हिक्कां मन्दा-  
ग्नित्वमरोचकम् । क्रमेण शीलितो हन्ति  
वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८५ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अन्नकभस्म, स्वर्ण-  
भस्म, वज्रभस्म, मुक्ताभस्म, स्वर्णमाक्षिक  
भस्म, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर ग्वार-  
पाठा के रस से छोटे और दो दो रत्ती की  
गोलियाँ बनाये । इसके सेवन से रक्तमूत्र, श्वेत-  
मूत्र, वृहन्मूत्र ( मूत्रातीसार ), मूत्रहृच्छ,  
सम्पूर्ण प्रमेह राजयचना, खॉसी, कुष्ठ, पायडु,  
हलीमक, शूल, श्वास, ज्वर, हिक्का, मन्दाग्नि  
और अरबि आदि रोग नष्ट होकर पाचकाग्नि,  
धायु तथा कान्ति बढ़ती है ॥ ८० ८२ ॥

मेहान्तक रस ।

रसगन्धकलौहश्च तारवद्भ्रिभागि-  
कम् । अन्नकस्य त्रयो भागा भागाद्धेन  
सुवर्णकम् ॥ ८६ ॥ सर्वचूर्णसमं दद्यात्  
तालमूलीसुचूर्णितम् । नानारोगहरं  
श्रेष्ठं वातपित्तगदं महत् ॥ कान्तिपुष्टि-  
करञ्चैव रतिशक्तिविवर्द्धनम् ॥ ८७ ॥

पारा गन्धक, लोहभस्म, वज्रभस्म, अन्नकभस्म  
प्रत्येक तीन २ भाग सुवर्ण भस्म आधा भाग ।  
मूसली का चूर्ण १२३ भाग । इन्हें इकट्ठा मिलाकर  
रोगी को सेवन करावे । इसके सेवन से पातज,  
पित्तज नाना रोग नष्ट होते हैं । यह कान्ति  
तथा पुष्टि करता है और गतिशक्ति बढ़ाकर  
है । मात्रा ४ रत्ती ॥ ८६ ८७ ॥

योगीश्वर रस ।

मृतसूताभ्रनागानां तुल्यभागं प्रक-  
ल्पयेत् । महानिम्बस्य बीजोत्थं चूर्णं  
योज्यं त्रिभिः समम् ॥ ८८ ॥ मधुना  
लेहयेद् गुञ्जाद्वयं मेहप्रशान्तये । सत्ती-  
द्रजननी चायं लेहं मापत्रय सदा ॥ ८९ ॥  
असाध्यं नागयन्मेहं विषाद् योगीश्वरो  
रमः ॥ ९१ ॥

रससिन्दूर, अन्नकभस्म, सीसकभस्म, हर  
एक १ भाग । वकायनबीज ३ भाग इन्हें  
इकट्ठा कर दो रत्ती की मात्रा में सेवन करावे ।  
अनुपान—हृत्दीचूर्ण ३ माशे और शहद ।  
इसके सेवन से सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते  
हैं ॥ ८८ ९० ॥

वृहत्कामचूडामणि रस ।

मौक्तिकं माक्षिकञ्चैव स्वर्णभस्म पृथक्  
पृथक् । कर्पूरं जातिकोपश्च जातीफललव-  
ङ्गकम् ॥ ९१ ॥ वज्रभस्म तथा ग्राह्यं  
रूप्यश्चापि तथार्द्धकम् । चातुर्जातश्च  
संग्राह्यं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ ९२ ॥  
शतमूलीरसेनैव भावयेत्सप्तवारकम् ।  
ततो गुञ्जाप्रमाणेन वटिका भिपजा कृता  
॥ ९३ ॥ अनुपानप्रशेषेण रोगाकर-  
विनाशिनो । शीतं पयोऽनुपानश्च कामिनीः  
कामयेच्छतम् ॥ ९४ ॥ वीर्यहीनो भवे-  
द्यस्तुथो वा स्यात् पतितध्वजः । सोऽशीति-  
वार्षिको भूत्वा युवैव रमतेऽङ्गनाः ॥ ९५ ॥  
भेषजैर्विविधैः किं स्यादन्यैश्च शतसंख्य-  
कैः । फल न किञ्चित्प्राप्ति केवलं गौरवं  
मुहुः ॥ ९६ ॥ नातः परतरं किञ्चिदस्ति  
पुष्टिकरं च तत् । अतः सर्वप्रयत्नेन सेव्या  
भूमिभुजा सदा ॥ ९७ ॥ विशेषाद् ध्वज  
भङ्गश्च सप्ताहेन विनाशयेत् । प्रमेहं मूत्र-  
रोगश्च मन्दाग्निश्वयथुं तथा ॥ रक्तदो-  
षश्च नारीणां पानाद्दीपो विगद्यति  
॥ ९८ ॥

मौलीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म,  
कर्पूर, जायत्री, जायपत्र, लौंग, वज्रभस्म, हर  
एक-एक भाग, चाँदी की भस्म आधा भाग,  
दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, हरक  
आधा भाग । इन्हें इकट्ठा कर शतावार के रस से  
सात बार भावना दे और एक रत्ती प्रमाण की

गोली बनावे । अनुपान—शीतल दूध । अनुपान भेद से यह रस विविध रोगों को नष्ट करता है । इसके सेवन से रतिशक्ति बढ़ती है । यह वीर्य-वर्द्धक तथा शिरानेन्द्रिय को दृढ़ करनेवाला है, यह राजाश्रों के सेवन योग्य है । इससे बढ़कर कोई अन्य पुष्टिकर रस नहीं है । इसके प्रयोग से ध्वजभङ्ग, प्रमेह, मूत्ररोग, मन्दाग्नि, शोथ तथा धियों के श्रातंघसम्बन्धी रोग नष्ट होकर पुष्टि होती है मात्रा—१।२ रत्ती ॥ ६१-६८ ॥

अपूर्व मालिनीवसन्त ।

वैक्रान्तभ्रं रविताप्यरौप्यं वङ्गं  
प्रवालं रसभस्म लौहम् । सुटङ्कणं कम्बु-  
कभस्म सर्धं समांशकं सेव्यवरी हरिद्राः ॥  
६६ ॥ द्रवैर्विभाव्यं मुनिसंख्यया च  
मृगाङ्कजाशीतकरेण पश्चात् । वल्लप्रमाणो  
मधुपिप्पलीभिः जीर्णज्वरे धातुगते  
नियोज्यः ॥ १०० ॥ गुडूचिकासत्त्व-  
सितायुतरश्च सर्वप्रमेहेषु नियोज-  
नीयः ॥ १०१ ॥ कृच्छ्राश्रमरीं  
निहन्त्याशु मातुलुङ्गादिघ्नैर्द्रवैः ।  
रसो वसन्तनाभायं पूर्वा मालिनीपदः ॥  
१०२ ॥

वैक्रान्तभस्म, अश्रकभस्म, ताश्रभस्म, स्वर्ण-  
माञ्जिकभस्म, चाँदीभस्म वङ्गभस्म, मूंगाभस्म,  
रससिन्दूर, सुहागा, शङ्खभस्म, इन्हें इकट्ठा कर  
बराबर मात्रा में मिलाकर खस, शतावरि, और  
हल्दी के रस से अलग-अलग सात बार भावना  
दे, पश्चात् इसमें कस्तूरी, कपूर एक-एक भाग  
लेकर दो-दो रत्ती की गोलीयों बनावे । अनु-  
पान—धातुगत जीर्णज्वर में पीपल का चूर्ण  
आधी रत्ती और शहद । सम्पूर्ण प्रमेहों में मिलीय  
का सत ४ रत्ती और खोंड । मूत्रकृच्छ्र तथा  
अश्रमरी में बिजौरी की जड़ का रस १  
तोला ॥ ६६-१०२ ॥

वसन्ततिलक रस ।

लौहं वङ्गं माञ्जिकञ्च सुवर्णश्चाश्र-

कन्तथा । प्रवालतारमुक्ता च जातिकोप-  
फलं तथा ॥ १०३ ॥ एतेषां समभागान्  
चातुर्जातश्च मिश्रितम् । मर्दयेत् त्रिफला-  
काथे वटिकां कुरु यत्रतः ॥ १०४ ॥  
रोगांश्च भिषजा ज्ञात्वा अनुपानं यथा-  
यथम् । वातिकं पैत्तिकञ्चैव रलैप्मिकं  
सान्निपातिकम् ॥ १०५ ॥ वायुं नाना-  
विधं हन्ति ह्यपस्मारं विशेषतः । विसू-  
चिकान्तयोन्मादशरीरस्तंभमेव च ॥ प्रमे-  
हान् विंशतिञ्चैव नानारोगान् विशे-  
षतः ॥ १०६ ॥

लौहभस्म, वङ्गभस्म, स्वर्णमाञ्जिकभस्म, स्वर्ण-  
भस्म, अश्रकभस्म, मूंगाभस्म, चाँदीभस्म,  
मोतीभस्म, जावित्री, जायफल, दारचीनी, छोटी  
इलायची, तेजपात, नागकेसर, हरएक बराबर  
भाग । इन्हें इकट्ठा कर त्रिफला के काथ से घोट-  
कर दो रत्ती की गोली बनावे । इसे रोगानुसार  
अनुपानों के साथ सेवन करना चाहिए । इसके  
सेवन से सम्पूर्ण वातरोग, अपस्मार, विसूचिका,  
घय, उन्माद, शरीरस्तम्भ एवं प्रमेह आदि रोग  
नष्ट होते हैं ॥ मात्रा—२ रत्ती ॥ १०३-१०६ ॥

चन्द्रकान्ति रस ।

विशुद्धं पारदं गन्धं गगनं गतचन्द्रि-  
कम् । तारं तालं तथा कांस्यं लौहं वारि-  
तरं तथा ॥ १०७ ॥ माञ्जिकं भस्म स्वर्गस्य  
समभागं प्रकल्पयेत् । यावन्त्येतानि सर्वाणि  
वङ्गभस्म च तत्समम् ॥ १०८ ॥ रसाल-  
त्वग्भवैस्तोयैरामलक्या रसैस्तथा । ततः  
कुलत्थतोयेन लज्जालुस्वरसैस्तथा ॥ १०९ ॥  
वटावरोहतोयेन रोचनस्वरसेन च भावना  
खलु दातव्या प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥ ११० ॥  
जातीफललवङ्गाब्दत्वगेलाजातिकोपकम् ।  
समभागं विचूर्णयथ दत्त्वा वै कल्पयेद्



वटीम् ॥ १११ ॥ आमलक्या रसेनैव  
खादेदेकां शुभेऽहनि । चन्द्रकान्तिरसारयो-  
ऽयं सर्वमेहविनाशनः ॥ ११३ ॥ वृष्याद्  
वृष्यतरोऽज्ञ यो क्षीणानाञ्चाङ्गवर्द्धनः । ध्वज-  
भङ्गादींस्तु रोगान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥  
११३ ॥ मूत्राघातभ्रमरीश्च मधुमेहं सुदारु-  
णम् । मूत्रातीसारमत्युग्रं कासं पञ्चविधं  
तथा ॥ ११४ ॥ राजयक्ष्माणमप्युग्रं वह्नि-  
मान्द्यं भगन्दरम् । नाशयेदविकल्पेन वृत्त-  
मिन्द्राशनिर्यथा ॥ ११५ ॥ नाशयेदम्ल-  
पित्तञ्च शूलमष्टविधं तथा । रेतोवृद्धिकरं  
पुंसां ध्वजभङ्गादिनाशनम् ॥ ११६ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, अन्नकभस्म, चाँदीभस्म, हस्ताल, कांस्यभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाषिक-भस्म, स्वर्णभस्म, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर इसमें सम्पूर्ण चूर्ण के समान धतूँभस्म मिलाकर आम की छाल के काथ से, चाँविले के रस से कुलथी के काथ से तथा लाजवन्ती के रस से, बरगद की जटा के काथ से एवं सेमल की जड़ के रस से अलग-अलग तीन-तीन भावनाएँ देकर जायफल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची, जावित्री मिलित की ऊपर कहे हुए चूर्ण के समभाग में मिलाकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाये । अनुपान—चाँविलों का रस । शुभ दिन में इसका सेवन करे । यह रस सब प्रमेद, प्यज-भग, मूत्राघात, भ्रमरी, मधुमेह, मूत्रातीसार, खाँसी, रात्रयक्ष्मा, मन्दाग्नि, भगन्दर, अम्लपित्त तथा शूल को नष्ट करता है । यह अत्यन्त यौघ-बहक, पृष्य तथा क्षीण पुरुषों के लिये पुष्टिकर एवं नर्तुमकनानोशक है ॥ मात्रा—२ रत्ती ॥ १००-११६ ॥

मेहकेऽर्या ।

मृन्वद्मं सुवर्गञ्च कान्तलोहञ्च पार-  
दम् । मुत्रा गुटन्वचन्द्रैश्च मूर्त्तमला पत्र-  
केदारम् ॥ ११७ ॥ समभागं विचूर्णयथ

कन्यानीरेण भावयेत् । द्विगुञ्जां वटिकां  
खादेद् दुग्धान्नं प्रपिवेत्ततः ॥ ११८ ॥  
प्रमेहं नाशयेदाशु केशरी करिणं यथा ।  
शुक्रप्रवाहं शमयेन्निरात्रान्नात्र संशयः ॥  
११९ ॥

वद्भभस्म, सुवर्णभस्म, लौहभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, और नागकेसर, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर ग्वारपाठा के रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाये । पथ्य—दूध, चाँवल । यह प्रमेह को शीघ्र ही नष्ट करता है तथा शुक्रमेह को ३ दिन में ही शान्त करता है ॥ मात्रा—२ रत्ती ॥ ११७-११९ ॥

मेहवज्र ।

भस्मसूतं तथा कान्तलोहभस्म शिला-  
जतु । मृतं ताप्यं शिला व्योषं त्रिफला  
चिल्वजीरकम् ॥ १२० ॥ कपित्थं रजनी-  
चूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत् । त्रिशदारं  
विशोप्याथ लिहत्याद्य मधुना सह ॥ १२१ ॥  
गुञ्जात्रयं हरेन्मेहान् मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ।  
महानिम्बस्य वीजश्च मापैकं पेपितञ्च यत् ॥  
१२२ ॥ कर्पतण्डुलतोयेन घृतमापद्रयेन  
च । एकीकृत्य पिबेद्यानु हन्ति मेहं चिरो-  
त्थितम् ॥ १२३ ॥

रससिन्दूर, कान्तलोहभस्म, शिलाजोत, स्वर्णमाषिकभस्म, मैनसिल, त्रिबुटा, त्रिफला, धेनु का मूद्ग, जीरा, कैथा और हलदीचूर्ण । इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर भाँगेरे के रस से ३० बार भावना दें । मात्रा—३ रत्ती । अनुपान—बकपान के बीज १ मात्रा, तथदुखीरक २ तोले तथा ची २ मासे । इसके सेवन से मूष-हृत्पू तथा प्रमेह रोग नष्ट होता है ॥ १२०-१२३ ॥

प्रमेदस्तनु ।

मुताभ्रश्च वटीसारं मेहयेत्सहद्रयम् ।  
विशोप्य परुष्पायां सर्तरीणं प्रयोजयेत् ॥

१२४ ॥ विशेषान्मेहरोगेषु त्रिफलामधु-  
संयुतम् । युञ्जीत वल्लभेकन्तु रसेन्द्रस्यास्य  
वैघराद् ॥ १२५ ॥

रससिन्दूर, अश्रकभस्म इकट्टा मिलाकर  
पप के दूध से दो पहर घोटकर मूषा में  
बन्द करे । सन्धिलेप के सूख जाने पर पुट  
दे । मात्रा—२ रत्ती । अनुपान—त्रिफला द्राय  
तथा शहद । इसके सेवन से प्रमेह नष्ट होता  
है ॥ १२४-१२५ ॥

मेघनाद रस ।

भंसमसूतं समं कान्तमभ्रकन्तु शिलाजतु ।  
शुद्धताप्यं शिलाव्योषत्रिफलाङ्गोठजीर-  
कम् ॥ १२६ ॥ कार्पासबीजं रजनी-  
चूर्णं भाव्यञ्च वह्निना । मिश्रदारं विशो-  
प्याथ लिद्याच्च मधुना सह ॥ १२७ ॥  
गुञ्जात्रयं हरेन्मेहं मेघनादरसो महान् ॥

रससिन्दूर, कान्तलोहभस्म, अश्रकभस्म,  
शिलाजीत, स्वर्णमाषिक भस्म, मीतशिल,  
त्रिकटु, त्रिफला, अङ्गोल, जीरा, विनीले और  
हृषीकेश्य को एकत्र घोटकर चित्रक के काथ  
से २० बार भावना दे । मात्रा—३ रत्ती ।  
अनुपान शहद । यह रस प्रमेह को नष्ट करता  
है ॥ १२६-१२७ ॥

शुद्ध हरिशङ्कर रस ।

रसगन्धकलौहश्च स्वर्णं वङ्गश्च  
माषिकम् ॥ १२८ ॥ समभागन्तु  
सम्पिप्य वटिकां कारयेद्विपक् ॥ सप्ताह-  
मामलद्रावैर्भाविताऽयं रसेश्वरः ॥ १२९ ॥  
हरिशङ्करनामायं गहनानन्दभाषितः ॥  
प्रमेहान् मिशति हन्ति सत्यं सत्यं न  
संशयः ॥ १३० ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, स्वर्णभस्म,  
वङ्गभस्म और स्वर्णमाषिक भस्म, इन्हें बराबर  
मात्रा में इकट्ठाकर धौबले के रस से सात दिन  
भावना देकर ३ रत्ती की गोली बनावें । इसके

सेवन से धीसों प्रकार के प्रमेह अथवा नष्ट  
होते हैं ॥ १२८-१३० ॥

चन्द्रोदय रस ।

अश्रकं गन्धकं सूतं वङ्गभस्म समांशकम्  
शिलाजतु त्रुटिञ्चैव रम्भासारेण मर्दयेत्  
॥ १३१ ॥ प्रमेहान्निशतिं हन्यात्काम-  
लापित्तनाशनः ॥ १३२ ॥

अश्रक भस्म शुद्धगन्धक और पारा वङ्गभस्म  
शिलाजीत इलायची ये समान भाग लेकर पहले  
पारे और गन्धक की कजली बनाकर बाद में  
सब चीजों को ढालकर केले के बन्द के पानी से  
४-५ रोज घोट कर ३-३ रत्ती की गोलीयाँ बना  
कर रस ले इनमें से १-१ गोली तत्तद्दोग-  
हरानुपान के साथ देने से धीसों प्रकार के प्रमेह  
कामला और पित्त का नाश करता है ॥ १३१-१३२ ॥

आनन्दभैरव रस ।

वङ्गभस्म मृतं स्वर्णं रसं चौद्रैर्विमर्द-  
येत् । द्विगुञ्जं भक्तयेन्नित्यं हन्ति मेहं  
चिरोद्भवम् ॥ गुञ्जामूलं तथा चौद्रै-  
रनुपानं प्रशस्यते ॥ १३३ ॥

वङ्गभस्म, स्वर्णभस्म और रससिन्दूर  
को बराबर मात्रा में मिलाकर शहद से घोटें ।  
मात्रा—२ रत्ती । अनुपान गुञ्जामूल और शहद ।  
इसके सेवन से पुराना प्रमेह नष्ट होता है  
॥ १३३ ॥

मालतीकुसुमाकर रस ।

चन्द्रभागः सुवर्णस्य कर्पूरं युग्म-  
भागिकम् । वङ्गसीसकलौहानां भागत्रय-  
मुदाहृतम् ॥ १३४ ॥ अश्रकप्रवाल-  
मुक्कानां भागाश्चत्वार ईरिताः । गव्येन  
पयसा चैव कदलीपुष्पजै रसैः ॥ १३५ ॥  
रसेनेक्षुसमुत्थेन तथा पद्मरसेन च ।  
उदुम्बररसेनैव भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥  
१३६ ॥ रक्तिह्वयमितो हन्ति मालती-

कुसुमाकरः । रसः सर्वप्रमेहांश्च बहुमूत्रा-  
दिकं तथा ॥ सोमरोगांश्चसंहन्ति भास्कर-  
स्तिमिरं यथा ॥ १३७ ॥

स्वर्णभस्म १ भाग, कपूर २ भाग,  
वज्रभस्म, सीसकभस्म और लोहभस्म तीन-  
तीन भाग । अश्रकभस्म, मूंगाभस्म और  
मोतीभस्म चार-चार भाग । इन्हें एकत्र  
मिलाकर गोदुग्ध से, केले के फूल के रस से,  
इतुरस से तथा सफेद कमल के रस, गूलर  
के रस से अलग-अलग सात-सात बार भावना  
दे । मात्रा—२ रत्ती । यह रस सब प्रकार के  
प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग आदि रोगों को नष्ट  
करता है ॥ १३४-१३७ ॥

प्रमेहकुञ्जरकेशरी ।

रसगन्धायसाध्राणि नागवङ्गौ सु-  
वर्णकम् । वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकी-  
कृत्य विचूर्णयेत् ॥ १३८ ॥ शतावरी-  
रसेनैव गोलकं शुष्कमातपे । बुद्ध्वा  
शुष्कं तमुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षि-  
पेत् ॥ १३९ ॥ सन्धिलेपं मृदा कुर्या-  
द्भक्तं च गोमयाग्निना । पुटेयामचतुः  
संख्यमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम् ॥ १४० ॥  
श्लक्ष्णखल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्द-  
येत् दृढम् । देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा  
धृत्वाथ कूपिके ॥ १४१ ॥ गुञ्जापादं  
भजेत् प्रातः शीतं चानुपिवेज्जलम् ।  
अष्टादशमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः ।  
१४२ ॥ तुष्टिं तेजो बलं वर्षं शुक्र-  
वृद्धिञ्च दारुणम् । अग्नेर्बलं वितनुने मेह-  
कुञ्जरकेशरी ॥ दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र  
कार्या विचारणा ॥ १४३ ॥

पारा, मन्थक, अश्रकभस्म, सीसकभस्म,  
वज्रभस्म, स्वर्णभस्म, वज्रभस्म (हीराभस्म),  
मुशामरम इन्हें बराबर मात्रा में इकट्ठा

मिलाकर शतावरी के रस से घोटकर  
पिण्डाकार बनावे । इसके बाद धूप में सुखा-  
कर सगुट में घन्द करे और मिट्टी से सन्धि  
लेप कर दे, पश्चात् ४ पहर गोमयाग्नि से पुट  
दे । जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब औषध को  
बाहर निकाल अर्ध्णी तरह धरल में पीस ले  
और शीशी में रख ले । देवता तथा ब्राह्मणों  
की पूजा करके इसका सेवन करे । मात्रा-  
चाँदाई रत्ती । अनुपान—शीतल जल । इसके  
एक मास सेवन से अठारह प्रकार के प्रमेह नष्ट  
होते हैं । यह तेज तथा बल का वर्द्धक, रोगी  
को उत्तम करनेवाला, वीर्य को बढ़ानेवाला  
तथा जठराग्नि को तीव्र करनेवाला श्रेष्ठ रसायन  
है ॥ १३८-१४३ ॥

स्वर्णवङ्ग ।

प्रपिवेद्भ्राजने वङ्गमायसे चापि मृगमये ।  
विष्टुतं वह्नितोपेन तस्मिंस्तन्मानकं रसम् ॥  
१४४ ॥ क्षिप्त्वा सञ्चूर्णयेत्तत्र नरसारश्च  
गन्धकम् । तनुवासो मृदालिप्तकाच-  
कुप्यां निधाय च ॥ १४५ ॥ तत्सर्वं  
सिकतायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम् । पाकात्स-  
ञ्जायते चित्रं कीर्णं हेमकण्ठेरिव ॥ १४६ ॥  
रमणीयतरं स्वर्णवङ्गं नाम रसायनम् ।  
बल्यं मेहहरं कान्तिमेधावीर्याग्निवर्द्ध-  
नम् ॥ १४७ ॥

लोह के छवया मिट्टी के घर्तन में  
यंग (कजई, रोंगे) को अग्नि पर गलाकर  
बराबर मात्रा में पारा मिलाये । पश्चात् पारे के  
समान गन्धक मिलाकर अर्ध्णी तरह घोटें  
जब यह कण्ड के समान कृष्ण वर्ण हो जाय  
तब गन्धक के समान मवयादूर चूर्ण मिला दें ।  
एक घातली शीशे पर कपड़मिट्टी कर औषध  
को इसमें टाप दें और प्यालुशायन में गटु  
अग्नि पर ४ पहर पकाये । पाक के समय  
शीशी का मुग गुला रटना चाहिए, जिसमें  
गन्धक आदि का धूम बाहर निकलना रहे ।

जय धूम बन्द हो उसी पत्र शीशी को जतार लें और शीतल होने पर शीशी फोड़ स्वर्णपंग को बाहर निकाल लें, यह औषध स्वर्ण के पमान चमकते हुए कणों से युक्त होती है। अतएव इसका नाम स्वर्णपत्र है। यह रसायन, बलयर्द्धक, प्रमेह को हरनेवाली तथा काम्ति, बुद्धि, वीर्य और अग्नि को बढ़ाती है। विधि—पंग तथा पारे की पिट्टी करने के बाद उस पिट्टी में थोड़ा-सा संधानमरु मिलाकर सूख घोटना चाहिए। परचात् कुछ जल देकर घोटें जय पानी पाला हो जाय तो पानी को फेंक दें। हम तरह तय तक करते रहें जब तक पानी काला होना बन्द न हो जाय। परचात् गन्धक मिला लें। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ १४४-१४७ ॥

मेहमुद्गर रस ।

रसाञ्जनं विडं दारु विल्वगोक्षुरदाडिमम् । प्रत्येकं तोलको देयं लौहचूर्णं तु तत्समम् ॥ १४८ ॥ पलैकं गुग्गुलं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ १४९ ॥ मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत् । हलीमरुं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ १५० ॥ ग्रहणीमामदोषं च मन्दाग्निमरुचिन्तथा । एतान् सर्वाञ्चिहन्त्याशु वृत्तमिन्द्राशनिर्घथा ॥ १५१ ॥

एक एक तोला रसौत, विड नमक, देवदारु, बेलगिरी गोषुरु और अनार तथा ८ तोले लोहभस्म और एक पल गुग्गुल मिलाकर घृत के साथ घोटकर गोली बनाये। यह बटी बीस प्रकार के प्रमेहों को— चाहे वे साध्य हों वा असाध्य—नष्ट करती है। मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमरु तथा वारिक, वैतिक और हलीभिमक, रक्तपित्त, ग्रहणी, आमदोष, अग्निमान्य और अरुचि इन सब रोगों को तत्काल इस प्रकार नष्ट करती है जैसे इन्द्र का पत्र वृष को नष्ट कर देता है ॥ मात्रा ४ रत्ती ॥ १४८-१५१ ॥

विडङ्गादि लौह ।

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च । जीरकाभ्यां युतो हन्ति प्रमेहानतिदारुणान् ॥ लौहो मूत्रविकारांश्च सर्वा-नेव विनाशयेत् ॥ १५२ ॥

वायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, पीपरि, सोंठ स्याह जीरा और सकेद जीरा सम भाग तथा समष्टि का सम भाग लोहभस्म एकत्र कर मर्दन कर रख ले। यह लौह अतिदारुण प्रमेहों और सब प्रकार के मूत्रविकारों को नष्ट करता है ॥ १५२ ॥

पञ्चानन रस ।

मृतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समां-शिकम् । सर्वेषां द्विगुणं वज्रं मधुना मर्दयेद्दिनम् ॥ १५३ ॥ भक्तयेत्प्रातरु-त्थाय शीततोयं पिबेदनु । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथारमरीम् ॥ मूत्रकृच्छ्रं हरेदुग्रमयं पञ्चाननो रसः ॥ १५४ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म और अश्रकभस्म सम भाग तथा सबसे द्विगुण वज्रभस्म एकत्र कर मधु के साथ घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बना ले। प्रातःकाल शीतल जल के साथ सेवन करे। यह 'पञ्चानन रस' बीस प्रकार के प्रमेहों तथा मूत्राघात, अरमरी और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ १५३-१५४ ॥

मेहकुलान्तक रस ।

मृतं वज्रं मृतं चाभ्रं शुद्धपारदगन्ध-कम् । भूनिम्बं पिप्पलीमूलं त्रिकटु त्रिफला त्रिष्टु ॥ १५५ ॥ रसाञ्जनं विडङ्गाब्द-विल्वगोक्षुरदाडिमम् । प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं शुद्धमरुजतोः पलम् ॥ १५६ ॥ गोपालककर्कटीमूलस्वरसैर्वटिकां कुरु । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्रकृच्छ्रं हलीम-कम् ॥ १५७ ॥ अरमरीं कामलां पाण्डु

मूत्राघातमरोचकम् । अनुपानं प्रयोक्तव्यं  
द्व्यागीदुग्धं पयोऽथवा ॥ धात्रीफलस्य  
निर्यासं काथं कौलत्थजं पिवेत् ॥ १५८ ॥

एक-एक तोला बद्धभस्म अत्रकभस्म शुद्ध  
पारद, शुद्ध गन्धक, चिराम्यता, पिपरामूल  
त्रिकटु, त्रिफला, निशोथ रसोत, वायविर्द्धग  
नागरमोथा, बेलगिरी, गोखरू और अनारदाने  
तथा चार तोले शुद्ध शिलाजीत एकत्र कर  
कुंदरू कीजड़ के स्वरस के साथ गोली बनावे ।  
यह चटी बीस प्रकार के प्रमेहों तथा मूत्र-  
कृच्छ्र, हलीमक, अश्वरी कामला, पाण्डु,  
मूत्राघात और अरोचक को नष्ट करती है ।  
इसके अनुपान में बकरी का दूध, जल और  
आंवले का क्वाथ या कुरथी का क्वाथ  
दे ॥ मात्रा-३।४ रत्नी ॥ १५८-१५८ ॥

मेहानल रस ।

भस्ममृतं मृतं वज्रं तुल्यं चौद्रेण मर्द-  
येत् । द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं मेहं हन्ति  
चिरोत्थितम् ॥ गुञ्जामूलं पिवेच्चानु क्षीरै-  
रेव प्रशाम्यति ॥ १५९ ॥

रससिन्दूर और बद्धभस्म समभाग लेकर  
मधु के साथ घोटकर दो-दो रत्नी की गोली  
बनावे । यह रस घिरकालोपन्न प्रमेह को नष्ट  
करता है । इस रसका सेवन कर गुञ्जा के  
मूल के साथ विद्व किये हुए दुग्ध का पान  
करे ॥ १५९ ॥

चन्द्रफला ।

मूत्राभ्रपङ्गा रसभस्म सर्वमेतत् समानं  
परिभावयेत् । गुहूचिका शाल्मलिका  
कार्पायिविल्यप्रमाणं मधुना ततश्च ॥ १६० ॥  
चन्द्रमा गुर्दा चन्द्रकलेति संज्ञा मेहेषु  
सर्वेषु नियोजयेत् ॥ १६१ ॥

रससिन्दूर, अत्रकभस्म, बद्धभस्म और  
पारदभस्म समान भाग, इन मधु घोटपिचो को  
लेकर गुर्दा और मेहर के साथ की मात्रा  
दकर गोम-गोम रत्नी की गोली बनावे । 'चन्द्र-

कला' नाम की इस गोली का मधु के साथ  
सब प्रकार के प्रमेहों में प्रयोग करे ॥ मात्रा-२।३  
रत्नी ॥ १६०-१६१ ॥

तारकेश्वर रस ।

मृतं मृतं मृतं लौहं मृतं वङ्गाभ्रकं  
समम् । मर्दयेत् मधुना चाहो रसोऽयं  
तारकेश्वरः ॥ १६२ ॥ मापमात्रं लिहेत्  
क्षौद्रैर्वहुमूत्रापनुचये । औदुम्बरं पकफलं  
चूर्णितं मधुना लिहेत् ॥ १६३ ॥

रससिन्दूर, लोहभस्म, वङ्गाभ्र और  
अत्रकभस्म, ये सब समभाग लेकर मधु के साथ  
एक दिन मर्दन करके एक-एक माशे की गोली  
बनावे । इसका नाम 'तारकेश्वर रस' है । मधु  
के साथ इसका सेवन करने से बहुमूत्र रोग दूर  
होता है । इस रस का सेवन करने के परचार  
गूजर के परिपक्व फल का चूर्ण मधु के साथ चाटे ॥  
मात्रा २ रत्नी ॥ १६२-१६३ ॥

सोमेश्वर रस ।

शालाजुं नकलोध्रं च कदम्बागुरुचन्द-  
नम् । अग्निमन्थनिशाद्वन्द्वधात्रीदाडिम-  
गोक्षुरम् ॥ १६४ ॥ जम्बुवीरगुमूलं च  
भागमेपां पलाङ्कम् । रसगन्धकधान्या-  
न्दमेलापत्रं च पत्रकम् ॥ १६५ ॥ लौहं  
रसाञ्जनं पाठा विडङ्गं द्रव्जनीरकम् ।  
प्रत्येकं शाणकं प्राणं पलाङ्कं गुग्गुलोत्तरि ॥  
१६६ ॥ घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत्  
पोडगरक्रिक्काम् । गहनानन्दनाथेन रसो  
यत्रेण निर्मितः ॥ १६७ ॥ सोमेश्वरो  
महातेजा घातमेहाग्निहन्त्यलम् । एतजं  
द्वन्द्वजं चोषं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ १६८ ॥  
उपद्रवसमायुक्तं चिरकालममुद्भवम् । मूत्रा-  
घातं मूत्रकृच्छ्रं कामलां च हलीमकम् ॥  
१६९ ॥ भगन्दरोपदन्ती च विविधान्  
पिपिकाङ्गणान् । विस्फोटासु दकगद्ग

वातपित्ताम्लपित्तके ॥ १७० ॥ यकृत  
श्रीहोदरं गुल्मं शूलार्शं कासविद्रधीः ।  
सोमरोगं निहन्त्याशु चिरकालानुमन्धि-  
नम् ॥ १७१ ॥ बलवर्णाग्निजननो  
ग्रहवैगुण्यनाशनः । व्यागीदुग्धानुपानेन  
नारिकेलोदकेन वा ॥ १७२ ॥ शीतेन पारु-  
तैलेन यत्रयूपादियोगतः । युक्त्रचाप्रयोज्यो  
भिषजा रसो दोषविदाह्वयम् ॥ १७३ ॥

शाल की छाल अजुन की छाल, लोप की  
छाल, कदम की छाल, अगर, सकेद चन्दन,  
अग्निमन्थ, हल्दी, दारुहल्दी, आवना, अनार  
के दाने, गोपरु, जामुन के मूल की छाल और  
खस अथेक दो-दो तोले । पारा, गन्धक, धनिया,  
नागरमोधा, इलायची, तेजपात, पटुमकाठ,  
लोहभस्म, रसौन, पाईी, चायबेडग, सोहागा  
और सकेद जीरा प्रत्येक तीन-तीन मासे, गुगुल  
२ तोले एकत्रकर धूत के साथ घोटकर सोलह  
सोलह रत्ती की गोली बनाये । गहनानन्दनाथ  
ने बड़े यत्न से इस सोमद्वर रस को बनाया  
था । यह महान् तेजोवर्धक और वातिक  
प्रमेह को विनष्ट करता है । एक दोषोपन्न,  
द्वन्द्वज, उपसान्निपातिक, उपद्रवयुक्त, चिरका-  
लोपन्न मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमन्थ,  
भग दर उपदश, विविध प्रकार के पीडिकाग्रण,  
विस्फोट, अयुंद्, कण्डू वातपित्त, अम्लपित्त,  
यकृत, श्रीहोदर, गुल्म, शूल, अर्शं, कास,  
विद्रधि और चिरकालोपन्न सानुबन्ध सोमरोग  
को सत्काल नष्ट करता है । बल, कान्ति और  
अग्नि का वर्धक है । ग्रहज-य वैगुण्य को नष्ट  
करता है । हम रस को बकरी के दूध के साथ,  
नारियल के जल के साथ, शीतवीर्य पाक तैल  
के साथ या थवागू आदि के साथ युक्ति से  
वैष्य प्रयुक्त करे । यह रस दोषों को नष्ट करता  
है ॥ १६४ १७३ ॥ मात्रा १ भाशा ।

सर्वेश्वर रस ।

स्वर्ण रूप्यं मौक्तिकं च विशुद्धं च  
शिलाजतु । लौहभ्रं तथा ताप्यं मधुघटी ।

च पिप्पली ॥ १७४ ॥ मरिचं त्रिगुणं  
चेति सर्वमेकत्र कारयेत् । त्रिभर्घं प्रहरं  
यत्रात्कज्जलाकृतिसन्निभम् । केशराज-  
भृङ्गराजशक्राशनरसे पृथक् ॥ १७५ ॥  
प्रमेहं त्रिविधं हन्ति मधुमेहं सुदुर्जयम् ॥  
१७६ ॥ वातपित्तसमुद्भूतं तथा कफस-  
मुद्भनम् । सर्वेश्वरो रसो नाम्ना प्रमेह-  
कुलनाशनः ॥ १७७ ॥

स्वर्ण, रूप्य, मौक्तिक, विशुद्ध शिलाजीत,  
लोहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमात्तिक, मुलेठी,  
पीपरि, कालीमिर्च और सौंड इन सबको एकत्र  
घोटकर कजल के समान कर ले । फिर क्रमशः  
केशराज, भृङ्गराज और भोंग के रस में पृथक्-  
पृथक् घोटकर गोली बना ले । यह रस विविध  
प्रकार के प्रमेहों और दुर्जय मधुमेहों को—वे  
चाहे वातिक पैत्तिक अथवा रत्नैम्पिक  
हों—नष्ट करता है । इसका नाम 'सर्वेश्वर रस'  
है । यह सब प्रकार के प्रमेह का नाशक है ॥  
१७४ १७७ ॥ मात्रा २।२ रत्ती ॥

वेदविद्यावटी ।

पारदाभ्रककान्तानां नागभस्मसमं  
समम् । दिनं ब्राह्मीरसैर्मर्धं बालुकायन्त्रगं  
पुनः ॥ १७८ ॥ उद्धृत्य चूर्णयेत् श्लक्ष्णं  
जारिताभ्रं शिलाजतु । ताप्यं मण्डूरवैक्रान्तं  
काशीशं तुल्यमेव च १७९ ॥ सर्व-  
समं चूर्णं कल्कयेच्च ततः पुनः । मुस्तचन्द-  
नपुन्नागनारिकेलस्य मूलकम् ॥ १८० ॥  
कपित्थरजनीदावाचूर्णं सर्वसमं भवेत् ।  
जम्बीराणां द्वैर्मर्धं द्वियामं वटकीकृतम् ॥  
१८१ ॥ वेदविद्यावटी नाम्ना भक्षणात्  
सर्वमेहजित् । मधुधात्रीरसं चानु चौद्रैरपि  
गुडूचिका ॥ १८२ ॥

पारद, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, और नाग-  
भस्म समान भाग एकत्र कर ब्राह्मी के रस में

द्विभर घोटकर बालुकायन्त्र में पाक करके निकाल ले । फिर अश्रकभस्म, गिलाजीत, स्वर्णमाचिक, मडूर, वैक्रान्त और कसीस पूर्वोक्त प्रत्येक द्रव्य के समान भाग ले । इसी प्रकार नागरमोथा, चन्दन, पुत्राग, नारियल का मूल, कैथा, हल्दी और दारुहल्दी के चूर्ण भी पूर्वोक्त प्रत्येक द्रव्य के सम भाग ले । इन सबको एकत्र कर दो पहरपर्यन्त जामुन के रस के साथ घोटकर गोली बनावे । यह 'वेदविद्या' नाम की घटी है । मधुयुक्त श्रावले के स्वरस के साथ अथवा मधुयुक्त गुर्च के स्वरस के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को जीतती है ॥ १७८-१८२ ॥

वङ्गेश्वर ।

रसस्य भस्मना तुल्यं वङ्गभस्म प्रयोजयेत् । अस्य मापद्वयं हन्ति मेहान् चौरसमन्वितम् ॥ १८३ ॥

रससिन्दूर और वङ्गभस्म सम भाग मिश्रित कर रख ले । इसमें से मधु के साथ दो-दो माशे सेवन करने से यह रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १८३ ॥ मात्र ३ रत्नी ॥

वृहद्वङ्गेश्वर रस ।

वङ्गभस्मरसं गन्धं रूप्यं कर्पूरमश्रकम् । कर्प कर्प मानमेपां सूताङ्गिप्रहेममौक्तिकम् ॥ १८४ ॥ केशराजरसैर्भाष्यं द्विगुञ्जाफलमानतः । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ १८५ ॥ मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत् । हलीमकरं रक्त्वापि च वातपित्तकफोन्नयम् ॥ १८६ ॥ ग्रहणीमामदोषं च मन्दाग्नित्रयमरोचकम् । एतान् सर्वान् निहन्त्याशु वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १८७ ॥

वङ्गभस्म, पारद, गन्धक, शोदी की भस्म, कर्पूर और अश्रकभस्म एक-एक तोला, पारद, गुणपं भस्म और औष्टिक भस्म चार-चार

माशे एकत्र कर भाँगरे के रस की भावना देकर दो-दो रत्नी की गोलियाँ बना ले । यह रस बीस प्रकार के प्रमेहों को, चाहे वे साध्य हों या असाध्य, निःसंदेह नष्ट करता है तथा मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुज्वर, हलीमक एवं वातज, पित्तज और श्वैत्तिक, रक्त्वापिच, प्रहृषी, आमदोष, अग्निमान्द्य और अरोचक इन सब रोगों को तत्काल विनष्ट करता है, जैसे इन्द्र का वज्र वृष को नष्ट करता है ॥ १८४-१८७ ॥ मात्रा २-३ रत्नी ।

वङ्गाष्टक ।

रसं गन्धं मृतं लौहं मृतरूप्यं च खर्परम् । मृताश्रकं मृतं ताम्रं सर्वतुल्यं च वङ्गकम् ॥ १८८ ॥ पुटेद् गजपुटे विद्वान् साङ्गशीतं समुद्धरेत् । रक्त्विद्वयप्रमाणेन मधुना लेहयेन्नरम् ॥ १८९ ॥ निशाचूर्णं चौरद्रुतं पिबेद्वात्रीरसं ह्यनु । वङ्गाष्टकमिदं ख्यातं महादेवप्रकाशितम् ॥ १९० ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति चामदोषं त्रिसूचिकाम् ॥ विषमज्वरगुल्मार्गो मूत्रातीसारपित्तजित् ॥ वीर्यवृद्धिं करोत्याशु सोमरोगनिवर्हणम् ॥ १९१ ॥

पारद, गन्धक, लोहभस्म, शोदी की भस्म, खपरिया, अश्रक भस्म और ताम्रभस्म एक-एक तोला, वङ्गभस्म ३ तोले एकत्र कर मर्दन करके गजपुट में ढूँक दे । स्वाङ्गशीतल होने पर उसमें से निकाल ले । दो-दो रत्नी इस रस को मधु के साथ घाटे और ऊपर से हल्दी के चूर्ण और मधु के साथ श्रावले वा स्वरस पिये । महादेवजी करके प्रकाशित इस रस का नाम 'वङ्गाष्टक' है । यह बीस प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है तथा आमदोष, त्रिसूचिका, विषमज्वर, गुल्म, चर्म, मूत्रातीसार और रक्त्वापिच को जीतता है । ताकाल वीर्य को बढ़ाता और सोमरोग को नष्ट करता है ॥ १८८-१९१ ॥

वसन्तकुसुमाकर ।

पृथक् द्वौ हाटकं चन्द्रस्त्रयो वद्गाहि-  
कान्तकाः । चत्वारो मृतमभ्रं च प्रवालं  
मौक्तिकं तथा ॥ १६२ ॥ भावना गव्य-  
दुग्धेन भावनेनुरसेन च । वासा लाक्षा  
रसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः ॥ १६३ ॥  
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमेन च ।  
पश्चात् मृगमदैर्भाव्यं सुसिद्धो रसराड्  
भवेत् ॥ १६४ ॥ कुसुमाकरविख्यातो  
वसन्तपदपूर्वकः । गुञ्जाद्वयेन संसेव्यः  
सिताज्यमधुसंयुतः ॥ १६५ ॥ बलीपलित-  
हृन्मेध्यः कामदः सुखदः सदा । मेहघ्नः  
पुष्टिदः श्रेष्ठः पुत्रप्रसवकारणम् ॥ १६६ ॥  
क्षयकासघ्न उन्मादश्वासरक्तविपापहः ।  
सिता चन्दनसंयोगादम्लपित्तादिरोगजिन्  
॥ १६७ ॥

स्वर्णभस्म २ भाग, रूप्यभस्म २ भाग,  
( कोई-कोई यहाँ चन्द्र कण्ठ के कपूर लेते हैं )  
वज्र, नाग और लोहभस्म तीन-तीन भाग तथा  
अध्रकभस्म, प्रवालभस्म और मौक्तिक भस्म  
चार-चार भाग, ले । इनको एक में मिलाकर  
क्रम से गोदुग्ध, ईस के रस, वासा के स्वरस,  
लाक्षा के क्वाथ, सुगन्धवाला के क्वाथ, कदली  
के मूल के स्वरस, कदली के फूलों के स्वरस  
कमल के फूलों के रस, चमेली के फूलों के स्वरस  
और कस्तूरी के क्वाथ की एक-एक भावना देकर  
दो-दो रत्ती की गोली बना ले - यह 'वसन्त-  
कुसुमाकर' बहुत विद्यमान है । शकर, घी और  
मिसरी के साथ दो रत्ती सेवन करना चाहिए ।  
यह रस बली और पलित को हरता है, मंघा-  
वर्षक कामोद्दीपन तथा सदा सुखप्रद है । प्रमेह-  
नाशक पुष्टिदायक, पुत्रप्रसव का कारण तथा  
क्षय, कास, उन्माद श्वास, रक्तदोष और विप-  
दोष का नाशक है । मिसरी और चन्दन के  
संयोग से अम्लपित्तादि रोगों को जीतता  
है ॥ १६२-१६७ ॥

चन्द्रप्रभादिवटिका ।

चन्द्रप्रभा वचा मुस्ता भूनिम्बसुर-  
दारवः । हरिद्रातिविषा टार्वा पिप्पलीमूल-  
चित्रकम् ॥ १६८ ॥ त्रिवृद्धन्ती पत्रकं च  
स्वगोला वंशलोचना । प्रत्येकं कर्पमात्राणि  
कुर्यादेतानि युद्धिमान् ॥ १६९ ॥ धान्यकं  
त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली । सुवर्ण-  
माक्तिकं व्योषं द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥  
२०० ॥ एतानि कर्पमात्राणि संशुद्धीयात्  
पृथक्-पृथक् । द्विकर्प हतलौहं स्याच्च-  
तुष्कर्पो सिता भवेत् ॥ २०१ ॥ शिला-  
जत्वष्टकर्पं स्यादष्टौ कर्पाच्च गुग्गुलोः ।  
विधिना योजितैरैतैः कर्त्तव्या गुटिका  
शुभा ॥ २०२ ॥ चन्द्रप्रभेति विख्याता  
सर्वरोगगणाशिनी । निहन्ति विंशतिं  
मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं तथा ॥ २०४ ॥  
चतस्रश्चारमरोस्तद्वन्मूत्राघातात्त्रयोदश ।  
अण्डवृद्धि पाण्डुरोगं कामलां च हली-  
मकम् ॥ २०३ ॥ कासं श्वासं तथा कुष्ठ  
मग्निमान्द्यमरोचकम् । वातपित्तकफव्या-  
धीन् बल्या वृष्या रसायनी ॥ २०५ ॥  
समारोध्य शिवं तस्मात् प्रयत्नाद् गुटिका-  
मिमाम् । प्राप्तान्श्चन्द्रमायस्मात्तस्माच्चन्द्र-  
प्रभा स्मृता ॥ २०६ ॥

कपूर, वच, नागरमोथा, घिरायता, देवदार,  
हल्दी, अतीस, दारूहल्दी, पिपरामूल, चीत,  
निशोध, दन्ती, तेजपात, दालचीनी, इलायची,  
और वंशलोचना ये सब एक-एक तोला तथा  
धनिया, त्रिफला, चव्य, वायविडग, गजपीपरि,  
सोनामाखी, सोंठ, मिर्च पीपरि, यवक्षार,  
सजीखार, सेंधय, विड और कालानमक ये सब  
एक-एक तोला तथा लोहभस्म २ तोले । मिसरी  
५ तोले, शिलाजीत = तोले और गुग्गुलु = तोले



ले । विधिपूर्वक इनको मिलाकर उत्तम गोली बनावे । 'चन्द्रप्रभा' नाम से विख्यात यह वटी सब रोगों की नाशक है । यीस प्रकार के प्रमेह आठ प्रकार के मूत्रकृषू, चार प्रकार की अश्वरी, तेरह प्रकार के मूत्राघात, अरुद्ध वृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, कस, स्वास, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, अरोचक तथा अन्यान्य वात, पित्त और कफजन्य रोगों को यह वटी नष्ट करती है । बल-वीर्यवर्द्धक और रसायन है । वड़े परिश्रम से शिवजी की आराधना करके चन्द्रमा ने इस वटी को प्राप्त किया था, इसी कारण से इसका नाम 'चन्द्रप्रभा' रखा गया ॥ मात्रा ३६ रती ॥ १६८-२०६ ॥

मेहमिहिर तैल ।

पञ्चमूल्यमृता धात्री टाडिमानां तुलां पचेत् । जलद्रोणे स्थिते पादे तैलमस्थं विपाचयेत् ॥ २०७ ॥ क्षीरं तैलसमं कल्कान् निम्बमूनिम्बगोक्षुरम् । दाडिमं रेणुकं बिल्वं दारुदारुवीलाहकान् ॥ २०८ ॥ त्रिफला तगरं द्राक्षा जम्ब्याम्रवल्कलाभयम् । नाम्नेदं मेहमिहिरं सर्वमूत्रामयान् जयेत् ॥ २०९ ॥ हस्तपादशिरोदाहं दौर्वल्यं कृशतां तथा । क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्राः क्षीक्षीणाश्चापि ये नराः । तेषां वृष्यं च वल्यंच वयःस्थापनमेव च ॥ २१० ॥

तिलतैल १२८ तोले, काथार्यं घृहत् पञ्चमूल (बेल, श्योनाक खम्भारि, पादल और अरुणी) की छाल, गुचं, चाँयला और अनार के दाने मिलित ५ सेर । जल २५ सेर ३८ तोले, शेष ६ सेर ३२ तोले । दूध १२८ तोले । परकार्य नीम की छाल, घिरापता, गोपलू, अनारदाने रेणुका के बीज, धेलगरी, देवदार, दारुहरी, नागरमोथा, त्रिफला, तगर, मुनडा, जामुन की छाल, चाम की छाल और खत ये सब मिलाकर ३२ तोले । इन सबसे यथा विधि तैल मिलाकरे । इसका नाम 'मेहमिहिर तैल' है । पट

१ अभयम्=अश्वरी ।

सब प्रकार के मूत्ररोगों को जीतता है । हाथ, पाँव और शिर के दाह को, दुर्बलता तथा कृशता को जीतता है । क्षीणेन्द्रिय, नष्टशुक्र और स्त्रीप्रसंग के कारण क्षीण जो मनुष्य हैं उनके बल-वीर्य का वर्धक और वयः स्थापक है ॥ २०७-२१० ॥

प्रमेहमिहिर तैल ।

शतपुष्पा देवकाष्ठं मुस्तकं च निशाद्रयम् । मूर्धा कुष्ठं वाजिगन्धा चन्दनद्वयरेणुकम् ॥ २११ ॥ कटुकी मधुकं रास्ना त्वगेला ब्रह्मयष्टिका । धविका धान्यकं वत्सं पूतिकागुरुपत्रकम् ॥ २१२ ॥ त्रिफला नलिका वाला बला चातिबला तथा । मंजिष्ठा सरलं पद्मं लोत्रं मथुरिका वचा । अजाजी चोशीरजाती वासा तगरपादुका ॥ २१३ ॥ एतेषां कार्पिकैर्भागैस्तैलमस्थं विपाचयेत् । शतावर्या रसं तुल्यं लाक्षारसचतुर्गुणम् ॥ २१४ ॥ मस्तुलाक्षारसैस्तुल्यं क्षीरं तुल्यं प्रदापयेत् । द्रवैरैतैः पचेत्तैलं गन्धं दत्त्वा यथाक्रमम् ॥ २१५ ॥ एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गान् मारुतापहम् । विपमाख्यानं ज्वरान् हन्ति मेदोमज्जागतानपि ॥ २१६ ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । क्षीणेन्द्रिये तथा शस्तं ध्वजभङ्गे विशेषतः ॥ २१७ ॥ दद्यात्तैलं विशेषेण फलमस्य च कथ्यते । दाहं पित्तं पिपासां च छर्दिं च मुखशोषणम् ॥ २१८ ॥ प्रमेहान् विंशतिं चैव नागवेदविकल्पतः । प्रमेहमिहिरं नाम्ना रतिनाथेन भाषितम् ॥ २१९ ॥

एक-गूठ तोला सौंफ, देवदार, नागरमोथा, हरी, दारुहरी, मरीरफली, घूट, अमगन्ध तपेद चन्दन, लाल चन्दन, रेणुका के बीज,

कुटकी, मुलेठी, रास्ना, दालचीनी, इलायची, नारंगी, चम्य, धनियाँ, इन्द्रजी, कंजा के बीज, काली धगर, तेजपात, त्रिफला, यवारी, सुगन्ध-याला, परियारा, अतिथला ( कंधी ), मजीठ, सरलकाष्ठ, पटुमकाठ, लोध, सोया, बच, जीरा, खस, जावित्री, अहूसा और तगर, इनके कश्क के साथ १२८ तोले तिल का तैल पकावे । इसमें शताघरि का रस १२८ तोले, लापारस ६ सेर ३२ तोले, दही का तोड़ ६ सेर ३२ तोले और दूध १२८ तोले डाले । इन द्रव पदार्थों के साथ तैल को पकावे । यथोचित रीति से गन्ध-द्रव्य भी डाले । यह सब तैलों में श्रेष्ठ है । मर्दत करने से वातिक रोगों को नष्ट करता है । विषम वरों को, मेदोगत और मज्जागत रोगों को तथा अन्यान्य वातिक, वैशिक, हलैष्मिक और साङ्गि-पातिक रोगों को नष्ट करता है । इन्द्रियों की क्षीणता और प्वजभङ्ग रोगों में विशेष रूप से इसका प्रयोग करना चाहिए । यह दाह, पित्त, पिपासा, छर्दि, मुखरोष और बीस प्रकार के प्रमेहों को निःसंदेह नष्ट करता है । इस 'प्रमेहमिहिर' नाम के तैल को रतिनाथ ने कहा था ॥ २११-२१६ ॥

इन्द्रवटी ।

मृतं मृतं मृतं वङ्गमर्जुनस्य त्वचा सिता । तुल्यांशं मर्दयेत् खल्ले शाल्मल्या मूलजैर्द्रवैः ॥ २२० ॥ दिनान्ते वटिका कार्या मापमात्रा प्रमेहहा । एषा चन्द्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तये । त्रुटिं शाल्मलि-मूलानां मधुना चानुपाधयेत् ॥ २२१ ॥

रससिन्दूर, वङ्गभस्म, अजुन की छाल और शकर समभाग लेकर सेमर के मूसरा के काय के साथ दिन भर घोटकर एक-एक माशे की गोलियाँ बनावे । इसका नाम 'इन्द्रवटी' है । मधुमेह की शान्ति के लिये इलायची, सेमर के मूसरा का चूर्ण और मधु के साथ मिश्रित कर सेवन करावे ॥ मात्रा-३ रत्ती ॥ २२०-२२१ ॥

मेहमुद्गरवटिका ।

रसाञ्जनं विडं दारु विल्वगोत्र-

दाडिमाः मूनिम्बः पिप्पलीमूलं त्रिकटु-त्रिफला त्रिष्टु ॥ २२२ ॥ मत्येकं तोलकं देयं लौहचूर्णं तु तत्समम् । पलैकं गुग्गुलुं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु ॥ २२३ ॥ मापैका निर्मिता चेयं मेहमुद्गरसंज्ञिनी । श्रीमद्गहननाथेन लोकनिस्तारकारिणा ॥ २२४ ॥ अनुपानं प्रकर्त्तव्यं द्वागीदुग्धं जलं च वा । विशन्मेहान् निहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्र हलीमकम् ॥ २२५ ॥ अरमरीं कामलां पाण्डुं मूत्राघातमरोचकम् । पड-शांसिप्रणं कुष्ठं भगन्दरमसूरिकाम् । सुखिनो यदि कर्त्तव्या त्रिसुगन्धिसम-न्विता ॥ २२६ ॥

रसौत, विडलवण, देवदारु, बेलगिरी, गोखरु के बीज, अनारदाने, चिरायता, पिपरामूल, त्रिकटु, त्रिफला और निशोय प्रत्येक एक-एक तोला । सर्व समान लोहचूर्ण तथा गुग्गुलु ४ तोले भिस्ताकर घी के साथ घोटकर एक-एक माशे की गोलियाँ बनावे । 'मेहमुद्गर' नाम की इस घटी को लोकोपकारपरायण श्रीमान् गहन नाथजी ने बनाया था । बकरी के दूध या जड़ के साथ सेवन करना चाहिए । यह बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, अरमरी, कामला, पाण्डु, मूत्राघात, अरोचक छः प्रकार के अर्थ, शण, कुष्ठ, भगन्दर और मसूरिका रोगों को तत्काल नष्ट करती है । यदि सुखी (स्वस्थ) मनुष्य के लिये देना हो तो त्रिसुगन्धि (दाल-चीनी, इलायची और तेजपात) के साथ देना चाहिए ॥ मात्रा-३ रत्ती ॥ २२२-२२६ ॥

वृहत् सोमनाथ रस ।

हिङ्गमूलसम्भवं मृतं पालिधारसमर्दि-तम् । रण्डाशोधितगन्धं च तेनैव कज्जली-कृतम् ॥ २२७ ॥ तद्द्वयोद्विगुणं लौहं कन्यारसविमर्दितम् । अश्रकं वङ्गकं रौप्यं स्वर्पं मान्निकं तथा ॥ २२८ ॥ सुवर्णं च

समं सर्वं प्रत्येकं च रसाद्धकम् । तत्सर्वं  
कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद्भावायेत् तथा ॥ २२६ ॥  
भेकपर्णीरसेनैव गुज्जाद्वयवटीं हिताम् ।  
मधुना भक्तयेच्चापि सोमरोगनिवृत्तये ॥  
२३० ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं  
च सोमकम् । मूत्रातिसारमत्युग्रं मूत्राघातं  
सुदारुणम् ॥ २३१ ॥ मूत्रदोषं बहुविधं  
प्रमेहं मधुसंज्ञकम् । हस्तिमेहमित्तुमेहं नाना-  
मेहान् विनाशयेत् ॥ २३२ ॥ वातिकं  
पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञितम् ।  
नाशयेद् बहुमूत्रं च प्रमेहमविकल्पतः ॥  
२३३ ॥ सोमनाथरसश्चायं चरकेण विनि-  
र्मितः । वृष्याद्वृष्यतमो ह्येव मूत्रदोष-  
कुलान्तकृत् ॥ २३४ ॥

निम्बपत्र के रस में शोधित हिंगुलोत्थ पारद  
और मूलाकानी के रस में शोधित गन्धक एक-  
एक तोला लेकर दोनों की कजली करे । उस  
कजली में ४ तोला लोहभस्म मिलाकर कुमारी  
के रस में मर्दित करे । पदचात् उसमें चन्द्रक-  
भस्म, चक्रभस्म, रौप्य, खर्पर, स्वर्णमाषिक  
तथा सुवर्ण घृ-घृ गाशे मिश्रित कर फिर  
क्रमशः कुमारी और मयूकपर्णी के स्वरस की  
भावना दे-देकर दो-दो रशी की गोलियाँ बनावे ।  
सोमरोग की निवृत्ति के लिये इस परम लाभ  
दायक रस का मधु के साथ सेवन करे । यह  
रस बीम प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग,  
आयुष्य मूत्रातिसार, दारुण मूत्राघात, विविध  
प्रकार क मूत्रदोष, मधुप्रमेह, हस्तिमेह, दधुमेह  
तथा अचान्य विविध प्रकार के प्रमेहों को नष्ट  
करता है । वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक सोम-  
नामक बहुमूत्र या मूत्रप्रमेह को नि सदेह नष्ट  
करता है । आयत बलपीप-यर्धक और मूत्र दोषों  
के समूह को नष्ट करनेवाला है । इस 'सोमनाथरस'  
को परकजी ने बनाया था ४ २३७-२३४ ॥

देवदारु अरिष्ट

गुलाद्ध देवदारु स्याद्रासायाः पल-

विंशतिः । मञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्ती तगरं  
रजनीद्वयम् ॥ २३५ ॥ रास्ना कुमिध्नं  
मुस्तं च शिरीषं खदिराजुर्नौ । भागान् दश-  
पलान् दद्याद्यवाभ्या वत्सकस्य च ॥ २३६ ॥  
चन्दनस्य गुहूच्याश्च रोहिण्यश्चित्रकस्य  
च । भागान्ष्टपलानेतान्ष्ट्रोणेऽम्भसः  
पचेत् ॥ २३७ ॥ द्रोणशेषे कपाये च  
पूते शीते प्रदापयेत् । घातक्याः षोडश-  
पलं मात्तिकस्य तुलात्रयम् ॥ २३८ ॥ व्यो-  
पस्य द्विपलं दद्यात् त्रिजातकचतुष्पलम् ।  
चतुष्पलं म्रियद्गोश्च द्विपलं नागकेशरम्  
॥ २३९ ॥ सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृत-  
भाण्डे निधापयेत् । मासाद्दूर्घं पिवेदेनं  
प्रमेहं हन्ति दुस्तरम् ॥ २४० ॥ वातः  
रोगग्रहण्यशौमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत् । देव-  
दारुादिकोऽरिष्टोद्द्रुकुष्ठविनाशनः ॥ २४१ ॥

देवदारु २३ सेर और रूले के मूल की  
छाल १ सेर । मञ्जिठ, इन्द्रजी, दन्ती, तगर,  
हृद्दी, दारुवृद्धी, रास्ना, वायविटग, नागर-  
मोया, सिरस की छाल, खदिरकाष्ठ ( खैर  
की लकड़ी ) और अजुन की छाल चाय-  
घाघ सेर तथा चन्द्रवाहन, कुड़ा की छाल,  
खाल चन्दन, गुर्घं रोहिड़ा और चीत यचीस-  
यचीस तोले ले । इनको १ मा ४ सेर १४  
तोले पानी में पकाये । २३ सेर ४८ तोले  
जल अमिश्रित रहने पर उतार पर छान ले ।  
शीतल हो जाने पर इस घाघ में घाघ के मूल  
१४ तोले, मधु १२ सेर । त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च,  
पीपरि ) मिश्रित ८ तोले, त्रिजातक ( दाल-  
चीनी, इलायची और तेजपात ) मिश्रित १६  
तोले, म्रियगु के मूल १६ तोले और नागकेशर ८  
तोले । इन सबको घृणित कर मिला दे और  
घृत के घिकने पात्र में बन्द करके रख दे ।  
एक मास के अन्तर छानकर इसका पात्र  
करे । यह अरिष्ट दुस्तर प्रमेह, पात्ररोग,

प्रदण्णी, अशं और मूत्रकृष्य को नष्ट करता है । यह देवदारुपरिष्ट दद्रु और कुष्ठ का नाशक है ॥ २३५-२३९ ॥

प्रमेहरोग में पथ्य ।

प्राग्लङ्घनानि वमनानि विरेचनानि  
प्रौढर्त्तनानिशमनानि च दीपकानि, नीवार  
कङ्गु यवैरण्य करु दूष श्यामाकजीर्ण कुरु-  
विन्द मुकुन्दकाञ्च ॥ २४४ ॥ गोधूम-  
शालिक लमाञ्चिरजाः कुलत्थ मुद्गाढकी  
पण्क यूपरसास्तिलाञ्च लाजाः पुरा-  
तनमुरा मधुवात्यमण्डस्तक्रं च रास-  
भुजलं महिषीजलं च ॥ २४३ ॥ लद्दा-  
कपोतशश तिच्चिर लावर्हि भृङ्गैण्वर्तक-  
शुकाटिक जाङ्गलाञ्च शोभाञ्जनानि  
कुलकानि कठिल्लकानि कर्कोटकानि  
तैलकानि च चार्हतानि ॥ २४४ ॥  
श्रौदुम्बराणिलशुनानि नवीनमोचं पत्तूर  
गोक्षुरक मूषिक पर्णि शाकम् मन्दार  
पत्रममृता त्रिफलाकपित्थं जम्बूः कशेरु  
कमलोत्पलकण्ठ धीजम् ॥ २४५ ॥ खजू-  
रलाङ्गलिकृतालतरुचमाङ्गं व्योषं च  
तिन्दुकफलं खदिरः कलिङ्गः तिक्कानि  
चापि सकलानि कपायकाणि, हस्त्यश्व-  
वाहनमतिभ्रमणं रवित्विष्ट ॥ २४६ ॥  
व्यायाम इत्यपिगणो भवति प्रकारमिभ्रं  
प्रमेह गदपीडितमानवानाम् ॥ २४७ ॥

प्रमेह रोग क होते ही प्रथम लङ्घन वमन  
विरेचन उद्यतना प्रमेह को शांत करने वाले  
तथा अग्नि दीपन पदार्थों का उपयोग करना  
चाहिये और नीवार कागुनी जौ बांस का चावल  
कोदो साया पुरानी जगली कुश्मी और मुकुन्दक  
( साठी चावल का भेद ) चावल पुराना गेहूँ  
शालि चावल कलमीधान का चावल कुलथी

मूँग धरहर चना इनका घूप तिल धान का लावा  
पुरानी शराय शहद बाट्यमण्ड (चतुर्गुणजलसिद्ध  
जौ का माद ) मट्टा गधे का मूत्र भैंस का मूत्र  
और लोटेन कपूतर । खरगोश तीतर लवा मोर  
भुङ्गराजपत्ती हरिण्य पत्तक तोता आर्दक जगली  
पशु पक्षियों का मास और सहजन परवल करेजा  
लेकसा तालफळ कटेरी का फल गुजर का पळ  
लडमुन नवीन कंठे का फळ पत्तूर का शाक  
मूषाक्यों के पत्तों का शाक आक के पत्ते  
गिलोय त्रिफला कैथ जामुन कसेरु कमल, कमळ  
कण्ड, कमळ मट्टा धजूर कतिहारी तादकी कोपळ  
त्रिकुटा तेंदुपळ और तरयूज सभी प्रकार तिङ्ग  
तया कसेले रस वाले पदार्थ हाथी घोड़े पर  
चढ़कर चलना धरयन्त्र भ्रमण करना सूर्य की घूप  
में फिरना कसरत कुरती ये सब प्रमेहरोग में  
परयन्त हितकर हैं ॥ २४२-२४७ ॥

प्रमेह में अपथ्य ।

सदासनं दिवानिद्रा नवानानिदधीनि  
च । मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्ष-  
णम् ॥ २४८ ॥ सौरीरकं सुरां शुक्रं तैलं  
क्षार घृतं गुडम् । अम्ले क्षुरसपिष्टान्ना-  
नूपमांसानि वर्जयेत् ॥ २४९ ॥

तुम्ही तालास्थिमज्जानं विरुद्धान्यशा-  
नानि च । कूप्माण्डमिच्छु दुष्टाम्यु स्ना-  
ह्मल्लवणानि च ॥ अभिष्यन्दि प्रय-  
त्नेन प्रमेही परिवर्जयेत् २५० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहाधिकारः  
समाप्तः ।

सदा बैठे रहना, दिन में सोना, नये शालि  
आदि घान्य, दही, मूत्रवेग को रोकना, धूमपान,  
स्वेदन, रत्ननिर्हरण ( फस्द खोलना ), सौवीर,  
मदिरा, शुक्र ( सिरका ) तैल, क्षार, घी, गुड,  
सटाई ईख का रस, पीठी के भोज्य तथा जल-  
प्रधान देश के पशु पक्षियों का मास लौकी,

तादृक् का गूदा, विरुद्ध भोजन, पेठा, ईख, दूषित जल, मोटे खट्टे और नमकीन रस तथा अभिष्यन्दी पदार्थ, ये सब प्रमेह रोग में त्याज्य है ॥ २४८-२५० ॥

इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविरचित्वायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी  
व्याख्यायां प्रमेहाधिकारः  
समाप्तः ।

### सोमरोगाधिकारः

स्त्रीणामत्तिप्रसहाद्वा शोकाद्वापि श्रमा-  
दपि । आभिचारिकदोषाच्च गरदोपात्त-  
थैव च ॥ १ ॥ आपः सर्वशरीरेभ्यः  
क्षुभ्यन्ति प्रसवन्ति च । तस्मात्ताः प्रच्युताः  
स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति च ॥ २ ॥ प्रसन्ना  
विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिताः ।  
स्रवन्ति चात्तिमात्रं तु दौर्बल्यं रति-  
हीनता ॥ ३ ॥ शिरसः शिथिलत्वं च  
मुखतालुविशोषणम् । सोमरोग इति ज्ञेयो  
देहे सोमक्षयान्दृष्ट्याम् ॥ ४ ॥ सोऽति-  
क्रान्तं क्रमेणैव स्रवेन् मूत्रमभीक्ष्णशः ।  
मूत्रातिसारमप्येवं तमाहुर्बलनाशनम् ।  
तेन दृष्ट्यामिमूतोऽसौ जलं पिबति चाधि-  
कम् ॥ ५ ॥

आपन्त श्रीप्रसन्न करने से, शोक से, अधिक  
श्रम करने से, आभिचारिक दोष से ( योनिदोष-  
सम्बन्ध स्त्री के साथ सहज से ) और विषरोध  
से सान्पूर्ण शरीर से जलीय पदार्थ घुस्य होकर  
प्रक्षुब्ध होने लगते हैं । अतः अपने स्थान से  
प्युत होकर मूत्रमार्ग में प्राप्य होते हैं । तब  
स्वच्छ, निर्मल, शीतल, निर्गन्ध, व्ययारहित  
श्वेतमूत्र आप्यधिक मात्रा में गिरने लगता है ।  
हमने शरीर में दुर्बलता, रतिरहितहीनता, शिर  
की शिथिलता, मुख और तालु का शुष्क होना,

ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं । इस रोग से  
मनुष्यों के शरीर में सोम ( जल ) का क्षय  
हो जाता है । अतः इसका नाम सोम रोग है ।  
अधिक समय व्यतीत होने पर जब मूत्र क्रमशः  
थोड़ी-थोड़ी देर में अधिक गिरने लगता है तब  
उसको मूत्रातिसार भी कहते हैं । यह बल का  
नाशक है जलीय पदार्थ के अत्यधिक गिर  
जाने से रोगी तृपात होकर अत्यधिक जल  
पीता है ॥ १-५ ॥

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं  
मधु । शर्करा पयसा पीतमपां धारणमुत्त-  
मम् ॥ ६ ॥

केले का परिपक्व फल, चाँदले का स्वरस  
१ तोला, मधु ४ माशे, शर्करा ४ माशे और दूध  
पावभर लेवे । इनको मिश्रित कर पान करे ।  
यह बहुमूत्र को रोकने के लिये उत्तम औषध  
है ॥ ६ ॥

कदलीनां फलं पक्वं विदारीं च  
शतावरीम् क्षीरेण पाययेत्प्रातरपां धार-  
णमुत्तमम् ॥ ७ ॥

केले का पका फल, विदारीकंद और शता-  
वरी को दूध में मिलाकर प्रातःकाल पान  
करे । यह बहुमूत्र को रोकने के लिए उत्तम  
औषध है ॥ ७ ॥ मात्रा १-२ तोला ॥

धात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिबे-  
त्सदा । बहुमूत्रक्षयं कुर्यात् क्षारेण वास-  
कस्य च ॥ ८ ॥

प्रतिदिन मधुपुत्र चाँदले के अथवा पक्व  
पुत्र रस के स्वरस का पान करे । ये योग बहुमूत्र  
को नष्ट करते हैं ॥ मात्रा १-२ तोला ॥ ८ ॥

तालकन्दं च तरुणं खजूरं कदली-  
फलम् । पयसा पाययेत्प्रातर्मूत्रातिसार-  
नाशनम् ॥ ९ ॥

तालकण्ड के तरुणकन्द, खजूर और केले के  
फल को दुग्ध में मिश्रित कर प्रातःकाल  
पिजावे । यह मूत्रातिसार को नष्ट करता है ।  
मात्रा—१-२ तोला ॥ ९ ॥

मापचूर्णं समधुकं विदारी शर्करा मधु । पयसा पाययेत्प्रातः सोमरोगविनाशनम् ॥१०॥

उर्द का चूर्ण, मुलेठी, विदारीकंद, शकर और मधु को दूध में मिलाकर प्रातःकाल पान करावे । यह योग सोमरोग का नाशक है ॥ मात्रा—१२ तोला ॥ १० ॥

त्रिफलादि योग ।

त्रिफलावेणुपत्राब्दपाठामधुघृतैः कृतः । कुम्भयोनिरिवाम्भोधि बहुमूत्रन्तु शोषयेत् ॥११॥

त्रिफला, घोंस के पत्ते, मोया और पाद के चूर्ण को शहद तथा घी के साथ सेवन करने से यह रोग शीघ्र नष्ट होता है । अगस्त्य मुनि ने जिस प्रकार समुद्र को सुखा दिया था उसी प्रकार यह योग बहुमूत्र को मुला देता है ॥ ११ ॥

बृहद्धात्री घृत ।

धात्रीफलरसप्रस्थं विदारीस्वरसं तथा । क्षीरस्यापि शतावर्याः प्रस्थं प्रस्थं रसस्य च ॥ १२ ॥ तृणपञ्चरसप्रस्थं दत्त्वा प्रस्थं घृतस्य च । पचेन्मृद्गग्निना वैद्यः पाकं ज्ञात्वा विधानतः ॥ १३ ॥ पलालवद्ग-त्रिफला कपित्थफलमेव च । सजलं सरलं मांसी कदलीकन्दमेव च ॥ १४ ॥ उत्पलस्य च कन्दानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः । ततः कल्कं परिस्राव्य चूर्णं दद्यात्पलं पलम् ॥ १५ ॥ मधुकं त्रिवृता चैव क्षारकं वृद्धदारकम् । शर्करायाः पलान्यष्टौ मधु-नश्च पलाष्टकम् ॥ १६ ॥ चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् । सोम-रोगं निहन्त्याशु तृष्णां दाहमरोचकम् ॥ १७ ॥ मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं नाशयेद् बहु-मूत्रकम् । पित्तजान् विविधान्-व्याधीन्

वातजान्श्च सुदारुणान् ॥ १८ ॥ करोति शुक्रोपचयं बलवर्णकरं परम् । नानारूप-विकारघ्नं विशेषाद् बहुमूत्रनुत् ॥१९॥

आँवले का स्वरस १२८ तोले, विदारीकंद का स्वरस १२८ तोले, दूध १२८ तोले, शतावरि का स्वरस १२८ तोले, तृणपञ्चमूल का स्वरस या काय १२८ तोले, और घृत १२८ तोले एकत्र कर धीमी आँच पर पकावे । वैद्य विविधवत् पाक की परीक्षा कर चार चार तोले इजायची, लवह, आँवला, हव, बहेरा, कैया के फल, सुगन्धबाजा, सरलकाष्ठ, जटामांसी, केले का कन्द और भसीरा के कणक के साथ पाक करे । परचात् घृत को कपड़े से छानकर उसमें चार-चार तोले मुलेठी, निसोप, यवहार और विचारा का चूर्ण मिलावे । शकर ३२ तोले और मधु ३२ तोले मिलाकर घोटकर घी के चिकने पात्र में रख दे । यह घृत सोमरोग को तत्काल नष्ट करता है । तृष्णा, दाह, अरुचि मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र तथा अन्यान्य विविध प्रकार के पित्तज और दाह्यघातज, व्याधियों को नष्ट करता है । शुक्र, बल और कान्ति को बढ़ाता है तथा अन्याय्य नाना प्रकार के रोगों को, विशेषकर बहुमूत्र रोग को नष्ट करता है ॥ मात्रा—६ माशा से १ तोला ॥ १२-१९ ॥

स्वल्पधात्री घृत ।

विना कल्कं स्वल्पधात्रीघृतमेतन्निग-द्यते । सर्वं तुल्यं गुणैरेव पथ्यापथ्यं तदेव हि ॥२०॥

पूर्वोक्त घृत को कल्क के बिना ही सिद्ध करे, तो यह 'स्वल्पधात्रीघृत' कहा जाता है । शेष सब विधि उक्त 'धात्रीघृत' के तुल्य ही है । गुण और पथ्यापथ्य सब उसी के तुल्य हैं ॥ २० ॥

कदल्यादि घृत ।

कदलीकन्दनिर्यासे सत्पमूनतुलां प-चेत् । चतुर्भागावशेषेऽस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१ ॥ चन्दनं सरलं मांसी

कदलीमूलकं तथा । एला लवङ्गत्रिफला  
कपित्थफलमेव च ॥ २२ ॥ औदकानि  
च कन्दानि न्यग्रोधादिगणस्तथा । कल्के  
नानेन संसिद्धं सोमरोगनिवारणम्  
॥ २३ ॥ मूत्ररोगानशेषांश्च प्रभूतान्  
शुक्रपिच्छिलान् । प्रमेहान् विशतिं चैव  
मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ २४ ॥ बहुमूत्रं  
विशेषेण मूत्रकृच्छ्रं तथाश्मरीम् । पीतं  
घृतं निहन्त्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ।  
कंदल्यादिघृतं नाम विष्णुना परिकीर्त्ति-  
तम् ॥ २५ ॥

\* २२ सेर १८ तोले केले के मूल के स्वरस में २  
सेर केले के फूल पकावे । ६ सेर ३२ तोले शेष  
रहने पर उस काथ में १२८ तोले घृत पकावे ।  
परधातु रत्नचन्दन, सरलकाष्ठ, जटामांसी, केले का  
मूल, इलायची, लींग, आंवला, हृद्, बहेड़ा,  
कैथा का फल, पद्ममूल, नीलोत्पलमूल आदि  
जलोत्पन्न कन्द तथा न्यग्रोधादिगण का कलक  
मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करे । यह घृत  
सोमरोग का नाशक है । शुक्र मिश्रित होने से  
पिच्छिल तथा सद्य प्रकार के मूत्रविकारों को,  
पीस प्रकार के प्रमेह और तेरह प्रकार के मूत्रा-  
घातों को, विशेषकर बहुमूत्र रोग को, मूत्रकृच्छ्र  
तथा श्मरी रोग को ऐसे शीघ्र विनष्ट करता  
है जैसे विष्णुचक्र असुरों का संहार करता है । यह  
'कंदल्यादि घृत' विष्णु करके कहा गया है  
मात्रा—६ माया से १ तोला ॥ २१-२५ ॥

सिद्धफल न्यग्रोधादिगण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपियालसक्तवेत्-  
सम् । आम्रो जम्बूद्वयंकोलं मधुकं तिन्दु-  
कोऽर्जुनः । तिनकः कटुको नीपो गर्दभा-  
एटोऽप्य किशुकः ॥ २६ ॥

पट, मूकर, पीपर, पियाल ( चिरीको ),  
पाकव, येताग, आम, जामुन, बजजामुन, बेर,  
मटुभा, लोथ, घनुंन, तिनक, कुट्टी, कदम्ब,

सिरस और पलाश इनको न्यग्रोधादिगण कहते  
हैं ॥ २६ ॥

हेमनाथ रस ।

सूतं गन्धं हेमताप्यं प्रत्येकं कोलस-  
म्मितम् । अयश्चन्द्रं प्रवालं च वङ्गं  
चाद्धं विनित्तिपेत् ॥ २७ ॥ फण्डिफेनस्य  
तोयेन कदलीकुसुमेन च । उदुम्बररसेनापि  
सप्तधा परिमर्दयेत् ॥ २८ ॥ वल्लमात्रां  
वटीं खादेद्यथाव्याध्यनुपानतः । प्रमेहान्  
विंशतिहन्ति बहुमूत्रं सुदारुणम् ॥ २९ ॥  
सोमरोगं क्षयं चैव श्वासं कासपुरः  
क्षतम् । हेमनाथरसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण  
भापितः ॥ ३० ॥

पारर, गन्धक, स्वर्ण और स्वर्णमाषिक  
छद्-छद् भासे तथा लोह, कर्पूर, प्रवाल और  
वङ्गभस्म तीन-तीन भासे डाले । सात-सात बार  
अफीम के जल, केले के फूल के रस और गूलर  
के स्वरस के साथ घोटकर तीन-तीन रत्ती की  
गोलियाँ बनावे व्याधि के अनुसार अनुपान  
की व्यवस्था करे । यह रस पीस प्रकार के  
प्रमेह, बहुमूत्र, दारुण सोमरोग, क्षय, श्वास,  
कास और क्षत को नष्ट करता है । कृष्णात्रेयजी ने  
इसका 'हेमनाथरस' कहा है । मात्रा—३  
रत्ती ॥ २७-३० ॥

घसन्तकुम्भुमाकर रस ।

वैक्रान्तस्य च भागैकं द्विभागं हेमभ-  
स्मनः । अश्रकस्य च भागौ द्वौ मुत्रावि-  
ष्टमयोस्तथा ॥ ३१ ॥ वङ्गभस्म त्रिभागं  
स्यात् रसस्य भस्मनस्तथा । चत्वारोऽस्य  
च भागाश्च सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥ ३२ ॥  
जम्बीराश्रिश्चगोदुग्धं क्यारीरोद्भववारिभिः ।  
ष्टपद्वैरिज्जुनीरैः सप्तधा भावयेत्पृथक् ॥ ३३ ॥  
भावितो रसरजः स्याद् घसन्तकुम्भुमा-  
करः । वल्लोऽस्य मधुना लीढः सोमरोगं

क्षयं नयेत् ॥ ३४ ॥ मूत्रातिसारं मेहांश्च  
मूत्राघाताश्मरीरुजम् । वृष्णां दाहं तालु-  
शोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ बल्यः  
पुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिवर्हणः । हन्त्य-  
जीर्णं ज्वरं श्वासं क्षयरोगं कृशाङ्गताम् ॥  
नातः परतरं किञ्चिद्रसायनमिहेष्यते  
॥ ३६ ॥

रसभस्म तदभावे मूर्द्धितरसः । मूत्रा-  
तिसारे सोमरोगे च रसायनम् ।

धैमान्त ( हीराभस्म ) १ भाग, स्वर्णभस्म,  
अभ्रकभस्म, मोतीभस्म, और प्रवालभस्म दो-दो  
भाग । वङ्गभस्म, ३ भाग, और रससिन्दूर ४  
भाग इन सबको मिलाकर घोट लें । परचात्  
भ्रम से नीचू के रस, गोदुग्ध, खस के घाय, रुसे  
के स्वरस और हजुरस की सात-सात भावनाएँ  
दे । इस रसराज का नाम 'वसन्तकुसुमाकर,  
है । यह मधु के साथ तीन-तीन रत्नी सेवन  
करने से सोमरोग, मूत्रातिसार, प्रमेह, मूत्रा-  
घात, अश्मरी, वृष्णा दाह और तालुशोष  
को नष्ट करता है, इसमें कोई संदेह नहीं ।  
यह बल वीर्यवर्द्धक, पौष्टिक और अन्याय्य  
सब प्रकार के रोगों का नाशक है । अजीर्ण  
ज्वर, श्वास, क्षयरोग और कृशाङ्गता को नष्ट  
करता है । इससे बढ़कर और कोई रसायन  
नहीं है ॥ ३१-३६ ॥

यहाँ रसभस्म के अभाव में मूर्द्धित पारद  
लेना चाहिए । मूत्रातिसार और सोमरोग में यह  
रसायन है ॥ मात्रा—२ रत्नी ।

तारकेश्वर रस ।

मृतमूत्राभ्रगन्धश्च मर्दयेन्मधुना दि-  
नम् । तारकेश्वरनामायं गहनानन्द-  
भापितः ॥ ३७ ॥ गुञ्जामात्रं भजेत्तौर्द्रैर्बहु-  
मूत्रप्रशान्तये । उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं  
कर्पमात्रकम् ॥ संलिहान्मधुना सार्द्धमनु-  
पानं सुखावहम् ॥ ३८ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, गन्धक इन्हें इकट्ठा  
कर शहद के साथ घोटकर १ रत्नी की मात्रा में  
बहुमूत्र रोग की शान्ति के लिये शहद के साथ  
सेवन कराना चाहिए । इस रस का सेवन करने  
के परघात पके गूलर का चूर्ण १ तोला तथा  
शहद मिलाकर अनुपान रूप से चाटना  
चाहिए ॥ ३७-३८ ॥

तालकेश्वर रस ।

तालं मूतं समं गन्ध मृतलौहाभ्रवङ्ग-  
कम् । मर्दयेन्मधुना चैत्र रसोज्यं तालके-  
ररः ॥ ३९ ॥ गुञ्जामात्रं लिहेत्तौर्द्रैर्बहु-  
मूत्रप्रशान्तये । उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं  
कर्पमानतः ॥ संलिहं मधुना सार्द्धमनुपानं  
सुखावहम् ॥ ४० ॥

शुद्ध हडताल, पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक  
भस्म और वङ्गभस्म, इन्हें इकट्ठा कर बराबर  
मात्रा में मिला शहद से घोटें । मात्रा १ रत्नी से  
२ रत्नी तक, इसे बहुमूत्र की शान्ति के लिये  
शहद के साथ सेवन कराना चाहिए । अनुपान  
पके गूलर के फल का चूर्ण १ तोला और  
शहद ॥ ३९-४० ॥

सोमनाथ रस ।

कर्पं जारितलौहश्च तदद्दं रसगन्ध-  
कम् । एलापत्रं निशायुग्मं जम्बूतीरण-  
गोक्षुरम् ॥ ४१ ॥ विहङ्गं जीरकं पाठा  
घात्री दाडिमटङ्गणम् । चन्दनं गुग्गुलुः  
लोध्रशालार्जुनरसाञ्जनम् ॥ ४२ ॥ ज्वागी-  
दुग्धेन वटिकां कारयेद्दशरत्निकाम् ।  
निर्मिता नित्यनाथेन सोमनाथरसस्त्व-  
यम् ॥ ४३ ॥ सोमरोगं बहुविधं प्रदरं  
हन्ति दुर्जयम् । योनिशूलं मेदूशूलं  
सर्वजं चिरकालजम् ॥ बहुमूत्रं विशेषेण  
दुर्जयं हन्त्यसंशयम् ॥ ४४ ॥

लोहभस्म १ तोला, पारा, गन्धक, घोट



इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की गिरी, खस, मोखरू, बायबिडङ्ग, जीरा, पाद, आँवला, अनारदाना, सुहागा, लालचन्दन, गुद गूगुल, लोध, शाल की छाल, अजुन की छाल और रसीत हरएक आधा आधा तोला । इन्हें बकरी के दूध से घोटकर गोली बनावे । मात्रा—२ रत्ती से १० रत्ती तक । इसके सेवन से अनेक प्रकार का सोमरोग, प्रदर, योनिशूल, मेदशूल तथा त्रिदोषज और पुराना बहुमूत्र ये अवश्य ही अच्छे हो जाते हैं । यह सोमनाथ रस नित्यनाथ का बनाया हुआ है ॥ ४१-४४ ॥

गगनादि लौह ।

गगनं त्रिफला लौहं कुटजं कटुक-  
त्रयम् । पारदं गन्धकञ्चैव विपटङ्गण-  
सज्जिकाः ॥ ४५ ॥ त्वगोला तेजपत्रञ्च  
वङ्गं जीरकपुग्मकम् । एतानि समभागानि  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ४६ ॥ तदर्धं  
चैत्रकं चूर्णं माषार्द्धं मधुना लिहेत् ।  
अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसारसोम-  
कम् ॥ ४७ ॥

अत्रकभस्म, त्रिफला, लोहभस्म, कुटज की छाल, त्रिकुटा, पारा, गन्धक, बच्छनाग, सुहागा, सजी, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, वङ्ग, भस्म, सफेद जीरा और काला जीरा हरएक १ तोला, चित्रक का चूर्ण सबका आधा । इन्हें पकत्र मिलाकर रोगी को सेवन करावे । मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक । इसके सेवन से मूत्रातीसार तथा सोमरोग नष्ट होता है ४२-४७

घट्टमूत्रान्तक रस ।

सिन्दूरश्च तथा लौहो वङ्गाहिफेन-  
सारकौ । उदुम्बरभवं बीजं धित्वमूलं सुर-  
प्रिया ॥ ४८ ॥ सर्वं समं जन्तुफलरसैः  
सम्मदितं भवेत् । रक्त्रिद्वयमितां स्वादे-  
द्वटिकामनुपानतः ॥ ४९ ॥ दद्यादौ-  
दुम्बरफलरसं पथ्यविधिं शृणु । मांस

प्रधानं भक्ष्यञ्च तथा गोधूमपिष्टकम् ॥ ५० ॥  
बहुमूत्रान्तकरसो नाशयेदविकल्पतः ।  
बहुमूत्रं तथा चान्यान् रोगांश्चैव तदुद्भ-  
वान् ॥ ५१ ॥ तृष्णाधिक्ये प्रदातव्यं  
शृतशीतमिदं शुभम् ॥ सारिवा मधुकं  
द्राक्षा दर्भः सरलचन्दने ॥ ५२ ॥  
पथ्या मधुकपुष्पञ्च सर्वञ्च समभागकम् ।  
जले संस्थाप्य रजनी पराहे वस्त्रगालितम् ।  
भोक्तुं गहननाथेन सद्यस्तृष्णाहरं परम् ५३

रसिसिन्दूर, लोहभस्म, वङ्गभस्म, अफीम, गूलर के बीज, बेल की जड़, कवाबचीनी इन्हें इकट्ठा कर बराबर मात्रा में गूलर के रस से घोटकर २ रत्ती की गोली बनावे । अनुपान—गूलर के फल का रस । पथ्य—मांसप्राधान भोजन, गेहूँ का आटा । इस औषध के सेवन से बहुमूत्र तथा उससे पैदा होनेवाले अन्य रोग नष्ट होते हैं । यदि रोगी को बहुमूत्र रोग के कारण अत्यन्त पिपासा हो तो नीचे लिखे हुए शीत कषाय को पिलाना चाहिए । कषाय—अनन्तमूल, गुलहठी, दाख, टाभ की जड़, चीड़ की लकड़ी खाल चन्दन, हृद, महूप के फल भिलाकर २ तोला । इसे कूटकर १२ तोले पानी में रात्रि को भिगो दे । अगले दिन प्रातः कपड़े से छान रोगी को पिलावे यह तरकाल तृष्णा को नष्ट करता है ॥ मात्रा २ रत्ती ॥ ४८-५३ ॥

अन्य बहुमूत्रान्तक रस ।

रसरच शाल्मलीमूलचूर्णं कदलि-  
मूलजम् । उदुम्बरबीजचूर्णं लौहो वङ्गश्च  
विट्ठुमम् ॥ ५४ ॥ मुक्ताहिफेनसारौ 'च'  
प्रत्येकं समभागिकम् । मर्दयेन्मालती-  
पुष्परसेन कुशलो भिषक् ॥ ५५ ॥ रक्त्रि-  
द्वयमितां कुर्याद्वटिकामतियोगनाम् ।  
बहुमूत्रान्तको नाम रसः परमशोभनः ॥  
मधुमेहं सोमरोगं हन्ति भास्वान् यथा  
तमः ॥ ५६ ॥

रससिन्दूर, सोमल की जड़, केले की जड़, गुलर के बीज, लोहभस्म, भूंगाभस्म, सोतीभस्म और शफीम इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर मालतीफूल के रस से घोंटे और दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । यह बहुमुत्रान्तकरस मधुमेह तथा सोमरोग को नष्ट करता है मात्रा २ रत्ती ॥ ५४-॥ ५६ ॥

हिमांशु रस ।

रसस्य कर्पमादाय खल्ले निक्षिप्य युद्धिमान् । रक्तागस्त्यप्रमूनस्य स्वरसेन विमर्दयेत् ॥ ५७ ॥ सप्तवारं तथा साधु श्वेतदूर्वारसेन च । निष्कद्वयं दृङ्गणञ्च कर्षं खादिरसारतः ॥ ५८ ॥ कर्पूरं रस-तुल्यञ्च सर्वमेकत्र मर्दयेत् । यावच्चिक-णतां याति युक्त्या चन्दनवारिणा ॥ ५९ ॥ हरेणुमात्रान् वटकान् छायायां परि-शोपितान् । प्रातः प्रातश्च सेवेत मध्याह्ने च विशेषतः ॥ ६० ॥ निशायञ्च विशे-पेण सेवनीयः प्रयत्नत । एतद्धि मेहनुद्-द्रव्यं मुखशोषहरं परम् ॥ सोमरोगहरं सर्वपिटिकानाशनं परम् ॥ ६१ ॥

रससिन्दूर १ तोला सरल में डालकर लाल धगस्तिया के फूल के रस से सात बार भावना दे । इसी प्रकार श्वेत दूर्व के रस से भी सात बार अच्छी तरह घोंटे । पश्चात् सुहागा ६ मास, कल्या १ तोला, कर्पूर १ तोला डालकर अच्छी तरह चन्दन के जल से घोंटे और मटर के बराबर गोलियाँ बनावे । इसे प्रातः मध्याह्न तथा रात्रि के समय सेवन करना चाहिये । यह प्रमेहनाशक है, मुखशोष को हटाता है, सोमरोग तथा सम्पूर्ण पिटिकाओं को नष्ट करता है मात्रा ॥ २-२ रत्ती ॥ ५६-६१ ॥

पथ्य ।

मासानि यवगोधमाः क्षीरमुद्धृत-सारकम् । विविधानि च कन्दानि कद-

ल्यादिफलानि च ॥ ६२ ॥ पादत्रहीनं भ्रमणं व्यायामः श्रम एव च । चलः प्रसक्तिः पथ्यं स्यात् सोममूत्रातिसारि-णाम् ॥ ६३ ॥

उड़द, जी, गेहूँ, मक्खन निकाला हुआ दूध विविध कन्द, केला, गुलर आदि फल, नंगे पैर भ्रमण, व्यायाम, परिश्रम, मन का प्रसन्न रहना, ये सोमरोग एवं मूत्रातिसारियों के लिये पथ्य है ॥ ६२-६३ ॥

अपथ्य ।

इक्षोर्विकारा भृशमभ्युपानं फलान्य-पकानि सुखासनञ्च । दिवा तु निद्रां भय-कोपशोकान् विवर्जयेन्मूत्रगदी प्रय-त्नात् ॥ ६४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सामरोगा-धिकारः समाप्तः ।

ईख से बने गुद, खोंड़ आदि द्रव्य, श्रयन्त जलपान, कच्चे फल, सुख से बैठे रहना, दिन में सोना, श्रयन्त सोना, भय, क्रोध एवं शोक इनसे मूत्ररोगी को बचना चाहिए ॥ ६४ ॥ इति सरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-रत्नावल्यां रत्नप्रभाभिषायां व्याहयायां सामरोगाधिकारः समाप्तः ।

श्रौतसर्गिकमेहाधिकारः

श्रौतसर्गिकमेहोऽथ प्रथमेहस्तथैव च । तथैवागन्तुजश्चापि व्रणमेहोऽपि कथ्यते ॥ १ ॥

श्रौतसर्गिक मेह, प्रथमेह, आगन्तुज मेह तथा व्रणमेह ये प्रकार्यथाचक है । इसे साधारण भाषा में सूजाक (Gonorrhoea) कहते हैं ॥ १ ॥

निदान ।

क्लिन्नयोनिः श्चतुमती बहुमुत्रा तथैव

या । कामान्धस्तत्र गमनाद् गदमामोति  
दारुणम् ॥ २ ॥

ग्रण आदि के मवाद से गीली योनिवाली-  
अतुनती तथा वेश्याओं के साथ संभोग करने  
से कामान्ध पुरुष को यह कष्टदायक रोग होता  
है । परन्तु यह बात अद्यय है कि जिस स्त्री  
को यह रोग होगा उसके साथ सम्भोग करने  
से ही यह रोग हुआ करता है अन्यथा नहीं ।

रोगी के अधोवस्त्र ( धोती-पाजामा आदि )  
जिस पर इस रोगी का पीव लगा हुआ हो  
उसके परिधायण करने से मूत्रेन्द्रिय आदि पर  
स्पर्श होकर भी यह रोग हो सकता है । इसी  
प्रकार जिस पुरुष को यह रोग हो वह यदि स्त्री-  
सम्भोग करेगा तो उस स्त्री को भी यह रोग  
हो सकता है, अर्थात् यह रोग संसर्ग से फैलने-  
वाला है ॥ २ ॥

बहुसङ्करसम्भोगप्रक्लिन्नन्द्रिययापुमान्-  
न् । स्त्रिया सङ्गम्य संमूढो गद-  
मामोति दारुणम् ॥ ३ ॥ मूत्रनाज्यन्तर-  
स्थानात् त्वगस्य श्लेष्मवाहिनी । व्रणिता  
वाहयेत् क्लेदं व्रणमेहः स उच्यते ॥ ४ ॥  
औपसर्गिकमेहश्च तस्य नामान्तरं मतम् ।  
मेह आगन्तुकश्चापि स कैश्चित्परिभाष्य-  
ते ॥ ५ ॥ आरभ्य सङ्गमनिशा संख्या  
या च सप्तमी । एतद्व्यवहिते काले प्रायशो  
जायते गदः ॥ ६ ॥ कएहूः शिश्नाग्रत-  
स्तस्य समुत्थानं मुहुर्मुहुः । तीव्रवेदनया  
चापि मुहुर्मुत्रमवर्त्तनम् ॥ ७ ॥ स्फीति-  
लिङ्गस्य लौहित्यं कोपे व्रधने च वेदना ।  
कदाचित् क्लेदसंरुद्धमार्गत्वादतिरिक्त् सवे-  
त् ॥ ८ ॥ मूत्रं दाहेन घोरेण द्विधारं वा  
मवर्त्तते । क्षरेद्वा क्षतजं मेढ्रान्मूत्रकाले  
कदाचन ॥ ९ ॥ सन्ततं तनुरास्त्रावः स्रवे-  
दादां ततोऽन्तुः । स तावत्पुनरानुप्यन्

प्रतिमानं प्रयाति च ॥ १० ॥ कालो  
लघ्वी व्यथां कुर्याद्व्याधिं च दुष्प्रतिक्रि-  
यम् । आमवाताक्षिरोगाद्या ज्ञेयश्चास्य  
ह्युपद्रवाः ॥ ११ ॥

बहुत से पुरुषों के साथ सम्भोग करने से  
विकृत योनिवाली स्त्री के साथ सङ्गम (सम्भोग)  
करनेवाला मूत्र पुरुष भयङ्कर रोग को प्राप्त होता  
है । मूत्रनादी के भीतरी स्थान से इसकी श्लेष्म-  
वाहिनी त्वक् व्रणयुक्त होने के कारण क्लेद को  
बहाती है अतः इसको व्रणमेह कहते हैं । इसका  
दूसरा नाम औपसर्गिक मेह भी माना गया है ।  
कुष्ठ आचार्य इसे आगन्तुक मेह भी कहते हैं ।  
विकृत योनिवाली स्त्री के साथ सम्भोग की रात  
से आरंभ करके एक सप्ताह के भीतर ही प्रायः  
यह रोग उत्पन्न हो जाता है । उस रोगी के  
शिशन के अग्रभाग में खुजली, बार-बार उत्थान,  
तीव्र वेदना से बार-बार मूत्र की प्रवृत्ति, लिङ्ग  
में शोथ, लाजिमा, घण्टकोप और व्रधन (वाधी)  
में वेदना, कभी-कभी क्लेद से मूत्रमार्ग अवरोध हो  
जाने से अत्यन्त पीड़ा और घोर दाह के साथ  
मूत्र का निकलना अथवा दो धार से मूत्र का  
प्रवृत्त होना इत्यादि लक्षण होते हैं । अथवा  
कभी-कभी लघुशङ्का करने के समय लिङ्ग से  
रून गिरने लगता है । पहिले निरन्तर थोड़ा-  
थोड़ा गिरता है, परवाह बहुत अधिक गिरने  
लगता है । यह क्रमशः शुष्क होता हुआ सारुप्य  
को प्राप्त हो जाता है । कालान्तर में व्याधा कन  
ही जाती है । परन्तु यह रोग असाध्य हो जाता  
है । आमवात और अक्षिरोग आदि इसके  
उपश्रव जानने चाहिए ॥ १-११ ॥

औपसर्गिकमेहचिकित्सा ।

व्रणमेही त्यजेद्यत्राद्रपयायं सोऽहितो  
यतः । स्त्रियाश्च परिमुक्ताया आमयं जन-  
येच्च तम् ॥ १२ ॥ भेषजं पानमन्नं च  
निषेधेतालुलोमनम् । व्रणघ्नं मूत्रजननं  
क्रियामुप्रां विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

व्रणमेही पक्वक भेषुन का परिर्याग करे

क्योंकि वह अहित है। तथा परिभुक्ता स्त्री को भी वही रोग उत्पन्न हो जाता है। वातानुलोमन, मण्धन और मूत्रोत्पादक औषध और अन्न पान का सेवन करे तथा उग्र क्रिया का परित्याग करे ॥ १२-१३ ॥

कोष्ठो जात्या वराया वा काथे शिश्रं निमज्जयेत् । वेदनोपशमतेन व्याधेरच वलसंक्षयः ॥ १४ ॥

चमेली या त्रिफला के गुणगुने काथ में लिङ्ग को डुबाये। उससे पीड़ा की शान्ति होती है और व्याधि का बल क्षीण होता है ॥ १४ ॥

आभानिर्यासतोयं च यवत्तारयुतं पिबेत् । सजलं क्षीरमामं वा ब्रणमेह- निवृत्तये ॥ १५ ॥

बबूल के गोंद को पानी में भिगो दे, जब वह घुल जाये तो उसमें जवाखार सिलाकर पान करे। अथवा कच्चे दूध में पानी मिलाकर पान करे तो ब्रणमेह रोग निवृत्त होता है ॥ १५ ॥ मात्रा १ माशा ॥

पिवेद्वा शारिवाकाथं सत्तारं नरसार- कम् । श्यामामनन्तां कर्द्वीं च बीजं गोत्तुर- संभवम् ॥ १६ ॥ गन्धाश्मनरसाराभ्यां काथयित्वा जलं पिबेत् । एकंसुरभियफलं मेहमागन्तुकं हरेत् ॥ १७ ॥

अनन्तमूल के ४ तोला काथ में एक माशा यव- चार और नवसादर मिलाकर पान करे। अथवा श्यामाजता, अमन्तमूल, कुटकी और गोपूरु के बीज का काथ बनाकर ४ तोले में गन्धक ३२ रत्नी और नवसादर ६ रत्नी मिलाकर पान करे। थकेली क्वावचीनी आगन्तुक मेह का हरण करती है ॥ १६-१७ ॥

वराभापिप्पलीनां च ब्रणमेहनिवृत्तये । कुर्यादुत्तरवस्तिं च कपायेण प्रयत्नतः ॥ १८ ॥  
त्रिफला, बबूल की छाल और पीपर की छालके काथ से पिचकारी देने से ब्रणमेह की निवृत्ति होती है ॥ १८ ॥

उत्तरवस्ति ।

कणाभात्रिफलाकाथं दद्यादुत्तरवस्तिना ।

प्रयोगादस्य सततं ब्रणमेहः प्रशाम्यति १९

पीपली, बबूल की छाल तथा त्रिफला इसके काथ से ब्रणमेह को उत्तरवस्ति दे। इस प्रकार शीघ्र ही ब्रणमेह शान्त हो जाता है ॥ १९ ॥

सितं तुत्थस्य भसितं कर्पकद्वयसम्मि- तम् । मृदारमृद्गदरदं प्रत्येकं रसमापि- कम् ॥ २० ॥ दधनः स्वच्छं जलं प्रस्थं त्रिफलाकाथपादिकम् । सर्वं सम्मिश्रय विधिवद् दद्यादुत्तरवस्तिना ॥ २१ ॥

तृतिपा की श्वेत भस्म २ तोला, मुर्दासंग ६ माशे, दिग्बुज ६ माशे, दही का स्वच्छ पानी १२८ तोला, त्रिफला काथ ३२ तोला, इन्हें विधिपूर्वक मिलाकर उत्तरवस्ति देने से ब्रणमेह नष्ट होता है ॥ २०-२१ ॥

ब्रणमेहहर चूर्ण ।

श्रीवेष्टसत्त्वं शुद्धस्यात् कक्षोलं केशरं तथा । स्फुटी शुद्धा सोरकश्च रालो जघ्ढा च जीरकम् ॥ २२ ॥ सर्वं समं समादाय भक्षयेत् सन्ध्ययोर्द्वयोः । दुग्धाम्बुना पूय- मेहः ध्रुवं पक्षाद्दिनश्यति ॥ २३ ॥

शुद्ध गन्धाधिरोजा, शीतलचीनी, नागकेशर, शुद्ध फिटकरी, शोरा, राल, काकजड़ और श्वेत जीरा इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर दोनों सन्ध्या भ्रमय रोगी को सेवन करावें। मात्रा— १ माशे से २ माशे तक। धनुषान- कच्चे दूध की लक्ष्मी। इस चूर्ण के सेवन से पूयमेह १५ दिन के अन्दर ही नष्ट हो जाता है ॥ २२-२३ ॥

महाभ्रवटिका ।

त्रिःसप्तकृत्यः सम्भाव्य भृङ्गराजाम्भ- साभ्रकम् । तेन गन्धं रसं लौहं हेम चाभ्राद्- सम्मितम् ॥ २४ ॥ वराकाथेन संमर्ष वटिकां रत्निकोन्मिताम् । औपसर्गिक- मेहस्य नाशाय दापयेद्भिषक ॥ २५ ॥

भाँगे के रस में इँकीस बार भावित अन्नक-  
भस्म और इससे अर्धभाग गन्धक, पारा,  
लोहभस्म और स्वर्णभस्मलेकर सबको एकत्र  
कर त्रिफला के ब्याथ के साथ घोट कर एक-एक  
रत्ती की गोली बनावे । वैद्य औपसर्गिक प्रमेह के  
नाश के लिये एक-एक गोली दे ॥ २४-२५ ॥

कन्दर्परस ।

रसं गन्धं प्रवालं च काञ्चनं गिरि-  
मृत्तिका । वैक्रान्तं रजतं शङ्खं मौक्तिकं च  
समं समम् ॥ २६ ॥ न्यग्रोधस्य कपायेण  
भावयित्वा च सप्तधा । बल्लोन्मानां वर्तौ  
कृत्वा त्रिफलाकाथवारिणा ॥ २७ ॥ सुर-  
मियस्यार्जुनस्य काथेनाभाम्भसापि वा ।  
औपसर्गिकमेहस्य शान्त्यर्थं विनियोज-  
येत् ॥ २८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामौपसर्गिक-  
मेहाधिकारः समाप्तः ।

पारा, गन्धक, प्रवाल, स्वर्णभस्म, गेरु,  
हीरकभस्म, रजतभस्म, शङ्खभस्म और मौक्तिक  
भस्म के साथ पारा-पारा-पारा केकर एकत्र कर  
परमाद की छाल के साथ के साथ सात बार  
भावित कर तीन-तीन रत्ती की गोली बनावे ।  
त्रिफला के ब्याथ के साथ सप्तधा ब्याथचीनी  
और अर्जुन की छाल के ब्याथ के साथ औप-  
सर्गिक प्रमेह के शान्त्यर्थं इसका प्रयोग  
करे ॥ २६-२८ ॥

इति परब्रह्मादत्रिपात्रिपरिपात्रायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिषायां कपायवापा-  
मौपसर्गिकमेहाधिकारः  
समाप्तः ।

अथ शुक्रमेहाधिकारः

शुक्रमेह का निदान ।

योऽनाभावनविधिना कुरुते रेतसो  
व्ययम् । शुक्रमेहाभिधस्तस्य गदो भवति  
दारुणः ॥ १ ॥

अविधिना अतिसङ्गमेन करकर्मणा वा ।

जो मूलं व्याक्र (घपनी इन्द्रियों को घस  
में न रख के) हानिकारक अनुचित भागं (घति  
मैथुन, हस्तमैथुन आदि) से वीर्य नष्ट  
करता है उसके अत्यन्त कष्टकारक वीर्यमेह  
रोग हो जाता है ॥ १ ॥

शुक्रमेह लक्षण ।

मलमूत्रातिवेगेन तथा कामस्य वेगतः ।  
स्त्रीस्पर्शाद्दृष्टिस्मरणादपिरंतः पतेत्तथा २ ॥  
निद्रायां रमणीसद्धानुभावात् संपतेदपि ।  
रोगेऽतिप्रबले शिरसे शिथिलेऽपि च  
तत्पतेत् ॥ ३ ॥ तन्द्रावेशेऽथ शयने तत्प-  
तेदत् एव च । न शक्नुयाद्दही नारीं सन्तोष-  
यितुमएवपि ॥ ४ ॥ ततो यायाद्भाग्य-  
हीनो ध्वजभद्रारुयमामयम् । वृथा जीवति  
स क्लीरो मरणस्तस्य जीवनम् ॥ ५ ॥  
अग्निमान्यं कोष्ठरोधः गिरमः परिमूर्ध-  
नम् । अजीर्णमतिमाररच दृष्टेर्दुर्बलता  
तथा ॥ नेत्रान्ते नीलिमा शुक्रमेहस्यो-  
पद्रवा इमे ॥ ६ ॥

मलमूत्र के अतिविक वेग से तथा काम  
वेग से स्त्री के स्मरण, दर्शन और स्पर्श से  
वीर्यपतन हो जाता है या निद्रा में (गोले  
समय) भी मयोग का अनुभव होकर भी वीर्य-  
पतन हो जाता है । रोग की अति प्रबलता से  
गिरनेश्रय निमित्त हो जाती है । दिवंग्न श्ले-  
ष्मा होकर फिर गिर जाती है । मूत्रा में, बीर  
में (विषा रस के) रंग वीर्यपतन हो जाता

है। वह रोगी सम्भोगमें स्त्री को सन्तोष नहीं कर सकता। उस भाग्यहीन व्यक्ति को ध्वज भङ्ग (नपुंसकता) नामक रोग हो जाता है। वह व्यक्ति व्यर्थ जीता है। उसकी मृत्यु ही उसका जीवन है मन्दाग्नि, मलाबरोध, शिर में शूल (चक्र आना), अजीर्ण, अतिसार, दृष्टि की दुर्बलता, नेत्रों के नीचे नीली भाई पड जाना शुक्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २-६ ॥

त्रिवारं वा चतुर्वारं दिवारात्रौ पतेत्कचित् । एवं हृद्गदो मूढः ध्वजशैथिल्यमेति च ॥ ७ ॥

कहीं कहीं दिन और रात में तीन अथवा चार बार भी वीर्यपात होते देखा गया है। इस प्रकार रोग के अधिक बढ़ जाने से अन्त में इन्द्रियों में शिथिलता हो जाती है ॥ ७ ॥

न शक्नुयान्मर्दयितुं कदाचिन्मदं स्मरमेरविलासिनीनाम् । पतद्ध्वजस्तीव्रविपादयुक्तः कदाचिदिच्छेन्मरणं विरक्तः ॥ ८ ॥

शुक्रमेह रोग के बढ़ जाने पर पुरुष मैथुन करने में असमर्थ हो जाता है अर्थात् उसका वीर्य मैथुन से पहिले ही निकल पड़ता है। जिससे रोगी अत्यन्त दुःखी रहने लगता है, यहाँ तक कि उदासीन होकर आत्महत्या का विचार भी कर लेता है ॥ ८ ॥

शुक्रमेह के उपद्रव ।

ध्वजभङ्गः प्रतिश्यायस्त्रिकदेशे च वेदना । विषण्णतागदोद्वेगः कासे यच्मारतिस्तथा ॥ ९ ॥ कोष्ठारोधः शिरसश्च घूर्णनं वक्षेर्विनाशस्त्यतिसार एव । हासश्च दृष्टेर्ननु नीलिमा दृशोरजीर्णमेते प्रभवन्त्युपद्रवाः ॥ १० ॥

ध्वजभङ्ग (शिरनेन्द्रिय का रङ्ग न होना), जुकाम, त्रिकदेश (कमर) में दर्द, विषण्णता (सदा दुखी अथवा ग्लानियुक्त रहना), गदोद्वेग नामक मिथ्या कावचनिक व्याधि, खाँसी, हास्यस्त्रा तथा अरति (कित्ती भी कार्य करने

में रचि न होना), मलचर्दंता (वृज), सिर का घूमना, मन्दाग्नि, अतिसार, दृष्टि - शक्ति का कम होना, आँसों का नीलापन तथा अजीर्ण आदि उपद्रव हो जाते हैं ॥ ९-१० ॥

शुक्रमेह प्रथमतः क्रिया संशोधनी हिता । रेतसो रक्षणं तत्र कार्यं चातिप्रयत्नतः ॥ ११ ॥

शुक्रमेह में संशोधन क्रिया हितकर होती है। उसमें वीर्य की रक्षा का विशेष प्रयत्न करना चाहिए ॥ ११ ॥

अन्नपानौषधैः सर्वैर्धानुपुष्टिकरैर्भूशम् । रेतसो रक्षयंतत्र कार्यश्चातिप्रयत्नतः ॥ १२ ॥

इस रोग में वीर्य आदि को पुष्ट करनेवाले अन्नपान एवं औषध आदि द्वारा अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक वीर्य की रक्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

प्रायशः शयने तेषां च्युतिः शुक्रस्य जायते । ब्राह्मो मुहूर्त्त उत्थानं तेषामावश्यकं मतम् ॥ १३ ॥

जिन्हें प्रायः सोते हुए विस्तर पर ही वीर्यपात हो जाता है उनके लिये ब्राह्ममुहूर्त्त में उठना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इस समय निद्रा का स्वामाधिक वेग समाप्त हो जाता है और तन्द्राप्रस्त होता है। इस समय स्वप्न अधिक आते हैं और इसी समय मूत्राशय और पक्वाशय भी भरे होते हैं जिससे वीर्यपात होने की सम्भावना रहती है और देखा भी गया है प्रायः इसी समय ही रोगियों वा वीर्यपातन भी होता है। अतः इस समय आलस्य को त्यागकर जागना और मित्यक्रम में लग जाना चाहिए ॥ १३ ॥

चन्दनादि पचाय ।

चन्दनं त्रिफलां देवदारु पुष्टं कशेरुका । शैवालमजुर्नं दुर्वा निशेज्जगु वला तथा ॥ क्वाथोपेपां पिबेच्छुक्रमेहे शर्करया युतम् ॥ १४ ॥

बाल चन्दन, त्रिफला, देवदारु, बूट, कसेरु,

शैवाल, अर्जुन की छाल, दूब, हल्दी, दारु-हल्दी, अमर और खरैटी की जड़ मिलाकर २ तोले, काथ के लिए जल ३२ तोले, बचा हुआ काथ ४ तोले । इस काथ में खाँड़ डालकर शुक्रमेह में पिलाना चाहिए ॥ १४ ॥

दूर्वा च मूर्वा कुशकाशमूलं दन्ती  
समङ्गा सहशात्मली च । शुक्रमेहे  
कथितं जलेन पानं हितं वा रुधिर-  
प्रमेहे ॥ १५ ॥

दूब, मूर्वामूल, कुशा की जड़, काश की जड़, दन्तीमूल, मजीठ, सेमल की जड़, इनके ४ तोले काथ को शुक्रमेह तथा रक्तमेह रोग में पीने से रोगी श्रद्धा हो जाता है ॥ १५ ॥

शात्मल्याः स्वरसो ज्ञेयः शुक्रमेह-  
निपूदनः । शुक्रमेहहरो दृष्टः चौद्रेणामल-  
कीरसः ॥ १६ ॥

सेमल की जड़ का रस १-२ तो० शुक्रमेह को करता है । आँवले के रस में १-२ तो० शहद मिलाकर सेवन करने से भी शुक्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

स्वप्ने शुक्रच्युतिर्नस्याद्यदि चाद्यात्  
सुरमियाम् । सकर्पूररहितेनस्य सेवनञ्च तद-  
र्थकृत् ॥ १७ ॥

यदि शीतलघीनी के चूर्ण को सेवन किया जाय तो स्वप्न में शुक्रवर्ण नहीं होता । मात्रा—१ माश । अफीम और कर्पूर को मिलाकर उचित मात्रा में सेवन करने से भी रात्रि-मेह नष्ट होता है । मात्रा—१ रत्नी ॥ १७ ॥

त्रिफला दारु दार्व्यर्द्धं पार्थत्वग्रक-  
चन्दनम् । त्रिफला मुस्तकंदाकुकुष्टागुरु-  
कशेरुम् ॥ १८ ॥ ताम्बूलामयशैवालं  
श्लोकपादसमापनाः । कपायाः शमयन्त्याशु  
शुक्रमेहं न मंदायः ॥ १९ ॥

त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा,

अर्जुन की छाल और लाल चन्दन । त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, कूट, काली अमर और दसेरु । पान, वायबिडंग और सेवार । इन तीनों बवायों में से कोई बवाय ४ तोले पीना चाहिए । ये सब बवाय शुक्रमेह को तत्काल शान्त करते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १८-१९ ॥

कामधेनु रस ।

सिन्दूरमध्रं नागं च कर्पूरं हेममा-  
न्निकम् । खर्परं रजतं चापि मर्दयेत्कमला-  
म्भसा ॥ २० ॥ ततो गुञ्जामिताः कृत्वा  
यटीश्लयाप्रशोपिताः । एकैकां दापये-  
दासां कसेरुस्वरसेन च ॥ २१ ॥ प्रमेहान्  
विशतिं हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः । ज्वरं  
जीर्णं च यच्चमाणं कामधेन्वभिधो  
रसः ॥ २२ ॥

रससिन्दूर, अन्नक, नागभस्म, कर्पूर, स्वर्ण-माविक, सपरिया और चाँदी की भस्म एकर कर कमल के पुष्प के रस की भावना देकर मर्दन करे । पश्चात् एक एक रत्नी की गोली बनाकर छाया में शुष्क करके इनमें से एक-एक गोली कसेरु के स्वरस के साथ दे । यह भीम प्रकार के प्रमेह, विशेषकर शुक्रमेह, जीर्णज्वर और राजपक्षा को नष्ट करता है । इसका नाम 'कामधेनुरस' है ॥ २०-२२ ॥

शिलाजत्वान्दिवटी ।

शिलाजत्वान्भ्रेमानि लौहगुग्गुलुद्व-  
यम् । केशराजस्य तोयेन मर्दयेद्विसद्व-  
यम् ॥ २३ ॥ बलमानां यथै कृत्वा  
शैवालमलिलेन च । पीतः प्रातः प्रयुञ्जीत  
शुक्रमेहनिवृत्तये ॥ २४ ॥

शिलाजीत, अन्नकभस्म, स्वर्णभस्म, घोह-भस्म, गुग्गुलु और सोहागा को एकत्र कर भाँगे के स्वरस के साथ दो दिन तक घोट-कर तीन-तीन रत्नी की गोली बनाये । उगरी सेवार के जत्र के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल

सेवन करे तो शुक्रमेह रोग निवृत्त हो जाता है । मात्रा ३ रत्ती ॥ २३-२४ ॥

चन्दनादिचूर्ण ।

चन्दनं शाल्मलीपुष्पं त्रिजातं रजनी-  
द्वयम् । अनन्तां शारिवां मुस्तमुशीरं यष्टि-  
कामले ॥ २५ ॥ स्वर्णपत्रां शुभा भार्गी  
देवादारु हरीतकीम् । सर्वं द्विगुणितं लौहं  
चैकत्र परिमर्दयेत् ॥ २६ ॥ प्रमेहा  
विंशतिः श्वासः कासो जीर्णज्वरस्तथा ।  
प्राशनादस्य नश्यन्ति दुर्नामानि च  
कामला ॥ २७ ॥

चन्दनमत्र श्वेतम् ।

चन्दन, सेमर के फूल, त्रिजात (दालचीनी,  
छोटी इलायची, तेजपात), हल्दी, दारुहल्दी,  
अनन्तमूल, शारिषा, नागरमोधा, खस, मुलेठी,  
आविला, सनाय, बंशलोचन, भारंगी, देवदारु  
और हृद् ये समभाग ले तथा इन सबका द्विगुण  
लोहभस्म मिश्रित कर मर्दन करे । बीस प्रकार  
के प्रमेह, श्वास, कास, जीर्णज्वर, अशं और  
कामला रोग इस चूर्ण के सेवन से विनष्ट  
होते हैं । मात्रा-१॥ रत्ती ॥ २५-२७ ॥

इसमें चन्दन श्वेत लेना चाहिए ।

मान्तिकादिचूर्ण ।

मान्तिकं पारदं गन्धं खर्परं गिरिमृत्ति-  
काम् । शिलाजत्वभ्रलोहानि शाल्मल्याः  
कुसुमं त्र्यम् ॥ २८ ॥ विदारिं गोक्षुरं  
वीजं चैकत्र परिमर्दयेत् । मापमात्रं प्रयु-  
ञ्जीत शुक्रमेहनिवृत्तये ॥ २९ ॥

सोनामाखी, पारा, गन्धक, खपरिया, गेरु  
शिलाजीत, भद्रकभरम, लोहभस्म, सेमर के  
फूल, दालचीनी, विदारिकंद और गोखरु के  
बीज को एकत्र कर घोट छे । शुक्रमेह  
की निवृत्ति के लिये एक-एक माशा सेवन  
करे ॥ २८-२९ ॥

शाल्मलीघृत ।

शाल्मलीद्रवसंयुक्तं सर्पिश्छागीपयोऽ-  
न्वितम् । अश्वगन्धां वरीं रास्नां मुशलीं  
विश्वभेषजम् ॥ ३० ॥ अनन्तां मधुकं  
द्राक्षां दत्त्वा च पलमानतः । पचेन्मन्दा-  
ग्निना वैद्यः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥ ३१ ॥  
प्रमेहान्निखिलान् हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः ।  
क्लैव्यं धातुक्षयं शोषं कासं चैतद्धरं  
घृतम् ॥ ३२ ॥

सेमर की छाल का रस १२८ तोले और  
यकरी का दूध १२८ तोले, घृत १२८ तोले ।  
असगन्ध, शतावरी, रास्ना, मुसली, सोठ,  
अनन्तमूल, मुलेठी और मुनक्का का क्लक चार-  
चार तोले मिलाकर घैघ धीमी आँच से मिट्टी के  
पात्र में पकावे । यह श्रेष्ठ घृत सब प्रकार के प्रमेह,  
विशेषकर शुक्रमेह, क्लीबता धातुक्षीणता शोष और  
कास को नष्ट करता है ॥ मात्रा ६ भाशा या १ तोला  
॥ ३०-३२ ॥

चन्दनासय ।

चन्दनं बालकं मुस्तं गम्भारिं नील-  
मुत्पलम् । प्रियङ्गुं पद्मकं लोधं मञ्जिष्ठां  
रक्तचन्दनम् ॥ ३३ ॥ पाठां किराततिकं  
च न्यग्रोधं पिप्पलं शटीम् । पर्पटं मधुकं  
रास्नां पटोलं काञ्चनारकम् ॥ ३४ ॥  
आम्रत्वचं मोचरसं प्रत्येकं पलमात्रकम् ।  
धातकीं पोडशपलां द्राक्षायाः पलविंश-  
तिम् ॥ ३५ ॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा  
शर्करायास्तुलां तथा । गुडस्यार्द्धतुलां चापि  
मासं भाण्डे निघापयेत् ॥ २६ ॥ चन्दना-  
सय इत्येष शुक्रमेहविनाशनः । वलपुष्टि-  
करो ह्यो वह्निसन्दीपनः परः ॥ ३७ ॥

सकंद चन्दन, मुगन्धबाला, नागरमोधा,  
रक्तमाखी, नीलकमल, प्रियंगु पूत, पद्माख,  
लोध, मजीठ, लालचन्दन, पाड़ी, चिरायता,



वरगद, पीपल, कचूर, पित्तपापडा, मुलेठी, रास्ना, परबल की पत्ती, कचनार की छाल, आम की छाल और मोचरस । ये सब चार-चार तोले, धार्य के फूल ६४ तोले और मुनवा ८० तोले । इनको २१ सेर १६ तोले जल में ढाले तथा उसी में २ सेर शकर और २ १/२ सेर गुड़ ढालकर सृत्पात्र में एक मास तक बन्द रखले । इसका नाम 'बन्दिनासव' है । यह शुक्रमेह का नाशक, बलवर्धक, पौष्टिक, हृदय के लिए हितकारक तथा परम अग्निसन्दीपन है । मात्रा—२ तोला ॥ ३३-३७ ॥

शुक्रमेह में अपथ्य ।

अभिष्यन्द्यतितीक्ष्णं च पानान्नं वह्नि-सूर्ययोः । सन्तापं स्त्रीप्रसक्तिं च वेगरोधं प्रजागरम् ॥ ३८ ॥ क्रोधं शोकं दिवानिद्रां लङ्घनं चातिचिन्तनम् । अत्यालस्यम-सत्सङ्गं शुक्रमेहे विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

शुक्रमेह में कफजनक और अतितीक्ष्ण अन्नपान, अग्नि और सूर्य की गरमी, स्त्रीप्रसंग, मल-मूत्रादि के वेग का अवरोध, रात्रि-जागरण, क्रोध, शोक, दिन में शयन, उपवास, अधिक चिन्ता, आलस्य और दुर्जन-ससर्ग परित्याग्य है ॥ ३८-३९ ॥

शुक्रमेह में पथ्य ।

सुपाच्यं शुक्रकृच्चान्नं सत्संसक्तिश्च सत्कथा । शान्तिग्रन्थस्याध्ययनं हितान्य-त्रेशचिन्तनम् ॥ ४० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शुक्रमेहा-धिकारः समाप्तः ।

इस रोग में सुपाच्य और शुक्रवर्धक आहार, सत्पुरुषों का ससर्ग, सत्कथा, शान्तिप्रद ग्रन्थों का अध्ययन और ईश्वरोपासना में समय यापन हितकारक होते हैं ॥ ४० ॥

इति सरयूमत्साधप्रिपाठिधिरचित्तायां भैषज्य-रत्नावल्यां रत्नप्रामांनिध्यायां व्याहृष्यायां शुक्रमेहाधिकारः समाप्तः ।

अथ लसीकामेहाधिकारः ।

लसीका मेह का निदान और लक्षण ।

मधुराणां फलानाञ्च मूलानाञ्च गुडो-द्भवम् । द्रव्याणाञ्चातियोगाच्च तथैवाति-परिश्रमात् ॥ १ ॥ मानसश्रमशीलानां वर्ज्जयित्वा तु कायिकम् । गुरुपर्युषित-क्लिन्नाभिष्यन्दिद्रव्यभोजनात् ॥ २ ॥ आ-नूपमत्स्यमांसादिभोजनादतिभोजनात् । एभिर्निदानैः संदुष्टो यकृतपकाश-यस्तथा ॥ ३ ॥ वृक्कयोर्मूत्रकोपे च जन-यित्वात्ततं ततम् । मूत्रमार्गेण तरलं पूय-रक्तादिसन्निभम् ॥ ४ ॥ समेदस्कं सल-सिकं नराणां स्रावयेन्मुहुः । सालककप-यस्तुल्यं मूत्रं सम्यक् प्रवर्तयेत् ॥ ५ ॥ कदाचिज्जायते मूत्रं पूयरक्तादिभिर्धनम् । स्थूलं सूत्रनिभं तस्मादधिका जायते व्यथा ॥ ६ ॥ दोषदूष्यादिभेदेन मूत्रस्य हासवर्द्धने । तथा वर्णविभेदश्च जायते मोहनः सदा ॥ ७ ॥

मीठे फल, मूल और गुड़ से बने पदार्थों के अतिसेवन से, अधिक परिश्रम से, मानसिक श्रम करनेवाले किन्तु शारीरिक श्रम न करने-वाले व्यक्तियों के यह लसीका मेह होता है । भारी वासी, बिलज ( गीला, मड़ा सा ), अभिष्यन्दी द्रव्यों के सेवन से, आनूप देश के मांस और मछली आदि के अतिभोजन से यकृत और पत्रवाशय दूषित हो जाते हैं जिससे वृक्क और मूत्राशय में छत हो जाते हैं और मूत्रमार्ग से पूय, रक्त, नेदा, लसीका आदि भिला हुआ पेशाब चार-चार आता है । मूत्र का रंग लाल के जल जैसा भी होता है । कभी कभी पेशाब, पीव और रक्त गाढ़ भी आते हैं । कभी सूत-जैसे मोटे तन्तु भी आते हैं । कभी इस प्रकार के प्रनेहरीणी के दोष दूष्य आदि

के भेद से पेशाब की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है । इसी प्रकार रग में भी भेद होता है ॥ १-७ ॥

वातिकलसीका मेह के लक्षण ।

वातजो लसिकामेहो चाम्लगन्धि-शोणितम् । आमिन्नाजलवन्मूत्रं मुहुर्मूत्रयते नरम् ॥ विश्लिष्टाः सन्धयस्तस्मिन् मूलं सम्यक् न निःसरेत् ॥ ८ ॥

वातजन्य लसीका मेह में मूत्र में खटास ( खटाई के द्रव्यों की सी ) और रधिर की सी गन्ध आती है और जल की तरह बार-बार पेशाब आता है । उसकी सन्धियाँ जकड़ी सी दिखती सी रहती हैं एवम् दस्त साफ नहीं होता ॥ ८ ॥

पैत्तिक के लक्षण ।

यनं सपूर्यं मूत्रञ्च पैत्तिकेऽधिकपूति-मत् । जायते चास्य वैरस्यं सन्तापः करपा-दयोः ॥ ९ ॥

पैत्तिक लसीका मेह में गाढ़ा प्ययुक्त अधिक दुर्गन्धित मूत्र आता है । मुख का स्वाद विगड़ जाता है और हाथ पैरों में दाह होता है ॥ ९ ॥

श्लैष्मिक के लक्षण ।

श्लैष्मिके लसिकामेहे मूत्रं शुक्लं तथाविलम् । तथापर्युपिते तस्मिन्नुपत्य-च्छमधोधनम् । क्षुन्नाशो वदन्तणकटि-व्यथा मम्यक प्रजायते ॥ १० ॥

कफजन्य लसीका मेह में मूत्र में थोड़ा वीर्य मिलता होता है । बासी मूत्र में नीचे कुछ जम जाता है और ऊपर स्वच्छ मूत्र रहता है । भूख कम हो जाती है और कमर-अपड-कोप आदि स्थानों में दर्द होता रहता है ॥ १० ॥

दो तीन दोषों के लक्षण ।

द्वित्रिदोषभे मेहे मिश्रं लक्षण-मीक्ष्यते ॥ ११ ॥

दो या तीन दोषजन्य लसीका मेह में प्रमेह के मिश्रित लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

साध्यासाध्य विचार ।

सुसाध्योऽसौ भवेद् यूनामल्पकाल-भवो गदः । नोचेदसाध्यो दुःसाध्यो भवेदेव न संशयः ॥ १२ ॥ कदाचित् प्रवलीभूय प्रशाम्येत् पथ्यसेवनात् । ततः पुनर्वर्द्धमानः कालात् कालवशं नयेत् ॥ १३ ॥

जवान रोगी के थोड़े दिन का उत्पन्न लसीका मेह साध्य है, अन्यथा दुःसाध्य ( कठिनता से आराम होनेवाला ) और असाध्य ही है । कभी कभी प्रबल होकर भी पथ्यसेवन से शान्त हो जाता है और बाद में फिर बढ़कर प्राण ले लेता है ॥ १२-१३ ॥

लेसीकामेह की चिकित्सा ।

तिन्दुनादि ।

तिन्दुमिल्वं विडङ्गञ्च व्याघ्री धात्री च जाम्बली । बबूलं लोहितञ्चैव खदिरं रक्तचन्दनम् ॥ १४ ॥ एषां क्वाथो हरेन्मे-हान् लसिकारुण्यं सुदारुणम् । तथा मा-ञ्जिष्ठमेहादि नानोपद्रवसंयुतम् ॥ १५ ॥

तेन्दू, बेल, बायबिहग छोटी कटेरी आंवला, नागदमन, बबूल, रोहेड़ा, खैर और लाल चन्दन, इन सबका ४ तोला काय कष्टदायक लसीकामेह और अनेक उपद्रवयुक्त मजिष्ठामेह को नष्ट करता है ॥ १४-१५ ॥

चन्दनादि चूर्ण ।

रक्ताङ्गनबबूलरसः मियङ्गु जम्बाम्र-पीजेन्द्रयंत्रयमानी । वन्या च सा मोच-रसो गुडूची लोहस्य भरम सममेव सर्वम् ॥ १६ ॥ मात्रैकमापममिता विधेया प्रोक्तं महेशेन च चन्दनादि । चूर्णं प्रमेहान् सन्तारच तूर्णं सप्य-

रक्तं लसिकाख्यमेहम् । सोपद्रवं हन्ति  
तथाग्निमान्द्यं तृष्णाज्वरारोचकरोग-  
संघान् ॥ १७ ॥

केसर, बबूल, धोल प्रियंगु जामुन और  
धाम की गुठली की मीगी, इन्द्रजौ, अज-  
पाइन, असगन्ध, मोघरस, गिलोय और लौह-  
भस्म सषको समान भाग लेकर चूर्ण कर ले ।  
इस चूर्ण को १ माशा की मात्रा में सेवन  
कराने से सब प्रकार के प्रमेह, पूष और रक्त-  
युक्त लसिकामेह, मन्दाग्नि, ज्वर, अरुचि आदि  
अनेक उपद्रवयुक्त प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १६-१७ ॥

सोमनाथ रसो हेमनाथो वक्रेश्वरस्तथा ।  
चन्द्रप्रभाख्या गुटिका तथैव चन्दना-  
सवः ॥ १८ ॥ तैलं पल्लवसारख्यं  
श्रीगोपालाभिधं तथा । युञ्जयात् युक्तयजु-  
सारेण व्याधौ चास्मिन् प्रयत्नतः ॥ १९ ॥

सोमनाथरस, हेमनाथरस, वक्रेश्वररस, चन्द्र-  
प्रभावटी श्रीगोपाल तेल सषको युक्ति के अनुसार  
प्रयुक्त करना चाहिये । इससे लसिकामेह में लाभ  
होता है ॥ १८-१९ ॥

पथ्य ।

रक्तशाल्योदनं मुद्गं यवा वास्तूक  
मेव च । पालंकी चैव वेत्राग्रं कर्कोटौ  
कदली तथा ॥ २० ॥ हिमालयप्रदेशे  
च वासो वा सुस्थचितता । हितानेतान्  
निपेवेत् गुर्वभिष्यन्दिभोजनम् ॥ २१ ॥  
मत्स्यं मांसं तथा रौद्रसेवाध्वा परिश्र-  
मम् । वज्जयेत् यत्नतो धीमान् आयुरा-  
रोग्यवृद्धये ॥ २२ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां लसिका-  
मेहाधिकारः समाप्तः ।

हिमालय की तरहटी में गिवाम, घित्त की  
शांति यह सब लसिकामेह के रोगी के लिये  
पथ्य है । भारी, अभिष्यन्दी भोजन, मद्यली,  
मांस, क्रोध, भूष, परिश्रम, मीथुन और मार्ग  
चलना यह सब यत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए;  
क्योंकि ये अपथ्य हैं ॥ २०-२२ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्या भाषाटीकायां लसिका-  
मेहाधिकारः समाप्तः ।

### अथ प्रमेहपिडिकाधिकारः

प्रमेहपिडिकायां तु हितं शोधनमु-  
च्यते । सर्पिस्तैलं च कुष्ठं न विविच्यत्र च  
योजयेत् ॥ १ ॥

प्रमेहपिडिका में शोधन औषध हितकारक  
होती है । कुष्ठनाशक घृत और तैल का भी  
विचार कर इसमें प्रयोग करे ॥ १ ॥

अनन्तां शारिवां द्राक्षां त्रिवृतां स्वर्ण-  
पत्रिकाम् । कर्द्वीं हरीतकीं वासां पिञ्जुमर्द-  
निशायुगम् ॥ २ ॥ बीजं गोक्षुरजं चापि  
काथयित्वा जलं पिबेत् । नाशं यान्ति  
प्रमेहोत्था अनेन पिडिका ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अनन्तमूल, शारिवा, मुनक्का, निशोध, सनाय,  
कुटकी, हृद अरुसे की जड़ की छाल, नीम की  
छाल, हल्दी, दादहल्दी और गोखरू के बीज के  
काथ का पान करे । इससे प्रमेहपिडिकाएँ  
अवश्य नष्ट हो जाती हैं ॥ २-३ ॥

मुद्गपर्णी मापपर्णी त्रिवृदारग्वधः  
शटी । वृद्धदारकबीजं च नीलिन्येला  
हरीतकी ॥ ४ ॥ श्यामानन्ता देवपुष्प-  
मित्येषां साधुसाधितः । काथो हन्यात्  
प्रमेहोत्थाः पिडिकाः क्षिप्रमेव हि ॥ ५ ॥

मुद्गपर्णी, मापपर्णी, निशोध, अमलतास,  
कचूर, विधारा के बीज, नील, इलायची, हृद,  
श्यामालता, अनन्तमूल और लौंग का उत्तम

लालशाली चावल का भात, मूँग, जौ,  
वधुआ, पालक, धेत की कोंपल, ककोड़ा, केला,

रीति से सिद्ध किया हुआ ४ तोला क्वाथ प्रमेह-  
जन्य पिण्डिकाओं को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥  
४-२ ॥

मकरध्वज रस ।

सिन्दूर हेमलौहं च देवपुष्पं सचन्द्रकम् ।  
जातीफलं मृगमदं चैकत्र परिमर्दयेत् ॥ ६ ॥  
पर्णाभ्रसा ततः कुर्याद्वटिकां वल्लसम्भि-  
ताम् । सेवितश्छागपयसा प्रमेहांस्तत्-  
कृतान् गदान् ॥ ७ ॥ क्लैब्यं धातुक्षयं कासं  
जीर्णं च विषमज्वरम् । रसोऽयं क्षपयेत्तूर्णं  
मकरध्वजसंज्ञकः ॥ ८ ॥

रससिन्दूर, स्वर्णभस्म, लोहभस्म, लौंग,  
कपूर, जायफल और कस्तूरी समभाग एकत्र कर  
पान के रस में घोटकर तीन-तीन रत्ती की  
गोली बनावे । बकरी के दूध के साथ सेवित होने  
पर यह रस सब प्रकार के प्रमेहों और तज्जन्य  
अन्यान्य रोगों को तथा क्लीबता, धातुक्षय,  
कास, जीर्णज्वर और विषमज्वर को शीघ्र  
नष्ट करता है । इसका नाम 'मकरध्वज रस'  
है । मात्रा २ रत्ती ॥ ६-८ ॥

शारिवादि लौह ।

शारिवा नीलिनी रास्ना गुडूच्येला  
च चित्रकः । माणशूरणशङ्खिन्यस्त्रिवृद्धल्ला-  
तकाभयाः ॥ ९ ॥ एभियु तमयो इन्ति  
प्रमेहपिण्डिका दश । वातरक्तं पडर्शासि  
त्वग्गदान् निखिलानपि ॥ १० ॥

शारिवा, नील की मूल, रास्ना, गुधं,  
इलायची, चीता की जड़, मानकन्द, जमीकन्द,  
शङ्खपुष्पी, निशोथ, भिलाषा और हृद, इनसे  
युक्त लोहभस्म दश प्रकार की प्रमेहपिण्डिका,  
वातरक्त, घृह प्रकार के अर्श और सय प्रकार के  
घर्मरोग नष्ट करता है ॥ ९-१० ॥

वृहत्श्यामाघृत ।

श्यामा वारा वला पयं विदारी नील-  
मुत्पलम् । अष्टवर्गं च मधुकमश्मगन्धो

शतावरी ॥ ११ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे  
मञ्जिष्ठा चन्दनद्वयम् । द्राक्षा प्रसारणी-  
मूलं सविश्वा कटुरोहिणी ॥ १२ ॥ एषां  
कर्पमितैर्भागैर्वृत्प्रस्थं पचेद्विपक्वम् । श्यामा-  
शतावरीक्षूणां विदार्याः स्वरसं तथा ॥ १३ ॥  
द्यागीपयश्च तत्तुल्यं दत्त्वा मन्देन  
वह्निना । सिद्धमेतद् घृतं पात्रे स्थापयेदथ  
मृगमये ॥ १४ ॥ प्रमेहांस्तत्कृतान्  
व्याधीन् क्लीबतां वातशोणितम् । शुक्रक्षयं  
रक्तपित्तं हृद्रोगं धातुशोषणम् ॥ १५ ॥  
नाशयेन्नात्र सन्देहः श्यामाघृतमिदं  
वृहत् । बालानां पुष्टिजननं गर्भदौषहरं  
परम् ॥ १६ ॥

कक्क के लिये श्यामालता, त्रिफला, बरि-  
यारा, पटुमकाठ, विदारीकंद, नीलकमल, अष्ट-  
वर्ग ( जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि,  
वृद्धि, काकोली शीरकाकोली ), मुलेठी, अस-  
गन्ध, शतावरी, अजमोदा, हृदी, दारहरदी,  
मजीठ, सक्तेदचन्दन, रक्तचन्दन, मुनका, प्रसार-  
णीमूल, सोंठ और कुटकी । घृत १२८ तोले  
श्यामालता, शतावरी, ईस और विदारीकंद  
प्रत्येक का १२८ तोले स्वरस तथा बकरी का  
दूध १२८ तोले मिलाकर धीमी आँच से घृत  
पकावे । इस प्रकार सिद्ध हुए इस घृत को निट्टी  
के पात्र में रख दे । यह घृत सब प्रकार के  
प्रमेह, तज्जन्य अन्यान्य रोग, क्लीबता, वातरक्त,  
शुष्कक्षय, रक्तपित्त, हृद्रोग और धातुशोष को  
निःसंदेह नष्ट करता है । इसका नाम 'वृहत्  
श्यामाघृत' है । बालकों के शरीर को परिपुष्ट  
करने और गर्भ के दोषों को हरने के लिये यह  
उत्कृष्ट औषध है । मात्रा-६ मासे-१ तोला  
॥ ११-१६ ॥

शारिवाद्यासय ।

शारिवां मुस्तकं लोषं न्यग्रोधं पिप्पलं  
शटीम् । अनन्तां पत्रकं बालं पादां धात्रीं

गुहूचिकाम् ॥ १७ ॥ उशीरं चन्दनद्वन्द्वं  
यमार्णो कटुरोहिणीम् । पत्रमेलोद्वयं कुष्ठं  
स्वर्णपत्रां हरीतकीम् ॥ १८ ॥ एषां चतु-  
ष्पलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णां कृतान् शुभान् ।  
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुहृतुलात्र-  
यम् ॥ १९ ॥ पलानि दशधातक्या  
द्राक्षां पट्टिपलां तथा । मासं संस्थापये-  
द्भाण्डे संवृते मृगमये शुभे ॥ २० ॥  
शारिवाद्यासवस्यास्य पानात् मेहारच-  
विंशतिः । शरात्रिकादयः सर्वाः पिडिका-  
स्तत्कृत्तारच याः ॥ २१ ॥ औपदंशिक-  
रोगारच वातरक्तं भगन्दरम् । सर्षपे एते शमं  
यान्ति व्याधयो नात्र संशयः ॥ २२ ॥

शारिवालता, नागरमोथा, लोथ, बरगद  
की झाल, पीपर की झाल, कचूर, धनन्तमूल,  
पटुमकाठ, सुगन्धबाला, पाइरि, आँवला, गुर्च,  
खस, सक्केचन्दन, लालचन्दन, अजवाइन,  
कुटकी, तेजपात, छोटो हलायची, बड़ी हलायची,  
कूट, सनाय और हृद हगल्का सोलह-मोलह तोले  
सूक्ष्म उत्तम चूर्ण लेकर ११ सेर १६ तोले  
पान में डाले तथा उसमें १२ सेर  
गुद, ४० तोले धाय के फूल और ३ सेर  
मुनक्का मिलाकर मिट्टी के पात्र में मुख बन्द  
करके एक मासपर्यन्त रखले । इसका नाम  
'शारिवाद्यासव' है । इस आसव के सेवन  
से बीस प्रकार के प्रमेह तथा प्रमेहजन्य शरा-  
विका आदि पिडिकाएँ, औपदंशिक रोग, वातरक्त  
और भगन्दर ये सब रोग शान्त हो जाते हैं,  
इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १७--२२ ॥

प्रमेहपिडिका में अपथ्य

पानमन्मभिप्यन्दि रूक्षं तीक्ष्णं च दुर्ज-  
रम् । वेगरोधं व्यवायं च व्यायामं निशि  
जागरम् ॥ २३ ॥ सुरां सुतीक्ष्णां मत्स्यं

च पलाण्डुं च रसोनकम् । त्यजेत् सूर्या-  
ग्निमन्तापं प्रमेहजगदातुरः ॥ २४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहपिडिका-  
धिकारः समाप्तः ।

कफजमक, रूच, तीक्ष्ण और गुणपाक अन्न-पान,  
वेगरोध, मैथुन, व्यायाम, रात्रिजगरण, तीक्ष्ण,  
मदिरा, मधुली, प्याज, लहसुन, सूर्य और अग्नि  
की गरमी, ये सब प्रमेहपिडिकारोग में परित्याज्य  
हैं । मात्रा ६ मासे-१ तोला ॥ २३-२४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहपिडिका-  
धिकारः समाप्तः

अथ ध्वजभङ्गाधिकारः

मनुंसक के क्षयण, संख्या और निदान ।

क्लीबः स्यात् सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्य-  
मुच्यते । तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य  
कथ्यते ॥ १ ॥ तैस्तैर्भावैरहद्यैस्तु रिरंसोर्म-  
नसि क्षते । ध्वजः पतत्यधो नृणां  
क्लैब्यं समुपजायते ॥ २ ॥ द्वेष्यस्त्रीसम्प्र-  
योगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् । कटुका-  
म्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ ३ ॥  
पित्ताच्छु क्रान्तो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात् प्रजा-  
यते । अतिव्यवायशीलो यो न च वाजी-  
क्रियारतः ॥ ४ ॥ ध्वजभङ्गमवाप्नोति स  
शुक्रक्षयहेतुकम् । महता मेहुरोगेण चतुर्थी  
क्लीबता भवेत् ॥ ५ ॥ वीर्यवाहिशिरा-  
च्छेदात् मेहनानुन्नतिर्भवेत् । बलिनः  
क्षुब्धमनसो निरोधाद् ब्रह्मचर्यतः ॥ ६ ॥  
पृष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भानि-  
मित्तजम् ॥ ७ ॥

बलिनः पुष्टस्य, जुब्धमनसः कामात्  
सञ्चलितमनसः, ब्रह्मचर्यममैथुनं तस्मात्  
निरोधात् शुक्रस्य क्लैब्यं भवति ।

रति-शक्तिहीन पुरुष को बलीब कहते हैं और  
रतिविषयक अशक्ति बलीबता कही जाती है ।  
यह बलीबता सात प्रकार की कही गई है । उसका  
निदान कहते हैं ।

भय, शोक आदि तथा अन्यान्य ग्रहण  
कारणों से रमणोत्सुक पुरुष का मन व्याहत  
हो जाने से मनुष्यों का शिश्न पतित हो  
जाता है, उससे नपु सकता हो जाती है ।  
द्वेषभाजन स्त्री के साथ सङ्गम करने से भी  
बलीबता होती है । इसका नाम मानस ( मनो  
विघातक ) बलीबता है ।

कच्चे, खट्टे उष्ण और नमकीन पदार्थ के  
अधिक सेवन से पित्त की वृद्धि होती है,  
उससे शुक्र का क्षय होना देखा गया है । उस  
शुक्रक्षय से भी बलीबता हो जाती है ।

जो मनुष्य अधिक स्त्रीप्रसङ्ग करता है,  
परन्तु धाजीकरण औषधादि का सेवन नहीं  
करता, उसको शुक्रक्षय जय ध्वजभङ्ग रोग हो  
जाता है ।

अति कठिन लिङ्गरोग से भी बलीबता हो  
जाती है । यह चौथी है ।

वीर्यवाहिनी शिरा के क्षिन्न हो जाने से बलीबता  
होती है । तथा कामाविर्भाव के कारण सञ्च  
लितचित्त चलवान् पुरुष को मैथुन का प्रसङ्ग  
न होने से शुक्रस्तम्भजन्य बलीबता हो जाती है ।  
यह छठी बलीबता है ॥ १-७ ॥

जन्मभ्रमृति यत् क्लैब्यं सहजं तद्धि  
सप्तमम् । असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च  
यद्भवेत् ॥ ८ ॥

मर्मच्छेदाद् वीर्यवाहिशिराच्छेदात्  
जन्म काल से जो बलीबता होती है, उसको  
सहज बलीबता कहते हैं । यह सातवीं बलीबता है ।

सहज बलीबता और वीर्यवाहिनी शिरा के

क्षिन्न होने से जो बलीबता होती है ये दोनो  
असाध्य होती हैं ॥ ८ ॥

क्लैब्यचिकित्सा ।

क्लैब्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतु-  
विपर्ययः । मुख्यं चिकित्सितं यस्मान्नि-  
दानपरिवर्जनम् ॥ ९ ॥

जो-जो साध्य बलीबताएँ हैं, उनमें निदान का  
विपर्यय करना चाहिए, अर्थात् जिन कारण से  
बलीबता उत्पन्न हो, उससे विपरीत क्रिया करनी  
चाहिए, क्योंकि निदानपरिवर्तन मुख्य चिकित्सा  
माननी गई है ॥ ९ ॥

अश्वगन्धाघृत ।

अश्वगन्धापलशतं शुभदेशे समुत्थि-  
तम् । पुण्येऽहनि समुद्धृत्य साधयेत् श्ल-  
क्ष्णचूर्णितम् ॥ १० ॥ द्रोणेऽम्मसि पचे-  
त्तावधावत् पादावशेषितम् । सर्पिःप्रस्थे

पचेत्तेन गव्यं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ११ ॥

कपायं छागमांसस्य दद्यान्धतद्वयस्य च ।

कल्कानि श्लक्ष्णपिष्टानि कर्षमात्राणि

योजयेत् ॥ १२ ॥ काकोलीद्वयमृद्धीका

द्वे मेदे चाथ जीनकम् । स्वयंगुप्ता ऋष-  
भका धेला मधुकमेज च ॥ १३ ॥ मृद्धीका-

मुद्गपर्यायौ च जीमन्ती चपला पला ।

नारायणी विदारी च दन्त्रा सम्यग्गपाच-  
येत् ॥ १४ ॥ सिता चतुष्पलं शीते क्षिपे-

न्मधु पलाष्टकम् । लीड्रा कर्पं पयः शीतं

शीतं चानुपिनेज्जलम् ॥ १५ ॥ वृद्ध-  
बालक्षतक्षीणाः क्षीणमांसपलेन्द्रियाः ।

पुष्टिनेजोमलारोग्यं लभन्ने प्राश्य मान-  
वाः ॥ १६ ॥ भवेत् सप्तविधोऽपि युजे  
स्त्रीसहस्रगः । उन्ध्यातीतनवाः स्त्री च  
लभते पुनमुत्तमम् ॥ १७ ॥ एतन्निमित्तम्-

शिव्यामश्वगंधाघृतं महत् । क्षीणे रेतसि  
कर्तव्या सर्वा शुक्रकरी क्रिया ॥१८॥

उत्तम स्थान में उत्पन्न हुई असगन्ध किसी  
पवित्र दिन में उखाड़कर ५ सेर ले । उसका  
सूक्ष्म चूर्ण करके २५ सेर ४८ तोले जल में  
पकावे । ६ सेर ३२ तोले जल अवशिष्ट रहने  
पर छानकर इस पाथ के साथ १२८ तोले  
घृत पकावे । इस पाथ के साथ पाक होने पर  
६ सेर ३२ तोले गाय के दूध के साथ पाक-  
करे । पश्चात् १० सेर बकरी के मांस को अष्ट-  
गुण जल में पकाकर उसके चतुर्धावशिष्ट क्वाथ  
के साथ पाक करे । कल्कायं द्रव्य—काकोली,  
श्रीरकाकोली, मुनक्का, मेदा, महामेदा, जीवक,  
केवाँच के बीज, ऋषभक, इलायची, मुलेठी,  
मुनक्का, मुद्गरपर्णी, जीवन्ती, पीपरि, खरंठी,  
शतावरी और विदारीकन्द । इन प्रत्येक एक-एक  
तोला श्रोत्रधियों के महीन पिसे हुए कल्क के  
साथ घृत सिद्ध कर उतार ले । शीतल हो  
जाने पर १६ तोला शकर और ३२ तोला  
मधु मिलाकर रख ले । शीतल दुग्ध के साथ  
एक-एक तोला यह घृत चाटकर परचात् शीतल  
जल पिये । वृद्ध, बालक, वृद्धीण, क्षीण-  
मांस, क्षीणधल और क्षीणेन्द्रिय मनुष्य इस  
घृत का प्राशन कर पुष्टि, तेज बल और आरोग्य  
को प्राप्त करते हैं । ७० वर्ष की अवस्था-  
वाला भी नवयुवक के समान हजार स्त्रियों के  
साथ प्रसङ्ग कर सकता है । वन्या तथा अती-  
तघयस्क स्त्री भी उत्तम पुत्र को पाती है ।  
शरिबनीकुमारों ने इस महत् अश्वगन्धा घृत  
को बनाया था । वीर्य के क्षीण हो जाने पर  
समस्त शुक्रवर्धक क्रिया करनी चाहिए । मात्रा—  
६ भाशा से १ तोला ॥ १०-१८ ॥

अमृतप्राश घृत ।

ह्यागमांसतुलां चैव वाजिगन्धां तथैव  
च । जलद्रोणे विपक्वव्यं कुर्यात्पादावशो-  
पितम् ॥ १९ ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तेन ह्यागी-  
क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ मूर्च्छनार्थे प्रदातव्यं  
कुंकुमं च द्विकार्पिकम् ॥ २० ॥ बला-

मूलं च गोधूमं चाश्वगन्धा तथामृता ।  
गोक्षुरं च कशेरुश्च त्रिकटु च सधन्य-  
कम् ॥ २१ ॥ तालांकुरं त्रैफलं च कस्तूरी  
बीजवानरी । मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीव-  
कर्षभकौ शटी ॥ २२ ॥ दावी प्रियंगु-  
र्मञ्जिष्ठा नतं तालीशपत्रकम् । एलापत्र-  
त्वचं नागं जातीकुसुमरेणुकम् ॥ २३ ॥  
सरलं जातिकोपं च सूक्ष्मैलोत्पलसारिवा ।  
मूलं विम्वस्य जीवन्ती ऋद्धिदृद्धी उदु-  
म्बरम् ॥ २४ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्राणि पेप-  
यित्वा विनिक्षिपेत् । वस्त्रपूते सुशीते च  
सितां दद्याच्छरावकम् ॥ २५ ॥ कर्षमात्रं  
ततः खादेदुष्णदुग्धानुपानतः । वृंहणीयं  
विशेषेण बलपुष्टिकरं सदा ॥ २६ ॥  
भमेहान् ध्वजभद्रांश्च नाशयेदधिकल्पतः ।  
एतद् दृष्यकरं सर्पिः काशिराजेन निर्मि-  
तम् ॥ २७ ॥ दृष्टं सिद्धफलं शेतद्वाजी-  
करणमुच्यते । अमृतप्राशनामेदं सर्गामय-  
निपूदनम् ॥ २८ ॥ शिरोरोगे नष्टशुक्रे  
स्त्रीषु नष्टार्त्तमासु च । न च शुक्रं क्षयं  
याति बलं हासं न च व्रजेत् ॥ २९ ॥  
दश स्त्रीणां रमेन्नित्यमानन्दमुपजायते ।  
कासाश्यामशूलघ्नं बद्धकोष्ठहरं परम् ॥  
सिद्धघृतप्रयोगेण स्थिरं भवति यौव-  
नम् ॥ ३० ॥

५ सेर बकरी का मांस और क्वाथ के  
लिए जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट जल  
६ सेर ३२ तोले, ५ सेर असगन्ध, क्वाथ के  
लिए जन २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट जन  
६ सेर ३२ तोले । इन क्वाथों के साथ १२८  
तोले घृत को पकावे । क्वाथ के साथ पाक  
होने पर घृत के चौगुने ( ६ सेर ३२ तोले )  
दूध के साथ पकावे । मूर्च्छा के लिये दो तोले

केसर डालना चाहिए । एक-एक तोला बरियारे के फूल, गेहूँ, असगन्ध, गिलोय, गोखरू, कसेरू, त्रिकटु, धनिया, तालांकुर, त्रिकला करतूरी, केवोंच के बीज, मेदा, महामेदा, फूट, जीवक, षष्टपभक, कचूर, दारुहल्दी, प्रियंगुफूल, मजीठ, तगर, तालीशपत्र, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर, जावित्री, लौंग, रेणुका के बीज, सरलकाष्ठ, जायफल, छोटी इलायची, कमल, सारिवा, कुंदरू (कन्दूरी) का मूल, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि और गूलर पिसवा कर फालित कर डाल दे । घृत सिद्ध होने पर घख से छान ले । ठंडा होने पर इस घृत में ३२ तोले शकर मिला दे । प्रतिदिन उष्ण दुग्ध के साथ एक-एक तोला खाय । यह विशेष कर बृंहण और सदा बलपुष्टिवर्धक है । यह सब प्रकार के प्रमेह आदि ध्वजभङ्ग रोगों को निःसदेह नष्ट करता है । इस बल वीर्यवर्धक घृत को काशिराज ने बनाया था । यह घृत दृष्ट-सिद्धफल है । उत्तम बाजीकरण है । इसका नाम 'अमृतप्राश' है । सब रोगों को दूर करता है । शिरोरोग, नष्टशुक्र पुरुष और नष्टार्तवा स्त्री के लिये लाभदायक है । इसके सेवन से न वीर्य नष्ट होता है और न बल ही क्षीण होता है । प्रतिदिन दस स्त्री के साथ रमण करे, तो भी आनन्द प्राप्त होता है । कास, अर्श, आम-शूल और कोष्ठबद्धता को हरने के लिए यह उत्कृष्ट औषध है । इस सिद्ध घृत के सेवन से जीवन स्थिर रहता है । मात्रा—६ माशा से १ तोला तक ॥ १३-३० ॥

श्रीमद्वनानन्दमोदक ।

सूतो गन्धस्तथा लौहं त्रिसमं शुद्ध-  
मन्त्रकम् । कपूरं सैन्धवं मांसो धात्र्येला च  
कटुत्रयम् ॥ ३१ ॥ जातीकोपफलं पत्रं  
लवङ्गं जीरकद्वयम् । यष्टी मधु वचा कुष्ठं  
हरिद्रा देवदारुकम् ॥ ३२ ॥ ऐजलं टङ्गनं  
भार्गी नागरं पुष्पकेशरम् । मृद्धी तालीश-  
पत्रं च द्राक्षाग्निदन्तिबीजकम् ॥ ३३ ॥

बला चातिबला चोचं धनिकेभकणा  
शटी । सजलं जलदं गन्धा विदारी च  
शतावरी ॥ ३४ ॥ अर्कं वानरिबीजं च  
गोक्षुरं वृद्धदारुम् । त्रैलोक्यविजयाबीजं  
समांशं पेपयेद्भिपक् ॥ ३५ ॥ शतावरीरसं  
दत्त्वा श्लक्ष्णचूर्णं समाचरेत् । शाल्मली-  
मूलचूर्णं तु चूर्णाङ्घ्रिसममाहरेत् ॥ ३६ ॥  
चूर्णाङ्घ्रं विजयाचूर्णं विशुद्धं तत्र दापयेत् ।  
सर्वमेकत्र संयोज्य द्वागीक्षीरेण पेप-  
येत् ॥ ३७ ॥ मोदकार्थं सिता देया पाक-  
योग्या तथा मधु । नातिवाह्यं च धूमन्ते  
पाचयेन्मन्दवह्निना ॥ ३८ ॥ चातुर्जातं  
सकपूरं सैन्धवं सकटुत्रयम् । संचूर्ण्य च  
ततो देयं हव्यं किञ्चिन्निधापयेत् ॥ ३९ ॥  
पाकं ज्ञात्वा कर्पमितं मोदकं परिकल्पयेत् ।  
भूतनाथे सुरपतौ रतिनाथे तथैव च ॥ ४० ॥  
हुतभुक्ते गणपतौ मोदकाग्रं निवेदयेत् ।  
मूलमन्त्रं समुच्चार्य हुताशने समर्पयेत् ४१  
काश्चने राजते काचे मृद्गाएडे वा निधा-  
पयेत् । प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा हरगौरौ  
प्रपूजयेत् ॥ ४२ ॥ कालानलभवं  
बीजं सतिलं घृतसंयुतम् । गव्यक्षीरं  
सितायुक्कमनुपेयं च पायसम् ॥ ४३ ॥  
विलासार्थं प्रदोषे च मोदकं परिपेव-  
येत् । त्रिसप्ताहप्रयोगेण कामान्धो  
जायते नरः ॥ ४४ ॥ कामज्वरो  
भवेत्तावधावन्नारी न गच्छति । स  
सहस्रं वरारोहा रमयत्यपि सोढ्रमः ॥ ४५ ॥  
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं वेगवीर्यं विवर्द्ध-  
येत् । प्रमदाप्राणसाहस्यं मत्तवारण-  
चिक्रमः ॥ ४६ ॥ वामावश्यकरो रम्य



ऊर्ध्वरेता भवेन्नरः । कामतुल्यं भवेद्रूपं  
स्वरः परभृतोपमः ॥ ४७ ॥ स्वगतुल्या  
भवेद्दृष्टिद्विजोऽपि तरुणायते । अष्टोत्तरं  
भजेद्दयस्तु भवेत्तस्य सुधोपमम् ॥ ४८ ॥  
वीर्यवृद्धिकरं श्रेष्ठं जरामृत्युविनाशनम् ।  
अपस्मारञ्जरोन्मादक्षयानिलगदापहम् ॥  
४९ ॥ कासं श्वासं सशोथं च भगन्दर-  
गुदामयम् । अग्निमान्धमतीसारं विविधं  
ग्रहणीगदम् ॥ ५० ॥ बहुमूत्रं प्रमेहं च  
शिरोरोगमरोचकम् । हन्ति सर्वान् गदान्  
घोरान् वातपित्तवलासजान् ॥ ५१ ॥  
बन्ध्या च मृतवत्सा च नष्टपुष्पा च या  
भवेत् । बहुपुत्रा जीववत्सा भवेद्दस्य निपे-  
वणात् ॥ ५२ ॥ हरते सूतिकारोगं वृत्त-  
मिन्द्राशानिर्यथा । मोदकं मदनानन्दं सर्व-  
रोगे महौषधम् । कथितं देवदेवेनरावणस्य  
हितार्थिना ॥ ५३ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म एक-एक तोला,  
अन्नक भस्म ३ तोला । कपूर, सेंधानमक,  
जटामांसी, आँवला, इलायची, सोंठ, मिर्च,  
पीपर, जायफल, तेजरात, लौंग, सक्केद जीरा,  
स्याह जीरा, मुलेठी बच, कूट, हर्षदी, देवदास,  
समुद्रफेन, सोहागा, भारंगी, सोंठ नागकेसर,  
काकडासिगी, तालीशपत्र, मुनका, चीत, इन्द्र  
जी, बला ( बरियारा ), अतिबला ( कंधी ),  
दालचीनी, धनिया, गजरीपरि, कचूर, सुगन्ध-  
धाला, नागरमोथा, असगन्ध, विदारीकन्द,  
शतावरि, मदर का मूल, केवाँच के बीज,  
गोलरू, विधारा और भाँग के बीज प्रत्येक  
एक-एक तोला, एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करे ।  
फिर शतावरि के रस में घोटकर बहुत महीन  
चूर्ण करे और सब चूर्ण का चौथाई भाग सेमर  
की जड़ का चूर्ण उसमें और मिलावे । तद-  
नन्तर चूर्ण का अर्ध भाग विशुद्ध भाँग का चूर्ण  
हालकर सफ़ेद एक में मिलाकर बकरी के दूध

के साथ पीसे । पश्चात् मोदक बनाने के निमित्त  
पाक-योग्य ( समष्टि चूर्ण से द्विगुण ) गकर  
को बकरी के दूध में घोलकर मन्द अग्नि से  
चासनी करे । चासनी ठीक हो जाने पर उतार  
कर उसमें पूर्वोक्त चूर्ण को मिला दे ।  
पश्चात् दालचीनी, इलायची, तेजरात, नाग-  
केसर, कपूर, सेंधानमक, सोंठ मिर्च और  
पीपर तथा वृत्त और मधु उपयुक्त परिमाण में  
मिला दे । पाक ठीक हुआ जानकर एक-एक  
तोले का लड्डू बनावे । मोदक तैयार हो जाने  
पर भूतनाथ, इन्द्र, कामदेव और गणेशजी को  
भोग लगाकर, मूलमन्त्र का उच्चारण करके  
कुछ अग्नि में डाले । पश्चात् मोदकों को  
सोने, चाँदी, काँच या मिट्टी के पात्र में रख  
दे । प्रातःकाल पवित्र होकर शिव और पार्वती  
की पूजा करे । पूजनोत्तर एक-एक लड्डू खाकर  
स्याह जीरा, तिल, गोदुग्ध और घृतयुक्त पायस  
का पान करे । बिलासार्थ प्रदोष काल में मोदक  
का सेवन करे । तीन सप्ताह के प्रयोग से मनुष्य  
कासान्ध हो जाता है । वह जब तक स्त्रीप्रसङ्ग  
नहीं करता, तब तक कामज्वर से पीड़ित रहता  
है । वह पुरुष हजार स्त्री के साथ रमण करने  
पर भी उत्साहित रहता है । लिंग की शिथि-  
लता नहीं होती । स्फूर्ति और वीर्य को बढ़ाता  
है । रतिकाल में प्रमदा की अपेक्षा अधिक  
शक्ति होती है । मत्तहस्ती के समान पराक्रमी,  
स्त्री को वश करनेवाला, सुन्दर और ऊर्ध्व-  
देता होता है । कामदेव के समान रूप, कौकिला  
के समान स्वर और गूद के समान दृष्टि हो  
जाती है । वृद्ध भी तरुण के समान हो जाता  
है । एकसौ आठ वर्ष की उसकी आयु हो जाती  
है । यह मोदक अमृत के समान श्रेष्ठ है, वीर्य  
को बढ़ाता है । जरा और मृत्यु का नाशक है ।  
अपस्मार, उन्मत्त, उन्माद, लय, मोघ, भगंदर,  
बयासीर, वातरोग, खाँसी, श्वास, अग्निमान्ध,  
अतिसार, विविध प्रकार के ग्रहणीरोग, बहुमूत्र,  
प्रमेह, शिरोरोग और भ्रूषि को नष्ट करता  
है । यह अस्मान्ध सब वातिक, पैतिक और  
स्लेष्मिक, घोर रोगों को नष्ट करता है । यन्त्र

के बहुत से पुत्र होते हैं । मृतपत्न्या की संतान जीवित होती है । जिसका मासिक होना रुक गया हो, उसको मासिक होने लगता है । जैसे इन्द्र का धनु वृष को नष्ट करता है वैसे ही यह मोदक स्तित्कारोग को नष्ट करता है । 'मदनामन्दमोदक' सब रोगों के लिये महौषध है । गणप के हितैषी देवदेव ( शिवजी ) ने इसका उपदेश किया था ॥ ३१-२३ ॥

कामिनीदर्पघ्न ।

कज्जलीकृतमुगन्धकशम्भोस्तुल्यमेव कनकस्य हि बीजम् । मर्दयेत्कनकतैलयुतं स्यात् कामिनीमदविधूनन एषः ॥ ५४ ॥ अस्य वल्लकमथो सितयाक्तं सेवितं हरति मेहगदौघान् । वीर्यदाढ्यकरणं कमनीयं द्रावणं निधुवने वनितानाम् ॥ ५५ ॥

एक-एक तोले पारा और गन्धक की कज्जली करके उसमें २ तोले धतूरे के बीज का चूर्ण मिश्रित कर धतूरे के बीज के तैल के साथ मर्दन करके रख ले । यह रस दित्रियों के मद को नष्ट करनेवाला है । तीन-तीन रत्नी की मात्रा में इस रस को शक्कर के साथ सेवन करे । यह रस सब प्रकार के प्रमेहों को हरता है, वीर्य को बढ़ करता है और रतिकाल में दित्रियों के मद को दूर करता है ॥ ५४-५५ ॥

स्वल्पचन्द्रोदयमकरध्वज

जातीफलं लवङ्गं च कर्पूरं मरिचं तथा । प्रत्येकं तोलकं दत्त्वा सुवर्णस्य च मापकम् ॥ ५६ ॥ अण्डजं मापमानं च सर्वं तुल्यमथेश्वरम् । यत्रतो मर्दयेत् खल्ले चतुर्गुणां वर्टी चरेत् ॥ ५७ ॥ एष चन्द्रोदयो नाम रसो वाजीकरः परः । हन्ति रोगानशेषांश्च बलवीर्याग्निवर्धनः ॥ ५८ ॥

एक-एक तोला जायफल, लौंग, कर्पूर और कालीमिर्च । एक-एक मात्रा सोने की भस्म और कस्तूरी तथा समष्टि का समभाग अर्थात् ४ तोला

और २ माशे रससिन्दूर मिलाकर अच्छे प्रकार घोटकर चार-चार रत्नी की गोलियाँ बना ले । इसका नाम 'चन्द्रोदय रस' है । यह परम उत्तम वाजी करण स्वल्पचन्द्रोदय सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है । बल, वीर्य और अग्नि को बढ़ाता है ॥ ५६-५८ ॥

शुद्धचन्द्रोदयमकरध्वज ।

पलं मृदुस्वर्णदलं रसेन्द्रात् पलाप्टकं षोडश गन्धकस्य । शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वं विमर्श्याथ कुमारिकाद्भिः ५९ तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटी-भिर्दिवसत्रयं च । पचेत् क्रमाग्नौ सिकता-ख्यमन्त्रे ततो रजःपल्लवरागरम्यम् ॥ ६० ॥ निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूरजांसि तद्वत् । जातीफलं सोपण-मिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाण्मेकम् ॥ ६१ ॥ चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य मापो भुक्तोऽहिवल्लीदलमध्यवर्त्ती । मदो-न्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकाण्डे ॥ ६२ ॥ घृतं घनी-भूतमतीवदुग्धं मृदूनि मांसानि समस्त-कानि । मापान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्या-न्यानन्ददायीन्यपराणि चात्र ॥ ६३ ॥ वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः समस्तगदखण्डनः प्रचुररोगपञ्चाननः । गृहेऽपि गृहभूपतिर्भवति यस्य चन्द्रो-दयः स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्द-ल्लभः ॥ ६४ ॥

कोमल स्वर्णदल ४ तोला, पारा ३२ तोला और गन्धक ६४ तोले ले । इनमें पारा और गन्धक की कज्जली करके उसी में उक्त स्वर्णदल को मिलाकर मर्दन करे । फिर लाल कपास के फूल के स्वरस के साथ मर्दन करे । उसके पदचाट् स्वारपाटा के स्वरस के साथ मर्दन

करके, दूध फपड़मिट्टी की हुई काँच की शीशी में भरकर, शीशी को बालुकायन्त्र में रखकर क्रमशः मन्द, मध्य और तीव्र अग्नि द्वारा तीन दिन पर्यन्त पकाकर स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी को उतार ले। पश्चात् शीशी को तौंडकर उसकी नली में लगे हुए नवपल्लव के समान रङ्गवर्ण के रस को निकाल ले। यह रस ४ तोले, कपूर का चूर्ण १६ तोले, जायफल १६ तोले तथा त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) मिश्रित १६ तोले, लोंग १६ तोले, कस्तूरी ३ सारो। इन सबको एकत्र घोटकर रख ले। एक-एक माशा की मात्रा में पान के साथ सेवन करे। इस रस का सेवन करनेवाला पुरुषमदोन्मत्त सैकड़ों स्त्रियों के प्रबल मद को दूर करता है। घृत, गाढ़ा दुग्ध, समस्त प्रकार के मृदुमांस, उर्द की पिट्टी तथा अभ्यान्व्य आनन्दप्रद ध्याहार इसमें पच्य होते हैं। यह रस मनुष्यों के बली-पक्षित को नष्ट करता है और वयःस्थापक है। समस्त रोगों को नष्ट करता है। प्रचुर रोगरूपी हाथियों को भगाने के लिये सिंहरूप है। जिस गृहस्थ के घर में यह रस रहता है वह कामदेव के वाणों से पीडित हो स्त्रियों का प्रिय होता है ॥ ६३-६४ ॥

सिद्धसूत ।

मुक्ताफलं शुद्धमूर्तं सुवर्णं रूप्यमेव च । यवचारं च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥ ६५ ॥ रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत् पुत्तलीकृतम् । मर्दयेच्च पुनर्दत्त्वा गन्धकं तदनन्तरम् ॥ ६६ ॥ सिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुध्य त्रियामकम् । सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धमूर्तं तु भक्षयेत् ॥ ६७ ॥ पञ्चरक्तिममाणेन मुशलीशर्करान्वितम् । शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गं च नाशयेत् ॥ ६८ ॥ दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलपुङ्गं करोत्यसौ । मुद्गर्मं घृतं क्षीरं शालयः स्निग्धमामिषम् ॥ पारावतस्य मांसस्तु तित्तिरस्य सदा हितः ॥ ६९ ॥

मोती, शुद्ध पारा, स्वर्ण, रूप्य और यव-चार एक-एक तोला ले। सबको एकत्र कर लाल कमल के पुष्पों के स्वरस के साथ घोटकर गोला बना ले। पश्चात् एक तोला गन्धक ढाखकर फिर घोटे। थच्छे प्रकार से घोटकर कपरीटी की हुई काँच की शीशी में भरकर बालुकायन्त्र में रखकर तीन पहर तक आँच दे। स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी से सिद्ध पारद को निकालकर में मुशली के चूर्ण और शर्कर के साथ सेवन करे। यह रस शुक्र को बढ़ाता और ध्वजभङ्ग को नष्ट करता है। अतिदुर्बल शरीर को बलवान् बनाता है। इस रस का सेवन करनेवाले को घृतसिद्ध मूँग, दूध, शालिचावल के भात, स्निग्ध मांस, कपूर और तित्तिर के मांस सदा हितकर होते हैं मात्रा ॥ २ रत्ती ॥ ६२-६९ ॥

कामदीपक ।

सितं पुनर्नवामूलं शाल्मलीसभावितम् । शाल्मलीसत्त्वनिर्यासं दद्यात्तैल समं समम् ॥ ७० ॥ गन्धकं सर्वतुल्यं च भक्षयेच्छाणमात्रकम् । अनुपानं प्रकुर्वीत ततः क्षीरं पलद्वयम् ॥ ७१ ॥ अयं चाण्डालिनीयोगोऽगम्याप्यत्र हि गम्यते । निषेधाभिधनं याति करणात् कामरूपधृक् ॥ ७२ ॥

श्वेत पुनर्नवा की जड़ के चूर्ण को सेमर के मुसला के स्वरस से भावितकर उक्त चूर्ण के समान भाग मोचरस का चूर्ण और समष्टि के समान शुद्ध गन्धक मिलाकर उत्तम रीति से चूर्ण कर रख ले। चार-चार सारो की मात्रा में आठ-आठ तोले दूध के साथ सेवन करे। यह चाण्डालिनीयोग है। इसका सेवन करने पर चाण्डाला की के पास भी गमन किया जाता है। निषेध करने से मृत्यु को प्राप्त होता है। किन्तु चाण्डाला-गमन करने से कामदेव के समान कामिमान् हो जाता है ॥ ७०-७२ ॥

सिद्धशाल्मलीकल्प ।

भूकूष्माण्डं तालमूली धात्री चैव  
पुनर्नवा । समभागं समाहृत्य भागाद्धं  
गन्धकं तथा ॥ ७३ ॥ तदर्धं पारदं शुद्धं  
कृज्जलीकृत्य निक्षिपेत् । श्वेतशाल्मलि-  
तोयेन सप्तधा भावयेत्ततः ॥ ७४ ॥ माहि-  
षेण च दुग्धेन तच्चूर्णं भावयेत् पुनः ।  
शुष्कं तच्चूर्णयेद्यत्नाल्लेहयेन्मधुसर्पिपा ॥  
७५ ॥ अनेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते  
स्त्रियः । ऊर्ध्वलिङ्गः सदा तिष्ठेत् कामदेव  
इव स्वयम् ॥ ७६ ॥ ज्वरादिरोगनिर्मुक्तः  
संसारसुखमश्नुते । शाणमेकं तु कर्त्तव्यं  
दुग्धमत्रानुपानकम् ॥ ७७

ध्वजभद्ररोग, स्याह मुसली, आँवला और  
गद्दपुरैना एक-एक तोला मिश्रित कर उस में ६  
माशे गन्धक और ३ माशे शुद्ध पारद की  
कजली करके मिला दे । परचात् रनेत सेमर  
के मुसला के स्वरस से सात बार भावित करके  
फिर मैस के दूध से उस चूर्ण को भावित करे  
घोटते-घोटते शुष्क कर डाले । इस चूर्ण को मधु  
और घृत में मिलाकर खाटे । इसको सेवन  
से ८० वर्ष का वृद्ध भी सी ब्रिषों से रमण कर  
सकता है । सदा उन्नमितलिङ्ग रहता है और  
कामदेव के समान कान्तिमान् हो जाता है ।  
ज्वरादि रोगों से मुक्त हो संसार के सुख का उप-  
भोग करता है । इसकी मात्रा ४ माशे और  
अनुपान दुग्ध है ॥ ७३-७७ ॥

पञ्चशर रस ।

रसेन वा शाल्मलिजेन सूतं त्रिसप्त-  
चाराणिवलिं विमर्धं । पृथक् तयोः कज्ज-  
लिकां विपक्वां घृते रसः पञ्चशरोऽयमुक्तः  
॥ ७८ ॥ बल्योऽहिबल्लीदलसंयुक्तो  
वीर्यातिवृद्धिं कुहतेऽस्य नूनम् । मांसात्र-  
मयं गुरुपायसं च पयः पिबेन्माहिषमत्र  
सिद्धम् ॥ ७९ ॥

सेमर के मुसला के स्वरस के साथ पारा और  
गन्धक को अलग-अलग इकीस-इकीस बार घोट-  
कर उनकी कजली करके घृत में पकाकर सिद्ध  
करे । इसका नाम 'पञ्चशररस' है । पान के  
साथ तीन-तीन रत्ती की मात्रा में सेवन करने  
से निःसंदेह अति वीर्यवृद्धि करता है । मांस,  
भात, मद्य, गुरुपाक पदार्थ, पायस और मैस के  
दूध इसमें पध्य होते हैं ॥ ७८-७९ ॥

त्रिकण्टकाद्य मोदक ।

गोक्षुरेक्षुरवोजानि वाजिगन्धा शता-  
वरी । मुशली वानरीवीजं यष्टिनागवला  
बला ॥ ८० ॥ एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं  
गन्धेनाज्येन भर्जितम् । सितया मोदकं  
कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥ ८१ ॥  
चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम् ।  
सर्वतो द्विगुणं खण्डं सादेदग्निचलं यथा  
॥ ८२ ॥ वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य  
रक्षितो यतः । तस्माद्बहुपुयोगेषु योगो-  
ऽयं प्रवरो मतः ॥ ८३ ॥

गोखरू, तालमखाने के बीज, असगन्ध,  
शतावरी, स्याह मुसली, केवाच के बीज, मुलेठी,  
सर्देई और खरेठी के चूर्ण को दुग्ध के साथ  
सिद्ध कर गाय के घी में भूने और शहर डालकर  
लहू बनाकर खाय । यह अरदन्त वाजीकरण  
है । दूध चूर्ण से षष्ठगुना, घृत चूर्ण के बराबर और  
शकर सबसे दूनी होनी चाहिए । अग्नि और बल  
का विचारकर इसका सेवन करना चाहिए । बहुत  
सी वाजीकरण औषधियों को संगृहीत कर यह  
चूर्ण बनाया जाता है, अतः यह बहुत योगों की  
अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है मात्रा—११२  
तोला ॥ ८०-८३ ॥

रसाला

दध्नोऽर्द्धाढकमीपदम्लमधुरं राएदस्य  
चन्द्रघुनेः, प्रस्थं चौष्टपलञ्च पञ्च द्रविपः  
शुण्ठ्याश्चतुर्मापकान् । प्लामापचतुष्टयं

मरिचतः कर्पू लवङ्गं तथा, धृत्वा शुक्लपटे  
शनैः करतलेनोन्मथ्य विस्त्रावयेत् ॥८४॥  
मृद्गाण्डे मृगनाभिचन्दनरसस्पृष्टेऽगुरु-  
द्धूपिते, कर्पूरेण सुगन्धिकं तदखिलं  
संलोज्य संस्थापयेत् । स्वस्यार्थे मथुरेश्व-  
रेण रचिता ह्येषा रसाला स्वयं, भोक्तु-  
र्मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यं  
प्रिया ॥ ८५ ॥

किञ्चित् खटा और मीठा दही १२८ तोले,  
श्वेत शकर ६४ तोले, मधु ४ तोले, घृत २०  
तोले, सोंठ का चूर्ण ४ माशे, इलायची का चूर्ण  
४ माशे, कालीमिर्च का चूर्ण १ तोला और  
लौंग का चूर्ण १ तोला, सबको मिश्रित कर  
श्वेत वस्त्र में रखकर हाथ से धीरे-धीरे मलकर  
छान ले । पश्चात् कस्तूरी, सफेद चन्दन के  
रस से लित और अगार के द्वारा धूपित मिट्टी  
के पात्र में उस दधि आदि मिश्रित पदार्थ को  
रखकर कपूर से सुगन्धित करके अच्छी तरह  
मिलाकर रख ले । मथुरेश्वर कृष्ण भगव न  
ने स्वयं अपने लिये इस रसाला को बनाया  
था । यह रसाला सेवन करनेवाले को कामोदीपन  
करती है, सुखकर होती है और कान्ता के समाच  
निरय प्रिय होती है ॥ ८४-८५ ॥

चन्दनादितैल ।

द्रव्याणि चन्दनादीनि चन्दनं रक्त-  
चन्दनम् । पतङ्गमथ कालीयागुरुकृष्णा-  
गुरुणि च ॥ ८६ ॥ देवद्रुमः ससरलः  
पत्रकं तृणिकोऽपि च । कर्पूरो मृगनाभिश्च  
लताकस्तूरिकापि च ॥ ८७ ॥ सिंहकः  
कुङ्कुमं नव्यं जातीफलकमत्र च । जातीपत्रं  
लपङ्गश्च सूक्ष्मला महती च सा ॥ ८८ ॥  
ककोलफलकं त्वक् च पत्रकं नागकेशरम् ।  
पालकश्च तथोशीरं मांसी दारुसितापि  
त ॥ ८९ ॥ मुरा कर्पूरकरचापि शैलेयं

भद्रमुस्तकम् । रेणुका च मियङ्गुश्च श्री-  
वासो गुग्गुलुस्तथा ॥ ९० ॥ लाक्षा  
नखश्च रालश्च धातकीकुमुमं तथा । ग्रन्थि-  
पर्यञ्च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ९१ ॥  
एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः  
पचेत् । तैलं प्रस्थमितं सम्यगेतत्पात्रे शुभे  
त्तिपेत् ॥ ९२ ॥ अनेनाभ्यङ्गाग्रस्तु  
दृष्टोऽशीतितमोऽपि यः । शुभ्रो भवति  
शुक्रोऽप्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥ ९३ ॥  
वन्ध्यापि लभते गर्भं परदोऽपि तरुणा-  
यते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां  
शतम् ॥ ९४ ॥ चन्दनादिमहातैलं रक्त-  
पित्तं क्षयं ज्वरम् । दाहप्रस्वेददौर्गन्ध्यं  
कुष्ठं कण्डुं विनाशयेत् ॥ ९५ ॥

श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, भाँगरा, पीतचन्दन,  
अगर, काली अगर, देवदारु, चीड़ की लकड़ी,  
पदमाख, तूण की छाल, कपूर, कस्तूरी, लता-  
कस्तूरी, राल, नई केशर, जायफल, जावित्री,  
लौंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कंकौल-  
फल (शीतलचीनी), दालचीनी, तेजपात,  
नागकेशर, सुगन्धबाला, खस, जटामांसी, दाल-  
चीनी, मुरामांसी, कपूर, शैलज (छरीळा),  
नागरमोथा, सँभालू के बीज, मियगुफूल, गन्धा-  
विरोजा, गुगुल, लाख, नख, राल, धाय क  
फूल, गठिवन, मजोठ, तगर और मोम प्रत्येक  
तीन तीन माशे एकत्र कर कल्क बनावे । इस  
कल्क के साथ १२८ तोले तैल उत्तम पात्र में  
धीमी आँच से पकावे । इस तैल का मर्दन करने  
से ८० धर्य का वृद्ध मनुष्य भी कान्तिमान्, धीर्य-  
वान् और स्त्रियों का मानमर्दन करनेवाला हो  
जाता है ; वन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करती है,  
नपुंसक भी तरुण पुरुष क समान आचरण  
करता है; अपुत्र मनुष्य पुत्र पाता है और ती वर्ष  
जीता है । यह चन्दनादि महातैल रत्रपित्त, क्षय,  
ज्वर, दाह, स्वेददौर्गन्ध्य, कुष्ठ और कण्डू रोगों  
को नष्ट करता है ॥ ८६-९५ ॥

राक्षसरस ।

पलद्वयं सूतमुशुद्धशोधितं चांकोट-  
तोयेन पुनर्विभावितम् । दिनत्रयं तच्च  
विमर्द्य गाढं समानगन्धेन पुनर्विचूर्णम् ॥  
६६ ॥ यदा भवेदंजनसन्निकाशः पूर्वोक्त-  
तोयेन पुनर्विभावयेत् । तत्कालव्यागस्य तु  
मांसमध्ये संक्षिप्य संलोहितचित्रकस्य ॥  
६७ ॥ रसेन तुल्यं खलु तालमूली निर्या-  
सयुक्तेन विमुद्ग्रथ गाढम् । तन्मांसपिण्डे  
त्वपरं निवेश्य मापस्य पिष्टेन लिपेटप्रय-  
त्नात् ॥ ६८ ॥ तत्तप्ततैले च निवेश्य  
चूल्यां मन्दाग्निना तद्विपचेत्प्रयत्नात् ।  
पंचाक्षरं चात्र जपेद्विधिज्ञो देवीमिमां  
सिद्धरसेश्वरीञ्च ॥ ६९ ॥ ततः सिद्धव-  
र्णाभं वटकं तं समुद्धरेत् । अष्टोत्तरसहस्रे  
तु जप्त्वा पंचाक्षरीमिमाम् ॥ १०० ॥  
ततस्तस्मात्समुद्धृत्य मुहूर्त्तं शोभने दिने ।  
भिषजं तोप्य विप्रादीन् रक्तिकैकन्तु भक्त-  
येत् ॥ १०१ ॥ मधुसर्पिर्पुतं सेव्यं परचा-  
द्भोजनमाचरेत् । अनुपाने पिबेद्दुग्धं रसा-  
यनमतानुगम् ॥ १०२ ॥ यथेष्टं भोजनं  
कार्यं कपायकदुर्वर्जितम् । अनेन विधिना  
कृत्वा नरः स्यात्कामदेववत् ॥ १०३ ॥  
योपिच्छतं भजेन्नित्यं सहस्रं काममोहितः ।  
अकृत्वा मैथुनं रेतः स्फुटित्वालोचनं  
व्रजेत् ॥ १०४ ॥ स भवेन्मन्मथाकारो नात्र  
कार्यं विचारणा । रसरक्षसमुद्भुत्स्य  
भूपतिः स्यादनंगवत् ॥ १०५ ॥

शुद्ध पारा = तोला छे, उसको अंकोल के  
रस धपवा काढ़े की मापना दे । फिर तीन दिन  
खरल कर = तोले शुद्ध आमलासार गन्धक  
मिलाकर कमली करे, जब काजल के समान

बारीक हो जाय तब फिर अंकोल के रस से  
घोटे । फिर तत्काल मारे हुए बकरे के मांस में  
इस काजली के गोले को रस चीते के रस में  
शतावर के गोद को घोटकर उस मांस के चारों  
तरफ लपेट कर उसे बंद कर दे । फिर उसको  
दूसरे मांसपिण्ड में रखकर उद्द का सना हुआ  
आटा उस पर लपेट दे । फिर उस गोले को  
गरम-गरम तैल में छोड़ दे और चूल्हे में  
उसके नीचे मन्द-मन्द आँच जलावे । पचा-  
क्षरी मन्त्र का जप करे तथा रसेश्वरी भगवती  
का ध्यान करे तो निस्सन्देह इस रस का  
सिन्दूर के वर्ण के समान गोला बनकर तैयार  
होगा । फिर अष्टोत्तर सहस्र पंचाक्षरी मन्त्र  
का जप करके शुभ मुहूर्त और तिथि में इस गोले  
को उरु तेल में से निकालकर आटा और जले  
मांसादिक को दूर करे और उस रस को निकाल  
ले । फिर वैद्य और ब्राह्मणों का पूजन कर एक  
या दो रत्नी शहद और गौ के घृत में मिलाकर  
खाय । फिर भोजन कर ऊपर से रसायन  
की विधि से दूध पिये और यथेष्ट भोजन  
करे, परन्तु कसैले और चरपर आदि पदार्थों  
को न खाय । इस विधि के करने से मनुष्य  
कामदेव के समान होता है । उसमें हजार  
स्त्रीसेवन की सामर्थ्य होती है । मनुष्य मैथुन न  
करेंगे तो वीर्य घूटकर नेत्रों में आ जायगा; इस  
कारण अवश्य मैथुन करे । इसमें विचार न  
करना चाहिए । इस राक्षसरस के सेवन से  
मनुष्य कामदेव के समान स्वरूपवान् हो जाता  
है ॥ ६६-१०५ ॥

विलासिनीवल्लभ रस ।

समानभागे वलिशूलित्रीजे तयोः  
समानं कनकस्य बीजम् । धत्तुरतैलेन  
विमर्द्य सम्यक् विलासिनीवल्लभनामधेयः  
॥ १०६ ॥ सूतो भवेद्बल्लयुगममाणः  
सितायुतो मेहंसमूहहारी । वीर्यस्य बन्धं  
कुरुते नराणां निहन्ति दर्पं च मुलोचना-  
नाम् ॥ १०७ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, धतूरे के बीज २ तोले, सवका नारीक चूर्ण कर धतूरे के तेल में खूब घोटे तो यह थिलासिनीवस्त्रम नाम पारा बनकर तैयार हो जाता है। इसको ४ रत्ती की मात्रा में मिसरी के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते हैं। यह वीर्य का रत्न बन करता है और स्त्रियों के अभिमान को हरता है। मात्रा समयानुसार १-२ रत्ती की ही देनी चाहिए। ४ रत्ती की आजकल अधिक है ॥ १०६-१०७ ॥

मदनकामदेवरस ।

तारं वज्रं सुवर्णञ्च ताम्रं सूतं सगन्ध-  
कम् । लौहञ्च क्रमवृद्धानि कुय्यादितानि  
मात्रया ॥ १०८ ॥ विमर्द्य कन्यकाद्रावैः  
न्यसेत् काचमये घटे । विमुद्ग्रथ पिठरीं  
मुद्ग्रथ धारयेत्सैधवे भृते ॥ १०९ ॥ पिठरीं  
मुद्ग्रथेत् सम्यक् ततश्चूर्णानि निवेशयेत् ।  
वर्द्धि शनैः शनैः कुय्यादिनैकं तत्समुद्घरेत्  
॥ ११० ॥ स्वांगशीतं ततश्चूर्णं भावये-  
दर्कदुग्धतः । अश्वगन्धा च काकोली  
वानरी मुशली चरा ॥ १११ ॥ त्रिप्रिवल्ल-  
रसैरासां शतावर्या च भावयेत् । पद्मकन्द-  
कसेरुणां रसैरेका च भावना ॥ ११२ ॥  
कस्तूरी व्योपकर्पूरं कंकोलैलालवंगकम् ।  
पूर्णचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥  
११३ ॥ सर्वैः समां शर्कराञ्च दत्त्वा  
शाणोन्मितं पिबेत् । गोदुग्धद्विपलेनैव  
मधुराहारसेवकः ॥ ११४ ॥ अस्य प्रभावा-  
त्सौन्दर्यम्वलं तेजोऽभिवर्द्धते । तरुणी रमये-  
द्दहीनं च हानिः प्रजायते ॥ ११५ ॥

शॉमी की भस्म, हीरे की भस्म, सुवर्ण की भस्म, चाँदी की भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, छोह की भस्म, हरएक क्रम से अधिक भाग है। सबको पारलकर धीस्वार के रस में

खरल करे। फिर एक हॉदी में पिसा नमक भर-  
बीच में शीशी को रख मुखपर्यन्त नमक  
भर दे और मुख को परिया से बन्द कर दे,  
फिर उसको चूल्हे पर चढ़ा धीरे-धीरे एक दिन  
बराबर अग्नि दे, फिर अलगंध, कंकोल, क्रींच,  
मुसली, तालमखाने, इन हरएक के रस की  
तीन-तीन बार भावना दे। फिर कमलकन्द  
और कसेरु के रस की एक-एक भावना दे।  
पश्चात् कस्तूरी, सोंठ, मिरच पीपल, भीमसेनी  
कपूर, कंकोल, छोटी इजायची, लौंग ये सब  
पहिले चूर्ण से अष्टमांश ले। फिर सबकी बरा-  
बर मिसरी मिलाकर ४ माशे को ८ तोले गौ के  
दूध के साथ पिये और इसके ऊपर मधुर आहार  
करे। इसके प्रभाव से सुन्दरता, बल और तेज  
की वृद्धि होती है और बहुत स्त्रियों से रमण  
कर सकता है तथा वीर्य की भी कभी हानि नहीं  
होती ॥ १०८-११५ ॥

कन्दर्पसुन्दर रस ।

सूतो वज्रमर्दि मुक्ता तारं हेम सिता-  
भ्रकम् । रसैः कर्पाशकानेतान् मर्दयेदरि-  
मेदजैः ॥ ११६ ॥ प्रवालं चूर्णगन्धस्य  
द्विद्विकर्पं विमिश्रयेत् । प्रवालं चूर्ण-  
गन्धस्य विमर्द्य मृगभृंगके ॥ ११७ ॥  
क्षिप्तत्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्वातकी-  
रसैः । काकोली मधुकं मांसी वलात्रय-  
विसेद्गुदम् ॥ ११८ ॥ द्राक्षा पिप्पलि-  
वन्दार्कं वरीपर्णांचतुष्टयम् । परुषकं कसे-  
रुश्च मधुकं वानरी तथा ॥ ११९ ॥ भाव-  
यित्वा रसैरेपां शोषयित्वा विचूर्णयेत् ।  
एलात्वक पत्रकं मांसी लवंगागुरुकेश-  
रम् ॥ १२० ॥ मुस्तं मृगमदं कृष्णा जलं  
चन्द्रञ्च मिश्रयेत् । एतच्चूर्णैः शाणमितैः  
रसं कन्दर्पसुन्दरम् ॥ १२१ ॥ खादेच्छा-  
णमितं रात्रौ सिता धात्री विदारिका । एतेषां  
कर्पचूर्णेन सर्पिष्कर्षेण सम्मितम् ॥

१२२ ॥ तस्यानुद्विपलं क्षोरं पिवेत्सुखित-  
मानसः । रमणी रमयेद्दहीर्न हानिं कापि  
गच्छति ॥ १२३ ॥

शुद्ध पारा, हीरे की भस्म, सीसे की भस्म, मोती की भस्म, चाँदी की भस्म और सफेद अभ्रक की भस्म, इन सबको एक-एक तोला लेकर खैर के काढ़े से खरल करे । फिर मूँगा की भस्म २ तोले और गन्धक की भस्म २ तोले मिलाकर घोटकर हिरन के सींग में भर, ऊपर कपरमिट्टी कर, लघु संपुट में रख फूँक दे । फिर घाय के फूलों के काढ़े की भावना देकर काकोली, मुलहठी, जटामांसी, खरैटी-गुठसकरी और बंधी, भसींडा, दिगोट, दास्य, पीपल, चाँदा, सतावर, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी फालसे, कसेरू, महुआ, और कौंच के बीज इन सबके रस की अलग-अलग भावना देकर धूप में सुखाता जाय । हलायची, तेजपात, जटामांसी, लौंग, गेरू, केशर, नागरमोथा, कस्तूरी, पीपल, नेत्रवाला, और भीमसेनी कपूर इन सबको मिलाकर चूर्ण करे तो यह कंडर्पसुन्दर रस बने । रात्रि के समय १ तोला मिसरी, १ तोला अँवला का चूर्ण, १ तोला विदारीकन्द का चूर्ण और १ तोला घृत में ४ माशे इस रस को मिलाकर खाय और ऊपर से ८ तोले दूध पिये तथा प्रसन्नचित्त रहे तो अनेक स्त्रियों से संभोग करने की शक्ति हो तथा वीर्य की हानि भी न हो ॥ ११६-१२३ ॥

स्तंभनकर्त्ता पारा ।

शुद्धं सूतमिपुप्रतोलकमितं गन्धं तथा  
शुद्धिमत् पंचान्नं परिगृह्य संयतमुखां  
शुक्तिं समुद्घात्य ताम् । तत्कीलं परिहृत्य  
शुक्तिजठरादन्तः क्षिपेद्गन्धकं प्रोक्त-  
स्याद्धर्मथान्तरे विनिहितं सूतं समस्तं  
ततः ॥ १२४ ॥ सूतस्योपरिशेषगन्धक-  
रजः संक्षिप्य तन्मध्यगं सूतं शुक्तिकया-  
न्यतोपरिगतासंमुद्गश्च मुद्गस्रकैः ॥ १२५ ॥

तां शुक्तिं परिशोष्य सूर्यकिरणात्संदीयते  
ऽग्निस्तुपैः धान्यानां गजसंज्ञके वर-  
पुटे तत्स्वांगसंशीतलम् ॥ १२६ ॥ संचू-  
र्यांशुकगालितं किल भवेद्गुञ्जोन्मितं  
पुष्टिष्ठत् रेतस्तम्भनकृत्पयोऽनु च पिवे-  
त्सायं सिता संयुतम् ॥ १२७ ॥

शुद्ध पारा २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले लेकर मुखमुँदी सीप के मुँह को खोलकर उसके भीतर के कीड़े को निकाल डाले, फिर उस गंधक के आधे चूर्ण को उसमें बिछाकर उस पर पारे को रख यात्री आधे चूर्ण से दबा दे । फिर दस सीप के पलड़े से बंद कर कपरमिट्टी करके धूप में सुखा ले और धान्य के तुपों के गजपुट में रखकर फूँक दे । जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर उसकी कपरमिट्टी को दूर करे और पारे की ढली को निकाल चूर्ण कर कपरछान करे और किसी उत्तम शीशी आदि में भरकर रख छोड़े । इसमें से १ रत्नी रस मक्खन, मिसरी, दूध आदि के अनुपान से भक्षण करे तो पुष्टता करे और वीर्य का स्तंभन करे तथा सायंकाल में इसके ऊपर मिसरी मिला हुआ दूध पिये ॥ १२४-१२७ ॥

स्तंभन ।

कपूरं टंकणं सूतं तुल्यं मुनिरसं मधु ।  
संमर्थं लेपयेत्स्निग्धं स्थित्वायामं तथैव  
च ॥ १२८ ॥ ततः प्रज्ञाल्य रमयेद्दन्नि-  
तानां शतं सुखम् । वीर्यस्तंभकरं पुंसां  
सम्यङ् नागाज्जुनोदितम् ॥ १२९ ॥

कपूर, मुद्गागा और पारा तीनों शोषधियों परावर मात्रा में लेकर पीस डाले, फिर अगस्तियाँ क रस में और शहद में घोट करके लिंग पर छेप करे, एक प्रहर के बाद उस छेप को धोकर स्त्री से रमण करे तो सौ स्त्रियों से भोग करे, वीर्य का स्तंभन करे । यह नागाजुन सिद्ध का कदा हुआ प्रयोग है ॥ १२८-१२९ ॥



सौगतिगुटिका ।

पारदगन्धकचम्पककैसरकुसुमकर-  
हाटाः अजमोदाम्बुधिशोषौ जाती-  
पत्रञ्च जातिफलम् ॥ १३० ॥ प्रत्येकं  
भागैकं भागद्वितीयं च शुद्धमहिफेनम् ।  
तेन वदरसदृशगुटिका कार्या मधुनाथ  
भक्षयेदेकाम् ॥ १३१ ॥ यामेऽतीते ललनां  
सविधे स्थित्वा जवानिकाकर्षम् । तैलाद्र्  
भुंजीयादनुपानं चैतदेतस्य ॥ १३२ ॥  
लिंगं कठिनतरं स्याद्दीर्यस्तंभं भवेद्यामम् ।  
एषा सौगतिगुटिका सत्यं सत्यं च रोध-  
कारी ॥ १३३ ॥

पारा, गन्धक, नागकेशर, केशर, लींग, अकर-  
करा, अजमोद, समुद्रशोष, जावित्री और जाय-  
फल, हरएक एक-एक तोला, और शुद्ध अफीम  
२ तोला लेकर सबको घोटकर बेर की गुठली  
के बराबर गोलियाँ बनावे। एक गोली रात्रि के  
समय शब्द के साथ खाय, फिर एक प्रहर बाद  
१ तोला ( ४ माशे ही पर्याप्त होगी ) अजवाइन  
को तेल में भिलाकर सेवन करे। यह इसका  
पथ्य है। इससे लिंग कठिन होता है। बीच  
का एक पहर तक स्तंभन होता है। यह  
सौगतिगुटिका बीच्यं को रोकनेवाली  
है ॥ १३०-१३३ ॥

कामदेव रस ।

सूतो मापमित्तः स्वदोपरहितस्तत्तुर्य-  
भागो वलिस्तन्मानस्तु भुजंगफेन उदितः  
क्षुद्राफलस्याम्बुना । एतद्गोलकमाकल-  
य्य विपचेत्क्षुद्राफले हेमगे लावैरष्टमितै-  
र्भवेदिति रसः श्रीकामदेवाभिधः ॥ १३४ ॥  
मात्रा सूर्योदये गुञ्जामेकं यामचतुष्टये ।  
गुञ्जाचतुष्टयं देयं नागवल्लीदलान्वितम् ।  
दुग्धोदनं सलवणं रात्रौ क्षीरं यथे-  
च्छया ॥ १३५ ॥

पारा १ माशे, गन्धक ४ माशे, अफीम  
४ माशे इन सबको कटेरी के फल के रस में  
घोटकर गोलियाँ बनावे। उनको कटेरी के फल  
में रखकर पकावे, फिर धतूरे के फल में रखकर  
उनको म लावक पुट दे तो यह कामदेव रस  
सिद्ध हो जाता है। इसमें से १ रत्नी मात्रा में  
भातःकाल दे । १ रत्नी दूसरे पहर। इस प्रकार  
चार पहर ४ रत्नी मात्रा पान में रखकर दे  
और दिन में दूध, भात का भोजन करावे। परन्तु  
नमक का पदार्थ न खाय और रात्रि को यथेष्ट  
दूध पिये तो यह गुटिका अत्यन्त स्तंभन  
करती है ॥ १३४-१३५ ॥

महानीलकण्ठ रस ।

पलैकं नागभस्माथ भावयेत्त्रिपि-  
त्तः । तन्मानं सुमृतं स्वर्णं तोलैकं वापि  
मिश्रयेत् ॥ १३६ ॥ द्विपलं भस्मसूतस्य  
त्रिपलं मृतमश्रकम् । त्रिपलं लौहभस्माथ  
सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ १३७ ॥ भावयेच्च  
प्रथक् कन्या ब्राह्मी निगुण्डिका शमी ।  
मुण्डी शतावरी चिन्ना कोकिलाक्षस्य  
बीजकैः ॥ १३८ ॥ मुसली वृद्धदारोग्नि-  
द्रवैरेभिषग्वरः । ततः संचूर्णयेत्सर्वं तुल्य-  
मेकादशाभिधम् ॥ १३९ ॥ वराण्योपाब्द-  
वह्येलाः जातीफललवंगकम् । पूजयेद्  
वृषपुष्पाद्यैः नीलकण्ठं महेश्वरम् १४०  
द्विगुंजा भक्षयेदस्या मृत्युंजयमनुस्म-  
रन् । क्षयमेकादशविधं ग्रहणीरक्षपित्त-  
कम् ॥ १४१ ॥ विविधान् वातजान्  
रोगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् । हन्ति  
सर्वामयानेव कामिनीनां शतं व्रजेत् ॥  
१४२ ॥ एकविंशतिरात्रार्द्धं परिहार्यं  
त्यजेदिह । यथेष्टाहारचेष्टो हि कंदर्प-  
सदृशो नरः ॥ १४३ ॥ मेधावी पलवान्  
माज्ञो यदाशौ भीमविक्रमः । पुत्रार्थिनी

तथा नारी सैव पुत्रं प्रसूयते । अस्य सूत-  
स्य माहात्म्यं वेत्ति शंभुर्न चापरः ॥ १४४ ॥

मछली के पित्ते में घोटा हुआ नागेश्वर  
४ तोले लेकर उसी में १ तोला सोने की  
भस्म मिलावे । चन्द्रोदय ८ तोले, अन्नकभस्म  
१२ तोले और लोहभस्म १२ तोले मिलाय  
सबको इकट्ठा कर धीकुवार, ब्राह्मी, निगुण्डी,  
घोंकरा, गोरखमुण्डी, शतावरि, गिलोय, ताल-  
मखाने, मुसली, सिंधारा और चीता इनके रसों  
की अलग-अलग भावना दे, फिर हड़, बहेवा,  
आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा,  
चीता, इलायची, जायफल और लौंग इनका  
चूर्ण मिलाकर रस सिद्ध करे । फिर अड़से के  
फल आदि से श्रीनीलकण्ठ शिवजी का पूजन  
करे, तब दो रत्नी सेवन कर श्रीमृत्युंजय शिव का  
स्मरण करे तो ग्यारह प्रकार का च्यरोग,  
संप्रहणी, रक्तपित्त, अनेक वात के रोग और  
३० पित्त के रोगों को नष्ट करे । सौ स्त्रियों के  
भोगने की सामर्थ्य हो । २१ रात्रि पथ्य सेवन  
करके फिर परिहार को त्याग दे, फिर यथेष्ट  
आहार और आचारों का सेवन करे । कामदेव  
के समान रूप होवे, बुद्धिमान्, बलवान्, प्राज्ञ,  
बहुत भोजन करनेवाला, भीमसेन के समान  
पराक्रमी हो तथा जिनको पुत्र की इच्छा हो  
उसके पुत्र हो । इस महानील कण्ठ रस  
की महिमा श्रीशिव ही जानते हैं, अन्य  
नहीं ॥ मात्रा-४ रत्नी ॥ १३५-१४४ ॥

पुष्पधन्वा रस ।

हरजभुजगलौहश्चाभ्रकं वक्रचूर्णं क-  
नकविजययष्टी शाल्मली नागवल्ली ।  
घृतमधुसितदुग्धं पुष्पधन्वा रसेन्द्रो रमयति  
शतरामा दीर्घमायुर्बलश्च ॥ १४५ ॥

कनकादिकाथेन भावयित्वा घृतादि-  
भियो जयेत् ।

रससिन्दूर, नागभस्म, लोहभस्म, अन्नक-  
भस्म, और यक्षभस्म समान भाग एकत्र  
मिश्रित कर क्रमशः धतूरे के पत्ते, भाँग, मुलेठी.

सेमर का मुसरा और पान के स्वरस में भावित  
कर रख ले । घृत, मधु और शक्कर में  
मिलाकर दूध के साथ सेवन करे । इस पुष्प-  
धन्वा नामक रसेन्द्र के सेवन करने से सौ  
स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति हो जाती  
है । आयु और बल की वृद्धि होती है । कनक  
( घतूर ) आदि द्रव्यों के काथ की भावना  
देकर घृत आदि के साथ मिश्रित कर सेवन  
करना चाहिए ॥ मात्रा-२।४ रत्नी ॥ १४५ ॥

पूर्णचन्द्र रस ।

सूताभ्रलौहं सशिलाजतु स्याद् वि-  
डङ्गताप्ये मधुना घृतेन । पिष्टं प्रशस्तं  
खलु पूर्णचन्द्रो द्विगुञ्जयुक्तो भवति  
प्रशस्तः ॥ १४६ ॥

रससिन्दूर, अन्नक, लोहभस्म, शिलाजीत,  
वायविडंग और स्वर्णमाषिक समभाग मिश्रित  
कर घृत और मधु के साथ घोटकर दो-दो रत्नी  
की गोलियाँ बनावे । इसका नाम पूर्णचन्द्र रस  
है । यह शरीर की पुष्टि के लिये प्रशस्त है ॥ १४६ ॥

कामाग्निसन्दीपन रस ।

पलपरिमितशुद्धं सूतकं गन्धतुल्यं  
दरदकुन्दितुल्यं भावितं शृङ्गवेरैः । तदनु  
कनकबीजैर्भावितं सप्तवारान् तदनुसित-  
जयन्त्या भृङ्गराजैश्च सर्वम् ॥ १४७ ॥  
पुटितमुपरि शुष्कं काचकूप्यां तु क्षिप्तं  
पडहमुपरि पाच्यंवालुकामन्त्रकैश्च १४८ ॥  
एलाजातीन्द्रचन्द्रैर्भृगमदसहितैः सो-  
पणैः सारश्वगन्धैस्तुल्यैर्बल्लप्रमाणं प्रति-  
दिनमशितं प्रातरुत्थाय शुद्ध्यै । योजः-  
पुष्टिविवर्द्धनोऽतिबलकृत्वैर्वेन्द्रियानन्दनः  
सर्वातङ्कहरो रसायनवरः कामाग्निसन्दी-  
पनः ॥ १४९ ॥

एक-एक तोला शुद्ध पारा, गन्धक, द्विगुल  
और मैनशिल को एकत्र कर क्रमशः अदरक,

घृते के बीज, रवेत जयंती और भांगरे के यथासम्भव स्वरम या काथ के साथ सात-सात बार भावना देकर सुखा लेवे, परचावू झाँच को शीशी में भरकर बालुकायन्त्र द्वारा ६ दिन पर्यन्त झाँच देकर पकावे ; फिर स्वाङ्गशीतल होने पर उतारकर शीशी से रस को निकालकर रख ले। इलायची, जायफल, कपूर, कस्तूरी, कालीभिर्च और असगन्ध सम भाग लेकर चूर्ण कर उसमें मिला ले। दो-दो रत्ती इस कामाग्नि-सन्दीपन रस को प्रतिदिन प्रातःकाल शीचादि-क्रिया से शुद्ध होकर सेवन करे। कामाग्नि-सन्दीपन रस ओज को पुष्ट करता तथा बलवर्धक है। सम्पूर्ण इन्द्रियों को आनन्द देता है तथा सम्पूर्ण रोगों को हरता है और रसायनों में श्रेष्ठ है ॥ १४७--१४० ॥

ध्वजभङ्ग में पथ्य ।

शालि पट्टिक गोधूम मसूर चणकादयः  
नवनीतं च दुग्धं च सुरासीधुञ्च वर्त्तकः  
॥ १५० ॥ चटकः कुक्कुटश्चैव तित्ति-  
रिर्हरिणस्तथाशशकच्छागयोरेपांपललानि  
मूर्दानतु ॥ १५१ ॥ द्राक्षाखर्जुराम्रजम्बू  
दाडिमानीं फलानि च पथ्यान्येतानि  
भोक्तानि ध्वजभङ्गगदे बुधैः ॥ १५२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ध्वजभङ्गा-  
धिकारः समाप्तः ।

शालि तथा साठी धान्य का चावल गेहूँ मसूर चना आदि सबलन दूध शराब सुरा सीधु दत्तक गीरेया मुगा तीतर हरिण खरगोश ककरा इन का कोमल मांस दाख खजूर आम जामुन तथा अनार के फल इन सबों का सेवन ध्वजभंग रोग में पथ्य है ॥ १५०--१५२ ॥

इति सरयूवसादीन्निपाठीधरिचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां ध्याययायां  
ध्वजभङ्गाधिकारः समाप्तः ।

अथ सुष्कवृद्धिर्धनाधिकारः ।

वातिक वृद्धिचिकित्सा ।

वातवृद्धौ पिवेत्स्निग्धं यथाप्राप्तविरेच-  
नम् । सत्तीरं वा पिवेत्तैलं मासमेरुण्ड-  
सम्भवम् ॥ १ ॥ पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं  
नारायणं तथा । पाने वस्तौ खोस्तैलं  
पेयं वा दशकाम्भसा ॥ २ ॥

वातिक अरुद्धि में यथावश्यक स्निग्ध विरेचन देना चाहिए। एक मासपर्यन्त दुग्ध में मिश्रित कर पर्यङ्गतैल का पाक या पुनर्नवा के काथ और ककू के साथ सिद्ध किये हुए तैल का पान अथवा नारायण तैल का पान करना चाहिए। एरुण्ड के तैल की पिचकारी देना अथवा दशमूल के काथ के साथ पर्यङ्गतैल का पान करना चाहिए ॥ १-२ ॥

पैत्तिक और रक्तवृद्धिचिकित्सा ।

चन्दनं मधुकं पद्मश्रीरं नीलमुत्प-  
लम् । क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्यादाहशोथरुजा-  
पहः ॥ ३ ॥

चन्दन, मुलेठी, पद्माक्ष, खस और नील-  
कमल इनको दूध में पीसकर लेप करने से दाह, शोथ और पीडा शान्त होती है ॥ ३ ॥

रक्तजाण्डवृद्धिचिकित्सा ।

पञ्चवल्कलकलकेन सधृतेन प्रलेपनम् ।  
सर्वपित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥४॥

यद, गुलर, पीपर, पाकड़ और येत इन पाँच वृषों की छाल को पीसकर घृत मिलाकर लेप करने से सब प्रकार के पैत्तिक वृद्धिरोग नष्ट होते हैं। रक्तज वृद्धि में रक्तमोक्षण कराना चाहिए ॥ ४ ॥

श्लेष्मिकवृद्धिचिकित्सा ।

श्लेष्मवृद्धिमुष्णपीयूषं त्रिपिष्टैः प्रलेप-  
येत् । पीतदारुकापयश्च पिवेत् सूत्रेण  
संयुतम् ॥ ५ ॥

रौमिक वृद्धिरोग में बृहत्पञ्चमूल आदि द्रव्यवीर्य श्रोत्रधियों को गोमूत्र में पीसकर प्रलेप करे तथा देवदारु के काथ को गोमूत्र मिश्रित कर पान करे ॥ ५ ॥

मेदजवृद्धिचिकित्सा ।

स्विन्नं मेदःसमुत्थञ्च लेपयेत् सुरसा-  
दिना । शिरोविरेकद्रव्यैर्ना सुखोष्णमूत्र-  
संयुतैः ॥ ६ ॥

मेदोज तवृद्धि में स्वेदन करने के पश्चात् तुलसी और पुनर्नवा आदि द्रव्यों को पीसकर लेप करे । इस रोग में गोमूत्र के साथ सेंधव, पीपरि और कालीमिर्च आदि शिरोविरेचक द्रव्यों को पीसकर कुछ उष्ण करके प्रलेप करने से विशेष लाभ होता है ॥ ६ ॥

अन्त्रवृद्धिचिकित्सा ।

रासनायष्टयमृतैरेण्डबलागोक्षुरसाधितः।  
काथोज्ज्वट्टि हन्त्याशु रुचुतैलेन  
मिश्रितः ॥ ७ ॥

रासना, मुल्हेठी, गिलोय, अरंड की जड़, खरेटी और गोखरू, इनके काढ़े में अरंड का तेल डाल कर पीने से अन्त्रवृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

भृष्टो रुचुतैलेन कल्कः पथ्या-  
समुद्भवः । कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोग-  
हरः परः ॥ ८ ॥

हरीतकी पेपयित्वा पिप्पलीं सैन्धवञ्च  
दत्त्वा एरडतैलेन भृष्टा खाद्यम् । अनु-  
पानमुष्णोदकेन करणीयं योगोऽयं सप्ताहं  
सेव्यः । तन्त्रान्तरसंगाटादिति भानुः ।

हरीतकी को जल के साथ पीसकर उसमें पीपरि और सेंधानसक मिलाकर तथा रेंडी के तेल में भून कर उष्ण जल के साथ इस योग को एक सप्ताहपर्यन्त सेवन करना चाहिए, क्योंकि तन्त्रान्तर में ऐसा ही लिया है और भानुजी का भी ऐसा ही मत है ॥ ८ ॥

वृद्धिहरलेप ।

लजागृध्रमलाभ्याश्च लेपो वृद्धिहरः  
परः ॥ ९ ॥

छुईगुई और गिद्ध के मल का लेप करने से वृद्धिरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

घ्नन के लक्षण ।

अत्यभिप्यन्दिगुर्नामसेवनान्निचयंगतः।  
करोति ग्रन्थिवत् शोथं दोषो वंच्छण-  
सन्धिषु । ज्वरशूलाङ्गदाहाद्यं तं घ्ननमिति  
निर्दिशेत् ॥ १० ॥

अत्यन्त अभिप्यन्दि, गुर और आम पदार्थ का सेवन करने से सचित दोष वच्छण और सन्धियों में ग्रन्थि के समान शोथ उत्पन्न करता है । इस शोथ के साथ ज्वर, शूल और अङ्गदाह भी होते हैं ॥ १० ॥

चिल्लादिचूर्ण ।

मूलं चिल्लकपित्तयोररलुकस्याग्नेवृह-  
त्योर्द्वयोः श्यामापूतिकरञ्जशिग्रु कतरो-  
विश्वौपधारुत्करम् । कृष्णाग्रन्थिकचव्य  
पञ्चलवणक्षाराजमोदानितं पीतं काञ्जि-  
ककोष्णतोयमथितं चूर्णांकृतं घ्ननजित् ११

बेल, कैथ, अरलू, चीता छोटी कटेरी पत्ती कटेरी, श्यामालता, कजा और सन्धिजन इनके मूल, सोंठ, अरुसा, पीपरि, गडिवन, चण्ड, पञ्चलवण, यवक्षार, और अजमोद इन सबको सम भाग लेकर घूर्ण कर ले । फिर इसको काँजी या किंचिन् उष्ण जल में घोळकर पान करे । यह घूर्ण घ्ननरोग को जीतता है ॥ ११ ॥

घ्ननशूलहरलेप ।

अजाक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुन्स्य  
वा । प्रलेपनं सुखोष्णं स्यादघ्ननशूलहरं  
परम् ॥ १२ ॥

पत्ती के दूध के साथ पीसकर गेहूँ के कण्ड का सफवा कुन्दरू के कण्ड का सुखोष्ण प्रलेप घ्नन और शूल को हरता है ॥ १२ ॥

मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते तु प्रवेश-  
येत् ब्रध्नं मुहूर्तं मेधावी तत्क्षणादरुज  
भवेत् ॥ १३ ॥

युद्धिमान् पुरुष एक काक ( कौथा ) को  
मारकर तत्काल उसके भीतर की भ्रांतों निकाल  
कर उसमें ब्रध्न को एक मुहूर्तपर्यन्त प्रविष्ट  
रखले । ऐसा करने से तत्काल नीरोग हो  
जाता है ॥ १३ ॥

अजाज्यादि लेप ।

अजाजीह्वुपाकुण्ठगोधूमवदराणि च ।  
काञ्जिकेन समं पिप्प्ला कुर्याद् ब्रध्ने प्रलेप-  
नम् ॥ १४ ॥

जीरा, हाऊबेर' कूट, गेहूँ और बेर को  
काँजी के साथ पीसकर ब्रध्न के ऊपर लेप  
करना चाहिए ॥ १४ ॥

सृहत्सैन्धवाद्यतैल ।

सैन्धवं मदनं कुण्ठं शताह्वानिचुलं  
वचाम् । ह्रीवेरं मधुकं भार्गी देवदारु  
सनागरम् ॥ १५ ॥ कटफलं पौष्करं  
मेदाश्चविकां चित्रकं शटीम् । विडङ्गाति-  
विपे श्यामां रेणुकां नीलिनीं स्थि-  
राम् ॥ १६ ॥ विल्वाजमोदे कृष्णाश्च  
दन्तीं रास्नां प्रपिप्य च । साध्यमेरुदण्डं  
तैलं तैलं वा कफवातनुत् ॥ १७ ॥ ब्रध्नो-  
दावर्त्तगुल्मार्शः श्लीहामेहाढ्यमारुतान् ।  
आनाहमरमरीचैव हन्यात्तदनुवास-  
नात् ॥ १८ ॥

सोधानमक, मैनफल, कूट, सौंफ, घेंत, बच,  
सुगन्धबाला, मुलेठी, भारंगी, देवदारु, सोंठ  
कायफल, पुहकरमूल, मेदा, वधय चीत की  
जड़, कचूर, वायविहंग, अतीस, श्यामालता  
( सारिया ), सैभालू के बीज, नील, सालपर्णी,  
बेल की छाज, अजमोद, छोटी पीपरि, दन्ती  
और रास्ना ( सय मिलाकर ६४ तोले ) को  
पीसकर कढ़क बनाये । इस कढ़क के साथ

पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोले और  
परएड तैल १२८ तोले लेकर तैल सिद्ध करे ।  
यह तैल कफ और वात का नाशक है । मर्दन  
करने से यह तैल ब्रध्न, उदावर्त, गुल्म, अशं-  
प्लीहा, प्रमेह और वातरोगों को नष्ट करता  
है । अनुवासनवस्ति द्वारा आनाहयुक्त अरमरी  
रोग को नष्ट करता है ॥ १५-१८ ॥

गन्धर्वहस्ततैल ।

शतमेरुदण्डमूलस्य पलं शुण्ठ्यायवा-  
ढकम् । जलद्रोणे विपक्वव्यं यावत् पादा-  
वशेषितम् ॥ १९ ॥ तेन पादावशेषेण  
पयसा तत्समेन च । प्रस्थमेरुदण्डतैलस्य  
तन्मूलाच्च चतुःपलम् ॥ २० ॥ त्रिपलं  
शृङ्गेरेश्च गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् । तत्-  
पिवेत्प्रयतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् सदा ।  
अन्त्रवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्त-  
कम् ॥ २१ ॥

परएड की जड़ ५ सेर, सोंठ ५ सेर और  
यव ३ सेर, १६ तोले लेकर २५ सेर ४८ तोले  
पानी में पकावे । जब ६ सेर ३२ तोले अक्व-  
शिष्ट रह जावे, तब उस हाथ और ६ सेर  
३२ तोले दूध के साथ १२८ तोले परएड  
का तैल पकावे । इसमें पकाते समय १६ तोले  
परएडमूल और १२ तोले अदरक का कढ़क  
ढाले । वमन, विरेचनादि द्वारा शुद्ध होकर  
यत्नपूर्वक इस तैल का पान करे । दूध और  
भात का भोजन करे तो यह गन्धर्वहस्त तैल  
अन्त्रवृद्धि को तत्काल जीतता है ॥ १९-२१ ॥

शतपुष्पाद्यतैल ।

शतपुष्पाद्यतैलं दारु चन्दनं रजनी-  
द्वयम् । जीरके द्वे वचा नागं त्रिफला  
गुग्गुलुत्वचम् ॥ २२ ॥ मांसी सकुण्ठ-  
पत्रैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम् । कु-  
मिध्नमरुवगन्धा च शैलेयं कटुरो-  
हिणी ॥ २३ ॥ सैन्धवं तगरञ्चैव कुण्ठ-

जातीविसैः समैः । एतैश्च कार्पिकैः कल्कै-  
र्घृतप्रस्थं त्रिपाचयेत् ॥ २४ ॥ वृषमुण्डिति-  
कैरण्डविल्वपत्रभवो रसः । कण्टकार्या-  
स्तथा प्रस्थं क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥  
सिद्धमेतद्घृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ।  
वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापिवा २६  
मूत्रवृद्धिं श्लीपदञ्च यकृतस्त्रीहानमेव च ।  
शतपुष्पाद्यमेतद्घृतं हन्ति न संशयः २७

सीफ, गिलोय, देवदारु, सफेद चन्दन,  
हल्दी, दारुहल्दी, सफेद जीरा, स्याह जीरा,  
यच, नागकेसर, त्रिफला, गुग्गुलु, दालचीनी,  
जटामासी, कूट, तेजपात, छोटी इलायची  
रास्ना, काकडासिंगी, चीत की जड़, वाय-  
विदंग अशगन्ध, शिलाजीत, कुटकी, संधा-  
नमक, तगर, कूट, जायफल, और भसींदा ;  
ये सब एक-एक तोला लेकर क्लक बनाये ।  
इस क्लक के साथ दो सेर घृत सिद्ध करे । इस  
घृत को सिद्ध करते समय अरुसा मुंढी, परबट  
और विल्वपत्र का एक-एक प्रस्थ ( ६४-६४  
तोले) रस या काथ, और कटेरी का क्वाथ ६४  
तोले तथा ६४ तोले दुग्ध डालकर यथाविधि  
घृत को सिद्ध करे । पान करने से यह घृत  
अन्त्रवृद्धि को नष्ट करता है । वातवृद्धि,  
पित्तवृद्धि, मेदोवृद्धि, मूत्रवृद्धि, श्लीपद, यकृत  
और प्लीहा को निःसंदिह नष्ट करता  
है ॥ २२-२७ ॥

कफवातज्वृद्धि में हरीतकी का प्रयोग ।

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणा-  
न्विताम् । प्रातः प्रातश्चसेवेत कफवाता-  
मयापहम् ॥ २८ ॥

गोमूत्र-सिद्ध हरीतकी को तैल और लवण  
के साथ प्रातःकाल सेवन करे । यह कफ और  
वात के रोगों को नष्ट करती है ॥ २८ ॥

वातवृद्धिनाशक तैल ।

गुग्गुलं रुतैलं वा गोमूत्रेण पिवेन्नरः ।

वातवृद्धिं निहंत्याशु चिरकालानुबन्धि-  
नीम् ॥ २९ ॥

गुग्गुलु या एरबतैल को गोमूत्र के साथ  
पान करे तो यह योग चिरकालोत्पन्न वात-  
वृद्धि को तरकाब नष्ट करता है ॥ २९ ॥

वृद्धिरोगनाशक प्रलेप ।

निष्पिप्टमारनालेन रूपिकामूल-  
वल्कलम् । लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति वद्धमूल-  
मपि ध्रुवम् ॥ ३० ॥

श्वेत पुष्पवाले मदार के मूल के छिलके  
को काँजी के साथ पीसकर लेप करने से बद्ध-  
मूल वृद्धिरोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ३० ॥

कुरण्डनाशक योग ।

गव्यं घृतं सैन्धवसंमयुक्तं शम्बूक-  
भाण्डे निहितं तदेव । सप्ताहमादित्यकरै-  
र्विषक्यं हन्यात्कुरण्डं चिरजं प्रवृद्धम् ३१ ॥

सैन्धवयुक्त गोघृत को शंख के मध्य में रख-  
कर ७ दिन पर्यन्त सूर्य की किरणों द्वारा  
परिपक्व करे । यह घृत चिरकालोत्पन्न प्रवृद्ध  
कुरण्ड रोग को विनष्ट करता है ॥ ३१ ॥

अपर कुरण्डनाशक योग ।

सैन्धवश्च घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमात-  
पे । प्रतप्तमूर्ण्या घृष्टं तन्मलञ्च समा-  
हरेत् ॥ ३२ ॥ कुरण्डं भ्रतयैचेन सनि-  
विघ्नं दिवानिशम् । कुरण्डं तेन संलिप्तं  
नास्तीत्याह पुनर्वसुः ॥ ३३ ॥

ताम्रभाजने घृतं सैन्धवं दत्त्वा रौद्रे तप्तं  
कृत्वा मेपलोमतुण्डिकया घृष्ट्वा मलग्रहं  
कृत्वा तेन भ्रतयेत् ।

ताम्रपात्र को घृत से चुपड़ करके उसमें  
संधानमक डालकर और घूप में गरम करके  
ऊन से घिसे । उससे जो मल निकले उसका  
ग्रहण पर निरन्तर रातदिन छेप करने से  
कुरण्ड नष्ट हो जाता है । ऐसा पुनर्वसुजी करने  
है ॥ ३२-३३ ॥

गोमूत्रसिद्धां रुयुतैलभृष्टां हरीतकीं  
सैन्धवसम्प्रयुक्ताम् पिवेन्नरः कोष्णज-  
लानुपानात् निहन्ति वृद्धिं चिरजां  
प्रवृद्धाम् ॥ ३४ ॥

हरीतकी को पहले गोमूत्र में भिगोकर आढ़  
कर ले, पश्चात् रेंड़ी (अण्डी) के तैल में भूनकर  
सैन्धानमक के साथ टाकर कुष्ठ उष्ण जल का  
पान करे। यह योग चिरकालोत्पन्न प्रवृद्ध  
वृद्धिरोग को नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुयुतैलेन मर्दितम् ।  
त्र्यहाद् गोपयसा, पीतं सर्ववृद्धिहरं परम् ॥

वचासर्पपक्वकेन लेपो वृद्धिविनाशनः ३५  
इन्द्रायण के मूल के चूर्ण को परगढ के  
तैल के साथ घोटकर गोदुग्ध के साथ तीन दिन  
सेवन करें। यह योग सब प्रकार के वृद्धिरोग का  
नाशक है तथा वच और सरसों के कल्क का  
लेप करने से वृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

कुरण्ड पर लेप ।

बहुवारस्य बीजञ्च पिष्ट्वा तच्चाद्रिकैः  
सह । कुरण्डं नाशयेद्भद्रे लेपनात्नात्र  
संशयः ॥ ३६ ॥

हे भद्रे ! बहुवार बीज ( लसोदा ) को  
अदरक के साथ पीसकर लेप करने से कुरण्ड  
अवश्य घिनष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

घृतैर्नालोत्पलं मूलं पिष्ट्वा लिम्पेत्कु-  
रण्डकम् । अथवा लेपनं कुर्याद् गृहमण्डू-  
कशोणितैः ॥ ३७ ॥

नीलकमल की जड़ को पीसकर घी में  
भिलाकर कुरण्ड पर लेप करे। अथवा गृहमण्डूक  
( घर में रहनेवाले मेढक ) के रङ्ग का लेप करे  
तो कुरण्ड रोग शान्त हो ॥ ३७ ॥

भक्रोत्तरीय ।

अभ्रकं गन्धकञ्चैव पिप्पलीलवणानि  
च । त्रिचारं त्रिफला चैव हरितालं मनः-  
शिला ॥ ३८ ॥ पारदश्चाजमोदा च ।

यमानी शतपुष्पिका । जीरकं हिङ्गु मेथी  
च चित्रकं चविका वचा ॥ ३९ ॥ दन्ती  
च त्रिष्टता मुस्तं शिला च मृतलौहकम् ।  
अञ्जनं निम्बवीजानि पटोलं वृद्धदार-  
कम् ॥ ४० ॥ सर्वाणि चाक्षमात्राणि  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । शतं कानक-  
वीजानि शोधितानि प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥  
एतदग्निविष्टद्वयार्थमृषिभिः परिकीर्त्ति-  
तम् । श्लीपदान्यन्त्रवृद्धिश्च वातवृद्धिश्च  
दारुणाम् ॥ ४२ ॥ अरुचिचामवातश्च शूलं  
वातसमुद्भवम् । गुल्मञ्चैवोदरव्याधीनाश-  
यत्याशु तत्क्षणात् । भक्रोत्तरमिदं चूर्ण-  
मशिव्यां निर्मितं पुरा ॥ ४३ ॥

अभ्रकमक्षम, गन्धक, पीपरि, पाँचोन्नमक,  
यवहार, सजीखार, सोहागा, भुना, आवला,  
हड़, बहेड़ा हरिताल, मैनशिल, शुद्ध पारा,  
अजमोद, अजवाइन, सौंफ, सफेद जीरा, हींग,  
मेथी, चीत की जड़, चव्य, वच, दन्ती, निसोथ,  
नागरमोथा, शिलाजीत, लोहभस्म, रसौत, नीम  
के बीज, पटोलपत्र और विधारा ये सब एक-  
एक तोला, तथा धतूरे के बीज १०० ले।  
पारा और गन्धक की कजली करे फिर इन  
सबको एकत्र कर कूट पीस कर महीन चूर्ण बना  
ले। इसको जठराग्नि की वृद्धि के लिए  
अपियों ने कहा है। यह श्लीपद, अन्त्रवृद्धि,  
दारुण, वातवृद्धि, अरुचि, आमवात, शूल, वात-  
जन्म शूल, गुल्म और उदर-व्याधियों को  
तत्काल नष्ट करता है। इस भक्रोत्तर चूर्ण  
को पहिले अश्विनीकुमारों ने बनाया था।  
( भोजनोत्तर इस चूर्ण का सेवन किया जाता है  
अतः इसका नाम भक्रोत्तर चूर्ण रक्खा गया है।  
इसकी मात्रा एक माशे से दो माशे तक  
है ) ॥ ३८-४३ ॥

चातारिदस ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो

मतः । त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च  
चित्रकः ॥ ४४ ॥ गुग्गुलुः पञ्चभागः  
स्यादेरण्डतैलमर्दितः । क्षिप्त्वात्र पूर्व-  
कञ्चूर्णं तेनैव सह मर्दयेत् ॥ ४५ ॥ गुटिकां  
कर्षमात्रान्तु भक्षयेत् प्रातरेव हि । नागरै-  
रण्डमूलानां कार्यं तदनुपाययेत् ॥ ४६ ॥  
अभ्यञ्ज्यैरण्ड तैलेन स्वेदयेत् पृष्ठदेशकम् ।  
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णञ्च भोज-  
येत् ॥ ४७ ॥ वातारिसंज्ञको ह्येष रसो  
निर्वातसेवितः । अत्रवृद्धिं निहन्त्येव ब्रह्म-  
चर्यपुरःसरः ॥ अनुपानं च तिलजमार्द्रक-  
द्रवसंयुतम् ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मुष्कवृद्धि-  
घ्ननाधिकारः समाप्तः ।

शुद्ध पारा एक भाग, गन्धक दो भाग,  
त्रिफला तीन भाग, चीत की जड़ चार भाग  
और गुग्गुल पाँच भाग ले । पहिले गुग्गुल को  
एरण्ड के तेल के साथ मर्दित कर उसमें पूर्वोक्त  
औषधियों का चूर्ण मिश्रित कर एरण्ड के तेल  
के साथ ही मर्दन करके एक-एक तोला की गोली  
बनाकर प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करे । इस  
औषध के सेवन करने के पश्चात् सोंठ और  
एरण्ड के मूल का काय पिता पीठ पर एरण्ड  
का तेल मलकर स्वेदन करे । इस औषध के  
सेवन करने से विरेचन हो जाने के पश्चात्  
स्निग्ध और उष्ण भोजन करावे । वातारि  
नाम का यह रस है । इसका सेवन निर्वात  
स्थान में करना चाहिए । यह रस ब्रह्मचर्यपूर्वक  
सेवित होने पर अत्रवृद्धि रोग को धिनष्ट करता  
है । अदरक के रस में मिश्रित तिल तैल इसका  
अनुपान है ॥ ४४-४८ ॥

वृद्धिघ्नरोग में पथ्य

संशोधनं वस्तिरसृग्निमोक्षः स्वेदः  
मलेपोऽरुणशालपञ्च । एरण्ड तैलं सुरभी-

जलञ्च धन्वामिपंशिग्रुफलं पटोलम् ॥  
४९ ॥ पुनर्नवा गोक्षुरकाग्निमन्थं  
ताम्बूल पथ्या रसना रसोनम् । वातिघ्नं  
शृङ्गनकं मधूनि कौम्भूं घृतं तप्तजलञ्च  
तक्रम् ॥ ५० ॥ अर्धेन्दुवद्बद्धक्षणाश्च  
दाहो व्यत्यासतो वाहुशिरान्वयश्च । यथा-  
मयंशस्त्र विधिश्चवर्गः स्याद्ब्रध्नवृद्ध्याम-  
यिनां सुखाय ॥ ५१ ॥ अनभिष्यन्दि  
पानान्नं नातिशीताक्रिया तथा । वृद्धि-  
रोगे हिताय स्याद्विपरीतं विवर्ज-  
येत् ॥ ५२ ॥

धमन विरेचनादिक संशोधन वस्तिकर्म रङ्ग-  
मोक्षण स्वेदन प्रलेप लाजशालि चायल एरण्ड  
तैल गौमुख जङ्गल देश के पशु पक्षियों  
का मास सहजन की फलियों का शाक  
पटोलपत्र शाक, पुनर्नवा शाक, गोखरू, धरणी,  
पान, हरड़, रास्ना, लहसुन, बैंगन, गाजर,  
गहद १० साल से १०० साल तक का पुराना  
घी, गरम जल, मट्टा, वंचण प्रदेश पर अर्ध-  
चन्द्राकृति दाह उलटे क्रम से बाहु की गिरा  
का वेधन अर्थात् दक्षिणायुध वृद्धि में बायें बाहु  
की गिरा का वेधन तथा शस्त्र बर्ष में ये सब रोगा-  
नुसार से घ्नन और वृद्धिरोगियों के लिए पथ्य  
है । अभिष्यन्द (स्वेद) नहीं करनेवाले पदार्थों  
का पानी तथा भोजन करना एव अधिक् शीत-  
रहित औषधियों के द्वारा क्रिया तथा अधिक्  
शीतरहित आहार विहारादिक क्रियाएँ वृद्धि-  
रोग में हितकर हैं । तथा इनके विपरीत को  
घोड़ देना चाहिये ।

मघ्नवृद्धिरोग में अपथ्य

विरुद्धपानान्नमसात्म्यसेना संक्षोभणं  
हस्ति ह्यादियानम् । आनूप मांसानि  
दधीनि मापादुग्धानि पिप्यान्न मुपोदि-  
काच । गुरुणि शुक्रोत्थित वेगरोघाः सु-



व्रध्न वृद्धयामयिनाम मित्राः ॥ ५३ ॥  
वेगाहिनि पृष्ट यानं व्यायामं मैथुनं तथा ।  
अत्यशनं तथा ध्वानमुपवासं परित्य-  
जेत् ॥ ५४ ॥

विरुद्ध और प्रतिकूल आहार विहार क्रोध,  
हाथी घोड़े आदि की सवारी, आनूप मांस दही  
उड़द पीठी, पोई शाक, भारी पदार्थ, वीर्य वेग  
रोकना, व्यायाम, मैथुन, अति भोजन, अधिक  
मार्ग चलना, और उपवास अपर्यय है ।

इति सरयूपसाद्रिपाठिचिरचित्तायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायानं व्याख्यायां  
मुष्कवृद्धिप्रधनाधिकारः समाप्तः ।

### अथ श्लीपदाधिकारः ।

श्लीपद में क्रियाकर्म ।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः ।  
प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपा-  
चरेत् ॥ १ ॥

लङ्घनं प्रथमतः लेपस्वेदादयो नवे  
पुराणे च ।

लङ्घन, प्रलेप, स्वेदन, रेचन रक्तमोक्षण द्वारा  
तथा अधिकतर कफनाशक उष्ण क्रियाओं के  
द्वारा श्लीपद की चिकित्सा करे । नये या पुराने  
श्लीपद रोग में पहले लङ्घन करके लेप और  
स्वेदन करना चाहिए ॥ १ ॥

कणादिचूर्णम् ।

कणावचादारुपुनर्नवानां चूर्णं सविल्वं  
समवृद्धदारुम् । सम्मर्थं चैतस्य निहन्ति  
धल्लः सकाञ्जिकरश्लीपदमुग्रवेगम् ॥ २ ॥

पीपल, बच, देवदारु, साँठी और बेल की छाल  
हर एक समभाग, सबके समान विधारा के बीज  
का चूर्ण । इन्हें इकट्ठा भिलाकर और पीसकर  
काँजी के साथ सेवन करने से श्लीपद रोग नष्ट  
होता है । मात्रा—१ रत्ती ॥ २ ॥

मदनाद्रि लेप ।

मदनञ्च तथा सिक्थं सामुद्रलवणं  
तथा । महिपीनवनीतेन सन्तप्ते लेपनं  
हितम् । सप्ताहात् स्फुटितौ पादौ जायेते  
कमलोपमौ ॥ ३ ॥

मैनफल, मोम और सामुद्र नमक इन्हें इकट्ठा-  
कर भँस के दूध के मक्खन में भिलाकर दाहयुक्त  
फटे हुए पाँवों पर एक सप्ताह तक लगाने से पैर  
कमल के समान सज्ज हो जाते हैं ॥ ३ ॥

धुस्तूरैरगडनिर्गुण्डीवर्षामूशिग्रु सर्पपैः ॥  
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारु-  
णम् ॥ ४ ॥

धतूरे के बीज, एरगडमूल, निर्गुण्डी, पुनर्नवा  
के मूल, सहिजन की छाल और सरसों को पीस-  
कर प्रलेप करने से चिरकाल का भी दारुण श्ली-  
पदरोग नष्ट करता है ॥ ४ ॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्क-  
लम् । प्रलेपात् श्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि  
स्थिरम् ॥ ५ ॥

श्वेत मदार (आक) के मूल की छाल  
को काँजी के साथ पीसकर प्रलेप करे । यह  
प्रलेप बहुत प्राचीन बद्धमूल श्लीपद को भी नष्ट  
करता है ॥ ५ ॥

पिएडारकतरुसम्भववन्दाकशिफा जय-  
ति सर्पिषा पीता श्लीपदमुग्रं नियतं वा  
सूत्रेण जह्यायाम् ॥ ६ ॥

पिएडारक के वृक्ष में उत्पन्न हुए बाँदा के मूल  
को पीसकर घृत में मिश्रित कर पान करने तथा  
सूत में लपेटकर जाँघ में बाँधने से उग्र श्लीपद-  
रोग शीघ्र विनष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

हितरचालेपने नित्यं चित्रको देवदारु  
वा । सिद्धार्थशिग्रु कल्को वा सुखोष्णो  
मूत्रपेपितः ॥ ७ ॥

चित की जड़ अथवा देवदारु का लेप करना,

अथवा सरसों और सहिजन की छाल को गो-  
मूत्र में पीसकर किये हुए कलक को कुछ गरम  
करके लेप करना श्लीपदरोग में लाभदायक  
होता है ॥ ७ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे  
भिपक् । कृत्वा गुल्फोपरिसिरां विध्येत्  
तच्चतुरङ्गुले ॥ ८ ॥

घातित श्लीपदरोग में स्नेहन, स्वेदन और  
उपनाह करके गुल्फों के ऊपर चार अंगुल की दूरी  
पर शिरावेधन करे ॥ ८ ॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्येत् श्लीपदे  
पित्तसम्भवे । पित्तघ्नीश्च क्रियां कुर्यात्  
पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ९ ॥

पैत्तिक श्लीपदरोग में गुल्फ के नीचे की  
शिरावेधन करे तथा पित्त अर्बुद और विसर्प-  
रोग के समान पित्तनाशक क्रियाओं को  
करे ॥ ९ ॥

मज्जिष्ठां मधुकं रास्ना सहिस्रां सपुनर्न-  
वाम् । पिष्ट्वारनालैर्लोपोऽयं पित्तश्लीपद-  
शान्तये ॥ १० ॥

मंजीठ, मुलेठी, रासन, भटकटैया और गदह-  
पुरैना (साँठी) को काँजी में पीसकर लेप करने से  
पैत्तिक श्लीपद की शान्ति होती है ॥ १० ॥

शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्म-  
श्लीपदे । मधुयुक्कानि वा तीक्ष्णकपायाणि  
पिवेत्रः ॥ ११ ॥

भलीभाँति समझकर कफजन्य श्लीपद में  
अंगुष्ठ के ऊपर की शिरा का वेधन करे अथवा  
मधु मिश्रितकर तीक्ष्ण औषधियों के काथ का  
पान करे ॥ ११ ॥

पिवेत्सर्पतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये ।  
पूतिकरञ्जच्छदजं रसं वापि यथाबलम् १२

कंजे की पत्तियों के रस में सरसों का तैल  
मिलाकर यथानुसार न्यूनाधिक परिमाण में  
पान करे । इससे श्लीपदरोग की शान्ति होती  
है ॥ १२ ॥

अनेनैव प्रकारेण पुत्रञ्जीवकजं रसम् ।  
काञ्जिकेन पिवेच्चूर्णं भूर्वा वृद्धदारु-  
जम् ॥ १३ ॥

पूर्वोक्त रीति से सरसों के तैल के साथ पुत्र-  
जीवक ( जियापोता ) के रस का पान करे तथा  
विधारे के चूर्ण को काँजी के साथ अथवा गो-  
मूत्र के साथ पान करे ॥ १३ ॥

रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिवेत्रः ।  
वर्पोत्थं श्लीपदं हन्ति दद्रुकुष्ठं विशे-  
पतः ॥ १४ ॥

गुडमिश्रित हल्दी को गोमूत्र में घोलकर  
पान करे । यह योग एक वर्ष के श्लीपद को  
तथा विरोपकर दद्रु और कुष्ठरोग को नष्ट करता  
है ॥ १४ ॥

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः  
पिबति । श्लीपदबन्धनमुक्त्वा भवत्यसौ सप्त-  
रात्रेण ॥ १५ ॥

एरगड के तेल में हरीतकी को भूनकर गो-  
मूत्र के साथ जो सेवन करते हैं, वे सात रात  
में श्लीपद के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥ १५ ॥

धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफघातविना-  
शनम् । दीपनश्चामदोपघ्नमेतत् श्लीपद-  
नाशनम् ॥ १६ ॥

तैलयुक्त काँजी कफ और घात की नाशक  
होती है । तथा दीपन, आमदोपनाशक और  
श्लीपदनाशक होती है ॥ १६ ॥

गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्मापेण्डरीं  
नरः । जयेत् श्लीपदकोपोत्थं ज्वरं सद्यो  
न संशयः ॥ श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासाद्  
गुहृच्यास्तैलसंयुतः ॥ १७ ॥

गोधावती ( हंसपदी ) की जड़ का चूर्ण  
मिलाकर उदक की बढी बनाकर सेवन करने से  
श्लीपदजन्य ज्वर निःसंदेह शीघ्र नष्ट हो जाता  
है । गिल्लोय के स्वरस अथवा काथ के साथ

कटुतैल का सेवन करने से भी श्लीपद नष्ट होता है ॥ १७ ॥

वृद्धदारकसमचूर्ण ।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं दावीं वरुणगो-  
चुरम् । अलम्बुपां गुडूचीञ्च समभागानि  
चूर्णयेत् ॥ १८ ॥ सर्वेषां चूर्णमाहृत्य  
वृद्धदारस्य तत्समम् । काञ्जिकेन च तत्पेयं  
मापमात्रं प्रमाणतः ॥ १९ ॥ जीर्णं च  
परिहारं स्याद्भोजनं सर्वकामिकम् । नाश-  
येत् श्लीपदं स्थौल्यमामवातश्च दारुणम् ।  
गुल्मकुष्ठानिलहरं वातश्लेष्मज्वरापहम् २०

सोंठ मिर्च, पीपरि, आंवला, हड़, बहेड़ा, चव्य, दारुहृदी, वरना की छाल, गोखरू, मुयडी और गिलोय समभाग लेकर चूर्ण करे । कुल चूर्ण की बराबर विधारे का चूर्ण मिलाकर एक एक मासे की मात्रा में काँजी के साथ प्रति दिन सेवन करे । खाई हुई औषध का परिपाक हो जाने पर यथेच्छ भोजन करे । श्लीपद, स्थूलता दारुण आमवात, गुल्म, कुष्ठ और वातरोग को तथा वातश्लेष्मिक ज्वर को यह चूर्ण नष्ट करता है ॥ १८--२० ॥

पिप्पल्याद्यचूर्ण ।

पिप्पली त्रिफला दारु नागरं सपुनर्न-  
वम् । भागैद्विपलिकैरेपां तत्समं वृद्धदार-  
कम् ॥ २१ ॥ काञ्जिकेन पिवेच्चूर्णं माप-  
मात्रं प्रमाणतः । जीर्णं च परिहारं स्या-  
द्भोजनं सर्वकामिकम् ॥ २२ ॥ श्लीपदं  
वातरोगांश्च हन्यात् स्नीहानमेव च ।  
अग्निञ्च कुरुते घोरं भस्मकञ्च निय-  
च्छति ॥ २३ ॥

पीपरि, आंवला, हड़, बहेड़ा, देवदारु, सोंठ और गदहपुरैना (साँडी) ये सब आठ-आठ तोले तथा सबके बराबर विधारा मिलाकर चूर्ण बना ले । एक-एक मासे की मात्रा में काँजी के

माथ सेवन करे । भुङ्ग औषध का परिपाक हो जाने पर यथेच्छ भोजन करे । यह चूर्ण श्ली-  
पद वातरोग और प्रीहा को नष्ट करता है ।  
अग्नि को प्रबल करता है और भस्मकरोरु को  
शान्त करता है ॥ २१--२३ ॥

कृष्णाद्यमोदक ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कपमर्द्धपलं  
पलम् । विंशतिश्च हरीतक्या गुडस्य तु  
पलद्वयम् ॥ मधुना मोदकं खादन् श्लीपदं  
हन्ति दुस्तरम् ॥ २४ ॥

पीपरि १ तोला, चीत की जड़ २ तोले,  
दन्ती ४ तोले, छोटी हड़ २० नग और गुड ८  
तोले लेकर मधु के साथ मोदक बनाकर सेवन  
करे । यह मोदक दुस्तर श्लीपद को नष्ट करता  
है ॥ २४ ॥

सौरेश्वरघृत ।

सुरसा देवकाशुश्च त्रिकटुत्रिफले तथा ।  
लवणान्यथ सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्र-  
कम् ॥ २५ ॥ चविका पिप्पलीमूलं गुग्गु-  
लुहंबुपा वचा । यवाग्रजश्चपाठा च शटये-  
लावृद्धदारकम् ॥ २६ ॥ कल्कैश्च कापि-  
कैरेभिर्घृतमस्थं विपाचयेत् । दशमूलकपा-  
येण धान्ययूपद्रवेण च ॥ २७ ॥ दधि-  
मस्तु समायुक्तं मस्थं मस्थं पृथक् पृथक् ।  
पकं स्याद्बुद्धतं कल्कात् पिवेत् कर्पादिकं  
हविः ॥ २८ ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं मांस-  
रक्ताश्रितञ्च यत् । मेदःश्रितञ्च वातोत्थं  
हन्यादेव न संशयः ॥ २९ ॥ अर्पचीं  
गण्डमालाञ्च अन्नवृद्धिं तथायुर्दम् ।  
नाशयेद् ग्रहणीदोषं स्वययुं गुदजानि  
च । परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठकृमिविना-  
शनम् ॥ ३० ॥

मुलसी की पत्ती, देवदारु, सोंठ, मिर्च,  
पीपरि, आंवला, हड़, बहेड़ा, पाँचों नमक,

वायविडग, चीत की जड़, चञ्च, पिपरामूल, गूगुल, हाऊबेर, बच, जवाखार, पाद्री, कचूर, इलायची और विधारा ये सब एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे । घी १२८ तोले । ६४ तोले दशमूल को ३ सेर १६ तोले जल में पकवे । ६४ तोले जल अवशिष्ट रहने पर इस काथ और कल्क के साथ घृत को पकावे । फिर ६४ तोले काँजी और ६४ तोले दही के तोड़ के साथ भी अलग अलग पकावे । यथोचित पाक हो जाने पर घृत को कल्क से अलग कर ध्यानकर रखे । छः छः माशा की मात्रा में इसका पान करे । यह कफ-वातोत्थ और मास, रक्तगत, मेदोगत और वातजन्य श्लीपद को निःसदेह नष्ट करता है । अपची, गण्डमाला, अमृतवृद्धि, अमृत, महृषीधिकार, शोथ और बवासीर को नष्ट करता है । अग्निवर्धक, हृदय के लिये लाभदायक और कोष्ठस्य कृमियों का नाशक है ॥ २५-३० ॥

विडङ्गादितैल ।

विडङ्गमरिचार्केंपु नागरे चित्रके तथा । भद्रदार्वेलाकाढे च सर्वेषु लगणेषु च ॥ तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ३१ ॥

वायविडग, कालीमिर्च, मदार ( आक ) की लव, सोंठ, चीत की जड़, देवदारु, एलुआ और पाँचों नमक के कल्क के साथ सिद्ध तैल को श्लीपद की निवृत्ति के लिये पान करे ॥ ३१ ॥

नित्यानन्दरस ।

हिडगूलसम्भ्रं सूतं गन्धकं मृत ताम्रकम् । कांस्यं वद्धं हरीतालं तुरथं शङ्खं वराटिका ॥ ३२ ॥ त्रिकटु त्रिफला लौहं विडङ्गं पटुपञ्चकम् । चविका पिप्पलीमूलं ह्युपा च वचा तथा ॥ ३३ ॥ शटी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् । त्रिवृतां चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक् ॥ ३४ ॥ एतानि समभागानि सञ्चूर्य गुड-कौकृतम् । हरीतकीरसं दत्त्वा दशगुञ्जो-

न्मितं शुभम् ॥ ३५ ॥ एकैकं भक्षयेन्नित्यं शीतश्चानुपिबेज्जलम् । श्लीपदं कफगतोत्थं रक्तमांसाश्रितञ्च यत् ॥ ३६ ॥ मेदोगतं धातुगतं निहन्ति नात्र संशयः । अमृतं गण्डमालाञ्च वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ३७ ॥ कफगतोद्भवं रोगमन्त्रवृद्धिचिरन्तनीम् । वातरक्ते वातकफे गुदरोगे कृमौ तथा । ३८ ॥ अग्निवृद्धिं करोत्येव बलमर्णञ्च सुस्थताम् । श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ॥ ३९ ॥ नित्यानन्दरसश्चायं महाश्लीपदनाशनः । रक्तजे पित्तजे चाऽपि श्लीपदे योजयेदमुम् । नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते श्लीपदामये ॥ ४० ॥

‘त्रिवृतां चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक् ।’ इत्यत्र ‘त्रिवृत् चित्रकदन्तीनां भाग्यिन्ना रसैः पृथक् ।’ इति सारकौमुद्यां पाठः कुत्रापि वा एतत् पद्यार्द्धं नास्त्येव । ‘शटी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् ।’ इत्यत्र शटी-पाठा देवदारुत्वगेलावृद्धदारुभिमिनि पाठा-न्तरं दृश्यते ।

हिगुलोथ शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, वज्रभस्म, शुद्ध हरिताल शुद्ध तृप्तिया, शलभस्म, कौडी की भस्म सोंठ, कालीमिर्च, पीपरि, आविला, हृद, बहेदा, जोर-भस्म, वायविडग, पाँचों नमक, चञ्च, पिपरामूल हाऊबेर, बच, कचूर पाद्री, देवदारु, इलायची, विधारा, निसोथ, चीत की जड़ और दन्ती को समभाग लेकर घृत करके छोटी हृद के काथ के साथ दरा दरा रत्ती की गोली बना कर रखे । शीतज जल के साथ एक एक गोली का सेवन करे । यह रस कफवातोत्थ, रक्तमासाधित, मेदोगत और धातुगत श्लीपद को निःसदेह नष्ट करता है । अमृत, गण्डमाला,

कठिन वातरक्त और कफवातजन्य अन्यान्य रोगों को तथा प्राचीन अन्त्रवृद्धरोग को नष्ट करता है। वातरक्त, वातकफ, बवासीर और कृमिरोगों में अग्निवर्धक है। बल, कान्ति और स्वास्थ्य को बढ़ाता है। संसार के लाभार्थ श्रीमान् गहननाथ ने इसको बनाया था। यह नित्यानन्दरस महान् श्लीपद को नष्ट करता है। रक्तज और पित्तज श्लीपद में इसका प्रयोग करना चाहिए। श्लीपदरोग की शान्ति के लिए इससे बढ़कर और कोई योग नहीं है ॥ ३२-४० ॥

( 'त्रिवृत्ता चित्रकं दन्तीं गृहीत्वा तु पृथक् पृथक्' यहाँ पर 'त्रिवृत् चित्रकदन्तीनां भावयित्वा रसैः पृथक्' ऐसा सारकौमुदी में पाठ है। कहीं-कहीं यह आधा पद्य ही नहीं। 'शटीपाठा-देवदाह एला च वृद्धदारकम्' यहाँ, 'शटी पाठा-देवदाह त्वगोला वृद्धदारकम्' में ऐमा माठान्तर देखा जाता है। )

श्लीपदगजकेशरी ।

व्योषामृतयमानी च सूतोऽग्निर्गन्धकं शिला । सौभाग्यं जयपालश्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ ४१ ॥ भृङ्गगोलुरजम्बीरार्द्रक-तोयैर्विर्मदयेत् । अस्य गुञ्जामितं खादेदुप्य-तोयानुपानतः ॥ ४२ ॥ श्लीपदं दुस्तरं हन्ति स्नीहानं हन्ति सेवितः ॥ ४३ ॥

सोंठ, कालीमिर्च, पीपरी, मीठा विष, अज-पादन, पारा, चीत की जड़, गन्धक, मैन्शिल, सोहागा और शुद्ध जमालगोटा इनको समभाग लेकर चूर्ण करे और इस चूर्ण को भांगरा, गोबरू, नीम् और चदरख के रस के साथ घोटकर एक-एक रसी की गोली बनाकर उष्ण जल के साथ सेवन करे। यह रस दुस्तर श्लीपद और स्नीहा को निःसंदेह नष्ट करता है ॥ ४१-४३ ॥

श्लीपदारि ।

निर्म्यं खदिरसारश्च मधुना मापक-द्रवम् । गवां मूत्रेण पिष्ट्वा तु पिपेत् श्लीपदशान्तये ॥ ४४ ॥

नीम की छाल और कत्था के चूर्ण को दो माशे लेकर गोमूत्र में पीसकर और मधु मिलाकर श्लीपद की निवृत्ति के लिये पान करे ॥ ४४ ॥

श्लीपदारिलौह ।

हरीतक्या विभीतस्य धात्र्याश्चूर्णं सु-चूर्णितम् । पट्टोलकप्रमाणेन ग्राह्यं तेषां गुणैपिष्या ॥ ४५ ॥ तोलद्वयं कान्त-लोहचूर्णं तद्वच्चिह्नलाजतु । कृत्वैकत्र समस्तेषु त्रिफलाकाथभावना ॥ ४६ ॥

श्लीपदाद्यगदध्वंसी सर्वव्याधिविनाशनः । श्लीपदारिरिति ख्यातो लौहो मुनिभिर-चितः ॥ ४७ ॥

हट्ट, घहेटा, आँवला हरएक ६ तोले, कान्तलौह भस्म २ तोले, शुद्ध शिलाजीत २ तोले इन्हें इकट्ठा मिलाकर त्रिफला के काथ की भावना देकर दो-दो रसी की गोलियाँ बनावे। यह श्लीपद आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ ४५-४७ ॥

पञ्चाननघृत ।

शालश्चिकापलद्वन्द्वं पौनर्नवपलद्व-यम् । इन्द्रमूरपलद्वन्द्वं पलैकं चमरीफ-लम् ॥ ४८ ॥ गुञ्जादलं पलैकन्तु काय-येत्प्रास्थिकेऽम्भसि । पादावशेषे विपचेत् गोघृतं प्रास्थिकं मुधीः ॥ ४९ ॥ अथया चित्रकं चारं सैन्धवं विदरमेपजम् । एतेषां कर्पमानेन वरपतं मुनीर्गितम् ॥ ५० ॥ घृते मिद्रे प्रदातव्यं तत्र मामन्तु खादयेत् । पञ्चाननघृतं नाम श्लीपदं गदकुम्भनि ॥ ५१ ॥ स्नीहगुन्मोदरानाहयरगोध-विनाशनम् । श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विदरमद्वलम् ॥ ५२ ॥ गोमूत्रं श्लै-

ध्मिके देयं दुग्धं वाते च पैत्तिके । सामान्य-  
भोजनं देयमनुपानं प्रकीर्तितम् ॥ ६३ ॥

गोघृत १२८ तोले, कलक के लिये शालिञ्ज ८ तोले, साँठी की जड़ ८ तोले, सँभालू ८ तोले, काञ्चनफल ४ तोले, घुँघची के पत्ते ४ तोले । इन्हें एकत्रकर १२८ तोले जल में पकावे । जब चतुर्थांश रह जाय तब उतारकर क्वाथ को छान ले । प्रक्षेपार्थ—हृद, चित्रक, जवाखार, सधा नमक और सोंठ, प्रत्येक का महीन चूर्ण १ तोला । विधि पूर्वक क्वाथ द्वारा घृत को सिद्ध कर उसे छान ले और उसमें हृद आदि ढालकर अच्छे प्रकार मथ ले । मात्रा—आधा तोला से ३ तोला तक । इसे श्लीपद, गदकुम्भी रोग में एक मास तक सेवन कराव । इसके सेवन से भ्रूँहा, गुल्म, उदर, आनाह, ड्यर तथा शोथ नष्ट होता है । अनुपान—श्लैष्मिक श्लीपद में गोमूत्र, वातिक एवं पैत्तिक में दूध पथ्य है । भोजन सामान्य करना चाहिए ॥ ४८-२३ ॥

पञ्चाननतैल ।

एतत्तैलं प्रकर्तव्यं कल्फेन वस्तुना  
विना । घृतेन वा कृतं तैलं घृततुल्य-  
गुणं भवेत् ॥ ५४ ॥

१२८ तोले तिलतैल को पहिले घृत के क्वाथ द्वारा ( पूर्वोक्त मान से ही ) सिद्ध करने से पञ्चानन तैल बन जाता है । इसमें हृद आदि का कल्क नहीं ढाला जाता । अथवा तिलतैल को पूर्वोक्त घृत में कहे गये क्वाथ से सिद्धकर उसमें हृद आदि भी ढाल सकते हैं । यह तेल गुणोंमें पहिले घृत के तुल्य ही होगा ॥ २४ ॥

श्लीपदरोग में पथ्य ।

पुरातनाः पट्टिकशालयश्च यवाः कुलत्थ्या  
लशुनं पटोलम् । वार्ताकुशोभाञ्जनकार-  
वेल्लं कटूनि तिक्कानि च दीपनानि ॥५५॥  
परण्डतैलं सुरभीजलञ्च पुनर्नवामूल-

कपोतिकाञ्च । एतानि पथ्यानि भवन्ति  
पुंसां रोगे सति श्लीपदनामधेये ॥ ५६ ॥

श्लीपद नामक रोग के होने पर पुराने साँठी के चावल, जौ, कुलथी, लहसुन, परवल, बैंगन, सहिजना, करेला, चरपरे एवं कड़वे द्रव्य, दीपन पदार्थ, अण्डी का तेल, गोमूत्र, साँठी, छोटी कच्ची मूली ये पथ्य हैं ॥ २२-२६ ॥

अपथ्य ।

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानुपमामि-  
पम् । स्नादुरसं महेन्द्रोत्थं सल्लविन्ध्यनदी-  
जलम् ॥ पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी  
परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां श्लीपदा-

धिकारः समाप्तः ।

पीठी के भक्ष्य पदार्थ, रबड़ी आदि दूध से घने द्रव्य, गुड़ आनूप मास, मधुर रसवाले द्रव्य, महेन्द्र, सल्लादि एवं विष्य पर्वत से निकलनेवाली नदियों के जल, लसीले द्रव्य, गुड़ एवं अभिष्यन्दि भोजन करना श्लीपद के रोगी को त्याग करना चाहिए ॥ २७ ॥

इति सरयूप्रसादादिप्रपाठिविराचिताया भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिभाषा व्याख्याया  
श्लीपदाधिकार समाप्त ।

अथ गलगण्डाद्यपचीग्र-  
न्थ्यर्बुदाधिकारः ।

गलगण्डचिकित्सा ।

यवमुद्गपटोलानि कटु रुचं च  
भोजनम् । क्षिदिं सरक्त्रमुक्तिं च गलगण्डे  
प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

गलगण्ड रोग में जौ, मूँग, परवल, कटुया और रुखा भोजन देना चाहिए तथा वमन करना और पक्क सुलाना चाहिए ॥ १ ॥

गलगण्ड में लेप ।

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिले-  
पितः । हस्तकर्णपलाशस्य गलगण्डः  
प्रशाम्यति ॥ २ ॥

एण्ड की जड़ को चावल के पानी से  
पीसकर लेप करने से गलगण्डरोग शान्त होता  
है ॥ २ ॥

सर्पपादि प्रलेप

सर्पपान् शिश्रु वीजानि शण्डीजातसी-  
यवान् । मूलकस्य च वीजानि तक्रेणा-  
म्लेन पेपयेत् ॥ ३ ॥ गलगण्डा ग्रन्थय-  
श्च गण्डमालाः सुदारुणाः । प्रलेपात्  
तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचि-  
रात् ॥ ४ ॥

सरसों, सहिजन के बीज, सन के बीज,  
अलसी, जौ और मूली के बीजों को पट्टी छ़ाड़  
में पीसकर लेप करने से गलगण्ड, ग्रन्थि और  
कठिन गण्डमाला शान्त होकर शीघ्र ही  
घिनट हो जाती है ॥ ३-४ ॥

गलगण्ड में नस्य ।

जीर्णकृर्करुसो विडसैन्धवसंयुतः ।  
नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न  
संशयः ॥ ५ ॥

पके हुए पेटे ( वृष्टे ) के रस में विड़  
और सेंधानमक मिलाकर नास देने ( सूँधने )  
से नया गलगण्डरोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगा-  
लितम् । पिपेत् कोद्रवभद्राशी गलगण्ड-  
मशान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीक ( काई ) की भस्म को गोमूत्र  
में पकाकर दान छे और योग्य मात्रा में  
इसको पीये तथा कोद्रों का भाग गाये तो  
गलगण्डरोग शान्त हो ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्तरमोनाभ्यां गलगण्डोपना-

हने । स्फोटस्त्रावैः शमं यान्ति गलगण्डो  
न संशयः ॥ ७ ॥

सूरजमुखी और लहसुन की पुलटिस बाँधने  
से गलगण्ड के फोड़े फूट जाते हैं और पीय यह  
जाता है । इससे गलगण्ड शान्त हो जाता  
है ॥ ७ ॥

तिक्कालावुफले पके सप्ताहमुपितं ज-  
लम् । मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात् पथ्या-  
न्नसेविनः ॥ ८ ॥

पकी हुई कड़ई तूँबी में सात दिन तक रखे  
हुए जल के अथवा मदिरा के पीने से तथा पथ्य  
और अन्न पदार्थों के सेवन करने से गल-  
गण्डरोग शान्त होसा है ॥ ८ ॥

कट्फलचूणान्तर्गलघर्षो गलगण्डा-  
मयं हन्ति । घृतमिश्रं पीतमपि श्वेतगिरि-  
कर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

कायफल के चूर्ण को गले में घिसने से गल-  
गण्डरोग नष्ट होता है । तथा सफ़ेद चिप्युकान्ता  
( कोयली ) की जड़ के चूर्ण में घी मिलाकर  
पीने से भी गलगण्ड शान्त हो जाता है ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लौहमलं संस्थितं  
घटे मासम् । अन्तर्धूमविदग्धं लिहात्  
मधुनाथ गलगण्डे ॥ १० ॥

मत्पूर को भँस के मूत्र में भिगोकर एक  
महीने तक मिट्टी के घड़े में रखने, फिर उसकी  
अन्तर्धूमभाग्य करके शहद के साथ चाटे, तो  
गलगण्ड शान्त हो ॥ १० ॥

जिहायाः पार्श्वतो घस्ताच्छिरा द्वाद-  
ज कीर्त्तिताः । तामां स्थूलगिरे द्वेऽपदिद्धि-  
न्यात्ते च गर्नः शनैः ॥ ११ ॥ पटि-  
जेनैर संश्रय कुजपत्रेण युद्धिमान् । ध्रुने  
रत्रे व्रणे तस्मिन् दृष्यात् सगुदमाद्र-  
वम् ॥ भोजनज्ञानभित्पन्दि स्युः कौलत्य  
इष्यते ॥ १२ ॥

जीम के नीचे बगल में १२ शिराएँ कही गई हैं, उनमें से दो शिराएँ मोटी हैं, उनको बद्धियन्त्र से पकड़कर कृशपत्र यन्त्र से धीरे-धीरे नीचे से काट दे। जब घाव से खून निकल जाय तब गुड और शदरख का उस पर लेप कर दे। अनभिष्यन्दी (जो कफकारी न हों) पदार्थों का तथा कूलथी के मूष का भोजन करे ॥ १११२ ॥

कर्णयुग्मग्रहिःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितञ्च यत् । उपयुपरि तच्छिन्धाद् गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ १३ ॥

दोनों कानों की बाहरी सन्धि के पास ऊपर नीचे तीन शिराएँ हैं। उनका छेदने करने से भी गलगण्ड शान्त होता है ॥ १३ ॥

तुम्हीतैल ।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरासनाग्निव्योषदा-  
रुभिः । कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपा-  
चितम् ॥ चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं  
विनाशयेत् ॥ १४ ॥

कटुई तूथी का रस ८ सेर, कटुआ तैल २ सेर । कर्क के लिए वायुविषग, जवाखार, संधानमक, और देवदार ये सब मिलित आध सेर ले, फिर विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर नस्य लेने से बहुत पुराना गलगण्डरोग शान्त हो जाता है ॥ १४ ॥

अमृताघतैल ।

तैलं पिवेच्चामृतवह्निनिम्बर्हिंसाद्रयी-  
वत्सकपिप्पलीभिः । सिद्धं बलाभ्यां च  
सदेवदारु द्विष्ये नित्यं गलगण्ड-  
रोगी ॥ १५ ॥

गिलोय, नीम की छाल, दोनों हाँस (रक्त और श्वेत पुष्प के भेद से), कुफ़ा की छाल पीपल, बला, अतिथला और देवदारु ये सब मिलित आध सेर कर्क के लिए ले। गिल-तैल २ सेर और पकार्य जल ८ सेर । विधि से

तैल सिद्ध करके सेवन करने से गलगण्ड नष्ट होता है ॥ १५ ॥

गण्डभाला की चिकित्सा ।

काञ्चनारत्वचः काथः शुण्ठी चूर्णेन  
संयुतः । माक्षिकाढ्यं सकृत्पीतः काथो  
वरुणमूलजः ॥ गण्डमालां हरत्याशु चिर-  
कालानुबन्धिनीम् ॥ १६ ॥

कचनार की छाल के काथ में सोंठ का चूर्ण डालकर पीने से एवं बरना के मूल की छाल के साथ में शहद डालकर पीने से बहुत दिन का पुराना गण्डभालारोग तुरन्त नष्ट होता है ॥ १६ ॥

पिप्ट्राज्येष्ठाभ्युना पीताःकाञ्चनारत्वचः  
शुभाः । विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमाला-  
पहाः पराः ॥ १७ ॥

कचनार की छाल को चावलों के धोवन के साथ पीसकर उसमें सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करने से गण्डभाला नष्ट होती है ॥ १७ ॥

काञ्चनगुटिका ।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योपाच द्वि-  
गुणो मतः । तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्च-  
नारस्य वल्कलम् ॥ १८ ॥ एकीकृते तु  
चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः । चौद्रं  
दशगुणं दद्यात् त्रिफलाचूर्णतो भिषक् ॥  
१९ ॥ सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे

१ ज्येष्ठागु-तण्डुलोदकम् । शालितण्डुलपानीयं ज्ञेयं ज्येष्ठागुसलितम् । इत्यभिधानाय, तद्विनीय-विधि-यथा-कृदितं तण्डुलपत्रजलेऽष्टगुणिते पिपेत् । भावधिरया जल प्राद्य देय सर्वेषु कर्मसु ॥

शाक्तिधान के भाषणों के धोवन को ज्येष्ठागु या तण्डुलोदक कहते हैं। इसके धोवने की विधि यह है ४ तोले भाषणों को ३२ तोले जल में भिगो दे थोड़ी देर के बाद पान कर जल को छे छे। यह जल सब कर्मों में देने योग्य है ॥

१. द्विष-कण्टकपाली सा च रक्तश्वेतपुष्पभेदेन द्विषा । द्विन्दी में हाँस कहते हैं ।



गलगण्ड में लेप ।

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिले-  
पितः । हस्तकर्णपलाशस्य गलगण्डः  
प्रशाम्यति ॥ २ ॥

एण्ड की जड़ को चावल के पानी से  
पीसकर लेप करने से गलगण्डरोग शान्त होता  
है ॥ २ ॥

सर्पपादि प्रलेप

सर्पयान् शिश्रु बीजानि शण्वीजातसी-  
यवान् । मूलकस्य च बीजानि तक्रेणा-  
म्लेन पेपयेत् ॥ ३ ॥ गलगण्डा ग्रन्थय-  
श्च गण्डमालाः सुदारुणाः । प्रलेपात्  
तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचि-  
रात् ॥ ४ ॥

सरसों, महिजन के बीज, सन के बीज,  
थलसी, जी और मूली के बीजों को खट्टी छाल  
में पीसकर लेप करने से गलगण्ड, ग्रन्थि और  
कठिन गण्डमाला शान्त होकर शीघ्र ही  
विनष्ट हो जाती है ॥ ३-४ ॥

गलगण्ड में नस्य ।

जीर्णकर्करसो विडसैन्धवसंयुतः ।  
नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न  
संशयः ॥ ५ ॥

पके हुए घंटे (बुग्घंटे) के रस में विड  
और सैन्धवमक मिलाकर नास खेने (खुंघने)  
से नया गलगण्डरोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्कं गोमूत्रगा-  
लितम् । पिबेत् कोद्रवभस्माशी गलगण्ड-  
मरान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीक (काई) की भस्म को गोमूत्र  
में पकाकर सान खे और योग्य मात्रा में  
इसको पीवे तथा कोद्रों का भाग भावे तो  
गलगण्डरोग शान्त हो ॥ ६ ॥

सूर्यान्तरगोनाभ्यां गलगण्डोपना-

हने । स्फोटस्त्रावैः शमं यान्ति गलगण्डो  
न संशयः ॥ ७ ॥

सूरजमुखी और लहसुन की पुलटिस बांधने  
से गलगण्ड के फोड़े फूट जाते हैं और पीव बढ़  
जाता है । इससे गलगण्ड शान्त हो जाता  
है ॥ ७ ॥

तिक्तालाबुफले पक्के सप्ताहमुपितं ज-  
लम् । मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात् पथ्या-  
न्नसेविनः ॥ ८ ॥

पकी हुई कड़ई तूँबी में सात दिन तक रखले  
हुए जल के अथवा मदिरा के पीने से तथा पथ्य  
और अम्ल पदार्थों के सेवन करने से गल-  
गण्डरोग शान्त होसा है ॥ ८ ॥

कटफलचूणान्तर्गलघर्षो गलगण्डा-  
मयं हन्ति । घृतमिश्रं पीतमपि श्वेतगिरि-  
कर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

कायफल के चूर्ण को गले में घिसने से गल-  
गण्डरोग नष्ट होता है । तथा सक्रंद विष्णुकान्ता  
(कोयली) की जड़ के चूर्ण में घी मिलाकर  
पीने से भी गलगण्ड शान्त हो जाता है ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लौहमलं संस्थितं  
घटे मासम् । अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यात्  
मधुनाथ गलगण्डे ॥ १० ॥

मधु को भँस के मूत्र में भिगोकर एक  
महीने तक मिट्टी के घड़े में रखने, फिर उसकी  
अन्तर्धूमरसम करके शहर के साथ घाटे, तो  
गलगण्ड शान्त हो ॥ १० ॥

जिहायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वाद-  
श कीर्तिताः । तामां स्थूलशिरे द्वेऽधश्चि-  
न्यात्ते च गर्नः गर्नः ॥ ११ ॥ बहि-  
शेनैव संश्रय कुजपत्रेण बुद्धिमान् । भ्रुवे  
रक्ते व्रणे तग्मिन् दद्यात् मगुटमात्र-  
कम् ॥ भोजनश्चानभिष्यन्दि यूपः कौलत्य  
इष्यते ॥ १२ ॥

जीम के नीचे बगल में १२ शिराएँ कही गई हैं, उनमें से दो शिराएँ मोटी हैं, उनको बड़िश यन्त्र से पकड़कर कूशपत्र यन्त्र से धीरे-धीरे नीचे से काट दे। जब घाव से खून निकल जाय तब गुड और अदरक का उस पर लेप कर दे। अनभिष्यन्दी (जो कफकारी न हों) पदार्थों का तथा कूलथी के यूप का भोजन करे ॥ ११२ ॥

कर्णयुग्मवह्निःसन्धिमध्येभ्यासे स्थितश्च यत् । उपर्युपरि तच्छिन्ध्याद् गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ १३ ॥

दोनों कानों की बाहरी सन्धि के पास ऊपर नीचे तीन शिराएँ हैं। उनका छेदने करने से भी गलगण्ड शान्त होता है ॥ १३ ॥

तुम्बीतैल ।

विडङ्गत्तारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योपदारुभिः । कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥ चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ १४ ॥

कटुई तूँबी का रस ८ सेर, कटुआ तैल २ सेर। कल्क के लिए वायविडंग, जवाखार, संधानमक, और देवदार ये सब मिलित आध सेर ले, फिर विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर नस्य लेने से बहुत पुराना गलगण्डरोग शान्त हो जाता है ॥ १४ ॥

अमृताद्यतैल ।

तैलं पिवेच्चामृतमल्लिनिम्बहिंस्राद्वयीवत्सकपिप्पलीभिः । सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगी ॥ १५ ॥

गिलोय, नीम की छाल, दोनों हीस (रक्त और श्वेत पुष्प के भेद से), कुदा की छाल पीपल, बला, अतिबला और देवदारु ये सब मिलित आध सेर कल्क के लिए ले। तिल-तैल २ सेर और पकाय जल ८ सेर। विधि से

तैल सिद्ध करके सेवन करने से गलगण्ड नष्ट होता है ॥ १५ ॥

गण्डमाला की चिकित्सा ।

काश्वनारत्वचः काथः शुण्ठी चूर्णेन संयुतः । मात्तिकाढ्यं सकृत्पीतः काथो वरुणमूलजः ॥ गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुन्धिनीम् ॥ १६ ॥

कचनार की छाल के काथ में सोंठ का चूर्ण डालकर पीने से एव बरना के मूल की छाल के साथ में शहद डालकर पीने से बहुत दिन का पुराना गण्डमालारोग तुरन्त नष्ट होता है ॥ १६ ॥

पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पीताः काश्वनारत्वचः शुभाः । विश्वभेजसंयुक्ता गण्डमालापहाः पराः ॥ १७ ॥

कचनार की छाल को चावलों के धोवन के साथ पीसकर उसमें सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १७ ॥

काश्वनगुटिका ।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योपाच द्विगुणो मतः । तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काश्वनारस्य वल्कलम् ॥ १८ ॥ एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः । क्षौद्रं दशगुणं दद्यात् त्रिफलाचूर्णतो भिषक् ॥ १९ ॥ सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे

१ ज्येष्ठाम्बु तण्डुलोदकम् । शालिधानजलपानीय ज्ञेयज्येष्ठाम्बुसंज्ञितम् । इत्यभिधानात्, तीर्जमाण-विधि यथा-कुट्टित तण्डुलपल जलेऽष्टगुणिते चिपेत् । भाषयित्वा जल प्राज्ञ देय सर्वेषु कर्मसु ॥

शालिधान के चावलों के धोवन को ज्येष्ठाम्बु या तण्डुलोदक कहते हैं। इसके घनाने की विधि यह है ४ तोले चावलों को ३२ तोले जल में भिगो दे थोड़ी देर के बाद घानकर जल को ले ले। यह जल सय क्रमों में देने योग्य है ॥

१. हिंस-कण्टकपाली सा च रक्तश्वेतपुष्पभेदेन द्विधा । हिंदी में हीस कहते हैं।

तथैव च । नाडीत्रयेषु गण्डेषु गुडिकेयं  
प्रशस्यते ॥ २० ॥

त्रिफला ३ भाग, त्रिकटु ६ भाग, कचनार की  
छाल १० भाग और सब के बराबर शुद्ध गुग्गुलु  
लेकर सबका चूर्ण करे और त्रिफला से दशगुना  
अर्थात् ३० भाग शहद मिलाकर गीली बनावे ।  
यह गोली गण्डमाला, गलगण्ड, नाडीत्रय  
( नासूर ) और गण्डरोगों में श्रेष्ठ है ॥ १८-२० ॥

गण्डमाला कंडनरस ।

कर्पं शुद्धस्य सूतस्य गन्धकं त्वर्ध-  
मुत्तमम् । सार्धाकर्पं ताम्रभस्म मृतं किट्टं-  
त्रिकर्पकम् ॥ २१ ॥ व्योषं वट्कर्पं तुलितम-  
क्षार्धं सैन्धवं सितम् । कश्चिनारत्व-  
चञ्चूर्णं पलत्रयमितं क्षिपेत् ॥ २२ ॥  
पलत्रयं गुग्गुलोश्च शुद्धस्य समुपाहरेत् । एत-  
द्युक्त्वा तु सम्मेल्य सुरभी सर्पिपाहृदम् २३  
गण्डमाला कण्डनोज्यं रसो मापत्रया-  
त्मकः मुक्तो निहन्ति गण्डानि गण्डमालाश्च  
दारुणम् ॥ २४ ॥

शुद्धपारा १ तोला शुद्ध गन्धक आधा तोला  
ताम्रभस्म २ रत्ती १॥ तोलामण्डूरभस्म ३ तोला  
त्रिकुटा ६ तोला सफेद सेंधा नमक आधा तोला  
कचनार की छाल का चूर्ण १२ तोला उत्तमगु-  
ग्गुलु १२ तोला सबको ले ऊलल में थोड़ा गाय  
का घी का हाथ फेर कर पहिले गुग्गुलु को कुटावे  
जब गुग्गुलु पतला हो जाय तब धीरे धीरे चूर्ण  
को डालता जाय जब सब बिलकुल मिलजाय  
तब ३३ मासे की गोलियाँ बना लेवे । इसको  
कचनार और वरुणादिगण के क्वाथ के साथ  
देने से गलगण्ड गण्डमाला और अपथी का  
नाश करता है ॥ २१-२४ ॥

सिन्दूरदि तैल ।

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा  
विपाचयेत् । केशराजरसे तैलं कटुकं मृदु-  
नाग्निना ॥ २५ ॥ पाकशेषे विनिसिप्य

सिन्दूरमवतारयेत् । एतत्तैलं निहन्त्याशु  
गण्डमालां मुदारुणाम् ॥ २६ ॥

कल्क के लिए चक्रमर्द ( पवाँड ) की जड़  
पाव भर, भँगरे का रस ८ सेर और कडुआ तैल ।  
२ सेर लेकर वधाविधि मन्दाग्नि से पाक करे  
जब तैलमात्र रह जाये तब १६ तोले  
सिन्दूर डालकर उतार ले । इस तैल के  
लगाने से कठिन से कठिन गण्डमाला नष्ट होती  
है ॥ २५-२६ ॥

आरग्वधशिफां क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुल-  
वारिणा । सम्यङ्नस्यप्रलेपाभ्यां गण्ड-  
मालां समुद्धरेत् ॥ २७ ॥

अमलतास की जड़ को चावलों के पानी  
में पीसकर नस्य लेने और लेप करने से गण्ड-  
माला नष्ट होती है ॥ २७ ॥

गण्डमालामयार्त्तानां नस्यकर्मणि  
योजयेत् । निर्गुण्ड्यास्तु शिफां सभ्यग्वा-  
रिणा परिपेषिताम् ॥ २८ ॥

गण्डमालारोग से पीड़ित मनुष्य को नस्य  
के लिए निर्गुण्डी ( सँभालू ) की जड़ जल में  
खूब महीन पीसकर देवे ॥ २८ ॥

कोपातकीनां स्वरसेन नस्यं तुम्ब्यास्तु  
वा पिप्पलिसंयुतेन । तैलेन वारिष्टभवेन  
कुर्याद् गजोपकुल्येन समाप्तिकेण ॥ २९ ॥

बहुई तोरई के रस का नस्य लेने से या  
तुँबी के रस में पीपल का चूर्ण मिलाकर नस्य  
लेने से अथवा नीम के तैल का नस्य लेने से  
या गजपीपल के चूर्ण में शहद मिलकर नस्य  
लेने से पुरानी गण्डमाला शान्त होती  
है ॥ २९ ॥

पेन्द्र्या वा गिरिकर्ष्या वा मूलं  
गोमूत्रयोगतः । गण्डमालां हरेत् पीतं  
चिरकालोत्थितामपि ॥ ३० ॥

इन्द्रायण की जड़ या श्वेत कोयली  
( पिप्पुफान्ता ) की जड़ को गोमूत्र के साथ पीने

से बहुत दिन की उत्पत्त हुई गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ३० ॥

अलम्बुपादलोद्भूतं स्वरसं द्विपलं पिबेत् । अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥ ३१ ॥

गोरखमुण्डी के पत्तों का आठ तोले रस पीने से अपची, गण्डमाला और कामला का नाश होता है ॥ ३१ ॥

गलगण्डं गण्डमालां कुरण्डश्च विनाशयेत् । पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना लेपात् मूलं ब्राह्मणयष्टिजम् ॥ ३२ ॥

भारगी की जड़ को चाबलों के धोवन में पीसकर लेप करने से गलगण्ड, गण्डमाला और कुरण्डरोग का नाश होता है ॥ ३२ ॥

छुच्छुन्दरी तैल ।

छुच्छुन्दर्या त्रिपकश्च क्षणात्तैलनरं ध्रुवम् । अभ्यङ्गान्नाशयेत् क्षिप्रं गण्डमाला मुदारुणाम् ॥ ३३ ॥

छुच्छुन्दर्याः कल्के जलं चतुर्गुणम् । अस्य प्राधान्यात् 'काथकलकौ' इति चक्रः ।

कल्क के लिये छुच्छुन्दर का मास आध सेर, काथ क लिये उसी का मास आध सेर, पाकार्थं जल ८ मेर । यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल ही मालिश करने से कठिन से कठिन गण्डमाला शीघ्र ही नष्ट होती है ॥ ३३ ॥

चक्रदत्त के मत से छुच्छुन्दर के मास के काथ और कल्क दोनों में तैल पकाना चाहिए ।

शास्त्रोक्त तैल ।

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शास्त्रोक्तवचा ।

शास्त्रोक्तवचा काथकल्काभ्यामिति गदाधरः । कल्कमात्रेण जलश्च चतुर्गुणमित्यन्ये ।

सिहोरा की छाल के क्वाथ और कल्क से सिद्ध किया हुआ तैल गण्डमाला को नष्ट करता है ।

गदाधर के मत से सिहोरा कल्क और क्वाथ दोनों में तैल पकावे । यदि केवल कल्क ही से तैल सिद्ध करना हो, तो जल चौगुना लेवे ।

विम्ब्यादि तैल ।

विम्बाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं वापिनावनम् ॥ ३४ ॥

कुन्दुरू, कनेर और सँभालू के कल्क और क्वाथ से सिद्ध किये हुए तैल का नस्य लेने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ३० ॥

निर्गुण्डी तैल ।

निर्गुण्डीस्वरसे वाथ लाङ्गलीमूलकत्कितम् । तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां मुदारुणाम् ॥ ३५ ॥

सँभालू के स्वरस और कलिहारी की जड़ के कल्क में तैल सिद्ध करके नस्य लेने से कठिन से कठिन गण्डमाला शीघ्र नष्ट होती है ॥ ३५ ॥

अपचीचिकित्सा ।

वनकार्पासिकामूलं तरण्डुलैः सह योजितम् । पक्त्वाप्पलिकाः खादेदपचीनाशनाय तु ॥ ३६ ॥

वनकपस की जड़ १ भाग और चावल ३ भाग मिश्रितकर पूछा बनाकर और पकाकर खावे, तो अपचीरोग शान्त हो ॥ ३६ ॥

शोभाञ्जनादि लेप ।

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेपितम् । कोप्यं प्रलेपतो हन्यादपचीमित्तुस्तराम् ॥ ३७ ॥

सहिजन की जड़ और देवदारु को काँजी में पीसकर गुनगुना करके लेप करने से उपअपचीरोग नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

सर्पपादि लेप

सर्पपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः  
सह । द्वागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रले-  
पनम् ॥ ३८ ॥

सरसों, नीम के पत्ते और भिलावा इन सबकी भस्म कर बकरी के मूत्र में पीसकर लेप करे, तो अपचिरीरोग नष्ट हो ॥ ३८ ॥

अपचिरीहर लेप ।

अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तं च  
दाहयेत् । वराहमज्जसंयुक्तं भस्महन्त्यपची-  
व्रणान् ॥ ३९ ॥

पीपल की लकड़ी, समुद्रफल और गौ के दाँत इन सबको भस्म करके सूखर की चर्बी में मिलाकर लेप करने से अपची के घाव नष्ट होते हैं ॥ ३९ ॥

दण्डोत्पलभवं मूलं वद्धं पुप्येऽपचीं  
जयेत् । अपामार्गस्य वा छिन्धात् जिह्वा-  
तलगते शिरे ॥ ४० ॥

सहदेवी की जड़ अथवा अपामार्ग की जड़ को पुप्य नक्षत्र में अपची पर बाँधे, तो अपची चरुही हो । अथवा जीम के नीचे की दोनों शिराओं का छेदन करने से अपचिरीरोग शान्त हो जाता है ॥ ४० ॥

व्योषाद्य तैल ।

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु  
च । तैलमेभिः मृतं नस्यात् कृच्छ्रामप्य-  
पचीं जयेत् ॥ ४१ ॥

कण्ठ के लिये त्रिकटु, विडंग, मुलेठी, सेंधा-  
नमक और देवदारु वे सब आधा सेर, तैल  
२ सेर, पाकार्य जल ८ सेर । यथाविधि तैल  
सिद्ध करके नस्य खेने से कृच्छ्रामप्य भी  
अपचिरीरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

घन्द्नाद्य तैल ।

चन्दनं सामया लाक्षा यथा वटुक-

रोहिणी । एभिस्तैलं मृतं पीतं समूला-  
मपचीं जयेत् ॥ ४२ ॥

कण्ठ के लिए लाल चन्दन, हृद, पीपल की  
लाख, वच और कुटकी ये सब आध सेर, तैल  
२ सेर, पाकार्य जल ८ सेर । यथाविधि तैल  
सिद्ध करके पीने से अपचिरीरोग जड़ से नष्ट हो  
जाता है ॥ ४२ ॥

शुञ्जाद्य तैल ।

शुञ्जाहयारिर्यामार्कसर्पपैमूत्रसाधि-  
तम् । तैलं तु दशधा पश्चात् कणालव-  
णपञ्चकैः ॥ ४३ ॥ मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं  
सर्वावस्थागतां जयेत् । अभ्यङ्गादपचीं  
नाडीं वल्मीकाशोऽयुर्द्वयान् ॥ ४४ ॥

घुँघुची की जड़, कनेर की जड़, काली निसीय,  
मदार और सरसों ये सब आध सेर । तैल २  
सेर, गोमूत्र ८ सेर । इनसे दश बार सिद्ध किये  
हुए तैल में पीपल, पाँचों नमक और कालीमिर्च  
का चूर्ण डालकर मालिश करे तो अपची,  
नासूर, यस्मीक, बवासीर, अयुँद और घण ये  
सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४३--४४ ॥

ग्रन्थिचिकित्सा ।

ग्रन्थिप्त्रामेषु कुर्वीत भिषक् शोथ-  
प्रतिक्रियाम् । पकानुत्पाद्य संशोध्य रोप-  
येद् द्रणभेषजैः ॥ ४५ ॥

जब तक ग्रन्थि (गॉँठ) न पके तब तक  
शोथ के समान यत्र करे । जब गॉँठ पक जाय  
तब चीरा लगाकर मवाद निकाल दे, फिर घाव  
भरने की औपध करे ॥ ४५ ॥

चातग्रन्थि में हिस्रादि लेप ।

हिस्रा सरोहियमृतां तथैव स्योनाक-  
विल्वागुरुकृष्णगन्धाः । गोपित्तपिष्टाः सह  
तालपण्यां ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे  
प्रलेपः ॥ ४६ ॥

हिर, कुटकी, गिल्लोय, स्योनाक (गोनापाटा),  
बेल की छाल, काजी घगर, सहिजन की छाल  
और कासी मूगसी इनको गोपित्त में पीसकर

गाँठ पर लेप करने से वायु से उत्पन्न हुआ ग्रन्थिरोग शान्त होता है ॥ ४६ ॥

पित्तग्रन्थिचिकित्सा ।

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षीरो-  
दकाभ्यां परिपेचनं च । काकोलवर्गस्य  
तु शीतलानि पिबेत् कपायाणि सशर्क-  
राणि ॥ ४७ ॥

पित्तज ग्रन्थिरोग में जोंक का प्रयोग तथा जलमिश्रित दूध का परिपेक और शकर भिला हुआ काकोलीवर्ग का कादा ठंडा करके पीना हितकर है ॥ ४७ ॥

द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि चूर्णं पिबेद्वापि  
हरीतकीनाम् । मधूकजम्बूजुनवेतसानां  
त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च ॥ ४८ ॥

मुनक्का के अथवा ईख ( गन्ने ) के रस में हर्षों का चूर्ण मिलाकर पीना पित्तज ग्रन्थिरोग में लाभदायक है । महुआ, जामुन, अर्जुन और वेत की छाल का लेप करना चाहिए ॥ ४८ ॥

श्लैष्मिकग्रन्थिचिकित्सा ।

हतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्यां ग्रन्थौ भिषक्  
श्लेष्मसमुद्भवे तु । विरुद्धतारग्वधकाक-  
ण्णन्तीकाकादनीतापसष्टक्षमूलैः ॥ ४९ ॥  
अलेपयेदेनमलायुभार्गाकरञ्जकालामद-  
नैश्च विद्वान् ॥ ५० ॥

कफज ग्रन्थिरोग में यमन, स्वेदन, आदि क्रिया द्वारा दोषों के दूर होने पर बटाई, अमल-  
तास, पुँपुची, कौआटोडी और हंगुदी की जड़ का तथा ककवी मुग्धी, भारंगी, करंज, नील और मैरफल का लेप करने से ग्रन्थिरोग शान्त होता है ॥ ४९-५० ॥

दन्ती चित्रकमूलतन् सूाधारकपयसी  
गुडः । भल्लातकास्थिकासीमं लेपात्  
दिन्याच्छिन्नामपि ॥ ५१ ॥

जमाकगोटा और चीत की जड़ की पाक, पुरर का दूध, मदार ( धाक ) का दूध, गुड,

भिलावाँ की गिरी और हीराकसीस, इनका लेप करने से परथर भी फट जाता है । ग्रन्थि का तो कहना ही क्या है ? ॥ ५१ ॥

ग्रन्थ्युद्दादिजिल्लेपो मातृवाहककी-  
टजः । सर्जिकाभूलकक्षारः शङ्खचूर्णसम-  
न्वितः । प्रलेपो विहितस्तीक्ष्णो हन्ति  
ग्रन्थ्युद्दादिकान् ॥ ५२ ॥

मातृवाहक कीड़े ( केशों के कीड़े ) का लेप करने से ग्रन्थि और अयुँद आदि घष्ये हो जते हैं तथा सजीखार और शूली का खार और शंख का चूर्ण इन सबको भिलाकर लेप करने से ग्रन्थि और अयुँद आदिक नष्ट होते हैं । यह लेप बहुत तेज है ॥ ५२ ॥

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपकान् उद्धृत्य चाग्निं  
विदधीत वैद्यः । क्षारेण चैतान् प्रतिसार-  
येत्तु सर्वाश्च संलिख्य यथोपदेशम् ॥ ५३ ॥  
जो ग्रन्थिरोग मर्मस्थान में न हो और पक्षा भी न हो, उसको अग्निकर्म द्वारा निकालकर शान्त करे अथवा शास्त्र के उपदेश द्वारा खेसन-  
कर्म करके खार आदि लगाकर शान्त करे ॥ ५३ ॥

अयुँदचिकित्सा ।

ग्रन्थ्युद्दानाञ्च यतोऽविशेषः प्रदेश-  
हेतुनाकृतिदोषदुर्घ्यैः । ततश्चिकित्सेद्विपग-  
युद्दानिग्निधानविदुग्रन्थिचिकित्तिनेन ५४  
ग्रन्थि और अयुँदरोग की उत्पत्ति का स्थान, कारण, लक्षण और दोष-दुर्घ्य ये सब समान होने से विधान के जाननेवाले वैद्य को अयुँद की चिकित्सा ग्रन्थि की चिकित्सा के समान करना चाहिए ॥ ५४ ॥

घातायुँदचिकित्सा ।

घातायुँदं चाप्युपनाहनानि स्निग्धं  
मांसरथ वेरासारं । स्वेदं विदध्यान्  
कुशलस्तु नाड्या मूत्रेण रसं यद्गुणो  
दरेष ॥ ५५ ॥

वातायुं द मे चिकने मांस और देशवार द्वारा उपनाहन करे अर्थात् पुलिटिस बॉधकर पकावे । नाडी द्वारा स्वेदन करे अथवा साँगे से रक्त निकलवावे ॥ २५ ॥

पित्तायुं दचिकित्सा ।

स्वेदोपनाहा मृदवश्च पथ्याः पित्तायुं दे कायविरचनञ्च । विघृष्य चोडुम्बरशाक-  
गोजीपत्रैर्भू शं चौर्युतैः प्रलिम्पेत् ॥ ५६ ॥  
श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियंगुपत्तङ्गलोधा-  
ञ्जनयष्टिकाहैः ॥ ५७ ॥

पित्तायुं द मे स्वेदन, उपनाह, कोमल पथ्य और जुलाब हितकर है तथा अयुं द को गूलर, सागवान और गोभी के पत्तों से खूब घिसकर राल, प्रियंगु फूल ( मालकांगनी ), लालचन्दन, लोध, रसौत और मुलेठी इनका महीन घुण्णकर शहद में मिलाकर लेप करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

कफायुं दनाशक लेप ।

लेपनं शङ्खचूर्णैः सहमूलकभस्मना ।  
कफायुं दापहं कुर्याद ग्रन्थ्यादिषु  
विशेषतः ॥ ५८ ॥

शंख का घुण्ण और मूली की भस्म मिलाकर लेप करने से कफायुं द और ग्रन्थिरोग नष्ट होते हैं ५८ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्केर्मांसप्र-  
गाढैर्दधिर्मर्दितैस्तु । लेपं विदध्यात् कृमयो  
यथात्र मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मत्तिका वा ॥  
५९ ॥ अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं  
लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् यदल्प-  
मूलं त्रुपुताम्रसीमैः संवेष्ट्य पत्रैरथवाय  
सैर्वा ॥ ६० ॥ चाराग्निशस्त्राण्यवतार-  
येषु मुद्गुद्गुः प्राणमवेक्षमाणः । यदृच्छ-  
या चोपगतानि पाकं पारुक्रमेणोपचरेथ-  
योक्रम् ॥ ६१ ॥

सेम, तिल की खली, कुलथी इनके कण्क में मांस मिलाकर दही से पीसकर लेप करे जिससे कीड़े और मक्खियाँ अपने बच्चों को वहाँ छोड़ दें । जब वे कीड़े अयुं द को खाने लगें और उनके खाने से थोड़ा सा बच्चे उस समय लेखन करके शलाका द्वारा दाह करना चाहिए । यदि अयुं द छोटा हो तो राँगा, ताँवा, सीसा और लोह के पत्तों से वेष्टित करके चार, अग्नि अथवा शक का प्रयोग करे । परन्तु रोगी के बलाबल का अवश्य ध्यान रखने रहे । यदि अयुं द अपनी दृष्ट्या से ही पक जाय तो पके अनुसार ही चिकित्सा करना चाहिए ॥ २६-६१ ॥

उपोदिका रसाभ्यक्तास्तत् पत्रपरिवे-  
ष्टिताः । प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडिका-  
युं दजातयः ॥ ६२ ॥

पोई शाक के रस की मालिश से और पोई-  
शाक के पत्तों के घाँघने से मनुष्यों के चिरकाल से उत्पन्न हुआ पिडिका और अयुं दरोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ६२ ॥

उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा तयोप-  
नाहो लवणेन मिश्रः । दृष्टोऽयुं दानां प्रश-  
माय कैश्चिद्दिने दिने रात्रिपुर्मर्जना-  
नाम् ॥ ६३ ॥

पोई के पत्तों को काँजी तथा मट्टे ( पाप ) में पीसकर और उसमें सेंधानमक मिलाकर प्रतिदिन रात्रि में गरम बरके घाँघने से मर्मगत अयुं दरोग का नाश होता है ॥ ६३ ॥

लेपोऽयुं दजिद्रभामोचकभस्मतुपशङ्क-  
चूर्णकृतः । सरट्कधिरार्द्रगन्धकयवाग्रज-  
विडङ्गनागैर्वाथ ॥ ६४ ॥

केला की भस्म, मेथर वा पिपला और ताँग वा चूर्ण इनका लेप करने से अयुं द रोग शान्त होता है । अथवा गिरगिट ( शुकवास, क्लिफर्ट ) के रस में मशक, जवाहार, विषंग और मीठ का घुण्ण मिलाकर लेप करने से अयुं द शान्त होता है ॥ ६४ ॥

स्नुह्यादिस्वेद ।

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेद्वुदा-  
नि च । सीसकेनाथ लवणैः पिएडारकफ-  
लेन च ॥ ६५ ॥

यूहर की हंडी का स्वेद अर्बुद को नष्ट  
करता है अथवा सीसा, नमक या पिएडारक  
फल (कटाई के फल) की पोटली द्वारा स्वेदन  
कराने से अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

मेदोऽर्बुद तथा शर्कराबुदचिकित्सा ।

हरिद्रालोघ्रपचद्गृहधूममनः शिलाः ।  
मधुमगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ।  
एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करा-  
बुदे ॥ ६६ ॥

हरदी, लोघ, लालचन्दन, ग्रहधूम और  
मैन्शिल इनको शब्द में मिलाकर लेप करने  
से मेदा तथा अर्बुदरोग नष्ट होता है । यही  
संपूर्ण क्रियाएँ शर्कराबुद में भी करनी  
चाहिए ॥ ६६ ॥

काञ्चनार गुग्गुलु ।

काञ्चनारस्य गृहीयात् त्वचां पञ्च-  
पलोन्मिताम् । नागरस्य कणायाश्च मरि-  
चस्य पलं पलम् ॥ ६७ ॥ पथ्याविभीत-  
धात्रीणां पलमर्धं पृथक् पृथक् । वरुण-  
स्याक्षमेकञ्च पत्रकैलात्वचां पुनः ॥ ६८ ॥  
टङ्कं टङ्कं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ।  
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवान्न गुग्-  
गुलुः ॥ ६९ ॥ सङ्कुट्य सर्वमेकत्र पिएडं-  
कृत्वा विधारयेत् । गुटिका मापिकाः कृत्वा-  
प्रभाते भक्षयेन्नर ॥ ७० ॥ गलगण्डं जय-  
त्युग्रमपचीमर्बुदानि च । ग्रन्थीन्ब्रणानि  
गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ ७१ ॥  
भदेयश्चानुपानार्थं काथो मुण्डितिका-  
भवः । काथः खदिरसारस्य काथः कोप्यो-  
ऽभयाभवः ॥ ७२ ॥

कचनार की छाल २० तोले; सोंठ, पीपल,  
कालीमिर्च, हरएक चार-चार तोले; हड़,  
बहेडा, भाँवला, हरएक दो-दो तोले; बरना की  
छाल २ तोले; तेजपात, छोटी इलायची, दार-  
चीनी, हरएक आधा-आधा तोला । संपूर्ण  
चूर्ण के समान शुद्ध गुग्गुलु । इन्हें इकट्ठा कर  
कूटकर मिलावे और एक-एक माशे की गोळियाँ  
बना प्रतिदिन प्रातः सेवन करे । इसके सेवन से  
गलगण्ड, अपची, अर्बुद, ग्रन्थि, ब्रण-गुल्म,  
कुष्ठ, भगन्दर आदि रोग नष्ट होते हैं । अनु-  
पान-गोरखमुखडी का काथ अथवा खदिरकाष्ठ  
का काथ या गुनगुना हड़ का काथ ॥ ६७-७२ ॥

पार्थिवं प्रति द्वादश चांगुलानि  
भिन्वेन्द्रवस्ति परिवर्ज्य सम्यक् । विदार्य  
मत्स्यखडनिभानि वैद्यो निष्पिप्य जाला-  
न्यनलं विदध्यात् ॥ ७३ ॥

पार्थिव से १२ अंगुल ऊपर मापकर इन्द्र-  
वस्ति नामक मर्म को चचाकर अपची को  
विदीर्ण करना चाहिए । तत्परचात् मछली के  
अखड़ों के समान जाल को निकालकर उस  
स्थल पर अग्नि से जलाना चाहिए ॥ ७३ ॥

मणिवन्धो परिष्ठाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं  
भिपक् । अंगुलान्तरितं सम्यगपचीनां  
प्रशान्तये ॥ ७४ ॥

कषागत अपची में मणिवन्ध (कलाई)  
से एक अथवा दो अंगुल ऊपर तप्त शलाका से  
तीन रेखाएँ बनानी चाहिए ॥ ७४ ॥

गलगण्डादि में पथ्य ।

पौराणघृतपानश्च जीर्णा लोहित-  
शालयः । यवा मुद्गाः पटोलाश्च रक्त-  
शिग्रु कठिल्लकम् ॥ ७५ ॥ शालिश्च  
शाकं वेत्राग्रं रुक्षाणि च कर्दूनि च ।  
दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुरच शिला-  
जतु ॥ ७६ ॥ गलगण्डगण्डमाला-



पचीग्रन्थ्यबुदान्तरे । यथादोषं यथावस्थं  
पथ्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ ७७ ॥

पुराने घृत का पान, पुराने लाल शालि  
चावल, जौ मूँग, परवल, लाल सहिजना,  
करेला, शालिञ्ज शक, बेत की कोपल, रुच  
एवं चरपरे द्रव्य, सम्पूर्ण दीपन पदार्थ, गूगुल,  
शिलीजीत, ये गलगण्ड, गण्डमाला, अपची,  
प्रन्थ तथा अयुँद के रोगियों के दोष एव अवस्था  
को देखकर प्रयोग कराने चाहिए ॥ ७२-७७ ॥  
अपथ्य ।

क्षीरेक्षुविकृतीः सर्वाः मांसञ्चानूप-  
सम्भवम् । पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वा-  
मिप्यन्दकारि च ॥ ७८ ॥ गलगण्ड-  
गण्डमालापचीग्रन्थ्यबुदामयान् । चि-  
कित्सन्नगदङ्कारो यशोऽर्थी परिवर्जयेत् ७९

इति भैषज्यरत्नावल्यां गलगण्ड-

गण्डमालापचीग्रन्थ्यबुदा-

धिकारः समाप्तः ।

दूध तथा ईश्व से बने हुए सय पदार्थ,  
धानूपमाम, पीठी के भोग्य, द्रव, खटाई, मधुर  
द्रव्य इनका गलगण्ड, गण्डमाला, अपची,  
प्रान्थ एवं अयुँद के रोगियों की चिकित्सा करते  
हुए वैद्य को श्याग करवाना चाहिए ॥ ७८-७९ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रमाद्रीप्रपाठिपिरिचितायां  
भैषज्यरत्नापाठ्या रत्नाप्रभाभिधाय्यां श्या-  
व्याया गलगण्डगण्डमालापची-  
ग्रन्थ्यबुदाधिकारः समाप्तः ।

अथ शीतपित्तोदरदकोटा-

धिकारः ।

उदरं चिन्तिता ।

अभ्यङ्गः कटुतलेन मेकचोष्णाम्बु-  
मिस्तया । उदरं वमनं कार्यं पटोलारिष्ट-  
वारिणा ॥ १ ॥

उदरं रोग में कहुए तैल की मालिश और  
गर्म जल का सेंक तथा परवल और नीम के  
औँटाये हुए पानी से वमन कराना हितकर है ॥ १ ॥

त्रिफलां चौरसंयुक्तां खादेच्च नव-  
कार्षिकम् । विसर्पोक्तममृतादिं भिषगत्रापि  
योजयेत् ॥ २ ॥

वैद्य को इस रोग में शहद के साथ त्रिफला-  
चूर्ण का सेवन एवं नवकार्षिक काय अथवा  
विसर्परोगोक्त अमृतादि काय के पीने की  
व्यवस्था देनी चाहिए ॥ २ ॥

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र श-  
स्यते । विसर्पोक्तममृतादिं भिषगत्रयोज-  
येत् ॥ ३ ॥

त्रिफला, गुग्गुलु और पीपल के काय से  
हस्त कराना इस रोग में हितकर है । अथवा  
वैद्य को विसर्परोग में कहे अमृतादि वषायों  
का प्रयोग कराना चाहिए ॥ ३ ॥

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत् पथ्यान्न-  
मुहुः नरः । तस्य नश्यति सप्ताहादुदरदः  
सर्वदेहजः ॥ ४ ॥

पथ्य सेवन करनेवाला मनुष्य अन्नवाचन को  
गुड़ के साथ सेवन करे तो सात दिन में उसके  
सय शरीर का उदररोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

शीतपित्तचिकित्सा ।

दूर्वानिशायुतो लेपः कण्डूपाभावि-  
नारानः । कृमिदद्रुहरश्चैन शीतपित्तापहः  
स्मृतः ॥ क्षारसन्धवतलेन गात्राभ्यङ्गं  
प्रकारयेत् ॥ ५ ॥

दूध और इण्डी को पीमकर छेप करने से  
मुत्रली, पामा, कृमिरोग, दाह और शीतपित्त  
नष्ट होते हैं । अथवा जवानार और मेषानमक  
मिलाकर मेल की मालिश करने से शीतपित्त  
नष्ट होता है ॥ ५ ॥

यष्टीमधुरपुष्पं च सरासं चन्दन-

द्वयम् । निर्गुण्डी सकणा काथं शीत-  
पित्तहरं पिबेत् ॥ ६ ॥

मुलढडी, महुए के फूल, रास्ना, सफेद चन्दन,  
लाजचन्दन, सँभालू और पीपल इनका काथ शीत-  
पित्त के नाश के लिये पीना चाहिए ॥ ६ ॥

अमृता रजनी निम्बधन्वयासस्तथा  
मृतम् । प्राणिनां प्राणदं चैतच्छीतपित्तं  
समाचरेत् ॥ ७ ॥

गिलोय, हल्दी, नीम की छाल, धमासा इनके  
काथ का शीतपित्त में प्रयोग कराने से अत्यन्त  
लाभ होता है ॥ ७ ॥

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाडतिलैः सह ।  
कटुतैलेन सम्मिश्रमेतदुद्धर्त्तनं हितम् ॥ ८ ॥

श्वेत सरसों, हल्दी, कूठ, पर्वाँड़ ( चकवँड़ )  
के बीज, काले तिल, इनका पूर्ण इकट्ठाकर कड़वे  
तेल में मिलाकर उबटन करना चाहिए ॥ ८ ॥

अग्निमन्थं भवं मूलं पिष्टं पीतञ्च स-  
पिपा । शीतपित्तोदरकोठान् सप्ताहादेव  
नाशयेत् ॥ ९ ॥

थरथी की जड़ को पीसकर और घी में  
मिलाकर पीने से सात दिन में शीतपित्त, उदर और  
कोठरोग नाश होता है ॥ ९ ॥

कुष्ठोक्तञ्च क्रमं कुर्यादम्ल पित्तघ्नमेव  
च । उदरौकां क्रियां चापि कोठरोगे समा-  
सतः । सर्पिः पीत्वा महातिक्तं कार्प्यं रक्त-  
स्य मोक्षणम् ॥ १० ॥

कोठरोग में कुष्ठ रोगोक्त, उदरौक्त तथा  
अम्लपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिए ।  
अथवा महातिक्त घृत का पान करके रक्त निकल-  
वाना ( क्रूरद सुलवाना ) चाहिए ॥ १० ॥

कर्पं भव्यघृतस्यापि कर्पाद्धं भरिचस्य  
च । एकीकृत्यं पिबेत् प्रातः शीतपित्तवि-  
नाशनम् ॥ ११ ॥

एक तोले गी के घृत में आधा तोला ( घः

माशे ) कालीमिर्च मिलाकर प्रातःकाल पीने से  
शीतपित्तरोग नाश होता है ॥ ११ ॥

आर्द्रकखण्ड ।

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्यात् गोघृतं कुडव-  
द्वयम् । गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धं शर्करा  
मता ॥ १२ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं  
मरिचं विश्वभेषजम् । चित्रकञ्च विडङ्गञ्च  
मुस्तकं नागकेशरम् ॥ १३ ॥ त्वगेलापत्र-  
कचूर्णं प्रत्येकं पलमात्रकम् । विधाय पाकं  
विधिवत्त्वादेत्कोलाद्धसम्मिमतम् ॥ १४ ॥  
आर्द्रकखण्डनामायं प्रातर्भुक्तो व्यपोहति ।  
शीतपित्तमुदरश्च कोठमुत्कोठमेव च १५  
यद्यमाणं रक्तपित्तञ्च कासं श्वासमरोचकम् ।  
वातगुल्ममुदावर्त्तं शोथं काण्डूकृमी-  
नपि ॥ १६ ॥ दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्य-  
ञ्च वर्धयेत् । वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मा-  
त्सेव्यमिदं सदा ॥ १७ ॥

अच्छे प्रकार पीसी हुई अदरख १२८ तोले,  
गोघृत ३२ तोले, गोदुग्ध ३ सेर १६ तोले,  
खॉँड़ १२८ तोले । प्रचैपार्थ-पीपल, पीपला-  
मूल, कालीमिर्च, सोंठ, चित्रक, बायबिड़ङ्ग,  
मोथा, नागकेशर, दारचीनी, छोटी इलायची,  
तेजपात, कचूर, हरएक चार-चार तोले, विधि-  
पूर्वक पाक कर प्रातःकाल रोगी को सेवन करावे ।  
भात्रा-आधा तोला । इसके सेवन से शीतपित्त,  
उदर, कोठ, उत्कोठ, राजपक्ष्मा, रक्तपित्त,  
खॉँसी, श्वास, अरुचि, वातगुल्म, उदावर्त,  
शोथ, कण्डू और कृमिरोग नष्ट होते हैं । यह  
लठराग्नि को प्रदीप्त कर यज्ञ एवं धीर्य को  
बढ़ाता है, और शरीर को पुष्ट करता  
है ॥ १२-१७ ॥

श्लेष्मपित्तान्तक रस ।

मृतमूतार्कलौहश्च वह्निगन्धश्च टङ्गणम् ।  
मूनिम्बेन्द्रयवौ रास्ना गुडुची पद्मकं

समम् ॥ १८ ॥ दिनं पर्पटकद्रावैर्मदितं  
वटकीकृतम् सिता चौद्रैर्लिहन्मांसैः  
श्लेष्मपित्तान्तकं रसम् ॥ १९ ॥ पथ्या  
कणा गुडं शुण्ठीं माषैकं भक्षयेदनु । कफ  
वातहरं स्वादेद्वाडिमं नागरं गुडम् ॥ २० ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लौहभस्म, चित्रक,  
गन्धक, सुहागा, चिरायता, इन्द्रजौ, रास्ना,  
गिलोय और पद्माख इन्हें इकट्ठा कर बराबर  
मात्रा में मिला पित्तपापदा के रस से १ दिन  
घोटे और दो-दो रत्ती की गोली बनावे । साँड़,  
शहद थपवा मांसरस के साथ इस गोली का  
सेवन कराना चाहिए । अनुपान--डूब, पीपल,  
गुड़ तथा सोंठ का मिला हुआ चूर्ण १ भासा  
कफवात के नाश के लिए अनारदाना, सोंठ  
और गुड़ एकत्र मिलाकर अनुपान रूप से  
प्रयुक्त कराना चाहिए ॥ १८-२० ॥

वीरेश्वर रस ।

मृतमूतार्कलौहश्च तालगन्धककट-  
फलम् । मेपमृद्धी वचा शुण्ठी भार्गी  
पथ्या च बालकम् ॥ २१ ॥ धन्याकं  
मर्दयेत्तुल्यं पटोलोत्थद्रवैर्दिनम् । गुञ्जा-  
द्वयं लिहेत्तौद्रैः कफवाते प्रशान्तये ॥  
रसो वीरेश्वरो नाम उक्तो नागाजुनेन  
च ॥ २२ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लौहभस्म, इबताल,  
गन्धक, कटफल, मेदाविगी, पथ, सोंठ, भार्गी,  
हृष, गन्धबाला, धीनर्या इन्हें बराबर मात्रा में  
मिलाकर पटोलपत्र के रस से १ दिन घोटे और  
दो-दो रत्ती की गोलीयाँ बनावे । अनुपान--शहद ।  
पद कफवात को शान्त करवा दे ॥ २१-२२ ॥

स्पर्शवात के लक्षण ।

अङ्गेषु तोदनं प्रापो देहस्पर्शं न  
विन्दति । मण्डलानि च दृश्यन्ते स्पर्श-  
वातस्य लक्षणम् ॥ २३ ॥

स्पर्शवात नामक रोग में अंगों में मुई के  
चुभने के समान पीड़ा होती है । स्पर्शानुभव  
नहीं होता तथा शरीर पर चकत्ते दिखाई  
देते हैं ॥ २३ ॥

रसादि गुटी ।

अष्टभागो रसः शुद्धो विपतिन्दोर्दशैव  
तु । गन्धकस्य दश द्वौ त्रिकटुत्रिफलयो-  
त्त्रयः ॥ २४ ॥ वह्निचित्रकमुस्तानां  
वचाश्वगन्धयोरपि । रेणुकाविपकुष्ठानां  
पिप्पलीमूलनागयोः ॥ २५ ॥ एकैकस्तु  
भवेद्भाग इति ग्राह्याः क्रमेण च । गुडश्च-  
तुविंशतिः स्याद्बट्टी गुञ्जाद्वयोन्मिता ।  
क्रमेण वानुसेवेत स्पर्शवातापनुचये ॥ २६ ॥

शुद्ध पारा ८ भाग, शुद्ध कुचिला १०  
भाग, गन्धक १२ भाग, त्रिकटु ( मिलित )  
३ भाग, त्रिफला ( मिलित ) ३ भाग । शुद्ध  
भिलावाँ, चित्रक, मोथा, वच, अस्मगन्ध,  
सँभाल के बीज, वच्छनाग, बूट, पिपलामूल,  
नागकेशर, हरएक एक-एक भाग । गुड़ २४  
भाग । इन्हें इकट्ठा कर दो-दो रत्ती की गोलीयाँ  
बनाकर रोगी को स्पर्शवात के नष्ट करने के  
लिये सेवन कराना चाहिए ॥ २४-२६ ॥

हरिद्रागण्ड ।

हरिद्रायाः पलान्यष्टौ पटपलं हविप-  
स्तया । क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्द-  
शतं तथा ॥ २७ ॥ पचेत् मृद्गनिना  
वैद्यो भाजने मृगमये हृद्रे । त्रिकटु त्रि-  
जातकञ्चैव कृमिघ्नं त्रिवृता तथा ॥ २८ ॥  
त्रिफला केशरं मुस्तं लौहं प्रतिपलं पलम् ।  
सञ्चूर्ण्यं मक्षिपेत् तत्र कर्पादिकं तु भक्ष-  
येत् ॥ २९ ॥ कण्टकस्थोदद्रूणां ना-  
शनं परमौषधम् । प्रतप्तकाशनाभागो देहो  
भवति नान्यथा ॥ ३० ॥ शीतपित्तोदर-

कौठान् सप्ताहादेव नाशयेत् । हरिद्रा-  
नामतः खण्डः कण्डूनां परमौषधम् ॥ ३१ ॥

हृद्दी ३२ तोले, गौ का घृत २४ तोले,  
गोदुग्ध ६ सेर ३२ तोले, खाँड २६ सेर, इन  
सबको मिट्टी के पात्र में मन्द-मन्द अग्नि से  
पकावे । जब पाक सिद्ध हो जाय तब सोंठ,  
मिर्च, पीपल, दालचीनी, छोटी हलायची, तेज-  
पात, बायीबिहग, निसोध, शॉबला, हड, बहंदा,  
चार-चार तोले पीसकर उसमें मिला दे ।  
मात्रा ६ माशे । यह खुजली, विस्फोटक और  
दाद को नष्ट करने के लिये महीषघ है तथा  
शरीर को सुवर्ण के समान कान्तिमान् करने के  
लिये यह सब औषधों से उत्तम है । एक सप्ताह  
सेवन करने से शीतपित्त, उदरद और कौठ को  
नष्ट करता है । यह हरिद्राखण्ड खुजली की  
उत्तम औषध है ॥ २७-३१ ॥

बृहत् हरिद्राखण्ड ।

निशाचूर्णस्य कुडवं त्रिष्टपल-  
चतुष्टयम् । अभया तत्समं देयं सार्द्धं प्रस्थ-  
द्वयं सिता ॥ ३२ ॥ टार्त्री मुस्ता यमान्यौ  
द्वौ चित्रकं कटुरोहिणी । अजाजी पिप्पली  
शुण्ठी त्रिजातं कृमिकण्टकम् ॥ ३३ ॥  
अमृता वासकं कुष्ठं त्रिफला चव्यधान्य-  
कम् । मृत्तलौहं मृताभ्रं च प्रत्येकं कोन-  
सम्मितम् ॥ ३४ ॥ पचेत् मृद्वग्निना  
चैद्यो भाजने मृगमये नवे । कर्पाद्धं च  
ततः स्वाद्वेदुष्णतोयानुपानतः ॥ ३५ ॥  
शीतपित्तोदरदकोठकरूपामाविर्चिकाम् ।  
जीर्णजरं कृमि पाण्डुरोथादींश्च विना-  
शयेत् ॥ ३६ ॥

हृद्दी का चूर्ण १६ तोले, निसोध १६ तोले,  
हड १६ तोले, खाँड २ सेर तथा दारुहृद्दी,  
नागरमोधा, अजवायन, अजमोदा, चित्रक,  
कुटकी हलायची, तेजपात, बायीबिहग, गिलोय,  
घट्टसा, कूट, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, लोहभस्म,  
और अश्रकमस्रम ये सब आधा-आधा

इनको मिट्टी के नये पात्र में मन्द अग्नि द्वारा  
पकावे । ६ माशे की मात्रा में उष्ण जल के  
साथ सेवन करे । यह शीतपित्त, उदरद, कौठ,  
खुजली, पामा, विचर्चिका, जीर्णजर, कृमिरोग,  
पाण्डुरोग और शोथ आदि को नष्ट करता है ।  
इसके बनाने की विधि यह है कि पिसी हृद्दी,  
निसोध और शकर को ३ सेर १६ तोले जल  
में पकावे । जब गाढ़ा होने लगे तब दादहृद्दी  
आदि द्रव्य का प्रक्षेप देकर मिला दे ॥ ३२-३६ ॥

शीतपित्तादि रोगों में पथ्य ।

शालिमुद्गकुलत्थांश्च कारवेल्लमुपोदि-  
काम् । वेत्राग्रं तप्तनीरश्च श्लेष्मपित्तहराणि  
च ॥ ३७ ॥ कटुतिरुक्कपायाणि सर्वा-  
णीति गणः सखा । शीतपित्तोदरदकोठ-  
रोगिणां स्याद्यथामलम् ॥ ३८ ॥

शालिचावल, भूँग, कुलभी, करेला, पोई,  
बेत की कोंपल, गरम जल तथा कफपित्त को  
नष्ट करनेवाले द्रव्य, चरपरे, बड़वे एवं कषाय  
द्रव्य, ये शीतपित्त, उदरद एवं कोठरोगियों के  
लिये यथादोष पथ्य हैं ॥ ३७-३८ ॥

अपथ्य ।

क्षीरेक्षुजाता विविधा विकारा मत्स्यो-  
दकानूपभ्रामिपाणि । नवीनमद्यं वमि-  
वेगरोधः प्राग्दक्षिणाशा पत्रनोऽह्निनिद्रा ॥  
३९ ॥ स्नानं विरुद्धाशनमातपश्च स्निग्ध  
तथाम्लं मधुरं व्यनायः । गुर्बन्निपानानि  
च शीतपित्तकोठामयोदरद्वताधिपाणि ४०  
इति भैषज्यरत्नावल्यां शीतपित्तो-  
दरदकोठाधिकारः समाप्तः

दूध एवं हूँस के बने द्रव्य, मसुली, जलीय  
जीवों का मांस, क्षानूपमास, नवीन मद्य, वमन  
के वेग को रोकना, पूँव और दक्षिण दिशा की  
भायु, दिन में सोना, स्नान, पिरद भोजन, घृष  
द्रव्य, मैथुन, गुद

अन्नपान, ये शीतपित्त, कोष्ठ एवं उर्द्ध रोगियों के लिये विष के समान हानिकारक हैं ॥ ३१-४० ॥

इति श्रीपरिब्रतसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां  
शीतपित्तोर्द्धकोष्ठाधिकारः समाप्तः ।

## अथ मसूरिकाधिकारः ।

बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति  
हि । केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तेषामथ  
ब्रुवे ॥ १ ॥

बहुत से वैद्य इस रोग में औषध का प्रयोग नहीं करते । जो इसमें औषध का प्रयोग करते हैं उन्हीं के अनुसार आगे चिकित्सा कही गई है ॥ १ ॥

चैत्रासितमृतदिने रक्तपताकान्विता  
स्नुही भवने । धवलितकलशे न्यस्ता  
पापरोगं दूरतो धत्ते ॥ २ ॥

चैत्रमास क कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन लाल झंडी के साथ घूहर की शाखा को सफेद कलश पर घर में रखने तो पापरोग ( मसूरिका रोग ) नहीं होता है ॥ २ ॥

नारीणां वामपार्श्वस्थं नरागामपस-  
व्यगम् । पापरोगभयं दूराच्छिवास्थि  
विनिवारयेत् ॥ ३ ॥

शिवास्थीत्यत्र हरीतकीबीजमिति नी-  
लकण्ठः । शृगालास्थीति केचित् ।

छिपों के पायें पसयादे म और पुरुषों के दिहने पसयादे में हड की गुठली बांधने से मसूरिका रोग का आक्रमण नहीं होता है ॥ ३ ॥

फिसी-फिसी का मत है कि सियारिन की हड्डी बांधनी चाहिए ।

ज्वरे जाते स्पृहेभाम्बु तिष्ठेनिर्वात-  
वेश्मनि । अक्षयेद्विजयाचूर्णं गार्त्रं वस्त्रेण  
बन्धयेत् ॥ ४ ॥

मसूरिका में ज्वर हो जाने पर जल को न छुए और निर्वात स्थान में रहे तथा भाँग का चूर्ण शरीर पर मसलकर घब्र से बाँध दे ॥ ४ ॥

रुद्राक्षं मरिचैर्युक्तं पीतं पर्युपिताम्भसा ।  
त्र्यहात् पापरुजं हन्ति दृष्टं वारसहस्रशः ५

रुद्राक्ष और कालीमिर्च का चूर्ण घासी पानी के साथ पीने से तीन दिन में पाप रोग दूर होता है, यह हजारों बार देखा गया है ॥ ५ ॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिप्य सम्यङ्  
निम्वाक्षवीजसहितां रजनीं पिवन्ति ।  
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे  
स्फोटास्तुवा जगति शीतलिकाविकाराः ६

नीम के बीज, बहेड़े के बीज तथा हल्दी को इकट्ठा कर अच्छी प्रकार पीस कर ठण्डे जल के साथ पीने से शरीर में स्फोट तथा मसूरिका नहीं होती है । मात्रा २ माशे ॥ ६ ॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनं ये  
वासारसेन मधुकं मधुकेन वाथ ।  
आदौ पिवन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं  
ते नाप्नुवन्ति भुवि शीतलिकाविकारम् ७

मोचा ( कदलीकायद के बीज का दण्ड ) के रस के साथ सफेद चन्दन अथवा शर्दू के रस के साथ मुहलेंठी का काथ अथवा चमेली के रस में शहद मिलाकर मसूरिका के दिनों में पीने से शीतला रोग नहीं होता है ॥ ७ ॥

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया-  
सह । एषां शीतकपायस्तु शीतलाज्वर-  
नाशनः ॥ ८ ॥

लालचन्दन, अदुसा की दाल, मोचा, गिलोप और दाक्ष इनका शीतल काड़ा पीने से शीतला का ज्वर नष्ट होता है ॥ ८ ॥

निग्यादि फ्राय ।

निम्बं पर्यटकं पाठां पटोलं कटुरोदि-  
शीम् । वासां दुरालभां धात्रीशुशीरं

चन्दनद्वयम् ॥ ६ ॥ एष निम्बादिकाः  
ख्यातः पीतः शर्करयान्वितः । हन्ति  
त्रिदोषमसूरीं ज्वरवीसर्पसम्भवाम् ॥  
उत्थिता प्रविशेद् या तु पुनस्ता बाह्यतो  
नयेत् ॥ १० ॥

नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाड़, पटोलपत्र,  
कुटकी, अदुसा की छाल, डुरालभा ( धमासा ),  
आँवला, श्वेतचन्दन और लालचन्दन,  
इनके काथ में खॉँट डालकर पीने से त्रिदोषज  
मसूरिकाज्वर तथा विसर्प नष्ट होता है । जो  
मसूरिका बाहर निकल कर फिर छिप जाती है  
उसे पुन यह काथ बाहर ले आता है ॥ ६ १० ॥

काञ्चनारादि काथ ।

काञ्चनारत्नचः काथस्ताप्यचूर्णविभि-  
श्रित । निर्गत्यान्तःप्रविष्टां तु मसूरीं  
बाह्यतो नयेत् ॥ ११ ॥

कचनार कां छाल के काथ में स्वर्णमाषिक  
भस्म डालकर पीने से बाह्यगत होकर छिपी हुई  
मसूरिका पुनः बाहर निकल आती है ॥ ११ ॥

खदिराष्टक ।

खदिरत्रिफलारिष्टपटोलमृतवासकैः ।  
काथोज्ज्वलाद्भो जयति रोमान्तिरुमसू-  
रिकाः ॥ कुष्ठवीसर्पविस्फोटकरुण्डनादी-  
नपि पानतः ॥ १२ ॥

खदिरकाष्ठ, त्रिफला, नीम की छाल,  
पटोलपत्र, गिलोय और अदुसा की छाल का  
काथ रोमान्तिका ( Variola खसरा )  
मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक तथा कण्डू  
आदि को नष्ट करता है, विशेष अनुभूत है ॥ १२ ॥

सर्पासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्ट-  
षत्सकैः । कपायैश्च वचानत्सयष्ट्याह-  
फलकल्कितैः ॥ १३ ॥

सब प्रकार के मसूरिका रोग में परबल के  
पत्ते, नीम की छाल और फारिया ( कुड़ा ) की  
छाल के कांसे में वच, इन्द्रजी, मुखेटी और

मैनफल का कलक मिलाकर वमन कराना हित-  
कर है ॥ १३ ॥

सत्तौद्रं पाययेद् ब्रह्मन्धारसं वा हैल-  
मोचिकम् । वान्तस्य रेचनं देयं शमनं  
चाबले नरे ॥ १४ ॥

माही के रस में अथवा हिलमोचिका  
( डुरडुर ) के रस में शहद मिलाकर पीना  
चाहिए । बलवान् का पहले वमन कराकर  
पीछे जुलाब देना चाहिए किन्तु निर्बल रोगी की  
रोगशामक चिकित्सा ही करनी चाहिए ॥ १४ ॥

सुपत्रीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।  
रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिवेत् ॥  
१५ ॥

बलौजी के पत्तों के रस में हल्दी का चूर्ण  
मिलाकर पीने से रोमान्तीज्वर ( खसरे वा  
ज्वर ), विस्फोटक और मसूरिका रोग शान्त  
होता है ॥ १५ ॥

उत्प्रकरटकमूलं वाप्यनन्तामूलमेव  
वा । विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति  
मसूरिकाम् ॥ १६ ॥

ऊँटकटेरी की जड़ अथवा अमन्तमूल को  
विधि से लाकर तण्डुलोदक ( चाबलों के  
धोवन ) के साथ पीने से मसूरिका रोग नष्ट  
होता है ॥ १६ ॥

तद्वच्चृगालकरुण्डकमूलञ्च व्युपिता-  
म्भसा । निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिषीते  
तथैव च ॥ १७ ॥

शृगातकरुण्डक ( सत्यानासी, स्वर्णश्रीरी )  
की जड़ को बामी पानी के साथ पीने से अथवा  
हल्दी और इमली के पत्तों को उड़े पानी के  
साथ पीने से मसूरिका रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

व्युपिताम्बुना समरिचं पित्रेत्पीतकप-  
टकम् । यावत्संख्यामसूर्यङ्गे तावद्भिः  
शेलुर्जैतैः ॥ १८ ॥ द्विनैरातुरनाम्ना

तु गुडी व्येति न वर्द्धते । व्युपितं वारि  
सत्तौद्रं पीतं दाहगुडीहरम् ॥ १९ ॥

पीली कौडी की भस्म और कालीमिर्च  
को बासी पानी के साथ पीने से मसूरिका रोग  
नष्ट होता । अथवा रोगी के शरीर में जितनी  
फुन्सियाँ हों उतने ही लसोडे के पत्ते उसके नाम  
से तोड़ने पर मसूरिका की फुन्सियाँ नष्ट हो  
जाती हैं और फिर नई उत्पन्न नहीं होती हैं ।  
अथवा बासी पानी में शहद मिलाकर पीने से  
मसूरिका की फुन्सियाँ और दाह नष्ट होते  
हैं ॥ १८-१९ ॥

तर्पणं वातजायां प्राक् लाजचूर्णैः स-  
शर्करैः । भोजनं तिक्तयूपैश्च प्रतुदानां  
रसेन वा ॥ २० ॥

वातज मसूरिका रोग में पहले धान की  
रीसों के चूर्ण में खाँड़ मिलाकर भोजन कराना  
तर्पण ( वृक्षमद ) होता है । परचात् तिक्त  
ओषधियों के साथ अथवा कपूर,  
सारस आदि पत्तियों के मांसरस के साथ  
भोजन कराना चाहिए ॥ २० ॥

पटोलादि काथ ।

पटोलकुण्डलीमुस्तकपधन्वयवासकैः ।  
भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च भृतं जलम् ॥  
२१ ॥ मसूरीं शमयेदामां पकां चैव विशो-  
पयेत् । नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वर-  
शान्तये ॥ २२ ॥

परवल के पत्ते, गिलोय, नागरमोथा,  
अहसा, धमामा, चिरायता, नीम की छाल,  
कुटी और पित्तपापदा, इनका क्वाथ शहद  
डालकर पीने से अथवा मसूरिकाएँ घीट जाती हैं  
और पकी हुई मूत्र जाती हैं । विस्फोटक ज्वर की  
शान्ति के लिये इसमें बढ़कर कोई उषम  
ओषध नहीं है । विशेष अनुभूत है ॥ २१-२२ ॥  
अमृतादि ।

अमृतादिकपायज्ञ विसर्पोक्तं प्रयो-  
जयेत् ॥ २३ ॥

विसर्परोग में कहे हुए अमृतादि काथ  
का मसूरिका रोग में भी प्रयोग करना  
चाहिए ॥ २३ ॥

अमृतादि यथा—

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदि-  
रमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे । विविधविप-  
विसर्पान् कुष्ठविस्फोटकरूपनयति म-  
सूरीं शीतपित्तं ज्वरं च ॥ २४ ॥

गिलोय, अहसा, परवल के पत्ते, नागर-  
मोथा, छित्तवन ( सतवन ), खैर, कालावेत,  
नीम के पत्ते, हल्दी और दारहल्दी, ये अमृ-  
तादि ओषधियाँ हैं । इनका काथ बनाकर  
पीने से अनेक प्रकार के विपरोग, विसर्प, फोड़,  
विस्फोटक, खुजली, मसूरिका, शीतपित्त और  
ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥

सौवीरेण तु सम्पिष्टं मातुलुङ्गस्य  
केशरम् । प्रलेपात् पाचयत्याशु दाहं चाशु  
नियच्छति ॥ २५ ॥

बिजौरि की केशर की काँजी में पीसकर  
मसूरिका पर लेप करने से मसूरिकाएँ पक जाती  
हैं और दाह शान्त हो जाता है ॥ २५ ॥

पाददाहं प्रकुर्वते पिडिका पादस-  
म्भवा । तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तएडु-  
लाम्बुना ॥ २६ ॥

पैरो में उत्पन्न हुई फुन्सियाँ पैरो में  
दाह पैदा कर देती हैं अतः दाह की  
शान्ति के लिये तण्डुलोदक से सेक कराना  
चाहिए ॥ २६ ॥

पाककाले तु सर्वास्ता विशोपयति  
मारुतः । तस्मात्संचृंहरणं कार्यं न तु पर्यं  
विशोपगम् ॥ २७ ॥

पाककाल में मसूरिकाओं को वायु मुक्त  
देना है अतः उष्ण समय वृंहण-कर्म  
करना चाहिए । शोषण-कर्म दिनकारक  
नहीं है ॥ २७ ॥

गुदूर्चा मधुकं द्राक्षां मौरतं दादिभिः

सह । पाककाले तु दातव्यं भेषजं गुड-  
संयुतम् ॥ तेन पाकं ब्रजत्याशु न च वायुः  
प्रकुप्यति ॥ २८ ॥

पाककाल में गिलोय, मुलेठी, दाख, ईख की  
जड़ और अनारदाना, इनके चूर्ण अथवा बवाथ  
को गुड़ मिला कर सेवन करना चाहिए । इसके  
सेवन से मसूरिकाष्ठं शीघ्र पक जाती हैं और  
वायु का कोप नहीं होता है ॥ २८ ॥

लिहोद्वा वाटरञ्चूर्णं पाचनार्थं गुडेन  
तु । अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफा-  
त्मिकाः ॥ २९ ॥

मसूरिकाष्ठों को पकाने के लिए बेर के  
चूर्ण में गुड़ मिलाकर खाना चाहिए । इससे  
घात, पित्त और कफ की मसूरिकाष्ठं शीघ्र पक  
जाती हैं ॥ २९ ॥

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य  
वायुना । धन्वमांसरसाः शस्ता ईपत्सैन्ध्व-  
संयुताः ॥ ३० ॥

मसूरिका रोग में शूल, अफरा और कम्प  
आदि वायु के उपद्रवों से युक्त रोगी को मरुदेश  
उत्पन्न पशु पक्षियों के मांसरस में थोड़ा सा  
सैधानमक मिलाकर देना हितकर है ॥ ३० ॥

पिवेदमस्तप्तशीतं भावितं खदिरा-  
शनैः । शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्री-  
वहुवारजम् ॥ ३१ ॥

खैर और अमना ( विजयसार ) से सिद्ध  
किया हुआ जल ठंडा करके पीना चाहिए ।  
और शौच के लिये खैर और लिसोडा से सिद्ध  
किया हुआ जल देना चाहिए ॥ ३१ ॥

जातीपत्रं समञ्जिष्ठ टार्णीषमफलं  
शमी ॥ ३२ ॥ धात्रीफलं समधुक कथितं  
मधुसयुतम् । मुखरोगे कण्ठरोगे गण्डूपाथं  
प्रशस्यते ॥ ३३ ॥

शायफल, मजीठ, दारहल्दी, सुपारी, शमी  
( दोंकर, जांट ) की छाल, भाँथला और मुलेठी,

इनके बवाथ में शहद मिलाकर कुत्ला करने से  
मुखरोग और कण्ठ रोग ( मुख और कण्ठ की  
मसूरिका ) शान्त होता है ॥ ३२-३३ ॥

अक्षयोः सेकं प्रशंसन्ति गवेषुमधु-  
काम्बुना । पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमव-  
चूर्णयेत् ॥ ३४ ॥ भस्मना केचिदिच्छन्ति  
केचिद्रोमयरेणुना । कृमिपातभयाचापि  
धूपयेत् सरलादिभिः ॥ ३५ ॥

गोबरन ( गुलसकरी ) और मुलेठी के काढ़े  
से आँखों को सँकने से आँखों की मसूरिकाष्ठं  
शान्त होती है । जिन मसूरिकाष्ठों से पानी  
निकलता हो उन पर पञ्चवल्कल ( पीपल, गुलर,  
पकरिया, बरगद और बेतस ) का चूर्ण छिड़-  
कना हितकर है । किसी किसी का मत है कि  
गोबर की राख छिड़कना चाहिए तथा किसी  
किसी का मत है कि गोबर का चूर्ण छिड़कना  
हितकर है । मसूरिका को कीड़ों से बचाने के  
लिए कृमिनाशक सरल वृक्ष आदि की धूप देना  
हितकर है ॥ ३४ ३५ ॥

वेदनादाहशान्त्यर्थं सुतानां च विशु-  
द्ध्ये । सगुग्गुलुं वराकार्यं युञ्ज्याद्वा  
खदिराष्टकम् ॥ ३६ ॥

पीका और दाह की शान्ति तथा जिन  
मसूरिकाष्ठों से पीव बह गई हो उनकी शुद्धि के  
लिए गुग्गुलु, दुर्गा त्रिफला का बवाथ अथवा खदि-  
राष्टक का बवाथ पीना चाहिए ॥ ३६ ॥

कृप्याभयारजो लिह्वान् मधुना कण्ठ-  
शुद्ध्ये । तथाष्टाद्वाबलेहश्च कनलरचार्द्र-  
कादिभिः ॥ ३७ ॥

कण्ठ की शुद्धि के लिए पीपल और ह्व के  
चूर्ण को शहद के साथ चाटना चाहिए । अथवा  
अष्टाद्वाबलेह का चाटना और अदरक आदि  
का कवल धारण करना हितकर है ॥ ३७ ॥

पञ्चतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनमो-  
जनैः । कुर्याद् ब्रणनिधानं च तैलादीन्  
वर्जयेच्चिरम् ॥ ३८ ॥



पीने, पाने और मालिश करने के लिए पञ्चतिक कषाय देना चाहिए। अथवा व्रण की सो चिकित्सा करनी चाहिए और बहुत दिनों तक तिल आदि चर्जित कर देना चाहिए ॥ ३८ ॥

घण्टाकर्ण शिवं गौरीं विष्णुं विप्रं च पूजयेत् । आचरेज्जपहोमादीन् व्रतं रोगहरं तथा ॥ ३९ ॥ अगदानि विषणानि रत्नानि विविधानि च । धारयेद्वाच्चापि वैनतेयस्य संहिताम् ॥ ४० ॥

घण्टाकर्ण शिव, पार्वती और विष्णुजी का पूजन तथा जप और होम एवं शीतलानाशक व्रत करना चाहिए। और विषनाशक औषधि तथा अनेक प्रकार के रत्न धारण करना चाहिए। एवं गरुडपुराण का पाठ कराना चाहिए ॥ ३९-४० ॥

दुष्टव्रणानु तास्वेव जलौकाभिर्हरैदसूक । व्रणशोधहरं योगमाचरेत् तत्प्रशान्तये ॥ ४१ ॥

यदि फुन्सियाँ खराब हो जायँ तो जोक लगाकर रून निकलवाना चाहिए और उनकी शान्ति के लिए व्रण और सूजन को हरनेवाले प्रयोग करने चाहिए ॥ ४१ ॥

विषघ्नैः सिद्धमन्त्रैश्च प्रभृज्यात्तु पुनः पुनः । भक्त्या पठेत्पाठयेच्च शीतलायाः स्तवं शुभम् ॥ ४२ ॥

विषनाशक सिद्ध मन्त्रों से बार-बार मार्जन (भाड़-फूँक) करना चाहिए और शीतला के स्तोत्र का भक्ति से पाठ करना या कराना चाहिए ॥ ४२ ॥

१ अथ शीतलास्तोत्रम् । स्कन्द उवाच । भगवन् देवदेवेश शीतलायाः स्तव शुभम् । वननुमहंस्व-शोभेण विस्फोटकभयपहम् ॥

ईश्वर उवाच ।

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासमस्यां दिग्म्बराम् । यामामाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ शीतलेशीतले चेतयो मूयादाहपीहितः । विस्फोटक-

दुर्लभ रस ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य मूर्च्छितस्य मृतस्य च । द्विवला पिप्पली धात्री रुद्राक्ष-वृत्तमाक्षिकैः ॥ ४३ ॥ मर्दनं कारयेत् खल्ले गुञ्जामानां वर्टी चरेत् । पापरोगा-न्तको योगः पृथिव्यामेव दुर्लभः ॥ ४४ ॥

रसोत्तन्दूर, पारा की भस्म, खरेटी, सहदेई, पीपल, आवला, रुद्राक्ष, घी और शहद इन्हें एकत्र कर चोटे और एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह दुर्लभ रस मसूरिका रोग को नष्ट करता है ॥ ४३-४४ ॥

मसूरिका में पथ्य ।

पूर्वं लङ्घनवान्तिरेचनसिरावेधाः शशाङ्कोज्ज्वला जीर्णाः पृष्टिकशाल-योऽपि चणका मुद्गा मसूरा यवाः ।

भयं घोरं विप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ यस्तामुदकमभ्ये नुष्टत्वा सम्पुजयेन्नरः । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ शीतले ज्वरदरुध्यस्य पूतिगन्धगतस्य च । प्रणश्चक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीयितौषधम् ॥ नमामि शीतलां देवीं रासमस्यां दिग्म्बराम् । मार्जनीकलशोपेनां सूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥ अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव आचरन्नुपुष्टः । शीतला देवता शीतलोपद्रवशान्त्यर्धजपे विधियोगः ॥ शीतले तनुजान् रोगान् नृणां हरति हुस्तरान् । विस्फोटकविशीर्णानां स्वमेकासूतर्षिणि ॥ माल-गण्डप्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् । स्वदु-ध्यानमात्रेण शीतले यान्ति ते चयम् ॥ न मन्त्रं नौषधं किञ्चन पापरोगस्य विघ्नते । स्वमेका शीतले धात्रि नाम्नां पद्यामि देवताम् ॥ गुणालतन्नुमसूती नामिहृन्मभ्यसस्थिताम् । यस्यां तत्रिन्तयेदेषि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ अष्टक शीतलादेव्या यः पठेत्मानयः सदा । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ धीतस्यं पठित्तस्यन्नरैर्भक्तिमन्त्रैः । उपसर्गविनाशाय परं स्वस्वययनं महत् ॥ शीतलाष्टक-मेतदि न देयं यद्य कश्चिन् । किन्तु तस्मै प्रदा-तस्यं भक्तिभक्त्याश्रितो दि यः ॥

सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटकादात्पूह-  
क्रौञ्चादयो जीवञ्जीवशुकादयोऽपि कुलकं  
काठिल्लमापाढकम् ॥ ४५ ॥ इत्थं सर्व-  
दशाविभागविहितं पथ्यं यथादोषतः  
संयुक्तं मुदमातनोति नितरां नृणां मसूरी-  
गदे ॥ ४६ ॥

मसूरिका रोग में पहिले लहान, वमन,  
विरेचन और शिराघेघ करना चाहिए। चन्द्र के  
समान सफेद परन्तु पुराने साठी एवं शालि  
त्रायल, चने, मूँग, मसूर, जौ, सम्पूर्ण प्रतुद  
पत्नी, कबूतर, चिड़िया, जलकाक, क्रौञ्च आदि  
चकोर एवं तोता आदि का मांस, परवल, सांठी,  
आपाढफल ( ककड़ी-खीरा आदि ) इन्हें रोगी की  
अवस्था के अनुसार विभक्त करके दोपानुसार पथ्य  
देने से स्वास्थ्य लाभ होता है ॥ ४५—४६ ॥

मसूरिका में अपथ्य ।

रतं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नक्रोधमात-  
पम् । दुष्टाम्बुदुष्टपवने विरुद्धान्यशान-  
नि च ॥ ४७ ॥ निष्पावमालुकं शकं  
लवणं विपमाशनम् । कट्वम्लं वेगरोधं  
च मसूरीगदधांस्त्यजेत् ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मसूरिकाधिकारः  
समाप्तः ।

श्लेष्मभोग, स्वेदन कम ( पसीना लानेवाले  
कार्य ), धकावट पैदा करनेवाले कार्य, तैल की  
मालिश, भारी श्रम, क्रोध, धूप में बैठना, दुष्ट  
जल, दुष्ट पवन, विरुद्धभोजन, चीला ( लोविया ),  
आलू, नमक, विषम भोजन, कड़वे-खट्टे पदार्थ,  
मलमूत्र आदि वेगों का रोकना ; इन सबकी  
रिवाज देना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

इति श्रीपाण्डितसरूपसाक्षिप्राण्डियरचित्तायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां  
मसूरिकाधिकारः समाप्तः ।

अथ रोमान्तिकाधिकारः

उच्चैस्तरे प्रशस्ते च रोमान्तीगद-  
पीडितः । गृहेऽनाद्रे वसेन्नित्यं गुरुष्णव-  
सनादृतः ॥ १ ॥

रोमान्तिका ( बुद्धमसूरिका ) रोग से पीडित  
रोगी को अच्छे, ऊँचे और सीलनरहित गृह में  
भारी और गरम वस्त्र ओढ़कर नित्य निवास  
करना चाहिए ॥ १ ॥

शीतवायुं शीततोयं सन्तापं वह्नि-  
सूर्ययोः । त्यजेत्त्रयं दिवानिद्रामध्वानं  
निशि जागरम् ॥ सुखोष्णेनाम्बुना स्वेदो  
रोमान्तिज्वरहन्मतः ॥ २ ॥

शीतल वायु, शीतल जल, अग्नि तापना  
और सूर्य का धूप, स्त्रीसंग, दिन का सोना,  
मार्ग चलना और रात्रिजागरण रोमान्तिक  
रोगी को रियाज देना चाहिए। सुखोष्ण ( सुहावे  
हुए ) जल से स्वेदन करना रोमान्तिकजन्य  
ज्वर को हरण करता है ॥ २ ॥

मसूर्या ये च कथिता इह काथादयो-  
ऽपि ते । प्रयुज्यमाना गढिनं सुस्थीकुर्वन्ति  
सत्वरम् ॥ यथातथं प्रतीकार्या ज्वरकासा-  
दयरच ते ॥ ३ ॥

मसूरिका रोग में कहे हुए काथ आदिक  
रोमान्तिका रोग में देने से भी रोगी की शीघ्र  
ही स्वस्थता मिलती है। रोमान्तिका के उपद्रव-  
रूप ज्वर, कास आदि की भी यथायोग्य  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

१ यह रोग शीतला का ही भेद है। इसमें ज्वर  
होकर बालों के छिद्र के मुख्य ऊँची, छोटी-छोटी,  
लालवर्ण की शीतला की फुंसियाँ हो जाती हैं तथा  
सर्सी और अरुचि हो जाती है। यथा—“रोमभूपो-  
न्नतिसमा रागिययः कफपित्तजा । कासरोचकसंयुजा  
रोमाञ्ज्वरपूर्विकाः ।”

इन्दुकला वटिका ।

शिलाजत्वयसी हेम संमर्द्यार्जकवा-  
रिणा । गुञ्जामात्रा वटीः कृत्वा कुर्या-  
च्छायाविशोपिताः ॥ ४ ॥ मसूरिकायां  
विस्फोटे ज्वरे लोहितसंज्ञके । एकैकां  
दापयेदासां सर्वव्रणगदेषु च ॥ ५ ॥

शुद्ध शिलाजीत, लोहभस्म और सुवर्ण-  
भस्म ; इन तीनों को समभाग ले तुलसी के  
रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियां बना  
ले और छाया में सुखाकर मसूरिका ( शीतला ),  
विस्फोटक, लोहितज्वर ( लालबुखार ) और  
सब प्रकार के घण रोगों में इसकी एक-एक  
गोली सेवन करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

ऊषणादि चूर्ण

ऊषणं पिप्पलीमूलं कुष्ठं वारणपिप्प-  
लीम् । मुस्तकंमधुकं मूर्वा भार्गी मोचरसं  
शुभाम् ॥६॥ यव जातिविषा वासा गोक्षुरं  
बृहतीद्वयम् । सञ्चूर्ण्य समभागानि माप-  
मानेन योजयेत् ॥ ७ ॥ ऊषणाद्यभिदं  
चूर्णं विस्फोटं लोहितज्वरम् । रोमान्तिका  
ज्वरं जीर्णहन्याच्चापि मसूरिकाम् ॥ ८ ॥

कालीभिर्ष, पिपरामूल, कूट, गजपीपरि,  
नागरमोथा, मुलेठी, मूर्वा, भारंगी, मोचरस,  
वंशलोचन, जवाखार, अतीस, अरुसा की छाल,  
गोखुरु, बड़ी कटेरी और छोटी कटेरी ; इनको  
समभाग एकत्र कर चूर्ण बनावे । मात्रा—  
माशा । सेवन करने से यह ऊषणाद्य चूर्ण  
विस्फोटक, लोहितज्वर, रोमान्तिका, जीर्णज्वर  
और मसूरिका रोग को नष्ट करता है ॥ ६-८ ॥

सर्वतोभद्र रस ।

सिन्दूरमध्रं रजतं च हेम समेन भागेन  
मनःशिलां च । द्विशस्तु वांशीं निखिलेन  
तुल्यं संमदयेद् गुग्गुलुकं प्रयत्नात् ॥ ९ ॥  
ततस्तु गुञ्जामभितां विधाय वटीं प्रयुञ्जीत

यथानुपानम् । यं सर्वतोभद्ररसो न हन्ति  
न सोऽस्ति रोगः खलु देहिदेहे ॥ १० ॥

रससिन्दूर, अम्रकभस्म, रजतभस्म, स्वर्ण-  
भस्म और मैन्शिल ; प्रत्येक एक एक भाग  
तथा वंशलोचन २ भाग और सबके बराबर  
शुद्ध गुग्गुलु ; इन सबको एकत्र घोटकर एक एक  
माशा की गोलियां बनावे । दोपानुसार अनुपान  
के साथ सेवन करने से मनुष्य के शरीर में  
ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसको यह सर्वतोभद्र  
रस नष्ट न कर दे ॥ ९-१० ॥

पलायरिष्ट ।

पञ्चाशत्पलमेलोया वासायाः पल-  
विंशतिम् । मञ्जिष्टां कुटजं दन्ती गुडूचीं  
रजनीद्वयम् ॥ ११ ॥ रास्नामुशीरं मधुकं  
शिरीषं खदिरार्जुनीं । भूनिम्बनिम्बवह्नीरच  
कुष्ठं मधुरिकां तथा ॥ १२ ॥ गृहीत्वा  
दिक्पलोन्मित्या जलद्रोणाष्टके पचेत् ।  
द्रोणशेषे कपाये च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥  
१३ ॥ धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य  
तुलात्रयम् । चातुर्जातं त्रिकटुकं चन्दनं  
रक्तचन्दनम् ॥ १४ ॥ मांसीं मुरां मुस्तकं  
च शैलेयं शारिवाद्भयम् । पलप्रमाणतरचात्र  
क्षिप्त्वा मांसं निधापयेत् ॥ १५ ॥ पलाय-  
रिष्टो हन्त्येष विसर्पारचमसूरिकाम् । रोमा-  
न्तिकां शीतपित्तं विस्फोटं विषमज्वरम् ॥  
१६ ॥ नाडीव्रणं व्रणं दुष्टं कांसं श्वासं  
च दारुणम् । भगन्दरोपदंशौ च प्रमेह-  
पिडिकास्तथा ॥ १७ ॥

इति मैपज्यरत्नावल्यां रोमान्तिका-

धिकारः समाप्तः ।

छोटी इलायची ५३॥ सेर, अरुसा की छाल  
५१ सेर, मैन्शिल, कुटज ( बुढ़ा की छाल ),

जमालगोटे की जड़, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, खस, मुलेठी, सिरस की छाल, कथा, अजुन की छाल, चिरायता, नीम की छाल, चीत की जड़, कूट और सौंफ; प्रत्येक आठ-आठ छटकों। काथ के लिए जल २ मन २२ सेर ३२ तोले। अवशिष्ट जल २५ सेर ४८ तोले। इसको छानकर ठंडा कर ले और घाय के फूल ६४ तोले, शहद १५ सेर, चातुर्जात (छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नाग-केशर), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरी) चन्दन, लाल चन्दन, जयामांसी, मुरामांसी, नागरमोथा, छारछरीला, अनन्तमूल और कालीशारिवा; प्रत्येक चार-चार तोले उसमें डालकर एक महीने तक मिट्टी के पात्र में बन्द करके रखे। पश्चात् निकालकर छान ले। मात्रा - १ तोले से २ तोले तक। यह एलायचिष्ट विसर्प, मस्-रिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, विस्फोटक, विषम-ज्वर, नासूर, दुष्ट क्षण, खाँसी कठिनतर स्वास, भगन्दर, उपदश (गरमी) और श्रमेह-पिदि-काश्रों को नष्ट करता है ॥ ११-१७ ॥

इति श्रीसरयूपसादीत्रिपाठिधिरचितायां भैषज्य-  
रसायन्या रत्नप्रभाभिधायानं व्याख्यान्यां  
रोमान्तिकाधिकारः समाप्तः ।

### अथ वातरक्ताधिकारः ।

वातरक्त की संप्राप्ति ।

वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावरितः  
पथि । क्रुद्धः सन्दूपयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वात-  
शोणितम् ॥ १ ॥

यदि हुए रक्त द्वारा जय बढ़ा हुआ वायु मार्ग में रोक दिया जाता है तो वह वायु क्षुब्ध होकर रक्त को दूषित कर देता है तब उसको वातरक्त कहते हैं ॥ १ ॥

वातरक्त के दो भेद ।

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वात-  
शोणितम् । त्वहमांसाश्रयमुत्तानं  
गम्भीरं तूत्तराश्रयम् ॥ २ ॥

वातरक्त के दो भेद हैं। एक उत्तान और दूसरा गम्भीर। त्वचा और मांस के आश्रय उत्तान और शरीर के भीतर गम्भीर रहता है ॥ २ ॥

वातरक्तशमनविधि ।

वाह्यं लेपाभ्यङ्गसेकोपनाहर्वातशो-  
णितम् । विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीर-  
माचरेत् ॥ द्वयोर्मुञ्चेदसृक् शृङ्गसूच्यला-  
जुजलौकसा ॥ ३ ॥

वाह्य वातरक्त को प्रलेप, अभ्यङ्ग, सैंक, उपनाह (पुलाटिस Poultice) आदि द्वारा तथा गम्भीर वातरक्त को विरेचन, आस्थापना स्नेह-पान आदि क्रियाओं द्वारा शान्त करना चाहिए। दोषानुसार वाह्य तथा आभ्यन्तर वातरक्त में सींगी, सूची (सुई, इन्जेक्शन), अलावु (तुम्बी) तथा जोंक द्वारा दुष्ट रक्त को निकालना चाहिए ॥ ३ ॥

वोधित्वत्तकपायं तु पाययेन्मधुना  
सह । वातरक्तं जयत्याशु त्रिदोषमपि  
दारुणम् ॥ ४ ॥

पीपल की त्वचा के क्वाथ में शहद डाल-  
कर पीने से कष्टदायक एव त्रिदोषज वातरक्त भी  
शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४ ॥

घृतेन वातं समुदा विवन्धं पित्तं सि-  
ताह्या मधुना कफश्च । वातासृगुग्रं रुवु-  
तैल मिश्राणुष्व्यामप्रातं शमयेद् गुडूची ५

गिलोय की घृत के साथ सेवन करने से वातरोग, गुड के साथ सेवन करने से मज्जबन्ध, सोंठ के साथ पित्त रोग, शहद के साथ कफज रोग, अरघी के तेल के साथ कष्टदायक वात-रक्त तथा सोंठ के साथ गिलोय का सेवन करने से आमवात नष्ट होता है ॥ ५ ॥

लीढया मुण्डितिका चूर्णं मधुमर्पिः  
समायुतम् । द्विभ्राकार्यं पिबन् हन्ति  
वातरक्तं मुदुस्तरम् ॥ ६ ॥

गोरखमुखी के चूर्ण को शहद और घी के साथ चाटकर तरपश्चात् गिलोय का क्वाथ पीने से कठिन वातरक्त भी नष्ट होता है ॥ ६ ॥

तिलप्रलेप ।

लेपे पिष्टास्तिलास्तद्वद् भ्रष्टाः पयसि निवृत्ताः ॥ ७ ॥

वातरक्त रोग में भुने हुए तिलों को दूध में पीसकर लेप करना चाहिए ॥ ७ ॥

मखिष्ठादि काथ ।

मंजिष्ठा त्रिफला निर्भ्य वचा कटुक-रोहिणी । वत्सादनी दारुनिशा कपायो वातरक्तनुत् ॥ ८ ॥ अन्यत्रायं नवकार्षिकं इति नाम्ना ख्यातः ।

मँजीठ, त्रिफला, नीम की छाल, वच, कुटकी, गिलोय, और दारुहरी मिलाकर २ तोले । क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, वचा हुआ क्वाथ ८ तोले । यह क्वाथ वातरक्त को नष्ट करता है । अन्य ग्रन्थों में इसका नाम नवकार्षिक है । नवकार्षिक में पाँच रची का माशा मानकर यह नौ चीजें अलग-अलग एक एक तोला भर ली जाती हैं । बाद में छाठ-गुने जल में क्वाथ का मात्रानुसार पिलाया जाता है, शेष धोड़ दिया जाता है । इसीलिये चक्रदत्त में लिखा है कि "पञ्चरत्रिकपापेण कार्योऽयं नवकार्षिकः । किन्वेवं साधिते क्वाथे योग्या मात्रा प्रदीयते ।" परन्तु आजकल इस प्रकार उपयोग नहीं किया जाता । उपयोग पूर्वोक्त विधि से ही है । यह क्वाथ वातरक्त के घतिरिक्त कुष्ठ, पामा, रक्तमण्डल तथा कपाल-कुष्ठ आदि में भी हितकारक है ॥ ८ ॥

परण्डादि काथ ।

गन्धर्वहस्तपगोक्षुरकामृताभिः मूलै-र्बलेक्षुरकयोश्च पचेत्कपायम् । वाता-सृगाशु विनिहन्ति चिरम्लुडमाजानुगं स्फुटितमूर्ध्वगतं तु पीतम् ॥ ९ ॥

अरही की जड़, चर्मे की जड़, गोक्षर,

गिलोय, खरैटी की जड़ और तालमखाने की जड़, इनका क्वाथ शीघ्र ही पुराने जानुपर्यन्त स्फुटित एवं ऊर्ध्वगत वातरक्त को नष्ट करता है ॥ ९ ॥

परण्डयीजादि प्रलेप ।

परण्डयीजमृतां शताह्वां जीरकं वलाम् । छागेन पयसा पिष्ट्वा लेपयेद-सकृद्भिषक् ॥ १० ॥

अरही के बीज, गिलोय, सोया, जीरा तथा खरैटी को बकरी के दूध में पीसकर बराबर लेप देना चाहिए ॥ १० ॥

रास्नादि प्रलेप ।

रास्नां गुडूर्ची मधुकं वलाञ्च पयसा सह । पिष्ट्वा प्रलेपयेत्तेन वातरक्तं प्रशा-म्यति ॥ ११ ॥

रास्ना, गिलोय, मुलहठी, खरैटी, इनको बराबर मात्रा में लेकर दूध में पीस लेप करने से वातरक्त नष्ट होता है ॥ ११ ॥

गृहधूमोमादि प्रलेप ।

गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनी-द्वयम् । प्रलेपः शूलनुद् वातरक्तं वात-कफोचरे ॥ १२ ॥

गृहधूम, वच, कूठ, सोया, हरी, दादहरी इनका लेप करने से वातकफज वातरक्त नष्ट होता है ॥ १२ ॥

शतावरी घृत ।

शतावरीकल्कगर्भं रसं तस्याश्चतुर्गुणे । क्षीरतुल्यं घृतं परं वातशोणितनाश-नम् ॥ १३ ॥

गोघृत ४ सेर, शतावरी का रस १६ सेर, गी का दूध ४ सेर । कक के लिये शतावरी १ सेर । इस घृत को विधिपूर्वक पका कर नेवन कराने से वातरक्त नष्ट होता है । मात्रा—आधा तोला से १ तोला तक ॥ १३ ॥

गुड्यो घृत ।

गुड्योकायकल्काभ्यां सपयस्कं मृतं

घृतम् । हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति  
दुस्तरम् ॥ १४ ॥

गोघृत ४ सेर । गिलोय का क्वाथ अथवा  
रस १६ सेर । दूध ४ सेर, ककक के लिये  
गिलोय १ सेर । इस घृत के सेवन से वातरक्त  
तथा कुष्ठरोग नष्ट होता है । मात्रा— $\frac{1}{2}$  तोला  
से १ तोला तक ॥ १४ ॥

अमृताद्य घृत ।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं  
पला । वासारग्वधट्टश्चीरदेवदारु त्रि-  
कण्टकम् ॥ १५ ॥ कडुका सरी कृष्णा  
काश्मर्यस्य फलानि च । रास्ना क्षुरक-  
गन्धर्वदृद्धदारुधनोत्पलैः ॥ १६ ॥  
कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिः प्रस्थं  
विपाचयेत् । धात्रीरससमं दद्या वासि-  
त्रिगुणसंयुतम् ॥ १७ ॥ सम्यक् सिद्धन्तु  
विज्ञाय भोज्यपाने प्रशस्यते । बहुदोषा-  
न्वितं वातं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ १८ ॥  
उत्तानश्चापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोरुजानु-  
जम् । क्रोष्टुशीर्षं महाशूले चामराते  
सुदारुणे ॥ १९ ॥ वातरोगोपसृष्टस्य  
वेदनाश्चापि दुस्तराम् । मूत्रकृच्छ्रमुदा-  
वर्त्त प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ २० ॥ एतान्  
सर्वाभिहन्त्याशु वातपित्तक्रफोद्भवान् ।  
सर्वकालोपयोगेन रणायुर्वलवर्द्धनम् ॥  
अश्विभ्यांनिर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् २२  
घी १२८ तोले, भौवजा का रस १२८ तोले,  
जल ४ सेर ६५ तोले । ककक के लिये गिलोय,  
मुलहठी, दाख, त्रिफला ( अलग अलग ), रौंठ  
परंठी की जड़, अहूसे की छाल, अमलतास,  
सफेद साँठी, देवदार, गोखरू, कुटकी, शतावर,  
पीपल, गम्भीरीफल, रास्ना, तालमलाना,  
अपही की जड़, विद्यारा की जड़, मोषा,  
नील कमल सब मिलाकर १४ तोले । विधि-

पूर्वक घृत पकाकर रोगी को सेवन करावे ।  
मात्रा—आधा तोला । यह घृत अत्यन्त दुष्ट  
एवं त्रिकसन्धि, तद्वा, ऊरु तथा जानुपर्यन्त प्रवृद्ध  
उत्तान तथा गम्भीर वातरक्त को नष्ट करता है ।  
यह घृत क्रोष्टुशीर्ष शूल, दाखण आमवात,  
वातव्याधि, अत्यन्त वेदना, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त,  
प्रमेह, विषमज्वर आदि वात, पित्तज तथा  
कफरोगों में अत्यन्त हितकारक है । इस घृत  
के निरन्तर उपयोग से वर्ण, आयु एवं बल  
की वृद्धि होती है । अश्विनीकुमारों ने इस घृत  
का निर्माण किया था ॥ १५-२२ ॥

वातरक्त में पथ्य ।

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः  
समकुष्ठकाः । यूपार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता  
वातशोणिते ॥ २३ ॥ पुराणा यज्ञगोधूम-  
नीत्राराः शालिपिष्टकाः । भोजनार्थे  
हिता भव्यमाहिपाजपयो हितम् ॥ २४ ॥  
अरहर, चना मूँग, मसूर और मोषी  
( मोठ ); इनके जूम में बहुत सा घृत मिला-  
कर वातरक्त में देना बहुत उत्तम है । तथा  
पुराने जौ, गेहूँ, नीवार, शालि चावल और  
साँठी चावल भोजन के लिए और गौ, भैंस  
और बकरी का दूध पीने के लिए हितकर  
है ॥ २३ २४ ॥

हड़ का प्रयोग ।

हरीतकीः प्राश्य सम गुटेन एका-  
स्थवा द्वे च ततो गुडूच्याः । काथोऽनु-  
पीतः शमयत्वस्य प्रभिन्नमाजानुजवात-  
रक्तम् ॥ २५ ॥

एक या दो हरेदों गुद के साथ साकर  
पीछे गिलोय का काय पीने से घुटनों तक  
पैला हुआ वातरक्त अथवा ही शान्त हो जाता  
है ॥ २५ ॥

पटोलादि काय ।

पटोलकडुकाभीरुत्रिफलामृतमाधि-

तम् । काथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं  
वातशोणितम् ॥ २६ ॥

परबल के पत्ते, कुटकी, शतावरि, त्रिफला  
और गिलोय इनका काढ़ा पीने से दाहयुक्त  
वातरक्त शान्त होता है ॥ २६ ॥ यह योग  
पैत्तिक वातरक्त के लिए है ।

शम्पाकादि काथ ।

शम्पाकमृतवासानामेरण्डस्नेहसंयुतम् ।  
पीत्वा काथमसृग्वातं क्रमात् सर्वाङ्गजं  
जयेत् ॥ २७ ॥

अमलतास, गिलोय और अदुसा; इनके  
काढ़े में अण्डी का तेल मिलाकर पीने से  
सर्वाङ्ग का वातरक्त शान्त होता है ॥ २७ ॥

वातरक्त में प्रलेप और सेंक ।

गोधूमचूर्णाजपयोधृतं च सच्छाग-  
दुग्धो रुबुवीजकल्कः । लेपो विधेयः  
शतधौतसर्पिः सेके पयश्चाविकमेव  
शस्तम् ॥ २८ ॥

गेहूँ का आटा, बकरी के दूध का घृत  
तथा उत्तम बकरी का दूध, अण्ड के बीजों  
का कल्क और सौ बार घोया हुआ घृत;  
इनका जेप करने से और भेद के दूध से  
सेक देने से वातरक्त रोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

वातरक्त में गुड्डी प्रयोग ।

गुडुच्याः स्वरसं चूर्णं कल्कं वा  
काथमेव वा । प्रभूतकालमासेव्युप-  
च्यते वातशोणितात् ॥ लेपे पिष्टास्ति-  
लास्तद्गुडुभृष्टाः पथसि निर्वृतः ॥ २९ ॥

गिलोय का रस, गुण, कल्क और काथ  
इनमें से किसी एक का बहुत दिन सेवन  
करने से वातरक्त रोग से मुक्त हो जाता है,  
इसमें प्रकृत भुने हुए तिलों को दूध में  
पीगकर खेप करना इस रोग में लाभदायक  
है ॥ २९ ॥

निम्पादिचूर्ण ।

निम्पामृताभया धात्री मन्येकं च

पलोन्मितम् । सोमराजीपलं शुण्ठी  
विडङ्गैडगजाः कणाः ॥ ३० ॥ यमानी  
चोग्रगन्धा च जीरकं कटुकं तथा ।  
खदिरं सैन्धवं चारं द्वे हरिद्रे च मुस्त-  
कम् ॥ ३१ ॥ देवदारु तथा कुष्ठं कर्पं  
कर्पं प्रदापयेत् । सर्वं संचूर्णितं कृत्वा  
सूक्ष्मरस्त्रेण ध्वानयेत् ॥ ३२ ॥ माप-  
द्वयं तु भोक्तव्यं द्विभाकाथं पिवेदनु ।  
मासमात्रप्रयोगेण भवेत् काञ्चनसन्नि-  
भः ॥ ३३ ॥ वातशोणितमत्युग्रं शिवत्र-  
मौदुम्बरं तथा । कोठं चर्मदलाख्यं च  
सिन्धुपामा च विप्लुता ॥ ३४ ॥ कण्डू-  
विर्चिकाकारुद्वुमण्डलकिट्टिमम् । सर्वा-  
ण्येव निहन्त्याशु वृत्तामिद्राशनिर्यथा ॥  
३५ ॥ आमवातकृतं शोथमुदरं सर्व-  
रूपिणम् । प्लीहानं गुल्मरोगं च  
पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ३६ ॥ सर्वान्  
कण्डूवृणान् चैव हरते नात्र संशयः ।  
एतन्निम्बादिकं चूर्णं प्राह नागार्जुनो  
मुनिः ॥ ३७ ॥

नीम की छाल, गिलोय, दह और भाँपड़ा  
ये सब चार-चार तोले, दावर्षी ५ तोले, सोंठ,  
दावर्षिद्वय पराई ( नागमर्द ), पीपली  
अजगान्दन, बघ, जीरा, कुटकी, सैर, सेंधा  
नमक, जवाघार, दलरी, दाहदलरी, नागर-  
मोषा, देवदारु और कूट ये सब एक-एक  
तोना । इन सबको घृत पीगकर महीन कपड़े  
में छान ले । दो मासे की मात्रा में इस  
दूध को पीकर ऊपर से गिलोय का काढ़ा  
पीना चाहिए । एक महीने तक सेवन करने  
से जरीर मुखमें के मुख हो जाता है और  
कठिन वातरक्त, सट्टे कोट, मौदुम्बर कोट,  
कोट, चर्मदल, नेत्रुपी ( मर्द ), पामा, प्रय,  
गुण्ठी, विचर्दिका दाह, मण्डरोग और

किटिम कोढ़, इन सबको यह चूर्ण इस प्रकार नाश करता है जैसे वज्र वृष्टि को । तथा ग्रामवात से उत्पन्न सब प्रकार की सूजन, सब प्रकार के उदररोग, प्लीहा, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, कामला ( काँवर, पीलिया ) और सब प्रकार की खुजली तथा ग्रन्थियों को निःसदेह नष्ट करता है । इस निम्बादि चूर्ण को नागार्जुन मुनि ने कहा है ॥ ३०-३७ ॥

स्वल्पगुडूची तैल ।

गुडूचीकाथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं प्रयत्नतः । वातरक्तं निहन्त्याशु नात्र कार्या विचारणा ॥ ३८ ॥

काय के लिए गिलोय १२८ तोले, जल २६ सेर, शम तोले, शोष ६ सेर ३२ तोले । कक के लिए गुर्घं ३२ तोले और तिलतैल १२८ तोले । यथाविधि तैल सिद्ध कर सेवन करने से वातरक्त शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥ ३८ ॥

( १ ) मध्यगुडूची तैल ।

गुडूचीकाथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं पयःसमम् । वातरक्तं निहन्त्याशु साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ३९ ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम् । नाशयेत्तिमिरं घोरं गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ ४० ॥

गिलोय का द्वाय ८ सेर, कक के लिए गिलोय द्वाय सेर तिल वा तेल २ सेर, गौ का दूध २ सेर । यथाविधि तैल सिद्ध कर मालिश करने से साध्य अथवा असाध्य सब प्रकार का वातरक्त रोग नष्ट होता है और अत्यन्त बढ़ा हुआ तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ३९-४० ॥

शुद्धगुडूची तैल ।

शतं द्वित्ररुहायश्च जलद्रोणे विपाचयेत् । तेन पाटावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४१ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात्कल्कानेतान् प्रयत्नतः । अरुणगन्धा विदारी

च काकोल्यौ हरिचन्दनम् ॥ ४२ ॥ शतावरी चातिवला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् । कृमिघ्नं त्रिफला रास्ना त्रायमाणा च शारिवा ॥ ४३ ॥ जीवन्ती ग्रन्थिकं व्योषं वागुजीभेकपर्णिका । विशाला ग्रन्थिपर्ण च मञ्जिष्ठा चन्दनं निशा ॥ ४४ ॥ शताह्वा सप्तपर्णी च कार्पिकाण्युपकल्पयेत् । पानाभ्यञ्जनस्येषु वातरक्ते प्रयोजयेत् ॥ ४५ ॥ वातरक्तमुदावर्चं कुष्ठान्यष्टादशैव तु । हनुस्तम्भं प्रमेहं च कामलां पाण्डुतां जयेत् ॥ ४६ ॥ विस्फोटं च विसर्पं च नाडीव्रणभगन्दरम् । विचर्चिकां गात्रकण्डूपाददाहं विशेषतः ॥ ४७ ॥ पततैलवर्णं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम् । आश्रेयनिमित्तं चैव यत्नार्णकरं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

५ सेर गिलोय को २६ सेर ४८ तोले जन में औंठावे । जय ६ सेर ३२ तोले चाकी रहे तब उतार कर छान ले । तेल १२८ तोले, दूध ६ सेर ३२ तोले । कक के लिए असगन्ध, विदारीकन्द, काकोली, शीरकाकोली, पीला चन्दन, शतावरी, कषी, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, धायविध ग, त्रिफला, रास्ना, त्रायमाणा, शारिवा, जीवन्ती, पिपरामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, धायची, मयडूकपर्णी, इन्द्रायण, गाँठवन, मँजीठ, सफेद चन्दन, हर्दरी, सोया के बीज और सतवा, ये सब एक एक तोला । यथाविधि तैल सिद्ध करे । इसके पीने से, मालिश करने से तथा नस्य लेने से वातरक्त, उदावर्च, १८ प्रकार के कोढ़, हनुस्तम्भ, प्रमेह, काँवर ( पीलिया ), पाण्डुरोग, विस्फोटक, विमर्ष, नाडीव्रण, भगन्दर, विचर्चिका गुजली और पाददाह और वलीपलित; इन रोगों का नाश होता है । यह यत्न और घण्टों का देनेवाला शुद्धगुडूची तैल आश्रेयजी का बनाया हुआ है ॥ ४१-४८ ॥



## विपतिन्दुक तैल

विपतरुफलमज्जप्रस्थयुग्मं च शिग्र  
स्वरसलकुचवारिप्रस्थमेकैकशश्च । कनक-  
वरुणचित्रापत्रनिर्गुण्डिकास्तुकस्वरसतुरग-  
गन्धवैजयन्तीरसश्च ॥ ४९ ॥ पृथगिति  
परिकल्प्य प्रस्थयुग्मेन युग्मं विपतरुफल-  
मज्जातुल्यतैलं विपक्वम् । लशुनसरलयष्टि-  
कुष्ठसिन्धूत्थयुग्मं दहनतिभिरकृष्णाकल्क-  
युक्तं सुसिद्धम् ॥ ५० ॥ हरित सकल-  
वातान् घोररूपानसाध्यान् गतिदिनमनुले-  
पात् सुप्तवातस्य जन्तोः ॥ ५१ ॥ कुष्ठ-  
मष्टादशविधं विविधं वातशोणितम् ।  
वैवर्ण्यं त्वग्गतान् दोषान्नाशयत्याशु  
मर्दनात् ॥ ५२ ॥

कुचिलो की सींगी १२८ तोले, काथ के लिए  
जल १२ सेर ६४ तोले, अर्वाशिष्ट जल ३  
सेर १६ तोले, संहिजना का रस, १२८ तोले,  
बडहर का रस, १२८ तोले, घतूरा के पत्तों  
का रस १२८ तोले, वरना की छाल का काड़ा  
१२८ तोले, चित्रक की पत्तियों का स्वरस  
१२८ तोले, सँभालू का काड़ा १२८ तोले,  
यूहर का रस १२८ तोले, असगन्ध का काड़ा  
१२८ तोले और अरणी के पत्तों का रस १२८  
तोले, तिलतैल १२८ तोले । कल्क के लिए—  
लहसुन, मरलकाष्ठ, मुलेठी, फूट, सँधानमक,  
विडनमक, चीत की जड़, हृद्दी और पीपल;  
ये सब चार-चार तोले । यथाविधि तैल सिद्ध  
कर प्रतिदिन मालिश करने से अत्यन्त कठिन  
तथा असाम्य सब प्रकार के वातरोग, सुप्तवात,  
१८ प्रकार के कोढ़, अनेक प्रकार के पातरङ्ग,  
चिवर्णता और खटा के दोषों का नाश होता  
है ॥ ४९-५२ ॥

## रुद्र तैल

पुनर्नवानिशानिम्बं वार्त्तिकुचुद्गी-  
त्वचम् । कण्टकारी करञ्जश्च निर्गुण्डी-

ष्टपमूलकम् ॥ ५३ ॥ अपामार्गपटोलं  
च धुस्तूरं दाडिमीफलम् । जयन्तीमूलकं  
दन्ती प्रत्येकं कार्पिकद्वयम् ॥ ५४ ॥  
त्रिफलायाः प्रदातव्यं द्विकर्षं च पृथक्  
पृथक् । दत्त्वा छिन्नरुहायाश्च द्वात्रिंशच्च  
पलानि च ॥ ५५ ॥ पाचयेद् भाजने  
तोयं चतुर्भागावशेषितम् । कटुतैलस्य च  
प्रस्थं दुग्धं च तत्समं भवेत् ॥ ५६ ॥  
वासकस्वरसप्रस्थं मन्दमन्देन वह्निना । गन्धं  
शटी च कंकोलं चन्दनं ग्रन्थिकं नखी ॥ ५७ ॥  
पूतिकं केशरं कुष्ठं हन्त्यस्थिमज्जगं पुनः ।  
हस्तपादांगुलिसन्धिगलितं स्फुटितं तथा ॥  
५८ ॥ कृष्णं श्वेतं तथा रक्तं नानावर्णं  
सदाहकम् । पामां विचर्चिकां कण्डूं व्यायां  
त्वचं च कालिनीम् ॥ ५९ ॥ मसूरिकां  
मण्डलं च ज्वलनं च विसर्पकम् । स्रुती-  
व्रणं धर्महीनं गात्रवैवर्ण्यदद्भुकम् । निहन्ति  
रक्तदोषं च भास्करस्तिभिरं यथा ॥ ६० ॥

गडहयुदेना ( सौंठी ) की जड़, हृद्दी, नीम  
की छाल, बँगन, बड़ी कटेरी, दालचीनी, छोटी  
कटेरी, करञ्जुआ, सँभालू, अदूसे की जड़,  
लटजीरा, परबल के पत्ते, घतूरा, अनारदाना,  
अरणी की जड़, जमालगोटे की जड़; ये  
सब दो-दो तोले । आंबिला २ तोले, हड़ २ तोले,  
वहेदा दो तोले । इन सबका कल्क । गिलोय  
१२८ तोले, पाकार्यं जल ६ सेर ३२ तोले,  
अर्वाशिष्ट १२८ तोले । कटुआ तैल १२८ तोले-  
गोदुग्ध १२८ तोले, अदूसे का रस १२८  
तोले । मन्दाग्नि से यथाविधि तैल सिद्ध करके  
उसमें काली अगर, कधूर, कंकोल, सफेद  
चन्दन, गोठवन, नली, एटाशी, नागकेसर  
और फूट ; इनका प्रक्षेप देकर तेल को सुग-  
न्धित करे । इस द्रव्यतेल के मर्दन करने से हड्डी  
और मज्जागत कुष्ठ तथा जिसमें हाथ और पैर  
की अँगुलियाँ गल गई हों अथवा फूट गई हों

वह कुष्ठ तथा काला, सफेद, लाल और अनेक वर्ण का कुष्ठ, पामा, विचर्चिका, खुजली, छाया रोग, खाल का कालापन, मस्त्रिका, मयदलकुष्ठ, दाह, विसर्प, नाड़ीवण ( नासूर ), पसीना का न आना, शरीर की विवर्णता, दाद और रक्तदोष इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे मूर्खोदय से अन्धकार ॥ २३--६० ॥

महावद्र तैल ।

पुनर्नवा निशा निम्बं वार्त्ताकुदाडिमी-  
फलम् । वृहत्तयौ पूतिकामूलं वासकं सिन्धु-  
वारकम् ॥ ६१ ॥ पटोलपत्रं धुस्तूरमपा-  
मार्गं जयन्तिका । दन्ती वरा पृथक् सर्वं  
कर्षद्वयमितं पुनः ॥ ६२ ॥ विपस्य द्विपलं  
देयं पृथक् व्योषं पलत्रयम् । प्रस्थं च सार्पपं  
तैलं प्रस्थांशुवृषपात्रजम् ॥ ६३ ॥ गुडू-  
च्यास्तु चतुःषष्टिपलकाथरसेन च । वारि-  
प्रस्थेन पक्कव्यं महारुद्रमिदं शुभम् ॥ ६४ ॥  
वातरक्तं निहन्त्याशु नानादोषसमुद्भवम् ।  
अष्टादशविधं कुष्ठं हन्ति वर्णाग्निवर्द्धनम् ॥  
६५ ॥ कृमिं दुष्टव्रणं चैव दाहं कण्डू-  
निहन्ति च । अस्वेदनं महास्वेदमभ्यन्नादेव  
नश्यति ॥ ६६ ॥

वासारुद्रगुडूचीतैलमित्यस्य संज्ञा-  
न्तरम् ।

काय के लिए गदहपुरीना (सांठी) की जड़, हलदी, नीम की छाल, बेंगन, अनारदाना, दोनों फटेरी, करंज की जड़, रुसे की छाल, सैभालू, परवल के पत्ते, धतूरा, लट्जरीरा, अरखी, जमालपोट की जड़, त्रिफला, (अलग-अलग) ये सब चीजें दो-दो तोड़े। विप ८ तोड़े, सोंठ १२ तोड़े, मिर्च १२ तोड़े, पीपल १२ तोड़े, सरसों का तेल १२८ तोड़े। रुसे के पत्तों का रस १२८ तोड़े, गिलोय का रस ३ सेर १६ तोड़े, जल १२८ तोड़े। मंदाग्नि से पचाविध तैल सिद्ध करे। इस महावद्र तैल की

मालिश करने से अनेक दोषों से उत्पन्न हुआ वातरक्त, अठारहों प्रकार के कुष्ठ, कृमि, दुष्ट-व्रण, दाह, कण्डू, प्रस्वेद (पसीना न निकलना), महास्वेद (पसीना ज्यादा निकलना) इन रोगों को यह तैल नाश करता है तथा वर्ण और अग्नि को बढ़ाता है। वासातैल, रुद्रतैल तथा गुडूचीतैल ये इसके नाम हैं ॥ ६१--६६ ॥

कैशोरगुग्गुलु ।

वरमहिपलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गु-  
ग्गुलोः प्रस्थम् । प्रक्षिप्य तोयराशौ  
त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणम् ॥ ६७ ॥  
द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यवनेन ।  
विपचेदप्रमत्तो दर्व्या सङ्घट्टयन् मुहुर्या-  
वत् ॥ ६८ ॥ अर्द्धक्षयितं तोयं जातं  
ज्वलनस्य सम्पर्कात् । अवतार्य यत्नपूर्तं  
पुनरपि संसाधयेदयः पात्रे ॥ ६९ ॥  
सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलप्रख्ये ।  
त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोरचूर्णं षडक्षप-  
रिमाणम् ॥ ७० ॥ कृमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं  
कर्षं त्रिवृद्धन्त्योः । अमृतायाः पलमेकं  
सर्पिपश्च पलाष्टकं क्षिपेदमलम् ॥ ७१ ॥  
उपयुज्य चानुपानं यूपं क्षीरं सुगन्धि-  
सलिलं च । इच्छाहारविहारी भेषजमुप-  
युज्य सर्वकालमिदम् ॥ ७२ ॥ तनुरोधि-  
वातशोणितमेकजमथ द्वन्द्वजं चिरोत्थं  
च जयति स्रुतपरिशुष्कं स्फुटितञ्चाजानुजं  
चापि ॥ ७३ ॥ ब्रणकासकुष्ठगुल्मशय-  
थूदरपाण्डुमेहांश्च । मन्दाग्निं च विवन्धं-  
प्रमेहपिडिकाश्च नाशयत्याशु ॥ ७४ ॥  
सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्दन्ति सर्व-  
गदान् । अभिभूय जरादोषं करोति कैशो-  
रिकं रूपम् ॥ ८५ ॥ मत्पेकं त्रिफला-

प्रस्थो जलमत्र पडाढकम् । पाकायत्तं फलं  
पाके काथे पाकप्रधानता । तस्मात् काथ-  
विधौ नित्यं यतितन्व्यं चिकित्सकैः ॥७६॥

पोटली में बंधा हुआ महिषास्रगुग्गुलु  
( मँसागुग्गुलु ) ६४ तोले, त्रिफला मिलित  
२ सेर ३२ तोले, गिलोय १२८ तोले, इनको  
३८ सेर ३२ तोले जल में पकावे । पकाते  
समय करछी से चलाता जाय । जब आधा  
पानी जल जाय तो उतार कर बख से छाग ले  
और पोटली का गुग्गुलु निकालकर पी में  
सान ले और काढ़े में मिलाकर फिर लोहे के  
पात्र में अग्नि पर चढ़ाकर पाक करे । गाढ़ा  
होने पर उतार ले और शीतल हो जाने पर ये  
चीन्नें ढाले । हड, बहेड़ा और बला का चूर्ण दो-दो  
तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण दो-दो तोले,  
वायविङ्ग का चूर्ण २ तोले, निसोय १ तोला,  
जमालगोटे की जड़ २ तोले, गिलोय ४ तोले,  
नी का शृत ३२ तोले ढालकर गुग्गुलु सिद्ध  
करे । इस गुग्गुलु को मूँग आदि का जूस, दूध,  
गुलायजल इत्यादि के साथ खाये और इच्छा-  
नुसार भोजन करे । इस गुग्गुलु के सेवन करने  
से एक दोपज, द्विदोपज तथा चिरकालिक,  
शुतपरिशुष्क (यहकर सूखा हुआ), स्फुटित जानु-  
पर्यन्त फैला हुआ वातरक्त दूर होता है । मण,  
कास, कुष्ठ, गुयम, सूजन, उदररोग, पायदु,  
मेह, मंदाग्नि, विषंध (पेट फूलना और )  
प्रमेहपिपिका आदि रोगों को यह नष्ट करता  
है । इसका निरंतर सेवन करने से सब प्रकार के  
रोग नाश होते हैं । यह कैशोरगुग्गुलु जरा-  
वस्था को दूर करके कैशोर अवस्था को प्राप्त  
कराता है । त्रिफला की प्रत्येक औषधि ६४ तोले  
और इसमें जब ६ षाडक ( ३८ सेर ३२  
तोले ) होना चाहिए । फल पाक के ही अर्धीन  
रहता है और ढाघ में पाक ही प्रधान है, अतः  
पेयों को चाहिए कि तदा वषाद्यधिध में परिधम  
करें ॥ ६७-७६ ॥

रसास्रगुग्गुलु ।

कर्षद्रयं पारदस्य लौहं गन्धं च

तत्समम् । लौहगन्धसमं चाश्रं गुग्गुलुं  
कुडवद्वयम् ॥ ७७ ॥ अमृताया रसप्रस्थे  
रसप्रस्थे फलत्रिके । सान्द्रीभूतेरसे तस्मिन्  
गर्मं दत्त्वा विचक्षणः ॥ ७८ ॥ त्रिकडु  
त्रिफला दन्ती गुडूची चेन्द्रवारुणी ।  
विडङ्गं नागपुष्पं च त्रिवृता च सुचूर्णि-  
तम् ॥ ७९ ॥ प्रत्येकं कर्षमादाय सर्वं मे-  
कत्र कारयेत् । भक्षयेत् कोलमात्रं तु द्विजा  
काथानुपानतः ॥ ८० ॥ वातरक्तं महा-  
घोरं स्फुटितं गलितं जयेत् । अष्टादशविधं  
कुष्ठं कृमिरोगाश्रमरीं तथा ॥ ८१ ॥ भग-  
न्दरं गुदभ्रंशं श्वेतकुष्ठं सकामलम् ।  
अपर्ची गण्डमालां च पामां कण्डू विच-  
चिकाम् ॥ ८२ ॥ चर्मकीलं महादद्रुं  
नाशयेन्नात्र संशयः । वातरक्तविनाशाय  
धन्वन्तरिकृतः पुरा ॥ ८३ ॥ रसास्रगुग्गुलुः  
ख्यातो वातरक्तोऽमृतोपमः ॥ ८४ ॥

गुद पारा २ तोले, लीदभ्रम २ तोले,  
गन्धक २ तोले, अश्रकमसम ४ तोले और  
गुग्गुलु ३२ तोले, गिलोय का रस १२८ तोले,  
त्रिफला का रस १२८ तोले; इन सबको मिला-  
कर पाक करे । जब गाढ़ा हो जाय तब त्रिफला,  
त्रिमुटा, जमालगोटे की जड़ गिलोय, इन्द्रा-  
यय की जड़, वायविङ्ग, नागेशर, निसोय;  
इनको एक-एक तोले लेकर चूर्ण करे । इस चूर्ण  
को पूर्वाह्न वनाप में ढालकर गुग्गुलु सिद्ध करे ।  
इसकी मात्रा ६ मारो, अनुपान गुंध वा बवाय ।  
इसके सेवन करने से महाघोर स्फुटित तथा  
गलित वातरक्त, अठारह प्रकार के कुष्ठ, कृमिरोग,  
पयरी, भगन्दर, गुदभ्रंश, श्वेतकुष्ठ, कामला,  
अपर्ची, गण्डमाला, पामा, कण्डू, विषपिका,  
चर्मकील और द्रु ये रोग नष्ट होते हैं । इसमें  
कुष्ठ भी मंत्रय नहीं है । यह वातरक्त को नाश  
करने के लिए धन्वन्तरिजी का बनाया हुआ  
रसास्रगुग्गुलु अश्र के समान है ॥ ७७-८४ ॥

वातरक्तान्तक रज्जु ।

पारदं गन्धकं लौहं घनं तालं मनः-  
शिला । शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं  
विचूर्णयेत् ॥ ८५ ॥ विडङ्गं त्रिफलाव्यो-  
पमन्धिफेनं पुनर्नवा । देवदाह चित्रकं च  
दार्वी श्वेता पराजिता ॥ ८६ ॥ चूर्णमेपां  
पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र भावयेत् । त्रिफला  
भृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥ ८७ ॥  
संभाव्य भक्तयेत् पश्चान्मापमात्रं दिने  
दिने । कृत्वानुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं  
त्वचं समम् ॥ ८८ ॥ मापमात्रं घृतैः  
कुर्यात् सर्ववातविकारनुत् । वातरक्तं महा-  
घोरं गम्भीरं सर्वजं जयेत् ॥ ८९ ॥  
सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्य-  
यम् ॥ ९० ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लौहभस्म, अश्रकभस्म,  
हरिताल, मैनशिल, शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुलु,  
पायाविडग, त्रिफला, त्रिकटु, सपुद्रफेन, गदह-  
पुरीना (साँठी) देवदाह, चीत की जड़, दार-  
ह्वदी, विष्णुकाता; इन सबको सम भाग ले  
चूर्ण करे और उसमें त्रिफला और भाँगेरे  
के रस को पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना  
दे । इसकी उर्द के समान गोलियाँ बनाकर  
प्रतिदिन एक गोली का सेवन करे । एक-एक  
माशे नीम के पत्ते, पुष्प और छाल के साथ में  
घृत मिलाकर अनुपान करे । इस वातरक्तान्तक  
रस के सेवन से महाघोर, गम्भीर, त्रिदोषजन्य  
सब प्रकार के उपद्रवों से संयुक्त साध्य तथा  
असाध्य वातरक्त रोग दूर होता है ॥ ८५-९० ॥

पुनर्नवाशुग्गुलु ।

पुनर्नवा मूलशतं विशुद्धं रुक्ममूलञ्च  
तथा प्रयोज्य । दत्त्वा पलं षोडशकञ्च  
शुण्ठ्याः सङ्कुट्य सम्यग्बिपचेद् घृतेऽ  
पाम् ॥ ९१ ॥ पलानि चाष्टात्रय कौशि-  
कस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत् । परएड-

तैलं कुडवञ्च दद्यात् दत्त्वा त्रिष्टचूर्ण-  
पलानि पञ्च ॥ ९२ ॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं  
गुडूच्याः पलद्वयं चाद्धं पलं पलं प्रति ।  
फलत्रयञ्चूपणचित्रकाणि सिन्धूत्य-  
भल्लातविडङ्गकानि ॥ ९३ ॥ कर्पं तथा  
माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव  
चूर्णम् । चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते  
खादन्नरो मासत्रयप्रमाणम् ॥ ९४ ॥  
वातासृजं वृद्धिगदञ्च सप्त जयत्यवर्यं त्वथ  
गृध्रसीञ्च । जङ्घारुपुष्टत्रिकवस्तिजञ्च तथा-  
मवातं प्रबलञ्च शीघ्रम् ॥ ९५ ॥

साँठी की जड़ ५ सेर, अरई की जड़ ५  
सेर, सोंठ १४ तोले इन्हें अथवृत्कर २५ सेर  
४८ तोले जल में पकावे, ज ३ सेर १६ तोले  
हाथ बाकी रह जाय तप उतार ले । इस काफ  
को छानकर इसमें ३२ तोले गुगलको डाल  
पुनः पकावे पश्चात् अरई का तैल १६ तोले,  
निसोत २० तोले, दन्तीमूल ४ तोले, गिलोय  
८ तोले, त्रिफलाचूर्ण २ तोले, त्रिकटु २ तोले,  
चित्रक ४ तोले, सेंधानमक ८ तोले, मुद्ग  
भिलावा ८ तोले, वायाविडङ्ग ८ तोले, स्वर्ण-  
माक्षिकभस्म १ तोला, साँठी ४ तोले । इनके  
चूर्ण को डालकर पकावे । जब पाक भले प्रकार  
सैयार हो जाय तब उतारकर शीतल होने दे ।  
मात्रा ३ माशे । इसके सेवन से वातरक्त,  
वृद्धिरोग, गृध्रसी तथा जङ्घा, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक-  
सन्धि आदि में पैदा हुआ बलवान् आमवात  
शीघ्र नष्ट होता है ॥ ९१—९५ ॥

विश्वेश्वररस ।

रसादश विपात्पञ्च गन्धकादश शोधि-  
तात् । तुत्थादश पलाशस्य बीजेभ्यः पञ्च  
कारयेत् ॥ ९६ ॥ त्रुद्राश्वमारुस्तूरकर-  
हाटकनीलितः । दशकं दशकं कुर्याच्छोप-  
वित्वा जटात्वचः ॥ ९७ ॥ दशकं दशकं  
दत्त्वा कुचिलादश नूतनात् । भल्लातकाच्च

दशकं चूर्णवित्वा भिषक् ततः ॥ ९८ ॥  
 सुदिने च बलिं दत्त्वा वैद्यः पूजापरायणः ।  
 रक्तिकैकमितं दद्यात् सहते यदि वा द्वयम् ॥  
 ९९ ॥ वातरक्तं ज्वरं कुष्ठं खरस्पर्शमसौ  
 ख्यदम् । आजानुस्फुटितं हन्ति त्रिपजं  
 वास्थिनःसृतम् ॥ १०० ॥ कुष्ठमष्टादश-  
 विधमग्निमान्द्यमरोचकम् । विश्वेश्वरो रसो  
 नाम विश्वनाथेन भाषितः ॥ १०१ ॥

शुद्ध पारा १० भाग, शुद्ध बच्छनाग २ भाग,  
 शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध नीलायोधा १० भाग,  
 टाक के बीज २ भाग, छोटी फटेरी, कनेर की  
 जड़, धतूरा, धकरकरा, नील की जड़, जटामांसी,  
 दारचीनी, हर एक दश-दश भाग । नूतन एवं  
 शोधा हुआ कुचला १० भाग ; शुद्ध भिलावा  
 १० भाग । इनके चूर्ण को एकत्र कर मिलाये,  
 पश्चात् शुभ दिा में बलि नकर पूजापरायण  
 वैद्य रोगी को सेवन करावे । मात्रा १ रत्नी से  
 २ रत्नी तक । यह रस जानुपर्यन्त स्फुटित घात-  
 रस, ज्वर, कुष्ठ, विपरोग, मन्दाग्नि और  
 अरुचि आदि को नष्ट करता है ॥ ९९—१०१ ॥

लाह्लयथाय रौह ।

विशुद्धलाह्ललीमूलत्रिकटुत्रिफलै-  
 स्तथा । द्राक्षा गुग्गुलुभिस्तुल्यं लौहचूर्णं  
 नियोजयेत् ॥ १०२ ॥ मानुलुहरसेनेव  
 त्रिफलाया रसेन च । विमृष्ट यज्ञतः  
 पश्चाद् गुडिकां वल्लसम्भिताम् ॥ १०३ ॥  
 भक्तयेन्मधुना सार्द्धं शृणु कुर्वन्ति यान्  
 गुणान् । आजानुस्फुटितं घोरं सर्वाङ्ग-  
 स्फुटितं तथा ॥ तत्सर्वं नारायत्याशु  
 साध्यामाध्यश्च जोगितम् ॥ १०४ ॥

शुद्ध कीजहारी की जड़, त्रिकटु, त्रिफला, दाग,  
 शुद्ध मूषक, प्रायश एक-एक भाग, दग मिश्रे हुए  
 चूर्ण के बराबर लौहभस्म, दग सबको एकत्र कर  
 बिजोरे के रस तथा त्रिफला के रस से अलग  
 अलग घोटकर २ रत्नी के परिमाण में मॉलियां

बनावे । अनुपान शहद । यह लौह जानुपर्यन्त  
 स्फुटित अथवा सर्वाङ्गस्फुटित साध्यासाध्य वात  
 रक्त को नष्ट करता है ॥ १०२—१०४ ॥

कुष्ठोष्णोऽप्यत्र दातव्यः श्रीमहातालके-  
 श्वरः सर्वेश्वरश्च दातव्यस्तस्मिन् कुर्यादिमं  
 विधिम् ॥ १०५ ॥

कुष्ठ चिकित्सा में कहे हुए महातालकेश्वर  
 एवं सर्वेश्वर रस भी वातरक्त में हितकर  
 होता है ॥ १०५ ॥

रक्तरोग में शोणितमोक्षण ।

रक्ताधिक्ये रक्तमोक्षः पदे वाहौ  
 ललाटके । कर्त्तव्यो रक्तरोगेषु कुष्ठिनाश्च  
 विशेषतः ॥ १०६ ॥

यदि रक्ताधिक्य अथवा रक्तरोग हो तो पाँच,  
 बाहु अथवा ललाट से रोगी के बनायल तथा  
 व्याधि की अथवा को देखकर रक्त निकालना  
 चाहिए । कुष्ठ, वातरक्त आदि रोगों में प्रायः  
 रक्तमोक्षण विधा जाता है । इस प्रकार रक्त-  
 मोक्षण से रक्ताधिक्य में प्रयुक्त रक्त या दबाय  
 (Blood Pressure) घटता है तथा रक्त-  
 रोगियों के रक्त में स्थित विष (Toxins)  
 बहुत कुछ कम हो जाता है ॥ १०६ ॥

नारफोमुषुद्धत गुडचौलीद ।

गुडचौत्सारसंयुक्तं त्रिरत्रयसमायु-  
 तम् । वातरक्तं निहन्त्याशु सर्परोगहरं  
 ह्ययः ॥ १०७ ॥

सर्वसमं लौहम् ।

गिनोय के सत के माष त्रिकटु ( गोंठ,  
 फालीमिर्च, पीपल ), त्रिफला ( दह, पहेवा,  
 धाँपना ) तथा त्रिनद ( बायबिद्ग, विप्रक,  
 मोषा ), इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर मक्के  
 बराबर लौहभस्म मिलाये, मात्रा २ रत्नी ।  
 इसके सेवन से वातरक्त नष्ट होता है ॥ १०७ ॥

पित्तान्तकमौद ।

रसं गन्धरमभ्रश्च गूढचौमभयां तथा ।  
 उगीरं चानकं ताघ्रसारं गर्प समं गमम् ॥

१०८ ॥ गृहीत्यायः सर्पसमं खल्ले संस्थाप्य  
मर्दयेत् । रत्निद्वयमितां खादेद्वटिकामति-  
यत्नतः ॥ १०९ ॥ पटोलपत्रधन्याकफाथे-  
नैवानुपानतः । पाण्डुं पित्तोद्भवां रोगान-  
शेषान् यद्धतं तथा ॥ ११० ॥ उपद्रंशं  
तथा हन्याद्विकृतिं पारदोद्भवाम् । लौहः  
पित्तान्तको नाम वातरक्तं सुदारुणम् ॥  
दाहं च हस्तपदयोर्हन्ति सूर्यो यथा-  
तमः ॥ १११ ॥

पारा, गन्धक, अश्रकमस, गिनोय, हृत्,  
सस, सुगन्धयात्रा, ताम्रभस्म, सव समभाग ।  
लौहभस्म ८ भाग, इन्हें इकट्ठा करके लोहे के  
घोंटकर जल से दो दो रत्नी की गोलीयाँ बनावे ।  
अनुपाय—पटोलपत्र तथा धनियाँ का काय ।  
इसके प्रयोग से पाण्डु सम्पूर्ण पित्त रोग, उपद्रव,  
पारद सेवन से उत्पन्न विकार, कठिन वातरक्त तथा  
हाथ पैरों की जलन नष्ट होती है ॥ १०८-११२ ॥

द्वादशायसु ।

गस्तमान् दरदस्तीक्ष्णं शर्माख्यो वज्र-  
शक्तिः । शल्यं च गगनं फेनं रधिरं च  
त्रि नेत्रकम् ॥ ११२ ॥ पातालवृपतिश्चैव  
वह्निमूलं सरामठम् । त्रिकटु त्रिफला शिशु  
चाजमोदा यमानिका ॥ ११३ ॥ पिप्प  
लीमूलं भार्गी च लशुनं जीरकद्वयम् ।  
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्विपरु ॥  
११४ ॥ वातरक्तं महाकुष्ठं गलिताङ्गं  
त्रिदोषजम् । शोथं कण्डूं च रुधिरं सर्पमे-  
तद् व्योपहृति ॥ ११५ ॥ मन्दान् लाम-  
वातश्च श्लेष्माणं च जलोदरम् । प्राणा-  
न्तिकर्माजिह्वानां सर्पारोगं विनाशयेत् ११६  
सुवर्णमात्रिक, हिंगु ( गिगरफ ) लौह  
भस्म, पारा, वज्रभस्म, गन्धक ताम्रभस्म,  
अश्रकमस, समुद्रफेन, गेरु, सुवर्ण शीशा,  
चीत की जड़, हींग, त्रिकटु, त्रिफला, सर्पिजने

के बीज, अजमोद, अजमाइन, पिपरामूल,  
भारंगी, लहसुन सम भाग लेकर चूर्ण करे । प-  
श्चात् अदरक के रस की भावना देकर गोलीयाँ  
बनावे । इन गोलीयाँ के सेवन करने से वातरक्त,  
महाकुष्ठ, गलितकुष्ठ, त्रिफला शोथ, खुजली,  
रधिरविकार, अग्निमान्द्य, आमघात, बफरोग,  
जलोदर तथा कान, नाक, घ्राण, और जिह्वा के  
सब रोग दूर होते हैं ॥ ११२-११६ ॥

द्विदोद्भवाकपायेण सेव्यं शुद्धं शिला-  
जतु । पञ्चकर्मविशुद्धेन वातरक्तप्रशा-  
न्तये ॥ ११७ ॥

पाँचों कर्मों ( स्नेहन, स्वेदन, यमन, विरे-  
चन तथा बालन ) से शुद्ध होकर वातरक्त की  
शान्ति के लिए गिलोय के काड़े के साथ शुद्ध  
शिलाजीत का सेवन करे ॥ ११७ ॥

कुष्ठोक्तोऽप्यत्र टातव्यः श्रीमहाताल-  
केश्वरः । सर्वेश्वरश्च टातव्यस्तस्मिन्  
कुर्यादमुं विधिम् ॥ ११८ ॥ रक्ताधिक्ये  
रक्तमोक्षः पादे वारौ ललाटके । कर्त्तव्यो  
रक्तरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः ॥ ११९ ॥  
घलिनी बहुदोषस्य वयःस्थस्य शरीरिणः ।  
परं प्रमाणमिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमो-  
क्षणे ॥ १२० ॥

कुष्ठाधिकार में कहे हुए महातालकेश्वर और  
सर्वेश्वर रसों को भी वातरक्त की शान्ति के  
लिए देना चाहिए । रक्तविकार में विशेषकर कुष्ठ-  
रोग में रोगी के शरीर में रक्त अधिक होने पर  
पैर, बाहु और ललाट में रक्तमोक्षण करे ।  
बलवान्, बहुत दोषों युक्त और युवावस्थावाले  
रोगी के रक्तमोक्षण में ज्यादा से ज्यादा  
६४ तोले रक्त निकाले ॥ ११८-१२० ॥

तालेन निहतं ताम्र रसगन्धकसंयुतम् ।  
बहुधा पुटितं तालं वातरक्ते महौष-  
धम् ॥ १२१ ॥

हरिताल के संयोग से भस्म किये हुए ताम्र

में पारा और गंधक की कजली मिलाकर सेवन करने से अथवा बहुत पुष्ट दिया हुआ हरिताल सेवन करने से वातरक्त नष्ट होता है । यह वातरक्त के लिए महीपथ है ॥ १२१ ॥

वातरक्तान्तकरस ।

गन्धकं पारदं लोहं शिलां तालं धनं तथा । शिलाजतु पुरं शुद्धं सम भागं विचूर्णयेत् ॥ १२२ ॥ श्वेताऽपराजिता दार्वात्राकुची चित्रकन्तथा । पुनर्नवा देवकाष्ठं त्रिफला व्योपवेल्लके ॥ १२३ ॥ चूर्णमेपां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र कारयेत् । त्रिफला भृङ्गराजस्य रसेनैवे त्रिधा-त्रिधा ॥ १२४ ॥ भावयेद्भक्षयेत्पश्चाच्चणमात्रं दिने दिने । ततोऽनुपान निम्बस्य पत्रं पुष्पंत्वचं समम् ॥ १२५ ॥ शाणमात्रं धूते कुर्यात्सर्वं वातविकारनुत् । वातरक्तं महाधोरं गम्भीरं सर्वजं च यत् ॥ १२६ ॥ सर्वोपद्रव संयुक्तं साध्याऽसाध्यं निहन्त्यलम् ॥ १२७ ॥

शुद्ध पारा और शुद्धगन्धक लोह भस्म शुद्धमैनासिल और हरिताल अथवा भस्मशिला-जीत गुग्गुलु सय १-१ भाग लेकर कजली में मिलाकर सफेद फीसल दाह हल्दी वाकुची चित्रकमूल पुनर्नवा देवदाह, त्रिफला त्रिकुटपिप्लव ये सय १-१ भाग लेकर महीनदूर्य कर पूर्वोक्त धूत में मिलाकर त्रिफला और भांगरा के रस में ३-३ दिन घोटकर चना के समान गोलियाँ बना लेंगे । इनमें से १-१ गोली नीमके पत्ते चूल् और छाल मम भाग के ४ मासे चूण और घी के माथ सेन से सब प्रकार के वात(र) और वात व्याधियों का नाश करता है ॥ १२२-१२७ ॥

गुट्टन्यादि लौह ।

गुट्टचीमारसंयुक्तं त्रिकत्रयसमायुतम् ।

वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वरोगहरं ह्ययः ॥ १२८ ॥

गुट्टचीं कुट्टयित्वा पात्रस्थजले संमर्द्य अथः पतितसारो विशुष्को ग्राह्यः । त्रिकत्रयं त्रिफला त्रिकटु त्रिमदाः । सर्वसमं लौहम् ।

गिलोय का सस, त्रिफला ( हृद्य, बहेड, आंवला ), त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपल ), त्रिमदा ( अथविहंग, नागरमोधा, चीता ), इनके बराबर लोहभस्म ले । यह लोहभस्म सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है ॥ १२८ ॥

गिलोय का सस ( सत ) निकालने की रीति यह है कि गुर्च के छोटे-छोटे टुकड़े करके महीन कूटकर जल में भिगो दे । ५ या ६ घंटे के बाद मलकर चक्र से छान ले । छानने से गिलोय के छोद ( छूँछ ) चक्र में रह जाते हैं और ससविभिन्न जल अलग हो जाता है । कुछ देर में जब सस नीचे बैठ जाय तब धीरे-धीरे जल को गिरा दे और अथःस्थित स्वच्छ सस को घाम में सुखाकर प्रहण करे ।

शताह्लादि तैल ।

काथेन शतपुष्पायाः कुष्ठस्य मधुकस्य च । एकैकं साधयेत्तैलं वातरक्तरुजा-पहम् ॥ १२९ ॥

सोया, कूट, मुलहठी, इनमें से किसी एक के साथ में तैल सिद्धकर अथव्रत करने से वातरक्त नष्ट होता है ॥ १२९ ॥

पिण्ड तैल ।

समभृच्छिष्टमक्षिष्टं ससर्जरसगारिवम् । पिण्डतैलमिति ख्यातं वातरक्तरुजा-पहम् ॥ १३० ॥

त्रिजैत ४ सेर । जल १६ सेर, एक के लिए—मधुच्छिष्ट ( गोम ), मसीठ, राल तथा अनन्तमूल मितावर १ सेर । इसे विधिपूर्वक मिद कर गरम ही की कपड़े में छान ले । इस

पिएड तैल को मालिश करने से वातरङ्ग नष्ट होता है ॥ १३० ॥

महापिएड तैल ।

अमृतायाः पलशतं सोमराजीतुलां  
तथा । प्रसारण्याः पलशतं जलद्रोणे  
पृथक् पचेत् ॥ १३१ ॥ पादशेषं गृहीत्वा  
च तैलमस्थं पचेद्भिषक् । क्षीरं चतुर्गुणं  
दत्त्वा मन्दमन्देन वह्निना ॥ १३२ ॥  
पिएडशालजनिर्याससिन्धुभारफलत्रयम् ।  
विजया बृहती दन्ती कफोलरुपुनर्नभाः ॥  
॥ १३३ ॥ वह्निग्रन्थिककुष्ठानि निशे द्वे  
चन्दनद्वयम् । प्लित्पूतीकसिद्धार्थशकुची-  
चक्रमर्दकम् ॥ १३४ ॥ वासानिम्बपटो  
लीना वानरीवीजमेव च । अश्राहा सरलं  
सर्वं प्रतिरुर्षमितं पचेत् ॥ १३५ ॥ एत-  
त्तैलवरं हन्ति वातरङ्गमसंशयम् । कुष्ठ-  
मष्टादशविधं ग्रन्थिवातं सुदारुणम् ॥  
१३६ ॥ कायग्रहश्चामवातं भगन्दरगुदा-  
मयम् । ज्वरमष्टविधं हन्ति मर्दनात्वात्र  
संशयः ॥ १३७ ॥

कटु तैल १२८ तोले, काय के लिए—  
गिलोय २ सेर, जल २२ सेर ४८ तोले  
बचा हुआ काय ६ सेर ३२ तोले । काली  
जीरा २ सेर, पाक के लिए जल २२ सेर ४८  
तोले । बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३० तोले । दूध  
६ सेर ३२ तोले । कलक के लिए—शिलारस,  
राल, सम्भालू, त्रिफला भाग बची कटेरी,  
दन्ती की जड़ शीतलघोनी, साठी, चित्रक,  
पीपलामूल, कूट हल्दी, दारुहल्दी, सफेद  
चन्दन, लाल चन्दन, खट्टाशी, करज, सफेद  
सरसों, काली जीरा, पवाई के बीज, अदुसा,  
नीम की छाल, पटोलपत्र, कौंच के बीज  
असगन्ध, सरलकाष्ठ ( चीड़ की लकड़ी ), हर  
एक एक-एक तोला लेकर यथाविधि तैल  
पकाये । इस तैल की मालिश से वातरङ्ग, कुष्ठ

ग्रन्थिवात कायग्रह (सम्पूर्ण शरीर का जकड़ना),  
श्यामवात, भगन्दर, धवासीर तथा छाटो प्रकार  
के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १३१-१३७ ॥

दशपाकवला तैल ।

बलाकपायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतु-  
र्गुणम् । दशपाकं भवेदेतत् वातसृग्वात-  
पित्तजित् ॥ १३८ ॥ धन्यं पुंसवनञ्चैव  
नराणां शुक्रवर्द्धनम् । रेतोयोनिविकारघ्न-  
मेतद्वातविकारनुत् ॥ १३९ ॥

तिलतैल ४ सेर, खरैटी का क्वाथ १६  
सेर । दूध १६ सेर, कलक के लिए—खरैटी १  
सेर । इस तैल को इसी प्रकार दस बार पकाना  
चाहिए । इससे तैल में प्रकृतिसमसमयेत व्याधि  
के दोष नष्ट करनेवाली शक्ति बढ़ती है ।  
यह तैल वातरङ्ग, एव वातपित्तज रोगों को नष्ट  
करता है । यह तैल पुंसवन, वीर्यवर्द्धक तथा  
वीर्य एव योनि के विकारों को नष्ट करता  
है ॥ १३८-१३९ ॥

महारुद्रगुडुची तैल ।

अमृतायास्तुलां सम्यग् जलद्रोणे  
विपाचयेत् । पित्रुमर्दत्पत्रं क्षुण्णां भाज-  
नममितां तथा ॥ १४० ॥ जलद्रोणे  
विनिष्काथ्य ग्राह्यं पादावशेषितम् । प्रस्थं  
च कटुतैलस्य गोमूत्रं चापि तत् समम् ॥  
१४१ ॥ अमृता मागुजी कुम्भी कर-  
वीरं फलत्रिकम् । दाडिमं निम्बवीजं च  
रजन्यौ बृहतीद्वयम् ॥ १४२ ॥ नागबला  
त्रिकदुकं पत्रं मांसी पुनर्नवा । ग्रन्थिकं  
विस्सारवाहा शतपुष्पा च चन्दनम् ॥  
१४३ ॥ शारिरे द्वे सप्तपर्णौ गोमयस्य  
रसस्तथा । एषां कर्षमितैर्भागैः साधयेन्  
मृदुनाग्निना ॥ १४४ ॥ वातरङ्गं निह-  
न्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् । कुष्ठं चाष्टाद-  
शविं विसर्पं च ब्रह्मामयम् ॥ महारुद्र-



गुडूच्याख्यं तैलं भुवनदुर्लभम् ॥ १४५ ॥  
 दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं  
 तथा । कदूष्णगुर्वाभप्यन्दिलवणा-  
 म्लानि वर्जयेत् ॥ १४७ ॥

गिलोय २ सेर, काथ के लिए जल २५ सेर  
 ४८ तोले, अशिशु जल ६ सेर ३२ तोले ।  
 नीम की छाल ३ सेर १६ तोले, जज २५ सेर  
 ४८ तोले, अशिशु जल ६ सेर ३२ तोले ।  
 कदुआ तैल १२८ तोले और गोमूत्र १२८  
 तोले । कल्क के लिए गिलोय, बकुची, दन्ती,  
 करने की जड़, त्रिफला, अनारदाना, नीम के  
 बीज, हल्दी, दारुहल्दी, दोनों कटेरी, नागवला,  
 त्रिकटु, तेजपात, जटामांसी, गदहपुरीना, पिपरा-  
 मूल, ममीठ, असगन्ध, सोया, लालचन्दन,  
 दोनों सारिधा, सप्तपर्ण, (छितवन) गोबर  
 का रस ये सब एक-एक तोला ले । यथाविधि  
 घीमी आद्य से तैल सिद्ध करे । इस महारुद्र  
 गुडूची तैल की मालिश करने से सब उपद्रवों  
 से संयुक्त वातरक्त, प्रसारणों प्रकार के कुष्ठ,  
 विसर्प, ग्रन्थि इत्यादि रोग नष्ट होते हैं । यह  
 महाभद्रगुडूची तैल संसार में दुर्लभ है । इस तैल  
 के मर्दन करनेवाले को दिन में सोना, अग्नि  
 का तापना, व्यायाम करना, मैथुन करना, कदु,  
 वृष्ण, गूर और अविष्यन्दि पदार्थों का सेवन  
 करना तथा अम्ल और लज्ज का सेवन करना  
 वर्जित है ॥ १४०-१४६ ॥

वातरक्त में पथ्य ।

उत्तानेऽभ्यञ्जनं सेकः सोपनाहः प्रले-  
 पनम् । गम्भीरे स्नेहपानञ्च स्थापनञ्च  
 विरेचनम् ॥ १४७ ॥ द्वयोरस्तस्रुतिः  
 सूचीनलोकामृद्गचलायुभिः । शतधात-  
 पृताभ्यङ्गो मेपीदृग्धासेचनम् ॥ १४८ ॥  
 यस्पष्टिकनीवारकलमारुग्जालायः । गोघृ-  
 माश्चणका मुद्गास्तुर्मौऽपि मकुष्ठकाः ॥  
 १४९ ॥ शजानां महिषीणाञ्च गजामपि  
 पयांसि च । लातित्तिरिमर्पद्भिः तास्र-

चूडादिविष्किराः ॥ १५० ॥ प्रतुदाः शुक्र-  
 दात्सूहकपोतचटकादयः । उपोदिका  
 काकमाची वेत्राग्रं सुनिपणकम् ॥ १५१ ॥  
 वास्तुकं कारवेल्लञ्च तण्डुलीयः प्रसारणी ।  
 पत्तूरो वृद्धकूप्माण्डं सर्पिः शम्पाकपल्ल-  
 वम् ॥ १५२ ॥ पटोलं स्युतैलञ्च मृद्धीका  
 श्वेतशर्करा । नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरी  
 सितचन्दनम् ॥ १५३ ॥ शिशपागुरुदेवा-  
 ढसरलस्नेहमर्दनम् । तिकञ्च पथ्यमुद्दिप्तं  
 वातरक्तगदे वृणाम् ॥ १५४ ॥

उत्तान वातरक्त में अभ्यङ्ग, परिपेचन, पुष्टिस  
 और प्रलेप का प्रयोग करना चाहिए । गम्भीर  
 वातरक्त में स्नेहपान, आस्थापन बस्ति और  
 विरेचन करना चाहिए । उत्तान तथा गम्भीर  
 दोनों प्रकार के वातरक्त में मुई ( इन्केशन ),  
 जौक, सिंगी तथा तुम्बी द्वारा रक्त निकालना  
 चाहिए । सौ बार धुले घृत की मालिश, भेद  
 के दूध से परिपेचन, जी, सांठी के चावल,  
 नीवार ( धान्यविशेष ), कमल ( धान्यविशेष ),  
 तात शालि चावल, गेहूँ, चने, मूँग, धरहर,  
 मोठ ( मोयी ) ये धान्य; बकरी, भैंस एवं गी  
 का दूध; साब, तीतर, मोर, मुर्गा आदि विष्किर  
 तथा तीता, दासूह ( पशुविशेष ), कपूर,  
 धिङ्गिआ आदि प्रतुद पशियों के मांस, पौई का  
 शाक, मकोप, येत की कोंपल, चौपतिया,  
 बपुआ, करेला, चीताई, प्रसारणी, शालिश,  
 पुराना पेठा, घी, कमलताम के पत्ते, परबन,  
 अषरी का तैल, विशामिश, सकेद पाई,  
 मषरान, गिलोय, वस्तूरी, देत चन्दन, शीशम  
 प्रगर, देवदार और चीड़, इनके तैल को  
 मालिश तथा विद्र पदार्थों के वातरक्त में  
 पथ्य है ॥ १४०-१५४ ॥

अपथ्य ।

मापाः कुलत्या निष्पाराः कलायाः  
 सारसेवनम् । अम्बुजानूपमांमानि विरु-  
 द्धानि दधीनि च ॥ १५५ ॥ इतरी मुनक

मद्यं पित्तयाकोऽम्लानि काञ्जिकम् ।  
दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं  
तथा ॥ १५६ ॥ कद्रूष्णगुर्वभिष्यन्दि-  
लवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ १५७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वातरक्षा-  
धिकारः समाप्तः ।

वातरक्त के रोगी को उड़द, कुलथी, सेम,  
मटर, चारद्वर्षों का सेवन, जलज मत्स्य आदि  
तथा अनूप देश के पशु पक्षियों के मांस,  
विरद्ध भोजन, दही ईख, मूली, शराब, तिल-  
कल्क, खटाई कांजी, दिन में सोना आग  
सेकना, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, गुरु,  
अभिष्यन्दी ( जैसे दही ), अत्यन्त नमक तथा  
खटाई छोड़ देना चाहिए ॥ १५६-१५७ ॥

इति सरयूपसादत्रिपाठिविरचित्वायां भैषज्यरत्ना-  
वाल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां  
. वातरक्षाधिकारः समाप्तः ।

### अथ कुष्ठाधिकारः ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्त-  
रेषु कुष्ठेषु । पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरे-  
चनं श्रेष्ठम् ॥ १ ॥

वातज कुष्ठरोग में घी पिलाना, कफज में  
घमन कराना और पित्तज कुष्ठ रोग में रक्त-  
मोक्षण ( फस्त गुलवाना ) तथा विरेचन परना-  
श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

कुष्ठरोग में कुपथ्य ।

पुराणधान्यानि च जाङ्गलानि मां-  
सानि मुद्गारच पटोलयुक्ताः । यवादय-  
श्चात्र हिताः पुराणा घृतानि शाकानि च  
तिक्त्रकानि ॥ २ ॥

पुराने धान्य, जांगल जीवों का मांस, मूँग,

परवल, यय आदि पुराने अन्न घी और तिक्त्र  
शाक कुष्ठ रोगवाले को हितकारी हैं ॥ २ ॥

चक्रमर्दकधीजन्तु जम्बीररसमर्दितम् ।  
लेपितं भक्षितं हन्ति दद्रु कुष्ठमशेषतः ॥

पवाँठ के बीजों को जम्बीर के रस से घोट-  
कर लेप करने से तथा खाने से दाद और कुष्ठ  
नष्ट होता है ॥ ३ ॥

तन्त्रान्तरं मे ।

पुराणाः शालिगोधूममुद्गाद्याः कुष्ठिनो  
हिताः । तिक्त्रशाकं जाङ्गलं च पानादौ  
खदिरोदकम् ॥ ४ ॥

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि पुराने चावल, गेहूँ  
और मूँग आदि कुष्ठरोगी को हितकर हैं । तिक्त्र  
शाक, जंगली जीवों का मांस और पीने को  
तैर की लकड़ी को जलाकर बुझाया हुआ पानी  
कुष्ठ रोगवाले को हितकारी होता है ॥ ४ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्गतास्र-  
दोपाणाम् । संशोधिताशयानां सद्यः  
सिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥ ५ ॥

विरेचन आदि तथा रक्तमोक्षण द्वारा शुद्ध  
किये हुए कुष्ठरोगी के शरीर में जो लेप किया  
जाता है वह तुरत फल देनेवाला होता है ॥ ५ ॥

दद्रुचिकित्सा

दूर्वाभयासन्धवचक्रमर्दकुठेरकः का-  
ञ्जितकपिष्टाः । एभिः प्रलेपरपि वद्ध-  
मूलां कण्डू च दद्रुं च निवारयन्ति ॥ ६ ॥

दूब, हड़, सेंधागमक, पवाँठ के बीज और  
गुलसी की पत्ती, इनको कांजी तथा तक्र में  
पीसकर लेप करने से बहुत दिन से उपपन्न हुई  
जुनली तथा दद्रु ( दाद ) का नाश होता  
है ॥ ६ ॥

तुल्यो रसः शालतरोस्तुपेगसचक्रमर्दो  
ऽप्यभयाविमिश्रः । पानीयभक्त्रेण तद्रम्ल-  
पिष्टो लेपः कृत्तौ दद्रु गजेन्द्रसिंहः ॥ ७ ॥

राल, तुप, पवाँडे के बीज और हृद् इनको मम भाग लेकर काँजी के साथ पीसकर किया हुआ लेप दाद को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे कि सिद्ध हाथी को विनाश कर देता है ॥ ७ ॥

विडङ्गादिलेप ।

विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्पपैः ।  
धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविना-  
शनः ॥ ८ ॥

बायविडङ्ग, पवाँडे के बीज, कूट, हृषदी, सेंधानमक, और सरसों इनको काँजी के साथ पीसकर लेप करने से दाद तथा कुष्ठ का नाश होता है ॥ ८ ॥

एडगजादिलेप ।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्पपैःकृमिघ्नैः ।  
कृमिसिन्धुदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो  
लेपः ॥ ९ ॥

पवाँडे के बीज, कूट, सेंधानमक, श्वेत सरसों, बायविडङ्ग, इनको काँजी के साथ पीसकर लेप करने से कृमि, सिन्धु (फाइ), दद्रु और मण्डल-कुष्ठ का नाश होता है ॥ ९ ॥

अन्य तन्त्रान्तर में

कुष्ठसैन्धवसिद्धार्थकृमिघ्नैःडगजैःसर्पैः ।  
दद्रुमण्डलकुष्ठान्लेपनं काञ्जिकान्वितम् ॥  
१० ॥ इति रविगुप्तः ।

कूट, सेंधानमक, श्वेत सरसों, बायविडङ्ग, पवाँडे के बीज इनको मम भाग लेकर काँजी में पीसकर लेप करने से दाद और मण्डलकुष्ठ नष्ट होता है ॥ १० ॥ यह रविगुप्त का मत है ।

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरंगुलस्य तक्रोण  
पर्णान्यथ काकमाच्याः । तैलाक्रगात्रस्य  
नरम्य कुष्ठान्युद्वर्चयेद्वरहन्च्छर्दश्च ११

शरीर में तेज आकर अमलनाश, कठोर और मकोप के पत्तों को मट्टे में पीसकर उबटन खाने से कुष्ठरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

विडङ्गसैन्धवशिवाशिशिरेखासर्पपक-  
रञ्जरजनीभिश्च । गोजलपिष्टो लेपः  
कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥ १२ ॥

बायविडङ्ग, सेंधानमक, हृद् बाकुची, बीज, सरसों, करंज और हल्दी इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से कुष्ठ ऐसे नष्ट होता है जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट होता है ॥ १२ ॥

किट्टिमकुष्ठचिकित्सा ।

कासमर्दकमूलं च काञ्जिकेन प्रपेषि-  
तम् । दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेप-  
नात् ॥ १३ ॥

कसौदी की जड़ को काँजी में पीसकर लेप करने से दाद किट्टिम तथा कुष्ठरोग दूर होते हैं ॥ १३ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेप-  
येत् । दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि हन्ति सिन्धमान-  
मेव च ॥ १४ ॥

अमलतास के पत्तों को काँजी में पीसकर लेप करने से दाद, किट्टिम, कुष्ठ तथा सिन्धु इन रोगों का नाश होता है ॥ १४ ॥

चक्राह्वयं स्तुहीतीरभाषितं मूत्रसंयुतम् ।  
रवितप्तं हि किञ्चित्चु लेपनं किट्टिमा-  
पहम् ॥ १५ ॥

पवाँडे के बीजों के चूर्ण में मूत्र के दूध की तथा गोमूत्र की भावना देकर किञ्चित् घूप में गर्म कर छेप करने से किट्टिम रोग शांत होता है ॥ १५ ॥

कुष्ठरौमित्रं तैलं कुष्ठान् चर्मदोषनुत् ।  
तन्मज्जा च मधुर्धनं लिप्तं गन्धारमना  
तथा ॥ कुष्ठं सर्पिधञ्च न नाशं याति न  
संगयः ॥ १६ ॥

शौचमूत्रा के तैल की माषिका करने से कुष्ठ तथा एषा के शोष नष्ट होते हैं अथवा चीज

मूत्रा की मज्जा, मोम, गन्धकचूर्ण इन्हें एकत्र पीसकर लेप देने से सब कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥१६॥

कुष्ठानां विनिष्टौ च गोमूत्रं परमौषधम् । अभयासहितं तद्धि ध्रुवं सिद्धि-मदं मतम् ॥ १७ ॥

कुष्ठ के निवारण के लिये गोमूत्र अत्यन्त उत्तम औषध है। यदि गोमूत्र को हड के साथ सेवन करे तो निश्चय लाभ होता है ॥१७॥

चूर्णो दकेन कुष्ठन्तैल कुष्ठहरं परम् १८

कुष्ठन्तैल ( गर्जनतैल ) को ८ या १० घूँद की मात्रा में घूने के जल के साथ रोगी को सेवन करावे तो शीघ्र ही कुष्ठ शच्छा हो जाता है ॥ १८ ॥

लघुमञ्जिष्ठादि काथ ।

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्तवचादारुनिशाभया । निम्बश्चैष कृतः काथः सर्वकुष्ठविनाशयेत् ॥ १९ ॥ वातरक्तं तथा कण्डूपामानं रक्तमण्डलम् । दद्रुं विसर्पं त्रिस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥ २० ॥

म जीठ हड, बहेडा, आँवला, कुटकी, वच, दारुहरी, हड की छाल मिलाकर २ ताले काथ के लिये जल ३२ तोले, बाकी ८ तोले । यह काथ सेवन करने से सम्पूर्ण कुष्ठ, वातरक्त, कण्डू, पामा, रक्तमण्डल, दाद, विसर्प तथा त्रिस्फोटक को नष्ट करता है ॥ १९ २०॥

वृहन्मञ्जिष्ठादि काथ ।

मञ्जिष्ठा कुटजाभृता धनवचा शुण्ठी हरिद्राद्वयं क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकुटुजा भार्गीत्रिडङ्गाभिलकम् । मूर्धादारुकलिङ्गभृङ्गमगधात्रायन्तिपाठापरी गायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बाशनारग्नधाः ॥२१॥ रयाभावस्त्रुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोटकं वासापर्वशारिवाप्रतिविपानन्ता-

विशालाजलम् । मञ्जिष्ठाप्रथमं कपाय-मिति यः संसेवते तस्य तु त्र्यदोषस्त्वचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानिचाष्टादश ॥ २२ ॥ नाशं गच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति रक्तामयाः वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाः प्रशाम्यन्ति च ॥ २३ ॥

मजीठ, कुठा की छाल, गिलोय, मोथा, वच, सोंठ, हल्दी, दारुहरी, छोटी कटेरी, नीम की छाल, पटोलपत्र, कुटकी, भारगी, बाय-विडङ्ग, इमली की छाल, मूर्धामूल, देवदारु, इन्द्रजी, भाँगरा, पीपल, त्रायमाण, पाद, शतावर, खैरकाष्ठ ( खैर की लकड़ी ), त्रिफला, चिरायता, महानिम्ब ( बकायन ) की छाल, पीत-शाल, अमलतास, निसोत, बावचीबीज ( काली-जीरी ), लाल चन्दन, बरना की छाल, दन्तीमूल, लहोडा की छाल, अदुसा, पिचपापडा, अग्न्यमूल, अतीस, श्यामालता, इन्द्रायण की जड़ तथा गन्धबाला मिलाकर २ तोले । पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी ८ तोले । इसके काथ के सेवन करने से त्वचादोष, १८ कुष्ठ, वातरक्त, सम्पूर्ण रुधिरविकार, वीसर्प, त्वक्शून्यता ( त्वचा में स्पर्शानुभव न होना ) तथा नेत्र-विकार नष्ट होते हैं ॥ २१-२३ ॥

मञ्जिष्ठादि काथ ।

मञ्जिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिबु-मर्दकः । हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतापरी ॥ २४ ॥ बला नागदला यष्टि-मधुकं चुरकोऽपि च । पटोलस्य लतोशीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥ २५ ॥ मञ्जिष्ठा-दिरयं काथः कुष्ठानां नाशनः परः । वात-रक्तस्य संदर्चा कण्डूमण्डलनाशनः ॥२६॥

मजीठ, बावचीबीज ( कालीजीरी ), पवाई के बीज, नीम की छाल, हड, हल्दी, भाँगरा, अदुसा की छाल, शतावर, खैर, गगेरन, मुलहनी, ताल-मलाने के बीज, पटोल की लता, राम, गिलोय, लाल चन्दन मिलाकर २ तोले, काथ के लिये

जल ३२ तोले, शेष ८ तोले । यह काथ पीने से कुष्ठ, वातरक्त तथा दाद आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ २३-२६ ॥

अमृतादि काथ ।

अमृतैरण्डवासाश्च सोमराजी हरी-  
तकी । काथ एपां हरेत्कुष्ठं वातरक्तञ्च  
दारुणम् ॥ २७ ॥

गिलोय, अण्डी की जड़, अदूसा की छाल, वावची ( कालीजीरी ) और हड़ ; इनका काथ कुष्ठ एवं वातरक्त को नष्ट करता है ॥ २७ ॥

पञ्चकपाय ।

वचावासापटोलानां निम्बस्य फलिनी  
त्वचः । कपायो मधुना पीतो वान्ति-  
कुन्मदनान्वितः ॥ २८ ॥

घच, अदूसा की छाल, पटोल की जड़, नीम की छाल और भिर्गु इनके काथ में मैना-फल का चूर्ण तथा शहद डालकर कुष्ठ में घमनार्थ पिलाना चाहिए ॥ २८ ॥

विभीतकादि कथाथ ।

विभीतकत्पङ्कमलयूजानां काथेन  
पीतं गुडसंयुतेन । अवल्गुजं बीजमपाक-  
रोति श्वत्राणि कृच्छ्राण्यपि पुण्डरी-  
कम् ॥ २९ ॥

बहेड़े की छाल तथा काकोदुम्बर की जड़ के काथ में गुड़ को मिलाकर और वाकुची-बीज ( कालीजीरी ) डालकर पीने से कष्ट-साध्य दिशत्र तथा पुण्डरीक कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २९ ॥

नवकपाय ।

त्रिफलापटोलरजनीमञ्जिष्ठारोहिणी-  
वचानिम्बैः । एकपायोऽभ्यसतो निहन्ति  
कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ ३० ॥

हड़, बहेड़ा, शोबला, पटोलपत्र, हल्दी, मंजीठ, कुटकी, घच और नीम की छाल इनका काथ प्रतिदिन पीने से कफपित्तज कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ३० ॥

सप्तसम योग ।

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योपभस्त्राश्च  
शर्कराः । वृष्यः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा  
कामचारिणः ॥ ३१ ॥

काले तिल, घृत, त्रिफला ( मिलित ), शहद, त्रिकुटा ( मिलित ), शुद्ध भिलावर्ष, खोंड इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर रोगी को सेवन करावे । यह वृष्य, बुद्धिवर्धक तथा कुष्ठरोग को नष्ट करता है ॥ ३१ ॥

सिध्मकुष्ठचिकित्सा ।

शिखरीसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रले-  
पितं सिध्मम् । च्छारेण वा कदल्या रजनी-  
मिश्रेण नाशयति ॥ ३२ ॥

लट्जीरा की पत्तियों के रस में मूली के बीजों को पीसकर लेप करने से तथा केला के चार में हल्दी मिलाकर काँजी में पीसकर लेप करने से सिध्मरोग शान्त होता है ॥ ३२ ॥

सत्तारं गन्धकं लेपात् कटुतैलेन सिध्म-  
जित् । कासमर्दकबीजानि मूलकानां  
तथैव च ॥ गन्धारश्चूर्णमिश्राणि सि-  
ध्मानां परमौषधम् ॥ ३३ ॥

जवाखार और गन्धक को कढ़वे तेल में मिलाकर लेप करने से तथा कसौदी और मूली के बीज, असगन्ध का चूर्ण मिलाकर काँजी में पीसकर लेप करने से सिध्म ( सेडुँवा ) रोग नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

उपदेशात् काञ्जिकपिष्टैर्लेपः ।

गन्धपापाणचूर्णेन यवच्छारेण लेपितम् ।  
सिध्मनाशं व्रजत्याशु कटुतैलयुतेन  
च ॥ ३४ ॥

द्वयं समं कटुतैलेन लेपः ।

सम भाग गन्धक का चूर्ण और जवाखार को कटुतैल में मिलाकर लेप करने से सिध्म रोग ( काँई ) गुरंत नाश होता है ॥ ३४ ॥

कुष्ठादिलेप ।

कुष्ठं मूलकवीजं मियद्भवः सर्पपास्तथा  
रजनी । एतत्केशरपट्टं निहन्ति बहुवार्षिकं  
सिध्म ॥ ३५ ॥

कूट, मूली के बीज, प्रियंगु ( मालकांगनी ),  
सरसों, हल्दी और नागकेसर इनको पीसकर  
लेप करने से बहुत दिन का उत्पन्न हुआ सिध्म  
( सेहुँवा ) रोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

कुरण्टकादिलेप ।

नीलकुरण्टकपत्रैरालिष्य गात्रमति-  
बहुशः । लिम्पेन्मूलकवीजैः पिष्टैस्तक्रेण  
सिध्मनाशाय ॥ ३६ ॥

सिध्म ( सेहुँवा ) को नाश करने के लिए  
नीलकुरण्ट ( नीली कटसरैया ) के पत्तों के  
कणक को शरीर में खूब मलकर तक्र में पिसे  
हुए मूली के बीजों का लेप करना चाहिए ॥ ३६ ॥

विचर्चिकाचिकित्सा ।

एदगजतिलसर्पपकुष्ठं मागधिका  
लवणत्रयमस्तु । पृतीकृतं दिनत्रयमेत-  
द्दन्ति विचर्चिकदद्रुकुष्टम् ॥ ३७ ॥

पवाई के बीज, तिल, सरसों, कूट, पीपरि,  
तीनों नमक ( सेंधा, काला और साँभर नमक )  
इनको पीस दही के तोड़ में मिलाकर तीन दिन  
पर्यन्त रखकर सड़ा ले, परचात् उसको लेप  
करे तो विचर्चिका, दद्रु तथा कुष्ठ रोग दूर होते  
हैं ॥ ३७ ॥

पामामें प्रलेप ।

सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीत-  
संयुतं बहुशः । लेपान्निहन्ति पामां तैलं  
करवीरसिद्धं वा ॥ ३८ ॥

सिन्दूर और मिर्च के चूर्ण को भैंस के  
मक्खन में मिलाकर लेप करने से तथा कनेर  
के मूल की छाल के कणक और बवाय द्वारा  
सिद्ध किये हुए तैल का भर्दन करने से पामा  
नष्ट होती है ॥ ३८ ॥

पारदादि प्रलेप ।

पारदं शङ्खगन्धं च शिला चौचर-  
वारुणी । प्रपुन्नाडरच सर्पात्ती मेघनादा-  
ग्निलाङ्गली ॥ ३९ ॥ भल्लातं गृह-  
धूमं च मुनिगुञ्जास्नुहीपयः । अरिष्टं च  
गुडत्तौद्रं वागुजीवीजतुल्यकम् ॥ ४० ॥  
गोमूत्रैरारनालैर्वा पिष्ट्वा लेपं च कारयेत् ।  
दद्रुमएडलकएडू च विचर्ची च विनाश-  
येत् ॥ ४१ ॥

पारा, शङ्खभस्म, गन्धक, मैनशिल, इन्द्रा-  
पण की जड़, पवाई के बीज, सर्पात्ती  
( गन्धनाकुली ), चौलाई, चीता की जड़,  
कलिहारी, भिलावा, गृहधूम, मुनि ( अग-  
स्तिया ), पुँपुची, यूहर का दूध, नीम की  
पत्ती गुड, शङ्ख और बाकुची के बीज इन  
सबको समान भाग लेकर गोमूत्र छयवा कौड़ी  
में पीसकर लेप करने से दाद, मण्डलकुष्ठ,  
खुजली, विचर्चिका इत्यादि रोग दूर होते  
हैं ॥ ३९-४१ ॥

कुष्ठहर लेप ।

मनः शिलाले मरिचं च तैलमार्कं पयः  
कुष्ठहरः प्रलेपः ॥ ४२ ॥

मैनशिल, हरताल, कालीमिर्च, कहुआ  
तेल और आक का दूध इनका लेप कुष्ठ को  
हरनेवाला है ॥ ४२ ॥

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूममनल-  
मरिचदूर्वात्तीरमर्कस्नुहीभ्याम् । दहति  
पतितमात्रं कुष्ठजातीरशेषाः कुलिशमिव  
सरोपाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ ४३ ॥

अत्र अनलं भल्लातकः ।

मीठातेलिया, बरना की छाल, हशरी,  
चित्रक, गृहधूम, भिलावा, मिर्च, दूध और  
यूहर तथा आक ( मदार ) का दूध इनका  
लेप करने से सब प्रकार के कुष्ठों का इस प्रकार  
नाश होता है जिन प्रकार कोष्ठित इन्द्र के हाथ

से छूटे हुए घम्र से शयुओं का नाश होता है ॥ ४३ ॥

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूलं गुञ्जाफल-  
ज्यूपणशङ्खचूर्णम् । तुत्थं सकुण्डलवणानि  
पञ्च चारद्वयं लाङ्गलिकां च पक्त्वा ॥ ४४ ॥  
स्नुहार्कदुग्धे घनमायसस्थं शलाकया तद्वि-  
दधीत लेपम् ॥ कुष्ठे किलासे तिलकालके  
च अशेषदुर्नामसु चर्मकीले ॥ ४५ ॥

एषां समभागचूर्णं स्नुहार्कयोः क्षीर-  
दत्त्वा किञ्चित् पाकं कुर्यात् । अथवा क्षीर-  
द्वयं चतुर्गुणं चूर्णं पादिकं लेपयोग्यं पाकं  
कुर्यात् । शलाकया कुष्ठस्थाने दद्यात् ।

भिलावाँ, चीता की जड़, धूर की जड़ और मदार की जड़, घुँघुची, सोंठ, मिच, पीपरी, शंखचूर्ण, नीलाधोया, कूट, पाँचों लवण, दोनों चार ( जवारार, सजीवार ) तथा कलिहारी इनके चूर्ण की सम भाग लेकर धूर तथा आक के दूध में भिगोकर किञ्चित् पकावे । अथवा दोनों दूध चूर्ण से चौगुने लेकर लेप के योग्य पकाकर परचात् शलाका ( सलाई ) से कुष्ठ में लेप करे । इसके लेप करने से कुष्ठ, किलास, तिलकालक, अशं तथा चर्मकील रोग नष्ट होते हैं ॥ ४४-४५ ॥

स्नुक्काण्डशुपिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससै-  
न्धवम् । अन्तधूमं तैलयुक्तं लेपाद्दन्ति  
विचर्चिकाम् ॥ ४६ ॥

स्नुहीनालके सैन्धवं गृहधूमं च सम-  
भागं प्रपूयं स्थाल्यभ्यन्तरे कृत्वा शरावेण  
पिधाय दग्ध्वापिष्ट्वा कटुतैलैः लेपः ।

धूर के टटे में छेदकर उसमें गृहधूम और संधानमक भरकर हाँडी में अन्तधूम भस्मकर तेल में मिलाकर लेप करने से विचर्चिका रोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

धूर की नली में गृहधूम और संधानमक समान भाग लेकर हाँडी में रक्खे और सरवे

से हाँडी का मुँह धन्द करके अन्तधूम भस्म करे फिर उस भस्म को पीसकर तेल में मिलाकर लेप करे ।

स्नुक्काण्डे सर्पपात कल्कः करीपानल-  
पाचितः । लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेगं  
इव त्रपाम् ॥ ४७ ॥

धूर की नली में सरसों का कक भरकर अरने कंटों की ध्रगिन में पकावे । इसका लेप, विचर्चिका रोग को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे प्रेम का वेग लज्जा को नष्ट कर देता है ॥ ४७ ॥

विपादिका में लेप ।

नारिकेलोदरे न्यस्तस्तण्डुलः पूतितां  
गतः । लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकाला-  
नुबन्धिनीम् ॥ ४८ ॥

सजल नारियल में चावलों को भरकर रख दे । जब चावलों में दुर्गंध आने लगे तब उन्हें पीसकर लेप करने से चिरकाल से उत्पन्न हुआ विचर्चिका रोग नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

तिलकुसुमलवणगोजलकटुतैलं लौह-  
भाजने कृत्वा । शोपितमर्कमयूखैः पाद-  
स्फुटनं निहन्ति लेपेन ॥ ४९ ॥

तिल के फूल, संधानमक, गोमूत्र और कटुआ तेल इनको लोहे के पात्र में एकत्रितकर मर्दन करके धूप में सुखावे, फिर इसका लेप करने से पैरों का फटना ( बिचाई ) शान्त होता है ॥ ४९ ॥

उन्मत्त तैल ।

उन्मत्तकस्य बीजेन माणकक्षारवा-  
रिणा । कटुतैलं विपक्वयं शोघ्रं हन्ति  
विपादिकाम् ॥ ५० ॥

धूप के बीज, मानकन्द का खार और जल डालकर यथाविधि कटुआ तेल पकावे । इस तेल के मर्दन करने से विपादिका रोग नष्ट होती है ॥ ५० ॥

कच्छूचिकित्सा ।

अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशा-  
युगम् । मानिमन्थश्च तुल्यांशं मस्तुका-  
ञ्जिकपेपितम् ॥ कण्डू कच्छू जयत्युग्रां  
सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ५१ ॥

वाकुचीबीज, कसौंदी, पवाई के बीज, हल्दी,  
दारुहल्दी और सेंधानमक ये समान भाग लेकर  
दही के तोड़ और कांजी में पीसकर लेप करने  
से कठिन से कठिन खुजली और कच्छू रोग नष्ट  
होते हैं । यह सिद्ध प्रयोग है ॥ ५१ ॥

कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन  
संपिष्टम् । दिनत्रयेण नियतं क्षपयति कच्छूं  
विलेपनतः ॥ ५२ ॥

अरुंसे के कोमल पत्ते तथा हल्दी को गोमूत्र  
में पीसकर लेप करने से तीन दिन में कच्छू  
रोग शान्त होता है ॥ ५२ ॥

शिवत्रचिकित्सा ४

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका  
कृता । वस्तमूत्रेण सम्पिष्टा लेपाच्छिन्न-  
विनाशिनी ॥ ५३ ॥

मकोय, पवाई के बीज, कूट और पीपर  
इनको बकरे के मूत्र में पीसकर गोलीबनाकर  
पकरे के ही मूत्र में घिसकर लेप करने से  
शिवत्रकुष्ठ शान्त होता है ॥ ५३ ॥

पूतीकार्कस्तुड्ग्नेन्द्रुमाणां मूत्रैः  
पिष्टाः पक्ष्वाः सौमनाश्च । लेपाच्छिन्नं  
हन्ति दद्रुव्रणांश्च कुष्ठान्यर्शास्यस्रनाडी-  
व्रणांश्च ॥ ५४ ॥

करंज, मदार, थुहर, अमलतास, इनके फूल  
और पत्ते गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सफेद  
कोढ़, दद्रु, क्षण, रक्षाशं तथा नाड़ीमण का  
नाश होता है ॥ ५४ ॥

गजचित्रव्याघ्रचर्ममसीतैलविलेपनात् ।  
शिवत्रं नाशं व्रजेत् किंवापूति कीटविले-  
पनात् ॥ ५५ ॥

गजचर्म, चित्रचर्म, व्याघ्रचर्मेषां भस्म  
ऋतुतैलेन लेपः ।

हाथी, चीता और बाघ के चर्म की भस्म  
बनाकर उसमें कड़वा तेल मिलाकर लेप करने  
से अथवा पूतिकीट ( कीटविशेष ) के मलने से  
शिवत्रकुष्ठ नाश होता है ॥ ५५ ॥

कुडवोऽवल्गुजबीजात् हरितालचतु-  
र्धभागसंमिश्रः । मूत्रेण गवां पिष्टः सव-  
र्गाकरणः परं शिवत्रे ॥ ५६ ॥

आयुर्वेदसारेऽपि ।

कुडवा वागुजीबीजात् हरितालपला-  
न्वितः । गवां मूत्रेण संपिष्य लेपनात्  
शिवत्रनाशनम् ॥ ५७ ॥

वाकुची के बीज १६ तोले, हरताल ४ तोले को  
गौ के मूत्र में पीसकर लेप करने से शिवत्र नाश  
होता है और सबर्णता प्राप्त होती है ॥ ५६-५७ ॥

धात्रीखदिरयोः काथं पीत्वा च मधु-  
संयुतम् । शङ्खकुन्देन्दुधवलं जयेच्छिन्नं न  
संशयः ॥ ५८ ॥

आँवला और खैर ( काथ ) इनका काथ शहद  
मिलाकर पीने से शंख, बुन्द और इन्दु के समान  
शिवत्रकुष्ठ दूर होता है इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥

धात्रीखदिरयोः काथमवल्गुजरजोऽ-  
न्वितम् । पीत्वा शङ्खेन्दुकुन्दाभं हन्ति  
शिवत्रं न संशयः ॥ ५९ ॥

अथवा आँवला और काथे के कवाथ में  
वाकुची का दूध मिलाकर पीने से शंख और  
बुन्दना के समान शिवत्रकुष्ठ का नाश होता  
है ॥ ५९ ॥

क्षारे मुद्ग्ये गजलिण्डजे च गजस्य  
मूत्रेण बहुस्रते च द्रोणप्रमाणं दश भाग-  
युक्तं दस्वापचेद् बीजमवल्गुजस्य ॥ ६० ॥  
एतद्यदा चिकणतामुपति तदा मुसिद्धां



गुटिकां प्रकुर्यात् । शिवत्रं प्रलिम्पेदथ तेन घृष्टं तदा व्रजत्याशु सवर्णभावम् ॥ ६१ ॥

हस्तिपुरीषभस्मनः पट्पञ्चाशत्पलाधिकपलगतद्वयं ग्राह्यं चारोदकात् दशमांशेन किञ्चिन्न्यूनत्रयोदशमापाधिकपञ्चाशत्पलानि ।

हाथी की तीद की भस्म को हाथी के मूत्र में डाल कर कपड़े से छानकर उसमें दश भाग बाकुची के बीज मिलाकर पकावे । जब चिकना हो जावे तो गोलियाँ बना ले । इन गोलियों को शिवत्रकुष्ठ पर घिसकर लगाने से शिवत्रकुष्ठ रोग शान्त होकर शरीर का वर्ण अच्छा हो जाता है ॥ ६०-६१ ॥

हाथी की लीद की भस्म २५६ पल ( १२ सेर ६४ तोले ) लेकर चौगुने हाथी के मूत्र में मिलाकर धीरे-धीरे मूत्र को निकाल ले और उसे ७ बार बल से छान ल । इस चारोदक का दशवाँ हिस्सा बाकुची के बीज उसमें डालकर पकावे ।

श्वेतजयन्तीमूल पीतं पिष्टं च पयसैव । शिवत्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा ॥ ६२ ॥

श्वेत जयन्ती ( अरनी ) की जड़ दूध में पीसकर दूध ही के साथ पीने से शिवत्रकुष्ठ नाश होता है । परन्तु इस योग को प्रति रविवार के दिन करना चाहिए । यह वैद्यनाथजी की आज्ञा है ॥ ६२ ॥

गुञ्जाफलानां चूर्णं तु लेपितं श्वेतकुष्ठमुत् । शिलापामार्गभस्मापि लिप्तं शिवत्रं विनाशयेत् ॥ ६३ ॥

घुंघुची का चूर्ण अथवा मैनशिल और यषामार्ग की भस्म शिवत्रकुष्ठ पर लेप करने से रोग शान्त होता है ॥ ६३ ॥

शिवत्र पञ्चानन तैल ।

परएडतुलसीबीजं वागुजीचक्रमर्द-  
त्म् । तिक्रकोपातकीबीजं कृष्णाङ्गोष्ठस्य

बीजकम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्रदधिदुग्धैरच पचेदप्याजमूत्रकैः । कल्कं दत्त्वा शिलाकाशी पथ्याकुष्ठं विडङ्गकम् ॥ ६५ ॥ कटुतैलं च तल्लपादीपद् घृष्ट्वा विलेपनैः । पञ्चाननमिदं तैलं श्वेतकुष्ठकुलापहम् ॥ ६६ ॥

बहुआ तेल २ सेर, कल्कार्थ—परएडबीज, तुलसीबीज, बाकुची, चक्रवर्ध ( पर्ण्ड ) के बीज कटुई तोरई के बीज, काले अकोड के बीज, मैनशिल, कशीम, हड, कूट और वायविधंग मिश्रित आधा सेर । गोमूत्र, दही का तोड़, दूध और यकरी का मूत्र दो सेर । यथाविधि तैल सिद्ध करे । जाँई श्वेत हो गया हो वहाँ वहाँ थोड़ा रगड़ कर इस पञ्चानन तेल का मर्दन करे तो श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६४-६६ ॥

आरग्वधादि तैल ।

आरग्वधं धवं कुष्टं हरितालं मनःशिला । रजभीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित् । एतेनाभ्यञ्जनादेव क्षिप्रं शिवत्रं विनश्यति ॥ ६७ ॥

अमलतास, धाय के फूल, कूट, हरताल, मैनशिल, हल्दी और दारहल्दी; ये प्रत्येक दो-दो तोले, ले । इनके कल्क में १ सेर कटुतैल और ४ सेर तैल डालकर यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल की मालिश करने से शीघ्र ही शिवत्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६७ ॥

श्वेतारि रस ।

शुद्धमूतं समं गन्धं त्रिफलां भृङ्गागुजीम् । भल्लातकं तिलं कृष्णं निम्बबीजं समं समम् ॥ ६८ ॥ मर्दयेद् भृङ्गजद्रावैः शोष्यं पेप्यं पुनः पुनः । इत्थं कुर्यात्त्रिसप्तहं रसः श्वेतारिको भवेत् ॥ मध्याज्यैर्मापमात्रं तु खाटेच्छेत् विनाशयेत् ॥ ६९ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, त्रिफला, भंगरा, बाकुची, भिल्लातक, काले तिल, नीम के बीज; इनको सम भाग लेकर भंगरा के रस में डालकर मर्दन करे

और सुखावे । इस प्रकार ३ सप्ताह धर्यात् ११ दिन तक मर्दन और शोषण करने से रवेतारि रस सिद्ध होता है । इसको मधु और घृत के साथ ४ रत्नी से एक माशे की मात्रा में खाने से रवेत कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६८-६९ ॥

गन्धकप्रयोग ।

पिबति सकटुतैलं गन्धपापाचूर्णं,  
रत्रिकिरणसुतप्तं पामनो योऽष्टगुञ्जम्  
त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं  
भवतिकनकदीप्तिः कामरूपी मनुष्यः७०॥

पामा के रोगी को चाहिए कि तीन दिन तक शुद्ध गन्धक के चूर्ण को कटुघ्रा तेल में मिलाकर और धूप में गरम करके पीवे और उसी की मालिश करे और दुग्ध का भोजन करे । मात्रा १ माशा तक की है । ऐसा करने से मनुष्य का वर्ण सुवर्ण के सदृश तथा रूप कामदेव के सदृश हो जाता है ॥ ७० ॥

सोमराजीप्रयोग ।

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो यःसोमराजीं  
नियमेन खादेत् । संवत्सरं कृष्णतिल-  
द्वितीयां स सोमराजीं वपुषातिशेते ॥६१॥

तीव्र कुष्ठ से पीडित मनुष्य बाकुची और काले तिलों को मिलाकर साल भर नियम से खाए तो कुष्ठ रोग दूर होकर शरीर की कान्ति चन्द्रमा के समान हो जाय ॥ ७१ ॥

धर्मसेवी कटुप्लेण वारिणा वागुर्जी  
पिबेत् । क्षीरभोजी च सप्ताहात् कुष्ठी  
कुष्ठं व्यपोहति ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य उष्ण जल के साथ बाकुची को पीता है और धूप का तथा दुग्ध का सेवन करता है उसका कुष्ठ रोग एक सप्ताह में शान्त हो जाता है ॥ ७२ ॥

श्रवल्गुजनीजमापं पीत्वा कोप्लेण  
वारिणा । भोजनं सर्पिषा कार्यं सर्वकुष्ठ-  
विनाशनम् ॥ ७३ ॥

सहस्रशो दृष्टफलोऽयं योगः ।

१ माशा बाकुची के बीज उष्ण जल के साथ सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठ शान्त होते हैं । इसमें पथ्य घृत का भोजन करना चाहिए । यह हजारों बार का अनुभूत योग है ॥ ७३ ॥

छिन्नायाः स्वरसो वापि सेव्यमानो  
यथावलम् । जीर्णं घृतेन भुञ्जीत मुद्गयू-  
पौदनेनच । अपि पूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपी  
भवेन्नरः ॥ ७४ ॥

गिलोय का स्वरस शरीर के बलानुसार सेवन करने से कुष्ठ रोग के कारण दुर्गन्धित शरीरवाला भी रोग दिव्य रूप हो जाता है । जब ओषधि हजम हो जाय तब घृतयुग्म मूँग के जूस के साथ चावल खाना चाहिए ॥ ७४ ॥

यः खादेदभयाररिष्टमरिष्टामलकानिवा ।  
स जयेत् सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न  
संशयः ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य हड़ और नीम की छाल अथवा नीम की छाल और आँवला इनके चूर्ण का सेवन करता है वह एक महीने में सब प्रकार के कुष्ठों को जीत लेता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ७५ ॥

पञ्चनिम्ब ।

निम्बस्य पत्रं मूलानि सत्वकपुष्प-  
फलानि च । चूर्णितानि घृतक्षौद्रसंयुतानि  
दिने दिने ॥ ७६ ॥ लिह्यात् पिबेद्वा मूत्रेण  
संयुक्कान्युदकेन वा । मदिरामलतोयेन  
पयसा वा यथावलम् ॥ ७७ ॥ भुञ्जीत  
घृतयूपार्थैः शाल्यन्नं पयसापि व । सर्व-  
कुष्ठविसर्पाशोनाढीदुष्टप्रणानपि ॥७८॥  
कामलां च गदानन्यांस्तथा पित्तकफास्र-  
जान् । संवत्सरप्रयोगेण सर्ववर्ज्यविव-

जितः । जयत्येषश्चनिम्बं रसायनमनु-  
त्तमम् ॥ ७६ ॥

नीम के पत्ते, मूल, छाल, फूल और फल इनके चूर्ण को घी और शहद में मिलाकर प्रतिदिन चारटे अथवा गोमूत्र, जल, मदिरा आँवले के स्वरस या दूध के साथ बलानुमार सेवन करे । घृतयुक्त यूप आदि के साथ अथवा दूध के साथ शालिधान के चावलों का भात खावे । इस पञ्चनिम्ब चूर्ण को सालभर पथ्य से सेवन करनेवाले मनुष्य के सम्पूर्ण कुष्ठ, विसर्प, अर्श, नाडीघण, दुष्टघण, कामला तथा अन्यान्य पित्त, कफ और रक्त से उत्पन्न होनेवाले रोग दूर होते हैं । यह पञ्चनिम्ब चूर्ण अत्युत्तम रसायन है । मात्रा—१ माशा से ३ माशे तक ॥ ७६-७६ ॥

तन्त्रान्तरोरु पञ्चनिम्ब ।

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले  
फलानि च । संचूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ्-  
मूलानि दलानि च ॥ ८० ॥ द्विरंशानि  
समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् । त्रिफला  
त्र्यूपणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्कराग्निकाः ॥  
८१ ॥ विडङ्गसारवाराहीलौहचूर्णामृताः  
समाः । हरिद्राद्वयावल्गुजव्याधिघाताः  
सशर्कराः ॥ ८२ ॥ कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा  
चूर्णं सुसंयुतम् । खदिराशननिम्बानां  
घनकाथेन भावयेत् ॥ ८३ ॥ सप्तधा पञ्च-  
निम्बं च मार्कवस्वरसेन च । स्निग्धशुद्ध-  
तनुर्धामान् योजयेच्च शुभे दिने ॥ ८४ ॥  
मधुना तिक्तहविषा खदिराशनवारिणा ।  
सेव्यमुष्णाम्बुना वापि कोलट्टद्या पलं  
पिवेत् ॥ जीर्णं च भोजनं कार्यं स्निग्धं  
लघु हितं च यत् ॥ ८५ ॥ विचर्चिको-  
दुम्बरपुण्डरीककपालदद्दुकिटिमालसादि ।

शतारुविस्फोटविसर्पपामां कुष्ठप्रकोपं वि-  
विधं किलासम् ॥ ८६ ॥ भगन्दरं  
श्लीपदवातरक्तं जडान्ध्यनाडीघणशीर्ष-  
रोगान् । सर्वान् प्रमेहान् प्रदरांश्च सर्वान्  
दष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥ ८७ ॥ स्थू-  
लोदरः सिंहकृशोदरश्च सुश्लिष्टसान्धिम-  
धुनोपयोगात् । समोपयोगादपि ये दशन्ति  
सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ॥ ८८ ॥  
जीवेचिरं व्याधिजराविमुक्तः शुभेरतश्चन्द्र-  
समानकान्तिः ॥ ८९ ॥

निम्बस्य पुष्पफलमूलदलत्वचां प्रत्येकं-  
भागद्वयं त्रिफलादेः प्रत्येकमेको भागः ।  
अग्निश्चित्रकं वाराही वाराहीकन्दः तद्भावे  
चर्मकारालुकं लौहचूर्णं शोधितपुटितसु-  
जीर्णलोहचूर्णम् । काथनीयद्रव्यं गृहीत्वा  
अष्टभागावशिष्टः काथो ग्राह्यः । तेन  
निम्बादिचूर्णस्य भावना सप्तधा कर्त्तव्या  
एवं भृङ्गाजरसेन सप्तधा भावना । स्निग्ध-  
शुद्धतनुत्वं स्नेहक्रियावमनविरचेनादि ।

पुष्पकाल में नीम के पुष्प, फलकाल में  
फल, छाल, जड़ और पत्ते प्रत्येक दो-दो भाग  
लेकर चूर्ण करे । त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी,  
गोखरु, भिल्लाँवा, चीता, वायथिङ्ग, वाराहीकन्द  
( अभाव में चर्मकारालुक ), लोहभस्म, गिलोय,  
हल्दी, दारुहल्दी, बाकुची, अमलतास, लॉड कूट,  
इन्द्रजौ और पाढ़ी इगका चूर्ण एक-एक भाग ।  
इस चूर्ण में खैर, असना की छाल और नीम की  
छाल इनमें से प्रत्येक के अष्टभागावशिष्ट गाढ़ेकाथ  
की और भँगेरे के रस की सात-सात भावना दे ।  
स्नेहन, स्वेदन, वमन और विरेचन से शुद्ध  
होकर शुभ दिन से इस चूर्ण का मधु, पञ्चति-  
प्रादि घृत, खदिर तथा असना की छाल के  
काथ और उष्ण जल इनमें से किसी एक के  
साथ सेवन करे । अयोपधि पच जाने पर स्निग्ध,

ज्यु तथा हितकारी भोजन करना चाहिए । इस चूर्ण के सेवन करने से विचर्चिका, उदुम्बर, पुण्डरीक, कपाल, दद्दु, किष्टिम, थलम, शतारू, घिस्फोट, विसर्प, पामा, विविध प्रकार के कुष्ठ-प्रकोप, किलास, भगन्दर, श्लीषद, वातरक्त, जड़ता, अन्वापन, नाडीघ्नण, शिरारोग, सब प्रकार के प्रमेह, प्रदर, दन्तविष और मूलविष इन सब का नाश होता है । मधु के साथ सेवन करने से स्थूलोदर मनुष्य रूिह के समान कृशोदर हो जाता है । सन्धियों परिपुष्ट हो जाती हैं । एक वर्ष पर्यन्त इसका सेवन करनेवाले को यदि साँप आदि काट तो वे स्वयं मर जावें और सेवनकर्ता यदि सघ्नरित्र हो तो सब प्रकार की व्याधियों और जरावस्था से मुक्त हो चिर-जीवी होता है ॥ ८०--८६ ॥

### अमृता गुग्गुलु ।

अमृतायाः पलशतं दशमूल्यास्तथा शतम् । पाठामूर्वाबलातिक्रादावीगन्धर्व-इस्तकाः ॥ ९० ॥ एषां दशपलान् भागान् विभीतक्याः शतं हरेत् । द्वे शते च हरीतक्या आमलक्यास्तथा शतम् ॥ ९१ ॥ जलद्रोणद्वये पक्त्वा अष्टभागावशेषि-तम् । मस्थं गुग्गुलुमाहृत्य प्रस्थाद् च घृतं पचेत् ॥ ९२ ॥ पाकसिद्धौ प्रदातव्यं गुडूच्याः सत्त्रमेव च । पलद्वयं तथा शुण्ठ्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ॥ ९३ ॥ ततो मात्रां प्रयुञ्जीत ज्ञात्वा दोषबला-बलम् । अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तगदेषु च ॥ ९४ ॥ कामलामामवातं च अग्नि-मान्द्यं भगन्दरम् । पीनसं च प्रतिश्यायं प्लीहानमुदरं तथा । एतान् रोगान् नि-हन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ९५ ॥

अयं वातरक्तं प्रशस्तः ।

गिलोय ५ सेर, दशमूल ५ सेर, पादी.

मूर्वा, खरेटी की जड़, कुटकी, दादहलदी, एरंड की जड़; ये आध-आध सेर, घहेके नग १००, हड नग १०० और आँवले १००, इन सबको १ मन ११ सेर १६ तोला जल में पकावे । जब ६ सेर ३२ तोला जल अवशेष रह जाय तब उतार कर छान ले । उक्त औषधियों का काथ करते समय ६४ तोला गुड गुग्गुलु की ढीली पोटली में बाँधकर दोलायन्त्र से स्विन्न कर ले । परचात् उक्त काथ में इस गुग्गुलु को मिलावे और त्रिफला को भी पीसकर ६४ तोला घी में भूनकर इसी काथ में मिलाकर पकावे । पाक सिद्ध हो जाने पर गिलोय का सत ८ तोला, सोंठ का चूर्ण ८ तोला और पीपरि का चूर्ण ८ तोला उसमें मिलाकर नीचे उतार ले । दोषों का बलाबल समझकर मात्रा निश्चित करे । यह अमृतागुग्गुलु अठारह प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, कामला, आमवात, अग्निमान्द्य, भगन्दर, पीनस प्रतिश्याय, प्लीहा और उदर-रोग; इनको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट किया करता है ॥ ९०-१५ ॥

यह वातरक्त की उत्तम औषधि है ।

### एकविंशतिक गुग्गुलु ।

चित्रकत्रिफलाव्योषमजाजो कारवीं वचाम् । सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्यैलाया-वशूकजम् ॥ ९६ ॥ विडङ्गान्यजमोदाश्च मुस्तान्यमरदारु च । यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम् ॥ ९७ ॥ संनुच सर्पिषा साद् गुडिकां कारयेद् भिपक् । प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम् ॥ ९८ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि कृमीन् दुष्ट-व्रणानपि । ग्रहण्यशो विकारांश्च मुखा-मयगलग्रहान् ॥ ९९ ॥ गृध्रसीमथ भग्नश्च गुल्मश्चापि नियच्छति । व्याधीन् कोष्ठगतांश्चान्यान् जयेद्विष्णुरिवासु-रान् ॥ १०० ॥

चित्रक, त्रिफला, त्रिकटु, जीरा, कालाजीरा, बच, सेंचानमक, अतीस. कूट, चङ्ग, छोटी इलायची, जवासार, वायविद्ध, अजमोदा, मोथा और देवदार, हरएक का चूर्ण समान भाग, सब चूर्ण के समान शुद्ध गुगुल, इन्धे घृत में घोटकर उपयुक्त मात्रा में गोली बनाये । मात्रा ४ रची से २ माशे तक । प्रातःकाल भोजन के समय इस गोली का सेवन करने से सम्पूर्ण कुष्ठ, क्रोम, दुष्टमण्य, संप्रहणी, बवासीर, मुखरोग, गलग्रह, गृध्रसी, अस्थिभंग, गुल्म तथा अन्य कोऽगत रोग नष्ट होते हैं ॥ ६६-१०० ॥

तिक्तकघृत ।

त्रिफलाद्विनिशावासयासपर्वटकूलकान् । त्रायन्तीकडुकानिम्बान् प्रत्येकं द्विप्लोनिमतान् ॥ १०१ ॥ काथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु घृतप्रस्थं पचेत्कलकैः पिप्पलीघनचन्दनैः ॥ १०२ ॥ त्रायन्तीशक्रभूमिन्धैस्तत्पीतं तिक्तकं घृतम् । हन्ति कुष्ठज्वरार्शांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम् ॥ पाण्डुरोगं त्रिसर्पञ्च क्लीवानामपि शस्यते ॥ १०३ ॥

घृत १२८ तोले । काथ के लिये—त्रिफला, हल्दी, दारहल्दी, वासा, जवासा, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र, त्रायमाण, कुटकी, नीम की छाल, हरएक ८ तोले । पाक के लिये जल २३ सेर ४८ तोले, बाकी ६ सेर ३२ तोले । कलक के लिये—पीपल, मोथा, लालचन्दन, त्रायमाण, इन्द्रजी, चिरायता, सब मिलाकर ३२ तोले । विधिपूर्वक घृत पकाकर सेवन करने से कुष्ठ, ज्वर, बवासीर, शोथ, ग्रहणी, पाण्डुरोग तथा त्रिसर्प आदि रोग नष्ट होते हैं । यह घृत नृपसक्तता में भी लाभदायक है । मात्रा—आधा तोला ॥ १०१-१०३ ॥

महातिक्तकघृत ।

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्पाकं तिक्तक-  
रोहिणीं पाठाम् । मुस्तपुशीरं त्रिफलां

पटोलपिचुमर्दपर्वटकम् ॥ १०४ ॥ धन्व-  
यासं सचन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च ।  
पङ्ग्रन्थांसविशालां शतावरीशारिवे चोभौ ॥  
१०५ ॥ वत्सकवीजं वासां भूर्वाभमृतां  
किराततिकृञ्च । कल्कान् कुर्यान्मतिमान्  
यष्ट्याहं त्रायमाणाञ्च ॥ १०६ ॥ कल्कस्तु  
चतुर्भागो जलमष्टशुणं रसोऽमृतफला-  
नाम् । द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाय-  
येत्सिद्धम् ॥ १०७ ॥ कुष्ठानि रक्तपित्तं  
प्रव्लान्यर्शांसि रक्तवाहीनि । वीसर्पमग्ल-  
पित्तं वातसूक पाण्डुरोगश्च ॥ १०८ ॥  
विस्फोटकान् सपामानुन्मादान् कामलां  
ज्वरं कण्डूम् । हृद्रोगगुल्मपिडकामसृग्दरं  
गण्डमालाञ्च ॥ १०९ ॥ हन्यादेतत्सद्यः  
पीतं काले यथाबलं सर्पिः । योगशतैरप्य-  
जितान् महाधिकारान् महातिक्रम् ११० ॥

घृत १२८ तोले, आँवले का रस ३ सेर १६ तोले । कल्क के लिये—सर्पाने की छाल, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाद, मोथा, खस, त्रिफला, पटोलपत्र, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, धमासा, लालचन्दन, पीपल, गजपीपल, पद्माख, हल्दी, दारहल्दी, बच, इन्द्रायण की जड़, शतावर, अनन्तमूल, श्यामालता, इन्द्रजी, सब मिलाकर ३२ तोले । पाक के लिये जल १२ सेर ३२ तोले । विधिपूर्वक घृत पकाकर रोगी को बलानुसार सेवन कराने से कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तार्श, त्रिसर्प, अग्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग विस्फोट, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडिका, रक्तप्रदर और गण्डमाला आदि रोग नष्ट होते हैं । मात्रा—आधा तोला ॥ १०४-११० ॥

महापदिरकघृत ।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयो-  
स्तुले । तुलार्द्राः सर्वे पर्वते करञ्जारिष्वे-

तसाः ॥ १११ ॥ पर्पटः कुटजश्चैव वृषः  
कृमिहरस्तथा हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची  
त्रिफला त्रिवृत् ॥ ११२ ॥ सप्तच्छटश्च  
संलुघ दशद्रोणेन वारिणा । अष्टभागा-  
वशेषन्तु कपायमवतारयेत् ॥ ११३ ॥  
धात्रीरसञ्च तुल्यांशं सर्पिपश्चाढकं पचेत् ।  
महाचिकककलकैश्च यथोक्तैः पलसम्मिदैः ॥  
११४ ॥ निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्ग-  
निर्पेवणात् । महाखदिरमित्येतत्सर्वकुष्ठ-  
विनाशनम् ॥ ११५ ॥

गोधृत ६ सेर ३२ तोले' आँवले का रस  
६ सेर ३२ तोले । काय के लिये—खदिरकाष्ठ  
२५ सेर, शीशम तथा असन ( पीतशाल ) की  
छाल प्रत्येक ५ सेर, करञ्ज नीम की छाल,  
वेत, पित्तपापदा, कुङ्गा की छाल, अडूना,  
बागबिहड़, हल्दी, दाहडूदी, अमलतास, गिलोय,  
त्रिफला, निसोत, सतौना की छाल हरएक कुटे  
हुए बाई-बाई सेर । पाक के लिये जल ६ मन  
१६ सेर, शेष बचाय ३२ सेर । कटक के लिये—  
महाचिकक घृत में कहे हुए कलक द्रव्य प्रत्येक  
४ तोले । विधिपूर्वक घृत में पकाकर अभ्यङ्ग तथा  
पाग करने से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होते हैं ।  
मात्रा—घाघा तोला ॥ १११-११५ ॥

सोमराजीघृत ।

चतुष्पलं सोमराज्याः खदिरस्य'पल-  
स्तथा । पटोलमूलं त्रिफला त्रायमाणा  
दुरालभा ॥ ११६ ॥ कल्कार्थं कटुकश्चापि  
कार्पिकान् सूक्ष्मपेपितान् । पलद्वयं कौशि-  
कस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् ॥ ११७ ॥  
सिद्धं सर्पिर्दिदं श्वित्रं हन्यादम्भ इवानलम् ।  
अष्टादशानां कुष्ठानां परमञ्चैतदौषधम् ॥  
११८ ॥ सोमराजीघृतं नाम निर्मितं  
ब्रह्मणा पुरा । लोकांनामुपकाराय श्वित्र  
कुष्ठादिरोगिणाम् ॥ ११९ ॥

वाकुची के बीज ( कालाजीरी ) १६ तोले,  
खदिरकाष्ठ ४ तोले । पटोलमूल, त्रिफला,  
त्रायमाणा, धमासा. कुटकी हरएक दो दो तोले ।  
शुद्ध गुग्गुल ८ तोले । इस कलक से विधिपूर्वक  
१२८ तोले घृत को पाककर सेवन कराने से  
श्वित्र तथा अटारहों कुष्ठ नष्ट होते हैं । श्वित्र  
तथा कुष्ठ से पीड़ित रोगियों के उपकार के  
लिये ही ब्रह्मा ने इसे बनाया था । मात्रा—  
घाघा तोला ॥ ११६-११९ ॥

वज्रकघृत ।

वासा गुडूची त्रिफला पटोलकरञ्ज-  
निम्बाशनकृष्णवेणुम् । तत्काथकलकेन  
घृतं विपक्वं तद्वज्रवत्कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥  
१२० ॥ त्रिशीर्षकर्णाङ्गुलिहस्तपादः  
कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः । पौरा-  
णिकीं कान्तिमवाप्य जीवेदव्याहतो वर्ष-  
शतञ्च कुष्ठी ॥ १२१ ॥

अडूसा, गिलोय, त्रिफला, पटोलपत्र, करञ्ज,  
नीम की छाल, असन की छाल और कालावेत,  
इनके बचाव और कलक से विधिपूर्वक घृत  
पका ले । यह घृत कुष्ठनाशक है । इसके सेवन  
से जिस कुष्ठ रोगी के कान, अँगुली, हाथ,  
पाँव आदि भङ्ग गये हों वह भी अपनी पुरानी  
कान्ति को प्राप्त होकर शतायु होता है ।  
मात्रा—घाघा तोला ॥ १२०-१२१ ॥

करवीरादि तैल ।

श्वेतकरवीररसो गोमूत्रं चित्रकं  
विदङ्गञ्च । कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं  
सम्मतो भिपजाम् ॥ १२२ ॥

सक्रोद कनेर की जड़ का रस, गोमूत्र, चित्रक,  
तथा बायबिहड़ इनसे विधिपूर्वक सिद्ध तैल का  
कुष्ठ में बाह्य प्रयोग करना चाहिए ॥ १२२ ॥

श्वेतकरवीरादि तैल ।

श्वेतकरवीरमूलं विपांशसाधितं मूत्रं ।

चर्मदलसिध्मपामाविस्फोट कृमिकिटिमजि  
तैलम् ॥ १२३ ॥

तिलतैल १२८ तोले, गोमूत्र ६ सेर ३२  
तोले, कल्क के लिये दधेत कनेर की जड़ १६  
तोले, यच्छनाग १६ तोले विधिपूर्वक सिद्ध कर  
मालिश करने से चर्मदल, सिध्म, पामा,  
विस्फोट, कृमि तथा किटिम कुष्ठ नष्ट होता  
है ॥ १२३ ॥

अर्कमनःशिला तैल ।

अर्कपत्ररसे पक्वं कटुतैलं निशायु-  
तम् । मनःशिलायुतं वापि पामाकन्दूवा-  
दिनाशनम् ॥ १२४ ॥

सरसों के तैल को आक के पत्तों के रस में  
हल्दी के कल्क से अथवा मैनशिल के कल्क से  
सिद्धकर पामा, कण्डू आदि को नष्ट करने के  
लिये मालिश करनी चाहिए ॥ १२४ ॥

गण्डीरिकादि तैल ।

गण्डीरिकाचित्रकर्माकर्वाकुकुष्ठमृत्प-  
ग्लवर्णैः समूत्रैः । तैलं पचेन्मण्डलकुष्ठ-  
दद्रुदुष्टव्रणारुःकिटिमापहारि ॥ १२५ ॥

यूहर का दूध, चित्रकमूल, भांगरा, आक  
का दूध, कूट, अमलतास, के मूल की छाल,  
संधानमक, इनके कल्क से गोमूत्र द्वारा तिल-  
तैल को सिद्धकर अभ्यङ्ग द्वारा प्रयोग करावे ।  
इसके प्रयोग से मण्डल, कुष्ठ, दद्रु, दुष्टमण,  
शतारू तथा किटिम आदि नष्ट होते हैं ॥ १२५ ॥

आदित्यपत्र तैल ।

मञ्जिष्ठात्रिफलालान्निशाशिलाल-  
गन्धकैः । चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं  
पामाहरं परम् ॥ १२६ ॥

मंजीठ, त्रिफला, लाक्षा, हल्दी, मैनशिल,  
हरिताल और गन्धक इनका कल्क, तैल तथा  
तैल के समान जल एकत्र मिलाकर धूप में  
रक्खे जय सब जल शुष्क हो जाय तब उसको  
छानकर रखे । यह तैल मालिश करने से  
पामा को नष्ट करता है ॥ १२६ ॥

दूर्वादि तैल ।

स्वरसे चैव दूर्वायाः पचेतैलं चतु-  
र्गुणे । कन्धू विचर्चिका पामा अभ्यङ्गा-  
देव नाशयेत् ॥ १२७ ॥

तैल से चौगुने दूध के रस के साथ विधि-  
पूर्वक तैल पकाकर अभ्यङ्ग करने से कच्छू,  
विचर्चिका तथा पामा नष्ट होती है ॥ १२७ ॥

जीरकादि तैल ।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्द्रपलं  
तथा । कटुतैलं पचेदाभ्यां सर्वपामाहरं  
परम् ॥ १२८ ॥

जीरा ४ तोले, सिन्दूर २४ तोले, कटुतैल  
१६ तोले । पाकविधि-१६ तोले तैल में  
४ तोले जीरा तथा ६४ तोले जल डाल कर पाक  
करे । पाक शेष होने पर ४ तोले सिन्दूर  
मिलाकर उतार ले । इसके अभ्यङ्ग से पामा  
नष्ट होती है ॥ १२८ ॥

सिन्दूरादि तैल ।

सिन्दूरार्द्रपलं पिष्ट्वा जीरकस्य पलं  
तथा । कटुतैलं पचेन्मानी सद्यः पामाहरं  
परम् ॥ १२९ ॥

सिन्दूर ४ तोले, जीरा ८ तोले, कटुतैल  
३२ तोले विधिपूर्वक पकाकर बाह्य प्रयोग करे ।  
इसके अभ्यङ्ग से पामा नष्ट होती है ॥ १२९ ॥

महासिन्दूरादि तैल ।

सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडङ्गं रजनी-  
द्वयम् मियङ्गु पद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठां  
खदिरं वचाम् ॥ १३० ॥ जात्यर्कत्रिष्टता-  
निम्बकरञ्जं विपमेव च ॥ कृष्णवेशक-  
लोत्रञ्च प्रपुत्राडञ्च संहरेत् ॥ १३२ ॥  
श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैल-  
मात्रया । अभ्यङ्गेन प्रयुञ्जीत सर्वकुष्ठ-  
विनाशनम् ॥ १३२ ॥ पामाविचर्चिका-  
कण्डूवीसर्पादिविनाशनम् । रङ्गपित्तो-

स्थितान् हन्ति रोगानेवं विधान्  
वहन् ॥ १३३ ॥

तैलमात्रयेति प्रस्थरूपया ।

सिन्दूर, लाल चन्दन, जटामासी, बाय-  
धिबद्ध, हल्दी, दारुहल्दी, त्रियंगु, पद्मास, कूट,  
मंजीठ खदिरकाष्ठ, बच, चमेली के पत्ते,  
धाक का दूध, करञ के बीज, बच्छनाग, काला-  
वेत, लोध और पर्वाङ के बीज इनके महीन पिसे  
कणक से तैल पकाकर रोगी को अभ्यङ्ग करावे ।  
इस प्रकार इसके बाह्य प्रयोग से पामा, विच-  
चिका, कण्डू, विसर्प तथा इसी प्रकार की  
अन्य रक्षीपत्तज व्याधियाँ नष्ट होती  
हैं ॥ १३०-१३४ ॥

वज्रकतैल ।

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् ।  
मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोटयो-  
रपि ॥ १३४ ॥ करञ्जबीजं त्रिफलां  
त्रिकटू रजनीद्वयम् । सिद्धार्थकं विडङ्गञ्च  
पृषुनाडञ्च संहरेत् ॥ १३५ ॥ मूत्रपिष्टैः  
पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् । अभ्यङ्गाद्  
वज्रकं काम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १३६ ॥

सतौने की छाल, वृक्षकरञ्ज, धाक की जड़,  
मालतीपत्र, कनेर की जड़, यूहर की जड़  
सिरस की जड़, चित्रक की जड़, शारिवा,  
करञ के बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हल्दी, दारु-  
हल्दी, सफेद मरनों, चायधिबद्ध और पर्वाङ के  
बीज, इन्हें गोमूत्र में पीसकर कणक द्वारा  
गोमूत्र से तिल तैल का पाक करे । यह तैल  
कुष्ठ, नाडीव्रण तथा दुष्टव्रण को नष्ट करता  
है ॥ १३४-१३६ ॥

वृणकतैल ।

मञ्जिष्ठारुद्धनिशाचक्रमर्दारग्यपल्लवैः।  
वृणकस्तरसे सिद्धं तैलं कुण्डाहरं  
परम् ॥ १३७ ॥

कूट, हल्दी, मंजीठ, पर्वाङ के बीज, अमल-

तास के पत्ते, इनके कणक तथा गन्धवृण के  
रस द्वारा तैल पकावे । यह तैल कुष्ठ को नष्ट  
करता है ॥ १३७ ॥

महावृणकतैल ।

हरिद्रात्रिफलादारुहयमारकचित्रकम् ।  
सप्तच्छदश्च निम्बत्वक्करञ्जौ वालकं  
नखी ॥ १३८ ॥ कुष्ठमेढगजावीजं  
लाङ्गली गणिकारिका । जातीपत्रञ्च दावीं  
च हरितालं मनःशिला ॥ १३९ ॥  
कलिङ्गं तिलपत्रञ्च अर्कक्षीरं च गुग्गुलुः ॥  
गुडत्वक्मरिचञ्चैव कुङ्कुमं ग्रन्थिपर्णि-  
कम् ॥ १४० ॥ सर्जपर्णासखदिरं विडङ्गं  
पिप्पली वचा । घनरेणुमृता यष्टी केशरं  
ध्यामकं विपम् ॥ १४१ ॥ विश्वकट्फल-  
मञ्जिष्ठा बोलस्तुम्बीफलन्तथा । स्नुही-  
शम्पाकयोः पत्रं वागुजीबीजमांसिके ॥  
१४२ ॥ एला ज्योतिष्मतीमूलं शिरीषो  
गोमयाद्रसः । चन्दने कुष्ठनिर्गुण्डी  
विशाला मल्लिकाद्वयम् ॥ १४३ ॥ वासा-  
श्वकर्णी ब्रह्मी च श्याहं चम्पककुङ्कु-  
लम् । एतैः कल्कैः पचेत्तैलं वृणकस्तरस-  
द्रवम् । सर्ववग्दोषहरणं महावृणकस्तं-  
ज्ञितम् ॥ १४५ ॥

हल्दी, त्रिफला, देवदारु, कनेर की जड़,  
विश्वकमूल, सतौने की छाल, नीम की छाल,  
लताकरञ्ज, वृक्षकरञ्ज, गन्धबाला, नखी, कूट,  
पर्वाङ के बीज, कलिहारी, भरनी, चमेली के  
पत्ते, दारुहल्दी, इडताल, मैनशिल, इन्द्रजी,  
तिलपत्र, धाक का दूध, गुग्गुलु, दारुभीनी,  
कालीमिर्च, केसर, गण्डिवन, राज, गुलसी  
खदिरकाष्ठ चायधिबद्ध, पीपल, बच, मोषा,  
सम्भालू के बीज, गिलोय, मुलहठी, नागकेशर,  
गन्धवृण, बच्छनाग, सोठ, कटफल, मंजीठ,  
बोड, कड़वी तुँदी, यूहर के पत्ते, अमलतास



के पत्ते, काली जीरी, जटामांसी, छोटी इलायची, मालकंगनी की जड़, सिरस की छाल, गोमयरस ( गोबर का जल ), सफेद चन्दन, लाल चन्दन, बूट, सम्भालू की जड़, इन्द्रायण का जड़. महिका ( मोतिया ), नवमहिका, अहूसा, अश्वकण ( शालविशेष ), ब्रह्मी. अथाह ( गन्धविरोज ) चम्पक की फली, इनके फलक से गन्धघृण के रस द्वारा तैल पकावे । यह सम्पूर्ण त्वचा के दोषों को इरता है ॥१३८-१४४॥

कच्छुराक्षततैल ।

मनःशिलालं कासीसगन्धारमासिन्धु-  
जन्म च । स्वर्णक्षीरी शिलाभेदी शुण्ठी  
कुष्ठञ्च मागधी ॥ १४४ ॥ लाङ्गली कर-  
धीरञ्च दद्रुघ्नः कृमिहानलः । दन्ती  
निम्बदलरचैभिः पृथक् कर्पमितैर्भिषक् ॥  
१४६ ॥ कल्कीकृत्य पचेत्तैलं कटुप्रस्थ-  
द्वयोन्मितम् । अर्कसेहुगडदुग्धेन पृथक्  
पलमितेन च ॥ १४७ ॥ गोमूत्रस्याढकेनापि  
शनैर्मृद्गनिना पचेत् । अभ्यङ्गेन हरदेतत्  
कच्छू दुःसाध्यतामपि ॥ १४८ ॥ पामानञ्च  
तथा कण्डू त्वग्न्याधिरुधिरामयान् ।  
कच्छुराक्षसनामेदं तैलं हारीतभापि-  
तम् ॥ १४९ ॥

सरसों का तेल ३ सेर १६ तोले, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले । कल्क के लिये-मैनशिल, हरिताल, कसीस, गन्धक, संधानमक, सत्यानाशी, पाषाणभेद, सोंठ, कूट, पीपल, कलिहारी कनेर की जड़, पयांड के बीज, वायविकक, चित्रकमूल, दन्तीमल और नीम के पत्ते हर एक दो-दो तोले । आक का दूध ८ तोले, भूहर पा दूध ८ तोले । इसे विधिपूर्वक मन्दी-मन्दी आंच पर पकावे । इस तैल के अम्पन्न से असाध्य कण्डू, पामा, कण्डू, त्वचा के रोग तथा रधिर-विकार नष्ट होते हैं ॥ १४४-१४९ ॥

घासादृत्तैल ।

त्रिफला निम्बमण्डाकी वृहत्पौ सपु-

नर्नवा । हरिद्रे वृषनिगुण्डहथौ पटोलक-  
नकाहथौ ॥ १५० ॥ हरितालं शिला-  
कुष्ठौ लाङ्गलीदाडिमाहथौ । अपामार्ग-  
विपं चैव जयन्तीपूतिकटुफलैः ॥ १५१ ॥  
एषां कर्पद्वयैः कल्कैस्तैलमस्थं विपाच-  
येत् । चतुर्गुणे गुडूच्याश्च रसे वैद्यः समा-  
हितः ॥ १५२ ॥ चतुर्गुणन्तु गोक्षीरं  
वृषपत्ररसं तथा । दत्त्वावतारयेद्वैद्यो रुद्र-  
मन्त्रं समाजपेत् ॥ १५३ ॥ दद्रुं कुष्ठं  
दुष्टव्रणं विसर्पं विद्रधि तथा । नाडीव्रणं  
व्रणं घोरं वातरक्तं सुदुर्जयम् ॥ १५४ ॥  
सन्निपातज्वरं चैव शिरोरोगं सुदारुणम् ।  
शोथञ्च गलगण्डञ्च श्लीषदं त्ववुदं  
तथा ॥ १५५ ॥ वातरोगानशेषांश्च  
अन्त्रवृदि सुदारुणम् । पीनसश्वासका-  
सञ्च सुदारुणभगन्दरम् ॥ १५६ ॥  
उपदंश महाघोरं चक्षुःशूलञ्च नाशयेत् ।  
चर्मोत्थान् सर्वरोगांश्च तैलमेतद्विना-  
शयेत् ॥ रुद्रतैलमिदं नाम्ना स्त्रयं रुद्रेण  
भापितम् ॥ १५७ ॥

तिलतैल १२८ तोले, गिलोय का रस ६ सेर ३२ तोले, अहूसा के पत्तों का रस ६ सेर ३२ तोले, गोदुग्ध ६ सेर ३२ तोले । कल्क के लिये त्रिफला, नीम की छाल, वैंगन की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, विषखपरा, हरदी, दान्हहदी, अहूसा की छाल, सम्भालू के पत्ते, पटोलपत्र, श्वेत धतूरे की जड़, हस्ताल, मैनशिल, कूट, कलिहारी, अनार का छिलका, अपामार्ग, यच्छुनाग, जयन्तीपत्र, लताकरञ्ज और कटफल, हरपत्र ४ तोले । विधिपूर्वक तैल पकावे । इसके बाह्य प्रयोग से दद्रु, कुष्ठ, दुष्टव्रण, विसर्प, विद्रधि, नाडीव्रण, व्रण, वातरक्त, सन्निपातज्वर, शिरोरोग, शोथ, गलगण्ड, श्लीषद, त्ववुद, मगपूर्ण वातरोग, अन्त्रवृदि, पीनस,

श्वास, खाँसी, भगन्दर, उपदश, चक्षुःशूल तथा सम्पूर्ण त्वचा के रोग नष्ट होते हैं ॥१२०-१२०॥

पञ्चतिरुघृत गुग्गुलु ।

निम्बामृताष्टपटोलनिदिग्धकानां, भागान् पृथक् दशपलान् विपचेद् घटेऽपाम् । अष्टांशेषितरसेन सुनिश्चितेन, प्रस्थं घृतस्यविपचेत्पिचुभागकल्कैः १५८ पाठाधिङ्ग सुरदारुगजोपकुल्याद्विक्त्तरनागरनिशाभिपिचव्यकुष्ठैः । तेजोवती मरिचवत्सकदीप्यकाग्निरोहिएयरुष्करवचाकण्मूलयुक्तः ॥ १५९ ॥ मंजिष्ठयातिविपया वरया यमान्या, संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः । तत्सेवितं विधिमतिमयलं समीरं सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥ १६० ॥ नाडीत्रणार्बुदभगन्दरगण्डमालाजत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् । यक्ष्मारुचिश्चसनपीनसकासशोषहृत् पाण्डुरोगगलविद्रधिवातरक्तम् ॥ १६१ ॥

काथारम्भसमये गुग्गुलुं श्लथपोट्टलिकायां चध्या दोलायन्त्रेण स्थिन्नं कृत्वा तप्तने काथजलेन ध्यानयित्वा घृते निःक्षिप्य पचेत् । दीप्यकं जीरा इति प्राचीनाः ।

नीम की छाल, गिलोय, अदुसे की जड़, परजल के पत्ते और भटकटैया; प्रत्येक आध-आध सेर लेकर २२ सेर ४८ तोले जल में पकायें । ३ सेर १६ तोले जल अवशिष्ट रह जाने पर उतार कर धान ले । काथारम्भ के समय ही २० तोले शुद्ध गुग्गुलु की ढीली पोटीली में बाँधकर स्थिन्न कर ले और उन्न उष्ण काथ में इस गुग्गुलु को मिलाकर फिर धान ले । परचात् इस गुग्गुलुमिश्रित काथ में १२८ तोले घृत और भिन्नलिखित औषधियों का कश्क डालकर पाक करें । कश्कार्थ—पाद, बायधिर्दग, देवदारु, गजपीपरी, जवास्तार, समीपार, सोंठ, हवर्दी,

सौंफ, चव्य, कूट, मालकांगनी, कालोमिर्च, कुड़ा की छाल, जीरा, चित्रक, भिलावाँ, वच, पिपरामूल, मजीठ, अतीव, त्रिफला और अबवायन ; ये सब एक-एक तोले । रोगी के बलानुसार मात्रा निश्चित करें । इस घृत के सेवन से अत्यन्त प्रबल सन्धि, हड्डी और मज्जागत वायुरोग, कुष्ठ नाडीम्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ऊर्ध्वज्वररोग, गुल्मरोग, घवासीर, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, खाँसी, शोष, हृद्रोग, पाण्डुरोग, गलविद्रधि और वातरक्त नष्ट होते हैं ॥ १२८--१६१ ॥

करवीर तैल ।

श्वेतकरवीरमूलं विपांशकं साधितं गोमूत्रे । चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटकृमिकिट्टिमजित्तैलम् ॥ १६२ ॥

सक्रोद कनेर की जड़ और मीठा उेलिया तथा गोमूत्र में तेल सिद्ध करके मालिश करने से चर्मदल, सेहुवाँ, पामा, विस्फोटक, कृमि और किट्टिम रोग का नाश होता है ॥ १६२ ॥

कृष्णसर्प तैल ।

मृतस्य कृष्णसर्पस्य शिरःपुच्छान्त्रवर्जितम् । अन्तर्धूमकृतं भस्म वागुजीतैलमिश्रितम् । एतेन मर्दानादेव गलत्कुष्ठं विनश्यति ॥ १६३ ॥

मरे हुए काले साँप के शिर, पूँछ और अँतों से रक्षित शरीर की अन्तर्धूम भस्म करके पाकुची के कलक और बाध द्वारा सिद्ध किये हुए तेल में मिलाकर मर्दान करने से गलित कुष्ठ नाश होता है ॥ १६३ ॥

कुष्ठराक्षस तैल ।

सूतकं गन्धकं कुष्ठं सप्तपर्णं च चित्रकम् । सिन्दूरं च रसानं च हरितालमवल्गुजम् ॥ १६४ ॥ आरग्वधस्य बीजानि जीर्णताम्रं मनःशिला । प्रत्येकं कर्मतेपां क्रतुतैलं पलाष्टकम् ॥ १६५ ॥

साधयेत् सूर्यतापेन सर्वकुष्ठविनाशनम् ।  
शिवत्रमौदुम्बरं कच्छू मांसवृद्धि भगन्द-  
रम् ॥ १६६ ॥ विचर्चिकां च पामानं  
वातरक्तं सुदारुणम् । गम्भीरं च तथोत्तानं  
नाशयेत् यस्य चक्षणात् ॥ १६७ ॥ कुष्ठ-  
राक्षसनाभेदं सावर्ण्यकरणं परम् । अश्वि-  
भ्यां निर्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहेतवे १६८

पारा, गन्धक, कूट, सतवन, की छाल, चीता की जड़, सिन्दूर, लहसन, हरताल, बाकुची, अमलतास के बीज, ताम्रभस्म और मैनिशिल; प्रत्येक एक-एक तोला लेकर ३२ तोले कहुए तेल में भिलाकर धूप में रख दे । जय तेल और सय द्वापू एक में मिल जायें तब उस तेल की मालिश करे । यह कुष्ठराक्षस नाम तेल सय प्रकार के कोढ़, शिवत्र कुष्ठ, उदुम्बर कुष्ठ, कच्छू, मांसवृद्धि, भगन्दर विचर्चिका, पामा, गम्भीर और उत्तान संज्ञक दारुण वातरक्त का नाशक है तथा कुष्ठक्रान्त स्थान को शरीर के तुल्य वर्णवाला करता है । लोक की भलाई के लिए इसे अश्विनीकुमारों ने बनाया था १६४-१६८ ॥

### कुष्ठकालानल तैल ।

सूतं गन्धं शिला तालं काञ्जिकै-  
र्मर्दयेद्दिनम् । तल्लिप्तवस्त्रवर्त्ता तां  
तैलाक्तां ज्वालयेदधः ॥ १६९ ॥ स्थिते  
पात्रे पतेत्तैलं गृहीत्वा लेपयेत्ततः ।  
कुष्ठस्थानं विशेषेण सर्वकुष्ठं हरत्यलम् ।  
इदं कालानलं तैलं वातकुष्ठे महौ-  
पधम् ॥ १७० ॥

एषां समं काञ्जिकं सर्वेषां द्विगुणं  
तिलतैलकम् । कल्कं वस्त्रे संलिप्य  
संशोष्य च वर्त्ति कुर्यात् तां तैलाक्तां  
संदशिकया ज्वालयित्वा उपरि तैलं दत्त्वा

पतितं तैलमधः पात्रे गृहीयात् । ततः  
कुष्ठस्थाने दद्यात् सिद्धफलः प्रयोगः ।

पारा, गन्धक, मैनिशिल और हरताल को सम भाग लेकर काँजी में पीस ले और कपड़े में लीप दे । जय कपड़ा सूख जाय तब उसकी बत्ती बनाकर तेल में भिगो ले और सँदसी से एक किनारा पकड़कर दूसरा, किनारा जला दे । जलते समय उस पर तेल छोड़ता जाये । बत्ती के नीचे एक पात्र रख दे जिससे तेल टपक कर उसमें गिरता जाये । इस तेल को कालानल कहते हैं । इसकी मालिश करने से सय प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं । यह वातिक कुष्ठ की महौपधि है ॥ १६९-१७० ॥

चारों ओपधियों के तुल्य काँजी लेनी चाहिए और सबसे दूना कहुआ तेल लेना चाहिए ।

### पड्विन्दु तैल ।

सिन्दूराभृततालगैरिकहला जाजीगद-  
यूत्रपौहृत्पापाणरसोनवाण दहनस्तुहर्क-  
दुग्धैर्निशा । राजीगन्धकहिंशुभिः परिमितैः  
शुक्त्या पचेत् सार्षपं तैलं प्रस्थमितं  
घृतस्य कुडवं पात्रं तथार्काद्रसम् ॥  
१७१ ॥ गोमूत्रश्च तथा विलीय सकलं  
पूतं शृतं रोगिणे दद्यात्कुष्ठविचर्चिकादिषु  
भिषङ् नात्रा तु पद्विन्दुकम् ॥ १७२ ॥  
सर्वकुष्ठे व्रणे सर्वे सर्वे च गलितक्षते ॥  
तैलमेतत् प्रशस्तं स्याद् धन्वन्तरिसु-  
सम्मत्म् ॥ १७३ ॥

कल्क के लिये सिन्दूर, मीठा तेलिया, हरताल, गेरू, कलिहारी, जीरा, कूट, सोंठ, मिर्च, पीपरि, मैनिशिल, लहसुन, सरफोंका, चीता की जड़, गृहर का दूध, मदार का दूध, हल्दी राई, गन्धक और हींग; ये सय दो-दो तोले, कहुआ तेल १२८ तोले, घी ३२ तोले, अद्रस का रस ६ सेर ३२ तोले, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले, यथाविधि तेल सिद्ध करके

धान जे इस तेल के मर्दन करने से कोढ़, विचर्चिका, सब प्रकार के कोढ़, ग्रन्थ ( घाव ) और गले हुए घाव अच्छे होते हैं । इस तेल का नाम पडविन्दु है । इस उत्तम तेल की धन्वन्तरिजी ने भी सराहना की है ॥ १७१-१७३ ॥

विप तैल ।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे चार्कं तगरमेव च । करवीरवचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥ १७४ ॥ मालतीसिन्धुवारश्च मञ्जिष्ठासप्तपर्णकम् । एषामर्द्धपलान् भागान् विपस्य द्विपलं तथा ॥ १७५ ॥ चतुर्गुणो गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् । शिवत्रविस्फोटकिटिमकीटलूताविचर्चिकाः ॥ १७६ ॥ कण्डूकच्छुरिकायाश्च ये ग्रन्था विपदूषिताः । ते सर्वे नाशमायान्ति तमः सूर्योदये यथा ॥ विपतैलमिदं नाम्ना सर्वग्रणविशोधनम् ॥ १७७ ॥

करज, हल्दी, दारुहल्दी, आक की जड़, तगर, कनेर की जड़, यच, कूट, सारिवा, लालचन्दन, मालती के पत्त, सगहलू के पत्ते, मंजीठ और सतौना की छाल; ये सब दो-दो तोले लेकर बहक करे । मीठा तेलिया ८ तोले, कडुआ तेल १२८ तोले और गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले । यथाविधि तेल सिद्ध करके इसकी मालिश करने से सकृद कोढ़, विस्फोटक, किटिम, कीटदोष, मकड़ी के विप से उत्पन्न फुन्सियाँ, विचर्चिका, कण्डू, कच्छू और विप से दूषित घाव; ये सब इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार । यह विप तेल सब प्रकार के घावों को शुद्ध करनेवाला है ॥ १७४-१७७ ॥

सोमराजी तैल ।

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्पपाः कुष्ठमेव च । करञ्जैडगजावीजं पत्राण्यारग्वधस्य च ॥ १७८ ॥ विपचेत् सर्पपं तैलं

नाडीदुष्टव्रणापहम् । अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ १७९ ॥ नीलिका पिडिका व्यङ्गा गम्भीरं वातशोणितम् । कण्डुकच्छुमशमनं दद्रुपामानिवारणम् ॥ १८० ॥

बाकुची, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों, कूट, करंज, पर्वाङ्ग के बीज और अमलतास के पत्ते; ये सब चार-चार तोले लेकर कल्क करे । कडुआ तेल १२८ तोले, पाकार्य जल ६ सेर ३२ तोले । यथाविधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से नासूर, झराब घाव, अठारह प्रकार के कोढ़, नीलिका, फुन्सियाँ, व्यंग, गम्भीर वातरक्त, खुजली, कच्छू, दाद और पामा ये रोग नष्ट होते हैं ॥ १७८-१८० ॥

वृहत्सोमराजी तैल ।

सोमराजितुलाकाथे तथा दद्रुहनस्य च । गोमूत्रस्य तथा पात्रे कल्कं दत्त्वा विचक्षणः ॥ १८१ ॥ विपचेत्कार्पिकैर्भगैः प्रस्थं तैलं तु सर्पपम् । चित्रकं लाडूलाख्या च नागरं कुष्ठमेव च ॥ १८२ ॥ हरिद्रा नक्तमालश्च हरितालं मनःशिला । आस्फोतार्ककरवीरंसप्तपर्णश्च गोमयम् ॥ १८३ ॥ खदिरो निम्बपत्रश्च गरिचं कासमर्दकम् । एतानि श्लक्ष्णपिष्टानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः ॥ १८४ ॥ हन्ति सर्वाणि कुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानि च । किट्टिमं दद्रुजातश्च गात्रवैवर्ण्यमेव च ॥ १८५ ॥ विशीर्णचर्ममांसादिदृढीकरणमुत्तमम् । पाण्डुरोगं तथा कण्डूं विसर्पं हन्ति दारुणम् । ये चान्ये त्वग्गता रोगास्तांस्तु शीघ्रं व्यपोहति ॥ १८६ ॥

बाकुची २ सेर कार्पिक जल २५ सेर ४८ तोले अर्पिष्ट ६ सेर ३२ तोले । पर्वाङ्ग के बीज ५ सेर, कापार्य जल २५ सेर ४८ तोले,

अवशिष्ट ६ सेर ४८ तोले, गोमूत्र ६ सेर ४८ तोले, कडुआ तेल १२८ तोले । कल्क के लिये चीता की जड़, कलिहारी, सोंठ, कूट, हल्दी करंज, हरताल, मैनशिल, सारिवा, आक की जड़, कनेर, सतवन, गोबर, खैर, नीम के पत्ते, मिर्च और कसौंदी; ये सब एक-एक तोला । यथाविधि तेल सिद्ध करके मालिश करे तो यह गृहत्सोमराजी तेल सब प्रकार के कुष्ठ कीड़ों से युक्त दुष्ट व्रण, फिट्टिम कुष्ठ, सब प्रकार के दाद, शरीर की विषयता, पायधुरोग, खुजली और विसर्प; इन रोगों को नष्ट करता है । गले हुए चर्म और मांस आदि को हट करता है तथा सब प्रकार के चर्म-रोगों को दूर करता है ॥ १८१--१८६ ॥

#### मरिचादि तैल

मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटा त्रिवृत् । शक्रद्रसविशालारुङ्गनिशायुग्दारुचन्दनैः ॥ १८७ ॥ कटुतैलात् पचेत् प्रस्थं द्वचत्तैर्विपपलान्वितैः । सगोमूत्रैस्तदभ्यङ्गाद् दद्रुशिवत्रविनाशनम् । सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत् प्रशस्यते ॥ १८८ ॥ कल्क के लिये कालीमिर्च, हरताल, मैनशिल, आक का दूध, कनेर की जड़, निसोध, गोमयस, इन्द्रायण की जड़, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु और लाल चन्दन; प्रत्येक दो-दो तोले । विप (मीठा तेलिया) ४ तोले कडुआ तेल १२८ तोला, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले यथाविधि तैल सिद्धकर मर्दन करने से यह मरिचादि तैल दाद और सफेद कोढ़ को नाश करता है । एवम् सब प्रकार के कुष्ठों में भी लाभदायक है ॥ १८७-१८८ ॥

#### गृहन्मरिचादि तैल ।

मरिचं त्रिवृत्ता दन्ती क्षीरमार्कं शक्रद्रसः । देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १८९ ॥ विशाला करवीरश्च हरितालं मनःशिला । चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ १९० ॥

शिरीषं कुटजो निम्बः सप्तपर्णः स्नुहामृता । शम्पाको नङ्गमालोऽब्दं खदिरं पिप्पली वचा ॥ १९१ ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विपस्य द्विपलं भवेत् । आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥ १९२ ॥ मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्भिर्गुणा पचेत् । पक्त्वा तैलवरं ह्येतत् प्रक्षयेत् कुष्ठकान् व्रणान् ॥ १९३ ॥ पामाविचर्चिकादद्रुकएडूविस्फोटकानि च । बलयः पलितं छाया नीली व्यङ्गं तथैव च ॥ १९४ ॥ अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यञ्च जायते । प्रथमे वयसि स्त्रीणांयासान्स्वतुदीयतो ॥ १९५ ॥ परामपि जरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम् । बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा वायुपीडितः । एभिरभ्यङ्गनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १९६ ॥

कालीमिर्च, निसोध, दन्ती (जमालगोटा की जड़), आक मदार का दूध, गोबर का रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामासी, कूट, लालचन्दन, इन्द्रायण की जड़-कनेर की जड़, हरताल, मैनशिल, चीता की जड़, कलिहारी, वायविदंग, चकवैड (पवाई के बीज), सिरसा की छाल, कुड़े की छाल, नीम की छाल, सतवन, थूहर, गिलोय, अमलतास, करंजुआ, नागरमोथा, खैर, पीपरि, वच और मालकांगनी; ये सब चार-चार तोले, मीठा तेलिया ८ तोले; इन सबका कल्क बनावे । कडुआ तेल ६ सेर ३२ तोले और गोमूत्र २५ सेर ४८ तोले । यथाविधि मिट्टी या लोह, के पात्र में धीरे-धीरे मन्दाग्नि से तेल सिद्ध करे । इस तेल के मर्दन करने से कोढ़, घाव, पामा, विचर्चिका, दाद, खुजली, कोढ़, सिकुड़न, बाल पकना, छाया, नीलिका और व्यंग रोग नाश होता है तथा शरीर में सुकुमारता आ जाती है । युवा अवस्था में यदि छियों को

इसकी नस्य दी जाय तो बुढ़ापे में भी उनके स्तन ढीले न हों । वायुरोग से पीड़ित बाल, घोड़ा और इन्धियों के शरीर में मसलने से उनमें हया के तुरय वेग हो जाता है ॥ १८१-१८६ ॥

कन्दर्पसार तैल ।

सप्तपर्णस्तथा काली गुहूचोपिचुमर्द-  
कम् । शिरीषञ्च महातिक्ता जया  
तुम्बी मृगादनी ॥ १८७ ॥ निशादश-  
पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
तैलमस्यं समादाय गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥  
१८८ ॥ आरग्वधो भृङ्गराजो जयाधुस्तू-  
रात्रयः ऐन्द्राशनाग्निखर्जूरं गोमयार्क-  
स्तुहीच्छदम् ॥ १८९ ॥ तैलतुल्यं प्रदा-  
तव्यं स्वरसञ्च पृथक् पृथक् । महाकाल-  
वचा ब्रह्मी तुम्बग्विग्नहृदपुत्रिकाः ॥  
२०० ॥ कुचेला कुलका रात्रिर्मधनामा  
च ग्रन्थिका । शम्पाकमर्कत्तोरश्च कासुन्दे-  
स्वरमूलकम् ॥ २०१ ॥ आचुजिह्वी  
महातिक्ता विशाला छविपत्रकम् । पूति-  
कास्फोतमूर्त्ता च सप्तपर्णशिरीषकम् ॥  
२०२ ॥ कुटजं पिचुमर्दश्च महानिम्बं  
तथैव च गुहूची चन्द्ररेखा च सोमराट्  
चक्रमर्दकम् ॥ २०३ ॥ तुम्बुरभृङ्गयष्ट्या-  
हकन्दकं कटुरोहिणी । शटी दावी  
त्रिवृत्पत्रग्रन्थिकागुरुपुष्करम् ॥ २०४ ॥  
कर्पूरं कटफलं मांसीं मुरैलाटरुपाभयम् ।  
एतेषां कार्ष्णिकैः कल्कैर्नाम्ना कन्दर्प उच्य-  
ते ॥ २०५ ॥ अष्टादशविधं कुष्ठं अस्थि-  
मज्जगतं तथा । हस्तपादागुलीसंधिग-  
लितं सर्वसन्धिषु ॥ २०६ ॥ अधिकानि च  
मांसानि यस्य गात्रे भवन्ति हि । नासा-  
कर्णास्यवैकल्यं भेकाकारवपुस्त्वचम् ॥

२०७ ॥ श्वेतं रक्तं तथा कुष्ठं नानावर्णं  
विपादिकम् । श्वित्रं चतुर्विधञ्चैव वातशो-  
णितमेव च ॥ २०८ ॥ कपालं कृमिजं  
कुष्ठं कंदूदद्रुविचर्चिकान् । पामाविस्फो-  
टका नीली कृमिष्टद्धि तथैव च ॥ २०९ ॥  
कीटदद्रुममूरी च किष्टिमं रत्नमण्डलम् ।  
कुष्ठमौदुम्बरं पद्मं महापद्मं तथैव च ॥  
२१० ॥ गलगण्डाबुदं हन्याद्गण्डमालं  
भगन्दरम् । वातजं पित्तजञ्चैव श्लेष्मजं  
सान्निपातिकम् ॥ एकोल्वणं ह्युल्लणञ्च  
कुष्ठं हन्यान्न संशयः ॥ २११ ॥

क्वाथ के लिये सतवन, नील, गिलोय, नीम  
की छाल, सिरस की छाल, बकायन की छाल,  
जयन्ती, कडुई तूँधी, इन्द्रायण की जड़ और  
हल्दी, ये सब चालीस चालीस तोले लेकर २५  
सेर ८ तोले जल में थोड़ावे । १ सेर ३२  
तोले क्वाथ रहने पर उतारकर छान ले ।  
कडुचा तेल १२८ तोले । गोमूत्र ६ सेर ३२  
तोले । अमलतास, जयन्ती, भंगरा, हल्दी,  
भाग, चीता की जड़ खजूर के पत्ते, गोबर,  
आक के पत्ते, धूर के पत्ते, इनका पृथक् पृथक्  
स्वरस १२८ १२८ तोले ले । कलक के लिये  
लाल इन्द्रायण, वच ब्रह्मी, कडुई तूँधी, चीता  
की जड़ धीकुवार, कुचिला, परबल के पत्ते,  
हल्दी, मोथा, पिपामूल, अमलतास, आक  
का दूध, कर्सीदी, शिवलिङ्गी की जड़, आचुमूल  
( छाल की जड़ ) मजीठ, चिरायता इन्द्रायण  
की जड़ छविपत्र ( त्रिछाटी के पत्ते ), करज  
पत्र, मदार की जड़ मूर्त्ता, सतवन, सिरस की  
छाल, कुडा की छाल, नीम की छाल, बकायन  
की छाल, गिलोय, बाकुची, सोमराजी,  
( बाकुची के बीज ), पवाई, धनिया, भगरा, मुल-  
हठी, जमीकन्द, कुटकी, कचूर, दाहहल्दी, निसीध  
पद्मस, गठिवन, अगर, पोहवरमूल, कपूर,  
कायफल, जटामासी, मुरामासी, इलायची छोटी,  
भड्सा और रुस ये सब एक-एक तोला ले । यथा  
विधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से यह

कन्दर्पसार तेल अठारह प्रकार के कोद, गाँठ और मज्जागत कुष्ठ, हाथ और पैर की अंगुलियों की संधियों तथा अन्य संधियों का गलना, अधिक मांस बढ़ना, नाक और कान का विकृत हो जाना, शरीर की मेंढ़क की-सी खाल होना, श्वेत तथा रक्त कुष्ठ, अनेक प्रकार की धिपादिका, चार प्रकार का सक्रोद कोद, वातरक्त, कपाल कुष्ठ, कृमिज कुष्ठ खाज, दाद, विचक्षिका, पामा आदि की फुन्सियाँ, नीली, कृमि पड़ना, कीटरोग, दाद, मसूरिका, किष्टिम, लाल चकचे, श्रौदुम्बरकोद, पद्मकोद महापद्मकोद, गलगण्ड, अश्वत्थ, गण्डमाला, भगन्दर तथा वातज पित्तज, कफज और सान्निपातिक एकोत्थण तथा द्वयुत्थण कुष्ठ रोगों को नष्ट करता है। इसमें संशय नहीं ॥ १६७-२११ ॥

अमृतभल्लातक ।

भल्लातकानां पवनोद्धतानां घृन्तच्यु-  
तानाञ्च यदाढकं स्यात् । तच्चेष्टकाचूर्ण-  
कण्ठीर्विघृष्यभक्षालयित्वा विसृजेत् प्रवाते ॥  
२१२ ॥ शुष्कं पुनस्तद्द्विदलीकृतञ्च ततः  
पचेदप्सु चतुर्गुणाम् । तत्पादशेषं परिपूत-  
शीतं क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तु ॥ २१३ ॥  
तत्पादशेषं पुनरैव शीतं घृतेन तुल्येन  
पुनः पचेत्तु । तदूर्ध्वया शर्करया विकीर्णं  
ततः खजेनोन्मथितं विधाय ॥ २१४ ॥  
तत्सप्तरात्रादुपजातवीर्यं सुधारसादप्यधिक-  
त्वमेति । मार्तण्डिवुद्धः कृतदेवकाद्यौ  
मात्राञ्च खादेत् स्वशरीरयोग्याम् ॥ २१५ ॥  
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न चातपे  
चाध्मनि मैथुने च । यथेष्टचेष्टो विहितो-  
पयोगाद् भवेन्नरः काञ्चनराशिगौरः ॥  
२१६ ॥ अनन्यमेधा नरसिंहतेजा हृष्टे-  
न्द्रियोऽन्याहृतबुद्धिसत्त्वः । दन्तारच शी-  
र्णाः पुनरुद्भवन्ति केशारच शुक्लाः पुनरेव

दिव्याः ॥ २१७ ॥ नीलाञ्जनालिप्रतिमा  
भवन्ति त्वचो विकर्णाः पुनरेव दिव्याः ।  
विशीर्णकर्णागुलिनासिकोऽपि कृम्यर्दितो  
भिन्नगलोऽपि कुप्री ॥ २१८ ॥ सोऽपि  
क्रमादं कुरिताग्रशाखस्तस्यथा भाति नभो-  
ऽम्बुसिक्कः । उग्रान् मयूरान् जयति स्व-  
रेण बलेन नागस्तुरगो जवेन ॥ २१९ ॥  
रसायनस्यास्य नरः प्रसादाद् बृहस्पते-  
रप्यधिकोऽपि बुद्ध्या । ग्रन्थान् विशालान्  
पुनरुक्तिदोषान् गृह्णाति शीघ्रं न च नश्यते  
तु ॥ २२० ॥ कुर्वन्निर्मं कल्पमनल्पबुद्धि-  
जीविन्नरो वर्षशतानि पञ्च । राजा ह्ययं-  
सर्वरसायनानां चकार योगं भगवानग-  
स्त्यः ॥ २२१ ॥

पवन के लगने से गिरे हुए भिलावें ३ सेर  
१६ तोले लेकर हूँट के चूर्ण में डालकर सूब  
मसले फिर जल से धोकर हवा में सुखावे। जब  
भिलावें सूख जायें तब उनके दो-दो टुकड़े करके  
१२ सेर ६४ तोले जल में शौंटावे। जब ३  
सेर १६ तोले जल बाकी रहे तब ध्यान कर  
ठंडा कर ले। फिर ३ सेर १६ तोले दूध में  
डालकर पकावे। जब चतुर्थांश दूध रह जाय  
तब ठंडा करके ३ सेर १६ तोले घी में पकावे  
और उसमें १२८ तोले शक्कर डाल कलछी से  
सूब चलाकर मिला दे। इसको सात दिन तक  
भरा रखे। ऐसा करने से इसमें वीर्य पैदा हो  
जाता है और अमृत से भी अधिक गुणदायक  
हो जाता है। प्रातःकाल स्नानसन्ध्योपासन  
आदि कृत्यों से निवृत्त होकर अपने बलानुसार  
इसका सेवन करे। इसके सेवन में धन्न-पान,  
धूप और स्त्री-प्रसङ्ग आदि का परहेज नहीं है।  
इसका विधिपूर्वक सेवन करने से मनुष्य का  
शरीर सुवर्ण के तुल्य गौरवर्ण हो जाता है  
और बुद्धिमान्, तेजस्वी, प्रबलेंद्रिय तथा  
अकुपितबुद्धि हो जाता है। गिरे हुए दाँत  
फिर उत्पन्न हो जाते हैं तथा सफेद बाल

अमर के तुरप्य काले हो जाते हैं । रास का वर्ण सुन्दर हो जाता है । जिमकी कोर से घंगुनी, कान और नासिका गल गई हो, कीड़े पड़ गये हों और गला विकृत हो गया हो वह मनुष्य इसके मेघन से निर्दोष प्रगल्भादि अगवाला हो जाता है । जैसे वर्षा के पानी से वृष शायर, पत्रादि से युद्ध हो जाते हैं । स्वर से ऊँट और मयूर को तथा बल से हाथी और घेग से घोड़ा को जीत लेता है । इस रसायन के प्रभाव से बुद्धि में बृहस्पति के समान हो जाता है और पुनरग्नि दोष से रक्षित बड़े-बड़े प्रणयों को और उनके पुनरग्नि दोषों को शीघ्र हृदयद्रम कर लेता है और उनकी स्मृति शीघ्र नष्ट नहीं होती है । इस कणक को सेवन करनेवाला मनुष्य २०० वर्ष तक जीता है । भगवान् अगस्त्यजी ने इस रसायनराज को कहा है ॥ २१२-२२१ ॥

महाभल्लातकगुड ।

निम्बं गोपारुणा कट्टी त्रायन्ती  
त्रिफला घनम् । पर्यटावल्लुजानन्ता वचा-  
खदिरचन्दनम् ॥ २२२ ॥ पाठा शुण्ठी  
शटी भार्गी वासा भूनिम्बवत्सकम् ।  
रयामेन्द्रवारुणीमूर्धा विडङ्गेन्द्रविपानलम् ॥  
२२३ ॥ हस्तिकर्णामृताद्रेका पटोलं रज-  
नीद्वयम् । कण्णारग्वधसप्ताहकृष्णवेत्रो-  
घटाफलम् ॥ २२४ ॥ भूकन्दं तृणपर्णञ्च  
जिह्वी पञ्चाटमूशली । विप्लकसेना च  
कैटयं शरपुङ्गाथ कञ्चुकी ॥ २२५ ॥  
येषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपा-  
चयेत् । अष्टभागावशिष्टन्तु कपायमवतार-  
येत् ॥ २२६ ॥ भल्लातकसहस्राणि त्रीणि  
द्वित्रिवार्ष्णेऽम्भसि । चतुर्भागावशेषन्तु  
कपायमवतारयेत् ॥ २२७ ॥ तौ कपायौ  
समादाय वत्सपतौ च कारयेत् । गुडस्य तु  
तुलां ताभ्यां कपायाभ्यां पचेद्भिपक् २२८  
भल्लातकसहस्राणां मज्जनं तत्र दापयेत् ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैन्धवानां पलं पलम् ॥  
२२९ ॥ दीप्यकस्य पलञ्चैव चतुर्जातं  
पलांशिकम् । सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेदत्र गन्ध-  
कञ्च चतुःपलम् ॥ २३० ॥ स्निग्ध-  
भाण्डे विनिःक्षिप्य स्थापयेत् कुशलो  
भिपक् । महाभल्लातको ह्येप महादेवेन  
निर्मितः ॥ २३१ ॥ जगतस्तु हितार्थाय  
जयेच्छ्रीघ्रं निषेधितः । शिवत्रमौदुम्बरं  
दट्टुमृष्यजिह्वं सकाकणम् ॥ २३२ ॥  
पुण्डरीकञ्च चर्मोरुयं विस्फोटं मण्डलं  
तथा । कण्डू कपालकुष्ठञ्च पामानं सवि-  
पादिकम् ॥ २३३ ॥ वातरक्तमुदावर्त्त  
पाण्डुरोगव्रणकृमीन् । अर्शांसि पटप्रका-  
राणि कासं र्वासं भगन्दरम् ॥ २३४ ॥  
तदभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम् ।  
अनुपाने प्रयोक्तव्यं द्विन्नाकाथं पयो-  
ऽथवा । भोजने च तथायोज्यमुष्णञ्चान्नं  
विशेषतः ॥ २३५ ॥

नीम की छाल, कालीसर ( कालीसरिवा )  
अतीस, कुटकी, त्रयमाण, त्रिफला, नागरमोथा,  
पित्तपापदा, वाकुची, अनन्त मूल, बच, खदिर,  
लालचन्दन, पादी, सोंठ, कचूर, भारगी, घड़सा,  
चिरायता, कुड़ा की छाल, विधाना, इन्द्रायण  
की जड़, मर्रोफली, बिड़ग, हृदयव, मीठा विप,  
चीता की जड़, हस्तिकर्ण ( पलाशभेद ) की छाल,  
गिलोय, बकायन की छाल, परबल के पत्ते,  
हल्दी, दारुहल्दी, पीपरि, अमलतास, सतवन,  
काली निसोथ, बेल, सफेद पुधुची, जमीकन्द,  
तृणपर्ण ( चीनाघास ), मजीठ, पवाई, मुसली,  
प्रियगु, कायफल, सर्फोंका और कञ्चुकी  
( सिरस की छाल ); ये सब आठ आठ तोले  
लेकर २५ सेर ४८ तोले जल में ढाँटाये । जब  
३ सेर १६ तोले अवशिष्ट रहे तब ढतार कर  
रख ले । फिर तीन हजार ३००० भिलायें  
लेकर उनके टुकड़े-टुकड़े करके २५ सेर ४८



तोले जल में छोटावे । जब ६ मेर ३२ तोले काथ शेष रहे तब उतार कर रख ले । अथ दोनों क्वाथों को कपड़े से छानकर और उसमें ४ सेर गुड़ मिलाकर पकावे । पकाते समय एक हजार भिलावों की गिरी उसमें मिला दे । जब पाक तैयार हो जाय तब त्रिकफला, त्रिकटु, नागरमोथा, संधानमक और अजवाइन चार-चार तोले ; दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेशर प्रत्येक एक-एक तोले ; शुद्ध आंवलासारगन्धक १६ तोले कूट पीस कर उसमें मिला दे और चिकने बर्तन में भरकर रख दे । यह महाभस्त्रातक महादेवजी का बनाया हुआ है । इसके योग्य मात्रा में खाने से सकृद कोढ़, उर्दयर, दाद, श्मश्रुजिह्व, काकण, पुण्डरीक, चर्मदल, विस्फोट, मण्डल, खुजली, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त, पाण्डुरोग, घाव, कृमि, छह प्रकार की बवासीर, कासरवास, भगन्दर, बलीपलित और दारुण आम-वात आदि रोग नष्ट होते हैं । अनुपान गिलोय का काढ़ा या दूध । पथ्य के लिये गर्म-गर्म भात देना चाहिए ॥ २२२-२३५ ॥

सर्वेश्वर रस ।

सुवर्णरजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् ।  
मापैकं मृतवज्रञ्च तालसत्त्वं पलद्वयम् ॥  
२३६ ॥ जम्बीरोन्मत्तसलिलैः स्नुहार्कविप-  
मुष्टिभिः । मर्द्यं ह्यारिजैर्द्रवैः प्रत्येकेन  
दिनं दिनम् ॥ २३७ ॥ एवं सप्तदिनं मर्द्यं  
तद्रौलं वस्त्रवेष्टितम् । बालुकायन्त्रगं स्वेद्यं  
त्रिदिनं लघ्वद्विना ॥ २३८ ॥ आदाय  
चूर्णयेत् श्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विपम् ।  
द्विपलं पिप्पलीचूर्णमिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥  
२३९ ॥ गुञ्जाद् लिखते चौरैः सुप्ति-  
मण्डलकुष्ठनुत् । बाकुची देवकाष्ठं च  
शाणाद् तु विचूर्णयेत् ॥ लिहैदेरण्डतला-  
क्रमनुपानं सुखावहम् ॥ २४० ॥

सोने की भस्म, चाँदी की भस्म, हरएक ५ तोले, हीरक भस्म १ माशा ( ८ रत्ती ), हरिताल सत्त्व ८ तोले । इन्हें एकत्र मिला जम्बीर, धत्तूरपत्र, सेहुण्डपत्र, आक के पत्ते, कुचला और कनेर की जड़, इनके रस से एक-एक दिन घोटें । इस प्रकार सात-सात दिन घोटकर पिण्डाकार कर ले परचात् इसे वक्ष में लपेट कपडमिट्टी कर बालुकायन्त्र में मन्द-मन्द आँच से तीन दिन स्वेदन करे । स्वाङ्गशीतल होने पर महीन चूर्ण करके शुद्ध बलुनाग का चूर्ण ४ तोले, पीपल का चूर्ण ८ तोले मिलाकर आधी रत्ती की मात्रा शहद के साथ चटावे । यह सुप्ति (त्वचा में स्पर्शानुभव न होना) तथा मण्डलकुष्ठ को नष्ट करता है । अनुपान बाकुची के घीज तथा देवदारु का चूर्ण मिलित २ माशे को फिञ्चित् अथवा के तेल में मिलाकर सेवन करना चाहिए ॥ २३६-२४० ॥

ब्रह्मरस ।

भागैकं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं त्वग्नि-  
वागुजी । चूर्णन्तु ब्रह्मबीजानां प्रतिद्वादश-  
भागकम् ॥ २४१ ॥ त्रिशङ्गागं गुडस्यापि  
चौरैः सुप्तिमुत्तमण्डलम् ॥ पातालगरुडीमूलं  
जलैः पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ २४२ ॥

रसबिन्दू, गन्धक, चित्रक, बाकुची घीज, ( कालीजीरी ), तथा पलाशबीज अथवा भारंगी-बीज हरएक बारह-बारह भाग । गुड़ ३० माग, इन्हें एकत्र शहद के साथ घोटकर गोक्षिपा बनावे । मात्रा—४ रत्ती । इसके सेवन से सुप्ति तथा मण्डलकुष्ठ नष्ट होता है । अनुपान—पातालगरुडी ( जलजमनी ) की जड़ तथा जल ॥ २४१-२४२ ॥

चन्द्रानन रस ।

सूतव्योभाग्नयस्तुल्यास्त्रिभागा गन्ध-  
कस्य च । काकोदुम्बरिकाक्षीरैः सर्वमेकत्र  
मर्दयेत् ॥ २३३ ॥ त्रिगुञ्जां च गुडौ कृत्वा  
कुष्ठरोगे प्रयोजयेत् । देहशुद्धिं पुरा कृत्वा

सर्पकुष्ठानि नाशयेत् ॥ एष चन्द्राननो  
नाम साक्षात् श्रीभैरवो दिनः ॥ २४४ ॥

पारा, अन्नकभस्म, चित्रक प्रत्येक एक-एक  
भाग, गन्धक ३ भाग । इन्हें कठगूलर क दूध  
से घोटें । मात्रा—३ रत्ती । इसके सेवन से कुष्ठरोग  
नष्ट होता है । इसके सेवन करने से पहिले यमन-  
धरेचन आदि द्वारा शरीर की शुद्धि कर लेना  
चाहिए । यह चन्द्रानन रस श्रीभैरवजी का कहा  
हुआ है ॥ २४३-२४४ ॥

महातालेश्वर रस ।

तालताप्यशिला सूतं शुद्धं तद्गणसैन्ध-  
वम् । समं सञ्चूर्णयेत् खल्ले सुताद् द्विगुण-  
गन्धकम् ॥ २४५ ॥ गन्धाद् द्विगुण-  
लौहश्च जम्बीराम्लेन मर्दयेत् । ततो लघु-  
पुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ २४६ ॥  
त्रिशदंशं त्रिपञ्चात्र क्षिप्त्वा सर्पं विचूर्ण-  
येत् । माहिपाज्येन सम्मिश्रं गुञ्जैकं भक्षयेत्  
सदा ॥ २४७ ॥ मध्याज्यैर्वागुजीचूर्णं माप-  
मात्रं लिहेदनु । सर्वान् कुष्ठान् निहन्त्याशु  
महातालेश्वरो रसः ॥ २४८ ॥

शुद्ध हरिताल, स्वर्णमाषिक की भस्म, शुद्ध  
मैन्शिल, शुद्ध पारा, सुहागा, संधानमक, हरएक  
एक एक भाग, गन्धक २ भाग, लौहभस्म ४  
भाग इन्हें इकट्ठा मिलाकर जम्बीरी के रस से  
घोटें, परचात् लघुपुट दे । स्वाङ्गशीतल होने पर  
सब चूर्ण का तीसवाँ भाग शुद्ध बलुनाग मिलावे ।  
मात्रा—१ रत्ती । औषध को भैंस क घी में  
मिलाकर सेवन करना चाहिए । अनुपान—  
कालीजीरी का चूर्ण १ माशा तथा शहद और  
घी । यह रस सम्पूर्ण कुष्ठों को नष्ट करता  
है ॥ २४५-२४८ ॥

माणिक्य रस ।

पलं तालं पलं गन्धं शिलायारच  
पलार्द्रकम् । चपलः शुद्धसीसश्च ताम्रभ्र-  
मयोरजः ॥ २४९ ॥ एतेषां कोलभागश्च

वट्तीरेण मर्दयेत् । ततो दिनत्रयं घर्मे  
निम्नकाथेन भावयेत् ॥ २५० ॥ गुहूची-  
नालहिन्तालाननीलीभ्रिण्डिकाः ।  
शोभाञ्जनमुराजाजीनिर्गुण्डीहयमारकम् ॥  
२४१ ॥ एषां शाणमितं चूर्णमेकीकृत्य  
सरिच्छेत् । मृत्पात्रे कठिने कृत्वा मृदम्परयुते  
दृढे ॥ २५२ ॥ एकाकी पाकविधौ नग्नः  
शिथिलकुन्तल । पचेदवहितो रात्रौ  
यत्रात्संयतमानसः ॥ २५३ ॥ तद्विजा-  
नीहि भैषज्यं सर्पकुष्ठविनाशनम् । सर्पिपा  
मधुना लौहपात्रे तदण्डमर्दितम् ॥ २५४ ॥  
द्विगुञ्जं सर्पकुष्ठानां नाशनं बलवर्द्धनम् ।  
शीतलं सारसं तोयं दुग्धं वा पाकशीत-  
लम् ॥ २५५ ॥ ग्रानीतं तत्क्षणाटाज-  
मनुपान सुग्वावहम् । वातरक्तं शीतपित्तं  
द्विकाश्च दारुणां जयेत् ॥ २५६ ॥ ज्वरान्  
सर्वान् वातरोगान् पाण्डुं कण्डूश्च काम-  
लाम् । श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो बहु-  
यत्नतः ॥ २५७ ॥

शुद्ध हरिताल ४ तोले, गन्धक ४ तोले,  
मैन्शिल २ तोले, शुद्धपारा, शुद्धसीसा की भस्म  
ताम्रभस्म, अन्नकभस्म, लौहभस्म हरएक ६  
माशे, इन्हें एकत्र मिलाकर वरगद के दूध से घोटकर  
नीम के बवाध से तीन दिन भावना दे धूप में  
सुखा ले । परचात् इसके साथ गिलोय, गन्धयाला,  
हिन्ताल, कर्कच, नोली कटसरैया, सहिजना,  
मुरामासी, जीरा, सम्मालू, कनेर की जड़ हर-  
एक का चूर्ण तीन तीन माशे ले, इन्हें एकत्र मिला-  
कर नदी किनारे एक कपडमिट्टी किये हुए कठिन  
मिट्टी के पात्र में रखले । इसके बाद पाकविधि को  
जाननवाला वचन नग्न होकर केदा खोले हुए इकल्ला  
रात्रि में शान्त चित्त हो पाक करे । यह सम्पूर्ण  
कुष्ठों को नष्ट करता है । मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती  
तक । सेवनकाल में इसे घृत और शहद के साथ  
लौहपात्र में लौहदण्ड द्वारा घोटकर सेवन करावे ।

अनुपान—तालाब का शीतल जल, थोड़ाकर ठंडा किया दूध अथवा बकरी का ताज़ा दूध । यह रस वातरक्त, शीतपित्त, हिका, ज्वर, वातरोग, पाण्डु, कण्डू तथा कामला रोग को नष्ट करता है ॥ २४६--२४७ ॥

कुष्ठनाशन रस ।

चिरविल्वपत्रपथ्याशिरीषश्च विभीतकम् । काण्डोडुम्बरिकामूलं मूत्रैरालोड्य फ्रेनितम् ॥ २५० ॥ कर्पूमात्रं पिबेद्रोगी गोस्तन्या सह दङ्गणम् । सप्तसप्तकपर्यन्तं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ २५६ ॥

करञ्जपत्र, हृद, सिरस की छाल, बहेडा, कठगूलरि की जड़, इन्हें एकत्रकर गोमूत्र में डाल मथ डाले । जब भाग पैदा हो जाय तब रोगी को मुनक्का और सुहागा के साथ मिलाकर सेवन कराने से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होते हैं । चूर्ण की मात्रा—२ माशे, गोमूत्र २ तोले ॥ २५०--२५६ ॥

पारिभद्र रस ।

मूर्च्छितं सूतकं धात्रीफलं निम्बस्य चाहरेत् । तुल्यांशं खदिरकाथैर्दिनं मर्धश्च भक्षयेत् ॥ गुञ्जैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राहयो रसः ॥ २६० ॥

रससिन्दूर, थांबला, निंबूली, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर खदिरकाष्ठ के बाथ से घोटकर एक रत्ती की गोलियाँ बनावे । यह रस दाद और कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ २६० ॥

कुष्ठारि रस ।

काण्डोडुम्बरिकाचूर्णं ब्रह्मदण्डीमलात्रयम् । प्रत्यहं मधुना लीढं वातरक्तं निहन्ति च ॥ २६१ ॥ चरद्रक्तश्चरन्मांसं मासमात्रेण सर्जथा । गलत्प्यं पतत्कीटं त्रिमापं सेव्यमीरितम् ॥ २६२ ॥

कठगूलरि का, चूर्ण, भारगी, खरटी, अति-

बला, नागबला, इन्हें एकत्र मिलाकर शहद के साथ चाटने से वातरक्त और गलत्कुष्ठ नष्ट होता है । मात्रा—३ माशे ॥ २६१--२६२ ॥

कुष्ठकालानल रस ।

गन्धं रसं दङ्गणताम्रलौहं भस्मीकृतं मागधिकासमेतम् । पञ्चाङ्गनिम्बेन फलत्रिकेण विभावितं राजतरोस्तथैव । नियोजयेद्रक्तत्रयप्रमाणं कुष्ठेषु सर्वेषु च रोगसङ्घे ॥ २६३ ॥

गन्धक, पारा, सुहागा, ताम्रभस्म, लौहभस्म, पीपल, इन्हें एकत्र कर इसमें नीम के पञ्चाङ्ग (पुत्ते, फूल, फल, जड़, छाल), त्रिकला तथा अमलतास की छाल, इनके बवाथ की भावना देकर तीन तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसके सेवन से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २६३ ॥

गलत्कुष्ठारि रस ।

रसो विलिस्ताम्रमयःपुरोग्निशिलाजतु स्याद्विपतिन्दुकोऽग्रे । सर्वश्च तुल्यं गगनं करञ्जबीजं तथा भागचतुष्टयश्च ॥ २६४ ॥ सम्मर्द्य गाढं मधुना घृतेन गुञ्जाद्वयश्चास्य निहन्त्यवरयम् । कुष्ठं किलासमपि वातरक्तं जलोदरं वाथ विवद्धमूलम् ॥ २६५ ॥ विगीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि भवेत्प्रसादात् स्मरतुल्यमूर्तिः ॥ २६६ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, लौहभस्म, गुग्गुल, चित्रक, शुद्ध शिलाजीत, कुचिला प्रत्येक एक-एक भाग ; अन्नकभस्म, करञ्जबीज, हरएक चार-चार भाग, इन्हें एकत्र कर घोंटे । मात्रा—२ रत्ती । अनुपान—शहद तथा घी । यह रस कुष्ठ, शिवत्र, वातरक्त, जलोदर आदि रोगों को नष्ट करता है । जिस रोगी के वान, अँगुली तथा नाक आदि गलत्कुष्ठ के कारण गल गये हों यह भी यदि इसे सेवन करे तो इसके प्रभाय से कामदेव के समान स्वल्पवाला हो सकता है ॥ २६४--२६६ ॥

घज्जवटी ।

शुद्धसूताग्निमरिचं सूताद् द्विगुण-  
गन्धकम् । काकोटुम्बरिकाक्षीरैर्दिनं मर्द्य  
प्रयत्नतः ॥ २६७ ॥ वराव्योषकपायेण  
वटीश्चास्य समाचरेत् । लिह्याद्घज्जवटी  
होषा पामारोगविनाशनी ॥ २६८ ॥

शुद्ध पारा, चित्रक, कालीमिर्चं प्रत्येक एक  
पत्र भाग, गन्धक २ भाग, इन्हें एकत्र मिला-  
कर कठगूलरि के दूध से १ दिन घोटें । मात्रा—  
२ रत्नी । अनुपान—त्रिफला और त्रिकुटा का  
कषाघ । इसके सेवन से पामा रोग नष्ट होता  
है ॥ २६७—२६८ ॥

कुष्ठकुठार रस ।

भस्मसूतसमो गन्धो मृतायस्ताम्र-  
गुग्गुलुः । त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च  
शिलाजतु ॥ २६९ ॥ इत्येतच्चूर्णितं  
कुर्यात् प्रत्येकं भागपोडश । चतुषष्टि-  
करञ्जस्य वीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ २७० ॥  
चतुःषष्टिमृतश्चाभ्रं मध्याज्याभ्यां विलो-  
डयेत् । स्निग्धभाण्डे स्थितं खादेद्द्विनिष्कं  
सर्वकुष्ठनुत् ॥ रसः कुष्ठकुठारोऽयं गल-  
त्कुष्ठविनाशनः ॥ २७१ ॥

रससिन्दूर, मन्त्रक, लौहभस्म, ताम्रभस्म,  
गुग्गुल, त्रिफला, यकायन की छाल, चित्रक,  
शिलाजोत हरक का चूर्ण सोलह सोलह भाग,  
करञ्जबीज का चूर्ण तथा अभ्रकभस्म का चौंसठ  
चौंसठ भाग । इन्हें एकत्र कर शहद तथा घी से  
मथकर एक चिकने बर्तन में रखले । मात्रा—६  
रत्नी । यह रस सब प्रकार के कुष्ठ तथा गलत्कुष्ठ  
को नष्ट करता है । २६९—२७१ ।

कुष्ठहरितालेश्वर ।

हरितालं भवेद्भागं द्वादशात्र विशु-

१ त्रिफला विपमुष्टिरच इति पाठान्तरे  
यकायन के स्थान पर कुचला भी लेते हैं ।

द्धिमत् । गन्धकोऽपि तथा ग्राह्यो रमः  
सप्तात्र दीयते ॥ २७२ ॥ कृष्णाभ्रकमपि  
रत्नक्षयं खल्ले कृत्वा विमर्दयेत् । अङ्कोठ-  
मूलनीरेण सेहुण्डपयसाऽथवा ॥ २७३ ॥  
अर्कदुग्धेन सम्पिप्य करवीरजलेन च ।  
काकोटुम्बरनीरेण पेपणीयो रसो भृशम् ॥  
२७४ ॥ शुद्धताम्रकोटरे च त्रेपणीयो  
रसेश्वरः । पूर्ववत्पच्यते यामं पटकञ्चायं  
रसेश्वरः ॥ २७५ ॥ रक्तिकैकप्रमाणेन  
काकोटुम्बरवारिणा । कुष्ठाष्टादशसंख्येषु  
देय एष भिषग्वरैः ॥ २७६ ॥ अचिरेणैव  
कालेन विनाशं यान्ति निश्चयः । पथ्य-  
सेया विधातव्या प्रणतिः सूर्यपादयोः ॥  
२७७ ॥ साधकेन तथा सेव्यो रसो रोगौ-  
घनाशनः । पिप्पलीभिः समं दद्यात्कुष्ठ-  
रोगे रसेश्वरम् ॥ २७८ ॥

शुद्ध हरताल और गन्धक बारह बारह भाग,  
पारा तथा अभ्रकभस्म सात सात भाग, इन्हें  
इकट्ठा कर खरल में डाल अङ्गोल की जड़ के  
रस से, यूहर और आक के दूध से, वज्र की  
जड़ के रस से, तथा कठगूलरि के रस से क्रमशः  
घोटकर शुद्ध तांबा के पात्र में ६ प्रहर पकावे ।  
मात्रा १ रत्नी । अनुपान—कठगूलरि का रस ।  
इसके सेवन से अठारहों कुष्ठ नष्ट होते हैं । कुष्ठ  
रोग में पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर इस  
रस को देना चाहिए । २७२—२७८ ।

राजराजेश्वर ।

आतपे मर्दयेत्सूत गन्धकं मृताम्रकम् ।  
सुहस्तमर्दितं तालं यावत्तत्र त्रिलीयते ॥  
२७९ ॥ भृङ्गराजद्रवं दत्त्वा दिनमात्रं  
विमर्दयेत् । त्रिफला खादिरं सारमृता  
वागुजीफलम् ॥ २८० ॥ प्रत्येक सूततुल्यं  
स्याच्चूर्णकृत्य विमर्दयेत् । मध्याज्याभ्यां

लौहपात्रे मापाभ्यां भक्तयेत्ततः ॥ २०१ ॥  
दद्भुकिट्टिमकुण्डानि मण्डलानि विना-  
शयेत् । द्विगुणोऽपि निहन्त्याशु राजराजे-  
श्वरो रसः ॥ २०२ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म और शुद्ध हरताल  
इन्हें एकत्र कर धूप में अच्छी तरह घोट जय देते  
किं भली प्रकार मिल गया है तब भांगरे के रस  
से १ दिन घोटकर इसमें त्रिफला, कर्था, मिलोय,  
एवं कालीजीरी हरएक का दूर्ण एक-एक भाग  
मिलावे । मात्रा--१ रत्ती से २ रत्ती तक ।  
शुद्ध और घृत को एकत्र असमानपरिमाण  
में २ मास लेकर उसके साथ लौहपात्र में  
घोटकर सेवन करना चाहिए । इसके सेवन से  
दाद, किट्टिम और मण्डल कुण्ड आदि रोग नष्ट  
होते हैं । २०१-२०२ ।

लङ्केश्वर रस ।

भस्मसूताभ्रशुत्वानि गन्धतालं शिला-  
जतु । अम्लवेतसतुल्यांशं त्र्यहं दत्त्वा  
विमर्दयेत् ॥ २०३ ॥ मध्वाज्याभ्यां वर्ती  
कुर्याद् द्विगुणां भक्तयेत्ततः । कुण्डं हन्ति  
गजं सिंहो रसो लङ्केश्वरो महान् ॥ २०४ ॥  
क्षिफला निम्बमज्जिष्ठा वचा पोटल-  
मूलकम् । कटुकारजनीकाथं चानुपानं  
प्रयोजयेत् ॥ २०५ ॥

रससिन्दूर, अन्नकभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक,  
शुद्ध हरताल, शुद्ध शिलाजीत और अम्लवेतस  
हरएक को बराबर मात्रा में मिलाकर घृत और  
शुद्ध से ३ दिन घोटकर १ रत्ती से २ रत्ती  
तक की गोलीयाँ बनावे । यह रस कुष्ठ को नष्ट  
करनेवाला है । अनुपान--त्रिफला, नीम की  
छाल, मजीठ, वच, पादल की जड़, कुटकी और  
हर्दी इनका काथ । २०३-२०५ ॥

अर्केश्वर ।

पलानीशस्य चत्वारि, बलेर्द्वादश  
तावती । ताम्रस्य चक्रिका देया रसस्योद्ध्वं

शरावकम् ॥ २०६ ॥ दत्त्वा विवद्ध-  
भाण्डस्थं पूरयेद्भस्मना दृढम् । अग्निं  
प्रज्वालयेद्यामद्भयं शीतं विचूर्णयेत् ॥  
२०७ ॥ पुटे द्वादशधा सूर्यदुग्धेनालो-  
हितं पुनः । वरापावकभृङ्गाणां द्रवैस्त्रि-  
भिर्विभावयेत् ॥ २०८ ॥ अयमर्केश्वरो  
नाम्ना रक्षमण्डलकुण्डजित् ॥ २०९ ॥

पारा १६ तोले, गन्धक ४८ तोले, ताम्र  
४८ तोले इन्हें एकत्र दैनिया में रखकर उसके  
ऊपर अधोमुख एक मिट्टी का शराव रख  
सन्धि लेप कर दे और वचे हुए हाँड़ी के भाग  
को भस्म द्वारा भर दे परचात् दो प्रहर अग्नि  
पर पकावे । जब शीतल हो जाय तब चूर्ण कर  
ले और घाक के दूध से घोटकर १२ पुट दे ।  
परचात् त्रिफला, चित्रक तथा भांगरा इन तीनों  
के रस से भावना दे । मात्रा--चौथाई रत्ती से  
आधी रत्ती तक । यह रस रक्षमण्डल तथा  
कुण्ड रोग को नष्ट करता है ॥ २०६-२०९ ॥

ज्योतिष्मत् रस ।

कान्तं सुवर्णमभ्रश्च रसं पङ्गुण-  
जारितम् । वैक्रान्तं विद्रुमं रुद्रजटामूलं  
हयप्रियम् ॥ २१० ॥ कङ्कुण्डं च समं  
सर्वं गृहीत्वा यवतो भिपक । एकीकृत्य  
रसेनैडगजपत्रभवेन च ॥ २११ ॥ मल्लान्त-  
मूलखदिरमूलकाथेन यत्नतः । त्रिधा  
सम्भाव्य विधिवन्मात्रा चणकसम्मिता ॥  
२१२ ॥ ज्योतिष्मानामकरसो वातरक्तं  
हरेद् द्रुतम् । कुष्ठमष्टादशविधं रोगांश्च-  
न्यास्तदुद्भवान् ॥ २१३ ॥ तथा गौणो-  
पदंशं च विकृतिं पारदोद्भवाम् । दुष्टवर्णं  
गण्डमालां भगन्दरमथापचीम् ॥ २१४ ॥  
नातः परतरं किञ्चिद्भेषजं रक्षशुद्धिकृत् ।  
सारिवा तन्त्रिका पथ्या पर्पटं गज्जिनी  
तथा ॥ २१५ ॥ चक्राद्री काथ पतेपां

ज्योतिष्मद्रससेवनात् । वर्द्धयेदाशु वीर्यञ्च  
सर्परोगकुलान्तकृत् ॥ २६३ ॥ भापितः  
श्रीमद्देशेन विबुधानां यथामृतम् ॥ २६७ ॥

कान्तलौहभस्म, स्वर्णभस्म, अश्रकभस्म,  
पद्मगुण गन्धक जारित रससिन्दूर, वैक्रान्तभस्म,  
प्रवालभस्म, रुद्रजटा की जड़, अश्रगन्ध, कंकुष्ठ  
( रेवन्दचीनीसन ) इन्हें बराबर मात्रा में  
मिलाकर चक्रमर्दन के पत्तों के रस, एवं मिलावें  
की जड़ तथा तैर की जड़ के बवाथ से अलग-  
अलग तीन-तीन बार भावना देकर चने के  
बराबर गोलियाँ बना ले । यह रस वातरङ्ग,  
१८ कुष्ठ तथा अन्य कुष्ठजन्य रोग, उपदंश,  
पारदाधिकार, दुष्टग्रण, गण्डमाला, भगन्दर  
और अश्विनी हरयादि रोगों को नष्ट करता है ।  
इससे बढ़कर रङ्गशोधन के लिए अन्य औषध  
नहीं हैं । इस औषध के सेवन काल में अनन्त-  
मूल, गिलोय, हरद, पित्तपापदा, रेवन्दचीनी  
तथा कुटकी इनका विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ  
बवाथ अनुपान रूप में प्रयुक्त किया जाता है  
यह रस वीर्यवर्धक एवं सय रोगों को नष्ट करता  
है । इस अमृतुल्य औषध को महादेवजी ने  
देवताओं के लिए कहा था । २६०-२६७ ।

महापिएड तैल ।

अमृतायाः पलशतं सोमराजीतुलां  
तथा । प्रसारण्याः पलशतं जलद्रोणे  
पृथक् पचेत् ॥ २६८ ॥ पादशेषं शृङ्गीर्या  
च तैलप्रथं पचेद् भिषक । क्षीरं चतुर्गुणं  
दद्यात् मन्दमन्देन वह्निना ॥ २६९ ॥  
पिएडशालजनिर्याससिन्धुवारफलत्रयम् ।  
वह्निग्रन्थिककुष्ठानि निशे द्वे चन्दन-  
द्वयम् ॥ ३०० ॥ पूतिपूतीकसिद्धार्थ-  
वागुजीचक्रमर्दकम् । वासानिम्बपटो-  
लानि वानरीबीजमेव च ॥ ३०१ ॥  
अश्वाहा सरसं सर्वं प्रतिकर्षमितं पचेत् ।  
एतच्चैलवरं हन्ति वातरङ्गमसंशयम् ।

३०२ ॥ कुष्ठमष्टादशविधं ग्रन्थिवातं  
सुदारुणम् । कायग्रहं चामयातं भगन्दर-  
गुदामयम् ॥ ३०३ ॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति  
मर्दनात्नात्र संशयः ॥ ३०४ ॥

तैल १२ तोले । बवाथ के लिये-गिलोय  
५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ  
बवाथ ६ सेर ३२ तोले । कालीजीरी ५ सेर,  
जड़ २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ बवाथ ६  
सेर ३२ तोले । प्रसारिणी ५ सेर, जल २५  
सेर ४८ तोले, बचा हुआ बवाथ ६ सेर ३२  
तोले । दूध ६ सेर ३२ तोले । कश्क के लिये-  
शिलारस, राल, सम्भालू, त्रिफला, चित्रक,  
पीपलामूल, कूट, हर्दी, दान्हवरी, श्वेतचन्दन,  
लालचन्दन, पूति (खट्वाशी, मुस्कधिलाव के छंठ),  
करञ्ज, सफेद सरसों, बाकुची बीज, पवाई के बीज,  
अडूसा, नीम की छाल, पटोलपत्र, कौंच के  
बीज, अश्रगन्ध और चौड़ की लकड़ी हर एक  
१ तोला । विधिपूर्वक मन्द-मन्द आँच पर  
पकाये । इस तेल के अम्यङ्ग से वातरङ्ग, १८  
कुष्ठ, कष्टदायक ग्रन्थिवात, सम्पूर्ण शरीरगत  
वेदना, आमवात, भगन्दर, बवासीर तक आठों  
प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २६८-३०४ ।

ओष्टशिवप्रनाशन लेप ।

मुखे श्वेते च सञ्जाते कूर्याच्चेमां प्रति-  
क्रियाम् । गन्धक चित्रकासीसं हरितालं  
फलत्रयम् ॥ ३०५ ॥ मुखे लिम्पेद्दिनेकेन  
वर्णनाशो भविष्यति ॥ ३०६ ॥

यदि मुख पर विशेषतः ओष्ट पर शिवत्र हो  
जाय तब गन्धक, रङ्गीचक्रक ( लाल चीता )  
की जड़, कसीस, हरताल, त्रिफला इन्हें बराबर  
मात्रा में मिलाकर जल के साथ लेप करे इससे  
शीघ्र ही शिवत्र रोग नष्ट होता है ॥ ३०५-३०६ ॥

अमृतांफुर लौह ।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै ।  
पलं लौहस्य तात्रस्य पलं भल्लातकस्य

च ॥ ३०७ ॥ गन्धकस्य पलञ्चैकमभ्रकस्य  
 च गुग्गुलोः । हरोतकीविभीतयोश्चूर्णं  
 कर्पद्वयं द्वयोः ॥ ३०८ ॥ अष्टमापाधिकं तत्र  
 धान्याः पाणितलानि पट्ट । घृतं द्व्यष्ट-  
 गुणं लौहाद् द्वात्रिंशत्त्रिफलाजलम् ।  
 ३०९ ॥ एवं कृत्वा पचेत् पात्रे लौहे च  
 विधिपूर्वकम् । पाकमेतस्य जानीयात्  
 कुशलो लौहपाकवत् ॥ ३१० ॥ विद्युद्धः  
 प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः । रक्तिका-  
 दिक्रमेणैव घृतं भ्रामरमर्दितम् ॥ ३११ ॥  
 लौहे लौहस्य दण्डेन कुर्यादेतद्द्रसायनम् ।  
 अनुपानञ्च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥  
 ३१२ ॥ सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं बलीपलितना-  
 शनम् । पाण्डुमेहामवातघ्नं वातरक्तृजाप-  
 हम् ॥ ३१३ ॥ कृमिशोथारमरीशूलदुर्ना-  
 मवातरोगनुत् । क्षयं हन्ति महाश्वास-  
 मत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम् ॥ अग्निसन्दीपनं ह्ययं  
 कान्त्यायुर्वलदृष्टिकृत् ॥ ३१४ ॥ विवर्ज्य  
 शाकाम्लमपि स्त्रियञ्च सेव्यो रसो जाङ्गल-  
 जाविकानाम् । शाल्योदनं पष्टिकमाज्यमुद्ग-  
 क्षौद्रं गुडक्षीरमिह क्रियायाम् ॥ ३१५ ॥  
 शालिञ्च गुर्वादिबृहत्करञ्जशिलाजतुक्षौ-  
 द्रयुतं पयश्च । सर्पिर्युतान् भक्षयतो विह-  
 ङ्गान् प्रपूर्यते दुर्बलदेहधातुः ॥ ३१६ ॥  
 कृष्णस्य पक्षस्य सिते तु पक्षे त्रिपञ्चरा-  
 त्रेण यथा शशाङ्कः ॥ ३१७ ॥

रसिसन्दूर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध  
 भिक्षावा, गन्धक, अभ्रकभस्म और गुग्गुल,  
 प्रत्येक चार-चार तोले । इह और बहेडा दो-दो  
 तोले । आंवले छह तोले और आठ मासे । घी  
 १४ तोले । त्रिफला के १२८ तोले काय मे  
 सय रस, गुग्गुल और घी ढालकर लोह की  
 कड़ाही में पकावे, जब गाढ़ा होने लगे तब

उपयुक्त त्रिफला का चूर्ण ढालकर विधिपूर्वक  
 लोहपाकवत् पाक तैयार करे । प्रातःकाल उठकर  
 गुरु, देवता और ब्राह्मण की पूजा करके एक  
 रत्नी श्रीपाधि घी और शहद में मिलाकर और  
 लोहपात्र में लोहे की मुसली से रगद कर सेवन  
 करे । क्रमशः इसकी मात्रा बढ़ाता जाय ।  
 अनुपान नारियल का जल और दूध । इसके  
 सेवन से सब प्रकार के कोढ़, बलीपलित,  
 पाण्डुरोग, प्रमेह, आमवात, वातरङ्ग, कृमि,  
 सूजन, थरमरी, शूल, अर्श, वातरोग, चय,  
 र्वास आदि रोग नष्ट होते हैं तथा शुक्र की वृद्धि  
 होती है । अग्निदीपन, हृदय को हितकारी एवं  
 कान्ति, आयु और बल बढ़ाता है । इसके सेवन के  
 समय शाक, खटाई और क्षीप्रसंग त्याग देना  
 चाहिए और जंगली भेड़ आदि का मांस, शाखी  
 और सांठी चावल, घी, मूँग, शहद, गुड़, दूध,  
 शालिच शाक (शान्ति शाक), भारी पदार्थ,  
 कर्तुन्ध्या, शिलाजीत, शहदशुक्र दूध और घृत  
 युक्त पक्षियों का मांस सेवन करना चाहिए ।  
 इससे शरीर की क्षीणता नष्ट होकर शरीर १५  
 दिन में इस प्रकार पूर्णाङ्ग हो जाता है जैसे  
 कृष्णपक्ष का चन्द्रमा शुक्लपक्ष के १५ दिनों में  
 पूर्ण हो जाता है ॥ ३०७-३१७ ॥

पाकलक्षण यथा ।

वस्त्रे निष्पीडितं सूक्ष्मे स्थूलतन्तौ घने  
 दृढे । समुद्रं जायतं व्यक्तं न निःसरति  
 सन्धिभिः ॥ ३१८ ॥ न च शब्दायते  
 वह्नौ तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ३१९ ॥

हुताशमुखसंशुद्धरसगन्धकाभ्यां कज्ज-  
 लीकृत्य प्रस्तरभाजने पिण्डिका कार्या  
 ततः पिण्डिकोपरि तप्तताम्रभाजनं निवेश-  
 नीयं ततः किञ्चित्पर्पत्याकृतौ भूतायां  
 षोडशांशद्वन्द्वनक्षारं दत्त्वा अन्धमूपिकायां  
 कृत्वा यावद्गन्धकसम्बन्धो नोपलभ्यते  
 तावदेव ध्मातव्यम् । एवमग्नौ स्थिरीकृत्य  
 रसस्य पलम् ? । एवं लौहादिगुग्गुल्यन्तानां

प्रत्येकपलं १ घृतं दलं १६ सर्वमेकीकृत्य  
लोहपात्रे त्रिफलाकाथेन पचनीयं शेषपाक  
प्रक्षेपार्थं यथोक्तभागं त्रिफलाचूर्णम् ।

मोटे सूत से बहुत गहरे पिने हुए मजबूत  
कपड़े में बाँधकर निचोड़ने से सपियों से निकल-  
कर प्रकट न हो और अग्नि पर डालने से  
उसमें से शब्द न निकले, तब पाक को सिद्ध  
समझे ॥ ३१८-३१९ ॥

अग्नि क मुख से शुद्ध पारा और गन्धक  
की कजली करके पाथर के पात्र में पियूष  
बनाकर रख दे । फिर उस पियूष के ऊपर ताँबे  
का तप्त पात्र रख दे जिससे कि फैलकर परपटी-  
सी हो जाय । कुछ परपटी के आकार का हो जाने  
पर उसमें पौडशाश सुहागा डालकर उसको  
अन्धमूषिका यन्त्र में रखकर गन्धकजारण्य  
पर्यन्त अग्नि पर उस अन्धमूषिका यन्त्र को  
रखवे । इस प्रकार अग्नि पर स्थिर किया  
हुआ पारद ४ तोले, लोह से गुग्गुलु पर्यन्त  
प्रत्येक चार तोले, घृत ६४ तोले, इन सब  
वस्तुओं को एकत्र कर लोहपात्र में त्रिफला के  
क्वाथ से पकावे, पाक शेष होने पर यथोक्त  
भाग त्रिफलाचूर्ण डाले । यही अमृताकुर लौह  
बनाने की रीति है ॥

आरोग्यवर्धनीगुटिका ।

रसगन्धक लोहाभ्रशुल्ब भस्म समांशकम्  
त्रिफला द्विगुणं प्रोक्ता त्रिगुणां च शिलाजतु  
॥ ३२० ॥ चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलञ्च  
तत्समम् । तिक्का सर्वसमा ज्ञेया सर्व सञ्चू-  
र्यं यत्नतः ॥ ३२१ ॥ निम्ब वृत्त दला-  
भ्योभिर्मर्दयेद्द्विदिनावधि । ततश्च  
वटिका कार्या क्षुद्रकोलफलोपमा ॥  
३२२ ॥ मण्डलं सेविता सैषा हन्ति  
कुष्ठान्यशेषतः । वातपित्त कफोद्भूता ज्व-  
रान्नाना विकारजान् ॥ ३२३ ॥ देया  
पञ्चदिने जाते ज्वरे रोगे वटी शुभा ।

पाचनीदीपनी पथ्या हृद्यामेदो विनाशिनी  
॥ ३२४ ॥ मलशुद्धिकरी नित्यं दुर्धर्षं  
क्षुत्प्रवर्तिनी । बहुनाऽऽर्कं भुक्तेन सर्व-  
रोगेषु शस्यते ॥ ३२५ ॥ आरोग्य वर्धनी  
नाम्ना गुटिकेयं प्रकीर्तिता । सर्व रोग  
प्रशमनी श्रीनागार्जुन चोदिता ॥ ३२६ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म अश्वभस्म और  
ताँबे की भस्म हरणक १ भाग त्रिफला २ भाग  
शिलाजत ३ भाग गुग्गुलु और चित्रकमूल हरणक  
४ भाग और कुटकी सबब बराबर लेकर सबको  
वृट पीस २ रोज तक नीम के पत्तों के रस में  
घोट भाड़ी घेर के समान गोलियाँ बना लेवे ।  
४६ दिन तक इसको लेने से सब प्रकार के कोढ़  
समूल नष्ट हो जाते हैं । वात पित्त और कफ से  
उरपत्र सब तरह के ज्वर दूर होते हैं पाचन दीपन  
है । अग्नि को प्रबल करती है मल को साफ  
करती है यह सब रोगों में लाभदायक है । विशेष  
अनुभूत ॥ ३२० ३२६ ॥

उदयभास्कर ।

गन्धकेन हतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ।  
ऊपुणं पञ्चभागं स्यादभूतञ्च द्विभागिकम् ॥  
३२७ ॥ दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य  
योगतः । गलिते स्फटिते चैव विपले  
मण्डले तथा ॥ त्रिचर्चिकादद्गुपामासर्व-  
कुष्ठप्रशान्तये ॥ ३२८ ॥

गन्धक के सयोग से की हुई ताँबे की भस्म  
१० भाग, कालीमिर्च ५ भाग और मीठा तेलिया  
२ भाग। इन सबको एकत्र कर खूब महीन पीस  
ले । बलानुसार इसकी मात्रा उचित अनुपान से  
कुष्ठी को दे तो गलित और स्फुटित कुष्ठ, मण्डल  
कुष्ठ, विचर्चिका, दाद, पामा और सब प्रकार के  
कुष्ठ शान्त हों ॥ ३२७ ३२८ ॥

रसमाणिक्य ।

तालकं वंशपत्राख्यं कूप्माण्डस-  
लिले क्षिपेत् । सप्तधा वा त्रिधा वापि  
दध्नाम्लेन तथैव च ॥ ३२९ ॥ शोधयित्वा



पुनः शुष्कं चूर्णयेत् तण्डुलाकृतिम् ।  
ततः शरावके यन्त्रे स्थापयेत् कुशलो  
भिपक् ॥ ३३० ॥ बदरीपल्लवोत्थेन  
लेपनं कारयेत् ततः । अरुणाभमधः पात्रं  
तावज्ज्वाला प्रदीयते ॥ ३३१ ॥ स्वाद्ग-  
शीतं समुद्धृत्य माणिक्याभो भवेद्भस्मः ।  
घृतक्षौद्रेण संमर्द्य स्वादयेद्रक्तिका-  
मितम् ॥ ३३२ ॥ सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठ-  
रोगाद्विमुच्यते । स्फुटितं गलितं कुष्ठं  
वातरक्तं भगन्दरम् ॥ ३३३ ॥ नाडीत्रयं  
त्रयं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम् । नासास्य-  
सम्भयान् रोगान् क्षतान् हन्यात् मुदा-  
रुणान् ॥ ३३४ ॥ पुण्डरीकञ्च चर्माल्यं  
विस्फोटं मण्डलं तथा ॥ ३३५ ॥

तर्चयया हरताल को पेटे के जल और  
खट्टे दही में क्रमशः सात सात बार या तीन-  
तीन बार अग्नि पर दोलायत्र द्वारा शुद्ध करने  
के पश्चात् पानी से धोकर सुखा ले, फिर इस  
का चावन के समान मोटा घूर्ण करके शराय  
यन्त्र में बन्द करे (ऊपर से एक अन्नक का  
टुकड़ा रख दख दे) और घेर के पत्तों की लुगादी  
से मणि भाग को घबड़ी तरह बन्द करके  
सुखा ले । फिर अग्नि पर रखये, जब नीचे का  
निकोरा लाल वर्ण हो जाय तब उतार ले ।  
स्वाद्गशीतल हो जाने पर उसमें से निकाल  
ले । यह रस माणिक्य के गुण्य दीप्ति-  
युक्त हो जाता है । महादेवजी की पूजा  
करके घी और शहद के साथ दो रसी की  
मात्रा में निवन करे । यह माणिक्य रस कुष्ठ  
से देह का पूजा और गलना वातरक्त, भग-  
दर, नागूर, पाय, उपदश (गर्मी), पिर्षिका,  
माक और मुग के रोग, घन, पुण्डरीक, चर्मदल,  
पिरफोटन और मण्डल कुष्ठ की नाश करता  
है ॥ ३३६-३३७ ॥

तालदेन्द्रिय ।

पूष्पाण्डुत्रिफलातल्लवण्यानाञ्जिना-

भावितम् । तालकं तुल्यगन्धं स्यादूर्ध्वपारद-  
मर्दितम् ॥ ३३६ ॥ अजाक्षीरेण निम्बूक-  
कन्यातोयैर्दिनत्रयम् । प्रत्येकं भावयेत्  
शुष्कं चक्रिकाकारतां गतम् ॥ ३३७ ॥  
विपचेत् हण्डिकामध्ये पलाशक्षारमध्य-  
गम् । यामान् द्वादशशीतेऽस्मिन् प्रयोज्यो  
रक्तिकाभितः ॥ ३३८ ॥ हन्त्यप्टादश  
कुष्ठानि रोमविध्वंसनं तथा । द्विविधं  
वातरक्तञ्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ३३९ ॥  
करोटिकां विना केवलक्षारमध्यगं कृत्वा  
पचेत् ।

पेटे के रस, त्रिफले के काथ, तेल, घी,  
घीबुहार के रस और काँजी इनसे क्रमशः  
भावित २ तोले हरताल में २ तोले गन्धक  
और १ तोला पारा की कजली मिला दे ।  
फिर इसको बकरी के दूध, नीबू के रस और  
घीबुहार के रस में क्रमशः तीन तीस दिन  
घोटकर टिकिया बना ले और सुखाकर छौंटी  
में पलाश (ढाक) का चार रत्नकर उस पर  
टिकिया रख दे । १२ पहर तक उसे पकाये ।  
जब ठंडा हो जाय तब निकालकर उपचित  
अनुपान से एव रसी की मात्रा में खाना  
चाहिए । इसके खेवन में शरारत प्रकार का कुष्ठ,  
घातों का भङ्ग जाना, दो प्रकार का वातरक्त  
नागूर, दुष्ट व्रण ये सब रोग नष्ट होते  
हैं ॥ ३३६-३३७ ॥

अपरतालदेन्द्रियम् ।

दद्रुन्नवाग्णादधिरसं टन्ना तालं सुच-  
र्णितम् । पुनः पुनश्च संमर्द्य शुष्कं कृत्वा  
पुटे दधेत् ॥ ३४० ॥ दृढस्थान्यां घृतं क्षारं  
पलाशश्चाप्युपर्यधः । ततो ज्वाला प्रदीयत्या  
दिनरात्रे मृतं भवेत् ॥ ३४१ ॥ शुक्लरगं  
यदा च म्यादग्नां दधे न धूमम् । तदा  
क्षतं मृतं तालं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥  
३४२ ॥ गलकुष्ठं वातरक्तं ताभ्रमर्षञ्च

मण्डलम् । शीतपित्तं महादद्बुद्धुन्दर-  
विनाशनम् । पथ्यं मसूरं चणकं मुद्गसूपं  
यथेच्छया ॥ ३४३ ॥

अतिदृष्टफलोऽयं तालकेश्वरः ।

हरताल के चूर्ण में पराई और शरफोंका  
के रस की बार-बार भावना देकर उसकी  
टिकिया बना ले । फिर सुत्वाकर रद्द हाँडी  
में पलाश का चार रखकर उसके बीच में  
टिकिया रस दे । टिकिया के ऊपर और  
पलाशचार रखकर एक दिन-रात उसके नीचे  
अग्नि देने से हरताल की भस्म हो जाती है ।  
हरताल की भस्म तब ठीक समझी जाती है  
जब उसका वर्ण सकेद हो जाय और अग्नि  
पर डालने से धुआँ न दे । यह तालकेश्वर रस  
गलित कुष्ठ, वातरस, ताम्रवर्ण के चक्ते, शीत-  
पित्त, महादद्र और छुच्छुंदर रोग को नष्ट  
करता है । इसमें मसूर, चना, और मूँग की  
दाल हितकारी है । यह तालकेश्वर रस अनुभूत  
है ॥ ३४०--३४३ ॥

महातालकेश्वर ।

संमर्द्यं तालकं शुष्कं वंशपत्राख्य-  
मुचकैः । कूप्माण्डनीरैः सम्भाव्य त्रिदिनं  
शोधयेत् पुनः ॥ ३४४ ॥ घृतकन्याद्रवै-  
र्भूयो भावयेच्च दिनत्रयम् । संमर्द्यं काञ्जि-  
केनैव दध्नाम्लेन विमर्दयेत् ॥ ३४५ ॥  
संमर्द्यं चूर्णं सलिले रसे पौनर्नरे पुनः ।  
त्रिदिनं मर्दयित्वा तु कारयेत् खटिका-  
कृत्तिम् ॥ ३४६ ॥ स्थाल्यां दृढतरायां तु  
पलाशक्षारसञ्चयम् । उपर्यधस्तालकस्य  
क्षारं दत्त्वा शरापकैः ॥ ३४७ ॥ पिधाय  
लेपयेद्यन्नात् पूरयेत् क्षारसञ्चयम् । पुना-  
रुद्धं शरावेण लेपयेत्तद् दृढं ततः ॥ ३४८ ॥  
द्वात्रिंशद्यामपर्यन्तं वह्निज्वाला प्रदीपयेत् ।  
एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ॥

३४९ ॥ द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं बालुका-  
यन्त्रगं पचेत् । अयं तालेश्वरो नाम रसः  
परमदुर्लभः ॥ ३५० ॥ हन्त्यष्टादश  
कुष्ठानिवातशोणितनाशनः । रक्कमण्डल-  
मत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा । बहुरूपं  
सर्पजातं नाशयेदविकल्पतः ॥ ३५१ ॥  
दुष्टव्रणश्च वीसर्पं त्वग्दोषश्च विनाशयेत् ।  
दृष्टो वारसहस्रश्च रोगवारणकेशरी ॥ ३५२ ॥

तयकिया हरताल को खूब महीन पीसकर  
पेटे के रस में तीन दिन भिगोकर सुखा ले,  
परचात् घीकुघार के रस की तीन दिन भावना  
देकर ममश काँजी, सदा दही और जल में  
घोटकर फिर तीन दिन तक गदापुरैना के रस में  
घोटे । तदनन्तर टिकिया बनाकर हाँडी में  
हरताल के ऊपर और नीचे पलाशचार रखकर  
सिकोरा से ढककर यत्र से लीप दे, परचात्  
हाँडी के शेष भाग को फिर पलाशचार से भर-  
कर सकोरे से हाँडी का मुल मुद्रित कर सन्धि-  
भाग में मिट्टी लेस दे और सुत्वाकर ३२  
पहर तक अग्नि पर पकावे । जब हरताल सिद्ध  
हो जाय तब उसके बराबर गन्धक और दोनों के  
बराबर ताम्रभस्म मिलाकर बालुकायत्र में  
पकावे । यह परम दुर्लभ महातालकेश्वर नामक  
रस अठारह प्रकार के कुष्ठ और वातरस को  
नष्ट करनेवाला है । तथा लाल चक्ते, स्फुटित  
और गलित कुष्ठ एव अनेक रूप और जाति-  
वाले कुष्ठ, दुष्ट व्रण, विसर्प और त्वचा के  
दोषों को नष्ट करता है । इसकी हजारों बार  
परीचा करके देखी है । यह रोगरूपी हाथी के  
लिये सिद्धरूप है ॥ ३४४ ३५२ ॥

गन्धक रसायनम्

शुद्ध बलि गोर्पयसा विभाव्यस्तत-  
श्चतुर्जातं गुडूचिकाद्रिः । पश्यात्तधा-  
र्त्रयौपधं भृङ्गराजै । भान्व्योऽष्टवारं  
पृथगाद्रिकेण ॥ ३५३ ॥ सिद्धे सितान्  
योजय तुल्य भागा रसायनं गन्धक

पूर्वकं स्यात् । मापद्वयं सेवितमाशुक्र्या-  
 द्वीर्थस्यवृद्धिं दृढ देहमग्निम् ॥ ३५४ ॥  
 कण्डू सपामां विपद्दोषमुग्रं सपाण्डु रोगं  
 सहमुष्कवृद्धिम् । जीर्णञ्जरं मेहगणञ्च  
 तीव्रं वातामयांश्चैव सकृन्निहन्ति ॥  
 ३५५ ॥ समस्तगदं गृञ्जनं मृगद्वशां मनो-  
 रंञ्जनं सहेमरस संयुतं भजति यो नरा-  
 वत्सरम् । न तस्य यमराडभयं भजति  
 वत्सराणांशतं बलं भवति कामिनी प्रबल  
 दर्पं विद्रावणम् एतद्रसायनवरं खलु  
 गन्धकाख्यं ॥ ३५६ ॥ संसेवितम् सुवि-  
 धिना मनुजेन नित्यम् पथ्यं सखण्ड  
 मनुष्यैक मोदनश्च । गव्यं घृतं सकदली-  
 फल सैन्धवं च ॥ ३५७ ॥ आम्रं  
 सचोचं मधुमांस युक्तं ताम्बूल वल्लीदल  
 पूग खादिरम् एतद्रसायनवरं समखण्ड  
 मिश्रं । दृष्टिप्रदं क्षपयति ग्रहणी विकार-  
 रान् ॥ ३५८ ॥ धातुक्षयं प्रदररोग मुद-  
 ग्रवेगं । सोमाभिधंगुदगदं च सकीलकंच ।  
 हन्ति प्रसह्य पवनं कफपित्तयुक्तं । मेधा-  
 करंश्च जठरानल वर्धनंच ॥ ३५९ ॥  
 आम्रात्तिसार मुदरार्तिं विनाशनंच ।  
 कपोन्मितं सकल मेहगणापहारी । व्यायाम्  
 मैथुनायातं गन्ध सेवीसदात्यजेत ॥ ३६० ॥

शुद्ध गन्धक को गाय के दूध चातुर्जात गुहूची  
 हृद्द वहेड़ा आंवला मंगरा धदरक इन हर  
 एक के रस से आठ २ दफे भाषित कर सुखा  
 लेना इसमें तुल्य भाग शकर मिलावे इसमें से  
 २-२ माथे की मात्रा में रोगानुसार अनुपान  
 के साथ देने से कृशता कण्डू पामा विपद्दोष  
 पाण्डु मुष्कवृद्धि जीर्णञ्जर प्रमेह वातरोग इनको  
 दूर कर सुन्दर स्त्रियों के मन को हरण करता  
 है, स्वर्ण भरम और पारद भस्म के साथ अगर

इसका सेवन १ साल तक करे तो १०० वर्ष  
 तक मृत्यु का भय नहीं रहता । इसमें खाँड  
 खाटी चावल गाय का घी केला संधानमक  
 आम तज मधु मांस ताम्बूल सुपारी कथा पथ्य  
 है इसके सेवन से ग्रहणी विकार धातुक्षय  
 तीव्र प्रदर सोमरोग बवासीर वातरोग कफरोग  
 मन्दाग्नि आम्रात्तिसार पेट का दर्द ये सब रोग  
 नष्ट हो जाते हैं । गन्धक सेवन करने वाले  
 व्यक्ति को कसरत और मैथुन छोड़ देना  
 चाहिए ॥ ३५३-३६० ॥

पञ्चतिक्त घृत ।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीञ्च गुहूचीं वासकं  
 तथा । कुर्याद्दशपलान् भागान् एकैकस्य  
 सुकुट्टितान् ॥ ३६१ ॥ जलद्रोणे विप-  
 क्तव्यं यावत्पादावशेषितम् । घृतप्रस्थं  
 पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ ३६२ ॥  
 पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ।  
 अशीतिं वातजाम् रोगांश्चत्वारिंशच्च  
 पैत्तिकान् ॥ ३६३ ॥ विंशतिश्लेष्मिकां-  
 श्चैव पानादेवापकर्षति । दुष्टव्रणकुम्भी-  
 नर्शः पञ्च कासांश्च नाशयेत् ॥ ३६४ ॥

नीम की छाल, परल के पत्ते, छोटी कटेरी,  
 तिलोय और अरुसा ये सब आध आध सेर लेकर  
 कूट ले और २५ सेर ४८ तोले जलमें डालकर धाय  
 करे । जब ५ सेर २२ तोले बचाव अवशिष्ट रहे तब  
 उसे छान ले । इसमें ३२ तोले त्रिफला का कक  
 मिलाकर १३ तोले घृत सिद्ध करे । यह पचतिक्त  
 घृत पीने से कुष्ठ, अस्सी प्रकार के वातरोग,  
 चालीस प्रकार के पित्त रोग और बीस प्रकार  
 के कफरोगों को एव दुष्ट व्रण, कुम्भीरोग, बवा-  
 सीर और पाँच प्रकार की खाँसी को नष्ट करता  
 है ॥ ३६१-३६४ ॥

पृथ्वीसार तैल ।

चित्रकस्याथ निर्गुण्ड्या ह्यमारस्य  
 मूलतः । नाडीचरीजाद्रिपतः काञ्ची-  
 पिष्टं पलं पलम् ॥ ३६५ ॥ करझतैला

एपलं काञ्जिकस्यं पलं पुनः । मिश्रितं  
सूर्यसंपकं तैलं कुष्ठव्रणास्रजित् ॥ ३६६ ॥

चीत की जड़, निगुँयदी की जड़, कनेर की  
जड़, पटुआ के बीज और मीठा तेलिया;  
प्रत्येक चार-चार तोले लेकर काँजी में पीसे,  
फिर ३२ तोले करंज के तेल में ढाल कर उस  
में चार तोले काँजी और भिला दे और धूप  
में रख दे । जब जलीय भाग सूख जाय तब  
इसका मर्दन करे तो कुष्ठ, घात और रङ्ग-दोष  
दूर होता है ॥ ३६५--३६६ ॥

खदिरारिष्ट ।

खदिरस्य तुलार्धं तु देवदारु च  
तत्समम् । वाकुची द्वादशपला दार्वा  
स्यात् पलत्रिंशतिः ॥ ३६७ ॥ त्रिफला  
विंशतिपलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् । क-  
पाये द्रोणशोपे च पूते शीते विनिःक्षिपेत् ॥  
३६८ ॥ तुलाद्वयं मात्तिकस्य तुलैका  
शर्करा मता । धातक्या विंशतिपलं  
ककोलं नागकेशरम् ॥ ३६९ ॥ जाती-  
फलं लवङ्गैला त्वक्पत्राणि पृथक् पृथक् ।  
पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात्पलचतुष्ट-  
यम् ॥ ३७० ॥ घृतभाण्डे विनिःक्षिप्य  
मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः । महाकुष्ठानि हृद्रोगं  
पाण्डुरोगार्जुदं तथा ॥ ३७१ ॥ गुल्मं  
ग्रन्थिकृमीन् कासं तथा स्त्रीहोदरं जयेत् ।  
एष वै खादिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवार-  
रणः ॥ ३७२ ॥

खैर की लकड़ी २ ॥ सेर, देवदारु २ ॥ मेर,  
षाकुची ४८ तोले, दारहल्दी १ सेर और  
त्रिफला १ सेर इनको कूटकर आठ द्रोण (२ मन  
२२ सेर ३२ तोले) जल में पकावे । जब १२  
से ६४ तोले भ्रवशिष्ट रहे तब उसे छान कर  
ठंडा कर ले । इस कषाय में शहद १० सेर,  
शकर ५ सेर, घाव के फूल १ सर तथा  
कंकोल ( शीतलचीनी ), नागकेशर, जायफल,

लौंग, छोटी इलायची दालचीनी और तेजपत्र  
चार-चार तोले, पीपल १६ तोले इन सबका  
घुर्ण कर ढाले । घी के चिकने घड़े में भरकर  
मुख मुद्रित कर एक महीने तक धरा रहने दे,  
फिर छानकर इसका सेवन करे । मात्रा १ तोला  
से २ तोले तक । इस खदिरारिष्ट के सेवन करने  
से महाकुष्ठ, हृदय के रोग, पाण्डुरोग, अर्जुद,  
गुल्म, गॉठ, कृमिरोग, खाँसी, तिरहली, उदर-  
रोग और सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते  
हैं ॥ ३६७-३७२ ॥

कुष्ठरोगऽप्ययानि ।

अन्नपानं हितं कुष्ठं न त्वम्ललवणोपणम् ।  
दधिदुग्धगुडानूपतिलमापांस्त्यजेत्तराम् ॥  
३७३ ॥ पापानिकर्माणि कृतघ्नभावं निन्दां-  
गुरूणां गुरुधर्षणं च विरुद्धपानाशनमहि  
निद्रां चण्डांशुतापं विपमाशनं च ॥ ३७४ ॥  
स्वेदं रतं वेगनिरोधमिच्छुं । व्यायाममम्लान-  
नि तिलांश्रुमापान् द्रवांश्च गुर्वभानवान्न-  
मुक्त्वा विदाहिविष्टम्भचमूत्सकानि । सद्याद्रि-  
विन्ध्याद्रि समुद्रवानां तरङ्गिणीनामुदका-  
निचापि आनूपमांसं दधिदुग्धमद्य गुडञ्च  
कुष्ठामयिनस्त्यजेयुः ॥ ३७५ ॥

कुष्ठ में अम्ल, लवण तथा कटुद्रव्य का  
अन्नपान हितकर नहीं है । दही, दूध, गुड  
आनूपमांस, तिल तथा उदक का कुष्ठ रोग में  
त्याग करना चाहिए । पाप कर्म में रत रहना, किये  
हुए उपकारों को न मानना गुरुओं की निन्दा  
करना गुरुओं को धमकाना विरुद्ध भोजन पान  
करना, दिन में सोना सूर्य का तेज धूप में  
फिरना विषम भोजन करना स्वेदन कर्म स्त्री  
ससर्ग, मलमूत्रादि के वेगों को रोकना ईर्ष्य के  
पदार्थों का सेवन, कसरत कुस्ती खटे पदार्थ तिल  
उदक पतले पदार्थ भारी अन्न नवान्न अन्न का  
भोजन दाहकारी तथा विष्टम्भकारक पदार्थों  
का सेवन मूली महाद्रि तथा विन्ध्याचल से  
निकली हुई नदियों का पानी आनूप देश के

पशु पक्षियों का मांस दही दूध मद्य गुड़ ये सब कृष्ट रोगियों के लिये अपथ्य है ॥ ३७३--३७६ ॥

कुष्ठरोग में पथ्य ।

पक्षात् पक्षाच्छर्दनानि मासान्मासा-  
द्विरेचनम् । नस्यं व्यहात्त्र्यहान्मासि षष्ठे  
षष्ठेऽस्रमोक्षणम् ॥ ३७७ ॥ सर्पिलेपा-  
श्चिरोत्पन्नयत्रगोधूमशालयः । मुद्गाढकी-  
मसूराश्च मात्तिकं जांगलाभिपम् ॥ ३७८ ॥  
आपाढफलवेत्राग्रं पटोलं बृहतीफलम् ।  
काकमाची निम्बपत्रं लशुनं हिलमो-  
चिका ॥ ३७९ ॥ पुनर्नवा भेषशृङ्गं  
चक्रमर्दलानि च । भल्लातकं पकतालं  
खदिरश्चित्रको वरा ॥ ३८० ॥ जाती-  
फलं नागपुष्पं कुंकुमं प्रतनं हविः । कोपा-  
तकी करञ्जोऽपि तिलसर्पपनिम्बजम् ॥  
३८१ ॥ तैलं तथैगुदोऽथं च लघून्यन्नानि  
यानि च । स्नेहाः सरलदेवाहाः शिशपागुरु-  
सम्भवाः ॥ ३८२ ॥ मूत्राणि गोखरोप्ला-  
श्वमहिषीजनितानि च । कस्तूरिकागन्ध-  
सारतिकानि क्षारकर्म च ॥ ३८३ ॥  
यथादोषं समस्तानि पथ्यान्येतानि कुष्ठि-  
नाम् ॥ ३८४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कुष्ठा-  
धिकारः समाप्तः ।

पन्द्रह दिन में एक बार वमन, महीने में एक बार दस्त कराना, तीन महीने में एक बार नस्यकर्म, छः महीने में एक बार कस्त खोलकर रुधिर निकालना, इसी प्रकार करते रहना कामदायक है । घृत का सेवन, लेप, पुराने जौ, गेहूँ, शालि चावल, मूँग, अरहर, ममूर, गहूँ, जांगल पशु पक्षियों का मांसरस, ककरी-खीरे आदि आपाढफल, घेत की कोंपल, परवल, कटेरी

के फल, मकोय, नीम के पत्ते, लहसुन, हुलहुला, सोंटी, मेढासिंगी, पँवार के पत्ते, भिलावा, ताड़ के फल ( पके हुए ), खैरसार, चीता, त्रिफला, जायफल, नागकेसर, पुराना घृत, करंज, कटु तोरई और तिल का तेल, सरसों का तेल, नीम का तेल, गोंदी का तेल, हलके अन्न, चीड़, देवदारु, शीशम और अजर का तेल; गौ, गधा, ऊँट, घोड़ा और भैंसा का मूत्र; कस्तूरी मधुद्वय, कणुए पदार्थ और क्षारकर्म ये सब वस्तुएँ यथादोष पथ्य हैं ॥ ३७७--३८४ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायानां  
व्याख्यायां कुष्ठाधिकारः समाप्तः ।

## अथाशौऽधिकारः ।

अशं के चार उपाय ।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकी-  
र्तितः । भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य  
उच्यते ॥ १ ॥

बवासीर को दूर करने के चार उपाय कहे गये हैं । ओषधि, क्षार, शस्त्रचिकित्सा तथा अग्नि-कर्म । अब इनमें से पहली ( भेषजरूप ) चिकित्सा कही जाती है ॥ १ ॥

अशंचिकित्सा ।

यद्वायोरानुलोम्बाय यदग्निवल्-  
वृद्धये । अनुपानौपधद्रव्यं तत्सेव्यं नित्यम-  
र्शसैः ॥ २ ॥

जो-जो अनुपान, ओषधि और भोजन के पदार्थ वायु के अनुलोमन करनेवाले हैं तथा अग्नि और बल की वृद्धि करनेवाले हैं; अशं-रोगी को उन,उनका नित्य सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

शुष्क और आर्द्र अशं की धिया ।

शुष्कार्शसां भलेपादिक्रिया तीक्ष्णा

विधीयते । स्वाविणां रक्रमालोक्य क्रिया कार्यास्रपैत्तिकी ॥ ३ ॥

सूती बवासीरवालों की तीक्ष्ण लेप आदि से चिकित्सा करनी चाहिए और सूनी बवासीरवालों की चिकित्सा रश्मिपित्त की-सी करनी चाहिए ॥ ३ ॥

कठिन अर्श की चिकित्सा ।

शस्त्रैर्वाध जलौकाभिः प्रच्छन्नं कठिनार्शसः । शोणितं सञ्चितं दृष्ट्वा हरेत्माङ्गः पुनः पुनः ॥ ४ ॥

यदि बवासीर में मससे कटे हो तथा उनमें सूत्र इकट्ठा हो गया हो तो शस्त्र द्वारा काटकर यहाँ लेखन (सुरक्ष) करके जोरू द्वारा बार-बार रश्मि को निकाल देना चाहिए ॥ ४ ॥

श्लेष्मार्श की चिकित्सा ।

श्लेष्मार्शसो गुदे पार्श्वे रक्रमोचं जलौकया । कृत्वा चार्करसैर्लेपा दाहो वात्रापि शस्यते ॥ ५ ॥

कफज बवासीर में मससों की एक बगल से जोरू द्वारा सूत्र निकालकर आक के पर्तों के रस का लेप अथवा दाह करना चाहिए ॥ ५ ॥

ज्योत्स्निकामूल लेप ।

ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपो रक्ताशसां हितः ॥ ६ ॥

कटुई तोरई की जड़ के चूर्ण का पानी के साथ सूनी बवासीर पर लेप करने से अत्यन्त लाभ होता है ६ ॥

पीलूतैलेन संलिप्ता वार्त्तिका गुदमध्यगा । पातयत्यर्शसां सिद्धं न वलिवेदना क्वचित् ॥ ७ ॥

एक बची को पीलू के तेल में भिगोकर गुदा में रखने से मससे गिर जाते हैं । तथा बलि (आँटों) में किसी प्रकार की वेदना नहीं होती ॥ ७ ॥

पिप्पल्यादि लेप ।

पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं शिरीषस्य फलं तथा । सुधादुग्धार्कदुग्धैर्वा लेपोऽयं गुदजं हरेत् ॥ ८ ॥

पीपल, सेंधानमक, कूट, सिरस के बीज इनके चूर्ण को घृहर तथा आक के दूध के साथ घोटकर लेप करने से बवासीर भच्छी हो जाती है ॥ ८ ॥

हरिद्राजालिनी चूर्णं कटुतैलसमन्वितम् । एष लेपो वरः मोक्षो हार्शसामन्तकारकः ॥ ९ ॥

सरसों के तेल में हल्दी तथा कड़वा तोरई का लेप करने से अर्श नष्ट होती है ॥ ९ ॥

शूरणं रजनी वहिष्टद्वयं गुडमिश्रितम् । पिष्टद्वारनालकैर्लेपो हन्त्यर्शांसि महान्त्यपि ॥ १० ॥

जमीकण्ठ, हल्दी, चित्रक और सुहागा इनके चूर्ण को गुद के साथ काँजी से पीसकर लेप करने से बवासीर नष्ट होती है ॥ १० ॥

आरनालेन संपिष्टा सवीजकटुतुम्बिका । सगुडा हन्ति लेपेन चार्शांसि मूलतो ध्रुवम् ॥ ११ ॥

बीजसहित कड़वी नूँधी के चूर्ण को गुद के साथ काँजी से पीसकर लेप करने पर बवासीर का जड़ से नाश होता है ॥ ११ ॥

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः । बन्धनात् सुहृदं सूत्रं द्विनत्यर्शो न संशयः ॥ १२ ॥

एक छोरे को हल्दी तथा घृहर के दूध से भिगोकर उस छोरे से मससे की जड़ को बाँध दे । इसके बाँधने से मससे धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥

हरीतकीं तिलान् धात्रीं मृद्धीकां मधुकं तथा । परूपकस्य तोयेन पिवेदर्शो निवृत्तये ॥ १३ ॥

हृद्, काले तिल आँधला, किशमिश तथा मुलेठी के चूर्ण को फालसे के रस के साथ पीने से बवासीर अच्छी हो जाती है ॥ १३ ॥

तिलं भल्लातकं पथ्यागुडश्चेति समां-  
शिकम् । दुर्नामकासश्वासघ्नं श्लेहपाण्डु-  
ज्वरापहम् ॥ १४ ॥

तिल, भिलावाँ, हृद्, गुड़ इन्हें बराबर-  
बराबर मिलाकर उपयुक्त मात्रा में सेवन करावे ।  
इसके सेवन से बवासीर, खाँसी, श्वास, तिरहली  
पाण्डु तथा ज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

चन्दनादि काथ ।

चन्दनकिराततिक्कधन्वयवासाः सना-  
गराः कथिताः । रक्तार्शां प्रशमना  
दार्वात्त्वगुशीरनिन्वश्च ॥ १५ ॥

लालचन्दन, चिरायता, धमासा, सोंठ, दारु-  
हृदी, दालचीनी, खस, नीम की छाल सय  
मिलाकर २ तोले । पाक के लिये जत्र ३२  
तोले, शेष ८ तोले । इस काथ से खूनी बवा-  
सीर नष्ट होती है ॥ १५ ॥

पथ्यादि काथ ।

पथ्यामृता च धनिका पाने काथो  
गुडान्वितः । सर्वेष्वर्शःसु हितः चिरजाते-  
न्वसंशयम् ॥ १६ ॥

हृद्, गिलोय और धनियाँ इनके काथ का  
गुड़ के साथ सेवन करने से सय प्रकार के  
अशरोग नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

विडङ्गादि काथ ।

विडङ्गपत्रकेशरशुएठीसमैलाकुस्तुम्बु-  
रुधान्यकतिलानाम् । काथो हरीतकी-  
सर्पिगुं देन पीतो निहन्तिगुदे गुदजानि १७

काथविडङ्ग, तेजपत्र, नागकेसर, सोंठ, इला-  
यची, नीपाली धनियाँ, धनियाँ, और तिल इनके  
काथ को हृद् के चूर्ण, गुड़ तथा घृत के साथ  
पान करने से बवासीर के मस्से नष्ट होते हैं १७

अशनाशक लेप ।

स्तुक्तीरं रजनीयुक्तं लेपाद्दुर्नामनाश-

नम् । कोशातकीरजोधर्पान्निपतन्ति गुदो-  
द्भवाः ॥ १८ ॥

यूहर के दूध में हृदी मिलाकर लेप करने  
से बवासीर के मस्से नष्ट हो जाते हैं तथा  
कडुई तोरई का चूर्ण बवासीर के मस्सों पर रग-  
बने से मस्से गिर जाते हैं ॥ १८ ॥

अर्कक्षीरादि प्रलेप

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं तिक्कनुम्ब्यारच  
पल्लवाः । करञ्जो वस्तमूत्रश्च लेपनं  
श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ १९ ॥

आक का दूध, यूहर का दूध, कडुई तूँबी के  
पत्त और करंज की छाल को चकरे के मूत्र में  
पीसकर लेप करना बवासीर के मस्सों को  
गिराने के लिये उत्तम है ॥ १९ ॥

घोषाफलवर्ति ।

अशोघ्नी गुदजा वर्त्तिगुडयोषा फलो-  
द्भवा । ज्योत्स्निकाभूणकल्केन लेपो रक्ता-  
र्शां हितः ॥ २० ॥

पुराने गुड़ को जल में पकावे परचात् उसमें  
कडुई तोरई के चूर्ण को मिलाकर बत्ती बनावे ।  
इस बत्ती को गुदा में रखने से बवासीर के मस्से  
नष्ट हो जाते हैं । कडुई तोरई की जड़ के फटक  
का लेप करना खूनी बवासीर के मस्सों के  
लिये हितकर है ॥ २० ॥

तुम्बीबीजं सोद्भिदन्तु काञ्जीपिष्टं  
गुडीत्रयम् । अशोहरं गुदस्थं स्यादधि  
माह्विमरनतः ॥ २१ ॥

कडुई तूँबी के बीज और प्यारी लषण को  
काँजी में पीसकर गोली बनावे । इसको  
गुदा में रखने तो तीन ही गोली से बवासीर  
के मस्से नष्ट हो जाते हैं । पथ्य-भँस का  
दही ॥ २१ ॥

महाबोधिमदेशस्य पथ्या कोशात-  
कीरजः । सफेनं लेपतो हन्ति लिङ्गवर्ति-  
मसंशयः ॥ २२ ॥

महाशोथ देश की हृद् और कहुई तोरई का पूर्ण तथा समुद्रकेन को पानी में पीम कर लेप करने से लिङ्गाशं ( लिङ्ग की बवासीर ) के मस्ते नष्ट हो जाने हैं ॥ २२ ॥

अपामार्गोद्भवान्मूलात् क्षारः सह-रितालकः । लिङ्गाशो लेपतो हन्ति चिरजातमसंशयम् ॥ २३ ॥

लटजीरा की जड़ के क्षार में हरताल मिलाकर लेप करने से चिरकाल से पैदा हुआ ( पुराना ) लिङ्गाशं नष्ट होता है । इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥

वातातिसारवद्भिन्नवचस्यशोस्युपाचरेत् । उदावर्त्तविधानेन गाढविटकानि चासकृत् ॥ २४ ॥

बवासीर रोग में यदि पतले दस्त आते हों तो वातातीसार की-सी चिकित्सा करनी चाहिए । यदि घिटा कोठन होती हो तो उदावर्त्त के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २४ ॥

विड्विषदे हितं तक्रं यमानीविद-संयुतम् । वातरलेप्मार्शासा तक्रात् परं नास्तीह भेषजत् ॥ २५ ॥ तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा । न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहिताः ॥ २६ ॥

बवासीर रोग में यदि दस्त बन्द हो गये हों तो अन्नवायन और विड नमक मिलाकर छाछ ( मट्ठा ) पीना हितकारी है । वातज और कफज बवासीर के लिये छाछ से उत्तम अन्य औषधि नहीं हैं । दोषानुसार घी युक्त छाछ अथवा केवल छाछ का सेवन कराना चाहिए । छाछ के

१ वातज बवासीर में घीना घृत निकाली और कफज बवासीर में घृत निकाली हुई छाछ का सेवन हितकारी है ।

सेवन से नष्ट हुई बवासीर फिर नहीं उत्पन्न होती ॥ २५-२६ ॥

त्वचं चित्रकमूलस्य पिप्प्ला कुम्भं मलेपयेत् । तक्रं वा यदि वा तत्र जात-मशोहरं पिचेत् ॥ २७ ॥

चीता की जड़ को पीसकर घड़े में लीप दे । उस घड़े में जमाया हुआ दही अथवा छाछ पीने से बवासीर नष्ट होती है ॥ २७ ॥

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छूकएदूरुजा-पहा । गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगु-डाभया ॥ २८ ॥

हृद् का पूर्ण गुद मिलाकर सेवन करने से बवासीर को शीघ्र नष्ट करता है तथा पित्त, कफ, कच्छू तथा सुजली का रोग नष्ट करता है ॥ २८ ॥

सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जि-ताम् । त्रिष्टदन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलो-मिकीम् ॥ २९ ॥

घी में अगुनी हुई हृद् को गुद और पीपरि के साथ अथवा निमोथ और दन्तीमूल के साथ सेवन करने से वायु का अनुलोमन होता है ॥ २९ ॥

तिलारूपकरसंयोगं भक्षयेदग्निवर्द्ध-नम् । कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शासां नाशनं परम् ॥ ३० ॥

तिल और भिलावाँ मिलाकर सेवन करने से कोठ और बवासीर नष्ट होते हैं और अग्नि की वृद्धि होती है ॥ ३० ॥

गोमूत्राध्युषितां दद्यात् सगुडां वा हरीतकीम् । पञ्चकोलयुतां वापि तक्रमस्मै प्रदापयेत् ॥ ३१ ॥

गोमूत्र में भिगोई हुई हृद् को गुद में मिलाकर सेवन करने से अथवा पञ्चकोल ( पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और



सोड ) युक्त छाद्य पीने से अशरोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

मृल्लिप्तं शौर्यं कन्दं पक्त्वाग्नौ पुट-  
पाकवत् । अद्यात् सतैललवणैर्दुर्नाम्नां  
विनिवृत्तये ॥ ३२ ॥

प्रशरोग की निवृत्ति के लिये जर्मीकन्द को मिट्टी में लपेट कर पुटपाक की विधि से अग्नि में पकाकर तेल और नमक के साथ खाना चाहिए ॥ ३२ ॥

स्विन्नं वार्ताकुफलं घोषायाः क्षार-  
जेन सलिलेन । तद्घृतमृष्टं युक्तं गुडे-  
नातृप्तितो योऽत्ति ॥ ३३ ॥ पिबति च  
न्यूनं तक्रं तस्याश्वेवातिवृद्धगुदजानि ।  
यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्त-  
रात्रेण ॥ ३४ ॥

कड़ई तोरई के चार के जब में बैंगन को उवाककर और घी में भूनकर गुद के साथ पेट भरकर खावे और ऊपर से थोड़ा सा मट्ठा ( छाद्य ) पीवे तो अत्यन्त बड़े हुए गुदांकुर और सहजाशरोग सात दिन में नष्ट होते हैं ॥ ३३-३४ ॥

असितानां तिलानाञ्च प्रकुञ्चं  
शीतवार्यनु । खादितोऽर्शांसि नश्यन्ति  
द्विजदार्याद्रुपुष्टिदम् ॥ ३५ ॥

एक छटाक काले तिल खाकर ठंडा पानी पीने से सब प्रकार का बवासीररोग नष्ट होता है तथा दाँत हट और ऋजु पड़ होते हैं ॥ ३५ ॥

नागराद्य मोदक ।

समागरारुष्करवृद्धदारकं गुडेन यो  
मोदकमत्युदारकम् । अशेषदुर्नामरोग-  
दारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ ३५ ॥  
चूर्णं चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो  
टः ॥ ३७ ॥

सोड, गुद भिल्लायाँ और विधारा इनके मभाग चूर्ण में दुगुना गुद मिलाकर खरूद

बनावे । उचित मात्रा में इस लड्डू का सेवन करने से बड़ा हुआ भी बवासीर रोग नष्ट होता है । यदि चूर्ण ही रखना हो तो चूर्ण के बराबर गुद और लड्डू बनाने हों तो दुगुना गुद मिलाया चाहिए ॥ ३६-३७ ॥

लवणोत्तमादिचूर्ण ।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवान् चिर-  
बिल्वमहापिचुमर्दयुतान् । पिव सप्तदिनं  
मथितालुक्तितान् यदि मर्दितुमिच्छसि  
पायुगदान् ॥ ३८ ॥

सँधा नमक, चीत की जड़, इन्द्रजौ, जौ, करंज के धील और बकायन की छाल इनका समभाग चूर्ण ब्राह्म में मथकर सात दिन पीने से बवासीर रोग नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

दशमूलगुड ।

दशमूलाग्निदन्तीनां प्रत्येकं पल-  
पञ्चकम् । जलद्रोणेन संकाश्य पादशेषे  
समुद्धरेत् ॥ ३९ ॥ गुडं पलशतञ्चैव  
सिद्धे शीते विमिश्रयेत् । त्रिवृताया रजः  
प्रस्थं तदर्धं पिप्पलीरजः ॥ ४० ॥ घृत-  
भाण्डे स्थितं खादेत् तोलकाहर्तं दिने-  
दिने । दशमूलगुडः ख्यातः शमयेदर्श  
आमयम् ॥ ४१ ॥ अजीर्णं पाण्डु-  
रोगश्च सर्वरोगहरं परम् ॥ ४२ ॥

दशमूल, चित्रक, दन्तीमूल हर एक २० तोले । इन्हें २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे । जब १ सेर ३२ तोले जल शेष रहे तब उतार लो और ५ सेर गुद मिलाकर पुनः पाक करे । जब उपयुक्त पाक हो जाय तब उसे ठंडा करके उसमें निसोत का चूर्ण १४ तोले और पिप्पली चूर्ण ३२ तोले अच्छी प्रकार मिलाकर घी के पात्र में रखने । मात्रा—घाघा तोला इसके सेवन में बवासीर, अजीर्ण और पाण्डु आदि सगुण रोग शान्त होते हैं ॥ ३९-४२ ॥

अगस्तिमोदक ।

हरीतकीनां त्रिपलं त्रीण्याम्राणि  
कटुत्रिकम् । त्वक्पत्रकं चार्द्रपलं गुड-  
स्याष्टपलं मतम् ॥ ४३ ॥ अगस्तिमोदका-  
नेतान् कल्पितान् परिभक्षयेत् । शोफाशौ  
ग्रहणीदोषकासोदावर्त्तनाशनम् ॥ ४४ ॥

हृद् १२ तोले, सोंठ १२ तोले, काली  
मिर्च १२ तोले, पीपल १२ तोले, दालचीनी  
२ तोले, तेजपात २ तोले और गुड ३२ तोले ।  
इनसे विविधपूर्वक अगस्तिमोदक निर्माण कर  
सूजन, यवासीर, ग्रहणी, खांसी तथा उदावर्त  
आदि व्याधियों में प्रयोग करावे । मात्रा—  
आधा तोला ॥ ४३--४४ ॥

भल्लातकादिमोदक ।

भल्लातकं तिलं पथ्या चूर्णं गुडसम-  
न्वितम् । मोदकं भक्षयेन्मापत्रयं पित्तार्श-  
सां जये ॥ ४५ ॥

भिलावां, काले तिल और हृद्, इनके चूर्ण  
में गुड को मिलाकर लड्डू बनावे और पित्तार्श  
की शान्ति के लिये प्रयोग करावे । मात्रा—३  
माशे से ६ माशे तक ॥ ४५ ॥

काङ्कायनमोदक ।

पथ्या पञ्चपलान्येकमजाज्या मरिच-  
स्य च । पिप्पलीपिप्पलीमूलाचव्यचित्र-  
कनागराः ॥ ४६ ॥ पलाभिवृद्ध्या क्रमशो  
यवत्तारपलद्वयम् । भल्लातकपलान्यष्टौ  
कन्दस्तु द्विगुणो मतः ॥ ४७ ॥ द्विगु-  
णेन गुडेनैषां वटकान् शाणसम्मितान् ।  
कृत्वैनं भक्षयेत् प्रातस्तक्रमम्भोऽनु वा  
पिबेत् ॥ ४८ ॥ मन्दाग्नि दीपयत्येव  
ग्रहणीपाण्डुरोगनुत् । काङ्कायनेनशिष्येभ्यः  
शस्त्रत्तारग्निभिर्विना । भिपग्जितभिति  
मोक्तं श्रेष्ठमशौविकारिणाम् ॥ ४९ ॥

हृद् २० तोले, काला जीरा ४ तोले, काली

मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, पिपलामूल ८  
तोले, चव्य १२ तोले, चित्रक १६ तोले सोंठ  
२० तोले, जवालार ८ तोले, भिलावां ३२  
तोले, जमीकंद ६४ तोले, सबको मिलाकर  
चूर्ण कर ले और सब चूर्ण से दूना गुड मिला-  
कर ६-६ माशे के लड्डू बनाकर प्रातःकाल  
सेवन करावे । इसके सेवन के बाद छाछ अथवा  
ठंडा जल पिखाना चाहिए । यह मन्दाग्नि को  
तेज करता है तथा ग्रहणी और पाण्डुरोग का  
नाशक है । यवासीर के रोगियों के लिये  
काङ्कायन ने अपने शिष्यों को इसका उपदेश  
दिया था । इसके सेवन से शस्त्र, चार तथा  
अग्नि आदि के पिना ही भस्से नष्ट हो जाते  
हैं ॥ ४६--४९ ॥

माण्डिमोदक ।

विट्प्रसारामलकाभयानां पलं पलं  
स्यात् त्रिवृतात्रयञ्च । गुडस्य षड्द्वादश-  
भागयुक्ता चिमर्च सम्यक् गुडिका  
विधेया ॥ ५० ॥ निवारणे यत्तवरेण  
सृष्टः स माण्डिमद्रः किल शाक्यभिक्षवे ।  
अयं हि कासत्तयकुष्ठनाशनो भगन्दर-  
शीहजलोदरार्शसाम् ॥ ५१ ॥ यथेष्ट-  
चेष्टान्नविहारसेवी अनेन वृद्धस्तरुणो  
भवेच्च ॥ ५२

वायविद्ध, अंबला और हृद् हरएक  
४ तोले, निशोत १२ तोले, गुड २४ तोले,  
इन्हें इकट्ठा करके मिलाकर ६ माशे के लड्डू  
बनाकर रोगी को सेवन करावे । यह लड्डू  
शाक्यभिक्षु के भस्से के निवारण के लिये  
यत्तवर ने बनाया था । यह खांसी, चय, कुष्ठ,  
भगन्दर, प्लीहा, जलोदर तथा यवासीर को  
नष्ट करता है । यथेष्ट आहार-विहार आदि  
के साथ इसे सेवन करने से शरीर की पुष्टि  
होती है ॥ ५०--५२ ॥

विजयचूर्ण ।

त्रिकत्रयवचार्हिगुपाठात्तारनिशाद्वय-

म् । चव्यतिक्राकलिङ्गाग्निशताह्वालव-  
णानि च ॥ ५३ ॥ ग्रन्थिविल्वजमोदा  
च गणोष्ठाविंशतिर्मतः । एतानि सम-  
भागानि श्लक्ष्णचूर्णादि कारयेत् ॥ ५४ ॥  
ततो द्विमापममितं पिवेदुष्णैव वारिणा ।  
एरण्डतैलयुक्तं तु सदा लिह्यात्ततो  
नरः ॥ ५५ ॥ कासं हन्यात्तथा शोथ-  
मर्शांसि च भगन्दरम् । हृच्छूलं पार्श्व-  
शूलञ्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ५६ ॥  
हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डु-  
रोगताम् । आमाम्बयमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं  
गुदं कृमीन् ॥ ५७ ॥ अन्ये च ग्रहणी-  
दोषा ये मया परिकीर्त्तितः । महाज्वरोप-  
सृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ५८ ॥  
अमजानां तु नारीणां प्रजावर्द्धनमेव च ।  
विजयो नाम चूर्णोऽयं कृष्णात्रेयेण  
पूजितः ॥ ५९ ॥

त्रिकटु, त्रिकला, त्रिमान ( दालचीनी,  
छोटी इलायची, तेजपत्र, ), पच, हाँग,  
पाठा, जवाखार, हवदी दारहवदी, चव्य,  
कटुकी, इन्द्रजी, चित्रक, सोया, पाँचों प्रकार  
के नमक, पिप्पलीमूल, बेल और अजमोदा  
इन सब चीजों के चूर्णों को सम भाग मिला  
कर गरम जड़ से अथवा अंडी के तेल के माध्य  
सेवन करावे । मात्रा—२माशे । इसके सेवन से  
खाँसी, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदय का रुज,  
पमवादे का दर्द, वातगुल्म, उदररोग, हिक्का, रवास,  
प्रमेह, कामला, पाण्डु, उदापर्व, अन्त्रवृद्धि, गुदा  
का रोग, कृमि, ज्वर तथा अपस्मार ( शृगी )  
आदि रोग नष्ट होते हैं । निःसन्तान स्त्रियों के  
लिये सन्तान का देनेवाला है ॥ २३-२९ ॥

समशफरचूर्ण ।

शुण्ठीकणामरिचनगदलत्वगेलं  
पूर्णकृतं कृमिनिर्द्धितमूर्धमन्त्यात् ।

खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्यकासा-  
रुचिश्चसनकएठहृदामयेपु ॥ ६० ॥

छोटी इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग,  
तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, काली  
मिर्च ५ भाग, पीपल ६ भाग, सोंठ ७ भाग ।  
इस सम्पूर्ण चूर्णों की बराबर खाँड मिलाकर  
सेवन करावे । मात्रा—१ माशा । इसके सेवन से  
बवासीर, मन्दाग्नि, खाँसी, अरुचि, रवास,  
कण्ठरोग तथा हृदयरोग आदि नष्ट होते  
हैं ॥ ६० ॥

कर्पूराद्यचूर्ण ।

घनसारो लवङ्गश्च एलात्वक् नाग-  
केशरम् । जातीफलमुशीरश्च नागरं कृष्ण-  
जीरकम् ॥ ६१ ॥ कृष्णागुरुतुगाक्षोरी  
मांसी नीलोत्पलं कणा । चन्दनं तगरं  
वालं कक्कोलश्चेति चूर्णयेत् ॥ ६२ ॥  
समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योज्झां सित्ता  
भवेत् । कर्पूराद्यमिदं चूर्णं वाताशो नाशनं  
परम् ॥ ६३ ॥ रोचनं तर्पणं वृष्यं  
त्रिदोषघ्नं वलपदम् । हृद्रोगं कटिरोगञ्च  
कासं हिक्काश्च पीनसम् ॥ ६४ ॥ यद्गमायं  
तमकर्वासमतीसारवलाक्षयम् । प्रमेहारुचि-  
गुल्मादीन् ग्रहणीमपि नाशयेत् ॥ ६५ ॥

कर्पूर, लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी,  
नागकेशर, जायफल, पचम, सोंठ, कालाजीरा,  
काली अमर, बंगलोलचन, जशमांसी, नीलकमल,  
पीपल लालचन्दन, तगर, गन्धपाला और  
शीतलचीनी इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर  
सब चूर्णों से आधी खाँड मिलावे । यह चूर्ण  
पातज बवासीर, हृदयरोग कटिरोग खाँसी,  
हिक्का, जुकाम, राजपक्ष्मा, तमकरवात, अती-  
सार, प्रमेह, अरुचि, गुल्म तथा ग्रहणी आदि  
रोगों में दिनकर है । यह रोचक, वृत्तिकारक,  
वीर्यवर्द्धक, बलकारक तथा त्रिदोषनाशक है ।  
मात्रा १ माशा से २ माशे तक ॥ ६१-६५ ॥

करञ्जादि चूर्ण ।

चिरचिल्व्वाग्निस्निग्धूत्थनागरेन्द्रयवार-  
लुम् । तक्रणै पिवतोऽर्शांसि निपतन्त्य-  
सृजा सह ॥ ६६ ॥

करञ्ज के बीज, चित्रक, संधानमक, मोंठ, इन्द्रजै, धरलू की छाल इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर रोगी को सेवन करावे । मात्रा—२ माशे । अनुपान—छाछ । इससे मस्से तथा सूनी बवासीर नष्ट होती है ॥ ६६ ॥

धुस्तूरदि चूर्ण ।

धुस्तूरस्य फलं पक्वं पिप्पली नागरा-  
भया । बालकं गुडसंयुक्तं भक्ष्यं गुञ्जा-  
त्रयं निशि ॥ सितामध्वाज्यरूपकं पिवेत्  
पित्तार्शसां जये ॥ ६७ ॥

पका हुआ धतूरे वा फल, पीपल, सोंठ, हड़, गन्धयाला, गुड़ हरएक को बराबर मात्रा में मिलाकर रात्रि में सेवन करावे । मात्रा ३ रत्ती । अनुपान—खाँद, शहद तथा घृत । इससे पित्तज बवासीर अच्छी हो जाती है ॥ ६७ ॥

भल्लातकामृतयोग ।

गुडूची लाङ्गली मृद्धी मुण्डी गुञ्जा  
च केतकी । परणां पत्ररसैर्मर्द्यं बालभल्लात-  
बीजकम् ॥ ६८ ॥ दिनैकं मर्दयेद्वाढं  
मापार्थं भक्षयेत्सदा । भल्लातामृतयोगोऽयं  
पित्तजाशंसि नाशयेत् ॥ ६९ ॥

गिलोय, कलिहारी, काकडासिंगी, मुण्डी, घुँघची, केवड़ा, इन छहों के पत्तों के रस से कच्चे भिल्लातक के बीजों को एक-एक दिन मर्दन कर पित्तार्श में प्रतिदिन सेवन करावे । मात्रा—आधा माशा ॥ ६८-६९ ॥

देवदालीकयोग ।

देवदालीकपायेण शौचमाचरतां  
नृणाम् । किंवा तद्धिमसेवाभिः कुतः  
स्युर्गुदजाडकुराः ॥ ७० ॥

कषयी तोरई के काथ से गुदा को प्रतिदिन धोने से अथवा इसके हिम के अन्तःप्रयोग से मस्से पैदा नहीं होते ॥ ७० ॥

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचं पिप्पली कुष्ठं सैन्धवं जीरनाग-  
रम् । वचाहिं गुविडङ्गानि पथ्या वह्मञ्ज-  
मोदकम् ॥ ७१ ॥ एतेषां कारयेच्चूर्णं  
चूर्णस्य द्विगुणं गुडम् । खादेन्मापद्मय-  
ञ्चापि पिवेदुप्यजलं ततः । सर्वाण्यर्शांसि  
नश्यन्ति वातजानि विशेषतः ॥

कालीमिर्च, पीपल, कूट, सेंधा नमक, श्वेत जीरा, सोंठ, मूच, हींग, वायविडङ्ग, हड़, चित्रक और अजमोद हरएक के चूर्ण को बराबर मात्रा में ले सबसे दूना पुराना गुड, मिलाकर उसे रोगी को सेवन करावे । मात्रा—२ माशे । अनुपान गरम जल । इसके सेवन से सम्पूर्ण मस्से नष्ट होते हैं । विशेषतः यह वातज बवासीर को लाभदायक है ॥ ७१-७२ ॥

दन्त्यरिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्ज-  
मूलयोः । भागान् पलांशानापोथ्य जल-  
द्रोणे विपाचयेत् ॥ ७३ ॥ त्रिपलं त्रि-  
फलायारच दलानां तत्र दापयेत् । रसे  
चतुर्थशेषे तु पूतशीते प्रदापयेत् ॥ ७४ ॥  
तुलां गुडस्य तत्त्रिष्टेन्मासार्थं घृतभाजने ।  
तन्मात्रया पिवेन्नित्यमर्शोभ्यः प्रवि-  
मुच्यते ॥ ७५ ॥ ग्रहर्षांपारदुरोगघ्नं  
वातवचोऽनुलोमनम् । दीपनं चारुचिह्नञ्च  
हन्त्यरिष्टमिमं विदुः ॥ ७६ ॥ पात्रेऽरिष्टा-  
दिसन्धानं धातकीलोध्रलोपिते ॥ ७७ ॥

दन्तीमूल, चित्रकमूल, दशमूल हरएक ८ तोले । इन्हें २५ सेर ४८ तोले जल में पाक करे । उसमें त्रिफला ( मिलित ) के पत्तों के २४ तोले चूर्ण को डाल दे । जब पाक होकर ६ सेर ३२ तोले शेष रहे तब उस जल को छानकर

उष्ण होने पर उसमें १० सेर गुड़ मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र में, १२ दिन तक मुख बन्द करके रखे। फिर, छानकर मात्रा से रोगियों को सेवन करावे। इसके सेवन से मरसे, प्रहणी तथा पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं। यह वात तथा पुरीष का अनुलोमन करता है। धातकी तथा लोभ से लिप्त पात्र में अरिष्ट का मन्थान करना चाहिए। मात्रा—१। तोला से २॥ तोले तक ॥ ७३-७७ ॥

बृहत्कासीसाद्य तैल ।

कासीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठञ्च लाङ्गली । शिलाभिदश्वमारश्च दन्ती जन्तुश्चचित्रकम् ॥ ७८ ॥ तालकं कुन्टी स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक । तैलं स्नुध्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ७९ ॥ एतद्भ्यद्रतोष्णोसि चारैरेध पतन्ति हि । चारकर्मकरं ह्येतन्न च सन्दूपयेद्वलिम् ॥ ८० ॥

तिरुली का तेल ४ सेर । कल्क के लिये द्रव्य—कसीस, सेंधा नमक, पीपल, मोंठ, कूठ, कलिहारी, पाषाणभेद, कनेर की जड़, दूतीमूल, मायबिहड़, चित्रक, हड़ताल, मैन्मिल, चोक, धूर का दूध, आक का दूध मिलित १ सेर, गोमूत्र १६ सेर, इस तेल का विधिपूर्वक पाक करके इसे मस्तों पर लगाने से मासाङ्कुर गिर जाते हैं। इसका प्रभाव चार की तरह है। यह गुदा की यजि को दूषित नहीं करता है ॥ ७८-८० ॥

कामीसाद्य तैल ।

कासीसं दन्तिसिन्धुत्थकरवीरामलैः पचेत् । तैलमर्कपयोमिश्रमभ्यङ्गात् पायुकीलजित् ॥ ८१ ॥

तिरुली का तेल १ सेर, कांजी ४ सेर । कृष्णार्थ—कसीस, दन्तीमूल, सेंधा नमक, कनेर, भावना प्रत्येक ४ तोले। इसका विधिपूर्वक पाक करके थोड़ा सा मदार का दूध मिलाकर लगाने से मरसे नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

पिप्पल्याद्य तैल ।

पिप्पली मधुकं विल्वं शताह्वा मदनं वचाम् । कुष्ठं शुण्ठी पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ॥ ८२ ॥ पिप्प्लां तैलं विपक्व्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम् । अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ ८३ ॥ गुदनिःसर्गं शूलं मूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाम् । कट्यूरु-पृष्ठदौर्बल्यमानाहं वड्क्षणे रुजम् ॥ ८४ ॥ पिच्छास्रावं गुदे शोथे वातवर्चो विनि-ग्रहम् । उत्थानं बहुशो यच्च जयेच्चैवा-श्रुवासनात् ॥ ८५ ॥

तिरुली का तेल ४ सेर, दूध ८ सेर जल १६ सेर । कल्कार्थं द्रव्य—पीपल, मुलहठी, बेल की छाल, सोया, मैन्फल, वच, कूठ, सोंठ पुष्करमूल, चित्रक तथा देवदारु मिलित १ सेर । इस तेल के अनुवासन से मरसे, मूढवात, गुदा-अर्श, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, दुर्बलता, अफरा, पिच्छास्राव, गुदा की सूजन और मलधन्ध आदि रोग नष्ट होते हैं - ८२-८५ ॥

उदावर्त्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरू-क्षिताः । विलोमवाताः शूलार्त्तास्तेविष्ट-मनुवासनम् ॥ ८६ ॥

जिन्हें उदावर्त्त हो, जो अत्यन्त रुग्ने हों या जिमकी वायु नहीं खुजती हो एवं जिन्हें शूल हो उन्हें अनुवासन करना चाहिए ॥ ८६ ॥

पट्पलक घृत ।

सत्तारैः पञ्चकोलैश्च पलिकैस्त्रिगुणो-दकैः । समं क्षीरं घृतमस्थं ज्वरार्शःक्षीह-कासनुत् ॥ ८७ ॥

गोघृत १२८ तोले, दूध १२८ तोले । कल्क त्रय—त्रयागार, पीपल, पीपलामूल, वरुण, चित्रक क्षीर मोंठ प्रत्येक ८ तोले । जल ४ सेर ६४ तोले । इस घृत का विधिपूर्वक पाक करके मरसे, प्रहा तथा शर्मा आदि रोगों में सेवन करना चाहिए ॥ ८७ ॥

व्योपाद्य घृत ।

व्योपगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्म  
वारिणि । साधितं पिबतः सर्पिःपतन्त्यशा-  
स्यसंशयम् ॥ ८८ ॥

गोघृत ४ सेर, टाक के चार का जल १२  
सेर । कलकद्रव्य—त्रिकटु मिलित १ सेर । इस  
घृत के सेवन से निरचय ही मस्से गिर जाते  
हैं ॥ ८८ ॥

चव्यादि घृत ।

चन्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरुण  
च । यमानीं पिप्पलीमूलमुभे च विड-  
सैन्धवे ॥ ८९ ॥ चित्रकं विल्वमभयां  
पिप्प्लासर्पिर्विपाचयेत् । शकृद्वातानुलोम्यार्थं  
जाते दधि चतुर्गुणे ॥ ९० ॥ प्रवाहिकां  
गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् । गुदवङ्क्षण-  
शूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ९१ ॥

गौ का घृत ४ सेर, दही १६ सेर, जल  
१६ सेर । कलक के लिये द्रव्य—चव्य, त्रिकटु,  
पाठा, जवाखार, धनियाँ, अजनायन, पीपला-  
मूल, विडलवण, सेंधा नमक, चित्रक, बेल की  
छाज, इट मिलाकर १ सेर । विधिपूर्वक पाक  
करके इस घृत का सेवन करावे । इसके सेवन  
से पुरीष तथा वात का अनुलोमन होता है एव  
प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, गुदा का शूल तथा  
वह्न्यशूल आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ८९-९१ ॥

कुटजाद्य घृत ।

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोभ्र-  
धातकीकल्कैः । सिद्धं घृतं विधेयं शूल-  
रक्षांशसां भिपजा ॥ ९२ ॥

गोघृत ४ सेर । कलक के लिये द्रव्य—इन्द्र-  
जी, कुडा की छाज, नागकेशर, नीला कमल,  
लोध, धाय के फूल सब मिलाकर १ सेर, जल  
१६ सेर । विधिपूर्वक पाक करके शूल एव  
खनी बवासीर में सेवन कराना चाहिए ॥ ९२ ॥

सुनिपणकचाङ्गेरो घृत ।

अवाक्युप्पी बला दावीं पृथिनपर्णी  
त्रिकण्टकम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ-  
शुद्धारच द्विपलोन्मिताः ॥ ९३ ॥ कपाय  
एपपेप्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी । पिप्पली  
पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ९४ ॥  
कलिङ्गं शात्मलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्ज-  
नम् । कट्फलं चित्रकं मुस्तं प्रियङ्गवति-  
विपे स्थिरा ॥ ९५ ॥ पद्मोत्पलानां किञ्च-  
लकः समङ्गा सनिदिग्धिका । विल्वमोच-  
रसे पाठा भागाः स्युः कार्पिकाः पृथक् ॥  
९६ ॥ चतुःप्रस्थभृतं प्रस्थं कपायमवतार-  
येत् । त्रिशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विप-  
लाधिकः ॥ ९७ ॥ सुनिपणकचाङ्गेयोः  
प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च । सर्वैरतैर्यथोद्दिष्टै-  
घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९८ ॥ एतदर्शः-  
स्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरस्रुतौ । प्रवाहणे  
गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ९९ ॥  
उत्थाने चातिबहुशः शोथशूलगुदामये ।  
मूत्रग्रहे मूढराते मन्दाग्नावरुचावपि ॥  
१०० ॥ प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्नि-  
वर्द्धनम् । विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा  
निरत्ययम् ॥ १०१ ॥

सोया, खरेटी, दारहल्दी, पृथिनपर्णी, गोखरू,  
बड के अकुर, गुलर के पेड की कोपलें, पीपल  
की कोपलें हरएक ८ तोले । पान के लिये जल  
६ सेर ३२ तोले, अवशिष्ट बवाथ १२८ तोले ।  
कलक द्रव्य—जीवन्ती, कुटकी, पीपल, पीपला-  
मूल, चीरकाकोली, लाल चन्दन, रसाँत, कट-  
फल, चित्रक, मोथा, प्रियङ्गु, अतीस, शात-  
पर्णी, कमलकेशर, नील कमल की केशर,  
मजीठ, छोठी कटेरी, बेल, मोचरस, पाठा ;  
हरएक दो दो तोले । चौपतिया तथा चाँगीरी  
हरएक का स्वरस ३ सेर १६ तोले, घृत डेढ़

सेर ८ तोले । इस घी का विधिपूर्वक पाक करके सेवन करावे । बवासीर, खून बहना, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, पिच्छास्त्राव, सूजन, शूल, मूत्ररोध, मूदवात, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं । यह बल, वर्ण तथा जठराग्नि को बढ़ाता है ॥ १३ - १०१ ॥

अश्वगन्धादि धूप ।

अश्वगन्धाथ निगुण्डीवृहती पिप्पली फलम् । धूपोऽयं स्पर्शमात्रेण ह्यर्शां शमने ह्यलम् ॥ १०२ ॥

अश्वगन्धा, सम्भालू, बड़ी कटेरी, पीपल इनको अंगारों पर रखकर इस धूप को गुदद्वार पर लगाने से बवासीर के मस्से अच्छे होते हैं ॥ १०२ ॥

अर्कमूलादि धूप ।

अर्कमूलं शमीपत्रं नृकेशाः सर्प-  
कञ्चुकाः । मार्जारचर्म चाज्यश्च गुदधूपो-  
र्शां हितः ॥ १०३ ॥

आक की जड़, शमी ( जॉट-छोंकर ) के पत्ते, साँप की कँचुली, बिल्वी का चमड़ा और घृत इनकी धूप मस्सों में लाभदायक है १०३ ॥

रालचूर्णस्य तैलेन सर्पपेण युतस्य  
च । धूपदानेन युक्त्याशो रक्तोस्त्रायो निव-  
र्त्तते ॥ १०४ ॥ रक्तौषशान्तये देयं गुदे  
कर्पूरधूमकम् ॥ १०५ ॥

सरसों का तेल तथा राल इनका विधिपूर्वक धूम देने से मस्सों से निकलनेवाला रक्त बन्द हो जाता है । अश्वन्त रक्त्याम के जिले गुद में कर्पूर का धूँसा देना चाहिए ॥ १०४-१०५ ॥

सपद्मकेशरं चाँडं नयनीतं नयं लिहन् ।  
सिताकेशरसंयुक्तरक्षार्शीसिमुखीभवेत् १०६

कमल की केशर, शहद, ताड़ मखन, गाँड़ तथा नागकेशर के रसों को मिलाकर रक्षार्शों में प्रयोग करना चाहिए ॥ १०६ ॥

कुटजरसक्रिया ।

कुटजत्वचो विपाच्यं शतपलमाद्रं  
महेन्द्रसलिलेन । यावत्स्यादरसं तद् द्रव्यं  
स रसस्ततो ग्राह्यः ॥ १०७ ॥ मोचरसः  
समङ्गफलिनीपलांशिभिस्त्रिभिस्तैश्च । वत्स  
कबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥  
१०८ ॥ पूतोत्कथितः सान्द्रः सरसो दर्वा-  
प्रलेपनो ग्राह्यः । मात्रा कालोपहिता रस-  
क्रियैषा जयत्यसृक्स्त्रावम् ॥ १०९ ॥  
द्वागलीपयसा युक्ता पेया मण्डेनाथवा  
यथाग्निबलम् । जीर्णौषधश्च शालीन्  
पयसा द्वागेन युज्जति ॥ ११० ॥ रक्तगुद-  
जातीसारं शूलं सासृग्जो निहन्त्याशु ।  
बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्युभय-  
भागम् ॥ १११ ॥

कुड़ा की छाल १० सेर, वायार्थ जल २६ सेर ४८ तोले, याकी काथ ६ सेर ३२ तोले । इस काथ को छानकर पुनः पाक करे । जब गाढ़ा हो जाय तब मोचरस, मंजीठ, प्रियंगु प्रत्येक चार-चार तोले तथा इन्द्रजौ १० तोले । इनके चूर्ण का प्रसेप दे और गाढ़ा कर ले । इस औषध को यथाकाल मात्रा में सेवन कराने से हृदय का प्रवाह रुक जाता है । अग्नि तथा बल के अनुसार बरुी के दूध, पेया अथवा माँड के अनुपान से इसे सेवन कराना चाहिए । जब औषध जीर्ण हो जाय तब शालि चावल का भात तथा बरुी का दूध आहारार्थ दे । इनके सेवन से रक्षार्श, प्रतिमार, शूल तथा रक्तपित्त आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १०७-१११ ॥

तीक्ष्णमुग्र रस ।

मृतमूतार्कहेमाभ्रतीक्ष्णं मुण्डश्च गन्ध-  
कम् । मण्डूरश्च समं ताप्यं मयं कन्वाद्रव-  
दिनम् ॥ ११२ ॥ अन्धमूपागतं सरं ततः  
पाच्यं दृढाग्निना । नृत्तितं मितया मासं

खादेत्तच्चार्षसां हितम् ॥ रसस्तीक्ष्णमुखो  
नाम चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ११३ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म अन्नक-  
भस्म, तीक्ष्ण लौहभस्म, मुण्डलौहभस्म, गंधक,  
मयूरभस्म, स्वर्णमाषिकभस्म हरणक बरा-  
बर मात्रा में । इन्हें ग्वारपाठा के रस से एक  
दिन घोटकर अन्धमूषा में रख तेज अग्नि से  
पकाकर चूर्ण करे । मात्रा-१ रत्ती । अनुपान-  
खाँड़ । यह रस बवासीर के मन्सों के रोग में  
हितकर है ॥ ११२-११३ ॥

अर्शकुठार रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धमृतलौहश्च ताम्र-  
कम् । प्रत्येकं द्विपलं दन्ती त्र्यूपलं शूरण  
तथा ॥ ११४ ॥ शुभाट्द्रव्यवत्तारसैन्धवं  
पलपञ्चकम् । पलाष्टकं स्नुहीक्षीरं द्वात्रिं-  
शच्च गवां जलैः ॥ ११५ ॥ आपिण्डितं  
पचेदग्नौ खादेन्मापद्वयं ततः । रसरचार्षः-  
कुठारोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥ ११६ ॥

पारा ३ तोले गन्धक, ८ तोले, लौहभस्म  
८ तोले, ताँबे की भस्म ८ तोले । दन्तीमूल,  
सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, जमीरन्द, बशलोचन,  
सुहागा, जवाखार, सेंधा नमक प्रत्येक बीस  
बीस तोले । धूर का दूध ३२ तोले, और गोमूत्र  
१२८ तोले में उपयुक्त सम्पूर्ण द्रव्य ढालकर  
पाक करे । जब लड्डू बनाने योग्य हो जाय  
तब उतार ले । मात्रा-२ मासो । यह अर्श-  
कुठार रस बवासीर आदि सम्पूर्ण रोगों को नष्ट  
करता है ॥ ११४-११६ ॥

द्वितीय अर्शकुठाररस ।

भागः शुद्धरसस्य भागयुगलं गन्ध-  
स्य लोहाभ्रयोः षड्बिल्वाग्निहलो-  
पणाभयरजोदन्ती च भागैः पृथक् । पञ्च  
स्युः स्फुटद्विगणस्य च यवत्तारस्य सिन्धु-  
द्रवाद्भागाः पञ्चगवां जलं सुविमलं  
द्वात्रिंशदेतत्पचेत् ॥ ११७ ॥ स्नुग्दुग्धं

च गवां जलावधिशनैः पिण्डीकृतं  
तद्भवेत् मापैकं गुदकीलकद्रुमजटाच्छेदे  
कुठारो रसः ॥ ११८ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, लौहभस्म  
६ भाग, अन्नकभस्म ६ भाग, बेल, चित्रक,  
शुद्ध कलिहारी, कालीमिर्च, हब और दन्तीमूल  
भाग, मेंधानमक २ भाग, गोमूत्र ३२ भाग,  
धूर का दूध ६ भाग, धूर के दूध को छोड़-  
कर शेष द्रव्यों को गोमूत्र में ढालकर पाक करे ।  
पाक करते समय धीरे-धीरे धूर के दूध को  
ढालता जाय । जब गौंठ पडने लगे तब उतार  
ले । यह रस बवासीर को जड़ से काटने के  
लिए कुल्हाड़ी की तरह है । मात्रा १  
माशा ॥ ११७-११८ ॥

चक्राख्य रस ।

मृतसूताभ्रवैक्रान्तं ताम्रं कांस्यं समं  
समम् । सर्वतुल्येन गन्धेन दिनं भल्लात-  
कैर्द्रवैः ॥ ११९ ॥ मर्दयेद्यत्रतः पश्चाद् वटी  
कुर्याद् द्विगुञ्जिकाम् । भक्त्याद् गुदजान्  
हन्ति द्वन्द्वजान् सर्वजानपि ॥ १२० ॥

रससिन्दूर अन्नकभस्म, वैक्रान्तभस्म, ताँबे  
की भस्म, कासी की भस्म प्रत्येक बराबर  
मात्रा में ले । सबके समान गंधक ले भिलावे  
के रस से एक दिन मर्दन कर आधी २ रत्ती की  
गोलियों बनावे । इस औषध के सेवन पे मस्ते  
अच्छे हो जाते हैं । कई आचार्यों के मतानु-  
सार भावना के बदले १ भाग भिलावा ढाल  
देना चाहिए ॥ ११९-१२० ॥

चञ्चत्कुठार रस ।

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं भागयुग्म-  
कम् त्रिकटुदन्तिकुष्ठैकं षड्भागं लाङ्ग-  
लस्य च ॥ १२१ ॥ चारसैन्धवटद्धानां  
प्रत्येकं भागपञ्चकम् । गोमूत्रस्य च द्वात्रिं-  
शत्स्नुहीक्षीरं तथैव च ॥ १२२ ॥  
यावच्च पिण्डितं सर्वं तावन्मृद्गग्निना



पचेत् । रत्निद्वयं ततः सादेद्विवाभ्वमादि  
वर्जयेत् ॥ १२३ ॥ रमश्चञ्चकुठारोऽय-  
मर्शां कुलनाशनः ॥ १२४ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म हरएक २ भाग ।  
त्रिकटु, द्रन्ती हरएक १ भाग । कलिहारी ६  
भाग । जवासार, मेधा नमक, सुहागा हरएक  
२ भाग । गोमूत्र ३२ भाग, थूहर का दूध ३२  
भाग । इसका मन्द अग्नि पर पाक करे ।  
मात्रा—२ रत्नी । इसके सेवन काल में दिन  
में सोना मना है । यह मद्य प्रकार के अशौ  
को नष्ट करता है ॥ १२१--१२४ ॥

जातीफलादि चटी ।

जातीफलं लवङ्गञ्च पिप्पली सैन्धवं  
तथा । शुण्ठी धुस्तूबीजञ्च दरदं टङ्गणं  
तथा ॥ १२५ ॥ समं सर्गं विचूर्णयथ  
जम्भाम्भसा विमर्दयेत् । जातीफलादि-  
वट्टिकेयमशौऽग्निमान्धनाशिनी ॥ १२६ ॥

जायफल, लींग, पीपल, सेधानमक, सोंठ  
धतूरे के बीज, शिगरफ, सुहागा हरएक को बराबर  
मात्रा में मिलाकर बीज के रस से मर्दन कर  
दो-दो रत्नी की गोलियां बनाये । इसके सेवन  
से मन्दाग्नि तथा बवासीर चरखी हो जाती  
है ॥ १२५--१२६ ॥

अष्टाङ्ग रस ।

गन्धं रसेन्द्रं मृत्लाट्टिकट्टं फलत्रयं  
ष्पुष्पगणहिमृद्गम् । कृत्वा समं शाल्मलि-  
कागृह्णीरसेन यामश्रितयं विमर्ष ॥ माप-  
प्रमाणं गदितानुपानैः सर्वाणि चार्शासि  
दरेदसस्य ॥ १२७ ॥

गन्धक, पारा, मन्दूरभस्म, त्रिफला, त्रिकटु,  
चित्रक, भूहराज इष्टं बराबर मात्रा में मिला-  
कर सेमल तथा गिलोय के रस से तीन पहर  
घोंट कर उर अनुपानों से बवासीर में दम  
रस को सेवन कराया जाय । मात्रा—  
मात्रा ॥ १२० ॥

पञ्चानन चटी ।

मृत्सूताभ्रलौहानि मृत्कार्कगन्धकैः  
सह । सर्वाणि समभागानि भल्लातं सर्व-  
तुल्यकम् ॥ १२८ ॥ वन्यशरणकन्दो-  
त्थैर्द्रवैः प्लमितैः पृथक् । मर्दयेद्दिनमेक-  
ञ्च मापमात्रं पिवेद्घृतैः ॥ १२९ ॥  
भक्षणाद्भन्ति सर्वाणि चार्शासि च न  
संशयः । असाध्येष्वपि कर्त्तव्या चिकित्सा  
शक्नोति ॥ १३० ॥ कुष्ठरोगं निह-  
न्त्यांशु मृत्युरोगविनाशिनी ॥ १३१ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताप्र-  
भस्म, गन्धक हरएक १ तोला । भिलावा २  
तोले । इन सबको जगली जमीकन्द के ८ तोले  
रस से दिन भर घोंटकर उड़क की बराबर गौली  
बनाये । अनुपान घृत । मृत्युरूप अशौ रोग को नष्ट  
करनेवाली यह चटी कुष्ठरोग को शीघ्र ही नष्ट  
करती है ॥ १२८--१३१ ॥

शिलागन्धक चट्टिका ।

शिलागन्धकयोश्चूर्णं पृथक् भूङ्ग-  
रसाप्लुतम् । सप्ताहं भावयेत्सर्पिमधुभ्या-  
ञ्च विमर्दयेत् ॥ १३२ ॥ अर्गसश्चानु-  
लोम्यार्थं इताग्निपलवर्द्धनम् । गुड्वाष्ट-  
मांशकं खादेत् कुष्ठादिरहिता नरः १३३ ॥

मैनिगल तथा गन्धक में भांगरा के रस की  
सात भावना देकर घृत तथा राहू से घोंटे और  
गौली बनाये । मात्रा— $\frac{1}{2}$  रत्नी से  $\frac{1}{4}$  रत्नी ।  
बवासीर के रोगों को सेवन कराने से यह  
पातानुलोमन करती पर अग्नि तथा बल को  
बढ़ाती है ॥ १३२--१३३ ॥

म्यल्पशरण मोक्षक ।

मरिचमर्हापचित्रकशृङ्गभागा यथोत्तरं  
ट्रिगुणाः । मर्ससो मुदभागः सेष्योऽयं  
मोक्षकः निष्टफलः ॥ १३४ ॥ ज्वलनं  
ज्वनयति नाडरमुन्मयति गुन्म-

शूलगदान् । निःशेषयति श्लीषटमरस्य-  
मशीसि नागयत्याशु ॥ १३५ ॥

कालीमिर्च १ तोला, मोंट २ तोले, चीता  
की जड़ ४ तोले और जमीकन्द ८ तोले ।  
गुड़ १५ तोले । इसके लड्डू बनाकर सेवन करे ।  
यह प्रत्यक्ष फल देनेवाला मोदक जठराग्नि को  
प्रदीप्त करता, गुणम तथा शूल को निमूल करता  
और श्लीषट रोग को नि शेष करके यवासीर को  
अवरय ही शीघ्र नष्ट करता है ॥ १३४-१३५ ॥

वृहन्ब्रूण मोदक ।

शूरणपोडशभागा वह्नेरष्टौ महौषध-  
स्तातः । अर्द्धेन भागयुक्त्रिर्मरिचस्य ततो-  
ऽपि चार्द्धेन त्रिफला ॥ १३६ ॥ करणा  
समूला तालीशारूपकरकृमिन्नानाम् । भागा  
महौषधसमा टहनांशा तालमूली च ॥  
१३७ ॥ भागः शूरणतुल्यो दातव्यो वृद्ध-  
दारकस्यापि । भृङ्गैले मरिचागे सर्वाण्ये-  
कत्र सञ्चूर्य ॥ १३८ ॥ द्विगुणेन  
गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः ।  
गुरुवृष्यभोज्यरहितोऽप्यितरेषूपद्रवंकुट्यर्थात् ॥  
१३९ ॥ भस्मकमनेन जनितं पूर-  
मगस्त्यस्य प्रयोगराजेन । भीमस्य मारुते-  
रपि येन तौ महाशनौ जातौ ॥ १४० ॥  
अग्निबलवृद्धिहेतुर्न केवलं शूरणो महा-  
वीर्य्यः । प्रभवति शस्त्रक्षारिग्निभिर्निना  
प्यर्शासामेषः ॥ १४१ ॥ रसयथुश्लीषट-  
गरजिद् ग्रहणीश्च तथा हिकामनिलजाम् ।  
नाशयति बलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वं  
च ॥ १४२ ॥ हिकां श्यासं कासं सराज-  
यक्ष्मप्रमेहांश्च । स्त्रीहानञ्चाथोग्रं हन्तीति  
रसायनं पुंसाम् ॥ १४३ ॥

जमीकन्द १६ भाग, चीता की जड़ ८ भाग,  
मोंट ४ भाग, कालीमिर्च २ भाग तथा इष्ट,

बहेदा, आंवला, पीपरी, पिपलामूल, तालीश  
पत्र, भिलावा और वायविदग्ग, प्रत्येक चार-  
चार भाग । तालमूली ( मुमली ) ८ भाग,  
विंधारा १६ भाग, भेंगरा और छोरी हला  
यची द्रो-द्रो भाग, इन सबको खूप महीन कूट  
पीसकर छान ले और इन सबसे दुगुना गुड़  
ले मोदक बनाकर सेवन करे । इसके सेवन क  
समय चिकन तथा भारी पदार्थ खाने चाहिए,  
क्योंकि ऐसे पदार्थ न खाने से यह मादक उपद्रव  
पैदा कर देता है । पहले समय में इस प्रयोग-  
राज ने अगस्त्यजी, भीम, और हनुमान्जी के  
भी भस्मक रोग उपल कर दिया था, जिससे  
वे बहुत भोजन करनेवाले हो गये थे । यह  
महापराक्रमी शूरणमोदक केवल अग्निबल का  
ही बढ़ानेवाला नहीं है किन्तु विना शस्त्र, छार  
और अग्निकर्म क भी यवासीर को नष्ट कर  
सकता है । यह मोदक शोध श्लीषट ( फीलपांव )  
और शिषदोष, प्रदण्णीरोग वातत्र हिकची, बली  
पलित, रवास खांसी, राजयक्ष्मा, प्रमेह और  
कठिन तिल्ली रोग को नष्ट करता है और  
बुद्धिवर्धक, वृष्य तथा रसायन है । मात्रा—  
१ तोला ॥ १३६-१४३ ॥

श्रीवाहुशाल गुड़ ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती शदंष्टा चित्रकं  
गटी । गजाक्षी मुस्तविश्राहविडङ्गानि  
हरीतकी ॥ १४४ ॥ पलोन्मितानि चैतानि  
पलान्यष्टान्यरूपकरात् । पटपलं वृद्धदारस्य  
शूरणस्य च पोडश ॥ १४५ ॥ जलद्रोण-  
द्वये काथ्यं चतुर्भागावशेषितम् । पूतं तु  
तं रसं भूयः काथ्येभ्यस्त्रिगुणो गुडः ॥  
१४६ ॥ लेह पचेत्तु तं तापद् यावद्दार्श-  
प्रलेपनम् । अबतार्य्यं ततः पश्चाच्चूर्णा-  
नीमानि टापयेत् ॥ १४७ ॥ त्रिवृत्तेजो-  
वतीकण्डचित्रकान् द्विपलांशिकान् । एला-  
तखडमरिचंचापि गजादाश्चापिपटपलाम् ॥  
१४८ ॥ द्वात्रिंशत्पलमेनात्र चूर्णं द्रव्या

निधापयेत् । ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णं  
क्षीररसाशनः ॥ १४६ ॥ पञ्चगुल्मान्  
प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् । जये-  
दर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥  
१५० ॥ दीपयेद् ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माण-  
मपकर्षति । पीनसे च प्रतिश्याये आढ्य-  
वाते तथैव च ॥ १५१ ॥ अयं सर्वगदे-  
प्त्रेव कल्याणो लेह उत्तमः । दुर्नामारि-  
रयश्चांशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ १५२ ॥  
भवन्त्येनं प्रयुञ्जानः शतवर्षं निरामयाः ।  
आयुषो दैर्घ्यजननो बलीपलितनाशनः ॥  
१५३ ॥ रसायनवरश्चैव मेधाजनन  
उत्तमः । गुडः श्रीवाहुशालोऽयं दुर्नामारिः  
प्रकीर्तितः ॥ १५४ ॥ सुखमर्दः स्वरस्पर्शो  
गन्धवर्णरसान्वितः । पीडितो भजते मुद्रां  
गुडः पाकमुपागतः ॥ १५५ ॥

निशोथ, तेजवल, जमालतोटे की जड़,  
गोखरू, चीता की जड़, कचूर, इन्द्रायण,  
नागरमोथा, मोंठ, वायविदंग, हड़ ये सब  
चार-चार तोले, भिल्लावाँ ३२ तोले, धिधारा  
२४ तोले; जमीकन्द ६४ तोले, इन सबको  
कूटकर १ मन ११ सेर १६ तोले जल में  
पकावे । जब चीथाई बवाथ अग्रशेष रहे तब  
घामकर उसमें ३८ सेर २० तोले गुड़ मिलाकर  
पाक करे । जब कलछी में घिपकने लगे तब  
उतारकर उसमें ये भीषण पीसकर मिलावे—  
निशोथ तेजवल, जमीकन्द, चीता की जड़,  
प्रयेक घाठ-घाठ तोले । छोटी हलावची,  
दालचीनी, कालीमिर्च और गजपीपरि; प्रयेक  
२४--तोले । ये सब चीजें मिलाकर ढक-  
कर रख दे । बलानुसार मात्रा का सेवन करे ।  
घोषिष इजम हो जाने पर दूध और मांसरस  
का भोजन करे । इसके सेवन से पशियों प्रकार  
के गुणरोग, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक तथा  
ब्रह्म प्रकार की बवासीर और मय प्रकार के

उदररोग अच्छे हो जाते हैं । यह मन्द ग्रहणी  
को दीपन करता है, यक्ष्मारोग को दूर-करता  
है । पीनस, जुकाम, आढ्यवात और रुब रोगों  
में लाभदायक है तथा हजारों बार का अनुभूत  
है । इसके सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तक  
नीरोग रहते हैं यह आयु का बढ़ानेवाला,  
बलीपलित का नाशक, बुद्धिवर्धक और श्रेष्ठ  
रसायन है । इस श्रीवाहुशाल गुड़ को बवासीर  
का शत्रु कहते हैं । जब मुख से मसला जाय,  
छूने में खरदरा हो, गन्ध, वर्ण और रस से  
युक्त हो तथा दधाने से अंगुली भादि की  
रेखाओं के चिह्न पड जायें तब गुडपाक को  
उत्तम समझना चाहिए ॥ १४४-१५५ ॥

प्राणदा गुटिका ।

त्रिपलं भृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य  
च । पिप्पल्या कुडवाद्दर्शच चव्याश्च पल-  
मेव च ॥ १५६ ॥ तालीशपत्रस्य पलं  
पलाद्दर्श केशरस्य च । द्वे पले पिप्पली-  
मूलाद्दर्शकर्मश्च पत्रकात् ॥ १५७ ॥  
सूक्ष्मैला कर्ममेकाश्च कर्मश्च त्वङ्मृणा-  
लयोः । गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र  
कारयेत् ॥ १५८ ॥ कोलप्रमाणा गुटिका  
माणदेति प्रकीर्तिता । पूर्वं भक्ष्याच्च  
पश्चाच्च भोजनस्य यथावलम् ॥ १५९ ॥  
मद्यं मांसरसं यूपं क्षीरं तोयं पिबेदनु ।  
हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजा-  
न्यपि ॥ १६० ॥ वातपित्तकफोत्थानि  
सन्निपातोद्भवानि च । पानात्यये मूत्रकृ-  
च्छ्रे वातरोगे गलग्रह ॥ १६१ ॥ विषम-  
ज्वरे च मन्त्रेऽग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च ।  
कृमिहृद्भोगिणां चैव गुल्मशूलार्तिनां  
तथा ॥ १६२ ॥ श्वासकासपरीतानामेपा  
स्याद्मृतोपमा । गुण्टणाः स्थानेऽभया  
देया विदग्धे पित्तपायुजे ॥ १६३ ॥

प्राणदायां सिता त्रेया चूर्णमानाश्चतुर्गुणा ।  
श्रम्लपित्ताग्निमान्घ्रादौ प्रयोज्या गुद्-  
जातुरे ॥ १६४ ॥ पक्त्वेनं गुटिकाः  
कार्या गुडेन सितयाधवा । परं हि वह्नि-  
संसर्गाल्लघिमानं भजन्ति ताः ॥ १६५ ॥

सोंठ १२ तोले, कालीमिर्च १६ तोले,  
पोपरि ८ तोले, चन्द ४ तोले, तालीशपत्र ४  
तोले, नागकेसर २ तोले, विपरामूल ८ तोले,  
तेजरात आधा तोला, छोटी इलायची १ तोला,  
दालचीनी १ तोला और कमल की नाक १  
तोला; सबको कूट पीसकर छान ले और १ ॥  
सेर गुद् की घाशनी बनाकर उसमें इस चूर्ण  
को मिलाकर छः छः मासे की गोतियां बना  
ले । इसको प्राणदा गुटिका कहते हैं । यला-  
नुमार भोजन के पहले तथा पीछे इसका सेवन  
करे । अनुपान—मिर्चा, मांसरस, घृण, दूध  
अथवा जल, इसके राने से सब प्रकार की सद्य  
और सूनी, वातिक, पैत्तिक, कफज और सन्नि-  
पासज बवासीर नष्ट होती है । पानात्पय, मूत्र-  
कृच्छ्र, वातरोग, गलप्रह विषमन्वर, मग्दाग्नि,  
पाण्डुरोग, कुमिरोग, हृद्रोग, गुल्मगूल, रवास  
और खाँसी; इन रोगों में यह अमृत के समान  
है । यदि बवासीर में कब्जियत रहती हो तो  
सोंठ के रवान में हृद देना चाहिए । पैत्तिक  
बवासीर में कुल चूर्ण से चौगुने मिसरी मिला-  
कर गुटिका बनाना चाहिए । इसको अमृतापल,  
अग्निमान्घ तथा गुद्दा में उत्पन्न होनेवाले रोगों  
में भी देना चाहिए । गुद् अथवा मिभरी को  
पकाकर ही डालना चाहिए क्योंकि अग्नि के  
संबोग से वे हलकी हो जाती है ॥ १२६-११५ ॥

रक्काशं की चिकित्सा

रक्काशंसापेक्षेत रक्कमादौ सवेद्धि-  
पक् । दुष्टासु निवृहति तु शूलानाहाव-  
सृग्मदाः ॥ १६६ ॥

सूनी बवासीर का पहले रक्त बह जाने देना  
चाहिए, रोकना न चाहिए, क्योंकि खराब खून

के रोकने से शूल, अनाह और रक्त की ब्या-  
धियां हो जाती है ॥ १६६ ॥

शक्रकाथः सविश्वो वा किंवा विल्व-  
शलाटयः । योज्या रक्काशसैस्तद्बुज्यो-  
त्स्निकामूललेपनम् ॥ १६७ ॥

इंद्रजी के कादे में सोंठ मिलाकर  
अथवा बेल की गिरी में सोंठ मिलाकर राना  
रक्षा में हितकर है । इसी तरह कडुई गुरई  
की जड़ का लेप करना भी हितकर है ॥ १६७ ॥

नवनीततिलाभ्यासात् केशरनवनीत-  
शर्कराभ्यासात् । दधिसरमथिताभ्यासात्  
गुद्जाः शाम्यन्ति रक्कमहाः ॥ १६८ ॥

मक्खन और तिल या नागकेसर, मक्खन  
और शहर अथवा दही की मलाई का तक्र  
(चाँद) बनाकर सेवन करने से सूनी बवासीर  
शीत होती है ।

समद्भोत्पलमोचाद्विरीटतिलचन्दनैः ।  
द्वगत्तीरं प्रयोक्तव्यं गुद्जे शोणिताप-  
हम् ॥ १६९ ॥

मंजीठ, नीलकमल, मोचरस, पठानीलोथ,  
तिज और लाल चन्दन; इनका समभाग चूर्ण  
बकरी के दूध में मिलाकर पीने से बवासीर का  
खून बन्द हो जाता है ॥ १६९ ॥

कोमलं नलिनीपत्रं पिष्ट्वा खादेत्  
सशर्करम् । प्रातराजं पयः पीत्वा रक्क-  
मवाह्विमुच्यते ॥ १७० ॥

कमलिनी के कोमल पत्रों को खूब महीन  
पीसकर और शहर मिलाकर बकरी के दूध से  
प्रातः काल सेवन करे तो बवासीर का खून  
बहना बन्द हो ॥ १७० ॥

सशर्करं कृष्णतिलस्य कल्कं वस्तीप-  
योभिः पिबति प्रभाते । सद्यो हरत्येव  
गुदोत्थरक्तं योगोऽयमित्थं गिरिश-  
प्रयुक्तः ॥ १७१ ॥

काले तिलों के कल्क में शकर मिलाकर प्रातःकाल बकरी के दूध के साथ पीने से बवासीर का खून शीघ्र बन्द होता है । इस प्रयोग को शिवजी ने प्रयुक्त किया है ॥ १७१ ॥

कौटजं कल्कमादाय पिष्ट्वा तक्रेण बुद्धिमान् । पीत्वा रक्काशसो रक्तसु तिमाशु नियच्छति ॥ १७२ ॥

कुड़ा की छाल के कल्क को छाल के साथ पीसकर पीने से बवासीर का खून शीघ्र बन्द हो जाता है ॥ १७२ ॥

तण्डुलसलिलोपेतं कल्कमपामार्गजं पिवतः । क्षीरमनुवाप्य भीरोर्गुदजाः शाम्भ्यन्ति रक्तवहाः ॥ १७३ ॥ दाडिमस्य रसः पेयः शर्करामधुरीकृतः ॥ १७४ ॥

लटजीरा के पञ्चाङ्ग के कल्क को चावल के पानी के साथ पीकर ऊपर से दूध पीने से खूनी बवासीर का खून बन्द हो जाता है । अथवा अनार के रस में शकर मिलाकर पीना चाहिए ॥ १७३-१७४ ॥

बोलवद्धरस ।

गुडूचिकासत्व समं रसेन्द्रं गन्धं समांशं निखिलेन वर्वरः । विमर्दयेच्छालमलिका भवद्धिः स्याद्बोलवद्धो मधुयुक्त्रिमापः ॥ १७५ ॥ रक्काशसां नाशकृदेप सूतः पिच्छाशसां पित्तजविद्रघ्नेच्च रक्त प्रमेहस्पृष्टस्य चाऽपि ॥ १७६ ॥

स्त्रीणां प्रवाहस्य भगन्दरस्य ।

गिलाय का रस्य गुडू पारा और गन्धक समान भाग तथा हीरा दक्खिन समको समान छे पञ्चली में रखकों मिलाकर लेमल के मुसले के स्वरस अथवा छाल के काढ़े में घोट कर ३-३ मासे की गोलियां बना कर रस दे इनमें से १-१ गोली रोगानुसार अनुपान के साथ देने से खूनी और पित्तज बवासीर पित्तज विद्रधि रक्त प्रमेह कातरत्र प्रदर और भगन्दर आदि व्याधियों को मिटाता है । विशेष अनुभूत है ॥ १७५-१७६ ॥

कुटजलेह ।

कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टभागावशिष्टं तु कपायमवतारयेत् ॥ १७७ ॥ वस्त्रपूतं पुनः काथं पचेल्लेहत्वमागतम् । भल्लातकं विद्वानि त्रिकटुत्रिफले तथा ॥ १७८ ॥ रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च । वाचामतिविषां त्रिव्व प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ १७९ ॥ गुडात् पलानि त्रिशच चूर्णाकृत्य विनिःक्षिपेत् । मधुनः कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ १८० ॥ एष लेहः शमयति अशोरक्तसमुद्भवम् । वातिकं पैत्तिकंचापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १८१ ॥ ये च दुर्नामजारोगास्तान् सर्वात्राशयत्यपि । अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ १८२ ॥ ग्रहणीमार्दवं कार्यं श्वयथुं कामलामपि । अनुपानं घृतं दद्यान्मधु तर्कजलं पयः ॥ रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उच्यते ॥ १८३ ॥

५ सेर कुड़ा की छाल को २३ सेर ४८ तोले जल में पकावे । जब ३ सेर १६ तोले प्राय शेष रहे तब उतारकर फण्डे से छान ले । फिर इसमें १ ॥ सेर गुड और ३२ तोले घी डालकर पाक करे । जब पाक तैयार हो जाय तब भिल्लायी, वायविदंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हड, यहैदा, चावल, रसीत, चीता की जड़, इन्द्रजी, वष, घनीस और बेल की गिरी, प्रत्येक चार-चार तोले छेकर चूर्ण कर पाक में मिला दे । फिर ठंडा होने पर ३२ तोले शहद मिलाकर रख ले । यह कुटजापलेह खूनी बवासीर तथा वातिक, पैत्तिक, कपाज और सान्निपातिक एव सव प्रकार की बवासीरों को नष्ट करता है । तथा अम्लपित्त, घनीसार, पाण्डुरोग, अर्धांच, ग्रहणी, दुर्बलता, शोष

योग कामजा आदि रोगों के समूहों को भी नष्ट करता है । अनुपान—घी, शहद, छाछ, जल और दूध ॥ १७७-१८३ ॥

अग्निमुख लौह ।

त्रिवृच्चित्ररुनिगुण्टीस्नुहीमुण्डरिका जया । प्रत्येकगोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १८४ ॥ पलत्रयं विडङ्गाच्च व्योषं कर्पत्रयं पृथक् । त्रिफलायाः पलं पञ्च शिलाजतुपलं न्यसेत् ॥ १८५ ॥ दिव्यौषधिहतस्यापि वैकङ्कतहतस्य वा । पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ १८६ ॥ पलैश्चतुर्विंशत्याज्यान्मधुशर्करयोरपि । घनीभूते सुशीते च टापयेद्वतरिते ॥ १८७ ॥ एतदग्निमुखं नम दुर्नामान्तकर परम् । मन्दमग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् ॥ १८८ ॥ पर्वतरचापि जीर्यन्ति प्राशनादस्य देहिनाम् । गुरुवृष्यान्नपानानि पयोमांसरसो दितः ॥ १८९ ॥ दुर्नामपाण्डुरवयथुकुष्ठसीहोदरापहम् । अकालपलितं हन्यादामवातं गुदामयम् ॥ १९० ॥ न स रोगोऽस्ति यश्चापि न निहन्ति ज्ञणादिदम् । करीरकाञ्जिकादीन ककारादीनि वर्जयेन् । स्रवत्यतोऽन्यथा लौहं देहाम् किट्टश्च दुर्जरम् ॥ १९१ ॥

निसोय, चीता की जड़ निगुण्टी, धूर, गोरखमुखशी और भूमि आँवला, पे सब बलीस बलीस तोले । जल २५ सेर ४८ तोले शेष काड़ा ६ सेर ३२ तोले । इसमें शकर १ सेर १६ तोले और घी १ सेर १६ तोले । तथा मैन्शिल अथवा कटाई ( चूनावृण ) से मारे हुए रुक्मलौह की भरम ४८ तोले डाल कर पाक करे । जब पाक सिद्ध हो जाय तब बाय-

त्रिदंग १२ तोले, सोंठ ३ तोले मिर्च ३ तोले, पीपरि २ तोले, त्रिफला मिलित २० तोले, शिलाजीत ४ तोले; इनके चूर्ण वा प्रक्षेप देकर गाढ़ा करके उतार ले । ठंडा हो जाने पर १ सेर १६ तोले शहद मिला दे । यह अग्निमुख नाम लौह बवासीर का अन्त करने में श्रेष्ठ है । यह मन्द जठराग्नि को कालाग्नि के समान तेज करता है । इसके खाने से पत्थर भी पच जाता है । भारी पदार्थ, घृष्य ( धातुओं को बढ़ानेवाले ), अन्नपान, दूध और मांसरस ब्याग हितकर है । इसके सेवन से बवासीर, पायसु, शोथ, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, बाल सफेद होना, आमवात और गुदा के रोग नष्ट होते हैं । ऐसा कोई रोग नहीं है जिसको यह चणमात्र में न नष्ट कर सके । इसके सेवन में परीर और काँजी आदि ककारादि वस्तुओं से परहेज करना चाहिए अन्यथा शरीर से लौह तथा लौहकिट्ट बाहर निकल जाते हैं ॥ १८४-१९१ ॥

माणशूरण्यौघ लौह ।

माणशूरणभल्लातत्रिवृद्धन्तीसमन्वितम् । त्रिकत्रयसमायुक्तमयोदुर्नामनाश-नम् ॥ १९२ ॥

मानकन्द, जमीकन्द, भिल्लायां, निसोय, जमालगोटा की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपरि हड़ बहेबा, आँवला, बायथिडग, नागरमोथा और चीता की जड़ इनको समभाग लेकर लोहभरम में मिलाकर सेवन करे । इससे बवासीर नष्ट हो जाती है ॥ १९२ ॥

योल्पपटी रस ।

सूतगन्धक सुकज्जलिकायाः । पर्पटी-समयुता सम भागम् । योल चूर्णं विहितं-प्रतिवाप्यं । स्याद्रसोऽयम सुगामय हारी- ॥ १९३ ॥ वल्लयुग्मयुगलं प्रतिदेयं । शर्करामधु युतः किल दत्तः । रक्पित्त-गुदजस्रुति योनि स्वाग्माशु विनिवाग्-यतीशः ॥ १९४ ॥

\* समभाग शुद्धपारे और गन्धक की कजली कर लोहे की कलछी में बेर के कोयलों पर गला कर कजली के बराबर हीरा दक्खिन का चूर्ण डाल कर गोबर पर रखे हुए केले के पत्ते पर डाल कर पर्यंटी बना ले ठंडा होने पर निकाल कर रख छोड़े । अथवा कजली की पर्यंटी बनाकर उसकी बराबर हीरा दक्खिन का चूर्ण मिलाकर रख छोड़े । इसमें से ३ रत्ती की मात्रा शकर और मधु के साथ देने से रक्तपित्त सूनी बवासीर योनिस्त्राव इन सबको यह मिटता है विशेष अनुभूत है ॥ १६३--१६४ ॥

नित्योदित रस ।

मृतसूतार्कलौहाभ्रं विपं गन्धं समं समम् । सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १६५ ॥ द्रवैः शूरणमाणो-  
त्यैर्भाव्यं खल्ले दिनत्रयम् । मायमात्रं लिह्येदाज्यै रसश्वाशीसि नाशयेत् ।  
रसो नित्योदितो नाम गुदोद्भवकुला-  
न्तकः ॥ १६६ ॥

पारे की भरम (रससिन्दूर), ताभ्रभरम, लोहभरम, अभ्रकभरम, मीठा तेलिया और गन्धक; ये सब समभाग ले । सबकी बराबर भिलावर्षा का चूर्ण; इन सबको एक में मिलाकर और खरल में रखकर जमीकन्द तथा मानकन्द के रस की तीन-तीन दिन भायना देकर उदक के बराबर गोलियां बना ले । इस रस को घृत के साथ खाने से सब प्रकार की बवासीर नष्ट हो जाती है । यह नित्योदित नामक रस गुदा के रोगों का घन्त करनेवाला है ॥ १६५--१६६ ॥

रसशुटिका ।

रसस्तुपादिकस्तुल्या विट्प्रमरिचा-  
भ्रकाः । गङ्गापालङ्गरसे खल्लयित्वा पुनः  
पुनः ॥ १६७ ॥ रत्नमात्रा गुदाशोघ्नी  
वद्रेरत्यर्थदीपनी ॥ १६८ ॥

रससिन्दूर १ भाग तथा श्यामि, घाकी-

मिर्च और अभ्रकभरम चार-चार भाग ।  
सबको एकत्रकर जंगली पालक के शाक के  
रस में बार-बार खरल करके एक-एक रत्ती की  
गोलियां बना ले । इसके सेवन से गुदा का  
घर्शरोग नष्ट होता है और जठराग्नि का दीपन  
होता है ॥ १६७--१६८ ॥

कण्टकिफलान्तर्मुपलक्षारो गीरो-  
चनाजलम् । लेपमात्रेण विस्त्राव्य रसान्  
हन्ति गुदांकुरान् ॥ १६९ ॥

कटहल के फल वा मुसरा ( बटहल  
के फल के भीतर जो दण्डा के समान होता  
है वह कटहल का मुसरा कहा जाना है )  
का चार और गीरोचन को जल में पीसकर  
लेप करने से बवासीर के मस्सों का पानी  
निकल जाता है और मस्से नष्ट हो  
जाते हैं ॥ १६९ ॥

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः  
पुनः । वन्धनात् सुदृढं सूत्रं द्विनचयशो न  
संशयः ॥ २०० ॥

सूत ( डोर ) को धूर के दूध से सुन्न  
हल्दी के चूर्ण में बार-बार भिगोकर मस्सों  
पर कसकर बंध देने से निःसंदेह मस्से कट-कट  
कर गिर जाते हैं ॥ २०० ॥

वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठमानमुत्कट कास-  
नम् । यथास्वं दोषलञ्चान्नमर्शसः परिव-  
र्जयेत् ॥ २०१ ॥

मल-मूत्रादि वेगों का रोकना, स्त्रीप्रसंग,  
घोड़े आदि की पीठ पर सपारी, कष्टजनक घामन  
पर बैठना और दुष्ट ( सड़े और घासी ) चर्बों  
का गतना बवासीर के रोगों को रपाग देना  
आदि ॥ २०१ ॥

घन्प्रममा शुटिका ।

कामिरिपुदहनव्योपत्रिफलामरदारुच-  
ध्यमूनिभ्यम् । मागधीमूलशुभ्रं सशठी-  
वचाधातुमाक्षिकं चैव ॥ २०२ ॥ लवण-

चारनिशायुगकुस्तुम्बुरुगजकणातिविषा ॥  
 २०३ ॥ कर्पाशकान्येव समानि कुर्यात्  
 पलाष्टकं चाश्मजतोर्विदध्यात् । निष्पत्र-  
 शुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लौहरज-  
 स्तथैव ॥ २०४ ॥ सिताचतुष्कं पलमत्र  
 वांश्या निकुम्भकुम्भत्रिसुगन्धियुक्तम् ।  
 चन्द्रप्रभेयं गुटिका प्रयोज्या अर्शासि  
 निर्नाशयते पडेव ॥ २०५ ॥ भगन्दरं  
 पाण्डुककामलां च निर्नष्टवह्नेः कुरुते च  
 दीप्तिम् । हन्त्यामयान् पित्तकफानिलो-  
 त्थान् नाडीगते मर्मगते व्रणेषु च ॥  
 २०६ ॥ ग्रन्थार्बुदे विद्रधिराजयक्ष्ममेहे  
 भगाख्ये प्रवले च योज्या । चक्षुःक्षये  
 चारमरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरा-  
 मये च ॥ २०७ ॥ तक्रानुपानं स्वथ  
 मस्तुपानं व्याजो रसो जाङ्गलजो रसो वा ।  
 पयोऽथवा शीतजलानुपानं बलेन नाग-  
 स्तुरगो जवेन ॥ २०८ ॥ दृष्ट्या सुपर्णः  
 श्रण्वैर्वराहः कान्त्या रतीशो धिपणरच  
 बुद्ध्या । न पानभोज्ये परिहार्यमस्ति न  
 शीततातातपमैथुनेषु ॥ २०९ ॥ शम्भुं  
 सगभ्यर्च्य कृतप्रणामं प्राप्ता गुडी चन्द्र-  
 मसः प्रसादात् ॥ २१० ॥ शुक्रदोषाश्लि-  
 हन्त्यष्टौ प्रमेहानपि विंशतिम् । बलीपलित-  
 निर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २११ ॥  
 वृद्धवैद्योपदेशेन पलाद्धं रसगन्धकम्  
 केवलं मूर्च्छितं वापि पलं वा दापयेद्रसम्  
 २१२ ॥ अभ्रकञ्च क्षिपेत्कश्चित् पलमानं  
 भिषगरः संमर्धं मधुसर्पिर्भ्यामाटौ रक्कि-  
 चतुष्टयम् ॥ २१३ ॥ भक्ष्यं वृद्ध्या तथा-  
 युक्तं यावन्मापचतुष्टयम् । त्रिन्दुत्रीत्रि-

जातानां कर्पमानं पृथक्-पृथक् ॥ २१४ ॥  
 वायविडग, चीता की जड, सोंठ ईमर्च,  
 पीपलि, हड, बहेडा, आंवला, देवदारु, चव्य,  
 चिरायता, पिपलामूल, नागरमोथा, कचूर,  
 वच, स्वर्णमाषिक की भस्म, सेंधा नमक,  
 कालानमक, जमाखार, सजीखार, हल्दी, दारु-  
 हल्ली, धनियाँ, राजपीपलि और अतीस ये सब  
 एक एक तोजा, शिलाजीत २२ तोले, पत्ररहित  
 शुद्ध गुग्गुल ८ तोले, लोहभस्म ८ तोले,  
 मितरी १६ तोले, वंशलोचन ४ तोले, दालचीनी  
 ४ तोले, तेजपात ४ तोले और छोटी इलायची  
 ४ तोले इन सबको कूट पीसकर गोली बनावे ।  
 इस चन्द्रप्रभागुटिका के प्रयोग करने से छद्म  
 प्रकार की बवासीर, भगन्दर, पाण्डु, कामला  
 और वातिक पैलिक, तथा कफज रोग नष्ट होते  
 हैं । नष्ट जठराग्नि को दीप्त करती है । नासूर,  
 मर्मव्रण, अन्ध, अर्बुद, विद्रधि, राजयक्ष्मा,  
 प्रमेह और प्रबल प्रदर, अक्षिरोग, अश्रमरी  
 ( पथरी ), मूत्रकृच्छ्र, शुक्रप्रमेह और उदर-  
 विकार में इसका प्रयोग करना चाहिए । अनु-  
 पान छाछ, दही का तोड़ ( पानी ), बकरी के  
 मांस का रस, अथवा जगली जीवों के मांस  
 का रस, दूध या जल इसके खाने से बल में  
 हाथी, वेग में घोड़े, दृष्टि में गरुड़, सुनने में वराह,  
 शोभा में कामदेव और बुद्धि में बृहस्पति के  
 समान होता है । खाने-पीने और शीत, हवा,  
 घाम और मैथुन आदि का परहेज नहीं है ।  
 शिवजी का पूजन कर इसका सेवन करना  
 चाहिए । यह चन्द्रप्रभा गुटिका चन्द्रमा की  
 कृपा से प्राप्त हुई है । इसके सेवन से आठ  
 प्रकार के शुक्रदोष, बीस प्रकार के प्रमेह  
 और बलीपलित और रोगों से छूटकर बृद्ध  
 मनुष्य भी जवान हो जाता है । \* वृद्ध  
 वृद्धों के उपदेश से इस योग में पारा २ तोले

\* अश और प्रमेह आदि में तो यह बड़ी लाभ-  
 दायक है ही, परन्तु कटीली चौराई के मूल के काथ  
 अथवा लिचे हुए अर्क के साथ देने से प्रदररोग में  
 मंने इसका प्रदुत्त चमत्कार देना है । वीसों वर्ष  
 का पारा २ तोले



घौर गन्धक २ तोले की कजली करके अथवा केवल रससिन्दूर ही ४ तोले छोड़ना चाहिए । कोई वैद्य इस योग में ४ तोले अभ्रकभस्म भी छोड़ते हैं । इसको घी और शहद में मिलाकर ४ रत्ती की मात्रा में प्रारंभ कर यथानुसार ४ मास तक युग्निपूर्वक सेवन करे । इस गुटिका के खाने के पश्चात् निसीध, इन्द्रायण की जड़, छोटी इलायची, टालचीनी और तेजपात; प्रत्येक एक-एक तोला लेकर बनाये हुए घूर्ण में से थोड़ा-थोड़ा सेवन करना चाहिए ॥२०२-२१४॥

अभयारिष्ट ।

अभयायास्तुलामिकां गृहीकाद्ध तुलां तथा । विडङ्गस्य दशपलं मधुककुमुनस्य च ॥२१५॥ चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोण-मेवावशेषयेत् । शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुलां क्षिपेत् ॥ २१६ ॥ श्वदंष्ट्रां त्रिष्टनां धान्यं धातकीमिन्द्रावरुणीम् । चव्यं मधुरिकां शुण्ठीं दन्तीं मोचरसं तथा ॥ २१७ ॥ पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृणमये । क्षिप्त्वा संरुध्य तत्पात्रं मासमात्रं निधापयेत् ॥ २१८ ॥ ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्नाढ्य रसं नयेत् । पलं कोष्ठञ्च वहिश्च वीच्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २१९ ॥ अर्शासि नाशयेच्छीघ्रं तथाष्टा-बुदराणि च । वच्चोभूत्रविघ्नघ्नो वह्निं संदीपयेत् परम् ॥ २२० ॥

इह ५ सेर, मुनका २॥ सेर, धायविडंग ४० तोले, महुआ के फूल ४० तोले इन सबको २ मन २२ सेर ३२ तोले जल में पकावे । जय २५ सेर २६ तोले अर्वाशष्ट रहे तब उसको टंडा करके छान ले । इसमें ५ सेर गुड और आठ-आठ तोले गोलूक, निसीध, धनिया, धाय के फूल, इन्द्रायण, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल और मोचरस मिलाकर मिट्टी के एक बड़े घड़े में ढालकर और उसका मुख बन्द करके एक

महीने तक धरा रहने दे । जय अरिष्ट तैयार हो जाय तब उसको छानकर रख ले । बल, कोठा और जठराग्नि की परीक्षा करके रोगानुसार मात्रा की व्यवस्था करना चाहिए । यह अरिष्ट सद्य प्रकार की बवासीर, छाठ प्रकार के उदररोग और मल-मूत्र का अवरोध इन सब रोगों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त करता है ॥ २१५-२२० ॥

अर्शरोग में वर्जनीय पदार्थ ।

आनूपमामिपं मत्स्यं पिण्याकं दधि पिष्टकम् । मापान् करीरं निष्पावं त्रिल्वं तुम्बीमुपोदिकाम् ॥ २२१ ॥ पकाम्रं शालुकं सर्वं विष्टम्भीनि गुरुणि च । आतपं जलपानानि वमनं वस्तिकर्म च ॥ २२२ ॥ प्राच्यवन्त्यपरान्तोत्थनदीनां सलिलानि च । विरुद्धानि च सर्वाणि मारुतं पूर्वदिग्भवम् ॥ २२३ ॥ वेगाव-रोधं स्त्रीशृष्टयानमुत्कटकासनम् । यथास्वं दोषलञ्चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ २२४ ॥

आनूप देश के पशु-पक्षियों का मांस, मड़ली, तिल की पल, दही, पिट्टी के बने पदार्थ, उड़द, करीर, मटर, बेल, लौकी, पोई का शाक, पका आम, कमल ककड़ी आदि जलकन्त्र, सम्पूर्ण विष्टम्भी तथा गुरु पदार्थ, घूप में बैठना, अधिक जल पीना, वमन करना, अवन्ति तथा पश्चिम की घोर बहनेवाली नदियों का जल, सब वीर्य विरुद्ध पदार्थ तथा पूर्व दिशा की पवन, मल-मूत्र, वीर्य आदि के वेगों को रोकना, मैथुन, सवारी, उरकटासन ( घोड़े ऊँट आदि की सवारी ), अन्य वात आदि दोषों को कुपित करनेवाले सब आहार-विहार बवासीर के रोगी को छोड़ देना चाहिए ॥ २२१-२२४ ॥

अर्श में पथ्य ।

विरेचनं लेपनमस्रमोक्षः चाराग्नि-शस्त्राचरितं च कर्म । पुरातना लोहित-शालयश्च सपष्टिकाश्चापि यवाः कुलत्थाः

२२५ ॥ गोधासुलोपाकगवोष्ट्रूम्रश्वा-  
विष्कुलिद्वाजखरोतुकीशाः । तरन्तुचा-  
पाश्वशृगालकाका येऽन्येऽपि मांसात्प्र-  
सहारच तेऽपि ॥ २२६ ॥ पटोलपत्तूर-  
रसोनगद्विपुनर्नयाशूरणवास्तुकानि ।  
जीवन्तिका दन्तशठः सुरा च शुण्ठी वय-  
स्या नवनीतरुश्च ॥ २२७ ॥ कक्कोल-  
घात्री रुचकं कपित्थमौष्ट्राणि मूत्राज्य-  
पयांसि चापि । भल्लातकं सार्पपत्रश्च तैलं  
गौमूत्रसौवीरतुपोदकानि । वातापहं यच्च  
यदग्निकारि तदन्नपानं हितमर्शसेभ्यः  
॥ २२८ ॥

विरेचन, प्रलेप, रक्तनिर्हरण (फस्द खुलाना),  
घार, अग्नि एवं शस्त्र का प्रयोग करना  
चाहिए। अन्नों में—पुराने लाल शालिषावल,  
साँठी के चावल, जौ और कुलत्थी श्रेष्ठ हैं।  
मांसों में—गोह, चूहा, लोमड़ी, गौ, ऊँट, कछुआ,  
सेह गृहचरक, बकरी, गदहा, बिड़ाल, वानर,  
तरबु, चाप, घोडा, गीदड़, फौश्रा इनके मांस  
तथा अन्य भी जो प्रसह पवी हैं उनका मांस  
हितकर होता है। शाकों में—परबल; शालिन्च,  
लहसन, चित्रक, पुनर्नवा, जमीवन्द, वधुआ,  
जीवन्तीशाक, जम्बीर, शराय, साँठ, हड तथा  
मखन हितकर हैं। शीतलचीनी, आबला,  
कालानमक, कैथ, ऊँट का मूत्र, धी तथा दूध,  
भिजाव्यों, सरसों का तेल, गोमूत्र, सौवीर, काँजी  
तथा अन्य वात को नष्ट करनेवाले तथा अग्नि-  
प्रदीपक अन्नपान अर्शरोगियों को लाभदायक  
हैं ॥ २२६-२२८ ॥

खूनी ववासीर में विशेष विधि ।  
यत्परथ्यं यदपरथ्यं च वक्ष्यते रक्तपित्ति-  
नाम् । रक्ताशौरोगिणां तत्तदपि विद्या-  
द्विशेषतः ॥ २२९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामर्शोऽधिकारः

समाप्तः ।

रक्तपित्त के रोगियों के लिये जो पथ्यापथ्य  
उचित है उसी का पालन रक्ताशौ के रोगियों  
को करना चाहिए ॥ २२९ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रूचप्रभाभिधायान्याख्याया-  
मर्शोधिकारः समाप्तः ।

अथ भगन्दराधिकारः ।

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोध-  
येत्ततः । रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न  
गच्छति ॥ १ ॥

उपवासादिना संशोष्य वमनविरेचना-  
दिना शोधयेत् । रक्तावसेचनं जलौ-  
कादिभिः ।

गुदा के आसपास सूजन देखकर शोषण,  
शोधन और रक्तमोचण करना चाहिए, जिससे  
कि सूजन पक न सके ॥ १ ॥

उपवास आदि से शोधन करके वमन और  
विरेचन आदि से शोधन करना तथा जोंक आदि  
के द्वारा रक्त निकलवाना चाहिए ।

तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं लाङ्गली  
गिरिकर्णिका । शताह्वा त्रिवृतादन्त्यः  
शोधनाय भगन्दरे ॥ २ ॥

काले तिल, मालकांगनी, फूट, कलिहारी,  
अपराजिता ( कोयल ) की जड़, सोया, निसोत  
और दन्ती की जड़, इनको इकट्ठा कर भगन्दर  
पर शोधनार्थ लेप करना चाहिए ॥ २ ॥

रसाञ्जनादि योग ।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा निम्ब-  
पल्लवाः । त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को  
नाडीत्रणापहः ॥ ३ ॥

रसौत, हल्दी, दारहल्दी, मँजीठ, नीम के  
पत्ते, निसोत, मालकांगनी की जड़ तथा दन्ती  
की जड़ इनके कल्क का लेप करने से भगन्दर  
और नाडीमय नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सुमना वटपत्राणि गुहूची विश्व-  
भेषजम् । ससैन्धवस्तक्रपिष्टो लेपो हन्ति  
भगन्दरम् ॥ ४ ॥

चमेली के पत्ते, यद के पत्ते, गिलोय, सोंठ,  
सैंधानमक, इन्हें एकत्र कर छाछ से पीस कर  
लेप देने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कुप्लं त्रिवृत्तिलादन्ती मागध्याः सैन्धवं  
मधु । रजनी त्रिफला तुत्थं द्वितं त्रणविशोध-  
नम् ॥ ५ ॥

कूट, निसोत, काले तिल, दन्ती की जड़,  
पीपल, सैंधा नमक, शुद्ध, हल्दी, त्रिफला और  
तृतीया इन्हें पीसकर लेप देने से घण शुद्ध  
होता है ॥ ५ ॥

भगन्दर में जम्बूकमांस का उपयोग ।

भक्षयेज्जाम्बुकं मांसं प्रकारैर्व्यञ्जना-  
दिभिः । अजीर्णवर्जा मासेन मुच्यते तु  
भगन्दरात् ॥ ६ ॥

जिस भगन्दर के रोगी को अजीर्ण न हो  
उसे नाना प्रकार के व्यञ्जनों के साथ एक मास  
तक गीदड़ का मांस सेवन कराने से भगन्दर रोग  
से मुक्ति होती है ॥ ६ ॥

खदिरादि काथ ।

खदिरत्रिफलाकाथो महिपीघृत  
संयुतः । विडङ्गचूर्णसंयुक्तो भगन्दर-  
विनाशनः ॥ ७ ॥

खदिरकाष्ठ और त्रिफला इनका एकत्र विधि  
पूर्वक काथ कर भैंस का घी और वायविडङ्ग  
का चूर्ण डालकर पीने से भगन्दर नष्ट होता  
है ॥ ७ ॥

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुहूच्यः सपुनर्नवा ।  
सुपिष्टाः पिडिकावस्थे लेपः शस्तो  
भगन्दरे ॥ ८ ॥

वरगद के कोमल पत्ते, इँट का चूर्ण, साठ,  
गिलोय और गदहपुरैना ( साँडी ) को खूब  
पीसकर भगन्दर के फोड़े पर लेप करना उत्तम  
होता है ॥ ८ ॥

स्तुह्यादि वर्ति ।

स्तुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विच-  
क्षणः । भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत् तां  
प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं  
हन्यान्न संशयः ॥ १० ॥

घृह या दूध, चाक वा दूध और दारु-  
हल्दी ; इनको एक में घोटकर बत्ती बनावे ।  
इस बत्ती को भगन्दर में रखे । यह बत्ती सब  
शरीर के नाडीग्रन्थों ( नासूरों ) को नष्ट करती  
है ॥ ९-१० ॥

तिलादि और निशादि लेप ।

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशे वचा-  
लोध्रमगारधूमम् । भगन्दरे नाड्युपदंश-  
योश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ ११ ॥  
समभागपिष्टलेपद्वयम् ।

तिल, हड़, लोध और नीम के पत्ते अथवा  
हल्दी, दारुहल्दी, बच, लोध और गुहधूम ;  
इनका लेप करने से भगन्दर, नासूर, उपदंश के  
घाव और दुष्ट घाव को शोधन और रोपण  
होता है ॥ ११ ॥

दोनों लेपों की ओपधिवाँ समभाग लेना चाहिए ।

त्रिफलारससंपिष्टविडालास्थिमलेप-  
नात् । भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं  
परम् ॥ १२ ॥

त्रिफला के रस में विलाव ( विलार ) की  
हड्डी पीसकर लेप करे तो भगन्दर और दुष्ट घाव  
शीघ्र अच्छे हो जाते हैं ॥ १२ ॥

भगन्दरं प्रत्यहं तु सुधौतं त्रिफला-  
म्बुना । त्रिफलारसपिष्टेन मार्जारस्थना च  
लेपयेत् ॥ १३ ॥

प्रतिदिन भगन्दर को त्रिफला के काथ से  
धोकर त्रिफला के रस से पिसी हुई विलार  
की हड्डी का लेप करना चाहिए ॥ १३ ॥

खरास्रपकभूरोहचूर्णलेपो भगन्दरम् ।

हन्ति दन्त्यग्न्यतिविपालेपस्तद्वच्छुनोऽ-  
स्थि वा ॥ १४ ॥

गदहे के रस में बेंचुओं को पकाकर और पीसकर छेप करने से चयवा जमाकगोटे की जड़, चीता की जड़ और अतीस को त्रिफला के रस में कुत्ते की हड्डी को पीसकर छेप करने से भगनदर रोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

नयकार्षिक गुग्गुलु ।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयो-  
जिता । गुटिका शोधगुल्माशौभगन्दर-  
हिता स्मृता ॥ १५ ॥

समिलित त्रिफला ३ तोले, शुद्ध गूगुल ५ तोले और छोटी पीपत्र १ तोला ; इनको जल में पीसकर गोली बनावे । यह गोली शोध, गुग्म, बवासीर और भगनदर के लिए लाभदायक है ॥ १५ ॥

सप्तविंशति गुग्गुलु ।

त्रिकटुत्रिफलापुस्तविडङ्गामृतचित्र-  
कम् । शट्येलापिप्पलीमूलं हवुषा सुरदारु-  
च ॥ १६ ॥ तुम्बुर्वरुक्तरं चय्यं विशाला  
रजनीद्वयम् । विडसौवर्चले चारौ सैन्धवं  
गजपिप्पली ॥ १७ ॥ यावन्त्येतानि  
चूर्णानि तावद् द्विगुणगुग्गुलुः । कोल-  
भमाणं गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ १८ ॥  
कासं श्वासं तथा शोथमर्शांसि च भगन्द-  
रम् । हृच्छूलं पार्वशूलञ्च कुत्तिवस्तिगुदे  
रुजम् ॥ १९ ॥ अरमरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च  
अन्नवृद्धिं तथा कृमीन् । चिरज्वरोपसृष्टानां  
क्षयोपहतचेतसाम् ॥ २० ॥ अनाहञ्च  
तथोन्मादं कुष्ठानि चोदराणि च । नाडी-  
दुष्टव्रणान् सर्वान् प्रमेहं श्लीपदं  
तथा ॥ २१ ॥ सप्तविंशतिको हन्ति  
सर्वरोगनिपूदनः ॥ २२ ॥

सोढ, कालीमिर्च, पीपल, हड, बहेडा,

धौवला, नागरमोघा, बायबिडङ्ग, गिलोय, चीता की जड़, कचूर, छोटी हलायची, पीपलामूल, हाडवेर, देवदारु, धनियाँ, भिलावाँ, चय्य, इन्द्रायण की जड़, हल्दी, दारहल्दी, विडनमक, कावा नमक, जवाखार, सजीपार, सँधा नमक, गजपीपल ; ये सब समभाग ले और इन सबके चूर्ण से तुगुना गूगुल ले । इसकी घेर के बराबर गोलियाँ बनाकर शहद के साथ सेवन करे । खाँसी, श्वास, शोथ, बवासीर, भगनदर, हृदय-शूल, पसली का शूल, तथा कुष्ठ, बस्ति और गुदा की पीड़ा, अरमरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्नवृद्धि, कृमिरोग, पुराना बुखार, छप, आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदरविचार, नासूर, दुष्टव्रण, सब प्रकार के प्रमेह और श्लीपद ; इन रोगों को यह सप्त-विंशति गूगुल नष्ट करता है ॥ १६-२२ ॥

भगनदरहर रस ।

सूतस्य द्विगुणेन शुद्धवलिना कन्या-  
पयोभिस्त्र्यहं शुद्धं ताम्रमयःसमस्ततु-  
लितं पात्रं निधायोपरि ॥ स्वेद्यं यामयुगञ्च  
भस्मपिठरे निम्बूजलैः सप्तधा पाकं  
तत्पुट्येद्भगन्दरहरो गुञ्जोन्मितः स्या-  
दिति ॥ २३ ॥

पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग इनकी कजली कर धीक्वार के रस में ३ दिन घटे । इस कजली में ताम्रभस्म और लोहभस्म मिलाकर भस्मयन्त्र में दो प्रहर स्वेदन करे, परचात् स्वाङ्ग शीतल होने पर नीबू के रस से सात भावना देकर पुटपाक करना चाहिए । मात्रा—१ रत्ती । यह भगनदर को हरता है ॥ २३ ॥

विष्यन्दन तैल ।

चित्रकाकौ त्रिष्टपाठे मलयूहयमारकौ ।  
सुधां वचां लाङ्गलिकां हरितालं सुवर्चि-  
काम् ॥ २४ ॥ ज्योतिष्मतीञ्च संहृत्य तैलं  
धीरो विपाचयेत् । एतद्विष्यन्दनं नाम  
तैलं दद्याद् भगन्दरे ॥ शोधनं रोपणञ्चैव  
सावर्ण्यकरणं परम् ॥ २५ ॥

चित्रकादीनां कल्कः जलेन चतुर्गुणेन  
पाकः । विष्यन्दयति विशोधयतीति  
विष्यन्दनम् ।

चीता की जड़, मदार की जड़, निसोत,  
पादी, कठगूलर, कनेर, यूहर, घघ कलिहारी,  
हरताल, सञ्जीवार, मालकांगुनी सब मिलाकर ३२  
तोले, तेल १२८ तोले । उपयुक्त औषधियों के  
कल्क में तेल और ६ सेर ३२ तोले पानी  
छालकर तेल सिद्ध करे । यह विष्यन्दन नाम  
तेल लगाने से भगन्दर का शोधन और रोपण  
होता है तथा भगन्दरपीडित स्थान का चर्ण  
शरीर के लुह्य हो जाता है ॥ २४-२५ ॥

चित्रक आदि के कल्क से चतुर्गुण जल में  
पाक करना चाहिए । विष्यन्दन का अर्थ शोधन  
करना है ।

करवीराद्य तैल ।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणा-  
ग्निमिः । मातुलुङ्गार्कवत्साङ्गैः पचेत्तैलं  
भगन्दरे ॥ २६ ॥

कनेर, हल्दी, जमालगोटे की जड़, कलि-  
हारी, संधानमक, चीता की जड़ बिजौरा नींबू  
की जड़, आक की जड़ और कुडा की छाल;  
इनको चार-चार तोले लेकर कल्क बनावे ।  
इस कल्क में २ सेर तेल और ८ सेर जल  
छालकर यथाविधि तैल सिद्धकर भगन्दर में  
लगाने से भगन्दर अच्छा हो जाता है ॥ २६ ॥

निशाद्य तैल ।

निशाकंतीरसिन्ध्वग्निपुराश्वहनवत्स-  
कैः । सिद्धमभ्यङ्गने तैलं भगन्दरविना-  
शनम् ॥ २७ ॥

कल्क के लिए हल्दी, आक का दूध, संधा-  
नमक, चीता की जड़, गुग्गुलु, कनेर की जड़  
और कुरैया की छाल, प्रत्येक पाँच-पाँच तोले ।  
तेल २ सेर, पाकार्थ जल ८ सेर । यथाविधि  
तेल सिद्ध कर भगन्दर पर लगाने से भगन्दर  
अच्छा हो जाता है ॥ २७ ॥

सैन्धवाद्य तैल ।

सैन्धवं चित्रकं दन्ती पलाशश्चेन्द्र-  
वारुणी । गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा ग्राह्य-  
मष्टावशेषितम् ॥ २८ ॥ काथपादं पचे-  
त्तैलं कल्कः कृष्णायसं मृतम् । पचेत्तैला-  
वशेषश्च तेन लेप्यं भगन्दरम् ॥ २९ ॥  
असाध्यं साधयत्याशु पकं कृमिकुलान्वि-  
तम् ॥ ३० ॥

संधा नमक चीता की जड़, जमालगोटे  
की जड़, ढाक के बीज और इन्द्रायण की  
जड़; सब औषधियाँ मिलाकर ४ सेर, गोमूत्र  
३२ सेर, अविशष्ट काथ ४ सेर, कहुआ  
तेल १ सेर, लोहभस्म १६ तोले । विधिपूर्वक  
तेल सिद्ध कर भगन्दर पर लेप करने से कृमियों  
से युक्त असाध्य भगन्दर भी अच्छा होता  
है ॥ २८-३० ॥

नारायण रस ।

दरदं पार्वतीपुष्पं कुन्टा पुरुषो रसः ।  
शोणितं गन्धको दैत्यः सैन्धवातिविषा  
चवी ॥ ३१ ॥ शरपुङ्खा विडङ्गरच  
यमानी गजपिप्पली । मरिचार्कै च  
वरुणो धूनकश्च हरीतकी ॥ ३२ ॥ संमर्द्य-  
कटुतैलेन गुटिकां कारयेद्विपक्व । नाडी-  
व्रणं प्रवाहश्च गण्डमालां विचर्चि-  
काम् ॥ ३३ ॥ चिरदुष्टव्रणं दद्मुपति-  
कर्णं शिरोगदम् । हस्तपादपरिस्फोटं  
दुःसाध्यञ्च भगन्दरम् ॥ एतान् रोगान्  
निहन्त्याशु प्रभिन्नमिव केशरी ॥ ३४ ॥  
ग्रन्थान्तरे अस्यैव व्रणगजांकुश इति  
संज्ञा ।

विगरफ, सौराष्ट्रमृत्तिका, रसौत, शुद्धं मैन-  
शिल, सुवर्णभस्म, पारा, ताम्रभस्म, गन्धक,  
लोहभस्म, संधानमक, अतीस, चर्षप, सरकोका,  
बायबिडग, अजवायन, गजरीपल, कालीमिर्च,

धाक की जड़, यरगा की पत्र, रास और इक्षु; इन सबको समभाग लेकर कहुए तेल में घोटकर गोलियाँ बनाये। यह रस नासूर, प्रवाहिका गण्डमाला, विषबिंका, पुराना दुष्ट घाव, दाद, पूतिकर्ण, शिरोरोग, हाथ और पैरों की फूटन और दुःसाध्य भगन्दर, इन रोगों को शीघ्र ही इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सिंह हाथी को ॥ ३१-३४ ॥

ग्रन्थान्तर में इसको मण्णगवांकुरा कहते हैं ।  
मात्रा १॥ रत्नी से ३ रत्नी तक ।

चित्रविभाण्डक रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसम-  
दितम् । त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ताम्रं  
तेन म्लेषयेत् ॥ ३५ ॥ द्वयोस्समं भस्म-  
पूर्णं भाण्डे रुद्ध्वा विपाचयेत् । द्विधा-  
मान्ते समुद्धृत्य साद्रशीतं विचूर्ण-  
येत् ॥ ३६ ॥ जम्बीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा  
रुद्ध्वा सप्तपुटे पचेत् । गुञ्जाद्धं मधुनाज्येन  
लिखाद्धन्ति भगन्दरम् ॥ ३७ ॥ मुपली-  
लशुनं चानु चारनालयुतं पिबेत् । कर्च-  
व्योमधुराहारो दिवास्वप्नश्च मैथुनम् ॥ ३८ ॥  
वर्जयेच्छीतलाहारं रसे चित्रविभाण्ड-  
के ॥ ३९ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और गन्धक २ तोले की कजली करे और धीकुवार के रस में तीन दिन घोटकर इसका गोला बनाये । ३ तोले शुद्ध ताम्र के पत्रों पर ठसका लेप करे । इन पत्रों को शरावसंपुट में बन्द कर एक हाडी में रखले और ऊपर-नीचे मुदित कंधों की भस्म भरकर दोपहर तक अग्नि में पकावे । फिर ठंडा होने पर इसका घूर्ण कर जम्बीरी नींबू के रस में घोटकर शरावसंपुट में बन्दकर गजपुट में पकावे । इस प्रकार सात पुट दे ।  
मात्रा १ रत्नी । अनुपान—राहद और घी ।  
इस रस के सेवन करने से भगन्दर नष्ट होता है । इसके खाने के बाद मुसली और

के घूर्ण को काँजी में मिलाकर पीना चाहिए ।  
इस चित्रविभाण्डक रस के सेवन करनेवाले मनुष्य को मीठा आहार करना चाहिए और दिन में सोना, मैथुन तथा ठंडे पदार्थों का सेवन त्याग देना चाहिए ॥ ३२-३९ ॥

तार्द्रप्रयोग ।

ताम्रपत्रं रविक्षीरे निर्गुण्डीस्वरसे  
तथा । त्रिकण्टजे स्नुहीरसे ताम्रं दग्ध्वा  
क्षिपेन्निधा ॥ ४० ॥ रसस्यार्द्धपलं शुद्धं  
गन्धकस्य पलं तथा । कज्जलयद्धेन जम्बी-  
रप्लुतेन ताम्रतः पलम् ॥ ४१ ॥ परि-  
लिप्यान्धमूपायां दद्यात् पञ्चपुटान्-  
लयन् । संमर्ध मधुसर्पिर्भ्यां लिहेद् गु-  
ञ्जाद्धंसम्मितम् । भगन्दरे सर्वभवे कार्थ्यं  
सर्वत्रणेषु च ॥ ४२ ॥

४ तोले तंबी के पत्रों को खूब गरम करके क्रम से मदार के दूध, निर्गुण्डी के रस, गोखरू के काथ और धूर के दूध में बुझावे । फिर शुद्ध सारा २ तोले और गन्धक ४ तोले लेकर कजली करे । इस कजली में ३ तोले नींबू का रस मिलाकर तंबी के पत्रों पर लेप करे । अन्धमूपा में बन्द करके पाँच लघुपुट देवे । इसको मधु और घी में मिलाकर ३ रत्नी की मात्रा में खाटने से यह भगन्दर और सब प्रकार के मणों को नष्ट करता है ॥ ४०-४२ ॥

भगन्दर में पथ्य ।

सर्वत्र शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलो  
रसः । पटोलं शिश्रुवेत्राग्रं पत्तूरो चाल-  
मूलकम् ॥ ४३ ॥ तिलसर्पपथोस्तैलं  
तिक्कवर्गो घृतं मधु । एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं  
यथादोषं भगन्दरे ॥ ४४ ॥ आमैसंशोध-  
नं लेपो लङ्घनं रक्क मोक्षणम् । पक्वे पुनः-  
शस्त्र विधिस्तथा चारान्नि कर्म च ॥ ४५ ॥

शालि चावल, मूँग, घिलेपी ( यथागृ भेद ), जलली जीवों के माम या रस, परवल, सॉहजन, घेत की कोंपल, शालिब्र. कधी मूली, तिल तैल सरसा का तैल, रित्रवर्ग, घी और शहद इनका दोपानुसार भगन्दर में सेवन करना चाहिए ॥ ४३-४५ ॥ भगन्दर की आभावस्था में सर्गोधन औषध लेप लहून रत्नमोक्षण तथा पश्वावस्था में शस्त्र प्रिया चार कर्म अग्नि दाह विधि पूर्वक कराना हितकर है ।

भगन्दर में अग्रथय ।

विरुद्धान्यन्नपानानि विपमाशन मात-  
पम् । व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरुणि  
च । संरत्सरं परिहरेद्यावद्रूढव्रणो  
नरः ॥ ४६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भगन्द-  
राधिकारः समाप्तः ।

विहृद् अन्नपान विपमभोजन धूप व्यायाम,  
मैथुन, कुरती, घोड़े आदि की पीठ पर मयारी  
और गुरु भोजन, इनका घाव भर जाने के बाद  
भी रोगी को एक वर्ष तक सेवन न करना  
चाहिए ॥ ४६ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचिताया  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाया  
व्याख्याया भगन्दराधि-  
कार समाप्त ।

अथ विद्रध्यधिकारः ।

विद्रधि पर सामान्य चिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वास्मिन्नेव  
विद्रधौ । मृदुर्विरेको लम्बं स्वेदः पित्तो-  
द्भवं विना ॥ १ ॥

सष प्रकार के विद्रधिरोग में जोंक लगाना,  
हल्की जुलाब, लघु भोजन और स्वेदन हित-

कर है, किन्तु पित्तविद्रधि में स्वेदन न करना  
चाहिए ॥ १ ॥

सुतेऽप्यूर्ध्वमधरचैव मैरेयाम्लमुरा-  
सर्वैः । पेयो वरुणाकाटिस्तु मधुशिपु-  
रसोऽथवा ॥ २ ॥

ऊर्ध्वमार्ग अथवा अधोमार्ग से प्रयुक्त पूय  
में अन्तर्विद्रधि के नाश के लिये मैरेय, काँजी,  
मुरा, आसव, वरुणादिगण का क्वाथ तथा  
मधुशिपु ( भीठे सॉहजन ) का रस पीना  
चाहिए ॥ २ ॥

कज्जली योग ।

वरुणादिकपायेण रसगन्धककज्जली ।  
मुक्ता निहन्ति मापैका बाह्यमन्तश्च  
विद्रधिम् ॥ ३ ॥

वरुणादि गण के क्वाथ के साथ पारा तथा  
गन्धक की कज्जली का सेवन करने से बाह्य  
तथा अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है । मात्रा-२ रत्ती  
से ८ रत्ती तक ॥ ३ ॥

वरुणाहि घृत ।

सिद्धं वरुणादिगणे विधिना तत्कल्के  
पाचितं सर्पिः । अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तक-  
शूलं हुताशमान्यश्च ॥ ४ ॥ गुल्मानपि  
पञ्चविधान् नाशयतीदं यथाम्बु वायु-  
सखम् । एतत्प्रातः प्रपिबेद् भोजनसमये  
निशास्येऽपि ॥ ५ ॥

वरुणादिगण क कल्क से विधिपूर्वक घृत  
पकाकर प्रातःकाल भोजन के समय और  
सन्ध्याकाल में सेवन करान से अन्तर्विद्रधि,  
शिरोवेदना, मन्दाग्नि तथा पॉधों गुग्म नष्ट  
होते हैं । मात्रा-आधा तोला ॥ ४-५ ॥

प्रियङ्गवाद्य तैल ।

प्रियङ्गुधातकी लोभ्रकटफलं तिति  
शत्वचम् । एतैस्तैलं विपन्नव्यं विद्रधौ  
व्रणरोपणम् ॥ ६ ॥

प्रियङ्गु, धाय के फूल, लोध, कटफल जल-  
वेतम की छाल, इनके कल्क से विधिपूर्वक तिल  
का तैल पकावे । यह तैल विद्रधि में ग्रण का  
रोपण करता है ॥ ६ ॥

वातविद्रधि की चिकित्सा ।

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृता-  
न्वितैः । सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो  
वातविद्रधौ ॥ ७ ॥

मांसकाथे यत्तैलं निःसरति सा वसा  
इति भानुः ।

वात की विद्रधि में वातनाशक दशमूलादि  
के कल्क में वसा, तेल या घी मिलाकर सुखो-  
ष्ण ( सुहाता गरम ) मोटा लेप करना  
चाहिए ॥ ७ ॥

मांस के क्वाथ में तेल निकलता है उसको  
वसा कहते हैं, यह भानुजी का मत है ।

स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिशु मूल  
समन्विताः । यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपि-  
प्टैश्च लेपयेत् ॥ विलीयते क्षणेनैवमप-  
करचैव विद्रधिः ॥ ८ ॥

यवादिस्विन्नं कृत्वा पिष्ट्वा पुनरपि  
मनागुप्यं कृत्वा लेपनम् ।

सहिजन के मूल की छाल से स्वेदन और  
उपनाह करना चाहिए । और जी, गेहूँ और  
मूगों को उबालकर पानी में पीसकर गरम  
करके लेप करने से क्षणमात्र में कच्ची विद्रधि  
बैठ जाती है । उबाले हुए जी आदि को पीस  
कर फिर किंचित् उष्ण करके लेप करना  
चाहिए ॥ ८ ॥

पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भ-  
सा । गुग्गुलं रुतुतैलं वा पिवेन्मारुत  
विद्रधौ ॥ ९ ॥

गदहपुरैना, देवदारु, सोंठ, दशमूल और  
इह के काढ़े में गुग्गुल या पररुट का तैल मिला-  
कर वातविद्रधि में पीना चाहिए ॥ ९ ॥

पित्तविद्रधि की चिकित्सा ।

पैत्तिके शर्करालाजमधुकैः सारिवायु-  
तैः । प्रदिह्यात् क्षीरपिप्टैर्वा पयस्योशीर-  
चन्दनैः ॥ १० ॥

पैत्तिक विद्रधि में शर्कर, धान की खील,  
मुलेठी और अनन्तमूल का अथवा क्षीरकां-  
कोली, प्रस और सफ़ेद चन्दन को दूध में  
पीसकर लेह करना चाहिए ॥ १० ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेप-  
नम् । यष्ट्याहशारिर्वाद्द्वानलमूलैः सच-  
न्दनैः ॥ क्षीरपिप्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्र-  
धिनाशनः ॥ ११ ॥

पीपल, बरगद पाकड़, गूलर और घृत की  
छाल के कल्क में घी मिलाकर लेप करना  
तथा मुलहठी, अनन्तमूल, दूध, नरसल की जड़  
और लालचन्दन को दूध में पीसकर लेप करना  
पित्तविद्रधि को नष्ट करता है ॥ ११ ॥

श्लेष्मविद्रधि की चिकित्सा ।

इष्टकासिकतालौहगोशकृत्तुपपांशु-  
भिः । मूत्रपिप्टैश्च सततं स्वेदयेत्  
श्लेष्मविद्रधिम् ॥ १२ ॥

गोमूत्रपिप्टमिष्टकादिकमुत्सिद्य पर-  
एहादिपत्रैर्बद्ध्वा स्वेदः ।

इष्ट, बालू, लोहचूर्ण, गौ का गोबर और  
यवों का गुप ; इनको मूत्र में पीसकर और  
गरम करके कफविद्रधि का बार-बार स्वेदन  
करना चाहिए । अर्थात् इष्ट के चूर्ण आदिकों  
को गोमूत्र में पीसकर, और गरम करके भरपट  
के पत्तों से लपेटकर विद्रधि के ऊपर बाँधना  
चाहिए ॥ १२ ॥

रक्तज और आगन्तुक विद्रधि की चिकित्सा ।

पित्तविद्रधिवत् सर्वा क्रियां निरवशे-  
पतः । विद्रध्योः कुरालः कुप्याद्रक्ताग-  
न्तुनिमित्तयोः ॥ १३ ॥



रक्तज और आगन्तुक विद्रधियों में चतुर वैद्य को पित्तविद्रधि की-सी ही संपूर्ण क्रिया करनी चाहिए ॥ १३ ॥

सामान्यविद्रधि की चिकित्सा ।

शोभाजनकनियू हो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः । अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातः निषेवितः ॥ १४ ॥

सहिजने के गोंद में हींग और संधानमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से शीघ्र ही विद्रधि का नाश हो जाता है ॥ १४ ॥

अन्तर्विद्रधि की चिकित्सा ।

शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगालयेत् । तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ १५ ॥

सहिजने की जड़ को जल में धोकर पीस ले और वस्त्र में डालकर उसका रस निचोड़ ले फिर उसमें शहद मिलाकर पीने से अन्तर्विद्रधि नष्ट हो जाती है ॥ १५ ॥

अपक्वविद्रधि की चिकित्सा ।

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च । जलेन कथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ १६ ॥

सफेद सांठी की जड़ और वरना की जड़ का बवाय पीने से अपक्व विद्रधि नष्ट होती है ॥ १६ ॥

शमयति पाठामूलं चौद्रयुतं तण्डुला-म्भसा पीतम् । अन्तर्मूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ १७ ॥ अपक्वे त्वेतदुद्विष्टं पक्वे तु व्रणवत् क्रिया ॥ १८ ॥

पाठी की जड़ के चूर्ण में शहद मिलाकर चावल के धोवन के साथ पीने से अन्तर्विद्रधि शीघ्र नष्ट होती है । अपक्व विद्रधि में उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिए और पकी हुई विद्रधि की व्रणवत् चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १७-१८ ॥

विद्रधि में पथ्य ।

आमावस्ये रेचनानिलेपः स्वेदोरुक्रमोत्त-

णम् जीर्णश्यामाककलमकुलत्थलशुनानि च । घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वखा रसाः ॥ १९ ॥ रक्तशिग्रुकारवेत्तं पटोलं हिमवालुका । चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्व-श्वापि व्रणोदितम् ॥ २० ॥ नराणां विद्रधि व्याधा यथास्वस्थं यथामजम् । पथ्यान्देतार्ण सर्वाणि विदिष्ट विमर्षिभीः ।

विरचन लेप स्वेदन रक्तमोक्षण पुगने श्यामाक ( सावां ), कलम, कुलथी आदि धान्य, लहसुन, घी, तैल, मूँग का यूप, विलेपी, जांगल मांसरस, लाल सहिजना, करेला, परवल, कपूर, चन्दन, उबालकर ठण्डा किया हुआ जल तथा व्रण में कड़ा हुआ पथ्य विद्रधि में हितकारक है ॥ १९-२० ॥

विद्रधि में अपथ्य ।

शोथिनं यान्यपथ्यानि व्रणिनामहितानि च । क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेन्नरः ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विद्रध्य-धिकारः समाप्तः ।

शोथ एवं व्रण के रोगियों के लिये जो अपथ्य हैं वही क्रमशः आमाविद्रधि एवं पक्व-विद्रधि में अपथ्य हैं अर्थात् शोथ में जो अपथ्य हैं वह आम ( कच्ची ) विद्रधि में अपथ्य हैं । और जो व्रण में हानिकारक हैं वह पक्व विद्रधि के लिये भी अपथ्य हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविरचितार्ण-भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां-व्याख्यायां विद्रध्यधि-कारः समाप्तः ।

## अथ उरुस्तम्भाधिकारः ।

उरुस्तम्भ में क्रियाक्रम ।

रुलेप्मणः क्षपणं यत्स्यान्न च मारु-  
तकोपनम् । तत्सर्वं सर्वदा कार्य्यमूरुस्त-  
म्भस्य भेषजम् ॥ १ ॥

जिससे कफ नष्ट हो और वायु कुपित न हो  
ऐसी समस्त चिकित्सा उरुस्तम्भ रोग में  
करनी चाहिए ॥ १ ॥

रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्ति-  
पूर्वकः । स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वाता-  
मयापहः ॥ २ ॥

यदि रूक्षिक्रिया से निद्रानाश आदि लक्षण-  
पुत्र वात कुपित हो तो वातरोगनाशक स्नेह स्वेद  
आदि द्वारा चिकित्सा नरवनी चाहिए ॥ २ ॥

प्रतारयैत् प्रतिस्त्रोतो नदीं शीतजलां  
शिवाम् । सरश्च त्रिमलं शीतं स्थिरतोयं  
पुनः पुनः ॥ ३ ॥

उरुस्तम्भ के रोगी को शीतल जलवाली  
नदी में प्रवाह के धिरद नैरने का अथवा जिस  
तालाब का जल स्वच्छ, शीतल तथा स्थिर  
हो उसमें बारम्बार नैरने की अनुमति देनी  
चाहिए ॥ ३ ॥

तस्य न स्नेहनं कार्य्यं न यस्तिर्न विरे-  
चनम् । सर्वो रूक्षक्रमः कार्य्यस्तत्रादौ  
कफनाशनः ॥ पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः  
कार्य्यः क्रियाक्रमः ॥ ४ ॥

उरुस्तम्भ के रोगी को स्नेहन, यस्तिकर्म  
और विरेचन वर्जित है । पहले कफनाशक सूखी  
चिकित्सा करके फिर अन्य वातविनाशक सष  
प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

शिलाजतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ  
नागरम् । उरुस्तम्भे पिवेन्मूर्त्रैर्दशमूलीर-  
सेन वा ॥ ५ ॥

उरुस्तम्भ रोग में शिलाजीत, गुग्गुल, पीपरि

अथवा सोंठ को गोमूत्र या दशमूल के काढ़े के  
साथ पीना चाहिए ॥ ५ ॥

भल्लातकामृताशुएठीदारुपथ्यापुन-  
र्ननाः । पञ्चमूलीद्वयोन्मिथ्रा उरुस्तम्भ-  
निवर्हणः ॥ ६ ॥

भिलावाँ, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हड़,  
नाँडी और दोनों पंचमूल (अर्थात् दशमूल) ;  
इनका साथ पीने से उरुस्तम्भ रोग नष्ट होता  
है ॥ ६ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलभल्लातकाथ  
एव वा । कल्को वा समधुर्देय उरुस्तम्भ-  
विनाशनः ॥ ७ ॥

पीपरि, पीपलामूल और भिलावाँ, इनके  
काथ अथवा कल्क को शहद के साथ सेवन  
करने से उरुस्तम्भ रोग का नाश होता है ॥ ७ ॥

त्रिफला चव्यकटुकं ग्रन्थिकं मधुना  
लिहेत् । उरुस्तम्भविनाशाय पुरं मृत्रेण  
वा पिवेत् ॥ ८ ॥ अत्र कटुकं त्रिकटु ।

हड़, बहेडा, आँवला, चव्य, सोंठ, मिर्च,  
पीपरि और पीपलामूल ; इनकी ममभाग छे  
चूर्णकर शहद के साथ चाटे अथवा  
गोमूत्र के साथ गुगुल का सेवन करे तो उरु-  
स्तम्भ रोग नष्ट हो ॥ ८ ॥

लिखाद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण  
कटुकायुतम् सुखाभ्युना पिवेद्वापि  
चूर्णं पद्भरणं नरः ॥ ९ ॥

पद्भरणो योग उक्त एव वातव्याधौ  
अत्र दशमूलीरसेन गुग्गुलुः सिद्ध-  
फल ।

त्रिफला और कुटकी का चूर्ण शहद के  
साथ चाटे अथवा सुलोष्ण जल के साथ  
पद्भरण चूर्ण का पान करे । पद्भरण योग  
वातरोग में कहा ही है । उरुस्तम्भ में दशमूल  
के काथ के साथ गुगुल का सेवन करना लाभ-  
दायक सिद्ध हुआ है ॥ ९ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानो वा मात्तिकेण  
गुडेन वा । स्नेहवर्जो पिवेदत्र चूर्णं  
पहूपणं नरः ॥ १० ॥

वर्द्धमान पीपरि का शहद या गुड के साथ  
सेवन करे अथवा पहूपण ( मोंठ, मिर्च,  
पीपरि, पीपलामूल, चीता की जड़ और चष्य )  
के चूर्ण का सेवन करे । इस योग में घृत, तेल  
आदि पदार्थों का सेवन निषिद्ध है ॥ १० ॥

हितमुष्णाम्बु वा तद्वत् पिप्पल्यादि-  
गणैः कृतम् । ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति  
गण्डीरारिष्टमेव वा ॥ ११ ॥

ऊरुस्तम्भरोग में पिप्पल्यादिगण का चूर्ण  
उष्ण जल के साथ तथा गण्डीरारिष्ट अथवा  
मँजीठ और नीम का सेवन करना हित-  
कर है ॥ ११ ॥

क्षौद्रसर्पपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं मि-  
पक् । गाढमुत्सादनं कुट्यादूरुस्तम्भे  
प्रलेपनम् ॥ १२ ॥

धुस्तूरपत्ररसेन स्नुहीपत्ररसेन वा सर्व  
पिष्ट्वा गाढं प्रलिप्य वस्त्रादिनावेद्यथ  
बध्नीयात् ।

शहद, सरसों और धरुमीकमृत्तिका ( बाँधी  
की मिट्टी ); इनको धतूरे के पत्तों के रस में  
या यूद्ध के पत्तों के रस में पीसकर ऊरुस्तम्भ  
में गाढ़ा-गाढ़ा लेप करके ऊपर से पट्टी बाँध  
देनी चाहिए ॥ १२ ॥

रास्नादि काथ ।

रास्ना श्यामाकपथ्या मरिचमिसि-  
शिवा विल्वमज्जाश्वगन्धा यासच्छिन्ना-  
जमोटाः सुमुखमतिविपावृद्धदारो बृहत्प्यौ ।  
शुण्ठी तिक्ता यमानी सहचरचविकैरण्ड-

दार्वाभिकृष्णा ऊरुस्तम्भामवातकफपवन-  
रुजं दण्डकांश्चाशु हन्यात् ॥ १३ ॥

रास्ना, श्यामालता ( कालीसर ), हर्ष,  
कालीमिर्च, सौंफ, आंवला, बेलगिरी, असगन्ध,  
अवासा, गिलोय, अजमोदा, तुलसी, अतीस,  
विधारा की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी,  
सोंठ, कुटकी, अजवायन, कटसरैया की जड़,  
चष्य, अशदी की जड़, दारहल्दी और गज-  
पीपल, सब मिलाकर २ तोले । पाक के लिये  
जल ३२ तोले, यथा हुआ बाथ ८ तोले । इस  
बाथ के पीने से ऊरुस्तम्भ, आमवात, कफरोग,  
वातरोग तथा दण्डक रोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥

कृष्णधुस्तूरमूलश्च फलश्च खाखसा-  
भिधम् । रसोनमरिचाजाजीजयन्ती  
शिग्रुर्पपाः ॥ १४ ॥ सर्वाण्येतानि  
मूत्रेण पिष्ट्वायुष्णीकृतानि च । गाढं  
प्रलेपयेद् वैद्य आढ्यवाते भयावहे ॥ १५ ॥

काले धतूरे की जड़, पोस्त के डोड़े, लहसुन,  
कालीमिर्च, काला जीरा, जयन्ती के पत्ते, सहि-  
जने की छाल, सरसों, इन्हें गोमूत्र में अच्छी  
तरह पीसकर गरम कर ऊरुस्तम्भ में गाढ़ा  
लेप करना चाहिए ॥ १४-१५ ॥

अष्टकट्वरतैल ।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलनागरादष्टकट-  
वरः । तैलप्रस्थः समो दधना गृध्रस्यू-  
ग्रहापहः । अष्टकट्वरतैलेऽस्मिन् तैलं  
सार्पपिम्यते ॥ १६ ॥

सरसों का तेल १२८ तोले, दही १२८  
तोले, फट्वर ( घृतमुद्ग दही की छाड़ ) १२  
सेर ६४ तोले । कलक के लिये—पीपलामूल  
तथा सोंठ मिलाकर ८ तोले ( निरचल के मत  
से प्रत्येक ८ तोले ) विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर  
प्रयोग करने से गुध्रमी तथा ऊरुस्तम्भ दोनों  
नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

कुष्ठादि तैल ।

कुष्ठश्रीवेद्यकोदीच्यं सरसं दाह-

केशरम् । अजगन्धाश्चगन्धा चा तैलं तैः  
सार्पणं पचेत् ॥ १७ ॥ सक्षौद्रं मात्रया  
तस्माद्गुरुस्तम्भादितः पिवेत् ॥ १८ ॥

सरसों का तेल ४ सेर, जल १६ सेर ।  
करक के लिये—कूट, श्रीघटक ( नवनीत रोटी  
गन्धाधिरोग ), गन्धबाला, चीड़ की लकड़ी,  
देवदार, नागकेशर, अजमोदा, असगन्ध—प्रत्येक  
दो २ पुटांक । इसे नियमपूर्वक सिद्ध कर शहद  
के साथ योग्य मात्रा में ऊरुस्तम्भ के रोगी को  
पीना चाहिए । मात्रा ३ मासे से ६ मासे  
तक ॥ १७--१८ ॥

सैन्धवादि तैल ।

द्वे पले सैन्धवात् पञ्च शुक्या ग्रन्थिक-  
चित्रकात् । द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि त्रिशति-  
द्वे तथादके ॥ १९ ॥ आरनालात् पचेत्  
प्रस्थं तैलमेतैरपत्यदम् । गृध्रस्यूरुग्रहा-  
शोर्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ २० ॥

तिलतैल १२८ तोले, कोंजी १० सेर  
६४ तोले । करक के लिये—वैधानमक ८  
तोले, सोंठ २० तोले, पीपलामूत्र ८ तोले,  
भिलायें के बीज २० नग । विधिपूर्वक पकाकर  
मालिश करने से गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ, बवासीर  
तथा अन्य वातव्याधि नष्ट होती है ॥ १९--२० ॥

पङ्घरण चूर्ण ।

चित्रकेन्द्रयवाः पाठा कटुकाति-  
विषाभयाः । महाव्याधिप्रशमनो योगः  
पङ्घरणः स्मृतः ॥ २१ ॥

चित्रक ( चीता ), इन्द्रजौ, पाद, कुटकी,  
अतीस, हरद, हरएक तीन-तीन मासे । इस  
चूर्ण को वातरोग में प्रयुक्त कराने से लाभ होता  
है ॥ २१ ॥

गुञ्जाभद्र रस ।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादश-  
गन्धकम् । गुञ्जावीजञ्च पद्मनिष्कं निष्कं  
जैपालवीजकम् ॥ २२ ॥ जयाम्बीरधु-

स्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् । भावयित्वा  
वटीं कुर्याद्द्यूतैर्वल्लैकसम्मिताम् ॥ २३ ॥  
गुञ्जाभद्रो रसो नाम्ना पिंगुसैन्धवसंयुतः ।  
शमयत्येव नो चित्रमूरुस्तम्भं सुदुर्ज-  
यम् ॥ २४ ॥

गुद्द पारा ३ तोले, गन्धक १२ तोले,  
धुँधुची ६ तोले, जमालगोटे के बीज १ तोला;  
इन सबको एकत्र कर क्रम से एक-एक दिन  
जयन्ती, नीधू, धतूरा और मजोय के रस में  
पृथक्-पृथक् घोंटे । फिर ची की भावना  
देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । इस  
गुञ्जाभद्र रस को हींग और सैधानमक के  
साथ सेवन करे तो यह कठिन से कठिन ऊरुस्तम्भ  
रोग को नष्ट करता है । इसमें आश्चर्य नहीं  
है ॥ २२--२४ ॥

ऊरुस्तम्भ में पथ्य ।

रुचः सर्वो विधिः स्वेदः कोद्रवा रक्त-  
शालयः । यथाः कुलत्थाः श्यामाका  
उद्दालाश्च पुगतनाः ॥ २५ ॥ शोभा  
ज्जनं काररेल्लं पटोलं लशुनानि च ।  
मुनिपण्यः काकमाची वेत्राग्रं निम्बपल-  
वम् ॥ २६ ॥ पत्तूरो गान्तुक पथ्यावार्ता  
कुस्तमवारि च शम्पाकशाक पिएया-  
कस्तकारिष्टमधूनि च ॥ २७ ॥ कटुतिक्त-  
कपायाणि क्षारसेवा गवाज्जलम् । व्या-  
यामं च यथाशक्ति स्थलस्याक्रमणानि  
च ॥ २८ ॥ स्वच्छे हृदे सन्तरणं प्रति-  
स्रोतोनीदीषु च । तत्पथ्यं नरैः सेव्यमूरु-  
स्तम्भविकारिभिः ॥ २९ ॥

सब रुच क्रियाएँ, स्वेदन, पुराने कोदों,  
लाल शालिचावल, जौ, कुलधी, श्यामाक  
धान्य ( सार्व ), उद्दालक धान्य, सहिजना,  
करेला, परवल, लहसुन, चौपतियाँ, मकोय,  
वेत का कोंपल, नीम के पत्ते, शालिब्रशाक

मधुआ, हृद, बैंगन गरम जल, अमलतास के पत्तों का शाक, तिलकलक, छाद्य, अरिष्ट, शहद, चरपरे, कड़वे एवं कषाय द्रव्य, चार-द्रव्यों का सेवन, गोमूत्र, व्यायाम, यथाशक्ति स्थल पर चलना, स्वच्छ तालाब में तैरना, नदी में उसके यहाय के विरुद्ध तैरना, ये ऊरु-तम्भ के रोगियों के लिये पथ्य हैं ॥ २५-२६ ॥

अपथ्य ।

गुरुशीतद्रवस्निग्धविरुद्धसातम्यभोजनम् । विरेचनं स्नेहनं च वमनं रक्तमोक्षणम् ॥ ३० ॥ वस्ति च न हितं प्राहुरुरुस्तम्भविकारिणाम् ॥ ३१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामूरुस्तम्भाधिकारः समाप्तः ।

गुरु, शीत, द्रव, अत्यन्त चिकना, विरुद्ध एवं असाम्य ( विपरीत ) भोजन, विरेचन, स्नेहन, रक्तनिर्हरण ( फस्द ), और वस्तिकर्म ये ऊरुस्तम्भ में हानिकारक हैं ॥ ३०-३१ ॥

इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाययां व्याख्याया-मूरुस्तम्भाधिकारः समाप्तः ।

अथ भग्नाधिकारः ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सूचयेच्छ्रीतलाम्बुना । पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम् ॥ १ ॥ सुश्रुतोक्तं तु भग्नेषु वीच्य बन्धादिमाचरेत् । श्रवनाभितपुञ्ज-ह्येदुन्नतश्चावपीडयेत् ॥ २ ॥ अञ्चेदिति-क्षिप्तमधोगतञ्चोपरि वर्त्तयेत् । आलेपनार्थं मज्जिष्ठा मधुकं चाम्लपेषितम् ॥ ३ ॥

पहले दृष्टे हुये भग्न को पहचानकर शीतल जल का सेवन करे और कीचड़ का लेप करके

कदम्ब, गूलर आदि की दाल को भग्नस्थान पर रसकर पट्टी से बाँध दे । भग्नाधिकार में सुश्रुत के कहे हुए बन्धनविधिमान का श्रवलोकन करके उसका प्रयोग करे । जो हड्डी आदि झुक गई हो उसे ऊपर उठाना और जो ऊपर को उठ आई हो उसे नीचे बँठा देना चाहिए । जो हड्डी इधर उधर हट गई हो उसे खींचकर ठिकाने बँठा दे और जो नीचे को हट गई हो उसे ऊपर उठा दे तथा मँजीठ और मुलेठी को काँजी में पीसकर उसपर लेप कर दे ॥ १-३ ॥

शतधौतपृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् । सप्तरात्रात् सप्तरात्रात् साम्ये-पृतुषु मोक्षणम् ॥ ४ ॥ कर्तव्यं स्यात् त्रिरात्राच्च तत्राग्नेयेषु जानता । काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्विमोक्षयेत् ॥ ५ ॥

चाँवलों के चूयं ( आटा ) में सौ बार का धोया हुआ घी मिलाकर दृष्टे हुए पर लेप करना चाहिए । सात-सात दिन के बाद सौम्य ( शरद ) ऋतु में पट्टी खोलनी चाहिए । ग्रीष्म ऋतु में ३ दिन के पश्चात् और समशीतोष्ण ऋतु में पाँच दिन के पश्चात् पट्टी आदि खोलनी चाहिए ॥ ४-५ ॥

न्यग्रोधादिकषायञ्च सुशीतं परिपे-चने । पञ्चमूलीविपकन्तु क्षीरं दद्यात् सवेदने ॥ ६ ॥

न्यग्रोधादिगण के काढ़े को ठंडा करके दृष्टे स्थान पर मँचना चाहिए, अथवा अधिक पीड़ा हो तो पंचमूल ढालकर पकाये हुए दूध से मँचना चाहिए ॥ ६ ॥

भग्न में पथ्य ।

सुखोष्णमत्रचार्यं वा चक्रतैलं वि-जानता । मांसं मांसरसः सर्पिः क्षीरं यूपः

१ कदम्बोदुम्बरावथसर्जाऽनुंनपलाशजैः । मुरलक्ष्मैः सुप्रतिष्ठैर्भैरवकलैः सकलैरपि । कुशाह्वयैः तमं बन्धं पादस्योपरि योजयेत् ॥

सतीनजः ॥ घृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं  
भग्नाय जानता ॥ ७ ॥

कोरहू के तेल ( कच्ची घाषी के तेल ) को  
किंचित् गरम करके सेवन करे अथवा मांस  
मांसरस, घी, दूध और मटर का घूप तथा  
अन्य घृंहण अन्न-पान भग्नरोगी को सेवन  
करावे ॥ ७ ॥

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसा-  
धितम् । शीतलं लक्ष्णया युक्तं प्रातर्भग्नः  
पिवेन्नरः ॥ ८ ॥

एक चार की ब्याई हुई गौ के दूध में घी  
मिलाकर मधुरादि गण की ओषधियों से सिद्ध  
करे और ठंडा करके उसमें लाख का चूर्ण  
मिलाकर प्रातःकाल पीवे तो भग्नरोग दूर  
हो ॥ ८ ॥

सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममज्जु-  
नम् । सन्धिमुक्तेऽस्थिभग्ने च पिवेत्  
क्षीरेण मानवः ॥ ९ ॥

सन्धि के पास हुए अस्थिभंग में हड्डी, लाख,  
गेहूँ और अजुन की छाल; इनके चूर्ण  
में घी मिलाकर पीना चाहिए ॥ ९ ॥

रसोनादि योग ।

रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं सम-  
रनताम् । द्विन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धान-  
मचिराद्भवेत् ॥ १० ॥

लहसुन, शहद, लाख, घी और शकर के कणक  
का सेवन करने से द्विन्न-भिन्न और हटी हुई हड्डी  
शीघ्र ही जुड़ जाती है ॥ १० ॥

पीतवराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्ज-  
कम् । अपक्वक्षीरपीतं स्यादस्थिभग्नमरोह-  
णम् ॥ ११ ॥

पीली कौड़ी की भस्म को ३ या ४ रत्ती की  
मात्रा में कच्चे दूध के साथ पीने से टूटी हुई हड्डी  
जुड़ जाती है ॥ ११ ॥

क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पिः स्या  
जीवनीयश्च सुखावहश्च । भग्नः पिवेत्  
त्वक् पयसार्जुनस्य गोधूमचूर्णं सघृतेन  
वाथ ॥ १२ ॥

लाख और मुलेठी को दूध के साथ और  
जीवनीयगण की ओषधियों को घी के साथ  
सेवन करने से अथवा अजुन की छाल को दूध  
के साथ और गेहूँ के चूर्ण को घी के साथ सेवन  
करने से भग्नरोग दूर हो जाता है ॥ १२ ॥

लाक्षागुग्गुलु ।

लाक्षास्थिसंहस्ककुमाश्चगन्धारश्चूर्णी-  
कृता नागवला पुरश्च । सम्भग्न-  
मुक्तास्थिरुजं निहन्त्यादङ्गानि कुर्यात्  
कुलिशोपमानि ॥ १३ ॥

अतोऽन्यत्रोपदिष्टत्वात्तुल्यश्चूर्णे च  
गुग्गुलुः ।

लाख, हड्डी, अजुन की छाल, असगन्ध,  
गुलशकरी और गुग्गुलु; इनकी गोली बनाकर  
सेवन करे तो भग्न और मुक्तास्थि (मोच आना)  
की पीडा दूर हो तथा अङ्ग वज्र के समान दृढ़  
हों ॥ १३ ॥

ग्रन्थान्तर में उपदिष्ट होने के कारण चूर्ण के  
समभाग गुग्गुलु डालना चाहिए ।

अर्भांगुग्गुलु ।

आभाफलत्रिकव्योपैः सर्वैरेभिः समी-  
कृतैः । तुल्यो गुग्गुलुरायोज्यो भग्नसन्धि-  
प्रसाधकः ॥ १४ ॥

बपूल की छाल, हड्डी, बहेडा, आंवला,  
सोंठ, पीपरि और काली मिर्च; इनके सम-  
भाग चूर्ण के बराबर गुग्गुलु मिलाकर गोली  
बनावे । इसके सेवन करने से टूटी हुई हड्डी जुड़  
जाती है ॥ १४ ॥

सत्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्म-  
धूत्तरैः । प्रतिसारथ्यं कर्पायश्च शेषं भग्न-  
वदाचरेत् ॥ १५ ॥ भग्नं नैति यथा पाकं

प्रयतेत् तथा भिषक् । वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहानत्र प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

घाघयुक्त भग्नवाले रोगी के घाघ को धी और शहद मिले हुए काढ़ों से धोकर पश्चात् भग्न की चिकित्सा करे । जिस उपाय से दूध हुआ पडे नहीं वही उपाय वैद्य को करना चाहिए । दाल-व्याधि में कहे हुए तेल आदि का भी भग्नरोग में प्रयोग करना चाहिए ॥१५-१४॥

गन्धतैल ।

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले । दिवादिवैवं संशोष्य क्षीरेण परिभाषयेत् ॥ १७ ॥ तृतीयं सप्त-रात्रं तु भावयेन्मधुक्काम्बुना । ततः क्षीरं पुनः पीताब्जुष्कान् सूक्ष्मान् त्रिचूर्णयेत् ॥ १८ ॥ काकोल्यादि सयष्ट्याहं मज्जिष्ठां सारिधां तथा । कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ १९ ॥ शतपुष्पाञ्च संचूर्णयेत् तिलचूर्णानि योजयेत् । पीडनार्थं च कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः ॥ २० ॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत् पुनः । एलाभंशुमतीं पत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा ॥ २१ ॥ लोत्रं प्रपौण्डरीकञ्च तथा कालानुसारिवाम् । शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ २२ ॥ पिप्प्ला शृङ्गाटकञ्चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च । एभिस्तद्विपचेत् तैलं शास्त्रविन्दुनाग्निना ॥ २३ ॥ एतत् तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु । आक्षेपके पक्ष्माते तालुशोपे तथादिते ॥ २४ ॥ मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे । वाघ्रिये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयंगताः ॥ २५ ॥ पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने । ग्रीवास्कन्धोरसां

वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥ २६ ॥ मुखञ्च पत्रप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् । गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ २७ ॥ राजार्हमेतत् कर्त्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः । तिलचूर्णसमं तत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ २८ ॥

तिलों को बग की पोटली में बाँधकर बहते हुए नदी आदि के जल में रात्रि भर रखे और प्रातः काल निकालकर धूप में सुखाये । इस प्रकार सात दिन करे । पश्चात् रात्रि में दूध में भिगोवे और दिन में धूप में सुखाये । यह क्रिया भी सात दिन करे । तदनन्तर मुलहठी के काथ में रात भर भिगोकर दिन में धूप में सुखाये । इस प्रकार सात दिन तक करे । फिर एक रात्रि दूध में भिगोकर सुखा ले और गुप्त जलग करके उनका महीन चूर्ण कर ले । काकोल्यादिगण, मुलहठी, मजीठ, अनन्तमूल, कट, राल, जटामांसी, देवदार, लालचन्दन और सौंफ; इनका चूर्ण बनाकर पूर्व किये हुए तिलों के चूर्ण में मिलावे । पश्चात् सब गन्धों के द्वारा भिद्ध किये हुए दूध में उस चूर्ण को गीला करके कोल्हयत्र द्वारा तेल निकलवा ले । यह तेल २ सेर । पाकार्यं जल ८ सेर । कर्कशं द्रव्य—छोटी इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीवन्ती, असगन्ध, लोध्र, पुंढरिया, तगर, भूरिद्धरीजा, क्षीरविदारी, अनन्तमूल, मूर्वा, सिंघावे तथा पूर्वोक्त काकोल्यादिगण से लेकर सौंफ तक की सब औषधियाँ मिलाकर आध सेर ; इनके कलक द्वारा मन्द अग्नि से तेल सिद्ध करे । यह तेल भग्नरोगी के लिए सब कामों में पथ्य है । आक्षेपवायु, पक्षाघात, तालुशोप, अर्द्धित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बाधिरता, तिमिर और रोगीगता आदि रोगवालों को यह तेल पीने में, मालिश में, नस्य और वस्तिक्रिया में तथा भोजन में देना हितकर है । इसके सेपन से गला, छाती और कर्णों की बढ़ती होती है और मुख कमल के गुह्य सुगन्धियाला हो जाता है । यह गन्ध-

तेल सय प्रकार के वायुरोगों को नष्ट करता है । यह तेल राजाशों के योग्य है । तिलचूर्ण के धराधर काकोत्यादि का चूर्ण लेना चाहिए ॥ १७-२८ ॥

भग्नरोग में निषिद्ध ।

लघुणं कटुकं चारमम्लं मैथुनमात-  
पम् । व्यायामश्च न सेवेत भग्नो रूक्षान्न-  
मेव च ॥ २९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भग्ना-  
धिकारः समाप्तः ।

नमकीन, कहुई और खट्टी वस्तुएं, पार, स्त्रीप्रसन्न, धूप, बसरत और रूखा अन्न; इनका भग्नरोगी सेवन न करे ॥ २९ ॥

इति श्रीसरयूपमादत्रिपाठिविराचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्न प्रभाभिधायां व्याख्यायां  
भग्नाधिकार समाप्तः ।

अथ ब्रणशोथाधिकारः ।

ब्रणशोथ में क्रियाक्रम ।

आदौ विम्लापनं कुट्याद् द्वितीयमव-  
सेचनम् । तृतीयमुपनाहं तु चतुर्थीं  
पादनक्रियाम् ॥ १ ॥ पञ्चमं शोधनं  
कुट्यात् पष्ठं रोपणमिष्यते । एते क्रमा  
ब्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः ॥ २ ॥

विम्लापयतीति विम्लापनं कर्त्तर्यनट्  
एतेन लङ्घनस्वेदप्रलेपादीनां प्रहणमिति  
भानुदासः ।

पहले ब्रणशोथ में विम्लापन कर्म अर्थात् शोथ को मिटानेवाले लेप, परिपेकादि क्रियाओं को करना चाहिए । इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि पहले अगुष्ठ आदि से मर्दन कर शोथ को मुलायम कर दे जिससे रक्त निकालने में

सुविधा हो परचात् रक्त निकालना, पुलटिस बांधना, चीरफाट करना, शोधन और रोपण कर्म करना; यह छह कर्म ब्रण के लिए हैं । इनके अतिरिक्त सातवां वैकृतापह ( जिससे विकार उत्पन्न हुआ है उसका शमन करना भूतनाशन (Antiseptic) कर्म करना चाहिए । भानुदासजी के मत में विम्लापन से लघन, स्वेदन और प्रलेपन आदि का प्रहण करना चाहिए ॥ १-२ ॥

ब्रण रजयथुरायासात्स च रागश्च  
जागरात् । तौ च रुक् च दिवास्मत्तात्तश्च  
मृत्युरश्च मैथुनात् ॥ ३ ॥

परिश्रम करने से ब्रण में रुजन, रात्रि में जागने से सूजन और लाली, दिन में सोने से सूजन, लाली और पीडा तथा मैथुन करने से सूजन मोह, पीडा और मृत्यु होती है । इसलिए ब्रणरोगी को परिश्रम, रात्रि जागरण, दिन का सोना और मैथुन त्याग देना चाहिए ॥ ३ ॥

मातुलुङ्गादि लेप ।

मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च भद्रदासमहौ-  
पधम् । अहिंसा चैव रास्ना च प्रलेपो  
वातशोथहा ॥ ४ ॥

बिजौरे की जड़, अरणी की छाल, देवदार, सोंठ, अहिंसा, रास्ना, इन्हें एकत्र पीसकर लेप देने से वातशोथ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

आगन्तौ शोणितोत्थे च एष एव  
क्रियाक्रमः ॥ ५ ॥

आगन्तु एवं रक्तज ब्रणशोथ में भी पौष्टिक ब्रणशोथ की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

श्लेष्मशोथ में अजगन्धादि लेप ।

अजगन्धाश्वगन्धा च काला सरलया  
सह । एकेशिका च शृङ्गी च प्रलेपः  
श्लेष्मशोथहा ॥ ६ ॥

अजवाइन, असगन्ध, काला (हिंसा),



घीड़ की लकड़ी, निशोध तथा कावड़ासिगी इन्हें एकत्र पीसकर लेप कर देने से कफजन्य शोथ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

कफचातज में पुनर्नवादि लेप ।

पुनर्नवादारुशिग्रु दशमूलमहौषधैः ।  
कफचातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधी-  
यते ॥ ७ ॥

साँठी, देवदार, 'सहिजना, दशमूल, मोंठ इन्हें एकत्र पीसकर कफचातज शोथ पर गुनगुना लेप लगाना चाहिए ॥ ७ ॥

स्थिरान् मन्दरुजान् शोथान् स्नेहै-  
र्वातकफापहैः । अभ्यज्य स्वेदयित्वा च  
वेणुनाड्या ततः शनैः ॥८॥ धिम्ला-  
पनार्थं मृद्नीयात् तलेनांगुष्ठकेन वा ॥ ९ ॥

कठिन, मन्दवेदनायुक्त शोथ में पहिले वात-  
कफ हरनेवाले स्नेह का मर्दन कर स्वेदन करे ।  
इस प्रकार मृदु हो जाने पर शोथ के दूर करने  
के लिये वशनाडी अथवा अगुठे के तलभाग से  
शनैः-शनैः मर्दन करना चाहिए ॥ ८-९ ॥

क्षारद्रव्यस्तथा क्षारो दारणः परि-  
कीर्तितः ॥ १० ॥

क्षार प्रधान औषधि (अपामार्ग) आदि  
तथा क्षार दोनों ही व्रणों को हरण करते  
हैं ॥ १० ॥

दारण द्रव्य ।

चिरविल्याग्निको दन्ती चित्रको ह्य-  
मारकः । कपोतकङ्कशुभ्राणां पुरीपाणि च  
दारणम् ॥ ११ ॥

करंजुषा, भिलावाँ, दन्ती, चित्रक, कनेर,  
तथा कपूर, कङ्क एवं गिद्ध आदि पक्षियों का  
पुरीष भी दारण करता है ॥ ११ ॥

पाचनार्थं उपनाह द्रव्य ।

शण्मूलकशिग्रूणां फलानि तिल-  
सर्पपाः । अतसीशक्रवो क्तिण्वमुष्ण-  
द्रव्यञ्च पाचनम् ॥ १२ ॥

सन के बीज, मूली के बीज सहिजन के  
बीज, तिल, सरसों, थलसी, सत्तू, सुराबीज  
तथा अन्य उष्णवीर्य द्रव्यों को पाचनार्थं उप-  
वाहन आदि में व्यवहार करना चाहिए ॥ १२ ॥

तैलेन सर्पिषा वापि ताभ्यां वा शक्रु-  
पिण्डका । सुखोष्णःसुखपाकार्थमुपनाहः  
प्रशस्यते ॥ १३ ॥

तैल अथवा घी अथवा दोनों से ही सत्तू की  
पिण्डका को गरम करके उपवाहन करने से  
शोथ पक जाता है ॥ १३ ॥

सतिला सातसीवीजा दध्यम्ला शक्रु-  
पिण्डका । सक्रिण्वकुष्ठलवणा शस्ता  
स्यादुपनाहने ॥ १४ ॥

तिल, थलसी के बीज, पटा दही, सुराबीज,  
कूठ, संधानमक, इन्हें सत्तू के साथ मिला गर्म  
कर उपवाहन करना चाहिए ॥ १४ ॥

त्रिफला खदिरो दावाँ न्यग्रोधादिवला  
कुशाः । निम्बकोलकपत्राणि कपायः  
शोधने हितः ॥ १५ ॥

त्रिफला, खदिरकाष्ठ, दारुहल्दी, न्यग्रोधादि-  
गण, खरैटी, कपूर नीम के पत्ते, बेरी के पत्ते,  
इनमें से हरएक का कषाय प्रणशोधक है ॥ १५ ॥

वातिके दशमूलानां क्षीरिणां पैत्तिके  
व्रणे । आरग्वधादेः कफजे कपायः शोधने  
हितः ॥ १६ ॥

वातिक व्रण में दशमूल का काथ, पैत्तिक  
व्रण में घट आदि दूधवाले वृक्षों क क्वाथ, कफज  
में आरग्वधादिगण का क्वाथ प्रणशोधन के  
लिये श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

व्रणस्य त्वविशुद्धस्य काथः शुद्धि-  
करः परः । पटोलनिम्बपत्रोत्थः सवत्रैव  
प्रयुज्यते ॥ १७ ॥

दूषित व्रण के शोधन के लिये पटोलपत्र  
तथा नीम के पत्तों का क्वाथ सय जगह व्यवहार  
में आता है ॥ १७ ॥

ब्रणरोपण ।

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोह-  
ताम् । कल्कः संरोपणं कार्यस्तिलजो मधु-  
संयुतः ॥ १८ ॥

जो ब्रण दुष्ट मांसरहित हो अथवा मांस में स्थित ब्रण यदि भरता हो तो तिलकरक और शहद मिलाकर लगाना चाहिए इससे शीघ्र घाव भर जाता है ॥ १८ ॥

निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता ।  
वर्त्तिस्तिलानां कल्को वा शोपयेद् रोपयेद्  
ब्रणान् ॥ १९ ॥

नीम के पत्ते, घी, शहद, दारुहल्दी तथा मुलेठी इनके मिले हुए कल्क को कपड़े के टुकड़े पर लेप कर बत्ती तैयार करे। इस बत्ती को ब्रणमुख में देने से रोपण होता है अथवा तिलकरक द्वारा बनी हुई बत्ती से भी घाव भर जाता है ॥ १९ ॥

अश्वगन्धारुहालोध्रं कटफलं मधु-  
यष्टिका । समद्वा धातकीपुष्पं परमं ब्रण-  
रोपणम् ॥ २० ॥

असगन्ध, कुटकी, लोध, कटफल, मुलहठी, मँजीठ, घाव के फूल, इनका लेप ब्रणरोपण में अत्यन्त लाभदायक है ॥ २० ॥

करञ्जारिष्टनिगुण्डीलेपो हन्वाद् ब्रण-  
कृमीन् । लशुनस्याथवा लेपो हिङ्गु-  
निम्बकृतोऽथवा ॥ ११ ॥

करंजुत्रा, नीम तथा सँभालू के पत्तों का लेप ब्रणस्थित कृमियों को नष्ट करता है। अथवा लहसुन या हींग और नीम के पत्तों का लेप भी ब्रणकृमियों को नष्ट करता है ॥ २१ ॥

निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पिलवणसर्पपैः ।  
धूपनं स्याद् ब्रणे रौच्यकृमिकण्डूरुजा-  
पहम् ॥ २२ ॥

नीम के पत्ते, वच, हींग, घी, सँधानमक,

सरसों इनका धूपन करने से ब्रण की रुक्षता, कृमि, फण्डू (खुजली) तथा वेदना नष्ट होती है ॥ २२ ॥

दूर्वाद्य तैलं श्रौतं घृत ।

दूर्वास्वरससिद्धं वा तैलं कम्पिल्लकेन  
च । दार्वात्वकश्च कल्केन प्रधानं ब्रण-  
रोपणम् ॥ २३ ॥ येनैव विधिना तैलं  
घृतं तेनैव साधयेत् । रक्तपित्तोत्तरं ज्ञात्वा  
सर्पिरेधावचारयेत् ॥ २४ ॥

दूब का रस तथा कमीला एवं दारुहल्दी की छाल के कल्क से विधिपूर्वक तैल पकाकर मालिश करे। इसकी मालिश से ब्रण का शीघ्र ही रोपण होता है। जिस विधि से तैल पकाते हैं उसी प्रकार घृत का भी पाक करना चाहिए। रक्तपित्त प्रधान ब्रण में घृत का ही प्रयोग करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

करंजाद्य घृत ।

नक्रमालस्य पत्राणि तरुणानि फला-  
नि च । सुमनायाश्च पत्राणि पटोला-  
रिष्टके तथा ॥ २५ ॥ द्वे हरिद्रे मधुच्छिष्टं  
मधुकं तिक्ररोहिणी । मञ्जिष्ठा चन्दनो-  
शीरमुत्पलं सारिवेत्रिष्टम् ॥ २६ ॥ एतेषां  
कार्पिकैर्भगैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दुष्टब्रण-  
प्रशमनं तथा नाडीविशोधनम् ॥ सद्य-  
श्छिन्नब्रणानाञ्च करञ्जाद्यमिदं शुभम् ॥ २७ ॥

गोघृत १२८ तोले। कल्क के लिये—करंजुष्ट के पत्ते तथा कच्चे फल, मालतीपत्र, परपल के पत्ते, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, मोम, मुलहठी, कुटकी, मँजीठ, लालचन्दन, खस, नील, कमल, अथनन्तमूल, श्यामालता, निसोत, हरएक ८ तोले। विधिपूर्वक पकाकर बाह्य प्रयोग करे। इसके प्रयोग से दुष्टब्रण, नाड़ीमण्य तथा सद्यः-ब्रण (हथियार के घाव) नष्ट होते हैं ॥ २५-२७ ॥

तिक्लाद्य घृत ।

तिक्लासिक्थनिशायष्टिनक्लाहफल-  
पल्लवै । पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्हन्ति  
व्रणं घृतम् ॥ २८ ॥

गोघृत १२८ तोले । कलक के लिये—कुटकी,  
मोम, हल्दी, मुलहठी, करंजुप के पत्ते तथा  
कच्चे फल, पटोलपत्र, मालतीपत्र, नीम के पत्ते  
मिलाकर ६४ तोले । विधिपूर्वक घृत पकावे ।  
इसके बाह्यप्रयोग से व्रण नष्ट होता है ॥ २८ ॥

प्रपौण्डरीकाद्य घृत ।

प्रपौण्डरीकमज्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।  
सहरिद्रैः शृतं सर्पिः सत्तीरं व्रण रोप-  
णम् ॥ २९ ॥

गोघृत १२८ तोले, दूध ६ सेर ३२ तोले ।  
कलक के लिये—पुण्डरिया, मजीठ, मुलेठी, खम,  
पद्माक्ष, हल्दी मिलाकर ६४ तोले । विधिपूर्वक  
पकावे । यह घृत व्रणरोपक है ॥ २९ ॥

व्रणशोथहरलेप ।

धुस्तूरमूलं सलवणमुष्णं व्रणस्थि-  
त्यारम्भे । दत्तं लेपान्नियतं व्रणशोथं हरति  
बहुदुष्टम् । धुस्तूरमूलं पिष्ट्वा ससैन्धवं  
कृत्वा कोष्णो लेपः कार्यः ॥ ३० ॥

व्रणशोथ की पहली अवस्था में धतूरे की जड़  
और गमक का गरम-गरम लेप करने से दुष्ट व्रण-  
शोथ नष्ट होता है ॥ ३० ॥

घातजव्रणशोथ में लेप ।

कलकः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्ध शाखो-  
टकत्वचः । सुपर्ण इव नागानां वातशोथ-  
विनाशनः ॥ ३१ ॥

सिंहोश की गीली छाल की बर्तनी में पीसकर  
लेप करे तो घातजशोथ का इस प्रकार नाश  
होता है जैसे गरुड़ से सर्पों का नाश होता  
है ॥ ३१ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ।  
ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्यात् शोथनिर्वापणः  
परः ॥ ३२ ॥

समभागपिष्टैर्घृतमिश्रैर्लेपः ।

वरगद, गुलर, पीपल, पकाइया और बेंत की  
समभाग छाल के कलक में घी मिलाकर लेप करने  
से व्रणशोथ नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

न रात्रौ लेपनं दद्यादक्षयं पतितं तथा ।  
न च पथुपितं शुष्यमाणं नैवावधारयेत् ।  
३३ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत् प्रदेशं पीडनं  
प्रति । न चापि मुखमालिम्पेत् तेन दोषः  
प्रसिच्यते ॥ ३४ ॥

रात्रि में लेप न करना चाहिए । एक बार  
लगाया लेप यदि उतर जाय तो फिर उसे नहीं  
लगाया चाहिए । वाली धरा हुआ लेप न  
लगाया चाहिए और लगाया हुआ यदि सूख  
जावे तो उसे लगा हुआ न रखे, किन्तु फौरन  
ही उतार दे । यदि सूजन को पकाकर पीय  
आदि निकालने के लिए लेप लगाया हो तो  
उसके सूख जाने पर न उतारा जाय, क्योंकि  
यह मूत्रकर अच्छी तरह पीडन करता है और  
अन्तस्थित पू्य को बाहर निकालता है । व्रण के  
मुग पर लेप नहीं लगाया चाहिए, क्योंकि मुग  
के द्वारा ही दोष बाहर निकलते हैं ॥ ३३-३४ ॥

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विच-  
क्षणः । शोथे महति संश्लेधे वेदनान्वति वा  
व्रणे । निवारणाय पाकस्य वेदनोपश-  
माय च ॥ ३५ ॥ यो न याति शमं लेप-  
स्वेदसेकापतर्पणैः । सोऽपि नाशं व्रजत्याशु  
शोथः शोणितमोक्षणान् ॥ ३६ ॥ एक-  
तरुच क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः । रर्ष-  
टि व्यभ्रतां याति लेघ नास्ति न चास्ति  
रक्त ॥ ३७ ॥

यदि सूजन बहुत बढ़ जाय तथा उसमें अधिक पीड़ा होने लगे तो बुद्धिमान् मनुष्य को पाक निवारण और वेदनाशान्ति के लिये पहले ही रत्नमोक्षण करना चाहिए । क्योंकि जो सूजन लेप स्वेद, सेक और अघृतपंख आदि से नष्ट नहीं होती है वह रत्नमोक्षण कराने से शीघ्र ही नष्ट हो जाती है । शोधहर सम उपाय एक और तथा केवल रत्नमोक्षण एक और; क्योंकि रधिर के विगड़ने से ही पीड़ा होती है । धस्तु, जब विगड़ा हुआ रधिर निकल जाता है तब वेदना शान्त हो ही जाती है ॥ ३२-३७ ॥

स चेदेवमुपक्रान्तः शोथो च प्रशमं ब्रजेत् । तस्योपनाहैः पकस्य पाटनं हितमुच्यते ॥ ३८ ॥ बालवृद्धासहस्रीणभीरुणां यापितामपि । मर्मोपरि च जाते च पक्के शोथे च दारणम् ॥ ३९ ॥

यदि इस प्रकार चिकित्सा करने पर सूजन शान्त न हो तो उपनाह ( पुलटिस ) द्वारा उसे पकाकर चिरा देना हितकर है । बाल, वृद्ध, शीघ्र, दरपीक, असहनशील तथा स्त्रियों के ग्रन्थ को तथा मर्मस्थान के ग्रन्थ को न चिराना चाहिए । यदि शोथ अच्छे प्रकार पक जावे तो चीरा लगवाना उचित है ॥ ३८-३९ ॥

गवां दन्तं जले घृष्टं विन्दुमात्रं प्रलेपनात् । अत्यन्तकठिने चापि शोथे पाचनमेदनम् । चारद्वयस्तथाक्षारोदारणः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥

गौ के दाँत को जल से घिस कर एक घृष्ट-मात्र लेप करने से अत्यन्त कठिन शोथ पक कर फूट जाता है । चार-प्रधान औषध तथा चार दौनों ही ग्रन्थ को फोड़ देते हैं ॥ ४० ॥

कटुतैलान्वितैर्लोपात् सर्पनिर्मोक-मस्मभिः । चयःशाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् । कपोतवृध्रकङ्कानां पुरीषमपि दारणम् ॥ ४१ ॥

साँप की कँचुली की भस्म कहुए तेल में गिलाकर लेप करने से कच्चा शोथ शान्त हो जाता है और पका हुआ शीघ्र ही फूट जाता है । कव्तर, गिद्ध और कंकपची की विद्या का लेप भी सूजन को फोड़ देता है ॥ ४१ ॥

तिलकल्कःसलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद् घृतम् । मधुकं निम्बपत्रञ्च लेपः स्यात् ब्रणशोधनः ॥ ४२ ॥

तिल, सेंधानमक, हल्दी, दाहहल्दी, निशोध, घी, मुलेठी और नीम के पत्तों का लेप ग्रन्थ को शुद्ध करता है ॥ ४२ ॥

ब्रणशोधनकेशरी लेप ।

निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत् सैन्धवमाक्षिकम् । दुष्टग्रणमशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥ ४३ ॥ एकं वा सारिया-मूलं सर्वग्रणविशोधनम् ॥ ४४ ॥

नीम के पत्ते, तिल, जमालगोटे की जड़, निसोय, सेंधानमक और शहद; इनका लेप दुष्टग्रन्थ को शान्त करता है तथा ब्रणशोधन के लिए सिंहरूप है ॥ ४३-४४ ॥

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टग्रणं लेपात् । मधुयुक्ता शरपुक्ता दुष्टग्रणरोपणी कथिता ॥ ४५ ॥

सप्तवन का दूध कुछ देर रखने पर जब कल्क के समान गाढ़ा हो जावे तो उसका लेप करने से दुष्टग्रन्थ शान्त होता है तथा शरफोंका की जड़ को शहद के साथ लेप करने से दुष्टग्रन्थ का रोपण होता है ॥ ४५ ॥

मानुपशिरःकपालं तदस्थिलेपनं मूत्रेण । रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ ४६ ॥

मनुष्य के कपाल की हड्डी को गोमूत्र में घोसकर लेप करने से सैकड़ों उपाय करने पर भी जो साध्य नहीं हुआ हो उस ग्रन्थ का रोपण होता है ॥ ४६ ॥

सुपवीपत्रपत्तूरकर्णामोटकुठेरकाः । पृथ-  
गेते प्रलेपेन गम्भीरव्रण रोपणाः ॥ ४७ ॥

वनकरेला के पत्ते, पत्तूर (शालिच) की छोंछ, कर्णामोटा (बर्बर, बबूल, ) वनतुलसी; इनका पृथक्-पृथक् लेप देने से गम्भीर व्रणों को रोपण होता है ॥ ४७ ॥

लौहकुदालके घृष्टा लिम्पाकफलवा-  
रिणा । श्वेतार्कसम्भवं मूलं लेपं दद्यात्  
क्षतोपरि ॥ अपि योगशतासाध्यं क्षतं  
हन्ति न संशयः ॥ ४८ ॥

सफेद आक की जड़ को नींबू के रस से लोह की कुदाल पर रगड़कर घाव पर लेप करने से सैकड़ों योगों से असाध्य भी व्रण नष्ट होता है । इसमें संशय नहीं है ॥ ४८ ॥

श्वेतकारवीरमूलस्वरसं द्विपलोन्मि-  
तम् । पलायकमिदं गव्यक्षीरमेकत्र मिश्र-  
येत् ॥ ४९ ॥ दधि कृत्वा तदावर्यं  
निर्मथ्य नवनीतकम् । गृहीत्वातेन लेपेन  
क्षतं हन्ति चिरोत्थितम् ॥ ५० ॥

सफेद कनैर की जड़ का रस ८ तोले और गौ का दूध ३२ तोले, इन दोनों को मिलाकर अच्छी कसावे । फिर उसको मथकर मक्खन निकालकर उसका लेप करने से पुराना घाव अच्छा हो जाता है ४९ ५० ॥

आस्फोतोद्भवनिर्वासः क्षतं हन्ति  
चिरोत्थितम् ॥ ५१ ॥

हरफमाली के दूध का लेप करने से पुराना घाव अच्छा हो जाता है ॥ ५१ ॥

ये क्लेदपाकसुतिगन्धवन्तो व्रणा म-  
हान्तः सरुजः सशोधाः । प्रयान्ति ते  
गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफला-  
रसेन ॥ ५२ ॥

५२. त्रिफला के कादे में गुग्गुलु मिलाकर पीने से क्लेद, पाक, छाव, दुर्गन्ध, पीड़ा और शोथपुत्र बढ़े-बढ़े घाव भी शान्त हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

सप्ताङ्गगुग्गुलु ।

विडङ्गत्रिफलाव्योपचूर्णं गुग्गुलुना  
समम् । सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा  
हितभोजनः । दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठानाडी-  
विशोधनः ॥ ५३ ॥

वायविडङ्ग, हड, बहेडा, आँवला, सोंठ मिर्च और पीपरि; इन सबको समभाग लेकर एकत्र चूर्ण करे । चूर्ण के समान गुग्गुलु ढालकर और घी में मिलाकर एक एक मासे की गोली बनावे । इसको खानेवाला पथ्य पदार्थ का भोजन करे तो यह सप्ताङ्गगुग्गुलु दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नासूर आदि रोगों को शान्त करती है ॥ ५३ ॥

जात्याद्य घृत और तैल ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादावीनि-  
शासारिवामञ्जिष्ठाभयसिकथतुत्थमधुकैर्न -  
क्लाहवीजै समैः । सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्म-  
वदना मर्माश्रिताः स्त्राविणो गम्भीराः  
सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति  
च ॥ ५४ ॥

एवम् तैलमपि ।

चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, परवल के पत्ते, कुटकी, दारदण्डी, हण्डी, सारिवा, मँजीठ, हड, मोम, नीलायोथा, मुलेठी और करंज के बीज आधी-आधी छुटाक लेकर बरब बनावे । घी घबघा कटुघा तेल २ सेर । पाकार्थं जल ८ सेर । विधिपूर्वक घी या तेल को सिद्ध कर व्रण पर लगाने से छोटे मुग के तथा मर्मस्थान के बहनेवाले, गहरे, पीड़ाकारक और गतिपुत्र व्रण मूल जाते हैं और भर जाते हैं ॥ ५४ ॥

गौराद्य घृत और तैल ।

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांभी मधुकमेव  
च । मर्पाण्डरीकं द्वीवेरं भद्रमुस्तं सचन्द-  
नम् ॥ ५५ ॥ जातीनिम्बपटोलश्च वरुणं  
कटुरोटिणी । मधुच्छिद्रं समधुकं महामेदा

तथैव च ॥ ५६ ॥ पञ्चवल्कलतोयेन घृत-  
प्रस्थं विपाचयेत् । एष गौरो महायोगः  
सर्वव्रणविशोधनः ॥ ५७ ॥ आगन्तु-  
सहजाश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः ।  
विषमामपि नादौ तु शोधयेच्छीघ्रमेव  
तु ॥ ५८ ॥ गौराद्यं जातिक्राद्यश्च तैलमेवं  
प्रसाध्यते । तैलं सूक्ष्मानने दुष्टे व्रणे  
गम्भीर एव च ॥ ५९ ॥

हरदी, दारहरदी, मँजीठ, जटाभांसी, मुलेठी,  
पुंहरिया, सुगन्धवाला, नागरमोथा, लालचन्दन,  
चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते परवल के पत्ते,  
कंजा, कुटकी, मोम, मुजेठी और महामेदा ; ये  
सब मिलित आध सेर लेकर इनका ककक  
बनाये । पंचवल्कल का काढ़ा ८ सेर, घी  
अथवा तेल २ सेर । यथाविधि सिद्ध कर प्रयोग  
में लावे । इस गौराद्य तेल के लगाने से सब  
प्रकार के व्रण शुद्ध होते हैं । यह महायोग  
आगन्तुक, सहज, पुराने, विषम और नादी-  
वर्णों को शीघ्र ही शुद्ध करता है । गौराद्य  
और जास्वाद्य तेल छोटे मुखवाले, दुष्ट और  
गंभीर व्रणों को शुद्ध करते हैं । अत्यन्त सूक्ष्म  
मुखवाले नादीव्रण आदि घावों में इस तैल  
Probepointed Hypodermic Syrisge  
से अंतप्रविष्ट ( इंजेक्शन ) किया जा सकता  
है ॥ २२-२६ ॥

पृष्ठजातीकाद्य तैल ।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य  
पल्लवाः । सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे  
कटुरोहिणी ॥ ६० ॥ मञ्जिष्ठा पञ्चकं लोध-  
मभया पञ्चकेशरम् । तुत्थकं सारिवाभीजं  
नक्तमालस्य दापयेत् ॥ ६१ ॥ एतानि सम-  
भागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । विषव्रणे  
समुत्पन्ने स्फोटके कुष्ठरोगिणु ॥ ६२ ॥  
दंष्ट्रवीसर्परोगेषु कीटरोगेषु सर्वशः । सद्यः  
शस्त्रेभ्यो दंष्ट्राविद्धेषु चैव हि ॥ ६३ ॥

नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणम् ।  
म्रक्षणाथमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ६४

ककक के लिए चमेली के पत्ते, नीम के  
पत्ते, परवल के पत्ते, कंजा के पत्ते, मोम,  
मुजेठी, कूट, हरदी, दारहरदी, कुटकी, मँजीठ,  
पद्मकाठ, लोध, हड, कमलकेशर, नीलायोधों,  
अनन्तमूल और कंजे के बीज; सब मिलित  
आधसेर । तेल २ सेर । पाकार्थं जल ८ सेर ।  
यथाविधि तैल सिद्ध करके प्रयोग में लावे । यह  
तेल विषदोष से उत्पन्न हुए फोड़े, घाव, कुष्ठ  
रोग, दद, विसर्प, कृमिरोग, शङ्ख का घाव,  
दाँत अथवा दाढ़ का घाव और नखक्षत को  
अच्छा करता है तथा शरीर के घाव से दुष्ट  
मांस को निकालकर शोधन और रोपण करता  
है ॥ ६०-६३ ॥

विपरीतमल्ल तैल ।

सिन्दूरकुष्ठविषदिगुरसोनचित्रवालां-  
घ्निलाङ्गलिककल्कविषकतैलम् । मासादं-  
मन्त्रयुतफूत्कृतलूनफेनं किल्व्रणप्रश-  
मने विपरीतमल्लः ॥ ६५ ॥ खड्गाभिघात-  
गुरुगण्ड महोपदंशनाडीव्रणव्रणविचर्चिक-  
कुष्ठपामाः । एतान्निहन्ति विपरीतकमल्ल-  
नाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ६६  
“ॐ हं हं हूं हूं शिवाय स्वाहा” इति  
पठित्वा फूत्कारेण फेनावलोढनं कार्यम् ।

कल्क के वास्ते सिन्दूर, कूट, मीठा विष,  
हॉंग, लहसुन, चीता की जड़, सुगन्धवाला,  
वटजटा और कलिहारी चार-चार तोले ।  
सरसों का तेल २ सेर, पाकार्थं जल ८ सेर ।  
पाक करते समय यदि तेल में फेना आवे तो  
“ॐ हं हं हूं हूं शिवाय स्वाहा” । यह मंत्र  
पढ़कर फूत्कार कर उसको शान्त करना चाहिए  
इस विपरीतमल्ल तेल के लगाने से गीला रहने-  
वाला व्रण, तलवार का घाव, गण्डरोग, उपदंश,  
नासूर, घाव, विचर्चिका, कुष्ठ और पामा; इन  
रोगों को यह तेल नष्ट करता है । इसका सेवन-

कर्त्ता इच्छानुसार शयन, आसन और भोजन का सेवन कर सकता है ॥ ६२-६६ ॥

बृहत् ब्रणराक्षस तैल ।

कुडवं सार्पपं तैलं तदद्दं गोघृतस्य च ।  
एकीकृत्य पचेत्तु सूर्यावर्तरसेन तु ६७  
चित्रपत्रपलं कल्कं दत्त्वा तत्र विपाचयेत् ।  
तत् कल्कं स्नावयित्वा तु चूर्णमेषां विनि-  
क्षिपेत् ॥ ६८ ॥ गन्धकं शुद्धसिन्दूरं  
हरितालं मनःशिला । हरिद्रागौरिकं राजी  
कर्पाद्दं प्रतिभागिकम् ॥ ६९ ॥ भागाद्दं  
पारदं चापि कज्जलीकृत्य मिश्रयेत् । सुतप्तं  
मिश्रयित्वा तु तप्तं कृत्वा मलेपयेत् ७०  
कण्डू विचर्चिकां पामां ब्रैटं कुष्ठं सुदुस्तरम् ।  
वातरक्तं ब्रणान् सर्वान् विपविस्फोटदद्भु-  
कम् । निहन्त्याशु महाशिवत्रं तैलं तु  
ब्रणराक्षसम् ॥ ७१ ॥

चित्रपत्रपलं कल्कमित्यत्र तस्य पत्रपलं  
कल्कमिति क्वचित् पाठः तस्येति अर्कस्य ।

कषया मेल २६ तोले, गौ का घृत = तोले,  
मदार के पत्तों का रस १ सेर १६ तोले, कल्क  
के लिये चीता की पत्तियाँ १ छटाक । सबको  
एकत्र कर पाक करे । जब सिद्ध हो जाय तब  
उतारकर धान से । फिर उस गरम तेल में  
शुद्ध सिन्दूर, हरिताल, मैनशिल, हवदी, गेरू  
और राई आधा-आधा तोला तथा गन्धक आधा  
तोला और पाय तोला पारे की कज्जली करके  
मिलाना चाहिए । गरम करके इसके छेप लगाने  
से गुजली, विचर्चिका, पामा, कबेद, कुठ, वात-  
रक्त, सब प्रकार के ब्रण, विपशोष, फोड़े और  
दाद शीघ्र मट होते हैं । यह बृहत्ब्रणराक्षस तैल  
महाशिवत्र कुष्ठ को मट करता है । यहां "चित्रपत्र-  
पलं कल्कम्" के स्थान में "तस्य पत्रपलं  
कल्कम्" देना कहीं-कहीं पाठ है । यहां "तप्तं"  
का अर्थ मदार है ॥ ६७-७१ ॥

तन्त्रान्तरोक्त ब्रणराक्षस तैल ।

सूतकं गन्धकं तालं सिन्दूरश्च मनः-  
शिला । रसोनं च विपं ताम्रं प्रत्येकं कर्षं  
माहरेत् ॥ ७२ ॥ कुडवं सार्पपं तैलं साध-  
येत् सूर्यतापतः । नाडीब्रणं च विस्फोटं  
मांसवृद्धिं विचर्चिकाम् ॥ ७३ ॥ दद्रुकुष्ठा-  
पचीकण्डूमण्डलानि ब्रणांस्तथा । ब्रण-  
राक्षसनामेदं तैलं हन्ति गदान् बहून् ७४  
पारा, गन्धक, हरकूल, सिन्दूर, मैनशिल,  
लहसुन, मोठा विप और ताम्रभरम. ; प्रत्येक  
एक-एक तोला । कड़वा तेल १६ तोले । सबको  
इकट्ठा कर धूप में रखले । जब खूब गरम हो  
जाय और सब द्रव्य एक में मिल जायें तब  
इसे सिद्ध समझे । यह ब्रणराक्षस तेल मासूर,  
फोड़े, मांसवृद्धि, विचर्चिका, दाद, कोढ़, अपचो,  
गुजली, चकत्ते पड़ना, घाव तथा अन्य बहुत से  
रोगों को नष्ट करता है ॥ ७२-७४ ॥

विडङ्गारिष्ट ।

विडङ्गं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक्-  
फलानि च । पाठैलवालुकं धात्री भागान्  
पंचपलान् पृथक् ॥७५॥ अष्टद्रोणेऽम्भसः  
पक्त्वा कुर्त्याद्द्रोणावशेषितम् । पूतेशीते  
क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम् ॥७६॥ घात-  
कीविशतिपलं त्रिजातं द्विपलं तथा ।  
मियंगुकांचनाराणां सलोधाणां पलं पलम् ॥  
७७ ॥ व्योपस्य च पलान्यष्टौ चूर्णकृत्य  
प्रदापयेत् । घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मास-  
मेकं विधारयेत् ॥ ७८ ॥ ततः पियेषयार्हं  
तु जयेद्विद्रधिमुत्थितम् । ऊरुस्तम्भादमरी-  
मेहान् प्रत्यष्टीलामगन्दरान् । गण्डमालां  
इनुस्तम्भं विडङ्गारिष्टसंज्ञकः ॥ ७९ ॥

आयविषङ्ग, पौषजाम्बून, रासना, कुड़े की  
धास, शूद्रजी, पारी, पनुधा और चिबदा,

प्रत्येक बीस-बीस तोले । इन सबको कूटकर २ मन ४ सेर १४ तोले जल में पकावे । २४ सेर ४८ तोले जल बाकी रहे तब उसे ठंडा कर छान ले । इस काढ़े में शहद १२ सेर, धात के फूल १ सेर, त्रिजात ( इलायची, दालचीनी और तेजपात ) प्रत्येक ८ तोले । त्रियंगु, कचनार को छाल और लोघ चार-चार तोले । त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च और पीपर ) ६२ तोले । इन सबका घूर्ण करके मिलावे । इसका घी के चिकने घर्तन में भरकर और मुख बन्द करके एक महीने भर धरा रहने दे । परचात् छानकर सेवन करने से विद्रधि, ऊरस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, प्रत्यन्धीला, भगन्दर, गण्डमाला और हनुस्तम्भ आदि रोगों को यह विद्वद्गिरिष्ठ शान्त करता है । मात्रा—१ तोले से २॥ तोले तक ॥७५-७६॥

व्रण में निषिद्ध पदार्थ ।

नवं धान्यं मापास्तिलगुडकुलत्थाम्ल-  
कशाराःसतीना निष्पावा हरिणकमजानूप-  
पिशितम् । हिमाम्भो बल्लूरं लवणकटुकं  
पिष्ट्विकृतिर्दधित्तीरं तक्रं व्रणेषु सकलं  
दोषजननम् ॥ ८० ॥

इति मैपज्यरत्नावल्यां व्रणशोधा-  
धिकारः समाप्तः ।

अथ सद्योव्रणाधिकारः । ॥

सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यं सशूलं परिषे-  
चयेत् । यष्टिमधुकुक्कुतेन किंचिदुष्णो  
सर्पिषा ॥ १ ॥

तत्काल के घाव को और शूलयुक्त व्रण को मुखेटी के कक्क से सिद्ध किये हुए किंचित् गरम घी से सँकना चाहिए ॥ १ ॥

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन  
तु । सद्योव्रणेषु रक्तं तु प्रवृत्तं परि-  
तिष्ठति ॥ २ ॥

लटजीरा के पत्तों के रस का सिंचन करने से तत्काल के घाव का रक्त बहना बन्द हो जाता है ॥ २ ॥

कपूरपूरितं यद्धं सद्युतं संपरोहति ।  
सद्यःशस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकवि-  
वर्जितः ॥ ३ ॥

तलवार आदि के घाव में तत्काल कपूर का घूर्ण सौवार के धोये हुए घी में मिलाकर भर दे और वख से बाँध दे, इससे घाव भर जाता है और पीड़ा दूर हो जाती है एवं घाव पकता नहीं है ॥ ३ ॥

शुनो जिहाकृतरचूर्णः सद्यःक्षतविरो-  
हणः । इति साप्ताहिकः कार्यः सद्योव्रण-  
हितो विधिः ॥ ४ ॥ सप्ताहात् परतः  
कुट्याच्छारीरव्रणवत् क्रियाम् ॥ ५ ॥

कुत्ते की जीभ का घूर्ण शीघ्र ही घाव को पूरित करता है । इस प्रकार सद्योव्रण के हितकारी उपाय सात दिन तक करे । सात दिनों के पश्चात् शरीरव्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४-५ ॥

प्रसङ्गवश यहाँ अग्निदग्धव्रण की चिकित्सा लिखते हैं ।

पित्तविद्रधिबीसर्पशमनं लेपनादिकम् ।

मयेअन्न, उबद, तिल, गुड, कुलथी, खटाई, लिचवी, मटर, भटवास, हरिण का मांस, बकरे का मांस, आनूप देश के जीवों का मांस, ठंडा जल, सूखा मांस, नमक, कटुभा पदार्थ, पीठी के पदार्थ, दही, दूध, और माठा ये सब पदार्थ व्रणरोगी को हानिप्रद हैं ॥ ८० ॥

इति श्रीसरयूमसादत्रिपाठिविरचितायां मैपज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायान् व्याख्यायां  
व्रणशोधाधिकारः समाप्तः ।



अग्निदग्धद्रवो सम्यक् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ ६ ॥

वैद्य को चाहिष्ट कि 'अग्नि से जले हुए घाव में पित्तविद्रधि और पित्तविसर्प आदि में लिपटे हुए लेप आदि का प्रयोग करे ॥ ६ ॥

तिलञ्चैवाग्निना दग्धं यवभस्मसमन्वितम् । अग्निदग्धद्रव्यं नश्येदनेनैवानुलेपनात् ॥ ७ ॥

तिल और जौ की भस्मों को मिलाकर जले हुए घाव में लगाने से घाव अच्छा हो जाता है ॥ ७ ॥

तिलतैलैर्यवान् दग्ध्वा समं कृत्वा तु लेपयेत् । तेनैव लेपनादाशु वह्निदग्धः सुखी भवेत् ॥ ८ ॥

जौ की भस्म को समभाग तिल के तेल में मिलाकर लेप करने से अग्नि का जला हुआ सुखी होता है ॥ ८ ॥

सद्यो दग्धञ्च मधुना लेपं कृत्वा भिषग्वरः । तत्पृष्ठे यवचूर्णेन लेपः स्यादाहशा-न्तये ॥ ९ ॥

सकाल के जले हुए में शहद का लेप करके ऊपर से जौ के चूर्ण का लेप करने से दाह की शान्ति होती है ॥ ९ ॥

महिषीनवनीतेन क्षीरेण पेपयेत्तिलम् । तेन लेपेन दग्धाङ्गं सदाहं सुखमश्नुते ॥ १० ॥

भैंस के मूखन और दूध में तिलों को पीसकर लेप करने से जले हुए अङ्ग का दाह शान्त हो जाता है, जिससे द्रव्य मनुष्य सुखी होता है ॥ १० ॥

महाराष्ट्रीजटालेपाद्दग्धपृष्ठावचूर्णनम् । जीर्णशृङ्खलाचूर्णं दग्धद्रवणहं परम् ११

जले हुए घाव पर जलपीपरी की जड़ का लेप करने से घण्टा पुराने घृष्पर के रूस का

चूर्ण घाव पर लगाने से दग्धद्रवण शान्त होता है ॥ ११ ॥

अन्तर्दग्धकुठेरको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणं, हाश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुग्गुलोः । अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं, पिष्ट्वा शात्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा बालुकाः ॥ १२ ॥

बनतुलसी की अन्तरधूम भस्म, पीपल की सखी हुई छाल का चूर्ण और गुग्गुल का चूर्ण इनमें से किसी एक को घाव पर छिड़कने से जला हुआ घाव अच्छा होता है । केचुओं से सिद्ध किये हुए तेल की मालिश करने से तथा सेमर की रई और जल के भीतर की बालू को पीसकर लेप करने से अग्निदग्ध द्रव्य अच्छा होता है ॥ १२ ॥

जीरक घृत ।

'जीरकपक्' पश्चात्सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हरति । घृतमभ्यङ्गात् पावकदग्धजदुःखं क्षणार्द्धेन ॥ १३ ॥

जीरा १ पाव, घी १ सेर, पाकार्य जल ४ सेर । विधि से घृत पकाकर छान ले । इसमें एक छटाक मोम और एक छटाक राल के चूर्ण का मेष करके मिला दे । इस तेल को जले हुए घाव पर लगाने से क्षणमात्र में घाव की जलन शान्त होती है ॥ १३ ॥

पाटली तैल ।

सिद्धं कल्ककपायाभ्यां पाटल्याः कटु-तैलकम् । दग्धद्रवणरुजास्त्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १४ ॥

पाटल के कल्क और कादे से सिद्ध किया हुआ कटुघा तेल जले हुए घाव पर लगाने से घाव की पीड़ा, गून का बहना, जलन और फफोलों की गह करता है ॥ १४ ॥

मञ्जिष्ठाद्य तैल ।

मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिप्पला तैलं-  
विपाचयेत् । सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रो-  
पणमिष्यते ॥ १५ ॥

मँजीठ, खालचन्दन और मूर्वा, इनके कणक  
के साथ कडुए तेल को सिद्ध करे । यह तैल  
सब प्रकार के अग्निदग्ध व्रणों को रोपण  
करता है ॥ १५ ॥

सवर्णकर लेप ।

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलात्ता रज-  
नीद्वयम् । प्रलेपः सधृतचौद्रस्त्वचः  
सावर्ण्यकृत्परः ॥ १६ ॥

मैनशिल, मँजीठ खाल, हरदी, दारहएदी,  
इन्हें घृत और शहद के साथ भिन्नाकर खेप  
लगाने से रक्ता का वर्ण स्वाभाविक हो  
जाता है ॥ १६ ॥

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ।  
लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः  
परः ॥ १७ ॥

काली अगर, प्रियगु, आम की गुठली, धत्रा  
और नील के स्वरस में गोबर का रस भिलाकर  
खेप करने से व्रणस्थान का वर्ण शरीर के वर्ण  
के तुल्य हो जाता है ॥ १७ ॥

चतुष्पदां हि लोमत्वक्खुरमृद्गास्थि  
भस्मना । तैलाक्ता लेपिता भूमिर्मवेद्रोम-  
वती पुनः ॥ १८ ॥

इति भ्रैषज्यरत्नावल्यां सद्योव्रणा-  
धिकारः समाप्तः ।

चौपायों के बाल, खाल खुर, सींग और  
घड़ी की भस्म में तैल भिलाकर लेप  
करने से घाव के स्थान में बाल उत्पन्न हो  
जाते हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचिताया भ्रैषज्य  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाया व्याख्याया  
सद्योव्रणाधिकार समाप्त

अथ नाडीव्रणाधिकारः ।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य  
कर्मवित् । सर्पव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं  
रोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाडीव्रण ( नासूर के घाव ) की गति का  
जानकर धर्यात् नाडी किस तरफ कितनी दूर  
तक विकृत हो गई है, इसका पूर्ण निरचय करने  
के परचात् जहाँ तक यह विकृत हुई हो वहाँ  
तक शस्त्र द्वारा चीरकर निकाल दे । परचात्  
शोधन और रोपण आदि व्रणों के समान  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १ ॥

श्वेतैरण्डस्य निर्यासः खदिरैग समा-  
युतम् । हन्ति नाडीव्रणान् सर्वान् मृगान्  
मृगपतिर्यथा ॥ २ ॥

सफेद अण्ड के गोंद और कथे को एकत्र  
भिन्नाकर लगाने से सम्पूर्ण नाडीव्रण नष्ट  
होते हैं ॥ २ ॥

आस्फोताक्षीरसंयोगो नाडीं नाशयति  
दुतम् ॥ ३ ॥

हाफरमाली के दूध को लगाने से नाडी  
व्रण शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ३ ॥

विडङ्गादि चूर्ण ।

विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढ समा-  
क्षिप्तम् । हन्ति कुष्ठकृमीन् मेहनाडीव्रण-  
भगन्दरान् ॥ ४ ॥

वायविडङ्ग, त्रिफला, पीपल, इनके चूर्ण  
को शहद के साथ चाटने से कुष्ठ, कृमिरोग,  
नाडीव्रण तथा भगन्दर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

सैन्धवाद्य तैल ।

सैन्धवार्कमरिचज्वलनारुधैर्माकवेण  
रजनीद्वयसिद्धम् । तैलमेतदचिरेण निह-  
न्याद् दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ ५ ॥  
तैल १२८ तोले, कणक के लिये सेंधा  
नमक, आम की जड़, काजीमिर्च, चित्रक,

भांगरा, हल्दी, दारुहल्दी, मिलाकर ३२ तोले । पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोले । विधि-पूर्वक तैल पकाकर इसकी भालिश करने से अत्यन्त गम्भीर कफ वातज नाडीव्रण नष्ट होता है ॥ ५ ॥

हिंसाद्य तैल ।

हिंसां हरिद्रां कटुकां वचाञ्च गोजि-  
हिकाञ्चापि सविल्वमूलम् । संहृत्य तैलं  
विपचेद् ब्रणस्य संशोधनं पूरणरोप-  
णञ्च ॥ ६ ॥

हीस, हल्दी कुटकी, वच, गोभी, बेल की जड़, इनके कल्क से विधिपूर्वक साधित तैल व्रण को शुद्ध करता है तथा उसे भरकर पुराता है ॥ ६ ॥

कचूर तैल ।

कचूरकस्य स्वरसे कटुतैलं विमिश्र-  
येत् । सिन्दूरकलितं नाडीदुष्टव्रणविसर्प-  
नुत् ॥ ७ ॥

सरसों के तैल को कचूर के काथ से विधि-पूर्वक सिद्ध कर सिन्दूर मिलावे । यह तैल नाडीव्रण, दुष्टव्रण तथा विसर्प को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

वातनाडी की चिकित्सा ।

नाडी वातकृता साधुपाटितां लेप-  
येद्भिषक् । प्रत्यकपुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः  
प्रलेपयेत् ॥ ८ ॥

वातज नासूर को अच्छे प्रकार चीरकर उस पर लटजीरा के बीज और तिलों को पीस कर लेप करना चाहिए ॥ ८ ॥

पित्त और कफनाड़ी की चिकित्सा ।

पैत्तिकां तिलमध्वाज्यैर्लिप्त्वा  
युगैः । श्लैष्मिकां तिलयष्ट्याह्निकुम्भा-  
रिष्टैर्धरैः ॥ ९ ॥

पित्त नासूर पर तिल, मँजीठ, नागदन्ती,  
( हाथीकुचका ), हल्दी और दारुहल्दी को

पीस कर लेप करना चाहिए । कफज नासूर पर तिल, मुजेठी, जमालगोटे की जड़, नीम के पत्ते और संधानमक को पीसकर लेप करना चाहिए । ९ ॥

शल्यज नाड़ी की चिकित्सा ।

शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लिप्त्वा बन्ध-  
नमाचरेत् । आरग्वधनिशाकालाचूर्ण-  
ज्यत्तौद्रसंयुता ॥ सूत्रवर्त्तित्रये योज्याशो-  
धनी गतिनाशिनी ॥ १० ॥

शल्यज नासूर को चीर कर उस पर तिल, शहद और घी का लेप करके बांध देना चाहिए अमलतास, हल्दी और कौआढोड़ी के चूर्ण में घी और शहद मिलाकर सूत की बत्ती भिगावे और उस बत्ती को नासूर में रखने तो नासूर शुद्ध होकर भर जाता है ॥ १० ॥

घोएटाफलादि वर्ति ।

घोएटाफलत्वङ्मदनात् फलानि  
प्रास्य च त्वग्लवणञ्च मुख्यम् । स्नुहार्क-  
दुग्धेन सहैव कल्को वर्त्तिकृता हन्त्य-  
चिरेण नाडीम् ॥ ११ ॥

जँगली बेर का छिलका, मैनफल; सूपारी की छाल और संधानमक; इनको समभाग लेकर यूहर और मदार के दूध में घोट कर बत्ती बना ले इस बत्ती को नासूर में रखने से नासूर शीघ्र ही भर जाता है ॥ ११ ॥

वर्त्तिकृतं मात्तिकसम्प्रयुक्तं नाडीन्-  
मुक्तं लवणोत्तमं वा । दुष्टव्रणे यदि-  
हितञ्च तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु  
हन्ति ॥ १२ ॥

संधानमक और शहद की बत्ती बनाकर नासूर में रखने से नासूर नष्ट होता है अथवा दुष्ट व्रण के लिए जो तैल कहे हैं, उनका सेवन करने से नासूर नष्ट होता है ॥ १२ ॥

आत्यादि वर्ति ।

जात्यर्कशम्पाककरजदन्तीसिन्धूय-

सौवर्चलयावशूकैः । वर्त्तिः कृता हन्त्य-  
चिरेण नाडीं स्तुक्तीरपिप्रा सह चित्र-  
केण ॥ १३ ॥

चमेर्वा के पत्ते, मदार के पत्ते, भ्रमलतास,  
करंजुधा, दन्ती, सेंधानमक, फालानमक, जया-  
धार और चीता की जड़ को समभाग लेकर  
पूहर के दूध में घोंटे । परचात् बत्ती बनाकर  
नासूर में रखते तो घाव शीघ्र भच्छा हो जाता  
है ॥ १३ ॥

माहिपं दधि कोद्रवभक्तमिश्रितं हरति  
चिरविस्फुटाञ्च । भक्तं कंगुनिकाभवमति-  
दारुणां नाडीं शमयेत् ॥ १४ ॥

कोदों के भात में अथवा काँगनी के भात में  
भैंस का दही मिलाकर खाने से बहुत पुराना  
अत्यन्त कठिन नासूर भच्छा होता है ॥ १४ ॥

चारसूत्र प्रयोग ।

कृशदुर्बलभीरुणां गतिर्मर्माश्रिता चा  
या । चारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण  
कदाचन ॥ १५ ॥

कृश, दुर्बल और दरपोक पुरुषों के नाडीग्रण  
को तथा मर्मस्थान के नाडीग्रण को चारसूत्र  
से काटना चाहिए, शस्त्र से कभी न काटना  
चाहिए ॥ १५ ॥

एषएया गतिमन्विष्य चारसूत्रानुसारि-  
णीम् । सूचीं निदध्याद्गत्यन्ते चोन्नम्याशु  
च निर्हरेत् ॥ १६ ॥ सूत्रास्यान्तं समानीय  
गाढबन्धनमाचरेत् । ततः चारखलं वीक्ष्य  
सूत्रमन्यत् प्रवेशयेत् ॥ १७ ॥ चारोक्तं  
मतिमान् वैद्यो यावन्न भिद्यते गतिः ।  
भगन्दरेऽप्येव विधिः काय्यो वैद्येन  
जानता ॥ १८ ॥

एषणीयंत्र से नाडीग्रण की गति को जान  
कर फिर सुई में चारसूत्र पिरोकर नाडी के छेद  
में उसे प्रविष्ट करके दूसरी ओर निकाल ले ।

पत्रात् सुई को अलग करके सूत्र के दोनों  
किनारों को मिलाकर मज्जवत् गाँठ लगा दे ।  
जय चार का यज्ञ कम हो जाय तब उस डोरे  
को निकाल पूरोक्त रीति से फिर दूसरा चारसूत्र  
प्रवेश करके बाँध दे । इसी प्रकार चारसूत्र का  
प्रयोग तब तक करे जब तक नाडी की गति  
( विद्र ) विदीर्ण<sup>१</sup> न हो जाय । भगन्दर में भी  
चतुर वैद्य को यह विधान करना चाहिए १३-१८

अर्बुदादिषु चोत्तिप्य मूले सूत्रं  
निधापयेत् । सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा  
समन्ततः ॥ मूलं सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने  
चोपचरेद् व्रणम् ॥ १९ ॥

अर्बुद आदि को ऊँचा उठाकर उसके मूल में  
चारसूत्र बाँध दे अथवा यवमुखी सुई से चारों  
ओर अर्बुद को थिड़ करके उसके मूल में चारसूत्र  
बाँधे । जब अर्बुद कट जाय तब व्रण की सी  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १९ ॥

सप्ताह गुग्गुलु ।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्य-  
योजितः । नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दर-  
विनाशनः ॥ २० ॥

गुगुलु, हड, बहेड़ा, छाँवला, सोंठ, मिर्च  
और पीपरि; इनको समभाग लेकर खूब महीन  
पीसकर घी में मिला ले । इसका सेवन करने से  
नासूर, दुष्टव्रण, शूल और भगन्दर नष्ट होता  
है । मात्रा २ माशे से ४ माशे तक ॥ २० ॥

स्वर्जिकाघृतैल ।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनी-  
लिकाः । खरमञ्जरिवीजानि तैलं गोमूत्र-  
पाचितम् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडी-  
व्रणापहम् ॥ २१ ॥

करक के लिए सजीवार, सेंधानमक,  
जमालगोट की जड़, चीता की जड़, सफेद आक

१ नासूर विदीर्ण हो जाने पर व्रणवत् स्पर्श  
करने से बहुत शीघ्र भच्छा हो जाता है ।

की जड़, नरसल की जड़, नील की जड़ और लटजीरा के बीज; सब मिलित आध सेर । तेल २ मेर । गौमूत्र ८ सेर । तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से दुष्ट नाडीग्रण तथा कफज नाडीग्रण का नाश होता है ॥ २१ ॥

कुम्भीकाद्यतैल ।

कुम्भीकरजूरकपित्थविल्ववनस्पतीनां तु शलादुवर्गैः । कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्तासरलप्रियंगुम् ॥ २२ ॥

सौगन्धिकामोचरसाहिपुष्पा लोधाग्नि-युक्ता खलु धातकी च । एतेन शल्यप्रभवा हिनाडी रोहेद्वरणो वै सुखमाशु चैव २३

पुत्रागवृक्ष, खजूर, कैथा और तेल; इन वन-स्पतियों के कच्चे फलों के काड़े से और नागर-मोथा, चीड़ की लकड़ी, प्रियंगु, रोहिपत्रण, मोचरस, नागकेशर, लोध, चीता की जड़ और घाय के फूल; इनके कलक से विधिपूर्वक तैल सिद्ध करके ग्रण पर लगाने से शल्यज ग्रण सुखपूर्वक शीघ्र ही अच्छा हो जाता है ॥ २२-२३ ॥

भल्लातकाद्य तैल ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लागोत्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च । स्यान्मार्क-वस्य च रसेन निडन्ति तैलं नाडीं कफा-निलकृतामपचीं व्रणार्श्च ॥ २४ ॥

कलक के लिए भिलावा, मदार की जड़, कालीमिर्च, सैबानमक, वायविडंग, हल्दी, दाहहल्दी और चीता की जड़; सब मिलाकर आध सेर । कटुआ तेल २ सेर भेंगरे का रस ८ सेर, इनके कलक और स्वरम के साथ सिद्ध किया हुआ तेल वायु और कफ के नाडीग्रण, अपची और ग्रणों को नष्ट करता है ॥ २४ ॥

निर्गुण्डी तैल ।

समूलपत्रां निर्गुण्डी पीडयित्वा रसेन तु । तेन सिद्धं समं तैलं नाडीव्रण-विशोधनम् ॥ २५ ॥ हितं पामापचीनां

तु पानाभ्यञ्जननावनैः । विविधेषु च रोगेषु तथा सर्वत्रणेषु च ॥ २६ ॥

निर्गुण्डी की जड़ और पत्तों के रस में समान भाग कटुआ तेल मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे । यह तैल मालिश, पान अथवा नस्यकर्म में प्रयोग करने से नाडीग्रण को शुद्ध करता है एवं पामा, अपची, रुध प्रकार के ग्रण तथा अन्यान्य रोगों को नष्ट करता है ॥ २५-२६ ॥

हंसपादो तैल ।

हंसपाद्यरिष्टपत्रं जातीपत्रं ततो रसैः । तत्कलकैश्च पचेत्तैलं नाडीव्रणविशोध-नम् ॥ २७ ॥

हंसपदी, नीम के पत्ते और चमेली के पत्ते इनके रस से तथा इन्हें पूर्वोक्त तीनों औषधों के कलक से सिद्ध किया हुआ तैल नाडीग्रण को पुरित करता है ॥ २७ ॥

सर्वत्रणों में पथ्य ।

यत्रपट्टिकगोधूमाः पुराणाः सितशा-लयः । मसुरी तुवरीमुद्गयूपश्च मधु शर्करा ॥ २८ ॥ विलेपी लाजमण्डश्च जाङ्गला मृगपक्षिणः । घृतं तैलं पटोलश्च वेत्राग्रं बालमूलकम् ॥ २९ ॥ एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम् व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेषु च ॥ ३० ॥

जौ, साँठी के चावल, गेहूँ, पुराने सफेद और लाल शालि चावल तथा मसूर, अरहर, मूँग इनका घृत । शहद, शर्करा, विलेपी, धान की खिलों का माँड़, जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस, घी तेल, परवल, बेत की कोंपल, कथी मूली; इस पथ्य को व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण एवं नाडीग्रण में अवस्था और दोष के अनुसार सेवन करना चाहिए ॥ २८-३० ॥

सर्वत्रणों में अपथ्य ।

रूक्षांशुशितं लवणं व्यवायमाया-

समुच्चैः परिभाषणञ्च । प्रियासमालोक-  
नमहि भिद्रां प्रजागरं चङ्क्रमणं नितान-  
त्रम् ॥ ३१ ॥ शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं  
ताम्बूलसेवाऽखिलपत्रशाकम् । अजाङ्गलं  
मांसमसात्म्यमन्नं विवर्जयेत् सन्ततम-  
प्रमत्तः ॥ ३२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नाडीव्याणा-  
धिकारः समाप्तः ।

रूच, खटा, शीतल, नमक, मैथुन, श्रग,  
ऊँचा बोलना, स्त्रीदर्शन, दिन में सोना, रात वो  
जागना, अधिक चलना, शोक, विरुद्ध भोजन,  
अति जलपान, पान खाना, सम्पूर्ण पत्र शाक,  
अन्नूप एवं जलज मांस, असात्म्य भोजन,  
इनका ग्रहण के रोगी को सर्वथा त्याग करना  
चाहिए ॥ ३१-३२ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायी  
व्याख्यायां नाडीव्याणाधिकारः  
समाप्तः ।

### अथ शिरोरोगाधिकारः ।

वातिक शिरोरोग की चिकित्सा ।  
वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान्  
सनावनान् । पानान्मुपनाहंश्च कुर्या-  
द्वातामयापहान् ॥ १ ॥

वातज शिरोरोग में वातहर स्नेह, स्वेद,  
नस्य, अन्न पान तथा उपनाह का प्रयोग करना  
चाहिए ॥ १ ॥

कुष्ठमेरुदमूलञ्च लेपात् काङ्गिर-  
योजितम् । शिरोर्तिनाशयत्याशु चूर्णं वा  
मुचुकुन्दजम् ॥ २ ॥

कूट और भरगद की जड़ को काँजी में पीस-

कर शिर पर लेप करने से तथा मुचुकुन्द के फूलों  
को पीसकर लेप करने से शिर का दर्द नष्ट  
होता है ॥ २ ॥

शिरोवस्ति ।

आशिरो व्यायतं चर्म कृत्वाष्टांगुल-  
मुच्छ्रितम् । तेनावेष्ट्यो शिरोऽधस्तात् माप-  
कल्केन लेपयेत् ॥ ३ ॥ निश्चलस्थोप-  
विष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत् । धारये-  
दारुजः शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा ॥ ४ ॥  
शिरोवस्तिर्जयत्येप शिरोरोगं मरुद्भवम् ।  
हनुमन्याक्तिकर्णातिर्मदितं मस्तकम्प-  
नम् ॥ ५ ॥

रोगी के शिर की गोलाई के बराबर लंबा  
और आठ अंगुल चौड़ा चमड़ा लेकर शिर पर  
लपेट दे और उसके नीचे उड़द की पीठी लगा  
कर चपका दे, जिसमें तेल बहने न पावे । फिर  
रोगी को निश्चल बैठाकर उसमें गरम तेल भर  
दे, इस तेल को १ पहर या आधा पहर अथवा  
जब तक रोग की शान्ति न हो तब तक धारण  
करे । यह शिरोवस्ति वातज शिरोरोग को जीत  
लेती है तथा हनुस्तम्भ, मन्धास्तम्भ, आँख और  
कान की पीड़ा, आदित और शिरःकंपरोग को नष्ट  
करती है ॥ ३-५ ॥

पैक्तिक शिरोरोग की चिकित्सा ।

पैत्ते घृतं पयः सेकाः शीतलेपाः सना-  
वनाः । जीवनीयानि सर्षपीपि पानान्श्चापि  
पित्तनुत् ॥ ६ ॥

पित्तज शिरोरोग में घी और दूध का  
सेवन, सैंक, ठंडा लेप और नस्य, जीवनीय  
गण से पित्त किया हुआ घी और पित्तनाशक  
अन्न-पानों का सेवन पित्तज शिरोरोगों को नष्ट  
करता है ॥ ६ ॥

शतधौतघृताभ्यङ्गशीतवातादिसेवनम् ।  
शीतस्पर्शाश्च संसेच्याः सटा टाहाति-  
शान्तये ॥ ७ ॥

पैत्तिक शिरोरोग में दाह तथा वेदना की शान्ति के लिये सी घार शीतल जल से धोया हुआ घी का अभ्यङ्ग, शीतल चायु का सेवन तथा शीतल अर्थात् कुमुद, नील कमल, श्वेत कमल आदि के पत्तों को शिर पर रखना चाहिए ॥ ७ ॥

चन्दनोशीरयष्ट्याहवलाव्याघ्रनखो-  
त्पलैः । क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याच्छूर्तैर्वा परि-  
पेचनम् ॥ ८ ॥

लाल चन्दन, खस, मुलेठी, खरटी, नखी, नील कमल, इन्हें एकत्र दूध से पीसकर पैत्तिक शिरो-रोग की शान्ति के लिये लेप करना चाहिए । अथवा इन्हीं द्रव्यों के प्राय से परिपेचन करना चाहिए ॥ ८ ॥

कफज शिरोरोग की चिकित्सा ।

कफजे लंघनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पाच-  
नात्मकैः । तीक्ष्णावपीडधूमारच तीक्ष्ण-  
श्च कवलग्रहाः ॥ ९ ॥

कफज शिरोरोग में लंघन तथा रूक्ष, गरम और पाचन औषधियों से पसीना लेना, तीक्ष्ण औषधियों के रस से अवपीडनस्य<sup>१</sup>, धूम्रपान और तीक्ष्ण औषधियों का कवल धारण करना हितकर है ॥ ९ ॥

कृष्णाब्दशुएठीमधुकशताहोत्पलपा-  
कलैः । जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूल-  
निवारणः ॥ १० ॥

पीपल, मोथा, सोंठ, मुलेठी, सोया, नील कमल, कूट ; इन्हें एकत्र जल से पीसकर लेप देने से शीघ्र ही कफज शिरोवेदना नष्ट होती है ॥ १० ॥

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेष-

१ तीक्ष्ण औषधियों को पीसकर कफक करके निचोड़ के । उस निचुड़े हुए रस को अवपीड कहते हैं । उस रस से जो नस्य लिया जाता है वह अवपीड नस्य कहा जाता है ।

जम् । लेपः काञ्जिकसम्पिष्टतैलयुक्तः  
शिरोऽर्त्तिनुत् ॥ ११ ॥

देवदारु, तगर, कूट, जटामांसी, सोंठ इन्हें एकाकर काँजी से पीस, तैल में मिलाकर लेप करने से शिरःशूल नष्ट होता है ॥ ११ ॥

प्रयोज्यं दारुगरलमर्द्धभेदप्रशान्तये ।  
विरतौ तत्प्रयोक्तव्यं न प्रकोपे कदा-  
चन ॥ १२ ॥

अर्द्धावभेदक (अरधकपारी) की शान्ति के लिये उचित मात्रा में संखिये का प्रयोग करना चाहिए । जब अर्द्धावभेदक की वेदना शान्त हुई हो, उसी समय ही आनेवाले दौरे को रोकने के लिये इसका प्रयोग करना चाहिए । जब वेदना हो रही हो उस समय कदापि प्रयोग न करावे । मात्रा—इंद्र से इंद्र रत्ती तक ॥ १२ ॥

सारिवादि लेप ।

सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्ल-  
पेपितम् । सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्यावर्त्ता-  
र्द्धभेदयोः ॥ १३ ॥

सारिवादिभिः समभागैः काञ्जिक-  
पिष्टैर्वृतैलेन सहितैर्लेपः ।

सारिवा (अनन्तमूल), नीलकमल, कूट, मुलेठी इनको समभाग ले काँजी में पीसे परचात् घी और तैल मिलाकर लेप करने से सूर्यावत<sup>१</sup> और आघाशीशी शान्त होती है ॥ १३ ॥

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन  
योजितं पुंसाम् । नानादोषोद्भूतां शिरो-  
रुजां हन्ति तीव्रतराम् ॥ १४ ॥

दूध से चतुर्थांश सोंठ का ककक मिला नस्य लेने से नाना दोषों से उत्पन्न तीव्र शिरोवेदना नष्ट होती है ॥ १४ ॥

नृसारस्य सुधायाश्च चूर्णभेकत्रयोजि-

तम् । सार्द्रं कृत्वास्य गन्धेन विनश्यति  
शिरोव्यथा ॥ १५ ॥

नौमादर के चूर्ण तथा चूने को इकट्ठा  
मिलाकर किंचित् जल से गीला करके सुँघाने  
से, इसकी गन्ध से, शिरो वेदना नष्ट होती है ।  
इसे जिस शीशी में रखें उसकी ढाट सर्वदा  
अच्छी प्रकार बन्द करके रखना चाहिए ।  
अन्यथा श्रौषध गुणहीन हो जाती है ॥ १५ ॥

अथ योग कहते हैं ।

सूर्यावर्त्तभवं बीजं तद्रसेन सुपेपितम् ।  
वेदनानाशनो लेपः सूर्यावर्त्ताद्भि-  
दयोः ॥ १६ ॥

सूरजमुखी के बीजों को सूरजमुखी के रस में  
पीसकर लेप करने से सूर्यावर्त्त और आधा शीशी  
की पीड़ा शान्त होती है । १६ ॥

सूर्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि-  
भेषजम् । पाययेत् सगुडं सर्पिघृतपूरौश्च  
भोजयेत् ॥ १७ ॥

सूर्यावर्त्त रोग में नस्य आदि श्रौषधियों का  
प्रयोग करना चाहिए तथा घी और गुड़ का पान  
पवं घेवर का भोजन देना चाहिए ॥ १७ ॥

सूर्यावर्त्ते शिरावेधी नावनं तीर-  
सर्पिपा । हितः क्षारघृताभ्यासस्ताभ्याञ्चैव  
विरेचनम् ॥ १८ ॥

सूर्यावर्त्त रोग में नस का घेधन कराकर रक्त  
निकासना तथा दूध और घी की नस्य खेना,  
जवापार और घी का सेवन करना तथा जवा-  
सार और घी से ही जुलाब खेना हितकर  
है ॥ १८ ॥

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरीकल्क-

१ सूर्यावर्त्त रोग में सूर्योदय से पीड़ा प्रारंभ  
होती है और मर्यादा तक उत्तरोत्तर बढ़ती जाती  
है तथा मर्यादा के पश्चात् धीरे-धीरे कम होती  
जाती है और सूर्यास्त के समय बिलकुल शान्त  
हो जाती है ।

सिद्धनयनीतम् । नस्येन जयति नियतं  
सूर्यावर्त्तं सुदुर्वारम् ॥ १९ ॥

मक्खन आधसेर, थमलतास के पत्तों का  
रस २ सेर और कल्कार्य लटजीरा आधपाव  
लेकर यथाविधि पाक करे । इस मक्खन के  
नस्य खेने से अत्यन्त कठिन सूर्यावर्त्त रोग शान्त  
होता है ॥ १९ ॥

दशमूलीकपायन्तु सर्पिः सैन्धवसंयु-  
तम् । नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सूर्यावर्त्तं शिरो-  
त्तिजित् ॥ २० ॥

दशमूल के कादे में घी और सेंधानमक  
मिलाकर सूँघने से आधाशीशी, सूर्यावर्त्त और  
शिरपीड़ा नष्ट होती है ॥ २० ॥

शिरःमूलहर नस्य ।

शिरोर्जतिं हन्ति नस्येन स्फटिकीघन-  
सारजम् । चूर्णं तूर्णं रुणद्धीह रक्तं नासा-  
स्रुतं भृशम् ॥ २१ ॥

फिटिकरी तथा कपूर ; इनके चूर्ण को घरा-  
घर मात्रा में मिलाकर नस्य खेने से शिरो-  
वेदना एवं नाक से प्रवृत्त रक्त (नकसीर)  
ताकाल बन्द होता है ॥ २१ ॥

शिरीषमूलकवीजैरवपीडश्च योजयेत् ।  
श्रवपीडो हितो वा स्याद्रक्षापिप्पलिभिः  
कृतः ॥ २२ ॥

सिरस और मूली के बीजों के रस की  
नास खेने से अथवा बच और पीपरि के  
स्वरस की नास खेने से सूर्यावर्त्त नष्ट होता  
है ॥ २२ ॥

जाह्नलानि च मांसानि कारयेदुप-  
नाहकम् । तेनास्य शाम्यते व्याधिः  
सूर्यावर्त्तः सुदारुणः ॥ २३ ॥

जंगली जीधों के मांस का लेप करने  
से परम दारुण सूर्यावर्त्त रोग शान्त  
है ॥ २३ ॥



भृङ्गराजरसश्चागक्षीरान्तरचार्कता-  
पितः । सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैव  
प्रयोगराट् ॥ २४ ॥ एष एव विधिः  
कृत्स्नः कार्यश्चाद्धविभेदके ॥ २५ ॥

भाँगरे के रस में समान भाग बकरी का  
दूध मिलाकर धूप में गरम करके नस्य लेने  
से सूर्यावर्त शीघ्र ही नष्ट होता है । यह प्रयोगों  
का राजा है । यही पूर्वोक्त संपूर्ण विधि  
आधासीसी रोग में करनी चाहिए ॥ २४-२५ ॥

पिवेत् सशर्करं क्षीरं वा नारिके-  
लजम् । सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा  
नस्यतस्तयोः ॥ २६ ॥

नासिका के द्वारा शर्कर मिला हुआ दूध  
वा नारियल का जत्र या ठंडा जल अथवा घी  
पीने से सूर्यावर्त और अर्धावभेदक (आधासीसी);  
इन दोनों रोगों में लाभ होता है ॥ २६ वे

तिलात् कल्कं सनलदं सक्षौद्रल-  
वणान्वितम् । नेनास्य लेपयेच्छीर्षमर्द्ध-  
भेदं व्यपोहति ॥ २७ ॥

तिल और जटामांसी के कल्क में नमक  
और शहद मिलाकर शिर पर लेप करने से  
आधासीसी रोग नष्ट होता है ॥ २७ ॥

सविडङ्गं तिलं कृष्णं समं कृत्वा प्रपे-  
पयेत् । नस्यकर्मणि दातव्यमर्द्धभेदं  
विनाशयेत् ॥ २८ ॥

समभागं पिष्ट्वा उष्णोदकेन धोल-  
यित्वा नस्यम् ।

काले तिल और धायविदंग समभाग लेकर  
खूब महीन पीस ले और उसे उष्ण जल में धोल-  
कर उसकी नाम लेने से आधासीसी नष्ट होती  
है ॥ २८ ॥

दग्धसुल्लीमृदरचूर्णं तथा मरिच-  
चूर्णकम् । समांशं मिलितं कृत्वा नस्यं  
देयं प्रयत्नतः ॥ २९ ॥

चूखे की जली हुई मिट्टी और कालीमिर्च  
का चूर्ण समभाग मिलाकर नस्य देने से  
आधासीसी शान्त होती है ॥ २९ ॥

अनन्तवात की चिकित्सा

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो  
विधिः । शिरावेधश्च कर्तव्योऽनन्तवात-  
प्रशान्तये ॥ ३० ॥ आहारश्च विधात-  
व्यो वातपित्तविनाशनः । मधुमस्तकसंया  
वसर्पिःपूरैश्च यः क्रमः ॥ ३१ ॥

सूर्यावर्त में जो चिकित्सा हितकर हो वही  
आमवात रोग में भी करनी चाहिए तथा  
अनन्तवात की शान्ति के लिए शिरावेध भी  
कराना चाहिए । आहार-वात-पित्तनाशक एषम्  
मधुमस्तक, संयाव तथा घेवर का सेवन करना  
चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

शंखक रोग की चिकित्सा ।

सूर्यावर्ते हितं यच्च शङ्खके स्वेद-  
वर्जितम् । क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्तः  
पानञ्च शङ्खके ॥ ३२ ॥

सूर्यावर्त में जो चिकित्सा हितकर है, स्वेद  
के अतिरिक्त वही चिकित्सा शंखक रोग में  
लाभदायक होती है । दूध और घी पीना और  
नस्य लेना भी शंखक रोग में प्रशस्त  
है ॥ ३२ ॥

शतावरीं कृष्णतिलान् मधुकं नील-

१ मधुतैलघृतैर्मध्ये वेष्टिताः समितारश्च याः ।  
मधुमस्तकमुद्दिष्ट तस्याव्या परिमार्जनमिति—  
शब्दचन्द्रिका ।

२ पर्पटाः साज्यमिता निर्मिता घृतभञ्जिताः ।  
कुट्टिताश्चालिताः शुद्धाः शर्कराभिर्विमर्दिताः । तर्षणं  
प्रक्षिपेदलां लघुद्रमरिचानि च । नालिकेरं सक्पर्तं  
घारवीजाग्न्यनेकशः । घृताङ्गसमिता पुष्टरोधिया  
रक्षिता ततः । तस्यां तत्पूरणासंख्य कुर्वाणुद्गां रुदां  
सुधीः । सर्पिषि प्रचुरे तासु सुपचेत्प्रिपुणो जनः ।  
प्रकारश्चैः प्रकारोऽप्य संयाव इति कीर्तितः ।

मुत्पलम् दूर्वा पुनर्नवाञ्चापि । लेपं  
साध्वचतारयेत् ॥ ३३ ॥

शतावरी, काले तिल, मुन्नेठी, नीम कमल,  
दूध और सोंठी इनका लेप करने से शंखक रोग  
शान्त होता है ॥ ३३ ॥

शीततोयावसेकांश्च क्षीरसेकांश्च  
शीतलान् । कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां  
शङ्खकस्य प्रलेपनम् ॥ ३४ ॥

ठंडे नल से तथा ठंडे दूध से शिर का  
सौंचना अथवा बरगद आदि दूधवाले वृक्षों के  
कल्क का लेप करना शंखक रोग में हितकर  
है ॥ ३४ ॥

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शारार्याः कच्छ-  
पस्य च । रसैः संबृंहणस्याथ तस्य  
शङ्खकसन्धिजाः ॥ ३५ ॥ ऊर्ध्वास्तिस्रः  
शिराः प्राज्ञो भिन्धादेव न ताडयेत् ॥ ३६ ॥

क्रौञ्च, कलहम, हंस, टिट्टिहरी और  
कलुआ; इनके मांस-रसों से रोगी का बृंहण  
कर्म करके शंख की सन्धि के ऊपर की तीन  
शिराओं का बंधन करे, ताडन करे, क्योंकि  
वह मर्म स्थल है और सन्धि भग होने का  
भय है ॥ ३५, ३६ ॥

गिरिकर्णाफलरसं मूलञ्च नस्यमाच-  
रेत् । मूलं वा बन्धयेत् कर्णे शीघ्रं हन्ति  
शिरोव्यथाम् ॥ ३७ ॥

कोयली ( विष्णुकान्ता ) के फल के रस  
का अथवा उसके जड़ के चूर्ण का मरय लेने  
से तथा उसके मूल को कान में बाँधने से शिर  
की पीड़ा शीघ्र शान्त होती है ॥ ३७ ॥

गुञ्जाकरञ्जवीजश्च तयोः कल्को जले  
कृता । मरिचैर्भृङ्गराजैश्च शीघ्रं हन्ति  
शिरोव्यथाम् ॥ ३८ ॥

धुंधुंधी और कंजा के बीजों को जल में  
पीसकर अथवा कालीमिर्च और भांगरे को

पीसकर नस्य लेने से शिर की पीड़ा नष्ट होती  
है ॥ ३८ ॥

क्षुद्रतीक्ष्णां तथा तीक्ष्णां स्नुहीक्षीरेण  
पेपयेत् । लेपनादाशु नश्यन्ति वेदनाः  
सर्वसम्भवाः ॥ ३९ ॥

छोटी लालमिर्च और बड़ी लालमिर्च को  
थूहर के दूध में पीसकर शिर पर लेप करने से  
सब प्रकार की शिर पीड़ाएँ नष्ट होती  
है ॥ ३९ ॥

पङ्घिन्दु तैल ।

एरुडमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिरा-  
सना सहसैन्धवश्च । भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका-  
च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ४० ॥  
ग्राजं पयस्तैलविमिश्रितश्च चतुर्गुणे भृङ्ग-  
रसे विपकम् । पङ्घिन्दवो नासिकया  
विधेया निहन्ति शीघ्रं शिरसो विकारान् ॥  
४१ ॥ च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च  
दन्तान् दुर्बन्धमूलांश्च दृढीकरोति ।  
सुपर्णदृष्टिप्रतिमञ्च चक्षुर्बाहोर्वलञ्चाप्य-  
धिकं ददाति ॥ ४२ ॥

कल्क के लिए एरुड की जड़, तगर,  
गीक, जीवन्ती, रासना, संधा नमक, भँगरा  
बायबिद्ग, मुन्नेठी और सोंठ; सब निलाकर  
आध सेर । काले तिल का तेल २ सेर, बकरी  
का दूध २ सेर, भांगरे का रस ८ सेर । विधि-  
पूर्वक तेल सिद्ध करे । इस तेल को छद्-छद्  
बूँद की मात्रा में प्रत्येक नासिका द्वार में  
छोड़ने से शिर के कुछ विकार शीघ्र नष्ट होते  
हैं तथा यह पङ्घिन्दु तेल गिरते हुए केशों को  
तथा जड़ से हिले हुए दाँतों को जमा देता है  
एव नेत्रों में गड़बड़ की-सी दृष्टि और बाहुओं  
में अधिक बल देता है ॥ ४०-४२ ॥

मायूराद्य घृत ।

दशमूलीपलारासनामधुर्कैस्त्रिपलैः सह ।

मयूरं पक्षिपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम् ॥  
 ४३ ॥ जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन्  
 क्षीरसमं पचेत् । मधुरैः कार्पिकैः कल्कैः  
 शिरोरोगादितापहम् ॥ ४४ ॥ कर्णनासा-  
 क्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् । मयूराद्य-  
 मिदं सर्पिरूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ४५ ॥  
 आखुभिः कुक्कुटैर्हसै शशैश्चापि हि  
 बुद्धिमान् । कल्केनानेन विचपेत् सर्पिरू-  
 र्ध्वगदापहम् ॥ ४६ ॥ दशमूलादिना तुल्यो  
 मयूर इह गृह्यते । अन्ये त्वाकृतिमानेन  
 मयूरग्रहणं विदुः ॥ ४७ ॥

काय के लिये दशमूल का प्रत्येक द्रव्य  
 बारह-बारह तोले, खरेटी १२ तोले, रासना  
 १२ तोले और मुलेठी १२ तोले । पंख, पित्त,  
 आँत, बाँट, और चोंच से रहित गोर का मांस  
 १५ तोले । जल २५ सेर ४८ तोले । अवशिष्ट  
 काय ६ सेर ३२ तोले । घी १२८ तोले ।  
 दूध १२८ तोले । कल्क के लिए मधुर द्रव्य  
 ( काकोल्यादि गण—काकोली, चीरकाकोली,  
 जीवक, ऋषभक, मुँगवन, मषवन, मेदा, महामेदा,  
 गिलोय, काकडासिगी, वंशलोचन, पद्माल,  
 पुं'डरिया, ऋद्धि, वृद्धि, मुनका, जीवन्ती, मुलेठी-  
 की प्रत्येक औषधि ) एक-एक तोला । विधि से  
 घृत सिद्ध कर पान करने से शिर के रोग तथा  
 कान, नाक, आँसू, जीभ, मुख, गल और जत्रु-  
 सन्धि से ऊपर होनेवाले रोगों को यह मयूराद्य  
 घृत नष्ट करता है ।

इसी प्रकार पूर्वोक्त काय और कल्क के साथ  
 चूहा, मुर्गा, हंस और खरगोश के मांस को  
 मिश्रित कर घृत सिद्ध करके सेवन करने से जत्रु-  
 सन्धि से ऊपर होनेवाले रोग नष्ट होते हैं । यहाँ  
 दशमूल आदि के तुल्य मयूर मांस का ग्रहण करना  
 यथाते है ॥ ४३-४७ ॥

बृहन्मयूराद्य घृत ।

शतं मयूरमांसस्य दशमूलं यलां तुलाम् ।

१ 'यकृन्पादास्यबाजतम्' इत्यपि पाठः ।

द्रोणेऽम्भसः पचेत् क्षुत्वा तस्मिन् पाद-  
 स्थिते ततः ॥ ४८ ॥ निपिच्य पयसो  
 द्रोणं पचेत्त्र घृताढकम् । प्रपौण्डरीकं  
 धर्गोक्तैर्जीवनीयैश्च भेषजैः ॥ ४९ ॥ मेधा-  
 बुद्धिस्मृतिकरमूर्ध्वजत्रुगदापहम् । मायूर-  
 भेतन्निर्दिष्टं सर्वानिलहरं परम् ॥ ५० ॥  
 मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजापस्मारनाशनम् ।  
 विपवातामयश्वासविपमज्वरकासनुत ॥ ५१ ॥

क्वाथार्थं जवान मयूरों का मांस ५ सेर ।  
 जल २५ सेर ४८ तोले । अवशेष क्वाथ ६ सेर  
 ३२ तोले और दशमूल तथा खरैटी मिलित ५  
 सेर, क्वाथार्थं जल २५ सेर ४८ तोले । अवशेष  
 क्वाथ ६ सेर ३२ तोले । दूध २५ सेर ४८  
 तोला । घृत ६ सेर ३२ तोला । कल्क के लिए  
 पुण्डरिया और जीवनीयगण ( जीवक, ऋषभक,  
 मेदा, महामेदा, काकोली, चीरकाकोली, जीवन्ती,  
 मुलेठी, मापपर्णी, मुद्गपर्णी ) की औषधियाँ  
 मिलित १२८ तोले । विधिवत् घृत सिद्ध करके  
 सेवन करने से मेधा, बुद्धि और स्मरणशक्ति को  
 बढ़ाता है और जत्रुसन्धि से ऊपर के रोगों को  
 नाश करता है । यह बृहन्मयूराद्य घृत सब प्रकार  
 के वातरोग, गर्दन के रोग तथा कान, शिर और  
 आँसू की पीड़ा, अपस्मार, विपदोष, वातरोग,  
 श्वास, विपमज्वर और कासरोग को नष्ट करता  
 है ॥ ४८-५१ ॥

गुञ्जातैल ।

विशुद्धं तिलतैलञ्च तत्समं काञ्जिकं  
 भवेत् । आरनालसमं भृङ्गद्रवं कृत्वा  
 प्रदापयेत् ॥ ५२ ॥ मन्दाग्निना ततः  
 पाच्यं यावत्तैलं स्थितं भवेत् । तैलमध्ये  
 प्रदातव्यं पिष्ट्वा गुञ्जापलद्वयम् ॥ ५३ ॥  
 उच्चार्य तैलशेषं तु दिनैकं तच्च रक्षयेत् ।  
 शिरोरोगेषु दुष्टेषु चाद्धशीर्षं सुदारुणे  
 ॥ ५४ ॥ भ्रू शङ्कर्णपीडाश्च नश्यन्ति

नात्र संशयः । गुञ्जातैलमिति ख्यातं दत्तं  
हन्ति शिरोव्यथाम् ॥ ५५ ॥

तिल तैल ३२ तोले । काँजी ३२ तोले ।  
भांगरे का रस ३२ तोले । कण्ठ के लिए घुँघची  
८ तोले । मन्दाग्नि से तैल सिद्ध करे । जब केवल  
तैल बाकी रहे तब छान कर एक दिन धरा रहने  
दे । इस तैल का नस्य देने से शिरोरोग, आधा-  
सीसी, भँई, शंख और कान की पीड़ा नष्ट होती  
है । यह गुञ्जातैल शिर की पीड़ा को नष्ट करता  
है ॥ ५२-५५ ॥

पञ्च पञ्च पलं नीत्वा पञ्चमूलीयुगात्  
पृथक् । विपाचयेज्जलद्रोणे चाष्टभागा-  
वशोपितम् ॥ ५६ ॥ आर्द्रकस्य रसप्रस्थं  
निर्गुड्यास्तत्समं भवेत् । व्यूपणं पञ्च-  
कोलं च जीरकद्वयसर्पम् ॥ ५७ ॥ सैन्ध-  
वञ्च यवक्षारं त्रिवृता च निशाद्वयम् ।  
तौयञ्च द्विगुणं दत्त्वा कल्कमक्षसमं विदुः  
॥ ५८ ॥ सर्वैरेभिः पचेत्तैलं शिरोरोगं  
व्यपोहति । ऊर्ध्वजत्रु जरोघ्नं वातश्ले-  
ष्मगदापहम् ॥ ५९ ॥ एकजे द्वन्द्वजे चैव  
तथैव सान्निपातिके । अर्द्धावभेदकेचैव  
सूर्य्यार्चनं प्रशस्यते ॥ ६१ ॥ सिद्धफल-  
मिदम् ।

दशमूल की प्रत्येक ओषधि धीस-धीस ताँडे  
छेकर २६ सेर ४८ तोले जल में धोटावे जब  
३ सेर १६ तोले बाकी रहे तब उतार कर छान  
ले । घदरल का रस १२८ तोले, संभालू की  
पत्तियों का रस १२८ तोले, कडुघा तैल १२८  
तोले । कण्ठ के लिए सोंठ, मिर्च, पीपरि, पीप-  
लामूल, धन्य, चींगा की जड़, सोंठ, मफेद औरा,  
काजाजीरा, सरसों, सेंधानमक, जवाखार, निशोप  
इचरी और दाग्दहरी, प्रत्येक एक-एक तोला ।  
जब ३ सेर १६ तोले । विधि से तैल का पाक  
करना चाहिए । इस तैल के पीने, माजिख कराने  
और सूर्य से शिरोरोग, जड़मिथ के उपर के

रोग, वायु और कफ के रोग तथा एकद्रोपज,  
द्वन्द्वज और सान्निपातिक, आधासीसी, सूर्यावर्त  
और कर्णरोग नष्ट होते हैं । यह सिद्धफल ( अनु-  
भूत ) है ॥ ५६-६१ ॥

महादशमूलतैल ।

दशमूलं पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
तेन पादावशेषेण कडुतैलाढकं पचेत् ॥  
६२ ॥ जम्बीराद्रकधुस्तूरस्वरसं तैलतु-  
ल्यतः । कल्कः कणामृता दार्वा शतपुष्पा  
पुनर्नवा ॥ ६३ ॥ शिशुपिप्पलिका तिक्का  
करञ्जं कृष्णजीरकम् । सिद्धार्थकं वचा  
शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शटी ॥ ६४ ॥  
देवदारु यला रास्ना सूर्यावर्चककटफलम् ।  
निर्गुण्डी चविका गैरी ग्रन्थिकं शुष्कमूल-  
कम् ॥ ६५ ॥ यमानी जीरकं कुष्ठमजमोदा  
च ताडकम् । एतेषां पलिकैर्भागैर्विपचेन्म-  
तिमान् भिषक ॥ ६६ ॥ हन्ति श्लेष्माण-  
मभ्यद्रात् पानात् कासं व्यपोहति । नि  
हन्ति विविधान् व्याधीन् कफवातसमुद्भ-  
वान् ॥ ६७ ॥ शिरोमध्यगतान् रोगान्  
शोधान् हन्ति व्रणानपि ॥ ६८ ॥

दशमूल ४ सेर लेकर २६ सेर ४८ तोले  
जल में धोटावे, सब ६ सेर ३२ तोले बाकी  
रहे तब उतार कर छान ले । कडुघा तैल ६ सेर  
३२ तोले, जम्बीरी नीम् का रस ६ सेर ३२  
तोले, घदरल का रस ६ सेर ३२ तोले और  
धनुरे का रस ६ सेर ३२ तोले । कण्ठ के  
लिए पीपरि, गिळोय, दादरदही, सौंठ, साँठी  
की जड़, सहिजन की धाल, पीपरि, कुटबी,  
करजुघा, काजाजीरा, सफेद सरसों, वच, सोंठ,  
पीपरि, चीता की जड़, कृष्ण, देवदारु, घदरी,  
रामना, सूत्रमुष्ठी, कायफल, संभालू की जड़,  
धन्य, गेरू, पीपलामूल, मूर्ख मूली, घत्रयपन,  
और, दूट, घत्रमोदा और देवदापी; प्रत्येक  
चार-चार तोले समानविधि में तैल सिद्ध कर पाक

करने अथवा सूँघने से कफरोग, खाँसी, अनेक प्रकार की कफघातज व्याधियाँ, शिरोरोग, सूजन और भ्रणरोग नष्ट होते हैं ॥ ६२-६८ ॥

तन्त्रान्तरोरु वृहदशमूल तैल ।

दशमूलीशतं ग्राह्यं तथा धुस्तूरकस्य च । शतं पुनर्नयायाश्च निर्गुण्ड्याश्च शतं तथा ॥ ६९ ॥ एतैः कपार्थैर्विपचेत् कटुतैलाढकं भिषक् । वासा वचा देवदारु शटी रास्ना सयष्टिका ॥ ७० ॥ मरिचं पिप्पली शण्ठी कारवी कटफलं तथा । करञ्जं शिशुकुष्ठञ्च चिञ्चा च वनशिम्बिका ॥ ७१ ॥ चित्रकञ्च पृथग्भागान् दत्त्वा चैषां पलोन्मितान् । श्लैष्मिकं सन्निपातोत्थं वातश्लेष्मोद्भवं तथा ॥ ७२ ॥ कर्णशूलं शिरःशूलं नेत्रशूलञ्च दारुणम् । निहन्ति दशमूलाख्यं तैलमेतन्न संशयः ॥ ७३ ॥

दशमूल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट काथ ६ सेर ३२ तोले । धतूरा ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट काथ ६ सेर ३२ तोले । साँठी ५ सेर, जन २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट काथ ६ सेर ३२ तोले, तेल कहुवा ६ सेर ३२ तोले । कक के लिए अरुमा, वच, देवदारु, कचूर, रास्ना, मुलेठी, मिच, पीपरि, साँठ, सोया, कायफल, कर्जुया साँजन, कूट, इसली की छाल, धनसेम और पीता की जड़; प्रत्येक चार-चार तोले । विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से यह दशमूल नामक तेल कफज, सन्निपातज तथा घात कफज कर्णशूल, शिरःशूल और कठिन नेत्रशूलों को निःसदेह नष्ट करता है ॥ ६९-७३ ॥

तन्त्रान्तरोरु दशमूल तैल ।

दशमूनकाथकल्काभ्यां निर्गुण्डीरसस्युतम् । वहुतैलं समाटाय पचेत् प्रस्थं भिषग्वरः ॥ ७४ ॥ सन्निपातं हरेदेतच्छिरो-

रोगं तथैव च । अस्थिसन्धिकफप्रायान् रोगान् हन्ति न संशयः ॥ ७५ ॥

दशमूल का काथ ६ सेर ३२ तोले, सँभालू की पत्तियों का रस ६ सेर ३२ तोले, कटुआ तेल १२८ तोले । कक के लिए दशमूल ३२ तोले । विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से सन्निपात, सिर के रोग तथा कफजन्य हड्डी और सन्धि के रोग नष्ट होते हैं ॥ ७४-७५ ॥

विशेषदशमूल तैल ।

दशमूनकाथकल्काभ्यां तैलप्रस्थं विपाचयेत् । चतुर्गुणं पयो दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ७६ ॥ दशमूलमिति ख्यातं शोथं हन्ति सुदाहणम् । नस्येनाकालपलितं ज्वरारोचकनाशनम् । अभ्यङ्गेनैव सर्वञ्च शिरःशूलं विनाशयेत् ॥ ७७ ॥

दशमूल का काथ ६ सेर ३२ तोले । तेल १२८ तोले । दूध ६ सेर ३२ तोले । कक के लिए दशमूल ३२ तोले । इन सबको एकत्र कर मन्द-मन्द अग्नि में पकाये । यह दशमूल तेल कठिन से कठिन सूजन को नष्ट करता है । इसका नस्य लेने से कुसमय घालों का पकना, ज्वर और अरुचि तथा मालिश करने से सब प्रकार के शिरःशूल नष्ट होते हैं ॥ ७६-७७ ॥

अपरदशमूल तैल ।

दशमूलीकपयेण अष्टाङ्गकल्कसंयुतम् । क्षीरञ्च द्विगुणं दत्त्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७८ ॥ शिरोर्तिं नाशयेदेतद् भास्करस्तिमिरं तथा । वातशूलं पित्तशूलं कफशूलं त्रिदोषजम् ॥ ७९ ॥ सूर्यात्रर्तमभिप्यन्दं जलदोषञ्च नाशयेत् । दशमूलमिदं तैलं शिरोरोगनिःसृदनम् ॥ ८० ॥

दशमूल का काथ ६ सेर ३५ तोले । तेल १२८ तोले । दूध ३ सेर १६ तोले । कक के लिए अष्टाङ्ग ३२ तोले । विधि से तेल सिद्ध

करे । यह तेल शिर की पीड़ा को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को तथा वातशूल, पित्तशूल, कफशूल, सान्निपातिक शूल, सूर्यावर्त, अग्निप्यन्द, जलदोष और शिरो-रोगों को नष्ट करता है ॥ ७८ ८० ॥

अपर स्वल्पदशमूल तैल ।

दशमूलकाथकल्काभ्यां कटुतैलं वि-  
पाचयेत् । सन्निपातज्वरश्यासकासान् हन्ति  
सुदारुणान् ॥ ८१ ॥

दशमूल के काथ और कक के साथ कडुघा तेल को यथाविधि सिद्ध करें । यह तेल दारुण सन्निपातज्वर, श्वास और खांसी को नष्ट करता है ॥ ८१ ॥

धुस्तूर तैल ।

धुस्तूरकाथकल्काभ्यां कटुतैलं विपाच-  
येत् । सन्निपातज्वरश्लेष्मशोथशीर्षात्ति  
दाहनुत् ॥ कर्णग्रहहरं चास्थिसन्धिग्रह-  
विनाशनम् ॥ ८२ ॥

धनूरे का काथ ४ सेर, कडुघा तेल १ सेर । कक के लिए धनूरा पत्र भर । यथाविधि तेल सिद्धकर मालिश करने से सन्निपातज्वर, कफ सूजन और शिरोरोग, दाह, कर्ण की पीड़ा, इन्दी और सन्धियों की पीड़ा को यह धुस्तूर तेल नष्ट करता है ॥ ८२ ॥

मध्यमदशमूल तैल ।

दशमूली करञ्जच निर्गुण्डी च जय  
न्तिका । धुस्तूरः पटपलान् भागान् जल-  
द्रोणे विपाचयेत् ॥ ८३ ॥ पाददोषे रसे  
तैलं कटुप्रस्थं विपाचयेत् । तत्तल्लान्  
दापयेत् तत्र भागान् पटतोलकान्  
पृथक् ॥ ८४ ॥ वातश्लेष्मसमुद्भूतं  
शिरोरोगं व्यपोहति । कासं पञ्चविधं शोथं  
जीर्णज्वरमपोहति ॥ ८५ ॥ दशमूलमिदं  
तैलं शिरःकर्णात्तिरोगनुत् । मन्यास्तम्भ-

मन्त्रवृद्धिं श्लीपदञ्च विनाशयेत् । दश-  
मूलमिदं तैलमशिरभ्या निर्मितं पुरा ॥ ८६ ॥

दशमूल, करजुघा, सॅम लू, जयन्ती के पत्ते और धतूरे के पत्ते, प्रत्येक चौबीस चौबीस तोले । जल २५ सेर ४८ तोले । अवशिष्ट काथ ६ सेर ३२ तोले । कडुघा तेल १२८ तोले । कक के लिए दशमूल, करजुघा, सॅमालू, जयन्ती के पत्ते और सभालू के पत्ते; प्रत्येक छद्द छद्द तोले । यथाविधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से यह दशमूल तेल वात कफज शिरोरोग, पाँचों प्रकार के कास, शोथ और जीर्णज्वर को नष्ट करता है । एष शिर, कान और अर्शों के रोग, गर्दन का रूक जाना, अग्रवृद्धि, श्लीपद ( पीत्रपाँव ) अदि रोगों को नष्ट करता है । इस दशमूल तेल को पहले अशिरिनीकुमारों ने बनाया था ॥ ८३-८६ ॥

वनम् तैल ।

कनकाकांला दूर्वा वासको वैज-  
यन्तिका । निर्गुण्डी पृत्तिका भार्गी  
शाखोटम्पुनर्नत्रे ॥ ८७ ॥ चदरीविजया-  
पत्रं श्रीफलं वृहती तथा । चित्रकञ्च सुही-  
मूलमग्निमन्थो व्यडम्बकम् ॥ ८८ ॥  
निवृत्तएडी गोमटी च पत्रमारगधस्य च ।  
प्रत्येकं द्विफलं त्रैषां वृहतीयात् तत्तण्डु-  
दपि ॥ ८९ ॥ जलद्रोणे विपद्यं यान्त्  
पादाग्रशेषितम् । प्रस्थञ्च वटुतैलस्य पाच-  
येत् तीव्रशक्तिना ॥ ९० ॥ द्रव्याप्येतानि  
सर्वाणि क्लिप्तानि प्रदापयेत् । चतुःशूलं  
शिर शूलं श्लीपदं मांसरज्जम् ॥ ९१ ॥  
श्यामातत्र हृन्मूलं वृद्धिशगलगाट्टम् ।  
शोथसाधिर्युद्धर कासं हन्ति नमंगय ॥  
९२ ॥ दूर्वायां पतिते विन्टी गुण्यतां  
यानि तत्तण्डुान् । वनशाम्पमिदं तैलं  
वपरोगनुनान्तरम् ॥ ९३ ॥

धतूरा, आक की जड़, खरेटी, दूब, अरुसा, जयन्ती, निर्गुण्डी, कर्जुआ'के बीज, भारंगी, सिहोरा की छाल, साँठी, बर के पत्ते, भांग के पत्ते, बेलगिरी, कटेरी, चीता की जड़, धूहर की जड़, अरणी, परण्ड की जड़, निसोय, मँजीठ, वनभाँटा और अमलतास में पत्ते; प्रत्येक आठ-आठ तोले। काथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले। अर्वाशष्ट काथ ६ सेर ३२ तोले। कदुआ तेल १२८ तोले। कहरु के लिए पूर्वोक्त काथ की संपूर्णा ओषधियाँ मिलित ३२ तोले लेकर विधिपूर्वक तेज अग्नि द्वारा तेल सिद्ध करे। इस तेल की मालिश करने से नेत्रशूल, शिरःशूल, रक्तज और मांसज श्लेष्मिद, आमघात, हृदय-शूल, अयस्कृद्धि, गलगण्ड, शोथ, बहरापन, उदर-विकार, खाँसी और सब प्रकार के कफ-रोगों को यह कनक तेल नष्ट करता है। हरी दूब पर यदि इसकी वृन्द गिर जाय तो उसी समय दूब सूख जाती है ॥ ८०-६३ ॥

महाकनक तेल ।

कनकस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वर्षाभुवस्तथा ।  
निर्गुण्डीस्वरसप्रस्थं दशमूलरसस्य च ॥  
६४ ॥ पारिभद्ररसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य  
च । तैलप्रस्थं समादाय भिपगयत्नाद्विपा-  
चयेत् ॥ ६५ ॥ कर्करुर्ज्ज्वलरैतैः शुण्ठी-  
मरिचसैन्धवैः । पुनर्नवाककटकाशैलुत्व-  
कूपिप्पलीयुगैः ॥ ६६ ॥ तत्साधुसिद्धं  
विहाय शुभे पात्रे निधापयेत् । वातश्लेष्म-  
कृतं सर्वमामघातं भगन्दरम् ॥ ६७ ॥  
सन्निपातभवं रोगं शोधकाशु विनाशयेत् ।  
ये केचिद्ग्राधयः सन्ति श्लेष्मिकाः सान्नि-  
पातिकाः ॥ ६८ ॥ तान् सर्वांशायत्वाशु  
भूर्प्यस्तम इवोदितः ॥ ६९ ॥

धतूरे का रस १२८ तोले । साँठी का रस १२८ तोले । निर्गुण्डी के पत्तों का रस १२८ तोले । दशमूल का काड़ा १२८ तोले । नीम के पत्तों का रस १२८ तोले । बरना की छाल का

काड़ा १२८ तोले । तेल १२८ तोले । कहरु के लिए सोंठ, मिर्च, संधानमक, साँठी, काकड़ासिगी, लसोड़े की छाल, पीपरि और गजपीपरि, प्रत्येक दो-दो तोले । जब तेल अच्छे प्रकार सिद्ध हो जाय तब वख से छानकर अच्छे साफ बरतन में रक्खे । यह तैल वातकफ के विचार, सब प्रकार के आमघात, भगन्दर, सन्निपात के रोग और शोथ को तत्काल नष्ट करता है । तथा अन्योन्य कुल श्लेष्मिक और सान्निपातिक रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे उदित सूर्य अन्वकार को नष्ट करता है ॥ ६४-६६ ॥

रुद्र तैल ।

जैपालद्रोणधुस्तूरशिमुशक्राशनस्य च ।  
सूर्यावर्चस्य सूर्यस्य पत्राणां स्वरसं  
पृथक् ॥ १०० ॥ जम्बीरशृङ्गवेरस्य रसं  
दद्यात् समं समम् । कदुतैलस्य पात्रं तु  
शोधयित्वा पचेद्भिपक् ॥ १०१ ॥ रजनी-  
द्वयमञ्जिष्ठा कटफलं कृष्णजीरकम् ।  
त्रिकटु पिप्पलीमूलं सारिवे द्वे विटङ्ग-  
कम् ॥ १०२ ॥ रास्ना दारु बला निम्बं  
मुस्तकं चन्दनं तथा । परशू द्वौ स्नुहीमूलं  
मूर्वापामार्गमूलकम् ॥ १०३ ॥ स्वरसद्रव्य-  
मेतेषां कल्कं दद्यात् तु पादिकम् । मृत्पात्रे  
सुहृदे चैव पाचयेत् तीव्रवह्निना ॥ १०४ ॥  
बलासमूर्ध्वगञ्चैव नाशयेत् त्रिदिनाद्  
ध्रुवम् । मुखनासाक्षिरोगांश्च कफगो-  
णितसंज्ञवान् ॥ १०५ ॥ शिरोरोगं  
सन्निपातं श्लेष्मिदं गलगण्डकम् ।  
अभ्यद्राश्राशयेदतान् पानात् कासं  
व्यपोहति ॥ कालाग्निरुद्रेण प्रोक्तं  
रुद्रतैलमिदं पुरा ॥ १०६ ॥

जमालगोटा, गोमा, धतूरा, महिजग, भांग, भूजपुष्पी और आक के पत्तों का रस प्रत्येक ६ सेर ३२ तोले । जम्बीरी मीठू का रस ६ सेर

३२ तोले । अद्रम्य का रस ६ सेर ३२ तोले । कडुघा तेल ६ सेर ३२ तोले । कल्क के लिए हल्दी, दारुहल्दी, मँजीठ, कायफल कालाजीरा, सोंठ, मिर्च, पांपरि, पीपलामूल, सफेद सारिवा (अनन्तमूल), काली सारिवा (कालीसर), यायविदंग, रासना, देवदारु, खरेंटी, नीम की छाल, नागरमोथा, लाल चन्दन, दोनों प्रकार के परशु (कोदारुलिया, कुडालिया), भूहर की जड़, मरौरफली, लटजीरा की जड़, जमालगोटा, गोमा, धतूरा, सडिजन, भाँग, सूरजमुली और धाक की जड़; ये सब मिलित १२८ तोले । इस तेल का पाक मिट्टी के टुक पात्र में तेज अग्नि से करना चाहिए । यह तेल मालिया करने से कफरोग और जन्तु से ऊपर होनेवाले रोगों को तीन दिन में नाश करता है । तथा मुख, नाक और नेत्र के रोग, कफसाध, रज्ज्घाय, शिर के रोग, सन्निपात, श्लोषद और गलगणद; इन रोगों को मालिया करने से और खाँसी को पान करने से नष्ट करता है । पहले इस रज्ज्तेल को कालाग्निरुद्ध ने कहा था ॥ १००-१०६ ॥

तप्तराजतेल ।

लवलीनां रसप्रस्थं शिशुपुष्टुरयो-  
स्तथा । वासकस्य रसप्रस्थं तथा निर्गुण्डि-  
काकयोः ॥ १०७ ॥ दशमूलरसप्रस्थं  
करञ्जमलयोस्तथा । पृथगेतैः पचेद्धीमान्  
तैलमस्थञ्च सार्षपम् ॥ १०८ ॥ कल्कः  
कण्ठा घला शुण्ठी पिप्पलीमूलचित्रकम् ।  
कटफलं कनकं चव्यं जीरकं शतपुष्पिषा  
॥ १०९ ॥ पुनर्नवा हरिद्रा च देवदारु च  
लाहली । शुष्कमूलककुपुञ्ज यामकं कृष्ण-  
जीरकम् ॥ ११० ॥ स्नुयर्कन्तीरं जैपाल-  
मूलं नागदलं तथा । विद्वद्र सन्धवं चारं  
चन्दनं शिशुपुष्टपलम् ॥ १११ ॥ मरिचं  
मधुकं रासना शृङ्गी व्याघ्री वरुणकम् ।  
एनेपं कार्ष्णिः कर्कुर्विपचेत् पारुविजि-

पक् ॥ ११२ ॥ अभ्यङ्गात् श्लैष्मिकं  
हन्ति पानात् कासं व्यपोहति । शययुञ्चो-  
दरं शूलं शिरोरोगं सुदुस्तरम् ॥ ११३ ॥  
शिरःशूलं नेत्रशूलं कणशूलञ्च दारुणम् ।  
त्रयोदशसन्निपातान् वातरश्लेष्मगल-  
ग्रहान् ॥ ११४ ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैत्र तथैव  
सान्निपातिकम् । सर्वं गोथं निहन्त्येव  
ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ ११५ ॥ श्लेष्म-  
रोगं निहन्त्याशु भास्करस्तमिरं यथा ।  
तप्तराजमिदं तैलमूर्ध्वजन्नुगदापहम् ११६

हरफारेवही, सडिजना, धतूरा, भरुसा, निगुण्डी, मदार, दशमूल, करज और खरेंटी, प्रत्येक का रस या काढ़ा १२८ तोले । कडुघा तेल १२८ तोले । एक के लिए पीपरि, खरेंटी, सोंठ, पीपलामूल, चीता की जड़, कायफल, धतूरा के पत्ते, चाय, जीरा, मौक, सोंठी, हल्दी, देवदारु, कलिहारी, सूखी मूली, कूट, जवासा, काला जीरा, भूहर का दूध, धाक का दूध, जमालगोटे की जड़, नागदीन, याय-विदंग, सेंधानमरु, जवागार, लालचन्दन, सडि-जने की छाल, नीलाकर फाली मिर्च, मुलेठी, रासना, काकडासिंगी, फटेरी और बरना की छाल ; प्रत्येक एक-एक तोला । विधिपूर्वक तेल सिद्ध करे । मालिया करने से यह तेल कफरोगों को और पान करने से फासरोगों को नष्ट करता है । शोथ, उदररोग, शूल, कठिन से कठिन शिर के रोग, शिरज्वर, नेत्रज्वर, भयकर कर्णशूल, तेरह प्रकार के सन्निपात, वात-कफ के रोग, गजप्ररोग, एकशोषज, त्रिदो-षज, और सन्निपातज शोथ, उर, निष्पत्ती और कृष्ण रोग तथा जन्तुमिथ से ऊपर के रोगों को यह तप्तराज तेल हृद्य प्रकार नष्ट करता है । इसे मूर्ध्व जन्नुगदा की नष्ट करता है ॥ १०७-११६ ॥

तन्प्राग्गन्तरोक्त तप्तराज तैल ।

पुष्टं प्तिकं पीना जपन्ती गिन्पु-



वारकम् । शिरीषं हिज्जलं शिशु दशमूलं  
समं भवेत् ॥ ११७ ॥ प्रस्थं प्रस्थं समा-  
दाय कटुतैलं समांशकम् । जलद्रोणे  
विपक्वव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ११८ ॥  
गोमूत्रं चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्भग्निना पचेत् ।  
मदनं त्र्यूपणं कुष्ठमजाजीभिश्चभेषजम् ॥  
११९ ॥ कटफलं वरुण मुस्तं हिज्जलं  
विल्वमेव च । हरितालं जवापुष्पममृतं  
कुन्टी तथा ॥ १२० ॥ कर्कटं चन्दनं  
शिग्रुयमानी व्याघ्रपादपि । एतेषां कार्पि-  
कैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥  
तप्तराजमिति ख्यातं महादंघेन निर्मितम् ।  
सन्निपातं महाघोरं शिरोरोगं महत्तरम् ॥  
१२२ ॥ शिरःशूलं नेत्ररोगं कर्णशूलञ्च  
दारुणम् । ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदञ्चैव  
महत्तरम् ॥ १२३ ॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च  
सहलीमकपीनसम् । त्रयोदशसन्निपातान्  
हन्ति सद्यो न संशयः ॥ १२४ ॥

धत्रा, करंज, दहदी, जयन्ती, सैन्धु, सिरस की छाल, समुद्रफल, सहिजना की छाल और समभाग मिलित दशमूल, प्रत्येक ६४-६४ तोले । काय के लिए जल २५ सेर ४८ तोले । भ्रजशिष्ट त्रयाय ६ सेर ३२ तोले । कटुघ्ना तेल १२८ तोले । गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले । कएक के लिए मैनफल, मीठ, मिर्च, पीपरी, कूट, जीरा, सोंठ, कायफल, बरना की छाल, नागरमोथा, समुद्रफल, बेलगिरी, हरताल, गुडहल के फूल, मीठा धिय, मैनशिज, काकड़ा-सिंगी, लाल चन्दन, सहिजन, भ्रजवापन और कटार्ई की छाल; प्रत्येक एक-एक तोला । इस तेल को धीरे-धीरे मन्द अग्नि से पकावे । यह महादेवजी का बनाया हुआ तप्तराज तेल मालिश करने से महाघोर सन्निपात, महान् शिरोरोग, शिरःशूल, नेत्ररोग, कर्णशूल, ज्वर दाह, पर्यन्ते की चापिषयता, कामला, पाण्डु-

रोग, हलीमक, पीनस और तेरह प्रकार के सन्निपातों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ ११७-१२४ ॥

वृहत्किङ्किणी तैल ।

किङ्किणीप्रस्थमेकञ्च प्रस्थं सहचरस्य  
च । कृष्णधुस्तरकप्रस्थं प्रस्थञ्च सिन्धुवार-  
कम् ॥ १२५ ॥ पचेत्पात्रं जलं दत्त्वा  
पादशेषं समुद्धरेत् । तैलप्रस्थं विपक्वव्यं  
द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ १२६ ॥ यष्टी  
कणा पयोदञ्च गन्धकं कुष्ठमेव च । समु-  
द्रान्ता तथा शृङ्गी किङ्किणीबीजमेहकम् ॥  
१२७ ॥ रास्ना मधुरिका भ्रिण्टीमूल-  
मीश्वरमेव च । विपमाधुकमञ्जिष्ठाशोभा-  
ञ्जनत्वचं तथा ॥ १२८ ॥ एषां कर्षद्वय-  
ञ्चैव पिष्ट्वा चात्र समावपेत् । निहन्ति  
पूतिकर्णञ्च कर्णस्रावं सकण्डुकम् ॥ १२९ ॥  
कर्णनादं कर्णशोथं वाधिच्यं दारुणं तथा ।  
शिरोरोगं नेत्ररोगं मन्थास्तम्भं गलग्रहम् ॥  
एतान् रोगान् निहन्त्याशु वृत्तमिन्द्राश-  
निर्यथा ॥ १३१ ॥

हुलहुल ६४ तोले । नियायोसा ६४ तोले । काला धत्रा ६४ तोले । सैन्धु ६४ तोले । प्रत्येक को अलग-अलग ६ सेर ३२ तोले जल में पकाकर चौथाई जल अवशिष्ट रखे । कटुघ्ना तेल १२८ तोले कएक के लिए मुंछेटी, पीपरी, नागरमोथा, गन्धक, कूट, जवासा, काकड़ासिंगी, सूर्यमुखी के बीज, काला धत्रा, रास्ना, सौंफ, पियायोसा की जड़, पारा, मीठाविष, मुंछेटी, मँजीठ और सहिजना की छाल; प्रत्येक दो-दो तोले । विधि से तेज सिद्ध कर कान में छोड़े तो कर्णनाद, कर्णशोथ और दारुण बाधिरता को नष्ट करे और मालिश करने से शिरोरोग, नेत्र-रोग, गर्भन के ऊपर की नाड़ी का रुकना और गलग्रह; इन रोगों को दृग प्रकार नष्ट करता

है जैसे दूध का वज्र घृष्टों को नष्ट करता है ॥ १२२-१३१ ॥

श्लैष्मशैलेन्द्र रस ।

ज्वराधिकार उक्तो यच्छ्लैष्मशैलेन्द्र-को रसः । स चाप्यत्र प्रयोक्तव्यः शिरो-रोगनिसूदनः ॥ १३२ ॥

ज्वराधिकार में जो हम श्लैष्मशैलेन्द्र रस कह आये है वह भी शिरोरोग को नाश करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १३२ ॥

रसचन्द्रिका वटी ।

त्रैलोक्यविजयाबीजं बीजमुन्मत्त-कस्य च । कण्टकारीबीजकञ्चबीजं हैज्ज-लमेव च ॥ १३३ ॥ बीजश्च वृद्धदारस्य समौ गन्धकपारदा । आर्द्रकैर्वटिका कार्या गुञ्जाद्वितयसम्भिता ॥ १३४ ॥ एषा तोयानुपानेन प्रातः खाद्या हिता-शिना । चिरजं सर्वरोगश्च सन्निपातं सुदारुणम् ॥ १३५ ॥ आमवातं शिरो-रोगं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् । ग्रहणौ श्ली-पदं हन्ति तन्त्रवृद्धिं भगन्दरम् ॥ १३६ ॥ कामलां शोधपाण्डुत्वं पीनसार्शोगुदाम-यान् । वटिका चन्द्रिका नाम वासुदेवेन भाषिता ॥ १३७ ॥

भाँग के बीज, काले धतूरे के बीज, घोटी कटेरी के बीज, समुद्रफल के बीज, विधारा के बीज, पारा और गन्धक इन्हें विधिपूर्वक बरा-बर मात्रा में मिलाकर अदरक के रस में पीस कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । अनु-पान—जल । यह वटी पर्य आहार सेवन करने-वाले रोगी को प्रातःकाल सेवन करानी चाहिए । यह चन्द्रिका वटी आमवात, शिरोरोग, मन्या-स्तम्भ, गलग्रह, ग्रहणी, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, भगन्दर, कामला, शोध, पाण्डु, पीनस, बयासीर तथा गुदज रोगों को नष्ट करती है ॥ १३३-१३७ ॥

चन्द्रकान्त रस ।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं ताम्रं गन्धं समं सभम् । स्तुदीक्षीरैर्दिनं मर्धं भक्तयेद्रक्ति-कोन्मितम् ॥ १३८ ॥ मधुना मर्दितं सेव्यं लोहपात्रे दिने दिने । सप्ताहात्सूर्यावर्चा-दीन् शिरोरोगान् विनाशयेत् ॥ १३९ ॥

पारदभस्म, ( अभाव में रससिन्दूर ), अन्नकभस्म, शीघण, लोहभस्म, ताम्रभस्म और गन्धक इन्हें धूप के दूध से घोटकर गोली बनावे । मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक । प्रयोग काल में १ वटी को जल से शहद के साथ लौह पात्र में घोटकर सेवन करावे । एक सप्ताह के प्रयोग से यह सूर्यावर्त आदि शिरोरोगों को नष्ट करता है ॥ १३८-१३९ ॥

महालक्ष्मी विलास ।

लोहमभ्रं त्रिपं मुस्तं फलत्रयकटु-त्रयम् । धुन्तूरं वृद्धदारश्च बीजमिन्द्रा-शनस्य च ॥ १४० ॥ गोक्षूरकद्वयश्चैव पिप्पलीमूलमेव च । एतत्सर्वं समं ग्राह्यं रसे धुस्तूरकस्य च ॥ १४१ ॥ भावयित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः । महालक्ष्मीविलासोऽयं शिरोरोगविना-शकः ॥ १४२ ॥

लोहभस्म, अन्नकभस्म, यरघुनाग, मोया, त्रिफला, त्रिहुटा, धतूरे के बीज, विधारे के बीज, भाँग के बीज, छोटा गोखरू, बड़ा गोखरू पीपलामूल, इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र मिलाकर धतूरे के रस से भाषता दे और दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । यह शिरोरोग को नष्ट करता है ॥ १४०-१४२ ॥

शिरोरोगहर रस ।

रसंगन्धकमभ्रश्च लौहं कर्पमितं पृथक् । स्वर्णं शाणुमितं चैव दार्वाख्यं च त्रिपं तथा ॥ १४३ ॥ भृङ्गराजाम्भसा सम्यह् मर्दयित्वा विचक्षणः । सर्पपमिताः

कुर्याद्विटीश्रएडांशुशोपिताः ॥ १४४ ॥  
शिरोरोगहरो नाम रसोऽयं हरनिर्मितः ।  
हरेत् सर्वशिरोरोगान् विरामे यदि  
सेवितः ॥ १४५ ॥

पारा, गन्धक, अन्नकभस्म, लौहभस्म,  
हरएक दो तोले, स्वर्णभस्म आधा तोला,  
शुद्ध संखिया आधा तोला इन्हें एकत्र भोंगरे के  
रस में घोटकर सरसों के बराबर गोलियाँ  
बनावे और छाया में सुखा ले । इससे जब शिरो-  
वेदना शान्त हो तब सेवन करने से शिरोरोग  
का आक्रमण रुक जाता है ॥ १४३-१४५ ॥

अर्द्धनाडी नाटवेश्वर ।

वराटं टङ्गनं शुद्धं पञ्चभागसमन्वि-  
तम् । नवभागं मरीचस्य विषं भागत्रयं  
मतम् ॥ १४६ ॥ स्तन्येन वटिकां कृत्वा  
नस्यं दद्याद्विचक्षणः । शिरोविकारान्  
विप्रिधान् हन्ति श्लेष्मोत्तरानपि ॥ १४७ ॥

कौडी की भस्म २ भाग, सुना सुहागा २  
भाग, कालीमिर्च ६ भाग, मीठा विष ३ भाग;  
इनको घी के दूध में घोटकर गोली बनावे ।  
इस गोली को पीसकर नस्य लेने से अनेक प्रकार  
के कफप्रधान शिर के समस्त रोग नष्ट होते  
हैं ॥ १४६-१४७ ॥

शिरःशूलाद्रिवज्ररस ।

पलं रसं पलं गन्धं पलं लौहं पलं  
त्रिष्टुत् । गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्द्धं  
त्रिफलारजः ॥ १४८ ॥ कुष्ठं मधु कणा  
शुण्ठी गोक्षुरं कृमिनाशनम् । दशमूलञ्च  
प्रत्येकं तोलकं वज्रस्रोधितम् ॥ १४९ ॥  
फाथेन दशमूल्याश्च यथास्यं परिभावयेत् ।  
घृतयोगात् पक्वत्तया वेदगुञ्जामिता वटी ॥  
१५० ॥ छागीदग्धानुपानेन पयसा मधुना-  
थवा । शिरःशूलाद्रिवज्रोऽयं चण्डनाथेन  
भापितः ॥ १५१ ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव

त्रिदोषजनितं तथा । वातिकं पैत्तिकं सर्वं  
शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ १५२ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले,  
लोहभस्म ४ तोले, निसोथ ४ तोले गुगुल  
१६ तोले, त्रिफला का चूर्ण ८ तोले तथा  
कूट, मुलेठी, पीपरि, सोंठ, गोखरू बायबिड़ंग  
और दशमूल; प्रत्येक एक-एक तोला । इन  
सबको कूट-पीसकर वज्र से छान ले, पश्चात्  
दशमूल के काथ की भावना देकर घी के संयोग  
से चार-चार रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसको बकरी  
के दूध, जल अथवा शहद के साथ सेवन करना  
चाहिए । यह चण्डनाथ का कहा हुआ शिरःशूला-  
द्रिवज्र रस एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज तथा  
वातिक, पैत्तिक सब प्रकार के शिरोरोगों को नष्ट  
करता है ॥ १४८--१५२ ॥

शिरोरोग में भोजन ।

आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्याद-  
योऽपि च । मुद्गान् मापान् कुलत्थांश्च  
खावेद्वा निशि केवलान् ॥ कटुकोष्णान्  
ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा ॥ १५३ ॥

जाङ्गल मांस, शालि आदि धान्य तथा केशल  
मूँग, उदद, कुलत्थ. इनमें से किसी एक को  
पकाकर अधिक मात्रा में तथा कालीमिर्च, घी  
आदि डालकर रात्रि में भोजन के समय गरम २  
तापे अथवा गरम दूध पीवे ॥ १५३ ॥

शिररोग में पथ्य ।

स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपश्च-  
द्विर्लङ्घनं शीर्षं वस्तिः । रक्तोन्मुक्त्रिर्वद्वि  
कर्मोपनाहो, जीर्णं सर्पिः शालयः  
पष्टिकाश्च ॥ १५४ ॥ यूषो दुग्धं धन्वमांसं  
पटोलं शिमुर्द्राक्षा वास्तुकं कारवेल्लम् । आघ्नं  
धात्रीदादिमं मातुलुङ्गं तैलतकं काञ्जिकं  
नारिकेलम् ॥ १५५ ॥ पथ्या कुष्ठं  
भृङ्गराजः कुमारी मुस्तो शीरं चन्द्रिका  
गन्ध मारः । कर्पूरश्चख्याति मानेप वर्गः

सेव्यो मर्त्यैः शीर्षं रोगे यथा  
स्वम् ॥ १५६ ॥

स्वेदन, नस्यकर्म, धूमपान, विरेचन, लेपन, लङ्घन, शिरो बस्ति, रक्त निकलवाना, दागना, उपनाहन, पुराना घी, शालि चावल, साठी चावल का घूप, दूध, जाङ्गल जीवों का मांस, परवल, सहि-जना, दाख, बथुघ्रा, करेला, आम, आंवला, अनार, बिजौरा, नींबू, तैल, मट्टा, कांजी, नारियल, हरद, कूठ, भांगरा घृतकुमारी, नागर मोथा, खस, चांदनी रात, सुगन्धित वस्तु 'इत्र (घुप) आदि कपूर यह सब शिरोरोग में हितकर हैं ॥ १२४-१२६ ॥

शिरोरोग में अपथ्य ।

क्षवजम्भामूत्रवाप्पनिद्राविदवेगभञ्जनम् । दुष्टनीरं विरुद्धान्नं सख्यविन्ध्यसरि-  
ज्जलम् ॥ दन्तकाष्ठदिवानिद्रां शिरोरोगी  
परित्यजेत् ॥ १५७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शिरोरोगाधि-  
कारः समाप्तः ।

घोंक, जँभाई मूत्र, आँसू, निद्रा, पुरीप इनके पैयों को रोकना, दुष्ट जल, विरुद्ध भोजन; सखादि एवं विन्ध्य पर्वत की नदियों के जल, दातौन करना और दिन में सोना इनका शिरोरोगी को परित्याग करना चाहिए ॥ १२७ ॥

इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविरचिताया भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां  
शिरोरोगाधिकारः समाप्तः ।

शीर्षाम्बुरोगाधिकारः ।

शीर्षाम्बुरोग का निदान और सम्प्राप्ति  
मघातिपानादतिशैत्ययोगाद् विरुद्ध-  
भोज्यादनिलप्रदोपात् । दुष्टाम्बुपानाद-  
भिवाततथ तथान्त्रमध्ये कृमिसम्भवाच्च ॥  
१ ॥ शिरोगतस्नेहृत्ती क्रमेण सञ्चीयते

तोयमतिप्रभूतम् । शीर्षाम्बुनामा गद एष  
पूर्वैः प्रकीर्तितः कृच्छ्रतरो भिषग्भिः ॥ २ ॥  
प्रायशः शैशवे व्याधिविधिविधाहितसेव-  
नात् । तथा दन्तोद्गतेरेष बाहुल्येनाभि-  
जायते ॥ ३ ॥

अधिक मद्यपान से, अधिक शीत के संयोग से, विरुद्ध भोजन से, वात के दोष से, दूषित जल पीने से, अभिघात ( चोट धक्का आदि ) से, अंत्र में कृमिसंग्रह होने से और शिरो-गतस्नेह की विपरीतता से मस्तक में अधिक जल संचय हो जाता है। इसको शीर्षाम्बु नामक रोग बतलाया है। प्रायः बचपन में अनेक प्रकार की अपथ्य वस्तुओं के सेवन से बच्चों को हो जाया करता है। विशेषतः दाँत निकलते समय अधिक हुआ करता है ॥ १-३ ॥

शीर्षाम्बु रोग का पूर्वरूप ।

जिह्वालिप्तातिनिद्रत्वं दौर्बल्यं श्वास-  
पूतिता । गाढविट्ता च तस्मिस्तु भवि-  
ष्यति भविष्यति ॥ ४ ॥

जीभ लिसी-सी रहती है, नींद अधिक आती है, शरीर दुबला हो जाता है, श्वास में से गन्ध आती है, मल गाढ़ा ( कड़ा ) हो जाता है। इस प्रकार के लक्षण जिसके हों, समझना चाहिए इससे शीर्षाम्बु होनेवाला है ॥ ४ ॥

लक्षण ।

शिरसो वेदना घोरा श्रुतेर्दृष्टेश्च तीक्ष्ण-  
ता । मूत्राल्पत्वं कृष्णविट्त्वं धमनी वेग-  
वाहिनी ॥ ५ ॥ त्वग्रूक्षोष्णा तथा हृदि-  
विषमा च कनीनिका । कोपितं मुखर्व-  
वर्णं निद्रायां दन्तवर्षणम् ॥ ६ ॥  
कण्डूरोष्ठस्य नासाया आक्षेपो रक्ते-  
त्रता । पक्षाघातः प्रलापश्च शीर्षाम्बुगद-  
लक्षणम् ॥ ७ ॥

शिर में भयानक वेदना होती है, सुनने

और देखने की शक्ति क्षीण हो जाती है, मूत्र कम मात्रा में आता है, मल का रंग काला हो जाता है. नाड़ी की गति बढ़ जाती है । खचा रुख और गरम रहती है, उलटी होती है, आँख की पुतली विपम हो जाती है, मुख का रंग विपर्यय हो जाता है, नींद में दाँत घिसता है थोड़ा और नाक में गुजनी चलती है, आक्षेपक ( कटके ) आते हैं, आँसू लाल हो जाती हैं, पक्षाघात और प्रलाप भी होते हैं । ये लक्षण शीर्षाम्बु रोग के हैं ॥ १-७ ॥

शीर्षाम्बु रोग की चिकित्सा ।

भेषजं रेचनं यच्च यन्मूत्रस्य प्रवर्त्तनम् । रक्तदोषहरं यच्च तच्छीर्षाम्बुगद्रे शुभम् ॥ ८ ॥ मुण्डयित्वा शिरस्तच्च च्छादयेदुष्णवाससा । पाययेन्नारिकेलस्य स्नेहश्चापि निरन्तरम् ॥ ९ ॥ सेवयेद्रसचूर्णञ्च स्तोकमात्रं विचक्षणः । पीतमूर्त्तीं त्रिवृच्छद्यामे पथ्यामामलकीं शठीम् ॥ १० ॥ अन्नन्तां मधुकं मुस्तां धन्याकं कदुरोहिणीम् । हरिद्रे द्वे त्रिजातश्च काथयित्वा यथाविधि ॥ यत्रक्षारेण सहितं पाययेद्दस्य शान्तये ॥ ११ ॥

शीर्षाम्बु रोग में दूरतावर, मूत्र को प्रवृत्त करनेवाली तथा रुधिर को शुद्ध करनेवाली औषध लाभदायक होती हैं । शिर को मुँड़ाकर गरम कपड़े से ढकना चाहिए । नारियल का तेल बराबर पिलाते रहना चाहिए । रसचूर्ण ( रससिन्दूर ) थोड़ा सेवन कराते रहना चाहिए । गाजर, निशोध, सारिवा, हड, भाँवला, कधर, गिलोय, शुलेठी, मोथा, धनियाँ, कुटकी, हडदी, दाण्णदी, त्रिजात ( दालचीनी, इलायची, तेजपात ) सबको समान भाग लेकर काथ करके पचपार के साथ सेवन करने से शीर्षाम्बु रोग शान्त होता है ॥ ८-११ ॥

सलिलशोषण चूर्ण ।

रसचूर्णं यत्रक्षारं पीतमूर्त्तीं त्रिजात-

कम् । भर्गमिलां तथा लघ्वीमभयामिन्द्रवारुणीम् ॥ १२ ॥ समांशेन प्रयुह्याथ प्रयुञ्ज्यात् पयसा सह । शीर्षाम्ब्वे-तन्निराकुर्याच्चूर्णं सलिलशोषणम् ॥ १३ ॥

रससिन्दूर, जवापार, गाजर, त्रिजात ( दालचीनी, तेजपात, इलायची ), भारगी, इलायची, अमरग, हड, इन्द्रायण सबको समान भाग लेकर दूध के साथ प्रयुक्त करना चाहिए । यह सलिलशोषण चूर्ण शीर्षाम्बु रोग को अच्छा करता है ॥ १२-१३ ॥

कुङ्कुमाद्य घृत ।

कुङ्कुमं सारिवां द्राक्षां जीवन्तीमभयां विडम् । पत्रं पटोलमूलञ्च सर्पिपा पाचयेद्भिषक् ॥ १४ ॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत वीक्ष्य व्याधेर्वलावलम् ॥ सर्वान् शीर्षगदान् हन्यात् कुङ्कुमाद्याभिधं घृतम् ॥ १५ ॥

केशर, सारिवा, दाग, जीवन्ती, हड, विडनमक, तेजपात, परजल की जड़ और घी इनको घृतपाक करने की विधि के अनुकूल मात्रा में लेकर और विधिपूर्वक घृत बनाकर रोगी के बलाघल को विचारकर उचित मात्रा में सेवन करने से यह कुङ्कुमाद्य घृत मय प्रकार शिररोगों को नष्ट करता है ॥ १४-१५ ॥

रस तैल ।

धुस्तूरं धातकीं मूर्त्तीं मधुकं मधुकं विडम् । नागरं नीलिनीं कृष्णां कट्फलं वटुकं जलम् ॥ १६ ॥ शाण्डमानेन निःक्षिप्य कटुर्नेलगरावके । संवृते मृण्मये भाण्डे निशाः सप्त च यापयेत् ॥ १७ ॥ ततः कल्कान् विनिर्हृत्य कज्जलीमर्दकापिकीम् । तत्र संमिश्र्य शिरसि मुष्टिते तत् प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥ रसतैलमिदं हन्यात् शीर्षाम्बुनाशु न संशयः । व्या-

धितानां हितार्थाय हरेणैतत् समीरि-  
तम् ॥ १६ ॥

धतूरा, धाय, मूर्वा, मुलेठी, महुआ, विड्ढनमव,  
सोंठ, नील की जड़, पीपल, कायफल, कुटकी  
और सुगन्धबाला इन सबका तीन तीन माशे  
लेकर कक्क बना ६४ तोले सरसों के तैल में डाल-  
कर मिट्टी के पात्र में ७ दिन तक रक्खा रहने  
दे, बाद में खोलकर उस कक्क को निकालकर  
६ माशे कजली डालकर अच्छी तरह मिलाकर  
मुँके हुए शिर पर लेप करना चाहिए। यह रस  
वेद शीर्षाम्बु रोग को शीघ्र ही अच्छा करता है।  
इसे रोगियों के लाभ के लिए श्रीशिवजी ने कहा  
है ॥ १६-१६ ॥

वह्निभास्कर रस ।

सुवर्णमभ्रं वैक्रान्तं रजतं शाण्डमान-  
कम् । लौहं रसं गन्धरुञ्च मात्तिकं कर्प-  
सम्मितम् ॥ २० ॥ रक्त्रचित्रकतोयेन तथा  
ब्राह्म्या रसेन च । त्रिःसप्तकृत्वः स-  
म्भाव्य कुर्याद्वल्ग्वमिता वटीः ॥ २१ ॥  
रसोऽयं सर्वथा हन्ति मस्तिष्कोदकमाशु  
च । अन्यांश्च शिरसो रोगान् वह्निस्त्वृण-  
गणानिव ॥ २२ ॥ वह्निवद्भासते यस्मा-  
द्वीर्यैर्गोव रसोत्तमः । ख्यातः पृथ्वी-  
तले तस्मादाख्यया वह्निभास्करः ॥ २३ ॥

सुवर्ण, अभ्रक, वैक्रान्त और चांदी की भस्म  
प्रत्येक तीन-तीन माशे । लौहभस्म पारद,  
गन्धक और स्वर्णमात्तिक की भस्म प्रत्येक एक-  
एक तोला । लाल चित्रक के रस से तथा प्र झी  
के रस से २१ भावना देकर दो-दो रभी की  
गोलियाँ बनानी चाहिए । यह रस शीर्षाम्बु  
रोग को सदैव ही नष्ट करता है पथम् और भी  
दूसरे शिरारोगों को इस प्रकार नष्ट करता है  
जैसे अग्नि तिनकों को नष्ट करता है । यह रस,  
वीर्य और वर्ण से अग्नि के समान प्रतीत  
होता है, इसी से इसे वह्निभास्कर कहते  
है ॥ २०—२३ ॥

नैवं शान्तिगते व्याधौ मस्तिष्कात्  
सलिलं हरेत् । त्रिकूर्चकेन लघुना यत्नतः  
कुशलो भिषक् ॥ २४ ॥

यदि रोग शान्त न हो तो चतुर वैद्य को हल्के  
हाथ से त्रिकूर्चक यंत्र द्वारा मस्तिष्क में से जल  
निकालना चाहिए ॥ २४ ॥

लघुपुष्टिकरं सर्व्व पानमन्नं रसञ्च  
यत् । मस्तिष्काम्बुनि तत्पथ्यं विपरीतं  
हिताय न ॥ २५ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां शीर्षाम्बुरोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

शीर्षाम्बु रोग में हल्का, पौष्टिक अन्न-पान  
और रस पथ्य है । इससे विपरीत अपथ्य  
है ॥ २५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्या भाषाटीकायां शीर्षाम्बु-  
रोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ मूर्च्छाधिकारः ।

सेकावगाहौ मग्नयः सहाराः शीताः  
प्रदेहा व्यजनानिलाश्च । शीतानि पानानि  
च गन्धवन्ति मर्वासु मूर्च्छास्वनिवारि-  
तानि ॥ १ ॥

सय प्रकार की मूर्च्छाओं में शीतल जल का  
सेक नदी आदि का स्नान, मण्डिपुत्र द्वार पद-  
नना, ठंडे लेप, पंखे की हवा और सुगन्धित ठंडे  
शर्बत आदि का पीना लाभदायक है ॥ १ ॥

रक्षजायां तु मूर्च्छायां हितः शीत-  
क्रियाविधिः । मद्यजायां यमेन्मयं निद्रां  
सेपेद् यथामुखम् ॥ विषजायां विषघ्नानि  
भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

रत्न मूर्च्छा में शीत उपचार हितकर है ।

मदिरा की मूच्छा में वमन करना और सुख-पूर्वक शयन करना हितकर है । विषजन्य मूच्छा में विषनाशक प्रयोग करना उचित है ॥ २ ॥

कोलमज्जोपणोशीरकेशरं शीतवारि-  
णा । पीतं मूच्छां जयेल्लीद्वा कृष्णां वा  
मधुसंयुताम् ॥ ३ ॥

'वेर की गुठली की मींगी, कालीमिर्च', खस और नागकेसर; इनके चूर्ण को जल के साथ पीने से अथवा पीपरी और शहद मिलाकर चाटने से मूच्छा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

पिवेद्दुरालभाकार्थं सघृतं भ्रम-  
शान्तये ॥ ४ ॥

जवासा के काढ़े में घी मिलाकर पीने से भ्रमरोग की शान्ति होती है ॥ ४ ॥

त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पय-  
सोऽपि वा । रसायनानां कौम्भस्य सर्पिणो  
वा प्रशस्यते ॥ ५ ॥

रसायनानां शिलाजत्वादिरसायन-  
प्रयोगाणाम् । कौम्भं सर्पिर्देशान्दिकम् ।

त्रिफला, दूध अथवा शिलाजीत आदि रसायन या दशवर्ष के पुराने घृत का सेवन करना मूच्छारोग में हितकर है ॥ ५ ॥

मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ  
गुडार्द्रकं प्रातः । सप्ताहात् पथ्यभुजो  
मदमूच्छाकामलोन्मादान् ॥ ६ ॥

प्रतिदिन रात्रि के समय शहद के साथ त्रिफला का और प्रातःसमय शहद और गुड का सेवन करने से पर्य वधु का सेवन करनेवाले रोगी के सात दिन में मद, मूच्छा, कामला और उन्माद रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

अञ्जनान्यरपीडश्च धूमः प्रथमनानि  
च । सूचिभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा  
नखान्तरे ॥ ७ ॥ लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च  
दन्तदशनमेव च । आत्मगुमावर्षञ्च हित-  
स्तस्यावयोधने ॥ ८ ॥

नेत्र अञ्जन लगाने से, निगुण्टी, आदि के नस्य लेने से, धूम्रपान करने से, सोंठ-मिर्च आदि का चूर्ण सूँघने से, सुई चुभोने से, लोह की सलाई आदि से दागने से, नखों के मांस में पीड़ा करने से, बाल और रोमों के उखाड़ने से, दाँत से काटने से और कोंब की फली को शरीर पर रगड़ने से मूर्च्छित रोगी होश में आ जाता है ॥ ७-८ ॥

गुडं पिप्पलीमूलस्य चूर्णेनातिचितं  
लिहन् । चिरादपि च संनष्टं निद्रामाप्नो-  
त्यसंशयम् ॥ ९ ॥

पीपामूल के चूर्ण में गुड मिलाकर खाने से बहुत दिन की नष्ट हुई निद्रा भी शीघ्र आ जाती है । इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

इक्षवः पोतकी मापाः सुरा मांसं घृतं  
पयः । गोधूमगुडमत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति  
देहिनाम् ॥ शक्राशनमजाक्षीरं पाद्ले-  
पात्तदर्थकृत् ॥ १० ॥

ईल, पोई का साग, उड़द, मदिरा, मांस, घी, दूध, गेहूँ, गुड और मछली के राने से रोगी को नींद आ जाती है तथा भगि को बकरी के दूध में पीसकर पैरों पर खेप करने से भी नींद आ जाती है ॥ १० ॥

अश्वगन्धारिष्ठ ।

तुलाद्धं चाश्वगन्धाया मुशल्याः पल-  
विंशतिः । मञ्जिष्ठाया हरीतक्या रज्ज्यो-  
र्मधुकस्य च ॥ ११ ॥ रास्नाविदारीपार्थानां  
मुस्तकत्रिष्टोतीरपि । भागान् दशपलान्  
दद्यादनन्ताश्यामयोस्तथा ॥ १२ ॥

चन्द्रनद्वितयस्यापि वचायाश्चित्रकस्य च ।  
भागानष्टपलान् क्षुण्णानष्ट्रोणेऽम्भसः  
पचेत् ॥ १३ ॥ द्रोणशेषे कपापेऽस्मिन्  
पूने शीते प्रदापयेत् । धातक्याः पीडश-  
पलं मात्तिकस्य तुलात्रयम् ॥ १४ ॥

व्योपस्य द्विपलञ्चापि त्रिजातकचतुःपलम् ।  
चतुःपलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥  
१५ ॥ मासादूर्ध्वं पिबेदेनं पलार्द्धपरि-  
माणतः । मूर्च्छामपस्मृतिं शोषमुन्मादमपि  
दारुणम् ॥ १६ ॥ कार्श्यमशीसि मन्द-  
त्पमग्नेर्वातभवान् गदान् । अश्वगन्धा-  
धरिष्टोऽयं पीतो हन्यादसंशयम् ॥ १७ ॥

नागौरी असगन्ध २॥ सेर, मुसली १ सेर,  
मँजीठ, हठ, हल्दी, दारदहदी, मुलेठी, रासना,  
विदारीकन्द, अजुन जी छात, नागरमोधा और  
निमोय, प्रत्येक आध आध सेर । अनन्तमूल,  
कालीसर, लातचन्दन, सफेद चन्दन, बच,  
चीता की जड़, प्रत्येक ३२-३० तोले । सबको  
कूटकर २ मन ४ सेर ६४ तोले जल में पकावे ।  
जब २५ सेर ४८ तोला काथ बाकी रहे तब  
उतारकर कपड़े से छान ले । काथ उंडा होने  
पर घाय के फूल ६४ तोले; शहद १५ सेर;  
सोंठ, मिर्च और पीपरि आठ तोले, दालचीनी,  
तेजपात और छोटी इलायची १६ तोले; प्रियंगु  
के फूल १६ तोले और नागकेशर ८ तोले,  
इनको कूटकर उस काथ में मिलाकर एक  
महीना भर धरा रहने दे । एक महीने परचाव  
२ तोले की मात्रा में इसका सेवन करे । मूर्च्छा,  
अपस्मार, जोष, कठिन उन्माद, कृशता, बवा-  
सीर, अग्निमान्य और वातज रोगों को यह  
अश्वगन्धादिष्ट निःसन्देह नष्ट करता है ॥११-१७॥

सुधानिधि रस ।

ऋणा मधुयुतं मृतं मूर्च्छायामनुशील-  
येत् । शीतसेकावगाहादि सर्प वा शीतलं  
भजेत् ॥ सुधानिधिरसो नाम मदमूर्च्छा-  
विनाशनः ॥ १८ ॥

रससिद्धि को पीपल के चूर्ण तथा शहद  
के साथ मूर्च्छा रोग में सेवन कराना चाहिए ।  
ठंडे जल में परिपेक तथा स्नान आदि एषम्  
शीतल वस्तुओं का सेवन कराना चाहिए ।  
यह रस मद तथा मूर्च्छा को नष्ट करता  
है ॥ १८ ॥

मूर्च्छान्तक रस ।

सिन्दूरं मात्तिकं हेम शिलाजत्वयसी  
तथा । शतमूल्या विदार्याश्च स्वरसेन  
विभावयेत् ॥ १९ ॥ श्लक्ष्णं पिष्ट्वा ततः  
कुर्याद् वटिका वल्लसम्मिताः । रसो  
मूर्च्छान्तको हन्यादसौ मूर्च्छां शिवो-  
दितः ॥ २० ॥

रस सिन्दूर, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाषिक भस्म,  
शिलाजीत, लोहभस्म, इन्हें बराबर मात्रा में  
मिलाकर शतावरी तथा विदारीकन्द के रस से  
भावना देकर दो-दो रत्नी की गोलियाँ बनावे ।  
यह शिवजी का कटा हुआ मूर्च्छान्तक रस मूर्च्छा  
रोग को नष्ट करता है ॥ १९-२० ॥

मूर्च्छारोग में पथ्य ।

छाया नमोऽम्भः शतधौतसर्पिर्मृद्नि  
तिक्कानि च लाजमण्डः । जीर्णा यवा  
लोहितशालयश्च कौम्भं हविर्मुद्गसतीन-  
यूपाः ॥ २१ ॥ धन्वोद्भवा मांसरसारच  
रागाः सपाडवा गन्धपयः सिता च ।  
पुराणकूप्माण्डपटोलमोचं हरीतीदादिम-  
नारिकेलम् ॥ २२ ॥ अत्युच्चशब्दोऽद्भु-  
तदर्शनश्च गीतानि वाद्यानि च वोक्त्-  
टानि । श्रमः स्मृतिश्चिन्तनमात्मबोधो  
धैर्यश्च मूर्च्छान्ति पथ्यवर्गः ॥ २३ ॥

छाया, वर्षा का पानी, सौ धार घोया हुआ घृत,  
शुद्ध तथा तिस्र पदार्थ, लील से घने हुए मण्ड,  
पुराने जौ, लालरगल चावल, दस वर्ष का  
पुराना घृत, मूँग तथा मटर का घृत, जहली  
जीवों के मांस का रस राग पादक, गी का दुग्ध,  
पूर, पुराना पेड़ा, परवल, कंला, दूध, धनार,  
नारियल, अत्यन्त ऊँचा शब्द, अद्भुत पदार्थों  
का दिखाना, ऊँचा गाना, राजाणा, श्रम, हृह-  
रमरण, चिन्तन, आत्मज्ञान और धैर्य; ये मूर्च्छा  
रोगों के लिए पथ्य हैं ॥ २१-२३ ॥



मूर्च्छारोग में अपथ्य ।

ताम्बूलं पत्रशाकश्च दन्तवर्षणमात-  
पम् । विरुद्धान्यन्नपानानि व्यवायं स्वेदनं  
कटु ॥ तृणिनद्रयोर्वैगरोधं तक्रं मूर्च्छामयी  
त्यजेत् ॥ २४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूर्च्छा-  
धिकारः समाप्तः ।

पान, सरसों आदि के पत्ता का शाक, दातुन  
करना, धूप, विरुद्ध अन्न-पान, मैथुन, स्वेद, चरपरे  
पदार्थ, प्यास एवं निद्रा के बंध को रोकना तथा  
तक्र; ये मूर्च्छा रोगी के लिए अपथ्य है ॥ २४ ॥

इति श्रीसरभूपसादात्रिपाठिविरचितायांभैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायीं व्याख्यायां  
मूर्च्छाधिकारः समाप्तः ।

अथ उन्मादाधिकारः ।

उन्मादे वातिके पूर्व स्नेहपानं विरेच-  
नम् । पित्तजे कफजे वान्तिः परो वस्त्या-  
दिकः क्रमः ॥ १ ॥

वातज उन्माद में पहले स्नेहपान, पित्तज  
में विरेचन और कफज में वमन कराकर परचाप्  
वस्तिन आदि क्रिया करनी चाहिए ॥ १ ॥

यच्चोपदेद्यने क्रिश्चिद्रपस्मारचिकि-  
त्सिने । उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्यादोष-  
दूप्ययोः ॥ २ ॥

शोष और दूप्य की समानता होने से जो  
कुछ अपस्मार रोग की चिकित्सा में कहा  
जायगा वह सब उन्माद रोग में भी करना  
चाहिए ॥ २ ॥

ब्राह्मी कृत्माएडफलं पडग्रन्था शङ्ख-  
पुष्पिकाग्ररसाः । उन्मादहतो दृष्टाः पृथ-  
गेने कुष्ठमधुमिश्राः ॥ ३ ॥

ब्राह्मी, पेटा, पत्र और शङ्खपुष्पी; इनमें ।

से प्रत्येक के रस में कूट और शहद मिलाकर  
पीने से उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सम्भोज्य पिकमांसं वा निर्वति स्वाप-  
येत् सुखम् । त्यक्त्वा स्मृतिमतिभ्रंशं  
संज्ञां लब्ध्वा प्रबुध्यते ॥ अपक्वचटकक्षीर-  
पानमुन्मादनाशनम् ॥ ४ ॥

तरुणचटकमांसं शुष्कीकृत्य तच्चूर्णं  
दुग्धेन सह पातव्यम् ।

उन्मादी को कौयल का मांस खिलाकर  
वायु-रहित स्थान में सुला देने से मतिभ्रंश और  
स्मृतिभ्रंश आदि विकारों से रहित होकर यह  
चेतनता को पाकर जाग उठता है ।

गौरिया चिकिया के जवान बच्चे के मांस को  
सुखाकर, चूर्ण सा करके दूध के साथ पीने से  
उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कृत्माएडकबीजकल्कः पीतो विनाश-  
यत्यपि । उन्मादरोगमत्युग्रं मधुना दिव-  
सत्रयम् ॥ ५ ॥

पेटे के बीजों के चूर्ण को शहद के साथ चाटने  
से तीन दिन में अत्यन्त प्रचण्ड उन्माद रोग नष्ट  
होता है ॥ ५ ॥

उन्मादे समधुः पंयः शुद्धो वा ताल-  
शाखज । रसो नस्येऽभ्यञ्जने च सार्षपं  
तैलमिप्यते ॥ ६ ॥ चद्रं सार्षपतैलाक्त्र-  
मुत्तानश्चातपे न्यसेत् । पुराणमथवा सर्पिः  
पिबेत् प्रातरतन्द्रितः ॥ ७ ॥

ताड़ की शाखा के रस में शहद मिलाकर  
प्रथवा केवल रस ही उन्माद के रोगी को  
पिलावे अथवा गरमों के तैल की नस्य दे और  
मानिश करे । या रोगी के शरीर में कटुधा  
तेज लगाकर धूप में चिप छोड़ा दे और रात्री  
आदि से चापि द अथवा प्रातःकाल निरम्बर  
पुराणा की पिलावे तो उन्माद रोग नष्ट होता  
है ॥ ६-७ ॥

शुद्धस्याचारविधिर्मे तीक्ष्णं नावन-

मञ्जनम् । ताडनञ्च मनोबुद्धिस्मृतिसंवेदनं  
हितम् ॥ ८ ॥ तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं  
हर्षणं भयम् । विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्न-  
यन्ति प्रकृतिं मनः ॥ ९ ॥

आचार-विचार को नष्ट करनेवाले उन्माद  
रोग में रोगी को वमन-विवेचन आदि से शुद्ध  
करके फिर तेज नश्य और भ्रंजन से तथा ताडन,  
भयप्रदर्शन, इच्छित दान, सान्त्वना हर्षोत्पादन  
और विस्मयजनन से तथा मन, बुद्धि और  
स्मृति के प्रकृतिस्थ होने से उन्माद रोग दूर  
हो जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्प्यालोभसम्भ-  
वान् । परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं  
नयेत् ॥ १० ॥

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और  
लोभ से उत्पन्न हुए उन्मादों को परस्पर प्रतिद्वन्द्वी  
उपायों द्वारा शान्त करना चाहिए ॥ १० ॥

इष्टद्रव्यविनाशांस्तु मनो यस्योपह-  
न्यते । तस्य तत्सदृशप्राप्तया सान्त्वास्वा-  
सैरच तं जयेत् ॥ ११ ॥

प्रिय वस्तु के विनाश से जिसके मन को  
घोट लगी हो उसको वैसी ही वस्तु की प्राप्ति  
से, सान्त्वना और आदवासन से स्वस्थ करना  
चाहिए ॥ ११ ॥

सर्पिःपानादिनागन्तौ मन्त्रादिश्चे-  
प्यते विधिः । पूजाव्युपहोरिष्टहोममन्त्रा-  
ञ्जनादिभिः ॥ जपेदागन्तुमुन्मादं यथा-  
विधि शुचिर्मिपक् ॥ १२ ॥

आगन्तुक उन्माद रोग में घृतपान आदि  
से तथा चतुर वैद्य शुद्ध होकर मन्त्र-जप, पूजा,  
बलि, भेंट, यज्ञ, होम, मन्त्र-तन्त्र और मञ्जन  
आदि में उन्मादी को प्रकृतिस्थ करे ॥ १२ ॥

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धि-  
मान् । रजयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूर-  
मेव च ॥ १३ ॥

देवर्षि, पितर और गन्धर्वों के आदेश से  
उत्पन्न उन्माद रोग में [बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण  
भ्रंजन आदि तथा ज्ञेशजनक अन्यान्य कर्मों  
का परित्याग कर दे ॥ १३ ॥

पानीयकल्याणक घृत ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदावै-  
लवालुकम् । स्थिरा नतं हरिद्रे द्वे सारिषे  
द्वे प्रियंगुकम् ॥ १४ ॥ नीलोपल्लैला  
मञ्जिष्ठा दुन्ती दाडिमकेशरम् । तालीश-  
पत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ १५ ॥  
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ।  
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरुन्मत्तमन्वितैः ॥  
१६ ॥ चतुर्गुणं जलं दद्यात् घृतप्रस्थं  
विपाचयेत् । अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे  
मन्दानले क्षये ॥ १७ ॥ वातरक्ते प्रति-  
श्याये तृतीयकचतुर्थके । वम्यशोभूत्र-  
कृच्छ्रेषु विसर्पोपहतेषु च ॥ १८ ॥ कण्डू-  
पाण्डुमयोन्मादविषमेहगरेषु च । दोषो-  
पहतचिचानां गद्गदानामरेतसाम् ॥ १९ ॥  
शस्तं स्त्रीणाञ्च बन्ध्यानां वर्णयुर्बलवर्द्ध-  
नम् । अलक्ष्मीपापरक्षोभं सर्वग्रहनिवा-  
रणम् । कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं  
पुंसवनेषु च ॥ २० ॥

इन्द्रायण, त्रिफला सैमालू के बीज, देव-  
दार, पलवालुक, ( मुगन्ध द्रव्य ), शाकपर्णी,  
तगर, हल्दी, दारहल्दी, अनन्तमूल, कालीसर,  
प्रियंगु के फूल, नीलकमल, छोटी इलायची,  
मैजीठ, दन्ती की जड़, अगारदाना, नागकेशर,  
तालीशपत्र, बड़ी बटेरी, मालती के नवीन फूल,  
बाबविडंग, पिठवन, बूट लाल चन्दन और  
पद्माल, प्रत्येक एक-एक तोला लेकर कलक  
बनावे । गौ का घृत १२८ तोले । पाकार्थं जल  
६ सेर ४८ तोले । विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर  
रोगी को पान कराना चाहिए । यह कल्याणक

घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, घातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर, वमन, बवाभीर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, लुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विपदोष और प्रमेह आदि रोगों को नष्ट करता है। गद्गद बोलनेवाले तथा क्षीणवीर्य एवं दोषों से नष्ट चिन्तवाले पुरुषों के लिए और बाँझ स्त्रियों के लिए हितकारी है। बज, चर्मा और आयु का बढ़ानेवाला तथा दरिद्रता, पाप राक्षस तथा सब ग्रहों के अरिष्टों को नष्ट करनेवाला और पुत्रकारक योगों में उत्तम है। मात्रा—घाधा तोला से २ तोले तक ॥ १४-२० ॥

चीरकल्याणक घृत ।

द्विजलं तु चतुःक्षीरं चीरकल्याणकं त्विदम् ॥ २१ ॥

चीरकल्याणक घृत में दुगुना जल और चौगुना दूध लेना चाहिए। अन्य सब औषध और त्रिधि पूर्वोक्त कल्याणक घृत के समान ही है ॥ २१ ॥

स्थल्पचैतस घृत ।

पञ्चमूल्यावकारमर्ष्यो रासनैरण्डत्रिष्टद्व-  
चलाः । मूर्धा शतावरी चेति काथैर्द्विपलि-  
कैरिमैः २२ ॥ कल्याणकस्य चाङ्गेन तद्-  
घृतं चैतसं स्मृतम् । सर्वचेतोविकाराणां  
शमनं परमं मतम् ॥ २३ ॥ घृतमस्थोऽत्र  
कर्त्तव्याः काथो द्रोणाम्भसा घृतात् । चतु-  
र्गुणोऽत्र सम्पाद्यः कल्कः कल्याणके-  
रितः ॥ २४ ॥

कारमरी (गंभारी) रहित दोनों पञ्चमूल चर्मात् दशमूल, रासना, चरसद की जड़, निम्बोष, चरेटी, मूर्धा और शतावरी ; प्रत्येक घाठ-घाठ तोले लेकर २२ सेर ४८ तोले जल में कादा करे। जय ६ सेर ३२ तोले शोष रहे तब घान कर रण ले। घी १२८ तोले। दूध ६ सेर ३२ तोले। पानीय कल्याणक घृत में करे हुए कल्कद्रव्य से चौगुना घर्षा कदकद्रव्य

लेना चाहिए। इस घृत को स्थल्पचैतस घृत कहते हैं। यह सब प्रकार के मन-सम्बन्धी विकारों को शान्त करने में श्रेष्ठ माना गया है ॥ २२-२४ ॥

हिङ्गुघ्राद्य घृत ।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्वृताढकम् ।  
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥  
अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद्  
ध्रुवम् ॥ २५ ॥

कल्क के लिए हींग, कारानमक, सोंठ, मिर्च और पीपर ; प्रत्येक घाठ-घाठ तोले। घी ६ सेर ३२ तोले। गोमूत्र २६ सेर ४८ तोले। विधिपूर्वक घृत सिद्धकर इसका पान करे तो उन्माद तथा महाघोर चहुत दिन का अप-स्माररोग नष्ट होता है ॥ २६ ॥

महापैशाचिक घृत ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी  
वचा । त्रायमाणा जया वीरा चोरकं कटु-  
रोहिणी ॥ २६ ॥ कायस्था शूकरी छात्रा  
सातिच्छत्रा पलङ्कपा । महापरुषदन्ता च  
वयःस्था नाकुलीद्वयम् ॥ २७ ॥ कटम्भरा  
वृश्चिकालीस्थिरा चैव शृतं घृतम् । चातु-  
र्थकज्वरोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ २८  
॥ महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथाभृतम् ।  
मेघानुद्धिसृष्टिकरं बालानां चाङ्गुर्द्ध-  
नम् ॥ २९ ॥

कल्क के लिए जटामांसी, हड़ रथेत गुलसी, स्थलकमल (या प्राङ्गी), पोंच के पीप, यध, प्रायमाण, चरणा, पाकोली प्रणियपर्ण (भटे डर) पुडकी, घोटी इलायची, पाराहीकन्द, मीक, मोषा, गूगुळ, शतावरी, गिलोय, रासना, गन्धरासना, कटुधी (अथवा गन्धप्रमारणी), वृश्चिकाली (विद्युपा घास) और शाकपर्णी ; सब मिलित ३२ तोले। घृत १२८ तोले। जल ६ सेर ३२ तोले। विधि-

पुर्वक घृत सिद्ध कर सेवन करने से चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह और अपस्मार का नाश होता है । यह महापैशाचिक घृत अमृत के तुल्य है और मेघा, बुद्धि स्मृति और बालकों के अंगों को पढ़ानेवाला है ॥ २६-२९ ॥

कृष्णामरिचसिन्धूथमधुगोपिर्त्तनिर्मितम् । अञ्जनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशनम् ॥ ३० ॥

पीपरि, कालीमिर्च, संधानमक शहद और गोरोधन; इनको महीन पीसकर आंखों में आंजने से सब प्रकार के भूतोत्थ उन्माद रोग नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

निम्बपत्रवचाहिंसुसर्पनिर्मोकसर्पपैः । डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ ३१ ॥

नीम के पत्ते, वच, हींग, साँप की केंचुल और सरसों, इनको एकत्र कर धूप देने से डाकिनी-पिशाचिनी आदि के आवेश तथा भूतोन्माद नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥

कार्पासास्थिमयूरपिच्छवृहतीनिर्मात्यपिण्डीतकैस्तम्बांशीष्टपदंशविटतुपवचाकेशाहिनिर्मोककैः । गोशृङ्गद्विपदन्तहिंसुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः ॥ ३२ ॥

बिनीले मोरपंख, बर्ही कटेरी, शिवनिर्मात्य, मैनफल, दालचीनी, घंशलोचन, बिहरी की पिष्टा, जौ की भूसी, वच, घाल, साँप की केंचुल, गी का सोंग, हाथीदाँत, हींग और काली मिर्च, इनको सम भाग लेकर धूप बनावे । यह धूप स्कन्द के आवेशज्वर उन्माद तथा पिशाच, राक्षस और देवों के आवेश तथा ज्वर को नष्ट करता है ॥ ३२ ॥

शिवा घृत

शिवायास्तु सुपूतायाः पञ्चाशत्पललात्

पलम् । पञ्च पञ्च समादाय पञ्चमूलीयुगात् पृथक् ॥ ३३ ॥ कुट्टयित्वा चतुःपष्टिशरावैरम्भसः पचेत् । ज्ञात्वा पादावशेषेण तेन काथोदकेन च ॥ ३४ ॥ क्षीरस्याष्टाभिराज्यस्य शरावाणां चतुष्टयम् । यष्टीमधुकमज्जिष्ठा कुष्ठचन्दनपञ्चकैः ॥ ३५ ॥ विभीतकशिवाधात्रीबृहतीतगरपादिकैः । विडङ्गदाडिमीदेवदारुदन्तीहरेणुभिः ॥ ३६ ॥ तालीशकेशरश्यामाविंशालाशालपर्णिभिः । भियंगुमालतीपुष्पकाकोलीयुगलोत्पलैः ॥ ३७ ॥ हरिद्रायुगलानन्तामदैलाहरियालुकैः । सपृश्निपर्णिकैरेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ३८ ॥ सिद्धमेतद् घृतं यच्च तन्मे निगदतः शृणु । देवासुरग्रहग्रस्ते मानसे राक्षसक्षते ॥ ३९ ॥ गन्धर्वधर्षिते चैव पितृग्रहनिपीडिते । मूत्रैरप्यभिभूते च पिशाचैश्च परिप्लुते ॥ ४० ॥ भुजङ्गमृष्टीते च तथा जाङ्गलभक्षिते । यत्रैरपि परिक्षिप्ते भयैरप्यर्दिते भृशम् ॥ ४१ ॥ शस्यते सर्ववाते च सर्वापस्मार एव च । शोषे सोरःक्षते कासे पीनसे च मद्रात्यये ॥ ४२ ॥ मेहे मूत्रग्रहे चैव ज्वरे जीर्णे च शस्यते । वृष्यं पुनर्नवकरं बन्ध्यानामपि पुत्रदम् ॥ ४३ ॥ श्रीविन्ध्यवासिपादेन सिद्धिदं समुदीरितम् । शिवाघृतमिदं नाम्ना शिवायोन्मादिनां सदा । शृगालवर्दिणोः पाके पुमांसं तत्र दापयेत् ॥ ४४ ॥

गोदूत का मांस २॥ सेर और दशमूल की प्रत्येक चौपय बीस-बीस तोले । सबको बूटकर २५ सेर १८ तोले जल में पकावे । जब ६ सेर ३२ तोले बाकी रहे तब उतारकर पान

ले । दूध २५८ तोले, घृत १२८ तोले । ककक के लिए मुलेठी, मँजीठ, कूट, लाल चन्दन, पद्मसख, बहेड़ा, हट, आँधला, बड़ी कटेरी, तगर, बायबिडग, अनारदाना, देवदारु, दन्तीमूल, सँभालू के बीज, तालीशपत्र, नागकेशर, कालीसर, इन्द्रायण की जड़, शालपर्णी, त्रिपंगु के फूल, मालती के फूल, काफोली, खीरकाफोली, नील कमल, हल्दी, दारहल्दी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची, एलुया, और पृश्निपर्णी, प्रत्येक एक-एक तोला । इनसे विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए घृत का गुण कहता हूँ, सुनिए । इस घृत को देव, असुर, ग्रह, राक्षस, गन्धर्व, पितृग्रह, भूत, पिशाच, नाग और यक्ष आदि से मीदित रोगी को सेवन कराना चाहिए । सब प्रकार के वातरोग, अपस्मार, शोथ, उरःक्षत, खाँसी, पीनस, मदारयय, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और जीर्णज्वर में हितकर है । वृष्य, बलवद्धक और बालक बच्चों को पुत्र देनेवाला है, उन्माद रोगवालों के कषयाण के लिए सिद्धिदाता शिवाघृत को श्रीविष्णुवासी ने कहा था । गीदद और मोर के पाक में नर गीदद और नर मोर लेना चाहिए ॥ ३३-४४ ॥

तेलं नारायणं वापि महानारायणं तथा । हितमत्र प्रयोक्तव्यमिति चक्रेण भाषितम् ॥ ४५ ॥

नारायण तेल अथवा महानारायण तेल का प्रयोग करना भी उन्मादरोग में हितकर है । यह चक्रदत्त ने कहा है ॥ ४५ ॥

सारस्वत चूर्ण ।

कुष्ठाश्मगन्धे लगणाजमोत्रे द्वे जीरके श्रीणि कद्रूनि पाठा । माद्रल्पपुष्पी च समान्यमूनि सर्वैः समानाश्च वचां विचूर्ण्य ॥ ४६ ॥ ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाज्यं पारश्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम् मापममाणं मधुना घृतेन लिघान्नरः सप्तदिनानि चूर्णम् ॥ ४७ ॥ सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । हिताय सर्व-

लोकानां दुर्मेधसां विचेतसाम् ॥ ४८ ॥ एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः । सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्धतो-त्तरोत्तरम् ॥ ४९ ॥

कूट, असगन्ध, सँधानमक, जवायन, जीरा, कालाजीरा, त्रिकटु ( सोंठ मिर्च, पीपरि ), पाड़, शंखपुष्पी हर एक १ तोला, वच ११ तोले, इन्हें एकट्ठा मिलाकर ब्राह्मी के रस से तीन बार भावना दे और सुखाकर चूर्ण कर ले । इस चूर्ण को १ माशा लेकर शहद तथा घृत के सात दिन तक सेवन करे । इसके सेवन से मनुष्यों की बुद्धि, मेधा, स्मृति, धृति, सम्पत्ति तथा कविताशक्ति बढ़ती है ॥ ४६-४९ ॥

उन्माद गजकेसरी ।

शुद्ध सूतं वचाकाथैस्त्रिदिनमर्दयेत्ततः शङ्ख पुष्पा रसैस्तद्गन्धकं मर्दितंक्षिपेत् ॥ ५० ॥ गोमूत्रमर्दितं गोलं कृत्वा मूष्या निरोधयेत् सप्तधाऽऽलेप्य मृद्वस्त्रैः पुटितं स्नाद्ग शीतलम् ॥ ५१ ॥ चूर्णाकृतं चतुर्वल्लं समसर्प चूर्णकम् जीर्णपूतानुपानञ्च नस्ये स्नेहं तु सर्पपम् ॥ ५२ ॥ कारयेत्तेन चाभ्यङ्गं दिनानामेकं विंशतिम् उन्मादापस्मृती हन्ति हुन्मादं गजकेसरी ॥ ५३ ॥

शुद्ध पारे को वच के घाय के साथ ३ दिन तक घोंटे और इसी प्रकार इतने ही गन्धक को शहपुष्पी के रस में घोंटे कर दोनों को मिला गोमूत्र में घोंटे गोला बनाकर रखे फिर उसे मूषा में बन्द कर सात घण्टाभित्ती का जेप देकर भूषण यत्र में लघु पुट देवे टंढा हो जाने पर महीन पीस कर १२ रशी की मात्रा लेकर उसके समान पीली सरसों का चूर्ण मिलाकर पुराने पी के साथ देवे । सरसों के नेरा से मस्य देवे । उसी से शरीर में मालिश करावे । देमा २१ दिन तक करने रहने से उन्माद और अपस्मार को गट कर देता है । पित्तोप चतुर्मुत्त है ॥ ५०-५३ ॥

उन्मादभञ्जन रस ।

त्रिकटु त्रिफला चैव गजपिप्पलिका  
तथा । देवदारु विडङ्गश्च किरातं कटुकी  
तथा ॥ ५४ ॥ कण्टकारी च यष्टीन्द्रयवं  
चित्रकमेव च । बला च पिप्पलीमूलं  
मूलश्च वीरणस्य च ॥ ५५ ॥ शोभाञ्ज-  
नस्य बीजानि त्रिवृता चेन्द्रवारुणी । वङ्गं  
रूप्यमभ्रकश्च प्रवालं समभागिकम् ॥ ५६ ॥  
सर्वचूर्णसमं लौहं सलिलेन विमर्दयेत् ।  
उन्मादमपि भूतोत्थमुन्मादं वातजं तथा ॥  
५७ ॥ अपस्मारं तथा कार्श्यं रक्त्विपित्तं  
सुदारुणम् । नाशयेदविकल्पेन रसरचो-  
न्मादभञ्जनः ॥ ५८ ॥

त्रिकटा, त्रिफला, गजपीपरि, देवदारु बाय-  
विषह, चिरायता, कुटकी, छोटी कटेरी,  
मुलेठी, इन्द्रजौ चित्रक, खरेटी, पीपलामूल,  
खस सहिजना के बीज, निसोत इन्द्रायण,  
वङ्गभस्म, चाँदी की भस्म । अभ्रकभस्म, मूँगा-  
भस्म, हरएक १ तोला । लोहभस्म २५ तोले ।  
इन्हें एकत्र जल से घोटकर दो दो रत्ती की  
गोलियाँ बनावे । यह रस भूतोन्माद, वातज  
उन्माद, अपस्मार, कुशता तथा रक्त्विपित्त  
आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ ५४-५८ ॥

चतुर्भुज रस ।

मृतमृतस्य भागौ द्वौ भागैकं हेमभस्म-  
कम् । शिला कस्तूरिका तालं प्रत्येकं  
हेमतुल्यकम् ॥ ५९ ॥ सर्वं खल्लतले  
क्षिप्त्या कन्याया मर्दयेद्रसैः । परं डपरै  
रापेष्टय धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ ६० ॥  
संस्थाप्य च तद्दुग्धृत्य सर्परोगेषु योज-  
येत् । एतद्रसायनं श्रेष्ठं त्रिफला मधुमर्दि-  
तम् ॥ ६१ ॥ तद्यथाग्निमलं खादेद्  
बलीपलितनाशनम् । अपस्मारे ज्वरे कासे

शोषे मन्दानले क्षये ॥ ६२ ॥ हस्तकम्पे  
शिरःकम्पे गात्रकम्पे विशेषतः । वातपित्त-  
समुत्थारच कफजान्नाशयेद् ध्रुवम् ॥  
चतुर्भुजरसो नाम महेशेन प्रका-  
शितः ॥ ६३ ॥

पारदभस्म, ( रससिन्दूर ) २ भाग, स्वर्ण  
भस्म १ भाग, मैतसिल १ भाग, कस्तूरी १  
भाग हरिताल १ भाग, इन्हें एकत्र खरल में  
डालकर ग्वारपाठे के रस से घोटें फिर इसे  
अरखी के पत्तों में लपेटकर धान्यराशि में ३ दिन  
पड़ा रहने दे । परचात् निकालकर अग्नि तथा  
बल के अनुसार सेवन करावे । मात्रा—१ रत्ती ।  
अनुपान—त्रिफला तथा शहद । इसके सेवन से  
बलीपलित, अपस्मार, उन्माद, ज्वर, खाँसी,  
शोष, मन्दाग्नि, क्षय, हस्तकम्प, शिरःकम्प,  
गात्रकम्प आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ५९-६३ ॥

उन्मादगजाङ्कुरा ।

त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीरसैः पुनः ।  
त्रिपुष्टिद्रवैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रि-  
काम् ॥ ६४ ॥ कृत्वा तप्तां सगन्धान्तां  
युक्त्या बन्धनमाचरेत् । तत्समं कानकं  
बीजमभ्रकं गन्धकं विपम् ॥ ६५ ॥ मर्द-  
येत्त्रिदिनं सर्वं गुञ्जार्द्धं च प्रयोजयेत् ।  
दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेष-  
पतः ॥ ६६ ॥

२ तोले पारद को घृत्वा, गजपीपरि और  
कुचिला के रस में अलग-अलग तीन-तीन दिन  
घोटें । परचात् ऊर्ध्वपातन करके उसमें २ तोले  
गन्धक भिलाकर सूर्य के समान गोल टिकिया  
बना ले । फिर उस टिकिया को स्वल्पपुट में  
पकाकर उसमें घृत्वे के बीज २ तोले, अभ्रक  
२ तोले गन्धक २ तोले और मोठा विप २  
तोले मिलाकर ३ दिन खरल कर चापी चापी  
रत्ती की गोली बना ले । यह उन्मादगजाङ्कुर  
रस दोषोन्माद भी शीघ्र नष्ट करता है । विशेष

कर भूतोन्माद में अधिक लाभदायक होता है ॥ ६४-६६ ॥

• कामदुधा ।

मौक्तिकस्य प्रवालस्य मुक्ता शुक्ति भवस्य च । वराटिकायाः शङ्खस्य भस्मानि गैरिकं तथा ॥ ६७ ॥ गुडूचिकोद्भवं सत्त्वं समभागानि कारयेत् अजाजिका सिताभ्याश्च गृह्णीयाद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ६८ ॥ जीर्णज्वर भ्रमोन्माद पित्तरोगेषु शस्यते । अम्लपित्ते सोमरोगे योज्यः कामदुधा-रसः ॥ ६९ ॥

मोती प्रवाल मोती की सीप काँड़ी इस सबकी भस्में सोनागूरु और गुडूची सब ये समान भाग लेकर सबको भिजा घोट कर रखे और फिर इसमें से २ रत्ती की मात्रा में २ माशे जीरा, ३ माशे शकर के साथ देने से पुराना ज्वर, भ्रम, उन्माद, पित्तरोग, अम्लरिक्त, सोमरोग ये सब दूर हो जाते हैं । विशेष अनुभूत ॥ ६७-६९ ॥

भूताङ्कुश रस ।

सूतायगस्तारताञ्च शुक्ला चापि समं समम् । सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला ॥ ६० ॥ तुत्थं तिलाञ्जनं शुद्धमन्ध्रिकेन रसाञ्जनम् । पञ्चानां लवणानाञ्च प्रतिभागं रसोन्मितम् ॥ ७१ ॥ भद्रराजवित्रयज्ञीदुग्धेनापि विमर्दयेत् । दिनान्ते पिरिहत्तं कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ ७२ ॥ भूताङ्कुशो रसो नाम नित्यं गुञ्जाद्वयं लिहेत् । आर्द्रकस्य रसेनापि चोन्मादे भूतजिहसः ॥ ७३ ॥ माह्विपञ्च घृतं क्षीरं गुर्नमपि भोजयेत् । अथ्यद् कटुतैलेन हितो भूताङ्कुशे रसे ॥ ७४ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, लोहभस्म १ तोला,

चाँदी की भस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, मोतीभस्म १ तोला, हीरे की भस्म ३ माशे, शुद्ध हरताल १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध मैन्शिल १ तोला, शुद्ध तूतिया १ तोला, काला सुरमा १ तोला, समुद्रफेन १ तोला, रसौत १ तोला तथा पाँचों नमक एक-एक तोला । सबको एकत्र कर भँगरा के रस, चीता के काढ़ा और भूर के दूध में १ दिन घोटकर गोला बना ले और उस गोले को संपुट में बन्दकर गजपुट में फूँक दे । मात्रा—२ रत्ती । अनुपान—अदरक का रस १ सह उन्माद और भूतोन्माद को जीतता है । भूताङ्कुश रस इसका नाम है । इसके सेवन करनेवाले को भँस का दूध, दही और गुरु पदार्थ भोजन करना चाहिए तथा कटुप तेल से मालिश करनी चाहिए ॥ ७०-७४ ॥

उन्माद में पथ्य ।

गोधूमपुष्टारुणशालयश्च धारोष्ण-दुग्धं शतधौतसर्पिः । घृतं नवीनं च पुरातनं च कूर्मासिपं धन्वरसाः रसालम् ॥ ७५ ॥ पुराणकृष्णारण्डफलं पटोलं ब्राह्मी-दलं वास्तुकतण्डुलीयम् । खराश्वमूत्रं गगनाम्बु पथ्या सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम् । द्राक्षा कपित्थं पनसं च वैद्यैर्विधे-यमुन्मादगदेपु पथ्यम् ॥ ७६ ॥

गेहूँ, मूँग, जाल शालि चावल, धारोष्ण दूध, सौ बार का घोया हुआ घृत, ताजा घी, पुराना घी, कपुप का मांस, जगन्नी पशु-पक्षियों के मांस का रस, आम, पुराना पेठा, परवल, माही, कपुआ, पीलाई गन्धे तथा घोड़े का मूत्र पयां का जड़, हड, मुषणभस्म, नारियल, अमूर, केप, बटहल ये उन्माद में पथ्य हैं ॥ ७५-७६ ॥

अपथ्य ।

मयं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्रा-क्षुधातृकृतमेगधारणम् । व्यायाम-

मापाढफलं कठिल्लकं शाकानि पत्रप्रभ-  
वानि सर्वशः ॥ ७७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुन्मादा-  
धिकारः समाप्तः ।

शराब, विरुद्ध भोजन, उष्ण भोजन, निद्रा,  
भूल तथा प्यास के वेग को रोकना, व्यायाम,  
आपाढ फल, ( खीरा, आरिया आदि ) करेला  
तथा सम्पूर्ण पत्रशाक अपत्य हैं ॥ ७७ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्याया-  
मुन्मादाधिकारः समाप्तः ।

### अपस्माराधिकारः ।

वातिकं वस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो  
विरेचनैः । श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मार-  
मुपाचरेत् ॥ १ ॥

वातज अपस्मार की वस्ति से, पित्तज की  
विरेचन से और कफज अपस्मार की वमन-  
कारक औषधियों से चिकित्सा करनी  
चाहिए ॥ १ ॥

पुष्पोद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्ज-  
नम् । तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं  
स्मृतम् ॥ २ ॥

पुष्प नक्षत्र में निकाले हुए कुत्ते के पित्त  
का अञ्जन तथा उसी में घी मिलाकर धूप देने से  
अपस्मार का नाश होता है ॥ २ ॥

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकलैः ।  
तुण्डैः पत्तैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भि-  
पक् ॥ ३ ॥

नेपत्ता, उबलू, पिक्ली, गीघ, कीट, साँप  
और कौया ; इनकी चोंच, पंख और पिछा की  
धूप देने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मनोहाताद्यर्जञ्चैव शकृत्पारावतस्य  
च । अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्च विशे-  
पतः ॥ ४ ॥

मैनशिल, रसौत और कबूतर की बीट का  
अञ्जन अपस्मार और विशेषकर उन्माद को नष्ट  
करता है ॥ ४ ॥

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनावंशचोरकैः ।  
उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ ५ ॥

सफेद तुलसी, कूट, हब, सुगन्धबाला, गठि-  
घन ( भटेडर ); इन सबको गोमूत्र में पीसकर  
शरीर पर उबटन लगाने से और शरीर पर  
गोमूत्र का सिंचन करने से अपस्मार रोग नष्ट  
होता है ॥ ५ ॥

जतुकाशकृता तद्वदग्धैर्वा वस्तलो-  
मभिः । अपस्मारहरो लेपो मूत्रसिद्धार्थ-  
शिग्रुभिः ॥ ६ ॥

जतुका चर्मचटका ।

चिमगादह की बिछा का अथवा बक्रे के  
बालों की भरम का अथवा गोमूत्र में पिसी  
हुई सरसों और सहिजन की छाल का लेप  
करने से अपस्मार रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

यः खादेत् क्षीरभक्ताशी मात्तिकेण  
वचारजः । अपस्मारं महाघोरं स चिरोत्थं  
जयेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

जो अपस्मार का रोगी प्रतिदिन एक के  
वर्ण को शहद के साथ खाता है और दूध-मात  
का भोजन करता है वह महाघोर पुराने  
अपस्मार रोग को जीत लेता है ॥ ७ ॥

उल्लम्बितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता  
मसी । शीताम्बुना समं पीता हन्त्यपस्मार-  
मुद्धतम् ॥ ८ ॥

फॉमी की रस्मी को जलाकर उसकी भरम  
को ठंडे जल में घोलकर पीने से घोर अपस्मार  
नष्ट होता है ॥ ८ ॥



प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शता-  
वरी । ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मार-  
भेषजम् ॥ ६ ॥

तेल में मिलाकर लहसुन, दूध में मिलाकर  
शतावरी का चूर्ण तथा शहद मिलाकर ब्राह्मी  
के रस का सेवन करना सब प्रकार के अपस्मार  
को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

निर्दुह्यं निर्द्रवां कृत्वा व्यागिकामर-  
नाडिकाम् । तामम्लसाधितां खादेदपस्मार-  
मुदस्यति ॥ १० ॥

बकरी के बच्चे के नाभिनाल को अच्छी प्रकार  
ले निचोड़कर, सुखा कर, अम्लरस से सिद्ध  
कर खाने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ १० ॥

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादि-  
शीतता । दशमूलीजलं तस्य कल्याणा-  
ज्यं च योजयेत् ॥ ११ ॥

जिस अपस्मार के रोगी के हृत्कम्प, अक्षि में  
दर्द, पसीना, हाथ-पौंख का ठण्डा होना आदि  
लक्षण हों तो उसे दशमूली का घृत तथा  
कल्याणघृत का सेवन करना चाहिए ॥ ११ ॥

स्वल्पपञ्चगव्य घृत ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समै-  
धृतम् । सिद्धं चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मार-  
नाशनम् ॥ १२ ॥

गोबर का रस १२८ तोले । खट्टा दही  
१२८ तोले । दूध २२८ तोले, गोमूत्र १२८  
तोले तथा गोघृत १२८ तोले । यथाविधि घृत  
सिद्ध कर पान करने से चातुर्थिक ज्वर, उन्माद,  
ग्रहदोष और अपस्मार ( मृगी ) आदि नष्ट  
होते हैं ॥ १२ ॥

सूदरपञ्चगव्य घृत ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलां रजन्यां कुट-  
जत्वचम् । सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं  
कटुरोहिणीम् ॥ १३ ॥ शम्पाकं

फल्गुमूलञ्च पौष्करं सदुरालभम् ।  
द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशे-  
पिते ॥ १४ ॥ भार्गी पाठा त्रिकटुकं  
त्रिवृतानिचुलानि च । श्रेयसी चाढकी  
मूर्वा दन्ती भूनिम्बचित्रकौ ॥ १५ ॥ द्वे  
सारिवे रोहितकं भूतिकं मद्यन्तिकाम् ।  
क्षिपेत् पिप्प्लवाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः  
पचेत् ॥ १६ ॥ गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीर-  
मूत्रैश्च तत्समैः । पञ्चगव्यमिदं ख्यातं  
महत्तदमृतोपमम् ॥ १७ ॥ अपस्मारं  
ज्वरं कासे श्वयथाबुदरे तथा । गुल्मार्शः-  
पार्श्वरोगेषु कामलायां हलीमके ॥  
१८ ॥ अलक्ष्मीग्रहरक्षोभनं चातुर्थक-  
विनाशनम् ॥ १९ ॥

कादा के लिए दशमूल, त्रिफला, हल्दी,  
दारहल्दी, कुड़ा की छाल, सतौना, खट्टीजिरा,  
नील, कुटकी, अमलतास, कटुमर की जड़,  
पोहकरमूल और जवासा; प्रत्येक आठ-आठ  
तोले । काथार्यं जड़ २६ सेर ४८ तोले ।  
अवशिष्ट ६ सेर ३२ तोले । गोघृत १२८ तोले,  
गोबर का रस १२८ तोले । खट्टा दही १२८  
तोले । दूध १२८ तोले । गोमूत्र १२८ तोले ।  
कक के लिए भार्गी, पादी, सोंठ, मिर्च,  
पीपरि, निसोय, हिमाल ( समुद्र-फल ) गजपीपरि,  
गरहर की जड़, मरौरफली, दन्तीमूल, घिरायता,  
चीता की जड़, दोनों सारिया ( अमन्तमूल  
और कालीसर ) । रोहिड़ा की छाल, अजयाइन  
और मोतिया ( धेला ) के मूल; प्रत्येक एक-  
एक तोला । यथाविधि घृत सिद्ध करें । अमृत  
के मुख्य गुणकारी यह पञ्चगव्य घृत अपस्मार,  
ज्वर, सर्दी, शोथ, उदरविकार, गुदम, पचा-  
सीर, पमली का रोग, कामला, हलीमक और  
चातुर्थिकज्वर को नष्ट करता है तथा घलघनी,  
ग्रह, राक्षसवेश आदि को दूर करता  
है ॥ १३-१९ ॥

महाचैतस घृत ।

शण्णित्त्रचयैरण्डो दशमूली शता-  
वरी । रास्ना मागधिका शिग्रुः काथ्यं  
द्विपलिकं भवेत् ॥ २० ॥ विदारी मधुकं  
भेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा । एभिः  
खजू रमृद्वीकाभीरुयुञ्जातगोक्षुरैः ॥ २१ ॥  
चैतसस्य घृतस्याङ्गैः पक्कव्यं सर्पिरुचमम् ।  
महाचैतससंज्ञं तु सर्वापस्मारनाशनम् ॥  
२२ ॥ गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतु-  
र्थकान् । पापालक्ष्मीर्जयेदेतत् सर्वग्रह-  
निवारकम् ॥ २३ ॥ श्वासकासहरञ्चैव  
शुक्रार्चनविशोधनम् । घृतमानं काथवि-  
धिरिह चैतसवन्मत ॥ २४ ॥ कल्कश्चै-  
तसकल्कोक्कद्रव्यैः सार्द्धञ्च पादिकः ।  
नित्यं युञ्जीतकाप्राप्तौ तालमस्तकमि-  
प्यते ॥ २५ ॥

कादा के लिए सग के बीज, निसोय,  
एरएष की जड़, दशमूल, शतावरी, रास्ना,  
पीपरि और सहिजन की छाल; प्रत्येक  
आठ आठ तोले । पाक के लिए जल २२ सेर  
४८ तोले । अचिशिष्ट ६ सेर ३२ तोले । घृत  
१२८ तोले । कल्क के लिए विदारीकन्द,  
मुलेठी, मेदा, महामेदा, काकोली, धीरकाकोली,  
मिश्री, पिष्टखजूर, मुनष्ठा, शतावरी, युञ्जातक  
( कन्द विशेष ), गोलुरु और स्वल्पचैतस घृत  
के सपूर्ण कल्कद्रव्य ( इन्द्रायन, त्रिफला, सैभालू  
के बीज, देवदारु, प्लुष्ठा, शालपर्णी, तगर,  
हल्दी, दारुहर्दी, सफेद और काली सारिवा,  
मिषगु के फूल, नीलकमल, इलायची, मँजीठ,  
दन्ती, अनार, केसर, तालीशपत्र, पद्मी कटेली,  
चमेली के ताजे फूल, बायधिङ्ग, घृतिरपर्णी,  
कूट, सफेद चन्दन और पद्माक्ष ) सय मिलाकर  
६४ तोले । विधिपूर्वक घृत का पाक करे । यह  
महाचैतस घृत सब प्रकार के अपस्मारों का  
नाशक है तथा विपद्घ्न, उन्माद, प्रतिश्याय,

तृतीयक और चातुर्थिक उवर, पाप, थलक्ष्मी,  
सर्वग्रह, श्वास और खाँसी आदि रोगों को  
नष्ट करता है । शुक्र और रज का शोधन  
करनेवाला है । युञ्जीतक की प्राप्ति न होने पर  
तालमस्तक ग्रहण करना चाहिए ॥ २०-२५ ॥

कृष्माण्ड घृत ।

कृष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे  
पचेत् । यष्ट्यादिकल्कं तत्पानमपस्मारवि-  
नाशनम् ॥ २६ ॥

गौ का घी २ सेर, पेठे का रस ३६ सेर ।  
मुलेठी का कल्क आध सेर । यथाविधि घृत  
सिद्ध कर पान करने से अपस्मार का नाश  
होता है ॥ २६ ॥

पलङ्कपाद्य तैल ।

पलङ्कपाद्यचापय्याष्टिशिकाल्यर्कसर्प-  
पैः । जटिलापूतनाकेशीलाङ्गुलीहिङ्गचो-  
रकैः ॥ २७ ॥ लशुनातिविपाचित्राकुष्ठै-  
विडम्बिश्च पक्षिणाम् । मांसाशिनां यथा-  
लाभं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे । सिद्धमभ्यञ्जना-  
त्तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ २८ ॥ अभ्यङ्गे  
सार्पपं तैलं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।  
सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रैः स्नानोत्सादनमेव  
च ॥ २९ ॥

गुगुल, यच, हृद्, शूरिककाली ( विष्ठाटी ),  
भाक की जड़, सरसों, जटामासी, हृद्, भूतकेशी  
( गन्धमांसी ), कलिहारी, होंग, ग्रन्थिपर्ण  
( भटउर ), लहसुन, अतीस, चीता की जड़,  
कूट और जितनी मिल सके उतनी मासमर्षी  
पक्षियों की बीटों, सय मिलित आध सेर लेकर  
कल्क बनावे । तेल कटुआ २ सेर । यकरी का  
मूत्र ८ सेर । यथाविधि तेल का पाक कर  
माशिश करे तो अपस्मार को नष्ट करे ।  
सरसों के तेल को चौगुने यकरी के मूत्र में सिद्ध  
करके माशिश करे और गोषर का उषटन  
लगाने तथा गोमूत्र से स्नान करने से अपस्मार  
रोग नष्ट होता है ॥ २७-२९ ॥

कल्याण चूर्ण

पञ्चकोलं समरिचं त्रिफला विडसैन्ध-  
वम् । कृष्णाविडङ्गपत्तीकयमानीधान्य-  
जीरकम् ॥ ३० ॥ पीतमुष्णाभ्युना चूर्णं  
वातश्लेष्मामयापहम् । अपस्मारे तथोन्मा-  
देऽप्यर्शां ग्रहणीगदे ॥ एतत्कल्याणकं  
चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ३१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चण्ड, चित्रक, सोंठ,  
कालीमिर्च, त्रिफला, विडनमक, संधानमक  
पीपल, बायबिडङ्ग, करंज, अजवायन, धनियाँ,  
जीरा इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पीने  
से वातकफजन्य रोग, अपस्मार, उन्माद,  
बवासीर तथा ग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं ।  
यह चूर्ण अग्नि को प्रदीप्त करता है । मात्रा—  
१ माश ॥ ३०—३१ ॥

स्मृति सागर रस ।

रसगन्धक तालानां सार्शलाताप्य भास्व-  
ताम् । शुद्धानां सूक्ष्मितानां च चूर्णं भाव्यं  
वचाशृतैः ॥ ३२ ॥ एकत्रिंशत्तिधा पश्चाद्-  
ब्राह्मीवारा तथैव च । कटभी बीजतैलेन  
भावयेदेकवारकम् ॥ ३३ ॥ स्मृतिसागर  
नामाऽयं रसोऽपस्मार नाशनः । सर्पिपा-  
मापमात्रोऽयं भुक्तो हन्यादपस्मृतिम् ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारा गन्धक हरिताल और मैन्सिल  
सोना मासी और ताम्रभस्म सब बराबर लेकर  
कजली का बच और ब्राह्मी के स्वरसों से  
२१-२१ बार घोटकर माल कागंजी के तैल में  
१ बार घोटकर रवे । इसमें १-१ माशा घी के  
साथ देने से अपस्मार का नाश करती है तथा  
पाद रखने की शक्ति ( स्मृति को ) तेज करती  
है ॥ ३२-३४ ॥

चण्डभैरव ।

मृतमूर्तार्कलौहश्च तालं गन्धं मनः-  
शिला । रसाञ्जनश्च तुन्यांशं गोमूत्रेणापि  
मर्दयेत् ॥ ३५ ॥ तं गोलं द्विगुणं गन्धं

लोहपात्रे क्षणं पचेत् । गुञ्जैकप्रमितं  
भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ ३६ ॥ हिङ्गु-  
सौवर्चलं कुष्ठं गवां मूत्रेण सर्पिपा ।  
चतुर्गुञ्जं पिबेच्चानु रसेऽस्मिश्चण्ड-  
भैरवे ॥ ३७ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हरताल,  
गन्धक, मैन्सिल और रसौत, इन सबको सम  
भाग लेकर गोमूत्र में घांटे फिर उसका गोला  
बनावे । सबसे दुगुनी गन्धक मिलाकर लोहे की  
कड़ाही में थोड़ी देर उसे पकावे । इसकी मात्रा  
१ रत्ती की है । इस चण्डभैरव रस को खाकर  
होगी १ रत्ती, काला नमक १ रत्ती और कूट  
२ रत्ती के चूर्ण को एक तोला घी और गोमूत्र  
के साथ पीना चाहिए ॥ ३२-३७ ॥

सूतभस्म प्रयोग ।

शङ्खुष्पीवचाब्राह्मीकुष्ठकैलारसैः सह ।  
सूतभस्मप्रयोगोऽयं रक्तिकैकप्रमाणतः ॥  
३८ ॥ सर्वापस्मारनाशाय महादेवेन  
भाषितः ॥ ३९ ॥

शंखाह्वली, बच, ब्राह्मी, कूट तथा हलायची  
इनके षष्ठ के साथ १ रत्ती पारदभस्म या  
रससिन्दूर खाने से अपस्मार रोग नष्ट होता  
है ॥ ३८-३९ ॥

घातकुलान्तक ।

मृगनाभिः शिला नागकेशरं कलि-  
वृक्षजम् । पारदं गन्धकं जातीफलमैला-  
लवङ्गकम् ॥ ४० ॥ प्रत्येकं कार्पिकञ्चैव  
श्लक्ष्णचूर्णश्च कारयेत् । जलेन मर्दयि-  
त्वा तु वटीं गुञ्जार्धसम्भिताम् ॥ ४१ ॥  
यथा व्याध्यनुपानेन योजयेद्य चिकित्सकः ।  
अपस्मारे महायोरे मूर्च्छारोगे च गस्ये ॥  
४२ ॥ वातजान् सर्वरोगान्दच हन्याटचिर-  
सेवनात् । नातः परतरं श्रेष्ठमपस्मारोऽपु

वर्तते ॥ ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं नाम्ना वात-  
कुलान्तकः ॥ ४३ ॥

कस्तूरी, मैनाशिल, नागकेशर, बहेदा, पारा,  
गन्धक, जायफल, छोटी इलायची, लौंग हरणक  
२ तांले, इन्हें जल में घोटकर आधी रत्ती की  
गोली बनावे। इसके सेवन से अपस्मार, मूच्छ्रा,  
घातव्याधि आदि रोग नष्ट होते हैं। अपस्मार  
( मृगी ) में इससे बढ़कर और कोई रस नहीं  
है ॥ ४०--४३ ॥

अपस्मार में पथ्य ।

नस्यं शिराव्यधो दानं त्रासनं बन्धनं  
भयम् । तर्जनं ताडनं हर्षो धूमपानञ्च  
विस्मयः ॥ ४४ ॥ धीधैर्यात्मादिविज्ञानं  
स्नानमभ्यञ्जनानि च । लोहिताः शालयो  
मुद्गा गोधूमाः प्रतनं हविः ॥ ४५ ॥  
कूर्माभिमं धन्वरसाः दुग्धं ब्राह्मीदलं वचा ।  
पटोलं वृद्धकूप्माएढं वास्तूकं स्वादु दाडि-  
मम् ॥ ४६ ॥ शोभाञ्जनं पयःपेटो द्राक्षा  
धात्री परूपकम् । तैलं खराश्वमूत्रञ्च  
गगनाम्बु हरीतकी ॥ अपस्मारगदे नृणां  
पथ्यमेतदुदीरितम् ॥ ४७ ॥

नस्य, शिरावेध, दान, धमकाना, बांधना,  
डराना, झिड़कना, ताडन, हर्ष, धूमपान,  
आश्चर्यजनक हरय आदि, बुद्धि, धृति,  
आत्मादि ज्ञान, स्नान, अभ्यङ्ग, लाल शालि,  
चावल, मूँग, गेहूँ, पुराना घी, कलुए का मांस  
जांगल गशु-पक्षियों के मांस का रस, दूध,  
माह्रीपत्र, बघ, परवल, पुराना पेठा, यमुआ,  
मोठा अनार, सदिजना, नारियल, अगूर,  
आंवला, फालसा, निल तैल, गद्दा और घोड़े  
का मूत्र, बर्षा का जल और हृद्य वे अपस्मार रोग  
में पथ्य है ॥ ४४--४७ ॥

अपथ्य ।

चिन्तां शोकं भयं क्रोधमशुचीन्यश-  
नानि च । मद्यं मत्स्यं विरुद्धान्नं तीक्ष्णो-

प्यगुरुभोजनम् ॥ ४८ ॥ अतिव्यवाय-  
मायासंपूज्यं पूजाव्यतिक्रमम् । पत्रशा-  
कानि सर्वाणि विम्बीमापाढकं फलम् ॥  
४९ ॥ तृषा निद्रा क्षुधा वेगमपस्मारी  
परित्यजेत् ॥ ५० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामपस्माराधिकारः  
समाप्तः ।

चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, अपवित्र भोजन,  
शराब, मछली, विरुद्ध भोजन, तीक्ष्ण-उष्ण  
एवं गुरु भोजन, अति मैथुन, परिश्रम, पूज्य  
पुरप, देवना आदि की पूजा न करना, सम्पूर्ण  
पत्रशाक, विम्बी, आपाढ फल ( खीर, आरिया ),  
प्यास निद्रा, भूख इनके वेगों को रोकना ; ये  
अपथ्य हैं। इनका अपस्मारी को त्याग करना  
चाहिए ॥ ४८--५० ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी  
व्याख्यायामपस्माराधि-  
कारः समाप्तः ।

तत्त्वोन्मादाधिकारः ।

तत्त्वोन्माद का स्वरूप ।

अहो मम महद्भाग्यं लब्धा यद् ब्रह्मणः  
कृपा । इत्येवं भ्रमजो मोहस्तत्त्वोन्माद  
इतीरितः ॥ १ ॥ तत्त्वोन्मादो हर्षमीढर्यं  
ब्रह्ममोहश्च स स्मृतः । वृथा धीमभवो  
व्याधिरयं सद्भिर्निरूपितः ॥ २ ॥ किं  
रूपं कुत्र वा ब्रह्म नैतज्जानाति कोऽप्यहो ।  
पुराणैर्दर्शनैर्वा न लब्धं यद् ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३ ॥  
एकेशकर्तृकं विश्वं यदन्त्यन्ये निरीश्व-  
रम् । ब्रह्माएढं ब्रह्मतर्केण व्याकुलं बहुधा  
वृथा ॥ ४ ॥ मानं दुरुहं सत्तायामास्तां

दूरे दयादिकम् । अनिर्णीतमनिर्णयं  
 तदेवमधारय ॥ ५ ॥ मदर्थं ब्रह्म कुर्वे-  
 तज्जहन्नं मम वैरिणम् । धनं देहि यशो  
 देहि देहि राज्यमकण्टकम् ॥ ६ ॥ विशाल-  
 नेत्रां सुदतीं पीनोन्नतपयोधराम् । नित  
 म्बिनीं क्षीणमध्यां स्मरत्रेलिकलाविदम् ७  
 नित्यं नर्मप्रियां तन्वीं रम्भोरुं रसिकेश्व-  
 रीम् । मद्रतां नित्यसन्तुष्टां सुन्दरीं देहि  
 कामिनीम् ॥ ८ ॥ इत्थमर्थनमात्रेण ब्रह्म-  
 भीतं ससम्भ्रमम् । भ्रान्तबुद्धेन मन्यस्व  
 प्रार्थितं साधयिष्यति ॥ ९ ॥ कदाचित्  
 प्रार्थना कापि यदि ते सफला भवेत् ।  
 निद्धि तत् काकतालीयं तत्र ब्रह्म न कार-  
 णम् ॥ १० ॥ न स्तवैर्हृष्यति ब्रह्म नापि  
 द्वेषि च निन्दया । अस्ति गदी प्रियो नास्य  
 नास्तिवादी न चाप्रियः ॥ ११ ॥ न मूर्खे  
 ऽनादरस्तस्य बहुमानो न परिहृते । धनि-  
 नोरा भयं नास्य न दरिद्रे च ताडनम् ॥  
 १२ ॥ स्वपाके याने वापि ब्रह्मणे वेदपा-  
 रणे । मद्ये गणिकासक्त मालातिलकधा-  
 रिणि ॥ १३ ॥ शुची वाप्यशुची साधव्यां  
 वैरयायां बालवृद्धयोः । सर्वत्रैव समं ब्रह्म  
 विश्वरूपं सनातनम् ॥ १४ ॥ एवं भूतस्य  
 तस्येयमिति मत्प्रीतये कृतिः । तत्रोन्मा-  
 दति यस्तस्य व्याधिरुन्माद् एव हि ॥ १५ ॥  
 प्रायशो बुद्धिहीनानामसतां नीचचेतसाम् ।  
 व्याधिरेपोऽभिजायेत कदाचिन्महतामपि  
 ॥ १६ ॥ तत्रोन्माद् इत्यत्र उन्मादशब्दो  
 भावकृता निष्पन्नः ।

‘यहो मेरा मदान् भाग्य है जो मेरे ब्रह्म  
 की रूपा से पाया है’ ऐसा भ्रमजन्य मोह  
 बाधोन्माद् कहलाता है। सबको न तापोन्माद्,

हर्षमील्य, ब्रह्ममोह नाम रोग मिथ्या बुद्धि से  
 उत्पन्न कहा है। ब्रह्म का क्या रूप है? कहाँ  
 है, इसे कोई भी नहीं जानता। पुराण और  
 दर्शनशास्त्रों से भी उस ब्रह्म के दर्शन प्राप्त नहीं  
 होते हैं। एक कहता है, संसार का रचयिता  
 ब्रह्म है। दूसरा कहता है, ईश्वर है ही नहीं।  
 बहुधा ब्रह्मायद् और ब्रह्म के तर्क से व्यर्थ ही  
 व्याकुल रहता है, कठिनता से प्राप्त मानसत्ता  
 में आसक्ति जो निश्चय नहीं हुआ है और न  
 निश्चय किया जा सकता है, उसका निश्चय  
 हे ब्रह्म! मेरे लिये उन्नत कर, मेरे वैरियों को  
 नष्ट कर, धन दे, यश दे, निष्कटक ( एकछत्र )  
 राज्य दे। विशाल नेत्रवाली, पुष्ट और उठे स्तनों-  
 वाली, मोटे नितम्ब ( चूतड़ ) और पतली  
 कमरवाली, कामक्रियाओं में चतुर, सदैव हास्य-  
 प्रिय ( हँसमुख ), धुरहरी, केला के खंभ सी  
 ( चिकनी ) जाँघवाली, रसिकों की स्वामिनी,  
 मेरे प्रति प्रेम रखनेवाली और सदैव सन्तुष्ट रहने-  
 वाली कामिनी दे। इस प्रकार की इच्छा करने-  
 मात्र से ब्रह्म में अमित बुद्धिवाला व्यक्ति  
 प्रार्थना को नहीं मानता हुआ साधना करता  
 है। कदाचित् किसी की कोई प्रार्थना सफल भी  
 हो जाय तो उसे काकतालीय न्याय से अकस्मात्  
 ही समझिये, उसका कारण ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म  
 ( ईश्वर ) प्रार्थना से प्रसन्न नहीं होता है, निन्दा  
 से नाराज नहीं होता है, मूर्ख का अन्याय नहीं  
 करता है, परिहृतों का विरोध सम्मान नहीं  
 करता है, आस्तिक प्रिय नहीं है, नास्तिक  
 अप्रिय नहीं है, धनियों का भय नहीं है, निर्धनों  
 की दरिद्रता में ताडना नहीं है, चायटाल, यवन,  
 वेदपाठी ब्राह्मण, शरायी, रंटीबाज, व्यभिचारी  
 और माला-तिलकधारी, पावत्र और अपवित्र,  
 स्त्री पतिव्रता और वैश्या तथा बालक और  
 शूद्र में सर्वत्र ही समान विवरूप सनातन ब्रह्म  
 है। इन्म प्रकार के उस ब्रह्म ने मेरे लिए ही यह  
 किया है। उन्माद् नामक रोग के समान ही  
 यह तत्रोन्माद् ही है। प्रायः यह रोग बुद्धिहीन,  
 दुर्जन, नीच विचारवाले व्यक्तियों के ही होता है,  
 कभी-कभी मदान् व्यक्तियों को भी हो जाता  
 है ॥ १-१६ ॥

तत्त्वोन्माद का निदान ।

श्रुतिप्रगाढचित्तस्य धर्माद्यभिनिवेशनात् । व्याधिस्तत्त्वोन्मादो नाम जायते वातकोपतः ॥ १७ ॥

चित्त की कठोरता से और धर्म आदि के अभिनेवेश ( कठोरपूर्वक पालन ) से वात कुपित होकर तत्त्वोन्माद नाम की यह बीमारी पैदा करता है ॥ १७ ॥

तत्त्वोन्माद के लक्षण ।

ब्रह्ममोहे प्रमूढत्वं स्थिरास्पन्दा कनीनिका । चक्षुरुन्मीनितं मुक्तिर्गतिरोधोऽथ वाग्मिता ॥ १८ ॥ दम्भोग्रभावी वित्तेपो हास्यं क्षैब्यश्च रोदनम् । एवम्भूतानि लिङ्गानि तत्त्वोन्मादे भवन्ति हि ॥ १९ ॥

ब्रह्ममोह में मूढावस्था, पुतलियों का स्थिर रह जाना, पलकों का टिमटिमाना, नींद कम घाना, कम चलना फिरना, बातें करना, दम्भ, विचारों की तीव्रता, वित्तेप, हँसी, उन्मत्तता, रोना; इस प्रकार के लक्षण तत्त्वोन्माद में होते हैं ॥ १८-१९ ॥

वातनाडीस्थैर्यकरं तथा वातानुलोमनम् । भेषजं पानमन्नश्च भिषगत्र प्रयोजयेत् ॥ २० ॥

तत्त्वोन्माद में वातनादियों ( Nerves ) की स्थिरता करनेवाली, वात को अनुलोमन करनेवाली औषधि, पेय तथा अन्न का प्रयोग करना चाहिए ॥ २० ॥

महारैस्ताडनाद्यैश्च गदं त्वप्रकृतं नयेत् ॥ २१ ॥

इति भेषज्यरत्नावल्यां तत्त्वोन्मादाधिकारः समाप्तः ।

महार एवं ताडन आदि द्वारा हृत्प्रम तत्त्वोन्माद को जीतना चाहिए ॥ २१ ॥

इति भेषज्यरत्नावल्यां भाषाटीकायां तत्त्वोन्मादाधिकारः समाप्तः ।

योपापस्माराधिकारः ।

योपापस्मार का निदान ।

शोणितस्य क्षयाद्वापि तथाधिक्यादजीर्णतः । कोष्ठरोधान्मनोभङ्गादत्युद्वेगाच्च शोकतः ॥ १ ॥ रजोऽभावाच्च योपाणां जरायुविकृतेस्तथा । अशक्तेरपि नैन्दुर्यात्पत्युरस्नेहतस्तथा ॥ २ ॥ वैधव्यजन्यादधेश्च योपापस्मारसंज्ञकः । गदः सञ्जायते कृच्छ्रो मनोदेहप्रतापनः ॥ ३ ॥ योपितामेव बाहुल्याद् यत एष भवेद् गदः । अयस्मारप्रकृतिकस्तेनास्थैपाभिधा मता ॥ ४ ॥ कालोऽस्य यौवनं व्याधेर्नार्वाग्द्वादशवर्षतः । परं पञ्चाशतो वापि व्याधिरेपः प्रजायते ॥ ५ ॥

हृदय के क्षय और अधिकता से, अर्ज-प्यं से, कोष्ठारोध ( मलाधरोध-कब्ज ) से, उद्रेक से, शोक से, मासिक स्त्राव के अभाव से, गर्भाशय के विकार से, अशक्ति से, पति के प्रेम की कमी से और उनकी कठोरता से, वैधव्यजन्य दुःख से और उनकी कठोरता से, वैधव्यजन्य दुःख से मन और देह को तपानेवाला कष्टदायक स्त्रियों के योष परमार नामक रोग उत्पन्न होता है । यह रोग प्रायः स्त्रियों को अधिकता से हाने से योपापस्मार नाम रक्ता है । इसके उत्पन्न होने का समय भी यौवनास्था ही है । न तो चारह वर्ष की आयु में परिणत होता है और न पचास वर्ष के बाद होता है ॥ १-२ ॥

योपापस्मार का पर्यरूप ।

हृद्भुजा जृम्भणं सादो वर्ष्मणो मनसोऽपि च । भवेद्भविष्यति गदे योपापस्मारसंज्ञके ॥ ६ ॥

जिब खी के योपापस्मार नामक रोग होनेवाला होता है उसके हृदय में पीड़ा, ज्वार, शरीर और मन का दुर्लभ होना आदि लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

योपापस्मार के लक्षण ।

वैचित्र्यं बुद्धिभिभ्रान्तिर्हास्यं कन्दन-  
मेव च । उच्चैः क्रोशः प्रलपनं ज्योतिर्द्वेष-  
स्तथा भ्रमः ॥ ७ ॥ औद्धत्यं श्वासकृच्छ्रं  
च कण्ठामाशयवेदना । प्रावर्त्यं स्पर्शशक्ते-  
श्च कचिदङ्गं सदा व्यथा ॥ ८ ॥ अली-  
कवर्तुलोत्थानमाकण्ठमुद्रादपि । सदल्प-  
बुद्धिर्मूर्च्छा च व्याधावस्मिन् प्रजा-  
यते ॥ ९ ॥

चित्त की विकलता, बुद्धिभ्रम, हँसना, रोना ऊँची आवाज़ से पुकारना, अंत संठ बकना, उजाले से अरुचि, भ्रम, ऊधम मचाना, श्वास में कष्ट, कण्ठ और आमाशय में वेदना, स्पर्शशक्ति की प्रबलता, किसी-किसी अवयव में सदैव ही कष्ट रहना, पेट में कण्ठ तरु एक गोला-सा ठठना, अल्प बुद्धि और मूर्च्छा होना आदि लक्षण इस रोग के उत्पन्न होने पर होते हैं ॥ ७-९ ॥

योपापस्मार की चिकित्सा ।

यद्घातुपोषकं पानमन्नमौषधमेव च ।  
कोष्ठशुद्धिकरञ्चापि तत्तदत्र प्रयोजयेत् ॥  
१० ॥ मूर्च्छायां शीततोयेन सेकः शिर-  
सि चक्षुषोः । शिरोविरेचनं वापि प्रयोज्यं  
तन्निवृत्तये ॥ ११ ॥ अत्र प्रयोजयेत्  
सर्वं मूर्च्छापस्मारभेषजम् । जरायुदोषं  
निखिलं प्रतिफुर्याद् यथाविधि । योपाप-  
स्मरणं सान्त्वैः प्रियदानाच्च शाम्य-  
ति ॥ १२ ॥

जो औषध और चक्षुषण घातुषों को पुष्ट करते हैं और कोष्ठ को शुद्ध करते हैं वे सब अस्मार के रोगियों को देने चाहिए । मूर्च्छा होने पर शीतल जल से शिर और आँसों पर मेचन धयवा मस्य आदि से शिरोविरेचन करना चाहिए । यहाँ मूर्च्छा और अस्मारमारक औषधों ही प्रयुक्त करनी

चाहिए । गर्भाशय के समस्त दोषों को दूर करनेवाला उपचार भी करना चाहिए । योपाप-स्मार के रोगी को सान्त्वना देने से और उमकी प्रिय वस्तु देने से भी रोग शमन हो जाता है ॥ १०-१२ ॥

वृहत् भूतभैरव रस ।

द्विगुणं स्वर्णसिन्दूरं तत्समं हेमभस्म-  
कम् । मुक्ताप्रवालकान्तायोराजपट्टं समं  
मतम् ॥ १३ ॥ कन्यानीरेण संमर्द्य भेक-  
पर्या रसेन च । पत्रैरेरण्डजैर्वद्ध्वा धान्य-  
राशौ निधापयेत् ॥ १४ ॥ त्रिदिनान्ते  
समुद्धृत्य वल्लमात्रां वटीं चरेत् । एकैकां  
वटिकां खादेत् त्रिफलाशर्करायुक्ताम् ॥  
१५ ॥ अथवा पयसा सार्धं भूतोन्माद-  
विनाशिनीम् । अपस्मारं महाघोरं योपाप-  
स्मारमेव च ॥ १६ ॥ हन्त्यवश्यं मर्दं  
मूर्च्छां विविधा वातवेदनाः ॥ १७ ॥  
इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां योपापस्माराधि-

कारः समाप्तः ।

दो भाग स्वर्णसिन्दूर, २ भाग स्वर्ण-भस्म तथा मोती, प्रवाल, कान्तलोह और राजरत्न मणि की भरमं मय एक-एक भाग । इन्हें ग्वारपाटे के रस और मण्डूकपर्णों के रस से पृथक्-पृथक् घोटकर गोला बना धरही के पत्तों से लपेटकर अनाज के ढेर के भीतर रख दें । तीन दिन रखे रहने के बाद दो-दो रत्नी की गोलिएं बनाये । एक-एक गोली की मात्रा त्रिफला और खाँड़ मिलाकर गाय या दूध के साथ गाय तो भूतोन्माद, महाभयानक अस्मार, योपापस्मार, मर्द, मूर्च्छा और अनेक प्रकार की वातवेदनाएँ मष्ट होती हैं ॥ १३-१७ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां भाषाटीकायां योपाप-  
स्माराधिकारः समाप्तः

**अथ मदात्ययाधिकारः ।**

मन्थः खजूरमृद्वीकावृत्ताम्लाम्लक-  
दाडिमैः । परूपकैः सामलकैर्युक्तो मद्य-  
विकारनुत् ॥ १ ॥

द्रवालोडितलाजसक्तुः खजूरादि-  
भिर्युक्तो मन्थ इत्यर्थः । खजूरादीनां द्रव्यो  
ग्राह्य इति भातुः ।

मन्थ में खजूर, मुनक्का, हमली, अमलबेत,  
अनार, फालसे और अँवले; इनका रस  
मिलाकर पीने से मद्यविकार दूर होता है ।  
खील (लावा) के सत्तुओं में घी और जल  
मिलाकर स्नानने से मन्थ संज्ञा होती है ॥ १ ॥

मद्यं सौवर्चलव्योपयुक्तं किञ्चिज्जला-  
न्वितम् । जीर्णमद्याय दातव्यं वातपाना-  
त्ययापहम् ॥ २ ॥

पी हुई मदिरा जब हलम हो जाय तब  
सोंठ, मिर्च, पोपरि और काला नमक मिलाकर  
किञ्चित् जलयुक्त मदिरा पीने से वातज मदात्यय  
रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

मुद्गयूपः सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो  
रसः । पित्तपानात्यये योज्याः सर्वतश्च  
क्रिया हिमाः ॥ ३ ॥

मिसरीयुक्त मूँग का जूस अथवा मधुररसयुक्त  
मांसरस का पान और सब प्रकार की ठंडी  
चिकित्सा पित्तज पानात्यय रोग में हितकर है ॥ ३ ॥

पानात्यये कफोद्भूते लङ्घनञ्च यथा-  
घलम् । दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समा-  
हितः ॥ ४ ॥

१ "सङ्घ सपिपाऽभ्यङ्गाः शीतोदकपरिप्लुताः ।  
नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्यभिधीयते" इति  
धन्वन्तरीयानिघण्टुः ।

२ "मद्योत्थानां च रोगाणां मद्यमेव हि  
मेपजम् । यथा दहनद्रव्यानां दहनं ह्वेदनं हितम् ॥  
मिष्यातिहीनमद्येन यो ध्याधिरुपजायते । समेनैव  
निपीतेन मद्येन स हि शाम्यति" इति भाष्यमिधः ।

कफज पानात्यय रोग में बलानुसार लंघन  
करना और सावधान होकर दीपन औषध  
मिलाकर मदिरा का पीना हितकर है ॥ ४ ॥

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्स-  
तम् । आभि क्रियाभिः सिद्धाभिः शमं  
याति मदात्ययः ॥ ५ ॥

सन्निपातज पानात्यय रोग में उपर्युक्त तीनों  
दोषों की सी चिकित्सा करनी चाहिए । इन सिद्ध  
क्रियाओं से मदात्यय शान्त हो जाता है ॥ ५ ॥

सच्छर्दिमूच्छर्दितिसारं मद्यं पूगफलो-  
द्भवम् । सद्यः प्रशमयेत् पीतमावृत्तेर्वारि-  
शीतलम् ॥ ६ ॥

धमन, मूच्छर्दा और अतीसार से युक्त सुपारी  
के मद में तृसिपर्यन्त शीतल जल पीना शीघ्र  
ही मद को शान्त करता है ॥ ६ ॥

वन्यकरीपघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्ष-  
णाद्वापि । शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णरुजां  
शर्कराकवलात् ॥ ७ ॥

वन के सूखे कंदों के सूँघने से, जल पीने से  
और नमक खाने से सुपारी का मद शान्त  
होता है । शर्करा का कथल धारण करने से  
चूना से उत्पन्न मुखस्याधि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

कूपमाण्डरसः सगुडः शमयति मदमाशु  
मदनकोद्भवजम् । धुस्तूरजञ्च दुग्धं सशर्करं  
पानयोगेन ॥ ८ ॥

गुड़ मिलाकर पेटे वा रस पीने से मैनफल  
और कोदों का मद शीघ्र शान्त होता है ।  
खीरयुक्त दूध पीने से घत्तू का मद शान्त  
होता है ॥ ८ ॥

मद्यं पीत्वा यदि ना तत्क्षणमप्लेदि  
शर्करां सघृताम् । जातु न मद्यति मद्यं  
मनागपि प्रथितनीर्यमपि ॥ ९ ॥

मद्य पीकर उसी समय खीर में घी मिला-  
कर चाटने से तेज से तेज मदिरा भी मद नहीं  
कर सकती है ॥ ९ ॥



पलाय मोदक ।

एलां मधुकमग्निञ्च रजन्यौ द्वै फल-  
त्रयम् । रक्तशालि कणां द्राक्षां खजूरञ्च  
तिलं यवान् ॥ १० ॥ विदारीं गोजूरं  
बीजं त्रिवृताञ्च शतावरीम् । सञ्चूर्ण्य  
मोदकं कुर्यात् सितया द्विप्रमाणया ॥ ११ ॥  
धारोष्णेनापि पयसा मुद्गयूपेण वा समम् ।  
पिवेदन्नप्रमाणं तु प्रातर्नत्वाम्बिकां गदी ॥  
१२ ॥ मद्यपानसमुत्थाना विकारा नि-  
खिला अपि । सेवनादस्य नश्यन्ति व्याध-  
योऽन्ये च दारुणाः ॥ १३ ॥

छोटी इलायची, मुबेठी, चीता की जड़,  
हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लाल सोंठी के चावल,  
पीपड़ि, मुनका, पियडलजूर, तिल, जी, विदारी-  
कन्द, गोखरू के बीज, निसोध, शतावरी; इन  
सब को सम भाग लेकर कूट पीस ले । परचाय  
सब चूर्ण से दूनी मिसरी का पाक कर लड्डू  
बना ले । मात्रा १ तोला । अनुपान धारोष्ण  
दूध या मूँग का जूस । प्रातःकाल भगवती को  
प्रणाम कर सेवन करना चाहिए । यह मोदक  
मद्यपान से उत्पन्न हुए सब प्रकार के विकार  
और व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १०-१३ ॥

फलत्रिकाय चूर्ण ।

फलत्रिकं त्रिविच्छयामा देवदारु  
महौषधम् । अजमोदा यमानी च दार्वी  
लवणपञ्चकम् ॥ १४ ॥ शतपुष्पा वचा  
कुष्ठं त्रिसुगन्धैलवालुकम् । सर्वाण्येतानि  
सञ्चूर्ण्य पिवेच्छीतेन वारिणा ॥ १५ ॥  
पानात्ययादिरोगाणां हरणेऽनेश्व टीपने ।  
संग्रहग्रहणीध्वंसेऽप्येतदेवौषधं क्षमम् ॥ १६ ॥

चावल, महेश, हड़, निसोध, कालीसर,  
देवदारु, सोंठ, अजमोद, अजशहन दारुहल्दी,  
पाँचो मक, सोंक, वष, कूट, दालचीनी, तेज-  
पाठ, इलायची और एलुषा; इन सबको सम-

भाग ले कूट पीसकर चूर्ण बनावे । ठंडे जल  
से इसका सेवन करने से पानात्यय आदि रोग,  
मन्दाग्नि और संग्रहणी आदि उदरविकार नष्ट  
होते हैं ॥ १४-१६ ॥

महाकल्याण वटी ।

हेमाश्रञ्च रसं गन्धमयो मौक्तिकमेव  
च । धात्रीरमेन संमर्द्य गुञ्जामात्रां वटीं  
चरेत् ॥ १७ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय  
तिलक्षौदमधुप्लुताम् । मिताक्षौद्रयुतां  
वापि नवनीतेन वा सह ॥ १८ ॥ अय-  
थापानजा रोग वातजाः कफपित्तजाः ।  
गदाः सर्वे विनश्यन्ति ध्रुवमस्य निषेव-  
णात् ॥ १९ ॥

सुवर्णभस्म, अश्रकभस्म, पारा, गन्धक,  
लोहभस्म और मोती की भस्म को आँवले के  
रस में खूब घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ  
बनावे । प्रतःकाल उठाकर इसका भक्षण करे ।  
अनुपान तिल का चूर्ण और शहद अथवा मिसरी  
और शहद अथवा मक्खन । इसके सेवन से  
निस्संदेह वातज, पित्तज और कफज मदात्यय  
रोग नष्ट होते हैं ॥ १७-१९ ॥

शृङ्खलात्री तैल ।

धात्रीफलरसप्रस्थं शतमूलीरसं तथा ।  
विदारीस्वरसप्रस्थं प्रस्थं वस्तपयः पृथक् ॥  
२० ॥ यलायाश्चारवगन्धायाः कुलत्थ-  
स्य यवस्य च । पृथक् वशाथांश्च मापस्य  
तैलप्रस्थेन संपचेत् ॥ २१ ॥ जीवनीयो  
गणो मांसी मञ्जिष्ठा चेन्द्रवारुणी । शारि-  
वाद्रयशैलेयशतपुष्पाः पुनर्नवा ॥ २२ ॥  
चन्दनद्वयमैलात्यक कमलं कदलीफलम् ।  
वचागुर्वभयाधात्रीत्येतान् कल्कान् पचे-  
त्तथा ॥ २३ ॥ मर्दनादस्य तैलस्य गदाः  
पानात्ययादयः । पलायन्ते सुदूरं हि सिंह-  
श्रस्ता मृगा इव ॥ २४ ॥

घाँवलों का रस १२८ तोले, शतावरी का रस १२८ तोले विदारीकन्द का रस १२८ तोले, बकरी का दूध १२८ तोले । खरेटी, अक्षयम्भ, कुलधी, जी और उर्द के काथ १२८-१२८ तोले । तेल १२८ तोले । कल्क के लिए—जीवनीयगण की सब औषधियाँ, जटा मांसी, मंजीठ, इन्द्रायण, अनन्तमूल कालीसर, भूरिचरीला, सीफ, साँठी, लालचन्दन सफेद चन्दन, छोटी इलायची, तज, कमल, केले की फली, बच, अजर, हड़ और आँवला सब मिलित ३२ तोले । विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से पानात्ययसम्बन्धी सब रोग इस प्रकार दूर भाग जाते हैं जैसे सिद्ध से बरे हुए सृग भाग जाते हैं ॥ २०-२४ ॥

श्रीखण्डासव ।

श्रीखण्डं मरिचं मांसीं रज्ज्वयौ चित्रकं घनम् । उशीरं तगरं द्राक्षां चन्दनं नाग-केशरम् ॥ २५ ॥ पाठां धात्रीं कणां चव्यं लवङ्गञ्चैलवालुकम् । लोध्रञ्चार्द्धपलोन्मानं जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ॥ २६ ॥ द्राक्षां पट्टिपलां तत्र गुडस्य च तुलात्रयम् । धातकीं द्वादशपलां चैकत्र परियोजयेत् ॥ २७ ॥ मासं संस्थाप्य मृद्गाण्डे वस्त्रपूतं रसं नयेत् । पाययेन्मात्रया वैद्यो वयोवह्न्याद्यपेक्षया ॥ २८ ॥ पानात्ययं परमदं पानाजीर्णञ्च नाशयेत् । पानविभ्रममत्युग्रं श्रीखण्डासवमाशु च ॥ १६ ॥

मलयगिरिचन्दन, मिर्च, जशमांसी, हल्दी, दारहल्दी, चीता की जड़, नागरमोथा, खस, तगर, दास, लालचन्दन, नागकेशर, पाद्री, घाँवला, पीपरि, चव्य, लीग, एलुघा और घोष; प्रत्येक दो-दो तोले लेकर १ मन ११ सेर १६ छोले जल में ढाल दे। उसी में ३ सेर मुनहा, १५ सेर गुड़ और ४८ तोले धाय

के फूल मिलाकर मिट्टी के पात्र में भरकर रख दे। एक महीने के बाद घस्र से छानकर रख ले रोगी के अग्निबल और आयु के अनुसार वैद्य मात्रा निर्धारित कर इसका पान करावे। इस श्रीखण्डासव के सेवन से पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और अत्यन्त प्रचण्ड पानविभ्रम रोग नष्ट होते हैं। मात्रा १। तोला से २॥ तोले तक ॥ २५--२६ ॥

मदात्यय में पध्य ।

संशोधनं संशमनं स्वपनं लङ्घनं श्रमः । संवत्सरसमुत्पन्नाः शालयः पट्टिकैः सह ॥ ३० ॥ मुद्गा मापाश्च गोधूमाः सतीना रागपाडवौ । एणत्तिचिरलावाजदक्षवर्हिंशशाभिपम् ॥ ३१ ॥ वेशवारी विचित्रान्नं हृद्यं मद्यं पयः सिता । तण्डुलीयं पटोलञ्च मातुचुङ्गं परूपकम् ॥ ३२ ॥ धारागृहं चन्द्रपादा मणयो मित्रसङ्गमः । क्षौमाम्बरं प्रियाश्लेषो गीतं वादित्रमुद्धतम् ॥ ३३ ॥ शीताम्बु चन्दनं स्नानं सेव्यमेतन्मदात्यये ॥ ३४ ॥

संशोधन, संशमन, सोना, लङ्घन, परिश्रम, एक वर्ष के पुराने लाल शालिचावल तथा साँठी के धावल, मूँग, उरद, गेहूँ, मटर, राग, पाडव ( मुरब्बे ), हिरण, तीतर लाव, बकरा, मुर्गा, मोर और शशक इनका मांस; वेशवार, विविध प्रकार के रचिकर अन्न, मद्य, दूध, ब्राँड, चौलाई, परवल, बिजौरा, फालसा, धारागृह ( जिस घर में पानी के फव्वारे बूटते हों ), चाँदनी, मणियाँ, मित्रमण्डली में बैठना, रेशमी वस्त्र, प्रिया का चालिङ्गन, गाना-बजाना, शीतल जड़ चन्दन का अनुलेपन और स्नान इनका मदात्यय में सेवन करना चाहिए ॥ ३०--३४ ॥

मदात्यय में अपध्य ।

स्वेदोऽञ्जनं धूमपानं नखनं दन्तधर्ष-

ग्राम् । ताम्बूलं चेत्यपथ्यं स्यान्मदात्यय-  
विकारिणाम् ॥ ३५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मदात्यया-  
धिकारः समाप्तः ।

स्वेदन, अञ्जन, धूमपान, दातीन करना और  
पान चबाना ये मदात्यय रोगियों के लिए  
अपथ्य हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविराचित्यायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाय्यां व्याख्यायां  
मदात्ययाधिकारः समाप्तः ।

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

लङ्घनालेपनस्वेदशिराव्यधिविरेचनैः ।  
उपाचरेदभिम्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ?

अभिम्यन्द रोग की लंघन, लेप, स्वेदन,  
शिरावेधन, विरेचन ( जुनाब और शिरोविरे-  
चन ), अञ्जन और आश्च्योतन आदि से  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १ ॥

श्रीवासातिविपालोद्घैश्चूर्णितैरल्पसै-  
न्धवैः । अव्यक्तोऽक्षिगदे कार्यं प्रोतस्थै-  
र्गुण्डनं बहिः ॥ २ ॥

गन्धाधिरोग, अतीत और लोथ तथा थोड़ा  
सा सेंधा नमक; इनका घुँल कर कपड़े की पोटीली  
में बाँध कर अग्रकृत नेत्ररोग में ( रोग के  
प्रारंभिक रूप में ) नेत्रों के बाहर अव्युत्पन्न  
करे । रोगी की आँखें बन्द करके पोटीली  
फेरनी चाहिए ॥ २ ॥

अक्षिकुत्तिमवा रोगाः पतिरयाय-  
वणञ्जराः । पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं  
यान्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

आँसू तथा कुपि के रोग, सुकाम, घण

और ज्वर; ये पाँच रोग लंघन करने से पाँच  
दिन में शान्त होते हैं ॥ ३ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्कात्रं सेको दिनचतु-  
ष्टयम् । लङ्घनञ्चाक्षिरोगाणामामानां  
पाचनानि पट् । अञ्जनं पूरणं काथपान-  
मामे न शस्यते ॥ ४ ॥

स्वेदन, लेप, तिक्र अन्न, सेंक तथा लंघन  
से और चार दिन बीतने पर नेत्र के रोग पक  
जाते हैं । कच्चे नेत्ररोग में अञ्जन, आश्च्योतन  
और काढ़े का पीना ठीक नहीं है ॥ ४ ॥

धात्रीफलनिर्यासो नवहृक्कोपं निह-  
न्ति पूरणतः । सत्तौद्रसैन्धवो वापि  
शिग्रूञ्जवरससेकः ॥ ५ ॥

आँखों का रस आँखों में डालने से या  
शहद और सेंधानमक्रयुक्त सहिजन का रस  
आँखों में डालने से अभिम्यन्द ( आँखें दुपना )  
रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दावीरसाञ्जनं वापि स्तन्ययुक्तं प्र-  
णम् । निहन्ति शीघ्रं दाहाश्रुवेदनाः स्य-  
न्दसम्भवाः ॥ ६ ॥

दाहहृत्वी और रसौत को रूख महीन पीस-  
कर घी के दूध में मिलाकर आँखों में डालने  
से अभिम्यन्द से उत्पन्न दाह, अश्रुपात और  
पीड़ा शीघ्र नष्ट होती है ॥ ६ ॥

करवीरतरुणकिसलयच्छेदोद्भ्रंसलि-  
लसम्पूर्णम् । नयनयुगं भवति हृदं सह-  
सैव तत् क्षणात् कुपितम् ॥ ७ ॥

फनेर के मधे-मधे कोमल पत्तों का रस  
निकालकर नेत्र में डालने से कुपित नेत्ररोग  
शान्त होता है और नेत्र रुद हो जाते हैं ॥ ७ ॥

शिश्वरिजमूलं ताम्रभाजनके स्तोत्रम-  
न्धवोन्मिश्रम् । मस्तुनिघृष्टं भरणाद्भरति  
च नवलोचनात् कोपम् ॥ ८ ॥

बटनीरा की जड़ और घोडा मा गेंपा-

नमक मिला कर ताँबे के पात्र में दही के तोड़ से घिस कर नेत्रों में डालने से नवीन नेत्रकोप नष्ट होता है ॥ ८ ॥

लेप ।

सैन्धवादारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः । दत्त्वा बहिः प्रलेपो भवत्यशेषान्तिरोगहरः ॥ ९ ॥

सैधानमक, दारुहरिद्रा, गेरू, हड़ और रसौत; इनको समभाग एकत्र पीस कर नेत्रों के बाहर लेप करने से संपूर्ण नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

तथा सावरकं लोधं घृतमृष्टं विडालकः । कार्या हरीतकी तद्वद् घृतमृष्टा विडालकः ॥ शालाक्येऽदणोर्वहिल्लेषो विडालक उदाहृतः ॥ १० ॥

सफेद लोध को अथवा हड़ को घी में भूनकर विडालक नाम लेप करना चाहिए । सुश्रुत ने नेत्रों के बाहर चारों ओर लेप करने को विडालक कहा है ॥ १० ॥

गिरिमृच्चन्दननागरखटिकांशयोजितो बहिल्लेषः । कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्नेहः ॥ ११ ॥

गेरू, लालचन्दन, सोंठ, खड़िया और वच; इनका आँखों के बाहर लेप करने से निःस्पन्देह आँखें रोगरहित हो जाती हैं ॥ ११ ॥

भूम्यामलकी घृष्टा सैन्धवगृहवारियोजितां ताम्ने । याता घनत्प्रमदणोर्जयति बहिल्लेषतः पीडाम् ॥ १२ ॥

सामान्यामिप्यन्दे भूम्यामलकीमूलं ताम्रभाजने काञ्जिकसैन्धवयोगेन घृष्टं घनीमूलं चक्षुषि लेपात् पीडां हरति ।

भृष्टांशुवला की जड़ और सैधानमक को ताँबे के पात्र में कांजी से घिसे, जब गाढ़ा हो जाय तब आँखों के बाहर उसका लेप करने से आँखों की पीडा शान्त हो जाती है ॥ १२ ॥

आश्च्योतन ।

आश्च्योतनं मारुतजं काथो विल्वादिभिर्हितः । कोष्णः सैरण्डवृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥ १३ ॥

वातज अभिष्यन्द में विल्वादि पंचमूल के काथ की किंचित् गरम-गरम बूँदें आँख में टपकावे अथवा अरण्डमूल, बड़ी कटेरी, जयन्ती और लाल संहिजन की जड़ के काथ की गरम-गरम बूँदें टपकावे तो हितकर है । अथवा विल्वादि और अरण्डमूलादि के मिलित काथ का आश्च्योतन करना चाहिए ॥ १३ ॥

एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाजपयःमृतम् । कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोप्यंसेचने हितम् ॥ १४ ॥

अरण्ड के पत्ते, जड़ और छाल तथा कटेरी की जड़ को बकरी के दूध में पकाकर सुहाते हुए गरम-गरम दूध की बूँदें आँखों में डालने से अभिष्यन्दरोग शान्त होता है ॥ १४ ॥

अञ्जन

सम्पक्केऽन्तिगदे कार्यमञ्जनादिकमिप्यते । प्रशस्तार्त्तता चाक्षुः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥ १५ ॥ मन्दवेदनता कण्डूः पक्वान्तिगदलक्षणम् । अञ्जनादिविधिश्चाग्रे निखिलेनाभिधास्यते ॥ १६ ॥

जब नेत्ररोग अच्छी तरह पक जाय तब अञ्जन आदिक क्रिया करनी चाहिए । नेत्ररोग की परिपक्वावस्था में पलकों में कीचड़ आदि नहीं रहता है, सूजन और आँसू बहना शान्त हो जाता है, पीडा कम हो जाती है तथा सुजली

१—'काथचौरद्वस्नेऽपिन्दूनां यत्तु पातनम् द्वयगुणोहिते नेत्रे प्रोत्रमारश्च्योतनं हि तत् ॥ विन्द्वोऽष्टी ज्वलनेषु रोपये दशापिन्दुवः । स्नेहने द्वादश प्रोत्रास्ते शीते कोष्णरूपिणुः ॥ उप्ये तु शीनरूपाः स्युः सर्वत्रैवपि निरचयः । आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्राकशतोऽभिता ॥' इति भावमिश्रः ॥

चलने लगती है। ये पक्षाघात के लक्षण हैं। अब अंजन आदि की विधि आगे कहेंगे ॥ १५-१६ ॥

**वृहत्पेरण्डमूलत्वक् शिग्रोमूलं ससैन्धवम् । अजात्तीरेण पिष्टं स्याद्वर्त्तिर्वातात्तिरोगनुत् ॥ १७ ॥**

बड़ी कटेरी को जड़, अरण्ड के मूल की छाल, सर्दिजन की जड़ और सैधानमक, इनको बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बनाकर आँखों में अंजन लगाना वातज नेत्र रोग को दूर करता है ॥ १७ ॥

**हरिद्रे मधुकं द्राक्षां देवदारु च पेपयेत् । आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ १८ ॥**

हरदी, दारहरदी, मुलेठी, मुनकी और देवदारु; इनको बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बनाकर अंजन लगाने से अभिष्यन्द रोग में लाभ होता है ॥ १८ ॥

कज्जल ।

**संगृह्योपरतानलक्रकरसेनामृज्य ग-यद्वृषदान्, लाक्षारजिततूलवर्त्तिनिहितान् यष्टीमधून्मिश्रितान् । प्रज्वाल्योत्तमसर्पिषानलशिखासन्तानजं कज्जलां, दूरासननिशान्द्यकाचतिमिरमध्वंसकृच्चो-दितम् ॥ १९ ॥**

मरे हुए गयद्वृषों (केचुओं) को इकट्ठा करके अलत्रकरस (लाक्षारम) से भावना दे। परवान् इस घृण में समपरिमाण मुचहरी का घृण मिला लाक्षारस से रंगी हुई रई में रग बत्ती बनाये। इस बत्ती को गाय के घृत से अच्छी तरह भिगोकर एक दिनभरे भाग लगावे। इसकी अभिनशिला से उत्पन्न कज्जल को काँच के पात्र में इकट्ठा करे। इस कज्जल को घ्रांस में लगाने से दूरान्ध (दूर की बस्तु न दीखना), घ्रासशान्ध (समीप की वस्तु न दीखना), रतींधी, आचरोग तथा तिमिर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

पूर्ववृत्ति ।

**गैरिकं सैन्धवं कृपणा तगरश्च यथात्तरम् । पिष्टं द्विंशतोऽद्रिर्वा गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ २० ॥**

गेरू १ तोला, सैधानमक = तोले, पीपरि ४ तोले और तगर ८ तोले; इनको जल में घोटकर गोली बना ले। इसका अंजन करने से अभिष्यन्द रोग अच्छा होता है ॥ २० ॥

**प्रपौण्डरीकयष्ट्याहनिशामलकपत्रकैः । शीतैर्मधुसमायुक्तैः सेकः पित्तात्तिरोगनुत् ॥ २१ ॥**

पुंडरिया, मुलेठी, हल्दी, आचिला और पत्राय, इनके काढ़े में शहद मिलाकर ठंडा होने पर आरघ्योत्तन करने से पित्तज नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

**पचेत्तु गौधं हि यकृत् प्रकल्पितं सुपूरितं मागधिकाभिरम्बुना । निषेवितं तद्यकृदञ्जनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥ २२ ॥**

गोह के यकृत् को वाटकर मधु में पिपली भरजल में पकावे। ठीक तरह से रवेदिन हो जाने पर पिपली की पहले की तरह बत्ती बनावे। इस बत्ती के अंजन से तथा उपाके हुए यकृत् के स्थान से राग्ध्य ( रतींधी ) अच्छी हो जाती है ॥ २२ ॥

**दधना निघृष्टं मरिचं राग्ध्यन्धाञ्जनमुत्तमम् । तामूलयुक्तं खद्योतमक्षगञ्च तदर्यकृत् ॥ २३ ॥**

दही में कालीमिर्च को घिसकर अंजन करने से राग्ध्य नष्ट होता है। पान के पत्ते के साथ खद्योत ( जुगम् ) को स्थान से भी राग्ध्य नष्ट होता है ॥ २३ ॥

**शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यमञ्जनाद्विनिहन्ति । तद्द्रामठडखरुर्गमलञ्चैरु-कशो मधुना ॥ २४ ॥**

शफरी नामक मछली को अन्तर्धूम दग्ध कर शहद के साथ अञ्जन करने से, तथा हींग, सुदाग, कर्णामल ( कान की मैल ) इनमें से किसी एक को शहद के साथ भाँजने से नक्कान्ध्य ( रतौधी रोग ) दूर होता है ॥ २४ ॥

केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याखण्डं हन्ति भक्षितम् । नक्कान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात्पथ्यसेविनाम् ॥ २५ ॥

केशराज तथा रोहू मछली के अण्डों को पक्कर कर काँजी में सिद्धकर खाने से तथा इसके साथ ही यथावत् पथ्य सेवन से सात दिन में ही रतौधी नष्ट होती है ॥ २५ ॥

द्राक्षामधुरुमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः । प्रातारश्च्योतनं शस्तं शोथशूलान्तिरोगिणाम् ॥ २६ ॥

मुनका, मुलेठी, मंजीठ और जीवनीयगण की समस्त औषधियों से सिद्ध दूध का प्रातःकाल आश्च्योतन करने से शोथ, शूल और नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोभ्रं स्वेद्याग्निना चूर्णमथापि कल्कम् । आश्च्योतनं मानुपदुग्धयुक्तं पित्तस्त्रावातापहमग्रचमुक्तम् ॥ २७ ॥

लोध के चूर्ण या कल्क को पिसे हुए नीम के पत्तों के गोले में रखकर अग्नि पर पकावे । फिर उसको निकालकर छी के दूध में भिला वस्त्र से छान कर उसकी पूँछें आँख में छोड़े तो पित्तज, रक्तज और वातज अभिष्यन्द रोग नष्ट हो ॥ २७ ॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्कान्नभोजनम् । तीक्ष्णैः प्रथमनं कुर्यात् तीक्ष्णैश्चैयोपनाहनम् ॥ २८ ॥

कफज अभिष्यन्द में लघन, स्वेदन, नस्य, तिक्त अन्नों का भोजन तथा तीक्ष्ण औषधों से नस्य पथ्य प्रलेप करना चाहिए ॥ २८ ॥

फण्णजभकास्फोटकपित्थविल्वपत्तर - पीलूसुरसार्जमङ्गैः । स्वेदं विदध्यादथवा प्रलेपं वहिष्ठशुएठीसुरदारुकुष्ठैः ॥ २९ ॥

पलाश की छाल, कोयल, वैथ, बेल, पतंग, पीलू ( जाल नामक वृक्ष ), काली तुलसी, सँभालू और भाँग, इनके पत्ते गर्म-गर्म बाँध कर पसीना दे अथवा सुगन्धनाता, सोंठ, देवदारु और कूट; इनका लेप करे तो कफज नेत्र रोग नष्ट हो ॥ २९ ॥

शुएठीनिम्बदलैः पिरडः सुखोप्यैः स्वल्पसैन्धवैः । धार्यश्चक्षुषि मन्त्रेपाच्छोथकराहून्यथापहः ॥ ३० ॥

सोंठ, नीम के पत्ते और योडा-सा सँधानमक इनको महीन पीसकर गरम करके टिकिया बनावे और आँख पर बाँधे । इससे शोथ, खुजली और पीड़ा दूर हो जाती है ॥ ३० ॥

वलकलं पारिजातस्य तैलकाञ्जिकसैन्धवम् । कफोदमूतान्तिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥ ३१ ॥

पारिजात ( फरहद ) की छाल, तेल, काँजी और सँधानमक; इनकी पिराही बनाकर आँख पर बाँधे तो कफज नेत्ररोग इस प्रकार नष्ट होता है जैसे वज्र के प्रहार से वृक्ष ॥ ३१ ॥

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौंजीरपिष्टं सितवस्त्ररुद्धम् । आश्च्योतनं तन्नयनस्य कार्यं कएहूञ्च दाहश्च रुजाश्च हन्यात् ॥

सँधानमक और लोध्र को घी में भूनकर काँजी में पीस ले फिर तफेद कपड़े में बाँध कर आँखों में निचोड़ने से खुजली, लज्जन और पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३२ ॥

स्निग्धैरुष्णैश्च वातोत्थः पित्तभो मृदुगीतलैः । तीक्ष्णैरुष्णैश्च विगटैः प्रगाम्यति कफात्मकः । तीक्ष्णोष्णमृदुगीतानां व्यत्यासात् साक्षिपातिः ॥ ३३ ॥

वातज नेत्ररोग, स्निग्ध और उष्ण द्रव्या

द्वारा, पित्तज नेत्ररोग कोमल और शीतल क्रिया द्वारा तथा कफज नेत्ररोग तीक्ष्ण, उष्ण और स्वच्छ क्रिया द्वारा शान्त होता है। एवं सात्रिपातज नेत्ररोग तीक्ष्ण, उष्ण, कोमल और शीतल क्रियाओं के उलट फेर करने से अर्थात् तीक्ष्ण के पश्चात् तद्विपरीत मृदु क्रिया और उष्ण के पश्चात् तद्विपरीत शीतल क्रिया करने से शान्त होता है ॥ ३३ ॥

तिरीटत्रिफलायष्टीशर्कराभद्रमुस्तकैः ।  
पिट्टै शीताम्बुना सेको रक्ताभिप्यन्दना-  
शनः ॥ ३४ ॥

लोध, त्रिफला, मुलेठी, खँड़ और नागर-  
मोया ; इनको समभाग ले पीसकर शीतल जल में  
मिलाकर आँखों का लिचन करने से रक्ताभिप्यन्द  
नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

कशेरुमधुहानाञ्च चूर्णमम्बरसंवृतम् ।  
न्यस्तमप्स्वन्तरीक्षासु हितमाश्च्योतनं  
भवेत् ॥ ३५ ॥

कसेरु और मुलेठी के चूर्ण को कपड़े की  
पोटली में बाँधकर वर्षा के जल में रखले ।  
पश्चात् इस जल का आश्च्योतन करना हितकर  
होता है ॥ ३५ ॥

दावीं पटोलं मधुकं सनिम्बं पद्म-  
कोत्पलम् । प्रपौण्डरीकं चैतानि पचे-  
त्तोये चतुर्गुणे ॥ ३६ ॥ विपाच्य पा-  
दशेषं तु तत् पुनः कुडवं पचेत् ।  
शीतीभूते पत्र मधु दद्यात् पादांशिकं  
ततः । रसक्रियैषा दाहाश्रुरागशोथरुजा-  
पहा ॥ ३७ ॥

दारदुर्दी, परवल के पत्ते, मुलेठी, नीम की  
पुष्प, यशाय, नीजकमल और पुंडरिया;  
इनको चतुर्गुणे जल में पकाये । जब चतुर्धांश  
जल बाकी रहे तब उत्तारकर धान छे । फिर  
अग्नि पर पकाकर गाढ़ा करे । पश्चात् टंडा  
होने पर उसका चतुर्धांश राहद मिलाकर इस  
रसक्रिया का छेप करे । यह दाह, चधुपात,

लाजी, शोथ और पीडा को नष्ट करती  
है ॥ ३६-३७ ॥

तिक्तस्य सर्पिपः पानं बहुशश्च विरे-  
चनम् ॥ ३८ ॥ अक्षणोरपि समन्ताच्च  
पातनं तु जलौकसः । पित्ताभिप्यन्दश-  
मनो विधिरचाप्युपपादितः ॥ ३९ ॥

पटोलादि तिक्त घृत का पान, बार-बार  
विरेचन लेना और आँखों के चारों ओर जोंक  
लगवाना; यह विधि पित्ताभिप्यन्द को शान्त  
करनेवाली है ॥ ३८-३९ ॥

शिग्रुपल्लवनिर्वासः सुघृष्टस्ताम्रस-  
म्पुटे । घृणेन धूपितो हन्ति शोथवर्षाश्रु-  
वेदनाः ॥ ४० ॥

संदिजन की पत्तियों के रस को ताँबे के  
पात्र में घिसे । जब घिसने से गाढ़ा हो जाय  
तब उसी ताँबे के पात्र में फैलाकर लगा दे  
पश्चात् कण्डे की अग्नि पर धी बालकर उस  
पात्र में घूप दे । इस कजल को आँखों में  
आँजने से शोथ, पलकों का परस्पर रगड़ना,  
आँसू गिरना और पीडा होना आदि रोग नष्ट  
होते हैं । कोई-कोई संहिजनरसलिप्त ताम्रपात्र में  
घृत के दीपक से कजल बनाकर आँखों में आँजना  
यताते हैं ॥ ४० ॥

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जाति-  
सिन्धूत्थमिश्रैरन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगु-  
टिका पिष्टलोघ्रेण मृष्टा । तूणैः सौवीर-  
सान्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्तात्  
चक्षुःकोपमशान्तिं चिरमुपरि दशोभ्राम्प-  
माणा करोति ४१ ॥

नीम के खरद पत्ते, चमेली के पत्ते और  
सैधानमक; इनको पीसकर गोली बना छे ।  
फिर लोघ को पीसकर उस गोली के मध्य में  
रतकर फिर गोली बना छे । इसको गरम  
करके काजी में भिगाई कोमल रई इसके चारों  
ओर लपेट दे । पश्चात् इस (गर्म-गर्म) गोली को

बहुत देर तक आँखों पर फेरने से नेत्रकोप शांत होता है ॥ ४१ ॥

विल्वाम्लन ।

विल्वपत्ररसः पृतः सैन्धवाज्यसम-  
न्वितः । शुल्बे वराटिकाघृष्टो धूपितो  
गोमयाग्निना ॥ ४२ ॥ पयसालोडित-  
श्चाक्षणोः पूरणाच्छोथशूलनुत् । अभिष्य-  
न्देऽधिमन्थे च स्त्रावे रक्ते च शस्यते ॥ ४३ ॥

बेल के पत्तों के रस को कपड़े से छानकर उसमें सेंधानमक और घी मिलावे । फिर ताँबे के पात्र में डालकर कौड़ी से घोटें । जब गाढ़ा हो जाय तब गोमूत्र की अग्नि से धूपित करे, परचाय् दूध मिलाकर आँखों में लगावे तो नेत्रयोथ और नेत्रशूल को दूर करे । यह विधि अभिष्यन्द, अधिमन्थ और रक्त्राव में भी हितकर है ॥ ४२-४३ ॥

विल्वपत्ररसं साम्लं निघृष्टं ताम्र-  
भाजने । सिन्धूत्थकडुतैलाकं कुर्यान्नेत्रस्रवा-  
दिषु ॥ ४४ ॥

बेल के पत्तों के रस और कॉजी को ताँबे के पात्र में घिसकर उसमें सेंधानमक और कडुआ तेल मिलाकर अंजन करने से नेत्रस्त्राव आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४४ ॥

सलवणकडुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे  
घनितघुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ । सप-  
यनकफकोपं द्वाग्दुग्धावसिक्कं जयति नय-  
नशूलं स्त्रावशोथं सरागम् ॥ ४५ ॥

सेंधानमक, कडवा तेल और कॉजी; इनको काँसे के पात्र में पत्थर से घोटें । जब गाढ़ा हो जाय तब कैंडों की आग से धूपित करे । परचाय् बकरी के दूध में मिलाकर आँखों में लगाने से नेत्रशूल, नेत्रों से जल बहना, शोथ और नेत्रों की मुखी को शान्त करता है ॥ ४५ ॥

तरुस्थविद्धामलकरसः सर्वाक्षिरो-

गनुत् । पुराणं सर्वथा सर्पि सर्वनेत्राम-  
यापहम् ॥ ४६ ॥

वृक्ष में लगे हुए आँविले को सुई आदि से बिद्धकर रस निकाल ले । इस रस को आँखों में डालने से रज्य प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं । अथवा पुराना घी सब प्रकार के नेत्ररोगों को दूर करता है ॥ ४६ ॥

अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि  
शस्यते । अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरु-  
परि दाहयेत् ॥ ४७ ॥

पूर्वाह्न सब विधियाँ मन्थ आदि रोगों में श्रेष्ठ कहीं गई हैं । यदि इनसे मन्थ रोग शान्त न हो तो भाँहों के ऊपर दाहकर्म करना चाहिए ॥ ४७ ॥

जलौकापातनं शस्तं नेत्रपाके विरे-  
चनम् । शिरावेधं प्रकुर्वीत सेकलेपांश्च  
शुक्रवत् ॥ ४८ ॥

नेत्रपाक रोग में जोंक लगवाना, विरेचन और शिरावेध करवाना श्रेष्ठ है । एवं शुक्र ( फूजी ) रोग के समान सेक और जेप भी करना चाहिए ॥ ४८ ॥

स्विन्नां भिन्ना त्रिनिष्पीड्य भिन्नाम-  
ञ्जननामिकाम् । शिलैलानतसिन्धूर्त्यः  
सत्तौद्रैः मत्तिसारयेत् ॥ ४९ ॥ रसा-  
ञ्जन मधुभ्याश्च भिन्नां वा शस्त्रकर्म-  
वित् । मत्तिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णौर्दीप-  
शिखोद्भवैः ॥ ५० ॥

अञ्जननामिका (Stye) को प्रथम श्वेदन से शुद्ध हो जाने पर त्रिन्पीडन करे । इस विधि से भिन्न होने पर मैनशिल, इलायची, तगर, सेंधा नमक, इनके घूर्ण में शब्द मिला प्रति-  
मारण करना ( गन्धैः २ धिमना ) चाहिए अथवा रसाँज और शब्द को मिलाकर प्रतिमारण करे । प्रतिमारण के बाद दीपशिखा से पारा हुआ उष्ण काजल आँख में डाले ॥ ४९-५० ॥



स्वेदयेद् घृष्टयाङ्गुल्या हरिद्रकं जलौ-  
कता ॥ ५१ ॥

अँगुली को दूसरे हाथ की हथेली पर घिसकर  
अञ्जननामिका का स्वेदन करे तथा जोंकों द्वारा  
उसका रक्तनिर्हरण करे ॥ ५१ ॥

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्र-  
मेव च । प्रतिसारगमेकैकं भिन्ने लगण  
इत्यते ॥ ५२ ॥

लगण नामक पिपिडिका को भेदन करके गोलो-  
चन, जवाखार, नीलाथोथा, पीपटा तथा शहद  
इनसे प्रतिमारण करना चाहिए ॥ ५२ ॥

निमेपे नासया पेयं सर्पिस्नेन च  
पूरणम् ॥ ५३ ॥

निमेप रोग में रोगी को नाक द्वारा घृतपान  
तथा घृत से ही नेत्रों को पूरण कराना  
चाहिए ॥ ५३ ॥

स्वेदयित्वा विसग्रन्थि छिद्राण्यस्य  
निराश्रयम् । पक्ं भित्त्वा तुशखेण सैन्ध-  
वेनाचूर्णयेत् ॥ ५४ ॥

पक्क विसग्रन्थि को स्वेदन करके शख द्वारा  
अच्छी प्रकार भेदन करना चाहिए जिससे यह  
आश्रयरहित हो जाय । पुरखात् सैन्धवचूर्ण द्वारा  
उसके मुख को भर देना चाहिए ॥ ५४ ॥

वर्तमानलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमो-  
क्षणम् । पुनः पुनत्रिंशकश्च पिल्लरोगानुरो  
भजेत् ॥ ५५ ॥

पिल्लरोग में गान्धोटक खादि के गरदरे पत्तों  
द्वारा वर्तमान लेखन करके रक्तमोचण कराना  
और रोगी को बारम्बार विरेचक औषध देना  
चाहिए ॥ ५५ ॥

पिल्ली स्निग्धो वमेत्पूर्वं शिरावेधं  
स्रुतेऽष्टजि । गिलारसाञ्जनव्योपगोपित्त-  
श्चक्षुरक्षयेत् ५६ ॥

पिल्लरोगी को स्नेहन करा कर प्रथम वायक  
औषध दे । वमन हो जाने पर लघुदोषघ्न गिला

को विद करे । रक्तमोचण के परचात् मैनशिल,  
रसौत, गोलोचन, इन्हें एकत्र मिलाकर अञ्जन  
करना चाहिए ॥ ५६ ॥

हरितालवचादारुसुरसारसपेपितम् ।  
अभयारमपिष्टं वा तगरं पिल्लनाश-  
नम् ॥ ५७ ॥

हडताला बच, देवदारु, इन्हें तुलसी के रस  
से घोटकर अञ्जन करने से अथवा हड के  
काथ से पिल्ले तगर के अञ्जन से पिल्लरोग नष्ट  
होता है ॥ ५७ ॥

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनः-  
शिला । समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरि-  
चानि च ॥ ५८ ॥ एतत्समांशं मधुना  
पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि । अञ्जनं क्लेद-  
कएद्दहनं पचमणाश्च प्ररोहणम् ॥ ५९ ॥

रसौत, राल, चमेली के फूल, मैनशिल,  
समुद्रफेन, संधानमक, गेरू, वाकी मिर्च; इन्हें  
बराबर मात्रा में एकत्र मिला शहद के साथ  
पीसकर प्रक्लिन्नवर्तमान अथवा पिल्लरोग में अञ्जन  
करावे । इसके अञ्जन से क्लेद एव कएद्द नष्ट  
होकर पचम ( पलक ) पुनः पैदा होते  
हैं ॥ ५८-५९ ॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूर्यं मरिचा-  
न्वितम् ॥ आरणालेन संघृष्टमञ्जनं पिल्ल-  
नागनम् ॥ ६० ॥

शूरिनपर्णी की जड़, संधा नमक, काली  
मिर्च, इनके चूर्ण को एकत्र मिलाकर ताम्रपात्र  
में काँजी के साथ घिसकर पिल्लरोग को नष्ट  
करने के लिए अञ्जन करना चाहिए ॥ ६० ॥

हरिद्रे त्रिफला लोध्रं मधुकरंश्चन्दनम् ।  
मृद्वराजसे पिष्ट्वा शर्पयेत्सौहभाजने ॥  
६१ ॥ तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा रजि  
रजोऽथवा । पिष्ट्वा भृमदशां च तिभिरो-  
पहनेक्षणः ॥ प्रतिनिश्रयज्ञयेद्विन्यं मर्-  
नेत्रामयापहम् ॥ ६२ ॥

हल्दी, दारहल्दी, त्रिफला, लोध, मुलेठी, और लाल चन्दन, इनके चूर्णों को एकत्र कर भांगरे के रस से घोटकर लौहपात्र तथा ताम्रपात्र में पृथक-पृथक सात दिन घोटें। परचात् बत्ती बना खे अथवा चूर्ण रूप में रहने दे। प्रतिदिन रात को सोते समय रोगी को इसका अञ्जन करावे। इसके अञ्जन से पिच्छिट, धूम-दण्ड तथा तिमिर रोग आदि सम्पूर्ण नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ६१-६२ ॥

न्यूनाञ्जन ।

मञ्जिष्ठा मधुकोत्पलोदधिकफत्वकसेव्य-गोरोचनामांसीचन्दनशङ्खपत्र गिरिमृत्ताली-शुष्पुपाञ्जनैः । सर्वैरेव समांशमञ्जनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः कण्डूक्लेदमलाश्रुशोणितरुजापिल्लामशुक्रापहम् ॥ ६३ ॥

मजीठ, मुलहठी नीलकमल, समुद्रफेन, दारचीनी, खस, गोलोचन, जटामांसी, लाल चन्दन, शङ्खनाभि, तमालपत्र ( अथवा तेज-पत्र ), गेरू, तालीशपत्र. पुष्पाञ्जन, इनके महीन चूर्णों को एकत्र बराबर मात्रा में मिला अञ्जन करने से कण्डू, क्लेद, मल अश्रु, रङ्गलाव, वेदना, पित्त, अमं तथा शुकुरोग नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च त्रि-शतिः । त्रिंशत काञ्जिकपलैः पिप्प्ला-ताम्रे निधापयेत् ॥ ६४ ॥ पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि । तत्सेकेनोपदे-हाश्रुक्ण्डूशोथारच नाशयेत् ॥ ६५ ॥

तृत्तिया ४ तोले. सहिजन के बीज २० ( संख्या से ), कांजी १२० तोले इन्हें पीसकर ताम्रपात्र में रख दे। इसकी १ बूँद घाल में डालने से बहुत वर्षों से उत्पन्न हुआ पित्तलोग. मल, अश्रुलाव, कण्डू तथा शोथ नष्ट होता है ॥ ६४-६५ ॥

मृद्वान्तर्मुखं रोम सहिष्णोर्द्वरेच्छन्नैः । सन्दंशेनोद्वरेदृष्टयां पद्मरोमाणि बुद्धि-

मान् ॥ ६६ ॥ रत्नवर्ति दहेत्पद्म तप्तमे-शलाकया । पद्मरोगे पुनर्नैवं कदाचिद्रो-सम्भवः ॥ ६७ ॥

पद्मकोप ( परवाल ) में सहनशील पुरुष के अन्तर्मुख लोमों का सन्देश से पकड़कर धीरे से उखाड़ दे। परचात् तप्त सुवर्ण की सुई द्वारा आंख को बचाते हुए उन रोमस्थलों को जला दे। इस प्रकार चिकित्सा करने से रोग पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ६६-६७ ॥

घृतसैन्धवचूर्णेन कफानाहं पुनः पुनः । विलिखेन्मण्डलाग्रेण मच्छयेद्वा समन्ततः ॥ ६८ ॥

कफानाह रोग में घृत मिलाकर सैन्धवलवण के चूर्ण से प्रनिसारण तथा मण्डलाग्रशूल द्वारा मच्छन्न करना चाहिए ॥ ६८ ॥

पटोलामलकफाथैराश्च्योतनविधि-हितः । फणिज्झकरसोनस्य रसैः पोथकि-नाशनः ॥ ६९ ॥

पटोलपत्र तथा आँवले के क्वाथ में अथवा तुलसी के पत्तों को लहसन के रस से पीसकर आश्च्योतन करने से पोथकी ( रोड़े पटना ) रोग नष्ट होता है ॥ ६९ ॥

आनाहपिडिकां स्त्रिन्नां तिर्यग्भि-रवाग्निना दहेत् ॥ ७० ॥

आनाहपिडिका को स्त्रिन्न करने के परचात् तिर्यक् भेदन करके अग्नि द्वारा दग्ध करना चाहिए ॥ ७० ॥

अर्शस्तथा वर्त्मनाम्ना शुष्कार्शोर्द्वुर्द-मेव च । मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले छिन्याद्भिपक् शनैः ॥ ७१ ॥

नेत्रार्श, नेत्रवर्मरोग, शुष्कार्श तथा अशु'द. इनको धीरे २ तीक्ष्ण मण्डलाग्रशूल द्वारा मूल से छिन्न करना चाहिए ॥ ७१ ॥

सिन्धूत्यपिप्लीकुष्ठपणिनीत्रिफला-रसैः । मुरामण्डेन वर्तिः स्यात् स्लेष्मा-

भिष्यन्दनाशिनी।पोथकीरुतमोपरोधकृमि-  
ग्रन्थिकुकृणके ॥ ७२ ॥

सैधा नमक, पीपल, कूठ, शालिपर्णी, पृथिन-  
पर्णी, मुद्गपर्णी, त्रिफला रसाञ्जन ; इन्हें सुरा-  
मण्ड से पीस बत्ती बनावे । इस बत्ती के प्रयोग  
से रूक्षिणिक अभिष्यन्द, पोथकी, बतमरोग,  
कृमिग्रन्थि तथा कुकृणरोग नष्ट होता है ।

यहाँ कई टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते हैं  
कि सैधा नमक आदि द्रव्यों को त्रिफलारस  
से भावना देकर सुरामण्ड द्वारा बत्ती बनावे ।  
वे त्रिफलाद्रव्य तथा रसाञ्जन नहीं डालते हैं ॥७२॥

क्षतशुक्लहर गुग्गुल ।

अयःसयष्टित्रिफलाकणानां चूर्णानि  
तुल्यानि पुरेण नित्यम् । सर्पिर्मधुभ्यां  
सह भक्तितानि शुक्लानि काचानि निहन्ति  
शीघ्रम् ॥ ७३ ॥

लौहभस्म, मुलेठी, त्रिफला, पीपल ; प्रत्येक  
समभाग । शुद्ध गुग्गुल सय चूर्ण के बराबर ।  
इन्हें मिलाकर शहद तथा घृत के साथ सेवन  
करने से शुक्ल तथा काचरोग नष्ट होता है ।  
मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ ७३ ॥

तारकाद्यवर्त्ति ।

तारं ताम्रं रसं नागं कर्पूरं खपरं तथा ।  
रसाञ्जनं कांस्यशङ्खं हंसपाद्या द्रवैर्दिनम् ॥  
वर्त्तिः कृत्वाञ्जनाद्दन्ति समस्तं नेत्रजाम-  
यम् ॥ ७४ ॥

गन्धक से कुकी चाँदी की भस्म, ताम्रभस्म,  
पारा, मीमा, कपूर, खपरभस्म ( फेवल अभिन  
द्वारा की हुई ), रसाञ्जन, कांस्यभस्म, ( गन्धक  
द्वारा की हुई ), शङ्खपर्ण इन्हें इतराज के रस  
से १ दिन घोटकर बत्ती बनावे । इस बत्ती के  
अञ्जन से समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ७४ ॥

नयनशाणाञ्जन ।

कण्ठा सलमणोपणा सहरमाञ्जना  
साञ्जना सरित्पतिकफः सितासितपुन-  
र्नया शर्करा । रजन्यरुणचन्दनं मधु च

तुत्थपथ्या शिला अरिष्टदलसावरस्फटिक-  
शङ्खनाभीन्दवः ॥ ७५ ॥ इमानि तु भिचूर्ण-  
येन्निविडनाससा शोधयेत् तथायसि विम-  
र्दयेन्मधुताम्रदण्डेन तत् । इदं मुनिभिरी-  
रितं नयनगाणाञ्जनं करोति तिमिरक्षयं  
पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ ७६ ॥

पीपल, सैधा नमक, काली मिर्च, रसौत,  
सौवीराञ्जन ( सुरमा ), समुद्रफेन, सफेद, साँठी  
लाल साँठी, खाँड, हरदी, लाल चन्दन, शहद,  
तूतिया, हठ, मैनाशिल, नीम के पत्ते, लोध, फिट-  
करी, शङ्खनाभि, तथा कपूर । इन्हें अलग अलग,  
चूर्णित करके गाढ़े कपड़े में छान ले और  
परचाव मिला ले । तदनन्तर लौहपात्र में द्रव्य  
तथा जरा सा शहद मिला ताम्रदण्ड से मर्दन  
करे । इसक अञ्जन से तिमिर, पटल तथा पुष्य  
( फूला ) नष्ट होता है । बनाते समय सीसे को  
पिघलाकर पारे के साथ मिला लेना  
चाहिए ॥ ७५-७६ ॥

मुक्तादि महाञ्जन ।

मुक्ताकर्पूरकाचागुरमरिचकणासैन्धवं  
सैलवालं शुण्ठीककौल कांस्यत्रपुरजनि-  
शिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम् । दत्ताण्डत्वक  
च सान्नं क्षतजमथ शिरा क्रोतकं राज-  
वर्त्तः जातीपुष्पं तुलस्याः कुमुममभिनवं  
यीजकं स्यात्तथैव ॥ ७७ ॥ प्तीकनिम्बा-  
र्जनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्गयुग्मम् ।  
प्रत्येकमेपां खलु मापकैकं यत्रेन पिष्येन्म-  
धुनात्सिद्धम् ॥ ७८ ॥ भवन्ति रोगा  
नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च-  
तेषाम् । विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्ता-  
दिनानेन महाञ्जनेन ॥ ७६ ॥

माँगी, कर्पूर, काँच, लवण ( गोशान नमक ),  
अगर, काली मिर्च, पीपल, सैधा नमक, पल-  
काशुक्, ( सुगंध द्रव्य ), गोठ, शीतलपर्णी, नीम,

कांश्यभस्म ( गन्धक द्वारा की हुई ), सीसा-भस्म, हल्दी, मैनशिल, शंखनाभ, अभ्रक-भस्म, नीलाथोथा, मुर्गी के अण्डे का छिलका, बहेड़ा, केसर, हड़, मुलहठी, लाजवर्द, चमेली के फूल, तुलसी के नूतन पुष्प तथा बीज, करञ्जी-बीज, नीम की छाल अर्जुन की छाल, नागर-मोथा गन्धक द्वारा की हुई साग्रभस्म, रसात; हरएक को १ माशे के परिमाण में लेकर शहद के साथ अच्छी तरह पीसकर अत्यन्त सूक्ष्म कर ले । इस महाञ्जन द्वारा अत्यन्त बड़े हुए सम्पूर्ण नेत्ररोग भी अवश्य नष्ट होते हैं ।

यहाँ पर कोई-कोई रस शब्द से पारद का ग्रहण करते हैं । यदि पारा लेना हो तो सीसे को पिघलाकर प्रथम पारे के साथ मिला लेना चाहिए । इस अञ्जन में त्रिफला द्वारा की हुई अभ्रकभस्म ली जाती है । परन्तु जल से धोकर इसे पारहीन कर लेना चाहिए । यदि योग में पारा न लेना हो तो गन्धक द्वारा की हुई सीसा की भस्म ही श्रेष्ठ है ॥ ७७-७९ ॥

नयनामृत ।

रसेन्द्रभुजगौ तुलयौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम् । सूततुर्याशकपूरमञ्जनं नयनामृतम् ॥ ८० ॥ तिमिरं पटलं काचं शुक्रमर्माणु-नानि च । क्रमात् पथ्याशिनो हन्ति तथान्यानपि दृग्गदान् ॥ ८१ ॥

पारा ४ भाग, सीसक ४ भाग, सौवीराञ्जन ( सुरमा ) ८ भाग, कपूर १ भाग, इन्हें इकट्ठा मिलाकर पथ्य का सेवन करते हुए अञ्जन करने से तिमिर, पटल, काँच, शुक्र, अर्म, अर्जुन आदि रोग नष्ट होते हैं । इस योग में भी सीसक को पिघलाकर पारे के साथ मिला लेना चाहिए ॥ ८०-८१ ॥

पडङ्गघृतगुग्गुलु ।

विभीतकशिवाधारीपटोलारिष्टवास-कैः । काथो गुग्गुलुना पेयः शोधपाका-त्तिशूलनुत् ॥ ८२ ॥ पित्तं च सव्रणं शुक्रं रागादींश्चापि नाशयेत् । पतैश्चापि

घृतं, पक्वं रोगास्तारं च व्यपोहति ॥ ८३ ॥

बहेड़ा, हड़, आँवला, परवल के पत्ते, नीम की छाल और अरुसे के मूल के क्वाथ में गुग्गुलु डाल कर पीने से शोध. नेत्रपाक, नेत्रशूल, पित्त, व्रणयुक्त फूली और नेत्र की लालिमा आदि रोग नष्ट होते हैं । अथवा पूर्वोक्त ओष-धियों के क्वाथ में घृत सिद्ध कर पीने से उपयुक्त रोग नष्ट होते हैं । घृत इस प्रकार सिद्ध करना चाहिए—उपयुक्त ओषधियों का काढ़ा ८ सेर । घी २ सेर । गुग्गुलु आध सेर । काढ़ा करते समय गुग्गुलु को पीटली में बाँधकर उस पर लटका देना और काढ़ा तैयार होने पर छानकर उसमें गुग्गुलु घोल दे और उसमें घी डालकर पकावे घृतमात्र अवशिष्ट रहने पर छानकर रख ले । मात्रा—३ माशे से १ तोला तक ॥ ८२-८३ ॥

वासकादि ।

अटरूपाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूल-कैः । रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वास-कादिकम् ॥ ८४ ॥

काथस्थ पानं चक्षुषि सेकरच इति वृद्धाः ।

अरुसा, हड़, नीम की छाल, आँवला, नागर-मोथा, बहेड़ा, और परवल के पत्ते; इनका काथ बनाकर पीने से तथा नेत्र धोने से कफज रक्तस्राव नष्ट होता है । यह वासकादि नेत्रों के लिए हित-कारी है ॥ ८४ ॥

वृद्धासादि ।

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृ-ताचन्दनवत्सकत्वक् । कलिङ्गदाशीदहनानि शुण्ठी भूनिम्बधात्रधावभयाविभीतम् ॥ ८५ ॥ श्यामा यवकाथमथाष्टमार्गं पिपे-दिमं पूर्वदिने कपायम् । तैमिर्यकण्डूपट-लायुदश्च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणश्च ॥ ८६ ॥ सर्वाञ्जनानामयांश्च भृगूपदिष्टं नय-नामयेपु ॥ ८७ ॥

अरूसा, नागरमोथा, नीम की छाल, पर-  
धल के पत्ते, कुटकी, गिलोय, लालचन्दन, कुड़ा  
की छाल, इन्द्रजी, दारुहल्दी, चीता की जड़,  
सोंठ, चिरायता, आँवला, हड, बहेड़ा, काखी  
सारिवा, और जी मिलित २ तोले लेकर ३२  
तोले जल में आँटावे, जय ४ तोले बाकी रहे  
तब छानकर प्रातःकाल पीवे । यह योग तिमिर,  
सुजली, पटल, अर्बुद, प्रणयुक्त और बिना प्रण  
की फूली तथा सब प्रकार के नेत्ररोगों को नष्ट  
करता है । नेत्ररोगों के लिए इसे भृगुजी ने कहा  
है ॥ ८६-८७ ॥

पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः पट्टधाड्यो  
द्वादशैव तु । प्रस्थाद्धे सलिले काथमष्ट-  
भागावशेषितम् ॥ ८८ ॥ पीत्वाभिप्यन्द-  
मास्त्रावं रामं च तिमिरं जयेत् । संरम्भ-  
रागशूलास्त्रनाशनं दृकप्रसादनम् ॥ ८९ ॥  
नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्च्योतनादि-  
कम् ॥ ९० ॥

हड़ नग ३, बहेड़े नग ६ और आँवले नग  
१२, इनको आध सेर जल में पकावे । जय १  
छटौंके जल बाकी रहे तब छानकर पीवे तो  
अभिभ्यन्द, नेत्रस्त्राम, लालिमा, तिमिर, आँखें  
उठना, नेत्रशूल और रङ्गरोगों को नष्ट एवं नेत्रों  
को निर्मल करता है । यदि नेत्र में चोट आदि  
लग जाय तो शीतल आश्च्योतन करना  
चाहिए ॥ ८८-९० ॥

दृष्टे प्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्  
स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।  
स्वेदाग्निधूममयशोकरुजाभितापैरभ्याहता  
नपि तथैव भिपक् चिकित्सेत् ॥ ९१ ॥

पसीना, अग्नि, धूप, मय, शोक, रोग और  
धूप आदि से यदि दृष्टि में आघात हो तो शीघ्र  
ही स्निग्ध, शीतल और मधुर प्रयोगों से  
दृष्टि को निर्मल करनेवाली चिकित्सा करनी  
चाहिए ॥ ९१ ॥

आगन्तु नेत्ररोग की चिकित्सा ।

आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्य कार्यं वक्त्रो-  
ष्मणा स्वेदनमादितश्च । आश्च्योतनं  
स्त्रीपयसा च सद्यो यच्चापि पित्ततजापहं  
स्यात् ॥ ९२ ॥

आगन्तुक दोषों के कारणों का विचार कर  
मुख की वायु से वक्त्र को गरम करके स्वेदन  
करना चाहिए । अथवा स्त्री के दूध से आश्च्यो-  
तन करना चाहिए तथा पित्तज और रङ्गज नेत्र-  
रोग की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ९२ ॥

सूर्योपरागानलविद्यताश्च विलोकनेनो-  
पहतेक्षणस्य । सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि  
कार्यं सायं निपेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः ॥ ९३ ॥  
सूर्यग्रहण, अग्नि और बिजली के देखने से  
जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई हो उसके लिए स्नि-  
ग्ध तथा शीतल क्रिया द्वारा संतर्पण करना  
चाहिए और सायंकाल के समय त्रिफला के  
प्रयोग का सेवन करना चाहिए ॥ ९३ ॥

निशाब्दत्रिफलादावीसितामधुकसंयु-  
तम् । अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण  
पूरणम् ॥ ९४ ॥

हल्दी, मोथा, हड, बहेड़ा, आँवला, दारु-  
हल्दी, मिसरी और मुलेठी; इनके महीन धूर्य  
को स्त्री के दूध में मिलाकर आँखों में डालने से  
नेत्राभिघात और नेत्रशूल नष्ट होते हैं ॥ ९४ ॥

उत्कटाङ्गु रजस्तद्वत् स्वरसोनेत्रपूरणे ।  
आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकञ्चोत्पलानि च  
॥ ९५ ॥ जीवकर्पभकौ चापि पिष्ट्वा  
सर्पिर्विपाचयेत् । सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पि-  
रेतत् प्रशस्यते ॥ ९६ ॥

खाल ईश के पंजुर का रस नेत्रों में डालने  
से नेत्राभिघात क्षप्टा होता है । तथा बकरी  
का घी २ सेर, दूध ८ सेर, कणक के लिए मुलेठी,  
नीलोत्तरी, जीषक और अष्टभङ्ग; प्रत्येक आठ-आठ  
तोले । यथाविधि घृत सिद्ध कर नेत्रों में डालने-

से अथवा सेवन करने से सब प्रकार के नेत्राभि-  
घातों को नष्ट करता है ॥ २५-२६ ॥

शुष्काक्षिपाकचिकित्सा ।

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो  
घृतम् । स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं शुक्रपाके  
तदञ्जनम् ॥ २७ ॥

सैंधा नमक, देवदारु, सोंठ, धिजौरे नींबू का  
रस, घी, खी का दूध और जल; इनको एकत्र  
घोटकर शुक्रपाक नेत्ररोग में अंजन करना  
चाहिए ॥ २७ ॥

अन्यतोवात और मारुतपर्यय की चिकित्सा ।

वाताभिष्यन्दवच्चान्यवाते मारुतपर्यये ।  
पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरं वाप्यथ  
भोजने ॥ २८ ॥

वाताभिष्यन्द के तुल्य अन्यतोवात और मारुत-  
पर्यय रोग में भोजन से पहले घी खाना और  
भोजन के साथ दूध खाना हितकर है ॥ २८ ॥

वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले मह-  
त्यपि । सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धञ्चापि पिबे-  
द्घृतम् ॥ २९ ॥

बाँदा, कैथ और बृहत्पञ्चमूल मिलित आध  
सेर लेकर कलक बनावे । घी २ सेर, दूध ४ सेर,  
काकवासिगी का काड़ा ४ सेर । विधिपूर्वक घृत  
सिद्ध कर पान करने से आगन्तुक नेत्ररोग शान्त  
होते हैं ॥ २९ ॥

अभिष्यन्दमधीमन्थं रक्तोत्थमथवार्जु-  
नम् । शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यारचस्रभ-  
वान् गदान् ॥ स्निग्धस्याज्येन कौम्भेन  
शिखावेधैः शमं नयेत् ॥ १०० ॥

रत्न, अभिष्यन्द, अधिमन्थ अथवा अजुन,  
शिरोत्पात, शिराहर्ष तथा अन्य रत्न रोगों में  
दशवर्षीय पुराने घृत का पान कराकर रोगी को  
स्निग्ध करके शिरावेध करने से उपयुक्त रोग  
शान्त हो जाते हैं ॥ १०० ॥

अम्लाध्युपितशान्त्यर्थं कुर्यात्लेपात् सु-

शीतलान् । तोलकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा  
केवलं हितम् । शिरावेधं विना कार्यः  
पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥ १०१ ॥

अम्लाध्युपित रोग की शान्ति के लिए ठंडे  
लेप करने चाहिए । अथवा १ तोला त्रिफलाघृत  
या पुराने घृत का पान करना हितकर है । शिरा-  
वेध के अतिरिक्त पित्ताभिष्यन्द की सी चिकित्सा  
भी करनी चाहिए ॥ १०१ ॥

शिरोत्पातचिकित्सा ।

सर्पिः क्षौद्राञ्जनञ्च स्याद्विरोत्पातस्य  
भेषजम् । तद्वत् सैन्धवकासीसं स्तन्य-  
पिष्टञ्च पूजितम् ॥ १०२ ॥

शिरोत्पात रोग में घी, शहद और सुरमा को  
पीसकर अंजन करना चाहिए । इसी प्रकार सैंधा-  
नमक और कसीस को खी के दुग्ध में पीसकर  
अंजन करना चाहिए ॥ १०२ ॥

शिराहर्षं चिकित्सा ।

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात् फाणितं मधु-  
संयुतम् । मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं  
वा समाक्षिप्तम् ॥ १०३ ॥

शिराहर्ष रोग में राव ( सीरा ) और शहद  
मिठाकर अंजन करना तथा शहद और रसोत  
का अथवा शहद और कसीस का अंजन करना  
हितकर है ॥ १०३ ॥

सत्रयशुक्रचिकित्सा ।

व्रणशुक्रमशान्त्यर्थं पटङ्गं गुग्गुलुं  
पिबेत् ॥ १०४ ॥

व्रण-शुक्र रोग की शान्ति के लिए पटङ्ग गुग्गुलु  
पीना चाहिए ॥ १०४ ॥

करञ्जस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रौप्यमेव  
च । कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन क्षतशुक्रार्ति-  
रागजित् ॥ १०५ ॥

करंज के बीज, शंखनाभि, तेंदुका के फल  
और चाँदी की मलम; इनको समभाग छे काँसे  
के पात्र में खी के दूध से घिसकर अंजन करे तो

व्रणशुक नेत्रपीडा और नेत्र की लालिमा नष्ट होती है । इस योग में अन्यत्र करंज बीज की जगह काकथीज पाठ है, जिसका अर्थ निर्मली बीज होता है ॥ १०५ ॥

व्रणशुकहरी वर्ति ।

चन्दनं गैरिकं लान्तामालतीकलिकाः  
समाः । व्रणशुकहरी वर्तिः शोणितस्य  
प्रसादनी ॥ १०६ ॥

लालचन्दन, गेरू, लाख और मालती की कली को जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह बत्ती शुकव्रण को नष्ट करती है और नेत्रगत रक्त को दूर करके नेत्र को साफ कर देती है ॥ १०६ ॥

शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकाभिरच  
लोचनात् । अक्षमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन  
शुकनाशनम् ॥ १०७ ॥

नेत्र की शिरा पर जोंक लगा कर रक्त निकल-  
याना एवं सायंकाल घहेदे की मींगी को खी के  
दूध में घिसकर अंजन करना फूली को नष्ट  
करता है ॥ १०७ ॥

एकं वा पुण्डरीकश्च<sup>१</sup> द्वागक्षीरावसे-  
चितम् । रागास्रवेदनां हन्यात् क्षतपा-  
कात्ययाजकाः ॥ १०८ ॥

केवल कमल को ही बकरी के दूध में पीसकर  
उसका रस आँसों में डालने से नेत्र की लालिमा,  
अश्रुपात, पीडा, व्रणशुक, नेत्रपाकात्यय और  
अजकारोग नष्ट होता है ॥ १०८ ॥

तुदयकं वारिणा युक्तं शुकं हन्त्यक्षिप्-  
रणात् । समुद्रफेनटप्ताण्डत्वक्सिन्धूत्थैः

१ कुछ विद्वान् यहाँ पुण्डरीक से पुण्डरिया  
काठ का प्रहण करते हैं । उनके मतानुसार इमपी  
पोटली बनाकर बकरी के दूध में रण दे । जब  
दूध का रंग पीला हो जाय तब पोटली को  
निकाल लेना चाहिए फिर दूध से आँस में  
सिंचन करना चाहिए ।

समाप्तिकैः ॥ १०९ ॥ शिश्रु वीजयुतैर्वर्तिः  
शुकधनी शिश्रु वारिणा ॥ ११० ॥

तृतिया को जल में धोलकर आँस में  
डालने से फूली नष्ट होती है ( एक रत्ती तृतिया  
४० रत्ती जल में धोल दो-तीन बूँद ही डालनी  
चाहिए ) । समुद्रफेन, मुर्गी के अंडे का  
छिलका, संधानमक, सहिजन के बीज; इनको  
शहद में घोटकर बत्ती बनावे । इस बत्ती को  
सहिजन के रस में घिसकर अंजन करने से  
फूली नष्ट हो जाती है ॥ १०९-११० ॥

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यक्ष्याह-  
लोध्रं खदिरं तिलारच । काथः सुशीतो  
नयने निपिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति  
शुकम् ॥ १११ ॥

आँवला, नीम के पत्ते, कैथ के पत्ते, मुलेठी,  
पडानी लोध, खैरसार और तिल; इनके काढ़े  
को ठंडा कर आँसों में डालने से सब प्रकार  
के शुक नष्ट होते हैं ॥ १११ ॥

क्षुण्णपुन्नागपत्रेण परिभावितवा-  
रिणा । श्यानाकाथाम्बुना वाथ सेचनं  
कुमुमापहम् ॥ ११२ ॥

पुन्नाग ( नागकेशर के वृक्ष ) के पत्तों को  
पीसकर जल में मिलाकर छान ले । इसका  
नेत्र में सिंचन करने से अथवा काली सारिया  
के काढ़े का सिंचन करने से फूली नष्ट होती  
है ॥ ११२ ॥

दक्षिणएडत्वकशिलाशङ्काचचन्दन-  
गैरिकैः । तुल्यंअनयोगोऽयं पुष्पामोदि-  
विलेखनः ॥ ११३ ॥

मुर्गी के अण्डे का छिलका<sup>१</sup> मैनशिल,  
शंखनाभि, कथियानमक ( मनिहारी नमक )  
जालचन्दन और गेरू; इनको समभाग छेद  
अंजन बनावे । यह अंजन फूली और नेत्रार्म  
रोग का छेदन करता है ॥ ११३ ॥

शिरपीपोजमरिचपिप्पलीसंधैरपि ।

शुक्रे प्रघर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन  
च ॥ ११४ ॥

सिरस के बीज, काली भिर्च, पीपरि और  
संधानमक; इनके महीन पिसे हुए चूर्ण से या  
केवल संधानमक के चूर्ण से फूली को घिसना  
चाहिए ॥ ११४ ॥

बहुशः पलाशकुमुमस्वरसैः परिभा-  
विता जयत्यचिरात् । नक्काहवीजवर्त्तिः  
कुमुमचयं दत्तु चिरजमपि ॥ ११५ ॥

करंजुद्या के बीजों के चूर्ण में टेसू के रस  
की बहुत सी ( सात ) भावनाएँ देकर बत्ती  
बना ले यह बत्ती बहुत दिन की पुरानी फूली  
को शीघ्र ही नष्ट करती है ॥ ११५ ॥

सैन्धवं त्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खना-  
भयः । सताम्ररजसो वर्त्तिः पिष्टा शुक्रावि-  
नाशिनी ॥ ११६ ॥

संधा नमक, हड, बहेडा आँवला, पीपरि,  
कुटकी, शंखनाभि और ताँबे की भस्म, इनको  
जल से पीस कर बत्ती बनावे । यह बत्ती फूली  
को नष्ट करती है ॥ ११६ ॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरु-  
शोणितम् । क्रमष्टद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मा-  
दिविलेखनम् ॥ ११७ ॥

तालचन्दन १ तोला, संधा नमक २ तोले,  
हड ३ तोले और ढाक का गोंद ४ तोले;  
इनका महीन चूर्ण कर आँख में लगाने  
से फूली और नेत्रार्म रोग का लेखन होता  
है ॥ ११७ ॥

दन्तवर्त्ति

दन्तैर्दन्तिवराहोष्णगराखाखरोद्भ-  
वैः । सशङ्खमौक्तिकाम्भोधिफेनेर्मरिचपा-  
दिकैः । क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्त्ति-  
नियर्त्तयेत् ॥ ११८ ॥

हाथी, शूकर, ऊँट, गऊ, घोड़ा, बकरी और  
गद्दा के दाँत, शंखनाभि, मोती तथा ममुदफेन,

ये सब समभाग । सबका चतुर्थांश कालीभिर्च ।  
सबको जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह बत्ती  
घ्रण और फूली को नष्ट करती है ॥ ११८ ॥

शङ्खादि अंजन ।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन  
मनःशिलाः ॥ ११९ ॥ मनःशिलार्द्धे  
मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् । एतच्चूर्णा-  
ञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च ॥ १२० ॥

शंखनाभि ४ तोले, मैनशिल २ तोले,  
कालीभिर्च १ तोला और संधानमक ६ माशे;  
इनके चूर्ण का अंजन सत्रण शुक और अत्रण  
शुक तथा तिमिर रोगों में हितकर  
है ॥ ११९-१२० ॥

ताप्यं मधुकसारौ वा बीजमक्षस्य  
सैन्धवम् । मधुनाञ्जनयोगा स्युरश्चत्वारः  
शुक्रशान्तये ॥ १२१ ॥

अथवा जारित सुवर्णमाक्षिक, मुलेठी का  
सत, बहेडे की मींगी और संधानमक; इनमें से  
किसी एक को शहद के साथ घोटकर अंजन  
करने से फूली नष्ट होती है ॥ १२१ ॥

घटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कपूरजं  
रजः । क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रश्चाति-  
घनोन्नतम् ॥ १२२ ॥

कपूर के महीन पिसे हुए चूर्ण में बरगद  
का दूध मिलाकर अंजन करने से कठिन और  
ऊँची उठी हुई फूली शीघ्र नष्ट होती है ॥ १२२ ॥

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्क-  
रस्य च । करीरस्य तु वंशानां कृत्वा  
क्षारं परिस्रुतम् ॥ १२३ ॥ कर-  
भास्थिकृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम् ।  
सप्तकृतोऽष्टकृतो वा श्लक्ष्णचूर्णं तु  
कारयेत् ॥ १२४ ॥ एतच्छुक्लेषु साध्येषु  
कृष्णीकरणमुत्तमम् । यानि शुक्राण्य-  
साध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ १२५ ॥



ताड़ की जटा, नारियल की जटा, भिलावाँ  
वाँस के करील; इनकी समभाग भस्म को अठ-  
गुने जल में घोलकर गाढ़े वस्त्र से छान ले ।  
इसको २१ बार छानने से चार जल तैयार  
होगा । ऊँट की हड्डी के चूर्ण में इस चारजल  
की सात या आठ भावनाएँ देकर सूब महीन चूर्ण  
तैयार करे । इसका अंजन साध्य शुक्ल ( सफेदी )  
को नष्ट कर आँसू के स्वाभाविक कालेपन को  
ला देता है । तथा जितने प्रकार के असाध्य शुक्र  
रोग हैं उनके लिए भी यह उत्कृष्ट अंजन  
है ॥ १२२-१२५ ॥

टिप्पणी—भावना के चार जल में टीकाकारों का  
मतभेद है । कुछ टीकाकार भाष्य द्रव्यों के समान  
भस्म में अठगुना या सोलहगुना जल मिलाकर काय  
करते हैं । आधा या चतुर्थांश रहने पर छान लेते  
हैं । इस प्रकार २१ बार करते हैं । वाग्भटाचार्य के  
मतानुयायी विनाकाय किये ही चौगुने या सोलह-  
गुने जल से परिष्कृत करना मानते हैं तथा दूसरे  
टीकाकार चौगुने या सोलह गुने जल में काय कर  
आधा रहने पर विहायण करना श्रेष्ठ मानते हैं ।

पटोलादि घृत

पटोलं कटुका दावीं निम्बं वासाफल-  
त्रिकम् । दुरालभां पर्यटकं त्रायन्तीञ्च  
पलोन्मिताम् ॥ १२६ ॥ प्रस्थमामलका-  
नाञ्च काथयेन्नुल्बण्डेऽम्भसि । पादशोषे रसे  
तस्मिन् घृतमस्यं विपाचयेत् ॥ १२७ ॥  
कल्कैर्निम्बकृत्तजमुस्तयष्टचाटचन्दनैः ।  
सपिप्पलीकैस्तस्तिदं चक्षुष्यं शुक्रयोहि-  
तम् ॥ १२८ ॥ प्राणहर्णाक्षित्वर्मत्वट-  
पुत्ररोगग्रणापटम् । कामलाकुष्ठवीसर्प-  
गण्डमालापटं परम् ॥ १२९ ॥

परवल के पत्ते, कूटकी, दाहदही, नीम की  
पान, चटुगा दह, बडेवा, काँचला, जवाता,  
पिपपपदा और प्रायमासा; ये सब मन्वेष्ट  
बार-बार तोड़े । काँचला ६४ तोड़े । इनको  
१५ गेर ४८ तोड़े जल में पकावे, जब १ गेर

३२ तोड़े अवशिष्ट रहे, तब उतार कर छान  
ले । घी १२८ तोड़े । कक्क के लिए चिरायता,  
कुड़ा की छाल, नागरमोथा, मुझेठी, लालचन्दन  
और पीपरि; सब मिश्रित ३२ तोड़े । यथा-  
विधि घृत सिद्ध करे । यह नेत्रों के लिए विशेष-  
कर दोनों प्रकार के शुक्ररोगों के लिए हितकारी  
है । इसके सेवन करने से नाक, कान, आँसू,  
पलक, खचा के रोग, मुखरोग, व्रण, कामला,  
कोढ़, विसर्प और गयढमाला आदि रोग नष्ट  
होने हैं । मात्रा ६ भाग से १॥ तोड़े तक ।  
शिवदास के मत से पटोलाफल और कक्क-  
द्रव्य पृथक् २ चार चार तोला लिये जाते  
हैं ॥ १२६-१२९ ॥

कृष्णादि तैल ।

कृष्णादिविद्वङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजनमवि-  
श्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं जगल्याः । तैलं  
नृणां तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिशूलपाकात्य-  
याञ्जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥ १३० ॥

कक्क के लिए पीपरि, वायविद्वङ्ग, मुझेठी,  
संघानमक और सोंठ; सब मिश्रित आधसेर ।  
तिल का तेल १ सेर । पकरी का दूध ८ सेर ।  
विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नस्य खेने से यह  
कृष्णाद्य तेल तिमिर, प्ली, शिरोरोग, नेत्रशूल  
और पाकात्य रोग को नष्ट करता है । नस्य में  
तेल दो घूँद से छह घूँद तक खेना चाहिए  
॥ १३० ॥

अजकाचिकिरसा ।

अजकां पार्वतो विद्ध्या सूच्या  
विस्त्राय्य चोदकम् । ग्रामं गोमयचूर्णेन  
पूरयेत् सपिपा सह ॥ १३१ ॥

अजकानामक नेत्ररोग को एक बाण्ड में  
सुई से बेधन कर उतका जल निष्काश दे ।  
परचाण गोबर का चूर्ण और घी मिलाकर उग  
सेर को भर दे । इसमें यह चर्षपा हो जागा  
है ॥ १३१ ॥

टिप्पणी—वाग्भट आदि में गोमयचूर्ण की जगद  
गोमोचचूर्ण का पद है ।

सैन्धवं वाजिपादश्च गोरोचनसमन्वि-  
तम् । शैलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजका-  
पहम् ॥ १३२ ॥

संधानमक, विष्णुक्रान्ता और गोरोचन;  
इनको महीन पीसकर लसोड़ा की छाल के रस  
में मिलाकर आँसू में डालने से अन्नका नष्ट  
होता है ॥ १३२ ॥

शशकादि घृत ।

शशकस्य शिरःकल्के शेषाङ्गकथिते  
जले । घृतस्य कुडवं पक्वं पूरणञ्चाजका-  
पहम् ॥ १३३ ॥

घृत ३२ तोले । कल्क के लिए हड्डी-रहित  
खरगोश का शिर । क्वाथ के लिए शिर-रहित  
खरगोश का मांस ६४ तोले । जल ६ सेर  
३२ तोले और अवशिष्ट क्वाथ १२८ तोले ।  
यथाविधि घृत सिद्ध करके नेत्र में डालने से  
अन्नका रोग नष्ट होता है ॥ १३३ ॥

शशकादि घृत ।

शशकस्य कपाये तु सर्पिषा कुडवं  
पचेत् । यष्टिप्रपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा  
समम् ॥ १३४ ॥ ज्वगल्याः पूरणोच्छुक्र-  
क्षतपाकात्ययाजकाः । हन्ति भ्रूशङ्खशूलश्च  
दाहरोगानशेषतः ॥ १३५ ॥

खरगोश का मांस ६४ तोले । जल ६ सेर  
३२ तोले । अवशिष्ट क्वाथ १२८ तोले । घी  
३२ तोले । कल्क के लिए-मुलेठी और पुंढरिया  
चार-चार तोले । बकरी का दूध ३२ तोले ।  
विधिपूर्वक घी सिद्ध करके नेत्र में पूर्ण कर देने  
से भूली, मण्य, पाकारण्य, अन्नका, भौहों का  
शूल, कनपटियों का शूल तथा विशेषकर नेत्र-  
दाह रोग नष्ट होता है ॥ १३४-१३५ ॥

नेत्र के काले भाग के रोगों के लिए अनेक योग ।  
त्रिफला घृतमधुयवाः पादाभ्यङ्गाः  
शतावरीमुद्गाः । चतुष्यः संक्षेपाद्दर्गाः  
कथितो भिषग्भिरयम् ॥ १३६ ॥

त्रिफला, पुराना घी, शहद, जौ, पैरों की  
मालिश, शतावरि और मूँग । वैद्यों ने सरोप से  
यह वर्ग नेत्रों के लिए हितकर कहा है । अर्थात्  
उपर्युक्त योगों का सेवन करना नेत्ररोगों में  
हितकर होता है ॥ १३६ ॥

लिह्यात् सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां  
घृतप्रगाढा तिमिरेऽथ पिचजे । समीरजे  
तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत  
युक्तितः ॥ १३७ ॥

पिचज तिमिर रोग में सदा त्रिफला का  
चूर्ण घृत में मिलाकर, यातज तिमिर रोग में  
त्रिफला का चूर्ण तिल के तेल में मिलाकर और  
कफज तिमिर रोग में त्रिफला का चूर्ण शहद में  
मिलाकर युक्ति से खाना चाहिए ॥ १३७ ॥

कल्कः काथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया  
निपेवितम् । मधुना सर्पिषा वापि समस्त-  
तिमिरापहम् ॥ १३८ ॥

त्रिफला के कल्क, क्वाथ अथवा चूर्ण में  
शहद या घी मिलाकर सेवन करने से सब  
प्रकार के तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ १३८ ॥

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जा सायं सम-  
रनाति हविर्मधुभ्याम् । समुच्यते नेत्रगतै-  
र्धिकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः १३९

पथ्य का सेवन करनेवाला जो रोगी घी  
और शहद के साथ त्रिफला के चूर्ण को सायं-  
काल के समय खाता है उसको नेत्र के रोग इस  
प्रकार छोड़ देते हैं जैसे कि धन नष्ट होने पर  
नौकर लोग मालिक को छोड़ देते हैं ॥ १३९ ॥

सघृतं वा वराकार्यं शीलयेत्तिमिरा-  
मयी । जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति  
कदाचन । त्रिफलायाः कपायेण प्रातर्न-  
यनधावनात् ॥ १४० ॥

त्रिफला के क्वाथ में घी मिलाकर तिमिर-  
रोगी को पीना चाहिए । अथवा त्रिफला के  
क्वाथ से प्रातःकाल नेत्र घोने से नेत्ररोग नष्ट

हो जाते हैं और पुनः कभी उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ १४० ॥

जलगण्डरूपैः प्रातर्बहुशोऽम्भोभिः प्रपूर्य  
मुखरन्ध्रम् । निर्दयमुत्तन्नक्ति क्षपयति  
तिमिराणि ना सद्यः ॥ १४१ ॥

प्रातःकाल अच्छे प्रकार जल से मुख भरकर उसके बुरला के जल से नेत्रों का सेचन करने से तिमिररोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १४१ ॥

भुक्त्वा पाणितलं धृष्ट्वा चक्षुषोर्दी-  
यते यदि । अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि  
व्यपोहति ॥ १४२ ॥

भोजन करके गीली हथेलियों को परस्पर घिसकर नेत्रों पर लगाने से शीघ्र ही तिमिर-रोग नष्ट होता है ॥ १४२ ॥

सुखावती वृत्ति ।

कनकस्य फलं शङ्खं त्र्यूपणं सैन्धवं  
सिता । फेनो रसाञ्जनं चौरं विडङ्गानि  
मनःशिला ॥ १४३ ॥ कुक्कुटाण्डकपा-  
लानि वृत्तिरेषा व्यपोहति । तिमिरं पटल  
काचमर्मशुक्रं तथैव च । कण्डूबलेदारुदं  
हन्ति मलं चाशु सुखावती ॥ १४४ ॥

निर्मली का फल, शंखनाभि, सोंठ, मिर्च, पीपरि, सेंधानमक, मिसरी, समुद्रफेन, रसीत, शहद, पायविषद, मैनशिल और मुर्गी के अण्डे का पिछका; इनको समभाग लेकर जल से घोटकर बत्ती बनावे । यह सुखावती बत्ती तिमिर पटल, काच, भर्म, प्ली, गुजली, बलेद, अयुं द और कीचड़ घाना इत्यादि रोगों को नष्ट करती है ॥ १४३-१४४ ॥

चन्द्रोदया वृत्ति ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि  
च । विभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनः-  
शिला ॥ १४५ ॥ सर्भेतत्समाहृत्य  
ध्यागङ्गीरेण पेपयेत् । नाशयेत् तिमिरं  
कण्डू पटलान्वयुं दानि च ॥ १४६ ॥

अधिकानि च मांसानि यच्च रात्रौ न  
पश्यति । अपि द्विर्वापिकं पुष्पं मासेनैकेन  
नश्यति । वृत्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां  
दृष्टिप्रसादनी ॥ १४७ ॥

हड, बच, कूट, पीपरि, कालीमिर्च, बहेडा की मींगी, शंखनाभि और मैनशिल; इनको समभाग ले बकरी के दूध में घोटकर बत्ती बनावे । इसको जल से घिसकर नेत्र में आंजने से तिमिर, खुजली, पटल, अयुं द, अधिकमांस रतींधी और दो वर्ष की फुली; ये रोग एक महीने में नष्ट हो जाते हैं । यह चन्द्रोदया नामक बत्ती नेत्रों को निर्मल करनेवाली है ॥ १४५-१४७ ॥

वृहच्चन्द्रोदया वृत्ति ।

रसाञ्जनमथैला च कुङ्कुमं समनः-  
शिलम् । शङ्खनाभिः शिशुवीजं शर्करा  
चात्र सप्तमी ॥ १४८ ॥ एषा चन्द्रोदया  
नाम वृत्तिश्चक्षुःप्रसादनी । हन्यात्  
पिच्छञ्च कण्डूश्च तिमिरञ्चापक-  
पति ॥ १४९ ॥

रसीत, छोटी इलायची, कुङ्कुम, मैनशिल, शंखनाभि, सहजना के बीज और शर्कर; इन सातों को जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह चन्द्रोदया वृत्ति नेत्रों को निर्मल करनेवाली तथा नेत्रमल, खुजली और तिमिररोग नष्ट करनेवाली है ॥ १४८-१४९ ॥

हरीतकयादि वृत्ति ।

हरीतकी हरिद्रा च पिप्पली लज्ज-  
णानि च । कण्डूतिमिरजिद्वृत्तिर्न क्वचित्  
प्रतिहन्यते ॥ १५० ॥

हड, हल्दी, पीपरि, और सेंधानमक; इनको जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह बत्ती खुजली और तिमिर-रोग को नष्ट करती है । यह बत्ती सब प्रकार के तिमिर रोगों को जीतती है, किसी में पिच्छ नहीं होती है ॥ १५० ॥

कुमारिका वर्त्ति ।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि पष्टिः पिप्प-  
लितएडुलाः । जातीपुष्पाणि पञ्चाशन्म  
रिचानि च षोडश । एपाकुमारिका वर्त्ति-  
र्गतं चक्षुर्निवर्त्तयेत् ॥ १५१ ॥

तिल के फूल ८०, पीपरि के चावल ६०,  
चमेली के फूल ६० और कालीमिर्च नग १६;  
इनको जल में पीसकर बत्ती बनावे । यह  
कुमारिका वर्त्ति नष्ट हुई नेत्र की ज्योति को पुनः  
ले आती है ॥ १५१ ॥

दृष्टिप्रदा वर्त्ति ।

त्रिफला कुक्कुटाएडत्वक् कासीसम-  
यसो रजः । नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनश्च  
सरिताम्पतेः ॥ १५२ ॥ आजेन पयसा  
पिष्ट्वा भावयेत्तान्नभाजने । सप्तरात्रस्थितं  
भूयः पिष्टं क्षीरेण वर्त्तयेत् । एपा दृष्टिप्रदा  
वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ॥ १५३ ॥

हृद, बहेडा, आँवला, सुर्गी के अरुडे का  
छिलका, कसीस (गंधवजारित), लोहमसम,  
नीलकमल, वायविडुंग पीर समुद्रफेन, इन  
सबको समभाग ले बकरी के दूध में घोटकर  
साँचे के पात्र में ७ दिन तक भीगने दे । परचात्  
बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बनावे । यह  
दृष्टिप्रदा वर्त्ति जिसके नेत्र फूटे नहीं हैं उन अन्धों  
को दृष्टि देनेवाली है ॥ १५२-१५३ ॥

चन्दनाद्य वर्त्ति ।

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः ।  
जलपिष्टेरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा ॥ १५४ ॥

लाजचन्दन, हृद, बहेडा, आँवला, सुपारी  
और बाक का गोंद; इनको समभाग ले जल  
में घोटकर बत्ती बनावे । यह सब प्रकार के  
तिमिररोगों को नष्ट करती है ॥ १५४ ॥

ज्यूपणाद्या वर्त्ति ।

ज्यूपणत्रिफलावल्कसैन्धवानि मनः-

शिला । क्लेदोपदेहकएडुघनी वर्त्ति-शस्ता  
कफापहा ॥ १५५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, हृद, बहेडा, आँवला  
मुलेठी, सेधा नमक, हरताल और सैनशिल;  
इनको जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह वर्त्ति  
क्लेद, मल और जुजनी को नष्ट करती है तथा  
कफज नेत्र रोगों में प्रशस्त है ॥ १५५ ॥

नयनसुखा वर्त्ति ।

एकगुणा मागधिका द्विगुणा च  
हरीतकी सलिलपिष्टा । वर्त्तिरियं नयन-  
सुखा तिमिरार्मपटलकाचाश्रुहरी ॥ १५६ ॥

पीपरि, १ तोला और हृद २ तोले; इनको  
जल से पीसकर बत्ती बनावे । यह नयनसुखा  
वर्त्ति तिमिर, अमं पटल काच और अश्रुपात  
को नष्ट करती है ॥ १५६ ॥

चन्द्रप्रभा वर्त्ति ।

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधु-  
यष्टिका । विभीतकस्य मध्यं तु शङ्ख-  
नाभिर्मनःशिला ॥ १५७ ॥ एतानि  
समभागानि छागीक्षीरेण पेपयेत् ।  
द्वयाशुष्कां कृतां वर्त्ति नेत्रेषु च प्रयो-  
जयेत् ॥ १५८ ॥ अयुर्दं पटलं काचं  
तिमिरं रक्तराजिकाम् । अधिमांसा-  
र्मणी चैव यच्च राश्रौ न पश्यति ।  
वर्त्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमपि नाश-  
येत् ॥ १५६ ॥

सुरमा, सफेद मिर्च, पीपरि, मुलेठी, बहेडा  
की मींगी, शखनाभि, सैनशिल; इनको सम-  
भाग ले बकरी के दूध में घोटकर बत्ती बनावे ।  
इस बत्ती को छाया में सुखाकर नेत्र-रोगों में  
सेवन करे । इसके अंजन से अयुर्द, पटल, काच,  
तिमिर, जाली, अधिमांस, अमं और रत्तीपी  
नष्ट होती है । यह जन्मान्ध्य को भी नष्ट करती  
है ॥ १५७-१५८ ॥

पञ्चशतिका वृत्ति ।

नीलोत्पलपत्रशतं मुद्गशतं यवशतञ्च  
निस्तुप ग्राह्यम् । मालत्याः कुसुमशतं  
पिप्पलीतण्डुलशतञ्च ॥ १६० ॥ पञ्च-  
शतैर्वृत्तिर्विहितञ्जनं कुर्यात् सर्वात्मके  
नयने । तिमिराश्रुकाचपटलेन नास्त्यपरः  
साधनोपायः ॥ १६१ ॥

नीलकमल की पँखुरी १००, मूँग १००,  
निस्तुप जी १००, चणेली के फूल १०० और  
पीपरि के दाने १००; इनको पीसकर बत्ती  
बनावे । इसका अञ्जन सब प्रकार के नेत्ररोगों  
में करता चाहिए । तिमिर, अश्रुपात, काच और  
पटल रोगों के लिये इससे बढकर अन्य साधन  
नहीं हैं ॥ १६०-१६१ ॥

व्योपोत्पलाभयाकुण्डताक्षैर्वृत्तिः कृता  
हरेत् । अर्बुदं पटलं काचं तिमिरामाश्रुनिः-  
सृतिम् ॥ १६२ ॥

सोठ मिच, पीपरि, नील कमल, हड, कूट,  
और रसौत, इनकी बत्ती बनाकर अञ्जन करे ।  
यह बत्ती अर्बुद, पटल काच, तिमिर, अम  
और अश्रुपातरोग को नष्ट करती है ॥ १६२ ॥

नागाजुनाञ्जन ।

त्रिफला व्योपसिन्धुत्थयष्टितुत्यरसाञ्ज-  
नम् । प्रपाण्डरीकं जन्तुन्ने लोध्रं ताम्रं  
चतुर्दश ॥ १६३ ॥ द्रव्याण्येतानि  
संगृह्य वृत्तिः कार्या नभोऽभ्युना । नागा-  
जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके ॥  
१६४ ॥ नाशिनी तिमिराग्नाश्च पट-  
लानां विशेषतः । सद्यः प्रकोप स्तन्येन  
प्रिया विजयने ध्रुवम् ॥ १६५ ॥ किंशु-  
करसेनाय पल्लं पुष्पञ्च रश्मताम् ।  
अञ्जनाभ्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥  
१६६ ॥ निरं संधादिने नेत्रे वस्नमूत्रेण

संयुता । उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं  
चाधिगच्छति ॥ १६७ ॥

हड, बहेडा, आँवला, सोठ, मिच, पीपरि,  
सँधा नमक, मुजेठी, तूतिया, रसौत, पुँडरिया,  
वायविवड्ग, लोध और ताम्रभस्म, इन चौदह  
औषधों का चूर्ण कर वर्षा के जल से बत्ती  
बनावे । नागाजुन ने पटले में एक स्तम्भ पर  
लिखा था । यह अञ्जन तिमिर रोग और विशेष-  
कर पटल रोगों को नष्ट करता है । स्त्री के दूध  
में घिसकर अञ्जन करने से नये नेत्र-कोप को,  
टेसू के रस में घिसकर अञ्जन करने से पँख-  
रोग, फूली और छातिलमा को और लोध के  
जल से अञ्जन करने से शीघ्र आनेवाले तिमिर-  
रोग को विजय करता है । बकरे के मूत्र में  
घिसकर अञ्जन करने से बहुत दिन की बन्द हुई  
आँखें बिना बष्ट खुल जाती हैं तथा स्वच्छ हो  
जाती हैं ॥ १६३-१६७ ॥

सौगतअञ्जन ।

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णाविचू-  
ण्णिताः । सर्पनेत्रामयान् हन्यादेतत् सौगत-  
मञ्जनम् ॥ १६८ ॥

हहरी, दारहहरी, हड, जटामांसी, कूट और  
पीपरि, इनका महीन चूर्ण बनाकर अञ्जन करने  
से सब प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ १६८ ॥

पिपल्यादि वृत्ति ।

पिप्पलीं सतगरोत्पलमात्रां वर्षयेत्  
समधुकां सहरिद्राम् । एतया सतत-  
मञ्जयितव्यं यः सुपर्णसममिच्छति  
चक्षुः ॥ १६९ ॥

पीपरि, लगर, नीलकमल, मुखेरी और  
हहरी, इनको जल में घोटकर बत्ती बनावे ।  
इसका प्रतिदिन अञ्जन करने गरह औरतो  
बिष्ट हो जाती है ॥ १६९ ॥

बोविला वृत्ति ।

व्योपायदग्गुणिसिन्धुत्थयष्टिपलाञ्जन-

संयुता । त्रिफलाजलसंपिष्टा कोकिला  
तिमिरापहा ॥ १७० ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, गंधकजारित लौहभस्म,  
इष्ट, बहेड़ा, आँवला और सुरमा, इनको त्रिफला  
के जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह कोकिला  
बत्ती तिमिर रोग को नष्ट करती है ॥ १७० ॥

जनरञ्जन अञ्जन ।

त्रीणि कट्वनि करञ्जफलानि द्वे च  
निशे सह सैन्धवकञ्च । विल्वतरोर्वरु-  
णस्य च मूलं वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ॥  
१७१ ॥ हन्ति तमस्तिमिरं पटलञ्च  
पिचटशुक्रमथायुं दकञ्च । अञ्जनकं  
जनरञ्जनकञ्च दृक् न विनश्यति वर्ष-  
शतेऽपि ॥ १७२ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, करंज के बीज, इवदी,  
दाहदहदी, सेंधा नमक, विल्व की जड़, बरना  
की जड़ और शंखनाभि; इनको समभाग  
ले महीन पीस कर अजन बनावे । यह जनरंजन-  
नामक अजन अन्धकार, तिमिर, पटलरोग,  
पिचट, फूली और अयुं द रोग को नष्ट करता है ।  
इसके सेवन से सौ वर्ष में भी नेत्र की ज्योति  
कम नहीं होती है ॥ १७१-१७२ ॥

नीलोत्पलं विडङ्गानि पिप्पली रक्क-  
चन्दनम् । अञ्जनं सैन्धवञ्चैव सद्यस्ति-  
मिरनाशनम् ॥ १७३ ॥

नीलकमल, बायषिङ्ग, पीपरि, जाल-  
चन्दन, सुरमा और सेंधा नमक; इनको  
पीसकर अंजन करने से शीघ्र ही तिमिर-रोग  
नष्ट होता है ॥ १७३ ॥

पत्रगैरिककपूरयष्टिनीलोत्पलाञ्ज-  
नम् । नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरा-  
पहम् ॥ १७४ ॥

तेजपत्र, गेरू, कपूर, मुखेठी, नीलकमल  
और नागकेशर; इनका अंजन सब प्रकार के  
तिमिर-रोगों को नष्ट करता है ॥ १७४ ॥

शंखादिअञ्जन ।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारततोऽर्थेन मनः-  
शिला । मनःशिलार्थं मरिचं मरिचार्धेन  
पिप्पली ॥ १७५ ॥ वारिणा तिमिरं  
हन्ति अयुं दं हन्ति मस्तुना । पिचटं मधुना  
हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुत्तमम् ॥ १७६ ॥

शंखनाभि ४ तोले, मैनशिल २ तोले,  
कालीमिर्च १ तोला और पीपरि ६ मासे; इनको  
जल में पीसकर आँजने से तिमिर रोग दही से  
पानी के साथ आँजने से अयुं द और शहद के  
साथ आँजने से पिचट रोग नष्ट होता है तथा  
स्त्री के दूध के साथ आँजने से सबसे उत्तम गुण  
करता है ॥ १७५-१७६ ॥

हरिद्राचवर्त्ता ।

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरि-  
चानि च । भद्रपुस्तं विडङ्गानि सप्तमं  
विश्वभेषजम् ॥ १७७ ॥ गोमूत्रेण गुटी  
कार्या ङ्गामूत्रेण चाञ्जनात् । ज्वरश्च  
निखिलान् हन्ति भूतावेशं तथैव च ॥  
१७८ ॥ वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना  
पटलं तथा । नक्कान्ध्यं भृङ्गराजेन नारी-  
स्तन्येन पुष्पकम् । शिशिरेण परिस्त्रावम-  
युं दं पिचटं तथा ॥ १७९ ॥

हररी, नीम के पत्ते, पीपरि, मिर्च नागर-  
मोथा, बायषिङ्ग ग और सोंठ; इन औषधियों को  
समभाग ले गोमूत्र में घोटकर गोची बनावे ।  
इसको बकरी के मूत्र में घिसकर अंजन करे, तो  
सब प्रकार के ज्वरों को और भूतयापा को  
नष्ट करे । यह गुटिका जल के योग से तिमिर  
को, शहद के योग से पटल को, भँगरा के रस से  
रसौंधी को, स्त्री के दूध से फूली को और घोस  
से घिसकर अंजन करने से अक्षुपात, अयुं द  
और पिचटरोग को नष्ट करती है ॥ १७७-  
१७९ ॥

कज्जल ।

भूमौ निघृष्ट्यांगुल्याञ्जनं संशमनं  
तयोः । तिमिरकाचार्महर धूमिकाचारच  
नाशनम् ॥ १८० ॥

पहले अगुली को भूमि पर रगडकर  
परचात् उससे अजन डालने से तिमिर,  
काच, अर्म और धूमदृष्टिरोग नष्ट  
होते हैं ॥ १८० ॥

त्रिफलामृद्धमहौषधमध्वाज्यच्छागपयसि  
गोमूत्रे । नागं सप्तनिपिक्तं करोति गरु-  
डोपमं चक्षुः ॥ १८१ ॥

त्रिफला वा काथ, अंगरे का रस, साठ का  
काथ, शहद, घी, बकरी का दूध और गोमूत्र,  
प्रत्येक में सात-सात बार गर्म किये हुए सीमे  
को बुझाकर सलाई बनावे । इस सलाई से  
अंजन लगाने से गरुड के तुल्य दृष्टि हो जाती  
है ॥ १८१ ॥

त्रिफलसलिलयोगे भृङ्गराजद्रवे च  
हविषि च विपकल्के द्वागदुग्धे मधुमे ।  
प्रतिदिनमथ तप्तं सप्तधा सीसमेकं प्रणि-  
हितमथ पश्चात् कारयेत् तच्छलाकाम् ॥  
१८२ ॥ सवित्पुरुषकाले साञ्जना व्यञ्जना  
वा कनकनिभसमेतानर्मपैचिद्यरोगान् ।  
असितसितसमुत्थान् सन्धिमर्माभिजा-  
तान् हरति नयनरोगान् सेव्यमाना-  
शलाका ॥ १८३ ॥

त्रिफला के काथ, अंगरे के रस, विपकल्क  
पुत्र पृत, बकरी के दूध और गुलेटी के कादे में  
प्रतिदिन तपाये हुए सीमे को प्रत्येक में सात  
घात बार बुझाकर सलाई बनावे । प्रातःकाल  
इस सलाई द्वारा अंजन लगाने से अथवा केपन  
सलाई नेत्रों में लगाने से आग्निमापुत्र अर्म,  
पिच्छट, कृष्णभाग के तथा रवेणभाग के रोग  
सन्धि तथा अर्म के रोग एवं नष्ट प्रकार के  
नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ १८२-१८३ ॥

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले त्वौ-  
दुम्बरे भाजने मूलं तत्र निघृष्य सैन्धवयुतं  
गौञ्जं विशोष्यातपे । तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन  
सहितं नेत्रामये शस्यते काचार्मार्जुनपिच्छटे  
मतिमिरे स्त्रावञ्च निर्णययेत् ॥ १८४ ॥

स्वच्छ ताँबे के पात्र में हमली के पत्तों का  
रस डालकर उसमें संधानमक और घुँघची की  
जड़ का चूर्ण मिलाकर घोंटे और फिर धूप में  
मुलावे । इस चूर्ण को शुद्ध सुरमा में मिलाकर  
अंजने से काच, अर्म, अर्जुन, पिच्छट, तिमिर  
और अश्रुपात आदि सब नेत्ररोग नष्ट होते  
हैं ॥ १८४ ॥

चित्रार्थाष्टियोगे सैन्धवममलं विचूर्ण्य  
तेनाक्षि । सममञ्जयतस्तिमिरं गच्छति  
वर्षादसाध्यमपि ॥ १८५ ॥

चीता की जड़ और मुलेठी के चूर्ण में  
समान भाग स्वच्छ संधा नमक मिलाकर अंजन  
बनावे । इस अंजन को निरंतर १ वर्ष तक नेत्रों  
में अंजना रहे, तो असाध्य तिमिर-रोग भी नष्ट  
हो जाता है ॥ १८५ ॥

दद्याद्गुणीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसेन्ध-  
वम् । तच्छ्रुते सप्तृतं तत्र मूयः सौद्रं  
क्षिपेद्यने । शीते चास्मिन् हितमिदं  
सर्जने तिमिरेऽञ्जम् ॥ १८६ ॥

रस का कादा १६ तोले, गी का घृत ४  
तोले, संधानमक और पीपरी का चूर्ण एक-  
एक तोला । सबको मिलाकर पकाये । जब  
गाढ़ा हो जाय तब २ तोले शहद डालकर ठंडा  
कर ले । यह अंजन मय प्रकार के तिमिर-रोगों  
में हितकर है ॥ १८६ ॥

धार्शंगमाञ्जनार्त्तसर्पिमिस्तु रस-  
म्रिया । पिचानिलाक्षरोगार्त्तां तैर्मियपट-  
लापटा ॥ १८७ ॥

आँवले का कादा १६ तोले, गी का घृत  
४ तोले, रगीन २ तोले । सबको मिलाकर

पकावे । जब गाढ़ा हो जाय तब २ तोले शहद मिलाकर ढंका कर ले । यह रसक्रिया पित्त शीर वात के नेत्ररोग, तिमिर और पण्ड के रोगों को नष्ट करती है ॥ १८७ ॥

शृङ्गवेरं भङ्गराजं यष्टितैलेन मिश्रितम् । नस्यमेनेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ १८८ ॥

सोंठ और अँगरे के चूर्ण में मुलेठी द्वारा सिद्ध किये हुए तेल को मिलाकर नस्य देने से बड़े हुए पटल के रोग नष्ट होते हैं ॥ १८८ ॥

लिङ्गनाशे कफोद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ १८९ ॥ विदुध्वा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत् । ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनेः ॥ १९० ॥ नयनं सर्पिषाभ्यञ्ज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् । ततो गृहे निरावाधे शयीतोत्थान एव च ॥ १९१ ॥ उद्धारकासक्तव्युष्टीवनोत्कम्पनानि च । तत्कालं नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणास्नेहपीतवत् ॥ १९२ ॥ त्र्यहात् त्र्यहात् धारयेत्तत् कपायैरनिलापहैः । वायोर्भयात् त्र्यहादूर्ध्वं स्वेदयेदक्षि पूर्ववत् ॥ १९३ ॥ दशरात्रं तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् । पश्चात् कर्म च सेवेत लङ्घनश्चापि मात्रया ॥ १९४ ॥ रागश्चोपोऽवुर्दं शोथो युदुवुर्दं केकराक्षिता । अधिमन्धादयरचान्ये रोगाः स्युर्दुष्टेधजाः ॥ अहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ १९५ ॥

कफ के कोप से उत्पन्न हुए मोतिपायिन्द्र ( जिङ्गनाश ) की विधिपूर्वक ( कृप्यमदल से शुबलमदल की ओर दो भाग अभाग की ओर स्थित ) सीष्ण शलाका से दैवकृत छिद्र में बेधन करके नेत्र को घी के दूध से भर दे, जब रूप दिखाई देने लगे, तब धीरे-धीरे शलाका को निकाल ले । परचाण नेत्र में घी लगाकर

कपड़े की पट्टी बाँध दे और रोगी को धुआँ धूप, वायु और धूल आदि से रहित, रक्षित स्थान में सीधा लिटा दे । उस समय ढकार खाँसी, छींक थूकना और और काँपना आदि कार्य न करे । स्नेहपीत के तुल्य आहार आदि का विचार रखे । तीन तीन दिन के परचाण पट्टी खोलकर वातनाशक काढ़े से नेत्र को धोकर और उस पर वस्त्र ढककर कोमल स्वेदन करे । इस प्रकार दश दिन तक संयम करना चाहिए । परचाण दृष्टि को निर्मल करनेवाले अन्न आदि प्रयोगों का तथा लघु आहार का सेवन करना चाहिए । ज्ञाता वैद्य के द्वारा अच्छे प्रकार बेधन कराना चाहिए, नहीं तो बेधन ठीक न होने से लालिमा चोप, अशुर्द, शोथ, युदुवुद, किरकिराहट और अधिमन्ध आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । नियमपूर्वक न रहने से भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिए जो रोग उत्पन्न हो उसी रोग के अनुसार चिकित्सा करना चाहिए ॥ १८९-१९५ ॥

रुजायामक्षिरागे वा भूयो योगान्निबोध मे ॥ १९६ ॥ कल्किता सघृता दुर्वा यवगैरिकसारिवाः । मुखालेपाः प्रयोक्तव्या रुजारोगोपशान्तये ॥ १९७ ॥

अब फिर नेत्र-पीड़ा और नेत्र-लालिमा के रोगों को कहता हूँ, सुनिप-दूध, जी, गेरू और अनन्तमूत्र, इनको घी के साथ पिसकर लेप करने से नेत्र-पीड़ा और नेत्रलालिमा शान्त होती है ॥ १९६-१९७ ॥

पयस्यासारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि । अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोप्यः पथ्य उच्यते ॥ १९८ ॥

श्रीरुकाकोली, अनन्तमूत्र, तेजपात्र, मंजीठ और मुलेठी, इनको यकरी के दूध में पीसकर सुहाता सुहाता गम लेप करना नेत्र पीड़ा और नेत्रलालिमा के लिए पथ्य कहा जाता है ॥ १९८ ॥ वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणैः । काकोल्यादिप्रतीनापं तथुञ्ज्यात्सर्वकर्मसु ॥ १९९ ॥ शाम्यत्येवं न



चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् । ततः  
शिरां दहेच्चापि मतिमान् कीर्त्तितं  
यथा ॥ २०० ॥

भद्रदायादि वातनाशक गणों से सिद्ध किये हुए चौगुने दूध में तथा काकोत्थादि गण के कलक में सिद्ध किये हुए घृत का नस्य और पान आदि सब कामों में प्रयोग करना चाहिए । यदि इसके प्रयोग से भी शूल शान्त न हो, तो स्नेहन और स्त्रेदन करके फस्द खुनावे और बाद में शिरा को दग्ध कर दे, जैसा कि शास्त्र में विधान है ॥ १६६-२०० ॥

दृष्टेरथ प्रसादार्थमञ्जनं शृणु मे शुभे ।  
मेपशृङ्गस्य पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि ॥  
२०१ ॥ मालत्यारचापि तुल्यानि  
मुक्तावैदूर्यभेज च । अजात्तीरेण सम्पिप्य  
ताम्रे सप्ताहमावपेत् ॥ प्रविधाय तु तद्  
र्त्वीर्योजयेदञ्जने भिपक् ॥ २०२ ॥

अथ दृष्टि को निर्मूल करनेवाले अंजनों को कहता हूँ, सुनिए । मेढासिंगी, धव, सिरस और चमेली, इनके फूल, मोती और वैदूर्य, इनको बकरी के दूध में घोटकर सात दिन तक ताम्रपात्र में रखे । फिर उसकी बत्ती बनाकर वैद्य अञ्जन में प्रयुक्त करे ॥ २०१-२०२ ॥

स्रोतोर्जं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनः-  
शिला । मरिचानि च तां वर्त्ति कारयेद्वापि  
पूर्ववत् ॥ २०३ ॥

सुरना, मूँगा, समुद्रफेन, मैनशिल और कालीमिर्च, इनको बकरी के दूध में पूर्ववत् घोटकर सात दिन तक ताम्रपात्र में रखे और फिर बत्ती बनाकर अञ्जन के काम में लावे ॥ २०३ ॥

रसाञ्जनं घृतं चौरं तालीशं स्पर्णगै-  
रिकम् ॥ गोशकृद्रससंयुक्तं पिचोपहतह-  
ृद्ये ॥ २०४ ॥

रसीत, घी, शहद, तालीशपत्र और स्पर्णगेरू,

इनको गोबर के रस में घोटकर बत्ती बनावे । इस बत्ती का अञ्जन पिचोपहत दृष्टि के लिए उपयोगी है ॥ २०४ ॥

नलिनोत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयु-  
तम् । गुटिकाञ्जनमेतत् स्याद्दिनरात्र्यन्धयो-  
र्हितम् ॥ २०५ ॥

सफेद कमल और नील कमल की केशर को गोबर के रस में घोटकर गोली बनावे । इस गोली का अञ्जन करने से दिनान्ध ( दिन में कम दिखना ) और रतींधी ( रात्रि में कम दीखना ) नष्ट होती है ॥ २०५ ॥

नदीजशङ्खत्रिकटून्यथाञ्जनं मनः-  
शिला द्वे च निशे गवां शकृत् । सचन्द-  
नेयं गुटिकाथवाञ्जने प्रशस्यते रात्रिदिने-  
ष्वपरयताम् ॥ २०६ ॥

काला सुरमा, शख, सोंठ, मिर्च, पीपरि, रसीत, मैनशिल, हल्दी, दारहल्दी, और लाल चन्दन, इनको गाय के गोबर के रस में घोटकर गोली बनावे अथवा अञ्जन बनावे । यह रात्र्यन्ध और दिनान्ध में उपयोगी है ॥ २०६ ॥

कणाच्छागायकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रस-  
पेपिता । अचिराद्दन्ति नक्तान्ध्यं तद्दत्स-  
त्तौद्रमूपणम् ॥ २०७ ॥

पीपरि को बकरी के जिगर में रखकर जल में पकावे । जब सिद्ध हो जाय तब उसी के रस में पीसकर गोली बनावे । इसका अञ्जन रतींधी को नष्ट करता है । इसी प्रकार काली-मिर्च को सिद्ध कर शहद के साथ अञ्जन करने से भी रतींधी नष्ट होती है ॥ २०७ ॥

त्रिफलाद्य घृत ।

त्रिफलाकाथकल्काभ्यां सपयप्तां शृतं  
घृतम् ॥ तिमिराण्यचिराद्दन्ति पीतमेत-  
न्निशाभुजे ॥ २०८ ॥

त्रिफला पा पाय ८ सेर, कक के लिए त्रिफला पाय सेर, घी २ सेर और गी का दूध

२ सेर। यथाविधि घृत सिद्ध करके सायंकाल के समय पीने से शीघ्र ही तिमिर-रोग नष्ट होते हैं ॥ २७८ ॥

महात्रिफलाद्य घृत ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरजस्य च । वृषस्य च रसप्रस्थं शतावरीश्च तत्स-  
मम् ॥ २०६ ॥ अजाक्षीरं गुडूच्याश्च  
आमलक्या रसं तथा । प्रस्थं प्रस्थं समा-  
हृत्य सर्वैरभिघृतं पचेत् ॥ २१० ॥ कल्कः  
कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।  
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदि-  
ग्धिका ॥ २११ ॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे  
भाण्डे निधापयेत् । ऊर्ध्वं पानमधःपानं  
मध्ये पानञ्च शस्यते ॥ २१२ ॥ यावन्तो  
नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति । रक्ते  
रक्तदुष्टे च रक्ते चातिश्रुतेऽपि च ॥ २१३ ॥  
नक्नान्ध्ये तिमिरेकाचे नीलिकापटलावुदे ।  
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पद्मकोपे च दा-  
रुणे ॥ २१४ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपि-  
त्तकफेषु च । अर्द्धं मन्ददृष्टिञ्च कफवा-  
तमदृषिताम् ॥ २१५ ॥ स्रवतो वातपि-  
त्ताभ्यां सकण्ड्यासन्नदूरदृक् । गृध्रदृष्टिकरं  
सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २१६ ॥  
सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद्घृ-  
तम् ॥ २१७ ॥

त्रिफला का कादा १२८ तोले, अँगुरा का रस १२८ तोले, अरुसे का रस १२८ तोले, शतावरी का कादा १२८ तोले, धकरी का दूध १२८ तोले, गिलोय का रस १२८ तोले, धाँबले का रस १२८ तोले, गौ का घी १२८ तोले । कदक के लिए पीपरि, मिसरी, मुनहा, त्रिफला, नील कमल, मुझेठी, क्षीरकाकोली, गिलोय और कटेरी, सब मिलित ३२ तोले । यथाविधि घृत सिद्ध करके स्वरस्य बर्तन में

रकरे । इसका भोजन के आदि में, मध्य में तथा अन्त में पान करना श्रेष्ठ है । इसके पान से ही नेत्र के सब रोग नष्ट हो जाते हैं । रङ्गज रोग, रक्तदुष्टि, नेत्र से रङ्ग का निकलना, रतीधी, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्धुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, कठिनतर पद्म-कोप तथा सब प्रकार के वातज, पित्तज तथा कफज नेत्र-रोग, कफ और वात से उत्पन्न अर्द्धदृष्टि (अधघता) और मन्ददृष्टि तथा वातज और पित्तज खाव, सुजली, दूरदृष्टि एवं आसन्नदृष्टि इत्यादि सब प्रकार के नेत्ररोगों को यह घृत नष्ट करता है । यह महात्रिफलाद्य घृत गिद्ध की सी दृष्टि करने-वाला तथा बल, वर्ण और अग्नि का बढ़ाने-वाला है ॥ २०६-२१७ ॥

त्रिफलाद्य घृत ।

त्रिफला त्र्यूपणं द्राक्षा मधुकं कटुरो-  
हिणी । प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मला विडङ्गं  
नागकेशरम् ॥ २१८ ॥ नीलोत्पलं शा-  
रिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् । कार्पिकैः  
पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥ २१९ ॥  
घृतप्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेत्ररुजापहम् ।  
तिमिरं दोषमास्तावं कामलां काचमर्बुदम् ।  
२२० ॥ विसर्पं म्दरं कण्डूं रक्तं श्व-  
यथुमेव च । खालित्यं पलितञ्चैव केशानां  
पतनं तथा ॥ २२१ ॥ विषमज्वरमर्माणि  
शुक्रञ्चाशु व्यपोहति । अन्ये च बहवो  
रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ॥ २२२ ॥  
तान् सर्वांनाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं  
यथा न चैतस्मात्परं किञ्चिदपिभिः करय-  
पादिभिः ॥ २२३ ॥ दृष्टिप्रसादनं दृष्टं  
तथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥ २२४ ॥

कदक के लिए त्रिफला, त्रिदु, मुनहा, मुझेठी, कुटकी, पुंटरिया, पोटी इलायची, धापीबड़ंग, नागकेशर, नीलकमल, घनन्तमूल, कालीसर, लालचन्दन, हररी और दाद-

हृद्दी ; प्रत्येक वस्तु एक-एक तोले । घी १२८ तोले । दूध १२८ तोले । त्रिफला का काढ़ा ४ सेर ६४ तोले । यथाविधि घृत सिद्ध करे । यह त्रिफलाद्य घृत सब प्रकार के नेत्ररोग, तिमिर, नेत्रस्राव, कामला, काच, अयुर्द, विसर्प, प्रदर, खुजली रङ्गसाव, सूजन, गजापन, बाल पकना और गिरना, विषमञ्जर, अर्म, पूली तथा अन्य बहुत से नेत्र और पलकों के रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को । कश्यप आदि ऋषियों ने दृष्टि को निर्मूल करनेवाला त्रिफला घृत से बढ़कर कोई भी योग नहीं देखा था ॥ २१८ २२४ ॥

त्रिफलाद्य घृत ।

फलत्रिकं भीरुकपायसिद्धं कल्केन  
यष्टीमधुकस्य युक्तम् । सर्पिःसमं चौद्र-  
चतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रष्ट-  
द्धम् ॥ २२५ ॥

त्रिफला का क्वाथ ४ सेर, शतावरी का काथ ४ सेर, घी २ सेर, कल्क के लिये मुलेठी आध सेर । यथाविधि घृत सिद्ध कर ढंढा करे, परचात् आधा शहद मिलाकर उसका सेवन करने से बढ़ा हुआ सन्निपातज तिमिर-रोग नष्ट होता है ॥ २२५ ॥

भृङ्गराज तैल ।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च ।  
तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टि प्रसाद-  
येत् । नस्थाद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न  
संशयः ॥ २२६ ॥

भंगरे का रस १२८ तोले, कक्क के लिए मुलेठी ४ तोले, तिल का तेल ३२ तोले । यथाविधि तेल सिद्ध कर नस्य लेने से दृष्टि निर्मूल होती है और एक महीने के सेवन से बलीपलित रोग अग्रय नष्ट होता है ॥ २२६ ॥

निराकरोति नक्रान्ध्यं सगोमयरसा  
कणा । यथा रतेन रमणी रमणस्य महा-  
पलम् ॥ २२७ ॥

पीपरि को गोबर के रस में पीसकर अंजन करने से रतींधी इस प्रकार नष्ट होती है जैसे रमणी के साथ रमण करने से पुद्ग का बल नष्ट होता है ॥ २२७ ॥

गोमय तैल ।

गवां शकृत्काथविपकमुत्तमं हितञ्च  
तैलं तिमिरेषु नस्यतः । घृतं हितं के-  
वलमेव पैत्तिके तथाभ्युतैलं पवनासृग्-  
त्थयोः ॥ २२८ ॥

गौ के गोबर के काढ़े में तेल पकाकर नस्य लेने से तिमिर-रोग नष्ट होता है । पैत्तिक तिमिर रोग में केवल घृत का नस्य लेना ही हितकर है तथा वातज और रङ्गज तिमिर-रोग में जल-मिश्रित तैल का नस्य लेना हितकर है ॥ २२८ ॥

शृपवल्गभ और घृत ।

जीवकर्पभकौ मेदा द्राक्षांशुमती निदि-  
ग्धिका बृहती । मधुकं बला विडङ्गं  
मल्लिष्ठा शर्करा रासना ॥ २२९ ॥ नीलो-  
त्पलं श्वदंष्ट्रा मपौण्डरीकं पुनर्नवा लव-  
णम् । पिप्पल्यः सर्वेर्षा भागैरक्षांशिकैः  
पिष्टैः ॥ १३० ॥ तैलं वा यदि वा सर्पि-  
र्दत्त्वा क्षीरं च चतुर्गुणं पक्वम् । आत्रेय-  
निर्मितमिदं तैलं शृपवल्गभं सिद्धम् ॥  
२३१ ॥ तिमिरं पटलं काचं नक्रान्ध्यं  
चायुर्दं दिवान्ध्यञ्च । श्वेतञ्च लिङ्गनाशं  
नाशयति च नीलिकां व्यद्गम् ॥ २३२ ॥  
मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितञ्चाकालजं हनु-  
स्तम्भम् । श्वासं कासं शोषं हिकां तथा-  
त्ययं नेत्रे ॥ २३३ ॥ मुखजैह्वयमर्शभेदं  
रोगं बाहुग्रहं शिरःस्तम्भम् । रोगानथो-  
र्ध्वजरोः सर्गानचिरेण नाशयति ॥  
१३४ ॥ पक्वञ्च कुडवं तैलं नस्यार्थ

नृपवल्लभम् । अन्तर्शैः शाणिकैः कल्कै-  
रन्यैर्भृङ्गादितैलवत् ॥ २३५ ॥

बल्क के लिये जीवक, श्रापमक, मेदा  
मुनका, शालपर्णी, फटेरी, बड़ी फटेरी, मुलेठी,  
खरेठी, यापविडंग, मँजोटी, शहर ( ग्राह ),  
रासना, नीलकमल, गोगुरु, पुंढरिया, सांठी,  
सैयानमक और बीपरि; प्रायः एक एक  
तोला । घी या तेल १२८ तोले, गोदुग्ध ६  
सेर ३२ तोले । पयाविधि तैल या घृत सिद्ध  
करे । यह नृपवल्लभ तेल आग्नेयजी का बनाया  
हुया है । यह तिमिर, पटल, काच, रत्तींधी,  
अधुंदा, दिनान्ध, र्वेतता, लिङ्गनाश, नीलिका,  
प्यङ्ग, मुख और नाक की दुर्गन्धता, अकाल-  
पलित, हनुस्तम्भ, रपास, कास, शोष, हिका,  
अधिपाकारवय, मुख और जिह्वा के रोग,  
आधासीसी, बाहुस्तम्भ, शिरःस्तम्भ और ऊर्ध्वशु-  
रोगों को शीघ्र नष्ट करता है । यदि १६ तोले  
तेल या घृत सिद्ध करना हो, तो बल्क द्रव्य  
तीन-तीन मासे तथा दूध ६४ तोले लेना  
चाहिए ॥ २२६-२३५ ॥

अजित तैल ।

तैलस्य पचेत् कुडवं मधुकस्य पलेन  
कल्कपिष्टेन । आमलकरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थेन  
संयुतं कृत्वा ॥ २३६ ॥ अजितं नाम्ना  
तैलं तिमिरं हन्यान्निमिप्रोक्तम् । विमलां  
कुरुते दृष्टिं नष्टामयानयेत्तद्वत् ॥ २३७ ॥

इति दृष्टिजेपु योगाः ।

तिल का तेल १६ तोले, बल्क के लिये  
मुलेठी ४ तोले, आंबजा का रस १२८ तोले,  
दूध १२८ तोले । विधिपूर्वक तेल सिद्ध करके  
नश्य लेने से यह अजित-नामक तेल तिमिर  
रोग को नष्ट करके दृष्टि को स्वच्छ करता है  
तथा गई हुई दृष्टि को फिर वैसी ही कर देता  
है ॥ २३६-२३७ ॥

अर्मचिकित्सा ।

अर्म तु ह्येदनीयं स्यात् कृष्णमासं

भवेद्यदा । वडिशरिद्धं मनुष्यस्य त्रिभाग-  
ञ्चात्र वर्जयेत् ॥ २३८ ॥

जय अर्मरोग यद्दर काले भाग तक पहुँच  
जाय तब उसे यदिश यंत्र द्वारा विद्ध करके  
छेदन करना चाहिए ; किन्तु नेत्र के तीन हिस्से  
छोड़ देने चाहिए ॥ २३८ ॥

पिप्पली त्रिफला लाक्षा लौहचूर्ण  
मसैन्धवम् । भृङ्गराज्रसे पिष्टं गुडिका-  
ञ्जनमिष्यते ॥ २३९ ॥ अर्मसतिमिरं  
काचं कण्डुं शुक्रं तथार्जुनम् । अञ्जना-  
न्नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ २४० ॥

पीपरि, त्रिफला, लाख और लोहचूर्ण इनको  
अंगरे के रस में घोटकर गोलियाँ बनावे । इसका  
अंजन करने से अर्म, तिमिर काच, कण्डू,  
फूली तथा अर्जुन आदि सब प्रकार के नेत्र रोग  
नष्ट होते हैं ॥ २३९-२४० ॥

पुष्पाण्यतार्जसितोदधिकेनशहसि-  
न्धूत्यर्गरिकशिलामरिचैः समांशैः । पिष्टंस्तु  
मात्तिकरसेन रसक्रियेयं हन्त्यर्मकाच-  
तिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ २४१ ॥

पुष्पाण्य ( पुष्पकासीस या पुष्पाञ्जन ),  
रसौन, शक्कर, समुद्रफेन, शखनाभि, संधा-  
गमक, गेरू, मैन्शिल और कालीमिर्च ; इनको  
समभाग ले ड्रूब महीन पीसकर शहद में  
मिलावे । अंजन करने से यह रसक्रिया अर्म,  
काच, तिमिर, अर्जुन और वर्गज रोगों को  
नष्ट करती है ॥ २४१ ॥

शुक्रिका चिकित्सा ।

कौम्भस्य सर्पिपः पानैरिरेकालेप-  
सेचनैः स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्रिकाम-  
ञ्जनैस्ततः ॥ २४२ ॥

दश वर्ष के पुराने घी के पान, विरेचन,  
लेप और निचन से तथा मधुर और शीतल  
अपविधियों से बने अंजनों से शुक्रिका रोग को  
शान्त करना चाहिए ॥ २४२ ॥

प्रयालमुक्त्वावैदूर्यशङ्खस्फटिकचन्दनम् ।  
सुवर्णरजतक्षौद्रमञ्जनं शुक्लिकापहम् २४३  
मूंगा. मोती, वैदूर्य, शंखनाभि, फिटकरी,  
लालचन्दन, जारित सुवर्ण, जारित चाँदी; इनका  
अंजन बनाकर शहद में मिलाकर आँजने से  
शुक्लिकारोग नष्ट होता है ॥ २४३ ॥

अर्जुनचिकित्सा ।

शङ्खक्षौद्रेणसंयुक्तः कनकः सैन्धवेनवा ।  
सितयार्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने २४४  
पैत्रंविधिमशेषेण कुर्यादर्जुनशान्तये २४५  
अर्जुन रोग में शंखनाभि और शहद; निर्मली  
और सेंधानमक अथवा खोंड और समुद्रफेन  
का अंजन करना चाहिए तथा अर्जुन रोग की  
शान्ति के लिये पिप्लज नेत्ररोगोक्त संपूर्ण  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २४४-२४५ ॥

पिष्टक चिकित्सा ।

वैदेहीं श्वेतमरिचं सैन्धवं नागरं  
समम् । मातुलुङ्गरसैः पिष्टमंजनं पिष्ट-  
कापहम् ॥ २४६ ॥

इति शुक्रजेषु योगाः ।

पीपरि, सफेद मरिच, सेंधानमक और सोंठ;  
इनको समभाग से घिजौरे नींबू के रस में घोट  
कर अंजन करने से पिष्टकरोग शान्त होता  
है ॥ २४६ ॥

उपनाह चिकित्सा ।

भिचवोपनाहं कफजं पिप्पलीमधु-  
सैन्धवैः । विलिखेन्मण्डलाग्रेण मच्छ-  
यित्वा समन्ततः ॥ २४७ ॥

कफज उपनाह रोग को भेदन करके मण्ड-  
लाम शस्त्र से जेगन करे परचाम् पोंडकर  
पीपरि, शहद और सेंधानमक से घर्षण करना  
चाहिए ॥ २४७ ॥

पथ्यात्तधात्रीफलमध्यवीजैस्त्रिद्वयेक-  
भार्गवैर्दधीत वृत्तिम् । तथाश्चयेदस्रमति-  
मगाढमद्योर्हरत् कोपमतिमृद्धम् २४८

हृद की मींगी ३ भाग, बहेड़ा की मींगी  
२ भाग और आँवले की मींगी १ भाग; इनको  
जल से पीसकर बत्ती बनावे । इसका अंजन  
करने से नेत्रों की सुखी और अत्यन्त बढ़ा हुआ  
नेत्र-कोप शान्त होता है ॥ २४८ ॥

स्त्रावेषु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयो-  
जयेत् । क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं  
वेध्येच्छिरां तथा ॥ २४९ ॥

नेत्रर्राव रोग में दोषानुसार त्रिफला का  
काढ़ा शहद, घी अथवा पीपरि के चूर्ण के  
साथ पान करना चाहिए । तथा शिरावेधन  
कराना चाहिए ॥ २४९ ॥

त्रिफलानुत्थकासीससैन्धवैः सरसा-  
ञ्जनैः । रसक्रिया कृमिग्रन्थौ भिन्नो स्यात्  
प्रतिसारणम् ॥ २५० ॥

इति सन्धिजेषु योगाः ।

त्रिफला के काढ़े में तूतिया, कसीस, सेंधा  
नमक और रसौत मिलाकर रसक्रिया तैयार  
करे । जय कृमिग्रन्थि फूट जाय तब उस पर  
रसक्रिया को लगाना चाहिए ॥ २५० ॥

सप्तामृतलौह ।

त्रिफलारज आयसं चूर्णं सहयष्टि-  
मधुकं समांशयुक्तम् । मधुना सर्पिषा  
दिनान्ते तुरूपो निष्परिहारमाददीत २५१  
तिमिरक्षतरकराजिकण्डूक्षण्डान्ध्यायुं द-  
तोयदाहशूलान् । पटलं सह काचपिप्लकं  
शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः ॥ २५२ ॥  
न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोग-  
निघर्हणाय पुंसाम् । दशानश्रवणोर्ध्वकण्ठ-  
जानां प्रशमे हेतुरयं महागदानाम् २५३  
पलितानि विनाशयेत्तथाग्निं चिरनष्टं कुरुते  
रविप्रचण्डम् । दयिताभुजपंजरोपगूढः  
स्फुटचन्द्रामरणासु यामिनीषु ॥ सुरतानि  
चिरं निषेवतेऽर्सा पुरुषो योगवरं निषेव-

माणः ॥ २५४ ॥ मुखेन नीलोत्पलचारु-  
गन्धिना शिरोरुद्धैरंजनमेचकमर्भैः ॥ भवेच्च  
घृष्टस्य समानलोचनः सुखैर्नरो वर्षशतञ्च  
जीवति ॥ २५५ ॥

इह, पहेदा, घाँवला, लोहभस्म तथा  
मुलेठी; ये सब द्रव्य समभाग लेकर घूर्ण करे ।  
सायंकाल के समय शहद और घी मिलाकर  
सेवन करने से यह सप्तामृत लौह तिमिर, मण्य,  
लालिमा, खुजली, रतींधी, अयुँद, घाँव से जल  
पहगा, दाह, शूल, पटल, काच और पिष्टक;  
इन रोगों को अक्षय शान्त करता है । यह  
केवल नेत्ररोगों को ही नष्ट करने के लिये नहीं  
है, किन्तु दाँत, कान तथा कण्ठ से ऊपर होने-  
वाले महारोगों को शान्त करने का भी यह  
कारण है । अकालपलित को नष्ट कर बहुत दिन  
से नष्ट हुई जठराग्नि को प्रचण्ड करता है तथा  
रतिशक्ति को बढ़ाता है । इसके सेवन से मनुष्य  
कमलसा सुन्दर एवं सुगन्धित मुखवाला, अंजन  
से काले धालवाला और भिद्र की-सी दृष्टिवाला  
तथा सौ वर्ष की आयुवाला होता है । मात्रा-  
१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २५१-२५६ ॥

नेत्राशनि रस ।

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं माक्षिकञ्च  
रसाञ्जनम् । पातनायन्त्रसंशुद्धं गन्धकं  
नवनीतकम् ॥ २५६ ॥ पलप्रमाणं प्रत्येकं  
ग्रहीयाच्च विधानवित् । सर्वमेकीकृतं चूर्णं  
घैः कुशलकर्मभिः ॥ २५७ ॥ ततस्तु  
भावना कार्या त्रिफलाभृङ्गराजकैः । ततः  
मन्नेपचूर्णञ्च पिप्पलीमूलयष्टिका ॥  
२५८ ॥ एला पुनर्नवा दारु पाठा भृङ्ग-  
शटीवचाः । नीलोत्पलं चन्दनं च श्लक्ष्ण-  
चूर्णञ्च दापयेत् ॥ २५९ ॥ मापमेकं प्रदा-  
तव्यं घृतश्रीमधुमर्दितम् । मर्दनं लौह-  
दण्डेन पात्रे लौहमये दृढे ॥ २६० ॥  
अनुपानं प्रयोक्त्वयमुष्णेन वारिणा तथा ।

यावतो नेत्ररोगांश्च पानादेव विनाशयेत् ॥  
२६१ ॥ नक्नान्धये तिमिरे काचे नीलिका-  
पटलायुँदे । अभिष्यन्देऽधिमन्धे च पिष्टे  
चैव चिरन्तने ॥ २६२ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु  
वातपित्तकफेषु च ॥ सर्वनेत्रामयं हन्याद्  
घृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २६३ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, स्वर्ण-  
माक्षिक भस्म, रसौत, पातनायन्त्र द्वारा शोधित  
आँवलासार गन्धक हरएक ४ तोले । इन्हें एकत्र  
मिलाकर त्रिफला के काप तथा भाँगेरे के रस  
से ७ बार भावना देकर पीपलामूल, मुलेठी,  
छोटी इलायची, साँडी, देवदारु, पाद, भाँगरा,  
कचूर, बच, नीलकमल, लालचन्दन हरएक का  
चूर्ण १ माशा परिमाण में डाले । परचात् घृत  
और शहद के साथ लौहपात्र में लौहदण्ड  
द्वारा घोट ले । मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती  
तक । अनुपान—उष्ण जल । इसके सेवन से  
रतींधी, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अयुँद,  
अभिष्यन्द, अधिमन्ध, पुरातन पिष्टक आदि  
सम्पूर्ण वातज, पित्तज एवं कफज नेत्ररोग नष्ट  
होते हैं ॥ २५६-२६३ ॥

तिमिरहरलौह ।

त्रिफलापत्रयष्ट्याद्युक्तं सारं निषे-  
वितम् । लौहं तिमिरकं हन्ति सुधांशुस्ति-  
मिरं यथा ॥ २६४ ॥

त्रिफला, पत्र (श्वेत कमल), मुलेठी,  
हरएक १ भाग । लौहभस्म सगुण्य के समान ।  
इन्हें एकत्र मिलाकर योग्य मात्रा में सेवन  
करावे । मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ।  
यह तिमिर को नष्ट करता है ॥ २६४ ॥

माक्षिकादिवट्टी ।

माक्षिकं तोलकामितं तदुद्धं गन्धकं  
रसम् । तथाभ्रञ्च समादाय मुक्तास्वर्णौ  
च पादिकौ ॥ २६५ ॥ काकमाचीपत्ररसै-  
स्त्रिधा सम्भाव्य यन्नतः । रत्त्रिद्वयमिता

कार्या मात्तिकादिवटी शुभा ॥ २६६ ॥  
वेष्टिता पद्मपत्रेण धान्यराशौ निधापिता ।  
यथायोगानुपानेन सेविता संहरेन्नृणाम् ॥  
नेत्ररोगाश्च निखिलान् नानोपद्रव-  
संयुतान् ॥ २६७ ॥

स्वर्णमात्तिका भस्म १ तोला, गन्धक  
आधा तोला, पारा आधा तोला, अन्नकभस्म  
आधा तोला, मुक्ताभस्म चौथाई तोला, स्वर्ण-  
भस्म चौथाई तोला, इन्हें एकत्र कर मकोय के  
रस से तीन धार भावना देकर दो-दो रत्ती की  
गोलियाँ बनावे। इन गोलियों को एक कमल  
के पत्ता में लपेट कर अनाज के ढेर में रखे।  
कुछ दिन के परचान् निकालकर त्रिफलाकाष  
आदि के अनुपान के साथ सेवन कराने से अनेक  
उपद्रवयुक्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ २६६-२६७ ॥

मधुकायलौह ।

मधुकं त्रिफलाचूर्णं लौहचूर्णं तथैव  
च । भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यामत्तिरोगप्रशा-  
न्तये ॥ १६८ ॥

मुलेठी, हड़, बहेड़ा, चाँवला और लोहभस्म;  
इनकी समभाग ले घी और शहद मिलाकर  
सेवन करने से नेत्ररोग शान्त होते हैं। मात्रा--  
१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २६८ ॥

नयनचन्द्रलौह ।

त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी शटी रास्ना  
महौषधम् । द्राक्षा नीलोत्पलं चैव काकोली  
मधुयष्टिका ॥ २६९ ॥ वाट्यालकं  
केशरञ्च कण्टकारीद्वयं तथा । लौहाश्रयोः  
पलं दद्यात् भावयेदाँषर्धैरिर्मः ॥ २७० ॥  
त्रिफलाकाथतैलेन भृङ्गराजरसेन च ।  
भावयित्वा वटी कार्या गुंजाद्वयमिताः  
शुभाः । याग्रन्तो नेत्ररोगाश्च तान्निहन्ति  
न संशयः ॥ २७१ ॥

सोठ, मिर्च, धीपरि, हड़, बहेड़ा, चाँवला,

काकडासिगी, कचूर, रास्ना, सोंठ, मुनक्का,  
नीलकमल, काकोली, मुलेठी, खरेंटी, नागकेशर,  
कटेरी, बड़ी कटेरी; सब मिलित ८ तोले।  
लोहभस्म ४ तोले, अन्नकभस्म ४ तोले।  
सबको एकत्र कर इसमें क्रमशः त्रिफला काष,  
तिल के तेल और भँगरा के रस की भावना  
देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसका  
सेवन करने से नेत्र के संपूर्ण रोग नष्ट होते  
हैं ॥ २६९-२७१ ॥

त्रिफला चूर्ण ।

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्या-  
निभीतकौ चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा  
प्रकीर्तिता ॥ २७२ ॥ त्रिफलामेहशोधनी  
नाशयेद्विपमज्वरान् ॥ २७३ ॥ दीपनी  
श्लेष्म पित्तघ्नी कुष्ठहन्त्र रसायनी सर्पि-  
र्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामया-  
ञ्जयेत् ॥ २७४ ॥

एक हरद दो बहेड़ा और और चार चाँवला,  
मिलाने से त्रिफला चूर्ण कहा जाता है। त्रिफला  
प्रमेह नृजन कफ तथा पित्तको नष्ट करती है  
एवं दीपन, और रसायन होती है। नेत्र रोगों में  
त्रिफला को शहद, और घी, के साथ खाने से सब  
नेत्ररोग शान्त हो जाते हैं ॥ २७२-२७४ ॥

टिप्पणी—त्रिफला के तीनों फल गुठली निकले  
समभाग होने चाहिए। गिनती में समता हो  
या न हो ।

नेत्ररोग में पथ्य ।

आश्च्योतनं लह्वन मज्जनं च स्वेदो-  
द्विरेकः प्रतिसारणं च ॥ २७५ ॥ प्रपूर-  
णं नस्यमसृग्निमोक्षः शस्त्र क्रियालेपन  
माज्यपानम् । सेको मनोवृत्तिरथाद्विग्रपूना  
मुद्रा यशालोदिताशालयश्च ॥ २७६ ॥  
लासोमपूरोवन कुम्कुटश्च कूर्मः कुलिशोऽ  
थकीपञ्जलश्च । कौग्मं रविर्वन्य कुलत्थ

यूपः पेयाविलेपीलशुनं पटो-  
लम् ॥ २७७ ॥

वार्ताकक्रकोटककारवेल्लं नवीनमोचं  
नवमूलकश्च । पुनर्नवामार्कवकावमाची-  
पत्तूरशाकानि कुमारिका च ॥ २७८ ॥  
सेको मनोवृत्तिरथाद्विप्रपूजा मुद्गा यवा  
लोहितशालयश्च । लामो मयूरो वन-  
कुम्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽथ कपिञ्जलश्च ।  
द्राक्षा च कुस्तुम्बुरुमाणि मन्थ लोघ्रं  
वराक्षौद्रमुपानहौनारीपयश्चन्दन मिन्दु  
खण्डितं तिक्कानि सर्वाणि लघूनिचापि  
॥ २७८ ॥ विज्ञानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं  
यथामलं दोषचयं निहन्ति ॥ २८० ॥

आश्चर्योत्तन लहून अजनस्वेदन विरेघन  
प्रतिसारण प्रपूरण नस्य रक्तमोचण शश क्रिया  
श्रेप घृतपान सेवन, मन, शुद्धि पैरों की स्वच्छता  
मूँग, जौ, लालशालि चावल, लावा, पची, मोर,  
वन का मुर्गा, कच्छप, ( कछुआ ) चिडिया,  
सफेद तीतर, इनका मास १०० वर्ष पुराना घी,  
जगली कुलथी का यूप पेया, विलेपी, लहसन,  
परवल, बेगन, कफोड़ा, फरेला, कच्चा केला, कच्ची  
मूली, साठी, भगरा, मकोय, शालिब्रशाक,  
ग्वारपाठा, परिपेचन, चित्तनिरोध ( सयम ),  
पैर आदि को स्वच्छ रखना, मूँग जौ लाल  
शालि, लावपची, मोर, वनमुर्गा, कछुआ,  
चिडिया, सफेद तीतर, दारु, धनिया, सधा नमक  
लोधी, त्रिफला शहद का सेवन जूता पहिनना  
पहली खी का दूध ( आल में डालना ) चन्दन,  
कपूर, कड़वे पदार्थ हलके पदार्थ यह सब दोषा  
नुसार नेत्ररोगी को सेवन कराने चाहिए । इससे  
दोषसमूह नष्ट होते हैं ॥ २७५-२८० ॥

अपथ्य ।

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुदियमूत्र-  
निद्रावमिवेगरोधान् । सूक्ष्मेक्षण दन्त-  
विघर्षणं च स्नानं निशाभोजनमातपश्च ॥

२८१ ॥ द्रवं रजोधूम निपेवणं च दृक्स्वे-  
देनं चापि विरुद्धमन्नम् मजल्पनं छर्दन -  
मम्युपानं मधूक पुष्पं दधि वेत्र शाकम् ॥  
२८२ ॥ कालिन्द पिरयाक विरुद्ध  
कानि मत्तयं सुरामांसमजाद्गलंच ॥  
२८३ ॥ ताम्बूलमग्लं लवणं विदाहि  
तीक्ष्णं कटुष्णं गुरुचान्नपानम् । नरो  
न सेपेत हिताभिलाषी रोगेषु सर्वेषु  
दृगाश्रयेषु ॥ २८४ ॥

अत्र सर्वचूर्णसमं लौहाभ्रं ग्राह्यम् ।  
इति भैषज्यरत्नावल्यानेत्ररोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

क्रोध, शोक, मैथुन, आसू, अपान-वायु, पुरीष,  
मूत्र, निद्रा, कै, इनके वेगों को रोकना, सूक्ष्म  
पदार्थों को देखना, दातों को कटकटाना, स्नान  
रात्रिभोजन, धूपसेवन, पतले पदार्थ, धूल धुआँ,  
का सेवन आल में स्वेदन, विपरीत अन्न सेवन  
अधिक जलना, वमन, अधिक जल पीना, महुष्ण,  
के फूल, दही, बेत की कोपल, तरबूज तिल-  
कुरा अकुरदार अन्न, मछली, शराब, जगली  
( जगल देश के जीवों को छोड़कर ) अन्य जीवों  
का मास, पान चयाना, अग्ल, लवण, विदाहि,  
कटु, उष्ण एव गुरु अन्नपान, इनका सेवन हित  
चाहनेवाले रोगी को सर्व नेत्र रोगों में न करना  
चाहिए ॥ २८१-२८४ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचिताया भैषज्य  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायया व्याख्याया  
नेत्ररोगाधिकार समाप्तः ।



### अथ नासारोगाधिकारः ।

सर्वेषु पीनसेप्वाटौ निर्गतागारगो भवेत् । स्नेहस्वेदप्रथमं धूमं गण्डूपधारणम् ॥ १ ॥

सब प्रकार के पीनस रोग में पहले निर्वात घर में रहना, स्नेहपान, स्वेदन नस्य, धूमपान और गण्डूप धारण करना श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

वासो गुरुष्यं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम् । लघूष्यं लवणं स्निग्धमुष्णं भोजनमद्रवम् ॥ २ ॥

मोटा, भारी तथा गर्म कपड़ा शिर पर बांधना तथा हल्का, गर्म, नमकीन, चिकना और पतलापनरहित भोजन पीनस रोग में हितकारी है ॥ २ ॥

पञ्चमूलीमृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी । सर्पिर्गुडः पद्मद्गश्च यूषःपीनसशान्तये ॥ ३ ॥

पञ्चमूल से सिद्ध किया हुआ दूध, चित्रक, हरीतकी, यक्ष्मा रोग में कहा हुआ सर्पिर्गुड और पद्मद्ग यूष के सेवन करने से पीनस रोग शान्त होता है ॥ ३ ॥

### व्योपाद्य चूर्ण ।

व्योपचित्रकतालीशतिन्तिडीकाम्लवेतसम् । स च व्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ ४ ॥ व्योपादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम् । पीनसरासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, शीता की जड़, तालीश-पत्र, तिन्तिडीक, धमलवेत, चस्य और जीरा, प्रत्येक एक एक भाग । छोटी इलायची, दाल-चीनी और तेजपात ; प्रत्येक चौथाई भाग । सबका चूर्ण कर उस चूर्ण के समान गुड़ मिलाये । यह व्योपादिक चूर्ण पीनस, श्वास और खाँसी को नष्ट करता तथा रुचि और स्वाद को बढ़ाता है ॥ ४ ५ ॥

### पाठादि तैल ।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः । दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं सम्पक्-पीनसे ॥ ६ ॥

कक के लिए—पाद, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा-पीपरि, चमेली के पत्ते, और दन्ती की जड़, सब भिलाकर आध सेर । पाकार्थ जल ८ सेर । तेल २ सेर । यथाविधि तेल सिद्ध कर पकी हुई पीनस में नस्य देना चाहिए ॥ ६ ॥

### व्याघ्री तैल ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योपसैन्धवैः । पाचितं नावनं तैलं पूतिनासा-गदापहम् ॥ ७ ॥

कक के लिए—छोटी कटेरी, दन्ती की जड़, वच, सहिजन की छाल, तुलसी, सोंठ, मिर्च, पीपरि और संधानमक; सब मिलित आध सेर । पाकार्थ जल ८ सेर । तेल २ सेर । विधि से तेल सिद्ध कर नस्य लेने से पूति-नस्य रोग ( नाक से दुर्गन्ध आना ) नष्ट होता है ॥ ७ ॥

### त्रिकट्वादि तैल ।

त्रिकटुकविडङ्गसैन्धववृहतीफलशिग्रु-दन्तीभिः । तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात् पूतिनस्यस्य ॥ ८ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, घायबिडग, संधानमक, बड़ी कटेरी के फल, सहिजन की छाल और दन्ती की जड़ ; मिलित आध सेर । गोमूत्र ८ सेर । तेल २ सेर । इन द्रव्यों द्वारा सिद्ध किये हुए तेल का नस्य लेने से पूतिनस्य रोग शान्त होता है ॥ ८ ॥

### फलिङ्गाद्यवपीड ।

कलिङ्गदिग्गुमरिचलाक्षासुरसकटफलैः । व्योपोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ ९ ॥ तैरेव मूत्रसंयुक्तैः यदुतैलं विपा-

चयेत् । अपीनसे पूतिनस्ये शमनं परि-  
कीर्तितम् ॥ १० ॥

इन्द्रजौ, हॉग, मिर्च, लाख, तुलसी, काय-  
फल, सोंठि, मिर्च, पीपरि, बच, सहिजन की  
छाल और बायविषङ्ग; इनके स्वरस की नास  
खेने से घबवा उपयुक्त द्रव्यों के कक और  
गोमूत्र द्वारा सिद्ध किये हुए तेल का नस्य  
खेने से पीनस और पूतिनस्य रोग नष्ट होते  
हैं ॥ १-१० ॥

नासापाक की चिकित्सा ।

नासापाके पित्तहरं विधानं कार्यं सर्वं  
वाह्यमाभ्यन्तरं च । हृत्वा रक्तं क्षीरिष्टत्त-  
त्यचश्य योज्याः सेके सर्पिपश्च  
प्रदेहाः ॥ ११ ॥

नासापाक रोग में पित्त को नाश करनेवाली  
सब प्रकार की बाह्य तथा आन्तरिक चिकित्सा  
करनी चाहिए । रज्जमोक्षण करके बरगद आदि  
दूधवाले वृक्षों की छाल के काटे से सेक देना  
चाहिए और घी का लेप करना चाहिए ॥ ११ ॥

पूयास्त्रे रक्तपित्तघनाः कपाया नावनानि  
च ।

नाक से पूयस्त्राव तथा रज्जस्त्राव होने पर रज्ज-  
पित्त-नाशक काढ़ों की तथा नस्यों की योजना  
करनी चाहिए ।

क्षवथुनाशक योग ।

शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककपा-  
यवत् । साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं  
क्षवथुरुक्मणुत् ॥ १२ ॥

सोंठ, कूट, पीपरि, बिल्वमूल की छाल और  
दास; इनके काढ़े से तथा कक से तैल अथवा  
घृत सिद्ध कर नस्य खेने से क्षवथुरोग ( धीक  
आना ) शान्त होता है ॥ १२ ॥

दीप्ते रोगे पैत्तिके पैत्तिकं तु कार्यं  
कुर्यान्मधुरं शीतलं च । नासादाहे स्नेह-

पानं प्रधानं स्निग्धा धूमामूर्ध्ववस्ति च  
नित्यम् ॥ १३ ॥

पैत्तिक दीप्त रोग ( अर्थात् जिस रोग में  
नासिका के छिद्रों में अत्यन्त दाह और नासिका  
से धूम निकलता मालूम हो ) में पित्तनाशक,  
मधुर और शीतल चिकित्सा करनी चाहिए ।  
नासादाह रोग में स्नेहपान प्रधान उपाय है तथा  
स्निग्ध धूम का पान और शिरोवस्ति का नित्य  
सेवन करना हितकर है ॥ १३ ॥

प्रतिश्यायचिकित्सा ।

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत् सर्पिर्यथा-  
वलम् । पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन  
गणेन च । नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवे-  
त्तेतादितेरितम् ॥ १४ ॥

वातिक प्रतिश्याय ( जुकाम ) में पञ्चलवणों  
के कक से या प्रथमगण ( विदार्यादिगण ) के  
कक और वाय से सिद्ध किये हुए घी का पान  
करना हितकर है । नस्य आदि के सेवन के समय  
अर्दित रोगीरूप संपूर्ण विधि का ध्यान रखना  
चाहिए ॥ १४ ॥

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः  
शृतम् । परिपेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादपि च  
शीतलान् ॥ १५ ॥

पित्त और रक्त प्रतिश्याय रोग में मधुरादि  
( काकोल्यादि ) गण से सिद्ध घृत का पान तथा  
शीतल श्रोपधियों के काथ का सिचन और शीतल  
लेप करना चाहिए ॥ १५ ॥

कफजे सर्पिपा स्निग्धं तिलमापवि-  
पक्या । यवाग्वा वामयित्वा वा कफघ्नं  
क्रममाचरेत् ॥ १६ ॥

कफज प्रतिश्याय रोग में रोगी को पहले  
घृतपान कराकर स्निग्ध करना चाहिए ।  
पश्चात् तिल और उद्दक के संयोग से पकाई  
हुई यवागू का पान कराकर वमन कराना  
चाहिए । तदनन्तर कफनाशक चिकित्सा करनी  
चाहिए ॥ १६ ॥

दार्दीङ्गुदीनिकुम्भैश्च क्रिणिह्याः  
स्वरसेन च । वर्तयोऽथ कृता योज्या  
धूमपाने यथाविधि ॥ १७ ॥

दारुहल्ली, हिगोटफल और दन्ती की जड़; इनके चूर्ण को लटजीरा के स्वरस में घोटकर बत्ती बनावे। इस बत्ती का विधि से धूमपान करना चाहिए ॥ १७ ॥

अथवा सधृतान् सक्तून् कृत्वाम-  
लकसम्पुटे । नवप्रतिशयावतां धूमं वैद्यः  
प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥

यव के सत्तू को घृतमिश्रित कर भाँवले के कलक द्वारा बनाए हुए सकोरे में रखे और उस पर अग्नि रखकर छेदवाले सकोरे से ढक दें। छेद से जो धूआँ निकले उसे नली द्वारा नये प्रतिशयावताले को पान करना चाहिए ॥ १८ ॥

यः पिवति शयनकाले शयनारूढः  
मुशीतलं मूरि । सलिलं पीनसंयुक्तो  
मुच्यते तेन रोगेण ॥ १९ ॥

पीनसवाला सोने के समय शय्या पर बैठकर जो बहुत-सा शीतल जल पीता है वह वातपित्तो-  
लक्षण पीनस रोग से छूट जाता है ॥ १९ ॥

पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धुतैलसमा-  
युतम् । प्रतिशयायेषु सर्वेषु शीलितं  
परमौषधम् ॥ २० ॥

जयन्ती के पत्तों का पुटपाक पर उसमें संधानमक और तेल मिलाकर सेवन करना सब प्रकार के प्रतिशयाय में अत्यन्त हितकर है ॥ २० ॥

सोपणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्ल-  
भोजनम् । नवप्रतिशयाहरं विशेषात्  
कफपाचनम् ॥ २१ ॥

स्निग्ध राई दही में गुड़ और काजीमिर्च मिलाकर सेवन करने से नया प्रतिशयाय नष्ट हो जाता है और अधिकतर कफ पच जाता है ॥ २१ ॥

प्रतिशयाये नवे शस्तो यूपश्चिञ्चा-  
च्छदोद्भवः । ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हर-  
च्छीर्षिविरेचनैः ॥ २२ ॥

नये प्रतिशयाय में इमली के पत्तों का काय पीना श्रेष्ठ है। कफ के पक जाने पर शिरोविरेचन द्वारा उसे निकालना चाहिए ॥ २२ ॥

शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभो-  
जनैः । वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्वमुपा-  
चरेत् ॥ २३ ॥

कफ निकालनेवाले तेल की शिर पर मालिश स्वेदन, नस्य, कटु और अम्लयुक्त भोजन, वमन और घृतपान आदि का दोपानुसार प्रयोग करना सब प्रकार के प्रतिशयाय में हितकर है ॥ २३ ॥

भक्षयेत्तु भुक्तमात्रे सलवणसुस्विन्न-  
मापमत्युष्णम् । स जयति सर्वसमुत्थं  
चिरजातं च प्रतिशयायम् ॥ २४ ॥

भोजन करने के पश्चात् नमकयुक्त गरम-गरम सिन्धुमाये हुए उद्दों वा भोजन करना सब प्रकार के पुराने प्रतिशयाय को नष्ट करता है ॥ २४ ॥

पिप्पल्यः शिशुवीजानि विडङ्गं मरि-  
चानि च । अथपीडः प्रगस्तोऽयं प्रति-  
शयायनिवारणः ॥ २५ ॥

पीपरि, सडिंजने के बीज, पायपिठग और कालीमिर्च, इनके स्वरस का नस्य प्रतिशयाय को नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥

समूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिपु-  
योजयेत् । धावनार्थं कृमिन्नानि भेषजानि  
च बुद्धिमान् ॥ शेषाणां तु विकाराणां  
यथास्वं स्यात्त्रिकित्सितम् ॥ २६ ॥

प्रतिशयाय रोग में यदि माक में कीड़े पड़ गये हों, तो कृमिन्ना आदिपिष्टों को गोमूत्र में पीसकर नस्य देना चाहिए और माक धोने के

लिये कृमिघ्न औषधियों का काढ़ा काम में लाना चाहिए। शेष विकारों ( नासायुद्ध तथा नासाशंखादि ) की दोपानुसार चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २६ ॥

करवीराद्य तैल ।

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यशनमल्लिका-  
यारच । एतैः समस्तैस्तैलं नासाशो नाशनं  
पक्वम् ॥ २७ ॥

लाल कनेर के फूल, चमेली के फूल, असना के फूल और मोतिपा के फूल; इनके द्वारा सिद्ध किये हुए तेल का नस्य लेने से नासाशंखा का नाश होता है ॥ २७ ॥

शिखरि तैल ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्काहसैन्धवैः ।  
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासाशंखां  
हितम् ॥ २८ ॥

कल्क के लिये गृह धूम, पीपरि, देवदारु, जवा-  
खार, करंज, सेंधानमक और लटजीरा के बीज;  
सब मिलाकर आध सेर, तेल २ सेर, पाकाय  
जल ८ सेर । बधाधिधि तेल सिद्ध कर नस्य लेने  
से नासाशंखरोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

चित्रक तैल ।

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्ज-  
बीजलवणाकैः । गोमूत्रयुतैः सिद्धं तैलं  
नासाशंखां शान्त्यै ॥ २९ ॥

चीता की जड़, चष्य, अजवाइन, छोटी कटेरी  
करंज के बीज, सेंधानमक और मदार की जड़;  
इनका कल्क आध सेर, गोमूत्र ८ सेर, तेल ४  
सेर । विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नस्य लेने से  
नासाशंखा नष्ट होता है ॥ २९ ॥

चित्रक हरीतकी ।

चित्रकस्यामलकयारच गुहूच्या दश-  
मूलजम् । शतं शतं रसं दद्यात् पथ्या-  
चूर्णाढिकं गुडात् ॥ ३० ॥ शतं पचेद्दुप-  
नीमते पलद्वादशकं क्षिपेत् । व्योष-

त्रिजातयोः चारात् पलाद्धमपरेऽह्नि ॥  
३१ ॥ मस्थार्द्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्या-  
दयन्त्रणः । वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं  
दुस्तरं कृमीन् । गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वा-  
सान् हन्ति सुदारुणान् ॥ ३२ ॥

चीत की जड़ का काढ़ा २ सेर, आंवले का  
रस २ सेर, गिलोय का काढ़ा २ सेर और दश-  
मूल का काढ़ा २ सेर, सबको एकत्र कर इसमें  
३ सेर १६ तोले हड़ का चूर्ण और २ सेर गुड़  
मिलाकर पाक करे । जब गाढ़ा होने लगे,  
तब सोंठ, मिर्च, दालचीनी तेजपत्र और  
छोटी इलायची; प्रत्येक का चूर्ण आठ-आठ  
तोले और जवाखार २ तोले एकत्र कर उसमें  
मिलावे । दूसरे दिन ६४ तोले शहद मिलाकर  
रक्ष ले । जठराग्नि का बल देखकर इसकी  
मात्रा निश्चित करनी चाहिए । इसके सेवन से  
अग्नि की वृद्धि होती है तथा क्षय, कास,  
पीनस, कृमिरोग, गुल्म, उदावर्त, बघासीर और  
श्वास आदि कठिन रोगों को यह नष्ट करती  
है ॥ ३० ३२ ॥

नासारोग में पथ्य ।

स्नेहः स्वेदः शिरोऽभ्यङ्गः पुराणा  
यवशालयः । कुलत्थमुद्गयोर्दूषो ग्राम्या  
जाङ्गलजा रसाः ॥ ३३ ॥ वार्ताकं कुलकं  
शिग्रु कर्कोटं बालमूलकम् । लशुन दधि  
तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥ ३४ ॥  
कटुवम्ललवणं स्निग्धमुष्णञ्च लघुभोज-  
नम् । नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथा-  
वलम् ॥ ३५ ॥

स्नेहन, स्वेदन, शिर पर तैल की मालिश,  
पुराने जौ तथा शालि चावल, कुलथी और मूँग  
का दूध, ग्राम्य एवं जाङ्गल पशु-पक्षियों के मांस  
का रस, बँगन, परवल, सहिजना, ककोडा, कची  
मूली, लहसन, दही, उष्ण जल, वारुणी (शराब),  
त्रिकटु, कटु, अम्ल एवं लवण ( नमकीन द्रव्य ),

स्निग्ध, उष्ण तथा हृत्का भोजन, इनका पीनस  
आदि नाक के रोगों में दोषानुसार सेवन करना  
चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

अथथ्य ।

स्नानं क्रोधं सक्नुमूत्रवातवेगान् शुचं  
द्रवम् । भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगे  
परित्यजेत् ॥ ३६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नासारोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

स्नान, क्रोध, मल, मूत्र एवं वात के वेगों  
का रोकना; शोक, पतला भोजन, भूमि पर  
सोना, इनका नाक के रोगियों को त्याग करना  
चाहिए ॥ ३६ ॥

इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिषायां व्याख्यायां-  
नासारोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

कर्णशूल चिकित्सा ।

कपित्थमातुलुङ्गाम्बुमृद्भवेरसैः शुभैः ।  
सुखोष्णैः पूर्येत्कर्णं कर्णशूलोपशा-  
न्तये ॥ १ ॥

कैथ की पत्तियों का रस, पिर्जारे नीम्बू का  
रस और अदरक का रस, इनको किंचित् उष्ण  
करके कान में छोड़ने से कर्णशूल शान्त  
होता है ॥ १ ॥

मृद्भवेरं च मधु च सैन्धवं तैलमेव  
च । कटुपुण्यं कर्णयोर्द्वयमेतदा वेदना-  
पटम् ॥ २ ॥

अदरक का रस, गहद, सेंधानमक और तेल  
को गुप्त गरम करके कानों में डालने से कानों  
की पीड़ा शान्त होती है ॥ २ ॥

लघुनार्द्रकशिग्रूणां स्वरसो मूलकस्य

च । कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कटुपुण्यः कर्ण-  
पूरणे ॥ समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाप्यव-  
चूर्णयेत् ॥ ३ ॥

लहसुन, अदरक और सडिजन का रस तथा  
केले की जड़ का रस, इनको किंचित् गरम  
करके कान में डालने से कर्णपीड़ा शान्त होती  
है अथवा कान में समुद्रफेन का चूर्ण डालने से  
कर्णपीड़ा शान्त होती है ॥ ३ ॥

आर्द्रकसूर्यावर्चकशोभाञ्जनमूलकस्व-  
रसाः । मधुतैलसैन्धवयुतः पृथगुक्ताः  
कर्णशूलहरा ॥ ४ ॥

अदरक, हुलहुल, सडिजना और मूली, इनमें  
से किसी एक के रस में शहद, तेल और सेंधा-  
नमक मिलाकर कान में गरम-गरम छोड़ने से  
कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ४ ॥

वंशावलेखसंयुक्तं मूत्रे चाजाचिके  
भिषक । तैलं पचेत्तेन कर्णं पूर्येत्कर्ण-  
शूलिनः ॥ ५ ॥

तिलतैल १ सेर, यकरी अथवा भेद का  
मूत्र ४ सेर, कदक के लिए वंशावलेख ( पीस  
के ऊपर का हरा-भरा पिलका ) १ पाव ।  
विधिपूर्वक पकाकर कान में दो-चार घूँटें  
टपकाने से कर्णशूल अच्छा हो जाता  
है ॥ ५ ॥

शोभाञ्जनस्य निर्यासस्ति तैलेन  
संयुतः । व्यक्रोपुण्यः पूगुः कर्णं कर्णशूलो-  
पशान्तये ॥ ६ ॥

सडिजन के रस में तिल का तेल मिलाकर  
गुप्त गरम करके कान में डालने से कर्णशूल  
शान्त होता है ॥ ६ ॥

अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन  
पै । कोपुणेन पूर्येत्कर्णं कर्णशूलोप-  
शान्तये ॥ ७ ॥

गो आदि के आठ मूत्रों में से किसी एक

मूत्र को कुपु गरम करके कान में डालने से कर्णशूल शान्त होता है ॥ ७ ॥

अश्वत्थपत्रखल्लं वा विधाय बहुपत्र-  
कम् । तैलाङ्गमद्भारपूर्णं निद्रध्याच्छ्रमणो-  
परि ॥ ८ ॥ यत्तैलं च्यवते तस्मात् खल्ला-  
दद्भारतापितात् । तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः  
सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ९ ॥

पीपल के बहुत से पत्तों को तेल से चुपड़-  
कर एक दोना बनाये और उस दोने में अग्नि  
का अगारा रखकर कान के ऊपर किसी घिमटे  
आदि से पकड़े रहे । अग्नि के ताप से पत्तों  
में से जो तेल के बूँद कान में गिरें वे ठीक  
कान के छेद में गिरने चाहिएँ । इस तेल से  
शीघ्र कर्णपीडा शान्त होती है ॥ ८-९ ॥

अर्कपत्रपुटे दग्धः स्नुहीपत्रोद्भवो रसः ।  
कटुप्लवः पूरणादेव कर्णशूलनिवा-  
रणः ॥ १० ॥

सेंडुड़ के पत्तों को पीसकर एक गोला बनाये  
और उसके ऊपर आक के पत्ते लपेटकर, कपड़-  
मिटी कर पका ले । जब पुटपाक तैयार हो  
जाय तब उसके अन्दर से सेंडुड़ के गोले को  
निकालकर उसका रस गरम-गरम कान में  
डालने से तुरन्त कर्णशूल शान्त होता है ॥ १० ॥

राजवृक्षादितोयेन सुरसादि जलेन  
या । कर्णप्रक्षालनं कुर्याच्चूर्णैरसैः प्रपू-  
रणम् ॥ ११ ॥

आरभवादिगण्य के काथ से अथवा  
सुरसादिगण्य के काथ से कान को विविधपूर्वक  
पिचकारी द्वारा धोना चाहिए । और पूतिकर्ण  
आदि रोगों में इनके महीन चूर्ण का ही कान  
में प्रथमन करना चाहिए ॥ ११ ॥

दीपिका तैल ।

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यप्टां-  
गुलानि च । क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैले-  
नादीपयेत्ततः ॥ १२ ॥ यत्तैलं च्यवते

तेभ्यः सुखोप्यं तत्प्रयोजयेत् । ज्ञेयं तदी-  
पिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ १३ ॥  
एवं कुर्याद्भ्रूकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले ।  
मत्तिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलनिवार-  
णम् ॥ १४ ॥ अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमा-  
ज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम् । आपीड्य  
तोयं श्रणो निपिक्तं निहन्ति शूलं बहु  
वेदनं च ॥ १५ ॥

बृहस्पञ्चमूल के शाठ-आठ अंगुल के टुकड़े  
लेकर रेशमी वस्त्र में लपेट दे और उनको तिल  
तेल से भिगोकर एक घोर से जजा दे । जब  
उससे तेल की बूँदें तपकें तो उनको किञ्चित्  
गरम ही कान में छोड़ दे । यह दीपिका तेल  
शीघ्र ही कर्ण पीडा को शान्त करता है । पूर्वोक्त  
रीति से देवदारु, कूठ और चीड़ की लकड़ी से  
तेल तपकाकर सुखोष्ण कान में छोड़ना चाहिए ।  
यह दीपिका तेल भी कर्णशूल को निवारण  
करनेवाला है । पके हुए आक के पीले पत्तों  
को धी से चुपड़कर और अग्नि पर तपकर  
निचोड़ ले । इनमें से जो अर्क निकले उसे कान  
में छोड़ने से शूल और पीडा नष्ट होती  
है ॥ १२-१५ ॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदेवा-  
हिनि । वस्तमूत्रं क्षिपेत् कोप्यं सैन्धवेनाव-  
चूर्णितम् ॥ १६ ॥

जब कान में तेज शूल या शब्द होने लगे  
अथवा मवाद बहता हो, तो वक्के के मूत्र में  
सधानमक मिलाकर और किञ्चित् उष्ण करके  
कान में छोड़ना चाहिए ॥ १६ ॥

हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलं तु  
सारपम् । कर्णशूले प्रधानं तु पूरणं हित-  
मुच्यते ॥ १७ ॥

हींग, धनिया और साँठ के द्वारा सिद्ध  
किये हुए कहुए तेल को कान में डालना  
चाहिए । यह कर्णशूलरोग की मुख्य औषध  
है ॥ १७ ॥

विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रधुक्तं हि  
भेषजम् ॥ १८ ॥

कर्णविद्रधि में विद्रधि के समान ही  
चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १८ ॥

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरखडी-  
जकैः । तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीना पुष्टि-  
कृत्परम् ॥ १९ ॥

शतावरी, असगन्ध, धीरकाकोली तथा  
अखडी के बीज; इनके कृत्क तथा गोदुग्ध में  
विधिपूर्वक तैल पकाकर मालिश करने से कर्ण-  
पाली मोटी हो जाती है ॥ १९ ॥

गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिपीक्षीर  
उद्धतम् । नवनीतं तदभ्यङ्गात् कर्णपालि-  
विवर्द्धनम् ॥ २० ॥

भैंस के दूध में अष्टमांश ( आठवाँ भाग )  
घुँघुची का चूर्ण मिलाकर दही जमावे, परचात  
इस दही से जो मक्खन निकले उसकी मालिश  
करने से कर्णपालि बढ़ जाती है ॥ २० ॥

विपगर्भं तिक्तुम्बी तैलमष्टगुणे  
खरात् । सूत्रे पक्वं तदभ्यङ्गात् कर्णपाली-  
विवर्द्धनम् ॥ २१ ॥

कडुवी तुम्बी के बीजों का तैल आधा सेर ।  
गदहे का सूत्र ४ सेर । कक के लिये शक्लनाग  
२ छटांक । विधिपूर्वक तैल पकाकर मालिश  
करने से कर्णपाली बढ़ती है ॥ २१ ॥

जायनीयाद्य तैल ।

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि साधि-  
तम् । आनूपमांसकवाधेन पालीपोषण-  
वर्द्धनम् ॥ २२ ॥

तिलनेल ४ सेर, आनूप मांस का ब्याध  
१२ सेर, दूध ४ सेर, जीवनीयगण्य मिलाकर  
१ सेर । विधिपूर्वक पकाकर मालिश करने से  
कर्णपाली पुष्ट होती है ॥ २२ ॥

माहिपनवनीतयुक्तं सप्ताहं धान्य-

राशिपरिवासितम् । नवमूपलिकन्दचूर्णं  
वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ २३ ॥

भैंस के दूध का मक्खन ४ तोले, ताजी  
मूसली का चूर्ण ८ तोले, इन्हें एक बर्तन में  
अच्छी प्रकार मिलाकर सप्ताह भर धान्यराशि  
में रखले । परचात् निकालकर मालिश करने से  
कर्णपाली बढी हो जाती है ॥ २३ ॥

कर्णस्य दुर्व्यधे भूते संरम्भो वेदना  
भवेत् । तत्र दुर्व्यधारोद्दर्थं लेपो मध्वा-  
ज्यसंयुतैः ॥ मधूकयवमज्जिष्ठारुचुमूलैः  
समन्ततः ॥ २४ ॥

कान के शूलत विध जाने से सूजन तथा  
वेदना होती है । अतः इसके रोपण के लिए  
मुलेठी, जी, मंजीठ तथा अखडी की जड़,  
इनके चूर्ण में शहद तथा घृत मिलाकर लेप  
करना चाहिए ॥ २४ ॥

अनेकधा तु द्विभ्रस्य सन्धिः कर्णस्थवै  
भिपक् । यो यथा विनिविष्टः स्यात्तं तथा  
विनियोजयेत् ॥ धान्याम्लोष्णोदकाभ्यान्तु  
सेको वातेन दूपिते ॥ २५ ॥ रक्तपित्तेन  
पयसा श्लेष्मणा तूष्णवारिणा । ततः  
सीव्य स्थिरं कुर्यात् सन्धि वन्धेन वा  
पुनः ॥ २६ ॥ मध्वाज्येन ततोऽभ्यज्य  
पित्तुना सन्धिवेष्टकम् । कपालचूर्णेन  
ततश्चूर्णयेत्पथ्ययाथवा ॥ २७ ॥

अनेक कारणों से विविध प्रकार की कर्णपाली  
के दिप्र होने पर उन्हें यथायोग्य स्थल पर  
जोड़ दे यदि पात के कारण कर्णपाली दिप्र  
हुई हो तो दूध अथवा शीतल जल से, यदि  
कफप्रकोप के कारण दिप्र हो तो गरम जल से  
परिष्के करना चाहिए । यथायोग्य स्थल पर  
जोड़ने के परचात् सीम सूत्र ( रेगमी डोरे ) से  
सीकर सन्धि को स्थिर कर ले । तदनन्तर  
शहद तथा घृत को एकत्र मिलाकर माछिण  
करके सन्धि के चारों ओर ढई रख, सत्र में

बांध दे। इसके बाद मिट्टी के लपरा के चूर्ण  
अथवा हृद के चूर्ण के अथचूर्णन द्वारा चिकित्सा  
करनी चाहिए ॥ २५--२७ ॥

घार तैल ।

वालमूलकशुण्ठीनां चारो हिंगु सना-  
गरम् । शतपुष्पावचा कुपुं दारुशिग्रु रसा-  
ञ्जनम् ॥ २८ ॥ सौवर्चलयवचारस्व-  
जिकोद्भिदसैन्धवम् । भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं  
मधुशुक्रं चतुर्गुणम् ॥ २९ ॥ मातुलुङ्ग-  
रसरचैव कदल्यो रस एव च । तैलमेभि-  
विपक्कव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ ३० ॥  
वाधिर्यं कर्णनादश्च पूयसावरच दारुणः ।  
पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ॥  
३१ ॥ क्षिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रे-  
यस्य शासनात् । चारतैलमिदं श्रेष्ठं मुख-  
दन्तामयापहम् ॥ ३२ ॥

सुगन्धबाला का घार, मूली का घार, सोंठ  
का घार, हींग, सोंठ, सौंफ, बच, कूट, देवदारु,  
सर्दिजन की छाल, रसौत, काला नमक, जवा-  
हार, सजीखार, खारी नमक, सेंधा नमक,  
भोजपत्र, विपरामूल, विड नमक और नागर-  
मोषा ; ये सब मिलाकर आधा सेर लेकर कल्क  
बनाये । मधुशुक्र ८ सेर, बिजौरे का रस ८  
सेर, केले का रस ८ सेर । तैल २ सेर । विधि-  
पूर्वक तैल सिद्ध कर कान में डालना चाहिए ।  
यह तैल कर्णशूल, बधिरता, कर्णनाद, पूयस्त्राव,  
कर्णकृमि आदि को शीघ्र नष्ट करता है । यह  
कृष्णात्रेय का बनाया हुआ है । यह श्रेष्ठ घार-  
तैल मुख और दाँत के रोगों को नष्ट करने-  
वाला है ॥ २८--३२ ॥

मधुशुक्र ।

मधुप्रधानं शुक्रं तु मधुशुक्रं तथा परम् ।  
जम्बीरस्य फलरसं विप्वलीग्रन्थिसंयुतम् ॥  
३३ ॥ मधुभाण्डे विनिःक्षिप्य धान्यराशौ

निधापयेत् । मासेन तज्जातरसं मधुशुक्र-  
मुदाहृतम् ॥ ३४ ॥

मधुप्रधान शुक्र को मधुशुक्र कहते हैं । इसके  
बनाने की विधि यह है कि जम्बीरी नींबू का  
रस, पीपरि, पीपलामूल और शहद को एक  
पट्टन में भरकर और मुख बन्द कर अन्न के  
भीतर रखे । एक महीने के बाद उसे निकाले ।  
इस रस को मधुशुक्र कहते हैं ॥ ३३-३४ ॥

कर्णनाद और कर्णच्छेद की चिकित्सा ।

कर्णच्छेदे कर्णनादे कटुतैलेन पूर-  
णम् । नादवाधिर्ययोः कुर्याद्वातशूलोक्त-  
मौषधम् ॥ ३५ ॥

कर्णच्छेद और कर्णनाद रोग में कटुआ  
तैल गुणगुना करके कान में छोड़ना चाहिए ।  
कर्णनाद और बधिरता में वातशूलोक्त औषधि  
करनी चाहिए ॥ ३५ ॥

अपामार्गक्षार तैल ।

मार्गक्षारजलेन च तत्कृतकल्केन  
साधितं तैलम् । अपहरति कर्णनादं वाधि-  
र्यञ्चापि पूरणतः ॥ ३६ ॥

लटजीरा के घार के जल और लटजीरे की  
जड़ के कल्क से सिद्ध किया हुआ तैल कान  
में डालने से कर्णनाद और बधिरता को नष्ट  
करता है ॥ ३६ ॥

स्वर्जिकाद्य तैल ।

स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा  
महौषधम् । शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्रं  
चतुर्गुणम् । प्रणादशूलवाधिर्यं स्रावं चाशु  
व्यपोहति ॥ ३७ ॥

सजीखार, सूखी मूली, हींग, पीपरि, सोंठ  
और सौंफ ; सब मिली हुई आधा सेर लेकर  
कल्क बनावे । तिल का तैल २ सेर । शुक्र  
( सिरका ) ८ सेर । विधि से तैल सिद्ध कर  
कान में डालने से कर्णनाद, कर्णशूल, बधिरता  
और कर्णस्त्राव शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३७ ॥



दशमूली तैल ।

दशमूलीकपायेण तैलप्रस्थं विपा-  
चयेत् । एतत् कल्कं प्रदायैव वाधिर्ये पर-  
मौषधम् ॥ ३८ ॥

दशमूल का काटा ८ सेर, तिल तेल  
२ सेर । कल्क के लिये दशमूल आध सेर ।  
इनसे सिद्ध क्रिया हुआ तेल बधिरता की पर-  
मौषधि है ॥ ३८ ॥

विल्व तैल ।

फलं विल्वस्य मूत्रेण पिप्प्ला तैलं विपा-  
चयेत् । साज्यन्नीरं तद्वितरेद्वाधिर्ये कर्ण-  
पूरणे ॥ ३९ ॥

आधसेर बेलगिरी को गोमूत्र में पीसकर  
२ सेर तिल-तैल और ८ सेर बकरी के दूध में  
बालकर पकावे । जब तेल सिद्ध हो जाय तब  
उतारकर छान ले । यह तेल बधिरता को नष्ट  
करता है ॥ ३९ ॥

एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नस्य-  
पूर्वकः । गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयो-  
रपि ॥ ४० ॥

कर्णनाद रोग में नस्य तथा पूर्वोक्त चि-  
क्रित्सा करनी चाहिए । बधिरता तथा कर्ण-  
नाद में गुड़ और सोंठ के जल का नस्य लेना  
चाहिए ॥ ४० ॥

तन्त्रान्तरोरु विल्व तैल ।

विल्वगर्म पचेत्तैलं गोमूत्राजपयो  
ऽन्यतम् । वाधिर्ये पूरयेत् तेन कर्णे  
सकृत्वातजिद् ॥ ४१ ॥

बेलगिरी आध सेर, तेल २ सेर, गोमूत्र  
८ सेर और बकरी का दूध ८ सेर । मषाधिधि  
तेल सिद्ध कर कान में डालने से बधिरता एवं  
कृपावातज कर्णरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

लशुनाद्य तैल ।

लशुनामलकं तालं पिप्प्ला तैले चतु-  
र्गुणे । तैलाद्यनुर्गुणं क्षीरं पाच्यं तैला-

शेषकम् ॥ ४२ ॥ तत्तैलं पूरयेत् कर्णे वाधिर्ये  
परिणाशयेत् ॥ ४३ ॥

कल्क के लिये लहसुन, आंबला और  
हरताल; सब मिलाकर आध सेर । तेल २ सेर  
और दूध ८ सेर । यथाविधि से तेल सिद्ध  
कर कान में डालने से बधिरता नष्ट  
होती है ॥ ४२-४३ ॥

वातोक्तं मापतैलादि वाधिर्यादौ तु  
योजयेत् । वर्जयेन्मैथुनं क्रोधं रुचं वाधिर्य-  
पीडितः ॥ ४४ ॥

बधिरता रोग में वातव्याधि में कहे हुए  
मापतेल आदि का प्रयोग करना चाहिए । तथा  
वाधिर्य रोगी को मैथुन, क्रोध और रुचता  
आदि छोड़ देना चाहिए ॥ ४४ ॥

कर्णस्वाचिकित्सा

चूर्णं पञ्चरूपायाणां कपित्थरससं-  
युतम् । कर्णस्त्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना  
सह ॥ ४५ ॥

पञ्चरूपायों<sup>१</sup> के चूर्ण में कैथ की पत्तियों का  
रस और शहद मिलाकर कान में छोड़ना कर्ण-  
स्त्राव को हितकर होता है ॥ ४५ ॥

मालतीदलरसं मधुना पूरितमथवा  
गवां मूत्रैः । दूरेण विभज्यते वै श्रवणयुगं  
पुत्रिरोगेण ॥ ४६ ॥

मोतिया की पत्तियों के रस में शहद  
मिलाकर कानों में डालना अथवा गोमूत्र काना  
में डालना कान में मवाद बहने को रोक  
करता है ॥ ४६ ॥

हरितालं मगोमूत्रं पूरणं पृत्तिकर्ण-  
जिद् । सर्जतयक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलनो  
रसः । मधुना संयुतः साधु कर्णस्त्रावे  
प्रशस्यते ॥ ४७ ॥

१ यद्य, चरुने की जड़, परपल, मिषंगु के रस  
और नीम की छाल इनको पचकनाय करने है ।

हरताल और गोमूत्र मिलाकर कान में डालने से कान से मवाद बहना बन्द हो जाता है । शाल की छाल का चूर्ण, कपास के फल का रस और शहद इनको मिलाकर कान में डालने से कान का बहना बन्द होता है ॥ ४७ ॥

जम्ब्याच तैल ।

जम्ब्याचपत्रं तरुणं समांशं कपित्थका-  
र्पासफलं च सार्द्रम् । कृत्वा रसं तं  
मधुना विमिश्रं स्नावापहं तं प्रव-  
दन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४८ ॥ एतैः शृतं निम्ब-  
करञ्जतैलं ससार्पपं स्नावहरं प्रदि-  
प्टम् ॥ ४९ ॥

जामुन और ग्राम के कोमल पत्ते, कैथ और कपास के गीले फल; इनका समभाग रस और शहद मिलाकर कान में छोड़ने से कान का बहना बन्द होता है । इन्हीं पत्रों के द्रव्यों के कलक से नीम, करंज और सरसों का तेल सिद्ध कर कान में डालने से कान का बहना बन्द होता है । नीम, करंज और सरसों; इन तीनों के तैलों को एक में मिलाकर अथवा एक-एक के तेल को ही उपयुक्त द्रव्यों के कलक से अथवा रस से सिद्ध करना चाहिए--ऐसा भिन्न-भिन्न टीकाकारों का मत है ॥ ४८--४९ ॥\*

पुटपाकविधिस्विन्नो हस्तिविडजा-

\* वस्तुतः इन तीनों तैलों को मिलाकर ही जम्ब्याच तैल सिद्ध करना चाहिए, क्योंकि यहाँ निम्बकरञ्ज तैल का विशेषण 'समार्पपं' रक्ता है । इसका अर्थ यह हुआ कि निम्बकरंज तैल सार्पप तैल से मिश्रित होना चाहिए । अतः नीम, करंज और सरसों के तेल अलग-अलग नहीं गृहीत हो सकते । यह भी नहीं हो सकता कि सार्पप तैल युक्त निम्बतैल या करंजतैल लिया जाय, क्योंकि 'समार्पपं' यह निम्ब या करंज का अलग-अलग विशेषण नहीं हो सकता, क्योंकि 'सविशेषणस्थ वृत्तिर्न वृत्तस्य च विशेषणयोगो न' इस व्याकरण के नियम से विरुद्ध हो जायगा ।

तद्व्रजः । रसः सतैलसिन्धूथः कर्णस्नाव-  
हरः परः ॥ ५० ॥

हाथी की लीद पर उत्पन्न हुए छत्राक (छत्ता) का पुटपाक-विधि से खेदन कर रस निकाले । इस रस में तेल सेधानमक मिलाकर कान में डालने से कान का बहना बन्द हो जाता है ॥ ५० ॥

शम्बूक तैल ।

शम्बूकस्य च मांसेन कटुतैलं वि-  
पाचितम् । तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी  
प्रशाम्यति ॥ ५१ ॥

शम्बूक (घोंघा) के मांस से सिद्ध किये हुए तेल को कान में डालने से ही कर्ण का नाडीमय शान्त हो जाता है ॥ ५१ ॥

निशाद्य तैल ।

निशागन्धपले पक्वं कटुतैलं पला-  
प्टकम् । धुस्तूरपत्रजसे कर्णनाडीजिदुत्त-  
मम् ॥ ५२ ॥

कलक के लिये--हल्दी और गन्धक चार-चार तोले, धतूरे के पत्तों का रस १२८ तोले और कडुआ तेल ३२ तोले । विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से कर्ण का नाडीमय शान्त हो जाता है ॥ ५२ ॥

कुष्ठाय तैल ।

कुष्ठहिंगुवचादारुशताहाविश्वसैन्धवैः ।  
पूतिकर्णापहं तैलं वस्तमूत्रेण साधि-  
तम् ॥ ५३ ॥

कलक के लिये कूट, हींग, बच, देवदारु, सींग, सोंठ और सेंधा नमक; सब मिलित १ पाव । तिल-तेल १ सेर । बकरे का मूत्र ४ सेर । विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से पूतिकर्णरोग शान्त होता है ॥ ५३ ॥

१—टीकाकार शिवदास आदि हल्दी और गंधक का चूर्ण मिला हुआ ४ तोले, धतूरे के पत्ता का रस तैल के समान ३२ तोले लेते हैं ।

कर्णप्रतिनाहचिकित्सा ।

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ, समा-  
चरेत् । ततो विरिक्कशिरसः क्रियां प्राप्तां  
समाचरेत् ॥ ५४ ॥

कर्णप्रतिनाह रोग में पहले स्नेहन, स्वेदन और  
शिरोविरेचन करके फिर अन्य उचित चिकित्सा  
करनी चाहिए ॥ ५४ ॥

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात् क्षतविस-  
र्षवत् । विधिश्च कफहा सर्वः कर्णकरण्डं  
व्यपोहति ॥ ५५ ॥

कर्णपाक रोग में क्षतविसर्ष की-सी चिकित्सा  
करनी चाहिए । कान में खुजली हो तो कफ-  
नाशक क्रिया करनी हितकर होती है ॥ ५५ ॥

क्लेदयित्वा तु तैलेन स्वेदेन प्रथिलाप्य  
च । शोधयेत् कर्णगूथं तु भिषक् सम्यक्  
शलाकया ॥ ५६ ॥

कान में मैल जम जाने पर तेल डालकर कान  
को गीला कर स्वेदन करे, पश्चात् सलाई से  
मैल निकाले ॥ ५६ ॥

निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो  
गुडः । पूरणात् पूतिकर्णस्य शमनो मधु-  
संयुतः ॥ ५७ ॥

संभालू की पत्ती या रस, तेल, संधानमक,  
पुष्पांसा, शहद और गुड मिलाकर कान में  
छोड़ने से पूतिकर्ण नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्ण-  
जित् । वरुणार्ककपित्याभ्रजम्बूपल्लव-  
साधितम् ॥ ५८ ॥ पूतिकर्णोपहं तैलं  
जातीपत्ररसोऽथवा ॥ ५९ ॥

चमेकी के पत्तों के रस में तेल पकाकर  
कान में डालने से पूतिकर्ण शान्त होता है ।  
तथा बरना, मदार, कैथ, आम और जामुन  
की पत्तियों के कष्टक से तैल किया मैल पूति-  
कर्ण रोग को नष्ट करता है । अथवा चमेकी के

पत्तों का रस कान में डालने से भी पूतिकर्ण नष्ट  
होता है ॥ ५८-५९ ॥

सूर्यावर्त्तकस्य रसं सिन्धुवाररसं तथा ।  
लाङ्गलीमूलजरसं त्र्यूपणेनावच्छिं-  
तम् । पूरयेत् कृमिकर्णं तु जन्तूनां नाशनं  
परम् ॥ ६० ॥

हुलहुल के पत्तों के रस में या संभालू के पत्तों  
के रस में अथवा कलिहारी की जड़ के रस में  
सोंठ, मिर्च और पीपरि का चूर्ण डालकर कान  
में छोड़ने से कान के कीड़े नष्ट हो जाते हैं ॥ ६० ॥

कृमिकर्णविनाशाय कृमिघ्नं योज-  
येद् विधिम् । हितः वार्त्ताकुधूमश्च सर्प-  
पस्नेह एव च ॥ ६१ ॥

कानों के कीड़े नष्ट करने के लिये कृमिनाशक  
क्रिया करनी चाहिये अथवा वैगन का पुष्पां  
नलीका द्वारा कान में पहुँचाना और सरसों  
का तेल कान में छोड़ना कान के कीड़ों को नष्ट  
करता है ॥ ६१ ॥

हलीसूर्यावर्त्तव्योपस्वरसेनातिपूरिते ।  
कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु कृमिजा-  
तयः ॥ ६२ ॥

कलिहारी, हुलहुल, सोंठ, मिर्च और पीपरि  
का स्वरस कान में डालने से कृमिकर्णों का मय कीड़े  
बाहर आ गिरते हैं ॥ ६२ ॥

घृष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षीद्र-  
संयुतम् । मशस्यते चिरोत्थेऽति सास्त्रावे  
पूतिकर्णके ॥ ६३ ॥

रसीत को घी के दूध में घिसकर और शहद  
मिलाकर कान में डालने से पुराना कर्णगाय और  
पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

मैरथ रस ।

मूतं गन्धं विपञ्चय द्रव्यं सकपर्द-  
कम् । मरिचेन गमायुत्रमार्त्तोपेन भावि-  
तम् ॥ ६४ ॥ यद्विमान्यज्ञामरोगं श्ले-

प्राणं ग्रहणीगदम् । सन्निपातं तथा  
शोथं हन्ति श्रोत्रोद्भवं गदम् ॥ ६५ ॥

पारा, गन्धक, वच्छुनाग, सुहागा, कौडी की  
भस्म, फालीमिचं हन्हं एकत्र मिला अदरस के  
रस से भावना देकर गोली बनावे । मात्रा—  
आधी रत्ती से १ रत्ती तक । इसके सेवन से  
मन्दाग्नि, आमरोग, दुष्ट, कफ, संग्रहणी, सन्नि-  
पातज्वर, शोथ तथा कर्णरोग शान्त होते  
हैं ॥ ६४-६५ ॥

हन्दुवटी ।

शिलाजत्रभ्रलौहानि समानि हेम-  
पादिकम् । काकमाचीवरीधात्रीपञ्चानाम-  
म्भसा पृथक् ॥ ६६ ॥ भावयित्वा वटीः  
कुर्याद् द्विगुञ्जाफलमानतः । धात्रीतो-  
येन संमर्द्य प्रातः प्रातः प्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥  
कर्णनादादयः सर्वे गदा वातोद्भवाश्च  
ये । प्रमेहा त्रिंशत्तिश्चापि नश्यन्त्येतन्नि-  
पेवणात् ॥ ६८ ॥ सुधाविश्राणनादिन्दु-  
र्जगतां तापहृद्यथा । तथैन्दुवटी नाम  
रोगतापनिपूदनी ॥ ६९ ॥

शुद्ध शिलाजीत, अभ्रकभस्म और लौहभस्म;  
प्रत्येक एक एक भाग । सोने की भस्म चौथाई  
भाग । सबको एकत्र कर इसमें क्रमशः मकोय,  
शतावरी, आंघला और कमल के रस से अलग-  
अलग भावना देकर दो दो रत्ती की गोलियाँ  
बनावे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली को पीस  
कर आंवले के रस के साथ सेवन करना चाहिए ।  
इसके सेवन करने से कर्णनाद आदि संशुद्ध यार्दा  
के रोग और बीस प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट होते  
हैं । अमृत के दान से जैसे चन्द्रमा सबके ताप को  
हरता है वैसे ही यह हन्दुवटी भी रोगरूपी ताप  
को नष्ट करती है ॥ ६६-६९ ॥

सारिवादि वटी ।

सारिवां मधुकं कुष्ठं चातुर्जातं प्रियङ्गु-  
कम् । नीलोत्पलं गुडूर्ची च देवपुष्पं

फलत्रिकम् ॥ ७० ॥ अन्नं सर्वसमं  
चाभ्रसमं लौहं विभावयेत् । केशराना-  
म्बुना पार्थकायेन यजाम्भसा ॥ ७१ ॥  
काकमाचीरसेनापि गुञ्जामूलद्रवेण च ।  
त्रिगुञ्जामर्मिताः पश्चाद्द्विध्याद्वटिका  
मिपक् ॥ ७२ ॥ धारोप्येनापि पयसाशत-  
मूलीरसेन वा । एकैकां योजयेत् प्रातः  
श्रीखण्डसलिलेन वा ॥ ७३ ॥ निखि-  
लान् कर्णजान् रोगान् प्रमेहानपि त्रिंश-  
त्तिम् । रक्त्पित्तं चयं श्वासं क्लैव्यं जीर्ण-  
ज्वरं तथा ॥ ७४ ॥ अपस्मारमदाशांसि  
हृद्रोगश्च मदात्ययम् । सारिवादि वटी  
हन्यात् स्त्रीगदानखिलानपि ॥ ७५ ॥

अनन्तमूल, मुलेठी, कूट, दालचीनी, छोटी  
हलायची, नेजपात, नागकेशर, प्रियंगु के फूल,  
नीलकमल, गिलोय, लौंग, हड बहेड़ा और  
आंवला; ये समान भाग । सबके बराबर  
अभ्रकभस्म और अभ्रकभस्म के बराबर लोह-  
भस्म ले । तत्पश्चात् सबको एकत्र कर क्रमशः  
भँगरा के रस, अर्जुन की छाल के बाथ,  
जवाखर के जल, मकोय के रस और घुँघुची  
की जड़ के काथ की अलग अलग भावना दे ।  
फिर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे । अनु-  
पान-धारोप्य दूध, शतावरी का रस या सफेद  
चन्दन का जल । एक गोली प्रातःकाल खाना  
चाहिए । यह सारिवादि वटी सब प्रकार के  
कर्णरोग, बीसों प्रकार के प्रमेह, रक्त्पित्त, चय,  
श्वास, नपुंसकता, जीर्णज्वर, अपस्मार, मद,  
बवासीर, हृद्रोग तथा मदारवय को और सपूर्ण  
स्त्री-रोगों को नष्ट करती है ॥ ७०-७५ ॥

दाव्यादि तैल ।

दाव्याश्च दशमूलस्य काथेन मधु-  
कस्य च । कदल्याः स्वरसेनापि पचेत्तैलं  
तिलोद्भवम् ॥ ७६ ॥ कल्कैः कुष्ठवचाशि-  
ग्रशतपुष्पारसाञ्जनैः । देवदारुवक्षारस्व-

जिकाविडसैन्धवैः ॥७७॥ कर्णशूलं कर्ण-  
नादं वाधिर्यं पूतिकर्णकम् । कर्णचवेडं  
जन्तुकर्णं कर्णपाकं च दारुणम् ॥ ७८ ॥  
कर्णकण्डूप्रतीनाहौ शोथान् कर्णसमुद्भ-  
वान् । तैलं दाव्यादिकं हन्ति कर्णस्त्रावं  
तथैव च ॥ ७९ ॥

दारुहरदी का काथ ४ सेर, दशमूल का  
काथ ४ सेर, मुलेठी का काथ ४ सेर और  
केले का रस ४ सेर, तिल का तेल २ सेर ।  
कणक के लिये कूट, बच, साँहजन की छाल,  
साँफ, रसात, देवदारु, जवाखार, सज्जीखार,  
बिडनमक और सैधानमक; सब मिलित आध  
सेर । विधि से सिद्ध कर कान में डालने से  
यह दाव्यादि तैल कर्णशूल, कर्णनाद, वाधिरता,  
पूतिकर्ण, कर्णचवेड, जन्तुकर्ण, कर्णपाक, कर्ण-  
कण्डू, प्रतिनाह और कान में उरपन्न होने  
वाले शोथ और कर्णस्त्राव रोग को नष्ट  
करता है ॥ ७६-७९ ॥

कर्णरोग में पथ्य ।

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिरा-  
व्यधः । गोधूमः शालयो मुद्गा यवारच  
प्रतनं हविः ॥ ८० ॥ लावो मयूरो हरि-  
णस्तित्तिरो वनकुक्कुटः । पटोलं शिशु  
वार्ताकुं मुनिपण्णं कठिल्लकम् ॥ ८१ ॥  
रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम् ।  
उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामये  
हितम् ॥ ८२ ॥

स्वेद, विरेचन, वमन, नस्य, धूमपान, शिरा-  
व्यध, गेहूँ, शालि चावल, मूँग, जी, पुराना  
पी तथा ज्ञापपड़ी, मोर, हिरण्य, तीतर  
और वनकुक्कुट का मांस, परवल, महिजन,  
बेंगन, चौपत्तिया, साँटी, मग्गूष रसायन द्रव्य,  
महाचर्ष, कम बोलना ये कर्णरोग में दोषानु-  
सार लाभदायक है ॥ ८०-८२ ॥

अपथ्य ।

दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं स्ले-

ष्मनं गुरु । कण्डूयनं तुपारञ्च कर्णरोगी  
परित्यजेत् ॥ ८३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कर्णरोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

दातौन. शिर धोना, व्यायाम, कफवद्धक एवं  
गुरु द्रव्य, कान में तिनके आदि से खजलाना  
और तुपार ( बर्फ ) ये सब कर्णरोगी को त्याग  
करना चाहिए ॥ ८३ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायीं व्याख्यायां  
कर्णरोगाधिकारः समाप्तः

अथ मुखरोगाधिकारः ।

ओष्ठरोग चिकित्सा ।

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्वणेनो-  
पनाहयेत् । मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं  
वातहरैः शृतम् ॥ सेकोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं  
रसायनमिहेष्यते ॥ १ ॥

यातज ओष्ठरोग में शीघ्रवर्ण लेप करना  
चाहिए । एवं वातनाशक ओषधियों से सिद्ध  
तेल का नस्य, शिरोघस्ति, सेक, घग्गह और  
स्नेहपान यातज ओष्ठरोग में रसायन है ॥ १ ॥

श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलुं सुरदारु  
च । यष्टीमधुकचूर्णं च विदध्यात् प्रति-  
सारणम् ॥ २ ॥

गन्धाधिरोग, राज, गुग्गुल, देवदारु और  
मुलेठी इनके पूण से पीरे-पीरे मगलने से  
यातज ओष्ठरोग शान्त होता है ॥ २ ॥

१ काकोशपादिः सवातजनः सर्वाग्रहप्रपन्नमुतः ।  
मान्सीदकमांसरगु सर्बस्नेदसमन्वितः ॥ गुणोप्य  
स्पष्टलवण्यं शास्त्रव्य परिकीर्तित । तेनोपनाहं  
कुर्वीत सर्बदा वातरोगित्याम् ॥ वातपत्नी  
भद्रदावादि । काकोशपादि सुधुतोः ।

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं  
त्वथ भोजनं च । शीतान् प्रलेपात् परिपे-  
चनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ ३ ॥

पित्तज्ज्वरोरोग में शिरावेध, वमन, विरे-  
चन, तिक्त अन्नपान, ठंडे लेप तथा ठंडे जल  
से परिसेचन करना चाहिए ॥ ३ ॥

पित्तरक्ताभिभूतोत्थान् जलौकाभिरु-  
पाचरेत् । पित्तविद्रधिबन्धापि क्रियां  
कुर्यादशेषतः ॥ ४ ॥

रक्तपित्त से उत्पन्न ज्वरोरोग में जोंक  
लगाकर रक्त निकालना चाहिए और पित्त-  
विद्रधि की-सी संपूर्ण चिकित्सा करनी  
चाहिए ॥ ४ ॥

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल-  
धारणम् । हृतरक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे  
कफात्मके ॥ ५ ॥

कफज ज्वरोरोग में पहले रक्त निकलवाकर  
शिरोविरेचन, धूमपान, स्वेद और कफनाशक  
कवल धारण करना चाहिए ॥ ५ ॥

त्रिकटुः सर्जिकाक्षारः क्षारश्च यव-  
शूकजः । क्षौद्रयुक्तं विघातव्यमेतच्च  
प्रतिसारणम् ॥ ६ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, सजीखार और जवा-  
खार; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर धीरे-धीरे  
रगड़ना चाहिए ॥ ६ ॥

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो  
द्वितः । मियंगु त्रिफलालोघ्रं सक्षौद्रं  
प्रतिसारणम् ॥ द्वितं च त्रिफलाचूर्ण-  
मधुयुक्तं प्रलेपनम् ॥ ७ ॥

मेद से उत्पन्न ज्वर ज्वरोरोग में स्वेदन  
करके धीरा खगावे और घाव को साफ करके  
अग्नि से दग्ध कर दे । मानकान्गनी, त्रिफला  
और लोघ के चूर्ण में शहद मिलाकर रगड़ने  
घषवा त्रिफला के चूर्ण में शहद मिलाकर लेप  
करने से मेदज ज्वरोरोग शान्त होता है ॥ ७ ॥

सर्जरसकनकगैरिकधान्यघृततैलसिन्धु-  
संयुक्तम् । सिद्धं सिक्थकमधरे स्फुटितोच्च-  
दिते व्रणं हरति ॥ ८ ॥

राल, सुनहला गेरू, धनिया, घृत, तेल,  
संधानमक तथा मोम; इनको एक में पकावे ।  
गाढ़ा होने पर इसका लेप करने से ज्वर का  
फटना तथा ज्वरव्रण शान्त होता है ॥ ८ ॥

शीताद् दन्तरोग को चिकित्सा ।  
शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्प-  
पान् । निष्काथ्य त्रिफलाश्चापि कुर्याद्  
गण्डूपधारणम् ॥ मियङ्गवश्च मुस्ता च  
त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ ९ ॥

शीताद् नामक दन्तरोग में पहले रक्त निकल-  
वाकर परचात् सोंठ, सरसों और त्रिफला के काथ  
का गण्डूप धारण करना चाहिए अथवा मियंगु,  
नागरमोथा और त्रिफला का लेप करना  
चाहिए ॥ ९ ॥

कुष्ठं दावीं लोध्रमब्दं समद्रा पाठा  
तिक्ता तेजनी पीतिका च । चूर्णं शस्तं  
वर्षणं तद्द्विजानां रक्तस्त्रावं हन्ति कण्डूं  
रुजां च ॥ १० ॥

कूट, दारहरदी, लोध्र, नागरमोथा, मंजोठ,  
पाद, कुटकी, तेजबल और हल्दी; इनके चूर्ण को  
दौनों पर मलने से खून घटना, गुजनी और पीड़ा  
नष्ट होती है ॥ १० ॥

चलदन्त की चिकित्सा ।  
भद्रमुस्तादि गुट्टिका ।

भद्रमुस्ताभयाव्योपविडङ्गारिष्टपल्लवैः ।  
गोमूत्रपिष्टिर्गुट्टिकां ह्यायाशुष्कां प्रकल्प-  
येत् ॥ ११ ॥ तां विधाय मुखे मुप्यास-  
लदन्तातुरो नरः । नातः परतरं किञ्चिच्च-  
लदन्तस्य भेषजम् ॥ १२ ॥

नागरमोथा, ह्व, सोंठ, मिर्च, पीपल,  
कायपिष्टंग और नीम के पत्ते; इनको गोमूत्र

में पीसकर गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा ले । चलदन्त ( दाँत हिलना ) रोग से पीड़ित मनुष्य एक गोली मुख में रखकर सो जब तो दाँत का हिलना बन्द हो जावे । इससे बढ़कर दाँत हिलने की अन्य कोई श्रोपधि नहीं है ॥ ११-१२ ॥

करञ्जकरवीरार्कमालतीकुभाशनाः ।  
शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवंप्रिधा  
द्रुमाः ॥ १३ ॥

करंज, कनेर, आक, मालती, अर्जुन और अशना ये वृक्ष तथा इन्हीं के सदृश अन्य वृक्ष दन्तपवन ( दाँत ) के लिये श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ १३ ॥

चलदन्तस्थिरकरं कार्यं वकुलचर्वणम् ।  
आर्त्तगलदलकाथगण्डूपो दन्त-  
चालनुत् ॥ दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलो-  
ग्राचर्वणं सदा ॥ १४ ॥

मौलसिरी की छाल का चबाना हिलते हुए दाँतों को जमा देता है । नीली कटसरैया के पत्तों के काड़े का कुल्ला करना दन्तचाल को नष्ट करता है । इसी प्रकार तिल तथा यक्ष के चबाने से दन्तचाल रोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

दन्तपुष्पुट की चिकित्सा ।

दन्तपुष्पुटके कार्यं तरुणे रक्षमोक्ष-  
णम् । सपञ्चलणक्षारं सत्तौद्रं प्रतिसा-  
रणम् ॥ १५ ॥

नये दन्तपुष्पुट रोग में पहले रूख निकलवाकर फिर पौधों नमक, जवाहार और शहद का मजन करना चाहिए ॥ १५ ॥

दन्तानां तोदहर्षे च वातग्नाः कण्ठा  
हिताः ॥ १६ ॥

दन्तदहर्ष और दन्ततोद रोग में वातनाशक श्रोपधियों का कषण धारण करना हितकर है ॥ १६ ॥

दन्तशूल की चिकित्सा ।

मात्तितं पिप्पली सर्पिमिश्रितं धार-

येन्मुखे । दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिद-  
मौषधम् ॥ १७ ॥

शहद, पीपरि का चूर्ण और घी मिलाकर मुख में रखना दन्तशूल को नष्ट करनेवाला कहा गया है । यह दन्तशूल की प्रधान श्रोपधि है ॥ १७ ॥

दन्तवेष्टचिकित्सा ।

विस्त्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रति-  
सारयेत् । लोध्रपत्तङ्गमधुकलात्ताचूर्णैर्म-  
धूत्तरैः ॥ गण्डूपे क्षीरिणो योज्याः सत्तौ-  
द्रघृतशर्कराः ॥ १८ ॥

दन्तवेष्ट रोग में रत्नमोक्षण कराकर लोध्र, पतंग, मुलेठी तथा लारव के चूर्ण में शहद मिलाकर घाव पर रगड़ना चाहिए । तथा दूधवाले गरगद आदि वृक्षों की छाल के काड़े में शहद, घी और शहद मिलाकर कुल्ला करना चाहिए ॥ १८ ॥

शोषिरचिकित्सा ।

शोषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसा-  
ञ्जनैः । सत्तौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूपे  
क्षीरिणो हिताः ॥ १९ ॥

दन्तशोषिर रोग में पहले रत्न निकलवाकर फिर लोध्र, नागरमोधा और रसीत के चूर्ण में शहद मिलाकर लेप करना चाहिए तथा दूधवाले वृक्षों की छाल के काय से कुल्ला करना चाहिए ॥ १९ ॥

परिद्वर और उपशुश की चिकित्सा ।

क्रियां परिद्वरे कुर्याच्छ्रीताटोश्रां विच-  
क्षणः । संगोध्योभयत कायं शिरश्चोप-  
शुशे ततः ॥ २० ॥ काकोदुम्बरिकागो-  
जीपर्णमिन्ध्यायेदमुक । सौद्रयुग्मं च  
लण्यः सज्योषः प्रतिसारयेत् ॥ २१ ॥

परिद्वर रोग में समन और बिंशन में शरीर और नरपादि से शिर की शुद्धि करके शीतल रोग में करी हुई चिकित्सा करनी चाहिए ।

उपकुश रोग में भी शरीर और मस्तक की शुद्धि करके कटूमर और गोजी के पत्तों से घिसकर खून निकलवाना चाहिए तथा शहद, सेंभानमक, सोंठ, मिर्च, और पीपल के चूर्ण से मज्जन करना चाहिए ॥ २०-२१ ॥

पिप्पल्यः सर्पपाः श्वेता नागरं नैजुलं फलम् । सुखोदकेन संमर्द्य कवलं तस्य योजयेत् ॥ २२ ॥

पीपरि, सफेद सरसों, नाकठ और समुद्रफल इनको सुखोष्ण जल से पीसकर घ्रास बनाकर मुख में रखने से उपकुश रोग शान्त होता है ॥ २२ ॥

वैदर्भचिकित्सा ।

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् । ततः चारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ २३ ॥

दन्तवैदर्भ रोग में शस्त्र द्वारा दाँतों की जड़ों को साफ करके चार लगाना चाहिए तथा अन्य सब शीतल चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २३ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् । कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥ २४ ॥

अधिक दन्त को उखाड़कर उसके स्थान को तप्तशलाका द्वारा दग्ध करना चाहिए और अन्य कृमिदन्त की-सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २४ ॥

अधिमांस चिकित्सा ।

द्विच्वाधिमांसं सत्तांद्रैरंशैश्चूर्णैरुपाचरेत् ॥ २५ ॥ पाठावचातेजवतीस्वर्जिकायावशूकजैः । तौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्तितः ॥ २६ ॥

अधिक मांस को शरा से काटकर उस स्थान पर पाद, घब, तेज्रबल, सर्वांश्वर और जवा-चार; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर घिसना चाहिए और पीपरि के चूर्ण में शहद मिलाकर कवल धारण करना चाहिए ॥ २५-२६ ॥

पटोलनिम्बत्रिफलाकपायश्चात्र धावने । शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥ २७ ॥

अधिक मांसरोग में परबल के पत्ते, नीम की छाल और त्रिफला के काढ़े से कुबला करना चाहिए । इन रोग में नस्य द्वारा शिरोविरेचन तथा विरेचक धूमपान हितकर होता है ॥ २७ ॥

दन्तनाड़ी की चिकित्सा ।

नाडीत्रणहरं कर्म दन्तनाडीपु कारयेत् । यं दन्तमधिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत् ॥ २८ ॥ द्विच्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् । शोधयित्वा दहेच्चापि चारेण ज्वलनेन वा ॥ २९ ॥

दन्तनाडीरोग में नाडीत्रणनाशक चिकित्सा करनी चाहिए । जिन दाँत में नासूर हो उस दाँत को उखड़वा देना चाहिए । यदि ऊपर का दाँत न हो, तो शस्त्र से खराब मांस को काटकर निकाल देना चाहिए और उस स्थान को चार से या तप्तशलाका से दग्ध कर देना चाहिए ॥ २८-२९ ॥

गतिर्हिनस्ति हन्वस्थि दशने समुपेक्षिते । तस्मात् समूलं दशनं निर्हरेद्भ्रग्नमस्थि च ॥ ३० ॥

दन्तनाड़ी की चिकित्सा न करने से यह बढ़कर हन्वस्थि को भी नाश कर देती है, इसलिये जबसहित दाँत को तथा टूटी हुई हड्डी को उखाड़वा देना चाहिए ॥ ३० ॥

उद्धृते तूचरे दन्ते शोणितं संमत्सिच्यते । रक्तातियोगात् पुरोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च ॥ चलमप्युत्तरं दन्तमतो नोपहरेत् भिपक् ॥ ३१ ॥

ऊपर का दाँत उखाड़वाने से रून अधिक निकल जाता है अतः रून के योग में पुरोक्ता घोर रोग उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये हिलते हुए भी ऊपर के दाँत को घेच न उखाड़े ॥ ३१ ॥



कपायं जातीमदनकडुकस्वादुएकट-  
कैः ॥ ३२ ॥ लोध्रखदिरमञ्जिष्टायप्याह  
श्चापि यत् कृतम् । तैलं संशोधनं तद्धि  
हन्यादन्तगतां गतिम् ॥ ३३ ॥

चमेली, मैनफल, कुन्की और कटाई के काढ़े का गड़ूप धारण करने से अथवा लोध्र, खैर, मजीठ और मुलेठी वे कल्क से सिद्ध किये हुए तेल द्वारा नाडी का मशोधन करने से दन्तनाडी रोग नष्ट होता है । किसी किसी के मत में चमेली आदि के काथ और लोध्र आदि के कल्क से सिद्ध तेल द्वारा दन्तनाडी का मशोधन करना हितकर है ॥ ३२-३३ ॥

दन्तहर्षचिकित्सा । •

सुखोप्याः स्नेहकवलाः ससर्पिस्रैष्ट-  
तस्य वा । निर्यूहाञ्चानिलानानां दन्तह-  
र्षप्रमर्दनाः ॥ स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं  
स्नैहिकमेव च ॥ ३४ ॥

दन्तहर्ष रोग में किञ्चित् गर्म स्नेह का, श्रेष्ठतपत का तथा देवदार आदि घातनाशक औषधियों के काथ का कवल धारण करना हितकर है । इस रोग में स्नैहिक धूमपान और स्नैहिक नस्य भी लाभप्रद है ॥ ३४ ॥

दन्तशर्करा चिकित्सा ।

अहिंसन् दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेत्  
मिपर्णम् । लाक्षाचूर्णमर्धुयुतस्ततस्तां प्रति-  
सारयेत् ॥ ३५ ॥ दन्तहर्षक्रियाश्चापि  
कुर्यान्निरयोपतः । कपालिका कृच्छ्र-  
साध्या तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥ ३६ ॥

दन्तशर्करा रोग में दन्तमूल को बचाकर दन्तशर्करा को दाँतों से छुड़ाना चाहिए ; एष काथ के चूर्ण में शक्कर मिलाकर उस पर रग देना चाहिए तथा दन्तहर्ष की भी मधु पिष्टिष्ठा करनी चाहिए । कपालिका कृच्छ्रसाध्या तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥ ३५-३६ ॥

कृमिदन्त चिकित्सा ।

जयेद्विस्त्रावरणैः स्विन्नमचलं कृमिद-  
न्तकम् । तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूप-  
धारणैः ॥ ३७ ॥ भद्रदाव्यादिवर्षामूलेपै  
स्निग्धैश्च भोजनैः । हिंशु सोप्यं तु मति-  
मान् कृमिदन्तेषु दापयेत् ॥ ३८ ॥

कृमिदन्त रोग को, जब कि दाँत हिलते न हों, तब स्वेदन करके रश्मोक्षण, घातनाशक प्रवपीडसजक नस्य, स्नेहगण्डूप धारण, भद्र-दावादिगण्य और पुनर्नवा के लेप तथा स्निग्धभोजन से जीते और कीड़े लगे हुए दाँत में गर्म गर्म हींग रक्ते ॥ ३७-३८ ॥

बृहतीभूकदम्पश्चांगुलकण्टकारिका-  
काथः । गण्डूपस्तैलयुतः कृमिनन्तक-  
वेदनाशमनः ॥ ३९ ॥

बड़ी कटेरी, भूमिकदम्प, अरण्य की जड़ और छोटी कटेरी ; इनके काथ में तेल राजकर कुशला करने से कृमिदन्त की पीड़ा शान्त होती है ॥ ३९ ॥

नीलीमायसजंधारजुग्धुनीनां तु मूल-  
मेकैकम् । संचर्ष्य दशनविधृतं दशनकृमि-  
पातनं प्राहुः ॥ ४० ॥

नील, काकजपा, गृह्य और दूधी, इनमें से किसी एक की जड़ को चबाकर कृमिदन्त पर रखा से दाँतों के कीड़े गिर जाते हैं ॥ ४० ॥

विदार्यादि नैल ।

चलमुद्बृत्त्य वा स्थानं ददेत्तु शुपि-  
रस्य वा । ततो विटारीयष्टयादशुद्धाटक-  
कशेकभिः ॥ तैलं दशगुणक्षीरं सिद्धं नम्ये  
तु पूजितम् ॥ ४१ ॥

कृमिदन्त में यदि दाँत हिलता हो, तो उसको उगाइ कर उस मड़े हुए स्थान को माफ करके दाब करमा चाहिए परन्तु विटारीकण्ड, मुलेठी विद्यादा और कणेरू तब मिश्रित खापपाव भेकर कष्ट बनावे । तब तेल चाथ गीर, दूध

१ से। विधि से तेल सिद्ध कर नस्य देने से  
दन्तरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

हनुमोक्षचिकित्सा ।

हनुमोक्षे समुद्दिष्टा कार्या चार्दितवत्  
क्रिया ॥ ४२ ॥

हनुमोक्ष रोग में अर्दित रोग की सी चिकि-  
त्सा करनी चाहिए ॥ ४२ ॥

दन्तरोग में वर्जित पदार्थ ।

फलान्यम्लानि शीताम्बु रुक्षान्नं दन्त-  
धावनम् । तथापि कठिनान् भक्ष्यान्  
दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

खट्टे फल, ठंडा जल, रूखा अन्न, दन्तधावन  
और कठिन भोज्य पदार्थ दन्तरोगी को छोड़  
 देने चाहिए ॥ ४३ ॥

जिह्वारोगचिकित्सा ।

जिह्वाकण्टकचिकित्सा ।

ओष्ठकोपे त्वनिलजे यदुक्तं प्राक्  
चिकित्सितम् । कण्टकेष्वनिलोत्थेषु त-  
त्कार्यं भिषजा खलु ॥ ४४ ॥

वातज ओष्ठकोप में पहले जो चिकित्सा  
कही गई है वैच की वही चिकित्सा वातज जिह्वा-  
कण्टक रोग में करनी चाहिए ॥ ४४ ॥

पित्तजेषु निघृष्टेषु निःसृते दुष्टशो-  
णिते । प्रतिसारणगरद्रूपनस्यं च मधुरं  
हितम् ॥ ४५ ॥

पित्तज जिह्वाकण्टक रोग में गोभी आदि के  
सुरदरे पत्तों द्वारा घिसकर रस निकाल देने के  
परचाट् काकोल्यादि मधुरगण के द्वारा प्रतिसा-  
रण, गण्डरूप और नस्य का प्रयोग करना  
चाहिए ॥ ४५ ॥

कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः  
क्षये । पिप्पल्यादिर्मधुपुतः कार्यस्तु प्रति-  
सारणः ॥ ४६ ॥

कफज जिह्वाकण्टक रोग में क्षेखन द्वारा  
रस निकालवा कर पिप्पल्यादिगण के घृणं में  
गण्ड मिलाकर धीरे-धीरे मसलना चाहिए ॥ ४६ ॥

जिह्वाजाड्यचिकित्सा ।

गह्वीयात् कवलं चापि गौरसर्पपसै-  
न्धवैः । पटोलनिम्बवार्त्ताकुक्षारयूपैश्च  
भोजयेत् ॥ ४७ ॥

जिह्वाकण्टक रोग में सरसों और सेंधा-  
नमक पीसकर कवल धारण करना चाहिए  
और परवल के पत्ते, नीम की छाल, बेंगन  
और जवाखार का जूस पीना चाहिए ॥ ४७ ॥

जिह्वाजाड्यं माणकभस्मलवणतैलघर्षणं  
हन्ति । ईपत्स्नुक्क्षीराक्तं जम्बीराद्यम्ल-  
चर्चणं वापि ॥ ४८ ॥

मानकन्द की भस्म, सेंधानमक और तेल  
मिलाकर जीभ पर रगड़ने से अथवा जंभीरी  
नींबू आदि खट्टे पदार्थों में थोडा-सा घृहर का  
दूध मिलाकर चयाने से जिह्वाजाड्य रोग नष्ट  
होता है ॥ ४८ ॥

दन्तशब्दचिकित्सा ।

कर्कटाग्निक्षीरपक्वृताभ्यङ्गेन नश्यति ।  
दन्तशब्दः कर्कटाग्निश्लेषाद्वा दन्तयोजि-  
तात् ॥ ४९ ॥

केकड़े के पौर और दूध से सिद्ध घी की  
दाँतों पर रगड़ने से अथवा केकड़े के पौरों की  
पीसकर दाँतों पर लेप करने से दन्त शब्द  
( सोते समय दाँत कटकडाना ) रोग नष्ट होता  
है ॥ ४९ ॥

चरणां कर्कटस्यापि गोक्षीरेण वि-  
पाचयेत् । घनतां च गते तस्मिन् रात्रा  
चरणलेपनात् । दन्तानां कड्मडौ हन्ति  
सत्यं सत्यं च पार्वति ॥ ५० ॥

केकड़े के दोनों पौरों की पीसकर दूध में  
पकावे जब थढ़ गाढ़ा हो जावे तब उतारकर  
रख ले । रात्रि के समय इसका पौरों पर लेप  
करने से दाँतों का कटकडाना नष्ट होता है ।  
हे पार्वति ! यह सत्य है ॥ ५० ॥

कृष्णचरणांश्वपुच्छस्य सप्तकेशेन वे-

णिका । तां वद्ध्वा च गले दन्तकड्मडीं  
हन्ति मानवः ॥ ५१ ॥

काले घोड़े के सात बालों की वेणी बनाकर  
गले में बाँधने से दातों का कटकटाना नष्ट हो  
जाता है ॥ ५१ ॥

उपजिह्वकचिकित्सा ।

उपजिह्वां तु संलिख्य चारैण प्रति-  
सारयेत् । शिरोविरेकगण्दूपधूमैश्चैना-  
मुपाचरेत् ॥ ५२ ॥

उपजिह्वक रोग में पहले जिह्वा का लेखन  
करके चार द्वारा प्रतिसारण, शिरोविरेचन,  
गण्दूप धारण और धूम का उपयोग करना  
चाहिए ॥ ५२ ॥

व्योपचाराभयावद्धिचूर्णमेतत् प्रघर्ष-  
णम् । उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेस्तैलं विपा-  
चयेत् ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, जवाखार, हड़ और  
चीता की जड़, इनका चूर्ण जीभ पर रगड़ने  
से अथवा इन्हीं के फरक से तेज सिद्ध  
कर जीभ पर रगड़ने से उपजिह्वक रोग  
शान्त होता है ॥ ५३ ॥

तालुरोग तथा गलशुएडी का चिकित्सा ।

द्वित्र्या घर्षेद्गलशुएडीं व्योपोप्राज्ञौ-  
द्रसिन्धुजैः । कुण्डोपणवचासिन्धुकणा-  
पाटप्लवैरपि ॥ ५४ ॥ सत्तोद्रेभिपजा  
कार्यं गलशुएड्याः प्रघर्षणम् । उपनासा-  
व्यधो हन्ति गलशुएडीं विशेषतः ॥ ५५ ॥

गलशुएडी को शम्भू द्वारा छेदन कर सोंठ,  
मिर्च, पीपरि, वच, शहद और सेंधानमक के  
चूर्ण से अथवा कूट, फालीमिर्च, वच, सेंधा-  
नमक, पीपरि, पाद और केवटी मोथा के  
चूर्ण में शहद में मिलाकर गलशुएडी पर घिसना  
चाहिए । अथवा नाक के पास की छिरा का  
वेधन करने से भी प्रायः गलशुएडी नष्ट हो  
जाती है ॥ ५४-५५ ॥

गलशुएडीं हरेत् तद्वच्छेफालीमूलः-  
चर्चणम् । वचामतिविषां पाठां रास्नां  
कटुकरोहिणीम् ॥ ५६ ॥ निष्काथ्य पिचु-  
मर्दं च कवलं तत्र योजयेत् । चारसिद्धेषु  
मुद्गेषु यूपचाप्यशने हितः ॥ ५७ ॥

हारसिंगार की जड़ को चवाने से गलशुएडी  
नष्ट होती है । वच, अतीस, पाद, रास्ना,  
कुटकी और नीम की छाल, इनका काढ़ा  
बनाकर कवल धारण करना चाहिए । चारों के  
जल से सिद्ध मूँग के जूस का भोजन हितकर  
होता है ॥ ५६-५७ ॥

तुरिण्डकेर्यध्रुवे कूर्मे सङ्घाते तालु-  
पुष्पुटे । एष एव विधिः कार्यो विशेषः  
शस्त्रकर्म च ॥ ५८ ॥

तु डकेरी, अध्रुव, कूर्मसघात और तालु-  
पुष्पुट रोग में भी यही पूर्वोक्त चिकित्सा करनी  
चाहिए । अधिकतर शस्त्राचिकित्सा ही इन रोगों  
में की जाती है ॥ ५८ ॥

तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्त-  
नाशनम् । स्नेहस्त्रेदौ तालुशोषे विधिश्चा-  
निलनाशनः ॥ ५९ ॥

तालुपाक रोग में पित्तनाशक विधान और  
तालुशोष में घातनाशक चिकित्सा, स्नेह तथा  
स्त्रेदन करना चाहिए ॥ ५९ ॥

फण्टरोगचिकित्सा ।

रोहिणीचिकित्सा ।

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणि-  
तमोक्षणम् । हर्दनं धूमपानं च गण्दूपो  
नस्यकर्म च ॥ ६० ॥

साध्य रोहिणी रोग में रत्र निकलवाना,  
घमन, धूमपान, गण्दूप, धारण और नस्यकर्म  
हितकर है ॥ ६० ॥

वातिकीं तु हने रक्ते लघुणः प्रति-  
सारयेत् । मुखोष्णांस्तैलरुचलान् धारये-  
द्याप्यभीक्षणः ॥ ६१ ॥

वातज रोहिणी रोग में रक्त निकलवाकर संधानमक से प्रतिसारण तथा वारंवार किञ्चित् गरम तेल का कवल धारण करना चाहिए ॥ ६१ ॥

पचद्गशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकां प्रतिसारयेत् । द्राक्षापरूपककाथो हितश्च कवल-ग्रहे ॥ ६२ ॥

पित्तज रोहिणी रोग में पतंग, शकर और शहद से प्रतिसारण करना चाहिए । तथा मुनका और फालसा के काथ का कवल धारण करना हितकर है ॥ ६२ ॥

आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् । श्वेताविडङ्गदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम् । नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफो-च्छ्रये ॥ ६३ ॥

कफज रोहिणी रोग में गृहधूम और कुटकी के चूर्ण से मञ्जन करना चाहिए । एवं फिट-करी, वायविडग, दन्ती की जड़ और संधानमक इनसे सिद्ध किये हुए तेल को नस्यकर्म और कवल धारण में प्रयोग करना चाहिए ॥ ६३ ॥

पित्तवत् साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्त-सम्भवाम् ॥ ६४ ॥

रक्त से उत्पन्न रोहिणी रोग में वैद्य को पित्तज रोहिणी की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ६४ ॥

कण्ठशालूकचिकित्सा ।

विस्त्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डि-केरिवत् । एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ ६५ ॥

कण्ठशालूक रोग में रक्त निकालकर तुण्ड-केरी के तुण्ड चिकित्सा करनी चाहिए तथा एक समय थोड़ा-सा स्निग्ध यवान्न का भोजन करना चाहिए ॥ ६५ ॥

उपजिह्वकवचापि साधयेदाधिजिह्वकम् । उन्नाम्य जिह्वामाकृत्य वडिशोनाधिजि-

ह्वकम् । छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णै-र्घर्षणादिभिः ॥ ६६ ॥

अधिजिह्वक रोग में उपजिह्वक की-सी चिकित्सा करनी चाहिए । अधिजिह्वक रोग में जीभ को उठाकर वडिशयत्र से खींचकर मंड-लाग्रयंत्र से अधिजिह्वक को काटना चाहिए और उस स्थान पर तीक्ष्ण और उष्ण द्रव्यों का घर्षण करना चाहिए ॥ ६६ ॥

विस्त्राव्य शोणितं स्वल्पंततः शोधन-माचरेत् ॥ ६७ ॥

एकवृन्द रोग में थोड़ा-सा रक्त निकलवाकर प्रतिसारण तथा शिरोविरेचनादि द्वारा शोधन करना चाहिए ॥ ६७ ॥

अमर्मस्थं सुपर्कं च भेदयेद्रल-विद्रधिम् ॥ ६८ ॥

गलविद्रधि यदि मर्मस्थान पर न हो तो पक जाने पर उसमें चीरा लगा देना चाहिए ॥ ६८ ॥

कण्ठरोगेष्वसृङ्गमोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि-कर्म च । काथपानं तु दार्वात्त्वङ्नि-म्बद्राक्षाकलिङ्गतः ॥ हरीतकीकपायो वा पेयो मात्तिकसंयुतः ॥ ६९ ॥ कटुकातिविपादारूपाठामुस्तकलिङ्गकाः । गोमूत्रकथिताः पेयाः कण्ठरोगविना-शनाः ॥ ७० ॥

सब प्रकार के कण्ठरोगों में रक्त निकलवाना तथा तीक्ष्ण नस्य आदि का प्रयोग करना; एवं दारुहर्षदी, दालचीनी, नीम की छाल, मुनका और इन्द्रजौ, इनके काथ का पान अथवा हृद के काथ में शहद मिलाकर पान करना चाहिए । कुटकी, अतीस, दारुहर्षदी, पाई, नागरमोया और इन्द्रजौ, इनका गो-मूत्र में काथ बनाकर पीने से कण्ठरोगों का नाश होता है ॥ ६९-७० ॥

१ एकवृन्दं तु विस्त्राव्य विधिशोधनमाचरेत् ।

दन्तरोगाशनि चूर्ण ।

जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकौरुएटमु-  
स्तावचाः शुण्ठीदीप्यहरीतकी च सघृतं  
चूर्णं मुखे धारयेत् । वातघ्नं कृमिकर्णशूल-  
दहनं सर्वाभयध्वंसनं दौर्गन्ध्यादिसमस्त-  
दोषहरणं दन्तस्य रोगाशनिः ॥ ७१ ॥

एषां समभागचूर्णं घृतभ्रक्षितं कृत्वा  
अस्य किञ्चिन्मुखे धार्यम् ॥

चमेली के पत्ते, साँठी, तिल, पीपरि, पीली  
कटहरैया नागरमोथा, बच, सोंठ, अजनायन  
और हृद इनके चूर्ण को घृत में सानकर मुख  
में रखना चाहिए । यह दन्तरोगाशनि चूर्ण  
वातरोग, दन्तकृमिरोग, कर्णशूल और मुखदुर्गन्ध  
आदि समस्त मुखरोगों को नष्ट करता है ॥ ७१ ॥

कालक चूर्ण ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसा-  
ञ्जनम् । तेजोहा त्रिफला लौहं चित्र-  
कश्चेति चूर्णकम् ॥ ७२ ॥ सत्तौद्रं धार-  
येदेतद्गलरोगविनाशनम् । कालकं नाम  
तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ ७३ ॥

गृहधूम, जवाक्षार, पाड़ी, सोंठ, मिर्च,  
पीपरि, रसौत, तेजबल, हृद, बहेडा, चाँधला,  
लौहभस्म और चीता की जड़; इनके चूर्ण में  
शहद मिलाकर मुख में रखने से गल के सम्पूर्ण  
रोग नष्ट होते हैं । यह कालक नाम चूर्ण  
दन्त, मुख और गल के रोगों को नष्ट करने-  
वाला है ॥ ७२-७३ ॥

पीतक चूर्ण ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं स-  
सैन्धवम् । दार्वात्वक् चेति तच्चूर्णं  
मान्त्रिकेण समायुतम् ॥ ७४ ॥ मूर्च्छि-  
तं घृतयोगेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।  
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्ति-  
तम् ॥ ७५ ॥

मैनशिल, जवाक्षार, हरताल, संधानमक,  
दारुहृदी और दालचीनी इनके चूर्ण में शहद  
मिलाकर तथा घृत में सानकर मुख में धारण  
करना चाहिए । यह पीतक नाम चूर्ण कंठरोग  
और मुखरोगों में हितकर कहा गया है ॥ ७४-७५ ॥

यवक्षारादि गुटी ।

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं  
दारुनिशां सकृष्णाम् । क्षौद्रेण कुर्याद्  
गुटिकां मुखेन तां धारयेत् सर्वगला-  
मयेषु ॥ ७६ ॥

दशमूलं पिबेदुष्णं यूपं मूलकुल-  
त्थयोः ।

जवाक्षार तेजबल, पाड़ी, रसौत, दारुहृदी  
और पीपरि; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर  
गोलियाँ बनवे । सब प्रकार के गलरोगों में  
इसको मुख में धारण करना चाहिए ॥ ७६ ॥

गल के रोगों में दशमूल का गरम-गरम  
काढ़ा तथा मूली और कुलथी का जूस पीना  
हितकर होता है ।

क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः।  
विदध्यात् कवलान् वीक्ष्य दोषं तैलगृत्तै-  
रपि ॥ ७७ ॥

गल के रोगों में दोषों का विचार कर दूध,  
ईस का रस, गोमूत्र, दही का तोड़ और रती  
काँजी का तथा तेल और घी का फवल धारण  
करना चाहिए ॥ ७७ ॥

क्षारगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः ।  
पलाशमुष्ककक्षारयवक्षारारच चूर्णिताः ॥  
७८ ॥ गुडे पुराणे कथिते द्विगुणे गु-  
टिकाः कृताः । कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं  
स्थिता मुष्ककभस्मनि ॥ कण्ठरोगेषु सर्वेषु  
धार्याः स्युरमृतोपमाः ॥ ७९ ॥

पीपरि, पीपळामूल, चण्य, चित्रक, सोंठ,  
तालीशपत्र, छोटी हृदयवी, कालीमिर्च, दाख-

चीनी, पलाशचार, मोखा का चार और जवा-  
लार, इनका चूर्ण कर सब औषधियों से दूना  
गुड़ लेकर यथाविधि पाक करे और बेर के  
समान गोलियाँ बनाकर मोखा की राख में  
सात दिन तक रखे, फिर भस्म से निकाल कर  
सब प्रकार के कण्डरोगों में इन अमृततुल्य  
गोलियों को मुख में रखना चाहिए ॥ ७८-७९ ॥

योगों का विधान ।

भृश्विन्ना शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठ-  
वालकैः । अभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्वि-  
रसतामपि ॥ ८० ॥

गोमूत्र में स्वेदित की हुई, हड, सौंफ, कूट  
और सुगन्धवाला; ये सब सम भाग ले सेवन करे  
तो सब प्रकार के मुखरोग और मुख की विरसता  
नष्ट होती है ॥ ८० ॥

सर्वसरचिकित्सा ।

वातात् सर्वसरं त्र्यैर्लवणैः प्रतिसार-  
येत् । तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवल-  
नस्ययोः ॥ ८१ ॥

वातज सर्वसर रोग में सेंधानमक महीन पीस-  
कर मुख में रगड़ना चाहिए तथा वातनाशक  
औषधियों से सिद्ध किये हुए तेल का नस्य एवं  
कवल धारण करना भी वातज सर्वसर रोग में  
हितकर है ॥ ८१ ॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः।  
सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशी-  
तलः ॥ ८२ ॥

पित्तज सर्वसर रोग में घमन और विरेचन  
आदि से शरीर शुद्ध करके सब प्रकार की  
पित्तनाशक मधुर और शीतल क्रिया करनी  
चाहिए ॥ ८२ ॥

प्रतिसारणगण्डूपान् धूमसंशोधनानि  
च । कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात् कफा-  
पहम् ॥ ८३ ॥

कफज सर्वसर रोग में कफनाशक औषधियों से

प्रतिसारण, गण्डूपधारण, धूमपान और संशोधन  
आदि क्रिया करनी चाहिए ॥ ८३ ॥

मुखपाकचिकित्सा ।

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेच-  
नम् । कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य  
चर्वणम् ॥ ८४ ॥

मुखपाक रोग में शिरावेध, शिरोविरेचन,  
जुहवाच द्वारा शरीरशोधन तथा बार-बार चमेली  
के पत्तों को चबाना चाहिए ॥ ८४ ॥

जातीपत्रामृताद्राक्षापाठादावीं फल-  
त्रिकैः । काथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूपो  
मुखपाकनुत् ॥ ८५ ॥

चमेली के पत्ते, गिलोय, मुनक्का, पाड़ी, दार-  
हल्दी, हठ, बहेडा और आंवला; इन सबके ठडे  
काथ में राहद डालकर गण्डूप धारण करने से  
मुखरोग दूर होता है ॥ ८५ ॥

पटोलनिम्बजम्वाभ्रमालतीनवपल्लवैः।  
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कपायो मुख-  
घावने ॥ ८६ ॥

परवल, नीम, जामुन, आम और मालती  
इन पाँचों के नवीन पत्तों के काढ़े से मुख घोना  
( कुचला करना ) मुख रोग को शांत करता  
है ॥ ८६ ॥

पञ्चवल्ककपायो वा त्रिफलाकाथ एव  
वा । मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुख-  
घावने ॥ ८७ ॥

मुखपाक रोग में पञ्चवल्कल (बरगद, एकड़िया  
गूलर, पीपल और धेत की छाल ) के काढ़े अथवा  
त्रिफला के काढ़े में राहद डालकर कुचला करना  
चाहिए ॥ ८७ ॥

स्वरसः कथितो दाव्यां यनीमूतो रस-  
क्रिया । सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडी-  
व्रणापहा ॥ ८८ ॥

दाहदहरी के स्वरस को अथवा काय को पका-  
कर गाढ़ा करके रसत्रिपा तैयार करे । इसमें

शहद भिलाकर मुख में धारण करे । अथवा चाटे तो मुखरोग, रङ्गविकार और नाडीव्रण नष्ट होता है ॥ ८८ ॥

सप्तच्छदादिकाथ ।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकी-  
तिक्ककरोहिणीभिः । यष्ट्याद्विराजद्रुमचन्द-  
नैश्च काथं पिवेत् पाकहरं मुख-  
स्य ॥ ८९ ॥

सतवन की छाल, खस, परवल के पत्ते, मोथा, हड, कुटकी, मुलेठी, अमलतास और लालचन्दन, इन सबको समभाग लेकर काथ बनावे । इस काथ के पीने से मुख का पकना शान्त होता है ॥ ८९ ॥

पटोलादि काथ ।

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्ति-  
तिक्काद्विनिशामृतानाम् । पीतः कपायो  
मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चास्यगदान-  
शेषान् ॥ ९० ॥

परवल के पत्ते, सोंठ, हड, बहेड़ा, आँवला, इन्द्रायण की जड़, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारहल्दी और गिलोय, इनके साथ में शहद डालकर पीने से अथवा मुख में धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९० ॥

पुनः योगों का विधान ।

कथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजाति-  
पल्लवाः । निपेय्या भक्षणीया वा त्रिफला  
मुखपाकहा ॥ ९१ ॥

त्रिफला, पाद, दास और चमेली के पत्ते, हडका काथ पीने से अथवा त्रिफला के राने से मुखपाक नष्ट होता है ॥ ९१ ॥

कृष्णाजीरककुष्ठेन्द्रयचर्षणतस्य-  
दम् । मुखपाके ब्रणक्लेददार्द्रगन्ध्यमुपशा-  
यति ॥ ९२ ॥

पीपरी, जीरा, कूट और इन्द्रजी; इनको

तीन दिन चवाने से मुखपाक, मुखव्रण, बलेद (लार बहना) और मुख की दुर्गन्धि शान्त होती है ॥ ९२ ॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीर-  
मेव च । सप्तौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूपो  
दाहपाकहा ॥ ९३ ॥

तिलेतिपञ्चयोगाः सर्वत्र मधूपयोगः ।  
तिलकाथस्तथा नीलोत्पलकाथो ग्राह्यः ।

चार आदि द्वारा अथवा गरम भोजन से मुख के जलने पर तिल, नीलोफर, घी, सोंठ, दूध, तथा शहद सबको भिलाकर गण्डूप करने से लाभ होता है । अथवा तिल का काथ और शहद; नील कमल का काथ और शहद; वृत् और शहद; शकर और शहद तथा दूध और शहद; इन पाँचों योगों में से किसी एक योग का गण्डूप धारण करने से जले हुए मुख का दाह और पाक नष्ट होता है ॥ ९३ ॥

तैलेन काञ्जिकेनाथ गण्डूपश्चूर्ण-  
दाहहा ॥ ९४ ॥

तैल अथवा काँजी का गण्डूप धारण करने से चूने का दाह शान्त होता है ॥ ९४ ॥

धनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमध्वेलनालुका-  
कवडः । वदनेऽतिपूतिगन्धं हरति सुराल-  
शुनगन्धं च ॥ ९५ ॥

घनाटिकं मुखे निक्षिप्य चर्षणीयमिति  
वृद्धाः ।

मोथा, कूट, छोटी इलायची, धनिया, मुलेठी और एलवालुक; इन सबको पकय कर चवाने से अथवा इनका कपल धारण करने से मुख की दुर्गन्धि तथा मदिरा और लहसुन की दुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ ९५ ॥

विदार्यादि तैल ।

ततो विदारियाश्चादमृदाटककरो-  
गमिः । तैलं दशगुणं क्षीरं सिद्धं नस्ये तु  
योजयेत् ॥ ९६ ॥

तिलतैल १९ तोले । दूध २ सेर, करक

के लिए—विदारिकन्द, मुलेठी, सिघाडा, कसेरू, हरपक २ तोले । विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर नस्य लेने से दन्तरोग नष्ट होता है ॥ ६६ ॥

सप्तच्छदार्कदुग्धाभ्यां पूरणं कृमिदन्त-  
जुत् । अर्कक्षीरेणैवमेकयोगः सद्भिः  
प्रशस्यते ॥ ६७ ॥

कृमिदन्त के छिद्र को सतीने का दूध तथा  
आक का दूध, एकत्र मिलाकर अथवा केवल  
आक के दूध से ही पूरण करने से कृमिदन्त रोग  
नष्ट होता है । इसमें यह ध्यान रखना आव-  
श्यक है कि अम्यत्र न लगने पाये ॥ ६७ ॥

गिलायुर्चापि यो व्याधिस्तश्च शस्त्रेण  
साधयेत् ॥ ६८ ॥

गिलायु नामक रोग में भी शस्त्रचिकित्सा  
करनी चाहिए । यदि गिलायु कड़ा, थोड़े कष्ट-  
युक्त तथा कच्चा हो तो छेदन करना चाहिए ।  
परन्तु यदि पक जाय तब मवाद आदि के  
निकालने के लिए भेदन करना चाहिए ॥ ६८ ॥

सहाचर तैल ।

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणे-  
जम्भसः संस्रपयेद् यथावत् । पूते चतुर्भा-  
गरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ॥  
६९ ॥ कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्बवाप्र-  
यष्टीमधुकोत्पलानाम् । तच्चैलमाश्चेव  
घृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विदधाति  
सद्यः ॥ १०० ॥

नील कटसरिया ५ सेर, काथायं जल २५  
सेर ४८ तोले, अवशिष्ट बाध ६ सेर ३२  
तोले । तिलतैल १२८ तोले । कल्क के लिए  
घनन्तमूल, रौर, अरिमेद ( दुर्गन्ध तैर ) की  
छाल, जामुन की छाल, आम की छाल, मुलेठी  
और नील कमल; प्रत्येक दो-दो तोले । पपा-  
पिथ तैल सिद्ध कर मुख में धारण करने से  
दांत शीघ्र ही स्थिर हो जाते हैं ॥ ६९-१०० ॥

अरिमेदाद्य तैल ।

अरिमेदत्वकपलशतमभिनवमापोध्य

खण्डशः कृत्वा । तोयाढकैश्चतुर्भिर्नि-  
ष्काश्य चतुर्थशेषेण ॥ १०१ ॥ काथेन  
तेन मतिमांस्तैलस्यार्द्धाढकं शनैर्विपचेत् ।  
कल्कैरक्षसमांशैर्मज्जिष्ठालोभ्रमधुकानाम् ॥  
१०२ ॥ अरिमेदखदिरकटफललात्तान्य-  
ग्रोधसूचमैला । कपूर् रागुरुपद्मकलवद्भक-  
कोलजातीफलानाम् ॥ १०३ ॥ फलपत्त-  
द्भ्रगैरिकवराद्भ्रगजकुसुमधातकीनां च । सिद्धं  
भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु ॥  
१०४ ॥ परिशीर्णदन्तविद्रधिशीपिरशी-  
ताददन्तहर्षेषु । कृमिदन्तदरणचलितप्रह-  
ष्टमांसावशीर्णेषु ॥ १०५ ॥ मुखदौर्गन्धेषु  
च कार्यं प्रागुत्पेज्जामयेषु तैलमिदम् १०६ ॥

अरिमेद ( दुर्गन्ध खैर ) की ताजी छाल  
५ सेर लाकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर ढाले  
और २५ सेर ४८ तोले जल में ढाल कर  
पकाये । जब ६ सेर ३२ तोले बाकी रहे तब  
उतार कर छान ले । तिलतैल ३ सेर १६ तोले ।  
कल्क के लिए मँजीठ, लोध, मुलेठी, अरिमेद,  
खैर की छाल, रौर, कायफल, लाख, वरगद की  
छाल, छोटी इलायची, कपूर, अमर, पद्माक,  
लवंग, कंकोल ( शीतलचीनी ), जावित्री,  
जायफल, पतङ्ग, मेरू, दालचीनी, नागकेसर  
और घाय के फूल; प्रत्येक दो-दो तोले । विधि  
से तैल सिद्ध करे । मुखरोगों में इस तैल का  
कवल धारण करने से दाँतों का गिरना, विद्रधि,  
शीपिर, शीमाद, दन्तहर्ष, कृमिदन्त, दालन,  
दाँत हिलना, अधिमांस, दाँतों का मांस गलना  
और मुख की दुर्गन्ध हत्यादि दन्तरोग नष्ट  
होते हैं ॥ १०१-१०६ ॥

लाक्षाद्य तैल ।

तैलं लाक्षासं क्षीरं पृथक् प्रस्यं समं  
पचेत् । चतुर्गुणैः अरिमेदाथे द्रव्यैश्च पल-  
संमितैः ॥ १०७ ॥ लोभ्ररुत्पलमज्जिष्ठा-  
पत्रकेगरपत्रकैः । चन्दनोत्पलपेज्जामैस्तैलं



गण्डहूपधारणम् ॥१०८॥ दालनं दन्तचालं  
च दन्तमोक्षं कपालिकाम् । शीतादं  
पूतिवक्त्रं च अरुचिविरसास्यताम् ॥  
हन्यादाशु गदानेतान् कुर्याद्दन्तापि  
स्थिरान् ॥ १०९ ॥

तिलतैल १२८ तोले, लाख कारस १२८  
तोले, गौ का दूध १२८ तोले, अरिमेद का काथ  
६ सेर ३२ तोले । कल्क के लिए लोध, कायफल,  
मँजीठ, कमलकेशर, पद्माख, चन्दन, नील कमल  
और मुलेठी; ये सब चार-चार तोले । विधि  
से तेल सिद्ध कर गण्डहूप धारण करे तो यह  
लाघाद्य तेल दालन, दाँत हिलना, दाँत गिरना,  
कपालिका, शीताद, मुखदुर्गंध, अरुचि, मुख की  
विरसता आदि रोगों को शीघ्र नष्ट करके दाँतों  
को स्थिर कर देता है ॥ १०७-१०९ ॥

दशनसंस्कार चूर्ण ।

शुण्ठी हरीतकी मुस्ता खदिरं घन-  
सारकम् । गुवाकभस्ममरिचं देवपुष्पं  
तथा त्वचम् ॥ ११० ॥ श्लक्ष्णचूर्णा-  
कृतं यत्नान्निक्षिपेत् खल्लमध्यतः ।  
कठिनीसम्भवं चूर्णं प्रक्षिपेत् तत्र तत्स-  
मम् । एतद्दशनसंस्कारचूर्णं दन्तास्यरोग-  
जित् ॥ १११ ॥

सोंठ, हड़, नागरमोथा, खैर, कपूर, सुपारी  
की भरम, कालीमिर्च, लींग और दालचीनी,  
इन सबको समभाग ले महीन चूर्ण करे और  
सब चूर्ण के समान खदिया का चूर्ण उसमें  
मिलाकर सूखे खरल धरके रख ले । इस दशन-  
संस्कार चूर्ण का मञ्जन करने से दाँत और मुख  
के रोग नष्ट होते हैं ॥ ११०-१११ ॥

यकुलाद्य तैल ।

यकुलस्य फलं लोभ्रं यज्वल्ली कु-  
रण्डकम् । चतुरंगुलबन्धोलवाजिकर्णा-  
रिमाणनम् ॥ ११२ ॥ येषां कपायक-

ल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् । स्वैर्यं करोति  
चलतां दन्तानां नावनेन च ॥ ११३ ॥

मीलसिरी के फल, लोध, हड़संहारी, पीली  
कटसरैया, अमलतास यबूल की छाल, अश्व-  
कण्ठाशाल, अरिमेद और पीतसाल इन सबके  
काथ से तथा कल्क से तेल सिद्ध करे । यह  
तेल मुख में धारण करने से अश्रुता नश्य  
लेने से हिलते हुए दाँतों को स्थिर करता  
है ॥ ११२-११३ ॥

स्वल्पखदिरघटिका ।

खदिरस्य तुलां सम्यक् जलद्रोणे  
विपाचयेत् । शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवार्पं  
प्रदापयेत् ॥ ११४ ॥ जातीकर्पूरपूगानि  
बन्धौलफलकानि च । इत्येषा मुट्टिका  
कार्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी । दन्तौष्ठमुख-  
रोगेषु जिह्वातात्वामयेषु च ॥ ११५ ॥

खैर ५ सेर, पाकार्थ जल २५ सेर ४८ तोले,  
अवशिष्ट काथ ३ सेर १६ तोले । इस काथ में  
जावित्री, कपूर, सुपारी, यबूल की छाल और  
जायफल, सब मिलित ६४ तोले ढालकर  
पकावे । जब गाढ़ा हो जाय तब उतारकर  
गोलियाँ बना ले । इस गोली को मुख में रखने  
से दाँत, ओष्ठ, मुख, जीभ और तालुरोग नष्ट  
होते हैं तथा मुख सुगन्धित हो जाता  
है ॥ ११४-११५ ॥

शुद्धत्पदिरघटिका ।

गायत्रीसारतुलमेरिमवल्कलानां सार्द्धं  
तुलायुगलमभ्युषट्टेश्चतुर्भिः । निष्कार्य्य  
पाटमवशिष्टसुवत्तपूतं भूयः पचेदथ  
शानैर्भृदुपावकेन ॥ ११६ ॥ तस्मिन्  
घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां श्लक्ष्णं  
क्षिपेच्च कवडग्रहभागिकानाम् । एता-  
मृगालसितचन्दनचन्दनाभ्युश्यामातमाल-  
धिकपाघनलोहयष्टी ॥ ११७ ॥  
लज्जाफलत्रयरसाञ्जनघातकीमथ्रीपुष्पग-

रिक्तकटुककटफलानाम् । पद्माटलोध-  
वटरोह्यवासकानां मांसीनिशासुरभि-  
वलकलसंयुतानाम् ॥ ११८ ॥ ककौल-  
जातिफलकोपलवङ्गकानि चूर्णाकृतानि  
विदधीत पलाशकानि । शीतेऽवतार्य घन-  
सारचतुष्पलं च क्षिप्त्वा कलायसदृशीर्गु-  
डिकाः प्रकुर्यात् ॥ ११९ ॥ शुष्का मुखे वि-  
निहिता विनिवारयन्ति रोगान् गलौष्ठर-  
सनाद्विजतालुजातान् । कुर्युर्मुखे सुरभितां  
पटुतां रुचिं च स्थैर्यं परं दशनगं रसनाल-  
युत्वम् ॥ १२० ॥

खैरसार ( कत्या ) ५ सेर, अरिमेद की छाल  
५ सेर ; इन दोनों को सम्मिलित कर १ मन  
११ सेर १६ तोले जल में पकावे । जब १२  
सेर ६४ तोले काथ अवशिष्ट रहे तब उतार  
कर कपड़े से छान ले । फिर इसको मन्द-मन्द  
अग्नि से पकावे । जब गाढ़ा होने लगे तब  
इसमें निम्नलिखित औषधियों का महीन चूर्ण  
डाले । छोटी इलायची, मसौदा, सफेद चन्दन,  
लाल चन्दन, सुगन्धबाला, सारिवा, तेजपत्र,  
मजीठ, नागरमोथा, लोहभस्म, मुलेठी, लजा-  
घन्ती, त्रिफला, रसौत, धाय के फूल, नागकेशर,  
लौंग, गेरू, दाहदही, कायफल, पद्मास, लोघ,  
परगद की जटा, जवासा, जटामांसी, हृद्दी,  
रासना और दालचीनी ; प्रत्येक एक-एक तोला ।  
शीतलचीनी, जायफल और लौंग ; इन प्रत्येक  
का चूर्ण चार-चार तोले । जब सब औषधियों  
अच्छे प्रकार मिलकर गोली बनाने योग्य पाक  
हो जाय तब नीचे उतार कर १६ तोले कपूर  
का चूर्ण मिलाकर मटर के समान गोलियाँ बना  
ले । जब गोलियाँ सूख जायें तब उनका सेवन  
करना चाहिए । यह गोली मुख में रखने से गल,  
धोष्ठ, जीभ, दाँत और तालु इत्यादि में होनेवाले  
रोगों को निवारण करती है तथा मुख को  
निवारण करती है तथा मुख को सुगन्धित,  
दाँतों को दृढ़ और जीभ को हलकी कर देती है और

रुचि को बढ़ाती है ( एक एकगोली मुँह में डाल-  
कर रस चूसना चाहिए ) ॥ ११६-१२० ॥

मुखरोगहर रस ।

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणं च  
शिलाजतु । गोमूत्रेण विमर्द्याथ सप्तधार्क-  
द्रवेण च ॥ १२१ ॥ जातीनिम्बमहाराष्ट्री  
रसैः सिध्यति पाकहा । कणा मधुयुता  
हन्ति मुखपाकं सुदारुणम् ॥ १२२ ॥  
चतुर्गुञ्जाधृता वक्त्रे सद्यो हन्ति वटी  
गदान् । महाराष्ट्रधारच कल्केन मुखं च  
प्रतिसारयेत् ॥ धारणाद् वदने चैषा वटी  
हन्ति मुखामयान् ॥ १२३ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक १ तोला और  
शिलाजीत ४ तोले । पारा और गन्धक की  
कजली करके शिलाजीत मिलावे, फिर क्रम से  
गोमूत्र, आक के पत्तों का रस, चमेली के पत्तों  
का रस, नीम के पत्तों का रस और जलपीपरि  
के रस की अलग-अलग सात-सात भावनाएँ  
देकर आठ-आठ रत्ती की गोलियाँ बना ले ।  
इस गोली को पीपरि के चूर्ण और शहद के  
साथ मुख में धारण करने से मुख के संपूर्ण रोग  
नष्ट होते हैं । इस गोली के सेवन के परचात्  
जलपीपरि का कण्ठ मुख में रगड़ना  
चाहिए ॥ १२१-१२३ ॥

पथ्याचटो ।

पथ्यावालककुष्ठञ्च गोमूत्रेण प्रसा-  
धयेत् । एषा च वटिका हन्ति मुखदौर्गन्ध्य-  
सन्ततम् ॥ १२४ ॥

हृद्, गन्धबाला, कूट हरएक का चूर्ण ४  
तोले, हृद् एकत्र १६ तोले गोमूत्र में पकाकर  
गाढ़ा होने पर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे ।  
इस गोली को मुख में रखने से मुख की दुर्गन्ध  
नष्ट होती है ॥ १२४ ॥

सत्तामृत रस ।

मृतमूताभ्रकं तुल्यं मृतलोहं शिलाजतु ।

गुग्गुलुञ्च शिलाताप्यं समांशं मधुना  
लिहेत् ॥ अर्धगुञ्जप्रमाणेन मुखरोगं  
विनाशयेत् ॥ १२५ ॥

पाराभस्म (अभाव में रससिन्दूर), अभ्रक-  
भस्म, लोहभस्म, शिलाजीत, भूगल, मैनासिल,  
सोनामाखी की भस्म, इन्हें बराबर मात्रा में  
मिलाकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनावे ।  
अनुपात—शहद । इसके सेवन से मुखरोग नष्ट  
होते हैं ॥ १२५ ॥

चतुर्मुखरस ।

मृतं सूतं मृतं स्वर्णं द्वाभ्यां तुल्यां  
मनःशिलाम् । विमर्दयेच्च तैलेन अतसी-  
सम्भवेन च ॥ १२६ ॥ तद्गोलं वद्धतो  
वद्ध्वा लेपयेच्च समन्ततः । अतसीफल-  
कल्केन दोलायन्त्रे ज्यहं पचेत् । उद्-  
धृत्य धारयेद्भक्त्रे जिह्वादन्तास्यरोग-  
नुत् ॥ १२७ ॥

रससिन्दूर १ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, शुद्ध  
मैनासिल २ भाग, इन्हें एकत्रकर अलसी  
के तेल में घोटकर पिचकाकर पर ले । पश्चात्  
कपड़ा लपेट अलसी के कलक से लेपन करे  
और अलसी के द्राय से दोलायन्त्र द्वारा तीन  
दिन पकावे पश्चात् औषध को पृथक् कर चौघाई  
रत्ती की मात्रा मुग में रखे । यह चतुर्मु-  
खरस जिह्वा, दाँत तथा मुग के रोगों को दूर करता  
है ॥ १२६-१२७ ॥

पार्वती रस ।

पार्वतीशिवसम्भूतोदरदो मधुपुष्पकम् ।  
शुद्धी शाल्मली द्राक्षा धान्यभूमिभ्य-  
मार्कषम् ॥ १२८ ॥ तिलमुद्गपटोलञ्च  
पूष्पाएदलरण्डयम् । यष्टिका धान्यकं  
भस्म चान्तर्दग्धं समं ममम् ॥ १२९ ॥  
मुखरोगं निहन्त्याशु पार्वतीरस उत्तमः ।  
पिचञ्जरं चिरं हन्ति तिमिरश्च तृषा-  
मपि ॥ १३० ॥

गन्धक, पारा, सिंगरफ, महुए के फूल, गिलोय,  
सेमल की जड़, दाख, धनियाँ, चिरायता, भँगरा,  
तिल, मूँग, पटोलपत्र, पेठा, सेंधानमक, बिड-  
नमक, मुलहठी, धनियाँ, इन्हें बराबर-बराबर  
मात्रा में मिला अन्तर्धूम पाक करे । शीतल  
होने पर औषध को बाहर निकाल ले । इसके  
सेवन से मुखरोग, जीर्ण पिचञ्जर, तिमिर तथा  
तृष्णा आदि रोग नष्ट होते हैं । मात्रा—  
२ रत्ती ॥ १२८-१३० ॥

रसेन्द्रवटी ।

रसेन्द्रगन्धार्जजतुमवाललौहानि वैद्यः  
समभागिकानि । रसेन्द्रपादप्रमितं च हेम  
विभाव्य निम्बाशनवह्नितोयैः ॥ १३१ ॥  
ततो वटीर्ध्वमिता विमर्द्य विधाय  
शुद्ध्वा बहुवारवारा । फलत्रिकफाथजलेन  
वापि प्रातः प्रयुञ्जयात् प्रकराम्बुना  
वा ॥ १३२ ॥ रसेन्द्रवट्यास्यगदान्निहन्ति  
वातामयान् मेहगणान् ज्वरांश्च । करोति  
वह्नेर्बलवीर्ययोश्च वृद्धिं विशेषेण  
रसायनी-यम् ॥ १३३ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, शिलाजीत, मूँग की  
भस्म और लौहभस्म, प्रत्येक समभाग । पारा  
से चौघाई सुवर्णभस्म । इन सबको एकत्र कर  
नीम के पत्ते, भसना की छाल और चीता की  
जड़ के काढ़े से अलग-अलग धारदार घोटकर  
दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । प्रातःवाज  
तसोढ़े की छाल के द्राय या त्रिकला के द्राय  
अथवा अगर के काढ़े के साथ एक गोली गाना  
चाहिए । यह रसेन्द्रवटी मुखरोग, पातारोग, पीसा  
प्रकार के प्रमेह और ज्वर रोगों को नष्ट करती  
है । यह अग्नि, बल और धैर्य की वृद्धि करती  
है तथा रसायन है ॥ १३१-१३३ ॥

गन्धकारयटी ।

सहकारस्य निम्बस्य ग्वटिरस्याशनस्य  
च । तुलां पृथग्निष्काभ्य द्रोणमानेन

चाम्बुना ॥ १३४ ॥ एकीकृत्य कपायांश्च  
पादशिष्टान् पुनः पचेत् । ततः क्षिपेन्मल-  
यजं बालकं रक्तचन्दनम् ॥ १३५ ॥  
गैरिकं देवपुष्पं च धातकीं रजनीद्वयम् ।  
लोध्रं जातीफलं श्यामां चातुर्जातं फल-  
त्रयम् ॥ १३६ ॥ वटप्ररोहमञ्जिष्ठामांसी-  
रम्बुधरं विडम् । कटुत्रयमयश्चन्द्रं प्रष्ट-  
त्यर्द्धप्रमाणतः ॥ १३७ ॥ ततः कलाय  
सदृशीर्विदध्याद् गुडिका भिषक् । रोगान्  
कण्ठीष्ठरसनादन्ततालुसमुद्भवान् ॥ १३८ ॥  
सहकारवटी हन्यादाश्वेव वदने धृता ।  
जनयेन्मुखसौरभ्यं सुरुचिं स्थिरदन्त-  
ताम् ॥ १३९ ॥

आम की छाल २ सेर, जल २५ सेर ४८  
तोले, अश्विष्ट काथ ६ सेर ३२ तोले । नीम  
की छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले ।  
अश्विष्ट काथ ६ सेर ३२ तोले । खैर ५ सेर,  
जल २५ सेर ४८ तोले । अश्विष्ट काथ ६ सेर,  
३२ तोले । असना की छाल ५ सेर, जल  
२५ सेर ४८ तोले । अश्विष्ट काथ ६ सेर  
३२ तोले । सब काथों को एकत्र कर फिर  
पकावे । पकाते समय गाढ़ा होने पर सफेद  
चन्दन, सुगन्धबाला, लालचन्दन, गेरू, लौंग,  
धाय के फूल, हल्दी, दारुहल्दी, जोष, जायफल,  
अनन्तमूल, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची,  
नागकेशर, हड़, बडेडा, भविला, बरगद की  
अडा, मंजीठ, जटामांती, नागरमोथा, विडनमक,  
सोंठ, मिचं, पीपरि, लौहभस्म और कपूर ;  
प्रत्येक चार-चार तोले । इन द्रव्यों का चूर्ण  
छालकर नीचे उतार ले और मटर के समान  
गोलियां बना ले । इस गोली को मुच में धरने  
से कंठ, भ्रौं, जीभ, दांत और तालु में उत्पन्न  
होनेवाले रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । इसके मुख  
सुगन्धित, सुन्दर रस और दांत स्थिर होते  
हैं ॥ १३४-१३९ ॥

मालत्याद्य पत ।  
मालत्या द्रोणपुष्पाश्च निम्बपञ्चो-

लयोस्तथा । सहाचरस्य सर्जस्य स्वरसेन  
पृथक् पृथक् ॥ १४० ॥ कल्कैर्मलयजो-  
शीररक्तचन्दनचम्पकैः । अश्वत्थवटनी-  
लीभी रजनीदारुसैन्धवैः ॥ १४१ ॥  
दान्या विश्वाहकुष्ठाभ्यां कण्ठ्या च पचेद्  
धृतम् । शनैस्ताम्रमये पात्रे कृतवद्भ्रविले-  
पने ॥ १४२ ॥ मालत्याद्यमिदं सर्पिर्गदान्  
मुखसमुद्भवान् । निहन्यान्नात्र सन्देहो  
भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४३ ॥

मालतीपत्र, द्रोणपुष्पी ( गुमा ), नीम की  
छाल, बबूल की छाल, पीली बटसरैया और  
शाल; इनका स्वरस अथवा काढ़ा दो-दो सेर ।  
धी २ सेर । कल्क के लिये सफेद चन्दन, रास,  
लाल चन्दन, चम्पा, पीपल की छाल, बरगद  
की जटा, नील की जड़, हल्दी, देवदारु, सेंधा-  
नमक, दारुहल्दी, सोंठ, कूट और पीपरि; सब  
मिलित आध सेर । इन सबको एकत्र कर कलई  
किये हुए तांबे के पात्र में धीरे-धीरे पकावे । यह  
मालत्यादि धृत मुख के रोगों को इस प्रकार  
नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्यनारायण अन्ध-  
कार को नष्ट करते हैं । इसमें सन्देह नहीं  
है ॥ १४०-१४३ ॥

जात्याद्य तैल ।

जातीपल्लवतोयेन शङ्खपुष्पीरसेन च ।  
बकुलत्वक्पायेण पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥  
१४४ ॥ गायत्रीमात्रवीजं च त्रिफलां  
कटुकत्रयम् । चव्यं नीलोत्पलं कुष्ठं मधुकं  
रजनीद्वयम् ॥ १४५ ॥ मुस्तकं बालकं  
लोध्रं सिन्दूरं स्वर्णगैरिकम् । कल्कीकृत्य  
क्षिपेत् तत्र वटरोहमयोऽपि च ॥ १४६ ॥  
जात्याद्यारूपमिदं तैलं निरिलान् मुख-  
जान् गदान् । भगन्दरोपदर्शां च ग्रथं  
दुष्टं निहन्ति च ॥ १४७ ॥

चमेल

का रस ४ सेर और मौलसिरी की छाल का छाया ४ सेर । तिल तेल २ सेर । कहरू के लिए सैर, आम की गुठली, हड़, बहेड़ा, आंवला, सौंठ, भिर्च, पीपरि, चव्य, नीलकमल, कूट, मुलेठी, हल्दी, दाहहल्दी, मोथा, सुगन्धवाला, लोध, सिन्दूर, स्वर्णरू, बरगद की जटा और लोहभस्म; सब मिलित आध सेर । इनसे यथाविधि तेल सिद्ध करे । इस जात्यादि तेल को मुख में रखने से मुख के संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं । यह तेल भगन्दर, उपदंश और दुष्ट-व्रण को भी नष्ट करता है ॥ १४४-१४७ ॥  
मुखरोग में पथ्य ।

स्वेदो विरेको वमनं गण्डरूपः प्रति-  
सारणम् । क्वलोऽसृक्क्षु तिर्नस्यं धूमः  
शस्त्राग्निर्कर्मणी ॥ १४८ ॥ वृणधान्यं  
यवा मुद्गाः कुलत्था जाद्रलो रसः ।  
वहुपुत्री कारवेल्लं पटोलं वालमूलकम् ॥  
१४९ ॥ कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो  
घृतम् । कटुतिक्तौ च वर्गोऽयं मित्रं  
स्यान्मुखरोगिणाम् ॥ १५० ॥

स्वेद, विरेचन, वमन, गण्डधारण, प्रति-  
सारण, क्वलधारण, रत्रिर्हरण, नस्य, धूम-  
पान, शस्त्रकर्म, अग्निर्कर्म, तृणधान्य, जी,  
मूँग, कुलथी, जौंगल पशु-पक्षियों के मांस  
का रस, शतावर, करेला, परयल, कधी मूली,  
कर्पूरजल, पान, गरम जल, खदिर ( फरया ),  
घी, चरपरे एवं कदवे २५५; ये मुखरोगियों के  
लिए हितकारक हैं ॥ १४८-१५० ॥

मुखरोग में चर्ष्य पदार्थ ।

दन्तकाष्ठं स्नानमभ्रं मत्स्यमानूपमा-  
मिपम् । दधि क्षीरं गुहं मापं रूक्षाभं  
कठिनाशनम् ॥ १५१ ॥ अथोमुखेन  
शयनं गुर्भिमिष्यन्द्कारि च । मुखरोगेषु  
सर्वेषु दिवानिद्रां विवर्जयेत् ॥ १५२ ॥  
इति भैषज्यरत्नावल्यां मुखरोगाधि-  
कारः समाप्तः ।

सब प्रकार के मुख रोगों में दूतन, स्नान,  
खटाई, मछली, अनूप देश के जीवों का मांस,  
दही, दूध, गुद, उखद, रूखा अन्न, कड़ा भोजन,  
नीचे को मुख करके सोना, भारी और अभि-  
प्यन्दी पदार्थ खाना तथा दिन का सोना ; ये सब  
आहार-विहार त्याज्य हैं ॥ १५१-१५२ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां  
मुखरोगाधिकारः समाप्तः ।

## अथ चुद्रोगाधिकारः ।

अजगल्लिका की चिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकामानां जलौकाभिरुपा-  
चरेत् । शुक्तिसौराष्ट्रिकात्तारकल्लैश्चाले-  
पयेन्मुहुः ॥ १ ॥

कधी अजगल्लिका का जोकों द्वारा रक्त  
निकलवा कर सीप, गोपीचन्दन और जयापार  
को जल से पीसकर उस पर धारंवार छेप करना  
चाहिए ॥ १ ॥

नवीनकण्टकार्यारच कण्टकैर्वेधमात्रत ।  
किमारचयं विपच्याशु प्रशाम्यन्त्यजग-  
ल्लिकाः ॥ २ ॥

नई कटेरी के काँटों से अजगल्लिका का घेधन  
करने से शीघ्र पककर अजगल्लिका शान्त हो  
जाती है । इसमें कोई मारचयं नहीं है ॥ २ ॥

वृषमूलविशालाभ्यां लेपो हन्त्यजग-  
ल्लिकाम् । कठिनां तारयोगैश्च द्रावयेद्दजग-  
ल्लिकाम् ॥ ३ ॥

बरुसे की जड़ और इन्द्रायण की जड़ का  
छेप करने से अजगल्लिका शान्त हो जाती है ।  
कठिन अजगल्लिका को चारों के योग से पीसना  
चाहिए ॥ ३ ॥

अनुशयां आदि की चिकित्सा ।

श्लेष्मविद्रधिदल्पेन जयंदनुशयां  
मिपक् । विवृतामिन्द्रविद्धाश्च गर्भ्यां

जालगर्दभम् ॥ ४ ॥ इरिवेल्लिकां गन्ध-  
मालां जयेत् पित्तविसर्पवत् । मधुरौषध-  
सिद्धेन सर्पिपा शमयेद्ब्रणम् ॥ ५ ॥

वैद्य अनुशयी रोग को कफविद्रधि के समान  
चिकिरसा करके जीते । विवृता, इन्द्रविद्धा,  
गर्दभी, जालगर्दभ, इरिवेल्लिका और गन्धमाला  
को पित्तविसर्प की-सी चिकिरसा करके जीतना  
चाहिए । एवं मधुरगण (काकोत्पादिगण) की  
श्रोषधियों से सिद्ध घृत से ब्रण को शान्त करना  
चाहिए ॥ ४-५ ॥

चिकारादि की चिकित्सा ।

रक्तावसेर्कैर्घृभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ।  
जयेद्विदारिकां लेपैः शिशुदेवद्रुमो-  
द्भवैः ॥ ६ ॥

जोंक आदि से धार-धार रक्त्र निकलवाना, स्वे-  
दन करना, लंघन करना तथा सहिजन की छाल  
और देवदारु को पीसकर लेप करना विदारिका  
को जीत लेता है ॥ ६ ॥

पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना  
भिषक । साधयेत् कठिनानन्याञ्छोथान्  
दोषसमुद्भवान् ॥ ७ ॥

पनसिका और कच्छपिका तथा अन्य दोषज  
कठिन शोथों को इसी पूर्वोक्त विधान से शान्त  
करना चाहिए ॥ ७ ॥

अन्त्रालजी आदि की चिकिरसा ।

अन्त्रालर्जा कच्छपिकां तथा पापाण-  
गर्दभम् । सुरदाहशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा  
मलेपयेत् ॥ कफमारुतशोथघ्नो लेपः पा-  
पाणगर्दभे ॥ ८ ॥

अन्त्रालजी, कच्छपिका और पापाणगर्दभ  
को स्वेदन करके देवदारु, मैनशिल और कूट  
का उन पर लेप करना चाहिए । तथा पापाण-  
गर्दभ पर कफ, घात और शोथनाशक लेप करना  
चाहिए ॥ ८ ॥

धल्मीक की चिकिरसा ।

शस्त्रेणोद्धृत्य धल्मीकं चाराग्निभ्यां  
प्रसाधयेत् । मनःशिलालभलातसूचमै-  
लागुरुचन्दनैः ॥ ९ ॥ जातीपल्लवकल्कै-  
श्च निम्बतैलं विपाचयेत् । धल्मीकं नाश-  
येत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥ १० ॥

धल्मीक को शस्त्र द्वारा काट कर उस पर चार  
तथा अग्नि का प्रयोग करना चाहिए । तथा  
मैनशिल, हरताल, भिलावाँ, छोटी इलायची,  
अगर, चन्दन और चमेली के पत्तों के कल्क से  
नीम के तेल को पकाकर लगाने से बहुत छेद-  
वाला और बहुत बहनेवाला धल्मीक रोग नष्ट हो  
जाता है ॥ ९-१० ॥

सशोथं ब्रणगन्धश्च प्रवृद्धं मर्मसुस्थि-  
तम् । हस्तपादस्थितश्चापि धल्मीकं परि-  
वर्जयेत् ॥ ११ ॥

मर्मस्थान, हाथ और पैर में होनेवाला, शोथ-  
युक्त, ब्रण की-सी गन्धवाला और बहुत बड़ा  
धल्मीक रोग असाध्य होता है, अतः उसको  
त्याग देना चाहिए ॥ ११ ॥

पाददारी की चिकिरसा ।

पाददारी तु शिरां वेधयेत् तल-  
शोधनीम् ॥ १२ ॥ स्नेहस्वेदोपपन्नौ  
तु पादौ चालेपयेत् मुहुः । मधूच्छिद्रवसा-  
मज्जघृतचारैर्विमिश्रितैः ॥ १३ ॥

पाददारी ( विवाह ) रोग में तलुघा की शिरा  
को वेधना चाहिए तथा स्नेहन और स्वेदन करके  
मोम, चर्बी, मज्जा, घृत और चार मिलाकर लेप  
करना चाहिए ॥ १२-१३ ॥

गुडलवणघृतं चेत्तिन्तिडीयुक्रमेतद्-  
द्विगुणमिहविदध्वान्मूत्रमेकत्रकृत्वा । दि-  
नकतिचिदधेदं किञ्चिदाशोप्य लेपात्  
स्फुटितपदतलं स्यात् पद्मपत्राम-  
माशु ॥ १४ ॥

गुद, सेंधानमक, घृत और हमली इनमें द्विगुण गोमूत्र मिलाकर और कुछ सुखा कर कई दिन तक पाददारी में लेप करने से फटा हुआ पैर का तलुआ कमलपत्र के समान कोमल हो जाता है ॥ १४ ॥

सर्जाख्यसिन्धुद्रवयोश्चूर्णं मधुघृता-  
प्लुतम् । निर्मथ्य कडुतैलाक्तं हितं पाद-  
प्रमार्जनम् ॥ १५ ॥

राल और सेंधानमक के चूर्ण में शहद और घृत मिलाकर रूब मथे और उसमें कडुआ तेल मिलाकर पैरों पर लेप करे तो पाददारी रोग शान्त होता है ॥ १५ ॥

उपोदिकासर्पपनिम्बमोचकर्कारुकेव्वारि-  
रुकभस्मतोये । तैलं विपक्वं लवणं  
सकल्कं तत्पाददारीं विनिहन्ति  
शीघ्रम् ॥ १६ ॥

पोंई का साग, सरसों, नीम की छाल, मोच (केले के बीच का डंडा), कुम्हड़ा और ककड़ी इनकी भस्म के जल में नमक का कलक ढाल कर तेल सिद्ध करके पैरों पर लगाने से पाददारी रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १६ ॥

अलस की चिकित्सा ।

अलसेज्मैरिचरं सिक्तां चरणौ परि-  
लेपयेत् । पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मु-  
हुर्मुहुः ॥ १७ ॥

अलस रोग में बहुत देर तक सटाई के जल या काजी के पैरों को भिगीकर उन पर परबल के पत्ते, नीम की छाल, कमीस और त्रिफला को पीस कर लेप करना चाहिए ॥ १७ ॥

करञ्जवीजं रजनी काशीसं मधुकं  
मधु । रोचना हरितालश्च लेपोऽयमलसे  
हितः ॥ १८ ॥

करंज के बीज, इपरी, कमीस, मुजेरी, शहद, गोरोचन और हरिताल का लेप अलस रोग में हितकारी है ॥ १८ ॥

लाक्षाभयारसालेपः कार्यं रक्तस्य मोक्ष-  
णम् । बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य  
शुद्धिमान् ॥ शिलारोचनकासीसचूर्णैर्वा  
प्रतिसारयेत् ॥ १९ ॥

अलस रोग में लाख और इड़ के रस का लेप तथा रक्तमोक्षण करना चाहिए । बड़ी कटोरी के रस से सिद्ध तेल की मालिश करके मैन्शिल, गोरोचन और कमीस के चूर्ण को मर्दन करना चाहिए ॥ १९ ॥

कदर की चिकित्सा ।

दहेत् कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन  
वा ॥ २० ॥

कदर (पैर में बंकड़ आदि लगकर गाँठ पड़ जाना) को शस्त्र से कटवाकर गम तेल अथवा अग्नि से दग्ध करना चाहिए ॥ २० ॥

चिप्प की चिकित्सा ।

चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्या-  
भ्यज्य तं व्रणम् । दत्त्वा संज्वरसं चूर्णं  
वुद्ध्वा व्रणवदाचरेत् ॥ २१ ॥

चिप्प रोग को गम जल से स्वेदित कर गन्धे हुए मांस को फाटकर निकाल देना चाहिए और यहाँ तेल लगाकर राल के घृण से घाय को भर देना चाहिए, परन्तु विचारकर व्रण की-सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २१ ॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसे-  
मयाम् । घृष्टा तज्जन कल्केन लिम्पेचिप्पं  
मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

लोह के पात्र में इपरी के स्वरग से इड़ को पीस कर उम कपड़ को बार-बार चिप्प पर लेप करना चाहिए ॥ २२ ॥

कुनग की चिकित्सा ।

नखकोटीपविष्टेन टङ्गेन प्रगाभ्यति ।  
मुनखरचेष्टादा भ्रातः शैलोऽपि प्लवते  
जले ॥ २३ ॥

कुनल रोग में जल के भीतर सुहागा भर देने से रोग शान्त हो जाता है । हे भाई ! जल में पर्वत भी तैरता है, अर्थात् असाध्य रोग भी अच्छा हो सकता है ॥ २३ ॥

अंगुलीवेष्टक की चिकित्सा ।

कारमर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः । अंगुलीवेष्टकः पुंसो ध्रुवमाशु व्यपोहति ॥ २४ ॥

खमारी के कोमल सात पत्ते लपेटने से अंगुलीवेष्टक रोग शीघ्र ही शान्त होता है ॥ २४ ॥

पद्मिनीकण्टक चिकित्सा ।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम् । निम्बोदककृतं सर्पिः सचौद्रं पानमिष्यते ॥ २५ ॥

पद्मिनीकण्टक रोग में नीम की छाल के काथ से वमन करा कर नीम के काथ से सिद्ध घृत में शहद मिलाकर पान करना हितकर होता है ॥ २५ ॥

पद्मनालकृतः चारः पद्मिनीं हन्ति लेपनात् । निम्ब्यारग्वधकल्केर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम् ॥ २६ ॥

कमल के नाल के चार का लेप पद्मिनीकण्टक रोग को नष्ट करता है । अथवा नीम की छाल और अमलतास के पत्तों के कश्क का चार-चार उबटना करना हितकर होता है ॥ २६ ॥

जालगर्दभ की चिकित्सा ।

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम् । जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम् ॥ २७ ॥

नील और परवल की जड़ का चूण घी में मिलाकर लेप करने से जालगर्दभ रोग की पीड़ा शीघ्र नष्ट होती है ॥ २७ ॥

अद्रिपूतन की चिकित्सा ।

अद्रिपूतनके धात्र्याः पूर्णस्तन्यं वि-

शोधयेत् । त्रिफलाखदिरकाथैर्ब्रणानां धावनं सदा ॥ २८ ॥

अद्रिपूतन रोग में पहले घाय ( दूध पिलाने-वाली ) को दुग्धशोधक औषधियाँ सेवन कराकर फिर त्रिफला और खैर के काथ से बालकों के ब्रणों को धोना चाहिए ॥ २८ ॥

करञ्जत्रिफलातिक्कैः सर्पिः सिद्धं शिशो-हितम् । रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयो-हितम् ॥ २९ ॥

करज के बीज, त्रिफला और तिक्क द्रव्यों से घृत सिद्ध कर रोगी बच्चे को सेवन कराना हितकर होता है तथा रसाँज का पीना और लेप करना भी विशेष हितकारी है ॥ २९ ॥

गुदभ्रंश की चिकित्सा ।

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्यान्तः प्रवेशयेत् । प्रविष्टे स्वेदयेच्चापि बद्धगोस्फणया भृशम् ॥ ३० ॥

गोस्फणा बन्धनविशेषः मूलनिर्गमार्थं सच्छिद्रेण चर्मणा कौपीनबन्धः कार्यः ।

गुदभ्रंश ( काँच निकलना ) रोग में सौ बार धोये हुए घृत आदि से बाहर निकली हुई गुदा को सुपके कर अन्दर प्रविष्ट करना चाहिए । जब गुदा भीतर चली जाय तब स्वेदन करके गोस्फण से गुदा को बाँधना चाहिए । गोस्फण नामक एक प्रकार का चमड़े का बन्धन है तथा कौपीन या लँगोट की तरह बाँधा जाता है ॥ ३० ॥

कोमलं नलिनीपत्रं यः खादेच्छ-कर्णान्प्रितम् । अचिरेण शर्मं याति गुद-भ्रंशो रुजान्प्रितः ॥ ३१ ॥

कमलिनी के कोमल पत्तों को पीस कर और शक्कर मिलाकर खाने से पीड़ाग्र गुदभ्रंश रोग शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ३१ ॥

वृत्ताम्लानलचाङ्गेरीविदरपाठायवाप्र-



जम् । तक्रेण शीलयेत् पायुभ्रंशात्तोऽन-  
लदीपनम् ॥ ३२ ॥

इमली, चीता की जड़, चाँद्रेरी ( लोनिया ),  
मोंठ, पाद और जवाखार; इनको तक्र के  
साथ सेवन करने से गुदभ्रंश रोग नष्ट होता है  
तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ३२ ॥

गुदं च गन्धवसया अन्नयेदविशङ्कितः ।  
दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न  
संशयः ॥ ३३ ॥

बाहर निकली हुई गुदा को गौ की चर्बी  
से चुपड़ने से दुष्प्रवेश गुदाभ्रंश भी शीघ्र ही  
अन्दर प्रविष्ट होता है । इसमें संशय  
नहीं है ॥ ३३ ॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक्  
प्रलेपनम् । स्विन्नमूषिकमांसेनाथवा संस्वे-  
दयेद्गुदम् ॥ गोतैलाभ्यङ्गतः शीघ्रं प्रवि-  
शेन्निर्गतो गुदः ॥ ३४ ॥

अथवा मूषों की चर्बी से गुदा पर अच्छे  
प्रकार लेप करना चाहिए । या मूसे के मांस  
को उरिस्त्रप्र ( गुनगुना ) कर गुदा को स्वेदन  
करना चाहिए । गौ की चर्बी के तैल से गुदा  
चुपड़ने से निकली हुई गुदा शीघ्र प्रविष्ट हो  
जाती है ॥ ३४ ॥

चाङ्गेरी घृत ।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयु-  
तम् । घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशरुजाप-  
हम् ॥ शुण्ठीक्षारावत्र कल्कां शिष्टं तु  
द्रवमिष्यते ॥ ३५ ॥

चाङ्गेरी का रस या बराब ४ सेर, बेर का  
बराब ४ सेर और मूत्रा दही ४ सेर । कषय  
के लिए मोंठ १ पाय तथा जवाखार १ पाय ।  
घृत २ सेर । मध्याविधि पुन मिक्ष कर दोबे  
से गुदभ्रंश रोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

मूषिकाद्य तैल ।

क्षीरे महत्पथमूनं मूषिकामन्त्ररजि

ताम् । पक्त्वा तस्मिन् पचेत्तैलं वातघ्नौ-  
पधसंयुतम् । गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्य-  
ङ्गात् प्रसाधयेत् ॥ ३६ ॥

अंत से रदित चुहिया का मांस आधसेर  
और वृहस्पंचमूल आध सेर लेकर ४ सेर दूध  
और ४ सेर जल में पकावे । जब दूधमात्र रह  
जाय तब उसमें भद्रदारु आदि वातघ्न औषधियां  
पाव मर और तैल एक सेर डालकर पकावे ।  
जब तैल सिद्ध हो जाय तब उसकी मालिश  
करने से और पीने से गुदभ्रंश रोग शान्त  
ही जाता है ॥ ३६ ॥

चर्मकील आदि कां चिकित्सा ।

चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलका-  
लकान् । उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत् क्षारा-  
ग्निभ्यामशेषतः ॥ ३७ ॥

चर्मकील, जतुमणि, मससा और तिल;  
इनको शस्त्र से काट कर चार और अग्नि से  
दग्ध करना चाहिए ॥ ३७ ॥

रुनुनालात्तु चूर्णेन यषो मशकना-  
शनः । निर्मोकभस्मघर्षाद्वा मशः शान्तिं  
ब्रजेद्द्रुतम् ॥ ३८ ॥

एरबटप्र के टंडल और घूने को अथवा  
राप की काँबली की भस्म को मरसे पर घिसने  
से शीघ्र ही मससा शान्त हो जाता है ॥ ३८ ॥

युवानपिडिकादि चिकित्सा ।

युवानपिडिकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गश-  
र्कराः । गिरावेद्यः मलेपश्च जपेद्भ्यङ्गनै-  
स्तथा ॥ ३९ ॥

जवानी की कुंमिर्वा ( मुहांग ), उपरुद्र,  
नीलिका, व्यङ्ग और शर्करा रोग को गिरा-  
वेद्य, खेर और मालिका करके जीतना  
चाहिए ॥ ३९ ॥

लोभ्रयान्यरचालेपरतारुण्यपिटिका-  
पटः । नड्द गोमेचनापुर्णं मग्निं मुग्ग-

लेपनम् ॥ धमनश्च निहन्त्याशु पिडिकां  
यौवनोद्भवाम् ॥ ४० ॥

लोघ, धनियाँ और बच का लेप करने से  
मुहाँसा नष्ट होता है। इसी प्रकार गोरौघन  
और कालीभिर्च मिलाकर लेप करने से मुहाँसा  
नष्ट होता है अथवा धमन करने से भी मुहाँसा  
नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग् वा मञ्जिष्ठा वा  
समाक्षिका । लेपः सनवनीता वा श्वेता-  
श्वसुरजा मती ॥ ४१ ॥

व्यङ्गरोग में अर्जुन की छाल के चूर्ण  
अथवा मंजीठ के चूर्ण में शहद मिलाकर लेप  
करना या सफ़ेद घोड़े के खुर को फूँक कर  
बज्जल बना कर और उममें मक्खन मिलाकर  
लेप करना हितकर होता है ॥ ४१ ॥

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाकुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः ।  
वटांकुरा मसूराश्च व्यङ्गधना मुख-  
कान्तिदाः ॥ ४२ ॥ व्यङ्गानां लेपनं  
शस्तं रुधिरेश शशस्य च ॥ ४३ ॥

वटांकुराः वटस्य अभिनवपत्रमुकुलाः ।  
दृष्टफलमेतम् ।

लाल चन्दन, मंजीठ, कूट, लोघ, प्रियंगु,  
बरगद के अंकुर अर्थात् बरगद की नई कोंपल  
और मसूर, इनका लेप करने से व्यङ्ग (भाई)  
रोग नष्ट होता है तथा मुख पर कान्ति आ  
जाती है। ररगोश के रुधिर का लेप व्यङ्ग के  
लिए श्रेष्ठ होता है। यह अनुभूत योग  
है ॥ ४२-४३ ॥

केवलाम् पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्छ्वा-  
लम्लिकएटकान् । आलिप्तं त्र्यहमेतेन  
भवेत् पद्मोपमं मुखम् ॥ ४४ ॥

केवल सेमर के तीक्ष्ण कोंठों को दूध के  
साथ पीस कर लेप करने से तीन दिन में  
कमल के तुल्य मुख हो जाता है ॥ ४४ ॥

मसूरैः सर्पिणा भृष्टैर्लिप्तमास्यं पयो-

ऽन्वितैः । सप्तरात्राद् भवेत् सत्यं पुण्डरी-  
कदलप्रभम् ॥ ४५ ॥

मसूर की दाल को घी में भून कर और शीश  
दूध में पीस कर लेप करने से कमलपत्र के  
तुल्य कान्तियुक्त मुख हो जाता है ॥ ४५ ॥

मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिला गोशकृतो  
रसः । मुखकान्तिकरो लेपः पिडिकातिल-  
कालजित् ॥ ४६ ॥

बिजौरा की जड़, घृत और मैतणिल;  
इनको गोबर के रस में पीस कर लेप करने  
से मुख की फुन्सियाँ और तिलकालक शान्त  
होते हैं तथा मुख कान्तियुक्त होता है ॥ ४६ ॥

नवनीतगुडक्षौद्रकोलमज्जप्रलेहनम् ।  
व्यङ्गजिद् वरुणत्वग् वा द्यागक्षीरप्रपे-  
यिता ॥ ४७ ॥

मक्खन, गुड, शहद और घेर की मींगी  
इनका लेप अथवा वरना की छाल बकरी के  
दूध में पीस कर लेप करना व्यङ्ग को नष्ट  
करता है ॥ ४७ ॥

जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादि  
नाशनः । सायश्च कटुतैलेनाभ्यङ्गो  
वक्त्रप्रसाधनः ॥ ४८ ॥

जायफल के कल्क का लेप नीली और  
व्यङ्ग को नष्ट करता है। सायकाल के समय  
कटु तेल की मालिश करने से मुख साफ हो  
जाता है ॥ ४८ ॥

कालीयकोत्पलामयदधिसरवदरास्थि-  
मध्यफलनीभिः । लिप्तं भवति हि वदनं  
शशिमभं सप्तरात्रेण ॥ ४९ ॥

कालीयक (मुगान्धित काष्ठीशरीर या दार-  
हृदी), नीलकमल, कूट, दही की मलाई,  
घेर की मींगी और प्रियंगु के फूल, इनको पीस  
कर सात दिन तक लेप करने से चन्द्रमा के  
तुल्य कान्तियुक्त मुख हो जाता है ॥ ४९ ॥

तुपरहितमसृगयवचूर्णसमयष्टीमधुक

लोध्रलेपेन भवति मुखं परिनिर्जितचा-  
मीकरचारुसौभाग्यम् ॥ ५० ॥

तुपरहित जौ का महीन आटा, मुलेठी और  
पठानी लोघ; इनको सम भाग ले पीस कर  
लेप करने से मुख सुवर्ण से भी अधिक  
कान्तिमान् हो जाता है ॥ ५० ॥

रत्नोद्घनशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यवस्त-  
पयः । सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्द्विधुत्रिम्य-  
वद्विभाति ॥ ५१ ॥

सफ़ेद सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ,  
येरू और घी; इनको बकरी के दूध में सिम्हा  
कर और पीस कर लेप करने से उदय होते  
हुए चन्द्रमा के समान मुख शोभित होता  
है ॥ ५१ ॥

परिणतदधिशरपुद्गैः कुवलयदलकुष्ठ-  
चन्दनोशीरैः । मुखकमलकान्तिकारी  
भृकुटीतिलकालकाज्ययति ॥ ५२ ॥

सरफोंका, कमलपत्र, कूट, लाल चन्दन  
और खस; इनको ताजा दही के साथ पीसकर  
लेप करने से मुख कमल के तुल्य कान्तियुक्त  
होता है तथा भृकुटीदोष ( माधे पर झुर्रियाँ  
पड़ना ) और तिलकालक नष्ट होते हैं ॥ ५२ ॥

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विले-  
पनात् । मुखकाण्ठ्यै शमं याति चिरका-  
लोद्भवं ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

आक के दूध में हल्दी को घोट कर लेप  
करने से बहुत दिन की पुरानी मुँस की कृष्णता  
( कालिमा ) अवश्य शान्त होती है ॥ ५३ ॥

हरिद्राद्य तैल ।

हरिद्राद्वययष्टचाहकालीयककुचन्द-  
नैः । पर्पाण्डरीकमञ्जिष्ठापत्रपत्रककुम्भैः ॥  
५४ ॥ कपित्थतिन्दुकसत्तष्टपत्रैः पयो-  
ऽन्यतैः । लेपयेद् कल्कितैरभिस्तैलश्चा-  
भ्यञ्जनं पचेत् ॥ ५५ ॥ विश्वं नीलिकां

व्यङ्गांस्तिलकान् मुखदूपिकाम् । नित्य-  
सेवी जयेत् क्षिप्रं मुखं कुर्यान् मनो-  
रमम् ॥ ५६ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, काला चन्दन  
लाल चन्दन, पुंडरिया, मंजीठ, कमल, पद्माक,  
केसर तथा कैथ, तिन्दुक ( तेन्दू ), पाकर और  
बरगद के पत्ते, इनको एकत्र कर दूध में पीस  
कर लेप करने से अथवा इनके कल्क और  
दूध से तेल सिद्ध कर नित्य मालिस करके से  
जलुमणिय, नीलिका, व्यङ्ग, तिलकालक और  
मुहाँसा नष्ट होते हैं तथा मुख सुन्दर हो जाता  
है ॥ ५६-५६ ॥

कनक तैल ।

मधुकस्य कपायेण तैलस्य कुडवं  
पचेत् । कल्कैः मियंगुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पल-  
केशरैः ॥ ५७ ॥ कनकं नाम तत्तैलं मुख-  
कान्तिकरं परम् आभीरुनीलिकाव्यङ्ग-  
शोधनं परमार्चितम् ॥ ५८ ॥

मुलेठी का काढ़ा ६४ तोले, तिलतैल १६  
तोले । कल्क के लिए मियंगु के फूल, मंजीठ,  
लाल चन्दन, नीलकमल और नागकेशर; सब  
मिलित ४ तोले । विधि से तेल सिद्ध करना  
चाहिए । यह कनक नाम का तैल मुख की शोभा  
को बढ़ानेवाला है तथा आभीर ( जलुमणिय ),  
नीलिका और व्यङ्ग को शुद्ध काने में परमो-  
त्तम है ॥ ५७-५८ ॥

मंजिष्ठाद्य तैल ।

मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सय-  
ष्टिकम् । कर्पममाणेरैरैस्तु तैलस्य कुडवं  
तथा ॥ ५९ ॥ आनं पयस्तद्विगुणं  
शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । नीलिकापिडिका-  
व्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ६० ॥ मुखं  
मपन्नोपचितं यलीपलितवर्जितम् । सप्त-  
रात्रमयोगेण भवेत् कनकसन्निभम् ॥ ६१ ॥  
मंजीठ, मधुचा, क्षाय, बिजौरा का जड़

श्रीर मुलेठी ये सब एक-एक तोला लेकर कक बनावे श्रीर इसमें १६ तोले तिल का तेल, ३२ तोले बकरी का दूध तथा ३२ तोले जल डाल कर मन्द अग्नि से पकावे। इसके मर्दन से ही नीलिका, मुहाँसा और व्यङ्ग नष्ट होते हैं तथा मुख प्रसन्न एवं भरा हुआ हो जाता है, भुर्रियाँ नहीं रहती हैं। इसके सात दिन के प्रयोग से मुख सुवर्ण-सा हो जाता है ॥२६-६१॥

कुंकुमाद्य तैल ।

कुंकुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका । कालीयकमुशीरं च पद्मकं नीलमुत्पलम् ॥ ६२ ॥ न्यग्रोधपादाः सक्तस्य मूलं पद्मस्य केशरम् । द्विपञ्चमूलसहितै कपायैः पलिकैः पृथक् ॥ ६३ ॥ जलाढकं विपक्वव्यं पादशेषमथोद्धरेत् । मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा पत्तङ्गमधुयष्टिके ॥ ६४ ॥ कर्पप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत् । अजाक्षीरं द्विगुणितं शनैर्मद्विग्नना पचेत् ॥ ६५ ॥ सम्यक् पक्वं परं ह्येतन्मुखवर्णप्रसादनम् । नीलिकापिडिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ६६ ॥ सप्तत्रयप्रयोगेण भवेत् काञ्चनसन्निभम् । कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ६७ ॥

कपायार्थं पठितमपि कुंकुमं सिद्धतैले प्रक्षिपन्ति वृद्धाः ।

केशर, लाल चन्दन, लाख, मंजीठ, मुलेठी, कालीयक ( सुगन्धित काष्ठविशेष ), खस, पद्माक, नीलकमल मरगद की जटा, पाखर की जड़, पद्मकेशर और मिलित दशमूल; प्रत्येक चार-चार तोले लेकर ६ सेर ३२ तोले जल में काढ़ा करे। जब १२८ तोले बाकी रहे तब उतार ले। कक के लिए मंजीठ, महुआ, लाख, पतंग और मुलेठी, एक एक तोला। तिलतैल १६ तोले। बकरी का दूध

३२ तोले। मन्द अग्नि से पकाकर मुख पर लगाने से मुख का वर्ण स्वच्छ हो जाता है तथा नीलिका, फुसी और व्यङ्गरोगों को नष्ट करता है। सात रात्रि के प्रयोग से सुवर्ण के तुल्य मुख हो जाता है। यह कुंकुमाद्य तेल पहले अश्विनीकुमारों ने बनाया था। काढ़े में कही हुई केशर को तेल मिद्ध होने पर छोड़ना चाहिए, यह वृद्धों का उपदेश है ॥ ६२-६४ ॥

तन्त्रान्तगोक्त कुंकुमाद्य तैल ।

कुंकुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् । कालीयकं पद्मकञ्च मातुलुङ्गं सक्शेशरम् ॥ ६८ ॥ कुमुम्भं मधुयष्टी च फलिनी मदयन्तिका । निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलं च मनःशिला ॥ ६९ ॥ ककोल्यादिसमायुक्तैरैतैरक्षसमैर्भिषक् । लाक्षा-रसपयोभ्यां च तैलमस्थं निपाचयेत् ॥ ७० ॥ कुंकुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात् काञ्चनोपमम् । करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिदम् ॥ सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ७१ ॥

कक के लिए केशर, टेसू ( डाक के फूल ), लाख, मंजीठ, लाल चन्दन, कालीयक ( सुगन्धित काष्ठविशेष ) पद्माक, विजौरा नीसू, नागकेशर, कसूम के फूल, मुलेठी, प्रियंगु के फूल, मातिया, हल्दी दाहहल्दी, गोरौचन, कमल, नीलकमल, मेनशिल, काकोली, शीरकाकोली, मेदा, महामेदा, अदि. वृद्धि, जवक, ऋषभक; ये सब एक-एक तोला। तिलतैल १२८ तोले। लाख का रस ३ सेर १६ तोले और बकरी का दूध ३ सेर १६ तोले। विधि से तेल सिद्ध करे। यह कुंकुमाद्य तेल मर्दन करने से शीघ्र ही मुख को मोने के समान कान्तिमान् तथा लावण्ययुक्त करता है तथा पुष्टिप्रद, सौभाग्य और लक्ष्मीकारक एवम् उत्तम वशीकरण है ॥ ६८-७१ ॥

वर्णक घृत ।

मधुकं चन्दनं कंगु सर्पपं पद्मकं तथा ।

कालीयकं हरिद्रा च लोध्रमेभिश्च कल्कि-  
तैः ॥ ७२ ॥ विपचेद्भि घृतं वैद्यस्तत्  
पक्वं वस्त्रगालितम् । पादांशं कुंकुमं  
सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत् ॥ ७३ ॥  
तत् सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत्  
ततः । तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वक्त्रप्रसा-  
दनम् ॥ ७४ ॥ अनेनाभ्यासलिप्तं हि  
वलीभूतमपि क्रमात् । निष्कलङ्कन्दुविम्बामं  
स्याद्विलासवतीमुखम् ॥ ७५ ॥

कुंकुमसिक्थयोर्मिलित्वा पादांशः ।  
सिक्थकस्य द्रवीकरणार्थं स्वल्पपाकं दत्त्वा  
शीतलजले कियत्क्षणं स्थापयित्वा शी-  
तलं सदनुगुप्तं निधापयेत् ।

कक के लिये मुलेठी, लाल चन्दन, काँगुनी  
धान्य ( काकुन ), सरसों, पन्नाख, पीला चन्दन,  
हल्दी और लोध, प्रत्येक चार-चार तोले । गौ  
का घृत १२८ तोले । पाकार्यं जल ६ सेर ३२  
तोले । जब घृत पक जाय तब उतार कर द्दान  
ले । इसमें १६ तोले केसर और १५ तोले मोम  
ढालकर मन्द अग्नि से इतना पकावे कि मोम  
पिघल कर घृत में मिल जाय, पश्चात् इस घृत  
पात्र को ठंडे जल में रख दे । जब घृत ठंडा होकर  
जम जाय तब उसको निकालकर रख ले । यह  
वर्णक घृत मुख का स्वच्छ करता है तथा इसके  
निरन्तर मर्दन से मुख की झुर्रियां दूर होकर  
छियों का मुख कलकरहित चन्द्रमा के समान  
मुन्दर हो जाता है ॥ ७२ ७३ ॥

अरुं पिष्टा की चिकित्सा ।

अरुं पिष्टायां रुधिरेश्वसिक्त्रे शिरा-  
व्यथेनाथ जलौकसा वा । निम्बाम्मुसिक्त्रं  
शिरसि प्रलेपो देयोऽश्वनचौरससैन्धवा-  
भ्याम् ॥ ७६ ॥

अरुपिका रोग में शिराव्यथ द्वारा अथवा जोंक  
द्वारा रक्तमोक्षण कराकर नीम के जल से सेवन

करना चाहिए अथवा घोड़े की लीढ़ का रस और  
संधानमक मिला कर शिर पर लेप करना  
चाहिए । लेप करने से पहले शिर मुँडवा लेना  
चाहिए ॥ ७६ ॥

पुराणमथ पिष्टयाकं पुरीपं कुक्कुटस्य  
वा । मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्याद-  
रुंपिकाम् । अरुं पीपन्नं भृष्टकुष्ठचूर्णं तै-  
लेन संयुतम् ॥ ७७ ॥

खोलके कपाले कुष्ठं भृष्टा चूर्णयि-  
त्वा कटुतैलेन तद्भस्मलेपः ।

पुरानी खली अथवा मुर्गा की विष्टा जो  
गोमूत्र में पीस कर लेप करने से अरु पिका शीघ्र  
ही नष्ट होती है । कूट को खपरे में भून कर चूर्ण  
कर ले और कटुप तेल में मिला कर लगावे तो  
यह अरुपिका को नष्ट करता है ॥ ७७ ॥

द्विहस्त्रिद्राद्य तैल ।

हरिद्राद्वयभूमिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः ।  
एतत्तैलमरुं पीणां सिद्धमभ्यञ्जने हि-  
तम् ॥ ७८ ॥

कक क लिप हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता,  
त्रिफला, नीम की छाल और चन्दन, ये सब  
आध सेर । कटुआ तेल २ सेर । जन ८ सेर  
यथाविधि पाक कर मालिश करने में यह तेल  
अरु पिका को नष्ट करता है ॥ ७८ ॥

दारुणक षो चिकित्सा ।

दारुणे तु शिरां विधेत् स्निग्धस्वि-  
न्नां ललाटजाम् । अवपीडशिरोऽस्तीनभ्य-  
ङ्गांश्चावचारयेत् ॥ ७९ ॥

दारुणक रोग में शिर का स्नेहन और  
स्वेदन करके शिरा वा घेघन करे तथा शयपीडन-  
सहक नश्य, शिरोवर्षित और मालिश वा प्रयोग  
करे ॥ ७९ ॥

कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधाव-  
ने । काय्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधु-  
संयुतः ॥ ८० ॥ मियालपीजमपुत्रकुष्ठ-

मापैः ससैन्धवैः । काञ्जिकस्थान्त्रिसप्ताहं  
मापा दारुणकापहाः ॥ ८१ ॥

कोड़ों के मृष की भस्म के जल को बख  
से छान कर उससे दारुणक को धोना चाहिए ।  
तथा चिरींजी, मुलेठी, कूट, उदद और संधानमक  
इनको पीसकर और शहद मिलाकर दारुणक रोग  
में मस्तक पर लेप करना चाहिए । २१ दिन  
काँजी में भिगोये हुए उददों को पीस कर लेप  
करने से दारुणक नष्ट होता है ॥ ८०-८१ ॥

सहनीलोत्पलकेशरयष्टिमधुतिलसममा-  
मलकम् । चिरजातमपि शीर्ष दारुणरोगं  
शमं नयति ॥ ८२ ॥

नील कमल, नागकेशर, मुलेठी तिल और  
शाँवल्लों को समभाग लेकर जल में पीस कर शिर  
पर लेप करने से बहुत पुराना भी दारुण रोग नष्ट  
होता है ॥ ८२ ॥

त्रिफलाय तैल ।

त्रिफलायोरजोयष्टीमार्कवोत्पलसारि-  
वैः । ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाद्रत्निकां  
जयेत् ॥ ८३ ॥

त्रिफला, लोहचूर्ण, मुलेठी, भँगरा, कमल,  
अनन्तमूल और संधानमक ; इनके कक से तिल  
किये हुए तेल की मालिश करने से कृषिका नष्ट  
होती है ॥ ८३ ॥

वह्नि तैल ।

चित्रकं दन्तीमूलं च कोपातकिसम-  
न्वितम् । ककं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशदृष्ट-  
विनाशनम् ॥ ८४ ॥

शीता की जड़, दन्तीमूल और कटुई तुरई के  
कक से पकाये हुए तेल की मालिश करने से  
केशों में होनेवाला दाद रोग नष्ट होता है । कोई-  
कोई 'केशरीशत्रुविनाशनम्' ऐसा पाठ कहते हैं ।  
केशशत्रु दादणक कहाता है ॥ ८४ ॥

गुञ्जा तैल ।

गुञ्जाफलैः पचेत्तैलं भृङ्गराजरसेन

तु । कण्डूदारुणजित् कुष्ठकपालव्याधि-  
नाशनम् ॥ ८५ ॥

घुँघुची के कक और भँगरा के रस में  
तेल पका कर मालिश करने से खुजली, दारु-  
णक, कोद तथा शिर के रोग नष्ट होते  
हैं ॥ ८५ ॥

स्वल्पभृङ्गराज तैल ।

भृङ्गराजत्रिफलोत्पलशारिलौहपुरीष-  
समन्वितकारि । तैलमिदं पच दारुणहारि  
कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥ ८६ ॥

भँगरा का रस ८ सेर । कक के लिए त्रिफला,  
कमल, अनन्तमूल और मण्डूर ; सब मिलित  
आध सेर, तिल का तेल २ सेर । विधि से पका  
कर तेल सिद्ध करे । यह तेल दारुणक को नष्ट  
कर बालों को सघन, कुञ्चित तथा स्थिर कर  
देता है ॥ ८६ ॥

महाभृङ्गराज तैल ।

आनूपदेशसम्भूतं शुद्धीत्वा मार्कवं  
शुभम् । सुधौतं जर्जरीकृत्य स्वरसं  
तस्य चाहरेत् ॥ ८७ ॥ चतुर्गुणेन ते-  
नैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् । क्षीरपिष्टै-  
रिमैर्द्रव्यैः संयोज्य मतिमान् भिपक् ॥  
८८ ॥ मञ्जिष्ठा पद्मकं लोधं चन्दनं  
गैरिकं बला । रजन्यौ केशरञ्चैव प्रियंगु  
मधुयष्टिका ॥ ८९ ॥ प्रपौण्डरीकं गोपी च  
पलिकान्यत्र दापयेत् । सम्यक् पत्रं ततो  
झात्वा शुभे भाग्ये निधापयेत् ॥ ९० ॥  
केशपाते शिरोदुष्टे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ।  
शिरःकर्णाक्षिरोगेषु नस्येऽभ्यङ्गे च योज-  
येत् ॥ ९१ ॥ कुञ्चिताग्रानतिस्निग्धान्  
रुचान् कुर्याद् बहूँस्तथा । सालित्यमि-  
न्द्रलुप्तं च तैलमेतद् व्यपोहति ॥ ९२ ॥

अनूप देश में ( जल के मगोप में ) उपर

हुए भँगरा को अच्छे प्रकार धोकर और कूट कर उसका रस निकाल लें। ये ६ सेर ३२ तोले, तिलतेल १२८ तोले। कल्क द्रव्य--मंजीठ, पद्माक्ष, लोध, लालचन्दन, गेरू, खरेटी, हल्दी, दारहल्दी, नागवेशर, प्रियंगु के फूल, मुलेठी, पुंढरिया और सारिवा; प्रत्येक चार-चार तोले। इन सबको गौ के दूध में पीस कर बुद्धिमान् वैद्य यथाविधि तेल सिद्ध करे। जब अच्छे प्रकार तेल का पाक हो जाय तब साफ पात्र में रक्के। इस तेल के मर्दन करने तथा नस्य लेने से वालों का गिरना, शिर के दुष्ट रोग, मन्मारतंभ, गल-ग्रह, शिरोरोग कर्णरोग और नेत्ररोग दूर होते हैं। यह तेल प्वालित्य (गजापन) और इन्द्र-लुप्त को नष्ट करके वालों को सघन, चिकने और घुंघराले बना देता है ॥ ८७--६२ ॥

प्रपौण्डरीकाद्य तैल ।

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनो-  
त्पलैः । कार्पिकैस्तैलकुडवैस्तैर्द्विरामलकी-  
रसः ॥ साध्यः सप्रतिमर्शः स्यात्सर्वशीर्ष-  
गदापहः ॥ ६३ ॥

पुंढरिया, मुलेठी, पीपरि, लालचन्दन और कमज; इनको एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे और इसमें १६ तोले तिल का तेल और ३२ तोले श्रावले का रस मिला कर पकाये। इसका नस्य लेने से शिर के संवृण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

मालत्याद्य तैल ।

मालतीकरवीराग्निनक्रमालविपाचि-  
तम् । तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं  
परम् ॥ इदं हि त्वरितं हन्ति दारुणं  
दारुणं नृगाम् ॥ ६४ ॥

मालती के पत्र, कनेर की जड़, पीता की जड़ और करंज के कल्क से तेल सिद्ध कर शिर पर मसलने से इन्द्रलुप्त नष्ट होता है। यह तेल शीघ्र ही कठिन दारुण रोग को भी नष्ट करता है ॥ ६४ ॥

धात्र्याम्रमज्जलेपात् स्यात् स्थिरोरु-  
स्निग्धवेशता ॥ ६५ ॥

श्रावजे और आम की गुठली की मींगी को पीस लर लेप करने से बाल स्थिर लम्बे और चिकने होते हैं ॥ ६५ ॥

इन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकासी-  
सतुत्थकैः । लेपयेत् परितः कल्कैस्तैलं  
चाभ्यञ्जने हितम् ॥ कुटन्नद्रशिखीजाती-  
करञ्जकरवीरजैः ॥ ६६ ॥

इन्द्रलुप्त रोग में शिरा का वेधन करके मैन-शिल, कसीस और तूतिया को पीस कर लेप करना चाहिए। केवटी मोथा, चीता की जड़, चमेली के पत्ते, करंज और कनेर की जड़ के कल्क से तेल सिद्ध कर मालिश करना हितकर होता है ॥ ६६ ॥

अवगाढपदं चैव प्रच्छयित्वा पुनः  
पुनः । गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत् केशभूमिं  
समन्ततः ॥ ६७ ॥

पुराने इन्द्रलुप्त रोग में लेखन (पड़ना दे) कर बार-बार वालों के स्थान पर घुंघुची के कल्क का लेप करना चाहिए ॥ ६७ ॥

हस्तिदन्तमर्सी कृत्वा मुप्यं चैव रसा-  
ञ्जनम् । लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणि-  
तलेष्वपि ॥ ६८ ॥

अन्तर्धूम भरम किया हुआ हाथीदांत और रगीत का लेप करने से हथेली में भी बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ६८ ॥

हस्तिदन्तमर्सी कृत्वा तैलेन सह योज-  
येत् । हस्नेष्वपि प्रजायन्ते केशा नास्त्यत्र  
संशयः ॥ ६९ ॥

१ यह प्रयोग मदिग्ध है; क्योंकि नकेर घुंघुची तो घिपलपण उपपन्न करती है। अतः, विचार-पूर्ण सावधानी से रत्नघुंघुची का ही प्रयोग किया जा सकता है ।

अन्तधूम हाथी के दाँत की भस्म का तेल में मिलाकर लगाने से हाथों में भी बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ९६ ॥

भल्लातकवृहतीफलगुञ्जामूलफलेभ्य एकेन । मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति ॥ १०० ॥

भिल्लावाँ, बड़ी कटेरी का फल, घुँघुची की जड़ अथवा घुँघुची; इनमें से किसी एक के ककक को शहद में मिलाकर लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग शान्त होता है ॥ १०० ॥

वृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जामूलमिन्द्रलुप्तस्य । कनकफलनिघृष्टस्य सतो दातव्यं मच्छित्तस्य सदा ॥ १०१ ॥

धतूरे के फल के चूर्ण से इन्द्रलुप्त को रगड़ कर और पजुना लगा कर बड़ी कटेरी के फल के रस में पिसी हुई घुँघुची का लेप करने से इन्द्रलुप्त नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

घृष्टस्य कर्कशः पत्रैरिन्द्रलुप्तस्य गुण्डनम् । चूर्णितैर्मरिचैः कार्यमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥ १०२ ॥

धुरदरे पत्तों से इन्द्रलुप्त को रगड़ कर काली-मिर्च का चूर्ण धुरकाने से इन्द्रलुप्त नष्ट होता है ॥ १०२ ॥

छागचीररसाञ्जनपुटदग्धगजदन्तमसीलिप्ताः । जायन्ते सप्तदिनात् खल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥ १०३ ॥

रसौत और गजपुट में फूँके हुए हाथीदाँत को बकरी के दूध में पीस कर लेप करने से सात दिन में गंजे के शिर में भी घुँघुराले बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १०३ ॥

मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरमृद्गलेपेन । अचिरान्नान्ति केशा घनदृढमूलायतानृजवः ॥ १०४ ॥

मुलेठी, नीलकमल, मूर्वा ( धुरनहार ), तिल, घृत, गी का दूध और भँगरा का लेप करने से

शीघ्र ही घने, दृढ़मूल, लम्बे तथा घुँघुराले बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १०४ ॥

स्नुहाद्य तैल ।

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गलीविपम् । मूत्रमाजं सगोमूत्रं रक्त्रिकासेन्द्रवारुणी ॥ १०५ ॥ सिद्धार्थ तीक्ष्णतैलं च गर्भं दत्त्वा विचक्षणः । वह्निना मृदुना पक्वं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ १०६ ॥ कूर्म्मपृष्ठसमानापि रुज्या या रोमतस्करी । दिग्धा सानेन जायेत् ऋत्तशारीरलोमशा ॥ १०७ ॥

ककक के लिए थूहर का दूध, आक का दूध, भँगरा, कलिहारी, मीठा विप, घुँघुची की जड़, इन्द्रायण की जड़ और सरसों, ये सब चार-चार तोले । गोमूत्र ८ सेर, बररी का मूत्र ८ सेर । कहुआ तेल २ सेर । विधिपूर्वक मन्द अग्नि से तेल सिद्ध करे । इस तेल से खालित्य ( गज ) रोग दूर होता है । तथा कलुष की पीठ के समान बालरहित कठोर शिर पर भी इसके मसलने से रीछ के समान बाल निकल आते हैं ॥ १०५-१०७ ॥

आदित्यपकगुडूची तैल ।

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम् । गुडूचीस्वरसे तैलमभ्यङ्गात् केशरोहणम् ॥ १०८ ॥

वरगद की जटा तथा बालदृढ़ के ककक और गिलोय के रस में तेल मिलाकर तेज धूप में रक्खे । जय जल का अन्न सूर जाय तब छान कर इसका मर्दन करने से बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १०८ ॥

चन्दनाद्य तैल ।

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम् । कान्ता वटावरोहश्च गुडूची विसमेन च ॥ १०९ ॥ लौहचूर्णं तथा केशी सारिवे द्वे तथैव च । मार्कण्डे-



रसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ११० ॥  
शिरस्युपचिताः केशा जायन्ते घनकु  
ञ्चिताः । स्निग्धाश्च दृढमूलाश्च तथा  
भ्रमरसन्निभाः ॥ नस्येनाकालपलितं निह-  
न्यात्तैलमुत्तमम् ॥ १११ ॥

कलक के लिए लाल चन्दन, मुलेठी, मूर्वा  
( चुरनहार, मरोडफली ), त्रिफला, नील कमल,  
प्रियंगु के फूल, बरगद की जटा गिलोय,  
कमलनाल, लौहचूर्ण, बालछद्द, अन्नन्तमूल  
और सारिवा ; सप मिलाकर ३२ तोले, भँगरा  
का रस ६ सेर ४८ तोले, तिलों का तेल १२८  
तोले; इन सबको एकत्र कर मन्दाग्नि से  
पकावे । इस तेल की नास लेने से शिर पर  
घने, घुँघराले, चिकने और दृढ जड़वाले बाल जम  
आते हैं यह असमय में बालों के पकने को  
नष्ट करने में उत्तम है ॥ १०६-१११ ॥

यष्टीमध्वाद्यं तैल ।

तैलं सयष्टिमधुकैः क्षीरे धात्रीफलैः  
भृतम् । नस्ये दत्तं जनयति केशान  
श्मश्रुणि चाप्यथ ॥ ११२ ॥

मुलेठी और आंवला के कलक तथा गी के  
दूध में तेल पकाकर नस्य लेने से बाल और  
दाढ़ी, मूँछें जम आती हैं ॥ ११२ ॥

केशरंजन योग ।

त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहं भृङ्गर-  
जःसमम् । अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णी-  
करणमुत्तमम् ॥ ११३ ॥

त्रिफला, नील के पत्ते, लोह का चूर्ण और  
भँगरा, ये सब समान भाग ले भेड़ी के दूध में  
पीसकर शिर पर लेप करने से बाल काले हो  
जाते हैं ॥ ११३ ॥

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लौहचूर्णं विनि-  
क्षिपेत् । इपत्पके नारिकेले भृङ्गराज-  
रसान्विते ॥ ११४ ॥ मासमेकं तु नि-  
क्षिप्य सम्यग्गर्त्वात् समुद्धरेत् । ततः

शिरो मुण्डयित्वा लेपं दत्त्वा भिप-  
ग्वरः ॥ ११५ ॥ संवेष्ट्य कदलीपत्रै-  
र्माचयेत् सप्तमे दिने । क्षालयेत् त्रिफला-  
काथैः क्षीरमांसरसाशिनः । कपालरञ्जनं  
चैतत् कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ११६ ॥

थोड़े पके हुए नारियल में भँगरे का रस,  
त्रिफले का चूर्ण और लोह का चूर्ण डालकर  
एक महीने तक गाढ़ कर रखे । फिर गडहे से  
निकाल ले । शिर मुँडवाकर इसका लेप करे  
और ऊपर केले का पत्ता बाँध दे । सात दिन  
के पश्चात् केले का पत्ता हटाकर त्रिफले के काढ़े  
से शिर को धो डाले । सात दिन तक दूध और  
मांसरस का भोजन करे । इस प्रयोग से बाल  
अत्यन्त काले हो जाते हैं ॥ ११४-११६ ॥

उत्पलं पयसा सार्द्धं मांसं भूमौ  
निधापयेत् । केशानां कृष्णीकरणं स्नेहनं  
च विधीयते ॥ ११७ ॥

नील कमल को दूध में पीसकर लोहपात्र  
में भर कर धरती में गाढ़ दे । एक महीने  
बाद निकालकर, शिर पर लगाने से बाल काले  
और चिकने हो जाते हैं ॥ ११७ ॥

भृङ्गपुष्पं जवापुष्पं मेपदुग्धप्रपेपि-  
तम् । तेनैशालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यधः-  
क्षतम् ॥ ११८ ॥ सप्ताहादुद्धृतं परचाद्  
भृङ्गराजरसेन तु । शालोड्याज्येन च  
शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम् ॥ ११९ ॥  
गातस्तु क्षालनं कार्यमेवं स्थानमूर्द्ध-  
रञ्जनम् एवं सिन्दूरवालाभ्रशङ्खभृङ्गरसैः  
क्रिया ॥ १२० ॥

भँगरे के और गुड़फल के फूलों को  
भेड़ी के दूध में पीस कर और भेड़ी ही के  
दूध में घोल कर लोहपात्र में भर कर धरती  
में गाढ़ दे । सात दिन के बाद उसकी निहाल  
कर और भँगरे के रस तथा पुष्प में उरी मिलाकर

और मथकर शिर पर लेप करें तथा ऊपर केले का पत्र बाँधे दे । एक रात्रि बीतने पर प्रातः-काल त्रिफला के काढ़े से धो डाल । इससे बाल काले हो जाते हैं । इसी प्रकार सिन्दूर, नेत्रबाला, आम की गुठली, शंख का चूर्ण और भँगरे के रस का प्रयोग करने से बाल काले हो जाते हैं ॥ ११८-१२० ॥

नरदग्धशङ्खचूर्णकाञ्जिकरससंयुतं हि सीसकं घृष्टा । लेपात् कचानर्कदलावब-  
द्धान् शुभ्रान् करोतिनीलतरान् ॥ १२१ ॥

नील घृच, शंख की भस्म, पारा और सीसा को काँजी में रगड़ कर शिर पर लेप करे और ऊपर आक के पत्ते बाँधे तो सक्रोद बाल नील से भी अधिक काले हो जाते हैं ॥ १२१ ॥

लौहमलकलकैः सजवाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी । पलितानीह न पश्यति  
गङ्गास्नायीव नरकाणि ॥ १२२ ॥

लोहकिट्ट (मयदूर) और गुडहल के फूलों के कलक से स्नान करनेवाला मनुष्य पके हुए घालों को हम प्रकार नहीं देखता है जैसे गंगा में स्नान करनेवाला नरकों को नहीं देखता है ॥ १२२ ॥

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि भृङ्गस्य तोयेन तथाशनस्य । तैलं तु  
तेषां विनिहन्ति नस्याद् दुग्धान्नभोक्तुः पलितं समूलम् ॥ १२३ ॥

नीम के बीजों में भँगरे के और असना के रस की भावना देकर उनका तेल निकलवाकर नास लेने से पलित रोग नष्ट होता है । इसके प्रयोग में दूध और चावल का भोजन करना चाहिए ॥ १२३ ॥

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्तो निपिक्रं विधिना यथावत् । मासेन  
गोक्षीरभुजो नरस्य यवाग्रभूतं पलितं निहन्ति ॥ १२४ ॥

एक महीने तक गौ के दूध का भोजन करनेवाला साधारण नीम के तेल का विधि से नास लिया करे तो अत्यन्त सक्रोद बाल काले हो जाते हैं ॥ १२४ ॥

क्षीरात्समार्कवरसाद् द्विप्रस्थै मधु-  
कात्पले । तैलस्य कुडवं पकं तन्नस्यं पलितापहम् ॥ १२५ ॥

गोदुग्ध २ सेर, भँगरे का रस २ सेर । कलक के लिए मुलेठी आध पाव । तिल का तेल आध सेर । विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नास लेने से पलित रोग नष्ट होता है ॥ १२५ ॥

महानील तैल ।

आदित्यवल्त्या मूलानि कृष्णशै-  
रीयकस्य च । सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशण्डस्य च ॥ १२६ ॥ मार्कवः

काकमाची च मधुकं देवदारु च । पृथक् दशपलांशानि पिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥ १२७ ॥ प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा लोध्रं

कृष्णागुरुत्पलम् । आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥ १२८ ॥ नीलीभल्लातकास्थीनि कासीसं मद्य-

न्तिका । सोमराज्यशनं शङ्खं कृष्णं पिण्डीतचित्रकौ ॥ १२९ ॥ पुष्पाण्यर्जुन-  
काशमर्थ्योराञ्जन्मूफलानि च । पृथक् पञ्चपलैर्भागैः सुपिष्टैराढकं पचेत् ॥ १३० ॥

विभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् । कुर्यादादित्यपाकं वा मायच्छुष्को भवेद्रसः ॥ १३१ ॥ लौहपात्रं ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत् । पाने नस्यक्रियायां च

शिरोऽभ्यङ्गे तथैव च ॥ १३२ ॥ एत-  
च्चक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् । महा-  
नीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्-

॥ १३३ ॥

हुलहुल की जड़, नीली कटमरैया की जड़, तुलसी के पत्ते, काले सन के बीज, भँगरा, मक़ोय, मुलेठी, देवदारु; प्रत्येक चालिस-चालिस तोले । पीपरि, त्रिफला, रसौत, पुंढरिया, मंजीठ, लोध, काली भ्रगर, कमल, आम की गुठली, कमलिनी की जड़ के नीचे वा कीचड़, कमलनाल, लाल चन्दन, नील, भिलायें के बीज, कसीस, मोतिया, बकुची, असना की छाल, लोहचूर्ण, काला मैनफल, काले चीता की जड़, अजुन के फूल, कंभारी के फूल और जामुन तथा आम के फल; प्रत्येक बीस बीस तोले । इन सबके महीन पिसे हुए कल्क को बहेडा के ६ सेर ३२ तोले तेल और आँवले के २५ सेर ४८ तोले रस में भिला कर मन्द अग्नि से तेल सिद्ध करे अथवा सबको एकत्र कर लोह की कड़ाही में ढालकर धूप में रख दे । जब जल का अंश सूख जाय तब छान कर रख ले । इसके पीने, नास लेने और शिर में लगाने से नेत्रों के रोग नष्ट होते हैं । आयु बढ़ती है तथा शिर के सब रोग नष्ट होते हैं । यह महानील तेल पलित रोग को नष्ट करने में परम उत्तम है ॥ १२६-१३३ ॥

भृङ्गराज घृत ।

भृङ्गराजसे पक्वं शिखिपित्तेन कल्कि-  
तम् । घृतं नस्येन पलितं हन्यात् सप्ताह-  
योगतः ॥ १३४ ॥

भँगरे वा रस १ सेर । कल्क के लिए मोर का पित्त १ घटाँक । घृत पाय भर । विधि से घृत पका कर नस्य ले । यह सात दिन में पलित रोग को नष्ट करता है ॥ १३४ ॥

काञ्चिकृपिष्ठशेलुफलमज्जानि सच्चि-  
द्रलोहगे । यदर्कतापात् पतति तैलं तन्नस्य-  
न्नत्तगात् ॥ १३५ ॥ केशा नीलालि-  
सद्भाशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च । नयन-  
श्रयण्ण्रीमादन्तरोर्गाश्च हन्त्यदः ॥ १३६ ॥

कसीस की गुठली की मींगी को कौजी में पीसकर पेंश में घेदवाले छोटे के पात्र में ढास

कर धूप में रख दे । जब सूर्य की गर्मी से उस छिद्र द्वारा तेल टपक कर गिरे उसे एक पात्र में रख ले । इस तेल के मर्दन करने तथा नास लेने से शीघ्र ही भीरे के समान काले तथा चिकने बाल हो जाते हैं । यह नेत्र, कान, मीवा और दाँतों के रोगों को भी नष्ट करता है ॥ १३५-१३६ ॥

वृषणकच्छू और अहिपूतना की चिकित्सा ।

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः ।

अम्लपिट्टैः प्रलेपोऽयं वृषकच्छूहि-  
पूतयोः ॥ १३७ ॥

कसीस, गोरोचन, तूतिया, हरताल और रसौत; इनको कौजी से पीस कर लेप करने से वृषणकच्छू और अहिपूतना रोग शान्त होता है ॥ १३७ ॥

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।

पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूत-  
नाम् ॥ १३८ ॥

परवल के पत्ते, त्रिफला और रसौत; इनके कल्क से घृत सिद्ध कर पीने से कष्टर अहिपूतना रोग शान्त होता है ॥ १३८ ॥

शूकरदंष्ट्र की चिकित्सा ।

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा  
तुल्यम् । हन्ति विसर्पं लेपाद्वाहदशनाहयं  
घोरम् ॥ १३९ ॥

हृद्दी और भँगरे की जड़ को सम भाग ले टटे जल में पीसकर लेप करने से विसर्प और घोर शूकरदंष्ट्र रोग नष्ट होता है ॥ १३९ ॥

नाडीकवीजकल्कः पीतो गव्येन सर्पिणा  
प्रातः । शमयति शूकरदंष्ट्रं सदाहपाकृज्वरं  
घोरम् ॥ १४० ॥

पटुआ के बीजों के कल्क को प्रातःकाल गोघृत के साथ पीने से दाह, पाक और ग्वरपुत्र घोर शूकरदंष्ट्र शान्त होता है ॥ १४० ॥

विसर्पोऽहः प्रतीकारः कार्प्यः शूकर-  
दंष्ट्रके ॥ १४१ ॥

शूकरदंष्ट्र रोग में, विलर्ष रोग में कहा हुआ  
उपाय करना चाहिए ॥ १४१ ॥

अमृताङ्कुरवटी ।

अमृतं पारदं गन्धं लौहमभ्रं शिला-  
जतु । गुञ्जामात्रा वटी कुट्यान्मर्दयित्वा-  
मृताम्भसा ॥ १४२ ॥ एषामृताङ्कुरवटी  
पीता धात्र्यम्भसा सह । क्षुद्ररोगानशेषांस्तु  
गदान् पिप्पलास्रकोपजान् ॥ १४३ ॥ ज्वरं  
जीर्णं प्रमेहं च कार्श्यमग्निक्षयं तथा ।  
नाशयेज्जनयेत् पुष्टिं कान्तिं मेधां, शुभां  
मतिम् ॥ १४४ ॥

मीठा विष, पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक-  
भस्म और शिलाजीत; इनको गिलोय के रस  
से पीसकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले ।  
आंवले के रस या काथ के साथ खाने से यह  
अमृताङ्कुर वटी सब प्रकार के क्षुद्ररोग, पित्त  
और रक्त के रोग, जीर्णज्वर, प्रमेह, कृशता  
और मन्दाग्नि को नष्ट कर पुष्टि, कान्ति, मेधा  
और अच्छी बुद्धि को देती है ॥ १४२-१४४ ॥

चन्द्रप्रभारस ।

चन्द्रप्रभां तुगात्तीरीं सैन्धवं च शिला-  
जतु । कौशिकं चाक्षतानं तु हेमारं रौप्य-  
मभ्रकम् ॥ १४५ ॥ मात्तिकं शाणमात्रं  
च मधुना परिमर्दयेत् । ततो द्विवल्लमानेन  
वटिकाः परिकल्पयेत् ॥ १४६ ॥ अनुपात-  
विशेषेण योजितोऽयं महारसः । सर्वान्  
क्षुद्रगदान् हन्ति प्रमेहानपि दुस्तरान् ॥  
१४७ ॥ वातव्याधीनशेषांश्च पित्तजान्  
कफसम्भवान् । चिरप्रनष्टमग्निं च दीपये-  
ज्जनयेद् बलम् ॥ १४८ ॥

याकुची के बीज, बशलौचन, सँधानमक,  
शिलाजीत और शुद्ध गूगुल, प्रत्येक एक-एक  
तोला । सुवर्णभस्म, पीतल की भस्म, चाँदी की  
भस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णमाटिक की भस्म,

प्रत्येक, तीन-तीन माशे । इन सबको एकत्र शहद  
में पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले ।  
भिन्न-भिन्न अनुपातों के साथ इस रस का सेवन  
करने से यह सर्व प्रकार के नेत्ररोग, कठिन प्रमेह  
रोग, सब प्रकार की वातव्याधिघर्षों, पित्तज रोग,  
और कफज रोगों को नष्ट करता है । चिरकाल  
से नष्ट अग्नि को दीप्त कर बल को पैदा करता  
है । मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ १४२-  
१४८ ॥

कुङ्कुमादि घृत ।

कुङ्कुमेन निशाभ्यां च कण्ठया वह्नि-  
वारिणा । घृतं पक्वं निराकुट्यान्नीलिकां  
मुखदूपिकाम् ॥ १४९ ॥ सिध्मादींस्तृग-  
दान् सर्वान् व्याधीन् कफसमुद्भवान् ।  
शिरोत्तिं, नाशयेच्चाशु लावण्यं जनयेत्  
परम् ॥ १५० ॥ जगतामुपकाराय दस्ताभ्यां  
विहितं त्विदम् । पानेऽभ्यङ्गे तथा नस्ये  
युक्त्या योज्यं विचक्षणैः ॥ १५१ ॥

कल्क के लिये केशर, हल्दी, दारहल्दी और  
पीपरि एक-एक छटाँक । चीता की जड़ का  
काड़ा ४ सेर । घी १ सेर । विधिपूर्वक घृत  
सिद्ध कर पान, मर्दन और नस्य में देना  
चाहिए । यह घृत नीलिका, मुहाँसा, सेहूआँ  
आदि चर्मरोग, सब प्रकार के कफज रोग  
और शिर की पीड़ा को शीघ्र नष्ट करता है ।  
शरीर को सुन्दर बना देता है । संसार  
के हितार्थ अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया  
है ॥ १४९-१५१ ॥

सप्तच्छदादि तैल ।

सप्तच्छदस्य वासायाः पिसुमर्दस्य  
चाम्भसा । तैलप्रस्थं पचेत् कल्कै-  
निशादावींफलत्रिकैः ॥ १५२ ॥ व्यो-  
पेन्द्रयवमञ्जिष्टारसदिरत्तारसैन्धवैः । गो-  
मूत्रस्याढकं दत्त्वा शनैश्च मृदुनाग्निना ॥  
१५३ ॥ पद्मिनीकण्टकं चिप्पं कद्रं व्य-

हनीलिके । जालगर्दभकं चैतत्त्वग्गदांश्च  
विनाशयेत् ॥ १५४ ॥

सतवन की छाल का काड़ा ६ सेर ३२ तोले, अरुसे का काड़ा ६ सेर ३२ तोले और नीम की छाल का काड़ा ६ सेर ३२ तोले । तिल का तेल १२८ तोले । कक के लिये हल्दी, दाहहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च और पीपरि ), इन्द्रयव, मंजीठ, खैर की छाल, जवाखार और सेंधानमक ; प्रत्येक चार-चार तोले । गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले । विधिपूर्वक धीरे-धीरे मन्द अग्नि से पकाकर तेल तैयार करे । यह तेल पद्मिनीकण्टक, चिप्प, कदर, व्यङ्ग, नीलिका और जालगर्दभ ; इन चर्मगत रोगों को नष्ट करता है ॥ १५२-१५४ ॥

सहाचरघृत ।

सहाचरतुलाकाथे काथे च दशमूल-  
जे । शिरीषस्य कपाये च घृतमस्थं विपा-  
चयेत् ॥ १५५ ॥ कल्कान् दत्त्वा पञ्च-  
कोलं कृमिघ्नं पटुपञ्चकम् । चारत्रयं  
वृश्चिकालींसिन्दूरमपि गैरिकम् ॥ १५६ ॥  
हन्यादेतद्घृतं न्यच्छं नीलिकांतिलकाल-  
कम् । अंगुलीवेष्टकं पाददारीं च मुख-  
दृपिकाम् ॥ १५७ ॥

पिपाघांसा २ सेर, काथाघं जल २२ सेर ४८ तोले, अशिश्ट काथ ६ सेर ३२ तोले । दशमूल २ सेर, जल २२ सेर ४८ तोले, अशिश्ट ६ सेर ३२ तोले । सिरसा की छाल २ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले । अशिश्ट ६ सेर ३२ तोले । घृत १२८ तोले । कक के लिए पंचकोल ( पीपरि, पिपलामूल, चित्रक, सोंठ और चम्प ), वायविङ्ग, पौधों नमक, जवाखार, मंजीवार, मुहागा, वृश्चिकाली विधुवा घास ), सिन्दूर और गेरू मिलित ३२ तोले । विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे । यह घृत न्यषप, नीलिका, तिलकालक, अंगुली-वेष्टक, बेवाई और मुहासा ; इन रोगों को नष्ट करता है ॥ १५२-१५७ ॥

चारघृत ।

मुष्ककं कुटजं गुञ्जां चित्रकं कदलीं  
वृषम् । अर्कस्तुह्यपामार्गं चाश्वमारं विभी-  
तकम् ॥ १५८ ॥ पलाशं पारिभद्रं च  
नङ्गमालं च सन्दहेत् । ततः प्रस्थं समा-  
दाय चारस्य पङ्गुणाम्भसा ॥ १५९ ॥  
त्रिसप्तकृत्वो विस्राव्य पचेत् सर्पिस्तद-  
म्युना । कल्कं चारत्रयं दत्त्वा नातितीव्रेण  
वह्निना ॥ १६० ॥ चारसर्पिरिदं हन्यान्  
मशकं तिलकालकम् । पद्मिनीकण्टकं  
चिप्पमलसं दद्भुसिध्मनी ॥ १६१ ॥

कठपाटल, कुड़ा, घुँघुची, चीता की जड़, कला का काण्ट ( डंडी ), अरुसा, मदार, यूहर, लटजीरा, कनर, बहेड़ा, ढाक, नीम और करंज, इनकी समभाग लेकर भस्म बना ले । इस ६४ तोले भस्म को ४ सेर ६४ तोले पानी में मिलाकर २१ बार कपड़े से छान ले । इस जल में १२८ तोले घृत और जवाखार, सजीखार और मुहागा मिलित ३२ तोले डालकर मध्यम अग्नि से पकावे । यह चारघृत मस्सा, तिलकालक, पद्मिनी-कण्टक, चिप्प, बेवाई और मुहासा को नष्ट करता है ॥ १५८-१६१ ॥

शय्यामूत्रचिकित्सा ।

कृतमूत्रार्द्रभूभागमृगमाकृष्य खोलके ।  
सम्भज्यं मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेन् मूत्रितं  
जनम् । शय्यायां सूत्ररोधः स्यान्मूत्रितस्य  
न संशयः ॥ १६२ ॥

शय्यातलस्तिमितमूत्रिकां शुहीत्वा  
खोलके भर्जयित्वा घृतमधुभ्यां लेहयेत् ।

शय्या के नीचे की मूत्र से गीली हुई मिट्टी को लेकर खपड़े में भूनकर घीर उममें राहद घीर घी मिलाकर मूत्रमेवाले रोगियों को चटाने से निःसंशय शय्या का मूत्रना बंद हो जाता है ॥ १६२ ॥

विम्बमूलरसः पीतं शय्यामूत्रं निवार-  
येत् । अहिफेनप्रयोगेण मूत्ररोधो भवे-  
द्भ्रुवम् ॥ १६३ ॥

कुंदरू की जड़ का रस पीने से शय्यामूत्र  
रोग दूर होता है । उचित मात्रा में अफीम के  
सेवन से शय्या में मूतना अवश्य बन्द हो जाता  
है ॥ १६३ ॥

लोमशातनविधि ।

हरितालचूर्णकणिकालेपात् तप्तेन  
वारिणा सद्यः । निपतन्ति लोमनिचयाः  
कौतुकमिदमद्भुतं मन्ये ॥ १६४ ॥

हरताल के चूर्ण को गर्म जल के साथ लेप  
करने से शीघ्र ही बाल गिर जाते हैं ॥ १६४ ॥

दग्ध्वा शङ्खं क्षिपेद् रम्भास्वरसे तच्च  
पेषितम् । तुल्यालं लेपतो हन्ति लोम  
गुह्यादिसम्भवम् १६५ ॥

शंख की भस्म और हरताल बराबर लेकर  
केला के रस में पीस कर गुह्य स्थान में लेप देने से  
यहाँ के बाल गिर जाते हैं ॥ १६५ ॥

रक्ताञ्जनीपुच्छचूर्णयुक्तं तैलं तु सार्प-  
पम् । सप्ताहमुपितं हन्ति मूलाद्रोमाण्य-  
संशयम् ॥ १६६ ॥

लाल घंजनी की जड़ के चूर्ण को सात दिन  
तरु सरसों के तेल में रस कर लगाने से जड़ से  
बाल गिर जाते हैं ॥ १६६ ॥

पलाशरस्मान्विततालमूले रम्भाम्बु-  
मिश्रैरुपलिप्य भूयः । कन्दर्पगेहे मृग-  
लोचनानां रोमाणि रोहन्ति कदापि  
नैव ॥ १६७ ॥

पलाश ( ढाक ) की भस्म और हरताल के  
चूर्ण को केला के जल में मिला कर छियों के  
गुह्य स्थान में लगाने से फिर कभी बाल नहीं  
पैदा होते हैं ॥ १६७ ॥

पृक्कः प्रदेयो हरितालभागः पञ्च

प्रदेया जलजस्य भागाः । पड् भस्मनः  
पर्णतरोस्तथैव प्रोक्ताश्च भागाः कदली-  
जलाद्राः ॥ १६८ ॥ संमिश्रय पात्रेषु च  
सप्तरात्रं कृत्वा स्मरागारविलेपनं च ।  
रोमाणि सर्वाणि विलासिनीनां पुनर्न  
रोहन्ति कदाचिदेव ॥ १६९ ॥

इहताल १ तोला, शंख भस्म २ तोले और  
ढाक की भस्म ६ तोले लेकर सबको केले के जल  
में भिगो कर सात दिन तक पात्र में रखा रहने  
दे । इसके लगाने से कामिनियों के गुह्य स्थान के  
बाल गिर जाते हैं और फिर कभी उत्पन्न नहीं  
होते हैं ॥ १६८-१६९ ॥

रम्भाजले सप्तदिनं विभाव्य भस्मानि  
कम्बोर्मसृणानि परचात् । तालेन  
युक्तानि विलेपनेन लोमानि निर्मूलयति  
क्षणेन ॥ १७० ॥

शंख की भस्म को सात दिन तक केले के जल  
में घोट कर और उसमें हरताल मिला कर  
लेप करने से चणमात्र में बाल निर्मूल हो जाते  
हैं ॥ १७० ॥

कुमुम्भतैलाभ्यद्रो वा रोम्भामुत्पाट-  
कोऽन्तकृत् ॥ १७१ ॥

\* कुमुम के तेल का मर्दन करने से बाल उखाड़  
जाते हैं और फिर नहीं जमते हैं । कहीं "रोम्भा-  
मुत्पाटितोऽन्तकृत्" ऐसा पाठ है । वहाँ पहले बाल  
उखाड़ कर तेल लगाने से बाल नष्ट हो जाते हैं,  
ऐसा अर्थ है ॥ १७१ ॥

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं क्षारो यवानां  
च मनःशिला च । तैलं मुपक्वं हरिताल-  
मिश्रं रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ॥  
१७२ ॥

कपूर, शुद्ध भिल्लातक, शंखभस्म, जवाहार और  
मैनशिला ; इनके कलक में नेत्र मिद कर और  
उसमें हरताल मिलाकर लगाने से बाल जड़ से  
नष्ट हो जाते हैं ॥ १७२ ॥

क्षारतैल ।

शुक्रिशम्युकशङ्खानां दीर्घघृन्तात्

समुष्ककात् । दग्ध्वा क्षारं समादाय खर-  
मूत्रेण भावयेत् ॥ १७३ ॥ क्षाराष्टभागं  
विपचेत्तैलं वै सार्पपं बुधाः । इदमन्तःपुरे  
देयं तैलमात्रेयपूजितम् ॥ १७४ ॥ विन्दु-  
रेकः पतेद्यत्र तत्र लोभापुनर्भवः । मदनादि-  
त्रये तैलमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १७५ ॥  
अर्शां कुष्ठरोगाणां पामादद्भुविचर्चि-  
काम् । क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं सर्वक्लेदरुजा-  
पहम् ॥ १७६ ॥

सीप, घोंघा, शंख, श्योनाक और मुष्कक  
( मोखा वृक्ष, कठपाढल ) ; इनकी भस्म में  
गदहे के मूत्र की भावना दे । फिर उसे छह गुने  
जल में मिलाकर छान ले । यह जल ८ सेर ।  
बहुआ तेल १ सेर, विधि से तेल सिद्ध करे ।  
यह मात्रेय ऋषि द्वारा प्रशंसित है । इसको  
अन्तःपुर में देना चाहिए । इसकी एक बूँद भी  
जहाँ लगाई जावेगी वहाँ फिर बाल नहीं जमेंगे ।  
यह मदनादि प्रण में अश्विनीकुमारों ने कहा  
है । बवासीर, कुष्ठ, पामा, दाद और विचर्चिका  
आदि में यह क्षार तेल हितकर है ॥ १७३-१७६ ॥

लौहकिंठु जवापुष्पं पिष्ट्वा धात्रीफलं  
समम् । त्रिदिनं लेपयेच्छीर्षं त्रिमासं केश-  
रञ्जनम् ॥ १७७ ॥

मसूर, गुड़हल तथा आँवले ; इन्हें सम-  
भाग एकत्र पीस तीन दिन तक शिर पर लेप  
देने से तीन महीना तक बाल काले रहते  
हैं ॥ १७७ ॥

पटोलोद्य घृत ।

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचि-  
तम् । पीतं घृतं नाशयति कञ्चामप्यहि-  
पूतनाम् ॥ १७८ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला, रसात ; इनसे विधिपूर्वक

घृत सिद्ध कर पीने से कष्टसाध्य अहिपूतना रोग  
नष्ट होता है ॥ १७८ ॥

क्षुद्र रोगों में पथ्यापथ्य ।

क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु ।  
दोषानदूप्यानवस्थां च निरीक्ष्य मतिमान्  
भिषक ॥ १७९ ॥ तस्य तस्य च रोगस्य  
पथ्यापथ्यानि सर्वशः । यथादोषं यथा-  
दूप्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥ १८० ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां क्षुद्ररोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

बुद्धिमान् वैद्य का कर्तव्य है कि अनेक रोगों  
के लक्षणों से युक्त क्षुद्र रोगों में दोष-दूप्य तथा  
दशा का अच्छी तरह से अवलोकन कर  
रोग के और अवस्था के अनुसार रोगी  
को पथ्यापथ्य का प्रयोग कराए तथा त्याग  
कराए ॥ १७९-१८० ॥

इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधाय्यां व्याख्यायां  
क्षुद्ररोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

प्रथमं पहले प्रदर की चिकित्सा कहते हैं ।  
दघ्ना सौमर्बलाजाजी मधुकं नील-  
मुत्पलम् । पिबेत् क्षौद्रयुतं नारी वाता-  
सुन्दरपीडिता ॥ पिबेदौष्यकं रक्तं शर्करा-  
मधुसंयुतम् ॥ १ ॥

घातज रजप्रदर से पीडित स्त्री को दही ( ३  
तोले ) में काला नमक ( १ माशा, जीरा, मुञ्जैटी  
और नीलकमल का घूर्ण ( प्रत्येक ३-३ मासे )  
तथा शहद ( ६ मासे ) मिलाकर पिलाना  
चाहिए । अथवा हरिण के रज में शर्करा और  
शहद मिलाकर पिलाना चाहिए ॥ १ ॥

वासकस्वरसं पित्ते गुडूच्या रसमेव वा । कुशमूलं समुद्धृत्य पेपयेत् तण्डु-  
लाम्बुना । एतत् पीत्वा ज्यहान्नारी प्रद-  
रात् परिमुच्यते ॥ २ ॥

पैक्तिक रक्तप्रदर में अदूसे का रस अथवा गिलोय का रस शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए । अथवा कुशा ( डाभ ) की जड़ को चावलों के जल में पीसकर तीन दिन पीने से स्त्री प्रदररोग से छुट्टी पा जाती है ॥ २ ॥

दाव्यादि काथ ।

दावीरसाञ्जनट्टपाव्दकिरातविल्व-  
भजातकैरवकृतो मधुना कपायः । पीतो  
जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुण-  
विलोहितनीलशुक्लम् ॥ ३ ॥

दारहल्दी, रसौत, अदूसा, नागरमोधा, चिरायता, बेल की गिरी, शुद्ध भिलावाँ और कोकाबेली ( कुमुद ), इनके काढ़े में शहद मिलाकर पीने से शूलयुक्त अति प्रबल पीला, काला, लाल, लोहित, नील और श्वेत प्रदर नष्ट होता है ॥

अशोकवल्कलकाथमृतं दुग्धं सुशी-  
तलम् । यथाबलं पिबेत् प्रातस्तीव्रासृग्दर-  
नाशनम् ॥ ४ ॥

अशोक की छाल के काढ़े में दूध पकाकर ठंडा कर प्रातःकाल थलानुसार पीने से कठिन रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काकोडुम्भरजं  
पिबेत् । असृग्दरविनाशाय सशर्करपयो-  
ञ्जमुक् ॥ ५ ॥

कदमर ( कठगूलर ) फल के रस में शहद मिलाकर पीने से रक्तप्रदर नष्ट होता है । इसके सेवनकाल में दूध शर्कर और चावल खाना चाहिए ॥ ५ ॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं

पीतम् । कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलि-  
लेन रक्ताख्यम् ॥ ६ ॥

खरेटी की जड़ के कक को दूध के साथ पीने से प्रदर नष्ट होता है तथा कुशा की जड़ और खरेटी की जड़ को चावल के जल के साथ पीसकर पीने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

गुडेन वदरीचूर्णमसृग्दरविनाशनम् ।  
गुडेन वदरीचूर्णं मोचमामं तथा पयः ॥  
पीता लाक्षा च सघृता पृथक् प्रदरनाश-  
नम् ॥ ७ ॥

गुड के साथ बेर का चूर्ण खाने से रक्त-  
प्रदर नष्ट होता है । गुड के साथ बेर का चूर्ण  
कच्चा केला और दूध अथवा घृत के साथ लाख  
का चूर्ण ; इनमें से किसी एक का सेवन करने  
से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

रक्तपित्तविधानेन प्रदरांश्चाप्युपाचरेत् ।  
रक्तातिसारवद्वाथ रक्ताशोषत् तथैव  
च ॥ ८ ॥

प्रदररोग में रक्तपित्त, रक्तातिसार तथा सूनी  
यवासीर की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

असृग्दरे विशेषेण कुटजाष्टक इष्यते ।  
रोहीतकमूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरेपिबेत् ९

रक्तप्रदर में कुटजाष्टक का सेवन करना  
विशेष हितकर होता है । पीले प्रदररोग में  
रहेवा की जड़ के कक में शहद या शहद  
मिलाकर पीना उत्तम है ॥ ९ ॥

जलेनामलकीरीजकल्कं वा ससिता-  
मधु । धातक्याश्चाक्षमात्रं वा आमल-  
क्या मधुद्रवम् ॥ १० ॥ काकजातुक-  
मूलं वा मूलं कार्पासमेव वा । पाण्डुप्रदर-  
शान्त्यर्थं पिबेत् तण्डुलवारिणा ॥ ११ ॥

चावल के के पीजों को जल में पीसकर शहद  
और शहद मिलाकर अथवा धात के चूर्णों के



कल्क को शहद के साथ, आँवले के १ तोले कल्क को शहद के साथ, काकजंघा अथवा कपास की जड़ को चावल के जल के साथ पीने से पीतप्रदर शान्त होता है ॥ १०-११ ॥

शर्करामधुकं शुण्ठी तैलं दधि च तत्समम् । खजेन मथितं पीतं हन्याद्वातो-  
त्थितं रजः ॥ १२ ॥

शकर, मुलेठी, सोंठ और तेल ; इन चारों के बराबर दही मिलाकर मथानी से मथकर पीने से वातज प्रदर नष्ट होता है ॥ १२ ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं  
पिबेत् ॥ १३ ॥

आँवले के रस में मिश्री मिलाकर पीने से योनि का दाह शान्त होता है ॥ १३ ॥

भूम्यामलकचूर्णं तु पीतं तण्डुल-  
वारिणा । दिनत्रयान्तरं शैव स्त्रीरोगं नाश-  
येद्वरम् ॥ १४ ॥

भुई आँवले का चूर्ण चावल के जल के साथ पीने से तीन दिन में स्त्रीरोग को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

शुद्धधात्रीघृत ।

बहुमूत्राधिकारे यत्प्रोक्तं धात्रीघृतं  
महत् । तत्तेनैवानुपानेन धीमानत्रापि  
योजयेत् ॥ १५ ॥

बहुमूत्राधिकार में जो शुद्धधात्रीघृत कहा गया है उसी अनुपान से बुद्धिमान् वैद्य को यहाँ भी उस घृत का प्रयोग कराना चाहिए ॥ १५ ॥

अशोकघृत ।

अशोकवल्कलमस्थं तोयाढकविपा-  
चितम् । पादस्थेन घृतमस्थं जीरककाय-  
संयुतम् ॥ १६ ॥ तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं  
घृततुल्यं मद्रापयेत् । तथैव केगराजस्य  
मस्थमेकं भिषग्वरः ॥ १७ ॥ जीवनीयैः  
प्रियालस्तु पत्तयैः मरमाञ्जनैः । यष्ट्यादा-

शोकमूलं च मृद्वीका च शतावरी ॥ १८ ॥  
तण्डुलीयकमूलं च कल्कैरेभिः पलाद्धकैः ।  
शर्करायाः पलान्यष्टौ सिद्धशीते मद्रापयेत् ॥  
१९ ॥ पीतमेतद् घृतं हन्ति सर्वदोषसमु-  
द्भवम् । श्वेतं नीलं तथा कृप्यं प्रदरं  
हन्ति दुस्तरम् ॥ २० ॥ कुत्तिशूलं कटी-  
शूलं योनिशूलं च सर्वगम् । मन्दाग्नि-  
मर्द्दचि पाण्डुं कुशतां श्वासकासकम् ॥  
२१ ॥ आयुः पुष्टिकरं बल्यं बलवर्ण-  
प्रसादनम् । देयमेतत् परं सर्पिविष्णुना  
परिकीर्तितम् ॥ २२ ॥

अशोक की छाल ६४ तोले, काथार्थ जल ६ सेर ३२ तोले और अवशिष्ट काथ १२८ तोले, जीरा का काड़ा १२८ तोले, तण्डु-  
लोदक १२८ तोले, चकरी का दूध १२८ तोले । और मँगरे का रस १२८ तोले, घृत १२८ तोले कल्क के लिए जीवनीयगण की प्रत्येक सब औषधियाँ दो-दो तोले तथा चिरींजी फालसा, रसौत, मुलेठी अशोक की जड़, मुनका, शतावरी और चौलाई की जड़; प्रत्येक दो-दो तोले । विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे । टंडा होने पर छान ले और उसमें ३२ तोले शकर मिला दे । इस घृत के पीने से सर्वदोष नष्ट सके, नीला और काला कठिन प्रदर, कुत्तिशूल, कटिशूल, सब प्रकार का योनिशूल, मन्दाग्नि, अरधि, पाण्डु रोग, दुबलापन, श्वास और कास आदि रोग नष्ट होते हैं । यह घृत आयु, पुष्टि, बल और वर्ण का करनेवाला है । यह उत्तम घृत विष्णुजी का कहा हुआ है ॥ १६-२२ ॥

जीवनीयगण ।

जीवकर्षभर्का मेदे काकोल्यां शूर्प-  
पिंगके । जीवन्ती मधुकं चेति दशको  
जीवनोगणः ॥ २३ ॥

जीवक, अथमक, मेदा महामेदा, काकोली, शोरकाकोली, मापवर्णी, मुष्टवर्णी, जीवन्ती

और मुलेठी; ये दश जीवनीयगण की श्रेणियाँ हैं ॥ २३ ॥

न्यग्रोधाय घृत ।

न्यग्रोधाश्वत्थपार्थामृतवृषकडुकाप्लक्ष-  
जम्बूप्रियालाः श्योनाकोडुम्बराख्यामधुक-  
तरुबलावेतसं केन्दुनीपौ । रोहीतं पीतसारं  
विधिविहितहृतं सर्वमेपां तरूणां प्रत्येकं  
बल्कलं तद्युगपलमखिलं क्षोदयित्वा  
भिपग्भिः ॥ २४ ॥ काथं द्रोणाम्भसा  
नद्वृद्धविमलकटाहेऽपिपादावशेषं सर्पिःप्रस्थं  
तु पाच्यं पचनकुशलिना मन्दमन्दानलेन ।  
प्रस्थं धात्रीरसानां विधिविहितजलमस्थ-  
मेकं च शालेर्दत्त्वा त्र्यक्षं तु कल्कं मधुक-  
मपि मधोः पुष्पखर्जूरदावी ॥ २५ ॥  
जीवन्तीकाशमरीणां फलमपि युगलं क्षीर-  
काकोलियुग्मं रक्ताख्यं चन्दनं यत्तद-  
परममलं चाञ्जनं सारिवा च ॥ २६ ॥  
न्यग्रोधाद्यं घृतं ह्येतद्देहं प्रात्यामृतायते ।  
दुस्तरं प्रदरं हन्ति नीलं रक्तं सितसितम् ॥  
२७ ॥ योनिशूलं कुक्षिशूलं वस्तिशूलं  
सुदुःसहम् । अद्भुदाहं योनिदाहमक्षि-  
कुक्षिभवं च यत् ॥ २८ ॥ मन्ददृष्टिम-  
श्रुपातं तिमिरं वातसम्भवम् । आध्मानाना-  
हशूलघ्नं वातपित्तप्रकोपजित् ॥ २९ ॥  
अम्लपित्तं च पित्तं च योनिरोगं विनाश-  
येत् । दृष्टिमसादजननं बलमर्णाग्नि-  
कारकम् ॥ ३० ॥

यरगद की छाल, पीपल की छाल, अजुन की छाल, गिलोय, अदुसा की छाल, कुटकी, पकड़िया ( पिलखन ) की छाल, जामुन की छाल, चिरांजी की छाल, श्योनाक की छाल, गूजर की छाल महुआ की छाल, सरैटी, बेत, तिन्दू की छाल, कदम्ब की छाल; रोहीका की

छाल और पीत चन्दन ये सब आठ-  
आठ तोले लेकर जवकुट कर ले और २५ सेर  
४८ तोले पानी में ढालकर साफ कड़ाही में  
पकावे। जब ६ सेर ३२ तोले काथ शेष रहे  
तब उतारकर छान ले । घृत १२८ तोले,  
आँवले का रस १२८ तोले, विधि से बनाया  
हुआ चाबलों का जल १२८ तोले। कल्क के  
लिए—मुलेठी, महुए के फूल, खजूर, दारहल्दी,  
जीवन्ती और कंभारी के फल, काकोली,  
शीरकाकोली, लाल चन्दन, रवेत चन्दन, रसीत  
और अनन्तमूल ; प्रत्येक तीन-तीन तोले ।  
पाककर्म में चतुर वैद्य मन्द-मन्द अग्नि से घृत  
को सिद्ध करे। यह न्यग्रोधाद्य घृत सेवन करने  
से अमृत के समान गुण करता है तथा कठिनतर  
नीला, लाल, रवेत और काला प्रदर, योनिशूल,  
कुक्षिशूल और असह्य वस्तिशूल, प्रगदाह,  
योनिदाह, नेत्ररोग, कुचिरोग मन्ददृष्टि, आँसू  
बहना, वातज तिमिर, आध्मान, आनाह, शूल,  
वात-पित्त का कोप, अम्लपित्त, पित्तरोग और  
योनिरोग को नष्ट करता है। दृष्टि को तेज  
करनेवाला तथा बल और वर्ण का करनेवाला  
है ॥ २४-३० ॥

पैत्तिक प्रदर में चन्दनादि चूर्ण ।

चन्दनं नलदं लोभ्रमुशीरं पद्मकेशरम् ।  
नागपुष्पं च विल्वं च भद्रमुस्तं च शर्कराम् ॥  
३१ ॥ हीवेरं चैव पाठा च कुटजस्य  
फलं त्यजम् । शृङ्गेरं सातिविषा धातकी  
च रसाञ्जनम् ॥ ३२ ॥ आम्नास्थिजम्बु-  
सारास्थि तथा मोचरसोद्भवः । नीलोत्पलं  
समद्गा च सूक्ष्मलादाडिमोद्भवम् ॥ ३३ ॥  
चतुर्विंशतिचैतानि समभागानि कारयेत् ।  
तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥  
३४ ॥ चतुःभकारं प्रदरं रक्तातीसारमुल्य-  
गम् । रक्ताशींसि निहन्त्याशु भास्करस्ति-  
मिरं यथा । अग्निन्योः सम्मतौ योगो  
रक्षपित्तनिपहणः ॥ ३५ ॥

एतानि चूर्णानि समभागानि एकी-  
कृत्य मापकचतुष्टयं तण्डुलोदकेन मधुना  
च सह योजयेत् ।

लाल चन्दन, जटामांसी, पठानीलोध, खस,  
फमलकेशर, नागकेशर, बेलगिरी, नागरमोथा,  
खाँड, सुगन्धबाला, पादर, इन्द्रजौ, कुडा की  
छाल, सोंठ, असीस, धाय के फूल, रसौत,  
आम की गुठली की मींगी, जानुन की गुठली  
की मींगी, मोचरस, नीलकमल, अंजीठ, छोटी  
इलायची और अनारदाना; इन २४ औषधियों  
को सम भाग लेकर चूर्ण बना ले । मात्रा—  
१॥ मासे से ४ मासे तक । अनुपान—शहद  
और तण्डुलोदक ( चावल का धोवन ) । यह  
चूर्ण चार प्रकार के प्रदर रोग, दारुण अतीसार  
और खूनी घवासीर को इस प्रकार नष्ट करता  
है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करते हैं । यह  
अरिबनीकुमारों का सम्मत योग रक्ष-पित्त को  
नष्ट करनेवाला है ॥ ३१-३२ ॥

पुष्करलेह ।

रसाञ्जनं शुभा शृङ्गी चित्रकं मधुयष्टि-  
कम् । धान्यतालीशगायत्री द्विजीरं त्रिवृता  
घला ॥ ३६ ॥ दन्ती ज्यूपणकश्चापि  
पलाद्धश्च पृथक् पृथक् । चतुष्पलं मात्ति-  
कस्यामलस्य च क्षिपेत्ततः ॥ ३७ ॥  
जातीकोपलवद्गश्च ककोलं गोस्तनी तथा ।  
चातुर्जातकखजूरं कर्पमेकं पृथक् पृथक् ॥  
३८ ॥ मत्तिप्य मर्दयित्वा च स्निग्धभाण्डे  
निधापयेत् । एष लेहवरः श्रीदः सर्वरोग-  
कुलान्तकः ॥ ३९ ॥ यत्र यत्र प्रयोज्यः  
स्यात्तत्तदामयनाशनः । अनुपानं प्रयो-  
क्तव्यं देशकालानुसारतः ॥ ४० ॥ सर्वो-  
पद्रवसंयुक्तं प्रदरं सर्वसम्भवम् । द्रन्द्वजं  
चिरजञ्चैव रक्षपित्तं विनागयेत् ॥ ४१ ॥  
कासरवासस्त्वपित्तञ्च क्षयरोगमथापि वा ।

सर्वरोगप्रशमनो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ।  
पुष्कराख्यो लेहवरः सर्वत्रैवोपयुज्यते ४२ ॥

रसौत, वंशलोचन, काकड़ासिंगी, चित्रक,  
मुलेठी, धानियाँ, तालीशपत्र, कत्या, जीरा,  
कालाजीरा, निसोत, खरैटी की जड़ की छाल, दन्ती-  
मूल और त्रिकुटा, हरएक चार-चार तोले । शुद्ध  
शहद ३२ तोले । जग्धित्री, लौंग, शीतलचीनी,  
दाख, चातुर्जात ( दारुचीनी, छोटी इलायची,  
तेजपात, नागकेशर ), पिण्डखजूर, हरएक दो  
दो तोले, इन्हें मिलाकर चिकने वर्तन में रक्खे ।  
यह लेह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है । देश  
और काल के अनुसार अनुपान देना चाहिए ।  
मात्रा—आधा तोला । यह लेह त्रिदोषज तथा  
सम्पूर्ण उपद्रवों से युक्त प्रदर रोग को नष्ट  
करता है । इसके सेवन से पुराना रक्षपित्त,  
खाँसी, श्वास, अम्लपित्त तथा क्षय रोग नष्ट  
होता है और बल, वर्ण तथा जठराग्नि बढ़ती  
है ॥ ३६-४२ ॥

प्रदरारि लौह ।

वत्सकस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे  
विपाचयेत् । अष्टभागावशिष्टं तु कपायम-  
वतारयेत् ॥ ४३ ॥ बह्वपूते घनीभूते  
द्रव्याणीमानि दापयेत् । समद्वा शाल्मलं  
पाठा विल्वं मुस्तं च धातकी ॥ ४४ ॥  
अरुणा न्योमकं लौहं प्रत्येकं तु पलं  
पलम् । मापद्वयं प्रयुज्जीत कुगमूलं पयो  
हनु ॥ ४५ ॥ श्वेतं रक्तं तथा नीलं पीतं  
प्रदरदुस्तरम् । कुत्तिशूलं कटीशूलं देह-  
शूलं च सर्वगम् ॥ ४६ ॥ प्रदरारिर्यं  
लौहो हन्ति रोगान् सुदुस्तरान् । आयुः  
पुष्टिकरश्चैव बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ४७ ॥

दुहा की छाल २ सेर । जल २५ सेर ४८  
तोले । अष्टाशिष्ट काप ३ सेर ३६ तोले । हल  
कादे की बस्त्र से छान कर फिर अग्नि पर  
पकाकर पकाये । जब गाढ़ा होने लगे तब

मंजोठ, मोचरस, पादर, बेलगिरी, नागरमोधा, धाय के फूल, अतीस, अन्नक की भरम तथा लोह की भरम; प्रत्येक चार-चार तोले । इन द्रव्यों को कूट पीस कर उस काथ में मिला दे । तैयार होने पर स्वच्छ पात्र में रख ले । मात्रा २ माशे । अनुपान-जल में पिसी कुशा की जड़युक्त जल । यह प्रंदरारि लौह सफेद, लाल, नीले और पीले रंग के कठिनतर प्रदर रोग को तथा कुचिशूल, कटिशूल और सब शरीर के शूलों को एवं दुस्तर रोगों को नष्ट करता है तथा आयु, पुष्टि, मल और वर्ण को बढ़ानेवाला है ॥ ४३-४७ ॥

पुष्यानुग चूर्ण ।

पाठा जम्बवात्रयोर्मध्यं शिलाभेदं  
रसाञ्जनम् अम्बष्ठकी मोचरसः समद्गा  
पद्मकेशरम् ॥ ४८ ॥ बाह्यीकातिविपा  
मुस्तं विल्वं लोध्रं सगैरिकम् । कट्फलं  
मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥  
४९ ॥ कट्ट्ववत्सकानन्ता धातकी  
मधुकार्जुनम् । पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ५० ॥ तानि  
क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना ।  
अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥  
५१ ॥ दोषागन्तुकृता ये च बालानां  
तारच नाशयेत् । योनिदोषं रजोदोषं  
श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ ५२ ॥ स्त्रीणां  
रयावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्चयेत् ।  
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ।  
अम्बष्ठा टक्षिणे ख्याता शुक्लन्त्यन्ये तु  
लक्ष्मणाम् ॥ ५३ ॥

पाद, जामुन की गुडली की गिरी, आम की गुडली की गिरी, पाषाणभेद, रसौत, अम्बष्ठा ( पाद ), मोचरस, लज्जालु, कमलकेशर, केशर, अतीस, मोधा, बेलगिरी, पठानीलोध, नेरु, कायफल, कालीमिर्च, सोंठ, मुनका, लालचन्दन, रयोनाक ( अरल ), इन्द्रजी, अनन्तमूल, धाय

के फूल, मुलहठी और अर्जुन की छाल; इनको पुष्य नक्षत्र में लाकर समभाग एकत्रित कर महीन चूर्ण बनावे । इसकी मात्रा—२ माशे शहद में मिलाकर सेवन करे अनुपान—चावल का पानी । यह खूनी बवासीर, रक्तितिसार, बालकों के आगन्तुक रोग, योनिदोष, रजोदोष तथा सफेद, नीले, पीले, काले और लाल प्रदर इनको अवश्य नष्ट करता है । यह पुष्यानुग चूर्ण हितकर तथा आत्रेय द्वारा प्रशंसित है । अम्बष्ठा दक्षिण में विख्यात है । कोई-कोई लक्ष्मणा को ग्रहण करते हैं ॥ ४८-५३ ॥

सिनकल्याणक घृत ।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमं रक्तशा-  
लयः । मुद्गपर्णा पयस्या च कारमरी  
मधुयष्टिका ॥ ५४ ॥ शलातिबलयो-  
र्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् । विदारी  
शतपुष्पा च शालिपर्णा सजीरका ॥  
५५ ॥ फलं त्रपुपवीजानि प्रत्यग्रं कदली-  
फलम् । एषामर्द्धपलान् भागान् गव्य-  
क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥ पानीयं द्विगुणं  
दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । प्रदरे रक्त-  
गुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ५७ ॥  
यद्दुरूपं च यत् पित्तं कामलायां च  
शोणिते । अरोचके ज्वरे जीर्णं पाण्डुरोगे  
मदे भ्रमे ॥ ५८ ॥ तरुणी याल्पपुष्पा च  
या च गर्भं न विन्दति । अहन्यहनि च  
स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ५९ ॥

कुमुद के फूल, पद्माल, खस, गेहूँ, सोंठी चावल, मुद्गपर्णा, शिरकाकोली, कंभारी, मुलेठी, खरेटी की जड़, कधी की जड़, कमल, नाद की जटा, बिदारीकन्द, सौंफ, शालिपर्णा, जीरा, त्रिफला, खीरे के बीज और केला की कधी फली; प्रत्येक दो-दो तोले लेकर बरक बनावे । गौ का दूध ६ सेर ३२ तोले । जल ३ सेर १६ तोले । और घृत १२८ तोले ।

सबको एकत्र कर विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे । इस घृत को रक्तप्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, बहुत प्रकार के पित्तरोग, कामला, रक्तस्त्राव, अरोचक, ज्वर, पुराना पाण्डु रोग, मद् और भ्रमरोग में देना चाहिए । जिस स्त्री के अल्परज होता हो अथवा गर्भ न रहता हो उसको सेवन कराना चाहिए । यह दिन-दिन स्त्रियों को प्रसन्न करनेवाला है । मात्रा—६ मासे ॥ ५४-५६ ॥

मधुकाद्यवलेह ।

मधुकं चन्दनं लाक्षा रक्तोत्पलरसाञ्जनम् । कुशमीरणयोर्मूलं बलावासकयोस्तथा ॥ ६० ॥ कोलमज्जाम्बुदं त्रिव्यं पिच्छा दार्द्र्यं च धातकी । अशोकवल्कलं द्राक्षा जवाकुमुमस्फुटम् ॥ ६१ ॥ आम्रजम्बूकिशलयं कोमलं नलिनीदलम् । शतमूली विटारी च रजतं लौहमभ्रकम् ॥ ६२ ॥ एषां कोलमितं चूर्णं द्विगुणा सितशर्करा । वरीरसस्य प्रस्थाद्धे पचेत् मन्देन वह्निना ॥ ६३ ॥ घनीभूते क्षिपेच्चूर्णं शीतीभूते पलं मधु । मधुकाद्यवलेहोऽयं महादेवेन भाषितः ॥ ६४ ॥ दुस्तरं प्रदरं हन्ति नानावर्णं सवेदनम् । योनिशूलं कुक्षिशूलं वस्तिशूलं सुदुःसहम् ॥ ६५ ॥ रक्तातिसारं रक्षाशो रक्तपित्तं चिरोद्भवम् । मूरोगानशेषांश्च दाहं मोहं वमिं भ्रमम् ॥ नाशयेन्नात्र सन्देहो भास्वरस्तिमिरं यथा ॥ ६६ ॥

घृणं के लिये मुलेठी, लालचन्दन, लाल लाम कमल, रगीत, पुरा की जड़, रज, परेटी की जड़, चन्दन की जड़, धर की मींगी, भाग्यमोषा, येन्गिरी मोषरस, दाहकण्ठी, पाय के पत्र, चरगोक की छाल, मुगडा, गुहदर की बिना पिनी ककी, घाम के कोमल पत्ते, जामुन के कोमल पत्ते कमल के कोमल पत्ते, शतावरी, बिदारीकाद, चाँदी की भस्म, सोहभस्म और

धम्रक की भस्म; प्रत्येक आधा आधा तोला । भिसरी २६ तोले और शतावरी का रस ६४ तोले लेकर मन्द अग्नि से पकावे । जब गाढ़ा होने लगे सब उपर्युक्त चूर्ण डालकर भिला दे और नीचे उतार ले । जब ठंडा हो जाय तब आध पाव शहद और भिला दे । यह मधुकाद्यवलेह महादेवजी का कहा हुआ है । मात्रा—६ मासे । यह अनेक वर्षवाले और वेदनायुक्त कठिन से कठिन प्रदरों को नष्ट करता है तथा योनिशूल, कुक्षिशूल, असह्य वस्तिशूल, रक्तातिसार, खून बवासीर, पुराना रक्तपित्त, सब प्रकार के मूररोग, दाह, मोह, वमन और भ्रम; इन रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करते हैं । इसमें रुन्धेह नहीं है ॥ ६०-६६ ॥

वासाकपायसहितं रसभस्मप्रयोजितम् । प्रदरं हन्ति वेगेन सत्तौद्रं नात्र संशयः ॥ ६७ ॥ रक्तपित्तहरः सर्वः प्रदरे नूतने विधिः रक्तातिसारयोगं च सर्वमत्र प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

पारे की भस्म और शहद भिलाकर पाटे और धरुसे का रस पीवे तो शीघ्र प्रदर नष्ट होता है । रक्तप्रदर में रक्तपित्त को नष्ट करनेवाली तथा रक्तातिसार में कही हुई संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

उत्पलादि ।

चन्दं रक्तोत्पलस्याथ रक्तकार्पासमूलकम् । वरीरस्य मूलानि तथा रक्तौद्धमूलकम् ॥ ६९ ॥ चकुलस्य तथा मूलं गन्धमातृकजीरका । रक्तचन्दनकं चैव समभागं च कारयेत् ॥ ७० ॥ तण्डुलोदकसंपिष्टं रक्तमूत्राय टापयेत् । योनिशूलं श्टोशूलं कुक्षिशूलं च नागयेत् । योनिशूलहरः मोक्ष उत्पलादिर्न संगयः ॥ ७१ ॥ तण्डुलोदकेन गोलायिता पेयः ।

लाल कमल का कन्द, लाल क्पास की जड़, लाल कनेर की जड़, लाल गुड़हर की जड़, मौलसिरी की जड़, गन्धमातृका, जीरा और लाल चन्दन; इनको समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को चावल के जल में घोलकर रज्जूमृत् के रोगी को पिलावे। यह योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल को भी नष्ट करता है। यह उपप्लादि योनि के शूलों को नष्ट करने के लिए कहा गया है। इसमें संशय नहीं है। मात्रा—  
१॥ माशा ॥ ६३-७१ ॥

शरपुंसा चूर्ण ।

मूलं च शरपुंसायाः पेपयेत् तण्डु-  
लाम्बुना । पीत्वा च कर्पमात्रं तु अति-  
रक्तं प्रशान्तयेत् ॥ ७२ ॥

एक तोला सरफोंका की जड़ को चावलों के पानी से पीसकर पीने से अत्यन्त रज्जुसाय बन्द होता है ॥ ७२ ॥

घात्रीघृत ।

घात्रीफलरसप्रस्थे विदार्याः स्वरसे  
तथा । तृणपञ्चरसप्रस्थे घृतप्रस्थं विपा-  
चयेत् ॥ ७३ ॥ क्षीरस्यापि शतावर्याः  
प्रस्थं प्रस्थं रसस्य च । टप्त्वा मृद्गग्निना  
चैयः पचेत् सिद्धं विधानतः ॥ ७४ ॥  
सुरीते प्रक्षिपेच्चूर्णमेषां चापि पलं पलम् ।  
मधुकं त्रिष्टुतं चैव चारं च वृद्धदारकम् ॥  
७५ ॥ शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनश्च  
पलाष्टकम् । चूर्णं दत्त्वा प्रमथितं स्निग्धे  
भाण्डे निधापयेत् ॥ ७६ ॥ सोमरोगं  
निहन्त्याशु तृष्णां दाहमरोचकम् । मूत्र-  
कृच्छ्रं च कृच्छ्रं च बहुमूत्रं विनाशयेत् ॥  
७७ ॥ पित्तजान् विविधान् व्याधीन्  
वातजांश्च सुदुस्तरान् । करोति शुक्रोपचयं  
सर्पिरेतदलुत्तमम् ॥ ७८ ॥

आंघले का रस १२८ तोले । विदारीकन्द  
का रस १२८ तोले । तृणपञ्चक ( कुश, काश,

शर, शम और ईख ) का रस १२८ तोले ।  
दूध १२८ तोले । शतावरी का रस १२८  
तोले । और घृत १२८ तोले । सबको एकत्र  
कर मन्द मन्द अग्नि से पकावे। जब घृत सिद्ध  
हो जाय तब टंडा करके उसमें मुलेठी, निसोत,  
जवापर और बिधारा का चूर्ण चार-चार  
तोले, शकर ३२ तोले तथा शहद ३२ तोले  
मिलाकर घोट ले और चिकने बर्तन में रख ले ।  
इसके सेवन से सोमारोग, तृष्णा, दाह, अरुचि,  
मूत्रकृच्छ्र, कृच्छ्र, बहुमूत्र तथा अनेक प्रकार की  
पित्त तथा वातज व्याधियाँ नष्ट होती हैं । यह  
उत्तम घात्रीघृत शुक्र का बढ़ानेवाला है ।  
मात्रा—६ माशे से १ तोला तक ॥ ७३-७८ ॥

प्रदरान्तक लौह ।

लौहं ताम्रं हरीतालं वङ्गभद्रं वरा-  
टिका । त्रिष्टु त्रिफला चित्रं विडङ्गं  
पटुपञ्चकम् ॥ ७९ ॥ चविका पिप्पली  
शङ्ख वचा ह्युपपालकम् । शटी पाठा  
देवदारु एला च वृद्धदारकम् ॥ ८० ॥  
एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य वटिकां  
कुरु । शर्करा मधुसंयुक्तां घृतेन भक्तये-  
त्पुनः ॥ ८१ ॥ रक्तं श्वेतं तथा पीतं नील  
प्रदरदुस्तरम् ॥ कुक्षिशूलं कटीशूलं  
योनिशूलञ्च संहरेत् ॥ ८२ ॥ मन्दाग्निम-  
रुचि पाण्डुं कृच्छ्रशासञ्च कासनुत् ।  
आयुःपुष्टिकरं वल्यं बलवर्णप्रसाद-  
नम् ॥ ८३ ॥

लौहभस्म ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, वङ्ग-  
भस्म, अन्नकभस्म, कौडीभस्म, त्रिष्टुटा, त्रिफला,  
चित्रक, वायविडङ्ग, पांचो नमक, चण्ड, पीपल,  
शङ्खभस्म, वचा, हाऊबेर, कूट, कचूर, पाठ,  
देवदारु, छौटी इलायची, विधारा, हर एक को  
बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर जल से गोली  
बनावे । मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ।  
इसको खाँद, शहद तथा घृत के साथ मिला-  
कर सेवन कराना चाहिए । इसके सेवन से

लाल, सफेद, पीला अथवा नीले रंग का स्रावयुक्त कठिनता से आराम होनेवाला प्रदर, कुक्षिशूल, कमर का दर्द, योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृच्छुरवास तथा खोंसी आदि रोग नष्ट होकर शरीर की पुष्टि होती है। यह आधु-बल-वर्धक और वर्ण को दृज्ज्वल करनेवाला है ॥ ७६-८३ ॥

लक्ष्मणा लौह ।

लक्ष्मणायाः पलशतं काथयित्वा यथाविधि । काथे पूते पुनः पक्के घनीभूते च निक्षिपेत् ॥ ८४ ॥ अशोकं कुशमूलञ्च मधुकं मधुकं बलाम् । पाठां विल्वं पलोन्मानं लौहं सर्वसमं तथा ॥ ८५ ॥ लक्ष्मणा लौहनामेदं भेषजं स्त्रीगदापहम् । जंगतामुपकाराय दस्रभ्यां परिनिर्मितम् ॥ ८६ ॥

लक्ष्मणा की जड़ ५ सेर, पाक के लिये जल २५ सेर धन तोले, यथा हुआ ऋष ६ सेर ३२ तोले, इस ऋष को धानकर पुनः पकाये, जब गाढ़ा हो जाय तब अशोक की छाल, कुशा की जड़, महुण के फूल, मुलछठी खरंटी, पाठा, कच्चे बेल का गूदा हर एक चार-चार तोले, लोहभरम २८ तोले इनके चूर्ण को डाले। यह औषध प्रदर आदि स्त्रीरोगों को नष्ट करती है। मात्रा—२ रत्ती ॥ ८४-८६ ॥

चन्द्रांगुरस ।

रसमध्रमयो वज्रं गन्धकं कन्यकाम्बुना । मर्दयित्वा यथा कुर्यात् गुडान्द्रममाणतः ॥ ८७ ॥ जीरकाथेन पीतोऽयं रस-श्चन्द्रांगुसंज्ञकः । जरायुदोषानखिलान् योनिशूलं सुदारुणम् ॥ ८८ ॥ योनि-कण्डुं स्मरोन्मादं योनिविक्षेपणं तथा । निराकरोति सन्तापं चन्द्रांगुदेहिनं यथा ॥ ८९ ॥

पारा, अशकभास, लौहभरम, वज्रभरम,

गन्धक, इन्हें बराबर मात्रा में लेकर ग्वारपाठ के रस से धोदकर गोली बनावे। अनुपान—जीरे का काथ। इसके सेवन से सम्पूर्ण, जरायु-दोष, योनिशूल, योनि-कण्डु, स्मरोन्माद, योनि-विक्षेप आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ८७-८९ ॥

रसभस्मयोग ।

वासाकपायसहितं रसभस्म प्रयो-जितम् । प्रदरं हन्ति वेगेन सत्तौद्रं नात्र संशयः ॥ ९० ॥ रक्तपित्तहरः सर्वः प्रदरे रक्तजे विधिः । रक्तातिसारयोगांश्च सर्व-मत्र प्रयोजयेत् ॥ ९१ ॥

इति सारकौमुद्याम् ।

आधी रत्ती पारे की भस्म को शहद के माष सेवन करने के परचात् अदूसे के ऋष को पीने से प्रदर रोग शीघ्र नष्ट होता है। रक्त-प्रदर में रक्तपित्त को हरनेवाली क्रिया तथा रक्तातिसारोद्घर्षण योगों का प्रयोग करने से अत्यन्त लाभ होता है ॥ ९०-९१ ॥

सर्वाङ्ग सुन्दर ।

गगनं शोधितं ग्राह्यं पलैकनिष्टका-समम् । टङ्कणं स्याच्चतुर्थांशं शाण्डार्द्धं त्रिसुगन्धिकम् ॥ ९२ ॥ कपूरं नलदञ्चैव जातीकोपं जलंधनम् । नागेश्वर लवङ्गश्च कुष्ठं सत्रिफलं तथा ॥ ९३ ॥ जलेन घटिका कार्या द्वायया शोषयेत्तु ताम् । प्रदरं नाशयेत्सर्वं साद्रमर्दं सवेदनम् ॥ ९४ ॥ अशीतिर्वातजान् रोगान् मन्दाग्निमति-दारुणम् । सज्वरग्रहणो चैव रक्तपित्त-मरोचकम् ॥ कासान् पञ्च प्रतिरयाधं र्यासं हृष्टो गमेव च ॥ ९५ ॥

पकी हूँट के समान चर्चवाली चमर-भस्म ४ तोले, गुदागा १ तोला दामर्चापी, ह्मसायणी, मेतसाम, कपूर, नलद (काय), जाम्बयी, मुगन्धवासा, मोषा, नागेश्वर, लौह, कूट,

और त्रिफला, हर एक डेढ़-डेढ़ मासे । इन्हें एकत्र जल से पीसकर गोली बना छाया में सुखा ले । मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक । इनके सेवन से वेदना तथा अंगमर्द आदि लक्षणयुक्त प्रदर रोगों के वातज रोग, मन्दाग्नि, ज्वरयुक्त प्रदर, रक्तपित्त, अरुचि, खाँसी, प्रतिरूपाय ( जुकाम, नज़ला ), श्वास तथा हृद्रोग नष्ट होता है ॥ ६१-६२ ॥

रत्नप्रभा वटिका ।

स्वर्ण मौक्तिकमभ्रश्च नागं वद्वश्च पित्तलम् । मात्तिकं रजतं वज्रं लौहं तालश्च खर्परम् ॥ ६६ ॥ कटल्याः काकमाच्याश्च वासकस्थोत्पलस्य च । स्वरसेन जयन्त्याश्च कपूरसलिलेन च ॥ ६७ ॥ भावयित्वा यथाशास्त्रमहोरात्रमतः परम् । संमर्द्या- तन्द्रितः कुर्याद् भिपग् गुञ्जामिता वटीः ॥ ६८ ॥ एकैकाश्च प्रयुञ्जीत प्रातः राशं बलाम्बुना । उष्णेन पयसा वापि केशराजरसेन वा ॥ ६९ ॥ इयं रत्नप्रभा नाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा । सर्वस्त्री- रोगहन्त्री च बल्या वृष्यो रसायिनी १००

स्वर्णभस्म, मुद्गाभस्म, अभ्रकभस्म, सीसा की भस्म, बगभस्म, पीतलभस्म, स्वर्ण मात्तिकभस्म, चाँदीभस्म, हीरा की भस्म, लौहभस्म, शुद्ध हरताल और खपरिया की भस्म, इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र मिलाकर कदलीमूल, मकोय, अहूसा नीलकमल तथा जयन्ती के रस और कपूरोंदक से भावना देकर गोली बनावे । मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती तक । अनुपान— बलाकवाथ, गरम दूध अथवा केशराज का रस । इस गोली को प्रातःकाल सेवन करना चाहिए । यह गोली सम्पूर्ण स्त्रीरोगों को नष्ट करती तथा बलवर्द्धक, वृष्य और रसायन है ॥ ६९-१०० ॥

प्रदररिपु ।

रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसजं समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोभं

वृपरसैः । दिनं पिष्टं नाम्ना प्रदररिपु- रेपोऽपहरति द्विगुञ्जः क्षौद्रेण प्रदरमपि दुःसाध्यमपि च ॥ १०१ ॥

पारा, गन्धक, और सीसकभस्म हर एक १ तोले, रसात ३ तोले, लोभचूर्ण ६ तोले, पारा तथा गन्धक की कजली करके शेष द्रव्य इसमें मिला ले, पश्चात् अहूमे के पत्तों के रस से घोटकर दो २ रत्ती की गोलियाँ बना ले । अनुपान— शहद । इसके सेवन से कष्टसाध्य प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

प्रदरारि रस ।

वज्रायःफणिकेनारच रसः पद्मगुण- जारितः । मूलं रक्तोत्पलभगं रक्तचन्दन- मेव च ॥ १०२ ॥ समं सर्वमशोकस्य काथैः सम्मर्थ यत्नतः । चणकाभा वटी कार्या शोककाथैः पिवेदनु ॥ १०३ ॥ प्रदरारिरसो हन्ति द्विविधं प्रदरामयम् । वस्तौ च वेदनां रक्तस्त्रावं घोरं ज्वरं तथा ॥ १०४ ॥ मूत्राधिक्यादिकारं चैव भास्करस्तिमिरं यथा । अथवा त्वगशोकस्य गुडूची वासकत्वचः ॥ १०५ ॥ रसाञ्जनं मुस्तकश्च रक्तचन्दनमेव च । एषामनु- पिवेत् काथं सर्वप्रदरशान्तये ॥ १०६ ॥

वज्रभस्म, लौहभस्म, अफीम, पद्मगुण जारित गन्धक, रससिन्दूर, लाल कमल की जड़, लाल चन्दन, इन्हें बराबर मात्रा में लेकर अशोक की छाल के क्वाथ से घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बनावे । अनुपान—अशोक की छाल का क्वाथ अथवा अशोकछाल, गिलोय अहूमे की छाल, रसात, मोथा और लाल चन्दन का क्वाथ । इस रस के सेवन से सम्पूर्ण प्रदर शान्त होते हैं । यह रवेतप्रदर, रक्तप्रदर, बस्ति की वेदना, रक्तवाच, घोरज्वर तथा बहूमूल आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ १०२-१०६ ॥





अशोकारिष्ट ।

अशोकस्य तुलामेकां चतुर्दशे जले पचेत् । पादशेषे रसे पूते शीते पलशत द्वयम् ॥११७॥ दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलपोडशिकं मतम् । अजार्जी मुस्तकं शुण्ठीं दार्व्युत्पलफलत्रिकम् ॥ ११८ ॥ आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनं च विनिक्षिपेत् । चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥११९॥ मासादूर्ध्वं च पीत्वैनमसृग्दररुजां जयेत् । ज्वरं च रक्त्रपित्तशोमन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ १२० ॥ मेहशोथारुचिहरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः ॥१२१॥

अशोक की छाल ५ सेर । जल १ मन ११ सेर १६ तोले और अचशिष्ट काथ १२ सेर ६४ तोले । ठंडा करके छान ले, परचात् उसमें १० सेर गुड, धाय के फूल ६४ तोले, काला जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दाहद्वदी, कमल, त्रिफला, धाम की गुठली की मींगी, जीरा, अडूसा और लालचन्दन; प्रत्येक चार-चार तोले । सबका चूर्ण करके काथ में मिला दे और घड़े में भरकर मुख बन्द करके १ महीने तक रखा रहने दे । परचात् छानकर काँच के पात्र ( बोटलों ) में रख ले । मात्रा—षलानुसार ११ तोले से २॥ तोले तक इसके पीने से रक्तप्रदर, ज्वर, रक्त्रपित्त, बवासीर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, प्रमेह, शोथ और अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ११७-१२१ ॥

पत्राङ्गाम्बय ।

पत्राङ्गं खदिरं वासा शाल्मलीकुसुमं पला । भल्लातकं सारिषे द्वे जवाकुसुममस्फुटम् ॥ १२२ ॥ आम्रास्थि दावीं भूनिम्ब आफकफलजीरकम् । लौहं रसाञ्जनं धिल्वं केशराजं त्वचं तथा ॥१२३॥ कुंकुमं देवकुसुमं प्रत्येकं पलमम्भितम् ।

सर्वं सुचूर्णितं कृत्वा द्राक्षायाः पल-विंशतिम् ॥ १२४ ॥ धातकीं पोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् । शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यार्द्धतुलां तथा ॥ १२५ ॥ एकीकृत्य क्षिपेद्भाण्डे निदध्यान्मासमात्र-कम् । हन्त्युग्रं प्रदरं श्वेतमरुणं च सवेदनम् ॥ ज्वरं पाण्डुं तथा शोफं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ १२६ ॥

पतङ्गकाष्ठ, खैर, अडूसा, सेमर का फूल, खरेंटी, भिलावों, सारिवा, कृष्णसारिवा, गुडहर की धिना फूली कली, धाम की गुठली की मींगी, दाहद्वदी, चिरायता, पोस्ते की डोही, जीरा, लोहभस्म, रसीत, बेलगिरी, भँगरा, दालचीनी, केशर और लौह, प्रत्येक चार-चार तोले लेकर खूब महीने चूर्ण बनावे । दाख १ सेर, धाय के फूल ६४ तोले । जल २५ सेर ४८ तोले, शर्कर ५ सेर और शहद २॥ सेर; सबको एकत्र मिट्टी के घड़े में भर कर और मुख बन्द करके १ महीना रखा रहने दे । परचात् छानकर काच के बर्तन में रख ले । मात्रा—११ तोले से २॥ तोले तक । यह पीढा-युक्त अत्यन्त प्रचण्ड रक्त और श्वेतप्रदर, ज्वर, पाण्डु, शोथ, मन्दाग्नि और अजीर्ण को नष्ट करता है ॥ १२२-२६ ॥

प्रियंग्वादि तैल ।

प्रियंगूत्पलयष्ट्याद्वफलत्रिकरसाञ्जनैः । चन्दनद्वयमङ्घ्रिशाशताहासर्जसैन्धवैः ॥ १२७ ॥ मुस्तमोचरसानन्तावायसीधिल्व-यालकैः । कल्कैः करिकणाकृष्णाकाको-लीयुगलैस्तथा ॥ १२८ ॥ गन्धद्रव्यैश्च निखिलैश्छागीक्षीरेण मस्तुना । दावीं-काथेन च पचेत् तैलं तिलसमुद्भवम् ॥ १२९ ॥ मियंग्वाद्यमिदं तैलं प्रदरं योनि-जान् गदान् । ब्रह्मणीमतिसारं च हन्याद् गर्भस्य रक्षणम् ॥ १३० ॥

कक के लिए प्रियंगु के फूल, कमल, मुलेठी, त्रिफला, रसौत, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, मंजीठ, सौंफ, राल, संधानमक, नागरमोधा, मोचरस, अतन्तमूल, मकोय, बेलगिरी, नेत्रबाला, गजपीपरि, पीपरि, काकोली, क्षीरकाकोली ; प्रत्येक दो-दो तोले । बकरी का दूध ८ सेर, दही का तोड़ ८ सेर और दारुहल्दी का काथ ८ सेर । तिल तेल २ सेर । विधिपूर्वक पाक करके फिर संपूर्ण मुगन्धित द्रव्यों का प्रक्षेप देकर तैल सिद्ध करे । यह प्रियंगुवादि तैल प्रदर, योनिरोग, ग्रहणी और अतिसार को नष्ट कर गर्भ की रक्षा करता है ॥ १२७-१२८ ॥

स्त्रीरोगाधिकार में योनिव्यापच्चिकित्सा ।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् । वस्त्यभ्यङ्गपरीपेकप्रलोपाः पिचु-धारणम् ॥ १३१ ॥

योनि के रोगों में वातनाशक उपचार, उत्तर-वर्षित, मालिश, परिपेक, लेप और पिचु धारण करना, योनि में औषधियों के तेल या जल में भिगोई हुई रई रखना हितकर होता है ॥ १३१ ॥

वचोपकुञ्चिकाजाजी कृष्णा वृषक-सैन्धवम् । अजमोदां यवत्तारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ १३२ ॥ पिष्ट्वा प्रसन्नया-लोड्य खादेत्तदघृतमर्जितम् । योनिव्याप-त्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ १३३ ॥

वच, काला जीरा, मकेद जीरा, पीपरि, अरूसा, संधानमक, अजमोद, लवणसार, घोता की जड़ और गन्धक ; इनको पीसकर दो मासे पूर्ण को २ मासे घी में भूनकर २ तोले प्रमथा ( निर्मलमुरा ) में घोड़कर गाना चाहिए । इसके सेवन करने से योनिरोग हृद्रोग, गुल्म और बवाभीर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १३२-१३३ ॥

गुडूचीत्रिफलादन्तीफार्थश्च परिपे-

चनम् । नतवार्त्ताकिनीकुण्डसैन्धवामर-दारुभिः ॥ तैलात् प्रसाधितात् कार्यः पिचुर्योनौ रूजापहः ॥ १३४ ॥

गिलोय, त्रिफला और दन्ती ( जमाल-गोटा की जड़ ) के काठे से योनि को धोने से तथा तगर, कटेरी, कूट, संधानमक और देव-दारु के कक से सिद्ध किये हुए तेल का फीया रखने से योनि पीड़ा नष्ट होती है ॥ १३४ ॥

पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्ग-पिचुक्रियाः । शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ १३५ ॥

पित्तप्रधान योनिरोगों में शीतल तथा पित्त-नाशक सेक, अभ्यंग और पिचु धारण करना चाहिए एवं स्निग्ध करने के लिए घृत से चुपटना चाहिए ॥ १३५ ॥

योण्यां वलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोप्या-मौषधम् ॥ १३६ ॥

कफ से दूषित योनियों में रूखी और गर्म चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १३६ ॥

पिप्पल्या मरिचैर्मपैः शताहाकुष्ठ-सैन्धवैः । वर्त्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धाट्या योनिविशोधिनी ॥ १३७ ॥

पीपरि, कालीमिर्च, उदुद, सौंफ, कूट और संधानमक, इनको समभाग ले पीसकर तर्जनी श्रेणुनी के समान मोटी लथी बन्नी बनाकर योनि में रखने से कफदूषित योनि शुद्ध होती है ॥ १३७ ॥

द्विसाकल्कं तु वातार्त्ता कोप्यगमभ्यज्य धारयेत् । पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामा-दीनां कफोत्तरा ॥ १३८ ॥

वातरोग से पीड़ित योनि को तेल में गुड़कर उसमें विपिन गरम शशमांगी का बज्र धारण करना चाहिए । तथा वैषिक योनिरोग में पञ्चवल्कल का कक और बज्र योनिरोग में श्यामा-आदि का बज्र धारण करना चाहिए ॥ १३८ ॥

शूषिकाभांससंयुक्तं तैलमातपभावितम् ।  
अभ्याद्वाद्दन्ति योन्यशः स्वेदस्तन्भांस-  
सैन्धवैः ॥ १३६ ॥

बुधियां का भांस और तेल को मिलाकर धूप में रख दे, जब जल का अंश सूख जाय तब उसको योनि में मर्दन करना चाहिए अथवा चूहे के कुटे हुए भांस में संधानमक मिला गर्मकर योनि का स्वेदन करना चाहिए । इससे योन्यशं रोग नष्ट होता है ॥ १३६ ॥

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं सप्ताह-  
भावितम् । स्रोतसां शोधनं कण्डूवलेद-  
गोपहरं च तत् ॥ १४० ॥

गी के पित्ते में अथवा मछली के पित्ते में रेशम के महीन कपड़े को सात दिन तक भावित कर योनि में रखने से योनि शुद्ध होती है तथा खुजली, क्वेद और शोष नष्ट होता है ॥ १४० ॥

वामिन्याः पूतियोन्याश्च कर्कष्यः  
स्वेदनोऽपि वा । क्रमः कार्यस्ततः स्नेह-  
पिचुभिस्तर्पणं भवेत् ॥ १४१ ॥

वामिनी तथा दुर्गन्धवाली योनि का स्वेदन से शुद्ध करके फिर तेल आदि में भिगोया हुआ रई का फाया रखकर तर्पित करना चाहिए ॥ १४१ ॥

शल्लकीजिङ्गिनीजम्बूधवत्वकपञ्च-  
पल्लवैः । कृपायैः साधितः स्नेहः पिचुः  
स्याद्विप्लुतापहः ॥ १४२ ॥

शलई, जिगनी, जामुन और धव की छाल तथा बरगद, मूलर, पकीपिया, पीपल और बेत की छाल; इनके चतुर्गुण भाँडे से सिद्ध किये हुए तेल का फाया योनि में रखने से विप्लुता नामक योनिरोग नष्ट होता है ॥ १४२ ॥

कर्णिन्यां वृत्तिकाकुष्ठपिप्पल्यकौप्र-  
सैन्धवैः । वस्तक्षीरे कृता धार्या सर्वं च  
कफलुद्धितम् ॥ १४३ ॥

कर्णिनी योनि में कूट, पीपरि, मदार के पत्ते और संधानमक; इनको बकरी के दूध में घोटकर बत्ती बनाकर योनि में रखना चाहिए और कफनाशक सब चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १४३ ॥

त्रैवृतं स्नेहनं स्वेद उदावर्त्तानिला-  
त्तिपु । तदेव च महायोन्यां स्रस्तायां च  
विधीयते ॥ १४४ ॥

उदावर्त तथा वातिक योनिरोग में निसोत से सिद्ध तेल द्वारा स्नेहन प्रयोग कर स्वेदन करना चाहिए । महायोनि तथा स्रस्ता योनि में भी यही विधान करना चाहिए ॥ १४४ ॥

आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डख-  
ण्डीकृतं यत्, तैले पाच्यं भवति नियतं  
यावदेतन्न सम्यक् । तत्तैलाह्नं वसनम-  
निशं योनिभागे दधाना हन्ति व्रीडाकर-  
भगफलं नात्र सन्देहयुद्धिः ॥ १४५ ॥

चूहे के मांस को टुकड़े-टुकड़े करके तेल में पकावे । जब अच्छे प्रकार तेल सिद्ध हो जाय तब उसमें कपड़ा भिगोकर हरदम योनि में रखने से लज्जाकारक योनिक्वद रोग निःसन्देह नष्ट होता है ॥ १४५ ॥

शतपुष्पा तैललेपात्तुवरीदलजात्तथा ।  
पेटिकामूललेपेन योनिर्भिन्ना प्रशा-  
म्यति ॥ १४६ ॥

सौंफ के तेल के लेप से अथवा अरहर के पत्तों से सिद्ध किये तेल के लेप से तथा पादल की जड़ के लेप से फटी हुई योनि ठीक हो जाती है ॥ १४६ ॥

सुपत्रीमूललेपेन प्रविष्टा तु बहिर्भवेत् ।  
योनिर्मुपासताभ्यङ्गान्निःसृता प्रविशे-  
दपि ॥ १४७ ॥

सौंफ की जड़ का लेप करने से भीतर की गई हुई योनि बाहर आ जाती है तथा मूषक की बर्षी मसलने से बाहर निकली हुई योनि भीतर चली जाती है ॥ १४७ ॥

लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिदाढ्यं करोति  
च । वेतसमूलनिष्काथत्वालनेन तथैव  
च ॥ १४८ ॥

लोध और कहुई तूँबी का लेप करने से  
योनि कठिन होती है । तथा बंत की जड़ के  
काथ से धोने से भी योनि दृढ़ हो जाती  
है ॥ १४८ ॥

वचा नीलोत्पलं कुपुं मरिचानि तथैव  
च । अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरण-  
मुत्तमम् ॥ १४९ ॥

वच, नीलकमल, कूट, कालीमिर्च, अश्वगन्ध  
और हल्दी का लेप करने से अथवा अश्वगन्ध  
करने से योनि अच्छी तरह दृढ़ हो जाती  
है ॥ १४९ ॥

पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वि-  
तम् । मधुना योनिमालिष्य गाढीकरण-  
मुत्तमम् ॥ १५० ॥

बाक के बीज और गुलर के फलों को तिल के  
तेल के साथ पीस कर और शहद मिलाकर लेप  
करने से योनि दृढ़ होती है ॥ १५० ॥

मदनफलमधुकर्पूरप्रूरितं कामिनीज-  
नस्य । चिरगलितयौवनस्य च वराङ्गम-  
तिगाढं सुकुमारम् ॥ १५१ ॥

मैदफल, कपूर और शहद; इनको एकत्र  
पीसकर योनि में भरने से अतिवृद्धा स्त्रियों की  
योनि भी अत्यन्त दृढ़ और कोमल हो जाती  
है ॥ १५१ ॥

पञ्चपल्लवयष्ट्याहमालतीकुसुमैर्घृतम् ।  
रविपक्रमन्यथा वा योनिगन्धनिवार-  
णम् ॥ १५२ ॥

घाम, जामुन, बैया, विजोरा और बेल;  
इनके फले, मुञ्जेटी और मालती के पत्र; इनके  
कण्डू से घृत को मन्दाग्नि में घपया सूर्य के  
तेज (धूप) से पकाकर लगाने से योनि की  
दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है ॥ १५२ ॥

योन्याक्षेप का निदान और लक्षण ।  
मास्ते विगुणे योनौ स्पर्शस्यातिमृ-  
द्धता । वित्तेपणं मुखस्यास्यास्तत्स्पर्शो  
तीव्रवेदना ॥ १५३ ॥ योन्याक्षेपवती  
नारी न सहेतरतिक्रियाम् । यदि गच्छेद्-  
बलाद्भर्त्ता तां सातिव्यथिता भवेत् ॥  
१५४ ॥ नोपसर्पति भर्त्तारं सदा साध्व-  
सविहला । पत्या तिरस्कृता दुःखान्मृत्यु-  
मात्मन इच्छति ॥ १५५ ॥ उद्वेगो वद्वि-  
हानिश्च निद्रारूपत्वं तथा क्रमात् । वस्ति-  
दाहो व्यथा पृष्ठेऽशक्तिश्चक्रमणोऽपि च ॥  
१५६ ॥ दौर्बल्यं वर्णाहानिश्च तथोत्सा-  
हस्य संज्ञयः । योन्याक्षेपगदस्यैताः प्रोक्ता  
आकृतयो बुधैः ॥ १५७ ॥

वायु की विररीतता से योनि में वायु की  
अतिवृद्धि होने से योनि का मुख फड़कने  
लगता है और वहाँ स्पर्श करने से तीव्र वेदना  
होती है । योनि आक्षेप जिस स्त्री को होता है  
वह मैथुन क्रिया को सहन नहीं कर सकती ।  
यदि पुरुष यलपूर्वक मैथुन करता भी है तो स्त्री  
को महान् कष्ट होता है । यदि पति को प्रसन्न  
नहीं कर सकती, अतः सदैव ही दुखी रहती  
है । पति के तिरस्कार से दुखी होकर मरने  
(आत्महत्या) की भी इच्छा करती है । उद्वेग,  
अग्निमान्द्य, निद्रा की कमी, क्रम से मूत्राशय  
में दाह और वेदना, पीठ में कमजोरी, चलने  
में कमजोरी, दुर्बलता, वर्णाहानि (रंग की  
उज्ज्वलता में कमी) और उरसाह की कमी  
होती है । ये सब योनि-आक्षेप रोग के लक्षण  
आयुर्वेदज्ञ पंडितों ने कहे हैं ॥ १५३-१५७ ॥

योन्याक्षेप की चिकित्सा ।

नागदेन गदः साध्यः शस्त्रेणार्थप्रसा-  
ध्यते । शस्त्रं प्रयोजयेदत्र भिषक् शस्त्र-  
विगारदः ॥ १५८ ॥ पाययित्वा सुरां  
तीव्रां गदिनीं सव्यशायिनीम् । उच्चानाम-

धवा कृत्वा योनौ शस्त्रं प्रवेश्य च ॥  
१५६ ॥ हीमन्तं तरयाच्छिद्य मुखं योने-  
र्विदार्य्य च । तूलेनारुध्य वधनीयाल्लुहस्त-  
रिचकित्सकः ॥ १६० ॥

हीमन्तं योन्यद्भेदम् ।

जब योनि आघेप रोग औषध से आराम नहीं होता है, तब वहाँ शस्त्र-चिकित्सा करनी चाहिए। शस्त्रविशारद वैद्य रोगिणी को तीव्र शराय पिलाकर, ऊपर को सीधी सुलाकर योनि में शस्त्र प्रवेश करके 'हीमन्त' नामक योनि के प्रंग को शीघ्रता से काट कर योनि के मुख को चीर दे और रुई रखकर हल्के हाथ से बाँध दे ॥ १५६-१६० ॥

अवरोधे तु मूत्रस्य वर्त्तयेत् तच्छला-  
कया । वेदनां वारयेद्वैद्यः फणिकेन-  
प्रयोगतः ॥ १६१ ॥ पुनर्वस्रद्वयान्ते तां  
पाययित्वा सुरां भिषक् । तूलं निःसार्य्य  
योनिस्थंमुखं योनेः प्रसार्य्य च ॥ १६२ ॥  
तदधः कर्तनं कुर्यादङ्गुलार्द्धप्रमाणतः ।  
इत्येवं कर्मणा व्याधिर्योन्यात्पेपः प्रशा-  
म्यति ॥ १६३ ॥

मूत्रावरोध होने पर शलाका डालकर मूत्र निकालना चाहिए और अफीम का प्रयोग करना चाहिए, जिससे वेदना बन्द हो जाय। फिर २-३ दिन बाद शराय पिलाकर रुई को निकालकर योनि के मुख को चौड़ाकर घाधा घंगुल के करीब नीचे से काटना चाहिए, इस क्रिया से योनि का आघेप रोग शमन हो जाता है ॥ १६१-१६३ ॥

योनि-आघेप रोग में पथ्य और अपथ्य ।

अत्र पथ्यं घृतं दुग्धं गोधूमचणका-  
दयः । यूपश्लामादिसंभूत उग्ररीर्यं हितं  
नहि ॥ १६४ ॥

यहाँ घी, दूध, गेहूँ, चना आदि पथ्य है ।

यकरे आदि के मांस का यूप तथा उग्रवीर्य  
अन्नपानादि हितकर नहीं है ॥ १६४ ॥

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनमू-  
लयष्ट्याहैः । सस्तुक्ष्णीरैर्वर्त्तियेर्निगता  
कुमुमसज्जननी ॥ १६५ ॥

कडुई तूबी के बीज, दन्ती (जमाल गोटे की जड़), पीपरि, गुड़, मैतफल की जड़, मुलेठी, धीर धूहर के दूध से बत्ती बनाकर योनि में रखते से नष्ट हुआ मासिक धर्म फिर होने लगता है ॥ १६५ ॥

सकाञ्जिक जवापुष्पं भृष्टं ज्योतिष्म-  
तीदलम् । दूर्वापिष्टं च संभार्य्य वनिता  
त्वार्तवं लभेत् ॥ १६६ ॥ दूर्वापिष्टं तण्डु-  
लयोगात् इति ज्ञेयम् ।

गुड़हर के फूलों को कांजी में पीसकर पीने से अथवा मालकाँगनी के पत्तों को पीसकर धीरे धीरे में भूनकर खाने से तथा दूब और चावलों को पीसकर पूषा बनाकर खाने से स्त्री रजोवती होने लगती है ॥ १६६ ॥

धान्यज्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो-  
हरत् । शेलुच्छदमिश्रपिष्टभक्षणं च तदर्ध-  
कृत् ॥ पाठापत्रं ऋतुस्नाता पीतया गर्भं  
न धारयेत् ॥ १६७ ॥

आँवले, अजन (सुरमा) और हड़ के चूर्ण को जल के साथ पीने से अथवा लसोड़े के पत्ते और चावलों को पीसकर खाने से रजोदर्शन बन्द हो जाता है। तथा ऋतुस्नान के अनन्तर पाद के पत्तों को पीसकर पीने से गर्भस्थिति नहीं होती है। मात्रा—एक रत्ती ॥ १६७ ॥

रसाञ्जनं हैमवती वयस्था चूर्णाकृतं  
शीतजलेन पीतम् । रजोविनाशं नियतं  
करोति शङ्खात्र कागर्भसमागमस्य १६८ ॥

रसौत, हड़ और चाँवले का चूर्ण शीतल जल के साथ पीने से मर्दा के लिये रजोघोष

हो जाता है, फिर गर्भस्थिति होने की तो शंका ही क्या है। कोई-कोई रसौत के स्थान में काला सुरमा लेते हैं ॥ १६८ ॥

पुण्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्राङ्गायास्तु  
कन्यया । पिष्टं मूलं दुग्धघृतमृतौ पीतं  
तु पुत्रदम् ॥ १६९ ॥

लक्ष्मणा और सुदर्शन का मूल ( किसी के मत से चक्रविह्वयुक्त लक्ष्मणा का मूल ) पुण्य नक्षत्र में उखाड़ कर लावे और कन्या के हाथ से पिसवाकर दूध और घृत के साथ श्लुत्नान के बाद तीन दिन पीवे तो पुत्रोत्पत्ति होती है। सन्त्रान्तर के मतानुसार नस्य भी ले सकते हैं। कई टीकाकार कन्या से ग्वारपाठे का ग्रहण करते हैं ॥ १६९ ॥

सुवर्णस्य रूप्यकस्य चूर्णे ताम्रस्य  
चाज्यसम्भिन्ने । पीने शुद्धे क्षेत्रे भोजयो-  
गाद भवेद्गर्भः ॥ १७० ॥

सुवर्णभस्म, चांदी की भस्म और ताम्रभस्म की घृत के साथ खाने से गर्भाशय शुद्ध होकर गर्भस्थिति हो जाती है ॥ १७० ॥

कृत्वा शुद्धौ स्नानं विलङ्घ्य दिव-  
सान्तरे ततः प्रातः । स्नात्वा द्विजाय  
दत्त्वा भक्त्या संपूज्य लोकनाथेशम् ॥  
१७१ ॥ श्वेतवलांग्रियष्टिकर्पं पलं तु  
शर्करायाः । पिष्ट्वा कवर्णजीवद्वत्सैकव  
र्णाया गोस्तु दुग्धेन ॥ १७२ ॥ समधि-  
कघृतेन पेयं नात्र दिने देयमन्नमन्यच ।  
क्षुधिने सदुग्धमन्नं दद्यादापुरुषसन्निधे-  
स्तस्याः ॥ १७३ ॥ समदिवसे शुभयोगे  
दक्षिणपार्श्वविलम्बिनी धीरा । त्यक्तस्य-  
न्तरसङ्गमहृष्टमनसोऽतिदृढधातोश्च १७४ ॥  
पुंसः मद्रममात्राङ्गमने पुत्रं ततो निय-  
तम् ॥ १७५ ॥

रजस्वला स्त्री शुद्ध स्नान करके उपवास करे  
और दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके  
भक्ति से भगवान् का पूजन करे और ब्राह्मण  
को दान दे, पश्चात् सक्रोद खरेटी की जड़ १  
तोला, मुलेठी १ तोला और शक्कर ४ तोले;  
इनको जीबद्वत्सा और एक वर्णवाली ( जिसके  
बच्चे भरते न हों और बड़दा और गऊ का  
एक ही वर्ण हो उस ) गौ के दूध में पीसकर  
घी के साथ पीवे। इस दिन कुछ अन्न  
नहीं खाना चाहिए। पति का संग करने से  
पहले यदि भूख लगे तो उसी गौ का दूध अन्न  
के साथ खाना चाहिए जब सम ६-८-१०  
१२-१४ दिन और शुभ योग हो तब दहिने  
पसवाई लेटकर धैर्य के साथ प्रसन्न मन तथा  
अधिक शुक्रवाले पति के साथ प्रसंग करने से  
श्वरय पुत्र की प्राप्ति होती है। किन्तु पुरुष की  
तीन-तीन दिन का अन्तर देकर प्रसंग करना  
चाहिए ॥ १७१-१७५ ॥

गोष्ठजातवटस्य मागुत्तरशाखजं शुभे ।  
शुद्धे मापौ तथा गौरसर्पपौ दधियाजितौ ॥  
पुण्यापीतौ द्रुतापन्नसत्त्वायाः पुत्र-  
कारकौ ॥ १७६ ॥

गोशाला में उत्पन्न वटगद् की पूर्ण और  
उत्तर की शाखा से दो पत्राङ्कुर, दो उड़द और  
दो सफेद सरसों के दाने लेकर सबको पीस  
कर और दही मिलाकर पुण्यनक्षत्र में थोड़े  
दिन की गर्भयती पीवे तो उसके पुत्र होता  
है ॥ १७६ ॥

पत्रमेकं पलाशस्य गर्मिणी पयसा-  
न्वितम् । पीत्वा च लभते पुत्रं रूपवन्तं  
न संशयः ॥ १७७ ॥

टाक के १ पत्ते को पीसकर दूध के साथ  
गर्मिणी स्त्री पीवे तो निरसन्देह रूपवान् पुत्र  
को पाती है ॥ १७७ ॥

फलकल्याण पुत्र ।

मक्षिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा

बला । मेदे पयस्या काकोली मूलं चैवा-  
 श्वगन्धजम् ॥ १७८ ॥ अजमोदा हरिष्टे  
 द्वे हिंगुः कटुकरोहिणी । उत्पलं कुमुदं  
 द्राक्षाकाकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ १७९ ॥  
 एतेषां कार्पिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।  
 शतावरीरसत्तीरं घृतादेयं चतुर्गुणम् ॥  
 १८० ॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु  
 वृषायते । पुत्रान् सञ्जनयेन्नारी मेघाढ्यान्  
 प्रियदर्शान् ॥ १८१ ॥ या चैवास्थि-  
 रगर्भा स्याद् या च वा जनयेन्मृतम् ।  
 अल्पायुषं वा जनयेद् या च कन्यां प्रसू-  
 यते ॥ १८२ ॥ योनिदोषे रजोदोषे परि-  
 स्त्रावे च शस्यते । प्रजावर्द्धनमायुष्यं  
 सर्वग्रहनिवारणम् ॥ १८३ ॥ नाम्ना  
 फलधृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ।  
 अनुक्त्वा लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकि-  
 त्सकाः ॥ १८४ ॥ जीवद्वत्सैकवर्षाया  
 घृतमत्र तु गृह्यते । अरण्यगोमयेनापि  
 वह्निज्वाला प्रदीयते ॥ १८५ ॥

कक के लिए मंजीठ, मुलेठी, कूट,  
 त्रिफला, खोंद, खरेटी, मेदा, महामेदा, दूधी  
 काकोली, अश्वगन्ध की जड़, अजमोद, हल्दी,  
 दारुहल्दी, हींग, कुटकी, कमल, कुमोदिनी  
 ( कोकाबेली ), दाख, चीरकाकोली, चन्दन  
 और लालचन्दन ; प्रत्येक एक-एक तोला ।  
 एकवर्षा बलुदेवाली गौ का घृत १२८ तोले ।  
 शतावरी का रस ६ सेर ३२ तोले और दूध  
 ६ सेर ३२ तोले । विधि से घृत सिद्धकर जो  
 मनुष्य पीता है वह बिल ( सोंद ) की मुख्य  
 बलसंपन्न हो स्त्रियों में रमण करता है । जो  
 स्त्री इसका सेवन करती है, वह प्रियदर्शन तथा  
 बुद्धिमान् पुत्रों को उत्पन्न करती है । जिसके  
 गर्भ न रहता हो या मरा हुआ पुत्र उत्पन्न  
 होता हो अथवा अल्प आयुवाला पुत्र होता

हो उसके दीर्घायु पुत्र होता है । यह घृत  
 योनिदोष, रजोदोष और गर्भछाव में हितकर  
 है एवं प्रजा बढ़ानेवाला, आयु देनेवाला और  
 सब ग्रहों का निवारण करनेवाला है । यह  
 अश्विनीकुमारों का कहा हुआ फलघृत है ।  
 चिकित्सक लोग बिना कही हुई लक्ष्मणा की  
 जड़ को भी इस प्रयोग में डालते हैं । मात्रा ६  
 माशे से १ तोला । एक ही रगवाली और जीवित  
 बलुदेवाली गाय का घी लेकर जंगली कंदों की  
 अग्नि से सिद्ध करना चाहिए ॥ १७८-१८२

काथेन ह्यगन्धायाः साधितं सघृतं  
 पयः । ऋतुस्नाता बला पीत्वा गर्भं धत्ते  
 न संशयः ॥ १८६ ॥

अश्वगन्ध के काढ़े से दूध को पकाकर और  
 उसमें घृत डालकर जो स्त्री ऋतुस्नान के  
 पश्चात् पीती है वह निस्सन्देह गर्भ को धारण  
 करती है ॥ १८६ ॥

पिप्पलीमृद्भवेरं च मरिचं नागके-  
 शरम् । घृतेन सह पातव्यं बन्ध्यापि  
 लभते सुतम् ॥ १८७ ॥

पीपरी, सोंद, कालीमिर्च और नागकेशर;  
 इन सबके घूर्ण को घृत के साथ पान करके  
 बन्ध्या भी पुत्र उत्पन्न करती है ॥ १८७ ॥

विश्वयत्नघृत ।

केशराजस्य निगुंढ्याः शतावरीयाः कुश-  
 स्य च । विदार्याः स्वरसेनापि बालेन पयसा  
 तथा ॥ १८८ ॥ कल्कैर्दाडिमवित्वाद्यै-  
 र्लवङ्गैलापलत्रिकैः । महता पञ्चमूलेन  
 द्राक्षाचन्दनचम्पकैः ॥ १८९ ॥ निशा-  
 दारुनिशाभ्याश्च वह्निना लवणैरपि ।  
 तोयपिष्टैः पचेत्सर्पिः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥  
 १९० ॥ विरजवल्लभनामेदं घृतं स्त्रीगद-  
 मूदनम् । वल्यं रसायनं वृष्यं बालानां  
 चाङ्गवर्द्धनम् ॥ १९१ ॥



गोधृत २८ तोले, भंगरा का रस १८८ तोले, सम्भालू का रस १२८ तोले, शतावरी का रस १२८ तोले, कुश की जड़ का काय १२८ तोले, बिदारीकन्द का रस १२८ तोले, बकरी का दूध १२८ तोले । कक के लिए—अनार की छाल, बेलगिरी, मोथा, लौंग, इलायची, त्रिफला, बृहत्पत्रमूल, दाख, लालचन्द्रन, चम्पक-पुष्प, हल्दी, दारहल्दी, चित्रक, सेंधानमक, सब मिलाकर ३२ तोले । विधिपूर्वक मिट्टी के बर्तन में पकावे । मात्रा—आधा तोला । यह घृत स्त्रीरोग को नष्ट करता है तथा बलकारक, रसायन, वीर्यवर्धक एवं बालकों के अंग की पुष्टि करनेवाला है ॥ १८८--१९१ ॥

### हयमारादि तैल

हयमारामृताग्न्योपसिन्धुतैः सरसो-  
ञ्जनैः । त्रिवृद्धन्तीनिशाभिश्च पथ्याकटफल-  
मुस्तकैः ॥ १९२ ॥ इन्द्रवारुणिकापाठा-  
नागकेशरचित्रकैः । सिद्धं तैलं निहन्त्याशु  
योनिक्वण्डं सुदारुणम् ॥ १९३ ॥ भगा-  
ङ्कुरस्य संवृद्धिं स्मरोन्मादश्च योपिताम् ।  
योनिव्रणश्च तत्क्लेदं तदर्शासि च  
सर्वथा ॥ १९४ ॥

तैल १२८ तोले । कक के लिए कनेर की जड़, गिलोय, त्रिकटु, सेंधानमक, रसौत, निसोत, दन्तीमूल, हल्दी, इड़, कायफल, मोथा, इन्द्रायण, पाठा, नागकेशर, चित्रक, सब मिलाकर ३२ तोले । इनसे विधिपूर्वक तेल पकावे । इस तेल के प्रयोग से दारुण योनिक्वण्ड, भगाङ्कुर-पृथि, स्त्रियों का स्मरोन्माद, योनिव्रण, योनि-बन्धेद तथा योनिवर्श नष्ट होते हैं । यहाँ पर कई घेघ सर्वप तैल का पाक करते हैं ॥ १९२-१९४ ॥

### द्विग्वादि तैल ।

द्विग्गुकासीससिन्धुतैः शुण्ठीपत्रक-  
चित्रकैः । सहासाराग्निकेन्दुत्तारत्रयनि-  
शायुगैः ॥ १९५ ॥ विपकं सार्पणं तैलं

पुष्पसञ्जनं परम् । रजःकृच्छ्रहरश्चापि  
योनिशूलनिमूदनम् ॥ १९६ ॥

सरसों का तेल १२८ तोले । कक के लिए होंग, हीराकसीस, सेंधानमक, सोंठ, तेजपात, चित्रक, मुसम्बर, समुद्रक्रेन, कपूर, जवाखार, सजीखार, सुहागा, हल्दी, दारहल्दी सब मिलाकर, ३२ तोले । इनसे विधिपूर्वक तेल पकावे । इसके प्रयोग से मसिक रज स्त्राव होता है । यह तेल रजःकष्ट एवं योनिशूल को नष्ट करता है ॥ १९६-१९६ ॥

### सुधाकर तैल ।

बलायाः केशराजस्य दूर्वायाश्च  
धवस्य च । पारिभद्रस्य पद्मस्य स्वरसेन च  
मस्तुना ॥ १९७ ॥ तण्डुलस्य च तोयेन  
लाक्षायाः सलिलेन च । काञ्चिकेन तथा  
कल्केर्धात्रीघ्नान्यकमुस्तकैः ॥ १९८ ॥  
काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकोत्पलैः ।  
वाजिगन्धातुगाक्षीरीशिलाजतुरसाञ्जनैः ॥  
१९९ ॥ यष्टीमधुकमञ्जिष्ठामुरामासीयवा-  
सकैः । गन्धद्रव्यैश्च निखिलैः पचेत् तैलं  
तिलोद्भवम् ॥ २०० ॥ सुधाकराभिधं  
तैलमेतत् स्त्रीगदसूदनम् । वल्यं रसायनं  
वृष्यमायुष्यं स्मरदीपनम् ॥ २०१ ॥

तिल तेल १२८ तोले, यलामूल का क्वाथ १२८ तोले, भंगरा का रस १२८ तोले, दूध का रस १२८ तोले, धव का क्वाथ १२८ तोले, पारिभद्र ( करहद ) की छाल का क्वाथ १२८ तोले, कमल का रस १२८ तोले, मस्तु १२८ तोले, तण्डुलोदक १२८ तोले, लाक्षाजल १२८ तोले काँजी १२८ तोले । कक के लिए—आंधला, धनियाँ, मोथा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीपक, श्वपक, नीलकमल, असगन्ध, बंश-लोचन, शिलाजीत, रसौत, मुलेंटी, मंश्रीठ, मुरामांसी, जवासा, सब मिलाकर ३२ तोले । विधिपूर्वक तेल पकाने के परचाएँ जो मिष्ठ

सकें उन सम्पूर्ण द्रव्यों से गन्धपाक करे । यह तैल स्त्रीरोग को नष्ट करता है । तथा बलकारक, रसायन, तीर्यबद्धक, आयुष्य एवं कामोद्दीपक है ॥ १६७-२०१ ॥

नष्टपुष्पान्तक रस ।

तारलौहाभ्रसौभाग्यबलिवद्गार्कसूत-  
कम् । पृथक्पलैकप्रमितं समादाय भिष-  
ग्वरः ॥ २०२ ॥ वराकुष्ठं देवदारु दन्ती  
धासा बलाऽमृता । शेफाली गोनुरश्चैव  
वेत्राग्रं बृहतीद्वयम् ॥ २०३ ॥ करञ्जश्चैव  
जीवन्ती तालीशं काकमाचिका । त्रिवारं  
भावयेत्काममेतेषां स्वरसैः पृथक् ॥ २०४ ॥  
वांशी रास्ना च मधुकं सैन्धवश्च लवङ्ग-  
कम् । दन्ती गोनुरवीजञ्ज तोलकार्दमितं  
पृथक् ॥ २०५ ॥ जयन्तीतुलसीद्रावैः  
सम्मर्द्य खलु यत्नतः । वटिकाः कारयेद्द्वौ  
रक्त्रिकाद्वयसम्भिताः ॥ २०६ ॥ रसोऽयं  
तु समाख्यातो नष्टपुष्पान्तकाभिधः ।  
योनिशूलं योनिदाहं योनिक्लेदं च दारु-  
णम् ॥ २०७ ॥ प्रणष्टपुष्पतां चैव नाश-  
यत्याशु सर्वथा । नष्टपुष्पत्वशान्त्यर्थं  
रसोऽयमतिदुर्लभः ॥ २०८ ॥

षोदी की भस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा, गन्धक, चङ्गभस्म, ताम्रभस्म और पारा हरएक ४ तोले । इन्हें त्रिफला, कूट, देवदारु, दन्तीमूल, अदुसा की छाल, बरेली की जड़, गिलोय, हारसिंगार, गोखरू, बॅत की कोपल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, करञ्ज, जीवन्ती, तालीशपत्र और मकोय इनमें से जो मिल सकें उनके रस अथवा काथ से क्रमशः तीन-तीन बार भावना दे । पश्चात् बशलोचन, रास्ना, गुलठी, सेंधानमक, लौंग, दन्तीमूल, गोखरूकीज हरएक का आधा-आधा तोला, पूर्ण भिला-  
कर जयन्ती पत्र के रस तथा तुलसी के रस से घोटकर दो-दो रत्ती की गोलीयाँ बनावे । यह

नष्ट पुष्पान्तक रस योनिशूल, योनिदाह, योनि-  
क्लेद और रजोलीप आदि व्याधियों को नष्ट  
करता है ॥ २०२-२०८ ॥

कुमारिकावटी ।

एलीयकं च काशीशं फणिकेनञ्च  
वद्गकम् । सुरप्रियञ्चेति समं जलेन परिपे-  
पयेत् ॥ २०९ ॥ वटिकाः कारयेद्द्वौ  
रक्त्रिद्वितयसम्भिताः । अनुपाने च दातव्यं  
सलिलं त्वतिनिर्मलम् ॥ २१० ॥ कुमारी-  
वटिका ह्येषा नामतः परिकीर्त्तिता । निपे-  
वितेयं हन्त्याशु योनिशूलं च वाधकम् ॥  
२११ ॥ जरायुशूलं मकल्लशूलं चैवाति-  
दारुणम् । योनेश्च व्यापदः सर्वाः सर्वथा  
नेह संशयः ॥ २१२ ॥

मुसम्बर, काशीश, अफीम, यङ्गभस्म,  
शीतलचीनी, इन्हें बराबर मात्रा में लेकर जल  
से पीसकर दो-दो रत्ती की गोलीयाँ बनावे ।  
अनुपान-स्वच्छ जल । इनके सेवन से योनिशूल,  
वाधकवेदना, जरायुशूल ( गर्भाशय के भ्रंश  
आदि से पैदा हुआ शूल ), मकल्लशूल तथा  
सम्पूर्ण योनिरोग नष्ट होते हैं ॥ २०९-२१२ ॥

विजया वटिका ।

विजयाकन्ययोः सारं रत्नोत्पलशिफा  
तथा । मयूरमूलं च समं सममेव समा-  
हरेत् ॥ २१३ ॥ सम्पेप्य वारा वटिकाः  
कुर्याद् गुञ्जाद्वयोन्मिताः । विजयावटिका  
ह्येषा महादेवेन कीर्त्तिता ॥ ११४ ॥  
सेविता शमयत्याशु दारुणं तु कटिव्य-  
धाम् । वाधकं चैव विषमं तथा कष्टरजः-  
सूतिम् ॥ २१५ ॥

भाग का सत, एलुध्या ( मुसम्बर ), झाल  
कमल की जड़, लटजारा की जड़, इन्हें एकत्र  
बराबर मात्रा में भिला जल से पीसकर दो-दो  
रत्ती की गोलीयाँ बनावे । यह गोली कष्टराजक

कमर का दर्द, मासिक धर्म के समय का कष्ट, विषमरज-स्त्राव तथा कष्टयुक्त रजःस्त्राव को नष्ट करती है ॥ २१३-२१५ ॥

रजःप्रवर्त्तिनी वटी ।

कन्यासारं च काशीसं रामठं टङ्कणं तथा ।  
समादाय समं सर्वं पेपयेत्कन्यकाद्रवैः ॥  
२१६ ॥ निर्मापयेत्त्रिपुण्ड्रयोरंकिद्वयमिता  
वटीः । शीलितेयं तु वटिका विनिहन्ति  
सुदारुणाम् ॥ २१७ ॥ रजोरोधव्यथां कष्ट-  
रजःस्त्रावव्यथां तथा । रजःप्रवर्त्तिनी ह्येषा  
नीलकण्ठेन भाषिता ॥ २१८ ॥

एलुआ ( मुमन्जर ), कशीश; हींग और सुहागा इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर ग्वार-पाठे के रस से घोंटे और दो-दो रत्ती की गोलीयाँ बनावे । इस गोली के सेवन से मासिक स्त्राव का रकना कथा वृष्ट से स्त्राव होना नष्ट होता है ॥ २१६-२१८ ॥

शिखर्यादि वर्त्तिका ।

शिखरीमूलचूर्णं च तथा गोधूमचूर्णं  
कम् । खदिरं भोगिफेनं च पृथक् मापत्रयं  
समम् ॥ २१९ ॥ आदाय वारा सम्पेप्य  
चतुर्गुञ्जोन्मिताः शुभाः । वर्त्तिकाः कारये-  
द्वैद्यो घृताक्लाञ्चैकवर्त्तिकाम् ॥ २२० ॥  
योनीं तु धारयेत्कामं रक्तातिस्रावरोधि-  
काम् । समाख्याता शिखर्यादिर्वर्त्तिका  
नामतो बुधैः ॥ २२१ ॥

लट्जरी की जड़ का चूर्ण, गोंहू का भाटा, कर्था; शुद्ध खद्रीम, हरएक ३ माशे; इन्हें जल से घोंटकर चार-चार रत्ती की बत्तियाँ बनावे । इस बत्ती पर धी चुपड़ कर योनि में रखे । यह बत्ती अधिक रजःस्त्राव को नष्ट करती है २१९-२२१ ॥

संविदासार ।

संविदामञ्जरीपत्रस्वरसं वक्षशोधि-  
त्तम् । जलस्वेदनयन्त्रेण गाढमेवं प्रकल्प-

येत् ॥ २२२ ॥ यावन्मुद्राङ्कणं तत्र भवेद्वा  
गोलकं तथा । रक्त्रिपादमितादूर्द्धरक्त्रिमात्रं  
प्रदापयेत् ॥ २२३ ॥ द्वित्रिवारं सेवनेन  
स्त्रीणां शूलं जरायुजम् । योनिशूलं द्रुतं  
हन्यात् संविदासारनामकः ॥ २२४ ॥  
प्रोक्तो गहननाथेन फलवर्त्तिप्रयोगतः ।  
मात्रयारक्त्रिमितया योनिव्यापत्प्रणश्यति  
॥ २२५ ॥ आमवातरश्च दुःसाध्यस्तमक-  
श्वास एव च । तथा चायामकः शीघ्रं  
सिंहाक्रान्तो तथा करिः ॥ २२६ ॥ संवि-  
दामञ्जरीपत्रस्वरसाभावतोऽथवा । शुष्क-  
मञ्जरीपत्राणां काथो देयो यथाविधि ॥  
२२७ ॥

गंजे के मंजरीयुक्त पत्ते का रस निकाल कर बख से छान ले । इस रस को जलस्वेदन यन्त्र द्वारा पकाकर गाढ़ा कर ले । जब हतना गाढ़ा हो जाय कि दवाने से हाथ की रेखाओं के चिह्न पड़ जायें अथवा पियडाकार हो जाय तब नीचे उतार ले । मात्रा—दूँ रत्ती से ३ रत्ती तक । दिन में दो तीन बार इसका सेवन करने से शीघ्र ही स्त्री का जरायुशूल तथा योनिमूल नष्ट होता है । फलवर्त्ति के समान एक रत्ती की मात्रा में इसका प्रयोग करने से योनिरोग नष्ट होते हैं । इसके अन्तःप्रयोग से दुःसाध्य घाम-वात, तमकरवास और आयामक आदि रोग नष्ट होते हैं । यदि गंजे के ताजे पत्ते न मिल सकें तो सूखे मंजरीयुक्त पत्तों के बचाव से ही सार तैयार करे । जलस्वेदन यन्त्र में नीचे के पात्र में जल तथा ऊपर के पात्र में रस डाल दे । परन्तु इस यन्त्र के नीचे आग जलावे । इस यन्त्र में रस का पाक जल की वाष्प द्वारा होता है ॥ २२२-२२७ ॥

सोमघृत ।

सिद्धार्थकं वचा ब्रह्मी शङ्खपुष्पी  
पुनर्नवा । पयस्यामययष्ट्याहं कडुका

च फलत्रयम् ॥ २२८ ॥ साग्निवे रजनी  
पाठाभृद्गदारुसुवर्चलाः । मञ्जिष्ठा त्रिफला  
श्यामा वृषपुष्पं सर्गैरिकम् ॥ २२९ ॥  
धीमान् पक्त्वा घृतमस्थं सम्यग्मन्त्राभि-  
मन्त्रितम् । द्विमासगर्भिणी नारी पणमा-  
सानुपयोजयेत् ॥ २३० ॥ सर्वज्ञं जनयेत्  
पुत्रं सर्वामयत्रिवर्जितम् । अस्य प्रयोगात्  
कुत्तिस्थः स्फुटवत् व्याहरत्यपि ॥ २३१ ॥  
योनिदुष्टारच या नायों रेतोदुष्टारच ये  
नराः । स्त्रीणां पुंसां दोषहरं घृतमेतदनुत्त-  
मम् ॥ २३२ ॥ बन्ध्यापि लभते पुत्रं  
शूरं पण्डितमानिनम् । जडगद्गदमूकत्वं  
पानादंवापकर्षति ॥ २३३ ॥ सप्तरात्रप्र-  
योगेण नरः श्रुतिधरो भवेत् । नाग्निर्द-  
हति तद्देशं न वज्रमुपहन्ति च ॥  
२३४ ॥ न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते  
सोमसंज्ञितम् ॥ २३५ ॥

कडुका च फलत्रयमित्यत्र कडुकैला-  
फलत्रयमिति पाठः प्राचीनसम्मतः । अत्र  
फलत्रयं द्राक्षाकाशमरीपरुपकाणि श्यामा  
प्रियंगुः शेषं सुवोधम् । मन्त्रश्च गायत्री  
यदाह सुश्रुतः । यत्र नोदीरितो मन्वो  
योगेषु येषु साधने । सर्वत्र गदिता तत्र  
गायत्री फलसिद्धिदा ॥ अथत्रात्र मन्त्र-  
श्चायम् । “ॐ नमो महाप्रिनायकाय  
अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि देहि  
रुद्रवचनेन स्वाहा” इति सप्तधा मन्त्र-  
येत् । इति तन्त्रान्तरदृष्टं लिखितम् ।

कहक के लिए सफेद सरसों, बच, ब्रह्मी,  
शंघाहूली, साठी, दूधी, कूट, मुलेठी, कुटकी,  
मुनका, कंभारी के फल, फालसा, अनन्तमूल,  
कालीसारिवा, हल्दी, पाक, मँगरा, देवदारु,

हुलहुल मंजीठ, त्रिफला, प्रियंगु के फूल,  
अदुसा के फूल और गेरू; प्रत्येक दो-दो तोले,  
घी १२८ तोले । पाकार्थ जल ६ सेर ३२  
तोले । यथाविधि घृत का पाक करे । इस घृत  
को गायत्रीमन्त्र से छथवा “ॐ नमो महावि ०”  
इत्यादि ऊपर कहे हुए मन्त्र से सात बार  
अभिमन्त्रित कर दो महीने की गर्भवती छह  
महीने तक सेवन करें तो सब रोगों से रहित  
( नीरोग ) और स्पष्ट उच्चारण करनेवाले सर्वज्ञ  
पुत्र को उत्पन्न करती है । यह घृत दूषित योनि-  
वाली स्त्रियों और दूषित शुभ्रवाले पुरुषों के सब  
दोषों को नष्ट करता है । बाल्मीकी भी शूरावीर  
तथा पण्डित पुत्र को उत्पन्न करती है ।  
इसके पीने से ही जड़ता, मूकता और गद्-  
गद्ना दूर होती है । इसके सत् दिन के प्रयोग  
से मनुष्य वेदों का जन्मनेवाला होता है । जिस  
घर में यह सोमघृण रहता है उस घर को अग्नि  
नहीं जलाती है, न वज्र ही नष्ट कर सकता है  
और न बर्षा बालकों की मृत्यु ही होती  
है ॥ २२८-२३५ ॥

सुश्रुत ने कहा है कि जिस योग में साधकों  
ने मन्त्र नहीं कहा है वही गायत्री ही बड़ी गई  
है और गायत्री ही फल सिद्धि की देनेवाली  
है । “ॐ नमो” इत्यादि मन्त्र तन्त्रान्तर से  
लिया गया है । इस घृत में कई टीकाकार मूङ्ग  
शब्द का अर्थ दाल-बीनी और सुवर्चला का अर्थ  
सौंघल नमक करते हैं ।

कुमारकल्पद्रुमघृत ।

पञ्चाशच्छागमांसस्य दशमूल्यास्तथैव  
च । जलमष्टगुणं दत्त्वा काथेत मृदुना-  
ग्निना ॥ २३६ ॥ चतुर्भागावशेषं च  
काथं गृह्णात् प्रयत्नतः । गव्यं मस्थद्वयं  
सर्पिगृहीयात् कुशलो भिषक् ॥ २३७ ॥  
क्षीरं घृतसमं दद्यान्नारायण्यो रसं तथा ।  
ताम्रं वा मृण्मये पात्रे तदेकत्रपचेच्छनैः ॥  
२३८ ॥ कुष्ठं शटी च मेढ्रे द्वे जीवकर्प-  
भकौ तथा । प्रियंगु त्रिफला दारु पत्रमेला

शतावरी ॥ २३६ ॥ कार्मरी मधुकं  
 क्षीरकाकोली मुस्तमुत्पलम् । जीवनी  
 चन्दनं चैव काकोली शारिवायुगम् ॥  
 २४० ॥ श्वेतवाट्यालजं मूलं मूलं च  
 शरपुङ्खजम् । विदारीद्वयमञ्जिष्ठा पर्णिनी  
 द्वयमेव च ॥ २४१ ॥ नागपुष्पं तथा  
 दारुहरिद्रा रेणुकं तथा । ज्योतिष्मतीभवं  
 मूलं शङ्खिनी नीलिनी वचा ॥ २४२ ॥  
 श्रगुरुत्वग् लवङ्गं च कुंकुमं निक्षिपेत्ततः ।  
 एतेषां कार्पिकं कल्कं दत्त्वा शुभदिने  
 सुधीः ॥ २४३ ॥ शुभनक्षत्रयोगे च  
 संपूज्य गणनायकम् । शङ्करं च मृडानीं  
 च नमस्कृत्यातिभक्तिः ॥ २४४ ॥  
 पाकं कुट्यात् प्रयत्नेन विजानन् मंत्रपूर्व-  
 कम् । सिद्धशीते क्षिपेत्त्र पारदं परि-  
 निर्मलम् ॥ २४५ ॥ सुजीर्णं शोधितं  
 चाभ्रं गन्धकं कार्पिकं न्यसेत् । ततः  
 पुष्परसं तत्र प्रस्थार्द्धं च विनिक्षिपेत् ॥  
 २४६ ॥ काचसम्पुटके वान्यपात्रे वा  
 स्थापयेत् सुधीः । पराशरमुनिः प्रीतिक-  
 रुणावारिधिर्मुदा ॥ २४७ ॥ बन्ध्यामय-  
 विनाशाय शिशुकल्पद्रुमं घृतम् । चका-  
 रास्य प्रसादेन जन्मबन्ध्या लभेत् सुतम् ॥  
 २४८ ॥ खादेत् कर्पमितं सर्पिर्दन्वा  
 विमाय सादरम् । अनुपानं प्रकुर्वीत  
 पयश्लागं विशेषतः ॥ २४९ ॥ गन्धं  
 वापि पिबेत् क्षीरं शीत पलयुगं तथा ।  
 घृतास्यास्य सुसिद्धस्य गुणान् शृणु समा-  
 हितः ॥ २५० ॥ अस्य प्रसादात् पराहो-  
 पि बन्ध्यायां जनयेत् सुतान् । रजोदोषेण  
 या दुष्टा शुक्रदोषेण योऽपि च ॥ २५१ ॥

स्त्रीभगस्थगदेनैव पीडिता या च सर्वदा ।  
 या च पुष्पं न विन्देत् ऋतुना पीडिता च  
 या ॥ २५२ ॥ भूत्वा मूत्रा च नश्यन्ति  
 सुता यासां मुद्गुर्मुद्गुः । अनेकापधयोगेन  
 मन्त्रयोगेन वा पुनः ॥ २५३ ॥ अनेक-  
 व्रतयोगेन यासां पुत्रो न जायते । तासां  
 कामसमाः पुत्रा जायन्ते चिरजीविनः ॥  
 २५४ ॥ एतद् घृतं गृहे यस्य न तस्य  
 कुलिशाद्भयम् । न राक्षसैः पिशाचैश्च  
 गृह्यते तस्य बालकः । नोपसर्पति सर्पांसि  
 दर्पात्तस्य गृहान्तिकम् ॥ २५५ ॥

यकरे का मांस २॥ सेर और दशमूल  
 २॥ सेर लेकर एक मन जल में मृदु अग्नि से  
 काढ़ा बनावे । जब दस सेर अवशेष रहे तब  
 उतारकर धान ले । गौ का घृत ३ सेर १६  
 तोले, गौ का दूध ३ सेर १६ तोले, शतावरी  
 का रस ३ सेर १६ तोले । कल्क के लिए—  
 कूट, कचूर, मेदा, महामेदा, जीवक, श्लषभक,  
 प्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपत्र, इलायची,  
 शतावरी, कभारी, मुलेटी, क्षीरकाकोली, नागर-  
 मोथा, कमल, जीवन्ती, लालचन्दन, काकोली,  
 अनन्तमूल, कालीसारिवा, सफेद खरंटी की जड़,  
 सरफोंका की जड़, विदारी, क्षीरविदारी, मंजीठ,  
 शालपर्णी, घृत्निपर्णी, नागकेशर, दारुहल्दी,  
 सँभालू के बीज, मालकांगनी की जड़, शंख-  
 हूली, नील, वच, अमर, लवंग और केशर;  
 प्रत्येक एक एक तोला । शुभ दिन, शुभ नक्षत्र  
 और शुभ योग में गणेशजी का पूजन तथा  
 अत्यन्त भक्ति से शिव और पार्वतीजी को  
 प्रणाम करके सब औषधियों को एकत्र कर  
 पाकीबधि का ज्ञाता वैद्य गायत्री मन्त्र का जप  
 करके तौंडे ( कलई किया हुआ ) या मिट्टी के  
 पात्र में घृत सिद्ध करे । जब घृत शीतल हो  
 जाय तब उसमें एक तोला शुद्ध पारा और एक  
 तोला गन्धक की कज्जली करके ढाँजे तथा १  
 तोला अभ्रकभस्म और ६४ तोले शहद मिलावे ।

इसको शीशे के पात्र घषया चीनी के माफ पात्र में रखने । करणाभिन्धु पराशर मुनि ने प्रसन्न होकर यन्ध्यापन निवारण करने के लिए यह कुमारकल्पद्रुम घृत बनाया है । इसके सेवन करने से जन्म की यन्ध्या भी पुत्र की पाती है । माहण्य को घादर से दान देकर एक तोले घृत पाना चाहिए और बकरी का दूध घषया गौ का दूध घाठ तोले शीतल बरके पीना चाहिए । अरुहे प्रकार सिद्ध किये हुए घृत के सेवन करने से नपुंसक भी यन्ध्या के पुत्र पैदा कर सकता है । इस घृत के सेवन से पुरयों के शुक्रदोष, श्रियों के रजोदोष, योनिदोष, योनि-पीड़ा तथा रजोदर्शन का न होना या पीड़ा से होना या सन्तान हो-होकर बार-बार मर जाना आदि रोग नष्ट होते हैं । जिन श्रियों के अनेक मत, अनुष्ठान और ओषधि प्रयोगों से पुत्र नहीं हुआ हो उनके इस घृत के प्रयोग से कामदेव के समान चिरंजीवी पुत्र पैदा होते हैं । यह घृत जिसके घर में रहता है उसको वज्र से भय नहीं होता है तथा उसके मालकों को राक्षस और पिशाच नहीं सनाते हैं और उसके घर में सर्प भी नहीं आता है ॥ २३६-२५२ ॥

गर्भिणीचिकित्सा ।

प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना । चन्दनं शतपुत्री च शर्करा मदयन्तिका ॥ २५६ ॥ एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा । पाययेत् पयसालोड्य गर्भिणीं मात्रया भिपक् ॥ २५७ ॥

तथा तिलान् पत्रकं च शालुकं शालितण्डुलान् । चीरेण पिष्ट्वा चीरेण सिताक्षौद्रान्वितेन च ॥ २५८ ॥ आलोड्य पाययेन्मारीं ततः सम्पद्यते शुभम् । तस्मिन् सुजीर्णं दातव्यं भोजनं चीरसंयुतम् ॥ २५९ ॥

यदि गर्भिणी के पहले महीने में गर्भ-सम्बन्धी पीडा हो तो सकेद चन्दन, शतावरी,

खर्ब और भोंगरा; इनको सम भाग लेकर तण्डुलोदक से पीस कर और दूध में घोल कर योग्य मात्रा में गर्भिणी को पिलाना चाहिए ॥ २५६-२५७ ॥

अथवा तिल, पत्राक, कमलकन्द और शालि-चावल; इनको दूध में पीस कर दूध, शर्करा और शहद में घोलकर गर्भवती को पिलाने से लाभ होता है । जय ओषधि हजम हो जाय तब दूध के साथ भोजन देना चाहिए ॥ २५८-२५९ ॥

द्वितीये मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना । तदोत्पलस्य कल्कं तु शृङ्गाटककशेरुकम् ॥ २६० ॥ तण्डुलोदकपिष्टं तु पाययेत् तण्डुलाम्बुना । निवार्य गर्भशूलं च स्थिरं गर्भं करोति च ॥ २६१ ॥

दूसरे महीने में यदि गर्भ में पीडा हो तो कमल, सिंघाड़ा और कसेरू को तण्डुलोदक से पीस कर तण्डुलोदक के साथ पिलाने से गर्भशूल नष्ट होता है तथा गर्भ स्थिर होता है ॥ २६०-२६१ ॥

तृतीये चीरकाकोली काकोल्यामलकीफलम् । पिष्ट्वाण्डोदकेनैतत् पाययेत् गर्भिणीं भिपक् ॥ २६२ ॥ शाल्यन्न पयसा जीर्णं भोजयेदनुगर्भिणीम् । तथा पत्रोत्पलं कुष्ठं शालुकं च समांशिकम् ॥ २६३ ॥ सितोदकेन पिष्ट्वा तु चीरेणालोड्य पाययेत् । तेन शूलं निवर्त्तत न गर्भो व्यथते ध्रुवम् ॥ २६४ ॥

तीसरे महीने में यदि गर्भ में पीडा हो तो चीरकाकोली, काकोली और आंवलों को पीस कर गर्भ जल के साथ गर्भिणी को पिलावे और ओषधि हजम हो जाने पर शालि चावल और दूध का भोजन करावे ।

अथवा पत्राक, कमल, कूट और कमल-कन्द; इनको सम भाग ले मिसरी के शर्बत

२८७ ॥ पृथक्पर्णी बला शिशु स्वदंष्ट्रा  
मधुयष्टिका । शृङ्गाटकं विसं द्राक्षा कशेरु  
मधुकं सिता ॥ २८८ ॥ मासेषु सप्तरोगाः  
स्युरर्द्धश्लोकसमापकाः । यथाक्रमं प्रयो-  
क्तव्या रक्तस्त्रावे पयोऽन्विताः ॥ २८९ ॥

१ मुलेठी, शाकबीज ( सागौन के बीज ),  
चीरकाकोली और देवदारु ।

२ अश्मान्तक ( पापाणभेद ), काले तिल,  
मंजीठ और शतावरी ।

३ बाँदा, चीरकाकोली, कमल और अनन्त-  
मूल ।

४ अनन्तमूल, कालीसारिवा, रासना, भारंगी  
और मुलेठी ।

५ बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी। कंभारी के  
फल, धरगद आदि दूधवाले वृक्षों की कोपल  
और छाल तथा घृत ।

६ पृष्ठिपर्णी, खरेंटी, सहिजना की छाल,  
गोखरु और मुलेठी ।

७ सिंघाड़, कमलनाल, दाख, कसेरु-  
मुलेठी और शकर ।

आधे-आधे श्लोकों में कहे हुए सातों महीने  
के क्रमवार सात प्रयोग हैं । यदि प्रथमादि  
महीनों में गर्भिणी को शूल हो या रक्तस्राव हो  
तो पूर्वोक्त प्रयोगों के ककक को दूध के साथ  
पिलाना चाहिए । अथवा इनके जायों से चीर  
पाक करके सेवन करना चाहिए ॥ २८८--  
२८९ ॥

कपित्थविल्ववृहतीपटोलेक्षुनिदि-  
ग्धिकाः । मूलानि चीरपिष्टानि दापयेद्भिष-  
गष्टमे ॥ २९० ॥

कैष, बेल, बड़ी कटेरी, परवल, ईख और  
छोटी कटेरी ; इनकी जड़ों को दूध में पीसकर  
आठवें महीने की पीड़ा में गर्भिणी को दना  
चाहिए ॥ २९० ॥

नवमे मधुकान्तापयस्यासारिवाः  
पिवेत् । पयस्तु दशमे शुण्ठ्या शृतं शीतं  
प्रशस्यते ॥ २९१ ॥

नवें महीने में मुलेठी, अनन्तमूल, चीर-  
काकोली और कालीसारिवा ; इनको जल से  
पीसकर दूध के साथ पीना चाहिए ।

दशवें महीने में सोंठि से सिद्ध किये हुए ठंडे  
दूध का सेवन करना चाहिए ॥ २९१ ॥

सत्तीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देव-  
दारु च । एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् च  
प्रशाम्यति ॥ २९२ ॥

सोंठि, मुलेठी और देवदारु ; इनके ककक  
को दूध के साथ दशवें महीने में पीना चाहिए ।  
इनके सेवन से गर्भ पुष्ट होता है और शूल  
शान्त होता है ॥ २९२ ॥

कुशकाशोरुकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य  
च । शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूल-  
नुत् परम् ॥ २९३ ॥

कुश की जड़, काँस की जड़, अरखट की  
जड़ और गोखरु ; इनके काय से सिद्ध किये हुए  
दूध में शकर मिलाकर गर्भिणी को पिलाने से  
कठिन शूल नष्ट होता है ॥ २९३ ॥

कशेरुवादि पय ।

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीयपद्मोत्पलैरखट-  
शतावरीभिः । सिद्धं पयः शर्करया  
विमिश्रं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णवेगम् ॥ २९४ ॥

कसेरु, सिंघाड़ा, जीवनीयगण की औष-  
धियाँ, कमल, नीलकमल, अरखट की जड़  
और शतावरी : इनसे यथाविधि सिद्ध किये हुए  
दूध में शकर मिलाकर पीने से चलायमान गर्भ  
स्थिर हो जाता है ॥ २९४ ॥

मधुना लागदुग्धेन कुलालकरकर्दमः ।  
अवश्यं स्थापयेद्गर्भं चलितं पानयोगतः ॥  
२९५ ॥

पुग्हार के बरतन बनाने के लौहे की मिट्टी  
को बकरी के दूध में मिलाकर तथा उसमें शहद  
मिलाकर पीने से चलायमान गर्भ अवश्य स्थिर

हो जाता है । मात्रा—मिठी ६ मासे, दूध १० तोले ॥ २१२ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्रपर्णामिधुकं सशर्करम् । सशूलगर्भसुत्तिपीडिताङ्गना पयोविमिश्रं पयसान्नमुक्पिबेत् ॥ २१६ ॥

कसेरू, सिघाडे, पद्माक, नीलकमल, मुद्रपर्णी मुलेठी और शहर; इनके कशक को दूध में मिलाकर गर्भिणी पीये तो शूल और गर्भसाय की पीड़ा निवृत्त हो । पय—दूध और चावल ॥ २१६ ॥

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापिशुष्यताम् । सितामधुककाशमयैर्हितमुत्थापने पयः ॥ २१७ ॥

यदि वायुरोग से गर्भ या बालक सूखते हैं तो मिसरी, मुलेठी और कभारी को दूध में मिलाकर गर्भिणी को और बालकों को पिलाना हितकर होता है ॥ २१७ ॥

गर्भिणीज्वरचिकित्सा ।  
चन्दनादि कषाय ।

चन्दनं सारिवा लोधं मृद्वीका शर्करान्त्रितम् । कषायं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिन्या ज्वरनाशनम् ॥ २१८ ॥

चन्दन, धनन्तमूल, पठानीलोध और मुनक्का; इनके काढ़े में मिसरी मिलाकर सेवन करने से गर्भिणी का ज्वर शान्त होता है ॥ २१८ ॥

आरग्वधाद्य तैल ।

आरग्वधमूलपलं कर्षद्वितयं हि शङ्खचूर्णस्य । हरितालस्य च खरजे मूत्रप्रस्थे तु कटुतैलम् ॥ २१९ ॥ पक्वं तैलं तदथो शङ्खहरितालचूर्णितं लेपात् । निर्मूलयति च लोमान्यन्येषां सम्भवो नैव ॥ ३०० ॥

कटु तेल ३२ तोल, गंधे का पेशाब ८ तोले,

कशक के लिए अमनतास की जड़ की छाल ४ तोले, शङ्खभस्म ४ तोले, हरिताल ४ तोले लेकर विधिपूर्वक तेल पकावे । परचाट्ट इस तेल में चतुर्थांश शङ्खभस्म डालकर लेप करना चाहिये । इसके लेप से बाल गिर जाते हैं । और पुन पैदा नहीं होते । २१९ ३०० ।

गर्भधिनोद रस ।

त्रिभागं त्रिकटोद्रेयं चतुर्भागश्च द्विगुलम् । जातीकोपं लज्जश्च प्रत्येकश्च त्रिकाः पिकम् ॥ ३०१ ॥ सुवर्णमाक्षिकश्चैव पलाण्डं मत्तिपेद् बुधः । जलेन मर्दायित्वाथ द्विरङ्गिप्रमिता वटी ॥ ३०२ ॥ निहन्ति गर्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३०३ ॥

त्रिकुटा ( मिलित ) ३ तोले, शुद्ध सिंगरफ ४ तोले, जावित्री और लौंग तीन तीन तोले, सुवर्णमाक्षिकभस्म २ तोले । इन्हें जल से घोटकर दो-दो रत्नी की गोलियाँ बनावे । यह रस गर्भिणीरोग को इस प्रकार नष्ट करता है, जैसे सूर्य अंधकार को ॥ ३०१-३०३ ॥

देवदारवादि काथ ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । मूनिम्बकटुफलं मुस्तं तिक्का धान्यहरीतकी ॥ ३०४ ॥ गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरो धन्वयासकः । बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ ३०५ ॥ समभागान्निस्तैरैतैः सिन्धुरामटसंयुतम् । काथमष्टावशेषन्तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ३०६ ॥ शूलकासज्वरशवासमूर्च्छाकिम्पशिरोर्ज्ज्विभिः । युक्तं प्रलापवृद्धाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ ३०७ ॥ निहन्ति मूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भ्रमम् । कषायो देवदारवादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ ३०८ ॥

देवदारु, वचा, कूट, पीपल, सोंठ, चिरायता,



कायफल, मोथा, कुटकी, धनियाँ, हड, गज-पीपल छोटी कटेरी, गोखरू, जवासा या धमासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ा-मिमी, कालाजीरा, रुच मिलाकर २ तोले । काथ के लिए जल ३२ तोले, घचा हुआ वाय ४ तोले । इस काथ में ४ रत्ती सेंधानमक और आधी रत्ती हींग डालकर प्रसूता स्त्री को पिलाना चाहिए । इसके सेवन से शूल, खाँसी, ज्वर, रवास, मूच्छ्रा, कम्प, शिरोवेदना, प्रलाप, प्यास, जलन, तन्द्रा, अतीसार एवं घमन आदि उप-द्रवों से युक्त सूतिकारोग नष्ट होता है । यह काथ वातजन्य, पित्तजन्य, एवं कफजन्य सूतिका रोग को नष्ट करता है । यह काथ प्रसूता के लिए अत्यन्त लाभदायक है ॥ ३०४-३०८ ॥

परण्डादि काथ ।

परण्डमूलममृता मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् । दारुपद्मयुतः क्वाथो गर्भिण्या ज्वरनाशनः ॥ ३०९ ॥

अत्र सामान्यज्वरोक्तः कपायाश्च बुद्ध्या देयः ।

अरयद्र की जड़, गिलोय, मंजीठ, लालचन्दन, देवदारु और कमल, इनका काढ़ा गर्भिणी के ज्वर को नष्ट करता है ॥ ३०९ ॥

गर्भिणी के ज्वर में तिचारकर सामान्य ज्वर में बड़े हुए वाय देने चाहिए ।

सिंहास्यादिर्गुडूच्यादिः पञ्चमूलीरसोऽपि वा । मधुना शमयन्त्येने गर्भिण्या ज्वरमाशु च ॥ पञ्चमूलीमृतं क्षीरं गर्भिण्या ज्वरशान्तये ॥ ३१० ॥

इति ज्वराधिकारं चक्रदत्तलिखितम् ।

सिंहास्यादि वा काथ, गुडूच्यादि का काथ और लघुपंचमूल का काथ, इन तीनों में से किसी एक प्रयोग के वाय में राहद मिलाकर पीने से गर्भिणी का ज्वर दीप्त शान्त हो जाता है । अथवा लघुपंचमूल विधिपंचक दूध पकाकर गर्भिणी को देने से ज्वर शान्त हो जाता है ॥ ३१० ॥

यह चक्रदत्त के ज्वराधिकार में लिखा है ।

आम्रजम्बूत्वचः काथं लेहयेत्ताजश-कुम्भिः । अनेन लीढमात्रेण गर्भिणीग्रहणी जयेत् ॥ ३११ ॥

आम की छाल और जामुन की छाल के काढ़े में धान की खीलों का चूर्ण मिलाकर पीने से गर्भिणी की संप्रदग्धि शान्त होती है ॥ ३११ ॥

हीधेरादि ।

हीवेरारलुरक्तचन्दनवलाधन्याकवत्सा-दनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविपाक्काथं पिवेद्-र्भिणी । नानावर्णरुजातिसारकण्ठे रक्त-सुतौ वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूतामयेपूचमः ॥ ३१२ ॥

सुगन्धवाला, रयोनाक, लालचन्दन, खरेंटी, धनियाँ, गिलोय, मोथा, खस, जवासा, पित्त-पापड़ा और अतीस, इनको मिलित २ तोले लेकर १६ तोले जल में छौंटावे । जय ४ तोले शेष रहे तब घानकर गर्भिणी को पिलाना चाहिए । इसके सेवन से अनेक प्रकार का पीड़ा-कारक अतीसार, रक्त्वाव तथा ज्वर नष्ट होता है । इस प्रयोग को पुरातन षड्यियों ने सूतिका-रोगों के लिए उत्तम कहा है ॥ ३१२ ॥

लवङ्गादि चूर्ण ।

लवङ्गं टद्वनं मुस्तं धातकी विल-धान्यकम् । जातीफलं सर्जकं च शताहा दाटिमं तथा ॥ ३१३ ॥ जीरकं सैन्धवं मोचं नीलोत्पलरसाञ्जनम् । अन्नकं वद्वकं चैव समन्ना रक्तचन्दनम् ॥ ३१४ ॥ विश्वं चातिविपा शृंगी खदिरं चालकं समम् । भृद्वराजरसैः प्लाव्यं भावयित्वा दिनत्रयम् ॥ ३१५ ॥ द्यागीदुग्धेन मत्ति-मान् गर्भिणीमनुपानतः । एतच्चूर्णं प्रदातव्यं संप्रदग्धिणीहरम् ॥ ३१६ ॥ नानावर्णमतीसारं ज्वरं चैव नियच्छति ।

श्रामरक्तातिसारघ्नं शूलशोधनिमूद-  
नम् ॥ ३१७ ॥

लौग, मुहागा, नागरमोधा, धाय के फूल, बेल की गिरी, घनियाँ, जायफल, राल, शतावरी, अनारधाना, जीरा, संधानमक, मोचरस, नील-कमल, रसौत, अन्नकभस्म, वद्वभस्म, मंजीठ, जालपन्दन, सोंठ, अतीस, काकडासिगी, कथा और सुगन्धबाला, इनको सम भाग लेकर घुंघुं बनावे और इसमें तीन दिन तक भँगेरे के रस की भावना दे । यह घुंघुं बहरी के दूध के साथ गर्भिणी को देने से संग्रहणी, अनेक प्रकार के अतीसार, ज्वर, आम, रक्तातिसार, शूल और मूजन को नष्ट करता है ॥ ३१३-३१७ ॥

रोमराजी भवेद्यस्या वामपार्श्वे समु-  
च्छ्रिता । कन्यां तस्या विजानीयाद्  
दक्षिणे च तथा सुतम् ॥ ३१८ ॥

गर्भवती स्त्री के बाँवें पसवाड़े में यदि रोमा-यली उठी हुई हो तो उसके गर्भ में कन्या जाननी चाहिए और दाहिने में हो तो पुत्र जानना चाहिए ॥ ३१८ ॥

धन्वन्तरिमतेनैव साध्वाज्ञातरच शास्त्र-  
वित् । सम्प्राप्ते चाष्टमे मासि मैथुनं परि-  
वर्जयेत् ॥ ३१९ ॥ यदि गच्छति दुर्मोधाः  
काममोहादचेतनः । विपद्यते तदा गर्भो  
गर्भिणी च विनश्यति ॥ अन्धमूकादिषु  
धिरो जायते कुब्ज एव वा ॥ ३२० ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि आठवें महीने के प्रारंभ से ही गर्भिणी का सदवास त्याग दे । यह धन्वन्तरिजी का मत तथा मुनियों की आज्ञा है । यदि दुबुद्धि कामान्ध होकर गर्भिणी के साथ प्रसंग करता है तो गर्भ तथा गर्भवती के नष्ट होने की सम्भावना होती है या अन्धी, गूँगी, बहिरी और कुबड़ी सतान होती है ॥ ३१९-३२० ॥

गर्भचिन्तामणिरसः ।

रसं तारं तथा लौहं प्रत्येकं कर्षमात्र-  
कम् । कर्षद्वयं तथा चाभ्रं कर्पूरं वद्वताभ्र-

कम् ॥ ३२१ ॥ जातीफलं तथा कोपं  
गोक्षुरं च शतावरी । वलातिवलयो मूर्त्तं  
प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ ३२२ ॥ वारिष्णा  
पटिका कार्प्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।  
सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणां चैव विशेष-  
पतः ॥ गर्भिण्या ज्वरदाहं च प्रदरं सूति-  
कामयम् ॥ ३२३ ॥

रससिन्दूर, चाँदी की भस्म और लौहभस्म, प्रत्येक एक-एक तोला । अन्नक-भस्म २ तोले तथा कपूर, वद्वभस्म, ताभ्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखरू, शतावरी, खट्टी की जड़ और कंधी की जड़; प्रत्येक एक एक तोला । इन सबको जल से घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसके सेवन से स्त्रियों का सन्निपातज्वर नष्ट होता है तथा गर्भिणी का ज्वर, दाह, प्रदररोग और सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३२१-३२३ ॥

गर्भविलास रसः ।

रसगन्धकतुत्थं च त्र्यहं जम्बीरमर्दि-  
तम् । त्रिभावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जार्द्ध-  
मात्रकम् ॥ ३२४ ॥ गर्भिण्याः शूलवि-  
ष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम् । तुत्थस्थाने  
यदि स्वर्णं चिन्तामणिरसः स्मृतः ॥ ३२५ ॥

पारा, गन्धक और तृतीया को तीन दिन जम्बीरी नींबू के रस में घोटकर त्रिकटु के क्वाथ की तीन भावनाएँ देकर आधी-आधी रत्ती का गोलियाँ बना ले । इसके सेवन से केवल गर्भिणी का शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अजीर्ण रोग नष्ट होता है । यदि तृतीया के स्थान में स्वर्णभस्म डाली जाय तो इस रस का नाम गर्भचिन्तामणिरस होता है ॥ ३२४-३२५ ॥

गर्भपीयूषवल्लो रसः ।

सूतं गन्धं तथा स्वर्णं लौहं रजतमा-  
क्षिकम् । हरितालं वद्वभस्माप्यभ्रकं  
समभागिकम् ॥ ३२६ ॥ भावना खलु

दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक् । ब्रह्मी वासा  
भृङ्गराजं पर्पटं दशमूलकम् ॥ ३२७ ॥  
सप्तधा भावयेद्द्वैधो गुञ्जामानां वटीं  
चरेत् । गर्भपीयूषवल्ल्याख्यो गर्भिणी-  
रोगहृत् परम् ॥ ३२८ ॥

पारा, गन्धक (दोनों की कजली), स्वर्ण-  
भस्म, लोहभस्म, रूपामाखी की भस्म, हरताल  
की भस्म, चङ्गभस्म और अश्रकभस्म ये सब  
समभाग ले और इसमें ब्रह्मी, चरुसा, भंगरा  
और दशमूल के रसों की पृथक् पृथक् सात-सात  
भावनाएँ देकर एक-एक रसी की गोलियाँ  
बनावे; यह गर्भपीयूषवल्लीनामक रस गर्भिणी  
के रोगों को नष्ट करता है ॥ ३२६-३२८ ॥

टिप्पणी—'रजतमाधिकम्' इस पद से रौप्य-  
भस्म और स्वर्णमाधिकभस्म अलग २ ग्रहण किये  
जा सकते हैं । इस प्रकार बनाने से अधिक गुण-  
दायक होता है ।

गर्भ विलास तैल ।

विदारि दाडिमं पत्रं रजनी च फल  
त्रयम् । मृदाटकस्य पत्रं च जातीकुसुम-  
मेव च ॥ ३२९ ॥ वरी नीलोत्पलं पद्मं  
तैलमेतैः पचेत् सुधीः । एतद्गर्भविलासाख्यं  
गर्भसंस्थापनं परम् ॥ ३३० ॥ निहन्ति  
गर्भशूलं च शोणितस्रुतिसंहरम् । परं  
दृष्यतरं श्वेतत् काशिराजेन निर्मि-  
तम् ॥ ३३१ ॥

कक के लिए विदारिकन्द, अनार के पत्ते,  
हरदी, त्रिफला, सिंघारे के पत्ते, चमेली के फूल,  
शतावरी, नीलकमल और कमल; सब मिलाकर  
३२ तोड़े । तिलतैल १२८ तोड़े, पाक्याँ जल  
३ सेर ३२ तोड़े । विधिपूर्वक तैल सिद्ध करना  
चाहिए । यह गर्भविलास नामक तैल गर्भ को  
स्थिर करनेवाला है तथा गर्भशूल और गर्भदाह  
को नष्ट करता है । यह काशिराज का बनाया  
हुआ तैल परम दृष्य होता है ॥ ३२९-३३१ ॥

इन्दुशेखर रस ।

शिलाजत्वभ्रसिन्दूरप्रवालायोरजांसि  
च । मात्तिकं च तथा तालं समभागानि  
मर्दयेत् ॥ ३३२ ॥ भृङ्गराजस्य पार्थस्य  
निर्गुण्ड्या वासकस्य च । स्थलपद्मस्य  
पद्मस्य कुटजस्य च वारिणा ॥ ३३३ ॥  
भावयित्वा वटीः कृत्वा कलायपरिमा-  
णतः । यथादोषानुपानेन गर्भिणीषु  
प्रयोजयेत् ॥ ३३४ ॥ गर्भिणीनां ज्वरं  
घोरं श्वासं कासं शिरोरुजम् । रक्ताति-  
सारं ग्रहणीं वान्ति बह्वेश्च मन्दाताम् ॥  
३३५ ॥ आलभ्यमपि दौर्बल्यं हन्यादेव  
न संशयः । क्लेरादौ ससर्जमं भगवा-  
निन्दुशेखरः ॥ ३३६ ॥

शिलाजीत, अश्रकभस्म, रससिन्दूर, मूँगा  
की भस्म, लोहभस्म, स्वर्णमाधिकभस्म और  
हरताल की भस्म; इनको सम भाग एकत्र कर  
क्रम से भंगरे के रस, अजुन की छाल के काथ,  
सँभालू के काथ, चरुसे के रस, स्थलपद्म, कमल  
और कुरिया के काथ से भावना देकर मटर के  
समान गोलियाँ बना ले । यह दोषानुसार अनु-  
पानभेद से गर्भिणी को देना चाहिए । इससे  
गर्भिणी का ज्वर, कठिनतर श्वास, कास, शिर-  
पीडा, रक्तातिसार, संग्रहणी, वमन, मन्दाग्नि,  
आलस्य और दुर्बलता नि सन्देश नष्ट होती है ।  
कलियुग के प्रारंभ में शिवजी ने इसको बनाया  
था ॥ ३३२-३३६ ॥

सूतिकारोगचिकित्सा ।

पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैःपृथक् ।  
नाभिवस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसू-  
यते ॥ ३३७ ॥

पाद, कजिहारी, चरुसा और छटकीरा;  
इसमें से किसी एक की जड़ को पीसकर नाभि,  
वस्तिप्रदेश तथा भगप्रदेश पर छेपकरने से  
की को सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ३३७ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयु-  
तम् । घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसू-  
यते ॥ ३३८ ॥

बिजौरा की जड़ और मुखेठी के घृणं में  
एकद मिलाकर घृत के साथ पीने से स्त्री को  
सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ३३८ ॥

इहामृतं च सोमश्च चित्रमानुरच  
भामिनि । उच्चैःश्रवारच तुरगो मन्दिरे  
निवसन्तु ते ॥ ३३९ ॥

इदममृतमपां समुद्धृतं भैरवलगुर्गर्भ-  
मिमं विमुञ्चतु स्त्री । तदनलपवनाकर्ण-  
वासवास्ते सहलवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शा-  
न्तिम् ॥ ३४० ॥

मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्ये-  
न्दुररमयः । मुक्ताः सर्वभयाद्भर्म एग्रीहि मा  
चिरं स्वाहा ॥ ३४१ ॥ इति स्रावयेत् ।

इहामृतं हृद्यादि मन्त्रों से सात बार जल  
अभिमन्त्रित कर प्रसूता को पिलाकर प्रसव  
कराना चाहिए ॥ ३३९-३४१ ॥

जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवारामिमन्त्रितम् ।  
पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिशकम्  
तथोभयपञ्चदशदर्शनं सुखमूर्तिकृत् ३४२

च्यवनमन्त्रो यथा । ॐ क्षिप निक्षिप  
उन्मथ प्रमथ मुञ्च मुञ्च स्वाहा । इति  
मन्त्रेण जलं सप्तधामिमन्त्रितं पाययेत् ।

च्यवन मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित जल  
पीने से अथवा उभयत्रिशक और उभयपञ्चदश  
यन्त्र के देखने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव होता  
है । च्यवन मन्त्र जैसे “ॐ क्षिप निक्षिप उन्मथ  
प्रमथ मुञ्च मुञ्च स्वाहा” इस मन्त्र से सात बार  
अभिमन्त्रित जल पिलाना चाहिए ॥ ३४२ ॥

अथोभयपञ्चदशकं दर्शयेत् । यथा—  
वसुगुणवेदेन्दुवारानवपट्सप्तयुगैः क्र-

मात् । सर्वं पञ्चदशं द्विस्तु त्रिशकं नव-

कोष्ठके ॥ ३४३ ॥ नाडीच्छतुवसुभिः  
सह पक्षदिगष्टादशभिरेव च । अर्कभुव-  
नाब्धिसहितैरुभयत्रिशकमाश्चर्यम् ३४४ ॥

उभयोरेकतरं शरावे लिखित्वा दर्श-  
येत् ।

उभयपञ्चदशकम् ।

उभयत्रिशकम् ।

८	३	४
१	२	३
१	७	२

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

उभयपञ्चदश यन्त्र के नौ कोठों में क्रम से  
८, ३, ४ । १, २, ३ और ६, ७, २ लिखना  
चाहिए । तथा उभयत्रिशक यन्त्र के नौ कोठों  
में १६, ६, ८ । २, १०, १८ और १२,  
१४, ४ लिखना चाहिए । इनमें से किसी एक  
को सकोरे में लिखकर प्रसूता को दिखाना  
चाहिए ॥ ३४३-३४४ ॥

प्रसवमंत्र ।

यमुनासरटकरटतीरे जम्भलानाम  
राक्षसी । तस्याः स्मरणमात्रेण सद्यो नारी  
प्रसूयते ॥ ३४५ ॥ द्रष्टव्यम् ।

यमुना सरट इत्यादि प्रसव-मंत्र लिखकर  
गर्भिणी को दिखाना चाहिए ॥ ३४५ ॥

गृहाम्बुना गेहधूमपानं गर्भापकर्षणम् ॥  
३४६ ॥

गृहधूम को काँजी के साथ पिलाने से प्रसव हो  
जाता है ॥ ३४६ ॥

पुटदग्धसर्पकञ्चुकमसृणमसीकुसुमसार-  
सहिताक्षी । भ्रूटिति विशल्या जायते ग-  
र्भिणी मूढगर्भापि ॥ ३४७ ॥

सर्पकञ्चुकं शरावादिसम्पुटेन मृद्भिन्तेन  
दग्ध्वामसी ग्राह्या । मधुना श्लक्ष्णं पिष्ट्वा  
चक्षुरञ्जयेत् ॥

साँप की कँचुल की शरावसंपुट में भस्म  
करके और शहद में महीन पीसकर उसको आँख

में लगाने से मूदगर्भवाली स्त्री भी शय्य से रहित हो जाती है अर्थात् मूदगर्भ बाहर आ जाता है ॥ ३४७ ॥

स्नुहीचीरं तथा स्तोक्रं गर्भिण्या शिरसि  
क्षिपेत् । मृतगर्भं तदा सूते गर्भिणी रमणी  
द्रुतम् ॥ ३४८ ॥ गृहाम्बुना हिंगुसिन्धुपानं  
गर्भापकर्षणम् ॥ ३४९ ॥

थोड़ा-सा थूहर का दूध गर्भिणी के शिर पर डालने से गर्भिणी स्त्री मृतक गर्भ को शीघ्र ही पैदा कर देती है । तथा हींग और सेंधा नमक काँजी के साथ पीने से प्रसव हो जाता है ॥ ३४८-३४९ ॥

करिदमनदहनमूलं पिष्टं सलिलेन पा-  
नतः सद्यः । चिरमचिरजं गर्भं मृतममृतं  
वा निपातयति ॥ ३५० ॥

नागद्वीन और चीता की जड़ को पीसकर जल के साथ पीने से बहुत दिन का अथवा थोड़े दिन का गर्भ, मरा अथवा जीता हुआ, शीघ्र ही गिर पड़ता है ॥ ३५० ॥

कटुतुम्बाहिनिर्मोककृतवेधनसर्पपैः ।  
कटुतैलान्वितैर्धूपो योनौ पातयतेऽमराम् ॥  
३५१ ॥

कटुई तूँधी, साँप की कंचुल, कटुई तोरई और सफेद सरसों; इनको कटुए तेल में मिलाकर योनि में धूप देने से आँवर (जरायु Placenta) गिर जाती है ॥ ३५१ ॥

कब्जेष्टितयांगुल्या घृष्टे कण्डे पतत्य-  
मरा । मूलेन लाङ्गलिक्या संलिप्ते हस्त-  
पादे च ॥ ३५२ ॥

अँगुली में बाल छपेटकर बठ में धिमेने से तथा करिहारी की जड़ का पुरों पर क्षेप करने से आँवर गिर जाती है ॥ ३५२ ॥

अमरापातनं मधैः पिप्पल्यादिरजः  
पिवेत् । शालिमूलान्तमात्रं वा मधेनाम्लेन  
वा प्लुतम् ॥ ३५३ ॥

पिप्पल्यादिगण<sup>१</sup> का चूर्ण मदिरा के साथ पीने से अथवा शालि चावल की एक तोला, जड़ मदिरा अथवा काँजी के साथ पीने से आँवर गिर जाती है ॥ ३५२ ॥

उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः  
पिवेत् । सौवर्चलेन संयुक्तां योनिशूल-  
निवारिणीम् ॥ ३५४ ॥

काला जीरा, पीपरि और काला नमक; इनके चूर्ण को मदिरा के साथ सेवन करने से योनिशूल शान्त होता है ॥ ३५४ ॥

मकल्ल का स्वरूप और चिकित्सा ।

सूताया हृच्छिरोवस्तिशूलं मकल्ल-  
संज्ञितम् । यवचारं पिबेत्तत्र सर्पिपोष्णोद-  
केन वा ॥ पिप्पल्यादिगणकार्थं पिबेद्वा  
लवणान्वितम् ॥ ३५५ ॥

सद्यःप्रसूता स्त्री के हृदय, शिर और वस्ति में जो शूल होता है उसको मकल्ल कहते हैं । इसमें जनावार को घृत अथवा गरम जल के साथ पीने से लाभ होता है अथवा पिप्पल्यादि गण के काथ में सेंधा नमक डालकर पीने से मकल्ल की पीड़ा शान्त होती है ॥ ३५५ ॥

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवा-  
रिणा । गर्भपातानन्तरोत्थरक्त्सावनिवा-  
रणम् ॥ ३५६ ॥

शालि चावल के जल के साथ कपूर की विष्टा पीने से गर्भपात के परचाह का रक्त्साव बन्द हो जाता है । मात्रा—२ रत्नी ॥ ३५६ ॥

जलपिष्टवरुणपत्रैः सघृतैरुद्धर्त्तना-  
लेपौ । किक्किशरोगं हरतो गोमयपर्पादथो  
विहितौ ॥ ३५७ ॥

१—पिप्पल्यादिगण—पीपरि, पिपरा, मूल, चन्द, चित्रक, अतीस, सोंठ, जीरा, पादी, हींग, रेणुका, मूठा, सफेद सरसों, कुटकी, काशीमिर्च, बकायन, इन्द्रजय, अजमोदा, छोटी इच्छापत्ती, भारगी और चायबिड़ंग । यह पिप्पल्यादिगण है ।

अरने कंडे से आक्रान्त स्थान को रगड़कर उस पर धरना के पत्तों को जल में पीसकर उबटन या लेप करने से किंकिशरोग शान्त होता है ॥ ३२७ ॥

प्रसव समय में पथ्य ।

गर्भसङ्गे तु कृष्णाहित्वग्भस्म मधुना-  
ञ्जनम् । कठ्यामास्फोटनं पाप्यर्यो स्फि-  
चोर्गाढनिपीडनम् ॥ ३५८ ॥ वेद्याः  
स्पर्शस्तालुं कण्ठे मूर्ध्नि स्नुक्तीर लेप-  
नम् । मूर्जं लाङ्गलिकी तुम्बी सर्पत्वक्कुष्ठ  
सर्षपाः ॥ ३५९ ॥ पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा  
योनि धूपनलेपनम् । नारीणां प्रसवे  
पथ्यमिदमाहुर्मनीषिणः ॥ ३६० ॥

जब प्रसव होने में रुकावट हो जाय और प्रसव पीड़ा अधिक होती हो तब काले साँप की केंचुली की भस्म और शहद आँखों में आँजे कमर तथा पेटियों में धपकी लगावे कूहों को जोर से दबाए तालु तथा कण्ठ से चोटी के बालों को छुलावे, माथे में सेडुड के दूध का लेप करे, तथा भोजपत्र कलिहारी तुम्बी साँप की केंचुल कूठ, सरसों इनमें से एक की अथवा दो-दो की पा सधों की योनि में धूनी दे। और पीस कर लेप करे ये सब लियों को प्रसव कराने वाले हैं ॥ ३२८-३६० ॥

प्रसव समय में अपथ्य ।

श्रमं नस्यं रक्तमुक्तिं मैथुनं विपमाशनम् ।  
विरुद्धान्नं वेगरोधमसात्म्यमतिभोज-  
नम् ॥ ३६१ ॥ दिवानिद्रामभिष्यन्दि  
विष्टम्भि गुरु भोजनम् । योपितां प्रसवे  
माहुर पथ्यानि महर्षयः ॥ ३६२ ॥

परिश्रम, नस्यकर्म, रक्तमोचण, मैथुन, विपम, भोजन, विरुद्ध अन्न, मलमूत्रादिक वेगों का रोकना, अनुकूल पदार्थों का भोजन, अति खाना, दिन में सोना, तथा अभिष्यन्दी अजीर्ण्य कारक और गुरुपाकी भोजन ये सब गर्भिणी के लिये प्रसव समय में अपथ्य हैं ॥ ३६१-३६२ ॥

अमृतादि ।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूल-  
जलदजलम् । पीतं मधुसंयुक्तं निवारयति  
सूतिकातङ्कम् ॥ ३६३ ॥

गिलोय, सोंठ, पियाघाँसा, प्रसारणी (खीप), पञ्चमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू) और नागरमोथा; ये सब मिलित दो तोला लेकर ३२ तोले पानी में काढ़ा करे, जब ८ तोले जल शेष रहे तब उसको छान-कर और उसमें छः माशा शहद डालकर पीने से सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३६३ ॥

सहचरादि ।

सहचरपुष्करवेतसमूलं विकङ्कतदारु-  
कुलत्थसमम् । जलमत्र ससैन्धवर्दिगुयुतं  
सद्यो ज्वरसूतिकशूलहरम् ॥ ३६४ ॥

पियाघासा की जड़, पोहकरमूल, वेत की जड़, विकंकत (कंटाई) की जड़, देवदारु और कुलथी; सब मिलित २ तोले लेकर ३२ तोले जल में आँटावे। जब ८ तोले जल शेष रहे तब छानकर उसमें अर्द्धाज से धोड़ा सा सेंधा नमक और हींग मिलाकर पीने से सूतिका के ज्वर और शूल शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३६४ ॥

दशमूलीकृतः काथः साज्यः सूति-  
रजापहः ॥ ३६५ ॥

दशमूल के काथ में घृत डालकर पीने से सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३६५ ॥

सूतिकादशमूल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगो-  
क्षुरम् । टासी प्रसारणी विश्वं गुहूची-  
मुस्तकं तन्ना ॥ निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरं  
टाहसमन्वितम् ॥ ३६६ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, नीली बटमरैया, प्रसारणी, सोंठ, गिलोय और नागरमोथा; इनका ज्ञाप पीने

से ज्वर और दाहयुक्त सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३६६ ॥

सहचरादि काथ ।

सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कटविश्ववा-  
लकैः कथितम् । पेयमिदं मधुमिश्रं सद्यो  
ज्वरशूलनुत् सूत्याः ॥ ३६७ ॥

पियावासा, नागरमोथा, गिलोय, प्रसारणी,  
सोंठ और सुगन्धवाला ; इनके काथ में शहद  
मिलाकर पीने से प्रसूतिका का ज्वर और शूल  
शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३६७ ॥

सहचरकृतः काथः पिप्पलीचूर्ण-  
संयुतः । दीपनो ज्वरदोषामसूतिकारोग-  
नाशनः ॥ ३६८ ॥

पियावासा की जड़ के काथ में पीपल का  
चूर्ण मिलाकर पीने से अग्नि प्रदीप्त तथा  
ज्वर, आमदोष और सूतिकारोग नष्ट होता  
है ॥ ३६८ ॥

पीतकुरूपटकथितं रजनीपर्युषिनं पीत-  
मपहरति । सूतिरोगान् सहस्रं तन्मूलं  
चर्वितं तद्वत् ॥ ३६९ ॥

पियावासा की जड़ के काथ को रात भर धरा  
रखे, फिर प्रातःकाल ही उसका पान करे तो  
सूतिका के हजारों रोग नष्ट हों । इसकी जड़  
को चबाने से भी यही फल होता है ॥ ३६९ ॥

वज्रकाजिक ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी  
यमानिका । जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं  
सौर्वचलं तथा ॥ ३७० ॥ एतैरेवौषधैः  
पिष्टैरारनालं विपाचयेत् । एतदामहरं वृष्यं  
कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥ ३७१ ॥ काञ्जिकं  
वज्रकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्द्धनम् । मक-  
श्लशूलशमनं परं क्षीरामिववर्द्धनम् ॥ क्षीर-  
पाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥  
३७२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अजवायन,  
सफेद जीरा, काला जीरा, हल्दी, दारुहर्दी,  
विड नमक और कालानमक, मिलित २ तोले ।  
काँजी ८ तोले और जल ३२ तोले । सबको  
एकत्र कर पकावे । जब काँजीमात्र अवशेष रह  
जाय तब उतारकर छान ले । सेवन करने से यह  
वज्रकाजिक आमदोष तथा कफ को नष्ट करता  
एवं वृष्य और अग्नि को दीप्त करनेवाला है ।  
यह स्त्रियों की अग्नि को दीपन कर मकरलशूल  
( अर्थात् प्रसूता के हृदय, शिर और बस्ति के  
शूल ) को शान्त करता और दूध को बढ़ाता है ।  
क्षीरपाक की विधि से काँजी को सिद्ध कर लेना  
चाहिए ॥ ३७०-३७२ ॥

भद्रोत्कटाद्यचलेह ।

भद्रोत्कटतुलाकाथे पादशेषे विनि-  
क्षिपेत् । शर्करायाः पलं त्रिंशत् चूर्णानी-  
मानि दापयेत् ॥ ३७३ ॥ वत्सकं धान्यकं  
मुस्तमुशीरं विल्वमेव च । शाल्मलीवैष्टकं  
चैव पिप्पलीमरिचानि च ॥ ३७४ ॥ बला  
चातिविषा मांसी ह्रीवेरं सदुरालभम् ।  
एपांच पलिकैर्भागैश्चूर्णैरेनं समाचरेत् ॥  
३७५ ॥ संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकां च  
सुदुस्तराम् । वह्निं च कुरुते दीप्तं शूला-  
नाहविबन्धनुत् ॥ ३७६ ॥

भद्रोत्कट ( प्रसारणी, लीप ) २ सेर, जल  
२२ सेर ४८ तोले मिलाकर काथ करे । १ सेर  
३२ तोले काथ अवशिष्ट रहने पर शकर डालकर  
पकावे । जब गाढ़ा होने लगे तब इन्द्रजव,  
धनिर्वा, नागरमोथा, लस, बेलगिरी, मोषरस,  
पीपल, काष्ठीमिर्च, खरटी, अतीस, जटामांसी,  
सुगन्धवाला और जवासा; प्रत्येक चार-चार  
तोले लेकर कूट-पीसकर उसमें छोड़ दे और  
अच्छी तरह करपी से मिला दे । जब अवशेष  
सिद्ध हो जाय तब उतारकर रख ले । यह अव-  
शेष संग्रहणी, कठिनतर सूतिका रोग, शूल,  
आनाह, मखरन्ध आदि रोगों को नष्ट तथा  
अग्नि को दीप्त करता है ॥ ३७३-३७६ ॥

भद्रोत्कटाघृत ।

समूलपत्रशाखं तु शतं भद्रोत्कटस्य च । वारिद्रोणेन संसाध्यं स्थाप्यं पादाव-  
शोपितम् ॥ ३७७ ॥ घृतप्रस्थं विपक्व्यं  
गर्भं दत्त्वा तु कार्पिकम् । सव्योपं पिप्पली-  
मूलं चित्रकं जीरकं तथा ॥ ३७८ ॥  
पञ्चमूलं कनिष्ठं च रासनैरण्डसमन्वितम् ।  
पला सिन्धु यवक्षारं स्वर्जिका कृष्णजीर-  
कम् ॥ ३७९ ॥ सिद्धमेतद्घृतं सद्यो  
निहन्यात् सूतिकामयान् । ग्रहणीं पाण्डु-  
रोगं च अर्शांसि विविधानि च । अग्नि  
च कुरुते दीप्तं स्त्रीणां स्तन्यविशोधनम् ॥  
३८० ॥

जड़, पत्ते और शाखासहित भद्रोत्कट ( प्रसा-  
रिणी ) २ सेर, काषाथं जल ३२ सेर ५८ तोले ।  
अवशिष्ट ऋष ६ सेर ३२ तोले । घृत १२८  
तोले । कक के लिए—सोंठ, मिर्च, पीपल,  
पीपलामूल, चीता की जड़, जीरा, जमु पंचमूल,  
रासना, अरबुद की जड़, खैरीटी, सेंधा नमक,  
जवाखार, सज्जीखार और काला जीरा ; प्रत्येक  
एक-एक तोला । विधि से घृत सिद्ध कर सेवन  
करने से शीघ्र ही सूतिकारोग नष्ट होते हैं । यह  
भद्रोत्कटघृत ग्रहणी, पाण्डुरोग और सब प्रकार  
की बवासीरों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त एवं  
स्त्रियों के दूध को शुद्ध करता है ॥ ३७७-३८० ॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदक

कशेरुशृङ्गाटवरामुस्तं द्विजीरकं जाति-  
फलं सकोपम् । लवङ्गशैलेयसनागपुष्पं  
पत्रं वराङ्गं शटि धातकी च ॥ ३८१ ॥  
पला शताहा धनिकेभपिप्पली सपिप्पली  
शोषणका शतावरी । प्रत्येकमेपामिह कर्प-  
युग्मं लौहं तथाग्रं पलभागयुक्तम् ॥ ३८२ ॥  
महौषधार्चूर्णपलानि चाष्टौ पलानि त्रिंश-  
त्सितशर्करायाः । पलानि चाष्टावपि सर्पि-

परच प्रस्थद्वयं क्षीरमिह प्रयुक्तम् ॥ ३८३ ॥  
पचेद्विधिसः परमादरेण खादेदिदं शाणम-  
थापि कोलम । कर्पान्वितं वापि समीक्ष्य  
शस्तं सौभाग्यशुण्ठी कथिता भिष-  
ग्भिः ॥ अग्निप्रदा सूतिगदापहा च सर्वा-  
तिसारग्रहणीहरा च ॥ ३८४ ॥

सोंठ का चूर्ण ३२ तोले लेकर ३ सेर  
१६ तोले दूध में पकावे, जब खोवा तैयार हो  
जावे तब उसको ३२ तोले घृत में भून ले ।  
परचातु १२० तोले शकर की चारानी में ढाल  
कर पकावे । जब पाक तैयार हो जावे तब  
कसेरू, सिंघादा, कमलगट्टा, नागरमोथा, काला,  
जीरा सफेद जीरा, जायफल, जावित्री, खजूर,  
छरछरीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी,  
कचूर, धाय के फूल, छोटी इलायची, सौंफ,  
घनिया, गजपीपरि, कालीमिर्च और शतावरी ;  
प्रत्येक दो-दो तोला तथा अन्नकभस्म और लौह  
भस्म प्रत्येक दो-दो तोले उसमें मिलाकर  
उतार ले । इसकी मात्रा आधे तोले से २ तोले  
तक बलानुसार खानी चाहिए । वैद्यवरो की  
कही हुई यह सौभाग्यशुण्ठी जठराग्नि को प्रबल  
कर सूतिकारोगों, सब प्रकार के अतिसार और  
संग्रहणी रोगों को नष्ट करती है ॥ ३८१-३८४ ॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदक ।

त्रिकटुत्रिफलाजाजी चातुर्जातिकमुस्त-  
कम् । जातीकोपफलं धान्यं लवङ्गं शत-  
पुष्पिका ॥ ३८५ ॥ नलिकामादनफलं  
यमानीद्वयधातकी । शतावरी तालमूली  
लोध्रं वारणपिप्पली ॥ ३८६ ॥ पियाल-  
यीजममृता कर्पूरं चन्दनद्वयम् । कर्षप्रमा-  
णान्येतेषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ३८७  
॥ नागरस्य च चूर्णस्य प्रस्थद्वयमितं क्षिपे-  
त् । दृडे च मृगमये पात्रे पाचयेन्मृदुनाग्नि-  
ना ॥ ३८८ ॥ यत्नतः पाकविद्वैद्यो गुडि-  
कां कारयेत्ततः । घृतमष्टपलं दद्यात् क्षीरप्रस्थ-



द्वयं तथा ॥ ३८६ ॥ सार्द्धप्रस्थद्वयञ्चात्र  
शर्करायास्ततः क्षिपेद् । भक्षयेत्प्रातरुत्थाय  
अजाक्षीरं पिवेदनु ॥ ३६० ॥ आमवातं  
निहन्त्याशु कासं श्वासं सपीनसम् ।  
ग्रहणीमम्लपित्तं च रक्तापित्तं क्षयं क्षतम् ॥  
३६१ ॥ स्त्रीरोगान् विंशतिं चैव तत्क्षणा-  
देव नाशयेत् । अह्न्यहनि च स्त्रीणां स्तन-  
दाढ्यैकरं परम् ॥ सौभाग्यजननं तासां  
पुष्टिदं धातुवर्द्धनम् ॥ ३६२ ॥

त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरि ), त्रिफला  
( हृद, बहेदा, अंबला ), जीरा, चातुर्जात  
( छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, तेज-  
पात ), नागरमोथा, जायफल, जावित्री, धनिया,  
लवंग, सोये के बीज, नलिका ( सुगन्धिवृक्ष ),  
मैनफल, अजवायन, अजमोद, धाय के फूल,  
शतावरी, मूसली पठानी लोध, गजपीपल,  
चिरंजी, गिलोय, कपूर, लालचन्दन और सफ़ेद-  
चन्दन ; प्रत्येक एक-एक तोला लेकर इनका  
महीन चूर्ण कर ले । फिर १२० तोले सोंठ के  
चूर्ण को ३ सेर १६ तोले दूध में ढालकर मज-  
बूत मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि से पकाये ।  
जब पककर खोबे के तुल्य हो जाय तब ३२  
तोले गौ का घृत ढालकर भून ले । परचातु  
२ सेर शकर की चारानी में इसको ढालकर  
पकाये । जब पाक सिद्ध हो जाय तब उपर्युक्त  
चूर्ण ढालकर करछी से अच्छी तरह मिला दे  
और ठंडा करके जड़ू बना ले । मात्रा-प्राग्ने  
तोले से २ तक । प्रातःकाल इसका सेवन  
कर उपर से बकरी का दूध पीना चाहिए ।  
यह आमवात, रवास, खाँसी, पीनस, ग्रहणी,  
अम्लपित्त, रक्तापित्त, चय, उरःक्षत तथा क्षियों  
के २० प्रकार के रोगों को शीघ्र ही मष्ट  
करता है । यह सौभाग्यगुठीमोदक दिन-दिन  
क्षियों के मनोरों को हृद, शरीर को पुष्ट करता तथा  
सौभाग्य और धातुओं को बढ़ाता है ॥३६२-३६२॥

बृहत्सौभाग्य गुण्डो ।

महौषधं समादाय चूर्णयित्वा विधा-

नतः । पलपोडशिकं नीत्वा क्षीरे दशगुणे  
पचेत् ॥ ३६३ ॥ क्रमेण पाकशुद्धिः  
स्याद् घृतप्रस्थे च भर्जयेत् । लघुपाकः  
प्रकर्तव्यो न खरो मोदकेष्वपि ॥ ३६४ ॥  
शतावरी, विदारी च मूशली गोक्षुरो  
बला । छिन्नासत्त्वं शताह्वा च जीरकौ  
व्योपचित्रकौ ॥ ३६५ ॥ त्रिसुगन्धि-  
यमानी च तालीशं कारवी मिथिः । रास्ना  
पुष्करमूलं च वांशी दारु शताह्वयम् ॥  
३६६ ॥ शटी मांशी वचा मोचत्वक्पत्रं  
नागकेशरम् । जीवन्ती मेथिका यष्टी चन्दनं  
रक्तचन्दनम् ॥ ३६७ ॥ कृमिघ्नं तोय-  
सिंहास्यधन्याकं कटफलं घनम् । कर्पद्वय-  
मितं भागं प्रत्येकं पटघर्षितम् ॥ ३६८ ॥  
सर्वचूर्णाद् द्विगुणिता प्रदेय सित-  
शर्करा । युक्त्या पाकविधानज्ञो मोदकं  
परिकल्पयेत् ॥ ३६९ ॥ शुद्धे भाण्डे  
निघायाथ खादेन्नित्यं यथाबलम् । वी-  
क्ष्याग्निपलकोष्ठञ्च नारीणाञ्च विशेषतः ॥  
४०० ॥ क्षौद्रानुपानतः प्रातः गुरुदेवान्  
समर्चयेत् । तद्वर्णं बल्यमायुष्यं वली-  
पलितनाशनम् ॥ ४०१ ॥ वयसः  
स्थापनं प्रोक्तमग्निदीपकरं परम् । वृष्या-  
ग्नामतिवृष्यञ्च रसायनमिदं शुभम् ॥  
४०२ ॥ विशेषात् स्त्रीगदे प्रोक्तं प्रमृतानां  
यथामृतम् । विंशतिर्व्यापदो योनेः प्रदरं  
पञ्चधापि च ॥ ४०३ ॥ योनिदोषहरं  
स्त्रीणां रजोदोषहरं तथा । पापसंसर्गजं  
दोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४०४ ॥  
आमनातहरञ्चैव शिरःशूलनिवारणम् ।  
सर्वशूलहरञ्चैव विशेषात् कटिशूलद्रवम् ॥

४०५ ॥ वीर्यवृद्धिकरं पुंसां मूत्तिकातङ्क-  
नाशनम् । वातपित्तकफोद्भूतान्  
द्वन्द्वान् सन्निपातजान् ॥ ४०६ ॥  
हन्ति सर्वगदानेपा शुण्ठी सौभाग्य-  
दायिनी । सौभाग्यदायिनी स्त्रीणामतः  
सौभाग्यशुण्ठिका ॥ ४०७ ॥

सॉट का घूण १४ तोले ८ सेर दूध में  
पकावे । जब खांसे की तरह गाढ़ा हो जाय तब  
१२८ तोले घी में भून ले, परचाय २ सेर  
१२ तोले खाँड़े की चाशनी में पकावे । जब  
लगभग एक चुके तब शतावर, विदारीकन्द,  
मूसली, मोररू, सरदी, गिन्नोग का सत, सोया,  
सऊद जीरा, काला जीरा, त्रिफला, चित्रक,  
दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, अजवाइन,  
तालीशपत्र, अजमोदा, सीफ, रातना, पोद्दार-  
मूल, यशलोचन, देवदार, सोया, कपूर, जटा-  
मासी, बघ, मोचरस, दालचीनी, तेजपात,  
नागकेशर, जीबन्ती, मॅथीबीज, मुलेठी, सत्रेद  
चन्दन, लाल चन्दन, धायियङ्ग, गन्धयाला  
अपूस की छाल धनिया, कटफल, मोया; हर  
एक के ४ तोले घूण को उसमें ढाल दे और  
अच्छी प्रकार मिला नीचे उतार ले । इसमें  
पाक शुद्ध करना चाहिए । मोदक आदि के  
पाक में खरपाक नहीं करना चाहिए । पाक  
करने के परचाय लहडू बना ले और शुद्ध बर्तन  
में रक्खे । मात्रा-आधे तोले से २ तोले तक  
गुरु और देवताओं की पूजा करके उपयुक्त  
मात्रा में शहद के साथ सेवन करना चाहिए ।  
यह वर्णकारक, यलकारक, आयुर्वर्धक, वीर्यवर्धक,  
यय स्थापक तथा अग्नि की वृद्धि करता है ।  
यह विशेषतः सूतिकारोग में अत्यन्त लाभ-  
दायक है । इसके सेवन से योनिरोग, प्रदर,  
योनिदोष, आतंषदोष, आमवात, शिरोवेदना  
सम्पूर्ण शूल, कमर का दर्द आदि रोग नष्ट  
होते हैं । सम्पूर्ण वातजन्य, पित्तजन्य, कफ-  
जन्य हन्तृज तथा सन्निपातजन्य रोगों को  
शान्त करता है । यह बृहत्सौभाग्यशुण्ठी  
स्त्रियों के सौभाग्य की बढ़ाती है ॥ ३६३-४०७ ॥

प्रताप लङ्केश्वर ।

एकन्दुचन्द्राऽनलशार्धिं काष्ठा, फलेरु  
भागैः क्रमशो विमिश्रम् । सूताऽभ्रगन्धो-  
पण लोह शङ्ख वन्योत्पला भस्म विषं  
सुषिष्टम् ॥ ४०८ ॥ प्रसूति चापाऽनिल  
दन्त बन्ध मार्द्राम्बुना घोर सुसन्निपा-  
तान् पुरामृताऽऽर्द्रात्रिफला युतोऽयं  
गुदाऽऽङ्गुरान् वल्लमिती निहन्ति ॥ ४०९ ॥  
निजानुऽपानैर्निजपथ्य युक्त्वा सर्वाऽति-  
सार ग्रहणी गदाश्च प्रताप लङ्केश्वर  
नामधेयः सूतः प्रयुक्तो गिरिराज  
पुत्र्या ॥ ४१० ॥

शुद्ध पारा १ भाग अन्नकभस्म १ भाग  
शुद्ध गन्धक १ भाग मरिच ३ भाग लोहभस्म  
४ भाग शङ्खभस्म ८ भाग जगली अरनों की  
राय १६ भाग शुद्ध विषामा लेकर सबको महीन  
पीसकर कजली में मिलाकर रख दे । इनमें से  
३-३ रत्नी अक्षर के रस के साथ देने से प्रसूति-  
घात धनुर्वात दाती मिच जामा कठिन सन्निपात  
आदि रोगों का विनाश करता है । यहाँ रस  
शुद्ध गुग्गुलु गिलोय अक्षरक त्रिफला के साथ  
देने से चक्कासीर को नाश करता है । रोगानुसार  
अनुपान और पथ्यों के साथ लेने से सब अतिसार  
और ग्रहणी प्रभृति रोग मिट जाते हैं विशेष  
अनुभूत है ॥ ४०८-४१० ॥

सूतिकारि रस ।

तद्गुणं मुञ्चितं सूतं गन्धक हेम-  
तारकम् । जातीफलं तथा कोपं लवङ्गला  
च धातकी ॥ ४११ ॥ वत्सकेन्द्रयवः  
पाठा शृङ्गी त्रिवाजमोदिका । प्रसारणी-  
रसैः कार्या गुडी गुञ्जाद्वयोन्मिता ॥  
४१२ ॥ भक्षयेत्प्रसैः प्रातः सूतिकातङ्क-  
शान्तये । जीर्णज्वरं हन्ति शोथं ग्रहणी-  
स्त्रीहकासमुत् ॥ ४१३ ॥

सुहागा, मूर्च्छित पारा ( रससिन्दूर ), गन्धक, स्वर्णभस्म, चाँदी की भस्म, जायफल, जावित्री, खींग, छोटी इलायची, धाय के फूल, कुड़ा की छाल, इन्द्रजौ, पाद, काकड़ासिगी, सोंठ, अजमोदा; इन्हें एकत्रकर प्रसारणी के रस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । सूतिकारोग की शान्ति के लिये । गोली प्रसारणीरस के अनुपान से प्रातःकाल सेवन करावे । यह रस जीर्णज्वर, शोथ, ग्रहणी, प्लीहा तथा खाँसी को नष्ट करता है ॥ ४११-४१३ ॥

सूतिकाघ्न रस ।

रसगन्धकलौहाभ्रं जातीकोपं सुवर्चलम् । समांशं मर्दयेत् खल्ले छागीदुग्धेन पेपयेत् ॥ ४१४ ॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेन सूतिकातङ्कनाशनः । ज्वरातिसाररोगघ्नः कासश्वासातिसारनुत् ॥ ४१५ ॥ सूतिकाघ्नो रसो नाम ब्रह्मणा परिकीर्तितः ॥ ४१६ ॥

पारा, गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, जावित्री, सौंघल नमक; इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर घकरी के दूध से खरल में पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । यह सूतिका-रोग, ज्वरातिसार, खाँसी, श्वास तथा अतिसार रोग को नष्ट करता है ॥ ४१४-४१६ ॥

सूतिकान्तक रस ।

रसाभ्रं गन्धकं व्योपं सुवर्णमाक्षिकं विपम् । सर्वमेकीकृतं चूर्णं खादेद् गुञ्जैकसम्मितम् ॥ ४१७ ॥ सूतिकाग्रहणीरोगं वह्निमान्धञ्च नाशयेत् । अतीसारश्च शमयेदपि वैद्यविर्वजितम् ॥ ४१८ ॥ कासश्वासातिसारघ्नो वाजीकरण उत्तमः ॥

पारा, अभ्रकभस्म, गन्धक, त्रिबुटा, स्वर्ण-माषिकभस्म, बच्छनाग; इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र मिलावे । मात्रा-१ रत्ती । यह रस सूतिकारोग, ग्रहणी, मन्दाग्नि, दुःसाध्य

अतीसार, खाँसी, श्वास आदि रोगों को नष्ट करता तथा वाजीकरण है ॥ ४१७-४१८ ॥

रसशार्दूल ।

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं राजपट्टं रसस्तथा । गन्धदङ्गमरीचञ्च यवचारं समांशकम् ॥ ४१९ ॥ तथात्र तालकञ्चैव त्रिफलायाश्च तोलकम् । तोलकञ्चामृतञ्चैव गुञ्जाद्वयमिता वटी ॥ ३२० ॥ ग्रीष्मसुन्दरकस्यापि नागवल्लीरसेन च । भावयेत् सप्तधा हन्ति ज्वरकासाङ्गसंग्रहम् ॥ सूतिकातङ्कशोथादि स्त्रीरोगञ्च विनाशयेत् ॥ ४२१ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, राजपट्ट (कान्तपाषाण, चुम्बक पत्थर), पारा, गन्धक सुहागा, कालीमिर्च, जवाखार, हरताल, त्रिफला, बच्छनाग, हर एक १ तोला । इन्हें एकत्र मिलाकर ग्रीष्मसुन्दर तथा पान के रस से पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । यह रस ज्वर, खाँसी, सूतिकारोग, शोथ तथा स्त्री रोगों को नष्ट करता है ४१९-४२१ ॥

महारस शार्दूल ।

अभ्रकंपुटितं ताम्रं स्वर्णं गन्धञ्च पारदम् । शिला टङ्गं यवचारं त्रिफलायाः पलं पलम् ॥ ४२२ ॥ गरलस्य तथा ग्राह्यमर्द्ध-तोलकसम्मितम् । त्वगेलापत्रकञ्च वजातीकोपलवङ्गकम् ॥ ४२३ ॥ मांसी तालीशपत्रञ्चैव माक्षिकञ्च रसाञ्जनम् । एषां द्विकार्षिकं भागं देयञ्चापि विचक्षणैः ॥ ४२४ ॥ द्रवे किञ्चित् स्थिते चूर्णे मरिचस्य पलं क्षिपेत् । भावना च प्रदातव्या पूर्वोक्तेन रसेन च ॥ ४२५ ॥ निहन्ति विविधान् रोगान् ज्वरान् दाहान् वमि भ्रमिम् ।

तथातिसारकञ्चैव वह्निमान्द्यमरोचकम् ॥  
विशेषाद् गर्भिणीरोगं नाशयेदचिरेण  
च ॥ ४२६ ॥

अन्नकभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, गन्धक,  
पारा, मैतशिल, सुहागा, जवाखार, त्रिफला  
(मिलित), हरपक ४ तोले, बच्छनाग आधा  
तोला; दारचीनी, इलायची, तेजपात, जावित्री,  
लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, स्वर्णभाषिक-  
भस्म, रसीत हरपक ४ तोले, इन्हें एकट्ठा मिला  
जे, फिर इसमें ग्रीष्मसुन्दर तथा पान के रस की  
अलग २ सात भायना दे । अन्त में जय चूर्ण  
बुद्ध गीला हो तब कालीमिच' का चूर्ण ४ तोले  
दाल दे । मात्रा—२ रत्ती । यह ज्वर, दाह  
धमन, भ्रम, अतिसार, मंदाग्नि, अरुचि तथा  
गर्भिणीरोग को नष्ट करता है ॥ ४२२-४१९ ॥

महाअन्नवटी ।

मृतमध्रश्च लौहश्च कुन्दो ताम्रकं तथा ।

रसगन्धकटङ्गश्च युवत्तारफलत्रिकम् ॥

४२७ ॥ प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यमूपणं पञ्च-

तोलकम् । सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्येकेन

विभावयेत् ॥ ४२८ ॥ ग्रीष्मसुन्दरसिंहास्य-

नागवल्ल्या रसेन च । रक्तिकैकप्रमाणेन

वटिकां कारयेद्विपक्व ॥ योजयेत्सर्वथा

वैधः सूतिकारोगशान्तये ॥ ४२९ ॥

- अन्नकभस्म, लौहभस्म, मैतशिल, ताम्रभस्म,

पारा, गन्धक, सुहागा, जवाखार, त्रिफला;

हरपक १ तोला, कालीमिच' २ तोले; इन्हें एकत्र

मिलाकर ग्रीष्मसुन्दर, अदुसा तथा पान

के रस से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलीवा

यनावे । यह गोली सूतिकारोग नष्ट करती

है ॥ ४२७-४२९ ॥

सूतिकाभरण रस ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं प्रवालं पारदं समम् ।

गन्धकं चाभ्रकं तालं शिला त्रिकटु रोहिणी ॥

४३० ॥ एतानि समभागानि रविक्षीरेण

मर्दयेत् । चित्रमूलकपायेण पौनर्णवसेन

च ॥ ४३१ ॥ ततो लघुपुटे पाच्यं मूपायां

धारयेत्पृथक् । अनुपानविशेषेण देयं गुञ्जा-

र्द्धकं च तत् ॥ ४३२ ॥ सूतिकारोगम-

तुलं धनुर्वीतं विशेषतः । त्रिदोषोत्थान् हरेद्

व्याधीनिच्छापथ्यं प्रदापयेत् ॥ सूतिका-

भरणं नाम सर्वरोगहरश्च तत् ॥ ४३३ ॥

सुवर्णभस्म, चाँदी की भस्म, ताम्रभस्म,

मूंगाभस्म, पारा, गन्धक, अन्नकभस्म, शुद्ध

हरताल, शुद्ध मैतशिल, त्रिनुटा, कुटकी, इन्हें

बराबर मात्रा में मिलाकर आक के दूध, चीता

की जब के काप तथा साँठी के रस से क्रमशः

घोटकर मूपा में घन्दकर लघुपुट दे । मात्रा—

आधी रत्ती । इसमें दोष के अनुसार अनुपान

का व्यवस्था देनी चाहिए । यह रस सूतिकारोग

धनुर्वीत तथा अन्य त्रिदोषजन्य रोगों को

नष्ट करता है । पथ्य—इच्छानुसार

भोजन ॥ ४३०-४३३ ॥

लक्ष्मीनारायण रस ।

शुद्धगन्धकमेतश्च टङ्गणं विपहिङ्गु-

लम् । रोहिण्यतिविषा कृष्णा वत्सका-

भ्रकसैन्धवम् ॥ ४३४ ॥ एतानि समभा-

गानि खल्लमध्ये विनिक्षिपेत् । दन्तिद्रावैः

फलद्रावैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४३५ ॥

गुञ्जामितां वटीं कृत्वा आर्द्रकस्य जलैर्द-

देत् । दोषज्वरे सन्निपाते विसूच्यां विषम-

ज्वरे ॥ ४३६ ॥ अतिसारे ग्रहण्यां च

रक्तामे मेहशूलजित् । सूतिकावातदोषानो

लङ्केशमिव राघवः ॥ ४३७ ॥ इष्टाञ्च

भोजयेत्पथ्यमभ्यङ्गं स्नानमाचरेत् । कर्पूर-

मिश्रताम्बूलं प्रसूनं हरिचन्दनम् ॥ ४३८ ॥

नारिकेलोदकं पीत्वा नारीणां सङ्गमेव च ।

लक्ष्मीनारायणो नाम रसानामुत्तमो

रसः ॥ ४३९ ॥

शुद्ध गन्धक, सुहागा, बच्छनाग, शुद्ध सिंगरक, कुटकी, अतीस, पीपल, इन्द्रजौ, अश्रक-भस्म, संधानमक, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर दन्तीमूल तथा मदनफल के काथ से अलग-अलग तीन दिन घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—अदरक का रस। यह चात आदि दोषों से पैदा हुए ज्वर, अतिसार ग्रहणी, रक्तातीसार, आमातीसार, प्रमेह, शूल, प्रसूतवात आदि रोगों को नष्ट करता है। पर्य—इच्छानुसार वृत्तिदायक भोजन, स्नान, तैल की मालिश, बरास-कपूर-युक्त पान का सेवन, पुष्पमाला का धारण, हरिचन्दन का लेप तथा नारियल का जल पीकर स्त्रीसहवास करना चाहिए। यह लक्ष्मीनारायण नामक रस सब रसों से उत्तम है ॥ ४३४-४३६ ॥

जीरकाद्यमोदक ।

जीरकस्य पलान्यष्टौ शुण्ठीधान्यं फल-त्रयम् । शतपुष्पा यमानी च कृष्णजीरं पलं पलम् ॥ ४४० ॥ चीरद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं पलम् । घृतस्यापि पलान्यष्टौ शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४४१ ॥ व्योषं त्रिजातकं चैव विडङ्गं चव्यचित्रकम् । मुस्तकं च लवङ्गं च पलाशं संपकलपयेत् ॥ ४४२ ॥ मन्देन वह्निना पक्त्वा मोदकं कारयेद्विपकम् । सर्वयोपिद्विकाराणां नाशनं वह्निदीपनम् । सूतिकारोगशमनं विशोषाद् ग्रहणीहरम् ॥ ४४३ ॥

जीरा ३२ तोले, सोंठ ३२ तोले, धनिया १२ तोले तथा सोंफ, अजगयन और काला जीरा चार-चार तोले; इनको सबको महीन पीस कर ३ सेर १६ तोले दूध में ढालकर मन्दाग्नि से पकावे। जय शीया के तुल्य हो जय तब ३२ तोले घृत में भून ले। परचात् २॥ सेर शहर की चाशनी बनाकर उसमें ढालकर पकावे। चय पाक सिद्ध हो जाय तब सोंठ, मिर्च, पीपल, षोटी इत्यादी, ढालपीनी, तेजरात, वायबिडङ्ग,

के चार-चार तोले चूर्ण को उसमें ढालकर लड्डू बना ले। मात्रा—आधे तोले से २ तोले तक। यह स्त्रियों के सब प्रकार के रोगों को नष्ट कर अग्नि को प्रचण्ड तथा सूतिकारोग और ग्रहणीरोग को नष्ट करता है ॥ ४४०-४४३ ॥

सूतिकारिरस ।

रसं गन्धं मृताभ्रं च मृतताम्रं च तुल्यकम् । चूर्णितं मर्दयेद्यत्नात् भेक-पर्यासेन च ॥ ४४४ ॥ द्वायाशुष्कत्तं गुठी कार्या गुञ्जार्द्धममिता ततः । मात्रया कटुना देया सूतिकातङ्गनाशिनी ॥ ज्वर-तृणारुचिहरी शोथघ्नी वह्निदीपिनी ॥ ४४५ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, अश्रकभस्म और ताम्र-भस्म; इनको सम भाग ले। पहले पारा और गन्धक की कजली करे, परचात् सबको मिलाकर मण्डूकपर्णों के रस से घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनाकर द्वाया में सुखा ले। अनुपान—अदरक का रस। यह सूतिकारस सूतिकारोग, ज्वर, तृषा, अरुचि और शोथरोगों को नष्ट तथा जठराग्नि को दीप्त करता है ॥ ४४४-४४५ ॥

शुद्धसूतिकाविनोद रस ।

शुण्ठ्या भागो भवेदेको द्वौ भागौ गरिचस्य च । पिप्पल्याश्च त्रिभागं स्यादूर्द्धभागं च रोमकम् ॥ ४४६ ॥ जाती-कोपस्य भागौ द्वौ द्वौ भागौ तुत्यकस्य च । सिन्धुवाररसेनैव मर्दयेदेकयामतः ॥ ४४७ ॥ मधुना सह सेवेत सूतिकातङ्ग-नाशनम् ॥ ४४८ ॥

सोंठ, १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, पीपल ३ भाग; मांभर नामक द्वाया भाग, जायत्री ० भाग और नीलाधोया २ भाग; इन सबको एकरूप कर मैथिल के रस से एक पहर तक घोट कर मटर के समान गोली बना ले।

अनुपान—शहद । यह रस सूतकारोगों को नष्ट करता है ॥ ४४६-४४८ ॥

स्तन्यदुष्टिचिकित्सा ।

वनकार्पासकेचूर्णां मूलं सौवीरकेण वा । विदारीकन्दं सुरया पिवेद्वा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ ४४९ ॥

वनकपास और ईख की जड़ के चूर्ण को कांजी के साथ अथवा विदारीकन्द को भदिरा के साथ सेवन करने से स्त्रियों के दुग्ध की वृद्धि होती है ॥ ४४९ ॥

दुग्धेन शालितहडूलचूर्णपानं विवर्द्धयेत् । स्तन्यं सप्ताहतः क्षीरसेविन्यास्तु न संशयः ॥ ४५० ॥

दूध का सेवन करनेवाली स्त्री यदि दूध के साथ शालि चावलों के चूर्ण का पान करे तो एक सप्ताह में निस्सन्देह दूध की वृद्धि होती है ॥ ४५० ॥

हरिद्रादि वचादि वा पिवेत् स्तन्यविष्टब्धये । तत्र वाताधिके स्तन्ये दशमूलीजलं पिवेत् ॥ ४५१ ॥

हरिद्रादिगण<sup>१</sup> अथवा वचादिगण<sup>२</sup> का काथ पीने से दूध की वृद्धि होती है । यदि वात से दूध दूषित हो गया हो, तो दशमूल का काढ़ा पीना चाहिए ॥ ४५१ ॥

पित्तदुष्टेऽमृता भीरु पटोलं निम्बचन्दनम् । धात्रीकुमारश्च पिवेत् काथयित्वा सशारिवम् ॥ ४५२ ॥

पित्त से दूध दूषित हो तो गिलोय, शतावरी परबल के पत्ते, नीम की छाल, लालचन्दन और अनन्तमूल ; इनका काथ बनाकर धाय अथवा बच्चे की माता को पिलाना चाहिए ।

१ हरिद्रादिगण—“हरिद्राद्वयषट्पाहसिहीय-क्रयै कृत ।” हल्दी, दारहल्दी, मुंजेडी, बड़ी कटेरी और इन्द्रजी ।

२ वचादिगण—“वचामुस्तं भद्रारुनागरातिविपा-गणः ।” बच, नागरमोथा, देवदार, सोंठ, अतीस ।

यदि पित्त-दूषित दूध से बच्चे को हानि पहुँची हो, तो बच्चे को भी यह काथ पिलाना हितकर होता है ॥ ४५२ ॥

धात्रीस्तन्यविष्टब्धचर्थं मुद्गयूपरसाशना । भार्गोदारुवचापाठाः पिवेत्सातिविपाः श्रुताः ॥ ४५३ ॥

दूध बढ़ाने के लिए धाय को चाहिए कि मूँग का यूप और मांसरस का भोजन करे तथा भार्गो, देवदारु, बच, पाड़ और अतीस का काढ़ा पीवे ॥ ४५३ ॥

कुक्कुरमेञ्चुकमूलं चर्चितमास्येन धारितं जयति । सप्ताहात् स्तनकीलं स्तन्यं चैकान्ततः कुरुते ॥ ४५४ ॥

कुक्कुरमेञ्चुक ( नागबला ) की जड़ को चबाकर मुख में रखने से एक सप्ताह में स्तनकीलरोग दूर होता है और दूध भी बढ़ता है ॥ ४५४ ॥

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्निवदध्याद् यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम् । आमे विदह्यति तथैव गते चपाकं तस्याः स्तनौ सततमेव हि निर्दुहीत ॥ ४५५ ॥

स्तनों पर सूजन हो आवे तो वैद्य को उस सूजन की कच्ची, पच्यमान और पाकावस्था को विचार कर विद्रधिरोग के समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिए, परन्तु सय अवस्थाओं में स्तन का दूध अक्षय ही निकलवा देना चाहिए ॥ ४५५ ॥

विशालामूललेपस्तु हन्ति पीढां स्तनोत्थिताम् । निशाकनकमूलाभ्यां लेपश्चापि स्तनात्तिहा ॥ ४५६ ॥

इन्द्रायण की जड़ का अथवा हल्दी और धतूरे की जड़ का छेप करने से स्तन की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४५६ ॥

मूपिकरसया शौकरमाहृपगजमांस-

चूर्णयुतया । अभ्यङ्गमर्दनाभ्यां सुकठिन-  
पीनौ स्तनौ भवतः ॥ ४५७ ॥

चूहे की चर्बी में सूअर, भैंस और हाथी  
के मांस का चूर्ण मिलाकर स्तनों पर लगाए  
से अथवा मर्दन करने से स्तन कठिन और  
मोटे हो जाते हैं ॥ ४५७ ॥

महिषीभवनवनीतं व्याधिवलोग्रा तथैव  
नागबला । पिष्ट्वा मर्दनयोगात् पीनं  
कठिनं स्तनं कुरुते ॥ ४५८ ॥

कूट, खरेटी, बच और गंगोरन ; इनको महीन  
पीस कर भैंस के मक्खन में मिलाकर मालिश  
करने से स्तन पुष्ट ( मोटे ) और कठिन हो  
जाते हैं ॥ ४५८ ॥

श्रीपर्णी तैल ।

श्रीपर्णारसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलो-  
द्भवम् । तत्तैलं तुलकेनैव स्तनस्योपरि  
धारयेत् ॥ पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेतां  
च पयोधरौ ॥ ४५९ ॥

खंभारी के रस और कल्क से तिल का तेल  
सिद्ध करके उसमें ठई का फाहा भिगोकर स्तन  
पर रखने से स्त्रियों के पदों हुए भी स्तन उठ  
आते हैं, अर्थात् ढीले हुए स्तन कठिन हो जाते  
हैं ॥ ४५९ ॥

कासीसतुरगगन्धाशावरगजपिप्पली-  
विपक्वेन । तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्ण-  
वराद्गलित्त्वानि ॥ ४६० ॥

हसीस, असगन्ध, लोघ और गजपीपरि ;  
इनके कल्क से तिल का तेल सिद्धकर मालिश  
करने से स्तन, कान, योनि और शिश्न की वृद्धि  
होती है ॥ ४६० ॥

प्रथमर्चौ तण्डुलाम्भो नस्यं कुर्यात्  
स्तनौ स्थिरौ । गोमहिषीघृतसहितं तैलं  
श्यामाकृताञ्जलिचामिः ॥ सकटुनिशा-  
भिः सिद्धं नस्यं स्तनमर्दनं पर-  
मम् ॥ ४६१ ॥

प्रथम रजोदर्शन के समय में चावल के जल  
का नस्य लेने से स्तन स्थिर हो जाते हैं । गौ  
का घृत ४ छटॉक, भैंस का घृत ४ छटॉक  
और तिल का तेल ८ छटॉक । कल्क के लिए  
अनन्तमूल, लजावन्ती, बच, त्रिकटु ( सोंठ,  
मिर्च, पीपरि ) और हल्दी सब मिलित ४  
छटॉक । यथाविधि तैल सिद्ध कर नस्य लेने से  
यह स्तनों को बढ़ाता है ॥ ४६१ ॥

सुतनूकरोति मध्यं पीतं मथितेन माग-  
धीमूलम् ॥ ४६२ ॥

पीपलामूल के चूर्ण को मट्टे के साथ सेवन  
करने से स्त्रियों का कटिभाग पतला हो जाता  
है ॥ ४६२ ॥

वेतसस्य तु मूलानि काथयेन्मृदुना-  
ग्निना । भगं प्रक्षालितं तेन गाढं समुप-  
जायते ॥ ४६३ ॥

मन्दाग्नि से वेत की छड़ का काढ़ा बनाकर  
योनि धोने से संकुचित हो जाती है ॥ ४६३ ॥

सूतिकाहर रस ।

हिंगुलं हरितालं च शङ्खभस्मायसो  
रजः । खर्परं धूर्त्तवीजं च यवक्षारं च  
टङ्गनम् ॥ ४६४ ॥ विभीतककपायेण  
भावयित्वा विधानतः । मर्दयित्वा विद-  
ध्याच्च गुञ्जैकप्रमिता वटीः ॥ ४६५ ॥  
यथादोषानुपानेन प्रयुक्तोऽयं रसोत्तमः ।  
निहन्त्यात् सूतकातङ्गान् वह्निस्त्वृण-  
गानिव ॥ ४६६ ॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध हरताल, पाल की भरम,  
लोहभस्म, शुद्ध खपरिया, धनूरे के बीज,  
जवाखार और मुद्गागा; इनको बदेवों के बाढ़े से  
घोटकर एक-एक रत्ती की गोखिया बना ले ।  
दोष का विचार कर उपयुक्त अनुपान के साथ  
सेवन करने से यह उत्तम रस सूतिकादोग को  
इस प्रकार नष्ट करता है जैसे अग्नि मृत्त-  
मम्ह को नष्ट करती है ॥ ४६५-४६६ ॥

बृहत्सूतिकावल्लभ रस ।

सूतं गन्धं मात्तिकं च व्योमेन्दुं हेम-  
तालकम् । रजतं फणिकेनं च जातीकोप-  
फले तथा ॥ ४६७ ॥ मुस्तकस्य बला-  
याश्च शाल्मल्याः स्वरसेन च । भाव-  
यित्वा वटीः कुर्याद् द्विगुञ्जापरिमाणतः ॥  
४६८ ॥ सूतिकावल्लभो नाम प्रयुक्तोऽयं  
महान् रसः । निहन्यात् सूतिकारोगान्  
दुर्वारं ग्रहणीगदम् ॥ ४६९ ॥ अतीसारं  
सुधोरं च दौर्बल्यं वह्निमन्दताम् । जनये-  
दाशु पुष्टिं च कान्तिं मेधां धृतिं  
तथा ॥ ४७० ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, सोनामक्खी की भस्म,  
अभ्रकभस्म, कपूर, सोने की भस्म, शुद्ध  
हरताल, चाँदी की भस्म, अफीम, जावित्री,  
जायफल, नागरमोथा और खरेटी; इनको सम  
भाग लेकर सेमर के रस से घोटकर दो-दो  
रत्ती की गोथिलियाँ बना ले । इस सूतिकावल्लभ  
रस के सेवन करने से सब प्रकार के सूतिका-  
रोग, घोर संप्रहणी, अतीसार, दुर्बलता और  
अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते हैं । यह पुष्टि,  
कान्ति, बुद्धि और स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाला  
है ॥ ४६७-४७० ॥

घातक्यादि तैल ।

घातकीधवधन्याकधात्रीधुस्तूरधूपनैः ।  
नीलीनीपनतैर्निम्बुनीरदनागरैः ॥  
४७१ ॥ पथ्यापद्मपृथापुत्रैः पत्रपत्रोर्णपू-  
तिकैः । फणिककफलेन्द्राभ्यां फञ्जिका-  
फेनफेनिलैः ॥ ४७२ ॥ कल्कैः कोलक-  
पित्थाभ्यां कृष्णाकन्याकशेरुभिः । पिष्टैः  
पचेत् पयस्त्रिन्याः पयसा पाकपरिहतः ॥  
४७३ ॥ तैलं तिलभवं तिप्ये तिप्यतोयेन  
तन्मनाः । पूजयित्वा परानन्दां मयतः  
परमेस्वरीम् ॥ ४७४ ॥ सूर्मून्दितमिदं

सूतिकाभयसूदनम् । सेवेत सततं सूता  
सुखदं सुखसेविनी ॥ ४७५ ॥

सुखसेविनी पथ्यसेविनी ।

आँवले का रस ६ सेर ३२ तोले, गोदुग्ध  
६ सेर ३२ तोले, तिल का तेल १२८ तोले,  
कक के लिए धाय के फूल, धव की छाल,  
धानियाँ, आँवला, धत्रा राल, नीबू की जड़,  
कदम्ब की छाल, तगर, नीम की छाल, नीबू  
की जड़, नागरमोथा, सोंठ, हट, कमल की जड़,  
अजुन की छाल, तेलपत्र, अरलू की छाल,  
करंजबीज, मरुआ, फरेंदा ( यदी जामुन ) की  
छाल, भारंगी, समुद्रफेन, रीठा, बेर, कैय, पीपरि,  
घीकुवार और कसेरु; मिलित ३२ तोले । पुष्प  
नक्षत्र में यथाविधि तेल सिद्ध करे । परमा-  
नन्दाग्री भगवती की पूजा करके सूस्नु के कहे  
हुए इस सूतिकारोगनाशक घातक्यादि तेल का  
प्रसूता स्त्री को नित्यभित सेवन करना चाहिए  
और पथ्य से रहना चाहिए ॥ ४७१-४७५ ॥

जीरकाघरिष्ट ।

जीरकस्य तुलाद्बन्धं चतुर्दोणजले  
पचेत् । द्रोणशेषे क्षिपेत् तत्र तुलात्रय-  
मितं गुडम् ॥ ४७६ ॥ घातकीं पोडशपलां  
शुण्ठीं च द्विपलोन्मिताम् । जातीफलं  
मुस्तकं च चातुर्जातं यमानिकाम् ॥  
४७७ ॥ ककौलं देवपुष्पं च पलमानेन  
निक्षिपेत् । मासं संस्थापयेद् भाण्डे मृत्ति-  
कापरिनिर्मिते ॥ ४७८ ॥ ततः कल्कान्  
विनिर्हृत्य पाययेत् कर्पमात्रया । अरिष्टो  
जीरकाद्योऽयं निहन्यात् सूतिकाभयान् ॥  
ग्रहणीमतिसारं च तथा वह्नेश्च वैदृ-  
तम् ॥ ४७९ ॥

१० सेर जीरा को २ मन २२ सेर ३२  
तोले जल में पकावे । जब २२ सेर ४८ तोले  
जल बाकी रहे तब उसमें १२ सेर गुड, पाय  
के फूल १४ तोले, सोंठ आठ तोले तथा जाय-



फल, नागरमोथा, चातुर्जात ( छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेसर, तेजपात ), अजवायन, कंकोल और लवङ्ग, चार-चार तोले चूर्ण करके दाल दे। इनकी मिट्टी के पात्र में रखकर और उसका मुख बन्द करके एक महीने तक धरा रखे। फिर छानकर शीशे अथवा चीनी के बर्तन में रखे। मात्रा १। तोले से २। तोले तक। यह जीरकाद्यारिष्ट सूतिकारोग, संप्रहणी, अतिसार और अग्नि की मन्दता को नष्ट करता है ॥ ४७६-४७६ ॥

गर्भित्याः पथ्यानि ।

शालयः पष्टिकामुद्र गोधूमालाज शक्रवः।  
नवनीतं घृतं क्षीरं रसालां मधुशर्करा ॥  
४८० ॥ पनसं कदलं धात्री द्राक्षाऽऽम्रं-  
स्वादुशीतलम् । कस्तूरी चन्दनं माला  
कपर्मनुलेपनम् ॥ ४८१ ॥ चन्द्रिका  
स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः  
सन्तर्पणं प्रिया वाचो विहाराश्च मनो-  
रमाः । प्रियङ्करं चाभ्रपानं गर्भिणीभ्यो  
हितं भवेत् ॥ ४८२ ॥

शालि और साठी चावल मूँग गेहूँ धान के खील का मत्तू मक्षण घृत दुग्ध रसाला ( सिखरन ) मधु शर्करा फटहर केला आँवला दाख तथा आम के पके फल मधुर तथा शीतल द्रव्य कस्तूरी श्वेतचन्दन सुगन्धित माला कपर् का छेप चाँदनी रात में रहना स्नान तैल मालिश कोमल शय्या ठण्डी वायु सन्तर्पणं क्रियायें प्रिय-वचन मनोरम विहार प्रिय शिषकर अन्नपान ये सब गर्भिणी के लिये लाभदायक है ॥ ४८०-४८२ ॥

गर्भित्याः अपथ्यानि ।

स्वेदनं वमनं क्षारं कलहं विषमाशनम् ।  
असात्म्यं नृसंचारं चौर्यंचाम्रिय दर्श-  
नम् ॥ ४८३ ॥ अतिव्यनायमायासं भारं  
माचरणं गुरु । अकाल जागरस्वप्नं कठि-  
नोत्कटकासनम् ॥ ४८४ ॥ शोक क्रोध-

भयोद्वेगवेग श्रद्धाविधारणम् । उपवासधृ-  
तीक्ष्णोष्णं गुरुविष्टम्भिभोजनम् ॥ ४८५ ॥  
नङ्गं निरशनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमेमिपम् ।  
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति  
तथ्येजत् ॥ ४८६ ॥ पथारक्लसृति शुद्धि-  
वस्तिमाभासतोऽष्टमात् । एभिर्गर्भः स्ववे-  
दामः कुक्षौशुष्येन्म्रियेतवा ॥ ४८७ ॥  
भजेन्न नित्यं तिक्राम्लकटूपण कपाय-  
कान् । वातलैश्च भवेद् गर्भः कुब्जान्धजड-  
वामनः ॥ ४८८ ॥ पित्तलैः खलितीपिद्गः  
श्वित्री पाण्डुःकफात्मनः । अपथ्यमिदमु-  
द्दिष्टं गर्भिणीनां महर्षिभिः ॥ ४८९ ॥

स्वेदन वमन क्षार पदार्थ कलह विषम भोजन असात्म्य आहार विहार रात में घूमना अत्रिय वस्तु देखना ज्यादा मैयुन परिश्रम थोका उठाना भारी वस्त्र ओढ़ना असमय में जागना और सोना। कठिन आसन पर तथा ठण्डा बैठना शोक क्रोध भय तथा उद्वेग मल मूत्रादि वेग एवं श्रद्धा की रोकना उपवास मार्ग चलना। तीक्ष्ण उष्ण गुरुपाकी अजीर्ण कारक भोजन रात में भोजन करना गहरे गहरे अथवा कुपे में भाँकना मद्य मांस सेवन सीधा लेटना और जो अपने को पसन्द न हो वे मद्य विषय, गर्भिणी स्त्रियों को त्याग देना चाहिए और अष्टम मास से रजसाव कराना वमनादि द्वारा शरीर का शोधन और अस्ति कर्म त्याग देना चाहिये। इन सबों को करने में कधी दूरा असमय में ही गर्भ प्राय या उदर में ही गर्भ सूचना या मृत्यु हो जाती है, गर्भिणी को तिर्र अम्ल कटु चरपरा तथा कर्मला पदार्थ का सेवन अधिक न करे। पातकारक पदार्थों के खाने से गर्भ बुद्धि अथवा जड़ और बौधा होती है। पित्तकारक पदार्थों से गन्ना पित्तल चर्च-पाला श्वेत कुटी तथा कफकारक पदार्थों से पाथ्युपयोग्यता गर्भ हो जाता है। ये सब बातें गर्भिणी को अपथ्य है ॥ ४८३-४८९ ॥

सूतिकारोगे पथ्यानि ।

लह्ननानि मृदुस्वेदो गर्भं कोष्ठ विशोध-  
नम् । अभ्यञ्जनं तैलपानं कटुतीक्ष्णोष्ण  
सेवनम् ॥ ४६० ॥ दीपनं पाचनं मद्यं  
पुराणाः शालिपिष्टिकाः कुलत्थो लशुनं  
शिशुवार्त्तांकु बालमूलकम् ॥ ४६१ ॥ पटोलं  
मातुलुङ्गं च ताम्बूलं दाडिमद्वयम् ।  
यानि श्लेष्मानिलह्नानि विधातव्यानि  
तानिच ॥ ४६२ ॥ सप्ताहाद् वृंहणं-  
किञ्चिद् द्वादशाहा तथाभिपम् । सार्द्ध-  
भासे व्यतिक्रान्ते त्याज्याऽऽहारादियं-  
त्रणा ॥ ४६३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्त्रीरोगा-

धिकारः समाप्तः ।

लह्नन मृदुस्वेद गर्भं कोष्ठ की शुद्धि मालिश  
तैलपान चरपरा तेज गर्भं पदार्थों का सेवन  
दीपन पाचन पदार्थं मद्य पुराने शालि तथा साठी  
चावल कुलथी लहसन सहजन की फली बैंगन  
छोटी मूली परवल विजौरा, नीबू, ताम्बूल खट्टे  
मीठे अनार कफ तथा वायुनाशक पदार्थं इन का  
सेवन करना चाहिये । ७ दिन के बाद कुछ  
पौष्टिक पदार्थ १२ दिन के बाद मास ये सब  
पदार्थ सूतिका रोग में पर्य है । और बेद महिने  
के बाद आहार विहार का परहेज त्याग देना  
चाहिये ॥ ४६०-४६३ ॥

इति श्रीसरयूमसाद्धिपाठिविरचिताया

भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी

ध्यासुयायास्त्रीरोगाधि-

कारः समाप्तः ।

अथ बालरोगाधिकारः ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभय-  
वर्चकः । स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टा-  
भ्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥

बालक तीन प्रकार के कहे हैं । एक माता  
का दूध पीने वाले, दूसरे दूध और अन्न खाने-  
वाले और तीसरे केवल अन्न खानेवाले । जब  
दूध और अन्न शुद्ध होते हैं तो बालक नीरोग  
रहता है और जब दूध या अन्न दूषित होते हैं  
तो बालक रोगी हो जाता है ॥ १ ॥

क्षीरपस्यौपधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य  
चोभयो । अन्नेन वा शिशौ देयं भेषजं  
भिपजा सदा ॥ २ ॥

दूध पीनेवाले बालक के रोगी होने पर दूध  
पिलानेवाली धाय या माता को औपधि सेवन  
कराना चाहिए । जो बालक दूध और अन्न का  
सेवन करनेवाला हो तो धाय और बालक दोनों  
को औपधि देना चाहिए और जो केवल अन्न  
ही खाता हो तो बालक को ही औपधि देना  
चाहिए ॥ २ ॥

मात्रया लह्येद्भ्रात्रीं शिशोर्नेष्टं विशो-  
पणम् । सर्वं निवार्यते वाले स्तन्यं तु न  
निवार्यते ॥ ३ ॥

दूध पिलानेवाली माता या धाय को  
आवरयकतानुसार लंघन कराया जा सकता है  
किन्तु बालक को लंघन कराना उचित नहीं है ।  
बालक के लिए सब कुछ रोका जा सकता है;  
परन्तु माता या धाय का दूध नहीं रोकना  
चाहिए ॥ ३ ॥

यो बालोऽचिरजातः स्तन्यं न गृह्णाति  
तस्य सहसैव । धात्रीमधुघृतपथ्याकल्के-  
नाघर्षयेज्जिह्वाम् ॥ ४ ॥

यदि थोड़े दिन का पैदा हुआ बालक एका-  
एकी माता का दूध न पीये तो चावला और

हृद के चूर्ण में शहद और घृत मिलाकर बालक की जीभ पर घिसना चाहिए ॥ ४ ॥

कुष्ठं वचाभया ब्रह्मी कनकं चौद्रस्य-  
पिपा । वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य  
दापयेत् ॥ ५ ॥

कूट, वच, हृद, ब्राह्मी और सुवर्णभस्म;  
इनको शहद और घृत में मिलाकर बालक को  
चाटने से कान्ति, आयु और उत्तम वर्ण की  
वृद्धि होती है । मात्रा ३ रत्ती से ६ रत्ती तक  
इसे जन्म के बाद ही सेवन कराया जा सकता  
है ॥ ५ ॥

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद-  
गुणं पिबेत् ।

माता के दूध न होने पर उसी के समान  
गुणकारी बकरी या गौ का दूध पिलाना  
चाहिए ।

मृत्पिण्डेनाग्नि तपतेन चीरसिक्तेन  
सोप्मणा । स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोधस्ते-  
नोपशाम्यति ॥ ६ ॥

यदि बालक की नाभि में सूजन हो जावे  
तो मिट्टी के गोले को आग में तपाकर दूध से  
बुझावे और उससे नाभि पर सेंक दे तो सूजन  
शान्त हो जाती है ॥ ६ ॥

नाभिपाक की चिकित्सा ।

नाभिपाके निशालोभ्रमियङ्गुमधुकैः  
मृतम् । तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यव-  
चूर्णानम् ॥ ७ ॥

बालकों की नाभि पक जाने पर हल्दी,  
पठानीलोघ, मियगु और मुलेठी के बरक से  
तिल का तेल सिद्ध कर लगाने से अथवा उपयुक्त  
घोषपिप्यों का चूर्ण नाभिपाक पर मुरकाण से  
नाभिपाक चरदा होता है ॥ ७ ॥

तर्क्यधो गुडिकां तप्तां निर्वाप्य रुदुतै-  
लके । तत्तैलं पानतो हन्ति बालानामुल्ल-  
व-स्य ॥ ८ ॥

लोहे की मनी हुई तर्कु ( तकुआ ) के नीचे  
की गुडिका को तपाकर कहुए तेल में बुझावे ।  
बच्चे को इस तेल के पिलाने से दारण उल्लव  
( कठगत रलेष्मा ) नष्ट होता है ॥ ८ ॥

आहृण्डिका की चिकित्सा ।

सोमग्रहणे विधिवत् केकिशिखामूल-  
मुद्धृतं । जंघनेऽथ कन्धरायां क्षपय-  
त्याहृण्डिकां नियतम् ॥ ९ ॥

चन्द्रमा के ग्रहण में मोरशिखा की जड़  
उखाडकर जाँघ अथवा कंधे पर बाँधने से आहृ-  
ण्डिका रोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

सप्तदलपुष्पमरिचं पिष्टं गोरोचना-  
सहितम् । पीतं तद्वत्तण्डुलभक्कृतो दग्ध-  
पिष्टकमाशः ॥ १० ॥

सतवन के फूल, कालीमिर्च और गोरोचन,  
इनको पीसकर बालक को पिलाने से अथवा  
चावल के भात का पिण्ड पुटपाक की विधि से  
पकाकर सेवन कराने से आहृण्डिकारोग नष्ट  
होता है ॥ १० ॥

वालग्वरचिकित्सा ।

भेपजं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरा-  
दिषु । कार्यं तदेव बालानां मात्रा चात्र  
कनीयसी ॥ ११ ॥

मनुष्यों के ज्वर आदि रोगों में जो पहले  
शोषधियाँ कह आये हैं वे ही बालकों को भी  
दी जाती हैं, किन्तु मात्रा अथवा अनुसार कम दी  
जाती है ॥ ११ ॥

भद्रमुस्ताभयानिम्वपटोलमधुकैः कृतः ।  
काथः कोप्यस्तु बालानामशेषज्वरना-  
शनः ॥ १२ ॥

नागरमोया, हनु, नीम की छाल, पटोलपत्र,  
मुलेठी; इनके ब्याध को उचित मात्रा में गुनगुना  
गुनगुना पिलाने से बालकों के सगूर्य ज्वर नष्ट  
होते हैं ॥ १२ ॥

निमन्त्र्य पूर्णं तु हरिमियाया मूलं

समुद्धृत्य दिनेरवेश्च । वद्धं शिखाया-  
मनुरक्तमेनं । ज्वरञ्च हन्यादभिमन्त्रि-  
तेन ॥ १३ ॥

ॐ कुरु वन्दे अमुकस्य ज्वरं नाशय  
नाशय हीं स्वाहा । अनेन अष्टोत्तरशत-  
वारानभिमन्त्र्य बालस्य शिरसि बन्ध-  
नीयम् ॥

तुलसी को पहले दिन निमन्त्रण देकर रविवार  
के दिन उसकी जड़ को उखाड़, लाल डोरा में  
लपेटकर “ॐ कुरु बन्धे” इत्यादि मन्त्र से १०८  
वार अभिमन्त्रित कर बालक की चोटी में बाँध  
दे । इससे बालक का ज्वर नष्ट हो जाता है ।  
यहाँ पर मन्त्र में अमुक शब्द की जगह बीमार  
बालक का नाम लेना चाहिए ॥ १३ ॥

ॐ ब्रह्मरुद्रमभस्कन्दो विष्णुर्देवो हुता-  
शनः । रक्षन्तु ज्वरितं बालं मुञ्च मुञ्च इमं  
स्वाहा ॥ १४ ॥

“ॐ ब्रह्मरुद्र०” इत्यादि मन्त्र से सफेद सरसों  
को अभिमन्त्रित कर बालक पर छोड़े ॥ १४ ॥

इति सर्पपमन्त्रः ।

ज्वर में रक्षामन्त्र यथा—

यथा वज्रं यथा शूलं यथा चक्रं यथा  
हलम् । यथा च शक्तिः स्कन्दस्य रक्षा  
होपा तथास्तु ते ॥ १५ ॥

स्वस्ति ते परमुखो देवो महाभागा च  
रेवती । दिशः सूर्योऽन्तरिक्षश्च स्वस्ति  
कुर्वन्तु सर्वदा ॥ १६ ॥ तेजसा ब्रह्मणश्चाथ  
विष्णोरिन्द्रस्य तेजसा । सिद्धानां तेजसा  
चैव रक्षितोऽसि सुखीभव ॥ १७ ॥

“यथा वज्रं० यथा शूलं” इत्यादि मन्त्रों द्वारा  
परिभाजन करे अर्थात् बालक के देह पर अभि-  
मन्त्रित जल छिड़के ॥ १५-१७ ॥

बालक के लिए मात्रा का प्रमाण ।

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्मेघजर-

किका । अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीर-  
सिताघृतैः ॥ १८ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्या-  
वत् संवत्सरो भवेत् । तद्धर्षं मापट्टिः  
स्याद् यावदापोडशाब्दिकः ॥ १९ ॥

एक महीने के बालक को १ रत्ती ओषधि  
देना चाहिए । वह शहद, दूध, मिश्री अथवा घी  
में मिलाकर चटाना चाहिए । जब तक बालक  
एक वर्ष का न हो जाय तब तक एक-एक रत्ती  
प्रतिमास ओषधि की मात्रा बढ़ाना चाहिए ।  
एक वर्ष की आयु से १६ वर्ष की आयु तक  
एक-एक माशा ओषधि प्रतिवर्ष बढ़ाना चाहिए ।  
यह काष्ठादि द्रव्य की मात्रा है । यह मात्रा का  
प्रमाण प्राचीन है । इस समय बलानुसार मात्रा  
का प्रयोग करना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

बालकों के ज्वरातीसार की चिकित्सा ।

हरिद्रादि कपाय ।

हरिद्राद्वययष्ट्याहसिंहीशक्रयवैः कृतः ।

शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कपायः स्तन्यदोष-  
नुत् ॥ २० ॥

इल्दी, दारहवरी, मुलेठी, बड़ी कटेरी और  
हन्द्रजौ; इनका काड़ा करके बालक को पिलाने  
से ज्वरातिसार नष्ट होता है । यदि दूध पीनेवाला  
बालक इसको न पी सके तो दूध पिलानेवाली  
माता या धाय को पिलाना चाहिए । इससे दूध  
शुद्ध होकर ज्वरातीसार दूर हो जायगा ॥ २० ॥

कर्कटादि चूर्ण ।

कर्कटातिविषा शुण्ठी धातकी विल्व-  
वालकम् । मुस्तं मज्जा च कोलस्य मधुना  
सह लेहयेत् ॥ २१ ॥ हन्ति ज्वरमतीसारं  
दुर्वारं ग्रहणीमदम् । छर्दिं रक्षस्रुतिं कासं  
शवासं परचाद्भुजं तथा ॥ २२ ॥

काकडासिंगी, अतीस, सोंठ, धाय के पूल,  
बेलगिरी, मुगन्धवाला, नागरमोथा और बेर की  
सींगी; इनके समभाग चूर्ण को शहद में बालक  
को चटाने से ज्वर, अतीसार, कठिन ग्रहणीरोग,  
दमन, रश्मिघाव, खाँसी, खाँस और परचाद्भुज

नाम का व्रणविशेष नष्ट होता है । पूर्ण मात्रा—२ माशे से ४ माशे तक ॥ २१-२२ ॥

वालचतुर्भद्रिका ।

घनकृष्णारुणाशुद्धीचूर्णं चतुर्भद्रिका  
संयुतम् । शिशोर्वरातिसारघ्नं श्वास-  
कासघ्नमीहरम् ॥ २३ ॥

मोथा, पीपरि, अतीस और काकडा-  
सिंगी; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर बालक को  
चटाने से ज्वरातीसार, श्वास, खाँसी और वमन-  
रोग नष्ट होता है । पूर्ण मात्रा—१ माशा ॥ २३ ॥

धातक्यादि चूर्ण ।

धातकीधिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयववा-  
लकैः । लेहः चतुर्भद्रिका वालानां ज्वराती-  
सारवान्तिजित् ॥ २४ ॥

एषां समभाग चूर्णं मधुना लेह्यम् ।

धाय के फूल, बेलगिरी, धनियाँ, पठानी  
लोथ, इन्द्रयव और सुगन्धबाला; इनके समभाग  
चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से बालकों का  
ज्वरातीसार और वमनरोग नष्ट होता है । पूर्ण-  
मात्रा—२ माशे ॥ २४ ॥

रजन्यादि चूर्ण ।

रजनी सरलं दारु श्रेयसी बृहतीद्वि-  
यम् । पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं मात्ति-  
कसर्पिषा ॥ २५ ॥ ग्रहणीदीपनं हन्ति  
मारुतात्ति सकामलाम् । ज्वरातीसार-  
पाण्डुघ्नं वालानां सर्वरोगजित् ॥ २६ ॥

हृदयी, चीर की लकड़ी, देवदारु, राजपीपरि,  
बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, पृश्निपर्णी और  
सौंफ, इनके चूर्ण को शहद और घृत में मिला-  
कर चटाने से बालकों की ग्रहणी में अग्नि  
प्रदीप्त होती है तथा वातरोग, कामला, ज्वराती-  
सार और पाण्डु आदि सब रोगों को यह रज-  
न्यादि चूर्ण नष्ट करता है । पूर्ण मात्रा—२  
माशे ॥ २५-२६ ॥

छर्षादि की चिकिरसा ।

मिषि कृष्णासनं लानाशुद्धीमरिचमा-

त्तिकैः । लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकास-  
ज्वरापहः ॥ २७ ॥

सौंफ, पीपरि, रसौत, धान की खील,  
काकड़ासिंगी और काली मिर्च; इनके चूर्ण में  
शहद मिलाकर बालक को चटाने से वमन, खाँसी  
और ज्वर नष्ट होते हैं । पूर्ण मात्रा—२ माशे  
॥ २७ ॥

शुद्धयादि चूर्ण ।

शुद्धीसमुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं  
विदध्यानमधुना शिशूनाम् । कासज्वरच्छ-  
र्दिभिरर्दितानां समात्तिकां वातिविषामथै-  
काम् ॥ २८ ॥

काकड़ासिंगी, नागरमोथा और अतीस;  
इनके चूर्ण में शहद मिलाकर खाँसी, ज्वर तथा  
वमन से पीड़ित बालकों को चटाना चाहिए ।  
अथवा केवल अतीस के चूर्ण में शहद मिलाकर  
बालकों को चटाने से खाँसी, ज्वर और वमन-  
रोग शान्त होते हैं । पूर्ण मात्रा—शुद्धयादि चूर्ण  
११-११ माशे, केवल अतीस चूर्ण १ माशा  
॥ २८ ॥

पीतं पीतं वमेशस्तु स्तन्यं तन्मधुस-  
र्पिषा । द्विवार्त्तकीफलरसं पञ्चकोलश्च  
लेहयेत् ॥ २९ ॥

जो बालक पिये हुए दूध को बार-बार  
वमन कर देता हो उसको छोटी और बड़ी  
कटेरी के फल के रस में शहद मिलाकर  
अथवा पञ्चकोल ( पीपरि, पीपलामूल, चण्ड,  
चिप्रक और सौंड ) के चूर्ण में शहद मिलाकर  
चटाना चाहिए । पूर्ण मात्रा—दोनों कटेरी के  
फलों का रसरस ११-११ तोले, पञ्चकोल का चूर्ण  
२ रत्नी ॥ २९ ॥

आम्रास्थिलाजसिन्धुत्यल्लेहः चतुर्भद्रिका  
छर्दिनुत् । पिप्पलीमरिचानां च चूर्णं म-  
मधुशर्करम् ॥ रसेन मातुलुङ्गस्य द्विका-  
छर्दिनिवारणम् ॥ ३० ॥

आम की गुठली की गिरी, धान की खील और संधा नमक; इनके चूर्ण को शहद में मिलाकर बालकों को चटाने से वमन होना बन्द हो जाता है। पीपरि और काली मिर्च के चूर्ण में शहद, शकर और बिजौरा नींबू का रस मिलाकर चटाने से हिक्का और वमन दूर होती है। पूर्ण मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक ॥ ३० ॥

अतिसारचिकित्सा ।

पेट्रीपाठामूलाज्जम्बवाः सहकारवल्कतः कल्कः । इत्येकशश्च पिएडी विधितो हृन्नाभितात्वादौ ॥ ३१ ॥ छर्द्यतिसारज वेगं प्रबलं धत्ते तदेव नियमेन ॥ ३२ ॥

पेटारी की जड़, पाद की जड़, जामुन की छाल और आम की छाल; इनमें से किसी एक को पीस कर पिएड (गोला) बना ले । इस पिएड को हृदय, नाभि और तालु आदि पर धारण करने से वमन और अतिसार का प्रबल वेग शान्त हो जाता है ॥ ३१-३२ ॥

पत्रैर्धरचाङ्गेरीकाकमाचीकपित्थजैः । शिशौरुग्भव्यतीसारनाशनं मूर्द्धलेपन-नम् ॥ ३३ ॥

धेर, चांगेरी, मकोय और कैधे के पत्तों को पीसकर मस्तक पर लेप करने से शिर पीड़ा, वमन और अतिसार नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

आमातीसार चिकित्सा ।

चीरादस्य शिशोरामं शुष्कं दृष्ट्वा तु दारुणम् । मापयूषं पिवेद्धात्री पिप्पली-चूर्णसंयुतम् ॥ ३४ ॥

दूध पीनेवाले बालक को सूसा और गिरने लगे, अर्थात् आँव के साथ मल न निकलता हो तो इस कष्टकर रोग को दैलकर घाय या माता को उद्द के दूध में पीपरि का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए ॥ ३४ ॥

स्तन्यपस्य कुमारस्य सर्दस्यामाति-सारिणः । धात्री विलहयेदीमान् देह-

दोषाद्यपेक्षया । पञ्चकोलकसिद्धं वा पेयादि-च प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

दूध पीनेवाले बालक के यदि आमातीसार रोग हो जाय तो देह और दोष का विचार करके दूध पिलानेवाली को लंघन कराना चाहिए अथवा पञ्चकोल से सिद्ध की हुई पेया आदि का सेवन कराना चाहिए ॥ ३५ ॥

वचा मुस्तं भद्रदारुनागरातिविपागणः । हरिद्राद्वयपट्याहसिहीशक्रयवैः कृतः ॥ ३६ ॥ इमौ वचाहरिद्रादिगणौ स्तन्य-विशोधनौ । आमातिसारशमनौ कफमेदो-विशोपणौ ॥ ३७ ॥ काथजलं मात्रा पेयं बालेऽपि किञ्चिदेयम् ।

वच, नागरमोथा, देवदार, सोंठ और अर्तास; यह वचादिगण है तथा हर्दरी, दारुहर्दरी, मुकेठी, बड़ी कटेरी और इन्द्रजौ; यह हरिद्रादिगण है । इन दोनों का काथ दूध को शुद्ध और आमा-तीसार को शान्त करनेवाला तथा कफ एवं मेद का शोषण करनेवाला है । यह मात्रा और वच को भी देना चाहिए ॥ ३६-३७ ॥

यमानोपश्लक ।

यमानी जीरकं देवपुष्पं जातीफलं विडम् । भर्जितं चूर्णमेतेषां समांशं वारि-पाचितम् ॥ ३८ ॥ रत्नद्वयमितं बाल्ये यूनि मापकसम्मितम् । यमानीपश्लकं नाम वारिणा सह योजयेत् ॥ अग्निमान्द्यमती-सारं ग्रहण्यो हन्ति दुस्तराम् ॥ ३९ ॥

अजयाहन, सफेद जीरक, लींग, जायफल, विटनमक, इन्हें क्विचिद् भूनकर अलग-अलग चूर्ण कर ले । इनके चूर्णों को बराबर मात्रा में पिलाये । परधान् घोड़ा या जल डालकर अग्नि में पकाये । यह गोली बनाने के योग्य हो जाय तब उतार ले । मात्रा—बाळक के लिये २ रत्ती । युवा के लिये १ माशा । अनुपान—जल । इसके प्रयोग से मग्दाग्नि, अतिसार एवं शिर पीडणी नष्ट होती है ॥ ३८-३९ ॥

मुस्तकादिकाथ ।

मुस्तकातिविपाशुण्ठीवालकेन्द्रयवैः  
कृतम् । काथं शिशुः पिवेत् प्रातः सर्वा-  
तीसारनाशनम् ॥ ४० ॥ काथजलं मात्रा  
पेयं बालेऽपि किञ्चिद्देयम् ।

नागरमोथा, अतीस, सोंठ, सुगन्धबाला और  
इन्द्रजौ; इनका काड़ा बनाकर प्रातःकाल बालक  
को पिलाने से सब प्रकार के अतीसार नष्ट होते  
हैं । यह माता को भी पिलाना चाहिए ॥ ४० ॥

विल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं  
सलोध्रं गजपिप्पली च । क्वाथावलेहौ  
मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारि-  
तेषु ॥ ४१ ॥

बेलगिरी, धाय के फूल, सुगन्धबाला, पठानी  
लोघ और गजपीपरि; इनके काथ में शहद  
मिलाकर पिलाने से अथवा इनके चूर्ण में शहद  
मिलाकर चटाने से घाटाकों का अतीसार नष्ट  
होता है । चूर्ण की पूर्ण मात्रा ३ मासे ॥ ४१ ॥

श्राघ्रातकाम्रजम्बूनां त्वचमादाय चूर्ण-  
येत् । मधुना लेहयेद्बालमतीसारविना-  
शनम् ॥ ४२ ॥

प्रयादा, और आम जामुन; इनकी छाल  
के चूर्ण में शहद मिलाकर बालक को चटाने  
से अतीसार रोग नष्ट होता है । पूर्ण मात्रा २  
मासे ॥ ४२ ॥

सितजीरकसर्जचूर्णं विल्वदलोत्थाम्बु-  
मिश्रितं पीनम् । हन्त्यामरकशूलं गुड-  
सहितः श्वेतसर्जो वा ॥ ४३ ॥

सफेद जीरा और रास का चूर्ण बेलपत्र के  
जल में मिलाकर पीने से अथवा सफेद रास  
और गुड का सेवन करने से शूलपुत्र आम  
और रज्जुवाय रोग नष्ट होते हैं । पूर्ण मात्रा—  
रास और जीरा दोनों मिलाकर १ रत्ती से  
४ रत्ती । बेलस रास चूर्ण की मात्रा १-२  
रत्ती ॥ ४३ ॥

समेद्गाधातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं  
जलम् । दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारं समा-  
क्षिकम् ॥ ४४ ॥

मँजीठ, धाय के फूल, पठानी लोघ और  
अनन्तमूल के काड़े में शहद मिलाकर बालक  
को पिलाने से कठिनतर अतीसार नष्ट होता  
है ॥ ४४ ॥

नागरातिविपामुस्तवालकेन्द्रयवैःशृतम् ।  
कुमारं पाययेत् प्रातः सर्वातीसारनाश-  
नम् ॥ ४५ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धबाला  
और इन्द्रजौ का काथ प्रातःकाल बालक को  
पिलाने से सब प्रकार के अतीसार नष्ट होते  
हैं ॥ ४५ ॥

समद्गा धातकी पद्म वयस्था कच्छुरा  
तथा । पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यादतीसारविना-  
शिनी ॥ ४६ ॥

मँजीठ (या लज्जालू), धाय के फूल, कमल,  
आंवजा और धमासा, इनके कल्क से यथाविधि  
यवागू बनाकर पिलाने से अतीसार नष्ट होता  
है ॥ ४६ ॥

विल्वमूलकपायेण लाजां चैव सश-  
र्कराम् । आलोड्य पाययेद् बालं हर्ष-  
तीसारनाशनम् ॥ ४७ ॥

बेल की जड़ के काड़े में धान की पील  
और शकर मिलाकर तथा मधुवर बालक  
को पिलाने से धमन और अतीसार नष्ट  
होते हैं ॥ ४७ ॥

कल्कः म्रियंगुकोलास्थिमध्यमुस्तर-  
साञ्जनैः । तौद्रलीढः कुमारस्य हृदिदृष्ट्या-  
तिसारनुत् ॥ ४८ ॥

म्रियंगु, बेर की मींगी, नागरमोथा और  
रसीत; इनके कल्क में शहद मिलाकर बालक  
को चटाने से धमन, दृष्ट्या और अतीसार का  
नाश होता है । मात्रा चूर्ण—४ रत्ती से १ मासा  
तक ॥ ४८ ॥

मोचरसः समझा च धातकी पत्रकेश-  
रम् । पिष्टैरैतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसार-  
नाशिनी ॥ ४६ ॥

मोचरस, मजीठ (या लज्जालू), धाय के फूल और कमल की केशर, इनके कल्क से विधिपूर्वक यवागू सिद्ध कर बालक को पिलाने से रक्तातीसार नाश होता है ॥ ४६ ॥

प्रवाहिका चिकित्सा ।

लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याहक-  
ल्लितः । बालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्तस्रावं  
प्रवाहिकाम् ॥ ५० ॥

तिल का तेल, मिश्री और शहद में तिल और मुलेठी का कल्क मिलाकर बालक को चटाने से रक्तस्राव तथा प्रवाहिका अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ५० ॥

लाजासयष्टीमधुकशर्कराः क्षौद्रमेव  
च । तण्डुलोदकसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवा-  
हिकाम् ॥ ५१ ॥

धान की खील और मुलेठी के कल्क में शक्कर, शहद तथा तण्डुलोदक मिलाकर पिलाने से शीघ्र ही प्रवाहिका (पेचिश) नष्ट होती है ॥ ५१ ॥

ग्रहणी चिकित्सा ।

अङ्कोटमूलमथवा तण्डुलसलिलेन  
कुटजमूलं वा । पीतं हन्यतिसारं ग्रहणी-  
रोगं च दुर्वारम् ॥ ५२ ॥

अकोट (ढेरा) की जड़ अथवा कुरैया की जड़ को तण्डुलोदक के साथ पीने से अतीसार और कठिनतर समग्रही नष्ट होती है । पूर्ण मात्रा—२ माशा ॥ ५२ ॥

मरिचमहौषधकुटज द्विगुणीकृतमुत्त-  
रोत्तरं क्रमशः । गुडतक्रयुतमेतद् ग्रहणी-  
रोग निहन्त्याशु ॥ ५३ ॥

काली मिर्च १ भाग, सोंठ, २ भाग तथा

कुड़ा की छाल ४ भाग, इनके चूर्ण में गुड और मट्टा (छाड़) मिलाकर बालक को पिलाने से शीघ्र ही ग्रहणी रोग नष्ट होता है । पूर्ण मात्रा—१॥ माशा ॥ ५३ ॥

बिल्वशक्राम्बुमोचान्दसिद्धमाजं पयः  
शिशोः । सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात्  
त्रिरात्रतः ॥ तद्वदजाक्षीरसमो जम्बूत्वक्-  
सम्भवो रसः ॥ ५४ ॥

बिल्व, इन्द्रजी सुगन्धवाला, मोचरस और नागरमोथा, इनके कल्क से विधिपूर्वक बकरी का दूध सिद्ध कर बालक को पिलाने से तीन दिन में शीघ्र और रक्तसयुक्त समग्रही रोग नष्ट होता है । इसी प्रकार जामुन की छाल का रस और बकरी के दूध सम भाग लेकर पीने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है । पूर्ण मात्रा—स्वरस की १ तोला है ॥ ५४ ॥

गुदपाकचिकित्सा ।

गुदपाके तु बालानां पिचघर्नां कारयेत्  
क्रियाम् । रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपन-  
योहितम् ॥ ५५ ॥

बालकों की गुदा पक जाने पर पिचनाशक चिकित्सा करनी चाहिए । अधिकतर रसौत का पीना और लेप करना हितकर होता है ॥ ५५ ॥

पश्चाद्गुज के लक्षण ।

दुष्टमन्नादिभिर्मातुः स्तन्यं संपिचतः  
शिशोः । यदा प्रकुपितं पिचं गुदं समभि-  
धावति ॥ ५६ ॥ तदा संजायते तत्र  
जलौकोटरसन्निभः । व्रणः सदाहो  
व्यङ्गोपमाः तदास्य स्याज्ज्वरः पर ॥ ५७ ॥  
हरितं पीतकं वापि वर्चस्तेन भवेदध्रुवम् ।  
व्रणः परचाद्गुजो नाम व्याधिः परम-  
दारुणः ॥ ५८ ॥

दुष्ट अन्न पानादिको से दूषित हुआ माता



का दूध पीने से बालक का पित्त कुपित होकर गुदा की ओर आता है, तब वहाँ जोंक के उदर से तुल्य व्रण हो जाता है। उसमें जलन तथा गरमी रहती है और जोर का बुखार हो आता है। बालक के हरे और पीले दस्त होने लगते हैं। इस व्रण-व्याधि का नाम पश्चाद्भुज है। यह अत्यन्त कष्टदायक रोग है ॥ ५६--५८ ॥

चन्दनं शारिवे द्वे च शद्धिनीतिसमा-  
युतैः । पश्चाद्भुजे प्रलेपोऽयमवलेहस्तु  
शस्यते ॥ ५९ ॥

लाल चन्दन, अगन्तमूल, कालीमर और शंखपुष्पी ; इनका पश्चाद्भुज पर लेप करना तथा इन्हीं के घूर्ण में शहद मिलाकर घटाना हित-कर होता है। मात्रा-एक वर्ष की आयु के बालक को १ रत्नी ॥ ५९ ॥

मूत्रग्रह में कणादिलेह ।

कणोपगणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः  
कृतः । मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह  
उत्तमः ॥ ६० ॥

पीपरी, कालीमिर्च, शहर, छोटी इलायची और सेंधा नमक; इनके घूर्ण में शहद मिलाकर घटाने से बालकों का मूत्रावरोध नष्ट होता है। मात्रा-एक वर्ष के बालक को १ रत्नी ॥ ६० ॥

आनाहशूलचिकित्सा ।

पृनेन सिन्धुचिर्द्वलादिगुमार्गारजो  
लिहन् । आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन  
वा शिशुः ॥ ६१ ॥

मेषानमक, मोंद, छोटी इलायची, हींग और भातंगी; इनका घूर्ण पून वा जल के साथ खाने से बालक का आनाहरीज और वातिक शूल नष्ट होगा है। मात्रा-एक वर्ष के बालक के लिये १ रत्नी ॥ ६१ ॥

तानुपातचिकित्सा ।

हरीतकीरवाकुष्ठरत्नैः मात्तिसंयु-

तम् । पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते  
तालुपातनात् ॥ ६२ ॥

हठ, बच्च और कूट के कक में शहद मिलाकर माता के दूध के साथ पीने से तालुभा का गिरना अच्छा होता है। मात्रा-एक वर्ष के बच्चे के लिये आधी रत्नी ॥ ६२ ॥

मुखपाकचिकित्सा ।

मुखपाके तु बालानां साम्रसारमयो-  
रजः । गैरिकक्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्ज-  
नम् ॥ ६३ ॥

बालकों के मुखपाक में अन्नकमार, लोहभस्म, गेरू और रसीत; इनके घूर्ण में शहद मिलाकर लगाना चाहिए ॥ ६३ ॥

अश्वत्थत्वग्दलेः क्षौद्रैर्मुखपाके प्रले-  
पनम् । दार्वायष्ट्यंभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथा-  
परम् ॥ ६४ ॥

मुखपाक में पीपल की छाल तथा पत्ता की पीसकर और उसमें शहद मिलाकर लेप करने से भयवा दारहरदी मुलेठी हृद और चमेली के पत्ते; इनके कक में शहद मिलाकर लेप करने से मुखपाक शान्त होता है ॥ ६४ ॥

सह जम्बीररसेन स्तुग्द्रत्नरसवर्षणं  
सद्यः । कृतमुपहन्ति हि पाकं मुखजं  
वालस्य चारवेव ॥ ६५ ॥

जंबीरी नीबू का रस और मेहुँद के पत्तों का रस मिलाकर पिचाने से बालकों का मुखपाक शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

लावतिचिर्द्विल्लूरसःपुष्परसान्वितः ।  
द्वृतं करोति बालानां पुष्पतेजरस्य-  
सम् ॥ ६६ ॥

सवा और नीगर के मांस का रस शहद में मिलाकर पिचाने से बालकों का मुख पुष्पतेजर के मुख हो जाता है। लावत्यं यह है कि इसके रोपक करने से मुखपाक रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ६६ ॥

दन्तोद्भवेषु रोगेषु न बालमति यन्त्र-  
येत् । स्वयमेवोपशाम्यन्ति जातदन्तस्थ ते  
गदाः ॥ ६७ ॥

दाँत निकलने के कारण उत्पन्न हुए रोगों  
में बालक को औपधि आदि से अधिक पीड़ित  
न करना चाहिए; क्योंकि दाँत निकल आने पर  
वे रोग आप ही शान्त हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

पूतिकर्णचिकित्सा ।

विभीतकफलं कुष्ठं हरितालं मनः-  
शिला । एभिस्तैलं विपक्व्यं बालानां  
पूतिकर्णके ॥ ६८ ॥

बहेड़ा, कूट, हरताल और मैनशिल के कवक  
द्वारा पकाया हुआ तेल बालकों के कान में  
डालने से पूतिकर्ण रोग शान्त होता है ॥ ६८ ॥

हिक्काचिकित्सा ।

पञ्चमूलीकपायेण सघृतेन पयः शृतम् ।  
सशृङ्गेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दितः  
पिवेत् ॥ ६९ ॥

बृहस्पञ्चमूल के काढ़े में ( अठमांश ) घृत  
और ( चतुर्थांश ) दूध डालकर पकावे । जब  
जलमात्र जल जाय तब गुड और सोंठ का  
चूर्ण डालकर ढंढा करके हिचकी से पीड़ित  
बालक को पिलाना चाहिए ॥ ६९ ॥

सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना  
सह । लीढं सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्का-  
र्दितः शिशुः ॥ ७० ॥

सुतहले गेरू के चूर्ण में शहद मिलाकर  
घटाने से हिचकी से पीड़ित बालक शीघ्र ही  
सुखी हो जाता है । मात्रा—एक वर्ष के बालक  
के लिये ६ रत्ती से १ रत्ती तक ॥ ७० ॥

चित्रकं शृङ्गेरेश्च तथा दन्ती गवा-  
च्यपि । चूर्णं कृत्वा तु सर्वेषां सुतोष्ये-  
नाम्बुना पिवेत् ॥ कासं रसासमथो हिक्कां  
कुमाराणां मृगाशयेत् ॥ ७१ ॥

चीता की जड़, सोंठ, दन्ती और इन्द्रायण  
इनका चूर्ण बनाकर किंचित् गरम जल के साथ  
पीने से बालकों की खाँसी, रवास और हिचकी  
नष्ट होती है । मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये  
६ रत्ती से १ रत्ती तक ॥ ७१ ॥

कासश्वास चिकित्सा ।

द्राक्षायासाभयार्कृष्णाचूर्णं सक्षौद्र-  
सर्पिषा । लीढं कासं निहन्त्याशु रवासं च  
तमकं तथा ॥ ७२ ॥

दाख, जवासा, हड और पीपरि ; इनके चूर्ण  
में शहद और घृत मिलाकर घटाने से खाँसी,  
रवास और तमकरवास नष्ट होता है ॥ ७२ ॥

पुष्करादि चूर्ण ।

पुष्करातिविषाभृङ्गीमामधीधन्वयांसकैः ।  
तच्चूर्णं मधुना लीढं शिशूनां पञ्चकास-  
नुत् ॥ ७३ ॥

पोहकरमूल, अतीस, काकशाम्बरी, पीपरि  
और धमासा ; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर  
घटाने से बालकों के पाँचों प्रकार के कास नष्ट  
होते हैं । मात्रा—एक वर्ष के बालक को १  
रत्ती ॥ ७३ ॥

तृष्णा में दाडिमदि चूर्ण ।

दाडिमस्य च बीजानि जीरकं नाग-  
केशरम् । चूर्णितं शकराक्षौद्रलीढं तृष्णा-  
निवारणम् ॥ ७४ ॥

अनारदाना, जीरा और नागकेशर के चूर्ण  
में शकर तथा शहद मिलाकर घटाने से तृष्णा  
( प्यास ) शान्त होती है । मात्रा—एक वर्ष  
के बालक को २ रत्ती ॥ ७४ ॥

मयूरपक्षभस्मव्युपितजलं तेन भावितं  
वक्त्रशोपजिद्वक्त्रे ॥ ७५ ॥

मयूरपक्ष की भस्म को जल में मिलाकर  
रत्न छोड़े, दूसरे दिन धानकर पित्रावे तो  
बालकों की तृष्णा शान्त होती है । इसी

प्रकार बरगद की छाल की भस्म को जल में घोलकर रख दे। दूसरे दिन छानकर पिलावे तो इससे भी बालकों की कृष्णा शान्त होती है ॥ ७५ ॥

नेत्ररोग चिकित्सा ।

पिष्टैश्छागेन पयसा दार्वामुस्तक-  
गैरिकैः । वहिरालेपनं शस्तं शिशोर्नेत्रामया-  
त्तिजित् ॥ ७६ ॥

दारहल्दी, नागरमोथा और गेरू ; इनकी थकरी के दूध में पीसकर आँखों के बाहर लेप करने से बालक के नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ७६ ॥

मनःशिला शङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ  
रसाञ्जनम् । वर्त्तिः चौद्रेण संयुक्ता बाले  
सर्वाक्षिरोगञ्जित् ॥ ७७ ॥

मैनशिल, शंखनाभि, पीपरि और रसौत ; इनको जल में घोटकर बत्ती बना ले। इसको शहद में घिसकर लगाने से बालकों की आँखों के सब रोग शान्त होते हैं ॥ ७७ ॥

मातृस्तन्यकटुस्नेहकाञ्जिकैर्भाषितो  
जयेत् । स्वेदादीपशिखातप्तो नेत्रामयम-  
लङ्कः ॥ ७८ ॥

माता का दूध, कड़ुआ तेल और कांजी से लापरसपुत्र रई की भाषित करके दीपक की शिखा पर गरम कर आँखों को स्वेदित करने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ७८ ॥

कुक्षुक रोगमें आश्च्योतन ।

शुण्ठीमृद्भृनिशाकल्कः पुटपकः ससं-  
न्धयः । कुक्षुण्णकेऽक्षिरोगेषु तद्रसाश्च्यो-  
तनं दितम् ॥ ७९ ॥

मोठ, भंगरा, इन्दी और मोंषाममक इनके बरक को पुटपाक की विधि से पकाकर रस निचोड़ के और नेत्रों में टपकावे तो कुक्षुक तथा अन्य नेत्ररोग शान्त होते हैं ॥ ७९ ॥

कृमिघ्नालशिलाटार्वालात्ताचन्दन-

गैरिकैः । चूर्णाञ्जनं कुक्षुणे स्यात् शिशूनां  
पोथकीषु च ॥ सुदर्शनामूलचूर्णाञ्जनं स्यात्तु  
कुक्षुण्णके ॥ ८० ॥

बायबिडंग, हरताल, मैनशिल, दारहल्दी, लाख, लालचन्दन और गेरू ; इनके चूर्ण का अंजन करना कुक्षुक और पोथकी ( Granular lids ) रोग को नष्ट करता है। तथा सुदर्शन की जड़ के चूर्ण का अंजन करना कुक्षुक रोग में हितकारी होता है ॥ ८० ॥

सिध्मादि चिकित्सा ।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शि-  
शोः । लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामा-  
विचर्चिकाः ॥ ८१ ॥

गृहधूम ( घर का पुर्था ), हल्दी, कूट, राई और इन्द्रजौ, इनको छाछ के साथ पीसकर लेप करने से सँडुआ, पामा और विचर्चिका रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

अश्वगन्धा घृत ।

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरे दशगुणे  
पचेत् । घृतं पेयं कुमार्याणां पुष्टिकृद्बल-  
वर्द्धनम् ॥ ८२ ॥

घृत १ सेर, कल्क के लिए अश्वगंध १ पाव और दूध १० सेर। विधि से घृत सिद्ध कर बालकों को पिलाने से पुष्ट करता है तथा बल को बढ़ाता है। मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ८२ ॥

पाल्वाहरी घृत ।

चाद्रेरीस्वरसे सर्पिश्छामक्षीरसमं  
पचेत् । कपित्थच्योपसिन्धूत्थसमद्घोत्पल-  
पालकः ॥ ८३ ॥ सचिल्वधातकीमोचैः  
सिद्धं सर्वातिसारसुत् । ग्रहर्णां दुस्तरां  
हन्ति बालानां तु विशेषतः ॥ ८४ ॥

चांगिरी का स्वरस ८ सेर, बकरी का दूध २ सेर, घृत १ सेर। बरक के लिए—६ध, पिचुडु ( मोठ, मिच, पीपरि ), मोंषाममक

मंजीठ, नीलकमल, सुगन्धवाला, बेलगिरी, घाय के फूल और मोचरस ; सब मिलाकर आध सेर । विधि से घृत सिद्धकर बालकों को पिलाने से यह बालचाङ्गेरी घृत सब प्रकार के अतीसार और कठिनतर संग्रहणी रोगों को नष्ट करता है । मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ८३-८४ ॥

कुमारकल्याण घृत ।

शङ्खपुष्पी वचा ब्रह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह । द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीरकं बला ॥ ८५ ॥ शटी दुरालभा विल्वं दाडिमं सुरसास्थिरा । मुस्तं पुष्कर-मूलं च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥ ८६ ॥ एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । कपाये कण्टकार्यारच क्षीरे तस्मिन् रचतुर्गुणे ॥ ८७ ॥ एतत् कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम् । वलवर्णकरं धन्यं पुष्ट्यग्निरुचिवर्द्धनम् ॥ ८८ ॥ छाया-सर्वग्रहालक्ष्मीकृमिदन्तगदापहम् । सर्व-वात्सामयं हन्ति दन्तोद्भेदं विशेषतः ॥ ८९ ॥

अष्टमङ्गल घृत ।

कल्क के लिए शंखपुष्पी ( शंखाहूली ), वच, ब्रह्मी, कूट, त्रिफला, दाल, शकर, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खरेंटी, कचूर, जवासा, बेलगिरी, अनारदागा, तुलसी, शालपर्णी, नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची और गजपीपरि ; प्रत्येक एक एक तोला, कटेरी का काड़ा ६ सेर ३२ तोले, दूध १ सेर ३२ तोले, घृत १२८ तोले । विधि से घृत सिद्ध करना चाहिए । रत्नरूपी यह कुमारकल्याण घृत बालकों को सुख देनेवाला, वर्ण, पुष्टि, जठराग्नि और रचि को बढ़ानेवाला है तथा छाया, सब ग्रहों की पीड़ा, अलक्ष्मी, कृमि-दन्त, दन्तोद्भव एवं सब प्रकार के बालरोगों को नष्ट करता है । मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ८२-८६ ॥

अष्टमङ्गल घृत ।

वचा कुष्ठं तथा ब्रह्मी सिद्धार्थकम-थापि च । शारिवा सैन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम् ॥ ९० ॥ मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिने दिने । दृढस्मृतिः क्षिप्त-मेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ॥ ९१ ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मा-तरः । प्रभवन्ति कुमाराणां पितृतामष्ट-मङ्गलम् ॥ ९२ ॥

कल्क के लिए वच, कूट, ब्रह्मी, श्वेत सरसों, अनन्तमूल, संधानभक और पीपरि ; सब मिलाकर आध सेर । घृत २ सेर । पाकार्थं जल ८ सेर । यथाविधि घृत सिद्ध करना चाहिए । इस घृत को प्रतिदिन मात्रानु-सार पिलाना चाहिए । इसके सेवन से बालक की स्मरणशक्ति, मेधा और बुद्धि की वृद्धि होती है । इस अष्टमंगल घृत के पिलाने से बालकों को पिशाच, राक्षस, भूत और मातृकाएँ नहीं सता सकती हैं । मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ९०-९२ ॥

लाक्षादि तैल ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गु-णम् । रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धा-निशायुगैः ॥ ९३ ॥ शताहादाह्यष्ट्याह-मूर्वातिक्ताहरेणुभिः । बालानां ज्वररक्षोघ्न-मभ्यङ्गाद्वलवर्णकृत् ॥ ९४ ॥

लाल का रस २ सेर, तिल का तेल २ सेर, दही का तोड़ ८ सेर । कल्क के लिये रास्ना, लाल चन्दन, कूट, नागरमोथा, असगन्ध, इक्षदी, दारुहर्षदी, सौंफ, देवदारु, मुन्नेठी, मूर्वा ( मरोरफली ), कुटकी और रेणुका ; सब मिलाकर आध सेर । यथाविधि तैल सिद्ध कर मालिश करने से यह ज्वर तथा राक्षसवाधा को नष्ट कर घल और वर्ण को बढ़ाता है ॥ ९३-९४ ॥

सर्पत्वक् लशुनं मूर्वा सर्पपारिष्ट-

पल्लावाः । विडाल विडजालोममेपशुद्धीवचा  
मधु ॥ धूपः शिशोर्वरधनोऽयमशेषग्रह-  
नाशनः ॥ ६५ ॥

साँप की केंचुल, लहसुन, मूवां, सरसों, नीम  
के पत्त, बिल्वी की विष्टा, बकरी के बाल, मेढा-  
सिंगी, बच और शहद, इनकी धूप बालक के  
ज्वर, राक्षस-बाधा और सब ग्रहों की पीडा को  
नष्ट करती है ॥ ६५ ॥

बालरोगान्तक रस ।

शाणं सूतस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च  
तत्समम् । सुवर्णमात्तिकस्यापि चार्द्धभागं  
विनिःक्षिपेत् ॥ ६६ ॥ ततः कज्जलिकां  
कृत्वा लौहपात्रे दृढे नवे । केशराजस्य  
भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पत्रसम्भवम् ॥ ६७ ॥  
स्वरसं काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरमस्य च ।  
सूर्यावर्त्तकशालिच भेकपर्णिरसस्तथा ॥  
६८ ॥ श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्वि-  
चक्षणः । देयं रसाद्भागनेन चूर्णं मरिच-  
सम्भवम् ॥ ६९ ॥ शुभे शिलामये पात्रे  
लौहदण्डेन मर्दयेत् । शुष्कमातपसंयोगाद्  
वटिकां कारयेद्विपक ॥ १०० ॥ प्रमाणं  
सर्पपस्थेव बालानां विनियोजयेत् । इन्ति  
त्रिदोषकं चैव ज्वरमामं सुटारुणम् ॥  
१०१ ॥ कासं पञ्चविधं चापि सर्वरोगं  
निहन्ति च । शिशूनां रोगनाशाय निर्मि-  
तोऽयं महारसः ॥ १०२ ॥

शुद्ध पारा ३ मासे, गन्धक ३ मासे और  
स्वर्णमाषिक ३ मासे । नये लोहपात्र में पारा  
और गन्धक की कज्जली करके उसमें स्वर्ण-  
माषिक मिलाना चाहिए । फिर भृंगराज  
( नीला भंगरा ), भंगरा और मँभाळू के पत्ते,  
मकोय, ग्रीष्मसुन्दर, सूँमुली, शालिग्र, मंद्  
कपर्णी और रथेय अपराजिता की जड़; इन सब  
के रस की भाषना देकर १० मासे कालीमिध

डालकर पत्थर के परत में लोह की मुसली से  
घोटकर सरसों के बराबर गोलीयाँ बना ले और  
धूप में सुखा ले । यह सन्निपात, आमज्वर,  
पाँचों प्रकार की खाँसी और सब रोगों को नष्ट  
करता है । बालकों के रोगों को नष्ट करने के  
लिए यह महारस बनाया गया है ॥ ६६-१०२ ॥

कुमारकल्याण रस ।

सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमयो हेम-  
मात्तिकम् । कन्यातोयेन संमर्द्य कुर्यान्मुद्ग-  
मिता वटीः ॥ १०३ ॥ वटिकां वटिकाद्-  
वा बयोऽवस्थां विविच्य च । क्षीरेण  
सितया साद् बालेषु विनियोजयेत् ॥  
१०४ ॥ कुमाराणां ज्वरं श्वासं वमनं  
पारिगर्भिकम् । ग्रहदोषांश्च निखिलान्  
स्तन्याग्रहणां तथा ॥ १०५ ॥ काम-  
लामतिसारं च कृशतां वद्विषकृतम् । रसः  
कुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः १०६ ॥

रससिन्दूर, मोती की भरम, स्वर्णभरम,  
अधकभरम, लोहभरम और स्वर्णमाषिकभरम;  
इनको घीकुधार के रस में घोटकर मूँग के बराबर  
( आधी रत्ती ) गोलीयाँ बना ले । एक गोली  
अथवा आधी गोली, आयु और अवस्था का  
विचार करके, दूध और मिश्री के साथ बालकों  
को लेवन कराना चाहिए । यह कुमारकल्याण-  
रस ज्वर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक रोग, सब  
ग्रहों के ग्रहदोष, दूध न पीना, कामला,  
अतिसार और जठराग्नि के विकार को नष्ट  
करता है ॥ १०३-१०६ ॥

दन्तोद्देगदान्तक ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।  
अजमोदायमानीभ्यां निशया मधुकेन  
च ॥ १०७ ॥ दारुदावाँविटङ्गलानाग-  
केशरनीरदैः । शटीशुद्धीविट्ठ्योग्ना  
गद्वायोहेममात्तिकैः ॥ १०८ ॥ विधाय  
पयसा पिष्टवटिका वल्लसम्मिता । दन्त-

घर्षेऽभ्यवहृतौ योजयेच्च प्रयोगवित् ॥  
१०६ ॥ प्रयोगादस्य दन्तानां त्वरयोद्ग-  
मतो गदाः । ज्वरान्नेपातिसाराद्या निव-  
र्तन्ते न संशयः ॥ ११० ॥

पीपरि, पीपलामूल, चाय, चीता की जड़, सोंठ, अजमोद, अजवाहन, हल्दी, मुलेठी, देवदारु, दारहल्दी, बायबिड़ंग, छोटी हलायची, नागकेसर, नागरमोथा, बचूर, काकदासिगी, बिड़नमक, अन्नकभस्म, शंखभस्म, लोहभस्म और स्वर्णमाषिक की भस्म; इन सबको सम भाग ले दूध में घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना ले । प्रयोग का जाननेवाला वैद्य बालकों के मसूनों पर इसको घिसे तथा अवस्था-नुसार मात्रा में सेवा करावे । इसके प्रयोग से दाँत बहुत शीघ्र निकल आते हैं तथा दाँत निकलने के कारण से उत्पन्न हुए ज्वर, आसप तथा अतीसार आदि रोग निःसन्देह निवृत्त हो जाते हैं ॥ १०७-११० ॥

लवङ्गचतुःसम ।

जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितं च  
जीरं च टङ्गनयुतं चरकैः प्रयुक्तम् ।  
चूर्णानि मात्तिकसितासहितानि लीढ्वा  
सामात्तिसारमखिलं गुरु हन्ति  
शूलम् ॥ १११ ॥

जायफल, लवङ्ग, जीरा और सोहागा; इनके समभाग चूर्ण में शहद और मिथी मिलाकर चटाने से सब प्रकार का आमातीसार और भयंकर शूलरोग नष्ट होता है । मात्रा-एक वर्ष के बालक के लिये ३ रत्ती से एक रत्ती तक ॥ १११ ॥

दाडिमचतुःसम ।

एतद्द्रव्यचतुष्कं चेद् दाडिमीफल-  
मध्यगम् । पुटपकं पयःपिष्टं तदाडिम-  
चतुःसमम् ॥ ११२ ॥

पयोऽत्र द्वाग्याः, तस्यात्तिसारहर-

त्वात् । पयःशब्दोऽत्र जलवाचकमिति  
केचित् ।

उपयुक्त चारों औषधियों को बीज निकले हुए अन्तर के भीतर भरकर पुटपाक की विधि से पका ले, परचात् बकरी के दूध में अथवा जल में पीसना चाहिए । यह दाडिमचतुःसम योग है । यहाँ बकरी का दूध इसलिए ग्रहण किया है कि वह अतीसार को नष्ट करनेवाला है । कोई आचार्य तो यहाँ पयःशब्द से जल ही ग्रहण करना बताते हैं । मात्रा-३ रत्ती से १ रत्ती तक ॥ ११२ ॥

पिप्पल्याद्य घृत ।

पिप्पलीधातकीपुष्पात्रीफलकशेरुभिः  
धचामूर्शामृतापाठाकटुकातिविपायनैः ॥  
११३ ॥ जीवनीयघृतं सिद्धं शस्तं  
दशनजन्मनि । सुखोप्पेन यथामात्रं  
पयसैतत् प्रपाययेत् ॥ ११४ ॥

पीपरि, धाय के फूल, आँवला, कसेरू, बच, मूर्वा, गिलोय, पाद, कुटकी अतीस, नागरमोथा और जीवनीयगण की सब औषधियाँ आध सेर लेकर कलक बनावे । घृत २ सेर, पाकार्य जड़ ८ सेर । विधि से घृत सिद्ध करे । इसको उचित मात्रा में किचित् गर्म दूध के साथ दाँत निकलने के समय बालक को पिलाना बहुत हितकर होता है ॥ ११३-११४ ॥

शिवमोदक ।

शिवा तामलकी मूर्वा शतपुष्पा निशा-  
द्वयम् । आत्मगुप्ता बला विल्वं देवपुष्पं  
शतावरी ॥ ११५ ॥ मुरा मधुरिका मांसी  
विदारी विश्वभेषजम् । अनन्तामलकी  
श्यामा भार्गी करिकणा कणा ॥ ११६ ॥  
चातुर्जातं चतुर्धाजं चन्दनं रक्तचन्दनम् ।  
मुशली वाजिगन्धा च बीजं गोक्षुरसम्भ-  
वम् ॥ ११७ ॥ सर्वाण्येतानि तुल्यानि  
द्राक्षा सर्वसमा मता । सिता द्राक्षासमा

चैत्रेत्येतानि मधुना सह ॥ ११८ ॥ संमर्द्य  
मोदकान् कृत्वा मापकप्रमितान् भिषक् ।  
एकैकमेपां पयसा प्रातः प्रातः प्रयोजयेत् ॥  
११९ ॥ बालानां सर्वरोगघ्नं पुष्टिकृद्बल-  
वर्द्धनम् । परं वह्निकरं मेध्यमायुष्यं ग्रह-  
दोषहृत् ॥ १२० ॥ भगवत्यै समुदितं  
शिवायै लोकमङ्गलम् । एतन्मोदकमीशेन  
युगे भगवता कृते ॥ १२१ ॥

हट, मुहं आंबला, मूवां, सोया के बीज, हल्दी, दारहल्दी, कौंच के बीज, खरैटी, बेल-गिरी, लवङ्ग, शतावरी, मुरामांसी, सौंफ, जटा-मांसी, विदारीचन्द, सोंठ, अनन्तमूल, आंबला, कालीसर, भारंगी, गजपीपरि, पीपरि, चातुर्जात, ( दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नाग-केशर ), चतुर्भोज ( मेथी, चनसुर, काला जीरा, अजयावन ) सफेद चन्दन, लाल चन्दन, मुसली, अरवगन्धा और गोगुरु के बीज, सब समान भाग । सबके बराबर मुनक्का और मुनक्का के पराधर खाँड़, इन सबको शहद के साथ घोट-कर एक-एक भाशा के लट्टू बनाकर प्रातः काल दूध के साथ एक-एक लट्टू खावे । यह मोदक सब रोगों को नष्ट करके बालकों को पुष्ट कर देता है तथा बल को बढ़ाता, जठराग्नि को दीप्त करता, पथिप्र, घायु बढ़ानेवाला और महदोषों को दूर करनेवाला है । शकरजी ने सप्त-युग में इस लोकमङ्गल मोदक को भगवती पार्वतीजी से कहा था ॥ ११५-१२१ ॥

सर्धोपधिस्नान ।

मुरामांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनी-  
द्रयम् । गटी चम्पकमुम्तं च सर्वापधि-  
गणः स्मृतः ॥ १२२ ॥ सर्वापध्यम्युना  
स्नानं बालानां गटनान्नम् । ग्रहरक्षा  
प्रगमनमायुष्यं कान्तिवर्द्धनम् ॥ १२३ ॥

मुरामांसी, वच, कूट, पारपरीला, रजरी,  
दाहदर्, चम्पक, गटा और मोषा, यह सर्वाः

पधिगण कहाता है । इन औषधियों के जल से बालकों को स्नान कराने से सब रोग नष्ट होते हैं । तथा ग्रह और राक्षसभय शान्त होते हैं और आयु तथा कीर्ति की वृद्धि होती है ॥ १२२-१२३ ॥

कण्टकारी घृत ।

कण्टकार्या बृहत्याश्च भार्गीवासक-  
योरपि । स्वरसेन तथा छागक्षीरेण विपचे-  
द्घृतम् ॥ १२४ ॥ कल्कैः करिकणा-  
कृष्णामरिचैर्मधुकेन च । वचाग्रन्थिकमां-  
सीभिश्चव्यचित्रकचन्दनम् ॥ १२५ ॥ मुस्ता-  
मृतामलयजैर्यमान्या जीरकेण च । बला-  
विश्वामिथाभ्यां च द्राक्षादाडिमदारुभिः ॥  
१२६ ॥ सिद्धमेतद्घृतं सद्यः शिशूनां  
श्वासकासहृत् । ज्वरारोचकशूलघ्नं कफनु-  
द्बलवह्निकृत् ॥ १२७ ॥

कटेरी का रस ४ सेर, बकी कटेरी का रस ४ सेर, भारंगी का रस ४ सेर, अहसे का रस ४ सेर और बकरी का दूध ४ सेर, गोघृत २ सेर । कण्टक के लिए गजपीपरि, पीपरि, मिर्च, मुलेठी, वच, पीपलामूल, जटामांसी, चण्डय, चित्रक, लाख चन्दन, मोषा, गिलोय; सफेद चन्दन, अज-याइन, जीरा, खरैटी, सोंठ, मुनक्का, अनारदाना और देवदारु; सब मिलाकर घाघ सेर । यथा-धिधि घृत सिद्धकर बालकों को उचित मात्रा में सेवन कराने से यह रवाग, खाँसी, ज्वर, अरुचि, शूल और कण्टरोग को नष्ट करता तथा बल और अग्नि को दीप्त करता है । मात्रा एक वर्ष के बच्चे को ४-५ घूँद ॥ १२४-१२७ ॥

व्याघ्रीनैल ।

व्याघ्रीनामकपिन्धानां नेशगजस्य  
चाम्युना । काञ्जिरेण तथा र्न्कर्मुग्ग-  
मोचरसाञ्जनः ॥ १२८ ॥ जतादाटारुय-  
ष्ट्याहपलाराग्निनाशापुगैः । चन्दनद्रय-  
मधिष्ठाभियदृत्पनचेरारैः ॥ १२९ ॥ ज्ञान-

पर्णापृश्निपर्णांचातुर्जातकवालकैः । मृदः  
पात्रे पचेत्तैलमरिष्टेन्धनवद्विना ॥ १३० ॥  
रवासं कासं च बालानां ज्वरं वन्हेरच  
वैकृतम् ॥ व्याघ्रीतैलमिदं हन्यास्वगदान्  
निखिलानपि ॥ १३१ ॥

छोटी कटेरी, अरुसा, घेल की छाल, भंगरा;  
इनका चार-चार सेर रस, काँजी ४ सेर। तैल  
२ सेर। कक के लिए नागरमोथा, मोचरस,  
रसौत, सोधा के बीज, देवदारु, मुलेठी, खरंटी,  
रासना, हल्दी, दारहल्दी, लाल चन्दन, सफेद  
चन्दन, मँजीठ, प्रियंगु, कमल की केशर, शाल-  
पर्णी, पृश्निपर्णी, चातुर्जात ( दालचीनी, छोटी-  
इलायची, तेजपात, नागकेशर ) और सुगन्ध-  
बाला; ये सब मिलाकर आध सेर। इस तैल  
को मिट्टी के पात्र में नीम की लकड़ी की अग्नि  
से विधिपूर्वक सिद्ध करना चाहिए। इस व्याघ्री  
तैल की मालिश करने से बालकों के श्वास,  
कास, ज्वर, अग्निविकार और संपूर्ण चर्मरोग  
नष्ट होते हैं ॥ १२८-१३१ ॥

शंखपुष्पी तैल ।

शङ्खपुष्पीमहानिम्बवासानामर्जुनस्य च।  
स्वरसेनारनालेन लाक्षातोयेन मस्तुना ॥  
१३२ ॥ कल्कैश्च दाडिमीदारुनिशायुग-  
फलत्रिकैः । चन्दनोशीरवालैश्च श्रीखण्ड-  
मधुकाम्बुदैः ॥ १३३ ॥ श्यामाशैवाल-  
शेफालीरक्तोत्पलरसाङ्गनैः । गन्धद्रव्यैश्च  
निखिलैः पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥ १३४ ॥  
भयोगादस्य नश्यन्ति बालानामखिला  
गदाः । कान्तिर्मेधा धृतिः पुष्टिर्वर्द्धते नात्र  
संशयः ॥ १३५ ॥ कल्याणाय कुमारानां  
कपर्दी करुणाकरः । ससर्जदं शङ्खपुष्पीतैलं  
भुवनमद्गलम् ॥ १३६ ॥

शखाहली, बकायन की छाल, अरुसा और  
अर्जुन की छाल, प्रत्येक का स्वरस अथवा काड़ा  
चार-चार सेर। काँजी ४ सेर, लाल का काड़ा

४ सेर। और दही का सोड़ ४ सेर। तिलतेल  
४ सेर। कक के लिए अनारदाना, देवदारु,  
हल्दी, दारहल्दी, त्रिफला, लाल चन्दन, खस,  
सुगन्धबाला, सफेद चन्दन, मुलेठी, मोथा, काली-  
सारिवा, सिवाल, हरसिंगार की छाल, लाल  
कमल, रसौत, सब मिलाकर १ सेर। तथा  
संपूर्ण गन्धद्रव्य डालकर तैल सिद्ध करे। यह  
तैल मालिश करने से बालकों के संपूर्ण रोगों  
को नष्ट करता है। तथा कान्ति, मेधा, धारणा-  
शक्ति और पुष्टि की वृद्धि करता है, इसमें संशय  
नहीं है। बालकों के कल्याण के लिए शिव-  
शंकरजी ने इस भुवन-मंगलप्रद शंखपुष्पी तैल को  
रचा था ॥ १३२-१३६ ॥

अरविन्दासव ।

अरविन्दमुशीरं च कारमरीं नील-  
मुत्पलम् । मञ्जिष्टैलावलामांसीरम्बुदं सा-  
रिवां शिवाम् ॥ १३७ ॥ विभीतकवचा-  
धात्रीः शर्दी श्यामां सनीलिनीम् । पटोलं  
पर्पटं पार्थं मधुकं मधुकं मुराम् ॥ १३८ ॥  
पलमानेन संशुद्धं द्राक्षायाः पलविंशतिम् ।  
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ॥  
१३९ ॥ शर्करायास्तुलां तत्र तुलादं मा-  
त्तिकस्य च । मासं संस्थापयेद्द्राघटे मृत्ति-  
कापरिनिर्मिते ॥ १४० ॥ बालानां सर्व-  
रोगघ्नो बलपुष्ट्यग्निवर्द्धनः । अरविन्दा-  
सवः प्रोक्त आयुष्यो ग्रहदोषहृत् ॥ १४१ ॥

कमल, खस, खरभारि, नीलकमल, मँजीठ,  
इलायची, खरंटी, जटामांसी नागरमोथा, अन  
न्तमूल, हड, बहेडा, बच, आँबला, फचूर, काली  
सारिवा, नील की जड़, परबल के पत्ते, पिच-  
पापड़ा, अर्जुन की छाल, महुआ के फूल,  
मुलेठी और मुरामांसी; प्रत्येक चार-चार तोले।  
मुनका १ सेर। धाय के फूल ६४ तोले। जल  
२५ सेर ४८ तोले। शर्करा २ सेर। शहद २ ॥  
सेर; इन सबको एकत्र कर मिट्टी के पात्र में  
भरकर १ महीने तक धरा रहने दे, फिर धान-



कर उपयुक्त मात्रा में बालकों को सेवन कराने से यह अरविन्ददासव सब रोगों को नष्ट करता है तथा आयुवृद्धि और ग्रहदोषों को नष्ट करता है । पूर्ण मात्रा १ । तोला से २ ॥ तोले तक ॥ १३७-१४१ ॥

वालकुटजावलेहः ।

मूलत्वचं वत्सकस्य पलमेकं सुकुट्टितम् । अष्टभागं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥ १४२ ॥ अतिविषा च पाठा च जीरकं विल्वमेव च । आम्रास्थिशतपुष्पा च धातकी मुस्तकं तथा ॥ १४३ ॥ जातीफलं च सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत्तत्र यत्नतः । बालानामामशूलघ्नं रक्तस्त्रावं सुदारुणम् ॥ १४४ ॥ अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं जयेदेतन्न संशयः ॥ १४५ ॥

कुड़ा की जड़ की छाल ४ तोले कूटकर ३२ तोले जल में पकावे । जय ८ तोले जल पाकी रहे तब छानकर उसमें अतीस, पादी, जीरा सफेद, बेलगिरी, आम की गुठली की मींगी, सीया के बीज, धाय के फूल, नागरमोथा और जायफल सब मिलाकर ४ तोले पीसकर मिलाये । इसके सेवन से बालकों के आमशूल और कठिनतर रक्तस्त्राव रोग नष्ट होते हैं, चाहे सिकदों वैद्य उसे त्याग चुके हों ॥ १४२-१४५ ॥

रामेश्वररसः ।

शाणं मृतस्य गन्धस्य सुवर्णमाक्षिकस्य च । यत्रतः कज्जली कृत्या लौहपात्रे विमर्दयेत् ॥ १४६ ॥ केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पर्णसम्भवैः । स्वरसैः काकमाच्याश्च त्रीष्मसुन्दरकस्य च ॥ १४७ ॥ सूर्यार्त्तकशालिश्च भेकपर्णरसैस्तथा । देयं रसाद्भागैर्न चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ १४८ ॥ श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः । शुष्कामातपसंसर्गाद् गुट्टिकां

कारयेद् भिषक् ॥ १४९ ॥ प्रमाणं सर्षपाकारं बालानां चैव योजयेत् । हन्ति त्रिदोषसंभूतं ज्वरं घोरं सुदारुणम् ॥ शिशूनां रोगनाशाय विश्वनाथेन निर्मितम् ॥ १५० ॥

शुद्ध पारा ३ माशे, गन्धक ३ माशे और सुवर्णमाक्षिक भस्म ३ माशे । पारा और गन्धक की कज्जली करके सुवर्णमाक्षिक की भस्म ढालकर लोह के पात्र में धोटे । इसमें क्रम से केशराज, भँगरा, सँभालू के पत्ते, मकोय, त्रीष्मसुन्दर, सूर्यमुखी, शालिश्च और मयङ्कपर्णी इनके रस की भावना दे । इसमें १ ॥ माशे कालीमिर्च का चूर्ण और १ ॥ माशे श्वेत अपराजिता की जड़ का चूर्ण मिलाकर सरसों के बराबर गोलियाँ बनाकर धूप में सुखा ले । इसके सेवन करने से बालकों का कठिनतर सात्रिपातिक ज्वर नष्ट होता है । बालकों के रोगों को नष्ट करने के लिए विश्वनाथ ने इसको बनाया था ॥ १४६-१५० ॥

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु । कार्यं तदेव बालानां मात्रा तत्र कनीयसी ॥ १५१ ॥

ज्वर आदि रोगों में जो औषधि मनुष्यों के वास्ते कही गई है, वही औषधि बालकों को भी देनी चाहिए । परन्तु मात्रा अवरथानुसार अत्यंत छोटी देनी चाहिए ॥ १५१ ॥

भूतप्रहचिकित्सा ।

हिङ्गुगुण्ड्योपालनेपालीलशुनार्कजटाजटाः । अजलोमीसगोलोमीभूतकेशीवचालताः ॥ १५२ ॥ कुम्कुटी सर्षगन्धारुया तिलाः काणविकाशिके ॥ वज्रमोक्षावयःस्था च शृङ्गी मोहनवल्लयपि ॥ १५३ ॥ स्नातोजाउनरत्नोघ्नाःरत्नोघ्नं चान्यदापधम् । खराभश्चात्रिदुष्टर्त्तगोधानकुलशल्पकान् ॥ १५४ ॥ द्वापिमाजार्गोतिहव्या-

घ्रसामुद्र- सत्वतः । चर्मपित्तद्विजनखावर्गे-  
ऽस्मिन् साधयेद्घृतम् ॥ १५५ ॥ पुराणम-  
थवा तैलं नवं तत्पाननस्ययोः । अभ्यङ्गे च  
प्रयोक्तव्यमेतेषां चूर्णाश्च धूपने ॥ १५६ ॥  
एभिश्च गुटिकां युञ्ज्यादञ्जने सावपीडने ।  
प्रलेपे कल्कमेतेषां काथश्च परिपेचने ॥  
प्रयोगोऽयं ग्रहोन्मादान् सापस्मारं शमं  
नयेत् ॥ १५७ ॥

हॉग, त्रिकुटा, हरिताल, मैनशिल, लहसुन,  
आक की जड़, जटामासी, मेढासिंगी, दूब की  
जड़, भूतकेशी, वच, प्रियंगु, सेमर, रास्ना,  
तिज, काकोली, घोरकाकोली, यूहर हड़,  
काकडासिंगी, माह्वी, सुरमा, रचोचन, ( सरसों  
अथवा गुग्गुलु ) तथा अन्य यथालाभ रचोचन  
द्रव्य; गदहा, घोड़ा सेह, उँट, रीछ, गोह, नकुल,  
शक्यक, चीता, बिल्ली, गी, सिंह, बाघ तथा  
सामुद्रिक जन्तुओं के चर्म, पित्त, दाँत तथा नख;  
इनका काथ, कल्क आदि द्वारा पुराने घृत अथवा  
नवीन तैल को विधिपूर्वक सिद्ध करे । इसका पान,  
नस्य एवं अभ्यङ्ग द्वारा प्रयोग करना चाहिए ।  
धूपनार्थ इन्हीं हॉग आदि द्रव्यों के चूर्ण का प्रयोग  
करना चाहिए । अञ्जनार्थ इन्हीं द्रव्यों से गोली  
बनावे और जड़ में घिसकर अञ्जन करे । अव-  
पीडन तथा प्रलेपार्थ इन्हीं द्रव्यों का कल्क बनावे ।  
परिपेचन अथवा स्नानार्थ इन्हीं द्रव्यों का काथ  
लाभदायक है । ये ग्रह-उन्माद तथा अपस्मार  
को शक्य करते हैं ॥ १५२-१५७ ॥

भूतवार घृत ।

त्रिकटुकदलकूडकुमग्रन्थिकत्तारसिद्दी-  
निशादारुसिद्धाथयुग्मांभुस्राकाहयैः ॥  
सितलशुनफलत्रयोशीरतिक्लावचा तुत्थपट्टी  
पलालोहितैलाशिलापद्मकैः ॥ १५८ ॥  
दधितगरमधुकसारमियाडाविपाख्याविपा-  
तार्च्यशैलैः सचव्यामयैः कल्कितैः । घृत-

मनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं भूतवाराहयं  
पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम् ॥ १५९ ॥

पुराना घी १२८ तोले, आठों मूत्र ( मिलित )  
६ सेर ३२ तोले । कल्क के लिये—त्रिकुटा,  
तेजपात, केशर, पीपलामूक, जगखार, बड़ी  
कटेरी हल्दी, देवदारु, सफेद सरसों, लाल  
सरसों, गन्धवाला, इंद्रजौ सफेद चन्दन, लह-  
सुन, त्रिफला, खस, कुटकी, वच, तूतिया,  
मुलेठी, खरेंटी, मँजीठ, इलायची, मैनशिल,  
पद्माक्ष, दधि ( श्रीवास चीड़ की लकड़ी  
अथवा गन्धघिरोजा ), तगर, महुए की लकड़ी,  
प्रियंगु कलिहारी, अतीस, रसात, छारछरीला,  
चव्य, कूट, सब मिलाकर ३२ तोले । विधिपूर्वक  
घृत पकावे । मात्रा चौथाई तोला । इस घृत के  
पान से ग्रह नष्ट होते हैं ॥ १५८-१५९ ॥

महाभूतवार घृत ।

नतमधुककरञ्जलात्तापटोलीसमद्वाव-  
चापाटलीहिङ्गुसिद्धार्थसिद्दीनिशायुगल-  
तारोहियैः । बदरकटुफलत्रिकाकारुददारु-  
कृमिघ्नाजगन्धामराङ्गोलकोशातकीशिशु-  
निम्बाम्बुदेन्द्राहयैः ॥ १६० ॥ गदशुक-  
तरुपुष्पवीजोग्रयष्ट्यद्रिकर्णानिकुम्भाग्नि-  
विल्वैः समैः कल्कितैः मूत्रवर्णेण सिद्धं-  
घृतम् । विधिविनिहितमाशु सर्वैः क्रम-  
योजितं हन्ति सर्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरास्त-  
न्महाभूतवारं स्मृतम् ॥ १६१ ॥

गोघृत १२८ तोले, आठों मूत्र मिलाकर ६  
सेर ३२ तोले । कल्क के लिये—तगर, मुलेठी,  
करञ्ज, लाख, पटोल, मँजीठ, वच, पाटला,  
हॉग, सफेद सरसों, बड़ी कटेरी, हल्दी, दाह,  
हल्दी, प्रियंगु, कुटकी, घेर कालीमिष, त्रिफला  
काएट, ( घिरायता, अथवा शर ) देवदारु,  
याचविद्व, बघई, गिलोय, चडोल, कदवी तोरई,  
सहिजना की छाछ, नीम की छाछ, मोषा, इन्द्र-  
जौ, कूट, सिरस के फूल और बीज, बघा,  
( अथवा बीजोप यदि एक पद सिया जाय तो

बाँस ), मुलेठी, गिरिकर्णौ, दन्ती, चित्रक और बेल सब मिलाकर ३२ तोले । इनसे विधिपूर्वक घृत सिद्धकर सेवन करने से यह सम्पूर्ण ग्रह, उन्माद, कुष्ठ तथा ज्वर आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ १६०-१६१ ॥

सहासुखिडतिकोदीच्यक्वाथस्नानं ग्रहा-  
पहम् । सप्तच्छदनिशाकुष्ठचन्दनैश्चानु-  
लेपनम् ॥ १६२ ॥

सहा ( मापपर्णी ), मुखडी, गन्धवाला; इनके अर्द्धावशिष्ट ( आधे बचे हुए ) क्वाथ द्वारा स्नान कराने से अथवा सतीना, हल्दी कूट तथा सफ़ेद चन्दन; इनके लेप करने से सम्पूर्ण ग्रह नष्ट होते हैं ॥ १६२ ॥

महागन्धक ।

रसगन्धकयोः कर्पं ग्राह्यमेकं सुशो-  
धितम् । ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन  
साधयेत् ॥ १६३ ॥ जातीफलं तथा कोपं  
लवङ्गारिष्टपत्रके । सिन्धुवारदलं चैव  
एलावीजं तथैव च ॥ १६४ ॥ एपाञ्च  
कर्पमात्रेण तोयेनाथ विमर्दयेत् । मुक्ताग्रहे  
पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् ॥ १६५ ॥  
घनपङ्कं वहिलिप्त्वा पुटमध्ये निधापयेत् ।  
गुञ्जापट्कप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥  
१६६ ॥ एतत्प्रोक्त्वा कुमाराणां रक्षणाय महौ  
पधम् । ज्वरघ्नं दीपनं चैव बलवर्णप्रसाध-  
नम् ॥ १६७ ॥ दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव  
प्रवाहिकाम् । सूतिकाञ्च जयेदेतद्रक्ताशौ  
रक्तासम्भवम् ॥ १६८ ॥ पिशाचा दानवा  
दैत्या बालानां विघ्नकारकाः । यत्रौपध-  
वरस्तिष्ठेत्तत्र सीमां न यान्ति ते ॥ १६९ ॥  
बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणाञ्चैव विशेष-  
पतः । महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनि-  
पूदनम् ॥ १७० ॥

शुद्ध पारा १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला; इनकी कज्जली करके विधिपूर्वक मृदुपाक द्वारा पर्पटी बनाये । पश्चात् पर्पटी को अच्छे प्रकार पीसकर उसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीम के पत्ते, सँभालू के पत्ते, दाँटी इलायची; हरएक का पूर्ण १ तोला मिला दे और थोड़ा सा जल देकर अच्छे प्रकार घोट करके पिट्टा-कार कर ले और सीपियों में ढालकर सुखा ले, फिर अन्य सीपियों द्वारा बन्द कर दे । पश्चात् बाहर मिट्टी का मोटा घना लेप करके घूप में सुखा ले । तदनन्तर लघुपुट दे । जब गन्धक की गन्ध आने लगे तत्क्षण बाहर निकाल ले और शीतल होने पर सीपियों को अलग कर औषध चूणित कर ले और यदि गोली बनानी हों तो जल में घोटकर गोली बना ले । पूर्णमात्रा— २ रत्ती से ६ रत्ती तक । ग्रहणी रोग में भी इस औषध का वर्णन है; किन्तु नहीं इसका पाक भिन्न प्रकार से लिखा गया है । कुछ वैद्य पहले पाक के अनुसार ही इसका पाक करते हैं । परन्तु वह इतना लाभदायक नहीं होता जितना कि इस नई विधि के पाक से होता है । इसमें "सिन्धुवारदलं चैव केलावीजं तथैव च" इत्यादि पाठ अधिक है । यह दोनों द्रव्य भी इस रस की शक्ति को बढ़ाते हैं । बालकों को रोगों से मुक्त करने के लिये यह अत्यन्त उत्कृष्ट औषध है । यह रस ज्वर, ग्रहणी, प्रवाहिका, सूतिकारोग, रक्ताशौं आदि रोगों को नष्ट करता है । इससे अग्नि उदीप्त होती है तथा बल एवं वर्ण की वृद्धि होती है । इस औषध के प्रयोग से पिशाच, दानव तथा दैत्य आदि बालकों के पास नहीं आते । बीमार बालकों तथा स्त्रियों के सम्पूर्ण रोगों को यह महागन्धक नाश करता है ॥ १६३-१७० ॥

बाल रस ।

पलं शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्य पलं  
तथा । सुवर्णमात्तिकस्यापि भागार्द्धसम्प्र-  
कल्पयेत् ॥ १७१ ॥ ततः कज्जलिकां  
कृत्वा लौहपात्रमये दृढे । केशराजस्य

भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ १७२ ॥  
शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत् ।  
राजिकासदृशीञ्चैव वटिकां कारयेद्भिषक ॥  
१७३ ॥ एकैकां वटिकां खादेन्नागवल्लीदल-  
द्रवैः । हन्ति त्रिदोषसम्भूतं ज्वरञ्चैव सुदारु-  
णम् ॥ १७४ ॥ चिरज्वरञ्च कासञ्च शूलंसर्व-  
भवं तथा । शिशूनां रोगनाशाय शिवेन  
परिकीर्तितः ॥ १७५ ॥

शुद्ध पारा तथा गन्धक को अलग-अलग  
४ तोले की मात्रा में लेकर लोहपात्र में घोटकर  
कजली करके उसमें सुवर्णमाक्षिक भस्म ४ तोले  
मिलावे परचाट् पत्थर की खरल में इस  
औषध को ढाल केशराज, भोंगरा तथा सँभालू  
के रस से लौहदण्ड द्वारा घोटकर राई के  
परिमाण की गोलियाँ बनावे । अनुपान-पान  
के पत्तों का रस । शिवजी द्वारा कहा हुआ यह  
रस त्रिदोष ज्वर, जीर्णज्वर, खाँसी, शूल आदि  
बालकों के रोगों के लिए अत्यन्त लाभदायक  
है ॥ १७१६७२ ॥

वलिशान्तीष्टकर्मणि कार्याणि ग्रह-  
शान्तये । मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यस्तत्रादौ  
सर्वकामिकः ॥ १७६ ॥

मन्त्रो यथा । “ॐ नमो भगवते गरु-  
डाय ज्यम्बकाय स्वस्त्यस्तु स्वाहा ॐ कं  
टं यं गं वैनतेयाय ॐ ह्रां ह्रीं चः ।”

ग्रहों की शान्ति के लिए बलि, शान्ति और  
दृष्टदेव की पूजा आदि कर्म करना चाहिए, किन्तु  
सब कामों के आदि में आगे कहे हुए मन्त्र का  
प्रयोग करना चाहिए ॥ १७६ ॥

मन्त्र जैसे—ॐ नमो भगवते गरुडाय ज्यम्ब-  
काय स्वस्त्यस्तु स्वाहा । ॐ कं टं यं गं वैनतेयाय  
ॐ ह्रां ह्रीं चः ॥

वालदेहप्रमाणेन पुष्पमालां तु सर्वतः ।  
प्रगृह्य मृच्छिकाभक्तं वलिर्देवस्तु शा-  
न्तिकः ॥ १७७ ॥

“ॐकारः स्वर्णपक्षीश बालकं रक्त  
रक्त स्वाहा ।”

बालक की देह के बराबर लंबी पुष्पों की  
माला ले और मिट्टी के सरोरे ( सराव ) में  
भात रखकर उसके चारों ओर माला रख दे और  
“ॐकारः स्वर्णपक्षीश बालकं रक्त रक्त स्वाहा”  
इस मन्त्र को पढ़कर चौराहं पर गहड़ के लिए  
बलि दे ॥ १७७ ॥

अथ रावणकृत

कुमारतन्त्र ।

ॐ नारायणाय स्वाहा । प्रथमे दिवसे  
मासि वर्षे वा गृह्णाति नन्दा नाम मातृका ।  
तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः ।  
अशुभशब्दं मुञ्चति आत्कारं च करोति  
स्तन्यं न गृह्णाति । वलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि  
यैन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां  
कृत्वा शुक्लौदनं शुक्लपुष्पं सप्तध्वजाः सप्त  
प्रदीपाः सप्त वटकाः सप्त स्वस्तिकाः सप्त  
शकुलिकाः जम्बुडिका गन्धपुष्पं ताम्बूलं  
मत्स्यं मांसं सुरा अग्रभक्तं च पूर्ववस्थां दिशि  
चतुष्पथे मध्यान्हे वलिर्दातव्यः । अश्वत्थ-  
पत्रं कुम्भे निःक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नाप-  
येत् । रसोनसिद्धार्थकमेपमृद्गनिम्यपत्रशिव-  
निर्मात्यैर्वालकं धूपयेत् ।

“ॐ नमो रावणाय शमुकस्य व्याधि  
हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा ।”

एवं दिनत्रयं वलिं दत्त्वा चतुर्थे दिवसे  
ब्राह्मणान् भोजयेत् । ततः सम्पद्यते  
शुभम् ॥ १ ॥

पहले दिन अथवा पहले महाने या पहले मर्ग  
में नन्दा नाम मातृका बालक को प्रदण करती

है तब बालक को पहले उजर हो आता है, यह अशुभ शब्द छोड़ता है अर्थात् बुरी तरह रोता है, आ-आ करता है, दूध नहीं पीता है। उसके निवारण के लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

“नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर एक पुतली अर्थात् मूर्ति बनावे और सफेद भात, सफेद फूल, ७ ध्वजाएँ, ७ दीपक, ७ बरे ( उड़द के बडे ), ७ स्वस्तिक ( अर्थात् चावलों को पीसकर कुछ मीठा ढालकर बनाये हुए ७ तिकोने जो घी में पकाये गये हों ), ७ सुडाली ( छोटी-छोटी पूरियाँ ), उबाले हुए उर्द, रोली, चन्दन, फूल, पान, मछली, मांस, मदिरा और भात ( पके हुए चावल जो पात्र में से सबसे पहिले निकाले जायें ); इन सब चीजों को इकट्ठा कर पूर्व दिशा में चौराहे पर मध्याह्न के समय बलि ( उतारा ) देना चाहिए । फिर कलश में पीपल का पत्ता छोड़कर शान्तिजल से स्नान कराना चाहिए । और लहसुन, सफेद सरसों, मेढ़े का सींग, नीम के पत्ते और बिल्वपत्र इन सबकी बच्चों को धूप देना चाहिए । बलि ( उतारा ) देते समय—

“ ॐ नमो रावणाय अमुकस्य १ व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ही फट् स्वाहा ।” इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए । इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । इससे बचा अच्छा हो जाता है ॥ १ ॥

द्वितीये दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति सुनन्दा नाम मातृका । तथा गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति उजरः । चक्षुरुन्मीलयति गात्रमुद्वेजयति न शेते क्रन्दति स्तन्यं न गृह्णाति आस्कारं च करोति । बलिं तस्याः मवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

तएदुलं हस्तमुष्ट्यैकं गृहीत्वा दधि-गुडघृतमिश्रितं कृत्वा शरावैकं गन्धं

ताम्बूलं पीतपुष्पं पीतसप्तध्वजाः चत्वारः प्रदीपाः दश स्वस्तिकाः मत्स्यमांससुराग्र-भक्तितिलचूर्णानि परिचमायां दिशि चतु-प्पथे दिवा बलिर्दातव्यः । दिनानि त्रीणि सन्ध्या च । ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत् । शिवनिर्माल्यसिद्धार्थकमार्जाररोमोशीरवा-लकघृतैर्धूपं दद्यात् ।

“ ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ही फट् स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ २ ॥

दूसरे दिन, दूसरे महीने अथवा दूसरे वर्ष में

सुनन्दा नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब बालक को उसी समय पहले उजर हो आता है, आँखें बन्द कर लेता है, झगड़ाई लेता है, सोता नहीं है, रोता है, दूध नहीं पीता है और आ-आ करता ( उबकाई आती ) है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

एक मुट्टी चावल लेकर! उसमें दही, गुड़ और घृत मिलाकर एक सकोरे में रख ले तथा रोली, चन्दन, पान, पीले फूल, पीली ७ ध्वजाएँ, ४ दीपक, १० घी के पके चावलों के तिकोने, मछली, मांस, मदिरा, भात ( भात के पात्र में से पहिले निकाला भाग ) और तिल का चूर्ण उसमें रखकर पश्चिम दिशा में चौराहे पर सार्यकाल के समय दिन-में तीन दिन तक बलि ( उतारा ) देना चाहिए । फिर शान्ति जल से स्नान कराना चाहिए । बिल्वपत्र, सफेद सरसों, बिल्ली के बाल खस, सुगन्धबाला और घृत । मिलाकर धूप देना चाहिए । बलि ( उतारा ) देते समय—

“ ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ही फट् स्वाहा ।” इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए । चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन

कराना चाहिए । इससे बच्चा अच्छा हो जाता है ॥ २ ॥

तृतीये दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति पूतना नाम मातृका । तथा गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रमुद्वेजयति स्तन्यं न गृह्णाति मुष्टिं बध्नाति क्रन्दति ऊर्ध्वं निरीक्षते । बलि तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा रक्तचन्दनं गन्धं ताम्बूलं रक्तपुष्पं रक्तचन्दनं रक्तसप्तध्वजाः सप्तप्रदीपाः सप्त-  
स्तिकाः पक्षिमांसं सुरा अग्रभक्तं च दक्षिणस्यां दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलि-  
र्दातव्यः । शिवनिर्माल्यगुग्गुलुसर्पपनिम्ब-  
पत्रमेपभृङ्गैर्दिनत्रयं धूपयेत् ।

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च हासय हासय स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ३ ॥

तीसरे दिन, तीसरे महीने अथवा तीसरे वर्ष पूतना नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब बालक को उसी समय पहले ज्वर हो आता है, शरीर को एँठने लगता है, दूध नहीं पीता है, मूठी बन्द करके रोता है और ऊपर को देखने लगता है । उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे बक्ष्याण होता है ।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर पुतली ( मूर्ति ) बनावे और लाल चन्दन, रोली, पाण, लाल फूल, लाल बरगं मी ७ ध्वजाएँ, ७ दीपक, ७ चावल के तिकोने, पक्षी का मांस, मदिरा और पदला भात ( पात्र के पहिले चावल ); इन सबको एक सकोरे में रखकर दक्षिण दिशा में अपराह्ण के समय चौराहे पर बलि ( उतारा ) दे । फिर विश्वपथ, गूगुल, सरसों, नीम के

पत्ते और मेड़ा का साँग, इनकी तीन दिन धूप दे । बलि का मन्त्र—

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च हासयहासय स्वाहा ।” चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ३ ॥

चतुर्थे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति मुखमुष्टिदितिका नाम मातृका । तथा गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । ग्रीवां नमयति चक्षुरुन्मीलयति स्तन्यं न गृह्णाति रोदिति स्वपिति मुष्टिं बध्नाति बलि तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयकूलमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा उत्पलपुष्पं गन्धं ताम्बूलं दश शुक्लध्वजाः चत्वारः प्रदीपास्त्रयोदश स्व-  
स्तिकाः मत्स्यमांससुरा अग्रभक्तं च उत्त-  
रस्यां दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलिर्देयः ।

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ४ ॥

चौथे दिन, चौथे महीने अथवा चौथे वर्ष में मुखमुष्टिदितिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो आता है, गर्दन झुका देता है, आँखें बन्द कर लेता है, दूध नहीं पीता है, रोता है, सोया करता है और मूठी बन्द कर लेता है । उसके बलि कहता हूँ, जिससे बक्ष्याण होता है ।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर मूर्ति ( पुतली ) बनाकर बमल के फूल, रोली, चन्दन, पाण, १० मफेद ध्वजाएँ, ४ दीपक, १३ तिकोने, मदली, मांस, मदिरा और पदला भात; इन सबको सकोरे में रखकर उत्तर दिशा में अपराह्ण के समय चौराहे पर बलि दे । बलि का मन्त्र—

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।”

हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।” इस प्रकार ३ दिन बलि दे । चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ४ ॥

पञ्चमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति कटपूतना नाम मातृका । तथा गृहीत-मात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रमुद्दे-जयति मुष्टिं बध्नाति स्तन्यं न गृह्णाति । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

कुम्भकारस्य चक्रमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्त-लिकां कृत्वा गन्धं ताम्बूलं शुक्लौदनं शुक्लपुष्पं पञ्चध्वजाः पञ्च वटकाः सप्त प्रदीपाः ऐशान्यां दिशि बलिर्दातव्यः । ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत् । शिवनिर्मा-ल्यसर्पनिर्मांकगुग्गुलुनिम्बपत्रबालकघृतैर्धूपं दद्यात् ।

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ५ ॥

पाँचवें दिन, पाँचवें महीने अथवा पाँचवें वर्ष में कटपूतना नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब बालक को उसी समय पहले ज्वर हो आता है, शरीर घटने लगता है, मूँठी बन्द कर लेता है तथा दूध नहीं पीता है । उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है ।

कुम्हार के चाक की मिट्टी लेकर मूर्ति (पुतली) बनाकर रोली चन्दन, पान, सफेद चावल का भात, सफेद फूल, पाँच ध्वज, पाँच उदक के बरे, सात दीपक; इन सबको एक सकोरे में रखकर ईशान दिशा में (चौराहे पर) बलि दे । परचाम् शान्ति के जल में स्नान करावे और शिवलपत्र, सर्प की केंचुली, गुग्गुल, नीम के पत्ते, सुगन्धधाला और घृत मिलाकर धूप दे ।

बलि का मन्त्र—“ॐ नमो रावणाय अमु कस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा ।” इस प्रकार ३ दिन बलि दे । चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ५ ॥

षष्ठे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका । तथा गृहीत-मात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रभेदं दर्शयति । दिवारात्रौ उत्तानो भवति ऊर्ध्वं निरीक्षते । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

षष्ठकेन पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लौदनं रक्तपुष्पं पीतपुष्पं गन्धं ताम्बूलं दश प्र-दीपाः दश पीतध्वजाः दश स्वस्तिकाः दश वटकाः क्षीरजम्बुडिका मत्स्यमांस-सुरा आग्नेय्यां दिशि निष्क्रान्ते मध्याह्ने बलिर्दातव्यः । शान्त्युदकेन स्नापयेत् । शिवनिर्माल्यरसोनगुग्गुलुसर्पनिर्मांकनिम्ब-पत्रघृतैर्धूपं दद्यात् ।

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् । ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ६ ॥

छठे दिन, छठे महीने अथवा छठे वर्ष में शकुनिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो आता है, देह टूटने लग जाती है, दिन-रात चिन् चका रहता है, ऊपर हो देखा करता है । उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है ।

पीठी का पुतला बनाकर सफेद चावलों के भात, लाल फूल, पीले फूल, रोली, चन्दन, पान, १० दीपक, १० पीली ध्वजाएँ, १० तिकोने, १० बरे (उदक के बटे), दूध में

उबाले हुए उबड़, मड़ली, मांस और मदिरा ; इनको सैनक ( मिट्टी की तस्तरी ) में रखकर अग्निकोण में, चौराहे पर, मध्याह्न के समय बलि दे । परचात् शान्तिजल से स्नान कराकर बिल्वपत्र, लहसुन, गूगुल, सर्प की केशुल, नीम के पत्ते और घृत की धूप दे ।

बलि का मन्त्र—“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा ।” इस प्रकार ३ दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है । अमुकस्य के स्थान पर बालक का पञ्चान्त नाम रखना चाहिए ॥ ६ ॥

सप्तमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति शुष्करेवती नाम मातृका । तथा गृहीत-मात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रमुद्देजयति मुष्टिं बध्नाति रोदिति । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

रक्तपुष्पं शुक्रपुष्पं गन्धं ताम्बूलं रक्तौदनं कृशाराः त्रयोदश स्वस्तिकास्त्रयोदश शङ्कुलिका जम्बुडिका मत्स्यमांससुराः त्रयोदश ध्वजाः पञ्च प्रदीपाः पश्चिमे दिग्भागे ग्रामनिष्क्रान्ते अपराह्णे वृत्तमाश्रित्य बलिं दद्यात् ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत् । गुग्गुलुमेपशुङ्गसर्पपोधीरवालकघृतैर्धूपयेत् ।

“ॐ नमो रावणाय दीप्तदेहाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ७ ॥

सातवें दिन, सातवें महीने अथवा सातवें वर्ष में शुष्करेवती नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो जाता है, शरीर एँठला है और मूँटी बाँधकर रोता है । उसके लिए बलि कहता है, जिससे कल्याण होता है ।

लाल फूल, सफेद फूल, रोली, चन्दन, पान, लाल भात, तिल और चावल की छिचवी, १३ तिकोने, १३ पूडियाँ, उबाले हुए उर्द, मड़ली, मांस, मदिरा, १३ ध्वजाएँ, ५ दीपक ; इन सबको सकोरे में रखकर पश्चिम दिशा में गाँव के बाहर अपराह्न के समय घृत की जड़ में बलि दे । फिर शान्तिजल से स्नान कराकर गूगुल, मेड़ा की सींग, सरसों, खस, नेत्रवाला और घृत की धूप दे ।

बलि का मन्त्र—“ॐ नमो रावणाय दीप्त-देहाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।” इस प्रकार ३ दिन करें, फिर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ७ ॥

अष्टमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति अर्यमा नाम मातृका । तथा गृहीत-मात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । गृध्र-गन्धः पूतिगन्धं च जायते आहारं च न गृह्णाति उद्देजयति गात्राणि । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

रक्तपीतध्वजारचन्दनं पुष्पं शङ्कुल्यः पर्पटिकां मत्स्यमांससुराजम्बुडिकाः मत्स्यूपे बलिर्दातव्यः तदैव मन्त्रः पाठ्यः ।

ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रा-वणाय चतुर्दिशां मोक्षणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ज्वल ज्वल दह दह ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ८ ॥

आठवें दिन, आठवें महीने अथवा आठवें वर्ष में अर्यमा नाम मातृका पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो जाता है । बालक में गीध की-सी तथा सड़ी हुई गन्ध आने लगती है, कुछ खाता-पीता नहीं है तथा शरीर को एँठने लगता है । उसके लिए बलि कहता है, जिससे कल्याण होता है ।



लाल और पीली ध्वजाएँ, चन्दन, फूल, पड़ियाँ, पापड़, मछली, मांस, मदिरा और उबाले हुए उर्द; इनको एक मिट्टी की तस्तरी में रखकर प्रातःकाल ( उपः काल ) चौराहे पर बलि दे और उसी समय यह मन्त्र पढ़े ।

“ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्राघणाय चतुर्विंशतिभुजाय अमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ज्वल ज्वल दह दह ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।” इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराने से बालक सुखी होता है ॥ ८ ॥

नवमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति सूतिका नाम मातृका । तथा गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । नित्यं हृदिर्भवति गात्रभेद दर्शयति मुष्टिं बध्नाति निद्राति-तरा स्यात् । बलि तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयकूलमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लवस्त्रेण विष्टयेत् । शुक्लपुष्पं गन्धं ताम्बूलं शुक्लौदनं त्रयोदश ध्वजांस्त्रयोदश प्रदीपास्त्रयोदश स्वस्तिकास्त्रयोदश पूषिका मत्स्यमांससुरा उत्तरस्यां ग्रामनिष्काशे बलिं दापयेत्ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत् । गुग्गुलुनिम्बपत्र गोधूमगोशृङ्गश्वेतसर्पपत्र-तैर्धूपयेत् ।

“ॐ नमो रावणाय चतुर्विंशतिभुजाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् । ततः स्वस्थो भवति बालकः ॥ ९ ॥

नवें दिन, नवें महीने अथवा नवें वर्ष में सूतिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक का पहले ज्वर हो जाता है, नित्य ही बमन होती है, अंग दृष्टा

करते हैं, मूँठी बांध लेता है तथा सोया करता है । उसके लिए बलि कहता हूँ, जिसमे कल्याण होता है ।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर मूर्ति ( पुतली ) बनाकर उसे सफेद बछ से लपेट ले । सफेद फूल, रोली, चन्दन, पान, सफेद भात, १३ ध्वजाएँ, १३ दीपक, १३ तिकोने, १३ पुष्पा, मछली, और मदिरा; इन सबको सकोरे में रखकर उत्तर दिशा में गांव से निकलने के रास्ते पर बलि दे । फिर शान्ति-जल से स्नान करावे और गुग्गुलु, नीम के पत्ते, गेहूँ, गी का साँग, सफेद सरसों और घृत की धूप दे । बलि का मन्त्र—

“ॐ नमो रावणाय चतुर्विंशतिभुजाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा ।” इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक स्वस्थ ( नीरोग ) हो जाता है ॥ ९ ॥

दशमे दिवसे मासि वर्षे वा यदि गृह्णाति निश्चर्त्तिर्नाम मातृका तथा गृहीत-मात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रमुद्भेज-यति आत्कारं च करोति रोदिति मूत्रं पुरीषं च त्यजति । बलि तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयकूलमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा गन्धं ताम्बूलं रक्तपुष्पं रक्तचन्दनं पञ्चवर्णपञ्चध्वजाः पञ्च प्रदीपाः पञ्च स्व-स्तिकाः पञ्च पूषलिका मत्स्यमांससुरा वायव्यां दिशि बलिं दद्यात् । काकविष्टा-गोमयगो शृङ्गरसोनमार्जारोरमनिम्बपत्रधृ-तैर्धूपयेत् ।

“ॐ नमो रावणाय चूर्णितहस्ताय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ॥”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ।  
ततः स्वस्थो भवति बालकः ॥ १० ॥

दशवें दिन, दशवें महीना अथवा दशवें वर्ष में निश्च्युति नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो आता है, शरीर ऐंठता है, आ-आ करता है, रोया करता है और मूत्र तथा मल कर देता है। उसके लिए बलि कहता है, जिससे कल्याण हाता है।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी खेवर मूर्ति (पुतली) बनाकर रोली, चन्दन, पान, जाल फूल, चन्दन, पाँच बर्णों की पाँच ध्वजएँ, पाँच दीपक, पाँच तिकोने, पाच पुष्पा, मछली, मास और मदिरा; इन सबको सफ़ीरे में रखकर वायव्य दिशा में चौराहे पर बलि दे, फिर बीया की बीट, गोबर, गौ का सींग, लक्ष्मण, पिल्ली के बाल, नीम के पत्ते और घृत की धूप दे। बलि का मन्त्र—

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च स्वाहा।” इस प्रकार तीन दिन करके चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक स्वच्छ हो जाता है ॥ १० ॥

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति पिलिपिञ्जिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । आहारं न गृह्णाति ऊर्ध्वदृष्टिर्भवति । मात्र-भङ्गमात्कारं च करोति । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

पिष्टेन पुत्तलिकां कृत्वा रक्त्रचन्दनाङ्गां तस्या मुखं दुग्धेन सेचयेत् । पीतपुष्पं गन्धं ताम्बूलं सप्त पीतध्वजाः सप्त प्रदीपाः अष्टौ वटकाः अष्टौ पूषलिका अष्टौ शङ्कुलिका मत्स्यमांससुराः पूर्वस्यां दिशि बलिं दद्यात् शान्त्युदकेन स्नापयेत् । शिवनिर्मात्यगुग्गुलुगोशुद्धसर्पनिर्मोककृतैर्धूपयेत् ।

ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ।  
ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ११ ॥

ग्यारहवें दिन, ग्यारहवें महीने अथवा ग्यारहवें वर्ष में पिलिपिञ्जिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो आता है, खाता-पीता नहीं है, ऊपर को देखा करता है, अगों को तोड़ा करता है तथा आ आ किया करता है। उसके लिए बलि कहता है, जिससे कल्याण होता है।

उद्द की पीठी की मूर्ति (पुतली) बनाकर उसके ऊपर लाल चन्दन लगावे और उसके मुँह का दूध से सींचे तथा पीला फूल, रोली, चन्दन, पान, ७ पीली ध्वजाएँ, ७ दीपक, ८ बरे, (उद्द के बड़े), ८ पुष्पा, ८ पूरियाँ, मछली, मास और मदिरा; इनको मिट्टी की तस्तरों में रखकर पूर्व दिशा में चौराहे पर बलि दे। फिर शान्ति जल से स्नाग करावे और विश्वपत्र, गुग्गुलु, गौ का सींग, सोंप की बेंचुल और घृत; इनकी धूप दे। बलि का मन्त्र—

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च स्वाहा।” इस प्रकार तीन दिन करके चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ११ ॥

द्वादशे दिवसे मासि वर्षे वा यदि गृह्णाति कालिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । विहस्य वादयति करेण तर्जयति गृह्णाति क्रन्दति निःश्रसिति मुहुर्मुहुर्बर्षयति आहारं न करोति । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

चीरेण पुत्तलिकां कृत्वा गन्धं ताम्बूलं शुक्लपुष्पं शुक्लसप्तध्वजाः सप्त प्रदीपाः सप्त शङ्कुलिकाः करम्भकेण सर्वकर्मबलिं

दद्यात् । शान्त्युदकेन स्नापयेत् । शिव-  
निर्माल्यगुग्गुलुसर्पपघृतैर्धूपयेत् ।

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं  
पुञ्च पुञ्च हन हन स्वाहा ।”

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ।  
ततः स्वस्थो भवति बालकः ॥ १२ ॥

इति रावणकृतं कुमारतन्त्रं समाप्तम् ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां बालरोगा-

धिकारः समाप्तः ।

चारहवें दिन, बारहवें महीने अथवा बारहवें  
वर्ष में कालिका नाम मातृका बालक को पकड़  
लेती है तब उसी समय पहले उबर हो आता है,  
हँसकर हाथ से कुछ बजाने लगता है, झिडकने  
लगता है, दूध नहीं पीता है, चिल्लाया करता  
है, बारबार जोर से श्वास लेता है, बार-बार  
वमन करता है और भोजन नहीं करता है । उसके  
लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है ।

खोये से मूर्ति (पुतली) बनाकर रोली,  
चन्दन, पान, सफेद फूल, सफेद ७ ध्वजाएँ,  
७ दीपक, ७ पूरियाँ और तूही में सना हुआ  
सबू ; इन सबको मिट्टी की तस्ती में रखकर  
चौराहे पर सब कामों के लिए बलि दे । फिर  
शान्ति-जल से स्नान करावे और बिल्वपत्र,  
गुगुलु, सरसों और घृत की धूप दे । बलि का  
मन्त्र—

“ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं पुञ्च  
पुञ्च हन हन स्वाहा ।” इस प्रकार तीन दिन  
करके चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो  
बालक नीरोग हो जाता है ॥ १२ ॥

इति रावणकृतं कुमारतन्त्रं समाप्तम् ।

इति श्रीसरयूमसादन्निपाठिविचितायां भैष-  
ज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां  
बालरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ विपाधिकारः ।

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य  
देहिनः । दंशस्योपरि वध्नीयादरिष्टार्च-  
तुरंगुले ॥ १ ॥ न गच्छति विषं देह-  
मरिष्टाभिर्निवारितम् । दहेदंशमथोत्कृत्य  
यत्र बन्धो न जायते ॥ २ ॥

यदि हाथ, पैर आदि में किसी प्रकार का  
भी सर्प डँस ले तो उसी समय टँसे हुए स्थान  
से ४ अंगुल ऊपर रस्सी कसकर बाँध देनी  
चाहिए । इसके बाँधने से, देह में विष नहीं  
फैलने पावेगा । जहाँ रस्सी न बाँधी जा सके  
वहाँ काटे हुए घाव को शस्त्र से काटकर दाग देना  
चाहिए ॥ १-२ ॥

अरिष्टावन्धनं मन्त्रप्रयोगश्च विपा-  
पहः । दंशनं दंशकस्याहेः फलस्य मृदुनो-  
ऽपि वा ॥ ३ ॥

साँप क काटे हुए स्थान के ऊपर रस्सी  
अथवा पट्टी कसकर बाँध देनी चाहिए । अथवा  
विष नाश के लिए मन्त्रों का प्रयोग करना  
चाहिए । जिस साँप ने काटा हो उस साँप के  
मध्य देश का दंशन करने से अथवा किसी  
मृदुफल का दंशन करने से भी विष नष्ट होता  
है ॥ ३ ॥

मूलं तण्डुलवारिणा पिवति यः  
प्रत्यङ्गिरासम्भवं निष्पिष्टं शुचि भद्रयोग-  
दिवसे तस्याहिभीतिः कुतः । दर्पादेव  
फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलपं  
स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्रं  
यमस्याचिरात् ॥ ४ ॥

जो पुरुष ज्येष्ठ मास में शुभ नक्षत्र वारादि  
पुङ्गु शुभयोग में रवेत पुनर्नवा की जड़ को जल  
से पीसकर तण्डुलोदक के साथ पीता है उसको  
कहाँ भी सर्प का भय नहीं होता है । यदि गर्व  
से साँप मोह के वशीभूत होकर उस जड़ पीने

पाले को काट लेता है तो उसी स्थान पर वह सर्प शीघ्र ही काल के मुँह में चला जाता है ॥ ५ ॥

मसूरं निम्बपत्राभ्यां योऽस्ति मेपगते रवौ । अश्वमेकं न भीतिः स्याद्विपार्चस्य न संशयः ॥ ५ ॥

जो मसूर के एक दाने को नीम के दो पत्तों के साथ घोटकर मेप की संक्रान्ति में पीता है उसको एक वर्ष तक विषजन्य पीड़ा नहीं होती है ॥ ५ ॥

धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपी-  
तया च पुप्यन्ते । अपसरति खलु विषध-  
रोपद्रव आवत्सरं पुंसाम् ॥ ६ ॥

जो पुप्य नक्षत्र में सफेद साँडी की जड़ को तण्डुलजल से पीता है उसको एक वर्ष तक सर्प का उपद्रव नहीं होता है ॥ ६ ॥

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुली-  
यकम् । अपि वासुकिना दष्टः पिवेदधि-  
घृताप्लुतम् ॥ ७ ॥

गृहधूम, हल्दी, दारहल्दी और चौलाई की जड़; इनके चूर्ण को दही और घृत में मिलाकर पीने से वासुकि सर्प का काटा हुआ भी बच जाता है ॥ ७ ॥

कुलिकमूलनस्येन कालदष्टोपि जी-  
वति । शिरीषपुष्पस्वरसे भावितं मरिचं  
सितम् । सप्ताहं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने  
हितम् ॥ ८ ॥

परवल की जड़ को पीसकर नस्य लेने से कालरूपी सर्प का काटा हुआ भी जीवित रहता है ।

सफेद मिर्चों में सिरस के फूलों के स्वरस की भावना देकर सर्प से काटे हुए पुर्रों को सात दिन तक नस्य, पान और अंजन में इसको प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ८ ॥

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रं चतुः-

पलम् । अपि तत्तददृष्टानां पानमेतत्  
मुखमदम् ॥ ९ ॥

तगर और कूट ( मिलित ८ तोले ) घृत और शहद ( मिलित १६ तोले ) इन सबको मिलाकर यदि तक्षक सर्प के काटे हुए को भी पिला दे तो वह सुखी हो जाता है ॥ ९ ॥

वन्यककौटजं मूलं द्वागमूत्रेण भावि-  
तम् । नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं टोपोपहत-  
चेतसः ॥ १० ॥

जगली ककौट्र की जड़ को बकरी के मूत्र में भावित करके काँजी से पीस ले और विष के वेग से अचेत हुए पुर्र को उसका नस्य दे ॥ १० ॥

पीते विषे स्याद्दमनं त्वक्स्थे प्रदेह-  
सेकादिसुशीतलं च ॥ ११ ॥

यदि किसी ने विष पी लिया हो तो उसी समय घमन कराना चाहिए । यदि विष त्वचा में व्याप्त हो गया हो तो शीतल लेप तथा प्रसेक ( ठंडे जल से स्नान ) कराना चाहिए ॥ ११ ॥

आगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।  
लेपो जयत्याखुविषं शोणितस्त्रावणं  
तथा ॥ १२ ॥

गृहधूम, मँजीठ, हल्दी और सेंधा नमक, इनका लेप करने से मूसा ( चूहा ) का विष नष्ट होता है तथा खून का बहना धन्द हो जाता है ॥ १२ ॥

श्लेष्मणः कर्णगूथस्य वामानामि-  
कया कृतः । लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्र-  
सेचनं तथा ॥ १३ ॥

बायें हाथ की अनामिका अँगुली से मुखस्थित श्लेष्मा का अथवा कान के मैल का दंशित स्थान पर नर-मूत्र का सेचन करने से विष नष्ट होता है ॥ १३ ॥

सोमवल्कोऽश्वगन्धा . च गोजिद्धा

हंसपाद्यपि । रजन्यां गैरिकं लेपो नख-  
दन्तविपापहः ॥ १४ ॥

श्वेत स्रदिर (श्वेत रौर की छाल), अस-  
गन्ध, गोजी, हंसपदी (हंसराज), हल्दी, दार-  
हल्दी और गेरू; इनका लेप नखविप और दन्त-  
विप को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

यः कासमर्दनेत्रं वदने निक्षिप्य कर्णौ  
फूत्कारम् । मनुजो ददाति शीघ्रं जयति  
विपं वृश्चिकानां सः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य कर्षीदी की जड़ को मुख में  
हालकर बिच्छू के काटे हुए प्राणी के कान में  
फूँक मारे तो उससे बिच्छू का विप दूर हो  
जाता है ॥ १५ ॥

उप्यं गव्यघृतं चापि मैन्धवेन  
समन्वितम् । वृश्चिकस्य विपं हन्ति  
लेपनात् पर्वतात्मजे ॥ १६ ॥

हे पार्वति ! गौ के घृत में सेंधा नमक मिला-  
कर और गरम करके उसका लेप करने से बिच्छू  
का विप नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धव-  
संयुतः । सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य  
विपं हरेत् ॥ १७ ॥

जीरे को भली प्रकार पीसकर घी तथा सेंधा-  
नमक मिलाकर किंचित् गरम करके उसमें  
शहद मिलाकर लेप लगाने से बिच्छू का विप  
नष्ट होता है ॥ १७ ॥

नवसादरहरिताले पिष्टे तोयेन लेप-  
नांशे । तत्क्षणमेव हि जयतो वृश्चिक-  
विद्धस्य दुर्धरन्वेडम् ॥ १८ ॥

नौसादर, हरिताल को एकत्र जल से पीसकर  
दंशित स्थान पर लेप करने से उसी समय  
बिच्छू के विप की दारुण वेदना नष्ट हो जाती  
है ॥ १८ ॥

कारस्करफलं सेव्यं क्रमवृद्धं दिने

दिने । सारमेयविपं हन्ति मासेन नहि  
संशयः ॥ १९ ॥

कुत्ते के विप को नष्ट करने के लिए कुचिले  
को रूरी से प्रारम्भ कर प्रतिदिन बढ़ाते हुए  
क्रमशः १॥ रत्ती तक बढ़ावे । इस प्रकार एक  
मास तक सेवन कराने से कुत्ते का विप नष्ट  
होता है ॥ १९ ॥

धत्तूरस्य शिफा पेया क्षीरेण परि-  
पोषिता । अङ्गोटस्य शिफा चापि श्वविप-  
घ्नीप्रकीर्तिता ॥ २० ॥

धतूरे की जड़ को पीसकर उचित मात्रा में  
दूध के साथ पीने से अथवा अङ्गोट की जड़ को  
पीस दूध के साथ पीने से कुत्ते का विप नष्ट  
होता है ॥ २० ॥

रजनीयुग्मपचङ्गमज्जिष्ठानागकेशरैः ।  
शीताभ्यु पिष्टैरालेपः सद्यो लूताविपं  
हरेत् ॥ २१ ॥

हल्दी, दाहहल्दी, लालचन्दन, मँजीठ, नाग-  
केशर; इन्हें शीतल जल से पीसकर लेपन करने  
से लूताविप नष्ट होता है ॥ २१ ॥

शरीरपस्य तु वीजं वै स्नुहीक्षीरेण  
घर्षितम् । तल्लेपेन महादेवि ! नश्येत्  
कुक्कुरजं विपम् ॥ २२ ॥

हे महादेवि ; सिरस के धीज को सेहूँद के  
दूध में घिसकर लेप करने से कुत्ता का विप  
नष्ट होता है ॥ २२ ॥

पिष्टतण्डुलमध्यस्थं भक्षितं मेपलोम-  
कम् । कुक्कुरस्य विपं हन्ति नात्र कार्या  
विचारणा ॥ २३ ॥

पानी के साथ चायलों को पीसकर उसके  
मध्य में मेदा का चाल रख गोजी धनाकर  
खिला दे तो पगले कुत्ता का विप नष्ट हो जाता  
है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं  
है ॥ २३ ॥

विपदहरी वर्ति ।

जयपालस्य मज्जानं भावयेन्निम्बुक  
द्रवैः । एकत्रिंशत्तिारन्तु ततो वर्ति  
मकल्पयेत् ॥ २४ ॥ मनुष्यलालया घृष्टा  
ततो नेत्रे प्रदापयेत् । सर्पदंष्ट्रविषं जित्रा  
सञ्जीवयति मानवम् ॥ २५ ॥

जयपाल के बीज की गुठली को नींबू के  
रस से २१ धार भावना देकर बत्ती बनावे ।  
इस बत्ती को मनुष्य की खार में घिसकर  
नेत्रों में अँजने से साँप के काटे का विष  
नष्ट हो जाता है और मनुष्य मरने से बच  
जाता है ॥ २४--२५ ॥

दशाङ्ग अगद ।

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गज-  
पिप्पली । पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्य-  
पेन विनिर्मितम् ॥ दशाङ्गमगदं पीत्वा  
सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २६ ॥

बच, हींग, विडग, सेंधा नमक, गजपी-  
परि, पाठी, अतीस, सोंठ, मिर्च और पीपल;  
इस दशाङ्ग औषधि के पीने से सब प्रकार  
के कीटविष दूर होते हैं । यह काश्यपजी का  
कहा हुआ है । मात्रा—२ माशा ॥ २६ ॥

अजितागद ।

विडङ्गपाठात्रिफलाजमोदाहिङ्गूनि वक्रं  
त्रिकटूनि चैव । तथैव वर्गो लवणस्य  
सूक्ष्मः सचित्रकः क्षौद्रयुतो निधेयः ॥  
२७ ॥ शृङ्गे गवां शृङ्गमयेन चैव प्रच्छादितः  
पक्षमुपेक्षितश्च । एपोऽगदः स्थावर-  
जङ्गमानां जेता विपाणामजितो हि  
नाम्ना ॥ २८ ॥

बाघविडग, पाठी, त्रिफला, अजमोद हींग,  
तगर, सोंठ, मिर्च, पीपरि, सेंधा नमक, काला  
नमक, साँभर नमक, समुद्र नमक, खारी नमक,  
चीता की जड़ ; इनको सम भाग ले और

इनके चूर्ण को शहद में सानकर गौ के सींग  
में भरकर उसका मुँह गौ के सींग से ही ढक  
दे । इसको १५ दिन घरा रहने दे । सेवन करने  
से यह अतिन नामक अगद स्थावर और जंगम  
विषों को जीत लेना है । मात्रा—६ माशे ॥  
२७--२८ ॥

ताक्ष्यागद ।

प्रपौण्डरीकं सुरदारु मुस्ता कालानु-  
सार्याङ्गुरोहिणी च । स्थाण्ड्येयकध्यामक-  
पन्नकानि पुन्नागतालीशमुवचिकारश्च ॥  
२९ ॥ कुट्टन्नटैलासितसिन्धुवाराः शैलेय-  
कुण्डे तगरं प्रियंगु । लोध्रं जलं काञ्चन-  
गैरिकं च समागधं चन्दनसैन्धवं च ॥  
३० ॥ मृदमाणि चूर्णानि समानि कृत्वा  
शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि । एपोऽगद-  
स्ताक्ष्य इति प्रदिष्टो विषं निहन्यादपि  
तत्तकस्य ॥ ३१ ॥

खेत कमल, देवदारु; मोथा, तगर, कुटकी,  
धुनेर, रोपित तृण, पद्माक्ष, नागकेशर,  
तालीशपत्र, सञ्जीखार, रथोनाक, इलायची,  
छोटी निर्गुण्डी (सफेद सेंभालू), छारछरीला,  
कूट, तगर, प्रियंगु, लोध्र, सुगन्धवाला, सुन-  
हला गेरू, जीरा, लाल चन्दन और सेंधा  
नमक ; ये सब समान भाग ले चूर्ण करे और  
शहद मिलाकर गौ के सींग में भरकर रखे ।  
इसका नाम ताक्ष्यागद है । यह तत्तक नाग के  
भी विष को नष्ट कर देता है । मात्रा—६  
माशे से १ तोला तक ॥ २९--३१ ॥

कुलिकादिवटिका ।

कुलिकं सप्तपर्णं च कुण्डं तोलकस-  
म्मितम् । मापमानं तथा दारु मर्दयेदर्क-  
वारिणा ॥ ३२ ॥ सर्पपाभां वर्तौ  
कृत्वा योजयेत् पयसा सह । अपि  
तत्तकदष्टं च मृतकल्पं हतस्वरम् ॥ ३३ ॥  
पुनः सञ्जीवयेत्ताशुसर्वद्वेडविनाशिनी ।

कुलिकादिवटी हन्ति ज्वरांश्च विषमां-  
स्तथा ॥ ३४ ॥

परबल की जड़, सतौना, कूट; प्रत्येक एक-  
एक तोला, देवदारु १ माशा; इन सबको  
मदार के जल से घोटकर सरसों के बराबर  
गोलियाँ बना ले। दूध के साथ सेवन करने  
से यह कुलिकादिवटी तसक के काटे हुए मृत-  
तुल्य तथा नष्ट स्वरवाले मनुष्य को शीघ्र ही  
पुनः जीवित कर देती है एवं सब प्रकार  
के विषवेगों और विषमज्वरों को नष्ट कर देती  
है ॥ ३२--३४ ॥

भीमरुद्र रस ।

मनःशिलालमरिचैर्दारुणा दरदेन च ।  
अपामार्गस्य हेमन्श्च हयमारशिरीषयोः ॥  
३५ ॥ मूलै रुद्राक्षतोयेन विष्णुक्रान्ताम्बु-  
ना तथा । शतधा भावितैः कुर्याद् वटिका  
मुद्गसन्निभाः ॥ ३६ ॥ व्यालदष्टं पीत-  
विषं निरिन्द्रियमचेतनम् । पुनः सञ्जीव-  
येदेष भीमरुद्राभिधो रसः ॥ ३७ ॥

मैनशिल, हरताल, मिर्च, देवदारु, शुद्ध  
सिंगरफ, लटजीरा की जड़, धतूरा की जड़,  
कनेर की जड़ और सिरस की जड़; इनमें  
रुद्राक्ष और विष्णुक्रान्ता के रस की सौ-सौ  
भावनाएँ देकर मूँग के बराबर गोलियाँ बना  
ले। यह भीमरुद्र नामक रस साँप के काटने  
अथवा विष पी लेने से चेतनारहित तथा  
इन्द्रियों की चेष्टा से रहित प्राणी को पुनः  
जीवित कर देता है ॥ ३५-३७ ॥

द्वितीय भीमरुद्र रस ।

सूत्रराजस्य तोलैकं गन्धकस्य तथैव च ।  
अभ्रात् कर्पं ततो देयं तोलैकं कान्तलौह-  
कम् ॥ ३८ ॥ परोक्रानौपधेनेव भावयेच्च  
पृथक् पृथक् । विशाला बृहती ब्राह्मी  
सौगन्धिकमुदाहिमैः ॥ ३९ ॥ मर्कट्यश्चा-  
त्मगुप्तायाः स्वरसेन पृथक् पृथक् । एक-  
रत्निकमानेन वटिकां कारयेद्भिसिक् ॥

४० ॥ वटीमेकां भक्षयित्वा पिवेच्छीतजलं  
ततः । भीमरुद्रो रसो नाम चासाध्यमपि  
साधयेत् ॥ कुक्कुरस्य शृगालस्य विषं  
हन्ति सुदुस्तरम् ॥ ४१ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, इन दोनों की  
कजली करके अभ्रक भस्म २ तोला तथा कान्त  
लौहभस्म १ तोला मिलावे। पश्चात् इन्द्रायण,  
बड़ी फटेरी, ब्राह्मी, नीलकमल, अनार, अपामार्ग,  
कौंच; इनके रस से पृथक्-पृथक् भावना देकर  
एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस गोली  
के सेवन के पश्चात् शीतल जल पीना चाहिए।  
इस गोली के सेवन से कुत्ते अथवा गीदड़ का  
विष नष्ट होता है ॥ ३८-४१ ॥

विषवज्रपान रस ।

निशां सटङ्गञ्च सजातिकोपं तुरथं  
समांशं कुरु देवदाल्याः । रसेन पिष्ट्वा  
विषवज्रपातो रसो भवेत् सर्वविषापहन्ता ॥  
मापोऽस्य सञ्जीवयति प्रयुक्तो नृमूत्रयोगेन  
च कालदष्टम् ॥ ४२ ॥

हल्दी, सुहागा, जावित्री, नीलाधोधा; इन्हें  
बराबर मात्रा में मिला देवदाली के रस से  
पीसकर गोली बनावे। मात्रा-१ माशा।  
अनुपान-नरमूत्र। इसके सेवन से घमन होकर  
सम्पूर्ण विष नष्ट होते हैं। यह रस कालदष्ट  
व्यक्ति को भी जीवित कर देता है ॥ ४२ ॥

तरङ्गुलीयक घृत ।

तरङ्गुलीयकमूलेन गृहधूमेन चैकतः ।  
चीरेण च घृतं सिद्धं समस्तविषरोग-  
नुत् ॥ ४३ ॥

घृत १ सेर, गाय का दूध ४ सेर। कण्ठ  
के लिये चीलाई की जड़ और गृहधूम पाव  
भर। विधि से मिश्र कर पीने से यह घृत सब  
प्रकार के विष रोगों को नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

मृत्युपाशच्छेदि घृत ।

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपत्रं तयो-

त्पलम् । नलयेतसमूलानि गरलं सुरसां  
तथा ॥ ४४ ॥ सकलिद्रां समञ्जिष्ठामन-  
न्तां च शतावरीम् । शृङ्गाटकं समद्गा च  
पञ्जकेशरमित्यपि ॥ ४५ ॥ कल्कीकृत्य  
पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गुणम् । सम्यक्-  
पक्वेऽवतीर्णो च शीते तस्मिन् विनित्ति-  
पेत् ॥ ४६ ॥ सर्पिस्तुल्यं भिषक् चोद्द्रं  
कृतरत्नं निधापयेत् । विपाणि इन्ति दु-  
र्गाणि गरदोपकृतानि च ॥ ४७ ॥ स्पर्शा-  
द्धन्ति विषं सर्वं गररूपहतां त्वचम् ।  
योगजं तमकं कण्डू मांससादं विसंज्ञ-  
ताम् ॥ ४८ ॥ नाशयत्यञ्जनाभ्यङ्गपानवस्तिपु  
योजितम् । सर्पकीटासुलूतादिदृष्टानां  
विषहृत्परम् ॥ ४९ ॥

कक के लिए हृद, गोरोचन, कूट  
मदार के पत्रे, नीलकमल, नरकुल की जड़,  
धंत की जड़, मीठा विष, तुलसी, इन्द्रजी, मँजीठ,  
अनन्तमूल, शतावरी, सिधावा, छुईमुई और  
कमलकेशर ; सब मिलाकर आध सेर । घृत  
२ सेर, दूध ८ सेर । विधि से पाक कर चक्र  
से छान ले । जब ठंडा हो जाय तब इसमें दो  
सेर शहद मिलाकर रक्षित स्थान में ढककर  
रख दे । मात्रा ६ मासे से १ तोला तक ।  
यह घृत विष, गरदोष से उत्पन्न विकार तथा  
विष से नष्ट त्वचा और सब प्रकार के विष  
विकारों एवं योगजविष, तमक, कण्डू, मांससाद,  
वेदोशी आदि को नष्ट करता है । इसको  
(अञ्जन, मालिश, पान तथा वस्ति कर्म में  
प्रयोग करना चाहिए । यह सर्पविष, कीटविष,  
और मकड़ी का विष इत्यादि को नष्ट करता  
है ॥ ४४-४९ ॥

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्ध-  
वसंयुतः । सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चि-  
कस्य विषं हरेत् ॥ ५० ॥

जीरा के कक में घृत और सेंधा नमक

मिलाकर गरम करके गुनागुना छेप करे तो  
विषघ्न का विष शान्त हो जाता है ॥ ५० ॥

शित्परि घृत ।

शित्परिस्वरसेनैव कल्कान् दत्त्वा च  
टाडिमम् । कुष्ठमेलाद्रयं शृङ्गो शिरीषम-  
मृतं वचाम् ॥ ५१ ॥ परशू पारिमर्दं च  
चन्दनं तगरं गुराम् । पचेत्सर्पिस्त्वस-  
लिलं मन्दमन्देन वह्निना ॥ ५२ ॥ घृत-  
मेतन्निहन्त्याशु निखिलान् विषजान्  
गदान् । सन्निपातज्वरं घोरं ज्वरांश्च वि-  
पमांस्तथा ॥ ५३ ॥

अपामार्ग का रस ४ सेर, घृत १ सेर ।  
कक के लिए अनार, कूट, छोटी इलायची,  
यही इलायची, काकड़ासिंगी, सिरस की छाल,  
मीठा विष, वच, दोनों परशु ( कुदालिया  
बुडालिया ), फरहद, चन्दन, तगर और  
गुरामांसी सब मिलित पाव भर । इन सबको  
एकत्र कर विना जल के ही मन्द-मन्द अग्नि  
में पकाना चाहिए । यह घृत सर्व प्रकार  
के विषज रोगों तथा सन्निपातज्वर, घोर  
ज्वर तथा विषमज्वरों को शीघ्र नष्ट  
करता है ॥ ५१-५३ ॥

शिरीषारिष्ट ।

पचेत्तुलार्द्धं द्विद्रोणे शिरीषस्य जले  
सुधीः ॥ पादशेषे कपायेऽस्मिन् क्षिपेद्  
गुडतुलाद्रयम् ॥ ५४ ॥ कृष्णा मियंगु  
कुष्ठैला नीलिनी नागकेशरम् । रजन्धौ  
पलमानेन दद्यादत्र च नागरम् ॥ ५५ ॥  
मासादूर्ध्वं जातरसं यथामात्रं प्रयोजयेत् ।  
शिरीषारिष्टमित्येतद् विषव्यापद्भिना-  
शनम् ॥ ५६ ॥

सिरस की छाल २॥ सेर, काथार्थ जल  
१ मन ११ सेर १६ तोले । अवशिष्ट काथ  
१२ सेर ६४ तोला । इसमें १० सेर गुव तथा



पीपरि, प्रियंगु के फूल, कूट, हलायची, नील की जड़, नागकेशर, हल्दी, दारुहल्दी और सोंठ प्रत्येक चार-चार तोले ले चूर्ण करके डाले । मिट्टी के घड़े में बन्द करके १ महीने तक जमीन में गड़ा रहने दे । पश्चात् छान कर सेवन करावे । यह शिरीषारिष्ट विष के विकारों को नष्ट करनेवाला है । मात्रा-१ । तोला से २॥ तोले तक ॥ २४-२६ ॥

विष रोगे पथ्यानि ।

अरिष्टा बन्धनं मन्त्रक्रिया द्विदिविरे-  
चनम् । कर्पणं शोणिता कृष्टिः परिपे-  
कोऽवगाहनम् ॥ ५७ ॥ हृदयावरणं  
नस्यमञ्जनं प्रतिसारणम् । उद्धर्तनं  
प्रथमं प्रलोपो बद्धिर्कर्मच । उपधानं  
प्रति विषं धूपः संज्ञा प्रबोधनम् ॥ ५८ ॥  
शालयः पष्टिकाश्चापि कोरदूपाः प्रिय-  
ङ्गवः । मुद्गा हेरण वस्तैलं सर्पिजीर्णनवं तथा ।  
शिखितित्तिर लावणं गोधाखुरवा  
वियामिपम् ॥ ५९ ॥ वार्त्ताकुं कुलकं  
घात्री निष्पावं तण्डुलीयकम्  
॥ ६० ॥ मण्डूकपर्णी जीवन्ती मुनि-  
पण्डोऽच्युपोदिका । कालशाकं सलशुनं  
दाडिमं च विकटतम् ॥ ६१ ॥ प्राचीना-  
मलकं पथ्यकपित्त्यं नागवेशरम् । गोद्धा-  
गनरमूत्राणि तक्रं शीताम्यु शर्करा ।  
॥ ६२ ॥ अविदाहीनि चान्नानि सैन्धवं  
मधु कुमद्गुमम् । पश्चिमोत्तर वाताश्च हरि-  
द्रासित चन्दनम् ॥ ६३ ॥ मुस्तंशिरीषः  
कस्तूरी तिक्तानि मधुराणि च । हेमचूर्णं  
च र्गोऽयं यथाऽवस्थं यथा विषम्  
॥ ६४ ॥ विष रोगेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्यो  
विज्ञानता ॥ ६५ ॥

परिष्टा बन्धन ( घमनी बन्धन ) मन्त्र तन्त्र  
प्रयोग वमन विषेचन, दोषों का कर्ण विरुद्धे-

रक्त का सींगी आदि से खीचना परिपेचन जला-  
वगाहन हृदय को टकना नस्य अञ्जन मञ्जन  
उबटना प्रथमन कर्म प्रलेप दाह कर्म तकिया के  
सहारे रहना विषघ्न दूसरा विष देना, धूपन,  
संज्ञा लाना शालि और चावल कोदों कागुनी  
मूँग मटर तेल पुराना या नया घृत मोर तीतर  
बटेर हरिण गोह चूहा और सेह का मांस बैगन  
परवल आंवला लोबिया चौलाई मण्डूकपर्णी  
जीवन्ती भिरियाई पोई का शाक कालशाक  
( नाड़ी का शाक ) लहसुन अनार कटाईजल  
आंवला हरह कैथ नागकेशर तथा गाय बकरी  
और मनुष्य का मूत्र ठण्डा जल शकर जलन न  
करनेवाले अन्न संधानमक शहद केशर पश्चिम और  
उत्तर दिशा की वायु हल्दी सफेद चन्दन नागर-  
मोथा सिरस कस्तूरी कड़वे मीठे पदार्थ सुवर्ण-  
भस्म ये सब अवस्था तथा विष के अनुसार विष-  
रोगों में प्रयोग करना लाभदायक है ॥ ६७-६९ ॥

विष रोग में अपथ्य ।

क्रोधं विरुद्धाध्यशनं व्यवयं ताम्बूल-  
मायासमपि प्रवातम् । अम्लं च सर्वं लवणं  
च सर्वं, स्वेदं च नानाविधि मासु-  
तानि ॥ ६६ ॥ निद्राभयं धूम विधि  
नुधां च, विपातुरो नैव भजेत् कदा-  
चित् ॥ ६७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विपाधि-  
कारः समाप्तः ।

क्रोध, विरुद्ध भोजन, भोजन करने के तुरन्त  
बाद भोजन, मैथुन पान दीर्घ परिधम, तेज  
हवा सब तरह के गटे पदार्थ ममक के सब  
पदार्थ, स्वेदन सब तरह के अचार शयन ( सर्व-  
विष में) भय भूषमाण, भूया रहना, यह सब विष  
बोहित होने पर तथा चपटा होने पर भी कुछ  
दिन तक सेवन नहीं करना चाहिए ॥ ६६-६७ ॥  
इति धीमरपुष्पादिप्रियादिभिरचित्तायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां

विपाधिकारः समाप्तः ।

**अथ वीर्यस्तम्भाधिकारः ।**

शूरगं तुलसीमूलं ताम्बूलैः सह  
मक्षयेत् । न मुञ्चति नरो वीर्यमैकैकेन न  
संशयः ॥ १ ॥

जमीबन्द अथवा तुलसी की जड़ को पान  
के साथ गाने से मनुष्य का वीर्य रसलित नहीं  
होता है, इसमें तन्नाय नहीं है ॥ १ ॥

कृष्णमार्जारसव्यांघ्रिसम्भवास्थिरतो-  
धमे । टक्षिणो ध्रियते येन तस्य वीर्यस्य न  
च्युतिः ॥ २ ॥

काली घिही के बाएँ पैर की हड्डी को दाहिने  
भाग में धारण करके मीथुन करने से वीर्य  
रसलित नहीं होता है ॥ २ ॥

चटकाण्डं तु संगृह्य नरनीतेन पेप-  
येत् । तेन लेपयतः पादाँ शुक्रस्तम्भः  
प्रजायते ॥ यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं  
न मुञ्चति ॥ ३ ॥

घिघिया के घपटे को मक्खन के साथ पीस-  
कर पैरों में छेप करने से वीर्य का स्तम्भन  
होता है । जब तक टूट्ठी को नहीं छूता है तब तक  
वीर्य रसलित नहीं होता है ॥ ३ ॥

नीलोत्पलसितपद्मजकेशरमधुशर्करा-  
वलिप्तेन । सुरते मुचिरं रमते दृढलिङ्गो  
नाभिविचरेण ॥ ४ ॥

नीलकमल की केशर, सफ़ेद कमल की  
केशर, शहद और शक्कर, इनका नाभि में लेप  
करने से लिङ्गेन्द्रिय दृढ़ होती है तथा बहुत देर  
तक रमण करता है ॥ ४ ॥

सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिन्ताचूर्णमि-  
थ्रितं कुरुते । चरणाभ्यङ्गेन रते वीर्यस्त-  
म्भाद् दृढं लिङ्गम् ॥ ५ ॥

कुसुम का तेल १ सेर, कक्याय कंचुआ का  
चूर्ण पाव भर, पाकार्य जल ४ सेर । यथाविधि  
तैल सिद्ध करे । इस तैल का पैरों पर मर्दन

करके मीथुन करने से वीर्यस्तम्भन तथा लिङ्ग दृढ़  
होता है ॥ ५ ॥

गोरेकोन्नतमृद्भ्रतृग्भ्रनचूर्णेन धूपितं  
यत्नम् । परिधाय भजति ललनां नैकाण्डो  
भनति हर्षार्चः ॥ ६ ॥

जिस गौ का एक मींग ऊँचा हो उस मींग  
के तिलका की चपटों धूनी देकर रतिकाल में  
पढ़ने तो शिरनेन्द्रिय हर्षयुक्त होती है । एवम्  
एकाण्ड' नहीं रहता है ॥ ६ ॥

योगजपराङ्गमन्धं मथितेन क्षालितं  
हन्ति । उन्मुखगोन्मृद्भ्रतृग्भ्रलेपो योगज-  
ध्वजभद्रहर ॥ ७ ॥

श्रीपथ आदि के योग से यदि धेठ थग  
( लिङ्ग ) उरधानरहित हो गया हो तो छाद्य  
से धोने से यह बन्धन नष्ट हो जाता है । अथवा  
गौ के ऊँच मींग को जन में घिसकर छेप करने  
से योगज ध्वजभद्र नष्ट होता है ॥ ७ ॥

कृकलासस्य पुच्छाग्रमुद्रिका श्वेत-  
तन्तुभिः । वेष्ट्य धार्या कनिष्ठायाम् नरो  
वीर्यं न मुञ्चति ॥ ८ ॥

घिपकली के पूँछ के अग्रभाग की सेंगूठी बना  
सफ़ेद दोरा से लपेटकर कनिष्ठिका अगुली में  
धारण करने से वीर्यस्तम्भन होता है ॥ ८ ॥

वनक्रोडस्थ दंष्ट्रा यादक्षिणा तां समा-  
हरेत् । कथ्यामुपरि सम्भद्धा शुक्रस्तम्भः  
प्रजायते ॥ ९ ॥

जङ्गली शूकर की दाहनी दाढ़ की कभर में  
बाँधने से वीर्यस्तम्भ होता है ॥ ९ ॥

डुण्डुभोनाम यः सर्पः कृष्णवर्णस्तमा-  
हरेत् । तस्यास्थि धारयेत्कट्यां नरो वीर्यं

१—एकाण्ड वह रोग है जिसमें केवल एक  
ही स्त्री से सम्भोग करनेवाला व्यक्ति दूसरी स्त्री से  
सम्भोग करने पर उद्यत हो तो उसकी शिरनेन्द्रिय  
शिथिल हो जाती है ।

न मुञ्चति ॥ विमुञ्चति विमुक्तेन सिद्धयोग  
उदाहृतः ॥ १० ॥

हुयहुभनामक कृष्णवर्ण के सर्प की हड्डी को कटि में धारण करने से वीर्यस्तम्भ होता है । धारण की हुई हड्डी को कटि से अलग कर देने से वीर्यपात हो जाता है । यह सिद्ध योग है ॥ १० ॥

सप्ताहं द्यागभवसलिलसंस्थितं कर-  
भवारुणीमूलम् । गाढोद्वर्त्तनविधिना  
लिङ्गं स्तब्धं रते कुरुते ॥ ११ ॥

ऊँटकटारे की जड़ को एक सप्ताह तक बकरी के मूत्र में रख पश्चात् पीस ले । इसके द्वारा लिङ्ग पर मालिश करने से रमणकाल में लिङ्ग दृढ़ होता है ॥ ११ ॥

अर्जकादियवटिका ।

मूलमर्जकशङ्खिन्योनिर्गुण्डीकेशरांज-  
योः जातीफलं देवपुष्पं विडङ्गं गजपि-  
प्पलीम् ॥ १२ ॥ चातुर्जातं तुगाक्षीरी-  
मनन्तां मुशलीं वरीम् । विदारीं गोक्षुरं  
वीजं चाभातोयेन मर्दयेत् ॥ १३ ॥ माप-  
मानां वटीं कृत्वा सुरामण्डेन योजयेत् ।  
वीर्यस्तम्भकरी वृष्या वटिकेयं प्रकी-  
र्त्तिता ॥ १४ ॥

तुलसी की जड़, शङ्खपुष्पी की जड़, सँभलू की जड़, भँगरा की जड़, जायफल, लींग, बायविर्दङ्ग, गजपीपल, चातुर्जात, ( दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागवेशर ), वंशलोचन, अमन्तमूल, मुसची, शतावरी, विदारीकन्द, और गोक्षुर के बीज; इन सबको बघूल की छाल के रस से घोटकर एक-एक माशे की गोलियाँ बना ले । अनुपान—सुरामण्ड । यह वटिका वीर्यस्तम्भन करनेवाली तथा वृष्य है ॥ १२-१४ ॥

नागवल्याद्य चूर्णम् ।

नागवल्ली पला मूर्वा जातीकोपफले  
मुरा । अपामार्गस्य बीजं च काकोली-

युगलं तथा ॥ १५ ॥ ककोलीशीरयष्ट्याह-  
वचारचैतानि मर्दयेत् । वीर्यस्तम्भकरं वृष्यं  
चूर्णमेतद्रसायनम् ॥ १६ ॥

पान की जड़, सरैटी, मरोरफली, जायफल, जावित्री, मुरामांसी, लटजीरा के बीज, काकोली, शीरकाकोली, ककोल, खस, मुलेठी और बघ, इनका चूर्ण वीर्यस्तम्भनकर्ता तथा वृष्य है १५-१६

शुक्रवल्लभ रस ।

रसगन्धकलौहाभ्ररौप्यहेमानि माञ्जि-  
कम् । शाणमानेन संगृह्यं तुगाक्षीरीं च  
कार्पिकीम् ॥ १७ ॥ पलप्रमाणं विजया-  
बीजं चैकत्र मर्दयेत् । विजयावारिणा  
पश्चान्मापमानां वटीं चरेत् ॥ १८ ॥ एकैका  
भक्षणीचापा पेयं चानुपयः पलम् । श्रीशक्र-  
वल्लभो नाम रसो वाजीकरः परः ॥ १९ ॥  
वीर्यस्तम्भरोऽत्यर्थं प्रमदादर्पनाशनः ।  
गतो ह्यप्सरसां शक्रो वाल्लभ्यं यत्प्रसा-  
दतः ॥ २० ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, चाँदी की भस्म, सोने की भस्म, सोनामाली की भस्म ; प्रत्येक तीन-तीन माशे, वशलोचन १ तोला तथा भाँग के बीज ४ तोले । इनको भाँग के जल से घोटकर उबड़ के समान गोलियाँ बनावे । एक गोली खाकर ४ तोले दूध पीना चाहिए । यह श्रीशक्रवल्लभ रस परम वाजीकरण-वीर्यस्तम्भनकर्ता तथा कामिनियों के मान को नष्ट करनेवाला है । इसी के प्रताप से इन्द्र-देव अप्सराओं के प्यारे हुए थे ॥ १७-२० ॥

कामिनीविद्रावण रस ।

आकारकरभं शुण्ठीं लवङ्गं कुंकुमं  
कणाम् । जातीफलं च तत्कोपं चन्दनं  
कार्पिकं पृथक् ॥ २१ ॥ द्विगुलं गन्धकं  
शाणं फण्डिफेनं पलोन्मितम् । गुञ्जावय-  
मितां कुर्यात् संमर्द्य वटिकां भिषक् ॥

२२ ॥ पयसा परिपीतोऽयं शुक्रस्तम्भकरो  
रसः । विद्रावणः कामिनीनां वशीकरण  
एव च ॥ २३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वीर्यस्तम्भा-  
धिकारः समाप्तः ।

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केशर, पीपरी,  
सायफल, जावित्री, लाल चन्दन, प्रत्येक एक-  
एक तोला । हिंगुल और गन्धक तीन-तीन  
माशे तथा अफीम चार तोले । इन सबको एकत्र  
घोटकर तीन-तीन रत्नी की गोलियाँ बनावे ।  
अनुपान-दूध । यह रस वीर्यस्तम्भकर्ता, कामि-  
नियों का दुर्बलाशक तथा वशीकरण है । मात्रा--  
एक रत्नी से तीन रत्नी तक ॥ २१--२३ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिधिरचिताया भैषज्य-  
रत्नावल्या रघप्रभाभिधायीं व्याख्यायां  
वीर्यस्तम्भाधिकारः समाप्तः ।

### अथ रसायनाधिकारः ।

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्र-  
सायनम् । पूर्वं वयसि मध्ये वा शुद्धकायः  
समाचरेत् ॥ १ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो  
रसायनो विधिः । न भाति वाससि म्लिष्टे  
रङ्गयोग इवार्पितः ॥ २ ॥

जो ओषधि जरा ( बुढ़पा ) और व्याधि-  
नाशक हो उसको रसायन कहते हैं । अर्थात्  
जिम ओषधि के सेवन से बुढ़पा और रोग  
न हों वह रसायन है । इसका सेवन पुत्रावस्था  
अथवा मध्य अवस्था में करना चाहिए । परन्तु  
सेवन से पहले वमन-निवरेचनादि से शरीर को  
शुद्ध कर लेना चाहिए ; क्योंकि जैसे मलिन  
वस्त्र को रँगने से उस पर अच्छा रंग नहीं  
आता है, इसी प्रकार शरीर शुद्ध किए बिना  
रसायन का सेवन हितकर नहीं होता  
है ॥ १-२ ॥

जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भक्ते द्वे विभी-  
तके । भुक्त्वा तु मधुसर्पिभ्यां चत्वार्या-  
मलकानि च ॥ ३ ॥ प्रयोजयेत्समामेकां  
त्रिफलाया रसायनम् । जीवेद्वर्षशतं पूर्ण-  
मजरोऽव्याधिरिव च ॥ ४ ॥

भोजन हजम होने पर एक हफ्ता, भोजन  
करने से पहले दो बहेड़े और भोजन करने के  
परचाय चार घण्टे पहले घृत और शहद के साथ  
एक वर्ष तक सेवन करे तो यह त्रिफला-रसायन  
जरा और व्याधि को नष्ट करके सौ वर्ष की  
पूर्ण आयु तक जीवित रखता है ॥ ३-४ ॥

भृङ्गराज रसायन ।

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने  
भृङ्गरजः समुत्थम् । क्षीराशिनस्ते बल-  
वर्णयुक्ताः समाः शतं जीवितमानु-  
वन्ति ॥ ५ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भँगरा के रस को एक  
महीने तक पीते हैं और दूध का भोजन करते  
है वे बल और वर्ण से युक्त होकर १०० वर्ष  
तक जीवित रहते हैं ॥ ५ ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण  
यष्टीमधुकस्य चूर्णम् । रसो गुडूच्यास्तु  
समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्ख-  
पुष्प्याः ॥ ६ ॥ आयुःप्रदान्यामयनाश-  
नानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि । मेध्या-  
निचैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण तु  
शङ्खपुष्पी ॥ ७ ॥

मण्डूकपर्णी ( मझीभेद ) का स्वरस, दूध  
के साथ मुलेठी का चूर्ण, गिलोय का रस और  
जड़ तथा फूलसहित शंखपुष्पी ( शंखाहूली ) का  
कल्क ये चारों योग आयुप्रद, रोगनाशक तथा  
बल, वर्ण और स्वरवृद्धिकर्ता, मेधाकर्ता तथा  
रसायन हैं । विशेष करके शंखाहूली मेधा-  
जनक है ॥ ६-७ ॥

त्रिफ  
२२१

अश्वगन्धा रसायन

पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन  
सुखाम्बुना वा । कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते  
वालस्य शस्यस्य यथाम्बुघृष्टिः ॥ ८ ॥

अश्वगन्ध का चूर्ण दूध, घृत, तैल अथवा  
सुखोष्ण गर्म जल के साथ १५ दिन पीने से  
दुर्बल शरीर इस प्रकार पुष्ट होता है जैसे घर्षा  
से थोड़े दिन की खेती पुष्ट होती है ॥ ८ ॥

धात्रीतिलान् भृङ्गरजो विमिश्रान् ये  
भक्त्येयुर्मनुजाः क्रमेण । ते कृष्णकेशा  
विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयो वर्षशतं  
भवेयुः ॥ ९ ॥

आँवला, तिल और भँगरा का चूर्ण : इनको  
मिलाकर जो मनुष्य खाते हैं उनके क्रमशः  
बाल काले हो जाते हैं, इन्द्रियों शुद्ध हो जाती  
हैं और वे रोगरहित होकर १०० वर्ष तक  
जीते हैं ॥ ९ ॥

वृद्धदारक रसायन ।

वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कार-  
येत् । शतावरी रसेनैव सप्तवारांश्च भाव-  
येत् ॥ १० ॥ माषद्वयं तु तच्चूर्णं सर्पिषा  
सह योजयेत् । मासमात्रोपयोगेन मति-  
मान् जायते नरः ॥ मेधावी स्मृतिमांश्चैव  
बलीपलितवर्जितः ॥ ११ ॥

विधारा की जड़ को महीन पीसकर उसमें  
शतावरी के रस की ७ भावना देकर इसका २  
माशे की मात्रा में घृत के साथ, एक महीना  
तक, सेवन करने से मनुष्य बुद्धिमान्, मेधावान्,  
स्मृतिमान् तथा बलीपलित से रहित हो जाता  
है ॥ १०--११ ॥

हस्तिकर्णरजः खादेत् प्रातरुत्थाय  
सर्पिषा । यथेष्टाहारचेष्टोऽपि सहस्रायुर्भवे-  
न्नरः ॥ १२ ॥ मेधावी बलवान् कामी  
स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ । मधुना त्वश्ववेगः  
स्याद् बलिष्ठः स्त्रीसहस्रगः ॥ १३ ॥

मन्त्रश्चासौ प्रयोक्तव्यो भिषजा चाभि-  
मन्त्रणे ॥ १४ ॥

मन्त्रो यथा—ॐ नमो महाविनाय-  
काय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि  
रुद्रवचनेन स्वाहा ।

हस्तिकर्ण पलाश की छाल के चूर्ण को  
प्रातःकाल उठकर घृत के साथ सेवन करे और  
इच्छानुसार आहार-विहार करता रहे तो भी  
यह दीर्घायु, मेधावान्, बलयुक्त, कामी तथा  
हजार स्त्रियों का सेवन करनेवाला होता है । यदि  
इसको शहद के साथ सेवन करे तो अश्व का सा  
वेग, बलिष्ठ तथा हजार स्त्रियों का सेवनकर्ता  
होता है । वैद्य को चाहिए कि—“ॐ नमो  
महाविं” इत्यादि मंत्र से अभिमन्त्रित करके  
अपेक्षित का सेवन करावे ॥ १२--१४ ॥

धात्रीरसायन ।

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं क्षौद्र-  
सर्पिः समांशं कृष्णामाणी सिताष्टप्रसृत-  
युतमिदं स्थापितं भस्मराशौ । वर्षान्ते  
तत्समश्नन् भवति विपलितो रूपवर्णादि-  
युक्तः निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवचनबल-  
स्थैर्यसत्त्वैरुपेतः ॥ १५ ॥

आँवले का चूर्ण ३ सेर १६ तोले लेकर  
उसमें आँवले के रस की २१ भावनाएँ दे । शहद  
३ सेर १६ तोले, घृत ३ सेर १६ तोले,  
पीपरि ३२ तोले और शक्कर ६४ तोले । इन  
सबको एक मिट्टी के पात्र में मुच्च बन्द कर  
राख के ढेर में गाढ़ दे । एक वर्ष के बाद निकाल  
कर इसका सेवन करने से मनुष्य बलीपलित से  
रहित, रूपवान्, कान्तिमान्, व्याधिरहित तथा  
बुद्धि, मेधा, स्मरणशक्ति, सुन्दर वचन, बल,  
स्थिरता और सत्व से युक्त होता है ॥ १५ ॥

गुह्यच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी वचाभया  
शुषिठशतावरी समा घृतेन लीढा प्रक-  
रोति मानवं त्रिमिदिनैः श्लोकसहस्रधा-  
रिणम् ॥ १६ ॥

गिलोय, लटजीरा, वायविद्ध, शंखपुष्पी, बच, हृद्, सोंठ और शतावरी; इन सबको समान भाग लेकर घृत के साथ सेवन करे तो मनुष्य ३ दिन में हजार श्लोक कण्ठस्थ करनेवाला हो जाता है ॥ १६ ॥

व्यङ्ग्यलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकास-  
हरम् । रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं  
दृष्टिजननं च ॥ १७ ॥

रात्रि व्यतीत होने पर ( प्रातःकाल ) जल की नस्य लेना व्यङ्ग, कुराई पडना, बाल सफेद होना, पीनस, स्वरविकार और खाँसी को नष्ट करता है एव दृष्टि की शक्ति को बढ़ाता है । यह रसायन है ॥ १७ ॥

अम्भसः प्रसृतान्यष्टौ स्वावनुदिते  
पिवन् । वातपित्तगदान् हत्वा जीवेद्वर्ष-  
शतं नरः ॥ १८ ॥

सूर्य उदय होने से पहले आठ प्रसूति ( ६४ तोले ) जल पिया करे तो वातिक और पित्तिक रोग नष्ट हो जाते हैं और १०० वर्ष की आयु होती है ॥ १८ ॥

ऋतुहरीतकी ।

सिन्धूथशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्र-  
मात् । वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणै-  
पिणा ॥ १९ ॥

रसायन गुण की दृष्टि रखनेवाले को हृद् का सेवन वर्षा ऋतु में सेंधा नमक के साथ, शरद् ऋतु में शकर के साथ, हेमन्त ऋतु में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु में पीपरि के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ और ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ करना चाहिए ॥ १९ ॥

मधुहरीतकी ।

दुर्नामश्वासकासज्वरमधुतृपापाण्डु-  
तानेत्रोगान् हिकाकुष्ठतिसारभ्रममद-  
कसनाजीर्णशूलप्रमेहान् । तृष्णाशूला-  
स्रपित्तज्वरविततजरारोचकानाद्दाहान् द-

न्यादेतानवश्यं मधुनि परिगता पूतना  
चाम्लपित्तम् ॥ २० ॥

अत्र मधुनि परिगतेत्यनेन मधुभाविता  
मधुपूर्णभाण्डे चिरावस्थिता हरीतकी  
ग्राह्या । व्यवहारस्तु मधुपिष्टा हरीत-  
क्येव ।

हडों में मधु की भावना देकर अर्थात् मधु से भरे हुए पात्र में हडों को भर कर रख दे और कुछ दिन तक रखी रहने दे । परचात् मधु के साथ पीस कर हृद् का सेवन करे । यह मधुभाविता हरीतकी बवासीर, रवास, खाँसी, ज्वर, वमन, तृपा, पाण्डु, नेत्ररोग, हिचकी, कुष्ठ, अतीसार, भ्रम, मादकता, अजीर्ण, शूल, प्रमेह, तृष्णा, शूल, रत्रविकार, पित्तज्वर, बुद्धापा, अरुचि, आनाह, दाह और अम्लपित्त को नष्ट करती है ॥ २० ॥

निर्गुण्डीकल्प ।

ॐ सिद्धपिङ्गलायोगिनीकथितम् ।  
निर्गुण्डीमूलचूर्णमष्टपलं गृहीत्वा षोडश-  
पलं मधुमिश्रितं मर्दयित्वा घृतभाण्डे  
कृत्वा शरावेण आच्छाद्य निविडलेपनं  
दत्त्वा मर्दयित्वा मासमेकं धान्यमध्ये  
स्थापयेत् । तन्मासमेकं भक्षितमात्रेण नरः  
कनकवर्णो गृध्रदृष्टिः सर्वरोगविवर्जितो  
वलीपलितहीनः । संवत्सरं खादिते  
चन्द्रार्कं यावत् जीवेत्, यद्दशुक्रः स्त्रीशतं  
कामयितुं क्षमो भवति । शाकाग्लं विहाय  
यथेच्छया भोज्यम् ।

तच्चूर्णं गोमूत्रेण सह यः पिवति  
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि पामाविचर्चिकादीनि  
नाडीव्रगगुल्मशूलस्त्रीहोदराणि च ।

तच्चूर्णं तक्रेण यः पिवति स सर्व-  
रोगविवर्जितो गृध्रदृष्टिर्वराहबलो भवति,

बलीपलितवर्जितः दिव्यवचा पवनवेगो  
दिव्यमूर्त्तिर्भवति । मासद्वयप्रयोगेण परिण्ड-  
तरच न संशयः ॥ २१ ॥

निर्गुण्डा ( सँभालू ) की जड़ का चूर्ण  
३२ तोले और शहद ६४ तोले । दोनों को  
मिलाकर घी के चिकने मिट्टी के पात्र में भर  
दे और सकोरे से मुँह बन्द करके सन्धियों पर  
गहरा लेप कर दे और एक महीने तक उस  
पात्र को धान्यराशि ( धनाज के ढेर ) में  
रखे । परचात् बलानुसार मात्रा में एक महीने  
तक सेवन करे तो मनुष्य का वर्ण सोने के तुल्य  
हो जाता है, गीध की सी दृष्टि हो जाती है तथा  
सब रोगों से और बलीपलित से मुक्त हो जाता  
है । एक वर्ष तक इसका सेवन करने से दीर्घायु,  
वीर्यसंपन्न तथा सैकड़ों स्त्रियों से गमन करने में  
समर्थ हो जाता है । इसके सेवन के समय में  
शाक और खट्टी वस्तुओं को छोड़कर इच्छित  
भोजन करना चाहिए ।

सँभालू की जड़ के चूर्ण को गामूत्र के साथ  
पीने से थठारह प्रकार के कोढ़, पामा, विचर्चिका,  
नाडीम्रण ( नासूर ), गुल्मशूल, झीहा और  
उदर विकार नष्ट होते हैं ।

सँभालू की जड़ के चूर्ण को तक्र ( छाछ ) के  
साथ जो पीता है वह सब रोगों से रहित, गीध  
की सी दृष्टि, बराह का सा बल, बलीपलित से  
रहित, उत्तम वाणीवाला, वायु के तुल्य  
वेगवान् और सुन्दर शरीरवाला हो जाता है ।  
दो महीने सेवन करने से निस्तन्देह परिण्डत हो  
जाता है ॥ २१ ॥

भृङ्गराजादि चूर्ण ।

प्लक्षणीकृतं भृङ्गरजस्य चूर्णं तिला-  
र्द्धकं चामलकार्द्धकं च । सशर्करं भक्षयतो  
गुडैर्वा न तस्य रोगा न जरा न मृत्युः ॥  
२२ ॥ अन्धः पश्येद्गमनरहितो मत्तमातङ्ग  
गामी भूको वाग्मी श्रवणरहितो दूरशब्दा-  
नुसारी । नीरुद् मृत्यो भवति पलितो

नीलजीमूतकेशो जीर्णा दन्ताः पुनरपि  
नवाः क्षीरगौरा भवन्ति ॥ २३ ॥

भँगरा का चूर्ण ४ तोले, तिल २ तोले और  
आँवला २ तोले, इन सबको एकत्र कर उचित  
मात्रा में शकर अथवा गुड के साथ सेवन करने  
से रोग, बुझापा और मृत्यु का आक्रमण नहीं  
होता है । अन्धा देखने लगता है, पगुला चलने  
लगता है, गूँगा वाचाल हो जाता है, बधिर  
दूर का भी शब्द सुनने लगता है, रोगी नीरोग  
हो जाता है, सफेद बाल काले हो जाते हैं तथा  
खराब हुए पुराने दात फिर दूध से से सफेद एवं  
नये हो जाते हैं ॥ २२-२३ ॥

श्रीमृत्युञ्जयतन्त्रोक्त अमृतवर्त्तिका ।

त्रिफला त्रिकटु ब्रह्मी गुडूची रक्त-  
चित्रकम् । नागकेशरचूर्णं च शृङ्गेरं  
समार्कवम् ॥ २४ ॥ सिन्धुवारो हरिद्रे द्वे  
शक्राशनगुडत्वचौ । एला मधुकपर्णी च  
विडङ्गं चोग्रगन्धिका ॥ २५ ॥ चूर्णं  
प्रत्येकमेतेषां समादाय पलद्वयम् । काम-  
रूपसमुद्भूतैर्गुडैः पञ्चाशतैः पलैः ॥ २६ ॥  
सपष्टिस्त्रिंशती कार्या वर्त्तिस्तेन समानतः ।  
चन्द्रताराविशुद्धौ च पूजयित्वेष्टदेव-  
ताम् ॥ २७ ॥ सुकृती प्रज्ञया प्रीतो वर्त्ति-  
मेकां तु भक्षयेत् । ततोऽनुपानं पानीयं  
सलिलं च सुशीतलम् ॥ २८ ॥ कट्वम्लं  
लरणं चैव नातिमात्रं कटाचन । यः  
प्रत्यहमिदं खादेत् कर्षमानं निरन्तरम् ॥  
२९ ॥ भोजनादौ प्रदोषे वा शृणु यादृग्फलं  
भवेत् । नष्टवह्निस्तु दीप्ताग्निर्बडवानल-  
सन्निभः ॥ ३० ॥ इष्टापि भास्वती  
कान्तिश्चन्द्रिकेय निशामुखे । काशपुष्प-  
रुचः केशाः शिखिकण्ठमनोरमाः ॥ ३१ ॥  
पटलावहतं चक्षुर्लक्ष्यो जनदर्शनम् । जरा-

विश्लथदेहोऽपि जायते सु महाबलः ३२॥  
निर्व्याधिनिर्जरः पंगुर्वेगेनोच्चैःश्रवा इव ।  
दिनेश इव तेजस्वी कन्दर्प इव रूप-  
वान् ॥ ३३ ॥ सहस्रायुर्महासच्चो गन्धर्व  
इव गायनः । स्त्रीशतं रमते नित्यं नाव-  
सादं व्रजत्यसौ ॥ ३४ ॥ न भजन्त्यापदः  
कारिचत् कामरूपी भवेदसौ । पद्मगन्धि  
वपुस्तस्य सुपुष्पमिव कोमलम् ॥ ३५ ॥  
जराचयैः सुजीर्णस्य नखकेशादयो यथा ।  
प्रभवन्ति वलादुग्रादथ कन्दा इवाम्बु-  
दात् ॥ ३६ ॥ हृष्टः पुष्टश्च पापघ्नः शान्तो  
भवति मानवः । श्रीअमृतवर्तिका नाम  
मृत्युञ्जयमुखोदिता । रसायनानां श्रेष्ठेयं  
सर्वव्याधिनिःसूदनी ॥ ३७ ॥

त्रिफला, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपरि ),  
ग्रही, गिलोय, लाल चित्रक, नागकेशर, सोंठ,  
भंगरा, मँभालू की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, भोंग,  
दालचीनी, जूटो इलायची, खंभारी, वायविङ्ग  
और वच, प्रत्येक का चूर्ण आठ-आठ तोले ।  
कामरूप ( आसाम देश ) में उत्पन्न गुड  
२॥ सेर; इन सबको एकत्र कर घोट ले और  
३६० बत्ती बना ले । जत्र सेवन करनेवाले के  
चन्द्रमा और तारा शुद्ध हों तब इष्टदेवता का  
पूजन कर प्रसन्नता के साथ एक एक बत्ती खावे ।  
अनुपान—शीतल जल । कडुआ, खट्टा तथा नमक  
कम खाना चाहिए । जो मनुष्य प्रतिदिन लगा-  
तार भोजन के आदि में अथवा सायंकाल में  
इसका सेवन करता है उसकी मन्दाग्नि बढ़वा-  
नल के तुल्य तेज हो जाती है । चन्द्रमा के तुल्य  
कान्ति हो जाती है, कौत के फूल से सफेद  
घाल मोर की गर्दन के-से नीले हो जाते हैं,  
नेत्ररोगी दूर की वस्तु देखने लग जाता है  
बुढ़ापा से ग्रसित शरीर सबल, रोगरहित तथा  
जरांरहित हो जाता है । पँगुला पुरुष हृष्ट के  
घोड़े के तुल्य वेगवान्, सूर्य-सा तेजस्वी, कामदेव  
का-सा रूपवाला, दीर्घायु, महाबली और गन्धर्व

का-सा गानेवाला हो जाता है । सौ स्त्रियों से  
रमण करके भी नहीं थकता है, कोई व्याधि-  
नहीं सताती है, कामरूपी हो जाता है, कमल  
की-सी सुगन्धि तथा पुष्प-सा कोमल शरीर हो  
जाता है । बुढ़ापे से जीर्ण हुए नख-केश आदि  
इस प्रकार फिर से उत्पन्न हो जाते हैं जैसे वर्षों  
से कन्द उत्पन्न हो जाते हैं । मनुष्य इससे इष्ट-  
पुष्ट, पापघ्न और शान्त हो जाता है । यह मृत्यु-  
ञ्जय के मुख से कही हुई अमृतवर्तिका रसायनों  
में श्रेष्ठ और सब व्याधियों को नष्ट करनेवाली  
है । मात्रा—आधी वर्ति प्रातःकाल भोजन से  
पहिले और आधी वर्ति शाम को सेवन करनी  
चाहिए ॥ २४--३७ ॥

श्रीसिद्धमोदक ।

त्रिकटोत्त्रिपलं चूर्णं त्रिफलायाः पल-  
त्रयम् । गुडूच्याश्च विडङ्गानां ग्रन्थिक-  
ग्रन्थिपर्णयोः ॥ ३८ ॥ रक्त्वित्राडिप्रजं चूर्णं  
ग्राह्यं चापि पृथक् पृथक् । प्रत्येकं द्विपलं  
चैषां शृङ्गीयान्मतिमात्रम् ॥ ३९ ॥ काम-  
रूपोद्भवा ग्राह्या गुडस्यार्द्धतुला तथा ।  
सर्वमेकत्र संमर्द्य सपष्टित्रिशतं शुभम् ॥  
४० ॥ मोदकं कारयेद्दीमान् समभागेन  
यत्नतः । प्रत्यहं प्रातरेवैतत्पानीयेनैव  
भक्षयेत् ॥ ४१ ॥ एवं निरन्तरं कार्यं  
संवत्सरमतन्द्रितः । प्रथमे मासि वायुक्रो  
द्वितीये वलवर्णवान् ॥ ४२ ॥ तृतीये  
नाशयेत् कुष्ठं श्वासकासौ तुरीयके ।  
पञ्चमे स्त्रीप्रियत्वं च षष्ठे च पलितक्षयः ॥  
४३ ॥ सप्तमे कान्तियुक्तरश्च अष्टमे वल-  
वान् भवेत् । नवमे च शतायुः स्याद्  
दशमे च स्वरान्वितः ॥ ४४ ॥ महाबल-  
स्त्वेकादशे अदरयो द्वादशे भवेत् ।  
इच्छाहारविहारी स्यात्ततो दैत्यरिपोः  
समः ॥ ४५ ॥ पद्मिरेरहितो देही प्राप्नोति



कल्पजीवितम् । युवा निरन्तरं तिष्ठेयाव-  
त्कालं च जीवति ॥ ४६ ॥ भवन्ति सि-  
द्धयोऽस्याष्टौ याश्चापि परिकीर्त्तिताः ।  
श्रीसिद्धभोदको ह्ये सिद्धादिषु निपे-  
वितः ॥ ४७ ॥

त्रिकटु का चूर्ण १२ तोले, त्रिफला का चूर्ण  
१२ तोले तथा गिलोय, थाययिडंग, पिपरामूल,  
गठिवन और लाल चीता की जड़, प्रत्येक औषधों  
का चूर्ण आठ-आठ तोले । कामरूप (आसाम )  
में बना हुआ गुड २॥ सेर । सबको एकत्र घोट  
कर ३६० लड्डू बना ले । प्रातःकाल एक लड्डू  
जल के साथ खाना चाहिए । निरन्तर एक वर्ष  
तक सावधानी से इसका सेवन कराना चाहिए ।  
इसके सेवन से पहले महीने में बाणायुक्त, दूसरे  
में बल और वणायुक्त, तीसरे में कुपनाश, चौथे  
में श्वास-कास का नाश, पाँचवें में स्त्रियों का  
प्यारा, छठे में पलित का नाश, सातवें  
में कान्तियुक्त, आठवें में बलवान् नवें  
में शतायु, दशवें में स्वयुक्त, ग्यारहवें में  
महाबली और बारहवें महीने में अदृश्य हो  
जाता है । एवं इच्छानुसार आहार-विहार  
करता हुआ इन्द्र के तुल्य हो जाता है और  
पदमियों से रहित शरीर कल्पजीवी होकर  
जब तक जीवित रहता है तब तक निरन्तर युवा  
बना रहता है । आठों सिद्धियों प्राप्त हो जाती  
हैं । यह श्रीसिद्धभोदक सिद्धों द्वारा सेवित किया  
गया था ॥ ३८-४७ ॥

श्रीनृपतिवल्लभ रस ।

जातीफललवङ्गाद्वत्तवेगोलाटङ्गराम-  
ठम् । जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्वसै-  
न्धवाः ॥ ४८ ॥ लौहमर्षं रसोगन्धस्ताम्रं  
प्रत्येकशः पलम् । मरिचं द्विपलं द्रुवा  
क्षामीक्षीरेण पेपयेत् ॥ ४९ ॥ धात्रीरसेन  
या पेप्यं वटिकाः कुरु यत्नतः । श्रीमद-  
गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्मितः ॥ ५० ॥  
सूर्यवत्सेना चायं रसो नृपतिवल्लभः ।

अष्टादशवर्षं खादेत् पवित्रः सूर्यदर्शकः ॥  
५१ ॥ हन्ति मन्दानलं सर्वमांसदोषं  
विमूचिकाम् । लीहगुल्मोदराष्टीलायकृ-  
त्पाण्डुककामलाम् ॥ ५२ ॥ हृच्छूलं  
पृष्ठशूलं च पार्श्वशूलं तथैव च । कटी-  
शूलं कुक्षिशूलमानाहमष्टशूलकम् ॥ ५३ ॥  
कासश्वासामवातांश्च श्लीषदं शोथमर्बु-  
दम् । गलगण्डं गण्डमालामम्लपित्तञ्च  
गर्दभीम् ॥ ५४ ॥ कृमिकुष्ठानि दद्रूणि  
वातरङ्गं भगन्दरम् । उपदंशमतीसारं ग्रह-  
ण्यर्शः प्रमेहकम् ॥ ५५ ॥ अश्मरीं मूत्र-  
कृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम् । ज्वरं जीर्णं  
तथा कण्डू तन्द्रालस्यं भ्रमं क्लमम् ॥ ५६ ॥  
दाहञ्च विद्रधिं हिर्कां जडगद्गदमूक-  
ताम् । मूढञ्च स्वरभेदञ्च ब्रध्नवृद्धिविसर्प-  
कान् ॥ ५७ ॥ उरुस्तम्भं रक्तपित्तं गुदभ्रं-  
शारुचिं तृषाम् । कर्णनासामुखोत्थांश्च  
दन्तरोगांश्च पीनसान् ॥ ५८ ॥ स्थौल्यञ्च  
शीतपित्तञ्च स्थावरादिविपाणि च । वात-  
पित्तकफोत्थांश्च द्वन्द्वजान् साक्षिपाति-  
कान् ॥ ५९ ॥ सर्वानेव गदान् हन्ति  
चण्डांशुरिव पापहा । बलवर्णकरो ह्य  
आयुष्यो वीर्यवर्द्धनः ॥ ६० ॥ परं वाजी-  
करः श्रेष्ठः पुत्रदो मन्त्रसिद्धिदः । अरोगी  
दीर्घजीवी स्याद् रोगी रोगाद्विमुच्यते ॥  
६१ ॥ रसस्यास्य प्रसादेन बुद्धिमान्  
जायते नरः ॥ ६२ ॥

जायकल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी  
इलायची, मुहागा, हींग, सफेद जीरा, तेजपात,  
अजवाइन, सोंठ, संधानमक, लौहभरम, धधक-  
भस्म, पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, हरपक ४  
तोले, कालीमिर्च ८ तोले; इनके चूर्णों को

एकत्र भिलाकर बकरी के दूध से धयवा आँवलों के रस से पीसकर दो-दो रत्ती की गोलीयाँ बनावे । इसे दिन में दो बार सेवन करा सकते हैं । इस प्रकार नौ दिन तक सेवन कराने से अर्थात् १८ गोली खाने से मन्दाग्नि, सपूर्ण मांसदोष, विसूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अछीला, यकृद्भृदि, पाण्डुरोग, कामला, हृत्पूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, कटीशूल, कुचिशूल, अफरा, आठों शूल, खाँसी, श्वास, आमवात, रलीपद, सृजन, अयुर्द, गलगण्ड, गण्डमाला, अम्लपित्त, पापाण्यगर्दभ, कृमि, कुष्ठ, दद्रु, वातरक्त, भगन्दर, उपद्रव, अतीसार, समग्रहणी, बवासीर, प्रमेह, अरमरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, जीर्णज्वर, खुजली, तन्द्रा, आलस्य, भ्रम, क्लम, जलन, विद्वग्धि, हिक्का, जिह्वा की जडता, गद्गद, मूकता, मूदता, स्वरभेद, मन्तरोग, अण्डभृदि, विसर्प, ऊरस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रश, अरिचि, पिपासा, कर्णरोग, नासारोग, मुखरोग, दन्तरोग, पीनस, स्थूलता, शीतपित्त, स्थावर आदि विपदोप तथा अन्य सम्पूर्ण वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, द्वन्द्वज तथा सान्निपातिक रोग नष्ट होते हैं । यह बलकारक, धर्य, हृद्य, आयुष्य, वीर्यवर्धक, वाजीकरण तथा सन्तानोत्पादक एवं मन्त्रसिद्धिकारक है । इस रस के प्रसाद से स्वस्थ पुरुष दीर्घायु तथा बुद्धिमान् होता है और रोगी रोग से मुक्त होता है ॥ ४८-६२ ॥

सिद्ध लक्ष्मी विलास रस ।

हेमभस्म च भागैकं रौप्यभस्म द्विभागिकम् । शुल्बभस्म त्रिभागश्च कान्त भस्म चतुर्गुणम् ॥ ६३ ॥ पंच भागंच तीक्ष्णं स्यान्मण्डूरं पट्टिभागिकम् । निश्चन्द्रं व्योमकंचैव भस्म स्यान्नय भागिकम् ॥ ६४ ॥ दशैकादशभागो च प्रवालं मौक्तिके मृते । खल्वमध्ये निधायाऽथ तत्तुल्यं सूत भस्मकम् ॥ ६५ ॥ मर्दयेत्प्लावितं द्रव्यं भावयेज्जाति पत्रकैः ।

त्रिकुटु त्रिफला चातुर्जात द्रावैश्च कौङ्कुमैः ॥ ६६ ॥ मृगनाभिरसैश्चैव मुनिवारान् पृथक् पृथक् । गुज्जामात्रं लिह्येत्सम्यक् सिताऽऽज्यमधु संयुतम् ॥ ६७ ॥ राजरोगं निहन्त्याशु पाण्डुरोग विनाशनम् । द्वन्द्वजं छर्दिरोगश्च श्वासं कासञ्च कामलाम् ॥ ६८ ॥ दीर्घवातं पंचगुल्मान् सर्वशूलं विनाशयेत् । उन्मादं च मतिभ्रंशमष्टोत्तर महागदान् ॥ ६९ ॥ मेहानां त्रिंशत्तिश्चैव पण्डत्त्वं च क्षयं नयेत् । अरोचकमग्निमान्द्यं ग्रहणीदोषनाशनम् ॥ ७० ॥ बलीपलित विध्वंसि नाशयेत्कुम्भकामलाम् । दृष्टि पुष्टिकरं बल्यं कम्पवातश्च नाशयेत् ॥ ७१ ॥ असाध्यरोग नाशाय साध्योलक्ष्मी विलासकः ॥ ७२ ॥

सुवर्ण भस्म १ भाग, रजत भस्म २ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग, कान्त भस्म ४ भाग, फौलाद भस्म ५ भाग, मण्डूर भस्म ६ भाग, निश्चन्द्र अत्रक भस्म ७ भाग, वज्रभस्म ८ भाग नागभस्म ९ भाग, प्रवाल १० भाग, और मोती ११ भाग लेकर सबके समान पारे की भस्म (रस सिन्दूर) भिलाकर जावित्री, त्रिकुटा, त्रिफला, चातुर्जात, केदार, कस्तूरी इन सबके द्रवों से ७-७ बार घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना लेवे । इनमें से १ गोली से ३ गोली तक चलानुसार शक्कर, घी, और मधु के साथ देने से क्षय, पाण्डु, द्वन्द्वज, छार्द्र रोग, श्वास, कास, कामला, दीर्घकालीन वातरोग, पाँचो प्रकार के गुल्म, मय तरह के दर्द, उन्माद, मतिभ्रंश (विचिन्तता), अष्टोदरीय महारोग, २० प्रकार के प्रमेह, नपुंसकता, अरिचि, मन्दाग्नि, ग्रहणी, बली पलित दृष्टि की कमजोरी, कम्पवात इन सबको नाश करता है, विशेष अतुभूत है ॥ ६३-७२ ॥

मकरध्वज रसायन ।

स्वर्णस्य भागौ वङ्गश्च मौक्तिकं कान्त-  
लौहकम् । जातीकोपफले रूप्यं रससिन्दूर  
कांस्यकम् ॥ ७३ ॥ कस्तूरी विद्रुमश्च-  
न्द्रमभ्रकञ्चैकभागिकम् । स्वर्णसिन्दूरतो  
भागाश्चत्वारः कल्पयेद् बुधः ॥ ७४ ॥  
नातः परतरः श्रेष्ठः सर्वरोगनिमूदनः ।  
सर्वलोकहितार्थाय शिवेन परिकी-  
र्तितः ॥ ७५ ॥

सुवर्णभस्म २ भाग, वङ्गभस्म, मुक्ताभस्म,  
कान्तलौहभस्म, जावित्री, जायफल चाँदीभस्म,  
रससिन्दूर, कांस्यभस्म, कस्तूरी, प्रवालभस्म,  
कपूर, अभ्रकभस्म, हरएक १ भाग; स्वर्ण-  
सिन्दूर ४ भाग, इन्हें एकत्र मिला जल से  
घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे ।  
यह रसायन सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता  
है ॥ ७३-७५ ॥

अमृतार्णव रस ।

सूतभस्म चतुर्भागं लौहभस्म तथाष्ट-  
कम् । अभ्रभस्म च पद्मभागं गन्धकस्य च  
पञ्चमम् ॥ ७६ ॥ भावयेत् त्रिफलाकाथै-  
स्तत्सर्वं भृङ्गजैर्द्रवैः । शिशुवह्निकटुकाथै-  
र्भावयेत् सप्तधा पृथक् ॥ ७७ ॥ सर्व  
तुल्या कणा योज्या गुर्दमिश्रं पुरातनैः ।  
गुड्वापट्कमितं खादेज्जराभृत्युनिवारणम् ॥  
७८ ॥ ब्रह्मायुः स्याच्चतुर्मासे रसोऽयम-  
मृतार्णवः । कौरण्टकस्य पत्राणि गुडेन  
भक्तयेदनु ॥ ७९ ॥

पाराभस्म ( घभाय में रससिन्दूर ) ४  
भाग, लौहभस्म ८ भाग, अभ्रक भस्म ६ भाग,  
गन्धक २ भाग; इन्हें त्रिफला के बषाध, मोंगरे  
के रस तथा मंहिजना, शिप्रक एवं कुटकी के  
बषाध में घबग-घबग रात बार भापना देकर  
सम्पूर्ण पृथ् के समान पीपल का पृथ् तथा

पुराना गुड मिलाकर छह-छह रत्ती की गोलियाँ  
बनावे । इस गोली के सेवन के पश्चात् पिया-  
याँसा के पत्रों को गुड के साथ खावे । इसके  
सेवन से जरा तथा मृत्यु दूर होती है । चार मास  
तक सेवन करने से मनुष्य ब्रह्मायु अर्थात् दीर्घायु  
होता है ॥ ७६-७९ ॥

श्रीनीलकण्ठ रस ।

रसस्य भागाश्चत्वारो हेम्नो भागचतु-  
ष्टयम् । अश्रंलौहं तथा मुक्ता वैक्रान्तं युग्म-  
भागिकम् ॥ ८० ॥ रौप्यं प्रवालं ताप्यश्च  
वङ्गमेकैकभागिकम् । त्रिधा जीवन्ति  
लाक्षाग्निमूलकाथेन भावयेत् ॥ ८१ ॥  
एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य धान्यराशौनिधापयेत् ।  
ततो दिनत्रयादूर्ध्वमुद्धृत्य रक्तिका मिताम् ॥  
८२ ॥ प्रयुज्याद्दृष्टिकां धीमान् यथा  
व्याध्यनुपानतः । नीलकण्ठं समभ्यर्च्य  
शुचिः संयतमानसः ॥ ८३ ॥ रसायन-  
वरः श्रीदो वातव्याधिविनाशनः । रसः  
श्रीनीलकण्ठाख्यो नीलकण्ठेन भापितः ॥  
८४ ॥ कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान्  
विशति तथा । नेत्ररोगं तथा दोषान् रजः-  
शुक्रसमुद्भवान् ॥ ८५ ॥ सन्निपातज्वरं  
घोरं हन्नासामुखकर्णजान् । रोगान् बहु-  
विधान् हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥  
८६ ॥

रससिन्दूर ४ भाग, सुवर्णभस्म ४ भाग,  
अभ्रकभस्म, लौहभस्म, मुक्ताभस्म, वैक्रान्त-  
भस्म; हरएक २ भाग; चाँदी की भस्म, प्रवाल-  
भस्म, स्वर्णमाषिकभस्म, पद्मभस्म, हरएक १  
भाग; सबको एकत्र कर इनमें जीवन्ती, लाक्षा  
तथा शिप्रकमूल के बषाध से तीन-तीन बार भापना  
दे । पश्चात् गोलाकार कर घबकी के पत्रों में  
खपेट घान्यराशि में दबा रखे । तदनन्तर तीन दिन  
के बाद निकालकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ

यनाथे । पथिय तथा संयमी रहकर शिव की पूजा करके १ गोली का सेवन करे । व्याधि के अनुसार अनुपान का प्रयोग करे । यह श्रीनीलकण्ठ का कहा हुआ रसायन कान्ति को बढ़ाता और वातव्याधि को नष्ट करता है । इसके सेवन से अठारह कुष्ठ, बीसों प्रमेह, नेत्ररोग, रजोदोष, शुक्रदोष, सन्निपात, ज्वर, विविध, हृद्रोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरोग तथा कई प्रकार के अन्य रोग ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार ॥ ८० ८६ ॥

शिवागुडिका ।

काले तु रवितापाढ्ये कृष्णाथसजं शिलाजतु प्रवरम् । त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहश्च शुष्कं पुनः शुष्कम् ॥ ८७ ॥ दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य । मधुकरसैर्गोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत्क्रमशः ॥ ८८ ॥ एकाहं क्षीरेण तु तत् पुनर्भाषयेच्छुष्कम् । सप्ताहं भाव्यं स्यात् कायैर्नैपां यथालाभम् ॥ ८९ ॥ काकोल्यौ द्वे मेढ्रे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा । ऋद्धियुगर्षभवीरा मुण्डितिकाजीरकैःशुमत्यौ च ॥ ९० ॥ रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभक्तणाकलिङ्गचव्याब्दाः । कटुका शृङ्गी पाठा तानि पलांशिकानि भाव्यानि ॥ ९१ ॥ अब्द्रोणे साधितानां रसेन पाटांशिकेन भाव्यानि । गिरिजस्यैत्रं भावितशुद्धस्य पलानि दशपट् च ॥ ९२ ॥ द्विपलञ्च विश्वाभागधिका कटुकर्कटाख्यमरिचानाम् । चूर्णं पलं विदार्यास्तालीपलानि चत्वारि ॥ ९३ ॥ षोडशसितापलानि चत्वारि घृतस्य भाक्तिकस्याष्टौ । तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णाढ्यपलानि पञ्चानाम् ॥ ९४ ॥ एक

क्षीरिपत्रत्वङ्नागैलानां मिश्रयित्वा तु । गिरिजस्य षोडशपलैर्गुडिकाः कार्याः द्विमापसमाः ॥ ९५ ॥ ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः ॥ तासामेका काले भक्ष्या पेयापि वा सततम् ॥ ९६ ॥ क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि । आलोडनानि तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ ९७ ॥ जीर्णे लघ्वन्नपयो जाड्रलनिर्हृद्यूपभोजी स्यात् । सप्ताहं यावदतः परं भवेत्सर्वसामान्यम् ॥ ९८ ॥ भुक्त्वापि भक्तितेयं यद्वाञ्छया नावहेद्भयं किञ्चित् । निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारकैः कामिभिरचैव ९९ संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येवा वातशोणितं प्रबलम् । बहुवार्षिकमपि गाढं यच्चाणं चाढ्यवातञ्च ॥ १०० ॥ ज्वरयोनिशुक्रदोषस्त्रीहार्शपाण्डुग्रहणीरोगान् ब्रध्नवमिगुल्मपीनसहिष्काकासारुचिश्वासान् ॥ १०१ ॥ जठरं श्वित्रं कुष्ठं पाण्ड्य क्लैब्यं गरं क्षयं शोषम् । उन्मादापस्मारौ वदनाक्षिशिरोगदान् सर्वान् ॥ १०२ ॥ आनाहमतीसारं सासृग्दर कामलाप्रमेहांश्च । यकृद्वृटानि विद्रधि भगन्दरं रक्तपित्तञ्च ॥ १०३ ॥ अतिकार्यमतिस्थौल्यं स्वेदमथ रलीपटञ्च विनिहन्ति । दंष्ट्राविषं समौलं मराण्डिबहुप्रकाराणि ॥ १०४ ॥ मन्त्रौपधियोगान् विप्रयुक्तान् भौतिकांस्तथा भावान् । पापालक्ष्मीरचेयं शमयेद् गुडिका शिवा नाम्ना ॥ १०५ ॥ वल्या वृष्या घन्या कान्तियशश्रीप्रजाकरी चेषम् । दधान्पवप्लभतां जयं विवादे

मुखस्था च ॥ १०६ ॥ श्रीमान् प्रकृष्ट-  
मैधाः स्मृतिबुद्धिवलान्वितोऽनुलशरीरः ।  
पुष्ट्योजोऽतिविमलेन्द्रियतेजोबलसम्पद्-  
पेतः ॥ १०८ ॥ वलीपलितरोगरहितो  
जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः । संवत्सर प्रयो-  
गात् द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ १०८ ॥  
सर्वामयजित्कथितं मुनिगणभचरंसायन-  
रहस्यम् । समुद्भवामृतमन्थनोत्थ-  
स्वेदः शिलाभ्योऽप्तवान् गिरेः प्राक् ॥ १०९ ॥  
यो मन्दरस्थात्मभुवा हिताय न्यस्तः स  
शैलेषु शिलाजरूपी । शिवागुडिकेति  
रसायनमुक्त्वां गिरीशेन गणपतये । शिव-  
वदनविनिर्गता यस्मान्नाम्ना तस्माच्छिवा  
गुडिका ॥ ११० ॥

श्रीभ्रमकाल में काली लौहयुग्म षट्पान से  
निष्कलनेवाली उत्तम शिलाजीत ६४ तोला लेकर  
उसमें त्रिफला के काथ से तीन-दिन भावना दे  
और सुखा ले । फिर दशमूल ( मिलित ),  
गिलोय, खरंटी परवल, मुलहठी, इनके यथा  
सम्भव रस अथवा काथ से तथा गोमूत्र से क्रमशः  
अलग-अलग तीन तीन भावना दे । तदनन्तर गौ  
के दूध से एक भावना दे और खा ले । पश्चात्  
निम्नलिखित काथ से स्यात भावना दे काथ—  
काकोली, चीरकाकोली, मेहा, महामेदा, विदारी,  
चीरविदारी, शतावर, दाख, श्रद्धि, बुद्धि ऋषभक,  
जटाभांसी, गोरखमुण्डी, सरुद जीरा, फाला  
जीरा, शाकपर्णी, वृश्चिनपर्णी, राशना, पोहकर-  
मूल, चित्रक, दन्तीमूल, गजपीपल, इन्द्रयव,  
चष्य, मोधा, कुटकी, काकडासिगी, पाठाः हर  
एक द्रव्य यथा लाभ ( जो प्राप्त हो सके )  
४-४ तोले ले और २४ सेर ४८ तोले जल में  
काथ करे ; जब ६ सेर ३२ तोले जल रह जाय तब  
ठसकी भावना दे । पश्चात् सोंठ, पीपल, कुटकी,  
काकडासिगी, कालीमिर्च; इनका घूर्ण अलग-  
अलग ८ तोले, विदारीकन्द ४ घूर्ण ४ तोले,  
तालीशपत्र १६ तोले, खोंड ६४ तोले, गोमूत्र

१६ तोले, शहद ३२ तोले, तिल कातैल ८ तोले,  
तथा तवाशीर, तेजपात, टारचीनी, नागकेशर,  
छोटी इलायची, पाँचों मिलाकर २ तोले; इन्हें  
मिलाकर दो-दो भाशे की गोलियाँ बना ले ।  
जब ये गोलियाँ सूख जायँ तब चमेली के फूलों  
में सुगन्धित पात्र में इन्हें रख दे । इनमें से  
एक-एक गोली सेवन करनी चाहिए । अनुपान-  
दूध, मांसरस अनार का रस, सुरा, आसव,  
शहद अथवा शीतल जल । इन्हीं में धोलकर  
भी पिला सकते हैं । औषध के जीर्ण हो जाने  
पर हलका अन्न, दूध, जांगल पशु-पक्षियों का  
मांसरस, भूँग आदि का घुष खाना चाहिए ।  
इस प्रकार सात दिन पथ्य रखे । पश्चात्  
साधारण नियमों पर चले । इस गोली को  
इच्छानुसार भोजन के बाद भी खाने से कोई  
नुकसान नहीं । इसे सुकुमार एवं कामी पुरुष  
सेवन कर सकते हैं । एक वर्ष तक निरन्तर  
इसके प्रयोग से प्रबल, बहुत वर्ष का तथा  
गम्भीर वातरक्त, बध्मा, आह्ववात, ज्वर,  
योनिदोष, वीर्यदोष, ग्रीहा, बवासीर, पाखु,  
प्रहणी, प्रध्न, वमन, गुदम, पीनस ( प्रतिश्याय ),  
हिचकी, खाँसी, अरुचि, श्वास उदररोग,  
शिवत्र बुष्ट, पण्डता, नपुंसकता, गरविष, क्षय,  
शोपरोग, उन्माद, अपस्मार तथा सम्पूर्णं मुख  
रोग, सम्पूर्णं नेत्ररोग, शिरो रोग, अफरा,  
अतीसार रङ्गप्रदर, कामला, प्रमेह, यकृत,  
अधुं, विद्वधि भगन्दर, रङ्गपित्त, अतिकृशता,  
अतिस्थूलता, पसीना आना, श्लीपद,  
दंद्वाविष, शूलविष, विविध गर ( संयोग )  
विष तथा मन्त्र एवं औषध के विपरीत प्रयोग से  
उत्पन्न दोष, भूतबाधा, पाप और अलक्ष्मी आदि  
शान्त होते हैं । यह शिवागुडिका यलकारक,  
वीर्यवर्द्धक, धनोत्पादक, कान्ति, यश, शोभा  
एव सन्तान देनेवाली है । इसे मुख में रखने से  
पुरष राजा का प्रिय हो जाता है और पिवाद  
में जयलाभ करता है । इसका एक वर्ष तक सेवन  
करनेवाला भ्यात्र लक्ष्मीवान्, स्मृति, बुद्धि  
बल, अतुल शरीर, पुष्टि भोज, तेज आदि से  
युक्त वली पलित से रहित तथा निर्मलेन्द्रिय एवं  
जराहित होकर २०० वर्ष तक जीता है । दो

वर्ष सेवन करनेवाला ४०० वर्ष तक जीता है । यह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करनेवाला, मुनियों के लिये सेव्य रसायन है । प्राचीन काल में अमृत का मयन करते हुए मन्दर पर्वत की शिलाओं से अमृतयुक्त स्वेद निकला था । उस स्वेद को जगत् के कल्याण के लिये ब्रह्मा ने पर्वतों में शिलाजीत के रूप में रख दिया । शिवा गुहिका नामक रसायन का महादेवजी ने गणेशजी को उपदेश किया था । चूंकि यह रसायन शिवजी के मुख से प्रवृत्त हुआ, अतएव इसका नाम शिवागुहिका हुआ । इस योग में, जिसमें काकोल्यादि काय से सात दिन भावना देने को कहा है, उसका निर्देश सात भावनाओं के लिये है, अतः ताजे काय की भावनार्थ प्रयोग के लिये सातवें भाग का वचाय करना चाहिए । इस प्रकार सात बार अलग-अलग काय तैयार करना चाहिए । ८७-११० ।

वसन्तकुसुमाकर रस ।

प्रवालरसमौक्तिकाम्बरमिटं चतुर्भाग-  
भाक् पृथक् पृथगथ स्मृते रजतहेमतो  
द्वयंशके । अयोभुजरङ्गकं त्रिलवकं विम-  
र्द्याखिलम् ॥ शुभेऽहनि विभावयेद्विपगिदं  
धिया सप्तशः ॥ १११ ॥ द्वैष्टपनिशे-  
त्तुजैः कमलमालतीपुष्पजैः पयः कदलि-  
कन्दजैर्मलयजैणानभ्युद्भवैः । वसन्तकुसु-  
माकरो रसपतिद्विवल्लोऽशितः समस्तगट-  
हृद्भवेत् किल निजानुपानैरयम् ॥ ११२ ॥

मूंगाभस्म, रसमिन्दूर, मोती की भस्म और अन्नकभस्म, प्रत्येक ४ भाग, रजतभस्म २ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, लौहभस्म ३ भाग, सीसा की भस्म ३ भाग और राँगा की भस्म ३ भाग । इन सबको एकत्र घोट कर शुभ दिन में अदुला, हल्दी, ईल, कमल, मालती के फूल, दूध, केला का कन्द चन्दन और कस्तूरी ; इनके स्वरस धयवा काय की अलग-अलग सात-सात भावनाएँ दे । इस वसन्तकुसुमाकर रस को चार-चार रती की

गोलियाँ बनाकर रोगानुसार अनुपान से आधी घटी से एक घटी तक सेवन करे तो सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं ॥ १११-११२ ॥

नागसिन्दूर ।

पारदात्कुडवं सार्धकुडवं शुद्धाश्वगन्धतः  
सीसकादधकुडवं नवसारतोऽपि च ॥ ११३ ॥  
कज्जली कारयेदेषां भावनादापयेदिमाः  
पलाशमूलं नास्यत्री तथा चाऽमरवल्लिका  
॥ ११४ ॥ एतेषां स्वरसैर्भाव्यं काचकूप्यं  
ततः क्षिपेत् । मुखं सम्पुष्टञ्च सिकतायन्त्रे  
वह्नि ददीत च ॥ ११५ ॥ चतुर्विंशतिभि-  
र्यामैः क्रमवृद्ध्या च पाचयेत् । दीपाऽग्निघ्न-  
प्टभिर्यामैर्मध्याग्नि पट्टिभ्ये च ॥ ११६ ॥  
हठाग्निनैत्रयामैश्च स्वाङ्गशीतं सधुदरेत  
युक्ताऽनुपानतो हन्यात्सर्वरोगान रसोत्तमः  
॥ ११७ ॥

शुद्धपारा ४ पल शुद्ध गन्धक छहपल विप और नौसादर दो दो पल लेकर नाग को गला कर पारे को मिलाय गन्धक के साथ कज्जली कर नौसादर मिलाकर पलाश की जड़ नई ( मामेजनी गुं ) मिलाय इन सब के रसों से १-१ रोज घोट कर सुखाकर ६-७ कपडमिट्टी की आतश शीशी में रख कर उसका मुँह खिडिया मिट्टी की दाट से बन्द कर बालुका यन्त्र में रख कर १६ प्रहर दीपाग्नि छप्रहर मन्दाग्नि और २ प्रहर हठाग्नि देकर शीतल होने पर निकाल रोगानुसार अनुपान के साथ देने से समस्त रोगों को दूर करता है ॥ ११३-११७ ॥

अष्टाचक्ररस ।

रसराजस्य भागैकं द्विभागं गन्धकस्य  
च । भागमेकं सुवर्णस्य भागाद्धं रजतस्य  
च ॥ ११८ ॥ नागं ताम्रं खर्परं च वद्रं  
चैव समांशकम् । प्रत्येकं रजताद्धं च सर्व-  
मेकत्र मर्दयेत् ॥ ११९ ॥ वटाहुररसै-

यामं यामं कन्यारसैः सह । कूप्यभ्यन्तरे  
संस्थाप्य त्रिदिनं पाचयेत् सुधीः १२० ॥  
दाडिमीकुसुमप्रख्यं जायते ह्यविकल्पतः ।  
वलीपलितविध्वंसि बलपुष्टिकरं महत् ॥  
१२१ ॥ आरोग्यजननं मेधाकान्तिकृ-  
च्छुक्रवर्द्धनम् । महौषधवरं चैतदष्टावक्रेण  
निर्मितम् ॥ १२२ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग,  
सुवर्णभस्म १ भाग, चाँदी की भस्म आधा  
भाग तथा सीसा की भस्म, ताँबे की भस्म,  
खपरिया और वङ्गभस्म ; प्रत्येक चाँदी से  
आधा भाग । इन सबको एकत्र कर बरगद  
के अकुर और धीकुवार के रस में एक-एक  
पहर घोटकर काँच की कुप्पी में बन्दकर तीन  
दिन तक पकावे । जय अन्तर के फूल के समान  
लाल हो जाय तब उसको निकाल ले । इसके  
सेवन करने से वलीपलित नष्ट होते हैं । यह  
प्रयोग बल, पुष्टि तथा आरोग्यजनक है । इसके  
प्रयोग से बुद्धि, कान्ति तथा वीर्य की वृद्धि होती  
है । यह अष्टावक्रजी द्वारा निर्मित रस है  
॥ ११८-१२२ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणि ।

रसं वज्रं हेम तारं ताम्रं तीक्ष्ण मृता-  
भ्रकम् । मौक्तिकं गन्धकं शङ्खं प्रवालं  
तालकं शिला ॥ १२३ ॥ शोधितं च  
समं सर्वं सप्ताहं मर्दयेद् दृढम् । वह्निमूल-  
कपायेण भानुदुग्धे दिनत्रयम् ॥ १२४ ॥  
निर्गुण्डीशूरगुडार्चर्वज्रीदुग्धैर्दिनत्रयम् ।  
अनेन पूरयेद्भ्रमं पीतवर्णसगटिकाम् ॥  
१२५ ॥ दहनं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तस्य  
मुखं लिपेत् । रुद्ध्या भाण्डमुखं पाच्यं  
रात्रशीतं विचूर्णयेत् ॥ १२६ ॥ चूर्णं  
तुन्यं मृतं मृतं वैक्रान्तं मृतपादिकम् ।  
शोभाञ्जनद्रव्यैः सर्वं मस्रारान् विमान-

येत् ॥ १२७ ॥ वह्निमूलकपायेण भाव-  
नाद्वयमीहते । एवं संशुद्धसूतेन्द्रः सर्व-  
व्याधिकुलान्तकः ॥ मासाद्धं न निहन्त्याशु  
जरामृत्यु न संशयः ॥ १२८ ॥  
वातं विद्रधिशीलपाण्डुग्रणीरक्तातिसारान्  
जयेत् मेहस्त्रीहजलोदराशमरितृपाशोथं  
हलीमोदरम् । सूत्राघातभगन्दरज्वरगणान्  
सर्वाणि कुष्ठान्यपि साध्यासाध्यभवान्  
गदान् बहुतरान् संसाधयेद्योगतः ॥ १२९ ॥

शुद्ध पारा, हीरा की भस्म, सुवर्णभस्म,  
रौप्यभस्म, नाभ्रभस्म, लौहभस्म, अन्नक-  
भस्म, मुक्ताभस्म, शुद्ध गन्धक, शंखभस्म,  
मूंगा की भस्म, शुद्ध हरताल और शुद्ध  
मैन्शिल ; इन सबको एकत्र कर चीता की जड़  
के काढ़े से ७ दिन मदार (आक) के दूध  
से ३ दिन, सँभालू के रस से ३ दिन, जमी-  
कन्द के रस से ३ दिन और सेहूँड़ के दूध  
से ३ दिन घोटकर पीली कौड़ियों के भीतर  
भर दे और मुहागा को आक के दूध से पीस  
कर कौड़ियों का मुख बन्द कर दे । फिर इन  
कौड़ियों को मिट्टी के पात्र में रखकर उसका  
मुख बन्दकर गजपुट में फूँक दे । स्वाङ्ग शीतल  
होने पर उसको पीसकर चूर्ण बना ले । चूर्ण  
के बराबर रससिन्दूर, रससिन्दूर की चौथाई भाग  
वैक्रान्तभस्म मिलाकर उसमें सहिजन के रस  
की ७ और चीता की जड़ के काढ़े की  
२ भागनासे दे । इस प्रकार शुद्ध हुआ  
रस सब प्रकार के रोगों को समूल नष्ट करता  
है । १२ दिन के सेवन में जरा और मृत्यु को  
नष्ट करता है इसमें संशय नहीं है । यह  
घातरोग, विद्रधि, शूल, पाण्डु, मस्रवृषी, रक्षा-  
सीसार, प्रमेह, प्रीदा, जतोदर, पथरी, गुया,  
शोथ, हलीमक, उदरविषार, मूत्राघात, भगन्दर,  
सब प्रकार के ज्वर, सब प्रकार के बुध तथा  
अनेक प्रकार के मात्स्य-व्यापाय रोगों को नष्ट  
करता है ॥ १२३-१२९ ॥

पूर्णचन्द्ररस ।

द्विकर्षं शुद्धमृतं च गन्धकं च द्विकार्षिकम् । लौहभस्म पलं चैकं जारिताभ्रं पलांगिकम् ॥ १३० ॥ द्वितोलं रजतं चैव वङ्गभस्म द्विकार्षिकम् । सुवर्णं तोलकं चैव ताम्रं कांस्यं च तत्समम् ॥ १३१ ॥ जातीफलं चेन्द्रपुष्पमेला भृङ्गं च जीरकम् । कर्पूरं वनितांमुस्तं कर्पं दद्यात् पृथक् पृथक् ॥ १३२ ॥ सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम् । भावयित्वा वरातोयैर्यूकाणां रसैस्तथा ॥ १३३ ॥ एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य च धान्यराशौ दिनत्रयम् । उद्धृत्य मर्दयित्वा तु वटिकां वल्लसम्भिताम् ॥ १३४ ॥ खादेच्च वटिका-मेकां पर्णखण्डेन संयुताम् । सर्वव्याधि-विनाशाय काशिराजेन निर्मितः ॥ १३५ ॥ वल्यो रसायनो वृष्यो वाजीकरण उत्तमः । अग्निमान्द्यमजीर्णं च ग्रहणीं चिरजामपि ॥ १३६ ॥ आमवातमम्लपित्तं जीर्णं ज्वरमरोचकम् । आमशूलं कटीशूलं हृच्छूलं पत्रिशूलकम् ॥ ६३७ ॥ कामशोकोद्भवं रोगं प्रमेहं बहुमूत्रकम् । वायुं बहुविधं हन्ति ध्वजभङ्गं विशेषतः ॥ १३८ ॥ मेधां च लभते रात्रिं तुष्टिपुष्टिसमन्विताम् । वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धां स्त्रीषु चापि वृषायते ॥ १३९ ॥ वृष्टः सिद्धफलो ह्येव रसायनवरः स्मृतः ॥ १४० ॥

शुद्ध पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, लौह-भस्म ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले, चाँदी की भस्म २ तोले, वङ्गभस्म ६ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला और कांस्यभस्म १ तोला । जायफल, लाग, इलायची, भँगरा, जीरा कपूर, मालकांगभी और नागरमोया ;

प्रत्येक एक एक तोला । इन सबको खरल में ढालकर धी कुवार के रस से धोटे । परचाव त्रिफला के काढा और एरण्ड की जड़ के रस की भावना देकर गोला बना ले और एरण्ड के पत्तों में लपेटकर धान्यराशि में रख दे । तीन दिन के बाद धान्यराशि में से निकालकर धोटे ले और दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले । पान में एक गोली रखकर खाने में सब रोग नष्ट होते हैं । यह काशिराज का बनाया हुआ रस बलप्रद, रसायन, वृष्य और उत्तम वाजीकरण है । तथा मग्दाग्नि, अजीर्ण, पुरानी सग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, जीर्ण-ज्वर, अरचि, आमशूल, कटिशूल, हृदय-शूल, पत्रिशूल, काम और शोक से उत्पन्न रोग प्रमेह और बहुमूत्र, अनेक प्रकार का वायुरोग और ध्वजभङ्ग ; इन रोगों को नष्ट करता है । बुद्धि, तुष्टि और पुष्टि को प्राप्त करता है । इसके प्रताप से वृद्ध भी तरुण पुरुष की बराबरी करने लगता है और स्त्रियों में वृष के तुल्य रमण करता है । यह अमुभूत श्रेष्ठ रसायन है ॥ १३०-१४० ॥

श्रीमहालक्ष्मीविलासरस ।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्ध-पारदौ । तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धं तारकं तथा ॥ १४१ ॥ तत्समं मात्तिकं चैव तदर्द्धं ताम्रभस्मकम् । रसतुल्यं च कर्पूरं जातीकोपफले तथा ॥ १४२ ॥ वृद्धदार-कवीजं च वीजं स्वर्णफलस्य च । प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतं स्वर्णं द्विशायकम् ॥ १४३ ॥ निष्पिप्य वटिका कार्या द्विगुञ्जा-फलमानतः । निहन्ति सन्निपातोत्थान् गटान् घोरान् सुदारुणान् ॥ १४४ ॥ गलोत्थानन्त्रष्टद्धिं च तथातीसारमेव च । कुटुमष्टादशभिर्धं प्रमेहान् विशति तथा ॥ १४५ ॥ श्लीपदं कफजातोत्थं चिरजं कुलजं तथा । नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदा-



मयभगन्दरम् ॥ १४६ ॥ कासपीनसय-  
 चमधनः स्थौल्यदौर्गन्ध्यरक्तनुत् । आम-  
 वातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥  
 १४७ ॥ उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैजात्य-  
 ज्ञेय च । सर्वशूलं शिरःशूलं गुदं स्त्रीणां  
 हरेद्द्रुतम् ॥ १४८ ॥ वटिकां प्रातरेकैकां  
 खादेन्नित्यं यथावलम् । अनुपानमिह प्रोक्तं  
 मांसपिष्टं पयोदधि ॥ १४९ ॥ वारिभक्त-  
 सुरासीधुसेवनात् कामरूपधूक । वृद्धोऽपि  
 तरुणस्पृष्टी न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥  
 १५० ॥ न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न के-  
 शानां च पक्वता । नित्यं गच्छेत् शतं  
 स्त्रीणां मत्तवारणविक्रमः ॥ १५१ ॥  
 द्विलक्षयोजनी वृष्टिर्जायते पौष्टिकस्तथा ।  
 प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥  
 १५२ ॥ रसो लक्ष्मीविलासोऽयं वासु-  
 देवे जगत्पता । अभ्यासादस्य भगवान्  
 लक्ष्मनारीपु वल्लभः ॥ १५३ ॥

काले भ्रमक की भस्म ४ तोले, गन्धक २  
 तोले, शुद्ध पारा २ तोले, वंगभस्म १ तोला  
 चांदी की भस्म ६ मासे, सोनामाखी की  
 भस्म ६ मासे, ताभ्रभस्म ३ मासे, कपूर २  
 तोले, जायफल २ तोले, जावित्री २ तोले  
 तथा विधारा के बीज और धतूरा के बीज  
 एक-एक तोला तथा स्वर्णभस्म ६ मासे ;  
 सबको धोकर श्रे-श्रे रसी की गोलियां  
 ना ले । एक-एक गोली प्रातःकाल पला-  
 सार ताना चादिष्ट । अनुपान—मांसपिष्ट, दूध,  
 दही, जल, भात, मदिरा और सीधु । यह  
 लक्ष्मीविलास रस आयत कठिन मीध्रपात  
 रोग, गले के रोग, चन्द्रवृद्धि, अतीमार,  
 स्तारद कुष्ठ, बीस प्रकार के ममेह, कफ-  
 वातजन्य, घिरकालोरपत्र चपचा कुलकनागत  
 स्त्रीपद और मान्द्र, कठिन मूत्र, बधामीर,  
 ताम्बूर, र्वासी, पीमस, राजपथ्या, स्पृक्षता,

दुर्गन्ध, रक्त विकार, सब प्रकार का ग्रामवात,  
 जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्णरोग,  
 नासारोग, नेत्ररोग, मुख की घिरसता, सब  
 प्रकार के शूल, शिरःशूल और सब प्रकार के  
 स्त्रियों के रोगों को शीघ्र नष्ट करता है । तथा  
 इसके सेवन से मनुष्य कामरूप तथा वृद्ध भी  
 युवा हो जाता है । इसके सेवन से न तो वीर्यपात  
 होता है, न हृन्त्रप शिथिल होती है और न बाल  
 ही पकते हैं । नित्य १०० स्त्रियों से गमन कर  
 सकता है, मत्त हाथी का-सा पराक्रम हो जाता  
 है, वृष्टिशक्ति बढ़ जाती है और शरीर पुष्ट हो  
 जाता है । इस प्रयोगराज लक्ष्मीविलासरस को  
 महात्मा नारदजी ने जगत्पति भगवान् से  
 कहा था । इसके सेवन से भगवान् लाखों  
 स्त्रियों के प्यारे हुए हैं ॥ १४३-१५३ ॥

सारस्वतारिष्ट ।

समूलपत्रशाखाया ब्राह्म्या ब्राह्ममुह-  
 र्चके । मृहीत्या विंशतिपलं पुच्ययोगे  
 शतावरी ॥ १५४ ॥ विदारिकाभयोशीरा-  
 ययाद्रकं च तथा मिशिः । पञ्चपञ्चपला-  
 न्येषां जलद्रोणे पचेद्भ्रियक ॥ १५५ ॥  
 पादावशेषे विस्त्राय्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ।  
 मात्तिकस्यदशपलं सितायाः पञ्चविंशतिः ॥  
 १५६ ॥ धातकी पञ्चपलिका रंगुका  
 त्रिष्टता कणा । देवपुष्पं वचा कुष्ठं वाजि-  
 गन्धा विभीतकी ॥ १५७ ॥ अमृतला  
 विडङ्गं त्वक् मृत्येकं कर्पसम्मितम् । काथे  
 तस्मिन् समस्तानि समाक्षिप्य प्रयत्नतः ॥  
 १५८ ॥ स्वर्णकुम्भे निदध्याद् वा नवे  
 मृद्भाजनेऽपि वा । स्वर्णमतनुपत्रं च क्षि-  
 प्त्वास्मिन् कर्पसम्मितम् ॥ १५९ ॥ मामा-  
 ज्जातरसं दृष्ट्वा ह्यमपात्रे क्षयं गते । वास-  
 सा च परिस्राप्य स्थापयेद् मृतभाजने ॥  
 १६० ॥ सारस्वताभिधोऽरिष्ट एषोऽमृत-

समःपुरा । शिष्याणांशुपकारार्थं धन्वन्तरि-  
विनिर्मितः ॥ १६१ ॥ आयुर्वीर्यं धृति  
मेधां बलं कान्तिविवर्द्धयेत् । वाग्बिशुद्धि-  
करो हृद्यो रसायनवरः स्मृतः ॥ १६२ ॥  
बालकानां च यूनां च वृद्धानां च हितः  
सदा । नरनारीहितो नित्यं परमोजस्करो  
मतः ॥ १६३ ॥ वारयेत् स्वरकार्कश्यं  
तथा चास्पष्टभाषणम् । स्वरं परमृतस्येव  
जनयेत् सेवनात् सदा ॥ १६४ ॥ रजो-  
दोषेण दुष्टानां योपितां शुक्रदोषिणाम् ।  
पुंसां चापि शुभकरः सर्वदोषहरो मतः ॥  
१६५ ॥ अत्यध्ययनगीतादिकीणस्मृति-  
बला नराः लभन्ते चित्तसन्तोषं स्मृति  
चास्य निषेवणात् ॥ १६६ ॥ पयसा सह  
पातव्योऽरिष्टोऽयं शाण्णमानतः । मासाभ्यां  
रोगहृत्वायं शरदा सर्वसिद्धिदः ॥ ६७ ॥  
अकालमृत्योर्हरणे यदीच्छा नारीभियत्वं  
यदि वाञ्छितं स्यात् । वाक्शुद्धिर्धैर्य-  
स्मृतिलब्धिरिष्टा निषेव्यतां तर्ह्यमृतं  
भवद्भिः ॥ १६८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रसायना-  
धिकारः समाप्तः ।

बिडंग और दालचीनी; प्रत्येक एक-एक तोला  
झोड़कर सोने के कलश में अथवा मिट्टी के  
नये पात्र में भर दे और उसमें एक तोला सोना  
के बर्क भी डाल दे । एक महीने के बाद जब वह  
रसयुक्त हो जाय तो सोने के पात्र से धानकर  
घृत के चिकने मृत्पात्र में रख दे । यह अमृत  
तुल्य सारस्वतारिष्ट शिष्यों के उपकार के लिए  
धन्वन्तरिजी ने बनाया था । यह आयु, वीर्य,  
धारणाशक्ति, मेधा, बल और कान्ति को बढ़ाता  
है । वाणी को शुद्ध करता है, हृदय को बल  
देता है तथा रसायनों में श्रेष्ठ रसायन है । यह  
बालक, युवा और वृद्धों को सदा हितकर है ।  
स्त्री और पुरुषों को नित्य ही हितकर एवं परम  
ओज का देनेवाला है । स्वर की कर्कशता और  
अस्पष्टभाषण को दूर कर फोयल का सा स्वर  
कर देता है । स्त्रियों के रजोदोष और पुरुषों के  
वीर्यदोष को दूर करता है । पढ़नेवालों, गाने-  
वालों और क्षीणस्मृति ( जिनकी याददास्त  
कम हो गई है ) तथा क्षीण बलवालों को सतोष  
देनेवाला है । तीन मासे ( अधिक आधा तोला  
तक ) अरिष्ट जल के साथ पीना चाहिए । यह  
एक महीने में सब रोगों को दूर करता है तथा एक  
वर्ष के सेवन से सब सिद्धियों को देता है । यदि  
आप लोग अकाल मृत्यु से बचने की और  
स्त्रियों के प्यारे होने की इच्छा करते हों तथा  
वाणी की शुद्धि, धैर्य और स्मरणशक्ति चाहते  
हैं तो सारस्वतारिष्टसंज्ञक अमृत का सेवन  
करिए ॥ १६४-१६८ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायी  
व्याख्यायामरसायनाधि-  
कारः समाप्तः ।

पुष्य नक्षत्र और ब्राह्म मुहूर्त में मूल, पत्र  
और शाखा सहित लार्ई हुई ब्राह्मी ८० तोले;  
शतावरी, विदारीकन्द, हड, खस, अदरक और  
सौंफ; बीस-बीस तोले । जल २५ सेर ४८ तोले,  
अवशिष्ट बाध ६ सेर ३२ तोले । इसको कपड़े  
से धान ले और इसमें शहद ४० तोले, शक्कर  
१०० तोले, घाय के फूल २० तोले तथा  
रेणुका, निसोत, पीपरि, लौंग, वच, कूट, अस-  
गन्ध, यहैङ्ग, गिलोय, छोटी इलायची, घाय-

## अथवाजीकरणाधिकारः ।

वृष्याधिकार ।

चिन्तया जरया शुक्रं व्याधिभिः कर्म-  
कर्षणात् । क्षयं गच्छत्यनशनात् स्त्रीणां  
चातिनिषेवणात् ॥ १ ॥

चिन्ता, बुढ़ापा और रोग से तथा वमन विरे-  
चनादि द्वारा बिच जाने से, अधिक उपवास  
करने से और अत्यधिक स्त्रीप्रसङ्ग से वीर्य क्षीण  
हो जाता है ॥ १ ॥

वाजं शुक्रं तदस्यास्तीति वाजी  
अवाजी वाजीक्रियते पुरुषोऽनेन इति  
वाजीकरणम् । अथवा वाजीव योगात्  
यदुक्तं चरके—

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते  
नरः । येन वाप्यधिकवीर्यं वाजीकरणमेव  
तत् ॥ २ ॥

वाज नाम वीर्यं का है वह जिसके हो उसको  
वाजी कहते हैं । जिस ओपधि आदि से वीर्यहीन  
पुरुष वीर्ययुक्त किया जाता है । उसको वाजीकरण  
कहते हैं । अथवा जिस ओपधि द्वारा मनुष्य  
स्त्रीप्रसंग में वाजी ( घोड़े ) के समान शक्ति प्राप्त  
कर ले उस ओपधि को भी वाजीकरण कहते हैं ।  
जैसे चरक ने कहा है—

जिस प्रयोग ( आहार-विहार आदि ) के  
सेवन से पुरुष स्त्रीप्रसङ्ग में घोड़ा के समान  
सामर्थ्य प्राप्त करता है अथवा जिस प्रयोग के  
द्वारा वीर्य अधिक होता है उसको वाजीकरण  
कहते हैं ॥ २ ॥

पेसा न करने में दोष ।

ग्लानिः कम्पोऽसादस्तदनु च कृ

१ वाज नाम मैथुन वा है । अथवा वाजीकरण  
का अर्थ मैथुन शक्ति की वृद्धि भी होता है ।  
आचार्य दारिद्र ने कहा है—'वाजो नाम प्रकाश-  
त्वाच्च मैथुनसंज्ञितम् । वाजीकरणसंज्ञि  
पु स्यमेव प्रवक्षते ०'

शता क्षीणता चेन्द्रियाणां शोपोच्छ्वा-  
सोपदंशज्वरगुदजगदाः क्षीणता सर्वधातौ ।  
जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवाः क्लीबता  
लिङ्गभङ्गो वामावस्थातियोगाद्भजत इह  
सदा वाजिकर्मच्युतस्थ ॥ ३ ॥

वाजीकर्म के बिना जो अधिक स्त्रीप्रसङ्ग  
करता है उसके ग्लानि, कम्प, शरीर की शिथि-  
लता, दुर्बलता, इन्द्रियों की क्षीणता, शोष,  
श्वास ( दमा ), उपदश ( गर्मी ), ज्वर, बवा-  
सीर, सब धातुओं की क्षीणता, कठिनतर वायु  
के रोग, नपुंसकता और ध्वजभङ्ग आदि रोग होते  
हैं ॥ ३ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं वृंहणं  
गुरु । हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्दृष्य-  
मुच्यते ॥ ४ ॥

जो पदार्थ मधुर, चिकना, जीवनदाता, वृंहण,  
भारी और मन को प्रसन्न करनेवाले हैं, उन सब  
को दृष्य<sup>१</sup> कहते हैं ॥ ४ ॥

घृतमृष्टमापद्विदलं दुग्धसिद्धं च  
शर्करामिश्रम् । भुक्त्वा सदैव कुरुते तरुणी-  
शतमैथुनं पुरुषः ॥ ५ ॥

उबड़ की दाल को घृत में भूनकर दूध में  
ढालकर खीर बनावे और उसमें शर्करा ढालकर  
खावे तो पुरुष १०० स्त्रियों से मैथुन कर सकता  
है ॥ ५ ॥

शतावरीवृत्तं क्षीरं मपिचेत् सितया  
युतम् । रममाणस्य विरतिं मृदुतां याति  
नेन्द्रियम् ॥ ६ ॥

शतावरी को दूध में खीरपाक की विधि से  
पकाकर खीर उसमें शर्करा ढालकर पीने से रति-

१ दृष्य पदार्थ तीन प्रकार के हैं—२४ वीर्य को  
प्रवृत्त करनेवाले जैसे स्त्री का स्पर्श, दूसरे वीर्य-  
वर्धक जैसे दूध, घृत आदि, तीसरे वीर्य को  
प्रवृत्त करनेवाले खीर पकानेवाले जैसे उबड़  
आदि ।

शक्ति बढ़ती है तथा इन्द्रिय शिथिल नहीं होती है ॥ ६ ॥

दृढशाल्मलिमूलस्य रसं शर्करया समम् । प्रयोगादस्य सप्ताहाज्जायते रेत-  
सोऽम्बुधिः ॥ ७ ॥

पुराने सेमर की जड़ का रस और शर्करा सम भाग मिलाकर खाने से ७ दिन में अत्यन्त वीर्य बढ़ जाता है ॥ ७ ॥

लघुशाल्मलिमूलेन तालमूलीं सुचू-  
रिंताम् । सर्पिषा पयसा पीत्वा रतौ चट-  
कवद्भवेत् ॥ ८ ॥

छोटे सेमर की जड़ और सफेद मूसली के चूर्ण में घृत और दूध ढालकर पीने से चिड़ा के तुल्य रतिशक्ति हो जाती है ॥ ८ ॥

विदारीकन्दचूर्णं च घृतेन पयसा  
पिवेत् । उदुम्बररसेनैव वृद्धोऽपि तरुणा-  
यते ॥ ९ ॥

विदारीकन्द के चूर्ण को घृत, दूध और गुलर के रस के साथ पीने से वृद्ध पुरुष भी युवावस्थावाले के समान रतिशक्तिशुद्ध हो जाता है ॥ ९ ॥

सप्तधामलकीचूर्णमामलक्यम्बुभावि-  
तम् । घृतेन मधुना लीढ्वा पिवेत् क्षीरपलं  
नरः ॥ वाजीकरणयोगोऽयमुत्तमः परि-  
कीर्तितः ॥ १० ॥

आंवलों के चूर्ण में आंवलों के ही रस की ७ भावना देकर सुला ले । इस चूर्ण को योग्य-  
मात्रा में लेकर घृत और शहद के साथ चाट ले और ऊपर से चार तोले दूध पी ले । यह योग वाजीकरण में उत्तम कहा गया है ॥ १० ॥

वाजिकर्म में अप्रथ्य ।

अत्यन्तमुष्णकटुतिक्तकपायमम्लं चारं  
च शाकमथवा लरणाधिकं च । कामी  
सदैव रतिमान् वनिताभिलाषी नो भक्तये-  
दिति समस्तजनमसिद्धिः ॥ ११ ॥

जो कामी पुरुष स्त्रियों से सदा रमण की इच्छा रखता है उसको अधिक गर्म, कड़ुआ तीक्ष्ण, कसैला, खटा, खारी, साग और अधिक लवण ; इनका सेवन न करना चाहिए । ऐसी सब लोगों में प्रतिदिन है ॥ ११ ॥

पिप्पलीलवणोपेतौ वस्ताण्डौ क्षीर-  
सर्पिषा । साधितौ भक्तयेद्यस्तु स गच्छेत्  
प्रमदाशतम् ॥ १२ ॥

बकरे के दोनों अण्डकोषों को दूध में पकाकर और घृत में भूनकर पीपरि और नमक मिलाकर जो खाता है वह १०० स्त्रियों के साथ गमन कर सकता है ॥ १२ ॥

वस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितारं च  
सकृत्तिलान् । यः स्वादेत् स नरो गच्छेत्  
स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ १३ ॥

बकरे के अण्डों से सिद्ध किये दूध में तिलों को भिगोकर जो मनुष्य खाता है वह १०० स्त्रियों से गमन करने की सामर्थ्य पाता है ॥ १३ ॥

चूर्णं विदार्याः मुकृतं तद्रसेनैव भा-  
वितम् । सर्पिः क्षौद्रयुतं कृत्वा शतं गच्छे-  
न्नरोऽङ्गनाः ॥ १४ ॥

भली भांति बनाये हुए विदारीकन्द के चूर्ण में विदारीकन्द के रस की ७ भावनाएं देकर घृत और शहद के साथ चाटने से १०० स्त्रियों से गमन करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है ॥ १४ ॥

एयमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावि-  
तम् । शर्करामधुसर्पिर्भियुक्तं लीढ्वा पयः  
पिवेत् ॥ एतेनाशीतवर्षोऽपि युवेव परि-  
हृष्यति ॥ १५ ॥

इसी प्रकार आंवले के चूर्ण में आंवले के रस की ७ भावनाएं देकर उनमें शर्करा, शहद तथा घृत मिलाकर चाटें और ऊपर से दूध पीवे तो अस्सी वर्ष का बूढ़ा भी

युवा अश्वस्थावाले के समान संभोग में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥

विदारीकन्दकल्कं तु घृतेन पयसा  
नरः । उदुम्बरसमं खादेद् वृद्धोऽपि  
तरुणायते ॥ १६ ॥

एक तोले ( या ६ माशे ) की मात्रा में विदारीकन्द के कल्क को घृत और दूध के साथ खाने से वृद्ध भी तरुण के तुल्य हो जाता है ॥ १६ ॥

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोबीजं समधुशर्करम् ।  
धारोप्येन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं  
व्रजेत् ॥ १७ ॥

कौंच के बीज और तालमखाने के बीजों के चूर्ण में शहद और शर्करा मिलाकर धारोप्य दूध के साथ सेवन करने से बीर्य बोग् नहीं होता है । मात्रा २ माशे ॥ १७ ॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तम-  
मुच्यते । शतावर्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं  
सुग्वार्थिना ॥ १८ ॥

श्वेत घुँघुची का चूर्ण दूध के साथ पीना उत्तम है अथवा शतावरी और श्वेत घुँघुची का चूर्ण दूध के साथ पीना सुखकर होता है । मात्रा—श्वेत घुँघुची का चूर्ण १ माशा, मिले हुए दो नाशे ॥ १८ ॥

मापमधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।  
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना  
भवेत् ॥ १९ ॥

मुलेठी के १ तोला चूर्ण में घृत और शहद मिलाकर खाटने और अनुपान में दूध पीने से मनुष्य सदा कामवेग से मुक्त होता है ॥ १९ ॥

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली वान-  
रिनागधलातिपला च । चूर्णमिदं पयसा  
निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशत-  
मस्ति ॥ २० ॥

गोखरु, तालमखाने के बीज, शतावरी, कौंच के बीज, गुलसकरी और कंधी ; इनके चूर्ण को रात्रि के समय दूध के साथ वह पीवे जिसके घर में १०० स्त्रियाँ हों, अर्थात् अत्यन्त कामशीलवर्द्धक है ॥ २० ॥

घृतभृष्टो दुग्धमापपायसो वृष्यउत्तमः ।  
आर्द्राणि मत्स्यमांसानि शफरीर्वा सुभ-  
जिताः । तप्ते सर्पिपि यः खादेत् स गच्छेत्  
स्त्रीषु न क्षयम् ॥ २१ ॥

घृत में भूने हुए उड़दों की दूध में खीर बनाकर खाना उत्तम वृष्य है । मछली के ताजे मांस को, विशेषकर शफरी मछली के मांस को, गर्म घी में भूनकर जो पुरुष खाता है वह स्त्रियों से संभोग करता हुआ भी क्षीण नहीं होता है ॥ २१ ॥

तापीजघातुमधुपारदलौहचूर्णपथ्या-  
शिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात् । एका-  
ग्रविंशतिदिनानि गदादितोऽपि सोऽप्रीति-  
कोऽपि रमयेत् प्रमदां युवेव ॥ २२ ॥

स्वर्णमाक्षिकभस्म, पारामभस्म, लौहभस्म, हृद, शिलाजीत, वायविडङ्ग; इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र कर दो रत्ती की मात्रा में घृत और शहद के साथ तीन सप्ताह तक सेवन करने से २० वर्ष का वृद्ध भी युवा के समान ही खीरमण कर सकता है ॥ २२ ॥

नरसिंहचूर्णं ।

शतावरीरजः प्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य  
च । वाराद्या विंशतिपलं गुहूच्याः पञ्च-  
विंशतिः ॥ २३ ॥ भस्लातकानां द्वात्रिं-  
शच्चित्रकस्य दशैव तु । तिलानां शोधि-  
तानां च प्रस्थं दद्यात् सुचूर्णितम् ॥ २४ ॥  
ज्यूपणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्त-  
तिः । मात्तिकं शर्करार्द्धेन मात्तिकाद्धेन  
द्वं घृतम् ॥ २५ ॥ शतावरीसमं दयं  
विदारीकन्दजं रजः । एतदेकीकृतं चूर्णं

स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ २६ ॥  
 कर्पाद्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चास्य भोजनम् ।  
 मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥  
 २७ ॥ बलीपलितत्वालित्यमेहपाण्ड्याद्व्य-  
 पीनसान् । हन्त्यष्टादशकुष्ठानि तथाष्टा-  
 बुदराणि च ॥ २८ ॥ भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रं  
 गृध्रसीं च हलीमकम् । क्षयं चैव महा-  
 व्याधिं पञ्च कासान् सुदारुणान् ॥ २९ ॥  
 अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पै-  
 चिकान् । विंशतिं श्लैष्मिकांश्चापि सं-  
 सूष्टान् सान्निपातिकान् । सर्वानशौगदान्  
 हन्ति वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३० ॥ स  
 काञ्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गमं चाप्य-  
 नुयाति वेगतः । स्त्रीणां शतं गच्छति  
 सातिरेकं प्रकृष्टपुष्टश्च यथा विद्वद्भिः ॥  
 ३१ ॥ पुत्रान् सञ्जनयेद्वीरान् नरसिंहानि-  
 भांस्तथा । नरसिंहमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं  
 वृणाम् ॥ ३२ ॥ वाराहीकन्दसंज्ञस्तु  
 चर्मकारालुको मतः । पश्चिमे घृष्टिशब्दा-  
 ल्यो वराह इव लोमवान् ॥ ३३ ॥

शातावरी का चूर्ण ६४ तोले, गोखरू का  
 चूर्ण ६४ तोले, वाराहीकन्द का चूर्ण १ सेर,  
 गिलोय का चूर्ण १ सेर, शुद्ध भिलावा का  
 चूर्ण १२८ तोला, चीता की जड़ का चूर्ण  
 आध सेर, तृप ( छिलका ) रहित तिलों का  
 चूर्ण ६४ तोले, त्रिकटु ( सोठ, मिर्च, पीपरि )  
 का मिलित चूर्ण ३२ तोले, शकर ३॥ सेर,  
 शहद १ सेर १२ छटाँक, घृत १४ छटाँक  
 और विदारीकन्द का चूर्ण ६४ तोले । सब  
 को एकत्र कर चिको वर्तन में रख दे । मात्रा  
 ६ माशे से ८ माशे तक । इसके प्रयोग  
 में इच्छानुसार भोजन करना चाहिए । एक

महीना सेवन करने से बुढ़ापा, बलीपलित,  
 गजापन, प्रमेह, पाण्डु, आक्यवात, पीनस,  
 १८ प्रकार के कुष्ठ, ८ प्रकार के उदर-  
 विकार, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, गृध्रसी, हली-  
 मक, क्षय, राजयचना, पाँच प्रकार की  
 कठिन खाँसी, अस्सी प्रकार के वातरोग,  
 चालीस प्रकार के पित्तरोग, बीस प्रकार के  
 कफरोग, इन्द्रज और सन्निपातज रोग और  
 सब प्रकार के बवासीर के रोगों को इस  
 प्रकार नष्ट करता है, जैसे बूटों को इन्द्र का  
 वज्र । इसका सेवन करनेवाला काञ्चन वर्ण,  
 सिंह का-सा पराक्रमी और घोड़ा के तुल्य  
 वेगवान् होता है । पत्नी क समान सैकड़ों स्त्रियों  
 से रति करने की सामर्थ्य होती है तथा हृष्ट-पुष्ट  
 होता है । इसके सेवन से नरसिंह के बराबर  
 शूरवीर पुत्र उत्पन्न होते हैं । यह नरसिंह चूर्ण  
 मनुष्यों के सब रोगों को हरनेवाला है । चर्म-  
 कारालुकी ही वाराहीकन्द संज्ञा है । पश्चिम  
 ( गढ़वाल जिले ) में इसे गृष्टि ( गेंठी ) कहते  
 हैं । इसके ऊपर शूकर के मे बाल होत  
 हैं ॥ २३-२३ ॥

अश्वगंधादि चूर्ण ।

अश्वगन्धा दशपला तन्मात्रो वृद्ध-  
 दारुकः चूर्णाकृत्योमयं विद्वान् घृतभाण्डे  
 निधापयेत् ॥ ३४ ॥ रूपैकं पयसा

पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति । अगत्वा  
 प्रमदां भूयाद्बलीपलितर्जितः ॥ ३५ ॥

असगन्ध ४० तोले और विधारा ४० तोले  
 इन दोनों का चूर्ण कर घी के साथ चिकने  
 वर्तन में रख देवे । इसमें से १ तोला गी दूध  
 के साथ सेवन करने से बहुत सी स्त्रियों  
 से संभोग करने पर भी पुरुष वृस नहीं  
 होता है । यदि स्त्री का सेवन न करे और  
 प्रसवार्थ से रहे तो अग में गुलफट ( मूर्ति )

१—वास्तव में वाराहीकन्द और चर्मकारालुक  
 दृष्यक-दृष्यक इव है, किन्तु अभाव में छे सकते हैं ।  
 चर्मकारालुक वाराहीकन्द की अपेक्षा हीन गुणवाला  
 है, पसा कितने ही टीकाकारों का मत है ।

१—वृद्ध वैद्य गद्दी गिलोय का चूर्ण नहीं  
 डालते, किन्तु उसका साथ डाला करते हैं ।

नहीं पड़ती हैं। और बाल सफेद नहीं होते हैं ॥ ३४-३५ ॥

बृहच्छतावरीवृत् ।

शतावर्यास्तु मूलानां रसमस्थद्वयं मतम् । तत्समञ्च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३६ ॥ जीवकर्पभकौ मेदा महामेदा तथैव च । काकोली क्षीरकाकोली मृद्धीका मधुकं तथा ॥ ३७ ॥ मुद्गपर्णी मापपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् । शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद्भिषक् ॥ ३८ ॥ रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च । क्षीणशुक्रेषु दातव्यं वाजीकरणुत्तमम् ॥ ३९ ॥ अद्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् । योनिशूलञ्च दाहञ्च मूत्रकृच्छ्रञ्च पित्तिकम् ॥ ४० ॥ एतान् रोगान् निहन्त्याशु द्विन्नाभ्राणीव मारुतः । शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥ स्नेहपादः स्मृतः कल्कः कल्कवनमधुशर्करा इति वाक्यबलात् स्नेहे प्रत्नेष्यं पादिकं भवेत् ॥ ४२ ॥

गोपूत १२८ तोले, शतावर का रस ३ सेर १६ तोले, दूध ६ सेर १६ तोले । कर्क के लिये—जीवक, श्यपमक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, दाह ( मुगडा ), मुन्दी, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, विदारीकृत् और जाल-पन्दन मिलाकर ३२ तोले के विधिपूर्वक पकाये । पकाने के परचाय् पान के और शीतल होने पर यदि ३६ तोले तथा यदि ३२ तोले मिलाये । इन पुन के मोजन में रत्नपिप, वातरत्न, चन्द्रार, शिरोदाह, रत्नज्वर, योनिशूल, दाह, यैनिच मूत्रकृच्छ्रादि रोग मरद होने हैं व योनिवर्ण पुणों के लिये पर पुन वाजीकरण है । पर बलकारक, वर्य तथा अदरागि का बराना है ॥ ३६-४२ ॥

कामदेवपुत ।

अश्वगन्धापलशतं तदर्द्धं गोक्षुरस्य च । शतावरी विदारी च शालपर्णी बला तथा ॥ ४३ ॥ अश्वत्थस्य च शुद्धानि पञ्चबीजं तथैव च । काश्मरीफलमेतच्च मापबीजं तथैव च ॥ ४४ ॥ पृथग्दशपलान् भागाश्चतुर्द्वौण्डम्भसः पचेत् । चतुर्भागावशेषन्तु कपायमवतारयेत् ॥ ४५ ॥ मृद्धीका पत्रकं कुष्ठं पिप्पली रक्तचन्दनम् । बालकं नागपुष्पञ्च आत्मगुप्ताफलं तथा ॥ ४६ ॥ नीलोत्पलं सारिवे द्वे जीवनीयं विशेषतः । पृथक् कर्पसमञ्चैव शर्करायाः पलद्वयम् ॥ ४७ ॥ रसस्य पौण्ड्रकेक्षूणामाढकं तत्र दापयेत् । रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम् ॥ ४८ ॥ हलीमकं तथा शीथं स्वरभेदं बलक्षयम् । अरोचकं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलञ्च नाशयेत् ॥ ४९ ॥ एतद्राज्ञां प्रयोक्तव्यं चदन्तः-पुरचारिणाम् । स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् ॥ ५० ॥ क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम् । श्रेष्ठं बलकरं हृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम् ॥ ५१ ॥ श्रोत्रस्नेहस्तर्ज्ज्वैव आयुः प्राणविवर्द्धनम् । संयद्भवति शुक्रञ्च पुनरुप दुर्बलेन्द्रियम् ॥ ५२ ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तस्तोयसिक्तो यथा द्रुमः । कामदेव इति रूपातः सर्वेषु च सम्पने ॥ ५३ ॥

गोपूत १२८ तोले, दाह के लिये—सग-मधु २ सेर, गोपूत ३४ सेर, शतावर, विदारीकृत्, शालपर्णी, मुन्दी, बड के संदुर, कमलगडा, गामातीकल, उदरः, हरपू ४० तोले, बत ३ मन ३३ सेर १३ तोले, तथा दूध ४४५ ३२ सेर ४८ तोले । पीडे का रग

६ सेर ३२ तोले । कलक के लिए—दाण, पत्राय, कूट, पीपल, लालचन्दन, गन्धबाला, नागकेशर, कोंच के बीज, नीलवमल, अनन्त-मूल, श्यामालता, जीवर, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, चिरकाकोली, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, जंघन्ती, मुलेठी; हरएक एक-एक तोले लेकर विधिपूर्वक पकावे । सिद्ध होने के परचाव् धानर ८ तोले खाँड़ मिलावे । इसके सेवन से रत्नपित्त, क्षतक्षीण, कामला, वातरत्न, हन्नी-मक, सूजन, स्वरभेद, बलक्षय, अरुचि, मूत्र कृच्छ्र, पसवाटे का दर्द आदि रोग नष्ट होते हैं । अनेक स्थियों में आसक्त राजाश्रों को, सन्तानरहित स्त्रियों को, दुर्बल, नपुंसक, क्षीण-वीर्य तथा वृद्ध पुरुषों को यह घृत सेवन करना चाहिए । यह घृत बलकारक, हृद्य, वीर्यवर्धक तथा रसायन है एव श्रोज, तेज, आयु, जीवनीयशक्ति तथा वीर्य को बढ़ाता है । दुर्बलेन्द्रिय पुरुष को बलवान् करता है । यह घृत सम्पूर्ण ऋतुश्रों में सेवन किया जा सकता है ॥ ४३--४३ ॥

कामेश्वरमोदक और श्रीकामेश्वरमोदक ।

संग्रहण्यधिकारे तु ग्रन्थस्यास्य पुरो-दितौ । कामेश्वरो मोदकश्च श्रीकामेश्वर-मोदकः ॥ ५४ ॥ रतिशक्तिविहीनानां नराणां रतिवृद्धये । यथावलं प्रयोक्तव्यौ पौनरुत्थान्ना दशितौ ॥ ५५ ॥

ग्रहणीरोग के अधिकार में कहे हुए कामेश्वरमोदक तथा श्रीकामेश्वरमोदक भी रतिशक्तिहीन पुरुषों को रतिशक्ति की वृद्धि के लिये सेवन कराने चाहिए ॥ ५४-५५ ॥

वानरी वटिका ।

बीजानि कपिकच्छूनां कुडवमितानि स्वेदयेच्छदनकैः । प्रस्थे गोभयदुग्धे तान-द्यावद् भवेद् गाढम् ॥ ५६ ॥ त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेपयेत्तानि । पिष्टिक्रिया लघुवटिकाः कृत्वा गन्धे पचे-

दाज्ये ॥ ५७ ॥ द्विगुणितशर्करया ता वटिकाः कामं समालेप्याः । वटिका मा-त्तिकमध्ये मज्जनयोग्ये पृथक् स्थाप्याः ॥ ५८ ॥ कोलकप्रमितास्तास्तु प्रातः सायश्च भक्षयेत् । अनेन शीघ्रद्रावी यो यश्च स्यात्पतितध्वजः ॥ ५९ ॥ सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमतिवाजिवत् । नानेन सदृशं किञ्चिद् द्रव्य वाजीकरं परम् ॥ ६० ॥

१६ तोला कीच के बीजों को १२८ तोले गौ के दूध में डाल मन्द अग्नि द्वारा स्विक्र करे । जब दूध गाढ़ा हो जाय तो नीचे उतारकर बीजों का छिलका उतार दे । बाद में उन बीजों को शिगा पर अतिमहीन पीस ले और खोया तथा शीघ्रकृक को मिला छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर गोंघृत में भून ले । परचाव् दूनी खाँड़ की गाढ़ी बनाकर उनमें इन गोलियों को डुबोकर बाहर रख दे । इस प्रकार उन गोलियों पर खाँड़ चढ़ जायगी अथवा हलायचीदानों की विधि से खाँड़ चढ़ा जे । पश्चात् शब्द में इन गोलियों को डुबोकर रख छोड़े । मात्रा—आधे तोला से एक तोले तक । इसे प्रातः काल तथा सायंकाल सेवन करना चाहिए । इसके सेवन में जो पुरुष शीघ्र वीर्यपात होनेवाला अथवा पतितध्वज हो वह भी अरब के समान रमणक्रिया में समर्थ होता है । इस रस से बढ़कर वाजीकर अन्य कोई औषध नहीं है ॥ ५६-६० ॥

गोधूमाद्य घत ।

गोधूमात्तु पलशतं निष्काथ्य सलि-लाठके । पादशेषे च पूते च द्रव्याणीमानि टापयेत् ॥ ६१ ॥ गोधूमं युञ्जातफलं मापं द्राक्षापरूपके । काकोली क्षीर-काकोली जीवन्ती सशतावरी ॥ ६२ ॥

अथवागन्ध्या मगर्जरा मधुकं त्र्यपणं सिता ।



भल्लातकमात्मगुप्ता समभागानि कार-  
येत् ॥ ६३ ॥ घृतमस्थं पचेदेवं क्षीरं  
दत्त्वा चतुर्गुणम् । मृद्वग्निना च सिद्धे तु  
द्रव्याण्येतानि निक्षिपेत् ॥ ६४ ॥ त्वगेला  
पिप्पली धान्यं कर्पूरं नागकेशरम् । यथा-  
लार्भं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्रं पलाष्ठकम् ॥  
६५ ॥ द्रव्हेक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद्  
विनियोजयेत् । शाल्योदनेन भुञ्जीत पि-  
वेन्मांसरसेन च ॥ ६६ ॥ केवलस्य पिपेदस्य  
मात्रा कोलप्रमाणतः । न चास्य लिङ्गशै-  
थिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ६७ ॥  
उर्यं परं वातहर शुक्रसंजननं परम् ।  
मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानां चापि शस्यते ॥  
६८ ॥ कोलैकं तु तदरुनीयाद् दशरात्र-  
मतन्द्रितः । स्त्रीणां शतं च भजते पीत्वा  
चानुपिवेत्पयः ॥ अश्विभ्यां निर्मितं चैव  
गोधूमाद्यं रसायनम् ॥ ६९ ॥

जलद्रोणेऽत्र गोधूमकाथस्तच्छेष आढ-  
कम् । कल्कद्रव्यसमं मानं त्रगाटेः साढ-  
चर्यतः ॥

४ सेर गेहूँ को २५ सेर ४८ तोले जल में  
घोंटाये जाय ६ सेर ३२ तोले जल पाकी रहे  
तय धानवर उसमें इन द्रव्यों के कल्क को  
मिलावे । गेहूँ, युजातफल ( अभाव में ताल की  
पाली ), उदद, शाय, फालसे, काकोली, क्षीर-  
काकोली, जीबन्ती, शतावरी, असगध, खजूर,  
मुलेटी, त्रिकटु, शकर, गुड भिलावा क्षीर  
बीज के बीज समभाग मद्य मिलाकर ३२  
तोले । घृत १२८ तोले । दूध ६ सेर ३२ तोले ।  
विधिपूर्वक कोमल अग्नि से घृत मिद्ध कर हममें  
दालचीनी, छोटी हलायची, जीपरी, धनियाँ,  
कपूर क्षीर नागचरार; मद्य मिलाकर ३२ तोले  
घोंटे तथा शकर क्षीर शहद यतीम-यतीम तोले  
मिलाकर ईस के दपडे से मथकर रम्य ४ ।

इसको शालि चावलों के भात के साथ अथवा  
मांसरस के साथ सेवन करे । मात्रा १ तोला ।  
इसके सेवन से लिङ्गेन्द्रिय शिथिल नहीं होती  
और वीर्य भी क्षीण नहीं होता । यह बलकारक,  
वातनाशक, वीर्यवर्द्धक, मूत्रकृच्छ्रनाशक तथा  
घृहों के लिए श्रेष्ठ है । १० दिन तक एक एक  
तौले खाकर परचातू दूध पीवे तो १०० स्त्रियों  
से रमय करने की शक्ति पैदा होती है । इस  
गोधूमाद्य रसायन को अश्विनीकुमारों ने बनाया  
था ॥ ६१-६९ ॥

यहाँ १ टोण जल में काढा कर १ आढक  
अथशिष्ट रखले । दालचीनी आदि सब कल्क-  
द्रव्य के समान ले परन्तु कपूर अदाज का  
ढाले ।

गुडकृष्माण्डक ।

कृष्माण्डकात् पलाशतं सुस्विन्न निष्कुली-  
कृतम् । मस्थं च घृततैलस्य तस्मिस्तप्ते  
निधापयेत् ॥ ७० ॥ त्रकूपत्रधान्यकव्यो-  
पजीरकैलाहयानलम् । ग्रन्थिकं चव्य-  
मातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ७१ ॥ शृङ्गा-  
टकं कशेरुं च प्रलम्बं तालमस्तकम् ।  
चूर्णीकृतं पलाशं च गुडस्य तुलया पचेत् ॥  
७२ ॥ शीतीमूत्रे पलान्यष्टौ मधुनः संपदा-  
पयेत् । कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च  
शस्यते ॥ ७३ ॥ कृशानां वृंहणं श्रेष्ठं  
वाजीकरणमुत्तमम् । प्रमदासु प्रसङ्गानां ये  
च स्यु क्षीणरेतसः ॥ ७४ ॥ क्षयेण तु  
गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम् । कासं  
श्वासं जरं हृषिकं हन्तिच्छर्दिमरोचकम् ॥  
७५ ॥ गुडकृष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां  
समुदाहृतम् । खण्डकृष्माण्डकत् पाच्यं  
स्विन्नकृष्माण्डकद्रवः ॥ ७६ ॥

बीज क्षीर तिनकों में रहित ४ सेर घेरे को  
बहुकाल से पियकर जा में जोश दे ले क्षीर  
निषोद्धकर जल चिक्कन चलग रम्य से क्षीर उम

निचुड़े हुए पेटे को ३२ तोले घृत और ३२ तोले तिल तेल में एक साथ भून ले । परचाव दालचीनी, तेजपत्र, धनियाँ, त्रिकटु, जीरा, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, चीता की जड़, पीपलामूल, चन्च, गजपीपरि, सोंठ, सिंघाटा, कसेरू, ताड़ के ऊपर के अरुण प्रत्येक का चूर्ण चार-चार तोले लेकर चूर्ण करके रखे । पेटे के जल में गुड़ ५ सेर और भुना हुआ पेटा ढालकर पकावे । जब पारु तैयार हो जाय तब सब औषधियों का चूर्ण ढाड़कर करछी से खूब मिला ले, फिर नीचे उतार ढंडा करके ३२ तोले शहद मिला ले । यह कफ, पित्त और वायु को नष्ट करनेवाला है तथा मन्दाग्निवालों के लिए उत्तम है । दुबलों को मोटा करनेवाला तथा उत्तम वाजीकरण है । स्त्रियों में आसक्त, क्षीण-वीर्य और स्त्री रोगवालों के लिए यह उत्तम औषधि है । अश्विनीकुमारों का बनाया हुआ गुड़कूम्भायड खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, धमन और अरुचि को नष्ट करता है । खण्ड-कूम्भायड के तुल्य कूम्भायड को पकाकर रस निकालना चाहिए ॥ ७०-७१ ॥

योगान् संसेव्य वृष्यानमितमथ पयः  
शीतलं चाम्बु पीत्वा गच्छेन्नारो रसज्ञां  
स्मरशरतरुणीं कामुकः काममाद्ये । यामेहृष्टः  
महृष्टां व्यपगतसुरतस्तत्समुत्पाद्य सद्यः  
कान्तः कान्ताङ्गसद्गादमहदपि न वै धातु-  
वैपम्यमेति ॥ ७७ ॥

कामो पुरप वृष्ययोगों का सेवन करने के परचाव मिश्री युक्त दूध अथवा ढंडा जल पीकर प्रसन्नचित्त हो कामबाण-पीडित, प्रसन्नचित्त-पाली और रतिरस की जाननेवाली स्त्री के साथ रात के पहूजे पहर में रमण करे । इस प्रकार स्त्रीप्रसंग करने से कभी धातु की विषमता नहीं होती है ॥ ७७ ॥

वृष्यतमा स्त्री ।

मुरूपा यौवनस्था च लक्षणैर्यदि मू-

पिता । वयस्था शिक्षिता या च सा स्त्री  
वृष्यतमा मता ॥ ७८ ॥

सुन्दर रूपवाली, यौवनवाली, सब लक्षणों से भूषित, अपनी उमर की और शिक्षित स्त्री वृष्यतम मानी गई है ॥ ७८ ॥

वाजीकरण के योग्य पुरुष ।

स्त्रीपूज्यं मृगयतां वृद्धानां च रिरंस-  
ताम् । क्षीणानामल्पशुक्राणां स्त्रीषु क्षीणाश्च  
ये नराः ॥ ७९ ॥ विलासिनामर्थवतां रूप-  
यौवनशालिनाम् । बद्धीपतीनां नृणां च  
योगा वाजीकरा हिताः ॥ ८० ॥

स्त्रीसंभोग में स्खलित न होने की इच्छा करने वाले वृद्ध, रमण करने के इच्छुक, स्त्री संभोग से क्षीण, अल्पवीर्य, विचासी, धनवान्, रूप-यौवन से युक्त तथा बहुत सी स्त्रियों के पति ऐसे मनुष्यों को वाजीकरण योगों का सेवन हितकर होता है ॥ ७९-८० ॥

एहच्छतावरी मोदक ।

शतावरी श्वदंष्ट्रा च बला चाति-  
बला तथा । मर्कटीक्षुरवीज च विदारी-  
कन्दजं रजः ॥ ८१ ॥ एतानि समभागानि  
पलिकानि विचूर्णयेत् । तस्माच्चतुर्गुणं देयं  
त्रैलोक्यविजयारजः ॥ ८२ ॥ एतदेकी-  
कृतं यावत्तदद्धं माह्विपं पयः । तावन्मात्रेण  
दातव्यः शतावर्या रसस्तथा ॥ ८३ ॥  
विदार्याः स्वरसमर्थं सितापलशतद्वयम् ।  
गोलयित्वा सितां चैव पात्रे ताम्रमये ददे ॥  
८४ ॥ पाचयेत् पाकविद्वैद्यो मोदकं परमं  
हितम् । ज्यूपणं त्रिफला दन्ती त्रिजातं  
सैन्धवं शठी ॥ ८५ ॥ धान्याकं बालकं  
मुस्तं कस्तूरी गोस्तनी तुगा । जातकोप-  
फलं मांसी परं वारेन्द्रग्रन्थिकम् ॥ ८६ ॥  
शतपुष्पा चनी दारु मियदग्नुं सलरङ्गकम् ।

सरलं शैलजंकुम्भं जातीपुष्पं यमानिका ॥  
 ८७ ॥ कटफलं केशरं मेथी मधुकं सुर-  
 दारु च । मिषी तालीशपत्रं च खजूरं  
 रसगन्धकौ ॥ ८८ ॥ चन्दनं तगरं चारं  
 प्रत्येकं कर्पसम्मितम् । आलोड्य त्रिसु-  
 गन्धेन कपूरैणाधिवासयेत् ॥ ८९ ॥  
 काञ्चनेराजते पात्रे स्थाप्यमेतद् भिषग्वरैः ।  
 कर्पप्रमाणां कर्तव्यं क्षीरं चानुपिवेत्  
 पलम् ॥ ९० ॥ प्रातर्भोजनकाले वा  
 भक्षयेत्तु विचक्षणः । प्रमदाशतं च भजते  
 न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ९१ ॥ न तस्य  
 लिङ्गशैथिल्यं शुक्रसंजननं परम् । क्षयं  
 चैव महाव्याधिं पञ्चकासान् सुदुस्तरान् ॥  
 ९२ ॥ वातजान् पैत्तिकारं चैव कफजान्  
 सान्निपातिकान् । हन्त्यष्टादशकुष्ठानि  
 वातरक्तादिकानि च ॥ ९३ ॥ प्रमेहं  
 श्लीपदं शोथं लक्ष्मीकान्तिविषज्जनम् ।  
 सर्पानशोर्गदान् हन्ति वृक्षमिन्द्राशनि-  
 र्यथ । व्याधीन् कोष्ठगतानन्यान् जना-  
 र्दन इमासुरान् ॥ ९४ ॥ नातः परतरं  
 श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु । स्त्रीणां चैवान-  
 पत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम् ॥ ९५ ॥  
 क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेत-  
 साम् । श्रोजस्तेजःस्वरं बुद्धिमायुः प्राणं  
 निरर्द्धयेत् ॥ ९६ ॥

शतावरी, गोखरू, खरैटी ( बरियारा ),  
 गुलमकरी ( कधी ), केवोथ के बीज, ताल-  
 मखाना के बीज और विदारीकन्द; प्रत्येक  
 का घृत चार चार तोले । सबका घीगुना  
 भाग का घृत ( ११२ तोले ), भैंस का दूध  
 १० तोले, शतावरी का रस ७० तोले, विदारी-  
 कन्द का रस १२० तोले और शहर १० सेर ।  
 शहर को दूध और रसों में धोल दे और उप-

युक्त औषधियों का घृत डालकर कलईदार ताँबे  
 के पात्र में पकावे । जब पाक गाढ़ा होने लगे  
 तब उसमें त्रिकटु, त्रिफला, दन्ती की जड़ ( जमा-  
 लगोटा की जड़ ), त्रिजात ( छोटी इलायची,  
 दालचीनी, तेजपात ), संधा नमक, कचूर, धनियाँ,  
 सुगन्धबाला, मोथा, कस्तूरी, मुनक्का, वशलोचन,  
 जावित्री, जायफल, जटामासी, तेजपात्र, सँभालू,  
 पीपलामूल, सोये के बीज, चव्य, दारहल्दी,  
 प्रियगु, लौंग, चीड़ की लकड़ी, छारछरीला,  
 गुग्गुलु, चमेली के फूल, अजवाइन, कायफल,  
 केशर, मेथी, मुलेठी, देवदारु, सौंफ, तालीश  
 पत्र, खजूर, शुद्ध पारा, गन्धक ( दोनों को  
 मिलाकर कजली कर ले ), लाल चन्दन तगर  
 और जवाखार; प्रत्येक एक एक तोला लेकर  
 मिलावे और करछी से चलाकर पाक तैयार  
 कर ले । इसमें त्रिसुगंध ( दालचीनी, छोटी  
 इलायची, तेजपात ) और कपूर डालकर  
 सुगन्धित करे । इसको सुवर्ण अथवा चाँदी के  
 पात्र में रखे । मात्रा १ तोला या आधा  
 तोला । अनुपान--४ तोले दूध । प्रातः काल अथवा  
 भोजन के समय इसका सेवन करना चाहिए ।  
 इसके प्रयोग से सँकड़ों छिरियों के सेजन करने पर  
 भी वीर्य क्षीण नहीं होता है और हृन्द्ध्य भी  
 शिथिल नहीं होती है । इससे वीर्य की वृद्धि  
 होती है । यह वृहत्शतवरी मोदक राजयक्ष्मा,  
 कठिन पाँचों खाँसी, वातरोग, पित्तरोग, कफरोग,  
 सन्निपातरोग १८ कोढ़, वातरज्ज, प्रमेह,  
 श्लीपद ( फील पाँव ) मूजन और सब  
 प्रकार की यवासीरों को इस प्रकार नष्ट करता  
 है जैसे हृन्द्ध्य का यज्ञ वृक्षों को । यह लक्ष्मी  
 और कान्ति को बढ़ानेवाला है तथा जैसे भगवान्  
 असुरों को नष्ट करते हैं इसी प्रकार यह कोष्ठगत  
 रोगों को नष्ट करता है । इसमें उत्तम याजीकरण  
 के लिए अन्य औषधि नहीं है । सतानरहित  
 छिर्यों तथा दुर्बल शरीर, नपुंसक, अल्पवीर्य और  
 बड़े पुरुषों को इसका सेवन करना चाहिए । यह  
 भोज, प्राण, तेज, स्वर, बुद्धि, प्रायु और जीवन-  
 रात्रि को बढ़ाता है ॥ ८१-९६ ॥

रतियरत्नम मोदक ।

शप्राशनस्य पीजानां चूर्णानि पल-

पञ्च च । हविषः कुडवं चैकं सिताप्रस्थं  
 मृद्वं च ॥ ६७ ॥ शतावरीरसप्रस्थं तथा  
 शक्राशनस्य च । गव्यमाजं पयः प्रस्थं  
 ततः प्रस्थद्वयं पचेत् ॥ ६८ ॥ धात्री  
 द्विजीरकं मुस्तं त्वगेला पत्रकेशरम् ।  
 आत्मगुप्ता चातिबला तालाङ्कुरकशे-  
 रुकम् ॥ ६९ ॥ मृद्गाटकं त्रिकटुकं धान्य-  
 मभ्रश्च वज्रकम् । पथ्या द्राक्षा च काकोल्यौ  
 खर्जूरं क्षुरकं तथा ॥ १०० ॥ कटुका मधुकं  
 कुष्ठं लवङ्गं सारसैन्धवम् । यमानी चाज-  
 मोदा च जीवन्ती गजपिप्पली ॥ १०१ ॥  
 प्रत्येकं कर्पमेकं तु चूर्णितानि शुभानि च ।  
 कुडवार्द्धं पाकशेषे मधुनः प्रक्षिपेत्ततः ॥  
 १०२ ॥ मृगाण्डजं सकर्पूरं यथालाभं वि-  
 निक्षिपेत् । रतिवल्लभनामायं सेव्यमानो  
 महारसः ॥ १०३ ॥ परमोजस्करो बल्यो  
 वातव्याधिबिनाशनः । वातपित्तहरो वृष्यो  
 वृष्टिसन्दीपनः परः । पित्तरलेष्मास्रपित्तघ्नो  
 विषगुल्मज्वरापहः ॥ १०४ ॥ पाययत्येष  
 मन्दाग्निरोगाणां क्षयहेतुकः । न  
 भवेत्त्रिदोषैर्धिल्यं वृद्धानां पुष्टिवर्द्ध-  
 नम् ॥ १०५ ॥  
 यस्य गेहे सदा बह्वथः पत्न्यः सुम-  
 नोहरः । रसः सेव्यः सदेवायं मोदको  
 रतिवल्लभः ॥ १०६ ॥

भाँग के बीजों का चूर्ण २० तोले । घृत  
 १६ तोले, शकर ६४ तोले, शतावरी का रस  
 १२८ तोले भाँग का रस १२८ तोले, गौ का  
 दूध १२८ तोले, खीर बकरी का दूध १२८  
 तोले, इन सबको एकत्र कर पाक करे । जब  
 पाक तैयार होने पर ही तब घायला, जीरा,  
 कालाजीरा, मोथा, दालचीनी, छोटी इलायची,  
 तेजपात, नागकेसर, कौच के बीज, गुलठाकरी,

ताड़ के अंकुर, कसेरु, सिंघाडा, त्रिकटु ( सोंठ,  
 भिचं, पीपरि ), धनियाँ, अन्नकभरम, वज्रभरम,  
 हड़, मुनक्का, काकोली, खीरकाकोली, पिंड खजूर,  
 गोखरु, कुटकी, मुलेठी, कूट, लौंग, सेंधा नमक,  
 अजवायन, अजमोद, जीवन्ती और गजपीपरि;  
 प्रत्येक एक एक तोला । इनका महीन चूर्ण कर  
 उसमें मिला दे । जब पाक ठंडा हो जाय तो  
 ८ तोले शहद मिलाकर थोड़ी-सी कस्तूरी  
 और कपूर से सुगन्धित कर मोदक बाँध ले ।  
 यह रतिवल्लभ नामक मोदक सेवन करने से  
 अजघातु और बल का बढ़ानेवाला है । वातरोग  
 तथा वातपित्त रोग को नष्ट करता है । वृष्य तथा  
 वृष्टिशक्ति को बढ़ाता है । पित्त, कफ, रक्तपित्त,  
 विषदोष, गुल्म, ज्वर, मन्दाग्नि और चयरोग  
 को नष्ट करता है । इससे इन्द्रिय शिथिल नहीं  
 होती है, वृद्धों को पुष्टि देनेवाला है । जिस  
 पुरुष के घर में बहुत-सी सुन्दर रमणियाँ हों  
 उसको यह रतिवल्लभ मोदक सदा खाना  
 चाहिए ॥ १०७-१०६ ॥

ये केचिद् विजयायोगा लौहवज्राभ्र-  
 संयुताः । युक्ताश्च रसगन्धाभ्यां रसायन-  
 वरा मताः ॥ १०७ ॥

जितने योग भाँग, लौह, वज्र, अन्नक, पारा  
 और गन्धक के समिध्रण से बनते हैं; वे ही श्रेष्ठ  
 रसायन माने गये हैं ॥ १०७ ॥

तन्त्रान्तर में कथित कामेश्वर मोदक ।

चूर्णांशं गगनं घनार्द्धविमलं गन्धं  
 च कुष्ठामृता मेथी मोचरसो विदारिमुशली  
 गोक्षूरकं चक्षुरः । भीरुश्चैव कशेरुकं  
 यवनिका तालाङ्कुरं धान्यकं यष्टी नाग-  
 बलातिला मधुरिका जातीफलं सैन्धवम् ॥  
 १०८ ॥ भार्गी कर्कटमृद्गकं त्रिकटुकं  
 जीरद्वयं चित्रकं चातुर्जातपुनर्नवा करि-  
 कणा द्राक्षा शटी कटुफलम् । शाल्मल्य  
 वृद्धिफलत्रिकं कपिममं धीजं समं चूर्णये-  
 च्चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणित्वा

मध्वाज्यमिश्रं तु तत् ॥ १०६ ॥ कर्पाद्धा  
गुटिकाथ कर्पमथवा सेव्या सतां सर्वदा ।  
पेयं क्षीरमनु स्ववीर्यकरणे स्तम्भेऽप्यथं  
कामिनाम् ॥ ११० ॥

वामावश्यक इत्यादिगुणाः सम्यङ्-  
मारितमभ्रकमित्यादिनोक्तस्य कामेश्वरस्य  
समाः । अंशश्चतुर्थो भागः । कुष्ठादिक-  
पिबीजपर्यन्तचूर्णानामंशमभ्रकम् । अभ्राद्धं  
गन्धकं विमलं निर्मलम् । चूर्णाद्धा विज-  
येति अभ्रादिसर्वचूर्णानामद्धा । घृतमधु-  
मोदककरणयोग्यम् ।

कूट से लगाकर कौंच के बीज पर्यन्त चूर्णों  
का चौथा हिस्सा, अभ्रकभस्म और अभ्रकभस्म  
से आधा भाग शुद्ध गन्धक, कूट, गिलोय, मेथी,  
मोचरस, विदारीकन्द, मुसली, गोखरू, ताल-  
मखाना के बीज, शतावरी, कसेरू, अजवायन,  
ताड़ का अकुर, धनियाँ, मुजेठी, गगेरन की  
छाल, तिल, सौंफ, जायफल, सेंधा नमक,  
भारगी, काकडासिगी, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च,  
पीपरि ) जीरा, कालाजीरा, चीता की जड़,  
पातुजात ( दालचीनी, हलायची, नागकेशर,  
तेजपात ), गदापुरैना ( साँठी ), गजगीपरि,  
मुनक्का, कचूर, कायफल, सेमर की जड़, त्रिफला  
और केवाँच के बीज, इन सबको समभाग लेकर  
चूर्ण बनाये । अभ्रकादि सय चूर्ण से दुगुनी  
शहर । घृत और शहद अनुमान से डालकर  
( जितने में लड्डू बन सकें ) छह-छह मासे  
घषया तोले-तोले भर के लड्डू बना ले । इसको  
खाकर दूध पीना चाहिए । यह मोदक घोर्यध्वन  
तथा स्तम्भन करता है । शेष गुण समग्रही अधि-  
कार में कथित कामेश्वर मोदक के तुल्य जानना  
चाहिए ॥ १०८-११० ॥

कामाग्निसन्दीपन मोदक ।

कर्पो रसो गन्धकमभ्रकं च द्विचार-  
चित्रे लवणानि पत्र । शटी यमानोद्वय-  
कीटहारितालीशपत्राण्यपरं द्विकर्पम् ।

१११ ॥ जीरं चतुर्जातलवङ्गजातीफलं  
च कर्पत्रयमेवमन्यत् । सवृद्धदारं कडुकत्रयं  
च ततश्चतुःकर्पमितं निबोध ॥ ११२ ॥  
धन्याकयष्टीमधुरीकशेरुकर्पाःपृथक् पञ्च वरी  
विदारी । वरेभक्त्येभ्वलात्मगुप्तावीजं तथा  
गोक्षुरवीजयुक्तम् ॥ ११३ ॥ सबीज-  
पत्रेन्द्ररजः समानं समा सिता क्षौद्रघृतं  
च तुल्यम् । कर्पैकमिन्दोरथमोदकं तत्  
कामाग्निसन्दीपनमेतदुक्तम् ॥ ११४ ॥  
वृष्यं त्वतः परतरं सततं न दृष्टमेनं निषेव्य  
मनुजः प्रमदासहस्रम् । गच्छन्न लिङ्ग-  
शिथिलत्वमवाप्नुयाच्च नागाधिपं विजयते  
बलतः प्रमत्तम् ॥ ११५ ॥ कान्त्या  
हुताशनमपि स्वरतोमयूरान् वाहंजवेननय-  
नेनमहाविहङ्गम् । वातानशीतिमथपित्तगदं  
समग्रं श्लेष्मोत्थविंशतिरुजः परमग्नि-  
मान्द्यम् ॥ ११६ ॥ दुर्नामकामलभग-  
न्दरपाण्डुरोगमेहातिसारकृमि हृद्ग्रहणीप्र-  
दोषान् । कासज्वरश्वसनपीनसपार्श्वशूल-  
शूलाम्लपित्तसहितांश्चिरजान् समस्तान् ॥  
११७ ॥ हृत्पा गदानपि च तत्पुमपत्य-  
कारि सर्वतुपथ्यमथ सर्वसुखप्रदायि । वृष्यं  
बलीपलितहारि रसायनं स्यात् श्रीमूलदेव-  
कथितं परमं प्रशस्यम् ॥ ११८ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, जवाहर,  
सजीखार, चीता की जड़, पाँचों नमक, कचूर,  
अजवायन, अजमोद घायविद्ग और तालीश-  
पत्र, प्रत्येक एक एक तोला । जीरा, चतुर्जात  
( छोटी हलायची, दालचीनी, नागकेशर, तेज-  
पात ), सौंफ तथा जायफल, प्रत्येक दो-दो  
तोले । विषाग, सोंठ, मिर्च, पीपरि; प्रत्येक  
तीन तीन तोले । धनियाँ, मुजेठी, सौंफ और  
कसेरू, प्रत्येक चार-चार तोले । शतावरी

विदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण पलाश की छाल, खरेटी की जड़, कौच के बीज, गोखरु के बीज, प्रत्येक पांच-पांच तोले लेकर चूर्ण करे । इस चूर्ण के समान भाग बीज पत्रों सहित भाँग का चूर्ण और संपूर्ण चूर्ण के समान शङ्कर लेकर यथाविधि पाक करे । शीतल होने पर शङ्कर के समान घृत और शहद मिलावे । फिर सुगन्धि के लिए कपूर १ तोला मिलाकर यथाविधि मोदक बना ले । यह मोदक कामाग्नि का बढ़ानेवाला है । इससे बढ़कर कोई अन्य वृष्य प्रयोग नहीं है । इसके सेवन से मनुष्य की लिङ्गेन्द्रिय सैकड़ों छियों से गमन करके भी शिथिल नहीं होती है । तथा बल में गजेन्द्र को, कान्ति में अग्नि को, कण्ठस्वर में मयूरों को, वेग में घोड़े को और दृष्टिप्रसार में गरुडजी को जीत लेता है । यह मोदक ८० प्रकार के वातरोग, सब पित्त-रोग, २० वफरोग, मन्दाग्नि, बवासीर, कामला (काँवर-पीलिया), भगन्दर पण्डुरोग, प्रमेह, श्वातीसार, कुमिरोग, हृद्‌रोग, प्रदण्णिरोग, कास ज्वर, श्वास, पीनस, पार्श्वशूल, शूल, अम्ल-पित्त और सब प्रकार के पुराने रोगों को नष्ट करता है । यह पुत्र का देनेवाला है, सब ऋतुओं में पथ्य और सबको सुखदायी है । श्रीमूलदेव का कहा हुआ यह कामाग्निसंदीपन मोदक परम श्रेष्ठ, वृष्य, बलीपलितनाशक तथा रसायन है । मात्रा-एक माशा से दो माशेतक ॥ १११-११६ ॥

खण्डाम्नक ।

पक्वचूतरसद्रोणः पात्रं स्याच्छुद्धखण्डतः । घृतमर्द्धं ततो ग्राह्यं चतुर्थांशं च नागरम् ॥ ११६ ॥ तदर्द्धं मरिचं मोक्षं तदर्द्धां पिप्पली मता । तोयं खण्डसमं दद्यात् सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ १२० ॥ विपचेन्मृगमये पात्रे यदा दार्धीप्रलेपनम् । चूर्णान्येषां ततो दद्यात् पत्रं पलचतुष्टयम् ॥ १२१ ॥ ग्रन्थिकं चित्रकं सुस्तं घन्याकं जीरकद्वयम् । ज्यूपणं जातिता-

लीशं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ १२२ ॥ त्वग्नेला केशराणां च प्रत्येकं च पलं तथा । सिद्धशीते च मधुना प्रस्थं दत्त्वा विघट्टयेत् ॥ १२३ ॥ तत् सर्वमेकतः कृत्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् । भोजनादावतः स्वादेत्तोलकद्वयमानतः ॥ १२४ ॥ गच्छेत् कन्दर्पदर्पान्धो रागवेगाकुलेन्द्रियः शतं वापि तदर्द्धं वा रमेत् स्त्रीणां पुमानयम् ॥ १२५ ॥ संसेव्य भेषजं ह्येतद्गन्ध्यायां जनयेत् सुतम् । वीरं सर्वगुणोपेतं शतायुरच भवेद्यम् ॥ १२६ ॥ मृतवत्सा च या नारी या च गर्भोपघातिनी । सापि सूते सुतं सभ्यं नारायणपरायणम् ॥ १२७ ॥ बन्ध्यापि लभते पुत्रं दृढोऽपि तरुणायते । तुरङ्ग इव संहृष्टो मातङ्गइव विक्रमी ॥ १२८ ॥ सदा भेषजसंसेवी भवेन्मारुतवेगवान् । हन्ति सर्वामयं योरं कासं श्वासं क्षयं तथा ॥ १२९ ॥ दुर्नामाजीर्णकं चैव अम्लपित्तं सुदारुणम् । तृष्णां हर्दिं च मूर्च्छां च शूलमष्टविधं जयेत् ॥ १३० ॥ खण्डाम्नकमिदं मोक्षं भार्गवेण स्वयंभुवा । वयस्यं मेध्यमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ १३१ ॥ गृह्णन्नापिशाचघ्नमपस्मारविनाशनम् । पाण्डुरोगं प्रमेहं च मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥ १३२ ॥ वृष्या योपिद्धवेत् पुंसां पुमान् वश्यरच योपिताम् । दृष्टं वारसहस्रं च कथमत्र विचारणा ॥ १३३ ॥

पके हुए आमों का रस २६ सेर ४८ तोले, साक शकर ३ सेर १६ तोले, घृत १२८ तोले, सोंठ १४ तोले, कालीमिर्च ३२ तोले, पीपरि १६ तोले और जल ३ सेर १६ तोले । सबको एकत्रकर मिट्टी

के पात्र में पकावे । जय करछी में चिपकने लगे तब तेजपात्र १६ तोले, पिपरामूल, चीता, की जड़, मोधा, धनियाँ, जीरा कालाजीरा, सोंठ, मिर्च, पीपरि, जायफल, तालीशपात्र, दालु-चीनी, छोटी इलायची और नागकेशर, प्रत्येक चार-चार तोले । सबका घूर्ण कर उसमें मिला दे । जय टंडा हो जाय तब शहद १२८ तोले ढालकर सूख घोट ले और चीनी आदि के सुन्दर पात्र में भरकर रख ले । इसको भोजन के आदि में खाना चाहिए । मात्रा २ तोले से ४ तोले तक । इसके सेवन से पुरुष कामान्ध तथा स्मरवेग से व्याकुलेन्द्रिय होकर सौ या पचास स्त्रियों से रमण कर सकता है । यथा बन्ध्या ( बाँझ ) स्त्री में भी सबगुण युक्त पुत्र को पैदा करता है । १०० वर्ष की आयु होती है । जिस स्त्री के बालक होकर मर जाते हैं या गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं वह भी सम्पत्त तथा भगवद्भक्त पुत्र को प्राप्त करती है । इसका सेवन कर बन्ध्या भी पुत्र पैदा कर सकती है । शुद्ध भी तृण हो जाता है । इसका सदा सेवन करनेवाला धोटे के तुह्य प्रसन्न, हाथी के समान पराक्रमी और धायु के समान वेगवान् होता है । यह सब प्रकार के कठिन रोग, कास, श्वास, चय, बवासीर, अजीर्ण, दारुण अम्लोपित्त, तृषा वगन, मूच्छाँ और ८ प्रकार के शूलरोगों को नष्ट करता है । भार्गव ऋषि का कहा हुआ यह खण्डाभ्रक वयःस्थापक, मेधावर्द्धक, आयुःप्रद सब पापों का नाशक, तथा ग्रह, राक्षस, पिशाच, अप्समार, पाण्डुरोग, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है । इसके सेवन से पुरुष स्त्री के और स्त्री पुरुष के वश में हो जाती है । यह हज़ारों बार का आजमाया हुआ है । अतः विचारने की आवश्यकता नहीं ॥ ११६-१३३ ॥

पूर्णचन्द्र रस ।

सूताभ्रलौहं सशिलाजतु स्याद्बिडङ्ग-  
जाप्ये मधुना घृतेन । सम्मर्ध सर्वं खलु  
पूर्णचन्द्रो द्विगुञ्जयुक्तो भवतीह वृष्यः १३४  
रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शिला  
जीत, धातयिडङ्ग, स्वर्णमाषिकभस्म, इन्हें

परापर मात्रा में हकटा कर मिला ले । इसे शहद एवं घृत में घोटकर सेवन करना चाहिए । मात्रा-२ रत्ती । यह वीर्यवर्द्धक है ॥ १३४ ॥

निद्रोदय रस ।

रसभस्म तुगाक्षीरी नागफेनं पृथक्-  
पृथक् । अर्धं कर्पाणि सङ्गद्य धातकी धान्नि-  
का भवम् ॥ १३५ ॥ चूर्णकर्पद्वयं ग्राह्यं-  
मातुलानी द्रवैस्त्रिधा । विभाव्य द्विगुणां-  
द्राक्षां मेलयित्वाऽष्टगुञ्जिकम् ॥ १३६ ॥  
भक्षयित्वा पिवेद्दुग्धं निद्राकारकं मुत्तमम्  
रेतसस्तम्भने दत्तं बलवर्णोजः प्रवर्द्धनम्  
॥ १३७ ॥

रससिन्दूर वशलोचन अफीम ये सब ६-६ माशे धाय के फूल और आँवले २-२ तोले लेवे सब का महीन घूर्ण कर भाँगरे के रस में ३ बार घोट कर दूनी बीज निकाली हुई मुनका मिला १-१ माशे की गोलियाँ बना कर रख ले । इसमें से १-१ गोली गाय के दूध के साथ देने से अच्छी नींद आती है और शुक्र का स्तम्भन होता है तथा बल और रंग तेज की वृद्धि हाँती है ॥ १३५-१३७ ॥

श्रीकामदेव रस ।

कामदेवमथो मूलं कामिनां कामदं  
सदा । यस्य प्रसादतो बल्यो रम्यश्च रमते  
स्त्रियम् ॥ १३८ ॥ पारदं पलमेकं स्याद्  
द्विपलं शुद्धगन्धकम् । रक्तकार्पासतोयेन  
घृष्टा काचस्य कूप्यतः ॥ १३९ ॥ नित्तिप्य  
टङ्गणेन मुखं तस्य निरोधयेत् । बालुका-  
यन्त्रमध्यस्थं कूप्यश्च कुरुते दृढम् ॥ १४० ॥  
दिनद्वयं पचेद्गर्भौशास्त्रवित्कुशलो भिपक् ।  
शीते चादाय पात्रस्थं कूपिकान्तरलम्बि-  
त्तम् ॥ १४१ ॥ दरदेन समं रक्तं सोज्ज्वलं  
भस्म यद्भवेत् । भक्षयेद्रक्तिकैकं च घृतेन  
मधुना सह ॥ १४२ ॥ परचाद् दुग्धं गुह-

श्राज्यं कृष्णेक्षुमपि शर्कराम् । द्राक्षाखजूर-  
मपुकमभृतीनाथ भक्षयेत् ॥ १४३ ॥  
त्रिफला मधुना शान्तिं याति पित्तं चिरो-  
द्भवम् । निर्गुण्टकारसेनात्र दुर्वारवात-  
वेदना ॥ १४४ ॥ प्रशमं याति वेगेन  
नूतनश्च वपुर्मवेत् । अर्द्धावचित्तदुग्धेन  
गृह्यते यद्ययं रमः ॥ चन्ध्यापि च भवत्येव  
जीवद्वत्सा सुपुत्रिका ॥ १४५ ॥

इस कामदेव रस के सेवन से कामुक मनुष्यों  
की कामरात्रि बंद जाती है । इस रस के प्रभाव  
में सेवन करनेवाला व्यक्ति बलपुत्र एवं मीन्द्र्य-  
सम्पन्न होकर स्त्री से रमण करता है । पारा ४  
तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले इन्हें एकत्र घोटकर  
कमली बनाये । इस कम्ली को लाल कपास  
के पूतों के रस से घोटकर आतसी शीशी में  
ढाल दे और रात्रिया के बने ढकन ( टाट ) से  
मुग्य बन्द कर जोड़ों पर मुहागे का छेप कर दे ।  
पश्चात् बालुकापत्र में रस दो दिन लगातार  
अन्तर्धूम में पकाये । त्याग शीतल होने पर शीशी  
को तोड़कर शीशी के गले में लगे हुए द्विगुल  
के समान रत्नवर्ण श्रीपथ ( रससिन्दूर ) को  
निकाल ले । इसे आधी रत्ती से १ रत्ती की  
मात्रा में घी और शहद के साथ सेवन करे ।  
श्रीपथ सेवन के परचान् दूध, गुड़, घी, काला  
गन्ना, खाँड़, दारु, खजूर तथा मुझेटी आदि का  
सेवन करना चाहिए । बहुत दिन से बढ़े पित्त के  
नाश के लिये इस रस को शहद तथा त्रिफला के  
साथ सेवन करना चाहिए । सम्भालू के रस के साथ  
इसका सेवन करने से कष्टसाध्य वातवेदना नष्ट  
होती है और शरीर स्वस्थ हो जाता है ।  
अधीटा दूध ( अधीटे-अधीटे जब आधा शेष  
रह जाय ) के साथ इस गोली का सेवन करने  
से चन्ध्या स्त्री भी जीवितपुत्रपुत्रक होती  
है ॥ १३८-१४५ ॥

मन्मथाध्र रस ।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं पलमेकं सुशोधि-  
तम् । अत्रं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्द्धं च

विचक्षणः ॥ १४६ ॥ कर्पूरं तोलकं  
दद्याद्द्रव्यं च कोलसम्मितम् । ताम्रं तोला-  
र्द्धकं तत्र निःशेषं मारितं पुनः ॥ १४७ ॥  
लौहकर्पुमुजीर्णं च वृद्धदारकजीरकम् ।  
विदारिं शतमूर्त्तीं च क्षुरबीजं पलां  
तथा ॥ १४८ ॥ मर्कटयतिविषां चैव  
जातीकोपफले तथा । लवङ्गं विजया-  
बीजं श्वेतसर्जं यमानिकाम् ॥ १४९ ॥  
शाणुभागान् गृहीत्वैतान् एकीकृत्यैव  
पेषयेत् । गुञ्जाद्वयं तु कर्त्तव्यं कोष्णं क्षीरं  
पिबेदनु ॥ १५० ॥ गृहे यस्य शतं नार्यो  
विद्यन्तेऽतिव्यवायिनः । न तस्य लिङ्ग-  
शैथिल्यमौषधस्यास्य सेवनात् ॥ १५१ ॥  
न च शुक्रं क्षयं याति न बलं हासतां व्रजेत् ।  
कामरूपी भवेन्नित्यं वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥  
१५२ ॥ रमः श्रीमन्मथाभ्रोज्यं महेशेन  
प्रकाशितः । अस्य भक्षणमात्रेण काष्ठं  
जीर्यति तत्क्षणत् ॥ नाशयेद् ध्वजभङ्गा-  
दीन् रोगान् योगकृतानपि ॥ १५३ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, निश्चन्द्र  
धध्रकभस्म २ तोले कपूर १ तोला, ब्रह्मभस्म  
६ माशे, ताम्रभस्म आधा तोला, लौहभस्म  
१ तोला तथा विधारा, जीरा, विदारिकन्द,  
शतावरी, सालमखाना के बीज, खरौंटी, कौंच के  
बीज, अतिस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांग  
के बीज, सफेद राल और अजयायन, प्रत्येक  
तीन-तीन माशे; इन सबको एकत्र कर महीन  
पीस ले और जल से दो-दो रत्ती की गोलियाँ  
बनाकर खाये । अनुपान-गुनगुना दूध । इसके  
सेवन से सैकड़ों छियों से सहवास करने वाले की  
भी इन्द्रिय शिथिल नहीं होती है । और न वीर्य  
क्षीण होता है । तथा बल भी कम नहीं होता  
है । वृद्ध भी कामदेव के तुल्य रूपवाला और  
सोलह वर्ष का-सा हो जाता है । इस श्रीमन्म-  
थाध्र रस को शिवजी ने प्रकट किया था ।



इसके भक्षण करने से काष्ठ भी उसी षण्ण भस्म हो जाता है । यह, ध्वजमंग, आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ १४६-१४३ ॥

मकरध्वज रस ।

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेत् त्रिकगन्ध-  
कम् । रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्यद्भिर्विमर्द-  
येत् ॥ १५४ ॥ शुष्कं काचघट्टौ रुद्ध्वा  
वालुकायन्त्रगं हठात् । भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य  
नवार्ककिरणोपमम् ॥ १५५ ॥ भागोऽस्य  
भागार्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः । लवंगं  
मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया ॥ १५६ ॥  
मेलयेन्मृगनाभिं च गद्याणकमितं ततः ।  
श्लक्ष्णपिष्टोरसोनाम जायते मकरध्वजः ॥  
१५७ ॥ वल्लं वल्लद्वयं वाथ ताम्बूलीदल-  
संयुतम् । भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं मृदुमांस-  
मवातलम् ॥ १५८ ॥ शृतशीतं सिता-  
युक्तं दुग्धं गोभवमाज्यकम् । मध्वाद्यं  
पिष्टनपरं मद्यानि विविधानि च ॥ १५९ ॥  
करोत्यग्निबलं पुंसां बलीपलितनाशनः ।  
मेधायुःकान्तिजननं कामोद्दीपनकृन्म-  
हान् ॥ १६० ॥ अभ्यासात् साधकः  
स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः । रतिकाले  
स्तावन्ते पुनः सेव्यो रसोत्तमः । मानहानिं  
करोत्यासां प्रमदानां सुनिश्चितम् ॥ १६१ ॥  
कृत्रिमं स्थावरविषं जंगमं विषवारि च ।  
न विकाराय भवति साधकानां च वत्स-  
रात् ॥ १६२ ॥ मृत्युञ्जयो यथाभ्यासान्  
मृत्युञ्जयति देहिनाम् । तथायं साधकेन्द्रस्य  
जरावरणनाशनः ॥ १६३ ॥

अत्र गद्याणं परमापकम् । वल्लं  
द्विगुञ्जकम् । अत्रर्थे परिभाषामाह ।  
यवद्वयेन गुञ्जा स्याद् द्विगुञ्जो वल्ल

उच्यते । धरगुः स्याच्चतुर्माषैः षड्भि-  
र्गद्याममुच्यते ॥ १६४ ॥

सुवर्ण के कष्टकवेधीपत्र या घूरा १ तोला,  
पारा ८ तोले और गन्धक २४ तोले । पहिले  
सोना को पारा में मिलाकर घोट्टे परचात् उसमें  
गन्धक डालकर बजली करे तत्पश्चात् लाल  
कपास के फूलों के रस से और घीकुवार के रस  
से घोट्टकर तथा सुपाकर काँच की कुप्पी  
(आतशी शीशी) में भर दे और उसका मुप  
यन्द करके बालुकायन्त्र में रत्न भस्म कर ले  
भस्म (करने की विधि गंधकजारण के समान है)  
यह प्रातः काल के सूर्य के तुल्यतरण रंग की भस्म  
हो जावेगी । यह भस्म १ तोला, कर्पूर ४ तोले  
और लवङ्ग ४ तोले, कालीमिर्च ४ तोले और  
जायफल ४ तोले ले । कस्तूरी, ६ माशे । सबको  
खूब महीन पीसकर जल द्वारा गोलियाँ बना  
ले । मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक । इसको  
पान में रखकर खाना चाहिए । इसके सेवन  
करते हुए मधुर, चिकना कोमल मांस, औटा-  
कर टंडा किया हुआ खोंडयुक्त गौ का दूध  
मधु आदिक मीठे पदार्थ एवं अनेक प्रकार की  
मदिराएँ पय्य कही हैं । यह जडरागि को बढ़ाता  
तथा बलीपलित को नष्ट करता है । मेधा, आयु  
और कान्ति को बढ़ानेवाला तथा कामाग्नि को  
उद्दीपन करनेवाला है । इसका सेवन करनेवाला  
सैकड़ों स्त्रियोंको विजयकर लेता है । रतिकालमें तथा  
रतिकाल के अन्त में इस रसोत्तम का सेवन करना  
चाहिए । इसके प्रताप से कृत्रिम, स्थावर, जंगम  
विष तथा विष का जल विकार नहीं करता है ।  
जैसे अभ्यास करने से मृत्युञ्जय रस प्राणियों  
की मृत्यु को जीत लेता है ऐसे ही यह सेवन-  
कर्ता को जरा और मृत्यु का नाश करता  
है ॥ १६४-१६३ ॥

यहाँ गद्याणक ६ माशे का और वल्ल दो  
रत्ती का माना जाता है । इस विषय में प्रमाण-  
रूप परिभाषा कहते हैं । दो औ की एक रत्ती  
(सुधुवी), दो रत्ती का १ वल्ल, चार माशे  
का धरण और छः माशे का गद्याण होता  
है ॥ १६४ ॥

कामिनीमदभंजन ।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कङ्कारकद्रवैः ।  
मर्दितं बालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत् ॥  
१६५ ॥ रक्ताङ्गस्य द्रवैर्भाव्यं दिनैकं तु  
सितायुतम् । यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्  
कामिनीशतम् ॥ १६६ ॥

शुद्ध पारा और गन्धक यरावर भाग लेकर दोनों की कजली करे और लाल कमल के रस से ३ दिन घोटकर सुखा ले और काँच की कूपी में रखकर मुँह बन्दकर दे तथा बालुकायन्त्र में रखकर एक प्रहर तक पकाये । शीतल होने पर कूपी से निकालकर एक दिन केशर के जल की भायना दे । इस रस को मिश्री के साथ सेवन करके इच्छानुसार भोजन करना चाहिए । इससे रमण करने की सामर्थ्य बढ़ती है ॥ १६५-१६६ ॥

हरशशाङ्क ।

शाल्मल्यास्त्वचमादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । शुद्धगन्धकचूर्णानि तद्रसेनैव भावयेत् ॥ १६७ ॥ मासमात्रमयोगेण शृणु वक्ष्यामि ये गुणाः । मकरध्वजखण्डपि स्त्रीशतानन्दवर्द्धनः ॥ १६८ ॥ शतायुश्च भवेद्देवि ! बलीपलितवर्जितः । तेजस्वी बलसम्पन्नो वेगेन तुरगोपमः ॥ सततं भक्षयेद्यस्तु तस्य मृत्युर्न जायते ॥ १६९ ॥

सेमर की छाल का चूर्ण और शुद्ध गंधक का चूर्ण समभाग लेकर उसमें सेमर की जड़ के रस की ७ भावनाएँ दे । शुभ दिन में इसका सेवन करे मात्रा १-२ माशा अनुपान गौ का दूध । इसको रात्रि में सेवन करना चाहिए । एक महिने के सेवनसे कामदेव का-सा रूप तथा सौ स्त्रियों को आनन्दित करनेवाला हो जाता है । एवं सौ वर्ष की आयु, सिक्कु-

इन और बालों की सकेदी से रहित, तेजस्वी, बलयुक्त तथा घोड़े की तुल्य वेगवाला होता है । जो इसे सदा खाया करता है उसकी मौत नहीं होती है ॥ १६७-१६९ ॥

कामधेनु ।

गन्धमामलकं चूर्णं धात्रीरसविभावि-  
तम् । सप्तधा शाल्मलीतोयैः शर्करामधु-  
योजितम् ॥ १७० ॥ लीढवा चानुपयः  
पानं प्रत्यहं कुरुते तु यः । एतेनाशीतिव-  
पौंसिपि शतधा रमते स्त्रिया ॥ १७१ ॥

शुद्ध गन्धक और धाँवके का चूर्ण समभाग लेकर उसमें गाँवले के रस और सेमर की जड़ के रस से क्रमशः सात-सात भावनाएँ देकर उसको शकर और शहद के साथ चाटे । मात्रा १ माशा से २ माशे तक । अनुपान दूध । इसका प्रति-दिन सेवन करने से ८० वर्ष का पृढ़ा भी सौ स्त्रियों से रमण करने की सामर्थ्य पाता है ॥ १७०-१७१ ॥

लक्ष्मणालौह ।

लक्ष्मणाहस्तिकर्णाभ्यां त्रिकत्रयसम-  
न्वयात् । अश्वगन्धासमायागाल्लौहं पुंस-  
वनं मतम् ॥ १७२ ॥ पुत्रोत्पत्तिकरं वृष्यं  
कन्यासूतिनिवर्चकम् । कृशस्य बलदं श्रेष्ठं  
सर्वामयहरं परम् १७३ ॥

लक्ष्मणा की जड़, हस्तिकर्ण पलास की छाल, त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपल ), त्रिफला, त्रिमद ( बायबिडंग, चीत की जड़, नागरमोथा) और अश्वगन्ध; प्रत्येक श्लोषधि समभाग और सबकी बराबर लौहभस्म ले सबको एकत्र पीसकर रख ले । इसके सेवन से पुत्र की उत्पत्ति होती है और कन्या होना बन्द हो जाता है । दुर्बल को बलवान् करनेवाला तथा सब रोगों को नष्ट करनेवाला यह लक्ष्मणालौह उत्तम होता है ॥ १७२-१७३ ॥

गन्धामृतरस ।

भस्मसूतं द्विधा गन्धं कन्यकाङ्गि-  
वि-

१. शाल्मलीबलकचूर्णं शुद्धगन्धकचूर्णं च समं कृत्वा शाल्मलीमलखरसेन सप्त भावना देवाः घृत-  
समुभ्यां लीढवा गौदुग्धमनुपियेत्रिभिः ।

मर्दयेत् । रुद्धा लघुपुटे पच्यादुद्धृत्य मधु-  
सर्पिषा ॥ १७४ ॥ बल्लं खादेज्जरां मृत्युं  
हन्ति गन्धामृतो रसः । समूलं भृङ्गराजं  
च द्वायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥ १७५ ॥ त-  
त्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत् ।  
तोलैकं भक्षयेच्चानु सेवनाच्च जरा-  
पहः ॥ १७६ ॥

पारे की मस्त १ भाग और गन्धक दो  
भाग । दोनों को एकत्र कर धीबुवार के रस से  
घोट ले और गुप्ताकर लघुपुट में फूँक दे ।  
शीतल होने पर दो रत्नी रस शहद और घृत के  
साथ खावे । यह गन्धामृत रस जरावस्था तथा  
मृत्यु को दूर करता है । इस गन्धामृत रस के खाने  
के पश्चात् यह चूर्ण खाना चाहिए । गुप्ताके  
हुए जड़ सहित भाँगे का चूर्ण और त्रिफला  
का चूर्ण समभाग और दोनों के बराबर शकर  
लेकर मिलावे । मात्रा-१ तोला से ४ तोले  
तक ॥ १७४-१७६ ॥

स्वर्धसिन्दूर ।

पलं रसेन्द्रस्य च गन्धकस्य हेम्नोऽपि  
कर्पं परिगृह्य सग्यक् । वटप्ररोहस्य रसेन  
यामं यामं विमर्द्याथ कुमारिकायाः ॥ १७७ ॥  
तत् काचकूप्यां निहितं प्रयत्नात् पचेद्वि-  
धिङ्गः सिकताख्ययन्त्रे । ततो रज्ज्वोर्ध्वगतं  
सुरम्यं प्रगृह्य यन्नादरुणप्रभयत् ॥ १७८ ॥  
तद्दयोजयेत् सर्वगदेषु वीक्ष्य धातुं बलं  
वह्निमथो वयश्च । रसायनं वृष्यतरं च बल्यं  
मेधाग्निकान्तिस्परवर्द्धनं च ॥ १७९ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले और  
सोना के कण्टकवेधी पत्र १ तोला । पहिले पारा  
में स्वर्णपत्र को मिलाकर घोट्टे पश्चात् उसमें  
गन्धक ढालकर कजली करके बरगद ( वड़ )  
की जटा के तथा धीबुवार के रस से अलग-  
अलग एक-एक पहर घोटकर सुखा ले और  
काँच की शीशी में भरकर मुख बन्द कर दे  
तथा बालुकायन्त्र में रखकर विधि से पकावे ।

जब शीशी की नली में लाल-लाल रमणीय रस  
जम जाय तब उसको सावधानी से निकाल ले ।  
धातु, यल, अग्नि और आयु का विचार कर  
सब रोगों में इसको देना चाहिए । यह स्वर्ण-  
सिन्दूर अत्यन्त पुष्ट, यलप्रद एवं मेधा, अग्नि  
और कामि को बढ़ानेवाला है ॥ १७७-१७९ ॥

सुरसुन्दरी गुटिका ।

अभ्रकं माणिकं वज्रं कान्तं हेम समं  
समम् । सर्वाणि समभागानि सूतयुक्तानि  
कारयेत् ॥ १८० ॥ गोलकं च ततः कृत्वा  
पक्वं निचुलवारिणा । ततस्तं पुटपाकेन  
स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः ॥ १८१ ॥ बाह्ये  
चास्यापि लिप्त्वा च वक्त्रस्था गुटिको-  
त्तमा । स्तम्भयेच्छुक्रसंघातं विपरोगांश्च  
नाशयेत् ॥ १८२ ॥ अग्नेनैकेन वक्त्रस्था  
वयःस्तम्भं करोति च । वलीपलितहन्त्रीयं  
गुटिका सुरसुन्दरी ॥ १८३ ॥

अभ्रकभस्म, स्वर्णमाणिकभस्म, हीरे की  
भस्म, कान्तलौह की भस्म, सोने की भस्म  
और रससिन्दूर; सबको सम भाग लेकर बेल की  
जड़ के रस से घोट गोला बना ले और बाहर  
कपड़मट्टी करके लीप दे तथा पुटपाक की विधि  
से फूँक ले । पश्चात् जल के योग से इसकी  
गोलियाँ बना ले । मुख में धारण करने से यह  
गुटिका शुक्र के वेग को रोक देती है तथा विष के  
रोगों को नष्ट करती है । एक वर्ष तक मुख में  
धारण करने से आयु को स्थिर करती है । यह  
सुरसुन्दरी गुटिका वलीपलित को नष्ट करती  
है ॥ १८०-१८३ ॥

मोफरवा नाम से प्रसिद्ध यवनकृत औषध  
जातीपल्लरनागकेशरकणा ककौलम-  
जाफलं श्यामा कटफलसारिवागुरुवचा  
मुस्तं शटी मस्तकी । मांसी शाल्मलिधा-  
तकी वडुलता गोंचूरमेथी वरी बीजं वान-  
रिकोकिलात्ति च गुहा धूर्त्तः परं पङ्कजम् ॥

१८४ ॥ कुष्ठं चोत्पलकेशरं च मधुकं  
थ्रीखण्डजातीफलं चूर्णं कन्दविदारिमूप-  
लियुतारम्भा मियङ्गोःफलम् । जीवद्वन्द्व-  
सविश्वभूषणवरा एता त्वचो धान्यकं  
चीनीचोपसमुद्रशोपशिररं चाकारकरभं  
कचम् ॥ १८५ ॥ इन्दुं कुडकुमनाभिजं  
सगगनं चूर्णं समं कारयेत् स्वर्णं तारभुज-  
द्रवद्रमयसा वज्रं तथा ताम्रकम् । मुक्ता  
शाम्भयतालकानि विधिना शुद्धं मृतं  
योजयेत् तुर्यांशं विजयादलस्य विमलं  
चूर्णं ततो दापयेत् ॥ १८६ ॥ तेषाम-  
र्द्धांशयुक्ता विमलतरसिता क्षौद्रमेवं  
सितांशं तोयं स्वल्पं प्रदेयं मृदुतरद-  
हनैर्लेहसिद्धिर्विधेया । शीते क्षिप्त्या  
तु चूर्णं घृतपरिलुलितं घट्टयेत्तच्च दध्या  
म्लेच्छेनोक्तः मुलेहो मुफर इति मतः  
सेव्यता सर्वकालम् ॥ काम्यं वामाप्रमोदं  
सकलगदहरं राजयोग्यं प्रदिष्टम् ॥ १८७ ॥

अपरगुणा बृहत्कामेस्वरस्येव । मज्जा-  
फलं माजुफलमिति प्रसिद्धं वणिग्द्र-  
व्यम् । एवं मन्तकीति रुमिमस्तकी, धूर्त्तो  
धुस्तूरवीजं, चीनीचोपः चोपचीनीति  
प्रसिद्धं काष्ठवन्मूलं सिंहलादौ प्रसिद्धं,  
समुद्रशोपः हिज्जलवीजं, शिखरं लवङ्गं,  
आकारकरभं आकारकरा इति ख्यातं,  
कचं बालकम्, इन्दुः कर्पूरं, शाम्भवो  
रसः ।

जावित्री, नागकेशर, पीपरि, कंकौल, माजु-  
फल, काली साखिया, कायफल, अनन्तमूल,  
अगर, बच, नागरमोथा, कचूर, रूमीमस्तकी, जटा,  
मासी, सेमर का मुसला, धाय के फूल, कुटकी,  
गोखरू, मेथी, शतावरी, कौच के बीज, ताल-

रजाना, शालपर्णी, धतूरे के बीज, सफेद  
कमल, कूट, कमल की केशर, मुलेठी, श्वेत-  
चन्दन, जाटफला, विदारिकन्द का चूर्ण,  
मूसली, बेल के फूल, प्रियंगु के फल, जीवक,  
श्लषगक, सोंठ, कालीमिर्च, हड, बडेडा, श्रावला,  
छोटी इलायची, दालचीनी, धनियाँ, चोयचीनी,  
समुद्रगोप, ( हिज्जलयीज ), लौंग, अकरकरा,  
सुगन्धवाला, कपूर, केशर, कस्तूरी और थन्नक-  
भस्म, सुवर्णभस्म, चाँदी की भस्म, सीसा  
की भस्म, रांगे की भस्म, लोहभस्म,  
हीरा की भस्म, ताम्रभस्म, मोती की भस्म,  
पारदभस्म और हडताल की भस्म ; सब सम  
भाग । सब औषधियों का चतुर्थांश धोई हुई  
भाँग का चूर्ण । सब चूर्णों का आधा भाग शहर  
और शहर के बराबर शहद । शहर में थोडा सा  
जल डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकाये । जब  
चाशनी तैयार हो ज य तब उसको ठही कर ले  
और उपयुक्त औषधियों के चूर्ण को घी में  
सानकर चाशनी में डाल दे तथा शहद डाल  
करधी से घोटकर चीनी या सीसे के बर्तन में  
रख दे । यह म्लेच्छों का कहर हुआ लेह मुफरवा  
के नाम से प्रसिद्ध है । इसका सब समयों में  
सेवन करना चाहिए । यह स्त्रियों को आनन्द  
देनेवाला, सब रोगों का नाशक तथा राजाओं के  
योग्य है । इसके अन्य गुण कामेस्वर मोरक के  
समान समझिये ॥ १८४-१८७ ॥

पल्लवसारतैल ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं भृङ्गराजरसं तथा ।  
शतावरीरस क्षीरं कूप्माण्डस्य रसं पृथक् ॥  
१८८ ॥ प्रस्थैकं तिलतैलस्य पचेन्मृद्-  
ग्निना भिपक् । लान्तरनालसिद्धाम्बु  
प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ १८९ ॥ कल्कं  
कणा शिवा द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्प-  
लम् । मधुकं क्षीरकाकोली प्रस्थैकं च  
पलं पलम् ॥ १९० ॥ कर्पूरं च नखं  
गन्धमण्डजं विरजा समम् । जाती-  
कोपं लवङ्गं च प्रतिकर्पद्वयं पचेत् ॥

१६१ ॥ महावातहरं तैलं महापित्तविना-  
शनम् । नेत्ररोगेषु सर्वेषु अपस्मारेऽनिला-  
मये ॥ १६२ ॥ विद्रधिब्रणशोथघ्नं मेह-  
दोषहरं परम् । शूलरोगप्रशमनमानाहकृ-  
च्छ्रनाशनम् ॥ १६३ ॥ गुल्मघ्नं हृदि  
शूलघ्नं मूत्रावातविनाशनम् । प्रशस्तं ग्रह-  
णीरोगे प्रमेहज्वरनाशनम् ॥ नाम्ना  
पल्लवसाराख्यं तैलं विद्याद्विपग्वरः ॥  
१६४ ॥

त्रिफला का कदा १२८ तोले, भँगरे का  
रस १२८ तोले, शतावरी का रस १२८ तोले,  
दूध १२८ तोले, पेठे का रस १२८ तोले, लाप  
का रस १२८ तोले और काँजी १२८ तोले ।  
तिल का तेल १२८ तोले । कक के लिए  
पीपरि, हड, मुनक्का, त्रिफला, नीलकमल, मुलेठी  
और चीरकाकोली; प्रत्येक चार-चार तोले ।  
गन्धार्थ-कपूर, नखी, कस्तूरी, गंधाघिरोजा,  
जावित्री और लौंग; प्रत्येक दो-दो तोले ।  
तेलपाकविधि से तेल सिद्ध करना चाहिए । यह  
तेल मालिश करने से महावातरोग तथा महापित्त  
रोगों को नष्ट करता है । नेत्ररोग, अपस्मार,  
वातव्याधि, विद्रधि, ब्रण, शोथ, प्रमेह, शूल-  
रोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुल्मरोग, हृदयशूल,  
मूत्राघात, संग्रहणी, प्रमेह और ज्वर आदि  
रोगों को नष्ट करता है । इस तैल का नाम  
पल्लवसार है ॥ १६८-१६४ ॥

#### श्रीगोपालतैल ।

रसाढकं शतावरीयाः कूप्माण्डामलयो-  
स्तथा । वाजीगन्धासहचरयलानां च शतं  
पृथक् ॥ १६५ ॥ परिपच्याम्भसां द्रोणे  
पादशेषेऽतारयेत् । पञ्चमूलं महद्रचाग्नी  
मूर्वाकेतरूप्तिका ॥ पारिभद्रश्च सर्वेषां  
ब्राह्मं दशपलं शुभम् ॥ १६६ ॥ काथ-  
यित्वा जलद्रोणे तत्पादमवशेषयेत् । आ-  
ढकं तिलतैलस्य कल्कैरेतैश्च संपचेत् ॥

१६७ ॥ अश्वगन्धा चोरपुष्पी पञ्चकं  
कण्टकारिका । बलागुरुघ्नं पूतिशिह-  
कागुरुचन्दनम् ॥ १६८ ॥ चन्दनं त्रि-  
फला मूर्वा जीवनीयकटुत्रयम् । पूतिकुङ्क-  
मकस्तूर्यश्चातुर्जातं च शैलजम् ॥ १६९ ॥  
नखमुस्तमृगालानि नीलोत्पलमुशीरकम् ।  
मांसीपुरासुरतरु वचादाडिमतुम्बुरु ॥  
२०० ॥ ऋद्धिर्द्विर्दमनकं जुष्टैर्लाह-  
पलं पृथक् । एतत्तैलवरं हन्ति वातपित्त-  
कफोद्भवान् ॥ २०१ ॥ व्याधीनशेषान्  
जनयेत् स्मृति मेधां धृति धियम् । वात-  
रोगान् विशेषेण प्रमेहान् हन्ति विश-  
तिम् ॥ २०२ ॥ गर्भ संस्थापयेत् स्त्रीणां  
सर्वं शूलं व्यपोहति । मूत्रकृच्छ्रमपस्मार-  
गुन्मादान् निखिलानपि ॥ २०३ ॥ स्थ-  
विरोऽपि जराजीर्णतैलस्यास्य निषेव-  
णात् । लीलया प्रमदानां च उन्मदानां  
शतं जयेत् ॥ २०४ ॥ तिष्ठेद्यस्य गृहे  
तैलं श्रीगोपालाभिधं शुभम् । न तत्र  
भूताः सर्पन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ॥  
२०५ ॥ न दारिद्र्यं भवेत्तस्य विघ्नः क-  
श्चिन्न जायते । अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतद्  
विश्वकल्याणहेतवम् ॥ २०६ ॥

शतावरी का रस ६ सेर २२ तोले, पेठे  
का रस ६ सेर ३२ तोले, आँवले का रस ६  
सेर ३२ तोले, अश्वगन्ध २ सेर, पीली कट-  
सरीया ( पियावॉसा ) की जड़ २ सेर और  
वरिवारा की जड़ ५ सेर । प्रत्येक को पृथक्  
पृथक् २२ तोले ३८ तोले जल में औटाकर  
प्रत्येक का ६ सेर ३२ तोले काथ शेष रखवे ।  
बला पञ्चमूल, छोटी कटेरी, मूर्वा, केवडा की  
जड़, करज की जड़ और फरहद की छाल ;  
प्रत्येक चालीस-चालीस तोले । काथ के  
लिए जल २२ सेर ३८ तोले लेकर अलग-

अलग सयफा ढाथकर प्रत्येक ३ सेर १६ तोले  
 ऋष्य अथशिष्ट रखते । तिल तेल ६ सेर ३२  
 तोले । कहक के लिए—असगन्ध, चौरपुष्पी,  
 पद्माक्ष, वटेरी, खरेटी, धगर, मोथा, शट्टाशी  
 ( मुक्कबिलाई ), शिलारस, अगर, लाल चन्दन,  
 सफेद चन्दन, त्रिफला, मूर्वा, जीवक,  
 अथभक, काकोली, घोरकाकोली, मेदा,  
 महामेदा, मुद्रपर्णी, मापपर्णी, जीवन्ती,  
 मुलेठी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपरी, सट्टाशी,  
 केरार, कस्तूरी, छोटी इलायची, दालचीनी,  
 तेजपात, नागकेशर, धारद्वरीला, नखी,  
 मोथा, कमल की डंडी, नीलकमल, खस,  
 जयामासी, मुरामांसी, देवदारु, वच, अनार-  
 दाना, धनियाँ, ऋद्धि, वृद्धि, दौना और छोटी  
 इलायची; प्रत्येक दो-दो तोले । विधिपूर्वक तेल  
 सिद्ध कर मर्दन करने से यह श्रेष्ठ तेल वात,  
 पित्त और कफ के सब रोगों को नष्ट करता है  
 तथा स्मृति, मेधा, धारणाशक्ति और बुद्धि को  
 बढ़ाता है । विशेषकर वातरोग और २० प्रकार  
 के प्रमेह रोगों को नष्ट करता है । एष स्त्रियों  
 के गर्भ स्थापन करता है । सब प्रकार के  
 शूल, मूत्रकुच्छ, अपस्मार और उन्माद  
 रोग नष्ट होते हैं, जरावत्या से यका हुआ  
 बूढ़ा भी इस तेल के सेवन से लीलापूर्वक  
 उन्मत्त स्त्रियों को परास्त कर देता है । जिसके  
 घर में यह श्रीगोपाल नामक तेल रहता है वहाँ  
 भूत, पिशाच, राक्षस और दारिद्र्य नहीं जाता  
 है तथा किसी प्रकार का अघ्न भी नहीं होता  
 है । संसार के कल्याणार्थ अश्विनीकुमारों ने  
 इसको बनाया है ॥ ११२-२०६ ॥

मृतसजीवनी सुरा ।

नवं गुडं च संगृह्य शतमेकं पलं  
 तथा । वावरीत्वचमादाय बदरीत्वचमेव  
 च ॥ २०७ ॥ प्रस्थं प्रस्थं प्रदातव्यं पूगं  
 देयं यथोचितम् । लोभ्रं च कुडवं दत्त्वा  
 आर्द्रकस्य पलद्वयम् ॥ २०८ ॥ तोय-  
 मष्टगुणं दत्त्वा गुडं सङ्गोलयेत् सुधीः ।

प्रथमे चार्द्रकं दद्यात् द्वितीये वावरीत्व-  
 चम् ॥ २०६ ॥ तृतीये बदरीं दत्त्वा  
 गोलयित्वा भिषग्वरः । मुखे शरावकं  
 दत्त्वा यत्नात् कृत्वा च बन्धनम् ॥ २१० ॥  
 मुखसंबन्धनं कृत्वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ।  
 मृगमये मोचिक्रायन्त्रे मयूराख्येऽपि युंयन्त्र  
 के ॥ २११ ॥ यथाविधिप्रकारेण मन्द-  
 मन्देन वह्निना । चुल्लीमध्ये विधातव्यं  
 मृत्तिकादृढभाजने ॥ २१२ ॥ तदौषधं  
 च तन्मध्ये समुद्धृत्य विनित्तिपेत् । नलं  
 च युगलं दत्त्वा कुम्भौ च गजकुम्भवत् ॥  
 २१३ ॥ कुम्भमध्ये निधातव्यं पूगं च  
 सैलवालुकम् । देवदारु लवङ्गं च पद्म-  
 कोशीरचन्दनम् ॥ २१४ ॥ शतपुष्पा  
 यमानी च मरिचं जीरकद्वयम् । शटी  
 मांसी त्वगेला च जातीफलं समुस्तकम् ॥  
 २१५ ॥ ग्रन्थिपर्णी तथा शुण्ठी मेथी  
 भेषी च चन्दनम् ॥ एषां चार्द्रपलान्  
 भागान् कुट्टयित्वा विनित्तिपेत् ॥ २१६ ॥  
 यथाविधिप्रकारेण चालनं दापयेत् सुधीः ।  
 बुद्धिमान् सौजनं कृत्वा उद्धरेद्विधिवत्  
 सुराम ॥ २१७ ॥ एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं  
 यथाधातुवयः क्रमम् । आरोग्यजननं  
 देहदाढ्यैर्कृद्बलवर्द्धनम् ॥ २१८ ॥ धात्व-  
 ग्निस्मृतिकृद्दीर्यशुककृद्वातनाशनम् । वल-  
 पुष्टिकरं चैव कामसन्दीपनं परम् ॥ २१९ ॥  
 दश स्त्रियो रमेन्नित्यमानन्द उपजायते ।  
 रणे तेजोमयः सद्यो यथा भीमपराक्रमः ॥  
 २२० ॥ नातः परतरं किञ्चिद् रणोत्साह-  
 प्रदं महत् । देवासुरैर्युद्धकाले शुक्रेण  
 परिनिर्मितम् ॥ २२१ ॥

नया गुड ५ सेर, चूल् की छान ६४ तोले, बेरी ( बेर ) की छान ६४ तोले । सुपारी ६४ तोले, लोथ १६ तोले और अदरक ८ तोले । गुड को १ मन १० सेर पानी में घोल कर उसमें पहले अदरक, फिर चूल् की छान का चूर्ण और इसके पश्चात् बेर की छान का चूर्ण ढाल कर लोथ भी इसी में छोड़ दे और अच्छे प्रकार सफ़ाई घोलकर मिट्टी के पात्र में भर दे और सफ़ाई से उसके मुख और सधियों को बन्द कर दे और जमीन में गाड़ दे । २० दिन के बाद उसको गिराकर मिट्टी के मोचिकायन्त्र अथवा मयूरयन्त्र में ढालकर चूल्हे पर चढ़ा दे और उसमें दो नटा जगा दे और उनके नीचे एक-एक घड़ा रख दे । और मन्द-मन्द अग्नि दे । घड़ों में सुपारी, एलवालुक ( सुगन्धद्रव्य ), देवदार, लींग, पन्नाक, खस, लाल चन्दन, सौंफ, अजग्राह्न, मिर्च, जीरा, कालाजीरा, कचूर, जटामासी, दालचीनी, छोटी इलायची, जायफल, मोथा, गठिवन, सोंठ, मेथी, काकड़ासिगी और सफ़ेद चन्दन, प्रत्येक दो-दो तोले कूट पीस कर छोड़े । अच्छे प्रकार चलाकर मिला ले । फिर बुद्धिमान् वैद्य मांदरा चुष्मा ले । बल और अवस्थानुसार इस मदिरा के निरय पीने से आरोग्यता, देह की दृढ़ता और बल की वृद्धि होती है । धातु, अग्नि, स्मरण-शक्ति, बल, पुष्टि और शुक को बढ़ाती है और कामदेव को दीपन करती है तथा वातरोग को नष्ट करती है । इसके प्रताप से दश छिन्नो से रमण करने में आनन्द मिलता है । रण में भीम का सा पराक्रम होता है । इससे बढ़कर रण में उत्साह करनेवाला दूसरा प्रयोग नहीं है । देवासुरसंग्राम में शुभ्राचार्य ने इसको बनाया था । मात्रा ३ ४ माशे ॥ २०७ २११ ॥

### दशमूलारिष्ट ।

पर्यायै बृहत्या गोकण्डो बिल्योऽग्नि मथनोऽरलुः । पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते ॥ २२२ ॥ दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक् । पञ्चविंश-

त्पलं कुर्याद् चित्रकं पौष्करं तथा ॥२२३॥ कुर्यात् विंगपलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् । पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंग्व्यर्द्ध-रालभा ॥ २२४ ॥ खदिरो वीजसाश्च पठ्या चेति पृथक्पलैः । अष्टाभिर्गुणितैः कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च ॥ २२५ ॥ विडङ्ग मधुकं भार्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा । चव्यं मांसी मियङ्गुरच सारिवा कृष्णजीर-कम् ॥ २२६ ॥ त्रिवृता रेणुकं रास्ना पिप्पली क्रमुकः शटी । हरिद्रा शतपुष्पा चपन्नकं नागकेशरम् ॥ २२७ ॥ मुस्त-मिन्द्रयवः शृङ्गी जीवकर्पभकौ तथा । मेढा चान्या महामेदा काकोल्या ऋद्धिद्विद्धिके ॥ २२८ ॥ कुर्यात् पृथक् द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले । चतुर्थांशशृतं नीत्वा शृङ्गाण्डे सन्निधापयेत् ॥ २२९ ॥ ततः षष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे । त्रिपाद-शेषं शीतं च पूर्वकाथे शृतं क्षिपेत् ॥ २३० ॥ द्वाविंशत्पलिकं चौरं दद्याद् गुडचतुःशतम् । त्रिंशत्पलानि धातव्या-ककोलं जलचन्दनम् ॥ २३१ ॥ जाती-फलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम् । पिप्पली चेति संचूर्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥ २३२ ॥ शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत् । भूमौ निखनये-द्गाण्डं ततो जातरसं पिबेत् ॥ २३३ ॥ कतकस्य पलं क्षिप्त्या रसं निर्मलतां नयेत् । ग्रहणीमरुचि शूलं श्वासकास-भगन्दरान् ॥ २३४ ॥ वातव्याधिं क्षयं हर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम् । कुष्ठान्य-शांसि मेहांश्च मन्दाग्निपुदराणि च ॥

२३७ ॥ शर्करामरमरी मूत्रकृच्छ्र धातुत्तयं  
जयेत् । कृगानां पुष्टिजननो बन्ध्यानां  
पुत्रदः परम् ॥ अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजः  
शुक्रवलयप्रदः ॥ २३६ ॥

शालपर्णी, शरिणपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी  
कटेरी, गोतरु, बिहव के मूल की छाल, चरणी  
की छाल, श्योनाक की छाल ; पाठरि की छाल  
और गंभारी की छाल ; इसको दशमूल कहते  
हैं । दशमूल की प्रत्येक औषधि चार-चार  
पटाईक, चीता की जड़ सवासेर, पोहकरमूल  
सवा सेर, लोध एक सेर, गिलोय एक सेर  
और धौले १४ तोले, जवासा ४८ तोले । चैर  
( कट्या ), विजयसार और हड़ ३२-३२  
तोले । कूट, गोंजीठ, देवदार, वायविडंग, मुझेठी,  
भारंगी, कैथ, बहेड़ा, गदहपुरा ( साँठी ),  
चम्प, जटामांसी, श्रियंगु, धनन्तमूल, काला-  
जीरा, निसोत, सँभालू के बीज, रास्ना, पीपरि,  
मुपारी, कपूर, हल्दी, सोया के बीज, पत्राक,  
नागकेशर, मोथा, हृद्गुजी, काकडासिगी, जीवक  
श्लपभक, मेदा, महामेदा, पाकोली, शी-  
काकोली, अदि और वृद्धि ; प्रत्येक छोट-  
छोट तोले । इन संपूर्ण औषधियों को शठ  
गुने जल में पका कर चतुर्थांश क्षाय शेष  
रखते । फिर इसको छान कर मिट्टी के पात्र में  
रखते । इसके पश्चात् ३ सेर मुनकाओं को  
१२ सेर जल में पकावे, ६ सेर श्वशेष रहने  
पर टंढा कर छान ले और पहलेवाले काढ़े  
में मिला दे । पश्चात् शहद १२८ तोले, गुड़  
२० सेर, धाय के फूल १॥ सेर तथा फंकोल,  
सुगन्धवाला, लालचन्दन, जायफल, लौंग,  
दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात नागकेशर  
और पीपरि ; प्रत्येक छोट-छोट तोले । कस्तूरी  
३ भाण्डे ; इन सबको कूटकर क्षाय में डाल दे  
और पात्र का मुख अच्छे प्रकार बन्द कर जमीन  
में गाढ़ दे । जब अरिष्ट तैयार हो जाय तब  
जमीन से निकाल ले । इसमें चार तोले निर्मली  
के बीज डालकर निर्मल ( साक्र ) कर ले ।  
इसके पानी से ग्रहणी, अरुचि, शूल, श्वास,  
कास, भगन्दर, वातव्याधि, क्षय, वमन, पायबु,

कामला ( पीलिया ), राय प्रकार के कोढ़,  
बवाभीर, मन्दाग्नि, उदरविम्वार, शर्करा,  
पथरी, मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय रोग नष्ट होते  
हैं । यह दशमूलारिष्ट दुर्बलों को हृष्ट-पुष्ट और  
बन्ध्याओं को पुत्र देनेवाला एवम् तेज, शुक्र  
और बल को देनेवाला है ॥२२०-२३६॥

मदनमोदक ।

त्रैलोक्यत्रिजयापत्रं सवीजं घृत-  
भर्जितम् । समे शिलातले परचाच्चूर्ण-  
येदतिचिकणम् ॥ २३७ ॥ त्रिकटु  
त्रिफला शृङ्गी कुष्ठं सैन्धवधान्यकम् ।  
शटी तालीशपत्रं च कटफलं नागके-  
शरम् ॥ २३८ ॥ मेथी जीरकमुग्गं च  
गृहीत्वा स्तल्पभर्जितम् । यावन्त्येतानि  
चूर्णानि तावदेव तदौषधम् ॥ २३९ ॥ ताव-  
त्येव सिता देया यावत्या याति बन्धनम् ।  
मधुना घृतेन मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत् ॥  
२४० ॥ त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कपूरैणाधि-  
वासयेत् । स्थापयेद् घृतभाण्डे च श्रीम-  
न्मदनमोदकम् ॥ २४१ ॥ भक्षयेत्  
प्रातरुत्थाय वातरलेपमनिवारणम् । का-  
सघ्नं सर्वशूलघ्नमामवातविनाशनम् २४२  
सर्वरोगहरं चैतत् संग्रहग्रहणीहरम् । एतस्य  
सतताभ्यासाद् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥  
२४३ ॥ ब्रह्मणः प्रमुखाच्छ्रत्वा वासुदेवे  
जगत्पतौ । एतत् कामस्य वृद्धयर्थं नारद-  
प्रतिपादितम् ॥ २४४ ॥

इति भैषज्यरत्नाकर्यां वाजीकरणा-  
धिकारः समाप्तः ।

बीज सहित भाँग की पत्तियों को घृत में  
भून कर समतल शिल पर खूब मदीन पीस  
ले । सोंठ, मिर्च, पीपरि हड़, बहेड़ा, आबला,



काकडासिगी, कूट, संधानमक, धनिया. कपूर, तालीशपत्र, कायफल, नागवेशर, धोड़ी भूनी हुई मेथी, जीरा और कालाजीरा । प्रायेक सम भाग । संपूर्ण औषधियों के चूर्ण के बराबर भाग का चूर्ण और जितनी से लड्डू बंध सकें उतनी शकर डाले । इसमें शहद और घृत मिलाकर लड्डू बना ले । सुगन्धित करने के लिए दालचीनी, इलायची और तेजपत्र भी छोड़ना चाहिए । घृत के पिकने बतन को कपूर से सुगन्धित करके उसमें मदनमोदक को रखते । मात्रा १ तोला । प्रातःकाल उठकर उसका सेवन करने से बातरोग, कफरोग, खाँसी. सब प्रकार के शूलरोग, आमवात, संग्रहणी और सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं । इसका प्रति दिन सेवन करने में वृद्ध भी तरुण (युवा) हो जाता है । नारदजी ने ब्रह्मा के मुख से सुनकर काम की वृद्धि के लिए जगत्पति भगवान् से कहा था ॥ २३७-२४४ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां वाजीकरणाधिकारः समाप्तः ।

### अथ उरस्तोयाधिकारः ।

उरस्तोय की संप्राप्ति ।

उरस्त्येकतरे पार्श्वे पार्श्वयोर्वाप्यपान्चयः । उरस्तोयगदो नाम प्रायशः प्राणनाशनः ॥ १ ॥ उरसि वक्तोयन्ने । असौ-गदः प्रायेण प्राणनाशनः ।

वक्षस्थल के एक पसवाड़े में या दोनों पसवाड़ों में जलसंचय हो जाता है वही उरस्तोय नामक रोग है । यह प्रायः प्राणनाशक है ॥ १ ॥

उरस्तोय के लक्षण ।

कृच्छ्राच्छ्वासः कफस्रावो नीलावोष्ठी तथा मुखम् । शोथः पादे धरा चुद्रा विपमा वेगवाहिनी ॥ २ ॥ मूत्रालपत्यं भवेच्चापि स ना न शयनक्षमः । स्वास्थ्यं किञ्चित्

समासीनो लभतेऽस्मिन् महामते ॥ ३ ॥

धरा धमनी ।

श्वास-प्रश्वास में कष्ट, कफस्राव, ओठों तथा मुख का रंग नीला हो जाना, पैरों पर सूजन, नाड़ी की गति क्षुद्र, विपम और तीव्र चलनेवाली हो; मूत्र की मात्रा कम हो सोने में कष्ट होता है तथा बैठने में कुछ मुष्ट मिलता है ॥ २-३ ॥

भेषजं श्लेष्महरणं मूत्रस्यापि प्रवर्त्तनम् । उरस्तोये गदे योज्यं विचित्र्यभिपजा सदा ॥ ४ ॥

उरस्तोय रोग में कफनाशक और मूत्र साफ उतारनेवाली औषध विचारकर देनी चाहिए ॥ ४ ॥

पिपासानिग्रहः कार्यः शीताम्भोऽनिलसेवनम् । यन्नतः परिहर्त्तव्यमभिष्यन्धखिलं तथा ॥ ५ ॥

प्यास ( तृषा ) को रोकना चाहिए तथा ठंडा जल, वायुसेवन और सब प्रकार के दधि आदि अभिष्यन्दी पदार्थ त्याग देना चाहिए ॥ ५ ॥

पादावशिष्टं यत्तोयं तत्तृषायां पिबेन्मनाक् । पयसा वा शृतोप्येन शान्तिं कुर्यात् सदा तृषः ॥ ६ ॥

प्यास लगने पर पादावशिष्ट ( औटाते-औटाते जब चौथाई रह जाय वह ) जल थोडा सा पीना चाहिए । पकाया हुआ किञ्चित् गर्म जल पीने से भी तृषा शान्त होती है ॥ ६ ॥

वर्षाभूस्वरसं वापि यवक्षारसमायुतम् । पिबेन्नित्यमुरस्तोयी सायं प्रातरतन्द्रितः ॥ ७ ॥

गदापुरैना ( सांठी ) के रस में जवाखार डालकर सायंकाह और प्रातःकाल नित्य सेवन करना उरस्तोय रोग में हितकर होता है ॥ ७ ॥

सुधानिधि रत्नः ।

पिष्टे पांशुपदप्रगाढममलं वज्रचम्बुना

नैकशः मृतं धानुगतं खट्वीकवलितं तं  
सम्पुटे रोधयेत् । अन्तःस्थं लगणस्य तस्य  
च तले प्रज्वाल्य वह्नि दृढं यस्य ग्राह्य-  
मथेन्द्रकुन्दधवलं भस्मोपरिस्थं शनैः ॥८॥  
तद्वल्लभमितं लवङ्गसहितं प्रातः प्रभुङ्कं  
नृणामूर्ध्वं रेचयति द्वियाममसकृत् पेयं  
जलं शीतलम् । एतद्धन्ति च वत्सराधिक-  
विषं पाण्मासिकं मासिकं, शैलोत्थं गरलं  
मृगेन्द्रकुटिलोद्भूतं च तात्कालिकम् ॥९॥  
क्षीणेषु दुर्बलेष्वेवमविरचेयेषु रोगिषु ।  
रक्तेर्दशांशं विशांशं यथाशास्त्रि प्रयोजयेत् ॥  
१० ॥ सितया मिथितां मात्रां जग्ध्वा  
शीतं पिबेज्जलम् । त्रिवारं वा चतुर्वारं  
दिने मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥ अनेन  
प्रशमं यान्ति वृक्षस्तोयादिका गदाः ।  
तथानुबन्धभृता, ये विना, शस्त्रावचा-  
रणैः ॥ १२ ॥

शुद्ध मारे को समान भाग कसीस तथा  
समान भाग सेंधा नमक के साथ मिलाकर  
घोटे। जब देखे कि पारा निश्चन्द्र हो गया है  
तब यूर के रस में तीन बार घोटकर अच्छी  
प्रकार सुखा ले, जिससे जल का अंश न रहे  
तदनन्तर उसे दो लोहे के कटोरों में सम्पुट कर  
दे और सन्धि को खोड़िया मिट्टी से बन्द कर  
दे। परचात् इस सम्पुट को सावधानी से लवण  
यन्त्र में रखकर दिन भर तीव्र अग्नि दे, जब  
स्वाङ्गशीतल हो जाय तब अत्यन्त सावधानी  
के साथ धीमे से लौहसम्पुट को बाहर निकाल  
ले और सन्धि को खोल दे। जो ऊपरवाले  
लोहे के कटोरे में चन्द्रमा अथवा कुन्द के फूल  
के समान सफेद रंग की औषध लगी हो उसे  
उतार ले। यह सुधानिधि रस है। इसे दो या  
तीन रत्नी की मात्रा में लौह के पूर्ण तथा  
शीतल जल के साथ प्रातः काल सेवन कराने से  
दो ग्रह के बाद विरेचन होता है। इसके सेवन

के परचात् बार-बार शीतल जल पीना चाहिए।  
इसके सेवन से वार्षिक, पाण्मासिक अथवा  
मासिक विष, पर्वत खनिजन्य अथवा स्थावर  
विष नष्ट होते हैं। यदि सिंह आदि ने दण्डा से  
काट लिया हो तो ताकाल इसके अन्त प्रवेश एव  
मलहम आदि प्रयोग द्वारा वह विष भी नष्ट  
किया जा सकता है। क्षीण, दुर्बल एव विरेचन  
के अयोग्य रोगियों में उरस्तोय आदि रोग के  
भास के लिये ३६ से ६६ रत्नी की मात्रा में  
रोगी की शक्ति के अनुसार प्रयोग कराना  
चाहिए। एक मात्रा पौंड के साथ मिलाकर  
शीतल जल के साथ पिलाना चाहिए। इसे  
उरस्तोय तथा सुपुनतोय आदि रोगों में दिन  
में तीन या चार बार देना चाहिए। इसके  
प्रयोग से उरस्तोय आदि तथा अनुबन्धभूत रोग  
शास्त्र कर्म के विना ही नष्ट हो जाते हैं, परन्तु  
यह बात याद रखनी चाहिए कि इस औषध के  
सेवन क समय भी उरस्तोय आदि रोग में बार-  
म्बार जलपान न करावे। विरेचनार्थ ही जलपान  
कराने के लिये कहा गया है ॥ ८-१२ ॥

स्वयथौ मूत्रकृच्छ्रे च कासे श्वासे  
हृदामये । क्षये च गदितं यद्यद् भेषजं  
तत्प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

स्वयथु (सूजन), मूत्रकृच्छ्र, खाँसा, श्वास,  
हृदयरोग और अयरोग में जो-जो औषधियाँ  
कही हैं वे ही उरस्तोय रोग में देना  
चाहिए ॥ १३ ॥

शस्त्रावचारण विधि ।

नैवं व्याधिः शमं यायान्निखिलैर्यदि  
कर्मभिः । कुर्याच्छस्त्रक्रियां तर्हि लघुहस्तो  
भ्रिपग्वरः ॥ १४ ॥

यदि उपर्युक्त सपूर्ण उपायो से भी रोग  
शान्त न हो तो हलके हाथवाले चतुर (शास्त्र-  
क्रिया में निपुण) वैद्य को शास्त्रकर्म करना  
चाहिए ॥ १४ ॥

समुद्रवस्वोर्मध्ये वा महीध्रहृद्योरथ ।  
पर्शुकाश्चनोर्ग्रहदिशोः शस्त्रं नाम त्रिकू-

र्चकम् ॥ १५ ॥ प्रवेश्यावहितो रक्तन  
यकृत् स्त्रीहानमेव च । निःशेषं निर्हरेद्भु  
व्याधिरेवं प्रशाम्यति ॥ १६ ॥

सप्तम और अष्टम, अष्टम, और नवम,  
अथवा नवम और दशम पशुंका अस्थियों के  
मध्य में त्रिकूर्चकनाम राख को प्रविष्ट करके  
उरस ( फेफड़े ) का सम्पूर्ण जल निकाल ले ।  
शस्त्रप्रयोग के समय विशेष सावधानी से काम  
करना चाहिए । जिससे यकृत और प्लीहा पर  
आघात न लग जाय । इस प्रकार शस्त्रचिकित्सा  
करने से रोग शान्त हो जाता है ॥ १५-१६  
उरस्तोय रोग में वर्जनीय ।

ततो व्यायामध्यानं व्यायामं शिशिरं  
जलम् । अहःस्वापं शुचं क्रोधं त्यजेद्वर्ष  
गदोत्थितः ॥ १७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुरस्तोया-  
धिकारः समाप्तः ।

रोग शान्त हो जाने पर मैथुन, मार्ग चलना,  
कसरत, ठंडा जल, दिन में सोना, शोक करना  
और क्रोध करना एक वर्ष तक त्याग देना  
चाहिए ॥ १७ ॥

इति श्रीसरपुमसादीप्रपाठिविरचिताया भैषज्य  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाया व्याख्याया  
उरस्तोयाधिकार समाप्तः ।

अथ विसर्पाधिकारः ।

विरेकवमनालेपसेचनास्रविमोक्षणैः ।  
उपाचरेद्यथादोष विसर्पमविदाहिभिः ॥ १ ॥

प्रारम्भिक अवस्था से ही विसर्प रोग में  
दोषानुसार विरेचन, वमन, प्रलेप, सेचन, रक्त  
मोक्षण तथा अविदाही भोजन का प्रयोग करना  
चाहिए ॥ १ ॥

घातज विसर्प पर लेप ।

रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं

यला । घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्प-  
नाशनः ॥ २ ॥

रास्ना, नीलकमल, देवदार, लालचन्दन,  
मुलेठी और खरैटी, इनको महीन पीसकर घृत  
और दूध में मिलाकर लेप करने से वातज  
विसर्प नष्ट होता है ॥ २ ॥

पित्तज विसर्प पर लेप ।

कसेरुशुद्धाटकपद्मगुन्द्रैः सशैवलैः  
सोत्पलकर्दमैश्च । वस्त्रान्तरैः पित्तकृते  
विसर्पे लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥ ३ ॥

कसेरु, सिंघादा, कमल का मूल ( भसीदा ),  
शरपत की जड़, शेषार ( जल की काई ),  
नीलकमल और कमल की जड़ का कीचड़,  
इनको महीन पीस ले और घृत मिलाकर कपड़े  
पर लगाकर पित्तज विसर्प पर लेप करना  
चाहिए ॥ ३ ॥

प्रपौण्डरीकमज्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः ।  
सयष्टीन्दीवरैः पित्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेप-  
येत् ॥ ४ ॥

पुण्डरिया, मँजीठ, पद्मास, खस, लाल  
चन्दन, मुलेठी और नीलकमल, इन्हें दूध से  
पीसकर लेप करने से वैक्तिक विसर्प शान्त  
होता है ॥ ४ ॥

पित्ते तु पद्मिनीपङ्कं पिष्टं वा शङ्खशैव-  
लम् । गुन्द्रामूलन्तु शुक्तिर्वा गैरिकं च  
घृतान्वितम् ॥ ५ ॥

वैक्तिक विसर्प में पद्मिनी की जड़ की  
कीचड़ अथवा शङ्खचूर्ण और शैवाल, गिलोय  
तथा सीप का चूर्ण अथवा घृतयुक्त गेरू का  
लेप करना चाहिए ॥ ५ ॥

कफज विसर्प पर लेप ।

आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्म-  
विसर्पहा । शिरीषपुष्पकामाची हितालेपा-  
वचूर्णैः ॥ ६ ॥

अमलतास के पत्ते, जिसोदे की छाल, मिरस

के मूल, मकोप; इनका छेप और अथर्व्यांन करना कफज विसर्प रोग में हितकारी है ॥६॥

त्रिफला पद्मकोशीरसमद्गाकरवीरकम् । नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्म-  
विसर्पके ॥ ७ ॥

त्रिफला, पद्माक्ष, खस, लज्जालु ( छुई-मुई ), कनेर की जड़, नरसल की जड़ और धनन्तमूल; इनको पीसकर छेप देने से कफज विसर्प नष्ट होता है ॥ ७ ॥

दोपसम्मिलनाज्जाते परीसर्पे भिषक्  
क्रियाम् । तच्चदोपप्रशमनीं युक्त्या बुद्ध्वा-  
वचारयेत् ॥ ८ ॥

द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज विसर्प रोग में युक्ति-  
पूर्वक दोषों को जानकर उन उन दोषों को शांत्त  
करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

परिपेकः प्रलेपरच शस्यते पञ्चर-  
त्कलैः । पद्मकोशीरमधुकैः सर्वत्रापि च  
चन्दनैः ॥ ९ ॥

बरगद, गूलर, पीपल, पकड़िया और धेत;  
इनकी छाल के काढ़े का अभिषेक और इनके  
कक का प्रलेप विसर्प में हितकर होता है तथा  
पद्माक्ष, खस, मुलेठी और लाल चन्दन, इनका  
अभिषेक और प्रलेप सब प्रकार के विसर्प में  
हितकर होता है ॥ ९ ॥

दशाङ्ग लेप ।

शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्रा-  
द्रयकुष्ठयालैः । लेपो दशाङ्गः सघृतः  
प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारी ॥१०॥

सिरस की छाल, मुलेठी, तगर, लाल चन्दन,  
छोटी इलायची, जटामांसी, हल्दी, दाहहल्दी,  
कूट, गन्धबाला, इन दस द्रव्यों को बराबर  
मात्रा में लेकर घृत के साथ मिलाकर छेप  
करने से विसर्प, कुष्ठ, ज्वर तथा सूजन रोग नष्ट  
होता है ॥ १० ॥

अमृतादि क्वाथ ।

अमृततृणपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदि-

रमसितनेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे । विविधविप-  
विसर्पान् कुष्ठविस्फोटकएदूरपनयति मसूरीं  
शीतपित्तं ज्वरञ्च ॥ ११ ॥

गिलोय, अहूसा की छाल, पटोलपत्र, मोथा,  
सतौना की छाल, खैर की लकड़ी, काला धेत,  
नील के पत्ते, हल्दी और दाहहल्दी इनका काढ़ा  
पीने से अनेक प्रकार के विप-दोष, विसर्प, कुष्ठ,  
विस्फोटक, सुजली, मसूरिका, शीतपित्त तथा  
ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

मूनिम्बवासाकटुकापटोलीफलत्रयैरच-  
न्दननिम्बकैरच । विसर्पदाहज्वरशोथक-  
एदूविस्फोटतृष्णावमिनुत्कपायः ॥ १२ ॥

चिराम्पता, अरूसा की छाल, कुटकी, परवल  
के पत्ते त्रिफला लाल चन्दन और नीम की  
छाल का काढ़ पीने से विसर्प, दाह, ज्वर,  
शोथ, सुजली, विस्फोटक, तृषा और वमन  
निवृत्त होते हैं ॥ १२ ॥

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तचिकित्साया-  
प्याशु हरेद्विसर्पान् । सर्वान् विपकान्  
परिशोधय धीमान् ब्रह्मक्रमेणोपचरेद्यथो-  
क्तम् ॥ १३ ॥

विसर्प रोग में कुष्ठ, विस्फोटक और मसू-  
रिका रोग के समान चिकित्सा करके रोग को  
शीघ्र नष्ट करना चाहिए । सब प्रकार के विसर्प  
के एक जाने पर उसका संशोधन करके व्रथ  
के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १३ ॥

तिक्तवर्गोऽखिलरचैव पानात्रमविदा-  
हकम् । द्रव्यं शोणितसंशुद्धिकरं चन्दन-  
लेपनम् ॥ १४ ॥ अनुद्वेगकरं कर्म विसर्पे  
परमं हितम् । विपरीतं विजानीयात् क्लेशदं  
गददृद्धिकृत् ॥ १५ ॥

सपूर्णां तिक्तवर्गों, अविदाही अत्र पान, रज-  
शुद्धिकारक द्रव्य, चन्दन का लेप और उद्वेग  
नहीं करनेवाले कर्म विसर्प रोग में हितकर होते  
हैं तथा इसके विपरीत कर्म क्लेश देनेवाले और  
रोग को बढ़ानेवाले होते हैं ॥ १४-१५ ॥

कालाग्निरुद्र रस ।

सूताभ्रकान्तलौहानां भस्मगन्धक-  
माक्षिकम् । वन्यकर्कोटिकाद्रावैस्तुल्यं  
मर्द्यं दिनावधि ॥ १६ ॥ वन्यकर्कोटिका-  
कन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा वहिः । भूध-  
राख्ये पुटे पश्चाद्दिनेकं तद्विपाचयेत् ॥ १७ ॥  
दशमांशं विषं योज्यं गुञ्जामात्रन्तु भक्ष-  
येत् । रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन  
विसर्पनुत् ॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं  
प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥

पारो, अत्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, गन्धक,  
स्वर्णमाक्षिक भस्म, इन्हें एकत्र मिला वन्य-  
कर्कोटिका के रस से एक दिन छोटे । तत्परचात्  
वन्यकर्कोटिका के कन्द को खोललाकर उपयुक्त  
चूर्ण भर दे । पुन बाहर मिट्टी का लेप देकर  
भूधरपुट में एक दिन पकावे । शीतल होने पर  
औषध को बाहर निकालकर उसका दसवाँ भाग  
बच्छुनाग मिलावे । मात्रा--१ रत्नी । यह रस  
दश दिन में अर्थात् शीघ्र ही विसर्प को नष्ट  
करता है । अनुपान--पीपल का चूर्ण आधी रत्नी  
और शहद ॥ १६-१८ ॥

विसर्प में पथ्य ।

मुहा मसूराश्चणकास्तुवयो जाङ्गला  
रसाः । नवनीतं घृतं द्राक्षा टाडिमं कार-  
बेल्लकम् ॥ १९ ॥ वेत्राग्रं कुलकं धात्री  
खदिरौनागकेशरम् । लाक्षाशरीपः कर्पूरं  
तिलचन्दनलेपनम् ॥ २० ॥ रक्तशुद्धिकरं  
तिक्तं पानान्नमविटाहि च । अनुद्ध गकरं  
यत्स्यात्तच्च सेव्यं विसर्पिभिः ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विसर्पाधिकारः

समाप्तः ।

मुहा, मसूर, चने, भरहर, जाङ्गल पशु-  
पक्षियों के मांस का रस, मक्खन, घी, अमूर,

अनार, करेला, बेत की कोंपल, पटोलफल,  
आँवला, खैर की लकड़ी अथवा कथा, नाग-  
केशर, जाल, सिरस, कपूर, तिल एवं चन्दन  
का लेप, रक्तशोधक द्रव्य, तिक्तद्रव्य, अविदाहि  
भोजन एवं पेय पदार्थ तथा जो द्रव्य उत्तेजक न  
है उनका विसर्पपीडित को सेवन करना  
चाहिए ॥ १६--२१ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादधिपाठिविरचिताया भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायया व्याख्याया  
विमर्षाधिकार समाप्तः ।

अथ पारदविकाराधिकारः ।

पारदविकारः ।

शुद्धसूतोऽमृतं साक्षादशुद्धस्तु रसो  
विषम् । अयुक्तियुक्तो रोगाय युक्तियुक्तो  
रसायनः ॥ १ ॥ विधिवत् सेव्यमानोऽयं  
निहन्ति सकलामयान् । तस्य मिश्रोपचा-  
रेण भवन्त्येते महागदाः ॥ २ ॥ पीनसो  
नासिकामद्गो दन्तपातः शिरोरुजा ।  
भगन्दरो विसर्पश्च नेत्ररोगो मुखामयाः ॥  
३ ॥ कोठः कण्डूत्वग्वैचर्यं क्षतञ्च नासि-  
कादिषु । कुष्ठोपदंशकाठिन्यं सरुजं फल-  
कोपयोः ॥ ४ ॥ पक्षाघातो ग्रन्थिवातः प्रदा-  
होऽस्थनांश्च दारुणः । जाड्यं मनोविकारश्च  
सर्वे कृच्छ्रतमामयाः ॥ ५ ॥

शुद्ध पारद साघात् अमृत के समान है ।  
अशुद्ध पारद विष के समान है, और विधिहीन  
सेवन करने से रोग उत्पन्न करनेवाला है । विधि-  
पूर्वक सेवन करने से रसायन है । तथा सम्पूर्ण रोगों  
को नष्ट करता है । पारद के मिश्रण का अनुचित  
उपयोग करने से इतन महान् रोग उत्पन्न होते  
हैं—पीनस, नासिकामद्ग ( नाक का बँट जाना ),  
दाँतों का गिर जाना, शिर में शूल, भगन्दर,  
विसर्प, नेत्ररोग, मुखरोग ( मुँह के मसूरे-पृथ

जाना ), चकत्ते, खुजली, शरीर-के रंग का विवर्ण हो जाना, नासिका आदि में घाव हो जाना, कोढ़, अग्रहकोप और इन्द्रिय में कष्ट-युक्त कठिन उपद्रव, पक्षाघात, ग्रन्थिवात, अस्थियों में कठिन प्रदाह ( हड्डियों में जलन ), जहता और मानसिक विकार । ये सब कृच्छ्र-माध्य ( कठिनता में आराम होनेवाले ) विकार हैं ॥ १-२ ॥

अह्नग्रहनि सेवेत वलिं रक्त्रिचतुष्टयम् । शुद्धगन्धादने नास्ति भेषजं किञ्चिद्दुत्तमम् ॥ ६ ॥

। पारे के सेवन से उत्पन्न हुए, रोग में शुद्ध गर्न्धक चार-चार रत्नी प्रतिदिन सेवन करना चाहिए । इसके अतिरिक्त उत्तम भोजन कोई नहीं है ॥ ६ ॥

त्रिफलादि काथ ।

त्रिफलाकटुकाभीरूपटौलामृतपर्पटम् । काथं पीत्वा जयेज्जन्तूरोगं दुष्टरसोद्भवम् ॥ ७ ॥

त्रिफला, कुटकी, शतावरी, परवल, गिलोय और पित्तपापडा; इनका कांदा करके पीने से दुष्ट पारा से उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

सारिवादि काथ ।

सारिवालम्बुपा श्यामा गुडूची च हरीतकी ॥ कटुकी काकमांची च जीवन्ती सशतावरी ॥ ८ ॥ बृहतीफलञ्चामलकं भिल्वं संकाथयेद्भिषक् । अस्य प्रयोगान्नश्यन्ति विकाराः पारदोत्थिताः ॥ ९ ॥

अनन्तमूल, गोरखमुण्डी, श्यामालता, गिलोय, हक, कुटकी, मकोय, जीवन्ती, शतावरी, कटेरी, चावल, बेलगिरी, इनके काथ के प्रयोग से पारदजन्य विकार नष्ट होते हैं ॥ ८-९ ॥

उद्धारो सति दध्यन्नं कृष्णामीनं सजीरकम् । अभ्यद्रमनिलक्ष्मणे तैलैर्नारयण्णादिभिः ॥ १० ॥ अरतौ शीततोयेन

मस्तकोपरिसेचनम् । तृष्णायां नारिकेलोम्बुमुद्गयूपं सशर्करम् ॥ ११ ॥

पारे के सेवन से यदि उद्धार हों तो दही, चावल और जीरकसंस्कृत कृष्णमस्य का सेवन करना चाहिए । यदि वात का सोम हुआ हो तो नारायण तेल आदि की मालिश करनी चाहिए । यदि अरति हो तो मस्तक पर शीतल जल का पल्पिक करना चाहिए । प्यास लगे तो नारियल का जल तथा शर्करायुक्त मूँग का यूप पीना चाहिए ॥ १०-११ ॥

सारिवाद्यवलेह ।

सारिवायाः पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् । तस्मिन् पादाशेषेषु गुडूची शतमूलिका ॥ १२ ॥ विदारी जीवनी-त्रिवृन्मुण्डी च त्रिफला तथा । क्षुद्रैला चोपचीनी च प्रत्येकार्द्रफलं मतम् ॥ १३ ॥ सुपिष्टं निक्षिपेत्तत्र शीते मधु पलाष्टकम् । चौरानुपानयोगेन पिबेत् तोलकसम्मितम् ॥ १४ ॥ प्रमेहारचोपदं-शश्च मूत्र कृच्छ्रं च पीडकाः । नश्यन्ति त्वपरे रोगा रक्तदुष्ट्या भवन्ति ये ॥ १५ ॥ सूतोत्थविकृतिश्चापि सन्देहो नात्र करचन । मुक्त्रश्च सर्वरोगेभ्यो बलवर्णाग्निसंयुतः ॥ १६ ॥ मानवः सिद्धकामोऽस्मात् शीघ्रं भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥

२ सेर सारिवा को २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे चतुर्थांश रोप रहने पर दानकर मिट्टी के पात्र में ढाल दे । फिर गिलोय, शतावरी, विदारीकन्द, जीवती, मुण्डी, त्रिफला, छोटी इलायची, चोपचीनी, प्रत्येक दो-दो तोले । अरुणी तरह घुण करके उसी में ढाल दे । जब पककर जोड़ के समान हो जाय तब ३० तोले शहद भी उसमें ढाल दे । इसे एक तोला की मात्रा में दूध के साथ सेवन करना चाहिए । यह सारिवादि शबबेह प्रमेह, उपद्रव, मज्जट्ट, प्रमेहपिष्टका

और रधिरधिकार से उत्पन्न रोगों को शान्त करता तथा पारद सेवन से उत्पन्न विकारों को निस्सन्देह नष्ट करता है। यह अवलेह सब रोगों से स्वस्थ करके बल, वण और अभिगुम्भ करता है। इस प्रयोग से मनुष्य सिद्ध काम हो जाता है ॥ १२-१७ ॥

पारदविकृतिनाशक अन्य औषधि ।

वातशोणितकुष्ठोक्तं काथगुग्गुलुकादिकम् । सारिवाद्यवलेहं च वातरक्तान्तकं च यत् ॥ १८ ॥ तत्सर्वं योजयेद्वैद्यो ज्ञात्वा व्याधेर्बलावलम् । महारुद्रगुद्वाख्यायं कन्दर्पसारनामकम् ॥ १९ ॥ ब्रणराक्षसतैलं च नाडीव्रणनिसूदनम् । तैलं बृहन्मरीचाद्यं यथायोग्यं प्रकल्पयेत् ॥ २० ॥

वातरक्त एवम् कुष्ठ रोग में वणन किये हुए काथ, गुग्गुलु रस आदि एव सारिवादि अवलेह तथा वातरक्तान्तक का सेवन करना पारदविकार में लाभप्रद होता है। अथवा रोग का बलावल देखकर महारुद्रगुद्वाची, कन्दर्पसार, नाडीव्रणनाशक ब्रणराक्षस तैल और बृहन्मरीचाद्य तैल का यथायोग्य प्रयोग करना चाहिए ॥ १८-२० ॥

पथ्यापथ्य ।

वातरक्ते तथा कुष्ठे पथ्यानि यानि तानि च । शिवतेजोभवे रोगे निर्दिशेत् कुशलो मित्पक् ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां पारदविकाराधिकारः समाप्तः ।

वातरक्त तथा कुष्ठरोग में जो-जो पथ्य बताये गये हैं, वे-वे पथ्य पारा के विकार से उत्पन्न रोग में देने चाहिए ॥ २१ ॥

इति श्रीसत्ययुग्मसाधप्रियाठिविरचितयां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नमणिभिचार्यां व्याख्यायां पारदविकाराधिकारः समाप्तः ।

अथ विस्फोटाधिकारः ।

विस्फोटक की सामान्य चिकित्सा ।

विस्फोटे लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम् । यथादोषवत्तं वीच्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥ १ ॥

विस्फोटक रोग में द्रोप का बलावल देखकर वमन, विरेचन और पथ्य भोजन देना चाहिए ॥ १ ॥

गुद्दूचीनिम्बजकार्यैः खदिरेन्द्रयवाम्बुना कर्पूरत्रिसुगन्धिभ्यां युक्तं सूतं द्विगुञ्चकम् ॥ विस्फोटं त्वरितं हन्याद् वायुर्जलधरानिव ॥ २ ॥

रससिन्दूर, कपूर, त्रिसुगन्धि ( दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात ) इन सबको मिलाकर चूर्ण कर इस चूर्ण को गिलोय तथा नीम की छाल के काथ से अथवा खैर की लकड़ी और इन्द्रजौ के काथ से सेवन करना चाहिए। मात्रा—२ रत्नी। इसके सेवन से विस्फोटक रोग शीघ्र शान्त होता है ॥ २ ॥

वातज विस्फोटक की चिकित्सा ।

द्वे पञ्चमूल्यौ रासना च दार्व्युशीरं दुरालभा । गुद्दूची धान्यकं मुस्तमेपां काथं पिवेन्नरः ॥ विस्फोटान् नाशयत्याशु समीरणनिमित्तकान् ॥ ३ ॥

दशमूल, रासना, दाहहृदी, खस, जवाला, गिलोय, धनियां और नागरमोथा, इनका काढ़ा वातज विस्फोटक रोग को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ३ ॥

पित्तज विस्फोटक की चिकित्सा ।

द्राक्षाकार्मर्यखजू रपटोलारिष्टवासकैः कटुकालाजदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिके ॥ ४ ॥

पैत्तिक विस्फोटक रोग में मुनक्का, गंभारी,

पिडलत्र, परवल के पत्ते, नीम की छाल, भरुसा की छाल, कुटकी, धान की खीरे (खावा) और जशाता; इनके काढ़े में मिथी शक्कर पीना हितकर होता है ॥ ४ ॥

कफजविस्फोटक की चिकित्सा ।

भूनिम्बसत्रावासात्रिकलेन्द्रजवत्सर्कैः ।  
पिचुमर्दपटोलाभ्यां कफजे मधुयुक्  
शृतम् ॥ ५ ॥

चिरायता, वच, भरुसा की छाल, त्रिकला, इन्द्रजौ, कुड़ा की छाल, भीम की छाल और परवल के पत्ते का काड़ा शहद छालकर पीने से कफज विस्फोटक रोग शान्त होता है ॥ २ ॥

सर्वविस्फोटनाशक द्वादशाङ्ग काथ ।

किराततिरुकारिष्टपष्टघाहाम्बुदवासर्कैः ॥  
६ ॥ पटोलपर्पटोशीरत्रिकलाकौटजा-  
न्वितैः । कथितैर्द्वादशाङ्गं तु सर्वविस्फोट-  
नाशनम् ॥ ७ ॥

चिरायता, कुटकी, भीम की छाल, मुखेडी, नागरमोथा, भरुसा की छाल, परवल के पत्ते, पित्तपापड़ा, खस, त्रिकला और इन्द्रजौ, इन चारह औषधों को समभाग लेकर २ तोले का काड़ाकर पीने से सब प्रकार के विस्फोटक शान्त होते हैं ॥ १-७ ॥

विस्फोटव्याधिनाशाय तण्डुलाम्बु-  
प्रयोजितैः । शीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः  
कार्यो विज्ञानता ॥ ८ ॥

विस्फोटक रोग के नाश के लिए इन्द्रजौ को ताण्डुलीक में पीसकर लेप करना चाहिए ॥ ८ ॥

क्षिन्नापटोलभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः ।  
खदिराब्दयुतैः काथो हन्ति विस्फोटक-  
ध्वरम् ॥ ९ ॥

गिलोय, परवल के पत्ते, चिरायता, भरुसा की छाल, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, कथा और मोथा इनका काड़ा पीने से विस्फो-

टक और विस्फोटक से उत्पन्न ज्वर नष्ट होता है ॥ ९ ॥

चन्दनं नागपुष्पं च सारिवा ताण्डु-  
लीयकम् । शिरीषमूलां जातीं लेपः  
स्याद्वाहनाशनः ॥ १० ॥

चन्दन, नागकेसर, अनन्तमूल, शीलाई, सिरम की छाल और चमेला के पत्ते; इनको पीसकर लेप करने से विस्फोटकदाह शान्त होता है ॥ १० ॥

उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं सारिवा-  
द्रयम् । पतेपां लेपनादाशु स्फोटदाहः  
मशाम्यति ॥ ११ ॥

कमल, लाल चन्दन, लोध, खस, अनन्त-  
मूल और काली सारिवा; इनका लेप करने से विस्फोटकदाह शीघ्र शान्त होता है ॥ ११ ॥

रक्तोपहरं यद्यद् यद्यत् पित्तमणाश-  
नम् । सर्वमत्र प्रयोक्तव्यं विविच्य भिषजा  
सदा ॥ १२ ॥

जो जो द्रव्य रक्तोपनाशक तथा पित्तनाशक हो उसका विचारपूर्वक विस्फोटक रोग में प्रयोग करना चाहिए ॥ १२ ॥

पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा मलेप-  
येत् । कालस्फोटं च विस्फोटं सद्यो हन्ति  
सवेदनम् ॥ कफग्रन्थिगलग्रन्थिकर्णग्रन्थी-  
श्च नाशयेत् ॥ १३ ॥

जियापोता की मीर्ग को जल में पीसकर लेप करने से वेदनायुक्त कांछे फोड़े और विस्फोटक शीघ्र नष्ट होते हैं । यह लेप कफ की गोंठ, गले की गोंठ और कान की गोंठ को भी नष्ट करता है ॥ १३ ॥

शिरीषमूलमक्षिप्राचव्यामलकयष्टिकाः ।  
सजातीपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवल-  
ग्रहाः ॥ १४ ॥

सिरस की जड़ की छाल, मँजीठ, श्वय-  
कर्णिका, मजेरी और चमेला के पत्ते, इनको



पीसकर और शहद मिलाकर कपल धारण करने से मुँह के दाँले नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

शिरोपीशीरनागाहृत्सितिलेपनाद्-  
दृतम् । विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति, न  
संशयः ॥ १५ ॥

सिरस की छाल, खम, नागकेशर और  
हंस इनका लेप करने से विषर्प रोग तथा  
विषविस्फोटक रोग अवश्य शान्त होता है ॥ १५ ॥

विस्फोटक रोग में पथ्य ।

विरेचनं । छर्दनलेपलङ्घनं पुरातनाः

पथिकशालयो, यवाः । मुद्गा मसूरारचणका  
मकुष्ठका धन्वामिपं गव्यघृतं कठिल्ल-  
कम् ॥ १६ ॥ वेत्राग्रमापाढफलं पटोलकं  
ज्योतिष्मतीनिम्बदलानि चन्दनम् । तैलं  
सिताभ्रं तिललेपनं घनं वालं च विस्फोट-  
गदं विनाशयेत् ॥ १७ ॥

विरेचन, वर्मन, लेप और उपवास आदि  
कर्म एवं पुराने साँठी क चावल, शालि चावल,  
जी, मूँग, मसूर, चना, सोंठ, महदेश के जौओं  
का मांस, गौ का घृत, करेला, वेत, की कौपल,  
पलाश का फल, परवल, मालकांगनी, नीम के  
पत्ते, लाल चन्दन, तिलतेल, कपूर, तिल का  
गहरा लेप और सुगन्धवाला; ये सब विस्फोटक  
रोग को नष्ट करते हैं ॥ १६-१७ ॥

विस्फोटक रोग में अपथ्य ।

स्वेदं व्यायामं व्यायामं क्रोधं गुर्वन्न-  
मातपम् । वमिवेगं पत्रशाकं प्रवातं स्वपनं  
दिवा ॥ १८ ॥ ग्राम्यौदकानूपमांसं विरु-  
द्धान्यशनानि च । तिलान् मापान्  
कुलत्थांश्च लवणाम्लकटूनि च ॥ १९ ॥  
विदाहि रूक्षमुष्णश्च विस्फोटी परिवर्ज-  
येत् ॥ २० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विस्फोटा-

धिकारः समाप्तः ।

स्वेद, मधुन, व्यायाम, क्रोध, भारी भोजन,  
धूप खाना, घमन का वेग, पत्रशाक, वायुमेवन,  
दिन में सोना, ग्राम्य, त्रौदक एवं आनूप मांस  
विरुद्ध भोजन, तिल, उद्द, कुलत्थ, नमक,  
थम्ल एवं कटुरस विदाही, रूक्ष तथा गरम  
भोजन विस्फोटक के रोगी को त्याग करना  
चाहिए ॥ १८-२० ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां ।  
विस्फोटाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्मरोन्मादाधिकारः ।

स्मरोन्माद का निदान ।

उन्मादो दयिताप्राप्तेः शुक्रस्य विकृते-  
रपि । जननेन्द्रियदोषाच्च वैगुण्यादनि-  
लस्य च ॥ पुरुषस्य तथा नार्याः स्मरोन्माद-  
इतीरितः ॥ १-॥

प्रिय के प्राप्त न होने पर, वीर्य के विकार  
से, जननेन्द्रिय के दोष से और वायु के विकार  
से पुरुष और स्त्री दोनों के जो उन्माद होता है  
उसे स्मरोन्माद कहते हैं ॥ १ ॥

स्मरोन्माद के लक्षण ।

स्तब्धता वेपनं श्वासः प्रलापः  
पाण्डुता तथा । चिन्ता धैर्यं रोदनञ्च  
लक्षणं स्मरजे मदे ॥ २ ॥ चक्षुरागस्तदनु  
मनसः सद्गतिर्भावना च व्यावृत्तिः स्या-  
त्तदनु विषयग्रामतश्चेतसोऽपि । निद्राच्छे-  
दस्तदनु तनुता निस्त्रपत्वं ततोऽनून्मादो  
मूर्च्छा तदनु मरणं स्युर्दशाः प्रक्रमेण ॥ ३ ॥

स्मरोन्माद में जकड़, जाना, कर्पना, श्वास  
बंद जाना, प्रलाप, पाण्डुता ( पीलापन ),  
चिन्ता, अधैर्य ( घबराना ), रोना, आँसुओं का  
जाल हो जाना, मन का व्याकुल रहना, शरीर  
की क्रियाओं में कमी होना, मन का  
विषय-वासनाओं में दीवना, निद्रा की कमी,

शरीर का कृश हो जाना तथा मूर्च्छा आना आदि विकार होकर रोगी की मृत्यु भी हो जाती है ॥ २-३ ॥

प्रियाणामथ काम्यानां वस्तूनां सह-  
सैव हि । असद्भावान्नराणां वासंक्रान्तानां  
स्मरेण च ॥ जायते हि स्मरोन्मादः प्रिय-  
स्याप्राप्तिहेतुतः ॥ ४ ॥

प्रिय एवं इच्छित वस्तुओं के सहसा अभाव से अथवा कामाक्रान्त पुरुषों को प्रिय या प्रिया की अप्राप्ति से स्मरोन्माद पैदा हो जाता है ॥४॥

प्रियमेलनमेवैकं स्मरोन्मादस्य भेषजम् ।  
उन्मादो यत्कृते तत्र क्रोधोत्पादनमेव  
वा ॥ ५ ॥

स्मरोन्माद ( कामोन्माद ) की एक यही ओपधि है कि प्रियजन से या प्रियतम से मिला दे । अथवा प्रिय वस्तु की प्राप्ति करा दे या जिसके कारण उन्माद पैदा हुआ हो उस पर किसी प्रकार क्रोध उत्पन्न करा दे ॥ ५ ॥

**अभयादिचूर्ण**

अभया त्रिवृता द्राक्षा कुटजस्य फलं  
वचा । इन्द्रवारुणिकामूलं पिप्पली गज-  
पिप्पली ॥ ६ ॥ सुरप्रियं विषा वह्निः  
शशाङ्कः सूर्य एव च । एतच्चूर्णं पिबेन्नित्यं  
स्मरोन्मादनिवृत्तये ॥ ७ ॥

हृद, निसोत, मुनका, इन्द्रजौ, वच, इन्द्रायण की जड़, पीपरि, गजपीपरि, कवासचीनी, अतीम, चीता की जड़, कपूर और घाक की जड़, इनके सम भाग पूर्ण का नित्य सेवन करने से कामोन्माद शान्त होता है ॥ ६ ७ ॥

स्मरोन्मादापहा प्रोक्ता सेवितर्तहरी-  
तकी ॥ ८ ॥

अनुषों के अनुमार अनुपान-भेद से हृद का ( रसायनाधिकारोत्तर अतुहरीतकी का ) सेवन करने से कामोन्माद निवृत्त होता है ॥ ८ ॥

मेदोद्वेगपेजं यच्च यत् कफस्य निवा-

रकम् । स्मरोन्मादे प्रयोक्तव्यं तत्तद्वुद्ध्वा  
भिपगवरैः ॥ ९ ॥

मेद को हरण करनेवाली तथा कफनाशक ओपधियों का मोन्माद में दोषानुसार विचारकर देना चाहिए ॥ ९ ॥

हितं प्रकीर्तितं चात्र शुक्रमेहघ्नमौष-  
धम् ॥ १० ॥

शुक्रमेहनाशक ओपधियाँ भी कामोन्माद में हितकर कही हैं ॥ १० ॥

स्मरोन्माद में पथ्य ।

वातानुलोमनं यच्च सुपाच्यं वह्नि-  
दीपनम् । अत्रान्नं योजयेत् प्राज्ञो विपरीतं  
विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्मरोन्मादा-  
धिकारः समाप्तः ।

वातानुलोमनकारी तथा जल्दी पचनेवाला एवं अभिन दीपन करनेवाला अन्न देना चाहिए तथा इसके विपरीत पदार्थों का त्याग करना चाहिए ॥ ११ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिधिरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाय्यां व्याख्याया  
स्मरोन्मादाधिकारः समाप्तः ।

**अथ गदोद्वेगाधिकारः ।**

गदोद्वेग की परिभाषा ।

विना व्याधिं व्याधिशाङ्का गदोद्वेग  
इतीरितः पदार्थत्वाभाववच्चापदार्थ-  
गदश्च सः ॥ १ ॥

जिस प्रकार विना पदार्थ की उपस्थिति के भी उस पदार्थ के अस्तित्व का अनुभव करना उसी प्रकार विना रोग के रोग की शंका करना ( रोगी समझता है मैं बीमार हूँ ) इसी को गदोद्वेग रोग कहा है ॥ १ ॥

अपदार्थगद का निदान ।

कायेन मनसा मूयान् श्रमः शोको  
बलक्षयः । नैराशयं मानहानिश्च गदो-  
द्देगो महाभयम् ॥ २ ॥ दुरदृष्टं बीजदोषः  
सत्त्वस्याभाव एव च । अपदार्थगंदस्यैते  
हेतवः कथिता बुधैः ॥ ३ ॥

शारीरिक या मानसिक श्रम, शोक, बल-  
क्षय, निराशा, मानहानि (कहीं अपमान हुआ  
हो), दैवदोष, बीजदोष और श्रम के अभाव  
से अपदार्थगद (गदोद्देग) रोग उत्पन्न होता  
है ॥ २-३ ॥

गदोद्देग के लक्षण ।

अद्भुतस्य गदास्यास्य लक्षणान्यद्भु-  
तानि च । कोऽप्येवं मन्यते नूनमुदरं  
भुजगोऽविशत् ॥ ४ ॥ कोष्ठे भ्रमत्यसौ  
नित्यं भुङ्क्ते यद्भुज्यते मया । निर्यास्यति  
पथा केन केनोपायेन नङ्क्ष्यति ॥ ५ ॥  
किं विधास्यति ना जाने दश्येवाहं  
दुरात्मना । कोऽपि वा मनुते भेको ममैको  
मूर्ध्नि संस्थितः ॥ ६ ॥ विघट्टयति मस्तिष्कं  
मारयिष्यति मां ध्रुवम् । कोऽपीत्थं चिन्त-  
येच्चित्रं कायः काचमयो मम ॥ ७ ॥  
सञ्जातोऽयमतो रक्ष्यः सदाघातात् प्रयत्नतः ।  
इत्येवं बहुरूपाभिव्यर्थचिन्ताभिराकुलः ॥  
८ ॥ अपदार्थगदी शुष्येत् सदा भीतः सदा  
सुखी । बहुधा बोधितोऽप्येव सान्त्वितोऽपि  
पुनः पुनः ॥ ९ ॥ चित्ताद् भ्रमं दूरीकर्तुं  
न शक्नोति न साध्वसम् । यश्चास्य  
कथयेद्भ्रान्ति तस्मै द्रुघात नित्यशः ॥ १० ॥  
प्रीयते च गदोद्देगी व्याधेः सत्त्वात्व-  
वादिनि । गदोद्देगवता कोष्ठे कस्मिंश्चि-  
दनुभूयते ॥ ११ ॥ सुतीव्रा वेदना प्रायः

पाककोष्ठे विशेषतः । जिह्वा स्यात् कफ-  
लिप्तास्य पूतिः श्वासो निरेति च ॥ १२ ॥  
उत्क्लेशश्च तथा वान्तिरिथश्च जीर्णलक्ष-  
णम् । प्राखर्यं स्पर्शशक्तेश्च पाण्डुत्वमुदरा-  
मयः ॥ १३ ॥ हृदि सांघातिको व्याधिः केन  
वाप्यनुभूयते । गदोद्देगवतान्येन पुरुषत्वस्य  
संक्षयः ॥ १४ ॥ ज्वरः सततकोऽन्येन  
दुष्प्रतीकार्य एव च । किमाश्चर्यं वेप-  
नाद्यं जायते च तदा तदा ॥ १५ ॥ इत्थं  
बहुविधाकारा व्याधयः कल्पनाकृताः ।  
भ्रमरूपा प्रजायन्ते निःसत्त्वानाममेद-  
साम् ॥ १६ ॥ शक्यन्ते व्याधयो वक्तुं  
नैते निरवशेषतः । बुद्धिमद्भिर्लक्षणीया  
यथास्तं दोषलक्ष्म च ॥ १७ ॥ प्रायशः  
षोडशदार्वाद् च पञ्चाशतः परम् ।  
व्याधिरेष पट्टश्येत हेतुस्तत्र मनोगतिः ॥  
१८ ॥ मासि मासि रजःस्त्रावात् सर्वे  
शुध्यन्ति घातवः । अतः स्नायुगदः स्त्रीणा-  
मेव प्रायो न जायते ॥ १९ ॥

यह रोग अद्भुत है और इसके लक्षण भी  
अद्भुत हैं । कोई रोगी यह समझता है कि पेट  
में साँप बैठा है, जो कोष्ठ में धूमता है और  
जो कुछ में पाता हूँ उसे खा जाता है । वह  
किस रास्ते से निकलेगा और किस उपाय से  
मरेगा ? क्या होगा ? मुझे वह पापी काट तो  
न लायेगा ! कोई समझता है कि मेरे सिर में  
मेंढक बैठा है जो मेरे मस्तिष्क को फोड़ता है,  
वह मुझे अवश्य मार डालेगा । कोई इयत्ति  
इस प्रकार मोघता है कि मेरा शरीर काच का  
यना हुआ है, इसलिए इसकी सदैव ही आघात  
( चोट-घका ) से रक्षा करनी चाहिए । इस  
प्रकार अनेक प्रकार के रोगों की आशंका से  
व्यर्थ चिन्तित होता है और रोगी सदैव भय-  
भीत और दुखी रहता हुआ मूरता चलता जाता

है। बहुधा बार-बार सांत्वना देने पर रोगी को शान भी हो जाता है। चित्त से भ्रम दूर होने की कोशिश करने पर भी थोड़ी देर को भ्रम दूर होकर फिर हो जाता है। यदि उससे कहा जाय कि यह रोग तुम्हें नहीं है तो वह उस व्यक्ति से वैर करने लगता है। रोगी अपने अनुकूल कहनेवाले से ही प्रसन्न रहता है। गदोद्वेग का रोगी कभी कभी पेट में दर्द का अनुभव करता है। प्रायः आमाशय में तीव्र वेदना होती है। जीभ कफ से लिपी रहती है और श्वास में दुर्गन्ध भी आती है। उत्क्लेश (उपकाङ्क्ष्यो) और वमन होना इस रोग के पुराने होने के लक्षण हैं। स्पर्शशक्ति में खरता, पीलापन और उदरामय भी हो जाता है। कोई २ रोगी हृदय में सांघातिक व्याधि का और कोई पुरुषत्व का लय तथा कोई रोगी तीव्र चढ़े हुए ज्वर का अनुभव करता है और बारबार कापता है। श्रोज और बुद्धिहीन रोगियों के इसी प्रकार की बहुत सी भ्रमरूप कल्पना की हुई व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं। सब व्याधियों का वर्णन करना कठिन है, अतः बुद्धिमान् दोषानुसार लक्षणों से जान सकता है। यह रोग प्रायः सोलह वर्ष से पहिले और पचास वर्ष के बाद नहीं होता है। इमकः कारण मन की गति ही है। स्त्रियों की सब भातुणें प्रतिमास रजःस्राव होने के कारण शुद्ध हो जाती हैं, इसलिये स्त्रियों के यह रोग नहीं होता है ॥ ४-१६ ॥

गदोद्वेग की संप्राप्ति ।

मनसोऽत्यन्तदौर्बल्यान्मस्तिष्कस्याति-  
सम्भ्रमात् । स्त्रीणामतिप्रसङ्गाच्चध्वजभङ्गा-  
त्तथैव वा । मिथ्याकाल्पनिको व्याधिर्ग-  
दोद्वेग इति स्मृतः ॥ २० ॥

मन तथा मस्तिष्क की दुर्बलता के कारण अत्यन्त मैथुन और ध्वजभङ्ग से पैदा होनेवाली मिथ्या काल्पनिक व्याधि को गदोद्वेग कहते हैं। अर्थात् इसके रोगी को वस्तुतः कोई व्याधि नहीं होती, पर हृदय और मस्तिष्क आदि की

दुर्बलता के कारण वह अपने को अनेक व्याधियों से ग्रस्त समझता है ॥ २० ॥

सान्त्वनाश्वासनस्नेहहर्षणैः परिचर्यया ।  
अपदार्थगुदाक्रान्तं चिकित्सेत् तर्पणेन  
च ॥ २१ ॥

अपदार्थ ( गदोद्वेग ) रोग से पीड़ित मनुष्य की सांत्वना, आश्वासन प्यार, प्रसन्नता की बातें सेवा और तृप्त करनेवाले उपायों से चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २१ ॥

पाचनं वह्निकृद् यच्च यद् वातस्यानु-  
लोमनम् । पित्तहृन्नातिकफकृत् तद्  
युञ्जघादत्र भेषजम् ॥ २२ ॥

पाचक, जठराग्नि को तेज करनवाली, वायु को अनुलोमन करनेवाली, पित्तनाशक और अधिक कफ न करनेवाली औषधियाँ इस रोग में देनी चाहिए ॥ २२ ॥

वातव्याधुदितान्यत्र तैलानि च  
घृतानि च । युक्त्या युञ्ज्याद्भिषक् प्राज्ञो  
भेषजं च रसायनम् ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि वातरोग में कहे हुए तेल, घृत और रसायन इस रोग में युक्तिपूर्वक सेवन करावे ॥ २३ ॥

गदो मिथ्येति नु वदेद्भिषगस्य कटा-  
चन । स यद्भवीति वृत्तान्त मृगुयादर-  
धानवान् ॥ २४ ॥ ह्यस्तिगधं च पानान्नं  
मुपाच्यं देहपोषणम् । अपदार्थगटे प्रोक्तं  
शुभायान्यन्नशर्मणे ॥ २५ ॥

गदोद्वेगी को कभी यह न कहना चाहिए कि यह रोग मिथ्या ( झूठा ) है। जो कुछ रोगी कहे उसको सावधानी से सुनना चाहिए। हृदय को हितकारक, चिकने, अरुचे प्रकार पचनेवाले, तथा देह पुष्ट करनेवाले अन्नपान गदोद्वेग में कल्याणकारक कहे हैं। अन्य प्रयोग हितकर नहीं हैं ॥ २४-२५ ॥

यमान्यादिचूर्ण ।

यमानो पिप्पली शुण्ठी चातुर्जातं फल-  
त्रयम् । मुशली चोरपुष्पी च वाजिगन्धा  
पुनर्नवा ॥ २६ ॥ अष्टवर्गस्तुगाक्षीरी  
मुरागुरुवलावलाः । उशीरोत्पलमांस्यश्च  
विदारी चन्दनद्वयम् ॥ २७ ॥ शतपुष्पा  
मधुरिका सर्वाण्येतानि चूर्णयेत् । पाययेत्  
पयसालोज्य शर्करासलिलेन वा ॥ २८ ॥  
गदोद्वेगं वह्निमान्द्यमुन्मादं वातजान्  
गदान् । पित्तोत्थितानपि क्लैब्यं चूर्णमेतद्  
विनाशयेत् ॥ २९ ॥

अजवायन, पीपरि, सोंठ इलायची, दालचीनी,  
तेजपात, नागकेशर, हड़, बहेडा, आंवला,  
मुसली, चोरपुष्पी, असगन्ध, गदापुरैना (सोंठी),  
अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा,  
ऋद्धि, वृद्धि, काकोनी, क्षीरकाकोली), वंश-  
लोचन, मुरामासी, अगर, खरैटी, रस  
नील कमल, जटामांसी, विदारीकन्द, लाल  
चन्दन, सफेद चन्दन, सोया के बीज और  
सोंफ इनको सम भाग लेकर चूर्ण बनाये । दूध  
में घोलकर अथवा शकर और जल में मिलाकर  
इसका सेवन करे । यह चूर्ण गदोद्वेग, अग्नि-  
मान्द्य, उन्माद, वात और पित्त के रोग तथा  
नपु मयता को नष्ट करता है ॥ २६-२९ ॥

क्षीरोत्थिरस ।

रसं गन्धकमभ्रं च शिलाजत्वयसी  
शुभाम् । रसाद्भ्रमानं स्वर्णं च गृहकन्या-  
म्बुना भिषक् ॥ ३० ॥ मर्हयित्वा वटीः  
कुर्यात् कलायपरिमाणतः । त्रिफलाजल-  
योगेन प्रातः सायं च पाययेत् ॥ ३१ ॥  
गदोद्वेगं महाघोरं रक्त्रपित्तं क्षतं क्षयम् ।  
प्रमेहं वातजान् रोगान् कामलां च हली-  
मारम् ॥ ३२ ॥ पाण्डुतां च ज्वरं ज्रीर्ण-

मर्शांसि निखिलानि च । रसः क्षीरोदधि-  
नाम निहन्यान्नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, अन्नकभस्म, शिलाजीत,  
लोहभस्म और वंशलोचन सब सम भाग ।  
पारा से आधी स्वर्ण भस्म । सबको एकत्र कर  
धीकुवार के रस से घोटकर एक-एक रत्ती की  
गोलियां बना ले । त्रिफला के जल से प्रात  
और सायंकाल इसका सेवन करना चाहिए ।  
यह क्षीरोदधि नाम का रस महाघोर गदोद्वेग,  
रक्त्रपित्त, क्षत, क्षयीरोग, प्रमेह, वातरोग  
कामला, हलीमार, पाण्डुरोग, जीर्णज्वर और  
सब प्रकार की बकासियों को निःसन्देह नष्ट  
करता है ॥ ३०-३३ ॥

गन्धराजतैल ।

मालती मल्लिका जाती केतकी  
यूथिका शमी । कदम्बः सहकारश्च  
चम्पकाशोकपाटलाः ॥ ३४ ॥ पुष्पाण्येषां  
यथालाभं तुलामानानि चाहरेत् । द्रोणा-  
म्बुना विनिष्काश्य पादशिष्टेष्वतारयेत् ३५  
काथमेतं रसं चापि पुण्डरीकस्य तत्समम् ।  
प्रस्थमानेन तैलेन पचेत् कल्कानिमां-  
स्तथा ॥ ३६ ॥ वचा शैलेकुष्ठैला मुरा-  
मांसी शतावरी । देवदारु वला रास्ना  
शताहा चन्दनद्वयम् ॥ ३७ ॥ कुंकुमा-  
गुरुशटयश्च कक्षोलोणीरमारिवाः । ग्रन्थि-  
पण्यम्बुमृच्छद्यामाश्चाम्पेयसहिताइति ३८  
साधुसिद्धं परिष्णाय तैलं समवतारयेत् ।  
शीतीभूते क्षिपेचात्र शीतशिष्टकमोदिनी ॥  
३९ ॥ गन्धराजाभिधं तैलमेतद् व्याध्य-  
मिशङ्कनम् । वातामयान् घोररूपान् का-  
र्श्यमग्निक्षयं तथा ॥ ४० ॥ क्लैब्यं च  
शुक्रमेहं च स्नायुरोगांश्च नागयेत् ।  
वालानां पुष्टिर्हृद्येदं गर्भसंस्थापनं परम् ४१  
इतिभैषज्यरत्नावल्यां गदोद्वेगा-

धिकारः समाप्तः ।

मालती, मोतिया ( बेला ), चमेली, केतकी, जूही, शमी, कदम्ब, आम, चम्पा, अशोक और पादर; इन सबके फूल समभाग मिलित ५ सेर, काथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले, अवशेष काथ ६ सेर ३२ तोले । पुंजरिया का रस ५ सेर ३२ तोले । तिल तेल १२८ तोले । कल्क के लिये वच, छारछुरीला, कूट, छोटी इलायची, मुरामांसी, शतावरी, देवदारु, बरियारा ( खरेटी ), रास्ना, सौंफ, लाल चन्दन, सक्ते चन्दन, केसर, अगार, बचूर, कंकोल, खस, अनन्तमूल, गठि-वन, मोथा, काली सारिवा और चम्पा के फूल; सब मिलित ३२ तोले यथाविधि; सिद्ध कर नीचे उतार ले । शीतल हो जाने पर कपूर, छारछुरीला और कस्तूरी अनुमान से छोड़कर मिला ले । व्याधियों को नष्ट करनेवाला यह गन्ध-राज तेल मालिश करने से प्रचण्ड वातरोग, कुशता, अग्निमान्द्य, नपुंसकता, शुक्रप्रवह और स्नायुरोगों का नष्ट करता है । बालकों को पुष्ट करनेवाला तथा बच्चों के गर्भ स्थापन करनेवाला है ॥ ३४-४१ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविराचिताया मैपज्य-रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायी व्याख्यायां गदोद्देश्याधिकारः समाप्तः ।

### अथ तत्त्वोन्मादाधिकारः ।

स्नायुस्वैर्यकरं यद्यत् तथा वातानु-लोमनम् । भेषजं पानमन्नं च तत्तदत्र प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

स्नायुओं को स्थिर करनेवाले तथा वायु को अनुलोमन करनेवाले औषध और अन्न-पान तत्त्वोन्माद रोग में देना चाहिए ॥ १ ॥

श्रीखण्डादिचूर्णं ।

श्रीखण्डं सारिवां श्यामां मुशलीं मधुकं विडम् । फलत्रयं निशाद्वन्द्वमुत्पलं नाग-केशरम् ॥ २ ॥ मांसीमिन्दुरकं बालमुशीरं गिरिमृत्तिकाम् । बलां नागवलां चैव

भिपगेकत्र चूर्णयेत् ॥ ३ ॥ धारोप्योनैव पयसा शाणमस्य प्रपाययेत् । अनेन नाश-मायान्ति तत्त्वोन्मादादयो गदाः ॥ ४ ॥

सफेद चन्दन, अनन्तमूल, काली सारिवा, मुशली, मुलेठी, बिड़ नमक, हड, बडेहा, श्राँवला, हल्दी, दाहहल्दी, नील कमल. नागकेशर, जटा-मांसी, कांस की जड़, सुगन्धवाला, खस, गेरू, खरेटी और गगेरन ; इन सबको समभाग लेकर चूर्ण बनावे । ४ मासे चूर्ण धारोप्य दूध के साथ पीना चाहिए । इससे तत्त्वोन्माद आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ २-४ ॥

चैतन्योदयरस ।

हेमाश्रं मौक्तिकं सूतं गन्धकं जतु-कायसी । तुगाक्षीरीं शशाङ्कं च भावयित्वा वराम्भसा ॥ ५ ॥ रक्किमाना वटीः कृत्वा ह्यायायां परिशोपयेत् । शतावर्षम्भसा शान्त्यै तत्त्वोन्मादस्य पाययेत् ॥ ६ ॥

सुवर्णभस्म, अश्रकभस्म, मोती की भस्म, पारा, गन्धक, लाख, लोहभस्म, वंशलोचन, और कपूर; इनको सम भाग लेकर त्रिफला के जल की भावना दे और एक-एक रत्नी की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा ले । शतावरी के रस के साथ इसका सेवन करने से तत्त्वोन्माद शान्त होता है ॥ ५-६ ॥

शतधातघृताभ्यङ्गोऽन्ममे च मधुसर्पिणी । आज्यं सलिलमिश्रं च ब्रह्ममोहे परौ-पधम् ॥ ७ ॥

ब्रह्ममोह ( तत्त्वोन्माद ) रोग में मी घार के धोये हुए घृत की मालिश. असमान पुन और शहद का अथवा घृत और जड़ का सेवन करना उत्तम है ॥ ७ ॥

कदाचित् ताडनाद्यैश्च ब्रह्ममोहः प्रशा-म्यति । गदे त्वमकृते तस्मिन् प्रहार एव भेषजम् ॥ ८ ॥

कभी-कभी ताड़ना करने में भी तत्त्वोन्माद

शान्त हो जाता है । तत्त्वोन्माद में ओषधियों से लाभ न होने पर मुष्टि आदि का प्रहार ही ओषधि है ॥ ८ ॥

अपस्मारहरं यच्च वातव्याधिहरं तथा ।  
घृततैलादिकं सर्वं ब्रह्ममोहे प्रशस्यते ॥ ९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां तत्त्वोन्मादा-  
धिकारः समाप्तः ।

ब्रह्ममोह ( तत्त्वोन्माद ) में अपस्मारनाशक तथा वायुरोगनाशक घृत और तेल आदिक सब श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ ९ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्यां ब्रह्मभाभिधाय्यां व्याख्यायां  
तत्त्वोन्मादाधिकारः समाप्तः ।

अथ अचलवाताधिकारः ।

अचलवात रोग का स्वरूप ।

ययैव संस्थया जन्तुर्मोहमाप्नोति चेत्  
ततः । परतोऽपि तथा तिष्ठेत् सापि चेत्  
क्लेशकृद् भृशम् ॥ १ ॥ स गदोऽचलवा-  
ताख्योऽचलसंस्थानमेव च । तदवस्थय-  
गदश्चापि तथैवापरिवर्त्तकः ॥ २ ॥ वाता-  
गतेः समस्थानात् पूर्वभावस्थितेस्तथा ।  
तथैवापरिवृत्तेश्च मतं नाम चतुष्टयम् ॥ ३ ॥

जिस अवयव की वायु स्थिर हो जाय वही स्थान मूढ ( चेतनानारहितमा ) हो जाता है । जब तक वह वायु वहाँ ठहरता है रोगी अव्यक्त रह पाता है । शरीर के अवयवों को अचल करनेवाला अचलवात नामक रोग है । इससे क्रिया रुक जाती है । वायु के समस्थान पर आने पर शरीर का अवयव फिर पूर्वस्थिति पर आ जाता है । अचलवात, अचलसंस्थान, अव्यक्तगद और अपरिवर्त्तक इन चार नामों से प्रसिद्ध है ॥ १-३ ॥

अचलवात का निदान ।

चिन्तनात् क्षीणधातुत्वाद्वात् सत्त्व-  
स्य संक्षयात् । वीजदोषवशाच्चैव जायते-  
ऽपरिवर्त्तकः ॥ ४ ॥

अचलवात रोग चिन्ता करने से, धातु के क्षीण होने से भय से, सत्त्व ( ओज ) के क्षय से और वीर्यदोष से उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

अचलवात के लक्षण ।

स्पर्शहानिरचेष्टत्वं पेशीनां दृढता तथा ।  
मूर्च्छनञ्च विनाक्षेपं चिह्नान्यपरिवर्त्तके ॥  
५ ॥ असामान्यं गदस्यास्य लिङ्गं प्राक्  
संस्थया स्थितिः । कदाचिच्छ्वासमयस्त्वं  
धमन्याः क्षुद्रता तथा ॥ ६ ॥ पूर्वरूपं  
विना व्याधिः सहैव प्रकाशते । ग्रीवा-  
दाढ्यं शिरःपीडा कदाचिच्चलचित्तना ॥ ७ ॥  
पूर्वरूपत्वेन प्रकाशते इति शेषः ।

शरीर में स्पर्श का अनुभव न होना, क्रिया-  
नाश, मांसपेशियों की कठोरता, विना आक्षेप  
के मूर्च्छा होना आदि असाधारण लक्षण अप-  
रिवर्त्तक रोग की पहली स्थिति में होते हैं । कभी,  
श्वास-संस्था बढ़ जाना, नाड़ी की क्षुद्रता आदि  
लक्षण भी होते हैं । साधारणतया विना किसी  
पूर्वरूप के अकस्मात् ही रोग प्रकट होता है ।  
कभी-कभी पूर्वरूप में गर्दन की कठोरता, शिर  
में पीडा और चित्त की अचलता आदि लक्षण  
भी होते हैं ॥ १-७ ॥

यथा गदवत्तद्विचिन्तं प्रसन्नमवतिष्ठते ।  
सर्वथा तद्विधातव्यं तद्धि मुख्यं चिकि-  
त्सितम् ॥ ८ ॥

अचलवात रोग में जिस प्रकार रोगी का  
चित्त प्रसन्न रहे वही विधान करना चाहिए ।  
यही मुख्य चिकित्सा है ॥ ८ ॥

शीर्षिणं गीताम्बुसेकरच चन्दनादि-  
मलेपनम् । तथा मेषीपयःपानं विषेयं  
मृदुरंजनम् ॥ ९ ॥

शिर पर ठंडा पानी का तरेडा देना, चन्दन का लेप करना, भेड़ का दूध पीना और कोमल जुलाब देना अचलवात में हितकारी है ॥ ६ ॥

हिंम्वाद्य चूर्ण ।

हिंमूचन्दनशीतांशुदारुशनिशानि-  
शाः । फलत्रयमुशीरं च मधुकं मधुकं  
पुराम् ॥ १० ॥ सञ्चूएयैकत्र पयसा पि-  
वेच्छीताम्बुना तथा । अनेनाचलवाताख्यो  
याति नाशं गदो ध्रुवम् ॥ ११ ॥

हींग, चन्दन, कपूर, देवदारु, दारुहल्दी,  
हल्दी, त्रिफला, खस, मुलेठी, महुआ और  
मुरामांसी; इनको सम भाग ले चूर्ण बनाकर  
ठंडे जल के साथ सेवन करे तो यह हिंम्वादि  
चूर्ण अचलवात को नष्ट करता है । मात्रा १ ॥  
माशा ॥ १०-११ ॥

सिन्दूरं पयसा पीत्वा गदी स्वास्थ्य-  
मवाप्नुयात् । वातामयहरं यच्च यद् यन्मू-  
र्च्छाहरं तथा । तच्चद्विविच्य योक्तव्यं यथा  
दोषानुपानकम् ॥ १२ ॥

दूध के साथ रससिन्दूर सेवन करने से रोगी  
को स्वास्थ्य लाभ होता है । जो प्रयोग वातरोग  
तथा मूर्च्छारोग नाशक हों उनको दोषानुसार  
अनुपानभेद से सेवन कराना चाहिए ॥ १२ ॥

अपस्मारे च मूर्च्छायां तथा वाता-  
मयेऽपि च । यत् पथ्यं यदपथ्यं च तत्त-  
देवात्र सम्मतम् ॥ १३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामचलवाता-  
धिकारः समाप्तः ।

अपस्मार, मूर्च्छा और वातरोग में जो  
पथ्य और अपथ्य वस्तु कही है वे ही वहाँ भी  
समझनी चाहिए ॥ १३ ॥

इति श्रीसरयूपसादिप्रपाठिभिरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिषायां व्याख्यायां  
अचलवाताधिकारः समाप्तः ।

अथ खञ्जनिकाधिकारः ।

खञ्जनिका का निदान ।

खञ्जन्यदनसातत्यादनिलो विकृतंगतः।  
सक्थिखञ्जनयेद् व्याधिं घोरं खञ्जनिकाभि-  
धम् ॥ १ ॥ खञ्जनीतिद्विदलभेदः । तस्या  
निरन्तरभक्षणत् खञ्जनीरोगः ॥

खञ्जनी नाम की एक प्रकार की दाल होती  
से उसके अधिक खाने से वायु विकृत होकर  
जुश्यों में खञ्जनिका नामक बृहदायक रोग  
उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

खञ्जनी यामुने देशे बाहुल्येन प्रजा-  
यते । तस्याः समशनात् तत्र पीडयन्ते  
व्याधिना जनाः ॥ २ ॥ वातामयाधिकारे  
या प्रोक्ता कलायखञ्जता । सैवायमिति  
कैश्चिद्वा कैश्चिद्वाभिमन्यते ॥ ३ ॥

खञ्जनी यमुनाजी के किनारे के प्रदेशों में  
यहुत उत्पन्न होती है । उसके खाने से मनुष्य  
रोग से पीड़ित हो जाता है । वातव्याधिप्रकरण  
में जो कलायखञ्जता नामक रोग कहा है, उसी  
को खञ्जनिका कहते हैं । कुछ लोग इसको  
अन्यरोग मानते हैं ॥ २-३ ॥

इसका अनुपशय ।

शैत्येनाद्र्तया चापि व्याधिरेव विव-  
र्द्धते । स्त्रीभ्यः पुंसामयं व्याधिर्बाहुल्ये-  
नाभिजायते ॥ ४ ॥

शीत और गीलापन ( सील ) से यह रोग  
बढ़ता है । स्त्रियों की चपेचा पुरुषों के ही  
अधिक होता है ॥ ४ ॥

खञ्जनिका के लक्षण ।

मुप्तोत्थितस्थोपसि जानुमन्धौ रुजा  
च गुर्वी च दृढा च जहा । ककुघृती  
क्षीणपला ततो ना सोऽङ्गुष्ठमाकृष्य चलेत्  
मुकृच्छम् ॥ ५ ॥ वक्रत्वं जानुसन्धेदच



जङ्घायाश्चापि शीर्णता । पादसंस्थान-  
वैरूप्यमरतिश्चात्र संभवेत् ॥ ६ ॥

जानुओं की सन्धियाँ शून्य, भारी और दर्द  
युक्त रहती हैं। जाँघों में भी कठोरता, दर्द और  
भारीपन रहता है। मांस की गँठ सी पड़ जाती  
है और बल क्षीण हो जाता है, इसलिए अँगूठे  
को सिकोड़कर कठिनता से चला जाता है।  
जानुसन्धियों में तिरछापन, जाँघों में शिथिलता,  
पैरों में कुरुपता हो जाती है और बेचैनी  
रहती है ॥ ५-६ ॥

आरोग्यमिच्छता त्याज्यं खञ्जनी-  
द्विदलाशनम् । निदानसेविनो यस्मान्न  
व्याधिर्विनिवर्त्तते ॥ ७ ॥

आरोग्य की इच्छा करनेवाले को खञ्जनी  
( लतरी ) की दाल का भोजन त्याग देना  
चाहिए । क्योंकि निदान ( रोगोत्पत्ति के कारण-  
रूप अन्नपानादि ) के सेवन करनेवाले के रोग  
निवृत्त नहीं होते हैं ॥ ७ ॥

वातघ्नं पोषणं यच्च पानमन्नं च भेष-  
जम् । प्रयोज्यमिह तत् सर्वं विविच्य मि-  
पजा सदा ॥ ८ ॥

खञ्जनी रोग की शान्ति के लिए वातनाशक  
तथा पुष्टिकारक अन्न-पान और औषधि का  
विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिए ॥ ८ ॥

बलां गन्धद्वयं मापां त्रिवृतां कदुरो-  
द्विणीम् । काथयित्वा पिबेत्तोयं खञ्जन्या-  
मयशान्तये ॥ वातामयहरं सर्पिस्तैलं चात्र  
प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

। खरौंटी, गन्धद्वय, मापपर्णी, निसोत और  
कुटकी; इनका काथ-यनाकर पीने से खञ्जनी  
रोग शान्त होता है। वातनाशक घृत और तैल  
भी इस रोग में प्रयोग करने चाहिए ॥ ९ ॥

खञ्जनीकारिरसः ।

कुपीलुरजतायांसि संभाज्यार्जुनवा-  
रिणा । मुद्गमात्रां वर्ती कृत्वा शोषयेत्

सूर्यरश्मिना ॥ १० ॥ पक्षाघातं घोरतरं  
गदं खञ्जनिकं तथा । रसः खञ्जनिका-  
र्याख्यो हरेदाशु न संशयः ॥ ११ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां खएजनि-  
काधिकारः समाप्तः ।

शुद्ध कुचिला, चाँदी की भस्म और लोह  
की भस्म; इनको अर्जुन की छाल के जल से  
घोटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बनावे और उन्हें  
धूप में सुखा ले। सेवन करने से यह खञ्जनारि  
रस पक्षाघात तथा खञ्जनिका रोग को शीघ्र  
हरण करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १०-११ ॥  
इति श्रीसरयूपसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-

रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाय्या व्याख्यायां

खञ्जनिकाधिकारः समाप्तः ।

अथ ताण्डवरोगाधिकारः ।

ताण्डवरोगका निदान ।

अत्यातङ्कादतिक्रोधादतिहर्षाद्बलक्ष-  
यात् । कर्षणात् स्वप्नरोभाच्च विडम्बन्धात्  
कृमिसञ्चयात् ॥ १ ॥ आशानाशादभि-  
घातात् स्त्रीणामृतुविपर्ययात् । कशेरु-  
कामज्जनश्चात्युग्रभावात् प्रजायते ॥ २ ॥  
व्याधिस्ताण्डवनामा स प्राणिनां क्लेश-  
कृत् परः । अद्धानां ताण्डवाद्स्य ताण्ड-  
वाण्या युर्धः कृता ॥ ३ ॥ कैशोरे वयसि  
प्रायः स्त्रीणाञ्चापि विशेषतः । व्याधि-  
रेपोऽजिभायेत वृद्धानाञ्च बलक्षयात् ॥  
४ ॥

अत्यन्त भय, क्रोध, हर्ष और बल के क्षय  
होने से तथा स्त्रीयत्ने से, न सोने से, मलाबरोध  
उद्भूत में कृमि स्रष्ट होने से, घासा गद  
से, घोट से तथा स्त्रियों के मासिक स्राव से

गडबडी से, कशेरुका अस्थि पर चोट लगने से तथा उग्रभाव से प्राणियों को कष्टदायक ताण्डव नाम की बीमारी उत्पन्न होती है । शरीर के अवयवों को नचाने से विद्वानों ने इसका ताण्डव नाम रक्खा है : विशेषतः रित्रयों के किशोर अवस्था में और वृद्धों के बलघ्न होने पर यह बीमारी हो जाती है ॥ १-४ ॥

ताण्डवरोग का लक्षण ।

वामबाहुं समारभ्य प्राय आदौ ततोऽपरम् । ततः पादौ ततोऽङ्गानि चालयेत् ताण्डवामयः ॥ ५ ॥ मुष्टिना किमपि द्रव्यं सम्यग्धारयितुं क्षमः । समर्पयितुमास्ये वाप्यदनीयं न ताण्डवी ॥ ६ ॥ नृत्यन्निव चलत्येव बीभत्सैर्मुखचेष्टितैः । अधीरः सततं तिष्ठेन्निद्रायां कम्पवर्जितः ॥ ७ ॥ बीभत्सैर्मुखचेष्टितैरुपलक्षितः ॥

ताण्डव रोगी के प्रारम्भ में बाँयें हाथ से प्रारम्भ करके बाद में अन्य स्थलों में, फिर पैरों में, बाद में अन्य अवयवों में चंचलता उत्पन्न होती है । किसी द्रव्य को मुष्टि में धारण नहीं कर सकता है और न अच्छी तरह मुँह में ही कोई चीज रख सकता है । नाचता हुआ सा चलता है । मुक्त की चेष्टा बीभत्स हो जाती है । सदैव धैर्यहीन रहता है । केवल सोते समय ही कम्प बन्द रहता है अन्यथा हर समय काँपता रहता है ॥ ५-७ ॥

वृंहणं रेचनं चैव वद्वेर्बलविवर्द्धनम् । औषधं पानमन्नं च प्रयोज्यं ताण्डवे गटे ॥ = ॥

ताण्डव रोग में वृंहण, रेचन और अग्नि के बल को बढ़ानेवाली औषधियाँ तथा अन्नपान का प्रयोग करना चाहिए ॥ ८ ॥

कृमिसञ्चयसम्भूते कार्यं कृमिविनाशनम् । रजोरोधभवे व्याधौ रजसस्तु पवर्त्तनम् ॥ ९ ॥

कृमियों के संचय होने से उत्पन्न ताण्डव रोग में कृमिनाशक उपाय करना चाहिए । रजोरोध के कारण हुई व्याधि में रजःप्रवर्त्तक औषधि देनी चाहिए ॥ ९ ॥

श्यामामनन्तां मधुकं त्रिवृतां चन्दनद्वयम् । एलाद्वयं तथा धार्त्रां काथयित्वा जलं पिबेत् ॥ अनेन प्रशमं याति ताण्डवाख्यो गटो ध्रुवम् ॥ १० ॥

कालीसारिचा, अनन्तमूल, मुञ्जेठी, भिसोत, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, छोटी इलायची, बड़ी इलायची तथा आँवला; इनका काढ़ा बनाकर पीने से ताण्डव रोग निश्चय शान्त होता है ॥ १० ॥

मल्लरामठकर्परयशदायो यथोत्तरम् । प्रगृह्य चतुराष्टस्या विभाव्य विजयाम्बुना ॥ ११ ॥ कुपीलुजकपायेण पार्थस्य स्वरसेन च । त्रिगुञ्जां वटिकां कृत्वा युञ्ज्यात्ताण्डवशान्तये ॥ १२ ॥

सखिया एक भाग, हाँग दो भाग, कपूर तीन भाग, जस्ते की भस्म चार भाग और लोहभस्म पाँच भाग; इनको क्रम से भाँग के और अर्जुनवृक्ष की छाल के रस की भाषना देकर तीन-तीन रत्नी की गोलियाँ बना ले । ताण्डव रोग की शान्ति के लिए इसका सेवन कराना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

वृंहणं पानमन्नं च स्नानं स्रोतस्वती जले । शयनं क्लेशशून्यं यत् कर्म तच्चेह गर्मरो ॥ कर्पणाद्यखिलं प्रोक्कमशुभाय पुरातनैः ॥ १३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ताण्डव-रोगाधिकारः समाप्तः ।

इस रोग में वृंहण अन्न-पान तथा मद्यी में स्नान करना चाहिए । बेशरहित शय्या तथा

अन्य कल्याणकारी उपाय होते हैं तथा कर्पण  
आदि सब कार्य हानिकारक होते हैं ॥ १२ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां  
भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां  
व्याख्यायां ताश्चद्वरोगाधि-  
कारः समाप्तः ।

## अथ स्नायुशूलाधिकारः ।

स्नायुशूल का स्वरूप ।

स्नायुष्वतीव या घोरा तच्छाखावपि  
वा पुनः । वेदना स्नायुशूलाख्या सा भवेत्  
प्राणपीडना ॥ १ ॥

शाखाओं की स्नायुओं ( नाडियों Nerves )  
में प्राणों की पीडा पहुँचानेवाली घोर वेदना  
होती है, उसे स्नायुशूल कहते हैं ॥ १ ॥

रोग के स्थान ।

बाहोःशीर्षास्तथा सकृध्नोरन्यस्याङ्गस्य  
वा पुनः । त्वचो निम्नस्थितास्वेव वस्न-  
सामु गदो भवेत् ॥ २ ॥ श्लोऽयं निखि-  
लाङ्गेषु भवेत् तीव्ररुजाकरः । विशिष्टाङ्ग-  
भवस्यास्य विशिष्टाख्या च वर्तते ॥ ३ ॥  
ऊर्ध्वभेदाद्भेदां चाप्यधोभेदस्तथैव च ।  
मुण्डमुण्डार्द्धकस्फिग्जगदानामभिधाः क्र-  
मात् ॥ ४ ॥

वस्नसामु स्नायुषु

दोनों बाहु, शिर, टाँगें और दूसरे अवयवों  
में त्वचा के नीचे की सतह में स्थित स्नायुओं  
( Nerves ) में शूल का रोग होता है । यह  
शूल सम्पूर्ण अवयवों में अत्यन्त कष्टदायक  
होता है । जिन-जिन अवयवों में होता है उन-  
उन अवयवों के नाम से कहा जाता है । ऊर्ध्व-  
भेद, अर्धभेद, अधोभेद, मुण्डभेद, मुण्डार्द्धभेद  
और अर्द्धभेदभेद से भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध  
है ॥ २-४ ॥

ऊर्ध्वभेद का निदान ।

वलरक्त्तयाद्वापि वृकमस्तिष्कदोषतः ।  
अजीर्णाद् दशनव्याधेरूर्ध्वभेदो गदो  
भवेत् ॥ ५ ॥

बल और रक्त के क्षय से, वृक और मस्तिष्क  
के दोष से, अजीर्ण से और दाँतों के दोष से  
ऊर्ध्वभेद रोग होता है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वभेद के लक्षण ।

ललाटेऽक्षिपुटे निम्ने गण्डे नस्योष्ठ  
एव च । जिहापार्श्वेऽधरे दन्ते शूलवद-  
दाहवच्च या ॥ ६ ॥ एकस्मिन् प्रायशः  
पार्श्वे वेदनामुखमण्डले । ऊर्ध्वभेदाख्यया  
सोक्ता गदङ्कारैः क्रमैधिनी ॥ ७ ॥

क्रमैधिनीक्रमशोवर्द्धिनी

ललाट में, अक्षिपुटों के नीचे, गण्डस्थल में,  
ओष्ठ में, जिह्वा में, पसवाड़े में और दाँत में शूल  
और दाह की तरह वेदना होती है । एक ही  
पसवाड़े में एक ही घोर मुख-मण्डल के ऊपर-  
नीचे के भेद से वेदना होती है, जो क्रमशः  
बढ़ती है ॥ ६-७ ॥

ऊर्ध्वभेद की संप्राप्ति ।

शीतानिलस्य संस्पर्शाद् देहकम्पाच्च  
वर्द्धते । स्नायुभेदस्य विकृतेरङ्गभेदे भवेद्  
गदः ॥ ८ ॥

शीतलवायु के स्पर्श से तथा देह में कंपकंपी  
होने से शरीर में कोप बढ़ता है । अतः स्नायुभेद  
के विकृत हो जाने से विभिन्न अंगों में यह रोग  
होता है ॥ ८ ॥

अर्द्धभेद का निदान ।

आर्द्रस्थानस्थितेश्चापि शीतयोगाद्  
वलत्तयात् । अर्द्धभेदः प्रजायेत दृष्टवाताम्बु-  
सेयनात् ॥ ९ ॥

गीले स्थान पर रहने से, शीत के योग से,  
बल के क्षय से और दूषित जलवायु के लक्षण

से अर्द्धभेद ( आधे ग्रंथ का शूल ) हो जाता है ॥ १ ॥

अर्द्धभेद के लक्षण ।

यार्द्ध व्याप्य भवेत् तीव्रा वेदना मुख-मण्डले । वामे च प्रायशः पार्श्वे सार्द्ध-भेदः प्रकीर्त्यते ॥ १० ॥ वाणेनेव शिरो-विद्धं व्यथतेऽतिसुदारुणम् । कदाचित् क्रममालम्ब्य विरामश्चात्र वा महान् ॥ ११ ॥ बाहुल्येन च नारीणां व्याधिरेप प्रजायते । प्रादुर्भावो वयःस्थस्य यौवने ह्यधिको मतः ॥ १२ ॥

अर्द्धभेद रोग से मुखमण्डल में तीव्र वेदना होती है । प्रायः बाएँ पसवाके में ही दर्द होता है । बाएँ की ओर से शिर भिदने के समान ही अत्यन्त कष्टदायक वेदना होती है । क्रमश यह रोग बढ़ जाता है और शान्त भी हो जाता है । विशेषरूप से यह बीमारी स्त्रियों को ही होती है । अधिकतर यौवनावस्था में ही इस रोग की उत्पत्ति होती है ॥ १०--१२ ॥

अधोभेद का निदान ।

विद्ध विरोधाच्छ्रमाच्छ्नीताद् दौर्बल्या-दांमवाततः । आर्द्रस्थानस्थितेर्गर्भदोपात् स्यान्निम्नभेदकः ॥ १३ ॥

निम्नभेदकः अधोभेदः ।

मलावरोध से, थकावट से, शीत से, दुर्बलता से, आमवात से, आर्द्र ( गीले, नमदार ) स्थान में रहने से और गर्भ के दोष से अधोभेद रोग हो जाता है ॥ १३ ॥

अधोभेद के लक्षण ।

स्फिच्यूरुजानुसन्ध्योरश्च पश्चिमे च क्वचित् पदे । जहायां वापि यच्छूलमधो-भेदः स उच्यते ॥ १४ ॥ एकस्मिन् प्रायशः सकिञ्चन शूलोऽयं स्यान्निशावली । बाहु-ल्येनैव वयसि प्रौढ एव प्रजायते ॥ १५ ॥ कमर, ऊरु, जानुसन्धि के पीछे और किसी

पैर में या जाँघ में जो शूल होता है उसे अधो-भेद कहते हैं । एक ही टाँग में यह शूल होता है और रात्रि में बढ़ जाता है । यह अधिकतर प्रौढ़ावस्था में ही होता है ॥ १४--१५ ॥

यदग्नेर्दोषं किञ्चिद्वा स्याद्बलवर्द्ध-नम् । वातानुलोमं यच्च स्नायुशूले तदौ-पधम् ॥ १६ ॥

स्नायुशूल (Nerves Pain) रोग में अग्निदीपक, बलवर्द्धक और वातानुलोमक औष-धियों का सेवन करना चाहिए ॥ १६ ॥

स्नायुशूलहरचूर्णम् ।

एलाह्वयमुशीरं च चन्दनं सारिवा-द्वयम् । मेदाद्वन्द्वं निशाद्वन्द्वं गुडुचीं विरवभेजम् ॥ १७ ॥ फलत्रयं यमानीं च रौप्यं सर्वसमं तथा । एकीकृत्य बल्ल-मानं पाययेद्बव्यसर्पिषा ॥ १८ ॥ स्नायु-शूलहरं नाम चूर्णमेतद्धरेद्द्रुवम् । निखिलं स्नायुशूलं च सर्वान् वातामयांस्तथा ॥ १९ ॥

छोटी इलायची, बड़ी इलायची, लस. चन्दन, अतन्तमूल, कालीसारिवा, मेदा, महामेदा, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय. सोंठ, त्रिफला और अजवायन तथा चर्चई की भस्म, सबको समान भाग ले एकत्र कर चूर्ण बनावे । मात्रा २ रसी । गी के घृत में मिलाकर सेवन करना चाहिए । यह स्नायुशूलहर नामक चूर्ण सब प्रकार के स्नायुशूल और वातरोगों को अथर्वय नष्ट करता है ॥ १७--१९ ॥

मिहिरोदय रस

मात्तिकं रजतं लौहं सिन्दूरं वह्नि-

१—Nerves का वास्तविक पर्याय वातनाडी है, किन्तु गलती से बंगाल में तथा उसी के अनुसार अन्य प्रांतों में भी स्नायु शब्द प्रयुक्त लग गया है । अतः यहाँ भी स्नायुशूल नाम रक्ता है । किन्तु इसका अर्थ वातनाडी का विकार (Nerves disease) ही है ।

वारिणा । भावयित्वा विमर्द्याथ कृत्वा  
रक्तिमिता वटीः ॥ २० ॥ एकैकां खाद-  
येदासां त्रिफलाद्भिरहर्मुखे । मिहिरोदय-  
नामायं स्नायुशूलं रसो हरेत् ॥ २१ ॥

सुवर्णमाचिक की भरम, चाँदी की भरम,  
लोहभरम और रससिन्दूर; इनको समभाग ले,  
घीता की रस की भावना देकर घोट ले और  
एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले । प्रातः काल  
एक-एक गोली त्रिफला के जल से खावे । यह  
मिहिरोदय नाम रस स्नायुशूल को नष्ट करने-  
वाला है ॥ २०--२१ ॥

प्रयोज्यं दास्रगरलमद्भेदप्रशान्तये ।  
विरतौ तत् प्रयोक्तव्यं न प्रकोपे कदा-  
चन् ॥ २२ ॥

देवदारु और मोठा विप का लेप करने से  
अर्धावभेदक ( आधाशोशी ) शान्त होती है ।  
किन्तु लेप ऐसे समय करना चाहिए जब कि  
पीड़ा शान्ति पर हो । प्रकोप के समय कभी  
भी लेप न करना चाहिए ॥ २२ ॥

मदिरामृतसाराख्यं लौहं क्षौद्रः कुपी-  
लुजः । सेव्यान्येतानि विधिना स्नायुशूल-  
स्य शान्तये ॥ २३ ॥

मदिरा, अमृतसार लोह और शुद्ध कुचिला  
का घूर्ण; इनका विधिपूर्वक सेवन करने से  
स्नायुशूल शान्त होता है ॥ २३ ॥

स्वेदसेकप्रलेपांश्च स्नायुशूलेषु योज-  
येत् । तीव्रं विरेचनं चात्र विदध्यान्मल-  
सञ्चये ॥ २४ ॥ घृततैलादिकं योज्य-  
मनिलायनाशनम् । स्नायुशूलेषु सर्वेषु  
भेषजं च रसायनम् ॥ २५ ॥

स्नायुशूल रोग में स्वेद, सेक और लेप  
करना चाहिए तथा मलसंचय होने पर  
तीव्र विरेचन देना हितकर होता है एवं घात-  
रोगनाशक घृत और तैल स्नायुशूलों में देना

चाहिए । सद्यः स्नायुशूलों में रसायन भी देना  
हितकर है ॥ २४-२५ ॥

स्नायुरोग में पश्यापथ्य ।

यत् पथ्यं यदपथ्यं च वातव्याधौ  
प्रकीर्तितम् । तथैव स्नायुशूलेषु निर्णीतं  
विदुधैरिति ॥ २६ ॥

वातव्याधि में जो-जो पदार्थ पथ्य तथा  
अपथ्य कहे गये हैं, वे ही पदार्थ स्नायुशूल में  
भी विद्वानों ने पथ्य और अपथ्य निश्चय किये  
हैं ॥ २६ ॥

कुमारीवटी ।

कुमार्यद्भिर्हेम रौप्यं हरितालं च मा-  
त्तिकम् । शतशो भावयित्वाथो गुञ्जामात्रां  
वटीं चरेत् ॥ २७ ॥ धात्र्यम्भसा वटी  
सेयं कुमारी योजिता हरेत् । स्नायुजान्नि-  
खिलान् रोगानग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ २८ ॥

स्वर्णभरम, रजतभरम, हरितालभरम और  
स्वर्णमाचिकभरम; इनको समभाग ले फिर  
उसमें धौकुवार के रस की १०० भावना देकर  
एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसका  
घाँवले के रस के साथ सेवन करना चाहिए ।  
यह कुमारीवटी संपूर्ण स्नायु के रोग, अग्नि-  
मान्द्य और अरुचि को नष्ट करती है ॥ २७-२८ ॥

महारजतवटी ।

कर्पप्रमाणं रजतं मौक्तिकं स्वर्णगैरि-  
कम् । कोलमानं तु वैक्रान्तं सिन्दूरं स-  
शिलाजतु ॥ २९ ॥ लौहमभ्रं भ्रवालं च  
त्रिधा चित्रकरारिणा । काक्रमाचीरसेनापि  
सप्तधा च विभावयेत् ॥ ३० ॥ गुञ्जाद्वय-  
मितां कृत्वा वटिकां पयसा सह । प्रातः  
प्रातः प्रयुञ्जीत स्नायुरोगनिवृत्तये ॥ ३१ ॥

चाँदी की भरम, मोती की भरम और  
सुनहला गेरु; प्रत्येक एक-एक तोला । वैक्रान्त  
भरम, रससिन्दूर, शिलाजीत, लोहभरम,  
अभ्रकभरम और मूँगा की भरम, प्रत्येक पर-

छह माशे । सघको एकत्रकर धोता की जड़ के रस की ३ और मकोय के रस की ७ भावनाएँ देकर दो-दो रत्नी की गोळियाँ बनाये । प्रातःकाल दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करने से स्नायुरोग निवृत्त होता है ॥ २६-३१ ॥

स्वर्णसिन्दूर रस ।

स्वर्णसिन्दूरमभ्रं च मौक्तिकं कर्प-  
सम्मितम् । हेममाञ्जिकवैक्रान्तवद्वायांसि  
च पित्तलम् ॥ ३२ ॥ शिलाजतुप्रवाला-  
ब्धिफेनगुग्गुलुगन्धकान् । कोलमानेन  
संगृह्य भावयेद् वह्निवारिणा ॥ ३३ ॥ ततो  
गुञ्जाद्वयोन्मानां विधाय वटिकां भिषक् ।  
देवदारुकपायेण प्रातः सायं च योजयेत् ॥  
३४ ॥ स्वर्णसिन्दूरसंज्ञोऽयं रसेषु प्रवरो  
रसः । स्नायुजान्निखिलान् रोगान् हन्ति  
नास्त्यत्र संशयः ॥ ३५ ॥

स्वर्णसिन्दूर, अभ्रक भरम और मोती की भरम एक-एक तोरा, स्वर्णभरम, स्वर्णमाषिक की भरम, वैक्रान्तमणि की भरम, वह्नभरम, लोहभरम, पीतल की भरम, शिलाजीत, प्रवालभरम, समुद्रफेन, गुग्गुलु और गन्धक प्रत्येक छह-छह माशे । सघको एकत्रकर चीता की जड़ से रस की भावना देकर दो-दो रत्नी की गोळियाँ बना ले । अनुपान—देवदारु का फादा । रसों में छेप्ट इस स्वर्णसिन्दूर रस का प्रात और सायंकाल सेवन करने से स्नायु के सपूर्ण रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं ॥ ३२-३५ ॥

शताजरीप्लुत ।

गतावर्षा रसमस्थं छागीदुग्धस्य चाढ-  
कम् । घृतमस्थं तथैकत्र कल्कैरेभिः पचेद्  
भिषक् ॥ ३६ ॥ मुशली चोरुप्पी च  
विदारो चन्दनद्वयम् । शृङ्गी तामलकी  
द्राक्षा श्यामानन्ता निशायुगम् ॥ ३७ ॥  
पलेन्द्रवारुणी वासा नीलिनी नीलमृत्प-

लम् । अभयादाडिमौ दारुनिम्बौ नाग-  
वलेति च ॥ ३८ ॥ सिद्धमेतद् घृतं हन्ति  
स्नायुजान्निखिलान् गदान् । पुष्टिं वीर्यं  
बलं मेधां शुभां सञ्जनयेन्मतिम् ॥ ३९ ॥

शतावरी का रस १२८ तोले, बकरी का दूध ६ सेर ३२ तोले, घृत १२८ तोले । कल्क के लिए—मुसली, चोरुप्पी, विदारोकन्द, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, फाकडासिंगी, सुई आँवला, मुनक्का, कालीसारिवा, अनन्तमूल, हल्दी, दारु-हल्दी, बरियारा ( खरेंटी ), इन्द्रायण, अरूसा-नील की जड़, नील कमल, हच, अनार, देव-दारु, भीम की छाल और गंगेरन ; सब मिलित ३२ तोले । विधिपूर्वक घृत सिद्धकर सेवन करे, तो यह घृत स्नायु के सपूर्ण रोगों को नष्ट कर पुष्टि, वीर्य, बल और शुभ बुद्धि को देनेवाला है । मात्रा—६ माशे से १ तोला तक ॥ ३६-३९ ॥

सुरवल्लभतैल ।

दशमूलं कणा शुण्ठी शटी रास्ना  
त्रिवृत्पला । अश्वगन्धा तुगाक्षीरी  
त्रिफला चित्तवासकौ ॥ ४० ॥ जयन्ती  
हस्तिशुण्ठी च मूर्त्वा कुटजटाडिमौ । इत्ये-  
भिविपचेत् कल्कैस्तैलं तिलसमुद्भवम् ॥  
४१ ॥ अश्वगन्धाकपायेण द्वागेन पयसा  
तथा । गन्धद्रव्यैश्च निखिलैर्मन्दमन्देन  
वह्निना ॥ ४२ ॥ सुरवल्लभनामेदं तैलं  
स्नायविकान् गदान् । वातपित्तकफोत्थांश्च  
निहन्त्यान्नात्र संशयः ॥ ४३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्नायुरोगा-  
धिकारः समाप्तः ।

दशमूल, पाँवर, सोंठ, कपूर, रास्ना, निसोय, खरेंटी, अश्वगन्ध, पंशलोचन, त्रिफला, बेलगिरी, अरूसा, जयन्ती, हस्तिशुण्ठा, मूर्त्वा, कुट्टा की छाल और अनार ; सब मिलित आठ सेर लेकर बरक बनाये । तिल का तेल १२८

तोले, असगन्ध का काटा ६ सेर ३२ तोले; यकरी का दूध ६ सेर ३२ तोले । यथाविधि मन्दाग्नि से तेल का पाक करे और अनुमान से सब गन्ध द्रव्यों का प्रक्षेप देकर उतार ले और ठंडा करके छानकर रख ले । यह सुर-वल्गुम नाम तैल मालिश करने से स्नायु के तथा वात, पित्त और कफ के रोगों को नष्ट करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४०-४३ ॥

इति श्रीसुरयुग्माक्षत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-  
रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां स्नायु-  
शूलाधिकारः समाप्तः ।

### अथ स्वालित्याधिकारः ।

स्वालित्य का निदान ।

स्नायूनां बलनाशाच्च वातस्याति-  
प्रकोपणात् । कर्मणश्चातिसातत्यात्  
स्वालित्यं स्वनुजायते ॥ १ ॥ स्त्रीभ्यः  
पुंसामयं व्याधिर्यावनात् परतस्तथा ।  
चाहृल्लेनाभिजायेत सद्भिरेवं निरूपि-  
तम् ॥ २ ॥

स्नायुघ्नो ( Nerves नाड़ियों ) के बल नाश से, वायु के अति प्रकोप से तथा काम की अधिकता से स्वालित्य रोग उत्पन्न होता है । स्त्री और पुंशों के जीवनवास्था के भीत जाने पर ही यह रोग विशेष रूप से होता है ॥ १-२ ॥

स्वालित्य के लक्षण ।

गान्तिर्भारश्च हस्तस्य जायते तदनन्त-  
रम् । अंगुल्याः स्वलनाद्गान्तिर्भवेदारब्ध-  
कर्मणः ॥ ३ ॥ लेखनेऽस्तरदोषः स्यात्  
वाये तालव्यतिक्रमः । प्रयत्नादपि दोग्धा  
गां दोग्धुं मम्यद् न चार्हति ॥ ४ ॥ स्वा-  
लित्यं मुचिरं यम्य विद्यते व्यससायिनः ।  
हृदं धारयितुं द्रव्यं न मशश्नोति  
मुष्टिना ॥ ५ ॥

इस रोग में हाथ का वजन शान्त नहीं रहता है । अंगुलियाँ हिलती हैं और कार्य करने की शक्ति क्षीण हो जाती है । लिखने में अक्षर दूषित ( असुन्दर ) आते हैं तथा बाजा बजाने में ताल उलटी हो जाती है । जिन व्यवसायी के स्वालित्य पुराना हो जाता है वह व्यक्ति वस्तु को दृढ़तापूर्वक मुष्टी में धारण नहीं कर सकता है ॥ ३--५ ॥

स्वकर्मणो निवृत्तिर्हि स्वालित्ये खलु  
भेपजम् । कटुतिक्रकपार्यैः किं किं पथ्यस्य  
च सेवया ॥ ६ ॥

अपने कार्य से निवृत्त हो जाना ही स्वालित्य की ओपीधि है । कटुप, तीखे और कपड़े पदार्थों से ही क्या है और पथ्य सेवन से ही क्या है । तात्पर्य यह कि यदि रोगी अपने कार्य से निवृत्त न होगा, तो अपथ्य के परित्याग और पथ्य वस्तु के सेवनमात्र से कोई लाभ नहीं हो सकता है ॥ ६ ॥

तिमिद्रिलगिलस्नेहः सप्ताहं परि-  
योजितः । स्वालित्यं क्षपयेद् ब्रह्मन् स्नेहः  
शौकर एव वा ॥ ७ ॥

एक सप्ताह तिमिद्रिलगिल नामक महामरुप की चर्बी के ( आजकल Cod liver oil काड-  
लीवर आइल के ) प्रयोग से अथवा सूकर की चर्बी के प्रयोग से स्वालित्य रोग दूर हो जाता है ॥ ७ ॥

आदित्यपक्व तैल ।

पला रास्नाश्वगन्धा च जीवकपर्पभकौ  
वरा । जयन्ती मधुयष्टिश्च त्रिष्टुल्लरगु-  
पञ्चकम् ॥ ८ ॥ पलाड्यं मुरामांसी देव-  
पुष्पं सरोरुहम् । केशरं नलिका कुपुं  
मुगली चन्दनद्रव्यम् ॥ ९ ॥ मन्येक कार्पिकं  
तैले क्षिप्त्वा मस्थममागुके । मासान् पद्  
स्वापयेद् रुष्ट्या तत्पात्रं मूर्पनेनसि ॥  
१० ॥ ततः कल्कान् समुद्धृत्य तैलमेतत्

प्रयोजयेत् । अनेन प्रशमं यान्ति स्वा-  
लित्यप्रमुखा गदाः ॥ ११ ॥

खरेटी, रास्ना, असगन्ध, जीवक, ऋषभक,  
शताधरी जयन्ती, मुलेठी, निमोत, पाँचों नमक,  
बडी इलायची, छोटी इलायची, मुरामांसी,  
लींग, कमल, नागकेशर, नालिका ( सुगन्धि  
द्रव्य मूँगा के आकार का ), कूट, मुसबी, सफेद  
चन्दन, लाल चन्दन ; प्रत्येक एक-एक तोला  
लेकर कलक बनावे और १२८ तोले तिल के  
तेल में ढालकर पात्र का मुख बन्द करके छह  
महीने तक सूर्य के धूप में धरा रखे। पश्चात्  
छानकर कलक अलग कर दे और तेल को  
प्रयोग में लावे। इस तेल से स्वालित्य आदि रोग  
शान्त हो जाते हैं ॥ ८-११ ॥

स्खालित्यारिन्स ।

रौप्यमभ्रं तुत्थकं च मर्दयेत् कन्यका-  
म्भसा । मुद्गमात्रां वर्ती कृत्वा पाययेत्  
सह सर्पिषा ॥ १२ ॥ स्वालित्यारी रसो  
नाम स्वालित्यं स्नायुजं गदम् । वात-  
श्लेष्मोद्भवांश्चापि फिरङ्गं रोगमेव च । पेया  
दोषानुपानेन शीघ्रमेव निवारयेत् ॥ १३ ॥

चाँदी की भस्म, अभ्रकभस्म और तूतिया;  
इनको समभाग ले घीकुवार के रस में घोटकर  
मूँग के बराबर गोलियाँ बनावे और घूत के  
साथ इसका सेवन करावे। दोषानुसार अनुपान  
से यह स्वालित्यारि रस स्नायु से उत्पन्न स्वा-  
लित्य रोग, कफ वातजन्य रोग तथा फिरंग  
रोग को शीघ्र निवारण करता है ॥ १२-१३ ॥

स्खालित्य में पथ्य ।

भेषजान्यत्र योज्यानि वातज्याधिहराणि  
च । पथ्यमत्र विज्ञानीयाद् द्रव्यं पुष्टिबल-  
प्रदम् ॥ १४ ॥

इतिभैषज्यरत्नावल्यां स्वालित्या-  
धिकारः समाप्तः ।

इस रोग में वातरोगनाशक औषधियों का

प्रयोग करना चाहिए तथा पुष्टि और बलकारक  
द्रव्य पथ्य में देना चाहिए ॥ १४ ॥

इति श्रीसरपूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैष-  
ज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायीं व्याख्यायां  
स्तम्भाधिकारः समाप्तः ।

अथ वृक्कामयाधिकारः ।

वृक्कामय का पूर्वरूप ।

त्वग्रक्षोष्णा वेगवती धमनी कठिना  
तथा । निद्रानाशो वह्निमान्द्यं शोथोऽग्नि  
च मुखे पदे ॥ वृक्कामयस्य पूर्वाणि रूपा-  
ण्याहुर्मिषग्वरः ॥ १ ॥

वृक्कामय उत्पन्न होने से पहिले त्वचा में  
रुक्षता और उष्णता आ जाती है, नाबी वेग-  
वती और कठोर हो जाती है। नींद नष्ट और  
अग्नि मन्द हो जाती है। अस्त्र, मुख और  
पैरों में सूजन हो जाती है ॥ १ ॥

वृक्कामय का लक्षण ।

रक्तालपत्वान्मुखस्य स्यात् पाण्डुत्वं  
कटिवेदना । त्वक् शुष्का स्वेदहीना च  
धमनी द्रुतगामिनी ॥२॥ वह्निमान्द्यम-  
जीर्णञ्च भ्रूद्द्वेषो व्यथोदरे । अम्लोद्धार-  
स्तथा हर्दिहर्द्वेषः श्वासकृच्छ्रता ॥ ३ ॥  
मूत्राल्पत्वं सदा वेगो विशेषान्निशि  
जायते । मूत्रकाले च शिरनाग्रे मनाग्दाहो  
ऽनुभूयते ॥ ४ ॥ वृक्कयोर्विकृतिश्चास्मिन्  
विशेषाज्जायते गदे । यकृतसीहहृदा-  
श्चापि सा सदैव प्रजायते ॥ ५ ॥ कर्ण-  
नादो दृष्टिदोषः शिरोऽग्नीवांसवेदना ।  
शाखासु गौरवं मूर्च्छावृक्कामयस्य लक्ष-  
णम् ॥ ६ ॥

कीधर की कमी से मुख पर पीलापन, कमर  
में दर्द, त्वचा सूखी और पसीना रहित, नाबी  
की तीव्र गति, अभिमान्द्य, अजीर्ण, भोजन में  
अरुचि, पेट में दर्द, लहरी-लहरी दकारे आना,



धमन, हृत्कंप और श्वास लेने में कष्ट होता है। मूत्र कम होता है, किन्तु वेग सदैव बना रहता है। विशेषतः रात्रि के समय और पेशाब त्यागते समय शिरनेन्द्रिय के अग्रभाग में किञ्चित् दाह होता है। इस रोग में अधिकतर गुर्दा में विकार हो जाता है तथा यकृत प्लीहा और हृदय में भी विकार हो जाता है। कर्णनाद (कान गूँजना), दृष्टि विकार, शिर, ग्रीवा और कंधों में वेदना, शाखाघात (हाथ-पैरों) में भारीपन और मूर्छा हो जाती है। ये सब वृक्करोग के लक्षण हैं ॥ २-६ ॥

यन्मूत्रलं शोणितशोधनं च यत्पोषणं  
वह्निविवर्द्धनं च । वृक्कस्य रोगे परियोजये-  
त्तद् व्याधिर्विलं वीच्य मिषग् विधिज्ञः ॥  
७ ॥ रसो विवर्द्धयेत् व्याधिमतरतं नेह  
योजयेत् ॥ ८ ॥

विधि का जाननेवाला वैद्य वृक्करोग में व्याधि के बल का विचार करके मूत्रकारक, रक्तशोधक, पुष्टिकारक और जठराग्नि को बढ़ानेवाली ओषधि की योजना करे। पारद व्याधि को बढ़ाता है, अतः वृक्करोग में इसका प्रयोग न करना चाहिए ॥ ७-८ ॥

सर्वतोमद्भवटी ।

हेमरौप्याभ्रलौहानि जहु गन्धं च  
मात्तिकम् । वटीं रक्त्रिमितां कुर्याद्विमर्ध  
वरुणाम्मसा ॥ ९ ॥ वटीयं सर्वतोमद्भा  
निखिलान् वृक्कजान् गदान् । हरेद्वस्ति-  
भवांश्चापि बलं वीर्यं च वर्द्धयेत् ॥ १० ॥

स्वर्णभस्म, रजभस्म, अन्नकभस्म, लौह-  
भस्म, लास गन्धक और स्वर्णमाषिक भस्म,  
इनकी ममभाग एकत्र कर धरना की छाल के  
बाध से घोटकर एक-एक रत्ती की गोखिया  
बनाये। यह मर्त्यतोमद्भवटी वृद्ध से उत्पन्न हुए  
मंशर्ण रोगों को तथा बन्धित के रोगों को नष्ट  
कर बल और वीर्य को वृद्धि करती है ॥ ९-१० ॥

मादेद्वरवटी ।

हेममुक्ताभ्रकांतीकतीरकाकोल्यांमि

च । कान्तं महावलामूलं गृहीत्वा समभागि-  
कम् ॥ ११ ॥ शुष्कमूलकगोचुरौ तथा  
श्वेतपुनर्नवा । एषां काथेन विधिवद्  
भावयेत् सप्तधा मिषक् ॥ १२ ॥ रक्त्रि-  
द्वयमिता सेव्या वटी माहेश्वराभिधा ।  
ज्ञेयं विशेषतश्चात्र शस्तं दुग्धान्नभोज-  
नम् ॥ १३ ॥ पाण्डुं वृकामयं चैव शोथं  
सर्वाङ्गिकं तथा । जलोदरं तथा मोहं  
विपमज्वरमेव च ॥ अस्थाः प्रयोगान्न-  
श्यन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४ ॥

स्वर्णभस्म, मुक्ताभस्म, अन्नकभस्म, कांतीक  
(शुद्ध फिटकरी), चीरकाकोली, लौहभस्म,  
कान्तलौहभस्म और सहदेई की जड़; इनको  
समभाग लेकर सूखी मूली, गोखरू और सफेद  
सांठी के काड़े की पृथक्-पृथक् सात भावना  
देकर दो-दो रत्ती की गोखिया बना ले। इस  
माहेश्वरवटी का सेवन करते समय विशेषकर  
दुग्ध और चावल का भोजन कक्षायकारक  
होता है। इस माहेश्वरवटी के प्रयोग से पाण्डु-  
रोग, वृशरोग, सर्वांग शोथ, जलोदर,  
मोह और विपमज्वर इस प्रकार नष्ट होते हैं  
जैसे सूर्य से प्रन्धकार नष्ट होता है ॥ ११-१४ ॥

रमायनाधिकारोक्तान्यौषधान्यपि योज-  
येत् । न चास्ति शमने किञ्चिन्निर्दिष्टमस्य  
भेषजम् ॥ १५ ॥ पथ्यैर्वैर्यैः सुपाच्यैश्च  
मिषगेनं प्रपाययेत् ॥ १६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वृकामया-

धिकारः समाप्तः ।

रसायन के अधिकार में कही गई ओषधियों  
का भी इस रोग में प्रयोग करना चाहिए।  
क्योंकि इस रोग को शान्त करनेवाली कोई  
सास्य ओषधि नहीं है। बलकारक तथा भ्रष्टे  
प्रकार पचनेवाले पथ्य वृद्धरोगवाले को देना  
चाहिए ॥ १५-१६ ॥

इति श्रीसरतूप्रसादप्रियाटिथिरचित्तार्वा भेषज-  
रत्नावल्यां रथप्रमाभिधायां व्याख्यायां  
वृकामयाधिकारः समाप्तः ।

## परिशिष्ट ।

अण्डाधारगद का निदान ।

रमणातिशयाच्चैत्यादभिघाताद्विपाद-  
पि । अण्डाधारगदः कृच्छ्रो जायते चा-  
हिताशनात् ॥ १ ॥

अत्यंत मग्भोग करने से, शीत से, चोट  
लगने से, विष से और अग्रथय के सेवन से कष्ट-  
दायक अण्डाधारगद नामक रोग हो जाता है ।

अण्डाधारगद के लक्षण ।

उदरोरुव्यथा कृच्छ्रा मूत्रस्याल्पत्व-  
रक्ते । ज्वरारोचकहृल्लासा अरतिर्बल-  
संक्षयः ॥ २ ॥ धमनी वेगिनी क्षुद्रा  
जिह्वा रक्तोज्ज्वला तथा । अण्डाधारगद-  
स्यैताः प्रोक्ता आकृतयो बुधैः ॥ ३ ॥

उदर और ऊरुओं में दर्द, मूत्र का थोड़ा  
और कष्टसहित कथिर मिला हुआ उतरना,  
ज्वर, थरुचि, हृल्लास, वेगिनी, बलक्षय, नाड़ी  
की गति कभी तीव्र और कभी मन्दी  
तथा जीभ उज्ज्वल और लाल रंग की हो  
जाती है । ये अण्डाधार रोग के लक्षण बुद्धि-  
मानों ने कहे हैं ॥ २-३ ॥

अण्डाधारगद की चिकित्सा ।

बल्लप्रवर्द्धकं यद्यत् पानस्यानुलोम-  
नम् । अण्डाधारगदे तत्तत् प्रयोक्तव्यं  
मिपगुरैः ॥ ४ ॥

श्रेष्ठ वैद्यों को अण्डाधार रोग में वायु का  
अनुलोमन करने वाली तथा बलप्रवर्द्धक चिकित्सा  
करनी चाहिए ॥ ४ ॥

पटोलादि काथ ।

पटोलं मधुकं द्राक्षां घन्याकं विश्व-  
भेषजम् । पीतमूर्त्तिं यत्नीं राम्नां मूर्त्ति-  
मिन्द्रयवं विदम् ॥ ५ ॥ कणाद्वन्द्वं

निशाद्वन्द्वमिन्द्रपुष्पं त्रिजातकम् । काथ-  
यित्वा पिबेत्तोयमण्डाधारगदे सदा ॥ ६ ॥

विषश्च मधुना ज्ञेयमण्डाधारगदे हितम् ७

परवल, मुलेठी, दाख, घनियॉ, सोंठ, गाजर,  
खरेंटी, रास्ता, मूर्त्ति, इन्द्रजौ, विडनमक, पीपल,  
गजपीपल, हल्दी, दारहल्दी, लौंग, और त्रिजा-  
तक, इन सबको समान भाग लेकर काथ लेकर  
पिलाने से अण्डाधारगद में लाभ होता है ।  
विष ( मीठा शुद्ध सिंगिया ) को शहद के  
साथ चाटने से भी लाभ होता है ॥ ६-७ ॥

योपिद्वल्लभरस ।

सिन्दूरमध्रं रौप्यश्च वैक्रान्तं हेम-  
टङ्गनम् । वराम्भसा भावयित्वा वल्ल-  
मात्रा वटीरचरेत् ॥ ८ ॥ योपिद्वल्लभना-  
मायं रसोऽण्डाधारसम्भवान् । निहन्ति  
निखिलान् रोगान् इर्य्यक्तो हरिणानिव ९

रससिन्दूर, अम्रक, चाँदी, वैक्रान्त और  
स्वर्ण की भरम तथा मुद्गाग को समान भाग  
लेकर त्रिकला के काथ से भावना देकर दो दो  
रत्ती की गोलियाँ बनावे । यह योपिद्वल्लभ  
नामक रस अण्डाधारगद से उत्पन्न समस्त  
विकारों को नष्ट करता है ॥ ८-९ ॥

चन्दनाद्य चूर्णं ।

चन्दनद्वितयं मूर्त्तिं नीलिन्येलाद्वयं  
मुरा । कणाद्वयं त्रिदृष्ट्राक्षा मांसीमधुक-  
मुस्तकम् ॥ १० ॥ एतत् सर्वं चूर्णयित्वा  
डिम्बाधारगदापहम् । उप्येन पयसा नारी  
पिबेन्नित्यं सुखार्थिनी ॥ ११ ॥

दोनों चन्दन, मूर्त्ति, नील की जड़, इलायची,  
मुरामांसी, पीपल, गजपीपल, निगोय, दाख,  
जटाभांसी, मुलेठी और मोथा सबको चूर्ण करके  
गरम दूध के साथ सेवन करने से त्रिषो का

दिग्बाधारगद (पुरुष के अग्रदाधार गद के समान ही) रोग अच्छा हो जाता है ॥ १०-११ ॥

पथ्यापथ्य ।

पथ्यमत्र हविर्दुग्धं शालिः प्रत्नो यव-  
स्तिलः । द्यागमांसरसश्चैव द्रव्यमुग्रं न-  
शर्मणे ॥ १२ ॥

धी, दूध, शालि चावल, पुराने यव, तिल और  
यकरे के मांस का रस पथ्य है तथा उग्र और  
( उत्तेजक ) द्रव्य मुखदायक नहीं हैं ॥ १२ ॥

### मस्तिष्कचयापचयाधिकारे

मस्तिष्कचयापचय का निदान

और लक्षण ।

देहस्वभावाद् दिष्ट्या च वर्द्धते मस्तु-  
लुङ्गकः । करोटिरपि बालानां यूनाञ्चापि  
कदाचन ॥ १ ॥ मस्तिष्कस्य करोटेश्च  
यदि वृद्धिर्द्वयोर्भवेत् । न चिह्नं दृश्यते  
किञ्चित् प्रायशः समवर्द्धनात् ॥ २ ॥  
मस्तिष्कस्यैव चेद्वृद्धिर्न करोटेस्तथा  
भवेत् । तदा निपीडनात् तस्य जायन्ते  
विविधा रुजः ॥ २ ॥ शिरसोऽतिरुजा  
तीव्रा दौर्बल्यं भ्रममूर्च्छने । पक्षाघातस्तथा-  
न्नेपस्ततो मरणमेव च ॥ ३ ॥ हासमा-  
याति मस्तिष्कं देहदोषाद्दृष्टयः । एकपार्श्वे  
ऽसेत् तच्चेन्न गीर्घं जीवनक्षयः ॥ सम-  
न्ताद्दसनात् तस्य प्राणान्तस्त्वरया  
भवेत् ॥ ७ ॥

शरीर के स्वभाव से ही मस्तिष्क का मस्तु-  
लुङ्गक बढ़ता है इससे बच्चों की करोटियों  
( खोपड़ी की हड्डियों ) भी बढ़ती है । कमी-  
कमी बच्चानों की भी बढ़ जाती है । मस्तिष्क  
कीर करोटि दोनों की वृद्धि माघ-माघ होती है  
तो समवर्द्धन के कारण किसी प्रकार के बिट्ट  
मात्र नहीं देने है । यदि मस्तिष्क की वृद्धि न

होकर करोटि ( खोपड़ी की हड्डियों का ढाँचा )  
ही बढ़ती है तो उसके पीढन से अनेक रोग  
हो जाते हैं । शिर में अत्यन्त तीव्र शूल,  
दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, पक्षाघात तथा आघेप  
आदि उपद्रव होकर मृत्यु भी हो जाती है ।  
भायवश देह दोष से मस्तिष्क का नाश होने  
लगता है । जिसका मस्तिष्क एक तरफ से ही  
नष्ट होने लगता है उसका जीवनक्षय शीघ्र  
नहीं होता है । जिसका मस्तिष्क दोनों ओर से  
समान रूप से क्षय होने लगता है वह रोगी शीघ्र  
मर जाता है ॥ १-२ ॥

मस्तिष्क वृद्धि का चिकित्सा ।

मस्तुलुङ्गस्य संष्टद्धिर्जायते मरणाय  
हि ॥ ६ ॥ नौपथं तत्र चेतु सेव्यं तथापि  
च रसायनम् । पेयमत्र पञ्चगव्यं घृतं  
मधुयुतं तथा ॥ ७ ॥

मस्तुलुङ्ग की वृद्धि रोगी की मृत्यु के लिए ही  
होती है, उसकी कोई औपथ नहीं है तो भी  
रसायन औपथों का सेवन करना चाहिए । इस  
रोग में पञ्चगव्य तथा घृत का शहद के माघ  
सेवन करना लाभदायक है ॥ ६-७ ॥

मस्तिष्क हास का चिकित्सा ।

मस्तिष्कस्य यदि हासो मरणायैव  
जायने । तथाप्यत्र मदा सेव्यं भेषजं परि-  
धुं हंगाम् ॥ ८ ॥

मस्तिष्क का क्षय तो मृत्यु ने लिए ही होता  
है तो भी मदैव रसरज आदि धानुषों की  
वृद्धि करनेवाली घृष्ट्या औषधि का सेवन करना  
चाहिए ॥ ८ ॥

चन्दनादि काय ।

चन्दनद्वितयं मूर्ध्वा श्यामाद्दन्तं  
निशाद्ययम् । लाक्षा वांगी गैरिकश्च  
जीवन्ती मधुकं वरी ॥ ९ ॥ वाजिगन्धा  
चचा कृष्णा काकोली जीवकर्पभा । काय  
एषां पिबेत् प्रातर्मस्तिष्काऽसशान्तये ॥  
अथ वातामयोश्चानि तैलानि च घृतानि

च । अग्रस्मारगदोक्तानि तथा सेव्या-  
नि सर्व्वदा ॥ ११ ॥ मस्तिष्कस्य चये  
हासे देहस्य पोषणं लघु । पानमन्नं सुखाय  
स्याद्विपरीतं न शर्मणे ॥ १२ ॥

दोनों प्रकार के चन्दन, मूर्वा दोनों प्रकार  
की शारिवा, दोनों हलदी ( हल्दी, वारुहल्दी ),  
खाख, वंशलोचन, गेरू, जीवन्ती, मुलेठी, शता-  
वरी, अरुगन्ध, वच, पीपल, काकोली, जीवक  
और अषभक, इन सबका वाथ करके प्रातःकाल  
पाने से मस्तिष्क का हास शान्त हो जाता है ।  
यहाँ घातविकार को शान्त करनेवाले तैल और  
घृत तथा अग्रस्मारनाशक औषधियाँ प्रयुक्त  
करना चाहिए । मस्तिष्क की वृद्धि और हास  
के लिए देह को पुष्ट करनेवाला, हलका आहार  
देना लाभदायक है । इसके विपरीत अपथ्य  
है ॥ १-१२ ॥

### मस्तिष्कवेपनाधिकारे

मस्तिष्कवेपन का निदान और लक्षण ।

शिरस्यभिहते तैस्तैर्मर्च्छाद्द्वेषासवा-  
न्तयः । जडत्वं स्पन्दनहासो दौर्बल्यं  
चलचित्तता ॥ १ ॥ वेपयुः कर्णनादश्च  
मलिनत्वं मुखस्य च । पृथुत्वं तारकायाश्च  
धमनी बलवर्जिता ॥ २ ॥ शीतलत्वं  
शरीरस्य वैकृत्यं वचनस्य च । तथा पक्ष-  
वधं स्याच्च गदोऽसौ शीर्षवेपनः ॥ ३ ॥

शिर पर चोट लगने से मूर्च्छा, उबकाई,  
वमन, जड़ता, स्पन्दन की कमी, दुर्बलता, चित्त  
की चंचलता, कम्प, कर्णनाद ( कानों में शब्द  
गूँजन ), मुख की मलिनता, आँख की पुतलियों  
का फैल जाना, नाड़ी का क्षीण होना, शरीर का  
शीतल होना, अच्छे प्रकार चोला न जाना, तथा  
पक्षाघात होना आदि लक्षण शीर्षवेपन रोग में  
होते हैं ॥ १-३ ॥

शिर कौपने की चिकित्सा ।

मनःस्थैर्व्यर्करं कर्म कार्यं मस्तिष्क-

वेपने । शिरस्युप्येऽतिशीतेन तोयेन सेचनं  
हितम् ॥ ४ ॥ मस्तिष्कवेपनध्वंसि दन्ती-  
स्नेहेन रेचनम् । सजला बललाभाय मृत-  
सञ्जवनीसुधा ॥ ५ ॥ प्रयोक्तव्या यथामात्रं  
ब्रह्ममन्यश्च भेषजम् । वह्न्युष्मणा हरेच्छै-  
त्यमद्गानां कुशलो भिषक् ॥ ६ ॥ त्रिवृत्तां  
स्वर्णपत्रीश्च मुस्तकं मधुकं बलाम् । हरिद्रे  
द्वे नागरश्च त्रिफलां कटुरोहिणीम् ॥ ७ ॥  
काथयित्वा प्रयोक्तव्यं शीर्षवेपनशान्तये ।  
बलाकाथेन सिन्दूरं शीर्षवेपयुनाशनम् ॥ ८ ॥  
वातव्याधिहरं सर्व्वं भेषजं तस्य शान्ति-  
कृत् ॥ ९ ॥

मस्तिष्कवेपन में मन को स्थिर करनेवाले  
कर्म करने चाहिए । शिर गर्म रहता हो तो  
शीतल जल शिर पर डालना चाहिए । मस्ति-  
ष्ककम्पन को दूर करने के लिए दन्तीस्नेह  
( जमालगोटा का तैल ) से विरेचन करना  
चाहिए । बल देने के लिए जलयुक्त मृतसंजी-  
वनीसुधा का सेवन करना चाहिए । उचित  
मात्रा में अन्य बलदायक औषध भी देनी  
चाहिए । शरीर की शीतलता को दूर करने के  
लिए अग्नि की उत्पत्ता से भी काम लेना  
चाहिए, अर्थात् सेंक देना चाहिए । निराध,  
सनाय, मोघा, मुलेठी, खरेटी, दोनों हल्दी,  
सोंठ, त्रिफला, कुटकी इन सबको समभाग  
मिलाकर काथ करके सेवन करने से शीर्षकम्प  
शान्त हो जाता है । खरेटी के काथ के साथ  
रसमिन्दूर का सेवन करने से शिर-कम्प रोग नष्ट  
होता है वातव्याधिनाशक सम्पूर्ण औषधियाँ  
भी इस रोग में लाभदायक हैं ॥ ४-९ ॥

पथ्यादि व्ययस्था ।

पयोमांसरसाद्यश्च स्नायूनां बलवर्द्ध-  
नम् । अन्नपानादिकं यद्य मुन्नं स्वादु  
सारकम् ॥ १० ॥ शीर्षवेपयुरोगिभ्यो

हितं तन्निखिलं मतम् । विपरीतं विजानी-  
यात् कदाचन न शम्भेदम् ॥ ११ ॥

दूध, मांसरस, र्नायुओं ( Nerves )  
को बलदायक, अन्नपान तथा स्वादिष्ट, दस्तावर,  
पाचक आहार शीर्षकम्प के रोगी को  
लाभदायक हैं । इसके विपरीत आहार अपथ्य  
हैं ॥ १०-११ ॥

## वेपथुवाताधिकारे

वेपथुवात का निदान ।

वातप्रकोपिपानान्नैर्जरसा सुरयातथा ।  
कशेरुमज्जरोगाच्च वेपथ्वनिलसम्भवः ॥ १ ॥

वात को कुपित करनेवाले अन्नपान से,  
युदापे से, शराब से, वातजन्य और कशेरुमज्जा  
के रोग से वातजन्य वेपथु रोग उत्पन्न होता  
है ॥ १ ॥

वेपथु वात के लक्षण ।

आदौ हस्तं समारभ्य कदाचिद्वापि  
मस्तकम् भ्रमात् कृच्छ्रतरः सर्वं देहं  
व्याप्नोति वेपथुः ॥ २ ॥ स नाशक्नोति  
सम्यङ् न चलितुश्चामितः पतेत् । गच्छे-  
द्वातिद्रुतमिव निद्रितोऽपि च वेपते ॥ ३ ॥  
नाहारं भक्षयेत् सम्यग्वक्रकायोभवत्यपि ।  
चिबुकश्च समारोप्य वक्षोऽस्थन्यवतिष्ठते ॥  
धृताङ्ग कम्पते चापि न शक्नोत्यपि  
भाषितुम् । ततो बहुमलापरच चेतनापरि-  
वर्जितः ॥ ४ ॥ स्वयं प्रवृत्तविण्मूत्रः  
श्वासी प्राणांस्त्यजत्यपि । अतोऽयं दारुणो  
व्याधिर्नोपिच्यो जीवनेऽपिणा ॥ ६ ॥

प्रारम्भ में हाथ या मस्तक से शुरू होकर  
सम्पूर्ण देह में चल-रसा धाकर कम्प शुरू  
होता है । इससे रोगी अस्थी तरह चल नहीं  
सकता है और गिर जाता है । चलता है तो  
लेज चलता, मोठे समय भी काँपता रहता

है । अच्छी तरह भोजन भी नहीं कर सकता,  
क्योंकि शरीर तिरछा हो जाता है । चिबुक  
छाती से टिक जाती है, सब शरीर काँपने लगता  
है जिससे अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता ।  
ज्ञानशक्ति लुप्त होने से बहुत प्रलाप करता है ।  
मल-मूत्र की प्रवृत्ति स्वतः हो जाती है । श्वास  
होकर प्राणनाश हो जाता है । इसलिए जीवित  
रहने की इच्छा करनेवाले ब्याक्ति को इस  
भयानक बीमारी की लापरवाही नहीं करनी  
चाहिए ॥ २-६ ॥

वेपथुवात की चिकित्सा ।

बृंहणं भेषजं सर्व्वं ज्ञेयं वेपथुवातकृत् ।  
वातव्याधिहरं तैलं घृतञ्च निखिलं हतम् ॥  
७ ॥ वातव्याधिषु यत्पथ्यं यदपथ्यञ्च  
कीर्तितम् । ज्ञेयं वेपथुवाते तत् पथ्यञ्चा-  
पथ्यमेव च ॥ ८ ॥

रसरत्नादि धातुवर्धक सब औषधें वेपथुवात-  
नाशक हैं । सम्पूर्ण वातव्याधिनाशक तैल और घृत  
भी इसे नष्ट करते हैं । वातव्याधि में जो पथ्य कहा  
है वह तो इसके लिये पथ्य है और जो अपथ्य  
कहा है वह अपथ्य है ॥ ७-८ ॥

## ओजोमेहाधिकारे

ओजोमेह रोग का निदान और लक्षण ।

अभिघाताग्निमान्धामवाताजीर्णविमू-  
चिका । विपमज्वरशोथार्थैर्यक्ष्मकासा-  
दिभिस्तथा ॥ १ ॥ वृषयोः शोणित-  
स्रोतो विकृतेरस्रोतोपतः । लसिकाशुक्र-  
प्यासैर्गुक्ते मूत्रे तथा नृणाम् ॥ २ ॥  
स्त्रीणां गर्भागमे चैव कटुकत्तारवर्जितैः ।  
मधुरोजस्करद्रव्यमत्तैरतिमात्रतः ॥ ३ ॥  
गुरुपथ्यु पितानाञ्च भोजनादतिभोजनात् ।  
नवधान्यादिगोष्महंसदिभ्यातिसेवनात् ॥

दूषिते शीतले तोये स्नानपानावगाहनात् ।  
 एभिर्निदानैरन्यैश्च दूषितादोजसो भवेत् ॥  
 ५ ॥ ओजोमेहः स विज्ञेय आयुर्वल-  
 निकृन्तनः । शारीरिकश्रमवशात् तयान्ये-  
 नैव हेतुना ॥ ६ ॥ द्रुतं शोणितसञ्चारात्  
 प्रकृतेरच विपर्ययात् । ओजोविकृति-  
 मापन्नं हंसाण्डश्वेतभागवत् ॥ ७ ॥ पिष्ट-  
 तण्डुलवद्वाथ सहमूत्रेण संस्रवेत् । मेदः  
 क्षयो भवेत्तत्र ज्वरारोचकयोस्तथा ॥ ८ ॥  
 शोथेऽग्निमान्द्ये सञ्जाते गदोऽसाध्यो न  
 संशयः । अन्यथा कृच्छ्रसाध्योऽसौ यत्रात्  
 जीवति मानवः ॥ ९ ॥

चोट से मदाग्नि, आमघात, अजीर्ण, विस्-  
 चिका, विपमज्वर, शोथ, यक्ष्मा, खाँसी आदि  
 रोगों के कारण दोनों गुदों के रक्तस्रोतों की  
 विकृति से और रज्जुदोष से मनुष्यों के लसिका,  
 वीर्य प्य और रज्जुयुक्त मूत्र उतरता है । स्त्रियों के  
 गर्भावस्था में कटुप और चाररहित, मधुर और  
 ओजकारक द्रव्यों के अत्यन्त सेवन से, भारी,  
 घासी भोजन और अतिभोजन से यह रोग  
 होता है । नवीन अन्न, गोधूम, हंस ( बतक )  
 के अण्डों के अधिक सेवन से, दूषित, शीतल  
 जल के स्नान-पान आदि से; इन सब कारणों  
 से ओज दूषित हो जाने से धातु और यज्ञ को  
 नष्ट करनेवाला यह ओजोमेह रोग होता है ।  
 शारीरिक श्रम के कारण से या अन्य कारणों  
 से, रजसंचार की शीघ्रता से तथा प्रकृति की  
 विपरीतता से ओज विकृत होकर हंस के अण्डा  
 के श्वेत भाग के समान अथवा पिले हुए चावलों  
 के समान पदार्थ मूत्र के साथ आने लगता है ।  
 जहाँ मेदा धातु के चय तथा ज्वर, अरोचक,  
 शोथ और अग्निमान्द्य आदि उपद्रव होते हैं  
 वहाँ पर यह रोग असाध्य हो जाता है अन्यथा  
 कृच्छ्रसाध्य है । इस रोग में मनुष्य कठिनता से  
 बच पाता है ॥ १-३ ॥

ओजोमेह की चिकित्सा ।  
 विचार्य दोषदूष्यादीन् निदानं परि-

वर्जयेत् । चिकित्सेत् गदाक्रान्तं टोप-  
 दूष्यानुसारतः ॥ १० ॥ अय-प्रधानम-  
 गदं हितमत्र विशेषतः । वर्जनीयं रसो-  
 द्भूतमौषधं शिवमिच्छता ॥ ओजोहासज-  
 दौर्बल्यं दूरीकुर्यात् प्रयत्नतः ॥ ११ ॥

दोष-दूष्य आदि का विचारकर रोग उत्पन्न  
 करनेवाले कारणों को छोड़ देना चाहिए और  
 दोषदूष्यानुसार चिकित्सा करनी चाहिए । लोह-  
 भस्म जिसमें प्रधान औषध हो वही औषध इस रोग  
 में विशेषरूप से लाभदायक है । रसजन्य ( पारद  
 से बनी ) औषध त्याज्य है । ओजक्षय से  
 उत्पन्न दुर्बलता को यत्नपूर्वक दूर करना  
 चाहिए ॥ १०-११ ॥

चन्दनादि काथ ।

चन्दने नलदं द्राक्षा गुडूची मधुकं  
 स्फटी । धात्री च काथ एतेषां ओजोमेहो-  
 पशान्तिकृत् ॥ १२ ॥ तथा हारिद्रमा-  
 ज्जिप्रमेहादीनां परमौषधम् । सोपद्रवाणां  
 कथितः कृपाद्रेणैव शम्भुना ॥ १३ ॥

सफेद चन्दन, लालचन्दन, रास, दास,  
 गिलोय, मुजेठी, फिटकरी और आँवला का  
 काथ ओजोमेहनाशक है । तथा उपद्रवयुक्त  
 हारिद्र तथा मंजिष्ठामेह आदि प्रमेहों की भी  
 यह उत्तम औषध है । इसे दया से युक्त श्रीशङ्करजी  
 ने कहा है ॥ १२ १३ ॥

अजमोदादि चूर्ण ।

अजमोदामृता शुण्ठी गुडूची त्रिफला  
 त्रिष्टत् । बीजं गोक्षुरजं दारु निशा श्याम-  
 नृसारकम् ॥ १४ ॥ चूर्णमेषां मापमितं  
 सेवितं यत्नतो हरेत् । ओजपिष्टादिजान्  
 मेहान् द्रुतं भास्वान् यथा तमः ॥ १५ ॥

अजमोद, गिलोय, सोंठ, त्रिफला, निशाप,  
 गोक्षरु के बीज, दारुइन्दरी, सारिधा, नीसादर,  
 इन सबका पूर्ण करके एक माशा की मात्रा में  
 यत्नपूर्वक सेवन करने से ओज, पिष्ट आदि

प्रमेह इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्य से अन्ध-  
कार नष्ट होना है ॥ १४-१५ ॥

दाडिमाद्यं घृतं चन्द्रप्रभा नाम वटी  
तथा । मुक्तावङ्गश्वरश्चैव वसन्तकुसुमा-  
करः ॥ १६ ॥ चन्दनाद्यासवोऽरिष्टो देव-  
दारुसमुद्भवः । प्रमेहमिहिरं तैलं तथा  
मेहाधिकारिकम् ॥ अगदं चात्र युञ्जीत  
नित्यं कुशलमिच्छता ॥ १७ ॥

दाडिमाद्यघृत, चन्द्रप्रभावटी, मुक्तावंगश्वर,  
वसन्तकुसुमाकर, चन्दनाद्य आसव, देवदावारिष्ठ,  
प्रमेहमिहिर तैल तथा प्रमेहाधिकार में कहे हुए  
प्रयोग भी आवश्यकतानुसार इस रोग में प्रयुक्त  
करने चाहिए ॥ १६-१७ ॥

### चन्दनासव ।

चन्दने सरलं देवदारु दारुनिशा  
निशा । त्रिष्टत् चित्रकमूलश्चागुरु धात्री  
सुरमियम् ॥ १८ ॥ शतमूल्याश्मभिद्  
वासात्वचश्च सारिवाद्रयम् । लक्ष्मणा-  
यास्तथा मूलं वावरी वरुणत्वची ॥ १९ ॥  
प्रत्येकं पलिकं ज्ञेयं द्राक्षायाः पलविंश-  
कम् । धातकीपोदशपलां तुलामानां सितां  
तथा ॥ २० ॥ मात्तिकाढपलं सर्व्वं जल-  
द्रोणद्वये क्षिपेत् । मासमेकं भाण्डमध्ये  
सपिधाने निधापयेत् ॥ २१ ॥ चन्दनासव  
इत्येष रोगानीकनिकृन्तनः । शुक्रदोषं  
रजोदोषं मूत्रदोषं सुदारुणम् ॥ २२ ॥  
निहन्ति त्रिविधान् मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं  
तथा । चतस्रश्चाश्मरीस्तद्वन्मूत्राघातां-  
स्रयोदश ॥ २३ ॥ अत्रष्टदिं पाण्डुरोगं  
कामलाश्च हलीमकम् । कासं श्वासं तथा  
कुष्ठमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ २४ ॥ औप-  
मर्गिकमेहांश्च नाशयेद्विकल्पतः । भापितः  
श्रीमहेशेन लोकानां हितकारिणा ॥ २५ ॥

लालचन्दन, सफेद चन्दन, देवदारु, चीड़,  
दारुहरदी, हल्दी, निशोथ, चित्रक की जड़,  
अगर, अत्रिला, कवावचीनी, शतावरी, पापाण-  
भेद, अद्रूस की छाल, दोनों सारिया, लक्ष्मणा  
की जड़, बबूल की छाल, बरना की छाल, प्रत्येक  
चार-चार तोले । दाख १ सेर, धाय कं फूल ६४  
तोले, खाड़ ५ सेर, स्वर्णमासिक की भस्म २  
तोले, इन, सबको लेकर २५ सेर ४८ तोले जल  
में डालकर एक मिट्टी के पात्र में भरकर उसका  
मुख बन्द कर के एक महीने तक रखा रहने दे ।  
आसव बनाने की विधि से आसव तैयार करके  
फिर छान ले । रोगसमूहों को नष्ट करनेवाला  
यह चन्दनासव वीर्यदोष, रजोदोष, कष्टदायक  
मूत्रदोष, अनेक प्रकार के प्रमेह, आठ प्रकार के  
मूत्रकृच्छ्र, चार प्रकार की अश्मरी, तेरह प्रकार  
के मूत्राघात, अत्रष्टदि, पाण्डुरोग, कामला,  
हलीमक, खाँसी, श्वास, कुष्ठ, अग्निमान्द्य,  
अरुचि और औपमर्गिकमेह (सूजाक) आदि को  
नष्ट करता है । श्रीमहेशजी ने मनुष्यों के हित के  
लिए यह चन्दनासव कहा है ॥ १८-२५ ॥

### पथ्यापथ्य की व्यवस्था ।

लघु वस्यं पुराणञ्च धान्यमुद्गयवादि-  
कम् । वार्त्तिकुञ्च पटोलश्च काकोडुम्बरकं  
तथा ॥ २६ ॥ कारवेल्लादिकं शस्तं वर्ज्ज-  
यैन्मधुरं गुरु । मांसं मत्स्यान् तथा ध्वान-  
प्रातपाग्निनिषेवणम् ॥ २७ ॥ दूषिताति-  
शीततोयस्नानपानावगाहनम् ॥ २८ ॥

इस रोग में बलकारक, हलका आहार, पुराने  
घन, पाचल, मूँग, जौ आदि तथा बैंगन,  
परधल, कटगूलर करेला आदि साग अष्ट है ।  
मधुर, भारी, खाद्य, मांसी-मदिरा, मैथुन, धूम,  
अग्निमेघन तथा दूषित और अत्यन्त शीतल  
जल में स्नान-पान आदि त्याग दे ॥ २६-२८ ॥

### आगन्तुजपक्षाघाताधिकारे

आगन्तुज पक्षाघात का भेद ।

पक्षाघातो द्विधा ज्ञेयो दोषागन्तुज-

भेदतः । दोषजः कथितः पूर्वमधुनागन्तुजं  
मृगु ॥ १ ॥ आगन्तुजोऽपि द्विविधः  
पक्षाघातः प्रकीर्त्यते । आद्यः पारदसम्भूतो  
द्वितीयो नागजः स्मृतः ॥ २ ॥

नागजः सीसकजः ।

पक्षाघात दो प्रकार का होता है । १ दोषज,  
२ आगन्तुज । दोषज तो पहिले कइ दिया गया  
है, आगन्तुज अब कहते हैं । आगन्तुज भी दो  
प्रकार का होता है । १ पारदजन्य, २ नागज  
( शीशकाजन्य ) ॥ १-२ ॥

पारदजन्य पक्षाघात का निदान

रससंस्पर्शसातत्यात् तद्भूमस्य च सेव-  
नात् । पक्षाघातो भवेद् यस्तु स ज्ञेयः  
पारदोद्भवः ॥ ६ ॥

पारदजन्य पक्षाघात—पारद के स्पर्श या  
उसके धुआँ के सेवन से एक अंग बेकार हो  
जाय, उसे पारदजन्य पक्षाघात कहते हैं ॥ ३ ॥

पारदजन्य पक्षाघात के लक्षण ।

आदौ बाहोर्ध्वलध्वंसस्ततः कम्पः प्र-  
जायते । वेपने सक्थिनी चापि कायःसर्व-  
स्ततः परम् ॥ ४ ॥ गद्री चलति नृत्यन्  
वै दृढं द्रव्यं न धारयेत् । स्पष्टं प्रभापितु-  
श्चापि चर्वितुश्च न च क्षमः ॥ ५ ॥ तत-  
स्तस्यापि निद्रा च प्रलापो बलसंक्षयः ।  
हृल्लासो वह्निनाशश्च दन्तध्वंसः क्वचित्  
स्र तिः ॥ ६ ॥ शान्तिर्भवति कम्पस्य  
विधृतेऽङ्गे रसामये । नागामयस्य लिङ्गानि  
भृणुतातः समासतः ॥ ७ ॥

अत्र वै शब्दस्य इवार्थे प्रयोगः । स्र तिः  
लीलासावः ।

पारद में बाहु का बल नष्ट होने से कम्प  
उत्पन्न होकर टाँगें काँपती हैं । बाह में सर्वांग भी  
काँपने लगता है । रोगी भावता हुआ या क्षमता  
है, किसी वस्तु का रसता से धारण नहीं कर

सकता है । न तो स्पष्ट बोल ही सकता है और  
न अच्छी तरह चबा ही सकता है । नींद अधिक  
आती है; बकवाद करने लगता है और यल  
नाश हो जाता है । उष्काहृयाँ, अग्निनाश, दाँत  
गिर जाना और कहीं-कहीं लालासाव भी होता है ।  
किसी-किसी अंग का कम्प शान्त भी हो जाता  
है । ये पारदजन्य पक्षाघात के लक्षण हैं । नाग-  
जन्यपक्षाघात के लक्षण आगे कहेंगे ॥ ४-७ ॥

पारदजन्य पक्षाघात की चिकित्सा ।

मुख्यं चिकित्सितश्चास्य निदानपरि-  
वर्जनम् । निदानसेधिनो व्याधिर्नौपधाद्  
विनिवर्त्तते ॥ ८ ॥ स्वेदसञ्जननं सर्वं  
मूत्रकृच्च विरंचनम् । रक्तदोषहरं चात्र  
शर्मदं भेषजं मतम् ॥ ९ ॥ गन्धकं परमं  
प्राहुर्भेषजं पारदामये । नेपालनिम्बतोयेन  
सेव्यो लोहोऽस्य शान्तये ॥ १० ॥

इसकी मुख्य चिकित्सा यही है कि जिन  
कारणों से उत्पन्न हुआ है उन-उन कारणों को  
छोड़ दिया जाय । यदि रोग-उत्पादक कारणों  
को सेवन करते ही रहे छोड़े नहीं, तो औषध  
सेवन से रोग नष्ट नहीं होगा है । स्वेदज  
(पसीना लानेवाली), मूत्रकारक, दस्तावर, रधिर-  
दोषनाशक औषध यहाँ लाभदायक होती है ।  
पारदजन्य विकारों में गन्ध श्रेष्ठ औषध है ।  
चिरायता और नीम के जल में खोद रसायन का  
सेवन करना भी इसको शान्त करता है ॥८-१०॥

नागजपक्षाघात का निदान

चित्रकृत् प्रमुखा ये हि नागैः कर्म  
प्रकुर्वन्ते । ये वा व्यवहरन्त्यस्य पात्रं नेपां  
ततो गदः ॥ ११ ॥

जो पत्र चित्रकारी, प्रेम का काम या  
अन्य गीता मरकन्धी काम करता है उमको  
नागजन्य पक्षाघात होता है ॥ ११ ॥

नागजन्य पक्षाघात के लक्षण ।

अद्गुलीस्तु ममारभ्य मण्डिरन्धं तनो-  
ऽखिलम् । व्याधिर्प्राप्नोति दीर्घस्वयं तर्कं



लक्षणं महत् ॥ १२ ॥ अंसे प्रकोष्ठे  
तोदश्च बाहोरश्च परिशीर्णता । नीलिमा  
दन्तवेष्टे च शूलं चिह्नानि चास्य वै ॥ १३ ॥

अंगुलियों से प्रारम्भ होकर कलाई तक या  
अधिक भी हाथ में रोग फैलता है और दुर्ब-  
लता उसका मुख्य लक्षण है । कंधा और प्रकोष्ठ  
में तोड़ने की पीड़ा, हाथ में शिथिलता,  
मसूढ़ों में नीलापन और शूल होना इसके  
लक्षण हैं ॥ १२-१३ ॥

नागजन्यपक्षाघात की चिकित्सा ।

स्वेदनं भेदनं चापि कुष्ठम्नं यच्च भेष-  
जम् । तत्सर्वमिह संसेव्यं कृत्वा हेतुविव-  
र्जनम् ॥ १४ ॥

स्वेदन, भेदन और कुष्ठनाशक औषध सेवन  
करने से लाभ होता है । रोग उत्पन्न करनेवाले  
कारणों का सेवन करना बन्द कर देने से भी  
लाभ होता है । १४ ॥

### अंशुघाताधिकारे

अंशुघात का निदान और लक्षण ।

चण्डांशोरंशुना शीर्ष्णि तप्ते चण्डेन  
जायते । अंशुघाताभिधो व्याधिः प्राणिनां  
प्राणपीडनः ॥ १ ॥ वृष्णातिथोरा त्वगुक्ता  
भ्रमो नेत्रस्य रक्ता । मूत्रवेगश्च मूर्च्छा च  
हृत्लासो विपमा धरा ॥ २ ॥ स्वासकृच्छ्रं  
स्पर्शाहानिराक्षेपश्चात्र सम्भवेत् । प्रायः  
कारावरुद्धानां भ्रष्टानां जायते च सः ॥ ३ ॥

स अंशुघातः सर्दीर्गमिति वदन्भाषा ।

सर्प की तेज छिद्रों से मस्तक गरम हो  
जाता है जिससे प्राणों को पीड़ित करनेवाली  
अंशुघात नामक व्याधि जीवों के उत्पन्न होती  
है । इसमें श्वसन तीव्र प्यास लगती है, तथा  
नुरज हो जाती है, भ्रम और चानों में झाली  
हो जाती है, मूत्र का वेग होता है । मूत्र की  
मृष्टि न होकर मूत्राशय मरत हुआ भा मासूम

देता है । मूर्च्छा, उबकाई, विषम स्थिति, स्वास  
में कष्ट, स्पर्श का अनुभव न होना एवम् आक्षेप  
( ऋत्के ) भी आने लगते हैं । प्रायः कैदी  
वीरों के भी यह रोग हो जाता है । बंगला  
भाषा में अंशुघात को सर्दी-गर्मी कहते हैं । १-३

अंशुघात के अग्निष्ट और लक्षण ।

नीलिमा हस्तपादस्य धमन्याः क्षण-  
लुप्तता । विक्षेपणश्च गात्राणां मरणायां-  
शुघातिनः ॥ ४ ॥

अंशुघातिनः अंशुघातरोगिणः ।

अंशुघातपीडित रोगी के हाथ-पैरों का  
नीला हो जाना, नाड़ी का क्षण में लुप्त होना,  
क्षण में प्रगट होना और शरीर के अचयवर्ण  
का इधर-उधर पकना उसके मरण के चिह्न हैं ॥ ४ ॥

अंशुघात की चिकित्सा ।

अङ्गावरणमासांसि दूरे निःक्षिप्य  
यत्नतः । प्रच्छाये प्रवहवाते गन्धाढ्ये  
मनसः प्रिये ॥ ५ ॥ विपिक्रे व्यक्कनभसि  
विहङ्गगगनादिते । शाययेत् सुखशय्या-  
यामशुघातिनमञ्जसा ॥ ६ ॥ शीताम्युशेकं  
कुर्याच्च चन्दनाम्यु च पाययेत् । नाधिकं  
पाययेदम्यु सहसा कुशलो भिषक् ॥ ७ ॥  
आच्छादयेत्सर्वमङ्गं शीततोयाद्र्द्राससा ।  
सहस्रधारया स्नानमंशुघातगदापहम् ॥ ८ ॥  
दन्त्युद्भवेन तैलेन रेचनं हितमुच्यते अत्युष्णे  
नाम्भसा सिद्धं वस्त्रपूर्णमयं पृथु ॥ ९ ॥  
ततो निर्हृत्य तोयश्च श्रीनासपृषतावृतम् ।  
उष्णमेव च घाटायां निधायान्येन वास-  
सा ॥ १० ॥ शुष्केण वापि वदलीदले-  
र्नातिदृढं ततः । वदतिदृढं यावत् संरक्षे-  
दति यत्नतः ॥ ११ ॥ अनेन विधिना  
मूर्च्छा नश्यत्येव हि सत्तरम् ॥ अङ्गा-  
नामुष्मणो नाशे धमन्याश्च व्यतिव्रमे

स्वेदो विधेयो योज्या च मृतसञ्जीवनी  
सुधा ॥ १२ ॥

रोगी के शरीर के बर्छों को दूर करके उसके हवा करनी चाहिए तथा छाया में हवादार स्थान में रखना चाहिए जहाँ मन को प्रिय सुगन्ध आती हो । एकान्त खुले हुए स्थान में जहाँ पक्षिगण बोलते हैं सुखदायक शब्दों पर अंगुघातपीडित रोगी को सुलाना चाहिए । रोगी का शीतल जल से सेंक ( ठंडे जल में कपड़ा भिंभोकर सिर आँख आदि पर फेरना ) करना चाहिए । चन्दन का जल (अर्कचन्दन) पिलाना चाहिए, पर एक साथ अधिक जल न पिलाना चाहिए । रोगी के सय शरीर को शीतल जल से भीगे हुए पक्ष ( भिंभोकर निचोड़े हुए ) से ढक देना चाहिए, तथा कुवारे के जल से स्नान भी कराना चाहिए । दन्ती ( जमालगोटा की जड़ ) के तेल से विदेचन करा देना भी लाभदायक है । अत्यन्त गरम जल में उन के गोठे कपड़े को डुबोकर उसके जल को निचोड़ ले और उसमें चीड़ का गोढ़ मिलाकर गरम-गरम ही दूसरे कपड़े पर लगाकर गर्दन के पिङ्गले हिस्से पर लगा दे । सूख जाने पर केला के पत्तों से ढककर बाँध दे, परन्तु बहुत कसकर न बाँधे । जब तक द्राह हो तब तक इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करता रहे । इस विधि से शीघ्र ही मूर्च्छा नष्ट हो जाती है । शरीर के अवयवों की ऊष्मा नष्ट होने पर ( टेम्प्रेचर गिर जाने पर ) और नाड़ी के उलटने क्रम से चलने पर पसीना दिखाना चाहिए और मृतसञ्जीवनी सुधा का प्रयोग करना चाहिए ५-१२

रत्नेश्वर रस ।

वज्र वैक्रान्तमभ्रञ्च सिन्दूरमपि मालि-  
कम् । मौक्तिकं हेम रौप्यञ्च सममिन्नुज-  
वारिणा ॥ १३ ॥ शतावरी रसेनापि  
विदार्याः स्वरसेन च । विभाव्य वटिका  
कुन्द्याद्रक्तिकाममिता भिपक ॥ त्रिफला-  
जलयोगेन रसो रत्नेश्वरो हरेत् ॥ १४ ॥  
मस्तिष्कस्नायुजान् व्याधीनंशुयातं विशे-

पतः ॥ अंगुघाते प्रकर्तव्यो विधिर्मूर्च्छा-  
निसूदनः ॥ १५ ॥

हीरा, वैक्रान्त, अभ्रक, रससिन्दूर, स्वर्ण-  
माषिक, मोती, सोना और चाँदी सयकी भस्म  
समानभाग लेकर ईँख के रस, शतावरी के रस  
और विदारीकन्द के स्वरस से घोटकर एक-  
एक रत्ती की गोलियाँ बना ले । त्रिफला के जल  
के साथ इस रत्नेश्वर रस का प्रयोग करने से  
यह मस्तिष्क और स्नायु ( नाडी Nerves )  
जग्य विकारों को नष्ट करता है । विशेषतः  
अंगुघात के लिए अधिक लाभकारक है ।  
अंगुघात रोग में मूर्च्छा नष्ट करनेवाले प्रयोग  
करना चाहिए ॥ १३-१५ ॥

महाशिशिरपानक ।

शर्करा द्विपलोन्माना चन्दनश्चाङ्गकार्षि-  
कम् । जम्बीरजश्च पलिको रसो वर्याश्च  
तत्समः ॥ १६ ॥ शाणश्चमधुरीतैलं प्रस्थार्द्ध-  
प्रमितेऽम्भसि । मिश्रयित्वा समालोड्य  
स्तोकं स्तोकं मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥ अंगुघात-  
मृदाक्रान्तं पाययेत् सुखदं हितम् । महा-  
शिशिरनामेदं पानकं हरिणोदितम् ॥ १८ ॥  
अंगुघाते निवृत्तेऽपि मिथ्याहारविहारिणः ।  
अपस्मारादयः प्रायो जायन्ते बहवो गदाः ॥  
१९ ॥ तन्मुक्तेऽतो हितं नित्यं सेवेता-  
वललाभतः । मनःप्रीतिपदं कर्म विद-  
धीत निरन्तरम् ॥ २० ॥

शर्करा या चीनी ८ तोले, चन्दन ८. मारो,  
जवीरी नींबू का रस ४ तोले, शतावरी का रस,  
४ तोले, सौंफ का तेल २ मारो और जल ३२  
तोले, सबको मिलाकर मया जाय, बाद में  
थोड़ा-थोड़ा बार-बार मिलाता रहे । महाशिशिर  
नामक पानक अंगुघात रोग में पीड़ित व्यक्ति  
को बहुत सुखदायक और हितकारी है । अंगु-  
घात रोग के बन्दे होने पर भी मिथ्या  
आहार और विहार के सेवन से अपस्मार  
आदि बहुत से रोग हो जाते हैं, इसलिये अंगु-

घात रोग से अच्छा होने पर भी जब तक पूर्णतया बल न आ जाय इसे नित्य ही सेवन करता रहे । इसमें मन को प्रसन्न करनेवाला कार्य ही सदैव करना चाहिए ॥ १६-२० ॥

शंशुघात रोग में पथ्य और अपथ्य-व्यवस्था ।

अन्नपानादिकं स्निग्धं बलपुष्टिप्रदं सरम् । हितं स्यादंशुघातिभ्यो विपरीतं न शर्मणे ॥ २१ ॥

शंशुघात के रोगी को अन्नपान आदि चिकने, बल और पुष्टिकारक, दस्तावर होने चाहिए । इससे विपरीत सुखदायक न होकर हानिकारक होते हैं २१

### अपमुमुर्ष्वधिकारे ।

श्वासरोधी मतो हेतुर्मरणे मज्जनादिना । अतःश्वासे समानीते प्राणी प्राणिति यत्नतः ॥ १ ॥ उष्णः कायोऽस्ति वै यावदङ्गानि शिथिलानि च । तावच्चिकित्सा कर्त्तव्या प्रायोदण्डान्ततो मृतिः ॥ २ ॥

दूबने आदि से श्वास का रुक जाना मृत्यु का कारण है, अतः प्राणों की रक्षा करने के लिए यत्नपूर्वक श्वास को फिर वापिस लाना चाहिए । जब तक शरीर गरम और अङ्ग शिथिल रहें तब तक चिकित्सा करनी चाहिए । प्रायः एक घड़ी भर के बाद मर जाता है ॥ १-२ ॥

जलमज्जन की चिकित्सा ।

जलमग्नं समुत्थाप्य व्यवलम्बोर्द्धवर्त्म च । मुखान्निःसारयेत्तौयं कफं लालाञ्च निर्हरेत् ॥ जनतां वारयेत् तत्र तथा वायुर्न दृप्यति ॥ ३ ॥

जल में दूबे हुए मनुष्य को उठाकर उसके शरीर को बिपटाकर पेट को दबाकर मुख से जल, कफ और लार आदि को निकाल देना चाहिए और वहाँ भीड़ की न आने देना चाहिए तथा वहाँ की वायु को दूषित न होने देना चाहिए ॥ ३ ॥

लुप्तश्वास की पुनरानयन विधि ।

शायितस्यास्य पार्श्वे तु तीव्रनस्यं नसि च्छिपेत् । अंगुल्या संस्पृशेत् कण्ठं श्लक्ष्णेन दारुणाथवा ॥ ४ ॥ अनेन विधिना वेगे क्षवस्य वमनस्य वा । जाते श्वासः समायाति विपन्नश्चापि जीवति ॥ ५ ॥ मुखं वक्षश्च संघृष्य तत्र शीताम्बुसेचनम् । कुर्याच्छ्वासस्तथायाति विपन्नश्चापि जीवति ॥ ६ ॥ एवं श्वासो न चेदायाद्विपक्व कुर्यात् क्रियामिमाम् । श्वासक्रियामृत्त्यर्थं जितहस्तः कृतक्रियः ॥ ७ ॥ कृत्वावाकशायिनं वैद्यस्तथोपधानवक्षसम् । पार्श्वे ततः शाययित्वा तद्युग्मं परिपीडयेत् ॥ ८ ॥ पट्टा वा सप्तधा कुर्यात् पलमध्ये क्रियामिमाम् । यावच्छ्वासो न चायाति नाथवा मृत्युनिरचयः ॥ ९ ॥ कृत्वोपधानपट्टं वा ताम्रुचानं प्रशाययेत् । ततश्चाकर्षयेज्जिहां कर्पेद्वाहुः स्वयं तथा ॥ १० ॥ शीर्ष्णः समीप आसीनः कुर्याद्धस्ताबुरोगती । पटकृत्वः सप्तकृत्वो वा पले कुर्यात् क्रियामिमाम् ॥ ११ ॥ यावच्छ्वासो न चायाति नाथवा मृत्युनिरचयः । श्वासो नायाति यद्येवं वाहुसकथनी च यत्नतः ॥ १२ ॥ विमर्द्य निम्नतश्चोर्ध्वं रुक्षास्वेदञ्च कारयेत् । निखिलं कर्ममिश्रं श्वासे वृत्ते च जीवति ॥ १३ ॥ विपन्ने पाययेदेनं सुरां सलिलसंयुताम् । निद्रावेगे स्वापयेच्च पथ्येनातश्च वर्त्तयेत् ॥ १४ ॥

रोगी को सीधा मुलाकर नाक में तीक्ष्ण मरु पक देना चाहिए और कण्ठ को शीतली से कोमलता से या कड़ाई से दूना चाहिए । इस प्रकार जोर से धीक चावेगी या वमन होगी और गया द्रुभा श्वास फिर वापिस आ जायगा

और रोगी जी जायगा। अथवा मुख और छाती को ममलकर शीतल जल सींचना चाहिए। कृत्रिम श्वासक्रिया करने से मरणासन्न भी जी जाता है,। यदि इस प्रकार भी श्वास न आए तो यह दूसरी क्रिया करनी चाहिए। क्रियाकुशल व्यक्ति बीमार को सीधा सुलाकर उसके दोनों पसवाहों को मससे। यह क्रिया एक पल में ६-७ बार करनी चाहिए। जब तक श्वास न चल निकले या उसकी मृत्यु का निश्चय न हो जाय तब तक यह क्रिया करते ही रहना चाहिए। एक विधि यह भी है। सीधा लिटाकर जीभ को बाहर निकालकर रोगी के शिर के पास बैठकर उसके हाथों को ऊपर

नीचे करना चाहिए। यह क्रिया तब तक करनी चाहिए जब तक कि रोगी का श्वास-प्रवाह जारी न होने लग जाय या रोगी की मृत्यु का निश्चय न हो जाय। यह क्रिया एक पल में ६-७ बार करनी चाहिए। यदि इस पर भी श्वास न आवे तो हाथ-पैरों को नीचे से ऊपर को मर्दन करना चाहिए और रूचस्वेद ( बालुकास्वेद आदि ) करना चाहिए। इस प्रकार की क्रियाओं से रोगी जी जाता है। रोगी को शराब ( उत्तम मृतसंजीवनी सुरा आदि ) को जल भिलाकर पिलाना चाहिए। नौद आने पर सुला देना चाहिए और रोगी को पथ्य सेवन करना चाहिए ॥ ४-१४ ॥

## द्वितीय परिशिष्ट

अप्यवरत्नावली में जिनने प्रयोगों का वर्णन है उन सबके बनाने के लिए उनके उपादान (वह द्रव्य जिनके योग से प्रयोग बनता है) तैयार रखना आवश्यक है जिनमें से कुछ द्रव्य केवल शुद्ध करने के बाद में व्यवहार योग्य होते हैं। कुछ भस्म करने के बाद व्यवहार योग्य होते हैं। अस्तु, यहाँ उन सबके शोधन और भस्मीकरण की विधियाँ लिखते हैं तथा तैल, घृत, आसव, अरिष्ट आदि की निर्माण-विधियाँ भी लिखते हैं, जिससे घना किसी अन्य ग्रंथ का आश्रय लिये प्रत्येक चतुर व्यक्ति औषध-निर्माण कर सके।

### हिंगुलु—

खनिज और कृत्रिम-भेद से दो प्रकार का होता है। जहाँ केवल शुद्ध हिंगुलु का प्रयोग हो वहाँ तो खनिज हिंगुलु ही ग्रहण करना चाहिये, अभाव में कृत्रिम भी लिया जा सकता है। और पारद निकालने के लिये कृत्रिम हिंगुलु का भी व्यवहार कर सकते हैं। कृत्रिम हिंगुलु भारी चमकदार जिसके दाने जवही ही धिक्कर जायँ यह अच्छा होता है। इसमें से पारद अधिक मात्रा में निकल सकता है।

हिंगुलुशोधन—नींद के रस में २-३ दिन घोटकर मुत्ता लेना चाहिये।

हिंगुलु से पारद निकालना—शुद्ध हिंगुलु की टिकिया या गोला के ऊपर कपड़े की चीर हम तरह लपेटें कि उसके चारों ओर कुछ-कुछ निकलते रहें, फिर उस गोला को मिट्टी के तेल से भिगोकर एक बड़ी परात में छोटी-छोटी चार कंकड़ियों पर हम गोले को रगड़कर घाग से जका दे और ऊपर से एक मिट्टी की नाँद से हम तरह ढक दे कि थोड़ी सी हवा उसके अन्दर जाती रहे, जिसमें वह बुझ न जाय। हम ग्रंथ की निर्वात स्थान पर रगमा चाहिये और नाँद के ऊपर एक कपड़ा जल में

भिगोकर रख दें। पारद हिंगुलु से निकलकर नाँद के पेंदे में जम जाता है तथा कुछ परात में फैल जाता है। स्वांग शीतल होने पर नाँद से खुरच कर पारे को निकाल लें तथा परात में फैले हुए और राख में मिले हुए पारे को जल से धो-धोकर निकाल लें। इस विधि से पारद जवही और अधिक मात्रा में निकलता है। पारद निकालने की मात्रा हिंगुलु की श्रेष्ठता पर निर्भर है।

### पारद—

भारी, चंचल, दर्पण की तरह स्वच्छ, चमकदार, बाहरी भाग में सफेद, भीतर रवामाभा परा अच्छा होता है। इसको शुद्ध करके व्यवहार में लाना चाहिये। हिंगुलु से निकाला हुआ पारद भी शुद्ध होता है, उमी को व्यवहार में लाते हैं, किन्तु गुणवृद्धि के लिये भी फिर शुद्ध कर लेना चाहिये।

साधारण शुद्धि—पारद घाघ सेर, अद्रव्य का रस पाव सेर, पान का रस पाव सेर, सुहागा, सजीलार, जकारार प्रत्येक दो-दो तोले लेकर तरल में तब तक घोटना चाहिये जब तक कि रसों का जलीय भाग मूल न जाय, फिर जल से धोकर अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये और बाद में कपड़े की २३ तह करके उसमें छान लेना चाहिये।

विशेष शुद्धि—पारद घाघ सेर, छोटी कटेरी का घाघ, त्रिकला का घाघ, ग्यारपाटे कागुदा प्रत्येक पाव भर, चित्रक का चूर्ण, पीली तराई का चूर्ण प्रत्येक घाघा पाव मक्की तरल में साजकर ३-४ दिन घोटकर घाघ को मुत्ता टाके। बाद में जल से धोकर मूले कपड़ों की तहों में ३-४ बार छान लेना चाहिये। यह पारद की विशेष शुद्धि है।

### आठ साकार—

शुद्ध पारद को अधिक गुणकारी बनाने के लिये तथा रसायन-विधान के लिये साकार

करना आवश्यक है। यह संस्कार १८।१।६।२५ प्रकार के वतलाए हैं, किन्तु उन सबका करना कठिन और अधिक परिश्रमसाध्य है। रसशास्त्र के आचार्यों ने आठ संस्कारों को ही मुख्य माना है, इनसे ही पारद तीव्र गुणों से युक्त हो जाता है। वैद्यवर्ग में इन आठ संस्कारों का ही अधिक प्रचार है।

१ स्वेदन संस्कार—एक मिट्टी के पात्र में ५ सेर काँजी, आध सेर दूही का तोड़, आध पाव नींबू का रस, जवाखार, सजीखार, सेंधा नमक प्रत्येक आधी-आधी छटाक तथा छोटी पीपल, काली मिर्च, चित्रक, सोंठ, त्रिफला, इलायची के फल का साथ १ सेर (सब चीजें मिलाकर १ सेर लेकर १६ सेर जल में आँटाकर १ सेर रहने पर छानले) डालकर चूल्हे पर चढ़ाकर उसमें कपड़े से बंधी पारे की पोटली को एक लकड़ी से बाँधकर उसमें लटका दे जिससे वह उस तरल में दूबी रहे, मगर पेंदे से न लगने पावे। श्रव मदी-मदी आँच देता रहे। जब हाँडी का द्रव जलकर पेंदे में जा लगे तब उसे खोलकर निकाल ले।

२ मर्दनसंस्कार—स्वेदन संस्कार किये हुए पारद को नीचे लिखी हुई औषधों के चूर्ण में तीन दिन घोटकर जल से धोकर कपड़ों की तह में छान लेना चाहिए। औषधों के चूर्ण—सेंधा नमक, राई, सोंठ, घर का धुआँसा, हल्दी त्रिफला, अदरक, पीली इँट का चूर्ण।

३ मूर्च्छन संस्कार—मर्दन संस्कार किए हुए पारद को जवाखार, सजीखार, सुहागा प्रत्येक दो दो तोला, पाँचों नमक, नींबू का रस, इमली का पना प्रत्येक दस-दस तोला लेकर एक खरल में डालकर इतना घोटें कि पारद की पिट्टी-सी हो जाय और दिखाई देने से बन्द हो जाय तब जल से धोकर पारद को निकाल ले और कपड़े की तहों में छान ले।

४ उरधापन-संस्कार—मूर्च्छन संस्कार किए हुए पारद को सेंधा नमक और सुहागा १५ तोले नींबू का रस और शहद दो-दो तोले खरल में डालकर घोटना और गोला बंध जाने

पर उस गोले को कपड़े में बाँधकर स्वेदन-संस्कार की तरह मिट्टी के पात्र में दूही का तोड़ या काँजी भरकर पकाना चाहिये; इस प्रकार दो तीन बार करना चाहिये। इसका नाम उरधापन संस्कार है।

५ पातन संस्कार—इस संस्कार के तीन भाग हैं १ ऊर्ध्वपातन, २ अधपातन ३ तिर्यक-पातन।

ऊर्ध्वपातन—उरधापन संस्कार किये हुए पारद को सजीखार २ तोले, जवाखार २ तोले, पाँचों नमक ५ तोले, हाँग १ तोला के साथ घोटकर गोला-सा बना ले। इस गोले को एक ऐसे मिट्टी के पात्र में रखे, जिसमें ४ सेर जल आ सकता हो। इस पात्र के ऊपर दूसरा इतना ही बड़ा पात्र रखकर दोनों के मुँह अच्छी तरह मिलाकर मजबूत कपड़-मिट्टी (मुलतानी मिट्टी में सना हुआ कपड़ा लपेट) कर सखि बंद कर दे। इस यंत्र को (बमरू यंत्र कहते हैं) चूल्हे पर चढ़ा दे। ऊपर-वाले पात्र के पेंदे पर ४-५ तह किया हुआ मोटा-सा कपड़ा जल में भिगोकर रख दे और चूल्हे में आग जचावे। दिन भर अग्नि देता रहे (किन्तु अग्नि इतनी तेज न हो कि पात्र फूट जाय), शाम को अग्नि बुझा दे, सुबह शीतल होने पर खोलकर सावधानी से ऊपर के पात्र के तले में जमे हुए पारद को प्रहण करना चाहिये। यदि नीचे के पात्र में जो पदार्थ रहता है उसमें पारद होने की संभावना हो तो फिर इसी तरह प्रयोग करना चाहिये।

अधपातन—हठ, बहेडा, राई, सेंधा नमक, चित्रक सहजने के बीज प्रत्येक तीन-तीन तोले लेकर चूर्ण कर ले। उस चूर्ण में नींबू का रस डालकर पारद को इतना घोट डाले कि बारीक मिट्टी बन जाय तब ऊर्ध्वपातन की तरह दो मिट्टी के पात्र लेकर एक पात्र के पेंदे में उस मिट्टी को लेप दे और दूसरे पात्र के साथ मुँह को मिलाकर कपड़मिट्टी करके बन्द कर दे और कपड़मिट्टी के सूखने पर पारदवाले पात्र को ऊपर रखकर दूसरे पात्र को गुरथों में गाढ़ दे

श्रीर इतना गाढे कि पारदवाले पात्र का पेंदामात्र ही बाहर रहे और सब भाग पृथ्वी के भीतर रहे । कोई-कोई वैद्य खाली पात्र में थोड़ा-सा जल भी भर देते हैं । पारदवाले पात्र के ऊपर १०-१० कण्डों की अग्नि २-२ बार जलानी चाहिये, फिर ठंडा होने पर राख हटाकर यंत्र खोलना चाहिये । पारद नीचे के पात्र में मिलेगा ।

तिर्यकपातन—अधःपातन में कही हुई औषधों के साथ उसी विधि से घोटकर पिट्टी करके एक ही मिट्टी के पात्र में उसी तरह रखे दूसरे पात्र को खाली रखे और दोनों पात्रों के मुँह तिरछे जोड़ दे । इनमें से औषधवाले पात्र को चूहे के ऊपर रखे और दूसरे पात्र को एक दूसरे जल से पूर्ण पात्र में रखे, फिर चूहे में अग्नि जलावे । मन्दी-मन्दी आग से दिन भर आग जलावे । शीतल होने पर दूसरे पात्र में लगे हुए पारद को ग्रहण कर ले । तीनों प्रकार के पारद को पात कर लेने से पातन संस्कार पूर्ण हो जाता है ।

६ वोधन-संस्कार—पारद, पारद से चौगुना जल और चौथाई संधानमक एक शीशी में भरकर मलयूत ढाट लगाकर पृथ्वी में गाढ़ दे, तीन दिन बाद खोलकर कपड़े से छानकर व्यवहार में लावे । यह वोधनसंस्कार है ।

नियमनसंस्कार—पुनर्नवा, सरफोंका, गोखरू महाथला, मकीय, प्रह्नी, विष्णुक्रान्ता, चौलाई, तुलसी, गंगेरन, शताघर, गिलोय, संधानमक सब मिलाकर ३ सेर या जितनी मिल सके वह सब मिलाकर ३ सेर अठगुने पानी में छौंटाकर चौथाई भाग शेष रहने पर छान ले । इस कथ में रवेदन संस्कार की विधि से रवेदन कर ले और बाद में छानकर पारद को ग्रहण कर ले ।

दीपनसंस्कार—कसीस, काजीमिर्च, पिट्टिकरी, साहिजने के बीज, मुहागा, पौधो नमक, राई, समीपार प्रायक एक-एक छटाक लेकर पित्रक के बपाय से घोटकर पिट्टी कर ले, पारद को चौथाई पिट्टी में घोटकर पिट्टी होने पर दोहायंत्र में रवेदसंस्कार की विधि से

स्वेदन करना चाहिये किन्तु मिट्टी के पात्र में काँजी और चित्रक का काढ़ा तथा शेष तीन चौथाई पिट्टी को घोलकर रखे । बाद में पारद को कपड़े की तह में छानकर व्यवहार में लाना चाहिये । अब हम पारद को सर्वत्र व्यवहार में लाना चाहिये ।

गंधकजारण—मकरध्वज बनाने के लिये इस अष्टसंस्कार किए हुए पारद को १-२, ४-६ गुनी गन्धक के साथ घोटकर पात्र में अग्नि पर रख जला लेनी चाहिये । जितना अधिक गन्धक जारण किया जायगा उतना ही अधिक पारद उत्कृष्ट होगा और इसके बने मकरध्वज आदि रस अधिक गुणकारी होंगे ।

कजली—पारद और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर खरल में ढालकर इतना घोटना चाहिये कि काजल सा काला और मुलायम हो जाय । किसी भी रस में जहाँ पारद और गन्धक दोनों वस्तु हों पहिले इनको ही घोटकर तैयार कर लेना चाहिये ।

आमलासार गन्धक जिमका रंग हरा और विशप पीला हो, टूटने में मुलायम हो तथा काँच के टुकटों की सी चमक हो वह अच्छा होता है । हर्ष को ग्रहण करना चाहिये ।

शोधनविधि—लौटे के पात्र में गन्धक के बराबर ही धी ढालकर तथा छे और बाद में उसमें गन्धक पीसकर ढाल दे, जब दोनों पिघलकर एक हो जायें तो किसी गिलास आदि पात्र में ठंडा दूध भरकर उरमें ढाल दे । नीचे पेंदी में गन्धक जम जायगा । हम प्रकार तीन बार करना चाहिये । अग्नि देते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि तेज अग्नि लगकर गन्धक जल न जाय और रंग न बदल जाय ।

अधक—काळे रंग की भारी चमकदार परतवाली तोड़ने पर छोटें पत्र देकर टूट जाय, अग्नि पर तपाने से जमी की तैमी रहे, मखने पर मुलायम पूर्ण गी हो जाय गेमी कृष्णाधक भाग करने के लिये लेनी चाहिये ।

शोधनविधि—अधक के टुकटों को कोपले की तेज आग में तपा तपाकर ० बार क्षीरी में,

७ बार घेरी की छाल के काढ़े में और ७ बार त्रिफला के काढ़े में बुझाना चाहिये ।

भस्म करने की विधि—अभ्रक के टुकड़ों को कूटकर बारीक कर ले । अभ्रक से चौथाई धान मिलाकर सबको एक मज्जुत कंचल की थैली में भरकर उसका मुँह सीकर बन्द कर दे । इस थैली को १ दिन पानी में भिगो दे, दूसरे दिन एक घंटी परात में, इस थैली को रखकर हाथ से खूब मलना चाहिये । धान की रगड़ से अभ्रक धालू की भाँति निकलकर पानी में चला जाता है । इस पानी को निधारकर नीचे से अभ्रक को ग्रहण कर लेना चाहिये । इस धान्याभ्रक को जलपानक, कुकुरींथा, पान या जलचौलाई के रस में घोटकर टिकिया बना ले और सुलाकर एक मिट्टी के पात्र में भरकर ऊपर से ढक्कन से लगा कपड़मिट्टी करके सुला ले और गजपुट [ एक-डेढ़ हाथ लम्बे चौड़े गहरे गण्डे ] में १ सर अभ्रक के लिये ३०-४० कण्डों की आग देकर पुट दे देना चाहिये । इसी विधि से ७ पुट देनी चाहिये । फिर चौलाई के रस की ७, आक के दूध की ३, त्रिफला के काथ की ४, बरगद की जटाश्री की ३ पुट और देनी चाहिये । इस प्रकार २४-२५ पुट म अभ्रक निश्चन्द्र और अच्छी भस्म हो जाती है । व्यवहार योग्य अभ्रक म कम से कम १०० पुट लगा देने चाहिये, वैसे जितने पुट अधिक लगे उतना ही अच्छा है । हजार पुट तक का अभ्रक बनाया जाता है जो विरोप गुणकारी होता है । पुट देने म नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ।

१ घुटाई का साधन—श्रीपथ रस ताजा होना चाहिये । २ घुटाई अच्छी तरह होनी चाहिए । ३ टिकिया और पुटपात्र की कपड़मिट्टी अच्छी तरह सूख जानी चाहिये । ४ पुटपात्र खूब मज्जुत हो, कोई छिद्र आदि न हो, जितमें से श्रीपथ का तेज बाहर न निकल जाय । कपड़मिट्टी भी अच्छी तरह कर दी जाय, जिससे कोई छिद्र आदि न रहे । ५ पुट में कण्डे सावधानी से पास-पास रखे जायें पुटपात्र के नीचे ऊपर ठीक तरह से रखे जायें,

अग्नि नीचे से सुलगाई जाय । ६ बिलकुल शीतल होने पर ही पुटपात्र को निकालकर खोला जाय, याद में अभ्रक को घोटकर उसका अमृतीकरण करना चाहिये ।

अमृतीकरण—अभ्रकभस्म से चौथाई गौ का घी कड़ाई में ढालकर एक ग्रहण तक मन्दी-मन्दी आग से पकाकर घी को जलावे और बाद में अच्छी तरह घोटकर रख ले ।

परीक्षा—रंग लाल गेरुआ हो, चुटकी में दाबने से मुलायम हो, श्रृंगुली हटाने पर रेखाओं के निशान बन जाते हों, प्रकाश में कोई श्रंग नहीं चमकता हो ।

लौह—रेती, चुम्बक, पुरानी तलवार और स्पात का लोहा अच्छा रहता है । जिस लोहे पर आमला और कसीस लगाकर कुछ देर बाद धो डालने से अनेक कोण के दाग पड़ जाते हों वह लोहा श्रेष्ठ है ।

शोधनविधि—लोहे के पतले पात्र या रेती से रेता हुआ चूर्ण ( चूर्ण ही अच्छा है ) लेकर आग में तपा-तपाकर त्रिफलाकाथ और गौ मूत्र में ११-११ बार बुझा लेना चाहिये ।

भस्म करने की विधि—लौह को भस्म करने के लिये भानुपाक, स्थालीपाक और पुटपाक करना चाहिये ।

भानुपाक—त्रिफला का गाढ़ा-गाढ़ा काथ और दही के तीठ में लौहचूर्ण को मिलाकर सूर्य की तेज धूप में रखकर दिन में २-३ बार लकड़ी से चला देना चाहिये । इस प्रकार इस सूखे हुए लोहचूर्ण को ३ बार जल से धोकर नितारकर धलग निकाल लेना चाहिए ।

स्थालीपाक—भानुपाक किए लौहचूर्ण को मिट्टी या लौहपात्र में रखकर उससे दूनात्रिफलाकाथ मिलाकर तीव्र अग्नि से पकाना चाहिए, जिससे सब काथ जल जाय और लौहचूर्ण लाल हो जाय । इस चूर्ण को तीन बार शुद्ध कर ग्रहण कर लेना चाहिये ।

पुटपाक—स्थालीपाक किए हुए लौहचूर्ण में ग्यारहवां भाग शुद्ध हिंगुल मिलाकर त्रिफला के काथ से घोटकर गजपुट में फूँक देना चाहिये ।



इस प्रकार तीस पुट देने से भस्म हो जाती है । शास्त्रकारों ने लौह में कम से कम ६०, अधिक से अधिक १००-५०० और १००० पुट तक देने का विधान किया है, इसमें गुण उत्कृष्ट हो जाते हैं । १०० पुट दिया हुआ लौह ही व्यवहार में अच्छा रहता है ।

अधिक पुट देने के लिये अन्य रोग-दोषनाशक औषधों के स्वरस या काथ में घोटकर पुट देना चाहिये ।

परीक्षा—हलकी सुरसी लिये, कालापन लिये हुए, जल पर तैरनेवाली भस्म अच्छी होती है ।

मयदूर—

४-५ सौ वर्ष पुराने किलों में पाये जानेवाला, भारी काले रंग का कठिन, तोड़ने से मिट्टी की तरह टूटनेवाला किन्तु कड़े टुकड़ेवाला मयदूर श्रेष्ठ है ।

शोधनविधि—मयदूर के टुकड़ों को बहेड़े की तीव्रभिनि में तपाकर ७ बार गोमूत्र में बुझाना चाहिये ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध मयदूर के चूर्ण को त्रिकला के काथ में घोटकर सपुट कर ( मिट्टी के पात्र में रखकर मुँह बन्द करके कपड़मिट्टी कर ) गजपुट में फूँक देना चाहिए । इस प्रकार ४०-५० पुट देने से उत्तम भस्म हो जाती है ।

परीक्षा—कालापन लिये हुए लाल रंग, रूखी, लौहभस्म की अपेक्षा कुछ हलकी, थोड़े भ्रंश में जल पर तैरनेवाली मयदूर की भस्म होती है ।

नाग ( सीसा )—

घिसने पर काला रंग देनेवाला, काटने पर नीला रंग देकर चमकनेवाला, जलाने पर जह्दी गलनेवाला, फूटने पर मुलायम, भारी सीसा अच्छा होता है ।

शोधनविधि—एक गद्दे में एक पात्र रखकर उसके ऊपर एक पट्टी या तला का पाट ( जिसमें एक मुँह हो और सब पात्र ढक जाय ) रखकर पात्र में सैमालू का रस भरकर सीमा की छोड़े की कलवा में तपाकर उम पात्र में

डाल दे, इस प्रकार ७ बार बुझावे, फिर ३ बार आक के दूध में बुझाना चाहिये ।

भस्म करने की विधि—सीसा को कड़ाई में गलाकर ऊपर से पीपल, इमली या अपामार्ग का चूर्ण डालकर करछुल से घोटता रहे, धीरे-धीरे इस प्रकार करने से भस्म हो जाती है ( समय लगता है ) । बाद में ठंडे होने पर कपड़े में छान ले और जो अश कचा रह गया हो उसे इसी प्रकार फिर भस्म करना चाहिये । याद में इस भस्म को लेकर समान भाग मैनेसिल मिलाकर काँची के साथ घोटकर शरावंसपुट में रख ३० कपड़ों की आग देकर गजपुट में फूँक देना चाहिये । ३ पुट में भस्म हो जाती है । चिकने काले रंग की भारी और साक होती है ।

बंग ( रॉंगा )—

चमकदार, सफेद, घजन में भारी, जह्दी गलनेवाला, गलने में शब्द न हो वह अच्छा है ।

शोधनविधि—नाग की तरह यत्र बनाकर उसमें चूने का जल भरकर, घग को आग पर तपाकर गलने पर इस चूने के जल में बुझावे, इस प्रकार ७ बार चूने के जल में बुझाना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—लौह के पात्र में रॉंगा को पिघलाकर उसके ऊपर थोड़ा अपामार्ग या पीपल के घृष्ट की छाल का चूर्ण डालता जाय और करछुली से चलाता जाय, औषधों का चूर्ण जलकर लाल हो जाता है और बंग थोड़ी-थोड़ी करके भस्म होती जागो है, यह धीरे-धीरे होती है । याद में ठंडे होने पर छान ले, कुछ भ्रंश कचा रह जाय उमको भी फिर इसी तरह दुबारा भस्म करने के बाद में कपड़छान कर आक के दूध में घोटकर ३०-३० कपड़ों के ३ पुट और दे देने चाहिए । पार चमकरहित आग में गलने से गटि न बंधनेवाली भस्म होती है ।

यशद ( जस्ता )—

काटने गलाने में बंग से कठिन, चमकदार, काटने में मज्रद, चमकदार अच्छा होता है ।

शोधनविधि—नाग चंग की तरह यंत्र बनाकर तपा-तपाकर गलने पर ७ बार गौ के दूध में या चूने के पानी में बुझाने से शुद्ध होता है ।

भस्म करने की विधि—कढ़ाई में गलाकर घषामार्ग का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालकर लोहे के करछुले से चलाता रहे जब चूर्ण की तरह हो जाय तब फिर चंग नाग की तरह तीन पुट धीरे देने चाहिए ।

ताम्र—

खूब चोट सहनेवाला, लाल रंग का स्वच्छ चमकदार तांबा अच्छा होता है ।

शोधनविधि—तांबे के पत्र या रेतो मे रेतो हुए चूर्ण को तपाकर २१ बार खट्टे तुतिया के पत्तों और निगुंरटी के पत्तों के रस में बुझाने से शुद्ध हो जाता है ।

भस्म करने की विधि—तांबे के पत्रों के समान गंधक लेकर उसको नींबू के रस में घोटकर ताम्रपत्रों पर लेप कर दे और बाद में गजपुट में फूँक दे । ५ पुट देने के बाद दही के तोड़ में घोटकर १५ पुट और देने चाहिये । भस्म में चमक न रहे, स्वाद में तांबे का आभास न हो, दही के तोड़ में घोटने पर रंग न बदले वह अच्छी भस्म होती है ।

अमृतीकरण—अच्छी ताम्रभस्म को उसका आधा भाग गंधक और पचास ( गौ का दूध, दही, घी, शहद, मिर्ची ) के साथ घोटकर ३ पुट दे देने चाहिए, इससे ८ दोषों की शान्ति हो जाती है । अमृतीकरण अवश्य करना चाहिए ।

रजत ( चाँदी )—

कसौटी पर घिसने पर, काटने में और देखने में, तपाने में चमकदार, सफेद, वजन में भारी हो वह चाँदी भस्म के योग्य होती है ।

शोधनविधि—चाँदी के पत्र या रेतो से रिते चूर्ण को तपा-तपाकर ५-७ बार अगस्त के पत्तों के रस में बुझाने से शुद्ध होती है ।

भस्म करने की विधि—चाँदी के पत्रों के बराबर शुद्ध पारद और गंधक लेकर पत्रों से दूने ग्वारपाटे के गूदे में घोटकर शरावसगुट में

रखकर २० कण्डों की आग से गजपुट में फूँक दे, इस प्रकार १५ पुट में भस्म हो जाती है, दाने और चमकहित भस्म होती है ।

स्वर्ण ( सोना )—

हलकी लाली लिप पीले रंग का चमकदार, कसौटी पर केसरिया रंग की चमक देनेवाला भारी सोना उत्तम होता है ।

शोधनविधि—सोने के पत्रों के बराबर तोल की इंट का चूर्ण, चूना, बाँवी की मिट्टी, कंडे की राख और गेरू लेकर नींबू के रस में खूब अच्छी तरह घोटकर स्वर्णपत्रों पर लेपकर २-३ कण्डों की आग पर सुख होने तक तपावे, और निकालकर टंडा कर ले, इस प्रकार ७ बार तपाने से शुद्ध हो जाता है ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध स्वर्णपत्रों के समान शुद्ध पारद लेकर नींबू के रस के साथ घोट डाले, बाद में जल से धोकर खटाई निकाल दे, बाद में सूखने पर गंधक के साथ घोटकर सगुट कर गजपुट में फूँक दे, इस प्रकार १४ पुट देने से सोने की भस्म हो जाती है । प्रत्येक पुट में मिलानेवाले पारद की मात्रा रूई भाग कम कर देनी चाहिए । चमकहित भस्म होनी चाहिये । यदि चमक रहे तो फिर पुट देने चाहिए ।

पित्तल ( पीतल )—

शोधनविधि—सँभालू के रस में उसका सोहलवाँ भाग हस्दी का चूर्ण मिला लेना चाहिए । पीतल के पत्रों को तपाकर इस रस में बुझाने से ७ बार में शुद्ध हो जाती है ।

भस्म करने की विधि—आक के दूध में घुटी हुई गंधक का लेप पत्रों पर करके शरावसगुट में रख गजपुट में ११ पुट देने से भस्म हो जाती है : बाद में ताम्रभस्म की तरह इसकी भी अमृतीकरण कर लेना चाहिए ।

काश्य ( काँसा )—

चोट लगाने पर अच्छी आवाज देनेवाला, मिट्टी की तरह टूटनेवाला सफेद चमकदार होता है ।

शोधनविधि—काँसे के पत्रों को तपा-तपाकर

गोमूत्र में ७ बार बुझाने से शुद्ध होता है ।

भस्म करने की विधि—काँसी के बराबर गंधक और मैनासिल समान भाग लेकर ग्वार-पाठे के गूदे में घोटकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँक दे, १० पुट में भस्म हो जाती है ।

**स्वर्णमाक्षिक ( सोनामाखी )—**

हलका नीलापन लिए हुए पीलापन हो । कसौटी पर घिसने से सोने के रंग की लकीर दे, टुकड़ा में धारीक कोण न हो चमकदार और भारी हो वह श्रेष्ठ है ।

शोधनविधि—सोनामाखी को कूटकर पोतली में बाँध केले के कन्द के रस में पारद के शोधन संस्कार के समान ३ घंटे तक उसका स्वेदन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध सोनामाखी को नींबू के रस में घोटकर टिकिया बनाकर शरावसंपुट में रख गजपुट में फूँकना चाहिए । ११ पुट देने से भस्म हो जाती है ।

**रौप्यमाक्षिक ( रूपामाखी )—**

हलकी नीलीकनकयुक्त, पीले रंग की-सी सफेद, कसौटी पर सफेद लकीर देनेवाली, चौकोर टुकड़ोंवाली भारी अच्छी होती है । शोधन और भस्म करने की विधि सब सोनामाखी के समान ही होती है ।

**हरिण्यशृंग ( माबर का सींग )—**

तोड़ने से भीतर सफेद, पत्रन में भारी, घिना घुना, भनके शाखाओंवाला अच्छा होता है ।

शोधनविधि—छोटे-छोटे टुकड़े करके दूध में डबालने से शुद्ध होता है ।

भस्म करने की विधि—घाक के दूध और घृह के दूध की भाषना देकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँकने से भस्म हो जाती है । त्रिपस्ता के काथ में घोटकर एच पुट और दे देना चाहिए ।

**ताल ( हरताल )—**

अच्छा चमकदार, पीले रंग का भारी, तोड़ने पर छोटे-छोटे पत्रोंवाला अच्छा होता है ।

शोधनविधि—पेठे के रस, गुना का जल

और त्रिफला के काथ में पारद के संस्कार की तरह २-३ घंटे स्वेदन व चाहिए ।

भस्म करने की विधि—मिट्टी के सकोरे सफेद अश्रक के बड़े-बड़े टुकड़े जमाकर ३ से हरताल के टुकड़े रखकर फिर अश्रक बड़े-बड़े टुकड़ों को जमाकर दूसरे सकोरे टककर कपरमिट्टी कर दे, बाद में सबके ३ २-३ अगुल मोटी मिट्टी का लेप कर दे । ४ में १० १२ कण्डों की अग्नि रखकर सारण भूमि में ही फूँक दे । आग में डालने धुआँ न दे ऐसी भस्म होनी चाहिए ।

**श्वेत ताल ( गोदन्ती हरताल )—**

सफेद रंग की सफेद अश्रक या सफेद सुर के समान चमकदार टुकड़ेवाली होती है ।

शोधनविधि—नींबू के रस में एक प्रह तक पारद के स्वेदन संस्कार की तरह स्वेदन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—गोदन्ती से आध ग्वारपाठे का गूदा लेकर उसमें घोटकर टिकिया बना ले, बाद में शरावसंपुट में रखकर ५ कण्डों की आग में गजपुट में फूँक दे । १ में ही भस्म हो जाती है ।

**मनःशिला ( मैनाशिल )—**

नारंगी रंग की सुन्दर तोल में भारी हो व अच्छी है ।

शोधनविधि—बिजौरि नींबू के रस की भाषना देने से शुद्ध हो जाती है ।

भस्म करने की विधि—बोई-कोई व हरताल की तरह फूँकते हैं, किन्तु चापरयक नहीं, शुद्ध ही चौपधोपयोग में लिया जाता है ।

**शंखपिप ( सरिरवा )—**

लाल और सफेद दो तरह का होता है । सफेद ही अधिक मिलता है । यह भारी सफेद रंग का चमकदार पत्थर सा होता है ।

शोधनविधि—१० तोले शंखपिप के टुकड़ों को जवापार, मझीपार, मुटागा ३-३ तोले और काँजी का जल ७ मेर लेकर पारद के स्वेदन संस्कार की तरह १ दिन स्वेदन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—अधिकारा बैद्य इसे ही व्यवहार में लाते हैं, क्योंकि यह उद्वन-ल होता है। फिर भी भस्म करने की विधि खते हैं—

७ दिन चौलाई के रस में घोटकर टिकिया ना एक बड़े गोल बेंगन के अन्दर रख उसको आवसपुट में रखकर गजपुट में फूँक लेना हिण्ड। भस्म को आग में डालने पर धुआँ निकलता है।

शख—

भारी, बीच में गोल सुन्दर सफेद चमकीला र अच्छा होता है।

शोधनविधि—पारद के स्वेदन सस्कार की ह काँजी में ३ छटें तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—टुकड़ों को खारपाटे गूदे में रखकर शरावसपुट में बन्दकर पुट

ना चाहिये। १-२ पुट में भस्म हो जाती। पानी में बुझाने पर चूने की तरह गलकर

लान जाय तो फिर दुबारा पुट देना चाहिए। शुक्ति ( सीपी )—

हलकी नीले शीर हरे रंग की चमकवाली, फेद मोती के निशानयुक्त अच्छी होती है।

शोधनविधि—नींबू के रस में १ प्रहर के स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शख के समान। वराटक ( कौडी )—

सफेद हलके पीले रंग की चमकीली, गाठ-र और भारी अच्छी होती है।

शोधनविधि—काँजी में १ प्रहर तक स्वेदन ना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शख के समान। प्रवाल ( मूंगा )—

हलका लाल रंग का चिकना, बड़ा, तोड़ने कड़ा, [गोलाकर, धुन रहित भारी अच्छा] है।

शोधनविधि—गो दूध, चौलाई के रस में प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शख के समान। मुत्रा ( मोती )—

खूब सफेद हलका पीलापन लिये, चमकदार, चिकना, मजबूत, गोल, सुडौल, नमक के ससर्ग से चमक कम न हो वह अच्छा होता है।

शोधनविधि—जैत की पत्तियों के रस में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—गुलाब के जल में घोटकर शरावसपुट में रखकर गजपुट में फूँकने से २-३ पुट में भस्म हो जाती है।

पुष्पराज ( पुखराज )—

हलका सुनहला पीले रंग का पारदर्शी, स्वच्छ, गोल, चमकीला, चिकना, घिसने पर कसौटी पर पीली रेखा देनेवाला अच्छा होता है।

शोधनविधि—एक प्रहर तक दोलायत्र में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध पुखराज, शुद्ध हिगुल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध हरताल समान भाग लेकर नींबू के रस में घोटकर, सुखाकर, शरावसपुट में रखकर गजपुट में फूँक दे। ११-१२ पुट में भस्म हो जाती है।

नीलरत्न ( नीलम )—

चमकदार, पारदर्शी, नीले रंग का चिकना और वजनदार अच्छा होता है।

शोधनविधि—अगस्त के पत्तों में एक प्रहर स्वेदन करने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध नीलम, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिगुल, शुद्ध मैगसिल समान भाग लेकर जैभीरी नींबू के रस में घोटकर गजपुट में फूँक दे, १०-१२ पुट में भस्म हो जाती है।

मरकत ( पन्ना )—

स्वच्छ, चमकदार, हरे रंग का, कोण-रहित, चिकना, भारी अच्छा होता है।

शोधनविधि—गौ के दूध में २ प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध पन्ना, शुद्धगन्धक, हीगुल, शुद्ध हरताल समान भाग लेकर नींबू के रस में घोटकर शरावसपुट में रख गजपुट में फूँक देना चाहिए। ८ १० पुट में भस्म हो जाती है।

पैशुयं—

चमकदार, थिदली की छाँटों के समान  
नेत्रपात्रा, कंजा, चक्रदार, जनेऊवाला, चिकना  
और भारी अच्छा होता है ।

शोधनविधि—त्रिफला के काढ़े में २ प्रहर  
तक शोधन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैदूर्य, शुद्ध  
गन्धक, शुद्ध मैन्सिल, शुद्ध हरताल समान  
भाग लेकर नीबू के रस में ४ दिन तक घोट  
कर सूखने पर शरावसंपुट में रखकर गजपुट  
में फूँकना चाहिए, १० पुट में भस्म हो  
जायगी ।

गोमेद—

खाल, पीला मिला गंदले से रंग का  
बजनी, चमकदार, चिकना और गोल अच्छा  
होता है ।

शोधनविधि—२-३ प्रहर तक स्वेदन करने  
से शुद्ध होता है ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध गोमेद के  
बराबर शुद्ध मैन्सिल लेकर नीबू के रस  
में २ दिन तक घोटकर शरावसंपुट में रखकर  
गजपुट में २ पुट देने चाहिए । इसी तरह गंधक  
और हरताल के साथ घोटकर भी अलग-अलग  
३-३ पुट देने चाहिए ।

माणिक्य (मानिक) —

खाल कमल के समान चमकदार, चिकना  
और गोल माणिक अच्छा होता है ।

शोधनविधि—नीबू के रस में २ प्रहर तक  
स्वेदन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध मानिक,  
शुद्ध मैन्सिल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध हींगुल  
लेकर नीबू के रस में घोटकर टिकिया बना ले ।  
शरावसंपुट में रखकर गजपुट में १०-१२ पुट  
द देने से भस्म हो जाती है ।

पत्र (हीरा) —

चिकना, चमकनेवाला, कर्माटी पर धिसने  
से न धिमे, तोड़ने से न टूटे, तेज धारवाला,  
कड़ी चीज को काटनेवाला और कई (१-८)  
कोमोवाला उत्तम होता है ।

शोधनविधि—तीमाग्नि में तपोकर १००  
वार शुद्ध पारे में युक्ताना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—कसौटी के खरल में  
शुद्ध हीरा, शुद्ध हरताल, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक,  
शुद्ध मैन्सिल और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान  
भाग लेकर थूहर के दूध के योग से घोटकर  
शरावसंपुट में रख गजपुट में फूँक देना  
चाहिए । १५-२० पुट देने से भस्म हो जाती है ।

वैक्रान्त—

हीरा के गुणों से हीन होता है और उसके  
प्रतिनिधि रूप में व्यवहार में आता है । यह  
केवल सफेद रंग का नहीं होता है । सफेद,  
नीला, पीला, कई रंग का होता है पर भस्म  
करने लिए सफेद ही श्रेष्ठ है ।

शोधनविधि—४ प्रहर तक गोमूत्र या  
कॉजी में स्वेदन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैक्रान्त, शुद्ध  
गन्धक, शुद्ध पारद और शुद्ध हिंगुल नीबू के रस  
में एक दिन तक घोटकर टिकिया बना, शराव  
संपुट में रखकर गजपुट में फूँक देना चाहिए ।  
१० पुट में भस्म हो जाती है ।

विशेष द्रष्टव्य—

शोधन करने और भस्म करने की विधियाँ  
स्वेदन, शरावसंपुट और गजपुट का उल्लेख  
कई स्थलों पर हुआ है, अतः यहाँ स्पष्ट कर  
देना आवश्यक है ।

स्वेदन—पारद के स्वेदन संस्कार में धर्मिण  
की हुई विधि से ही जिन द्रव्यों में स्वेदन  
परमा लिखा हो उन्हें पात्र में डाल, स्वेदन  
करने योग्य द्रव्य को कपड़े की पोटीली में  
बाँध, उम पोटीली की मुतली से एक पेंसी लेकर  
से बाँधना चाहिए जो पात्र के मुख पर आये  
था छाया और पोटीली पात्र के द्रव्य पदार्थ  
में पेंसी लटकती रहे कि दूबी तो रहे, बिना  
पात्र के पेंडे से स्पर्श न करे ।

शरावसंपुट—भस्म करनेवाले द्रव्य को एक  
भिद्री के गडोरे में रख उसके ऊपर दूसरा  
गडोरा दबकर उनके मुख की संधि कपरमि  
ने बन्द कर देने का नाम शरावसंपुट

गजपुट—<sup>१</sup>॥ हाथ लम्बा, चौड़ा, गहरा पट्टा करके उसमें कपड़ों को भरकर बीच में शरावसंपुट रखकर आग देने का नाम जपुट है ।

पुट—औषध को शरावसंपुट में रखकर फूँकने का नाम पुट देना है ।

उपधातु आदि द्रव्यों का शोधन तुल्यक ( नीलाथोथा )—

मौर की गर्दन के समान नीले वर्णवाला, भारी, चिकना और चमकदार तुल्य अर्च्छा होता है ।

शोधनविधि—नीलाथोथा को पीसकर उससे आधे गरम जल में धोल दे, धुल जाने पर कपड़े से छान ले और उस जल की काँच के पात्र में रख दे । जब उसके तले में नीलाथोथा के कण जम जायँ तब उनको निकालकर व्यवहार में लाना चाहिए ।

मृदारशुद्ध ( मुरदासंग )—

मुरदासंग को खरल में कूटकर इसमें से पत्थर आदि के अंश को हटाकर पीसकर कपड़े में छान ले, बाद में स्वच्छ जल से १२ दिन तक घोटकर धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए ।

खपर ( खपरिया )—

शोधनविधि—खपरिया को कूटकर उसमें से पत्थर का अंश निकालकर शेष भाग को ७ दिन तक नींबू के रस में घोट कर सुखा लेनी चाहिए, या तपा-तपाकर नींबू के रस में ७ बार बुझा देनी चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध खपरिया के बराबर शुद्ध हरताल पीसकर शरावसंपुट में रखकर ३ पुट देने से भस्म हो जाती है ।

कांतपापाण ( चुम्बक )—

शोधनविधि—चुम्बक को नींबू के रस में घोटकर त्रिफला के द्राघ में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध चुम्बक को गोमूत्र और त्रिफला के द्राघ में घोटकर

टिकिया बनाकर गजपुट में फूँक देने से ७ पुट में भस्म हो जाता है ।

कासीस—

शोधनविधि—कासीस को भांगरे के स्वरस में २ घंटे तक स्वेदन करना चाहिए ।

अजन—

खोतोअन और सौवीराअन के शोधन की विधि—भांगरे के रस में ७ दिन तक घोटने से दोनों प्रकार के सुरमा शुद्ध हो जाते हैं ।

शिलाजीत—

शिलाजीत में पत्थरों का चूर्ण आदि विजातीय अंश मिला रहता है, इसलिये इसका शोधन अच्छी तरह से करना चाहिए । गर्मियों के दिनों में एक लोहे के पात्र में शिलाजीत से, दूना गर्म जल और आधा त्रिफला का द्राघ ढालकर दिन भर धूप में रहने दे । बाद कपड़े से छान ले, इस प्रकार फिर गर्म जल में धोल ले और छान ले, इसी प्रकार एक दूसरे और तीसरे चौथे पात्र में बराबर छानता रहे जब तक कि जिस जल में धोया जाय वह थिलकुल निर्मल न निकले । बाद में सुखाकर रख ले—शुद्ध शिलाजीत अग्नि पर ढालने से धूँचा नहीं देता और लिङ्गाकार ( स्तुपाकार ) हो जाता है, जल में ढालने से तन्तु छोटता हुआ जल में धुल जाता है, स्वाद में चरपरा और कटुवा होता है ।

गैरिक ( गेरू )—

शोधनविधि—सोना गेरू को खरल में चूर्ण करके गोदुग्ध के साथ घोटकर सुखाने से शुद्ध होता है ।

फिटिक ( फिटकरी )—

शोधनविधि—गरम तवे पर तपाकर कुलाकर खील सी कर ले, यही इसकी शुद्धि है । सब प्रयोगों में हमी को व्यवहार में लाना चाहिए ।

टंकण ( मुद्गाग )—

शोधनविधि—मुद्गाग को फिटकरी की तरह गर्म तवे पर पुलाकर खील-सा कर लेना

वैदूर्य—

चमकदार, धिल्ली की आँखों के समान नेत्रवाला, कंजा, चक्रदार, जनेऊवाला, चिकना और भारी अर्च्छा होता है ।

शोधनविधि—त्रिफला के काढ़े में २ प्रहर तक शोधन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैदूर्य, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैन्सिल, शुद्ध हरताल समान भाग लेकर नीबू के रस में ४ दिन तक घोट कर सूखने पर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँकना चाहिए, १० पुट में भस्म हो जायगी ।

गोमेद—

लाल, पीला मिला गंदले से रंग का बजनी, चमकदार, चिकना और गोल अर्च्छा होता है ।

शोधनविधि—२-३ प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध होता है ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध गोमेद के बराबर शुद्ध मैन्सिल लेकर नीबू के रस में २ दिन तक घोटकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में २ पुट देने चाहिए । इसी तरह गंधक और हरताल के साथ घोटकर भी अलग-अलग ३-३ पुट देने चाहिए ।

भाणिक्य ( मानिक )—

लाल कमल के समान चमकदार, चिकना और गोल भाणिक्य अर्च्छा होता है ।

शोधनविधि—नीबू के रस में २ प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध मानिक, शुद्ध मैन्सिल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध हिंगुल लेकर नीबू के रस में घोटकर टिकिया बना के । शरावसंपुट में रखकर गजपुट में १०-१२ पुट देने से भस्म हो जाती है ।

पत्र ( हीरा )—

चिकना, चमकनेवाला, कमीठी पर घिसने से न घिसे, मोड़ने से न टूटे, तेज धारवाला, कड़ी बीज की काटनेवाला और कई ( १-८ ) कीर्णवाला उत्तम होता है ।

शोधनविधि—तीव्रान्नि में तपोकर १० बार शुद्ध पारे में बुझाना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—कसीटी के खरले शुद्ध हीरा, शुद्ध हरताल, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक शुद्ध मैन्सिल और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान भाग लेकर थूहर के दूध के योग से घोटकर शरावसंपुट में रख गजपुट में फूँक देना चाहिए । १५-२० पुट देने से भस्म हो जाती है ।

वैक्रान्त—

हीरा के गुणों से हीन होता है और उसके प्रतिनिधि रूप में व्यवहार में आता है । यह केवल सफेद रंग का नहीं होता है । सफेद, नीला, पीला, कई रंग का होता है पर भस्म करने लिए सफेद ही श्रेष्ठ है ।

शोधनविधि—४ प्रहर तक गोमूत्र या काँजी में स्वेदन करना चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैक्रान्त, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद और शुद्ध हिंगुल नीबू के रस में एक दिन तक घोटकर टिकिया बना, शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँक देना चाहिए । १० पुट में भस्म हो जाती है ।

विशेष द्रष्टव्य—

शोधन करने और भस्म करने की विधि में स्वेदन, शरावसंपुट और गजपुट का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है, अतः यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है ।

स्वेदन—पारद के स्वेदन संस्कार में घण्टी की हुई विधि से ही जिन द्रव्यों में स्वेदन करना लिखा हो उन्हें पात्र में डाल, स्वेदन करने योग्य द्रव्य की कपड़े की पोतली में बाँध, उस पोतली को मुतली से एक पेसी लकड़ी से बाँधना चाहिए जो पात्र के मुग पर आया भा जाया और पोतली पात्र के द्रव्य पर आये में पेसी लटकती रहे कि दूधी तो रहे, बिना पात्र के पेंदे से स्पर्श न करे ।

शरावसंपुट—भस्म करनेवाले द्रव्य की एक मिट्टी के मकोरे में रख उसके ऊपर दूसरी मकोरा ढककर उनके मुग की तथि कपरमिद से बन्द कर देने का नाम शरावसंपुट है ।

गजपुट—१॥ हाथ लम्बा, चौड़ा, गहरा डडा करके उसमें कण्डों को भरकर बीच में रावसपुट रखकर आग देने का नाम जपुट है ।

पुट—अौषध को शरावसपुट में रखकर फूँकने का नाम पुट देना है ।

उपधातु आदि द्रव्यों का शोधन

तुल्यक ( नीलाथोथा )—

मोर की गर्दन के समान नीले वर्णवाला, भारी, चिकना और चमकदार तुल्य अच्छा होता है ।

शोधनविधि—नीलाथोथा को पीसकर उससे आधे गरम जल में घोल दे, घुल जाने पर कपड़े से छान ले और उस जल की काँच के पात्र में रख दे । जब उसके तले में नीलाथोथा के कण जम जायँ तब उनको निकालकर व्यवहार में लाना चाहिए ।

मृदारशृङ्ग ( मुरदासग )—

मुरदासग को खरल में कूटकर इसमें से पथर आदि के अश को हटाकर पीसकर कपड़े में छान ले, बाद में स्वच्छ जल से १५ दिन तक घोटकर धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए ।

खपर ( खपरिया )—

शोधनविधि—खपरिया को कूटकर उसमें से पथर का अश निकालकर शेष भाग को ७ दिन तक नींबू के रस में घोट कर सुखा लेनी चाहिए, या तपा-तपाकर नींबू के रस में ७ बार बुझा देनी चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध खपरिया के बराबर शुद्ध हरताल पीसकर शरावसपुट में रखकर ३ पुट देने से भस्म हो जाती है ।

कान्तपापाण ( पुम्बक )—

शोधनविधि—पुम्बक को नींबू के रस में घोटकर त्रिफला के द्वाप में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध पुम्बक को गोमूत्र और त्रिफला के द्वाप में घोटकर

टिकिया बनाकर गजपुट में फूँक देने से ७ पुट में भस्म हो जाता है ।

कासीस—

शोधनविधि—कासीस को भांगरे के स्वरस में २ घंटे तक स्वेदन करना चाहिए ।

अजन—

स्रोतोञ्जन और सौवीराञ्जन के शोधन की विधि—भांगरे के रस में ७ दिन तक घोटने से दोनों प्रकार के सुरमा शुद्ध हो जावे है ।

शिलाजीत—

शिलाजीत में पथरों का चूर्ण आदि विजातीय अश मिळा रहता है, इसलिये इसका शोधन अच्छी तरह से करना चाहिए । गर्मी के दिनों में एक लोहे के पात्र में शिलाजीत से दूना गर्म जल और थापा त्रिफला का द्वाप डालकर दिन भर धूप में रहन दे । बाद कपड़े में छान ले, इस प्रकार फिर गर्म जल में घोल ले और छान ले, इसी प्रकार एक दूसरे और तीसरे चौथे पात्र में बराबर छानता रहे जब तक कि जिस जल में धोला जाय वह थिलकुल निर्मल न निकले । बाद में सुखाकर रख ले—शुद्ध शिलाजीत अग्नि पर डालने से धूम्राँ नहीं देता और लिङ्गाकार ( स्तूपाकार ) हो जाता है, जल में डालने से तन्तु छोड़ता हुआ जल में घुल जाता है, स्वाद में चरपरा और कडुवा होता है ।

गैरिक ( गेरु )—

शोधनविधि—सोना गेरु को गरल में चूर्ण करके गोदुग्ध के साथ घोटकर सुखाने से शुद्ध होता है ।

फिटक ( फिटकरी )—

शोधनविधि—गरम तवे पर तपाकर फुलाकर खील सी कर ले, यही इसकी शुद्धि है । सब प्रयोगों में इसी को व्यवहार में लाना चाहिए ।

टंकण ( मुद्गाग )—

शोधनविधि—मुद्गाग की फिटकरी की तरह गर्म तवे पर पुलाकर खील-सा कर लेना



चाहिए। यही सब प्रयोगों में व्यवहार में लाना चाहिए।

नवसार ( नौसादर )—

शोधनविधि—नौसादर को तिगुने जल में भिगोकर कपड़े से छानकर उस जल को तेज आग से पकावे, जब जलमात्र जल जाय तब तले में सूरे हुए चूर्ण रूप नौसादर को व्यवहार में लाना चाहिए।

खटिका ( खडिया )—

शोधनविधि—खडिया को साफ जल में धोलकर छानकर सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

यवहार ( जवाहार )—

निर्माणविधि—जौ के शूकों की भस्म को आठगुने जल में किसी स्वच्छ पात्र में धोल दे जब भस्म नीचे बैठ जाय तो छल को नितार कर अलग कर ले। उसे लौहपात्र में ढालकर अग्नि पर पकावे जब गाढ़ा हो जाय तो उसे निकालकर किमी दूसरे पात्र में रख उस पात्र को एक जल के पात्र में रखकर उसकी भाप से मुलावे या धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

इसी प्रकार सजीगर, उष्ट्रप्रिया ( छुद्र हुरालभा ) को जलाकर बनाया जाता है। अन्य चार भी इसी विधि से बनाए जाते हैं।

विष-उपविष।

वामनाभ ( वषट्पनाग तेलिया भीठा )—

शोधनविधि—मिट्टी या पत्थर के पात्र में वषट्पनाग के घने के बराबर छोटे २ टुकड़े करके गोमूत्र में भिगोकर ( मूत्र ऊपर तैरता रहे ) धूप में रख दे। इस प्रकार प्रति दिन मूत्र बदलते हुए तीन दिन करने में शुद्ध हो जाता है।

विषातिशुक्र ( कुचला )—

शोधनविधि—कुचला के बीजों को मन्दी २ भाग से घी में पकाने में ( जब कि ऊपर का पिलका विषम भाग, पीला गा हो जाय ) शुद्ध हो जाता है।

अशिकेन ( अश्रीम )—

शोधनविधि—अश्रीम को जल में धोलकर कपड़े में छानकर सुखा ले।

जयपाल ( जमालगोटा )—

शोधनविधि—जयपाल के बीजों को छील कर ( मोटा छिलका हटाकर ) उनके दो दल करके बीच जीभ को भी हटाकर पोटली में बाँधकर पारद के स्वेदन संस्कार की तरह एक प्रहर भर गोदुग्ध में स्वेदन करना चाहिए। इस प्रकार तीन दिन स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

धत्तूर ( धतूरे के बीज )—

शोधनविधि—धत्तूरे के बीजों को गोदुग्ध में जयपाल की तरह स्वेदन करना चाहिए।

भग्ना ( भाँग )—

शोधनविधि—भाँग को जल में भिगोकर अच्छी तरह भीजने के बाद मसल-मसल कर कई बार जल से धो दाले, बाद में सुखाकर गौ के घी में मन्दी २ भाग में भूनकर काम में लाना चाहिए।

गुंजा ( रसी )—

शोधनविधि—गुंजा को काली में एक दिन स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती है।

भिलातक ( भिलावाँ )—

भिलावें के फलों को इंट के चूर्ण के साथ तीन चार सह किए हुए कपड़े में ढालकर सूख रागड़े ( इससे तैल निकलकर इंट के चूर्ण में लग जाता है ), बाद में तैल और छिलके रहित हो जाने पर गर्म जल से धोकर व्यवहार में लाना चाहिए।

रनुहीशीर ( गेंदुड़ का दूध )—

शोधनविधि—८ तोले गेंदुड़ के दूध को दो तोले इमली के पत्तों के रस के साथ छान कर धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

कृष्णसर्प विष ( काले सर्प का जहर )—

शोधनविधि—नील से पिक्की मीपी ( पात्रविशेष ) में जहर का चौपाई भाग सरसों का तैल ढालकर धूप में सुखाना

चाहिए, पीले रंग का हो जाने पर व्यवहार के योग्य शुद्ध हो जाता है ।

रत्नचित्रक शोधनविधि—जाल चित्रक की जड़ के चूर्ण को चूने के नितरे हुए जल में डुबोकर और धूप में सुखाकर, व्यवहार में लाना चाहिए ।

वृद्धदारक ( विधारे के बीज ) शोधन-विधि—एक प्रहर तक गोदुग्ध में स्वेदन करने से व्यवहार योग्य हो जाते हैं ।

नीबू के बीजों का शोधन—अपामार्ग के हाथ में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए ।

हींग शोधनविधि—हींग के बराबर धी लेकर एक कलड़ी में पकावे, लाल हो जाने पर व्यवहार में लेना चाहिए ।

गुग्गुलु शोधनविधि—गुग्गुलु से चौगुना गोदुग्ध लेकर उसमें विधिपूर्वक स्वेदन करना चाहिए और उसे दूध में ही छान लेना चाहिए । दूध के शीतल होने पर नीचे के गुग्गुलु को ग्रहण करना चाहिए और कपड़े में लगे हुए मलभाग को त्याग देना चाहिए ।

समुद्रफेन शोधनविधि—समुद्रफेन को पीस कर एक दिन नीबू के रस में घोटने से व्यवहार में लाने योग्य होता है ।

शम्बूक ( घोंघा ) शोधनविधि—किसी भी खट्टे पदार्थ के द्रव में उबालने से शुद्ध हो जाता है ।

भस्म करने की विधि—शंख की तरह ही भस्म किया जाता है ।

आसव, अरिष्ट निर्माण करने की विधि—आसव और अरिष्टों के जितने प्रयोग इस ग्रन्थ में वर्णित हैं उन सबके साथ सामान्य विधि लिखी है, किन्तु निर्माण के भीतर की बातों को अनुभाव से ही ज्ञात होती है यहाँ लिखी जाती है, इससे आसव और अरिष्ट बनाने में बहुत सुविधा रहेगी ।

पात्र—आसव और अरिष्ट बनाने के लिए प्राचीन ग्रन्थों में मिट्टी के पात्र ( जो चिकने और पुराने हों ) ग्रहण किए हैं किन्तु उनके फटने फूटने के डर तथा रिसने ( चूने ) के भय

से काँच या चीनी के बड़े-बड़े पात्रों का व्यवहार करना अच्छा मालूम देता है । लकड़ी के बड़े २ पीपे भी जिनमें शराय आती है इसके लिए व्यवहार में आ सकते हैं किन्तु इनकी सफाई बहुत अधिक सोडा और चूने के जल द्वारा होनी चाहिए ।

श्रीपथ चूर्ण काथ गुड आदि मिलाने की विधि—सबसे पहिले काथ या जल में थोड़ा मधुर द्रव्य गुड खाँड आदि घोलकर कपड़े से ढककर और उसके ऊपर हलका सा ढकन इस तरह रख दे कि ज़रा सी हवा जाती रहे । इसी समय धाय के फूल आदि द्रव्य भी ढाल देने चाहिए जो मद्यार्क ( Alcohol ) उत्पन्न करने का कार्य करते हैं । लेखन की सम्मति में तो सुराबीज ( कियव Yeast ) २-१० छोड़ देना चाहिए । यदि विलायती और शुद्ध रूप में हो तो १ तोला या ६ माशा ही काफी होता है । इसके बाद श्रीपथों का चूर्ण कपड़न करके ढाल देना चाहिए और अच्छी तरह घोल देना चाहिए । पात्र को गर्मी के दिनों में शीतल स्थान में रखना चाहिए जहाँ हवा भी आती रहे और सर्दियों में पात्र को गर्दन तक भूसा, अनाज या पृथ्वी के भीतर रखना चाहिए, मधुर द्रव्य का शेष भाग २-३ बार में घोल देना चाहिए । पात्र आधा खाली रखना चाहिए और यदि बड़ा है तो ३/४ भी खाली रख सकते हैं । कियव ढालकर बनाने से गर्मियों में २-३ दिन में और सर्दियों में ४-५ दिन में आम्र बन जाता है, यदि सन्धान एक जाय तो बात अलग है । सन्धान बनते समय उसमें एक हलका सा शब्द होता है । सन्धान बनने का कार्य मीठे की कमी या मौसम की गर्मी से रकता है । उपाय—मीठे की कमी में मीठा टाकना और गर्मी की अधिकता में उसको टंडा कर देना या रबर की थैली में बन् भरकर पात्र में ढाल देना आदि है ।

छानने की विधि—आसव और अरिष्टों को पुरानी विधि से ताँ जकड़ी ही छानना चाहिए

अन्यथा सिरका बनकर विगडने का भय रहता है या विलायती फिल्टरों (बन्द मुँह के इटीदार चीनी के फिल्टरों) में छानना चाहिए और बाद में मीठा मिलाकर बोटलों में रख देना चाहिए । कार्क बसकर लगाना चाहिए ताकि वायु जाकर खराब न करे । सुगन्धित द्रव्य भी बाद में ही डालना चाहिए ।

लौहचूर्ण डालने का विधान जहाँ है वहाँ वह चूर्ण त्रिफला के काथ में काफी दिन डालकर घुलनशील करके फिर डालना चाहिए और स्वर्ण डालना हो तो स्वर्णभस्म (Gold Chloride) डालना चाहिए । अन्यथा चूर्ण या पत्र डालने पर धिना उनके घुले कुछ फल नहीं मिलता है ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थ

**JAMNADAS THAKKAR**

18 NANDANVAN,

269 SION-WEST,

BOMBAY 400022.

PHONE: 481814



विश्वविद्यालय 913

Misc. प्रयोग 913-14

श्रीधरप्रसाद ६९४ (९१४)

कामिनीप्रिया ९१४

२२१५०/११५४२०

विश्वविद्यालय ९१५

२२१६६५-९३०

श्रीधर ९३०

विद्यार्थी - ९३१९३२

शान्ति - ९३१

गोविन्द - ९३२

नारसिंह - ९३२

श्रीधर ९३५

श्रीधर ९४३

(२२१६६५)

मन्मथप्रसाद ९४४

श्रीधर ९४५

(२२१६६५)

श्रीधर ९४६

श्रीधर ९४८

श्रीधर ९१५

श्रीधर ९१६

श्रीधर ९१६

श्रीधर ९१६

श्रीधर ९१७

श्रीधर ९१७

श्रीधर ९१८

श्रीधर ९१८

श्रीधर ९१९

श्रीधर ९२०

श्रीधर ९२१

श्रीधर ९२२